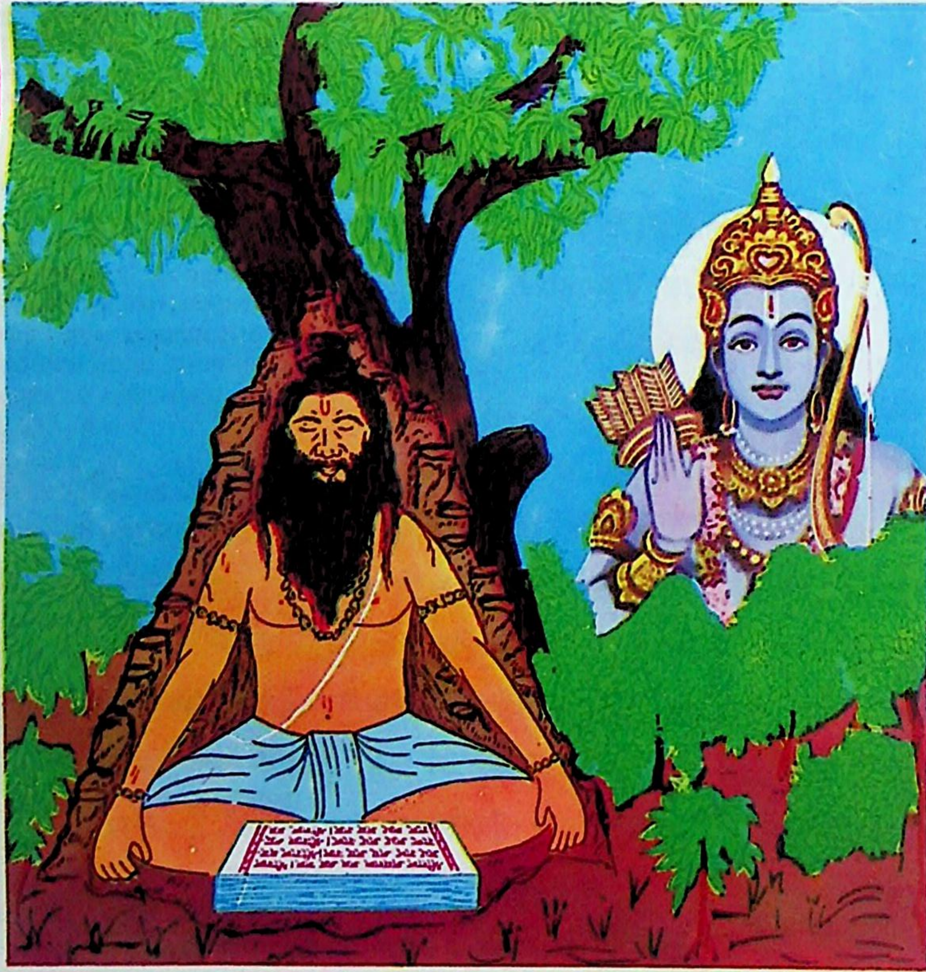
श्रीवाल्मीकीय
रामायण

हिन्दी टीका सहित

भाग : १



वाल्मिकीय रामायण

विद्यावारिधि पं. ज्वालाप्रसादजी मिश्र कृत

हिन्दी टीका सहित

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन बम्बई

संस्करण : फरवरी २०२०, संवत् २०७६

मूल्य:
पत्राकार : १५०० रुपये मात्र
साजिल्द : १७०० रुपये मात्र

मुद्रक एवं प्रकाशक
खेमराज श्रीकृष्णदास,
अध्यक्ष : श्री वेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, मुंबई - ४०० ००४

Printers & Publishers
Khemraj Shrikrishnadass
Prop : Shri Venkateshwar Press
Khemraj Shrikrishnadass Marg.
7 th Khetwadi, Mumbai. 400 004
Tel / Fax : 91 22 23857456

Web Site : http://www.khe_shri.com
E-Mail khemraj@vsnl.com

Printed by Sanjay Bajaj For M/s.Khemraj Shrikrishnadas
Prop.: Shri Venkateshwar Press, Mumbai 400004
at their Shri Venkateshwar Press,
22, Chintamani Industrial Estate, Ramtekdi, Pune-411013

भूमिका.

श्रीगणेशायनमः

यह "वाल्मीकिरामायण" इस देशके आबालवृद्धवनिताओंके निकट परमपूज्य और अत्यन्तही श्रद्धाकी सामग्री है इसका परिचय धर्मविप्लव, राज्य विप्लव सामाजिक परिर्वतन प्रभृति नानाविध नैसर्गिक बाधाओंके होने और कभीकभी विभक्त वा विध्वस्त और विच्छिन्न होनेसेभी अबतक भारतवासियोंके हृदयपर अधिकार जमा रहा है, समयके हेरफेर होनेके आधीन, वा भाग्यकी ताडनासे देश विदेशोंमें नई नई आकृति असामञ्जस्यभावसे प्रकाशित होनेपर भी, इस देशके लोगोंकी भक्ति, श्रद्धा, सन्मान, कल्याण और अनुशीलनके अनुग्रहसे, सबसे ऊंचे स्थानपर स्थापित हुई है इसके विषयमें यद्यपि अब विशेष कुछ कहनेको नहीं है, किन्तु न कहनेसे फिर महर्षिके निकट घोर अकृतज्ञ बनना पडे और पीछे वर्तमानकालमें ग्रंथप्रचार करके भूमिका न लिखनेसे कालोचित सभ्यता जाती रहे, फिर नवरुचिसम्पन्न नये ग्राहक गणके सामने इस कसरके लिये लजाना पडे इसही कारण थोडी भूमिका लिखनेका प्रयो जन है, वास्तवमें कुछ थोडाही सोच विचार और ढूँढभाल करनेसे यह बातें एक बारही मनमें पैठती है कि भारतवर्ष जिसके खेलका स्थान भाषा जिसकी दासी, सरस्वती जिसकी आज्ञाकारिणी कविकुलगुरु वाल्मीकिजीके सम्बन्धमें-उनकी अनुपम शक्तिके सम्बन्धमें—उनकी असाधारण प्रतिभाके सम्बन्ध—उनके विचित्रभावोंके सम्बन्धमें हमारा जहांतक ज्ञान जहांतक विचार—जहांतक ढूँढ भाल होसके कुछ कहनाही चाहिये। जिस रामायणको पढकर सुनकर मनुष्य स्वर्गसुखभोग करते हैं, जिसके प्रत्येक स्थानमें पीयूषकी लजानेहारी सुधा निकलती है जिसको परमपवित्र अमृत पीकर मृत्युलोकवासी अमरग तिलाभ करते हैं इस अनुपम ग्रन्थके रचयिता वही अतुलनीय महामहिमान्वित महर्षि वाल्मीकि हैं। हमारे कविगुरु प्रशस्त मनव स्वाधीन भावसे सरस्वतीकी कृपा पाय काव्यकाननमें प्रवेशकर नित्य सुगन्धभरे शोभायुक्त खिले हुए फूलोंसे कैसी दिव्यमाला गूंथ गये हैं जैसे त्रिलोक तारिणी गंगाने हिमालयसे निकलकर मनुष्योंके वासस्थान मृत्युलोकको पवित्र किया;उसीभांति वाल्मीकिरामायणने महीमंडलको धन्य,पवित्र औरविख्यात कर दिया है। हमही कुछ रामायणकी प्रतिष्ठा बढानेको यह बात नहीं कहते; किन्तु प्रसिद्ध टीका करनेवाले रामानुजस्वामीनेभी टीकाके मंगलाचरणमें कहा है कि—

"वाल्मीकिगिरिसम्भूता रामाम्भोनिधिसंगता ॥ श्रीमद्रामायणी गंगा पुनाति भुवनत्रयम् ॥"

तात्पर्य्य–"रामायणरूपी गंगा वाल्मीकिरूपी पहाडसे उत्पन्न हो रामरूप समुद्रमें गिरी है, और उससे त्रिलोक पवित्र हुआ है"

जो हो, महर्षि वाल्मीकिके रसभावसमन्वित, अपूर्व ग्रन्थके संबन्धमें कुछ कहनेसे पहले उनकी अनुभव शक्ति, असाधारण चिन्ताशीलता, अपूर्वरचनाप्रणालीके विषयकी आलोचना करनेसे पहिले यह विचारना चाहिये कि, वाल्मीकिरामायण क्यों इतनी श्रद्धा, भक्तिव गौरवकी सामग्री हुई है। यद्यपि यह अनुपम मनोहर ग्रन्थ अपौरुषेय नहीं, तथापि इसको अनुच्च, अप्रमाणिक अलीक कभी कोई नहीं कह सकता, हां इतना मानते हैं कि–स्वाधीनलेखक और सहज कवियोंके पक्षमें जो स्वाधीनता, खुली और फैली रहनी चाहिये वाल्मीकिजीने भी इसका अन्यथाचरण नहीं किया है। इन्होंने कवि होकर काव्य लिखा तो है परन्तु मनुष्योंके प्रसन्नार्थ लक्ष्यभ्रष्ट होकर खुशामदमें प्रवृत्त नहीं हुए हैं बहुतोंका यह विश्वास है कि, रामायण एक ऊंची श्रेणीका महाकाव्य है, आलंकारिकभी ऐसेही मानते हैं। वह कहते हैं कि जो काव्य आठसौ अधिक सर्गोंमें लिखागया वह महाकाव्योंमें गिना जाता है परन्तु हम इस अलंकारियोंकी सम्मतिमें अपनी सम्मति नहीं देसकते। वह औरोंके काव्योंमें जो इच्छा हो कहैं, हमारा कुछ हानि लाभ नहीं परन्तु रामायणके संबंधमें हम उनकी उक्तिका समर्थन नहीं कर सकते क्योंकि उनके लक्षणोंसे प्रगट है–

"काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये। सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे ॥"

तात्पर्य्य–"काव्यानुशीलनमें यशकी प्राप्ति, अर्थलाभ, अमंगलविनाश, आवृत्ति मात्रमें परमसुखानुभव, इतना क्या वरन् मोक्ष प्राप्ति, इन रसोंमें यह सुरसिका स्त्रीके तुल्य और उपदेशविधायी है."

सहृदय पाठकगण! विचारिये इन्हीं लक्षणोंसे क्या वाल्मीकिजीकी उक्तिका पर्य्यवसान होना संभवहै? उपलखण्ड और पहाड़को यदि एकही वस्तु समझें तो कहिये कि बडे छोटेका तारतम्य कहां रहा? पंख रहनेहीसे पक्षी कहलाता है, इस लक्षणके अनुसार यह कहदें कि बगले और राजहंसमें कुछ फरक नहीं रहा। शास्त्रमें लिखा है कि–

"वेदे रामायणे पुण्ये पुराणे भारते तथा"

क्या इस अर्द्ध श्लोकसे यह प्रमाण नहीं होता कि, "रामायण" वेदसमहोनेसे अतिपवित्र है क्योंकि पुण्य अर्थात् पवित्रकाविशेषण दिया है, यदि आप इस बात को न मानना चाहें तो वाल्मीकिजीकी उक्तिकी तरफ दृष्टि फेरिये मूलमें लिखा है–

"शृण्वन् रामायणं भक्त्या यः पादं पदमेव वा। स याति ब्रह्मणः स्थानं ब्रह्मणा पूज्यते सदा" ॥

अर्थात्-"जो भक्तिभावसे संपूर्ण रामायण, वा पदमात्र, वा उससेभी थोडा श्रवण करते हैं, वह सदा ब्रह्मासे पूजे जाकर ब्रह्मलोकमें वास करते हैं ॥" इसी ग्रंथमें और जगह वर्णन हुआ है कि-

"प्रयागाद्यानि तीर्थानि गंगाद्याः सरितस्तथा। नैमिषादीन्यरण्यानि कुरुक्षेत्रादिकान्यपि॥कृतानि तेन लोकेऽस्मिन् येन रामायणं श्रुतम्॥"

अर्थात्-"जिन्होंने रामायण श्रवण की है, उनके प्रयागादि तीर्थ, गंगादिनदी, नैमिषारण्य और कुरुक्षेत्रादि पवित्र अरण्य दर्शन; और वहांकीक्रियादिसबसिद्धहोगई"

जो हो, यह तो मानलिया गया कि, 'रामायण' पवित्र और पुण्य जनक ग्रंथहै परन्तु क्यों इसकी इतनी पवित्रता और इतना माहात्म्य है उसके संबधमें कुछ कहे विना, इस कालमें ऊनविंशशताब्दीकी सभ्यताके अधिकारमें, मनुष्योंके मनमें नाना सन्देह नाना कुतर्क और जल्पनाकी सृष्टि होना कुछ असम्भव नहीं है, इस कारण; इस संबधमें कुछ कहना चाहिये। वाल्मीकिजीके कहे हुए ग्रंथमें प्रतिपाद्य विषय रामोपाख्यान है। इन्हीं रामको वर्तमान समयमें कोई मनुष्य कोई लोकातीत शक्तिसम्पन्न, कोई एक राजाही, कहकर मन समझाते हैं. परन्तु शास्त्रसमूहके मथनेसे जानाजाता है कि रामचन्द्र ब्रह्म पदार्थ स्वयंही ईश्वर हैं "अवताराह्यनेकशः" यह जो शास्त्रीय वचन सुना जाता है भगवान् रामचन्द्र उसी अवतारके अन्यतम हैं गीतामें लिखा है कि-

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगेयुगे ॥

अर्थात्-"साधुओंकी रक्षा करनेके निमित्त, दुष्टोंके नाश करने और धर्मस्थापन करनेके उद्देशसे युगयुगमें अवताररूपसे अवतीर्ण होताहूँ"

इसही महद्वाक्यकी रक्षा करनेको भगवान् रामचन्द्रका अवतार हुआ, यहांपर ऐसा प्रश्न उठाना अनुचित नहीं है कि, रामचन्द्रही अवतार हैं इसका प्रमाण क्या ? इसके उत्तरमें कहा जाता है कि वेदमें लिखा है कि, भगवान् ईश्वर सृष्टिके कार्यसंभालनेको दश अवतारोंमें अवतीर्ण हुए हैं, यथा-

"रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव। तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय। इंद्रो मायाभिः पुरुरूपईयते। युक्ताह्यस्य हरयःशता दश॥" ऋग्वेद०

अर्थात्-परमात्मा अपनी शक्तियोंसे मन्वतरादिमें अनेक रूपोंसे प्रतीत होता है क्योंकि "तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय" इस अपने उस रूपके बोधन करनेके निमित्त रूपरूपके प्रति अर्थात् अपनी संकल्पजनित प्रकृतिसे मिलकर तत्सदृश होते हुए। आशय यह है कि, जब "परमात्मा संकल्पकर दिव्यरूपको प्रगट करेगा" तब अपने भक्तवात्सल्यादि गुणविशिष्ट रूपका प्रकाशक होगा। [वोह ऐसे अवताररूप कितने हैं उनका उत्तर स्वयं वेदमें है]" युक्ता ह्यस्य

हरयः शता दश " संसारके दुःख हरनेसे वोह हरि है वे रूप निश्चय करके संसार रक्षामें नियुक्त हैं; सन्नद्ध बद्धकर सवदा "शता" अनन्त हैं और दश अवतार तो अति प्रसिद्ध हैं इस प्रकार वेदमें अवतार होना लिखा है उसीकी पुष्टता पुराण करते हैं. वोह दश अवतार यह हैं—

"मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नृसिंहो वामनस्तथा । रामो रामश्च रामश्च बुद्धः कल्की दश स्मृताः ॥ "

अर्थात्—"मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, रामचन्द्र बलराम, बुद्ध और कल्की यह दश भगवान्के अवतार हैं "

बहुतसे महात्मा इसमेंभी मीनमेख लगावेंगे कि, दश अवतारोंमें रामका नाम निर्दिष्ट है परन्तु राम ईश्वर है, इसका क्या प्रमाण है ? तो सुनो—

राशब्दो विश्ववचनो मश्चापीश्वरवाचकः ॥ विश्वेषामीश्वरो यो हि तेन रामः प्रकीर्तितः ॥
परिपूर्णतमो रामो ब्रह्मशापात् स विस्मृतः । ब्रह्मवैवर्तपुराण श्रीकृष्णजन्मखंड ११० । ११६ ।

अर्थात्—"रा शब्दका अर्थ विश्व म शब्दका अर्थ ईश्वर । जो विश्वके ईश्वर सोही रामनाम है" पद्मपुराणमें वर्णित है—

"रामो दशरथिश्शूरो लक्ष्मणानुचरो बली काकुत्स्थः पुरुषः पूर्णः कौशल्येयो रघूत्तमः ॥"

अर्थात्—"रामचन्द्रजी दशरथके पुत्र, यह शौर्य वीर्यसम्पन्न लक्ष्मण इनके अनुवर्ती, कौशल्याके गर्भमें इनका जन्म, यह पूर्ण पुरुष है"

अध्यात्मरामायणमें लंकाकाण्डके पंद्रहवें सर्गमें शिवकी उक्तिम प्रकाशित है कि—

"ब्रह्मादयस्तेन विदुःस्वरूपं चिदात्मतत्त्वं बहिरर्थभावाः । नतो बुधस्त्वामिदमेव रूपं भक्त्या भजन्मुक्तिमुपैत्यदुःखम् ॥ "

अर्थात्—"ब्रह्मादि देवतागणभी तुम्हारी आकृति मात्र चिन्तना करके प्रकृत स्वरूपको नहीं जानते किन्तु जब भक्तिके प्रभावसे तुम्हारे रूपको जान जाते हैं तब वे सुखपूर्वक मुक्तिमार्ग पालते हैं ।"

रामायणके टीकाकार सूक्ष्मदर्शी रामानुज स्वामीने अपने टीकाके मंगलाचरणमें कहा है कि—

"जयति रघुवंशतिलकः कौशल्याहृदयनन्दनो रामः । दशवदननिधनकारी दाशरथिः पुण्डरीकाक्षः ॥
जितं भगवता तेन हरिणा लोकधारिणा ॥ अजेन विश्वरूपेण निर्गुणेन गुणात्मना "

अर्थात्–"जिन रामचन्द्रने रघुवंशमें जन्म ग्रहण किया है। जो माता कौशल्याके आनंद बढानेहार हैं, जो दशरथजीके पुत्र हैं, जिनके हाथसे रावण मारा गया है, इन्हीं कमलनयन रामचन्द्रजीकी जय हो। वोह लोक धारण करनेवाले भगवान् हरी त्रिलोकी को आक्रमणपूर्वक अवस्थिति करते हैं, वह निर्गुण और अज होनेसेभी गुणके आश्रयद्वारा संसारमें व्याप रहे हैं।

इसी भांति अगस्त्यसंहितामें लिखा है कि–

"आविरासीत्स कलया कौशल्यायां परः पुमान् ॥"

सुविज्ञ पाठकगण! यहां "परःपुमान्" इस शब्दके प्रयोगको एकबार देखिये आपही कहिये कि, क्या इससे रामचन्द्रजीका ईश्वर होना प्रमाण नहीं होता? श्रीमद्भागवतके ग्यारवें स्कंदके पांचवें अध्यायमें तेईसवें श्लोकार्धकी ओर एकबार दृष्टि कीजिये। वहां लिखा है–

"एवंविधानि कर्माणि जन्मानि च जगत्पतेः।"

अर्थात्–"जगतपति जगदीश्वरके जन्म और कर्म व्यापार इसी प्रकार हैं।" सृष्टिरक्षा, दुष्टदमन और शिष्टपालन इत्यादि कार्यही उनकी लीलाके परिचय है जबहीं प्रयोजन हुआ, तबहीं वह निर्गुण पुरुष सत्त्व, रज और तम इन गुणोंके अधीन होकर प्रगटते हैं। अपने सुखकी इच्छा और भोग वृत्ति चरितार्थ करनेके लिये ईश्वरका अवताररूपमें अवतरण नहीं है, लोकोंको शिक्षा देनाही इनका उद्देश्य है।

हम प्रथमही लिख आये हैं कि, 'रामायण' केवल लक्षणाक्रान्त महाकाव्य होनेके कारण इतना प्रसिद्ध नहीं है किन्तु जैसे श्रुति स्मृतियोंके विहित मत जिस प्रकार विधिनिषेधसे रचे गये हैं, यहभी कुछ २ उसी आकारके संकेतमें है॥ "एकादश्यां न भुञ्जीत, निद्रां जह्यात् गृही राम नित्यमेवारुणोदये" अर्थात् एकादशीको भोजन न करे हे रामचन्द्र! गृही लोगोंको नित्य अरुणोदय होतेही निद्रापरित्याग करना चाहिये यह वाक्य जैसा विधिबद्ध है सो इसके न करनेसे जैसा पापग्रस्त होना होता है, रामायणके सुननेका फल भी इसकीही समान है। प्रमाण स्वरूप नीचे लिखा है–

"रामायणं वेदसमं श्राद्धेषु श्रावयेद्बुधः।" उत्तरकांड (१२४)। (३)

अर्थात्–"यह रामायण वेदके सम है, श्राद्धके समय इसे पंडितके मुखसे सुने।"

जो हो, वर्तमान समयमें जो भक्ति विश्वासको दूर रखकर, शुष्क हृदयसे शुष्क धर्मके खोजनेवाले हैं, जो प्रत्यक्षके अतिरिक्त परोक्ष प्रमाणका विश्वास नहीं करते। जिनकी युक्तिमें भूतेश्वर महादेवजीकी रजतगिरिके समान आकृति, मशानमें वास चिता भस्मका लगाना, इत्यादि पर्यालोचनाकी दीर्घ गवेषणाके फलसे, चीन या तिब्बतके मनुष्य जाने गये हैं। जिन्होंने भाषातत्त्वके उद्धार करनेमें कमर बांध कश्यपके वासके नामानुसार "कास्पियानसि" नाम करनेका कारण निकाला है जिन्होंने ऐतिहासिक तत्व अनुसंधान करते करते दश कालिदास ढूँढकर निकाले हैं, जो दूरदर्शिताके प्रभावसे मनुष्यको सर्व नाशका कारण कह गुप्त प्रगट स्थानोंमें चिल्लाकर मसे भींगते हुए बालकोंसे यश पा सकते हैं उनके सामने हमारी शास्त्रीय कथा जितनी देर ठहर सकेगी और वह उनको कहां तक पक्षपातरहित होकर सुनेंगे इसके कहनेका तो कुछ प्रयोजनही नहीं। तो भी संक्षेपसे इतनाही कहेसे काम चल जायगा कि जिसको वसन्त रोग हो जाता। वह जहां देखेगा पीले रंगके अतिरिक्त कुछ नहीं देखेगा मूल बात यह है कि इन विधर्मियोंकी बात मानताही कौन है हम यह भी जानते हैं कि हमारा इन लोगोंके कहनेसे लाभके अतिरिक्त हानि नहीं है क्योंकि, आक्रमण और कटुवचन न कहनेसे हम काहेको शास्त्र देखते; जो हो इस विषयमें अधिक कहना वृथा है।

कहना बाहुल्यमात्र हैकि, शिक्षाके संग धर्मज्ञान और सदाचार जैसा प्रार्थनीय है, और उससे मनुष्यका मन इस प्रकारसे उन्नत होता है; जैसे आकाशमें पूर्ण शशि धरकी शोभा, जैसे दक्षिणानिलके संग कुसुम सौरभका संयोग होता है इसी भांति यदि सुयोग्य कवि वा ग्रन्थकारके हाथ वर्णन करनेका उपयुक्त विषय पडे तो सोने और सुगन्धका संयोग कहा जा सकता है। वाल्मीकिजी जैसे असाधारण कवि थे उनकी दृष्टिमें उनके भाग्यसे वैसाही वर्णनीय विषयभी पडा था। बहुत मनुष्य कह सकते हैं कि जो निर्जीवको सजीव करनेको समर्थ। जो नगरको श्मशान बनानेकी प्रतिज्ञा करनेवाले हैं, जो सुख दुःखके विधाता हैं, उनकी शक्तिकी निपुणतासे सब विषय कवित्वमें आसकते हैं। हम इसके उत्तरमें कह सकते हैं कि, खीर बनानेमें जिस सब समानका प्रयोजन है, उस सब सामग्रीके इकट्ठा होनेसेभी; जो पाकबनाना नहीं जानता, उसको वह खीर बनानी जैसी कठिन है, हमारी समझमें कवियोंके पक्षमें भी यही बात है। वह यदि न हो तो कोई स्वभावके वर्णनमें कोई भावकी तेजीमें, कोई रचना सौन्दर्य्यमें, ऊंचे नीचे क्यों होते? एक उद्भट श्लोकमें लिखा है कि-

"पयसा कमलं कमलेन पयः पयसा कमलेन विभाति सरः। मणिना वलयं वलयेन मणिर्मणिना वलयेन विभाति करः" ॥

अर्थात्- "जलसे कमल और कमलसे जलकी शोभा होती है किन्तु जलयुक्त कमलसे सरोवर शोभा पाता है,। मणिके संयोगसे वलयकी और वलयके संयोगसे मणिकी शोभा होती है. किन्तु इन दोनोंका संयोग होनेसे हाथकी शोभा होती है"

हमारे विचारमें वाल्मीकिजीसे वर्णनीय विषयके उत्कर्ष और वर्णनीय विषयसे कविके कवित्व, इन दोनोंके गुणसे रामायणका जन्म हुआ है। त्नावली नाटककारने अभिनयकी प्रस्तावनामें नटके मुखसे प्रकाश करवाया है।

"श्रीहर्षो निपुणः कविः परिषदप्येषा गुणग्राहिणी लोके हारि च वत्सराजचरितं नाट्ये च दक्षा वयम्।
वस्त्वेकैकमपीह वांछितफलं प्राप्तं पदं किं पुनर्मद्भाग्योपचयादयं समुदितः सर्वो गुणानां गणः॥"

अर्थात्-"श्रीहर्ष एक उपयुक्त कवि है, यह सभा गुणी जनोंसे पूर्ण है वत्सराजि जीमूतवाहनके चरित्र अति मनोहर हैं॥ (और फिर)–नाटक करनेहारे म भी अनोखे हैं,जब ऊपर कहे हुए गुण समावेशके मध्य एकके होनेसे भी मनवांछित फल मिल सकता है, तब यहां जो इतने गुणोंका समावेश देखते हैं यह मारे भाग्यका फल है।"

हम भी कहते हैं कि वाल्मीकिजीका कवित्व वर्णनीय विषय और कुशलव द्वारा बीणा झंकार, वह संगीतके संयोगसे श्लोककारमें रचित और गीत होनेसे र्वत्र अतिशय प्रशंसाका विषय हो गया है।

संस्कृत भाषामें जो रामायण हैउन चारका अधिक प्रचार है, उनमें अध्यात्मरामायण वेदव्यासजीकी बनाई हुई कहकर प्रचारित है। वह ब्रह्मांडपुराणके न्तर्गत है. उमामहेश्वरके संवादसे ग्रन्थ पुष्ट कलेवर। संक्षेपसे रामचन्द्रकी लीलाओंका परिचय देकर, उनका ब्रह्मत्व प्रतिपादन करना ही ग्रन्थकारका उद्देश्य है, सके अनुसार वाल्मीकिजीकी मूलघटनासे मिलाकर यह ग्रन्थबनाया गया है।शेष तीन रामायणोंके नाम-योगवासिष्ठ, वाल्मीकि और अद्भुतरामायण। सबही हर्षियोंकी चिन्ताशीलताकी निदर्शन है। "वैराग्य, मुमुक्षु, उत्पत्ति, स्थिति, उपशम और निर्वाणइत्यादि कई विषय लेकर, रामचन्द्रजी और वसिष्ठजीके श्नकीभी मीमांसाके मिससे यह ग्रन्थ बनाया गया है। यद्यपि, वसिष्ठजीके मुखसे रामचन्द्रजीके सब प्रश्न मीमांसित और संदेहजाल दूर हो गये; किन्तु महर्षि ाल्मीकिजी ही इस अनुपम ग्रन्थके बनाने वाले हैं।रामायण और अद्भुतरामायण भीवाल्मीकिजीके हाथसे प्रकाशित हुई हैं। उनमें यह पिछला ग्रन्थ सहस्र मुख रावण विनाश विषयावलम्बनसे लिखा गया है"पुरुष निश्चेष्ट, पुरुष, प्रकृतिही प्रधान है" यह दिखलानेको सीताजीके हाथसे उक्त दुरात्मा मारा गया है।

वाल्मीकीरामायणके सात कांड हैं–प्रथम बालकाण्ड। दूसरा अयोध्याकाण्ड।तीसरा आरण्यकाण्ड चौथा किष्किन्धा पांचवाँ सुन्दर।छठा लंका वा युद्धकाण्ड। और सातवां उत्तरकाण्डके नामसे परिचित है।रामका जन्म, ताडकावध, अहल्याउद्धार, विवाह, परशुरामका गर्वतोडना; विवाहके होजाने पर गृह प्रवेश, इत्यादि

घटनाओंसे बालकाण्ड पूरा हुआ है इस कांडमें ७७ सर्ग हैं। अयोध्याकाण्ड ११९ सर्गोंमें पूर्ण हुआ है। रामके राजातिलककी तैयारी, मन्थराकी सम्मतिसे कैकेयीका वर पाना, सीता लक्ष्मण सहित रामचन्द्रजीका वनगमन करना, निषादपुरीमें प्रवेश, भरद्वाजजीके आश्रममें जाना, चित्रकूटपर वास, महर्षिसे मिलना, दशरथजीका तनुत्याग करना, भरत मिलाप फिर आगेके वनोंको जाना प्रभृति कथाओंमें अयोध्याकांड वर्णन किया गया है। आरण्यकाण्डमें ७५ सर्ग हैं। विराधवध, महर्षि शरभंगकी स्वर्ग प्राप्ति रामजीका सुतीक्ष्णके आश्रममें जाना, महर्षि अगस्त्यसे मिलना, शूर्पणखाके नाक कान काटना, खर, दूषण और मारीचका प्राणसंहार, सीताहरण, जटायुमरण, सीताजीका ढूँढना इत्यादि विषय इस काण्डमें हैं। किष्किन्धामें ६७ सर्ग हैं। इस काण्डमें सुग्रीवसे मित्रताई, वालिवध, बन्दरोंकी सेनाको एकत्र होना और बंदरोंका सीताजीको खोजने जाना, सम्पातिसे सीताजीकी सुधि पाना वर्णन किया है। सुन्दरकांडमें ६८ सर्ग हैं। हनुमान्‌जीका समुद्र पार होना, लंकादाह; अक्षविनाश, रामको सीताजीकी निशानी दिखाना इत्यादिक घटना लेकर इस कांडकी उत्पत्ति है। युद्धकांडमें १३० सर्ग हैं। सेतुबांधना, विभीषणसे रामचन्द्रजीकी मैत्री; अतिकाय, अकम्पन, प्रहस्त, धूम्राक्ष, इन्द्रजीत, कुम्भकर्ण, रावणवध, विभीषणको राज्य, सीताकी अग्निपरीक्षा प्रभृति कथा इस कांडमें वर्णन की गई हैं। उत्तर कांडमें १११ सर्ग हैं। रामजीका अगस्त्यजीके मुखसे कुबेर और राक्षसोंकी उत्पत्ति श्रवण करना, देवताओंसे युद्ध करनेमें माल्यवान राक्षसोंकी मृत्यु, रावणकी तपस्या, कुबेरका पराजय, रावणका वरुणलोक देखना, कुम्भीनसी हरण, नेमि वसिष्ठका संवाद, लवणवध, शूद्र तपस्वीका वध, अश्वमेधयज्ञारम्भ, सीताजीका पृथ्वीमें समाना, कौशल्यादि रानियोंका देह त्याग, दुर्वासासमागम, लक्ष्मण विसर्जन और श्रीरामचन्द्रजीका साकेतगमन प्रभृति प्रधान प्रधानघटनाओंसे उत्तर कांडका अंग पुष्ट है

रामायण सुननेके फलमें ग्रंथकारने अपने कहे ग्रंथमें जो वर्णन किया है, इस स्थानपर उसके लिखनेका भी प्रयोजन है—

"धर्म्यं यशस्यमायुष्यं राज्यश्च विजयावहम् ॥ आदिकाव्यमिदं चार्षं पुरा वाल्मीकिना कृतम् ॥ १ ॥
यः शृणोति सदा लोके नरः पापात्प्रमुच्यते ॥ पुत्रकामश्च पुत्रान्वै धनकामो धनानि च ॥ २ ॥
लभते मनुजो लोके श्रुत्वा रामाभिषेचनम् ॥ महीं विजयते राजा रिपूंश्चाप्यधितिष्ठति ॥ ३ ॥
श्रुत्वा रामायणमिदं दीर्घमायुश्च विन्दति ॥ रामस्य विजयं चेमं सर्वमक्लिष्टकर्मणः ॥ ४ ॥
शृणोति य इदं काव्यं पुरा बाल्मीकिना कृतम् ॥ श्रद्दधानो जितक्रोधो दुर्गाण्यतितरत्यसौ ॥ ५ ॥

शृण्वन्ति य इदं काव्यं पुरा वाल्मीकिना कृतम् ॥ ते प्रार्थितान् वरान् सर्वान् प्राप्नुवंतीह राघवात् ॥ ६ ॥
महीं राजा विजयते प्रवासी स्वस्तिमान्भवेत् ॥ स्त्रियो रजस्वलाःश्रुत्वा पुत्रान् सूयुरनुत्तमान् ॥ ७ ॥
पूजयंश्च पठंश्चैनमितिहासं पुरातनम् ॥ सर्वपापैः प्रमुच्येत दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥ ८ ॥
रामायणमिदं कृत्स्नं शृण्वतः पठतः सदा ॥ प्रीयते सततं रामः स हि विष्णुः सनातनः ॥ ९ ॥
भक्त्या रामस्य ये चेमां संहितामृषिणा कृताम् ॥ ये लिखन्तीह च नरास्तेषां वासस्त्रिविष्टपे ॥ १० ॥
इदमाख्यानमायुष्यं सौभाग्यं पापनाशनम् ॥ रामायणं वेदसमं श्राद्धेषु श्रावयेद्बुधः ॥ ११ ॥
अपुत्रो लभते पुत्रमधनो लभते धनम् ॥ सर्वपापैः प्रमुच्येत पादमप्यस्य यः पठेत् ॥ १२ ॥
पापान्यपि च यः कुर्यादहन्यहनि मानवः ॥ पठत्येकमपि श्लोकं स पापात्परिमुच्यते ॥ १३ ॥
अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च ॥ लभते श्रवणादेवाध्यायस्यैकस्य मानवः ॥ १४ ॥
हेमभारं कुरुक्षेत्रे ग्रस्ते भानौ प्रयच्छति ॥ यश्च रामायणं लोके शृणोति सम एव सः ॥ १५ ॥
सम्यक् श्रद्धासमायुक्तो लभते राघवीं कथाम् ॥ सर्वपापात्प्रमुच्येत विष्णुलोकं स गच्छति ॥ १६ ॥

अर्थात्–"पूर्वकालमें महर्षि वाल्मीकिजीने इस महाकाव्यको बनाया है यह धर्मका उत्पन्न करने वाला, आयु बढाने वाला, यश देनेवाला और राजाओंको जयदायक है जो मनुष्य रामायण श्रवण करते हैं, वह पापसे छूटजाते हैं। पुत्र और धनके चाहने वाले मनुष्य, इसको श्रवण कर पुत्र और धन पाते हैं। राजा रामचन्द्रजीके राज्यकी कथा श्रवण करनेसे पृथ्वीको जय विजय और शत्रुको क्षय कर सकते हैं। अक्लिष्टकर्मा रामचन्द्रजीकी कथा श्रवण करे तो लोकमें दीर्घायु प्राप्त करता है। जो मनुष्य क्रोधको जीतकर श्रद्धासे वाल्मीकिकृत रामायण सुने वह कठिन संकटोंसेउत्तीर्ण होजाय। जो रामायण श्रवणकरते हैं, वह श्रीरामचन्द्रजीसे मनोवांछित फल पाते हैं। रामायणके श्रवणसे राजा पृथ्वीजय, और परदेशी मंगल लाभ करते हैं। रजस्वला स्त्री इसके श्रवण करनेसे पुत्र प्रसव करती है। रामायणकी पूजा या पाठया श्रवण करनेसे मनुष्य सब पापोंसे छूटकर बडी आयु पाते हैं। जो समस्त

रामायण पाठ या श्रवण करते हैं, भगवान् सनातन रामचन्द्र उनपर प्रसन्न हो जाते हैं। जो भक्तिपूर्वक ऋषिकी बनाई यह संहिता लिखते हैं, उनका स्वर्गमें वास होता है। यह उपाख्यान आयुका बढाने वाला, सौभाग्यजनक और पापनाशक है। श्राद्धकालमें पंडितके मुखसे वेद तुल्य यह रामायण ग्रंथ सुने जो मनुष्य इसका एक चरण भी पढे, वह अपुत्र होनेसे पुत्रवान्, निर्धन होनेसे धनवान् और पापी होनेसे पुण्यवान् हो जाता है। जो मनुष्य दिन रात पाप करता है, वह भी यदि ध्यान धरके इसका एक श्लोक पढले तो सब पाप ताप विलापसे छूट जायँ। अश्वमेध तथा वाजपेय यज्ञ करनेसे जो फल मिलता है रामायणके एक अध्याय पढनेसे उसी फलकी प्राप्ति होती है। ग्रहणके समय कुरु क्षेत्रमें सुवर्णदान करनेसे जो पुण्य होता है, रामायणके श्रवण करनेका फलभी वैसाही है। जो मनुष्य श्रद्धासे रामचरित श्रवण करते हैं, वह सब पापोंसे छूटकर विष्णुलोकको चले जाते हैं।"

अब रामायणके बानाने वाले महर्षि वाल्मीकिजीके सम्बन्धमें कुछ कहना चाहते हैं, आलंकारिक कहते हैं कि–उपमा और उपमेय पदार्थोंके बीचमें निरुष्ट वस्तुकी तुलना उत्कृष्टके सहित हो सकती है, और यही गौरवका परिचय है परन्तु इस कहनेसे उत्कृष्ट वस्तु निकृष्टके साथ बराबरीमें तो नहीं आसकर्त और होनेसे अलंकारका दोष कहा जायगा इमली स्वभावसेही अम्लरसपूर्ण (खट्टी) होती है, परन्तु इसका गुण वर्णन करते हुए बूरासे बराबरी करदी यह हः भी मानते हैं, परन्तु इस कहनेसे बूरा इसकी समान यह उपमा ठीक नहीं. हमने जहांतक ढूंढ खोजके मालूम किया है, वहांतक कह सकते हैं कि जिससे रामायणकं तुलना होसकें, ऐसा ग्रंथ हमारे नेत्रोंके सामने अब तक नहीं आया, और होगा यहभी नहीं कह सकते हम इस सम्बन्धमें इतना ही कहेंगे कि; वाल्मीकिजीने राम रावणका युद्ध वर्णन करनेके सम्बन्धमें कोई उपमा न देख करके

"रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव"

यह बात कही है इसी प्रकार रामायणकी रचना वाल्मीकिजीकोही सोहती है, और वाल्मीकिजीभी रामायणके प्रकृत अनुरूप प्रणयनकर्ता हैं टीकाकार रामानुज स्वामीने कहा है–

"कूजन्तं रामरामेति मधुरं मधुराक्षरम्। आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकिकोकिलम्॥"

अर्थात्–मैं वाल्मीकिस्वरूप कोकिलको अभिवादन करता हूं, यह कोकिल कविताशाखापर आरोहण करके, मीठे स्वरसे राम राम शब्दसे कूजन करता है"

हम पक्षपात रहित होकर इस बातके पक्षपाती हैं. यथार्थमें विचार कर देखनेसे रामायणको एक प्रधान पेड मनमें समझ सकते हैं. सच्चिदानंद ब्रह्म इसके अमल बीज. चिन्मय इसका अंकुर, यह विस्तारित वृक्ष सप्त काण्डोंमें विभक्त है ऋषिगण इसके आलवाल स्वरूपमें मूलकी रक्षा करते हैं, तत्त्वज्ञान पूर्ण चौबीससहस्र पत्रोंसे यह शोभायमान है, इसमें छः सौग्यारह शाखास्वरूप सर्ग विराजमान हैं, यह वृक्ष ब्रह्म प्राप्ति फल देता है इसके फल नित्य पकेहुए और अनंत कालतक रसनाको तृप्त करते हैं, और इस ग्रन्थमें जैसे सूक्ष्म और सदुपदेश मिले हुए हैं और कहीं ऐसे उपदेश मिलते है अथवा नहीं, इसमें संदेह है केवल ऐसा नहीं कि, ग्रंथ रसभावपूर्ण, चित्तचमत्कारक, और मनोहारकही है, नहीं इसमें प्राचीन कालके आचार, व्यौहार, जातिधर्म, पातिव्रत्य, सौभ्रातृ और राजधर्म इत्यादिक भरे पडे हैं। यद्यपि भाग्यदोषसे वह सब चिह्न, वह अनुष्ठान, वह सुखके दिन इस समय नहीं हैं। परन्तु रामायणकी ओर दृष्टि फिरानेसे, स्मृतिकी सहायमें,—कविके सुचित्रमें—रचनाकी पंडिताईमें वह स्पष्ट भावसे अबभी मानो प्रत्यक्षकी नांई मूर्ति धारण किये खडे हैं। किसी किसी सूक्ष्मदर्शी पंडितके मतसे यह ग्रंथ करुणारसका है, अर्थात्—इसमें करुणारस प्रधान है। परन्तु सुप्रसिद्ध टीकाकार नागोजीभट्टने कहा है कि—

"वयं तु शृंगार एव प्रधानः सीतायाश्चरितं महदित्युक्तेः"

यह कहते हैं, हम शृंगाररसको प्रधान मानते हैं, क्योंकि सीताजीका महत् चरित्रही इसका मुख्य अंग है।

हमारे विचारमें भी नागोजी भट्टकी उक्ति अप्रमाणित नहीं जान पडती। अलंकारियोंने शृंगारको संयोग और विप्रलंभ इन दो भागोंमें विभक्त किया है, सुतराम् उनके कथनसे सीताजीके सहितसीतापतिका सहवास कालसंयोग, और फिर उसके उपरान्त सीता हरणसे उद्धारके पूर्व कालतक विप्रलंभका प्रत्यक्ष दृष्टान्त है। इस ग्रंथमें रामचन्द्रजीके विरहमें दशरथ और कौशल्यादिका विलाप और परिताप, करुणा रसका झरना, शूर्पणखाके संयोगसे हास्यरसका प्रदीप्त चित्र; हनुमान् प्रभृति वानर गणोंके वीरकार्योंमें वीर रसका नमूना, राम रावणके युद्धमें वीर रसकी दिव्य मूर्ति, विराध और कबंधके चरित्रमें अद्भुत पराकाष्ठा, रामके चरित्र और परस्पर व्यवहारमें शान्तिरसका अपूर्व अनुपम निदर्शन है। जो हो रामायणकी बडी समालोचना करनेका हमारा आशय नहीं है तो भी संक्षेपसे कुछ बातोंकी पर्य्यालोचना करनेसे ग्रन्थकर्ताकी शक्तिकी कुछ आभा देनाही हमारा उद्देश्य है। मनुसंहिताके दशवेंअध्यायके ८१। ८२ श्लोकमें लिखा है कि—

"अजीवंस्तु यथोक्तेन ब्राह्मणा स्वेन कर्मणा। जीवेत् क्षत्रियधर्मेण स ह्यस्त्यप्रत्यनन्तरः॥ १॥"

"उभाभ्यामथजीवंस्तु कथं स्यादिति चेद्भवेत्। कृषिगोरक्षमास्थाय जीवेद्वैश्यस्य जीविकाम्॥"

अर्थात्–"यदि ब्राह्मण अध्यापनादि नियत कर्म करने कुटुम्बप्रतिपालन पूर्वक जीविका निर्वाह नहीं करसके तो क्षत्रिय धर्म, अर्थात्–ग्रामादिकी रक्षामें दिन रातव्यतीत करे। यदि निज धर्म वा क्षत्रियधर्म भी ग्रहण करके जीविका न चले तो खेती और गोरक्षादि वैश्यवृत्ति करे।"

रामायणमें भी इन नियमोंके विरुद्ध दृष्टि नहीं आता उस समय गर्गवंशसम्भूत त्रिजट नाम ब्राह्मण वैश्यवृत्ति अवलम्बन करके दिन व्यतीत करता था ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यादि सभी अपने निर्दिष्ट धर्मकार्यमें जीवनयात्रा निर्वाह करते थे और जो तपस्वी या संसारत्यागी हैं उनका विषय प्रस्तावनाके बाहर समझ कर हम वर्णन नहीं करेंगे। उससमय मुख्य और गौण दो प्रकारका ब्रह्मचर्य था। ब्राह्मणोंकी अपने धर्ममें अवस्थिति और उसके अनुष्ठानका, नाम ब्रह्मचर्य है। मनुजीके मतमें यजन, याजन, अध्ययन, अध्यापन दान और प्रतिग्रह यह कई एक ब्राह्मणोंके निर्दिष्ट काम गौण ब्रह्मचर्य कहाते हैं। यही ब्रह्मचर्यावलम्बी ब्राह्मण संसारी हो गृहधर्म पालन करते और श्रुति, स्मृति; आचारोंके अनुसार चलते हैं। अपरसम्प्रदायमें मुख्य ब्रह्मचारी हैं। यह संसारत्यागी, परिव्राजक, छत्र, खडाऊँ और कमंडलुधारी होते हैं। रामायणमें लिखा है–

"श्लक्ष्णकाषायसंवीतः शिखी छत्री उपानही। वामे चांसेऽवसज्याथ शुभे यष्टिकमंडलू ॥"

अर्थात्–"उनके पहिरनेके मनोहर वल्कल वस्त्र, मस्तकपर चुटिया और छत्र, पैरोंमें खडाऊँ, बायें कन्धेपर लकडी और कमंडलु"।

तपस्वियोंके आश्रय संबंधमें वाल्मीकिजीने क्या सुन्दर वर्णन की है।

"प्रविश्य तु महारण्यं दण्डकारण्यमात्मवान्। रामो ददर्श दुर्द्धर्षस्तापसाश्रममंडलम् ॥
कुशचीरपरिक्षिप्तं ब्राह्मया लक्ष्म्या समावृतम्। यथाप्रदीप्तं दुर्दर्शं गगने सूर्यमंडलम् ॥ २ ॥
शरण्यं सर्वभूतानां सुसंमृष्टाजिरं सदा। मृगैर्बहुभिराकीर्णं पक्षिसंघैस्समावृतम् ॥ ३ ॥
पूजितञ्चोपनृत्यं च नित्यमप्सरसां गणैः। विशालैरग्निशरणैः स्रुग्भांडैरजिनैःकुशैः ॥ ४ ॥
सूर्यवैश्वानराभैश्च पुराणैर्मुनिभिर्युतम्। पुण्यैश्च नियताहारैः शोभितं परमर्षिभिः ॥ ५ ॥

अर्थात्–"आत्मवान् दुर्द्धर्ष रामचन्द्रजी महारण्य दंडकवनमें प्रवेश करके तपस्वियोंके आश्रमसमूह देखने लगे। जहां कि कुश चीर इधर उधर पडे हैं ब्रह्म संबंधी लक्ष्मीसे युक्त हैं जिसप्रकार आकाशमध्यवर्ती भगवान् भास्करको तेजके कारण कोई नहीं देखसकता; इसीप्रकार तपस्वी भी कठिनतासे देखने योग्य हैं उनके आश्रमोंके आंगन शोभित और सब प्राणिओंके शरण देनेवाले हैं वह नाना प्रकारके पक्षी और मृगगण विचरण करते हैं। अप्सराओंके गण इन स्थानोंमें

नित्य नृत्य करते हैं । विशाल अग्निहोत्र, स्रुग्भांड, अजिन और कुशसमूह उस स्थानमें व्याप्त हैं । सूर्य और अग्नितुल्य तेजस्वी फलमूलहारी परमकारुणिक परमपुण्यवान् महर्षिगण शोभा पारहे हैं ।

हे चतुर सहृदय पाठक ! एकवार संसार विषसे जले शान्तिमय मनुष्यकी वासभूमि और इस पुण्यभूमिकी तुलना करनेसे जान जाइयेगा कि–स्वर्ग और नरकमें जितना अन्तर है, संसारसे और ऋषिलोगोंके आश्रमोंमें उससे ज्यादा अंतर है, वहां मिथ्या प्रलोभन, विषयचर्चा, अधर्म स्रोत, पाप पहाड, इन सबका नामतक नहीं । सरलता, दया, पवित्रता, शांति और अच्छे अनुष्ठान, सबही मानो स्वाभाविक सहोदरताके सूतमें सदा एकस्थानमें अवस्थिति करते हैं । विचार देखिये, कि उस समयके ब्राह्मण कैसे देवभावापन्न; कैसे विद्वान्, कैसे शास्त्रदर्शी और कैसे सन्मान पाने योग्य थे । यह प्रभातही नियमित सन्ध्यावंदनादि, मध्याह्नमें योगादि और सायाह्नमें देवकार्योंके अनुष्ठानमें लगे रहते थे। इनके शिष्य नौकर चाकरके समान सब निर्दिष्ट कर्म करते थे ।पवित्रभाव, पवित्रकार्य और पवित्र आचारमें वृत्ति रहनेसे इन्होंने असन्तोषका मुख भी नहीं देखा था । हाय! कालके दोषसे अब इनके वंशधरोंका क्या परिणाम हो रहा है । जो हो, उस समयमें राजधर्मके साथ संक्षेपसे कुछेक उसका भी परिचय देते हैं। उसके अनुसार चित्रकूट पर्वतपर भरतको रामका दर्शन होनेपर रामचन्द्रजीने बूझा था;–

"कच्चिदर्थेन वा धर्ममर्थं धर्मेण वा पुनः ॥ उभौ वा प्रतिलोमेन कामेन न विबाधसे ॥ १ ॥
कच्चिदर्थश्च कामश्च धर्मश्च जयतां वर । विभज्य कलिकालज्ञ सर्वान् वरद सेवसे ॥ २ ॥
मंत्रभिस्त्वं यथोद्दिष्टं चतुर्भिस्त्रिभिरेव वा । कच्चित् समस्तैर्व्यस्तैश्च मन्त्रं मंत्रयसे बुध ॥ ३ ॥
कच्चिद्देवान् पितॄन् भृत्यान्गुरून् पितृसमानपि । वृद्धांश्च तात वैद्यांश्च ब्राह्मणांश्चाभिमन्यसे ॥ ४ ॥

भूमिका बढनेके भयसे केवल इतनेही श्लोक उद्धृत किये, इनका अर्थ यह है कि–

"तुम अर्थद्वारा धर्म, धर्मद्वारा अर्थ और कामद्वारा इन दोनोंको निपीडित तो नहीं करते? तुम यथाकालमें धर्म, अर्थ और कामको स्वभावसे तो ग्रहण करते हो? तुम देवता, पितृतुल्य, गुरुव्यक्ति, वृद्ध, वैद्य और नौकर चाकरोंका अनुरूप सन्मान तो करते हो ?"

उस समयके राजधर्म सम्बन्धमें और क्या कहें, रामके राज्यकी बडाई अबतक आबाल वृद्ध वनिताओंके हृदयमें जाग रही है । चोर या ठगोंका भय तो दूसरी बात है उन सबकी ऐसी धर्मपर दृष्टि और ऐसे निष्पाप अनुष्ठान थे कि, अकाल मृत्यु भी अपनी प्रभुता जमानेमें समर्थ नहीं हुई थी ।

समाजधर्मके विषयमें केवल इतनाही कहनेसे काम चल जायगा कि, उस समय वैर हिंसा प्रभृति कुभावोंने मनुष्यक मनमें स्थान नहीं पाया था। मनुष्यके तीन शासनके वशहोने उपरान्त उसको निरापदकी भावना और उन्नतिकी बाधा नहीं होती थी, उस समय वही तीन अर्थात् राजशासन, धर्मशासन, समाज शासन अटलभावसे स्थिर करते थे यदि ऐसा न होता तो रामचन्द्रके समान भूपति, सामान्य लोकापवादके भयसे गृहलक्ष्मी प्राणोंसे भी अधिक प्यारी जानकीको क्यों त्यागन करते ? इस समयके नये सभ्योंको इस कार्यका अनुचित कहना कुछ असंभव नहीं है, परन्तु जो राजपदके कर्म; कर्तव्य कर्मको जानते हैं जो सब उपायोंसे प्रजाको प्रसन्न करनाही राजा शब्दका अर्थ बताते हैं, वह लोग कह सकते हैं कि, यह कार्य अनुचित वा उचित है। यदि हमारी प्रकृति कुछ भी वैसी होती यदि उन मर्य्यादा पुरुषोत्तमकी अवस्था हमारे ऊपर बीतती; यदि हमारा और सीतापतिका दायित्व एकसा होता, यदि हम उस समयकी रुचि; प्रवृत्ति और अवस्था जानते होते अधिक क्या कहें, यदि उस समयके मनुष्य भी होते तो नहीं समझमें आती कि, ऐसे स्थानमें रामचन्द्रको कहां तक अनुचित कहते? जो हो, अब हमें यह बतानेका प्रयोजन हुआ है कि, रामायणसे संसारी मनुष्योंके अर्थ क्या क्या उपदेश निकलते हैं, और हमारा विश्वास है कि इससे वाल्मीकिजीको शक्तिकी सीमा अवधारित हो जायगी। अलंकार ग्रंथमें लिखा है।

"रामादिवत् प्रवर्त्तितव्यं न रावणादिवत्"

अर्थात्-हमें रामचन्द्रजीके समान चलना उचित है; रावण आदिकका अनुवर्ती होना उचित नहीं। अब रामचन्द्रजीके कार्य सम्बन्धमें कुछ पर्य्यालोचना करनी चाहिये, महर्षि वाल्मीकिजीने रामचन्द्रको सर्वगुणोंके आधार, सर्वके प्रिय, और अमानुषी प्रकृतिसे सजाया है। देखिये, माता कौशल्याका अनुरोध, भ्राता लक्ष्मणका अतिशय निर्बन्ध, सीताजीकी प्रार्थना, पुरवासियोंका निषेध बरन् महाराज दशरथ जीकी भी आकांक्षा परित्याग करके, राजतिलकको जलांजलि दे वह विकार चित्तसे हटा वल्कल धारण कर वनवासी हुये। 'पितृदेवो भव' 'मातृदेवो भव' इस श्रुतिकी महिमा पूर्णरूपसे प्रगट कर दिखाई। पिताका सत्यपालनही उनका मूलमंत्र और प्रधान धर्म हो गया। उन्होंने उस सद्धर्मके आगे सबको सामान्य समझा उनकी केवल यही उक्ति रही "रामो द्विर्नाभिभाषते"। "राम किसी बातमें द्विरुक्ति नहीं करता" कैकेयीका चरित्र यहांतक अंकित हुआ कि, उससे विमातृ शब्दही भली प्रकारका शक्ति सम्पन्न हुआ है. पुरुषकी वृद्ध वयसमें स्त्रियोंमें आसक्त होनेसे कैसी दुर्गति होती है, कैकेयीकी उक्ति; कार्य व उसके किये पुत्रशोकसे दशरथजीका प्राण त्यागन करना, इस घटनाका सर्वश्रेष्ठ नमूना है। नीच और पराये विभवको देखकर जलनेवालोंके परामर्शसे जैसी इष्ट सिद्धि होती है, यहां मंथराका स्वभाव उसको बता रहा है। जो जीवमात्रमेंही श्रद्धा करते हैं उनके बडप्पनकी सीमा नहीं रहती, इसी कारण निषादाधिपति गुहसे रामचन्द्रजीकी मित्रता हुई।

अब कुछ लक्ष्मणजीके चरित्रका अनुसंधान करें, यदि परिचय जाननेका सुभीता न होता तो कौन लक्ष्मणजीको सौतेला भाई समझता, अब भी दो भाइयोंकी परस्पर बडी प्रीति देख आदमी कहा करते हैं "जैसे रामलक्ष्मणकी जोडी" अर्थात् इनमें कुछ भिन्नता नहीं थी भाई वनको जायँगे; लक्ष्मण भी तैयार हुए, रामके वारं वार निषेध करनेसे भी लक्ष्मण न माने। आहार, निद्रा, भोग इन सबोंका त्यागन कर परछांहीकी समान संगी होना ऐसा भाव क्या अब भी दृष्टि आता है ? मनुष्य क्रोधोदय होनेपर गुरुजनोंको भी अनुचित वाक्य कह बैठते हैं, किन्तु लक्ष्मणजीने एक दिन भी राम वा सीताजीके ऊपर व्यवहार विरुद्ध आचरण वा और युक्ति प्रयोग नहीं की। और इसी प्रकार रामचन्द्रजी भी लक्ष्मणको देखते थे दोनोंका व्यवहार समान होनेसे मनका मिलना व अनुगामी होना नहीं हो सकता ? लोकव्यवहार दर्प्पणमें मुख देखनेके समान है, तुम यदि मुझसे प्रीति चाहो, तो प्रथम प्रीति देनी होगी, जब लक्ष्मणजीके शक्ति लगी, तब उनकी अवस्था देख रामचन्द्र जीका अन्तःकरण कैसा व्याकुल हुआ था और उस समय उन्होंने कैसा शोक परिताप किया था, इस स्थानपर प्रमाणार्थ महर्षिजीकी उक्ति उद्धृत करके लिखी गई है—

"विजयोऽपि हि मे शूर न प्रियायोपकल्पते। अचक्षुर्विषयश्चंद्रकः कां प्रीतिं जनयिष्यति ॥ १ ॥
किं मे युद्धेन किं प्राणैर्युद्धकार्यं न विद्यते। यत्रायं निहतः शेते रणमूर्द्धनि लक्ष्मणः ॥ २ ॥
देशेदेशे कलत्राणि देशेदेशे च बान्धवाः। तन्तु देशं न पश्यामि यत्र भ्राता सहोदरः ॥ ३ ॥
युद्धकां० ॥ १२० स० १०। ११। १४।

अर्थात्—"हे शूर ! रणमें जय पाना मुझे अच्छा नहीं लगता, क्योंकि यदि आंखोंसे चन्द्रमाके दर्शन न किये जा सकें तो संतोष कैसे होगा; जब भ्राता लक्ष्मणही रणभूमिमें निहत हो शयन करते हैं तो मेरा युद्ध वा जीवन धारण करनेसे क्या प्रयोजन है ? देश देशमें कलत्र, वा बन्धु, बांधव मिल सकते हैं परंतु ऐसा देश दृष्टि नहीं आता कि; जहाँ सहोदर भ्राता मिल जाय।"

आहा ! अब भी कहीं भाइयोंमें इस प्रकारका स्नेह देखनेमें आता है, राम लक्ष्मण भिन्न यह भायपन और किसीमें संभव हो सकता है ! हम साधारण भूमि धन दौलतके लिये भाईका त्यागन करते हैं। परन्तु लक्ष्मण सौतेले भाई होकर भी रामचंद्रके कार्यके अर्थ धराशायी हुए।

पाठकगण ! सीता महारानीका सदयभाव और महत्त्व देखनेको और जगह विचारिये। रावणके विनाश होनेपर रामचन्द्रजीकी आज्ञासे रामभक्त केशरीनंदन हनूमान् अशोकवनमें प्रवेश करके, शुभसंवाद दे सीताजीसे कहने लगे—देवि, खोटीवृत्तिवाली राक्षसियोंने रावणकी आज्ञासे तुम्हारे प्रति तर्जन, गर्जन और नाना

प्रकारकी पीडा दी है,अतएव अनुमति हो तो मैं उन्हें यमलोककी यात्रा कराऊं,सीताजीने निषेधपूर्वक इसके उत्तरमें जो कुछ कहा है,उसे एकबार देख लीजिये।

"भाग्यवैषम्यदोषेण पुरस्ताद्दुष्कृतेन च ॥ मयैतत्तत्प्राप्यते सर्वं स्वकृतं ह्युपभुज्यते ॥ ३७ ॥
मैवं वद महाबाहो दैवी ह्येषा परा गतिः ॥ प्राप्तव्यन्तु दशायोगान्मयैतदिति निश्चितम् ॥ ३८ ॥
यु० ११६ । ३७ । ३८ ।

तात्पर्य "मेरे जन्मांतरकी दुष्कृति और दुर्भाग्योंके निबन्धनसे मुझे यह फल भोगना पडा,तुमने राक्षसराजके नौकर चाकरोंको वध करनेको जो कहा, यह बात अब मत कहना, हे महाबाहो ! दैवकी गति जो निर्धारित है उसको कौन खंडन कर सकता है ? सुतरांतक दशाके योग होनेसे यह अवश्यही हमें भोगना पडेगा।" क्या चमत्कार, क्या साधुता, क्या असाधारण सद्व्यवहार, क्या अलौकिक, महत्त्व, और क्या देवभावमय दृष्टांत है।

अब रावणके चरित्रकी कुछ आलोचना करनी उचित है, किसी २ ग्रंथमें लिखा है कि रावण एक भक्त था द्वेषभावसे वैर कर उद्धार होनाही उसकी इच्छा थी, कोई २ रावणके कार्योंको देख उसे बर्ब्बर, अत्याचारी, अधार्मिक और लोककंटक कहते हैं। हमारे मतमें महात्मा विभीषणके मुख और वाल्मीकिजीकी उक्तिसे रावण एक सुपंडित, शास्त्रज्ञ, कर्मी; वेदान्तवित्; नीतिज्ञ और विक्रांत कहके परिचित है प्रमाणके लिये नीचे श्लोक लिखा है—

"एषोऽहिताग्निश्च महातपाश्च वेदांतगः कर्मसु चाग्र्यशूरः ॥ एतस्य यत प्रेतगतस्य कृत्यं तत्कर्तुमिच्छामि तव प्रसादात् ॥"

अर्थात्—" यह रावण अग्निहोत्री, महातप, वेदांतवित्, कर्मी एवं वीरचूडामणि था अब इसकी प्रेतावस्थामें जो कर्तव्य है, आपकी अनुमतिसे करनेकी इच्छा करता हूँ" जो कुछ भी हो,हजारगुण रहते भी,जैसे 'दारिद्र्यदोषो गुणराशिनाशी' यह एक महावाक्य सुननेमें आता है,रावणके पक्षमें भी इसी भांति नाना प्रकारके गुणोंका समावेश होनेसे भी अत्याचार, पीडन, देवब्राह्मणकी हिंसा और कामुकताने उसके गुणोंका ग्रासकर लिया था,वह भक्त हो अथवा न हो इस बातमें हमारा वाद विवाद व्यर्थ है. परन्तु हम कहना चाहते हैं कि,उसके जैसे कर्म;व्यवहार और प्रकृति थी,वैसा फल भी उसने पाया. विश्वविचारक विश्वेश्वरके निकट आज हो, कल हो, अवश्यही सुविचार होता रहा और होगा. पापकी उत्तेजना और अधर्मकी वृद्धि न होनेसे क्षय पानेकी सम्भावना नहीं रहती.

उपसंहारमें श्रीसीताजीके गुण और उनके निष्कलंक चरित्रोंकी भी कुछ समालोचना करनी चाहिये. पति जटावल्कलधारी और वनवासी हुये, अतएव पतिप्राणा जानकीजी उनकी अनुवर्तनी होंगी,इसमें आश्चर्यही क्या है. सो हम यहबात नहीं कहते ! पाठकगण ! विचारकर देखिये कि जगज्जननी सीताजीके

उद्धार करनेकोवालीवध, बन्दरोंकी सेनाका एकत्र करना, समुद्रमें पुल बांधना, वंशसहित रावणको ध्वंस करना इन सब घोर कार्योंके पीछे विभीषणके साथ रामचन्द्रजीकी आज्ञासे उनके सन्मुख वही सीताजी उपस्थित हुईं, वैसेही सीतानाथने दुर्वाक्यरूपी बाणोंसे उनको जर्जरित किया और उनको किसी प्रकारसे ग्रहण करनेमें सम्मत न हुये तब सती साध्वी जानकीजीने अग्निमें प्रवेश करनेको उद्यत हो जो प्रार्थना की थी, एकवार उस स्थलकी पर्य्यालोचना करनेका प्रयोजन है–

"यथा मे हृदयं नित्यं नापसर्पंति राघवात् । तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः ॥ १ ॥
कर्मणा मनसा वाचा यथा नातिचराम्यहम् । राघवं सर्वधर्वज्ञं तथा मां पातु पावकः ॥ २ ॥

अर्थात्–जो मेरे हृदयने किसी प्रकारसे भी रामके निकट अन्यत्र गमन नहीं किया हो तो लोकसाक्षी अग्नि मेरी रक्षा करें. जो मैंने काय, मन और वाक्य किसी भांतिसे रामको अतिक्रम नहीं किया है तो अग्निदेव मेरी रक्षा करें." फिर रामचन्द्रजीके राजतिलक होनेपर, लोकापवादके भयसे सीताजी वाल्मीकिजीके आश्रमके निकट तपोवनमें त्यागी गई. और फिर यज्ञके समय उनको तपोवनसे बुलाया गया; उस समय देवता, गन्धर्व, मनुष्य और सर्व, साधारणके सामने फिर उनकी परीक्षाका विषय छिडनेपर उन्होंने जो प्रार्थना की थी वह नीचे लिखी जाती है–

यथाहं राघवादन्यं मनसापि न चिन्तये । तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हसि ॥ १ ॥
मनसा कर्मणा वाचा यथा रामं समर्च्चये । तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हसि ॥ २ ॥
यथैतत्सत्यमुक्तं मे वेद्मि रामात्परं न च । तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हसि ॥ ३ ॥

अर्थात्–"जो मैंने रामके अतिरिक्त मनसे भी और किसीका चिन्तवन नहीं किया तो हे देवि पृथ्वी ! तुम विदीर्ण होकर मुझे स्थानदान दो । जो मैंने काय, मन, वाक्यसे केवल रामहीकी अर्चना की है तो हे देवि ! मुझे स्थानदान दो जो मैं सत्य सत्यही कहती हूं कि,–मैं रामके अतिरिक्त और किसीको नहीं जानती तो हे पृथ्वी ! मुझे स्थानदान दो"।

हाय ! इतना कष्ट–इतनी यंत्रणा–इतनी लांछना– औरइतना अपमान भोग करके जिस स्त्रीने पतिको त्याग करना,रूठ जाना तो क्या पुरुषवाक्यतक कहनेकी इच्छा नहीं की उसकी उपमा, उसका दृष्टान्त, उसका गौरव, क्या किसी लोकमें मिल सकता है ? सीताका ऐसा कष्ट पाना और ऐसा व्यवहार सहना देखकर भारतवासियोंने सीताजीका नाम स्त्रियोंमेंसे उठा दिया है ।

जो हो, रामायण साधारणके निकटमें सत्कृत और परिचित होनेपर भी संस्कृत भाषाके कारण सर्व साधारणोंकी समझमें नहीं आती "इस देशमें श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीकी रामायण भाषाछन्दोंमें विरचित है सब छोटे बडे उसीको पढकर आनन्दमें मग्न रहते हैं। इसकारण हम गुंसाई तुलसीदासजीके कृतज्ञ और ऋणी हैं, 'वाल्मीकीयरामायण' सम्पूर्ण भाषामें न देखकर इसका सरल देश भाषामें टीका किया है जिन्होंने भाषामें थोडा भी अभ्यास किया है; वह भी इसको पाठकर अपना मनवांछित फलप्राप्त कर सकते हैं। विशेषतः मूलश्लोकसे छोडी गई किंतु जहां कहीं कोई भी बात इसमें नहीं संस्कृत टीकाकारने कुछ विशेष लिखा है वहाँ इसमें भी अधिक टिप्पणी कर दी गई है यह सब परिश्रम आपको राम भक्त बनानेके निमित्त है यदि शास्त्रपर विश्वास है तो रघुनाथजीको परब्रह्म जानकर इससे आप अर्थ, काम, धर्म, मोक्ष, चारों पदार्थ पासकते हैं यदि और कुछ भावना हो तो आप उनके आचरणही ग्रहण कीजिये उसीसे धर्मार्थकी प्राप्ति हो जाती है, क्योंकि वोह सच्चिदानन्द कल्पवृक्ष हैं; जैसी आपकी भावना होगी उसीके अनुसार फल मिलेगा।

तुलसीकृत रामायणकी टीका करके आपको रघुनाथजीके उदार चरितोंका परिचय दे चुके हैं परन्तु यह वह संहिता है जिससे स्वयं महाराज रामचन्द्रने अपने पुत्रोंके मुखसे श्रवण किया है गायत्रीके २४ अक्षरोंपर प्रत्येक अक्षरकी सहस्र श्लोकोंमें महिमा वर्णन कर महर्षिने सगुण ब्रह्मका निरूपण किया है, यद्यपि इसके अनुवाद करनेका बहुत कालसे मनोरथ था, परन्तु गुणग्राहक न मिलनेसे यह अभिलाषा मनही मनमें रही, जब कि गुणिजनमण्डलीमण्डन सज्जनमन रंजन "श्रीवेंकटेश्वर" यंत्राधीश वैश्यवरिष्ठ श्रीकृष्णदासात्मज खेमराजजीने इसमें पूर्ण कृतज्ञता दिखाकर इसके भाषान्तर करनेमें पूर्ण उत्साह दिया तब उनकी उत्तेजनासे मैंने प्रति श्लोक प्रतिचरण प्रतिपदकी भाषाकर अनुवाद किया है "श्रीवेंकटेश्वर" यंत्रालयकी उत्तमताको सब जानते हैं, जो ग्रंथ इस यंत्रालयसे निर्गत होता है वह कैसा सुन्दर होता है, अतएव यह रामायण सर्वांगसुन्दर इसी यन्त्रालयमें मुद्रित हुई है। जहां कहीं संस्कृत टीकाकारने अधिक लिखा है इसमें भी अनुवाद कर वह विषय लिख दिया है और बडी सवधानीसे अनुवाद किया गया है तथापि जहां कहीं कुछ त्रुटि रहगई हो उसे सज्जन महात्मा क्षमाकर मेरे परिश्रमको सफल करें।

हमारे छोटे भ्राता बलदेवप्रसादमिश्रने इसग्रन्थके निर्माण करनेमें बहुत कुछ सहायता की है यद्यपि वह छोटे हैं तथापि उनको धन्यवाद दिये विना चित्तमें सन्तोष नहीं होता।

पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्र,
मोहल्ला दीनदारपुरा, मुरादाबाद.

धन्यवादः ।



॥ श्रीः ॥

सन्तु शतशो धन्य-
वादाः परोपकारनिरताय
सद्ग्रन्थप्रचारकाय गुणग्राहिणे
"श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) यंत्राधीशाय
श्रीकृष्णदासात्मजक्षेमराजश्रेष्ठिने येनापरिमितध-
नव्ययं स्वीकृत्य जगतः परोपकाराय ऋषिमुनिप्र-
णीतप्राचीनग्रन्थानां भाषानुवादं कारयित्वा निजयन्त्रालये
मुद्रापयित्वा चास्मिन् भारते वर्षे प्रचारः कृतः । उपर्युक्तस्य
सद्गुणसम्पन्नस्यानुरोधात् विविधदानमानपरितुष्टचेतसा
मया श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणस्य "पीयूषधारा"-
नामकतिलकं कृत्वाऽस्य पुनर्मुद्रणाधिकारं
सर्वस्वत्वं च तस्मै समर्पितमग्रे परब्रह्म-
सच्चिदानंदसनातनदेवराम-
चन्द्रात्—



श्रेष्ठिनः श्रीकृष्णदासात्मजक्षेमराजस्य
कीर्त्यायुर्लक्ष्मीसन्ततीनां वृद्धिं प्रार्थयामहे ॥
ज्वालाप्रसादमिश्राः ।

श्रीगणेशाय नमः

श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणभाषाविषयानुक्रमणिका

इति बालकाण्डम् ।

अथ अयोध्याकांण्डम् २.

इति अयोध्याकाण्डम् ।

अथ आरण्यकाण्डम् ३.

इत्यारण्यकाण्डम् ।

सर्गसंख्या.	विषय.	पृष्ठ.

अथ किष्किन्धाकाण्डम् ४.

इति किष्किन्धाकाण्डम् ।

अथ सुन्दरकाण्डम् ५.

इति सुन्दरकाण्डम् ।

अथ युद्धकाण्डम् ६.

इति युद्धकाण्डम् ।

अथ उत्तरकाण्डम्

इत्युत्तरकांडम् ।

उत्तरकाण्डके क्षेपक सर्गोंकी सूची–

२३–२४ के बीचमें.

३७–३८ के बीचमें

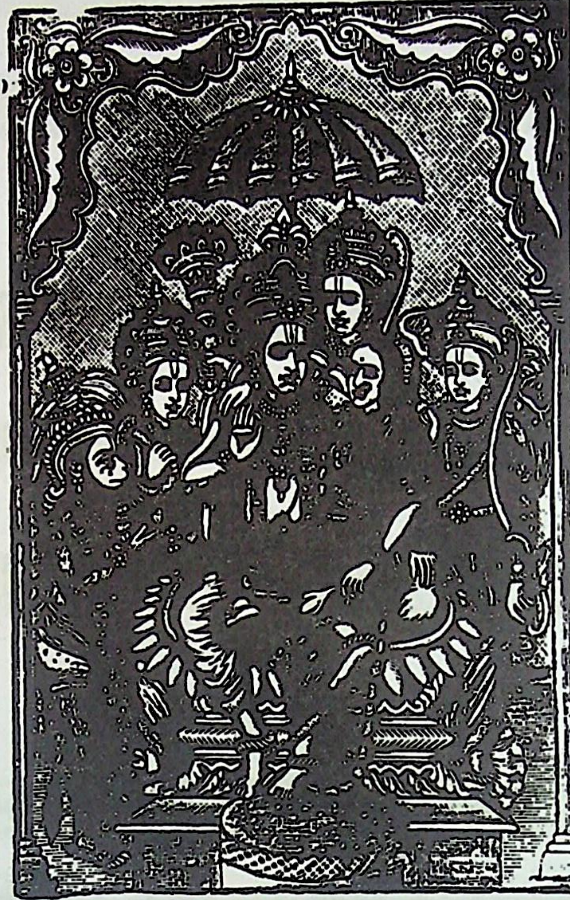
५९–६० के बीचमें.

इति वाल्मीकीयरामायण–भाषानुक्रमणिका सम्पूर्णा ।

अथ श्रीवाल्मीकीयरामायणमाहात्म्यं भाषाटीकासमेतं प्रारभ्यते

श्रीरामपञ्चायतन







दोहा--विधि हारि हर गणपति गिरा, गौरि भवानि मनाय ॥ करत महातमको तिलक, कीजे आय सहाय ॥ १ ॥

रामचन्द्रही समस्त जगत्के शरण देनेवाले हैं, रामके विना दूसरी गति नहीं है, रामकेही नामसे सम्पूर्णकलिमलनाश होते हैं, रामही को नमस्कार करना योग्य है, कालरूपी भयंकर सर्प रामसेही भयातीत होता है, रामहीके वशमें सब कुछ है मेरे राम ही आश्रय हैं और मैं रामचन्द्रमें ही अखण्ड भक्ति चाहता हूँ ॥१॥ लक्ष्मीके आनंद देनेहारे चित्रकूट पर्वतमें विहारकरनेवाले भक्तोंके अभय देनेवाले परमानंद स्वरूप रामकी वंदना करता हूँ॥२॥ जिनके अंशसे ब्रह्मा विष्णु महेश लोककी उत्पत्ति पालन संहार करते हैं, उन परमविशुद्ध आदिदेव रघुनाथजीका मैं भजनकरता हूं ॥३॥ ऋषि बोले हे सूतजी ! जो कुछ हमने आपसे

श्रीगणेशाय नमः ॥ ॥ अथ रामायणमाहात्म्यम्॥श्रीरामःशरणंसमस्तजगतांरामंविनाकागतीरामेणप्रतिहन्यतेकलिमलंरामायकार्यंनमः ॥ रामात्त्रस्यतिकालभीमभुजगोरामस्यसर्वंवशेरामेभक्तिरखंडिताभवतुमेरामत्वमेवाश्रयः ॥ १ ॥ चित्रकूटालयंराममिंदिरानंदमंदिरम् ॥ वंदेचपरमानंदंभक्तानामभयप्रदम् ॥ २ ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यायस्यांशालोकसाधकाः ॥ तमादिदेवंश्री रामंविशुद्धंपरमंभजे ॥ ३ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ भगवन्सर्वमाख्यातंयत्पृष्टंविदुषात्वया॥ संसारपाशबद्धानांदुःखानिसुबहूनिच ॥ ॥४॥ एतत्संसारपाशस्यच्छेदकःकतमःस्मृतः ॥ कलौवेदोक्तमार्गाश्चनश्यंतीतित्वयोदितम् ॥ ५ ॥ अधर्मनिरतानांचयातनाश्चप्रकीर्तिताः ॥ घोरेकलियुगेप्राप्तेवेदमार्गबहिष्कृते ॥ ६ ॥ पाखंडत्वंप्रसिद्धंवैतत्सर्वंपरिकीर्तितम् ॥ कामार्ताह्रस्वदेहाश्चलु ब्धाअन्योन्यतत्पराः ॥ ७ ॥ कलौसर्वेभविष्यंतिस्वल्परायोबहुप्रजाः ॥ स्त्रियःस्वपोषणपरावेश्यालावण्यशालिनः ॥ ८ ॥

पूछा वह सबही आपने वर्णन किया, परन्तु संसारके पाशमें बँधे हुओंको बडे २ दुःख होते हैं ॥४॥ इन संसारके पाशोंका उच्छेद किस प्रकारसे हो सकता है और आपने कहा है कि कलियुगमें वेदोक्त मार्ग नष्ट होजायगा ॥५॥ अधर्मी पुरुषोंके निमित्त बडे २ दुःख वर्णन किये घोर कलियुगके प्राप्त होनेपर वेद मार्गके नष्ट होनेपर ॥ ६ ॥ जिस प्रकारसे पाखंड फल जायगा, वह सबकुछ आप कहही चुके हैं कि, कामके वशीभूत छोटी देहवाले लोभी परस्पर द्वेषी ॥७॥ बहुधा धनहीन; इस प्रकारसे मनुष्य कलियुगमें उत्पन्न होंगे, स्त्री अपनीही पालना करेंगी; और वेश्या रूप यौवन संपन्न होंगी ॥ ८ ॥

स्त्री अपने पतिका कहना न मानकर सदा दूसरोंके घरोंमें निवास करेंगी, दुष्ट स्वभाव दुष्ट शील सदा दूसरोंसे विरोध करेंगी ॥ ९ ॥ कुलकी स्त्री पुरुषोंमें भय रहित रहेंगी और कठोर वचन झूठ भाषणमें तत्पर शुद्धतारहित ॥ १० ॥ बहुत बोलनेहारी कलियुगमें स्त्रियें होंगी, भिक्षुक लोग कुटुम्ब मित्रोंके स्नेहोंमें फँसे रहेंगे॥ ११ ॥ अनेक उपाधियोंसे भरे धन लेकर शिष्योंपर कृपाकरनेहारे अनेक पाखंडकी बातें बनानेवाले, पाखंडियोंके साथी॥ १२ ॥ इस प्रकारके जब ब्राह्मण होंगे तभी कलियुगकी वृद्धि होगी। ब्राह्मण वंशमें उत्पन्न होकर शिखा और सूत्र (यज्ञोपवीत) को त्यागन कर देंगे ॥ १३ ॥ हे सूतजी ! उनका उद्धार किस प्रकार

पतिवाक्यमनादृत्यसदान्यगृहतत्पराः ॥ दुःशीलादुष्टशीलेषुकरिष्यंतिसदास्पृहाम् ॥ ९ ॥ असंवृत्ताभविष्यंतिपुरुषेषुकुलांगनाः ॥परुषानृत भाषिण्योदेहसंस्कारवर्जिताः ॥ १० ॥ वाचालाश्चभविष्यंतिकलौप्राप्तेचयोषितः ॥ भिक्षवश्चापिमित्रादिस्नेहसंबंधयंत्रिताः ॥ ११ ॥अन्यो पाधिनिमित्तेनशिष्यानुग्रहलोलुपाः ॥ पाखंडालापनिरताः पाखंडजनसंगिनः ॥ १२ ॥ यदाद्विजाभविष्यंतितदावृद्धिंगतः कलिः ॥ विप्र वंशोद्भवश्रेष्ठउपवीतंशिखांत्यज्येत ॥ १३ ॥ कथंतन्निष्कृतिर्याातिवदसूतमहामते ॥ राक्षसाः कलिमाश्रित्यजायंतेब्रह्मयोनिषु ॥ १४ ॥ परस्परंविरुध्यंतिभगवद्धर्मबंधकाः ॥ द्विजानुष्ठानरहिताभगवद्धर्मवर्जिताः ॥ १५ ॥ कलौविप्राभविष्यंति कंचुकोष्णीषधारिणः ॥ घोरेकलियु गेब्रह्मन्जनानांपापकर्मणाम् ॥ १६ ॥ मनःशुद्धिविहीनानांनिष्कृतिश्चकथं भवेत् ॥ शूद्रहस्तोदकंपक्वशूद्रैश्चसहभोजनम् ॥ १७ ॥

होगा सो कहो क्योंकि कलियुगमें राक्षस ब्राह्मणकी योनियोंमें जन्मलेकर ॥ १४ ॥ भगवत्धर्ममें विरोधकर आपसमें द्वेषकर कहेंगे कि, पूजा मतकरो, श्राद्ध मत करो, ईश्वरकानाम मतलो, नियोग करो" इसप्रकार ईश्वरधर्मरहित और अनुष्ठानरहित ब्राह्मण होंगे ॥ १५ ॥ कलियुगमें ब्राह्मणबडीवास्कट पहरे और मुँडासाबांधे फिरेंगे हे ब्रह्मन्! इस प्रकार घोरकलियुगके आनेसे पापी मनुष्य ॥ १६ ॥ जिनके मन शुद्ध नहीं हैं उनका उद्धार कैसे होगा? क्योंकि उस समय वह शूद्रकेहाथका जल और

शूद्रके यहांका पक्वान्न तक भोजन करेंगे॥१७॥ इनशूद्रके अन्न खानेवालोंका उद्धार कैसे होगा, उनके ऊपर देवगुरुनारायण कैसे संतुष्ट होंगे॥१८॥ हे करुणा-सागर सूतजी ! हमको आप यह सब सुनाइये॥१९॥हे मुनिश्रेष्ठ सूतजी ! हमारी तुष्टि आपके वचनामृतसे किसी प्रकार नहीं होती ॥२०॥ सूतजी बोले हे ऋषियो! सुनो हम तुम्हें सब सुनाते हैं जो कुछ महात्मा नारदजीने सनत्कुमारसे कहा है॥२१॥ महाकाव्यरामायण सम्पूर्णवेदार्थ सम्मत है यहीसब पापका दूर करनेवाला और दुष्ट ग्रहका भी निवारण करनेहारा है॥२२॥ दुःस्वप्नका नाशक यश दायकभुक्तिमुक्तिके फलका देनेहारा और सबही कल्याणसिद्धिका देनेहारारामचंद्रके गुणोंसे

शौद्रमन्नंतथाश्नीयात्कथंशुद्धिमवाप्नुयात् ॥ यथातुष्यतिदेशोदेवदेवो जगद्गुरुः ॥ १८ ॥ तन्नोवदस्वसर्वज्ञसूतकारुण्यवारिधे ॥ १९ ॥ वदसूतमुनिश्रेष्ठसर्वमेतदशेषतः ॥ कथंनजायतेतुष्टिः सूतत्वद्वचनामृतात् ॥ २० ॥ सूत उवाच ॥ शृणुध्वमृषयःसर्वेयदिष्टंवोवदाम्यहम् ॥ गीतंसनत्कुमारायनारदेनमहात्मना ॥ २१ ॥ रामायणमहाकाव्यंसर्ववेदार्थसंमतम् ॥ सर्वपापप्रशमनंदुष्टग्रहनिवारणम् ॥ २२ ॥ दुःस्वप्ननाशनंधन्यंभुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ रामचंद्रगुणोपेतंसर्वकल्याणसिद्धिदम् ॥ २३ ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणांहेतुभूतंमहाफलम् ॥ अपूर्वंपुण्यफलदंशृणुध्वंसुसमाहिताः ॥ ॥ २४ ॥ महापातकयुक्तोवायुक्तोवासर्वपातकैः ॥ श्रुत्वैतदार्षंदिव्यंहिकाव्यंशुद्धिमवाप्नुयात् ॥ २५ ॥ रामायणे प्रवर्ततेसज्जनायेजगद्धिताः ॥ तएवकृतकृत्याश्चसर्वशास्त्रार्थकोविदाः ॥ २६ ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणांसाधनंचद्विजोत्तमाः ॥ श्रोतव्यंचसदाभक्त्यारामाख्यानंतदानृभिः ॥ २७ ॥

युक्त है ॥२३॥ धर्म अर्थ काम मोक्षके महाफलका देनेहारा यही है, यह अपूर्व पुण्योंके फलका देनेहारा है, आप सावधान होकर सुनिये ॥ २४ ॥ चाहे महापातक व पातक लगा हो इस दिव्य आर्ष काव्यको सुनतेही शुद्ध हो जाता है ॥२५॥ जो सज्जन रामायणके श्रवण और पाठमें प्रवृत्त होतेहैं, वेही कृतकृत्य और सब शास्त्रार्थके जाननेवाले हैं ॥ २६ ॥ हे ब्राह्मणो ! धर्म अर्थ काम मोक्षका यही साधन है कि सदा भक्तिपूर्वक रामायणको श्रवण करें ॥ २७ ॥

जिसके पूर्वजन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं, तब उसकी रामायणमें अवश्य प्रीति होतीहै ॥२८॥ जब रामायणविद्यमान है तो महापापसे युक्त पुरुष और ग्रंथ छोड इसमें अपना मन लगावे॥२९॥ इस कारणसे हे ऋषियो! यह रामायणही परमकाव्यको सुनना उचित है इसके श्रवण करनेसे वारंवार जन्म और जराका नाश होकर मनुष्य दोषरहित और अच्युत हो जाता है॥३०॥ यह वरदायक काव्यको जिसने कि अपनी कांतिके सबलोकोंको प्रकाशितकर रक्खा है, यह संकल्पित अर्थ और आनंददायक काव्य है, इसके सुननेसे मनुष्य मुक्तिको प्राप्त होता है॥३१॥ ब्रह्मा विष्णु शिव इन शरीरोंसे वही परमात्मा जगत्की उत्पत्ति पालन और संहार करते हैं, उन्हीं आदि

पुरार्जितानिपापानिनाशमायांतियस्यवै ॥ रामायणेमहाप्रीतिस्तस्यवैभवतिध्रुवम् ॥ २८ ॥ रामायणेवर्त्तमानेपापपाशेनयंत्रितः ॥ अनादृत्यान्यथागाथासक्तबुद्धिःप्रवर्तते ॥ २९ ॥ तस्मात्तुरामायणनामधेयंपरंतुकाव्यंशृणुतद्विजेंद्राः॥ यस्मिञ्छ्रुतेजन्मजरादिनाशोभवत्यदोषःसनरोऽच्युतःस्यात् ॥ ३० ॥ वरंवरेण्यंवरदंतुभाव्यंनिजप्रभाभासितसर्वलोकम् ॥ संकल्पितार्थप्रमदादिकाव्यंश्रुत्वा व्रजेन्मोक्षपदंमनुष्यः ॥ ३१ ॥ ब्रह्मेशविष्णवाख्यशरीरभेदैर्विश्वंसृजत्यत्तिचपातियश्च ॥ तमादिदेवंपरमंपरेशमाधायचेतस्युपयातिमुक्तिम् ॥ ३२ ॥ योनामजात्यादिविकल्पहीनःपरःपराणांपरमःपरःस्यात् ॥ वेदांतवेद्यःस्वरुचाप्रकाशःसवीक्ष्यतेसर्वपुराणवेदैः ॥ ३३ ॥ ऊर्जेमाघेसितेपक्षेचैत्रेचद्विजसत्तमाः ॥ नवम्यहनिश्रोतव्यं रामायणकथामृतम् ॥ ३४ ॥ इत्येवंशृणुयाद्यस्तुश्रीरामचरितंशुभम् ॥ सर्वान्कामानवाप्नोतिपरत्रामुत्रचोत्तमान् ॥ ३५ ॥ त्रिसप्तकुलसंयुक्तःसर्वपापविवर्जितः ॥ प्रयातिरामभवनंयत्रगत्वानशोच्यते ॥ ३६ ॥

देव परब्रह्म परमेश्वरको हृदयमें धारणकर मनुष्य मुक्तिको प्राप्त होता है॥३२॥ जो परमात्मा नाम जाति और कल्पनारहित परेसे परे वेदान्तगम्य स्वप्रकाशमान है वह सब पुराण जाननेवालोंसे कथंचित् जाना जाता है॥३३॥ हे ब्राह्मणो! कार्तिक माघ और चैत महीने के शुक्ल पक्ष में नव दिन इस काव्यको सुने॥३४॥ इस प्रकार जो इस उत्तम काव्य रामायणको श्रवण करते हैं, वे इसलोक और परलोकमें सम्पूर्ण मनोरथोंको प्राप्त होते हैं॥३५॥ उनके सातों कुल पवित्र हो जाते हैं, और साकेत

लोकको प्राप्त होते हैं, जहां जाकर मनुष्य किसी प्रकार के दुःख से युक्त नहीं होता॥ ३६॥ चैत्र माघ कार्तिक मासके शुक्लपक्ष में नौ दिन नियमितहो इस ग्रंथको बांचे और नियम से सुने ॥ ३७ ॥ यह आदिकाव्य रामायण स्वर्ग औरमोक्ष का देनेहारा है, इस कारण घोर कलियुगमें जिसमेंकि कुछ भी धर्म नहीं है॥ ३८॥ नौदिन तक रामायण रूपी कथामृत श्रवण करना चाहिये इस घोर कलियुग में भी जो ब्राह्मण रामायणके भक्त हैं ॥३९॥ वेही मनुष्य कृतकृत्य हैं, कलियुग उनको किसी प्रकार की बाधा नहीं देगा ॥४०॥ हे मुनियों ! जब तक सम्यक् प्रकार से मनुष्य रामायण नहीं श्रवण करते हैं, तभी तक देह में पाप निवास करते हैं॥४१॥ जबतक मनुष्य रामायण की कथा श्रवण नहीं करते हैं, दुःखसे नहीं छूटते लोकमें श्रीमद्रामायण की कथा बड़ी दुलभ है॥४२॥करोड़ जन्मोंके

चैत्रेमाघेकार्तिकेचसितेपक्षेचवाचयेत् ॥ नवम्यहनितस्मात्तुश्रोतव्यंचप्रयत्नतः॥ ३७॥रामायणंचादिकाव्यंस्वर्गमोक्ष प्रदायकम् ॥ तस्मात्कलियुगेघोरेसर्वधर्मबहिष्कृते ॥ ३८ ॥ नवम्यहनिश्रोतव्यंरामायणकथामृतम् ॥ रामायणपरायेतुघोरेकलियुगे द्विजाः ॥ ३९ ॥ ते नराः कृतकृत्याश्चनकलिर्बाधतेहितान् ॥ कथारामायणस्यापिनित्यंभवतियद्गृहे ॥ ४० ॥ तद्गृहंतीर्थरूपंहिदुष्टानांपापनाशनम् ॥ तावत्पापानि देहेऽस्मिन्निवसंतितपोधनाः ॥ ४१ ॥ यावन्नश्रूयतेसम्यक्श्रीमद्रामामणंनरैः ॥ दुर्लभैवकथालोके श्रीमद्रायणोद्भवा ॥ ४२ ॥ कोटिजन्मसमुत्थेनपुण्येनैवतुलभ्यते ॥ ऊर्जेमाघेसितेपक्षेचैत्रेचद्विजसत्तमाः ॥ ४३ ॥ यस्यश्रवण मात्रेणसौदासोऽपिविमोचितः ॥ गौतमशापतःप्राप्तःसौदासोराक्षसींतनुम् ॥ ४४ ॥ रामायणप्रभावेणविमुक्तिप्राप्तवान्पुनः ॥ यस्त्वे तच्छृणुयाद्भक्त्यारामभक्तिपरायणः ॥ ४५ ॥ समुच्यते महापापैरुपपातकराशिभिः ॥ ४६ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणेउत्तरखंडेनारदसनत्कुमारसंवादेरामायणमाहात्म्येप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

पुण्यों से ही इसका सुनना मिलता है,कार्तिक चैत्र माघ शुक्लपक्षमें इसका श्रवण करना उचित है॥४३॥ इस रामायणके श्रवण मात्रसे ही सौदास राजा जो गौतमजी के शाप से राक्षस हो गये थे मुक्त होगये॥४४॥ रामायण के प्रभावसे ही उनकी मुक्ति हुई. रामभक्तिपरायण होकर इसे भक्तिसे श्रवण करेंगे ॥ ४५॥ वह महा पातक और अनगिन्त उपपातकोंसे छूट जायँगे ॥४६॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे उत्तरखण्डे नारदसनत्कुमारसंवादे रामायणमाहात्म्यै पंडितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषायां प्रथमोध्यायः ॥१॥

ऋषि बोले हे सूतजी ! किस प्रकारसे सनत्कुमारसे नारदजीने सम्पूर्ण धर्म रामायण सबंधी कहे थे और उन दोनों का समागम कहाँ हुआ ॥ १ ॥ हे सूत! वह दोनों ब्रह्मवादी किस क्षेत्रमे स्थित होकर यह कथोपकथन करते थे?हे सूत! जो कुछ नारदजीने सनत्कुमारसे कहा था वह आप हमें सुनाइये॥२॥ सूतजी, बोले सनकादि महात्मा ब्रह्माजीके पुत्र हैं,यह निर्मल निरहंकार और ऊर्ध्वरेता हैं॥३॥उनके नाम सनक,सनंदन,सनत्कुमार और सनातन हैं॥४॥ यह चारों महात्मा विष्णुभक्त और विष्णुके ध्यान परायण हैं। इनका प्रकाश सहस्र सूर्यके समान और यह सत्यवंत तथा मुमुक्षु हैं ॥ ५ ॥ एक समय वह महा तेजस्वी ब्रह्माके पुत्र सनकादि सुमेरु

ऋषयः ऊचुः ॥ कथंसनत्कुमारायदेवर्षिर्नारदोमुनिः ॥ प्रोक्तवान्सकलान्ध र्मान्कथंचमिलिताबुभौ ॥ १ ॥ कस्मिन्क्षेत्रेस्थितौताततावुभौ ब्रह्मवादिनौ ॥ यदुक्तंनारदेनास्मैतन्नोब्रूहिमहामुने ॥ २ ॥ सूत उवाच ॥ सनकाद्यामहात्मानोब्रह्मणस्तनयाःस्मृताः ॥ निर्ममानिरहंकाराःसर्वे तेह्यूर्ध्वरेतसः ॥ ३ ॥ तेषांनामानिवक्ष्यामिसनकश्चसनंदनः ॥ सनत्कुमारश्चतथासनातनइतिस्मृतः ॥ ४ ॥ विष्णुभक्तामहात्मानोब्रह्मध्या नपरायणाः ॥ सहस्रसूर्यसंकाशाःसत्यवंतोमुमुक्षवः ॥५॥ एकदा ब्रह्मणः पुत्राःसनकाद्यामहौजसः ॥ मेरुशृंगंसमाजग्मुर्वीक्षितुब्रह्मणःसभाम् ॥ ६ ॥ तत्रगंगांमहापुण्यांविष्णुपादोद्भवांनदीम् ॥ निरीक्ष्यस्नातुमुद्युक्ताःसीताख्यांप्रथितौजसः ॥ ७ ॥ एतस्मिन्नंतरेविप्रादेवर्षिर्नारदो मुनिः ॥ आजगामोच्चरन्नामहरेर्नारायणादिकम् ॥ ८ ॥ नारायणाच्युतानंतवासुदेवजनार्दन ॥ यज्ञेशयज्ञपुरुषरामविष्णोनमोऽस्तुते ॥ ९ ॥ इत्युच्चरन्हरेर्नामपावयन्निखिलंजगत् ॥ आजगामस्तुवन्गंगांमुनिर्लोकैकपावनीम् ॥ १० ॥

पर्वत पर ब्रह्माजी की सभा देखने को आये ॥ ६ ॥ वहां निर्मलनीर विष्णु के चरणों से उत्पन्न हुई गंगा नदी जो वह सीता नाम से विख्यात है उसमें स्नान करने को उद्यत हुये ॥ ७ ॥ हे ब्राह्मणो ! इसी अवसर में नारदजी नारायण का नाम उच्चारण करते वहां आये ॥ ८ ॥ नारायण, अच्युतानंद वासुदेव, जनार्दन. यज्ञेश, यज्ञपुरुष, राम, विष्णु आपको नमस्कार है ॥ ९ ॥ इस प्रकार नारदजी भगवानका नामस्मरण करते सम्पूर्ण जगत्को पावन करते, लोकपावनी गंगाजी की स्तुति करते उस स्थान में आये ॥ १० ॥

नारदजी को आया देखकर महातेजस्वी सनकादिक अर्घ्यादिक देकर उनकी पूजा करते हुये, और नारदजी उनकी पूजा की ॥११॥ उस समय सभाके बीचमें नारायणके भक्त नारदजीसे सनत्कुमार पूछने लगे ॥१२॥ सनतकुमारजी बोले हे नारदजी ! आप पंडित सर्वज्ञ हो, नारायण के भक्तों में तुमसे अधिक कोई नहीं है१३॥यह तो कहिये जिसमें यह स्थावर जंगमात्मकजगत उत्पन्न हुआ है और जिनकेचरणोंसे गंगाजी निकलीहैं वह नारायण किसप्रकार जानेजातेहैं॥१४॥

अथायांतंसमुद्वीक्ष्यसनकाद्यामहौजसः ॥ यथार्हामर्हणांचक्रुर्ववंदेसोऽपितान्मुनीन् ॥११॥ अथतत्रसभामध्येनारायणपरायणम् ॥ सनत्कुमारःप्रोवाचनारदंमुनिपुंगवम् ॥१२॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ सर्वज्ञोऽसिमहाप्राज्ञमुनिमानदनारद ॥ हरिभक्तिपरोयस्मात्त्वत्तोनास्त्यपरोऽधिकः ॥ १३ ॥ येनेदमखिलंजातंजगत्स्थावरजंगमम् ॥ गंगापादोद्भवायस्यकथंसज्ज्ञायतेहरिः ॥ १४ ॥ अनुग्राह्योऽस्मियदितेतत्त्वतोवक्तुमर्हसि ॥ नारदउवाच ॥ नमः परायदेवायपरात्परतरायच ॥ १५ ॥ परात्परनिवासायसगुणायागुणायच ॥ ज्ञानाज्ञानस्वरूपाय धर्माधर्मस्वरूपिणे ॥ १६ ॥ विद्याविद्यास्वरूपायस्वस्वरूपायतेनमः ॥ योदैत्यहंतामरकान्तकश्चभुजाग्रमात्रेणदधारगोत्रम् ॥ १७ ॥ भूभारविच्छेदविनोदकामंतमादिदेवंरघुवंशदीपम् ॥ आविर्भूतश्चतुर्धायःकपिभिःपरिवारितः ॥ १८ ॥ हतवान्राक्षसानीकंरामंदाशरथिंभजे ॥ एवमादीन्यनेकानिचरितानिमहात्मनः ॥ १९ ॥

यदि आप कृपा करतेहैं तो तत्त्वसे यह कहिये । नारदजी बोले परेसे परे रहनेहारे देवको नमस्कारहै॥१५॥परेसे परेनिवास करनेहारे सगुणनिर्गुणज्ञान अज्ञान धर्माधर्म स्वरूप॥१६॥विद्याअविद्या स्वरूप स्वस्वरूप ईश्वरके निमित्त नमस्कारहै जो दैत्योंके मारनेवाले नरकासुरके मारनेवाले जिन्होंने अपनी एक उंगलीपरही पर्वत को उठालिया॥१७॥ उन पृथ्वीके भारदूर करनेहारे आनन्दकर्ता रघुवंशके दीपक नारायणको नमस्कार करताहूं॥१८॥जो वानरोंकेसहित चार प्रकार से उत्पन्न

हुये और राक्षसोंको मारा, उनका मैं भजन करता हूँ इस प्रकारके उन महात्मा के अनेक चरित्र हैं ॥१९॥ उन चरित्रों की संख्या एक करोडवर्षमें भी नहीं हो सकती उनके नामकी महिमाकेपारकोई नहीं हो सकता॥२०॥मनुष्य मुनीश्वर किसीप्रकार पार नहीं पासक्के फिर मैं एक क्षुद्र क्या कहूं? जिनके नामश्रवण करनेसे महापातकी पापी भी॥२१॥पवित्र हो जाते हैं फिर मैं क्षुद्र बुद्धि किसप्रकार से उनके गुण कहकर तुम्हें संतुष्ट करूं ॥२२॥ घोर कलियुग में जो ब्राह्मण रामायण के भक्त होंगे, वही कृतकृत्य हैं, ऐसे ब्राह्मणों को नित्य नमस्कार है ॥२३॥ कार्तिक चैत्र माघ मासके शुक्लपक्षमें नौ दिनतक यह कथामृतश्रवणकरनाउचित है

तेषांनामानिसंख्यातुंशक्यतेनाब्दकोटिभिः ॥ महिमानंतुयन्नाम्नःपारंगंतुंनशक्यते ॥२०॥ मनवोऽपिमुनीन्द्राश्चकथंतंक्षुल्लकोभजे ॥ यन्नामश्रवणेनापिमहापातकिनोऽपिये॥२१॥ पावनत्वंप्रपद्यंतेकथंस्तोष्यामि क्षुद्रधीः ॥ रामायणपरायेतुघोरेकलियुगेद्विजाः ॥२२॥ तएवकृतकृत्याश्चतेषांनित्यंनमोनमः ॥२३॥ ऊर्जेमासेसितपक्षेचैत्रेमाघेतथैवच ॥ नवम्यहनिश्रोतव्यंरामायणकथामृतम् ॥ २४ ॥ गौतमशापतःप्राप्तःसौदासोराक्षसींतनुम् ॥ रामायणप्रभावेणविमुक्तिंप्राप्तवान्पुनः ॥२५॥ सनत्कुमार उवाच ॥ रामायणंकेनप्रोक्तंसर्वधर्मफलप्रदम् ॥ शप्तःकथंगौतमेनसौदासोमुनिसत्तम ॥२६॥ रामायणप्रभावेणकथंभूयोविमोचितः ॥ अनुग्राह्योऽस्मियदितेचेदस्तिकरुणामयि ॥ २७ ॥ सर्वमेतदशेषेणमुनेनोवक्तुमर्हसि ॥ शृण्वतां वदतांचैवकथा पापप्रणाशिनी ॥२८॥ नारद उवाच ॥ शृणुरामायणंविप्रयद्वाल्मीकिमुखोद्धृतम् ॥ नवम्यहनिश्रोतव्यंरामायणकथामृतम् ॥ २९ ॥ आस्तेकृतयुगेविप्रोधर्मकर्मविशारदः ॥ सोमदत्तइतिख्यातोनाम्नाधर्मपरायणः ॥ ३० ॥

॥२४॥ राजा सौदास जो गौतमके शापसे राक्षस होगया था, इस रामायणके प्रभावसेही मुक्त हुआ ॥२५॥ सनत्कुमार बोले सब धर्मोंके फल देनेहारीरामायण किसने कही है और गौतममुनिने किसप्रकारसे सौदासराजाको शापदियाथा ॥२६॥ रामायणके प्रभावसे वह कैसे मुक्त हुआ, जो आप हमारे ऊपर कृपा और अनुग्रह करतेहो तो ॥२७॥ हे मुनिराज ! यह सब कुछ आप सुनाइये, यह कथा कहने सुननेवालोंका पाप नाशकरती है ॥२८॥ नारदजी बोले हे ऋषिजी ! वाल्मीकिजीकी बनाई रामायण कथा जो अमृतके समान है नौ दिन सुननी चाहिये॥२९॥सतयुगमें धर्म कर्म विशारद एक धर्मपरायण सोमदत्त ब्राह्मणथे॥३०॥

इन ब्राह्मणने ब्रह्मवादी गौतम मुनिसे गंगगाके किनारे अनेक धर्म सुने और उन्होंने पुराण शास्त्रकी कथासे इनको बहुत समझाया भी ॥ ३१ ॥ इनऋषिराजसे संपूर्ण धर्म श्रवण करके किसी समय वह ब्राह्मण परमेश्वर शंकरकी पूजा कर रहा था॥ ३२॥ उसी समय गौतमजीको आये देखकर इनको प्रणाम नहीं किया वह महातेजस्वी गौतमजी शांत स्वभाव थे॥ ३३॥ विचारकर कि यह मेरे बताये हुएही कर्म करता है प्रसन्न हुए परन्तु वह जगत्‌के गुरु महादेव जिनका वह पूजन कर रहे थे ॥ ३४॥ उन महादेवने गौतमके आनेसे और ब्राह्मणके अभिवादन न करनेसे इस गुरुनिरादर करनेके पापसे उसे राक्षस हो जानेका शाप दिया ॥ ३५॥ तब वह ब्राह्मण हे

विप्रस्तुगौतमाख्येनमुनिनाब्रह्मवादिना ॥ श्रुतवान्सर्वधर्मान्वैगंगातीरेमनोरमे ॥ पुराणशास्त्रकथनैस्तेनासौबोधितोऽपिच ॥ ३१ ॥ श्रुतवान्सर्वधर्मान्वैतेनोक्तानखिलानपि ॥ कदाचित्परमेशस्यपरिचर्यापरोऽभवत् ॥३२॥ उपस्थितायापितस्मैप्रणामंनह्यकारिच ॥ सतुशांतोमहाबुद्धिर्गौतमस्तेजसांनिधिः ॥ ३३ ॥ मयोदितानिकर्माणिकरोतीतिमुदंययौ ॥ यस्त्वर्चितोमहादेवःशिवःसर्वजगद्गुरुः ॥ ३४ ॥ गौतमश्चागतस्तत्रनचोत्थापत्ततोद्विजः ॥ गुर्ववज्ञाकृतंपापंराक्षसत्वेनचोक्तवान् ॥ ३५ ॥ भगवान्सर्वधर्मज्ञः सर्वदर्शीसुरेश्वरः ॥ उवाचप्रांजलिर्भूत्वा विनयान्नयकोविदम् ॥ ३६ ॥ क्षमस्वभगवन्सर्वमपराधंकृतंमया॥ गौतम उवाच ॥ ऊर्जेमासेसितेपक्षेरामायणकथामृतम् ॥ ३७ ॥ नवम्यहनिश्रोतव्यंभक्तिभावेनसादरम् ॥ नात्यंतिकंभवेदेतद्द्वादशाब्दंभविष्यति ॥३८॥ विप्र उवाच ॥ केनरामायणंप्रोक्तंचरितानितुकस्यवै ॥ मनसाप्रीतिमापन्नोववंदेचरणौगुरोः ॥ ३९ ॥

सर्वधर्मज्ञ !सर्वदर्शी देवेश्वर!क्षमा करो, इस प्रकारसे नीति पालक शिवजीकी कर जोड स्तुति करने लगा॥ ३६॥ हे भगवन्!मेरे अपराधको क्षमा करिये तब गौतमजीने उससे कहा कि कार्तिक शुक्लपक्षकी नौमीके दिन रामायण भक्ति और आदरसे श्रवण करो॥ ३७॥ कल्याण होगा बारहही वर्षमें तुम्हारा राक्षसपन नष्ट हो जायगा ॥ ३८ ॥ ब्राह्मण बोला हे गुरुजी मैं प्रीतिसे आपके चरण वंदन करके कहता हूँ कि रामायण किसने बनाई और उसमें किसका चरित्र है ॥ ३९ ॥

हे महाभाग्न ! यह सब संक्षेपसे मुझे सुनाइये यह सुन गौतमजी बोले हे ब्राह्मण! वाल्मीकिजीकी बनाई हुई रामायण है ॥ ४० ॥ इसके श्रवण करनेसे पापों से रहित हो फिर अपने स्वरूपकी तुझे प्राप्ति होगी, जिन्होंने राम अवतार लेकर रावणादि राक्षसोंको ॥ ४१ ॥ देवताओंके कार्यनिमित्त मारा, उनके चरित्र तू श्रवण कर कार्तिकके शुक्लपक्षमें रामायणकी कथा ॥४२॥ जो सब पापोंकी दूर करने हारी है,नौ दिन सुननी चाहिये यह वचन कह समर्थ गौतमजी अपने आश्रमको चले गये॥४३॥अ.र ब्राह्मण बडे दुःखको प्राप्त होकर राक्षसी शरीरको प्राप्त हुआ भूख प्याससे व्याकुल नित्य क्रोधित रहने लगा ॥४४॥ काले सांपके

एतत्सर्वंमहाप्राज्ञसंक्षेपाद्वक्तुमर्हसि ॥ गौतम उवाच ॥ शृणुरामायणंविप्रवाल्मीकिमुनिनाकृतम् ॥४०॥ तच्छ्रुत्वामुच्यतेपापात्स्वंरूपंपुनरेतिसः ॥ येनरामावतारेणराक्षसारावणादयः ॥ ४१ ॥ हतास्तुदेवकार्यार्थंचरितंतस्यत्वंशृणु ॥ कार्त्तिकेचसितेपक्षेकथारामायणस्यतु ॥४२॥ नवम्यहनिश्रोतव्यासर्वपापप्रणाशिनी ॥ इत्युक्त्वासर्वसंपन्नोगौतमः स्वाश्रमंययौ ॥ ४३ ॥ विप्रोऽपिदुःखमापन्नोराक्षसींतनुमाश्रितः ॥ क्षुत्पिपासातिवेशार्तोनित्यंक्रोधपरायणः ॥४४॥ कृष्णसर्पद्युतिर्भीमोबभ्रामविजनेवने ॥ मृगांश्चविविधांस्तत्रमनुष्यांश्चसरीसृपान् ॥ ४५॥ विहगान्प्लवगांश्चैवप्रशस्तांस्तानभक्षयत् ॥ अस्थिभिर्बहुभिर्विप्राःपीतरक्तकलेवरैः ॥ ४६ ॥ रक्तादप्रेतकैश्चैवतेनासीद्भूर्भयंकरी ॥ ऋतुत्रये सपृथिवींशतयोजनविस्तराम् ॥ ४७ ॥ कृत्वातिदूषितांपश्चाद्वनांतरमगात्पुनः ॥ तत्रापिकृतवान्नित्यंनरमांसाशनंतदा ॥४८॥ जगामनर्मदातीरेसर्वलोकभयंकरः ॥ एतस्मिन्नंतरेप्राप्तःकश्चिद्विप्रोऽतिधार्मिकः ॥ ४९ ॥

समान भयंकर शरीर यह राक्षस निर्जन वनमें घूमने लगा, वहांपर अनेक प्रकारके मृग मनुष्य सरीसृप ॥४५॥ पक्षी पशु कूदनेहारा जीव (वानर) इनको खाने लगा इनके पीले लाल शरीर और अस्थियोंके ढेरसे ॥ ४६ ॥ और बिना मरोंके रुधिरसे इसने पृथ्वीको भयंकर करदिया तीन ऋतुमें इसने सौ योजन विस्तार वाली पृथ्वीको ॥ ४७ ॥ दूषित किया फिर दूसरे वनमें गया और वहांभी नित्य मनुष्योंकामांस भक्षण करने लगा ॥४८ ॥ सब प्राणियोंका भय देनेहारा यह राक्षस नर्मदा नदीके किनारे आया उसी समय वहां कोई धर्मात्मा ब्राह्मण आया ॥ ४९ ॥

कलिंग देशमें इसका जन्म गर्ग नाम था गंगाजल कलश कंधेमें लिये परमेश्वरकी स्तुति करते ॥ ५० ॥ बडी प्रसन्नतासे रामके गुणानुवाद गाते उस स्थानमें मुनि आये, सुदामा राक्षसने मुनिको आया देखकर कहा॥ ५१ ॥ आज हमारे भोजन करनेको यह आया ऐसा कह भुजा उठायकर दौडा, परन्तुउनके उच्चारण किये नामको सुनकर दूरही खड़ा होगया ॥ ५२ ॥ और उस ब्राह्मणके मारनेको समर्थ न होकर वह राक्षसकहने लगा हे महाभागी महामुनि ! आपको नमस्कार है ॥ ५३ ॥ नामस्मरण माहात्म्यसे राक्षसभी आपसे दूर रहते हैं, मैंने पूर्वकालमें सहस्रों करोड ब्राह्मण भक्षण कर लिये ॥ ५४ ॥

कलिंगदेशसंभूतोनाम्नागर्गइतिश्रुतः ॥ वहन्गंगाजलंस्कंधेस्तुवन्विश्वेश्वरंप्रभुम् ॥५०॥ गायन्नामानिरामस्यसमायातोऽतिहर्षितः ॥ तमागतं मुनिंदृष्ट्वासुदामानामराक्षसः ॥ ५१ ॥ प्राप्तानःपारणेत्युक्त्वाभुजावुद्यम्यतंययौ ॥ तेनकीर्तितनामानिश्रुत्वादूरेव्यवस्थितः ॥५२॥ अशक्तस्तं द्विजंहंतुमिदमूचेसराक्षसः ॥ राक्षस उवाच ॥ अहोभद्रमहाभागनमस्तुभ्यंमहात्मने ॥५३॥ नामस्मरणमाहात्म्याद्राक्षसाअपिदूरगाः ॥ मयाप्र भक्षिताःपूर्वंविप्राःकोटिसहस्रशः ॥५४॥ नामप्रहरणंविप्ररक्षतित्वांमहाभयात् ॥ नामस्मरणमात्रेणराक्षसाअपिभोवयम् ॥ ५५ ॥ परांशांतिंस मापन्नामहिमानोऽच्युतस्यकः ॥ सर्वथात्वंमहाभागरागादिरहितोद्विजः ॥५६॥ रामकथाप्रभावेणपाह्यस्मात्पातकाधमात् ॥ गुर्ववज्ञामयापूर्वं कृताचमुनिसत्तम ॥ ५७॥ कृतश्चानुग्रहःपश्चाद्गुरुणाप्रोक्तवानिदम् ॥ वाल्मीकिमुनिना पूर्वंकथारामायणस्यच ॥५८॥ ऊर्जेमासिसितेपक्षे श्रोतव्याचप्रयत्नतः ॥ गुरुणापिपुनःप्रोक्तंरम्यंतुशुभदंवचः ॥ ५९ ॥

परन्तु हे ब्राह्मण! यह ईश्वरके नाम तुम्हारी महाभयसे रक्षा करते हैं हे प्रभो! नामस्मरण करतेही हम राक्षसभी तो ॥ ५५ ॥ महाशांतिको प्राप्त हुए, उन नारायण की महिमा कैसी होगी? हे बडभागी ! हम जानते हैं कि आप सब प्रकारसे रागादि दोषरहित हैं॥ ५६ ॥रघुनाथजीकी कथाके प्रभावसे मुझेभी इस अधमपनसे छुडाओ। हे मुनिराज! पूर्वकालमें मुझसे गुरुका तिरस्कार होगया था ॥ ५७ ॥ पीछे गुरुने कृपा करके मुझसे यह कहा कि पूर्व कालमें जो रामायण वाल्मीकि जीने बनाई है ॥ ५८ ॥ उसे तू कार्तिक मासके शुक्लपक्षमें सावधानीसे श्रवण करना यह कह फिर गुरुजी सुन्दर वचन बोले ॥ ५९ ॥

यह रामायण कथामृत नवदिनपर्यन्त श्रवण करना इस कारण हे सम्पूर्ण शास्त्रार्थके जाननेवाले ॥ ६० ॥ कथा सुननेमात्रसे हमारी इस पापसे रक्षा करो, नारदजी बोले जब इसप्रकार राक्षसने रामका उत्तम माहात्म्य वर्णन किया ॥ ६१ ॥ तब सुनकर वह ब्राह्मण बड़ा विस्मित हुआ तब वह रामनाम परायण ब्राह्मण अत्यन्त कृपा करके ॥ ६२ ॥ सुदामा नाम राक्षससे इस प्रकार वचन बोले ब्राह्मणने कहा कि हे महाभागी राक्षस ! तुम्हारी मति बड़ी विमल है ॥ ६३ ॥ इस कार्तिकके शुक्लपक्षमें रामायणको कथा श्रवण कर अत्यन्तभक्ति से रामका माहात्म्य सुन ॥ ६४ ॥

नवम्यहनिश्रोतव्यंरामायणकथामृतम् ॥ तस्माद्ब्रह्मन्महाभागसर्वशास्त्रार्थकोविद ॥६०॥ कथाश्रवणमात्रेणपाह्यस्मात्पापकर्मणः ॥श्रीनारद उवाच ॥ इत्याख्यातंराक्षसेनराममाहात्म्यमुत्तमम्॥ ६१ ॥ निशम्यविस्मयाविष्टोबभूवद्विजसत्तमः ॥ ततोविप्रःकृपाविष्टोरामनामपरायणः ॥६२॥ सुदामंराक्षसंनामचेदंवाक्यमथाब्रवीत् ॥ विप्र उवाच ॥राक्षसेंद्रमहाभागमतिस्तेविमलागता ॥६३॥ अस्मिन्नूर्जेसितेपक्षेरामायणकथांशृणु ॥ शृणुत्वंराममाहात्म्यंरामभक्तिपरात्मना ॥ ६४ ॥ रामध्यानपराणांचकःसमर्थःप्रबाधितुम् ॥ रामभक्तिपरायत्रब्रह्माविष्णुःसदाशिवः॥ ६५ ॥अत्रदेवाश्चसिद्धाश्चरामायणपरानराः ॥तस्मादूर्जेसितेपक्षेरामायणकथांशृणु ॥६६ ॥ नवम्यहनिश्रोतव्यंसावधानःसदाभवन्॥कथाश्रवणमात्रेणराक्षसत्वमपाकृतम्॥६७॥विसृज्यराक्षसंभावमभवद्देवतोपमः ॥ कोटिसूर्यप्रतीकाशमापन्नोविबुधर्षभः ॥ ६८ ॥ शंखचक्रगदापाणीरामभद्रःसमागतः ॥ स्तुवंस्तुब्राह्मणंसम्यग्जगामहरिमंदिरम् ॥ ६९ ॥

रामके ध्यान करनेवालोंको कोई भी बाधाकरनेको समर्थ नहीं है; जहां रामभक्त हैं उसी स्थानपर ब्रह्मा विष्णु शिव निवास करते हैं ॥ ६५ ॥ उसी स्थानमें देवता सिद्ध और रामभक्त निवास करते हैं, इस कारण कार्तिक शुक्लपक्षमें रामायण सुन ॥ ६६ ॥नौदिनतक सावधान होकर श्रवण कर कथा श्रवण करतेही उसका राक्षसपन दूर होगया ॥ ६७ ॥ और वह राक्षस भावको त्यागकर देवताके समान होगया, और वह करोडौं सूर्यके समान देवतामें उत्तम स्वरूपवान होगया ॥ ६८ ॥ शंख, चक्र, गदा, पद्म हाथम लिये रामचन्द्र भी उस स्थानमें आये और ब्राह्मण

उनकी स्तुतिकर वैकुण्ठलोकको गया ॥ ६९ ॥ नारदजी बोले हे ब्राह्मणो ! इस कारण कार्तिक शुक्लपक्षमें नव दिनतक रामायण जो अमृतके समान है कहानी सुननी चाहिये ॥ ७० ॥ जिनके नामस्मरण करतेही मनुष्य करोडों पापोंसेछूटकर परमगतिको प्राप्त होता है 'रामायण' यह शब्द जो एकबारभी उच्चारण किया जाय तो ॥ ७१ ॥ उसी समय पापरहित होकर मनुष्य अन्तकालमें विष्णुलोकको जाता है जो मनुष्य इस आख्यानको पढते या भक्ति से श्रवण करते हैं, उनको निश्चय गंगास्नानके पुण्यकाफल प्राप्त होता है ॥ ७२ ॥ इति श्री स्कंदपुराणे उत्तरखण्डे नारद सनत्कुमारसंवादे

नारद उवाच ॥ तस्माच्छृणुध्वंविप्रेंद्रारामायणकथामृतम् ॥ नवम्यहनिश्रोतव्यमूर्जेमासिचकीर्त्यते ॥७०॥ यन्नामस्मरणादेवमहापातककोटिभिः ॥ विमुक्तसर्वपापेभ्योनरोयातिपरांगतिम् ॥ रामायणेतियन्नामसकृदप्युच्यतेयदा ॥७१॥ तदैवपापनिर्मुक्तोविष्णुलोकंसगच्छति ॥ येपठंतीदमाख्यानंभक्त्याशृण्वंतिवानराः ॥ गंगास्नानफलंपुण्यंतेषांसंजायतेनवम् ॥७२॥ इति श्रीस्कं० उत्त० नारदसनत्कुमारसंवादेरामायणमा० राक्षसविमोचनंनामद्वितीयोऽध्यायः ॥२॥ सनत्कुमार उवाच ॥ अहोचित्रमिदंप्रोक्तंमुनिमानदनारद ॥ रामायणस्यमाहात्म्यंपुनस्त्वंवदविस्तरात् ॥१॥ अन्यमास्यमाहात्म्यंकथयस्वप्रसादतः ॥ कथंनोजायतेतुष्टिर्मुनेत्वद्वचनामृतात् ॥ २ ॥ नारद उवाच ॥ सर्वेयूयमहाभागाःकृतार्थानात्रसंशयः ॥ यतःप्रभावंरामस्यभक्तितःश्रोतुमुद्यताः ॥ ३ ॥ माहात्म्यश्रवणंयस्यराघवस्यकृतात्मनाम् ॥ दुर्लभंप्राहुरित्येतंमुनयोब्रह्मवादिनः ॥ ४ ॥ शृणुध्वमृषयश्चित्रमितिहासंपुरातनम् ॥ सर्वपापप्रशमनंसर्वरोगविनाशनम् ॥ ५ ॥

रामायण मा ० भाषायांराक्षस विमोचनंनाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ सनत्कुमार जी बोले--हे नारदजी ! यह आपने बहुत उत्तम वार्ता कही;और भी आप विस्तार सहित रामायणका माहात्म्य कहिये ॥ १ ॥ आप और महीनोंका व्रत माहात्म्य भी सुनाइये, आपके वचनसे हमारी तृप्ति नहीं होती॥ २ ॥ नारदजी बोले निःसंदेह तुम सब महाभाग्यवान और कृतार्थहो इसमें संदेह नहीं जो रामचंद्रकी महिमा श्रवण करनेको उद्यतहो ॥ ३ ॥ जिन रामचन्द्रके माहात्म्यका सुनना बड़े २ ज्ञानी महात्माओंने दुर्लभ माना है ॥ ४ ॥ हे ऋषियो ! एक अद्भुत प्राचीन इतिहास श्रवण करो जो

सम्पूर्ण पाप और सम्पूर्णरोगोंका नाश करनेहारा है ॥ ५ ॥ पहले द्वापरमें एक सुमतिनाम राजाथा, जो चन्द्रवंशमें उत्पन्न और सब भूमंडलका अधिपति था ॥ ६ ॥ वह धर्मात्मा सत्यसागर सब सम्पत्तियोंसे पूर्ण सदा रामकी कथा सुनने और पूजन करनेहारा था ॥ ७ ॥ अहंकार रहित हो रामभक्तोंकी शुश्रूषा करता पूजनीयोंकी पूजा करता, समदर्शी और गुणयुक्त था ॥ ८ ॥ सब प्राणियोंका हितकारी, शान्तकृतज्ञ कीर्तिमान् था, इसी प्रकार उसकी भार्या भी सब लक्षण संपन्न थी ॥ ९ ॥ वह पतिव्रता पतिको प्राणोंके समान प्यारी, सत्यवतीनामयुक्त थी वे दोनों स्त्रीपुरुष सदा रामायण सुनते

आसीत्पुराद्वापरेचसुमतिर्नामभूपतिः॥सोमवंशोद्भवःश्रीमान्सप्तद्वीपैकनायकः ॥६॥ धर्मात्मासत्यसंपन्नःसर्वसंपद्विभूषितः ॥सदारामकथासेवीरामपूजापरायणः ॥७॥ रामपूजापराणांचशुश्रूषुर्निरहकृतिः ॥ पूज्येषुपूजानिरतःसमदर्शीगुणान्वितः ॥ ८ ॥ सर्वभूतहितःशांतःकृतज्ञःकीर्तिमान्नृपः ॥तस्यभार्यामहाभागासर्वलक्षणसंयुता ॥९॥ पतिव्रतापतिप्राणानाम्नासत्यवतीशुभा ॥ तावुभौदंपतीनित्यंरामायणपरायणौ ॥ १० ॥ अन्नदानरतौनित्यंजलदानपरायणौ॥ तडागारामवाप्यादीनसंख्यातान्वितेनतुः ॥११॥ सोऽपिराजामहाभागोरामायणपरायणः ॥ वाचयेच्छृणुयाद्वापिभक्तिभावेनभावितः ॥ १२ ॥एवंरामपरंनित्यंराजानंधर्मकोविदम् ॥ तस्यप्रियासत्यवतींदेवाअपिसदास्तुवन् ॥ १३ ॥ त्रिलोकेविश्रुतौतौचदंपत्यत्यंतधार्मिकौ ॥ आययौबहुभिःशिष्यैर्द्रष्टुकामोविभांडकः ॥ १४ ॥ विभांडकंमुनिंदृष्ट्वासमाम्नातोजनेश्वरः प्रत्युद्ययौसपत्नीकःपूजाभिर्बहुविस्तरम् ॥ १५ ॥

॥ १० ॥ अन्नदान जलदान करतेअसंख्यसरोवर बावडी और कुयें इन्होंने बनवाये ॥ ११ ॥ इस प्रकार यह बडभागी राजा बड़े प्रेमसे कभी रामायणपढ़ते और कभी सुनतेथे, मनमें बडी भक्ति धारण करते ॥ १२ ॥ इस प्रकार धर्मपरायणरामभक्तराजाकी रानीसत्यवती भी थी, सदा उसकी देवता बडाई करते ॥१३॥ वह दोनों स्त्री पुरुष भक्तिके कारण त्रिलोकी में विख्यात होगये, एक समय उनके देखनेको बहुत चेलों सहित विभांडक ऋषि आये ॥ १४ ॥ विभांडकको देख पुरवासी और अपनी भार्यासहित राजा उसके निकट गये और उनकी बड़ी पूजा की ॥ १५ ॥

उनका अतिथि सत्कार कर आसनपर बैठाया, और उनसे नीचे आसन पर बैठ वह राजा हाथ जोड़कर कहने लगे ॥ १६ ॥ हे भगवन्! आपके इस स्थानपर पधारनेसे कृतकृत्य हूं संत कहते हैं सत्पुरुषोंका आगमन बड़े भाग्यसे होताहै ॥ १७ ॥ जहां बड़े पुरुषोंका प्रेम होता है, वहीं सब संपत्ति भी होती हैं वहीं तेज कीर्ति और धन होता है इस प्रकार पंडित कहते हैं ॥१८॥ हे मुनिराज! वहांही प्रतिदिन कल्याण वृद्धिको प्राप्त होते हैं वहीं बड़े सज्जन पुरुष आकर कृपा करते हैं ॥ १९ ॥ हेब्रह्मन्! जो ब्राह्मणके चरणोंका जल अपने मस्तकपर धारण करते हैं, वे बड़े पुण्यात्मा हैं, और निश्चय

कृतातिथ्यक्रियंशांतंकृतासनपरिग्रहम् ॥ नीचासनगतोभूपःप्राञ्जलिर्मुनिमब्रवीत् ॥ १६ ॥ राजोवाच ॥भगवन्कृतकृत्योऽस्मितवात्रागमनेन भोः ॥ सतामागमनंसंतः प्रशंसंतिसुखावहम् ॥१७॥ यत्रस्यान्महतांप्रेमतत्रस्युःसर्वसंपदः ॥ तेजःकीर्तिर्धनंपुत्राइतिप्राहुर्विपश्चितः ॥१८ ॥ तत्रवृद्धिंगमिष्यंतिश्रेयांस्यनुदिनंमुने ॥ तत्रसंतःप्रकुर्वंतिमहतींकरुणांप्रभो ॥ १९ ॥ योमूर्ध्निधारयेद्ब्रह्मन्विप्रपादतलोदकम् ॥ सस्नातः सर्वतीर्थेषुपुण्यवान्नात्रसंशयः ॥ २० ॥ ममपुत्राश्चदाराश्चसंपत्त्वयिसमर्पिता ॥ समाज्ञापयशांतात्मन्ब्रह्मन्किंकरवाणिते ॥ २१ ॥ विनयावनतंभूपंतंनिरीक्ष्यमुनीश्वरः ॥ स्पृशन्करेणराजानंप्रत्युवाचातिहर्षितः ॥ २२ ॥ ऋषिवाच ॥ राजन्यदुक्तंभवतातत्सर्वंत्व त्कुलोचितम् ॥ विनयावनताःसर्वेपरंश्रेयोभजंतिहि ॥ २३ ॥ प्रीतोऽस्मितवभूपालसन्मार्गेपरिवर्तिनः ॥ स्वस्तितेऽस्तुमहाभागयत्प्रक्ष्या मितदुच्यताम् ॥ २४ ॥

सब तीर्थोंमें स्नान कर चुके ॥२०॥ मेरे पुत्र स्त्री धन संपत्ति सब आपहीकी हैं हे शांतस्वरूप मुनिराज! आज्ञा दीजिये हम आपका कौन प्रिय कार्य करें ॥२१ ॥ मुनिराज राजाका इस प्रकार विनय देख हाथसे राजाको स्पर्श कर बड़ी प्रसन्नतासे बोले ॥२२॥ ऋषि बोले राजन्! जो कुछ तुमने कहा है वह सब तुम्हारे कुलकेउचितही है, विनयी पुरुष परमकल्याणको पाते हैं ॥२३॥ हे राजन्! तुम सन्मार्गमें चलतेहो इस कारण मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूं, हे महाभागः! तुम्हारा मंगल हो जो मैं तुमसे पूछता हूं सो कहो ॥ २४ ॥

नारायणके सन्तोष करनेहारे बहुतपुराणविद्यमान हैं और तुमरामायणके भक्त माघमासमेंअधिक अनुष्ठान करतेहो तुम्हारी यह भार्या भी नित्य रामचन्द्रके ध्यानमें रहतीहैयह क्या बात है वह सब वृत्तान्त हमें सुनाओ ॥२५॥२६॥ राजा बोले हे भगवन् ! यह जो आपने पूछा है सो म सब वर्णन करता हूं हे मुनि! हमारा चरित लोगोंको आश्चर्यदायक है मैं प्रथम जन्ममें मालिनी नाम शूद्र था नित्य कुमार्गगामी सब लोगोंका अहितकारी था ॥२७॥२८॥ चुगल धर्मद्वेषी, देवताओंका द्रव्य हरनेहारा, महापातकियोंके निकट रहनेहारा देव द्रव्य सेही जीविका करने हारा गोघाती ब्रह्महत्यारा चोर नित्य प्राणियों का वधकरनेहारा नित्य

पुराणाबहवःसंतिहरिसंतुष्टिकारकाः ॥ माघेमास्यप्युद्यतोऽसिरामायणपरायणः॥२५॥ तवभार्यापिसाध्वीयंनित्यंरामपरायणा ॥ किमर्थमेतद्वृत्तांतंयथावद्वक्तुमर्हसि ॥२६॥ राजोवाच॥शृणुध्वंभगवन्सर्वंयत्पृच्छसिवदामितत् ॥ आश्चर्यभूतंलोकानामावयोश्चरितंमुने ॥ २७ ॥ अहमासीत्पुराशूद्रोमालिनिर्नामसत्तमकुमार्गनिरतोनित्यंसर्वलोकाहितेरतः ॥ २८ ॥ पिशुनोधर्मविद्वेषीदेवद्रव्यापहारकः॥महापातकिसंसर्गीदेवद्रव्योपजीविकः ॥ २९ ॥ गोघ्नश्चब्रह्महाचौरोनित्यंप्राणिवधेरतः ॥ नित्यंनिष्ठुरवक्ताचपापीवेश्यापरायणः ॥ ३० ॥ किंचित्कालेस्थितोह्येवमनादृत्यमहद्वचः ॥ सर्वबंधुपरित्यक्तोदुःखीवनमुपागमम् ॥ ३१ ॥ मृगमांसाशनोनित्यंतथामार्गविरोधकृत् ॥ एकाकीदुःखबहुलोह्यवसन्निर्जनेवने ॥ ३२ ॥ एकदाक्षुत्परिश्रांतोनिदाघार्तःपिपासितः ॥ वसिष्ठस्याश्रमंदृष्ट्वा अपश्यंविजनेवने ॥ ३३ ॥ हंसकारण्डमाकीर्णंतत्समीपेमहत्सरः ॥ पर्यंतेवनपुष्पौघैश्छादितंतन्मुनीश्वरैः ॥ ३४ ॥

निष्ठुरभाषी पापी वेश्यापरायण ॥ २९ ॥ ३० ॥ यह सब मैं आचरण करता था इस प्रकार मुझे देख बड़े पुरुषोंने समझाया जब मैंने उसका वचन न माना इस परउन्होंने मुझे त्यागन कर दिया; दुःखी हो वनमें चला आया ॥ ३१ ॥ वनमें नित्य मृगमांस खाता, मार्ग लूटता एकाकी बड़े दुःखसे मैं उस वनमें रहता था ॥३२ ॥एकसमय भूखसे व्याकुल श्रमी, निद्रा के आनेसे दुःखी प्यासा होकर मैंने निर्जन वनमें वशिष्ठजीका आश्रम देखा ॥ ३३ ॥ वहां मैंने हंसकारण्डवपक्षियोंसेसेवित उसके समीपमें बडासरोवर देखा, उसके चारों ओर वन और बहुतसे मुनिजन वहाँ वास करतेथे ॥ ३४ ॥

उस सरोवरके तटमें श्रमरहित हो मैंने जल पिया और वृक्षोंकेफल तोड़कर मैंने क्षुधा निवारण की॥३५॥और उसवसिष्ठजी के आश्रम में मैंनेनिवास किया वहां मैंने टूटेफूटेस्फटिकोंको इकट्ठा करके ॥३६॥ पत्ते तृण और काष्ठोंसे अच्छे प्रकार घर बनाया और व्याधेके कर्मकर बहुत प्रकारके पशुओं को मारकर ॥३७॥ आजीविका करकेबीस अवतारतक निवास करा उसी समय विंध्यदेशसे यह साध्वी आयकर प्राप्त हुई ॥३८॥ इसका जन्म निषादकुलमेंथा काली नामकुटुम्बियोंसे त्यागी हुई दुःखित शरीर ॥३९॥ भूंख प्याससेव्याकुल अपने कर्त्तव्य कर्मका सोच करती दैवयोगसे यह उसनिर्जनवनमें आकर प्राप्त हुई ॥ ४० ॥ ग्रीष्मकालमें

अपिबंतत्रपानीयंतत्तटेविगतश्रमः ॥ उन्मूल्यवृक्षमूलानिमयाक्षुच्चनिवारिता ॥ ३५ ॥ वसिष्ठस्याश्रमेतिष्ठन्निवासकृतवानहम् ॥ शीर्णस्फटिकसंधानंतत्रचामहकारिषम् ॥ ३६ ॥ पर्णैस्तृणैश्चकाष्ठैश्चगृहंसम्यक्प्रकल्पितम् ॥ तत्राहंव्याधसत्त्वस्थोहत्वाबहूविधान्मृगान् ॥ ३७ ॥ आजीवंवर्तनंकृत्वाप्रताराणांचविंशतिम् ॥ अथेयमागतासाध्वीविंध्यदेशसमुद्भवा ॥३८॥ निषादकुलसंभूतानाम्नाकालीतुविश्रुता ॥ बंधुवर्गैःपरित्यक्तादुःखिताजीर्णविग्रहा ॥ ३९ ॥ ब्रह्मन्क्षुत्तृट्परिश्रांता शोचंतीसुक्रियांक्रियाम् ॥ दैवयोगात्समायाताभ्रयंतीविजनेवने ॥ ४० ॥ मासिग्रीष्मेचतापातार्ह्यंतस्तापप्रपीडिता ॥ इमांदुःखवतींदृष्ट्वाजातामेविपुलाघृणा ॥ ४१ ॥ मयादत्तंजलंचास्यैमांसंवन्यफलंतथा ॥ गतश्रमातुतुष्टासामयाब्रह्मन्यथातथम् ॥ ४२ ॥ न्यवेदयत्स्वकर्माणिशृणुतानिमहामुने ॥ इयंकालीतुनाम्नैवनिषादकुलसंभवा ॥ ४३ ॥ दाविकस्यसुताविद्वन्न्यवसद्विंध्यपर्वते ॥ परस्वहारिणीनित्यंसदापैशुन्यवादिनी ॥ ४४ ॥

धूपसे व्याकुल इस दुखियाको देखकर मुझे करुणा उत्पन्न हुई ॥४१॥ मैंने इसे जल मांस और वनके फल दिये हेमुनिराज ! जब यह भोजनकर श्रमरहित हुई तब यथातथ्य ॥ ४२ ॥ इसने अपना वृत्तान्त मुझे सुनाया सो आप नियें कालीनामवाली निषादकुलमें उत्पन्न हुई ॥ ४३ ॥ हे ब्रह्मन् ! यह दाविककी कन्याथी जो विंध्यपर्वतपर रहता था; यह नित्य पराया धन हरती और चुगली करती थी ॥ ४४ ॥

इसने अपने पतिको मारडाला इस कारण कुटुम्बियोंने इसे त्यागन कर दिया हे ब्रह्मन् ! तब यहनिर्जन वनमें मेरे समीप आई ॥ ४५ ॥ इस प्रकारसे इसने अपना कर्म मुझसे सुना दिया वशिष्ठके सुन्दर आश्रमके निकटही यह और मैं ॥४६॥ वनके जीवोंका मांस खाते पति भार्याके भावसेनिवास करने लगे एक समयमैंउच्छिष्ट लेनेके निमित्त वसिष्ठके आश्रमके निकट गया ॥ ४७ ॥ वहां मैंने देवता और ऋषियोंका समाज देखा, माघमासमें वहां प्रतिदिन रामायण होतीथी श्रोता प्रेम भक्तिसे सुनतेथे ॥ ४८ ॥ उस समय हम दोनों निराहार भूंख प्याससे व्याकुल थके हुए वशिष्ठके आश्रमके निकट बैठ गये ॥ ४९ ॥ नौ

बंधुवर्गैःपरित्यक्तायतोहतवतीपतिम् ॥ कांतारेविजनेब्रह्मन्मत्समीपमुपागता ॥ ४५ ॥ इत्येवंस्वकृतंकर्मसाचमह्यंन्यवेदयत् ॥ वसिष्ठस्या श्रमेपुण्येह्यहंचेयं चवैमुने ॥ ४६ ॥ दंपतीभावमाश्रित्यस्थितौमांसाशनौतदा ॥ उच्छिष्टार्थंगतोचैववसिष्ठस्याश्रमेतदा ॥४७॥ ॥ समाजं तत्रदृष्ट्वापिदेवर्षीणांचसत्रकम् ॥ रामायणपराविप्रामाघेदृष्टादिनेदिने ॥४८॥ निराहारौचविश्रस्तौक्षुत्पिपासाप्रपीडितौ ॥ यदृच्छयागतौतत्र वसिष्ठस्याश्रमंप्रति ॥ ४९ ॥ रामायणकथांश्रोतुंनवाह्नाचैवभक्तितः ॥ तत्कालएवपंचत्वमावयोरभवन्मुने ॥ ५० ॥ कर्मणातेनहृष्टात्मा भगवान्मधुसूदनः ॥ स्वदूतान्प्रेषयामासमदाहरणकारणात् ॥ ५१ ॥आरोप्यावांविमानेतुययुश्चपरमंपदम् ॥ आवांसमीपमापन्नौदेवदेव स्यचक्रिणः ॥ ५२ ॥ भुक्तवंतौमहाभोगान् ॥ यावत्कालंशृणुष्वमे ॥ युगकोटिसहस्राणियुगकोटिशतानि च ॥ ५३ ॥ उषित्वारामभ वनेब्रह्मलोकमुपागतौ ॥ तावत्कालंचतत्रापिस्थित्वेशपदमागतौ ॥ ५४ ॥

दिनतकरामायणकी कथा वैसेही बैठे सुनतेरहे हे मुनिराज ! उसी समय हमारे दोनोंका शरीर छूट गया ॥५०॥ इस कर्मसे हमारे भगवान् मधुसूदन प्रसन्न हुए और इस भार्याके सहित मेरे लेनेको दूतोंको भेजा ॥ ५१ ॥ वह हम दोनोंको विमानपर चढाय परमपदको ले गये जब हम देवदेव चक्रधारी नारायण के समीप पहुँचे ॥ ५२ ॥ तब करोड हजार और करोड सौयुग हमने स्वर्गलोकमें अनेकप्रकारके भोग भोग ॥ ५३ ॥ रामके भवनमें इतने काल रहकर फिर ब्रह्मलोकको गये, उतनेही समय वहांपरभी निवास किया ॥ ५४ ॥

वहांसे शिवलोकको और उतनाही काल बिताय अनेक सुख भोग अब यहां पृथ्वीलोकके राजाहुए हैं ॥ ५५ ॥ अबयहांभी रामायणके प्रतापसे हमारे अतुल संपत्ति है. हे मुनि राज ! यह सब वस्तु हमें अनिच्छासे ही प्राप्त हैं ॥ ५६ ॥ हे ब्रह्मन् ! जन्म मृत्यु जराकी नाश करनेहारी अमृत समान रामायणकी कथा भक्तिसे नौ दिनतक श्रवण करनी चाहिये ॥ ५७ ॥ हे मुनीश्वर ! रामायणके प्रभावसे परवश किये कर्मभी मनुष्योंको बहुत फल देते हैं ॥ ५८ ॥ नारदजी बोले विभांडक ऋषि राजासे यह सब कथा श्रवणकर राजाको अभिवादनकर अपने तपोवनको गये ॥ ५९ ॥ इस कारण हे ब्राह्मणो !

तत्रापितावत्कालंचभुक्त्वाभोगाननुत्तमान् ॥ ततःपृथ्वीशतांप्राप्तौक्रमेणमुनिसत्तम ॥ ५५ ॥ अत्रापिसंपदतुला रामायणप्रसादतः ॥ अनिच्छयाकृतेनापिप्राप्तमेवंविधंमुने ॥ ५६ ॥ नवाह्नाकिलश्रोतव्यंरामायणकथामृतम् ॥ भक्तिभावेनधर्मात्मञ्जन्ममृत्युजरापहम् ॥ ५७ ॥ अवशेनापियत्कर्मकृतंतुसुमहाफलम् ॥ ददातिनृणांविप्रेंद्ररामायणप्रसादतः ॥५८ ॥नारदउवाच ॥एतत्सर्वंनिशम्यासौविभांडकमुनीश्वरः ॥ अभिवंद्यमहीपालंप्रययौ स्वंतपोवनम् ॥ ५९ ॥ तस्माच्छृणुध्वंविप्रेंद्रादेवदेवस्यचक्रिणः ॥ रामायणकथाचैषाकामधेनूपमास्मृता ॥ ६० ॥ माघेमासेसितेपक्षेरामाख्यानंप्रयत्नतः ॥ नवाह्नाकिलश्रोतव्यंसर्वधर्मफलप्रदम् ॥ ६१ ॥ यइदंपुण्यमाख्यानंसर्वपापप्रणाशनम् ॥ वाचयेच्छृणुयाद्वापिरामेभक्तिश्चजायते ॥ ६२ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे उत्तरखंडेनारदसनत्कुमारसंवादेरामायणमाहात्म्येतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ नारद उवाच ॥ अन्यमासेप्रवक्ष्यामिशृणुध्वंसुसमाहिताः ॥ सर्वपापहरंपुण्यं सर्वदुःखनिवारणम् ॥ १ ॥

कामधेनुके समान चक्रधारी जनार्दनके गुणोंसे युक्त रामायण कथा अवश्य सुननी चाहिये ॥६०॥माघमासके शुक्लपक्षमें भक्तिपूर्वक नौ दिन रामायण सुनने सब धर्मोंके फलकी प्राप्ति होती है ॥ ६१ ॥ जो कोई सब पापोंको दूर करनेहारी इस पवित्र कथाको श्रवण करते हैं, या बांचते हैं उनकी रामचंद्रमें भक्तिसे होती है ॥६२॥ इति श्रीस्कं० उत्तरखण्डेनारदसनत्कुमारसंवादेरामायणमहात्म्येभाषायांतृतीयोऽध्यायः॥३॥ नारदजी बोले हे मुनीश्वरो ! सावधान होकर सुनो और महीनोंमें इसके श्रवण करनेसे सब पाप और दुःख दूर होते हैं ॥ १ ॥

ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र स्त्री सबकी सब कामनापूर्ण करने और सब व्रतोंका फल देनेहारी राम कथा है ॥ २ ॥ दुस्स्वप्नका नाशक और धनधान्य भक्तिका दाता रामायणका माहात्म्य सावधान होकर सुनना चाहिये ॥३॥ जिस प्रकार इसके पढ़ने सुननेसे सब पाप दूर होते हैं इस विषयमें हम एक पुरातन कथाका उदाहरण कहते हैं ॥४॥ एक कलिक नाम लुब्धक विंध्याचलके वनमें रहता था, वह सदा पराई स्त्री और पराया द्रव्यहरण करता ॥५॥ सदा पराई निंदा करता जीवोंको दुःख देता था, उसने सहस्रों गौ ब्राह्मणोंका घातकिया था ॥६॥ सदादेवताओंका तथा दूसरोंका द्रव्यहरता था, इस प्रकारकेउसने अनेक पाप किये ॥७॥ जो

ब्राह्मणक्षत्त्रियविशांशूद्राणांचैवयोषिताम् ॥ समस्तकामफलदंसर्वव्रतफलप्रदम् ॥ २ ॥दुःस्वप्ननाशनंधन्यंभुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ रामायणस्यमाहात्म्यंश्रोतव्यंचप्रयत्नतः ॥३ ॥ अत्रैवोदाहरंतीममितिहासंपुरातनम् ॥ पठतांशृण्वतांचैवसर्वपापप्रणाशनम् ॥ ४ ॥ विंध्याटव्यामभूदेकःकलिकोनामलुब्धकः ॥ परदारपरद्रव्यहरणेसततंरतः ॥ ५ ॥ परनिंदापरोनित्यंजंतुपीडाकरस्तथा ॥ हतवान्ब्राह्मणान्गाश्चशतशोऽथसहस्रशः ॥ ६ ॥ देवस्वहरणेनित्यंपरस्वहरणेतथा ॥ तेनपापान्यनेकानिकृतानिसुमहांतिच ॥ ७ ॥ नतेषांशक्यतेवक्तुंसंख्यावत्सरकोटिभिः ॥ सकदाचिन्महापापोजंतूनामंतकोपमः ॥८॥ सौवीरनगरंप्राप्तःसर्वैश्वर्यसमन्वितम् ॥ योषिद्भिर्भूषिताभिश्चसरोभिर्विमलोदकैः ॥९॥ अलंकृतंविपणिभिर्ययौदेवपुरोपमम् ॥ तस्योपवनमध्यस्थंरम्यंकेशवमंदिरम् ॥ १० ॥ छादितंहेमकलशैर्दृष्ट्वाव्याधोमुदंययौ ॥ हीरमुक्तासुवर्णानिबहूनीतिविनिश्चितः ॥ ११ ॥

करोडों वर्षोंमेंभी न कहे जायँ, किसी समय जन्तुओंको कालके समान वह ॥ ८ ॥ सम्पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त सौवीरनगरमें आकर प्राप्त हुआ, जहां वस्त्रालंकार पहरे अनेक स्त्री और निर्मल नीरके अनेक सरोवर विद्यमान थे ॥ ९ ॥ सुन्दर बजारोंसे शोभायमान वह देवनगरके समान था; उसके उपवनमें एक बड़ा शोभायमान नारायणका मंदिर था ॥ १० ॥ जिसके ऊपर सोनेके कलश चढेथे, यह देख वह व्याधा बड़ा प्रसन्न हुआ कि, यहां हीरा मोती और सोना बहुत होगा, यह निश्चय किया ॥ ११ ॥

धन चुरानेकी इच्छासे वह राममंदिरमें गया वहां एक शांत तत्वज्ञानी ब्राह्मणको उसने देखा ॥१२॥ जिनका नाम उत्तक नारायणकी सेवामें तत्पर इकले इच्छारहित दयालु ध्यानमें लवलीन ॥ १३ ॥ इनको इस प्रकार देखकर लुब्धकने विचारा कि यही हमारी चोरीमें बाधा करेगा;इस कारण रात्रिमें इसे मार चोरी करेंगे ॥ १४ ॥ तब महागर्वसे तलवार हाथमें ले मारनेको दौडा पैरसे छाती दाब, और उन ऋषिके बाल हाथसे पकडे इस प्रकार मारनेको उद्यत उस व्याधसे उत्तंक बोले ॥ १५ ॥ उत्तंक बोले हे साधु ! तू निरपराध हमें क्यों मारता है हे लुब्धक ! हमने तेरा क्या अपराध किया है संसारमें

जगामरामभवनंवित्ताशश्चौर्यलोलुपः ॥ तत्रापश्यद्द्विजवरंशांततत्त्वार्थकोविदम् ॥ १२ ॥ परिचर्यापरंविष्णोरुत्तंकंतपसांनिधिम् ॥ एकाकिनंदयालुंचनिःस्पृहंध्यानलोलुपम् ॥ १३ ॥ दृष्ट्वाऽसौलुब्धकोमेनेतंचौर्यस्यांतरायिकम् ॥ देवस्यद्रव्यजातंतुसमादातुमनानिशि ॥ १४ ॥ उत्तंकंहंतुमारेभेविधृतासिर्मदोद्धतः ॥ पादेनाक्रम्यतद्वक्षोजटाःसंगृह्यपाणिना ॥ हंतुंकृतमतिंव्याधमुत्तंकःप्रेक्ष्यचाब्रवीत् ॥ १५ ॥ उत्तंक उवाच ॥ भोभोःसाधोवृथामांत्वंहनिष्यसि निरागसम् ॥ मयाकिमपराद्धंतेतद्वदत्वंचलुब्धक ॥१६॥ कृतापराधिनोलोकेहिंसांकुर्वंतियत्नतः ॥ नहिंसंतिवृथासौम्यसज्जनाअप्यपापिनम् ॥ १७ ॥ विरोधिष्वपिमूर्खेषुनिरीक्ष्या वस्थितान्गुणान् ॥ विरोधंनाधिगच्छंतिसज्जनाः शांततेजसः ॥ १८ ॥ बहुधावाच्यमानोऽपियोनरः क्षमयान्वितः ॥ तमुत्तमंनरंप्राहुर्विष्णोः प्रियतरंतथा ॥ १९ ॥ सुजनोनयाति वैरंपरहितनिरतोविनाशकालेऽपि ॥ छेदेऽपिचंदनतरुःसुरभयतिमुखंकुठारस्य ॥ २० ॥

अपराध करनेवालेहीको मारते हैं ॥ १६ ॥ हे सौम्य ! सज्जन पुरुष निरपराध किसीको नहींमारते हैं ॥१७॥ और विरोधीमूर्खोंमें भी गुण देखकर शान्त तेजस्वी सज्जन किसीसे विरोध नहीं करते ॥ १८ ॥ बहुत प्रकारसे क्रूर वचन सुनकर भी जो मनुष्य शान्ति करे, उसी उत्तम मनुष्यको नारायणका भक्त कहते हैं ॥ १९ ॥ पराया हित करनेवाले सज्जन पुरुष विनाशकाल उपस्थित होनेसेभी किसीके संग वैर नहीं करते, चन्दन अपने काटनेवाले कुल्हाड़ेकाभी मुख सुगंधित कर देता है ॥ २० ॥

अहो प्रारब्धही बलवान है जो मनुष्योंको बाधा देतीहै, उसमेंभी संसारके दुर्जन साधुओंकोही अधिक पीडा देते हैं ॥ २१ ॥ मृग मीन सज्जन जोकि तृण जल और सन्तोषके भोजनसेही सन्तुष्ट रहते हैं उन सेभी जगत्में लुब्धक धीवर और चुगल निष्प्रयोजन वैर करते हैं ॥ २२ ॥ अहो माया बड़ी बलवान है जिसने इस सब जगत्को अधिक मोहित कर दिया है; पुत्रमित्र कलत्र सबही दुःखकी खान हैं ॥ २३ ॥ जो स्त्री पराये द्रव्यहरण कर पुष्ट की है; अन्तमें वह सब छोड़कर इकलेही जाना होताहै ॥२४॥ मेरी मा मेरा पिता मेरी स्त्री मेरे पुत्र यह सब मेराहै, प्राणियोंको यह वृथा ममताही

अहोविधिर्वैबलवान्बाधतेबहुधाजनान् ॥ तत्रापिसाधून्बाधंतेलोकेवैदुर्जनाजनाः ॥ २१ ॥ मृगमीनसज्जनानांतृणजलसंतोषविहितवृत्तीनाम् ॥ लुब्धकधीवरपिशुनानिष्कारणवैरिणोजगति ॥ २२ ॥ अहोबलवतीमायामोहयत्यखिलंजगत् ॥ पुत्रमित्रकलत्राद्यैःसर्वंदुःखेनयोज्यते ॥ २३ ॥ परद्रव्यापहारेणकलत्रंपोषितंचतत् ॥ अंतेतत्सर्वमुत्सृज्यएकएवप्रयातिवै ॥ २४ ॥ ममप्रातामम पितामम भार्याममात्मजाः ॥ ममेदमितिजन्तूनांममताबाधतेवृथा ॥ २५ ॥ यावदर्जयतिद्रव्यंतावदेवहिबांधवाः ॥ धर्माधर्मौसहैवास्तामिहामुत्रचनापरः ॥ २६ ॥ अर्जितंतुधनंसर्वैर्भुजंतेबांधवाःसदा ॥ स्वैंष्वेकतमोमूढस्तत्पापफलमश्नुते ॥ २७ ॥ इतिब्रुवाणंतमृषिंविमृष्यभयविह्वलः ॥ कलिकःप्रांजलिःप्राहक्षमस्वेतिपुनःपुनः ॥ २८ ॥ तत्संगस्यप्रभावेणहरिसन्निधिमात्रतः ॥ गतपापोलुब्धकश्चसानुतापोऽभवद्ध्रुवम् ॥ २९ ॥

दुःख देती है ॥ २५ ॥ जबतक द्रव्य उत्पन्न करके लाता है तभीतक कुटुम्बके लोग साथी हैं परन्तु यथार्थमें यहां और दूसरे लोकमें धर्म और अधर्मही साथी है ॥२६॥ उत्पन्न किये हुए धनकोसदा कुटुम्बीही भोगते हैं; परन्तु इसके उपार्जनका पाप यह मूर्ख इकलाही भोगता है ॥ २७ ॥ ऋषिके यह वचन सुनकर और विचार कर वह कलिक लुब्धक भयभीत हो हाथ जोड़ बार २ कहने लगा, हे मुनिराज ! क्षमा करिये ॥ २८ ॥ उनकी संगति और नारायण मन्दिरमें स्थितके प्रभावसे वह लुब्धक पाप रहित हो अत्यन्त पछताने लगाऔर बोला ॥ २९ ॥

हे ब्राह्मण ! मैंने बहुत कुत्सित कर्म किये हैं, वह सब आज आपके दर्शनके प्रभावसे नष्ट होगये ॥ ३० ॥ हे स्वामी ! मैंने नित्य पाप और महापापकिये हैं, किसकी शरणमें जानेसे किस प्रकार उनसे छुटकारा होगा॥३१॥पहले जन्मके पापसे तो मैं लुब्धक हुआ, अब यहांभी अनेक पाप करनेसे मैं किस गतिको प्राप्त हूंगा॥३२॥ इस प्रकार महात्मा कलिकके वचन सुनकर उत्तंक नामक विप्रर्षि उससे कहने लगे ॥ ३३ ॥ उत्तंकजी बोले धन्य धन्य कलिक ! तुम बड़े बुद्धिमान हो जो तुम्हारी मति ऐसी उज्ज्वल है जो संसारके दुःखोंके नाश होनेके उपायकी इच्छा करते हो ॥ ३४ ॥ तोचैत्र

मयाकृतानिकर्माणिमहांतिसुबहूनिच ॥ तानिसर्वाणिनष्टानिविप्रेंद्रतवदर्शनात् ॥ ३० ॥ अहंवैपापकृन्नित्यंमहापापंसमाचरम् ॥ कथंमेनिष्कृतिर्भूयात्कंयामिशरणंविभो ॥ ३१ ॥ पूर्वजन्मार्जितैःपापैर्लुब्धकत्वमवाप्नुवम् ॥ अत्रापिपापजालानि कृत्वाकांगतिमाप्नुयाम् ॥३२॥ इतिवाक्यंसमाकर्ण्यकलिकस्यमहात्मनः ॥ उत्तंकोनामविप्रर्षिर्वा क्यंचेदमथाब्रवीत् ॥ ३३ ॥ उत्तंक उवाच ॥ साधुसाधु महाप्राज्ञमतिस्तेविमलोज्ज्वला ॥ यस्मात्संसारदुःखानांनाशोपायमभीप्सति ॥ ३४ ॥ चैत्रेमासेसितेपक्षेकथारामायणस्यच ॥ नवाह्नाकिलश्रोतव्याभक्तिभावेनसादरम् ॥ ३५॥ यस्यश्रवणमात्रेणसर्व पापैःप्रमुच्यते ॥ तस्मिन्क्षणेऽसौकलिकोलुब्धकोवीतकल्मषः ॥ ३६ ॥ रामायणकथांश्रुत्वासद्यःपंचत्वमागतः ॥ उत्तंकःपतितंवीक्ष्यलुब्धकंतदयापरः ॥ ३७ ॥ एतद्दृष्ट्वाविस्मितश्चअस्तौषीत्कमलापतिम् ॥ कथांरामायणस्यापिश्रुत्वाचवीतकल्मषः ॥ दिव्यंविमानमारुह्यमुनिमेतदथाब्रवीत् ॥ ३८ ॥

शुक्लपक्षमें भक्तिभावसे आदरपूर्वक नौ दिनतक रामायणकी कथा सुनो ॥ ३५ ॥ इसके श्रवण मात्रसे ही तेरे सब पाप नाश हो जायँगे उसी क्षणमें यह लुब्धक कलिक सब पापोंसे रहित हो गया ॥ ३६ ॥ रामायणकी कथासुनकर शीघ्र ही शरीर त्यागकर दिया, उतंक लुब्धकको गिरा हुआ देख दयासे ॥ ३७ ॥ उसकी यह दशा देख विस्मित हो नारायणकी स्तुति करने लगे, और वह रामायणकी कथा सुननेसे पाप रहित हो दिव्य विमानमें चढ़कर मुनिराजसे कहने लगा ॥ ३८ ॥

कलिक बोला, हे मुनिशार्दूल उत्तंक सुव्रत ! तुम मेरे गुरु हो, आप ही के प्रसादसेमैं दुःख संकटसे मुक्त हुआ हूँ ॥ ३९ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! आप ही के प्रसादसे मुझे ज्ञानकी प्राप्ति हुई जिससे शीघ्र ही मेरे पाप समूहनष्ट हो गये ॥ ४० ॥ हे मुनि ! रामायणकी कथा सुनकर तुम्हारे उपदेशसे मैं मुक्त हुआ । हे भगवन् ! तुमनेही मुझे विष्णुभगवान्के परमपदको प्राप्त किया है ॥ ४१ ॥ हे करुणा सागरगुरुजी ! आपने मुझे कृतकृत्य कर दिया हे भगवन् ! मैं आपको प्रणाम करताहूँ, आप मेरे कृत्यको क्षमा करना ॥ ४२ ॥ यह कह मुनिश्रेष्ठके ऊपर दिव्य पुष्पोंकी वर्षा करके और तीन प्रदक्षिणा

कलिक उवाच ॥ उत्तंकमुनिशार्दूलगुरुस्त्वंममसुव्रत ॥ विमुक्तस्त्वत्प्रसादेनमहापातक संकटात् ॥ ३९ ॥ ज्ञानंत्वदुपदेशान्मेसंजातंमुनिसत्तम ॥ तेनमेपापजालानिविनष्टान्यतिवेगतः ॥४०॥ रामायणकथांश्रुत्वाममत्व मुक्तवान्मुने ॥ प्रापितोऽस्मित्वयायस्मात्तद्विष्णोःपरमंपदम् ॥ ४१ ॥ त्वयाऽहंकृतकृत्योऽस्मिगुरुणाकरुणात्मना ॥ तस्मान्नतोऽस्मिते विद्वन्यत्कृतंतत्क्षमस्वमे ॥ ४२ ॥ इत्युक्त्वादेवकुसुमैर्मुनिश्रेष्ठमवाकिरत् ॥ प्रदक्षिणात्रयंकृत्वानमस्कारंचकारसः ॥ ४३ ॥ ततो विमानमारुह्यसर्वकामसमन्वितम् ॥ अप्सरोगणसंकीर्णंप्रपेदेहरिमंदिरम् ॥ ४४ ॥ तस्माच्छृणुध्वंविप्रेंद्राःकथांरामायणस्यच ॥ चैत्रेमासेसितेपक्षेश्रोतव्यंचप्रयत्नतः ॥ ४५ ॥ नवाह्नाकिलरामस्यरामायणकथामृतम् ॥ तस्माद्दतुषुसर्वेषुहितकृद्धरिपूजकः ॥ ४६ ॥ ईप्सितंमनसायद्यत्तत्तदाप्नोत्यसंशयम् ॥ सनत्कुमारैर्यत्पृष्टंतत्सर्वंगदितंमया ॥ ४७ ॥

करके नमस्कार किया ॥ ४३ ॥ पीछे सर्व कामनादायक विमानमें चढ़कर अप्सराओंसे सेवित वैकुण्ठ लोकको चला गया ॥ ४४ ॥ हे ब्राह्मणो ! इस कारण चैत्रमासके शुक्लपक्षमें सावधान हो रामायणको सुनना चाहिये ॥ ४५ ॥ नौ दिनतक रामायणकी कथारूपी अमृतका श्रवण करना चाहिये, सबही ऋतुओंमें इसके सुनने और नारायणके पूजनसे कल्याण होता है ॥ ४६ ॥ इनके श्रवण करनेसे मनके सबही मनोरथ पूर्ण

होते हैं हे सनत्कुमार! जो कुछ आपने पूछा वह हमने सब सुनाया॥४७॥ और अब रामायणके अन्य माहात्म्य सुननेकी इच्छा करते हो तो बताओ ॥४८॥ इति श्रीस्कंदपुराणोत्तरखण्डे नारदसनत्कुमारसंवादे रामायण मा. भा. टी. चतुर्थोध्यायः ॥ ४ ॥ रामायणका माहात्म्य सुनकर मुनि अत्यन्त प्रसन्न हुए, और फिर मुनिश्रेष्ठ नारद जीसे पूछने लगे ॥१॥ सनत्कुमारजी बोले हे मुनिराज!आपने रामायणका माहात्म्य कहा है,इस समय हम रामायणकी विधि सुनाना चाहते

रामायणस्यमाहात्म्यंकिमन्यच्छ्रोतुमर्हसि ॥ ४८ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे उत्तखण्डे नारदसनत्कुमारसंवादे रामायणमाहात्म्ये चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ सूत उवाच ॥ रामायणस्यमाहात्म्यं श्रुत्वाप्रीतोमुनीश्वरः ॥ सनत्कुमारःपप्रच्छनारदंमुनिसत्तमम् ॥ १ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥रामायणस्यमाहात्म्यंकथितं वोमुनीश्वराः ॥ इदानीं श्रोतुमिच्छामिविधिंरामायणस्यच ॥२॥ एतदपिमहाभागमुनेतत्त्वार्थकोविद ॥ कृपयापरयाविप्रेयथावद्वक्तुमर्हसि ॥ ३ ॥ नारद उवाच ॥ रामायणविधिंचैवशृणुध्वंसुसमाहिताः ॥ सर्वलोकेषुविख्यातंस्वर्गमोक्षविवर्धनम् ॥ ४ ॥ विधानं तस्यवक्ष्यामिशृणुध्वंगदितंमया ॥ रामायणकथां कुर्वेभक्तिभावेनभावितः ॥ ५ ॥ येनचीर्णेनपापानांकोटिकोटिः प्रणश्यति ॥ चैत्रेमाघेकार्तिकेचपंचम्यामपिचारभेत् ॥ ६ ॥ संकल्पंतुततःकुर्यात्स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥ नवस्वहःसुश्रोतव्यंरामायणकथामृतम् ॥ ॥ ७ ॥ अद्यप्रभृत्यहंरामशृणोमित्वत्कथामृत ॥ प्रत्यहंपूर्णतामेतुतवरामप्रसादः ॥ ८ ॥

हैं ॥२॥ हे तत्वके जानने हारे महाभागी मुनीश्वर ! यह विधि भी कृपा करके सुनाइये ॥३॥ नारदजी बोले आप सावधान होकर रामायणकी विधि सुनिये, यह सम्पूर्ण लोकमें विख्यात और मोक्षकी वृद्धि करनेहारी है ॥ ४ ॥ उसका विधान मैं कहता हूँ आप सावधान होकर सुनिये, जो रामायणकी कथा भक्तिभावसे कहलाते हैं ॥५॥ उनके जन्म जन्मान्तरके पापनष्ट होजाते हैं, चैत्रमाघकार्तिकके शुक्लपक्षकी पंचमीसे सुननेका आरंभ करे ॥६॥ पुनः स्वस्तिवाचन पूर्वक संकल्प करे, पुनः नौ दिनतक रामायणकी कथा श्रवण करे ॥ ७ ॥ और कहे हे भगवन् ! आजसे मैं आपकी कथा श्रवण करता हूं आपके प्रसादसे

मैं प्रतिदिन पूर्णतासे श्रवण करूं ऐसी कृपा करो ॥८॥ अपामार्ग (चिंचिढा) की दँतोन प्रतिदिन करे, पीछे रामका ध्यानकर विधिपूर्वक स्नान कर अपने बन्धुओंके सहित जितेन्द्रिय हो कथा श्रवण करै ॥९॥ स्नानकर दंतधावनसे शुद्ध हो श्वेत वस्त्रधारण कर मौनता सहित स्थानमें आय ॥ १० ॥ चरण धोय आचमन कर प्रभु नारायणको स्मरण करे, संकल्प पूर्वक नित्य देवताओंका पूजन करके॥११॥भक्तिभावसे रामायणकी पुस्तकका पूजन करे, पीछे धूप दीप नैवेद्य कर आसन दे आवाहन करे ॥ १२ ॥ "ॐ नमो नारायणाय" इस मंत्रसे भक्तिपूर्वक पूजन करे एकबार दो वार तीनवार यथाशक्ति पूजन करे ॥ १३ ॥

प्रत्यहंदंतसंशुद्धिंह्यपामार्गस्यशाखया ॥ कृत्वास्नयात्तुविधिवद्रामभक्तिपरापरायणः ॥ स्वयचबंधुभिःसार्धंश्रृणुयात्प्रयतेंद्रियः ॥ ९ ॥ स्नानं कृत्वायथाचारंदन्तधावनपूर्वकम्॥ शुक्लांबरधरःशुद्धोगृहमागत्यवाग्यतः॥१०॥प्रक्षाल्यपादावाचम्यस्मरन्नारायणंप्रभुम्॥नित्यदेवार्चनंकृत्वा पश्चात्संकल्पपूर्वकम् ॥ ११ ॥ रामायणपुस्तकंचअर्चयेद्भक्तिभावतः ॥ आवाहनासनाद्यैश्चगंधपुष्पादिभिर्व्रती ॥ १२ ॥ ॐ नमोनारा यणायेतिपूजयेद्भक्ति तत्परः ॥ एकवारंद्विवारंचत्रिवारंवापिशक्तितः ॥१३॥ होमंकुर्यात्प्रयत्नेनसर्वपापनिवृत्तये॥एवंयःप्रयतःकुर्याद्रामायण विधिं तथा ॥ १४ ॥ सयातिविष्णुभवनं पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥ रामायणव्रतधरोधर्मकारीचसत्तमः ॥१५॥ चांडालान्पतितांश्चैववाङ्मात्रेणा पिनालपेत् ॥ नास्तिकान्भिन्नमर्यादान्निंदकान्पिशुनांस्तथा ॥ १६ ॥ रामायणव्रतधरोवाङ्मात्रेणापिनालपेत् ॥ कुंडाशिनंतापकंचतथा देवलकाशिनम् ॥ १७ ॥

फिर सब पापके दूर करनेके निमित्त होम करै, इस प्रकारसे नियमपूर्वक रामायणकी विधिको करे ॥१४॥ वह विष्णुलोकको चला जाता है, जहाँसे फिर लौटकर नहीं आता, रामायणका व्रत धारण करनेवाला धर्मपूर्वक रहे ॥१५॥ चण्डाल पतित इनके साथ बात भी न करे। नास्तिक मर्यादारहित, निंदक, चुगुल ॥१६॥ इनसे रामायणका व्रती बातभी न करे कुंडी व हंडियामें खानेहारे; तापकतापदेनेहारे और देवद्रव्यके लेनेहारोंके यहाँ भोजन करनेहारे तथा वैद्यकुत्सित

काव्यकार देवता ब्राह्मणके विरोधी परान्नभोजी लोलुप परस्त्रीमें रति करनेहारे ॥ १७॥१८ ॥ रामायणके व्रतीको इनसे नौ दिनतक बात नहीं करनी चाहिये इस प्रकार शुद्धतापूर्वक सबका हित करता हुआ॥१९॥रामायणका भक्त परमसिद्धिको प्राप्त होताहै गंगाके समानतीर्थ और माताके समान गुरु नहीं है॥२०॥ विष्णुके समान देवता और रामायणके समान परमधर्म वेदके समान शास्त्र और शांतिके समान सुख नहीं है ॥ २१ ॥ सूर्यके समान ज्योति नहीं और रामायणसे अधिक कुछ नहीं है क्षमाके समान सार और कीर्तिके समान धन नहीं है ॥२२॥ ज्ञानके समान लाभ और रामायणसे अधिक कुछ नहीं है

भिषजंकाव्यकर्त्तारंदेवद्विजविरोधनम् ॥ परान्नलोलुपंचैवपरस्त्रीनिरतंतथा ॥ १८ ॥ रामायणव्रतधरोवाङ्मात्रेणापिनार्चयेत् ॥ इत्येवमादि भिःशुद्धोवसन्सर्वहितेरतः ॥ १९ ॥ रामायणपरोभूत्वापरांसिद्धिंगमिष्यति ॥ नास्तिगंगसमंतीर्थंनास्तिमातृसमोगुरुः ॥ २० ॥ नास्ति विष्णुसमोदेवोनास्तिरामायणात्परम् ॥ नास्तिवेदसमंशास्त्रंनास्तिशातिसमंसुखम् ॥॥ २१ ॥ नास्तिसूर्यसमंज्योतिर्नास्तिरामायणात्परम् ॥ नास्तिक्षमासमंसारंनास्तिकीर्तिसमंधनम् ॥ २२ ॥ नास्तिज्ञानसमोलाभोनास्तिरामायणात्परम् ॥ तदंतेवेदविदुषेदद्याद्वत्ससहदक्षिणम्॥२३॥ रामायणपुस्तकंचवस्त्राण्याभरणानिच॥रामायणपुस्तकंयोवाचकायप्रदापयेत् ॥२४॥ सयातिविष्णुभवनंयत्रगत्वानशोचति ॥ नवाहानिफलं कर्तुंःशृणुधर्मविदांवर ॥ २५ ॥ पंचम्यहनिचारभ्यरामायणकथामृतम् ॥ कथाश्रवणमात्रेणसर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २६ ॥ यदिद्वयंकृतं तस्यपुंडरीकफलंलभेत् ॥ व्रतधारीतुसततंयःकुर्यात्सजितेंद्रियः ॥ २७ ॥

श्रवण कर चुकनेपर वेदवादी बाँचनेहारे पंडितको दक्षिणा देनी चाहिये॥२३॥ रामायणकी पुस्तक वस्त्र आभरण रामायण बांचनेहारेको जो देताहै॥ २४ ॥ वह विष्णु लोककोजाता है जहां जाकर फिर शोच नहीं करना पडता हे धर्मात्मन् ! आप इसके नौदिन श्रवण करनेहारेका फल सुनिये ॥ २५ ॥ पंचमीके दिनसे रामकथामृत सुननेका आरंभ करे, श्रवणमात्रहीसे सब पाप दूर होजाते हैं ॥ २६ ॥ यदि दूसरे दिन इसी प्रकार सुने तो पुंडरीक यज्ञके फलकी प्राप्ति होती है तीसरी बार जितेन्द्रिय होकर व्रत धारणकथा सुननेसे ॥ २७ ॥

अश्वमेध यज्ञके दूने फलकी प्राप्ति होती है हे मुनिश्रेष्ठ! जिसने चौथे दिन सुनी ॥ २८ ॥ वह आठ अग्निष्टोमके किये पुण्य फलको प्राप्त होता है, जिसने पांचवां व्रत करके सुना ॥ २९ ॥ वह अति अग्निष्टोमके दूने फलको प्राप्त होता है और जो सावधान हो छठे दिन व्रतकर सुनता है ॥ ३० ॥ उसे अग्निष्टोम यज्ञका आठगुणा फल होता है और जो व्रतधारी धर्मात्मा सप्तमबार सुने तो ॥ ३१ ॥ आठगुणा अश्वमेध यज्ञके फलको पाता है, हे मुनीश्वरों ! जो नारी या पुरुष आठवें दिन सुने ॥ ३२ ॥ उसको अश्वमेध यज्ञका पांचगुणा फल होता है, रामभक्त मनुष्य इसे नव दिन श्रवण करनेमे ॥ ३३ ॥ गोमेध यज्ञके

अश्वमेधस्ययज्ञस्यद्विगुणंफलमश्नुते ॥ चतुःकृत्वाकृतंयेनपराकंमुनिसत्तमाः ॥ २८ ॥ सलभेतपरमं पुण्यमग्निष्टोमाष्टसंभवम् ॥ पञ्चकृत्वा व्रतमिदंकृतंयेनमहात्मना ॥ २९ ॥ अत्यग्निष्टोमजंपुण्यंद्विगुणंप्राप्नुयान्नरः ॥ एवंव्रतंचषट् कृत्वःकुर्याद्यस्तुसमाहितः ॥ ३० ॥ अग्निष्टोमस्ययज्ञस्यफलमष्टगुणंभवेत् ॥ व्रतधारीतुधर्मात्मासप्तकृत्वस्तथालभेत् ॥ ३१ ॥ अश्वमेधस्ययज्ञस्यफलमष्टगुणंभवेत् ॥ नारीवापुरुषः कुर्यादष्टकृत्वोमुनीश्वरः ॥ ३२ ॥ अश्वमेधस्ययज्ञस्यफलंपंचगुणंलभेत् ॥ नरोरामपरोवापिनवरात्रंसमाचरेत् ॥ ३३ ॥ गोमेधयज्ञजं पुण्यंसलभेत्त्रिगुणंनरः ॥ रामायणंतुयःकुर्याच्छांतात्मानियतेंद्रियः ॥ ३४ ॥ सयाति परमानंदंयत्रगत्वानशोचति ॥ रामायणपरानित्यं गंगास्नानपरायणाः ॥ ३५ ॥ धर्ममार्गप्रवक्तारोमुक्ताएवनसंशयः ॥ यतीनांब्रह्मचारिणामचारिणांचसत्तमः ॥ ३६ ॥ नवम्यहनि श्रोतव्याकथारामायणस्यच ॥ श्रुत्वानरोरामकथामतिदीप्तोतिभक्तितः ॥ ३७ ॥ ब्रह्मणःपदमासाद्यतत्रैवपरिमुच्यते ॥ श्राव्याणांपरमं श्राव्यंपवित्राणामनुत्तमम् ॥ ३८ ॥

त्रिगुणे फलको प्राप्त होते हैं जो शांत स्वभावसे जितेन्द्रिय रामायणकी कथा कहते हैं ॥ ३४ ॥ वह परमानंदको प्राप्त होते हैं जहां जाकर फिर शोच नहीं करना पड़ता, रामायण सुननेवालोंको गंगा स्नान कर्तव्य है ॥ ३५ ॥ धर्ममार्गके कथन करनेहारे निःसंदेह मुक्त हैं हे ऋषिश्रेष्ठ ! यति ब्रह्मचारी और दिगम्बरोंको ॥ ३६ ॥ नौ दिन कथा श्रवण करनी उचितहै रामकथा श्रवण करनेसे और भक्तिसे प्रदीप्त हो । ।३७ ॥ यह प्राणी ब्रह्मलोकको प्राप्तहो ब्रह्माके साथ मुक्त हो जाता है सुनने योग्य यही परमवस्तु है, पवित्रोंमें पवित्रहै ॥ ३८ ॥

दुःस्वप्ननाशक स्तुति योग्य, यह रामायण यत्न से सुननी चाहिये, जो मनुष्य श्रद्धा से एक श्लोक या आधा श्लोक ॥३९॥ पाठकरता है, वह करोड़ों उपपातकों से छूट जाता हैं यह गुप्तसेभी गुप्तसत्पुरुषों के निकट कहना चाहिये ॥४०॥ राममेंप्रीति करके पुण्यक्षेत्र औरसभामेंइसग्रंथका बांचना उचित है, जो ब्राह्मणद्वेषी पाखण्डाचारी ॥ ४१ ॥ बगले के समान व्रत करनेहारे हैं, उन पुरुषों को यह कथा सुनानी उचित नहीं, जो कामादि दोषरहित रामभक्त ॥ ४२ ॥ गुरुभक्तिपरायण हैं उनसे यह मोक्षसाधन कथा कहनाचाहिये, रामचन्द्रहो सब देवताओंके स्वरूप हैं अपने स्मरण करनेवालोंके दुःख दूर करते हैं ॥४३॥ सद्भक्तोंके

दुस्वप्ननाशनंधन्यंश्रोतव्यंयत्नतस्ततः ॥ नरोऽत्रश्रद्धयायुक्तःश्लोकंश्लोकार्धमेववा ॥ ३९ ॥ पठतेमुच्यतेसद्योह्युपपातककोटिभिः ॥ सतामेवप्रयोक्तव्यंगुह्याद्गुह्यतमंयतः ॥ ४० ॥ वाचयेद्रामभावेनपुण्यक्षेत्रेचसंसदि ॥ ब्रह्मद्वेषरतानांचदंभाचाररतात्मनाम् ॥ ॥ ४१ ॥ लोकानांबकवृत्तीनांनब्रूयादिदमुत्तमम् ॥ त्यक्तकामादिदोषाणांरामभक्तिरतात्मनाम् ॥ ४२ ॥ गुरुभक्तिरतानांचवक्तव्यंमोक्षसाधनम् ॥ सर्वदेवमयोरामःस्मृतश्चार्तिप्रणाशनः ॥ ४३ ॥ सद्भक्तवत्सलोदेवोभक्त्यातुष्यतिनान्यथा ॥ अवशेनापियन्नाम्नाकीर्तितोवास्मृतोऽपिवा ॥ ४४ ॥ विमुक्तपातकःसोऽपिपरमंपदमश्नुते ॥ संसारघोरकांतारदावाग्निर्मधुसूदनः ॥ ४५ ॥ स्मर्तॄणांसर्वपापानिनाशयत्याशुसत्तमः ॥ तदर्पकमिदंपुण्यंकाव्यंसुश्राव्यमुत्तमम् ॥ ४६ ॥ श्रवणात्पठनाद्वापिसर्वपापविनाशकृत् ॥ यस्यात्रसुरसेप्रीतिर्वर्ततेभक्तिसंयुता ॥ ४७ ॥ सएवकृतकृत्यश्चसर्वशास्त्रार्थकोविदः ॥ तदर्जितंतुतत्पुण्यंतत्सत्यंसफलंद्विजाः ॥ ४८ ॥

ऊपर वह नारायण कृपा करतेहैं इसमें सन्देह नहीं भक्तिमेंही प्रसन्न होते हैं, जो अवश्य होकर भी उनके नाम का कीर्तन करते वा स्मरण करते हैं ॥४४॥ वहभी पातकसे रहित हो परमपदको प्राप्त होते हैं संसार रूपी घोर वनको नारायण दावाग्निकेसमान है॥४५॥ अपने स्मरण करनेवालों के पापों को वह शीघ्र ही नाश करदेते हैं इस कारण इसपुण्यरूप काव्यका श्रवण करना उचित है॥४६॥ श्रवण पठन करने से यह सब पापों का नाश करता है, जिस पुरुष को इस सरस कथामें भक्ति और प्रीति हो ॥ ४७ ॥ वही कृतकृत्य और संपूर्ण शास्त्रार्थ का जाननेवाला है, उसने जो कुछ पुण्य किया है उसका वह सफल है ॥ ४८ ॥

हे ब्राह्मणो ! जिसकी श्रवण करने को जिस अर्थ से प्रीति होती है, वह कार्य उसका अन्यथा नहीं होता जो रामायण के सुननेहारे और रामके भक्त हैं ॥४९॥ हे ब्राह्मणो ! वही इस घोर कलियुग में कृतकृत्य हैं,जो रामकथामृत को नौदिन कर्णपुट से पान करते हैं ॥५०॥ वह महात्मा कृतार्थ हैं; उन्हीं के वास्ते नित्य नमस्कार है, रामका नामही नाम है यह नाम ही हमारा जीवन है ॥५१॥ संसार के विषयोंमें अंधे हुये पापात्मा मनुष्यों को कलियुग में इस नाम के सिवाय दूसरी गति नहीं हैं ॥ ५२ ॥ सूत जी बोले महात्मा नारदजी इस प्रकार सनत्कुमारादिकों को सम्यक् प्रकारसे माहात्म्य श्रवण कराय अत्यंत

यदर्थैश्रवणेप्रीतिरन्यथानहिवर्तते ॥ रामायणपरायेतुरामनामपरायणाः ॥४९॥ तएवकृतकृत्याश्चघोरेकलियुगेद्विजाः ॥ नवम्यहनिशृण्वंति रामायणकथामृतम् ॥ ५० ॥ तेकृतार्थामहात्मानस्तेभ्योनित्यंनमोनमः ॥ रामनामैवनामैवनामैवममजीवनम् ॥ ५१ ॥ संसारविषयांधानांनराणांपापकर्मणाम् ॥ कलौनास्त्येवनास्त्येवगतिरन्यथा ॥ ५२ ॥ सूत उवाच ॥ एवंसनत्कुमारस्तुनारदेनमहात्मना ॥ सम्यक्प्रबोधितःसद्यःपरांनिर्वृतिमापह ॥ ५३ ॥ तस्माच्छ्रुत्वातुविप्रेंद्रारामायणकथामृतम् ॥ प्रयातिपरमंस्थानंपुनरावृत्तिवर्जितम् ॥ ५४ ॥ घोरेकलियुगेप्राप्तेरामायणपरायणाः ॥ समस्तपापनिर्मुक्तायास्यंतिपरमंपदम् ॥ ५५ ॥ तस्माच्छृणुध्वंविप्रेंद्रारामायणकथामृतम् ॥ नवम्यहनिश्रोतव्यंसर्वपापप्रमोचकम् ॥ ५६ ॥ श्रुत्वाचैतन्महाकाव्यंवाचकंयस्तुपूजयेत् ॥ तस्यविष्णुःप्रसन्नःस्याच्छ्रियासहद्विजोत्तमाः ॥ ५७ ॥ वाचकेप्रीतिमापन्नेब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ प्रीताभवंतिविप्रेंद्रानात्रकार्याविचारणा ॥ ५८ ॥

शान्ति को प्राप्त हुये ॥ ५३ ॥ इस कारण हे ब्राह्मणो ! इस कथा को श्रवण करने से प्राणी विष्णुलोक को जाते हैं जहांसे फिर आगमन नहीं होता ॥ ५४ ॥ इस घोर कलियुगमें रामायण परायणही सब पापरहित हो परमपद को प्राप्त होते हैं॥ ५५ ॥ इस कारण यह रामायण कथा सब पापोंके दूर करनेहारी नौ दिन तकसुननी चाहिये ॥ ५६ ॥ इस महाकाव्य को श्रवण कर जो वाचकका पूजन करे हे ब्राह्मणो ! उसके ऊपर लक्ष्मीसहित नारायण प्रसन्न होते हैं ॥ ५७ ॥ बांचनेवालों के प्रसन्न होनेपर ब्रह्मा विष्णु महेश प्रसन्न होते हैं, इनमें संदेह नहीं ॥ ५८ ॥

रामायणके बांचनेवालोंको गौ वस्त्र सुवर्ण रामायणकी पुस्तक अपने वित्तके अनुसार देनी चाहिये ॥ ५९ ॥ जो ऐसा करते हैं उनके पुण्य फलको आप श्रवण कीजिये, उनके घरोंमें भूत बेतालादि कोई बाधा नहीं करतेहैं ॥६०॥ उनके सब मंगल वृद्धिको प्राप्त होते हैं,अग्नि और चोरोंका भय उनके यहां नहीं होता ॥ ६१ ॥ करोडों जन्म के उत्पन्न किये पाप शीघ्रही नष्ट हो जाते हैं देहान्त में वे सात कुल सहित मुक्तिको प्राप्त होते हैं ॥ ६२ ॥ यह नारदजी का विधान कहा हमने तुमसे सुनाया जो कुछ सनत्कुमार के पूछने पर मुनिने भक्तिपूर्वक सुनाया था ॥ ६३ ॥ इस रामायण आदिकाव्यमें वेदार्थ का सम्मत है यह

रामायणवाचकस्यगावोवासांसिकांचनम् ॥ रामायणपुस्तकंचदद्याद्वित्तानुसारतः ॥ ५९ ॥ तस्यपुण्यफलंवक्ष्येशृणुध्वंसुसमाहिताः ॥ नबाधंतेग्रहास्तस्यभूतवेतालकादयः ॥ ६० ॥ तस्यैवसर्वश्रेयांसिवर्धंतेचरितेश्रुते ॥ नचाग्निर्बाधतेतस्यचौरादेर्नभयंतथा ॥ ६१ ॥ कोटिजन्मार्जितैःपापैःसद्यएवविमुच्यते ॥ सप्तवंशसमेतस्तुदेहांतेमोक्षमाप्नुयात् ॥ ६२ ॥ इत्येतद्वःसमाख्यातंनारदेनप्रभाषितम् ॥ सनत्कुमारमुनयेपृच्छतेभक्तितःपुरा ॥ ६३ ॥ रामायणमादिकाव्यंसर्ववेदार्थसंमतम् ॥ सर्वपापहरंपुण्यंसर्वदुःखनिबर्हणम् ॥ ६४ ॥ समस्तपुण्यफलदंसर्वयज्ञफलप्रदम् ॥ येपठंत्यत्रविबुधाः श्लोकंश्लोकार्धमेववा ॥ ६५ ॥ नतेषांपापबंधस्तुकदाचिदपिजायते ॥ रामार्पितमिदंपुण्यंकाव्यंतुसर्वकामदम् ॥ ॥ ६६ ॥ भक्त्याशृण्वंतिगायंतितेषांपुण्यफलंशृणु ॥ शतजन्मार्जितैःपापैःसद्यएवविमोचिताः ॥ ६७ ॥ सहस्रकुलसंयुक्ताप्रयांतिपरमंपदम् ॥ किंतीर्थैर्गोप्रदानैर्वाकिंतपोभिःकिमध्वरैः ॥ ६८ ॥

सब पाप दुःखका दूर करनेहारा है और पुण्यरूप है ॥ ६४ ॥ यही काव्य समस्त पुण्य और सब यज्ञोंके फलका देनेहारा है, जो विद्वान् इसका एक या आधा श्लोक पढ़ते हैं ॥६५ ॥ उनको कभी पापबंध नहीं होता है यह रामार्पण किया हुआ काव्य समस्त पुण्य और सब कामनाओंका देनेहारा है ॥६६॥ जो इसको भक्तिसे सुनते और गाते हैं उनके पुण्य फलको सुनो, सौ जन्मके संचित किये पाप तत्कालहीमें छूट जाते हैं ॥ ६७ ॥ और सहस्र कुलके सहित वह परमपदको प्राप्त होते हैं उनके तीर्थ गोदान तप यज्ञ करनेसे क्या है ॥ ६८ ॥

जो प्रतिदिन रामकथा का कीर्तन सुनते हैं, चैत्र माघ और कार्तिकमें रामकी अमृत समान कथा ॥ ६९ ॥ नौ दिन सुननेसे सब पाप छूट जाते हैं उनके ऊपर रामचन्द्रकी कृपा और रामभक्ति की वृद्धि होती है ॥७०॥ सब पापनाशक और सब संपत्तिका बढ़ानेहारा यह ग्रंथ है, जो इसे सावधान होकर सुनते

अहन्यहनिरामस्यकीर्तनंपरिश्शृण्वताम् ॥ चैत्रेमाघेकार्तिकेचरामायणकथामृतम् ॥ ६९ ॥ नवम्यहनिश्रोतव्यंसर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ रामप्रसादजनकंरामभक्तिविवर्द्धनम् ॥ ७० ॥ सर्वपापक्षयकरंसर्वसंपद्विर्द्धनम् ॥ यस्त्वेतच्छृणुयाद्वापिपठेद्वासुसमाहितः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तोविष्णुलोकंसगच्छति ॥ ७१ ॥ इतिश्रीस्कंदपुराणेउत्तरखण्डेश्रीमद्रामायणमाहात्म्येनारदसनत्कुमारसंवादेपंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

या पढ़ते हैं, वे सब पापोंसे रहित होकर विष्णुलोकको प्राप्त होते हैं ॥ ७१ ॥ इति श्री स्कंदपुराणे उत्तरखंडे श्रीमद्रामायणमाहात्म्ये नारदसनत्कुमार संवादे पण्डितवरमिश्र सुखानंद सूनुपंडित ज्वालाप्रसादमिश्र कृतभाषायांपंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

इति स्कंदोत्तरखण्डस्थ श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणमाहात्म्य समाप्त ।

व्योमबाणाङ्कचन्द्रेऽब्दे श्रावणस्य सिते । दले । शुक्रवारे त्रयोदश्यांटीका पूर्तिमुपागमत ॥ शुभमस्तु ॥

दोहा--पढहिं सुनहिं करि प्रेम जो, पावहिं सब मनकाम ॥ नित ज्वालापरसादपर, कृपा करहु श्रीराम ॥ १ ॥



इदं वाल्मीकीयरामायणमाहात्म्यं भाषाटीकासमेतं मुम्बय्यां
क्षेमराज-श्रीकृष्णदास श्रेष्ठिना स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर"-
(स्टीम्) मुद्रणालये मुद्रयित्वा प्रकाशितम्।

इति श्रीवाल्मीकीयरामायणमाहात्म्यं भाषाटीका समेतं समाप्तम्

श्रीगणेशायः नमः ॥ आदिकवि महर्षि वाल्मीकि जब सर्वोत्कृष्ट विषयके वर्णन करनेकी इच्छा करने लगे, तब उसके अनुरूप अलोकसामान्य कवित्वशक्तिलाभके निमित्तऔर उसके उपयोगी विषयजाननेके निमित्त समाधिआदितपोनुष्ठानमें प्रवृत्त हुएकुछकालबीतनेपर जबअनन्य सुलभ पुण्यसमूहकी प्राप्ति हुई तब भगवान् विष्णु उनपर प्रसन्नहो उनकी आज्ञासे देवर्षि नारद वाल्मीकीजीके समीपआये महर्षिने उनकी आतिथ्यक्रियाकर आसनदिया और स्वयंभी बैठे कुछकाल परस्पर सम्भाषणकरनेके उपरान्ततप स्वाध्यायवेदपाठमें तत्पर वेदके जाननेवाले पुरुषमें श्रेष्ठमुनियोंमें उत्तम नारदजीसेतपस्वी मुनिऋषिवाल्मीकिजी पूछने लगे ॥१॥ हे

श्रीगणेशायनमः ॥ श्रीसीतारामचंद्रायनमः ॥ श्रीमद्राघवपादपद्मयुगलंपद्मार्चितंपद्मयापद्मस्थेनतुपद्मजेनविनुतंपद्माश्रयस्याप्तये ॥ यद्देवैश्चनुतंसुखैकनिलयंसर्वाश्रयंनिष्क्रियंशश्वच्छंकरशंकरंमुहुरहोसन्नौमितल्लब्धये ॥१॥ श्रीमद्ब्रह्मतदेवबीजममलंयस्य कुरश्चिन्मयःकांडैःसप्तभिरन्वितोऽतिविततश्चष्यालवालोदितः ॥ पत्रैस्तत्त्वसहस्रकैःसुविलसच्छाखाशतैःपंचभिश्चात्मप्राप्तिफलप्रदोविजयतेरामायणस्वस्तरुः ॥२॥ ॐतपः स्वाध्यायनिरतंतपस्वीवाग्विदांवरम् ॥ नारदंपरिपप्रच्छवाल्मीकिर्मुनिपुंगवम् ॥१॥ कोन्वस्मिन्सांप्रतंलोकेगुणवान्कश्चवीर्यवान् ॥ धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्चसत्यवाक्योदृढव्रतः ॥ २ ॥ चारित्रेणचकोयुक्तःसर्वभूतेषुकोहितः ॥ विद्वान्कःकःसमर्थश्चकश्चैकप्रियदर्शनः ॥ ३ ॥ आत्मवान्को जितक्रोधोद्युतिमान्कोऽनुसूयकः ॥ कस्यबिभ्यतिदेवाश्चजातरोषस्यसंयुगे ॥४॥ एतदिच्छाम्यहंश्रोतुंपरंकौतूहलंहिमे ॥ महर्षेत्वंसमर्थोऽसिज्ञातुमेवंविधंनरम् ॥५॥ श्रुत्वाचैतत्त्रिलोकज्ञोवाल्मीकेर्नारदोवचः ॥ श्रूयतामितिचामंत्र्यप्रहृष्टोवाक्यमब्रवीत् ॥६॥ बहवोदुर्लभाश्चैवयेत्वया कीर्तितागुणाः ॥ मुनेवक्ष्यांम्यहंबुद्ध्वातैर्युक्तः श्रूयतांनर ॥ ७ ॥

मुने ! इसलोकमें इस समय गुणवान्, वीर्यवान्, धर्मज्ञ कृतज्ञ, सत्यवाक्य बोलनेवाला दृढव्रत॥२॥सुन्दर चरित्रसे युक्त सर्वप्राणियोंका हितकरनेवाले, विद्वान्, सर्वशास्त्रका जाननेवाला; सर्वकार्यमें समर्थ, एक (अद्वितीय) ही प्रियदर्शन॥३॥आत्माको जाननेवाला, क्रोधको जीतनेवाला, कांतिमान् और असूया (गुणोंमें दोषका आरोप करना)से रहित कौन पुरुष है रणके बीचमें क्रोध करनेसे किससे सब देवता भय मानते हैं॥४॥इसमें मुझे बड़ा कौतूहल है, मैं श्रवण करनेकी इच्छा करता हूं हे महर्षे! आप इस प्रकारके नरकेजाननेमें समर्थ हो, अर्थात् निश्चय करके जानते हो ॥५॥त्रिलोकके जाननेवाले नारद मुनि इस वाल्मीकिके वचनको श्रवण करके सुनो ! इस प्रकार अपने अभिमुख करके संतुष्ट हो सुंदर वचन कहने लगे॥६॥हेमुनि! जो गुण तुमने कीर्तन कियेवे बहुत दुर्लभ हैं; परन्तु मैं बुद्धिसे विचारकर कहता हूं

तिन गुणोंसे युक्त नरको तुम श्रवण करो ॥७॥ वैवस्वतमनुके ज्येष्ठपुत्र इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न रामनामजनोंसे विख्यात, नियतात्मा, महावीर्य द्युतिमान्, धृतिमान् वशी(सबके स्वामी वा जितेन्द्रिय) ॥८॥ बुद्धिमान् नीतिमान् (मर्यादापालक) सुन्दरवाणीबोलनेवाले, श्रीमान्, शत्रुहंता, ऊंचेकंधेवाले, लंबीभुजावाले शंखसमान ग्रीवा,महाहनु,सुन्दर ऊंची ठोढीवाले ॥९॥ विशाल वक्षस्थलवाले,बड़े धनुषकोधारे गूढजत्रु अर्थात् मांसमें छिपी हुई हैं दोनोंहँसली जिनकी ऐसे शत्रुओंका दमन, करनेवाले, जानुपर्यन्तलम्बी भुजावाले, सुन्दर शिर और ललाटसे शोभित, गजकेसमान सुन्दर गतिवाले ॥१०॥ सम (न छोटे न बडे) तुल्य एक आकार, पृथक् २ अंग (कर चरणआदि) वाले स्निग्धवर्ण अर्थात् चिकने मनोहरवर्णवाले पीन (मांसल) वक्षस्थलवाले, विशालनेत्र, लक्ष्मीवान्, शुभलक्षणोंसे युक्त॥११॥ धर्मज्ञ अर्थात् प्रजापालनादिरूप अपने धर्मके जाननेवाले, सत्यसंघ अर्थात् सत्य प्रतिज्ञाके करनेवाले, प्रजाके हित करनेमें तत्पर, उत्तम कीर्तिमान्, ज्ञानसम्पन्न

इक्ष्वाकुवंशप्रभवोरामोनामजनैः श्रुतः ॥ नियतात्मामहावीर्योद्युतिमान्धृतिमान्वशी ॥ ८ ॥ बुद्धिमान्नीतिमान्वाग्ग्मीश्रीमाञ्छत्रुनिबर्हणः ॥ विपुलांसोमहाबाहुःकंबुग्रीवोमहाहनुः ॥९॥ महोरस्कोमहेष्वासोगूढजत्रुररिंदमः ॥ आजानुबाहुःसुशिराःसुललाटःसुविक्रमः ॥ १० ॥ समःसमविभक्तांगःस्निग्धवर्णप्रतापवान् ॥ पीनवक्षाविशालाक्षोलक्ष्मीवाञ्छुभलक्षणः ॥११॥ धर्मज्ञःसत्यसंधश्चप्रजानांचहितेरतः॥ यशस्वी ज्ञानसंपन्नःशुचिर्वश्यःसमाधिमान् ॥ १२ ॥ प्रजापतिसमःश्रीमान्धातारिपुनिषूदनः ॥ रक्षिताजीवलोकस्यधर्मस्यपरिरक्षिता ॥ १३ ॥ रक्षितास्वस्यधर्मस्य स्वजनस्यचरक्षिता ॥ वेदवेदांगतत्त्वज्ञोधनुर्वेदेचनिष्ठितः ॥ १४ ॥ सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञःस्मृतिमान्प्रतिभानवान् ॥ सर्व लोकप्रियः साधुरदीनात्माविचक्षणः ॥ १५ ॥ सर्वदाभिगतःसद्भिःसमुद्रइवसिंधुभिः ॥ आर्यःसर्वसमश्चैवसदैवप्रियदर्शनः ॥ १६ ॥

सबके पवित्र करनेवाले, स्वयं पवित्र वा वंशपरम्परासे शुद्ध अपनेको वशमें रखनेवाले समाधिमान् ॥ १२ ॥ प्रजापति (ब्रह्मा) के तुल्य श्रीमान् सबके पोषक शत्रुओंके हनन करनेवाले, सब प्राणिमात्रके रक्षक तथा धर्मकी रक्षा करनेवाले ॥ १३ ॥ शरणागतरक्षकरूप अपने धर्मके पालक तथा अपने जनकी रक्षाकरनेवाले वेद और वेदांगके तत्त्वके जाननेवाले धनुर्वेदमें एकमात्र निष्ठावाले ॥ १४ ॥ सब शास्त्रोंके अर्थ तत्त्व (गूढआशय) के जाननेवाले सदा स्मृतिमान् अर्थात् ज्ञात अर्थमें विस्मरणलेशरहित, प्रतिभानवान् अर्थात् व्यवहारकाल में श्रुत और अश्रुतके शीघ्र भानवाले सर्वलोकके प्रिय साधु (परकार्यके साधक) और कृपणतासे रहित और सब विषयमें विचक्षण विद्वान् ॥ १५ ॥ नदियोंसे समुद्रके समान सर्वकाल सत्पुरुषोंसे परिवारित आर्य अर्थात् सर्वश्रेष्ठ और सर्वशत्रु

और मित्रोंके विषय सम (एकरस) और सर्वकालमें एक ही प्रियदर्शन ॥१६॥ ऐसे वह सब गुणोंसे युक्त कौशल्याके आनंदको बढ़ानेवाले गम्भीरतामें समुद्रके समान और धैर्यमें हिमाचलके समान॥१७॥ वीर्यमें विष्णुके तुल्य, चन्द्रके समान प्रियदर्शन, क्रोधमें कालाग्निके समान और क्षमामें पृथ्वीके समान॥१८॥ त्यागमें कुबेरके तुल्य, सत्य भाषणमें उत्कृष्ट अन्यवस्तुरहित साक्षात् धर्मके समान स्थित, इस प्रकार सम्पूर्ण गुणसम्पन्न सत्यपराक्रमी रामको॥१९॥ श्रेष्ठगुणोंसे युक्त तथा प्रजाके हित करनेमें तत्पर ऐसे सर्व पुत्रोंमें ज्येष्ठ तिस प्रियपुत्र रामचन्द्रको राजादशरथने अमात्य आदिके प्रियकी इच्छासे ॥ २० ॥ युवराजपदमें युक्त करनेकी महीपति दशरथजीने प्रीतिसे इच्छाकी, तिन रामचन्द्रके राज्याभिषेकके संभारोंको उनकी कैकयी भार्या देखकर॥२१॥अपने पूर्वमें पायेहुए वरोंको देवी राजासे

सचसर्वगुणोपेतः कौसल्यानंदवर्धनः॥समुद्रइवगांभीर्येधैर्येणहिमवानिव ॥ १७ ॥ विष्णुनासदृशोवीर्येसोमवत्प्रियदर्शनः ॥ कालाग्निसदृशः क्रोधेक्षमयापृथिवीसमः ॥ १८ ॥ धनदेनसमस्त्यागेसत्येधर्मइवापरः॥ तमेवंगुणसंपन्नंरामंसत्यपराक्रमम् ॥ १९ ॥ ज्येष्ठंज्येष्ठगुणैर्युक्तंप्रियं दशरथःसुतम्॥ प्रकृतीनां हितैर्युक्तंप्रकृतिप्रियकाम्यया ॥२०॥ यौवराज्येनसंयोक्तुमैच्छत्प्रीत्यामहीपतिः ॥ तस्याभिषेकसंभारान्दृष्ट्वाभार्याथकैकयी ॥२१॥ पूर्वंदत्तवरादेवीवरमेनमयाचत ॥ विवासनंचरामस्यभरतस्याभिषेचनम् ॥ २२ ॥ससत्यवचनाद्राजाधर्मपाशेनसंयतः॥ विवासयामाससुतंरामंदशरथःप्रियम् ॥ २३ ॥ सजगामवनंवीरःप्रतिज्ञामनुपालयन् ॥पितुर्वचननिर्देशात्कैकेय्याः प्रियकारणात् ॥ २४ ॥ तंव्रजंतंप्रियोभ्रातालक्ष्मणोऽनुजगामह ॥ स्नेहाद्विनयसंपन्नःसुमित्रानंदवर्धनः॥ २५ ॥ भ्रातरंदयितोभ्रातुःसौभ्रात्रमनुदर्शयन्॥रामस्यदयिता भार्यानित्यंप्राणसमाहिता ॥ २६ ॥ जनकस्यकुलेजातादेवमायेवनिर्मिता ॥ सर्वलक्षणसंपन्नानारीणामुत्तमावधूः ॥ २७ ॥

माँगती हुई, जिसमें रामको वनवास और भरतको राज्य मांगा ॥ २२ ॥ उन राजा दशरथने सत्य वचनरूप धर्म पाशमें बँधकर प्रियपुत्र रामको वनवास दिया॥२३॥ वह वीर रामचंद्र कैकयीके समक्षकरी प्रतिज्ञाको पालन करते हुए कैकयीकी प्रीतिके निमित्त पिताकी आज्ञासे वनको गये ॥२४॥ और सुमित्राके आनन्दको बढ़ानेवाले स्नेह और विनय सम्पन्न अतिइष्टप्रिय भ्राता लक्ष्मण रामको वनजाते देखकर उनकेपीछे चले॥२५॥ भ्राताके सौभ्रात्र भावको दिखाते हुए प्रियभ्राता लक्ष्मण इस प्रकारचले उस समय रामचंद्रकी प्रियभार्या नित्य प्राणके तुल्य हितकारिणी वा नित्य रामके प्राण रखनेमें सावधान वा रामकी प्राणप्यारी तथा हितकारिणी ॥२६॥ जनकके कुलमें उत्पन्न भगवान्‌की अघटित घटनापटीयसी मायाही मानो शरीरधारी है अथवा देवमायाके समान निर्मित हुई. आशय

यह है कि, देव मायाके समान जानकी किसीकी रची नहीं किन्तु अप्राकृत हैं इसप्रकार सर्व लक्षणोंसे युक्त नारियोंमें उत्तम वधू॥२७॥ रामकी प्रिय भार्या सीता भी चन्द्रमाके पीछे रोहिणीके समान रामके पीछे२ गई, सर्व पुरवासीजन तथा राजा दशरथ दूरतक पीछे गये ॥२८॥ दूर जाकर रामचंद्रने शृंगबेरपुरमें गंगाके तटपर निषादोंके अधिपति धर्मात्मा प्रिय गुहसे मिलकर सूतको बिदा किया ॥ २९॥ लक्ष्मण, सीता और गुहके सहित रामचंद्र बहुत जलवाली नदी गंगाको उतरके सबके सहित एक वनसे दूसरे वनमें जाकर॥३०॥ पश्चात् भरद्वाजजीसे मिलके भरद्वाजजीको आज्ञासे चित्रकूटको प्राप्त हो तहाँ रमणीकपर्णशालाकी कुटी बनाय तीनोंजने वनमें विचरने लगे ॥३१॥ बहुत काल तक देव गंधर्वोंके समान प्रकाशित रघुराज वहाँ सुखसे निवास करने लगे, जब रामचंद्र चित्रकूटपर बिराजे

सीताप्यनुगता रामंशशिनंरोहिणीयथा ॥ पौरैरनुगतोदूरंपित्रादशरथेनच ॥ २८ ॥ शृङ्गवेरपुरेसूतंगंगाकूलेव्यसर्जयत् ॥ गुहमासाद्यधर्मात्मानिषादाधिपतिंप्रियम् ॥२९॥ गुहेनसहितोरामोलक्ष्मणेनचसीतया ॥ तेवनेनवनंगत्वानदीस्तीर्त्वाबहूदकाः ॥३०॥ चित्रकूटमनुप्राप्यभरद्वाजस्यशासनात् ॥ रम्यमावसथंकृत्वारममाणावनेत्रयः ॥ ३१ ॥ देवगंधर्वसंकाशास्तत्रतेन्यवसन्सुखम् ॥ चित्रकूटंगतेरामेपुत्रशोकातुरस्तदा ॥३२॥ राजादशरथःस्वर्गंजगामविलपन्सुतम् ॥ मृतेतुतस्मिन्भरतोवसिष्ठप्रमुखैर्द्विजैः ॥ ३३ ॥ नियुज्यमानोराज्यायनैच्छद्राज्यंमहाबलः ॥ सजगामवनंवीरोरामपादप्रसादकः ॥३४॥ गत्वातुसमहात्मानंरामंसत्यपराक्रमम् ॥अयाचद्भ्रातरंराममार्यभावपुरस्कृतः॥३५॥ त्वमेवराजधर्मज्ञइतिरामंवचोऽब्रवीत् ॥ रामोऽपिपरमोदारःसुमुखःसुमहायशाः ॥ ३६ ॥ नचैच्छत्पितुरादेशाद्राज्यं रामोमहाबलः ॥ पादुकेचास्यराज्यायन्यासंदत्त्वापुनः पुनः ॥ ३७ ॥ निवर्तयामासततोभरतंभरताग्रजः ॥ सकाममनवाप्यैवरामपादावुपस्पृशन् ॥ ३८ ॥

तब पुत्रशोकसे व्याकुल ॥३२॥ राजा दशरथ सुतके उद्देश्यसे "हापुत्र" इस प्रकार विलाप करतेहुए स्वर्गको गये; राजा दशरथके मरनेपर वसिष्ठादि ब्राह्मणोंके द्वारा ॥३३॥ राज्यके निमित्त नियुक्त हुए भी महाबली भरतजीने राज्यकी इच्छा नहीं की और रामचंद्रके चरणोंके सेवक वह वीर रामकेप्रसन्न करनेको वनको गये॥३४॥ वनमें जाय पूज्य पुरुषोंकी मर्यादाको आगेकर भरतजीने आर्य भावसे महात्मा सत्य पराक्रमी रामचंद्रके समीप जाय अपने इष्टमनोरथकी याचना की ॥३५॥ और रामचंद्रके प्रति यह वचन कहे कि; हे धर्मज्ञ! राजा तो तुम्हीं हो और सुमुख परम उदार अति महायशस्वी॥३६॥ महाबलवान् रामचन्द्रने पिताके आदेश राज्यकी इच्छा नहीं की, और राज्यके अर्थ अर्थात् राज्य करनेको अपनी प्रतिनिधि रूप पादुका देकर भरतको बारम्बार॥३७॥ भरतके बडे भ्राता राम

चन्द्रने लौटजानेकी आज्ञादी वह भरत अपने मनोरथको प्राप्त न होकर रामचन्द्रकी दोनों पादुकाओंकी नित्यसेवा करते ॥३८॥ रामचन्द्रके आगमनकी आशासे नंदीग्राममें राज्य करने लगे. भरतके जानेपर सत्यसंध जितेन्द्रिय श्रीमान् ॥३९॥ रामचन्द्र नगरवासियोंका चित्रकूटमें बारम्बार आगमन देखके सावधान हो दंड कारण्यमें प्रवेश कर गये ॥४०॥ कमल लोचन श्रीरामचन्द्रने महावनमें प्रवेश करके विराधनाम राक्षसको मार शरभंग मुनिका दर्शन किया ॥४१॥ फिर सुतीक्ष्ण और अगस्त्यके तथा अगस्त्यमुनिके भ्राताके दर्शनकिये और अगस्त्यमुनिके वचनसे परमप्रसन्न हुए श्रीरामचन्द्रजीने इन्द्रके धनुषको ग्रहणकिया॥४२॥ तथा खड्ग और अक्षय बाणवाले दो तूणीरोंको परम प्रेमसे ग्रहण किया,तथा उस वनमें वनचारी जीवोंके साथ वसते हुए रामचन्द्रजीके ॥४३॥ समीप कबंध आदि असुरोंके तथा खर, दूषण आदि राक्षसोंके वधके निमित्त बहुतसे ऋषि आये और उन रामचन्द्रने उस समय वनमें उन ऋषिजनोंसे उन राक्षसादिकोंके वधकी प्रतिज्ञा

नंदिग्रामेऽकरोद्राज्यंरामागमनकांक्षया ॥ गतेतुभरतेश्रीमान्सत्यसंधोजितेन्द्रियः॥३९॥रामस्तुपुनरालक्ष्यनागरस्यजनस्यच॥तत्रागमनमेकाग्रोदंडकान्प्रविवेशह ॥ ४० ॥ प्रविश्यतुमहारण्यंरामोराजीवलोचनः ॥ विराधंराक्षसंहत्वाशरभंगंददर्शह ॥ ४१ ॥ सुतीक्ष्णंचाप्यगस्त्यंच अगस्त्यभ्रातरंतथा ॥ अगस्त्यवचनाच्चैवजग्राहैंद्रंशरासनम् ॥४२॥ खड्गंचपरमप्रीतस्तूणीचाक्षय्यसायकौ ॥ वसतस्तस्यरामस्यवनेवनचरैः सह ॥ ४३ ॥ ऋषयोऽभ्यागमन्सर्वेवधायाऽसुररक्षसाम्॥सतेषांप्रतिशुश्रावराक्षसानांतदावने ॥४४॥ प्रतिज्ञातश्चरामेणवधःसंयतिरक्षसाम् ॥ ऋषीणामग्निकल्पानांदंडकारण्यवासिनाम्॥४५॥तेनतत्रैववसताजनस्थाननिवासिनी॥विरूपिताशूर्पणखाराक्षसीकामरूपिणी॥४६॥ततः शूर्पणखावाक्याद्युक्तान्सर्वराक्षसान्॥खरंत्रिशिरसंचैवदूषणंचैवराक्षसम्॥निजघानरणेरामस्तेषांचैवपदानुगान्॥४७॥वनेतस्मिन्निवसताजनस्थाननिवासिनाम्॥रक्षसांनिहतान्यासन्सहस्राणिचतुर्दश॥४८॥ततोज्ञातिवधंश्रुत्वारावणःक्रोधमूर्छितः॥सहायंवरयामासमारीचंनामराक्षसम्॥४९॥

की ॥ ४४ ॥ अर्थात् उन अग्निके समान देदीप्यमान दंडकारण्यके वास करनेवाले ऋषिजनोंके समीप रामचंद्रजीने युद्धमें राक्षसोंके वधकी प्रतिज्ञाभी करी ॥४५॥ उसी दंडकारण्यमें वास करते हुए उन रामचंद्रजीने जनस्थानकी वास करनेवाली कामरूपिणी अर्थात् इच्छानुसार रूपधारण करनेवाली शूर्पणखा नाम राक्षसीके नाककान छेदनकरके विरूपिणीकरी॥४६॥उसशूर्पणखाके विरूपकरनेके अनंतरशूर्पणखाके वाक्यसे युद्धकरनेको उद्यतहुए सर्वराक्षसोंको और खर को त्रिशिराको तथा दूषण नाम राक्षसको तथा तिनके सर्व अनुचरोंको रणमें रामचन्द्रने संहार किया॥४७॥इस प्रकार उस वनमें निवास करनेवाले चौदह सहस्र राक्षस मारेगये॥४८॥ इसके उपरान्त खर दूषण आदि बंधुजनोंके वधको सुनकरक्रोधसे मूर्छितहो रावणने जायकर मारीचनामराक्षससे सहायता माँगी॥४९॥

हे रावण! बलवान् रामचन्द्रके साथ तुमको विरोध करना उचित नहीं है इसभांति बहुतवार मारीचर्ने वरजा ॥५०॥ तोभी कालसे प्रेरित वह रावण तिस मारीचके वाक्यको अनादर करके मारीचसहित उस समय तिन रामचंद्रजीके आश्रमस्थानको गया ॥५१॥ और जब रामचन्द्रजी पर्णशालाके समीप प्राप्तहुआ तब तिस मायावी अर्थात् विचित्र कनकमृगरूपधारीमारीचने नृपकेपुत्र (रामलक्ष्मण)दोनोंको दूरलेजाकर प्राणत्यागकिया और रावणअवसरपाय सीताको ले चलामार्गमें सीताके रुदनको श्रवणकरकेजटायुनेरोका?उससमय रावणनेजटायुनामगृध्रकोमारके रामकीभार्याकोहरणकिया ॥५२॥ मारीचको मारलौटकर लक्ष्मणसहितरामचंद्रने पर्णशालामें सीताको न देखकर बहुतढूँढा, आगे मार्गमें मारेहुए गृध्रको देखकर और रावणद्वारा मैथिलीका हरणसुनकर व्याकुल इन्द्रिय हो शोकसे संतप्त राघव विलाप करने लगे।॥५३॥तिसके अनन्तर उसी शोकसे युक्त रामचंद्रने जटायु नाम गृध्रका दाहकर वनमें सीताको खोजते हुए राक्षसोंको देखा ॥ ५४ ॥ विकरालरूप घोरदर्शनकबंधनामराक्षसकोदेखकर और तिसकोमारकरमहाबाहुरामचन्द्रने उसका दाह किया और स्वर्गको जाताहुआ यह कबंध ॥ ५५ ॥ इनसे यह कहता गया कि, हे राघव! अपने धर्ममें निपुणश्रमणी अर्थात्परिव्राजकरूप चतुर्थ आश्रमको प्राप्तहुई शबरीनामधर्मचारिणी यहांसे थोडी दूरपर है उसके समीपआप जावो ॥५६॥ वह महातेजस्वीशत्रुओंके नाशक रामचंद्रजी शबरीकेसमीपगये और शबरीसे भली प्रकार पूजितहो दशरथ सुतरामचंद्र वहांसे पंपासरको गये।॥५७॥ और पंपासरके तीरपर हनुमान् नाम वानरसे मिले; हनुमानके वचनसे सुग्रीवके साथ मिले ॥५८॥ महाबलवान रामचंद्रजीने आदिसे जिस प्रकार हुआ वह सब वृत्तान्त तथा विशेष करके सीताका वृत्तान्त सुग्रीवसे कहा।॥५९॥ औरसुग्रीव वानरने भी रामचन्द्रके तिससब वृत्तान्त को श्रवणकर प्रसन्नहो अग्निको साक्षी

वार्यमाणः सुबहुशोमारीचेनसरावणः ॥ नविरोधोबलवताक्षमो रावणतेनते ॥ ५० ॥ अनादृत्यतुतद्वाक्यंरावणःकालचोदितः ॥ जगाम सहमारीचस्तस्याश्रमपदंतदा ॥ ५१ ॥ तेनमायाविनादूरमपवाह्यनृपात्मजौ ॥ जहारभार्यांरामस्यगृध्रंहत्वाजटायुषम् ॥५२॥ गृध्रंचनिहतं दृष्ट्वाहृतांश्रुत्वाचमैथिलीम् ॥ राघवःशोकसंतप्तोविललापाकुलेन्द्रियः ॥५३॥ ततस्तेनैवशोकेनगृध्रंदग्ध्वाजटायुषम् ॥ मार्गमाणोवनेसीतांरा क्षसंसंददर्शह ॥ ५४ ॥ कबंधंनामरूपेणविकृतंघोरदर्शनम् ॥ तंनिहत्यमहाबाहुर्ददाहस्वर्गतश्चसः ॥ ५५ ॥ सचास्यकथयामासशबरींधर्मचा रिणीम् ॥ श्रमणांधर्मनिपुणामभिगच्छेतिराघवः ॥५६॥ सोऽभ्यगच्छन्महातेजाःशबरींशत्रुसूदनः ॥ शबर्यापूजितस्सम्यग्रामोदशरथात्मजः ॥ ५७ ॥ पंपातीरेहनुमतासंगतोवानरेणह ॥ हनूमद्वचनाच्चैवसुग्रीवेणसमागतः ॥ ५८ ॥ सुग्रीवायचतत्सर्वंशंसद्रामोमहाबलः ॥ आदित स्तद्यथावृत्तंसीतायाश्चविशेषतः ॥ ५९ ॥ सुग्रीवश्चापितत्सर्वंश्रुत्वारामस्यवानरः ॥ चकारसख्यंरामेणप्रीतश्चैवाग्निसाक्षिकम् ॥ ६० ॥

करके रामचन्द्रजीके साथ मैत्री की ॥ ६० ॥ तिसके अनन्तर दुःखित हुये वानरराज सुग्रीवने स्नेहसे वालिके विरोधका अनुकथन (रामचन्द्रके प्रश्नके अनुकूल उत्तर) सम्पूर्ण रामचन्द्रजीके प्रति निवेदन किया ॥ ६१ ॥ तब रामचन्द्रजीने वालिके वधकी प्रतिज्ञा करी, उस समय ऋष्यमूक पर्वतपर सुग्रीवने वालिके वधको रामचंद्रजीसे वर्णनकिया ॥ ६२ ॥ और सुग्रीव दुंदुभिके शरीरदिखानेपर्यन्त नित्य रामचन्द्रके बलके विषयमें शंकित था ॥६३॥ इसी काणरसे सुग्रीवने रामचंद्रके बलजाननेके अर्थ पर्वतके समान दुंदुभिके महान् शरीरको उन्हें दिखाय ॥६४॥ महाबाहु अमितबली रामचन्द्रजीने दुंदुभिके शरीरको देखकर "यह कितना है" ऐसा अनादर करके वामपादके अंगुष्ठकी ठोकरसे उस सम्पूर्णको दशयोजनपर फेंकदिया ॥६५॥ और तिससमय फिर विश्वास उत्पन्न करनेके निमित्त रामचन्द्रने एकही बाणसे सातताल वृक्षोंको और तिनके समीपवर्ती गिरि और रसातलको भेदन करदिया॥६६॥इसके पीछे इस कर्मसे रामचन्द्र

ततोवानरराजेनवैरानुकथनंप्रति ॥ रामायावेदितसर्वंप्रणयाद्दुःखितेनच ॥ ६१ ॥ प्रतिज्ञातंचरामेणतदावालिवधंप्रति ॥ वालिनश्चबलंतत्रकथयामासवानरः ॥६२॥ सुग्रीवःशंकितश्चासीन्नित्यंवीर्येणराघवे ॥ ६३ ॥ राघवप्रत्ययार्थंतुदुंदुभेःकायमुत्तमम् ॥ दर्शयामाससुग्रीवोमहापर्वतसन्निभम् ॥ ॥ ६४ ॥ उत्स्मयित्वामहाबाहुःप्रेक्ष्यचास्थिमहाबलः ॥ पादांगुष्ठेनचिक्षेपसंपूर्णंदशयोजनम् ॥६५॥ बिभेदचपुनस्तालान्सप्तैकेनमहेषुणा ॥ गिरिंरसातलंचैवजनयन्प्रत्ययंतदा ॥६६॥ ततःप्रीतमनास्तेनविश्वस्तःसमहाकपिः ॥ किष्किंधांरामसहितोजगामचगुहांतदा ॥६७॥ ततोऽगर्जद्धरिवरःसुग्रीवोहेमपिंगलः ॥ तेननादेनमहतानिर्जगामहरीश्वरः ॥६८॥ अनुमान्यतदातारांसुग्रीवेणसमागतः ॥ निजघानचतत्रैनंशरेणैकेनराघवः ॥ ६९ ॥ ततःसुग्रीववचनाद्धत्वावालिनमाहवे ॥ सुग्रीवमेवतद्राज्येराघवःप्रत्यपादयत् ॥ ७० ॥ सचसर्वान्समानीयवानरान्वानरर्षभः ॥ दिशःप्रस्थापयामासदिदृक्षुर्जनकात्मजाम् ॥ ७१ ॥ ततोगृध्रस्यवचनात्संपातेर्हनुमान्बली ॥ शतयोजनविस्तीर्णंपुप्लुवेलवणार्णवम् ॥ ७२ ॥ तत्रलंकांसमासाद्यपुरींरावणपालिताम् ॥ ददर्शसीतांध्यायंतीमशोकवनिकांगताम् ॥ ७३ ॥

जीमें विश्वासकर प्रसन्नचित्त हो महाकपि सुग्रीवने रामके सहित उससमय किष्किंधागुहाको गमन किया ॥ ६७ ॥ तदनन्तर सुवर्णके समान पिंगलवर्ण कपियोंमें श्रेष्ठ सुग्रीव किष्किंधामें जाकर गर्जा, तब तिस नादको सुनकर कपीश्वर वालि घरसे निकल बाहर चला ॥ ६८ ॥ उस समय बर्जती हुई ताराको समझाकर सुग्रीवके साथ आय युद्धकिया तिस युद्धमें रामचन्द्रने इस वालिको एकहीबाणसे मारदिया॥६९॥ तदनंतर रामचन्द्रने सुग्रीवके प्रार्थनावचनसे वालिको संग्राममें मार उस वालिके राज्यपर सुग्रीवको स्थापन किया॥७०॥ वानरोंमें श्रेष्ठ सुग्रीवने जानकीके खोजकरनेकी इच्छासे सब वानरोंको बुलायकेजानकीके ढूँढनेके अर्थ भेजा ॥ ७१ ॥ हनुमान् संपाति नाम गृध्रके वचनसे सौयोजन विस्तारवाले खारी समुद्रको उल्लंघन कर गये ॥ ७२॥ और रावणपालित लंकापुरीमें प्राप्त होकर

वहां अंतःपुरकी अशोकवाटिकामें प्राप्तहुई रामचन्द्रजीके ध्यानको करती हुई सीताको देखा ॥ ७३ ॥ महावीरजीने रामचंद्रके अंगूठीरूप चिह्नको निवेदन करके तथा रामचन्द्रकी कुशलवार्ता आदि कहके वैदेहीको समाधान कर अर्थात् सब प्रकारसै धैर्य देकर अशोकवनिकाके वहिर्द्वारको चूर्णकर डाला ॥ ७४ ॥ सेनाके पंच अग्रगामियोंको अर्थात् प्रधान सेनापतियोंको और सात मंत्रियोंके पुत्रोंको मारकर तथा शूर अक्षयकुमारनाम रावणके पुत्रको चूर्णकरके इंद्रजीतके मारे हुए ब्रह्मास्त्र करके बंधनको प्राप्त हुए ॥ ७५ ॥ ब्रह्माके बरदानसे ब्रह्मास्त्रसे मुक्त अपने शरीरको जानकर भी अपनेको बांधे इधर उधर खिंचते हुए अर्थात् तिन यंत्रणा करनेवाले राक्षसोंके अपराधोंको सहन करते हुए वह वीर हनुमान् ॥ ७६ ॥ एक मिथिलाराजसुता सीताके स्थानको छोड़कर सम्पूर्ण पुरीको दग्ध करके रामचन्द्रजीसे सीताके दर्शनरूप प्रिय आख्यानके कहनेके निमित्त महावीर फिर लौट आये ॥ ७७ ॥ तिसके अनन्तर अनंतबुद्धि वीर हनुमान्ने महात्मा

निवेदयित्वाभिज्ञानंप्रवृत्तिंविनिवेद्यच ॥ समाश्वास्यचवैदेहींमर्दयामासतोरणम् ॥ ७४ ॥ पंचसेनाग्रगान्हत्वासप्तमंत्रिसुतानपि ॥ शूरमक्षंच निष्पिष्यग्रहणंसमुपागमत् ॥ ७५ ॥ अस्त्रेणोन्मुक्तमात्मानंज्ञात्वापैतामहाद्वरात् ॥ मर्षयन्राक्षसान्वीरोयंत्रिणस्तान्यदृच्छया ॥ ७६ ॥ ततोदग्ध्वापुरींलंकामृतेसीतांचमैथिलीम् ॥ रामायप्रियमाख्यातुंपुनरायान्महाकपिः ॥७७॥ सोऽभिगम्यमहात्मानंकृत्वारामंप्रदक्षिणम् ॥ न्यवेदयदमेयात्माद्दृष्टासीतेतितत्त्वतः ॥७८॥ ततःसुग्रीवसहितोगत्वातीरंमहोदधेः ॥ समुद्रंक्षोभयामास शरैरादित्यसन्निभैः ॥७९॥ दर्शयामास चात्मानंसमुद्रः सरितांपतिः ॥ समुद्रवचनाच्चैवनलंसेतुमकारयत् ॥८०॥ तेनगत्वापुरींलंकांहत्वारावणमाहवे ॥ रामः सीतामनुप्राप्यपरां व्रीडामुपागमत् ॥ ८१ ॥ तामुवाचततोरामःपरुषंजनसंसदि ॥ अमृष्यमाणासासीताविवेशज्वलनंसती ॥ ८२ ॥ ततोऽग्निवचनात्सीतांज्ञात्वाविगतकल्मषाम् ॥ कर्मणातेनमहतात्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ ८३ ॥

रामचन्द्रजीकी प्रदक्षिणा करके सन्मुख स्थित हो हे भगवन् ! मैंने सीता देखी यह सत्यतासे निवेदन किया ॥ ७८ ॥ तिसके पीछे सुग्रीवसहित रामचन्द्रने महोदधि समुद्रके तीरपर जाय सूर्यके समान प्रकाशते हुए बाणोंसे समुद्रको क्षोभित (व्याकुलित) किया ॥७९॥ नदियोंके पति समुद्रनेरामचन्द्रजीको अपनानिजरूपदिखाया समुद्रके वचनसे नलवानरके द्वारा सेतुको निर्माण कराया ॥ ८० ॥ उस सेतुरूप मार्गसे लंकापुरीमें जाय युद्धमें रावणकोमार सीताकोपायपीछे रामचन्द्रको जानकीके कारण बहुत लज्जा हुई कि यह रावणके घर रहीं ॥ ८१ ॥ तिसके अनंतर रामचन्द्रने जनोंकी सभामें उस पतिव्रता सीतासे कठोर वचन कहेकि "हमारे निकटरहनेके योग्य नहीं हो तुम्हारी शुद्धिका प्रमाण क्या है" इस बातको नहीं सहन करती हुई सीतासती अग्निमें प्रवेश करगई ॥८२॥ तब अग्निके वचनसे सीता

को दोषरहित जानकर रामचन्द्र अति प्रसन्नहो सब देवताओंसे पूजित हो शोभित हुए ॥८३॥ महात्मा राघव रामचन्द्रके उस महान् कर्मसे देव ऋषिगणोंके सहित चराचर सम्पूर्ण त्रैलोक्य संतुष्ट हुआ ॥८४॥ लंकाके राज्यमें राक्षसेन्द्र विभीषणको अभिषिक्त करके रामचन्द्र कृतकृत्य और शोकरहित हो प्रसन्न हुए॥८५॥ सब देवताओंसे वरदान पाय तथा संग्राममें मरे हुए वानरोंको सम्यक् प्रकारसे जिवायके पुष्पकविमानमें विभीषण आदिसुहृदजनोंके साथचढ रामचन्द्रने अयोध्याको प्रस्थान किया ॥ ८६ ॥ मार्गमें प्राप्त हुए मुनि भरद्वाजके आश्रममें जाय सत्य पराक्रम रामचन्द्रजीने भरतजीके समीप हनुमन्तको भेजा ॥ ८७ ॥ भरद्वाजजीके आश्रम से तिस पुष्पकविमानपर चढकेफिर आख्यायिका (पूर्व हुए वृत्तान्त) को कहते हुए रामचन्द्र सुग्रीवसहित नंदिग्रामको चले ॥८८॥ वहां जाय नंदिग्राममें

सदेवर्षिगणंतुष्टंराघवस्यमहात्मनः ॥ बभौरामःसंप्रहृष्टःपूजितः सर्वदैवतैः ॥८४॥ अभिषिच्यचलंकायांराक्षसेंद्रंविभीषणम् ॥ कृतकृत्यस्त दारामोविज्वरः प्रमुमोदह ॥८५॥ देवताभ्योवरंप्राप्यसमुत्थाप्यचवानरान् ॥ अयोध्यांप्रस्थितोरामःपुष्पकेणसुहृद्वृतः ॥८६॥ भरद्वाजाश्र मंगत्वारामःसत्यपराक्रमः ॥ भरतस्यांतिकंरामो हनूमंतंव्यसर्जयत् ॥८७॥ पुनराख्यायिकांजल्पन्सुग्रीवसहितस्तदा ॥ पुष्पकंतत्समारुह्यनं दिग्रामंययौतदा॥८८॥नंदिग्रामेजटांहित्वाभ्रातृभिःसहितोऽनघः ॥ रामःसीतामनुप्राप्यराज्यंपुनरवाप्तवान्॥८९॥प्रहृष्टमुदितोलोकस्तुष्टःपुष्टः सुधार्मिकः ॥ निरामयोह्यरोगश्चदुर्भिक्षभयवर्जितः ॥ ॥ ९० ॥नपुत्रमरणंकेचिद्द्रक्ष्यंतिपुरुषाःक्वचित् ॥ नार्यश्चाविधवानित्यंभविष्यंतिपतिव्र ताः ॥ ९१ ॥ नचाग्निजंभयंकिंचिन्नाप्सुमज्जन्तिजंतवः ॥ नवातजंभयंकिंचिन्नापिज्वरकृतंतथा ॥ ९२ ॥ नचापिक्षुद्भयंतत्रनतस्करभयंत था ॥ नगराणिचराष्ट्राणिधनधान्ययुतानिच ॥९३॥ नित्यंप्रमुदिताःसर्वेयथाकृतयुगे तथा ॥ अश्वमेधशतैरिष्ट्वा तथाबहुसुवर्णकैः ॥९४॥

भ्राताओं सहित निष्पाप रामचन्द्र जटाको त्याग सीताको समीप ले फिर राज्यमें स्थित हुए ॥८९॥ तिससमय सर्वलोक (जन) प्रहृष्ट मुदित तुष्ट पुष्ट सुन्दर धर्माचरणके करनेवाले शरीररोगरहित तथा अरोग अर्थात् मानसी व्यथा रहित दुर्भिक्षके भयसे रहित हुए॥९०॥ इसके आगे भविष्य कहते हैं कि रामके राज्यमें कोई पुरुष कदाचित् भी कहीं पुत्रके मरणको नहीं देखेंगे; और स्त्रियेंभी सदा पतिव्रतावैधव्यदोषरहित होंगी॥९१॥ और न अग्निसे उत्पन्न हुआ भय होगा, औ जीव जलमें डूबेंगे, और न कदाचित् वायुजन्य भय होगा, और न ज्वरका किया भय ॥९२॥ और न क्षुधाका भय और न चोरकृत भय होगा, नगर राष्ट धनधान्य करके युक्त होंगे॥९३॥ जैसे कृतयुगमें सब प्रसन्न रहते हैं,तैसे सब नित्यप्रसन्न रहैंगे; सैकड़ों अश्वमेध तथा बहुसुवर्णकनामयज्ञोंसे यज्ञपुरुषका यजन

करके ॥९४॥ दशसहस्र कोटि परिमित गौवें तथा असंख्यात धन ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक देकर महायशस्वी श्रीरामजी ॥ ९५ ॥ शतगुण राजवंशोंको स्थापन करेंगे, तथा इस लोकमें चारों वर्णोंको अपने२ धर्ममें नियुक्त करेंगे॥९६॥दश सहस्र दश सौ अर्थात् ग्यारह सहस्रवर्ष पर्यन्त राज्य करके रामचन्द्र ब्रह्मलोकको जायँगे ॥९७॥ पवित्र पापके नाशक पुण्यदायक वेदोंके संमत इस रामचरितको जो पुरुष पाठ करेगा वह सब पापोंसे मुक्त होगा॥९८॥आयुकारक इस रामायण रूप आख्यानको पठन करता हुआ मनुष्य पुत्रपौत्र और बंधु भृत्यगणोंके सहित परलोकमें गमनकर स्वर्गमें महिमाको प्राप्त होताहै॥९९॥ इस संक्षेप रामायणको पठन करता हुआ ब्राह्मणवाणीकी श्रेष्ठताको प्राप्त होता है अर्थात् समस्त वेद वेदांगका पारगामी होता है, क्षत्रिय भूमिपति होता है; वणिक्‌जन व्यवहारके फलको

गवांकोटययुतंदत्त्वाविद्वद्भ्योविधिपूर्वकम् ॥ असंख्येयंधनंदत्त्वाब्राह्मणेभ्योमहायशाः ॥९५॥ राजवंशाञ्छतगुणान्स्थापयिष्यतिराघवः ॥ चातुर्वर्ण्यंच लोकेऽस्मिन्स्वेस्वेधर्मेनियोक्ष्यति॥९६॥ दशवर्षसहस्राणिदशवर्षशतानिच ॥ रामोराज्यमुपासित्वाब्रह्मलोकंप्रयास्यति ॥९७॥ इदंपवित्रंपापघ्नंपुण्यंवेदैश्चसंमितम् ॥ यःपठेद्रामचरितंसर्वपापैःप्रमुच्यते ॥९८॥ एतदाख्यानमायुष्यंपठन्रामायणंनरः ॥ सपुत्रपौत्रःसगणः प्रेत्यस्वर्गेमहीयते ॥ ९९ ॥ पठन्द्विजोवागृषभत्वमीयात्स्यात्क्षत्त्रियोभूमिपतित्वमीयात् ॥ वणिग्जनःपण्यफलत्वमीयाज्जनश्चशूद्रोऽपिमह त्त्वमीयात् ॥ १०० ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येबालकांडेप्रथमःसर्गः ॥१॥ नारदस्यतुतद्वाक्यं श्रुत्वावाक्यविशारदः ॥ पूजयामासधर्मात्मासहशिष्योमहामुनिम् ॥१॥ यथावत्पूजितस्तेनदेवर्षिर्नारदस्तथा ॥ आपृच्छ्यैवाभ्यनुज्ञातःसजगामविहायसम् ॥ २ ॥ समुहूर्तंगतेतस्मिन्देवलोकंमुनिस्तदा ॥ जगामतमसातीरंजाह्नव्यास्त्वविदूरतः ॥ ३ ॥ सतुतीरंसमासाद्यतमसायामुनिस्तदा ॥ शिष्यमा हस्थितंपार्श्वेदृष्ट्वातीर्थमकर्दमम् ॥ ४ ॥ अकर्दममिदंतीर्थंभरद्वाजनिशामय ॥ रमणीयंप्रसन्नांबुसन्मनुष्यमनोयथा॥५॥

प्राप्त होताहै अर्थात् व्यवहारसे लाभ प्राप्तकरताहैऔर शूद्र महत्त्वको प्राप्त होता है॥१००॥इति श्रीमद्रा०वा०आ०बाल०पं०ज्वालाप्रसादमिश्रकृतभा० टी० प्रथमः सर्गः॥१॥वाक्यविशारद सशिष्य धर्मात्मा वाल्मीकिजी देवर्षि नारदजीसे यह श्रवणकरकेउनमहामुनिकी पूजाकरते हुए॥१॥वाल्मीकिजीके देवर्षि नारदजीकी यथा विधिपूजा करनेपर, वह उनसे संभाषण करके बिदा ले देवलोकको चलेगये॥२॥अनन्तर वाल्मीकिजीक्षणकालतक आश्रममें रहकर गंगाके निकटवाली तमसानदीके निकट उपस्थित हुए ॥३॥ वह मुनि वहां जाय नदीकी अवतरणस्थान कर्दम (कीच) विहीन देखकर समीपमें खडे हुए शिष्यसे यह कहने लगे ॥४॥ हे वत्स

भरद्वाज! यह अवतरण स्थान(घाट)कैसा कर्दम(कीच)शून्य और रमणीय है देखो इसका जल सज्जनमनुष्योंके चित्तकी नाईं निर्मल है॥५॥ जो हो हे तात ! तुम कलशरखके मुझे वल्कल दोकि, मैं इस उत्तम तमसा तीर्थमें स्नान करूं॥६॥ जबमहात्मा वाल्मीकिजीने यहकहा तब गुरुकेअनुगतशिष्य भरद्वाजने गुरुमुखसे यह वाक्य श्रवण कर उनको वल्कल प्रदान किया॥७॥ जितेन्द्रिय वाल्मीकिजी शिष्यसेवल्कल ग्रहण करके तीरस्थितनिबिड अरण्यदर्शनपूर्वक इधर उधरफिरने लगे॥८॥ मुनिने उसवनके निकट एक उत्तमचकवा चकवीका जोड़ा सुस्वरसेगान करते विचरणकरता देखा ॥९॥ इसी अवसरमें एक महापापी अकारण वैरकरने वाले निषादने आकर वाल्मीकिजीके देखते देखते उसजोडेमेंसे चकवेको मारडाला॥१०॥ उसको रुधिरमें डूबेहुए पृथ्वीमें लोटते देखकर मराजान उसकी भार्या क्रौंची अतिशय करुणा कर रोदन करने लगी॥११॥ उस कामसे उन्मत्तरुधिरसेलालशिर दिनरात साथ रहनेवाले पतिके संग [जिनके शरीरमें बाण लगा है]

न्यस्यतांकलशस्तातदीयतांवल्कलंमम ॥ इदमेवावगाहिष्येतमसातीर्थमुत्तमम् ॥ ६ ॥ एवमुक्तोभरद्वाजोवाल्मीकेनमहात्मना ॥ प्रायच्छ तमुनेस्तस्यवल्कलंनियतोगुरोः ॥ ७ ॥ सशिष्यहस्तादादायवल्कलंनियतेंद्रियः ॥ विचचारहपश्यंस्तत्सर्वतोविपुलंवनम् ॥ ८ ॥ तस्या भ्याशेतुमिथुनंचरंतमनपायिनम् ॥ ददर्शभगवांस्तत्रक्रौंचयोश्चारुनिस्वनम् ॥ ९ ॥ तस्मात्तुमिथुनादेकंपुमांसंपापनिश्चयः ॥ जघानवैरनिल योनिषादस्तस्यपश्यतः ॥१०॥ तंशोणितपरीतांगंचेष्टमानंमहीतले ॥ भार्यातुनिहतंदृष्ट्वारुरावकरुणांगिरम् ॥ ११ ॥ वियुक्तापतिनातेनद्वि जेनसहचारिणा ॥ ताम्रशीर्षेणमत्तेनपत्रिणासहितेनवै ॥ १२ ॥ तथाविधंद्विजंदृष्ट्वानिषादेननिपातितम् ॥ ऋषेर्धर्मात्मनस्तस्यकारुण्यंसम पद्यत ॥ १३ ॥ ततः करुणवेदित्वादधर्मोऽयमितिद्विजः ॥ निशाम्यरुदतींक्रौंचीमिदंवचनमब्रवीत् ॥१४॥ मानिषादप्रतिष्ठांत्वमगमः शाश्व तीः समाः ॥ यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥ १५ ॥

अब सहवास न होगा यह जान उसको बड़ा दुःख हुआ॥१२॥ धार्मिकमहामुनि वाल्मीकिजी कामसे मत्तहुए विहंगमको व्याधके हाथसे मराहुआ देख करुणाके वश हुए ॥१३॥ तब चकवीको करुणासे रोतीहुई सुनकर ऋषि कहने लगे कि,यह कार्य्य अति अधर्मजनक है, और यह वचन बोले॥१४॥ रे निषाद ! तैंने जब इस क्रौंचमिथुनके जोडनेमेंसे कामकेवश हुए एक क्रौंचको मारडाला इस कारण तू बहुत वर्षोंतक प्रतिष्ठा नहींपासकेगा अथवा "हे रमानिवास राम! तुमनेजो क्रौंचरूप रावणमंदोदरीके मध्यसे एक कामरूपीरावणको मारा है इस कारण संसारमें बहुत वर्षोंतक प्रतिष्ठाको प्राप्त हूजिये अथवा हे लोकरावण ! तूने क्रौंचवनं-वासादिकसे दुःखितरामजानकीके मध्यसेकाम मोहितसीताकोहरणादिकके दुःखसे रामको मारनेके तुल्यकिया, अतएवबहुतदिनों तकप्रतिष्ठा बिनापायेमरणकोप्राप्त

हो। इसश्लोकमेंरामायणकी औरभी कथाविद्यमान है पहले भृगुजीनेभीविष्णुभगवान्‌को शाप दियाथाकि, तुमने मेरीस्त्रीका वियोग कियाहै तो तुम्हारी स्त्रीका भी तुमसे वियोग होगा इसी कारणभगवान्‌व्याधरूप धारणकरवाल्मीकिजीकेदेखते २क्रौंचरूपी राक्षसकोमारडाला, तब सर्वान्तर्यामी भगवान्‌की प्रेरणासे वाल्मीकिजी यह विचारनेलगे कि, इसने हाअधर्मकिया है, यह विचार शाप दिया कि, जैसेतुमने काममोहित इस क्रौंचको मारा है इसी प्रकार तुम्हारा भी बहुतकालतक स्त्रीसे वियोग हो इसी बातको पद्मपुराणमें शिवपार्वतीके संवादमें कहा है कि कोई लकडहारा अपनीस्त्रीकोमारता२ बोला कि, मैं राम नहीं हूं जो तुझे रावणके घरमें रहीहुई जानकीके समान रखलूं यहसुन लोकापवादसे डरकर रामचन्द्रने लक्ष्मणजीसे कहा कि तुमजानकीको वनमें छोडि आवो, जिसकारण मैं जानकीको त्यागन करता हूँ वहभीतुम सुनोकि, पूर्वकालमें भृगु और वाल्मीकिजीने मुझेशापदिया हैकि, तुमसे स्त्रीका वियोगहोगा, इस कारण मैं इन्हें त्यागन करताहूँ इसी कारण स्कंद पुराणके पातालखण्डमें अयोध्या माहात्म्यमेंलिखाहै कि, महातपस्वी वाल्मीकिजी जबनिषादको शाप देकर दुःखी हुए, तब ब्रह्माजीआकरकहनेलगे हे मुनि! जिनको तुमने शापदिया है वह निषादनहींहै किन्तु वह रामहीवनमें मृगया खेलने आयेहैं उनकाचरित्र वर्णनकरो तुम्हारा यह छंदपुण्यरूप श्लोकनामसे जगत्में विख्यात होगा यह कहकर ब्रह्माजी तो चले गये वाल्मीकिजीने सौ करोड़ श्लोकमें रामायण बनाई, वह सब ब्रह्मलोकमें है, यहां चौबीस सहस्र लवकुशने सुनाई योगवासिष्ठमें और भी अवतार होनेके कारणहैं एक समय वैकुंठसे भगवान्‌विष्णुजी ब्रह्माजीकी सभामेंआये सब देवताओंने उठकर सन्मानकिया केवलकुमार नहींउठेऔर ज्योंके त्योंबैठेरहे, ज्ञानका मनमेंबड़ा अभिमानथा यह देख भगवान्‌नेकहाकि, तुमको निष्कामताका अभिमानहै इसकारणतुम शरसे उत्पन्नहोकरकामी होगे तब कुमार कहने लगेकि तुमको निष्कामताका अभिमानहै सोइसे त्यागकरके कुछकालतक तुमअज्ञानीहोगे, इस प्रकार विष्णुजीके कर्तव्यसेअपनी भार्याको मृतकदेख भृगुने शाप दियाथाकि, तुम्हाराभी भार्यासे वियोग होगा, इसप्रकार जबवृंदाके पतिने उपद्रव मचाया तब विष्णुजीनेछलसे उसके पतिका रूप बनाकर उससेअपने चरणदबवाये परपुरुषके अङ्गस्पर्शसे उसका पतिव्रत नष्टहुआ, तब ही शिवजीके हाथसेउसका पति मारागया तब उसने यह भेद जानकर शाप दियाकि, तुमको स्त्रीका वियोगहोगा। एकसमय देवदत्त ब्राह्मणकी भार्या सागरकेतीर बैठीथी वह वहांनृसिंहजीका भयंकररूपदेख भयसेमरगयी तब उसने विष्णुको शापदिया कि,तुमभी भार्याके वियोगमें मेरेसमान दुःखी होगे फिर जो ताराने शाप दियाहै वह किष्किंधामें कहेंगे इसीप्रकार और२पुराणोंमें भीलिखा है कितमसाके किनारे वाल्मीकिजीने व्याधरूप रामको शाप दिया था चौपाई--"इहिं विधि जन्म कर्म हरिकेरे। सुन्दर सुखद विचित्र घनेरे॥कल्प २ प्रति प्रभु अवतरहीं। चारुचरित नाना विधि करहीं। तब सब कथा मुनीशने गाई। परम विचित्र प्रबन्ध बनाई॥ परम अनूप प्रसंग बखाने। करहिं न मुनिआश्चर्य सयाने॥ दोहा॥ असुरभार

थापहिं सुरहिं, राखहिं निश श्रुति सेतु॥ जग विस्तारहि विमलयश, रामजन्मकर हेतु''॥१५॥ वाल्मीकिजी व्याधेको इसप्रकार शाप देकर वारंवार यह चिंताकरने लगे कि, मैंने पक्षी के लिये व्याकुलचित्त हो क्या कथनकिया॥१६॥ मुनिपुङ्गव बुद्धिमान् महर्षि मनही मन यह चिंता करते हुये अपने शिष्यसे इसप्रकार बचन बोले॥१७॥ हे वत्स! जब मेरा यह वाक्य पादबद्ध समान अक्षरवाला वीणा की लयसे युक्त शोकद्वारा कंठसे उच्चारित हुआ है तो यह श्लोकरूप होगा इसमें संदेह नहीं॥१८॥ वाल्मीकिजीके यह वचन सुन भरद्वाजने उनकी बडी बडाई की इससे वाल्मीकिजी परम संतुष्ट हुये॥१९॥ तदनन्तर महामुनि वाल्मीकिजी यथाविधि तमसामेंस्नानकर उसी श्लोक उत्पत्ति विषयकी चिंता करते हुये अपने आश्रमको लौटे ॥२०॥ शास्त्राधिकारी विनीति शिष्यभी कंधेपर जलका भरा कलशा ले

तस्येत्थंब्रुवतश्चिंताबभूवहृदिवीक्षतः ॥ शोकार्तेनास्यशकुनेःकिमिदंव्याहृतंमया॥१६॥ चिंतयन्सम हाप्राज्ञश्चकारमतिमान्मतिम् ॥ शिष्यंचैवाब्रवीद्वाक्यमिदंसमुनिपुंगवः ॥ १७ ॥ पादबद्धोक्षरसमस्तंत्रीलयसमन्विताः ॥ शोकार्तस्यप्रवृत्तोमेश्लोकोभवतुनान्यथा ॥ १८ ॥ शिष्यस्तुतस्यब्रुवतोमुनेर्वाक्यमनुत्तमम् ॥ प्रतिजग्राहसंतुष्टस्तस्यतुष्टोऽभवन्मुनिः ॥ १९ ॥ सोऽभिषेकंततःकृत्वातीर्थेतास्मिन्यथाविधि ॥ तमेव चिंतयन्नर्थमुपावर्ततवैमुनिः ॥ २० ॥ भरद्वाजस्ततःशिष्योविनीतः श्रुतवान्गुरोः ॥ कलशंपूर्णमादायपृष्ठतोऽनुजगामह ॥२१॥ सप्रविश्याश्रमपदंशिष्येणसहधर्मवित् ॥ उपविष्टःकथाश्चान्याश्चकारध्यानमास्थितः ॥ २२ ॥ आजगामततोब्रह्मालोककर्त्तास्वयंप्रभुः ॥ चतुर्मुखोमहातेजाद्रष्टुंतंमुनिपुंगवम् ॥ २३ ॥ वाल्मीकिरथतंदृष्ट्वासहसोत्थायवाग्यतः ॥ प्रांजलिःप्रयतोभूत्वातस्थौपरमविस्मितः ॥२४॥ पूजयामासतंदेवंपाद्यार्घ्यासनवंदनैः ॥ प्रणम्यविधिवच्चैनंपृष्ट्वाचैवनिरामयम् ॥ २५ ॥ अथोपविश्यभगवानासनेपरमार्चिते ॥ वाल्मीकयेचऋषयेसंदिदेशासनंततः ॥ २६ ॥ ब्रह्मणासमनुज्ञातःसोऽप्युपाविशदासने ॥ उपविष्टेतदातस्मिन्साक्षाल्लोकपितामहे ॥२७॥ तद्गतेनैवमनसावाल्मीकिर्ध्यानमास्थितः पापात्मनाकृतंकष्टंवैरग्रहणबुद्धिना ॥ २८ ॥

उनके पीछे आश्रमको लौटे ॥ २१ ॥ धर्मके जाननेवाले वाल्मीकिजी शिष्यके सहित आश्रममें उपस्थित हो बैठने उपरान्तनाना प्रकारकेकथोपकथन होनेपर ध्यानमें मनको लगाते हुए ॥ २२ ॥ इतनेमें सृष्टिकर्त्ता शक्तिमान् महातेजस्वी चतुर्मुख ब्रह्मा मुनिश्रेष्ठको देखनेके अर्थ वहां आये ॥२३॥ ऋषि वाल्मीकिजी उनको देखते ही अतिशय विस्मित हो संयमसे सहसा उठकर कृताञ्जलि पुटसे सविनय खड़े हो गये ॥२४॥ फिर पाद्य, अर्घ्य, आसन और स्तुति द्वारा ब्रह्मदेवकी अर्चना करके उनके चरणोंमें प्रणाम करके कुशल पूछी॥२५॥ भगवान् पितामहने दिव्य आसनपर बैठ महर्षिजीसे कुशलप्रश्न पूछ आसनपर बैठनेको कहा॥२६॥ तब साक्षात् ब्रह्माजीके आसनपर बैठनेके उपरान्त ब्रह्माजीकी आज्ञासे वह आसन पर बैठे ॥ २७ ॥ वाल्मीकिजी उस समय भी उसी ध्यानमें क्रौंच वधकी

वार्ता स्मरणकर मनही मन चिंता करने लगे कि, हाय! वनचारी उस पापी व्याधने कैसा पापकार्य किया॥२८॥ उसने अकारण अच्छे कंठवाले क्रौंचको मारा
इस आशयसे मनही मनमें उसी श्लोकको स्मरणकरते ॥२९॥ शोक करने लगे और फिर मनहीमनमें कहनेको बात छुपाकर शोक करने लगे तब प्रजापति ब्रह्मा
ने मुनिश्रेष्ठसे हँसकर कहा॥३०॥ हे महामुने! तुम्हारे कंठसे जो वाक्य निर्गत हुआ है वह श्लोकरूप हो ख्याति लाभ करेगा, इससे कुछ संदेह नहीं। हे ब्रह्मन्! मेरी
इच्छासे ही तुम्हारे मुखमें सरस्वतीका आविर्भाव हुआ है ॥३१॥ हे ऋषिश्रेष्ठ! तुम धर्मात्मा गुणवान् बुद्धिवान् भगवान् श्रीरामचंद्रजीके सब चरित्र वर्णनकरो ॥३२॥
नारदजीसे रामके सम्बन्धमें जो कुछ सुना है, उसकेअनुसार रहस्यचरित्र और प्रकाशित चरित्र जगत्में प्रकाशित करो॥ ३३॥ इसीप्रकार लक्ष्मण, सीताका चरित्र

यस्तादृशंचारुरवंक्रौंचंहन्यादकारणात् ॥ शोचन्नेवपुनःक्रौंचीमुपश्लोकमिमंजगौ ॥ २९ ॥ पुनरंतर्गतमनाभूत्वाशोकपरायणः ॥ तमुवाच
ततोब्रह्माप्रहसन्मुनिपुंगवम् ॥ ३० ॥ श्लोकएवास्त्वयंबद्धोनात्रकार्याविचारणा ॥ मच्छंदादेवतेब्रह्मन्प्रवृत्तेयंसरस्वती ॥ ३१ ॥ रामस्यच
रितंकृत्स्नंकुरुत्वमृषिसत्तम ॥ धर्मात्मनोभगवतोलोके रामस्यधीमतः ॥ ३२ ॥ वृत्तंकथयधीरस्ययथातेनारदाच्छ्रुतम् ॥ रहस्यंचप्रकाशंच
यद्वृत्तंतस्यधीमतः ॥३३॥ रामस्यसहसौमित्रेराक्षसानांचसर्वशः ॥ वैदेह्याश्चैवयद्वृत्तंप्रकाशंयदिवारहः ॥३४॥ तच्चाप्यविदितंसर्वंविदितंते
भविष्यति ॥ नतेवागनृताकाव्येकाचिदत्रभविष्यति ॥ ३५ ॥ कुरुरामकथांपुण्यांश्लोकबद्धांमनोरमाम् ॥ यावत्स्थास्यंतिगिरयः सरितश्च
महीतले ॥ ३६ ॥ तावद्रामायणकथालोकेषुप्रचरिष्यति ॥ यावद्रामस्यचकथात्वत्कृताप्रचरिष्यति॥ ३७ ॥ तावदूर्ध्वमधश्चत्वंमल्लोकेषुनि
वत्स्यसि ॥ इत्युक्त्वाभगवान्ब्रह्मातत्रैवांतरधीयत ॥ ३८ ॥ ततःसशिष्योभगवान्मुनिर्विस्ममाययौ ॥ तस्यशिष्यास्ततःसर्वेजगुःश्लोकमिमं
पुनः ॥ मुहुर्मुहुःप्रीयमाणाःप्राहुश्चभृशविस्मिताः ॥ ३९ ॥

और राक्षसोंका जाना अजाना गुप्त प्रकट सब विषय वर्णनकरो ॥३४॥ जिन सबबातोंको कोई नहींजानता तुम उनकेजाननेकोसमर्थ होगे औरतो क्या इसकाव्यमें
तुम्हारी वाणीकी युक्ति भी मिथ्या नहीं होगी ॥ ३५॥ तुम रमणीय रामायण श्लोकोंमें बनाओ; जान लेना कि--जबतक जीवलोकमें नदी व पहाड़ रहेंगे, तब
तक तुम्हारी बनाई रामकथा संसारमें प्रकाशित रहेगी ॥३६॥ और जबतक तुम्हारी बनाई रामकथाका प्रचार रहेगा ॥३७॥ तबतक तुम ऊँचेसे ऊँचे मेरे
लोकमें निवास करोगे यह कहकर भगवान् ब्रह्माजी वहीं अन्तर्धानहो गये॥३८॥ तब भगवान् वाल्मीकिजी शिष्यसहित परमआश्चर्यको प्राप्त हुए और उनके शिष्य

गण क्रमसे सबही वारंवार यह श्लोक गान करने लगे, जब वह गावें तब उनके सन्तोष और विस्मयकी सीमा न रहे ॥ ३९ ॥ समान युक्त अक्षरवाले चारपदकी जो रचना वाल्मीकिजीने गाई है,वह श्लोकनामसे कही गई है ॥४०॥ उन ज्ञानीमहात्मा महर्षिकी यह इच्छा हुई कि, समग्ररामायण इसी भांति श्लोकोंमें बना वेंगे ॥४१॥ उदारदृष्टि असीम कीर्तिमान् वाल्मीकिजीने सुंदर छंद उत्कृष्ट अर्थ और भले पदों करके युक्तबराबर अक्षरोंसे पूर्ण बहुतसे श्लोकोंके आकारसे इस महाकाव्यकी रचना की ॥ ४२ ॥ अब सब संधि समास प्रकृति और प्रत्यत साध्य दोषविहीन मधुरतासे युक्त प्रसन्नताके गुणका अवलंबन करनेवाला ऋषि का कहा हुआ रामचरित और रावणके नाशका वृत्तांत श्रवण करो ॥४३॥ इति श्रीमद्वाल्मीकिरामायणे आदिकाव्ये बालकांडेभाषाटीकायां द्वितीयःसर्गः ॥ २ ॥

समाक्षरैश्चतुर्भिर्यः पादैर्गीतोमहर्षिणा॥ सोऽनुव्याहरणाद्भूयः शोकःश्लोकत्वमागतः ॥४०॥तस्यबुद्धिरियंजातामहर्षेर्भावितात्मनः ॥ कृत्स्नं रामायणंकाव्यमीदृशैः करवाण्यहम् ॥ ४१ ॥उदारवृत्तार्थपदैर्मनोरमैस्तदास्यरामस्यचकारकीर्तिमान् ॥ समाक्षरैश्लोकशतैर्यशस्विनोयश स्करंकाव्यमुदारदर्शनः ॥ ४२ ॥ तदुपगतसमाससंधियोगंसममधुरोपनतार्थवाक्यबद्धम् ॥ रघुवरचरितंमुनिप्रणीतंदशशिरसश्चवधंनिशामय ध्वम् ॥ ४३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येबालकांडेद्वितीयःसर्गः ॥२॥ श्रुत्वावस्तुसमग्रंतद्धर्मार्थसहितंहितम् ॥ व्यक्तम न्वेषतेभूयोयद्वृत्तंतस्यधीमतः ॥ १ ॥ उपस्पृश्योदकंसम्यङ्मुनिःस्थित्वाकृतांजलिः ॥ प्राचीनाग्रेषुदर्भेषुधर्मेणान्वेषतेगतिम् ॥ २ ॥ रामल क्ष्मणसीताभीराज्ञादशरथेनच ॥ सभार्येणसराष्ट्रेणयत्प्राप्तं तत्रतत्त्वतः ॥३॥ हसितंभाषितंचैवगतिर्यावच्चचेष्टितम् ॥ सत्सर्वंधर्मवीर्येणय थावत्संप्रपश्यति ॥ ४ ॥ स्त्रीतृतीयेनचतथायत्प्राप्तंचरतावने ॥ सत्यसंधेनरामेणतत्सर्वंचान्ववेक्षत ॥ ५ ॥ ततःपश्यतिधर्मात्मातत्सर्वंयोग मास्थितः ॥ पुरायत्तत्रनिर्वृत्तंपाणावामलकंयथा ॥ ६ ॥

दो. रामायणके रचनेकी;इच्छा कर मुनिराज योगासनसे बैठकर, रचन लगे सबसाज। महामुनि वाल्मीकिजीनेनारदजीसे जो धर्मार्थयुक्त हितजनक रामचरित्रश्रवण किया था इस समय फिर उसे भलीप्रकार जाननेको मुनिराजइच्छुक हुए॥१॥तब यह पूर्वमुखहो कुशासनपर बैठ यथा विधि आचमन कर हाथ जोडके योगके प्रभावसे उस विषयमें सन्धान करने लगे ॥२॥देखते हुए कि राम लक्ष्मण और सीता और राजा दशरथकी कौशिल्यादि रानियोंने व अयोध्याके राज्यके निवा सियोंने जो सम्बन्धपाया था वह सब मुनिराजने ध्यानदेके देखा व जाना॥३॥जो कुछ हास परिहास खेल इन लोगोंका था वह सब धर्मात्मा मुनिजी प्रत्यक्षके समान देखने लगे॥४॥ सत्यप्रतिज्ञा करनेवाले रामचन्द्रजीने लक्ष्मण और सीताजीके सहित वनमें जो कष्ट भोगकियाथा यहसब देखनेलगे॥५॥ तब धर्मात्मा

वाल्मीकिजी योगमें स्थित होकरजोकुछकथाहुईथी वह सबहाथमेंस्थितआमलक फलकी नाई देखने लगे ॥६॥ इसभाँति योगमार्गअवलम्बनकियेमहामतिमहर्षि तत्त्वसे सबकुछ देखकरश्रुतिसुखकर रामचरित्र वर्णन करनेलगे॥७॥जिस प्रकार रत्नाकर रत्नोंकेसमूहोंका आधार है इसी भाँतिरामायणभीमनोहर व श्रुतिसुखकर सन्दर्भसे पूर्ण है इसमें धर्मार्थ औरकामार्थकीकमीनहींइसकेअतिरिक्त इसमें और भी बहुतसे गुण हैं ॥८॥ महामुनिजीनेइसग्रंथमेंजैसापहलेनारदमुनिनेकहाथाउसीके अनुसार रघुवंशका चरित्र वर्णन किया है ॥९॥ इसमेंरामचन्द्रजीकाजन्म वृत्तान्त, शक्तिकापरिचय,लोकानुराग,सर्वजनप्रियता, क्षमा,सौम्यता, सत्यनिष्ठा ॥१०॥ महामुनि उग्रतपाविश्वामित्रजीके साथ जानेके समय मार्गमें जो अपूर्व कथा हुई थीं और शिवका धनुष तोडनेपर जानकीजीका विवाह वर्णन किया है॥११॥ फिर

तत्सर्वंतत्त्वतोदृष्ट्वाधर्मेणसमहामतिः ॥ अभिरामस्यरामस्यतत्सर्वं कर्तुमुद्यतः ॥७॥ कामार्थगुणसंयुक्तंधर्मार्थगुणविस्तरम् ॥समुद्रमिवरत्नाढ्यंसर्वश्रुतिमनोहरम् ॥ ८ ॥ सयथाकथितंपूर्वंनारदेनमहात्मना ॥ रघुवंशस्यचरितंचकारभगवान्मुनिः ॥९॥ जन्मरामस्यसुमहद्वीर्यंसर्वानुकूलताम् ॥ लोकस्यप्रियतांक्षांतिंसौम्यतां सत्यशीलताम् ॥ १० ॥ नानाचित्राःकथाश्चान्याविश्वामित्रसहायने ॥ जानक्याश्चविवाहंचनुधषश्चविभेदनम् ॥ ११ ॥ रामराम विवादंचगुणान्दाशरथेस्तथा ॥ तथाभिषेकंरामस्यकैकेय्यादुष्टभावताम् ॥ १२ ॥ विघातंचाभिषेकस्य रामस्यचविवासनम् ॥ राज्ञशोकंविलापंचपरलोकस्यचाश्रयम् ॥१३॥ प्रकृतीनांविषादंचप्रकृतीनांविसर्जनम् ॥ निषादाधिपसंवादंसूतोपावर्तनंतथा ॥१४॥ गंगायाश्चापिसंतारंभरद्वाजस्यदर्शनम् ॥भरद्वाजाभ्यनुज्ञानाच्चित्रकूटस्यदर्शनम् ॥१५॥वास्तुकर्मनिवेशंचभरतागमनं तथा ॥ प्रसादनंचरामस्यपितुश्चसलिलक्रियाम् ॥ १६ ॥ पादुकाग्र्याभिषेकंचनंदिग्रामनिवासनम् ॥ दंडकारण्यगमनंविराधस्यवधंतथा ॥ १७ ॥ दर्शनंशरभंगस्यसुतीक्ष्णेनसमागमम् ॥ अनसूयासमास्यांचअंगरागस्यचार्पणम् ॥ १८ ॥

परशुरामजीसे रामका विवाद; रामचन्द्रजीके गुण, रामचन्द्रजीके राज्याभिषेकके विषे कैकईकी दुष्टता ॥१२॥ राज्याभिषेकके रंगका भंग होना;रामचन्द्रजीका वनको जाना, राजा दशरथका विलाप और शोक करके परलोक गमन॥१३॥प्रजाको क्षोभ, प्रजाको विदा देना; निषादाधिपतिका संवाद, सारथीसुमन्तजीका लौटना ॥ १४ ॥ गंगाजी का उतरना, भरद्वाजजीके दर्शन, भरद्वाजजीकी आज्ञासे चित्रकूटका दर्शन ॥ १५ ॥ वहां कुटी बनाकर रहना, भरतजीका आना, भरतजीका लौट चलनेका कहना, रामचन्द्रजीका दशरथ पिताको तर्पण करना ॥ १६ ॥ पादुका का अभिषेक, भरतजीका नन्दिग्राममें रहना, श्रीरामचन्द्रका दण्डकारण्यमें जाना, विराध राक्षसका वधकरना ॥१७॥ शरभंगदर्शन, सुतीक्ष्णसे मिलना; अनसूयासे जानकीजीका मिलना, अनसूयाका अंगराग देना॥१८॥

रामचंद्रजीकाअगस्त्यजीकादर्शनकरनाऔरउनसेशरधनुष ग्रहण करना, शूर्पणखासंवाद और उसके नाककानोंका काटना ॥१९॥ खरत्रिशिराका संहार, रावणका सीताजीकेहरणको उद्योग करना, मारीचका मारा जाना,जानकीका हरण ॥२०॥ रामचन्द्रजीकाविलाप, जटायुकामरण, कबन्धदर्शन,पंपाकिनारे पहुँचना ॥२१॥ शबरीका दर्शन, फल मूल भोजन,रामका विलाप करना,हनुमानजीसे साक्षात् होना॥२२॥ ऋष्यमूकपर्वत परजाना,सुग्रीवसे समागम, सुग्रीवका विश्वास दिलाना और उससे मित्रता करना,वालि सुग्रीवकी लड़ाई ॥२३॥वालिवध, सुग्रीवको राजतिलक,ताराका विलाप,सुग्रीवके कहनेसे वर्षाकालमें प्रवर्षणगिरिपररहना॥२४॥ पुरुषसिंह रामचन्द्रजीका क्रोध, वानरसैन्यका संग्रह सम्पूर्ण दिशाओंमें दूतोंका भेजना,पृथ्वीकी स्थिति कहना ॥२५॥ हनुमान्‌जीको अँगूठी देना, जाम्बवन्तका

दर्शनंचाप्यगस्त्यस्यधनुषोग्रहणंतथा ॥ शूर्पणख्याश्चसंवादंविरूपकरणंतथा ॥१९॥ वधंखरत्रिशिरसोरुत्थानंरावणस्यच ॥ मारीचस्यवधं चैववैदेह्याहरणंतथा ॥ २० ॥ राघवस्यविलापंचगृध्रराजनिबर्हणम् ॥ कबंधदर्शनंचैवपंपायाश्चापिदर्शनम् ॥ २१ ॥ शबरीदर्शनंचैवफल मूलाशनंतथा ॥ प्रलापंचैवपंपायांहनूमद्दर्शनंतथा ॥ २२ ॥ ऋष्यमूकस्यगमनंसुग्रीवेणसमागमम् ॥ प्रत्ययोत्पादनंसंख्यावालिसुग्रीवविग्र हम् ॥२३॥ वालिप्रमथनंचैवसुग्रीवप्रतिपादनम् ॥ ताराविलापंसमयंवर्षरात्रनिवासनम् ॥२४॥ कोपंराघवसिंहस्यबलानामुपसंग्रहम्॥ दिशः प्रस्थापनंचैवपृथिव्याश्चनिवेदनम् ॥ २५ ॥ अंगुलीयकदानंचऋक्षस्यबिलदर्शनम् ॥ प्रायोपवेशनंचैवसंपातेश्चापिदर्शनम् ॥ २६ ॥ पर्वता रोहणंचैवसागरस्यापिलंघनम् ॥ समुद्रवचनाच्चैवमैनाकस्यचदर्शनम् ॥ २७ ॥ राक्षसीतर्जनंचैवच्छायाग्राहस्यदर्शनम् ॥ सिंहिकायाश्च निधनंलंकामलयदर्शनम् ॥ २८ ॥ रात्रौलंकाप्रवेशंचएकस्यापिविचिंतनम् ॥ आपानभूमिगमनमव रोधस्यदर्शनम् ॥ २९ ॥ दर्शनंरावण स्यापिपुष्पकस्यचदर्शनम् ॥ अशोकवनिकायानंसीतायाश्चापिदर्शनम् ॥ ३० ॥ अभिज्ञानप्रदानंचसीतायाश्चापिभाषणम् ॥ राक्षसीत र्जनंचैवत्रिजटास्वप्नदर्शनम् ॥ ३१ ॥ मणिप्रदानंसीतायावृक्षभंगंतथैव च ॥ राक्षसीविद्रवंचैवकिंकराणांनिबर्हणम् ॥ ३२ ॥

बिल देखना, वानरोंका मरणके निमित्त बैठना, संपाति को देखना॥२६॥पर्वतपै चढ़ना, हनुमानजीका समुद्रको लांघना, समुद्रके वचनसेमैनाकके दर्शन ॥२७॥ राक्षसोंको डरवाना, छाया पकडनेवाले को देखना, सिंहिका संहार, लंकादर्शन ॥ २८ ॥ निशासमय लंकामें प्रवेश और शेष कार्यकी चिंता करना, मद्य पानकी जगह जाना, अन्तःपुरका दर्शन करना ॥२९॥ रावणको देखना, पुष्पक विमानको देखना, अशोकवनमें गमन, तहां सीताजीके दर्शन ॥३०॥ अँगूठी देना,सीताजीसे वार्तालाप,राक्षसियोंको डरवाना,त्रिजटाका स्वप्न देखना ॥३१॥ सीताजीका मणि देना,पेडोंका उजाडना,राक्षसियोंको डरसे भागना, किंकरोंका

मानमर्दन॥ ३२॥ हनुमानजीका बँधजाना, लंका जलानेके समय भयंकर गर्जन करना, फिर समुद्र पार होना; मधु हरण अर्थात् मधुवनके फल खाना ॥ ३३ ॥ रामचन्द्रजीको धैर्य देकर मणि देना, समुद्रसमागम, नलके हाथसे पुलका बँधना ॥ ३४ ॥ समुद्रको सउतरना, रात्रिमें लंकाको घेरना, विभीषणका आना और रावणके मरनेका उपाय बताना ॥ ३५॥ कुम्भकर्ण व मेघनादका वध; रावण निधन, उसके नगरसे रामचन्द्रजीकोसीताजीका मिलना॥ ३६॥ विभीषणका राजतिलक पुष्पक दर्शन, अयोध्याकी यात्रा, भरतजीके आश्रम पर आना हनुमानजीका भेजना, भरतजीसे महावीरजीकी भेंट ॥ ३७॥ रामाभिषेकका उत्सव, सेनाको विदा देना अपनी प्रजाओंकोप्रसन्न रखना सीताजी को त्यागना॥ ३८॥ इत्यादि और भी जो पृथ्वीमें भविष्य रामचरित्र होना था और अप्रचारित विषय भी अर्थात्

संगमंचसमुद्रेण ग्रहणंवायुसूनोश्चलंकादाहाभिगर्जनम् ॥ प्रतिप्लवनमेवाथमधूनांहरणंतथा ॥३३॥ राघवाश्वासनंचैवमणिनिर्यातनंतथा ॥ नलसेतोश्चबंधनम् ॥ ३४ ॥ प्रतारंचसमुद्रस्यरात्रौलंकावरोधनम् ॥ विभीषणेनसंसर्गबधोपायनिवेदनम् ॥ ३५ ॥ कुंभकर्णस्यनिधनंमेघनादनिबर्हणम् ॥ रावणस्यविनाशंचसीतावाप्तिमरेःपुरेः ॥ ३६ ॥ विभीषणाभिषेकंचपुष्पकस्यचदर्शनम् ॥ अयोध्यायाश्चगमनंभरद्वाजसमागमम् ॥ प्रेषणंवायुपुत्रस्यभरतेनसमागमम् ॥३७॥ रामाभिषेकाभ्युदयंसर्वसैन्यविसर्जनम् ॥ स्वराष्ट्ररंजनंचैववैदेह्याश्चविसर्जनम् ॥३८॥ अनागतंचयत्किंचिद्रामस्यवसुधातले ॥ तच्चकारोत्तरेकाव्येवाल्मीकिर्भगवानृषिः ॥३९॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा०आ०बा० तृतीयः सर्गः ॥३॥

प्राप्तराज्यस्यरामस्यवाल्मीकिर्भगवानृषिः ॥ चकारचरितंकृत्स्नंविचित्रपदमर्थवत् ॥ १ ॥ चतुर्विंशत्सहस्राणिश्लोकानामुक्तवानृषिः ॥ तथासर्गशतान्पंचषट्कांडानितथोत्तरम् ॥ २ ॥ कृत्वातुतन्महाप्राज्ञः सभविष्यसहोत्तरम् ॥ चिंतयामासकोन्वेतत्प्रयुंजीयादितिप्रभुः ॥ ३ ॥ तस्यचिंतयमानस्यमहर्षेर्भावितात्मनः ॥ अगृहीतांततःपादौमुनिवेषौकुशीलवौ ॥ ४ ॥

यमुनातीरवासी ऋषियों का समागम, लवणासुर, वध, वाल्मीकि आश्रममें सीताके दो पुत्र होना, दुर्वासाका समागम, लक्ष्मण त्याग, स्वर्गा-रोहण यात्रा यह सब महामुनि वाल्मीकिजीने अपने वनमें रमणीय काव्यमें वर्णन किये ॥ ३९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्येबालकांडे भाषायां तृतीयः सर्गः ॥३॥

भगवान् ऋषि वाल्मीकिजीने रामचन्द्रके सिंहासनपर बैठनेके उपरान्त विचित्र पदपूर्ण और अर्थयुक्त रामचरित्रसम्बन्धी काव्यरचना किया ॥ १ ॥ ऋषिराजयह काव्य चौबीस हजार श्लोकोंमें बनाया है पांचसौ सर्ग इसमेंहैं, छःकांड और पिछला. उत्तर इन सात कांडोंमें यह काव्य रचा गया है ॥ २ ॥ भविष्यसहित उत्तरकांडको महामुनि वाल्मीकिजी बनाकर किस भाँति प्रकाशित होना यह शोच रहे थे ॥ ३ ॥ विज्ञानी आत्मस्वरूपवेत्ता महामुनि यह शोच

रहेही थे कि उतनेमें मुनिवेषधारी लवकुशने आकर मुनिके चरणोंकी वन्दना की ॥ ४ ॥ वे दोनों भाई धर्मज्ञ राजपुत्र यशस्वी गानेके सुरसे युक्त आश्रम वासी थे ॥५॥ वाल्मीकिजीने इन्हें काव्यग्रहण करनेके योग्य देखा वह जैसे बुद्धिमान् थे उसी प्रकार वेदमें उनकी निष्ठा थी, करुणामय मुनिजीने उनकी शक्ति देख वेदका तात्पर्य विदित होनेके निमित्त ऋषिने इनको यह काव्य पढ़ाया॥ ६ ॥ श्रेष्ठव्रतवाले ऋषिने रावणवध नामक सीताचरित्रके सम्बन्धमें अपना बनाया सम्पूर्ण रामायणरूप काव्य पढ़या ॥७॥ पढ़ने और गानेमें मधुर तीन प्रमाणोंसे अर्थात् द्रुत, मध्य; विलंबितसे युक्त सुन्दर अधिक ताल लय मिलेहुये संगीतके साथ स्वरसे पूर्ण॥ ८ ॥ शृंगार, करुणा, हास्य, रौद्र, भयानक, वीर, बीभत्स, अद्भुत, शान्त इन नवरसों समेत बनाय पढ़ाया, इसमें राम सीताका रमण शृंगार राजा दशरथका विलाप इत्यादिकरुणा, शूर्पणखावैकृत्य इत्यादि हास्य, लक्ष्मण सहित, हनुमान्‌केकर्म वीररसमय हैं;रावण इत्यादिके कामरौद्ररस, मारीचलीला

कुशीलवौतुधर्मज्ञौराजपुत्रौयशस्विनौ ॥ भ्रातरौस्वरसंपन्नौददर्शाश्रमवासिनौ ॥ ५ ॥ सतुमेधाविनौदृष्ट्वावेदेषुपरिनिष्ठितौ ॥ वेदोपबृंहणार्थायतावग्राहयतप्रभुः ॥ ६ ॥ काव्यंरामायणंकृत्स्नं सीतायाश्चरितंमहत् ॥ पौलस्त्यवधमित्येवंचकारचरित्रव्रतः ॥७॥ पाठ्यगेयेचमधुरंप्रमाणैस्त्रिभिरन्वितम् ॥ जातिभिःसप्तभिर्युक्तंतंत्रीलयसमन्वितम्॥८॥रसैः शृंगारकरुणहास्यरौद्रभयानकैः ॥ वीरादिभीरसैर्युक्तंकाव्यमेतदगायताम् ॥ ९ ॥ तौतुगांधर्वतत्त्वज्ञौस्थानमूर्च्छनकोविदौ ॥ भ्रातरौस्वरसंपन्नौगंधर्वाविवरूपिणौ ॥ १० ॥ रूपलक्षणसंपन्नौमधुरस्वरभाषिणौ बिंबादिवोत्थितौबिंबौरामदेहात्तथापरौ ॥ ११ ॥ तौराजपुत्रौकार्त्स्न्येनधर्म्यमाख्यानमुत्तमम् ॥ वाचांविधेयंतत्सवर्कृत्वाकाव्यमनिंदितौ ॥ १२ ॥ ऋषीणांचद्विजातीनांसाधूनांचसमागमे ॥ यथोपदेशंतत्त्वज्ञौजगतुस्तौसमाहितौ ॥ १३ ॥ महात्मानौमहाभागौसर्वलक्षणलक्षितौ ॥ तौकदाचित्समेतानामृषीणांभावितात्मनाम् ॥ १४ ॥

भयानकरस, कबन्धका वृत्तान्त इत्यादि बीभत्स, रामरावणके युद्धमें अद्भुतरस और श्रवणकरनेमें सुखदहोनेके कारण शान्तरस हैं,ऐसे काव्यको दोनोंजने गाने लगे ॥९॥क्योंकि वे दोनोंभ्राता गानविद्यामें बडे दक्ष वह सब ताल स्वर लय आदिमें प्रवीण मानो गन्धर्वोंकी मूर्ति हैं॥१०॥अधिक क्या कहें उनका सुन्दर स्वरऔर सुलक्षण देखनेसे जिस प्रकार बिम्बसे प्रतिबिम्ब उठआताहैवैसेही रामचन्द्र जीके समान उनकी देहसे प्रगट हुए जान पडने लगे॥११॥इसप्रकारअनिन्दितउनदोनों भाइयोंने सर्वश्रेष्ठरामायणग्रंथ अध्ययनकिया और अपनीशिक्षाकीनिपुणतासेपढ़नेके समय और गीतागानेके कालमें॥१२॥ऋषि द्विजाति और साधुओंकेसंगमें जैसा पढायाथा वह दोनों तत्त्वके जाननेवाले सावधानतासे गाकर संतुष्ट करनेलगे॥१३॥ सर्वलक्षणसम्पन्न वह दोनों भाई महात्मामहाभाग किसीसमय इकठे आत्मज्ञानी

ऋषियोंके समाजमें ॥१४॥ बैठकर यह काव्य गानेलगे श्रवण करतेही सुननेवाले बस धर्मवत्सल मुनि नेत्रोंमें जल भरकर ॥ १५ ॥ विस्मययुक्त हो परमप्रीति मनसे धन्य हो धन्यहो एकवाक्यसे वे धर्मवत्सल मुनि ॥१६॥ गानेवाले लवकुश बालकोंकी प्रशंसा करनेलगे, उनमें कोई कोई गानेवालोंकी प्रशंसा, कोई कोई गीतोंकी मधुरायी, कोई गीतरचनाकी पंडिताईकी बड़ाई करने लगे ॥१७॥ कि बहुत कालका हुआभी यह प्रत्यक्षके समान दीखता है ऐसे वे दोनों इसप्रकार ऋषिसभामें प्रवेश कर भले भावसे काव्यको गाने लगे ॥ १८ ॥ मीठे और ऊँचे स्वरसे मनोहर गानेलगे जब इस प्रकारसे महातपस्वी ऋषियोंने उनकी बड़ाई की ॥१९॥तब वे और भी विशेष गानविद्याके भावोंसे गाने लगे और तो क्या किसी मुनिने प्रसन्न होकर इन्हें अपना कलशा देदिया॥२०॥किसी महायशस्वीने

मध्येसभंसमीपस्थाविदंकाव्यमगायाताम्॥तच्छ्रुत्वामुनयःसर्वेबाष्पपर्याकुलेक्षणाः॥१५॥साधुसाध्वितितावूचुःपरंविस्मयमागताः॥तेप्रीतमनसः सर्वेमुनयोधर्मवत्सलाः ॥१६॥प्रशशंसुःप्रशस्तव्यौगायमानौकुशीलवौ॥अहोगीतस्यमाधुर्य्यंश्लोकानांचविशेषतः॥१७॥ चिरनिर्वृत्तमप्येतत्प्रत्यक्षमिवदर्शितम्॥प्रविश्यताबुभौसुष्ठुतथाभावमगायताम्॥१८॥सहितौमधुरंरक्तंसंपन्नंस्वरसंपदा॥एवंप्रशस्यमानौतौतपःश्लाघ्यौमहर्षिभिः ॥१९॥संरक्ततरमत्यर्थंमधुरंतावगायताम्॥प्रीतःकश्चिन्मुनिस्ताभ्यांसंस्थितःकलशंददौ ॥२०॥प्रसन्नोवल्कलंकश्चिद्ददौताभ्यांमहायशाः॥अन्यकृष्णाजिनमदाद्यज्ञसूत्रंतथापरः॥२१॥कश्चित्कमंडलुंप्रादान्मौंजी॥मन्योमहामुनिः॥बृसीमन्यस्तदाप्रादात्कौपीनमपरोमुनिः॥२२॥ताभ्यांददौ तदाहृष्टःकुठारमपरोमुनिः॥काषायमपरोव चीरमन्योददौमुनिः॥२३॥जटाबंधनमन्यस्तुकाष्ठरज्जुंमुदान्वितः॥यज्ञभांडमृषिःकश्चित्काष्ठभारं तथापरः॥२४॥औदुंबरींबृसीमन्यःस्वस्तिकेचित्तदाऽवदन्॥आयुष्यमपरेप्राहुर्मुदातत्रमहर्षयः ॥ २५ ॥ ददुश्चैवंवरान्सर्वेमुनयःसत्यवादिनः ॥ आश्चर्यमिदमाख्यानंमुनिनासंप्रकीर्तितम् ॥२६॥ परंकवीनामाधारंसमाप्तंचयथाक्रमम् ॥ अभिगीतमिदंगीतंसर्वगीतिषुकोविदौ ॥ २७ ॥

प्रसन्न होकर अपना वल्कल देदिया,किसीने मृगछाला;किसीने यज्ञोपवीत देदिया॥२१॥किसी मुनिने कमंडलु, किसीने मौंजीबंधन, किसी मुनिने आसन, किसीने कौपीन देदी॥२२॥इसप्रकार किसीनेप्रसन्नहोकर कुठार, किसीने गरुवा रँगे हुएवस्त्र,किसी मुनिने चीरवस्त्र॥२३॥किसीने जटाबांधनेके लिये डोरा, काठ संग्रहकरनेके लिये रस्सी; किसीने यज्ञपात्र,किसीने काष्ठभार॥२४॥किसीने गूलरकी रस्सी देदी जिन्होंने इत्यादि नहीं दिया उनने भी किसीने स्वस्ति किसीने प्रसन्न हो दीर्घजीवी कहकर आशीर्वाद दिया॥२५॥इस भाँति सत्यवादी ऋषियोंने लवकुशको वर दिया और सब अचंभेसे हो एकवाक्यतासे वाल्मीकिजीकी अनुपमकविताकी प्रशंसा करने लगे कि,उत्तम काव्य सुनाया है॥२६॥ऋषि कहने लगे यह काव्य कवियोंका आधार होगा,यह कथा क्रमसे समाप्त हुई है, फिर जैसा यह अद्भुत

काव्य है वैसेही गान विद्यामें कुशल इन दोनों भाइयोंने गाया है, सो सुनतेही मनकोहर लेता है ॥२७॥तुमने जो गान गाया है यह उमरका बढानेवाला पुष्टि जनक और सुखोद्दीपक, इस प्रकार दोनों भाई चारोंओरसे प्रख्याति संग्रह करने लगे॥२८॥एक दिन दोनों भ्राता अयोध्याके राज मार्गमें गाकर घूम रहे थे, इतनेमें रामचन्द्रजीने उन्हें देखा, और कुश लव दोनों भाइयोंको घरमें बुला लाये ॥२९॥ शत्रुओंको मारनेवाले रामचन्द्रने उनका भली प्रकार आदर किया और आप प्रभु सोनेके दिव्य सिंहासनपर विराजे॥३०॥उनके बैठतेही लक्ष्मण प्रभृति भ्राताभी और मन्त्री भी उनके निकटही बैठगये रामचन्द्रजीने उनदोनों भाइयोंको रूपवान् विनीत और बलवान् देखकर ॥३१॥ लक्ष्मण भरत शत्रुघ्नसे कहनेलगे कि, तुम इस देवसमान तेजस्वी दोनों भ्राताओंसे अपूर्व आख्यान श्रवण करो ॥३२॥यह कह उन्होंने इन दोनों भाइयोंको गानेकी आज्ञादी. तब दोनोंभाई ऊँचे स्वरसे राग रागिनी सहित॥३३॥वीणाके समान मधुर और स्पष्टभावसे

आयुष्यपुष्टिजननंसर्वश्रुतिमनोहरम् ॥ प्रशस्यमानौसर्वत्रकदाचित्तत्रगायकौ॥२८॥रथ्यासुराजमार्गेषुददर्शभरताग्रजः॥ स्ववेश्मचानीयततो भ्रातरौसकुशीलवौ ॥ २९ ॥ पूजयामासपूजार्हौरामःशत्रुनिबर्हणः ॥ आसीनःकांचनेदिव्येसचसिंहासनेप्रभुः ॥ ३० ॥ उपोपविष्टैः सचिवै र्भ्रातृभिश्चसमन्वितः ॥ दृष्ट्वातुरूपसंपन्नौविनीतौभ्रातरावुभौ ॥ ३१ ॥ उवाचलक्ष्मणंरामःशत्रुघ्नंभरतंतथाश्रूयतामेतदाख्यानमनयोर्दे ववर्चसोः ॥३२॥ विचित्रार्थपदसम्यग्गायकौसमचोदयत् ॥ तौचापिमधुरंरक्तंस्वचित्ता यतनिःस्वनम् ॥ ३३ ॥ तंत्रीलयवदत्यर्थविश्रुतार्थ मगायताम् ॥ ह्लादयत्सर्वगात्राणिमनांसिहृदयानिच ॥ श्रोत्राश्रयसुखंगेयंतद्बभौजनसंसदि ॥३४॥ इमौमुनीपार्थिवलक्षणान्वितौकुशीलवौ चैवमहातपस्विनौ ॥ ममापितद्भूतिकरंप्रचक्षतेमहानुभावंचरितंनिबोधत ॥ ३५ ॥ ततस्तुतौरामवचःप्रचोदितावगायतांमार्गविधानसंपदा ॥ सचापिरामःपरिषद्गतःशनैर्बुभूषयासक्तमनाबभूव ॥ ३६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्ये बालकांडेचतुर्थःसर्गः ॥ ४ ॥

श्रवण करने वालोंके शरीर रोमांचित और हृदय उद्वेलितकर संगीतमें प्रवृत हुए वह कानोंका सुखदायकगाना जनसमाजमें शोभित हुआ॥३४॥तब रामचन्द्रजी अनुजोंसे बोलेहे भ्रातृगण! यद्यपि यह गानेवाले कुश और लव महातपस्वी मुनिवेष धारण किये हैं तोभी इनके शरीरमें राजचिह्न शोभापाते हैं यह गानेवाले और उपाख्यान दोनों माधुर्यगुणसपन्न हैं और मेरे यशसे परिपूरित यह चरित्र कल्याणकरनेवाला है,इसलिये तुम स्थित होके श्रवण करो ॥३५॥ रामचंद्रजीने भ्राता ओंसे यह कहकर फिर दोनों गायकोंसे गानकेो कहा आज्ञानुसार वे दोनों भाई सुन्दर गीत गानेलगे.रामचन्द्रजी सभामें बैठ गीतश्रवणमें आसक्त चित्त होगये॥३६॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदि० बालकांडे भाषायां चतुर्थः सर्गः ॥४॥

१ इटालीदेशीय पुस्तकमें यहां एक सातों काण्डकी उपक्रमणिकाका सर्ग है ।

महात्मामनुजीसे लेकर जो जयशील सब नरपति इस समुद्रसे घिरी वसुमतीको एक छत्र शासन करते आये हैं ॥ १ ॥ जिसके गमनसमय साठ हजार सन्तान उनका अनुगमन करती थीं जो सागरखोदकर सगरनामसे पुकारे गये; जिस वंशसे सागरकी उत्पत्तिहुई॥२॥इसरामायणमेंउन्हींमहात्मा इक्ष्वाकु नृपश्रेष्ठोंकेवंशका चरित्र वर्णन किया गया है यह "रामायण" नामसे विख्यात है॥३॥अब हम अर्थ धर्मकी देनेवाली इस कथाको आदिसे अन्ततक गावेंगे आपलोग निन्दाको त्याग एकाग्रचित्त होकर सुनिये॥४॥सरयूके तीरपर धनधान्यसे भरापुरा आनन्दके कुलाहलसे पूर्ण कोशलनाम एक देश है॥५॥ जगतप्रसिद्ध अयोध्या उसकी राजधानी बनी, और वह पुरी मानवेन्द्र महाराज मनुजीकी स्वयं बसाई हुई है॥६॥वह बारह योजनकी लंबी तीन योजनकी चौड़ी है, देखनेमें बड़ी सुन्दर और इसराज

सर्वापूर्वमियंयेषामासीत्कृत्स्नावसुंधरा॥प्रजापतिमुपादायनृपाणांजयशालिनाम्॥१॥तेषांससगरोनामसागरोयेनखानितः॥षष्टिपुत्रसहस्राणियं यांतंपर्यवारयन्॥२॥इक्ष्वाकूणामिदंतेषांराज्ञांवंशेमहात्मनाम्॥महदुत्पन्नमाख्यानंरामायणमितिश्रुतम्॥३॥तदिदंवर्तयिष्यावःसर्वंनिखिलमादितः ॥ धर्मकामार्थसहितंश्रोतव्यमनसूयया॥ ४ ॥ कोसलोनाममुदितःस्फीतोजनपदोमहान् ॥ निविष्टःसरयूतीरेप्रभूतधनधान्यवान् ॥५॥ अयोध्यानामनगरीतत्रासील्लोकविश्रुता ॥ मनुनामानवेन्द्रेणयापुरीनिर्मितास्वयम् ॥६॥ आयतादशचद्वेचयोजनानिमहापुरी॥श्रीमतीत्रीणि विस्तीर्णासुविभक्तमहापथा ॥७॥ राजमार्गेणमहतासुविभक्तेनशोभिता ॥ मुक्तपुष्पावकीर्णेनजलसिक्तेननित्यशः ॥८॥ तांतुराजादशरथोमहाराष्ट्रविवर्धनः॥ पुरीमावासयामासदिविदेवपतिर्यथा ॥९॥ कपाटतोरणवतींसुविभक्तांतरापणाम् ॥ सर्वयंत्रायुधवतीमुषितांसर्वशिल्पिभिः ॥ १० ॥ सूतमागधसंबाधांश्रीमतीमतुलप्रभाम् ॥ उच्चाट्टालध्वजवतींशतघ्नीशतसंकुलाम्॥ ११ ॥ वधूनाटकसंघैश्चसंयुक्तांसर्वतःपुरीम्॥ उद्यानाम्रवणोपेतांमहतींसालमेखलाम् ॥ १२ ॥ दुर्गगंभीरपरिखांदुर्गामन्यैर्दुरासदाम् ॥ वाजिवारणसंपूर्णांगोभिरुष्ट्रैःखरैस्तथा ॥ १३ ॥

धानीके तीनप्रधान मार्ग॥७॥जहांका बड़ा राजमार्ग सब शोभायुक्त फूलमालाओंसे शोभायमान है और नित्य जहां छिडकाव होता है ॥८॥जिस प्रकार देवेन्द्र देवलोकमें वास करते हैं इसी भाँतिइस पुरीमें राज्यके बढानेवाले प्रतापशाली राजादशरथजी वास करते थे॥९॥इस नगरीके चारोंओर किंवाड व तोरण लगे हुए सब प्रकारके यंत्र व आयुध धरेहुए कहीं कहीं शिल्पी लोग बैठे हुए हैं॥१०॥पुरीमें सूत और मागध सब रहते हैं, देखनेमें बड़ी धनधान्यसे पूर्ण और अतुलित शोभावाली ऊंची अटारियोंकी झड़ी सबपवनसे उडतीहुई किलेकी रक्षाके लिये तोपें लगी हुई हैं॥११॥कहीं स्त्रियोंकी नाटकशाला विराजमान हैं उद्यानोंमें फुलवाडी और आमोंके पेडलगेहुए साल वृक्ष मानो जिस नगरीकी कांची है ॥१२॥ किलेके चारों ओर गहरी परिखा खुदीहुई उनमें पानी भरा हुआ, सर्व साधारणके

न पहुँचने योग्य वहां कहीं कहीं हाथी, घोडे; ऊँट, खिच्चड, गाय, बैल बनेहुए हैं ॥ १३ ॥ कहीं नृपतिवृन्द खडेहुए कहीं नानाप्रकारके वणिकगण वाणिज्यकी वस्तुयें सजाये हुए हैं ॥ १४ ॥ वहांके रत्नमय राजमहल सब पर्वतोंके समान शोभायमान हैं कहीं स्त्रियोंके क्रीडा करनेके स्थान दूसरी अमरावतीकी नांई सोह रहे हैं, चित्र विचित्र जिनका आकार है ॥ १५ ॥ कहीं कहीं ऐसी श्रेष्ठ स्त्रियाँ शोभित हैं वहांके सब स्थानोंपर सोनेका झोल फिरा हुआ है, अनेक प्रकारके रत्नोंसे विमानगृह परिपूर्णहो शोभित हो रहे हैं ॥ १६ ॥ बहुतसे सुन्दर घर हैं भूमि सबबराबर है यहांकी जमीन चावल और धानोंसे पूर्णहै और जल ऊखके रसके समान मीठा है ॥ १७ ॥ नगरीमें बहुत स्थानोंपर नगाडे मृदंग वीणा और शंख बजारहे हैं इनके महानादसे वहांकी बड़ी शोभाहो रही है ॥१८॥

सामंतराजसंघैश्चबलिकर्मभिरावृताम् ॥नानादेशनिवासैश्चवणिग्भिरुपशोभिताम् ॥१४॥ प्रासादैरत्नविकृतैःपर्वतैरिवशोभिताम् ॥ कूटागारैश्चसंपूर्णामिन्द्रस्येवामरावतीम् ॥ १५ ॥ चित्रामष्टापदाकारांवरनारीगणैर्युताम् ॥ सर्वरत्नसमाकीर्णांविमानगृहशोभिताम् ॥ १६ ॥ गृहगाढामविच्छिद्रांसमभूमौनिवेशिताम् ॥ शालितंडुलसंपूर्णामिक्षुकांडरसोदकाम् ॥ १७ ॥ दुंदुभीभिर्मृदंगैश्चवीणाभिःपणवैस्तथा ॥ नादितांभृशमत्यर्थंपृथिव्यांतामनुत्तमाम् ॥॥१८॥ विमानमिवसिद्धानांतपसाधिगतंदिवि ॥ सुनिवेशितवेश्मांतांनरोत्तमसमावृताम्॥१९॥ येचबाणैर्नविध्यंतिविविक्तमपरापरम् ॥ शब्दवेध्यंचविततंलघुहस्ताविशारदाः ॥ २० ॥ सिंहव्याघ्रवराहाणांमत्तानांनदतांवने ॥ हंतारोनिशितैःशस्त्रैर्बलाद्बाहुबलैरपि ॥२१॥ तादृशानांसहस्त्रैस्तामभिपूर्णांमहारथैः ॥ पुरीमावासयामासराजादशरथस्तदा ॥ २२ ॥ तामग्निमद्भिर्गुणवद्भिरावृतांद्विजोत्तमैर्वेदषडंगपारगैः ॥ सहस्रदैःसत्यरतैर्महात्मभिर्महर्षिकल्पैर्ऋषिभिश्चकेवलैः ॥ २३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणेवाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकांडेपंचमःसर्गः ॥ ५ ॥

अधिक क्या सिद्ध पुरुष इस स्थानको तपस्याके उपयुक्त जान विमानके समान आश्रय करते हैं यहां श्रेष्ठ पुरुषगण सुन्दर भेष धरे सदा शोभा पाते हैं ॥१९॥ जो विविक्त अर्थात् सहायरहित हैं जो पिता और पुत्रसे रहितहैं जो विरोध डलवा कर भागजाते हैं ऐसोंकोभीजो बाणोंसे विद्ध नहींहो सकते उनको लघु हस्तवाले चतुर शब्दवेधी शिकार खलको मार डालते हैं जहां ऐसे सहस्त्रों वीर हैं ॥ २० ॥ मतवाले और शब्द करते हुए सिंह व्याघ्र और सूकरोंको वनमें तीक्ष्ण अस्त्र और बाहुबलसे मारनेवाले ॥ २१ ऐसे अनगिन्त महारथी इस नगरीकी निरन्तर रक्षा करते हैं ऐसी पुरीमें राजा दशरथ वास करते हैं ॥२२॥ साग्निक गुणवान् वेदवेदाङ्ग और षडंगके जानने वाले सत्य परायण सहस्त्रोंके दाता, महर्षिगणके समान ऋषि और ब्राह्मण दशरथजीकी राजधानीमें वास करते हैं ॥२३॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे

वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकांडे भाषायां पंचमःसर्गः ॥ ५ ॥ उस अयोध्यामें वेदके जाननेवाले सम्पूर्ण वस्तुओंके संग्रह करनेवाले दूरदर्शी महातेजस्वी अयोध्या और सब देशमें रहनेवालेके प्रिय ॥१॥ इक्ष्वाकुवंशमें महारथी यज्ञ करनेवाले इन्द्रियजित परम धर्मात्मा महर्षियोंके समान राजर्षि त्रिलोकीमें विख्यात ॥ २ ॥ बलवान् जिन्होंने शत्रुओंको मार डाला जिनके बहुत सारे मित्र अधिक तो क्या कहैं धन धान्यके इकठा करनेमें इन्द्र और कुबेरके समान विख्यात ॥३॥ जैसे मनुजी महातेजस्वी लोककी रक्षा करनेवाले हैं वैसेही महाराज दशरथजी प्रजाकी रक्षा करते थे ॥४॥ जिस प्रकार अमरावती अमरनाथ इन्द्रसे रक्षित होती है वैसेही सत्य प्रतिज्ञ महाराज दशरथजी धर्म अर्थ कामकी सेवा करते हुए अयोध्याका पालन करते थे।५॥ उनके राज्यमें नगरीकी प्रजा धर्म परायण शास्त्रवित् निर्लोभ और सत्य बोल-

तस्यांपुर्यामयोध्यायांवेदवित्सर्वसंग्रहः ॥ दीर्घदर्शीमहातेजाःपौरजानपदप्रियः ॥१॥ इक्ष्वाकूणामतिरथोयज्वाधर्मपरोवशी ॥ महर्षिकल्पो राजर्षिस्त्रिषुलोकेषुविश्रुतः ॥ २ ॥बलवान्निहतामित्रोमित्रवान्विजितेंद्रियः ॥ धनैश्वसंचयैश्चान्यैःशक्रवैश्रवणोपमः ॥ ३ ॥ यथामनुर्महातेजालोकस्यपरिरक्षिता ॥ तथादशरथोराजालोकस्यपरिरक्षिता ॥४॥ तेनसत्याभिसंधेनत्रिवर्गमनुतिष्ठता ॥ पालितासापुरीश्रेष्ठाइंद्रेणेवामरावती ॥ ५ ॥ तास्मिन्पुरवरेहृष्टाधर्मात्मानोबहुश्रुताः ॥ नरास्तुष्टाधनैःस्वैःस्वैरलुब्धाःसत्यवादिनः ॥ ६ ॥ नाल्पसन्निचयःकश्चिदासीत्तस्मिन्पुरोत्तमे ॥ कुटुम्बीयोह्यसिद्धार्थोऽगवाश्वधनधान्यवान् ॥७॥ कामीवानकदर्योवानृशंसःपुरुषःक्वचित् ॥ द्रष्टुंशक्यमयोध्यायांनाविद्वान्नचनास्तिकः ॥ ८ ॥ सर्वेनराश्चनार्यश्चधर्मशीलाःसुसंयताः ॥ मुदिताःशीलवृत्ताभ्यांमहर्षयइवामलाः ॥९॥ नाकुण्डलीनामुकुटीनास्रग्वीनाल्पभोगवान् ॥ नामृष्टोननलिप्तांगोनासुगंधश्चविद्यते ॥ १० ॥ नामृष्टभोजीनादातानाप्यनंगदनिष्कधृक् ॥ नाहस्ताभरणोवापिदृश्यतेनाप्यनात्मवान् ॥ ११ ॥ नानाहिताग्निर्नायज्वानक्षुद्रोवानतस्करः ॥ कश्चिदासीदयोध्यायांनचावृत्तोनसंकरः ॥ १२ ॥

नेवाली थी॥६॥ लोग अपने २ धनसे सन्तुष्ट रहते थे सब आवश्यकतानुसार उत्तमोत्तम द्रव्य इकट्ठे कर रखते थे, घर घरमें गौ घोड़े और धन धान्य संचय रहता था उनके शासन कालमें जिसकी जो अभिलाषा होती वह पूर्ण हो जाती॥७॥ कोई मनुष्य कामी कादर नृशंस क्रूर नहीं था न उस अयोध्यपुरीमें कोई नास्तिक और मूर्ख था ८॥ सब नर नारी धर्म शील और जितेन्द्रिय थे और सबही महर्षियोंके समाननिर्मल स्वभाव और प्रसन्न थे ॥९॥ सबही कुण्डल किरीट और माला धारण करते पवित्र भोजन खाते पीते इतर सुगन्ध चन्दनादिक लगाते थे,इनसे रहित कोई न था॥१०॥ न कोई ऐसा बसता था जो सुन्दर भोजन न करता हो, दाता न हो; कंठा बाजू और कंकणादि सब पहिरे थे सबका अंतःकरण पवित्र था॥११॥ इनको ऐसा बसता था जो अग्निहोत्र और बलिवैश्वदेव न करता हो सबही यज्ञमें दीक्षित थे राज्यमें

कोई नीच, तस्कर, दुश्चरित्र और वर्णसंकर नहीं था॥ १२॥ब्राह्मणइंद्रियोंकेजीतनेवाले आत्म कर्ममें रत रहनेवाले, दानाध्ययनमें परायण और पतिग्रहदाननहीं लेते थे॥ १३॥कोईभी नास्तिक झूँठ बोलनेवालाथोडापढ़ा हुआ निन्दाकरनेवाला और व्रतादिकार्योंसे हीन मूर्ख नहीं था॥ १४॥सबही षडङ्ग सहित वेद पढ़ते थे कोईभी व्रतरहित अल्पज्ञानी दरिद्री,पागल या व्यथित नहीं था॥ १५॥नरनारी कोई भी रूपलावण्यहीन व कुरूप दृष्टि नहींआता था किसीके मनकाभाव राजभक्ति के विरुद्ध नहीं था ऐसे पुरुष अयोध्यामें वास करते थे॥ १६॥ब्राह्मणादिचारों वर्ण देवता और आतिथिकी पूजा करते थे यहांतक कि,सभीकृतज्ञ दाता औरशूरथे पराक्रम करके संयुक्त थे॥ १७॥सभी मनुष्य बड़ी उमरवाले और सत्यधर्माव लम्बी थे किसीकी अकालमृत्यु नहीं होती थी,पुत्र पौत्र कलत्र सहित सब सुखपूर्वक

स्वकर्मनिरतानित्यब्राह्मणाविजितेंद्रियाः ॥ दानाध्ययनशीलाश्चसंयताश्चप्रतिग्रहे ॥ १३ ॥ नास्तिकोनानृतीवापिनकश्चिदबहुश्रुतः ॥ नासूयकोनचाशक्तोनाविद्वान्विद्यतेक्वचित् ॥ १४ ॥ नाषडंगविदत्रास्तिनाव्रतोनाबहुश्रुतः ॥ नदीनःक्षिप्तचित्तोवाव्यथितोवापिकश्चन ॥ १५ ॥ कश्चिन्नरोवानारीवानाश्रीमान्नाप्यरूपवान्॥द्रष्टुंशक्यमयोध्यायांनापिराजन्यभक्तिमान्॥ १६॥वर्गेष्वग्र्यचतुर्थेषुदेवतातिथिपूजकाः॥कृतज्ञाश्च वदान्याश्चशूराविक्रमसंयुताः ॥ १७ ॥ दीर्घायुषोनराःसर्वेधर्मंसत्यंचसंश्रिताः ॥ सहिताःपुत्रपौत्रैश्चनित्यस्त्रीभिपुरोत्तमे ॥१८॥ क्षत्रंब्रह्ममुखं चासीद्वैश्याःक्षत्रमनुव्रताः ॥ शूद्राःस्वकर्मनिरतास्त्रीन्वर्णानुपचारिणः ॥ १९ ॥ सातेनेक्ष्वाकुनाथेन पुरीसुपरिरक्षित ॥यथापुरस्तान्मनुनामानवेन्द्रेणधीमता ॥२०॥ योधानामग्निकल्पानांपेशलानाममर्षिणाम॥संपूर्णकृतविद्याः नांगुहाकेसरिणामिव ॥२१॥ कांबोजविषयेजातैर्बाह्लीकेश्चहयोत्तमैः ॥ वनायुजैर्नदीजैश्चपूर्णाहरिहयोत्तमैः ॥२२॥ विंध्यपर्वतजैर्मत्तैः पूर्णाहैमवतैरपि ॥ मदान्वितैरतिबलैर्मातंगैःपर्वतोपमैः ॥२३॥

उस नगरीमें कालयापन करते थे॥ १८॥क्षत्रिय ब्राह्मणोंकी आज्ञासे चलते वैश्यगण क्षत्रियोंके अनुवर्ती रहते इसी भाँति शूद्र अपनेकर्ममेंअनुरक्त रहकर ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्योंकी सेवामें नियुक्त रहते थे॥ १९॥जैसे पूर्व कालमें बुद्धिमान् प्रजापति मनुजीसे यह राजधानी रक्षित हुईथीइसीप्रकार इक्ष्वाकुनाथदशरथजीने उसका शासन किया था॥ २०॥जिस प्रकार सिंहोंद्वारा पर्वतोंकी गुफायें पूर्ण होजाती हैं वैसेही यह राजधानी अग्नितुल्यतेजस्वी असहिष्णुसरलस्वभाव धनुर्विद्या पारदर्शी वीरोंसे परिपूर्ण थी ॥ २१॥ यह पुरी काम्बोज बाह्लीक जातिके श्रेष्ठ घोड़ोंसे भरी रहती बनायुदेश और सिंधुनदीके समीप देशके घोडासेजोउच्चैःश्रवाके तुल्य थे पूर्ण थी ॥ २२॥ इसीप्रकार विन्ध्यपर्वतके उत्पन्न हुए हिमालयोत्पन्न पर्वताकार अतिबली मदवालेहाथियोंसे अयोध्या भलीभाँति रक्षित रहती थी॥ २३॥

ऐरावतके कुलके महापद्मके कुलके अञ्जय और वामनवंशके हथियोंसे॥२४॥भद्र,मन्द्र, मृग, भद्र, मन्द्र, मृग. और भद्र मन्द्र, भद्रमृग और मृगमंद्रनामक संकर हाथियोंसे यह पुरी ढकी रहती थी॥२५॥सब हाथी मतवालेऔर पर्वतोंके समानरहते ऐसे हाथियोंसे यहपुरी पूर्ण थी कोई यहां युद्धकरने नहीं आते. इसकारण अयोध्या इसका नाम सार्थकही है. यद्यपिविस्तारइसकातीनहीयोजनका है, परन्तुदो योजनके मध्यमेंभी कोईयुद्ध करनेका साहसीनहीं होता था॥२६॥तारानाथ जिसप्रकार उडुगणकाशासनकरतेहैं वैसे ही शत्रु दमन कारी महा तेजस्वी राजादशरथजी इस पुरीका पालन करते थे॥२७॥उस सत्य नामावली सुदृढ तोरणोंसे शोभित अर्गल युक्त दिव्य विचित्र गृहोंसे शोभित कल्याण रूप सहस्र लोकोंसे व्याप्तयोध्या पुरीको राजा दशरथ इन्द्रके समान पालन करते थे ॥२८॥इत्यार्षे

ऐरावतकुलीनैश्चमहापद्मकुलैस्तथा ॥ अञ्जनादपिनिष्कान्तैर्वामना दपिचद्विपैः ॥२४॥ भद्रमन्द्रैर्मृगैश्चैवभद्रमंद्रमृगैस्तथा॥भद्रमन्द्रैर्भद्रमृगै मृगमन्द्रैश्चसापुरी ॥२५॥ नित्यमत्तैःसदापूर्णानागैरचलसन्निभैः ॥ सयोजनेद्वेचभूयःसत्यनामाप्रकाशते ॥ २६ ॥ तांपुरींसमहातेजाराजाद शरथोमहान् ॥ शशासशमितामित्रोनक्षत्राणीवचद्रमाः ॥२७॥ तांसत्यनामांदृढतोरणार्गलांगृहैर्विचित्रैरुपशोभितांशिवाम् ॥ पुरीमयोध्यां नृसहस्रसंकुलांशशासवैशक्रसमोमपतिः ॥ २८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आ० बालकांडे षष्ठः सर्गः ॥६॥ तस्यामात्यागुणैरासन्निक्ष्वा कोः सुमहात्मनः मंत्रज्ञश्चेंगितज्ञाश्चनित्यंप्रियहितेरताः ॥ १ ॥ अष्टौबभूवुर्वीरस्यतस्यामात्यायशस्विनः ॥ शुचयश्चानुरक्ताश्चराजकृत्येषु नित्यशः ॥ २ ॥ धृष्टिर्जयंतोविजयःसुराष्ट्रोराष्ट्रवर्धनः ॥ अकोपोधर्मपालश्चसुमंत्रश्चाष्टमोऽर्थवित् ॥ ३ ॥ ऋत्विजौद्वावभिमतौतस्यास्ता मृषिस मौ॥वसिष्ठोवामदेवश्चमंत्रिणश्चतथापरे॥ ४ ॥ सुयज्ञोऽप्यथजाबालिःकाश्यपोऽप्यथगौतमः ॥ मार्कण्डेयस्तुदीर्घायुस्तथाकात्याय नोद्विजः ॥ ५ ॥ एतैर्ब्रह्मर्षिभिर्नित्यमृत्विजस्तस्यपौर्वकाः ॥ विद्याविनीताह्रीमंतःकुशलानियतेंद्रियाः ॥ ६ ॥

श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदि काव्ये बालकांडे भाषायां षष्ठःसर्गः ॥६॥ इक्ष्वाकुवंशीय नृपति महात्मा दशरथजीके प्यारे मंत्रदेनेवाले और चेष्टाके जाननेवाले नित्य हितकारी ॥१॥ उन वीरके शुद्ध और यशस्वीनिरंतर राजकाममेंतत्पर ऐसे आठ अमात्य अर्थात्मंत्री थे वह सब जैसे पवित्रथे वैसेही राजकार्य्यमें नित्य लगे हुये थे ॥२॥ धृष्टि, जयंत, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्धन, अकोप; धर्मपाल और अर्थवित् सुमंत्र यही आठ अमात्य थे॥३॥ऋषिश्रेष्ठ वसिष्ठ और वामदेव यह राजाको यज्ञ कराया करते थे, ऐसे ही और भी ऋषि मंत्रीका कार्य करतेथे॥४॥इनके सिवाय सुयज्ञ,जाबालि, कश्यप,गौतम,बड़ी उमरवालेमार्कण्डेयवकात्यायन यह सब ऋषिलोगभी मंत्री थे॥५॥राजाके पीढ़ियोंसे चले आये यह मंत्री सबब्रह्मर्षियोंके साथ मिलितहोराजकार्यमें सहाय करते थे वह सब विद्वान् विनीतलज्जा

चतुर और जितेंद्रियथे ॥ ६ ॥ यह देखनेमें सुंदर महात्मा शास्त्रनिपुण बड़े पराक्रमी व कीर्तिमान् राजकाजमें सावधान जो कहे सो करनेवालेथे ॥७॥ इनमें तेज, क्षमा, यश भरपूर था, यह सब हास्यमुख हो बात करते थे, क्रोध व दुष्टमतिसे बाध्य होकर यह झूँठ नहीं बोलते थे ॥८॥ वह आत्मा और अनात्माका सब विषय जानते निज पक्ष व शत्रुपक्षके जो कुछ कार्य्य करते हैं, कर दिये हैं व करेंगे; दूत द्वारा यह सब जान लेते थे ॥९॥ यह व्यवहारी कार्यों में चतुर थे प्रथम ही राजाने इनकी परीक्षा कर ली थी यदि पुत्र भी अपराधी हो तो भी यह लोग दंड देनेमें कसर नहीं करते थे ॥१०॥ खजाना इकट्ठा करने और सैन्य संग्रह करनेमें यह लोग बडे यत्नवान् थे निरपराध शत्रुका भी बुरा चाहनेका इनका स्वभाव नहीं था ॥११॥ सबही उत्साह वाले वीरनीति शास्त्रके अनुष्ठान करनेवाले पवित्र लोग जो देशमें वास करते हैं सदा

श्रीमंतश्चमहात्मानः शस्त्रज्ञादृढविक्रमाः ॥ कीर्तिमंतःप्रणिहितायथावचनकारिणः ॥७॥ तेजःक्षमायशःप्राप्ताः स्मितपूर्वाभिभाषणः ॥ क्रोधात्कामार्थहेतोर्वानब्रूयुरनृतंवचः ॥ ८ ॥ तेषामविदितंकिंचित्स्वेषुनास्तिपरेषुवा ॥ क्रियमाणंकृतंवापिचारेणापिचिकीर्षितम् ॥९॥ कुशलाव्यवहारेषुसोहृदेषुपरीक्षिताः ॥ प्राप्ताकालंयथादंडंधारयेयुः सुतेष्वपि ॥१०॥ कोशसंग्रहणेयुक्ताबलस्यचपरिग्रहे ॥ अहितंचापिपुरुषंनहिंस्युरविदूषकम् ॥ ११ ॥ वीराश्चनियतोत्साहाराजशास्त्रमनुष्ठिताः ॥ शुचीनांरक्षितारश्चनित्यंविषयवासिनाम् ॥१२॥ ब्रह्मक्षत्त्रमहिंसंतस्तेकोशंसमपूरयन् ॥ सुतीक्ष्णदंडाःसंप्रेक्ष्यपुरुषस्यबलाबलम् ॥ १३ ॥ शुचीनामेकबुद्धीनांसर्वेषांसंप्रजानताम् ॥ नासीत्पुरेवाराष्ट्रेवामृषावादीनरःक्वचित् ॥१४॥ क्वचिन्नदुष्टस्तत्रासीत्परदाररतिर्नरः ॥ प्रशांतंसर्वमेवासीद्राष्ट्रंपुरवरंचतत् ॥१५॥ सुवाससःसुवेषाश्चतेचसर्वेशुचिव्रताः ॥ हितार्थाश्चनरेंद्रस्यजाग्रतोनयचक्षुषा ॥ १६ ॥ गुरोर्गुणगृहीताश्चप्रख्याताश्चपराक्रमैः ॥ विदेशेष्वपिविज्ञाताःसर्वतोबुद्धिनिश्चयाः ॥ १७ ॥

उनकी रक्षा करते थे ॥१२॥ यह सब मंत्री दोषीका दोष विचारके बल अबल देखकर उसे दण्ड देते, ब्राह्मण क्षत्रियोंके प्रति हिंसाका परिचय न देकर राजकोष पूर्ण करते थे ॥ १३ ॥ निर्मलबुद्धि सब एकमतावलम्बी मंत्रियोंके विचारसे कोई भी मिथ्यावादी उस पुरी व देशमें नहीं था ॥ १४ ॥ खोटे स्वभाववाला दुष्ट व पराई स्त्रीसे प्रीति करनेवाला खोटे व्रतवाला या कुप्रकृतिका पुरुष वहां नहीं था, नगरमें सब जगह शांति विराजमान थी ॥१५॥ राजमंत्रीगण सदा पवित्र वस्त्र पहिनते, वह राजाका हित करनेके लिये सदा तत्पर रहते, न्यायशास्त्रके अनुसार सदा काम करते थे अर्थात् उनके न्यायका नेत्र सदा खुला रहता था ॥ १६ ॥ वह गुरुजनोंके गुण ग्रहण करते और अपने विक्रमके प्रभावसे विख्यात थे दूसरे देशोंकी घटना इन्हें ज्ञात रहती और यह सब जगह अपनी बुद्धिमानीसे

प्रसिद्ध थे ॥ १७ ॥ यह नानागुणोंसे सुपंडित तो थे परन्तु सत्त्व, रज, तम इन तीनों गुणोंसे भी हीन नहीं थे, जैसे यह संधिविग्रहमें निपुण थे वैसे मेल मिलापी भी बड़े थे ॥ १८ ॥ इन लोगोंको गूढ़ मन्त्रणा शक्ति जैसी प्रबल थी ऐसी ही सूक्ष्म बुद्धि भी थी यह नीतिशास्त्रके जाननेवाले और सदा प्रियभाषी थे ॥१९॥ इस भाँति पापरहित राजा दशरथजी ऐसे गुणवान् मंत्रियोंके साथ पृथ्वीका पालन करते थे ॥२०॥ उन्होंने दूतके मुखसे परराष्ट्रोंका तत्त्व जान कर धर्मानुसार प्रजापालनपूर्वक अधर्मको त्याग दिया था ॥२१॥ वह तीनों लोकोंमें दाता प्रसिद्ध थे युद्धोंमें अपनी प्रतिज्ञा सत्य करते थे, इसभाँति वह पुरुषसिंह पृथ्वी का शासन करते थे ॥२२॥ देवनायक जैसे देवलोकका शासन करते हैं वैसे हो उन्होंने जगत्में राज्य किया था उन्होंने अधिक बलवान् व समान शत्रुका मुख

अभितोगुणवंतश्चनचासन्गुणवर्जिताः ॥ संधिविग्रहतत्त्वज्ञाःप्रकृत्यासंपदान्विताः ॥१८॥ मंत्रसंवरणेशक्ताःशक्तासूक्ष्मासुबुद्धिषु ॥ नीतिशास्त्रविशेषज्ञासततंप्रियवादिनः ॥ १९ ॥ ईदृशैस्तैरमात्यैश्चराजादशरथोऽनघः ॥ उपपन्नोगुणोपेतैरन्वशासद्वसुन्धराम् ॥ २० ॥ अवेक्षमाणश्चारेणप्रजाधर्मेणरक्षयन् ॥ प्रजानांपालनंकुर्वन्नधर्मंपरिवर्जयन् ॥ २१ ॥ विश्रुतस्त्रिषुलोकेषुवदान्यःसत्यसंगरः ॥ सतत्रपुरुषव्याघ्रःशशासपृथिवीमिमाम् ॥ २२ ॥ नाध्यगच्छद्विशिष्टंवातुल्यंवाशत्रुमात्मनः ॥ मित्रवान्नतसामंतःप्रतापहतकंटकः ॥ सशशासजगद्राजादिविदेवपतिर्यथा ॥ २३ ॥ तैर्मंत्रिभिर्मंत्रहितेनिविष्टैर्वृतोऽनुरक्तःकुशलैःसमर्थैः ॥ सपार्थिवोदीप्तिमवापयुक्तस्तेजोमयैर्गोभिरिवोदितोऽर्कः ॥ २४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकांडे सप्तमः सर्गः ॥७॥ तस्यत्वेवंप्रभावस्यधर्मज्ञस्यमहात्मनः ॥ सुतार्थंतप्यमानस्यनासीद्वंशकरःसुतः ॥ १ ॥ चिंतयानस्यतस्यैवंबुद्धिरासीन्महात्मनः ॥ सुतार्थंवाजिमेधेनकिमर्थंनयजाम्यहम् ॥ २ ॥ सनिश्चितांमतिंकृत्वायष्टव्यमितिबुद्धिमान् ॥ मंत्रिभिःसहधर्मात्मा सर्वैरपिकृतात्मभिः ॥ ३ ॥

नहींदेखा,उनके मित्र जैसे प्रबल थे अधीनके राजा भी वैसे ही उनको नमते थे और अधिक क्या कहें उनका राज्य निष्कंटक था ॥२३॥ वह किरणमाला मंडित उदय हुए सूर्यदेवके समान मंत्र जाननेमें चतुर परहितकारी अनुरागी सूक्ष्मदर्शी सामर्थ्ययुक्त मंत्रियोंके साथ अतिशोभा पाते थे ॥ २४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीयेआदिकाव्येबालकाण्डे भाषाटीकायांसप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥ ऐसे प्रभावशाली महात्मा धार्मिक दशरथजीने पुत्रकी कामनाके अर्थ तप भी किया तो भी उनके वंशधर कुमार उत्पन्न नहीं हुआ ॥१॥ एक समय यही चिन्ता करते २ उन महात्माने मनमें विचारा कि, पुत्रार्थ अश्वमेधयज्ञका अनुष्ठान मैं क्यों नहीं करता हूँ ॥ २ ॥ फिर उन बुद्धिमान् राजा दशरथजीनेनीति कुशल मंत्रियोंके साथ यज्ञ करना चाहिये ऐसा दृढ़ निश्चय किया ॥ ३ ॥

तब श्रेष्ठमंत्री सुमन्त्रसे संभाषण करके कहा कि, हे सुमंत्र ! तुम गुरुजी और सब पुरोहितोंको मेरेपास लाओ ॥४॥ तबसुनतेही शीघ्र चलनेवाले सुमंत्र शीघ्र जाकर वेदपरायण गुरु वसिष्ठजी पुरोहितोंको राजाके पास लाये ॥५॥ तब सुयज्ञ, वाम देव, जाबालि, कश्यप, वसिष्ठ और अन्य ऋषिश्रेष्ठगण वहां उपस्थित हुए ॥६॥ तब महातमा दशरथजीने उनकी पूजा करके इस प्रकारके धर्मयुक्त मनोहर वचन कहे ॥७॥ मैं पुत्रकी कामना करता हूं मेरे अंतःकरणमें सुखका लेशमात्रभी नहीं अतएव मैं पुत्रके लिये अश्वमेध यज्ञ करनेकी वाञ्छा करता हूं॥८॥ मैं शास्त्रके अनुसार कार्य्य करना चाहता हूं, अब आप लोग यह बात बतलाइये कि, किस प्रकार मेरी मनोवांछा पूर्ण होगी ॥९॥ राजाके मुखसे यह बात सुनकर वसिष्ठादि मुनिगण राजाको वारंवार धन्यवाद व साधुवाद देने लगे॥१०॥ उन्होंने परम

ततोऽब्रवीन्महातेजाः सुमंत्रं मंत्रिसत्तमम् ॥ शीघ्रमानयमेसर्वान्गुरूंस्तान्सपुरोहितान् ॥४॥ ततः सुमंत्रस्त्वरितगत्वात्वरितविक्रमः ॥ समानयत्सतान्सर्वान्समस्तान्वेदपारगान् ॥ ५ ॥ सुयज्ञंवामदेवंचजाबालिमथकाश्यपम् ॥ पुरोहितंवसिष्ठंचयेचाप्यन्येद्विजोत्तमाः ॥ ६ ॥ तान्पूजयित्वाधर्मात्माराजादशरथस्तथा ॥ इदंधर्मार्थसहितंश्लक्ष्णंवचनमब्रवीत् ॥७॥ ममलालप्यमानस्यसुतार्थंनास्तिवैसुखम् ॥ तदर्थंहयमेधेनयक्ष्यामीतिमतिर्मम ॥ ८ ॥ तदहंयष्टुमिच्छामिशास्त्रदृष्टेनकर्मणा ॥ कथंप्राप्स्याम्यहंकामंबुद्धिरत्रविचिंत्यताम् ॥ ९ ॥ ततःसध्विति तद्वाक्यंब्राह्मणाःप्रत्यपूजयन् ॥ वसिष्ठप्रमुखाःसर्वेपार्थिवस्यमुखेरितम् ॥१०॥ ऊचुश्चपरमप्रीताःसर्वेदशरथंवचः ॥ संभाराःसंभ्रियंतांतेतुरगश्चविमुच्यताम् ॥ ११ ॥ सरय्वाश्चोत्तरेतीरेयज्ञभूमिर्विधीयताम् ॥ सर्वथाप्राप्स्यसेपुत्रानभिप्रेतांश्चपार्थिव ॥१२॥ यस्यतेधार्मिकीबुद्धिरियंपुत्रार्थमागता ॥ ततस्तुष्टोऽभवद्राजाश्रुत्वातद्द्विजभाषितम् ॥ १३ ॥ अमात्यानब्रवीद्राजाहर्षव्याकुललोचनः ॥ संभाराःसंभ्रियंतांमेगुरूणांवचनादिह॥ १४ ॥ समर्थाधिष्ठितश्चाश्वः सोपाध्यायोविमुच्यताम् ॥ सरय्वाश्चोत्तरेतीरेयज्ञभूमिर्विधीयताम् ॥ १५ ॥ शांतयश्चापिवर्धंतांयथाकल्पंयथाविधि ॥ शक्यःप्राप्तुमयंयज्ञःसर्वेणापिमहीक्षिता ॥१६॥

प्रीति युक्त हो राजासे कहा कि, यज्ञकी सब सामग्री मँगाकर यज्ञका घोडा छोड़ाजावे॥११॥ सरयूके उत्तर किनारे यज्ञ भूमि बने । हे पार्थिव ! हम कहते हैं कि, इस अनुष्ठानके करनेसे आपके पुत्र होंगे ॥१२॥ जब आपकी बुद्धि धर्ममें प्रवृत्त हुई है तो अवश्यही शुभफल होगा, ब्राह्मणोंकी यह वार्त्ता सुन राजा अति संतुष्ट हुए ॥१३॥ तदनन्तर राजा ने हर्ष विकसित नेत्रोंसे मंत्रियों को सम्बोधन कर कहा आप गुरु देवकी आज्ञासे यज्ञका प्रयोजनीय सामान इकट्ठाकरें॥१४॥ अच्छेरक्षकोंसे रक्षित व उपध्यायके सहित अच्छा समर्थ घोड़ा छोड़ा जावे सरयूके तीर यज्ञ भूमि बनाई जावे॥१५॥ और अल्प तथा विधिके अनुसार शान्तिकी

कल्पना कीजाय, क्योंकि प्रत्येक राजा इस यज्ञको नहीं कर सकते ॥१६॥ इस यज्ञमें बहुतसे विघ्नोंके होनेकी सम्भावना है विशेषतः इसको जानकर विद्वान् ब्रह्मराक्षस इसमें छिद्र ढूंढा करतेहैं॥१७॥विधिविहीन यज्ञ करनेसेयज्ञकर्त्ताका शीघ्र नाशहो जाता है अतएव ऐसा उपाय करना चाहिये कि यज्ञका कार्य विधिपूर्वक होजाय॥१८॥तुम यही विधान करो कारण कि, इस साधनमें समर्थ हो; मंत्रियोंनेजो आज्ञा महाराज कहके राजाज्ञा शिरोधारणकी॥१९॥नरनाथका वाक्यश्रवण करके धर्मज्ञ द्विजगण राजासे सत्कृतहो इन्हैं आशीर्वाद देने लगे॥२०॥अनंतर विप्रमंडली उनकी आज्ञा ले अपने अपने आश्रमको गई, राजा उनको बिदाकर सचिवोंसे बोले॥२१॥ऋत्विजोंने जैसी आज्ञा दीहै यज्ञके अर्थ वैसीहीसामग्रीका विधान करो राजोंमें सिंहसमान राजा दशरथजी उन आयेहुए मंत्रियोंसे यह वचन

नापराधोभवेत्कष्टोयद्यस्मिन्क्रतुसत्तमे॥छिद्रंहिमृगयंतेस्मविद्वांसोब्रह्मराक्षसाः॥१७॥विधिहीनस्य यज्ञस्यसद्यःकर्ताविनश्यति॥तद्यथाविधिपूर्वमेक्रतुरेषसमाप्यते॥१८॥तथाविधानंक्रियतांसमर्थाःसाधनेष्विति॥तथेतिचाब्रुवन्सर्वेमंत्रिणःप्रतिपूजिताः॥१९॥पार्थिवेन्द्रस्यतद्वाक्यंयथापूर्वंनिशम्यते ॥ तथाद्विजास्तेधर्मज्ञावर्धयन्तोनृपोत्तमम् ॥२०॥ अनुज्ञातास्ततःसर्वेपुनर्जग्मुर्यथागतम् ॥ विसर्जयित्वातान्विप्रान्सचिवानिदमब्रवीत्॥२१॥ऋत्विग्भिरुपसंदिष्टोयथावत्क्रतुराप्यताम् ॥ इत्युक्त्वानृपशार्दूलःसचिवान्समुपस्थितान्॥२२॥ विसर्जयित्वा स्वंवेश्मप्रविवेशमहामतिः॥ ततःसगत्वाताःपत्नीर्नरेन्द्रोहृदयंगमाः॥२३॥उवाचदीक्षांविशतयक्ष्येऽहंसुतकारणात् ॥ तासांतेनातिकांतेनवचनेनसुवर्चसाम्॥२४॥मुखपद्मान्यशोभंतपद्मानीवहिमात्यये॥२५॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च०सा० बालकांडे अष्टमःसर्गः ॥८॥ एतच्छ्रुत्वारहःसूतोराजानमिदमब्रवीत् श्रूयतांतत्पुरावृत्तं पुराणे च मयाश्रुतम् ॥ १ ॥ ऋत्विग्भिरुपदिष्टोऽयंपुरावृत्तोमयाश्रुतः॥ सनत्कुमारोभगवान्पूर्वंकथितवान्कथाम् ॥ २ ॥ ऋषीणांसंनिधौराजंस्तवपुत्रागमंप्रति ॥ काश्यपस्यचपुत्रोऽस्तिविभांडकइतिश्रुतः ॥ ३ ॥

कहकर॥२२॥उनको बिदा दे बुद्धिमान् राजा अपनेरनिवासको चलेगये और वहां जाकर अपने हृदयको आनंद देनेवाली रानियोंसे॥२३॥यह वचन बोले कि, मैं पुत्रकी कामनासे यज्ञ करूँगा तुमभी इस कार्यमें दृढ़ निश्चय हो नियममें दीक्षित होवो रानियोंने राजा दशरथके ऐसे मनोहर वचन श्रवणकर॥२४॥वसंतकालमें कमलिनी जैसे शोभाको प्राप्त होतीहै वैसेही उनका मुखकमल खिलगया॥२५॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्येबालकांडेभाषाटीकायामष्टमःसर्गः॥८॥ राजा यज्ञ निश्चय करेंगे यह जानकर सुमन्त्रने उनसे अकेलेमें कहा; महाराज ! मैंने इस यज्ञके विषयमें पुराणोंमें जो कुछ सुना है वह सुनिये ॥१॥ सन्तानके अर्थ यज्ञ करना ऋषियोंका मतहै परन्तु मैंने इसमें कुछ विशेषसुनाहै पूर्वकालमें महाभगवान् सनत्कुमारजीने॥२॥ऋषियोंके निकट आपके पुत्रउत्पत्तिके विषयमेंयह

कथा कही थी की; महर्षि कश्यपजीके विभाण्डक नामक एक पुत्र हैं ॥ ३ ॥ उनके पुत्र ऋष्यशृंग नामवाले होंगे वह पिताके यत्नसे बड़े होकर बनवासीकी भांतिकाल व्यतीत करेंगे ॥४॥ उन ब्राह्मण श्रेष्ठको पिताकी आज्ञा पालन करनेके सिवाय और कुछ ज्ञान नहीं होगा, वह महात्मा दो प्रकारका ब्रह्मचर्य्य करेंगे ॥५॥ यह बात द्विजातिगण सदा करते हैं और यह लोक प्रसिद्ध वार्ता है, इस प्रकारसे अग्निकी परिचर्या और पितृसेवामें ऋष्यशृङ्गको कुछ काल बीतेगा उसी समय रोमपाद नाम एक बड़ा प्रतापी राजा ॥६॥७॥ अंग देशमें प्रसिद्ध महाबलशाली होगा, इस राजाके दोषसे अत्यन्त राज्यमें दारुण सर्व लोकोंको भय देनेवाली ॥८॥ घोर अनावृष्टि होगी उससे सब लोक व्याकुल हो जायँगे अनावृष्टिसे राजा अति चिन्तित हो ॥९॥ शास्त्रवेता विप्रोंको बुलाकर कहेगा आप लोकचार

ऋष्यशृङ्गइतिख्यातस्तस्यपुत्रोभविष्यति॥ स वनोनित्यसंवृद्धो मुनिर्वनचरःसदा॥४॥नान्यंजानातिविप्रेंद्रोनित्यंपित्रनुवर्तनात्॥द्वैविध्यंब्रह्मचर्यस्यभविष्यतिमहात्मनः ॥ ५ ॥ लोकेषुप्रथितंराजन्विप्रैश्चकथितंसदा ॥ तस्यैवंवर्तमानस्यकालःसमभिवर्तत ॥ ६ ॥ अग्निंशुश्रूषमाणस्यपितरं च यशस्विनम्॥ एतस्मिन्नेव कालेतुरोमपादःप्रतापवान्॥७॥ अंगेषुप्रथितोराजाभविष्यतिमहाबलः ॥ तस्यव्यतिक्रमाद्राज्ञो भविष्यति सुदारुणा॥८॥ अनावृष्टिःसुघोरावैसर्वलोकभयावहा ॥ अनावृष्ट्यांतुवृत्तायां राजादुःखसमन्वितः॥९॥ब्राह्मणाञ्छ्रुतसंवृद्धान्समानीयप्रवक्ष्यति॥भवंतःश्रुतकर्माणोलोकचारित्रवेदिनः॥१०॥समादिशंतुनियमंप्रायश्चित्तंयथाभवेत्॥इत्युक्तास्तेततोराज्ञासर्वेब्राह्मणसत्तमाः॥११॥वक्ष्यन्तितेमहीपालंब्राह्मणावेदपारगाः ॥ विभांडकसुतंराजन्सर्वोपायैरिहानय॥१२॥ आनाय्यतुमहीपालऋष्यशृङ्गंसुसत्कृतम् ॥ विभांडकसुतंराजन्ब्राह्मणंवेदपारगम् ॥ १३ ॥प्रयच्छकन्यां शांतां वै विधिनासुसमाहितः॥ तेषांतुवचनं श्रुत्वाराजाचिंतांप्रपत्स्यते ॥१४॥ केनोपायेनवैशक्यइहानेतुंसवीर्यवान् ॥१५॥ ततोराजाविनिश्चित्यसहमंत्रिभिरात्मवान् ॥ पुरोहितममात्यांश्चप्रेषयिष्यतिसत्कृतान् ॥१६॥

श्रुतिविहित कार्योंको जानते हैं ॥१०॥ अतएव इस मेरे पापका जो प्रायश्चित्त हो सो मुझे बताइये, इस रीतिसे वे ब्राह्मण श्रेष्ठ उस राजाकी बात सुनकर ॥ ११ ॥ वे सब वेद पारग श्रेष्ठ ब्राह्मण कहैंगे हे महीपाल! आप विभाण्डकके पुत्रको किसी उपायसे यहां लिवा लाइये ॥१२॥ हे राजन्! उन वेद पारग विभाण्डक मुनिके पुत्र ऋष्यशृंगको लाय विधिपूर्वक सत्कार कर ॥१३॥ उनको अपनी कन्या शान्ता विधिपूर्वक दे दीजिये उनकी बात सुन राजाको चिन्ता होगी॥१४॥ कि, किस उपायसे उस वीर्यवान् ऋषिको यहां बुलाऊं उसकी यह चिन्ता प्रबल हो जायगी॥१५॥ तदनन्तर मंत्रियोंसे सलाह करके पुरोहित व और २ सेवकोंको वहां जाने

की आज्ञा देंगे ॥१६॥ वह लोग राजाके वचन सुन व्यथितहो और माथ नवाय हमलोग महर्षि विभाण्डकके डरसे ऋष्यशृङ्गके पास नहीं जा सक्ते यह कह राजाकी बहुत विनती करेंगे ॥१७॥ फिर वे सब शोचकर इसका उपाय कहेंगे कि, हम ऋष्यशृङ्ग को यहां ले आवेंगे,हमने जो उपाय स्थिर किया है उससे कोई दोष भी नहीं होगा ॥१८॥ तदनंतर अंगनाथने सुन्दर सुन्दर वेश्यागणोंकी सहायसे ऋष्यशृंगको अपने देशमेंला शास्त्रानुसार शांता अपनी कन्याको उन्हें विवाह कर अनावृष्टि दूर कराई ॥१९॥ आपके जामाता ऋष्यशृंग आपकी पुत्रकामना पूर्ण करेंगे सनत्कुमारजीने जो कहा था वही मैंने आपको सुनाया ॥ २० ॥ राजा दशरथजी सुमंत्रकी सलाहसे संतुष्टहो उससे कहनेलगे हे सूत ! जैसे ऋष्यशृंगको बुलाया गया तुमवही उपाय कहो ॥२१॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बाल

तेतुराज्ञो वचः श्रुत्वाव्यथितावनताननाः॥नगच्छेमऋषेर्भीताअनुनेष्यंति तं नृपम्॥१७॥वक्ष्यंतिचिंतयित्वातेतस्योपायांश्चतान्क्षमान्॥आनेष्यामोवयंविप्रंनचदोषो भविष्यति ॥१८॥ एवमंगाधिपे नैवगणिकाभिर्ऋषेःसुतः ॥ आनीतोऽवर्षयद्देवःशांताचास्मैप्रदीयते ॥१९॥ ऋष्यशृंगस्तुजामातापुत्रांस्तवविधास्यति ॥ सनत्कुमारकथितमेतावद्व्याहृतंमया ॥ २० ॥ अथहृष्टोदशरथःसुमंत्रंप्रत्यभाषत ॥ यथर्ष्यशृंगस्त्वानीतोयेनोपायेनसोच्यताम् ॥२१॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकांडे नवमः सर्गः ॥ ९ ॥ सुमंत्रश्चोदितोराज्ञाप्रोवाचेदंवचस्तदा ॥ यथर्ष्यशृंगस्त्वानीतोयेनोपायेनमंत्रिभिः ॥ तन्मेनिगदितंसर्वंशृणुमेमंत्रिभिःसह ॥ १ ॥ रोमपादमुवाचेदंसहामात्यःपुरोहितः ॥ उपायोनिरपायोऽयमस्माभिरभिचिंतितः ॥ २ ॥ ऋष्यशृंगोवनचरस्तपःस्वाध्यायसंयुतः ॥ अनभिज्ञस्तुनारीणांविषयाणांसुखस्य च ॥ ३ ॥ इंद्रियार्थैरभिमतैर्नरचित्तप्रमाथिभिः ॥ पुरमानाययिष्यामःक्षिप्रंचाध्यवसीयताम् ॥ ४ ॥

कांडे भाषाटीकायां नवमःसर्गः ॥९॥ अनंतर राजा दशरथजीने हर्षचित्तहो सुमंत्रसे कहा कि, जिस प्रकार अंगराज ऋष्यशृंग को लाये थे वह तुम मुझसे कहो राजाके वचन सुन सुमंत्र बोलेकि जिस भाँति राजा लोमपादऋष्यशृंगको अपने राज्यमें लायेथे आप मंत्रियोंके सहित उसे श्रवण कीजिये ॥१॥ राजा लोमपादकी बात सुनके उनके कुल पुरोहित और मंत्री उनसे कहने लगे कि ऋष्यशृंगके लाने को हमने जो उपाय ठीक किया है वह कभी विफल नहीं होगा ॥ २ ॥ वह ऋष्यशृंग मुनीन्द्र वेदाध्ययन संपन्न वनमें रहते हैं वह स्त्रीसहवासके सुख और विषयको नहीं जानते ॥ ३ ॥ हम लोग चित्तको उन्माद करनेवाले लोभनीय

पदार्थोंके द्वारा उनको यहां ले आनेमें समर्थ होंगे सो आप जल्दी उनको इकट्ठा कीजिये ॥४॥ परम सुंदर वेश्यायें वहां श्रृंगार करके जावें, वह बहुतसे उपाय करके लुभायकर उन्हें यहां ले आवेंगी॥ ५ ॥ राजाने यह बात श्रवणकर पुरोहितों पर इस कार्यका भार सौंपा पुरोहितोंके सम्मत होनेसे मंत्रीगण राजीहो इस कार्यका सामान करने लगे ॥६॥ वराङ्गनायें मंत्रियोंकी आज्ञासे वनमें प्रवेशकर महर्षि के आश्रमके निकट एकांतमें उनके देखनेका यत्नकरने लगीं ॥ ७ ॥ वह ऋषिकुमार अतिशय धीरस्वभाव नित्य आश्रममें रहते और पिताके प्यारे थे इस कारण कभी आश्रम छोड़कर कहीं न जाते थे ॥८॥ इन महात्मा तपस्वीने जन्माविधि स्त्री पुरुष वा वहां का कोई जन्तु नगरका अथवा राष्ट्रका मनुष्यमात्र नहीं देखा था॥९॥एकदिन वह विभांडकके पुत्र यहां अपनी इच्छासे घूमतेहुए

गणिकास्तत्रगच्छंतुरूपवत्यःस्वलंकृताः ॥ प्रलोभ्यविविधोपायैरानेष्यन्तीहसत्कृताः ॥५॥ श्रुत्वातथेतिराजाचप्रत्युवाचपुरोहितम् ॥ पुरोहितोमंत्रिणश्चतदाचक्रुश्चतेतथा ॥६॥ वारमुख्यास्तुतच्छ्रुत्वावनंप्रविविशुर्महत् ॥ आश्रमस्याविदूरेऽस्मिन्यत्नंकुर्वंतिदर्शने ॥७॥ ऋषेःपुत्रस्य धीरस्यनित्यमाश्रमवासिनः ॥ पितुःसनित्यसंतुष्टोनातिचक्रामचाश्रमात् ॥८॥ नतेनजन्मप्रभृतिदृष्टपूर्वंतपस्विना ॥ स्त्रीवापुमान्वायच्चान्य स्सत्त्वंनगरराष्ट्रजम् ॥ ९ ॥ ततःकदाचित्तंदेशमाजगामयदृच्छया ॥ विभांडकसुतस्तत्रताश्चापश्यद्वरांगनाः ॥१०॥ ताश्चित्रवेषाःप्रमदागायंत्योमधुरस्वरम् ॥ ऋषिपुत्रमुपागम्यसर्वावचनमब्रुवन् ॥ ११ ॥ कस्त्वंकिंवर्तसेब्रह्मञ्ज्ञातुमिच्छामहेवयम् ॥ एकस्त्वंविजनेदूरेवनेचरसिशंस नः ॥१२॥ अदृष्टरूपास्तास्तेनकाम्यरूपावनेस्त्रियः ॥ हार्दात्तस्यमतिर्जाताआख्यातुंपितरंस्वकम् ॥ १३ ॥ पिताविभांडकोऽस्माकंतस्याहंसुतऔरसः ॥ ऋष्यशृंगइतिख्यातंनामकर्मचमेभुवि ॥१४॥ इहाश्रमपदोऽस्माकंसमीपेशुभदर्शनाः॥ करिष्येवोऽत्रपूजांवैसर्वेषांविधिपूर्वकम् ॥ ॥ १५ ॥ ऋषिपुत्रवचःश्रुत्वासर्वासांमतिरासवै॥ तदाश्रमपदंद्रष्टुंजग्मुःसर्वास्ततोङ्गनाः ॥ १६ ॥

चले आये जहां यह बारविलासिनियें विराजती थीं जब इनको देखा ॥१०॥ तब उनको आता हुआ देख विचित्रवेषवाली गणिकायें गीत गाने लगीं और ऋषि पुत्रके पास आकर सब बोलीं॥११॥हे ब्राह्मण ! आप कौन हैं ? क्या करते हैं ? और इस वनमें इकले घूमने का क्या कारण है ? यह हमको कहो ॥१२॥तब ऋषिकुमार उन अनदेखी कामरूप अंगनाओंको वनमें देख प्रीतिसहित अपना नाम धाम बतानेको अग्रसर हुए ॥१३॥ उन्होंने कहा मैं विभाण्डक मुनिका औरस पुत्र हूँ नाम ऋष्यशृंग है तप करना हमारा कार्य्य है वह तो लोकमें प्रसिद्ध है ॥ १४ ॥ हे चित्रदर्शनों ! यहांसे निकटही हमारा आश्रम है वहां मैं तुम्हारा यथाविधि आदर सन्मान करूंगा ॥ १५ ॥ ऋषिकुमारके कहे जानेपर वह सब वेश्या उनके आश्रमके देखने की इच्छा करती हुई और वे फिर सब वेश्या उनके

आश्रममें गईं ॥ १६ ॥ उनके पहुँचतेही यह अर्घ्य, यह पाद्य, यह फल मूल इत्यादि उपचार देकर ऋषिनन्दनने उनका अति सत्कार किया ॥ १७ ॥ उन्होंने सत्कार पाकर विभाण्डकके भयसे भीतहो शीघ्र वहांसे लौटना चाहा॥ १८ ॥उन्होंने फिरनेके समय कहा हे द्विज! आपभी हमारे यह मीठे फल अंगीकार कीजिये आपका मंगल होगा और आप इनको शीघ्र खाइये ॥१९॥ फिर उन सबने बहुत प्रफुल्ल मनसे ऋषिकुमारको हृदयसे लगा उनको अनेक प्रकारके स्वादयुक्त लड्डू इत्यादि खानेके पदार्थ दिये ॥२०॥ पूर्वमें न खाये हुए वह सब खाकर तेजस्वी ऋषिकुमारने विचारा कि,ऐसे सुन्दर मीठे फल वनवासियोंने कभी नहीं खाये और उनको फलही माना ॥२१॥ तदनन्तर महर्षि विभाण्डकके भयसे भीत हो वह वाराङ्गनायें किसी प्रकारका व्रतकह ऋषिकुमारसे विदाले

गतानांतुततःपूजामृषिपुत्रश्चकारह ॥ इदमर्घ्यमिदंपाद्यमिदंमूलंफलंचनः ॥१७॥ प्रतिगृह्यतुतांपूजांसर्वाएवसमुत्सुकाः ॥ ऋषेर्भीताश्चशीघ्रंतुगमनायमतिंदधुः ॥ १८ ॥ अस्माकमपिमुख्यानिफलानीमानिहेद्विज ॥ गृह्णाणविप्रभद्रंतेभक्षयस्वचमाचिरम् ॥१९ ॥ ततस्तास्तंसमालिङ्ग्य सर्वाहर्षसमन्विताः ॥ मोदकान्प्रददुस्तस्मैभक्ष्यांश्चविविधाञ्छुभान् ॥ २० ॥ तानिचास्वाद्यतेजस्वीफलानीतिस्ममन्यते ॥ अनास्वादितपूर्वाणिवनेनित्यनिवासिनाम् ॥ २१ ॥ आपृच्छ्येचचतदाविप्रव्रतचर्यांनिवेद्यच ॥ गच्छंतिस्मापदेशात्ताभीतास्तस्यपितुःस्त्रियः॥ २२ ॥ गतासुतासुसर्वासुकाश्यपस्यात्मजोद्विजः॥अस्वस्थहृदयश्चासीद्दुःखाच्चपरिवर्तते॥२३॥ततोऽपरेद्युस्तंदेशमाजगामसवीर्यवान् ॥ विभांडकसुतः श्रीमान्मनसाचिंतयन्मुहुः ॥२४॥ मनोज्ञायत्रताहृष्टावारमुख्याःस्वलंकृताः ॥ दृष्ट्वैवचततोविप्रमायांतंहृष्टमानसाः ॥ २५ ॥ उपसृत्यततः सर्वास्तास्तमूचुरिदंवचः॥ एह्याश्रमपदंसौम्यअस्माकमितिचाब्रुवन् ॥ २६ ॥ चित्राण्यत्रबहूनिस्युर्मूलानिचफलानिच ॥ तत्राप्येषविशेषेणविधिर्हिभविताध्रुवम् ॥ २७ ॥ श्रुत्वातुवचनंतासांसर्वासांहृदयंगमम् ॥ गमनायमतिंचक्रेतंचनिन्युस्तथास्त्रियः ॥ २८ ॥

उनके आश्रमसे चली आईं ॥ २२ ॥ उनके चले जानेपर कश्यपपुत्र ऋष्यशृंगका हृदय उनके विरहसे अति व्याकुल हुआ ॥ २३ ॥ अनन्तर वह वीर्यवान् चिंता करते२ पहिले दिन जहां वह सब स्त्रियें मिली थीं दूसरे दिन फिर वहाँ आये॥२४॥जहां मन मुग्ध करनेवाली शृंगार किये हुये वह स्त्रियें थीं इन विप्र को देखतेही अति सन्तुष्ट हुईं ॥ २५ ॥ और सबने आगे बढ़कर कहा हे सौम्य ! यहांसे कुछ दूर हमारा आश्रम है आप वहां चलिये ॥ २६ ॥ हमारे आश्रममें विचित्र कन्द मूल, फल और भोजन यहांसे अधिक हैं वहां यहांकी अपेक्षा आपका अतिथि सत्कार कुछ विशेष होगा ॥२७॥ उनकी हृदयानन्द दायिनी बात

श्रवणकर ऋषिपुत्र उसी समय वहां जानेको सम्मत हुए और वारनारियें उनको लेकर नगरमें चली आईं ॥२८॥ इस भाँति उन ऋषिकुमारको रोमपादके राज्यमें पहुँचतेही प्रजा आनंदमें मग्न हो गई और शचीनाथभी अनर्गलवृष्टि करने लगे॥२९॥राजाने वर्षाके साथ तपस्वी ऋषिकुमारको आता देख सविनय आगे बढ़ उनके चरणोंमें वन्दना की॥३०॥फिर उनको यथाविधि अर्घ्य देनेपर छलसे लाये गये हैं पीछे यह जानकर कुपित न होजायँ इस कारण उनकी प्रसन्नताके हेतु प्रार्थना करने लगे॥३१॥अनंतर इन्हें रनिवासमें लेजाने और कन्या शान्ताको यथाविधि समर्पण कर देनेपर वह अतिसंतुष्ट हुए॥३२॥हे नरेन्द्र इस भाँति महातेजा ऋष्यशृंगसबका काम पूर्ण हो सहधर्मिणीशान्ताके सहित वहां रहनेलगे॥३३॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्येबालकांडेभाषाटीकायांदशमः सर्गः॥१०॥

तत्रचानीयमानेतुविप्रेतस्मिन्महात्मनि ॥ ववर्षसहसादेवोजगत्प्रह्लादयंस्तदा ॥ २९ ॥ वर्षेणैवागतंविप्रंतापसंसनराधिपः ॥ प्रत्युद्गम्यमुनिःप्रह्वःशिरसाचमहींगतः ॥ ३० ॥ अर्घ्यंचप्रददौतस्मैन्यायतःसुसमाहितः ॥ वव्रेप्रसादंविप्रेंद्रान्माविप्रंमन्युराविशेत्॥ ३१ ॥ अन्तःपुरंप्रवेश्यास्मैकन्यांदत्त्वायथाविधि ॥ शांतांशांतेनमनसाराजाहर्षमवापसः ॥३२॥ एवंसन्यवसत्तत्रसर्वकामैःसुपूजितः ॥ ऋष्यशृंगोमहातेजाःशांतयासहभार्यया ॥ ३३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदि० ॥ चतुर्विंशत्साहस्र्यां संहितायां बालकांडे दशमः सर्गः ॥१०॥ भूयएवहिराजेंद्रशृणुमेवचनंहितम्॥यथासदेवप्रवरःकथयामासबुद्धिमान्॥१॥ इक्ष्वाकूणांकुलेजातोभविष्यतिसुधार्मिकः ॥ नाम्नादशरथोराजाश्रीमान्सत्यप्रतिश्रवः॥ २ ॥ अंगराजेनसख्यंचतस्यराज्ञोभविष्यति ॥ कन्याचास्यमहाभागाशांतानामभविष्यति ॥ ३ ॥ पुत्रस्त्वंगस्यराज्ञस्तुरोमपादइति श्रुतः ॥ तंसराजादशरथोगमिष्यतिमहायशाः ॥४॥ अनपत्योऽस्मिधर्मात्मञ्छांताभर्तामभक्रतुम् ॥ आहरेतत्वयाज्ञप्तःसंतानार्थंकुलस्य च ॥ ५ ॥ श्रुत्वाराज्ञोऽथतद्वाक्यंमनसाचविचिंत्यच ॥ प्रदास्यतेपुत्रवंतंशांताभर्तारमात्मवान् ॥ ६ ॥

हे राजेन्द्र! देवप्रवर धीमान् सनत्कुमारजीने जो कहा था आप फिर मुझे वह हितकर वाक्य श्रवण कराइये ॥१॥ उन्होंने कहाथा कि, इक्ष्वाकुवंशमें धर्मात्मासत्यवादी श्रीमान् दशरथ नाम एक राजा जन्म लेंगे ॥२॥ अंगराजसे उनकी मित्रता होगी, उन्हीं दशरथके शान्ता नाम एक कन्या उत्पन्न होगी ॥३॥ फिर अंग राजाके पुत्ररोमपादसे राजादशरथकी मित्रता होगी, एक समय यशस्वी अवधनाथ अंगनाथके पास जाकर कहेंगे ॥४॥ कि, हे राजन् ! मेरे संतान नहीं है इस लिये आपके जामाता ऋष्यशृंगको लेजाकर यज्ञ किया चाहता हूं आप अनुमति दीजिये, जिससे मेरे वंशकी रक्षा हो ॥ ५ ॥ सुहृद्वाक्य श्रवण करके

अंगराज मनमें शोच समझ स्त्रीपुत्र सहित ऋष्यश्रृंगको उनको समर्पण कर देंगे॥६॥नरनाथ प्रसन्नमनसे उनको ले चिन्ता रहितहो पुत्रेष्टि यज्ञका अनुष्ठान करेंगे॥७॥ और सन्तानके द्वारायशकी इच्छा करने वाले धर्मवेत्ता राजा दशरथजी हाथ जोड़ कर उन ऋष्य श्रृंग मुनिको यज्ञमें वरण करेंगे॥८॥ पुत्रार्थ और स्वर्ग प्राप्तिके नि मित्तसे जो दशरथ राजाको यज्ञकी कामना होगी वह कामना विप्रवर ऋष्य श्रृंगसे पूर्ण होगी ॥९॥ उससेही त्रिलोक विख्यात अमिततेज वंशधर सर्वप्राणीमात्रमें प्रसिद्ध ऐसे चार पुत्र उत्पन्न होंगे॥१०॥इस प्रकारसे वह देवप्रधान सनत्कुमार पूर्व कालमें सत्ययुगमें ऋषियोंसे मिलनेपर यही बोले थे॥११॥हे पुरुषसिंह! इसलिये आप अब सबल वाहनोंसे वेष्टित हो बहुत आदर सन्मानसे उनमहर्षि को लेआइये ॥१२॥सुमन्त्रके वचन सुन राजा दशरथ अतिशयप्रफुल्ल हुए और सुमंत्रकाकथन सुन

प्रतिगृह्य चतंविप्रंसराजाविगतज्वरः॥ आहरिष्यतितंयज्ञंप्रहृष्टेनांतरात्मना॥७॥ तंचराजादशरथोयशस्कामः कृतांजलिः॥ ऋष्यंश्रृंगंद्विजश्रेष्ठं वरयिष्यतिधर्मवित् ॥८॥ यज्ञार्थंप्रसवार्थंचस्वर्गार्थं चनरेश्वरः ॥ लभतेचसतंकामंद्विजमुख्याद्विशांपतिः ॥९॥ पुत्राश्चास्यभविष्यंतिचत्वा रोऽमितविक्रमाः॥ वंशप्रतिष्ठानकराःसर्वभूतेषुविश्रुताः॥१०॥एवंसदेवप्रवरःपूर्वंकथितवान्कथाम्॥ सनत्कुमारोभगवान्पुरादेवयुगेप्रभुः॥११॥ सत्वंपुरुषशार्दूलसमानयसुसत्कृतम् ॥ स्वयमेवमहाराजगत्वासबलवाहनः॥१२॥ सुमंत्रस्यवचःश्रुत्वाहृष्टोदशरथोऽभवत् ॥ अनुमान्यवसि ष्ठंचसूतवाक्यंनिशाम्यच ॥ १३ ॥ सांतःपुरःसहामात्यःप्रययौयत्रसद्विजः ॥ वनानिसरितश्चैवव्यतिक्रम्यशनैःशनैः ॥ १४॥ अभिचक्रामतंदे शंयत्रवैमुनिपुंगवः ॥ आसाद्यतंद्विजश्रेष्ठंरोमपादसमीपगम्॥१५॥ ऋषिपुत्रंददर्शाथोदीप्यमानमिवानलम् ॥ ततोराजायथान्यायंपूजां चक्रेवि शेषतः ॥१६॥ सखित्वात्तस्यवैराज्ञःप्रहृष्टेनांतरात्मना॥रोमपादेनचाख्यातमृषिपुत्रायधीमते ॥१७॥ सख्यंसंबंधकंचैवतदातंप्रत्यपूजयत् ॥ एवंसुसत्कृतस्तेनसहोषित्वानरर्षभः ॥१८॥ सप्ताष्टदिवसान्राजाराजानमिदमब्रवीत् ॥ शांतातवसुताराजन्सहभर्त्राविशांपते ॥ १९ ॥

वसिष्ठजीसे भी पूछकर ॥१३॥ उनसे अनुमतिले मंत्री और अंतःपुर नारियोंके सहित अंगराज्यमें रानीसहित गये जाते जाते वन और नदियोंको अतिक्रमणकरने लगे ॥१४॥ तदनंतर जहां वह मुनिपुंगव रहते थे वहां पहुँचे और रोमपादके समीप रहनेवाले उन ब्राह्मण श्रेष्ठको प्राप्तहो ॥१५॥वहां दीपते हुये अनलके समान रोमपादके निकटवर्ती उनऋषिके दर्शनकर यथाविधि अर्चना की॥१६॥ फिर रोमपाद राजा दशरथ महाराजकी मित्रताके कारणसे अत्यन्त संतुष्ट अंतःकरण होकर बुद्धिमान उन विभाण्डक ऋषिके पुत्र ऋष्य श्रृंगमहर्षिको ॥१७॥ परस्परकी मित्रताका संबंध कहो तब ऋष्यश्रृगऋषिने भी उन दशरथजीका यथोचितसत्कार किया इस प्रकार राजा रोमपादसे सत्कृतहो ॥१८॥ सातआठ दिनपर्य्यन्त एकत्र वास करके रोमपाद राजासे बोलेकि, हे मित्र नरनाथ रोमपाद ! आपकी शांता

नामक कन्या है उसको भर्त्ता सहितदीजिये ॥१९॥ हे राजन्!एक कार्य्य उपस्थित हुआ है अर्थात् मुझे यज्ञ करना है इस कारण स्वामीसहित शान्ताको मेरे यहां भेज दीजिये मित्रका अभिप्राय समझ अंगराज इस बातमें सम्मत हुये॥२०॥शान्ता समेत जामाताको मित्रके गृहमें जानेको कहा ऋष्यशृंगनेभी इसविषयकोस्वीकार किया ॥२१॥ अनन्तर रोमपादके वचनमान ऋषिप्रधान ऋष्य शृंगसहधर्मिणीको संगले अयोध्याको गये जाते समय दोनों मित्र हाथ पकड़ एकदूसरेको आलिंगनकर ॥२२॥ फिर दशरथजी और बलवान् रोमपाद बडे आनन्दको प्राप्तहुए फिर कोशल राजमित्रसे पूछ कर अयोध्याको चले॥२३॥फिर राजाने अयोध्यामेंशीघ्रगामी दूतको खबर करनेकेलिये भेजा उसनेकहा कि नगरको भली भाँति सजाओ॥२४॥धूपजलाओ, छिडकाव करो, पताकाओंको लगाओ इसप्रकार नगर सजाओ पुर वासियोंने यह सुनकर कि, राजा आतेहैं ॥ २५ ॥ प्रसन्नहो भलीप्रकार नगरको सजा दिया तदन्तर नृपति सजी सजाई राजधानीमें प्रवेश करते हुये॥२६॥उस समय

मदीयंनगरंयातुकार्यंहिमहदुद्यतम्॥ तथेतिराजासंश्रुत्यगमनंतस्यधीमतः॥२०॥उवाचवचनंविप्रंगच्छत्वंसहभार्यया॥ ऋषिपुत्रःप्रतिश्रुत्यतथेत्याहनृपंतदा॥२१॥ सनृपेणाभ्यनुज्ञातःप्रययौसहभार्यया॥ तावन्योन्यांजलिंकृत्वास्नेहात्संश्लिष्यचोरसा॥२२॥ननंदतुर्दशरथोरोमपादश्चवीर्यवान्॥ ततःसुहृदमापृच्छ्यप्रस्थितोरघुनंदनः॥२३॥ पौरेषुप्रेषयामासदूतान्वैशीघ्रगामिनः॥ क्रियतांनगरंसर्वंक्षिप्रमेवस्वलंकृतम्॥ २४ ॥ धूपितंसिक्तसंमृष्टंपताकाभिरलंकृतम्॥ ततःप्रहृष्टाःपौरास्तेश्रुत्वाराजानमागतम्॥२५॥तथाचक्रुश्चतत्सर्वंराज्ञायत्प्रेषितं तदा॥ततःस्वलंकृतंराजानगरंप्रविवेशह॥२६॥ शंखदुंदुभिनिर्ह्रादैः पुरस्कृत्वाद्विजर्षभम्॥ ततःप्रमुदिताःसर्वेदृष्ट्वावैनागराद्विजम्॥२७॥ प्रवेश्यमानंसत्कृत्यनरेंद्रेणेंद्रकर्मणा॥यथादिविसुरेंद्रेणसहस्राक्षेणकाश्यपम्॥२८॥अंतःपुरंप्रवेश्यैनंपूजांकृत्वाचशास्त्रतः॥कृतकृत्यंतदात्मानंमेनेतस्योपवाहनात्॥२९॥ अंतःपुराणिसर्वाणिशांतांदृष्ट्वातथागताम्॥ सहभर्त्रांविशालाक्षींप्रीत्यानंदमुपागमन्॥३०॥ पूज्यमानातुताभिःसाराज्ञाचैवविशेषतः॥ उवासतत्रसुखितांकंचित्कालंसहद्विजा ॥ ३१ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये ॥ आ० बालकांडे एकादशःसर्गः ॥ ११ ॥

सबने शंख और दुन्दुभी बजाकर उन ऋषिश्रेष्ठको आगे जाकर लिया उनको पाकर अपार आनन्द अनुभव करने लगे ॥ २७ ॥ जैसे सुरराज वामनदेवको स्वर्गमें ले गयेथे उस समय जैसी उनकी शोभा हुई थी इन्द्रके सहकारी नरेन्द्रभी ऋष्य शृंगके साथ ऐसेही शोभित हुये ॥२८॥ अनन्तर स्त्रीसहित ऋष्य शृंगको रनवासमें लेजाकर राजाने भलीभातिसे इतकी पूजा की और उसके आनेसे अपनेको कृतकृत्य जाना ॥ २९ ॥ सब रनवास पतिके संग आई हुई बडे नेत्रवाली शान्ताको देख प्रेमसे आनन्दको प्राप्त हुआ ॥ ३० ॥ नृपनंदिनी शान्ता नृपति दशरथ और अन्यान्य अन्तःपुरवासियोंकी प्रीतिसे यत्न किये जाकर पतिसहित वहां परमसुखसे कुछ दिन बसी ॥ ३१ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येबालकांडेभाषाटीकायामेकादशःसर्गः ११

तदनन्तर बहुत दिन व्यतीत होनेपर मनोहर वसन्तकाल आ पहुचा और तभी राजा दशरथने अपना यज्ञ करना विचारा ॥ १ ॥ उस समय उन्होंने महर्षि ऋष्यशृंगके चरणकमलोकीवन्दना की और कुलरक्षा और सन्तानकी कामनसे उनकोयज्ञमें वरण किया॥ २ ॥ यज्ञकार्यमें वृत होकर उन्होंने राजाको आज्ञादी कि यज्ञका सब सामना तयार कर घोड़ा छोड़ाजाय॥ ३ ॥ सरयूके उत्तर तीर यज्ञभूमि बनाई जाय तब राजाने सुमन्त्रवेदके जाननेवाले ब्राह्मणोंके ॥४॥ लानेकीआज्ञादीसुमन्त्रनेराजाकीआज्ञासे सुयज्ञ, वामदेव, जाबालि, कश्यप ॥५॥ पुरोहित वसिष्ठ और भीयज्ञ करानेवाले ब्राह्मणोंको शीघ्र चलनेवाले सुमन्त्र जल्दीसे जाकर बुलालाये ॥६॥ जब वे सम्पूर्ण वेदके जाननेवाले ब्राह्मण आगये तब धर्मात्मा राजा दशरथ पूजन कर॥७॥ धर्मानुगत मधुर वाक्य कहने लगे

ततः कालेबहुतिथेकस्मिंश्चित्सुमनोहरे ॥ वसंतेसमनुप्राप्तेराज्ञोयष्टुंमनोऽभवत् ॥१॥ ततःप्रणम्यशिरसातंविप्रंदेववर्णिनम् ॥ यज्ञायवरयाम। ससंतानार्थंकुलस्यच ॥ २ ॥ तथेतिचसराजानमुवाचवसुधाधिपम् ॥ संभाराःसंभ्रियंतांतेतुरगश्चविमुच्यताम् ॥ ३ ॥ सरय्वाश्चोत्तरेतीरेय ज्ञभूमिर्विधीयताम् ॥ ततोऽब्रवीन्नृपोवाक्यंब्राह्मणान्वेदपारगान् ॥ ४ ॥ सुमंत्रावाहयक्षिप्रमृत्विजोब्रह्मवादिनः ॥ सुयज्ञंवामदेवंचजाबालि मथकाश्यपम् ॥ ५ ॥ पुरोहितंवसिष्ठंचयेचान्येद्विजसत्तमाः ॥ ततःसुमंत्रस्त्वरितंगत्वात्वरितविक्रमः ॥ ६ ॥ समानयत्सतान्सर्वान्समस्ता न्वेदपारगान् ॥ तान्पूजयित्वाधर्मात्माराजादशरथस्तदा ॥ ७ ॥ धर्मार्थसहितंयुक्तंश्लक्ष्णंवचनमब्रवीत् ॥ ममतातप्यमानस्यपुत्रार्थंनास्तिवै सुखम् ॥ ८ ॥ पुत्रार्थंहयमेधेनयक्ष्यामीतिमतिर्मम ॥ तदहंयष्टुमिच्छामिहयमेधेनकर्मणा ॥ ९ ॥ ऋषिपुत्रप्रभावेणकामान्प्राप्स्यामिचाप्य हम् ॥ ततःसाध्वितितद्वाक्यंब्राह्मणाःप्रत्यपूजयन् ॥ १० ॥ वसिष्ठप्रमुखाःसर्वेपार्थिवस्यमुखाच्च्युतम् ॥ ऋष्यशृंगपुरोगाश्चप्रत्यूचुर्नृपतिं तदा ॥ ११ ॥ संभाराःसंभ्रियंतांतेतुरगश्चविमुच्यताम् ॥ सरय्वाश्चोत्तरेतीरेयज्ञभूमिर्विधीयताम् ॥१२॥ सर्वथाप्राप्स्यसेपुत्रांश्चतुरोऽमितविक्र मान् ॥ यस्यतेधार्मिकीबुद्धिरियंपुत्रार्थमागता ॥ १३ ॥

हे विप्रगण ! मैं पुत्रकी कामनासे व्याकुल हूँ और मुझे कुछ सुख नहीं है ॥ ८ ॥ सो मैंने पुत्रार्थ अश्वमेध यज्ञ करना विचारा है सो उसको हयमेधके कर्मानुसार करूँगा ॥ ९ ॥ मुझे विश्वास है कि, इन ऋष्यशृंगके प्रभावसे मेरी मनकामना सिद्ध होगी, राजाकेवचनसुनकर ब्राह्मण बहुत अच्छा कहने लगे॥ १० ॥ राजके वचन सुन वसिष्ठादि सब वह विभाण्डकजीके पुत्रको आगे करके कहने लगे ॥ ११ ॥ आप यज्ञका सामान कीजिये, घोड़ा छोडिये सरयूके उत्तरतीर यज्ञभूमि बनवाइये ॥ १२ ॥ जब ऐसे धर्मानुष्ठान करने मैं आपकी प्रवृत्ति हुई है तब भले प्रकारसे इस कार्यका अनुष्ठान होने पर विपुल विक्रमशाली चार पुत्र

आपके होंगे॥१३॥तब राजेन्द्र ब्राह्मणोंकेयहवाक्यश्रवण कर बहुत प्रसन्नहुये और प्रसन्न हो मंत्रियोंसे यह सुन्दर वचन बोले॥१४॥तुम सब इन गुरुदेवोंका वचन सुन जल्दीसे यज्ञकी सबसामग्री लाओं और चतुर पुरुष यज्ञीयघोडेकी रक्षामेंनियुक्त हों श्रेष्ठयज्ञ करनेवाले ऋषि मंत्रपूत करके घोड़ेको छोड़ो ॥१५॥सरयूके उत्तर भागमें यज्ञभूमि बनाओ और विधिपूर्वक शान्ति करो॥१६॥ देखो सब राजाओंको यह यज्ञ करनेका अधिकार है परंतु यह सरलतासे नहीं होता विशेष करके इस कार्य्यमें अनेक विघ्न व बाधायें पड़जाती हैं ॥१७॥ विद्वान् ब्रह्मराक्षस विघ्न करनेको इसमें छिद्र ढूँढा करते हैं विधिको उल्लंघन करके यज्ञ करनेसे यज्ञकर्ताका नाश हो जाता है ॥१८॥ अतएव जिससे मेरा यह यज्ञ विधि पूर्वक पूर्णहो जाय तुम इस विषयमें सावधान् रहना क्योंकि तुमलोग विधिपूर्वक यज्ञ करने करानेमें

ततःप्रीतोऽभवद्राजाश्रुत्वातुद्विजभाषितम् ॥ अमात्यानब्रवीद्राजाहर्षेणदंशुभाक्षरम् ॥१४॥ गुरूणांवचनाच्छीघ्रंसंभाराःसंभ्रियंतुमे ॥ समर्थाधिष्ठितश्चाश्वःसोपाध्यायोविमुच्यताम्॥१५॥सरय्वाश्चोत्तरेतीरेयज्ञभूमिर्विधीयताम्॥ शांतयश्चाभिवर्धतांयथाकल्पंयथाविधि॥१६॥ शक्यःकर्तुमयंयज्ञःसर्वेणापिमहीक्षिता ॥ नापराधोभवेत्कष्टोयद्यस्मिन्क्रतुसत्तमे ॥१७॥ छिद्रंहिमृगयंत्येतेविद्वांसोब्रह्मराक्षसाः ॥ विधिहीनस्ययज्ञस्यसद्यःकर्ताविनश्यति॥१८॥ तद्यथाविधिपूर्वंमेक्रतुरेषसमाप्यते ॥ तथाविधानंक्रियतांसमर्थाःप्रकरणेष्विह॥१९॥ तथेतिचततः सर्वेमंत्रिणःप्रत्यपूजयन् ॥ पार्थिवेंद्रस्यतद्वाक्यंयथाज्ञप्तमकुर्वत ॥ २० ॥ ततोद्विजास्तेधर्मज्ञमस्तुवन्पार्थिवर्षभम् ॥ अनुज्ञातास्ततः सर्वेपुनर्जग्मुर्यथागतम् ॥ २१ ॥ गतानांतेषुविप्रेषुमंत्रिणस्तान्नराधिपः ॥ विसर्जयित्वास्वंवेश्मप्रविवेशमहामतिः ॥२२॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आदि० बा० द्वादशःसर्गः ॥ १२ ॥ पुनःप्राप्तेवसंतेतुपूर्णःसंवत्सरोऽभवत् ॥ प्रसवार्थंततोयष्टुंहयमेधेनवीर्यवान् ॥१॥ अभिवाद्यवसीष्ठंचन्यायतःप्रतिपूज्य च ॥ अब्रवीत्प्रश्रितंवाक्यंप्रसवार्थंद्विजोत्तमम् ॥२॥ यज्ञोमेक्रियतांब्रह्मन्यथोक्तंमुनिपुंगव ॥ यथानविघ्नाः क्रियंतेयज्ञांगेषुविधीयताम्॥३॥

समर्थ हो ॥ १९ ॥ मन्त्रीगण राजाज्ञा सुन जो महाराज कहें उनके वाक्यानुसार कार्य्य करनेमें प्रवृत्तहुए॥२०॥तदनन्तर विप्रवर्ग धर्मात्मा राजाकी स्तुति करके उनसे विदा माँग अपने अपने आश्रमोंको लौटे॥२१॥ब्राह्मणोंके जानेपर मंत्रियोंको विदा दे महाबुद्धिमान् राजाने अपने रनवासको गमन किया॥२२॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मीकीये आदिकाव्येबालकांडे भाषाटीकायांद्वादशः सर्गः ॥१२॥ देखते देखते वर्ष बीतनेपर फिर वसन्त ऋतुआई राजा दशरथजीभी संतानके निमित्त यज्ञ करनेको उद्यत हुए ॥ १ ॥ तब महीपालने ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ बसिष्ठजीको यथाविधि प्रणाम और पूजा कर पुत्रके निमित्त कहा ॥ २ ॥ हे ब्रह्मन् मुनिश्रेष्ठ ! आप शास्त्रानुसार मेरा यज्ञकार्य्य समापन कीजिये आपसे यही प्रार्थना है कि ऐसा उपाय कीजिये जिससे यज्ञमें कोई विघ्न न हो ॥ ३ ॥

आप हमारे हितकारी बन्धु औरपरमगुरु हैं अतएव इस उपस्थित कार्य्यमें सब बोझ आपकोही ग्रहण करना पड़ेगा ॥४॥ राजाकी बात सुन वसिष्ठजी बोलेकि, आपकी प्रार्थना अवश्य पूरी होगी मैं यहसब करूँगा जिसकी आपकी अभिलाषा है॥५॥ तनदन्तर उन्होंने यज्ञकार्यकुशल वृद्ध सुधार्मिक स्थापत्य कर्ममें निष्ठ ब्राह्मणोंको॥६॥समाप्तिपर्यन्त कर्मनिर्वाह करनेवाले तथा शिल्पकरभृत्य तथा कूपादि खोदनेवाले तथा ज्योतिषी तथा चर्मकारादि नट नर्तक ॥७॥और पवित्र शास्त्रज्ञ बहुत पढे पुरुषोंको बुलाकर कहा कि,तुम राजाकी आज्ञासे यज्ञकार्यमें नियुक्त हो ॥ ८ ॥ शिल्पियोंसे कहा कि,जल्दीसे सहस्रों ईंटें लाओ उनसे राजाओंके रहने लायक घर बना उन्हें बहुतसी वस्तुओंसेसजाओ॥९॥ब्राह्मणोंके लिये नाना प्रकारके खाने पीनेकी वस्तुओंसे भरे पुरे असंख्य आश्रय बनाओ

भवान्स्निग्धःसुहृन्मह्यंगुरुश्चपरमोमहान्॥वोढव्योभवताचैवभारोयज्ञस्यचोद्यतः॥४॥ तथेतिचसराजानमब्रवीद्द्विजसत्तमः ॥ करिष्येसर्वमेवैतद्भवतायत्समर्थितम्॥५॥ ततोऽब्रवीद्द्विजान्वृद्धान्यज्ञकर्मसुनिश्चितान् ॥ स्थापत्येनिष्ठितांश्चववृद्धान्परमधार्मिकान् ॥६॥ कर्मांतिकाञ्छिल्पकारान्वर्धकीन्खनकानपि ॥ गणकाञ्छिल्पिनश्चैवतथैवनटनर्तकान् ॥७॥ तथाशुचीञ्छास्त्रविदःपुरुषान्सुबहुश्रुतान् ॥ यज्ञकर्मसमीहंतांभवंतोराजशासनात् ॥ ८ ॥ इष्टकाबहुसाहस्रीःशीघ्रमानीयतामिति ॥ उपकार्याःक्रियंतांचराज्ञोबहुगुणान्विताः ॥९॥ ब्राह्मणावसथाश्चैवकर्तव्याःशतशःशुभाः ॥ भक्ष्यान्नपानैर्बहुभिःसमुपेताःसुनिष्ठिताः ॥१०॥ तथापौरजनस्यापिकर्तव्याश्चसुविस्तराः ॥ आगतानांसुदूराच्चपार्थिवानांपृथक्पथक् ॥११॥ वाजिवारणशालाश्चतथाशय्यागृहाणिच ॥ भटानांमहदावासावैदेशिकनिवासिनाम् ॥१२॥ आवासाबहुभक्ष्यावै सर्वकामैरुपस्थिताः ॥ तथापौरजनस्यापिजनस्यबहुशोभनम् ॥१३॥ दातव्यमन्नंविधिवत्सत्कृत्यनतुलीलया ॥ सर्वेवर्णायथापूजांप्राप्नुवंतिसुसत्कृताः ॥१४॥ नचावज्ञाप्रयोक्तव्याकामक्रोधवशादपि ॥ यज्ञकर्मसुयेव्यग्राः पुरुषाःशिल्पिनस्तथा॥१५॥ तेषामपिविशेषेणपूजाकार्यायथाक्रमम् ॥ येस्युःसंपूजिताःसर्वेवसुभिर्भोजनेनच ॥ १६ ॥ यथासर्वंसुविहितंनकिंचित्परिहीयते ॥ तथाभवंतःकुर्वंतुप्रीतियुक्तेनचेतसा ॥ १७ ॥

॥१०॥ पुरवासी व राज्यनिवासियोंके व अनेक देशोंसे आयेहुये नरनाथोंके निमित्त पृथकपृथक स्थान बनाओ॥११॥अश्वशाला,हस्तिशाला,शयनागार व विदेशी योद्धाओंके रहनेकेस्थान प्रस्तुत करो ॥१२॥रहनेके स्थानोंमें सब आवश्यक वस्तुतैयार रहें इस यज्ञमें और भी बहुत मनुष्य आवेंगे उनके निमित्त भी सजेसजायेघरा निर्माण करो॥१३॥शास्त्रकी विधिसे परलोक प्रयोजनको बुद्धिसे आदरपूर्वक योग्यपात्रको दानदेना उत्सव मात्रकी बुद्धिसे व आदरतासे अनिच्छुकको दाननदेना ऐसा करना किं;जिससे सब यही जानें;कि हमारा उचित सत्कार हुआ॥१४॥औरकामक्रोधकेवशमें होकर किसीका निरादर न करना वजो पुरुष थवई आदि के कर्ममें लगे हों ॥१५॥तिनकी पूजा भी क्रमसे की जाय और सबका आदर धन भोजनादिसे भलीभाँति किया जाय ॥१६॥जो अच्छी तरह चित्त लगाय

काम करते हैं उनका कोई काम नहीं बिगडे इससे तुम प्रीतियुक्त चित्तसे काम करो॥१७॥तब सब आयकर वसिष्ठजीसे बोले आपजो आज्ञा करते हैं उसमें कुछ कसर नहीं कीजायगी॥१८॥हम सबको जैसा आपने कहाहै विधिसे इन सब कार्यांके करनेको तैयार हैं इसमेंकुछ न्यूनता न होगी तदनन्तरसुमन्तकोबुला वसिष्ठजीने कहा॥१९॥कि पृथ्वीपर जितनेधार्मिक नृपति ब्राह्मणक्षत्रिय वैश्यऔर शूद्र वसते हैं उन सबको इस कार्यमें विशेष आदर सन्मानसे न्योता भेजो॥२०॥ सब देशके मनुष्योंको सत्कारसे लिवालाओ विशेष करके बली मिथिलाधिपति व महामति सत्यवादी॥२१॥राजा जनकको तुम जाकर स्वयं न्यौता देआओ वहा हमारे प्राचीन मित्र हैं इसी कारण उनको सबसे आगे आदरपूर्वक न्योतनेका भीप्रयोजन है॥२२॥ फिर विशुद्ध स्वभाव प्रियवादी देवोपम काशीरा जको भी

ततःसर्वेसमागम्यवसिष्ठमिदमब्रुवन् ॥ यथेष्टंतत्सुविहितंनकिंचित्परिहीयते ॥ १८ ॥ यथोक्तंतत्करिष्यामोनकिंचित्परिहास्यते॥ ततःसुमं त्रमाहूयवसिष्ठोवाक्यमब्रवीत् ॥ १९ ॥ निमंत्रयस्वनृपतीन्पृथिव्यांयेचधार्मिकाः ॥ ब्राह्मणान्क्षत्रियान्वैश्यान्छूद्रांश्चैवसहस्रशः ॥ २० ॥ समानयस्वसत्कृत्यसर्वदेशेषुमानवान्॥ मिथिलाधिपतिंशूरंजनकंसत्यवादि नम्॥२१॥ तमानयमहाभागंस्वयमेवसुसत्कृतम् ॥ पूर्वसंबंधिनं ज्ञात्वाततःपूर्वंब्रवीमिते ॥ २२ ॥ तथाकाशिपतिंस्निग्धंसततंप्रिय वादिनम् ॥ सद्वृत्तंदेवसंकाशंस्वयमेवानयस्वह ॥ २३ ॥ तथाकेकयरा जानं वृद्धंपरमधार्मिकम्॥श्वशुरंराजसिंहस्यसपुत्रंतमिहा नय ॥२४॥ अंगेश्वरंमहेष्वासंरोमपादंसुसत्कृतम्॥वयस्यंराजसिंहस्यसपुत्रंतमिहा नय ॥२५ ॥ तथाकोसलराजानंभानुमंतंसु सत्कृतम् ॥ मगधाधिपतिंशूरंसर्वशास्त्रविशारदम् ॥२६॥ प्राप्तिज्ञंपरमोदारंसत्कृत्तंपुरुषर्षभम् ॥ राज्ञःशासनमादायचोदयस्वनृपर्ष भान् ॥२७॥ प्राचीनान्सिंधुसौवीरसौराष्ट्रेयांश्चपार्थिवान् ॥ २८ ॥ दाक्षिणात्यान्नरेंद्रांश्चसमस्तानानय स्वह ॥ संतिस्निग्धाश्चयेचान्येराजानः पृथिवीतले ॥ २९ ॥

तुम्हीं जाकर न्योत आओ ॥२३॥ वहांसे फिर महाराजके श्वशुर परमधार्मि कवृद्ध पुत्रसहित कैकयराजको निमन्त्रण दो ॥२४॥ फिर राजाके परममित्रमहा धनुर्द्धारी अंगाधिप लोमपादको न्यौता दो ॥ २५ ॥ फिर कोशलराज भानुमान और सर्वशास्त्रविशारद शूर मगधराजाको बुलावा दो ॥२६॥ अनेक प्रकारके ज्ञाता परम उदार पुरुषश्रेष्ठ राजाओंको राजा दशरथकी आज्ञासे आदर पूर्वकलाओ॥ २७ ॥ दाक्षिण देशके रहनेवाले सम्पूर्ण राजाओंको बुलाओ फिर पूर्व देश, सिन्धु, सौवीरदेश, सौराष्ट्र और दाक्षिणात्यके राजाओंको भी वहां जाके न्यौता दे आओ अधिक क्या कहूं भूमण्डलमें जितने आत्मीय हैं ॥२८॥२९॥

तुम उनको अनुचर और भाई बंधुओंसमेत जल्दी बुलाओ राजाकी आज्ञासे इन सबके दूत पास भेज दो ॥३०॥ वसिष्ठजीके वाक्यसुन सुमंतजीने शीघ्रगामी उपयुक्त दूत राजाओंको बुलानेके लिये भेजे ॥३१॥ और मुनिके वचनानुसार आपभी बुद्धिमान् सुमंत शीघ्र बहुत नरनाथोंको बुलानेके लिये गये ॥ ३२ ॥ कर्मकार नौकरों चाकरोंने वसिष्ठजीके पास आकर वह सब यज्ञके कार्य उन्होंने जो किये थे सब कहे ॥ ३३ ॥ तदनन्तर विप्रवरने प्रसन्न हो उनसे कहा कि तुम किसीको भी कोई वस्तु निरादर व खेलनेके साथ न देना॥३४॥ क्योंकि अवज्ञापूर्वक जो दानदिया जाताहै तो दाता उससे निःसंदेश नष्ट होताहै अनन्तर दो एक दिनके बीचमेंही राजालोग आनेलगे॥३५॥ राजा दशरथजीकी भेंटकेलिये अनगिन्तरत्नभार लेकरन्यौते हुए राजाआये तबवसिष्ठजी प्रफुल्लहोनरनाथ

तानानययथाक्षिप्रंसामगान्सहबांधवान् ॥ एतान्दूतैर्महाभागैरानयस्वनृपाज्ञया ॥ ३० ॥वसिष्ठ वाक्यंतच्छ्रुत्वासुमंत्रस्त्वरिततंतदा ॥ व्यादिशत्पुरुषांस्तत्रराज्ञामानयनेशुभान् ॥३१॥ स्वयमेवहिधर्मात्माप्रयातोमुनिशासनात् ॥ सुमंत्रस्त्वरितोभूत्वासमानेतुंमहामतिः ॥३२॥ तेचकर्मांतिकाः सर्वेवसिष्ठायमहर्षये ॥ सर्वंनिवेदयंतिस्मयज्ञेयदुपकल्पितम् ॥३३॥ ततःप्रीतोद्विजश्रेष्ठस्तान्सर्वान्मुनिरब्रवीत् ॥ अवज्ञयानदातव्यंकस्यचिल्लीलयापिवा ॥ ३४ ॥ अवज्ञयाकृतंहन्यादातारंनात्रसंशयः ॥ ततःकैश्चिदहोरात्रैरुपयातामहीक्षितः ॥३५॥ बहूनिरत्नान्यादायराज्ञोदशरथस्यह॥ ततोवसिष्ठःसुप्रीतोराजानमिदमब्रवीत् ॥ ३६ ॥ उपायातानरव्याघ्रराजानस्तवशासनात् ॥ मयापिसत्कृताःसर्वेयथार्हंराजसत्तम ॥ ३७ ॥ यज्ञियंचकृतंसर्वंपुरुषैःसुसमा हितैः ॥निर्यातुचभवान्यष्टुंयज्ञायतनमन्तिकात् ॥३८॥ सर्वकामैरुपहृतैरुपेतंवैसमंततः॥द्रष्टुमर्हसिराजेन्द्रमनसैवविनिर्मितम्॥३९॥ तथावसिष्ठवचनादृष्यशृंगस्यचोभयोः ॥ दिवसेशुभनक्षत्रेनिर्यातोजगतीपतिः ॥ ४० ॥ ततोवसिष्ठप्रमुखाःसर्वएवद्विजोत्तमाः ॥ ऋष्यशृंगंपुरस्कृत्ययज्ञकर्मारभंस्तदा ॥ ४१ ॥

से कहने लगे॥३६॥ हे राजन्! आपकी आज्ञासे सब निमंत्रित राजा लोग आयेहैं हे राजसिंह! मैंने उन सबका उचित सन्मानकर दिया है॥३७॥नौकरचाकरोंने सब यज्ञकी सामग्री प्रस्तुतकररक्खी हैं अतएव अब आप यज्ञमें दीक्षित होनेके लिये यज्ञस्थलमें गमन कीजिये॥३८॥हेराजेन्द्र! यज्ञस्थल सब प्रकारसेअभीष्ट वस्तुओंसे भरापुरा है देखनेसे बोधहोगा कि; मानों मनकी कल्पनाही इनकी रचनेवाली हैं प्रत्यक्ष देखनेपर आपको विदित हो जायगा ॥३९॥ अनन्तर वसिष्ठ और ऋष्य शृंगके वचनोंसे शुभ नक्षत्रयुक्त दिनमें राजाने यज्ञस्थलमें गमन किया॥४०॥ इसके उपरान्त वसिष्ठादि ऋषिगणोंने ऋष्य शृंगको आगे करके यज्ञ

आरम्भ किया ॥ ४१ ॥ सब विधान शास्त्रानुसार होता था इस भांति नरनाथ दशरथ रानियोंके सहित यज्ञमें दीक्षित हुये ॥ ४२ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकांडे भाषा टीकायांत्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥ अनन्तर संवत्सर बीतगया तब यज्ञका घोड़ा घूमकर आया उस समय सरयूके उत्तर किनारेके बागमें यज्ञ होने लगा॥१॥ महात्मा दशरथजी महायज्ञमें श्रेष्ठब्राह्मण ऋष्य शृंगको आगे करकेयज्ञ करनेलगे॥२॥ वेदपाठीव्रतीगण यथा विधि और मीमांसादिके अनुसार यथाकाल अनुसरण करके कर्म करने लगे॥३॥जैसा शास्त्रमें लिखाहै वह विधान करने लगे. प्रथमउन्होंने प्रवर्ग्य नामक कार्य्य समाप्त करके शास्त्रानुसार उपसद नामक इष्टिकार्य्य करना प्रारम्भ किया ॥४॥ तदनन्तर देवताओंकी पूजा करके प्रफुल्ल मनसे वे सब ब्राह्मण मुनि श्रेष्ठ प्रातः

यज्ञवाटंगताःसर्वेयथाशास्त्रंयथाविधि ॥ श्रीमांश्चसहपत्नीभीराजादीक्षामुपाविशत् ॥ ४२ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० बा० त्रयोदशः सर्गः॥१३॥अथसंवत्सरेपूर्णेतस्मिन्प्राप्तेतुरंगमे॥ सरय्वाश्चोत्तरेतीरेराज्ञोयज्ञोऽभ्यवर्तत॥१॥ऋष्यश्रृंगंपुरस्कृत्यकर्मचक्रुर्द्विजर्षभाः ॥ अश्व मेधमहायज्ञेराज्ञोऽस्यसुमहात्मनः ॥२॥ कर्मकुर्वंतिविधिवद्याजकावेदपारगाः ॥ यथाविधियथान्यायपरिक्रामंतिशास्त्रतः ॥ ३ ॥ प्रवर्ग्यंशा स्त्रतःकृत्वातथैवौपसदंद्विजाः ॥ चक्रुश्चविधि वत्सर्वमधिकंकर्मशास्त्रतः ॥ ४ ॥अभिपूज्यतदाहृष्टाःसर्वेचक्रुर्यथाविधि॥ प्रातःसवनपूर्वाणि कर्माणिमुनिपुंगवाः ॥ ५ ॥ ऐंद्रश्चविधिवद्दत्तोराजाचाभिषुतोऽनघः ॥मध्यंदिनं चसवनंप्रावर्ततयथाक्रमम्॥६॥तृतीयसवनंचैवराज्ञोऽस्यसु महात्मनः॥चक्रुस्तेशास्त्रतोदृष्ट्वायथाब्राह्मणपुंगवाः ॥७॥ आह्वयांचक्रिरेतत्रशक्रादीन्विबुधोत्तमान् ॥ऋष्यश्रृंगादयोमंत्रैःशिक्षाक्षरसमन्वितैः ॥ ८ ॥गीतिभिर्मधुरैःस्निग्धैर्मंत्राह्वानैर्यथार्हतः ॥ होतारोददुरावाह्यहविर्भागान्दिवौकसाम् ॥ ९ ॥ नचाहुतमभूत्तत्रस्खलितंवानकिंचन ॥ दृश्यतेब्रह्मवत्सर्वंक्षेमयुक्तंहिचक्रिरे ॥१०॥ नतेष्वहःसुश्रान्तोवाक्षुधितोहानदृश्यते॥ नाविद्वान्ब्राह्मणःकश्चिन्नाशतानुचरस्तथा॥ ११ ॥

सवनादि कार्य करनेलगे ॥५॥ प्रथम इन्द्रको आहुति दीगई, तदनंतर सोमलता का रस निकाला गया फिर मध्यान्दिन सवनादि कार्य्यका अनुष्ठान हुआ॥६॥ इसके उपरान्त महात्मा राजाका तृतीय सवन उन ब्राह्मण श्रेष्ठोंने शास्त्रानुसार पूर्ण कराया ॥ ७ ॥ तब ऋष्यशृंग प्रभृति ऋषि वेदके मंत्र शिक्षा, अक्षर, स्वर सहित पाठ करके इन्द्रादि श्रेष्ठ देवताओंका आह्वान करने लगे ॥ ८ ॥ देवता उनके शिक्षासे युक्त वेद मंत्रादि द्वारा आह्वान किये जाकर अपना अपना यज्ञ भाग ग्रहण करने लगे ॥९॥ इस कार्यमें कोई आहुति व्यर्थ न दीगई न कोई कार्य छोड़ा गया मंत्रपूत होकर कार्यहोनेसे सब मंगलमयही हुआथा॥१०॥ कोई ब्राह्मण यज्ञके कार्यका न जाननेवाला नहीं था, किसी दिन भी याचक ब्राह्मणोंको थकावट या क्षुधा बोध न हुई इन सबकी सेवा करनेके लिये

१ यजुर्वेदके ३७ वें अध्यायमें इसका वर्णन है ।

सैंकडों सेवक रक्खे गये थे ॥ ११ ॥ यज्ञ भूमिमें ब्राह्मण, शूद्र, तपस्वी व सन्यासधर्मावलम्बी व्यक्ति नित्य भोजन पाने लगे ॥ १२ ॥ वृद्ध; व्याधि ग्रस्त स्त्री बालक तक इच्छाभोजनपाने लगे परन्तु रातादिन भोजन करनेसे भी किसीको तृप्तिनहीं होतीथी॥१३॥ अन्न दो अन्न दो वस्त्र दो सतत सबके मुखसे यही वाक्य निकलने लगे और उन सबके मनोरथ पूर्ण होने लगे ॥ १४ ॥ दिन २ पर्वततुल्य ढेरके ढेर पक्के कच्चे अन्नके दृष्टि आने लगे ॥ १५ ॥ अनेक देशोंके नरनारीगण इन महात्मा राजाके यज्ञमें आकर बहुतसा खाने पीनेका अन्न खाने लगे ॥ १६ ॥ भोजनके समय ब्राह्मणलोग दिव्य स्वादयुक्त भोजनकी प्रशंसा करने लगे और हम अघागये हे राजन् ! आपकी जय हो कहकर राजाका यश विस्तार करने लगे ॥ १७ ॥ सुवेषधारी ब्राह्मणगण द्विजातियोंको परोसने लगे और

ब्राह्मणाभुंजतेनित्यं नाथवन्तश्चभुञ्जते ॥ तापसाभुंजतेचापिश्रमणाश्चैवभुंजते॥१२॥ वृद्धाश्चव्याधिताश्चैवस्त्रीबालाश्चतथैवच॥अनिशंभुं जमानानांनतृप्तिरुपलभ्यते ॥१३॥ दीयतांदीयतामन्नंवासांसिविविधानिच ॥ इतिसंचोदितास्तत्रतथाचक्रुरनेकशः ॥१४॥ अन्नकूटाश्चदृश्यं तेबहवः पर्वतोपमाः ॥ दिवसेदिवसेतत्रसिद्धस्यविधिवत्तदा ॥ १५ ॥नानादेशादनुप्राप्ताःपुरुषाःस्त्रीगणास्तथा ॥ अन्नपानैःसुविहितास्तस्मि न्यज्ञेमहात्मनः ॥ १६ ॥ अन्नंहिविधिवत्स्वादुप्रशंसंतिद्विजर्षभाः॥ अहोतृप्ताःस्मभद्रंतेइतिशुश्रावराघवः ॥ १७ ॥ स्वलंकृताश्चपुरुषाब्रा ह्मणान्पर्यवेशयन् ॥ उपासंतेचतानन्येसुमृष्टमणिकुंडलाः ॥१८॥ कर्मांतरेतदाविप्राहेतुवादान्बहूनपि ॥ प्राहुःसुवाग्मिनोधीराःपरस्परजि गीषया ॥ १९ ॥ दिवसेदिवसेतत्रसस्तरेकुशलाद्विजाः ॥ सर्वकर्माणिचक्रुस्तेयथाशास्त्रंप्रचोदिताः ॥ २० ॥ नाषडंगविदत्रासीन्नाव्रतोना बहुश्रुतः ॥ सदस्यास्तस्यवैराज्ञोनावादकुशलोद्विजः ॥ २१॥ प्राप्तेयूपोच्छ्रयेतस्मिन्षड्बैल्वाःखादिरास्तथा ॥ तावंतोबिल्वसहिताःपर्णिन श्चतथापरे ॥ २२ ॥ श्लेष्मातकमयोदिष्टोदेवदारुमयस्तथा ॥ द्वावेवतत्र विहितौबाहुव्यस्तपरिग्रहौ ॥ २३ ॥

व्यक्तिगण मणिमय कुण्डलादिधारण करके परसनेवालोंकी सहायकरने लगे॥१८॥ इस कर्मके होनेपर धीर पंडितगणोंने औरोंको पराजित करनेके अभिप्रायसे हेतु वाद सहित विचार करना आरम्भ किया॥१९॥ इधर कर्मकुशल ब्राह्मण लोग भी शास्त्रानुसार सांकेतिकशब्दोंके वशवर्ती प्रतिदिन यज्ञके कर्म करने कराने लगे॥२०॥ मूल बात यह है कि जिस ब्राह्मणने षडङ्गसहित वेद नहीं पढा थावजो व्रतपरायण व शास्त्र जाननेवाला नहीं था व जिसको शास्त्रके विचारमें चतुरता नहीं ऐसा कोई ब्राह्मण राजाके यज्ञमें व्रती व सदस्य नहीं हुआथा॥२१॥ यूप रचना कालमें इसयज्ञमें छः बेलके, छः खैरके, छः पलाशके खंभे गाडे गये॥२२॥ व एक बहेडाका

व देवदारुकेदो खम्भे गाडेगयेथे यह खंभ फैलीहुई भुजाओंके बराबरलम्बे थे॥२३॥शिल्प व यज्ञकर्मोंमें निपुण शास्त्रके जाननेवाले पुरुषोंनेयह बनाये थे यज्ञकीशोभाके लिये इनपर सोनामढा व इसका पानी फेरा गया था॥२४॥ इक्कीसखंभ२१ अरत्नि (चौबीस अंगुलकी १ अरत्नि) ऊंचे थे हरेकपर कपडा लपेटा गया इस प्रकार सजाये गये थे ॥२५॥ यह सब विधिपूर्वक करके शिल्पियोंने मनोहर और दृढ यह आठ पहलू खम्भ विधिपूर्वक बनाये यह देखनेमें बडे शोभायमानथे ॥ २६ ॥ वे कपडेसे ढके जाकर और गन्ध फूलोंसे पूजित हो दीप्तिमान् सप्तर्षि जैसे आकाशमें शोभा पाते हैं तैसे शोभा पाने लगे ॥ २७ ॥ इस यज्ञमें जितनी ईंटोंका प्रयोजन था वह सब बनाई । शिल्प निपुण ब्राह्मणोंने इन ईंटोंसे अग्निकुंड बनाया इस कुण्डका प्रत्येक स्थान ईंटोंसे बनाया था ॥ २८ ॥ इस भाँति

कारिताःसर्वएवैतेशास्त्रज्ञैर्यज्ञकोविदैः ॥ शोभार्थंतस्ययज्ञस्यकांचनालंकृताभवन् ॥ २४ ॥ एकविंशतियूपास्तेएकविंशत्यरत्नयः ॥ वासोभिरेकविंशद्भिरेकैकंसमलंकृताः ॥२५॥ विन्यस्ताविधिवत्सर्वेशिल्पिभिःसुकृता दृढाः ॥ अष्टास्त्रयः सर्वएवश्लक्ष्णरूपसमन्विताः ॥२६॥ आच्छादितास्ते वासोभिः पुष्पैर्गंधैश्च पूजिताः ॥ सप्तर्षयोदीप्तिमंतोविरा जंतेयथादिवि ॥ २७ ॥ इष्टकाश्चयथान्यायंकारिताश्चप्रमाणतः ॥ चितोऽग्निर्ब्राह्मणैस्तत्रकुशलैःशिल्पकर्मणि ॥२८॥ सचित्योराज सिंहस्यसंचितःकुशलैर्द्विजैः ॥ गरुडोरुक्मपक्षोवैत्रिगुणोऽष्टादशात्मकः ॥२९॥ नियुक्तास्तत्रपशवस्तत्तदुद्दिश्यदैवतम् ॥ उरगाःक्षिणश्चैवयथाशास्त्रंप्रचोदिताः ॥ ३० ॥ शामित्रेतुहयस्तत्रतथाजलचराश्चये ॥ ऋषिभिःसर्वमेवैतन्नियुक्तंशास्त्रतस्तदा ॥ ३१ ॥ पशूनां त्रिशतंतत्रयूपेषुनियतंतदा ॥अश्वरत्नोत्तमंतत्रराज्ञोदशरथस्यह ॥३२॥ कौसल्यातंहयंतत्रपरिचर्यसमंततः ॥ कृपाणैर्विशशासैनंत्रिभिःपरमयामुदा ॥ ३३ ॥ पतत्त्रिणातदासार्धंसुस्थितेनचचेतसा ॥ अवसद्रजनीमेकांकौसल्याधर्मकाम्यया ॥ ३४ ॥ होताऽध्व र्युस्तथोद्गाताहयेनसमयोजयन् ॥ महिष्यापरिवृत्त्याथवावातामपरांतथा ॥ ३५ ॥

राजसिंह महाराज दशरथजीके यज्ञमें कुशल ब्राह्मणोंने वेदी बनाई उसपर सोनेकी ईंटोंसे पंख बनाया अठारह प्रस्तारका एक एक गरुड बनाया अश्वमेधमें इसकी विधिहै ॥ २९ ॥ यज्ञस्थलमें शास्त्रानुसार देवताओंके लिये अनेक प्रकारके सर्प विहङ्ग तुरंग स्थापन किये ॥ ३० ॥ और जलचर प्रभृति जन्तु जहांतक इकट्ठे किये गयेथे यज्ञ करानेवालोंने उन्हें बलिदेनेके अर्थ यथा स्थानमें शास्त्रानुसार बांधा ॥ ३१ ॥ पहले कहे हुये खंभोंमें तीनसौ पशु और महाराजका अश्वरत्न बँधा था ॥ ३२ ॥ पटरानी कौशल्याजीने उस अश्वकी परिचर्य्या प्रोक्षणादि करके तीन खड्गसे प्रसन्नतापूर्वक उसकावध किया॥३३॥ तदनन्तर कौशल्याजी वहां धर्मप्राप्तिकी कामनासे स्वस्थचित्त हो उस अश्वके निकट एक रात्रितक रहीं ॥ ३४ ॥ तब होताध्वर्यु व उद्गताओंने राजमहर्षि व

परिवृति सहित वावाताको "क्षत्रियराजकीवैश्यास्त्रीवावाता और शूद्रास्त्री परिवृति कही जाती है" यज्ञीय अश्वके साथ नियोजित किया ॥३५॥ तब श्रुतिका र्य्यवित् जितेंद्रियऋत्विज उस घोडेकीचरवीलेशास्त्रानुसार होमकरने लगे ॥३६॥ नरपतिदशरथ यथासमयन्यायपूर्वक अपने पाप कटनेके अर्थ वसागन्धमय धूमगन्ध सूँघने लगे ॥ ३७ ॥ अनन्तर सोलह ऋत्विज ब्राह्मण घोडेके सब अंग प्रत्यंगादि छेदनकर अग्निमें विधिपूर्वक आहुति देने लगे ॥३८॥ और यज्ञोंमें पाकरकी शाखामें हव्य स्थापन करके आहुति दी जाती है परन्तु इस अश्वमेधयज्ञमें वेतमें स्थापित करनेका नियम है ॥३९॥ तदनुसार ऋत्विजगण वेतके दंडकी आहुति देने लगे अश्वमेधयज्ञमेंजो तीन दिन सवनक्रिया करनी होती है वह कल्पसूत्र और ब्राह्मणोंकी समर्थन की हुई, पूर्वोक्त तीन दिनके मध्यमें प्रथमदिन अग्निष्टोम

पतत्रिणस्तस्यवपामुद्धृत्यनियतेंद्रियः ॥ ऋत्विक्परमसंपन्नः श्रपयामासशास्त्रतः ॥ ३६ ॥ धूमगंधंवपायास्तुजिघ्रतिस्मनराधिपः॥ यथाकालं यथान्यायंनिर्णुदन्पापमात्मनः ॥३७॥ हयस्ययानिचांगानितानिसर्वाणिब्राह्मणाः ॥ अग्नौप्रास्यंतिविधिवत्समस्ताःषोडशर्त्विजः ॥ ३८ ॥ प्लक्षशाखासुयज्ञानान्येषां क्रियतेहविः अश्वमेधस्ययज्ञस्यवैतसौभागइष्यते ॥ ३९॥ त्र्यहोऽश्वमेधःसंख्यातःकल्पसूत्रेणब्राह्मणैः ॥ चतुष्टोममहस्तस्यप्रथमंपरिकल्पितम् ॥४०॥ उक्थंद्वितीयंसंख्यातमतिरात्रंतथोत्तरम् ॥कारितास्तत्रबहवोविहिताःशास्त्रदर्शनात् ॥४१॥ ज्योतिष्टोमायुषीचैवमतिरात्रौविनिर्मितो ॥ अभिजिद्विश्वजिच्चैवमाप्तोर्यामोमहाक्रतुः ॥ ४२ ॥ प्राचींहोत्रेददौराजादिशंस्वकुलवर्धनः ॥ अध्वर्यवेप्रतीचींतुब्रह्मणेदक्षिणांदिशम् ॥४३॥ उद्गात्रेतुतथोदीचींदक्षिणैषाविनिर्मिता ॥ अश्वमेधेमहायज्ञेस्वयंभूविहितेपुरा ॥ ४४ ॥क्रतुंसमाप्यतुतदा न्यायतः पुरुषर्षभः ॥ ऋत्विग्भ्योहिददौराजाधरांतांकुलवर्धनः ॥४५॥ एवंदत्त्वाप्रहृष्टोऽभूच्छ्रीमानिक्ष्वाकुनंदनः॥ ऋत्विजस्त्वब्रुवन्सर्वेराजानंगतकिल्बिषम् ॥ ४६ ॥ भवानेवमहींकृत्स्नामेकोरक्षितुमर्हति ॥ नभूम्याकार्यमस्माकंनहिशक्ताःस्मपालने ॥ ४७ ॥

॥४०॥ द्वितीय उक्थ और तीसरे दिन अतिरात्र यज्ञ शास्त्रविधिके अनुसार अनुष्ठित हुआ ॥ ४१ ॥ फिर ज्योतिष्टोम, अतिरात्र, अभिजित्, विश्वजित् व आप्तोर्याम शास्त्रानुसार यह सब महायज्ञके कार्य्य होने लगे ॥४२॥ इस यज्ञमें कुलवर्द्धन राजादशरथजीने होताको पूर्वदिशा, अध्वर्य्युको पश्चिमदिशा, ब्रह्माको दक्षिणदिशा॥४३॥उद्गाताको उत्तरदिशा, दक्षिणामें देदी. पूर्वकालमें स्वायम्भुवमनुजीने जिस प्रकारका यज्ञ अनुष्ठानकर दक्षिणा दीथी वैसेही यहयज्ञहुआ॥४४॥ न्यायपूर्वक समाप्त कर पुरुषसिंह राजा दशरथजीने ऋत्विजोंको पृथ्वी दान करदी ॥ ४५ ॥ श्रीमान् इक्ष्वाकुकुलनन्दन इस भाँति दानकार्य समाप्त करके अतिशय प्रसन्न हुये, तब ऋत्विज उन निष्पाप नरनाथसे कहने लगे ॥ ४६ ॥ हे राजेन्द्रआप एकाकी इस समस्त भूमंडलकी रक्षा करनेके लायक हैं, हमें पृथ्वी

नहीं चाहिये क्योंकि हम इसके पालन करनेमें असमर्थ हैं ॥४७॥ हे महीपाल ! हम सदा वेदपढनेमें लगे रहतेहैं अतएव हमें कुछ धन दे दीजिये ॥ ४८ ॥ हम आपसे मणि रत्न सुवर्ण, गोधनादि कुछ थोडासा ले सकते हैं, वोही आप हमें देदीजिये परन्तु पृथ्वीका आधिपत्य ले हमें क्या करना है ? ॥ ४९ ॥ ऋत्विजोंके कहे जानेपर राजाने उन वेदपारग ब्राह्मणोंको एक लाख गायें दीं ॥ ५० ॥ और दश करोड सोनेकी मोहरें और इससे चौगुनी चाँदीकी मुद्रा भी उन ऋत्विजोंको देदी ऋत्विजोंने यह सब वस्तु धन ॥ ५१ ॥ ऋषि ऋष्यश्रृंग और बुद्धिमान् वसिष्ठजीके हाथमें समर्प्पण कर दिया तदनन्तर उन दोनों ऋषियोंके न्यायानुसार भाग करदेनेपर सब विप्रवर अपना २ भाग लेकर ॥ ५२ ॥ प्रफुल्लचित हो राजासे बोले महाराज ? हम दक्षिणा पाकर बडे सन्तुष्ट

रताःस्वाध्यायकरणेवयंनित्यंहिभूमिप ॥ निष्क्रंयकिंचिदेवेहप्रयच्छतुभवानिति ॥४८॥ मणिरत्नंसुवर्णवागायद्वासमुद्यतम् ॥ तत्प्रयच्छनृपश्रेष्ठधरण्यानप्रयोजनम् ॥ ४९ ॥ एवमुक्तोनरपतिर्ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ गवांशतसहस्राणिदशतेभ्योददौनृपः ॥ ५० ॥ दशकोटिंसुवर्णस्यरजतस्यचतुर्गुणम् ॥ ऋत्विजस्तुततःसर्वेप्रददुःसहितासु ॥५१॥ ऋष्यश्रृंगायमुनयेवसिष्ठाय चधीमते ॥ ततस्तेन्यायतःकृत्वाप्रविभानंद्विजोत्तमाः ॥ ५२ ॥ सुप्रीतमनसःसर्वेप्रत्यूचुर्मुदिताभृशम् ॥ततःप्रसर्पकेभ्यतुहिरण्यंसुसमा हितः ॥५३॥ जांबूनदंकोटिसंख्यंब्राह्मणेभ्योददौतदा ॥ दरिद्रायद्विजायाथहस्ताभरणमुत्तमम् ॥५४॥ कस्मैचिद्याचमानायाददौराघवनंदनः ॥ ततःप्रीतेषुविधिवद्द्विजेषुजवत्द्विसलः ॥५५॥ प्रणाममकरोत्तेषांहर्षव्याकुलितेंद्रियः ॥ तस्याशिषोऽथविविध ब्राह्मणैःसमुदाहृताः ॥५६॥ उदारस्यनृवीरस्यधरण्यांपतितस्यच ॥ ततःप्रीतमना राजाप्राप्ययज्ञमनुत्तमम् ॥ ५७ ॥ पापापहंस्व र्नयनंदुस्तरंपार्थिवर्षभैः ॥ ततोऽब्रवीदृष्यश्रृंगराजादशरथस्तदा ॥५८॥ कुलस्यवर्धनंतत्तुकर्तुमर्हसिसुव्रत॥ तथेतिचसराजानमुवाचद्विजसत्तमः ॥ ५९ ॥

हुये हैं अनन्तर अभ्यागतोंके निमित्त बहुत धन दिया॥५३॥ तदनन्तर राजा दशरथजीने जम्बूदेशका सोना ब्राह्मणोंको दिया इसमें कई करोड सुवर्ण खर्च हुआ फिर एक अकिंचन ब्राह्मणके धन माँगनेपर ॥५४॥ राजाने उसे हाथका कंगन देदिया उस ब्राह्मणके अभिलषित पदार्थ पाकरचले जानेपर द्विजवत्सल॥५५॥ महीपालने प्रसन्नतासे व्याकुल इन्द्रिय हो सब विप्रोंके चरणोंमें प्रणाम किया ब्राह्मणोंने भी प्रणाम करते हुए राजाको बहुतसे आशीर्वाद दिये ॥ ५६ ॥ इस प्रकार परम उदार महावीर पृथ्वीमें झुके हुए राजाको आशीर्वाद दिये तब वे बडे प्रसन्न होकर यज्ञको समाप्त करते हुए ॥५७ ॥ राजा दशरथजीने इस भाँति पापहारी स्वर्गकारीअश्वमेध यज्ञ जो और राजाओंसे न होसके समापन करके परम प्रीतिसे मुनिवर ऋष्यश्रृंगसे कहा॥५८॥ हे सुव्रत! जिससे मेरे वंशकी रक्षा

हो आप उसकाही अनुष्ठान कीजिये,ऋष्यशृंगने तथास्तु कहकर कहा॥५९॥ हे राजन्! तुम्हारे चार पुत्र वंशके बढानेवाले होंगे ॥ ६० ॥ राजा उनके मुखसे यह मधुर आश्वास्य वाक्य श्रवण करके उनको शिरनवा अतिशय प्रफुल्ल हुए और परम प्रीतिसे ऋष्यशृंगसे फिर यह वचन बोले ॥६१॥ इत्यार्षेश्रीमद्रा० वाल्मीकीये आदिकाव्येबालकाण्डेभाषाटीकायां चतुर्दशःसर्गः ॥ १४ ॥ तदनन्तर मेधावी वेदज्ञ महर्षि कुछ देरतक चिन्ता करके राजासे बोले ॥ १ ॥ हे राजन् ! मैं आपको पुत्र उत्पन्न होनेके लिये अथर्वणमें कहे हुए मंत्रोंमें सिद्धि देनेवाला पुत्रेष्टि यज्ञ कराऊंगा ॥ २ ॥ यह कहकर महातेजस्वी ऋषि पुत्रेष्टि यज्ञ आरंभ करके अथर्ववेदके विधानानुसार होम करने लगे ॥ ३ ॥ तदनन्तर यज्ञस्थलमें देवता गन्धर्व सिद्ध और महर्षिमिलित होकर अपना २ यज्ञभागलेने

भविष्यंतिसुताराजंश्चत्वारस्तेकुलोद्वहाः ॥ ६० ॥ सतस्यवाक्यंमधुरंनिशम्यप्रणम्यतस्मैप्रयतोनृपेन्द्रः ॥ जगामहर्षंपरमंमहात्मातमृष्यशृंगं पुनरप्युवाच ॥६१॥ इतिश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येबालकाण्डे चतुर्दशः सर्गः ॥१४॥मेधावीतुततोध्यात्वासकिंचिदिदमुत्तरम् ॥ लब्धसंज्ञस्ततस्तंतुवेदज्ञोनृपमब्रवीत् ॥ १ ॥ इष्टिंतेऽहंकरिष्यामिपुत्रीयांपुत्रकारणात्॥ अथर्वशिरसिप्रोक्तैर्मंत्रैःसिद्धांविधानतः ॥ २ ॥ ततः प्राक्रमदिष्टिंतांपुत्रीयांपुत्रकारणात् ॥ जुहावाग्नौचतेजस्वीमंत्रदृष्टेनकर्मणा॥३॥ततोदेवाःसगंधर्वाःसिद्धापरमर्षयः॥भागप्रतिग्रहार्थंवैसमवे तायथाविधि ॥४॥ ताःसमेत्ययथान्यायंतस्मिन्सदसिदेवताः ॥ अब्रुँवल्लोककर्तारंब्रह्माणंवचनंततः ॥५॥ भगवंस्त्वत्प्रसादेनरावणोनामरा क्षसः॥सर्वान्नोबाधतेवीर्याच्छासितुंतंनशक्नुमः ॥६॥ त्वयातस्मैवरोदत्तः प्रीतेनभगवंस्तदा ॥ मानयंतश्चतंनित्यंसर्वंतस्यक्षमामहे ॥ ७ ॥ उद्वेजयतिलोकांस्त्रीनुच्छ्रितान्द्वेष्टिदुर्मतिः ॥ शक्रंत्रिदशराजानंप्रधर्षयितुमिच्छति ॥८॥ ऋषीन्यक्षान्सगंधर्वान्ब्राह्मणानसुरांस्तदा ॥अतिक्रा मतिदुर्धर्षोवरादानेनमोहितः ॥९॥ नैनंसूर्यःप्रतपतिपार्श्वेवातिनमारुतः ॥ चलोर्मिमालीतंदृष्ट्वासमुद्रोऽपिनकंपते ॥ १० ॥

को आये ॥४॥ इस यज्ञमें इकट्ठे होनेपर सब देवता एकत्रहो न्यायानुसार सृष्टिकर्ता विधातासे यह वचन बोले॥५॥ हे भगवन्!आपके वैरके प्रभावसे बलवान् रावण हमें व्यथित करताहै आपसेअधिक क्याकहैंहमउससेलडनेमें असमर्थहैं॥६॥ हे भगवन्! आपने प्रसन्न हो उसे वरदान दिया है यही कारण है कि,उस अत्याचारीके हम सब अत्याचार सहन करते हैं ॥७॥ यह दुर्मति राक्षसनाथ त्रिलोकीको व्याकुल करता फिरताहै और सौभाग्य शालियोंसे घोरतर घृणा करताहै उसके घमं डकी वार्त्ता कहाँतक कहैं, कि वह देवेन्द्र के पराभवकीवासना करताहै॥८॥ इसीभाँति वह महर्षि, यक्ष; गन्धर्व, ब्राह्मण व असुरोंको ताडन करताहैं. महावरदान पानेसे वह मोहित हो किसीको नहीं गिनता॥९॥अधिक तो क्याकहैं न तो इसरावणको सूर्यसन्तापित करते, न वायुकभी जोरसे चलताहै;तरंगमालासंकुलसमुद्र

इसको देखकर अचल हो जाताहै॥१०॥आपसे अधिक क्या कहैं हमविकटमूर्ति उस निशाचरसे बडे शंकितहो भय पारहेहैं. अब हे भगवन्! यही प्रार्थना है कि उसके वधका उपाय कहिये॥११॥ स्वायम्भुव यह बात सुनकर देवताओंसे बोलेकि, मैंनेउस दुरात्माके वधका उपाय स्थिरकर लिया है॥१२॥ उसने मुझसे यह वर मांगाथाकि, देवता,गन्धर्व,यक्ष, और राक्षससे न मरूंमैंने भीउसेयहवर दे दियाहै॥१३॥ मनुष्योंकोकुछ न समझकर उसराक्षसने अज्ञानसे इनसे अवध्यत्वनहींमांगा अतएव मनुष्योंके हाथसेही उसकी मृत्यु होगी॥१४॥ प्रजापति ब्रह्माजीकी वह वाणी सुन देवता व महर्षिगण परम प्रसन्न हुए ॥१५॥ इतनेहीमें भगवान् कमलापति वहां आये उनके अंगकी शोभा शोभाको मात करती थी शंख,चक्र, गदा, पद्म, धारण किये वह पीतांबर पहरे हुए थे॥१६॥ गरुडपै चढ़ेहुए थे बादलके ऊपर

तन्महन्नोभयंतस्माद्राक्षसाद्घोरदर्शनात् ॥वधार्थंतस्य भगवन्नुपायंकर्तुमर्हसि॥११॥ एवमुक्तःसुरैःसर्वैश्चिंतयित्वाततोऽब्रवीत्॥ हंतायंविदित स्तस्यवधोपायोदुरात्मनः ॥१२॥ तेनगंधर्वयक्षाणांदेवतानांचरक्षसाम् ॥ अवध्योऽस्मीतिवागुक्तातथेत्युक्तंचतन्मया ॥१३॥ नाकीर्तयदव ज्ञानात्तद्रक्षोमानुषांस्तदा ॥ तस्मात्समानुषाद्वध्योमृत्युर्नान्योऽस्यविद्यते ॥ १४ ॥ एतच्छ्रुत्वाप्रियंवाक्यंब्रह्मणासमुदाहृतम् ॥ देवामहर्षयः सर्वेप्रहृष्टास्तेऽभवंस्तदा ॥ १५ ॥ एतस्मिन्नंतरेविष्णुरुपयातोमहाद्युतिः॥ शंखचक्रगदापाणिःपीतवासाजगत्पतिः ॥१६॥ वैनतेयंसमारुह्य भास्करस्तोयदंयथा ॥ तप्तहाटककेयूरोवंद्यमानःसुरोत्तमैः॥१७॥ब्रह्मणाचसमागत्यतत्रतस्थौसमाहितः ॥ तमब्रुवन्सुराःसर्वेतमभिष्टूयसन्नताः ॥ १८ ॥ त्वांनियोक्ष्यामहेविष्णोलोकानांहितकाम्यया॥ राज्ञोदशरथस्यत्वमयोध्याधिपतेर्विभो ॥ १९ ॥ धर्मज्ञस्यवदान्यस्यमहर्षिसम तेजसः ॥ अस्यभार्यासुतिसृषुह्रीश्रीकीर्त्युपमासुच ॥२०॥ विष्णोपुत्रत्वमागच्छकृत्वात्मानंचतुर्विधम् ॥ तत्रत्वंमानुषोभूत्वाप्रवृद्धंलोक कंटकम् ॥ २१ ॥ अवध्यंदैवतैर्विष्णोसमरेजहिरावणम् ॥ सहिदेवान्सगंधर्वान्सिद्धांश्चऋषिसत्तमान् ॥ २२ ॥ राक्षसोरावणोमूर्खैर्वीर्योद्रेके णबाधते ॥ ऋषयश्चततस्तेनगंधर्वाप्सरसस्तथा॥ २३ ॥

सूर्यनारायणकी जैसी शोभा होती है इसी भाँति रमापति शोभित थे. अंगोंमें तपाये सुवर्णके बाज पहरे थे देखतेही सुरगण उनकी स्तुतिकरने लगे॥१७॥ वह आतेही ब्रह्माजीके सहित आसनपर बैठे, देवगण उनकी अभिवादन पूर्वक स्तुति करने लगे ॥ १८ ॥ बोलेकि हे विभो ! सब लोगोंके मंगलार्थ हम लोग आपको किसी -कार्यमें नियुक्त करेंगे राजा दशरथजी जो अयोध्याके राजा हैं॥१९॥ वहबडे दानी धर्मज्ञ और महर्षितुल्य तेजस्वी हैंही श्री और कीर्ति समान उनकी तीन स्त्रियोंसे॥२०॥ आप पुत्रभावको प्राप्त हूजिये । आप अंशसहित चारभागोंमें विभक्तहो उनका पुत्र होना स्वीकार कीजिये औरमनुष्य अवतार धारणकर इस बढे हुए लोककंटक॥२१॥देवताओंसे अवध्य रावणका युद्धमेंनाश कीजिये यह देवता गन्धर्वसिद्ध और श्रेष्ठऋषियोंको॥२२॥ब्रह्माके वरसे मूढ रावण महापराक्रमी

हो निरन्तर सतारहाहै और उसने ऋषिगन्धर्वऔरअप्सराओंको सताया है॥२३॥जो गंधर्व औरअप्सरागण नन्दनकाननमेंआमोदप्रमोदकिया करतेथे वहभी इस भयानक रावणकेहाथसे मारेगये उसीके नाश करनेके अर्थ ॥ २४ ॥ हम सिद्ध, गन्धर्व, यक्ष और मुनिगणोंके सहित आपके शरण आये हैं क्योंकि हे परंतप हे देव ! आपही हमारे पर मगति हैं॥ २५॥ आप उस देववैरी रावणके मारनेको मनुष्य अवतार लीजिये इस प्रकारसे देवताओंके भगवान् विष्णुजी की ऐसी अमरगणोंसे स्तुति होनेपर ॥ २६ ॥ सर्व लोगोंके नमस्कार करने योग्य भगवान् धर्मयुक्त शरणमें आये हुए ब्रह्मादि देवताओंसे कहने लगे॥ २७ ॥ हे सुरगण ! तुम कुछ शंका मत करो तुम्हारा मंगल होगा मैं युद्धमें पुत्र पौत्र मंत्री भाई बन्धु और जाति सहित॥२८॥दूसरेके न जीते जानेके योग्यदेवर्षियोंके भयदायक उस असुरको निर्मूल कर ग्यारह हजार वर्षतक ॥ २९ ॥ पृथिवी पालन करते हुये मनुष्यलोकमें वास करूँगा, भगवान् नारायण आत्मस्वरूप देवता

क्रीडंतोनंदनवनेरौद्रेणविनिपातिताः॥वधार्थंवयमायातास्तस्यवैमुनिभिःसह ॥२४॥ सिद्धगंधर्वयक्षाश्चततस्त्वांशरणागताः ॥ त्वंगतिःपरमा देवसर्वेषांनःपरंतप ॥२५॥वधायदेवशत्रूणांनृणांलोकेमनःकुरु ॥ एवंस्तुतस्तुदेवेशो विष्णुस्त्रिदशपुंगवः ॥ २६ ॥ पितामहपुरोगांस्तान्सर्वं लोकनमस्कृतः अब्रवीत्त्रिदशान्सर्वान्समेतान्धर्मसंहितान् ॥२७॥ भयंत्यजतभद्रंवोहितातार्थंयुधिरावणम् ॥ सपुत्रपौत्रंसामात्यंसमंत्रिज्ञातिबांधवम् ॥ २८ ॥ हत्वाक्रूरंदुराधर्षंदेवर्षीणांभयावहम् ॥ दशवर्षसहस्राणिदशवर्षशतानिच ॥ २९ ॥ वत्स्यामिमानुषेलोकेपालयन्पृथिवीमिमाम् ॥ एवंदत्त्वावरंदेवोदेवानांविष्णुरात्मवान् ॥ ३० ॥ मनुष्येचिंतयामासजन्मभूमिमथात्मनः ॥ ततःपद्मपलाशाक्षःकृत्वात्मानंचतुर्विधम् ॥३१॥पितरंरोचयामासतदादशरथंनृपम् ॥ ततोदेवार्षिगंधर्वाः सरुद्राःसाप्सरोगणाः ॥स्तुतिभिर्दिव्यरूपाभिस्तुष्टुवुर्मधुसूदनम् ॥३२॥ तमुद्धतंरावणमुग्रतेजसंप्रवृद्धदर्पंत्रिदशेश्वरद्विषम् ॥ विरावणंसाधुतपस्विकंटकंतपस्विनामुद्धरतंभयावहम् ॥ ३३ ॥ तमेवहत्वासबलंसबांधवं विरावणंरावणमुग्रपौरुषम्॥स्वर्लोकमागच्छगतज्वरश्चिरंसुरेन्द्रगुप्तंगतदोषकल्मषम् ॥३४॥इत्यार्षेश्रीम०वा० आ०बा० पंचदशः सर्गः ॥१५॥

ओंको ऐसा वर देकर ॥ ३० ॥ भूलोकमें अपने जन्म स्थानके सम्बन्धमें चिन्ता करने लगे इस प्रकार वह पद्मपलाशलोचन अपनेको चार अंशोंमें विभक्त कर ॥३१॥राजा दशरथके यहां जन्म लेनेकी इच्छा करते हुए । तब देवर्षि गन्धर्व व अप्सरागण यह जानप्रसन्नहोदिव्य स्तुतियोंसे मधुसूदनभगवान्को प्रसन्नकरने लगे ॥३२॥ और कहा हे भगवन् ! आप उसवर पानेसे गर्वित बड़े तेजस्वी सुरेन्द्रशत्रु बड़े उद्धत त्रिलोकपीडक,साधु,तपस्वीजनोंके भयदायक और लोकके कंटक भयदीयी रावणकोकुलसहित संहार कीजिये ॥३३॥अब यही प्रार्थना है कि आप शीघ्र ही उस भयानक बड़े पुरुषार्थी रावणको सेना, बन्धुबान्धव सहित संहारकरके निश्चिन्ताईसे इन्द्रपालित पाप और दोषसहित स्वर्गमें फिर लौट आइये ॥३४॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा०वाल्मी०आदिकाव्ये बालकांडे भाषाटीकायां पञ्चदशःसर्गः ॥१५॥

तदनन्तर भगवान् नारायण रावणके विनाशका यद्यपि सब उपाय जानते थे तदपि नम्रतापूर्वक देवताओंसे कहने लगे ॥१॥ हे देवगण ! मैं कौनसे उपायसे उस देवकंटक राक्षसको संहार करूँगा इसविषयमें तुमनेभी कोई उपाय शोच रक्खा है! ॥२॥ तब अमरगण अव्यय विष्णुजीकी यह बात सुन उनसे कहने लगे कि, इससमय आपको मनुष्यतनु धारण कर उस रावणको वध करना होगा ॥३॥ हे शत्रुओंको मारनेवाले ! उस निशाचरने पूर्वकालमें बहुत तप किया था इससे संसारके पहले उत्पन्न हुये संसारके रचनेवाले ब्रह्माजी उसके ऊपर प्रसन्न हुए ॥४॥ व सन्तुष्ट हो उन्होंने यह वर दिया कि, तुझको किसी प्राणीसे डर न होगा सिवाय मनुष्यके॥५॥ वह मनुष्योंको तुच्छ समझता था इस कारण उसने मनुष्योंसे अभय नहीं माँगा इसभाँति पितामहके वरसे वह रावण दर्पित हुआ है॥६॥ इस समय वहतीनोंलोकको उजाड़ कर नर नारियोंको बलपूर्वक आकर्षण करताहै परन्तप निश्चय मनुष्यके हाथसे उसकी मृत्यु होगी यही उपाय है॥७॥भगवान्

ततोनारायणोविष्णुर्नियुक्तःसुरसत्तमैः॥ जानन्नपिसुरानेवंश्लक्ष्णंवचनमब्रवीत् ॥१॥उपायःकोवधेतस्यराक्षसाधिपतेःसुरः॥यमहंतंसमास्थाय निहन्यामृषिकंटकम् ॥२॥ एवमुक्ताःसुराःसर्वेप्रत्यूचुर्विष्णुमव्ययम् ॥ मानुषंरूपमास्थायरावणंजहिसंयुगे ॥३॥ सहितेपे तपस्तीव्रंदीर्घकाल मरिन्दमः॥येनतुष्टोऽभवद्ब्रह्मालोककृल्लोकपूर्वजः ॥४॥ संतुष्टःप्रददौतस्मैराक्षसायवरंविभुः॥नानाविधेभ्योभूतेभ्योभयंनान्यत्र मानुषात्॥५॥ अवज्ञाताःपुरातेनवरदानेहिमानवाः ॥ एवंपितामहात्तस्माद्वरदानेनगर्वितः ॥६॥ उत्सादयतिलोकांस्त्रीन्स्त्रियश्चाप्युपकर्षति ॥ तस्मात्तस्यव धोदृष्टोमानुषेभ्यःपरंतप ॥७॥ इत्येतद्वचनंश्रुत्वासुराणांविष्णुरात्मवान् ॥पितरंरोचयामासतदादशरथंनृपम् ॥८॥सचाप्यपुत्रोनृपतिस्तस्मि न्कालेमहामतिः ॥ अयजत्पुत्रियामिष्टिंपुत्रेप्सुररिसूदनः॥९ ॥ सकृत्वानिश्चयंविष्णुरामं त्र्यचपितामहम्॥ अंतर्धानंगतोदेवैःपूज्यमानो मह र्षिभिः ॥ १० ॥ ततोवैजमानस्यपावकादतुलप्रभम् ॥ प्रादुर्भूतंमहद्भूतमहावीर्यंमहाबलम् ॥ ११ ॥ कृष्णरक्तांबरधरंरक्तास्यंदुंदुभिस्वनम् ॥ स्निग्धहर्यक्षतनुजश्मश्रुप्रवरमूर्धजम् ॥ १२ ॥ शुभलक्षणसंपन्नंदिव्याभरणभूषितम् ॥ शैलशृंगसमुत्सेधंदृप्तशार्दूलविक्रमम् ॥ १३ ॥

विष्णुने देवगणोंके मुखसे ऐसा वाक्य श्रवण करके दशरथजी को पिता कहकर जताया ॥८॥ जिस समय निःसन्तान महाकान्तिवाले राजा दशरथजी पुत्रेष्टि यज्ञमें दीक्षितहुए अर्थात् शत्रुनाश करनेवाले पुत्रेष्टि यज्ञ करने लगे ॥९॥उसी समय नारायण उनके यहां अवतार लेनेको कृतनिश्चय हुए इस प्रकार विष्णु भगवान् निश्चय कर और ब्रह्माजीको आमंत्रण कर वह महर्षियोंसे पूजित हो देवताओंमेंसे अंतर्धानहो गये ॥१०॥ तदनंतर यज्ञदीक्षित दशरथजीके यज्ञकुण्डकी अग्निसे महावीर्यवान् बलशाली अतुलप्रभावाले पुरुष प्रगट हुए ॥११॥ वह लाल वस्त्रधार रक्तमुख कृष्णवर्ण दुन्दुभीके समान शब्दकरते प्रगट हुए इनका शरीर सिंहके समान रोमवाला डाढी मूँछ करके युक्त और केश चिकने थे ॥१२॥ वह शुभलक्षणयुक्त व दिव्य अलंकारसे शोभित उनका शरीर शैलशृंगके समान

उत्तुंग विक्रम केशरी समान ॥ १३ ॥ इनकी आकृति सूर्यकी व चन्द्र किरणोंके समानतेज अग्निसम जाज्वल्यमान पोशाक तपायेसोनेकी नाई राजचिह्नोंसे विभूषित ॥१४॥ उसके हाथमें प्रिय पत्नीकी नाई दिव्य खीरका पात्रथा वह उनको अच्छीतरह भार्याकी समान अपने करोंमें लिये हुए ॥१५॥ राजा दशरथको देखकर उनसे कहने लगे हे नृप ! मुझ आये पुरुषको प्रजापतिजीका भेजा हुआ पुरुष जानो॥१६॥ तदनन्तर राजा उनका वाक्यश्रवण करके अति बिनती कर हाथ जोड बोले हे भगवन् ! आप निरापद तो आये, जो हो आज्ञा कीजिये मुझे क्या कार्य करना होगा ॥ १७ ॥ तदनंतर वह पुरुष फिर कहने लगे हे राजा ! आपने देवताओंकी आराधना करके अब यह पायस पायी ॥ १८ ॥ हे राजन् यह वस्तु देवनिर्मित वंशदायक और प्रशंसित पायस आयु और

दिवाकरसमाकारंदीप्तानलशिखोपमम् ॥ तप्तजांबूनदमयींराजतांतपरिच्छदाम्॥ १४॥ दिव्यपायससंपूर्णांपात्रींपत्नीमिवप्रियाम्॥ प्रगृह्यविपुलां दोर्भ्यांस्वयंमायामयीमिव॥ १५॥ समवेक्ष्याब्रवीद्वाक्यमिदंदशरथंनृपम् ॥ प्राजापत्यंनरंविद्धिमामिहाभ्यागतंनृप॥ १६॥ ततःपरंतदाराजाप्रत्यु वाचकृतांजलिः॥ भगवन्स्वागतंतेऽस्तुकिमहंकरवाणिते॥ १७॥ अथोपुनरिदंवाक्यंप्राजापत्यो नरोऽब्रवीत्॥ राजन्नर्चयतादेवानद्यप्राप्तमिदंत्वया ॥ १८॥ इदंतुनृपशार्दूलपायसंदेवनिर्मितम् ॥ प्रजाकरं गृहाणत्वंधन्यमारोग्यवर्धनम्॥ १९॥ भार्याणामनुरूपाणामश्नीतेतिप्रयच्छवै ॥ तासुत्वं लप्स्यसेपुत्रान्यदर्थंयजसेनृप ॥२०॥ तथेतिनृपतिःप्रीतःशिरसाप्रतिगृह्यताम्॥ पात्रींदेवान्नसंपूर्णांदेवदत्तांहिरण्मयीम् ॥२१॥ अभिवाद्यचतद्भूत मद्भुतंप्रियदर्शनम् ॥ मुदापरमयायुक्तश्चकाराभि प्रदक्षिणम्॥२२॥ ततोदशरथःप्राप्यपायसंदेवनिर्मितम्॥ बभूवपरमप्रीतःप्राप्यवित्तमिवाधनः ॥२३॥ ततस्तदद्भुतप्रख्यंभूतंपर मभास्वरम् ॥ संवर्तयित्वातत्कर्मतत्रैवांतरधीयत॥२४॥ हर्षरश्मिभिरुद्द्योतंतस्यांतःपुरमाबभौ॥ शारदस्या भिरामस्यचंद्रस्येवनभोंऽशुभिः॥२५॥ सोऽन्तःपुरंप्रविश्यैवकौसल्यामिदमब्रवीत् ॥ पायसंप्रतिगृह्णीष्वपुत्रीयंत्विदमात्मनः॥ २६ ॥

आरोग्यकी करनेवाली है अतएव इसे आप ग्रहण कीजिये॥१९॥ इसे अपनी अनुरूप रानियोंके खानेको दे दीजिये इससे अश्वय तुम्हारे पुत्र होंगे जिनके निमित्त आपने यह यज्ञ किया है॥२०॥ तब राजाने बहुत अच्छा कह उनके कहनेको शिर चढा उस देवान्न परिपूर्ण देवतोंके दिये सुवर्णपात्रको प्रसन्नहो ले लिया ॥२१॥ और इस अद्भुत दिव्यप्रियदर्शन पुरुषको परमप्रसन्नतासे शिर नवा उसकीप्रदक्षिणाकरने लगे॥२२॥ धन पानेसे दरिद्रीको जोआनन्द होताहै इसीप्रकार उसदेव तासे बनी हुई पायसको पाकर दशरथजीभी प्रमुदित हुए॥२३॥ तब वह अद्भुतआकारवाला परमशोभायमान दिव्य पुरुष अपना काम कर अग्निकुण्डमें अन्तर्धान होगया॥२४॥ शरत्कालकेपूर्णशशिकी जैसी शोभा होती है वैसेही खीरपानेसे राजा दशरथजी रानियोंका वदनमंडल शोभाको प्राप्त हुआ॥२५॥ वह पृथ्वीनाथ

रनिवासमें प्रवेश करतेही कौशल्यासे जाकर कहने लगे यह पायस तुम ग्रहण करोइससे तुम्हारे पुत्र होगा॥२६॥राजाने प्रथम उसखीरकाआधा भागकौशल्याको दिया तदनन्तर अवधनाथने उस आधी खीरके दो भागकर एक भाग सुमित्राको दिया॥२७॥ पुत्र होनेके निमित्त बाकी जो अमृतके समान खीरका आधा

कौसल्यायैनरपतिः पायसार्धंददौतदा ॥ अर्धादर्धंददौचापिसुमित्रायैनराधिपः ॥२७॥ कैकेय्यैचावशिष्टार्धंददौपुत्रार्थकारणात् ॥ प्रददौचा वशिष्टार्धंपायसस्यामृतोपमम् ॥२८॥ अनुचिंत्यसुमित्रायैपुनरेवमहामतिः ॥ एवंतासांददौराजाभार्याणांपायसंपृथक् ॥२९॥ ताश्चैवंपाय संप्राप्यनरेंद्रस्योत्तमस्त्रियः ॥ संमानंमेनिरेसर्वाःप्रहर्षोदितचेतसः ॥ ३० ॥

भाग बचा वह आधा भाग पुत्र होनेके निमित्त राजाने कैकेयीको दिया ॥२८॥ फिर राजाने विचारकर कैकेयीके भागमेंसे उसके आर्धांशका आधा सुमित्राको दियाइस भाँति राजाने वह प्रजापतिकी दीहुई पायस रानियोंको बाँटदी ॥२९॥राजाकी वह उत्तम स्त्रियें उस दिव्यपायसको पाकहो सब अपने आपको बडीभाग्य

---

१ इस पायस विभागके सम्बन्धमें अनेक प्रकारके पाठ दृष्टिगोचर होते हैं बंगदेशमें जो पाठ हैं सो यहां उद्धृत करते हैं त्युक्त्वा प्रददौतस्मै हविषोर्धं नराधिपः ॥२०॥ स्वयमेवं समं कृत्वा भागभागचतुष्टयम्। अर्द्धार्द्धं ददौचापि कैकेय्यैस नरपाधि॥२१॥ चतुर्भागं द्विधा कृत्वा सुमित्रायैददौ तदा । प्रददौ चावशिष्टं तत्पायसं देवनिर्मितम् ॥२॥ अनुचिन्त्य सुमित्रायै पुनरेवनराधिपः ।" अर्थात् राजा दशरथने यह बात कहकर स्वयं पायसके समान चार भाग किये,उसमें अर्द्धांश,अर्थात् दो भाग लेकरकौशल्याको दिये और अवशिष्ट दो भागका एक भाग अर्थात् चतुर्थांश कैकेईको दिया, शेष चतुर्थांशकेदो भाग करके एक भाग सुमित्राको दिया, फिर अनेक विवेचनाकरके वह अवशिष्ट पायस भाग भी सुमित्राको ही दिया, और भी इस विषयमें अनेक मत हैं इसीसम्बन्धमें अध्यात्मतत्त्वदर्शीपण्डितगण कहते हैं यह व्याख्या करते हैं कि रामायणमें जो विष्णुशब्दका प्रयोग है यहां उसका अर्थ परब्रह्म है प्रणवही परब्रह्म है ओं में (अ उ, म,) यह उच्चारण शब्द ब्रह्म हैं और इसका प्रतिपाद्य परब्रह्म उभयात्मक अवतारःहै प्रणवकी अर्धमात्रा (ॐ) से तुरीय या अर्थात् कौशपरब्रह्म राम ब्रह्माभिव्यक्ति शक्तिसे आविर्भूत हुए हैं,प्रणवका चतुर्थांश मकार प्राज्ञ पदवाच्य ईश्वर यही सर्वगुणसम्पन्न मकार कैकयीमें भरतरूपसे उत्पन्न हुआ है, दूसरा चतुर्थांश अकार विश्वनाम वेदांत प्रसिद्ध विराट् पुरुष हैं यही अकार लक्ष्मणरूपसे प्रगट हुआ है दूसरा चतुर्थांश उकार यह तैजस नामसे प्रसिद्ध हिरण्यगर्भ है यह प्रणवका अंग उकार शत्रुघ्नरूपसे उत्पन्न हुआ है. रामोत्तरतापनीय उपनिषदमें कहा है कि " अकाराक्षरसम्भूतः सौमित्रिर्विश्वभावनः ।उकाराक्षरसम्भूतः शत्रुघ्नस्तैजसात्मकः । प्राज्ञात्मकस्तु भरतोमकाराक्षरसम्भवः । अर्धमात्रात्मको रामो ब्रह्मानन्दैकविग्रहः "इस प्रकार अनेक गूढ अभिप्राय हैं अनेक व्याख्या हैं रामानुजीय व्याख्या तथा भूषण व्याख्या है पर निगूढ तत्त्व क्या हैं उसकी मुक्तसरीखे जनकेजाननेकी शक्ति कहां है यथा ' रामतत्त्वं विजानाति हनूमानथ लक्ष्मणः । तद्विमर्शे तुका शक्तिरितरस्योदरम्भरेः ' । श्रीरामकातत्त्व हनूमान और लक्ष्मणजीही जानते हैं, दूसरे पेटपालनेवालोंकी क्या सामर्थ्य है जो उसे जान सके ॥

वान् समझने लगीं और प्रसन्न हुई ॥३०॥ तदनन्तर वे उत्तमरानियें रामप्रदत्त वह पायस भोजन करकेतत्कालगर्भवती हुई तब उनका तेज हुताशन व आदित्य तुल्य बोध होने लगा ॥३१॥अनन्तर राजा दशरथजी रानियोंको गर्भवती देख मनोरथको प्राप्त हो बडे सन्तुष्ट हुए जिस प्रकारसे ऋषि सिद्ध देवता और इन्द्रादिकसे पूजित होकर नारायण स्वर्ग लोकमें प्रसन्न हों ॥३२॥ इत्यार्षेश्रीमद्रा० वाल्मीकीये आ० बालकाण्डे भाषाटीकायां षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥ भगवान् नारायणजीके माहात्म्य दशरथजीका पुत्र होना स्वीकार करने पर ब्रह्माजी सब देवताओंसे इस प्रकार कहने लगे ॥१॥ हे देवगण ! हम सबके हितकारी सत्यसंध महा वीर विष्णुजीकी कामरूपीसहाय सब सृजनकरो॥२॥ मायावी,शूर;चलनेमें पवन तुल्य, नीतिके जाननेवाले बुद्धिमान् विष्णुके तुल्यबलवालेपराक्रान्त

ततस्तुताःप्राश्यतमुत्तमस्त्रियोमहीपतेरुत्तमपायसंपृथक्॥ हुताश नादित्यसमानतेजसोऽचिरेणगर्भान्प्रतिपेदिरेतदा ॥३१॥ ततस्तुराजाप्रतिवी क्ष्यताःस्त्रियःप्ररूढगर्भाःप्रतिलब्धमानसः॥बभूवहृष्टस्त्रिदिवेयथाहरिःसुरेंद्रसिद्धर्षिगणाभिपूजितः ॥३२॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकांडे षोडशःसर्गः ॥ १६ ॥ पुत्रत्वंतुगतेविष्णौराज्ञस्तस्यमहात्मनः ॥ उवाचदेवताःसर्वाःस्वयंभूर्भगवानिदम् ॥ १ ॥ सत्यसंधस्यवीरस्यसर्वेषांनोहितैषिणः ॥ विष्णोः सहायान्बलिनःसृजध्वंकामरूपिणः ॥२॥ मायाविदश्चशूरांश्चवायुवेगसमान्जवे ॥ नय ज्ञान्बुद्धिसंपन्नान्विष्णुतुल्यपराक्रमान् ॥३॥ असंहार्यानुपायज्ञान्दिव्यसंहननान्वितान् ॥ सर्वास्त्रगुणसंपन्नानमृतप्राशनानिव ॥ ४ ॥ अप्स रःसुचमुख्यासुगंधर्वी णांतनूषुच ॥ यक्षपन्नगकन्यासुऋक्षविद्याधरीषुच ॥५॥ किन्नरीणांचगात्रेषुवानरीणांतनूषुच ॥ सृजध्वंहरिरूपेणपुत्रांस्तु ल्यपराक्रमान् ॥६॥ पूर्वमेवमयासृष्टोजांबवानृक्षपुंगवः ॥ जृंभमाणस्यसहसाममवक्त्रादजायत ॥ ७ ॥ तेतथोक्ताभगवताउत्प्रतिश्रुत्यशास नम् ॥ जनयामासुरेवंतेपुत्रान्वानररूपिणः ॥८॥ ऋषयश्चमहात्मानःसिद्धविद्याधरोरगाः ॥ चारणाश्चसुतान्वीरान्ससृजुर्वनचारिणः ॥ ९ ॥ वारेंद्रंमहेंद्राभमिंद्रोवालिनमात्मजम् ॥ सुग्रीवंजनयामासतपनस्तपतांवरः ॥ १० ॥

॥ ३॥ किसीसे नहारनेवाले बहुत उपायोंके जाननेवाले व सर्वगुण संपन्न सबअस्त्रोंके जाननेवाले व अमृत पीने वालोंके समान ॥ ४ ॥ तुम मुख्य २ अप्सराओंमें गन्धर्वियोंमें यक्ष और पन्नगोंकी कन्याओंमें ऋक्षऔर विद्याधरियोंमें ॥५॥किन्नरियोंमें और वानरियोंमें अपने समान बलशाली वानरोंके आकारवालेपुत्रोंको उत्पन्न करो॥६॥ मैंने प्रथमही ऋक्षप्रधानजाम्बवन्तको उत्पन्न किया है जभाई लेनेके समय एक साथ उनकी उत्पत्ति हुईथी॥७॥ ब्रह्माजीकी ऐसी आज्ञा श्रवण करिके वह सब उनकी बात माननेपर तत्परहुए और कपिरूपधारी पुत्र सब उत्पन्न करने लगे ॥८॥ तैसेही ऋषि, महात्मा, सिद्ध विद्याधर, सर्प, चारण, उरग इन लोगोंनेभी वानररूपी पुत्र उत्पन्न किये ॥ ९ ॥ ऐसेही देवेन्द्रसे महेन्द्र समान वालिकी उत्पत्ति हुई, सूर्य भगवान्के औरससे सुग्रीवका जन्महुआ ॥ १० ॥

बृहस्पतिजीसे बुद्धिमान् तारकनाम महाकपिकी उत्पत्ति हुई यह सम्पूर्ण वानरोंमें मुख्य और श्रेष्ठ बुद्धिमान् था ॥ ११ ॥ धनदका श्रीमान् गंधमादन वानर हुआ विश्वकर्माने नल नाम महाकपिको उत्पन्न किया ॥१२॥ पावकका बेटा श्रीमान् नील अग्निके समान कान्तिवाला हुआ, जो तेजमें, यशमें, वीर्यमें अपने पितासेभी अधिक हुआ ॥ १३ ॥ विचित्ररूप सम्पन्न दोनों अश्विनीकुमारोंसे मयन्द व द्विविद नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १४ ॥ वरुणसे सुषेण नाम वानरकी उत्पत्ति हुई,मेघ देवतासे शरभ नाम महाबली वानर उत्पन्न हुआ॥१५॥और पवनसे श्रीमान् हनुमानजीकी उत्पत्तिहुई इस वीरकी देहअशनिसे कडी व चाल पक्षिराज गरुडके समान हुई ॥१६॥हनुमानूजी सब वानरोंमें मुख्य हुए बल वीर्यमें सबसे अधिक इसप्रकार रावणके विनाशार्थ असंख्य वानरोंकी सृष्टि

बृहस्पतिस्त्वजनयत्तारंनाममहाकपिम् ॥ सर्ववानरमुख्यानांबुद्धिमंतमनुत्तमम् ॥११॥धनदस्यसुतःश्रीमान्वानरोगंधमादनः॥विश्वकर्मात्वजनयन्नलंनाममहा कपिम्॥१२॥पावकस्यसुतःश्रीमान्नीलोऽग्निसदृशप्रभः॥ तेजसायशसावीर्यादत्यरिच्यतवीर्यावान्॥१३॥ रूपपद्रविणसम्पन्नावस्विनोरूपसंमतौ ॥ मैंदंचद्विविदंचैवजनयामासतुःस्वयम्॥१४॥वरुणोजनयामाससुषेणंनामवानरम् ॥ शरभंजनयामासपर्जन्यस्तुमहाबलः ॥१५॥ मारुतस्यौरसःश्रीमान्हनूमान्नामवानरः ॥ वज्रसंहननोपेतोवैनतेयसमोजवे ॥१६॥ सर्ववानरमुख्येषुबुद्धिमा न्बलवानपि॥तेसृष्टावहुसाहस्रादशग्रीववधोद्यताः ॥१७॥ अप्रमेयबलावीराविक्रांताःकामरूपिणः ॥तेगजाचलसंकाशावपुष्मंतो महाबलाः॥ १८ ॥ ऋक्षवानरगोपुच्छाःक्षिप्रमेवाभिजज्ञिरे ॥ यस्यदेवस्ययद्रूपंवेषोयश्चपराक्रमः ॥ १९ ॥अजायतसमंतेनतस्यतस्यपृथक्पृथक्॥गोलांगूलेषुचोत्पन्नाःकिंचिदुन्नतविक्रमाः॥२०॥ ऋक्षीषुचतथाजातावानराःकिन्नरीषुच॥देवामहर्षिगंधर्वास्ता क्ष्र्यक्षायशस्विनः॥२१॥नागाःकिंपुरुषाश्चैवसिद्धविद्याधरोरगाः ॥ बहवोजनयामासुर्हृष्टास्तत्रसहस्रशः ॥२२॥चारणाश्चसुतान्वीरान्ससृजुंवनचारिणः॥वानरान्सुमहाकायान्सर्वान्वैवनचारिणः॥२३॥

उत्पन्न हुई ॥ १७ ॥ वह सबही अमित बलशाली कामरूपी मातंग व पर्वततुल्य देहधारी हुए॥१८॥ इस प्रकार ऋक्ष वानर और गोपुच्छ सब क्रमशः उत्पन्न हुए जिस देवताका जैसे रूप जैसा भेष जैसा पराक्रम था ॥१९॥ वैसेही सबकी सन्तान पृथक् २ हुई जो गोपुच्छसे पैदा हुए उनका बल और विक्रम दूसरोंसे अधिक हुआ ॥२०॥ इस भाँति रीछ और किन्नरियोंमें वानर उत्पन्न हुए. देवता, महर्षि, गंन्धर्व ताक्ष्र्यवंशवाले यशस्वी यक्ष ॥ २१ ॥ नाग, किम्पुरुष, सिद्ध, विद्याधर,उरग इन्होंने सैकड़ो पुत्र उत्पन्नकिये॥२२॥वे बंदी चारणभी वनचारी बलवान् पुत्रोंको उत्पन्न करतेहुए यह सब वानर बडे शरीरवाले वनचारी हुए२३

उनकी उत्पत्ति मुख्य २ अप्सरा विद्याधर गन्धर्वों और नागकन्याओंके गर्भोंमें हुई यह सब कामरूप इच्छाचारी थे ॥२४॥ यह लोग दर्प व बलमें सिंह अथवा शार्दूल सपान हुए शिला और पर्वत इनके सब अस्त्रशस्त्र हुए यह शिलाओंसे युद्ध करने वाले थे ॥२५॥ यह सब दांतोंसे काटनेमें चतुर सब अस्त्र शस्त्र चलानेमें पंडित इनके घोर नादसे शैलेंद्र कंपायमान व बडे २ पेड चूण हो जाते थे ॥ २६ ॥वेगसे यह नदी और समुद्रको क्षुभित कर सके थे पैरोंसे पृथ्वीको विदारित और सब समुद्रोंको खलबला सकते थे ते ॥२७॥ अधिक क्या कहैं यह नभो मंडलमें प्रवेश कर बादलोंको चीरफाड डाले और इसी भाँतिमत्त मातंगोंकोवनमें फिरते २ निपातित करदें ॥२८॥ जिस समय गरजें तो नादसे मक्षी गिर जायँ इस प्रकार कामरूपी वानरकी उत्पत्ति हुई॥२९॥ऐसेमहा पराक्रमी सहस्रों सैकड़ों

अप्सरःसुचमुख्यासुतथाविद्याधरीषुच ॥नागकन्यासुचतदागंधर्वीणांतनूषुच॥कामरूपबलोपेतायथाकामविचारिणः॥२४॥सिंहशार्दूलसदृशा दर्पेणचबलेनच ॥ शिलाप्रहरणाःसर्वे सर्वेपर्वतयोधिनः ॥२५॥नखदंष्ट्रायुधासर्वेसर्वेसर्वास्त्रकोविदाः ॥विचालयेयुःशैलेंद्रान्भेदयेयुःस्थिरान्द्रुमान्॥२६॥क्षोभयेयुश्चवेगेनसमुद्रंसरितांपतिम्॥दारयेयुःक्षितिंपद्भ्यामाप्लवेयुर्महार्णवान्॥२७॥नभस्तलंविशेयुश्चगृह्णीयुरपितोयदान्॥गृह्णीयुरपिमातंगान्मत्तान्प्रव्रजतोवने ॥२८॥नर्दमानांश्चनादेनापातयेयुर्विहंगमान्॥ईदृशानांप्रसूतानिहरीणांकामरूपिणाम् ॥ २९॥शतंशतसहस्राणि यूथपानां महात्मनाम्॥तेप्रधानेषुयूथेषुहरीणांहरियूथपाः॥३०॥बभूवुर्यूथपश्रेष्ठान्वीरांश्चाजनयन्हरीन्॥अन्येऋक्षवतःप्रस्थानुपतस्थुःसहस्रशः ॥३१॥अन्येनानाविधाञ्छैलान्काननानिचभेजिरे ॥सूर्यपुत्रंचसुग्रीवंशक्रपुत्रंचवालिनम्॥३२॥भ्रातरावुपतस्थुस्तेसर्वेचहरियूथपाः ॥ नलंनीलं हनूमंतमन्यांश्चहरियूथपान्॥३३॥तेताक्ष्यर्बलसंपन्नाःसर्वेयुद्धविशारदाः॥विचरंतोऽर्दयन्सर्वान्सिंहव्याघ्रमहोरगान्॥३४॥महाबलोमहाबाहुर्वालीविपुलविक्रमः॥जुगोपभुजवीर्येणऋक्षगोपुच्छवानरान्॥३५॥तैरियंपृथिवीशूरैःसपर्वतवनार्णवा।कीर्णाविविधसंस्थानैर्नानाव्यंजनलक्षणैः॥३६॥

लाखों वानर हुए इनमें कुछ यूथपति और उनमेंप्रधान कुछयूथपतिभी बहुत हो गये ॥३०॥ इसप्रकार महा बलवान् यूथनाथोंकी उत्पत्ति हुई इनमेंऋक्षवान्पर्वतोंमें रहते कुछ पर्वतोंके प्रस्थके ऊपर वास करने लगे ॥३१॥ व दूसरे और२पर्वतोंव बनोंमें रहने लगेइन बन्दरोंमें कितने सुग्रीव सूर्य नंदनके व कितने मघवासुत वाली ॥३२॥ इन दोनोंके आश्रयमें रहने लगे और बन्दरोंने नलनील व हनुमान्जीकी अधीनता स्वीकार करली ॥ ३३ ॥ इस प्रकारसे गरुडके समान अमित बलशाली युद्धविद्याविशारद वह सब वानरगण सिंह व्याघ्र व उरगोंको मर्दित करके विचरण करने लगे ॥ ३४ ॥ महाबली कपिनाथ वाली अपनी भुजाओंके बलसे ऋक्ष गोपुच्छ आदि वानरोंकी रक्षा करने लगे ॥ ३५ ॥ इस प्रकारसे उन बहुतसे स्थानोंमें रहतेहुए वीर्यवान् वानरोंसे जिनके अनेक प्रकारके रूप

रंगथे पर्वत वन और सागरसहित पृथ्वी परिपूर्ण होगई ॥ ३६ ॥ उनके आकार मेघमाला व पहाड़ोंकी चोटियोंके समानथे उन महाबली वानरोंके यूथोंसे जिनके शरीर बडे भयंकर थे पृथ्वी व्याप्त होगई यह रामकी सहायताके हेतु उत्पन्न हुए वह रामचन्द्रकीसहायताको उत्पन्नहो पृथ्वीको समाच्छन्न करनेलगे ॥ ३७ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रा० वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकांडे भाषाटीकायां सप्तदशः सर्गः ॥१७॥ महात्मा दशरथजीका यज्ञ समाप्त होनेपर देवता लोग स्व स्व भाग ग्रहण कर अपने२ स्थानको चले गये ॥ १ ॥ राजाभी दीक्षाकी विधि समाप्त कर रानियों सहित बल वाहन व भृत्योंको साथले अयोध्यापुरीमेंजानेकी इच्छा करने लगे॥२॥ इधर विदेशीय नृपतिगण यथोचित सन्मानित हो ऋषिश्रेष्ठ ऋष्यश्रृंगको प्रणामकर अपने२देशोंकोचले गये ॥ ३ ॥ श्रीसम्पन्न उन नरनाथोंके

तैर्मेघवृंदाचलकूटसन्निभैर्महाबलैर्वानरयूथपाधिपैः ॥बभूवभूर्भीमशरीररूपैःसमावृतारामसहायहेतोः ॥३७॥ इतिश्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डेसप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥ निर्वृत्तेतुक्रतौतस्मिन्हयमेधेमहात्मनः ॥ प्रतिगृह्यामराभागान्प्रतिजग्मुर्यथागतम् ॥ १ ॥ समाप्तदीक्षानियमःपत्नीगणसमन्वितः ॥ प्रविवेशपुरींराजासभृत्यबलवाहनः ॥२॥ यथार्हंपूजितास्तेनराज्ञाचपृथिवीश्वराः ॥ मुदिताः प्रययुर्देशान्प्रणम्यमुनिपुंगवम् ॥३॥ श्रीमतांगच्छतांतेषांस्वगृहाणिपुरात्ततः ॥ बलानिराज्ञांशुभ्राणिप्रहृष्टानिचकाशिरे ॥ ४ ॥ गतेषुपृथिवीशेषुराजादशरथःपुनः ॥ प्रविवेशपुरींश्रीमान्पुरस्कृत्यद्विजोत्तमान् ॥५॥ शांतयाप्रययौसार्द्धमृष्यश्रृंगःसुपूजितः ॥ अनुगम्यमानोराज्ञाचसानुयात्रेणधीमता ॥ ६ ॥ एवंविसृज्यतान्सर्वान्राजासंपूर्णमानसः ॥ उवाससुखितस्तत्रपुत्रोत्पत्तिंविचिंतयन् ॥ ७ ॥ ततोयज्ञेसमाप्तेतुऋतूनांषट्समत्ययुः॥ततश्चद्वादशेमासेचैत्रेनावमिकेतिथौ ॥८॥ नक्षत्रेऽदितिदैवत्येस्वोच्चसंस्थेषुपंचसु ॥ ग्रहेषु कर्कटेलग्नेवाक्पताविंदुनासह ॥९॥

अपने देशोंमें जानेके समय उनकी सेना सजी धजीहुई गमनकरने लगी और शोभित होने लगी ॥ ४ ॥ उन राजाओंके चले जानेपर राजादशरथजी ब्राह्मणों कोआगे करके अयोध्यापुरीमें पैठे ॥ ५ ॥ तब ऋषि ऋष्यश्रृंग शान्तासहित पूजे जाकर अपने घरको लौटे। राजा दशरथजी नौकर चाकरों समेत उन्हें कुछ दूर पहुँचाने आये ॥ ६ ॥ इस प्रकार राजादशरथजी सब आये हुए पाहुनोंको बिदा देकर सिद्धकामहो पुत्र होनेकी चिन्ता करते सुखसे कालव्यतीत करने लगे ॥७॥ तदनन्तर यज्ञ समाप्त होनेपर छःऋतु अर्थात्द्वादशमास बीत जाने पर चैत्रमासकी नौमीतिथिमें ॥ ८ ॥ पुनर्वसु नक्षत्रमें रवि,मंगल, शनि, गुरु, शुक्र,इन ग्रहोंके मेष, मकर तुला, कर्क मीनराशिमें आनेसे पंच ग्रहोंको मेष और बृहस्पति चन्द्रमाके सहित कर्कराशिमें उदित होनेपर ॥ ९ ॥

इटालीदेशके व्यासपरमहोदयकी पुस्तकमें यहां दो सर्ग अधिक हैं उनका अनुवाद पीछे परिशिष्टमें लिखेंगे।

रानीकौशल्याजीने दिव्य लक्षणयुक्तसब लोकोंके नमस्कार करने योग्यजगन्नाथ दिव्य लक्षणसे युक्त रामचन्द्रजीको उत्पन्न किया॥१०॥ ❀ यह राजा दशरथके पुत्र विष्णुके अर्धांशसे उत्पन्न हुए ओष्ठ लाल २ नेत्र लाल २ व इनका स्वर नगाडेके समान गंभीर हुआ ॥११॥ देवमाताअदिति जैसेवज्रपाणिइन्द्रकोपाकर शोभितहुईथीवैसेहीबडेहीतेजस्वीपुत्ररत्नकोप्राप्तहोनेसे कौशल्याजीशोभित हुई ॥ १२ ॥ तदनंतर कैकेयीकेगर्भसे विष्णुकेचतुर्थांशसर्वगुणा लंकृत महाबलशाली

प्रोद्यमानेजगन्नाथंसर्वलोकनमस्कृतम् ॥ कौसल्याऽजनयद्रामंदिव्यलक्षणसंयुतम् ॥१०॥ विष्णोरर्धंमहाभागंपुत्रमिक्ष्वाकुनंदनम् ॥ लोहिताक्षंमहाबाहुंरक्तोष्ठंदुंदुभिस्वनम् ॥ ११ ॥ कौसल्याशुशुभेतेनपुत्रेणामिततेजसा ॥ यथावरेणदेवानामदितिर्वज्रपाणिना ॥ १२॥ भरतोनाम कैकेय्यांजज्ञेसत्यपराक्रमः ॥ साक्षाद्विष्णोश्चतुर्भागःसर्वैःसमुदितोगुणैः॥१३॥ अथलक्ष्मणशत्रुघ्नौसुमित्राऽजनयत्सुतौ ॥ वीरौसर्वास्त्रकुशलौ विष्णोरर्धसमन्वितौ ॥१४॥ पुष्येजातस्तुभरतोमीनलग्नेप्रसन्नधीः ॥ सार्पेजातौतुसौमित्रीकुलीरेभ्युदितेरवौ ॥ १५ ॥ राज्ञःपुत्रामहात्मानश्चत्वारोजज्ञिरेपृथक्॥गुणवंतोऽनुरूपाश्चरुच्याप्रोष्ठपदोपमाः॥ १६ ॥

भरतजी उत्पन्न हुए ॥१३॥विष्णुके अर्द्धांश मिलनेसे और सम्पूर्णअस्त्रोंकेजाननेमें चतुर वीर लक्ष्मण व शत्रुघ्न सुमित्राजीके गर्भसे उत्पन्न हुए ॥१४॥ भरतजी पुष्य नक्षत्रमें हुए तो परलग्नउस समय मीनथी इसी कारण सदाप्र सन्नचित्त बने रहे व लक्ष्मण शत्रुघ्न आश्लेषा नक्षत्र कर्क लग्नमें मध्याह्न समय जन्मे॥१५ ॥ इसभाँति राजा दशरथजीके पृथक् २ चार पुत्र हुए यह चारोंही गुणवान् रूपवान् व पूर्वा व उत्तरा भाद्रापदा नक्षत्रकी नाईं प्रभासम्पन्न हुए ॥ १६ ॥

राग आसावरी ।। आज सुदिन शुभघरी सोहाई । रूपशील गुणधाम राम नृप भवन प्रगटभये आई ।।१।। अति पुनीत मधुमास लग्न ग्रह प्यार योग समुदाई । वर्षंहि विबुध निकर कुसुमावलि नभदुंदुभी बजाई ।।१।। कौशल्यादि मातु सब हर्षित यह सुखवर्णि न जाई । सुनदशरथ सुत जन्म लिये सब गुरुजन विप्र बुलाई ।।३।। वेदविहित कर क्रिया परम शुचि आनंद उर न समाई । सदन वेद ध्वनि करत मधुर मुनि बहुविधि बाज बधाई ।।४।। पुरवासिनप्रियनाम हेतु निज निज संपदा लुटाई । मणि तोरन बहुकेतु पताकन पुरी रुचिकर छाई।।५।।मागध सूत द्वार बंदीजन जहँ तहँ करत बड़ाई । सहज भृङ्गार किये वनिता चलि मंगल विपुलबनाई ।।६।। गावंहिदेहिं अशीशमुदित चिरजियो तनय सुखदाई । चोंथिनकुंकुम कीच अरगजा अगर अबीर उडाई ।।७।। नार्चहिं पुरनर नारि प्रेमभरि देह दशा विसराई । अमित धेनु तुरंग वसनमणि जातरूप अधिकाई ।।८।। देत भूप अनुरूप जाहि जोइ सकलं सिद्धिगृह आई। सुखी भये सुर संत भूमिसुर खल-गण मन मलिनाई ।।९।। सबहि सुमन विकसत रवि निकसत विपिन कुमुद विलखाई ।जो सुखसिन्धु सुकृत जो करते शिव विरंचि प्रभुताई ।।१०।। सो सुख उमंग अवध रह्यौ दशदिशि कवन जतन कहौं गाई । जो रघुवीर चरण चिन्तक तिनकी गति प्रगट दिखाई । अविरल अमल अनूप भक्ति दृढ तुलसिदास तब पाई ।।११।।

उस अवसरमें गन्धर्व मधुर संगीत और अप्सरायें नृत्य करनेलगीं देवदुन्दुभी बजाने व आकाशसे सुमनवृष्टि होने लगी ॥१७॥ अयोध्यानगरीसे उत्सवका स्रोत बहने लगा मार्गमेंघाटोंमें नट नर्तक इकट्ठे हुए बडीही भीड होगई ॥१८॥ गायक और वादकगणगीत और बाजा बजाने लगे और सम्पूर्ण रत्नोंकरके गलिये शोभाको प्राप्त हुईं॥१९॥राजाने इस उत्सवमें सूत,मागध और बंदियोंको बहुतधन दान दिया,ब्राह्मणोंकोभी असंख्य गायें दीं॥२०॥इस भाँति ग्यारह दिन बीत जाने पर अवनीनाथने पुत्रोंका नामकरण करवाया, महात्मा वसिष्ठजीने जेष्ठका नाम "राम" और कैकेयीके पुत्रका नाम "भरत" रक्खा ॥ २१ ॥ सुमित्रा के लडकोंमें से एकका नाम "लक्ष्मण" व दूसरेका नाम "शत्रुघ्न" कहकर पुकारा गया, परमप्रीतिसे वशिष्ठजी सब पुत्रोंका नामकरण किया ॥ २२ ॥ नाम

जगुः कलंचगंधर्वाननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ देवदुंदुभयोनेदुःपुष्पवृष्टिश्चखात्पतत् ॥१७॥ उत्सवश्चमहानासीदयोध्यायांजनाकुलः ॥ रथ्याश्चज नसंबाधानटनर्तकसंकुलाः ॥१८॥ गायनैश्चविराविविण्योवादनैश्चतथापरैः ॥ विरेजुर्विपुलास्तत्रसर्वरत्नसमन्विताः ॥१९॥ प्रदेयांश्चददौराजा सूतमागधबंदिनाम् ॥ ब्राह्मणेभ्योददौवित्तंगोधनानिसहस्रशः ॥२०॥ अतीत्यैकादशाहंतुनामकर्मतथाऽकरोत् ॥ ज्येष्ठंरामंमहात्मानंभरतंकै कयीसुतम् ॥२१॥ सौमित्रिंलक्ष्मणमितिशत्रुघ्नमपरंतथा ॥ वसिष्ठःपरमप्रीतो नामानिकुरुतेतदा ॥ २२ ॥ ब्राह्मणान्भोजयामास पौरजा नपदानपि ॥ अददद्ब्राह्मणानांचरत्नौघममलंबहु ॥ २३ ॥ तेषांजन्मक्रियादीनिसर्वकर्माण्यकारयत् ॥ तेषांकेतुरिवज्येष्ठोरामोरतिकरःपितुः ॥ २४ ॥ बभूवभूयोभूतानांस्वयभूरिवसंमतः ॥ सर्वेवेदविदःशूराःसर्वेलोकहितेरताः ॥ २५ ॥ सर्वेज्ञानोपसंपन्नाःसर्वेसमुदितागुणैः ॥ तेषाम पिमहातेजारामःसत्यपराक्रमः ॥ २६ ॥ इष्टःसर्वस्यलोकस्यशशांकइवनिर्मलः ॥ गजस्कंधेऽश्वपृष्ठेचरथचर्यासुसंमतः ॥२७॥ धनुर्वेदेचनि रतःपितुःशुश्रूषणेरतः ॥ बाल्यात्प्रभृतिसुस्निग्धोलक्ष्मणोलक्ष्मिवर्धनः ॥२८॥

करणके दिनराजाने पुरवासी वऔर राज्यके रहनेवाले ब्राह्मणोंको भोजन करवाके दक्षिणामें अनेक प्रकारके रत्नदिये॥२३॥इसभांति पुत्रोंकी जातकर्म और नाम करणक्रियाहुई इनपुत्रोंमें रामचन्द्रजी पताका रूप व पिताके सबसे अधिक प्यारे हुये॥२४॥ब्रह्माजी जिस प्रकारसब प्राणियोंके प्रिय होतेहैं ऐसेहीरामचन्द्रजीहुये सबभ्राताभी शूर वेदवित् और सबके उपकारी हुए॥२५॥सबही ज्ञान सम्पन्न और सर्व गुणोंके आधार हुये तिनमें भी रामचन्द्रजीसबसे अधिक सत्यपराक्रमीहुये ॥२६॥ चन्द्रमा जैसा निर्मल और सबको प्यारा होता है वैसेही यह हुये हाथी घोडे व रथपर बैठनेमें यह बडे चतुर हुये॥२७॥यह जैसे धनुर्विद्यामें पारदर्शी थे वैसेही

पितृसेवामें रत हुये लक्ष्मीके बढानेवाले लक्ष्मणजी भी बालकपनसे रामचन्द्रजीके अनुरागी हुए ॥२८॥ यह सदा लोकोंके आनंद देनेवाले ज्येष्ठ भ्राता श्रीराम चन्द्रजीकी आज्ञाको मानते अपने शरीरसेभी अधिकमानोरामचन्द्रजीको प्यार करने लगे ॥२९॥लक्ष्मी सम्पन्नलक्ष्मणजी मानोरामचन्द्रजीके दूसरे प्राणहीहुए यह विना रामचन्द्रजीके सोये शयन नहीं करते ॥३०॥ मिष्टान्नइत्यादि जो खाने को पाते सो विना रामके नहीं खाते जब रामचन्द्रजी अश्वारूढहोशिकारको जाते ॥३१॥ तब लक्ष्मणजी धनुष धारण कर उनके साथ रहते लक्ष्मणकीनाई शत्रुघ्नभी भरतजीके प्राणोंसे अधिक प्यारे होगये ॥ ३२ ॥ जिस प्रकारसे शत्रु घ्नजी भरतजीको प्यार करतेथे इसीप्रकारभरतजी शत्रुघ्नजीको प्यार करते थे उनचार महाभाग प्यारे पुत्रोंकोपाकरदशरथजी॥३३॥ देवगणोंसे ब्रह्माजी जैसे संतुष्ट

रामस्यलोकरामस्यभ्रातुर्ज्येष्ठस्यनित्यशः ॥ सर्वप्रियकरस्तस्यरामस्यापिशरीरतः ॥२९॥ लक्ष्मणोलक्ष्मिसंपन्नोबहिः प्राणइवापरः ॥ नच तेनविनानिद्रांलभतेपुरुषोत्तमः ॥ ३० ॥ मृष्टमन्नमुपानीतमश्नीतिनहितंविना ॥ यदाहिहयमारूढोमृगयांयातिराघवः ॥ ३१ ॥ अथैनंपृष्ठ तोऽभ्येतिसधनुःपरिपालयन्॥ भरतस्यापिशत्रुघ्नोलक्ष्मणावरजोहिसः ॥ ३२ ॥प्राणैःप्रियतरोनित्यंतस्यचासीत्तथाप्रियः॥सचतुर्भिर्महा भागैःपुत्रैर्दशरथःप्रियैः ॥ ३३ ॥ बभूवपरमप्रीतोदेवैरिवपितामहः ॥ तेयदाज्ञानसंपन्नाःसर्वेसमुदितागुणैः ॥ ३४ ॥ ह्रीमंतःकीर्तिमंतश्च सर्वज्ञादीर्घदर्शिनः ॥ तेषामेवंप्रभावाणांसर्वेषांदीप्ततेजसाम् ॥ ३५ ॥ पितादशरथोहृष्टोब्रह्मालोकाधिपोयथा ॥ तेचापिमनुजव्याघ्रावेदिका ध्ययनेरताः ॥३६॥ पितृशुश्रूषणरताधनुर्वेदेचनिष्ठिताः ॥ अत्रराजादशरथस्तेषांदारक्रियांप्रति॥ ३७ ॥ चिंतयामासधर्मात्मासोपाध्यायः सबांधवः ॥ तस्यचिंतयमानस्यमंत्रिमध्येमहात्मनः ॥३८॥

हुए थे वैसेही अपने समान पुत्रोंको पा प्रसन्नहुए जिससमय वे ज्ञानयुक्त औरसम्पूर्ण गुणोंसेयुक्त हुए॥३४॥ जबकुमारलज्जाकीर्तिसर्वज्ञ औरदूरदर्शित सम्पन्न हुए तब ऐसे उन प्रभावशालीऔर मनोहर कान्तिवाले पुत्रोंको देखकर ॥३५॥दशरथजी महाराज लोकोंके स्वामी ब्रह्माजीके समान परम प्रसन्न हुए और जिस समय वे पुरुषसिंह मन लगाकर वेद पढने लगे ॥ ३६ ॥ जब वह धनुर्विद्यामें पारदर्शी और पिताकी सेवामें रत हुए तब राजा दशरथजी उनके विवाह करनेकी चिंता करने लगे ॥ ३७ ॥ राजा के समान उनके मंत्री मित्र पुरोहितोंने भी इस विषयकी चिंताकी इस प्रकार वह महात्मा मंत्रियोंके बीचमें इस प्रकारकी

चिंता करतेही थे कि ॥ ३८ ॥ इसी अवसरमें महातेजधारी मुनिवर विश्वामित्रजी आये उन्होंने राजाके दर्शन की प्रार्थनासे उपस्थित हो द्वारपालोंसे कहा ॥ ३९ ॥ मैं गाधिका पुत्र विश्वामित्र हूँ, तुम लोग जल्दीसे मेरा आनेका संवाद राजाको दो द्वारपालोंने राजा विश्वामित्रजीकी वार्ता सुन तत्काल राजभवनमें प्रवेश किया ॥ ४० ॥ विश्वामित्रजीके वचन सुन व्याकुल होकर द्वारपालोंने राजभवनमें उपस्थित हो विश्वामित्रजीके आनेका समाचार ॥ ४१ ॥ इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुए राजा दशरथजीसे कहा द्वारपालोंके वचन सुन राजा दशरथजी पुरोहित और मंत्रियोंको साथ ले ॥ ४२ ॥ जिस प्रकार ब्रह्माजीकी अगुआनी इन्द्रजी करते हैं वैसेही राजा संवाद पातेही विश्वामित्रजीको लिवाने गये जाकर देखा कि, वह ऋषिश्रेष्ठ अपनी दीप्तिसे दीप्तिमान् हैं अतितीक्ष्ण कठोरव्रतधारी हैं ॥ ४३ ॥ अत्यन्त प्रसन्नहो राजाने

अभ्यागच्छन्महातेजाविश्वामित्रोमहामुनिः ॥ सराज्ञोदर्शनाकांक्षीद्वाराध्यक्षानुवाचह ॥ ३९ ॥ शीघ्रमाख्यातमांप्राप्तंकौशिकंगाधिनःसुतम् ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्यराज्ञोवेश्मप्रदुद्रुवुः ॥ ४० ॥ संभ्रांतमनसःसर्वेतेनवाक्येनचोदिताः ॥ तेगत्वाराजभवनंविश्वामित्रमृषिंतदा ॥ ४१ ॥ प्राप्तमावेदयामासुर्नृपायेक्ष्वाकवेतदा ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वासपुरोधाःसमाहितः ॥ ४२ ॥ प्रत्युज्जगामसंहृष्टोब्रह्माणमिववासवः ॥ सदृष्ट्वाज्वलितं दीप्त्यातापसंसंशितव्रतम् ॥ ४३ ॥ प्रहृष्टवदनोराजाततोऽर्घ्यमुपहारयत् ॥ सराज्ञःप्रतिगृह्यार्घ्यंशास्त्रदृष्टेनकर्मणा ॥ ४४ ॥ कुशलंचाव्ययंचैवपर्यपृच्छन्नराधिपम् ॥ पुरेकोशेजनपदेबांधवेषुसुहृत्सुच ॥ ४५ ॥ कुशलंकौशिकोराज्ञःपर्यपृच्छत्सुधार्मिकः ॥ अपितेसन्नताःसर्वेसामंतरिपवोजिताः ॥ ४६ ॥ दैवंचमानुषंचैवकर्मतेसाध्वनुष्ठितम् ॥ वसिष्ठंचसमागम्यकुशलंमुनिपुंगवः ॥ ४७ ॥ (वसिष्ठश्चसमागम्य प्रहसन्मुनिपुंगवः ॥ यथार्हंपूजयित्वैनं पप्रच्छ कुशलंतदा ॥) ऋषींश्चतान्यथान्यायंमहाभागउवाचह ॥ तेसर्वेहृष्टमनसस्तस्यराज्ञोनिवेशनम् ॥ ४८ ॥ विविशुःपूजितास्तेननिषेदुश्चयथार्हतः ॥ अथहृष्टमनाराजाविश्वामित्रंमहामुनिम् ॥ ४९ ॥

मुनिजीको अर्घ्य दिया मुनिजीने शास्त्रानुसार राजाका दिया अर्घ्य ग्रहणकर ॥ ४४ ॥ राजासे कुशल प्रश्न किया और पुर, कोश, देश और बन्धुबान्धवोंका मंगल संवाद पूछा ॥ ४५ ॥ तदनन्तर फिर धर्मात्मा विश्वामित्रजी राजासे कुशल पूँछने लगे हे अवनी नाथ! आपके सामन्त नृपति और रिपुदल वशमें तो हैं ? ॥ ४६ ॥ देव और मनुष्योंके कार्य तो सुखसे होते रहते हैं ? यह बूझकर वशिष्ठजीसे मिलकर कुशल पूँछी ॥ ४७ ॥ फिर उन महात्मा विश्वामित्रजीने और ऋषियोंसे कुशल पूँछी तदनन्तर सबके सब प्रफुल्ल मनसे राजभवनमें प्रवेश कर ॥ ४८ ॥ यथोचित् पूजे जाकर यथायोग्य आसनों पर बैठे फिर प्रजानाथ प्रसन्न मनसे विश्वामित्रजीकी ॥ ४९ ॥

अच्छी तरह से पूजाकर प्रसन्न होकर उनसे बोले आपका समागम अमृत प्राप्तिके समान निर्जल प्रदेशमें जल वर्षनेके समान है ॥५०॥ अपने समान रूपगुण अव-
स्थावाली स्त्रियोंमें पुत्ररहितको पुत्र होनेके समान, खोई हुई वस्तुको फिर पानेके समान, ॥५१॥ हर्षकालकी अवस्थाके समान, इस समयमें आनंदित हुआ हूँ, इसी प्रकारसे मैं
आपका आना मानता हूँ हे महामुनि! आप अच्छी तरहसे तो आये? अब आज्ञा कीजिये कि, आपका कौनसा प्रियकार्य करूं ॥ ५२ ॥ आप सेवा वा शुश्रूषा करनेके
योग्य हैं, हे ब्राह्मण ! मेरे भाग्यसेही आपका यहां आना हुआ है जो होय आज मैंने जाना कि, मेरा जीवन जन्म सफल हुआ ॥ ५३ ॥ हे विप्रेन्द्र ! आज मेरे
जीवनकी रजनीका सुप्रभात है क्योंकि आप सरीखे महात्मासे साक्षात् हुआ आप प्रथम राजर्षि थे तभी बडी तपस्यासे महातेजस्वी हुए थे ॥५४॥ अब आप

उवाचपरमोदारोहृष्टस्तमभिपूजयन् ॥ यथाऽमृतस्यसंप्राप्तिर्यथावर्षमनूदके ॥५०॥ यथासदृशदारेषुपुत्रजन्माप्रजस्यवै॥ प्रनष्टस्ययथाला-
भोयथाहर्षोमहोदयः ॥५१॥ तथैवागमनंमन्येस्वगतंतेमहामुने ॥ कंचतेपरमंकामंकरोमिकिमुहर्षितः ॥ ५२ ॥ पात्रभूतोऽसिमेब्रह्मन्दिष्ट्या
प्राप्तोऽसिमानद ॥ अद्यमेसफलंजन्मजीवितंचसुजीवितम् ॥५३॥ यस्माद्विप्रेंद्रमद्राक्षंसुप्रभातानिशामम ॥ पूर्वंराजर्षिशब्देनतपसाद्योतित-
प्रभः ॥५४॥ ब्रह्मर्षित्वमनुप्राप्तःपूज्योऽसिबहुधामया ॥ तदद्भुतमभूद्विप्रपवित्रंपरमंमम ॥५५॥ शुभक्षेत्र गतश्चाहंतवसंदर्शनात्प्रभो ॥ ब्रूहि
यत्प्रार्थितंतुभ्यंकार्यमागमनंप्रति ॥५६॥ इच्छाम्यनुगृहीतोऽहंत्वदर्थंपरिवृद्धये ॥ कार्यस्यनविमर्शं चगंतुमर्हसिसुव्रत ॥ ५७ ॥ कर्ताचाहम-
शेषेणदैवतंहिभवान्मम ॥ ममचायमनुप्राप्तोमहानभ्युदयोद्विजः ॥ तवागमनजःकृत्स्नोधर्मश्चानुत्तमोद्विज ॥ ५८ ॥ इतिहृदयसुखंनिश-
म्यवाक्यंश्रुतिसुखमात्मवताविनीतमुक्तम् ॥ प्रथितगुणयशोगुणैर्विशिष्टःपरमऋषिः परमंजगामहर्षम् ॥५९॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मी-
कीये आदिकाव्ये च० बालकाण्डे अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

तपस्याके प्रभावसे ब्रह्मर्षि होगये हैं सबही प्रकारसे आप हमारे पूज्य हैं और तो क्या कहू आपके आगमनसे मुझे पवित्रता और विस्मय प्राप्त हुआ है॥५५ हे प्रभो!
आपका दर्शन पाकर मैं कृतकृत्य होगया अब किस कारण आपका आना हुआ सो कहिये यही मेरी प्रार्थना है ॥५६॥यह अनुगृहीत व्यक्ति आपकी आज्ञा पालनेको
प्रस्तुत है अतएवऐसेदाससे संकोचकरनेका कुछ प्रयोजन नहीं हैं ॥५७॥मैं बहुत भाँतिसे कर्तृत्व करता तो हूं किन्तु आप हमारे देवता हैं आपने जो यहां आगमन किया
है इसमें मेरा भाग्य व मुझे बडा पुण्य हुआ॥५८॥श्रेष्ठगुणोकीराशिमहायशस्वी परमऋषि विश्वामित्रजी दशरथजीके ऐसे हृदयके आनन्द देनेवाले श्रवणसुखकर और मनो-
हर स्वाधीन नम्रता युक्त वचन श्रवणकर अतिशय संतुष्ट हुए ॥ ५९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मीकीये आदि० बालकाण्डे भाषाटीकायामष्टादशः सर्गः ॥१८॥

महातेजा महर्षि विश्वामित्रजी महीपालदशरथजीके विचित्र विस्तृतवाक्य श्रवण करके पुलकित हो उनसे कहने लगे ॥१॥ आपने जिस वंशमें जन्म ग्रहण किया है इस कारण ऐसे वचन औरसे संभव नहीं विशेषतः जब परमज्ञानी वशिष्ठजी आपके गुरु हैं तब तो ऐसा शिष्टाचार आपहीको शोभा देता है ॥२॥ आपको अनुरोध करता हूं कि, जिस कार्यको मैं आपसे कहूं हे पुरुषशार्दूल ! वह आपको करना पड़ेगा आप प्रतिज्ञा कीजिये ॥३॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! मैं आजकल एक महायज्ञमें दीक्षित हुआ हूं, कामरूपी दो राक्षस उसकी समाप्ति न होतेही विघ्न करते हैं ॥ ४ ॥ उनका नाम सुबाहु व मारीच है, वह जैसे वीर्यवान् हैं वैसेही अस्त्रशिक्षित हैं बहुतकालके कियेव्रतकी समाप्तिके समयही विघ्न करते हैं ॥ ५ ॥ दुःखकी बात क्या कहूं जभी मैं यज्ञकार्यमें नियुक्त होता हूँ तभी वह यज्ञवेदीपर मांसके टुकडे

तच्छ्रुत्वाराजसिंहस्यवाक्यमद्भुतविस्तरम् ॥ हृष्टरोमामहातेजाविश्वामित्रोऽभ्यभाषत ॥१॥ सदृशंराजशार्दूलतवैवभुविनान्यतः ॥ महावंशप्रसूतस्यवसिष्ठव्यपदेशिनः ॥२॥ यत्तुमेहृद्गतंवाक्यंतस्यकार्यस्यनिश्चयम् ॥ कुरुष्वराजशार्दूलभवसत्यप्रतिश्रवः ॥ ३ ॥ अहंनियममातिष्ठे सिद्ध्यर्थंपुरुषर्षभ ॥ तस्यविघ्नकरौद्वौतुराक्षसौकामरूपिणौ ॥ ४ ॥ व्रतेतुबहुशश्चीर्णेसमाप्त्यांराक्षसाविमौ ॥ मारीचश्चसुबाहुश्चवीर्यवंतौसुशिक्षितौ ॥५॥ तौमांसरुधिरौघेणवेदितामभ्यवर्षताम् ॥ अवधूतेतथाभूतेतस्मिन्नियमनिश्चये ॥ ६ ॥ कृतश्रमोनिरुत्साहस्तस्माद्देशादपाक्रमे ॥ नचमेक्रोधमुत्स्रष्टुंबुद्धिर्भवतिपार्थिव ॥७॥ तथाभूताहिसाचर्यानशापस्तत्रमुच्यते ॥ स्वपुत्रंराजशार्दूलरामंसत्यपराक्रमम् ॥ ८ ॥ काकपक्षधरंवीरंज्येष्ठंमेदातुमर्हसि ॥ शक्तोह्येषमयागुप्तोदिव्येनस्वेनतेजसा ॥ ९ ॥ राक्षसायेविकर्तारस्तेषामपिविनाशने ॥ श्रेयश्चास्मैप्रदास्यामिबहुरूपंनसंशयः ॥ १० ॥ त्रयाणामपिलोकानांयेनख्यातिंगमिष्यति ॥ नचतौराममासाद्यशक्तौस्थातुंकथंचन ॥ ११ ॥

फेंककर रुधिरकी वर्षा करते हैं ॥ ६ ॥ जब हमारे यज्ञकी प्रतिज्ञा उनके ऐसे करनेसे भ्रष्ट हो जाती है तो हमें केवल श्रमही श्रम होता है इस कारण भग्नोत्साह होकर मैं यहां चला आया हूं हे पार्थिव ! मैं उनको शाप दे सकता हूं परन्तु इस यज्ञमें क्रोध करना वर्जित है ॥७॥ कारण कि, ऐसे यज्ञके साधनकालमें किसीको शाप नहीं देना चाहिये हे राजोंम सिंह ! अब आपसे यह प्रार्थना है कि, सत्यपराक्रमी रामचन्द्रजीको जो ॥८॥ काकपक्ष धारण किये महावीर श्रेष्ठ हैं उनको मेरे हाथमें सौंप दीजिये यह मेरे दिव्यतेजके प्रभावसे मुझसे रक्षित किये जाकर मेरे यज्ञकी रक्षा करनेमें समर्थ होंगे ॥९॥ मैं जानता हूँ कि, रामचन्द्रके हाथसे यज्ञविद्वेषी निशाचर अवश्य मारे जायँगे और यह आप मान लीजिये कि, मुझसे वह अनेक प्रकारसे मंगल लाभ करेंगे इसमें कुछ सन्देह नहीं क्योंकि यह समर्थ हैं ॥१०॥ विशेषतः मैं वह अनुष्ठान करूंगा कि, जिससे रामचन्द्रजीका नाम त्रिलोकमें विख्यात होजाय, आपनिश्चय जानिये कि, रामके सामने वह दो निशाचर कभी नहीं ठहर

सकेंगे॥११॥ मैं जानताहूं रामके अतिरिक्त उन दुष्टात्माओंको मारनेमें और कोई समर्थ नही है; यद्यपि पराक्रमसे अहंकारी होगये हैं तथापि पापी होनेके कारण कालहीके वश हैं ॥१२॥ हे राजशार्दूल ! वह निशाचर किसी प्रकारसे रामकी बराबरी नहीं कर सकते जो हो आप किसी प्रकारकी चिंता पुत्रोंके लिये मत कीजिये ॥१३॥ मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि आप राक्षसोंको मरा जानिये। यज्ञकी दशरात्रितक मेरे निकटयज्ञ वैरी राक्षसोंका संहार करनेकेलिये रामचन्द्रको भेज दीजिये मैं इन महात्मा रामचन्द्रजीके विक्रमको भली प्रकार जानता हूं कि यह विष्णुभगवान्‌के अवतार हैं ॥१४॥ और वशिष्ठादि अन्यान्य तापसगणभी रामचन्द्रजीकी लक्षणा-शक्तिको जानते हैं हे राजेंद्र ! यदि इस संसारमें धर्म और अक्षययश लाभकी आपको कामना हो॥१५॥तो रामचन्द्रको मेरे कार्य्यकेलिये मुझको प्रदान करो हे काकु-

नचतौराघवादन्योहंतुमुत्सहतेपुमान् ॥ वीर्योत्सिक्तौहितौपापौकालपाशवशं गतौ ॥१२॥ रामस्यराजशार्दूलनपर्याप्तौमहात्मनः ॥ नचपुत्रगतस्नेहंकर्तुमर्हसिपार्थिव ॥ १३ ॥ अहंतेप्रतिजानामिहतौतोविद्धिराक्षसौ ॥ अहंवेद्मिमहात्मानंरामं सत्यपराक्रमम् ॥१४॥ वसिष्ठोऽपिमहातेजायेचेमेतपसिस्थिताः ॥ यदितेधर्मलाभंतुयशश्चपरमंभुवि ॥१५॥ स्थिरमिच्छसिराजेंद्ररामंमेदातुमर्हसि ॥ यद्यभ्यनुज्ञांकाकुत्स्थददतेतव मंत्रिणः ॥ १६ ॥ वसिष्ठप्रमुखाःसर्वे ततोरामं विसर्जय ॥ अभिप्रेतमसंसक्तमात्मजंदातुमर्हसि ॥१७॥ दशरात्रंहियज्ञस्यरामंराजीवलोचनम् ॥ नात्येतिकालोयज्ञस्ययथाऽयंममराघव ॥ १८ ॥ तथाकुरुष्वभद्रंतेमाचशोकेमनःकृथाः ॥ इत्येवमुक्त्वाधर्मात्माधर्मार्थसहितंवचः ॥ १९ ॥ विरराममहातेजाविश्वामित्रोमहामतिः ॥ सतन्निशम्यराजेंद्रोविश्वामित्रवचःशुभम् ॥२०॥ शोकेनमहताविष्टश्चचालचमुमोहच ॥ लब्धसंज्ञस्ततोत्थायव्यषीदतभयान्वितः ॥ २१ ॥ इतिहृदयमनोविदारणंमुनिवचनंतदतीवशुश्रुवान् ॥ नरपतिरभवन्महान्महात्मा व्यथितमनाःप्रचचालचासनात् ॥ २२ ॥

त्स्थ! यदि तुम्हारे मंत्री॥१६॥ वशिष्ठादि मेरी प्रार्थनाका समर्थन करें तो रामचन्द्रको मेरे साथ भेज दीजिये ॥ १७ ॥ मैं कहता हूं कि, यह रामचन्द्र यज्ञकी दशरात्रिसे अधिक मेरे यहां न रहेंगे अब आप ऐसा कीजिये कि, जिससे मेरे यज्ञका समय बीत न जाय ॥१८॥ आपका मंगल हो आप रामचन्द्रको मेरे साथ भेज दीजिये, अकारण शोक न कीजिये, धर्मात्माविश्वामित्रजी इस प्रकारधर्मानुगत वाक्य कहकर ॥१९॥ महातेजस्वी महाबुद्धिमान् विश्वामित्रजी मौनावलम्बी हुए राजेन्द्र दशरथजी विश्वामित्रजीके यह वचन सुन ॥२०॥ अतिशय शोकसे मोहित हुए और चलायमान हुए तदनन्तर चैतन्यलाभ करके भयभीत हो विपन्न भावसे बैठे रहगये ॥२१॥ नरनाथ इस प्रकार विश्वामित्रजीके मुखसे हृदय विदारण और मनके मथित करनेवाले वचनोंको सुनमहाबुद्धिमान् महात्मा अतिशय

व्यथित और आसनच्युत हो गये ॥ २२ ॥ इति श्रीमद्रा० वाल्मी० आदि काव्येबालकाण्डेभाषाटीकायामेकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥ महीपति राजा दशरथजी विश्वामित्रजीके वचन सुन मुहूर्त्त भरतक मूर्छित रहे तदनन्तर, संज्ञा प्राप्त करके यह बोले ॥ १ ॥ हे राजर्षे ! इस समय हमारे कमलसे नेत्रवाले राम कुछ कम सोलह वर्षके (अर्थात् १६ वें वर्षमें क्षत्रियकुमार शस्त्रधारी होता है, कोई बारह वर्षका अर्थ करते हैं जैसा रावणसे मारीचने कहा "बालो द्वादशवर्षोयमकृतास्त्रश्चराघवः" पर यह वचन रावणके भय दिखानेको है) राक्षसोंसे युद्ध करमें यह समर्थ नहीं हैं॥२॥ मैं इनकई अक्षौहिणी सेनाका अधिपति हूं इस सेनाको साथ लेकर मैं राक्षसोंसे संग्राम करूँगा ॥ ३ ॥ यह सब अस्त्र विद्यानिपुण महाबलवान् वीर मेरे अधीन हैं यह राक्षसोंसे युद्धकरनेमें चतुर

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये च० आदिकाव्येबालकाण्डे एको विंशः सर्गः ॥१९॥ तच्छ्रुत्वाराजशार्दूलोविश्वमित्रस्यभाषितम्॥मुहूर्तमिवनिःसंज्ञःसंज्ञावानिदमब्रवीत् ॥ १ ॥ ऊनषोडशवर्षोमेरामोराजीवलोचनः ॥ नयुद्धयोग्यतामस्यपश्यामिसहराक्षसैः ॥२॥ इयमक्षौहिणीसेनायस्याहंपतिरीश्वरः ॥ अनयासहितोगत्वायोद्धाहंतैर्निशाचरैः ॥३॥ इमेशूराश्चविक्रांताभृत्यामेऽस्त्रविशारदाः ॥ योग्यारक्षोगणैर्योद्धुंनरामंनेतुमर्हसि ॥४॥ अहमेवधनुष्पाणिर्गोप्तासमरमूर्धनि ॥ यावत्प्राणान्धरिष्यामितावद्योत्स्येनिशाचरैः ॥५॥ निर्विघ्नाव्रतचर्यासाभविष्यति सुरक्षिता ॥ अहंतत्रगमिष्यामिनरामंनेतुमर्हसि ॥ ६॥ बालोह्यकृतविद्यश्चनचवेत्तिबलाबलम् ॥ नचास्त्रबलसंयुक्तोनचयुद्धविशारदः ॥ ७ ॥ नचासौरक्षसांयोग्यःकूटयुद्धाहिराक्षसाः ॥ विप्रयुक्तोहिरामेणमुहूर्तमपिनोत्सहे ॥८॥ जीवितंमुनिशार्दूलनरामंनेतुमर्हसि ॥ यदिवाराघवंब्रह्मन्नेतुमिच्छसिसुव्रत ॥ ९ ॥ चतुरंग समायुक्तंमयासहचतंनय ॥ षष्टिर्वर्षसहस्राणिजातस्यममकौशिक ॥ १० ॥

हैं अतएव रामको न लेजाइये ॥४॥ जबतक मेरी देहमें प्राण रहेंगे तबतक मैं धनुष धारणपूर्वक राक्षसोंसे युद्ध करके आपके यज्ञकी रक्षा करूँगा ॥ ५ ॥ मेरे उपस्थित रहनेसे निर्विघ्न आपके यज्ञकी रक्षा होगी अतएव मैं चलूँगा रामको न लेजाइये॥६॥मेरा राम बालक है विशेष करके पूरीधनुर्विद्यादि पढी नहीं दूसरोंका बलाबल जानता नहीं, अतएव अस्त्र चलानेमें चतुर हुआ नहीं और न युद्धविद्या अच्छी तरह जानता है ॥७॥ विशेषतःराम उन राक्षसोंसे युद्ध करनेके लायक नहीं क्योंकि राक्षस महायुद्ध करते हैं महाराज !मैं रामके बिना एक मुहूर्त नहीं जीसकता॥८॥हेमुनीश्वर ! मेरे जीवनस्वरूप रामको आप न लेजाइये और यदि रामचन्द्रको आप ले ही जाना चाहते हैं॥९॥(सब सुत प्रिय मोहिं प्राणकि नाईं, राम देत नहिं बनै गुसाईं)॥तो चतुरंगिणी सेनासमेत मुझे भी साथ लीजिये,

हे कौशिक ! इस समय मेरी उमर साठि ६०००० हजार वर्षकी हुई है ॥ १० ॥ मैंने बडे कष्टसे रामको पाया है अतएव न ले जाइये चारों पुत्रोंमें रामके ही ऊपर मेरी भारी प्रीति है ॥ ११ विशेषतः सब पुत्रोंमें रामही बड़े और प्रधान हैं अतएव उहें न लेजाइये मैं आपसे यह पूछता हूं कि वह राक्षस कौन और किसके पुत्र हैं ॥ १२ ॥ हे मुनिवर ! उनका आकार प्रकार व शक्ति कैसी है और रामचंद्र किस उपायसे उनको जीत सक्ते हैं ॥ १३ ॥ हे भगवन् ! मैं या मेरी सेना किस तरह वन मायावी राक्षसोंसे संग्राम करनेमें समर्थ होगी यह सब वृत्तांत मुझसे कहिये ॥ १४ ॥ मैं जानता हूँ वह बडे बलवान् हैं उन सब दुष्टाचारियोंके निकट किस प्रकारसे स्थिति करनी होगी राजाकी बात सुनकर मुनिवर विश्वामित्रजी कहने लगे ॥ १५ ॥ पौलस्त्यवंशमें उत्पन्न हुआ रावणनाम एक राक्षस है वह ब्रह्माके वरसे बलीहो त्रिलोकी

कृच्छ्रेणोत्पादितश्चायंनरामंनेतुमर्हसि ॥ चतुर्णामात्मजानाहंप्रीतिः परमिकामम ॥ ११ ॥ ज्येष्ठेधर्मप्रधानेचनरामंनेतुमर्हसि ॥ किंवीर्याराक्ष-सास्तेचकस्यपुत्राश्चकेचते ॥ १२ ॥ कथंप्रमाणाः कैचैतान्रक्षंतिमुनिपुंगव ॥ कथंचप्रतिकर्तव्यंतेषांरामेणरक्षसाम् ॥ १३ ॥ मामकैर्वाबलैर्ब्रह्मन्म-यावाकूटयोधिनाम् ॥ सर्वंमेशंसभगवन्कथंतेषांमयारणे ॥ १४ ॥ स्थातव्यंदुष्टभावानांवीर्योत्सिक्ताहिराक्षसाः ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा विश्वामि-त्रोऽभ्यभाषत ॥ १५ ॥ पौलस्त्यवंशप्रभवोरावणोनामराक्षसः ॥ सब्रह्मणादत्तवरस्त्रैलोक्यंबाधतेभृशम् ॥ १६ ॥ महाबलोमहावीर्योराक्षसैर्बहु-भिर्वृतः ॥ श्रूयतेचमहाराजरावणोराक्षसाधिपः ॥ १७ ॥ साक्षाद्वैश्रवणभ्रातापुत्रोविश्रवसोमुनेः ॥ यदानखलुयज्ञस्य विघ्नकर्तामहाबलः ॥ १८ ॥ तेनसंचोदितौतौतुराक्षसोचमहाबलौ ॥ मारीचश्चसुबाहुश्चयज्ञविघ्नंकरिष्यतः ॥ १९ ॥ इत्युक्तोमुनिनातेनराजोवाचमुनिंतदा ॥ नहिशक्तो ऽस्मिसंग्रामेस्थातुंतस्यदुरात्मनः ॥ २० ॥ सत्वंप्रसादंधर्मज्ञकुरुष्वममपुत्रके ॥ ममचैवाल्पभाग्यस्यदैवतंहिभवान्गुरुः ॥ २१ ॥ देवदानवगं-धर्वायक्षाःपतगपन्नगाः ॥ नशक्तारावणंसोढुंकिंपुनर्मानवायुधि ॥ २२ ॥

को सता रहा है ॥ १६ ॥ विपुलबलशाली निशाचरगण सदा उसको घेरे रहते हैं हे महाराज ! मैंने रावणका नाम सुना है वह महाबली राक्षसोंका राजा है ॥ १७ ॥ वह साक्षात् कुबेरका भाई है विश्रवामुनिका पुत्र है वह यह विचारकर कि, छोटे यज्ञोंको मैं क्या विध्वंस करूं ॥ १८ ॥ यज्ञवंश करनेके लिये सुबाहु और मारीच नाम महाबली दो राक्षसोंको भेज देता है ॥ १९ ॥ तब मुनिवरके वचन सुनकर नृपवरने कहा कि मैं उस भयंकर दुरात्मा रावणसे; संग्राम नहीं कर सक्ता ॥ २० ॥ आप इस समय मेरे रामपर प्रसन्न हूजिये, जान लीजिये कि आपही मुझहतभाग्यके देवतागुरु हैं ॥ २१ ॥ जब देव, दावन, गंधर्व यक्ष व पन्नगगण प्रभृति रावणके प्रतापको

नहीं सह सके तब मनुष्य तो हैं ही क्या ? ॥२३॥ वह रावण रणक्षेत्रमें वीर्यवानोंका विर्यभी क्षयकर देता है अतएव उसके और उसकी सेनाके साथसामना करनेको मेरा हियाव नहीं पडता ॥ २३ ॥ आप सेना सहित मेरे पुत्रके साथ उस रावणसे लडनेको समर्थ नहीं किस प्रकारसे मैं देवताओंके समान रूपवाले संग्रामके नहीं जाननेवाले रामको तुम्हारे साथ भेज दूं ॥२४॥ हे ब्रह्मन् ! मेरा राम बालक है मैं उसे कालके समान भयंकर मारीच व सुबाहु सुन्द और उपसुन्दके पुत्रके साथ कभी संग्राममें नहीं भेजूँगा॥२५॥ मैं जानता हूं कि, वह दोनों राक्षस आपके यज्ञ में विघ्न करते हैं पर मैं उनके सामने रामको नहीं भेज सकता मारीच और सुबाहु बडे बलववान् और अस्त्रविद्यामें निपुण हैं॥२६॥आपकी इच्छा होनेसे बन्धुबान्धओं समेत मैं राक्षसोंसे युद्ध कर सक्ता हूँ अन्यथा मैं सबांधव सकुटुम्ब आपकी शरण हूँ

सतुवीर्यवतांवीर्यमादत्तेयुधिरावणः ॥ तेनचाहंनशक्तोऽस्मिसंयोद्धुंतस्यवाबलैः ॥ २३ ॥ सबलोवामुनिश्रेष्ठसहितोवाममात्मजैः ॥ कथमप्यमरप्रख्यंसंग्रामाणामकोविदम् ॥२४॥ बालंमेतनयंब्रह्मन्नैवदास्यामिपुत्रकम् ॥ अथकालोपमौयुद्धेसुतौसुंदोपसुंदयोः ॥ २५ ॥ यज्ञविघ्नकरौतौतेनैवदास्यामिपुत्रकम् ॥ मारीचश्चसुबाहुश्चवीर्यवंतौसुशिक्षितौ ॥२६॥ तयोरन्यतरंयोद्धुंयास्यामिससुहृद्गणः ॥ अन्यथात्वनुनेष्यामि भवंतंसहबांधवः ॥२७॥ इतिनरपतिजल्पनाद्द्विजेंद्रंकुशिकसुतंसुमहान्विवेशमन्युः ॥ सुहुतइवमखेऽग्निराज्यसिक्तःसमभवदुज्ज्वलितोमहर्षिवह्निः ॥ २८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकांडे विंशः सर्गः ॥ २० ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्यस्नेहपर्याकुलाक्षरम् ॥ समन्युःकौशिकोवाक्यंप्रत्युवाचमहीपतिम् ॥१॥ पूर्वमर्थंप्रतिश्रुत्यप्रतिज्ञांहातुमिच्छसि ॥ राघवाणामयुक्तोऽयं कुलस्यास्यविपर्ययः ॥ २ ॥ यदीदंतेक्षमंराजन्गमिष्यामियथागतम् ॥ मिथ्याप्रतिज्ञःकाकुत्स्थसुखीभवसुहृद्वृतः ॥३॥ तस्यरोषपरीतस्यविश्वामित्रस्यधीमतः ॥ चचालवसुधाकृत्स्नादेवानांचभयंमहत् ॥ ४ ॥

॥२७॥ राजा दशरथके ऐसे कातर वचन सुनके आशाभंग जानकर महर्षि विश्वामित्र ऐसे क्रोधसे प्रज्वलित होगये जैसे होम की अग्नि सूखे काष्ठमें प्राप्त हुई घी छिडकनेसे अधिक भड़क उठती है इस प्रकार महर्षि अग्निके समान प्रदीप्त होगये ॥२८॥ इति श्रीमद्रा० वाल्मी० आ० बालकांडे भाषायां विंशः सर्गः ॥२०॥ अनन्तर महर्षि विश्वामित्र दशरथजीके ऐसे स्नेहसने वचन श्रवण कर क्रोधयुक्त हो राजासे बोले ॥ १ ॥ आप मेरे निकट प्रथम वचन देकर अब प्रतिज्ञा भंग करते हैं; यह रघुवंशियोंके लिये अयुक्त है और ऐसा करनेसे आश्चर्य है कि कुलका नाशहोजाय॥२॥ यदि प्रतिज्ञाभंग और वंशध्वंस होनेमेंही आप राजी हैं तो मैं अपने स्थानकोजाता हूँ आप बन्धुबान्धवोंसहित सुखसे प्रतिज्ञा भंगकर समय व्यतीत कीजिये॥३॥ उन बुद्धिमान् विश्वामित्रजीके ऐसा क्रोध होनेसे सब पृथ्वी विचलित

और देवलोक शंकित हुए ॥४॥ सब संसारको भयभीत जानकर उस समय श्रेष्ठव्रतवाले धीर धारण करनेवाले वशिष्ठजीने राजासे कहा ॥५॥ हे राजन्! आप साक्षात् धर्मकी नाईं इक्ष्वाकुकुलमें जन्मे हैं आप श्रीमान् व धीमान् हैं, आपको धर्मत्याग करना उचित नहीं॥६॥ त्रिलोकमें यह बात विख्यात है कि, राजा दशरथजी बडे धर्मात्मा हैं इस कारण धर्मको त्याग करके अधर्मानुवर्ती होना आपका कर्तव्य नहीं है ॥७॥ यदि प्रतिज्ञा करके आप पालन नहीं करेंगे तो जान लीजिये आपके किये सब देवमन्दिर बावडी कूपनिर्माण कर्म व्यर्थ हो जायँगे पुण्यकर्म नष्ट हो जायँगे, अतएव रामको भेज दीजिये ॥८॥अग्नि जैसे अमृतकी रक्षा करते हैं वैसेही रामचन्द्र अस्त्र जानते हों या न जानते हों विश्वामित्रजीसे रक्षित होनेपर राक्षस इनका कुछ नहीं कर सकेंगे ॥९॥ यह ऋषि वा

त्रस्तरूपंतुविज्ञायजगत्सर्वंमहानृषिः ॥ नृपतिंसुव्रतोधीरोवसिष्ठोवाक्यमब्रवीत् ॥५॥ इक्ष्वाकूणांकुलेजातः साक्षाद्धर्मइवापरः ॥ धृतिमान्सुव्रतः श्रीमान्नधर्मंहातुमर्हसि ॥६॥ त्रिषुलोकेषुविख्यातोधर्मात्माइतिराघवः ॥ स्वधर्मंप्रतिपद्यस्वनाधर्मंवोढुमर्हसि ॥७॥ प्रतिश्रुत्यकरिष्येति उक्तंवाक्यमकुर्वतः ॥ इष्टापूर्तवधोभूयात्तस्माद्रामंविसर्जय ॥८॥ कृतास्त्रमकृतास्त्रंवानैनंशक्ष्यंतिराक्षसाः ॥ गुप्तकुशिकपुत्रेणज्वलनेनामृतंयथा ॥ ९ ॥ एषविग्रहवान्धर्मएषवीर्यवतांवरः ॥ एषविद्याधिकोलोकेतपसश्चपरायणम् ॥ १० ॥ एषोऽस्त्रान्विविधान्वेत्तित्रैलोक्येसचराचरे ॥ नैनमन्यःपुमान्वेत्तिनचवेत्स्यंतिकेचन ॥ ११ ॥ नदेवानर्षयःकेचिन्नामरानचराक्षसाः ॥ गंधर्वयक्षप्रवराः सकिन्नरमहोरगाः ॥ १२ ॥ सर्वास्त्राणिकृशाश्वस्यपुत्राःपरमधार्मिकाः ॥ कौशिकायपुरादत्तायदाराज्यंप्रशासति ॥ १३ ॥ तेऽपिपुत्राः कृशाश्वस्यप्रजापतिसुताःसुताः ॥ नैकरूपामहावीर्यादीप्तिमतोजयावहाः ॥ १४ ॥ जयाचसुप्रभाचैवदक्षकन्येसुमध्यमे ॥ तेसूतेऽस्त्राणिशस्त्राणिशतंपरमभास्वरम् ॥ १५ ॥ पंचाशतंसुतांल्लेभेजयालब्ध वरावरान् ॥ वधायासुरसैन्यानामप्रमेयानरूपिणः ॥ १६ ॥

रामचन्द्र साक्षात् धर्मस्वरूप हैं यह लोकमें सबसे अधिक बलवान् विद्वान् और मननादिमें परायण तपस्या के आश्रय स्थान हैं ॥१०॥ त्रिलोकोमें अनेक अस्त्रोंके जाननेवाले यहएकही हैं इनको चर अचरमें पृथ्वीपर कोई नहींजानता न कभी जानेगा॥११॥देवता, ऋषि राक्षस, गन्धर्व यक्ष किन्नर व उरगगण तक रामको नहीं जान सके ॥१२॥ यह विश्वामित्रजी जब राज्य, करते थे तब परम धर्मात्मा कृशाश्वके पुत्रोंने इन्हें सम्पूर्ण अस्त्र प्रदान किये ॥ १३ ॥ यह सब अस्त्र कृशाश्वके पुत्र प्रजापतियोंकी कन्याके पुत्र हैं यह अनेक प्रकारके रूपवाले हैं व महापराक्रमी तेजस्वी सबको जीतनेमें समर्थ हैं ॥ १४ ॥ वे जया व सुप्रभा दक्षप्रजा पतिजीके उत्पन्न हुईं जिन्होंने सैकडों अस्त्र शस्त्र परम कान्तिमान् उत्पन्न किये॥१५॥वर लाभ करके असुरोंके संहारार्थ जयाने पांचसौ अस्त्र असुरोंकी

सेना मारनेको उत्पन्न किये जिनका गुण अपरिमित और जिनका रूप अदृश्य है ॥१६॥ और पांचसौही अस्त्र सुप्रभाने प्रसव किये यह सब अस्त्र दुर्द्धर्ष और बलसंपन्न हुए वे संहार नामसे विख्यात हैं ॥१७॥ यह कुशिकनन्दन महर्षि उन सब अस्त्र शस्त्रोंको जानते हैं इनके अतरिक्त यह धर्मात्मा और नये२दिव्यास्त्र बना सकते हैं ॥१८॥ अधिक तो क्या इसी कारणसे यह धर्मात्मा मुनिश्रेष्ठ राजर्षि भूत; भविष्य, वर्त्तमानकी वार्ता सब जानते हैं॥१९॥यह वीर्यवान् महातेजा व महायशस्वी हैं अतएव वनके साथ रामके भेजनेमें कोई सन्देश इमनमें न कीजिये॥२०॥ यह विश्वामित्रजी आपही उननिशाचरोंका नाशकर सकते हैं केवल रामचन्द्रके उपकारार्थही आपसे उनको मांगते हैं ॥२१॥ वसिष्ठजीके यह कहनेपर नरदेव दशरथजी प्रसन्न होगये तब यह विख्यात यश राजा कुशिकनन्दनके

सुप्रभाऽजनयच्चापिपुत्रान्पंचाशतपुनः ॥ संहारान्नामदुर्धर्षान्दुराक्रामान्बलीयसः ॥१७॥ तानिचास्त्राणिवेत्त्येषयथावत्कुशिकात्मजः ॥ अपूर्वाणांचजननेशक्तोभूयश्चधर्मवित् ॥ १८ ॥ तेनास्यमुनिमुख्यस्यधर्मज्ञस्यमहात्मनः ॥ नकिंचिदस्यविदितंभूतंभव्यंचराघव ॥ १९ ॥ एववीर्योमहातेजाविश्वामित्रोमहायशाः॥नरामगमनेराजन्संशयंगंतुमर्हसि॥२०॥तेषांनिग्रहणेशक्तःस्वयंचकुशिकात्मजः॥ तवपुत्रहितार्थायत्वामुपेत्याभियाचते ॥२१॥ इतिमुनिवचनात्प्रसन्नचित्तोरघुवृषभश्चमुमोदपार्थिवः ॥ गमनमभिरुरोचराघवस्यप्रथितयशाःकुशिकात्मजायबुद्ध्या ॥२२॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्ये चतुर्विंशतिसा० बालकांडे एकविंशः सर्गः ॥२१॥ तथावसिष्ठेब्रुवतिराजादशरथःस्वयम् ॥ प्रहृष्टवदनोराममाजुहावसलक्ष्मणम् ॥१॥ कृतस्वस्त्ययनंमात्रापित्रादशरथेनच ॥ पुरोधसावसिष्ठेनमंगलैरभिमंत्रितम् ॥२॥ सपुत्रंमूर्ध्न्युपाघ्रायराजादशरथस्तदा ॥ ददौकुशिकपुत्रायसुप्रीतेनांतरात्मना ॥ ३ ॥ ततोवायुःसुखस्पर्शोनीरजस्कोववौतदा ॥ विश्वामित्रगतंरामंदृष्ट्वाराजीवलोचनम् ॥ ४ ॥ पुष्पवृष्टिर्महत्यासीद्देवदुंदुभिनिस्वनैः ॥ शंखदुंदुभिनिर्घोषःप्रयातेतुमहात्मनि ॥ ५ ॥

सहित रामके भेजनेमें सन्देहरहित हो गये ॥ २२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मीकीये आदिकाव्ये बाल० भाषायांमेकविंशः सर्गः ॥ २१ ॥ वसिष्ठजीके यह कहने पर राजा दशरथजीने प्रसन्न होकर लक्ष्मण समेत रामचन्द्रजीको बुलाया ॥१॥ तब राजादशरथ व रानी कौशल्याजी रामचन्द्रजीका मंगलाचरण करने लगे वसिष्ठजी भी मंगलपाठ करनेमें नियुक्त हुए ॥२॥ फिर दशरथजीने दोनों पुत्रोंको शिर सूंघकर परमप्रीतिसे उन्हें विश्वामित्रजीके हाथ सौंप दिया ॥३॥ कमलनेत्र रामचन्द्रजीको विश्वामित्रजीके साथ देख धूलि रहित समीर मन्द मन्द चलने लगा ॥४॥ रामके गमन समय पुष्पवृष्टि और दुन्दुभि

ध्वनि होने लगी उन महात्माके जानेमें शंखका शब्द सम्पूर्ण अयोध्यामें छागया ॥५॥ आगे विश्वामित्र उनके पीछे महायशस्वी रामचन्द्र उनके पीछे काकपक्ष-धारी धनुर्धारी लक्ष्मणजी गमन करने लगे॥६॥ दोनों भ्राता दो दो तूण बांधे दशों दिशाओंको शोभित करते महात्मा विश्वामित्रके पीछे पीछे चले मानों तीन शिरके सर्पहो॥७॥ दोनों अश्विनीकुमार ब्रह्माजीके साथ जाते जिस प्रकार शोभित होते हैं इसी प्रकार यह दोनों पराक्रमी लक्ष्मी सदीनिमान् निंदा रहित विश्वामित्रजीके साथ शोभित हुए ॥८॥ वह पैना खड्ग दिव्य धनुष व गोहके चमडेसे मढा हुआ विचित्र अंगुलित्राण धारण किये विश्वामित्रजीके साथ गमन करने लगे॥९॥ राम लक्ष्मण कुमारका शरीर अतिशय शोभित था वह निंदारहित परस्पर अनिंदित शोभाको धारण कर गमन करने लगे ॥ १० ॥ वह उस समय ऐसे

विश्वामित्रोययावग्रेततोरामोमहायशाः ॥ काकपक्षधरोधन्वीतंचसौमित्रिरन्वगात् ॥६॥ कलापिनौधनुष्पाणीशोभयानौदिशोदश ॥ विश्वा-मित्रंमहात्मानंत्रिशीर्षाविवपन्नगौ ॥७॥ अनुजग्मतुरक्षुद्रौपितामहमिवाश्विनौ ॥ अनुयातौश्रियादीप्तौशोभयंतावनिंदितौ ॥८॥ तदाकुशिक-पुत्रंतुधनुष्पाणीस्वयंकृतौ ॥ बद्धगोधांगुलित्राणौखड्गवंतौमहाद्युती ॥ ९ ॥ कुमारौचारुवपुषौभ्रातरौरामलक्ष्मणौ॥ अनुयातौश्रियादीप्तौशो-भयेतामनिंदितौ ॥१०॥ स्थाणुंदेवमिवाचिंत्यंकुमाराविवपावकी ॥ अध्यर्धयोजनंगत्वासरय्वादक्षिणेतटे ॥ ११ ॥ रामेतिमधुरांवाणींविश्वा-मित्रोऽभ्यभाषत ॥ गृहाणवत्ससलिलंमाभूत्कालस्यपर्ययः ॥१२॥ मंत्रग्रामंगृहाणत्वंबलामतिबलांतथा ॥ नश्रमोनज्वरोवातेनरूपस्यविपर्य-यः ॥१३॥ नचसुप्तंप्रमत्तंवाधर्षयिष्यंतिनैर्ऋताः ॥ नबाह्वोःसदृशो वीर्येपृथिव्यामस्तिकश्चन ॥ १४ ॥ त्रिषुलोकेषुवारामनभवेत्सदृशस्तव ॥ बलामतिबलांचैवपठतस्ताततराघव ॥ १५ ॥ नसौभाग्येनदक्षिण्येनज्ञानेबुद्धिनिश्चये ॥ नौत्तरेप्रतिवक्तव्येसगोलोकेतवानघ ॥ १६ ॥

शोभित हुए मानों कार्तिक व विशाख शिवजीके साथ जातेहों, अनंतर महर्षिविश्वामित्रअयोध्यासे दोकोश चल सरयूके दक्षिणकिनारे उपस्थित हो॥११॥ राम यह मधुर नाम उच्चारणपूर्वक विश्वामित्रजी बोले तुम बहुत शीघ्र इस नदी के जलसे आचमन करो समय मत बिताओ ॥१२॥ मुझसे बला व अतिबला नामक मंत्र ग्रहण करो इसके ग्रहण करनेसे तुम्हे शांति होगी ज्वरया रूपकी विवर्णतादि नहीं होगी और किसीकार्यके करनेसे परिश्रम नहीं होगा॥१३॥ निद्राभिभूत या चित्तकी विकसता रहनेसेभी राक्षस तुम्हे नहीं जीत सकेंगे तुम्हारी भुजाओंके समक्षधरातलमें कोई अपना विक्रम नहीं दिखा सकेंगे ॥१४॥ इन बला अतिबला नामक मंत्रोंके ग्रहण करनेसे पृथ्वीमें ही क्या वरन् त्रिलोकीमें तुम्हारे समानवीर्यवान् दृष्टि नहीं आवेगा ॥१५॥ अधिक तो क्या कहूँ सौभाग्यमें, कुशलतामें, ज्ञान

बुद्धिमें, कोई तुम्हारे समान नहीं हो सकेगा ॥१६॥ मेरी बला और अतिबलानामक दोनों विद्याओंके लाभकरनेसे कोई तुम्हरे समान नहीं होगा यह दोनों विद्या सब ज्ञानोंकी माता है॥१७॥हे नरोत्तम! बला अतिबला पाठ करनेसे भूंखप्यासभी न लगेगी हे तात! इनबला और अतिबला विद्याको पढो॥१८॥तेजसेयुक्त यह दोनों विद्या पितामह ब्रह्माजीकी पुत्री है इन दोनों विद्याओंके विधि पूर्वक पढनेसे तुम्हारे यश फैलनेमें कुछ शंका नहीं रहेगी॥१९॥हे काकुत्स्थ! तुम इन विद्याओंको ग्रहण करनेके योग्यहो, क्योंकि तुम सब गुणोंकी खानिहो इसमें संदेह नहीं॥२०॥ तपस्याके प्रभावसे यह दोनों विद्या मैंने पाई है यह बहुत रूप धारण कर सकती है तदनंतर रामचंद्रजीने प्रसन्न वदन ही आचमन किया और पवित्र हो ॥२१॥ महर्षि से जो त्रिकालज्ञ हैं यह दोनों विद्या पढलीं विद्याको प्राप्त

एतद्विद्याद्वयेलब्धेनभवेत्सदृशस्तव ॥ बलाचातिबलाचैवसर्वज्ञानस्यमातरौ ॥ १७ ॥ क्षुत्पिपासेनतेरामभविष्येतेनरोत्तम ॥ बलामतिबलांचैवपठतस्तातराघव ॥ १८ ॥ विद्याद्वयमधीयानेयशश्चाथभवेद्भुवि ॥ पितामहसुतेह्येतेविद्येतेजःसमन्विते ॥१९॥ प्रदातुंतवकाकुत्स्थसदृशस्त्वंहिपार्थिव ॥ कामंबहुःगुणा सर्वेत्वय्येतेनात्रसंशयः ॥ २० ॥ तपसासभृतेचैतेबहुरूपेभविष्यतः ॥ ततोरामोजलंस्पृष्ट्वाप्रहृष्टवदनशुचिः ॥२१॥ प्रतिजग्राहतेविद्येमहर्षेर्भावितात्मनः॥ विद्यासमुदितोरामःशुशुभेभीमविक्रमः ॥२२॥ सहस्ररश्मिर्भगवाञ्छरदीवदिवाकरः ॥ गुरुकार्याणिसर्वाणिनियुज्यकुशिकात्मजः ॥ ऊषुस्तांरजनींतत्रसरय्वांससुखंत्रयः ॥२३॥ दशरथनृपसूनुसत्तमाभ्यांतृणशयनेऽनुचितेतदोषिताभ्याम् ॥ कुशिकसुतवचोऽनुलालिताभ्यांसुखमिवसाविबभौविभावरी ॥२४॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये चतुर्विंशतिसा० बालकांडे द्वाविंशःसर्ग ॥२२॥ प्रभातायांतुशर्वर्यांविश्वामित्रोमहामुनिः ॥ अभ्यभाषतकाकुत्स्थौशयानौपर्णसंस्तरे ॥१॥ कौशल्यासुप्रजारामपूर्वासंध्याप्रवर्तते ॥ उत्तिष्ठनरशार्दूलकर्तव्यंदैवमाह्निकम् ॥२॥ तस्यर्षेःपरमोदारंवचःश्रुत्वानरोत्तमौ ॥ स्नात्वाकृतोदकौवीरौजपेतुःपरमजपम् ॥३॥

करके भीमविक्रम रामचंद्रजी शोभाको प्राप्त हुये ॥२२॥जैसे शरत् कालके सूर्य तेजवान होते हैं दशरथात्मज समस्त गुरुकार्य विश्वामित्रजीके ऊपर छोड मनमें सुखमान विश्वामित्र व लक्ष्मणजीसहित वह रात्रि सरयूपर व्यतीत करते हुये ॥२३॥ यद्यपि अनुज सहित रामचंद्रजी तृणशय्यापर सोते थे जो उनके योग्य नहीं थी परन्तु मुनिजीके मनोरमकथा कहनेसे उन्हें कुछ क्लेश नहीं हुआ, सुतरां वह रात्रि सुखसे बीती॥२४॥इ०श्रीम०वा०आ०बा०भाषायांद्वाविंशःसर्गः॥२२॥ अनन्तर रजनी बीत प्रभातहो जानेपर महामुनि विश्वामित्रजी कुशके विस्तर पर सोते हुये राम चन्द्रजीसे बोले ॥१॥ हे रामचन्द्रजी! तुमसे कौशल्या पुत्रवती हुई प्रातः संध्याका समय उपस्थित है अतएव उठकर शौच क्रिया व आह्निक कार्य करो ॥२॥ राम लक्ष्मण महर्षिके यह उदार वाक्य श्रवण कर शय्या परित्या-

गपूर्वक स्नानान्तमें अर्घ्य आदि प्रदान कर गायत्री जप करने लगे ॥३॥ महावीर राम लक्ष्मण आह्निकादि सम्पन्न करके महर्षि विश्वामित्रको अभिवादनपूर्वक हर्षसहित आगे चलनेका उद्योग करने लगे ॥४॥ उन दोनों महावीरोंने जाते२ देखा कि, त्रिपथगामिनी गंगाजीके साथ सरयू मिल गई है ॥५॥ इस शुभसंगमके स्थलमें एक आश्रय देखा जिसमें बहुतसे ऋषि हजारों वर्ष तपस्या करते थे॥६॥उसको देख आनन्दमनसे रामचन्द्रजी महात्मा विश्वामित्रजीसे यह वचन बोले॥७॥ हे भगवन् ! यह पवित्र आश्रम किसका है? और कौन यहां वास करता है ? इसके जाननेको हम दोनों कौतूहलाक्रान्त हुए हैं ॥८॥ विश्वामित्रजी यह सुन कुछेक हँस रामचन्द्रजीसे बोले हे राम ! जिसका यह आश्रम था वह कहता हूं सुनो ॥ ९ ॥ जिसको सब कामदेव कहते हैं, वह देवता यहां मूर्त्तिमान् थे,

कृताह्निकोमहावीर्यौविश्वामित्रंतपोधनम् ॥ अभिवाद्यातिसंहृष्टौगमनायाभितस्थतुः ॥४॥ तौप्रयांतौमहावीर्यौदिव्यांत्रिपथगांनदीम् ॥ ददृशातेततस्तत्रसरय्वाःसंगमेशुभे ॥ ५ ॥तत्राश्रमपदंपुण्यमृषीणांभावितात्मनाम् ॥ बहुवर्षसहस्राणितप्यतांपरमंतपः ॥ ६ ॥ तं दृष्ट्वापरमप्रीतौराघवोपुण्यमाश्रमम् ॥ ऊचतुस्तंमहात्मानंविश्वामित्रमिदंवचः ॥७॥ कस्यायमाश्रमःपुण्यःकोन्वस्मिन्वसतेपुमान् ॥ भगवञ्छ्रोतुमिच्छावःपरंकौतूलंहहि नौ ॥८॥ तस्योस्तद्वचनंश्रुत्वा प्रहस्यमुनिपुंगवः ॥ अब्रवीच्छ्रुयतांरामयस्यायंपूर्वआश्रमः ॥९॥ कंदर्पोमूर्तिमानासीत्काम इत्युच्यते बुधैः ॥ तपस्यंतमिहस्थाणुंनियमेनसमाहितम् ॥ १० ॥ कृतोद्वाहंतुदेवेशंगच्छंतंसमरुद्गणम् ॥ धर्षयामासदुर्मेधाहुंकृतश्चमहात्मना ॥११॥ अवध्यातश्चरुद्रेणचक्षु रघुनंदन ॥ व्यशीर्यंतशरीरात्स्वात्सर्वगात्राणिदुर्मतेः ॥ १२ ॥ तत्रगात्रंहतंतस्य निर्दग्धस्यमदात्मनः ॥ अशरीरःकृतःकामःक्रोधाद्देवेश्वरेणह ॥१३॥ अनंगइतिविख्यातस्तदाप्रभृतिराघव ॥ स चांगविषयःश्रीमान्यत्रांगंसमुमोचह ॥१४॥ तस्यायमाश्रमःपुण्यस्तस्येमेमुनयः पुरा ॥ शिष्याधर्मपरावीरतेषांपापं नविद्यते ॥ १५॥

एक समय यहां नियम पूर्वक महादेवजी तप करते थे॥१०॥जब कि, उन्होंने अपना विवाह किया था व सब सुरगणोंके संग विवाह किये चले जाते उस समय मन्मथने चाहा कि, भूतनाथका भी मन मथित करें तब महात्मा शंकरने हुंशब्द किया॥११॥परन्तु वहां मीनकेतनका बल नहीं चला, शिवजीने नयन खोल हुम् ऐसा शब्द कर दिया व कोप करके उसकी ओर देखा उससेही कामदेवका अंग भस्म होगया और उस दुर्मतिके सब शरीर बिखर गये॥१२॥जब महादेवजीको क्रोध दृष्टिसे कामदेवके अंग भस्म होगये तबसे वह अतनु होगया ॥१३॥ हे राघव !उस दिनसे कामदेवका नाम अनंग होगया है जिस स्थानमें भागते हुए उसके अंग गिरे थे वह देश अंगदेश करके गिना गया है॥१४॥यह उसीका पवित्र आश्रम है इस आश्रममें रहने वाले धर्मपरायण पापहीन मुनिगण आगेहीसे कामदेवके शिष्य हैं॥१५॥

हे शुभदर्शन राम ! अब हम इस संगममें एक रात्रि व्यतीतकर कल पार उतरेंगे ॥ १६ ॥ अतएव हम इस पवित्र भावसे इस पुण्य आश्रममें प्रवेश करेंगे यहां वास करना मुझे श्रेष्ठ बोध होता है यहां रहकर सुखसे रात्रि व्यतीत करेंगे ॥१७॥ यह कहकर सबने वहां स्नान, जप व अग्निमें होम किया आश्रम के ऋषिगणने यद्यपि इन्हें नहीं देखा था, तो भी दिव्य ज्ञानके बलसे ॥१८॥ इनकी कथावार्ताका मर्म जानकर बड़े प्रसन्न हुए और निकट आकर प्रथम विश्वामित्रजीको अर्घ्य व पाद्यादि और अतिथि सत्कारकी सामग्री प्रदानकी ॥१९॥ फिर पीछे मुनियोंने राम व लक्ष्मणजीका उचित सत्कार किया वे सत्कारोंको प्राप्त होकर नाना कथा वार्ता सुनकर प्रसन्न हुए ॥२०॥ फिर विश्वामित्र आदि सब ऋषि इकठ्ठेहोकर सन्ध्या करने लगे फिर वे अच्छे व्रतवाले मुनि इन्हें अपने आश्रममें

इहाद्यरजनींरामवसेमशुभदर्शन ॥ पुण्ययोःसरितोर्मध्येश्वस्तरिष्यामहेवयम् ॥ १६ ॥ अभिगच्छामहेसर्वेशुचयःपुण्यमाश्रमम् ॥ इहवासःपरोस्माऽकंसुखंवत्स्यामहेनिशाम् ॥१७॥ स्नाताश्चकृतजप्याश्चहुतहव्यानरोत्तम॥तेषांसंवदतांतत्रतपोदीर्घेणचक्षुषा ॥१८॥ विज्ञायपरमप्रीतामुनयोहर्षमागमन्॥अर्घ्यंपाद्यंतथातिथ्यंनिपद्यकुशिकात्मजे॥१९॥रामलक्ष्मणयोःपश्चादकुर्वन्नतिथिक्रियाम्॥ सत्कारंसमनुप्राप्यकथाभिरभिरंजयन् ॥२०॥ यथार्हमज पन्संध्यामृषयस्तेसमाहिताः ॥ तत्रावासिभिरानीतामुनीभिः सुव्रतैःसह ॥२१॥ न्यवसत्ससुखंतत्रकामाश्रमपदे तथा ॥ कथाभिरभिरामाभिरभिरामौनृपात्मजौ ॥२२॥ रमयामासधर्मात्माकौशिकोमुनिपुंगवः ॥२३॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० चतुर्विं० सा० बालकांडेत्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥ ततःप्रभातेविमलेकृताह्निकमरिंदमौ ॥ विश्वामित्रंपुरस्कृत्यनद्यास्तीरमुपागतौ ॥१॥ तेचसर्वेमहात्मानोमुनयः संशितव्रताः॥ उपस्थाप्यशुभांनावंविश्वामित्रमथाब्रुवन् ॥२॥ आरोहतुभवान्नावंराजपुत्रपुरस्कृतः ॥ अरिष्टंगच्छपंथानंमाभूत्कालस्यपर्ययः ॥ ३ ॥ विश्वामित्रस्तथेत्युक्त्वातानृषीन्प्रतिपूज्य च ॥ ततारसहितस्ताभ्यांसरितंसागरंगमाम् ॥ ४ ॥

लिवालाये ॥२१॥ वह इस प्रकार अपने आश्रममें विश्वामित्र व और मुनियों समेत बसे और ऋषियोंके सहित अनेक मनोहर कथा कहकह कर मुनिश्रेष्ठ धर्मात्मा विश्वामित्रने शोभायमान रामचन्द्र लक्ष्मणको प्रसन्न किया ॥ २२ ॥ २३ ॥ इति श्रीमद्वा० वाल्मीकीये आ० बालकाण्डे भाषायां त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥ अनन्तर प्रभात होनेपर वे दोनों भाई आह्निकादिकर्म समाप्त करके विश्वामित्रजीके साथ नदीके तीरमें उपस्थित हुए ॥१॥ इस अवसरमें आश्रमके रहनेवाले वे महात्मा व्रत धारण करनेवाले मुनि एक सुन्दर नौका लाकर विश्वामित्रजीसे बोले ॥२॥ आप दोनों राजकुमारोंको संगले इस नौकामें बैठिये, अब देर न करके शीघ्र यात्रा कीजिये आपके मार्ग विघ्नरहित हैं ॥३॥ विश्वामित्रजो उनके कहने पर सम्मत हो वे मुनि लोगोंकी पूजाकर दोनों राजपुत्रों समेत सागर

गामिनी गंगाके पार होने लगे ॥ ४ ॥ जब नौका भागीरथीके बीचोबीच पहुँची तब उस तरंग समूहोंसे बढा हुआ तुमुल शब्द श्रवणगोचर होने लगा ॥ ५ ॥ महातेजवान् रामचन्द्रजी गंगाके बीचमें उस शब्दके जाननेकी इच्छासे अनुज सहित ऋषिसे कहने लगे कि, इस शब्दके होनेका क्या कारण है ? ॥ ६ ॥ हे मुने ! जलराशिको भेद करता हुआ यह तुमुल शब्द कैसा होता है ? ऐसे रामके कौतूहलमय वचन सुनकर विश्वामित्र जी ॥ ७ ॥ धर्मात्मा उसी शब्दके होनेके कारण कहने लगे कि पूर्वकालमें ब्रह्माजीने कैलास पर्वतपर मनसे एक दिव्य सरोवर बनाया ॥ ८ ॥ हे मनुष्योंमें सिंह रामचन्द्रजी ! इसीसे तिसका नाम मानसरोवर हुआ उससे जो नदी निकली है वही अयोध्याके नीचे बहती है उसकाही नाम सरयू है ॥ ९ ॥ यह ब्रह्माजीके सरसे निकली है इससे

तत्र शुश्राववैशब्दंतोयसंरंभवर्धितम् ॥ मध्यमागम्यतोयस्यतस्यशब्दस्यनिश्चयम् ॥ ५ ॥ ज्ञातुकामोमहातेजाः सहरामः कनीयसा ॥ अथ रामः सरिन्मध्येपप्रच्छमुनिपुंगवम् ॥६॥ वारिणोभिद्यमानस्यकिमयंतुमुलोध्वनिः ॥ राघवस्यवचःश्रुत्वाकौतूहलसमन्वितम् ॥ ७ ॥ कथयामासधर्मात्मातस्यशब्दस्यनिश्चयम् ॥ कैलासपर्वतेराममनसानिर्मितंपरम् ॥ ८ ॥ ब्रह्मणानरशार्दूलतेनेदंमानसं सरः ॥ तस्मात्सुस्रावसरसः साऽयोध्यामुपगूहते ॥ ९ ॥ सरःप्रवृत्तासरयूःपुण्याब्रह्मसरश्च्युता ॥ तस्यायमतुलःशब्दोजाह्नवीमभिवर्तते ॥ १० ॥ वारिसंक्षोभजोरामप्रणामंनियतः कुरु ॥ ताभ्यां तु तावुभौ कृत्वा प्रणाममतिधार्मिकौ ॥ ११ ॥ तीरंदक्षिणमासाद्य जग्मतुर्लघुविक्रमौ ॥ सवनंघोरसंकाशं दृष्ट्वानरवरात्मजः ॥ १२ ॥ अविप्रहतमैक्ष्वाकःपप्रच्छमुनिपुंगवम् ॥ अहोवनमिदं दुर्गंझिल्लिकागणसंयुतम् ॥ १३ ॥ भैरवैःश्वापदैःकीर्णं शकुन्तैर्दारुणारवैः ॥ नानाप्रकारैःशकुनैर्वाश्यद्भिर्भैरवस्वनैः ॥ १४ ॥

अतीव पुण्यको देनेवाली है यह सरयूका जल यहां गङ्गाजीमें आकर गिरता है देखो यह उसका ही तुमुल शब्द है॥१०॥ यह देखो इन दोनों नदियोंका जल कैसा उछल रहा है तुम चित्त लगा इन दोनों नदियोंको प्रणाम करो यह सुनकर उन दोनों धर्मात्माओंने प्रणाम किया॥११॥ अनन्तर दक्षिण किनारे पहुँच नावपरसे उतर वे बडे पराक्रमी तीनों जन मंदगतिसे जाने लगे जाते जाते सामने एक निबिड अरण्य दृष्टिगोचर हुआ ॥१२॥ अतएव साथ चलते २ श्रीरामचन्द्रजीने विश्वामित्र जीसे कहा यह वन कैसा दुर्गम है झिल्लीका झनकार इसमें हो रहा है ॥१३॥ भयानक हिंसक जन्तु व बाज दारुण शब्द करते हैं अनेक प्रकारके पक्षिगणोंके

१ इटालीदेशीय पुस्तक में सरयूका पार होना लिखा है।

नादसे यह वन गूँज रहा है ॥१४॥ इधर उधर सिंह, व्याघ्र, वराह, हाथी भी इसमें दौड़ रहें हैं। खैर असगन्ध, कुम्भी, बेल तेंदुआ; पाडरी ॥१५॥ व बेर आदि नानाप्रकारके पेड इसमें सघन लगे हैं हे मुने ! सो मैं आपसे जानना चाहता हूँ कि यह किसका है ? यह बात सुनकर महातेजस्वी विश्वामित्रजी बोले ॥ १६ ॥ हे वत्स ! जिसका यह निबिड वन है उसका परिचय श्रवण कीजिये; हे नरोत्तम ! पूर्वमें यह बड़े दोनों जनपद ॥१७॥ देवरचित सुखसम्पत्ति युक्त मलद व कारूष नामसे विख्यात थे आगे जब इन्द्र वृत्रासुरको मार मलसे दूषित हो ॥ १८ ॥ क्षुधार्थ व ब्रह्महत्या में लिप्त हुये थे तब इन्द्रका मलिन भाव देखकर तपोधन ऋषि और देवताओं ने ॥१९॥ गङ्गाजलके भरे कलशोंसे स्नान कराय उनका मल दूर किया, देवता, ऋषि इस भूमिमें इन्द्रका मल व क्षुधा अर्थात् कारूष ॥२०॥

सिंहव्याघ्रवराहैश्चवारणैश्चापिशोभितम् ॥ धावाश्वकर्णककुभैर्बिल्वतिंदुकपाटलैः ॥१५॥ संकीर्णंबदरीभिश्चकिंन्विदंदारुणंवनम् ॥ तमुवाचमहातेजाविश्वामित्रोमहामुनिः ॥१६॥ श्रूयतांवत्सकाकुत्स्थयस्यैतद्दारुणंवनम् ॥ एतौजनपदौस्फीतौपूर्वमास्तांनरोत्तम् ॥१७॥ मलदाश्चकरूषाश्चदेवनिर्माणनिर्मितौ ॥ पुरावृत्रवधेरामम‌लेनसमभिप्लुतम् ॥ १८ ॥ क्षुधाचैवसहस्राक्षंब्रह्महत्यासमाविशत् ॥ तामिंद्रंमलिनंदेवाऋषयश्चतपोधनाः ॥ १९ ॥ कलशैःस्नापयामासुर्मलंचास्यप्रमोचयन् ॥ इह भूम्यांमलंदत्त्वादेवाःकारूषमेव च ॥ २० ॥ शरीरजंमहेंद्रस्यतेताहर्षंप्रपेदिरे ॥ निर्मलोनिष्करूषश्चशुद्धइन्द्रोयथाभवत् ॥ २१ ॥ ततोदेशस्यसुप्रीतोवरंप्रादादनुत्तमम् ॥ इमौजनपदौस्फीतौख्यातिंलोकेगमिष्यतः॥२२॥मलदाश्चकरूषाश्चममांगमलधारिणौ॥ साधुसाध्वितितं देवाःपाकशासनमब्रुवन्॥२३॥देशस्यपूजांतांदृष्ट्वाकृतांशक्रेणधीमता॥ एतौजनपदौस्फीतौदीर्घकालमरिंदम॥२४॥मलदाश्चकरूषाश्चमुदिताधनधान्यतः कस्यचित्त्वथकालस्ययक्षिणीकामरूपिणी ॥ २५॥ बलंनागसहस्रस्यधारयतीतदाह्यभूत् ॥ ताटकानामभद्रंतेभार्यासुंदस्यधीमतः ॥ २६ ॥

छूटा देखकर अतिहर्षित हुए जब इन्द्र शरीरका मैल छूटा तब इन्द्रविशुद्ध अवस्थाको प्राप्तहो पूर्ववत् हो गये ॥ २१ ॥ तब प्रसन्न हो इस स्थानको यह धन धान्यपूर्ण जनपद विख्यात तीन लोकमें होगा यह वर दिया ॥२२॥ व हमारे अंगोंके मल व कारूष धारण करनेसे इनका मलद व कारूष नाम होगा देवता लोग इन्द्रका यह वाक्य श्रवण करके साधु २ कहने लगे॥२३॥इन देशोंकी इन्द्रकी करी हुई ऐसी पूजा हुई, हे राजकुमार ! पूर्वकालमें यह दोनों जनपद मलद व कारूष धन धान्यसे ॥ २४ ॥ अतिशय समृद्धशाली थे कुछ दिन बीतनेपर कामरूपिणी एक यक्ष पत्नीने इनपर अधिकार किया ॥ २५ ॥ उसका नाम ताडका वह

हजार हाथियोंका बल रखती है वह सुंदकी भार्या है आपका कल्याण हो ॥ २६ ॥ मारीच राक्षस इसका ही पुत्र है वह मारीच इन्द्र समान बलवान् है इस राक्षसके बहुत बड़े २ बाहु बड़ाभारी शिर व बड़ा मुँह और सब देह है ॥२७॥ यह भैरव निशाचर नित्य प्रजा पुंजोंको सताया करता है इसनेही पहले कहे हुये दोनों जनपदोंका नाश किया है ॥२८॥ दुष्टाचारिणी ताडकानेही मलद व कारूष जनपदोंको उजाडा है वही ताडका अब आधे योजनसे अधिकमार्ग रोके पडी रहती है ॥२९॥ हमें उसी ताडकावनमें होकर जाना पडेगा अतएव तुम अपने भुजबलके प्रभावसे इस दुष्टनीका प्राणसंहार करो ॥ ३० ॥ मेरी आज्ञासे तुम इस स्थानको निष्कंटक कर दो यहाँ ताडकाके भयसे कोई आनेका साहस नहीं करता ॥ ३१ ॥ विकटाकार यह राक्षसी इस वनको नाश किये डालती है जिससे यह वन

मारीचोराक्षसः पुत्रोयस्याः शक्रपराक्रमः ॥ वृत्तबाहुर्महाशीर्षोविपुलास्यतनुर्महान् ॥२७॥ राक्षसोभैरवाकारोनित्यत्रासयतेप्रजाः ॥ इमौजनपदौनित्यंविनाशयतिराघव ॥२८॥ मलदांश्चकरूषांश्चताटकादुष्टचारिणी ॥ सेयंपंथानमावृत्यवसत्यत्यर्धयोजने॥२९॥ अतएवचगंतव्यंताटकायावनंयतः ॥ स्वबाहुबलमाश्रित्यजहीमांदुष्टचारिणीम् ॥३०॥ मन्नियोगादिमंदेशंकुरुनिष्कंटकंपुनः॥ नहिकश्चिदिमंदेशंशक्तोह्यागंतुमीदृशम् ॥३१॥ यक्षिण्याघोरयारामउत्सादितमसह्यया ॥ एतत्तसर्वमाख्यातं तथैतद्दारुणंवनम् ॥ यक्ष्याचोत्सादितंसर्वमद्यापिननिवर्तते॥३२॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये चतुर्विंशतिसाहस्र्यां संहितायां बालकाण्डे चतुर्विंशः सर्गः ॥२४॥ अथतस्याप्रमेयस्य मुनेर्वचनमुत्तमम्॥श्रुत्वापुरुषशार्दूलः प्रत्युवाचशुभांगिरम् ॥१॥ अल्पवीर्यायदायक्षीश्रूयतेमुनिपुंगव ॥ कथंनागसहस्रस्यधारयत्यबलाबलम् ॥२॥ इत्युक्तवचनंश्रुत्वाराघवस्यामितौजसः ॥ हर्षयञ्श्लक्ष्णयावाचासलक्ष्मणमरिंदमम् ॥ ३ ॥ विश्वामित्रोऽब्रवीद्वाक्यंशृणुयेनबलोत्कटा ॥ वरदानकृतंवीर्यंधारयत्यबला बलम् ॥ ४ ॥ पूर्वमासीन्महायक्षः सुकेतुर्नामवीर्यवान् ॥ अनपत्यः शुभाचारः सचतेपेमहत्तपः ॥ ५ ॥

भयावना दृष्टि आता है यह मैंने तुमसे सब कहा अबतक यह निशाचरी वनके उजाडनेसे निवृत्त नहीं होती ॥ ३२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आ० बालकांडे भाषायां चतुर्विंशः सर्गः ॥ २४ ॥ उन उपमारहित विश्वामित्रजीके यह वचन श्रवणकर पुरुषश्रेष्ठ, रामचन्द्रजी सुन्दर वाणी बोले ॥ १ ॥ हे मुनीश्वर ! मैंने सुना है कि, यक्षजातिमें रणवीर्य साधारण होता है अतएव मैं आपसे पूछना चाहता हूं कि, इस अबला निशाचरीमें हजार हाथीका बल कैसे हुआ ॥२॥ बडे पराक्रमी रामचन्द्रजीकी यह उक्ति सुनकर विश्वामित्रजी प्रसन्न हो लक्ष्मणसहित शत्रुओंके मारनेवाले रामचन्द्रसे बोले ॥३॥ कि, जिस कारणसे ताडका राक्षसीमें अमितबल हुआ है वह कहता हूँ तुम श्रवण करो अबला भी जिस प्रकार वरदानके प्रभावसे इतना बल धारण करती है ॥४॥ पूर्वकालमें

सुकेतुनामका एक महावीर्यवान् यक्ष था, उसके कोई संतान न थी वह अच्छे आचरणवाला था इस कारणसे घोर तप किया हे राम! तब यक्षकी ॥ ५ ॥ तपस्यासे प्रसन्न हो ब्रह्माजीने उस ताडका नाम्नी कन्या प्रदानकी ॥ ६ ॥ ब्रह्माजीने उस कन्याको हजार हाथीका बल दिया पुत्र इतना बलवान् इस कारण नहीं दिया कि, इतना बलपाकर कदाचित् वह देशको सतावै ॥ ७ ॥ क्रमसे बाल्यकाल बिताकर कन्या यौवनवस्थाको प्राप्त हुई तब उसने उस लावण्यमयी ललनाके साथ जम्भके बेटे सुन्दका विवाह किया ॥ ८ ॥ कुछ समय बीत जानेपर इस यक्षिणीके गर्भसे दुर्धर्ष राक्षस मारीचका जन्म हुआ, शापवश मारीचको राक्षस योनि मिली ॥९॥ किसी कारणवश महर्षि अगस्त्यजीके हाथसे सुन्द मारा गया वैसेही ताडका अपने पुत्र मारीच सहित मुनिवरको मारनेके लिए दौडी

पितामहस्तुसुप्रीतस्तस्ययक्षपतेस्तदा ॥ कन्यारत्नंददौरामताटकांनामनामतः ॥ ६ ॥ ददौनागसहस्रस्यबलंचास्याःपितामः ॥ नत्वेवपुत्रंयक्षायददौचासौमहायशाः ॥ ७ ॥ तांतुबालांविवर्धंतींरूपयौवनशालिनीम् ॥ जंभपुत्रायसुन्दायददौभार्यायशस्विनीम् ॥ ८ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्ययक्षीपुत्रंव्यजायत ॥ मारीचंनामदुर्धर्षंयःशापाद्राक्षसोऽभवत् ॥९॥ सुन्देतुनिहतेरामअगस्त्यमृषिसत्तमम् ॥ ताटकासहपुत्रेणप्रधर्षयितुमिच्छति ॥ १० ॥ भक्षार्थंजातसंरंभागर्जंतीसाभ्यधावत ॥ आपततींतुतांदृष्ट्वाअगस्त्योभगवानृषिः ॥११॥ राक्षसत्वंभजस्वेतिमारीचंव्याजहारस ः॥ अगस्त्यःपरमामर्षस्ताटकामपिशप्तवान् ॥१२॥ पुरुषादीमहायक्षीविकृताविकृतानना ॥ इदंरूपंविहायाशुदारुणंरूपमस्तु ते ॥१३॥ सैषाशापकृतामर्षात्ताटकाक्रोधमूर्छिता ॥ देशमुत्सादयत्येनमगस्त्याचरितंशुभम् ॥१४॥ एनांराघवदुर्वृत्तांयक्षींपरमदारुणाम् ॥ गोब्राह्मणहितार्थायजहिदुष्टपराक्रमाम् ॥ १५ ॥ नह्येनांशापसंसृष्टांकश्चिदुत्सहतेपुमान् ॥ निहंतुंत्रिषु लोकेषुत्वामृतेरघुनंदन ॥ १६ ॥ नहि तेस्त्रीवधकृतेघृणाकार्यानरोत्तम ॥ चातुर्वर्ण्यहितार्थंहिकर्तव्यंराजसूनुना ॥ १७ ॥

॥१०॥जब उस ताडकाने लाल नेत्रकर उस मुनिपर आक्रमणकिया और गर्जती हुई खानेको दौडी, भगवान् अगस्त्यजी उसको अपने ऊपर आती हुई देखा ॥११॥ तब मुनिने मारीचको तो यह शाप दिया कि तू राक्षस होगा और ताडकाको भी बडे क्रोधसे शाप दिया कि,॥१२॥ तूभी विकटमुख व विकृतभावसे नरशोणित पीनेको दौडी इस कारण तेराभी यह सुन्दर शरीर राक्षसीके सा होजाय, तू पुरुषभक्षिणी महाराक्षसी होजा ॥ १३ ॥ तब वही निशाचरी ऋषिके शापसे मारे क्रोधके उन्हींका यह श्रेष्ठ आश्रम उजाडे डालती है; ॥ १४ ॥ हे राघव! वह निशाचरी घोर अनिष्ट कर रही है तुम उस विपुलविक्रमा ताडकाको मार डालो ॥१५॥ हे रघुनंदन तुम्हारे सिवाय त्रिलोकमें कोई पुरुष शापसे मोहित हुई उस राक्षसीको नहीं मार सकता ॥१६॥ हे नरवर! स्त्रीवधके विषयमें तुम कोई चिन्ता मत करना क्योंकि!

वा.रा.भा.

॥३९॥

राजकुमारोंको चारों वर्णका हित करना चाहिये ॥१७॥ नृशंसहो वा आनृशंसपापजनकहोयापुण्यजनक प्रजाके लिये सबही कार्य्य राजाको करने चाहिये॥१८॥ क्योंकि राजकार्यमें नियुक्त मनुष्योंका यही सनातन धर्म है, अतएव हे काकुत्स्थ ! तुम अधर्म चारिणी निशाचरीको मारही डालो इस राक्षसीमें धर्मका लेशभी नहीं हैं॥ १९ ॥ मैंने सुना है कि, पूर्वकालमें विरोचन सुता मन्थराने पृथ्वीका नाश करनेकी चेष्टा की थी, तब राजा इन्द्रने इसका संहार किया ॥२०॥ महर्षि शुक्राचार्यकी माताने दैत्योंका कार्य साधनेके लिये देवेन्द्रके विनाशकी वासना की थी किन्तु स्वयं भगवान् नारायणने उनको मार डाला ॥२१॥ हे राघव ! इस प्रकार देवगण व अनेक धार्मिक श्रेष्ठ राजाओंने अधर्मचारिणी स्त्रीयोंका वध किया है, अतएव घिन छोडकर मेरे नियोगसे इस निशाचरांगनाका प्राणसंहार

नृशंसमनृशंसंवाप्रजारक्षणकारणात् ॥ पातकंवासदोषंवाकर्तव्यंरक्षतासदा ॥१८॥ राज्यभारनियुक्तानामेषधर्मःसनातनः ॥ अधर्म्यांजहिकाकुत्स्थधर्मोह्यस्यांनविद्यते ॥ १९ ॥ श्रूयतेहिपुरा शक्रोविरोचनसुतांनृप ॥ पृथिवींहंतुमिच्छंतींमंथरामभ्यसूदयत् ॥२०॥ विष्णुनाचपुरारामभृगुपत्नीपतिव्रता ॥ अनिंद्रंलोकमिच्छंतीकाव्यमातानिषूदिता ॥२१॥ एतैश्चान्यैश्चबहुभीराजपुत्रैर्महात्मभिः ॥ अधर्मसहितानार्योहताःपुरुषसत्तमैः॥तस्मादेनांघृणांत्यक्त्वाजहिमच्छासनान्नृप ॥२२॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदि काव्येचतुर्विंशतिसा० बालकांडे पञ्चविंशःसर्गः ॥ २५ ॥ मुनेर्वचनमक्लीबंश्रुत्वानरवरात्मजः ॥ राघवः प्रांजलिर्भूत्वाप्रत्युवाचदृढव्रतः ॥ १ ॥ पितुर्वचननिर्देशात्पितुर्वचनगौरवात् ॥ वचनंकौशिकस्येतिकर्तव्यमविशंकया ॥२॥ अनुशिष्टोऽस्म्ययोध्यायांगुरुमध्येमहात्मना॥ पित्रादशरथेनाहंनावज्ञेयंहितद्वचः ॥३॥ सोऽहंपितुर्वचःश्रुत्वाशासनाद्ब्रह्मवादिनः ॥ करिष्यामि नसंदेहस्ताटकावधमुत्तमम् ॥४॥ गोब्राह्मणहितार्थायदेशस्यचहितायच ॥ तवचैवाप्रमेयस्यवचनंकर्तुमुद्यतः ॥ ५ ॥ एवमुक्त्वाधनुर्मध्येबद्ध्वामुष्टिमरिंदमः ॥ ज्याघोषमकरोत्तीव्रंदिशःशब्देननादयन् ॥ ६ ॥

बा० कां०

स० २६

करो॥२२॥ इत्यार्षे श्री मद्रा० वा० आ० बालकाण्डे भाषाटीकायां पंचविंशःसर्गः ॥२५॥ महर्षि विश्वामित्रजीकी वीरतासे भरे ऐसे वचन सुनकर दृढव्रत रामचन्द्रजी कृताञ्जलि पुट हो बोले ॥१॥ पिताकी आज्ञा व वचन देनेके गौरवसे आप जो मुझे करनेको कहैंगे मैं निशंक चित्तसे उसे करनेको तैयार हूं ॥२॥ अयोध्यामें सभा के बीच वसिष्ठादिगुरुओंके मध्यमें जो पिता महात्माजीनेमुझे आज्ञा दी है उनके अनुसार मैं आपके कार्यमें अवहेलना नही करूंगा ॥३॥ सो मैं पिताके वचन सुन व वेद जाननेवाले आपकी आज्ञासे निश्चयही उसनिशाचरीका प्राणलेनेके लिये उसके सन्मुख हूंगा ॥४॥ गौ ब्राह्मणके हितार्थ देशके उपकरार्थ मैंने महातेजस्वी आपके वचन शिरोधार किये ॥५॥ यह कहकर रामचन्द्रजीने दृढमुष्टिसे शरासन ग्रहण किया और धनुषकी टंकारसे दशों दिशा समाच्छन्न करने लगे ॥ ६ ॥

उस टंकारके विकटशब्दसे ताडकावनके सब वनवासी जीव चकित व शंकित हो उठे । शब्द सुनतेही निशाचरी भी कुपित व मोहित होगई ॥ ७ ॥ तदतन्तर क्रोधमें भरके जहाँसे शब्द आया था उसे लक्ष्यकर उसी ओर दौडने लगी ॥ ८ ॥ तब रामचन्द्रजी विकटाकार विकृतमुख क्रोध करते हुए ताडका राक्षसीको दौडी आती देख जिसका बडा शरीर था और बूढ़ी थी लक्ष्मणजी से बोले ॥९॥ हे भइया लक्ष्मण! इस यक्षिणीका भयंकर दारुण शरीर और रूप तो देखो वास्तविक इसमूर्तिको देख भीरुओंकातो हृदय काँपही जायगा ॥ १० ॥ तुम देखो कि दूसरेही इस कठिनतासे वशमें आनेवालीमायाजाननेवालीके नाक कान काटकर लौटाये देता हूँ ॥ ११ ॥ यह स्त्री है सुतरां इसके वध करनेकी मेरी इच्छा नहीं होती कारण कि स्त्रीकी रक्षा करनी चा ्हिये बस मैं यही चाहता हूँ कि, इसका पराक्रम और गतिरोध करदूं ॥ १२ ॥ रामचन्द्रजी यह

तेनशब्देनवित्रस्तास्ताटकावनवासिनः ॥ ताटकाचसुसंक्रुद्धातेन शब्देन मोहिता ॥७॥ तं शब्दमभिनिध्यायराक्षसीक्रोधमूर्च्छिता ॥ श्रुत्वा चाभ्यद्रवत्क्रुद्धायत्रशब्दोविनिःसृतः ॥ ८ ॥ तांदृष्ट्वाराघवःक्रुद्धांविकृतांविकृताननाम ॥ प्रमाणेनातिवृद्धांचलक्ष्मणंसोऽभ्यभाषत॥९॥ पश्य लक्ष्मणयक्षिण्योभैरवंदारुणंवपुः ॥ भिद्येरन्दर्शनादस्याभीरूणांहृदयानिच ॥ ॥ १० ॥ एतांपश्यदुराधर्षांमायाबलसमन्विताम् ॥ विनिवृत्ताकरोम्यद्यहृतकर्णाग्रनासिकाम् ॥११॥ नह्येनामुत्सहेहंतुंस्त्रीस्वभावेनरक्षिताम् ॥ वीर्यंचास्यागतिंचैवहन्यामितिहिमेमतिः ॥ १२ ॥ एवंब्रुवाणेरामेतुताटकाक्रोधमूर्च्छिता ॥ उद्यम्यबाहुंगर्जंतीराममेवाभ्यधावत ॥ १३ ॥ विश्वामित्रस्तुब्रह्मर्षिर्हुंकारेणाभिभर्त्स्यताम् ॥ स्वस्तिराघवयोरस्तुजयंचैवाभ्यभाषत ॥ १४ ॥ उद्धुन्वानारजोघोरं ताटकाराघवावुभौ ॥ रजोमेघेनमहतामुहूर्तंसाव्यमोहयत् ॥ १५ ॥ ततोमायांसमास्थायशिलावर्षेणराघवौ ॥ अवाकिरत्सुमहताततश्चुक्रोधराघवः ॥१६॥ शिलावर्षंमहत्तस्याः शरवर्षेणराघवः ॥ प्रतिवार्योपधावंत्याः करौचिच्छेदपत्रिभिः ॥ १७ ॥ ततश्छिन्नभुजांश्रांतामभ्याशेपरिगर्जतीम् ॥ सौमित्रिरकरोत्क्रोधाद्धृतकर्णाग्रनासिकाम् ॥ १८ ॥ कामरूपधरासातुकृत्वारूपाण्यनेकशः ॥ अंतर्धानंगतायक्षीमोहयंतीस्वमायया ॥ १९ ॥

बात कहही रहे थे, कि इतनेमें वह निशाचरी क्रोधसे मूर्छित हो दोनों हाथ फैलाये तर्जन गर्जन करते २ रामचन्द्रजीके सामने आही गई ॥ १३ ॥ तब विश्वामित्रजीने हुंकार पूर्वक उसको फटकारा व लक्ष्मणको आशीर्वाद दिया कि आपकी जय हो ॥ १४ ॥ तब ताडकाने आकाशमें बहुत धूल वर्षाकर धूलके प्रभावसे एक मुहुर्त राम लक्ष्मणको मोहित कर दिया ॥ १५ ॥ तदनन्तर मायाबलसे शिलावर्षणकर रामचन्द्रजीको व्यस्त कर दिया तब रघुनाथजीने क्रोधित हुये ॥ १६ ॥ रामचन्द्रजीने बाणोंकी वर्षासे उसकी शिलावृष्टि निवारण कर बाणोंसेही उनके दोनों हाथ काट डाले ॥ १७ ॥ कट गई भुजा जिसकी समीप गर्जना करनेवाली ताडकाके लक्ष्मण जीने क्रोधसे नाक और कान काटडाले ॥ १८ ॥ कामरूपिणीराक्षसी बहुतसे रूपधारणकर अतर्धान होगई व राक्षसीनेमायाकरके रामचन्द्रको मोहित कर लिया ॥ १९ ॥

वा.रा.भा.
॥४०॥

अनन्तर निरन्तर शिला वर्षणपूर्वक भयंकर भावसे इधर उधर घूमने लगी और शिला वर्षाकर अनेक प्रकार उन दोनों पर चोट करने लगी ॥ २० ॥ यह देख विश्वामित्रजी रामचन्द्रसे कहा कि, इस दुष्टा निशाचरीको स्त्रीजानकर वध करनेमें घृणा मत करो ॥ २१ ॥ यज्ञविद्वेषिणी यह निशाचरी धीरे २ और माया फैलावेगी अतएव सन्ध्या होनेसे पहिलेही तुम इसको मार डालो ॥२२॥ क्योकि सन्ध्याकालमें राक्षस अजेय हो जाते हैं, यह श्रवणकर रामचन्द्रजीने पत्थर वर्षाती राक्षसीको ॥२३॥ शब्दवेधीपन दिखाकर बाणोंकी वर्षासे उसकी गतिरोकदी वह मायाके बलसे युक्त जब बाणोंके जालसे रुक गई ॥२४॥ तब राक्षसी गुप्तभाव छोडकर वेगसे गर्जना करती हुई राम और लक्ष्मणके ऊपर दौडी उस समय वह इन्द्रके वज्रसमान बोध होने लगी ॥ २५ ॥ रामचन्द्रजीने आते हुये

अश्मवर्षंविमुंचंतीभैरवंविचचारसा ॥ ततस्तावश्मवर्षेणकीर्यमाणौसमंततः ॥२०॥ दृष्ट्वागाधिसुतःश्रीमानिदंवचनमब्रवीत् ॥ अलंतेघृणयाराम पापैषादुष्टचारिणी ॥ २१ ॥ यज्ञविघ्नकरीयक्षीपुरावर्धेतमायया ॥ वध्यतांतावदेवैषापुरासंध्याप्रवर्तते ॥२२॥ रक्षांसिसंध्याकालेतुदुर्धर्षाणिभवंतिहि ॥ इत्युक्तःसतुतांयक्षीमश्मवृष्ट्याभिवर्षिणीम् ॥ २३ ॥ दर्शयञ्छब्दवेधित्वंतांरुरोधससायकैः ॥ सारुद्धाबाणजालेनमायाबलसमन्विता ॥२४॥ अभिदुद्रावकाकुत्स्थंलक्ष्मणंचविनेदुषी ॥ तामापतंतींवेगेनविक्रांतामशनीमिव ॥ २५ ॥ शरेणोरसिविव्याधपपातच ममारच ॥ तांहतांभीमसंकाशांदृष्ट्वासुरपतिस्तदा ॥२६॥ साधुसाध्वितिकाकुत्स्थंसुराश्चाप्यभिपूजयन् ॥ उवाचपरमप्रीतःसहस्राक्षःपुरंदरः ॥२७॥ सुराश्चसर्वेसंहृष्टाविश्वामित्रमथाब्रुवन् ॥ मुनेकौशिकभद्रंतेसेंद्राःसर्वेमरुद्गणाः ॥२८॥ तोषिताःकर्मणाऽनेनस्नेहंदर्शयराघवे ॥ प्रजापतेःकृशाश्वस्यपुत्रान्सत्यपराक्रमान् ॥२९॥ तपोबलभृतोब्रह्मन् राघवायनिवेदय ॥ पात्रभूतश्चतेब्रह्मंस्तवानुगमनेरतः ॥३०॥ कर्तव्यसुमहत्कर्मसुराणांराजसूनुना ॥ एवमुक्त्वासुराःसर्वेजग्मुर्हृष्टाविहायसम् ॥ ३१ ॥

बा० कां०
स० २६

देख एक बाण उसके हृदयमें मारा जिसके लगतेही वह गिरी और मरगई इन्द्रने आय उस भयानक राक्षसीको मरी देख ॥ २६ ॥ साधु २ किया व देवता भी आनंदप्रकाशकरने लगे तब सहस्रलोचनने परमप्रसन्न हो कहा ॥२७॥ इन्द्रसहित देवता व मरुद्गण विश्वामित्रजीसे प्रसन्न हो बोले विश्वामित्रजी ! आपके कार्यसे हम उत्कण्ठारहित हुये तुम्हारा मंगल हो ॥२८॥ इस कर्मसे रामचन्द्रसे हम बहुत संतुष्ट हुये आप इस समय रामचन्द्रजीपर परमस्नेह दिखाइये प्रजापतिकृशाश्वके अस्त्ररूपी जो सत्यपराक्रमी पुत्र हैं ॥२९॥ तपस्वी बालयुक्त रामचन्द्रजीकोही दे दीजिये क्योंकि इसके देने योग्य यही हैं वे तुम्हारी सेवा शुश्रूषाके करने वाले हैं ॥३०॥ यह दोनों राजकुमार देवताओंका बडा कार्य साधन करेंगे यह कह देवता गण सन्तुष्ट हो विश्वामित्रजीका आदर सत्कार कर देवलोकको चले गये ॥३१॥

इधर संध्या हो गई तब महर्षि विश्वामित्रजी ताडकाके मरजानेसे अतिसन्तुष्ट हो ॥ ३२ ॥ श्रीरामचन्द्रजीका शिर सूंघकर कहने लगे हे सौम्य ! हम आजकी रातको यहीं व्यतीत करेंगे ॥ ३३ ॥ प्रभात होते ही अपने आश्रम की ओर चलेंगे विश्वामित्रजीके यह वचन सुन रामचन्द्रजी प्रफुल्ल हुए ॥ ३४ ॥ वह रात्रि तीनों जनोंने उस ताडकाके वनमेंही बिताई और उसी दिनसे वह वन उपद्रवरहित हो गया अधिक क्या कहें तबसे वहां चैत्ररथ वनके समान मनोहर शोभा हो गई ॥ ३५ ॥ इस प्रकार रामचन्द्रजी उस यक्षकी कन्या ताडकाका संहारकर व देवताओंकी प्रशंसा ग्रहणपूर्वक मुनिके सहित उस रात्रिको वहीं रहे और रात्रि व्यतीत कर प्रातही जागे ॥ ३६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बा० भाषायां षड्विंशःसर्गः ॥ २६ ॥ रजनी प्रभात होनेपर महा-

विश्वामित्रंपूजयंतस्ततः संध्याप्रवर्तते ॥ ततोमुनिवरःप्रीतस्ताटकावधतोषितः ॥३२॥ मूर्ध्निरामम्रुपाघ्रायइदंवचनमब्रवीत् ॥ इहाद्यरजनींराम वसामशुभदर्शन ॥३३॥ श्वःप्रभातेगमिष्यामस्तदाश्रमपदंमम ॥ विश्वामित्रवचःश्रुत्वाहृष्टोदशरथात्मजः ॥ ३४ ॥ उवासरजनींतत्रताट-कायावनेसुखम् ॥ मुक्तशापंवनंतच्चतस्मिन्नेवतदाहनि ॥ रमणीयंविबभ्राजयथाचैत्ररथंवनम् ॥ ३५ ॥ निहत्यतांयक्षसुतांसरामःप्रशस्य मानःसुरसिद्धसंघैः ॥ उवासतस्मिन्मुनिनासहैवप्रभातवेलांप्रतिबोध्यमानः ॥ ३६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये चतुर्विं-शतिसा० बा० कांडे षड्विंशःसर्गः ॥२६॥ अथतांरजनींमुष्यविश्वामित्रोमहायशाः ॥ प्रहस्यराघवंवाक्यमुवाचमधुरस्वरम् ॥२॥ परितु-ष्टोऽस्मिभद्रंतेराजपुत्रमहायशः ॥ प्रीत्यापरमयायुक्तोददाम्यस्त्राणिसर्वशः ॥२॥ देवासुरगणान्वापिसगंधर्वोरगान्भुवि ॥ यैरमित्रान्प्रसह्या जौवशीकृत्यजयिष्यसि ॥ ३ ॥ तानिदिव्यानिभद्रंतेददाम्यस्त्राणिसर्वशः ॥ दंडचक्रंमहद्दिव्यंतवदास्यामिराघव ॥ ४ ॥ धर्मचक्रंततोवी रकालचक्रंतथैवच ॥ विष्णुचक्रंतथात्युग्रमैंद्रचक्रंतथैवच ॥५॥ वज्रमस्त्रंनरश्रेष्ठशैवंशूलवतंतथा ॥ अस्त्रंब्रह्मशिरश्चैवऐषीकमपिराघवः ॥६॥ ददामितेमहाबाहोब्राह्ममस्त्रमनुत्तमम् ॥ गदेद्वेचैवकाकुत्स्थमोदकीशिखरीशुभे ॥ ७ ॥

यशस्वी महर्षि विश्वामित्रजी कुछ हँसते हुए मधुर वाक्यसे यह बोले ॥१॥ हे राजपुत्र ! मैं तुमसे प्रसन्न हुआ हूँ तुम्हारा मंगल हो, मैं तुम्हैं सब अस्त्र दूंगा ॥२॥ इन सब अस्त्रोंका प्रभाव ऐसा है कि-देवता, असुर, गन्धर्व, तक तुम्हारे सामने लडनेको आवें तो तुम उनको भी इन अस्त्रोंके प्रभावसे परास्त कर दोगे ॥३॥ जो हो मैं तुम्हें सब दिव्य अस्त्र व दिव्य दण्डचक्रादि प्रदान करूँगा ॥४॥ हे वीर ! धर्मचक्र, कालचक्र, विष्णुचक्र तथा उग्र इन्द्रचक्र ॥५॥ हे नर श्रेष्ठ !वज्रअस्त्र, शिवशूल, ब्रह्मशिर, ऐसीकास्त्र ॥ ६ ॥ हे बड़ी बाहोंवाले ! मैं तुमको ब्रह्मास्त्र देता हूँ, हे काकुत्स्थ ! कौमोदकी और शिखरी नाम्नी दो प्रदीप्त गदा ॥ ७ ॥

हे नरशार्दूल ! प्रदीप्यमान धर्मपाश आपको देता हूँ ॥८॥ वरुणपाश उत्तम अस्त्र आपको देता हूं, शुष्क व आर्द्रनामक दो अशनि अर्थात् वज्र ॥९॥ पिनाकास्त्र देताहूँ नारायण और शिखर नामवाला बड़ा श्रेष्ठ आग्नेयास्त्र देता हूँ॥१०॥मथन नाम वायव्यास्त्र हे राघव! तुमको देताहूँ हयशिर और क्रौंच अस्त्र देता हूँ॥११॥ हे राम ! दो शक्तियें आपको देता हूँ कंकाल, मूसल, कपाल व किंकिणी लीजिये ॥१२॥ यह सब अस्त्र राक्षसोंके संहारार्थ प्रदान करूँगा तदनन्तर वैद्याधरास्त्र नन्दननामवाला ॥१३॥ असिरत्न हे बडी बाहोंवाले राजपुत्र ! गान्धर्वास्त्र मोहनास्त्र ॥ १४ ॥ हे राघव ! सौम्य प्रशमन अस्त्र आपको देता हूँ, सौम्य वर्षण

प्रदीप्तेनरशार्दूलप्रयच्छामिनृपात्मज ॥ धर्मपाशमहंरामकालपाशंतथैवच ॥८॥ वारुणंपाशमस्त्रंचददाम्यहमनुत्तमम् ॥ अशनीद्वेप्रयच्छामि शुष्कार्द्रेरघुनंदन ॥ ९ ॥ ददामिचास्त्रंपैनाकामस्त्रंनारायणंतथा ॥ आग्नेयमस्त्रंदयितशिखरंनामनामतः ॥ १० ॥ वायव्यंप्रथमंनामददामित-वचानघ ॥ अस्त्रंहयशिरोनामक्रौंचमस्त्रंतथैवच ॥ ११ ॥ शक्तिद्वयंचकाकुत्स्थददामितवराघव ॥ कंकालंमुसलंघोरंकापालमथकिंकिणी-म् ॥१२॥ वधार्थंरक्षसां यानिददाम्येतानिसर्वशः ॥ वैद्याधरंमहास्त्रंचनंदनंनामनामतः ॥१३॥ असिरत्नंमहाबाहोददामिनृवरात्मज ॥ गांधर्व-मस्त्रंदयितंमोहनंनामनामतः ॥१४॥ प्रस्वापनं प्रशमनंदद्मिसौम्यंचराघव ॥ वर्षणंशोषणंचैवसंतापनविलापने ॥ १५ ॥ मादनंचैवदुर्धर्षंकंदर्प दयितंतथा ॥ गांधर्वमस्त्रंदयितमानवंनामनामतः ॥१६॥ पैशाचमस्त्रंदयितमोहनंनामनामतः ॥ प्रतीच्छनरशार्दूलराजपुत्रमहायशः ॥१७॥ तामसंनरशार्दूलसौमनंचमहाबलम् ॥ संवर्तंचैवदुर्धर्षंमौसलंचनृपात्मज ॥ १८ ॥ सत्यमस्त्रंमहाबाहोतथामायामयंपरम् ॥ सौरंतेजःप्रभंना-मपरतेजोपकर्षणम् ॥ १९ ॥ सोमास्त्रंशिशिरंनामत्वाष्ट्रमस्त्रंसुदारुणम् ॥ दारुणंचभगस्यापिशीतेषुमथद्गानदम् ॥ २० ॥ एतान्रामममहाबा-होकामरूपान्महाबलान् ॥ गृहाणपरमोदारान्क्षिप्रमेवनृपात्मज ॥ २१ ॥

शोषणअस्त्र तथा संतापन और विलापन अस्त्र ॥१५॥ शत्रुओंको मद करानेवाला दुर्द्धर्ष कामोत्पन्न करनेवाला मदनास्त्र और मानव नामवाला गन्धर्वास्त्र ॥१६॥ मोहन नामवाला पैशाचास्त्र हे मनुष्योंमें सिंहराजपुत्र! यह आप ग्रहण कीजिये ॥१७॥तामसास्त्र सौमनास्त्र जो बडे बलयुक्त हैं हे नृपपुत्र ! संवर्त दुर्द्धर्ष मौशलास्त्र॥१८॥ हे महाभुज ! सत्यास्त्र इसी प्रकार मायास्त्र इस प्रकार शत्रुके तेजका खैंचनेवाला सौरास्त्र॥१९॥ सौमास्त्र और दारुण, त्वाष्ट्र और भग अर्थात् सूर्यका अस्त्र भी यह महा भयंकर है इससे शीत दूर होता है॥२०॥हे महाभुजवाले रामचन्द्रजी! हे राजपुत्र! इन कामरूपी परमउदार महाबली अस्त्रोंको मुझसे ग्रहण कीजिये ॥२१॥

तदनन्तर यह बात कहकर मुनिजीने पूर्वमुख बैठ प्रसन्न मनसे रामचन्द्रजीको यह मंत्रमय सब अस्त्र दे दिये ॥ २२ ॥ जो सब दुर्लभ अस्त्र देवताओंको दुर्लभ थे वही सब अस्त्र मुनिजीने रामचन्द्रजीको दे दिये ॥२३॥ जब शस्त्र देनेके समय विश्वामित्रजी ध्यानजप करने लगे वैसेही अस्त्र समूह अपना २ रूपधारणकर रामचन्द्र जीके सन्मुख उपस्थित हुये ॥ २४ ॥ सब अस्त्रोंने प्रफुल्ल मनसे हाथ जोड रामचन्द्रजीसे कहा हे रामचन्द्र ! हम सब आपके आज्ञाकारी दास हैं ॥२५॥ आपका कल्याणहो हमको क्या आज्ञा है जो आप कहेंगे सो करेंगे सो उन महाबलियोंके यह कहने पर प्रसन्नतापूर्वक रामचन्द्रजी बहुत प्रसन्न हुए॥२६॥रघुनाथजीने एक एकको अपने कर कमलसे स्पर्शकर सबको ग्रहण किया व कहा कि हे अस्त्रो ! जब मैं स्मरण करूँ तब उपस्थित हो जाया करो तुम सब मेरे मानसी हो॥ २७॥ तदनन्तर लोकमित्र महातेजस्वी

स्थितस्तुप्राङ्मुखोभूत्वाशुचिर्मुनिवरस्तदा ॥ ददौरामायसुप्रीतोमंत्रग्राममनुत्तमम् ॥२२॥ सर्वसंग्रहणंयेषांदैवतैरपिदुर्लभम् ॥ तान्यस्त्राणितदाविप्रोराघवायन्यवेदयत् ॥२३॥ जपतस्तुमुनेस्तस्यविश्वामित्रस्यधीमतः ॥ उपतस्थुर्महार्हाणिसर्वाण्यस्त्राणिराघवम् ॥ २४ ॥ ऊचुश्चमुदितारामंसर्वेप्रांजलयस्तदा ॥ इमेचपरमोदारकिंकरास्तवराघव ॥२५॥ यद्यदिच्छसिभद्रंतेतत्सर्वंकरवामवै ॥ ततोरामःप्रसन्नात्मातैरित्युक्तो महाबलैः ॥२६॥ प्रतिगृह्यचकाकुत्स्थःसमालभ्यचपाणिना ॥ मानसामेभविष्यध्वमितितान्यभ्यचोदयत् ॥२७॥ ततःप्रीतमनारामोविश्वामित्रंमहामुनिम् ॥ अभिवाद्यमहातेजागमनायोपचक्रमे ॥२८॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये चतुर्विंशतिसा॰ बालकांडे सप्तविंशःसर्गः ॥२७॥ प्रतिगृह्यततोऽस्त्राणिप्रहृष्टवदनःशुचिः ॥ गच्छन्नेवचकाकुत्स्थोविश्वामित्रमथाब्रवीत् ॥१॥ गृहीतास्त्रोऽस्मिभगवन्दुराधर्षःसुरैरपि॥अस्त्राणांत्वहमिच्छामिसंहारान्मुनिपुंगव ॥२॥ एवंब्रुवतिकाकुत्स्थेविश्वामित्रोमहातपाः॥ संहारान्व्याजहाराथधृतिमान्सुव्रतः शुचिः ॥३॥ सत्यवंतंसत्यकीर्तिंधृष्टंरभसमेवच ॥ प्रतिहारतरंनामपराङ्मुखमवाङ्मुखम् ॥ ४ ॥ लक्ष्यालक्ष्याविमोचैवदृढनाभसुनाभकौ दशाक्षशतवक्रौचदशशीर्षशतोदरौ ॥ ५ ॥

रामचन्द्रजी विश्वामित्रजीको प्रणाम कर आगे चलनेका उद्योग करने लगे ॥२८॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा॰ वाल्मी॰ आदिकाव्ये बाल॰ भाषा॰ सप्तविंशःसर्गः ॥२७॥ तदनन्तर रामचन्द्रजी पवित्र भावसे अस्त्र ग्रहण करके जाते हुए प्रफुल्लमुख हो विश्वामित्रजीसे बोले॥१॥ हे भगवन् ! मैं अस्त्र ग्रहण करके देवताओंसे भी दुर्द्धर्ष हो गया हूँ परन्तु अस्त्रका संहार करना मैंने अब तक नहीं जाना कृपा करके बताइये॥२॥ रामचन्द्रके ऐसा करने पर महातपस्वीधैर्यशालीसुव्रतविश्वामित्रजीनेरामचन्द्रजीको मंत्र देकर कहा ॥३॥ तुम सत्यवान् सत्कीर्ति, धृष्टरभस, प्रतिहारतर, पराङ्मुख, अवाङ्मुख ॥४॥ लक्ष्य, अलक्ष्य, विमोच, दृढनाभ सुनाभ दशाक्षशतवक्र, दशशीर्ष,

शतोदर ॥५॥ पद्मनाभ, महानाभ, दुन्दुनाभ, स्वनाभ, ज्योतिष, शकुन, नैराश्य, विमल ॥६॥ यौगन्धर, विनिद्र, दैत्यप्रथमन, शुचिबाहु, महाबाहु, निष्कली, विरुचि, अर्चिमाली, धृतिमाली, वृत्तिमान्, रुचिर, ॥७॥ हे राम ! पित्र्य, सौमनस, विधूत, मकर, पवचीर, रति, धन, धान्य ॥ ८ ॥ कामरूप, कामरुचि, मोह, आवरण, जम्भक, सर्पनाथ, पन्थान, वरुण, ॥९॥ हे रामचन्द्र ! इन सब कृशाश्व पुत्र सम्भूत दीप्तिशील व कामरूपी अस्त्रोंको तुम ग्रहण करो तुम्हारा मंगल हो, तुम्ही इनको ग्रहण करनेयोग्य पात्र हो ॥१०॥ रघुवीरने प्रसन्नहो बहुत अच्छा कहकर उन सबको ग्रहण किया यह सब सुखप्रद अस्त्र दिव्यमूर्तिमान ॥११॥ देखनेमें बहुतसारे अंगारतुल्य कुछ धुएँके समान कोई २ चन्द्र सूर्यके समान हाथ जोडे व माथा झुकाये थे ॥१२॥ वह सब अस्त्र हाथ जोडकर राम

पद्मनाभमहानाभौदुंदुनाभस्वनाभकौ ॥ ज्योतिषंशकुनंचैवनैरास्यविमलावुभौ ॥ ६ ॥ यौगंधरविनिद्रौचदैत्यप्रमथनौतथा ॥ शुचिबाहुर्म-हाबाहुर्निष्कलिर्विरुचस्तथा ॥ सार्चिमालीधृतिमालीवृत्तिमान्रुचिरस्तथा ॥७॥ पित्र्यःसौमनसश्चैवविधूतमकरावुभौ ॥ करवीरंरतिंचैवधन-धान्यौचराघव ॥ ८ ॥ कामरूपंकामरुचिंमोहमावरणंतथा ॥ जृंभकंसर्पनाथंचपंथानवरुणौतथा ॥९॥ कृशाश्वतनयान्राममभास्वरान्कामरू-पिणः ॥ प्रतीच्छममभद्रंतेपात्रभूतोऽसिराघव ॥१०॥बाढमित्येवकाकुत्स्थःप्रहृष्टेनतांरात्मना ॥ दिव्यभास्वरदेहाश्चर्तिमंतःसुखप्रदाः ॥११॥ केचिदंगारसदृशाःकेचिद्धूमोपमास्तथा ॥ चंद्रार्कसदृशाःकेचित्प्रह्वांजलिपुटास्तथाः ॥१२॥ रामंप्रांजलयोभूत्वाऽब्रुवन्मधुरभाषिणः ॥ इमे स्मनरशार्दूलशाधिकिंकरवामते ॥१३॥ गम्यतामितितानाहयथेष्टंरघुनंदनः ॥ मानसाःकार्यकालेषुसाहाय्यंमेकरिष्यथ ॥ १४ ॥ अथतेराम मामंत्र्यकृत्वाचापिप्रदक्षिणम् ॥ एवमस्त्वितिकाकुत्स्थमुक्त्वाजग्मुर्यथागतम् ॥१५॥ सचतान्राघवोज्ञात्वाविश्वामित्रंमहामुनिम् ॥ गच्छन्नेवाथमधुरंश्लक्ष्णंवचनमब्रवीत् ॥ १६ ॥ किमेतन्मेघसंकाशंपर्वतस्याविदूरतः ॥ वृक्षषंडमितोभातिपरंकौतूहलंहिमे ॥ १७ ॥ दर्शनीयंमृगा-कीर्णंमनोहरमतीवच ॥ नानाप्रकारैःशकुनैर्वल्गुभाषैरलंकृतम् ॥ १८ ॥

चन्द्रजीसे मधुर वचन बोले, हे नरश्रेष्ठ ! हम आपके आगे उपस्थित हैं कहिये हमको क्या आज्ञा होती है ? क्या आप कार्य करैं ॥१३॥ रामचन्द्रजीने कहा अब तो तुम जहाँ इच्छा हो तहाँ जाओ कार्यसमय याद करनेसे आकर मेरी सहाय करना ॥१४॥ तब वह रामकी आज्ञा शिरोधारकर उनकी परिक्रमाकर उनका मत ले वहांसे अपने २ स्थानको चले गये ॥१५॥ इस ओर रामचन्द्र अस्त्र प्रयोग व संहार विषय जानकर गमन करते २ मार्गमें महर्षि विश्वामित्रजीसे मधुरवाणी बोले ॥१६॥ हे मुने ! पर्वतके अतिनिकट मेघमालाके समान वृक्षोंका समूह देख पडता है ? ॥ १७ ॥ यह स्थान बडा मनोहर दिखाई देता है उसके चारों ओर मृगगण

फिर रहेहैं, व अतीव मनोरम वाणी बोलनेवाले नानाप्रकारके पक्षी शोर कररहे हैं॥१८॥ हम यद्यपि अभी भयावह व निबिडवत खूंदकर आयेहैं, परन्तु तो भी यह स्थानसुखशान्तिकर बोध होता है यह क्या हैइसके जाननेकी इच्छा है॥१९॥ हेभगवन्! यहआश्रम किसकाहैआपसे पूछताहूं यह सबबताइये वे ब्राह्मणद्वेषी दुष्ट राक्षस कहां है॥२०॥ हे भगवन् महामुनिराज! तुम्हारे यज्ञमें विघ्नकरनेवालेवे दुरात्मा राक्षस कहांहैं जहां आपकायज्ञ होता है वह स्थान कौनसा है?॥२१॥ मुझे जहां आपका यज्ञरक्षण व निशाचरोंका वध साधन करना होगा वह स्थान अब कितनी दूर है यह सब मेरी जाननेकी इच्छा है ॥ २२ ॥ इति श्रीमद्रा० वाल्मी० आदिकाव्ये बालकांडे भाषायामष्टाविंशः सर्गः ॥ २८ ॥ अनंतर अमित तेजवान् रामचन्द्रजीसे यह पूछेजाने पर महातेजस्वी महर्षिविश्वामित्रजी

निःसृताःस्ममुनिश्रेष्ठकान्ताराद्रोमहर्षणात् ॥ अनयात्ववगच्छामिदेशस्यसुखवत्तया ॥१९॥ सर्वंमेशंसभगवन्कस्याश्रमपदंत्विदम् ॥ संप्राप्ता यत्रतेपापाब्रह्मघ्नादुष्टचारिणः ॥२०॥ तवयज्ञस्यविघ्नायदुरात्मानोमहामुने ॥ भगवंस्तस्यकोदेशःसायत्रतवयाज्ञिकी ॥२१॥ रक्षितव्याक्रिया ब्रह्मन्मयावध्याश्चराक्षसाः ॥ नतत्सर्वंमुनिश्रेष्ठश्रोतुमिच्छाम्यहंप्रभो ॥ २२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० चतुर्विंशतिसा० बालकांडेअष्टा विंशःसर्गः ॥ २८ ॥ अथतस्याप्रमेयस्यवचनंपरिपृच्छतः ॥ विश्वामित्रोमहातेजाव्याख्यातुमुपक्रमे ॥ १ ॥ इहाराममहाबाहोविष्णुर्देवनम स्कृतः ॥ वर्षाणिसुबहूनीहतथायुगशतानिच ॥२॥ तपश्चरणयोगार्थमुवाससुमहातपाः ॥ एषपूर्वाश्रमोरामवामनस्यमहात्मनः ॥३॥ सिद्धाश्र मइतिख्यातःसिद्धोह्यत्रमहातपाः ॥ एतस्मिन्नेवकालेतुराजावैरोचनिर्बलिः ॥४॥ निर्जित्यदैवतगणान्सेंद्रान्सहमरुद्गणान् ॥ कारयामासतद्रा ज्यंत्रिषुलोकेषुविश्रुतः ॥ ५ ॥ यज्ञंचकारसुमहानसुरेंद्रोमहाबलः ॥ बलेस्तुयजमानस्यदेवाःसाग्निपुरोगमाः ॥ समागम्यस्वयंचैवविष्णुमूचुरि हाश्रमे ॥ ६ ॥ बलिर्वैरोचनिर्विष्णोयजतेयज्ञमुत्तमम् ॥ असमाप्तव्रतेतस्मिन्स्वकार्यमभिपद्यताम् ॥ ७ ॥

कहने लगे ॥१॥ हे राम ! हे महाबाहो ! इस स्थानपर सब देवताओंके वन्दन करने योग्य भगवान् विष्णुजीने बहुत वर्षों व युगोंतक तपस्याकी थी ॥ २ ॥ यह आश्रम महात्मा वामनका पूर्वाश्रम है, यह तप करनेके लायक स्थान हैपहले यहाँ बड़े तपस्वी रहते थे॥३॥ इसका नाम सिद्धाश्रम है जब यहां विष्णुजीतप कर रहे थे, उस काल विरोचन सुत बलिने ॥४॥ अपने बल पराक्रमसे इन्द्रादि देवताओंके मरुतोंसहित पराजितकर अपने राज्यको त्रिलोकविख्यात किया था ॥५॥ अनन्तर एक समय असुरोंके राजा बलिने एक बड़े यज्ञका अनुष्ठान किया तब देवतागण अग्निको आगेकर भगवान् विष्णुजीके पास इस आश्रममें आकर कहने लगे॥६॥ हे विष्णुजी! विरोचनपुत्र बलिने एक यज्ञका आरम्भ कियाहै इस कारण उस यज्ञके समाप्त होनेसे प्रथम आपकोएक देवकार्य करना होगा॥७॥

शतोदर ॥५॥ पद्मनाभ, महानाभ, दुन्दुनाभ, स्वनाभ, ज्योतिष, शकुन, नैराश्य, विमल ॥६॥ यौगन्धर, विनिद्र, दैत्यप्रथमन, शुचिबाहु, महाबाहु, निष्कली, विरुचि, अर्चिमाली, धृतिमाली, वृत्तिमान्, रुचिर, ॥७॥ हे राम ! पित्र्य, सौमनस, विधूत, मकर, पववीर, रति, धन, धान्य ॥ ८ ॥ कामरूप, कामरुचि, मोह, आवरण, जम्भक, सर्पनाथ, पन्थान, वरुण, ॥९॥ हे रामचन्द्र ! इन सब कृशाश्व पुत्र सम्भूत दीप्तिशील व कामरूपी अस्त्रोंको तुम ग्रहण करो तुम्हारा मंगल हो, तुम्ही इनको ग्रहण करनेयोग्य पात्र हो ॥१०॥ रघुवीरने प्रसन्नहो बहुत अच्छा कहकर उन सबको ग्रहण किया यह सब सुखप्रद अस्त्र दिव्यमूर्तिमान ॥११॥ देखनेमें बहुतसारे अंगारतुल्य कुछ धुएँके समान कोई २ चन्द्र सूर्यके समान हाथ जोडे व माथा झुकाये थे ॥१२॥ वह सब अस्त्र हाथ जोडकर राम

पद्मनाभमहानाभौदुंदुनाभस्वनाभकौ ॥ ज्योतिषंशकुनंचैवनैरास्यविमलावुभौ ॥ ६ ॥ यौगंधरविनिद्रौचदैत्यप्रमथनौतथा ॥ शुचिबाहुर्महाबाहुर्निष्कलिर्विरुचस्तथा ॥ सार्चिमालीधृतिमालीवृत्तिमान्रुचिरस्तथा ॥७॥ पित्र्यःसौमनसश्चैवविधूतमकरावुभौ ॥ करवीरंरतिंचैवधनधान्यौचराघव ॥ ८ ॥ कामरूपंकामरुचिंमोहमावरणंतथा ॥ जंभकंसर्पनाथंचपंथानवरुणौतथा ॥९॥ कृशाश्वतनयाञ्रामभास्वरान्कामरूपिणः ॥ प्रतीच्छममभद्रंतेपात्रभूतोऽसिराघव ॥१०॥बाढमित्येवकाकुत्स्थःप्रहृष्टेनतांरात्मना ॥ दिव्यभास्वरदेहाश्चर्तिमंतःसुखप्रदाः ॥११॥ केचिदंगारसदृशाःकेचिद्धूमोपमास्तथा ॥ चंद्रार्कसदृशाःकेचित्प्रह्वांजलिपुटास्तथाः ॥१२॥ रामंप्रांजलयोभूत्वाऽब्रुवन्मधुरभाषिणः ॥ इमेस्मनरशार्दूलशाधिकिंकरवामते ॥१३॥ गम्यतामितितानाहयथेष्टंरघुनंदनः ॥ मानसाःकार्यकालेषुसाहाय्यंमेकरिष्यथ ॥ १४ ॥ अथतेराममामंत्र्यकृत्वाचापिप्रदक्षिणम् ॥ एवमस्त्वितिकाकुत्स्थमुक्त्वाजग्मुर्यथागतम् ॥१५॥ सचतान्राघवोज्ञात्वाविश्वामित्रंमहामुनिम् ॥ गच्छन्नेवाथमधुरंश्लक्ष्णंवचनमब्रवीत् ॥ १६ ॥ किमेतन्मेघसंकाशंपर्वतस्याविदूरतः ॥ वृक्षषंडमितोभातिपरंकौतूहलंहिमे ॥ १७ ॥ दर्शनीयंमृगाकीर्णमनोहरमतीवच ॥ नानाप्रकारैःशकुनैर्वल्गुभाषैरलंकृतम् ॥ १८ ॥

चन्द्रजीसे मधुर वचन बोले, हे नरश्रेष्ठ ! हम आपके आगे उपस्थित हैं कहिये हमको क्या आज्ञा होती है ? क्या आप कार्य करैं ॥१३॥ रामचन्द्रजीने कहा अब तो तुम जहाँ इच्छा हो तहाँ जाओ कार्यसमय याद करनेसे आकर मेरी सहाय करना ॥१४॥ तब वह रामकी आज्ञा शिरोधारकर उनकी परिक्रमाकर उनका मत ले वहांसे अपने २ स्थानको चले गये ॥१५॥ इस ओर रामचन्द्र अस्त्र प्रयोग व संहार विषय जानकर गमन करते २ मार्गमें महर्षि विश्वामित्रजीसे मधुरवाणी बोले ॥१६॥ हे मुने! पर्वतके अतिनिकट मेघमालाके समान वृक्षोंका समूह देख पडता है ? ॥ १७ ॥ यह स्थान बडा मनोहर दिखाई देता है उसके चारों ओर मृगगण

फिर रहेहैं, व अतीव मनोरम वाणी बोलनेवाले नानाप्रकारके पक्षी शोर कररहे हैं॥१८॥ हम यद्यपि अभी भयावह व निबिडवत खूंदकर आयेहैं, परन्तु तो भी यह स्थानसुखशान्तिकर बोध होता है यह क्या हैइसके जाननेकी इच्छा है॥१९॥ हेभगवन्! यहआश्रम किसकाहैआपसे पूछताहूं यह सबबताइये वे ब्राह्मणद्वेषी दुष्ट राक्षस कहां हैं॥२०॥ हे भगवन् महामुनिराज! तुम्हारे यज्ञमें विघ्नकरनेवालेवे दुरात्मा राक्षस कहांहैं जहां आपकायज्ञ होता है वह स्थान कौनसा है?॥२१॥ मुझे जहां आपका यज्ञरक्षण व निशाचरोंका वध साधन करना होगा वह स्थान अब कितनी दूर है यह सब मेरी जाननेकी इच्छा है ॥ २२ ॥ इति श्रीमद्वा० वाल्मी० आदिकाव्ये बालकांडे भाषायामष्टाविंशः सर्गः ॥ २८ ॥ अनंतर अमित तेजवान् रामचन्द्रजीसे यह पूछेजाने पर महातेजस्वी महर्षिविश्वामित्रजी

निःसृताःस्ममुनिश्रेष्ठकान्ताराद्रोमहर्षणात् ॥ अनयात्ववगच्छामिदेशस्यसुखवत्तया ॥१९॥ सर्वंमेशंसभगवन्कस्याश्रमपदंत्विदम् ॥ संप्राप्ता यत्रतेपापाब्रह्मघ्नादुष्टचारिणः ॥२०॥ तवयज्ञस्यविघ्नायदुरात्मानोमहामुने ॥ भगवंस्तस्यकोदेशःसायत्रतवयाज्ञिकी ॥२१॥ रक्षितव्याक्रिया ब्रह्मन्मयावध्याश्चराक्षसाः ॥ नतत्सर्वंमुनिश्रेष्ठश्रोतुमिच्छाम्यहंप्रभो ॥ २२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्वा० वा० आ० चतुर्विंशतिसा० बालकांडेअष्टा विंशःसर्गः ॥ २८ ॥ अथतस्याप्रमेयस्यवचनंपरिपृच्छतः ॥ विश्वामित्रोमहातेजाव्याख्यातुमुपक्रमे ॥ १ ॥ इहाराममहाबाहोविष्णुर्देवनम स्कृतः ॥ वर्षाणिसुबहूनीहतथायुगशतानिच ॥२॥ तपश्चरणयोगार्थमुवाससुमहातपाः ॥ एषपूर्वाश्रमोरामवामनस्यमहात्मनः ॥३॥ सिद्धाश्र मइतिख्यातःसिद्धोह्यत्रमहातपाः ॥ एतस्मिन्नेवकालेतुराजावैरोचनिर्बलिः ॥४॥ निर्जित्यदैवनगणान्सेंद्रान्सहमरुद्गणान् ॥ कारयामासतद्रा ज्यंत्रिषुलोकेषुविश्रुतः ॥ ५ ॥ यज्ञंचकारसुमहानसुरेंद्रोमहाबलः ॥ बलेस्तुयजमानस्यदेवाःसाग्निपुरोगमाः ॥ समागम्यस्वयंचैवविष्णुमूचुरि हाश्रमे ॥ ६ ॥ बलिर्वैरोचनिर्विष्णोयजतेयज्ञमुत्तमम् ॥ असमाप्तव्रतेतस्मिन्स्वकार्यमभिपद्यताम् ॥ ७ ॥

कहने लगे ॥१॥ हे राम ! हे महाबाहो ! इस स्थानपर सब देवताओंके वन्दन करने योग्य भगवान् विष्णुजीने बहुत वर्षों व युगोंतक तपस्याकी थी ॥ २ ॥ यह आश्रम महात्मा वामनका पूर्वाश्रम है, यह तप करनेके लायक स्थान हैपहले यहाँ बड़े तपस्वी रहते थे॥३॥ इसका नाम सिद्धाश्रम है जब यहां विष्णुजीतप कर रहे थे, उस काल विरोचन सुत बलिने ॥४॥ अपने बल पराक्रमसे इन्द्रादि देवताओंके मरुतोंसहित पराजितकर अपने राज्यको त्रिलोकविख्यात किया था ॥५॥ अनन्तर एक समय असुरोंके राजा बलिने एक बड़े यज्ञका अनुष्ठान किया तब देवतागण अग्निको आगेकर भगवान् विष्णुजीके पास इस आश्रममें आकर कहने लगे॥६॥ हे विष्णुजी! विरोचनपुत्र बलिने एक यज्ञका आरम्भ कियाहै इस कारण उस यज्ञके समाप्त होनेसे प्रथम आपकोएक देवकार्य करना होगा॥७॥

राजा बलिके यज्ञमें अनेक देशोंसे याचक उपस्थित होते हैं यज्ञकर्त्ताभी जिसकी जो प्रार्थना होती है उसको वही देता है ॥८॥ हे विष्णो ! आप इस समय देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये योगमायाका आश्रम ग्रहणपूर्वकवामनमूर्ति धारणकर हमारा कल्याण कीजिये ॥९॥ सो अवतार लेनेका उपर्युक्त स्थानभी बताते हैं कि, आजकल अग्नितुल्य तेजस्वी कश्यप, देवी अदितिजीके सहित तेजसे देदीप्यमान ॥ १० ॥ देवीके सहित कश्यपजी सहस्रवर्षका व्रत समाप्त करके वरदाता मधुसूदनका स्तव करनेलगे ॥११॥ वह कहरहे हैं हे प्रभो ! आप तपोमय, तपोराशि, तपोमूर्ति व ज्ञानरूप हैं. हे पुरुषोत्तम! मैंनेतपके प्रभावसे आपको साक्षात् पाया है ॥१२॥ हे प्रभो ! आपके शरीरमें सब संसार प्रत्यक्ष दीख रहा है, आप अनादि आनन्दमय व ऐश्वर्य्यसम्पन्नहैं अतएव मैं आपकेशरण हूँ॥१३॥

ये चैनमभिवर्तंतेयाचितारइतस्ततः ॥ यच्चयत्रयथावच्चसर्वंतेभ्यःप्रयच्छति ॥८॥ सत्वंसुरहितार्थायमायायोगमुपाश्रितः ॥ वामनत्वंगतोविष्णोकुरुकल्याणमुत्तमम् ॥९॥ एतस्मिन्नंतरेरामकश्यपोऽग्निसमप्रभः ॥ अदित्यासहितोरामदीप्यमानइवौजसा ॥ १० ॥ देवीसहायोभगवान्दिव्यंवर्षसहस्रकम् ॥ व्रतंसमाप्यवरदंतुष्टावमधुसूदनम् ॥११॥ तपोमयंतपोराशिंतपोमूर्तिंतपात्मकम् ॥ तपसात्वांसुतप्तेनपश्यामिपुरुषोत्तमम् ॥१२॥ शरीरेतवपश्यामिजगत्सर्वमिदंप्रभो ॥ त्वमनादिरनिर्देश्यस्त्वामहंशरणंगतः ॥१३॥ तमुवाचहरिःप्रीतःकश्यपंधूतकल्मषम् ॥ वरंवरयभद्रंतेवरार्होऽसिमतोमम ॥ १४ ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्यमारीचःकश्यपोऽब्रवीत् ॥ अदित्यादेवतानांचमढुचैवानुयाचितम् ॥१५॥ वरंवरदसुप्रीतोदातुमर्हसिसुव्रत ॥ पुत्रत्वंगच्छभगवन्नदित्याममचानघ ॥ १६ ॥ भ्राताभवयवीयांस्त्वंशक्रस्यासुरसूदन ॥ शोकार्तानांतुदेवानांसाहाय्यंकर्तुमर्हसि ॥ १७ ॥ अयंसिद्धाश्रमोनामप्रसादात्तेभविष्यति ॥ सिद्धेकर्मणिदेवेशउत्तिष्ठभगवन्नितः ॥ १८ ॥ अथविष्णुर्महातेजा अदित्यांसमजायत ॥ वामनंरूपमास्थायवैरोचनिमुपागमत् ॥ १९ ॥

तबभगवान् हरिजी प्रसन्न हो पापरहित कश्यपजीसे बोले कि, हेभगवन्! हेमुने! तुम्हारा क्या अभिलाष है कहो तुम वरदनेके योग्य पात्रहो तुम्हारा मंगलहो॥१४॥ नारायणजीके यह वचनश्रवण करके मरीचिनन्दन कश्यपजी कहनेलगेकि, अदिति देवीमें पुत्ररूपसे प्रगट होनेकी आपसे हम और सबदेवगण यहप्रार्थना करतेहैं ॥१५॥आप प्रसन्नहो सबका अभिलाष पूर्ण कीजिये, हमारी भी यह प्रार्थना है किआप पुत्ररूपसे अदितिके गर्भसेअवतार लीजिये॥१६॥हे दानवदलन! आपउपेन्द्र रूप हो इन्द्रके छोटे भाई हूजिये और महादुःखमें पडे हुए सुरगणोंकी सहायताकीजिये॥१७॥ आपके प्रसादसे यहस्थान सिद्धाश्रम नामसे कीर्तित होगा,हे देवेश ! आपका कार्य सिद्ध हो गया अब इस स्थानसे उठिये॥१८॥ अनन्तर महातेजस्वीविष्णुजी अदितिके गर्भसे वामन अवतार लेबलिके निकट उपस्थित हुए॥१९॥

सर्व लोकों का हित करनेमें अनुरक्त अच्युत भगवान्ने राजाबलिसे तीनपग पृथ्वी भिक्षामांग तीनपगमेंतीनलोक नाप लिए॥२०॥ उन्हीं महातेजस्वीनेबल प्रभा वसे बलिको बांधकर पुनः सुरनाथको त्रिलोकीका राज्य दिया था॥२१॥पूर्वकालमें वामनजी इसी स्थान पर रहते थे इस समय उनके प्रति भक्तिमान् होमैं यहीं वास करता हूं॥२२॥ इसी आश्रममें यज्ञविरोधी निशाचर आया करते हैं व यहीं रहकर तुम्हें उन दुष्टोंको संहारकरना होगा॥२३॥ हे राम! हम अभी सिद्धाश्रम को चलेंगे इस आश्रममें जैसा मेरा वैसेही तुम्हारा अधिकार है॥२४॥ऋषि यह कहकर रामचंद्रसौमित्रि सहित उस आश्रमें प्रवेशपूर्वक शोभा देखने लगे, पुनर्वसु नक्षत्रमें शरदके बादलोंमें नियुक्त हो चन्द्रमाकी जैसी शोभा होती है वैसेहीविश्वामित्रजी शोभापानेलगे॥२५॥ सिद्धाश्रमवासी तपस्वियोंने देखतेही बहुत शीघ्रता

त्रीन्पदानथभिक्षित्वाप्रतिगृह्यचमेदिनीम्॥ आक्रम्यलोकाँल्लोकार्थीसर्वलोकहितेरतः॥२०॥महेंद्रायपुनः प्रादान्नियम्यबलिमोजसा॥ त्रैलोक्यं समहातेजाश्चक्रेशक्रवशंपुनः॥२१॥ तेनैवपूर्वमाक्रांतआश्रमःश्रमनाशनः॥ मयापिभक्त्यातस्यैववामनस्योपभुज्यते॥२२॥ एनमाश्रम मायांतिराक्षसाविघ्नकारिणः॥ अत्रतेपुरुषव्याघ्रहंतव्यादुष्टचारिणः॥२३॥ अद्यगच्छामहेरामसिद्धाश्रममनुत्तमम्॥ तदाश्रमपदंताततवाप्ये तद्यथामम॥२४॥ इत्युक्त्वापरमप्रीतोगृह्यरामसलक्ष्मणम्॥ प्रविशन्नाश्रपदंव्यरोचतमहामुनिः॥ शशीवगतनीहारः पुनर्वसुसमन्वितः॥२५॥ तंदृष्ट्वामुनयःसर्वेसिद्धाश्रमनिवासिनः॥ उत्पत्योत्पत्यसहसाविश्वामित्रमपूजयन्॥२६॥ यथार्हंचक्रिरेपूजांविश्वामित्रायधीमते॥ तथैवराजपुत्राभ्यामकुर्वन्नतिथिक्रियाम्॥२७॥ मुहूर्तमथविश्रांतौराजपुत्रावरिंदमौ॥ प्रांजलीमुनिशार्दूलमूचतूरघुनंदनौ॥२८॥ अद्यैवदीक्षां प्रविशभद्रंतमुनिपुंगव॥ सिद्धाश्रमोऽयंसिद्धःस्यात्सत्यमस्तुवचस्तव॥२९॥ एवमुक्तोमहातेजाविश्वामित्रोमहानृषिः॥ प्रविवेशतदादीक्षांनि यतोनियतेंद्रियः॥३०॥ कुमाराविवतांरात्रिमुषित्वासुसमाहितौ॥ प्रभातकालेचोत्थायपूर्वांसंध्यामुपास्यच॥३१॥ प्रशुचीपरमंजाप्यंसमा प्यनियमेनच॥ हुताग्निहोत्रमासीनंविश्वामित्रमवंदताम्॥३२॥इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा०आ०चतुर्विंशतिसा० बालकांडेएकोनत्रिंशः सर्गः॥२९॥

से उठ विश्वामित्रजी की पूजा की॥२६॥ उन लोगोंने विश्वामित्रजीकी पूजा करके फिर उचितप्रकारसे रामलक्ष्मणका सन्मान किया॥२७॥शत्रुओंके मारनेवाले रघुनाथ व लक्ष्मणजीने थोड़ीदेर विश्राम कर हाथजोड़ विश्वामित्रजीसे कहा॥२८॥ आपआजही यज्ञमेंदीक्षितहूजिये आपका मंगलहोगा यहसिद्धाश्रम सिद्धऔर आपका वाक्य सत्य हो॥२९॥ रघुनन्दनजीके वचन सुन महातेजस्वी महर्षि विश्वामित्रजी तभी उस यज्ञमेंदीक्षित हुये और अन्तःकरणको निग्रहकर यज्ञ करने लगे॥३०॥ दोनों राजकुमार वह रात्रि व्यतीतकर सबेरेही उठे पवित्रहो संध्योपासनकर॥३१॥ नियमपूर्वक जप समाप्त कर जहां महर्षि विश्वामित्रजी सुखसेबैठ यज्ञ कर रहेथे वहां जाकर सुखसे मुनिजीको प्रणाम किया॥३२॥ इति श्रीमद्रा० वा० आ० का० बा० भाषायामेकोनत्रिंशः सर्गः॥२९॥

अनन्तर देशकालके जाननेवाले शत्रुओंके मारनेवाले दोनों राजकुमार समयोचित वचनमुनिजीसे बोले ॥ १ ॥ हे भगवन् ! यह हमारे सुनने की इच्छा है कि, वे निशाचर किस समय आते हैं? जिस समय उन मारीच व सुबाहु की गतिरोध करनी होगी वह समय हमें बता दीजिये जिससे वह अतिक्रम न कर सकें॥२॥ काकुत्स्थ रामचन्द्रजीके यह कहनेपर युद्धके लियेदोनों भाइयोंको तैयार देख आश्रमके रहनेवाले सब मुनि उन कुमारोंकी प्रशंसा करने लगे॥३॥ आजसे लेकरछः दिन तुम्हें यज्ञकार्य की रक्षा करनी होगी महर्षि विश्वामित्र अब नबोलेंगे, क्योंकि वहभावसे यज्ञमें दीक्षित हैं॥४॥ यशस्वी रामलक्ष्मणजी मुनियोंसे ऐसा सुनकर निद्रा परित्यागपूर्वक तपोवनकी रक्षा करने लगे॥५॥ महावीर रामचन्द्र व लक्ष्मणजी धनुषधारण पूर्वक मुनिवर विश्वामित्रजीकी सावधानीसे रक्षा करने लगे॥६॥

अथतौदेशकालज्ञौराजपुत्रावरिंदमौ॥देशेकालेचवाक्यज्ञावब्रूतांकौशिकंवचः॥१॥भगवञ्छ्रोतुमिच्छावोयस्मिन्कालेनिशाचरौ॥संरक्षणीयौ तौब्रूहिनातिवर्तेततत्क्षणम्॥२॥एवंब्रुवाणौकाकुत्स्थौत्वरमाणौयुयुत्सया ॥ सर्वेतेमुनयःप्रीताःप्रशशंसुर्नृपात्मजौ॥३॥अद्यप्रभृतिषड्रात्रंरक्षतांरा घवौयुवाम् ॥ दीक्षांगतोह्येषमुनिर्मौनित्वंचगमिष्यति॥४॥ तौतुतद्वचनंश्रुत्वाराजपुत्रौयशस्विनौ ॥ अनिद्रंषडहोरात्रंतपोवनमरक्षताम्॥५॥ उपासांचक्रतुर्वीरौयत्तौपरमधन्विनौ॥ररक्षतुर्मुनिवरंविश्वामित्रमरिंदमम्॥६॥अथकालेगतेतस्मिन्षष्ठेऽहनितथागते॥ सौमित्रिमब्रवीद्रामोयत्तो भवसमाहितः॥७॥ रामस्यैवंब्रुवाणस्यत्वरितस्ययुयुत्सया ॥ प्रजज्वालततोवेदिःसोपाध्यायपुरोहिता ॥ ८ ॥ सदर्भचमसस्रुक्कासमित्कुसु मोच्चया॥विश्वामित्रेणसहितावेदिर्जज्वालसर्त्विजा॥९॥मंत्रवच्चयथान्यायंयज्ञोऽसौसंप्रवर्तते॥आकाशेचमहाञ्छब्दःप्रादुरासीद्भयानकः॥१०॥ आवार्यगगनंमेघोयथाप्रावृषिदृश्यते॥ तथामायांविकुर्वाणौराक्षसावभ्यधावताम् ॥११॥ मारीचश्चसुबाहुश्चतयोरनुचरास्तथा ॥ आगम्यभीम संकाशारुधिरौघानवासृजन् ॥ १२ ॥ तांतेनरुधिरौघेणवेदिंवीक्ष्यसमुक्षिताम् ॥ सहसाभिद्रुतोरामस्तानपश्यत्ततोदिवि ॥ १३ ॥

अनन्तर छठा दिनआनेपर रामचन्द्रजी लक्ष्मणजीसे बोले किअब तुम सावधान और सतर्करहो॥७॥रामचन्द्रजी लक्ष्मणजीको युद्धकेनिमित्त तैयार रहनेकोकहतेही यज्ञवेदीमें अग्नि प्रज्वलित हो गई तब उपाध्याय व पुरोहितादि घबडाउठे॥८॥और यज्ञकार्यके समिध कुश,काश,पुष्प और विश्वामित्रजीभी ऋत्विजोंकेसाथप्रदीप्त हो उठे वेदी जलने लगी॥९॥ मंत्र पढकर यज्ञ आरम्भ हो रहा था तभी आकाशसे महाभयंकर शब्दहोने लगा॥१०॥ वर्षाकालीन मेघ जिस प्रकार आकाशको ढक कर तुमुल वृष्टिपात व वारंवार वज्रपात करते हैं ऐसेही निशाचरगण अनेकप्रकारकी माया करके धावमानहुये॥११॥मारीच,सुबाहु और उनके अनुचर भयं कर आकारसे उपस्थित हो यज्ञस्थलमें रुधिरसे वर्षा करने लगे॥१२॥ वेदीको रुधिरसे भीगी देखकर रामचंद्रजीने शीघ्रतासे यज्ञके चारों ओर घूमकर आकाश

में उनको देखा ॥१३॥ कमललोचन रामचन्द्रजीने देखा कि निशाचर आ रहे हैं तब लक्ष्मणजीकी ओर देखकर यह बचन बोले ॥१४॥ हे लक्ष्मण ! देखो तो मांसाहारी दुराचारी राक्षस कैसे वेगसे दौड आते हैं इनको अपने मानव अस्त्रोंसे ऐसा उडाते हैं जैसे पवन बादलोंको छिन्नभिन्नकर कर देता है ॥१५॥ वैसेही मैं इनको मानवास्त्रसे भगाये देताहूँ इनको प्रमाणसे मारनेकी मेरी इच्छा नहीं है यह कहकर रामचंद्रजीने धनुषपर बाण चढाया॥१६॥ वह बहुत श्रेष्ठ मानवास्त्र था वह दीप्य मानहृदयके ऊपर क्रोधकर रमाचन्द्रजीने निक्षेप किया॥१७॥ मारीच उसअस्त्रके लगनेसे घायल हो शतयोजन दूरवर्ती महासागरकेबीचमें गिरा॥१८॥ तब उसे चेतना रहित घूमते हुए अस्त्रसे पीडित व युद्धसे फिरा हुआगिरता देख रामचन्द्रजीने अनुजसे कहा ॥१९॥ देखो लक्ष्मण ! मेरे इस मानवास्त्रनेमारीचको मोहित

तावापतंतौसहसादृष्ट्वाराजीवलोचनः ॥ लक्ष्मणंत्वभिसंप्रेक्ष्यरामोवचनमब्रवीत्॥१४॥पश्यलक्ष्मणदुर्वृत्तान्राक्षसान्पिशिताशनान्॥मानवास्त्र समाधूताननिलेनयथाघनान् ॥१५॥ करिष्यामिनसंदेहोनोत्सहेहंतुमीदृशान् ॥ इत्युक्त्वावचनंरामश्चापेसंधायवेगवान् ॥ १६ ॥ मानवपर मोदारमस्त्रंपरमभास्वरम् ॥ चिक्षेपपरमक्रुद्धोमारीचोरसिराघवः॥१७॥सतेनपरमास्त्रेणमानवेनसमाहतः ॥ संपूर्णंयोजनशतंक्षिप्तःसागरसंप्लवे ॥१८॥ विचेतनं विघूर्णंतंशीतेषुबलपीडितम् ॥ निरस्तंदृश्यमारीचंरामोलक्ष्मणमब्रवीत्॥१९॥पश्यलक्ष्मणशीतेषुंमानवंमनुसंहितम् ॥ मोहयि त्वानयत्येनंनचप्राणैर्वियुज्यते॥२०॥इमानपिवधिष्यामिनिर्घृणान्दुष्टचारिणः॥राक्षसान्पापकर्मस्थान्यज्ञघ्नान्रुधिराशनान्॥२१॥ इत्युक्त्वा लक्ष्मणश्चाशुलाघवंदर्शयन्निव ॥ विगृह्यसुमहच्चास्त्रमाग्नेयंरघुनंदनः॥२२॥सुबाहूरसिचिक्षेपसविद्धःप्रापतद्भुवि ॥ शेषान्वायव्यमादायनिजघान महायशाः॥२३॥राघवः परमोदारोमुनीनांमुदमावहन्॥सहत्वाराक्षसान्सर्वान्यज्ञघ्नान्रघुनंदनः॥२४॥ऋषिभिःपूजितस्तत्रयथेंद्रोविजयेपुरा॥ अथयज्ञेसमाप्तेतुविश्वामित्रोमहामुनिः ॥२५॥ निरीतिकादिशोदृष्ट्वाकाकुत्स्थमिदमब्रवीत् ॥ कृतार्थोऽस्मिमहाबाहोकृतंगुरुवचस्त्वया ॥२६॥

कर दिया है और इसको लिये जाताहै परन्तु प्राणसे नहीं मारा है ॥ २० ॥ जो हो अब मैं बचे हुये यज्ञके विघ्न करनेहारे रुधिर पीनेवाले दुष्टाचारी पापात्मा राक्षसोंको जानसे मार डालूंगा ॥२१॥ यह कह लक्ष्मणजीको अपनी लघुहस्तता दिखाते हुये रामचन्द्रजीने महान् आग्नेयास्त्र लिया ॥२२॥ यह अस्त्र सुबाहुकी छातीमें जाकर लगा और लगतेही वह पृथ्वीपर गिर गया. ऐसेही और दूसरे राक्षसोंको वायव्यास्त्रसे मार डाला. महायशस्वी परमोदार रामचन्द्रजीने मुनियों का कार्य किया॥२३॥ असुरोंकोमारकरसुरनाथजिसप्रकार सम्मानितहुयेथेवैसेही यज्ञके नाशकरनेवालेराक्षसोंकाविनाशकरके रामचन्द्रजीऋषियोंकरकेपूजे गये ॥२४॥ यज्ञसमाप्तहोनेपरमहर्षिविश्वामित्रजी वहप्रदेशउपद्रवरहित देखकर रामचन्द्रजीसे बोले ॥ २५ ॥ हे कमललोचन बडी भुजावाले ! मैं कृतार्थ होगया, हे वीरयशस्वी!

तुमने गुरुवाक्य सत्य किया यह आश्रम तुम्हारे प्रभावसेवास्तवमसिद्धाश्रम हो गया इस प्रकार रामचन्द्रजीको प्रशंसा कर व उनको साथले सन्ध्यावन्दनादि करनेके निमित्त चलेगये॥ २६॥इत्यार्षेश्रीमद्रा०वा०आ० बाल०भाषायां त्रिंशः सर्गः॥ ३०॥ अनन्तर राम लक्ष्मणने इसप्रकार राक्षसोंका विनाश करके प्रमुदित मनसे वहीं रात्रि बिताई ॥१॥ प्रभात होनेपर आह्निकादि कार्य्य समाप्तकर अन्यान्य महर्षियोंके समीप विश्वामित्रजीकोबैठाहुआ देखदोनों कुमार उनके पास गये ॥ २॥ अग्निकेसमान दीप्यमान्मुनिविश्वामित्रजीको रामचन्द्रजी व लक्ष्मणजीने प्रणाम किया और उन दोनोंने मीठे वचनसेकहा॥ ३ ॥ हेमुनिशार्दूल ! आपकेदोनों दासउपस्थित हैं कहिये अब हमें क्या करना होगा ?॥४॥ दोनों भाइयोंके ऐसे वचन सुनकर ऋषिगण विश्वामित्रजीको आगेकररामलक्ष्मणसे कहने लगे॥५॥

सिद्धाश्रममिदंसत्यंकृतंवीरमहायशः॥सहिरामंप्रशस्यैवंताभ्यांसंध्यामुपागमत्॥२७॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये चतुर्विंशतिसा० बालकांडे त्रिंशःसर्गः ॥ ३० ॥ अथतांरजनींतत्रकृतार्थौरामलक्ष्मणौ ॥ ऊषतुर्मुदितौवीरौप्रहृष्टेनांतरात्मना ॥१॥ प्रभातायांतुशर्वर्यांकृतपौर्वाह्णिकक्रियौ ॥ विश्वामित्रमृषींश्चान्यान्सहिताविभिजग्मतुः॥२॥अभिवाद्यमुनिश्रेष्ठंज्वलंतमिवपावकम्॥ऊचतुःपरमोदारंवाक्यंमधुरभाषिणौ ॥ ३ ॥ इमौस्ममुनिशार्दूलकिंकरौसमुपागतौ ॥ आज्ञापयमुनिश्रेष्ठशासनंकरवावकिम् ॥४॥ एवमुक्तेतयोर्वाक्येसर्वेएवमहर्षयः ॥ विश्वामित्रंपुरस्कृत्यरामंवचनमब्रुवन् ॥ ५ ॥ मैथिलस्यनरश्रेष्ठजनकस्यभविष्यति ॥ यज्ञः परमधर्मिष्ठस्तत्रयास्यामहेवयम् ॥६॥ त्वंचैवनरशार्दूलसहास्माभिर्गमिष्यसि ॥ अद्भुतंचधनूरत्नंतत्रत्वंद्रष्टुमर्हसि ॥७॥ तद्धिपूर्वंनरश्रेष्ठदत्तंसदसिदैवतैः ॥ अप्रमेयबलंघोरंमखेपरमभास्वरम् ॥ ८ ॥ नास्यदेवानगंधर्वानासुरानचराक्षसाः ॥ कर्तुमारोपणंशक्तानकथंचनमानुषाः ॥ ९ ॥ धनुषस्तस्यवीर्यंहिजिज्ञासंतोमहीक्षितः ॥ नशेकुरारोपयितुंराजपुत्रामहाबलाः ॥ १० ॥ तद्धनुर्नरशार्दूलमैथिलस्यमहात्मनः ॥ तत्रद्रक्ष्यसिकाकुत्स्थयज्ञंचपरमाद्भुतम् ॥ ११ ॥

हे मनुष्योंमें श्रेष्ठ ! मिथिलाधिपति परम धर्मात्मा राजा जनक एक यज्ञ करेंगे हमलोगउसको देखने वहा जायँगे ॥६॥ हे पुरुषसिंह रामचन्द्रजी ! तुमभी हमारे साथ वहांचलकर राजा जनकके अद्भुत धनुष रत्नका दर्शन करो ॥७॥ पूर्वकालमें वह धनुष देवराजकी सभामें उन्हें देवताओंसे मिला था उसमें अप्रमेय बल है देखनेमें द्युतिमान् है वह उस यज्ञमें धरा है ॥ ८ ॥ आदमीकी तो बातही क्या है उसमें देवता, गंधर्व, असुर व राक्षस तक मौरवी नहीं चढा सकते ॥९॥ उसकीशक्तिका परिणाम जाननेके लिये अनेकानेक बलशाली राजा वहां उपस्थित हुये थे किन्तु कोई उसपै रोदानहीं चढा सका॥१०॥हेकाकुत्स्थ! पुरुषश्रेष्ठ!

वही धनुष महात्मा मिथिलाधिपतिके भवनमें है तुम वह श्रेष्ठ धनुष और वह महत् यज्ञ देखना॥ ११॥जनक राजाने एकसमय यज्ञकिया था तब शिवप्रभृति सब देवताप्रसन्न हुये तब यज्ञके फलकी भाँति शत्रुओंका नाश करनेके लिये राजाने उस धनुषकोदेवताओंसे माँग लिया था ॥ १२ ॥ तबसे अब वह धनुष राजाके यहां स्थापित है देवताके समान पूजता है और गन्ध, धूप व अगर द्वारा उसकी पूजा होती है ॥१३ ॥ऐसे कहकर महर्षि वि वामित्र ऋषिगणोंसे परिवेष्टित हो रामचन्द्र व लक्ष्मणजीको संग ले जनक पुरको चले चलनेके समय वनदेवताओंसे कहा ॥ १४ ॥ हे वनदेव ! मैं इस समय सिद्ध काम हो सिद्धाश्रमसे राम लक्ष्मण और ऋषियोंके साथ उत्तरदिशामें गंगाके तीरजाताहूँ, तुम्हारा कल्याणहो॥ १५॥ यहकह मुनिश्रेष्ठ तपोधन विश्वामित्रजी उत्तरदिशाकीओर प्रस्थान

तद्धियज्ञफलंतेनमैथिलेनोत्तमंधनुः ॥ याचितंनरशार्दूलसुनाभंसर्वदैवतैः ॥ १२ ॥ आयागभूतंनृपतेस्तस्यवेश्मनिराघव ॥ अर्चितंविविधैर्गं धैर्धूपैश्चागुरुगंधिभिः ॥ १३ ॥ एवमुक्त्वामुनिवरःप्रस्थानमकरोत्तदा ॥ सर्षिसंघःसकाकुत्स्थआमंत्र्यवनदेवताः ॥१४॥ स्वस्तिवोऽस्तुगमि ष्यामिसिद्धःसिद्धाश्रमादहम् ॥ उत्तरेजाह्नवीतीरेहिमवंतंशिलोच्चयम् ॥ १५ ॥ इत्युक्त्वामुनिशार्दूलःकौशिकःसतपोधनः ॥ उत्तरांदिशमुद्दि श्यप्रस्थातुमुपचक्रमे ॥१६॥ तंव्रजंतंमुनिवरमन्वगादनुसारिणाम् ॥ शकटीशतमात्रंतुप्रयाणेब्रह्मवादिनाम् ॥१७॥ मृगपक्षिगणाश्चैवसिद्धाश्र मनिवासिनः ॥ अनुजग्मुर्महात्मानोविश्वामित्रंतपोधनम् ॥१८॥ निवर्तयामासततःसर्षिसंघः सपक्षिणः ॥ तेगत्वादूरमध्वानंलंबमानेदिवाकरे ॥१९॥ वासंचक्रुर्मुनिगणाःशोणाकूलेसमाहिताः ॥ तेऽस्तंगतेदिनकरेस्नात्वाहुतहुताशनाः ॥२०॥ विश्वामित्रंपुरस्कृत्यनिषेदुरमितौजसः ॥ रामोऽपिसहसौमित्रिर्मुनींस्तानभिपूज्यच ॥२१॥ अग्रतोनिषसादाथविश्वामित्रस्यधीमतः ॥ अथरामोमहातेजाविश्वामित्रंतपोधनम्॥२२॥ पप्रच्छमुनिशार्दूलंकौतूहलसमन्वितम् ॥ भगवन्कोन्वयंदेशःसमृद्धवनशोभितः ॥ २३ ॥

करते हुये ॥१६॥ तब ब्रह्मवादी ऋषिगण सौ छकडोंमें अग्निहोत्रकी सामग्री ले विश्वामित्रजीके पीछे चले ॥ १७ ॥ सिद्धाश्रमके रहनेवाले महात्मा मृगपक्षी गण भी तपोधन विश्वामित्रके पीछे २ चले॥१८॥ जब मृगपक्षियोंको विश्वामित्र और ऋषियोंनेआते देखा तब उन्हें लौटनेको कहा तब वह सब लौटगये और मुनि समाज भी दूरनिकल गया कि,इतनेमें सूर्य भगवान्‌भी अस्ताचलके निकट पहुँचे॥१९॥महर्षिगणोंने बहुत मार्ग चलकर शोणानदीके किनारेपर वास किया और सन्ध्याकाल आया जान स्नान कर होम कार्य करनेलगे ॥२०॥ तदनन्तर विश्वामित्रजीको आगे करके सबबैठ गये तब बड़े पराक्रमी रामचन्द्रजी भी सब ऋषियोंको प्रणाम कर॥ २१॥ बुद्धिमान् महर्षिके सन्मुख बैठे कुछघडी बीतनेके पीछे तेजस्वीरामचन्द्रजीने महात्मा मुनि श्रेष्ठ विश्वामित्रजीसे ॥२२॥ बड़े हर्षके

साथ कौतूहलाक्रान्त हो यह पूछाकि, हे मुनिवर ! इस समृद्ध वन शोभित स्थानका नामक्या है ? ॥ २३ ॥ मैं इस स्थानका वृत्तान्त भलीभांति जाननेको उत्सुक हुआ हूँ सो आप कहिये महातपा विश्वामित्रजी रामचन्द्रजीसे यह पूछे जानेपर ऋषियोंके बीचमें बैठे उस स्थानका परिचय देनेलगे ॥ २४ ॥ इति श्रीमद्रा० वा० आ० बालकांडे भाषायां एकत्रिंशः सर्गः ॥ ३१ ॥ पूर्वकालमें महातपस्वी सज्जन प्रतिपालक ब्रह्माके पुत्र कुशनामक एक धार्मिकराजा थे ॥ १ ॥ उन महात्माने अच्छे कुलमें उत्पन्न हुई वैदर्भी नामक रानीके गर्भसे अपने समान चार पुत्र उत्पन्न किये ॥२॥ इन पुत्रोंका नाम कुशाम्ब, कुशनाभ, असूर्तरज और वसुथे यहमहातेजस्वीदीप्तिमान्महाउत्साहवाले क्षात्रधर्मावलम्बी थे ॥३॥ एक समय राजाने क्षत्रियधर्मके प्रचारार्थ सत्यवादी उत्साही व दीप्तिमान्

श्रोतुमिच्छामिभद्रंतेवक्तुमर्हसितत्त्वतः ॥ चोदितोरामवाक्येनकथयामाससुव्रतः ॥ तस्यदेशस्यनिखिलमृषिमध्येमहातपाः ॥२४॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये चतुर्विंशतिसा० बालकांडे एकत्रिंशः सर्गः ॥ ३१ ॥ ब्रह्मयोनिर्महानासीत्कुशोनाममहातपाः ॥ अक्लिष्टव्रतधर्मज्ञःसज्जनप्रतिपूजकः ॥ १ ॥ समहात्माकुलीनायांयुक्तायांसुमहाबलान् ॥ वैदर्भ्यांजनयामासचतुरःसहशान्सुतान् ॥ २ ॥ कुशांबंकुशनाभंचअसूर्तरजसंवसुम् ॥ दीप्तियुक्तान्महोत्साहान्क्षत्रधर्मचिकीर्षया ॥ ३ ॥ तानुवाचकुशःपुत्रान्धर्मिष्ठान्सत्यवादिनः ॥ क्रियतांपालनं पुत्राधर्मंप्राप्स्यथपुष्कलम् ॥ ४ ॥ कुशस्यवचनंश्रुत्वाचत्वारोलोकसत्तमाः ॥ निवेशंचक्रिरेसर्वेपुराणांनृवरास्तदा ॥ ५ ॥ कुशांबस्तुमहातेजाःकौशांबीमकरोत्पुरीम् ॥ कुशनाभस्तुधर्मात्मापुरंचक्रेमहोदयम् ॥ ६ ॥ असूर्तरजसोनामधर्मारण्यंमहामतिः ॥ चक्रेपुरवरंराजावसुर्नामगिरिव्रजम् ॥ ७ ॥ एषावसुमतीनामवसोस्तस्यमहात्मनः ॥ एतेशैलवराःपंचप्रकाशंतेसमंततः ॥ ८ ॥ सुमागधीनदीरम्यामगधान्विश्रुतापयौ ॥ पंचानांशैलमुख्यानांमध्येमालेवशोभते ॥ ९ ॥ सैषाहिमागधीरामवसोस्तस्यमहात्मनः ॥ पूर्वाभिचरितारामसुक्षेत्रासस्यमालिनी ॥ १० ॥ कुशनाभस्तुराजर्षिःकन्याशतमनुत्तमम् ॥ जनयामासधर्मात्माघृताच्यांरघुनंदन ॥ ११ ॥

पुत्रोंको बुलाकर कहा कि, हे पुत्रो! प्रजापालन करो तुम्हें बड़ा धर्म होगा॥४॥ तदनन्तर राजा कुशकी अनुमतिसे उन चारों श्रेष्ठ पुत्रोंने अपने२नामसे एक एक नगर बसाया ॥ ५ ॥ महातेजस्वी कुशाम्बने कौशाम्बी नगरी और धर्मात्मा कुशनाभने महोदय नाम नगरबसाया ॥ ६ ॥ असूर्तरजने धर्मारण्य और वसुने गिरिव्रज नाम नगरीकी प्रतिष्ठा की ॥७॥ इसी गिरिव्रजका वसुमतीभी नाम हुआ सो यह उन्हीं पुण्यात्मा नृपति वसुकी वसुमती नाम पुरीहै, इसके चारों ओर पांचपर्वतहैंजोकी इसे प्रकाशितकरतेहैं॥८॥शोणानदीका दूसरानाम मागधीहैयह पांचपहाडोंके बीचमें मालाकेसमान शोभापारही है॥९॥ यह नदी मागधसेनिकल करपूर्वकीओरको बहीहैइसकेकिनारेवाले खेतोंमें बहुतअनाज उपजताहै॥१०॥हे राघव!धर्मात्माराजर्षिकुशनाभसेघृताचीके गर्भमें अनुत्तम सौकन्या उत्पन्नहुई॥११॥

वे कन्या क्रमसे रूपयौवनवाली और गुणवती होकर वर्षाकालीन बिजलीकी नाईं उद्यानमें विहार करने लगीं ॥ १२ ॥ हे राम ! वहाँ फुलवाडीमें सबकी सब गाने बजाने व नाचनेलगीं व सब गहनोंसेसजधजकर परमानन्दित हुईं ॥१३॥ इनके अंग अतिरमणीयथे व उस समय उनके समान कोई स्त्री पृथ्वीतलपर सुन्दरी न थी इस कारण वहसब उस उद्यानमें ऐसी शोभाको प्राप्त हुईं जैसे मेघोंके बीचमें तारे शोभित होते हैं ॥१४॥ ऐसे समयमें उनको रूपयौवनयुक्त देख सबमें टिकनेवाला वायु उनसे बोला ॥१५॥ हे सुन्दर नारियो ! तुम मनुष्यभाव परित्याग करके दीर्घजीविनीहो तुम सबसे व्याह करनेकी मेरी इच्छा है॥१६॥ विचार करकेदेखो कि, यौवन सदानहींरहता और विशेषकर मनुष्योंकी युवावस्था तो बहुतथोडे दिनरहती है इसकारण मेरेसंसर्गमें अक्षययौवन सुखको प्राप्तहोकर

तास्तुयौवनाशालिन्योरूपवत्यःस्वलंकृताः ॥ उद्यानभूमिमागम्यप्रावृषीवशतह्रदाः ॥१२॥ गायंत्योनृत्यमानाश्चवादयंत्यस्तुराघव ॥ आमोदंपरमंजग्मुर्वराभरणभूषिताः ॥ १३ ॥ अथताश्चारुसर्वाङ्ग्योरूपेणाप्रतिमाभुवि ॥ उद्यानभूमिमागम्यताराइवघनांतरे ॥१४॥ ताःसर्वागुणसंपन्नारूपयौवनसंयुताः ॥ दृष्ट्वासर्वात्मकोवायुरिदंवचनमब्रवीत् ॥ १५ ॥ अहंवःकामयेसर्वाभार्याममभविष्यथ ॥ मानुषस्त्यज्यतांभावोदीर्घमायुरवाप्स्यथ ॥१६॥ चलंहियौवनंनित्यंमानुषेषुविशेषतः ॥ अक्षयंयौवनंप्राप्ताअमर्यश्चभविष्यथ ॥ १७ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वावायोरक्लिष्टकर्मणः ॥ अपहास्यततोवाक्यंकन्याशतमथाब्रवीत् ॥ १८ ॥ अंतश्चरसिभूतानांसर्वेषांसुरसत्तम ॥ प्रभावज्ञाश्चतेसर्वाःकिमर्थमवमन्यसे ॥१९॥ कुशनाभसुतादेवसमस्ताःसुरसत्तम ॥ स्थानाच्च्यावयितुंदेवंरक्षामस्तुतपोवयम् ॥ २० ॥ माभूत्सकालोदुर्मेधःपितरंसत्यवादिनम् ॥ अवमन्यस्वधर्मेणस्वयंवरमुपास्महे ॥ २१ ॥ पिताहिप्रभुरस्माकंदैवतंपरमंचसः ॥ यस्यनोदास्यतिपितासनोभर्ताभविष्यति ॥ २२ ॥ तासांतुवचनंश्रुत्वाहरिःपरमकोपनः ॥ प्रविश्यसर्वगात्राणिबभंजभगवान्प्रभुः ॥ २३ ॥

अमरपत्नीकी भाँति सुखसे रहो॥१७॥ पराक्रमी पवनकी ऐसी बात सुन वह सब सौ कन्या हँसकर कहने लगीं ॥१८॥ हे देवताओंमें श्रेष्ठ ! आप सब जीवोंके भीतर टिके रहते हैं और हम भीआपकाप्रभाव भलीभाँति जानतीहैं अतएव विवाहकीप्रार्थनाकरके हमें क्योंअपमानित किया॥१९॥ हेप्रभञ्जनदेव ! हम महाराजा कुशनाभकी कन्या हैं यदिइच्छाकरें तो आपका प्रभावनष्ट कर सकती हैंपरंतु इससे ऐसा करनेमें प्रवृत्त नहीं होती कि,तपस्याका फल नष्ट होजायगा हमारे॥२०॥ भाग्यमें ऐसा कुसमय कभी नआवे कि,हम सत्यवादी पिताको अपमानित करके स्वयंवरा होवें॥२१॥ पिताहमारे प्रभु हैं और वहीहमारे परमदेवताहैंवह जिसके हाथमें समर्पण करेंगे वही हमारे स्वामी होंगे॥२२॥ कन्याओंके ऐसे वचन सुनकर पवनदेव कुपितहुए और कन्याओंके अंगप्रत्यंगमें प्रवेशकरके उनसबको कुबरी

करडाला ॥२३॥ कन्यायें इस प्रकार वायुके द्वारा कुबरीहो संभ्रमसे लाजयुक्त और रोतीहुई अपने घर आई ॥२४॥ राजा कुशनाभने उनअत्यन्त प्यारी बेटियोंको कुबडी और दीन देखकर आश्चर्यसे कहा ॥२५॥ हे बेटियो ! तुम्हारी अवस्था क्योंऐसीहुई ? किस व्यक्तिनेधर्म की अवमानता की किसने तुम्हें कुबरी करदिया तुम्हरा इस तरह दीनभावापन्न होनेका क्या हेतु है जो तुमपूछनेसे इच्छा करनेपरभी नहीं कहसकतीं॥२६॥ कुशनाभ इसप्रकार कह दीर्घ निःश्वासपरित्यागपूर्वक कारण जाननेके लिये समाधिपरायण हुए ॥ २७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्वा० वाल्मी० आदिकाव्ये बालकांडे भाषायां द्वात्रिंशः सर्गः ॥ ३२ ॥ कन्यागण बुद्धिमान् पिता कुशनाभजीकी यह उक्ति श्रवण करके चरण वंदन करके बोलीं ॥ १ ॥ पितः ! सर्वव्यापी वायुने कुपथावलम्बनपूर्वक हमको

ताःकन्यावायुनाभग्नाविविशुर्नृपतेर्गृहम् ॥ प्रविश्यचसुसंभ्रांताःसलज्जाःसास्रुलोचनाः ॥ २४ ॥ सचतादयिताभग्नाःकन्याःपरमशोभनाः ॥ दृष्ट्वादीनास्तदाराजासंभ्रांतइदमब्रवीत् ॥२५॥ किमिदंकथ्यतांपुत्र्यःकोधर्ममवमन्यते ॥ कुब्जाःकेनकृताःसर्वाश्चेष्टंत्यानाभिभाषथ ॥२६॥ एवंराजाविनिःश्वस्यसमाधिसंदधेततः ॥ २७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये चतुर्विंशतिसा०बालकांडे द्वात्रिंशःसर्गः ॥३२॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाकुशनाभस्यधीमतः ॥ शिरोभिश्चरणौस्पृष्ट्वाकन्याशतमभाषत ॥१॥ वायुःसर्वात्मकोराजन्प्रधर्षयितुमिच्छति ॥ अशुभंमार्गमस्थायनधर्मंप्रत्यवेक्षते ॥२॥ पितृमत्यःस्मभद्रंतेस्वच्छंदेनवयंस्थिताः ॥ पितरंनोवृष्णीष्वत्वंयदिनोदास्यतेतव ॥३॥ तेनपापानुबंधेनवचनंनप्रतीच्छता ॥ एवंब्रुवंत्यःसर्वाःस्मवायुनाभिहताभृशम् ॥ ४ ॥ तासांतुवचनंश्रुत्वाराजापरमधार्मिकः ॥ प्रत्युवाचमहातेजाःकन्याशतमनुत्तमम् ॥५॥ शांतंक्षमावतांपुत्र्यःकर्तव्यंसुमहत्कृतम् ॥ ऐकमत्यमुपागम्यकुलंचावेक्षितंमम ॥६॥ अलंकारोहिनारीणांक्षमातुपुरुषस्यवा ॥ दुष्करंतच्चवैक्षांतंत्रिदशेषुविशेषतः ॥७॥ यादृशीवःक्षमापुत्र्यःसर्वासामविशेतः ॥ क्षमादानंक्षमासत्यंक्षमायज्ञाश्चपुत्रिकाः॥८॥

अवमानित करनेकी इच्छाकीथी धर्मकी ओर उन्होंने कुछ दृष्टि नहीं की॥२॥ हम सबने उसका खोटा अभिप्राय जानकर उससे कहाथाकि, हमारे पितावर्तमान हैं अतएव हमउनके अधीन हैं तुम अपनाअभिप्रायपिताजीसे कहो जैसे उनकी इच्छा होगी वह वैसा करेंगे॥३॥ परन्तु उस पापीने हमारी बात नहीं सुनी और हमको विकृतांग करदिया ॥ ४ ॥ तेजस्वी धर्मवान्राजा पुत्रियोंके ऐसे वचन श्रवण कर उन श्रेष्ठ सौ कन्याओंसे बोले ॥ ५ ॥ हे बेटियोतुमने वायुके ऊपर एक मताव लम्बी होकर क्षमावालोंको करनेयोग्य जो क्षमा दर्शाई हैइससे मेरे कुल गौरवकी रक्षा हुई है॥६॥ स्त्री और पुरुष दोनोंका क्षमाही भूषणहै क्षमा अतिप्रशंसाका विषय है विशेषकरके इसका गौरव स्वर्गमें भीहै॥७॥ हे पुत्रियो ! तुमने स्वेच्छा चारिणी न होकर वायुके ऊपर जो क्षमादिखाई वहअतीव प्रशंसाकेयोग्यहै वास्तवमें

क्षमाही दान, क्षमाही सत्य और क्षमाही यज्ञ कही गई है ॥८॥ क्षमाही यश और क्षमाही धर्म और क्षमामेंही केवल जगत् प्रतिष्ठित है, हे राम ! इन्द्रकेसमान पराक्रमवाले राजाने यह कहकर कन्याओंको विदा करदिया ॥९॥ फिर राजा देशकाल और अच्छे पात्रसे कन्याओंकाविवाहहोजाय इस विषयकीसलाहमंत्रियोंको बुला करने लगे ॥१०॥ उसी समय चूली नामक ऊर्ध्वरेता महाकांतिमान् ब्रह्मचारी ब्रह्मयोगसाधन करनेमें प्रवृत्त हुयेथे ॥११॥ उनऋषिके वहां तपस्या करनेपर उर्मिलाकोकन्या सोमदानाम गंधर्वी उनकी उपासना करनेलगी॥१२॥ वह गंधर्वी उन ब्रह्मचारीकी नम्रतासे उपासना करनेलगी इसप्रकार जब उसनेबड़ी सेवाकी तो उस समय ऋषि उसके ऊपर प्रसन्न हुये ॥१३॥ हे रघुनंदन ! इस प्रकार कुछ समय बीतेपर ब्रह्मचारीजी बोले--कि हे सोमदे ! मैं तुझसे प्रसन्न हूं

क्षमायशः क्षमाधर्मःक्षमयाविष्ठितंजगत् ॥ विसृज्यकन्याःकाकुत्स्थराजात्रिदशविक्रमः ॥९॥ मंत्रज्ञोमंत्रयामासप्रदानंसहमंत्रिभिः ॥ देशेकालेचकर्तव्यंसदृशेप्रतिपादनम् ॥ १० ॥ एतस्मिन्नेवकालेतुचूलीनाममहाद्युतिः ॥ ऊर्ध्वरेताः शुभाचारोब्राह्मंतपउपागमत ॥ ११ ॥ तपस्यंतमृषितत्रगंधर्वीपर्युपासते ॥ सोमदानामभद्रंतेऊर्मिलातनयातदा ॥ १२ ॥ साचतंप्रणताभूत्वाशुश्रूषणपरायणा ॥ उवासकालेधर्मिष्ठातस्यास्तुष्टोऽभवद्गुरुः ॥ १३ ॥ सचतांकालयोगेनप्रोवाचरघुनंदन ॥ परितुष्टोऽस्मिभद्रंतेकिंकरोमितवप्रियम् ॥ १४ ॥ परितुष्टंमुनिंज्ञात्वागंधर्वीमधुरस्वरम् ॥ उवाचपरमप्रीतावाक्यज्ञावाक्यकोविदम् ॥ १५ ॥ लक्ष्म्यासमुदितोब्राह्म्याब्रह्मभूतोमहातपाः ॥ ब्राह्मणेतपसायुक्तंपुत्रमिच्छामिधार्मिकम् ॥१६॥ अपतिश्चास्मिभद्रंतेभार्याचास्मिनकस्यचित् ॥ ब्राह्मेणोपगतायाश्चदातुमर्हसिमेसुतम् ॥ १७ ॥ तस्याःप्रसन्नोब्रह्मर्षिर्ददौब्राह्ममनुत्तमम् ॥ ब्रह्मदत्तइतिख्यातंमानसंचूलिनःसुतम् ॥ १८ ॥ सराजाब्रह्मदत्तस्तुपुरीमध्यवसत्तदा ॥ कांपिल्यांपरयालक्ष्म्या देवराजोयथादिवम् ॥ १९ ॥ सबुद्धिंकृतवान्राजाकुशनाभःसुधार्मिकः ॥ ब्रह्मदत्तायकाकुत्स्थदातुंकन्याशतंतदा ॥ २० ॥

अब कह कि तेरा क्या प्रियकार्य करूँ ॥१४॥ चतुर गन्धर्वकन्या वाक्य बोलनेमें चतुर ऋषिको प्रसन्न जान प्रसन्नतासे मधुर वाणीसे बोली ॥ १५ ॥ आप महातपा ब्रह्मश्रीसम्पन्न व साक्षात् ब्रह्मस्वरूपी हैं आपकी कृपासे ब्रह्मयोगी एकपुत्रपानेकी मेरी अभिलाषाहै॥१६॥ आपकाकल्याणहो मैंने अबतककिसीकोस्वामी कहकर स्वीकार नहीं किया है अतएव जिससे मेरी प्रार्थना पूर्ण हो ऐसा तपकेप्रभावसे मुझे पुत्रदो ऐसी कृपाकीजिये मैं नैष्ठिकब्रह्मचारिणी रहूं केवलतपसेपुत्रकी प्राप्तिहो॥१७॥ ब्रह्मर्षिने प्रसन्नहोकर उसकोअतिश्रेष्ठब्रह्मदत्तनामक एकमानसीपुत्र दिया वह चूलीकेपुत्र कहलाये॥१८॥ अमरनाथने जिसप्रकार अमरावतीकी प्रतिष्ठा कीथी वैसेही ब्रह्मदत्तने काम्पिलनामनगरबसाया और राजा ब्रह्मदत्त उसमेंवास करनेलगे ॥१९॥ हे रघुनन्दन ! परमधर्मात्मा राजाकुशनाभने यह विचारा कि

अपनी सौओं कन्याओंका विवाहब्रह्मदत्तके साथ करदूं ॥२०॥ अनन्तरमहातेजस्वी राजाने ब्रह्मदत्तकोबुलाकरप्रसन्न मनसे अपनी सौकन्या उनके समर्पण करदीं ॥२१॥ हे राम ! देवराज इन्द्रके समानब्रह्मदत्तराजाने यथाविधि उन कन्याओंका पाणिग्रहण किया ॥ २२ ॥ ब्रह्मदत्तका हाथ लगतेही कन्याओंका कुबरापन छूटगया तब वह सब परमसुन्दर रूपवतीहो शोभा पाने लगीं॥२३॥ महीपाल कुशनाभ कन्याओंको वायुकेहाथसे छुटा जान बहुत प्रसन्न और हर्षितहुये॥२४॥ राजाने विवाहकार्यसमाप्तकरके ब्रह्मदत्तको परिवार समेत कम्पिल नगरकोभेज दिया जानेके समय उपाध्यायभी पहुँचाने गयेथे ॥२५॥ तब सोमदागंधर्वी पुत्रके योग्य पत्नियोंको देख परमसन्तुष्ट हुई और सत्कार किया॥ २६ ॥ और बहुओंका अंग स्पर्श करके वारंवार राजाकुशनाभकी प्रशंसा करने लगी ॥ २७ ॥

तमाहूयमहातेजाब्रह्मदत्तंमहीपतिः ॥ ददौकन्याशतंराजासुप्रीतेनांतरात्मना ॥२१॥ यथाक्रमंतदापाणिंजग्राहरघुनंदन ॥ ब्रह्मदत्तोमहीपाल स्तासांदेवपतिर्यथा ॥ २२ ॥ स्पृष्टमात्रेतदापाणौविकुब्जाविगतज्वराः ॥ युक्तंपरमयालक्ष्म्याबभौकन्याशतंतदा ॥ २३ ॥ सदृष्ट्वावायुना मुक्ताःकुशनाभोमहीपतिः ॥ बभूवपरमप्रीतोहर्षंलेभेपुनःपुनः ॥२४॥ कृतोद्वाहंतुराजानंब्रह्मदत्तंमहीपतिम् ॥ सदारंप्रेषयामाससोपाध्यायगणं तदा ॥२५॥ सोमदापिसुतंदृष्ट्वापुत्रस्यसदृशींक्रियाम् ॥ यथान्यायंचगंधर्वीस्नुषास्ताःप्रत्यनंदत ॥२६॥ स्पृष्ट्वास्पृष्ट्वाचताः कन्याःकुशनाभं प्रशस्यच ॥ २७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ० चतुर्विंशति० सा० बालकांडेत्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥३३॥ कृतोद्वाहेगतेतस्मिन्ब्रह्म दत्तेचराघव ॥ अपुत्रःपुत्रलाभायपौत्रीमिष्टिमकल्पयत् ॥१॥ इष्ट्यांतुवर्तमानायांकुशनाभंमहीपतिम् ॥ उवाचपरमोदारःकुशोब्रह्मसुतस्तदा ॥२॥ पुत्रस्तेसदृशःपुत्रभविष्यतिसुधार्मिकः ॥ गाधिंप्राप्स्यसितेनत्वंकीर्तिंलोकेचशाश्वतीम् ॥३॥ एवमुक्त्वाकुशोरामकुशनाभंमहीपतिम्॥ जगामाकाशमाविश्वब्रह्मलोकंसनातनम् ॥ ४ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्यकुशनाभस्यधीमतः ॥ जज्ञेपरमधर्मिष्ठोगाधिरित्येवनामतः ॥ ५ ॥

इति श्रीमद्रा० वाल्मीकीये आदि० बालकांडे भाषायां त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥३३॥ हे राघव ! ब्रह्मदत्तके विवाहका कार्य सामाप्त होजानेपर अपुत्र कुशनाभने पुत्र पानेके लिये पुत्रेष्टि यज्ञका समान किया॥१॥ जब वह यज्ञ विधिपूर्वकहोनेलगा तब ब्रह्माजीकेपुत्र उदारस्वभाववाले कुशने अपने पुत्र राजा कुशनाभसे कहा॥२॥ तुम्हारे समान गाधिनामक एक धार्मिक पुत्र होगा, वास्तवमें उससे इस लोकमेंतुम्हारी कीर्तिस्थिर रहेगी ॥३॥ हे राम! वे ब्रह्माके पुत्र कुश इसप्रकार कुशनाभसे कहकर आकाश मार्गसे सनातन ब्रह्मलोकको चलेगये ॥४॥अनन्तर कुछ समय बीतनेपर नृपति कुशनाभके परमधार्मिकगाधिनामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥५॥

वही परमधर्मात्मा मेरे पिताहैं हे रघुनंदन ! मैं कुशवंशमें उत्पन्न हुआ इस कारणकौशिकनामसेपरिचितहूँ॥६॥ सत्यवादीनाम मेरी एक सुन्दर व्रतधारण करने वाली बडी बहनथी उसका महर्षि ऋचीकके साथ विवाह हुआ ॥ ७ ॥ मेरी वहकौशिकी बहनपतिकी अनुगामिनीहोकर शरीरसहित स्वर्गको चलीगई अबउसने नदीरूप धारण किया है यहां नदीरूपसे बहती है ॥ ८ ॥ मेरीबहनने लोकका हितकरनेके निमित्त नदीरूप धारण किया वह नदी अतिरमणीय और उसका जल पवित्र है उसका प्रवाह हिमगिरिसे उत्पन्न हुआ है॥९॥हे रघुनन्दन ! मैं बहिनके स्नेहसे हिमवान् पर्वतकेसमीप कौशिकी नदीके किनारे रहता था॥१०॥ नदियोंमें श्रेष्ठ कौशिकी अतिपुण्यवती व सतीधर्म में अनुरक्त महाभाग और पतिव्रता है॥११॥मैं केवल यज्ञकी सिद्धिके अर्थ उसको छोड सिद्धाश्रममें आया हूँ

सपितामकाकुत्स्थगाधिःपरमधार्मिकः ॥ कुशवंशप्रसूतोऽस्मिकौशिकोरघुनंदन ॥६॥ पूर्वजाभगिनीचापिममराघवसुव्रता ॥ नाम्नासत्यवती नामऋचीकेप्रतिपादिता ॥७॥ सशरीरागतास्वर्गंभर्तारमनुवर्तिनी ॥ कौशिकीपरमोदाराप्रवृत्ताचमहानदी ॥८॥ दिव्यापुण्योदकारम्याहिमवंत मुपाश्रिता॥लोकस्यहितकार्यार्थंप्रवृत्ताभगिनीमम॥९॥तेनाहंहिमवत्पार्श्वेवसामिनियतःसुखम्॥भगिन्यांस्नेहसंयुक्तःकौशिक्यांरघुनंदन॥१०॥ सातुसत्यवतीपुण्यासत्येधर्मेप्रतिष्ठिता ॥ पतिव्रतामहाभागाकौशिकीसरितांवरा॥११॥अहंहिनियमाद्रामहित्वातांसमुपागतः ॥ सिद्धाश्रममनु प्राप्तःसिद्धोऽस्मितवतेजसा॥१२॥एषाराममममोत्पत्तिःस्वस्यवंशस्यकीर्तिता ॥ देशस्यहिमहाबाहोयन्मांत्वंपरिपृच्छसि॥१३॥ गतोऽर्धरात्रःका कुत्स्थकथाःकथयतोमम॥निद्रामभ्येहिभद्रंतेमाभूद्विघ्नोऽध्वनीहनः॥१४॥निष्पंदास्तरवःसर्वेनिलीनामृगपक्षिणः॥नशेनतमसाव्याप्तादिशश्चरघु नंदन ॥१५॥ शनैर्विसृज्यतेसंध्यानभोनेत्रैरिवावृतम् ॥ नक्षत्रताराग्रहनंज्योतिर्भिरवभासते ॥१६॥ उत्तिष्ठतेचशीतांशुःशशीलोकतमोनुदः ॥ ह्लादयन्प्राणिनांलोकेमनांसिप्रभयास्वया ॥ १७ ॥ नैशानिसर्वभूतानिप्रचरंतितततस्ततः ॥ यक्षराक्षससंघाश्चरौद्राश्चपिशिताशनाः ॥ १८ ॥

अब तुम्हारे प्रभावसे यज्ञ करके सिद्ध हुआ ॥१२॥ हेरामचन्द्र ! मैंने तुमसेअपनीउत्पत्ति और अपने वंशकावृत्तांत कहा हे बडीभुजावाले ! उस देशकीकथाभी कही जिनको तुमने पूछाथा ॥१३॥ हे काकुत्स्थ ! बातोंही बातोंमें आधीरात होनेकोआई अब शयन करो नहीं तो मार्ग चलनेमेंक्लेश होगा ॥१४॥हे रघुनन्दन! देखो इस समय वृक्ष नहीं हिलते डुलते मृगपक्षीगण चुपचाप सोते हैंऔरनिशाकेघोरअधंकारसे आकाश छारहाहै॥१५॥आधीरात बीतनेपर आई, गगन मंडल तारोंसे भर रहा हैमानो हजारों नेत्रोंसे व्याप्त है औरउनकी ज्योतिसे दिशायें प्रभासितहैं॥१६॥देखो इस ओरसे शीतलकिरणोंवाले निशानाथ अपनी किरणजाल विस्तारकरके लोकोंका चित्त प्रफुल्लित करते तिमिरका संहार करते हुये उदय होरहेहैं॥१७॥रातके फिरनेवाले प्राणी मांस खानेवाले यक्षराक्षस और अन्यान्य निशाचरजन्तु

सब इधर उधर फिर रहे हैं ॥ १८॥ बडेतेजस्वी वह मुनिजी यह कहकर चुपहोगये तब ऋषियोंने साधु साधु कहकर उसका आदर किया ॥ १९ ॥ और पूजा करकेकहा कि, यह कुशिकवंश अतिशय धर्मपरायणहै जिन्होंने इस वंशमें जन्मग्रहण कियाहै वहसबही महात्मा और ब्रह्मतुल्य हुए हैं ॥२०॥ विशेषतः हे विश्वामित्रजी ! आप इस वंशमें एक अद्भुत महायशवाले और ब्रह्मस्वरूप हैं आपकी बहिननदीश्रेष्ठ कौशिकीनेभीपिताका कुछ उजाला करनेमें कोई कसर नहीं की ॥२१॥ श्रेष्ठ ऋषियोंकेमुखसे ऐसी प्रशंसासुनतेसुनते अस्तंगतअंशुमानके समान विश्वामित्रजीके निद्राका संचार हुआ ॥२२॥ तब लक्ष्मण सहित रामचन्द्रजी कुछ विस्मय प्रकाश पूर्वक महर्षिजीकी स्तुति व बडाई करते २ सो गये ॥ २३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्वा० वा आ० बाल० भाषायां चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३४ ॥ अनन्तर महर्षि

एवमुक्त्वामहातेजाविरराममहामुनिः ॥ साधुसाध्वितितेसर्वेमुनयोह्यभ्यपूजयन् ॥१९॥कुशिकानामयंवंशोमहान्धर्मपरःसदा ॥ ब्रह्मोपमामहात्मानःकुशवंश्यानरोत्तमाः ॥२०॥विशेषेणभवानेवविश्वामित्रमहायशः ॥कौशिकीसरितांश्रेष्ठाकुलद्योतकरीतव ॥२१॥मुदितैर्मुनिशार्दूलैःप्रशस्तःकुशिकात्मजः ॥ निद्रामुपागमच्छ्रीमानस्तंगतइवांशुमान् ॥२२॥ रामोऽपिसहसौमित्रिःकिंचिदागतविस्मयः ॥ प्रशस्यमुनिशार्दूलंनिद्रांसमुपसेवते ॥२३॥ इत्यार्षे श्रीमद्वा०वा०आदिकाव्ये च०विं०सा० बालकांडेचतुस्त्रिंशः सर्गः ॥३४॥उपास्यरात्रिशेषंतुशोणाकूलेमहर्षिभिः ॥निशायांसुप्रभातायांविश्वामित्रोऽभ्यभाषत ॥१॥ सुप्रभातानिशारामपूर्वासंध्याप्रवर्तते ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठभद्रंतेगमनायाभिरोचय ॥२॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्यकृतपूर्वाह्णिकक्रियः ॥ गमनंरोचयामासवाक्यंचेदमुवाचह ॥३॥ अयंशोणःशुभजलोऽगाधः पुलिनमंडितः ॥ कतरेणपथाब्रह्मन्संतरिष्यामहेवयम् ॥४॥ एवमुक्तस्तुरामेणविश्वामित्रोऽब्रवीदिदम् ॥ एषपंथामयोद्दिष्टोयेनयांतिमहर्षयः ॥५॥ तेगत्वादूरमध्वानंगतेऽर्धदिवसेतदा ॥ जाह्नवींसरितांश्रेष्ठांददृशुर्मुनिसेविताम् ॥६॥ तांदृष्ट्वापुण्यसलिलांहंससारससेविताम् ॥ बभूवुर्मुनयःसर्वेमुदिताःसहराघवाः ॥ ७ ॥

विश्वामित्रजी ऋषियोंकेसहित शोणा नदीके किनारे रात्रिव्यतीत करके प्रातःकाल होनेपर विश्वामित्रजीरामचन्द्रजीसे बोले ॥ १ ॥ हे राम ! प्रभात हो गया है प्रातःसंध्या करनेका समय आ गया, तुम्हारा मंगलहो अतएव बिस्तरपरसे उठो और चलनेके लिये तैयार होजाओ ॥ २ ॥ रामचन्द्रजी ऋषिके ऐसे वचन सुन पूर्वाह्णिक कार्य समाप्त करके उन ऋषि विश्वामित्रजीके संग जाते २ यह बोले ॥ ३ ॥ यह शोणनद अगाध स्वच्छ सलिलसम्पन्न और बालुमय है अब यह बताइये कि कौनसे मार्गपरहोकर चलनाहोगा ॥४॥तबविश्वामित्रजी बोलेकिमुनिलोग जिस मार्गसे जातेहैं मैंवही मार्ग दिखायेदेताहूं ॥५॥इसप्रकारसबमंडली चली और दुपहरके समय मुनिजनसेवित पवित्र गंगाजीको देखा ॥६॥ इन्होंनेदेखा किजाह्नवीका जलअतिशय निर्मलहै और उनमें हंस वसारसकिलोलेंकररहे हैं

यह शोभा देखकर मुनि व राम लक्ष्मणजी परमानन्दित हुये॥ ७ ॥ मुनि लोगोंनेगंगाके तीरअवस्थानपूर्वक यथाविधिस्नान और पितरों देवतोंको तर्पण किया ॥८॥ तदनन्तर अग्निहोत्रका अनुष्ठान करके अमृत तुल्य खीर भोजन पूर्वक प्रसन्न मनसे गंगाजीके किनारे बैठे ॥ ९ ॥ विश्वामित्रजीको घेरकर सब कोई न्याया नुसार यथायोग्य बैठ गये; रामचन्द्रजी मुदित चित्तहो विश्वामित्रजीसे पूछने लगे॥ १०॥ हे ब्रह्मन् ! त्रिपथगामिनी गंगाजीकी त्रिलोकको लांघने और समुद्रमें गिरने की कथामुझसे कहिये ॥११॥ महर्षि विश्वामित्रजी उनके कहनेके अनुसार उनसे गंगाजीकी उत्पत्ति और त्रिलोक लांघनेकी कथा कहने लगे ॥१२॥हे राम !सुवर्ण आदि धातुओंकेस्थान हिमालयपर्वतके दोकन्या उत्पन्न हुई वह दोनों महासुन्दरी भई॥१३॥ हे राम ! मेना इन दोनोंकी माता हुई यहसुन्दरकटिवाली सुमेरुकी कन्या और हिमालयकी प्रियभार्या है॥१४॥ हे राघव ! मेनाकीदोनों कन्याओंमें गंगा बडी हुई और उसी मेनाकी उमा नामवाली छोटी कन्या हुई

तस्यास्तीरेतदासर्वेचक्रुर्वासपरिग्रहम् ॥ ततःस्नात्वायथान्यायंसंतर्प्यपितृदेवताः ॥८॥ हुत्वाचैवाग्निहोत्राणिप्राश्यचामृतवद्धविः॥विविशुर्जा ह्नवीतीरेशुभामुदितमानसाः ॥ ९ ॥ विश्वामित्रंमहात्मानंपरिवार्यसमंततः ॥ त्रिष्ठिताश्चयथान्यायंराघवौचयथार्हतः ॥ संप्रहृष्टमनारामोवि श्वामित्रमथाब्रवीत् ॥१०॥ भगवञ्छ्रोतुमिच्छामिगंगांत्रिपथगांनदीम् ॥ त्रैलोक्यंकथमाक्रम्यगतानदनदीपतिम् ॥११॥ चोदितोरामवाक्येन विश्वामित्रोमहामुनिः ॥ वृद्धिंजन्मचगंगायावक्तुमेवोपचक्रमे ॥१२॥ शैलेंद्रोहिमवान्नामधातूनामाकरोमहान् ॥ तस्यकन्याद्वयंरामरूपेणाप्र तिमंभुवि ॥ १३ ॥ यामेरुदुहितारामतयोर्मातासुमध्यमा ॥ नाम्नामेनामनोज्ञावैपत्नीहिमवतःप्रिया ॥ १४ ॥ तस्यांगंगेयमभवज्ज्येष्ठाहिम वतःसुता ॥ उमानामद्वितीयाभूत्कन्यातस्यैवराघव ॥ १५ ॥ अथज्येष्ठांसुराःसर्वेदेवकार्यचिकीर्षया ॥ शैलेंद्रंवरयामासुर्गंगांत्रिपथगांनदीम् ॥ १६ ॥ ददौधर्मेणहिमवांस्तनयांलोकपावनीम् ॥ स्वच्छंदपथगांगंगांत्रैलोक्यहितकाम्यया ॥ १७ ॥

॥१५॥ इसके उपरान्त सम्पूर्ण देवताओंने अपनेकार्य साधन करनेके निमित्ततीन मार्गमें जानेवाली गंगानदीको हिमालयसे माँगा ॥१६॥ "देवताप्रथम गंगा जीको माँगकर ब्रह्माजीके पास ले गये; ब्रह्माजीने कहाकि, यह शिवजीकागर्भ धारण करनेमें समर्थ नहीं होगी तब गंगाने कहा धारण करसकूंगी इस बातपर ब्रह्माजी क्रुद्ध होकर बोलेकि,तैंने हमारे वाक्यकी अवज्ञा की इस कारणमैं शाप देताहूं कि, तू जलरूप होजा तब भह ब्रह्माण्ड ऊर्ध्व कटाहमें जलरूप लगी रही उसीमें अग्निने शिवका वीर्य त्यागन कियाथा जब वामनजीका चरणकटाहभेदनकर ऊपर कोचला तब यह जल उनके चरण लगकर गिरा उससे गंगाका विष्णु पदीभी नाम हुआ गिरनेके समय वही जल ब्रह्माजीने अपने कमण्डलुमें धारण कियाउसी जलसे वामनजीके चरण धोये फिर भगीरथके प्रार्थना करनेपर भूतलमें

आई वामनपुराणमें यह कथा प्रसिद्ध है'' हिमालयनेभी लोकपावनी स्वच्छन्दचलनेवाली गंगाजीको त्रिलोकका हितकरनेकेलियेदेवताओंकोधर्म पूर्वकसमर्पण करदिया ॥ १७ ॥ त्रिलोकका मंगल चाहनेवाले देवता त्रिलोकके उपकारके अर्थ गंगाको ग्रहणकर कृतार्थ हो स्वर्गको चले गये ॥ १८ ॥ हे रघुनंदन ! जो हिमालयकी दूसरी कन्या उमा नामवालीथी उसने कठिन व्रत अवलंबन करके घोर प किया था ॥ १९ ॥ हिमालयने त्रिलोकपूजित महातप करनेवाली योगशालिनी दुहिताको योगीश्वर शांतिमूर्ति शिवजीको दान किया ॥ २० ॥ हे राघव ! प्रकार लोकसे नमस्कार की हुई हिमालयकी दोनों कन्याओंका चरित्र वर्णन किया हे राघव ! नदियोंमें श्रेष्ठ गंगाजी और उमादेवीकी यह कथाहै ॥२१॥हे रामचन्द्र ! जिसप्रकार यह त्रिपथगामिनी प्रथम आकाशकोगई हैं चलनेवालोंमें श्रेष्ठ यह गंगांकी कथा तुमसे कही ॥ २२ ॥ जिस प्रकार पाप नाश करनेवाली जलोंकी बहानेवाली स्वर्गको गई वह कथा सुनाई ॥ २३ ॥

प्रतिगृह्यत्रिलोकार्थंत्रिलोकहितकांक्षिणः ॥ गंगामादायतेऽगच्छन्कृतार्थेनांतरात्मना ॥ १८ ॥ याचान्याशैलदुहिताकन्यासीद्रघुनंदन ॥ उग्रंसुव्रतमास्थायतपस्तेपेतपोधना ॥१९॥ उग्रेणतपसायुक्तांददौशैलवरःसुताम् ॥ रुद्रायाप्रतिरूपायउमांलोकनमस्कृताम् ॥२०॥ एतेतेशैल राजस्यसुतेलोकनमस्कृते ॥ गंगाचसरितांश्रेष्ठाउमादेवीचराघव ॥२१॥ एतत्तेसर्वमाख्यातंयथात्रिपथगामिनी ॥ खंगताप्रथमंतातगतिंगतिम तांवर ॥ २२ ॥ सुरलोकंसमारूढाविपापाजलवाहिनी ॥ २३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये चतुर्विंशतिसा० बालकांडे पंचत्रिंशःसर्गः ॥३५॥ उक्तवाक्येसुनौतस्मिन्नुभौराघवलक्ष्मणौ ॥ प्रतिनंद्यकथांवीरावूचतुर्मुनिपुंगवम् ॥ १ ॥ धर्मयुक्तमिदंब्रह्मन्कथितंपर मंत्वया ॥ दुहितुःशैलराजस्यज्येष्ठायावक्तुमर्हसि ॥ विस्तरंविस्तरज्ञोसिदिव्यमानुषसंभवम् ॥२॥ त्रीन्पथोहेतुनाकेनप्लावयेल्लोकपावनी ॥ कथं गंगात्रिपथगाविश्रुतासरिदुत्तमा ॥ ३ ॥ त्रिषुलोकेषुधर्मज्ञकर्मभिः कैःसमन्विता ॥ तथाब्रुवतिकाकुत्स्थेविश्वामित्रस्तपोधनः ॥ ४ ॥ निखिलेनकथांसर्वामृषिमध्येन्यवेदयत् ॥ पुरारामकृतोद्वाहःशितिकंठोमहातपाः ॥ ५ ॥

इति श्रीमद्रा० वाल्मीकीये आदि० बालकांडे भाषायां पंचत्रिंशः सर्गः ॥ ३५ ॥ मुनि विश्वामित्रजीके ऐसा कहनेपर राम लक्ष्मणजी उनकी बडाई कर फिर उससे कहने लगे ॥१॥ हे ब्रह्मन् ! आपने धर्मयुक्त उत्तम कथा सुनाई. अब यहप्रार्थना है कि शैलराजकीबडीबेटीगंगाका वृत्तान्त विस्तारपूर्वक मुझसे कहिये क्योंकि आप देवता मनुष्योंके चरित्र विस्तारपूर्वक जानते हो॥२॥आप सब जानते हैं अतएव आपसे पूछताहूं कि, त्रिलोककी पावन करनेवाली गंगास्वर्गमृत्यु पातालमें क्यों गई और यह उत्तमनदी त्रिपथगामिनी तीन मार्गमें जानेवाली क्यों कहलाई ॥ ३ ॥ हे धर्मकेजाननेवाले त्रिलोकीमें किसकरके गंगाकात्रिथगामिनी नाम हुआ? जब रामचन्द्रजीने ऐसा पूछा तो तपोधन विश्वामित्रजी ॥४॥ ऋषियोंकेमध्यमें बैठे हुये गंगाजीका सम्पूर्ण वृत्तांत कहने लगे कि, पहले समयमें महातप

करनेवाले भगवान् नीलकंठ विवाहकार्य समाप्त करके ॥ ५ ॥ देवी पार्वतीजीके साथ विहार करनेमें प्रवृत्त हुये उन बुद्धिमान शितिकंठवाले देवदेव महादेवकी इस प्रकार विहार करते सौ वर्ष बीत गये ॥६॥ हे राम!परन्तु इनके कोई पुत्रनहींहुआ तब सब देवता इकट्ठे होकर ब्रह्माजीके निकट उपस्थित हुये॥७॥ और सब यह चिन्ता करने लगे कि यदि शिवपार्वतीके संयोगसे संतान उत्पन्न हुई तो उसतेजको कौन सहन कर सकेगा?तदन्तर सर्व देवता शिवजीके पास जा उनकी बडाई कर बोले ॥८॥ हे देवदेव महादेव ! आप लोकोंका हितकरनेवाले हैं देवताआपको प्रणाम करते हैं अतएव प्रसन्न हूजिये ॥९॥ हे सुरोत्तम ! यह त्रिलोक मंडल आपकातेजधारण करनेमें समर्थ नहीं है अतएवआप योगावलम्बनपूर्वकदेवीपार्वती समेत तप कीजिये ॥ १० ॥ आप त्रिलोकीके मंगलार्थ अपना तेज अपने ही शरीरमें धारण करे रहिये इन सबलोगोंकीरक्षाकीजिये जगतका नाशकरना उचित नहीं ॥११॥ देवताओंके ऐसे वचन सुनकर देवादिदेव महादेव 'तथास्तु'

दृष्ट्वाचभगवान्देवींमैथुनायोपचक्रमे ॥तस्यसंक्रीडमाणस्यमहादेवस्यधीमतः॥शितिकंठस्यदेवस्यादिंव्यंवर्षशतंगतम् ॥६॥ नचापितनयोरामत स्यामासीत्परंतप॥सर्वेदेवाःसमुद्युक्ताःपितामहपुरोगमाः॥७॥यदिहोत्पद्यतेभूतंकस्तत्प्रतिसहिष्यति ॥अभिगम्यसुराःसर्वेप्रणिपत्येदमब्रुवन्॥८॥ देवदेवमहादेवलोकस्यास्यहितेरत ॥ सुराणांप्रणिपातेनप्रसादंकर्तुमर्हसि ॥९॥ नलोकाधारमिष्यंतितित्वतेजःसुरोत्तम॥ब्राह्मेणतपसायुक्तोदेव्या सहतपश्चर ॥१०॥ त्रैलोक्यहितकामार्थंतेजस्तेजसिधारय ॥ रक्षसर्वानिमाँल्लोकान्नालोकंकर्तुमर्हसि ॥११॥ देवतानांवचःश्रुत्वासर्वलोकमहे श्वरः ॥बाढमित्यब्रवीत्सर्वान्पुनश्चेदमुवाचह॥१२॥धारयिष्याम्यहंतेजस्तेजसैवसहोमया ॥ त्रिदशाःपृथिवीचैव निर्वाणमधिगच्छतु ॥१३॥ यदिदंक्षुभितंस्थानान्ममतेजोह्यनुत्तमम्॥धारयिष्यतिकस्तन्मेब्रुवंतुसुरसत्तमाः॥१४॥एवमुक्तास्ततोदेवाःप्रत्यूचुर्वृषभध्वजम् ॥ यत्तेजःक्षुभितं ह्यद्यतद्धराधारयिष्यति॥१५॥एवमुक्तःसुरपतिःप्रमुमोचमहाबलः॥तेजसापृथिवीयेनव्याप्तासगिरिकानना॥१६ ॥ ततोदेवाःपुनरिदमूचुश्चापि हुताशनम्॥आविशत्वंमहातेजोरौद्रंवायुसमन्वितः॥१७॥तदग्निनापुनर्व्याप्तंसंजातेश्वेतपर्वतम्॥ दिव्यंशरवणंचैवपावकादित्यसन्निभम् ॥१८॥

कहकर फिरभी इसप्रकार कहने लगे ॥१२॥ महादेवजी बोलेकि, हे अमरगण ! मैं उमा सहितअपने तेजोमय शरीरमें यह तेज धाहण करूंगा स्वर्ग औरपृथ्वीको शांति प्राप्त हो ॥१३॥ परन्तु एकबात है कि यह जो अकस्मात् मेरा दिव्य तेजस्थानसे चलायमान होगयाहै तोउसकोकौनधारणकरेगा हे देवताओं! यह बताओ ॥१४॥तब देवताओंने यहबातसुनवृषभध्वज महादेवजीसेकहाकिजो अब आपकातेजचलायमानहोगया! है तोपृथ्वीउसकोधारणकरेगी ॥१५॥ अनन्तरयहवार्तासुन शूलपाणिने तेजकोछोडदियादेखते २ उसने शलकाननसहितपृथ्वीको व्याप्त करदिया ॥१६॥ तब देवताओंने हुताशनसे कहाकि तुम हमारे कहनेसे वायुके सहित इस रौद्रतेजको धारण करो ॥ १७ ॥ अग्निके उस तेजको धारण करनेपर सूर्याग्नि तुल्य वह तेज श्वेतगिरि और दिव्यसरपतके वनमें व्याप्त होगया ॥ १८ ॥

उससेहीमहातेजवाले कार्त्तिकेयजीकी उत्पत्ति हुई, तब देवता और ऋषिगण उमामहेश्वरकी॥ १९॥अत्यन्त प्रसन्न मनसे पूजाकरने लगे हे राम!तब पार्वतीजी देवताओंसे यह वचन बोली ॥ २० ॥ और क्रोधितहो लाल २ नेत्रकर यह शाप देती हुई बोली हे अमरगण ! मैं पुत्रकामनासे स्वामीके सहितसंगमें प्रवृत्त थी सो तुमने उसमें ! बाधादी ॥ २१ ॥ अतएव तुम्हैं यह शाप देती हूं कि आजसे तुम अपनी स्त्रियोंमें संतानोत्पत्ति नहीं करसकोगे तुम्हारी रमणियें अपुत्रक रहेंगी ॥२२॥ सम्पूर्ण देवताओंको यह शापदेकर फिरपृथ्वीको यहशापदिया कि, हेपृथ्वी !आजसेतू अनेक रूपा और बहुतोंकी भार्या होगी ॥२३॥ हे खोटीबुद्धिवाली ! तैंने मेरे पुत्र होनेमें बाधा दीहै अतएव तू मेरे क्रोधसे कलुषित अर्थात् ऊषरादिकभीहोजायगी और पुत्रकी की हुई प्रीतिकोभी न पावेगी॥२४॥ अनन्तर भगवान्

यत्रजातोमहातेजाःकार्तिकेयोग्निसंभवः ॥ अथोमांचशिवंचैवदेवाःसर्षिगणास्तथा ॥१९॥ पूजयामासुरत्यर्थंसुप्रीतमनसस्तदा ॥ अथशैलसुता रामत्रिदशानिदमब्रवीत् ॥२०॥ समन्युरशपत्सर्वान्क्रोधसंरक्तलोचना ॥ यस्मान्निवारिताचाहंसंगतापुत्रकाम्यया ॥ २१ अपत्यंस्वेषुदारेषु नोत्पादयितुमर्हथ॥अद्यप्रभृतियुष्माकमप्रजाःसंतुपत्नयः ॥२२॥ एवमुक्त्वासुरान्सर्वाञ्छशापपृथिवीमपि ॥अवनेनैकरूपात्वंबहुभार्याभविष्यसि॥२३॥नचपुत्रकृतांप्रीतिंमत्क्रोधकलुषीकृता॥प्राप्स्यसेत्वंसुदुर्मेधेममपुत्रमनिच्छती॥२४॥तान्सर्वान्पीडितान्दृष्ट्वासुरान्सुरपतिस्तदा॥ गमनायोपचक्रामदिशंवरुणपालिताम् ॥२५॥ सगत्वातपआतिष्ठत्पार्श्वेतस्योत्तरेगिरेः॥हिमवत्प्रभवेशृंगेसहदेव्यामहेश्वरः ॥ २६ ॥ एषतेविस्तरोरामशैलपुत्र्यानिवेदितः॥गंगायाःप्रभवंचैवशृणुमेसहलक्ष्मण॥२७॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणेवाल्मीकीये आदिकाव्ये चतुर्विंशतिसा० बालकांडे षट्त्रिंशः सर्गः ॥३६॥ तप्यमाने तदादेवेसेंद्राः साग्निपुरोगमाः॥ सेनापतिमभीप्संतःपितामहमुपागमन् ॥१॥ ततोऽब्रुवन्सुराःसर्वेभगवंतंपितामहम् ॥ प्रणिपत्यसुरारामसेंद्राःसाग्निपुरोगमाः॥२॥ येनसेनापतिर्देव दत्तोभगवतापुरा ॥ सतपःपरमास्थायतप्यतेस्मसहोमया ॥३॥

भवानीपती देवताओंको अतिशय पीडित देखकर वरुणसे पालित पश्चिम दिशाकी ओरको चले गये ॥२५॥ महेश्वर वहां जाकर हिमालयके उत्तर भागमें हिमवत्प्रभवनामक शिखरपर पार्वती सहित तप करने लगे॥२६॥हे रामचन्द्र ! मैंने तुमको शैल सुताकी यह विस्तार पूर्वक कथा सुनाई अब लक्ष्मण सहितगंगाकी उत्पत्तिका वृन्तात सुनो॥२७॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणेवा०आ०बाल०भाषायांषट्त्रिंशः सर्गः॥३६॥ पशुपतिजीको तप करनेपर इन्द्रादिदेवगण अग्निसहितसेनापति प्राप्तहोनेकेअभिलाषसे ब्रह्माजीके पासगये ॥१॥हेरामचन्द्र!अनन्तर सम्पूर्ण देवता अग्निऔर इन्द्रकोआगे करके पहुँचतेही भगवान्प्रजापतिकेचरणोंमें प्रणामकरके यह कहने लगे ॥ २ ॥हे देव! आपने हमें जिस सेनापतिको देने कहा था अबतक उसकाजन्म नहीं हुआ उसके पिता अब उमाके साथ तप कर रहे हैं ॥ ३ ॥

अतएव लोकहितार्थजो कर्तव्य हो आप उसका विधान कीजिये; क्योंकि आप विधानके जाननेवाले हो, हमारी पहुँच आपही तक है ॥ ४ ॥ देवताओंके ऐसे वचनसुनकरसबसंसारके पितामहब्रह्माजी देवताओंको धीरजधराते व समझाते मधुरवाक्यसे यह बोले ॥५॥ हे सुरगण ! शैलसुता पार्वतीजीने जो तुमसे कहाहै वह झूँठ नहीं हो सकता अतएव निश्चयही तुम्हारी स्त्रियें निःसन्तानहोंगी उमाका वचनअमोघ और सत्यहै समें सन्देह नहीं ॥६॥ यह जो आकाशगंगा दृष्टि आती है इसके गर्भमें हुताशनके तेज से देव शत्रुओंके मारनेवाले सेनापतिकी उत्पत्तिहोगी॥७॥ पर्वतकी बडी पुत्री गंगा उस पुत्रको अपनी छोटी बहिन उमा का पुत्रसमझ कर अपने पुत्रके समान पालन करेगी और उमाभी उसपुत्रको बहुत मानेगी ॥८॥हे रघुनन्दन ! ब्रह्माजीके यह वचनसुनकर सब देवता कृतार्थ हुए और ब्रह्माजीको

यदत्रानंतरंकार्यंलोकानांहितकाम्यया ॥ संविधत्स्वविधानज्ञत्वंहितःपरमागतिः ॥ ४ ॥ देवतानांवचःश्रुत्वासर्वलोकपितामहः ॥ सांत्वयन्मधुरैर्वाक्यैस्त्रिदशानिदमब्रवीत् ॥५॥ शैलपुत्र्यायदुक्तंतन्नप्रजाः स्वासुपत्निषु ॥ तस्यावचनमक्लिष्टंसत्यमेवनसंशयः ॥ ६ ॥ इयमाकाशगंगाचयस्यांपुत्रंहुताशनः ॥ जनयिष्यतिदेवानांसेनापतिमरिंदमम् ॥७॥ ज्येष्ठाशैलेंद्रदुहितामानयिष्यतितंसुतम् ॥ उमायास्तद्बहुमतंभविष्यतिनसंशयः ॥ ८ ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्यकृतार्थारघुनंदन ॥ प्रणिपत्यसुराःसर्वेपितामहमपूजयन् ॥ ९ ॥ तेगत्वापरमंरामकैलासंधातुमंडितम् ॥ अग्निंनियोजयामासुःपुत्रार्थंसर्वदेवताः ॥ १० ॥ देवकार्यमिदंदेवसमाधत्स्वहुताशन ॥ शैलपुत्र्यांमहातेजोगंगायांतेजउत्सृज ॥ ११ ॥ देवतानांप्रतिज्ञायगंगामभ्येत्यपावकः ॥ गर्भंधारयवैदेविदेवतानामिदंप्रियम् ॥ १२ ॥ इत्येतद्वचनंश्रुत्वादिव्यंरूपमधारयत् ॥ सतस्यामहिमांदृष्ट्वासमंतादवशीर्यत ॥ १३ ॥ समंततस्तदादेवीमभ्यषिंचतपावकः ॥ सर्वस्रोतांसिपूर्णानिगंगायारघुनंदन ॥१४॥ तमुवाचततोगंगासर्वदेवपुरोगमम् ॥ अशक्ताधारणेदेवतेजस्तवसमुद्धतम् ॥ १५ ॥

प्रणाम कर सब देवता उसकी स्तुति करनेलगे ॥९॥हे राम ! तदनंतर सब देवतोंने धातुओंसे शोभित कैलाश परजाकर अग्निको पुत्रके लिये प्रेरणा की ॥१०॥ देवताओंने कहा हे अग्ने ! तुमदेवताओंका अभिलाषित यह कार्यपूराकरो, औरशैलजागंगाजीमें पशुपततेज छोड़दो ॥११॥ अग्निदेवताओंसे प्रतिज्ञा करके गंगाजीके निकट उपस्थित हुए और उनसे कहने लगे हे देवि ! देवताओंके कार्यार्थ वहगर्भ धारण करो ॥१२॥ जाह्नवीने अग्निकी यह बातसुन सुन्दर दिव्य स्त्री का रूप बनाया जिस रूपकी महिमाको देख वैश्वानर विस्मित हो गये ॥१३॥ तदनन्तरअग्निने शिवजीकावह तेज गंगाजीमें छोड़दिया हे राम !उसतेजकेप्रभावसेजाह्नवीके सब स्रोत पूर्ण हो गये॥१४॥तब सम्पूर्ण देवताओंके संमुख गंगाजीने अग्निसेकहा कि,हे देव ! मैं तुम्हारा दिव्य वृद्धिको प्राप्त तेज धारणकरनेमें असमर्थ हूँ॥१५॥

तुम्हारा तेज जो शिवके तेजसे मिला वही मेरे न सह सकने का कारण हुआ और इसी कारण मैं अग्निरूप तेजसे व्याकुल और हत चेतन हुई हूँ यह बात सुनकर तब अग्निदेवता गंगाजीसे बोले ॥१६॥ तुम हिमालय के निकट इस गर्भको छोड दो अग्निके यह वचन सुन गंगाजीने वह दीप्तिमान् तेज॥ १७ ॥ छोडदिया उस तेजको सोतेमें छोड़ देनेसे जांबनदके तप्त सोनेकी नाईं प्रभा निकलने लगी ॥१८॥ इस तेजके प्रभावसे निकट और दूरके सब पदार्थ कंचन और चांदीके होगये उसकी तीक्ष्णता जहां २ पहुँची वहां २ तांबे व लोहे की उत्पत्ति हुई ॥ १९ ॥ ऐसेही उस गर्भ के मलसे रांगा औरशीशा हुआ वही सब पृथ्वी पर प्राप्त हो जानेसे नाना प्रकारके धातु बढे ॥२०॥ गर्भके छोड़तेही उसके तेजसे पर्वत वनप्रदेश सुवर्णमय होगया ॥२१॥ हे राम ! जातवस्तुके रूपसे उत्पन्न

दह्यमानाग्निनातेनसंप्रव्यथितचेतना ॥ अथाब्रवीदिदंगंगांसर्वदेवहुताशनः ॥१६॥ इहहैमवतेपार्श्वेगर्भोयंसन्निवेश्यताम् ॥ श्रुत्वात्वग्निवचो गंगातंगर्भमतिभास्वरम् ॥ १७ ॥ उत्ससर्जमहातेजाः स्रोतोभ्योहितदानघ ॥ यदस्यानिर्गतंतस्मात्तप्तजांबूनदप्रभम् ॥ १८ ॥ कांचनंधरणीं प्राप्तंहिरण्यमतुलप्रभम् ॥ ताम्रंकार्ष्णायसंचैवतैक्ष्ण्यादेवाभिजायत ॥१९॥ मलंतस्याभवत्तत्रत्रपुसीसकमेवच ॥ तदेतद्धरणींप्राप्यनानाधातुरवर्धत ॥२०॥निक्षिप्तमात्रेगर्भेतुतेजोभिरभिरंजितम् ॥ सर्वपर्वतसन्नद्धंसौवर्णमभवद्वनम् ॥ २१ ॥ जातरूपमितिख्यातंतदाप्रभृतिराघव ॥ सुवर्णपुरुषव्याघ्रहुताशनसमप्रभम् ॥ २२ ॥ तंकुमारंततोजातंसेंद्राः सहमरुद्गणाः ॥ क्षीरसंभावनार्थायकृत्तिकाः समपूजयन् ॥ २३ ॥ ताःक्षीरंजातमात्रस्यकृत्वासमयमुत्तमम् ॥ ददुःपुत्रोयमस्माकंसर्वासामितिनिश्चिताः ॥ २४ ॥ ततस्तुदेवताःसर्वाःकार्तिकेयइतिब्रुवन् ॥ पुत्रस्त्रैलोक्यविख्यातोभविष्यतिनसंशयः ॥ २५ ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वास्कन्नंगर्भपरिस्रवे ॥ स्नापयन्परयालक्ष्म्यादीप्यमानं यथानलम्॥ २६ ॥ स्कंदइत्यब्रुवन्देवाःस्कन्नंगर्भपरिस्रवे ॥ कार्तिकेयंमहाबाहुंकाकुत्स्थज्वलनोपमम् ॥ २७ ॥

होनेसे सुवर्णका एकनाम जातरूप हुआ हेपुरुषसिंह ! इसप्रकार अग्निके समानकान्तिवाला सोना उस दिनसे विख्यात हुआ ॥२२॥ जोहो शिवजीके तेजसे एक पुत्रकी उत्पत्ति हुई तब मरुत् देवताओंने इन्द्रके सहित मिलकर उस पुत्रकोदूध पिलानेके लिए कृत्तिकाओंको पठाया॥२३॥ वे सब कृत्तिकायें उसतुरन्त के जन्मेकुमारको यहनियम करदूधपिलाने लगींकि,यह हमारासबका पुत्रहो ॥२४॥तब देवताओंने कहाकि,कृत्तिकागण! तुम्हारा यह पुत्र कार्तिकेय नामसे त्रिलोक में विख्यात होगा इसमें कुछ शंशय नहीं है ॥ २५ ॥ कृत्तिकाओंने देवताओंके इसप्रकार के वचन सुन उनके कहने के अनुसार शिवपार्वतीसे प्राप्त पीछे गंगासे छोडे हुए उस अग्नि समान दिप्तिमान् कुमार को स्नान कराया ॥ २६ ॥ गंगाके गर्भसे निकलनेके कारण सम्पूर्ण देवताओंने इनका एक स्कन्दभी नाम

रक्खा हे राम ! यह कार्तिकेय बडी बाँहोंवाले अग्निके समान हुये ॥ २७ ॥ जब कृत्तिकाओंके स्तनोंमें दूध उतरा तब छः मुख धारण कर एक साथ छः कृत्तिकाओंका दूध पीने लगे ॥ २८ ॥ इन कार्त्तिकेयजीने सुकुमार कलेवर होनेसे भी अपने पराक्रमके प्रभावसे दैत्योंकी सेनाके गणोंको निर्मूल किया था ॥२९॥ अनन्तर अमरगणोंने अग्निको आगे करके महाकान्तिवाले कुमारकोही देवसेनापतिपदमें वरण कियाथा ॥३०॥ हे रामचन्द्र ! मैंने तुमको गंगाका विस्तार सहित वृत्तांत और कार्त्तिकेयके पवित्र जन्मकी कथा सुनाई यह कथा पुण्य और धन्यरूप है॥३१॥ हे राम! जो मनुष्य पृथ्वीमें कार्त्तिकेयकी भक्ति करेगा वह आयुष्मान् हो पुत्र पौत्रादि समेत स्कंदलोकको प्राप्त होगा॥३२॥ इत्यार्षे श्रीमद्रमा० वाल्मी० आदि० बालकांडे भाषायां सप्तत्रिंशः सर्गः ॥३७॥

प्रादुर्भूतंततःक्षीरंकृत्तिकानामनुत्तमम्॥षण्णांषडाननोभूत्वाजग्राहस्तनजंपयः॥२८॥गृहीत्वाक्षीरमेकाह्नासुकुमारवपुस्तदा ॥ अजयत्स्वेनवीर्येणदैत्यसैन्यगणान्विभुः ॥२९॥सुरसेनागणपतिमभ्यषिंचन्महाद्युतिम् ॥ ततस्तममराःसर्वेसमेत्याग्निपुरोगमाः ॥३०॥एषतेरामगंगायाविस्तरोभिहितोमया ॥ कुमारसंभवश्चैवधन्यःपुण्यस्तथैवच॥३१॥ भक्तश्चयःकार्तिकेयेकाकुत्स्थभुविमानवः॥आयुष्मान्पुत्रपौत्रैश्चस्कंदसालोक्यतांव्रजेत् ॥ ३२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये चतुर्विंशतिसा० बालकांडेसप्तत्रिंशः सर्गः ॥३७॥ तांकथांकौशिकोरामेनिवेद्यमधुराक्षराम् ॥ पुनरेवापरंवाक्यंकाकुत्स्थमिदमब्रवीत्॥१॥ अयोध्याधिपतिर्वीरपूर्वमासीन्नराधिपः ॥ सगरोनामधर्मात्माप्रजाकामःसचाप्रजः ॥२॥वैदर्भदुहितारामकेशिनीनामनामतः॥ ज्येष्ठासगरपत्नीसाधार्मिष्ठासत्यवादिनी॥३॥ अरिष्टनेमेर्दुहितासुपर्णभगिनीतुसा॥द्वितीयासगरस्यासीत्पत्नीसुमतिसंज्ञिता ॥४॥ ताभ्यांसहमहाराजःपत्नीभ्यांतप्तवांस्तपः ॥ हिमवंतंसमासाद्यभृगुप्रस्रवणेगिरौ ॥५॥ अथवर्षशतेपूर्णेतपसाराधितोमुनिः॥सगरायवरंप्रादाद्भृगुःसत्यवतांवरः॥६॥अपत्यलाभःसुमहान्भविष्यतितवानघ॥कीर्तिंचाप्रतिमांलोकेप्राप्स्यसेपुरुषर्षभ॥७॥

महर्षि विश्वामित्रजी यह मधुर कथा कहकर फिर भी मधुर वचन रामचंद्र जीसे कहने लगे ॥ १ ॥ पूर्वकाल अयोध्यानगरीमें एक महावीरसगरनामक धर्मवान् राजाथे वहप्रजाको भलीभाँति पालतेथे परन्तु उनके कोई पुत्र नथा॥२॥ हे राम!उनकी दो स्त्रियें थीं,बड़ीविदर्भराजकन्या केशिनी नामकी थी यह रानी जैसी धर्मात्मा वैसेही सत्यवादिनी थी॥३॥ दूसरी स्त्रीका नाम सुमति था वह अरिष्टनेमिकी कन्या और सुपर्णकीबहनथी यहसुमति राजासगरकी दूसरीरानी थी॥४॥ भूमिनाथ सगर दोनों स्त्रियोंके साथ हिमगिरिके नीचे एकपर्वतपर तपस्या करने लगे जहां भृगुमुनि तप करतेथे ॥ ५ ॥ इसप्रकार मुनिकी आराधना करते २ सौ वर्ष पूर्ण होजानेपर सत्यवान भृगुने उनकेतपसे प्रसन्न होकर उन्हें वरदिया॥६॥ हे राजन्!पापरहित तुम्हारे महान् पुत्र उत्पन्न होगा हेपुरुषश्रेष्ठ ! तुम लोकोंमें

अनुपमकीर्त्ति पाओगे ॥७॥ हे पुरुष पुङ्गव ! तुम्हारी एकस्त्रीके वंश चलानेवाला एक पुत्र और दूसरीके साठहजार संतानहोंगी ॥ ८ ॥ नरश्रेष्ठ भृगुजीके यह कहने पर दोनों स्त्रियें उन ऋषिवरको प्रसन्नकरप्रीतिपूर्ण मनसे हाथ जोडके बोलीं ॥ ९ ॥ ब्रह्मन् ! आपका कहना सत्य हो हम आपसे यह सुना चाहती हैं कि, किसके गर्भसे एक व किसके गर्भसे साठहजार पुत्र उत्पन्नहोंगे ॥ १० ॥ रानियोंके ऐसे वचन सुनकर धर्मपरायण भृगुजी परमश्रेष्ठ वाणी कहनेलगे कि, इन दोनोंमें जो जैसा पुत्र चाहो वह स्वच्छन्द होकर मांगलो ॥ ११ ॥ एक पुत्र वंशधर होगा और दूसरे साठहजार महारणसम्पन्न कीर्तिमान् परमोत्साही होंगे सो तुम इनमेंसे कौन २ सा चाहतीहो ॥ १२ ॥ हे रघुनंदन ! मुनिजीके वचन सुन केशिनीने राजाके सम्मुख वंशधरपुत्रकी कामना की ॥ १३ ॥

एकाजनयितातातपुत्रंवंशकरंतव॥षष्टिंपुत्रसहस्राणिअपराजनयिष्यति ॥८॥ भाषमाणंनरव्याघ्रंराजपुत्र्यौप्रसाद्यतम् ॥ ऊचतुःपरमप्रीतेकृतांजलिपुटेतदा ॥९॥ एकःकस्याःसुतोब्रह्मन्काबहूञ्जनयिष्यति॥श्रोतुमिच्छावहेब्रह्मन्सत्यमस्तुवचस्तव॥१०॥तयोस्तद्वचनंश्रुत्वाभृगुःपरमधार्मिकः॥उवाचपरमांवाणींस्वच्छंदोत्रविधीयताम्॥११॥एकोवंशकरोवास्तुबहवोवामहाबलाः॥कीर्तिमंतोमहोत्साहाःकावाकंवरमिच्छति॥१२॥ मुनेस्तुवचनंश्रुत्वाकेशिनीरघुनंदन॥पुत्रंवंशकरंरामजग्राहनृपसन्निधौ॥१३॥ षष्टिंपुत्रसहस्राणिसुपर्णभगिनीतदा ॥ महोत्साहान्कीर्तिमतोजग्राहसुमतिः सुतान् ॥ १४॥ प्रदक्षिणमृषिंकृत्वाशिरसाभिप्रणम्यतम् ॥ जगामस्वपुरंराजासभार्योरघुनंदन ॥ १५ ॥अथकालेगतेतस्यज्येष्ठापुत्रंव्यजायत॥असमंजइतिख्यातंकेशिनीसगरात्मजम्॥१६॥सुमतिस्तुनरव्याघ्रगर्भतुंबंव्यजायत॥षष्टिःपुत्रसहस्राणितुंबभेदाद्विनिःसृता ॥१७॥ घृतपूर्णेषुकुंभेषुधात्र्यस्तान्समवर्धयन् ॥ कालेनमहतासर्वेयौवनंप्रतिपेदिरे॥१८॥अथदीर्घेणकालेनरूपयौवनशालिनः॥ षष्टिःपुत्रसहस्राणिसगरस्याभवंस्तदा ॥१९॥ सचज्येष्ठोनरश्रेष्ठःसगरस्यात्मसंभवः ॥ बालान्गृहीत्वातुजलेसरय्वारघुनंदन ॥ २० ॥

और सुमतिनेपरमोत्साहीकीर्त्तिमान्बलवानसाठहजारपुत्रोंकी प्रार्थना की ॥ १४ ॥ हे रघुनंदन ! तबमहाराजसगर मुनिवरके चरणोंमें प्रणाम और प्रदक्षिणा करके रानियोंके सहित अपनेनगरकोचलेगये ॥ १५ ॥ अनन्तर कुछकालबीतनेपरबडी रानी केशिनीने एक पुत्रउत्पन्न किया जिसका असमञ्जस नाम हुआ ॥१६॥ हे नरश्रेष्ठ ! सुमतिके गर्भसे एक तोंबीउत्पन्न हुई जिसको भेदकर साठहजार पुत्र उत्पन्न हुये ॥१७॥ धात्री उन्हें घीके भरे हुये घडोंमें रक्षा करके बड़ा करने लगी कुछ समय बीतनेपर उन्होंने युवावस्था प्राप्त की ॥ १८ ॥ अनन्तरदीर्घकाल बीतनेपर सगरके साठहजारपुत्र रूपयौवन सम्पन्न हो उठे ॥ १९ ॥ वह सगरकी ज्येष्ठ रानीका पुत्र असमञ्जसनामक था वह खेलके समयबालकोंको पकडकर सरयूमें लेजाकर ॥ २० ॥

पुरवासियोंके बालकोंको बहाय देता और उनको डूबते हुये देखकर हँसता, इस भाँति असमञ्जस पापाचरणपरायण और सज्जनोंका द्रोह करनेलगा ॥ २० ॥ पिता सगरनेउसको पुरवासियोंका अनिष्टकारक जानके नगरसे निकाल दिया उस असमंजसकापुत्रअंशुमान्नामबडावीर्यवान्था॥२१॥ यह जैसे सर्वलोकके प्रिय थेवैसेहो प्रियभाषोथे अनन्तर बहुत काल बीतनेपर ॥२२॥ राजासगरने यह विचार किया कि, हम अश्वमेध यज्ञ करें वह कृतसंकल्प हो उपाध्यायोंसे मिले ॥ २३ ॥ और यज्ञकोवेदविधिसे करनेकी इच्छा की ॥ २४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदिकाव्ये बाल० भाषायामष्टात्रिंशः सर्गः ॥ ३८ ॥ रामचन्द्रजी प्रदीप्त अग्नितुल्य महर्षि विश्वामित्रजीसे यह कथा श्रवण कर परमप्रीतिपूर्वक बोले ॥ १ ॥ किस प्रकार हमारे पूर्वपुरुष सगरराजाने यज्ञ किया था?

प्रक्षिप्यप्राहसन्नित्यंमज्जतस्तान्निरीक्ष्यवै ॥ एवंपापसमाचारःसज्जनप्रतिबाधकः ॥२१॥ पौराणामहितेयुक्तःपित्रानिर्वासितःपुरात् ॥ तस्यपुत्रोंऽशुमान्नामअसमंजस्यवीर्यवान् ॥२२॥संमतःसर्वलोकस्यसर्वस्यापिप्रियंवदः ॥ ततःकालेनमहतामतिःसमभिजायत ॥२३॥ सगरस्यनरश्रेष्ठ यजेयमितिनिश्चिता ॥ सकृत्वानिश्चयंराजासोपाध्यायगणस्तदा ॥२४॥ यज्ञकर्मणिवेदज्ञोयष्टुंसमुपचक्रमे ॥२५॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये चतुर्विंशतिसा०बालकांडे अष्टत्रिंशः सर्गः ॥३८॥ विश्वामित्रवचःश्रुत्वाकथांतेरघुनंदनः॥ उवाचपरमप्रीतोमुनिंदीप्तमिवानलम् ॥ १ ॥ श्रोतुमिच्छामिभद्रंतेविस्तरेणकथामिमाम् ॥ पूर्वजोमेकथंब्रह्मन्यज्ञंवैसमुपाहरत् ॥२॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाकौतूहलसमन्वितः॥विश्वामित्रस्तुकाकुत्स्थमुवाचप्रहसन्निव ॥३॥ श्रूयतांविस्तरोरामसगरस्यमहात्मनः ॥ शंकरश्वशुरोनाम्नाहिमवानितिविश्रुतः ॥४॥ विंध्यपर्वतमासाद्यनिरीक्षेतेपरस्परम् ॥ तयोर्मध्येसमभवद्यज्ञःसपुरुषोत्तम ॥५॥ सहिदेशोनरव्याघ्रप्रशस्तोयज्ञकर्मणि ॥ तस्याश्वचर्यांकाकुत्स्थदृढधन्वामहारथः ॥ ६ ॥ अंशुमानकरोत्तातसगरस्यमतेस्थितः ॥ तस्यपर्वणितंयज्ञंयजमानस्यवासवः ॥ ७ ॥

हे भगवन् ! आपका मंगलहो वह वृत्तान्त विस्तार सहित मैं आपसे सुना चाहता हूं॥२॥तब रामचन्द्रजीका वाक्य श्रवणकर मुनि विश्वामित्रजी कौतूहलाक्रांत रामचन्द्रजीसे हँसकरबोले ॥३॥ हेराम! महात्मा सगरका माहात्म्य विस्तारसहित सुनो शंकरजीके श्वशुर हिमवान् नाम विख्यात हैं॥४॥ व विंध्याचलनाम पर्वत आपसमें निहारते हैं हे पुरुषोत्तम!दोनों पर्वतोंके बीचमें महाराजसगरका यज्ञहुआ था॥५॥हे नरव्याघ्र!वही देश यज्ञ कर्ममें श्रेष्ठ है हे राम!उस यज्ञके घोडेकी रक्षा करने के लिये दृढताईसे धनुष धारण करने वाले ॥ ६ ॥ अंशुमान् राजासगरके आदेशसे नियुक्त हुए अनन्तर उस यजमानके पर्वके दिन इन्द्रजी ॥ ७ ॥

राक्षसी मूर्ति धारणकर यज्ञके घोडेको हरके ले गये हे राम ! उस महात्मा राजाके घोडे हरे जानेपर॥८॥तब उपाध्यायोंने राजासे शीघ्रता पूर्वक यह निवेदन किया कि पर्वके दिन घोडाहरागया॥९॥ उस समय सवहीएकवाक्यसेअश्वहरनेवालेकोसंहार करके जल्दी घोडेको लाओ यहकहनेलगे क्योंकि यज्ञमें विघ्न होनेसे हमारा मंगल नहीं होगा॥१०॥इससे हे राजन्!ऐसा कीजिये कि;विघ्नरहित यज्ञ हो जाय, तुरंगरक्षकों व ऋत्विजोंकी सभामें ऐसे वचन सुन राजाने॥११॥अपने साठ हजार पुत्रोंसे यह वचन कहा कि मैं यज्ञमें दीक्षित हो रहा हूँ सो इस यज्ञ में राक्षसोंके द्वारा विघ्न होनेसे मेरी गति नहीं होगी॥१२॥ मैं मंत्र ग्रहण पूर्वकपवित्र! हव्यभाग देवताओंको देनेको बैठा हूँ अतएव तुमलोग यज्ञीय अश्वका अन्वेषण करो तुम्हारा मंगल हो॥१३॥तुम सब समुद्रयुक्त पृथ्वीमें खोज करो हे पुत्रों

राक्षसींतनुमास्थाययज्ञियाश्वमपाहरत्॥ह्रियमाणेतुकाकुत्स्थतस्मिन्नश्वेमहात्मनः॥८॥उपाध्यायगणाःसर्वेंयजमानमथाब्रुवन्॥ अयंपर्वणिवेगे नयज्ञियाश्वोऽपनीयते ॥९॥ हर्तारंजहिकाकुत्स्थहयश्चैवोपनीयताम्॥यज्ञच्छिद्रंभवत्येतत्सर्वेषामशिवायनः ॥१०॥ तत्तथाक्रियतांराजन्यज्ञो ऽच्छिद्रःकृतोभवेत ॥सोपाध्यायवचःश्रुत्वातस्मिन्सदसिपार्थिवः॥११॥षष्टिंपुत्रसहस्राणिवाक्यमेतदुवाचह॥ गतिंपुत्रानपश्यामिरक्षसांपुरुषर्ष भाः॥१२॥ मंत्रपूतैर्महाभागैरास्थितोऽपिमहाक्रतुः॥तद्गच्छथविचिन्वध्वंपुत्रकाभद्रमस्तुवः॥१३॥ समुद्रमालिनींसर्वांपृथिवीमनुगच्छत॥एकैकं योजनंपुत्राविस्तारमभिगच्छत ॥१४॥यावत्तुरगसंदर्शस्तावत्खनतमेदिनीम् ॥ तमेवहयहर्तारंमार्गमाणाममाज्ञया॥१५॥ दीक्षितः पौत्रसहितः सोपाध्यायगणस्त्वहम् ॥इहस्थास्यामिभद्रंवोयावत्तुरगदर्शनम् ॥ १६॥ तेसर्वेंहृष्टमनसोराजपुत्रामहाबलाः ॥ जग्मुर्महीतलंरामपितुर्वचनयं त्रिताः॥१७॥योजनायामविस्तारमेकैकोधरणीतलम् ॥बिभिदुःपुरुषव्याघ्रावज्रस्पर्शसमैर्भुजैः॥१८॥ शूलैरशनिकल्पैश्चहलैश्चापिसुदारुणैः ॥ विद्यमानावसुमतीननादरघुनंदन ॥ १९ ॥ नागानांवध्यमानानामसुराणांचराघव ॥ राक्षसानांदुराधर्षसत्त्वानांनिनदोऽभवत ॥२०॥

क्रम२से एक२योजन अच्छी तरह ढूँढ़ो ॥१४॥ जबतक घोडा न मिले या उसका हरनेवाला न पायाजावे तबतक पृथ्वीको खोजते रहना मेरी आज्ञासे खोज करते रहना ॥ १५ ॥ मैं यज्ञमें दीक्षित हो पौत्र और ऋत्विजों पुरोहितोंके साथ अश्वके दर्शनकी प्रतीक्षा करता यहां रहूंगा तुम्हारामंगलहो ॥ १६ ॥ हे राम ! पिताके वचन सुनके महाबलवान् वह साठ हजार पुत्र प्रफुल्लमनसे घोड़ेकी खोजकेअर्थ सब पृथ्वीपर घूमने लगे॥१७॥ वह पुरुषसिंह वज्रकेसमान देहवाले अपने हाथोंसे एक योजन लम्बी चौडी पृथ्वी खोदने लगे ॥१८॥हे रघुनन्दन!उस समय पृथ्वी अशनिसदृश शूल और तीक्ष्ण हलद्वारा भेदी जाकरआर्त्तनाद करने लगी ॥१९॥हे राघव!क्रमसे मारे हुये हाथी,सर्प निशाचर और जो किसीसे न जीते जायँ ऐसे असुर व भूचरोंके करुणा स्वरसे दिङ्मंडल परिपूर्ण होगया॥२०॥

हे राम ! इस भाँति उन सगरके पुत्रोंने साठ हजार योजन पृथ्वी खोदडाली और खोदते २ पातालमें जाय पहुँचे ॥ २१ ॥ इस प्रकार अनेक पर्वतोंसे युक्त समस्त जंबूद्वीप उन राजकुमारोंने खोदडाला. हे रक्षा करनेहारोंमें श्रेष्ठ ! इसप्रकारसे वे खोदते२ चारों ओरसे धावमान हुए ॥२२॥ तदनन्तर देवता, गन्धर्व, असुर औ पन्नग सब चकित होकरपितामह ब्रह्माजीके पास गये ॥२३॥और शोकग्रसित मनसे ब्रह्माजीको प्रसन्न करते अत्यन्त व्याकुल मनसे इस प्रकार ब्रह्माजीसे बोले ॥२४॥ हे भगवन् ! दुराचारीसगरके पुत्र सब पृथ्वीको खोदे डालते और नाना जलजन्तू व सिद्धों तकका प्राण संहार करते हैं ॥२५॥ जिसे देखतेहैं उसेही अपने यज्ञका विद्वेषी समझतेहैं मारडालतेहैं और कहतेहैं यही हमारेयज्ञमें बाधा करनेवाला है इसीने घोडा लियाहै॥२६॥इत्यार्षे श्रीमद्रा वा० आ०

योजनानांसहस्राणिषष्टिंतुरघुनंदन ॥ बिभिदुर्धरणींरामरसातलमनुत्तमम् ॥ २१ ॥ एवंपर्वतसंबाधंजंबूद्वीपंनृपात्मजाः ॥ खनंतोनृपशार्दूल सर्वतःपरिचक्रमुः ॥ २२ ॥ ततोदेवाःसगंधर्वाःसासुराःसहपन्नगाः ॥ संभ्रांतमनसःसर्वेपितामहमुपागमन् ॥ २३ ॥ तेप्रसाद्यमहात्मानं विषण्णवदनास्तदा ॥ ऊचुःपरमसंत्रस्ताःपितामहमिदंवचः ॥२४ ॥ भगवन्पृथिवीसर्वाखन्यतेसगरात्मजैः ॥ बहवश्चमहात्मानोवध्यंतेजलचारिणः ॥ २५ ॥ अयंयज्ञहरोऽस्माकमनेनाश्वोऽपनीयते ॥ इतितेसर्वभूतानिहिंसंतिसगरात्मजाः ॥२६॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये चतुर्विंशतिसा० बालकांडे एकोनचत्वारिंशःसर्गः ॥ ३९ ॥ देवतानांवचःश्रुत्वाभगवान्वैपितामहः ॥ प्रत्युवाचसुसंत्रस्तान्कृतांतबलमोहितान् ॥ १ ॥ यस्येयंवसुधाकृत्स्नावासुदेवस्यधीमतःमहिषीमाधवस्यैषास एवभगवान्प्रभुः ॥ २ ॥कापिलंरूपमास्थायधारयत्यनिशंधाराम् ॥ तस्यकोपाग्निनादग्धाभविष्यंतिनृपात्मजाः ॥ ३ ॥ पृथिव्याश्चापिनिर्भेदोदृष्टएवसनातनः ॥ सगरस्यचपुत्राणांविनाशोदीर्घदर्शिनाम् ॥ ४ ॥ पितामहवचःश्रुत्वात्रयस्त्रिंशदरिंदमाः ॥ देवाःपरमसंहृष्टाःपुनर्जग्मुर्यथागतम् ॥ ५ ॥

बाल० भाषायामेकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥३९॥भगवान् कमलासन ब्रह्माजी देवताओंकी बात सुन और उसका विचार करकेसगर-संतानसे डरे हुये वह विमोहित हुये देवताओंसे बोले ॥ १ ॥ यह वसुन्धरा जिन भगवान् वासुदेवकी स्त्री है व जो माधवइसके अधिपति हैं वही भगवान् नारायण ॥ २ ॥ कपिलमूर्ति धारण करके दिन रात पृथ्वीको धारण करते हैं उन्हींकी क्रोधाग्नि से यह दुष्टराज पुत्रभस्म हो जायँगे ॥३॥ पृथ्वीका खोदनाही पूर्व कालसे निश्चय किया गया है अर्थात् यह ऐसेही होना था महात्माओंने जाना है कि अदूरदर्शी सगर सन्तानों के मरनेका कारण होगा ॥४ ॥ पितामहजीका वचन सुन ८ वसु ११

१ जहां जहां कुछ शंका होती थी वहां वहां यह विशेष खोदते थे सगरकी अधिकाई इनके भूमि खोदनेसे हुई और सम्पूर्ण स्थानोंमें खोदनेके समान इन्होंने भूमिको ढूंढडाला था ।

रुद्र १२ आदित्य २ अश्विनी कुमार यह सब ३३ देवता शत्रुओंको मारने वाले प्रफुल्ल मनसे अपने २ स्थानको चले गये ॥ ५ ॥ इधर पृथ्वी खोदनेके कालमें सगर सन्तानों को जो वज्र गिरनेके समान कोलाहल उठा था जब सब पृथ्वी खुदगई तब वह कोलाहल नहीं रहा ॥ ६ ॥ तब सगरके साठ हजार पुत्र मनमारे जी हारे सब पृथ्वीकीप्रदक्षिणा देकर अपने पिताके पास आये और उनसे सब वृत्तान्त कहा ॥७॥ कि, हम लोग समस्त पृथ्वी पर घूम आये देव दानव और पिशाचादिकोंको जानतकसे मारडाला प्राणियोंको अनेकदुःख दिये ॥८॥ परन्तु कहीं घोडे और उसके हरनेवाले का पता न पाया आपका कल्याणहो अब हमें क्या आज्ञा होतीहै सो विचार करके कहिये ॥९॥ हे राम! पुत्रोंकेऐसे वचन सुन नृपतिश्रेष्ठ सगर क्रोधित हो यह वाक्य बोले ॥१०॥ तुम लोग

सगरस्यचपुत्राणांप्रादुरासीन्महास्वनः॥पृथिव्यांभिद्यमानायांनिर्घातसमनिःस्वनः ॥६॥ ततोभित्त्वामहींसर्वांकृत्वाचापिप्रदक्षिणाम्॥सहिताः सागराःसर्वेपितरंवाक्यमब्रुवन् ॥७॥ परिक्रांतामहीसर्वासत्त्ववंतश्चसूदिताः ॥ देवदानवरक्षांसिपिशाचोरगपन्नगाः ॥८॥ नचपश्यामहेऽश्वंतं अश्वहर्तारमेवच ॥ किंकरिष्यामभद्रंतेबुद्धिरत्रविचार्यताम् ॥ ९ ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वापुत्राणांराजसत्तमः ॥ समन्युरब्रवीद्वाक्यंसगरोरघुनंदनः ॥ १० ॥ भूयःखनतभद्रंवोविभेद्यवसुधातलम् ॥ अश्वहर्तारमासाद्यकृतार्थाश्चनिवर्तत ॥ ११ ॥ पितुर्वचनमासाद्यसगरस्यमहात्मनः॥ षष्टिः पुत्रसहस्राणिरसातलमभिद्रवन् ॥ १२ ॥ खन्यमानेततस्तस्मिन्ददृशुःपर्वतोपमम् ॥ दिशागजंविरूपाक्षंधारयंतंमहीतलम् ॥ १३ ॥ सपर्वतवनांकृत्स्नांपृथिवीं रघुनंदन ॥ धारयामासशिरसाविरूपाक्षोमहागजः ॥ १४ ॥ यदापर्वणिकाकुत्स्थविश्रामार्थंमहागजः ॥ खेदाच्चालयतेशीर्षंभूमिकंपस्तदाभवेत् ॥ १५ ॥ तेतंप्रदक्षिणंकृत्वादिशापालंमहागजम् ॥ मानयंतोहितेरामजग्मुर्भित्त्वारसातलम् ॥१६॥ ततः पूर्वांदिशंभित्त्वादक्षिणांबिभिदुःपुनः ॥ दक्षिणस्यामपिदिशिददृशुस्तेमहागजम् ॥ १७ ॥

मेराकहना मानकर फिर वसुधाको खोदडालो और अबकीतुम्हेंअवश्यही घोडे का पता लगाना होगा और उसके हरनेवाले का पता लगाकर कृतार्थ होकर लौटना ॥ ११ ॥ महात्मा सगरराजाकी आज्ञासे ६०००० सगरपुत्र पातालको चले ॥ १२ ॥ उन्होंने पृथ्वी खोदते २ पर्वतसमान विरूपाक्ष नामक एक दिग्गजको पृथ्वी धारण किये हुए देखा ॥ १३ ॥ हे राम ! यह विरूपाक्षनामक महाहाथीकाननपर्वतोंसहितउसदिशाकी पृथ्वीको अपने ऊपरधारणकियेहीरहता है ॥१४॥ हे काकुत्स्थ! जिस समय कभी यहहाथी मारे बोझ केथककर विश्रामार्थ शिर इधर हिलाता है तभी भूकम्प होता है ॥ १५ ॥ हे राम ! सगर के पुत्र इस दिशाके पालनेवाले महागज की प्रदक्षिणा कर और आदर करके रसातलको भेदनपूर्वक गमन करने लगे ॥१६॥ तदनंतर पूर्व दिशा भेदकर फिर दक्षिण दिशा खोदने

लगे इस दक्षिण दिशामें भी उन्होंने एक वैसाही हाथी देखा ॥ १७ ॥ इस महात्मा हाथी का नाम महापद्म है, आकार में बडे पर्वत के तुल्य है यहभी अपने शिर पर पृथ्वी को धारण किये रहता है इसको देखकर सगर पुत्र विस्मित हो गए ॥ १८ ॥ वे महात्मा सगरपुत्र इस गजकी प्रदक्षिणा करके यह साठ हजार बलवान् पश्चिम दिशा खोदने लगे ॥ १९ ॥ उन महावलियोंने पश्चिम दिशामेंभी पर्वताकार सौमनस नाम महागज को देखा ॥ २० ॥ सगरपुत्र उसकी प्रद क्षिणा व कुशल प्रश्न जिज्ञासा कर पृथ्वी खोदते२उत्तरदिशाको चलेगये॥२१॥हे रघुवंशमें श्रेष्ठ ! महाभद्र नामक तुषारवत् श्वेत वर्ण श्रेष्ठ शरीर एक महाहस्तीको भूभार वहन करतेदेखा वे सब उससे मिल ॥२२॥ और उसकी परिक्रमा देकरफिर ६०००० सगरसुत पृथ्वीको खोदने लगे ॥२३॥ क्रमसे उन लोगोंने सब

महापद्मंमहात्मानंसुमहत्पर्वतोपमम्॥ शिरसाधारयंतंगांविस्मयंजग्मुरुत्तमम्॥१८॥ तेतंप्रदक्षिणंकृत्वासगरस्यमहात्मनः॥षष्टिःपुत्रसहस्राणि पश्चिमांबिभिदुर्दिशम् ॥१९॥ पश्चिमायामपिदिशिमहांतमचलोपमम्॥दिशागजंसौमनसंददृशुस्तेमहाबलाः ॥२०॥ तेतंप्रदक्षिणंकृत्वापृष्ट्वा चापिनिरामयम्॥ खनंतःसमुपाक्रांतादिशंसोमवतींतदा ॥ २१ ॥ उत्तरस्यांरघुश्रेष्ठददृशुर्हिमपांडुरम् ॥ भद्रंभद्रेणवपुषाधारयंतंमहीमिमाम् ॥ २२ ॥समालभ्यततःसर्वेकृत्वाचैनंप्रदक्षिणम् ॥ षष्टिःपुत्रसहस्राणिबिभिदुर्वसुधातलम् ॥२३॥ ततःप्रागुत्तरांगत्वासागराःप्रथितांदिशम् ॥ रोषादभ्यखनन्सर्वेपृथिवींसगरात्मजाः ॥ २४ ॥ तेतुसर्वेमहात्मानोभीमवेगामहाबलाः ॥ ददृशुःकपिलंतत्रवासुदेवंसनातनम् ॥२५॥ हयंचत स्यदेवस्यचरंतमविदूरतः ॥ प्रहर्षमतुलंप्राप्ताः सर्वेतेरघुनंदन ॥ २६ ॥ तेतंयज्ञहनंज्ञात्वाक्रोधपर्याकुलेक्षणाः ॥ खनित्रलांगलधरानानावृक्ष शिलाधराः ॥ २७ ॥ अभ्यधावंतसंक्रुद्धास्तिष्ठतिष्ठेतिचाब्रुवन् ॥ अस्माकंत्वंहितुरगंयज्ञियंहृतवानसि ॥ २८ ॥ दुर्मेधस्त्वंहि संप्राप्ता न्विद्धिनः सगरात्मजान् ॥ श्रुत्वातद्वचनंतेषांकपिलोरघुनंदन ॥ २९ ॥

दिशाओंकी पुहुमी खोद फिर क्रोधसहित उत्तर पश्चिम दिशामें जाकर पृथ्वीखोदना प्रारम्भ की ॥२४॥ और यहां उन बली तीक्ष्णवेगवालोंने सनातन वासुदेव कपिलदेवजीको विराजमान देखा ॥२५॥ और उन भगवान्के स्थानसे थोडीही दूर घोडे को चरता देख यह सब परमानंदित हुए ॥२६॥ और कपिलदेवजी कोही यज्ञका विघ्नकारी जान क्रोधसे आँखें लाल२ कर हल कुदार वृक्ष शिलादिधारण कर ॥२७॥ खडाहो खडाहो कहते हुए क्रोधसे दौडे व कहने लगे कि, हमारे यज्ञका घोडा तैंनेही चुराया है॥२८॥हे दुर्मति ! अब तुम जानले कि सगरपुत्र आगये, हे रघुनन्दन ! उनके ऐसेवचन सुनकर कपिल भगवान्जीने ॥२९॥

क्रोधितहो हुंकार किया हे राम ! बस उन महात्मा महातपस्वी कपिलदेवजीके हुंकारसे ही अप्रमेय बलशालीसगर सन्तान जलकर राख ढेरीहो गये ॥ ३० ॥ इति श्रीमद्रामायणे वा० आ० बालकांडे भाषायां चत्वारिंशः सर्गः ॥४०॥ हे रघुनन्दन ! राजासगर अपने पुत्रोंको बहुत दिनसे गये हुए जान वीर्यवान् अपने तेजसे दीप्तमान पौत्र अंशुमानसे बोले ॥१॥ हे वत्स ! तुम वीर और सब विद्यापढे लिखे व अपने पितृव्योंके समान तेजशालीहो अतएवपितृव्योंसहित घोडेको ढूँढ़कर आओ ॥२॥ पृथ्वीके भीतर जो सब महाबली जीव हैं उनको हरनेकेलिए धनुर्बाण और असि ग्रहण करो ॥३॥ जो कोई वंदना करनेकेयोग्यहो उनको प्रणाम और विघ्नकारियोंका नाशकर जल्दी लौटो अधिक क्या कहूँ यज्ञ मेरेपूर्णहोनेके एक तुम्हीं प्रधान सहायकहो ॥४॥ इस भांतिमहात्मासगरके कहनेपर अंशु

रोषेणमहताविष्टोहुंकारमकरोत्तदा ॥ततस्तेनाप्रमेयेणकपिलेनमहात्मना ॥ भस्मराशीकृताःसर्वेकाकुत्स्थसगरात्मजाः ॥३०॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये चतुर्विंशतिसा० बालकांडे चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥ पुत्रांश्चिरगताञ्ज्ञात्वासगरोरघुनंदन ॥ नप्तारमब्रवीद्राजादीप्यमानंस्वतेजसा॥१॥शूरश्चकृतविद्यश्चपूर्वैस्तुल्योऽसितेजसा॥ पितॄणांगतिमन्विच्छयेनचाश्वोपवाहित॥२॥अंतर्भौमानिसत्त्वानिवीर्यवंतिमहांतिच॥तेषांतुप्रतिघातार्थंसासिंगृह्णीष्वकार्मुकम् ॥ ३ ॥ अभिवाद्याभिवाद्यांस्त्वंविहत्वाविघ्नकरानपि॥ सिद्धार्थःसन्निवर्तस्वममयज्ञस्यपारगः ॥ ४ ॥ एवमुक्तोंऽशुमान्सम्यक्सगरेणमहात्मना ॥ धनुरादायखड्गंचजगामलघुविक्रमः ॥५॥ सखातंपितृभिर्मार्गमंतर्भौमंमहात्मभिः ॥ प्रापद्यतनरश्रेष्ठतेनराज्ञाभिचोदितः ॥ ६ ॥ देवदानवरक्षोभिः पिशाचपतगोरगैः ॥ पूज्यमानंमहातेजादिशागजमपश्यत ॥ ७ ॥ सतंप्रदक्षिणंकृत्वापृष्ट्वाचैवनिरामयम् ॥ पितृन्सपरिपप्रच्छवाजिहर्तारमेवच ॥ ८ ॥ दिशागजस्तुतच्छ्रुत्वाप्रत्युवाचमहामतिः ॥ आसमंजकृतार्थस्त्वंमहाश्वःशीघ्रमेष्यसि॥९॥तस्यतद्वचनंश्रुत्वासर्वानेवदिशागजान् ॥ यथाक्रमंयथान्यायंप्रष्टुं समुपचक्रमे ॥१०॥

मान् धनुष और खड्ग धारणपूर्वक द्रुतगतिसे चले गये ॥५॥ हे मनुष्योंमें श्रेष्ठ ! मार्गमें जाते२पृथ्वीके भीतर अपने महात्मा पितृव्योंका खोदाहुआ एक मार्गदेखा वह उस मार्गके देखनेको उसमें प्रवेशित हुए ॥६॥ इसी मार्गमें जाते२देखा किबीच२में एक२ दिग्गज खड़े हैं और देव, दानव, राक्षस, पिशाच उरगगण उनकी पूजा कर रहे हैं ॥७॥ अंशुमान्ने उनकी प्रदक्षिणा करके उनसे कुशल प्रश्न पूछकर पितृव्योंसहित यज्ञीय अश्वके रहनेवाले का वृत्तांत पूछा ॥८॥ यह वार्ता सुनकर उस महाबुद्धिमान् दिग्गज ने कहा कि हे अंशुमान् ! तुम कार्य सिद्ध कर अश्व सहित शीघ्र लौटोगे ॥ ९ ॥ दिग्गज का ऐसा वचन सुनकरयही

ज्ञात न्यायपूर्वकक्रमसे अंशुमानूजीने और सब दिशाओं के दिग्गजों से पूंछी ॥ १० ॥सब परमचतुर वाक्य जाननेवाले पंडित दिक्पालों ने यही उत्तर दिया कि, अश्व लेकर शीघ्र लौटोगे ॥११॥ उनका वचन सुन अंशुमानूजी वेग से चले और वहां पहुँचे जहां उनके पितृव्यगण सगरपुत्र भस्म होगये थे ॥ १२ ॥ तब असमंजसके पुत्र अंशुमान् अपने पितृव्योंका मरणसंवाद सुन बहुत दुःखी हुये और कुछ देरतक उनके अर्थ बडे करुणास्वरसे विलाप करके शोक करते रहे ॥ १३ ॥फिर उस पुरुषसिंहने दुःखशोकाभिभूत हो दृष्टि संचारण करके देखा कि, इस स्थानके निकटही यज्ञीय अश्व विचरण कर रहा है ॥१४॥ तब वह पितृपुरुषोंको जल देनेके लिये कृतसंकल्प हुये किन्तु उस महातेजस्वीको कहीं जलाशय नहीं दीख पडा ॥१५॥ हे राम ! तब दृष्टि पसारकर उसने

तैश्चसर्वैर्दिशापालैर्वाक्यज्ञैर्वाक्यकोविदैः॥पूजितःसहयश्चैवागंताऽसीत्यभिचोदितः ॥११॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वाजगामलघुविक्रमः॥भस्मराशीकृतायत्रपितरस्तस्यसागराः ॥१२ ॥ सदुःखवशमापन्नस्त्वसमंजसुतस्तदा ॥ चुक्रोशपरमार्तस्तुवधात्तेषांसुदुःखितः ॥ १३ ॥ यज्ञियंचहयंतत्रचरंतमविदूरतः ॥ ददर्शपुरुषव्याघ्रोदुःखशोकसमन्वितः ॥१४॥ सतेषांराजपुत्राणांकर्तुकामोजलक्रियाम्॥ सजलार्थीमहातेजानचापश्यज्जलाशयम् ॥१५॥ विसार्यनिपुणांदृष्टिंततोऽपश्यत्खगाधिपम् ॥ पितॄणांमातुलंरामसुपर्णमनिलोपमम् ॥१६॥ सचैनमब्रवीद्वाक्यंवैनतेयोमहाबलः ॥ माशुचःपुरुषव्याघ्रवधोयंलोकसंमतः ॥१७॥ कपिलेनाप्रमेयेणदग्धाहीमेमहाबलाः॥ सलिलंनार्हसेप्राज्ञदातुमेषांहिलौकिकम् ॥१८॥ गंगाहिमवतोज्येष्ठादुहितापुरुषर्षभ ॥ तस्यांकुरुमहाबाहोपितॄणांसलिलक्रियाम् ॥ १९ ॥ भस्मराशीकृतानेतान्प्लावयेल्लोक पावनी॥तया क्लिन्नमिदंभस्मगंगयालोककांतया ॥२०॥षष्टिःपुत्रसहस्राणि स्वर्गलोकंगमिष्यति ॥ निगच्छाश्वंमहाभागसंगृह्यपुरुषर्षभ ॥ २१ ॥

अपने पितृव्योंके मामाअग्नि समान प्रदीप्तमानूपक्षियोंकेराजा गरुडजीको वहां बैठे देखा॥१६॥महाबली विनतानंदनने असमंजसनन्दन को दुःखीदेखकर कहाहे पुरुषश्रेष्ठ! शोक मत करो यह मृत्यु संसारकी संमतिसे हुई है॥ १७ ॥ महाबलशाली तुम्हारे पितृव्य महात्माकपिलजीके शापसे भस्म हुये हैं अतएव उनकी सद्गतिके अर्थ लौकिकजलमें तर्पण करना ठीक नहीं ॥१८॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! हिमाचलकी गंगा नामक एक बडी पुत्री है तुम उसकेही पवित्र जलसे पितृव्योंका तर्पण करो॥१९॥ त्रिलोक पावन गंगाजी ही भस्मराशि हुये तुम्हारे पितृव्योंके कलेवरकोबहावेंगी उनपवित्र करनेवाली गंगाजीके यह भस्म बहानेसे ॥२०॥ व गंगाके प्रभावसे ६०००० साठहजारपुत्रस्वर्गको जायँगे हे पुरुषश्रेष्ठ!तुम अब महाभाग यज्ञीय अश्व ग्रहणपूर्वक घरको लौटजाओ और ऐसा करो जिससे तुम्हारे

पितामहका यज्ञपूर्ण होजाय ॥ २१ ॥ गरुडजीसे ऐसा सुनकर वीर तपस्वी अंशुमानूजी शीघ्रतासे अश्व सहित अपने घर आ पहुँचे ॥ २२ ॥ हे रघुनन्दन ! तदनन्तर यज्ञमें दीक्षित हुये सगरराजसे यह वृत्तांत और गरुडकी सब वार्ता कही ॥२३॥ महाराज सगरने अंशुमानूसे दारुण संवाद श्रवण करके यथाविधि यज्ञ कार्य पूरा किया ॥२४॥ अनन्तर यज्ञप्रिय लक्ष्मीवान् राजा सगर नगरमें प्रवेश करके किस प्रकार गंगाजी पृथ्वीपर आवेंगी इस विषयकीचिन्ताकरनेलगेपरन्तु कोई निश्चय न करसके ॥२५॥ अंतको राजा इस सम्बन्धमें बहुत दिनोंतक चिन्ता करके कोई उपाय न करसके और तीस हजार वर्ष राज्य करके स्वर्गको सिधारे ॥२६॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० वा० भाषायामेकचत्वारिंश सर्गः॥४१॥हे राम !कालधर्मानुसार महाराज सगरकेस्वर्गवासीहोनेपरप्रजानेधार्मिक अंशु

यज्ञंपैतामहंवीरविवर्तयितुमर्हसि॥सुपर्णवचनंश्रुत्वासोंऽशुमानतिवीर्यवान्॥२२॥ त्वरितंहयमादायपुनरायान्महातपाः॥ततोराजानमासाद्यदीक्षितंरघुनंदन ॥२३॥ न्यवेदयद्यथावृत्तंसुपर्णवचनतथा ॥ तच्छ्रुत्वाघोरसंकाशंवाक्यमंशुमंतोनृपः ॥२४॥ यज्ञंनिर्वर्तयामासयथाकल्पंयथाविधि ॥ स्वपुरंत्वगमच्छ्रीमानिष्टयज्ञोमहीपतिः ॥२५॥ गंगायाश्चागमेराजानिश्चयंनाध्यगच्छत ॥ अगत्वानिश्चयंराजाकालेनमहताम हान् ॥ २६ ॥त्रिंशद्वर्षसहस्राणिराज्यंकृत्वादिवंगतः॥२७॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये चतुर्विंशतिसा० बालकांडे एकचत्वारिंशः सर्गः ॥४१॥ कालधर्मंगतेरामसगरेप्रकृतीजनाः ॥ राजानंरोचयामासुरंशुमंतंसुधार्मिकम् ॥ १ ॥ सराजासुमहानासीदंशुमान्रघुनंदन॥तस्यपुत्रोमहानासीद्दिलीपइतिविश्रुतः ॥ २ ॥ तस्मैराज्यंसमादिश्यदिलीपेरघुनंदन ॥ हिमवच्छिखरेरम्येतपस्तेपेसुदारुणम् ॥३॥ द्वात्रिंशच्छतसाहस्रंवर्षाणिसुमहायशाः ॥ तपोवनगतोराजास्वर्गंलेभेतपोधनः ॥ ४ ॥ दिलीपस्तुमहातेजाःश्रुत्वापैतामहंवधम् ॥ दुःखोपहतयाबुद्ध्यानिश्चयंनाध्यगच्छत ॥ ५ ॥ कथंगंगावतरणं कथंतेषांजलक्रिया ॥ तारयेयंकथंचैतानितिचिंतापरोऽभवत् ॥ ६ ॥

मानकोराजसिंहासनपर प्रतिष्ठितकिया ॥१॥ हे रघुनन्दन!राजा अंशुमानूने बहुतअच्छाराज्यकियाइनकेपुत्र महाप्रतापीदिलीप हुये ॥२॥ अंशुमानूपुत्रको राज्यभार सौंप रमणीक हिमालय पहाडके शिखरपर दारुण तप करने लगे ॥ ३ ॥ औरबत्तीस हजार वर्षतक घोरतप करके वे महायशस्वी तपस्वी स्वर्गकोप्राप्त हुये ॥ ४ ॥ महातेजस्वी महाराज दिलीपभी अपने पितामहोंका विनाशवृत्तान्त श्रवण करके दुःखसे पीडित रहे परन्तु गंगा लानेका कुछ निश्चय न करसके ॥ ५ ॥ किस प्रकार गंगाको लावें कैसे पितामहोंकी जलक्रिया कीजावे किसभाँति उनका उद्धारहो यही चिन्ता रात दिवस महाराज दिलीप करते रहे ॥ ६ ॥

इस धार्मिक राजाके यही चिन्ताकरते२भगीरथ नाम एक पुत्र उत्पन्न हुआ यह परमधार्मिकप्रसिद्ध हुये॥७॥महातेजस्वी महाराज दिलीपने यज्ञोंके अनुष्ठान कियेथे व न्याय सहित ३३०० वर्षतक राज्य किया ॥ ८ ॥ इनको पितामहादिकोंकेउद्धारका उपाय चिन्ता करते २ रोगने आ घेरा और उसी रोगमें मृत्युको प्राप्त हुये ॥ ९ ॥ वह नरश्रेष्ठ अपने सिंहासनपर भगीरथको बिठलाकर अपने कर्मफलसे इन्द्रलोकको चले गये ॥ १० ॥ हे रघुनंदन । उनकेपीछे महाराज भगीरथ बडे धार्मिक राजर्षि हुये इनके कोई पुत्र नहीं था चाहते थे कि सन्तानहोजाय तब गंगाजीके लानेका उपाय कियाजाय ॥११॥हे राम ! जबकोईसन्तान न हुई तो मंत्रियोंकोराज्यभारसमर्पणकर गोकर्णनामक स्थानमेंगंगाजीके आनेके लिये दीर्घकालतक तपस्याकरतेरहे ॥ १२ ॥ वहइन्द्रियोंकोजीतकरकभीमहीनेकेअन्तमें

तस्यचिंतयतोनित्यंधर्मेणविदितात्मनः ॥ पुत्रोभगीरथोनामजज्ञेपरमधार्मिकः ॥७॥ दिलीपस्तुमहातेजायज्ञैर्बहुभिरिष्टवान् ॥ त्रिंशद्वर्षसहस्राणिराजाराज्यमकारयत् ॥८॥ अगत्वानिश्चयंराजातेषामुद्धरणंप्रति ॥ व्याधिनानरशार्दूलकालधर्ममुपेयिवान् ॥९॥ इंद्रलोकंगतोराजास्वार्जितेनैवकर्मणा ॥ राज्येभगीरथंपुत्रमभिषिच्यनरर्षभः ॥ ॥१०॥ भगीरथस्तुराजर्षिर्धार्मिकोरघुनंदन ॥ अनपत्योमहाराजःप्रजाकामःसचाप्रजः ॥११॥ मंत्रिष्वाधायतद्राज्यंगंगावतरणेरतः॥तपोदीर्घंसमातिष्ठद्गोकर्णेरघुनंदन ॥१२॥ ऊर्ध्वबाहुःपंचतपामासाहारोजितेंद्रियः ॥ तस्यवर्षसहस्राणिघोरेतपसितिष्ठतः ॥१३॥अतीतानिमहाबाहोतस्यराज्ञोमहात्मनः॥ सुप्रीतोभगवान्ब्रह्माप्रजानांप्रभुरीऽश्वरः ॥१४॥ ततःसुरगणैःसार्धमुपागम्यपितामहः ॥ भगीरथंमहात्मानंतप्यमानमथाब्रवीत् ॥१५॥ भगीरथमहाराजप्रीतस्तेऽहंजनाधिप ॥ तपसाचसुतप्तेनवरंवरयसुव्रत ॥१६॥ तमुवाचमहातेजाःसर्वलोकपितामहम् ॥ भगीरथोमहाबाहुःकृतांजलिपुटःस्थितः ॥ १७ ॥ यदिमेभगवान्प्रीतोयद्यस्तितपसःफलम्॥सगरस्यात्मजाःसर्वेमत्तःसलिलमाप्नुयुः॥१८॥गंगायाःसलिलक्लिन्नेभस्मन्येषांमहात्मनाम्॥स्वर्गंगच्छेयुरत्यंतं सर्वेचप्रपितामहाः॥१९॥

आहारकरते कभी पंचाग्नितपते व कभी ऊर्ध्वबाहु रहते इसीभाँति घोरतप करते२हजारों वर्षबीते ॥१३॥ जब उन महात्मा महाबाहुराजाको तप करते बहुतसमय बीतगया तब प्रजापति ब्रह्माजी उनके ऊपर प्रसन्न हुये ॥ १४ ॥ तब ब्रह्माजी सुरगणोंसमेत तपस्या करते हुये महात्माभगीरथके निकट उपस्थित होकर उनसे बोले ॥१५॥ हे वत्स भगीरथ महाराज प्रजाके स्वामी ! मैं तुम्हारी तपस्यासे प्रसन्न हुआ अब तुम वर मांगो ॥ १६ ॥ तब वह बडी भुजावाले अधिक तेजस्वी राजा भगीरथजी हाथ जोडकर खड़े हो उन सब लोकके पितामह ब्रह्माजीसे बोले ॥ १७ ॥ हे भगवन् ! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हुये हैं यदि मेरे तपसे कुछ फल होनेकी सम्भावना हो तो महाराज सगरके सब पुत्र मुझसे गंगाजीका जल पावें ॥ १८ ॥ क्योंकि जब उन महात्मा प्रपितामहोंकी भस्म गंगाजलमें

भीगेगी तभी वे स्वर्गको जायँगे और उपाय उनके तरनेका नहीं ॥१९॥ और हे देव! दूसरी प्रार्थना मेरी यह है कि; इक्ष्वाकुकुल लुप्त न हो सो मेरे पुत्र नहीं हैं अतएव पुत्र दीजिये ॥२०॥ जब राजाने ऐसा वचन कहा तो सम्पूर्ण संसारके पितामह ब्रह्माजी मनोहर अक्षरवाली अतिशुभ मधुरवाणी बोले ॥२१॥ हे महारथी भगीरथ! यह तुम्हारा बडा मनोरथहै सो तुम्हारी मनोकामना पूर्ण होगी तुम्हारा मंगलहो॥२२॥ हिमालयकी ज्येष्ठ पुत्री गंगापृथ्वीपर आवेगीसो हे राजन् ! उनका वेग धारण करनेके अर्थ शिवजीकी प्रार्थना करो॥२३॥ हे राजन् ! गंगाजीका गिरना पृथ्वी नहीं सह सकेगी इस कारण शूलपाणिके अतिरिक्त गंगाजीकावेग धारण करनेको और कोई समर्थ नहीं है॥२४॥ सृष्टिकर्त्ता ब्रह्माजी राजाभगीरथ से ऐसाकह और गंगाजीसे यह वचन कहकर कि, यथा समय राजाकेऊपरअनुग्रह

देवायाचेहसंतत्यैनावसीदेत्कुलंचनः ॥ इक्ष्वाकूणांकुलेदेवएषमेऽस्तुवरः परः ॥२०॥ उक्तवाक्यंतुराजानंसर्वलोकपितामहः ॥ प्रत्युवाचशुभां वाणींमधुरांमधुराक्षराम् ॥ २१ ॥ मनोरथोमहानेषभगीरथमहारथ ॥ एवंभवतुभद्रंतेइक्ष्वाकुकुलवर्धन ॥ २२ ॥ इयंहैमवतीज्येष्ठागंगाहिमवतःसुता ॥ तां वैधारयितुंराजन्हरस्तत्रनियुज्यताम् ॥ २३ ॥ गंगायाःपतनंराजन्पृथिवीनसहिष्यते ॥ तांवैधारयितुराजन्नान्यंपश्यामिशूलिनः ॥ २४ ॥ तमेवमुक्त्वाराजानंगांचाभाष्यलोककृत् ॥ जगामत्रिदिवंदेवैःसर्वैःसहमरुद्गणैः ॥ २५ ॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये चतुर्विंशतिसा० बालकांडे द्विचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४२ ॥ देवदेवेगतेतस्मिन्सोंगुष्ठाग्रनिपीडिताम् ॥कृत्वावसुमतींरामवत्सरंसमुपासत ॥ १ ॥ अथसंवत्सरेपूर्णेसर्वलोकनमस्कृतः ॥ उमापतिःपशुपतीराजानमिदमब्रवीत् ॥ २ ॥ प्रीतस्तेहंनरश्रेष्ठकरिष्यामितवप्रियम् ॥ शिरसाधारयिष्यामिशैलराजसुतामहम् ॥ ३ ॥ ततोहैमवतीज्येष्ठासर्वलोकनमस्कृता ॥ तदासातिमहद्रूपंकृत्वावेगंचदुःसहम् ॥ ४ ॥ आकाशादपतद्रामशिवेशिवशिरस्युत ॥ अचिंतयच्चसादेवीगंगापरमदुर्धरा ॥ ५ ॥

करना तब सब देवता और मरुद्गणोंके सहित स्वर्गको चले गये ॥ २५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आ० बाल० भाषायां द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४२ ॥ देवदेव प्रजापतिके देवलोक जानेपर ये भगीरथ पैरके एक अँगूठेसे खडे रह कर एक वर्षतक शिवजीका तप करते रहे ॥ १ ॥ संवत्के बीत जानेपर सर्वलोक वन्दित उमाके पति पशुपति महादेवजी भगीरथसे बोले॥२॥ हे नरश्रेष्ठ ! मैं तुमसे प्रसन्न हुआहूं मैं तुम्हारा प्रियकरके हिमालयकी पुत्री गंगाको अपने शिरपर धारण करूँगा ॥३॥ उससमय नगेन्द्रनन्दिनी गंगाजी अत्यन्त शोभायमान रूप धारण करके प्रबल वेगसे॥४॥ हे राम ! आकाशसे कल्याणरूपी शिवजीके शिरपर गिरी

आकाशसे गिरनेके समय वह परम दुर्धरा गंगादेवी चिन्तना करने लगीकि॥५॥ मैं प्रबल प्रवाहसेशिवसहित पातालमें बैठजाऊंगी धूर्जटि महादेवजी गंगाका यह अभिप्राय जानकर मनमें कुपित हुये ॥ ६ ॥ तिनका ऐसा घमंड जान महादेवजीने चाहा कि ऐसाकरें जिससे हमारी जटामेंही भूलरहैं तब गंगाजी उन पवित्र शिवजी महाराजके शरीरमें गिरीं॥७॥ गंगाजीने बहुतेरा चाहा कि निकलकर भूतलको चली जायँ पर हिमालयके समान अतिगम्भीर जटाओंमें ऐसी घूमी कि किसी यत्नसे बाहर न निकल सकीं॥८॥वे गंगाजी इस भांति जटामंडलमें मंडित हो इसप्रकार बहुत वर्षोंतक उसमें घूमती रहीं कहीं न निकल सकीं॥९॥भगीरथने यह देखकर फिर शिवजीका तप आरम्भ किया हे राम! भगीरथने अत्यन्त तपस्या कर शिवजीको प्रसन्न किया॥१०॥ उनकी तपस्यासे प्रसन्नहो गंगाधरने गंगाजीको जटाजालसे निकालकर बिन्दुसरोवरकी ओरको छोडदिया उनके छोडनेसे सात धाराओंकी उत्पत्ति हुई ॥११॥ ह्लादिनी पावनी और नलिनी यह

विशाम्यहंहिपातालंस्रोतसागृह्यशंकरम् ॥ तस्यावलेपनंज्ञात्वाक्रुद्धस्तुभगवा न्हरः॥ ६ ॥ तिरोभावयितुंबुद्धिंचक्रेत्रिनयनस्तदा ॥ सा तस्मिन्पतितापुण्यापुण्येरुद्रस्यमूर्धनि ॥ ७ ॥ हिमवत्प्रतिमेरामजटामंडलगह्वरे ॥ साकथंचिन्महींगंतुंनाशक्नोद्यत्नमास्थिता ॥ ८ ॥ नैवसा निर्गमंलेभेजटामंडलमंततः ॥ तत्रैवाभ्रमद्देवीसंवत्सरगणान्बहून् ॥ ९ ॥ तामपश्यत्पुनस्तत्रतपःपरममास्थितः ॥ सतेनतोषितश्चासीदत्यंतं रघुनंदन ॥ १० ॥ विससर्जततोगंगांहरोबिंदुसरःप्रति ॥ तस्याविसृज्यमानायांसप्तस्रोतांसिजज्ञिरे ॥ ११ ॥ ह्लादिनीपावनीचैवनलिनीचतथैवच ॥ तिस्रःप्राचींदिशंजग्मुर्गंगाःशिवजलाःशुभाः ॥ १२ ॥ सुचक्षुश्चैवसीताचसिंधुश्चैवमहानदी ॥ तिस्रश्चैतादिशंजग्मुःप्रतीचींतुदिशंशुभाः ॥१३॥ सप्तमीचान्वगात्तासांभगीरथरथंतदा ॥ भगीरथोऽपिराजर्षिर्दिव्यस्यंदनमास्थितः ॥१४॥ प्रायादग्रेमहातेजगंगातंचाप्यनुव्रजत ॥ गगनाच्छंकरशिरस्ततोधरणिमागता ॥ १५ ॥ असर्पतजलंतत्रतीव्रशब्दपुरस्कृतम् ॥ मत्स्यकच्छपसंघैश्चशिशुमारगणैस्तथा॥१६॥ पतद्भिः पतितैःश्चैवव्यरोचतवसुन्धरा ॥ ततोदेवर्षिगंधर्वायक्षसिद्धगणास्तथा ॥ १७ ॥

तीन गंगाके सुन्दर जलकी धारा तो पूर्व दिशाको बहीं॥१२॥सुचक्षु,सीता और सिन्धुनामक महानदी तीन सुन्दरधारा पश्चिमको गईं॥१३॥अवशिष्ट धार सातवीं महाराजभगीरथकेपीछे २चलींराजर्षिभगीरथभी दिव्यरथपरचढकरआगे २ जाने लगे॥१४॥वह महातेजस्वीआगे २और गंगा उनकेपीछे२चली गंगाजी प्रथम शिवजीके जटाजूटमें और वहांसेपृथ्वीपरउतरीं॥१५॥उनकेगमन करनेके समय महाकोलाहल उठाऔर उनकीसलिलराशिमें मत्स्य,कछुए, नाके आदिक जलजन्तुओंको अपनी धारामें बहाया ॥१६॥"किसी२स्थानमें भीषण तरंगसे गीतकरने लगींकहीं२ अंग भंगी दिखातीहुई नृत्युकरतीहुईसी गमन करनेलगीं, किसी२स्थानमें बडे फेनपुंज उनके कर्णभूषणके समानशोभापाने लगे,किसी२स्थलमें वेगके कारण उद्भ्रान्तहुए जलके आवर्त नाभिकेसमान दृष्ट होनेलगे, किसी स्थलमें वेगगामी महास्रोत बडे

वेगसे बहने लगे, कहीं२ जलकी लहरोंसे कलकलध्वनिसुनाई आनेलगी इसप्रकारसे शैलनन्दिनी मन्दाकिनी हावभाव विलास दिखाती हुई भगीरथके पीछे २ चलने
लगीं'उनके गिरनेसे पृथ्वीशोभित होने लगी उस समय व्योममण्डलसे व्योमविहारी देवर्षि गन्धर्व व सिद्धादि ॥१७॥ आकाशसे गंगाके आनेका यह व्यापार देखने
लगे वे देवगणनगराकारबिमान हय और हाथीपर चढेहुए गंगाजीकेदर्शनकरनेको आये ॥१८॥ जैसे२गंगाजीकी धार आगेको बढतीथी यह लोगभी आश्चर्यसे
देखतेहुए संग चले जातेथे मानो इस लोकमें गंगाजीका आना अद्भुतहीथा॥१९॥महातेजस्वी देवताओंकेगंगाजीके देखनके निमित्त आनेसे औरउनकेदेवताओंकेगह
नोंकी चमकसे॥२०॥ विना बादलका नभ ऐसा शोभायमान होताथा मानो सैकड़ों सूर्य निकलेहैं चञ्चलस्वभाव सर्प शिशुमार और मत्यादि जन्तुओंसे ॥२१॥
चारोंओरआकाशसे बिजलीकीसी प्रभा उछलतीथी तब उस समयपीलेवर्णकाफेन हजारोंटुकडे २ इधरउधर फैल गया ॥२२॥तो ऐसा बोध हुआ मानों हंसश्रेणी

व्यलोकयंततेतत्रगगनाद्गांगतांतदा॥विमानैर्नगराकारैर्हयैर्गजवरैस्तदा॥१८॥ पारिप्लवगताश्चापिदेवतास्तत्रविष्ठिताः॥तदद्भुतमिमंलोकेगंगतावर
मुत्तमम्॥१९॥दिदृक्षवोदेवगणाःसमीयुरमितौजसः॥संपतद्भिःसुरगणैस्तेषांचाभरणौजसा॥२०॥ शतादित्यमिवाभातिगगनंगततोयदम्॥ शिशु
मारोरगगणैर्मीनैरपिचचंचलैः॥२१॥विद्युद्भिरिवविक्षिप्तैराकाशमभवत्तदा॥पांडुरैःसलिलोत्पीडैःकीर्यमाणैःसहस्रधा॥२२॥शारदाभ्रैरिवाकीर्णंग
गनंहंससंप्लवैः॥क्वचिद्द्रुततरंयातिकुटिलंक्वचिदायतम्॥२३॥विनतंक्वचिदुद्भूतंक्वचिद्यातिशनैःशनैः॥सलिलेनैवसलिलंक्वचिदभ्याहतंपुनः॥२४॥
मुहुरूर्ध्वंपथंगत्वापपातवसुधांपुनः॥तच्छंकरशिरोभ्रष्टंभ्रष्टंभूमितलेपुनः॥२५॥व्यरोचततदातोयंनिर्मलंगतकल्मषम् ॥ तत्रर्षिगणगंधर्वावसुधा
तलवासिनः॥२६॥भवांगपतितंतोयंपवित्रमितिपस्पृशुः॥शापात्प्रपतितायेचगगनाद्वसुधातलम् ॥२७॥ कृत्वातत्राभिषेकंतेबभूवुर्गतकल्मषाः ॥
धूतपापाःपुनस्तेनतोयेनाथशुभान्विताः ॥२८॥ पुनराकाशमाविश्यस्वाँल्लोकान्प्रतिपेदिरे ॥ मुमुदेमुदितोलोकस्तेनतोयेनभास्वता ॥ २९ ॥

समन्वित शरद्के मेघोंसेदिङ्मंडलछारहाहै इसी समयजाह्नवीकावेगकहींद्रुतकहींटेढाकहींचौडेफाटका ॥२३॥ कहींनीचकही ऊँचा होता जाता था स्थान विशेषवा
सलिलकेसंयोगसेगंगाकाजलताडितहोउछलनेलगा ॥२४॥ किसीस्थानमेंजलका प्रवाह ऊपर चढकर फिर नीचे गिरा वह शंकरकेशिरसेगिराऔरफिरपृथ्वीपर आया
हुआ जल ॥२५॥ सर्व पापकानाशकरनेवालावहगंगाकाजलनिर्मलभावसे शोभा पाने लगा. तब ऋषि और गन्धर्व व पृथ्वी के रहनेवाले॥२६॥सभी शिवजीके शिर
परसे गिरेहुए पवित्रजलकोस्पर्शकर व स्नानादि करते करातेजो शापसे आकाशसे भूतल में आये थे ॥२७॥ वह भी पवित्र नीरके छूतेही स्नान कर पापरहित हो
शापसे छूटे, उसपवित्र जलके स्पर्श आचमनसे पवित्र हो ॥२८॥ फिर आकाशमें पहुँच अपने स्वर्गलोकको पहुँचे. गंगाजीके दर्शन करनेसे सब आनन्दितहो॥२९॥

स्नानादि समापनपूर्वक भलीप्रकारसे निष्पापहोगये राजर्षि भगीरथजीभी॥३०॥ दिव्य रथपर चढकर आगे२गमन करने लगे गंगाजी उनके पीछे२जाने लगीं देवतालोग ऋषिगण समस्त दैत्य, दानव.राक्षस॥३१॥गन्धर्व श्रेष्ठ,यक्ष,किन्नर नाग सर्प व अप्सरायें हे राम ! यह सभी भगीरथजीके पीछे चलेजातेथे ॥३२॥ इसभांतिजलचरतक प्रीतियुक्तहोगंगाजीकाअनुसरण करतेचले,जिसमार्गसेभगीरथजातेउसी पंथसेयशस्विनी गंगाजी गमन करनेलगीं॥३३॥तदनन्तर त्रिलोकपावन करनेवाली गंगाजी जाते२विचित्र कर्म करने वाले जह्नुमुनिके यज्ञ क्षेत्रमें वेग सहितउपस्थित हुई॥३४॥इनके आनेसेहीऋषिकायज्ञस्थलबहगयागंगाकोगर्वहुआजान जह्नु अति क्रोधितहुये॥३५॥ वह मुनि क्षणकालमें भागीरथीका सब अद्भुत जलपीगये इसको देखदेवता गन्धर्व व ऋषिगण विस्मित हो गये॥३६॥और ऋषिजह्नुकी

कृताभिषेकोगंगायांबभूवगतकल्मषः॥ भगीरथोहिराजर्षिर्दिव्यंस्यंदनमास्थितः॥३०॥ प्रायादग्रेमहाराजस्तंगंगापृष्ठतोऽन्वगात्॥देवाःसर्षिग णाःसर्वेदैत्यदानवराक्षसाः ॥३१॥गंधर्वयक्षप्रवराःसकिन्नरमहोरगाः॥सर्पाश्चाप्सरसोरामभगीरथरथानुगाः॥३२॥ गंगामन्वगमन्प्रीताःसर्वेजल चराश्चये ॥यतोभगीरथोराजाततोगंगायशस्विनी ॥३३॥जगामसरितांश्रेष्ठासर्वपापप्रणाशिनी ॥ततोहियजमानस्यजह्नोरद्भुतकर्मणः ॥ ३४॥ गंगासंप्लावयामासयज्ञवाटंमहात्मनः॥ तस्यावलेपनंज्ञात्वाक्रुद्धोजह्नुश्चराघव॥३५॥अपिबत्तुजलंसर्वंगंगायाःपरमाद्भुतम्॥ततोदेवाःसगंधर्वाऋ षयश्चसुविस्मिताः ॥३६पूजयंतिमहात्मानंजह्नुपुरुषसत्तमम्॥गंगाचापिनयंतिस्मदुहितृत्वेमहात्मनः ॥ ३७ ॥ ततस्तुष्टोमहातेजाः श्रोत्राभ्या मसृजत्प्रभुः॥तस्माजह्नुसुतागंगाप्रोच्यतेजाह्नवीतिच॥३८॥जगामचपुनर्गंगाभगीरथरथानुगा॥सागरंचापिसंप्राप्तासासरित्प्रवरातदा॥३९॥रसा तलमुपागच्छत्सिद्धयर्थंतस्यकर्मणः॥भगीरथोऽपिराजर्षिर्गंगामादाययत्नतः॥४०॥पितामहान्भस्मकृतानपश्यद्गतचेतनान् ॥अथतद्भस्मनांराशिं गंगासलिलमुत्तमम्॥४१॥प्लावयत्पूतपाप्मानःस्वर्गप्राप्तारघूत्तम॥४२॥इत्यार्षेश्रीमद्रामायणे वा०आ० चतुर्विं०सा०बा० त्रिचत्वारिंशःसर्गः४३॥

पूजा स्तुतिकर बोले कि,हे महात्मा ! आजसे सरिद्वरा गंगाजी आपकीकन्याहुई ॥३७॥ तदनन्तर तेजस्वी महात्माजह्नुने सन्तुष्टहोकर अपने कानोंकेमार्गसे जल कोनिकालदियातबसे गंगाजीका नामजाह्नवीहुआ जह्नुसुता तबहीसे कहलाती हैं ॥३८॥ तदनन्तर गंगाजी फिरभगीरथकीअनुगामिनीहोगमनकरने लगीं और तब यह श्रेष्ठ नदी समुद्रमें मिलीं॥३९॥ फिर वहांसेराजा भगीरथका कार्यसिद्ध करनेको रसातलमें प्रवेश किया राजा भगीरथभी अतियत्नसे पूर्व पुरुषोंका उद्धार करनेके लिये उनको वहां लेगये॥४०॥अपने पूर्वपुरुषोंको भस्म हुआ देखराजा भगीरथ अचेत होगये हे राम ! तब श्रीगंगाजीका पवित्र सलिलउस भस्मराशिपर ॥४१॥ पडते ही वह सगरकेसाठ हजार पुत्र देवलोकको चलेगये॥४२॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० भाषायां त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४३ ॥

इस सर्गके अंतमें संक्षेप रीतिसे राजा सगरके पुत्रोंका तरना कहा गया सो अब विस्तारसहित कहते हैं कि, महाराज भगीरथ समुद्रके किनारे पर जहां सगर पुत्रोंकी भस्म पड़ी थी वहां पहुँचे और उनके पीछे २ गंगाजीभी पहुंची ॥१॥ हे रामचन्द्र ! जब गंगाजल सब भस्म राशिपरपडा तबलोक पितामह ब्रह्माजी भगीरथसे आकर बोले ॥२॥ हे राजर्षे ! तुमसे तुम्हारे पूर्वजोंका उद्धार होगया अब वह सब देवताओंके समान स्वर्ग लोकको चले गये महात्मा सगरके साठ हजार पुत्र तरगये ॥३॥ हे राजा जबतक समुद्रमें जल रहेगा तबतक सगरसन्तानगण देवताओंके समान स्वर्गलोकमें वास करेंगे ॥४॥ अबसे यह गंगा तुम्हारी ज्येष्ठ कन्या हुई तुम्हारानाम संसारमें चिरकालतक प्रसिद्ध रहेगा और तुम्हारे नामसे गंगा भागीरथी नामसे ख्यातहोगी ॥५॥ इनके दूसरेनाम त्रिपथगा दिव्या भागी

सगत्वासागरंराजागंगयानुगतस्तदा ॥ प्रविवेशतलंभूमेर्यत्रतेभस्मसात्कृताः ॥१॥ भस्मन्यथाप्लुतेरामगंगायाःसलिलेनवै॥सर्वलोकप्रभुर्ब्रह्मा राजानमिदमब्रवीत् ॥ २ ॥ तारितानरशार्दूलदिवंयाताश्चदेववत्॥षष्टिःपुत्रसहस्राणिसगरस्यमहात्मनः ॥३॥ सागरस्यजलंलोकेयावत्स्था स्यतिपार्थिव ॥सगरस्यात्मजाःसर्वेदिविस्थास्यंतिदेववत्॥४॥इयंचदुहिताज्येष्ठातवगंगाभविष्यति॥ त्वत्कृतेनचनाम्नाथलोकेस्थास्यतिवि श्रुता ॥ ५ ॥ गंगात्रिपथगानामदिव्याभागीरथीतिच॥त्रीन्पथोभावयंतीतितस्मात्त्रिपथगास्मृता ॥६॥पितामहानांसर्वेषांत्वमत्रमनुजाधिप ॥ कुरुष्वसलिलंराजन्प्रतिज्ञामवपर्जय ॥७॥ पूर्वकेणहितेराजंस्तेनातियशसातदा ॥ धर्मिणांप्रवरेणाथनैषप्राप्तोमनोरथः॥८॥ तथैवांशुमतावत्स लोकेऽप्रतिमतेजसा ॥ गंगांप्रार्थयतानेतुंप्रतिज्ञानापवर्जिता ॥ ९ ॥ राजर्षिणांगुणवतामहर्षिसमतेजसा ॥ मत्तुल्यतपसाचैवक्षत्रधर्मस्थितेन च ॥ १० ॥ दिलीपेनमहाभागतवपित्रातितेजसा ॥ पुनर्नशकितानेतुंगंगांप्रार्थयताऽनघ ॥ ११ ॥ सात्वयासमतिक्रांताप्रतिज्ञापुरुषर्षभ ॥ प्राप्तोऽसिपरमंलोकेयशःपरमसंमतम् ॥ १२ तच्चगंगावतरणंत्वयाकृतमरिंदम ॥ अनेनचभवान्प्राप्तोधर्मस्यायतनंमहत् ॥ १३ ॥

रथी होंगेजिससे स्वर्गमृत्यु पाताल तीनलोकोंके मार्गमें हो गंगाजीबहीं इसी कारण उनका त्रिपथगा नाम हुआ॥६॥ हे राजन् अब तुम अपने पूर्व पुरुषोंका तर्पण यहींकरोऔरअपनेकोप्रतिज्ञासेछुडाओ ॥७॥ तुम्हारे पूर्वज धर्मकरनेवालोंमें श्रेष्ठ महाराजसगर इच्छाकरनेमेंभी यहमनोरथ सिद्धनहींकरसकेथे ॥८॥ हे वत्सउनके पश्चात्इसीप्रकारअमिततेजवान् अंशुमान्नेगंगालानेकी प्रतिज्ञाकीथीकिन्तुवहभी कृतकार्यनहीं हुये ॥९॥ तदनन्तरराजर्षिमहर्षितुल्यतेजस्वीमेरीसमानतपस्वीक्षत्त्रिय धर्मके प्रतिपालक॥१०॥ हेबडभागीपापरहित!तुम्हारेतेजस्वी पिता राजा दिलीपभी गंगाजीकीप्रार्थनाकरतेरहेपरसफलकार्य नहुये ॥११॥ हेपुरुषश्रेष्ठ!तुमनेवहप्रतिज्ञा पूर्णकरके संसारमें निष्कलंकयश प्राप्त किया है ॥१२॥ हे शत्रुके मारनेवाले ! तुमने जो पृथ्वीपर गंगाजीको उतारा हैइससे तुमको महान्धर्मकी प्राप्ति हुईहै॥१३॥

पवित्र या अपवित्रकालमें गङ्गास्नान करनेमें कोई हानिनहीं और नदियोंकाजलसावन भादोंमें दूषित हो जाताहै अतएव हेपुरुषश्रेष्ठ ! हेसज्जनोंसेसेवित ! हेनरोत्तम ! तुम इसमें नहाकर पवित्रहो और दिव्य फल पाओ ॥१४॥ तुम अपने पितृपुरुषोंके लिये तर्पण करो हे राजन् ! तुम्हारा मंगल हो अबमैं अपने स्थानकोजाता हूं ॥१५॥ देवताओंकेईश्वर सम्पूर्ण लोकोंके पितामह प्रजापतिब्रह्माजीयह कहकर जहांसेआये थे उसी स्थानको चले गये ॥ १६ ॥ महायशस्वी राजर्षि भगीरथने राजा सगरके पत्र अपने पूर्वपुरुषोंकी जलक्रिया यथाविधि न्याय सहित की ॥१७॥ वह जलक्रिया सम्पन्न कर पवित्रहो राजा अपनी राजधानीमें आये और वह मनुष्यश्रेष्ठ परमानन्दसे राजकार्य करने लगे ॥ १८ ॥ हे राघव ! सब लोक नरनाथके दर्शन करके अति सन्तुष्ट हुये उस समय किसीके मनमें शोक

प्लावयस्वत्वमात्मानंनरोत्तमसदोचिते ॥ सलिलेपुरुषश्रेष्ठशुचिः पुण्यफलोभव॥१४॥ पितामहानांसर्वेषांकुरुष्वसलिलक्रियाम् ॥ स्वस्तितेऽस्तुगमिष्यामिस्वंलोकंगम्यतांनृप ॥१५ ॥ इत्येवमुक्त्वादेवेशः सर्वलोकपितामहः॥ यथाऽऽगतंतथाऽगच्छद्देवलोकंमहायशाः ॥१६॥ भगीरथस्तुराजर्षिः कृत्वासलिलमुत्तमम् ॥ यथाक्रमंयथान्यायंसागराणांमहायशाः ॥१७॥ कृतोदकः शुचीराजास्वपुरंप्रविवेशह ॥ समृद्धार्थोनरश्रेष्ठस्वराज्यंप्रशशासह ॥१८॥ प्रमुमोदचलोकस्तंनृपमासाद्यराघव ॥ नष्टशोकः समृद्धार्थोबभूवविगतज्वरः ॥१९॥ एषतेरामगंगायाविस्तरोऽभिहितोमया ॥ स्वस्तिप्राप्नुहिभद्रंतेसंध्याकालोऽतिवर्तते ॥२०॥ धन्यंयशस्यमायुष्यंपुत्र्यंस्वर्ग्यमथापिच॥ यः श्रावयतिविप्रेषुक्षत्रियेष्वितरेषुच ॥ २१ ॥ प्रीयंतेपितरस्तस्यप्रीयंतेदैवतानिच॥ इदमाख्यानमायुष्यंगंगावतरणंशुभम् ॥२२॥ यः शृणोतिचकाकुत्स्थसर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ सर्वे पापाः प्रणश्यंतिआयुः कीर्तिश्चवर्धते ॥२३॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये चतुर्विंशतिसा० बालकांडे चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥४४॥ विश्वामित्रवचः श्रुत्वाराघवः सहलक्ष्मणः ॥ विस्मयंपरमंगत्वाविश्वामित्रमथाब्रवीत् ॥ १ ॥

व दुश्चिन्ताका आधिपत्य नहीं रहा सब धनवान् व विगतज्वर होगये ॥१९॥ हे रामचन्द्र ! यह तुमसे गंगाजीका वृत्तांत विस्तारसहित कहा तुम्हारामंगलहोदेखोकथा कहते २ संध्या होने आई॥२०॥ जो ब्राह्मणक्षत्रिय या अपर जातिकोयशस्करआयुष्कर पुत्रदायक व स्वर्गदायक यह वृत्तांत सुनावेंगे अथवाजोब्राह्मणदूसरोंको सुनावेंगे ॥२१॥ उनसे पितृ व देवगण प्रसन्न रहेंगे यह गंगाजीके आनेका व्याख्यान शुभ औरआयुकादेनेवाला है ॥२२॥ हे राम ! जोमनुष्यइ सवृत्तान्तकोश्रवण करता है वह सब पापोंसे छूटकर दीर्घायुको लाभ करता है मनवांछित फल प्राप्त होते हैं और उसकीकीर्ति फैल जाती है ❋ ॥२३॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदि० बालकाण्डेभाषायांचतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥४४॥ विश्वामित्रजीसे यह कथा सुन रामलक्ष्मणसहित अत्यन्त विस्मितहो विश्वामित्र ऋषिजीसे बोले॥१॥

कवित्त ॥ गंगाको चरित्र लखि कहत यमराज यों ऐरे चित्रगुप्त मेरे हुकममें कान दे ॥ कहै पद्माकर नरकनको मूंदराख बंद कर दरवाजे तज यह स्थान दे ॥ देख यह देवनदी महिमा सब देवतान दूतनको बुल यह बिथाके वेग पान दे ॥ फार डार फरदें न राख रोजना मचे न खाते खातिआय त्यों बहीको वह जान दे ।

हे ब्रह्मन् ! पृथ्वीपर गंगाका आनाऔरगंगाजलसे समुद्रकापूर्ण होना जो आपने कहा सो अत्यन्त अद्भुत घटना है ॥२॥ हे परंतप! आपकी इस सम्पूर्ण मधुर कथाको चिंन्ता करते२हमको यह रात्रि एकपलके समानजान पड़ी ॥३॥ हे विश्वामित्रजी ! रात्रिमें हमने और कुछनहीं किया केवल उसी कथाकी चिन्तनामें लगे रहे मुझे और लक्ष्मणको सारीरात इसी कथाका ध्यान रहा ॥४॥ अनन्तर प्रभातकाल होतेही संध्याप्रभृतिकार्यकरकेशत्रुओंकेमारनेवालेरामचन्द्रजी तपोधन विश्वामित्रजीसे बोले ॥ ५ ॥ हे भगवन् ! रात्रिबीत गई प्रभातहो गया अब चलिये नदियोंमें श्रेष्ठ पुण्य देनेवाली त्रिपथगामिनी गंगाःजीको उतरें ॥ ६ ॥ पुण्य कर्मवाले ऋषियोंने हमारे लिये सुन्दर बिछौनेयुक्त नाव तैयार कर रक्खी है आपको यहां आये हुये जान वह लोग जल्दीसे यहां आये हैं ॥७॥ महात्मा

अत्यद्भुतमिदंब्रह्मन्कथितंपरमंत्वया॥गंगावतरणंपुण्यंसागरस्यापिपूरणम् ॥२॥ क्षणभूतेवनौरात्रिःसंवृत्तेयंपरंतप ॥ इमांचिंतयतःसर्वांनिखि लेनकथांतव ॥३॥ तस्यसाशर्वरीसर्वाममसौमित्रिणासह॥जगामचिंतयानस्यविश्वामित्रकथांशुभाम् ॥४॥ ततःप्रभातेविमलेविश्वामित्रंतपो धनम्॥उवाचराघवोवाक्यंकृताह्निकमरिंदमः ॥ ५ ॥ गताभगवतीरात्रिःश्रोतव्यंपरमाद्भुतम् ॥ तरामसरितांश्रेष्ठांपुण्यांत्रिपथगांनदीम् ॥६॥ नौरेषाहिसुखास्तीर्णाऋषीणांपुण्यकर्मणाम्॥भगवंतमिहप्राप्तंज्ञात्वात्वरितमागता ॥७॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाराघवस्यमहात्मनः ॥ संतारंकारया माससर्षिसंघस्यकौशिकः ॥८॥ उत्तरंतीरमासाद्यसंपूज्यर्षिगणंततः॥ गंगाकूलेनिविष्टास्तेविशालांददृशुः पुरीम् ॥९॥ततोमुनिवरस्तूर्णंजगा मसहराघवः ॥ विशालांनगरींरम्यांदिव्यांस्वर्गोपमांतदा॥१०॥अथरामोमहाप्राज्ञोविश्वामित्रंमहामुनिम्॥पप्रच्छप्रांजलिर्भूत्वाविशालामुत्तमां पुरीम्॥११॥कतमोराजवंशोऽयंविशालायांमहामुने ॥ श्रोतुमिच्छामिभद्रंतेपरंकौतूहलंहिमे ॥१२॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वारामस्यमुनिपुंगवः॥आ ख्यातुतत्समारेभेविशालायाःपुरातनम् ॥ १३ ॥ श्रूयतांरामशक्रस्यकथां कथयतःश्रुताम् ॥ अस्मिन्देशेहियद्वृत्तंशृणुतत्त्वेनराघव ॥ १४ ॥

रामचन्द्रजीसे यह सुनकर महर्षि विश्वामित्रजी ऋषियों समेत गंगापार हुये॥८॥ क्रमसे उन लोगोंने उत्तरतीर उपस्थितहोअभ्यागत ऋषियोंका आदरसन्मानकर वहां कुछ देर बैठ एक विशाल नाम पुरी देखी ॥ ९ ॥ तदनन्तर शीघ्रतासे स्वर्गसदृश उस दिव्य विशालपुरीके सामनेको रामचन्द्र लक्ष्मण सहित मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्र गमनकरने लगे, ॥ १० ॥ तब उस समय महाप्राज्ञ हाथ जोडकर विश्वामित्रजीसे इस विशाल नगरीके समाचार पूछे ॥ ११ ॥ हे महामुने ! इस विशालपुरीमें कौन राजवंशी राज्य करता है; मैं इसके श्रवणकरनेको कौतूहलाक्रान्त हुआ हूं अतएव आपका मंगलहो यह सब वृत्तांत कहिये ॥१२॥ तब महर्षि विश्वामित्रजी रामचन्द्रजीके यह वचन सुनकर इस पुरीकाप्राचीन इतिहास कहने लगे, हे रामचन्द्र ! सुनिये ॥१३॥ सुराधिप इन्द्रसे मैंने इस पुरीका वृत्तान्त

जानाहै सो सम्पूर्ण यथातत्त्व कहता हूं श्रवण करो ॥१४॥ हे राम ! पहले सत्य युगमें दितिके पुत्र महाबलवान् असुरगण और अदिति पुत्र महाभागबली धार्मिक ॥१५॥ महात्मा देवताओंकी यह वासना हुई कि; किस उपायसे हम लोग अजर अमर और नीरोगी होसकतेहैं ॥१६॥ तदनन्तर विचार करके यह उपाय ठहरायागया कि, समुद्रमथकर अमृतपानकरनेसे हमारी मनोकामना पूर्ण होगी ॥१७॥ वह महापराक्रमीलोग यह ठहराकर समुद्र मंथन करनेमें प्रवृत्त हुये तब मन्दराचल मथानी और वासुकीको रस्सीबनाकर मंथनकार्यआरंभहुआ ॥१८॥ इसप्रकार सहस्रवर्षबीतजानेपर वासुकीजहरउछालने और दातोंसे मन्दराचलकी शिलायें काटनेलगे ॥ १९ ॥ उनके शिलाकाटनेसे उससागरमेंऐसाहलाहल महाविष अग्निसमान निकला कि, इसकेतेजसेसुरासुर और नरोंसहितविश्वसंसार

पूर्वंकृतयुगेरामदितेःपुत्रामहाबलाः ॥ अदितेश्चमहाभागावीर्यवंतःसुधार्मिकाः ॥ १५ ॥ ततस्तेषांनरव्याघ्रबुद्धिरासीन्महात्मनाम् ॥ अमरा विजराश्चैवकथंस्यामोनिरामयाः ॥ १६ ॥तेषांचिंतयतांतत्रबुद्धिरासीद्विपश्चिताम् ॥ क्षीरोदमथनंकृत्वारसंप्राप्स्यामतत्रवै ॥ १७ ॥ ततोनि श्चित्यमथनंयोक्त्रंकृत्वाचवासुकिम् ॥ मंथानंमंदरंकृत्वाममंथुरमितौजसः ॥ १८ ॥ (अथवर्षसहस्रेणयोक्त्रंसर्पशिरांसिच ॥ वमंतोऽतिविषंत त्रददंशुर्दशनैःशिलाः ॥१९॥ उत्पपाताग्निसंकाशंहालाहलमहाविषम् ॥ तेनदग्धंजगत्सर्वंसदेवासुरमानुषम् ॥ २० ॥ अथदेवामहादेवंशंकरं शरणार्थिनः ॥ जग्मुः पशुपतिंरुद्रंत्राहित्राहीतितुष्टुवुः ॥ २१ ॥ एवमुक्तस्ततोदेवैर्देवदेवेश्वरः प्रभुः ॥ प्रादुरासीत्ततोऽत्रैवशंखचक्रधरोहरिः ॥२२ ॥ उवाचैनंस्मितंकृत्वारुद्रंशूलधरंहरिः ॥ दैवतैर्मथ्यमानेतुयत्पूर्वंसमुपस्थितम् ॥२३॥ तत्त्वदीयंसुरश्रेष्ठसुराणामग्रतोहियत् ॥ अग्र पूजामिहस्थित्वागृहाणेदंविषंप्रभो ॥२४॥ इत्युक्त्वाचसुरश्रेष्ठस्तत्रैवांतरधीयत ॥ देवतानांभयंदृष्ट्वाश्रुत्वावाक्यंतुशार्ङ्गिणः ॥ २५ ॥ हाला हलंविषंघोरंसंजग्राहामृतोपमम् ॥ देवान्विसृज्यदेवेशोजगामभगवान्हरः ॥ २६ ॥

दग्ध होने लगा ॥२०॥ तब देवता महादेवशंकरशिवजीकी शरणजानेकीइच्छा कर पशुपति रुद्रके पास जाकर रक्षा करो ! रक्षाकरो ! कह कर उनकी स्तुतिकरने लगे ॥२१॥ जब देवताओंने शिवजीकी ऐसी स्तुति की तब देवदेव महादेवजी वहां प्रगट हुए व इतनेहीमें शंखचक्रधारी भगवान् हरिभी वहां प्रगट हुए ॥२२॥ तब मुसकाकर विष्णुजी शूल धारण करनेवाले शिवजीसे बोले कि,समुद्र मथनसे देवताओंके द्वारा जो चीजप्रथमनिकली॥२३॥हे देवताओंमें श्रेष्ठ!वह तुम्हें मिलनी चाहियेक्योंकि आप सब देवताओंमें अग्रणीहो अतएव यहां विराजकर आपप्रथम पूजनीय होनेके कारण यह प्रथम निकला हुआ विष ग्रहण कीजिये ॥ २४ ॥ इतनाकह माधव तो वहांसेअन्तर्धानहोगये महादेवजी देवगणोंको भयभीत देख व श्रीविष्णुजीके वचन सुन ॥२५॥ नीलकंठ विष ग्रहण करनेमें सम्मत हुये और

अमृत जानकरउसको पीगये फिर देवताओंकेईश्वर भगवान्शिवजी देवताओंको बिदा कर आप अपने स्थानको चलेगये ॥ २६ हे राम!तब सब देवता और असुर फिर समुद्रको मथनेलगे तब मन्दराचलजो मथानी बनाया गया था वह धीरे २ पातालको चलनेलगा ॥ २७ ॥ तब अमरगण गन्धर्वों समेत मधुसूदनको यह कहकर स्तुति करने लगे हे प्रभो ! आपही सब जीवोंके स्वामी विशेष करके देवताओंकेएमात्र सहायकहो ॥२८॥ अतएव मन्दराचलको उद्धारकरके हमारी रक्षा करो कमलापतिने यह सुनकर कच्छपरूप धारण किया ॥२९॥ वह पीठ पर मन्दराचलको धारणकर सागरशायी रहे व पर्वतका शिखरग्रहण करके श्रीभगवान् दूसरे रूपसे ॥ ३० ॥ देवताओंके मध्यमें स्थितहो पुरुषोत्तम समुद्र मथने लगे इस भांति हजार वर्ष बीतगये तो आयुर्वेदके आचार्य ॥ ३१ ॥ दंड और

ततोदेवाःसुराःसर्वेममंथूरघुनंदन ॥ प्रविवेशायपातालंमंथानःपर्वतोत्तमः ॥ २७ ॥ ततोदेवाःसगंधर्वास्तुष्टुवुर्मधुसूदनम् ॥ त्वंगतिःसर्वभूतानां विशेषेणदिवौकसाम् ॥ २८ ॥ पालयास्मान्महाबाहोगिरिमुद्धर्तुमर्हसि ॥ इतिश्रुत्वाहृषीकेशःकामठंरूपमास्थितः ॥२९॥ पर्वतंपृष्ठतःकृत्वा शिश्येतत्रोदधौहरिः ॥ पर्वताग्रंतुलोकात्माहस्तेनाक्रम्यकेशवः ॥३०॥ देवानांमध्यतःस्थित्वाममंथपुरुषोत्तमः ॥ अथवर्षसहस्रेणआयुर्वेदमयः पुमान् ॥३१॥)उदतिष्ठत्सधर्मात्मासदंडःसकमंडलुः ॥ अथधन्वंतरिर्नामअप्सराश्चसुवर्चसः॥३२॥ अप्सुनिर्मथनादेवरसात्तस्माद्वरस्त्रियः॥ उत्पेतुर्मनुजश्रेष्ठतस्मादप्सरसोऽभवन् ॥ ३३ ॥ षष्टिःकोट्योऽभवंस्तासामप्सराणांसुवर्चसाम् ॥ असंख्येयास्तुकाकुत्स्थयास्तासांपरिचारिकाः ॥३४॥ नताःस्मप्रतिगृह्णंतिसर्वेतेदेवदानवाः ॥ अप्रतिग्रहणादेवतावैसाधारणाःस्मृताः ॥३५॥ वरुणस्तुततःकन्यावारुणीरघुनंदन ॥ उत्पपातमहाभागमार्गमाणापरिग्रहम् ॥ ३६ ॥ दितेः पुत्रानतांरामजगृहुर्वरुणात्मजाम् ॥ अदितेस्तुसुतावीरजगृहुस्तामनिंदिताम् ॥ ३७ ॥ असुरास्तेनदैतेयाःसुरास्तेनादितेःसुताः ॥ हृष्टाःप्रमुदिताश्चासन्वारुणीग्रहणात्सुराः ॥ ३८ ॥

कमंडलुलिये धर्मात्मा धन्वन्तरिजी और सुन्दरी अप्सरायें समुद्रसे निकलीं॥३२॥ हेनरश्रेष्ठ ! मथन करनेके समय जलकेस्वरूप रससे जो इनकी उत्पत्ति हुई इस कारण अप्सरा कही गईं ॥३३॥ हे काकुत्स्थ!वह सुन्दर अप्सरायें गिनतीमें साठ करोड हुईं परन्तु उनकी दासियोंकी संख्या नहींहोसकती ॥३४॥ समुद्रकी निकली अप्सराओंको न दैत्योंने न देवताओंने ग्रहण किया इसकारण वह साधारण स्त्रियाँ हुईं देवता, असुर, मनुष्योंमें उनको जो चाहे ग्रहण करले ॥३५॥ हे रघुनन्दन ! तदनन्तर वरुणकी कन्या सुरारूपिणी निकली वह निकलतेही अपने अंगीकार करनेवालेको खोजने लगी ॥ ३६ ॥ हे राम ! दिति पुत्र असुरोंने उसे ग्रहण नहींकिया परन्तु देवताओंने आनन्ददायिनी जान उसको स्वीकार कर लिया ॥ ३७ ॥ इसी कारण सुरा जो मदिरा उसके नग्रहण करनेसे दैत्यगण

असुर व ग्रहण करनेसे देवता सुर कहाये वारुणीको ग्रहण कर देवतालोग बहुत आनन्दित हुए ॥ ३८ ॥ फिर समुद्रसे उच्चैःश्रवा श्रेष्ठघोडा, कौस्तुभ मणि, हे नरश्रेष्ठ ! और पीछेसे अमृत निकला ॥३९॥ हे राम ! व उसके अर्थही महाभयंकर कुलक्षयहुये इसमें देवदानव बहुतेरे मारेगये क्योंकि अदितिके पुत्रोंनेदिति के पुत्रोंके साथ बड़ा युद्ध किया ॥ ४० ॥ इस लडाईमें देवता राक्षस सब एकहोगये इसमें त्रिलोकीका मोहनेवाला महाभयंकर युद्ध हुआ ॥४१॥ जब भयंकर युद्ध होनेलगा तब भगवान् विष्णु मायासे मोहिनी रूपधारण कर अमृत हरण कर लेगये ॥४२॥ उस समय ओंकाररूप सनातन अविनाशी विष्णुजीके प्रतिकूल जो असुर खड़ा हुआ उसकोही विष्णुजीने वैष्णवी चक्रसे चूर्ण कर डाला ॥४३॥ इसप्रकार अदितिके वीर पुत्र अगणित दैत्य इस देवासुर संग्राममें मारे गये॥४४॥

उच्चैःश्रवाहयश्रेष्ठोमणिरत्नंचकौस्तुभम्॥उदतिष्ठन्नरश्रेष्ठतथैवामृतमुत्तमम् ॥३९॥ अथतस्यकृतेराममहानासीत्कुलक्षयः॥अदितेस्तुततःपुत्राविति पुत्रानयोधयन् ॥४०॥ एकतामगमन्सर्वेअसुराराक्षसैःसह॥युद्धमासीन्महाघोरंवीरत्रैलोक्यमोहनम् ॥ ४१ ॥ यदाक्षयंगतंसर्वंतदाविष्णुर्महाबलः ॥ अमृतंसोऽहरत्तूर्णंमायामास्थायमोहिनीम् ॥४२॥ येगताभिमुखंविष्णुमक्षरंपुरुषोत्तमम् ॥ संपिष्टास्तेतदायुद्धेविष्णुनाप्रभविष्णुना ॥४३॥अदितेरात्मजावीरादितेःपुत्रान्निजघ्निरे॥अस्मिन्घोरेमहायुद्धेदैतेयादित्ययोर्भृशम्॥४४॥निहत्यादितिपुत्रांस्तुराज्यंप्राप्यपुरंदरः॥शशासमुदितोलोकान्सर्षिसंघान्सचारणान् ॥(४५)॥३२॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये चतुर्विंशतिसा० बालकांडे पंचचत्वारिंशः सर्गः॥४५॥हतेषुतेषुपुत्रेषुदितिःपरमदुःखिता॥मारीचंकश्यपंनामभर्तारमिदमब्रवीत्॥१॥ हतापुत्रास्मिभगवंस्तवपुत्रैर्महात्मभिः॥ शक्रहंतारमिच्छामिपुत्रंदीर्घतपोऽर्जितम्॥२॥साहंतपश्चरिष्यामिगर्भंमेदातुमर्हसि॥ईश्वरंशक्रहंतारंत्वमनुज्ञातुमर्हसि ॥ ३ ॥ तस्यास्तुद्वचनंश्रुत्वामारीचःकश्यपस्तदा॥ प्रत्युवाचमहातेजादितिंपरमदुःखिताम् ॥४॥ एवंभवतुभद्रंतेशुचिर्भवतपोधने ॥ जनयिष्यसिपुत्रंत्वंशक्रहंतारमाहवे॥५॥

अन्तमें पुरन्दर दितिकेपुत्र असुरोंका संहार करकेअपना राज्य अधिकार करते हुये और प्रफुल्लमनसे ऋषिसमूह और चारण सब लोकोंका शासन करने लगे ॥४५॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदि० बाल० भाषायां पंचचत्वारिंशः सर्गः ॥४५॥ दैत्यजननी दितिपुत्रोंके मारे जानेसे दुःखीहो मरीचिपुत्र अपने पति कश्यपजीसे बोली ॥ १ ॥ हे भगवन् ! आपके पुत्र देवता मेरे पुत्रोंका नाश कर रहे हैं अतएवतपस्या करके इन्द्रविनाशकारी पुत्रके प्राप्त होनेकी इच्छा करतीहूँ ॥२॥ आपमेरे गर्भसे एक इन्द्रका मारनेवाला पुत्र उत्पन्न कीजिये मैं इनके अर्थ तपभी करूँगी उसमें आप आज्ञा दीजिये ॥३॥ महामुनि मरीचिपुत्र कश्यपजी उसका ऐसा वचन श्रवण कर वह महातेजस्वी परमदुःखितदितिसे बोले॥४॥हे भद्रे ! तुम्हारी वाञ्छापूर्ण हो;तुम्हारा मंगलहो तबतक तुमकोपवित्रतासे तपकरना

होगा जबतक गर्भके चिह्न प्रगट न हों संग्राममें इन्द्रका मारनेवालातुम्हारे पुत्र होगा॥५॥इस भांति हजार वर्ष बीतजानेपर व पवित्रतापूर्वक रहनेसे त्रिलोकीके संहारकरनेमें समर्थ सन्तान तुम मुझसे प्राप्त कर सकोगी ॥ ६ ॥ कश्यपजी यह कहअपने हाथसे दितिके शरीरको स्पर्शकर स्वस्ति पढ़कर तप करनेको चलेगये ॥ ७ ॥ हे मनुष्यश्रेष्ठ! महर्षिके चले जानेपर उनकी स्त्री दिति प्रसन्न हो कुशप्लुवनामक स्थानमें जाकर घोर तप करने लगी॥८॥हे नरश्रेष्ठ ! तब सुरराजइन्द्र आकरतपस्यानुरक्त दितिकी परमसावधानीसे सेवा करने लगे ॥९॥ अग्नि,कुश,काष्ठ,जल,फल,मूल जिस वस्तुकी दितिको आवश्यकता होती सहस्रलोचन वह सब इकट्ठा कर देते॥१०॥ यहांतक कि, इन्द्र जब दिति तप करते २ थकती तो उसके अङ्ग मींज देकरसब श्रम दूर करदेते ॥११॥ हेराम!ऐसे ९९०वर्षबीत

पूर्णेवर्षसहस्रेतुशुचिर्यदिभविष्यसि ॥ पुत्रंत्रैलोक्यहंतारंमत्तस्त्वंजनयिष्यसि ॥ ६ ॥ एवमुक्त्वामहातेजापाणिनासंममार्जताम् ॥ तामालभ्य ततःस्वस्तिइत्युक्त्वातपसेययौ॥७॥गतेतस्मिन्नरश्रेष्ठदितिःपरमहर्षिता॥कुशप्लवंसमासाद्यतपस्तेपेसुदारुणम् ॥८॥ तपस्तस्यांहिकुर्वंत्यांपरिचर्यांचकारह॥ सहस्राक्षोनरश्रेष्ठपरयागुणसंपदा॥९॥अग्निंकुशान्काष्ठमपःफलंमूलंतथैवच॥ न्यवेदयत्सहस्राक्षोयच्चान्यदपिकांक्षितम्॥१०॥ गात्रसंवाहनैश्चैवश्रमापनयनैस्तथा ॥शक्रःसर्वेषुकालेषुदितिंपरिचचारह॥११॥ पूर्णेवर्षसहस्रेसादशोनेरघुनंदन॥दितिःपरमसंहृष्टासहस्राक्षमथाब्रवीत् ॥१२॥ तपश्चरंत्यावर्षाणिदशवीर्यवतांवर॥अवशिष्टानिभद्रंतेभ्रातरंद्रक्ष्यसेततः ॥१३॥ यमहंत्वत्कृतेपुत्रंतमाधास्येजयोत्सुकम् ॥ त्रैलोक्यविजयंपुत्रंसहभोक्ष्यसिविज्वरः ॥१४॥ याचितेनसुरश्रेष्ठपित्रातवमहात्मना॥वरोवर्षसहस्रांतेममदत्तःसुतंप्रति ॥१५॥ इत्युक्त्वाचदितिस्तत्रप्राप्तेमध्यंदिनेश्वरे ॥ निद्रयापहृतादेवीपादौकृत्वाथशीर्षतः ॥१६॥दृष्ट्वातामशुचिंशक्रःपादयोःकृतमूर्धजाम् ॥ शिरःस्थानेकृतौपादौजहासचमुमोदच ॥ १७ ॥ तस्याःशरीरविवरंप्रविवेशपुरंदरः ॥ गर्भंचसप्तधारामचिच्छेदपरमात्मवान् ॥ १८ ॥

जानेपर दितिने दानवारिसेप्रसन्न होकर कहा ॥१२॥ हे बलवानोंमें श्रेष्ठ!मेरी तपस्याके दशवर्षऔरबीतजानेपरतुमभाईकामुँहदेखोगेतुम्हारामङ्गल होगा ॥१३॥ हेपुत्र ! मैंने तुमको जीतनेके लिये पुत्र पानेकी प्रार्थना कीथी अब उससे तुम्हारीमित्रता कराढूंगी यह होनेसे विवाद दोनोंमें नहीं होगा व उसके साथ तुम सब सुख भोगोगे व तीनों लोकोंको विजय करोगे॥१४॥ हे सुरश्रेष्ठ ! जब हमने बडी यांचा की थी तब तुम्हारे महात्मा पिताजीने हमको वरदान दिया था की,सहस्रवर्ष पीछे तुम्हारी वांछादायक पुत्र होगा॥१५॥ देवीदितिजीको इसप्रकार कहते २ दुपहरी होगई और दितिजी यहकहशिरहानेकी तरफ पैर फैलाकर सोगई॥१६॥ इन्द्र उसको अपवित्र, शिरहानेकी ओर पैर पैरोंकी ओर शिर किये हुये देख मनमबडे प्रसन्न हुये और हँसनेलगे ॥१७॥ इन्द्र उसी समय दितिके शरीरमेंप्रवेश करगये

हे रामचन्द्र ! वहाँ जाकर सावधान इन्द्रने गर्भको सातटुकडे करडाले ॥१८॥जब इन्द्रने असंख्य धारावाले वज्रसे गर्भको काटा तब हे रामजी वह गर्भका बालक रोने लगा और दिति जागी ॥१९॥ तब देवराज "न रोओ न रोओ " कहके बालकको समझाने लगे फिर महा तेजस्वी इन्द्रने चुप न होनेसे उस गर्भको और छिन्नभिन्न कर डाला ॥२०॥"अब न मारो २ " दितिके ऐसा कहनेपर माताका गौरव रक्षा करनेके लिये वासवगर्भसे बाहर आये ॥ २१ ॥ और वज्र सहित हाथ जोडकर इन्द्र दितिसेबोलेहे माता तुम अपवित्रतासे पैरोंकीओर शिर किये उलटी सोरही थी॥२२॥ मैंने इस अवसरमें अपने भावी शत्रुके सात टुकडे करडाले । हे देवि ! अब आप प्रसन्नमनसे मेरा यह अपराध क्षमा करदें ॥२३॥इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मीकीये आ० बाल० भाषायां षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥४६॥

भिद्यमानस्ततोगर्भोवज्रेणशतपर्वणा॥ रुरोदसुस्वरंरामततोदितिरबुध्यत॥१९॥मारुदोमारुदश्चेतिगर्भंशक्रोऽभ्यभाषत ॥ बिभेदचमहातेजारु दंतमपिवासवः ॥ २० ॥ नहंतव्यंनहंतव्यमित्येवदितिरब्रवीत् ॥ निष्पपातततःशक्रोमातुर्वचनगौरवात् ॥२१॥ प्रांजलिर्वज्रसहितोदितिंशक्रो ऽभ्यभाषत ॥ अशुचिर्देविसुप्तासिपादयोःकृतमूर्धजा ॥२२॥तदंतरमहंलब्ध्वाशक्रहंतारमाहवे ॥ अभिंदंसप्तधादेवितन्मेत्वंक्षंतुमर्हसि ॥२३॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्येबालकांडेषट्चत्वारिंशःसर्गः॥४६॥ सप्तधातुकृतेगर्भेदितिःपरमदुःखिता॥सहस्राक्षंदुराधर्षंवा क्यंसानुनयाऽब्रवीत् ॥१॥ ममापराधाद्गर्भोऽयंसप्तधाशकलीकृतः ॥ नापराधोहिदेवेशतवात्रबलसूदन ॥ २ ॥ प्रियंत्वत्कृतमिच्छामिममगर्भ विपर्यये ॥ मरुतांसप्तसप्तानांस्थानपालाभवंतुते ॥३॥ वातस्कंधाइमेसप्तचरंतुदिविपुत्रक ॥ मारुताइतिविख्यातादिव्यरूपाममात्मजाः ॥४ ॥ ब्रह्मलोकंचरत्वेकइंद्रलोकंतथापरः ॥ दिव्यवायुरितिख्यातस्तृतीयोऽपिमहायशाः ॥५॥ चत्वारस्तुसुरश्रेष्ठदिशोवैतवशासनात् ॥ संचरिष्यं तिभद्रंतेकालेनहिममात्मजाः ॥ ६ ॥ त्वत्कृतेनैवनाम्नावैमारुताइतिविश्रुताः ॥ तस्यास्तद्वचनंश्रुत्वासहस्राक्षःपुरंदरः ॥ ७ ॥

दिति गर्भके सातखंड जानकर अतिशयदुःखितहो दुर्द्धर्ष हजार नेत्रवाले देवराजसे विनयपूर्वक कहने लगीं ॥१॥ हे देवेश ! हे बलसूदन ! तुमने मेरी अपवित्र ताकेदोषसे गर्भको खण्ड २ किया इससे तुम्हारा कुछ दोष नहीं ॥ २ ॥ अब अपने गर्भके नाश होनेपरभी मैं तुम्हारा प्रियकार्य करना चाहतीहूं कि, तुम्हारे किये यह उनचास खंड सातों पवनोंके स्थानपालक हों ॥३॥ महातेजस्वी सातों रूप धारण करनेवाले यह मेरे पुत्रमारुतनामसेख्यातहों, वातस्कन्धनामक सातों दिव्य लोकमें विचरण करतेहैं ॥४॥इन पुत्रोंमेंसे प्रथम ब्रह्मलोक;दूसरा इन्द्र लोक व तीसरे दिव्य वायुनामसे ख्यात होकर विचरण करते रहें ॥५॥ हे देवता ओंमें श्रेष्ठ ! बाकी मेरे चारपुत्र एकत्र तुम्हारी आज्ञासे चारों दिशामें विचरणकरते रहेंगे अब तुम्हारा मंगलहो॥६॥तुमने इनको "मा रुद"यह कहाथा इसीका

रण यह तुम्हारे कहे मारुतनामसे परिचित होंगे हजार नेत्रवालेपुरन्दरदितिके ऐसे वचन सुन॥७॥हाथजोडकर बलसूदन इन्द्र बोले कि; आपने जो कहा सोई होगा इसमें कुछ संशय नहीं ॥८॥ आपके पुत्र देवरूपी हो विचरेंगे, तपोवनमें यह सम्मत कर इन्द्र औरदिति ॥९॥ कृतार्थ होकर स्वर्गको चलेगये हे राम ! हमने यह सुनाहै कि,यह वही देश है ! इन्द्रने जहां पहले ॥१०॥स्थित हो तपस्यासे सिद्ध हुई दितिकीसेवा कीथी वह स्थान! यही है हेनरसिंह ! राजाइक्ष्याकुके परमधार्मिकपुत्र ॥११॥ अलम्बुषा नाम स्त्रीके गर्भसे विशाल नामक उत्पन्न हुआ उनसेही यहां विशाला नामकपुरी बसाई ॥ १२ ॥ हे राम ! उस विशालका हेमचन्द्रनाम बडा बलवान् पुत्र उत्पन्न हुआ हेमचन्द्रके सुचन्द्र हुये ॥ १३ ॥ हे राम ! सुचन्द्रके पुत्र धूम्राश्व हुये इनके कुलप्रदीप सृञ्जय हुये ॥१४॥

उवाचसप्रांजलिर्वाक्यमितीदंबलसूदनः ॥ सर्वमेतद्यथोक्तंतेभविष्यतिनसंशयः ॥८॥ विचरिष्यंतिभद्रंतेदेवरूपास्तवात्मजाः ॥ एवंतौनिश्चयं कृत्वामातापुत्रौतपोवने ॥९॥ जन्मतुस्त्रिदिवंरामकृतार्थावितिनःश्रुतम् ॥ एषदेशःसकाकुत्स्थमहेंद्राध्युषितःपुरा ॥ १० ॥ दितिंयत्रतपःसिद्धामेवंपरिचचारसः ॥ इक्ष्वाकोस्तुनरव्याघ्रपुत्रःपरमधार्मिकः ॥ ११ ॥ अलंबुसायामुत्पन्नोविशालइतिविश्रुतः ॥ तेनचासीदिहस्थानेविशालेति पुरीकृता ॥ १२ ॥ विशालस्यसुतोरामहेमचंद्रोमहाबलः ॥ सुचंद्रइतिविख्यातोहेमचंद्रादनंतरः ॥ १३ ॥ सुचंद्रतनयोरामधूम्राश्वइतिविश्रुतः ॥ धूम्राश्वतनयश्चापिसृंजयःसमपद्यत ॥१४॥ सृंजयस्यसुतःश्रीमान्सहदेवःप्रतापवान् ॥ कुशाश्वःसहदेवस्यपुत्रःपरमधार्मिकः ॥१५॥ कुशाश्वस्यमहातेजाःसोमदत्तःप्रतापवान् ॥ सोमदत्तस्यपुत्रस्तुकाकुत्स्थइतिविश्रुतः ॥१६॥ तस्यपुत्रोमहातेजाःसंप्रत्येषपुरीमिमाम् ॥ आवसत्परमप्रख्यःसुमतिर्नामदुर्जयः ॥ १७ ॥ इक्ष्वाकोस्तुप्रसादेनसर्वेवैशालिकानृपाः ॥दीर्घायुषोमहात्मानोवीर्यवंतःसुधार्मिकाः ॥ १८ ॥ इहाद्यरजनीमेकांसुखंस्वप्स्यामहेवयम् ॥ श्वःप्रभातेनरश्रेष्ठजनकंद्रष्टुमर्हसि ॥१९॥ सुमतिस्तुमहातेजाविश्वामित्रमुपागतम् ॥ श्रुत्वानरवरश्रेष्ठःप्रत्यागच्छन्महायशाः ॥२०॥ पूजांचपरमांकृत्वासोपाध्यायःसबांधवः ॥प्रांजलिःकुशलंपृष्ट्वाविश्वामित्रमथाब्रवीत् ॥ २१ ॥

सृञ्जयके महाप्रतापशाली श्रीमान् सहदेव हुये, सहदेवके परमधार्मिक कुशाश्व हुये ॥१५॥ कुशाश्वके पुत्र महातेजस्वी प्रतापी सोमदत्त हुये, सोमदत्तके काकुत्स्थ हुये ॥१६॥ इनके पुत्र महातेजवान् जो किसीसे जीते न जायँ ऐसे सुमति राजा आजकल इस पुरीमें राज्य कर रहे हैं॥१७॥ इक्ष्वाकुके अनुग्रहसे इस विशाला पुरीके राजा सबही बली धार्मिक और दीर्घजीवी हुये हैं॥१८॥आज हम यहां सुखपूर्वक रात्रि व्यतीत करेंगे, हे नरोंमें श्रेष्ठ ! कल प्रभात जाकर राजा जनककी पुरीको देखेंगे ॥१९॥ नरश्रेष्ठ महायशस्वी सुमतिने विश्वामित्रके शुभागमनका समाचार पाकर ऋषिजीको आगे आकर लिया ॥२०॥ फिर उपाध्याय व बान्ध

वों समेत भली भाँति आदरसे पूजा करके विश्वामित्रजी से हाथ जोड़कर राजा बोले॥ २१ ॥ हे मुने ! आपके शुभागमनसे मैं अनुगृहीत धन्य२ हुआहूं, आपके दर्शनसे मेरा जन्म सफल हो गया आज दिन मुझसे अधिक दूसरेका भाग्य नहीं है॥२२॥इत्यार्षेश्रीमद्वा०वा०आ०बालकांडे भाषायां सप्तचत्वारिंशः सर्गः॥४७॥ परस्पर साक्षात् होनेपर कुशल समाचार जिज्ञासा कर महामति सुमतिने महामुनि विश्वामित्रजीसे कहा ॥१॥ हे महाराज ! आपका मंगल हो मैं यह पूछताहूं कि,यह दो राजकुमार देवतुल्य पराक्रमी गज व सिंहशार्दूल वृषभके समान चाल चलनेवाले ॥ २ ॥ इनके नेत्र कमलके समान बडे;हाथमें धनुर्बाण और खड्ग धारण किये, अश्विनीकुमारके समान रूपधारी यौवनावस्थाको पहुंचाही चाहते हैं ॥३॥ इनको देखकर मुझे यह ज्ञात होता है कि, मानों देवलोकसे दो अपनी

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मियस्यमेविषयंमुने॥संप्राप्तोदर्शनंचैवनास्तिधन्यतरोमम॥२२॥इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० च० विं० सा० बालकांडे सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥४७॥ पृष्ट्वातुकुशलंतत्रपरस्परसमागमे ॥कथांतेसुमतिर्वाक्यंव्याजहारमहामुनिम् ॥ १ ॥ इमौकुमारौभद्रंतेदेवतुल्यपराक्रमौ ॥ गजसिंहगतीवीरौशार्दूलवृषभोपमौ ॥ २ ॥पद्मपत्रविशालाक्षौखड्गतूणधनुर्धरौ ॥ अश्विनाविवरूपेणसमुपस्थितयौवनौ ॥ ३ ॥ यदृच्छयेवगांप्राप्तौदेवलोकादिवामरौ॥कथंपद्म्यामिहप्राप्तौकिमर्थंकस्यवामुने ॥४॥ भूषयंताविमंदेशंचंद्रसूर्याविवांबरम् ॥ परस्परेणसदृशौप्रमाणेंगितचेष्टितैः ॥ ५ ॥ किमर्थंचनरश्रेष्ठौसंप्राप्तौदुर्गमेपथि ॥ वरायुधधरौवीरौश्रोतुमिच्छामितत्त्वतः ॥ ६ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वायथावृत्तंन्यवेदयत् ॥ विश्वामित्रवचःश्रुत्वाराजापरमविस्मितः ॥ ७ ॥ अतिथीपरमप्राप्तौपुत्रौदशरथस्यतौ ॥ पूजयामासविधिवत्सत्कारार्हौमहाबलौ ॥ ८ ॥ ततःपरमसत्कारंसुमतेःप्राप्यराघवौ ॥ उष्यतत्रनिशामेकांजग्मतुर्मिथिलांततः ॥ ९ ॥

इच्छासे पृथ्वीतलपर उतर आये हैं यह यहां पैदल क्यों आये और यह किसके पुत्र हैं?॥४॥दिवाकर और निशाकर जैसे आकाशको शोभित करते हैं वैसेही यह इस स्थानकी शोभाको बढा रहे हैं सब प्रकार दोनों जन एकही आकार व स्वभाव प्रभावके दृष्टि आते हैं॥५॥ हे नरश्रेष्ठ ! यह इस दुर्गम मार्गमें किस कारण आये और श्रेष्ठ अस्त्र शस्त्र बांधे किस महाराजाधिराजके वंशधर हैं वह मैं तत्वसे जानना चाहता हूं ॥ ६ ॥ राजाके यह वचन सुन महर्षि विश्वामित्रजीने राम लक्ष्मणजीका सब वृत्तांत कहा इसवृत्तांतको नृपति सुमति सुनकर बहुतही विस्मित हुये॥७॥दशरथात्मज महाबली राम लक्ष्मणको अतिथि भावसे आया हुआ जानकर राजा सुमतिने इनका समुचित सत्कार किया ॥८॥ राजा सुमतिसे पूजे जाकर विश्वामित्र व राम लक्ष्मणजी वह रात्रि वहां व्यतीत कर भोर हुये मिथिलापुरीकी

ओर चले ॥९॥ वहां पहुँचकर मिथिलापुरीकी अनुपम शोभा देख महर्षिगण साधु साधु कहने लगे और मिथिलापुरीकी बड़ाई करने लगे ॥१०॥ इतनेहीमें रामचन्द्रजीने वहां एक उपवन में निर्जन पुराना तपस्याका स्थानदेखकर महर्षि विश्वामित्रजीसे पूछा॥११॥ हेमुने ! यह स्थानआश्रम जान पड़ता है परन्तु इस स्थानपर कोई ऋषिमुनि दृष्टि नहीं आते; यह पहले किसका आश्रमथा यह जाननेकी मेरी इच्छा हुई है॥ १२ ॥ वाक्य कहनेमें चतुरविश्वामित्रजी राघवका वाक्य श्रवण करके महातेजस्वी मुनि कहने लगे ॥१३॥ हे रामचन्द्र ! जिस महात्माके कोपसे आश्रमकी यह दशा हुई है मैं वह सब कथा कहताहूं श्रवण करो ॥१४॥ हे नरश्रेष्ठ ! इसस्थान में देवपूजित महात्मा गौतमजीका आश्रम था उस समय इसके सौन्दर्यकी सीमा नहीं थी देवता भी इसकी बड़ाई करते थे ॥१५॥

तांदृष्ट्वामुनयःसर्वेजनकस्यपुरींशुभाम् ॥ साधुसाध्वितिशंसंतोमिथिलांसमपूजयन् ॥ १० ॥ मिथिलोपवनेतत्रआश्रमंदृश्यराघवः॥ पुराणं निर्जनंरम्यंपप्रच्छमुनिपुंगवम् ॥ ११ ॥ इदमाश्रमसंकाशंकिन्विदंमुनिवर्जितम् ॥ श्रोतुमिच्छामिभगवन्कस्यायंपूर्वआश्रमः ॥१२॥ तच्छ्रुत्वाराघवेणोक्तंवाक्यंवाक्यविशारदः ॥ प्रत्युवाचमहातेजाविश्वामित्रोमहामुनिः ॥ १३ ॥ हंततेकथयिष्यामिशृणुतत्त्वेनराघव ॥ यस्यैतदाश्रमपदंशप्तंकोपान्महात्मनः ॥ १४ ॥ गौतमस्यनरश्रेष्ठपूर्वमासीन्महात्मनः ॥ आश्रमोदिव्यसंकाशःसुरैरपिसुपूजितः ॥ १५ ॥ सचात्रतपआतिष्ठदहल्या सहितः पुरा ॥ वर्षपूगान्यनेकानिराजपुत्रमहायशः ॥ १६ ॥ तस्यांतरंविदित्वाचसहस्राक्षः शचीपतिः ॥ मुनिवेषधरोभूत्वाअहल्यामिदमब्रवीत् ॥ १७ ॥ ऋतुकालंप्रतीक्षंतेनार्थिनःसुसमाहिते ॥ संगमंत्वहमिच्छामित्वयासहसुमध्यमे ॥ १८ ॥ मुनिवेषंसहस्राक्षंविज्ञायरघुनंदन ॥ मतिंचकारदुर्मेधादेवराजकुतूहलात् ॥ १९ ॥ अथाब्रवीत्सुरश्रेष्ठंकृतार्थेनांतरात्मना ॥ कृतार्थास्मिसुरश्रेष्ठगच्छ शीघ्रमितःप्रभो ॥ २० ॥

हे राजपुत्र ! महायशस्वी उन्होंने यहां अनेकवर्षोंतक अहल्या अपनी स्त्री सहित तप किया था॥१६॥ हे रामचन्द्र! एक दिन सुयोग पाकर सुरराजइन्द्र गौतमऋषि का वेष धारण कर अहल्यासे यह बोले ॥१७॥ रति चाहने वाले ऋतु कालकी वाट नहीं जोहते, अतएव हे सुन्दरी ! मेरी कामना पूर्ण करो मैं तुम्हारे साथ संगम किया चाहता हूँ॥१८॥ हेराम ! दुर्बुद्धि अहल्या स्वामी वेषधारी इन्द्रको जानकर भी देवराजकेसाथविहारकरनेमें प्रवृत्त हुई अहल्याने इस कारण जानलिया कि इन्द्रहीहैऋषिलोग कभीभी ऋतुसेदूसरेकालमेंभार्याका समागमनहींकरते॥१९॥अनन्तर हर्षसहित शचीपतिसे कहा हेसुरोत्तम ! मैं कृतार्थ होगई अबतुम जल्दी

यहांसे चले जाओ ॥२०॥ हे देवराज ! तुम अपनेको और मुझे गौतम के शाप से रक्षा करो, तब इन्द्र हँसकर अहल्यासे बोले ॥२१॥ हे नितम्बिनि ! मैं परम प्रसन्न हुआहूं अब मैं देवलोकको चला यह कहकर पाकशासन महर्षि गौतम के आश्र मसे बाहर आये ॥२२॥ यद्यपि इन्द्र गौतमजीके भय से बहुत शीघ्रता पूर्वक जारहेथेपरन्तु देखा कि महामुनि गौतम ऋषि आश्रम में प्रवेश करते हैं॥२३॥ गौतमजी तेज प्रभावसे देवदानवोंकोदुर्द्धर्षमूर्तिमान् अग्निशिखातुल्यतीर्थके जलमें स्नानकिये हुये आश्रममें चलेआते हैं॥२४॥उन मुनिश्रेष्ठके हाथमें समिध और कुशथे उनको देखतेही देवराज इन्द्र पीले पडगये और घबरा गये॥२५॥ सदाचार परायणमुनि असदाचारी इन्द्र को निजवेष धारण किये आश्रमसे निकलते देखक्रोधसहित बोले॥२६॥हे दुर्मते! तैंनेमेरा रूप धारण करके अकर्तव्य कार्य कर

आत्मानंमांचदेवेशसर्वथारक्षगौतमात् ॥ इंद्रस्तुप्रहसन्वाक्यमहल्यामिदमब्रवीत् ॥ २१ ॥ सुश्रोणिपरितुष्टोऽस्मिगमिष्यामियथागतम् ॥ एवंसंगम्यतुतदानिश्चक्रामोटजात्ततः ॥२२॥ ससंभ्रमात्त्वरन्रामशंकितोगौतमंप्रति ॥ गौतमंसददर्शाथप्र विशंतंमहामुनिम् ॥२३॥ देवदानवदुर्धर्षंतपोबलसमन्वितम् ॥ तीर्थोदकपरिक्लिन्नंदीप्यमानमिवानलम्॥ २४ ॥ गृहीतसमिधंतत्रसकुशंमुनिपुंगवम्॥ दृष्ट्वासुरपतिस्त्रस्तोविषण्णवदनोऽभवत ॥ २५ ॥ अथदृष्ट्वासहस्राक्षंमुनिवेषधरंमुनिः ॥ दुर्वृत्तंवृत्तसंपन्नोरोषाद्वचनमब्रवीत् ॥२६॥ मम्रूपंसमास्थायकृतवानसिदुर्मते ॥ अकर्तव्यमिदंयस्माद्विफलस्त्वंभविष्यसि ॥ २७ ॥ गौतमेनैवमुक्तस्यसुरोषेणमहात्मना ॥ पेततुर्वृषणौभूमौसहस्राक्षस्यतत्क्षणात् ॥ २८ ॥ तथाशप्त्वाचवैशक्रंभार्यामपिचशप्तवान् ॥ इहवर्षसहस्राणिबहूनिनिवसिष्यसि ॥२९॥ वातभक्षानिराहारातप्यंतीभस्मशायिनी ॥ अदृश्या सर्वभूतानामाश्रमेऽस्मिन्वसिष्यसि ॥३०॥ (यदात्वेतद्वनंघोरंरामोदशरथात्मजः ॥ आगमिष्यतिदुर्धर्षस्तदापूताभविष्यसि ॥३१॥ तस्यातिथ्येनदुर्वृत्तेलोभमोहविवर्जिता ॥ मत्सकाशंमुदायुक्तास्वंवपुर्धारयिष्यसि ॥ ३२ ॥)

मेरी भार्याका सतीत्व भ्रष्टकिया अतएव मेरे शापसे तू नपुंसक होजायगा ॥२७॥ गौतमजीके क्रोध सहित इतना कहतेही इंद्रके अंडकोश उसी समय पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ २८ ॥ गौतम जीने इस प्रकार इन्द्र को शाप दे फिर अहल्या से कहा रे दुराचारिणि ! तुझको इस आश्रममें हजारों वर्ष तक रहना होगा ॥२९॥ रे दुःशीला ! तुझे अदृश्यभावसे अर्थात् कोई प्राणी तुझे न देखसकेंगे ऐसे अनाहार रहना वायुभक्षण करना और पृथ्वीपर शयन करके यहां रहना होगा॥३०॥ जब महराजकुमार दुर्द्धर्ष रामचन्द्रजी इस घोर वनमें आवेंगे तब उनके चरणस्पर्शसे तू पापमुक्त होगी ॥ ३१॥ उस समय तू लोभ मोह न करके उनका आतिथ्य

करेगी और फिर तेरा ऐसाही रूप जैसा अब है होजायगा और फिर मेरे आश्रममें आवेगी॥ ३२॥ महातपा महर्षि गौतमजी दुष्टाचारिणी अहल्यासे यहकह इस आश्रमको परित्याग करसिद्धों करके सेवित ॥ ३३॥ वह महातपस्वी रमणीय हिमालयपर्वतके. शिखरपर जाकर तप करने लगे ॥ ३४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्वा० वा० आ० बालकाण्डे भाषायामष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥ तदनन्तर इन्द्र गौतमके शापसे चकित व नपुंसक हो अग्निप्रभृति देवता व सिद्ध चारण और गन्धर्वोंसे बोले ॥ १ ॥ मैंने महर्षि गौतमजीको क्रोध उपजा और उनकी तपस्यामें विघ्न डालकर देवकार्य साधन किया है नहीं तो वहसब देवतोंके स्थान छीनलेते शाप देनेहीसे उनका तप क्षीणहुआहै ॥२॥ उन महर्षिने क्रोध परवशहो हमें नपुंसक कर दिया है और अहिल्याभी अपने किये कर्मका फल भोगर

एवमुक्त्वामहातेजागौतमोदुष्टचारिणीम्॥इममाश्रममुत्सृज्यसिद्धचारणसेविते ॥३३॥ हिमवच्छिखरेरम्येतपस्तेपेमहातपाः ॥३४॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये चतुर्विंशतिसा० बालकांडे अष्टचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४८ ॥ ॥ अफलस्तुततःशक्रोदेवानग्निपुरोगमान् ॥ अब्रवीत्त्रस्तनयनःसिद्धगंधर्वचारणान् ॥ १ ॥ कुर्वतातपसोविघ्नं गौतमस्यमहात्मनः ॥ क्रोधमुत्पाद्यहिमयासुरकार्यमिदंकृतम्॥२॥ अफलोऽस्मिकृतस्तेनक्रोधात्साचनिराकृता ॥ शापमोक्षेणमहतातपोऽस्यांपहृतं मया ॥ ३ ॥ तन्मांसुरवराःसर्वेसर्षिसंघाःसचारणाः ॥ सुरकार्यकरंयूयंसफलंकर्तुमर्हथ ॥ ४ ॥ शतक्रतोर्वचःश्रुत्वादेवाःसाग्निपुरोगमाः ॥ पितृदेवानुपेत्याहुःसर्वेसहमरुद्गणैः ॥ ५ ॥ अयंमेषःसवृषणः शक्रोह्यवृषणःकृतः ॥ मेषस्यवृषणौगृह्यशक्रायाशुप्रयच्छत ॥ ६ ॥ अफलस्तुकृतोमेषःपरांतुष्टिंप्रदास्यति ॥ भवतांहर्षणार्थंचयेचदास्यंति मानवाः॥अक्षयंहिफलंतेषांयूयंदास्यथपुष्कलम् ॥७॥ अग्नेस्तुवचनंश्रुत्वापितृदेवाःसमागताः॥ उत्पाट्यमेषवृषणौसहस्राक्षेन्यवेशयन् ॥८॥

ही है शापदेनेहीसे उनका बड़ा तप मैंने हरलिया है॥३॥हे देवगण ! मैंनेतुम्हाराकार्यसाधन किया है इसकारणतुम सब देवता ऋषि चारण जिससे हम अच्छे होजाँय ऐसा उपाय ठहराना तुम्हारा कर्तव्य है ॥४॥ इन्द्रजीके वचन सुन अग्नि प्रभृति देवतागण मरुद्गणसहित पितरोंके देवता कव्यवाहनादिकोंके निकटजाय उपस्थित हुये ॥५॥ तब अग्नि बोले कि इन्द्र अंडकोशहीन हुये हैं और तुम्हारे इस मेंढेके अंडकोश हैं अतएव यह उखाडकर इन्द्रको देदीजिये ॥६॥ मेषके अंडकोशहीन होनेसे तुम्हारे सन्तोष साधन करनेमें किसी भाँतिकोकसरनहीं कोजायगी अबसे जो तुम्हारी प्रसन्नताके हेतु ऐसा मेढा दान करेंगे उनको अक्षय फलकी प्राप्ति होगी इस कारण तुम इसके वृषण देदो ॥७॥ अग्निके ऐसे वचन सुन कव्यवाहनादि पितृदेवोंने मेंढेके अंडकोश उखाड़ इन्द्रको दे दिये ॥ ८ ॥

हेरामचन्द्र ! उस समयसेही पितृदेगणोंको अंडकोशहीन मेंढे भक्षणका नियम हुआ और अंडकोश इन्द्रके लगाये गये ॥९॥ हे राघव ! इसप्रकारसे उसदिनसे इस भाँतिइन्द्रने गौतमजीकेतपकेप्रभावके शापसे मेंढेके अंडकोश धारणकिये ॥१०॥ हे राघव ! अबतुम पुण्यकीर्ति महातेजस्वी महर्षिके आश्रममेंप्रवेश करकेमहाभागा देवरूपवाली अहल्याका उद्धार करो ॥११॥ रामचन्द्रजी विश्वामित्रजीकी आज्ञानुसार मुनिको आगे कर लक्ष्मण सहित गौतम जीके आश्रममें प्रवेश करते हुये॥१२॥ रामचंद्रजीने वहां जाकर उस महाभागवालीको देखाकि तपस्याके तेजसे उसकी प्रभा अधिकतर फैलरहीहै मनुष्यकी तो बातही क्या? देवदानवगणतक उसकी ओर दृष्टि नहीं करसकते॥१३॥ रामचन्द्रके आश्रममें प्रवेश करतेही यह पवित्र हुई और दीप्तिमान् आश्रमहोगया यह अभिप्राय है, उसको देखनेसे बोधहुआ कि, विधाताने अतियत्नसेयह मायामयीमोहिनी मूर्तिरचना की है उसकी दीप्ति धूमपूर्ण अग्निकी शिखाके समान थी ॥१४॥ जैसे हिमसंयुक्तवा मेघमिश्रित चन्द्रमाका

तदाप्रभृतिकाकुत्स्थपितृदेवाःसमागताः॥अफलान्भुंजतेमेषान्फलैस्तेषामयोजयन् ॥९॥ इंद्रस्तुमेषवृषणस्तदाप्रभृतिराघव॥ गौतमस्यप्रभावेणतपसाचमहात्मनः॥१०॥ तदागच्छमहातेजआश्रमंपुण्यकर्मणः॥ तारयैनांमहाभागामहल्यांदेवरूपिणीम् ॥११॥ विश्वामित्रवचःश्रुत्वा राघवःसहलक्ष्मणः॥ विश्वामित्रंपुरस्कृत्यआश्रमंप्रविवेशह ॥१२॥ ददर्शचमहाभागांतपसाद्योतितप्रभाम् ॥ लोकैरपिसमागम्यदुर्निरीक्ष्यांसुरासुरैः॥ १३॥ प्रयत्नान्निर्मितांधात्रादिव्यांमायामयीमिव ॥ धूमेनाभिपरीतांगींदीप्तामग्निशिखामिव ॥ १४ ॥ सतुषारावृतांसाभ्रांपूर्णचंद्रप्रभामिव ॥ मध्येंभसोदुराधर्षांदीप्तांसूर्यप्रभामिव ॥ १५ ॥ साहिगौतमवाक्येनदुर्निरीक्ष्याबभूवह ॥ त्रयाणामपिलोकानांयावद्रामस्यदर्शनम् ॥ १६॥ शापस्यांतमुपागम्यतेषांदर्शनमागता ॥ राघवौतुतदातस्याः पादौजगृहतुर्मुदा ॥१७॥ स्मरंतीगौतमवचःप्रतिजग्राहसाहितौ ॥ पाद्यमर्घ्यंतथातिथ्यं चकारसुसमाहिता॥१८॥ प्रतिजग्राहकाकुत्स्थोविधिदृष्टेनकर्मणा ॥ पुष्पवृष्टिर्महत्यासीद्देवदुंदुभिनिःस्वनैः ॥ १९॥ गंधर्वाप्सरसांचैवमहानासीत्समुत्सवः॥ साधुसाध्वितिदेवास्तामहल्यांसमपूजयन् ॥ २० ॥

लावण्य होजाताहै जलमें तीव्र प्रदीप्त सूर्यप्रभा जिस प्रकार शोभा पातीहै वैसेही अहल्याकी आकृति होरहीथी ॥१५॥ वह तब ही तक गौतमके शापसे त्रिलोकीको अदृष्टथी जबतक रामका दर्शन न हो ॥१६॥ गौतमीने शापान्तमें जैसेही रामचन्द्रजीको सन्मुख देखा वैसेही पवित्रत्रिलोककी दर्शनीयहोगईअर्थात शिलारूप त्याग दिव्य अंगना हुई ॥ १७ ॥ तब लक्ष्मणजीने प्रहृष्टमनसे अहल्याके चरणोंकी वन्दनाकी गौतमीनेभी गौतमजीके वचन और पूर्ववृत्तान्तस्मरण पूर्वक ॥१८॥ उनका सत्कार किया अर्घ्यपाद्याचमनीय आदिदे भलीभाँति पूजा करनेलगी और विधिकृत कर्मानुसार रामलक्ष्मणको पाकरबडी हर्षोत्फुल्लहुई राम चन्द्रने शास्त्रानुसार उसकी पूजा ग्रहणकी ॥१९॥ इसी अवसरमें आकाशसे पुष्प वृष्टिऔरदुन्दुभीनादहोनेलगा, गन्धर्व और अप्सराओंमें महामहोत्सव उपस्थित

हुआ ॥२०॥ तब देवगण तपोबल सम्पन्न पतिपरायण निर्मल शरीरवाली अहल्याको साधु साधु कहकर पूजा करने लगे॥२१॥ कहने लगे गौतमजीभी अपने योग बलसे श्रीरामचंद्रजीको आये हुये, जान अतिशीघ्र तप करना छोड अपने आश्रमपर आये और प्रथमकेसमान रूपवती अहल्याको पाय परमसुखी हुये व रामचंद्र जीकी विधिविधानसे पूजा कर फिरतप करनेमे मन लगाते हुये ॥२२॥राम चंद्रजी गौतमजीसे भली प्रकार पूजा पाकर मिथिलापुरीकी ओरको चले ॥२३॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा ० आ० बालकाण्डे भाषायामेकोनपंचाशः सर्गः ॥ ४९ ॥ अनन्तर रामचन्द्रजी लक्ष्मण सहित विश्वामित्रजीके साथ उत्तरपूर्वाभिमुख हो राजर्षि जनकजीकी यज्ञभूमि में उपस्थित हुये ॥ १ ॥ तब श्रीरामचंद्रजीने मुनिवर्य विश्वामित्रजी से कहा कि, राजा जनकजीके यज्ञ की सामग्री तो

तपोबलविशुद्धांगींगौतमस्यवशानुगाम् ॥ गौतमोऽपिमहातेजाअहल्यासहितःसुखी ॥ २१ ॥ रामंसंपूज्यविधिवत्तपस्तेपेमहातपाः ॥ रामोऽपिपरमांपूजांगौतमस्यमहामुनेः ॥२२॥ सकाशाद्विधिवत्प्राप्यजगाम मिथिलांततः ॥२३॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदि काव्ये चतुर्विंशतिसा० बालकांडे एकोनपंचाशःसर्गः ॥ ४९ ॥ ततःप्रागुत्तरांगत्वारामःसौमित्रिणासह ॥ विश्वामित्रंपुरस्कृत्ययज्ञवाटमुपा गमत् ॥ १ ॥ रामस्तुमुनिशार्दूलमुवाचसहलक्ष्मणः ॥ साध्वीयज्ञसमृद्धिर्हिजनकस्यमहात्मनः ॥ २ ॥ बहूनीहसहस्राणिनानादेशनिवा सिनाम् ॥ ब्राह्मणानांमहाभागवेदाध्ययनशालिनाम् ॥३॥ ऋषिवाटाश्चदृश्यंतेशकटीशतसंकुलाः ॥ देशोविधीयतांब्रह्मन्यत्रवत्स्यामहेवयम् ॥ ४ ॥ रामस्यवचनंश्रुत्वाविश्वामित्रोमहामुनिः ॥ निवासमकरोद्देशेविविक्तेसलिलान्विते ॥ ५ ॥ विश्वामित्रमनुप्राप्तंश्रुत्वानृपवरस्तदा ॥ शतानंदंपुरस्कृत्यपुरोहितमनिंदितः ॥ ६ ॥ ऋत्विजोऽपिमहात्मानस्त्वर्घ्यमादायसत्वरम् ॥ प्रत्युज्जगामसहसाविनयेनसमन्वितः ॥ ७ ॥ विश्वामित्रायधर्मेणददौधर्मपुरस्कृतम् ॥ प्रतिगृह्यतुतांपूजांजनकस्यमहात्मनः ॥ ८ ॥

बहुत उत्तम है ॥२॥इस यज्ञके उपलक्ष्यमें वेदज्ञान सम्पन्न नानादेशीय असंख्य ब्राह्मणगण उपस्थित हुए हैं॥ ३ ॥ यह सब ऋषियोंके वासस्थान दृष्टि आते हैं यह सब स्थान सैकडों छकडों से भरे हैं जिनपर ऋषियों की सामग्री लदी है हे ब्रह्मन् ! हमारे रहने लायक स्थान भी आप बता दीजिये जहां हम ठहरें ॥ ४ ॥ रामचन्द्रजीके ऐसे वचन सुन महामुनिविश्वामित्रजीने निर्जन सजलप्रदेश रहने के लिए ठहराया ॥ ५॥ निन्दारहित राजाजनकजी विश्वामित्रजी का आना सुन करके पुरोहित शतानन्द और ऋत्विजोंको संगले॥६॥ और महात्मा ऋत्विक् पूजा की सामग्री शीघ्रता से लेकर वहां उपस्थित हुए और अर्घ्यले जल्दी से उनको आगे ले सविनयपूजा करते हुए ॥७॥ राजाने धर्मपूर्वक विश्वामित्रजीको अर्घ्य दिया महात्मा राजा जनककी पूजा ग्रहण कर ॥ ८ ॥

विश्वामित्रजीने उनकी और उनके यज्ञकी कुशलवार्ता पूछी तदनन्तर उपाध्यायों और पुरोहितगणों से भी कुशल प्रश्न किया कराया ॥ ९ ॥ और सबके संग मिले भेंटे फिर सब ऋषियों से सादर संभाषण किया तब राजा जनकजी मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रजीसे हाथजोड बोले ॥१०॥ आप अपने संगी ऋषियोंके संग इन आसनों पर विराजिये; जनकजीके ऐसा कहने पर महामुनि विश्वामित्रजी बैठे ॥ ११ ॥ तब शतानंद, ऋत्विजलोगराजमंत्री व राजा जनकजी यथायोग्य आसनों पर उनके चारों ओर बैठ गये ॥१२॥ और राजा जनकजी ने देखकर महर्षि विश्वामित्रजी से कहा कि आज देवताओंकीकृपासे हमारायज्ञ करना सफल हुआ ॥१३॥ हे मुनि श्रेष्ठ! जब यहां आप से साक्षात् हुआ तब मुझे यज्ञ का फल मिलही गया और कहाँतककहूंमैं धन्य औरकृत कृत्य हो गया ॥१४॥

पप्रच्छकुशलंराज्ञोयज्ञस्यचनिरामयम् ॥ सतांश्चाथमुनीन्पृष्ट्वासोपाध्यायपुरोधसः ॥ ९ ॥ यथार्हमृषिभिःसर्वैःसमागच्छत्प्रहृष्टवत् ॥ अथ राजामुनिश्रेष्ठंकृतांजलिरभाषत ॥ १० ॥ आसनेभगवानास्तांसहैभिर्मुनिपुंगवैः ॥ जनकस्यवचःश्रुत्वानिषसादमहामुनिः ॥ ११ ॥ पुरोधा ऋत्विजश्चैव राजाचसहमंत्रिभिः ॥ आसनेषुयथान्यायमुपविष्टाःसमंततः ॥ १२ ॥ दृष्ट्वासनृपतिस्तत्रविश्वामित्रमथाब्रवीत् ॥ अद्ययज्ञसमृद्धिर्मेसफलादैवतैःकृता ॥ १३ ॥ अद्ययज्ञफलंप्राप्तंभगवद्दर्शनान्मया ॥ धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मियस्यमेमुनिपुंगव ॥ १४ ॥ यज्ञोपसदनं ब्रह्मन्प्राप्तोऽसिमुनिभिःसह ॥ द्वादशाहंतुब्रह्मर्षेदीक्षामाहुर्मनीषिणः ॥ १५ ॥ ततोभागार्थिनोदेवान्द्रष्टुमर्हसिकौशिक ॥ इत्युक्त्वामुनिशार्दूलंप्रहृष्टवदनस्तदा ॥ १६ ॥पुनस्तंपरिपप्रच्छप्रांजलिःप्रयतोनृपः ॥ इमौकुमारौभद्रंतेदेवतुल्यपराक्रमौ ॥ १७ ॥ गजतुल्यगतीवीरौशार्दूल वृषभोपमौ ॥ अश्विनाविवरूपेणसमुपस्थितयौवनौ ॥ १८ ॥यदृच्छयैवगांप्राप्तौदेवलोकादिवामरौ ॥ कथंपद्भ्यामिहप्राप्तौकिमर्थंकस्यवामुने ॥ १९ ॥ (वरायुधधरौवीरौकस्यपुत्रौमहामुने ॥ भूषयंताविमंदेशंचंद्रसूर्याविवांबरम् ॥ २० ॥

हे ब्रह्मर्षे!जो आप ऋषियोंसमेत मेरेयज्ञमें पधारे यह मेरा बड़ाभाग्यहै हे महर्षे! पंडित गणोंने बारह दिन दीक्षा कालके नियतकिये हैं ॥१५॥ कौशिक!आप तभी यज्ञ भागार्थी देवताओंको देखेंगे राजा मुनि श्रेष्ठ से यह वचन कहकर मुदित मन से॥१६॥हाथ जोड फिर विश्वामित्रजी सेबोले हे महाराज!आपका कल्याण हो यह तो बताओ दो कुमार देवतुल्य पराक्रमी॥१७॥ वृषभ व शार्दूल हाथी के समान चाल चलने वाले अश्विनीकुमार के समान रूपवान् जिनकी युवा अवस्था आईही चाहतीहै॥१८॥बोध होताहै कि यह इच्छापूर्वक देवलोकका त्यागन करके पृथ्वीपर उतर आयेहैं हे मुने!यह किस कारण यहां आये हैं किसके पुत्र हैं क्यों पैदल चलतेहैं॥१९॥ इनदोनों वीरोंके हाथोंमें दिव्य शरासनहै हे महामुने! यह किसके पुत्रहैं? चन्द्र, सूर्य जिसप्रकारगगनमंडलको सुशोभित करते हैं वैसेही

इन्होंने यह प्रदेश अलङ्कृत कियाहै ॥२०॥इन दोनोंके आकार इंगित स्वभावप्रभावमें कुछ भेद नहीं जाना जाता यह दोनों अलकैं रखाये महाबीर कौन हैं ? मैं इनका नाम ग्राम सुननाचाहताहूँ ॥२१॥महात्मा उन राजा जनक के वचन सुन दीप्तात्मा विश्वामित्रजी ने कहा यह राजा दशरथके पुत्र हैं॥२२॥विश्वामित्रजीने इनका ऐसा परिचय प्रदानकरके सिद्धाश्रममें अवस्था न राक्षस,मारीच ताडकाका वध दुर्गम पंथमें आगमन विशाला दर्शन ॥२३॥अहल्योद्धार गौतम सम्मिलन शिवका यज्ञ और महाधनुष देखनेके लिये आगमन॥२४॥ इत्यादि सब वृत्तान्त महात्मा राजा जनकजीसे कहकर महा तेजस्वी महामुनि विश्वामित्रजी चुप हुए ॥२५॥इत्यार्षे श्रीमद्रा०वाल्मीकीये आदि काव्ये बाल०भाषायां पंचाशःसर्गः॥५०॥ परम बुद्धिमान् विश्वामित्रजीके इसप्रकार वचनसुन शरीरसे पुलकितहो महाते

परस्परस्यसदृशौप्रमाणेंगितचेष्टितैः ॥ काकपक्षधरौवीरौश्रोतुमिच्छामितत्त्वतः ॥ २१ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाजनकस्यमहात्मनः ॥ न्यवेदयदमेयात्मापुत्रौदशरथस्यतौ ॥२२॥ सिद्धाश्रमनिवासंचराक्षसानांवधंतथा ॥ तत्रागमनमव्यग्रंविशालायाश्चदर्शनम् ॥ २३ ॥ अहल्यादर्शनंचैवगौतमेनसमागमम् ॥ महाधनुषिजिज्ञासांकर्तुमागमनंतथा ॥ २४॥ एतत्सर्वंमहातेजाजनकायमहात्मने ॥ निवेद्यविररामाथविश्वामित्रोमहामुनिः ॥ (॥ २५ ॥) २४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये चतुर्विंशतिसा० बालकांडे पंचाशःसर्गः ॥ ५० ॥

तस्यतद्वचनंश्रुत्वाविश्वामित्रस्यधीमतः ॥ हृष्टरोमामहातेजाः शतानंदोमहातपाः ॥ १ ॥ गौतमस्यसुतोज्येष्ठस्तपसाद्योतितप्रभः ॥ रामसंदर्शनादेवपरंविस्मयमागतः ॥ २ ॥ एतौनिषण्णौसंप्रेक्ष्यशतानंदोनृपात्मजौ ॥ सुखासीनौमुनिश्रेष्ठंविश्वामित्रमथाब्रवीत् ॥ ३ ॥अपितेमुनिशार्दूलमममातायशस्विनी ॥ दर्शिताराजपुत्रायतपोदीर्घमुपागता ॥ ४ ॥ अपिरामेमहातेजामममातायशस्विनी ॥ वन्यैरुपाहरत्पूजांपूजार्हेसर्वदेहिनाम् ॥५॥ अपिरामायकथितंयद्वृत्तंतत्पुरातनम् ॥ मममातुर्महातेजोदेवेनदुरनुष्ठितम् ॥६॥ अपिकौशिकभद्रंतेगुरुणाममसंगता ॥ मममातामुनिश्रेष्ठरामसंदर्शनादितः ॥ ७ ॥

जस्वी महातपस्वी शतानंदजी ॥१॥अपने तपोबलसेप्रभासित गौतममुनिके बडेबेटे शतानंदजी रामचन्द्रजीकेदर्शनकर हृष्टचित्तऔर विस्मित हुए॥२॥शतानंदजी राजकुमार रामलक्ष्मणकोसुखसे बैठाहुआदेखसुखसेबैठेहुए महर्षि विश्वामित्रजी से बोले॥३॥हेमुनिपुङ्गव ! भलाहमारीयशस्विनीमाताबहुतदिनोंसे तपस्याकरतीथीउसको आपने महाराज कुमार रामचन्द्रजी को दिखायाथा॥४॥ भला हमारी परम यशस्विनी माताने देव तुल्याकृति सब से पूजने योग्यरामचन्द्रजीकी वन फल पुष्पादि द्वारा पूजाकी थी॥५॥ हे मुने!आपने रामचन्द्रजी देवराज इन्द्रसेके व्यवहार विषयक पुरातन कथा कही है ॥ ६ ॥ हे विश्वामित्रजी ! आपका मंगलहो हे मुनिश्रेष्ठ !

क्या मेरी माता शापसे छूटकर पिताजीसे मिलगई ॥७॥ महाराज विश्वामित्रजी या रामचन्द्रजी मेरे पितासे भली भाँति पूजेतोगये हैं? और यह महातेजस्वी पूजा ग्रहणकर यहां आये हैं ? ॥८॥ मैं आपसे पूछना चाहताहूं कि, श्रीरामचन्द्रजीने शान्त चित्तसे मेरे पिता महर्षि गौतमजीकी पूजा ग्रहणकर उनका कुछ सन्मान कियाथा वा नहीं ? ॥९॥ वाक्य बोलनेवाले तिनके ऐसे वचन सुनकर वाक्यविशारद महामुनि विश्वामित्रजी शतानंदजीसे बोले॥१०॥हे तपोधन जो कर्त्तव्य था उसमें किसी भांति कमीनहीं हुईहै जमदग्निसे जसे रेणुका मिलती हो वैसेही गौतमजीसे तुम्हारी माता मिलीहै॥११॥ बुद्धिमान् विश्वामित्रजीसे यह सुन कर गौतम पुत्र महा तेजस्वी शतानंदजी रामचन्द्रजीसे बोले ॥ १२ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! तुमअजीत महर्षि विश्वामित्रजी तथा और ऋषियोंके साथयहांतक

अपिमेगुरुणारामः पूजितःकुशिकात्मज ॥ इहागतोमहातेजाः पूजांप्राप्यमहात्मनः ॥ ८ ॥ अपिशांतेनमनसागुरुर्मेकुशिकात्मज ॥ इहागतेनरामेणपूजितेनाभिवादितः ॥ ९ ॥ तच्छ्रुत्वावच नंतस्यविश्वामित्रोमहामुनिः ॥ प्रत्युवाचशतानंदंवाक्यज्ञोवाक्यकोविदम् ॥ १० ॥ नातिक्रांतंमुनिश्रेष्ठयत्कर्तव्यंकृतंमया ॥ संगतामुनिनापत्नीभार्गवेणवरेणुका ॥ ११ ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्यविश्वामित्रस्यधीमतः ॥ शतानंदोमहातेजरामंवचनमब्रवीत् ॥ १२ ॥ वागतंतेनरश्रेष्ठदिष्ट्याप्राप्तोऽसिराघव ॥ विश्वामित्रपुरस्कृत्यमहर्षिमपराजितम् ॥ १३ ॥ अचिंत्यकर्मातपसा ब्रह्मर्षिरमितप्रभः ॥ विश्वामित्रोमहातेजावेद्म्येनंपरमांगतिम् ॥१४॥ नास्तिधन्यतरोरामत्वत्तोऽन्योभुविकश्चन ॥ गोप्ताकुशिकपुत्रस्तेयेनतप्तंमहत्तपः ॥ १५ ॥ श्रूयतांचभिधास्यामिकौशिकस्यमहात्मनः ॥ यथाबलंयथातत्त्वंतन्मेनिगदतःशृणु ॥ १६ ॥ राजाऽऽसीदेषधर्मात्मादीर्घकालमरिंदमः ॥ धर्मज्ञःकृतविद्यश्चप्रजानांचरितेरतः ॥ १७ ॥ प्रजापतिसुतस्त्वासीत्कुशोनाममहीपतिः ॥ कुशस्यपुत्रोबलवान्कुशनाभःसुधार्मिकः ॥ १८ ॥ कुशनाभसुतस्त्वासीद्गाधिरित्येवविश्रुतः ॥ गाधेःपुत्रोमहातेजाविश्वामित्रोमहामुनिः ॥ १९ ॥

निर्विघ्न तो आये ?तुम्हारा आना हमारे सौभाग्यका कारण है ॥१३॥ मैं महामुनि महा तेजस्वी विश्वामित्रजीको विचित्र कर्मा और अमित प्रभाशाली जानता हूँ यही हमारे एकमात्रपरमगति हैं ॥१४॥ हे रामचन्द्रजी ! संसारमें तुमसे अधिकपृथ्वी पर धन्य औरकौनहै ? कारण की, महर्षि विश्वामित्रजी तुम्हारे रक्षक हैं जिन्होंनेबड़ी तपस्या की है ॥ १५ ॥ इस समय तुम मुझसे महात्मा कौशिकका तपोबल और अन्याय परिचय श्रवण करो ॥ १६ ॥ हे परन्तप ! यह महामति बहुत समय तक राजा कहकर परिचित रह चुके हैं, यह धार्मिक विद्या जाननेवाले और प्रजाके हितकरनेमें प्रीतिमान् थे ॥ १७ ॥ पूर्वकालमें कुशनामक प्रजापतिके एक पुत्र उत्पन्न हुआ उनके पुत्र बलवान् सुधार्मिक कुशनाभ हुए ॥ १८॥ कुशनाभ के गाधि पुत्र हुए जो विख्यात थे और गाधिके महामुनि बड़े तेजस्वी विश्वा

मित्रजी हुए ॥ १९ ॥ यह महातेजस्वी विश्वामित्रजी बहुत दिनोंतक पृथ्वी का पालन करते रहे और यह कई हजार वर्षोंतक राजशासन करते रहे ॥ २० ॥ यह तेजस्वी विश्वामित्रजी एक समयचतुरंगिनी सेनासहित जो कई अक्षौहिणी थी पृथ्वीपर घूम रहेथे ॥ २१ ॥ यह यथाक्रमसे अनेक राज्य, नगर, नदी व पर्वतप्रभृतिमें फिर फिराकर आश्रमोंमें आये ॥ २२ ॥ क्रमसे वसिष्ठजीके आश्रमपर इन्होंने देखा कि, यह स्थान अनेक प्रकारकी वेलफूल और पौधोंसे सुशोभित है अनेक खग मृग यहां विचरण कर रहेहैं और सिद्धचारण करके आश्रम सेवित है ॥ २३ ॥ देव, दानव, गन्धर्वोंसे यह स्थान शोभायमान और प्रशान्तचित्तहरिणोंसे भरापुरा है, स्थान २ में ब्राह्मणगण शोभा पारहेहैं ॥ २४ ॥ ब्रह्मर्षिगणोंसे संकीर्ण देवर्षियों करके सेवित जितने ब्राह्मण यहाँ बैठे हैं, सब तपके मारे अग्निके समान

विश्वामित्रोमहातेजाःपालयामासमेदिनीम् ॥ बहुवर्षसहस्राणिराजाराज्यमकारयत् ॥ २० ॥ कदाचित्तुमहातेजायोजयित्वावरूथिनीम् ॥ अक्षौहिणींपरिवृतःपरिचक्राममेदिनीम् ॥ २१॥ नगराणिचराष्ट्राणिसरितश्चमहागिरीन् ॥ आश्रमान्क्रमशोराजाविचरन्नाजगामह ॥ २२ ॥ वसिष्ठस्याश्रमपदंनानापुष्पलताद्रुमम् ॥नानामृगगणाकीर्णंसिद्धचारणसेवितम् ॥२३॥ देवदानवगंधर्वैःकिन्नरैरुपशोभितम्॥प्रशांतहरिणाकीर्णंद्विजसंघनिषेवितम् ॥२४॥ ब्रह्मर्षिगणसंकीर्णंदेवर्षिगणसेवितम्॥ ततश्चरणसंसिद्धैरग्निकल्पैर्महात्मभिः ॥२५॥ सततंसंकुलंश्रीमद्ब्रह्मकल्पैर्महात्मभिः॥ अब्भक्षैर्वायुभक्षैश्चशीर्णपर्णाशनैस्तथा ॥२६॥ फलमूलाशनैर्दांतैर्जितदोषैर्जितेंद्रियैः॥ ऋषिभिर्वालखिल्यैश्चजपहोमपरायणैः ॥२७॥ अन्यैर्वैखानसैश्चैवसमंतादुपशोभितम् ॥वसिष्ठस्याश्रमपदंब्रह्मलोकमिवापरम् ॥२८॥ ददर्शजयतांश्रेष्ठोविश्वामित्रोमहाबलः॥२९॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये चतुर्विंशतिसा० बालकांडे एकपंचाशःसर्गः ॥ ५१ ॥ तंदृष्ट्वापरमप्रीतोविश्वामित्रोमहाबलः ॥ प्रणतोविनयाद्वीरोवसिष्ठंजपतांवरम् ॥ १ ॥स्वागतंतवचेत्युक्तोवसिष्ठेनमहात्मना ॥ आसनंचास्यभगवान्वसिष्ठोव्यादिदेशह ॥ २ ॥

देदीप्यमान हैं ॥ २५ ॥ यह स्थान ब्रह्ममयमहात्मागणोंके जलपान वायुभोजन और पर्णाशनपर तपस्याके पक्षमें अनुकूल हैं ॥ २६ ॥ फल मूल खाकर इंद्रियोंके दोष जीतकर स्थान २ पर महात्मा वालखिल्य ऋषिगण तपकररहेहैं कहीं ऋषिगण जपहोम कररहेहैं ॥२७॥ वैखानसगण स्थान २ में शोभा पारहेहैं वसिष्ठजीका ऐसा आश्रम मानो दूसरा ब्रह्मलोकही है ॥ २८ ॥ ऐसा ब्रह्मलोकवत् आश्रम देखकर जीतनेवालोंमेंश्रेष्ठ महाराज विश्वामित्रजी परमप्रसन्न हुए ॥२९॥ इति श्रीमद्रा० वा० आ० बालकाण्डे भाषायामेकपंचाशः सर्गः ॥ ५१ ॥ इस शोभाको देख परमप्रसन्नहो महाबलवान् वीर विश्वामित्रजी विनयपूर्वक जप करनेवालोंमें श्रेष्ठ वसिष्ठजीको प्रणाम करते हुए ॥ १ ॥ तब भगवान् मुनिवर वसिष्ठजीने उनसेस्वागत पूँछपाँछ बैठनेके लिये आसन प्रदान किया ॥ २ ॥

बुद्धिमान् विश्वामित्रजीकेबैठनेपरमुनिश्रेष्ठवशिष्ठजीनेयथाविधिफलमूलप्रदान करके विश्वामित्रजीकीपहुनई की ॥३॥ राजाओंमें श्रेष्ठ विश्वामित्रजीने वसिष्ठजीसे वह पूजा सत्कार ग्रहणकरके अग्निहोत्र और शिष्योंकी कुशल पूँछी॥४॥औरफिरभी महातेजस्वी विश्वामित्रजीने आश्रमके वृक्ष व वनस्पतियोंकी कुशलपूछी वसिष्ठजीने भी राजासे सबकीकुशल कही ॥ ५ ॥ तब सुखसे बैठे हुये राजा विश्वामित्रजीसे जप करनेवालोंमें श्रेष्ठ महातपस्वी ब्रह्माके पुत्र वसिष्ठजी बोले ॥६॥ हेराजन् ! हे धार्मिक ! तुम मंगलसेतो हो तुम राजाके कर्त्तव्यानुसार धर्मसहित प्रजाकीपालना तो करते हो ॥७॥ हे शत्रुनाशन ! तुम्हारे नौकरचाकर नियत समयपर वेतन पाकर तुम्हारी शिक्षामें चलतेहैं ? अपने रिपुलोगोंको तो तुमने जीत लिया है ? ॥८॥ हेपरंतप ! तुम्हारा बल खजाना व मित्र भाई बन्धुओंपर और कोई आपद

उपविष्टायचतदाविश्वामित्रायधीमते॥यथान्यायंमुनिवरःफलमूलमुपाहरत् ॥३॥ प्रतिगृह्यतुतांपूजांवसिष्ठाद्राजसत्तमः॥ तपोऽग्निहोत्रशिष्येषुकुशलंपर्यपृच्छत ॥४॥ विश्वामित्रोमहातेजावनस्पतिगणेतदा॥ सर्वत्रकुशलंप्राहवसिष्ठोराजसत्तमम् ॥५॥ सुखोपविष्टंराजानंविश्वामित्रंमहातपाः ॥ पप्रच्छजपतांश्रेष्ठोवसिष्ठोब्रह्मणःसुतः॥६॥ कच्चित्तेकुशलंराजन्कच्चिद्धर्मेणरंजयन् ॥प्रजाःपालयसेराजन्राजवृत्तेनधार्मिक ॥७॥ कच्चित्तेसंभृताभृत्याःकच्चित्तिष्ठंतिशासने॥कच्चित्तेविजिताःसर्वेरिपवोरिपुसूदन ॥८॥ कच्चिद्बलेषुकोशेषुमित्रेषुचपरंतप ॥ कुशलंतेनरव्याघ्रपुत्रपौत्रेतथानघ॥९॥सर्वत्रकुशलंराजावसिष्ठंप्रत्युदाहरत ॥ विश्वामित्रोमहातेजावसिष्ठंविनयान्वितम् ॥१०॥ कृत्वातौसुचिरंकालंधर्मिष्ठौताःकथास्तदा॥मुदापरमयायुक्तौप्रीयेतांतौपरस्परम् ॥ ११ ॥ ततोवसिष्ठोभगवान्कथांतेरघुनंदन ॥विश्वामित्रमिदंवाक्यमुवाचप्रहसन्निव॥१२॥ आतिथ्यंकर्तुमिच्छामिबलस्यास्यमहाबल ॥ तवचैवाप्रमेयस्ययथार्हंसंप्रतीच्छमे ॥१३॥ सत्क्रियांहिभवानेतांप्रतीच्छतुमयाकृताम् ॥ राजंस्त्वमतिथिश्रेष्ठःपूजनीयःप्रयत्नतः ॥ १४ ॥ एवमुक्तोवसिष्ठनेविश्वामित्रोमहामुनिः ॥ कृतमित्यब्रवीद्राजापूजावाक्येनमेत्वया ॥ १५ ॥

नहीं है ? हे पापरहित ! तुम्हारे पुत्र पौत्रादि सन्तान सन्ततिमें कोई दुःखी तो नहीं? ॥९॥ महातेजवान् विश्वामित्रजीने सबकीकुशल वसिष्ठजीसे विनयपूर्वक सुनाई ॥ १० ॥ तदनन्तर उन दोनों धर्मात्माओंने बहुत कथा कह कहाकर कुछ घडियें बिताई और दोनों परस्पर प्रीति व प्रसन्नता लाभ करतेहुये ॥११॥ हे रघुनंदन ! इस अवसरमें भगवान् वसिष्ठजी हँसते हँसते विश्वामित्रजीसे यह वचनकहने लगे ॥१२॥ हे महाबल ! अमितपराक्रमी ! मैं तुम्हारी और तुम्हारी सब सेनाकी पहुनई करना चाहता हूं तुम यह मेरा प्रस्ताव ग्रहण करो ॥ १३ ॥ इस मेरे किये हुये सत्कारको ग्रहण करो हे राजन् ! तुम अतिथियोंमें श्रेष्ठ और सब भांति पूजनीय हो अतएव मेरे इस अभिप्रायमें सम्मतिदो ॥ १४ ॥ तब महामुनि राजा विश्वामित्रजीने कहा कि, जब आपका अभिलाष

पहुनईका हुआ तो जानिये कि मेरीपहुनई होगई ॥ १५ ॥ हे भगवन् ! आपके आश्रममें फल मूल और अर्घ्य इत्यादि पाकर विशेष करके आपके दर्शनमात्र सेहीसन्तुष्ट हुआ हूं ॥१६॥ हे महाप्राज्ञ! आप हमारे पूजनीय हैं मेरा जैसा आदर होनाचाहिये वैसा आपने किया अब मैंआपको प्रणामकरके जाताहूंमुझपरकृपा दृष्टि रखियेगा ॥ १७ ॥ विश्वामित्रजीके यह विनय करनेपरभी जप करनेवाले मुनिवर वसिष्ठजी वारंवार उनको पहुनई ग्रहण करनेके लिये कहने लगे॥१८॥ तब विश्वामित्रजी वसिष्ठजीसे कहने लगे कि, हमें तुम्हारा कहना अङ्गीकार है जो आपको प्रियहो वही हम करेंगे ॥१९॥ ज्योंही विश्वामित्रजीने यहवचनकहे तभी जपकरनेवाले वसिष्ठजीने परमप्रसन्न होकर विचित्र वर्णविभूषित पापनाश करनेवाली होमधेनुको यह कहकर बुलाया ॥२०॥ कि, हे शबले ! तुम शीघ्र आ

फलमूलेनभगवन्विद्यतेयत्तवाश्रमे ॥ पाद्येनाचमनीयेनभगवद्दर्शनेनच ॥१६॥ सर्वथाचमहाप्राज्ञपूजार्हेणसुपूजितः ॥ नमस्तेऽस्तुगमिष्या मिमैत्रेणेक्षस्वचक्षुषा ॥ १७ ॥ एवंब्रुवंतंराजानंवसिष्ठःपुनरेवहि ॥ न्यमंत्रयतधर्मात्मापुनःपुनरुदारधीः ॥ १८ ॥ बाढमित्येवगाधेयो वसिष्ठंप्रत्युवाचह ॥ यथाप्रियंभगवतस्तथास्तुमुनिपुंगव ॥ १९ ॥ एवमुक्तस्तथानेनवसिष्ठोजपतांवरः ॥ आजुहावततःप्रीतःकल्माषींधूतक ल्मषाम् ॥२०॥ एह्येहिशबलेक्षिप्रंशृणुचापिवचोमम ॥ सबलस्यास्यराजर्षेःकर्तुंव्यवसितोऽस्म्यहम् ॥ २१ ॥ भोजनेनमहार्हेणसत्कारंसंविध त्स्वमे ॥ यस्ययस्ययथाकामंषड्रसेष्वभिपूजितम् ॥ २२ ॥ तत्सर्वंकामधुग्दिव्येअभिवर्षकृतेमम ॥ रसेनान्नेनपानेनलेह्यचोष्येणसंयुतम् ॥ अन्नानांनिचयंसर्वंसृजस्वशबलेत्वर ॥२३॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीयेआदिकाव्ये चतुर्विंशतिसाहस्र्यांसंहितायां बालकांडे द्विपंचाशः सर्गः ॥५२॥ एवमुक्तावसिष्ठेनशबलाशत्रुसूदन॥विदधेकामधुक्कामान्यस्ययस्येप्सितंयथा ॥१॥ इक्षून्मधूंस्तथालाजान्मैरेयांश्चवरासवान् ॥ पानानिचमहार्हाणिभक्ष्यांश्चोच्चावचानपि ॥ २ ॥

करके मेरे वचन सुनो कि,सेनासहित इन राजर्षि राजाकीपहुनई भलीभांति करो यह मेरी इच्छाहै ॥२१॥ अनेक प्रकार सुन्दर स्वादिष्ठभोजनोंसे मेरे सन्तोषके निमित्त राजाका सत्कार करो जिसकी जैसी रुचिहो उसको तुम षड्रस भोजनद्वारा तृप्तकरो. क्योंकि तुम क्या नहीं देसकती॥२२॥हे कथाकाम अन्नदेनेवाली! वह दिव्य भोजनोंकीआज मेरे कहनेसे वर्षा करदे फिर रसोंमेंभी खानेपीने चाटने सूँघने आदिके सब पदार्थ तैयार करो अब विलम्ब न हो इसके अतिरिक्त सब प्रकारके अन्नोंके ढेर लगादो जिसमें जो जिसे भावै सो वही लेले ॥ २३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० बालकांडे भाषायां द्विपञ्चाशः सर्गः ॥ ५२ ॥ हे शत्रुनाशन ! अनन्तर वसिष्ठजीके आदेशसे जिसको जैसी वासना हुई शबलाने उसको वही पदार्थ पहुँचाया ॥ १ ॥ जैसे गन्नेकेजितने विकार सब भांतिके

मिष्टान्न, दिव्यमद, महामूल्यवान्न पानीय और उत्कृष्ट निकृष्ट अनेक प्रकारके भक्ष्य भोज्य ॥ २ ॥ गरम भातके ढेर पर्वताकार, पायस, सूप, अनेक प्रकारकी दाल, दहीके ढेरके ढेर ॥३॥ नाना प्रकारके बडे, स्वादयुक्त खांडके विकार इसके अतिरिक्त नानाप्रकारके पदार्थोंसे भोजनपात्र पूर्ण कर दिये ॥ ४ ॥ हे राम ! वसिष्ठजीके प्रभावसे विश्वामित्रजीकी सेना उपयुक्त भोजन पाकर परम हृष्ट पुष्ट और संतुष्ट हुई ॥ ५ ॥ राजर्षि नृपति विश्वामित्रजीभी रानी ब्राह्मण पुरोहित व मन्त्रियों सहित ऋषिकी पहुनईसे प्रसन्न हुये ॥ ६ ॥ फिर अमात्यमंत्री नौकर चाकरों समेत तृप्त होकर परमप्रसन्नहोकर ऋषि वसिष्ठजीसे बोले ॥ ७ ॥ हे मुने! आपकी कृपासे जैसी पहुनई होनी संभव है उसमें किसी प्रकारकी कमी नहीं हुई । हे वाक्यजाननेवालोंमें चतुर! इस समय आपमेरा एकनिवेदन श्रवणकीजिये

उष्णाढ्यस्यौदनस्यात्रराशयःपर्वतोपमाः ॥ मृष्टान्यन्नानिसूपाश्चदधिकुल्यास्तथैवच ॥३॥ नानास्वादुरसानांचखां (षा) डवानांतथैवच ॥ भोजनानिसुपूर्णानिगौडानिचसहस्रशः ॥ ४ ॥ सर्वमासीत्सुसंतुष्टंहृष्टपुष्टजनायुतम् ॥ विश्वामित्रबलंरामवसिष्ठेनसुतर्पितम् ॥ ५ ॥ विश्वामित्रोहिराजर्षिर्हृष्टपुष्टस्तदाभवत् ॥ सांतःपुरवरोराजासब्राह्मणपुरोहितः ॥ ६ ॥ सामात्योमंत्रिसहितःसभृत्यःपूजितस्तदा ॥ युक्तःपरमहर्षेणवसिष्ठमिदमब्रवीत् ॥७॥ पूजितोऽहंत्वयाब्रह्मन्पूजार्हेणसुसत्कृतः ॥ श्रूयतामभिधास्यामिवाक्यंवाक्यविशारद ॥८॥ गवांशतसहस्रेणदीयतांशबलाममम ॥ रत्नंहिभगवन्नेतद्रत्नहारीचपार्थिवः ॥९॥ तस्मान्मेशबलांदेहिममैषाधर्मतोद्विज ॥ एवमुक्तस्तुभगवान्वसिष्ठोमुनिपुंगवः ॥१०॥ विश्वामित्रेणधर्मात्माप्रत्युवाचमहीपतिम्॥नाहंशतसहस्रेणनापिकोटिशतैर्गवाम् ॥११॥ राजन्दास्यामिशबलांराशिभीरजतस्यवा ॥ नपरित्यागमर्हेयंमत्सकाशादरिंदम ॥१२॥ शाश्वतीशबलामह्यंकीर्तिरात्मवतोयथा ॥ अस्यांहव्यंचकव्यंचप्राणयात्रातथैवच ॥१३॥ आयत्तमग्निहोत्रंचबलिहोमस्तथैवच ॥ स्वाहाकारवषट्कारौविद्याश्चविविधास्तथा ॥ १४ ॥

॥ ८ ॥ हे भगवन् ! मैं आपको लाख गायदान किये देता हूं उसके बदलेमें मुझे शबला देदीजिये यह गाय एकरत्न है और रत्न भोगनेमें राजाहीका अधिकार होता है ॥९॥ अतएव मुझे शबला देदीजिये क्योंकि न्यायानुसार इसपर हमाराही अधिकारहै जब विश्वामित्रजीने भगवान्मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजीसे ऐसाकहा तो ॥१०॥ विश्वामित्रजीको महात्मा धार्म्मिक वसिष्ठजी बोले कि, लाख या करोड गायें देनेसेभी मैं शबलाको नहीं देसक्ता ॥११॥ हेराजन्! न चांदीकी राशिदेनेसे हमसे कोई यह गाय ले सकै हे शत्रुतापन ! यही कारणहै कि, यह हमारे त्यागने योग्य नहीं है ॥१२॥ इस गायको अपनी कीर्तिके समान हम रक्षा करतेहैं विशेषतः इससे हमारे हव्य; कव्य, देव ऋषि पूजन और प्राणयात्रा होतीहै ॥१३॥ वे इसमे ही अग्निहोत्र होम और बलिकार्य कियेजाते हैं अधिक क्या कहैं स्वाहाकार वषट्कार अनेक

प्रकारके यज्ञ और सब विद्या इसकेही अधीन हैं॥१४॥ हेराजन्! इसमें सन्देह नहीं है मेरा सब इसके अधीन है यह शबलाही हमारी सर्वस्व हैं यही तुष्ट करनेवाली हैइसपर मेरी जैसी प्रीति है ॥१५॥और किसी वस्तुपर इतनी नहीं है मैं इन सबकारणोंसे तुम्हारे कार्यके लिये इसको नहीं देसक्ता जबवसिष्ठजीनेइसप्रकाके वचन कहे तब विश्वामित्रजी बोले ॥ १६ ॥ बड़े आग्रहसे वाक्यके जाननेवाले यह वाक्यबोले मैं आपको स्वर्णशृंखलासे बँधे हमेलोंसे मंडितसुवर्णअंकुशोंसे भूषित ॥१७॥ चौदह हजार हाथी देताहूं व सुवर्णमय रथ जिनमें सफेद चार २ घोडेजुतेहुये ॥१८॥ सुवर्णकी किंकिनीबंधे आठसौरथ आपको देंगे काम्बोज बाह्लीक अरब आदि देशोंमें उत्पन्न अच्छे कुलके ॥१९॥ (११०००) ग्यारह हजार श्रेष्ठघोड़े देताहूं हेसुव्रत ! नानावर्णों करके युक्त व नई उमरवाली॥२०॥ एककरोड

आयत्तमत्रराजर्षेसर्वमेतन्नसंशयः॥सर्वस्वमेतत्सत्येनममतुष्टिकरीतथा॥१५॥कारणैर्बहुभीराजन्नदास्येशबलांतव॥वसिष्ठेनैवमुक्तस्तुविश्वामित्रो ऽब्रवीत्तदा॥१६॥ संरब्धतरमत्यर्थंवाक्यंवाक्यविशारदः॥हैरण्यकक्ष्यग्रैवेयान्सुवर्णांकुशभूषितान्॥१७॥ ददामिकुंजराणांतेसहस्राणिचतुर्दश ॥ हैरण्यानांचश्वेताश्वानांचतुर्युजाम् ॥१८॥ ददामितेशतान्यष्टौकिंकिणीकविभूषितान् ॥ हयानांदेशजातानांकुलजानांमहौजसाम् ॥१९॥ सहस्रमेकंदशचददामितवसुव्रत ॥ नानावर्णविभक्तानांवयःस्थानांतथैवच॥२०॥ददाम्येकांगवांकोटिंशबलांदीयतांमम ॥ यावदिच्छसिरत्नानिहिरण्यंवाद्विजोत्तम ॥२१॥ तावद्ददामितेसर्वंदीयतांशबलामम ॥ एवमुक्तस्तुभगवान्विश्वामित्रेणधीमता ॥ २२ ॥ नदास्यामीतिशबलां प्राहराजन्कथंचन ॥ एतदेवहिमेरत्नमेतदेवहिमेधनम् ॥२३॥एतदेवहिसर्वस्वमेतदेवहिजीवितम्॥दर्शश्चपौर्णमासश्चयज्ञाश्चैवाप्तदक्षिणाः॥२४॥ एतदेवहिमेराजन्विविधाश्चक्रियास्तथा॥अदोमूलाःक्रियाःसर्वाममराजन्नसंशयः ॥ २५ ॥ बहुनाकिंप्रलापेननदास्येकामदोहिनीम् ॥ २६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये चतुर्विंशतिसा० बालकांडे त्रिपंचाशः सर्गः ॥ ५३ ॥

गायें आपको देताहूं हे द्विजोत्तम ! आप मुझे शबला दे दीजिये. हे ब्राह्मण! इसकेअतिरिक्त रत्न या सुवर्ण जो चाहिये॥२१॥ सो मैं सब देनेको तैयारहूं परन्तु आप मुझे शबला देदें. बुद्धिमान् विश्वामित्रजीके ऐसा कहनेपर भगवान् वसिष्ठजी बोले कि॥ २२॥ हे राजन् ! मैं शबला किसी प्रकार नहीं दूंगा कि, यह धेनुही हमारा धन है और यही हमारा सुन्दर रत्नहै॥२३॥ यही सर्वस्व बरन् यही हमारा जीवन है मैं इसकी ही सहायतासे दर्शमख और पौर्णमासयज्ञ दक्षिणाके सहित करता हूं ॥ २४ ॥ हे राजन् ! इसीसे अन्यान्य देवक्रियासाधन करताहूं हे विश्वामित्र ! यही सब क्रिया की मूल है इसमें कुछ संशय नहीं ॥२५॥ और अधिक बकवादसे क्या है मैं किसी भांति अपनी इस शबलाको नहीं देसकता ॥ २६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा०, आ० बालकांडे भाषाटीकायां त्रिपंचाशः सर्गः ॥ ५३॥

हे राम ! जब मुनि वसिष्ठजीने किसी प्रकार होमधेनु न दी तब नृपति विश्वामित्रजी उसको बलपूर्वक लेचले॥ १ ॥ हे राम! जिस समय महात्मा राजा उस गायको लेजाने लगे उस समय गायकी आँखोंसे आंसू गिरने लगे और वह दुःखीहो अपने मनमें सोचने लगी ॥२॥क्या महात्मा महर्षिजीने मुझे त्यागन ही कर दिया यह राजपुरुष मुझ दीनको ऐसा कष्टदेकर क्यों लिये जातेहैं ॥३॥ मैंने ज्ञानीधर्मात्मा उन महर्षिका क्या अपराध किया जो अपराधरहित और भक्तजानकर भी निरपराध मुझको उन्होंने त्याग दिया ॥ ४ ॥ वह धेनु इसभांति की चिंता करके घने २ निःश्वास परित्यागपूर्वक उन सैकडों राजपुरुषोंके हाथसे अपनेको छुड़ाकर वायुवेग से बडे प्रतापी वसिष्ठजीके निकट आई और उनके चरणोंमें गिर पड़ी ॥ ५ ॥ ॥ ६ ॥ उस समय उसके नेत्रोंमें आंसू भर रहे थे

कामधेनुंवसिष्ठोऽपियदानत्यजतेमुनिः॥तदाऽस्यशबलांरामविश्वामित्रोऽन्वकर्षत॥१॥नीयमानातुशबलारामराज्ञामहात्मना॥दुःखिताचिंतया मासरुदंतीशोककर्शिता ॥२॥ परित्यक्तावसिष्ठेनकिमहंसुमहात्मना ॥ याहंराजभृतैर्दीनाह्रियेयभृशःखिता ॥३॥ किंमयापकृतंतस्यमहर्षेर्भा वितात्मनः॥यन्मामनागसंदृष्ट्वाभक्तांत्यजतिधार्मिकः॥४॥ इतिसंचिंतयित्वातुनिःश्वस्यचपुनःपुनः॥जगामवेगेनतदावसिष्ठंपरमौजसम् ॥५॥ निर्धूयतांस्तदाभृत्याञ्छतशःशत्रुसूदन॥जगामानिलवेगेनपादमूलंमहात्मनः॥६॥ शबलासारुदंतीचक्रोशंतीचेदमब्रवीत्॥ वसिष्ठस्याग्रतःस्थि त्वारुदंतीमेघनिःस्वना॥७॥ भगवन्किंपरित्यक्तात्वयाऽहंब्रह्मणःसुत॥यस्माद्राजभटामांहिनयंतेत्वत्सकाशतः॥८॥एवमुक्तस्तुब्रह्मर्षिरिदंवचन मब्रवीत्॥शोकसंतप्तहृदयांस्वसारमिवदुःखिताम् ॥९॥नत्वांत्यजामिशबलेनापिमेऽपकृतंत्वया॥एषत्वांनयतेराजाबलान्मत्तोमहाबलः॥१०॥ नहितुल्यंबलंमह्यंराजात्वद्यविशेषतः ॥ बलीराजाक्षत्रियश्चपृथिव्याःपतिरेवच ॥ ११ ॥ इयमक्षौहिणीपूर्णागजवाजिरथाकुला ॥ हस्तिध्वजसमाकीर्णातेनासौबलवत्तमः ॥ १२ ॥ एवमुक्तावसिष्ठेनप्रत्युवाचविनीतवत् ॥ वचनंवचनज्ञासाब्रह्मर्षिमतुलप्रभम् ॥ १३ ॥

वह मुनिके आगे खडी होकर हुंकार कर रोती वसिष्ठजीसे मेघके समान शब्दमें यह बोली ॥ ७ ॥ हे ब्रह्माके पुत्र भगवान्वसिष्ठजी ! राजाके नौकर चाकर मुझे तुम्हारे निकटसे क्यों लिये जातेहैं ?आपने मुझेक्यों परित्याग करदिया ॥८॥ जब शबलाने इसप्रकारके वचनकहे तब महर्षि वशिष्ठजी शोकसन्तप्त भगिनीकी नाईं शोकाकुला शबला से बोले ॥ ९ ॥ हे शबले ! मैंने तुझे परित्याग नहीं कर दिया और तैंनेभी मेरा कोई अपकारनहींकिया महाबलसे मतवाले हो यह राजा तुझे बलपूर्वक ले जातेहैं ॥१०॥ मुझमें इतना बल नहीं है विशेषतः यह राजा बलवान् जातिमें क्षत्रिय और फिर पृथ्वीके अधिपति हैं ॥ ११ ॥ विचार करकेदेख इस राजाके पास हाथी,घोडे, रथप्रभृतिसे पूर्ण एक अक्षौहणी विपुल सेना है सुतरां यह सब भांतिसे हमसे बलवान् हैं ॥ १२ ॥ वसिष्ठजीसे ऐसा सुन वचनकी

जाननेवाली वह धेनु विनयवचनसेमहाप्रभावयुक्त महर्षि वसिष्ठजीसे बोली ॥१३॥ कि क्षत्रिय ब्राह्मणोंसे अधिक बलवान् नहीं हैं हेब्रह्मन् ! क्षत्रियोंके बलकी अपेक्षा ब्राह्मण दिव्यबलसे अधिक बली हैं यह बात सदासे प्रसिद्ध है ॥१४॥आपमें अप्रमेय शक्ति व दुर्द्धर्ष तेजहै विश्वामित्र कभीआपकी बराबरीनहींकरसकते ॥१५॥ जोहो आप मुझे विश्वामित्रका दर्प और तेज संहार करनेके लिए समुचित शक्तिकी सृष्टि करनेमें नियोगकर दीजिये मैं उस दुरात्माका बल और दर्प चूर्णकरूँगी॥१६॥ कामधेनुके यह वचनसुन महायशस्वी वसिष्ठजी यह बोले कि, बलसे सेना उत्पन्न करो जो शत्रुओंकी सेनाका संहार करे ॥ १७ ॥ मुनिकी आज्ञा पाकर सुरभी असंख्य सेना उत्पन्न करने लगी उसकी हुंकार से बहुसंख्यक पह्लव म्लेच्छ उत्पन्न हुए ॥ १८ ॥ उत्पन्न होतेही वह लोग विश्वामित्रके सामने ही सेनाका संहार

नबलंक्षत्त्रियस्याहुर्ब्राह्मणाबलवत्तराः ॥ ब्रह्मन्ब्रह्मबलंदिव्यंक्षात्राच्चबलवत्तरम् ॥१४॥ अप्रमेयंबलंतुभ्यंनत्वयाबलवत्तरः ॥ विश्वामित्रोमहावीर्यस्तेजस्तवदुरासदम् ॥ १५ ॥ नियुंक्ष्वमांमहातेजस्त्वंब्रह्मबलसंभृताम् ॥ तस्यदर्पबलंयत्तंनाशयामिदुरात्मनः ॥ १६ ॥ इत्युक्तस्तु तयारामवसिष्ठस्तुमहायशाः ॥ सृजस्वेतितदोवाचबलंपरबलार्दनम् ॥ १७ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वासुरभिःसाऽसृजत्तदा ॥ तस्याहुंभारवोत्सृष्टाः पह्लवाःशतशोनृप ॥ १८ ॥ नाशयंतिबलंसर्वंविश्वामित्रस्यपश्यतः ॥ सराजापरमक्रुद्धःक्रोधविस्फारितेक्षणः ॥ १९ ॥ पह्लवान्नाशयामास शस्त्रैरुच्चावचैरपि ॥ विश्वामित्रार्दितान्दृष्ट्वापह्लवाञ्छतशस्तदा ॥ २० ॥ भूयएवासृजद्घोराञ्छकान्यवनमिश्रितान् ॥ तैरासीत्संवृताभूमिः शकैर्यवनमिश्रितैः॥२१॥ प्रभावद्भिर्महावीर्यैर्हेमकिंजल्कसन्निभैः ॥तीक्ष्णासिपट्टिशधरैर्हेमवर्णाबरावृतैः ॥२२॥ निर्दग्धंतद्बलंसर्वंप्रदीप्तैरिवपावकैः ततोऽस्त्राणिमहातेजाविश्वामित्रोमुमोच ह ॥२३॥तैस्तेयवनकांबोजाबर्बराश्चाकुलीकृताः॥ २४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये चतुर्विंशतिसा० बालकांडेचतुष्पंचाशः सर्गः ॥ ५४ ॥

करने लगे तब विश्वामित्रजीके जपाकुशुमवत् लाल २ नेत्र हो गये और महा क्रोधित हुए ॥ १९ ॥ और बाण वर्षणकर ऊंचे नीचे शस्त्रोंसे सब म्लेच्छोंका नाशकिया फिर विश्वामित्रके शस्त्रसे उनसैकडों पह्लवोंको मरा हुआ देख ॥२०॥ शबलाने पुनर्वार महाघोर यवनमिश्रित शकजातीयसैन्यसृष्टि उत्पन्नकीउन सब शक और यवनोंसे आश्रमकीभूमि पूर्ण होगयी ॥२१॥ यह सब अधिक बलवान् प्रभावशाली पीले सोनेके समान रंगवाले हाथोंमें तीक्ष्णपटा व तलवार धारण किये पीले कपडे ॥२२॥ प्रदीप अग्निको नाई प्रकाशित होकर राजाकी सबसेना दग्ध करने लगे यह देखकर महातेजस्वी विश्वामित्रजीने अपने अस्त्रछोडे ॥ २३ ॥ जिससे यवन, कम्बोज व बर्बरगणोंका नाशहोगया समस्त व्याकुलहो गए ॥ २४ ॥ इति श्रीमद्रा० वा० आ० बालकांडे भाषायां चतुःपंचाशः सर्गः ॥५४॥

तब वसिष्ठजी विश्वामित्र के अस्त्र शस्त्रों से शकयवनादिकोंको आकुलित व विमोहित देख शबला से बोले कि, तू योगबल से फिर सेना उत्पन्न कर ॥१॥ वसिष्ठजीके ऐसा कहते ही सुरभी की हुंकार से सूर्यसमान कम्बोज नामक सेना जन्मी उसके स्तनोंसे शस्त्रधारी बर्बर गणोंकी उत्पत्ति हुई॥२॥ उसकी योनिसे यवन गुदासे शक रोमोंसे म्लेच्छ, हारीत व किरात सैन्य उत्पन्न हुई ॥३॥ हे रघुनन्दन ! उन लोगोंने जन्मलेते ही तत्क्षणात् विश्वामित्र के हाथी घोडे रथ व पैदलों सहित सब सेनाका सँहारकिया ॥४॥ इस समय विश्वामित्रजीके सौपुत्र वसिष्ठजीके प्रभावसे सेना नाश होती हुई देखकर अस्त्र शस्त्र ग्रहणपूर्वक वसिष्ठजीके मारनेको दौडे ॥५॥ जब वे क्रोधकरके जप करनेवालोंमें श्रेष्ठ वसिष्ठजीके मारनेको दौडे तब वसिष्ठजीने हुंकार कर दिया कि, वे तत्क्षणात् भस्म होगये ॥ ६ ॥ महात्मा

ततस्तानाकुलान्दृष्ट्वाविश्वामित्रास्त्रमोहितान् ॥ वसिष्ठश्चोदयामासकामधुक्सृजयोगतः ॥ १ ॥ तस्याहुंकारतोजाताःकांबोजारविसन्निभाः ॥ ऊधसश्चाथसंभूताबर्बराःशस्त्रपाणयः ॥ २ ॥ योनिदेशाच्चयवनाःशकृद्देशाच्छकाःस्मृताः ॥रोमकूपेषुम्लेच्छाश्चहारीताःसकिरातकाः ॥३ ॥ तैस्तन्निषुदितंसर्वंविश्वामित्रस्यतत्क्षणात्॥सपदातिगजं साश्वंसरथंरघुनंदन॥४॥दृष्ट्वानिषूदितंसैन्यंवसिष्ठेनमहात्मना ॥ विश्वामित्रसुतानांतु शतंनानाविधायुधम् ॥५॥ अभ्यधावत्सुसंक्रुद्धंवसिष्ठंजपतांवरम् ॥ हंकारेणैवतान्सर्वान्निर्ददाहमहानृषिः ॥ ६ ॥ तेसाश्वरथपादातावसिष्ठेनमहात्मना ॥ भस्मीकृतामुहूर्तेनविश्वामित्रसुतास्तथा ॥ ७ ॥ दृष्ट्वाविनाशितान्सर्वान्बलंचसुमहायशाः ॥ सव्रीडंचिंतयाविष्टोविश्वामित्रोऽभवत्तदा ॥८॥ समुद्रइवनिर्वेगोभग्नदंष्ट्रइवोरगः ॥ उपरक्तइवादित्यःसद्योनिष्प्रभतांगतः ॥ ९ ॥ हतपुत्रबलोदीनोलूनपक्षइवद्विजः ॥ हतसर्वबलोत्साहोनिर्वेदंसमपद्यत ॥ १० ॥ सपुत्रमेकंराज्यायपालयेतिनियुज्यच॥पृथिवींक्षत्रधर्मेणवनमेवाभ्यपद्यत ॥ ११ ॥ सगत्वाहिमवत्पार्श्वे किन्नरोरगसेविते ॥ महादेवप्रसादार्थंतपस्तेपेमहातपाः ॥ १२ ॥

वसिष्ठजीने उनकेघोडे रथ और सबपदाति सैन्य मुहूर्तमात्रमें भस्म करदी और विश्वामित्रजीके पुत्रभी भस्मकरदिये ॥७॥ अपनी सेना नाश देखकर महायशस्वी नृपति विश्वामित्रजी लज्जित हो कुछ देरतक चिन्ता करते रहे ॥ ८ ॥ उस समय विश्वामित्रजीकी अवस्था तरंग शून्य समुद्र, टूटे दांतवाले सर्पकी व राहुग्रस्त दिवाकरकी नांई बोध होनेलगी अर्थात् कान्तिशून्य होगये ॥ ९ ॥ वह सेनासहित पुत्रोंका नाश देखकर पंखनुचे पक्षीकी नाईं दीननिरुत्साहमनसे अपमानित हुये ॥ १० ॥ अनन्तर क्षत्रियधर्मानुसार एकपुत्रको राज्यभार समर्पण करकेकहा तुम क्षत्रियोंके धर्मानुसार अच्छी तरह प्रजापालन करना यह कह कर वनको चले गये ॥ ११ ॥ वह महातपा वहां जाकर हिमालयके निकट किन्नरादि सेवित स्थानमें अवस्थानपूर्वक महादेवजीके आराधनार्थ तपस्या करनेलगे ॥ १२ ॥

कुछदिन तपकरनेपर वरदान देनेवाले देवदेव वृषध्वजने विश्वामित्रजीको दर्शन दिया ॥ १३ ॥ और कहा कि, हे राजन् ! तुम्हारे तप करनेका क्या कारण है ? तुम्हारा जो अभिलाष हो वह वर मुझसे मांगलो मैं तुमको वर दूंगा ॥१४॥ महादेवजीके यह कहनेपर महातपस्वी महर्षि विश्वामित्रजी उनकेचरणोंमें प्रणाम करके उनसे कहनेलगे कि ॥१५॥ हे पिनाकपाणे ! यदि आप प्रसन्न हुये हैं तो सांगोपांग मंत्रसहित रहस्ययुक्त धनुर्वेद मुझे दीजिये ॥१६॥ हे पापरहित ! देव, मानव, महर्षि यक्ष,राक्षस और गन्धर्वोंके जितने अस्त्रशस्त्र हैं सब मुझे बेपढे आजावें ॥१७॥ आपके अनुग्रहसे मेरा मनोरथ पूराहो जाय यही मेरी प्रार्थना है यह सुन माहदेवजी ऐसाही होगा यह कहकर अन्तर्धान होगये ॥ १८ ॥ देवादिदेवमहादेवजीसे अस्त्रशस्त्र पाकर महाबली विश्वामित्रजीअतिशय दर्पित होगये

केनचित्त्वथकालेनदेवेशोवृषभध्वजः ॥ दर्शयामासवरदोविश्वामित्रंमहामुनिम् ॥१३॥ किमर्थंतप्यसेराजन्ब्रूहियत्तेविवक्षितम् ॥ वरदोऽस्मिवरोयस्तेकांक्षितःसोऽभिधीयताम् ॥१४॥ एवमुक्तस्तुदेवेनविश्वामित्रोमहातपाः ॥ प्रणिपत्यमहादेवंविश्वामित्रोऽब्रवीदिदम् ॥१५॥ यदितुष्टोमहादेवधनुर्वेदोममानघ॥सांगोपांगोपनिषदःसरहस्यःप्रदीयताम् ॥१६॥ यानिदेवेषुचास्त्राणिदानवेषुमहर्षिषु॥गंधर्वयक्षरक्षःसुप्रतिभांतुममानघ॥१७॥ तवप्रसादाद्भवतुदेवदेवममेप्सितम् ॥एवमस्त्वितिदेवेशोवाक्यमुक्त्वागतस्तदा ॥१८॥ प्राप्यचास्त्राणिदेवेशाद्विश्वामित्रोमहाबलः॥दर्पेणमहतायुक्तोदर्पपूर्णोऽभवत्तदा ॥१९॥ विवर्धमानोवीर्येणसमुद्रइवपर्वणि ॥ हंतमेनेतदारामवसिष्ठमृषिसत्तमम् ॥२०॥ ततोगत्वाऽश्रमपदंमुमोचास्त्राणिपार्थिवः॥यैस्तत्तपोवनंनामनिर्दग्धंचास्त्रतेजसा॥२१॥ उदीर्यमाणमस्त्रंतद्विश्वामित्रस्यधीमतः॥दृष्ट्वाविप्रद्रुताभीतामुनयःशतशोदिशः॥२२॥ वसिष्ठस्यचयेशिष्यायेचवैमृगपक्षिणः॥विद्रवंतिभयाद्भीतानानादिग्भ्यःसहस्रशः ॥२३॥ वसिष्ठस्याश्रमपदंशून्यमासीन्महात्मनः॥मुहूर्तमिवनिःशब्दमासीदिरिणसन्निभम् ॥२४॥ वदतोवैवसिष्ठस्यमाभैरितिमुहुर्मुहुः ॥ नाशयाम्यद्यगाधेयंनीहारमिवभास्करः ॥ २५ ॥

पूर्ण अभिमान हुआ ॥१९॥ हे राम ! तब विश्वामित्रजी मारे वीर्यके ऐसेबढे जैसे पूर्णमासीके चन्द्रमाकोदेख समुद्र बढता है और यह विचारने लगे कि, अबकी बार ऋषिश्रेष्ठ वसिष्ठजीका निस्तार नहीं ॥२०॥ मनमें यह ठीक कर वह फिर वसिष्ठजीके आश्रममेंगये और शरजाल विस्तारकरने लगे इनके बाणोंसे तपोवन दग्धप्राय होगया ॥२१॥ विश्वामित्रको अस्त्रोंका प्रयोग करते देख आश्रमवासी ऋषिगण त्रासके मारे चारों ओर दिशाओंमें पलायन करने लगे ॥२२॥ वसिष्ठजीकेजो शिष्यगण थे और आश्रमके रहनेवाले मृगपक्षिगणतक भयभीत होकर इधर उधर दिशाओंमें भागनेलगे ॥ २३ ॥ इस प्रकार यह वसिष्ठजीका आश्रम शून्यप्राय होकर मुहूर्तभरमें वृक्षरहित ऊपर बिना शब्दकेवनप्रदेशकीनाईं शोभा पानेलगा ॥२४॥ तब वसिष्ठजीबोले कोई मतडरो सूर्यके उदयहोनेसे जैसे अंध-

कारका नाश होजाता है वैसेही मैं गाधिपुत्रका प्राण संहार करूंगा ॥२५॥ जप करनेवालोंमें श्रेष्ठ महातेजस्वी वसिष्ठजीने यहकहकर फिर रोषसहित विश्वामित्रजीसे कहा ॥२६॥ रे निर्बोध ! खोटे आचरण करनेवाले ! जब तैंने बहुत कालसे धन धान्यसे परिपूर्ण इस सुखकर आश्रमका सत्यानाश किया तो अब तूजीतानहीं बचेगा ॥ २७ ॥ वसिष्ठजी यह कहकर धूमरहित अग्निके समान क्रोधसे प्रदीप्त हो यमदंडकी सदृश घोरदंड उठाकर शीघ्रतासे विश्वामित्रके ऊपर चले ॥ २८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणेवाल्मीकीये आदि० बाल० भाषायांपंचपंचाशः सर्गः ॥५५॥ वसिष्ठजीके ऐसा कहनेपर "खडे हो; खडे हो" ऐसा कहकर महाबली विश्वामित्र जीने आग्नेयास्त्र उठाया ॥ १ ॥ तब भगवान् वसिष्ठजी दूसरे कालदंडके समान ब्रह्मदंडको उठाकर क्रोधसहित यह बोले ॥२॥ रे क्षत्रकुलांगार ! यह मैं खडा हूँ

एवमुक्त्वामहातेजावसिष्ठोजपतांवरः॥विश्वामित्रंतदावाक्यंसरोषमिदमब्रवीत्॥२६॥आश्रमंचिरसंवृद्धंयद्विनाशितवानसि दुराचारोहियन्मूढ स्तस्मात्त्वंनभविष्यसि॥२७॥इत्युक्त्वापरमक्रुद्धोदंडमुद्यम्यसत्वरः॥ विधूमइवकालाग्निर्यमदंडमिवापरम्॥२८॥इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा०आदि काव्ये चतुर्विंशतिसा०बाल०पंचपंचाशःसर्गः॥५५॥एवमुक्तोवसिष्ठेनविश्वामित्रोमहाबलः॥आग्नेयमस्त्रमुद्दिश्यतिष्ठतिष्ठेतिचाब्रवीत्॥१॥ब्रह्मदंडमुद्यम्यकालदंडमिवापरम्॥वसिष्ठोभगवान्क्रोधादिदंवचनमब्रवीत्॥२॥क्षत्रबन्धोस्थितोऽस्म्येषयद्बलंतद्विदर्शय॥नाशयाम्यद्यतेदर्पंशस्त्रस्य तवगाधिज ॥३॥क्वचतेक्षत्रियबलंक्वचब्रह्मबलंमहत्॥पश्यब्रह्मबलंदिव्यंममक्षत्रियपांसन॥४॥तस्यास्त्रंगाधिपुत्रस्यघोरमाग्नेयमुत्तमम्॥ब्रह्मदंडे नतच्छांतमग्नेर्वेगइवांभसा॥५॥वारुणंचैवरौद्रंचऐंद्रंपाशुपतंतथा॥ऐषीकंचापिचिक्षेपकुपितोगाधिनंदनः ॥६॥ मानवंमोहनंचैवगांधर्वंस्वपनंतथा॥जृंभणंमोहनंचैवसंतापनविलापने॥७॥शोषणंदारणंचैववज्रमस्त्रंसुदुर्जयम्॥ब्रह्मपाशंकालपाशंवारुणंपाशमेवच ॥८॥ पिनाकमस्त्रंदयितंशुष्कार्द्रेअशनीतथा॥ दंडास्त्रमथपैशाचंक्रौंचमस्त्रंतथैवच॥९॥धर्मचक्रंकालचक्रंविष्णुचक्रंतथैवच ॥ वायव्यंमथनंचैवअस्त्रंहयशिरस्तथा॥१०॥

तुझमें जितनी सामर्थ्यहो अपना बल दिखा रे गाधिसुत ! मैं तेरे शस्त्रका और तेरादर्प चूर्ण करूंगा ॥३॥ रे अधम ! कहां तेरा तुच्छक्षत्रबल कहां महान् ब्रह्म बल ? उसी कारण ब्रह्मबलसे क्षत्रियकी तुलना नहीं, जो हो तू हमारा अतुल दिव्य ब्रह्मबल अब देखेगा ॥ ४ ॥ यह कहकर जलसे जिस भाँति जलती हुई अग्नि शांत होती है वैसेही ब्रह्मदंडके प्रभावसे उस घोर आग्नेयास्त्रको निवारण करदिया ॥५॥ तब कौशिकजीने कुपित हो वारुण; ऐन्द, पाशुपत, ऐषीक अस्त्र छोडा ॥६॥ मानव, मोहन, गान्धर्व, स्वापन, जृम्भण, सन्तापन, विलापन ॥ ७ ॥ शोषण, दारुण जो किसीसे न जीता जाय वज्र, ब्रह्मपाश, कालपाश, वरुणपाश ॥ ८ ॥ शिवजीका अस्त्र पिनाक दंड तैसेही शुष्कपर्वतमें वज्रके समान दंडास्त्र पैशाच क्रौञ्चास्त्र ॥९॥ धर्मचक्र, कालचक्र, विष्णु चक्र, वायव्य मथन; हयशिर, अस्त्र ॥१०॥

और दोशक्ति मारी, कंकाल, मुसल, विद्याधर महास्त्र और दारुण कालास्त्र ॥ ११ ॥ कपाल कंकण और हे रघुनंदन ! त्रिशूलप्रभृति घोर यह सब अस्त्र वसिष्ठजीके उपर प्रयोग किये ॥ १२ ॥ जप करनेवाले वसिष्ठपर अस्त्रगिरते देखकर सबको महाविस्मय हुआ तब ब्रह्माजीके पुत्र वसिष्ठजीने अपने दंडके प्रभावसे इनसब अस्त्रोंका संहार करदिया अर्थात् केवल ब्रह्मदंडनेही सम्पूर्ण अस्त्र ग्रास कर लिये ॥ १३ ॥ सब अस्त्रोंको व्यर्थ देख कर गाधिनंदनने ब्रह्मास्त्र छोडा तब उस अस्त्रको प्रयोग करते देख अग्निप्रभृतिदेवता गण ॥१४॥ देवर्षि महासर्प और गन्धर्व इत्यादिक सब सशंकित हो गये तीनों लोक ब्रह्मास्त्रके डरसे कांपने लगे ॥१५॥ हे राघव ! तब वसिष्ठजीने ब्रह्मतेजोमय ब्रह्मदंडद्वारा दारुण महाघोर ब्रह्मास्त्रको व्यर्थ करदिया ॥ १६ ॥ जितनी देरमें ब्रह्मास्त्र निवारित

शक्तिद्वयंचचिक्षेपकंकालंमुसलंतथा ॥ वैद्याधरंमहास्त्रंचकालास्त्रमथदारुणम् ॥ ११ ॥ त्रिशूलमस्त्रंघोरंचकापालमथकंकणम् ॥ एतान्यस्त्राणिचिक्षेपसर्वाणिरघुनंदन ॥ १२ ॥ वसिष्ठेजपतांश्रेष्ठेतदद्भुतमिवाभवत् ॥ तानिसर्वाणिदंडेनग्रसतेब्रह्मणःसुतः ॥ १३ ॥तेषुशांतेषुब्रह्मास्त्रंक्षिप्तवान्गाधिनंदनः ॥ तदस्त्रमुद्यतंदृष्ट्वादेवाःसाग्निपुरोगमाः ॥१४॥ देवर्षयश्चसंभ्रांतागंधर्वाःसमहोरगाः ॥ त्रैलोक्यमासीत्संत्रस्तंब्रह्मास्त्रेसमुदीरिते ॥१५॥ तदप्यस्त्रंमहाघोरंब्राह्मंब्राह्मेणतेजसा ॥ वसिष्ठोग्रसतेसर्वंब्रह्मदंडेनराघव॥१६॥ब्रह्मास्त्रंग्रसमानस्यवसिष्ठस्यमहात्मनः ॥ त्रैलोक्यमोहनंरौद्रंरूपमासीत्सुदारुणम् ॥१७॥ रोमकूपेषुसर्वेषुवसिष्ठस्यमहात्मनः ॥ मरीच्यइवनिष्पेतुरग्नेर्धूमाकुलार्चिषः ॥ १८ ॥ प्रज्वलद्ब्रह्मदंडश्चवसिष्ठस्यकरोद्यतः ॥ विधूमइवकालाग्निर्यमदंडइवापरः ॥ १९ ॥ ततोऽस्तुवन्मुनिगणावसिष्ठंजपतांवरम् ॥ अमोघतेबलंब्रह्मंस्तेजोधारयतेजसा ॥ २० ॥ निगृहीतस्त्वयाब्रह्मन्विश्वामित्रोमहाबलः॥प्रसीदजगतांश्रेष्ठलोकाःसंतुगतव्यथाः ॥ २१ ॥ एवमुक्तोमहातेजाःशमंचक्रेमहातपाः ॥ विश्वामित्रोविनिकृतोविनिःश्वस्येजमब्रवीत् ॥ २२ ॥

हुआ और जब महात्मा वसिष्ठजीने ब्रह्मास्त्रग्रासकर लिया उस समय वसिष्ठजीकी मूर्ति भयानक और त्रैलोक्य मोहनेवाली होगई ॥ १७ ॥ उन महात्मा वसिष्ठजीकी रुवें २से निर्धूम अग्निकीज्वालाके समान चिनगारियां निकलने लगीं ॥१८॥ वसिष्ठजीके हाथसे ब्रह्मदंड धूमरहित प्रलयाग्निकी नांई प्रज्वलित हो उठा मानो दूसरा यमदण्ड होगया ॥१९॥ तब ऋषिलोगोंने स्तुतिकर जप करनेवालोंमें श्रेष्ठ वसिष्ठजीसे कहा हे ब्रह्मन् ! अपने अमोघ ब्रह्मतेजको अपनी महिमासे अपनेमें धारण करो ॥२०॥ हे महात्मन् ! आपने महाबली विश्वामित्रको भली भांति जीतलिया आपका बल अपरिमेय है अब आपकीकृपासे सबलोगनिश्चिन्त हों ॥ २१ ॥ ऋषियोंकी प्रार्थनासे महातपा वसिष्ठजीने क्रोध त्यागशांत भाव धारण करलिया विश्वामित्रजी हारकर दीर्घ श्वास त्यागकर बोले ॥ २२ ॥

क्षत्रियबलकोधिक्कार है ब्रह्मबलही प्रकृतबलहै एक मात्र ब्रह्मदंडके प्रभावसेही मेरे सब अस्त्रशस्त्र विफल होगये यही इसका पूरा प्रमाणहै ॥२३॥ बस अब इसमें यही निश्चय हैकि;मैं इन्द्रिय और मनको निर्मल करके ब्रह्मत्व पानेके अर्थ स्थिरहो घोर तप करूंगा"हे राम ! महतेजा महाराज विश्वामित्र इसप्रकार कह कर अब शस्त्रोंको त्याग ब्रह्मत्व लाभके निमित्त निश्चय कर तपस्या करनेके निमित्त वनगमनमें प्रवृत्त हुए" ॥ २४ ॥ इति श्रीमद्रा० वाल्मीकीये आदि० बाल काण्डे भाषायां षट्पंचाशः सर्गः ॥ ५६ ॥ तदनन्तर महामुनिविश्वामित्रजी वसिष्ठसे वैरहोनेके कारण मनमें अपनी हार समझहृदयमें दग्ध होतेहुए दीर्घ श्वास परित्याग पूर्वक ॥ १ ॥ हे राघव ! वह महातपकरनेवाले विश्वामित्रजी रानीसमेत दक्षिण दिशामें जाकर घोर तप करने लगे ॥ २ ॥ वह चतुर मूल फल

धिग्बलंक्षत्रियबलंब्रह्मतेजोबलम्बलम् ॥ एकेनब्रह्मदंडेनसर्वास्त्राणिहतानिमे ॥ २३ ॥ तदेतत्प्रसमीक्ष्याहंप्रसन्नेन्द्रियमानसः ॥ तपोमहत्समास्थास्येयद्वैब्रह्मत्वकारणम् ॥ २४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणेवाल्मीकीये आदिकाव्ये चतुर्विंशतिसा० बालकांडेषट्पंचाशःसर्गः॥ ५६ ॥ ततः संतप्तहृदयःस्मरन्निग्रहमात्मनः ॥ विनिःश्वस्यविनिःश्वस्यकृतवैरोमहात्मना ॥१॥सदक्षिणांदिशंगत्वामहिष्यासहराघव ॥ ततापपरमंघोरं विश्वामित्रोमहातपाः ॥ २ ॥ फलमूलाशनोदांतश्चचारपरमंतपः ॥ अथास्यजज्ञिरेपुत्राःसत्यधर्मपरायणाः ॥ ३ ॥ हविष्यंदोमधुष्यंदोदृढनेत्रोमहारथः ॥ पूर्णेवर्षसहस्रेतुब्रह्मालोकपितामहः ॥ ४ ॥ अब्रवीन्मधुरंवाक्यंवि श्वामित्रंतपोधनम् ॥ जितारामर्षिलोकास्तेतपसाकुशिकात्मज ॥ ५ ॥ अनेनतपसात्वांहिराजर्षिरितिविद्महे ॥ एवमुक्त्वामहातेजाजगामसहदैवतैः ॥६॥ त्रिविष्टपंब्रह्मलोकंलोकानांपरमेश्वरः ॥विश्वामित्रोऽपितच्छ्रुत्वाह्रियाकिंचिदवाङ्मुखः ॥ ७ ॥ दुःखेनमहताविष्टःसमन्युरिदमब्रवीत् ॥ तपश्चसुमहत्तप्तंराजर्षिरितिमांविदुः ॥ ८ ॥

भोजन करके कठिन तप करने लगे और इन्द्रियोंको जीत लिया"तपसाधन कालमें उन्होंने महर्षि वसिष्ठकेप्रतिस्पर्धाकरयहसंकल्प किया कि, हमकोब्रह्मर्षिपद मिलै जो प्राकृत जनोंको दुर्लभ है" उस समय वहाँ उनके सत्यधर्मके अनुष्ठान करनेवाले चारपुत्र उत्पन्न हुये ॥ ३ ॥ वह हविष्यन्द, मधुष्यन्द, दृढनेत्र और महारथ इन चार नामोंसे प्रसिद्ध हुये "इस तपस्यासे प्रथम जितने समय इन्होंने राज्यकिया था उस समयतक इनके आठ पुत्र थे"इसप्रकार हजार वर्ष तपस्या करते हुये बीत जानेपर लोकोंके पितामह प्रजापति ब्रह्माजी ॥ ४ ॥ तपोधन विश्वामित्रजीके निकट उपस्थित हो मधुर वाणीसे बोले कि, हे राजर्षे कुशिकपुत्र ! तुमने तपके प्रभावसे त्रिलोकीको जीत लिया ॥ ॥ ५ ॥ अब तपके प्रभावसे तुम राजर्षि ख्यात होगेयह कह कर महातेजस्वी ब्रह्माजी देवताओं सहित चले गये ॥६॥ लोकोंके ईश्वरब्रह्माजीके त्रिविष्टपअर्थात् ब्रह्मलोकमें चले जानेपर विश्वामित्रजीने लाजके मारेनीचेको मुख कर लिया ॥ ७ ॥ और महा

दुःखी हो क्रोधकर कहने लगे कि मैंने ऐसीघोर तपस्या की तो भी राजर्षिही हुआ ॥८॥ देवता और ऋषिगण मुझे राजर्षिकहेंगे मैं जानताहूं कि, अभी मैं तपस्यासे सिद्धकाम नहीं हुआ यह मनमें स्थित करफिर घोर तप करने लगे ॥९॥हे राम ! जब वे धर्मात्मा आत्माके जाननेवाले फिर तपकरने लगे और बहुत काल बीत गया उन्हीं दिनोंमें एक अति सत्यवादीजितेन्द्रिय॥१०॥महाराज इक्ष्वाकुके कुलके बढानेवाले त्रिकुंशनाम भूपाल हुए हे राम ! उनके मनमें यह आया कि, हम कोई ऐसा यज्ञ करें॥११॥ जिससे शरीर सहित देवतों के रहनेयोग्य स्वर्ग को चले जायँ यह विचार वसिष्ठजीको बुलाकर उनसे अपना मनोरथ कहा ॥ १२ ॥ महात्मा वसिष्ठजीने कहा ऐसा नहीं हो सकता । वसिष्ठजीसे यह उत्तर पाकरत्रिशंकु दक्षिण दिशाको चले गये ॥ १३ ॥ राजात्रिशंकु अपना कार्य

देवाःसर्षिगणाः सर्वेनास्तिमन्येतपःफलम्॥एवंनिश्चित्यमनसाभूयएवमहातपाः ॥९॥तपश्चचारधर्मात्माकाकुत्स्थपरमात्मवान् ॥ एतस्मिन्नेवकालेतुसत्यवादीजितेंद्रियः ॥ १० ॥ त्रिशंकुरितिविख्यातइक्ष्वाकुकुलवर्धनः ॥ तस्यबुद्धिःसमुत्पन्नायजेयमितिराघव ॥ ११ ॥ गच्छेयंस्वशरीरेणदेवतानांपरांगतिम्॥वसिष्ठंससमाहूयकथयामासचिंतितम् ॥१२॥ अशक्यमितिचाप्युक्तोवसिष्ठेनमहात्मना॥प्रत्याख्यातोवसिष्ठेनसमयौदक्षिणांदिशम्॥१३॥ततस्तत्कर्मसिद्धयर्थंपुत्रांस्तस्यगतोनृपः॥वासिष्ठादीर्घतपसस्तपोयत्रहितेपिरे ॥१४॥ त्रिशंकुस्तुमहातेजाःशतंपरमभास्वरम् ॥ वसिष्ठपुत्रान्ददृशेतप्यमानान्मनस्विनः ॥ १५ ॥ सोऽभिगम्यमहात्मानः सर्वानेवगुरोःसुतान् ॥ अभिवाद्यानुपूर्व्येणह्रियाकिंचिदवाङ्मुखः ॥ १६ ॥ अब्रवीत्समहात्मानःसर्वानेवकृतांजलिः ॥ शरणंवः प्रपन्नोऽहंशरण्याञ्छरणंगतः ॥ १७॥ प्रत्याख्यातोहिभद्रंवोवसिष्ठेनमहात्मना ॥ यष्टुकामोमहायज्ञंतदनुज्ञातुमर्हथ ॥ १८ ॥ गुरुपुत्रानहंसर्वान्नमस्कृत्यप्रसादये ॥ शिरसाप्रणतोयाचेब्राह्मणांस्तपसिस्थितान् ॥१९॥ तेमांभवंतःसिद्धयर्थंयाजयंतुसमाहिताः ॥ सशरीरोयथाहंवैदेवलोकमवाप्नुयाम् ॥ २० ॥

साधने को वहां पहुँचे जहां दीर्घतपा वसिष्ठजीके पुत्र तप करते थे ॥१४॥महातेजस्वी त्रिशंकु ने वहां पहुँच कर देखा कि, उन मनस्वीवसिष्ठजीकेपुत्रोंकीप्रभा सौ सूर्य तुल्य हैऔर वह घोर तपस्यामें मन लगाये हुए हैं॥१५॥ राजा आगेबढेउन महात्मा गुरुपुत्रों को यथाक्रम प्रणाम करके लज्जित मुहँ नीचे कर बैठगये॥१६॥ वह हाथजोड़कर उनसब महात्माओंसे कहे कि आप शरण देनेवालोंमेंसमर्थ हैं इसकारण मैं आपकी शरण मे आया हूँ ॥१७॥ मैंने यज्ञ की कामनासे गुरुदेव वसिष्ठजीको व्रती करनेको कहाथा सो उन महात्माने जवाब देदिया,अतएव अब आप अनुग्रह करकेयज्ञ कराइये ॥१८॥ मैं आप सब गुरुपुत्रोंको प्रसन्नताके लिए प्रणाम करताहूँ और शिर नवाके तपमें स्थित आपब्राह्मणोंसे कृपाभिलाषा करताहूँ ॥१९॥आप लोग कृपाकरकेमेरे यज्ञको सिद्ध कर दीजिये जिससे मैं

शरीर सहित स्वर्ग को चला जाऊँ आपको ऐसा करना चाहिये ॥२०॥ जब गुरुजीने मुझे जवाब दिया तो मेरी तो अब कोई गति नहीं इस कारण अब आपके सिवाय मैं किसकी शरण जाऊँ ॥२१॥ आपही विचार कर देखिए कि, गुरुही इक्ष्वाकुवंश के परमगति हैं सो गुरुजीके अभाव में आपही हमारे परम देवता हैं ॥२२॥ इति श्रीमद्रा० वा० आ० बालकांडे भाषायां सप्तपंचाशः सर्गः ॥५७॥ हे राम ! तदनन्तर ऋषि पुत्रगण राजा त्रिशंकु का वचन श्रवण करके वे सौओं उनसे क्रोधपूर्वक बोले ॥१॥ हे मन्दबुद्धे ! जब सत्यवादी पिताजीने जो तुम्हारे गुरु हैं तुमको जवाब दिया है तब तुम उनको अनादरित कर किस प्रकार दूसरी शाखाका आश्रय लेना चाहते हो ॥२॥ इक्ष्वाकुवंशियों के गुरुही परमगति होते हैं वह अपने सत्यवादी गुरुवाक्य का अनादर नहीं कर सकते ॥ ३ ॥ जिसको हमारे पिताजी भगवान् वशिष्ठ नहीं कर सकते उस यज्ञ की हम लोग किस प्रकार साधन करेंगे ॥ ४ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! तुम निर्बोध हो तुम फिर अपनी पुरीको

प्रत्याख्यातोवसिष्ठेनगतिमन्यांतपोधनाः॥गुरुपुत्रानृतेसर्वान्नाहपश्यामिकांचन॥२१॥(इक्ष्वाकूणांहिसर्वेषांपुरोधाःपरमागतिः ॥तस्मादनंतरं सर्वेभवंतोदैवतंमम ॥२२॥) इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये चतुर्विंशतिसा० बालकांडे सप्तपंचाशः सर्गः ॥५७॥ततस्त्रिशं कोर्वचनंश्रुत्वाक्रोधसमन्वितम् ॥ ऋषिपुत्रशतंरामराजानमिदमब्रवीत् ॥१॥ प्रत्याख्यातोऽसिदुर्मेधोगुरुणासत्यवादिना॥तंकथंसमतिक्रम्य शाखांतरमुपेयिवान् ॥२॥ इक्ष्वाकूणांहिसर्वेषांपुरोधाःपरमागतिः॥नचातिक्रमितुंशक्यंवचनंसत्यवादिनः ॥३॥अशक्यमितिसोवाचवसिष्ठो भगवानृषिः॥ तंवयंवैसमाहर्तुंक्रतुंशक्ताःकथंचन॥४॥बालिशस्त्वंनरश्रेष्ठगम्यतांस्वपुरंपुनः ॥ याजनेभगवाञ्छक्तस्त्रैलोक्यस्यापिपार्थिव॥५॥ अवमानंकथंकर्तुंतस्यशक्ष्यामहेवयम्॥तेषांतद्वचनंश्रुत्वाक्रोधपर्याकुलाक्षरम्॥६॥सराजापुनरेवैतानिदंवचनमब्रवीत्॥प्रत्याख्यातोभगवतागुरु पुत्रैस्तथैवहि॥७॥अन्यांगतिंगमिष्यामिस्वस्तिवोऽस्तुतपोधनाः॥ऋषिपुत्रास्तुतच्छ्रुत्वावाक्यंघोराभिसंहितम्॥८॥शेपुःपरमसंक्रुद्धाश्चंडालत्वंगमि ष्यसि॥इत्युक्त्वातेमहात्मानोविविशुःस्वंस्वमाश्रमम्॥९॥अथरात्र्यांव्यतीतायांराजाचंडालतांगतः॥नीलवस्त्रधरोनीलःपुरुषोध्वस्तमूर्धजः॥१०॥

चले जाओ हे राजन् ! यह जानलो कि, हमारे पिताही तीनों लोकों को यज्ञ कराने में समर्थ हैं ॥५॥ हम पुत्र होकर किस प्रकार अपने पिता का अनादर करें उनके क्रोधपूर्ण वाक्य श्रवण करके ॥ ६ ॥ राजाने फिर उनसे इस प्रकार के वचन कहे आपके पिताने हमें जबाब दिया और आपने भी वही किया ॥ ७ ॥ हे तापसगण ! आपका मंगल हो मैं जाता हूँ, अब और किसीके पास जाकर उनसे यज्ञ कराऊँगा। ऋषिपुत्रोंने जब यह कठोर वचन ना तो ॥८॥ महाक्रोधित हो शाप दिया कि, तू चाण्डाल अवस्था को प्राप्त होगा यह शाप देकर वे महात्मा अपने २ आश्रम में प्रवेश कर गये ॥ ९ ॥ अनन्तर रात्रि बीत जाने पर भोरही त्रिकुंश चाण्डाल हो गये; उनका शरीर नीलवर्ण केश खर्व और वस्त्र सब नीले ही नीले हो गये ॥ १० ॥

चिताकी भस्म व मुर्दोंके से छिन्न वस्त्र धारण किये जितने गहने थे लोहमय हो गये। राजा की ऐसी अवस्था देखकर मंत्रियोंने उन्हें परित्याग कर दिया ॥ ११ ॥ हे राम ! अनुगत पुरवासी राजा की यह भयावनी मूर्ति देखकर उनको छोडकर चले गये तब ज्ञानी राजा अकेले घूमने लगे ॥ १२ रात दिन मनही मन जलते हुए तपोधन विश्वामित्रजीके पासको गये विश्वामित्रजी विफल मनोरथ इन्हें देखने लगे ॥ १३ ॥ हे राम ! चाण्डालरूप में राजा को देख मुनिके मनमें दया का संचार हुआ और महातेजा धार्मिक विश्वामित्रजी राजा से बोले ॥ १४ ॥ उस घोर रूपवाले राजा से विश्वामित्रजी यों कहने लगे तुम यहां कैसे आये मेरे आश्रम में आने का कारण कहो ॥ १५ ॥ हे वीर अयोध्या के राजा ! ऐसा ज्ञात होता है कि, तुम किसी शाप से चाण्डाल हो गये

चित्यामाल्यांगरागश्चआयसाभरणोऽभवत्॥तंदृष्ट्वामंत्रिणःसर्वेंत्यज्यचंडालरूपिणम् ॥११॥ प्राद्रवन्सहितारामपौरायेऽस्यानुगामिनः ॥एको हिराजाकाकुत्स्थजगामपरमात्मवान् ॥१२॥ दह्यमानोदिवारात्रविश्वामित्रंतपोधनम् ॥ विश्वामित्रस्तुतंदृष्ट्वाराजानंविफलीकृतम् ॥ १३ ॥ चंडालरूपिणंरामम्मुनिःकारुण्यमागतः॥कारुण्यात्समहातेजावाक्यंपरमधार्मिकः ॥१४॥ इदंजगादभद्रंतेराजानंघोरदर्शनम् ॥ किमागमनका र्यंतेराजपुत्रमहाबल ॥ १५ ॥ अयोध्याधिपतेवीरशापाच्चंडालतांगतः ॥ अथतद्वाक्यमाकर्ण्यराजाचंडालतांगतः ॥ १६ ॥ अब्रवीत्प्रांज लिर्वाक्यंवाक्यज्ञोवाक्यकोविदम् ॥ प्रत्याख्यातोऽस्मिगुरुणागुरुपुत्रैस्तथैवच ॥१७॥ अनवाप्यैवतंकामंमयाप्राप्तोविपर्ययः॥सशरीरोदिवंया यामितिमेसौम्यदर्शन ॥ १८ ॥ मयाचेष्टंक्रतुशतंतच्चनावाप्यतेफलम् ॥ अनृतंनोक्तपूर्वंमेनचवक्ष्येकदा चन ॥ १९ ॥ कृच्छ्रेष्वपिगतःसौम्य क्षत्रधर्मेणतेशपे ॥ यज्ञैर्बहुविधैरिष्टंप्रजाधर्मेणपालिताः ॥२०॥ गुरवश्चमहात्मानःशीलवृत्तेनतोषिताः ॥ धर्मेप्रयतमानस्ययज्ञंचाहर्तुमिच्छतः ॥ २१ ॥ परितोषंनगच्छंतिगुरवोमुनिपुंगव ॥ दैवमेवपरंमन्येपौरुषंतुनिरर्थकम् ॥ २२ ॥

उनके ऐसे वचन सुन चाण्डालत्व को प्राप्त हुए राजा ॥१६॥ वाक्य विशारद विश्वामित्रजीसे हाथ जोडकर बोले कि, गुरु वसिष्ठजी और उनके सौ पुत्रों ने हमारी यह दशा की है ॥१७॥ हे प्रियदर्शन ! मैंने शरीर सहित स्वर्गमें जानेके अभिप्रायसे एक यज्ञ करनेका अभिलाष गुरुजी और उनके पुत्रोंसे कहा किंतु प्रार्थना पूरी करना तो दूर रहा इन्होंने शापसे हमारी यह अवस्थाकी॥१८॥ मैंने एकसौ यज्ञ किये हैं किंतु उनके फलसे वंचित होगया मैंने प्रथम कभी मिथ्या नहीं कहा न अब कहता हूँ॥१९॥ महादुःख प्राप्त होनेपरभी मैंने सत्यधर्म नहीं छोडा क्षत्रधर्म मेरा साक्षी है इसके अतिरिक्त धर्मानुसार प्रजापालन की है॥ २० ॥ मैंने महात्मागुरुज नोंकोसदाचारसेसन्तुष्ट किया है मेरीवासनाधर्मानुसारही यज्ञ करनेकी थी ॥ २१ ॥ हे मुनीश्वर ! भाग्यसे गुरुदेवभी मुझसे रूठगये मैं जानता हूँ कि, दैवही

प्रधान है पौरुष तो केवल सामान्य पदार्थ है ॥२२॥ दैवही सबको वश कर रखता है दैवही सबकी परमगति है मेरा भाग्य बिगडा हुआ है आप मेरे ऊपर कृपाकीजिये आपका मंगलहो मैं जानता हूँ कि, भाग्यसेही इस शुभकार्यमें बाधा पडी है ॥२३॥ आपके सिवाय मैं और किसकी शरण जाऊं मुझे अब और कोई शरण देनेवाला नहीं, आपही अपनी सामर्थ्यसे दैवकी गतिको छेकनेमें समर्थ हैं ॥२४॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० बालकाण्डे भाषायामष्टपंचाशः सर्गः ॥५८॥ कुशिकनंदन त्रिशंकुके ऐसे वचन श्रवणकर दयाकर साक्षात्चांडालरूपी राजासे मधुर वचन बोले ॥१॥ हे वत्स ! इक्ष्वाकुके कुलमें उत्पन्न हुये हो तुम भले आये मैं ज़ानता हूँ कि, तुम धार्मिकहो इसीकारण आश्रम देता हूँ, हे राजन् ! तुम कुछ मत डरो ॥२॥ मैं तुम्हारे यज्ञकी सहाय करनेके लिये पुण्य कर्म करनेवाले ऋषियोंको

दैवेनाक्रम्यतेसर्वंदैवंहिपरमागतिः ॥ तस्यमेपरमार्तस्यप्रसादमभिकांक्षतः ॥ कर्तुमर्हसिभद्रंतेदैवोपहतकर्मणः ॥ २३ ॥ नान्यांगतिंगमिष्यामिनान्यच्छरणमस्तिमे॥दैवंपुरुषकारेणनिवर्तयितुमर्हसि॥२४॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्येचतुर्विंशतिसा०बालकांडे अष्टपंचाशः सर्गः ॥ ५८ ॥ उक्तवाक्यंतुराजानंकृपयाकुशिकात्मजः ॥ अब्रवीन्मधुरंवाक्यंसाक्ष च्चंडालतांगतम् ॥१॥ इक्ष्वाकोस्वागतंवत्स जानामित्वांसुधार्मिकम् ॥ शरणंते प्रदास्यामिमाभैषीर्नृपपुंगव ॥२॥ अहमामंत्रयेसर्वान्महर्षीन्पुण्यकर्मणः ॥ यज्ञसाह्यकराञ्राजंस्ततोयक्ष्यसिनिर्वृतः ॥३॥ गुरुशापकृतंरूपंयदिदंत्वयिवर्तते ॥ अनेनसहरूपेणसशरीरो गमिष्यसि ॥४॥ हस्तप्राप्तमहंमन्येस्वर्गंतवनराधिप ॥ यस्त्वं कौशिकमागम्यशरण्यंशरणागतः ॥५॥ एवमुक्त्वामहातेजाःपुत्रान्परमधार्मिकान् ॥ व्यादिदेशमहाप्राज्ञन्यज्ञासभारकारणात् ॥६॥ सर्वाञ्छिष्यान्समाहूयवाक्यमेतदुवाचह ॥सर्वानृषीन्सवासिष्ठानानयध्वंममाज्ञया॥७॥ सशिष्यान्सुहृदश्चैवसर्त्विजःसुबहुश्रुतान्॥यदन्योवचनंब्रूयान्मद्वाक्यबलचोदितः ॥ ८ ॥ तत्सर्वमखिलेनोक्तममाख्येयमनादृतम् ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वादिशोजग्मुस्तदाज्ञया ॥ ९ ॥

न्योता पठाऊंगा उनको लेकर तुम अपना अभीष्ट यज्ञ पूर्ण कर सकोगे॥३॥यद्यपि गुरुपुत्रोंके शापसे तुम्हारा शरीर विरूप होगया तथापि उस इसी शरीरसे स्वर्गको चले जावोगे ॥४॥ जब तुम शरण देनेवाले विश्वामित्रके शरण आये हो जानलो कि, स्वर्गमें पहुँचही गये स्वर्ग अपने हाथोंमें आया जानलो ॥५॥ यह कह कर धार्मिक विद्वान् महातेजस्वी विश्वामित्रजीने अनने पुत्रोंको यज्ञका आयोजन करनेकी आज्ञादी ॥ ६ ॥ फिर सब शिष्योंको बुलाकर कहा तुम लोग मेरी आज्ञासे पुत्रोंसहित वसिष्ठप्रभृति सब ऋषियोंको ले आओ ॥७॥ इसके अतिरिक्त शिष्य वसुहृदोंसहित बहुत अध्ययन किये हुए पुरोहितोंको बुला लाना यदि कोई मेरे कहनेका अनादरकरे तो ॥ ८ ॥ मुझसे सब ठीक२उनके अनादरके वचन कह देना, तबविश्वामित्रजीकी आज्ञासे सब शिष्यगण चारोंओरको चले

गये ॥९॥ और अनेक देशोंसे ब्रह्मवादी मुनिगण आने लगे और विश्वामित्रके शिष्यगणभी अतितेजस्वी मुनिके पास लौट आये ॥ १० ॥ और सब ब्रह्मवादियोंके वचन सुनाकर विश्वामित्रजीसे बोले कि,सबदेशोंके ब्राह्मणआपका नामसुनकर यज्ञमें आनेको सम्मत हुये ॥११॥ केवलमहोदय नामक एक ब्राह्मण और वसिष्ठपुत्र यज्ञमें नहीं आना चाहते, उन्होंने क्रोधितनेत्र होकर हमसे जो कहाथा ॥१२॥ जो उन्होंने वचन कहे हैं सो हे मुनिश्रेष्ठ ! सुनिये कि,जिस यज्ञका यजमान तो चांडाल, व यज्ञका करनेवालाक्षत्रिय ॥ १३ ॥ उस सभामें देवता ऋषि किस प्रकार यज्ञभाग ग्रहण करेंगे और महात्मा ब्राह्मणगण कैसे चांडालका छुआ उस यज्ञमें भोजन करेंगे ॥१४॥ और देखेंगे कि,यज्ञकर्त्ता किस प्रकार विश्वामित्रकी सहायतासे स्वर्गको चला जायगा,यह वचन उन्होंने बडे२ लाल २

आजग्मुरथदेशेभ्यःसर्वेभ्योब्रह्मवादिनः ॥ तेचाशिष्याःसमागम्यमुनिंज्वलिततेजसम् ॥१०॥ ऊचुश्चवचनंसर्वंसर्वेषांब्रह्मवादिनाम्॥ श्रुत्वाते वचनंसर्वेसमायांतिद्विजातयः ॥११॥सर्वदेशेषुचागच्छन्वर्जयित्वामहोदयम् ॥ वासिष्ठंयच्छतंसर्वंक्रोधपर्याकुलाक्षरम् ॥१२॥ यथाहवचनं सर्वंशृणुत्वंमुनिपुंगव ॥क्षत्रियोयाजकोयस्यचंडालस्यविशेषतः॥१३॥ कथंसदसिभोक्तारोहविस्तस्यसुरर्षयः ॥ ब्राह्मणामामहात्मानोभुक्त्वा चांडालभोजनम् ॥१४॥ कथंस्वर्गंगमिष्यंतिविश्वामित्रेणपालिता ॥ एतद्वचननैष्ठुर्यमूचुः संरक्तलोचनाः ॥१५॥ वासिष्ठामुनिशार्दूलसर्वे सहमहोदयाः ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वासर्वेषांमुनिपुंगवः ॥ १६ ॥ क्रोधसंरक्तनयनःसरोषमिदमब्रवीत् ॥ यद्दूषयंत्यदुष्टंमांतपउग्रंसमास्थितम् ॥ १७ ॥ भस्मीभूतादुरात्मानोभविष्यंतिनसंशयः ॥ अद्यतेकालपाशेननीतावैवस्वतक्षयम् ॥ १८ ॥ सप्तजातिशतान्येवमृतपाःसंभवंतुते ॥ श्वमांसनियताहारामुष्टिकानामनिर्घृणाः ॥ १९ ॥ विकृताश्चविरूपाश्चलोकाननुचरंत्विमान् ॥ महोदयश्चदुर्बुद्धिर्मामदूष्यंह्यदूषयत् ॥२० ॥ दूषितःसर्वलोकेषुनिषादत्वंगमिष्यति ॥ प्राणातिपातनिरतोनिरनुक्रोशतांगतः ॥ २१ ॥

त्रकर निष्ठुरतासेकहे हैं ॥१५॥हे मुनिवर ! महोदय और वसिष्ठकेपुत्रोंने यह गर्वीले वचनकहे हैंउनअपनेसबशिष्योंके वचनसुन मुनियोंमें श्रेष्ठ विश्वामित्रजी १६॥ लाल २ नेत्रकर क्रोधसहित बोले कि, मैं कठोर तप कर रहाहूँ कोई अन्याय कार्य किया नहीं इसपरभी जो मुझे बुरा कहें ॥१७॥ औरमुझसे घृणा करें तो वह दुरात्मा लोग भस्म होजायेंग और कालपाशसे बँधेहुये यमपुरको गमन करेंगे ॥ १८ ॥ फिर सातसौ जन्मतक कफन कसौटी कर काल व्यतीत करेंगे कुत्तेका मांस उनका भोजन होगा डोम कहलावेंगे निर्धन होंगे ॥१९॥ उनको विकृत और विरूपभावसे सबलोकोंमें विचरणकरनाहोगा, उसमहोदयनेभी जब दुर्बुद्धि वश होकर दोषरहित मुझे दूषण दिया है ॥२०॥ सो वहभी सब लोकमें दूषित होकर निषाद जाति होय,अधिक क्या कहूं उसको प्राणियोंकी

हिंसा करनेमें नियुक्त होकर ॥ २१ ॥ बहुत कालतक मेरे क्रोधसे महादुःख भोगना पडेगा यह कहकर महातपस्वी तेजस्वी महामुनिविश्वामित्र ऋषियोंके बीचमें बैठ चुप रहे ॥२२॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० बालकांडे भाषायामेकोनषष्टितमः सर्गः॥ ५९ ॥ तब महातेजस्वीविश्वामित्रजी महोदय और वसिष्ठके पुत्रोंकोतपके बलसे निहत जानकर ऋषियोंके सामने बोले ॥१॥ इक्ष्वाकुवंशीय यह विख्यात नृपति त्रिशंकु परम धार्मिक और अतिशय दाता हमारे शरणागतहुये हैं ॥२॥ अपने शरीर सहित स्वर्गको जानेको इनकी अभिलाषा है इस कारण जिससे इनका मनोभिलाष सिद्ध होजाय यह इसी शरीरसे स्वर्गको चलेजायँ ॥३॥ ऐसा यज्ञ आप हमारे साथ कराइये विश्वामित्रजीके ऐसे वचन श्रवण कर महर्षि ॥ ४ ॥ सब धर्मज्ञ ऋषि तत्काल धर्मसंयुक्त वचन आपस में बोले कि, यह कौशिक मुनि

दीर्घकालंममक्रोधाद्दुर्गतिंवर्तयिष्यति ॥ एतावदुक्त्वावचनंविश्वामित्रोमहातपाः ॥ विरराममहातेजाऋषिमध्येमहामुनिः ॥२२॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये चतुर्विंशतिसा० बालकांडे एकोनषष्टितमः सर्गः ॥५९॥ तपोबलहताञ्ज्ञात्वावसिष्ठान्समहोदयान् ॥ ऋषिमध्येमहातेजाविश्वामित्रोऽभ्यभाषत॥१॥अयमिक्ष्वाकुदायादस्त्रिशंकुरितिविश्रुतः॥धर्मिष्ठश्चवदान्यश्चमांचैवशरणंगतः ॥२॥स्वेनानेन शरीरेणदेवलोकजिगीषया॥यथाऽयंस्वशरीरेणदेवलोकंगमिष्यति॥३॥तथाप्रवर्त्यतांयज्ञोभवद्भिश्चमयासह ॥विश्वामित्रवचःश्रुत्वासर्वएवमहर्षयः ॥ ४ ॥ ऊचुःसमेताःसहसाधर्मज्ञाधर्मसंहितम् ॥ अयंकुशिकदायादोमुनिःपरमकोपनः ॥ ५ ॥ यदाहवचनंसम्यगेतत्कार्यंनसंशयः ॥ अग्निकल्पोहिभगवाञ्छापंदास्यतिरोषतः ॥६॥ तस्मात्प्रवर्त्यतांयज्ञःसशरीरोयथादिवि ॥ गच्छेदिक्ष्वाकुदायादोविश्वामित्रस्यतेजसा ॥७॥ ततः प्रवर्त्यतांयज्ञःसर्वेसमधितिष्ठत ॥ एवमुक्त्वामहर्षयःसंजह्रुस्ताःक्रियास्तदा॥८॥याजकश्चमहातेजाविश्वामित्रोऽभवत्क्रतौ ॥ ऋत्विजश्चानुपूर्व्येणमंत्रवन्मंत्रकोविदाः ॥ ९ ॥ चक्रुः सर्वाणिकर्माणियथाकल्पंयथाविधि ॥ ततःकालेनमहताविश्वामित्रोमहातपाः ॥ १० ॥

महाकोपी हैं ॥५॥ जो यह कहैं सो करनेमें विलम्ब न करो क्योंकि वह अग्नि के समान हैं इनका कहा न करने से यह शाप अवश्य देंगे ॥६॥ इस कारण ऐसे यज्ञ में प्रवृत्त हो जिससे विश्वामित्रके तेज से त्रिशंकु शरीरसहित स्वर्ग को चला जाय ॥७॥ तदनन्तर सम्पूर्ण ऋषियों के मध्य में यज्ञारम्भ हुआ ऋषिगण आपस में सम्मति कर यज्ञकार्य में नियुक्त हुए और यज्ञ की क्रिया करने लगे ॥८॥ उस यज्ञ के याजकतो महातेजवान् विश्वामित्रजी हुए व और और२ विज्ञानी ऋषिलोग जो अच्छी रीतिसे वेदमंत्र जानते थे ऋत्विज हुए ॥९॥ यज्ञके समस्त कार्य यथाविधि यथाकल्प निर्वाहित होने लगे कुछ काल बीत जाने पर महर्षि महातपस्वी विश्वामित्रजीने॥ १०॥

यज्ञभाग ग्रहण करने के लिए सब देवताओं का आह्वान किया किंतु कोई देवता भाग ग्रहण करने को नहीं आया ॥११॥ तब तो राजर्षि तेजस्वी विश्वामित्र क्रोधित हो स्रुवा उठाय क्रोधकर त्रिशंकु से इस प्रकार बोले ॥१२॥ हे राजन्! मेरा तपबल देखो जो मैंने तपस्या से प्राप्त किया है मैं अपने तप के प्रभाव से तुम्हें शरीरसहित स्वर्ग को पहुँचाऊँगा ॥१३॥ हे नरेश्वर! यद्यपि शरीर सहित स्वर्ग में जाना सहज नहीं है किंतु मेरी तपस्या के संचित फलके प्रभावसे तुम स्वर्ग को जा सकोगे जो कुछ मेरे तप का फल है ॥१४॥ उसके प्रभावसे तुम स्वर्ग को जाओ। जब राजर्षिने ऐसा कहा तो सब ऋषियों के सामने शरीर सहित राजा त्रिशंकु मुनियों को देखते २ ॥ १५ ॥ स्वर्ग को चले गये हे राम! उनको स्वर्गमें गया हुआ देखसुरराज ॥१६॥ देवताओं सहित राजा से यह वचन बोले, हे नृपते! तुम स्वर्ग

चकारवाहनंतत्रभागार्थंसर्वदेवताः ॥ नाभ्यागमंस्तदातत्रभागार्थंसर्वदेवताः ॥ ११ ॥ ततःकोपसमाविष्टोविश्वामित्रोमहामुनिः स्रुवमुद्यम्य सक्रोधस्त्रिशंकुमिदमब्रवीत् ॥१२॥पश्यमेतपसोवीर्यंस्वार्जितस्यनरेश्वर ॥ एषत्वांस्वशरीरेणनयामिस्व र्गमोजसा ॥ १३ ॥ दुष्प्रापंस्व शरीरेणस्वर्गंगच्छनरेश्वर ॥ स्वार्जितंकिंचिदप्यस्तिमयाहितपसःफलम् ॥ १४ ॥ राजंस्त्वंतेजसातस्यसशरीरोदिवंव्रज ॥ उक्तवाक्येमुनौ तस्मिन्सशरीरोन नश्वरः ॥१५॥ दिवंजगामकाकुत्स्थमुनीनांपश्यतांतदा ॥ स्वर्गलोकंगतंदृष्ट्वात्रिशंकुंपाकशासनः ॥ १६ ॥ सहसर्वैःसुरगणै रिदंवचनमब्रवीत् ॥ त्रिशंकोगच्छभूयस्त्वंनासिस्वर्गकृतालयः ॥ १७ ॥ गुरुशापहतोमूढपतभूमिमवाक्छिराः ॥ एवमुक्तोमहेंद्रेणत्रिशंकुरपत त्पुनः ॥ १८ ॥ विक्रोशमानस्त्राहीतिविश्वामित्रंतपोधनम् ॥ तच्छ्रुत्वावचनंतस्यक्रोशमानस्यकौशिकः ॥ १९ ॥तिष्ठेतिष्ठेति ॥ तिचाब्रवीत् ॥ ऋषिमध्येसतेजस्वीप्रजापतिरिवापरः ॥२०॥ सृजन्दक्षिणमार्गस्थान्सप्तर्षीनपरान्पुनः ॥ नक्षत्रवंशमपरमसृजत्क्रोधमूर्च्छितः ॥२१॥ दक्षिणांदिशमास्थायऋषिमध्येमहायशाः ॥ सृष्ट्वानक्षत्रवंशंचक्रोधेनकलुषीकृतः ॥ २२ ॥

में रहने योग्य नहीं हो इसकारण फिर मृत्युलोक को जाओ ॥१७॥ हे मूर्ख! गुरु वसिष्ठजीने तुम्हें शाप दिया है अतएव तुम नीचे को मुँह करके गिरो इन्द्रके ऐसा कहते ही त्रिशंकु नीचे मुँह होकर गिरे ॥१८॥ वो गिरते समय तपस्वी विश्वामित्रजीको लक्ष्य कर "त्राहित्राहि" शब्द करने लगे तब विश्वामित्रजी त्रिशंकु के ऐसे दुःखके वचन सुनकर ॥१९॥ ऋषियों केबीच में वह तेजस्वी दूसरे प्रजापतिकी नाईं महाक्रोध कर "वहीं रहो वहीं रहो" यह वचन बोले ॥२०॥ उससमय कौशिकजीने क्रोधसे मूर्छित होकर दक्षिण दिशा में नये सप्तर्षि बनाये इसी भांति और नये नक्षत्र बनाते हुए ॥२१॥ इसप्रकार ऋषियों के बीचमें बैठे हुए वह महायशस्वी

विश्वामित्रजी क्रोधसे दक्षिण दिशामें और भी छोटे २ नक्षत्र बनाने लगे॥२२॥ उन्होंने यह सृष्टि करके कहा या तो मैं दूसरा इन्द्रही बनाऊँगा या स्वर्गलोक इन्द्रशून्य करूँगा यह कहकर क्रोधसे देवताओंकीभी सृष्टि करने लगे ॥२३॥उस समय सुरासुर और ऋषिगण व्याकुल भावसे विश्वामित्रजीके निकट उपस्थित होकर विनयपूर्वक कहने लगे ॥२४॥कि,हे महाभागी ! इस राजा त्रिशंकुको गुरुका शाप लगा है हे तपोधन !इस कारण सशरीर स्वर्गमें इनका जाना नहींहो सकता ॥ २५ ॥ मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रजीने उन देवतों के ऐसे वचन सुन सब देवताओं से यह वचन कहे ॥ २६ ॥ हे महात्माओ ! आपका कल्याण हो मैं राजात्रिशंकु को सशरीर स्वर्गमें भेजने की प्रतिज्ञा कर चुका हूं उसकी हुई प्रतिज्ञा को मैं व्यर्थ करना नहीं चाहता ॥ २७ ॥ इस समय या तो शरीरसहित

अन्यमिंद्रंकरिष्यामिलोकोवास्यादनिंद्रकः ॥ दैवतान्यपिसक्रोधात्स्रष्टुंसमुपचक्रमे ॥२३॥ ततः परमसंभ्रांताः सर्षिसंघाःसुरासुराः ॥ विश्वामित्रंमहात्मानमूचुःसानुनयंवचः ॥ २४॥ अयंराजामहाभागगुरुशापपरिक्षतः ॥ सशरीरोदिवंयातुंनार्हत्येवतपोधन ॥ २५ ॥ तेषांतद्वचनं श्रुत्वादेवानांमुनिपुंगवः ॥ अब्रवीत्सुमहद्वाक्यंकौशिकःसर्वदेवताः ॥ २६ ॥ सशरीरस्यभद्रंवस्त्रिशंकोरस्यभूपतेः ॥ आरोहणंप्रतिज्ञातंनानृतं कर्तुमुत्सहे ॥ २७ ॥ स्वर्गोऽस्तुसशरीरस्यत्रिशंकोरस्यशास्वतः ॥ नक्षत्राणिचसर्वाणिमामकानिध्रुवाण्यथ ॥ २८ ॥ यावल्लोकाधरिष्यंतितिष्ठंत्वेतानिसर्वशः ॥ मत्कृतानिसुराःसर्वेतदनुज्ञातुमर्हथ ॥२९॥ एवमुक्ताःसुराःसर्वेप्रत्यूचुर्मुनिपुंगवम् ॥ एवंभवतुभद्रंतेतिष्ठंत्वेतानिसर्वशः ॥३०॥ गगनेतान्यनेकानिवैश्वानरपथाद्बहिः ॥ नक्षत्राणिमुनिश्रेष्ठतेषुज्योतिःषुजाज्वलन् ॥३१॥ अवाक्छिरास्त्रिशंकुश्चतिष्ठत्वमरसन्निभः ॥ अनुयास्यंतिचैतानिज्योतींषिनृपसत्तमम् ॥३२॥ कृतार्थंकीर्तिमंतंचस्वर्गलोकगतंयथा॥ विश्वामित्रस्तुधर्मात्मासर्वदेवैरभिष्टुतः ॥३३॥

त्रिशंकु स्वर्गको जाय नहीं जब तक पृथिव्यादि बने रहे,तबतक इनके संग रहनेके लिए हमारे बनायेनक्षत्रादि सब वर्तमान रहैं, हे देवताओं !तुम ऐसी अनुज्ञा दीजिए ॥२८॥२९॥ विश्वामित्रजीके यह वचन सुनकर सब देवगण उनसे कहने लगे आपने जो कहा सो मिथ्या नहीं होगा आपका मङ्गल हो यह सब आपके बनाये इसी प्रकार स्थित रहेंगे ॥३०॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! यह सब नक्षत्र गगनमंडला ज्योतिष चक्र की गति के बाहर जाज्वल्यमान रहें ॥३१॥ अमर की नाईं राज में त्रिशंकु अधोमुख यहीं स्थिति करेंगे और नक्षत्रगण इन श्रेष्ठ राजा के अनुगामी होंगे॥३२॥ राजा त्रिशंकु कृतार्थ,कीर्तिमान् और स्वर्गलोकगामी हों यह कह कर

विश्वामित्रके प्रति देवताओंने आनन्दभाव प्रकाश किया॥३३॥ देवताओंके वचन श्रवण करके ऋषियोंके मध्य में महातेजवान् विश्वामित्रजी इस बातमें सम्मत हुए; हे नरोंमें श्रेष्ठ राम! तदनन्तर यज्ञ पूरा होने पर महात्मा देवता व ऋषिगण सब अपने २ स्थान को चले गये॥३४॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ० बालकाण्डे भाषायां षष्टितमः सर्गः ॥ ६० ॥हे नरशार्दूल ! सब ऋषियों के चले जाने पर महा तेजस्वी विश्वामित्रजीने सब वन वासियों से कहा ॥ १ ॥ इस दक्षिण दिशा में रहने से तप करने में बहुत विघ्न हुए हैं अतएव और किसी दिशामें जाकर तपकरना मेरे लिए श्रेष्ठ होगा इस कारण मैं दूसरीदिशामें जाकर तप करूंगा ॥ २ ॥ सुविस्तीर्ण सुखदायक पश्चिम दिशामें जहां बड़ा वन है वहां पुष्करके निकट हम सुखसे तप कर सकेंगे ॥ ३ ॥ यह कहकर महा

ऋषिमध्येमहातेजाबाढमित्येवदेवताः ॥ ततोदेवामहात्मानोऋषयश्चतपोधनाः ॥ जग्मुर्यथागतंसर्वेयज्ञस्यांतेनरोत्तम् ॥३४॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये चतुर्विंशतिसा० बालकांडे षष्टितमःसर्गः॥६०॥ विश्वामित्रोमहातेजाःप्रस्थितान्वीक्ष्यतानृषीन् ॥ अब्रवीन्नरशार्दूलसर्वांस्तान्वनवासिनः ॥१॥ महाविघ्नःप्रवृत्तोऽयंदक्षिणामास्थितोदिशम् ॥दिशमन्यांप्रपत्स्यामस्तत्रतप्स्यामहेतपः ॥ २ ॥ पश्चिमायां विशालायांपुष्करेषुमहात्मनः ॥सुखंतपश्चरिष्यामःसुखंतद्धितपोवनम् ॥ ३ ॥ एवमुक्त्वामहातेजाःपुष्करेषुमहामुनिः ॥ तपउग्रंदुराधर्षंतेपे मूलफलाशनः ॥ ४ ॥ एतस्मिन्नेवकालेतुअयोध्या धिपतिर्महान् ॥ अंबरीषइतिख्यातोयष्टुंसमुपचक्रमे ॥ ५ ॥ तस्यवैयजमानस्यपशुमिंद्रो जहारह ॥ प्रनष्टेतुपशौविप्रोराजानमिदमब्रवीत् ॥६॥ पशुरभ्याहृतो राजन्प्रनष्टस्तवदुर्नयात् ॥ अरक्षितारं राजानंघ्नंतिदोषानरेश्वर ॥७॥ प्रायश्चित्तंमहद्ध्येतन्नरंवापुरुषर्षभ॥आनयस्वपशुंशीघ्रंयावत्कर्मप्रवर्तते ॥ ८॥ उपाध्यायवचःश्रुत्वासराजापुरुषर्षभः॥ अन्वियेषमहाबुद्धिः पशुंगोभिःसहस्रशः ॥ ९ ॥

तेजस्वी विश्वामित्रजी पुष्करको चले गये और वहां जा फल मूल भोजन कर कठोर तपस्या करने लगे ॥ ४ ॥ इसी समय अयोध्या के राजा महाराज अंबरीष एक यज्ञका अनुष्ठान करने लगे ॥ ५ ॥ इन्द्रने उनके यज्ञका पशु हरण करलिया । तब यज्ञका पशु हरजानेसे ब्राह्मणोंने राजासे कहा ॥ ६ ॥ जोयज्ञपशु आया था सो आपके रक्षा न करनेहीसे हर गया जो रक्षा के कार्यमें अशक्त हैं वह राजा सब दोषोंमें लिप्त है वह जल्दी नाशको प्राप्त होजाते हैं ॥ ७ ॥ जिससे यज्ञ समाप्त होनेके पहले कोई पशु लाइये अथवा कोई मनुष्यही गोधन देकर लाइये जिससे इस पापका प्रायश्चित्त होजाय॥८॥ पुरोहितोंके ऐसे वचन श्रवण कर वह नरश्रेष्ठ राजा हजार गायोंके बदलेमें यज्ञिय पशु खोजने लगे ॥ ९ ॥

क्रमसे वह राजा अनेक देश अनेक जनपद नगर वन और अनेक तपस्वियोंके पुण्य रूप आश्रमोंमें फिरे॥ १० ॥हे रघुनंदन अन्तमें भृगुतुंगनामक गिरिशृंगमें ऋचीक मुनिको समासीन देखा कि, पुत्र कलत्र सहित विराजमान हैं ॥११॥ बडे प्रतापी अंबरीष तपके प्रभावसे प्रदीप्त ब्रह्मर्षिको प्रणाम करके प्रसन्न करके बोले ॥१२॥ हे मुने ! आप सब तरहसे कुशल तो हैं? मैं मूल्यस्वरूप दक्षिणामें सौ हजार गायें देनेको मौजूद हूं आप इसके पलटेमें अपने पुत्रको दे सकते हैं? ॥१३॥ हेबडे भागवाले ! यदि आप मेरा कहना मानलें तोबड़ीही कृपाहो मैं यज्ञिय पशुको सब जगह खोज चुका परन्तु कहीं नहीं पाया ॥१४॥ आप मूल्य लेकर अपना एक पुत्र मुझे दे दीजिये यह सुनकर बडे तेजस्वी महर्षि ऋचीक बोले ॥१५॥ हे राजन्! मैं अपने बड़े बेटेको कभी नहीं बेच सकता यह ऋचीकजीके वचन सुन

देशाञ्जनपदांस्तांस्तान्नगराणिवनानिच ॥ आश्रमाणिच पुण्यानिमार्गमाणोमहीपतिः ॥१०॥ सपुत्रसहितंतातसभार्यंरघुनंदन ॥ भृगुतुंगेसमासीनमृचीकंसंददर्शह ॥ ११ ॥ तमुवाचमहातेजाःप्रणम्याभिप्रसाद्यच ॥ महर्षितपसादीप्तंराजर्षिरमितप्रभः ॥ १२ ॥ पृष्ट्वासर्वत्रकुशलमृचीकंतमिदंवचः ॥ गवांशतसहस्रेणविक्रीणीषेसुतंयदि ॥ १३ ॥ पशोरर्थेमहाभागकृतकृत्योऽस्मिभार्गव ॥ सर्वेपरिगतादेशायज्ञियंनलभेपशुम् ॥ १४ ॥ दातुमर्हसिमूल्येनसुतमेकमितो मम ॥ एवमुक्तोमहातेजाऋचीकस्त्वब्रवीद्वचः ॥ १५ ॥ नाहंज्येष्ठंनरश्रेष्ठविक्रीणीयांकथंचन ॥ ऋचीकस्यवचःश्रुत्वातेषांमातामहात्मनाम् ॥ १६ ॥ उवाचनरशार्दूलमंबरीषमिदंवचः ॥ अविक्रेयंसुतंज्येष्ठंभगवानाहभार्गवः ॥१७॥ ममापिदयितंविद्धिकनिष्ठंशुनकंप्रभो ॥ तस्मात्कनीयसंपुत्रंनदास्येतवपार्थिव ॥१८॥ प्रायेणहिनरश्रेष्ठज्येष्ठाःपितृषुवल्लभाः ॥ मातॄणांचकनीयांसस्तस्माद्रक्ष्येकनीयसम् ॥ १९ ॥ उक्तवाक्येमुनौतस्मिन्मुनिपत्न्यांतथैवच ॥ शुनःशेपःस्वयंराममध्यमोवाक्यमब्रवीत् ॥ २० ॥ पिताज्येष्ठमविक्रेयंमाताचाहकनीयसम् ॥ विक्रेयंमध्यमंमन्येराजपुत्रनयस्वमाम् ॥२१॥ अथराजामहाबाहुर्वाक्यांतेब्रह्मवादिनः ॥ हिरण्यस्यसुवर्णस्यकोटिभीरत्नराशिभिः ॥ २२ ॥

उनकीस्त्री तथामहात्मा पुत्रोंकी माता ॥ १६ ॥ मनुष्योंमें सिंहसमान राजा अंबरीषजीसे कहने लगी हमारे स्वामी भार्गव ज्येष्ठपुत्रको नहीं बेचा चाहते ॥१७॥ परन्तु सबसे छोटा शुनक मुझे बहुत प्यारा है इसकारण हे राजन्! मैं उसको कभी नहीं बेचूंगी॥१८॥ हे महात्मन् ! ज्येष्ठ पुत्रही बहुधा पिताको प्यारा होता है और छोटा माताको प्यारा होता है अतएव मैं छोटेको न दूंगी ॥१९॥ हे राम ! मुनि और उनकी स्त्रीके ऐसा कहनेपर बिचले बेटे शुनःशेप स्वयं बोल उठे ॥२०॥ महाराज ! पिता और माता ज्येष्ठको बेचनेमें निषेध करते हैं अतएव मैं बिकनेके योग्यहूं मुझको ले चलो ॥ २१ ॥ अनन्तर ब्रह्मवादी बालकके वचन

श्रवण करके राजा अम्बरीषने करोड रत्न देकर और बहुतसा सुवर्ण देकर ॥२२॥ हे रघुनंदन! और एकलाख गाय देकर राजा शुनःशेपको मोल ले प्रसन्न मन होकर चले गये ॥२३॥ महातेजस्वी यशस्वी राजा अम्बरीष प्रफुल्लितहो शुनःशेपको रथ पर सवार कर शीघ्रतासे गमन करने लगे ॥२४॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आ० बालकांडे भाषायामेकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥ हे रामचन्द्र ! यशस्वी महाराज अम्बरीष शुनःशेपको लेकर मध्याह्नकालमें पुष्कर जा पहुँचे और वहां ठहरे ॥ १ ॥ वह वहां विश्राम कर रहे थे कि, इतनेमें महायशस्वी ऋषिकुमार शुनश्शेपने पुष्करमें तप करते हुए विश्वामित्रजीको देखा ॥ २ ॥ अपने मामाको वहां ऋषियों समेत तप करते देख शुनःशेप प्यास व श्रमसे कातरहो दीनमुखसे ॥ ३ ॥ हे राम ! विश्वामित्रकी गोदीमें गिर

गवांशतसहस्रेणशुनःशेपंनरेश्वरः ॥ गृहीत्वापरमप्रीतोजगामरघुनंदन ॥ २३ ॥ अंबरीषस्तुराजर्षीरथमारोप्यसत्वरः ॥ शुनःशेपंमहातेजा जगामाशुमहायशाः ॥ २४ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० चतुर्विंशतिसा० बालकांडे एकषष्टितमःसर्गः ॥ ६१ ॥ शुनःशेपंनरश्रेष्ठगृहीत्वा तुमहायशाः ॥ व्यश्रमत्पुष्करेराजामध्याह्नेरघुनंदन ॥१॥ तस्यविश्रममाणस्यशुनःशेपोमहायशाः ॥ पुष्करं क्षेत्रमागम्यविश्वामित्रंददर्शह ॥ २ ॥तप्यंतमृषिभिःसार्धमातुलंपरमातुरः ॥ विषण्णवदनोदीनस्तृष्णयाचश्रमेणच ॥३॥ पपातांकेमुनेरामवाक्यंचेदमुवाचह ॥ नमेऽस्ति मातानपिताज्ञातयोबांधवाःकुतः ॥ ४ ॥ त्रातुमर्हसिमांसौम्यधर्मेणमुनिपुंगव ॥ त्रातात्वंहिनरश्रेष्ठसर्वेषांत्वंहिभावनः ॥५॥ राजाचकृतकार्यः स्यादहंदीर्घायुरव्ययः ॥ स्वर्गलोकमुपाश्नीयांतपस्तप्त्वाह्यनुत्तमम् ॥६॥ समेनाथोह्यनाथस्यभवभव्येनचेतसा॥ पितेवपुत्रंधर्मात्मंस्त्रातुमर्हसि किल्बिषात् ॥७॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाविश्वामित्रोमहातपाः॥सांत्वयित्वाबहुविधंपुत्रानिदमुवाचह॥८॥ यत्कृतेपितरःपुत्राञ्जनयंतिशुभार्थिनः॥ परलोकहितार्थायतस्यकालोऽयमागतः ॥ ९ ॥ अयंमुनिसुतोबालोमत्तःशरणमिच्छति ॥ अस्यजीवितमात्रेणप्रियंकुरुतपुत्रकाः ॥ १० ॥

पड़े और वह बोले कि,यहां हमारे माता, पिता,जाति,बंधु कोई नहीं है ॥४॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! आप धर्मानुसार मेरीरक्षाकीजिये हे नरोंमें श्रेष्ठ ! आपही सर्वसाधारणके त्राणकर्ता हैं ॥५॥ मेरी यह प्रार्थना है कि राजाका तो कार्य होजाय और तपस्या करके मैं दीर्घायु होकर स्वर्गलाभ कर सकूं आप ऐसा उपाय कीजिये ॥६॥ मैं अनाथहूं आप प्रहृष्टमनसे मेरीरक्षाकीजिये पिता जैसे पुत्रको पालन करताहै वैसेही आप मुझे इस विपतसे उद्धार कीजिये ॥७॥ महातपा विश्वामित्रजी शुनःशेपके ऐसे वचन सुनकर उसको बहुत प्रकारसे धीरज बँधाकर अपने पुत्रोंसे बोले ॥८॥ परलोकमें मंगलार्थ पिता पुत्रकी जिसके निमित्त इच्छा करता है जिस कारण उत्पन्न करताहै अब तुम्हारे लिये वह समय उपस्थित हुआ है ॥९॥ यह ऋषिकुमार बालक मेरी शरण आया है सो तुमलोग इसके प्राणरक्षा करके

मेरा प्रियकार्य साधन करो ॥१०॥ तुम सबही कृतकार्य व धार्मिक हो इस समय तुम राजा अम्बरीषके यज्ञपशु होकर अग्निको तृप्त करो ॥ ११ ॥ऐसा करनेसे बालककी प्राणरक्षा, अम्बरीषका यज्ञसाधन, सुरगणोंकी तृप्ति व मेरा वचनसत्य होगा ॥१२॥ हेराम! पिताके वाक्य श्रवणकर मधुच्छंदादि विश्वामित्रजीके पुत्र गण अभिमानसे पूर्णहो हँसीकर बोले ॥१३॥ हे विभो! अपने पुत्रको परित्याग करके दूसरेकी प्राणरक्षा करनेका आपको क्या प्रयोजन है? जैसे जीवोंके ऊपर दया करके कुत्तेका मांस खाना हो वैसेही यह अकार्य है ॥१४॥ उनके ऐसे गर्वीले वचन श्रवण करके महर्षि विश्वामित्रजी लाल २ आँखें कर क्रोधसे बोले ॥१५॥ रे पामरगण ! जब तुमने मेरे वचनोंको न मानकर अधर्म कार्य किया है और यह रोमहर्षण वाक्य प्रयोग किये हैं ॥१६॥ तो तुम्हें भी वसिष्ठके पुत्रोंकी

सर्वेसुकृतकर्माणःसर्वेधर्मपरायणाः ॥पशुभूतानरेंद्रस्यतृप्तिमग्नेःप्रयच्छत ॥११॥ नाथवांश्चशुनःशेपोयज्ञश्चाविघ्नतोभवेत् ॥ देवतास्तर्पिताश्च स्युर्ममचापिकृतंवचः ॥१२॥ मुनेस्तद्वचनंश्रुत्वामधुच्छंदादयःसुताः ॥ साभिमानंनरश्रेष्ठसलीलमिदमब्रुवन् ॥१३॥ कथमात्मसुतान्हित्वात्रायसेऽन्यसुतं विभो ॥ अकार्यमिवपश्यामःश्वमांसमिवभोजने॥१४॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वापुत्राणांमुनिपुंगवः॥क्रोधसंरक्तनयनोव्याहर्तुमुपचक्रमे ॥ १५ ॥ निःसाध्वसमिदंप्रोक्तंधर्मादपिविगर्हितम् ॥ अतिक्रम्यतुमद्वाक्यंदारुणंरोमहर्षणम् ॥१६॥ श्वमांसभोजिनःसर्वेवासिष्ठाइवजातिषु ॥ पूर्णवर्षसहस्रंतुपृथिव्यामनुपत्स्यथ ॥ १७ ॥ कृत्वाशापसमायुक्तान्पुत्रान्मुनिवरस्तदा ॥ शुनःशेपमुवाचार्तंकृत्वारक्षांनिरामयाम् ॥ १८ ॥ पवित्रपाशैराबद्धोरक्तमाल्यानुलेपनः॥ वैष्णवंयूपमासाद्यवाग्भिरग्निमुदाहर॥१९॥इमेचगाथेद्वेदिव्येगायेथामुनिपुत्रक॥ अंबरीषस्ययज्ञेऽस्मिस्ततःसिद्धिमवाप्स्यसि ॥२०॥ शुनःशेपोगृहीत्वातेद्वेगाथेसुसमाहितः ॥ त्वरयाराजसिंहंतमंबरीषमुवाचह ॥२१॥ राजसिंहमहाबुद्धेशीघ्रंगच्छामहेवयम् ॥ निवर्तयस्वराजेंद्रदीक्षांचसमुपाहर ॥ २२ ॥

नांई कुत्तेका मांसभोजी होनापडेगा जाओ तुमभी मुष्टिक जाति होकर हजार वर्षतक पृथ्वीमें निवास करो ॥१७॥ मुनिवर अपने पुत्रोंको शाप देकर सब दुःखोंकी दूर करनेवाली रक्षाको करके विषण्णमन शुनःशेपसे बोले ॥१८॥ तुम पवित्र पाशसे जिस समय बँधो, लाल माला धारण करो, जब चन्दन लगाया जाय तब वैष्णव खंभमें बँधकर वाणीद्वारा अग्निकी आराधना करते रहना॥१९॥ हे मुनिपुत्र ! मैं तुमको दो दिव्य मंत्र सिखाये देताहूं वह तुम अम्बरीषके यज्ञमें अग्निके आगे पढना बस सब काम सिद्ध हो जायगा ॥ २० ॥ ऋषिकुमार शुनःशेप ऋषिसे सावधानतासे दोनोंमंत्र ग्रहण करके राजसिंह अम्बरीषके निकट शीघ्र उपस्थितहो बोले ॥ २१ ॥ हे राजन् ! हे पुरुषसिंह ! महाबुद्धिमान् ! अब विलम्ब करनेका प्रयोजन नहीं है आप मुझको ले यज्ञसाधनार्थ प्रस्तुत कीजिये ॥२२॥

राजा उस ऋषिपुत्र शुनःशेपके वचन सुन सन्तुष्ट हो आलस्य रहित शीघ्र यज्ञस्थलमें उपस्थित हुए ॥२३॥ तब राजाने सभासदगणकी अनुमति पाकर शुनःशेपको लाल वस्त्र धारण करा और कुशकी रस्सीसे बांध खंभमें बांध दिया ॥२४॥ उस समय मुनिबालक बँधाहुआ अनन्योपाय होकर दिव्यवाणीसे जिनका सुन्दर अर्थ था वेदमंत्रोंसे इन्द्र व उपेन्द्रकी स्तुति करने लगा ॥२५॥ इन्द्र व उपेन्द्र बालककी रहस्यस्तुतिसे प्रसन्न हो उसको दीर्घजीवी होनेका आशीर्वाद देते हुए ॥२६॥ इस भाँति नरवरनरनाथका यज्ञ सम्पूर्ण हुआ । हे राम ! उन्होंने शचीनाथके प्रसादसे यज्ञका बहुत फल पाया ॥ २७ ॥ हे राम ! महात्मा विश्वामित्रजीने फिर पुष्कर क्षेत्रमें १००० वर्ष महातप कियां ॥२८॥ इति श्रीमद्रा० वा० आ० बालकाण्डे भाषायां द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२ ॥ हजार वर्ष पूर्ण होनेपर

तद्वाक्यमृषिपुत्रस्यश्रुत्वाहर्षसमन्वितः ॥ जगामनृपतिःशीघ्रंयज्ञवाटमतंद्रितः॥२३॥ सदस्यानुमतेराजापवित्रकृतलक्षणम् ॥ पशुंरक्तांबरंकृत्वा यूपेतंसमबंधयत्॥२४॥ सबद्धोवाग्भिरग्र्याभिरभितुष्टाववैसुरौ ॥ इंद्रमिंद्रानुजंचैवयथावन्मुनिपुत्रकः ॥ २५ ॥ ततःप्रीतःसहस्राक्षोरहस्यस्तुतितोषितः दीर्घमायुस्तदाप्रादाच्छुनःशेपायवासवः॥२६॥ सचराजानरश्रेष्ठयज्ञस्यचसमाप्तवान्॥ फलंबहुगुणंरामसहस्राक्षप्रसादजम् ॥ २७ ॥ विश्वामित्रोऽपिधर्मात्माभूयस्तेपेमहातपाः ॥ पुष्करेषुनरश्रेष्ठदशवर्षशतानिच ॥२८॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये चतुर्विंशतिसा० बालकांडे द्विषष्टितमः सर्गः ॥६२॥ पूर्णेवर्षसहस्रेतुव्रतस्नातंमहामुनिम् ॥ अभ्यगच्छन्सुराः सर्वेतपःफलचिकीर्षवः ॥१॥ अब्रवीत्सुमहातेजाब्रह्मासुरुचिरंवचः ॥ ऋषिस्त्वमसिभद्रंतेस्वार्जितैःकर्मभिःशुभैः ॥२॥ तमेवमुक्त्वादेवेशस्त्रिदिवंपुनरभ्यगात्॥ विश्वामित्रोमहातेजाभूयस्तेपेमहत्तपः ॥३॥ ततःकालेनमहतामेनकापरमाप्सराः ॥ पुष्करेषुनरश्रेष्ठस्नातुंसमुपचक्रमे ॥ ४ ॥

महात्मा विश्वामित्रजीने व्रत स्नान किया उस समय ब्रह्माजी तपस्या फल देनेको सुरगण सहित ॥ १ ॥ उनके निकट उपस्थित हो महातेजस्वी ब्रह्माजी सुन्दर वचन कहने लगे हे मुने ! तुम उत्पन्नकिये शुभकर्मकेप्रभावसे ऋषि हुए ॥२॥ यह कह देवताओंके ईश्वर ब्रह्माजी तो अन्तर्धान हो स्वर्गको गये और महातेजस्वी विश्वामित्रजी फिर घोर तप करने लगे ॥ ३ ॥ हे राम ! कुछ कालवीतनेपर मेनका अप्सरा पुष्करक्षेत्रमें नहानेको आई ॥ ४ ॥

---

१ इस कथाका भाव न समझना कि, पुरुषकी बलिका विधान है, किन्तु वेदमें ऐसा लिखा होनेसे यह वाक्य पूर्ण होना था सो पशु न मिलनेसे शुनःशेपको लाया गया और फिर स्तुतिसे ऋषिपुत्रका छुटकारा हुआ यहां पिता माताकी पुत्रोंपर प्रीति दिखाई और विश्वामित्रकी उदारता भी दिखाई गई है ।

कुशिकके पुत्र महातेजस्वी विश्वामित्रजीने मेघसहित सौ बिजलीकी नाईं उस परमसुन्दरी अप्सराको देखा ॥५॥ देखतेही कामके वश हो मुनिने मेनकासे कहा हेअप्सरे ! तुम्हारा मंगल हो तुम हमारे आश्रममें रहो ॥६॥ तुम काममोहित मेरे ऊपर अनुग्रह करो। ऋषिके ऐसे वचनसुन सुन्दरमुखवाली मेनका वहां रहनेलगी ॥७॥ इसके मिलनेसे विश्वामित्रजीके तपमें महाविघ्न उपस्थि हुआ अर्थात् अप्सराके साथ रहते २ दश वर्ष बीतगये तब विश्वामित्रजीके तपमें विघ्न हुआ ॥ ८ ॥ वह अप्सराभी विश्वामित्रजीके आश्रममें सुखसे रहनेलगी। कुछकालके बीतनेपर विश्वामित्रजी ॥९॥ हे रघुनन्दन! अत्यन्त लाजको प्राप्तहो चिन्ता करनेलगे और कुछेक क्रोधित हुए उनकी बुद्धिमें यह बात समाई की ॥१०॥ देवताओंकेही द्वारा मेरी सब तपस्यामें विघ्न हुआ है देखा दशवर्ष एकरातके समान बीतगये और मैंने न जाना

तांददर्शमहातेजामेनकांकुशिकात्मजः ॥रूपेणाप्रतिमांतत्रविद्युतंजलदेयथा॥५॥कंदर्पदर्पवशगोमुनिस्तामिदमब्रवीत् ॥अप्सरःस्वागतंतेऽस्तु वसचेहममाश्रमे ॥६॥ अनुगृह्णीष्वभद्रंतेमदनेनविमोहितम् ॥ इत्युक्तासावरारोहातत्रावासमथाकरोत् ॥७॥ तपसोहिमहाविघ्नोविश्वामित्र मुपागमत् ॥ तस्यांवसत्यांवर्षाणिपंचपञ्चचराघव॥८॥ विश्वामित्राश्रमेसौम्येसुखेनव्यतिचक्रमुः॥अथकालेगतेतस्मिन्विश्वामित्रोमहामुनिः ॥९॥सव्रीडइवसंवृत्तश्चिताशोकपरायणः॥बुद्धिर्मुनेःसमुत्पन्नासामर्षारघुनंदन॥१०॥सर्वंसुराणांकर्मैतत्तपोऽपहरणंमहत् ॥अहोरात्रापदेशेनगताः संवत्सरादश ॥११॥ काममोहाभिभूतस्यविघ्नोऽयंप्रत्युपस्थितः ॥ सनिश्वसन्मुनिवरःपश्चात्तापेनदुःखितः ॥१२॥ भीतामप्सरसंदृष्ट्वावेपंतीं प्रांजलिंस्थिताम्॥मेनकांमधुरैर्वाक्यैर्विसृज्यकुशिकात्मजः ॥१३॥ उत्तरंपर्वतंरामविश्वामित्रोजगामह ॥ सकृत्वानैष्ठिकींबुद्धिंजेतुकामोमहा यशाः ॥ १४ ॥ कौशिकीतीरमासाद्यतपस्तेपेदुरासदम् ॥ तस्यवर्षसहस्राणिघोरंतपउपासतः ॥ १५ ॥ उत्तरेपर्वतेरामदेवतानामभूद्भयम् ॥ अमंत्रयन्समागम्यसर्वेसर्षिगणाः सुराः ॥१६॥ महर्षिशब्दंलभतांसाध्वयंकुशिकात्मजः ॥ देवतानांवचःश्रुत्वासर्वलोकपितामहः ॥ १७ ॥

॥११॥ कामके वशहो मोहितहोनेसेही यह विघ्न उपस्थित हुआ है यह कह दीर्घनिःश्वास परित्याग पूर्वक पछताने लगे और फिर दुःखितहुए॥१२॥ तब मेनका मुनिजीकी यह अवस्था देख काँपतीहुई हाथ जोड उनके सामनेखडीहुई विश्वामित्रजीने उसे मधुर बचनोंसे सन्तोष दिया और मेनकाको बिदा कर दिया ॥१३॥ हे राम ! फिर विश्वामित्रजी उत्तर पर्वतकी ओर चले और महायशस्वी वहाँ पहुँचकर काम दमन करनेके लिये ॥१४॥ कौशिकके तीर कठिन तपस्या करने लगे इस भाँति तप करते २ हजार वर्ष बीतगये ॥१५॥ हे राम ! उत्तर पर्वतमें विश्वामित्रजीके तप करनेसे देवगण भयभीत हुए और ऋषियोंके साथ सम्मतिकर ब्रह्माजीके पास जाकर बोलेकि ॥१६॥ विश्वामित्रजी महर्षि होना चाहते हैं अतएव उनकी प्रार्थना पूर्ण कीजिये सर्वलोकके पितामहजी देवताओंका वचन श्रवण कर ॥ १७ ॥

विश्वामित्रजीके निकट उपस्थित हो मधुर वचन बोले हे महर्षे! तुम्हारा मंगल हो मैं तुम्हारे उग्र तपसे प्रसन्न हुआ हूं ॥१८॥ हे कौशिक! मैंने तुमको महत्त्व महर्षित्व प्रदान किया तब ब्रह्माजीके यह वचन सुन तपोधन विश्वामित्रजी ॥१९॥ हाथ जोडकर नम्रतासे ब्रह्माजीसे बोले कि, हमको तो अपने शुभकर्मोंसे ब्रह्मर्षि शब्दही अभीष्टहै ॥२०॥ सो आपने ब्रह्मर्षि नहीं कहा इस कारण मैंने जाना कि, मैं अभी तक जितेन्द्रिय नहीं हुआहूं तब ब्रह्माजीने कहा कि, हां अभीतक तुम जितेन्द्रिय नहीं हुए हो ॥ २१ ॥ परन्तु हे मुनिशार्दूल ! चेष्टा करनेसे जितेन्द्रिय हो सकते हो यह कह ब्रह्माजी अन्तर्धान होगये सब देवताभी जहांके तहां चलेगये उनके चले जाने पर तब महामुनि विश्वामित्रजी ॥२२॥ ऊपरको बांहें कर अवलम्ब शून्य और पंचतपा हो वायुभोजन कर तप करनेलगे वह वर्षा ऋतु में खुले मैदानमें ॥२३॥

अब्रवीन्मधुरंवाक्यंविश्वामित्रंतपोधनम् ॥ महर्षेस्वागतंवत्सतपसोग्रेणतोषितः ॥१८॥ महत्त्वमृषिमुख्यत्वंददामितवकौशिक ॥ ब्रह्मणस्तु वचःश्रुत्वाविश्वामित्रस्तपोधनः ॥१९॥ प्रांजलिःप्रणतोभूत्वाप्रत्युवाचपितामहम् ॥ ब्रह्मर्षिशब्दमतुलंस्वार्जितैःकर्मभिःशुभैः ॥२०॥यदिमे भगवान्नाहततोऽहंविजितेंद्रियः ॥ तमुवाचततो ब्रह्मानतावत्त्वंजितेंद्रियः ॥ २१ ॥ यतस्वमुनिशार्दूलइत्युक्त्वात्रिदिवंगतः ॥ विप्रस्थितेषु देवेषुविश्वामित्रोमहामुनिः॥२२॥ऊर्ध्वबाहुर्निरालंबोवायुभक्षस्तपश्चरन्॥ घर्मेपंचतपाभूत्वावर्षास्वाकाशसंश्रयः॥२३॥शिशिरेसलिलेशायीरा त्र्यहानितपोधनः ॥ एवंवर्षसहस्रंहितपोघोरमुपागमत् ॥२४॥ तस्मिन्संतप्यमानेतुविश्वामित्रेमहामुनौ ॥ संतापःसुमहानासीत्सुराणांवासव स्यच ॥२५॥ रंभामप्सरसंशक्रःसर्वैःसहमरुद्गणैः ॥ उवाचात्महितंवाक्यमहितंकौशिकस्यच ॥२६॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदि काव्ये चतुर्विंशतिसा०सं०बालकांडे त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥ सुरकार्यमिदंरंभेकर्तव्यंसुमहत्त्वया ॥ लोभनंकौशिकस्येहकाममोहसमन्वि तम् ॥१॥ तथोक्तासाप्सरारामसहस्राक्षेणधीमता ॥ व्रीडिताप्रांजलिर्वाक्यं प्रत्युवाचसुरेश्वरम् ॥२॥

वह तपोधन शीतकालमें दिन रात पानीमें खड़े रहते इस प्रकारसे घोरतपकरते२ हजार वर्ष बीतगये ॥२४॥ महर्षिको महातप करते देखकर देवताओंको और विशेषकर इन्द्रको महासन्ताप हुआ ॥२५॥ तब इन्द्रने अपने कार्य साधन करनेको सब देवताओंकोऔर मरुतोंके साथ रंभाके पास जाकर कहा कि; तुम हमारे मंगलके निमित्त विश्वामित्रका अहित करो ॥ २६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० का० बालकांडे भाषायां त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥ हे रंभे! देवताओंका यह बड़ा भारी कार्य है सो तुम विश्वामित्रजीको काम मोहित कर तपसे विरत करो ॥ १ ॥ हे राम! जब इन्द्रने अप्सरासे यह वचन कहे

तब वह अप्सरा लज्जित हो हाथजोडकर इन्द्रसे बोली ॥२॥ हे सुरनाथ! महामुनि विश्वामित्र बड़े क्रोधी हैं हे देव ! वह क्रोधित हो निश्चय मुझे शाप देंगे ॥ ३ ॥ देव ! आपका मंगलहो मुझे इस कार्यके करनेमें डर लगता है हे राम ! जब वह यह वचन कहकर डरके मारे घबड़ा गई ॥४॥ तब उस हाथ जोडे कांपती हुईसे सहस्रलोचन बोले डरो मत तेरा मगल हो मेरी बात सुनकर मेरा कहना मान ॥ ५ ॥ मैं भी सुन्दर वृक्ष शोभित वसन्तकालमें कोकिल स्वरूप कामदेवके सहित तेरे निकटमें रहूंगा ॥६॥ तुम अपने मनोहर रूपके अनेकप्रकारके भावभंगीसे तपस्वी ऋषि विश्वामित्रके अंतःकरणमें विकार उत्पन्न करो ॥७॥ इन्द्रके ऐसे वचन सुन वह सुन्दर हँसीवाली सुन्दरी दिव्यरूपधारण करके अनेक हावभावसे मुनिवरके मनमें काम उत्पन्न करनेकी चेष्टा करने लगी ॥८॥ तब

अयंसुरपतेघोरोविश्वामित्रोमहामुनिः ॥ क्रोधमुत्स्रक्ष्यतेघोरंमयिदेवनसंशयः ॥ ३ ॥ ततोहिमेभयंदेवप्रसादंकर्तुमर्हसि॥ एवमुक्तस्तयारामस भयभीतयातदा ॥ ४ ॥ तामुवाचसहस्राक्षोवेपमानांकृतांजलिम् ॥ माभैषीरंभेभद्रंतेकुरुष्वममशासनम् ॥ ५ ॥ कोकिलोहृदयग्राहीमाधवे रुचिरद्रुमे ॥ अहंकंदर्पसहितःस्थास्यामितवपार्श्वतः ॥६॥ त्वंहिरूपंबहुगुणंकृत्वापरमभास्वरम् ॥ तमृषिंकौशिकंभद्रेभेदयस्वतपस्विनम् ॥७॥ साश्रुत्वावचनंतस्यकृत्वारूपमनुत्तमम् ॥ लोभयामासललिताविश्वामित्रंशुचिस्मिता ॥ ८ ॥ कोकिलस्यतुशुश्राववल्गुव्याहरतःस्वनम् ॥ संप्रहृष्टेनमनसासचैनामन्ववैक्षत ॥ ९ ॥ अथतस्यचशब्देनगीतेनाप्रतिमेनच ॥ दर्शनेनचरंभायामुनिःसंदेहमागतः ॥ १० ॥ सहस्राक्षस्य तत्सर्वंविज्ञायमुनिपुंगवः ॥ रंभाक्रोधसाविष्टःशशापकुशिकात्मजः ॥ ११ ॥ यन्मांलोभयसेरंभेकामक्रोधजयैषिणम् ॥ दशवर्षसहस्राणि शैलीस्थास्यसिदुर्भगे ॥ १२ ॥ ब्राह्मणःसुमहातेजास्तपोबलसमन्वितः ॥ उद्धरिष्यतिरंभेत्वांमत्क्रोधकलुषीकृताम् ॥ १३ ॥ एवमुक्त्वामहा तेजाविश्वामित्रोमहामुनिः ॥ अशक्नुवन्धारयितुंकोपंसंतापमात्मनः ॥ १४ ॥

मुनीन्द्र कलकंठ मधुर कोकिलाका शब्द सुनने लगे सुनतेही प्रमुदितमनसे वररूपी रम्भाको देखा ॥९॥ इसके उपरान्त उसके मनोहर संगीत व मनोहर गुंजार श्रवण करके मुनिके मनमें सन्देह उपस्थित हुआ ॥१०॥ तब विश्वामित्रजीने सुरराजको इस विघ्नकी जड़ समझ क्रोधयुक्त हो रम्भाको यह शाप दिया ॥११॥ रे दुर्वृत्ते! तू कामक्रोधदमनाभिलाषी ऋषिको मोहनेके लिये आई थी इसकारण तू दशहजार वर्षतक शिला होकर रहेगी ॥१२॥ फिर कोई महातेजवान् तपस्याके बलसे युक्त ब्राह्मण मेरे कोपसे शिलारूप तेरा उद्धार करेगा ॥ १३ ॥ यह कहकर महातेजस्वी महामुनि महर्षि विश्वामित्रजी अप्सराको यह शापदेकर हमसेक्रोध न

रुक सका यह विचार कर फिरदुःखी हुए ॥१४॥ विश्वामित्रजीके दारुणशापसे रम्भा शैलमयी होगई यह देखकरइन्द्र व उपेन्द्रात्मज अनंग इस स्थानसेप्रस्थान करगये ॥१५॥हे राम ! महातपा कौशिकजी काम क्रोधकोतपका विघ्नजान औरइन्द्रियोंको अपनेवशमें न मानकर मनही मनमें अशान्ति भोग करने लगे ॥१६॥ फिर तप सिद्ध करनेके लिये चिन्ता करते२सोचा कि, अब किसीको शाप न देंगे न क्रोधभी करेंगे ॥१७॥ न सहस्रोंवर्षोंतक श्वासही लेंगे बरन जितेन्द्रियहो अपने देहको सुखा डालेंगे ॥ १८ ॥ जबतक तपस्याके प्रभावसे हम ब्रह्मत्व न पावेंगे तबतक श्वासको रोक बहुत कालतक निराहार कठोर तप करते रहेंगे ॥१९॥इस प्रकार हजार वर्षतक तपस्या करनेपरभी हमारे अंग क्षीण नहीं होंगे। विश्वामित्र जी यह कहकर हजार वर्षतक तप करनेकी महादीक्षामें प्रवृत्त हो

तस्यशापेनमहतारंभाशैलीतदाऽभवत् ॥ वचःश्रुत्वाचकंदर्पोमहर्षेःसचनिर्गतः ॥१५॥ कोपेनचमहातेजास्तपोऽपहरणेकृते ॥ इंद्रियैरजितैराम नलेभेशांतिमात्मनः ॥१६॥ बभूवास्यमनश्चिंतातपोऽपहरणेकृते॥ नचक्रोधंगमिष्यामिनचवक्ष्येकथंचन ॥१७॥ अथवानोच्छ्वसिष्यामिसं वत्सरशतान्यपि॥अहंहिशोषयिष्यामिआत्मानंविजितेंद्रियः॥ १८ ॥ तावद्यावद्धिमेप्राप्तंब्राह्मण्यंतपसार्जितम् ॥अनुच्छ्वसन्नभुजानस्तिष्ठेयं शाश्वतीःसमाः ॥ १९ ॥ नहिमेतप्यमानस्यक्षयंयास्यंतिमूर्तयः ॥ एवंवर्षसहस्रस्यदीक्षांसमुनिपुंगवः ॥ चकाराप्रतिमांलोकेप्रतिज्ञांरघुनंदन ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० चतुर्विंशतिसा० बा०चतुःषष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥ अथहैमवतींरामदिशंत्यक्त्वामहामुनिः ॥ पूर्वांदिश मनुप्राप्यतपस्तेपे सुदारुणम् ॥ १ ॥ मौनंवर्षसहस्रस्यकृत्वाव्रतमनुत्तमम् ॥ चकाराप्रतिमंरामतपःपरमदुष्करम् ॥२॥ पूर्णेवर्षसहस्रेतुकाष्ठ भूतंमहामुनिम् ॥ विघ्नैर्बहुभिराधूतंक्रोधोनांतरमाविशत् ॥ ३ ॥ सकृत्वानिश्चयंरामतपआतिष्ठताव्ययम् ॥ तस्यवर्षसहस्रस्यव्रतेपूर्णेमहा व्रतः ॥ ४ ॥ भोक्तुमारब्धवानन्नंतस्मिन्कालेरघूत्तम ॥ इंद्रोद्विजातिर्भूत्वातंसिद्धमन्नमयाचत ॥ ५ ॥

प्रतिज्ञानुयायी कार्य करने लगे ॥२०॥ इत्यार्षे श्रीमद्वा० वा० आ० बालकांडे भाषायां चतुःषष्टितमः सर्गः ॥६४॥ हे राम ! अनन्तर महामुनि कौशिक उत्तर दिशा परित्याग करके पूर्वदिशामें गमनपूर्वक अतिकठोर तपस्यामें मनको लगाते हुये ॥१॥ हे राम ! वह हजारवर्ष पर्यन्त मौन व्रतावलम्बी हो असाध्य साध नकरनेमें प्रवृत्त हुए व परम दुष्करतप किया ॥२॥ हजारवर्ष बीतनेपर काष्ठके समान अवस्थान करने लगे यद्यपि बहुतेरे विघ्न हुए पर मुनिराजके मनमें क्रोध न आया ॥३॥ हेराम ! उन्होंने निश्चय जान लिया कि अब हमारा क्रोध कुछ न कर सकेगा हमारा यह सहस्रवर्ष तकका नियमपूर्ण होगया ॥४॥ हे रघुश्रेष्ठ राम ! व्रतके पूर्ण होनेपर विश्वामित्रजीने जैसेही भोजनार्थ अन्न बनाया कि, इतनेमें सुरनाथविप्ररूप बनाकर आये व सब अन्न महर्षिसे मांगा ॥ ५ ॥

महातपस्वी विश्वामित्रजीनेप्रसन्नहोकर ब्राह्मणको अन्न सब देदिया और आप भूँखे रहगये ॥६॥ ब्राह्मणसे कुछ प्रगट नहीं किया और पहलेकी नांई मौनव्रतावलम्बी हुये, उस प्रकार मौनको धारण कर श्वास लेनाभी छोड दिया ॥७॥ ऐसे और हजार वर्ष बीतगये और विश्वामित्रने श्वास न लिया तब उनके ब्रह्मरन्ध्रपर अग्नि प्रदीप्त हो उठी ॥८॥ उस अग्निके तेजसे विश्व संसार सन्तापित और आकुलित् होगया तब देवर्षि, गन्धर्व; पन्नग व राक्षस ॥९॥ इस तेजसे प्रभाहीन हो और मोहित दुःखित हो लोकपितामहब्रह्माजीके निकट उपस्थित हो बोले ॥१०॥ हे देव! हम लोगोंने अनेक प्रकारके कुशिकनन्दनको क्रोध और लोभ दिलानेकी चेष्टा की परन्तु किसी भाँति कृतकार्य न होसके अब उनका तप बढ़ रहा है ॥११॥ हम लोगोंने उनका किसी प्रकारका पापाचरण नहीं देखा अब यदि आप उनको

तस्मैदत्त्वातदासिद्धंसर्वंविप्रायनिश्चितः ॥ निःशेषितेऽन्नेभगवानयवभुक्त्वैवमहातपाः ॥ ६ ॥ नकिंचिदवदद्विप्रंमौनव्रतमुपास्थितः ॥ तथैवासीत्पुनर्मौनमनुच्छ्वासंचकारह ॥ ७ ॥ अथवर्षसहस्रंचनोच्छ्वसन्मुनिपुंगवः ॥ तस्यानुच्छ्वसमानस्यमूर्ध्निधूमोव्यजायत ॥८॥ त्रैलोक्यंयेनसंभ्रांतमातापितमिवाभवत् ॥ ततोदेवर्षिगंधर्वाःपन्नगोरगराक्षसाः ॥९॥ मोहितास्तपसातस्यतेजसामंदरश्मयः ॥ कश्मलोपहताःसर्वेपितामहमथाब्रुवन् ॥ १० ॥ बहुभिःकारणैर्देवविश्वामित्रोमहामुनिः ॥ लोभितःक्रोधितश्चैवतपसाचाभिवर्धते ॥११॥ नह्यस्यवृजिनंकिंचिद्दृश्यतेसूक्ष्ममप्युत ॥ नदीयतेयदित्वस्मनसायदभीप्सितम् ॥१२॥ विनाशयतित्रैलोक्यंतपसासचराचरम् ॥ व्याकुलाश्चदिशःसर्वानचकिंचित्प्रकाशते ॥ १३ ॥ सागराःक्षुभिताःसर्वेविशीर्यंतेचपर्वताः ॥ प्रकंपतेचवसुधावायुर्वातीहसंकुलः ॥ १४ ॥ ब्रह्मन्नप्रतिजानीमोनास्तिकोजायतेजनः ॥ संमूढमिवत्रैलोक्यंसंप्रक्षुभितमानसम् ॥ १५ ॥ भास्करोनिष्प्रभश्चैवमहर्षेस्तस्यतेजसा ॥ बुद्धिंनकुरुतेयावन्नाशेदेवमहामुनिः ॥ १६ ॥ तावत्प्रसाद्योभगवन्नग्निरूपोमहाद्युतिः ॥ कालाग्निनायथापूर्वंत्रैलोक्यंदह्यतेऽखिलम् ॥ १७ ॥

वांछित वर नहीं देंगे तो हमारा कहीं ठिकाना नहीं ॥१२॥ उग्रतपा विश्वामित्रजी चराचरत्रैलोक्यका संहार करनेको उद्यत हुये हैं दिङ्मण्डल उनके प्रभावसे आकुलित हो कुछभी प्रकाश नहीं करता ॥१३॥ सब समुद्र थरथरा रहे हैं, पर्वत फटे जाते हैं, वसुधा कंपित और पवन शंकित होरहा है ॥१४॥ हे ब्रह्मन्! अब क्या उपाय करैं कुछ समझ नहीं पड़ता अब जैसा देखते हैं इससे तो सब लोकके नास्तिक होनेकी संभावना है त्रैलोक्य शंकित और निश्चेष्टसा होगया है ॥१५॥ उन महर्षिके तेजसे अंशुमाली सूर्य प्रभाहीन हैं अधिक क्या कहैं जो महामुनिजी करते हैं वह हमारी बुद्धिसे परे है महर्षि काल अग्निके समान जबतकसृष्टिका संहार न करैं ॥१६॥ तबतक हे भगवन्! आपको उन अग्निरूप ऋषिको प्रसन्न करना कर्तव्य है जिस प्रकारसे पहले कालअग्निसे लोक दग्ध हुये थे वही

दशाहोनेकी है ॥१७॥ आपसे अधिक क्या कहैं कि, यदि महर्षि इन्द्रकाराज्य माँगें तो उनको वह भी देदीजिये । यह कह देवगण ब्रह्माजीको साथ ले॥१८॥ महात्मा विश्वामित्रजीके पासजाकर बोले ब्रह्मर्षे! तुम्हारा मंगलहो मैं तुम्हारी तपस्यासे प्रसन्न हुआ हूं॥१९॥ हे कौशिक! तुमने अपनी तपस्याके प्रभावसे ब्रह्मत्व पाया है हे ब्रह्मन् ! मैंने तुम्हैं दीर्घजीवन देवताओंके सहित प्रदान किया ॥२०॥ हे सौम्य ! तुम्हारा मंगल हो तुम सुखपूर्वक जहां चाहो वहां चले जाओ । तब महर्षि देवगणोंके सहित प्रजापतिका वाक्य श्रवण करके ॥२१॥ उससे प्रणाम करके बहुत प्रसन्न हो विश्वामित्रजी कहने लगे कि, हमको ब्राह्मणता मिली व बडी आयु भी दीगई ॥ २२ ॥ तो ॐकार वषट्कार व सब वेषभी हमें अंगीकार करें और क्षत्रियोंकी विद्या जाननेवाले व ब्राह्मणोंकी विद्या जाननेवालोंमें

देवराज्यंचिकीर्षेतदीयतामस्ययन्मनः ॥ ततः सुरगणाःसर्वेपितामहपुरोगमाः ॥१८॥ विश्वामित्रंमहात्मानंवाक्यंमधुरमब्रुवन् ॥ ब्रह्मर्षेस्वागतंतेऽस्तुतपसास्मसुतोषिताः॥१९॥ ब्राह्मण्यंतपसोग्रेणप्राप्तवानसिकौशिक॥ दीर्घमायुश्चतेब्रह्मन्ददामिसमरुद्गणः ॥२०॥ स्वस्तिप्राप्नुहिभद्रंतेगच्छसौम्ययथासुखम् ॥ पितामहवचःश्रुत्वासर्वेषांत्रिदिवौकसाम् ॥ २१ ॥ कृत्वाप्रणामंमुदितोव्याजहारमहामुनिः ॥ ब्राह्मण्यंयदिमेप्राप्तंदीर्घमायुस्तथैवच ॥२२॥ ओंकारोऽथवषट्कारोवेदाश्चवरयंतुमाम्॥ क्षत्त्रवेदविदांश्रेष्ठोब्रह्मवेदविदामपि ॥२३॥ ब्रह्मपुत्रोवसिष्ठोमामेवंवदतुदेवताः ॥ यद्येवं परमः कामः कृतोयांतुसुरर्षभाः ॥२४॥ ततःप्रसादितोदेवैर्वसिष्ठोजपतांवरः॥ सख्यंचकारब्रह्मर्षिरेवमस्त्वितिचाब्रवीत्॥२५॥ ब्रह्मर्षिस्त्वनसंदेहःसर्वसंपद्यतेतव॥इत्युक्त्वादेवताश्चापिसर्वाजग्मुर्यथागतम् ॥२६॥ विश्वामित्रोऽपिधर्मात्मालब्ध्वाब्राह्मण्यमुत्तमम् ॥ पूजयामासब्रह्मर्षिंवसिष्ठंजपतांवरम्॥२७॥ कृतकामोमहींसर्वांचचारतपसिस्थितः ॥ एवंत्वेनेनब्राह्मण्यंप्राप्तंराममहात्मना ॥ २८ ॥

श्रेष्ठ ॥२३॥ वसिष्ठजी और सब देवताभी हमको ब्रह्मर्षि कहदेवें ऐसी कृपा कीजिये, आप सब लोगजानलें कि, ऐसा न होनेसे मैं फिर तपस्या करनेमें प्रवृत्त हूंगा यह करके आप सब चले जाइये ॥२४॥ अनन्तर देवताओंके अनुरोधसे वसिष्ठजीने प्रसन्न हो विश्वामित्रजीसे सुहृदता स्थापन कर उनका ब्रह्मत्व स्वीकार किया ॥२५॥ और विश्वामित्रजीसे कहा कि, अब तुम निःसन्देहब्रह्मर्षि हुये सब कुछ तुम्हैं प्राप्त है यह कह कर देवता अपने यथास्थानको चले गये ॥२६॥ तब धर्मात्मा महर्षि विश्वामित्रजीने ब्राह्मणत्व लाभकर यथाविधि जपकरनेवालोंमें श्रेष्ठ वसिष्ठजीकी पूजा की ॥ २७ ॥ यह इस प्रकार पूर्ण कामहो तपस्यामें मन लगाये समस्त पृथ्वी पर्यटन करने लगे ! हे रामचन्द्र ! इन महात्मा महर्षिने इस प्रकार ब्राह्मणत्व प्राप्त किया है ॥ २८ ॥

हे राम ! यह मुनियोंमें श्रेष्ठ हैं और तपकी तो मानो मूर्ति हैं, तपरूप हैं, धर्ममें तत्पर हैं वीर्यपराक्रमादि भी इनके समान इन्हींमें हैं ॥२९॥ महातेजस्वी श्रेष्ठ ब्राह्मण शतानन्दजी यह कह कर चुप होगये । तब शतानंदके वचन सुनकर राम लक्ष्मणजीके सामने॥३०॥शतानंदजीसे विशेष परिचय पाकर मिथिलाधिपति हाथ जोडकर विश्वामित्रजीसे यह बोले कि, हे मुनिश्रेष्ठ! आज मैं आपकी कृपासे धन्य व अनुगृहीत हुआ ॥३१॥ आपने जब राम लक्ष्मण सहित मेरे यज्ञमें आगमन किया है तब तो हे मुनिराज ! मैं आपके दर्शन मात्रसेही पवित्र होगया ॥३२॥ क्या कहूं? मैं आपके दर्शन करके अनेक गुणोंका आधार होगया हे ब्रह्मन् ! आपकी उग्र तपस्याका विषय विस्तारसे श्रवण करके मैं यहां तक अचंभेमें आया हूं ॥३३॥ कि, कुछ कह नहीं सकता राम लक्ष्मण व अन्यान्य सभास्थ व्यक्तिगण आपके गुणोंसे मुग्ध होगये हैं ॥३४॥ अधिक क्या कहूं कि, आपमें अपार तप अपार बल और अपार गुण हैं, हे विश्वामित्रजी ! जैसी

एषराममुनिश्रेष्ठएषविग्रहवांस्तपः ॥ एषधर्मःपरोनित्यंवीर्यस्यैषपरायणम् ॥ २९ ॥ एवमुक्त्वामहातेजाविररामद्विजोत्तमः ॥ शतानंदवचः श्रुत्वारामलक्ष्मणसन्निधौ॥३०॥जनकःप्रांजलिर्वाक्यमुवाचकुशिकात्मजम्॥धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मियस्यमेमुनिपुंगव॥३१॥ यज्ञंकाकुत्स्थ सहितःप्राप्तवानसिकौशिक ॥ पावितोऽहंत्वयाब्रह्मन्दर्शनेनमहामुने ॥३२॥ गुणाबहुविधाःप्राप्तास्तवसंदर्शनान्मया ॥ विस्तरेणचवैब्रह्मन्कीर्त्यमानंमहत्तपः ॥३३॥ श्रुतंमयामहातेजोरामेणचमहात्मना॥सदस्यैःप्राप्यचसदःश्रुतास्तेबहवोगुणाः॥३४॥अप्रमेयंतपस्तुभ्यमप्रमेयंचतेबलम्॥ अप्रमेयागुणाश्चैवनित्यंतेकुशिकात्मज॥३५॥ तृप्तिराश्चर्यभूतानांकथानांनास्तिमेविभो॥ कर्मकालोमुनिश्रेष्ठलंबतेरविमंडलम्॥३६॥श्वःप्रभाते महातेजोद्रष्टुमर्हसिमांपुनः॥स्वागतंजपतांश्रेष्ठममनुज्ञातुमर्हसि॥३७॥एवमुक्तोमुनिवरःप्रशस्यपुरुषर्षभम्॥विससर्जाशुजनकंप्रीतमनास्तदा ॥३८॥एवमुक्त्वामुनिश्रेष्ठंवैदेहोमिथिलाधिपः॥प्रदक्षिणंचकाराशुसोपाध्यायःसबांधवः॥३९॥विश्वामित्रोऽपिधर्मात्मासहरामःसलक्ष्मणः॥स्व वासमभिचक्राम पूज्यमानोमहात्मभिः ॥४० इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मी० आदिकाव्ये चतुर्विंशति सा० बालकांडे पंचषष्टितमः सर्गः ॥६५॥

आपमें तपस्या और बल है वैसेही सब गुण भी आपमें विद्यमान हैं॥३५॥ हे विभो! आपके आश्चर्यगुणोंकी कथा श्रवण करके मनका औत्सुक्य निवारित नहीं होता इस समय रविमंडल लम्बित हुआ है अब दैवक्रियाका समय समुपस्थित होगया॥३६॥ कल प्रभात फिर आप मुझसे मिलेंगे आप सुखसे रहें हे जप करनेवालोंमें श्रेष्ठ ! इस समय मुझे कर्तव्य कर्म करनेकी अनुमति दीजिये ॥३७॥ राजाके ऐसे वचन सुन मुनीन्द्र विश्वामित्रजीने राजाकी प्रशंसा की और प्रसन्नतासे उनको घर जानेकी बिदा दी ॥३८॥ विश्वामित्रजीसे यह वचन कहकर मिथिला नाथने उपाध्याय और स्वजनसंघोंके साथ मुनिजीकी प्रदक्षिणा की॥३९॥ धर्मात्मा विश्वामित्र जीभी ऋषियोंसे पूजित हो और रामलक्ष्मणसहित अपने रहनेके स्थानमें स्थित करने लगे॥४०॥इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा०आ०बालकाण्डे भाषायां पंचषष्टितमःसर्ग॥६५॥

अनन्तर विमल प्रभात काल होतेही राजा जनकने प्रातः क्रिया समाप्त कर राम लक्ष्मण सहित महात्मा विश्वामित्रजीको बुला भेजा ॥१॥ धर्मात्मा राजाने यथा विधि शास्त्रके अनुसार राम लक्ष्मणकी पूजाकर ब्रह्मर्षि विश्वामित्रजीसे कहा॥२॥हे भगवन् पापरहित! आपका मंगल हो कहिये हमें कौनसा कार्य करना होगा ? मैं आपका आज्ञाकारी हूं ॥३॥ जब धर्मात्मा जनकजीने ऐसे वचन कहे तब वाक्यके जाननेवाले विश्वामित्रजी वाणीसे बोले ॥४॥ यह दोनों कुमार क्षत्रिय श्रेष्ठ राजा दशरथजीके पुत्र हैं जिनको जगत् जानता है यह उस धनुषको देखा चाहते हैं जो आपके यहां रक्खा है ॥५॥ सो आपका मंगल हो वह धनुष इनको दिखा दीजिये केवल उसके दर्शनसेही इनका आशय निकल आवेगा यह कृतकार्य होकर चले जायँगे ॥६॥ तब राजा जनकजी विश्वामित्रजीसे बोले जिस कारण से यह धनुष मेरे पास है आप श्रवण कीजिये॥७॥हमारे पूर्व पुरुषोंमें महाराज देवराज निमिके ज्येष्ठपुत्र हुये तिनको ही भगवान् आदिदेव रुद्रदेवजीने

ततःप्रभातेविमलेकृतकर्मानराधिपः॥विश्वामित्रंमहात्मानमाजुहावसराघवम्॥१॥तमर्चयित्वाधर्मात्माशास्त्रदृष्टेनकर्मणा॥राघवौचमहात्मानौतदा वाक्यमुवाचह॥२॥भगवन्स्वागतंतेऽस्तुकिंकरोमितवानघ॥भवानाज्ञापयतुमामाज्ञाप्योभवताह्यहम्॥३एवमुक्तःसधर्मात्माजनकेनमहात्मना॥प्रत्यु-वाचमुनिश्रेष्ठोवाक्यंवाक्यविशारदः॥४॥पुत्रौदशरथस्येमौक्षत्रियौलोकविश्रुतौ॥द्रष्टुकामौधनुःश्रेष्ठंयदेतत्त्वयितिष्ठति॥५॥एतद्दर्शयभद्रंतेकृतकामौ नृपात्मजौ॥दर्शनादस्यधनुषोयथेष्टंप्रतियास्यतः॥६॥एवमुक्तस्तुजनकःप्रत्युवाचमहामुनिम्॥श्रूयतामस्यधनुषोयदर्थमिह तिष्ठति॥७॥ देवरातइति ख्यातोनिमेर्ज्येष्ठोमहीपतिः॥न्यासोऽयंतस्यभगवन्हस्तेदत्तोमहात्मनः॥८॥दक्षयज्ञवधेपूर्वंधनुरायम्यवीर्यवान्॥विध्वस्यत्रिदशान्रोषात्सलीलमिद-मब्रवीत्॥९॥यस्माद्भागार्थिनोभागान्नाकल्पयतमेसुराः॥वरांगानिमहार्हाणिधनुषाशातयामिवः॥१०॥ततोविमनसःसर्वेदेवावैमुनिपुंगव॥प्रासादयं तदेवेशंतेषांप्रतोऽभवद्भवः॥११॥ प्रीतियुक्तस्तुसर्वेषांददौतेषांमहात्मनाम्॥ तदेतद्देवदेवस्यधनूरत्नंमहात्मनः ॥१२॥ न्यासभूतंतदान्यस्तमस्माकं पूर्वजेविभौ॥अथमेकृषतःक्षेत्रंलांगलादुत्थितातततः॥१३॥क्षेत्रंशोधयतालब्धानाम्नासीतेतिविश्रुता॥भूतलादुत्थितासातुव्यवर्धतममात्मजा॥१४॥

यह धनुष धरोहरकी भाँति दिया था ॥८॥ पूर्वकालमें रुद्रदेवने दक्षका यज्ञ विध्वंस करनेके लिये लीलाक्रमसे यही शरासन आकर्षण करकेदेवताओंसे कहा था ॥९॥ जब तुमने यज्ञभागार्थी मुझे यज्ञका प्राप्य भाग नहीं दिया तब इस ही शरासनसे तुम्हारे सुन्दर अलंकार युक्त शिर काटूंगा ॥ १० ॥ हे मुनिराज! तब देवतालोग देवादिदेवके वचनसुन मलीन होगये और किसीप्रकार महादेवजीको प्रसन्न किया तब नीलकंठजीने क्रोधको रोका ॥११॥ पशुपतिजीने प्रसन्न होकर यह धनुष महात्मा देवताओंने देदिया यह वही धनुषरत्न उन देवादिदेव महात्मा शिवजीका है ॥१२॥ देवताओंने दया करके धरोहरकी भाँति यह धनुष हमारे पूर्वपुरुषोंको दिया तबसे वह यहीं रहता है हम यज्ञ करनेके लिये भूमि हलसे जुताते थे ॥ १३ ॥ कि, हमारे हलके अग्रभागसे एक कन्या भूमिसे निकली

जिससे कि, हलकी पद्धतिका सीता नाम है इसीसे कन्याका नाम भी सीता धराया अब वह पृथ्वीसे निकली हुई कन्या दिन २ मेरे यहां बढ़ने लगी ॥१४॥ अयोनिसम्भवा वह कन्या मेरे यहां पालने और बडी होनेपर मैंने उस कन्याको वीर्यशुल्का कहकर यज्ञ किया है अर्थात् पराक्रमसे इस कन्याकी प्राप्ति होगी ॥१५॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! इस कन्याके साथ विवाह करनेको बहुतसे राजा आये मैंने उन सब राजाओंको जो कन्याको मांगते थे कहा ॥१६॥ कि, यह कन्या वीर्यशुल्का है वैसे किसीको नहीं दीजायगी (जानकी जीने एकबार यह धनुष उठा लिया था इस कारण मैंने प्रण किया कि, जो हरका धनुष तोडेगा उस-कोही मैं यह कन्या देदूंगा) इस संवादको सुनकर देश २ के श्रेष्ठ २ राजाओंने आय ॥ १७ ॥ अपना २ पराक्रम दिखाना चाहा कि, इस कन्याके संग विवाह करें परन्तु वह प्रण किसीसे पूरा न होमका जब उनको हरका धनुष दिखाया तो ॥१८॥ हे महामुने ! टूटनातो दूर रहा कोई उसको ग्रहण कर उठा भी नहीं

वीर्यशुल्केतिमेकन्यास्थापितेयमयोनिजा ॥ भूतलादुत्थितांतांतुवर्धमानांममात्मजाम् ॥ १५ ॥ वरयामासुरागत्यराजानोमुनिपुंगव ॥ तेषां वरयतांकन्यांसर्वेषांपृथिवीक्षिताम् ॥ १६ ॥ वीर्यशुल्केतिभगवन्नददामिसुतामहम् ॥ ततःसर्वेनृपतयःसमेत्यमुनिपुंगव ॥१७॥ मिथिलाम-प्युपागम्यवीर्यजिज्ञासवस्तदा ॥ तेषांजिज्ञासमानानांशैवंधनुरुपाहृतम् ॥१८॥ नशेकुर्ग्रहणेतस्यधनुषस्तोलनेऽपिवा ॥ तेषांवीर्यवतांवीर्यमल्पं ज्ञात्वामहामुने ॥ १९ ॥ प्रत्याख्यातानृपतयस्तन्निबोधतपोधन ॥ ततःपरमकोपेनराजानोमुनिपुंगव ॥२०॥ अरुंधन्मिथिलांसर्वेवीर्यसंदेह-मागताः ॥ आत्मानमवधूतंमेविज्ञायनृपपुंगवाः ॥ २१ ॥ रोषेणमहताविष्टाःपीडयन्मिथिलांपुरीम् ॥ ततःसंवत्सरेपूर्णेक्षयंयातानिसर्वशः ॥ ॥ २२ ॥ साधनानिमुनिश्रेष्ठततोऽहंभृशदुःखितः ॥ ततोदेवगणान्सर्वांस्तपसाऽहंप्रसादयम् ॥२३॥ ददुश्चपरमप्रीताश्चतुरंगबलंसुराः ॥ ततो भग्नानृपतयोहन्यमानादिशोययुः ॥२४॥ अवीर्यावीर्यसंदिग्धाःसामात्याःपापकारिणः ॥ तवैतन्मुनिशार्दूलधनुःपरमभास्वरम् ॥ २५ ॥

सका इसलिये हमने उन राजाओंमें थोडावीर्य जान उनको लौटा दिया ॥१९॥ हे तपोधन! हे मुनिश्रेष्ठ! जब वे राजा मुझसे तिरस्कृत हुए तब राजा लोगोंने हमारे ऊपर बडा कोप किया ॥२०॥ उनश्रेष्ठराजोंने अपने आपको तिरस्कृत हुआ जानकर सबने आकर मिथिलापुरीको घेर लिया और कहा कि, बलात्कार से कन्याको लेजायँगे ॥२१॥ और बडा क्रोध करके मेरी मिथिलापुरीको पीडित करने लगे और एक वर्षके पूर्ण होनेपर मेरा सर्वस्व क्षय होने लगा ॥२२॥ जब दुर्गरक्षणकी सामग्री न रही तब मैं बहुत दुःखी हुआ तब सब देवताओंके बलकी वृद्धिके लिए तपस्या की और उनको प्रसन्न किया ॥२३॥ उनसे मुझे चतुरंगिणी सेना प्राप्त हुई व उस सेनासेही परास्त होकर सब राजा इधर उधर दिशाओंमें भाग गये ॥२४॥ इस प्रकार वह सब अवीर्य संदिग्धवीर्य पामर लोग

मंत्री आदिकों सहित भाग गये, हे मुनिश्रेष्ठ! उससे यह परमदेदीप्यमान धनुष ॥२५॥ हे मुने रामलक्ष्मणजीको देखाये देते हैं सो यदि यह इस शरासनमें ज्यारोपण कर सकेंगे ॥२६॥ तो अपनी अयोनिजा कन्या जानकीका विवाह दशरथके पुत्रके साथ कर दूँगा ॥२७॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदि काव्ये बाल० भाषायां षट्षष्टितमः सर्गः ॥६६॥ महामुनि विश्वामित्र जनकजीके वचन श्रवण कर जनकजीसे बोले कि, रामचन्द्रजीको शिवका धनुष दिखाओ ॥ १ ॥ तब राजर्षि जनकजीने गंधमाला शोभित उस धनुषके लानेकी मंत्रियोंको आज्ञा दी ॥२॥ जनकजीकी आज्ञा पातेही वह मंत्रीलोग पुरीमें प्रवेश करके उस धनुषको लेकरके वे बडे पराक्रमी चले ॥३॥ यह धनुष आठ पहियोंके छकडे पर पेटीमें रक्खा था उनको पांच हजार बलवान् वीर बडी कठिनाईसे खैंचे लाते थे ॥४॥

रामलक्ष्मणयोश्चापिदर्शयिष्यामिसुव्रतः ॥ यद्यस्यधनुषोरामःकुर्यादारोपणंमुने ॥ २६ ॥ सुतामयोनिजांसीतांदद्यांदाशरथेरहम् ॥ २७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये चतुर्विंशतिसा० बालकांडे षट्षष्टितमः सर्गः ॥ ६६ ॥ जनकस्यवचःश्रुत्वाविश्वामित्रोमहामुनिः ॥ धनुर्दर्शयरामायइतिहोवाचपार्थिवम् ॥१॥ ततःसराजाजनकःसचिवान्व्यादिदेशह ॥ धनुरानीयतांदिव्यंगंधमाल्यानुलेपितम् ॥२॥ जनकेनसमादिष्टाःसचिवाःप्राविशन्पुरम् ॥ तद्धनुःपुरतःकृत्वानिर्जग्मुरमितौजसः ॥३॥ नृणांशतानिपंचाशद्व्यायतानांमहात्मनाम् ॥ मंजूषामष्टचक्रांतांसमूहुस्तेकथंचन ॥४॥ तामादायसुमंजूषामायसींयत्रतद्धनुः ॥ सुरोपमंतेजनकमूचुर्नृपतिमंत्रिणः ॥ ५ ॥ इदंधनुर्वरंराजन्पूजितं सर्वराजभिः ॥ मिथिलाधिपराजेंद्रदर्शनीयंयदीच्छसि ॥ ६ ॥ तेषांनृपोवचः श्रुत्वाकृतांजलिरभाषत ॥ विश्वामित्रंमहात्मानंतावुभौरामलक्ष्मणौ ॥ ७ ॥ इदंधनुर्वरंब्रह्मञ्जनकैरभिपूजितम् ॥ राजभिश्चमहावीर्यैरशक्तैः पूरितुंतदा ॥ ८ ॥ नैतत्सुरगणाःसर्वेसासुरानचराक्षसाः ॥ गंधर्वयक्षप्रवराःसकिन्नरमहोरगाः ॥ ९ ॥ क्वगतिर्मानुषाणांचधनुषोऽस्यप्रपूरणे ॥ आरोपणेसमायोगेवेपनेतोलनेतथा ॥ १० ॥

लोहमयी पेटी सहित उस धनुषको लाकर देवताओंके समान जनकजीने मंत्रियोंसे कहा ॥५॥ हे राजन् ! इस धनुषश्रेष्ठकी पूजा सब राजा लोगोंने की थी हे मिथिलाके राजा ! यदि दिखानेके योग्य समझिये तो रामचन्द्रजीको दिखाइये ॥६॥ उन मंत्रियोंके यह वचन सुनकर जनकजीने रामलक्ष्मणजीको धनुष दिखानेके अर्थ हाथ जोडकर विश्वामित्रजीसे कहा ॥७॥ ब्रह्मन् ! यह धनुष हमारे पूर्वपुरुषोंका संपूजित है अबतक अनेक देशोंके राजा इस धनुषके देखनेको आये परन्तु तोडना तो दूर रहा कोई उठा भी न सके और इसकी पूजा करके चले गये ॥८॥ अधिक तो क्या इसको सुर, असुर, राक्षस व गन्धर्व किन्नर महासर्प प्रभृति कोई भी ॥९॥ उत्तोलन आकर्षण, ज्यारोपण, संचालन और इसपर तीर न चढासका फिर मनुष्योंकी तो बातही क्या है ॥१०॥

हे मुनींद्र वही धनुष लाया गया है सो आप महाभाग इन राजपुत्रोंको दिखा दीजिये ॥११॥ जनकजीसे ऐसा वचन सुन विश्वामित्रजीने रामचन्द्रजीसे कहा कि, वत्स राम ! इस धनुषको देखो ॥१२॥ विश्वामित्रजीकी आज्ञानुसार रामचन्द्रजी धनुषके निकट गये और पेटी जिसमें वह रक्खा था उसे उघाड कर धनुषको देखने लगे और कहा कि ॥१३॥ मैंने हाथसे इस दिव्य और श्रेष्ठ धनुषको स्पर्श किया अब आप बतलाइये कि, उसको उठाना व आकर्षण करना होगा यदि आप कहैं तो मैं इसमें यत्न करूँ ॥१४॥ उस समय राजा जनक और मुनींद्रने धनुष उठानेको अनुमति दी बस रामचन्द्रजीने मुनिके वचनसे लीलापूर्वक बीचसे पकड उसे उठाही तो लिया ॥१५॥ हजारों लाखों मनुष्योंने देखा देखते२ धर्मात्मा रामचन्द्रजीने लीलासेही धनुषको आकर्षण किया ॥१६॥ और उसपर

तदेतद्धनुषांश्रेष्ठमानीतंमुनिपुंगव ॥ दर्शयैतन्महाभागअनयोराजपुत्रयोः ॥ ११ ॥ विश्वामित्रःसरामस्तुश्रुत्वाजनकभाषितम् ॥ वत्सराम धनुःपश्यइतिराघवमब्रवीत् ॥१२॥ महर्षेर्वचनाद्रामोयत्रतिष्ठतितद्धनुः ॥ मंजूषांतामपावृत्यदृष्ट्वाधनुरथाब्रवीत् ॥ १३ ॥ इदंधनुर्वरंदिव्यंसं-स्पृशामीहपाणिना ॥ यत्नवांश्चभविष्यामितोलनेपूरणेऽपिवा ॥१४ बाढमित्यब्रवीद्राजामुनिश्चसमभाषत ॥ लीलयासधनुर्मध्येजग्राहवचना-न्मुनेः ॥१५॥ पश्यतांनृसहस्राणांबहूनांरघुनंदनः ॥ आरोपयत्सधर्मात्मासलीलमिवतद्धनुः ॥१६॥ आरोपयित्वामौर्वींचपूरयामासतद्धनुः ॥ तद्बभंजधनुर्मध्येनरश्रेष्ठामहायशाः ॥१७॥ तस्यशब्दोमहानासीन्निर्घातसमनिःस्वनः ॥ भूमिकंपश्चसुमहान्पर्वतस्येवदीर्यतः ॥१८॥ निपेतुश्चनरः सर्वेतेनशब्देनमोहिताः ॥ वर्जयित्वामुनिवरंराजानंतौचराघवौ ॥ १९ ॥ प्रत्याश्वस्तेजनेतस्मिन्राजाविगतसाध्वसः ॥ उवाचप्रांजलिर्वाक्यं वाक्यज्ञोमुनिपुंगवम् ॥ २० ॥ भगवन्दृष्टवीर्योमेरामोदशरथात्मजः ॥ अत्यद्भुतमचिंत्यंचअतर्कितमिदंमया ॥ २१ ॥

प्रत्यंचा चढा पूर्ण करते हुये; तथा महायशस्वी नरश्रेष्ठने खैंचकर बीचमेंसे तोड डाला* ॥१७॥ उस समय वज्रनादकी नाई घोरशब्द हुआ, गिरि विदीर्ण होनेसे भूभाग जैसे कम्पित होते हैं वैसेही सब पृथ्वी काँपने लगी ॥१८॥ उस भीषण शब्दसे सब लोग मूर्छित हो गिर गये केवल राम लक्ष्मण जनक और विश्वामित्रजी स्थिर रहे॥१९॥अनन्तर सब स्वस्थ हुये इतने दिनों जानकीके विवाहार्थ राजाजनकजीके मनमें जो दुःख था वह जाता रहा वह हाथजोडकर विश्वामित्रजीसे बोले ॥२०॥हे भगवन् ! दशरथ पुत्र रामचन्द्र इतने शक्तिसंपन्न हैं यह मैंने नहीं समझा था वास्तविक उनका पराक्रम तर्कनारहित और अचिन्तनीय व्यापार है॥२१॥

* कवित्त ॥ सोर उट्ठत महीं खूब लट ध्टत सब सिंधु सङ्कटत जल वेल थल छूटिगो । शेष फन फटत तलव।सहारटत बाराह बात घटत जुग डाढ़सो टूटिगो ॥ दंत चटत महि, शैलयुत छत्रि दिग्दन्तिगन हटत मल कुंभथल फूटिगो । दैत्य लटि लुटत अभिमानतें छुटत कोदण्डके टुटत ब्रह्माण्डसो फूटिगो ॥

अब यह प्रार्थना है कि, सीताके साथ रघुनाथका विवाह होजावे और रामको भर्ता पाकर मेरी कन्यासे मेरे कुलमें एक महत्कीर्तिप्रतिष्ठित हो॥२२॥हे कौशिक! मैंने सीताके विवाहार्थ जो प्रण किया था वह पूरा होगया अतएव मैं प्राणाधिक जानकीको रामके करमें समर्प्पण करूँगा॥२३॥ हे ब्रह्मन्! आपकी आज्ञा होते ही दूत मंत्रीगणोंको शीघ्रतापूर्वक रथपर चढा अयोध्यापुरीको भेजूंगा आपका मंगलहो आज्ञा दे दीजिये ॥ २४ ॥ वह अनुनय विनयसे धनुष तोडनेका वृत्तान्त व श्रीरामचन्द्रजीका सीता प्राप्त विषयक संवाद राजादशरथजीसे कहैं और महाराज दशरथजी मेरे नगरमें ले आवैं॥२५॥विश्वामित्रजीके प्रभावसे रामलक्ष्मणजी रक्षित होकर सुखसे अवस्थिति करते हैं यह समाचार दे प्रीतिपूर्वक अयोध्यानाथको यहां ले आवें और जल्दी जायं॥२६॥कौशिकजीने जनककी प्रार्थनासे सम्मत हो उनके

जनकानांकुलेकीर्तिमाहरिष्यतिमेसुता॥सीताभर्तारमासाद्यरामंदशरथात्मजम्॥२२॥ममसत्याप्रतिज्ञासावीर्यशुल्केतिकौशिक॥सीताप्राणैर्बहु-मतादेयारामायमेसुता ॥२३॥ भवतोऽनुमतेब्रह्मञ्छीघ्रंगच्छंतुमंत्रिणः ॥ ममकौशिकभद्रंतेअयोध्यांत्वरितारथैः ॥२४॥ राजानंप्रश्रितैर्वाक्यै रानयंतुपुरंमम ॥ प्रदानंवीर्यशुल्कायाःकथयंतुचसर्वशः ॥२५॥ मुनिगुप्तौचकाकुत्स्थौकथयंतुनृपायवै ॥ प्रीतियुक्तंतुराजानमानयंतुसुशीघ्रगाः ॥२६॥ कौशिकस्तुतथेत्याहराजाचाभाष्यमंत्रिणः ॥ अयोध्यांप्रेषयामासधर्मात्माकृतशासनान् ॥२७॥ यथावृत्तंसमाख्यातुमानेतुंचनृपंतथा ॥२८॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये चतुर्विंशति सा० बालकांडे सप्तषष्टितमः सर्गः ॥ ६७ ॥ जनकेनसमादिष्टादूतास्ते क्लांतवाहनाः॥ त्रिरात्रमुषितामार्गेतेऽयोध्यांप्राविशन्पुरीम् ॥१॥ तेराजवचनाद्गत्वाराजवेश्मप्रवेशिताः ॥ ददृशुर्देवसंकाशंवृद्धंदशरथंनृपम् ॥२॥ बद्धांजलिपुटाःसर्वेदूताविगतसाध्वसाः ॥ राजानंप्रश्रितंवाक्यमब्रुवन्मधुराक्षरम् ॥ ३ ॥ मैथिलोजनकोराजासाग्निहोत्रपुरस्कृतः ॥ मुहुर्मुहुर्म-धुरयास्नेहसंरक्तयागिरा ॥ ४ ॥ कुशलंचाव्ययंचैवसोपाध्यायपुरोहितम् ॥ जनकस्त्वांमहाराजाऽऽपृच्छतेसपुरःसरम् ॥ ५ ॥

कहनेसे (पत्र लिख राजाको दिया तब राजा जनकजीनेअपने दूतोंको बुला पत्रदे) शीघ्रतापूर्वक दशरथजीके आनयनार्थ दूतोंको भेज दिया॥२७॥कि, यह सब समाचार सुनाकर राजा दशरथको बुला लाओ ॥२८॥ इति श्रीमद्रा० वा० आ० बालकाण्डे भाषायां सप्तषष्टितमः सर्गः ॥६७॥ जनककी आज्ञासे दूत चले जाते जाते उनके वाहन सब थक गये अवशेषमें तीन रात्रि मार्गमें बिताकर वह अयोध्यापुरीमें पहुँचे ॥१॥ उन्होंने राजपुरीमें प्रवेशकर देखा कि, वृद्ध नृपति दशरथ देवताके समान शोभा पारहे हैं ॥२॥ दूतगण देखतेही हाथ जोड निर्भय हो विनय नम्रतासे मधुर वाक्य कहने लगे ॥३॥ अग्निहोत्र सहित मिथिला देशके राजा जनकने वारंवार स्नेह और कोमलवाणीसे ॥ ४ ॥ आपकी कुशल अनामय पुरोहित उपाध्याय सहित पूछी है हे महाराज ! राजा जनकजीने

आपसे कुशल पूछकर ॥५॥ विदेह जिनका नाम है उन मिथिलापुरीके राजाने विश्वामित्रजीसे सम्मति कर आपसे वचन कहे हैं ॥६॥ उन्होंने कहा है कि, मैंने यह प्रतिज्ञा की थी; कि जो धनुष तोडेगा वही सीताको विवाहेगा इस कारण अनेक देशोंके नृपति वर्ग आकर यहां अकृत कार्य हुए ॥७॥ हे राजन्! उस हामरी कन्याको विश्वामित्रजीके साथ आये आपके पुत्र श्रीरामचन्द्रजीने जीता ॥ ८ ॥ हे महाबाहो ! और धनुषरत्न दिव्य हमारे यहां रक्खा था उसको भी सबके देखते सभामें श्रीरामचन्द्रजीने मध्यसे तोड डाला ॥९॥ अब मैं इस समय महात्मा रामचन्द्रजीको सीता सम्प्रदान करके प्रतिज्ञासे उद्धार होनेकी इच्छा करता हूं अब प्रार्थना है कि, आप इस विषयमें अनुमति दें ॥१०॥ हे महाराज ! आपका मंगल हो आप पुरोहित व उपाध्यायोंको साथ लेकर राम लक्ष्मणके देखनेको चलिये

पृष्ट्वाकुशलमव्यग्रंवैदेहोमिथिलाधिपः ॥ कौशिकानुमतेवाक्यंभवंतमिदमब्रवीत् ॥ ६ ॥ पूर्वंप्रतिज्ञाविदितावीर्यशुल्काममात्मजा ॥ राजानश्च कृतामर्षानिर्वीर्याविमुखीकृताः ॥७॥ सेयंममसुताराजन्विश्वामित्रपुरस्कृतैः ॥ यदृच्छयागतैराजन्निर्जितातवपुत्रकैः ॥८॥ तच्चरत्नंधनुर्दिव्यं मध्येभग्नंमहात्मना ॥ रामेणहिमहाबाहोमहत्यांजनसंसदि ॥९॥ अस्मैदेयामयासीतावीर्यशुल्कामहात्मने ॥ प्रतिज्ञांतर्तुमिच्छामितदनुज्ञातु मर्हसि ॥ १० ॥ सोपाध्यायोमहाराजपुरोहितपुरस्कृतः ॥ शीघ्रमागच्छभद्रंतेद्रष्टुमर्हसिराघवौ ॥११॥ प्रतिज्ञांममराजेंद्रनिर्वर्तयितुमर्हसि ॥ पुत्रयोरुभयोरेवप्रीतिंत्वमुपलप्स्यसे ॥ १२ ॥ एवंविदेहाधिपतिर्मधुरंवाक्यमब्रवीत् ॥ विश्वामित्राभ्यनुज्ञातःशतानंदमतेस्थितः ॥१३॥ दूत वाक्यंतुतच्छ्रुत्वाराजापरमहर्षितः ॥ वसिष्ठंवामदेवंचमंत्रिणश्चैवमब्रवीत् ॥१४॥ गुप्तःकुशिकपुत्रेणकौशल्यानंदवर्धनः ॥ लक्ष्मणेनसहभ्रात्रा विदेहेषुवसत्यसौ ॥ १५ ॥ दृष्टवीर्यस्तुकाकुत्स्थोजनकेनमहात्मना ॥ संप्रदानंसुतायास्तुराघवेकर्तुमिच्छति ॥१६॥ यदिवोरोचतेवृत्तंजनक- स्यमहात्मनः ॥ पुरींगच्छामहेशीघ्रंमाभूत्कालस्यपर्ययः ॥ १७ ॥

॥११॥ हे राजेन्द्र! मुझे कन्याके ऋणसे उद्धार कीजिये मेरी प्रतिज्ञा पूरी कीजिये विशेषतः आप मिथिलामें उपस्थित हो पुत्रोंको देखकर सुखी होंगे ॥ १२ ॥ विश्वामित्रजीकी आज्ञा व पुरोहित शतानन्द के उपदेशसे राजर्षि जनकजीने आपसे यह मधुर वचन से संदेशा कहला भेजा है ॥१३॥ दूतोंसे यह संवाद श्रवण कर राजा दशरथजी परम प्रसन्न हुए उन्होंने वसिष्ठ वामदेव और मंत्रियोंसे कहा कि ॥१४॥ प्राणाधिक कौशल्यानन्दनराम लक्ष्मण भाई सहित विश्वामित्रजीके पास अतियत्नसे इस समय रक्षित होकर मिथिलापुरीमें बास करते हैं ॥१५॥ महात्माजनकजी रामचन्द्रजीके बल वीर्यका परिचय पाकर उन्हें अपनी कन्या देनेको कृतसंकल्प हुए में ॥१६॥ यदि महात्मा राजा जनकसे यह संबंध करना आप अच्छा समझते हों, तो देरका क्या काम है जल्दी उस पुरीमें वहां पहुँचना उचित

है ॥१७॥ तब ऋषिगण और सब मंत्री राजाकी बातपर सम्मत हुए, व राजने भी प्रफुल्लमनसे "कलही मिथिलाको चलेंगे" यह मंत्रियोंसे कह दिया ॥ १८ ॥ राजाके मंत्रीलोग निशाकालमें प्रमुदित मनसे परम आदर पूर्वक सम्पूर्ण गुणोंसे युक्त राजभवनमें रहे ॥१९॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मीकीये आदि० बालकांडे भाषायामष्टषष्टितमः सर्गः ॥६८॥ तदनन्तर प्रभातकाल होते ही नृपति दशरथ उपाध्यायसे और बन्धुगणोंसे परिवेष्टित हो सुमंत्रको बुला कहने लगे ॥१॥ कि, आज अभी से सम्पूर्ण खजानची गण अनेक धनरत्न ग्रहण पूर्वक सुरक्षितहो आगे २ चलें ॥२॥ मेरी आज्ञासे सम्पूर्ण चतुरंगिनी सेना शीघ्र तैयार हो चलें, रथ, गाडी, छकडे, घोडे आदि भी जायँ व किसी प्रकार आज्ञामें अन्तर न होने पावे। वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि, कश्यप, कात्यायन, मार्कण्डेय प्रभृति दीर्घजीवी ऋषिगण ॥३॥४॥ सुन्दर २

मंत्रिणोबाढमित्याहुःसहसर्वैर्महर्षिभिः ॥ सुप्रीतश्चाब्रवीद्राजाश्वोयात्रेतिचमंत्रिणः ॥१८॥ मंत्रिणस्तुनरेंद्रस्यरात्रिंपरमसत्कृताः ॥ ऊषुःप्रमुदिताःसर्वेगुणैःसर्वैःसमन्विताः ॥१९॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये चतुर्विंशति सा० बालकांडे अष्टषष्टितमः सर्गः ॥६८॥
ततोरात्र्यांव्यतीतायांसोपाध्यायःसबांधवः ॥ राजादशरथोहृष्टःसुमंत्रमिदमब्रवीत् ॥१॥ अद्यसर्वेधनाध्यक्षाधनमादायपुष्कलम् ॥ व्रजंत्वग्रेसुविहितानानारत्नसमन्विताः ॥ २ ॥ चतुरंगबलंचापिशीघ्रंनिर्यातुसर्वशः ॥ ममाज्ञासमकालंचयानंयुग्यमनुत्तमम् ॥ ३ ॥ वसिष्ठोवामदेवश्च जाबालिरथकश्यपः ॥ मार्कंडेयस्तुदीर्घायुर्ऋषिःकात्यायनस्तथा ॥४॥ एतेद्विजाःप्रयांत्वग्रेस्यंदनंयोजयस्वमे ॥ यथाकालात्ययोनस्याद्दूताहित्वरयंतिमाम् ॥५॥ वचनाच्चनरेंद्रस्यसेनाचचतुरंगिणी ॥ राजानमृषिभिःसार्धंव्रजंतंपृष्ठतोऽन्वयात् ॥६॥ गत्वाचतुरहंमार्गेविदेहानभ्युपेयिवान् ॥ राजाचजनकःश्रीमाञ्छ्रुत्वापूजामकल्पयत् ॥ ७ ॥ ततोराजानमासाद्यवृद्धंदशरथंनृपम् ॥ मुदितोजनकोराजाप्रहर्षंपरमंययौ ॥८॥ उवाचचवचनंश्रेष्ठोनरश्रेष्ठंमुदान्वितम् ॥ स्वागतंतेनरश्रेष्ठदिष्ट्याप्राप्तोऽसिराघव ॥ ९ ॥

सवारियोंमें चढकर हमारे आगे चलें, मेरा रथ भी तैयार हो क्योंकि, राजा जनकके दूत शीघ्रता करनेको कहते हैं इस कारण विलम्ब न करना चाहिये ॥५॥ राजाकी आज्ञासे चतुरंगिणी सेना साथ हुई पीछे २ गमन करने लगी व ऋषिगणभी संग २ जाने लगे ॥६॥ दशरथजी चार दिन राहमें बिताकर जनककी राजधानीमें उपस्थित हुए। दशरथजीका आना सुन करके श्रीमान् जनकजी अतिशय आनंदित हुए और पूजनकी कल्पना करने लगे ॥७॥ और आगे आकर राजाकी यथाविधि पूजा की अनन्तर वृद्ध राजा दशरथजीसे मिलकर प्रसन्नमन राजा जनकजी बहुतही प्रसन्न हुए॥८॥अनन्तर प्रीतियुक्त हो श्रेष्ठ वचनसे श्रेष्ठ दशरथजीसे पूछा कि

हे राघव! आप मंगलसे तो हैं? आप अच्छे तो आये मेरे बडे भाग्य हैं जो यहां आपका आना हुआ॥९॥ अब पुत्रका विवाह कार्य्य पूरा करके आप परम प्रसन्न हूजिये विशेष श्लघाकी बात तो यह है कि, महातेजवान् वसिष्ठजीने मुझपर कृपा की है ॥ १० ॥ सुरगणसे युक्त सुरपति इन्द्रकी नाई ब्राह्मणगणसे युक्त वसिष्ठजीके आगमनसे मेरे विघ्नविपत्ति दूर और कुल पवित्र होगया॥११॥ जो हो महाबली रामचन्द्रजीके सहित उपस्थित संबंध होनेसे मेरा भाग्य अवश्यही उदयको प्राप्त हुआ है हे नरेन्द्र! अब मेरा यह कहना है कि, कल प्रभातविवाह होजाय॥१२॥ हे नरश्रेष्ठ! इस यज्ञके अन्तमें विवाह होना ऋषियोंको सम्मत है अयोध्याधिपति मिथिलापतिकी यह बात श्रवण करके ॥१३॥ वाक्यजाननेवालोंमें श्रेष्ठ दशरथजी जनकजीसे इस प्रकार कहने लगे कि, दानदेना सब प्रकारसे दाताके अधीन है यह मैंने पहिले सुन

पुत्रयोरुभयोःप्रीतिंलप्स्यसेवीर्यनिर्जिताम् ॥ दिष्ट्याप्राप्तोमहातेजावसिष्ठोभगवानृषिः ॥१०॥ सहसर्वैर्द्विजश्रेष्ठैर्देवैरिवशतक्रतुः ॥ दिष्ट्यामे निर्जिताविघ्नादिष्ट्यामेपूजितंकुलम् ॥ ११ ॥ राघवैःसहसंबंधाद्वीर्यश्रेष्ठैर्महाबलैः ॥ श्वःप्रभातेनरेंद्रत्वंसंवर्तयितुमर्हसि ॥ १२ ॥ यज्ञस्यांतेनरश्रेष्ठविवाहमृषिसत्तमैः ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाऋषिमध्येनराधिपः ॥१३॥ वाक्यंवाक्यविदांश्रेष्ठःप्रत्युवाचमहीपतिम् ॥ प्रतिग्रहोदातृवशः श्रुतमेतन्मयापुरा ॥१४॥ यथावक्ष्यसिधर्मज्ञतत्करिष्यामहेवयम् ॥तद्धर्मिष्ठंयशस्यंचवचनंसत्यवादिनः ॥१५॥ श्रुत्वाविदेहाधिपतिःपरंविस्मयमागतः ॥ ततःसर्वेमुनिगणाःपरस्परसमागमे ॥ १६ ॥ हर्षेणमहतायुक्तास्तांरात्रिमवसन्सुखम् ॥ राजाचराघवौपुत्रौनिशाम्यपरिहर्षितः ॥ १७ ॥ उवासपरमप्रीतोजनकेनाभिपूजितः ॥ जनकोऽपिमहातेजाःक्रियाधर्मेणतत्त्ववित् ॥ यज्ञस्यचसुताभ्यांचकृत्वारात्रिमुवासह ॥१८॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये चतुर्विंशति सा० बालकांडे एकोनसप्ततितमः सर्गः ॥ ६९ ॥ ततःप्रभातेजनकः कृतकर्मामहर्षिभिः ॥ उवाचवाक्यंवाक्यज्ञःशतानंदंपुरोहितम् ॥ १ ॥

रक्खा है ॥१४॥ हे धर्मज्ञ ! आपने जो कहा मैं वैसाही करूंगा तब सत्यवादी राजा दशरथजीके धर्मयुक्तयशस्कर वाक्य ॥१५॥ सुनके विदेहनगरीके जनक राजा अति विस्मित हुये फिर सब मुनिगण परस्परके समागमसे ॥१६॥ परमप्रीतियुक्त हो रात्रि बिताते हुए राजा दशरथ भी पुत्रस्नेहके वश हो राम लक्ष्मणका मुख दर्शन करके अतिशय सन्तुष्ट हुए ॥१७॥ और जनकजीका आदर सुख अनुभव करके स्वच्छन्द निद्रा अनुभव करने लगे व महातेजा जनकजी भी शास्त्रविहित यज्ञकार्य सपन्न करके कन्याविवाहके उपयुक्त लौकिक क्रिया संपादनपूर्वक कुछ देरके लिये सो रहे ॥१८॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० बालकाण्डे भाषायामेकोनसप्ततितमः सर्गः ॥ ६९ ॥ तदनन्तर प्रातःकाल होनेपर वाक्यपंडित जनकराजा प्रातःक्रिया समाप्त करके महर्षियोंके साथ पुरोहित शतानंदसे बोले

॥ १ ॥ हमारे भ्राता धार्मिक महातेजस्वी बलवान् परमविख्यात कुशध्वज सांकाश्यपुरीमें वसते हैं उनको यहां बुलाना चाहिये ॥ २ ॥ वह पुरी स्वर्गतुल्य है उसके बीच होकर इक्षुमती नदी बह रही है पुरीमें शत्रुओंके रोकनेके लिये बडी २ खाईयुक्त भीति आदि बनी हैं व पुरीकी ऐसी शोभा है जैसे पुष्पक विमानकी ॥३॥ भ्राता कुशध्वज मेरे यज्ञके रक्षक हैं सो मेरी यह इच्छा है कि, विवाहमें वह भी आवें वह महातेजस्वी परम प्रसन्नतासे इस यज्ञको मेरे साथ समाप्त करें ॥ ४ ॥ राजा शतानंदजीसे यह कह रहे थे कि, इतनेमें कई एक कार्यकुशल दूत वहां उपस्थित हुये । तब राजाने उनसे कहा ॥ ५ ॥ तुमलोग मेरी आज्ञासे शीघ्रगामी घोडोंपर चढ़कर कुशध्वज को इस प्रकार ले आओ जैसे देवदूत विष्णुजीको इन्द्रकी आज्ञासे आनयन करते है। यह राजाके वचन सुन दूतलोग चले

भ्रातामममहातेजावीर्यवानतिधार्मिकः॥कुशध्वजइतिख्यातःपुरीमध्यवसच्छुभाम् ॥२॥ वार्याफलकपर्य्यंतांपिबन्निक्षुमतींनदीम् ॥ सांकाश्यां पुण्यसंकाशांविमानयितपुष्पकम् ॥३॥ तमहंद्रष्टुमिच्छामियज्ञगोप्तासमेततः ॥ प्रीतिंसोऽपिमहातेजाइमांभोक्तामयासह ॥४॥ एवमुक्तेतुवचने शतानंदस्यसन्निधौ ॥ आगताःकेचिदव्यग्राशनकस्तान्समादिशत् ॥५॥ शासनात्तुनरेंद्रस्यप्रययुःशीघ्रवाजीभिः ॥ समानेतुंनरव्याघ्रंविष्णु-मिंद्राज्ञयायथा ॥६॥ सांकाश्यांतेसमागम्यदद्दशुश्चकुशध्वजम् ॥ न्यवेदयन्यथावृत्तं जनकस्यचचिंतितम् ॥७॥ तद्वृत्तंनृपतिःश्रुत्वादूतश्रेष्ठै-र्महाजवैः ॥ अज्ञयातुनरेंद्रस्यआजगामकुशध्वजः ॥८॥ सददर्शमहात्मानंजनकंधर्मवत्सलम्॥सोऽभिवाद्यशतानंदजनकंचातिधार्मिकम् ॥९॥ राजार्हंपरमंदिव्यमासनंसोऽध्यरोहत ॥ उपविष्टावुभौतौतुभ्रातरावमितद्युती ॥१०॥ प्रेषयामासतुर्वीरौ मंत्रिश्रेष्ठंसुदामनम् ॥ गच्छमंत्रिपते शीघ्रमिक्ष्वाकुममितप्रभम् ॥११॥ आत्मजैःसहदुर्धर्षमानयस्वससमंत्रिणम् ॥ औपकार्यांसगत्वातुरघूणांकुलवर्धनम् ॥ १२ ॥

॥ ६ ॥ कुशध्वजकी सांकाश्य राजधानीमें उपस्थित हुये और राजासे जनकका संदेशा आनुपूर्विक वर्णन किया ॥ ७ ॥ शीघ्र चलनेवाले दूतोंके मुखसे महाराज जनकका संदेशा सुनतेही महाराज कुशध्वज भ्राताके भवनमें उपस्थित हुये॥८॥उन्होंने उपस्थित हो धर्मात्मा जनक और महर्षि शतानंदको देखा व उनको प्रणाम करके ॥ ९ ॥ राजाओंके योग्य सुन्दर आसनपर बैठ गये जब वह बड़े मनोहर कन्तिमान् दोनों भाई बैठगये ॥ १० ॥ अनन्तर दिव्यद्युति दोनों भाइयोंने मंत्रिप्रवर सुदामनको आज्ञा दीकि, हे मंत्रिपते ! तुम बडी कान्तिवाले महाराज दशरथके पास जाओ ॥ ११ ॥ और उनको बहुत शीघ्र पुत्र व मंत्रियोंसमेत यहां लिवालाओ मंत्री आज्ञा पातेही रघुवंशियोंके कुल बढानेवाले राजा दशरथके पटगृह (डेरे) में उपस्थित हुआ ॥ १२ ॥

और देखतेही शिर झुका उनको प्रणामकर बोला कि, हे अयोध्याधिपते वीरमहाराज दशरथजी! मैथिलापति ॥ १३ ॥ उपाध्याय व पुरोहितोंके सहित आपके दर्शनकी प्रतीक्षा करते हैं मंत्रीके ऐसे वचन सुन महाराज दशरथजी सब ऋषियों समेत ॥१४॥ जहां राजा जनकजी थे वहां उपाध्यायों और बन्धु बान्धवों सहित राजा दशरथजी गये ॥१५॥ वाक्य विशारद दशरथजीने जनकजीसे कहा कि भगवान् वसिष्ठजी इक्ष्वाकु कुलके देवता हैं यह तो आप जानतेही हैं ॥१६॥ मेरा सब कार्योंमें जो कुछ कर्त्तव्य है, वह यह बता देंगे यह इस समय विश्वामित्रजीकी सलाहसे और ऋषियों समेत ॥१७॥ यह धर्मात्मा सब धर्म और कृत्यको यथाक्रम बतावेंगे, राजाके यह कह चुप होजानेपर भगवान् वसिष्ठजीने ॥१८॥ पुरोहित सहित विदेहनाथसे कहा कि जो स्वयं अव्यक्त ब्रह्म हैं उनसे अविनाशी ब्रह्माकी

ददर्शशिरसाचैनमभिवाद्येदमब्रवीत्॥अयोध्याधिपतेवीरवैदेहोमिथिलाधिपः॥१३सत्वांद्रष्टुंव्यवसितःसोपाध्यायपुरोहितम्॥मंत्रिश्रेष्ठवचःश्रुत्वा राजासर्षिगणस्तथा॥१४॥सबंधुरगमत्तत्रजनकोयत्रवर्त्तते॥राजाचमंत्रिसहितःसोपाध्यायःसबांधवः१५॥वाक्यंवाक्यविदांश्रेष्ठोवैदेहमिदमब्रवीत् विदितंतेमहाराजइक्ष्वाकुकुलदैवतम्॥१६॥वक्तासर्वेषुकृत्येषुवसिष्ठोभगवानृषिः॥विश्वामित्राभ्यनुज्ञातःसहसर्वैर्महर्षिभिः॥१७॥एषवक्ष्यतिधर्मात्मावसिष्ठोमेयथाक्रमम्॥तृष्णींभूतेदशरथेवसिष्ठोभगवानृषिः ॥१८॥उवाचवाक्यंवाक्यज्ञोवैदेहंसपुरोधसम्॥अव्यक्तप्रभवोब्रह्माशाश्वतोनित्यअव्ययः॥१९॥तस्मान्मरीचिःसंजज्ञेमरीचेःकश्यपःसुतः॥विवस्वान्कश्यपाज्जज्ञेमनुर्वैवस्वतःस्मृतः॥२०॥मनुः प्रजापतिःपूर्वमिक्ष्वाकुश्चमनोः सुतः॥तमिक्ष्वाकुमयोध्यायांराजानंविधिपूर्वकम्॥२१इक्ष्वाकोस्तुसुतःश्रीमान्कुक्षिरित्येवविश्रुतः॥कुक्षेरथात्मजःश्रीमान्विकुक्षिरुदपद्यत॥२२॥ विकुक्षेस्तुमहातेजाबाणःपुत्रःप्रतापवान्॥बाणस्यतुमहातेजाअनरण्यःप्रतापवान्॥२३॥अनरण्यात्पृथुर्जज्ञेत्रिशंकुस्तुपृथोरपि॥त्रिशंकोरभवत्पुत्रो धुंधुमारोमहायशाः २४ धुंधुमारान्महातेजायुवनाश्वोमहारथः॥ युवनाश्वसुतश्चासीन्मांधातापृथिवीपतिः२५मांधातुस्तुसुतःश्रीमान्सुसंधिरुदपद्यत॥सुसंधेरपिपुत्रौद्वौध्रुवसंधिःप्रसेनजित्॥२६॥यशस्वीध्रुवसंधेस्तुभरतोनामनामतः॥ भरतात्तुमहातेजाअसितोनामजा (यत) तवान् ॥२७॥

उत्पत्ति हुई ॥१९॥ उनके पुत्र मरीचि, मरीचिके पुत्र कश्यप हुए कश्यपके पुत्र विवस्वत इन विवस्वतसेही मनु की उत्पत्ति हुई ॥२०॥ इनका ही नाम प्रजापति हुआ मनुके पुत्र इक्ष्वाकु यह इक्ष्वाकुराजाही अयोध्याके आदि राजा हुए ॥ २१ ॥ इक्ष्वाकुके पुत्र श्रीमान् कुक्षि कुक्षिके पुत्र श्रीमान विकुक्षि हुए ॥ २२ ॥ विकुक्षिके पुत्र प्रतापशाली बाण हुए बाणके पुत्र महातेजस्वी अनरण्य ॥२३॥ अनरण्यके पुत्र पृथु उनके पुत्र त्रिशंकु व त्रिशंकुके पुत्र महायशवाले धुन्धुमार हुए॥२४॥ धुन्धुमारके पुत्र महातेजस्वी महारथी युवनाश्व व युवनाश्वके महाप्रतापशाली पृथ्वीनाथ मान्धाता हुये ॥२५॥ मान्धाताके पुत्र श्रीमान् सुसन्धि सुसन्धिके ध्रुवसन्धि और प्रसेनजित् नामक दो पुत्र हुये ॥ २६ ॥ ध्रुवसंधिके पुत्र यशस्वी भरत भरतके पुत्र महातेजवान् असित जन्मे ॥ २७ ॥

इस राजाके विरुद्ध बडे शूर हैहय ताल जंघ और शशबिन्दु शूर प्रभृति उठे थे ॥ २८ ॥ नृपति असित दुर्वृत्तगणोंसे संग्राममें पराजित व राज्यच्युत हो दो
रानियों समेत हिमालय पहाड पर चले गये ॥२९॥ राजा असित इस कुलमें बडे अल्प पराक्रमी हुए वहां जाय कुछ दिनोंमें शरीर त्याग स्वर्गवासी हुए। ऐसा
सुना है कि, महाराज असितकी दोनों रानियें गर्भवती थीं ॥३०॥ इन दोनों रानियोंमेंसे एकने सवत (सौत) का गर्भ संहार करनेके लिये दूसरीके भोजनमें विष
मिला दिया उन्हीं दोनोंमें इस पर्वतपर महर्षि ॥ ३१ ॥ च्यवन तप करते थे सो उन रानियोंमेंसे जिसे विष दिया गया वह कमलसे नेत्रवाली देव समान
तेजस्वी भार्गव च्यवनजीके शरणागत हुई ॥३२॥ व पुत्र होनेकी इच्छासे मुनिके चरणकमलोंकी वन्दना करके हाथ जोड बैठ गई इस महिषीका नाम कालिन्दी

यस्यैतेप्रतिराजानउदपद्यंतशत्रवः ॥ हैहयास्तालजंघाश्वशूराश्वशशविन्दवः ॥२८॥ तांश्वसंप्रतियुध्यन्वैयुद्धेराजाप्रवासितः ॥ हिमवंतमुपागम्य
भार्याभ्यांसहितस्तदा ॥२९॥ असितोऽल्पबलोराजाकालधर्ममुपेयिवान् ॥ द्वेचास्यभार्येगर्भिण्यौबभूवतुरितिश्रुतिः ॥ ३० ॥ एकागर्भविना
शार्थंसपत्न्यैसगरंददौ ॥ ततःशैलवरेरम्येबभूवाभिरतोमुनिः ॥३१॥ भार्गवश्च्यवनोनामहिमवंतमुपाश्रितः ॥ तत्रचैकामहाभागाभार्गवंदेवव-
र्चसम् ॥३२॥ ववंदेपद्मपत्राक्षीकांक्षंतीसुतमुत्तमम् ॥ तमृषिंसाभ्युपागम्यकालिंदीचाभ्यवादयत् ॥ ३३ ॥ सतामभ्यवदद्विप्रःपुत्रेप्सुंपुत्रजन्म
नि ॥ तवकुक्षौमहाभागेसुपुत्रःसुमहाबलः ॥३४॥ महावीर्योमहातेजाअचिरात्संजनिष्यति ॥ गरेणसहितःश्रीमान्माशुचःकमलेक्षणे ॥३५॥
च्यवनंचनमस्कृत्यराजपुत्रीपतिव्रता॥पत्याविरहितातस्मात्पुत्रंदेवीव्यजायत ॥३६॥ सपत्न्यातुगरस्तस्यैदत्तोगर्भजिघांसया॥ सहतेनगरेणैवसं
जातःसगरोऽभवत् ॥ ३७ ॥ सगरस्यासमंजस्तुअसमंजादथांशुमान् ॥ दिलीपोंऽशुमतःपुत्रोदिलीपस्यभगीरथः ॥३८॥ भगीरथात्ककुत्स्थ-
श्वककुत्स्थाच्चरघुस्तथा ॥ रघोस्तुपुत्रस्तेजस्वी प्रवृद्धःपुरुषादकः ॥ ३९ ॥

था ॥ ३३ ॥ महर्षिने पुत्रकी इच्छा करने वाली उस रानीसे प्रसन्न होकर यह कहा कि, हे महाभागे कमललोचनी ! तुम्हारे गर्भसे उस सुपुत्र महाबलशाली
॥ ३४ ॥ श्रीमान् तेजवान् वीर्यवान् और पवित्र गरलसहित जन्मेगा। हे कमललोचनी ! तुम किसीप्रकारका शोक मतकरो ॥ ३५ ॥ तब पतिव्रता राजकन्या
रानी च्यवनजीके चरणोंमें प्रणाम कर बिदा हुई। विधवा अवस्थामें उस देवीके गर्भसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ३६ ॥ सवतने गर्भके नाश करनेको जो गरल
दिया था सन्तान उत्पत्ति होनेके समय वह भी निकला इसी कारण इस पुत्रका सगर नाम हुआ ॥ ३७ ॥ सगरके पुत्र असमञ्जस; असमञ्जसकेपुत्र अंशुमान्
अंशुमान्‌के पुत्र दिलीप और दिलीपके पुत्र भगीरथ हुये ॥३८॥ भगीरथके पुत्र ककुत्स्थ, इनके रघु, रघुके पुत्र तेजस्वी पुरुषभक्षी प्रवृद्ध हुए॥ ३९ ॥

यह शापसे राक्षसयोनिको प्राप्त हुए फिर यही कल्माषपाद नामसे ख्यात हुये थे (एक समय उनको वसिष्ठजीने शाप दिया कि, तुम राक्षस होजाओ तब राजाने भी वसिष्ठजीको शापदेनेको जल हाथमें लिया तब इनकी रानीने कहा यदि गुरु शाप दें तो तुमको शाप देना नहीं चाहिये यहसुन राजाने जल चरणोंपर डाल दिया उससे पैर काले होगये उसीसे कल्माषपाद नाम हुआ) इनके पुत्र शंखण शंखणके पुत्रसुदर्शन; सुदर्शनकेपुत्र अग्निवर्ण हुये ॥४०॥ अग्निवर्णके पुत्र शीघ्रग, शीघ्रगके पुत्र मरु, मरुके पुत्रप्रशुश्रुक, प्रशुश्रुकके,अम्बरीष ॥ ४१ ॥ अम्बरीषके पुत्र नहुष नहुषके पुत्र ययाति ययातिके पुत्र नाभाग ॥ ४२ ॥ नाभागके पुत्र अज, अजके पुत्रदशरथ और यह रामलक्ष्मणजी इन्हींदशरथजीके पुत्र हैं ॥ ४३ ॥ हे नृप ? प्रथमसेही वंशपरंपराद्वारा विशुद्ध परमधार्मिक और सत्यवादी इक्ष्वाकुवंश राजाओंके कुलमें उत्पन्न हुये हैं ॥ ४४ ॥ रामलक्ष्मणके विवाहार्थ आपकी दोनों कन्यायें मांगीजाती हैं अधिक क्या कहूं अनुरूपपात्रोंको अनुरूप

कल्माषपादोऽप्यभवत्तस्माज्जातस्तुशंखणः ॥सुदर्शनःशंखणस्यअग्निवर्णःसुदर्शनात् ॥४०॥ शीघ्रगस्त्वग्निवर्णस्यशीघ्रगस्यमरुःसुतः॥ मरोः प्रशुश्रुकस्त्वासीदंबरीषःप्रशुश्रुकात्॥४१॥ अंबरीषस्यपुत्रोऽभून्नहुषश्चमहीपतिः॥ नहुषस्यययातिस्तुनाभागस्तुययातिजः॥४२॥ नाभागस्य बभूवाजःअजाद्दशरथोऽभवत्॥ अस्माद्दशरथाज्जातौभ्रातरौरामलक्ष्मणौ॥४३॥आदिवंशविशुद्धानांराज्ञांपरमधर्मिणाम् ॥इक्ष्वाकुकुलजातानां वीराणांसत्यवादिनाम् ॥४४॥रामलक्ष्मणयोरर्थेत्वत्सुतेवरयेनृप ॥ सदृशाभ्यांनरश्रेष्ठसदृशेदातुमर्हसि॥४५ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० चतुर्विंशतिसा० बालकांडे सप्ततितमः सर्गः ॥७०॥ एवंब्रुवाणंजनकःप्रत्युवाचकृतांजलिः॥श्रोतुमर्हसिभद्रंतेकुलंनः परिकीर्तितम् ॥१॥ प्रदानेहिमुनिश्रेष्ठकुलंनिरवशेषतः ॥ वक्तव्यंकुलजातेनतन्निबोधमहामते ॥२॥राजाभूत्त्रिषुलोकेषुविश्रुतःस्वेनकर्मणा ॥निमिःपरमधर्मात्मा सर्वसत्त्ववतांवरः ॥३॥ तस्यपुत्रोमिथिर्नामजनकोमिथिपुत्रकः ॥ प्रथमोजनकोराजाजनकादप्युदावसुः ॥४॥ उदावसोस्तुधर्मात्माजातोवैनं दिवर्धनः ॥ नंदिवर्धसुतःशूरःसुकेतुर्नामनामतः ॥ ५ ॥ सुकेतोरपिधर्मात्मादेवरातोमहाबलः ॥देवरातस्यराजर्षेर्बृहद्रथइतिस्मृतः ॥ ६ ॥

कन्या रत्न देदीजिये बस यही मेरा अनुरोध है ॥ ४५ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० बालकाण्डे भाषायां सप्ततितमः सर्गः ॥ ७० ॥ वसिष्ठजीके यह कहनेपर महाराज जनकजी हाथ जोड़कर उनसे बोले हे महात्मन् ! आपका मंगलहो, अब मेरे वंशका परिचय श्रवण कीजिये ॥१॥ हे मुनीन्द्र महाबुद्धिमान् ! कन्या दानके समय कुलपरिचयकीर्तन करना कर्त्तव्य है इसकारण मैं कहता हूं आप सुनें ॥ २ ॥ हमारे वंशमें निमिनाम एक परमधर्मात्मा सत्यशील महाबली राजाने जन्म ग्रहण कियाथा वह अपने कर्मकेप्रभावसे त्रिलोकमें विख्यातथे ॥ ३ ॥ उनके पुत्र मिथि, मिथिके पुत्र जनक, यहपहिले जनक हैं इसीराजाके नामानुसार इस वंशके सबही जनकनामसे कहे जाते हैं जनकके पुत्र उदावसु ॥ ४ ॥ इनके पुत्र धर्मात्मा नन्दिवर्धन इनकेपुत्रवीर्यवान्सुकेतु ॥ ५ ॥ सुकेतुके पुत्रमहाबली

देवरात राजर्षि देवरातके पुत्र बृहद्रथ हुये ॥ ६ ॥ बृहद्रथके पुत्र प्रतापशालीबलवान् महावीर महावीरके पुत्र सत्यपराक्रमी सुधृति ॥७॥ सुधृतिके धर्मात्मापुत्र धृष्ट केतु, राजर्षि धृष्टकेतुके हर्यश्व हुए ऐसा लोकमें विख्यात है ॥ ८ ॥ हर्यश्वके पुत्र मरु, मरुके पुत्र प्रतीन्धक इनके धर्मात्मा कीर्तिरथ पुत्र हुए॥९ ॥कीर्तिरथके पुत्र देवमीढ, देवमीढके पुत्र विबुध, विबुधके पुत्र महीध्रक ॥१०॥ महीध्रकके पुत्र महाबलीकीर्तिरातहुये राजर्षिकीर्तिरातके पुत्रमहारोम हुए॥११॥ महारोमके धर्मात्मा पुत्र स्वर्णरोमन् इनके पुत्र ह्रस्वरोमन् हुये ॥ १२ ॥ महात्मा राजर्षि धर्मशील ह्रस्वरोमनके दो बेटे हुये; ज्येष्ठ मैं और छोटेमेरे भाईपरमवीरकुशध्वजहैं ॥ १३ ॥ मेरे पिताने मुझे जेष्ठ जानकर राज्याभिषेक करके कनिष्ठ भाई कुशध्वजका भार मुझे सौंप आप वनको चले गये ॥१४॥ मैं पिताके स्वर्गलाभ होनेपर देवतोंके

बृहद्रथस्यशूरोऽभून्महावीरःप्रतापवान् ॥ महावीरस्यधृतिमान्सुधृतिःसत्यविक्रमः॥७॥ सुधृतेरपिधर्मात्माधृष्टकेतुःसुधार्मिकः॥ धृष्टकेतोश्च राजर्षेर्हर्यश्वइतिविश्रुतः॥८॥हर्यश्वस्यमरुःपुत्रोमरोपुत्रः प्रतींधकः ॥ प्रतींधकस्यधर्मात्माराजाकीर्तिरथःसुतः॥९॥ पुत्रःकीर्तिरथस्यापिदेव मीढइतिश्रुतः॥ देवमीढस्यविबुधोविबुधस्यमहीध्रकः ॥१०॥ महीध्रकसुतोराजाकीर्तिरातोमहाबलः ॥ कीर्तिरातस्यराजर्षेर्महारोमाभ्यजायत ॥११॥ महारोम्णस्तुधर्मात्मास्वर्णरोमाभ्यजायत ॥ स्वर्णरोम्णस्तुराजर्षेर्ह्रस्वरोमाभ्यजायत ॥१२॥ तस्यपुत्रद्वयंराज्ञोधर्मज्ञस्यमहात्मनः ॥ ज्येष्ठोऽहमनुजोभ्राताममवीरः कुशध्वजः ॥१३॥ मांतुजेष्ठंपिताराज्येसोऽभिषिच्यपिता मम ॥ कुशध्वजंसमावेश्यभारंमयिवनंगतः ॥१४॥ वृद्धेपितरिस्वर्यातेधर्मेणधुरमावहम् ॥ भ्रातरंदेवसंकाशंस्नेहात्पश्यन्कुशध्वजम् ॥ १५ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्यसांकाश्यादागतःपुरात् ॥ सुधन्वावीर्यवान्राजामिथिलामवरोधकः॥१६॥ सचमेप्रेषयामासशैवंधनुरनुत्तमम् ॥ सीताचकन्यापद्माक्षीमह्यंवैदीयतामिति ॥१७॥ तस्या प्रदानान्महर्षेयुद्धमासीन्मयासह ॥ सहतोविमुखोराजासुधन्वातुमयारणे ॥ १८ ॥ निहत्यतंमुनिश्रेष्ठसुधन्वानंनराधिपम् ॥सांकाश्येभ्रातरं शूरमभ्यषिंचकुंशध्वजम् ॥१९॥ कनीयानेषमेभ्राताअहंज्येष्ठोमहामुने ॥ ददामिपरमप्रीतोवध्वौतेमुनिपुंगव ॥ २० ॥

समानसहोदर भाई कुशध्वजको स्नेह पूर्वक रखकर धर्मपूर्वक राज्य करता रहा ॥१५॥ इस भाँति कुछ समय बीतनेपर सांकाश्यके अधिपति महावीर सुधन्वाने आकरमिथिलापुरीकोघेरलिया ॥१६॥ उसने शिवका धनुष तोडने और कमलनेत्र जानकीके लाभ करनेकी प्रार्थना की यह संदेशाउसने दूतके हाथभेजा ॥१७॥ मैं उसके बल वीर्य को भली भांति जानता था इस कारण हे महर्षे ! उसकी प्रार्थना पूर्ण करने में सम्मत नहीं हुआ उपरांत उभयपक्ष में तुमुल युद्ध होनेलगा; अन्तमें सुधन्वा मुझसे हार रणसे पीछे हटा ॥१८॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! उसी दारुणयुद्ध में उसका संहार करके मैंने अपने छोटे भ्राता कुशध्वज को उसकी राजधानीमें प्रतिष्ठित किया ॥ १९ ॥ यही कुशध्वज मेरे लघुभ्राता हैं मैं इनसे बडा हूं मैं इस समय अपनी दो कन्याओं को दान करना चाहता हूं ॥ २० ॥

सीता को रामके हस्त में उर्मिला को लक्ष्मण के कर में समर्पण करनाही मेरा अभिप्राय है वह देवकन्याओं के समान सीता मेरी कन्या वीर्यशुल्का है ॥२१॥ और दूसरी उर्मिला है इसका भी विवाह करूँगा मैं तीनवार सत्य करके कहता हूँ कि, यह कार्य अन्यथा नहीं होगा हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं प्रसन्नता पूर्वक दोनों कन्याओं को विवाह दूंगा ॥२२॥ हे महाराज दशरथजी ! आप दोनों पुत्रों का गोदान * कार्य और पितृकृत्य अर्थात् नांदीमुख श्राद्ध कीजिये, फिर विवाह कार्य किया जायगा ॥२३॥ आज मघा नक्षत्र है अतएव आजसे तीसरे दिन आनेवाले उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में विवाह करा दीजिये ॥२४॥ अब पुत्रों के ऐसे शुभ विवाह में दानादि करना आपका कर्त्तव्य है इस कारण राम लक्ष्मण के शुभ के निमित्त दान कीजिये ॥२५॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० बा० आ० बालकाण्डे भाषायामेकसप्ततितमः सर्गः ॥७१॥

सीतांरामाय भद्रंतेऊर्मिलांलक्ष्मणायवै॥वीर्यशुल्कांममसुतांसीतांसुरसुतोपमाम्॥२१॥ द्वितीयामूर्मिलांचैवत्रिर्वदामिनसंशयः॥ददामिपरमप्रीतोवध्वौतेमुनिपुंगव ॥२२॥रामलक्ष्मणयोराजन्गोदानंकारयस्वह॥पितृकार्यंचभद्रंतेततोवैवाहिकंकुरु ॥२३॥ मघाह्यद्यमहाबाहोतृतीयदिवसेप्रभो॥फल्गुन्यामुत्तरेराजंस्तस्मिन्वैवाहिकंकुरु॥२४॥रामलक्ष्मणयोरर्थंदानंकार्यंसुखोदयम् ॥२५॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणेवाल्मीकीये आदिकाव्ये चतुर्विंशतिसा० बालकांडे एकसप्ततितमःसर्गः॥७१॥ ॥छ॥तमुक्तवंतंवैदेहंविश्वामित्रोमहामुनिः॥ उवाचवचनंवीरंवसिष्ठसहितोनृपम् ॥१॥अचिंत्यान्यप्रमेयाणिकुलानिनरपुंगव॥ इक्ष्वाकूणांविदेहानांनैषांतुल्योऽस्तिकश्चन॥२॥ सदृशोधर्मसंबंधःसदृशोरूपसंपदा॥रामलक्ष्मणयोराजन्सीताचोर्मिलयासह ॥३॥ वक्तव्यंचनरश्रेष्ठश्रूयतांवचनंमम॥ भ्रातायवीयान्धर्मज्ञएषराजाकुशध्वजः ॥४॥ अस्यधर्मात्मनोराजन्रूपेणाप्रतिमंभुवि ॥ सुताद्वयंनरश्रेष्ठपत्न्यर्थंवरयामहे ॥५॥ भरतस्यकुमारस्यशत्रुघ्नस्यचधीमतः ॥ वरयेतेसुतेराजंस्तयोरर्थेमहात्मनोः ॥ ६ ॥

जब जनकजी इस प्रकार कह चुके तब वसिष्ठजीके अभिप्रायानुसार महामुनि विश्वामित्रजीने जनकजीसे कहा ॥१॥ हे महाराज ! इक्ष्वाकु और विदेहवंश अतिशय अचिंत्य और अप्रमेय हैं इनकी बराबरी अन्य वंशसे नहीं संभव हो सकती ॥२॥ जैसे राम लक्ष्मणहैं वैसाही सीता व उर्मिला के साथ इनका विवाह होना है इनका सम्बन्ध सर्वथा समान है ॥३॥ हे नरश्रेष्ठ ! मैं इस समय कुछ कहा चाहता हूं सो तुम श्रवण करो, तुम्हारे धर्मात्मा लघुभ्राता कुशध्वज हैं ॥४॥ इन महापराक्रमी धर्मात्मा राजा की अलौकिक रूपसम्पन्न दो कन्या हैं सो हे राजन् ! उनको भी हम तुमसे मांगते हैं ॥५॥ दशरथजीके पुत्र भरत और बुद्धिमान् शत्रुघ्न के सहित वह

* गोदान विवाहके पूर्व किया है, यह चूडाकरणकी नाई एक संस्कार विशेष है " गावः केशा दीयन्ते त्रुटचन्ते अनेनेति" इसी युत्पत्तिके अनुसार अबभी पश्चिम देशमें विवाहके पूर्व मस्तकमुंडन संस्कारका प्रचार देखा जाता है और कहीं कहीं केवल क्षौर कायव्यवहार है ।

विवाही जायँ यही हमारी वासना है इन्हीं दोनों महात्माओंके निमित्त हम मांगते हैं॥६॥ यह दशरथजीके चारों पुत्र रूप यौवन सम्पन्न लोकपालतुल्य और पराक्रम में देवताओं के समान हैं॥७॥ हे राजेंद्र ! तुम इस सम्बन्धको स्थिर करके अपने वंश और इक्ष्वाकुके वंश को जो पुण्य कर्मवाला है घनिष्ठता सूत्रमें बांधो॥८॥ महाराज जनकजी वसिष्ठजीके अभिप्रायानुसार विश्वामित्रकेमुखसे यह वचन सुन हाथ जोड़ मुनिश्रेष्ठों से बोले॥९॥ आप दोनों जन जब स्वयं इस समान और योग्य कुल के सम्बन्धको चाहते हैं तब अवश्यही मेरा कुल धन्य हो गया॥१०॥ और क्या कहूं आप जो आज्ञा देंगे वही कार्य होगा आपका मंगल हो भरत शत्रुघ्नके साथ कुशध्वज की दोनों पुत्रियों का विवाह हो जायगा॥११॥ एकही दिन चारों राजकुमार जो महाबली हैं चारों कन्याओं का पाणिग्रहण करेंगे॥१२॥ हे ब्रह्मन् !

पुत्रादशरथस्येमेरूपयौवनशालिनः ॥ लोकपालसमाः सर्वेदेवतुल्यपराक्रमाः ॥७॥ उभयोरपिराजेंद्रसंबंधेनानुबध्यताम्॥ इक्ष्वाकुकुलमव्यग्रं भवतःपुण्यकर्मणः ॥८॥ विश्वामित्रवचःश्रुत्वावसिष्ठस्यमतेतदा॥ जनकःप्रांजलिर्वाक्यमुवाचमुनिपुंगवौ ॥ ९ ॥ कुलंधन्यमिदंमन्येयेषांतौ मुनिपुंगवौ॥ सदृशंकुलसंबंधंयदाज्ञापयतःस्वयम् ॥१०॥ एवंभवतुभद्रंवःकुशध्वजसुतेइमे ॥पत्न्यौभजेतांसहितौशत्रुघ्नभरतावुभौ ॥ ११ ॥ एकाह्नाराजपुत्रीणां चतसृणांमहामुने ॥ पाणीन्गृह्णंतुचत्वारोराजपुत्रामहाबलाः ॥१२॥ उत्तरेदिवसेब्रह्मन्फल्गुनीभ्यांमनीषिणः ॥ वैवाहिकं प्रशंसंतिभगोयत्रप्रजापतिः ॥ १३ ॥ एवमुक्त्वावचःसौम्यंप्रत्युत्थायकृतांजलिः ॥उभौमुनिवरौराजाजनकोवाक्यमब्रवीत् ॥ १४ ॥ परोधर्मः कृतोमह्यंशिष्योऽस्मिभवतोस्तथा ॥ इमान्यासनमुख्यानिआस्यतांमुनिपुंगवौ ॥ १५ ॥ यथादशरथस्येयंतथाऽयोध्यापुरीमम ॥ प्रभुत्वे नास्तिसंदेहोयथार्हंकर्तुमर्हथ ॥१६॥ तथाब्रुवतिवैदेहेजनकेरघुनंदनः ॥ राजादशरथोहृष्टःप्रत्युवाचमहीपतिम् ॥ १७ ॥ युवामसंख्येयगुणौ भ्रातरौमिथिलेश्वरौ ॥ ऋषयोराजसंघाश्चभवद्भ्यामभिपूजिताः ॥ १८ ॥

परसोंके दिन उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रही विवाहके लिये शुभ है क्योंकि इसका प्रजापति भग देवता है विद्वान् इस दिन को विवाह के लिये श्रेष्ठ कहते हैं॥१३॥ राजा जनक यह कह कर उठे और हाथ जोड महर्षि वसिष्ठ और विश्वामित्रजीसे कहा॥१४॥ आप दोनों जनोंकी कृपासे मुझे कन्यादानरूप धर्म प्राप्त हुआ राजा दशरथजीके समान मैं भी आपका शिष्य हूं हे मुने! इस मुख्य सिंहासनोंपर आप बैठिये जो आप कहेंगे वह होगा॥१५॥ जैसे दशरथजीकी राजाधानीमें आप लोग राजत्व करते हैं वैसेही मिथिलामें कीजिये ऐसा करनेमें किसी प्रकारका सन्देह न करना चाहिये जो आप कहेंगे वह होगा ॥१६॥ जब विदेहनाथ यह कह चुके तब राजा दशरथ प्रफुल्ल मनसे जनकजीसे बोले॥१७॥ हे मिथिलाधिपति। आप दोनों भाई सर्व गुणकी खान हैं ऋषि और राजगण सदा आपसे सन्मानित किये जाते हैं॥१८॥

आपयहांसुखसे रहें मैं अबशिविरमें जाता हूं क्योंकि मुझेविधिपूर्वक श्राद्धकार्य करना है॥१९॥जनकजीसे यह कहकर यशस्वी नरनाथदशरथजीवसिष्ठऔरविश्वामित्र जीके साथ शीघ्रता से लौटे ॥२०॥ और वासस्थान पर आकर राजाने यथाविधि श्राद्धकार्य सम्पन्नकर प्रभातकाल उठकर गोदान कार्य निर्वाह किया॥ २१॥ पुत्रवत्सल राजाने पुत्रों के मंगलार्थ ब्राह्मणों को चार २ लक्ष सुरभी धर्मपूर्वक दान कीं ॥२२॥ उन गायों के सींग सोनेसे मढे और वह सबकी सब दुधारी वत्सों सहित थीं ऐसी (४०००००)चार लक्ष गाय कांसीकी दोहिनी सहित राजाने दीं ॥ २३ ॥ पुत्रोंका प्यार करनेवाले राजा दशरथने औरभी बहुतसे धनरत्न गोदानके उद्देशमें बाँट दिये ॥ २४ ॥ उस समय राजा दशरथके पुत्रोंका गोदान संस्कार करदेनेपर चारोंपुत्र लोकपालोंके समान शोभाको प्राप्त हुये । राजाभी

स्वस्तिप्राप्नुहिभद्रंतेगमिष्यामःस्वमालयम् ॥ श्राद्धकर्माणिविधिवद्विधास्यइतिचाब्रवीत् ॥१९॥ तमापृष्ट्वानरपतिंराजादशरथस्तदा ॥ मुनीं द्रौतौपुरस्कृत्यजगामाशुमहायशाः॥२०॥सगत्वानिलयंराजाश्राद्धंकृत्वाविधानतः॥प्रभातेकाल्यमुत्थायचक्रेगोदानमुत्तमम् ॥२१॥ गवांशत सहस्रंचब्राह्मणेभ्योनराधिपः॥एकैकशोददौराजापुत्रानुद्दिश्यधर्मतः॥२२॥सुवर्णशृंग्यःसंपन्नाःसवत्साःकांस्यदोहनाः॥ गवांशतसहस्राणिचत्वा रिपुरुषर्षभः ॥२३॥वित्तमन्यच्चसुबहुद्विजेभ्योरघुनंदनः॥ददौगोदानमुद्दिश्यपुत्राणांपुत्रवत्सलः॥२४॥ ससुतैःकृतगोदानैर्वृतःसन्नृपतिस्तदा ॥ लोकपालैरिवाभातिवृतःसौम्यःप्रजापतिः॥२५॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणेवाल्मीकीये आदिकाव्ये च०बालकांडे द्विसप्ततितमःसर्गः॥७२॥यस्मि स्तुदिवसेराजाचक्रेगोदानमुत्तमम्॥तस्मिंस्तुदिवसेवीरोयुधाजित्समुपेयिवान् ॥१॥ पुत्रःकेकयराजस्यसाक्षाद्भरतमातुलः॥ दृष्ट्वापृष्ट्वाचकुशलं राजानमिदमब्रवीत् ॥२॥ केकयाधिपतीराजास्नेहात्कुशलमब्रवीत्॥येषांकुशलकामोऽसितेषांसंप्रत्यनामयम्॥३॥स्वस्रीयंममराजेंद्रद्रष्टुकामो महीपतिः॥ तदर्थमुपयातोऽहमयोध्यांरघुनंदन॥४॥श्रुत्वात्वहमयोध्यायांविवाहार्थंतवात्मजान् ॥ मिथिलामुपयातांस्तुत्वयासहमहीपते॥५॥

उनके वीचमें सौम्य प्रजापतिकी उपमा देने योग्य हुये ॥ २५ ॥इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० बालकांडे भाषायां द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥ जिस दिनमहाराज दशरथजीने अपने पुत्रोंका गोदान संस्कार किया उसी दिन महावीर युधाजितभी मिथिलामें उपस्थित हुये ॥ १ ॥ यह केकय राजाके पुत्र और भरतजीके मामा थे, इन्होंने दशरथजीको देख कुशल प्रश्न पूछकर कहा ॥ २ ॥ केकयराजाने स्नेहसहित आपका मंगलसमाचार पूछकरके कहाहै कि, आपजिसके मंगला कांक्षी हैं उसका मंगल तो है ॥३॥ महाराज ! पिताके आदेशसे मैं अपने भानजोंके दर्शनार्थ अयोध्यामें उपस्थित हुआथा, हमारे पिता भरतजीके देखनेकी बहुत इच्छा करते हैं ॥ ४ ॥ हे राजन् ! पहले मैं अयोध्यामें गया तो वहां सुना कि, आप पुत्रोंके विवाहार्थ उनको लेकर मिथिला गये हैं ॥ ५ ॥

मैं यह सुनकर शीघ्रतासे यहां आयाहूं कि, चलकर आपका और भरतका दर्शन करूं उस समय राजा दशरथने उपस्थित प्रिय अतिथिका॥६॥भली भाँति आदर सत्कारकिया अनन्तर वह रात महात्मा पुत्र और महर्षियोंकेसहित बिताते हुये ७॥दशरथजी प्रभातकालही उठ शय्या परित्याग पूर्वक प्रातःकृत्यादिसमाप्तकरमहर्षियोंको संग ले यज्ञस्थलमें गये ॥८॥ तब रामचन्द्रजी वैवाहिक मंगलाचार समाप्त होनेपर शुभलग्न विजय मुहूर्तमें सब वस्त्राभूषणोंसे सजे चारों भाइयों समेत ऋषियोंके अनुगामी हो यज्ञभूमिमें पहुँचे ॥९॥ सब मंगलकार्य वसिष्ठ आदिमुनियोंकी आज्ञासे हुए. तब भगवान् वसिष्ठजीने विदेहनाथसे कहा ॥ १० ॥ हे नृपते! महाराज दशरथजी पुत्रोंसे मंगलकार्य करवाकर द्वारपर दाताकी बाट देख रहे हैं॥११॥दाता और ग्रहीताके एकत्र होनेपर सकलकार्य सिद्धहोजातेहैं अतएव तुम

त्वस्याभ्युपयातोऽहंद्रष्टुकामःस्वसुःसुतम् ॥अथराजादशरथःप्रियातिथिमुपस्थितम् ॥६॥ दृष्ट्वापरमसत्कारैःपूजनार्हमपूजयत् ॥ ततस्तामुषितोरात्रिंसहपुत्रैर्महात्मभिः ॥७॥ प्रभातेपुनरुत्थायकृत्वाकर्माणितत्त्ववित् ॥ ऋषींस्तदापुरस्कृत्ययज्ञवाटमुपागमत् ॥ ८ ॥ युक्तेमुहूर्तेविजये सर्वाभरणभूषितैः ॥ भ्रातृभिःसहितोरामःकृतकौतुकमंगलः ॥९॥ वसिष्ठंतुपुरःकृत्वामहर्षीनपरानपि ॥ वसिष्ठोभगवानेत्यवैदेहमिदमब्रवीत ॥ १० ॥ राजादशरथोराजन्कृतकौतुकमंगलैः ॥ पुत्रैर्नरवरश्रेष्ठोदातारमभिकांक्षते ॥११॥ दातृप्रतिगृहीतृभ्यांसर्वार्थाःसंभवंतिहि ॥स्वधर्मंप्रतिपद्यस्वकृत्वावैवाह्यमुत्तमम् ॥१२॥ इत्युक्तःपरमोदारोवसिष्ठेनमहात्मना ॥ प्रत्युवाचमहातेजावाक्यंपरमधर्मवित् ॥१३॥ कःस्थितःप्रतिहारोमेकस्याज्ञांसंप्रतीक्षते ॥ स्वगृहेकोविचारोऽस्तियथाराज्यमिदंतव ॥१४॥कृतकौतुकसर्वस्वावेदिमूलमुपागताः ॥ ममकन्यामुनिश्रेष्ठदीप्ता वह्नेरिवार्चिषः ॥ १५ ॥ सद्योऽहंत्वत्प्रतीक्षोऽस्मिवेद्यामस्यांप्रतिष्ठितः ॥अविघ्नंक्रियतांसर्वंकिमर्थंहिविलंब्यते ॥१६॥ तद्वाक्यंजनकेनोक्तंश्रुत्वादशरथस्तदा॥प्रवेशयामाससुतान्सर्वानृषिगणानपि ॥ १७ ॥

वैवाहिककार्यशेषकरकेउनको आनेकी अनुमतिदो ॥१२॥ परमउदारमहात्मावसिष्ठजीकेवचनसुनकरविचारसहिततेजस्वीधर्मकेजाननेवालेविदेहनाथबोले ॥ १३ ॥ द्वारपर ऐसा कौन द्वारपाल है ? और महाराज दशरथजी किसकी आज्ञाकी अपेक्षा करतेहैं ? इस राज्यपर मेरेही समान उनका अधिकार है । क्या आश्चर्य ? अपने घरमें प्रवेश करनेके लिये बाधा क्या ? कुछ कह नहीं सकता॥१४॥हे मुने ! इस समय मेरी कन्यायें हाथमेंमंगलसूत्र धारण किये वेदीके मूलमें बैठी हैं इससमय उनका रूप अग्निकी नाईं प्रदीप्त हुआ है ॥ १५ ॥ मैं स्वयम् महाराज दशरथजीकी प्रतीक्षा करता हुआ वेदिमूलमें बैठाहूं अतएव जल्दी आकरविघ्न रहित विवाह करें अब विलम्बका क्या प्रयोजन है ? ॥ १६ ॥ राजा दशरथजीवसिष्ठजीके मुखसे जनकजीकी सौजन्यता सुनकर सब ऋषि और पुत्रों सहित

सभामें आये ॥१७॥ तब विदेह राजाने वसिष्ठजीसे कहा कि, आप सब धर्मात्मा ऋषियों समेत कृत्य कराइये ॥ १८ ॥ हे प्रभो ! संसारके प्यारे रामचन्द्रके विवाहके कार्य पूरे कराइये । जनकजीके यह कहनेपर भगवान् वसिष्ठजी ॥ १९ ॥ उनके वाक्यपर संमत हो विश्वामित्र शतानंदको संग ले यथाविधि मंडपकी यज्ञशालामें एक वेदी बनाते हुए ॥ २० ॥ गन्ध पुष्प द्वारा वेदी चारों ओरसे सजादीगई । यवांकुर युक्त सोनेके चित्रकुम्भ ॥ २१ ॥ जिनमें अंकुर धरे ऐसे सिकोरे धूप पात्र जिनमें धूप धरी शंखपात्र स्रुक् व अर्घ्यपात्र स्रुव प्रभृति उसके चारोंओर शोभा पाने लगे ॥ २२ ॥ बहुतसे पात्रोंमें खीलैं और अक्षत

ततोराजाविदेहानांवसिष्ठमिदमब्रवीत् ॥ कारयस्वऋषेसर्वांमृषिभिःसहधार्मिकः॥१८॥रामस्यलोकरामस्यक्रियां वैवाहिकींप्रभो॥तथेत्युक्त्वा तुजनकंवसिष्ठोभगवानृषिः ॥ १९ ॥ विश्वामित्रंपुरस्कृत्यशतानंदंचधार्मिकम् ॥ प्रपामध्येतुविधिवद्वेदिंकृत्वामहातपाः ॥२०॥ अलंचकारतांवेदिंगंधपुष्पैःसमंततः ॥ सुवर्णपालिकाभिश्चचित्रकुंभैश्चसांकुरैः ॥ २१ ॥ अंकुराढ्यैःशरावैश्चधूपपात्रैःसधूपकैः ॥शंखपात्रैःस्रुवैःस्रुग्भिः पात्रैरर्घ्यादिपूजितैः ॥ २२ ॥ लाजपूर्णैश्चपात्रीभिरक्षतैरपि संस्कृतैः ॥ दर्भैःसमैःसमास्तीर्यविधिवन्मंत्रपूर्वकम् ॥२३॥ अग्निमाधायतंवेद्यां विधिमंत्रपुरस्कृतम् ॥ जुहावाग्नौमहातेजावसिष्ठोमुनिपुंगवः ॥ २४ ॥ ततःसीतांसमानीयसर्वाभरणभूषिताम् ॥ समक्षमग्नेःसंस्थाप्यराघवाभिमुखेतदा ॥ २५ ॥ अब्रवीज्जनकोराजाकौसल्यानंदवर्धनम् ॥ इयंसीताममसुता सहधर्मचरीतव ॥ २६ ॥ प्रतीच्छचैनांभद्रंतेपाणिंगृह्णीष्वपाणिना ॥ पतिव्रतामहाभागाछायेवानुगतासदा ॥ २७ ॥ इत्युक्त्वाप्राक्षिपद्राजामंत्रपूतंजलंतदा ॥ साधुसाध्वितिदेवानामृषीणांवदतां तदा ॥ २८ ॥

भराय २ धराये मंत्र पढ २ सब जगह कुश बिछाये ॥ २३ ॥ अनन्तर उस वेदीमें विधिपूर्वक मंत्रोंद्वारा अग्नि स्थानपर मुनिश्रेष्ठ महातेजस्वी वसिष्ठजी मंत्र पढकर अग्निमें आहुति देने लगे ॥ २४ ॥ इसी समय अनेक गहनोंसे शोभित सीताजीको बुलाकर अग्निके समक्ष रामके सौहीं बैठाया ॥ २५ ॥ फिर जनकजीने कौशल्याके आनंद बढानेवाले रामचन्द्रसे कहाकि, हेरामचन्द्र!हमारीकन्या जानकी आजसे तुम्हारी सहधर्मिणी हुई ॥ २६ ॥ तुम्हारा मंगलहो तुम इसका पाणिग्रहण करो यह पतिव्रता महाभागवाली सीता छायाकी नाईं तुम्हारी अनुगामिनी होगी ॥२७॥ यह कहकर जनकजीने मंत्र पढा पवित्र जल उनपर छोड़

और जानकीका हाथ ले रामचन्द्रजीके हाथपर धरदिया तब सब देवता और ऋषिगण साधु साधु करनेलगे ॥२८॥ उससमय देवता दुन्दुभी बजाने लगे * और पुष्पवृष्टि होने लगी. इसरीतिसे महाराजजनकजीनेमंत्रपढे जलसे संस्कारकर अपनी कन्या श्रीरामचन्द्रजीको देदी ॥ २९ ॥ फिर जनकजीने प्रफुल्लमनसे लक्ष्मणको कहा कि,तुमभी आओ हमारी पुत्री ऊर्मिलाको स्वीकार करो॥३०॥अब विलम्ब न करके तुम इस कन्याका पाणिग्रहण करो, इस प्रकार लक्ष्मणजीसे कह, फिर भरतजीसे कहा ॥३१॥ हे रघुनंदन ! तुममाण्डवीका पाणिग्रहण करोफिर धर्मात्मा मिथिलापुरीके राजाने शत्रुघ्नजीसे कहा ॥३२॥ हे महाबाहोंवाले! तुम श्रुतकीर्तिको ग्रहण करो, तुम सबही प्रियदर्शन और सुन्दर व्रतपरायण हो ॥ ३३ ॥ हे ककुत्स्थके वंशमें उत्पन्न हुये कुमारो ! तुम लोगोंसे और क्या कहूं

देवदुंदुभिनिर्घोषपुष्पवर्षोमहानभूत् ॥ एवंदत्त्वासुतांसीतांमंत्रोदकपुरस्कृताम् ॥२९॥ अब्रवीज्जनकोराजाहर्षेणाभिपरिप्लुतः ॥ लक्ष्मणागच्छ भद्रंतेऊर्मिलामुद्यतांमया ॥३०॥प्रतीच्छपाणिंगृह्णीष्वमाभूत्कालस्यपर्ययः॥ तमेवमुक्त्वाजनकोभरतंचाभ्यभाषत॥३१॥गृहाणपाणिंमांडव्याः पाणिनारघुनंदन॥शत्रुघ्नंचापिधर्मात्माअब्रवीन्मिथिलेश्वरः॥३२॥श्रुतकीर्तेर्महाबाहोपाणिंगृह्णीष्वपाणिना॥सर्वेभवन्तःसौम्याश्चसर्वेसुचरित व्रताः॥३३॥ पत्नीभिःसंतुकाकुत्स्थामाभूत्कालस्यपर्ययः॥जनकस्यवचः श्रुत्वापाणीन्पाणिभिरस्पृशन् ॥३४॥ चत्वारस्तेचतस्रृणांवसिष्ठस्य मतेस्थिताः ॥ अग्निप्रदक्षिणंकृत्वावेदिंराजानमेवच ॥ ३५ ॥ ऋषींश्चापिमहात्मानःसहभार्यारघूद्वहाः॥ यथोक्तेनततश्चक्रुर्विवाहंविधिपूर्वकम् ॥३६॥ पुष्पवृष्टिर्महत्यासीदंतरिक्षात्सुभास्वरा ॥ दिव्यदुंदुभिनिर्घोषैर्गीतवादित्रनिःस्वनैः ॥३७॥ ननृतुश्चाप्सरःसंघागंधर्वाश्चजगुःकलम् ॥ विवाहेरघुमुख्यानांतदद्भुतमदृश्यत ॥ ३८ ॥ ईदृशेवर्तमानेतुतूर्योद्घुष्टनिनादिते ॥ त्रिरग्निंतेपरिक्रम्यऊहुर्भार्यामहौजसः ॥ ३९ ॥

अब पाणिग्रहणकरनेमें विलम्ब मत करो, विदेहनाथके ऐसे वचन सुन सबनेअपनीअपनी स्त्रीका कर स्पर्श कर ग्रहण करलिया ॥३४॥ उन चारोंने वसिष्ठजीकी आज्ञासे व अपनी २ पत्नियोंके साथ अग्नि, वेदी, जनक और सब ऋषियोंकी परिक्रमा की ॥३५॥ इस भांति उन कुमारोंने भार्याओंसहित ऋषियोंकीभी परिक्रमा की जैसी विधि वेदमें लिखी है उसी विधानसे सबका विवाह हुआ ॥३६॥ उससमय अन्तरिक्षसे सुन्दर पुष्पवृष्टि होकर नृत्य गीत व दुन्दुभी प्रभृति बाजे बजने लगे ॥३७॥ अप्सरागण नृत्य करने लगीं और गन्धर्वलोग सुन्दर गान करनेमेंलगे. अधिक क्या कहें उन कुमारोंके विवाहमें सबही विस्मयरसमें आप्लुत होउठे ॥३८॥ चारों ओरसे तूर्यध्वनि श्रवणगोचर होने लगी तब राम लक्ष्मण भरत व शत्रुघ्न चारों भाई अग्निकीप्रदक्षिणाकरकेअपनी स्त्रियोंसमेत विवाहित हुए ॥३९॥

* स्त्री गाने लगीं—मनमें मंजु मनोरथ होरी ॥ सो हर गौरि प्रसाद एकते कौशिक कृपा चौगुनी भोरी ॥ प्रण परिता । चाप चिन्ता निशि सोच सकोच तिमिर नहिं थोरी ॥ रविकुल रवि अवलोक सभासहित चित वारिज बन विकस्योरी ॥ कुँवरकुँवरि तव मंगल मूरत नृप दोउ धर्म धुरंधर धोरी ॥ राज समाज भूरि भागी जिन लोचन लाहु लह्यो इक ठोरी ॥ व्याह उछाह राम सीताको सकृत सके लै विरंचि रच्योरी ॥ तुलसिदास जाने सोइ यह सुख जा उर बसत मनोहर जोरी ॥ १ ॥

अनंतर अपनी२भार्याओंके साथ दशरथकेपुत्रपिताकेडेरेमेंचलेगये राजादशरथभीबान्धवसहित पुत्रोंको ऋषियोंकेसाथ देखते२उनके पीछे२जनवासेमें आये॥४०॥ इत्यार्षे श्रीमद्वा० वा० आ० बालकाण्डे भाषायां त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥ ३७ ॥ रात्रि बीतकर प्रभात होनेपर महर्षि विश्वामित्रजी उत्तरपर्वतकी ओर जनकजी और दशरथजीसे बिदा होकर तपस्या करने चलेगये ॥ १ ॥ अनन्तर विश्वामित्रके चलेजानेपर राजादशरथजीभी जनकजीके निकट बिदा ग्रहण करके अयोध्या जानेकी तैयारी करने लगे ॥ २ ॥ उनके गमन समय राजा जनकने दहेजमें कन्याओंको लाख धेनु व औरभी बहुत पदार्थ दिये ॥३॥ उसके सिवाय दिव्य कम्बल एक करोड, दुशाले, हस्ती, अश्व,रथ, पदाति एवं उत्कृष्टअलंकार महारथ दशरथजीको दिये ॥ ४ ॥ इसके अतिरिक्त प्रत्येक कन्याओंको शत २

अथोपकार्यांजग्मुस्तेसभार्यारघुनंदनाः ॥ राजाप्यनुययौपश्यन्सर्षिसंघःसबांधवः ॥४०॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्येच० बालकांडे त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥७३॥ अथरात्र्यांव्यतीतायांविश्वामित्रोमहामुनिः ॥ अपृष्ट्वातौचराजानौजगामोत्तरपर्वतम् ॥ १॥ विश्वा मित्रगतेराजावैदेहंमिथिलाधिपम् ॥ आपृष्ट्वैवजगामाशुराजादशरथःपुरीम् ॥ २ ॥ अथराजाविदेहानांददौकन्याधनंबहु॥ गवांशतसहस्राणि बहूनिमिथिलेश्वरः ॥ ३ ॥ कंबलानांचमुख्यानांक्षौमान्कोटचंबराणिच ॥ हस्त्यश्वरथपादातंदिव्यरूपंस्वलंकृतम् ॥४॥ ददौकन्याशतंतासां दासीदासमनुत्तमम् ॥ हिरण्यस्यसुवर्णस्यमुक्तानांविद्रुमस्यच ॥५॥ ददौराजासुसंहृष्टःकन्याधनमनुत्तमम् ॥दत्त्वाबहुविधंराजासमनुज्ञाप्यपा र्थिवम् ॥ ६ ॥ प्रविवेशस्वनिलयंमिथिलांमिथिलेश्वरः ॥ राजाप्ययोध्याधिपतिःसहपुत्रैर्महात्मभिः ॥ ७॥ ऋषीन्सर्वान्पुरस्कृत्यजगा मसबलान्वितः ॥ गच्छंतंतुनरव्याघ्रंसर्षिसंघंसराघवम् ॥८॥ घोरास्तुपक्षिणोवाचोव्याहरंतिसमंततः॥ भौमाश्चैवमृगाःसर्वेगच्छंतिस्मप्रदक्षि णम् ॥९॥ तान्दृष्ट्वाराजशार्दूलोवसिष्ठंपर्यपृच्छत ॥ असौम्याःपक्षिणोघोरामृगाश्चापिप्रदक्षिणाः ॥ १० ॥

दास दासी व असंख्य सुवर्ण मुक्ता और प्रवाल मूँगे प्रदान किये ॥५॥व जनकजीने प्रसन्न होकर और भी बहुत दहेज दिया. इसभाँति लौकिकक्रियासमाप्तकर राजा जनक दशरथजीके बार२कहनेसे ॥६॥ अपने राजमंदिरकोमिथिलाकेराजा लौटे औरअयोध्याके राजादशरथजीभीअपनेमहात्मापुत्रोंकेसाथ ॥७॥सबऋषि योंको आगे कर सब सेना सहित नगाडेशंखादिबजायपुत्रोंसहितअयोध्यापुरीकी ओर चले जब कि,वह महाबली मनुष्योंमें श्रेष्ठ ऋषियोंके सहितजारहेथे॥८॥इसी समय चारों ओर आकाशसेपक्षीगणविकटशब्दकरनेलगे,भूमितलपरमृगगणदक्षिण दिशाकी ओरजानेलगे॥९॥ अकस्मात् बुरे शकुनदेखकर दशरथजीनेवसिष्ठजीसे

कहा कि, पक्षियोंका उत्कट चीत्कार और मृगगणोंके दक्षिण ओर जानेका क्या कारणहै ? ॥१०॥ और क्यों मेरा हृदय कांपताहै ? क्यों अन्तःकरण अवसन्न होताहै ? राजा दशरथ जीके कातर वचन सुनकर गुरुदेव ॥११॥ मधुरवाणीसे बोले कि; इसका फल सुनो आकाशमें पक्षियोंके चीत्कारसे घोर दैवीविपदकी संभावना होतीहै ॥ १२ ॥ किन्तु दक्षिणदिशामें मृगोंका जाना अशुभजनक नहीं है जो हो आप घबडाइये मत यह कहतेहीथे कि, इतनेमें प्रचंड पवन चली ॥ १३ ॥ पवनके प्रभावसे पृथ्वी काँपने लगी और वृक्ष सब टूटकर गिरने लगे, सूर्य अंधकारसे छिपगये दिशाओंका कुछ ज्ञान नहीं रहा ॥ १४ ॥ चारों और धूल उडने लगी सेनासमूह चेतना रहित होगया । उस समय वसिष्ठ और अन्यान्यऋषिऔर पुत्रोंसहितराजादशरथजी॥१५॥ स्थिर रहे और ज्ञानरहा शेष

किमिदंहृदयोत्कंपिमनोममविषीदति॥राज्ञोदशरथस्यैतच्छुत्वावाक्यंमहानृषिः॥११॥उवाचमधुरांवाणीं श्रूयतामस्ययत्फलम्॥ उपस्थितंभयं घोरंदिव्यंपक्षिमुखाच्च्युतम्॥१२॥मृगाःप्रशमयंत्येतेसंतापस्त्यज्यतामयम्॥तेषांसंवदतांतत्रवायुःप्रादुर्बभूवह ॥१३॥कंपयन्मेदिनींसर्वांपातयं श्चमहाद्रुमान् ॥ तमसासंवृतःसूर्यःसर्वेनावेदिषुर्दिशः॥१४॥भस्मनाचावृतंसर्वंसंमूढमिवतद्बलम्॥वसिष्ठऋषयश्चान्येराजाचससुतस्तदा॥१५॥ ससंज्ञाइवतत्रासन्सर्वमन्यद्विचेतनम् ॥ तस्मिंस्तमसिघोरेतुभस्मच्छन्नेवसाचमूः ॥१६॥ ददर्शभीमसंकाशंजटामंडलधारिणम् ॥भार्गवंजामदग्न्यंतंराजाराजविमर्दनम्॥१७॥कैलासमिवदुर्धर्षंकालाग्निमिवदुःसहम्॥ज्वलंतमिवतेजोभिर्दुर्निरीक्ष्यंपृथग्जनैः॥१८॥स्कंधेचासज्ज्यपरशुंधनुर्विद्युद्गणोपमम् ॥ प्रगृह्यशरमुग्रंचत्रिपुरघ्नंयथाशिवम् ॥ १९ ॥ तंदृष्ट्वाभीमसंकाशंज्वलंतमिवपावकम् ॥ वसिष्ठप्रमुखाविप्राजपहोमपरायणाः ॥ २० ॥ संगतामुनयःसर्वेसंजजल्पुरथोमिथः ॥ कच्चित्पितृवधामर्षीक्षत्रंनोत्सादयिष्यति ॥ २१ ॥

सबकी चेतना जाती रही उस अंधकारमें सेनाके ऊपर धूल उडने लगी ॥ १६ ॥ इतनेमें क्षत्रकुलान्तकारी जटाजूट धारण किये भीम दर्शन जमदग्निपुत्रभार्गव परशुरामजी वहां उपस्थित हुये ॥ १७ ॥ इनकी आकृति कैलास गिरकीनाईं दुर्धर्ष कालाग्निकेसमान दुस्सहतेज जिन्हें कोई अतिक्रमनहीं करसकता तेजोंसेजाज्वल्यमान् पामर जन जिन्हें निहार नहीं सकते ॥ १८ ॥ कंठमें बिजलीके समान चमकता हुआ तीक्ष्ण कुठार धरा हुआ; हाथमें विचित्र शरासन और उग्र बाण जिसके देखनेसे परशुरामजी त्रिपुरके मारनेवाले शिवके समान बोध होते थे॥ १९ ॥ ज्वलन्त अग्नितुल्य उनकी भीम मूर्ति दर्शन करके वसिष्ठादि जप होम परायण ऋषिगण ॥ २० ॥ परस्पर मिलित हो सब मुनि कहने लगे कि, यह भार्गव क्या पितृवधसे क्रोधित हो क्षत्रिय कुलको निर्मूल करेंगे ॥ २१ ॥

कवित्त–धरते उठावत अपार धूरि धुंधकार अंधकार कियो धरा धरनि धकायकै । तोरत तरुन ले झकोरनते शाखावृन्द पूरि इन्द्र लोकहुको पवन उडायकै ॥ अमित समानही सों बधिर करत कान खेरसे सहर कीन्हें छापर ढहायकै । कासवी कँपावत सो कुधर ढहावत सो हाय ऐसो पौन कैसो कहिहैं धौं जायकै ॥१॥

पहले क्षत्रियोंके कुल संहार करके इनकीक्रोधाग्नि निवारण होगई थी, अब क्या फिर उस बीभत्सकार्यका अनुष्ठान होगा ॥ २२ ॥ यह कहकर सब ऋषि अर्घ्य ग्रहणपूर्वक भयंकर दर्शन परशुरामजीको सम्बोधन कर उनको हे राम ! हे राम ! ऐसे मधुर वचन कह २ कर पूजने लगे ॥२३॥ प्रतापी जमदग्निपुत्र परशुरामजीभी ऋषियोंकी दी हुई पूजाको ग्रहण करके दशरथपुत्र रामचन्द्रसे कहने लगे॥२४॥इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा आ०बालकाण्डे भाषायां चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥७४॥ हे दशरथके पुत्र रामचन्द्र ! मैंने सुनाहै कि, तुम्हारा अद्भुत पराक्रमहै और हेवीर ! धनुभंगकाभी सब वृत्तांत मैंने सुना है ॥ १ ॥ तुमने जो शिवका धनुष तोडाहै वह बडे आश्चर्यकी बात है, मैं शिवजीके धनुषको टूटाहुआ श्रवणकर और एक धनुष ले तुम्हारे पास आया हूं ॥२॥सो तुम मुझ परशुरामके इस भीषण

पूर्वंक्षत्रवधंकृत्वागतमन्युर्गतज्वरः॥क्षत्रस्योत्सादनंभूयोनखल्वस्यचिकीर्षितम् ॥२२॥ एवमुक्त्वार्घ्यमादायभार्गवंभीमदर्शनम् ॥ ऋषयोरामरामेतिमधुरंवाक्यमब्रुवन् ॥२३॥ प्रतिगृह्यतुतांपूजामृषिदत्तांप्रतापवान् ॥ रामंदाशरथिंरामोजामदग्न्योऽभ्यभाषत ॥२४॥ इत्यार्षे श्रीम०वा० आ० चतुर्विंशतिसा० बालकांडे चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥ ७४ ॥ रामदाशरथेवीरवीर्यंतेश्रूयतेद्भुतम् ॥ धनुषोभेदनंचैवनिखिलेनमयाश्रुतम् ॥ १ ॥ तदद्भुतमचिंत्यंचभेदनंधनुषस्तथा ॥ तच्छ्रुत्वाहमनुप्राप्तोधनुर्गृह्यापरंशुभम् ॥ २ ॥ तदिदंघोरसंकाशंजामदग्न्यंमहद्धनुः ॥ पूरयस्व शरेणैवस्वबलंदर्शयस्वच ॥३॥ तदहंतेबलंदृष्ट्वाधनुषोऽप्यस्यपूरणे ॥ द्वंद्वयुद्धंप्रदास्यामिवीर्यश्लाघ्यमहंतव ॥ ४ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाराजा दशरथस्तदा ॥ विषण्णवदनोदीनःप्रांजलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ ५ ॥ क्षत्ररोषात्प्रशांतस्त्वंब्राह्मणश्चमहातपाः ॥ बालानांममपुत्राणामभयंदातुमर्हसि ॥ ६ ॥ भार्गवाणांकुलेजातःस्वाध्यायव्रतशालिनाम् ॥ सहस्राक्षेप्रतिज्ञायशस्त्रंप्रक्षिप्तवानसि ॥ ७ ॥ सत्वंधर्मपरोभूत्वाकश्यपायवसुंधराम् ॥ दत्त्वावनमुपागम्यमहेंद्रकृतकेतनः ॥ ८ ॥

शराशनको आकर्षण करके और इसपर बाण चढाकर अपना सामर्थ्य दिखाओ ॥ ३ ॥ इस धनुषके चढानेसे मैं तुम्हारा बल देखकर उपरान्त मैं तुम्हारे साथ घोर द्वन्द्वयुद्ध करूँगा तब जानूँगा कि, तुम बली हो ॥४॥ परशुरामके यह दारुणवचन श्रवणकर राजादशरथ विषण्ण वदन हो दीन भावसे हाथ जोडकर कहने लगे ॥ ५ ॥ हे भगवन् ! आपने ब्रह्मकुलमें जन्म ग्रहण किया है आप तपस्वी विख्यात हैं अब आपने क्षत्रियोंके ऊपर क्रोध भाव परित्याग कर दियाहै सो आपको मेरे बालक पुत्रोंपर प्रसन्न होना उचितहै इनको अभय दो ॥६॥ वेद पढनेवाले भार्गवकुलमें आप जन्मेहैं, आपने इन्द्रके निकट प्रतिज्ञा करके अस्त्रका चलाना छोडाहै ॥७॥ आप धर्ममें मन लगाकर महात्मा कश्यपजीको पृथ्वी पालनका भारसमर्पणकर वनवासी होकर महेन्द्रगिरिके शिखरपरवास करतेहैं ॥८॥

मैं अब आपसे जिज्ञासा करताहूँ कि; मेरा सर्वनाश करनेहीके लिये आप यहां आये हैं ? मैं निश्चय करके कहता हूं कि, रामकाकोई भी अहित होनेसे मेरा जीवन नहीं ॥९॥ दशरथजीके यह वचन सुन उनके वचनोंको अनादरकरप्रतापी परशुरामजी रामचन्द्रजीसे कहने लगे ॥१०॥ विश्वकर्माने यह दोदिव्य धनुष बनायेथे यह दोनोंलोकपूज्यऔरदृढहुएलोकोंमेंविख्यातहैं॥११॥हे राम नरश्रेष्ठ ! जो धनुष तुमनेतोडाहैसोत्रिपुरासुरके संहारकरनेके लिये देवताओंने महादेवजीको दियाथा॥१२॥और दूसरा धनुषजो मेरे पासहै इसको देवताओंनेविष्णुजीकोदियाथा यहभी सबको जीतनेमें समर्थ और शिवके धनुषकेसमानहै॥ १३॥ यहवैष्णव धनुष शत्रुओंकानाशकशिवधनुषके समान बरन् उससे अधिक है एक समय सब देवताओंने ब्रह्माजीसे पूछाकि ॥१४॥ महादेवजीमें बल अधिकहै या विष्णुजीमें

ममसर्वविनाशायसंप्राप्तस्त्वंमहामुने ॥ नचैकस्मिन्हतेरामेसर्वेजीवामहेवयम् ॥९॥ ब्रुवत्येवंदशरथेजामदग्न्यःप्रतापवान्॥अनादृत्यतुतद्वाक्यं राममेवाभ्यभाषत ॥ १० ॥ इमेद्वेधनुषीश्रेष्ठेदिव्येलोकाभिपूजिते ॥ दृढेबलवतीमुख्येसुकृतेविश्वकर्मणा ॥ ११ ॥ अनुसृष्टंसुरैरेकंत्र्यंबकाय युयुत्सवे ॥ त्रिपुरघ्नंनरश्रेष्ठभग्नंकाकुत्स्थयत्त्वया ॥१२॥ इदंद्वितीयंदुर्धर्षंविष्णोर्दत्तंसुरोत्तमैः ॥ तदिदंवैष्णवंरामधनुःपरपुरंजयम् ॥१३॥ समानसारंकाकुत्स्थरौद्रेणधनुषात्विदम् ॥ तदातुदेवताःसर्वाःपृच्छंतिस्मपितामहम् ॥ १४ ॥ शितिकंठस्यविष्णोश्चबलाबलनिरीक्षया ॥ अभिप्रायंतुविज्ञायदेवतानांपितामहः ॥ १५ ॥ विरोधंजनयामासतयोःसत्यवतांवरः ॥ विरोधेतुमहद्युद्धमभवद्रोमहर्षणम् ॥ १६ ॥ शितिकंठस्यविष्णोश्चपरस्परजयैषिणोः ॥ तदातुजृंभितंशैवंधनुर्भीमपराक्रमम् ॥ १७ ॥हुंकारेणमहादेवः स्तंभितोऽथत्रिलोचनः ॥ देवैस्तदासमागम्यसर्षिसंघैःसचारणैः ॥ १८ ॥ याचितौप्रशमंतत्रजग्मतुस्तौसुरोत्तमौ ॥ जृंभितंतद्धनुर्दृष्ट्वाशैवंविष्णुपराक्रमैः ॥ १९ ॥ अधिकंमेनिरेविष्णुंदेवाःसर्षिगणास्तथा ॥ धनूरुद्रस्तुसंक्रुद्धोविदेहेषुमहायशाः ॥ २० ॥

ब्रह्माजीनेदेवताओंका अभिप्रायजानकर॥१५॥सत्य संकल्प ब्रह्माजीने विष्णुजी व महादेवजीसेविरोध करा दिया,उस विरोधके पडनेसे तुमुलयुद्ध जिसकेदेखनेसेरुयें खडेहो जातेथे दोनोंमें उपस्थित हुआ ॥१६॥ क्रमसे शिव और विष्णुजी एकदूसरेको जीतनेकीइच्छा करनेलगे उससमय बड़े पराक्रमवाला उद्यत शिवजीका धनुष देखकर ॥१७॥ विष्णुजीने एक भयानक हुंकारसे शिथिल करदिया औरत्रिलोचन महादेवभी स्तम्भित होगये इसी समय देवगण ऋषि और चारणगणोंने एकत्रहोकर॥१८॥वहां गमन कियाजहां हरिहर युद्धकररहेथे और दोनोंकोस्तुतिकरके शान्त किया । इसप्रकार श्रीविष्णुजीकेबलपराक्रमसे शिवकाधनुषशिथिल देखकर॥१९॥सब देवता व ऋषियोंने विष्णुजीको श्रेष्ठमाना (वास्तवमें प्रकृतयुद्धमेंविष्णुजीकी अधिकताहै त्रिपुरासुरवधमें शिवकी अधिकता है इससे दोनों समानहैं

तब महायशस्वीशिवजीने क्रोधित होकर वह धनुष॥२०॥विदेह महाराजदेवरात राजर्षिको दिया और बाणभीदिया और मेरेहाथमें जो धनुषहै यहवैष्णव धनुषहै)
यहभी शत्रुओंके नगरका नाशकहै ॥२१॥ पूर्वकालमें भगवान् विष्णुजीने यह धनुष भृगुके कुलवाले महर्षि ऋचीकको प्रदान किया,महातेजस्वी ऋचीकजीनेप्रस
न्नहो अपने सहनशील पुत्र ॥२२ हमारे पिता जमदग्निको यह देदिया तपोबल समन्वित हमारे पिताजीके इसधनुषको त्यागनेपर ॥२३॥ अधर्म बुद्धिके वशीभूत
राज सहस्रबाहु अर्जुनने उनको मारडाला मैंने पिताका यह असदृशमरणसंवाद श्रवण करके रोषाविष्टहो इक्कीसवार क्षत्रियकुलका संहार किया ॥२४॥ हे राम !
मैंने सम्पूर्ण पृथ्वीका अधिकार करके यज्ञके अन्तमें पवित्र दक्षिणारूप यह पृथ्वी महात्मा कश्यपजीको देदी॥२५॥फिर मैं महेन्द्राचलपर तप कर रहाथा इतनेमें
सुना कि,तुमने शिवका धनुष तोडाहै इसी कारण तुम्हें देखनेको शीघ्रतासे चला आता हूं॥२६॥ हे रामचन्द्र!तुम पिता पितामहके पासके क्रमानुसार आये हुये

देवरातस्यराजर्षेर्ददौहस्तेससायकम् ॥ इदंचवैष्णवंरामधनुःपरपुरंजयम् ॥२१॥ ऋचीकेभार्गवेप्रादाद्विष्णुःसन्यासमुत्तमम् ॥ ऋचीकस्तुमहा
तेजाःपुत्रस्याप्रतिकर्मणः ॥२२॥ पितुर्ममददौदिव्यंजमदग्नेर्महात्मनः॥न्यस्तशस्त्रेपितरिमेतपोबलसमन्विते ॥२३॥अर्जुनोविदधेमृत्युंप्राकृतां
बुद्धिमास्थितः ॥ वधमप्रतिरूपंतंपितुश्रुत्वासुदारुणम् ॥ क्षत्रमुत्सादयंरोषाज्जातंजातमनेकशः ॥२४॥ पृथिवींचाखिलांप्राप्यकश्यपायमहा
त्मने ॥ यज्ञस्यांतेऽददांरामदक्षिणांपुण्यकर्मणे ॥२५॥ दत्त्वामहेंद्रनिलयस्तपोबलसमन्वितः ॥ श्रुत्वातुधनुषोभेदंततोऽहंद्रुतमागतः ॥२६॥
तदेवंवैष्णवंरामपितृपैतामहंमहत् ॥ क्षत्रधर्मंपुरस्कृत्यगृह्णीष्वधनुरुत्तमम् ॥ २७ ॥ योजयस्वधनुःश्रेष्ठेशरंपरपुरंजयम् ॥ यदिशक्तोऽसिका
कुत्स्थद्वंद्वंदास्यामितेततः ॥२८॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्येचतुर्विंशतिसा० बालकांडे पंचसप्ततितमः सर्गः ॥७५॥
श्रुत्वातुजामदग्न्यस्यवाक्यंदाशरथिस्तदा ॥ गौरवाद्यंत्रितकथःपितूराममथाब्रवीत् ॥१॥ श्रुतवानसियत्कर्मकृतवानसिभार्गव ॥ अनुरुध्या
महेब्रह्मन्पितुरानृण्यमास्थितः ॥ २ ॥ वीर्यहीनमिवाशक्तंक्षत्त्रधर्मेणभार्गव ॥ अवजानासिमेतेजःपश्यमेऽद्यपराक्रमम् ॥ ३ ॥

इस श्रेष्ठवैष्णव धनुषको इससमय क्षत्रिय धर्मके गौरवकी रक्षा करके ग्रहणकीजिये॥२७॥हे राम ! इसशत्रुके नगरके नाश करनेवाले धनुषकेऊपर बाण चढाओ
यदि तुम इस धनुषपर शर चढानेसे कृतकार्य हुए तो हम तुम्हारे साथ द्वन्द्व युद्ध करेंगे॥२८॥इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा०आदिकाव्ये बालकांडे भाषायां पंचसप्ततितमः
सर्गः॥७५॥परशुरामजीके वचन सुनकर दशरथसुत रामचन्द्र पिताके और वसिष्ठजीके निकट होनेके गौरवसे उग्र वचन न कहकर मधुर वचनसे बोले॥ १ ॥ हे
राम!अपने पिताका वैर लेनेको जो कार्य किया मैंने उसे सुन रक्खा है, वैरीसे बदला लेना वीरोंका कर्मही हैं सुतरां आपके कार्यको हम अंगीकार करहैं ॥२॥
किन्तुमैं क्षत्रियसंतान हूं मुझे सामर्थ्यरहित जानकर आपने जो निरादर किया सो इससमय मुझे सामर्थ्यरहितके पराक्रमका परिचय लीजिये मेरा पराक्रम देखिये ॥३॥

रामचन्द्रजीको यह कहते२ क्रोधआगया औ शीघ्रतापूर्वक परशुरामजीसे वहश्रेष्ठ आयुध शरासन और बाण ले लिया * ॥४॥ तत्क्षणात् उसपै रोदा चढाय फिर बाण चढाया फिर क्रोधित हो रामचन्द्र जमदग्निपुत्र परशुरामजीसे बोले ॥५॥हे राम ! आप ब्रह्मकुलोत्पन्न हो विशेषतःविश्वामित्रजीके सम्पर्कसे हमारे पूज्यहो अत एव (इसी कारण) इस प्राणनाशक शरसे आपके प्राण नहीं ले सकते ॥६॥ हां अब इसी कराल शरसे तो तुम्हारी नभमंडल आदिमें विचरण करनेकी शक्ति है जिसकी बराबर तीनों लोकोंमें किसीकी नहीं उसे हर लेंगे॥७॥कारण कि,यह वैष्णव बाण शत्रुकी शक्ति संहार करनेमें समर्थहै जब यह चढ चुका तो व्यर्थ नहीं होसकता, यह शत्रुके बल और घमंडका नाश करनेवाला है ॥८॥ इसी अवसरमें दिव्यायुधधारी श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनार्थऋषिब्रह्मादिदेवगण एकत्रित हो वहांआये

इत्युक्काराघवःक्रुद्धोभार्गवस्यवरायुधम् ॥ शरंच प्रतिजग्राहहस्ताल्लघुपराक्रमः ॥ ४ ॥ आरोप्यसधनूरामःशरंसज्यंचकारह ॥ जामदग्न्यंततो रामंरामक्रुद्धोऽब्रवीदिदम् ॥५॥ ब्राह्मणोऽसीतिपूज्योमेविश्वामित्रकृतेनच ॥ तस्माच्छक्तोनतेराममोक्तुप्राणहरंशरम् ॥६॥इमांवात्वद्गतिंराम तपोबलसमर्जितान्॥ लोकानप्रतिमान्वापिहनिष्यामीतिमेमतिः॥७॥नह्ययंवैष्णवोदिव्यःशरःपरपुरंजयः॥मोघःपततिवीर्येणबलदर्पविनाशनः ॥ ८ ॥ वरायुधधरंरामंद्रष्टुंसर्षिगणाःसुरा ॥ पितामहं पुरस्कृत्यसमेतास्तत्रसर्वशः ॥ ९ ॥ गंधर्वाप्सरसश्चैवसिद्धचारणकिन्नराः ॥ यक्षराक्षसनागाश्चतद्द्रष्टुंमहदद्भुतम् ॥ १० ॥ जडीकृतेतदाऽऽलोकेरामेवरधनुर्धरे ॥ निर्वीर्योजामदग्न्योऽसौरामोराममुदैक्षत ॥११॥ तेजोभिर्गतवीर्यत्वाज्जामदग्न्योजडीकृतः ॥ रामंकमलपत्राक्षमंदंमंदमुवाचह ॥ १२ ॥ काश्यपायमयादत्तायदापूर्ववसुंधरा ॥ विषयेमेनवस्तव्यमितिमां काश्यपोऽब्रवीत् ॥१३॥ सोऽहंगुरुवचःकुर्वन्पृथिव्यांनवसेनिशाम् ॥ तदाप्रभृतिकाकुत्स्थकृतमेकाश्यपस्यह ॥ १४ ॥

॥९॥ क्रमसे गन्धर्व, अप्सरा, सिद्ध, चारण, किन्नर, और यक्ष, राक्षस, नागगण इस आश्चर्य व्यापारके देखनेको उपस्थित हुए ॥१०॥ जब रामचन्द्रके धनुष चढानेसे और क्रोधसे तीनोंलोक जडीभूतहोगये तब सबके सामने परशुरामजीका तेज रामचन्द्रजीने खींच लिया ॥ ११ ॥ तब भार्गव निर्वीर्य और तेज नष्ट हो जानेसे स्तम्भित होकर श्रीकमल लोचन रामचन्द्रजीकी ओर देख मधुर वचनसे बोले ॥ १२ ॥ जब मैंने महर्षि कश्यपजीको पृथ्वी दी थी तब उन्होंने कहाथा कि, अब हमारे अधिकारमें तुम वास मत करना ॥ १३ ॥ मैं उन गुरुके वचनानुसार एक रात्रिभी पृथ्वीपर नहीं बसा क्यों कि, मैंने प्रतिज्ञा कर लीथी और पृथ्वी मैंने कश्यपजीको देदी और इसीसे पृथ्वीका एक नाम काश्यपीहुआ ॥ १४ ॥

* कवित्त–डोली धारा बार बार दिग्गज चिकार कीन्हो, हालिगो हजार शीश कच्छ अकुलान्यो है । दैत्य विकारार भय भयही अकार भये पारावार बाहि बेल छोड़ छहरान्यो है । जंजं शब्द देव दार सहित पुकार करें प्रलय संहार हेतमन अनुमान्यो है ।। देखो जमदग्निवार करते कुठार गिरचो सरिस हजार वज्र राजवार जान्यो है ।।११।।

हे वीर! अब मेरी यह प्रार्थना है कि, तुम हमारी सब जगह पहुंचनेकी शक्ति का नाश मत करो मैं इसी गतिकी सहायसे महेन्द्राचल पर्वत पर शीघ्र चला जाऊँगा॥१५॥ हे राम! मैंने जो तपस्याके द्वारा दिव्य लोक जीते हैं तुम शीघ्रतासे उनका संहार इस वैष्णवास्त्रसे करो देर मत करो ॥१६॥ हे वीराग्रगण्य! इस वैष्णवधनुषके धारण करनेसे प्रतीत होता है कि आपही मधुदैत्यके मारनेवाले अविनाशी विष्णु हैं हे परंतप! अब तुम्हारा मंगल हो ॥१७॥ यह सब देवगण सम्मिलित होकर आपकेही दर्शन कररहेहैं तुम्हारेकर्म उपमा रहित हैं और संग्राममें कोई तुम्हें जीत नहीं सकता ॥ १८ ॥ आप त्रिलोकीनाथहैं तुमसे जो मैं हारा हूं सो तुम्हारे हाथसे पराजित होना मेरे लिये लज्जाका विषय नहीं है ॥ १९ ॥ हे सुंदर व्रतधारी राम! अब आप दिव्य शरका संहार करें और मैं भी शरके संहार होनेसे

तामिमांमद्गतिंवीरहंतुंनार्हसिराघव ॥ मनोजवंगमिष्यामिमहेंद्रंपर्वतोत्तमम् ॥१५॥ लोकास्त्वप्रतिमारामनिर्जितास्तपसामया ॥ जहिताञ्छरमुख्येनमाभूत्कालस्यपर्ययः ॥१६ ॥ अक्षय्यंमधुहंतारंजानामित्वांसुरेश्वरम् ॥ धनुषोऽस्यपरामर्शात्स्वस्तितेऽस्तुपरंतप ॥ १७ ॥ एतेसुरगणाःसर्वेनिरीक्षंतेसमागताः ॥ त्वामप्रतिमकर्माणमप्रतिद्वंद्वमाहवे ॥१८॥ नचेयंतवकाकुत्स्थव्रीडाभवितुमर्हति ॥ त्वयत्रैलोक्यनाथेनयदहंविमुखीकृतः ॥१९॥ शरमप्रतिमंराममोक्तुमर्हसिसुव्रत ॥ शरमोक्षेगमिष्यामिमहेंद्रंपर्वतोत्तमम् ॥ २० ॥ तथाब्रुवतिरामेतुजामदग्न्येप्रतापवान् ॥ रामोदाशरथिःश्रीमांश्चिक्षेपशरमुत्तमम् ॥ २१ ॥सहतान्दृश्यरामेणस्वाँल्लोकांस्तपसार्जितान् ॥जामदग्न्योजगामाशुमहेंद्रंपर्वतोत्तमम् ॥ २२ ॥ ततोवितिमिराःसर्वादिशश्चोपदिशस्तथा ॥ सुराः सर्षिगणारामंप्रशशंसुरुदायुधम् ॥२३॥ रामंदाशरथिंरामोजामदग्न्यःप्रपूजितः ॥ ततःप्रदक्षिणीकृत्यजगामात्मगतिंप्रभुः॥२४॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये चतुर्विंशतिसा० बालकांडे षट्सप्ततितमःसर्गः ॥७६॥ गतेरामेप्रशांतात्मारामोदाशरथिर्धनुः ॥ वरुणायाप्रमेयायददौहस्तेमहायशाः ॥ १ ॥

उत्तम महेन्द्राचलको चला जाऊँगा ॥२०॥तब दाशरथी श्रीमान् रामचंद्रजीने प्रतापी परशुरामजीके वचन श्रवण कर उत्तम शर निक्षेप किया ॥२१॥ उससे परशुरामजीके तपस्या संचित समस्त लोक विनष्ट हुए तब परशुरामजी शीघ्रतापूर्वक महेन्द्रपर्वतको गमन करने लगे ॥ २२ ॥ उस समय दिशा और विदिशा तथा दिग्मंडल निर्मल हो गया विमानवासी देवता व ऋषिगण यह लीला देखकर आयुधधारी रामचन्द्रजीको " साधु २ " कहने लगे ॥ २३॥ महावीर जमदग्निपुत्र परशुरामजी भी दशरथसुत रामचन्द्रजीकी प्रदक्षिणा और पूजा करके अपने स्थान को चले गये ॥ २४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० बा०आ ० बालकाण्डे भाषायां षट्सप्ततितमः सर्गः ॥७६॥परशुरामजीके चले जानेपर दशरथात्मज यशस्वी श्रीरामचन्द्रजीने अमर्षभाव परित्याग करके वरुण को वह धनुष दे दिया* ॥१॥

* जर्मनकी छपी रामायणमें लिखा है पिताको धनुष दिखाया।

और फिर वसिष्ठादि ऋषियों को प्रणाम कर पिता को शंकित देखकर रघुनन्दनने कहा ॥ २ ॥ हे पिताजी ! परशुराम चले गये अतएव चतुरंगिनी सेना आपके यत्नसे रक्षित हो अयोध्या की ओरको चले ॥३॥ रामचन्द्रजीसे ऐसा सुनकर राजा दशरथजी प्रसन्न हो उनके हृदयसे लगाकर शिर सूंघा ॥ ४ ॥ परशुरामजीके वन गमनका वृत्तांत श्रवण करके नृपति दशरथ अतिशय सन्तुष्टहुए व अपना और अपने पुत्रों का नया जन्म माना ॥५॥ तदनन्तर सैन्यगणको शीघ्र चलनेकी आज्ञा दी और सेनासहित जल्दीसे अयोध्याकीओर चले एवं पुरीमें उपस्थित होकर देखा कि, मनोहर राजधानी विचित्र पताकाओंसे सजाई शोभित हो रही है और तूर्यध्वनी होनेसे दिग्मंडल नादित हो रहा है ॥ ६ ॥ राज मार्गमें छिडकाव हुआ है, सब जगह फूल पड़े हैं, पुरवासी राजाके अनेक मार्गमें मंगलद्रव्य

अभिवाद्यततोरामोवसिष्ठप्रमुखानृषीन् ॥ पितरंविकलंदृष्ट्वाप्रोवाचरघुनंदनः ॥२॥ जामदग्न्योगतोरामःप्रयातुचतुरंगिणी ॥ अयोध्याभिमुखीसेना त्वयानाथेनपालिता ॥३॥ रामस्यवचनं श्रुत्वाराजादशरथःसुतम् ॥ बाहुभ्यांसंपरिष्वज्यमूर्ध्न्युपाघ्रायराघवम् ॥ ४ ॥ गतोरामइतिश्रुत्वा हृष्टःप्रमुदितोनृपः ॥ पुनर्जातंतदामेनेपुत्रमात्मानमेवच ॥५॥ चोदयामासतांसेनांजगामाशुततःपुरीम् ॥ पताकाध्वजिनींरम्यांतूर्योद्घुष्टनिनादिताम् ॥ ६ ॥ सिक्तराजपथाऽऽरम्यांप्रकीर्णकुसुमोत्कराम् ॥ राजप्रवेशसुमुखैःपौरैर्मङ्गलपाणिभिः ॥ ७ ॥ संपूर्णांप्राविशद्राजाजनौघैःसमलंकृताम् ॥ पौरैःप्रत्युद्गतोदूरंद्विजैश्चपुरवासिभिः ॥८॥ पुत्रैरनुगतःश्रीमाञ्छ्रीमद्भिश्चमहायशाः ॥ प्रविवेशगृहंराजाहिमवत्सदृशंप्रियम् ॥ ९ ॥ ननंदस्वजनैराजागृहेकामैःसुपूजितः ॥ कौसल्याचसुमित्राचकैकयीचसुमध्यमा ॥१०॥ वधूप्रतिग्रहेयुक्तायाश्चान्याराजयोषितः ॥ ततःसीतांमहाभागामूर्मिलांचयशस्विनीम् ॥११॥ कुशध्वजसुतेचोभेजगृहुर्नृपयोषितः ॥ मंगलालापनैर्होमैःशोभिताःसौम्यवाससः ॥ १२ ॥ देवतायतनान्याशुसर्वास्ताःप्रत्यपूजयन् ॥ अभिवाद्याभिवाद्यांश्चसर्वाराजसुतास्तदा ॥ १३ ॥

लिये खड़े हैं ॥७॥ चारोंओर महाभीड हो रही है उस पुरीमें प्रवेश करतेही पुरवासी और विप्रगण मंगल पदार्थलिए राजाको आगे जाकर ले आये ॥८॥ यशस्वी श्रीमान् राजा दशरथजी अपने सुन्दर पुत्रोंको संग ले हिमगिरि तुल्य श्वेत कान्तिवाले अपने विचित्र राजमन्दिरमें पधारे ॥९॥ राजा सम्पूर्ण सुखभोगसे तृप्तहो आत्मीय जनोंके साथ नाना प्रकारकेआमोद प्रमोदसे कालबितानेलगे । राजमहिषी कौशल्या; सुमित्रा, केकैयी ॥१०॥ और राजरानियां जो थीं वे सब महाभाग्यवाली जानकी और परमयशस्विनी उर्मिलाको ॥११॥ वो कुशध्वजकी दोनों कन्या मांडवी और श्रुतकीर्ति बधुओंको पाकरपरमप्रसन्नहुई वे सबहवनऔरमंगलाचरणकरके रेशमी वस्त्रधारिणी शोभायमानवधुओंको अन्तःपुरमेंलेजाकर ॥१२॥ सबसे ग्रामपुरीके देवताओंकीपूजाकरी कराई और जो प्रणाम करनेके योग्यथे उनसे

प्रणाम कराया, इस प्रकार सब राजकुमारियोंने किया ॥ १३ ॥ बहुयें भी अनुरूप स्वामियों को पाकर परम सुख भोगने लगीं । रामचन्द्रजी भाइयों सहित स्त्रियोंको और शस्त्रोंको पाकर और धन जनसे पूर्ण हो ॥१४॥ पिताकी सेवामें वेसब पुरुषश्रेष्ठ मनको लगाते हुए कुछ काल बीतनेके उपरान्त राजा दशरथजीने ॥१५॥कैकेयीके पुत्र भरतजीसे कहा कि,हे पुत्र!यह कैकय देशके राजाके पुत्र बहुत दिनोंसे टिके हैं॥१६॥यह बीर युधाजित् तुम्हारे मामा तुम्हें बुलानेको आये हैं अतएव इनके साथ तुम अपनेनानाके यहां जाओ कुमारभरत राजाके वचन सुनकर॥१७॥ शत्रुघ्नके सहित मामाके यहां जानेको प्रस्तुत हुए, वे महाबली प्रथमपिता जीकी आज्ञाले फिर परमकृपालु महापराक्रमी रामचन्द्रजीसे पूंछा ॥१८॥ कौशल्यादि माताओंके चरणोंकी बन्दनाकर शत्रुघ्नके सहितचले युधाजितभी भरतशत्रु

रेमिरेमुदिताःसर्वाभर्तृभिर्मुदितारहः॥ कृतदाराःकृतास्त्राश्चसधनाःससुहृज्जनाः ॥१४॥शुश्रूषमाणाःपितरंवर्तयंतिनरर्षभाः ॥ कस्यचित्त्वथका लस्यराजादशरथःसुतम् ॥ १५ ॥ भरतंकैकयीपुत्रमब्रवीद्रघुनंदनः ॥अयंकेकयराजस्यपुत्रोवसतिपुत्रक ॥१६॥ त्वांनेतुमागतोवीरोयुधाजि न्मातुलस्तव ॥ श्रुत्वादशरथस्यैतद्भरतः कैकयीसुतः ॥१७॥गमनायाभिचक्रामशत्रुघ्नसहितस्तदा॥ आपृच्छ्यचपितरंशूरोरामंचाक्लिष्टका रिणम् ॥१८॥ मातृश्चापिनरश्रेष्ठःशत्रुघ्नसहितोययौ ॥ युधाजित्प्राप्यभरतंसशत्रुघ्नंप्रहर्षितः ॥१९॥ स्वपुरंप्राविशद्वीरःपितातस्यतुतोषह ॥ गतेचभरतेरामोलक्ष्मणश्चमहाबलः ॥२०॥पितरंदेवसंकाशंपूजयामासतुस्तदा ॥ पितुराज्ञांपुरस्कृत्यपौरकार्याणिसर्वशः ॥२१॥ चकारराम: सर्वाणिप्रियाणिचहितानिच ॥ मातृभ्योमातृकार्याणिकृत्वापरमयंत्रितः ॥२२॥ गुरूणांगुरुकार्याणिकालेकालेऽन्ववैक्षतः॥ एवंदशरथःप्रीतो ब्राह्मणानैगमास्तथा ॥२३॥ रामस्यशीलवृत्तेनसर्वेविषयवासिनः ॥ तेषामतियशालोकेरामःसत्यपराक्रमः ॥ २४ ॥

घ्नको पाकर हर्षित हुए ॥१९॥ और चलते२अपने नगरमें पहुँचे; उनके पिता अपने धेवतोंको देखकर संतुष्ट हुए, भरतशत्रुघ्नके मामाके यहां चले जानेपर महाबली रामलक्ष्मणजी ॥२०॥ देवताके समान पिताकी सेवा मन लगाकर करनेलगे रामचन्द्रजी पिताकी आज्ञासे सम्पूर्ण नगरके कार्योंका तत्त्व विचार करने लगे ॥२१॥ वह शास्त्रानुसार माता व अन्यान्य गुरुजनोंके प्रति यथाविधि कर्त्तव्य कर्म करने लगे और सावधानीसे सबके हितकर और प्रिय कार्य करने लगे ॥ २२ ॥ जिस समय जिस कार्यका प्रयोजन देखते वही करते कराते, समय पर गुरुजनोंके जो गुरुकार्य अर्थात् शुश्रूषादिक हैं उनको बराबर करते रहते इस भांतिसे रामचन्द्र जीके शीलस्वभावको देख राजा दशरथ प्रसन्नहुए और सब वेदपाठी ब्राह्मण भी ॥ २३ ॥ बनिये लोग सबही देशके विविध व्यापार करने वाले मनुष्य रामचन्द्रजीके

गुण परस्पर कहकर अति संतुष्ट हुए। रामचन्द्रजीसबभाइयोंसे अधिक सत्यपराक्रमी और यशस्वी थे ॥ २४ ॥ जिसप्रकार सब प्राणियोंमें स्वयंभू अधिकगुणवान्हैं इसी प्रकार रघुनाथजी हुए और जानकीवल्लभ जानकीजीके सहित नानासुख भोग करके दीर्घकाल तक विहार करते रहे ॥ २५ ॥ रामचन्द्रजी जिस भांति सीता जीके अनुकूल रहते और उनसे मन लगाये रहते वैसे ही सीताजी पतिपरायणा हुईं क्योंकि इनका ब्राह्म विवाह हुआ था इस कारण और भी अधिक प्रीति थी ॥ २६ ॥ उनमें परस्परके गुण रूपकी समानतासे आपसमें बड़ी प्रीति हुई विशेषतः रामचन्द्रजी सीताके प्रति अधिकतर स्नेहवान् थे ॥ २७ ॥ रघुनाथजीने प्रियाके मनका भाव जानकर उनके मनपर अपना अधिकार किया इसी प्रकार सुरकन्याओंकी नाईं साक्षात् लक्ष्मीके समान रूपवाली सीताजी भी रामका

स्वयंभूरिवभूतानांबभूवगुणवत्तरः ॥रामश्चसीतयासार्धंविजहारबहूनृतून्॥२५॥मनस्वीतद्गतमनास्तस्याहृदिसमर्पितः॥ प्रियातुसीतारामस्यदाराःपितृकृताइति ॥२६॥ गुणाद्रूपगुणाच्चापिप्रीतिर्भूयोऽभिवर्धते ॥ तस्याश्चभर्ताद्विगुणंहृदयेपरिवर्तते ॥२७ ॥ अंतर्गतमपिव्यक्तमाख्यातिहृदयंहृदा॥तस्यभूयोविशेषेणमैथिलीजनकात्मजा॥देवताभिःसमारूपेसीताश्रीरिवरूपिणी ॥ २८ ॥तयासराजर्षिसुतोऽभिकामयासमेयिवानुत्तमराजकन्यया ॥ अतीवरामः शुशुभेमुदान्वितोविभुःश्रियाविष्णुरिवामरेश्वरः ॥ २९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणेवाल्मीकीये आदिकाव्ये चतुर्विंशतिसाहस्र्यां संहितायां बालकांडे रामक्रीडाख्यानं नाम सप्तसप्ततितमः सर्गः ॥ ७७ ॥

ॐतत्सत् ॥ श्रीरामचन्द्रार्पणमस्तु ॥ बालकांडश्लोकाः २२५० ॥ बालकाण्डः समाप्तः ॥

अभिप्राय जानती थीं और उनसे अधिक प्रेम करती थीं ॥ २८ ॥ अधिक क्या कहैं देवतोंके पति विष्णु भगवान् कमलाको पाकर जैसे सन्तुष्ट हुए थे वैसेही रामचन्द्रजी अपनीइच्छाके अनुकूलरहनेवाली राजर्षिजनककीकन्यामनमोहिनी जनकनन्दिनीको लाभकर अतिशय सन्तुष्टऔर शोभान्वित हुए॥२९॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये चतुर्विंशतिसाहस्र्यां संहितायां बालकांडे पंडितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषायां रामक्रीडाख्यानं नाम सप्तसप्ततितमः सर्गः॥७७॥

दोहा--रघुनन्दन आनंदघन, प्रणतपाल भगवान। नित ज्वालापरसादपर, कृपा करहु सुखदान ॥ १ ॥
शारद हर गणपति ऋषी, तव गुणगण विस्तार। कहि न सकत किमि कहहुँ मैं, दशरथ राजकुमार ॥ २ ॥
छन्द--यह राम सीय विवाह मंगल सुनहिं सादर गावहीं। सो चार फलश्रम रहित अविचलभक्तिप्रभुकी पावहीं॥
कर भोग विविध कुटुम्ब युत सुतदार धन मनभावहीं। संसारके सुख पाय अन्तिम रामधाम सिधावहीं ॥ ६ ॥

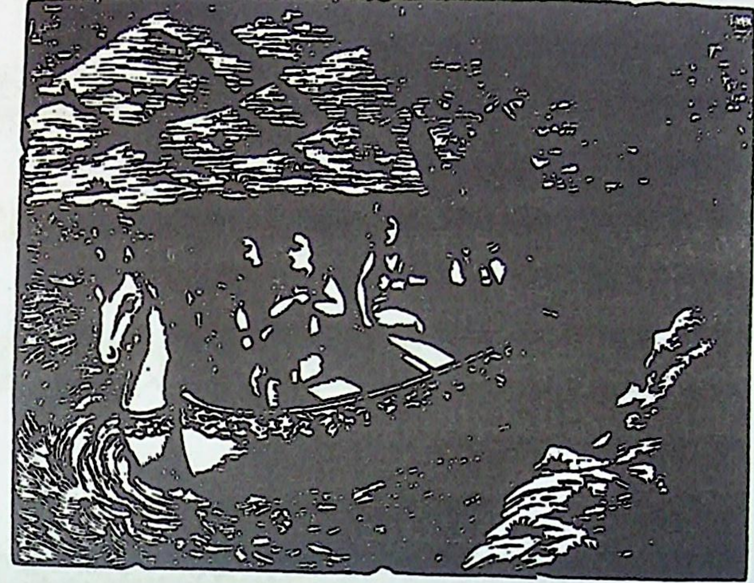
इदं वाल्मीकीयरामायणबालकाण्डं भाषाटीकासमेतं मुम्बय्यां
क्षेमराज-श्रीकृष्णदास श्रेष्ठिना स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर"-
(स्टीम्) मुद्रणालये मुद्रयित्वा प्रकाशितम् ।

इति श्रीवाल्मीकीयरामायणे बालकाण्डं भाषाटीकासमेतं समाप्तम्

अथ श्रीवाल्मीकीयरामायणेऽयोध्याकाण्डं भा.टी. समेतं प्रारभ्यते

अयोध्याकाण्डम्–२.





श्रीगणेशायनमः।। जिस समय भरतजी मामाके घर चले उस समय शत्रुओंके मारनेवालेपापरहितस्नेहपूर्वक भाई शत्रुघ्नजीको संगले गयेथे ॥ १ ॥ वे दोनोंभाई मातुल युधाजित्के यत्नसे बहुत आदर सत्कारसे लालितपालित होतेथे इसप्रकार वे दोनोंभाई अभिलषित पदार्थोंको भोगरहेथे अश्वपति उनके मामा उनको पुत्रके समान पालन करतेथे ॥२॥ वहांवे दोनों भाई अभिलषित पदार्थोंसे आदर किये जाकर अपने वृद्ध पिता दशरथजीको सदा स्मरण कियाकरतेथे ॥३॥ महातेजस्वी दशरथजी भी महेन्द्र और वरुण सदृश विदेशगत कुमार भरत व शत्रुघ्नको याद करते रहते थे ॥ ४ ॥ अपने शरीरसे निकली बाहें जिस भांति प्यारी होती हैं वैसे ही श्रेष्ठ चारों पुत्र राजा दशरथजीके प्यारे दुलारे थे ॥ ५ ॥ वह सबसे अधिक रामचन्द्रजीको चाहते सब प्राणियोंमें जैसे ब्रह्माजी वैसे ही गुणके

श्रीगणेशायनमः ॥ ॥ ॐगच्छतामातुलकुलंभरतेनतदानघः ॥ शत्रुघ्नोनित्यशत्रुघ्नोनीतःप्रीतिपुरस्कृतः ॥ १ ॥ सतत्रन्यवसद्भ्रात्रासहसत्कारसत्कृतः ॥ मातुलेनाश्वपतिनापुत्रस्नेहेनलालितः ॥ २॥ तत्रापिनिवसंतौतौतर्प्यमाणौचकामतः ॥ भ्रातरौस्मरतांवीरौवृद्धंदशरथंनृपम् ॥३॥ राजापितौमहातेजाःसस्मारप्रोषितौसुतौ ॥ उभौभरतशत्रुघ्नौमहेंद्रवरुणोपमौ ॥४॥ सर्वएवतुतस्येष्टाश्चत्वारःपुरुषर्षभाः ॥ स्वशरीराद्विनिर्वृत्ताश्चत्वारइवबाहवः ॥ ५ ॥ तेषामपिमहातेजारामोरतिकरःपितुः ॥ स्वयंभूरिवभूतानांबभूवगुणवत्तरः ॥६॥ सहिदेवैरुदीर्णस्यरावणस्यवधार्थिभिः ॥ अर्थितोमानुषेलोकेजज्ञेविष्णुः सनातनः ॥ ७ ॥ कौसल्याशुशुभेतेनपुत्रेणामिततेजसा ॥ यथावरेणदेवानामदितिर्वज्रपाणिना ॥ ८ ॥ सहिरूपोपपन्नश्चवीर्यवाननसूयकः ॥ भूमावनुपमःसूनुर्गुणैर्दशरथोपमः ॥ ९ ॥ सचनित्यंप्रशांतात्मामृदुपूर्वंचभाषते ॥ उच्यमानोऽपिपरुषंनोत्तरंप्रतिपद्यते ॥ १० ॥ कदाचिदुपकारेणकृतेनैकेनतुष्यति ॥ नस्मरत्यपकाराणांशतमप्यात्मवत्तया ॥११॥ शीलवृद्धैर्ज्ञानवृद्धैर्वयोवृद्धैश्चसज्जनैः ॥ कथयन्नास्तवैनित्यमस्त्रयोग्यांतरेष्वपि ॥ १२ ॥

प्रभावसे रामचन्द्रजी श्रेष्ठ थे ॥ ६ ॥ इसके अतिरिक्त रामचंद्रजी स्वयं सनातननारायणथे, केवल देवताओंके अनुरोधसे दुर्जयलंकानाथके विनाशार्थ मनुष्य लोकमें अवतीर्ण हुए ॥ ७ ॥ अदिति जिस प्रकार इंद्रको पाकर शोभित हुई थी वैसे ही रामजननी कौशल्याजी रामचन्द्रको पाकर शोभित हुई थीं ॥ ८ ॥ महावीर रामचन्द्रजी जिसप्रकार द्युतिमान थे तदनुरूप असूयाशून्य थे उनके गुणोंकी उपमा नहीं मिली; वह पिताके समान गुणशाली हुये ॥९॥ वहसदा शांत रहते मृदु वाक्यसे संभाषण करते,कोईकटूक्तिकरता तो परुषवाक्यप्रयोग न करके चुप रहते ॥ १० ॥ कोई केवलएक ही उपकार करता तो वह उससे ही संतुष्ट होजाते। और चाहे किसीने सैकड़ों अपकार किये हों उनका मनमें कुछ ध्यान न रखते ॥ ११ ॥ वह अस्त्राभ्यासके अवकाशके समय सुशील, वयोवृद्ध, ज्ञानवान् सज्जनोंके साथ

सम्मिलितहो शास्त्रकी चर्चा करते ॥ १२ ॥ वह बुद्धिमान् प्रियवादी व मधुरालापीथे स्वयं वीर होकर वीरताके गर्वसे मत्त न थे ॥ १३ ॥ वह सत्यका समादर और वृद्धोंकी मर्यादा करतेथे कदाचित्भी झूठका आदर नहीं करते वह जैसा प्रजाकोप्रेमके वर्तावसे चाहते वैसा ही प्रजागण उनके प्रति भक्तिमान थे ॥१४॥ वह दुःखियोंके ऊपर दया करते कभी क्रोध नहीं करते ब्राह्मणोंके प्रति भक्तिमान् थे उनकी पूजा करते व धर्मज्ञ दीनोंका दुःख दूर करते थे उनकाअन्तःकरण नित्य शुचि और पवित्र हुआऔर इंद्रियोंको जीते हुए थे ॥ १५ ॥ उनकी बुद्धि कुलधर्मके रक्षा करनेमें भी व्यग्र थी इसलिए वह क्षत्रिय धर्मको अधिक प्यार करते हुये और अत्यन्त प्रीतिसे कीर्तिको अधिक स्वर्गफलका साधन मानतेथे ॥१६॥ वे अमङ्गल व अकार्यमें रत नहीं थे धर्मविरुद्ध कथामें उनकी रुचि नहीं थी वादानुवादकेस्थलमें

बुद्धिमान्मधुराभाषीपूर्वभाषीप्रियंवदः ॥ वीर्यवान्नचवीर्येणमहतास्वेनविस्मितः ॥ १३ ॥ नचानृतकथोविद्वान्वृद्धानांप्रतिपूजकः ॥ अनुरक्तः प्रजाभिश्चप्रजाश्चाप्यनुरज्यते ॥१४॥ सानुक्रोशोजितक्रोधोब्राह्मणप्रतिपूजकः ॥ दीनानुकम्पीधर्मज्ञोनित्यंप्रग्रहवाञ्छुचिः ॥१५॥ कुलोचितमतिःक्षात्रंस्वधर्मंबहुमन्यते ॥ मन्यतेपरयाप्रीत्यामहत्स्वर्गफलंततः.॥ १६ ॥ नाश्रेयसिरतोयश्चनविरुद्धकथारुचिः ॥उत्तरोत्तरयुक्तीनांवक्तावाचस्पतिर्यथा ॥१७॥ अरोगस्तरुणोवाग्मीवपुष्मान्देशकालवित् ॥ लोकेपुरुषसारज्ञःसाधुरेकोविनिर्मितः ॥ १८ ॥सतुश्रेष्ठैर्गुणैर्युक्तः प्रजानांपार्थिवात्मजः ॥ बहिश्चरइवप्राणोबभूवगुणतःप्रियः ॥ १९ ॥सर्वविद्याव्रतस्नातोयथावत्सांगवेदवित् ॥ इष्वस्त्रेचपितुश्रेष्ठोबभूवभरताग्रजः ॥ २० ॥ कल्याणाभिजनःसाधुरदीनःसत्यवागृजुः ॥ वृद्धैरभिविनीतश्चद्विजैर्धर्मार्थदर्शिभिः ॥ २१ ॥ धर्मकामार्थतत्त्वज्ञःस्मृतिमान्प्रतिभानवान् ॥ लौकिकेसमयाचारेकृतकल्पोविशारदः ॥२२॥ निभृतःसंवृताकारोगुप्तमंत्रसहायवान् ॥ अमोघक्रोधहर्षश्चत्यागसंयमकालवित् ॥ २३ ॥

वह बृहस्पतिकी नाईं युक्ति प्रदर्शन करते थे ॥ १७ ॥ वह बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ थे पुरुषके सार जाननेमें उनकी शक्ति अटल थी सुंदर शरीरवाले बलवान् वह देशकालज्ञ थे उनका शरीर रोगरहित व तरुण था वे अद्वितीय साधुथे ॥१८॥ वहराजा दशरथजीके पुत्र श्रेष्ठ गुणोंसे युक्तथे और इन्हींगुणोंके कारण वह प्रजाओंके बाहर रहनेवाले प्राणोंकेसमान प्यारे हुए ॥ १९ ॥ उन्होंने यथाविधि सांगवेदवेदांग अध्ययन करकेसमावर्त्तनकिया । वह भरतजीके बड़े भाई समस्त अस्त्रशस्त्रोंमें पारगामी पितासे भी अधिक पंडित हुये ॥ २० ॥ वह कल्याणके जन्मस्थानसाधु सरल दीनतारहित थे व सत्यवादी धर्मार्थदर्शी वृद्धब्राह्मणगण उनके आचार्य थे ॥२१॥ वह धर्मार्थ काम तत्त्वके मर्मको जानतेथे स्मृतिमान् विलक्षण चतुर थे लौकिक आचार विचारके विधान जाननेमेंभी चतुर थे ॥२२॥ वह अति गंभीरस्व

भाववाले फलकी प्राप्ति जबतक न होतबतक उसका भेद कोई नहीं जानता उनकागूढ अभिप्रायथावहसहायवान्थे उनकाक्रोध औरहर्ष निष्फल नहीं होताथासत्पात्रमें दान और न्यायसे द्रव्य उपार्जन करते थे ॥ २३ ॥ वह गुरुलोगोंके प्रतिअतिशय भक्तिमान् व दृढप्रतिज्ञ, कभी असद्वस्तुके ग्रहण करनेमें उनकी वासनाप्रकाशनहीं हुई, न कभी दुर्वाक्य कहते व आलस्यशून्य अप्रमत्त अपने व परायेदोषके जाननेवाले ॥२४॥ वह शास्त्रज्ञ,कृतज्ञ और पुरुषोंके तारतम्य जाननेमें पंडितथे और लोकोंके प्यारे हुये न्यायानुसार निग्रह व अनुग्रह प्रदर्शन करनेमें तत्पर रहते थे ॥२५॥ वह परिवारवर्गके प्रतिपालन और दुष्टजनोंके शासन करनेमें चतुर थे निग्रहके स्थानको जाननेवालेथे देशकालके अनुसार प्रजासे द्रव्य उपार्जन करनेकेउपायको जानतेथे जिसप्रकार भौंरा फूलोंसे शहद इकट्ठा करता वैसेही है महाराज रामचन्द्रजी प्रजाके निकटसे धन ग्रहण करनेमें चतुरहुये और इसीप्रकार आयकेअनुसार खर्च करतेथे ॥२६॥वह शस्त्रादि व नाटकप्रभृतिके जाननेमें विलक्षण अनु

दृढभक्तिःस्थिरप्रज्ञोनासद्ग्राहीनदुर्वचाः ॥ निस्तन्द्रिरप्रमत्तश्चस्वदोषपरदोषवित् ॥ २४ ॥ शास्त्रज्ञश्चकृतज्ञश्चपुरुषांतरकोविदः ॥ यःप्रग्रहा नुग्रहयोर्यथान्यायंविचक्षणः ॥ २५ ॥ सत्संग्रहानुग्रहणेस्थानविन्निग्रहस्यच ॥ आयकर्मण्युपायज्ञः संदृष्टव्ययकर्मवित् ॥ २६ ॥ श्रैष्ठ्यंचा स्त्रसमूहेषुप्राप्तोव्यामिश्रकेषुच ॥ अर्थधर्मौचसंगृह्यसुखतंत्रोनचालसः ॥ २७ ॥ वैहारिकाणांशिल्पानांविज्ञातार्थविभागवित् ॥ आरोहेविनये चैवयुक्तोवारणवाजिनाम् ॥ २८ ॥ धनुर्वेदविदांश्रेष्ठोलोकेऽतिरथसंमतः ॥ अभियाताप्रहर्ताचसेनानयविशारदः ॥ २९ ॥ अप्रधृष्यश्चसंग्रा मेक्रुद्धैरपिसुरासुरैः ॥ अनसूयोजितक्रोधोनदृप्तोनचमत्सरी ॥ ३० ॥ नावज्ञेयश्चभूतानांनचकालवशानुगः ॥ एवंश्रेष्ठैर्गुणैर्युक्तः प्रजानांपार्थि वात्मजः ॥ ३१ ॥ संमतस्त्रिषुलोकेषुवसुधायाः क्षमागुणैः ॥ बुद्ध्याबृहस्पतेस्तुल्योवीर्येचापिशचीपतेः ॥ ३२ ॥

रक्तथे,वह अर्थ धर्म संग्रहपूर्वक अविरोध कर्त्तव्य कर्म पालनकरते और आलस्यरहितथे ॥२७॥ विहारकालमें जितनी शिल्पवस्तुओंका क्रियार्थ प्रयोजन होता उनको भलीभाँति जानते. हस्ती, अश्वप्रभृतिके सिखानेमें जैसे चतुरथे वैसेहीउनपरसवारी करनेमें चतुर हुये॥२८॥वह धनुर्विद्यामें पारदर्शी व अतिरथ प्रसिद्ध थे. वे पराई सेनाके हन्ता एवंचक्रादि व्यूहके निर्माणकरनेमें चतुरथे ॥२९॥ देवगणऔर असुरभी कुपित होकर उनको युद्धमें नहींहरा सकते वह निद्रारहित क्रोधको जीतनेवाले गर्व व मात्सर्यसे हीन हुये॥३०॥न तो वे किसीकी अवज्ञाके पात्र न कालके वशीभूत हुये अधिक क्या कहें त्रिलोक उनकी पूजा करता इसप्रकारसे दशरथपुत्र श्रेष्ठ गुणोंसे युक्त प्रजाके प्यारे हुये ॥ ३१ ॥ वह सलाहमें तीनों लोकोंके सम्मत हुये. क्षमामेंपृथ्वीके समान, बुद्धि में बृहस्पतिजीके समान और

वीरतामें शचीनाथइन्द्रके समान हुये ॥३२॥ प्रदीप्त सूर्य जिस प्रकार अपनी किरणोंके प्रभावसे प्रकाशित होता है वैसेही प्रजाके इष्ट और पिताके प्यारेदुलारे रामचन्द्रजी गुणग्रामसे मण्डित हो शोभा पाने लगे ॥ ३३ ॥ तब रामचन्द्रको ऐसे दिव्य गुण व्रत युक्त व अतुल पराक्रम लोकोंके स्वामीके समान देखकर वसुमतीपृथ्वीने उनको पति बनानेकी मनोकामना की ॥ ३४ ॥ ऐसे समय पर तप करनेवाले राजादशरथजी रामचन्द्रजीको बहुत सारे गुणोंसे युक्तअनुपमगुण निधान ज्ञानखान देखकर मनमें यह चिन्ता करने लगे कि॥३५॥ मेरी यह वृद्धावस्था उपस्थित है बहुत काल राज्यकरते मुझे बीत गये अब रामचन्द्रजीको राज्यपदपर अभिषिक्त देखकर न जानें मुझे कितना आनन्द होगा ॥ ३६ ॥ मेरी यह आशाअन्तरमें आनन्द उपजारहीहै नहीं कह सकता कि,मैं रामचन्द्रको कब यौवराज्यपर प्रतिष्ठित देखूँगा ॥ ३७ ॥ जिसप्रकार जल वर्षानेवाला मेघलोकोंकी वृद्धिकरनेसे और दयाकरनेसे लोकोंको प्रीतिकरहोताहै वैसेही रामचन्द्रजी

तथासर्वप्रजाकांतैःप्रीतिसंजननैः पितुः ॥ गुणैर्विरुरुचेरामोदीप्तःसूर्यइवांशुभिः ॥३३॥ तमेवंवृत्तसपन्नमप्रधृष्यपराक्रमम् ॥ लोकनाथोपमं नाथमकामयतमेदिनी ॥ ३४ ॥ एतैस्तुबहुभिर्युक्तंगुणैरनुपमैःसुतम् ॥ दृष्ट्वादशरथोराजाचक्रेचिंतांपरंतपः ॥ ३५ ॥ अथराज्ञोबभूवैववृद्धस्य चिरजीविनः ॥ प्रीतिरेषाकथंरामोराजास्यान्मयिजीवति ॥ ३६ ॥ एषाह्यस्यपराप्रीतिर्हृदिसंपरिवर्तते ॥ कदानामसुतंद्रक्ष्याम्यभिषिक्त महंप्रियम् ॥३७॥ वृद्धिकामोहिलोकस्यसर्वभूतानुकंपकः ॥ मत्तः प्रियतरोलोकेपर्जन्यइववृष्टिमा ॥३८॥ यमशक्रसमोवीर्येबृहस्पतिसमोम तौ ॥ महीधरसमोधृत्यांमत्तश्चगुणवत्तरः ॥ ३९ ॥ महीमहमिमांकृत्स्नामधितिष्ठंतमात्मजम् ॥ अनेनवयसादृष्ट्वायथास्वर्गमवाप्नुयाम् ॥४०॥ इत्येवंविविधैस्तैस्तैरन्यपार्थिवदुर्लभैः ॥ शिष्टैरपरिमेयैश्चलोकेलोकोत्तमैर्गुणैः ॥४१॥ तंसमीक्ष्यतदाराजायुक्तंसमुदितैर्गुणैः ॥ निश्चि त्यसचिवैःसार्धंयौवराज्यममन्यत ॥ ४२ ॥ दिव्यंतरिक्षेभूमौचघोरमुत्पातजंभयम् ॥ संचचक्षेऽथमेधावीशरीरेचात्मनोजराम् ॥ ४३ ॥

लोकहितैषी व सर्व भूतोंपर दया करनेवाले हैं प्रजाको मुझसेभी अधिक प्यारे हैं ॥३८॥ रामका बल यम व इन्द्रके सदृश, बुद्धि बृहस्पतिके तुल्य, धीर पर्वतके समान और वह मुझसेभी अधिक गुणवाले हैं ॥ ३९ ॥ कबमैं इस वृद्धा दशामें पुत्र रामको निखिल समाजका अधिपति देखकरयथायोग्यस्वर्गको प्राप्त होऊंगा ॥४०॥ राजादशरथजीरामचन्द्रको इसप्रकार और राजाओं को दुष्प्राप्य अत्यन्त श्रेष्ठ असंख्य लोकमें उत्तम गुणोंसे विभूषित ॥४१॥ तथा और भी अनेक प्रकारके श्रेष्ठ गुणोंसे अपने पुत्र रामचन्द्रको युक्त देखकर मंत्रियोंके सहित सलाह करकेउनको युवराज करनेका मनमें विचार करते हुये ॥४२॥व मंत्रियोंसे कहा कि,मेरे शरीरमें बुढापेका आधिपत्यहीआया स्वर्गमें ग्रहनक्षत्रादिकोंकी मूर्त्तिसबविकृत और आकाशमें महावातादिके उत्पात तथा भूमिकम्प प्रभृति दैवदुर्निमित्त

दृष्टि होतेहैं यह भय देनेवाले हैं ॥४३॥इस कारण इस अपने चित्तके शोक दूर करनेके निमित्तपूर्णचन्द्राननरामचन्द्रजीको यौवराज्याभिषेककरनेकी मेरी इच्छा है मैं जानता हूँ कि, यह बात रामचन्द्र व प्रजाके अनभिप्रेत नहीं होगी ॥ ४४ ॥ अनन्तर अवनीनाथ दशरथजी योग्य कालमें अपने उद्देश्यसे रामचन्द्र व प्रजाके प्रति स्नेह प्रदर्शन करनेके अर्थ रामको यौवराज्यमें अभिषेक करनेको शीघ्रताके कारण उत्सुक हुये ॥ ४५ ॥ राजा दशरथजीने उस समय सब पृथ्वीके अनेक देश और नगरीके प्रधान लोगोंको बुलाया ॥ ४६ ॥ उन सबको आदरपूर्वक वासभवन और नानाप्रकारके अलंकारादि प्रदान किये, प्रजापति. ब्रह्माजी जिस प्रकार प्रजासंवेष्टित होकर शोभित होतेहैं वैसेही उस समय उपस्थित व्यक्तिगणोंसे राजा दशरथजी शोभाको प्राप्त हुयेथे॥४७॥उस समय शीघ्रताके कारण

पूर्णचंद्राननस्याथशोकापनुदमात्मनः॥ लोकेरामस्यबुबुधेसप्रियत्वंमहात्मनः॥४४॥ आत्मनश्चप्रजानांचश्रेयसेचप्रियेणच ॥ प्राप्तेकालेसधर्मात्माभक्त्यात्वरितवान्नृपः ॥ ४५ ॥ नानानगरवास्तव्यान्पृथग्जानपदानपि ॥ समानिनायमेदिन्यांप्रधानान्पृथिवीपतिः ॥ ४६ ॥ तान्वेश्मनानाभरणैर्यथार्हंप्रतिपूजितान् ॥ ददर्शालंकृतोराजाप्रजापतिरिवप्रजाः ॥ ४७ ॥ नतुकेकयराजानंजनकंवानराधिपः ॥ त्वरया चानयामासपश्चात्तौश्रोष्यतःप्रियम् ॥४८॥ अथोपविष्टेनृपतौतस्मिन्परपुरार्दने ॥ततः प्रविविशुःशेषाराजानोलोकसंमताः ॥४९॥ अथराज वितीर्णेषुविविधेष्वासनेषुच ॥ राजानमेवाभिमुखानिषेदुर्नियतानृपाः ॥ ५० ॥ सलब्धमानैर्विनयान्वितैर्नृपैःपुरालयैर्जानपदैश्चमानवैः ॥ उपोपविष्टैर्नृपतिर्वृतोबभौसहस्रचक्षुर्भगवानिवामरैः ॥ ५१ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये चतुर्विंशतिसा० सं० अयोध्याकांडे प्रथमःसर्गः ॥ १ ॥ततः परिषदंसर्वामामंत्र्यवसुधाधिपः ॥ हितमुद्धर्षणंचैवमुवाचप्रथितं वचः ॥ १ ॥

केकय राजा और मिथिलाधिपतिको यह समाचार नहीं दिया इसकारण कि,उनको यह शुभ समाचार पीछेही मिल जायगा ॥४८॥ परबलविजयी महाराज दशरथजी सिंहासनपर उपविष्ट थे कि, इतनेमें विदेशीय नृपतिगण उपस्थित हुये ॥ ४९ ॥ वह सब राजा कौसलराजके निकटसे अनेक प्रकारके बहुमूल्य आसन ग्रहण करके उनके सामने नम्रतासे बैठे ॥ ५० ॥ विनयी नृपतिगण और जनपदवासी प्रधान व्यक्तिगणोंके इसभाँतिसंमानितहो सभामें बैठनेपर अमरनाथ इन्द्र जिसप्रकार देवताओंके बीचमें रहकर शोभित होतेहैं वैसेही राजादशरथजीशोभा पाने लगे ॥५१॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामाय० वा०आ०अयो०भा०टी० प्रथमः सर्गः॥१॥उसके पश्चात् भूमिनाथ दशरथजी सबनगरवासियोंको अपने सोंही बिठाकरपरमहित हर्षवर्धनकारी अतिविख्यात वचन सबसे ऐक्यता कर बोले ॥१॥

बोलनेके समयराजाकी वाणी परमऊँचेस्वरकेसहितथी,मानों देव दुन्दुभी बजायबडे गंभीर शब्दसे बादल गर्जा ऐसा जान पडा ॥ २ ॥ जिसप्रकार राजाओंको बोलना चाहिये वैसेही अतिसुन्दर उपमारहित वाणी रससे भरी सब नरनाथोंसे राजादशरथजी बोले ॥ ३ ॥ आप लोगोंपर विदित है कि, हमारे पूर्व राजेन्द्र पुरुषोंने पुत्रवत् इस विशाल राज्यको पालन किया है॥४॥ मैं इससमय इक्ष्वाकुप्रभृति नरनाथोंके पालनकियेहुए राज्यमें सब जगत्में सुख संपत्ति बढानेके अर्थ प्रस्ताव करताहूं॥५॥ मैंनेभी प्रथम पुरुषोंकी नाईं उन्हींके मार्गमें चलकर आत्म सुखभोग विरत होकर यथाशक्ति आलस्यको त्यागकरके इस राज्यको पालन किया है ॥६॥ सब लोकोंकी मंगलकामनासे श्वेतराजछत्रके नीचे रहकर मैंने अपने शरीरको जीर्ण कर दिया ॥७॥इस समय मेरी उमर कई हजार अर्थात्

दुंदुभिस्वरकल्पेनगंभीरेणानुनादिना ॥ स्वरेणमहताराजाजीमूतइवनादयन् ॥२॥ राजलक्षणयुक्तेनकांतेनानुपमेनच ॥ उवाचरसयुक्तेनस्वरेण नृपतिर्नृपान् ॥ ३ ॥ विदितंभवतामेतद्यथामेराज्यमुत्तमम् ॥ पूर्वकैर्ममराजेंद्रैः सुतवत्परिपालितम् ॥ ४ ॥ सोऽहमिक्ष्वाकुभिः सर्वैर्नरेंद्रैःप्रति पालितम् ॥ श्रेयसायोक्त्युमिच्छामिसुखार्हमखिलंजगत् ॥५॥ मयाप्याचरितंपूर्वैःपथानमनुगच्छता॥ प्रजानित्यमनिद्रेणयथाशक्त्याभिरक्षि ताः ॥ ६ ॥ इदंशरीरंकृत्स्नस्यलोकस्यचरताहितम् ॥पांडुरस्यातपत्रस्यच्छायायांजरितंमया ॥ ७ ॥ प्राप्यवर्षसहस्राणिबहून्यायूंषिजीवतः ॥ जीर्णस्यास्यशरीरस्यविश्रांतिमभिरोचये ॥ ८ ॥ राजप्रभावजुष्टांचदुर्वहामजितेंद्रियैः ॥ परिश्रांतोऽस्मिलोकस्यगुर्वींधर्मधुरंवहन् ॥ ९ ॥ सोऽहंविश्राममिच्छामिपुत्रंकृत्वाप्रजाहिते ॥ सन्निकृष्टानिमान्सर्वाननुमान्यद्विजर्षभान् ॥ १० ॥ अनुजातोहिमांसर्वैर्गुणैःश्रेष्ठोममात्मजः ॥ पुरंदरसमोवीर्येरामःपरपुरंजयः॥११॥ तंचंद्रमिवपुष्येणयुक्तंधर्मभृतांवरम् यौवराज्येनियोक्तास्मिप्रातःपुरुषपुंगवम् ॥ १२ ॥ अनुरूपःसवो नाथोलक्ष्मीवाँल्लक्ष्मणाग्रजः ॥ त्रैलोक्यमपिनाथेनयेनस्यान्नाथवत्तरम् ॥ १३ ॥

साठ हजार वर्षकी हुई अब मेरी इच्छाहै कि,बुढापे जीर्ण हुये शरीरको विश्राम दूं॥८॥ अजितेंद्रिय पुरुष जिस भारको नहीं उठा सकते मैं राज प्रभावानुसार वही गुरुतर धर्मभार वहन करके थक गयाहूं॥९॥सो अब मैं इन उपस्थितद्विजातियोंकीअनुमति ग्रहणकरके पुत्रको प्रजापालनभार सौंप विश्रामकरनेकी वासना करताहूं ॥१०॥ शत्रुबलघाती मेरे;पुत्र रामचन्द्रजो वीर्यमेंपुरन्दरके समान और सर्वश्रेष्ठ गुणोंकी खानि हैं ॥११॥ पुष्यके सहित चन्द्रमाकासंयोग होनेसे जैसा होता है वैसेही धार्मिकचूडामणिरघुवीरको प्रातःकाल यौवराज्यअभिषेक करूंगा॥१२॥लक्ष्मणके बडे भाई लक्ष्मीवान् रामचन्द्र सब भाँति राजपदके योग्य है

मुझे विश्वास है कि,यह देश क्या त्रिलोकमंडल इनको पाकर सनाथ होगा ॥१३॥ मैं अभी इस श्रेष्ठ अपने पुत्र रामचन्द्रको राज्यदे युवराज बनाकरमनका क्लेश निवारण करूंगा ॥१४॥ यदि मेरी यह बात तुम सबके अनुकूल हो तो इसमें अपनी सम्मति दो कि,यह कार्य करना चाहिये॥१५॥ और जो मेरा यह प्रस्ताव तुम्हें अच्छा न लगे तोउससे अधिकजो हितकर हो उसके विषयमें परामर्शदो,क्योंकि मध्यस्थलोगोंकी चिन्ता पूर्वपक्ष और उत्तरपक्षकी विवेचनामें विलक्षण होतीहै ॥१६॥ नीले मेघको आकाशमें निहार कर मोरगण जैसे आनन्दितहोते हैं वैसेही सब राजाओंने प्रसन्नमनसे महाराज दशरथका सुन्दर वचनयुक्त प्रस्ताव ग्रहण किया ॥१७॥ उस समय सभामें सामन्त राजाओंकी हर्षध्वनि उच्चारित हुईमानों सब लोगोंके आन्दोलन करनेसे पृथ्वी कम्पायमान होने लगी॥१८॥

अनेनश्रेयसासद्यःसंयोक्ष्येहमिमांमहीम् ॥ गतेक्लेशोभविष्यामिसुतेतस्मिन्निवेश्यवै ॥१४॥ यदिदंमेऽनुरूपार्थंमयासाधुसुमंत्रितम् ॥ भवंतोमेऽनुमन्यंतांकथंवाकरवाण्यहम् ॥ १५ ॥ यद्यप्येषाममप्रीतिर्हितमन्यद्विचिंत्यताम् ॥ अन्यामध्यस्थचिंतातुविमर्दाभ्यधिकोदया ॥ १६ ॥ इतिब्रुवंतंमुदिताः प्रत्यनंदन्नृपानृपम् ॥ वृत्तिमंतंमहामेघंनर्दंतइवबर्हिणः ॥१७॥ स्निग्धोऽनुनादःसंजज्ञेततोहर्षसमीरितः ॥ जनौघोद्घुष्टसन्नादोमेदिनींकंपयन्निव ॥१८॥ तस्यधर्मार्थविदुषोभावमाज्ञायसर्वशः ॥ ब्राह्मणाबलमुख्याश्चपौरजानपदैःसह ॥ १९ ॥ समेत्यतेमंत्रयितुंसमतागतबुद्धयः ॥ ऊचुश्चमनसाज्ञात्वावृद्धंदशरथंनृपम् ॥ २० ॥ अनेकवर्षसाहस्रोवृद्धस्त्वमसिपार्थिव ॥ सरामंयुवराजानमभिषिंचस्वपार्थिवम् ॥२१॥ इच्छामोहिमहाबाहुंरघुवीरंमहाबलम् ॥ गजेनमहतायांतंरामंछत्रावृताननम् ॥ २२ ॥ इतितद्वचनंश्रुत्वाराजातेषांमनःप्रियम् ॥ अजानन्निवजिज्ञासुरिदंवचनमब्रवीत् ॥ २३ ॥ श्रुत्वैतद्वचनंयन्मेराघवंपतिमिच्छथ ॥ राजानः संशयोऽयंमेतदिदंब्रूततत्त्वतः ॥ २४ ॥

अनन्तर द्विजातिगण व सब सेनापति समस्त पुरवासी देशवासियोंके सहितधर्मज्ञ राजाकेअभिप्रायको समझकर ॥ १९ ॥ वे सब श्रेष्ठबुद्धिमान् मिलित होकर विचार करने लगे और उसको अच्छी प्रकारसे विचारकर बूढे राजादशरथजीसे कहने लगे ॥२०॥ हे महाराज ! आपकी अवस्था अब बहुत हजार वर्षोंकी हुई आप० वृद्धहोगये हो अतएव अब आप रामचन्द्रजीको अभिषेक कर यौवराज्य देदीजिये ॥२१॥हम सब महावीर महाबाहु रामचन्द्रजीको बडे हाथीपै चढे और उनके शिरपर छत्र लगा हुआ देखनेके अभिलाषी हुये हैं ॥ २२ ॥ इस प्रकार उनके वचन सुन राजा दशरथजी उनकेमनका भाव समझ अनजानकी नाई प्रश्नकर बोले ॥ २३ ॥ तुम लोग हमारे प्रस्तावसे जो रामको यौवराज्याभिषिक्त करनेमें सम्मत हुये हो सो मेरे मनमें सन्देहउपस्थित हुआ है अतएव

अपनें अभिप्रायको साफ२कहो ॥२४॥ मैं जब कर्मानुसारराज्यपालन करही रहा हूं फिर किस कारणसे महाबलीरामको राजाकरनेमें तुम्हारीप्रवृत्ति हुई है ?॥२५॥ तब नृपगण पुरवासी व और देशसे आये हुये सब मनुष्य कहने लगे कि, हे महाराज! आपके पुत्र रामजीमें अनेक प्रकारके सद्गुण दृष्टिआते हैं॥२६॥हे राजन् ! हम सब आपसे उनहीं अमितगुणशाली देवताके समान बुद्धिमान् शत्रुओंकोभी आनन्द देनेवाले और इच्छितपदार्थ देनेसे सबको प्रसन्न करनेवालेरामचन्द्र जीके गुण कहते हैं आप श्रवण कीजिये ॥२७॥ सत्यपराक्रमीरामचन्द्रजी दिव्य गुणोंमें इन्द्रतुल्य,सत्य शरण,वह अपने गुणप्रभावसे पूर्वपुरुषइक्ष्वाकुप्रभृतिराजा ओंसे बढगयेहैं ॥२८॥ रामचन्द्रपुरुषोत्तमसत्यपरायण और सत्यस्वरूपहैं,साक्षात्धर्म वा अर्थ उनमेंही आश्रित हैं ॥२९॥ वह प्रजा पालनेमें चन्द्रमा सदृश हैं,

कथंनुमयिधर्मेणपृथिवीमनुशासति ॥ भवंतोद्रष्टुमिच्छंतियुवराजंमहाबलम् ॥२५॥ तेतमूचुर्महात्मानःपौरजानपदैःसह ॥ बहवोनृपकल्याणगुणाःसंतिसुतस्यते ॥२६॥ गुणान्गुणवतोदेवदेवकल्पस्यधीमतः ॥ प्रियानानंदनान्कृत्स्नान्प्रवक्ष्यामोऽद्यतान्छृणु ॥ २७ ॥ दिव्यैर्गुणैःशक्रसमोरामःसत्यपराक्रमः ॥ इक्ष्वाकुभ्योऽपिसर्वेभ्योह्यतिरिक्तोविशांपते ॥ २८ ॥ रामःसत्पुरुषोलोकेसत्यःसत्यपरायणः ॥ साक्षाद्रामाद्विनिर्वृत्तोधर्मश्चापिश्रियासह ॥ २९ ॥ प्रजासुखत्वेचंद्रस्यवसुधायाःक्षमागुणैः ॥ बुद्ध्याबृहस्पतेस्तुल्योवीर्येसाक्षाच्छचीपतेः ॥३०॥ धर्मज्ञःसत्यसंधश्चशीलवाननसूयकः ॥ क्षांतःसांत्वयिताश्लक्ष्णःकृतज्ञोजितेंद्रियः ॥ ३१ ॥ मृदुश्चस्थिरचित्तश्चसदाभव्योऽनसूयकः ॥ प्रियवादीचभूतानांसत्यवादीचराघवः ॥३२॥ बहुश्रुतानांवृद्धानांब्राह्मणानामुपासिता ॥ तेनास्येहातुलाकीर्तिर्यशस्तेजश्चवर्धते ॥ ३३॥ देवासुरमनुष्याणांसर्वास्त्रेषुविशारदः ॥ सम्यग्विद्याव्रतस्नातोयथावत्सांगवेदवित् ॥३४॥ गांधर्वेचभुविश्रेष्ठोबभूवभरताग्रजः ॥ कल्याणाभिजनःसाधुरदीनात्मामहामतिः ॥ ३५ ॥

क्योंकि चन्द्रमा अपने किरणोंसे सब अन्नफल फूलादिको पकाकर प्रजाओंका हित करतेहैं क्षमा गुणमें पृथ्वीतुल्य बुद्धिमें बृहस्पतिजीके समान व वीर्यमें साक्षात्वज्रधर इन्द्रके समान हैं ॥३०॥ वे जितेंद्रिय,सुशील,सहनशील असूयाशून्य,धर्मज्ञसत्यसागर, क्षमावान् व कृतज्ञ हैं ॥३१॥ वह कोमलस्वभाव, स्थिरचित्त, असूयाशून्य,दर्शनीय, सम्पूर्ण प्राणियोंसे प्यारे वचन बोलनेवाले वह सत्यभाषी हैं ॥३२॥ वह रामचन्द्रजी बडे ज्ञानवान् ब्राह्मणोंकी सेवा करते हैं सबगुण परम्परासे उसकीकीर्ति यश व तेज बढ़ रहा है ॥३३॥ सुरासुर व मनुष्य लोकके सब अस्त्र उनके अधिकारमें हैं वह सब विद्याओंमें पारदर्शी षडङ्ग सहित वेद पढे हुये हैं ॥३४॥संगीतविद्या नृत्यगीतादिमें अच्छीशिक्षा पाये हुये हैं,वह मतिमान् सकलकल्याणोंकेस्थान हैं,वह कभीदीननहींहोते व साधुव्रतऔरबड़े बुद्धिमान् हैं,॥३५॥

धार्मिक, धर्म अर्थके जाननेवाले, ब्राह्मण गण उनको उपदेश देनेवाले हैं, रामचन्द्रजी जब युद्धार्थ लक्ष्मणके साथ ग्राम अथवा नगरमें यात्रा करते हैं ॥ ३६ ॥ बिना जय लाभ किये लौटते नहीं, वह जब संग्रामसे निवृत्तहो रथपर या हाथीपर लौटते हैं ॥३७॥ तब मार्गमें स्वजनोंकी नाई पुरवासियोंसे नित्य कुशल पूछते हैं वह उनसे उनके पुत्र, परवार भृत्य, शिष्य अग्निहोत्र ॥३८॥ व अन्तरङ्ग सम्बन्धी समस्त संवाद क्रमसे पूछते हैं वह यह बात लोगोंसे वारंवार पूछते हैं कि, तुम्हारे शिष्य धर्मपूर्वक तुम्हारी सेवा करते हैं वा नहीं ॥३९॥ इस प्रकारसे पुरुषसिंह रामचन्द्रजी सबसे बोलते हैं फिर जब किसी मनुष्यको कुछ दुःख पडता है तो उसे देखकर आप दुःखी होते हैं ॥ ४० ॥ व जब किसीके कुछ उत्सव होता तो आप पिताके समान सन्तुष्ट होते सदा सत्यवादी बडे धनुष धारण करनेवाले वृद्धसेवी

द्विजैरभिविनीतश्चश्रेष्ठैर्धर्मार्थनैपुणैः ॥ यदाव्रजतिसंग्रामंग्रामार्थेनगरस्यवा ॥ ३६ ॥ गत्वासौमित्रिसहितोनाविजित्यनिवर्तते ॥ संग्रामात्पुनरागत्यकुंजरेणरथेनवा ॥ ॥ ३७ ॥ पौरान्स्वजनवन्नित्यंकुशलंपरिपृच्छति ॥ पुत्रेष्वग्निषुदारेषुप्रेष्यशिष्यगणेषुच ॥ ३८ ॥ निखिलेनानुपूर्व्याचपितापुत्रानिवौरसान् ॥ शुश्रूषंतेचवःशिष्याःकच्चिद्धर्मसुदंशिताः ॥ ३९ ॥ इतिवःपुरुषव्याघ्रःसदारामोऽभिभाषते ॥ व्यसनेषुमनुष्याणांभृशंभवतिदुःखितः ॥ ४० ॥ उत्सवेषुसर्वेषुपितेवपरितुष्यति ॥ सत्यवादीमहेष्वासोवृद्धसेवीजितेंद्रियः ॥ ४१ ॥ स्मितपूर्वाभिभाषीच धर्मंसर्वात्मनाश्रितः ॥ सम्यग्योक्ताश्रेयसांचनविगृह्यकथारुचिः ॥ ४२ ॥ उत्तरोत्तरयुक्तौचवक्तावाचस्पतिर्यथा ॥ सुभ्रूरायतताम्राक्षःसाक्षाद्विष्णुरिवस्वयम् ॥ ४३ ॥ रामोलोकाभिरामोऽयंशौर्य्यवीर्यपराक्रमैः ॥ प्रजापालनसंयुक्तोनरागोपहतेंद्रियः ॥४४॥ शतस्त्रैलोक्यमप्येषभोक्तुंकिंनुमहीमिमाम् ॥ नास्यक्रोधःप्रसादश्चनिरर्थोऽस्तिकदाचन ॥ ४५ ॥ हंत्येष नियमाद्वध्यानवध्येषुनकुप्यति॥ युनक्त्यर्थैःप्रहृष्टश्चतमसौयत्रतुष्यति ॥ ४६ ॥

जितेन्द्रिय ॥४१॥ वह धर्मके आश्रयसे सब कार्य करतेहैं बात करनेके समय वह मृदुमन्द हास्य करतेहैं कल्याणकी करनेवाली बातोंको अच्छे प्रकार कहते हैं विरोधकी कथामें उनकी रुचि नहीं है ॥४२॥ वह बृहस्पतिजीके समान युक्तिमय वाक्यके वक्ता हैं, उनके दोनों सुन्दर भ्रूयुक्त ताम्रवत् बडे२ नेत्र हैं, देखनेमें साक्षात् विष्णु जीकी नाईं ॥४३॥ रामचन्द्रजी शौर्य वीर्य व पराक्रममें लोकोंके अतिशय प्रिय व प्रजापालक हैं आश्चर्य है कि, नाना प्रकारके भोगविलासादि उनको कभी किंचित् मुग्ध नहीं कर सके॥४४॥इस पृथ्वीकी तो क्या यह त्रिलोकीका राज्य पालन करसकते हैं इनका क्रोध व प्रसन्नता कभी व्यर्थ होनेवाली नहीं है॥४५॥ यह नियमानुसार वध्यका वध और अवध्यको दोषयुक्त करते हैं, निर्दोष मनुष्यके प्रति उनका विराग भाव नहीं होता बरन् उनको धनदानकरके सन्तुष्ट करनाही

रामचन्द्रजीका धर्म है ॥ ४६ ॥ रामचन्द्रजी प्रदीप्त सूर्यकी नाई प्रजापुंजके प्रीतिपात्र होनेसे और उदार गुण संयुक्त होनेसे सर्वदा प्रकाश पाते हैं ॥ ४७ ॥ अधिक क्या कहें; ऐसे गुणनिधि सत्यपराक्रमी लोकपालके समान रामचन्द्रजीको पति पानेके लिये वसुमतीकी भी कामनाहै ॥४८॥ अपने भाग्यसेही महर्षि कश्यपजीको जैसे मरीचिने पायाथा वैसेही अपने पुत्र रामचन्द्रजीको पाया है वह राज्यपदपर आरूढ होवें यह तो हमारा बडा भाग्य है ॥४९॥ बरन् सुर सुर, मानव, गन्धर्व व उरगगण रामके बल आरोग्य और दीर्घजीवनकी कामना करते हैं ॥५०॥ इसीसे राजा ग्रामपुर सबकहीके रहनेवाले लोग रामचन्द्रजीकी प्रशंसा करते हैं व बाहर भीतरके सब देश पुर, राज्यनिवासी प्रशंसा करते हैं ॥ ५१ ॥ यहांतक कि क्या स्त्री, क्या वृद्ध, क्या युवा सबही संध्या व प्रातः

दांतैःसर्वप्रजाकांतैःप्रीतिसजननैर्नृणाम् ॥ गुणैर्विरोचतेरामोदीप्तःसूर्यइवांशुभिः ॥४७॥ तमेवंगुणसंपन्नंरामंसत्यपराक्रमम् ॥ लोकपालोपमं नाथमकामयतमेदिनी ॥४८॥ वत्सःश्रेयसिजातस्तेदिष्ट्याऽसौतवराघवः ॥ दिष्ट्यापुत्रगुणैर्युक्तोमारीचइवकश्यपः ॥४९॥ बलमारोग्यमा युश्चरामस्यविदितात्मनः ॥ देवासुरमनुष्येषुसगंधर्वोरगेषुच ॥५०॥आशंसन्तेजनाःसर्वेराष्ट्रेपुरवरेतथा ॥ आभ्यंतराश्चबाह्याश्चपौरजानपदो जनाः ॥५१॥ स्त्रियोवृद्धास्तरुण्यश्चसायंप्रातःसमाहिताः ॥ सर्वान्देवान्नमस्यंतिरामस्यार्थेमनस्विनः ॥ ५२ ॥ तेषांतद्याचितंदेवत्वत्प्रसादा त्समृद्ध्यताम् ॥ राममिंदीवरश्यामंसर्वशत्रुनिबर्हणम् ॥ ५३ ॥ पश्यामोयौवराज्यस्थंतवराजोत्तमात्मजम् ॥ ५४ ॥ तंदेवदेवोपममात्मजंते सर्वस्यलोकस्यहितेनिविष्टम् ॥ हिताय नःक्षिप्रमुदारजुष्टंमुदाभिषेक्तुंवरदत्वमर्हसि ॥५५॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ०चतुर्विंश तिसा० सं० अयोध्याकांडेद्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥ तेषामंजलिपद्मानिप्रगृहीतानिसर्वशः ॥ प्रतिगृह्याब्रवीद्राजातेभ्यःप्रियहितंवचः ॥ १ ॥ अहोऽस्मिपरमप्रीतःप्रभावश्चातुलोमम ॥ यन्मेज्येष्ठंप्रियंपुत्रंयौवराज्यस्थमिच्छथ ॥ २ ॥

कालमें देवताओंकेनिकट यशस्वी रामचन्द्रजीकी मंगल कामना करतेहैं ॥५२॥ हे देव ! इस समय आप सबके अभिप्रायानुसार रामको राज्याभिषेकमें अनुमति दीजिये। इन्दीवर श्याम शत्रुओंके मारनेवालेरामचन्द्रजीको राज्यकी प्राप्ति होना हम सबको प्रार्थनीय है ॥५३॥ हे राजन् ! हम तुम्हारे श्रेष्ठ पुत्रको राज्यपर बैठे हुए देखनेकी इच्छा करते हैं ॥५४॥ हे वरद ! अब यह प्रार्थना है कि, आप विष्णुके समान सब लोकोंके हितकारीउदार गुण सम्पन्न अपने पुत्र राम चन्द्रको प्रसन्न चित्तसे यौवराज्यमें शीघ्र अभिषिक्त कीजिये ॥ ५५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० अयोध्याकांडे भाषायां द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥ अनन्तर महाराजदशरथजी पुरवासी और देशोंके राजाओंके बद्धाञ्जलि और शिष्टाचारको देखकर उसने प्रिय व हितकारी वाक्य बोले ॥१॥ मैं तुमसे अति

शय प्रसन्न हुआहूं तुम लोगोंने मेरे ज्येष्ठपुत्रको राज्यमें अभिषिक्त करनेकी इच्छाकीहै इसमें मुझे क्याही आनन्द और विचित्र प्रतापका परिचय मिलाहै सो कह नहीं सकता ॥२॥ इस प्रकारसे राजाने उन ब्राह्मणोंकी पूजा व सत्कारकर और सबसे यह कह वसिष्ठ वामदेव प्रभृति ब्राह्मणोंसे कहा ॥३॥ इस समय पुण्यमय मधु(चैत्र)मास उपस्थितहै सब उपवन नानाविधि फूलोंके गहनोंसेशोभितहुए हैं अतएव इससमय आप उनप्रयोजनीय चीजोंको इकट्ठा कीजियेजोरामचन्द्रके यौवराज्यमें आवश्यक होंगी॥४॥ राजाके यह कहनेपर सभामें घोर शोर होनेलगा। थोडी देरमें कोलाहल बन्द होनेपर राजाने ॥५॥मुनिशार्दूल वसिष्ठजीसे कहा कि, रामचन्द्रके अभिषेकार्थ जो कुछ प्रयोजन हो ॥६॥ हे भगवन्! आप उसके इकट्ठा करनेकी आज्ञा दीजिये राजाके ऐसे वचन मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजी

इतिप्रत्यर्चिताञ्राजाब्राह्मणानिदमब्रवीत् ॥ वसिष्ठंवामदेवंचतेषामेवोपशृण्वताम् ॥ ३ ॥ चैत्रःश्रीमानयंमासःपुण्यःपुष्पितकाननः ॥ यौवराज्यायरामस्यसर्वमेवोपकल्प्यताम् ॥ ४ ॥ राज्ञस्तूपरतेवाक्येजनघोषोमहानभूत् ॥ शनैस्तस्मिन्प्रशांतेचजनघोषेजनाधिपः ॥ ५ ॥ वसिष्ठंमुनिशार्दूलंराजावचनमब्रवीत् ॥ अभिषेकायरामस्ययत्कर्मसपरिच्छदम् ॥ ६ ॥ तदद्यभगवन्सर्वमाज्ञापयितुमर्हसि ॥ तच्छ्रुत्वाभूमिपालस्यवसिष्ठोमुनिसत्तमः ॥ ७ ॥ आदिदेशाग्रतोराज्ञःस्थितान्युक्तान्कृतांजलीन् ॥ सुवर्णादीनिरत्नानिबलीन्सर्वौषधीरपि ॥ ८ ॥ शुक्लमाल्यानिलाजांश्चपृथक्चमधुसर्पिषी ॥ अहतानिचवासांसिरथंसर्वायुधान्यपि ॥ ९ ॥ चतुरंगबलंचैवगजंचशुभलक्षणम् ॥ चामरव्यजनेचोभेध्वजंछत्रंचपांडुरम् ॥ १० ॥ शतंचशातकुंभानांकुंभानामग्निवर्चसाम् ॥ हिरण्यशृंगमृषभंसमग्रंव्याघ्रचर्मच ॥ ११ ॥ यच्चान्यत्किंचिदेष्टव्यंतत्सर्वमुपकल्प्यताम् ॥ उपस्थापयतप्रातरग्न्यागारेमहीपतेः ॥ १२ ॥ अंतःपुरस्यद्वाराणिसर्वस्यनगरस्यच ॥ चंदनस्रग्भिरर्च्यंतांधूपैश्चघ्राणहारिभिः ॥ १३ ॥ प्रशस्तमन्नंगुणवद्दधिक्षीरोपसेचनम् ॥ द्विजानांशतसाहस्रंयत्प्रकाममलंभवेत् ॥ १४ ॥

॥७॥मंत्रियोंमें जो वहांपर हाथ जोडे खड़े थे, बोले कि, तुम लोग सुवर्णादि रत्न द्रव्यपूजाकी सामग्री सब औषधियें भी ॥८॥ उजले फूलोंकी माला धानकी खीलें पृथक्२ पात्रमें मधु, घृत, नवीन वस्त्र, रथ, सब शस्त्र ॥९॥चतुरंगिणी सेना सुलक्षण हाथी, दो चामर, व्यजन, ध्वज, दण्ड सफेद छत्र ॥१०॥ एक शत सुवर्णके घडे, इनके सिवाय और धातुओंकेहजारों कुम्भ सोनेसे जिसके सींग,मढेहों ऐसा एकबैल सम्पूर्ण व्याघ्रक चर्म ॥११॥ प्रभृति जिस वस्तुका प्रयोजन होवह सब इकट्ठा करके प्रातःकालही राजाकी अग्निशालामें धरो ॥१२॥रनिवास और नगरके सब द्वार चन्दन, माला, सुगन्ध व धूपादिसे गंधयुक्त किये जायँ ॥१३॥जिससे

हजारों मनुष्य तृप्त होजायँ प्रातःकाल इतना दही घी मिलाहुआ ढेरों अन्न बहुत दक्षिणा ॥१४॥ सत्कारपूर्वक ब्राह्मणोंको प्रातःकाल देकर सन्तुष्ट करना । घी दही खीलैं और बहुतसी दक्षिणाभी देना ॥१५॥ कलप्रभातसूर्योदय होतेही स्वस्तिवाचन होगा तुम लोगउसके लिये अभी ब्राह्मणोंको न्योतकर उनके लिये आसन बनाओ ॥१६॥ मार्गमें झंडियां बंध जायँ और वहां छिडकाव होजाय सम्पूर्ण गानेवाली और वेश्यायें सजधज कर ॥१७॥ राजभवनकी दूसरी कक्षामें स्थिति करें, जितने देवताओंके मन्दिर अयोध्यामें हैं सबमें सब तरहके खाने पीने योग्य पदार्थ दक्षिणासहित ॥ १८ ॥ भेजेजायँ पुष्प मालादिक व पूजनकी सामग्री वहां भेजी जाय और ब्राह्मणलोगको बुलाय देवताओंके प्रसन्न होनेके लिये भोजन करायेजायँ, वीरगण भूषण वसनसे सजधज बडीकृपाण व चर्म धारण कर

सत्कृत्यद्विजमुख्यनांश्वःप्रभातेप्रदीयताम् ॥ घृतंदधिचलाजाश्चदक्षिणाश्चापिपुष्कलाः ॥१५॥ सूर्येऽभ्युदितमात्रेश्वोभवितास्वस्तिवाचनम्॥ ब्राह्मणाश्चनिमंत्र्यंतांकल्प्यंतामासनानिच ॥ १६ ॥ आबध्यंतांपताकाश्चराजमार्गश्चसिच्यताम् ॥ सर्वेचतालापचरागणिकाश्चस्वलंकृताः ॥ ॥ १७ ॥ कक्ष्यांद्वितीयामासाद्यतिष्ठंतुनृपवेश्मनः ॥ देवायतनचैत्येषुसान्नभक्ष्याःसदक्षिणाः ॥ १८ ॥ उपस्थापयितव्याःस्युर्माल्ययोग्याः पृथक्पृथक् ॥ दीर्घासिबद्धगोधाश्चसन्नद्धामृष्टवाससः ॥ १९ ॥ महाराजांगणंशूराःप्रविशंतुमहोदयम् ॥ एवंव्यादिश्यविप्रौतुक्रियास्तत्रविनिष्ठतौ ॥ २० ॥ चक्रतुश्चैवयच्छेषंपार्थिवायनिवेद्यच ॥ कृतामित्येवचाब्रूतामभिगम्यजगत्पतिम् ॥ २१ ॥ यथोक्तंवचनंप्रीतौहर्षयुक्तौद्विजोत्तमौ ॥ ततःसुमंत्रंद्युतिमान्राजावचनमब्रवीत् ॥ २२ ॥ रामःकृतात्माभवताशीघ्रमानीयतामिति ॥ सतथेतिप्रतिज्ञायसुमंत्रोराजशासनात् ॥ २३ ॥ रामंतत्रानयांचक्रेरथेनरथिनांवरम् ॥ अथतत्रसहासीनास्तदादशरथंनृपम् ॥ २४ ॥

॥१९॥ उत्सवके क्षेत्रमें विचरण करते रहें । इस भाँति वसिष्ठ वामदेव दोनों ब्राह्मण मंत्री व सेवकोंको आज्ञादे ॥२०॥ जो कुछ कर्म बाकी थे यह करनेलगे और उनका समाचार राजाकोभी देदिया कि, महाराज ! जो कुछ कहना सुनना धरनाथा वह सब कुछ करने करानेका है आरम्भ कर दिया गया ॥२१॥ ब्राह्मणोंके यहवचन सुनकर वसिष्ठवामदेवदोनों परमप्रसन्न हुए राजा दशरथपरमप्रीति और प्रसन्नता युक्त वचनअपनेद्युतिमान् मंत्रीसुमंत्रसेबोले ॥२२॥ कि तुमबहुतही शीघ्र गुणसम्पन्न रामचन्द्रको हमारेपास लाओ वैसेही सुमंत्र बहुत अच्छा कहकर राजाकी आज्ञासे॥२३॥महारथी रामचन्द्रजीको रथमें बैठाकर महाराजदशरथजीके

निकट लाये महाराजदशरथजीको इन्होंने वहांपर बैठेदेखा ॥ २४॥ उससमय पूर्व, उत्तर, पश्चिम, दक्षिणके राजा लोग आर्य व म्लेच्छ; अरण्य व पर्वतोंकेवासी ॥२५॥ राजाकी उपासना कर रहे थे जैसे सब देवता लोगइन्द्रकी सेवा करते हैं तिन सबोंके बीचमें राजर्षि दशरथजी जैसे देवोंके बीचमें इन्द्र शोभित होते हैं विराजमानथे ॥२६॥ किइतनेमें दशरथजीने महलपरसे अपने पुत्र रामचन्द्रजीको आते हुये देखा, गन्धर्व राजाके समान सुन्दर लोकमें जिनके पुरुषार्थ विख्यात हैं ॥ २७ ॥ लंबी बाँहवाले बडे बलवान् मातंगके समान चालचलनेवाले, उनका चन्द्रमुख अतीव प्रियदर्शन ॥ २८॥ गरमीसे तपाये मनुष्यको मेघजैसे आनंददेनेवालाहोता है वैसेही रामचन्द्रजी अपने असाधारण रूप उदारताके गुणसेमनुष्योंकी दृष्टि व चित्तके हरनेहारे हुये ॥२९॥ नराधिप बिना पलक मारे रामचन्द्रजीको

प्राच्योदीच्यःप्रतीच्योश्चदाक्षिणात्याश्चभूमिपाः ॥ म्लेच्छाश्चार्याश्चयेचान्येवनशैलांतवासिनः ॥ २५ ॥ उपासांचक्रिरेसर्वेतंदेवावासवंयथा ॥ तेषांमध्येसराजर्षिर्मरुतामिववासवः ॥ २६ ॥ प्रासादस्थोदशरथोददर्शायांतमात्मजम् ॥ गंधर्वराजप्रतिमंलोकेविख्यातपौरुषम् ॥२७॥ दीर्घबाहुंमहासत्त्वंमत्तमातंगगामिनम् ॥ चंद्रकांताननंराममतीवप्रियदर्शनम् ॥ २८ ॥ रूपौदार्यगुणैःपुंसांदृष्टि चित्तापहारिणम् ॥ घर्माभितप्ताःपर्जन्यंह्लादयंतमिवप्रजाः ॥ २९ ॥ नततर्पसमायांतंपश्यमानोनराधिपः ॥ अवतार्यसुमंत्रस्तुराघवंस्यंदनोत्तमात् ॥३०॥ पितुःसमीपंगच्छंतंप्रांजलिःपृष्ठतोऽन्वगात् ॥ सतंकैलासशृंगाभंप्रासादंरघुनंदनः ॥३१॥ आरुरोहनृपंद्रष्टुंसहसातेनराघवः ॥ सप्रांजलिरभिप्रेत्यप्रणतःपितुरंतिके ॥३२॥ नामस्वंश्रावयन्रामोववंदेचरणौपितुः ॥ तंदृष्ट्वाप्रणतंपार्श्वेकृतांजलिपुटंनृपः ॥ ३३ ॥ गृह्यांजलौसमाकृष्यसस्वजेप्रियमात्मजम् ॥ तस्मैचाभ्युदितंसम्यङ्मणिकांचनभूषितम्॥३४॥दिदेशराजारुचिरंरामायपरमासनम्॥ तथाऽऽसनवरंप्राप्यव्यदीपयतराघवः ॥३५॥

देखकर तृप्त नहीं होते थे, इतनेमें रामचन्द्रजीको सुमंत्रने श्रेष्ठ रथसे उतारा ॥ ३० ॥ रामचन्द्रजी पिताके पास आये, सुमंत्रभी इनके पीछे २ हाथ जोडे चले, पितृभक्त रामचन्द्रजी कैलास शिखर सदृश विचित्र धवरहरेपर ॥३१॥ शीघ्रतासे पिताके देखनेको चढने लगे वह क्रमशःअग्रसरहो हाथजोडकर पिताके चरणोंमें गये ॥ ३२ ॥ और अपना नामोच्चारण पूर्वक पिताके चरणोंमें प्रणामकर हाथ जोड़ खडे रहे, पुत्रको प्रणत और हाथ जोडे देख राजाने ॥ ३३ ॥ उनका हाथ पकड उनको बारंबार हृदयसे लगाया महाराजाने श्रीरामचन्द्रको मणिकांचनभूषित ॥३४॥ श्रेष्ठ परम मनोहर आसनपर बैठनेकी आज्ञादी पिताके

दिये हुये श्रेष्ठ आसनपर बैठे रामचन्द्रजी दीपने लगे ॥ ३५ ॥ सुमेरुपर्वत जैसे उज्ज्वल सूर्यके उदयकालमें तेजके प्रभावसे प्रकाशमान् होता है, रामचन्द्रजीके बैठनेसे यह आसन भी वैसे ही शोभित हुआ और वह सभाभी शोभित हुई॥३६॥चन्द्रमाके उदय होनेपर ग्रह नक्षत्रसे पूर्ण ऋतुमें आकाश जिस प्रकार शोभित होता है वैसेही रामचन्द्रके बैठनेसे राजसभा शोभितहुई और राजा उन्हें देख सन्तुष्ट हुये॥३७॥मनुष्य दर्पणमें अपना अलंकारयुक्त प्रतिबिम्ब देखकर जिस भाँति आनंदित होते हैं वैसेही राजा दशरथजी पुत्रको देखकर अतिशय आनंदित हुए और वह पुत्रवालोंमें श्रेष्ठ अच्छी प्रकार बैठे हुए अपने पुत्रसे संभाषण पूर्वक ॥३८॥ महर्षि कश्यपजी जैसे इन्द्रको आज्ञा देते हैं वैसेही राजा रामचन्द्रजीसे बोले हे वत्स! तुम हमारी बडी रानीके अनुरूपही पुत्र हुए हो ॥३९॥ तुममें सब श्रेष्ठ २ गुण विद्य

स्वयैवप्रभयामेरुमुदयेविमलोरविः ॥ तेनविभ्राजितातत्रसासभापिव्यरोचत ॥३६॥ विमलग्रहनक्षत्राशारदीद्यौरिवेंदुना ॥ तंपश्यमानोनृपति स्तुतोषप्रियमात्मजम् ॥ ३७ ॥ अलंकृतमिवात्मानमादर्शतलसंस्थितम् ॥ सतंसुस्थितमाभाष्यपुत्रंपुत्रवतांवरः ॥ ३८ ॥ उवाचेदंवचोरा जादेवेंद्रमिवकश्यपः ॥ ज्येष्ठायामसिमेपत्न्यांसदृश्यांसदृशःसुतः ॥३९॥ उत्पन्नस्त्वंगुणज्येष्ठोममरामात्मजःप्रियः ॥ त्वयायतःप्रजाश्चेमाः स्वगुणैरनुरंजिताः ॥ ४० ॥ तस्मात्त्वंपुष्ययोगेनयौवराज्यमवाप्नुहि ॥ कामतस्त्वंप्रकृत्यैवनिर्णीतोगुणवानिति ॥ ४१ ॥ गुणवत्यपितुस्ने हात्पुत्रवक्ष्यामितेहितम् ॥ भूयोविनयमास्थायभवनित्यंजितेंद्रियः ॥ ४२ ॥ कामक्रोधसमुत्थानित्यजस्वव्यसनानिच ॥ परोक्षयावर्त्तमानो वृत्त्याप्रत्यक्षयातथा ॥ ४३ ॥ अमात्यप्रभृतीःसर्वाःप्रजाश्चैवानुरंजय ॥ कोष्ठागारायुधागारैःकृत्वासन्निचयान्बहून् ॥ ४४ ॥

मान है तुम गुणोंमें भी सबसे बड़े हो इसी कारण मुझे सबसे प्यारे हो हे मेरे बड़े पुत्र ! वैसेही प्रजागण तुम्हारे ऊपर विशेष अनुरक्त रहें ॥४०॥ अतएव पुष्य नक्षत्रमें तुम युवराज पदवीपर बैठो । मैं तुमसे कुछ अधिक नहीं कहा चाहता क्योंकि तुम स्वभावसे गुणवान् हो और प्रजा वर्गभी निर्णय कर चुके हैं ॥४१॥ ऐसा होनेसे भी हे पुत्र!स्नेहकी प्रबलताके कारण मैं तुमको कुछ हितोपदेश देनेकी अभिलाषा रखता हूं;यद्यपि तुम विनयी हो तथापिविनयी होना औरनित्यकालइंद्रि योंको जीतना तुम्हें कर्त्तव्य है ॥४२॥ काम क्रोधसे जो समस्त उठे हुये दुर्व्यसन लोगोंको होजाया करते हैं तुम उनका परित्याग करो, परोक्ष वृत्ति अर्थात् दूतके द्वारा प्रजाका समाचार जानकर और अपरोक्ष विचार अर्थात् सभामें बैठे प्रत्यक्ष प्रजाके न्याय करनेके विचारमें स्थित हूजिये॥४३॥ सर्व मंत्री इत्यादि व प्रजाके

पालनमें तत्पर हो कोष्ठागार, अस्त्रगृह, धनागार व धान्यागारको पूर्ण रखनेमें यत्नवान् रहो ॥४४॥ जो सदा प्रकृतिवर्गको अनुरागी रखकर राज्य पालन करसक्ते हैं, उनके मित्रगण उनसे ऐसे सन्तुष्ट रहते हैं जिस प्रकार देवता लोग अमृत पाकर प्रसन्न होते हैं ॥४५॥ अतएव हे पुत्र! तुम इस प्रकार आत्मसंयम करके कर्त्तव्य कर्म साधन करते रहो; रामचन्द्रके हितकारी मित्रोंने राजाकी यह आज्ञा श्रवण करके ॥ ४६ ॥ शीघ्रतापूर्वक यह समाचार जाकर राजमहिषी कौशल्याजीसे कहा, सुनतेही बहुतसा सुवर्ण रत्न गायें और अनेक वस्तु ॥४७॥ कौशल्याजीने उन सुसमाचार सुनानेवालोंको देनेकी आज्ञादी । इतनेमें रामचन्द्रजी पिताके चरण वंदनकर रथमें चढकर गृहाभिमुखगमन करने लगे और भले जनसमूहोंसे सत्कारको प्राप्तहो अपनेप रमकान्तिमान् घरमें आये॥४८॥ पुरवासीगण राजाकी आज्ञासुन उनको इष्टवस्तु प्राप्तिस्वरूप मनमें समझ महाराजके सहित मंत्रणाकर अपने२घर लौटे और रामचन्द्रके अभिषेकमें कोई विघ्न न हो इस कारण प्रफुल्लमनसे देवताओंको

इष्टानुरक्तप्रकृतिर्यः पालयतिमेदिनीम्॥तस्यनंदंतिमित्राणिलब्ध्वाऽमृतमिवामराः॥४५॥ तस्मात्पुत्रत्वमात्मानंनियम्यैवंसमाचर ॥ तच्छ्रुत्वा सुहृदस्तस्यरामस्यप्रियकारिणः ॥४६॥ त्वरिताःशीघ्रमागत्यकौसल्यायैन्यवेदयन्॥साहिरण्यंचगाश्चैवरत्नानिविविधानिच ॥४७॥ व्यादि देश प्रियाख्येभ्यःकौसल्याप्रमदोत्तमा॥ अथाभिवाद्यराजानंरथमारुह्यराघवः ॥ ययौस्वंद्युतिमद्वेश्मजनौघैःप्रतिपूजितः॥४८॥ तेचापिपौरा नृपतेर्वचस्तच्छ्रुत्वातदालाभमिवेष्टमाशु ॥ नरेंद्रमामंत्र्यगृहाणिगत्वादेवान्समानर्चुरभिप्रहृष्टाः ॥४९॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआ दिकाव्येचतुर्विंशतिसा० सं०अयोध्याकांडे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥ गतेष्वथनृपोभूयःपौरेषुसहमंत्रिभिः ॥ मंत्रयित्वाततश्चक्रेनिश्चयज्ञःसनि श्चयम् ॥१॥ श्वएवपुष्योभविताश्वोऽभिषेच्यस्तुमेसुतः॥रामोराजीवपत्राक्षोयुवराजइतिप्रभुः ॥२॥ अथांतर्गृहमाविश्यराजादशरथस्तदा ॥ सूतमामंत्रयामासरामं पुनरिहानय॥३॥प्रतिगृह्यतुतद्वाक्यंसूतःपुनरुपाययौ॥रामस्यभवनंशीघ्रंराममानयितुंपुनः॥४॥द्वाःस्थैरावेदितंतस्यरामा यागमनंपुनः॥श्रुत्वैवचापिरामस्तंप्राप्तंशंकान्वितोऽभवत्॥५॥प्रवेश्यचैनंत्वरितोरामोवचनमब्रवीत्॥ यदागमनकृत्यंतेभूयस्तद्ब्रूह्यशेषतः॥६॥

पूजने लगे॥४९॥इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा०आदिकाव्ये अयोध्याकांडे भाषायां तृतीयः सर्गः॥३॥अनन्तर पुरवासियोंकेचलेजानेपर निश्चयकरनेवाले राजादशरथजी मंत्रियोंके आमंत्रणपूर्वक सलाह कर ग्रह निश्चय कर कहने लगे ॥१॥आगामी कल पुष्य नक्षत्र होगा सो कलही यौवराज्य देदेनेका मेरा अभिप्राय है, कमललोचन रामको युवराज कल होजाय यह निश्चय है॥२॥ राजा यह कहकर अपने रनवासमेंचलेगये और सुमंत्रको बुलाकर रामको मेरे पास फिर लाओ यह कहा ॥ ३ ॥ सुमंत्र राजाज्ञा शिरपर धारणपूर्वक रामको शीघ्रतासे लानेके लिये फिर उनके रनवासमें गये॥४॥प्रतीहारीने रामचन्द्रसे सुमंत्रका आगमन सुनाया प्रतीहारीसे सुमंत्रके आनेकी वार्त्ता सुन रामचन्द्रजीसे शंकित हुये ॥५॥फिर रामचन्द्रजी जल्दी सुमंत्रको बुलाकर यह पूछते हुये किस कारण आपका आगमन हुआ ?

वह सब कहो॥६॥ सुमंत्रने यह सुन राजकुमार रामचन्द्रजीसे कहा कि,महाराजने फिर आपके देखनेकी इच्छा की है इस समय जो उचित हो वह कीजिये ॥ ७ ॥ तब सुमंत्रके वचनोंको सुन शीघ्रतापूर्वक रामचन्द्रजी पिताके चरणदर्शन करनेको पिताके भवनको गये ॥ ८ ॥ राजादशरथजी रामचन्द्रजीको आये हुये सुनकर उनसे कोई बात कहनेके लिये उन्हें निजके भवनमें लेगये ॥९॥श्रीमान् श्रीरामचन्द्रजीने पिताके भवनमें प्रवेश कर दूरसेही राजाको देख हाथ जोड प्रणाम किया ॥१०॥महाराज दशरथजीने रामचन्द्रको प्रणाम करते हुये देख उन्हें उठाकर हृदयसे लगालिया और फिर आसनदे उनसे यह वचन बोले ॥११॥ हे रामचन्द्र ! मैं वृद्ध होगया दीर्घजीवी होकर जहांतक सुख भोगना चाहिये वहांतक मैंने भोगा। मैंने अन्नदानपूर्वक विपुल दक्षिणाके सहित अनेक यज्ञानुष्ठान

तमुवाचततःसूतो राजात्वांद्रष्टुमिच्छति ॥ श्रुत्वाप्रमाणंतत्रत्वंगमनायेतरायवा ॥७॥ इतिसूतवचःश्रुत्वारामोऽपित्वरयान्वितः ॥ प्रययौराज भवनंपुनर्द्रष्टुंनरेश्वरम् ॥ ८ ॥ तंश्रुत्वासमनुप्राप्तंरामंदशरथोनृपः ॥ प्रवेशयामासगृहंविवक्षुःप्रियमुत्तमम् ॥९॥ प्रविशन्नेवचश्रीमान्राघवोभ वनंपितुः॥ददर्शपितरंदूरात्प्रणिपत्यकृतांजलिः ॥१०॥ प्रणमंतंसमुत्थाप्यसंपरिष्वज्यभूमिपः॥ प्रदिश्यचासनंचास्मैरामंचपुनरब्रवीत्॥११॥ रामवृद्धोऽस्मिदीर्घायुर्भुक्ताभोगायथेप्सिताः ॥ अन्नवद्भिःक्रतुशतैर्यथेष्टंभूरिदक्षिणैः ॥ १२ ॥ जातमिष्टमपत्यंमेत्वमद्यानुपमंभुवि ॥ दत्तमिष्ट मधीतंचमयापुरुषसत्तम ॥ १३ ॥ अनुभूतानिचेष्टानिमयावीरसुखान्यपि ॥ देवर्षिपितृविप्राणामनृणोऽस्मितथात्मनः ॥ १४ ॥ नकिंचि न्ममकर्तव्यंतवान्यत्राभिषेचनात् ॥ अतोयत्त्वामहंब्रूयांतन्मेत्वंकर्तुमर्हसि ॥ १५ ॥ अद्यप्रकृतयःसर्वास्त्वामिच्छंतिनराधिपम् ॥ अतस्त्वा युवराजानमभिषेक्ष्यामिपुत्रक ॥ १६ ॥ अपिचाद्याशुभान्रामस्वप्नान्पश्यामिराघव ॥ सनिर्घातादिवोल्काश्चपतंतिहिमहास्वनाः ॥ १७ ॥ अवष्टब्धंचमेराममनक्षत्रंदारुणग्रहैः ॥ आवेदयंतिदैवज्ञाःसूर्यांगारकराहुभिः ॥ १८ ॥

किये ॥१२॥ हे मनुष्योंमें श्रेष्ठ ! तुम्हारी समान अनुपम पुत्र पाकर मेरा दान ववेदाध्ययनादि करना सार्थक हुआ॥१३॥हे वीर ! जहांतकसुख पाना संभव है वहांतक मैंने सम्पूर्ण सुख पाया। मैं देवर्षि, पितृ,ब्राह्मण व आत्मऋणसे छूट गया ॥१४॥ इस समय तुम्हें यौवराज्य देनेके सिवायमेरा दूसरा कर्त्तव्य कर्म कुछ नहींहै इस समय जो कहूं, तुम उसके पालन करनेमें सावधानहोजाओ॥१५॥ हे पुत्र ! अब प्रजागण तुम्हें राजसिंहासन पर बिठलानेकी कामनाकरते हैं अतएव हे पुत्र! मैंतुम्हें यौवराज्यपदपर अभिषिक्त करूंगा॥१६॥मैंनेआज रातकोबडे बुरे स्वप्न देखेहैं इसकेअतिरिक्त दिनमें उल्कापात और घोरशोरमेंवज्रपात हुआ॥१७॥ज्योतिषी

लोग कहतेहैं कि, सूर्य मङ्गल राहु इन तीन ग्रहोंने विरुद्ध होकर मेरे जन्मनक्षत्रपर आक्रमण किया है ॥ १८ ॥ ऐसे दुर्निमित्तहोनेसे यातो राजाकी मृत्यु होती या कोई बडी आपत्ति पडती है ॥१९॥ हे राघव ! मनुष्यका मनस्वभावसे ही चंचल होता है अतएव जबतक मेरा चित्त मोहको न प्राप्त हो अथवा मेरे ऊपर कोई विपद आनेसे पहले तुम यह राज्यभार ग्रहण करो ॥ २० ॥ आज पुनर्वसु नक्षत्र है प्रातःकाल पुष्य नक्षत्र होगा ज्योतिषी लोग बताते हैं कि, राज्याभिषेकके लिये यह नक्षत्र सर्वोपरिहै॥२१॥ मैं तुमको राज्य देनेके लिये व्यग्र होरहाहूं हे शत्रुओंको भय देनेवाले ! मेरी यहीइच्छा है कि कलही अभिषेक होजाय ॥ २२ ॥ इस कारण आज तुम वधूसहित नियमानुसार उपवासी रहकर पत्थरकी चौकीपर कुशबिछाय शयन करना ॥ २३ ॥ आज सावधानीसे

प्रायेणचनिमित्तानामीदृशानांसमुद्भवे ॥ राजाहिमृत्युमाप्नोतिघोरांचापदमृच्छति ॥ १९ ॥ तद्यावदेवमेचेतोनविमुह्यतिराघव ॥ तावदेवाभिषिंचस्वचलाहि प्राणिनांमतिः ॥ २० ॥ अद्यचंद्रोऽभ्युपगमत्पुष्यात्पूर्वंपुनर्वसुम् ॥ श्वःपुष्ययोगंनियतंवक्ष्यंतेदैवचिंतकाः ॥ २१ ॥ तत्रपुष्येऽभिषिंचस्वमनस्त्वरयतीवमाम् ॥ श्वस्त्वाहमभिषेक्ष्यामियौवराज्येपरंतप ॥ २२ ॥ तस्मात्त्वयाद्यप्रभृतिनिशेयंनियमात्मना ॥ सहवध्वोपवस्तव्यादर्भप्रस्तरशायिना ॥ २३ ॥ सुहृदश्चाप्रमत्तास्त्वांरक्षंत्वद्यसमंततः ॥ भवंतिबहुविघ्नानिकार्याण्येवंविधानिहि ॥ २४ ॥ विप्रोषितश्चभरतोयावदेवपुरादितः ॥ तावदेवाभिषेकस्तेप्राप्तकालोमतोमम ॥ २५ ॥ कामंखलुसतांवृत्तेभ्रातातेभरतःस्थितः ॥ ज्येष्ठानुवर्तीधर्मात्मासानुक्रोशोजितेंद्रियः ॥ २६ ॥ किंनुचित्तंमनुष्याणामनित्यमितिमेमतम् ॥ सतांचधर्मनित्यानांकृतशोभिचराघव ॥ २७ ॥ इत्युक्तःसोऽभ्यनुज्ञातःश्वोभाविन्यभिषेचने ॥ व्रजेतिरामःपितरमभिभाष्याभ्ययाद्गृहम् ॥२८॥ प्रविश्यचात्मनोवेश्मराज्ञादिष्टेऽभिषेचने ॥ तत्क्षणादेवनिष्क्रम्यमातुरंतःपुरंययौ ॥ २९ ॥

तुम्हारी रक्षा करना तुम्हारे मित्रोंका कर्त्तव्य है,क्योंकि बहुधाऐसे कार्योंमें बहुत विघ्न होनेकी संभावना होती है॥२४॥ भरत इससमय अपने मामाके घरहैं,सुतरां जबतक वह न आवें तबतक इससमय अभिषेक होजाय यही हमारी वासना है॥२५॥ वास्तवमें भरतजी तुम्हारे हिताकांक्षी और सज्जन हैं, उनको तुम्हारी आज्ञाके आधीन और जितेन्द्रिय जानताहूं ॥२६॥ किन्तु कारणउपस्थितहोने पर मनुष्यका चित्त विकृतभावको प्राप्त होजाता है,धार्मिक व साधुमनुष्यभीसमयके हेर फेरसे राग द्वेषादिद्वारा आकुलितचित्त होजाते हैं ॥२७॥ अतएव हे वत्स!इस समय तुम अपने भवनमें जाओ।स्मरण रक्खो कि,कलही तुम्हें राजसिंहासन-पर बैठना होगा ऐसी आज्ञा पाय प्रणाम कर श्रीरामचन्द्रजी अपनेमंदिरको गये ॥२८॥ वहां पहुँचे व चाहाकि; जानकीजीसे भी वही सब नियम जो जो आज

कर्तव्य हैं कहैं पर वहां सीताजी न मिली, तब माताके मन्दिरमें गये ॥२९॥ वह देखाकि राजमहिषी कौशल्याजी रेशमी कपडे पहिने और मौनावलंबीहो मेरीही राज श्रीकी प्रार्थना करती हुई देवपूजा कर रही हैं ॥३०॥ रानी सुमित्रा व लक्ष्मणजी श्रीरामाभिषेक सुनकर प्रथमही वहां आय चुके थे व देवी सीताजीभी कौशल्याजीके धोरे सावधानीसे बैठी थीं ॥३१॥ जब राम वहां पहुँचे तो उस समय रामजननी नयन मूँद परमेश्वरका ध्यान कर रहीथीं सुमित्रा, सीता व लक्ष्मण यह सब उनकी उपासनामें नियुक्त थे॥३२॥ कल पुष्य नक्षत्रमें रामचन्द्रजीका अभिषेक श्रवण करके कौशल्याजी प्राणायामपूर्वक पुराणपुरुष विष्णुका ध्यान करती थीं ॥३३॥ तब रामचन्द्रजी निकट अग्रसरहो जननीको प्रणाम कर, और संवाद प्रदानकर माताके सन्तोष वर्द्धन पूर्वक बोले ॥३४॥ जननी! पिताजी मुझे प्रजापालन कार्य

तत्रतांप्रवणामेवमातरंक्षौमवासिनीम् ॥ वाग्यतांदेवतागारेददर्शायाचतींश्रियम् ॥३०॥ प्रागेवचागतातत्रसुमित्रालक्ष्मणस्तथा॥ सीताचाना यिताश्रुत्वाप्रियंरामाभिषेचनम् ॥ ३१ ॥ तस्मिन्कालेऽपिकौसल्यातस्थावामीलितेक्षणा ॥ सुमित्रयान्वास्यमानासीतयालक्ष्मणेनच ॥३२॥ श्रुत्वापुष्येचपुत्रस्ययौवराज्येऽभिषेचनम् ॥ प्राणायामेनपुरुषंध्यायमानाजनार्दनम् ॥ ३३ ॥ तथासनियमामेवसोऽभिगम्याभिवाद्यच ॥ उवाचवचनंरामोहर्षयंस्तामिदंवरम् ॥ ३४ ॥ अंबपित्रानियुक्तोऽस्मिप्रजापालनकर्मणि ॥ भविताश्वोभिषेकोमेयथामेशासनंपितुः ३५ ॥ सीतयाप्युपवस्तव्यारजनीयंमयासह ॥ एवमुक्तमुपाध्यायैःसहिमामुक्तवान्पिता ॥ ३६ ॥ यानियान्यत्रयोग्यानिश्वोभाविन्यभिषेचने ॥ तानिमेमंगलान्यद्यवैदेह्याश्चैवकारय ॥ ३७ ॥ एतच्छ्रुत्वातुकौसल्याचिरकालाभिकांक्षितम् ॥ हर्षबाष्पाकुलंवाक्यमिदंराममभाषत ॥३८॥ वत्सरामचिरंजीवहतास्तेपरिपंथिनः ॥ ज्ञातीन्मेत्वंश्रियायुक्तःसुमित्रायाश्चनंदय ॥३९॥ कल्याणेबतनक्षत्रेमयाजातोऽसिपुत्रक ॥ येनत्वया दशरथोगुणैराराधितःपिता॥ ४० ॥अमोघंबतमेक्षांतंपुरुषेपुष्करेक्षणे॥ येयमिक्ष्वाकुराज्यश्रीःपुत्रत्वांसंश्रयिष्यति ॥ ४१ ॥

में नियुक्त करते हैं सो मुझे कलही पिताकीआज्ञासे राज्य भार ग्रहण करना होगा॥३५॥ पिताने आज्ञा की है कि, आज रातको मैं सीता समेत उपवासी रहूं, यह व्यवस्था उपाध्यायोंने दी है॥३६॥राज्याभिषेकमें इस समय मुझे और जानकीको जो कार्य करनेचाहिये आपअभी उनका आयोजन कीजिये॥३७॥तब रामजननी रामके मुखसे चिरकामनाका सफल वृत्तांत सुन हर्षजनितवाक्यसे रामचन्द्रसे कहनेलगीं ॥३८॥ हे वत्स! तुम दीर्घ जीवी हो. तुम्हारे शत्रु निर्मूल होजायँ तुम राजश्री लाभकरके हमारे और सुमित्राके भाई बांधवोंका आनन्द बढाओ॥३९॥तुमने शुभ नक्षत्रमेंमेरे गर्भमे जन्मग्रहणकिया जिसकारण तुमने अपनेगुणसे अपने पिताको प्रसन्न किया है॥४०॥मैं इतने दिन जो पद्मलोचन हरिकी कृपाकी प्रार्थना करती रही और व्रतादिके क्लेश जो सहन किये थे इस समय वह सफल हुए

कारण कि, इक्ष्वाकुवंशीय राज श्री तुममेंआ विराजी ॥ ४१ ॥ जननी कौशल्याजीके यह कहनेपर हाथ जोड विनीत भावसेखडे हुए भ्राता लक्ष्मणको देख रामचन्द्रजी हँसकर बोले॥४२॥हे लक्ष्मण !तुम मेरे दूसरे अंतरात्माहो तुमभी मेरे साथ पृथ्वीका पालन करो,तुमको राज्यभार ग्रहणकरना होगा अब यहराज्य लक्ष्मी उपस्थित है॥४३॥हे वत्स ! मेरा जीवन और राज्य भोग मेरे प्रयोजनाधीन नहीं वरन् वास्तवमें यह तुम्हारेही लिये है,अतएवतुम इनकोइच्छानुसार भोग करते रहो ॥४४॥ रामचन्द्रजी लक्ष्मणसे यह कहकर जननी कौशल्या और सुमित्राके चरणोंमें प्रणामपूर्वक उनके निकटसे बिदा होजानकी सहित अपने गृहमें आये ॥४५॥इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा०आदि०अयोध्याकाण्डे भाषायां चतुर्थः सर्गः ॥४॥इस ओर राजा दशरथजी कल तुम राज्यपदपरप्रतिष्ठित कियेजाओगे रामसे

इत्येवमुक्तोमात्रातुरामोभ्रातरमब्रवीत् ॥ प्रांजलिंप्रह्वमासीनमभिवीक्ष्यस्मयन्निव ॥ ४२ ॥ लक्ष्मणेमांमयासार्धंप्रशाधित्वंवसुंधराम् ॥ द्वितीयं मेऽन्तरात्मानंत्वामियंश्रीरुपस्थिता ॥४३॥ सौमित्रेभुंक्ष्वभोगांस्त्वमिष्टान्राज्यफलानिच ॥ जीवितंचापिराज्यंचत्वदर्थमभिकामये ॥४४॥ इत्युक्त्वालक्ष्मणंरामोमातरावभिवाद्यच ॥ अभ्यनुज्ञाप्यसीतांचययौस्वंचनिवेशनम् ॥ ४५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीयेआदि काव्ये चतुर्विंशतिसा० सं० अयोध्याकांडे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥ संदिश्यरामंनृपतिःश्वोभाविन्यभिषेचने ॥ पुरोहितंसमाहूयवसिष्ठमिदम ब्रवीत् ॥ १ ॥ गच्छोपवासंकाकुत्स्थंकारयाद्यतपोधन ॥ श्रेयसेराज्यलाभायवध्वासहयतव्रत ॥ २ ॥ तथेतिचसराजानमुक्त्वावेदविदां वरः ॥ स्वयंवसिष्ठोभगवान्ययौरामनिवेशनम् ॥ ३ ॥ उपवासयितुंवीरंमंत्रविन्मंत्रकोविदम् ॥ ब्राह्मंरथवरंयुक्तमास्थायसुधृतव्रतः ॥ ४ ॥ सरामभवनंप्राप्यपांडुराभ्रघनप्रभम् ॥ तिस्रःकक्ष्यारथेनैवविवेशमुनिसत्तमः ॥ ५ ॥ तमागतमृषिंरामस्त्वरन्निवससंभ्रमम् ॥ मानयिष्यन्स मानार्हंनिश्चक्रामनिवेशनात् ॥ ६ ॥

ऐसा कह पुरोहित वसिष्ठजीको बुलाकर उनसे बोले ॥१॥हे ब्रह्मन् ! हे तपोधन ! आप रामके मंगल और राज्य प्राप्तिकेअर्थ सीतासहित उनसे उपवास करनेको कह आइये ॥२॥ वेदवित् भगवान् वसिष्ठजो राजाके वाक्यपर सम्मत हो रथमें चढकर रामचन्द्रके मंदिरको गये॥३॥ वह व्रतधारी मंत्रके जाननेवाले वसिष्ठजी महावीर मंत्र जाननेवालोंमें पंडित रामचन्द्रको व्रत करानेके निमित्त ब्राह्मणोंके चढने योग्य रथपर सवार हो रामके भवनको गये ॥ ४ ॥ वह रामके स्थानपर पहुँचे तो देखाकि बादलकेटुकडेके समानरामचन्द्रका स्थान पाण्डुरवर्ण है वसिष्ठजी तीन ड्योढियोंमें तो रथपर चढेही चलेगये ॥ ५ ॥ रामचंद्रजी वसिष्ठजी

काआगमनसुनतेही संभ्रान्तहो शीघ्रआसनसेउठे और उन आदर करनेकेयोग्यगुरुजीको आदरकरनेके निमित्त घरसेबाहर आये॥६॥ उचित रीतिसे उनका आदर सत्कार करनेके लिये जल्दीसे वसिष्ठजीके निकट जापहुँचे और हाथ पकडकर स्वयं उनको रथसे उतारा॥७॥तब महर्षिवसिष्ठजी, रामचन्द्रजीके सद्व्यवहारसे संतुष्ट होकर उनसे संभाषणपूर्वक उनका आनंद बढातेहुए बोले॥८॥हे राघव ! तुम्हारे पिता तुमसे प्रसन्नहो तुम्हें यौवराज्यदेना चाहते हैं आज तुम सीताके सहित उपवासी रहना ॥९॥राजा दशरथजो प्रसन्न हो वह तुम्हें यौवराज्याभिषिक्त करेंगे जैसेप्रसन्न राजानहुषने ययातिको राज्यदिया था ॥१०॥ यह कहकर विशुद्धव्रतमहर्षिजीने सीताजीके सहित सीतापतिको मंत्रसहित उपवासका संकल्प कराया॥११॥तदनन्तर वसिष्ठजीयथाविधि पूजेजाकर नरदेव दशरथपुत्रके निकटसे विदाग्रहण

अभ्येत्यत्वरमाणोऽथरथाभ्याशंमनीषिणः ॥ ततोवतारयामासपरिगृह्यरथात्स्वयम् ॥७॥ सचैनंप्राश्रितंदृष्ट्वासंभाष्याभिप्रसाद्यच॥प्रियार्हंहर्षयन्रामामित्युवाचपुरोहितः ॥८॥ प्रसन्नस्तेपितारामयत्त्वंराज्यमवाप्स्यसि ॥ उपवासंभवानद्यकरोतुसहसीतया ॥९॥ प्रातस्त्वामभिषेक्ताहियौवराज्येनराधिपः ॥ पितादशरथःप्रीत्ययययातिंनहुषोयथा ॥१०॥ इत्युक्त्वासतदारामसुपवासंयतव्रतः ॥ मंत्रवत्कारयामासवैदह्यासहितंशुचिः ॥११॥ ततोयथावद्रामेणसराज्ञोगुरुरर्चितः । अभ्यनुज्ञाप्यकाकुत्स्थंययौरामनिवेशनात् ॥१२॥ सुहृद्भिस्तत्ररामोऽपिसहासीनःप्रियंवदैः॥ सभाजितोविवेशाथताननुज्ञाप्यसर्वशः॥१३॥हृष्टनारीनरयुतंरामवेश्मतदाबभौ ॥ यथामत्तद्विजगणंप्रफुल्लनलिनंसरः ॥१४॥ सराजभवनप्रख्यात्तस्माद्रामनिवेशनात्॥निर्गत्यददृशेमार्गंवसिष्ठोजनसंवृत्तम् ॥१५ ॥ वृंदवृंदैरयोध्यायांराजमार्गाः समंततः॥ बभूवुरभिसंबाधाःकुतूहलजनैर्वृताः ॥ १६ ॥ जनवृन्दोर्मिसंघर्षहर्षस्वनवृतस्तदा॥ बभूवराजमार्गस्यसागरस्येवनिःस्वनः ॥ १७ ॥ सिक्तसंमृष्टरथ्याहितथाचवनमालिनी ॥आसीदयोध्यातदहःसमुच्छ्रितगृहध्वजा ॥ १८ ॥

करके उनके घरसे लौटे॥१२॥इस ओर कमललोचन रामचंद्रजी कुछदेरतक इष्टमित्रोंके साथ अनेककथावार्त्ता कहतेरहे और फिर उन्हींलोगोंके कहनेसे अपने वासभवनमेंप्रवेश करते हुए ॥१३॥ उससमय रामके मंदिरमें नरनारीगण आमोद प्रमोदसेउन्मत्तप्राय होकर प्रफुल्लकमलविशिष्टमत्तविहंगमशोभित सरोवरके समान शोभायमानथे॥१४॥महर्षिवसिष्ठने राजतुल्य रामभवनसे निर्गत होकर देखा कि, राजमार्गमेंबडी भीडलग रही है ॥१५॥ राजमार्गमें असंख्य लोग झुंडबाँधकरचलरहे हैं। इतनोभीड है कि, मार्गतक दृष्टि नहीं आता अनेक कुतूहल होरहे हैं॥१६॥नियतमनुष्योंके संघर्ष व हर्षकी अधिकतासे राजमार्ग समुद्रकलरवकीनाईं तुमुल शब्दसे परिपूर्णहै॥१७॥अयोध्याके सबमार्ग स्वच्छ और उनमें छिडकाव हो रहा है नगरीके सबफाटक विचित्रमालाओंसे सजेहुएहैं व घर२पर झंडियाँ फरफरा

रही हैं ॥१८॥ नगरके बालक वृद्ध वनिता उस उत्सवमें मग्न हुए रामचंद्रका राज्याभिषेक देखनेको सूर्योदय होनेका रास्ता देख रहे हैं ॥१९॥ अधिक क्या कहें प्रजा पुत्रकी श्रीवृद्धिके कारण प्रभूत हर्षके बढानेवाले इस उत्सवके देखनेकी सभी बाट देख रहेथे ॥ २० ॥ राजपुरोहित वसिष्ठजी यह भीडभडक्का देखते२ मानों यह जनता भेद करते हुए मंद २ गमनसे राजभवनमें प्रवेश करते हुए ॥ २१ ॥ यह राजभवन हिमगिरि शिखरके तुल्य था बृहस्पतिजी जैसे इन्द्रके निकट विराजमान रहते हैं वैसेही वसिष्ठजी राजाके पास जाते शोभित होने लगे ॥२२॥ मुनिवरके उपस्थित होतेही राजा सिंहासनसे उठ बैठे, और अभिमत कार्य होगया यह जानकर कृतार्थ होगये ॥२३॥ उस समय जो उनके समान दूसरे सभासद लोग बैठे थे उन सब सभासदोंने अपने २ आसनसे उठ वसिष्ठजीका

तदाह्ययोध्यानिलयः सस्त्रीबालाकुलोजनः॥ रामाभिषेकमाकांक्षन्नाकांक्षन्नुदयंरवेः ॥१९॥ प्रजालंकारभूतंचजनस्यानंदवर्धनम् ॥ उत्सुकोऽभूज्जनोद्रष्टुंतमयोध्यामहोत्सवम् ॥२०॥ एवंतज्जनसंबाधंराजमार्गंपुरोहितः ॥ व्यूहन्निवजनौघंतंशनैराजकुलंययौ ॥२१॥ सिताभ्रशिखरप्रख्यंप्रासादमधिरुह्यच॥ समीयायनरेन्द्रेणशक्रेणेवबृहस्पतिः ॥२२॥ तमागतमभिप्रेक्ष्यहित्वाराजासनंनृपः ॥ पप्रच्छस्वमतंतस्मैकृतमित्यभिवेदयत् ॥२३॥ तेनचैवतदातुल्यंसहासीनाःसभासदः ॥ आसनेभ्यःसमुत्तस्थुःपूजयंतःपुरोहितम् ॥ २४ ॥ गुरुणात्वभ्यनुज्ञातोमनुजौघंविसृज्यतम् ॥ विवेशांतःपुरंराजासिंहोगिरिगुहामिव ॥ २५ ॥ तदग्र्यवेषप्रमदाजनाकुलंमहेंद्रवेश्मप्रतिमंनिवेशनम्॥ व्यदीपयंश्चारुविवेशपार्थिवःशशीवतारागणसंकुलंनभः ॥२६॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा०आ० चतुर्विंशतिसा० सं० अयोध्याकाण्डे पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥ गतेपुरोहितेरामःस्नातोनियतमानसः ॥ सहपत्न्याविशालाक्ष्यानारायणमुपागमत् ॥१॥ प्रगृह्यशिरसापात्रिंहविषोविधिवत्ततः ॥ महतेदैवतायाज्यंजुहावज्वलितानले ॥ २ ॥ शेषंचहविषस्तस्यप्राश्याशास्यात्मनःप्रियम् ॥ ध्यायन्नारायणंदेवंस्वास्तीर्णेकुशसंस्तरे ॥ ३ ॥

बहुतसम्मानकिया ॥२४॥ तदनन्तर जिस भांति केसरी गुफामें चलाजाता है वैसेही नरनाथ दशरथजी गुरुजीकी आज्ञानुसार सभासदोंको बिदादे सभा मंडप परित्याग कर अन्तःपुरमें चलेगये ॥ २५ ॥ तारानाथ जिस भांतितारोंसे वेष्टित गगनमंडलको शोभित करते हैं वैसेहीनृपालदशरथजीस्त्रियोंसे पूर्ण अमरावतीतुल्य अन्तःपुरको अत्यन्तही शोभित करते हुए ॥२६॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा०आदिका० अयोध्याकाण्डे भाषायां पंचमः सर्गः ॥५॥ पुरोहितके चलेजानेपर रामचंद्रजो स्नानकर विशालाक्षी जानकीजीके सहित एकान्त मनसे नारायणजीका ध्यान करनेलगे ॥१॥ उन्होंने देव भगवान्‌कोनमस्कार कर घृतपात्रधारण पूर्वक दीप्तानलमें उनके प्रीत्यर्थ आहुति प्रदान की॥ २ ॥ अनन्तरहोमसे बची हवि भक्षणकर श्रीनारायणजीसे अपना मंगल चाहतेहुए ध्यान परायण हो

कुशशय्यापर ॥ ३ ॥ सीता सहित मौन धारण कर और मनको सब ओरसे वशकर दशरथपुत्र रामचन्द्रजी अपनेघरमें जो विष्णु भगवान्‌कामंदिर बनाहुआ था उसीमें सोरहे ॥ ४ ॥ वह एक पहर रात रहे उठे और अपने नौकर चाकरोंको गृह सजानेकी आज्ञा दी ॥ ५ ॥ इसीसमय सूत; मागध व बंदीगणोंके मुखसे मधुर मंगलगीत श्रवण करके श्रीरामचन्द्रजी प्रातःसंध्या करने लगे सूर्या ञलि करके फिर एकाग्र हो गायत्री जपते हुये ॥६॥ उन्होंने प्रणत हो मधुसू दनभगवान्‌की स्तुतिकर रेशमी वस्त्र पहरे,तब ब्राह्मणगण उनका स्वस्तिवाचन करने लगे ॥७॥उन ब्राह्मणोंका पवित्र पुण्यकर शब्द तुरहीके सहित सम्मिलित हो अयोध्यामें प्रतिध्वनित होने लगा ॥८॥ सीतानाथ सीताजीके सहित उपवासी हैं यह संवाद पाकरसबही अयोध्यावासी संतुष्ट हुये ॥९॥ तदनन्तर पुरवासीगण

वाग्यतःसहवैदेह्याभूत्वानियतमानसः ॥ श्रीमत्यायतनेविष्णोःशिश्येनरवरात्मजः ॥४॥ एकयामावशिष्टायांरात्र्यांप्रतिविबुद्धयसः ॥ अलं कारविधिंसम्यक्कारयामासवेश्मनः ॥५ ॥ तत्रशृण्वन्सुखावाचःसूतमागधबंदिनाम् ॥ पूर्वांसंध्यामुपासीनोजजापसुसमाहितः ॥६॥ तुष्टावप्र णतश्चैवशिरसामधुसूदनम् ॥ विमलक्षौमसंवीतोवाचयामाससद्विजान् ॥७॥ तेषांपुण्याहघोषोऽथगंभीरमधुरस्तथा ॥ अयोध्यांपूरयामास तूर्यघोषानुनादितः ॥ ८ ॥ कृतोपवासतुतदावैदेह्यासहराघवम् ॥ अयोध्यानिलयःश्रुत्वासर्वप्रमुदितोजनः ॥ ९ ॥ ततःपौरजनःसर्वःश्रुत्वारा माभिषेचनम् ॥ प्रभातांरजनींदृष्ट्वाचक्रेशोभयितुंपुरीम् ॥१०॥ सिताभ्रशिखराभेषुदेवतायतनेषुच॥चतुष्पथेषुरथ्यासुचैत्येष्वट्टालकेषुच॥११॥ नानापण्यसमृद्धेषुवणिजामापणेषुच ॥ कुटुम्बिनांसमृद्धेषुश्रीमत्सुभवनेषुच ॥१२॥ सभासुचैवसर्वासुवृक्षेष्वालक्षितेषुच॥ध्वजाःसमुच्छ्रिताः साधुपताकाश्चाभवंस्तथा ॥ १३ ॥ नटनर्तकसंघानांगायकानांचगायताम् ॥ मनःकर्णसुखावाचः शुश्रावजनतातत: ॥१४॥ रामाभिषेकयुक्ता श्चकथाश्चक्रुर्मिथोजनाः ॥ रामाभिषेकेसंप्राप्तेचत्वरेषुगृहेषुच ॥ १५ ॥

रामाभिषेक श्रवण करके प्रभात हुआ जान पुरीको सुशोभित करनेलगे ॥१०॥ शुभ्रमेघवत् देवमन्दिरचौराहे चौक अटा अटारियें छहरदिवारीकेऊपरके ऊंचे स्थानोंपर ॥११॥व नाना प्रकारके वस्तुओंसे भरेपूरे जितने उद्यमियोंके मकानथे,व जितने मन्दिरपरिवारवाले महाजनोंके थे ॥१२॥ व सब सभाओंके जितने ऊंचे २ वृक्षथे इन सब स्थानोंपर अति उन्नत२ध्वजा पताका बांधी गईं ॥१३॥ नट; नर्त्तक, और गायकोंकामन व कानोंका सुख उपजानेवाला गाना चतुर्दिकू श्रवण गोचर होने लगा॥१४॥सबके मुखसे राम राज्याभिषेककी ही बात सुनाई आने लगी; व चौराहोंमें और घर २इसी भांतिकी चरचा थी ॥ १५ ॥

घरके द्वारे खेलते२बालकभी यही कहते थे कि रामको राज्य होगा, यहांतक कि, सब एकही भावमें उन्मत्तप्राय थे सबके मुखसे यहीकथा सुनाई पडती थी ॥ १६ ॥ पुरवासीगण रामाभिषेकके लिये हार व धूपसुगन्धिसे राजमार्गको विभूषित करने लगे ॥१७॥ यदि अभिषिक्त होकर रामचन्द्र रात्रिकालमें नगरमें भ्रमण करने लगें इसीकारण वृक्षाकार दीपस्तंभ (झाड) सब तैयारहुये ॥ १८ ॥ इस भांति पुरवासीगण रामके राज्याभिषेककी कामनासे नगरको सजाने लगे ॥१९॥सबही लोगसभा व हाट बाटोंमें सम्मिलित होकर रामके राज्यकी कथा महाराज दशरथजीकी प्रशंसा कर कहने लगे॥२०॥अहो! महाराज दशरथजी वास्तवमें महात्मा और इक्ष्वाकुकुलके प्रदीप हैं, यह अपनी वृद्धअवस्था जान रामचन्द्रजीको राज्यभार प्रदान करनेके अर्थ उद्यत हैं॥२१॥हम सब अनुगृहीत

बालाअपिक्रीडमानागृहद्वारेषुसंघशः ॥ रामाभिषेकसंयुक्ताश्चक्रुरेवकथामिथः ॥१६॥ कृतपुष्पोपहारश्चधूपगंधाधिवासितः॥ राजमार्गःकृतःश्रीमान्पौरैरामाभिषेचने ॥ १७ ॥ प्रकाशीकरणार्थंचनिशागमनशंकया ॥ दीपवृक्षांस्तथाचक्रुरनुरथ्यासुसर्वशः ॥ १८ ॥ अलंकारंपुरस्यैवं कृत्वातत्पुरवासिनः ॥ आकांक्षमाणारामास्ययौवराज्याभिषेचनम् ॥१९॥समेत्यसंघशःसर्वेचत्वरेषुसभासुच ॥ कथयंतोमिथस्तत्रप्रशशंसुर्जनाधिपम् ॥ २० ॥ अहोमहात्माराजायमिक्ष्वाकुकुलनंदनः ॥ज्ञात्वावृद्धंस्वमात्मानंरामंराज्येऽभिषेक्ष्यति ॥२१॥ सर्वेह्यनुगृहीताःस्मयन्नोरामोमहीपतिः ॥ चिरायभवितागोप्ताद्दृष्टलोकपरावरः ॥२२॥अनुद्धतमनाविद्वान्धर्मात्माभ्रातृवत्सलः॥यथाचभ्रातृषुस्निग्धस्तथास्मास्वपिराघवः ॥ २३ ॥ चिरंजीवतुधर्मात्माराजादशरथोऽनघः ॥ यत्प्रसादेनाभिषिक्तंरामंद्रक्ष्यामहेवयम् ॥ २४ ॥ एवंविधंकथयतांपौराणांशुश्रुवुःपरे ॥ दिग्भ्योविश्रुतवृत्तांताःप्राप्ताजानपदाजनाः ॥ २५ ॥ तेतुदिग्भ्यःपुरींप्राप्ताद्रष्टुंरामाभिषेचनम् ॥ रामस्यपूरयामासुःपुरींजानपदाजनाः ॥ २६ ॥

हैं कि, रामचन्द्रजी हमारे रक्षाकर्त्ता राजा होंगे ईश्वर बहुत दिनोंतक लोगोंकेआद्यन्त जाननेवाले रामचन्द्रजीको हमारा रक्षक रक्खें ॥२२॥ राजकुमार रामचन्द्रजी विद्वान् और शांतप्रकृति हैं यह जैसे धार्मिक व भ्रातृवत्सल हैं वैसेही हमारे पक्षपाती हैं ॥२३॥ धर्मात्मा महाराज दशरथजी दीर्घजीवीहों, जिनके अनुग्रहसेहम रामचन्द्रजीको राजा होते देखेंगे॥२४॥पुरवासी परस्पर ऐसा कहरहे थे किचारों ओरसे नगरमें यही सुनाई आताथा ,कि,इतनेमें रामचन्द्रजीका अभिषेक होना सुन जनपदवासी आये॥२५॥दूरसे अनेक देशोंके लोग रामचन्द्रकअभिषेका देखनेकोउपस्थितहोने लगे देखतें२विदेशीय लोगोंसे राजधानी परिपूर्ण होगई॥२६॥

पूर्णमासी के दिन जिसप्रकार समुद्र गर्जता है वैसेही अनेक देशोंके आयेहुये मनुष्योंके कलरवसे वैसाही कोलाहल हुआ॥२७॥उस समय अमरपुरी सदृश वह राजपुरी राज्याभिषेक देखनेको आये हुये मनुष्योंके समागमसे आच्छन्न हो जलजन्तुओंसे क्षोभित किये महासमुद्रकी नाईं शोभित हुई ॥२८॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदिका० अयोध्याकांडे भाषायां षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥ मन्थरा राजमहिषी कैकेयीकी चिरकालकी पालन कीहुई दासीथी, वह प्रातः कालअकस्मात् चन्द्रतुल्य धवरहरेपर चढी ॥१॥ उसने देखा कि अयोध्यापुरी की सब सडकोंपर छिडकाव होरहा है,व ठौर२कमलोंकी माला टँगरही हैं इसप्रकार उसनेमहलपरसे देखा ॥२ ॥ चारों ओर उन्नत ध्वजा पताका बँधरही हैं कहीं ऊंचीनीचीभूमि नहीं सब पाट पूटके सुधारदी गई हैं । कहीं आने जानेमें बहुत भीड न हो इस

जनौघैस्तैर्विसर्पद्भिःशुश्रुवेतत्रनिःस्वनः ॥ पर्वसूदीर्णवेगस्यसागरस्येवनिःस्वनः ॥२७॥ ततस्तदिंद्रक्षयसन्निभंपुरंदिदृक्षुभिर्जानपदैरुपाहितैः ॥ समंततःसस्वनमाकुलबभौसमुद्रयादोभिरिवार्णवोदकम्॥२८॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणेवाल्मीकीये आदिकाव्ये चतुर्विंशतिसा०अयोध्याकांडे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥ ज्ञातिदासीयतोजाताकैकेय्यातुसहोषिता ॥ प्रासादंचंद्रसंकाशमारुरोहयदृच्छया ॥ १ ॥ सिक्तराजपथांकृत्स्नांप्रकीर्णकमलोत्पलाम् ॥ अयोध्यांमंथरातस्मात्प्रासादादन्ववैक्षत ॥ २ ॥ पताकाभिर्वराहाभिर्ध्वजैश्चसमलंकृताम् ॥ "कृतांछन्नपथैश्चापिस्वच्छंदकपथैर्वृताम्" सिक्तांचंदनतोयैश्चशिरः स्नातजनैर्युताम् ॥ ३ ॥ माल्यमोदकहस्तैश्चद्विजेंद्रैरभिनादिताम् ॥ शुक्लदेवगृहद्वारांसर्ववादित्रनादिताम् ॥ ४ ॥ संप्रहृष्टजनाकीर्णांब्रह्मघोषनिनादिताम् ॥ प्रहृष्टवरहस्त्यश्वांसंप्रणर्दितगोवृषाम् ॥ ५ ॥ हृष्टप्रमुदितैःपौरैरुच्छ्रितध्वजमालिनीम् ॥ अयोध्यांमंथराहृष्ट्वापरंविस्मयमागता ॥ ६ ॥ साहर्षोत्फुल्लनयनांपांडुरक्षौमवासिनीम् ॥ अविदूरेस्थितांदृष्ट्वाधात्रींपप्रच्छमंथरा ॥ ७ ॥ उत्तमेनाभिसंयुक्ताहर्षेणार्थपरासती ॥ राममाताधनंकिंनुजनेभ्यःसंप्रयच्छति ॥ ८ ॥

कारण चौडे२बडे२रास्ते बनाये गये हैं, चन्दन लगाये और स्नानकियेजनोंसेयुक्त॥३॥माला व लड्डू हाथमें लियेहुयेब्राह्मणगणश्रीरामचन्द्रजीकोउपहार देनेकेलिये घूमरहेथे । देवमंदिर सब स्वच्छ किये गये और सब कहीं बाजा बजरहे थे ॥ ४ ॥ सबही उत्सवमें मत्त होरहे थे वेदगानेसे दिङ्मण्डलसमाच्छन्नथा, औरोंकी बाततो क्या कहैं हस्ती,अश्व,गौ,वृष प्रभृति जन्तुगणभी आनन्दसे अधीर होरहे थे ॥ ५ ॥पुरवासी आनन्दमें मग्नहो घूमरहे थे,बड़ी ऊंची पताका बँध रही व अनेक प्रकारकी पुष्पहार ठौर२टँगेथे । ऐसी अयोध्यापुरीको निहार मंथरा अति विस्मित हुई ॥६॥ व मारे हर्षके प्रफुल्लित नयन किये रेशमी वस्त्र पहिरे एक धाईके निकट खडी देख मंथराने पूछा ॥ ७ ॥ कि किस कारणसे सती रामजननीकौशल्याजी बडे आनन्दमेंमग्न हो अकातर धनदान करती हैं जिसकी

ऐसी शोभा है ॥ ८ ॥ क्यों लोगोंके मनोंमें इतना हर्ष समाया है ? राजा कौनसा ऐसा कार्य करेंगे सो तू मुझे बता॥ ९ ॥ जब इसप्रकार मन्थराने उस धात्रीसे पूछा तोउसनेमारेहर्षके विदीर्ण हो विधिपूर्वक रामचन्द्रजीको बडीभारी राजश्री बताई ॥ १० ॥ और कहाकि महाराज दशरथजी कल पुष्यनक्षत्रमें जितक्रोध शान्तस्वभाव रामचन्द्रजीको यौवराज्याभिषेक करेंगे ॥११॥ पापीयसी मंथरा धाईके ऐसे वचन श्रवण करके इसबातको न सहती हुई झटपट कैलासशिखराकार धवरहरेसे उतरी ॥ १२ ॥ वह पापदर्शिनी मन्थरा क्रोधसे चलती हुई शयनगृहमें जाकर सोती हुई कैकेयीसे बोली ॥१३॥ हे मूढे ! अब शयन मत कर अब उठ तुम्हारा घोर अनिष्ट उपस्थित है, तुम क्या नहीं जानती हो कि, प्रबल दुःखभार तुमको पीडित कर रहा है ॥१४॥ महाराज तुम्हें देख नहीं सकते, फिर

अतिमात्रंप्रहर्षःकिंजनस्यास्यचशंसमे ॥ कारयिष्यतिकिंवापिसंप्रहृष्टोमहीपतिः॥९॥ विदीर्यमाणाहर्षेणधात्रीतुपरयामुदा ॥ आचचक्षेऽथकुब्जायैभूयसींराघवश्रियम् ॥ १० ॥ श्वःपुष्येणजितक्रोधंयौवराज्येनचानघम् ॥ राजादशरथोराममभिषेक्ताहिराघवम् ॥ ११ ॥ धात्र्यास्तुवचनंश्रुत्वाकुब्जाक्षिप्रममर्षिता ॥ कैलासशिखराकारात्प्रासादादवरोहत ॥ १२ ॥ सादह्यमानाक्रोधेनमंथरापापदर्शिनी ॥ शयानामेवकैकेयीमिदंवचनमब्रवीत् ॥ १३ ॥उत्तिष्ठमूढेकिंशेषेभयंत्वामभिवर्तते ॥ उपप्लुतमघौघेननात्मानमवबुध्यसे ॥१४॥ अनिष्टेसुभगाकारेसौभाग्येनविकत्थसे॥ चलंहितवसौभाग्यंनद्याःस्रोतइवोष्णगे ॥१५॥एवमुक्तातुकैकेयीरुष्टयापरुषंवचः ॥ कुब्जयापापदर्शिन्याविषादमगमत्परम् ॥ १६॥ कैकेयीत्वब्रवीत्कुब्जांकच्चित्क्षेमंनमंथरे ॥ विषण्णवदनांहित्वांलक्षयेभृषदुःखिताम् ॥१७॥ मंथरातुवचःश्रुत्वाकैकेय्यामधुराक्षरम् ॥ उवाचक्रोधसंयुक्तावाक्यंवाक्यविशारदा ॥१८॥ साविषण्णतराभूत्वाकुब्जातस्यांहितैषिणी ॥ विषादयतीप्रोवाचभेदयंतीचराघवम् ॥१९॥

क्यों तुम सौभाग्यमें चूर होरहीहो ? तुम्हारा सौभाग्य ग्रीष्मतापित नदीस्रोतकी नाईं है ॥ १५ ॥ मन्थराके क्रोध भरे रुखाईसे सने ऐसे वचन सुन कैकेयी विषण्ण हुई ॥ १६ ॥ व कैकेयी मधुर वाणीसे मन्थरासे बोली कि,हे मन्थरे ! क्या मेरी कुशल नहीं है ? प्रिय अनुचरी ? तेरे अतिदुःखी और विषादित होनेका क्या कारण है ? ॥१७॥ अच्छी चतुर वाक्य बोलनेवाली मन्थरा कैकेयीके मधुर वचन सुन क्रोधसे परिपूर्ण होगई और बातबनाकर कहने लगी ॥ १८ ॥ वह बाहरी अधिकतर शोकभाव दिखा रामचन्द्रजीके प्रति विद्वेषभाव उपजानेके लिये क्रोधमें भरकर बोली ॥ १९ ॥

हे देवि ! तुम्हाराघोर अनिष्टउपस्थित हुआ महाराज दशरथरामचन्द्रजीको राज्यभार प्रदान करते हैं॥२०॥मैं तुम्हारी हितकारिणीहूँ इसकारण अकस्मात् इस समाचारको सुनकर महादुःख शोक और भयसे घिरी हूँ मेरे सब अंग मानों जलही रहे हैं सो तुम्हारे हित करनेको आई हूं॥२१॥हे कैकेयी! और तो क्या कहूं तुम्हारी विपदसे मेरीविपद होगी तुम्हारी वृद्धिमें मेरी वृद्धि व तुम्हारे सुख दुःखमें ही मेरा सुख दुःख है ॥२२॥ मैं नहीं जानती कि,तुम राजनन्दिनी राजमहिषीहोकर किस कारण उग्रत्व और राजधर्मका मर्म नहीं जानतीहो॥२३॥तुम्हारे स्वामी मुखसे धर्मवार्त्ता कहते परन्तु कार्यमें वह विलक्षण शठ हैं उनके मुखमें मिष्टता परन्तु हृदय अति दारुण है, तुम उनको सरलस्वभाव जानतीहो इसी कारण तुमपर यह विपद आई ॥२४॥अब तुम्हारे स्वामी कुछेक मनोमुग्धकर वार्त्तायें कहकर

अक्षयंसुमहद्देविप्रवृत्तंत्वद्विनाशनम् ॥ रामंदशरथोराजायौवराज्येऽभिषेक्ष्यति ॥२० ॥ साऽस्म्यगाधेभयेमग्नादुःखशोकसमन्विता ॥ दह्यमा नाऽनलेनेवत्वद्धितार्थमिहागता ॥२१॥ तवदुःखेनकैकेयिममदुःखं महद्भवेत् ॥ त्वद्वृद्धौममवृद्धिश्चभवेदिहनसंशयः ॥ २२ ॥ नराधिपकुले जातामहिषीत्वंमहीपतेः॥उग्रत्वंराजधर्माणांकथंदेविनबुध्यसे॥२३॥धर्मवादीशठोभर्ताश्लक्ष्णवादीचदारुणः ॥ शुद्धभावेनजानीषेतेनैवमतिसं धिता ॥ २४ ॥ उपस्थितःप्रयुंजानस्त्वयिसांत्वमनर्थकम् ॥ अर्थेनैवाद्यतेभर्ताकौसल्यांयोजयिष्यति ॥ २५ ॥ अपवाह्यतुदुष्टात्माभरतंतव बंधुषु ॥ काल्येस्थापयितारामंराज्येनिहतकंटके॥२६॥ शत्रुःपतिप्रवादेनमात्रेवहितकाम्यया॥आशीविष इवांगेनबालेपरिधृतस्त्वया ॥२७॥ यथाहिकुर्याच्छत्रुर्वासर्पोवाप्रत्युपेक्षितः ॥ राज्ञादशरथेनाद्यसपुत्रात्वंतथाकृता ॥२८॥ पापेनानृतसांत्वेनबालेनित्यंसुखोचिता ॥ रामंस्थापय ताराज्ये सानुबंधाहताह्यसि ॥२९॥ साप्राप्तकालंकैकेयिक्षिप्रंकुरुहितंतव ॥ त्रायस्वपुत्रमात्मानंमांचविस्मयदर्शने ॥ ३० ॥ मंथरायावचः श्रुत्वाशयनात्साशुभानना ॥ उत्तस्थौहर्षसंपूर्णाचंद्रलेखेवशारदी ॥ ३१ ॥

तुमको प्रसन्न कर वास्तवमें कौशिल्याकी मनवाञ्छा पूर्ण करेंगे॥२५॥इस दुष्ट राजाने भरतको मामाके यहां भेजदिया और अब निष्कंटक राज्य रामको देनेके लिये प्रस्तुत है ॥ २६ ॥ जिस प्रकार सर्पके खिलानेवाली स्त्री माताके समान उसके विषके भेदको नजानकर उसकोपालती है, हे बाले ! ऐसेही तुमने पतिके मिषसे सर्पवत् क्रूर राजाको अंगमें धारण किया है॥२७॥ शत्रु या सर्पकी उपेक्षा करनेसे जैसा फलदेता है वही दशा दशरथजीके हाथसे तुम्हारे पुत्रकी हुई ॥२८॥ तुम उस पापात्मा नृपतिकी वृथा सान्त्वनासे मुग्ध होगई हो रामको राजा करके सपरिवार तुम्हारा वध साधनाही उनका आशय है ॥२९॥ मैं कहती हूं कि, अब भी समय है,अतएव जिससे आप बचो,पुत्रका कुछ उपायहो और मेरी भी रक्षा होजाय ऐसा कार्य करनेमें प्रवृत्तहो॥३०॥ सुन्दरी कैकेयी प्रिय परिचारिकाकी

वार्त्ता सुन शरदकालिक चन्द्रमाकी नाई प्रफुल्लहो हँसते२ बिस्तरपरसे उठी॥३१॥ उठतेही परम संतुष्ट हर्षित व विस्मितहोअपना एक बडे मोलका गहना उतारकर मन्थराको पुरस्कार दिया ॥३२॥ वह स्त्रियोंमें श्रेष्ठ कैकेयी अपना गहना उस मन्थराको प्रदान कर और प्रसन्न हो मंन्थरासे कहने लगी ॥३३॥ हे मन्थरे ! आज तैंने मुझे क्या हर्षका समाचार सुनाया ! इस अवसर क्या द्रव्य इस हर्षसमाचार सुननेके बदलेमें दूं, मैं तेरा क्या उपकार करूं कह?॥३४॥ मैं गर्भजात पुत्र भरत और कौशल्यानंद रामको अलग २ नहीं समझती हूँ, अतएव जबमहाराज रामको राजा करते हैं तो इससे मुझे सन्तोष है ॥३५॥ और तो क्या कहूं इस अमृतके समान रामराज्याभिषेक संवादकी अपेक्षा प्रीतिप्रदवाक्य औरकुछ नहींहै, जो हो मन्थरे ! इस परितोषिकके सिवाय यदि और कुछ चाहिये तो

अतीवसातुसंतुष्टाकैकेयीविस्मयान्विता ॥ दिव्यमाभरणंतस्यैकुब्जायैप्रददौशुभम् ॥३२॥ दत्त्वात्वाभरणंतस्यैकुब्जायैप्रमदोत्तमा ॥ कैकेयी मंथरांदृष्ट्वापुनरेवाब्रवीदिदम् ॥ ३३ ॥ इदंतुमंथरेमह्यमाख्यातंपरमंप्रियम् ॥ एतन्मेप्रियमाख्यातंकिंवाभूयःकरोमिते ॥ ३४ ॥ रामेवाभरते वाहं विशेषंनोपलक्षये ॥ तस्मात्तुष्टास्मियद्राजारामंराज्येऽभिषेक्ष्यति ॥ ३५ ॥ नमेपरंकिंचिदितोवरंपुनः प्रियंप्रियार्हेसुवचंवचोऽमृतम् ॥ तथाह्यवोचस्त्वमतःप्रियोत्तरंवरंपरंतेप्रददामितंवृणु ॥३६॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये चतुर्विंशतिसा० सं० अयोध्या कांडे सप्तमःसर्गः ॥ ७ ॥ मंथरात्वभ्यसूय्यैनामुत्सृज्याभरणंहितत् ॥ उवाचेदंततोवाक्यंकोपदुःखसमन्विता ॥ १ ॥ हर्षंकिमर्थमस्थाने कृतवत्यसिबालिशे ॥ शोकसागरमध्यस्थंनात्मानमवबुध्यसे ॥ २ ॥ मनसाप्रहसामित्वांदेविदुःखार्दितासती ॥ यच्छोचितव्येहृष्टासिप्रा प्यत्वंव्यसनंमहत् ॥ ३ ॥ शोचामिदुर्मतित्वंतेकाहिप्राज्ञाप्रहर्षयेत् ॥ अरेःसपत्नीपुत्रस्यवृद्धिं मृत्योरिवागताम् ॥ ४ ॥ भरतादेवरामस्य राज्यसाधारणाद्भयम् ॥ तद्विचिंत्यविषण्णास्मिभयभीताद्धिजायते ॥ ५ ॥

मांग,मैंअभीवहतुझकोदेदूंगी॥३६॥इत्यार्षेश्रीमद्रा०वा०आदिका०अयोध्याकांडेभाषायांसप्तमःसर्गः॥७॥ तदनन्तरमंथराकुपितऔरदुःखितहोऔर कैकेयीकेदिये हुयेगह नोंकोफेंकउसकी निन्दा करती हुई बोली॥१॥हे मूढे!तुम किसकारणसे शोककेस्थानमें हर्ष प्रकाश करती हो?क्या यह नहीं जानती कि,इसके पीछे तुम्हें किस शोकसमुद्रमें डूबना होगा ? ॥२॥ हे देवि ! मैं तुम्हारे दुःखसे मर्म्माहत होकर मनमें यह समझकर हँसतीहूं कि, जो शोकका कारणहै तुम उसमेंही हर्ष मना तीहो ॥३॥ कालस्वरूप शत्रु सौतकीसन्तानकोश्रीमान् देखकर कौनबुद्धिमतीस्त्री आनंदित होतीहै ? सो तुमको यह कुबुद्धि आईहै इससे मैं बडी दुःखी हूं॥४॥ राज्य सब भाइयोंकी साधारण संपत्ति होती है इसीकारण भरतसे रामको भय होनेकी सम्भावना है मैं इसीकारणसे डरीहूं कि,भीत मनुष्यही भयका पहुँचाने

वाला होजाताहै ॥५॥ महावीर लक्ष्मणजी रामचन्द्रजीके आज्ञाकारीहैं सुतराम् उनके भय पानेकी कोई संभावना नहीं, जैसे लक्ष्मणहैं वैसेही शत्रुघ्न और भरत अनुगत हैं अतएव उनसे भी रामको कुछ भय नहीं होसकता ॥६॥ उत्पत्तिक्रमानुसार भरतहीको राज्य आश्रय संभव है, ऐसी आशंका लक्ष्मण अथवा शत्रुघ्नसे नहीं है ॥७॥ मुझे रात दिन यही चिन्ता बलवती रहती है कि, रामचन्द्र सर्व शास्त्रवेत्ता व क्षत्रकर्ममें चतुर हैं, सुतराम् उनसेअवश्य तुम्हारे पुत्रका अनिष्ट होगा ॥८॥ मुझको तो वास्तवमें कौशल्याही भाग्यवती जानपडती है यदि ऐसा न होता तो उसके पुत्रको राज्यकी प्राप्ति ब्राह्मणोंके द्वारा कैसे होती ? कल पुष्य नक्षत्रमें उनके पुत्रको यौवराज्य होगा ॥ ९ ॥ रामको राज्य मिलने और उनके शत्रुओंका नाश होनेपर तुमको कौशल्याकी दासी हो हाथ जोडकर काम

लक्ष्मणोहिमहाबाहूरामंसर्वात्मनागतः ॥ शत्रुघ्नश्चापिभरतंकाकुत्स्थंलक्ष्मणोयथा॥६॥प्रत्यासन्नक्रमेणापिभरतस्यैवभामिनि ॥ राज्यक्रमोविसृष्टस्तुतयोस्तावद्यवीयसोः ॥७॥ विदुषःक्षत्रचारित्रेप्राज्ञस्यप्राप्तकारिणः ॥ भयात्प्रवेपेरामस्यचिंतयंतीतवात्मजम् ॥८॥ सुभगाकिलकौसल्यायस्याःपुत्रोऽभिषेक्ष्यते ॥ यौवराज्येनमहताश्वःपुष्येणद्विजोत्तमैः ॥९॥ प्राप्तांवसुमतींप्रीतिंप्रतीतांहतविद्विषम् ॥ उपस्थास्यसिकौसल्यांदासीवत्त्वंकृतांजलिः ॥१०॥ एवंचत्वंसहास्माभिस्तस्याःप्रेष्याभविष्यसि ॥ पुत्रश्चतवरामस्यप्रेष्यत्वंहिगमिष्यति ॥११॥ हृष्टाःखलुभविष्यंतिरामस्यपरमाःस्त्रियः ॥ अप्रहृष्टाभविष्यंतिस्नुषास्तेभरतक्षये ॥१२॥ तांदृष्ट्वापरमप्रीतांब्रुवन्तींमंथरांततः ॥ रामस्यैवगुणान्देवीकैकेयीप्रशशंसह ॥ १३ ॥ धर्मज्ञोगुणवान्दांतःकृतज्ञःसत्यवाञ्छुचिः ॥ रामोराजसुतोज्येष्ठोयौवराज्यमतोऽर्हति ॥१४॥ भ्रातॄन्भृत्यांश्चदीर्घायुः पितृवत्पालयिष्यति ॥ संतप्यसेकथंकुब्जेश्रुत्वारामाभिषेचनम् ॥१५॥ भरतश्चापिरामस्यध्रुवंवर्षशतात्परम् ॥ पितृपैतामहंराज्यमवाप्स्यतिनरर्षभः ॥१६॥

करना पड़ेगा ॥ १० ॥ तब अवश्यही हम सबकोभी तुम्हारे समान दासी होकर रहना पडेगा, और ऐसेही तुम्हारे पुत्रकोभी रामका भृत्य रहकर काल व्यतीत करना होगा ॥ ११ ॥ रामवनिता सीता सखियोंके सहित आनन्दित होगीं तुम्हारी बहुयें भरतजीका खर्वभाव देख दुःखसे कातर होंगी ॥ १२ ॥ तब मंथराको रामके प्रति इस भाँति अतिशय अप्रीति भावापन्न देख कैकेयी रामके गुणोंका वर्णन करतीहुई बोली ॥ १३ ॥ कि, रामचंद्र धार्मिक गुणवान्, सत्यवादी और शुचि हैं विशेष करके वह महाराजके ज्येष्ठपुत्र हैं, अतएव उनको यौवराज्याभिषेक होना उचितही है ॥१४॥ दीर्घायु रामचन्द्र भ्राता और नौकर चाकरोंको पुत्रवत् पालन करेंगे हे कुबरी ! तू रामकी अभिषेकवार्त्ता श्रवण करनेमें क्यों दुःखी होती है ? ॥ १५ ॥ और भरतको निश्चयही सौ वर्षके उपरान्त

रामके पीछे राज्य मिलेगा । तब वहभी अपने पितृपितामहोंका राज्य पावेंगे जब चाहेंगे तब अलग होकर राज्य बांटलेंगे ॥१६॥ हे मन्थरे !तू ऐसे उत्सवके समय क्यों जल रही है ? ऐसे कल्याणके समय तेरे संतापित होनेका क्या कारण है !॥१७॥मैं जिस प्रकार भरतका हित चाहनेवालीहूं वैसेही व उससे अधिक रामकी हितार्थी हूं क्योंकि,विशेष करके रामकौशल्यासे अधिक मेरा सन्मान करते हैं॥१८॥यदि रामचन्द्रको राज्याभिषेक हुआ तो वहभरतकोही होगा, कारण कि,रामचन्द्र अपनेही समान सब भाइयोंको समझते हैं॥१९॥मन्थरा कैकेयीके यह वचन श्रवणकर महादुःखी हो दीर्घनिःश्वास परित्याग पूर्वक यहबोली ॥२०॥ हे कैकेयी ! तुम शोक दुःखरूपी बडे समुद्रमें निमग्न हो अज्ञानतासे अनर्थके विषयमें दृष्टिपात नहीं करती हो;सुतराम् तुमको अपनी अवस्था नहीं समझपडती

सात्वमभ्युदयेप्राप्तेदह्यमानेवमंथरे ॥ भविष्यतिचकल्याणेकिमिदंपरितप्यसे ॥१७॥ यथावैभरतोमान्यस्तथाभूयोऽपिराघवः ॥ कौसल्यातोऽतिरिक्तंचममशुश्रूषतेबहु ॥१८॥ राज्यंयदिहिरामस्यभरतस्यापितत्तदा ॥ मन्यतेहियथात्मानंतथाभ्रातॄंस्तुराघवः ॥ १९ ॥ कैकेय्यावचनंश्रुत्वामंथराभृशदुःखिता ॥ दीर्घमुष्णंविनिःश्वस्यकैकेयीमिदमब्रवीत् ॥ २० ॥ अनर्थदर्शिनीमौर्ख्यान्नात्मानमवबुद्ध्यसे ॥ शोकव्यसनविस्तीर्णेमज्जंतीदुःखसागरे ॥२१॥ भविताराघवोराजाराघवस्यचयःसुतः ॥ राजवंशात्तुभरतकैकेयिपरिहास्यते ॥२२॥ नहिराजसुताःसर्वेराज्यंतिष्ठेतिभामिनि ॥ स्थाप्यमानेषुसर्वेषुसुमहाननयोभवेत् ॥ २३॥ तस्माज्ज्येष्ठेहिकैकेयिराज्यतंत्राणिपार्थिवाः ॥ स्थापयंत्यनवद्यांगिगुणवत्स्वितरेष्वपि ॥२४॥ असावत्यंतनिर्भग्नस्तवपुत्रोभविष्यति ॥ अनाथवत्सुखेभ्यश्चराजवंशाच्चवत्सले ॥२५॥ साहंत्वदर्थेसंप्राप्तात्वंतुमांनावबुध्यसे॥सपत्निवृद्धौयामेत्वंप्रदेयंदातुमर्हसि॥२६॥ ध्रुवंतुभारतंरामःप्राप्यराज्यमकंटकम्॥देशांतरंनाययितालोकांतरमथापिवा॥२७॥ बालएवतुमातुलयंभरतोनायितस्त्वया ॥ सन्निकर्षाच्चसौहार्दंजायतेस्थावरेष्विव ॥ २८ ॥

॥ २१ ॥ अब रामचन्द्र राजा होते हैं उनके पीछे उनका पुत्र राज्य पावेगा, अतएव ऐसेही भरतजी राजवंशभ्रष्ट हो जायंगे॥२२॥हे भामिनी ! राजाके सब पुत्र राज्य नहीं पाते.वास्तविक ऐसे होनेसे महान् अनर्थ उपस्थित होताहै॥२३॥हे सुन्दर अंगवाली? इसी कारणसे यातो ज्येष्ठ पुत्रको या गुणवान् छोटे पुत्रको राज्यभार सौंप दिया जाता है ऐसा सब राजा लोग करते हैं ॥२४॥ मैं ऐसीहीव्यवस्थाको जानकर कहती हूं कि,तुम्हारे पुत्र भरतको सबसुखभोग व राजवंशसे वञ्चितहो अनाथकी नाई काल व्यतीत करना होगा ॥२५॥ मैंतुम्हारे हितार्थ यहांतक कहूं परन्तु आश्चर्य है कि,तुम जरा न समझ सकी मुझको अचरज तो इस बातका है कि, सौतनकी बढती देख तुम मुझे पुरस्कार देती हो॥२६॥ निश्चयही रामचन्द्र निष्कण्टक राज्य लाभ कर तुम्हारे पुत्र भरतको मारडालेंगे, अथवा देशसे निकाल देंगे ॥२७॥ तुमने बालक भरतको मामाके यहां भेजदिया; जो वहयहां होते तो महाराजको उनपर अवश्यही स्नेहदृष्टि पडती विचारकरके देखो कि,

तृण गुल्मादिभी एक स्थानमें जन्म ग्रहण करके प्रेमसे परस्पर एक दूसरेको आकर्षण करते हैं ॥२८॥ आश्चर्य है ! कि, भरतके संग शत्रुघ्न मामाके घर गये हैं । लक्ष्मण जिस प्रकार रामचन्द्रजीके अनुगत हैं, वैसेही भरत शत्रुघ्नके साथ वर्त्ताव करते हैं॥२९॥ ऐसा सुना जाता है कि, वनजीविगणने एक समय एकवृक्षके काटनेकी चेष्टाकी परन्तु वह वृक्षकंटकाकीर्णथा इसकारण उनकी चेष्टा व्यर्थ हुई और डरसे छोड दिया॥३०॥राम लक्ष्मण परस्पर परस्परके रक्षक हैं अश्विनीकुमारके समान इनका भायप लोकविख्यात है ॥३१॥ इस कारणसे रामद्वारा लक्ष्मणका अनिष्ट न होगा परन्तु इससे कोई यह न समझे कि, भरतपर कोई विपद न आवेगी । अवश्य भरतकाअनिष्ट होगा ॥ ३२॥ अतएव इस समय मामाके घरसे भरत आवें व राज्य पावें रामचन्द्र घरसे वनको चले जायँ यह मैं अच्छा समझती

भरतानुवशात्सोऽपिशत्रुघ्नस्तत्समंगतः ॥ लक्ष्मणोहियथारामंतथायंभरतंगतः ॥२९॥ श्रूयतेहिद्रुमःकश्चिच्छेत्तव्योवनजीवनैः॥ सन्निकर्षादिषीकाभिर्मोचितःपरमाद्भयात् ॥ ३० ॥ गोप्ताहिरामंसौमित्रिर्लक्ष्मणंचापिराघवः ॥ अश्विनोरिवसौभ्रात्रंतयोर्लोकेषुविश्रुतम् ॥३१॥ तस्मान्नलक्ष्मणेरामःपापंकिंचित्करिष्यति ॥ रामस्तुभरतेपापंकुर्यादेवनसंशयः ॥३२॥ तस्माद्राजगृहादेववनंगच्छतुराघवः॥ एतद्धिरोचतेमह्यंभृशंचापिहितंतव ॥३३॥ एवंतेज्ञातिपक्षस्यश्रेयश्चैवभविष्यति ॥ यदिचेद्भरतोधर्मात्पित्र्यंराज्यमवाप्स्यति ॥३४॥ सतेसुखोचितोबालोरामस्यसहजोरिपुः॥ समृद्धार्थस्यनष्टार्थोजीविष्यतिकथंवशे॥३५॥ अभिद्रुतमिवारण्येसिंहेनगजयूथपम्॥ प्रच्छाद्यमानंरामेणभरतंत्रातुमर्हसि॥३६॥ दर्पान्निराकृतापूर्वंत्वयासौभाग्यवत्तया॥ राममातासपत्नीतेकथंवैरंनयापयेत्॥३७॥ यदाचरामःपृथिवीमवाप्स्यतेप्रभूतरत्नाकरशैलसंयुताम्॥ तदागमिष्यस्यशुभंपराभवंसहैवदीनाभरतेनभामिनि ॥ ३८ ॥

हूं इसमें तुम्हारा भी हित होगा ॥३३॥ इसमें केवल तुम्हारा ही कल्याण नहीं वरन् सब जातिवर्गका हित होगा जो भरतधर्मानुसार अपने पैतृकराज्याधिकारी हों ॥३४॥ भरत केवल तुम्हारेही सुखकेलिये बालक हैं, परन्तु रामके स्वभावसेही शत्रु हैं, सुतराम् रामराज्यके अधीन रहकर वह निर्धन किस प्रकार जीवन धारण करेंगे॥३५॥ वनमें सिंहके आक्रमणसे हाथियोंके यूथपतिकी रक्षाकी नाईं, इस रामरूपी विपदसे तुमभरतजीको बचाओ ॥३६॥ तुमने स्वामीके सुहागसे गर्वितहो कौशल्याकी बहुत ही अवज्ञा की है, भला फिर इस समय वह उन बातोंका बदला कैसे न लेंगी ? ॥३७॥ हे कैकेयी ! यदि रामचन्द्र शैलसागर पर्यन्त वसुन्धराके अधिपतिहुए तो हे भामिनि ! यह निश्चय स्मरणरखनाकि, तुमको भरतसहित दास्यभावसे दिन बिताने पडेंगे ॥ ३८ ॥

जैसेही राम राजा हुए बस वैसेही भरतका नाश हुआ, अतएव इस कारण भतरको राज्य दिलाने और रामकोवनभिजवानेकी चिन्तना करो ॥ ३९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा०आदिका० अयोध्याकांडे भाषायामष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥ मंथरा के इसभांति कहने पर कैकेयी क्रोध से भस्महो दीर्घनिश्वासपरित्यागपूर्वक मन्थरासे बोली ॥ १ ॥ मैं अभी रामको वनवासी कराकर भरत को राज्याभिषिक्त कराऊंगी रामको राज्य किसी प्रकार न होगा ॥ २ ॥ तू मुझसे यह विचार करके कह कि,किस उपायसे भरतको राज्य मिले और राम इससे वंचित कियेजायँ॥३॥पापदर्शनी मन्थरा यहसुन रामके राज्याभिषेकमें बाधा देनेकेलिए यह बोली ॥४॥कि,हे कैकेयी ! तुम मेरी सामर्थ्य देखो मैं वही उपाय करती हूँ जिससे तुम्हारेपुत्रका अभिषेक हो मैं वह उपाय तुमसे कहती हूं सुनो॥५॥ तुमने जो बात

यदाहिरामः पृथिवीमवाप्स्यतेध्रुवंप्रनष्टोभरतोभविष्यति ॥ अतोहिसंचिंतयराज्यमात्मजेपरस्यचैवास्यविवासकारणम् ॥३९॥इत्यार्षे श्रीमद्रा मायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये चतुर्विंशतिसा० सं० अयोध्याकांडे अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥ एवमुक्तातुकैकेयीक्रोधेनज्वलितानना ॥ दीर्घमुष्णंविनिःश्वस्यमंथरामिदमब्रवीत् ॥ १ ॥ अद्यराममितःक्षिप्रंवनंप्रस्थापयाम्यहम् ॥ यौवराज्येचभरतंक्षिप्रमद्याभिषेचये ॥२॥ इदंत्विदानींसंपश्यकेनोपायेनसाधये ॥ भरतःप्राप्नुयाद्राज्यंनतुरामःकथंचन ॥३॥ एवमुक्तातुसादेव्यामंथरापापदर्शिनी ॥ रामार्थमुपहिंसंतीकैकेयीमिदमब्रवीत् ॥ ४ ॥ हंतेदानींप्रपश्यत्वंकैकेयिश्रूयतांवचः ॥ यथातेभरतोराज्यंपुत्रःप्राप्स्यतिकेवलम् ॥५॥ किंनस्मरसिकैकेयिस्मरंतीवानिगूहसे ॥ यदुच्यमानमात्मार्थंमत्तस्त्वंश्रोतुमिच्छसि ॥६॥ मयोच्यमानंयदितेश्रोतुंछंदोविलासिनि ॥ श्रूयतामभिधास्यामिश्रुत्वाचैतद्विधीयताम् ॥७॥ श्रुत्वैवंवचनंतस्यामंथरायास्तुकैकयी ॥ किंचिदुत्थायशयनात्स्वास्तीर्णादिदमब्रवीत् ॥८॥ कथयस्वममोपायंकेनोपायेनमंथरे ॥ भरतःप्राप्नुयाद्राज्यंनतुरामःकथंचन ॥ ९ ॥ एवमुक्तातदादेव्यामंथरापापदर्शिनी ॥ रामार्थमुपहिंसंतीकैकेयीमिदमब्रवीत् ॥१०॥ पुरादेवासुरेयुद्धेसहराजर्षिभिःपतिः ॥ अगच्छत्त्वामुपादायदेवराजस्यसाह्यकृत् ॥ ११ ॥

मुझसे बार २ कही है वह क्या भूल गई या मुझसे श्रवण करनेके लिए उसको छिपाती हो ॥६॥ हे विलासिनी ! यदि ऐसा है तो मुझसे उसको सुनकर उसके विषयमें जो जो हितकारी हो उसके करनेकी चेष्टा करनी चाहिए ॥ ७ ॥ मन्थराके मुखसे यह उक्ति श्रवण करके राजमहिषी कैकेयी विस्तीर्ण सेज से कुछ एक उठकर बोली ॥८॥ हे मन्थरे ! कौनसा उपायहै जिससे राम राज्य न पाकरभरत पावें वह तू मुझसे कह ॥९॥ जब देवी कैकेयीने यह बात कही तब पाप बुद्धिवाली मन्थरा रामराज्याभिषेकमें विघ्न डालनेके लिए बोली ॥१०॥ एकसमय देवासुरसंग्रामके संघटितहोनेपर राजाइन्द्रकी सहायताकरने को तुम्हारे स्वामी

महाराज दशरथजी तुम्हारे साथ युद्धक्षेत्रमें उपस्थित हुयेथे ॥ ११ ॥ हे देवि ! दक्षिण दिशाके दडकारण्य नामक स्थान में वैजयन्त नामक एक नगर है, तिमि
ध्वज उसका अधिपतिथा ॥१२॥ यह असुर अतिशय मायावी और बलवान्हुआ इसका दूसरा नाम शम्बरासुर था. इसकेही साथ देवतों सहित इंद्रकी लडाई
हुई ॥१३॥ इस युद्धमें सैन्यगण क्षतविक्षत अर्थात् घायलशरीर हो जब रातमेंसोजाते तब राक्षसगण शीघ्रतासे उपस्थितहो उनको मारकर भागजातेथे ॥१४॥
उसी समय उन राक्षसोंके विरुद्ध महाराज दशरथजीने तुमुल संग्राम किया,और असुरोंनेअस्त्रशस्त्रोंसे इनमहाबाहुके अंग क्षत विक्षत करडाले ॥१५॥ हे देवि !
तुमने महाराजको शस्त्रोंसे घायल और विचेतन देखकर रणसे अलग लेजाकरउनकी रक्षा की थी ॥१६॥ हे सुंदर दर्शनवाली ! तब राजाने तुम्हारे व्यवहारसे

दिशामास्थायकैकेयिदक्षिणांदंडकान्प्रति ॥ वैजयंतमितिख्यातंपुरंयत्रतिमिध्वजः ॥१२॥ सशंबरइतिख्यातःशतमायोमहासुरः॥ ददौशक्रस्य
संग्रामंदेवसंघैरनिंदितः ॥ १३ ॥ तस्मिन्महतिसंग्रामेपुरुषान्क्षतविक्षतान् ॥ रात्रौप्रसुप्तान्घ्नंतिस्मतरसाऽपास्यराक्षसाः॥१४॥ तत्राकरोन्महा
युद्धंराजादशरथस्तदा ॥ असुरैश्चमहाबाहुः शस्त्रैश्चशकलीकृतः ॥ १५ ॥ अपवाह्यत्वयादेविसंग्रामान्नष्टचेतनः ॥ तत्रापिविक्षतःशस्त्रैःपतिस्ते
रक्षितस्त्वया ॥ १६ ॥ तुष्टेनतेनदत्तौतेद्वौवरौशुभदर्शने ॥ सत्वयोक्तःपतिर्देवियदिच्छेयंतदावरम् ॥ १७ ॥ गृह्णीयांतुतदाभर्तस्तथेत्युक्तंमहा
त्मना ॥ अनभिज्ञाह्यहंदेवित्वयैवकथितंपुरा ॥ १८ ॥ कथैषातवतुस्नेहान्मनसाधार्यतेमया ॥ रामाभिषेकसंभारान्निगृह्यविनिवर्तय ॥ १९ ॥
तौचयाचस्वभर्तारंभरतस्याभिषेचनम् ॥ प्रव्राजनंचरामस्यवर्षाणिचचतुर्दश ॥२०॥ चतुर्दशहिवर्षाणिरामेप्रव्राजितेवनम् ॥ प्रजाभावगतस्ने
हःस्थिरःपुत्रोभविष्यति ॥२१॥ क्रोधागारंप्रविश्याद्यक्रुद्धेवाश्वपतेःसुते ॥ शेष्वानंतर्हितायांत्वंभूमौमलिनवासिनी ॥ २२ ॥ मास्मैनंप्रत्युदी
क्षेथामाचैनमभिभाषथाः ॥ रुदंतीपार्थिवं दृष्ट्वाजगत्यांशोकलालसा ॥ २३ ॥

तुष्टहोकर तुम्हें दो वर देनेको कहा किन्तु"जब इच्छाहो मांग लूँगी" तुमने उनसेयह कहाथा ॥१७॥ राजाने भी तथास्तु कहकरतुम्हारेवाक्यमें सम्मति प्रदान की
मुझे इस बातकी कुछभी खबर न थी तुमनेही पहले मुझसे कहाथा ॥१८॥ मैं तुमकोप्यार जो करतीहूं इसीकारण यहबात नहीं भूली,तुम इससमय महाराज को
बलपूर्वक रामके राज्याभिषेकसे निवृत्त करो ॥ १९ ॥ जब तुम महाराज से दो वर चाहो एकतो यह कि, भरत राज्य पावें और दूसरा वर प्रार्थना करोकि
चौदह वर्षके लिए राम वनवासी हों ॥ २० ॥ यदि रामचन्द्रको चौदह वर्षकावनवास होगया तो भरत प्रजाओंको वश करके यह राज्य अटल रखसकेंगे॥२१॥
हे अश्वपतिकी पुत्री!तुम इस समय मलीन वसन पहनकर कोपभवनमें जा क्रोधसे भर पृथ्वीमें पडी रहो ॥२२॥ महाराजके उपस्थित होनेपर उनसेसंभाषण मत

करना, न उनकी ओर देखना केवल पृथ्वीमें पडे२रोती रहना ॥२३॥ मैं खूब जानती हूं कि, तुम महाराज को प्राणोंसे भीप्यारी हो इसमेंकिंचित् भी संदेह नहीं है, मैं कह सकती हूं कि, वह तुम्हारे लिये अनलमें भी प्रवेश कर सकते हैं॥२४॥ वह तुमको न तो क्रोधही दिला सकें न क्रुद्ध देखही सकें बरन् वह उस समय तुम्हारी ओर देखने का भी साहस न करेंगे अधिक क्या कहूं ! वह तुम्हारी प्रीतिके निमित्त अपने प्राण तक दे देंगे ॥२५॥ राजा तुम्हारी बातको उलंघन नहीं कर सकते, हे सुन्दरि! मन्दस्वभाववाली ! अब तुम अपने सौभाग्यका बल जांच देखो ॥२६॥ महाराज तुमको मणि, मुक्ता, सुवर्ण व विविध भांति केरत्न देना चाहेंगे परन्तु तुम किसी पर मन मत डुलाना ॥ २७ ॥ हे महाभागे ! तुम उनको उन वरदानों की याद दिला देना जो उन्होंने तुम्हें देवासुर संग्राम के

दयितात्वंसदाभर्तुरत्रमेनास्तिसंशयः ॥ त्वत्कृतेचमहाराजोविशेदपिहुताशनम् ॥ २४ ॥ नत्वांक्रोधयितुंशक्तोनक्रुद्धांप्रत्युदीक्षितुम् ॥ तवप्रियार्थंराजातुप्राणानपिपरित्यजेत् ॥२५॥ नह्यतिक्रमितुंशक्तस्तववाक्यंमहीपतिः ॥ मंदस्वभावेबुध्यस्वसौभाग्यबलमात्मनः ॥२६॥ पाणिमुक्तासुवर्णानिरत्नानिविविधानिच ॥ दद्याद्दशरथोराजामास्मतेषुमनःकृथाः ॥ २७ ॥ यौतौदेवासुरेयुद्धेवरौदशरथोददौ ॥ तौस्मारयमहाभागेसोऽर्थोनत्वाक्रमेदति ॥२८॥ यदातुतेवरंदद्यात्स्वयमुत्थाप्यराघवः ॥ व्यवस्थाप्यमहाराजंत्वमिमंवृणुयावरम् ॥ २९ ॥ रामप्रव्रजनंदूरंनववर्षाणिपंचच ॥ भरतःक्रियतांराजापृथिव्याः पार्थिवर्षभः ॥ ३० ॥ चतुर्दशहिवर्षाणिरामेप्रव्राजितेवनम् ॥ रूढश्चकृतमूलश्चशेषंस्थास्यतितेसुतः ॥३१॥ रामप्रव्राजनंचैवदेवियाचस्वतंवरम् ॥ एवंसेत्स्यंतिपुत्रस्यसर्वार्थास्तवकामिनि ॥३२॥ एवंप्रव्राजितश्चैवरामोऽरामोभविष्यति ॥ भरतश्चगतामित्रस्तवराजाभविष्यति ॥ ३३ ॥

समय देने कहे थे, और अपना कार्य साधन करनेको भली प्रकार यत्न करना भूलना मत ॥२८॥ जिस समय राजा तुमको उठा वर देने को तैयार हों तब तुम उनको सत्य में बांधकर वर मांग लेना ॥२९॥एक वर से रामचन्द्र को चौदह वर्ष का वनवास दिलाना और दूसरे वर से पुरुषश्रेष्ठ भरतजी का राज्याभिषेक मांगना ॥३०॥ जब चौदह वर्ष तक राम वनमें रहेंगे तब भरतजी का राज्य निष्कंटक हो जायगा और फिर लौट आनेपर भी राम को राज्य न मिलेगा क्योंकि, फिरतो राज्य जम जायगा और जब तक जियेंगे भरत ही राजा बने रहेंगे॥३१॥हे भामिनि ! रामचन्द्र का वनको जाना, भरत का राज्य पाना इन दो वरोंको लेनेसे तुम्हारे पुत्र भरतको सब प्रकार सिद्धि होजायगी॥३२॥ इस प्रकार वनको भेजेहुए रामके पक्षमें प्रजा अप्रिय हो उठेगी प्रजा फिर उन्हें न

चालेगी और भरतजीके विपक्षपक्षके वश होजानेसे वहभी स्थिरतासे राज्यलाभ कर सकेंगे ॥३३॥:जिस समय रामचन्द्र वनवाससे लौटेंगे उस समय सब प्रजाके अन्तर बाहरमें भरतजीकी प्रभुत्वशक्ति जड समेत जमजायगी ॥३४॥ क्योंकि जब मनुष्य बहुत दिनोंतक अपने इष्ट मित्रोंके संग रहता है तो बनाय दृढताके साथ रहने लगता है,कोई उसे हटाय नहीं सकता,इससे जैसेही राजा तुम्हारेनिकट आवें ॥३५॥वैसेही साहसका आश्रयले अपने वश राजाको कर रामराज्याभिषेककी वासनासे निवृत्त करना,मैं कहती हूं कि, तुम्हारी इष्टसिद्धिका यही समय है॥३६॥तब कैकेयी मन्थराके वाक्यसे प्रतीत और सन्तुष्ट हुई व छोटे बच्चे वाली घोडीकी तरह पराधीन हुई खोटे मार्गका आश्रय कर कहने लगी ॥३७॥वह परमसुन्दर सुन्दरदर्शनवाली कैकेयी अत्यन्त विस्मयको प्राप्तहो बोली हे मन्थरे ! मैं अबतक तो परिणामदर्शिताका मर्म नहीं ग्रहण कर सकी अब समझी कि, तैंने बडी हितकारी बात कही है तू बडी श्रेष्ठहै ॥३८॥मैं जानती हूं कि

येनकालेनरामश्चवनात्प्रत्यागमिष्यति ॥ अंतर्बहिश्चपुत्रस्तेकृतमूलोभविष्यति ॥३४॥ संगृहीतमनुष्यश्चसुहृद्भिःसाकमात्मवान् ॥ प्राप्तकालंतु मन्ये ऽहंराजानंवीतसाध्वसा ॥३५॥ रामाभिषेकसंकल्पान्निगृह्यविनिवर्तय ॥ अनर्थमर्थरूपेणग्राहितासाततस्तया ॥३६॥ हृष्टाप्रतीताकैकेयी मंथरामिदमब्रवीत् ॥ सहिवाक्येनकुब्जायाःकिशोरीवोत्पथंगता ॥३७॥ कैकेयीविस्मयंप्राप्यपरंपरमदर्शना॥प्रज्ञांतेनावजानामिश्रेष्ठेश्रेष्ठाभिधायिनि ॥३८॥ पृथिव्यामसिकुब्जानामुत्तमाबुद्धिनिश्चये ॥ त्वमेवतुममार्थेषुनित्ययुक्ताहितैषिणी ॥३९॥ नाहंसमवबुध्येयंकुब्जेराज्ञश्चिकीर्षितम् ॥ संतिदुःसंस्थिताःकुब्जेवक्राःपरमपापिकाः ॥ ४० ॥ त्वंपद्ममिववातेनसन्नताप्रियदर्शना॥उरस्तेऽभिनिविष्टंवैयावत्स्कंधात्समुन्नतम् ॥ ४१ ॥ अधस्ताच्चोदरंशांतंसुनाभमिवलज्जितम् ॥ प्रतिपूर्णंचजघनंसुपीनौचपयोधरौ ॥ ४२ ॥ विमलेन्दुसमंवक्त्रमहोराजसिमंथरे ॥ जघनं तवनिर्मृष्टंरशनादामभूषितम् ॥ ४३ ॥ जंघेभृशमुपन्यस्तेपादौचव्यायतावुभौ ॥ त्वमायताभ्यांसक्थिभ्यांमंथरेक्षौमवासिनि ॥ ४४ ॥

संसार भरमें जितनी कुबडी हैं तू सबसे अधिक बुद्धिशालिनी है तू सदा मेरा हित करनेवाली है॥३९॥अधिक क्या कहूँ मैं अबतक महाराजकी खोटी इच्छा न समझसकी जो हो अब मैंने जान लिया कि,संसारमें पापीयसी टेढ़ी अनेक कुबरी हैं किन्तु उन सबमें॥४०॥ तूही वायुसे चलायमान पद्मिनीकी नाईं सबसे अधिक प्रियदर्शन है तेरा वक्षदेश तैयार है कंधेकी बराबर ऊंचा है ॥४१॥व नीचे सुन्दर नाभिवाला उदर है,ऐसा बोध होता है कि,मानो छातीकी ऊंचाई देख लजाकर पतलासा हो गया है,जांघें बहुत मोटी चढाव उतार बनी हैं,कुच बडे मोटे व कठोर हैं॥४२॥ तेरावदनमंडलविमलचन्द्रमाकीनाईंविराजता है वतेरीजंघा बालोंसे रहित हैं कमरमें तगडी शोभित है॥४३॥जांघें बहुतही उत्तम भारी होनेसे मानो एकमें एक मिलीहीसी हैं दोनों चरणबडे हैंतेरी पीठ सुन्दर और चौडी है,तू रेशमीवस्त्र पहरे

हुयेहै ॥४४॥ तू जब मेरे सम्मुखसे गमनकरतीहै तब राजसिंहनीके समान जानपडतीहै तेरा हृदय शंबरासुरकी अनन्त मायाका विश्रामस्थलहै ॥४५॥ व और भी हजारों माया तुझमेंहैं और तो सबतेरा शरीर मनोहरहीहै केवल यह जो छातीबहुत ऊँची है व पीछे कूबर निकला है.यही कुढंगसा है सो मानों पहियाके नाहके समान है ॥४६॥ इस कुढंगे अंगसेभी बडे लाभ हैं, क्योंकि जितनी राजनीतिआदिककीबुद्धियां हैं व जितनी माया है सबकी सब तुम्हारे इसी अंगमें बसतेहैं, सो मैं ऐसी सोनेकी माला इको पहराऊंगी जो इस कूबरपर झूलाकरे ॥४७॥ हे सुन्दरी ! मैं कहतीहूं कि,भरतको राज्य मिलने और रामके वन चले जानेपर मैं तेरे यह मांसपिंड चन्दनसे लिप्त और सोनेके गहनोंसे सजाऊंगी ॥४८॥ जब अच्छी तरहसे हमारा काम हो जाकर और मुझको विश्वास हो जायगा तो तेरा मुख स्वर्णमय विचित्र तिलकसे सुसोभित करूँगी और कूबडमें चन्दनादिसे लेप करूंगी ॥ ४९ ॥ हे कुब्जे ! और तो अधिक क्या कहूं मैं तुझे मनोहर

अग्रतोममगच्छन्तीराजसेऽतीवशोभने ॥ आसन्याःशंबरेमायासहस्रमसुराधिपे ॥४५॥ हृदयेतेनिविष्टास्ताभूयश्चान्याःसहस्रशः ॥ तदेवस्थगु यद्दीर्घंरथघोणमिवायतम् ॥४६॥ मतयःक्षत्रविद्याश्चमायाश्चात्रवसन्तिते ॥ अत्रतेऽहंप्रमोक्ष्यामिमालांकुब्जेहिरण्मयीम् ॥४७॥ अभिषिक्ते चभरतेराघवेचवनंगते ॥ जात्येनचसुवर्णेनसुनिष्टप्तेनसुन्दरि ॥४८॥ लब्धार्थाचप्रतीताचलेपयिष्यामितेस्थगु ॥ मुखेचतिलकंचित्रंजातरूपम यंशुभम् ॥४९॥ कारयिष्यामितेकुब्जेशुभान्याभरणानिच ॥ परिधायशुभेवस्त्रेदेवतेवचरिष्यसि ॥५०॥ चंद्रमाह्वयमानेनमुखेनाप्रतिमानना ॥ गमिष्यसिगतिंमुख्यांगर्वयंतीद्विषज्जने ॥५१॥ तवापिकुब्जाःकुब्जायाःसर्वाभरणभूषिताः ॥ पादौपरिचरिष्यंतियथैवत्वंसदामम ॥५२॥ इति प्रशस्यमानासाकैकेयीमिदमब्रवीत् ॥ शयानांशयनेशुभ्रेवेद्यामग्निशिखामिव ॥५३॥ गतोदकेसेतुबंधोनकल्याणिविधीयते ॥ उत्तिष्ठकुरुकल्याणं राजानमनुदर्शय ॥५४॥ तथाप्रोत्साहितादेवीगत्वामन्थरयासह ॥ क्रोधागारविशालाक्षीसौभाग्यमदगर्विता ॥५५॥

वस्त्र और दिव्य अलंकार पहराकर देवताके समान सजादूंगी ॥ ५० ॥ तब तुम्हारा वदनमण्डल चन्द्रमाको भी लजावैगा बरनउसकी उपमाही नहीं मिलैगी व तुम अपनी सुन्दर चालसे वैरियोंकी निन्दा करोगी ॥५१॥ तब जिस प्रकार तुम हमारी सेवामें नियुक्त हो, वैसेही सब गहनोंसे सजीहुई अन्यान्य कुब्जागण तेरे पैरोंमें पड़कर तेरी सेवा करेंगी ॥ ५२ ॥ मन्थरा इस भांति सराहीजाकर वेदि मध्यस्थित अग्निशिखाके समान श्वेतशय्याशायिनी कैकेयीसे बोली ॥ ५३ ॥ हे कल्याणि ! जल निकल जानेपर फिर बाँध बाँधनेका क्या प्रयोजनहै?अतएव उठकर अपना कल्याणकार्य साधन करनेमें यत्नवती होना चाहिये और क्रोधा गारमें जाकर अब महाराजको अपनी क्रोधशक्तिका परिचय दो ॥५४॥ अनन्तरमन्थराके उकसानेसे प्रोत्साहित हो विशालाक्षी सौभाग्यके मदसे गर्वित कैकेयी

मन्थरा सहित क्रोधागारमें प्रवेश करती हुई ॥५५॥ उस समय जो रानीके अंगमें बडे२ मोलके सुन्दर गहने व मोतियोंकी मालायें थीं वह हजारोंके मोलकी उस सुन्दर स्त्रीने सब निकालकर दूर फेंकदीं ॥५६॥ उस समय सोनेके रंग समान रंगवालीकैकेयी मन्थराके वचनोंसे वशीभूतहो विना बिछाये भूमिमें लेटकरमन्थरासे कहने लगी ॥५७॥ हे प्रियपरिचारिके ! या तो इस कोप भवनमें प्राणहीपरित्यागकरूंगीयारामचन्द्रजीकोवनभेजकर भरतकोराज्याभिषेककराऊंगी॥५८॥ हमें सुवर्ण, रत्न व भोगकी वस्तुओंसे कुछ प्रयोजन नहीं; यदिरामचन्द्रका अभिषेक हुआ तो हम निश्चयही प्राणोंको परित्याग करेंगी ॥ ५९ ॥ अनन्तर कुबरी भरतके हित और रामके अहित करने वाले गूढ अर्थ और क्रूरवचन बूढे महाराज दशरथजीकी रानी भरतकी माता कैकेयी बोली ॥ ६० ॥ यदि

अनेकशतसाहस्रंमुक्ताहारंवरांगना ॥ अवमुच्यवरार्हाणिशुभान्याभरणानिच ॥ ५६ ॥ तदाहेमोपमातत्रकुब्जावाक्यवशंगता ॥ संविश्यभूमौ कैकेयीमंथरामिदमब्रवीत् ॥५७॥ इहवामांमृतांकुब्जेनृपायावेदयिष्यसि ॥ वनंतुराघवेप्राप्तेभरतःप्राप्स्यतेक्षितिम् ॥ ५८॥ सुवर्णेननमेह्यर्थो नरत्नैर्नचभोजनैः ॥ एषमेजीवितस्यांतोरामोयद्यभिषिच्यते ॥५९॥ अथोपुनस्तांमहिषींमहीक्षितोवचोभिरत्यर्थमहापराक्रमैः ॥ उवाचकुब्जा भरतस्यमातरंहितंवचोरामसुपेत्यचाहितम् ॥ ६० ॥ प्रपत्स्यतेराज्यमिदंहिराघवोयदिध्रुवंत्वंससुताचतप्स्यसे ॥ ततोहिकल्याणियतस्वतत्तथा यथासुतस्तेभरतोऽभिषेक्ष्यते ॥ ६१ ॥ तथातिविद्धामहिषीतिकुब्जयासमाहतावागिषुभिर्मुहुर्मुहुः ॥ विधायहस्तौहृदयेऽपिविस्मिताशशंसकुब्जांकुपितापुनःपुनः ॥६२॥ यमस्यवामांविषयंगतामितोनिशाम्यकुब्जप्रतिवेदयिष्यसि ॥ वनंगतेवासुचिरायराघवेसमृद्धकामोभरतोभविष्यति ॥६३॥ अहंहिनैवास्तरणानिनस्रजोनचंदनंनांजनपानभोजनम् ॥ नकिंचिदिच्छामिनचेहजीवनंनचेदितोगच्छतिराघवोवनम् ॥ ६४ ॥

रामको राज्य मिलगया तो पुत्रके सहित तुम्हे निश्चयही अनुताप करना होगा, अतएव हे कल्याणि ! जिससे भरतराजा होजायँ उसके विषयमें विशेष चेष्टा करना उचितहै ॥६१॥ राजमहिषी कैकेयी मंथराके वचन बाणोंसेबारंबार विद्ध हो हृदय पर हाथ धर आश्चर्य को प्राप्त हो क्रोध से फिर बोली ॥६२॥ हे कुब्जे ! या तो तू इस क्रोधागारमें मेरा शरीर छोडने का वृत्तांत राजासे कहेगी और या देखेगी कि, दीर्घकालके लिये राम को वनवास; और भरतको राज्य प्राप्त होगा ॥६३॥ मैं निश्चयही कहती हूं कि, यदि राम वनको न गये तो वह शय्या, माला, चन्दन, अंजन पान भोजनही क्या, बरन जीवनसे भी कुछ प्रयोजन

नहीं है ॥६४॥ कैकेयी यह कठोर वचन कहकर अंग से गहने निकाल विछौने केबिना भूमिशायिनीहो स्वर्ग से भ्रष्ट किन्नरीके समान शोभा धारण करती हुई॥६५॥ उसका मुखमण्डल क्रोधान्धकार से युक्त और शरीर गहने से शून्य हुआ तारका विहीन आकाश जैसे तामसी रात्रि से शोभित होता है उस समय नरेंद्रपत्नी रानीकी भी वही शोभा हुई॥६६॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा०आ०अयोध्याकाण्डे भाषायां नवमः सर्गः ॥९॥अनंतर पापिनी मन्थरा के अत्यन्त समझाने बुझाने पर देवी कैकेयी ने तीरसे बिंधीहुई किन्नरी के समान पृथ्वीमें शयन किया॥१॥वह भामिनी जो बडी चतुर थी मनही मन जो करना उसको अभीष्ट था उसको धीरे २ फिर मंथरा से सब कहने लगी ॥२॥ फिर मन्थरा के कहे हुये वचनों से स्मरण करके उसके वचनोंसे मोहित हुई कैकेयी नागकन्या की भांति श्वास लेने लगी ॥३॥ तब वह आत्मा के

अथैवमुक्त्वावचनंसुदारुणंनिधायसर्वाभरणानिभामिनी ॥ असंस्कृतामास्तरणेनमेदिनींतदाधिशिश्येपतितेवकिन्नरी ॥६५॥ उदीर्णसंरंभतमोवृताननातदावमुक्तोत्तममाल्यभूषणा ॥ नरेंद्रपत्नीविमनाबभूवसातमोवृताद्यौरिवमग्नतारका ॥ ६६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्येचतुर्विंशतिसा० सं० अयोध्यकांडे नवमःसर्गः ॥ ९ ॥ विदर्शितायदादेवीकुब्जयापापयाभृशम् ॥ तदाशेतेस्मसाभूमौदिग्धविद्धेवकिन्नरी ॥ १ ॥ निश्चित्यमनसाकृत्यंसासम्यगितिभामिनी ॥ मंथरायैशनैःसर्वमाचचक्षेविचक्षणा ॥२॥ सादीनानिश्चयंकृत्वामंथरावाक्यमोहिता ॥ नागकन्येवनिःश्वस्यदीर्घमुष्णंचभामिनी ॥ ३ ॥ मुहूर्तंचिंतयामासमार्गमात्मसुखावहम् ॥ सासुहृच्चार्थकामांचतंनिशम्यविनिश्चयम् ॥ ४ ॥ बभूवपरमप्रीतासिद्धिंप्राप्येवमंथरा ॥ अथसारुषितादेवीसम्यक्कृत्वाविनिश्चयम् ॥ ५ ॥ संविवेशाबलाभूमौनिवेश्यभ्रुकुटिंमुखे ॥ ततश्चित्राणिमाल्यानिदिव्यान्याभरणानिच ॥६॥ अपविद्धानिकैकेय्यातानिभूमिंप्रपेदिरे ॥ तयातान्यपविद्धानिमाल्यान्याभरणानिच ॥७॥ अशोभयंतवसुधांनक्षत्राणियथानभः ॥ क्रोधागारेचपतितासाबभौमलिनाम्बरा ॥ ८ ॥

सुख का मार्ग ढूँढ़ती हुई एकमुहूर्त तक चिंता करती रही और कार्य की सिद्धि जान अतिशय प्रसन्न हुई और उस ओर कुबरी सहेली रानी कैकेई का यह यत्न उत्साह देख ॥४॥ जैसे कोई सिद्धि को प्राप्त होकर प्रसन्न हो वैसेही मन्थरा अतिशय प्रसन्न हुई और देवी रानीभी मनमें सब बात का भलीभाँति निश्चय कर महा क्रोधसे ॥५॥ भौंहैं कमान के समान तान भूमिमें लेट रहीव जितनी भाँति२की माला और अनेक प्रकार के वस्त्रआभूषण थे सबको निकाल कर फेंक दिया ॥६॥ वहस्त्र माला चित्र विचित्र मणि जटित सुवर्ण के हार व दिव्य भूषण वसन इत्यादि कैकेयी के फेंके हुये भूमिमें आय गिरे ॥७॥ और वह सब गहने तारागणोंसे

भरेहुये आकाश के समान पृथ्वीमें शोभा प्रकाशित करने लगे तब कैकेयी मैले कुचले कपड़े पहन कोपभवनमें पड़ी रही ॥८॥ केवल एक चोटी बँधीहुई शोभाकी निशानी थी और देखनेमें कैकेयीबलहीन किन्नरीके समानथीइस ओर राजा दशरथजी अभिषेक की सब तैयारी करके ॥९॥ सब सभासदोंकी सम्मतिलेरनवासमें आये और सोचा कि, रामचन्द्रजीका अभिषेक होगा यह प्रसिद्ध हुआ है, परन्तु यह रानियों को नहीं ज्ञात है ॥ १० ॥ अतएव उनसे भी संवाद कहना चाहिये यही सोच विचार महायशस्वी यह इन्द्रियों को वशमें रखनेवाले यह प्यारी बात सुनाने योग्य अपनीकैकेयी के सुन्दर भवनमें प्रवेश करते हुये ॥११॥ चन्द्रमा जिस प्रकार राहुयुक्त उजले आकाशमें प्रवेश करता है ऐसेही राजा कैकेयीके भवनमें पधारे उस समय कैकेयीका गृह मोर कौंच हंसादि पक्षियों की बोलि

एकवेणींदृढांबद्ध्वागतसत्त्वेवकिन्नरी ॥ आज्ञाप्यतुमहाराजराघवस्याभिषेचनम् ॥ ९ ॥ उपास्थानमनुज्ञाप्यप्रविवेशनिवेशनम् ॥ अद्यरामाभिषेकोवैप्रसिद्धइतिजज्ञिवान् ॥१०॥ प्रियार्हांप्रियमाख्यातुंविवेशांतःपुरंवशी ॥ सकैकेय्यागृहंश्रेष्ठंप्रविवेशमहायशाः ॥ ११ ॥ पांडुराभ्रमिवाकाशंराहुयुक्तंनिशाकरः ॥ शुकबर्हिसमायुक्तंक्रौंचहंसरुतायुतम् ॥ १२ ॥ वादित्ररवसंघुष्टंकुब्जावामनिकायुतम् ॥ लतागृहैश्चित्रगृहैश्चंपकाशोकशोभितैः ॥ १३ ॥ दांतराजतसौवर्णवेदिकाभिःसमायुतम् ॥ नित्यपुष्पफलैर्वृक्षैर्वापीभिरुपशोभितम् ॥१४॥ दांतराजतसौवर्णैःसंवृतंपरमासनैः ॥ विविधैरन्नपानैश्चभक्ष्यैश्चविविधैरपि ॥ १५ ॥ उपपन्नंमहार्हैश्चभूषणैस्त्रिदिवोपमम् ॥ सप्रविश्यमहाराजःस्वमंतःपुरमृद्धिमत् ॥ १६ ॥ नददर्शस्त्रियंराजाकैकेयींशयनोत्तमे ॥ सकामबलसंयुक्तोरत्यर्थीमनुजाधिपः ॥ १७ ॥ अपश्यन्दयीतांभार्यांपप्रच्छविषसादच ॥ नहितस्यपुरादेवीतांवेलामत्यवर्तत ॥ १८ ॥

योंसे शब्दायमान था॥१२॥किसी स्थानमें वेणु वीणाका शब्दथा स्थान स्थानमें कुबरी नाटी टेढीमेढी दासियें शोभा पा रही थीं लता बेलों के गृह बनेहुये थे, कहीं चम्पा व अशोक इत्यादि भांति२के फूलों के पेड सुशोभित थे॥१३॥ कहीं२पेड फलों के बोझ से लदेखडे, कहीं२बावडी बनी थीं, कहीं२हाथी दांत सोने और चांदी के वेदियें बनी थीं ॥१४॥ हाथीदांत सुवर्ण और चांदी के आसन बने थे और स्थान२में भक्ष्य भोज द्रव्य अनेक प्रकार के रक्खे थे॥१५॥ व बडे२ मोल के गहने धरे थे मानों दूसरा इन्द्रही का गृह था। राजा सर्व धनयुक्त उसी देव समान अन्तःपुरमें प्रवेश करते हुये ॥१६॥ किंतुशयनागार में प्रवेश करके राजाने प्राणवल्लभा कैकेयी को न देखा । उस समय राजा कामशर से अति विधे रति की इच्छा किये हुये थे॥१७॥ ऐसी अवस्थामें प्राणप्यारी को न पाकर बहुत दुःखी

हुये । विशेष चिंता भी हुई क्योंकि इससे पहले कैकेयी ऐसे समय सिवाय घरके कहीं न रहती थी ॥ १८ ॥ राजा ने भी कभी इस प्रकारके सूने रनवासमें प्रवेश नहीं कियाथा, जोहो महाराज दशरथजी सबसे कैकेयीको पूछने लगे ॥ १९ ॥ राजा यह नहीं जानतेथे कि कि, कैकेयी भरत को राज्य दिलवाना चाहतीहै अतएव उन्होंने प्रियतमाको न देखकररानीके विषयमें एक प्रतीहारीसे पूछा तब उसने हाथ जोडकरकहा ॥ २० ॥ हे महाराज ! देवी क्रोध से भरी हुई कोपभवनको गई हैं ॥ यह प्रतीहारी के वचन सुनते ही राजा व्याकुल हो दुःख पाय ॥ २१ ॥ वहीं बैठ गये बहुत व्याकुल हुये, इन्द्रियां शिथिल हो गईं वहां से उठ बडी शीघ्रतासे कोप भवनमें पहुँचे वहां अनुचित वेश कियेरानी को पृथ्वी पर ॥ २२ ॥ पड़ी देख के राजाका प्राण उड गया । तब वृद्ध महाराज प्राणोंसेभी अधिक प्यारी तरुण सुकुमारी रानीको ॥ २३ ॥ पाप रहित राजाने मनमें पापसंकल्प धारण किये पृथ्वीपर टूटी हुई बेलकी नाईं स्वर्गसे देवताकी नाईं कैकेयी को देखा ॥ २४ ॥

नचराजागृहंशून्यंप्रविवेशकदाचन ॥ ततोगृहगतोराजाकैकेयींपर्यपृच्छत ॥ १९ ॥ यथापुरमविज्ञायस्वार्थलिप्सुमपंडिताम् ॥ प्रतिहारीत्वथोवाचसंत्रस्तातुकृतांजलिः ॥ २० ॥ देवदेवीभृशंकुद्धाक्रोधागारमभिद्रुता ॥ प्रतीहार्यावचः श्रुत्वाराजापरमदुर्मनाः ॥ २१ ॥ विषसादपुनर्भूयोलुलितव्याकुलेंद्रियः ॥ तत्रतांपतितांभूमौशयानामतथोचिताम् ॥ २२ ॥ प्रतप्तइवदुःखेनसोऽपश्यज्जगतीपतिः ॥ सवृद्धस्तरुणींभार्यांप्राणेभ्योपिगरीयसीम् ॥ २३ ॥ अपापःपापसंकल्पांददर्शधरणीतले ॥ लतामिवविनिष्कृत्तांपतितांदेवतामिव ॥ २४ ॥ किन्नरीमिवनिर्धूतांच्युतामप्सरसंयथा ॥ मायामिवपरिभ्रष्टांहरिणीमिवसंयताम् ॥ २५ ॥ करेणुमिवदिग्धेनविद्धांमृगयुनावने ॥ महागजइवारण्येस्नेहात्परमदुःखिताम् ॥ २६ ॥ परिमृज्यचपाणिभ्यामभिसंत्रस्तचेतनः ॥ कामीकमलपत्राक्षीमुवाचवनितामिदम् ॥ २७ ॥ नतेऽहमभिजानामिक्रोधमात्मनिसश्रुतम् ॥ देविकेनाभियुक्तासिकेनवासिविमानिता ॥ २८ ॥ यदिदंममदुःखायशेषेकल्याणिपांसुषु ॥ भूमौशेषेकिमर्थंत्वंमयिकल्याणचेतसि ॥ २९ ॥ भूतोपहतचित्तेवममचित्तप्रमाथिनि ॥ संतिमेकुशलावैद्यास्त्वाभितुष्टाश्चसर्वशः ॥ ३० ॥

अमरपुरसे गिरी हुई किन्नरी वा अप्सराकी नाईं अथवा स्वर्गसे गिरी हुई परम मनमोहिनी मायाकी नाईं जालमें बँधीहुई हरिणीकी नाईं ॥ २५ ॥ विष लगेहुऐ तीरसे व्याधेकी मारीहुई हथिनीकी नाईं वनमें पडेहुए देख हाथीके समान राजा यह दशा देख बडे दुःखित हुए ॥ २६ ॥ और स्नेहपूर्वक उसे उठाने लगे और न जानें यह आज क्या करेगी यह विचार घबडागये तब कामीराजा अपने हाथसे कमलनयनी कैकेयीका शरीर सुहराने लगे और बोले ॥ २७ ॥ प्यारी ! तुम्हारे क्रोधका क्या कारणहै? मुझेतो अब तक कुछभी ज्ञातनहीं।हे देवि! किसने तुम्हारा अपमान व निरादर कियाहै सो मुझसे कहो तो सही ॥ २८ ॥ प्रिये ! तुम भूमिमें पडी रहकर क्यों कष्ट देतीहो, हे कल्याणि ! तुम्हारे भूमिमें पौढनेका कारण क्याहै सो बताओ ॥ २९ ॥ हे प्राणवल्लभे ! तुम भूत प्रेत लगे हुए मनुष्योंकी नाईं

क्यों पृथ्वीमें पडी मेरे मनको मथन कर रही हो ? अच्छा यदि खोटे ग्रहोंके पीडा देनेसे ऐसा हो तबभी कुछ चिन्ता नहींमेरे अधिकारमें अनेक सुयोग्य वैद्य चिकित्सा करनेवालेहैं ॥३०॥ तुम्हारा रोग जानेपर हमारे वैद्य जो सदा हमारे यहांसे बहुतसा धनधान्य पाते हैं वह अपनी सुचिकित्सासे तुम्हें रोगसे छुडावेंगे मैं तुमसे यह पूछताहूं कि,क्या तुमकिसीका प्रियकिया चाहतीहो तो उसका प्रिय कियाजावे व किसीका विप्रय कराओतो वह भीहो ॥३१॥ अब शीघ्र कहो कौनप्रिय पावे कौन अप्रिय,तुम रोवोमत वृथा अपने शरीरको दुःख दे मुँह मतसुखाओ॥३२॥औरबतलाओकि किसअवध्यको मारडालूं और किस मार डालने योग्य व्यक्तिको छोडदूं ! तुम किसदरिद्रीको धनवान् और किस धनवान्को भिखारी करना चाहतीहो ॥३३॥ हे प्रियतमे ! मैं और मेरे नौकर चाकर सब तुम्हारे वश हैं तुम्हारी

सुखितांत्वांकरिष्यंतिव्याधिमाचक्ष्वभामिनि ॥ कस्यवापिप्रियंकार्यंकेनवाविप्रियंकृतम् ॥३१॥ कःप्रियंलभतामद्यकोवसुमहदप्रियम् ॥ मारौत्सीर्मांचकार्षीस्त्वंदेविसंपरिशोषणम् ॥ ३२ ॥ अवध्योवध्यतांकोवावध्यःकोवाविमुच्यताम् ॥ दरिद्रःकोभवेदाढ्योद्रव्यवान्वाप्यकिंचनः ॥ ३३ ॥ अहंचहिमदीयाश्चसर्वेतववशानुगाः ॥ नतेकंचिदभिप्रायंव्याहन्तुमहमुत्सहे ॥ ३४ ॥ आत्मनोजीवितेनापिब्रूहियन्मनसिस्थितम् ॥ बलमात्मनिजानंतीनमांशंकितुमर्हसि ॥ ३५ ॥ करिष्यामितवप्रीतिंसुकृतेनापितेशपे ॥ यावदावर्ततेचक्रंतावतीमेवसुन्धरा ॥३६॥ द्राविडाः सिंधुसौवीराःसौराष्ट्रादक्षिणापथाः ॥ वंगांगमगधामत्स्याःसमृद्धाःकाशिकोशलाः ॥३७॥ तत्रजातंबहुद्रव्यंधनधान्यमजाविकम् ॥ ततोवृणीष्वकैकेयियत्तत्त्वंमनसेच्छसि ॥ ३८ ॥ किमायासेनतेभीरुउत्तिष्ठोत्तिष्ठशोभने ॥ तत्त्वंमेब्रूहिकैकेयियतस्तेभयमागतम् ॥ ३९ ॥

इच्छाके विरुद्ध किसी कार्यके करनेको मेरा साहस नहीं होता ॥३४॥ यदि अपना जीव देकर भी तुम्हारा प्याराकाम करना पडेतो मैं उस कामके लिये भी प्रस्तुतहूं इसमें संशय नहीं तुम मेरा प्रेम जानती हो कि, तुमसे कितना प्रेम करताहूं इस कारण अपना मनचहीता अभिलाष कहो मुझसे शंकित मतहो ॥३५॥ मैं अपने पुण्यको स्मरण करशपथ करताहूं कि,तुम्हारी वासना पूर्ण करूँगा पृथ्वीमें जहांतक सूर्यकी किरण पहुँचतीहैं वहांतक मेरा अधिकारहै ॥३६॥ मेरे अधीनमें, द्राविड़, सिन्धु, सौराष्ट्र दक्षिणापथ; वंग, अंग, मगध, मत्स्य, काशी और धनधान्यसेभरी पुरी कोशलाहै ॥३७॥ इन स्थानोंमें धन धान्य व पशु आदि जो कुछ पदार्थ हैं सब मेरे वशमें हैं, हे सुन्दरी ! इन सबमेंसे जोकुछ तुम चाहो मुझसे कहो ॥३८॥ तुम्हें कष्ट सहने की कुछ आवश्यकता नहीं अब उठो तुम्हें

मेरी सागंध है तुम अपने भयका कारण मुझसे कहो ॥३९॥ जैसे सूर्यके उदय होनेसे अंधकारका नाश होजाता है वैसेही मैं तुम्हारे मनका क्षोभ निवारण करूंगा महाराजके यह वचन सुननेपर कैकेयी सावधान हो राजासे अति दारुणअप्रिय वचन कहने लगी ॥४०॥और अपने स्वामीको अधिक दुःख देनेकेनिमित्त बोलने की इच्छा करती हुई ॥ ४१ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा ० वा ० आदि ० अयोध्याकाण्डे भाषायां दशमः सर्गः ॥ १० ॥ अनन्तर कैकेयी कामशरसे पीडित व कामके वेगसे वशीभूत पृथ्वीके पालनेवालेराजासे यह कठोर वचन बोली ॥ १ ॥ हे देव ! न मेराकिसीने अनादरनतिरस्कार किया है मेरा जो मनोभिलाष है मैं उसको आपसे सिद्ध कराया चाहती हूं ॥ २ ॥ सो जोआप उसको सिद्ध किया चाहते हैं तो पहिले वचन दे दीजिये तब मैं अपने मनकीकामना कहूंगी ॥ ३ ॥

तत्तेव्यपनयिष्यामिनीहारमिवरश्मिवान् ॥ तथोक्तासासमाश्वस्तावक्तुकामातदप्रियम् ॥ ४० ॥ परिपीडयितुंभूयोभर्तारमुपचक्रमे ॥४१॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्येचतुर्विंशतिसा० सं० अयोध्याकांडे दशमः सर्गः ॥१०॥ तंमन्मथशरैर्विद्धंकामवेगवशानुगम् ॥ उवाचपृथिवीपालंकैकेयीदारुणंवचः ॥ १ ॥ नास्मिविप्रकृतादेवकेनचिन्नावमानिता ॥ अभिप्रायस्तुमेकश्चित्तमिच्छामित्वयाकृतम् ॥ २ ॥ प्रतिज्ञांप्रतिजानीष्वयदित्वंकर्तुमिच्छसि ॥ अथतंव्याहरिष्यामियथाभिप्रार्थितंमया ॥ ३ ॥ तामुवाचमहाराजःकैकेयीमीषदुत्स्मयः॥कामी हस्तेनसगृह्यमूर्धजेषुभुविस्थिताम् ॥ ४ ॥ अवलिप्तेनजानासित्वत्तःप्रियतरोमम ॥ मनुजोमनुजव्याघ्राद्रामादन्योनविद्यते ॥५॥ तेनाजय्येन मुख्येनराघवेणमहात्मना ॥ शपेतेजीवनार्हेणब्रूहियन्मनसेप्सितम् ॥६॥ यंमुहूर्तमपश्यंस्तुनजीवेतमहंध्रुवम् ॥ तेनरामेणकैकेयिशपेतेवचनक्रि याम् ॥७॥ आत्मनाचात्मजैश्चान्यैर्वृणेयंमनुजर्षभम् ॥ तेनरामेणकैकेयिशपेतेवचनक्रियाम् ॥ ८ ॥

तब कामके वशीभूत नरनाथने पृथ्वीसे प्रियाका मस्तक उठा अपनी गोदमें रखलिया और वे महाराज हँसते२ कैकेयीसे यह वचन बोले ॥४॥हे अपने सौभाग्यसे मोही हुई ! इस जगत्में मनुजव्याघ्र रामचन्द्रजीके सिवाय तुमसे अधिक प्यारा मुझे कोई नहीं है इस बातको क्या तुम नहीं जानतीहो॥५॥ सोउन तुमसेभी प्यारे दुलारे शत्रुनाशक रामचन्द्रजीकी सौगंध कर मैं कहताहूं कि, मैंतुम्हारा अभिलाष पूर्ण करूंगा, सो तुम अपनी मनकामना कहो ॥ ६ ॥ जिनकोएक मुहूर्त न देखनेसे प्राण घबडाजाते हैं जिनके विना मैं एक मुहूर्त नहीं जी सकता मैं उन रामचन्द्रजीकी सौगंध कर कहताहूं कि, तुम जो कहोगी सो निःसन्देह करूंगा ॥ ७ ॥ मैं अपनेसे और अपने तीनों पुत्रोंसे अधिक जिन रामचन्द्रको चाहताहूं मुझे उनकी सौगंध है कि तुम जो कहोगी वही करूंगा ॥ ८ ॥

हे भद्रे !मेरा हृदय तुम्हारे अधीन है; अतएव अपने मनकी कामना कहकर मुझे संकटसे बचाओ जो अच्छा लगे सो मांगो॥९॥ अधिक मैं क्या कहूं? मैं तुमपर जितनी प्रीति करता हूं उसका मर्म समझकर अपने मनका अभिलाषमत छिपाओ मैं अपने पुण्यकानाम लेकर सौगंध करता हूं कि,तुमजो चाहोगीसो दूंगा॥१०॥ तब रानी कैकेयी महाराज दशरथजीके यह वचन सुन अपना इष्ट कार्य सिद्ध समझ भरतके पक्षपात युक्त राजासे आनन्दमें भरकर यह दुर्वचन बोली॥११॥ राजाके वचनसे बहुत हर्षितहो अपना अभिप्राय सिद्धकरनेको अतिकठोर यमराजके समान दारुणवचन बोली ॥१२॥ हे महाराज ! तुम रामकी सौगंध और अपने पुण्यकी सौगंधखातेही ऐसी शपथको इन्द्रादितेंतीस(३३)कोटि देवता सुनें और इसकेसाक्षी रहें॥१३॥ चन्द्रमा,सूर्य, आकाश,रात, दिन,सब ग्रह गंधर्व,

भद्रेहृदयमप्येतदनुमृश्योद्धरस्वमे ॥ एतत्समीक्ष्यकैकेयिब्रूहियत्साधुमन्यसे ॥ ९ ॥ बलमात्मनिपश्यंतीनविशंकितुमर्हसि ॥ करिष्यामितव प्रीतिंसुकृतेनापितेशपे ॥१०॥ सातदर्थमनादेवीतमभिप्रायमागतम् ॥ निर्माध्यस्थ्याच्चहर्षाच्चबभाषेदुर्वचंवचः ॥ ११ ॥ तेनवाक्येनसंहृष्टात मभिप्रायमात्मनः ॥ व्याजहारमहाघोरमभ्यागतमिवांतकम् ॥ १२ ॥ यथाक्रमेणशपसेवरंममददासिच ॥ तच्छृण्वंतुत्रयस्त्रिंशद्देवाःसेंद्रपुरो गमाः ॥ १३ ॥ चंद्रादित्यौनभश्चैवग्रहारात्र्यहनीदिशः ॥ जगच्चपृथिवीचेयंसगंधर्वासराक्षसा ॥ १४ ॥ निशाचराणिभूतानिगृहेषुगृहदैवताः ॥ यानिचान्यानिभूतानिजानीयुर्भाषितंतव ॥ १५ ॥ सत्यसंधोमहातेजाधर्मज्ञःसत्यवाक्छुचिः ॥ वरंममददात्येषसर्वेशृण्वंतुदेवताः ॥ १६ ॥ इतिदेवीमहेष्वासंपरिगृह्याभिशस्यच ॥ ततःपरमुवाचेदंवरदंकाममोहितम् ॥१७॥ स्मरराजन्पुरावृत्तंतस्मिन्देवासुरेरणे ॥ तत्रत्वांच्यावयच्छ त्रुस्तवजीवितमंतरा ॥ १८ ॥ तत्रचापिमयादेवयत्त्वंसमभिरक्षितः ॥ जाग्रत्यायतमानायास्ततोमेप्रददौवरौ ॥ १९ ॥ तौदत्तौचवरौदेवनिक्षे पौमृगयाम्यहम् ॥ तवैवपृथिवीपालसकाशेरघुनंदन ॥ २० ॥

राक्षस,यह पृथ्वी ॥१४॥ रात्रिमें फिरनेवाले जितने भूत,प्रेत, पिशाच व ग्रहोंमें टिकेहुये देवता व और भी सब प्राणी राजाकीइस प्रतिज्ञाको सुनें ॥ १५ ॥ सत्यके समुद्रतेजवान् और धार्मिक सत्य बोलनेवाले पवित्र महाराज दशरथजी मुझको वर देते हैं सब देवतागण उसको सुनें ॥१६॥ राजमहिषी कैकेयी इस प्रकार प्रथम राजाको प्रशंसा आदिसे प्रसन्न कर वर देनेवाले काममोहित राजासे बोली ॥१७॥कि,हे राजन्! स्मरण करके देखो जब देवासुरसंग्राममें शम्बरासुरने तुमको प्राणोंसे न मारकर मोहित कर दिया था ॥१८॥ हे स्वामी! उस समय तुमने हमारेही यत्न और सेवासे चेतना पाईथी उससमय तुमने हमें दो वर दिये थे ॥१९॥हेदेव!वह दोनों वर मैंने तुमसे उस समय न लेकर तुम्हारेहीपास धरोहर रख दियेथे अबउनका प्रयोजन हुआहै सो हेरघुनन्दन ! हमें दीजिये॥२०॥

यदि धर्मानुसार प्रतिज्ञा करके वह वर इस समय नहीं दोगे तो तुम्हारेही सामने इस अपमानसे प्राण त्याग दूंगी ॥२१॥ हिरण जिसप्रकार मरनेके लियेजालमें बँधजाताहै वैसेही राजा रानी कैकेयीकी सुन्दरताईके वशहो वचनोंके द्वारा मृत्युफंदमें फँसे ॥ २२ ॥ इसके पीछे वरके देनेवाले व काममोहित राजासे कैकेयी बोली कि, हे देव ! तुमने मुझे जो दो वर देनेको कहाहै॥२३॥सो दो हम उन दोनों वरोंको अभी मांगती हैं आप सुनिये । रामको अभिषेककरनेके लिये जो सब सामान हुआ है ॥२४॥ इस सब अभिषेकसामग्रीके द्वारा भरतजीका अभिषेक किया जायऔर दूसरा वर जो तुमनेमुझे प्रीतियुक्त होकर दियाहै ॥२५॥ देवासुरके संग्रामके समय जो वर दिया था अब उसका समय आयाहै वहवर यह दो कि चौदह वर्ष वनमें रह कर ॥२६॥ वहां जटावल्कलधारी हो रामचन्द्रताप

तत्प्रतिश्रुत्यधर्मेणनचेद्दास्यसिमेवरम् ॥ अद्यैवहिप्रहास्यामिजीवितंत्वद्विमानिता ॥ २१ ॥ वाङ्मात्रेणतदाराजाकैकेय्यास्ववशंकृतः ॥ प्रचस्कंदविनाशायपाशंमृगइवात्मनः ॥ २२ ॥ततःपरमुवाचेदंवरदंकाममोहितम् ॥ वरौदेयौत्वयादेवतदादत्तौमहीपते॥ २३ ॥तौतावदहमद्यैववक्ष्यामिशृणुमेवचः ॥ अभिषेकसमारंभोराघवस्योपकल्पितः ॥ २४ ॥ अनेनैवाभिषेकेणभरतोमेऽभिषिच्यताम् ॥ योद्वितीयोवरोदेवदत्तः प्रीतेनमेत्वया ॥ २५ ॥ तदादेवासुरेयुद्धेतस्यकालोऽयमागतः ॥ नवपंचचवर्षाणिदंडकारण्यमाश्रितः ॥ २६ ॥ चीराजिनधरोधीरोरामोभवतुतापसः ॥ भरतोभजतामद्ययौवराज्यमकंटकम् ॥ २७ ॥ एषमेपरमःकामोदत्तमेववरंवृणे ॥ अद्यचैवहिपश्येयंप्रयांतंराघवंवने ॥ २८ ॥ सराजराजोभवसत्यसंगरःकुलंचशीलंचहिजन्मरक्षच ॥ परत्रवासेहिवदंत्यनुत्तमंतपोधनाःसत्यवचोहितंनृणाम् ॥ २९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये चतुर्विंशतिसा० सं० अयोध्याकांडे एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

सका भेष धारण करें "तापस वेष विशेष उदासी॥ चौदह वर्ष राम वनवासी" औरआजहीहमारे प्यारे दुलारेपुत्र भरतजीको निष्कंटक राज्य मिलजाय * ॥२७॥ बस यही मेरी परम कामनाहै तुमने पहले जो मुझे वर देनेको कहेथे मैं वही तुमसे माँगतीहूँ अधिक और क्या कहूं बस आजही रामचन्द्र वनको चले जाँय ॥ २८ ॥ हे महाराज ! तुम सत्यकी रक्षा करनेमें यत्नवान् हो अपने कुल शील जन्मपरिचयकीरक्षा कीजिये तपस्वी महात्मासत्य वचनकी ही इस लोक और परलोकमें प्रशंसा करते हैं कि, यही हितकारी है ॥ २९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० अयोध्याकाण्डे भाषायामेकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

* रावणकी मृत्युमें चौदह वर्ष शेष हैं शारदा कैकेईकी जिह्वापर है इससे चौदह वर्ष मांगे ।

अनन्तर महाराज दशरथ कैकेयीका महाकठोर वचन सुनकर मुहूर्त्तभरतक विलाप कर चिन्ता करनेलगे॥१॥ मैंने क्या दिनमेंही स्वप्न देखा या मेरे चित्तमें मोह हुआ, अथवा भूतके वशहो यह घटना हुई है या मनका कोई प्रकारका विकार है ॥ २ ॥ इसप्रकार चिन्ता करते २ सुखको न प्राप्त हो वह मूर्छित होगये तदनन्तर जैसे ही चेतमें आये वैसेही कैकेयीके कठोर वचनस्मरण आये और दुःखी हुये ॥ ३ ॥ शेरनीकेदेखे हुये मृगके समान राजा व्यथित होकर भ्रमके कारणको न जानकर पृथ्वीपर पडे बडे २ श्वास लेने लगे ॥४॥ मंत्रके मंडलके बलसे बँधे हुये महाविषधर सर्पकी जो दशा होती है वैसे ही "हाय ! धिक्" यह बात क्रोध करके राजाने कही ॥ ५ ॥ यह कहके शोकके मारे मूर्छित हो गये और बहुत देरके पीछे फिर मूर्च्छा जागी और फिर दुःखित

ततः श्रुत्वामहाराजःकैकेय्यादारुणंवचः ॥ चिंतामभिसमापेदेमुहूर्तंप्रतताप च ॥१॥ किंनुमेऽयंदिवास्वप्नश्चित्तमोहोपिवाऽमम ॥ अनुभूतोपसर्गोवामनसोवाप्युपद्रवः ॥ २ ॥ इतिसंचिंत्यतद्राजानाध्यगच्छत्तदासुखम् ॥ प्रतिलभ्यततःसंज्ञांकैकेयीवाक्यतापितः ॥३॥ व्यथितोविक्लवश्चैवव्याघ्रींदृष्ट्वायथामृगः ॥ असंवृतायामासीनोजगत्यांदीर्घमुच्छ्वसन् ॥४॥ मंडलेपन्नगोरुद्धोमंत्रैरिवमहाविषः ॥ अहोधिगितिसामर्षोवाचमुक्त्वानराधिपः ॥ ५ ॥ मोहमापेदिवान्भूयःशोकोपहतचेतनः ॥ चिरेणतुनृपःसंज्ञांप्रातिलभ्यसुदुःखितः ॥ ६ ॥ कैकेयीमब्रवीत्क्रुद्धो निर्दहन्निवतेजसा ॥ नृशंसेदुष्टचारित्रेकुलस्यास्यविनाशिनि ॥ ७ ॥ किंकृतंतवरामेणपापेपापंमयापिवा ॥ सदातेजननीतुल्यांवृत्तिंवहतिराघवः ॥८॥ तस्यैवंत्वमनर्थायकिंनिमित्तमिहोद्यता ॥ त्वंमयात्मविनाशायभवनंस्वंनिवेशिता ॥९॥ अविज्ञानान्नृपसुताव्यालातीक्ष्णविषायथा ॥ जीवलोकोयदासर्वोरामस्याहगुणस्तवम् ॥ १० ॥ अपराधंकमुद्दिश्यत्यक्ष्यामीष्टमहंसुतम् ॥ कौसल्यांचसुमित्रां चत्यजेयमपिवाश्रियम् ॥ ११ ॥

होगये ॥६॥ व क्रोधसे कैकेयीको भस्मही करते हुये बोले कि, रे नृशंसे ! दुष्ट चरित्रे ! कुलका नाश करनेवाली पापिनि ! ॥७॥ रामचन्द्रने तेराकौनसा बुरा किया अथवा मुझसेही क्या तेरा बुरा हुआ है विशेषतः रामचन्द्र माताके समान तेरी सेवा करते हैं ॥८॥ अतएव फिर तू उनसे ऐसा व्योहार क्योंकरतीहै क्यों उनका अहित करनेको उद्यत हुई है ? मैंने तुझे अपने प्राणखोनेहीको अपने घरमें रक्खा है ॥९॥ तेजविषवाली सांपिनीके समान अपने प्राणखोनेको मैंने तुझे अपने घरमें स्थान दिया संसारके सब एकवाक्यसेरामके गुण गातेहैं॥१०॥फिर भला मैं किस अपराधसे ऐसे सुत को त्यागन कर दूं कौशल्या, सुमित्रा व राज

लक्ष्मी को भी मैं छोड सकता हूं ॥११॥ किन्तु प्राणप्यारे नयनोंकेतारे पिताभक्त राम को किसी भांति नहीं परित्याग कर सकता. जबही रामचन्द्रजीका मुख कमल देखता हूं तभी मुझे बडी प्रीति उत्पन्न होती है॥१२॥ जब उन्हें नहीं देख पाता तब मुझे कुछ ज्ञान नहीं रहता बरन सूर्य बिना संसार व जल बिना अन्न चाहे टिकजायँ॥१३॥ परन्तु रामके बिना मेरे शरीरमें प्राण नहीं रहसकतेतिससे हे पाप निश्चये ! इस पाप की हठ को छोडदे* "कहों स्वभाव न छलमन माहीं।जीवनमोर रामबिन नाहीं"॥१४॥ मैं तेरे चरणों में शिर धरता हूं तू मुझसेप्रसन्नहो रे पापीयसि! तैंने मनमें यह क्या विचारा है इस दुर्वासना कोत्याग दे अब क्यों इस दारुण पाप की चिन्तना कर रही है ॥१५॥ अथवा तू यह जांचती है कि, राजा भरत को प्यार करते हैं वा नहीं सो इसकी परीक्षा ले इसमेंकुछ

जीवितंचात्मनारामंनत्वेवपितृवत्सलम् ॥ पराभवतिमेप्रीतिर्दृष्ट्वातनयमग्रजम् ॥ १२॥ अपश्यतस्तुमेराममष्टंभवतिचेतनम् ॥ तिष्ठेल्लोकोविना सूर्यंसस्यंवासलिलंविना ॥१३॥ नतुरामंविनादेहेतिष्ठेत्तुममजीवितम् ॥ तदलंत्यज्यतामेषनिश्चयःपापनिश्चये ॥१४॥ अपितेचरणौमूर्ध्नास्पृशा म्येषप्रसीदमे॥ किमर्थंचिंतितंपापेत्वयापरमदारुणम्॥ १५ ॥ अथजिज्ञासमेमांत्वंभरतस्यप्रियाप्रिये ॥ अस्तुयत्तत्त्वयापूर्वंव्याहृतंराघवंप्रति ॥ १६ ॥ समेज्येष्ठसुतःश्रीमान्धर्मज्येष्ठइतीवमे ॥ तत्त्वयाप्रियवादिन्यासेवार्थंकथितंभवेत् ॥ १७ ॥ तच्छ्रुत्वाशोकसंतप्तासंतापयसिमांभृशम् ॥ अविष्टासिगृहेशून्येसात्वंपरवशंगता ॥१८॥ इक्ष्वाकूणांकुलेदेविसंप्राप्तः सुमहानयम् ॥ अनयोनयसंपन्नेयत्रतेविकृतामतिः ॥ १९ ॥

रामचन्द्रका स्नेह कम नहींहो सकता चाहे भरत ही राजा हों कुछ राजा न होनेसेरामचन्द्र से हमारा प्रेम न्यून नहीं हो सकता॥१६॥अच्छा हम भरत को राजाबनाये देते हैं और श्रीमान् ज्येष्ठ पुत्र राजधर्महीं केबडे बने रहें कुछ राजकाज से प्रयोजन न रक्खे,तू उनको मेरी अपनी सेवाही करनेके अर्थ घरमें रहने दे ॥१७॥ जिन रामचन्द्रजीके यौराज्याभिषेकको सुन तुम दुःख से दुःखी हो और हमको दुःखी करतीहो सो जान पडता है कि,तुम वरके वश नहीं बरन कोई भूतप्रेतपिशाच तुझको लगा है ॥ १८ ॥ हे देवि ! तेरी जो बुद्धिमें फेर आ गया है कि, बडे के सामने छोटा राज्य करे इससे जान पडता है कि, इक्ष्वाकु कुलमें दारुण दुर्निमित्त हुआ ॥ १९ ॥

---

* रागनी गिरनारी सोरठ ताल तीन-(दशरथजी कैकेयीसे) प्रिया मन समझ मांग वरदान ॥ आस्ताई । प्रातहि राजभरतकोदैहौं यह निश्चय करजान ॥ दूसर वर मतमांग छोड हठ नाहीं तजौं मैं प्रान नारद जीवन राम हमारे सत्य सत्य यह मान ॥

यदितुझेभूत प्रेतादि कोईन लगा होता तो ऐसाकभी न कहती क्योंकि इससेप्रथमकभीतैंने अयोग्य व कुप्यारे वचनहमसेनहींकहे इससे मुझेविश्वासनहीं आता कि, तुमको भूतादि नहीं लगा॥२०॥ हे सुन्दरी! कलतक तू बहुधा कहा करती थी कि भरतजीके समान मुझे रामचंद्र प्यारे हैं ॥ २१ ॥हेदेवि ! उन्हीं धर्मात्मायशस्वी रामको चौदह वर्षकेलिये वनमें भेजना तुझे कैसा अच्छा लगता है ॥२२॥ धर्मात्मा व अत्यन्त सुकुमार रामचन्द्रका दारुण वनवास तुम्हें कैसे रुचा ॥२३॥हे सुंदरनेत्र वाली ! फिर लोकाभिराम रामचन्द्रका वनगमन जो कि, सदैव तुम्हारी शुश्रूषा किया करतेहैं कैसे भाता है॥२४॥ विशेष करके भरतकी अपेक्षा रामचन्द्र तुम्हारी अधिक सेवा किया करते हैं,राम से अधिक तुम्हारेप्रति भरत भक्ति करते हैं यहतो नहीं ज्ञात होता ॥२५॥मैं तुझसे पूछता हूं कि,रामके सिवाय कौन तुम्हारी

नहिकिंचिदयुक्तंवाविप्रियंवापुराममम ॥ अकरोस्त्वंविशालाक्षितेननश्रद्दधामिते ॥२०॥ ननुतेराघवस्तुल्योभरतेनमहात्मना ॥ बहुशोहिस्मबाले त्वंकथाः कथयसेमम॥२१॥ तस्यधर्मात्मनोदेविवनेवासंयशस्विनः ॥ कथंरोचयसेभीरुनववर्षाणिपंचच ॥२२॥ अत्यंतसुकुमारस्यतस्यधर्मेकृतात्मनः॥ कथंरोचयसेवासमरण्येभृशदारुणे ॥२३॥ रोचयस्यभिरामस्यरामस्यशुभलोचने ॥ तवशुश्रूषमाणस्यकिमर्थंविप्रवासनम् ॥ २४ ॥ रामोहिभरताद्भूयस्तवशुश्रूषतेसदा॥ विशेषंत्वयितस्मात्तुभरतस्यनलक्षये ॥ २५ ॥ शुश्रूषांगौरवंचैवप्रमाणंवचनक्रियाम् ॥ कस्तुभूयस्तरंकुर्यादन्यत्रपुरुषर्षभात् ॥ २६ ॥ बहूनांस्त्रीसहस्राणांबहूनाचोपजीविनाम् ॥ परिवादोपवादोवाराघवेनोपपद्यते ॥२७॥ सांत्वयन्सर्वभूतानिरामःशुद्धेनचेतसा ॥ गृह्णातिमनुजव्याघ्रः प्रियैर्विषयवासिनः ॥२८॥ सत्त्वेनलोकाञ्जयतिद्विजान्दानेनराघवः ॥ गुरूञ्छुश्रूषयावीरोधनुषायुधिशात्रवान् ॥ २९ ॥ सत्यंदानंतपस्त्यागोमित्रताशौचमार्जवम् ॥ विद्याचगुरुशुश्रूषाध्रुवाण्येतानिराघवे ॥३०॥ तस्मिन्नार्जवसंपन्नेदेवीदेवोपमेकथम् ॥पापमाशंससेरामेमहर्षिसमतेजसि ॥३१॥ नस्मराम्यप्रियंवाक्यंलोकस्यप्रियवादिनः ॥ सकथंत्वत्कृतेरामंवक्ष्यामिप्रियमप्रियम्॥३२॥

अधिकतर सेवा गौरव प्रणामव तुम्हारे वचनका पालन करता है ॥२६॥मेरे बहुत और सहस्रों नौकर चाकर हैं परंतु किसी के मुखसे रामचन्द्रका अपयश वा निंदा नहीं सुनी जाती॥२७॥रामचन्द्र शुद्ध अन्तःकरणसे और प्रियव्यवहारसेसदा अपनेदेशवासियोंको सन्तुष्ट रख अपने वशमें रखते हैं ॥२८॥ हमारे प्राणपुत्र रामने सत्य गुणसे सब लोगोंके दानके प्रभावसे द्विजातियोंको,सेवा शुश्रूषा से गुरुजनोंको और धनुष विद्या से शत्रुओंको जीत लिया है॥२९॥ सत्य,दान, तपस्या,मित्रता पवित्रता, विद्या और गुरुजनोंकी सेवाप्रभृति सद्गुण निश्चय२रामचन्द्रमें हैं॥३०॥हे देवी !तुम क्यों सीधे स्वभाववाले महर्षियों के समान देवता के समान तेजवाले रामचन्द्रजीको वनवास का क्लेश देना चाहती हो॥३१॥तूयह तो बताकिप्यारी वार्ता कहनाही जिनका अभ्यास है,मैं तेरे कहने से किस प्रकार उन प्राणों,के

प्यारे से यह कठोर कुप्यारी वार्त्ता कहूंगा ॥३२॥ जो रामचन्द्र सहनशीलता तप, त्याग, सत्यवादिता, कृतज्ञता, धार्मिकता व अहिंसा प्रभृतिसमस्त सद्गुणोंसे विराजमानहैं बिना उनके मेरीक्यागति होगी कह तो सही ॥३३॥ हे कैकेयी ! मेरी वृद्धावस्था उपस्थित है, तपस्वीके समान शांत हूं और अन्तसमय निकटहै मैं इस समय दीन भावसे तुझसे कहताहूं कि, तू मेरे ऊपर कृपा कर ॥३४॥ समुद्रसेघिरीहुई पृथ्वीके मध्यमें जोकुछहै, सब तुझे दे दूँगा तू मुझे मृत्युके मुखमें मत डाल अर्थात् मत मार ॥३५॥ हे कैकेयी ! मैं तेरे पैरपडताहूँ और हाथ जोडकर कहताहूं कि तू रामचन्द्रको बचाले, देख कहीं ऐसानहोकि, निर्दोष रामको वनमें भेजकर मुझे अधर्ममें लीन होना पड़े ॥३६॥ इसप्रकारदुःखकरते व रोते महाराज दशरथजीमूर्छितहोगये, उनकासबशरीरघूमनेलगा॥३७॥शोकसेव्याकुल होगये वह

क्षमायस्मिंस्तपस्त्यागः सत्यंधर्मः कृतज्ञता ॥ अप्यहिंसाचभूतानांतमृतेकागतिर्मम ॥३३॥ ममवृद्धस्यकैकेयिगतांतस्यतपस्विनम् ॥ दीनंलालप्य मानस्यकारुण्यंकर्तुमर्हसि ॥३४॥ पृथिव्यांसागरांतायांयत्किंचिदधिगम्यते ॥ तत्सर्वंतवदास्यामिमाचत्वंमृत्युमाविश ॥३५॥ अंजलिंकुर्मि कैकेयिपादौचापिस्पृशामिते ॥ शरणंभवरामस्यमाधर्मोमामिहस्पृशेत् ॥३६॥ इतिदुःखाभिसंतप्तंविलपंतमचेतनम् ॥ घूर्णमानंमहाराजंशोकेन समभिप्लुतम् ॥३७॥ पारंशोकार्णवस्याशुप्रलपंतंपुनःपुनः ॥ प्रत्युवाचाथकैकेयीरौद्राद्रौद्रतरंवचः ॥ ३८ ॥ यदिदत्त्वावरौराजन्पुनःप्रत्यनुत प्यसे ॥ धार्मिकत्वंकथंवीरपृथिव्यांकथयिष्यसि ॥३९॥ यदासमेताबहवस्त्वयाराजर्षयःसह ॥ कथयिष्यंतिधर्मज्ञतत्रकिंप्रतिवक्ष्यसि ॥४०॥ यस्याःप्रसादेजीवामियाचमामभ्यपालयत् ॥ तस्याःकृतामयामिथ्याकैकेय्याइतिवक्ष्यसि ॥४१॥ किल्बिषंत्वंनरेंद्राणांकरिष्यसिनराधिप ॥ योदत्त्वावरमद्यैवपुनरन्यानिभाषसे ॥४२॥ शैब्यःश्येनकपोतीयेस्वमांसंपक्षिणेददौ ॥ अलर्कश्चक्षुषीदत्त्वाजगामगतिमुत्तमाम् ॥ ४३ ॥

इस दुःखसमुद्रसे पार होनेकेलिए वारम्वारजताने लगे, परन्तु महादुष्टा कैकेयी राजाकी ऐसी अवस्था देखकरभी अतिनिर्दयी वचन बोली ॥३८॥ हे राजन् ! तुम वर देकर यदि अब उनके लिये पछताते और कातर होतेहो तब हे वीर ! पृथ्वीपर तुम्हें कौन धार्मिक कहेगा ? ॥३९॥ जब अनेक राजर्षिगण तुम्हारे निकट उप स्थित होकर इस वरदानका वृत्तांत जानना चाहेंगे तब हे धर्मज्ञ ! उनकी बातका क्या उत्तर दोगे ? ॥४०॥ क्या यही कहोगे कि, जिसके प्रसादसे देवासुर संग्राममें मेरा प्राण बचा व जिसने बहुत सेवा टहल की उसही कैकेयीको वचन देकर वरदान न किया ॥४१॥ हे नराधिप ! तुम वचन देकर अब पलटते हो तो तुमसे इस वंशका कलंक हटाया जायगा ? ॥ ४२ ॥ देखो महाराज ❀ शैब्यनेसत्यसे बँधकर बाज को अपना मांसदे कबूतरकी रक्षाकी. राजा अलर्कने अपने नेत्र

❀ राजा शिवि जब ९२ यज्ञ कर चुके और आगे फिर आरंभ किया तब इन्द्रको भय हुआ कि, अब यह आठ यज्ञ कर मेरा पद लेलेंगे यह शोच अग्निको कपोत और आपबाजबन उसके मारनेको चला

निकालकर एक अंधे ब्राह्मणको देदिये जिससे उनकी गति होगई थी ॥४३॥ विवेचना करके देखो कि, वचनबद्ध होनेके कारण समुद्रभीअपना जल किनारेकी भूमिमें नहीं लाता, अतएव तुम पहले दियेहुयेवरोंको स्मरण करके झूठकेवश मतहूजिये॥४४॥हे दुर्मते ! मैं सब समझ गई कि. तुमने धर्मकाअनादरकरकेरामको राज्य सौंप कौशल्याके सहित विहार करनेकी इच्छा की है ॥४५॥ धर्मही हो वा अधर्मही हो व सत्य मिथ्या जो कुछ भी हो जब तुमने मुझे देनेको कहा तब देनाही होगा उसका उलट पुलट किसी भांति नहीं हो सकता ॥४६॥ यदितुम रामको राज्य देहीदोगे, तो तुम्हारे सामनेही बहुतसा हलाहलपीकर मैं प्राणत्याग

सागरःसमयंकृत्वानवेलामतिवर्तते ॥ समयंमाऽनृतंकार्षीःपूर्ववृत्तमनुस्मरन् ॥४४॥सत्वंधर्मंपरित्यज्यरामंराज्येऽभिषिच्यच ॥ सहकौसल्य यानित्यंरंतुमिच्छसिदुर्मते ॥ ४५ ॥ भवत्वधर्मोधर्मोवासत्यंवायदिवानृतम् ॥ यत्त्वयासंश्रुतंमह्यंतस्यनास्तिव्यतिक्रमः ॥ ४६ ॥ अहंहि विषमद्यैवपीत्वाबहुतवाग्रतः ॥ पश्यतस्तेमरिष्यामिरामोयद्यभिषिच्यते ॥४७॥ एकाहमपिपश्येयंयद्यहंराममातरम् ॥ अंजलिंप्रतिगृह्णंतींश्रे योननुमृतिर्मम ॥ ४८ ॥ भरतेनात्मनाचाहंशपेतेमनुजाधिप ॥ यथानान्येनतुष्येयमृतेरामविवास नात् ॥ ४९ ॥ एतावदुक्त्वावचनंकैकेयी विररामह ॥ विलपंतंचराजानंनप्रतिव्याजहारसा ॥ ५० ॥ कृत्वातुराजाकैकेय्यावाक्यंपरमशोभनम् ॥ रामस्यचवनेवासमैश्वर्यंभरतस्यच ॥५१॥नाभ्यभाषतकैकेयींमुहूर्तंव्याकुलेंद्रियः ॥ प्रैक्षतानिमिषोदेवींप्रियामाप्रियवादिनीम् ॥ ५२ ॥

करूंगी ॥४७॥ कारणकि, जो एकदिवसभी कौशल्याको मैंने अभिषेकके कारण प्रफुल्लमन हो तुम्हारा हाथ पकडे देखा तो निश्चय मेरी मृत्यु आजायगी, फिर मैं मृत्युसे क्यों भय करूं ? ॥४८॥हेराजा ! मैं तुम्हारी और भरतकी सौगन्धखाकर कहती हूं कि, रामको वन भिजवानेके सिवाय किसी प्रकार मैं सुखी नहूंगी॥४९॥ कैकेयी यह बात कहकर चुप होगई उसने उससमय राजाके विलापकलापपर कुछ ध्यान नहीं किया ॥५०॥ महाराज दशरथजीनेभी कैकेयीके वचन सुने किअब सत्यही इसे रामचन्द्रका वन गमन और भरतका राज्य प्यारा है ॥ ५१ ॥ इससे दो घडीतक सब इन्द्रियोंमें व्याकुल हो मौन रहे (कुछ न बोले) अप्रिय

तब वह भागा हुआ राजाकी शरणमें गया राजाने उसका वचन सुनबाजको देख यज्ञशालामें अपनीगोदीमें छिपा लिया और बाजको निवारण किया बाज बोला महाराज! आप यह क्या अनर्थ करतेहैं कि मेरा आहार छीन लिया मैं भूखसे शरीर को छोड आपको पापका भागी करूंगा तब राजाने कहा इसे तो नहीं देंगे इसके पलटेमें जो मांगो सो दें बहुत झगडेके उपरान्त यह बात ठहरीकि, राजा अपने शरीरका मांस कबूतर की बराबर तौल दे तो मैं कबूतर को छोड़ दूं इस बातसे राजा प्रसन्न हो तुलामें एक ओर कबूतरको बैठाय दूसरी ओर अपने शरीर का मांस काटके चढाने लगे जब सब शरीरका मांस काट काटके चढाय दिया और वह बराबर न हुआ तो जभी राजा गलेपर खड्ग चलानेको हुआ तौ त्योंही विष्णुने अपना दर्शन दे कृतार्थ कर मुक्ति दी ।

कहनेवाली प्यारी स्त्रीको एकटक देखते रहे ॥५२॥ वह प्राणप्रिया कैकेयीके मुखसे वज्रके समान अप्रिय वचन सुनकर दुःख व शोकसे राजा अधीर होगये ॥५३॥ उस समय राजा दशरथजीकैकेयीके मनका भाव समझ और उसकी शपथको स्मरण कर "हा रामचन्द्र !" यह कह और लंबे श्वास ले२कर जड कटे हुये पेडकी नाईं पृथ्वीमें गिरपडे ॥५४॥ उस समय राजा नष्टचित्तवाले मतवालेकी नाईं, बिकार प्राप्त हुये रोगीकी नाईं, मंत्रसे बँधे निस्तेजविषधरसर्पकी नाईं जान पडने लगे ॥५५॥ फिर राजाने दीन व आतुर वचनसे कैकेयीसे कहा कि, तुझे अनर्थकर इस विषयको किसने अर्थकर बताया है ? ॥५६॥ भूतसे पकडे हुये व्यक्तिके समान मुझसे ऐसा कहते तुझे लाज नहीं आती ? मैं अगाडी कभी तेरा ऐसा स्वभाव नहीं जानताथा कि, तू ऐसी हठीली है ॥५७॥यह

तांहिवज्रसमांवाचमाकर्ण्यहृदयाप्रियाम् ॥ दुःखशोकमयींश्रुत्वाराजानसुखितोऽभवत् ॥५३॥ सदेव्याव्यवसायंचघोरंचशपथंकृतम् ॥ ध्यात्वा रामेऽतिनिःश्वस्यच्छिन्नस्तरुरिवापतत् ॥५४॥ नष्टचित्तोयथोन्मत्तोविपरीतोयथातुरः ॥ हृततेजायथासर्पोबभूवजगतीपतिः ॥५५॥ दीनयातु रयावाचाइतिहोवाचकैकयीम् ॥ अनर्थमिममर्थाभंकेनत्वमुपदेशिता ॥५६॥ भूतोपहतचित्तेवब्रुवंतीमांनलज्जसे ॥ शीलंव्यसनमेतत्तेनाभिजाना म्यहंपुरा ॥५७॥ बालायास्तत्त्विदानींतेलक्षयेविपरीतवत् ॥ कुतोवातेभयंजातंयात्वमेवंविधंवरम् ॥५८॥ राष्ट्रेभरतमासीनंवृणीषेराघवंवने ॥ विरमैतेनभावेनत्वमेतेनानृतेनच ॥५९॥ यदिभर्तुप्रियंकार्यंलोकस्यभरतस्यच ॥ नृशंसेपापसंकल्पेक्षुद्रेदुष्कृतकारिणि ॥६०॥ किन्नुदुःखम लीकंवामयिरामेचपश्यसि ॥ नकथंचिदृतेरामाद्भरतोराज्यमावसेत् ॥ ६१ ॥ रामादपिहितंमन्येधर्मतोबलवत्तरम् ॥ कथंवक्ष्यसिरामस्यवनं गच्छेतिभाषिते ॥ ६२ ॥

मुझको अभीजान पडा कि,तेरा बालस्वभाव पहलेसे अब विपरीत होगया तैंने किससे भय पाया जो तू अब ऐसा वरमांगतीहै ॥५८॥ कि भरत राजा बनकर राज्यभोगें व रामचन्द्र बनको जायँ। इसमें कुछ संशय नहीं; यह बाततेरे लिये अच्छी न होगी इस कामकेकरनेसे तू मुँह मोड और यह हठछोड, मैंजानताहूँ कि तूने झुठाई की ॥५९॥ रे नृशंसे ! पापसंकल्प करनेवाली! क्षुद्र प्रकृतिवाली कुकर्म करनेवाली ! यदि प्रजाका, भरतका और मेरे प्रियकार्य करना चाहती है तो तू इस दुष्ट वासनाको छोडदे॥६०॥ मैंने वा रामचन्द्रने ऐसा तेराक्या अपराध किया है,जो तू ऐसा कहतीहै। यह भी जानरख कि रामको छोड भरतं किस प्रकार राज्य पासकते हैं॥६१॥ मैं रामसेभी अधिक भरतको धार्मिक जानताहूं सो वह रामचन्द्रको छोड आप राजाहोंगे, ऐसा तो मुझे नहीं प्रतीत होता

फिर वन जानेको कैसे कहूंगा॥६२॥ "हे वत्स! तुम वनको जाओ" यह वचन कहतेही जबराहुसे ग्रसेहुए चन्द्रमाकी नाईं रामचन्द्रकामुख मलिन होजायगातब मैं उसे कैसे देख सकूंगा, क्योंकि मैंने अभी सबमित्र बंधुबांधवोंके सहित उनकेअभिषेकका निश्चय किया है॥६३॥शत्रुओंके द्वारा हारी हुई सेनाके समान मैं किस प्रकार उनसे इनके विपरीत कहूंगा; अनेक देशोंके आयेहुए राजा यह बात जानकर मुझे क्या कहेंगे ?॥ ६४ ॥ वह निश्चयही कहेंगे कि, इक्ष्वाकुवंश-धर अतिशय बालकबुद्धि हैं इन्होंने इतने दिनतक किसप्रकार प्रजापालन किया भला जब शास्त्रके जाननेवाले वड़े वृद्ध गुणी प्राचीन बातें सुने हुये ॥ ६५ ॥ आकर यह पूछेंगे किराम कहांगये, तब मैं उनको क्याउत्तरदूंगा, यहीकि कैकेयीने मुझेबड़ा क्लेशदिया इससे मैंने रामको घरसे निकाल दिया?॥६६॥ यदि मैं यह सत्यवचनभी कहूंगा तोभीयहवचनअसत्यही समझेजायँगे भला रामचन्द्रको वनवास देनेपर कौशल्या मुझसे क्या कहेगी ॥ ६७ ॥ और मैं ही ऐसा अनिष्ट

मुखवर्णंविवर्णंतुयथैवेंदुमुपप्लुतम् ॥ तांतुमेसुकृतांबुद्धिंसुहृद्भिःसहनिश्चिताम् ॥६३॥ कथंद्रक्ष्याम्यपावृत्तांपरैरिवहतांचमूम् ॥ किमवक्ष्यंति राजानोनानादिग्भ्यःसमागताः ॥६४॥ बालोबतायमैक्ष्वाकश्चिरंराज्यमकारयत् ॥ यदाहिबहवोवृद्धागुणवंतोबहुश्रुताः ॥ ६५ ॥ परिप्रक्ष्यंति काकुत्स्थंवक्ष्यामीहकथंतदा॥ कैकेय्याक्लिश्यमानेनपुत्रःप्रवाजितोमया ॥६६॥ यदिसत्यंब्रवीम्येतत्तदसत्यंभविष्यति ॥ किमांवक्ष्यतिकौस ल्याराघवेवनमास्थिते ॥६७॥ किंचैनांप्रतिवक्ष्यामिकृत्वाविप्रियमीदृशम् ॥ यदायदाचकौसल्यादासीवचसखीवच ॥६८॥ भार्यावद्भगिनी वच्चमातृवच्चोपतिष्ठति ॥ सततंप्रियकामामेप्रियपुत्राप्रियंवदा ॥६९॥ नमयासत्कृतादेवीसत्कारार्हाकृतेतव ॥ इदानींतत्तपतिमांयन्मयासुकृ तंत्वयि ॥७०॥ अपथ्यव्यंजनोपेतंभुक्तमन्नमिवातुरम् ॥विप्रकारंचरामस्यसंप्रयाणंवनस्यच॥७१॥सुमित्राप्रेक्ष्यवैभीताकथंमेविश्वसिष्यति॥ कृपणंबतवैदेहीश्रोष्यतिद्वयमप्रियम् ॥ ७२ ॥

कार्य करके क्या कहके उसे समझाऊंगा?देखो जब२ अपने२समयपर कौशल्या सेवा करनेमें दासीके समान, हँसी खेलमें सखीके समान ॥ ६८ ॥ धर्म करनेमें स्त्रीके समान,शुभकामनामें बहनके समान, अच्छा और मीठा भोजन करनेमें माताकेसमान मेरे प्रति विशेष अनुरक्त है जो प्रियवादिनी और शुभ चाहनेवाली है व उसके पुत्रभी मुझको सबसे अधिक प्रिय हैं॥६९॥हे देवी! तेरेही कारण सदा सत्कार करनेयोग्य उस कौशल्याका उचित आदर सम्मान नहीं करसकता. पहले जोतुमसे यहसुकृत मैंने किया, अब उसका भलीभांतिफलमिला॥७०॥ रोगीके लिये वह अन्न व्यंजन जो उसको न खाना चाहिये वहखाय औरफिरवह कुपथ्य उसको पीडादायक हो वैसेही मुझे रामचन्द्रका वन जाना है॥७१॥ रामके वन जानेका वृत्तांत सुनकर देवी सुमित्राभी मेरा विश्वास नहीं करेगी!हाय!

कैसी चिन्ताकी बात है कि–जानकी रामका वन जान और मेरी मृत्यु यह दो अशुभ संवाद शीघ्रही सुनेगी ॥ ७२ ॥ मेरे मर जानेपर जानकी मेरे प्राणोंको सोचती हुई व रामचन्द्र वनगमन सुन अपना काल महादुःखसे वितावेगी ॥७३॥ जैसे कि, हिमवान् पर्वतपर किन्नरसे विछुडीहुई किन्नरी शोक करती हुई समय वितावे व मैंभी रामचन्द्रको महावन जाते हुये ॥ ७४ ॥ और मैथिलीको रोती हुई देख बहुत घडीका जीना नहीं चाहता ! तुम उस समय विधवाहोकर पुत्रोंके सहित राज्य भोगना ॥७५॥ मनुष्य जिस प्रकार मदिराकी मोहिनी शक्तिसे मोहित होकर फिरउसको विषवत् समझते हैं वैसे ही मैं अबतक तुझे सती समझकर तेरे साथ रहा परंतु अब समझमें आया कि तू व्यवहार करनेमें घोर असतीहै॥ ७६ ॥ तैंने अबतक वृथा झूठी बातें कह कह मुझको समझाया जिस प्रकार गीतशब्दसे व्याध मृगका मनहरणकर उसको मारडालताहैवैसेही तैंने मुझेकिया॥७७॥अधिक क्या कहूं? अबसेश्रेष्ठपुरुष मुझे बुराऔर पुत्रका बेचनेवाला

मांचपंचत्वमापन्नंरामंचवनमास्थितम् ॥ वैदेहीबतमेप्राणाञ्छोचंतीक्षपयिष्यति॥७३॥ हीनाहिमवतःपार्श्वेकिन्नरेणेवकिन्नरी॥नहिराममहंदृष्ट्वा प्रवसंतंमहावने॥७४॥चिरंजीवितुमाशंसेरुदंतींचापिमैथिलीम्॥सानूनंविधवाराज्यंसपुत्राकारयिष्यसि ॥७५॥ (नहिप्रवाजितेरामेदेविजीवितुमुत्सहे ॥) सतींत्वामहमत्यंतंव्यवस्याम्यसतींसतीम् ॥ रूपिणींविषसंयुक्तांपीत्वेवमदिरांनरः ॥७६॥अनृतैर्बतमांसांत्वैःसांत्वयंतीस्मभाषसे गीतशब्देनसंरुद्धचलुब्धोमृगमिवावधीः ॥७७॥ अनार्यइतिमामार्याःपुत्रविक्रायकंध्रुवम् ॥ विकरिष्यंतिरथ्यासुसुरापंब्राह्मणंयथा॥७८॥अहोदुःखमहोकृच्छ्रंयत्रवाचःक्षमेतव॥ दुःखमेवंधंविप्राप्तंपुराकृतमिवाशुभम् ॥७९॥चिरंखलुमयापापेत्वंपापेनाभिरक्षिता ॥अज्ञानादुपसंपन्नारज्जुरुद्बंधनीयथा ॥८०॥रममाणस्त्वयासार्धंमृत्युंत्वांनाभिलक्षये ॥बालोरहसिहस्तेनकृष्णसर्पमिवास्पृशम्॥८१॥तंतुमांजीवलोकोऽयंनूनमाक्रोष्टुमर्हति॥ मयाह्यपितृकःपुत्रःसमहात्मादुरात्मना॥८२॥बालिशोबतकामात्माराजादशरथोभृशम्॥स्त्रीकृतेयःप्रियंपुत्रंवनंप्रस्थापयिष्यति॥८३॥

कहते फिरेंगे ! मार्गमें शराब पीनेवाले ब्राह्मणको देख मनुष्य जिसप्रकार उसकी निन्दाकरतेहैं वहीबनाव अबमेरे भाग्यमें बदा है॥७८॥ हाय क्या कष्ट! क्या दुःखहै ! कि वर देकर मैं तेरे ऐसे कठोर वचन सुनताहूँ ! मैंने समझा कि पहले जन्मके किये अशुभ फलकी नाईं मेरेभाग्यमें यह बडा दुःख उतरा है॥७९॥ रे पापिनी ! मुझ पापीने अबतक तुझे पालनकरके अज्ञानी जिसप्रकार अपने गलेमें रस्सी बांध रक्खे कि झटका लगतेही जिस्से मृत्यु होजाय॥८०॥ वैसेहीमैंने तेरे साथ विहार करके अपनासबकुछ नाशकियाकोई बालक जिस भांति एकान्तमें काले सर्पको खेलनेके लिये उठाले, वैसेहीमैंने मोहके वशहो तुझकोमृत्युका रूप नहीं जाना ॥८१॥ अच्छा है जो मुझ दुष्टात्माकी निन्दा सब संसार करे तो भी अनुचित नहीं क्योंकिमैंनेअपने जीतेजी ऐसेगुणवान् पुत्रको पैतृकराज्यके अधिकारसे छुडाया ॥ ८२ ॥ अबसे मनुष्य राजादशरथ अति मूर्ख और बडे कामीहैं, जो स्त्रीके कहनेसेबिना अपराध प्यारेपुत्रको वनवास देदिये ऐसाकहकर

मेरी निन्दा किया करेंगे ॥ ८३॥ राम बालकपनहीसे वेदके पढने, ब्रह्मचर्य व गुरुकी सेवा करनेसे दुर्बलशरीर हुएहैं। अब उनको सुख भोगकरनेके समय फिर वनवासका दुःख झेलना पडेगा ॥ ८४ ॥ मैं भलीभांति जानताहूं कि जब "वनको जाओ" ऐसा रामचन्द्रजीसे कहा जायगा तो वह "बहुत अच्छा" के सिवाय दूसरी बात नहीं कहेंगे, क्योंकि उनका स्वभाव बातके उलट देनेका नहींहै ॥ ८५ ॥ यदि हमारे प्यारे पुत्र मेरे वचन न मानकर वनको न जायँ तो मेरे मंगलकी बातहै परन्तु वह लडैतेलाल काहको ऐसा करेंगे ॥८६॥ रामके वन चले जानेपर मैं सबके निकट निन्दित हूंगा सब मुझे धिक्कार देंगे तब क्षमाके अयोग्य मौत हमें यमपुरको ले ही जायगी ॥ ८७ ॥ नरश्रेष्ठ रामचन्द्रके वन चले जाने और मेरा मरण हो जानेपर न जाने हमारे भाई बंधुओंपर क्या विपद

वेदैश्चब्रह्मचर्यैश्चगुरुभिश्चोपकर्शितः ॥ भोगकालेमहत्कृच्छ्रंपुनरेवप्रपत्स्यते ॥८४॥ नालंद्वितीयंवचनंपुत्रोमांप्रतिभाषितुम् ॥सवनंप्रव्रजेत्युक्तो बाढमित्येववक्ष्यति॥८५॥ यदिमेराघवःकुर्याद्वनंगच्छेतिचोदितः ॥ प्रतिकूलंप्रियंमेस्यान्नतुवत्सःकरिष्यति ॥ ८६ ॥ (शुद्धभावोहिभावंमेन तुज्ञास्यतिराघवः॥सवनंप्रव्रजेत्युक्तोबाढमित्येववक्ष्यति॥१॥) राघवेहिवनंप्राप्तेसर्वलोकस्यधिक्कृतम् ॥मृत्युरक्षमणीयंमांनयिष्यतियमक्षयम् ॥८७॥मृतेमयिगतेरामेवनंमनुजपुंगवे॥इष्टेममजनेशेषेकिंपापंप्रतिपत्स्यसे॥८८॥ कौसल्यामांचरामंचपुत्रौचयदिहास्यति॥दुःखान्यसहतीदेवी मामेवानुगमिष्यति ॥ ८९ ॥ कौसल्यांचसुमित्रांचमांचपुत्रैस्त्रिभिःसह ॥ प्रक्षिप्यनरकेसात्वंकैकेयीसुखिताभव ॥ ९० ॥ मयारामेणच त्यक्तंशाश्वतंसत्कृतंगुणैः ॥ इक्ष्वाकुकुलमक्षोभ्यमाकुलंपालयिष्यसि ॥९१॥ प्रियंचेद्भरतस्यैतद्रामप्रव्राजनंभवेत् ॥मास्ममेभरतःकार्षीत्प्रेत कृत्यंगतायुषः॥९२॥(हंतानार्येममामित्रेसकामाभवकैकयि॥)मृतेमयिगतेरामेवनंपुरुषपुंगवे॥सेदानींविधवाराज्यंसपुत्राकारयिष्यसि ॥९३॥

डालेगी॥८८॥ यदि देवी कौशल्या राम और मुझे न पावेगी, यदि सुमित्रा लक्ष्मणशत्रुघ्नको न देखेगी क्योंकि लक्ष्मण अवश्य रामके साथ वनको जायेंगे और शत्रुघ्न भरतके अनुगामी ठहरे; तब यह दोनों पतिव्रता नारियें सहनके अयोग्य शोकको न सहकर मर जायँगी ॥ ८९ ॥ हे कैकेयी ! कौशल्या, सुमित्रा मुझे राम, लक्ष्मण और शत्रुघ्नके सहित दुःखमें ढकेलकर तू सुख भोगकर॥९०॥ जब मैं और रामचन्द्र दोनों चले जायँगे उस समय इस अचल इक्ष्वाकुकुलको तू पालन करना तब इसका गुण गौरव कहां तक बढकर रक्षितहो प्रकाशितरहेगा इसको मैं कह नहीं सकता॥९१॥ यदि रामका वनवास भरतको प्रिय होतोमेरी मृत्युके पीछे वह मेरी प्रेतक्रिया शरीरका अग्निसंस्कार न करें ॥ ९२ ॥ मेरा प्राण छूटने और पुरुषश्रेष्ठ रामके वन चले जाने उपरान्त तू विधवा होकर अपने पुत्र

भरत के साथ राज्य पालन करना ॥९३॥ हे कैकेयी ! तुझको न जानकर जोमैंने अपने घरमें स्थानदिया मेरी खोटी प्रारब्धसे तू मेरे घरआई इसी कारण मेरी संसारमें अतुल अकीर्ति व सज्जनोंमें अनादर हुआ, मैंअधिक क्या कहूं मुझे घोर पातकी कहकर सबजग मेरी निन्दा करेगा॥९४॥ हाय ! जो रामचन्द्र, रथ घोडे हाथी पर बार२ चढकर राजमार्ग में भ्रमण करतेथे, वह पैदल किस प्रकार महावनमें घूमेंगे ॥९५॥ जिन रामचन्द्रके भोजन समय कुण्डलधारी रसोइये "हम पहले अच्छा भोजन पान बनातेहैं हम बनाते हैं" यह कहकर शीघ्रताकरते थे॥९६॥ वे रामचन्द्र तीखे कडुवे कषैले फलमूल भोजन करके किस प्रकार दिन बितावेंगे ॥९७॥ बडे २ मोलकी पोशाकोंसे जिनका शरीर सुशोभित होता जो सब प्रकारके सुख भोगतेथे वह इस समय किस प्रकार गेरुवा वस्त्र पहिरे

त्वंराजपुत्रिदैवेनन्यवसोममवेश्मनि ॥ अकीर्तिश्चातुलालोकेध्रुवः परिभवश्चमे ॥९४॥ सर्वभूतेषुचावज्ञायथापापकृतस्तथा ॥ कथंरथैर्विभुर्यात्वागजाश्वैश्चमुहुर्मुहुः ॥ पद्भ्यांरामोमहारण्येवत्सोमेविचरिष्यति ॥ ९५ ॥ यस्यचाहारसमयेसूदाःकुंडलधारिणः ॥ अहंपूर्वाः पचंतिस्मप्रसन्नाःपानभोजनम् ॥ ९६ ॥ सकथंनुकषायाणितिक्तानिकटुकानिच ॥ भक्षयन्वन्यमाहारंसुतोमेवर्तयिष्यति ॥९७॥ महार्हवस्त्रसंबद्धोभूत्वाचिरसुखोचितः ॥ काषायपरिधानस्तुकथंरामोभविष्यति॥९८॥ कस्येदंदारुणंवाक्यमेवंविधमपीरितम्॥रामस्यारण्यगमनं भरतस्याभिषेचनम् ॥९९॥ धिगस्तुयोषितोनामशठाःस्वार्थपरायणाः॥ नब्रवीमिस्त्रियःसर्वाभरतस्यैवमातरम् ॥१००॥ अनर्थभावेऽर्थपरेनृशंसे ममानुतापायनिवेशितासि ॥किमप्रियंपश्यसिमन्निमित्तंहि तानुकारिण्यथवापिरामे ॥१०१॥परित्यजेयुःपितरोऽपिपुत्रान्भार्याः पतींश्चापिकृतानुरागाः॥ कृत्स्नंहिसर्वंकुपितंजगत्स्याद्दृष्ट्वैवरामैव्यसनेनिमग्नम् ॥ १०२ ॥

वनमें भूमिपर सोवेंगे ? ॥९८॥ मैं तुझसे यह पूछताहूं कि रामके वन जाने और भरतके राज्य देनेका यह दारुण उपदेश किसने तुझको सिखाया ? ॥९९॥ मैं समझ गया कि स्त्रीजाति अतिशय शठ और अपने स्वार्थकी चाहनेवाली होतीहै; नहीं २ मैं सब स्त्रियोंको ऐसानहीं कहता केवल भरतकी जननेवाली तुझकोही ऐसा कहताहूं ॥ १०० ॥ रे अनर्थदायिके ! रे स्वार्थकी चाहनेवाली ! क्या विधाताने मेरे दुःख देनेहीके लिये तुझे उत्पन्न किया व यह तो बता कि मैंने सब हितकारी रामने तेरा क्या बुरा किया है ? ॥ १०१ ॥ मैं तुझसे कहताहूं कि रामके वन चले जानेपर पिता पुत्रोंको परित्याग करेंगे, पतिव्रता स्त्री

पतिको छोड देंगी। इस प्रकार सब संसार रामको वनवासी देख तेरेपर कुपित हो जायगा ॥ १०२ ॥ जब मैं देवसुत समान कमल लोचन गहने पहरे हुये रामचन्द्रको अपने निकट आताहुआ सुनताहूं तबमेरे आनन्दकीसीमा नहींरहती बरन् ऐसाबोधहोताहैकि वृद्ध होकरभी प्यारेपुत्रकी युवाअवस्थाका संचार हुआ ॥१०३॥ चाहे सूर्यके बिना संसार में सजीवता होजाय, चाहे वज्रधर इन्द्रके बर्षा न करनेसे संसार टिक जाय परन्तु अवधसे रामचन्द्रको वन जाते हुये देख कोई नहीं जियेगा यह मैं निश्चयही कहताहूँ ॥१०४॥ रे राजपुत्रि ! तू मेरे प्राणोंका घात करनेवाली मेरी भयंकर शत्रु है, तेज विषवाली सर्पिणीको गोदीमें बैठानेसे जो दशा होती है, वैसेही तुझे नाशकारिणी अहित करनेवाली अमित्राको अपने घरमें स्थान देकर मैंने मोहसे अपनी मृत्युको आप बुलाया ॥ १०५ ॥ तू इस समय राम लक्ष्मण और मुझे जलांजली देकर पुत्र भरतके सहित राज्य पालन कर और बन्धु बान्धव पुर व देश सबको उजाड कर

अहंपुनर्देवकुमाररूपमलंकृतंतंसुतमाव्रजंतम् ॥ नंदामिपश्यन्निवदर्शनेनभवामिदृष्ट्वैवपुनर्युवेव॥१०३॥विनाहिसूर्येणभवेत्प्रवृत्तिरवर्षतावज्रधरेण वापि॥ रामतुगच्छंतमितःसमीक्ष्यजीवेन्नकश्चित्त्वितिचेतनामे ॥ १०४ ॥ विनाशकामामहितामिमित्रामावासयंमृत्युमिवात्मनस्त्वाम् ॥ चिरं बतांकेनधृतासिसर्पीमहाविषातेनहतोऽस्मिमोहात् ॥१०५॥ मयाचरामेणचलक्ष्मणेनप्रशास्तुहीनोभरतस्त्वयासह ॥ पुरंचराष्ट्रंचनिहत्यबांध वान्ममाहितानांचभवाभिभाषिणी ॥१०६॥ नृशंसवृत्तेव्यसनप्रहारिणिप्रसह्यवाक्यंयदिहाद्यभाषसे ॥ ननामतेकेनमुखात्पतंत्यधोविशीर्यमा णादशनाःसहस्रधा ॥ १०७ ॥ नकिंचिदाहाहितमप्रियंवचोनवेत्तिरामःपरुषाणिभाषितुम् ॥ कथंतुरामेह्यभिरामवादिनिब्रवीषिदोषान्गुणनि त्यसम्मते॥१०८॥प्रताम्यवाप्रज्वलवाप्रणश्यवासहस्रशोवास्फुटितामहींव्रज॥नतेकरिष्यामिवचःसुदारुणंममाहितंकेकयराजपांसने॥१०९॥

हमारे शत्रुओंको अच्छी तरह प्रफुल्लित कर ॥ १०६ ॥ हे कुत्सित कार्य करने वाली ! व्यसन देखकर प्रहार करने वाली जब तूने पति और स्त्रीका संबंध तोडने वाली ऐसी निठुर वार्ता कही, तब फिर क्यों नहीं मुखसे नीचे गिर के दांतोंके सहस्रों टुकडे २ होजाते॥१०७॥ मेरे रामने तुझे कभी अप्रिय चन नहीं कहा, और न वह अप्रिय बात फिर कहनाजानतेहैं क्योंकि विशेषतः वह सर्वगुणों करकेयुक्त प्रिय करनेवालेहैं फिरकिस अपराधसे उनहीं रामको वन सी करती है जिन में नित्य गुण वास करते हैं ॥१०८॥ रे केकयराजकुल कलंकिनी कैकेयी! तू दुःखही भोगकर या अग्निमें प्रवेशकर या हजारबार पृथ्वी म समाजा अथवा किसी प्रकार अपने आप अपनेको मार डाल. परन्तु मैं किसीप्रकार अपना अहित करनेवाली इसतेरी कामनाको पूर्ण नहीं करूंगा॥१०९॥

क्योंकि तू छुरेकी धारके समान भयंकर है असत्प्रिय वचन बोलने वाली है, व तेरा स्वभाव दूषित है तू कुलघातिनी है, तैंने मेरे प्राण और हृदयको जलायाहै, इस कारण तू भयंकर दर्शन वाली है अतएव मैं तेरा मरनाही भला समझताहूं ॥ ११० ॥ जब मेरे जीवनहीमें सन्देह है तब सुखकी क्या आशा ? वास्तवमें ममता रखनेवाले मनुष्योंको बिना पुत्रके सुखकी संभावना कहां! देवि? मेराबुरा मतकर मैं तेरेपैर पडताहूं तू प्रसन्न हो॥१११॥ दशरथजी ऐसे अनाथके समान विलापकरते २ स्त्रीसे हृन्मर्ममें ताडित होके कैकेयीके पांवआतुर सरीखेमूर्च्छित होकेपडे॥ ११२॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा०आ० अयोध्याकाण्डे भाषायां द्वादशःसर्गः॥ १२॥ जब राजा कैकेयी के चरणों पर गिर पड़े जिस योग्य वह न थे तब ऐसे विदितहोते थे जैसे पुण्य नाश होने के पीछे राजा ययाति स्वर्गसे गिरे थे॥१॥ पाप

क्षुरोपमांनित्यमसत्प्रियंवदांप्रदुष्टभावांस्वकुलोपघातिनीम्॥नजीवितुंत्वांविषहेऽमनोरमांदिधक्षमाणांहृदयंसबंधनम् ॥११०॥नजीवितंमेऽस्ति कुतःपुनःसुखंविनात्यजेनात्मवतांकुतोरतिः ॥ ममाहितंदेविनकर्तुमर्हसिस्पृशामिपादावपितेप्रसीदमे ॥१११॥ सभूमिपालोविलपन्ननाथवत्स्त्रि यागृहीतोहृदयेऽतिमात्रया ॥ पपातदेव्याश्चरणौप्रसारितावुभावसंप्राप्ययथातुरस्तथा ॥ ११२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदि काव्येचतुर्विंशतिसा० स० अयोध्याकांडे द्वादशःसर्गः ॥ १२ ॥ अतदर्हंमहाराजंशयानमतथोचितम् ॥ ययातिमिवपुण्यांतेदेवलोकात्प रिच्युतम् ॥ १ ॥ अनर्थरूपाऽसिद्धार्थाह्यभीतामयदर्शिनी ॥ पुनराकारयामासतमेववरमंगना ॥२॥ त्वंकत्थसेमहाराजसत्यवादीदृढव्रतः ॥ ममचेदंवरंकस्माद्विधारयितुमिच्छसि ॥ ३ ॥ एवमुक्तस्तुकैकेय्याराजादशरथस्तदा ॥ प्रत्युवाचततःक्रुद्धोमुहूर्तंविह्वलन्निव ॥४॥ मृतेमयिगते रामेवनंमनुजपुंगवे ॥ हंतानार्येममामित्रेसकामासुखिनीभव ॥ ५ ॥ स्वर्गेऽपिखलुरामस्यकुशलंदैवतैरहम् ॥ प्रत्यादेशादभिहितंधारयिष्ये कथंबत ॥ ६ ॥ कैकेय्याःप्रियकामेनरामःप्रव्राजितोवनम् ॥ यदिसत्यंब्रवीम्येतत्तदसत्यंभविष्यति ॥ ७ ॥

रूपाकैकेयी का जब प्रयोजन सिद्ध न हुआतो निडर हो राजाको भय दिखाती हुई वही वरदान फिर मांगने लगी॥२॥ हे महाराज! तुम अपने को सत्यवादी और दृढ़प्रतिज्ञ कहकर बडाईमारा करतेथे अतएव मुझको वर देना कहकर अब उसके देनेमें क्यों कातरहोतेहो ?॥३॥ जब कैकेयीने ऐसाकहातो राजा दशरथजी मुहूर्तभरतक व्याकुलहोफिर क्रोधमें भरकर बोले॥४॥रेअनार्ये! रे शत्रुरूपवाली! मेरे मरजाने और रामके वनजानेपर तू सुखीहो और अपनी कामनाकोपूरी कर॥५॥ शरीर छूटने के पीछे स्वर्गमें जानेपर देवतागण रामचन्द्रकी कुशलका समाचार पूछेंगे तो उनसे क्या कहूंगा॥६॥ यदि यह कहूंगाकि, कैकेयी काप्रिय करने के

लिये रामचन्द्र को वन पठाया तो इससत्य बातपर कौन देवता विश्वास करेगा कोई भी नहीं॥७॥ मैं बहुत समय तक अपुत्रक था बहुत कष्टसेइस बुढापेमें राम रूपी रत्न पाया है अतएव तूही कह कि, उन महातेजा रामचन्द्रको मैं किसभांति परित्याग करूँ ॥ ८ ॥ वह साधु सब विद्या पढे हुये क्रोधके जीतनेवाले सबको क्षमा करनेवाले अच्छे स्वभाववाले हैं भला उन कमलदलनयन रामचन्द्र को किस प्रकार वनको पठाऊँ ? ॥९॥ मैं किस प्रकार दीर्घबाहु महाबलशाली इन्दीवर श्याम मनोहर रामको वनवासी करूँ॥१०॥ जो सदा सुख भोग करते हैं और इतना भी नहीं जानतेकि, दुःख क्या पदार्थ है,उन बुद्धिमान रामचन्द्रकी यह दशा किस प्रकार देख सकूँगा ॥११॥ यदि उन रामचंद्रको जो दुःखके योग्यनहींहैं कष्ट न देकर मेरी मृत्यु होजाती तो भी मैं किसी प्रकार सुखी हो जाता॥१२॥

अपुत्रेणमयापुत्रःश्रमेणमहतामहान् ॥ रामोलब्धोमहातेजाःसकथंत्यज्यतेमया ॥ ८ ॥ शूरश्चकृतविद्यश्चजितक्रोधःक्षमापरः ॥ कथंकमलपत्राक्षोमयारामोविवास्यते ॥ ९ ॥ कथमिंदीवरश्यामंदीर्घबाहुंमहाबलम् ॥ अभिराममहंरामंस्थापयिष्यामिदंडकान् ॥ १० ॥ सुखानामुचितस्यैव दुःखैरनुचितस्यच ॥ दुखंनामानुपश्येयंकथंरामस्यधीमतः ॥ ११ ॥ यदिदुःखमकृत्वातुममसंक्रमणं भवेत् ॥ अदुःखार्हस्यरामस्य ततःसुखमवाप्नुयाम् ॥ १२ ॥ नृशंसेपापसंकल्पेरामंसत्यपराक्रमम् ॥ किंविप्रियेणकैकेयिप्रियंयोजयसेमम ॥ १३ ॥ अकीर्तिरतुलालोके ध्रुवंपरिभविष्यति ॥ तथाविलपतस्तस्यपरिभ्रमितचेतसः ॥ १४ ॥ अस्तमभ्यागमत्सूर्योरजनीचाभ्यवर्तत ॥ सात्रियामातदार्तस्यचंद्रमंडलमंडिता ॥ १५ ॥ राज्ञोविलपमानस्यनव्यभासतशर्वरी ॥ सदैवोष्णंविनिः श्वस्यवृद्धोदशरथोनृपः ॥ १६ ॥ विललापार्तवदुःखंगगनासक्तलोचनः ॥ नप्रभातंत्वयेच्छामिनिशेनक्षत्रभूषिते ॥ १७ ॥

रे निर्दयी! पापकारिणी कैकेयी ! सत्यके समुद्र मेरेप्यारे रामचन्द्रका यह बुराक्यों चाहती है॥१३॥ ऐसा करने से संसारमें बडी भारी दुर्नामता होगी । जब महीपाल को घबडाकर यह विलाप कलाप करते २॥१४॥ सूर्यनारायण अस्ताचलके शिखर पर होरहे और रात्रिआई वह रात्रि चन्द्रमा करके शोभित होनेपर भी दुःखित राजा को ॥१५॥ अत्यन्त विलाप करने केकारण आनन्द देनेवाली न हुई उस समय वृद्ध राजा दशरथजी बारंबार गर्म २ श्वास लेने लगे॥१६॥ विलाप करते २ उनकी दृष्टि आकाशमें जा लगी और कुछ देर पीछे बोले हे तारागणों से शोभायमान रात्रि ! मैं तुम्हारा प्रभात होना नहीं चाहता ॥ १७ ॥

हे भद्रे ! मैं हाथ जोडकर कहता हूं कि, तुम मेरे ऊपर प्रसन्न हो अथवा शीघ्रही बीत जाओ क्योंकि मैंदयारहित ॥ १८ ॥ कुटिल कैकेयी का मुख देखने की इच्छा नहीं करता जिसके कारणसे मुझे ऐसा कष्ट हुआ। ऐसा कहकर फिर राजानेकैकेयीसे हाथ जोडे॥ १९॥ राजधर्मके जाननेवाले राजा फिर कैकेयीको प्रसन्न करने को इच्छा करनेलगे और कहा कि, साधुप्रकृति दुःखीदीन व आयुहीन तुम्हारे ही वश हूं॥ २०॥ विशेषतः राजाहूं अतएव हे भद्रे अच्छे नितम्बवाली ! मेरे ऊपर कृपाकर और प्रसन्नहो, मैंने दुःखसे क्रोधमें आकर तुमको बहुतकडुवे वचनकहे हैं अथवा यह रामके अभिषेककी वार्त्ता मैंने निर्जनमें नहीं कही है बल्किसभामें भी सबके सामने कही है॥ २१॥ हे सुन्दरी ! मैं बालकपनसे तुझको सरलहृदयवाली जानता था तुम मुझपर प्रसन्नहोवो, यदि यह न हो तो तुम्हीं प्रसन्नतासे राम

क्रियतां मेदयांभद्रेमयायंरचितोंजलिः ॥ अथवागम्यतांशीघ्रंनाहमिच्छामिनिर्घृणाम् ॥ १८॥ नृशंसांकैकेयींद्रष्टुंयत्कृतेव्यसनंमम॥ एवमुक्त्वा ततोराजाकैकेयींसंयतांजलिः ॥ १९॥ प्रसादयामासपुनःकैकेयींराजधर्मवित् ॥ साधुवृत्तस्यदीनस्यत्वद्गतस्यगतायुषः ॥ २०॥ प्रसादःक्रिय तांभद्रेदेविराज्ञोविशेषतः ॥ शून्येनखलुसुश्रोणिमयेदंससुपागतम् ॥ २१॥ कुरुसाधुप्रसादंमेबालेसहृदयाह्यसि ॥ प्रसीददेविरामोमेत्वद्दत्तंराज्य मव्ययम् ॥ २२॥ लभतामसितापांगेयशःपरमवाप्स्यसि॥ ममरामस्यलोकस्यगुरूणांभरतस्यच॥ प्रियमे तद्गुरुश्रोणिकुरुचारुमुखेक्षणे ॥ २३॥ विशुद्धभावस्यहिदुष्टभावादीनस्यताम्राश्रुकलस्यराज्ञः ॥ श्रुत्वाविचित्रंकरुणंविलापंभर्तुर्नृशंसानचकारवाक्यम् ॥ २४ ॥ ततः सराजापुनरेव मूर्छितःप्रियामतुष्टांप्रतिकूलभाषिणाम् ॥ समीक्ष्यपुत्रस्यविवासनंप्रति क्षितौविसंज्ञोनिपपातदुःखितः ॥ २५ ॥

चंद्रजीको राजगद्दी दे दो वह तुम्हारा दिया हुआराज पावें ॥ २२॥ ऐसा करने से तुम्हारी अखंडकीर्ति सारे संसारमें छा जायगी और इस बातसे मैं, रामचंद्र वसिष्ठादि गुरुजन और भरतजी परम प्रसन्न होंगे इससे हे सुश्रोणि ! सुन्दर मुखवाली ! कृपापूर्वक एक बार कह दीजिये ॥ २३॥ सरल स्वभाव राजा दशरथजी इस प्रकार दीन हो विलाप करते २रुदन करने लगे, उनके दोनों नेत्र लाल हो आये. परन्तु बुरे स्वभाववाली कैकेयी ने महाविलाप सुनकर राजाकी बातपर एक ध्यान न दिया वह काहे को ध्यान देती उसके मनमें तो कुछ औरही बसी थी॥ २४॥ तदनन्तर महाराज दशरथजी ने जाना कि, रानी हमारे वचन के

विरुद्ध ही वचन कहती है, और कुछभी प्रसन्न नहीं हुई तो फिर मूर्छित हो पृथ्वी पर गिर पडे और दुःख के मारे क्षण२में दीर्घ निःश्वास त्याग करने लगे। और राजा भली भाँति समझगये कि, रानी रामचन्द्रको बनमेंही भेजा चाहती है॥२५॥ इस प्रकार राजा को रोते कलपते विलपते रात बीत कर सबेरा हुआ। प्रभातका समय जानकर वैतालिकगण मंगल व स्तुति के गीत गाने लगे परंतु राजा को वहसबगीत इत्यादि अच्छे न लगे इससे तुरंत उन मंगल गायकों को गीत गाने से निवारित किया॥२६॥इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा०आ० अयोध्याकाण्डे भाषायां त्रयोदशः सर्गः॥१३॥पापकर्म करनेवाली कैकेयी पुत्रशोकमें ग्रसेहुये राजाको मूर्च्छित, पृथ्वीमें लोटताहुआ चेष्टा रहित देखकर यह बोली ॥१॥ हे महाराज!तुम मुझको वरदान देनेकी प्रतिज्ञा कर मानो भयानक पापका कार्य करके इस समय दीन भावसे क्यों पड़ेहो इसका क्या प्रयोजन है?तुमको अपनी उसी सत्य प्रतिज्ञा पर टिकना चाहिये ॥२॥ धार्मिक लोग सत्यहीको परमधर्म बतलाते हैं सो मैं सत्यहीका

इतीवराज्ञोव्यथितस्यसानिशाजगामघोरंश्वसतोमनस्विनः ॥ विबोध्यमानःप्रतिबोधनंतदानिवारयामाससराजसत्तमः॥२६॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा मायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्ये चतुर्विंशतिसा०सं०अयोध्याकांडे त्रयोदशः सर्गः ॥१३॥पुत्रशोकार्दितंपापाविसंज्ञंपतितंभुवि॥विचेष्टमानमुत्प्रे क्ष्यऐक्ष्वाकमिदमब्रवीत् ॥१॥ पापंकृत्वैवकिमिदंममसंश्रुत्यसंश्रवम् ॥ शेषे क्षितितलेसन्नःस्थित्यांस्थातुंत्वमर्हसि॥२॥आहुःसत्यंहिपरमंधर्मं धर्मविदोजनाः ॥ सत्यमाश्रित्यचमयात्वंधर्मंप्रतिचोदितः ॥३॥ संश्रुत्यशैब्यः श्येनायस्वांतनुंजगतीपतिः ॥ प्रदायपक्षिणेराजाजगामगति मुत्तमाम् ॥४॥ तथाह्यलर्कस्तेजस्वीब्राह्मणेवेदपारगे ॥याचमानेस्वकेनेत्रेउद्धृत्याविमनाददौ॥५॥सरितां तुपतिःस्वल्पांमर्यादांसत्यमन्वितः सत्यानुरोधात्समयेवेलांस्वांनातिवर्तते॥६॥ सत्यमेकपदंब्रह्मसत्येधर्मःप्रतिष्ठितः ॥ सत्यमेवाक्षयावेदाःसत्येनावाप्यतेपरम्॥७॥ सत्यंसमनुव र्तस्वयदिधर्मेधृतामतिः॥ सवरःसफलोमेऽस्तुवरदोह्यसिसत्तम ॥ ८ ॥

आश्रय लेकरके वर देनेके लिये तुमको उत्साहित कर रही हूं कुछ अन्यथा नहीं करती ॥३॥ विचार करके देखो कि, पहले समयमें, राजा शैब्यनेसत्यहीके कारण कबूतरके बदले बाजको अपने शरीरका मांस देदिया। जिसके कारण फिर राजा उत्तम गतिको प्राप्त हुये ॥४॥ फिर तेजस्वी राजा अलर्कने वेदपाठी ब्राह्मणके माँगने पर अपने नेत्र निकाल प्रसन्न मनसे दे दिये थे ॥५॥ और कहाँतक बताऊं देखो समुद्रने अपने गुरु अगस्त्यजीको वचन दिया है, उसी वचनका पालन करनेके अर्थ पौर्णमासीके दिन भी मर्यादासे अधिक बेला भूमिको अतिक्रम नहीं करता ॥ ६ ॥ सत्यही एक मात्र ब्रह्म है, सत्यमें ही धर्म प्रतिष्ठित है, सत्यही कभी नाश न होनेवाला वेद है और सत्यहीके प्रभावसे परम गतिकी प्राप्ति होजाती है॥७॥यदि तुम्हारी धर्ममेंमति लगी हो तो सत्यकी

मर्यादाका रक्षण करो और जो दो वर मुझे देने कहे हैं उनको प्रसन्नतासे मुझे दे दो ॥ ८ ॥ तुम्हारे धर्मको बढानेके लिये मैं ऐसा कहतीहूं मैं फिरभी तीन बार कहती हूं कि, तुम रामचन्द्रको वनमें भेजदो ॥ ९ ॥ जो आप मेरी इस प्रार्थनाको न मानें तो मैं तुम्हारे ही आगे अपने प्राण परित्याग करदूंगी इसमें संशय नहीं ॥१०॥ राजा कैकेयीके ऐसे निशंक वचन सुनकर ऐसे वचनमें बँध गये जिस प्रकार बामनजीके आगे राजा बलि बँधे थे और तीन पग भूमि देनी ही पडी थी॥११॥ उस समय राजाका हृदय महाव्याकुल हो गया और मुखमंडल पीला पड गया, उस समय राजा दो पहियोंमें लगी हुई धुरीके समान चलायमानचित्त हुए ॥१२॥ देखते ही देखते उनके दोनों नेत्रोंमें व्याकुलता छा गई अँधेरी आ गई तब राजाने बडे कष्टसे धीरज धर मनके वेगको रोक कैकेयीसे कहा ॥१३॥ हे पापिनी ! मैंने जो अग्निदेवके नामसे मंत्र पढकर तेरा पाणिग्रहण किया था, अब इस समय तुझे तेरे गर्भजात पुत्र भरत सहित मैंने त्याग किया ॥१४॥ हे कैकेयी ! इस

धर्मस्यैवाभिकामार्थममचैवाभिचोदनात् ॥ प्रव्राजयसुतंरामंत्रिःखलुत्वांब्रवीम्यहम् ॥९॥ समयंचममार्येमंयदित्वंनकरिष्यसि॥अग्रतस्तेपरित्यक्तापरित्यक्ष्यामिजीवितम् ॥१०॥ एवंप्रचोदितोराजाकैकेय्यानिर्विशंकया॥ नाशकत्पाशमुन्मोक्तुंबलिरिंद्रकृतंयथा ॥११॥ उद्भ्रांतहृदयश्चापिविवर्णवदनोऽभवत् ॥ सधुर्यो परिस्पदन्युगचक्रांतरंयथा ॥१२॥विकलाभ्यांचनेत्राभ्यामपश्यन्निवभूमिपः ॥ कृच्छ्राद्धैर्येणसंस्तभ्यकैकेयीमिदमब्रवीत् ॥१३॥ यस्तेमंत्रकृतःपाणिरग्नौपापेमयाधृतः ॥ संत्यजामिस्वजंचैवतवपुत्रंसहत्वया ॥१४॥ प्रयातारजनीदेविसूर्यस्योदयनंप्रति ॥अभिषेकायहिजनस्त्वरयिष्यतिमांध्रुवम् ॥ १५ ॥ रामाभिषेकसंभारैस्तदर्थमुपकल्पितैः ॥ रामःकारयितव्योमेमृतस्यसलिलक्रियाम् ॥१६॥ सपुत्रयात्वयानैवकर्तव्यासलिलक्रिया ॥ व्याहंतास्यशुभाचारेयदिरामाभिषेचनम् ॥१७॥ नशक्तोऽद्यास्म्यहंद्रष्टुंदृष्ट्वापूर्वंतथामुखम् ॥ हतहर्षंतथानंदंपुनर्जनमवाङ्मुखम् ॥ १८ ॥ तांतथाब्रुवतस्तस्यभूमिपस्यमहात्मनः ॥ प्रभाताशर्वरीपुण्याचंद्रनक्षत्रमालिनी ॥ १९ ॥

समय रात बीत कर प्रभात होने आया है अब सूर्यका उदय देखते ही गुरुजन आदि आकर रामका अभिषेक करानेके लिये मुझसे शीघ्रता करावेंगे ॥१५॥ रामके राज्यके अभिषेक होनेके लिये जो सब सामग्री इकट्ठी की गई है, सो यदि तू इस काम में बाधा डालेगी तो सब उन्हीं वस्तुओंके द्वारा रामचन्द्र मेरा प्रेतकर्म करेंगे ॥ १६ ॥हां एक बात मैं और भी कहे देता हूँ कि, तुम या तुम्हारा पुत्र कोई मेरे प्रेतकर्म या जल पिंडादिदान न करें क्योंकि तुमने रामचन्द्रका अभिषेक न होने दिया ॥१७॥ मैंने जो रामचन्द्रका कमलके समान वदनमंडल प्रफुल्ल देखा है अब किस भांति मैं उसे मलीन देख सकूँगा ॥ १८ ॥ इस प्रकार महात्मा राजा दशरथजी इस दुष्टस्वभाववाली रानी कैकेयीसे ऐसा रो २ कर कहते थे कि, चन्द्रमा और तारागणों करके शोभित रात्रिबीती और प्रभात हो गया॥१९॥

तदनन्तर पापकर्म करनेवाली कैकेयी जो कि बातचीत करनेमें बड़ी चतुर थी क्रोधमें भरकर राजासे परुष वचन बोली ॥२०॥ हे राजन् ! तुम इस समय विषके समान और शूल आदिकोंके समान यह मर्मकी भेदन करनेवाली बातें क्या कर रहे हो ? जो हो तुम शीघ्रतासे रामको अभी यहां बुलवा भेजो ॥२१॥ मेरे बेटे भरतको राजगद्दीपर बैठाकर, रामचन्द्रको वनको निकाल दो और मुझे सौतहीन कर दो तब तुम भी सुख पाओगे क्यों वृथा अब रोते धोते हो ॥२२॥ राजा कैकेयीके यह वचन सुन बार २ चाबुक खाये हुए घोड़ेके नाईं प्रेरित हो मर्महत होकर कैकेयीसे बोले ॥२३॥ कि मैं तो अब धर्मके बंधनमें बँध ही रहा हूं मेरी चेतना जाती रही है, इस समय मैं अपने बड़े प्यारे पुत्र धर्मात्मा रामचन्द्रके देखने की इच्छा करता हूँ इस समय जो तेरी इच्छा हो सो कर ॥२४॥ इतनेमें प्रातःकाल

ततः पापसमाचाराकैकेयीपार्थिवंपुनः॥उवाचपरुषंवाक्यंवाक्यज्ञारोषमूर्च्छिता॥२०॥किमिदंभाषसेराजन्वाक्यंगररुजोपमम्॥ आनाययितुमक्लिष्टंपुत्रंराममिहार्हसि॥२१॥ स्थाप्यराज्येममसुतंकृत्वारामंवनेचरम्॥निःसपत्नांचमांकृत्वाकृतकृत्योभविष्यसि ॥२२॥ सतुन्नइवतीक्ष्णेनप्रतोदेनहयोत्तमः॥ राजाप्रचोदितोऽभीक्ष्णंकैकेय्यावाक्यमब्रवीत् ॥२३॥ धर्मबंधनबद्धोऽस्मिनष्टाचममचेतना॥ ज्येष्ठंपुत्रंप्रियंरामंद्रष्टुमिच्छामिधार्मिकम् ॥२४॥ ततःप्रभातांरजनीमुदितेचदिवाकरे॥ पुण्येनक्षत्रयोगेचमुहूर्तेचसमागते॥ २५॥ वसिष्ठोगुणसंपन्नःशिष्यैःपरिवृतस्तथा॥ उपगृह्याशुसंभारान्प्रविवेशपुरोत्तमम्॥ २६॥ सिक्तसंमार्जितपथांपताकोत्तमभूषिताम्॥ (विचित्रकुसुमाकीर्णां नानास्रग्भिर्विराजिताम्॥ संहृष्टमनुजोपेतांसमृद्धविपणापणाम् ॥२७॥ महोत्सवसमायुक्तांराघवार्थे समुत्सुकाम्॥ चंदनागुरुधूपैश्चसर्वतःपरिधूपिताम् ॥ २८॥ तांपुरींसमतिक्रम्यपुरंदरपुरोपमाम्॥ ददर्शांतःपुरंश्रीमान्नानाध्वजगणायुतम्॥ २९॥ पौरजानपदाकीर्णंब्राह्मणैरुपशोभितम्॥ यष्टिमद्भिःसुसंपूर्णंसदश्वैःपरमार्चितैः॥ ३०॥

ही हो गया सूर्यदेव प्रकाशित हुए समय पर शुभ नक्षत्र शुभ मुहूर्त आये जिस समयमें कि, रामचन्द्रका अभिषेक होनेको था॥२५॥ इतनेमें सब गुणवान् वसिष्ठजी अपने बहुतसे चेलों समेत अभिषेककी सब सामग्री लिये लिवाये राजपुरीमें आये॥२६॥ वसिष्ठजीने देखा कि, राजपुरीके सब मार्गोंमें छिडकाव हो रहा है सब कहीं देवालयोंमें घर २ पताकायें बँध रही हैं बाजारोंमें सब पदार्थ भरे हैं सब दुकानें खुली हैं सब मनुष्य रामचन्द्रजीके अभिषेकके उत्सवको जान आनन्दमें मग्न हैं॥२७॥ नगरीके सब मनुष्य यह चाह रहे हैं कि, कब रामचन्दजीके अभिषेकका आनंद देखें चारों ओर चन्दन, अगर और धूप, दीप आदि सुगंधित वस्तुओंका धुवाँ आरहा है ॥२८॥ गुरु वसिष्ठजी इन्द्रपुरी के समान ऐसी पुरीको देखते हुये ध्वजापताका करके शोभायमान राजमन्दिरमें आये ॥२९॥ यहां पर देखा कि, हजारों ब्राह्मण

लोग आये हुये अपना २ काम कर रहे थे इनके अतिरिक्त और पुरवासी और २ देशोंके मनुष्य घूम रहे थे। यज्ञ जाननेवाले भी ब्राह्मण सब बैठे थे, सभासद कोई बैठे और कोई घूम रहे थे॥३०॥तब महर्षि वसिष्ठजी और २ऋषिगणों के साथ उस भीड़ को भेद करते हुये महाराज दशरथजीके निकट जानेलगे ॥३१॥ उस समय उन्होंने मनुष्योंमें सिंह राजा के प्यारे शोभन मूर्ति मंत्री सुमंत्रजी को रनवाससे बाहर आते देखा ॥ ३२ ॥ तिन पण्डित सुमन्त्रजीसे महातेजस्वी श्रीवसिष्ठजी बोले हे सुमंत्र ! तुम राजाको शीघ्र यह समाचार दो कि वसिष्ठजी आये हैं॥३३॥तुम राजासे यह भी कह देना कि, रामके अभिषेक करनेके लिये सोनेके घड़ोंमें गंगाजल भी भरवाकर लाये हैं और गूलरकी भद्रपीठ चौकी यज्ञमें राज कुमारके बैठनेके लिए हम लाये हैं ॥ ३४ ॥ सब प्रकारके बीज, सब

तदंतःपुरमासाद्यव्यतिचक्रामतंजनम्॥ वसिष्ठःपरमप्रीतःपरमर्षिभिरावृतः ॥३१॥ सत्वपश्यद्विनिष्क्रांतंसुमंत्रंनामसारथिम्॥ द्वारेमनुजसिंहस्यसचिवंप्रियदर्शनम् ॥३२॥ तमुवाचमहातेजाःसूतपुत्रं विशारदम् ॥ वसिष्ठःक्षिप्रमाचक्ष्वनृपतेर्मामिहागतम् ॥ ३३ ॥ इमेगंगोदकघटाःसागरेभ्यश्चकांचनाः ॥ औदुंबरंभद्रपीठमभिषेकार्थमाहृतम् ॥३४॥ सर्वबीजानिगंधाश्चरत्नानिविविधानिच ॥ क्षौद्रंदधिघृतंलाजादर्भाःसुमनसःपयः ॥३५॥ अष्टौचकन्यारुचिरामत्ताश्चवरवारणाः॥ चतुरश्वोरथःश्रीमान्निस्त्रिंशोधनुरुत्तमम्॥ ३६ ॥ वाहनंनरसंयुक्तंछत्रंचशशिसन्निभम् ॥ श्वेतेचवालव्यजनेभृंगारंचहिरण्मयम्॥३७॥हेमदामपिनद्धश्चककुद्मान्पांडुरो वृषः॥ केसरीचचतुर्दंष्ट्रोहरिश्रेष्ठोमहाबलः ॥३८॥ सिंहासनंव्याघ्रतनुःसमिधश्चहुताशनः॥ सर्वेवादित्रसंघाश्चवेश्याश्चालंकृताःस्त्रियः॥३९॥ आचार्याब्राह्मणागावःपुण्याश्चमृगपक्षिणः ॥ पौरजानपदश्रेष्ठानैगमाश्चगणैःसह ॥ ४० ॥

प्रकारकी सुगंधियोंकी वस्तु और भांति २ के रत्न, शहत, दही, घी, खीलें और कुश, फूल, दूध॥३५॥ सुन्दरी आठ कन्यायें, मतवाला सफेद हाथी; चार घोड़े जुते हुए ऐसा एक रथ, उत्तम खड्ग, सुन्दर धनुष ॥३६॥ नरवाहन पालकी, चन्द्रमाके समान उज्ज्वल छत्र, सफेद दो चँवर, धतूरेके फूलके समान आकारवाला एक सोनेका पात्र जिसे भृङ्गार कहते हैं (झारी प्रसिद्ध है)॥ ३७ ॥ सोनेका सींग आदि मढ़ाया हुआ श्वेत बैल, चार डाढका एक महाबलवान् सिंह केसरी ॥ ३८ ॥ ऊँचा सुन्दर सिंहासन, व्याघ्रका चमड़ा, यज्ञ करनेके लिये ईंधन, अग्नि सब नानाप्रकारके बाजे, सब वसन भूषण धारण किये हुए वेश्यायें ॥३९॥ सब आचार्य और भी ब्राह्मण, हजारों गायें, तोता मैना कबूतर आदि पक्षी व बनैले पाले हुए जीव, नगर और देशके निवासी, बनिये आदि रुजगारू लोग अपनी २

समाजके साथ ॥४०॥ इन्हें आदि ले और बहुतसे प्रसन्नमन लोग नृपालोंके साथ प्रिय वचन कहते हुए आये हैं यह सब लोग महाराज रामचन्द्रजीका अभिषेक देखनेको आये हैं ॥४१॥ हे सुमंत्र ! जिससे कि पुष्यनक्षत्रमें रामचन्द्रजीको राज्याभिषेक हो जाय तुम इसके लिये प्रसन्न मनसे महाराज दशरथजीको जल्दी कराओ ॥ ४२ ॥ महाबलवान् सूत सुमंत्रजी गुरुजीके ऐसे वचन सुन नृपतिशार्दूल राजा दशरथजीकी स्तुति करते हुए राजमन्दिरमें पैठे ॥ ४३ ॥ राजाकी अनुमतिसे सुमंत्रको रनवासमें सब कालमें प्रवेश करनेकी आज्ञा थी, अतएव उनके रनवास में जानेके समय किसी द्वारपालने न रोकाटोका क्योंकि यह राजाके हितकारी थे ॥ ४४ ॥ सुमन्त्रजी राजाके समीप पहुँचे व उनकी ऐसी अवस्था देख परम पवित्रवाणीसे स्तुति करने लगे जैसी स्तुति प्रभात समय राजाकी की जाती

एतेचान्येचबहवःप्रीयमाणाःप्रियंवदाः ॥ अभिषेकायरामस्यसहतिष्ठंतिपार्थिवैः ॥ ४१ ॥ त्वरयस्वमहाराजंयथासमुदितेऽहनि ॥ पुष्येनक्षत्रयोगेचरामोराज्यमवाप्नुयात ॥ ४२ ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वासूत पुत्रो महाबलः ॥ स्तुवन्नृपतिशार्दूलंप्रविवेशनिवेशनम्॥४३॥ तंतुपूर्वोदितं वृद्धंद्वारस्थाराजसंमताः ॥ नशेकुरभिसंरोद्धुंराज्ञःप्रियचिकीर्षवः ॥ ४४ ॥ ससमीपस्थितोराज्ञस्तामवस्थामजज्ञिवान् ॥वाग्भिःपरमतुष्टाभिरभिष्टोतुंप्रचक्रमे ॥ ४५ ॥ ततःसूतोयथापूर्वंपार्थिवस्यनिवेशने ॥ सुमंत्रःप्रांजलिर्भूत्वातुष्टावजगतीपतिम् ॥४६॥ यथानंदतितेजस्वीसागरोभास्करोदये ॥ प्रीतःप्रीतेनमनसातथानंदयनस्ततः ॥ ४७ ॥ इंद्रमस्यांतुवेलायामभितुष्टावमातलिः ॥सोऽजयद्दानवान्सर्वांस्तथात्वांबोधयाम्यहम् ॥४८॥ वेदाःसहांगाविद्याश्चयथाह्यात्मभुवंप्रभुम् ॥ ब्रह्माणबोधयंत्यद्यतथात्वांबोधयाम्यहम् ॥ ४९ ॥ आदित्यःसहचंद्रेणयथाभूतधरांशुभाम् ॥ बोधयत्यपृथिवींतथात्वांबोधयाम्यहम् ॥ ५० ॥

हैं वैसे ही सुमंत्रजीकरने लगे ॥ ४५ ॥ राजाके मंदिरमें जैसे पहले सुमंत्रजी उनकी स्तुति करते थे इसी प्रकार सुमंत्र हाथ जोड राजाको प्रसन्न करने लगे ॥ ४६ ॥ हे महाराज ! जैसे सूर्योदय होनेपर समुद्र नहानेवाले मनुष्योंको प्रफुल्लित करता है, अब वैसेही प्रातःकाल उठकर आप हम लोगोंको परमानंदित कीजिये ॥ ४७ ॥ सुर सारथि मातलि जिस प्रकार सूर्य निकलनेके कालमें देवराज इन्द्रकी स्तुति करता है और वह सब दानवोंको जीतते हैं वैसेही मैं इस समय आपको जगाता हूं सो आप उठो ॥ ४८ ॥ षडङ्ग वेदन व मीमांसादिविद्या जिस प्रकार स्वायंभू ब्राह्माजीको जगाते हैं वैसेही मैं आपको जगाताहूं आप उठिये ॥४९॥ चन्द्रमा, सूर्य जिस प्रकार उदय और अस्तद्वारा पृथ्वीके रहनेवाले प्राणियोंको जगाते हैं वैसेही मैंइससमय आपको जगाता हूं आपसावधाहो॥५०॥

हे महाराज ! मंगलाचारपूर्वक उठिये जिस प्रकार सुमेरु पर्वतसे सूर्यभगवान्‌का उदय होता है आपभी वैसेही रामराज्याभिषेकके महोत्सवमें उठिये ॥५१॥ रामचन्द्रजीके अभिषेकके लिये जिस२वस्तुका प्रयोजन है वह सब इकट्ठी होगई हैं पुरवासी और नगरोंके रहनेवाले तथा बनिये हाथ जोडे हुए द्वारे खडे हैं ॥५२॥ और लोगोंकी बात तो एक ओर रही स्वयं भगवान् वसिष्ठजी भी ब्राह्मणोंके साथ खडे आपकी राह देख रहे हैं; अतएव शीघ्रही उनको रामचन्द्रजीका अभिषेक करनेके लिये आज्ञा दीजिये ॥५३॥ क्योंकि जैसे बिना चरानेवालेके पशु; बिना सरदारकी सेना; विना चन्द्रमाके रात और बैलविना गायकी जो अवस्था होती है ॥५४॥ ऐसेही जिस राज्यमें राजा नहीं होता उस राज्यकी भी यही दशा होजाती है अर्थके जाननेवाले राजा ऐसे समझते हुए सुमंत्रके शांतियुक्त वचन सुन ॥५५॥ फिर

उत्तिष्ठाशुमहाराजकृतकौतुकमंगलः ॥ विराजमानोवपुषामेरोरिवदिवाकरः ॥५१॥(सोमसूर्य्यौचकाकुत्स्थ शिववैश्रवणावपि ॥ वरुणश्चाग्नि रिन्द्रश्चविजयंप्रदिशन्तुते ॥ १ ॥ गताभगवतीरात्रिःकृतंकृत्यमिदंतव ॥ बुध्यस्वनृपशार्दूलकुरुकार्यमनंतरम् ॥२॥) उदतिष्ठतरामस्यसमग्र मभिषेचनम् ॥ पौरजानपदैश्चापिनैगमैश्चकृतांजलिः ॥५२॥ अयंवसिष्ठोभगवान्ब्राह्मणैःसहतिष्ठति॥क्षिप्रमाज्ञाप्यतांराजन्राघवस्याभिषेचनम् ॥५३॥ यथाह्यपालाःपशवोयथासेनाह्यनायका ॥ यथाचंद्रंविनारात्रिर्यथा गावोविनावृषम् ॥ ५४ ॥ एवंहिभवितताराष्ट्रंयत्रराजानदृश्यते ॥ एवंतस्यवचःश्रुत्वासांत्वपूर्वमिवार्थवत् ॥ ५५ ॥ अभ्यकीर्यतशोकेनाभूयएवमहीपतिः ॥ ततस्तुराजातंसूतंसन्नहर्षःसुतंप्रति ॥ ५६ ॥ शोकरक्तेक्षणःश्रीमानुद्वीक्ष्योवाचधार्मिकः ॥ वाक्यैस्तुखलुमर्माणिममभूयोनिकृन्तसि॥५७॥सुमंत्रःकरुणंश्रुत्वादृष्ट्वादीनंचपार्थिवम् ॥ प्रगृही तांजलिःकिंचित्तस्माद्देशादपाक्रमत्॥५८॥यदावक्तुंस्वयंदैन्यान्नशशाकमहीपतिः ॥ तदासुमंत्रंमंत्रज्ञाकैकेयीप्रत्युवाचह ॥५९॥ सुमंत्रराजार जनींरामहर्षसमुत्सुकः ॥ प्रजागरपरिश्रांतोनिद्रावशमुपागतः ॥ ६० ॥

शोकसागरमें डूबगये फिर कुछएक संभालकर रामचन्द्रके शोकमें ग्रसित हो सूतसे ॥५६॥ शोकके मारे लाल नेत्र किये श्रीमान् महाधार्मिक राजा बोले कि, सुमंत्र तुम्हारे स्तुति किये हुए वाक्य मेरे लिये अति कष्टके देनेवाले हुये हैं ॥५७॥ सूत सुमंत्र राजाकी करुणामयी बाणी सुन और उनकी दीन दशा देख हाथ जोडकर उस स्थानसे हट कुछ एक दूर जाकर खडेहुये ॥ ५८ ॥ तब अपने काम साधनेवाली रानी कैकेयी महाराजको शोकाकुल और बोलनेमें असमर्थ देखकर सुमंत्रको बुलाकर बोली ॥ ५९ ॥ हे सुमंत्र ! महाराज, रामचन्द्रजीके अभिषेकके उत्सवमें ऐसे मग्न हुये कि, सारी रात नहीं सोये । इससे मारे परिश्रमके

थककर अब सो रहे हैं ॥६०॥ सो इस समय तुम शीघ्र जाकर यशस्वी रामचन्द्रजीको यहां बुलालाओ तुम्हारा मंगलहो, तुम इस विषयमें कुछ विचारा विचार मत करो ॥६१॥ तब सुमंत्रने रानीको उत्तर दिया कि बिना महाराजकी आज्ञा पाये मैं किस प्रकार जा सकताहूं ? तब मंत्रीके ऐसे वचन सुनकर महाराज दशरथजी बोले ॥ ६२ ॥ कि हे सुमंत्र ! मैं प्रिय पुत्ररामके देखनेकी इच्छा करताहूं अतएव तुम जाकर उनको अपने साथ बुलालाओ । तब सुमंत्र बहुत अच्छा कह बहुत हर्षित हुये ॥६३॥ आज्ञा पातेही सुमंत्रजी रामचन्द्रजीको लिवा लानेके लिये वहांसे चले और मार्गमें सोचाकि क्याकारण है जो कैकेयीने मुझसे रामचन्द्रको जल्दी बुला लानेके लिये कहा ॥ ६४ ॥ कैकेयीकी घबराहट देखकर सुमंत्रने समझा कि, रानी कैकेयी रामका अभिषेक

तद्गच्छत्वरितंसूतराजपुत्रंयशस्विनम् ॥ राममानयभद्रंतेनात्रकार्याविचारणा ॥६१॥ अश्रुत्वाराजवचनं कथंगच्छामिभामिनि ॥ तच्छ्रुत्वा मंत्रिणोवाक्यंराजामंत्रिणमब्रवीत् ॥ ६२ ॥ सुमंत्रारामंद्रक्ष्यामिशीघ्रमानयसुन्दरम् ॥समन्यमानःकल्याणंहृदयेनननंदच ॥ ६३ ॥ निर्जगा मचसंप्रीत्यात्वरितोराजशासनात् ॥ सुमंत्रश्चिंतयामासत्वरितंश्चोदितस्तया ॥ ६४ ॥व्यक्तंरामाभिषेकार्थेइहायास्यतिधर्मराट् ॥ इतिसूतोम तिंकृत्वाहर्षेणमहतापुनः ॥ ६५ ॥ निर्जगाममहातेजाराघवस्यदिदृक्षया ॥ सागरह्रदसंकाशात्सुमंत्रोऽन्तःपुराच्छुभात्(निष्क्रम्यजनसंबा धंददर्शद्वारमग्रतः ॥) ६६ ॥ ततःपुरस्तात्सहसाविनिःसृतोमहीपतेर्द्वारगतान्विलोकयन्॥ ददर्शपौरान्विविधान्महाधनानुपस्थितान्द्वारमुपे त्यविष्ठितान् ॥ ६७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीयेआदिकाव्ये चतुर्विंशतिसा० सं० अयोध्याकांडे चतुर्दशःसर्गः ॥ १४ ॥ तेतुतां रजनीमुष्यब्राह्मणावेदपारगाः ॥ उपतस्थुरुपस्थानंसहराजपुरोहिताः ॥१॥ अमात्याबलमुख्याश्चमुख्यायेनिगमस्यच ॥ राघवस्याभिषेकार्थे प्रीयमाणाःसुसंगताः ॥२॥ उदितेविमलेसूर्येपुष्येचाभ्यागतेऽहनि ॥ लग्नेकर्कटकेप्राप्तेजन्मरामस्यचस्थिते ॥ ३ ॥

देखकर घबरागई है और राजा थकगये हैं यह विचार कर सुमंत्र फिर कुछहर्षित हुये॥६५॥ वह इस प्रकार अपने मनमें निश्चय कर समुद्रमें टिकेहुये कुंडके समान सुन्दर रनवासमे रामचन्द्रको बुलानेके लिये चले ॥६६॥ शीघ्रतासे द्वारे आकर देखातो राजद्वारपर पुर,देश नगर वासी खडे हैं और अनेकदेशोंकेमहा जनभी इकठे हैं । और सब लोगराजद्वार पै ठौर २बैठते जाते हैं ॥ ६७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० अयोध्याकाण्डे भाषायां चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥ वेदपारग ब्राह्मण लोग रात्रि बीतनेपर राजपुरोहित वसिष्ठजीके साथ संध्यावंदनादि कर्म करने लगे ॥१॥ व जो राजसेवक सेनापति व बाजारके निवासियोंमें मुखिया थे वे सब रामचन्द्रजीके अभिषेकार्थ प्रफुल्लमन हो दूसरेसे बातें करने लगे ॥ २ ॥ जबतक विमल सूर्यका उदय हुआ, पुष्य नक्षत्र आया, कर्क

लग्न उपस्थित हुआ; जिसमें कि रामचन्द्रजीका जन्म हुआथा ॥ ३ ॥ तब उत्तम २ ब्राह्मणोंने रामचन्द्रजीके अभिषेकार्थ कंचनके घडे जलसे भरे हुये व बैठनेके लिये सजाकर भद्रपीठ एकत्र किया ॥ ४ ॥ सब भांतिमें सजा सजाया रथ दीपते हुये व्याघ्रके चमडेसे लपेटा हुआ आया और गंगा यमुनाका पवित्र संगमसे जल आया ॥ ५ ॥ इसके अतिरिक्त जो और पुण्यकोदेनेवालीनदियेंकुंडकुआँ तालआदिपूर्वकी तरफबहनेवालेऊपरको (उत्तरको) बहनेवाले वंकिमाकारबहनेवालेइत्यादि हैं जोजलसे पूर्ण हैं ॥ ६ ॥ तिनसे जल लाये और समुद्रसे जलको लाये शहत, दही, घी, लाजा, खीलें, फूल, कुश, दूध ॥ ७ ॥ सबभूषण पहिरीआठसुन्दरीकन्याएँ; एकमतवाला हाथी दूध निकलने वाले वृक्षोंके पत्तों समेत जल सहित सोने चांदीके घड़े ॥ ८ ॥ कमलपत्र पुष्पसंयुक्तसुन्दर जलसे भरे शोभायमानहोरहे हैं चंद्रमाकी किरणों

अभिषेकायरामस्यद्विजेन्द्रैरुपकल्पितम् ॥ कांचनाजलकुंभाश्चभद्रपीठंस्वलंकृतम् ॥ ४ ॥ रथश्चसम्यगास्तीर्णोभास्वताव्याघ्रचर्मणा ॥ गंगायमुनयोःपुण्यात्संगमादाहृतंजलम् ॥ ५ ॥ याश्चान्याःसरितःपुण्याह्रदाःकूपाःसरांसिच ॥ प्राग्वहाश्चोर्ध्ववाहाश्चतिर्यग्वाहाश्चक्षीरिणः ॥ ६ ॥ ताभ्यश्चैवाहृतंतोयंसमुद्रेभ्यश्चसर्वशः ॥ क्षौद्रंदधिघृतंलाजादर्भाःसुमनसःपयः ॥ ७ ॥ (वेश्याश्चैवशुभाचाराःसर्वाभरणभूषिताः ॥) अष्टौचकन्यारुचिरामत्तश्चवरवारणः ॥ सजलाः क्षीरिभिश्छन्नाघटाःकांचनराजताः ॥ ८ ॥ पद्मोत्पलयुताभांतिपूर्णाःपरमवारिणा ॥ चंद्रांशुविकचप्रख्यंपांडुरंरत्नभूषितम् ॥ ९ ॥ सज्जंतिष्ठतिरामस्यवालव्यजनमुत्तमम् ॥ चंद्रमंडलसंकाशमातपत्रंचपांडुरम् ॥ १० ॥ सज्जंद्युतिकरंश्रीमदभिषेकपुरःसरम् ॥ पांडुरश्चवृषःसज्जःपांडुरोऽश्वश्चसंस्थितः ॥ ११ ॥ (प्रसृतश्चगजःश्रीमानौपवाह्यःप्रतीक्षते ॥ अष्टौचकन्यामांगल्याःसर्वाभरणभूषिताः ॥ १ ॥) वादित्राणिचसर्वाणिबंदिनश्चतथापरे ॥ इक्ष्वाकूणांयथाराज्येसंभ्रियेताभिषेचनम् ॥ १२ ॥ तथाजातीयमादायराजपुत्राभिषेचनम् ॥ तेराजवचनात्तत्रसमवेतामहीपतिम् ॥ १३ ॥ अपश्यंतोऽब्रुवन्कोनुराज्ञोनःप्रतिवेदयेत् ॥ नपश्यामश्चराजानमुदितश्चदिवाकरः ॥ १४ ॥

के समान उज्ज्वल सोनेकी डंडी लगी रत्न जिनमें जडे हुये ॥ ९ ॥ ऐसे चमर रामचन्द्रजीके अभिषेकार्थ प्रस्तुत हैं वचन्द्रमंडलके समान सफेद छत्र अति दीपता हुआ अभिषेकके लिये तैयार है ॥ १० ॥ एक सफेद बैलसजाहुआ कान्तिमान् अभिषेककी सामग्रीमें मुख्य श्वेत अश्व, मद जिसके निकल रहा है ऐसाहाथी; यह सब अभिषेकके लिये उपस्थित है ॥ ११ ॥ सबप्रकारके बाजे बजानेवालेभाटलोग वंशकीप्रशंसाकरनेकेनिमित्त आयेइसके सिवाय और सूतमागधादिलोगभी जो सब सामग्री इक्ष्वाकुवंशीयराजाओंके अभिषेकके समय प्रयोजनीय होती है ॥ १२ ॥ वहसब प्रकारकी संपूर्ण सामग्री राजकुमार रामचन्द्रजीके अभिषेकार्थ इकट्ठी करके लेकर सब आयेहुये राजाकी आज्ञासेएकत्रहुये थे ॥ १३ ॥ जब राजाको न देखा तब यह सब ब्राह्मणगण आपसमें कहने लगे, हमलोगोंके आनेका

समाचारकौन राजासे कहे, देखिये राजा अबलों नहीं आये और देखो इधर सूर्य भगवान्भी निकल आये ॥ १४ ॥ बुद्धिमान् रामचन्द्रजीके अभिषेकका सब सामान होरहा है पर राजा दशरथजी अब तक नहीं आये न जाने कहां गये वहसब राजालोग आपसमें इस प्रकार कह रहेथे॥१५॥ किइतनेमें सुमंत्रजी वहां आ पहुँचे और सबसे कहाकि मैं महाराजकी आज्ञासे रामचन्द्रजीको शीघ्र बुलानेके लिये जाताहूं॥१६॥फिर बडे २ राजा महाराजोंसे सुमंत्रनेकहा कि, आप लोगसुखपूर्वक बैठिये, राजा व राजकुमार दोनों जन आकर आपलोगोंका सत्कार करेंगे। मैं तुम्हारी तरफसे राजाजीसे कुशल पूछूंगा ॥१७॥राजाजी जागते हैं पर बाहरनहीं निकले इसकाकारणभी आपलोगोंकी ओरसे पूछेंगेकि क्यों महाराज बाहर नहीं आये ऐसाकह बहुतप्राचीनकालकी बातोंकेजानने वाले सुमंत्रजीने फिरराजाके अन्तःपुरके द्वारमेंविनारोकटोक प्रवेश किया ॥१८॥ और महाराज दशरथके वंशकी बड़ाई करनेको उनके निकट गये और प्रशंसा

यौवराज्याभिषेकश्चसज्जोरामस्यधीमतः ॥ इतितेषुब्रुवाणेषुसर्वांस्तांश्चमहीपतीन् ॥१५॥ अब्रवीत्तानिदंवाक्यंसुमंत्रोराजसत्कृतः॥ रामंराज्ञो नियोगेनत्वरयाप्रस्थितोह्यहम् ॥ १६ ॥ पूज्याराज्ञोभवंतश्चरामस्यतुविशेषतः ॥ अयंपृच्छामिवचनात्सुखमायुष्मतामहम् ॥१७॥ राज्ञःसंप्रति बुद्धस्यचानागमनकारणम् ॥ इत्युक्त्वांतःपुरद्वारमाजगामपुराणवित् ॥ १८ ॥ सदासक्तंचतद्वेश्मसुमंत्रःप्रविवेशह ॥ तुष्टावास्यतदावंशंप्रवि श्यसविशांपतेः ॥१९॥ शयनीयंनरेंद्रस्यतदासाद्यव्यतिष्ठत॥ सोऽत्यासाद्यतुतद्वेश्मतिरस्करणिमंतरा॥२०॥ आशीर्भिर्गुणयुक्ताभिरभितुष्टाव राघवम् ॥ सोमसूर्यौचकाकुत्स्थशिववैश्रवणावपि ॥२१॥ वरुणश्चाग्निरिंद्रश्चविजयंप्रतिशंतुते॥गताभगवतीरात्रिरहःशिवमुपस्थितम् ॥२२॥ बुद्धयस्वराजशार्दूलकुरुकार्यमनंतरम् ॥ ब्राह्मणाबलमुख्याश्चनैगमाश्चागतास्त्विह ॥२३॥ दर्शनंतेऽभिकांक्षंतेप्रतिबुद्धयस्वराघव ॥ स्तुवंतंतं तदासूतंसुमंत्रंमंत्रकोविदम् ॥ २४ ॥ प्रतिबुद्धयततोराजाइदंवचनमब्रवीत् ॥ राममानयसूतेतियदस्यभिहितोमया ॥ २५ ॥

से सन्तुष्टकरनेलगे ॥१९॥ उस समयमहाराज दशरथजीकैकेयीकेपासथे और वहांजानेकी सुमंत्रकी कभी रोक टोक नथीउसमन्दिरको गये और परदेकी आडमें धोरे खडे हुये ॥२०॥ राजाको आशीर्वाददेकर प्रसन्न करनेलगे और बोले कि,हे महाराज ! चन्द्रमा, सूर्य, रुद्र,कुवेर ॥२१॥ वरुण, अग्नि और इन्द्रादि देव गणआपको विजयलक्ष्मी प्रदान करें,इस समय रात्रि बीतकर शुभ सबेरा हो आयाहै ॥२२॥हे चक्रवर्ती महाराज! अब उठकर प्रातःक्रियादि समाप्तकीजिये. ब्राह्मणलोग सेनापति और बनिये सबही लोग द्वार पर आये हुए हैं ॥२३॥ वह सबलोग आपकादर्शन करना चाहतेहैं और इसहीके लिये यत्नकर रहे हैं अत एव आप जागिये. ऐसे मंत्रके जाननेवाले सुमंत्रके स्तुति करनेपर ॥२४॥राजा दशरथजीने जागकर सुमंत्रसे यह वचन कहे कि हे सुमंत्र ! मैंने तुमको यहांपर

रामके लानेकी आज्ञादी थी॥२५॥सो तुमने किस कारणसे मेरीआज्ञाका प्रतिपालन नहीं किया । मैं इस समय सोता नहीं हूं तुम मेरी आज्ञासे जल्दी रामको यहांपर लावो ॥२६॥ इस प्रकारसे राजा दशरथने जब फिर सुमन्त्रसे कहा, तब सुमन्त्र राजाके वचन सुनकर और शिर नवा उस आज्ञाको शिरपर धारण कर ॥ २७ ॥ बड़ी बड़ाई करके रनवाससे चले और जाना कि,आज रामको राज्य मिलेगा। सुमंत्रजी विचित्र ध्वजा पताका लगे हुए राजमार्गमें उपस्थित हो ॥२८॥ इधर उधर देखते हुये प्रसन्नता से जाने लगे । मार्गमें हरएक मनुष्यके मुखसे रामचन्द्रजीके विषयकी वार्ता सुनी॥२९॥जिसमें लोकके आनन्ददेनेवाली कौशल्यानन्दनके राज्याभिषेककी बातें भरी हुई थीं कुछ दूर जाकरही उन्होंने कैलास पर्वतके समान ऊंचा व उज्ज्वल ॥ ३० ॥ रामका मन्दिर देखा जो

किमिदंकारणंयेनममाज्ञाप्रतिवाह्यते ॥ नचैवंसंप्रसुप्तोऽहमानयेहाशुराघवम् ॥ २६ ॥ इतिराजादशरथःसूतंतत्रान्वशात्पुनः सराजवचनंश्रुत्वाशिरसाप्रतिपूज्यतम् ॥ २७ ॥ निर्जगामनृपावासान्मन्यमानःप्रियंमहत् ॥ प्रपन्नोराजमार्गंचपताकाध्वजशोभितम् ॥२८॥ हृष्टःप्रमुदितःसूतोजगामाशुविलोकयन् ॥ ससूतस्तत्रशुश्रावरामाधिकरणाःकथाः ॥ २९ ॥ अभिषेचनसंयुक्ताःसर्वलोकस्यहृष्टवत् ॥ ततोददर्शरुचिरंकैलाससदृशप्रभम् ॥३०॥रामवेश्मसुमंत्रस्तुशक्रवेश्मसमप्रभम् ॥ महाकपाटपिहितंवितर्दिशतशोभितम् ॥३१॥ कांचनप्रतिमेकाग्रंमणिविद्रुमतोरणम् ॥ शारदाभ्रघनप्रख्यंदीप्तंमेरुगुहासमम् ॥३२॥ मणिभिर्वरमाल्यानांसुमहद्भिरलंकृतम् ॥ मुक्तामणिभिराकीर्णंचंदनागुरुभूषितम् ॥३३॥ गंधान्मनोज्ञान्विसृजद्दार्दुरंशिखरंयथा ॥ सारसैश्चमयूरैश्चविनदद्भिर्विराजितम् ॥ ३४ ॥ सुकृतेहामृगाकीर्णंसूत्कीर्णंभक्तिभिस्तथा ॥ मनश्चक्षुश्चभूतानामाददत्तिग्मतेजसा ॥ ३५ ॥

कि इन्द्रके भवनके समान सबसामग्रीसे भरा पुरा,बडे२किंवाड जिसमें लगे हुए सुवर्णकी सैकडोंमन मोहनेवाली वेदियें जिसमें बनी हुई॥३१॥सुवर्णकीही सैकडों मूर्ति जिसमें धरी हुई प्रसादके बाहरी दरवाजेपर प्रवाल और मणि मुक्ता जडेहुए देखनेमें शरदके मेघके समान निर्मल और सुमेरु पर्वतकी कन्दराके तुल्य चमकदार ॥३२॥सोनेके फलोंकी माला मोतीकी व मणियोंसे शोभित,चन्दन व अगरके मिलाये हुए जलसे छिडका छिडकाया हुआ॥३३॥मलयका शिखर जिस प्रकार सुगन्धिवान होता है यह स्थानभी वैसेही सुगन्धिविस्तार कर रहाथा. और स्थान २ में मोर वा सारस गण अनेकप्रकारकी किलोलें कर रहेथे ॥ ३४ ॥ जगह २ सोने, चांदी वस्तुओंकी बनाई वृक व्याघ्रोंकी मूर्तियें विराजमानथीं । इनके बनानेकी कारीगरीको देख देखनेवालेके मनमें आश्चर्य

और नेत्रोंकी गति नहीं पहुंचती थी ॥३५॥ यह रामचन्द्रजीका भवन चन्द्रमा सूर्यकी आभाके तुल्य व कुबेर मन्दिरके समान इन्द्रके गृहके सदृश अनेकप्रकारके पक्षियोंसे शोभित ॥३६॥ सुमेरु पर्वतके चोटीके आकारवाला रामका मन्दिर सुमन्त्रजीने देखा। वहां बहुत देशोंके व नगरोंके निवासी भेंट व उपहार लिये हाथ जोडे खडे थे ॥३७॥ सब लोग रामचन्द्रजीके यौवराज्याभिषेककी भेंटें लिये तैयार खडे थे वे सब यही चाह रहेथे कि, कबअभिषेक हो? सब अच्छे वस्त्र धारण किये थे ॥३८॥ यह मन्दिर महामेघके समान ऊंचा था व अनेक प्रकारकी मणियोंसे सजा सजाया और बहुत दास तथा कुबडी दासियोंसे भरापुरा था ॥३९॥ सो ऐसे मन्दिरके देखनेको घोडे जुते हुए रथमें बैठेहुए सुमन्त्रजी भीडसे भरे हुये राजमार्गको शोभित व सेनासमूह तथा पुरवासियों के हृदयको पुल

चंद्रभास्करसंकाशंकुबेरभवनोपमम् ॥ महेंद्रधामप्रतिमंनानापक्षिसमाकुलम् ॥ ३६ ॥ मेरुशृंगसमंसूतोरामवेश्मददर्शह ॥ उपस्थितैःसमाकीर्णं जनैरंजलिकारिभिः ॥ ३७ ॥ उपादायसमाक्रांतैस्तदाजानपदैर्जनैः ॥ रामाभिषेकसुमुखैरुन्मुखैःसमलंकृतम् ॥३८॥ महामेघसमप्रख्यमुदग्रं सुविराजितम् ॥ नानारत्नसमाकीर्णंकुब्जकैरपिचावृतम् ॥३९॥ सवाजियुक्तेनरथेनसारथिःसमाकुलंराजकुलंविराजयन् ॥ वरूथिनाराजगृहा भिपातिनापुरस्यसर्वस्यमनांसिहर्षयन्॥४०॥ ततःसमासाद्यमहाधनंमहत्प्रहृष्टरोमासबभूवसारथिः ॥ मृगैर्मयूरैश्चसमाकुलोल्बणंगृहंवरार्हस्य शचीपतेरिव ॥४१॥ सतत्रकैलासनिभाःस्वलंकृताःप्रविश्यकक्ष्यास्त्रिदशालयोपमाः॥ प्रियान्नरान्राममतेस्थितान्बहूनव्यपोह्यशुद्धांतमुपस्थितो रथी ॥४२॥ सतत्रशुश्रावचहर्षयुक्तारामाभिषेकार्थकृताजनानाम् ॥ नरेंद्रसूनोरभिमंगलार्थाःसर्वस्यलोकस्यगिरःप्रहृष्टाः ॥४३॥ महेंद्रसद्मप्र तिमंचवेश्मरामस्यरम्यंमृगपक्षिजुष्टम् ॥ ददर्शमेरोरिवशृंगमुच्चंविभ्राजमानंप्रभयासुमंत्रः ॥ ४४ ॥

कित करते हुये उस मन्दिरकी प्रथम ड्योढीपर पहुँचे ॥४०॥ जहां अनेक प्रकारका धन स्थान२पर रक्खा था,इसे देख सुमन्त्रजी बहुतही हर्षित हुये। शचीनाथ इन्द्रका भवन जिस प्रकारहै वैसेही रामचन्द्रजीका राजमदिरमृग और मोरोंसेशोभितहै ॥ ४१ ॥ अनन्तर रथी सुमंत्रजीकैलास पर्वतके तुल्य शोभाकरके युक्त स्वर्गके समान रमणीक कई एक फाटकोंको नांघ वरामचन्द्रजीके अधीनके बहुतमनुष्योंसे साक्षात् करतेहुये फिर उनसे साक्षात् कराकर सबसे पीछे रामचन्द्रजीके अन्तःपुरमें प्रवेश करते हुए ॥ ४२ ॥ वहां पहुँचकरसुना तो सब लोग रामचन्द्रजीके अभिषेकहीके मंगलार्थ वार्ता कररहेथे, उस वार्ताको सुन सुमंत्र बहुत आनन्दित हुये वह सम्पूर्ण लोगोंकीवार्ता रामचन्द्रके मंगलके निमित्तथीं ॥४३॥ रामचन्द्रजीका वासभवन बहुतहीरमणीकइन्द्रधामके समान शोभित और मृगपक्षि

योंके कलरवसे सुमेरु पर्वतकेसमानऊंचा और अपनेही प्रकाशसे दीपताहुआ सुमंत्रजीने देखा ॥४४॥ वहां दरवाजेपर असंख्य अनेकदेशोंके रहनेवाले नगरवासीअप नी२सवारियोंपरसे उतर२ कर करोडों रुपयोंकी सामग्री भेंटमें लिये हाथ जोड़ेद्वारपर खडे हैं ॥४५॥ सुमंत्रजीने वहांसे आगे बढ़कर देखाकि, मेघके समान श्याम वर्ण पर्वत के समान अकारवाला बडे शरीरवाला अंकुशका न सहनेवाला शत्रुञ्जय नाम रामचन्द्रजीका हाथी शोभायमान है ॥४६॥ और उससे आगे चलकर देखा तो बहुतसे महावत, अश्वपाल व रथवान् लोग अपने२हाथी, घोडे, रथ आदि सुधारे व सजाये हुये तैयार खड़े हैं व रामचन्द्रके प्यारे अमात्यमुख्योंको देखा तब उन सबको वहांसे हटाते हुए सब वस्तुओंसे पूरित अंतःपुर में उन भृत्य लोगोंके साथसुमंत्रजीने प्रवेश किया॥४७॥ उस पर्वतके कँगूरोंके व मेघोंके समान ऊंचे सैकडोंविमानोंके समान शोभायमान सैकडों मन्दिर जहां हैं तहाँ बिना रोक टोक सुमंत्रजी प्रवेश करते हुये जैसे कि, मकर रत्नोंसे पूरित समुद्र में घुसे॥४८॥

उपस्थितैरंजलिकारिभिश्चसोपायनैर्जानपदैर्जनैश्च ॥ कोटचापरार्धैश्चविमुक्तयानैःसमाकुलंद्वारपदंददर्श ॥४५॥ ततोमहामेघमहीधराभंप्रभिन्न मत्यंकुशमप्रसह्यम् ॥ रामोपवाह्यंरुचिरंददर्शशत्रुंजयंनागमुदग्रकायम् ॥४६॥ स्वलंकृतान्साश्वरथान्सकुंजरानमात्यमुख्यांश्चददर्शवल्लभान्॥ व्यपोह्यसूतःसहितान्समंततःसमृद्धमंतःपुरमाविवेशह ॥ ४७ ॥ ततोऽद्रिकूटाचलमेघसन्निभंमहाविमानोपमवेश्मसंयुतम्॥ आवार्यमाणःप्रवि वेशसारथिःप्रभूतरत्नंमकरोयथाऽर्णवम् ॥४८॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येचतुर्विंशतिसा०सं०अयोध्याकांडेपंचदशःसर्गः ॥१५॥ सतदंतःपुरद्वारंसमतीत्यजनाकुलम्॥ प्रविविक्तांततःकक्ष्यामाससादपुराणवित ॥ १ ॥ प्रासकार्मुकविभ्रद्भिर्युवभिर्मृष्टकुंडलैः ॥ अप्रमा दिभिरेकाग्रैःस्वानुरक्तैरधिष्ठिताम् ॥ २ ॥ अत्रकाषायिणोवृद्धान्वेत्रपाणीन्स्वलंकृतान् ॥ ददर्शविष्ठितान्द्वारिस्त्र्यध्यक्षान्सुमाहितान् ॥ ३ ॥ तेसमीक्ष्यसमायांतंरामप्रियचिकीर्षवः ॥ सहसोत्पतिताःसर्वेह्यासनेभ्यःससम्भ्रमाः ॥ ४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयोध्याकांडे भाषायां पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥ तदनन्तर पुराणवेत्ता सारथी भीडसे भरेहुए जनानेके द्वारको नांघ सब प्रकार के कोलाहलसे शून्य रामचन्द्रजीके अन्तःपुरके फाटकपर पहुँचे ॥ १ ॥ उस फाटक परकुंडलधारी विश्वासी द्वारपाल लोग पास धनुष बाण धारण किये पहरा दे रहे थेसबके सब युवा व कुंडलादि धारण कररहे मनसे अपने स्वामी के कार्य में अनुरक्तथे ॥ २ ॥ इनसे आगे चले तो देखा कि, वृद्ध लोग गेरुवा वस्त्र पहिरे हाथोंमें बेंतलिये सब भूषण वसन पहरे हुये स्त्रियोंकी रक्षा में नियुक्त थे ॥ ३ ॥ उन सबोंने देखाकि, महाराज के मंत्री सुमंत्रजी प्रफुल्लित हुए चले आ रहे हैं सो वे सब रामचन्द्रजी के प्रिय कार्य करनेवाले तो थेही, एक साथ अपने २ आसनोंसे उठ खडे हुये ॥ ४ ॥

तब उस समय सुमंत्रजीने उन लोगोंसे विनीत भावसे कहा कि सुमंत्रद्वारपै खडे हैं तुम लोग यह संवाद राज कुमार रामचन्द्रजीसे शीघ्र निवेदनकरो ॥५॥ यहश्रवणकर उन लोगोंने जोरामका प्रिय चाहतेथे बहुत शीघ्रताके साथ जाकर रामचन्द्रजीसे कहा कि, सुमंत्रजी आये हैं और द्वारपै खडे हैं।६॥ पिताके प्यारे रामचन्द्रजीने जाना कि, सुमन्त्र पिताके पठाये हुये आये हैं और उनके अन्तरंग मंत्री हैं, इस कारण तत्कालही दूतोंके द्वारा उनको घरमें बुला लिया॥७॥सुमंत्रजीने रामचन्द्र जीके गृहमें प्रवेश करके देखा कि, अनेक प्रकार के बिछौने बिछाये सोनेके पलंगपरकुबेर कीनाईं रामचन्द्रजी बैठे हैं॥८॥उनके शरीरमें वाराहके रुधिरके समान लाल पवित्र सुगन्ध माल युक्त चंदन लग रहाथा॥९॥उनकी एकओर बगल में चमरलिये जानकीजी खडीथीं उससमय देखनेसे ऐसा बोध होताथा मानो चित्राके

तानुवाचविनीतात्मासूतपुत्रःप्रदक्षिणः ॥ क्षिप्रमाख्यातरामायसुमंत्रोद्वारितिष्ठति ॥ ५ ॥ तेराममुपसंगम्यभर्तुःप्रियचिकीर्षवः॥सहभार्यायरा मायक्षिप्रमेवाचचक्षिरे ॥६॥ प्रतिवेदितमाज्ञाय सूतमभ्यंतरंपितुः ॥ तत्रैवानाययामासराघवःप्रियकाम्यया ॥ ७ ॥तंवैश्रवणसंकाशमुपविष्टं स्वलंकृतम्॥ददर्शसूतःपर्यंकेसौवर्णेसो त्तरच्छदे॥८॥वराहरुधिराभेणशुचिनाचसुगंधिना ॥ अनुलिप्तंपराध्यर्येनचंदनेनपरंतपम्॥९॥ स्थितया पार्श्वतश्चापिवालव्यजनहस्तया ॥ उपेतंसीतयाभूयश्चित्रयाशशिनंयथा ॥१०॥ तंतपंतमिवादित्यमुपपन्नंस्वतेजसा॥ ववंदेवरदंबंदीविनयज्ञो विनीतवत्॥ ११ ॥ प्रांजलिःसुसुखंदृष्ट्वाविहारशयनाशने ॥ राजपुत्रमुवाचेदंसुमंत्रोराजसत्कृतः ॥१२॥ कौसल्यासुप्रजारामपितात्वांद्रष्टुमि च्छति॥महिष्यापिहिकैकेय्यागम्यतांतत्रमाचिरम् ॥१३॥ एवमुक्तस्तुसंहृष्टोनरसिंहोमहाद्युतिः॥ततःसंमानयामाससीतामिदमुवाचह ॥१४॥ देविदेवश्चदेवीचसमागम्यमदंतरे ॥ मंत्रयेतेध्रुवंकिंचिदभिषेचनसंहितम् ॥ १५ ॥ लक्षयित्वाह्यभिप्रायंप्रियकामासुदक्षिणा ॥ संचोदयति राजानमदर्थंमसितेक्षणा ॥ १६ ॥

सहित चन्द्रमाशोभित हैं॥१०॥ रामचन्द्रजी अपने तेजसे दुपहरके सूर्यकी नाईं तपरहे थे देखतेही विनयके ज्ञाता सुमंत्रजीनेवरदायक उनके चरणोंमें विनय पूर्वक प्रणाम किया॥११॥प्रणाम कर के राजासे सत्कृत सुमंत्रजीने सुखसे बैठे प्रसन्नराजकुमार रामचन्द्रजीसे हाथ जोडकर यह वार्ता कही ॥१२॥कि हे रामचन्द्रजी !कौश ल्याजी अब सुप्रजा हुईं ! देवी कैकेयी और महाराज दशरथजीने आपको देखनेकी इच्छा की है अतएव विलम्ब न करके अभी मेरे साथ चलिये॥१३॥सुमंत्रजीसे यह बात सुनकर मनुष्योंमें सिंहसमान महाद्युतिमान् रामचन्द्रजी बहुत प्रसन्नहुये सुमंत्रके वचन मानकर अपने निकटही बैठी हुई प्रिया जानकीसे कहा ॥ १४॥ हे देवि जानकी ! हमारी माता कैकेयी और पिताजी इकट्ठे होकर निश्चयही हमारेअभिषेकके विषयमें कोई सलाह करते हैं॥१५॥ मेरी समझमें तो ऐसा आता है

कि मेरी हितकारिणी चतुर माता कैकेयी महाराजका अभिप्राय समझकर मेरा प्रियकार्य करनेके लिये राजाको जल्दी करा रही है ॥१६॥ वह कैकय देशके राजाकीपुत्री मेरी माता सदा मेरा मंगल चाहनेवाली है. ऐसा ज्ञात होता है कि मेराही प्रिय करनेको उसने महाराजसे कुछ मांगा है ॥१७॥ हमारे परमप्यारे पिता महाराजने व माता कैकेयीनेजो मेरे पास हमारे अर्थ काम करनेवाले सुमंत्र जीको पठाया इससे मेरा बडाही भाग्य है ॥१८॥ जिसप्रकारकी सभा अंतः पुरमें राजाके निकट थी, वैसेही मेरा प्रियकार्य करनेवाला दूत मेरे पास आयाइससेसब निश्चयही पिताजी हमें यौवराज्यमें अभिषिक्त करेंगे ॥१९ ॥ सुन्दरी तुम अपनीसंगिनियोंको साथ लेकर यहां सुखसे रहो और मैं जितना शीघ्र होसकेगा महाराज पिताजीके दर्शनको अभी जाताहूँ ॥२०॥ पतिअनुगामिनी कमलके समान नेत्र वाली सीताजी यह वचन श्रवण करके अपने पतिका मंगल साधन करनेके लिये उनके साथ द्वारतक चली आई ॥२१॥ फिर जानेके समय कहा

साप्रहृष्टामहाराजंहितकामानुवर्तिनी ॥ जननीचार्थकामामेकेकयाधिपतेः सुता ॥१७॥ दिष्ट्याखलुमहाराजोमहिष्याप्रिययासह ॥ सुमंत्रंप्राहिणोद्दूतमर्थकामकरंमम ॥१८॥ यादृशीपरिषत्तत्रतादृशोदूतआगतः॥ध्रुवमद्यैवमांराजायौवराज्येऽभिषेक्ष्यति ॥१९॥ हंतशीघ्रमितोगत्वाद्रक्ष्यामिचमहीपतिम् ॥ सहत्वंपरिवारेणसुखमास्स्वरमस्वच ॥ २० ॥ पतिसंमानितासीताभर्तारमसितेक्षणा ॥ आद्वारमनुवव्राजमंगलान्यभिदध्युषी ॥ २१ ॥ राज्यंद्विजातिभिर्जुष्टंराजसूयाभिषेचनम् ॥ कर्त्तुमर्हतितेराजावासवस्येवलोककृत् ॥ २२ ॥ दीक्षितंव्रतसंपन्नंवराजिनधरंशुचिम् ॥ कुरंगशृंगपाणिंचपश्यंतीत्वांभजाम्यहम् ॥ २३ ॥ पूर्वांदिशंवज्रधरोदक्षिणांपांतुतेयमः ॥ वरुणःपश्चिमापाशांधनेशस्तूत्तरांदिशम् ॥ २४ ॥ अथसीतामनुज्ञाप्यकृतकौतुकमंगलः ॥ निश्चक्रामसुमंत्रेणसहरामोनिवेशनात् ॥ २५ ॥ पर्वतादिवनिष्क्रम्यसिंहोगिरिगुहाशयः ॥लक्ष्मणंद्वारिसोऽपश्यत्प्रह्वांजलिपुटस्थितम् ॥ २६ ॥

किप्रजा पतिब्रह्माजीने जिसप्रकार सुरपतिइन्द्रको सुरराज्यमेंअभिषिक्त कियाथा वैसेही महाराज ब्राह्मणादिकोंसहित यौवराज्यमें अभिषेककरके पीछे राजसूय यज्ञ कर आपकोअपनेपूरे राज्यका अधिकारी करदें ॥२२॥ यौवराज्य प्राप्त करनेके लिये व्रतधारण कियेहुये और चर्म धारण किये हुये व दीक्षित मृगशृंग हाथमें लियेहुये आपको देखकर मैं अपना अहोभाग्य समझूंगी कि मेरा बडा भाग्य है कि मैं आपकी सेवा कर सकूंगी॥२३॥ अबइस समय यह प्रार्थना है कि,इन्द्र तुम्हारा पूर्व,यम तुम्हारे दक्षिण, वरुण पश्चिम और कुवेर उत्तर दिशामें रक्षा करें ॥ २४ ॥ सीताजीके मंगलाचरण करनेपर सीतापति रामचन्द्रजीसीताजीसे बिदालेकर सुमंत्रके साथ अपने वासभवनसे निकले ॥२५॥ जिस प्रकार पर्वतोंकी कन्दरामें शयन करनेवाला सिंह इधर उधर देखता; गुहामेंसे निकलता है वीर

केसरी रामचन्द्रजीभी उसीप्रकार अपने भवनसे बाहर आये। वहां आकर देखा तो द्वारपर हाथ जोडे लक्ष्मणजी खडे हैं ॥ २६॥ जब बीचके फाटक पर आये तो देखा कि बहुतसे बन्धु बान्धवजन भेंट लिये दर्शनार्थ खडे हैं तब रामचन्द्रजीने सबका सन्मान किया और उनकी ओर निहारा ॥२७॥ और फिर अग्निके समान चमकते हुये दिव्य रथपर बैठे. इस रथमें व्याघ्रके चमडेका ओहार पडा हुआ था ऐसे रथमें पुरुषव्याघ्र राजनंदन रामचन्द्रजी बैठे ॥२८॥ इस रथका शब्द बादलके गर्जनेके समानथा और मणि व सोनेसे यह विभूषित था व अपने तेजसे सूर्यके समान सबकी आंखें चकाचौंधिआता था ॥ २९ ॥ जो अश्व उसमें नधे हुये थे वे हथिनीके बचेसे कुछही कम ऊंचे थे। वह रथ देखनेमें इन्द्रके रथकी नाईं शीघ्र चलनेवाला था ॥ ३० ॥जिस समय रामचन्द्रजी अपने

अथमध्यमकक्ष्यांसमागच्छत्सुहृज्जनैः ॥ससर्वानर्थिनोदृष्ट्वासमेत्यप्रतिनंद्यच ॥२७॥ ततःपावकसंकाशमारुरोहरथोत्तमम् ॥ वैयाघ्रंपुरुषव्याघ्रोराजितंराजनंदनः ॥२८॥ मेघनादमसंबाधंमणिहेमविभूषितम् ॥ मुष्णंतमिवचक्षूंषिप्रभयामेरुवर्चसम् ॥ २९ ॥ करेणुशिशुकल्पैश्चयुक्तंपरमवाजिभिः॥ हरियुक्तंसहस्राक्षोरथमिंद्रइवाशुगम् ॥ ३० ॥ प्रययौतूर्णमास्थायराघवोज्वलितःश्रिया॥ सपर्जन्यइवाकाशेस्वनवानभिनादयन् ॥३१॥ निकेतान्निर्ययौश्रीमान्महाभ्रादिवचन्द्रमाः ॥ चित्रचामरपाणिस्तुलक्ष्मणोराघवानुजः ॥ ३२ ॥ जुगोपभ्रातरंभ्रातारथमास्थायपृष्ठतः॥ ततोहलहलाशब्दस्तुमुलःसमजायत ॥ ३३ ॥तस्यनिष्क्रममाणस्यजनौघस्यसमंततः ॥ ततोहयवरामुख्यानागाश्चगिरिसंनिभाः ॥ ३४ ॥ अनुजग्मुस्तथारामंशतशोऽथसहस्रशः ॥अग्रतश्चास्यसन्नद्धाश्चंदनागुरुभूषिताः ॥ ३५ ॥ खड्गचापधराःशूराजग्मुराशंसवोजनाः ॥ ततोवादित्रशब्दाश्चस्तुतिशब्दाश्चबंदिनाम् ॥ ३६ ॥

तेजसे दीप्तिमान उस रथमें बैठकर चले जैसे कि आकाशमें शब्दायमान बादल चलें वैसेही इस रथका शब्द होता था॥३१॥ जिस समय रामचन्द्रजीउस रथमें बैठकर बाहर आये उस समय वह मेघसे निकले हुये चन्द्रमाके समान शोभा धारण करते हुये. व उसी रथपै विचित्र चमर हाथमें लियेहुये लक्ष्मणजी उनके अनुवर्तीहुये ॥३२॥ बडे भ्राताकी रक्षा करनेके लिये लक्ष्मण उनके पीछे उसी रथपर चढे चले जाते थे। इस समय तुमुल वेगसे रथकी गति और उनका घर्घर शब्द उठा और मनुष्योंका बडा शब्द हुआ॥३३॥ उनके चलने पर सब ओरसे जनसमूह चले जो अश्व रामचन्द्रजीके रथमें जुते थे उनके अतिरिक्त और हजारों पर्वताकार हाथी घोडे ॥३४॥ रामचन्द्रजीके पीछे जाने लगे बहुत लोग उनके पीछे चले, चंदन लगेहुये अगरुसे शोभित अगणित वीरगण ॥३५॥ ढाल तर

वारादि हथियार हाथमें लिये रामचन्द्रजीका यश बखानते उनके पीछे २ चले साथ२खड्ग और धनुष बाण धारण किये हुये शूर वीरगण आगे बढ़े उस समय चारों। ओर बाजोंका शब्द और बन्दिगणोंसे श्रवणानंददायक प्रेमसे स्तुति गाई जाती थी॥३६॥ वीरगणोंके सिंहनाद करनेसे दशों दिशा कांपने लगीं. रूप लावण्यवती ललनायें सोलहों शृंगारसे सज धजकर अपने घरके झरोखों व खिडकियोंमें बैठे ॥ ३७ ॥ रामचन्द्रजीके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगीं; व हजारों रूपवती कामिनियें कि जिनके सबही अंग सुन्दर थे,कोई कोठेकी छतपरं चढी कोई अपनेद्वारोंसेझाँकतीहुई रामचन्द्रजीको प्रसन्न करनेकेलिये अतिमनमोहन वचनोंसे स्तुति करती थीं ॥३८॥ वह सबही स्त्रियें झरोंखो और छत्तोंपर बराबर यही कहती थीं कि हे मातृनंदन ! आजमहारानीकौशल्याजी रामचंद्रजीका अभिषेक देखकर निश्चय फूले अंगोंमें न समावेंगी ॥ ३९ ॥ हम जानती हैं कि ललनारत्न सीताजी सर्व स्त्रियोंमें श्रेष्ठ हैं, पहले जन्ममेंबिना कुछ सुकृत किये

सिंहनादाश्चशूराणांततःशुश्रुविरेपथि॥हर्म्यवातायनस्थाभिर्भूषिताभिःसमंततः॥३७॥ कीर्यमाणःसुपुष्पौघैर्ययौस्त्रीभिररिंदमः ॥ रामंसर्वानवद्यांग्योराममपिप्रीषयाततः ॥३८॥ वचोभिरग्र्यैर्हर्म्यस्थाःक्षितिस्थाश्चववंदिरे नूनंनंदतितेमाताकौसल्यामातृनंदन ॥ ३९ ॥ पश्यंतीसिद्धयात्रं त्वां पित्र्यंराज्यमुपस्थितम् ॥सर्वसीमंतिनीभ्यश्चसीतासीमंतिनीवरा ॥४०॥ अमन्यंतहितानार्योरामस्यहृदयप्रियाम् ॥ तयासुचरितंदेव्यापुरानूनंमहत्तपः ॥४१॥ रोहिणीवशशांकेनरामसयोगमापया ॥ इतिप्रासादशृंगेषुप्रमदाभिर्नरोत्तमः॥शुश्रावराजमार्गस्थःप्रियावाचउदाहृताः ॥ ४२ ॥ सराघवस्तत्रतदाप्रलापाञ्छुश्रावलोकस्यसमागतस्य ॥ आत्माधिकाराविविधाश्चवाचःप्रहृष्टरूपस्यपुरेजनस्य ॥४३॥ एषश्रियंगच्छतिराघवोऽद्यराजप्रसादाद्विपुलांगमिष्यन् ॥ एतेवयंसर्वसमृद्धकामायेषामयंनोभविताप्रशास्ता ॥ ४४ ॥

ऐसा सौभाग्य नहीं मिलसकता, आज वह तुमको पितासे राज्य प्राप्तदेखकर सफलमनोरथ होंगी ॥४०॥ हम सब भली प्रकार जानती हैं कि, सीताजी रामचंद्रजीके हृदयका धन हैं । सखी कहनेमें तो सीताजीने ठीक २ ही पहले जन्मके पुण्यका परिचय दिया है, निश्चयही जानकीने पहले जन्ममें बडा पुण्य कियाहै ॥ ४१ ॥ रोहिणी जिस प्रकार चंद्रमाकी अनुगामिनी है, वैसेही श्रीसीताजी रामचन्द्रजीकी जीवनाधार हैं, धवरहरे व कोठोंपर चढकर श्रेष्ठ स्त्रियें यह कह रहींथीं सो यह सब रामचन्द्रजी प्रसन्न होते सुनते हुये राजमार्गमें चले जाते थे ॥ ४२ ॥ स्त्रियोंके अतिरिक्त स्थान २ में राजमार्गमें सवारी देखनेके लिये जो मनुष्य आये थे उनकी भी वार्त्ता व प्यारी वाणी जो प्रसन्न होकर सब कहरहे थे अपने अधिकारके विषयमें सुनते २ प्रसन्न होते हुये रामचंद्रजी चले जाते थे ॥४३॥ जाते २ महाराज रामचंद्रजी एक बहुत भारी भीड भरे स्थानमें पहुँचे वहां सबके मुखसे यही सुना कि वह राजकुमार राजभवनमें

राज्याभिषेक पानेके लिये पिताके गृहको जाते हैं जब यह राजा हो जायँगे तब हमारे सुखकी सीमा नहीं रहेगी ॥ ४४ ॥ यह, निःसंदेह सब राज्यका भार पावेंगे इसमें संदेह नहीं और इनका राज्य पाना हमारे लिये बहुत लाभदायक होगा. क्योंकि इन नरेश्वरके अधिकारमें कभी किसी प्रकारका अनिष्ट नहीं देखना पडेगा ॥ ४५ ॥ अतिशब्द करनेवाले हाथी घोडे और सूत मागध आदि लेकररामचन्द्रजीके वंशका यश गाते चले जाते थे व रघुनाथजीके सब साजसमाजके साथकुबेरजीकेसमानशोभित गाते चले जाते थे उससमयवीरकी शोभाको देख पुर नरनारी सब प्रमुदित होते थे ॥४६॥ हाथी व दन्तले हाथी,रथ घोडों व महाबीरोंके साथ जाते२भरे हुए मार्गमें रत्नोंके ढेरपर्वतके शिखरकेसमान शोभायमान हैं ऐसेबहुत पुण्यसंचय किये हुए मार्गको रामचन्द्रजीनेदेखा॥४७॥

लाभोजनस्यास्ययदेशसर्वंप्रपत्स्यतेराष्ट्रमिदंचिराय ॥ नह्यप्रियंकिंचनजातुकश्चित्पश्येन्नदुःखंमनुजाधिपेऽस्मिन् ॥ ४५ ॥ सघोषवद्भिश्चहयैः सनागैःपुरःसरैःस्वस्तिकसूतमागधैः ॥ महीयमानःप्रवरैश्चवादिकैरभिष्टुतोवैश्रवणोयथाययौ ॥ ४६ ॥ करेणुमातंगरथाश्वसंकुलंमहाजनौघैःपरिपूर्णचत्वरम् ॥ प्रभूतरत्नंबहुपण्यसंचयंददर्शरामोविमलंमहापथम् ॥ ४७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये चतुर्विंशतिसा० सं० अयोध्याकांडे षोडशःसर्गः॥ १६॥ सरामोरथमास्थायसंप्रहृष्टसुहृज्जनः ॥ पताकाध्वजसंपन्नंमहार्हागुरुधूपितम् ॥१॥ अपश्यन्नगरंश्रीमान्नानाजनसमन्वितम् ॥ सगृहैरभ्रसंकाशैःपांडुरैरुपशोभितम् ॥ २ ॥ राजमार्गंययौरामोमध्येनागुरुधूपितम् ॥ चंदनानांचमुख्यानामगुरूणांचसंचयैः ॥ ३ ॥ उत्तमानांचगंधानांक्षौमकौशांबरस्यच ॥ अविद्धाभिश्चमुक्ताभिरुत्तमैःस्फाटिकैरपि ॥ ४ ॥ शोभमानमसंबाधंतंराजपथमुत्तमम् ॥ संवृतंविविधैःपुष्पैर्भक्ष्यैरुच्चावचैरपि ॥ ५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० अयोध्याकां० भाषायां षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने रथपर चढे हुये राजमार्गमें प्रवेश करते हुये देखा कि, सब लोग प्रसन्नहैं सब जगहमें कपूर और धूपके धुवेंसे सुगंधि फैल रही है और स्थान २ में ध्वजा पताका बँध रही हैं ॥ १ ॥ अनेक प्रकार मनुष्योंसे भरे हुये आकाशके छूनेवाले मन्दिर शोभायमान जगह २ धनके ढेरोंसे भरपूर देखते हुये ॥ २ ॥अगर धूप दीपादि सुगंधियों करके सुगंधित राजमार्गमें रामचन्द्रजी चले जातेथे चन्दन, अगर व और२भी सुगन्धित वस्तुयें राजमार्गके किनारोंपर छिडकी हुईथीं ॥ ३ ॥ उत्तम २ सुगंन्धित द्रव्योंके अतिरिक्त स्थान २ में दूकानोंपर रेशमी वस्त्रोंके ढेरके ढेर मन मोहित कर रहेथे बिधे हुये मोतियों व स्फटिक मणियोंके समूहके समूह ॥ ४ ॥ राजमार्गमें शोभायमान थे व

इसके सिवाय राजमार्ग में फूलभी धरेथे और मंगलाचारकेलिये अनेक प्रकारकी मंगल वस्तुयें व भोजनकी वस्तु रक्खीथीं ॥ ५ ॥ सुरलोकमें सुरपतिकी नाईं रामचन्द्रजीने दही, चावल, खीर और खीलोंकी अंजलिके द्वारा और धूप अगर चन्दनसे राजमार्ग समाकीर्ण देखा॥ ६॥ अनेक प्रकारकी मालायें अनेक प्रकारकी सुगंधितवस्तुओंसे अर्चित हुये मार्गमें असंख्य मनुष्य रामचन्द्रजीके दर्शनकर उनको आशीर्वाद देने लगे। इस प्रकारकी अवस्थाको देखकर राजकुमारके बन्धु बान्धवोंके आनन्दकी सीमा न रही ॥ ७॥ कृपादृष्टिसे सबके ऊपर अनुग्रह करते हुये रामचन्द्रजी चले व कोई वृद्ध लोग ऐसा कहकरभी आशीर्वाद देते थे कि, हे राजकुमार! जैसे तुम्हारे पितामहप्रपितामहादिकोंने आचरण कर हमलोगोंका पालन किया है॥ ८॥ ऐसेही आप राज्याभिषेक पाकर हमलोगोंका पालन कीजिये तुम्हारे पूर्व पुरुषोंके अधिकारमें हम जिस प्रकार सुखीथे, वैसेही हम सब आपके अधिकारमें सुखी हों । इन वृद्धोंकी वाणी सुन और लोग बोले कि, इसमें कुछ

ददर्शतंराजपथंदिविदेवपतिर्यथा॥ दध्यक्षतहविर्लाजैर्धूपैरगुरुचंदनैः॥ ६॥ नानामाल्योपगंधैश्चसदाभ्यर्चितचत्वरम्॥ आशीर्वादान्बहूञ्छृण्वन्ब हुभिः समुदीरितान्॥ ७॥ यथार्हंसापिसंपूज्यसर्वानेवनरान्ययौ॥ पितामहैराचरिततंतथैवप्रपितामहैः ॥ ८॥ अद्योपादायतंमार्गमभिषिक्तोऽनुपा लय॥ यथास्मपोषिताः पित्रायथासर्वैः पितामहैः॥ ततःसुखतरंसर्वेरामेवत्स्यामराजनि ॥ ९॥ अलमद्यहिभुक्तेनपरमार्थैरलंचनः॥ यदिपश्यामनि र्यांतंरामंराज्येप्रतिष्ठितम् ॥ १०॥ ततोहिनःप्रियतरंनान्यत्किंचिद्भविष्यति ॥ यथाभिषेकोरामस्यराज्येनामिततेजसः ॥ ११ ॥ एताश्चान्या श्चसुहृदामुदासीनःशुभाः कथाः॥ आत्मसंपूजनीःशृण्वन्ययौरामोमहापथम् ॥ १२॥ नहितस्मान्मनःकश्चिच्चक्षुषीवानरोत्तमात् ॥ नरःशक्नो त्यपाक्रष्टुमतिक्रांतेऽपिराघवे॥ १३॥ यश्चरामंनपश्येत्तुयंचरामोनपश्यति ॥ निंदितःसर्वलोकेषुस्वात्माप्येनंविगर्हते ॥ १४ ॥

सन्देह नहीं कि जैसे हमलोग इनके पिता पितामहादिकोंके राज्यमें पालेगये उससे अधिकसुखरामचन्द्रके राज्यमें पावेंगे॥ ९॥ वह सब रामचन्द्रजीसे यहभी कहने लगे कि, अधिक क्या कहें कि, यदि आपको अभिषिक्तपिताजीके भवनसे आते राजमार्गमें देखें तो हम लोग इस लोक और परलोकके सुखकीभी चाह नहीं रखते ॥ १०॥ वास्तवमें अमित तेजवान् रामचन्द्रजी के अभिषेकसे अधिक और हमारी प्रिय वस्तु कुछभी नहीं है ॥ ११ ॥ अनेक सुहृदोंके मुखसे ऐसी प्रशंसा सुनते हुये रामचन्द्रजी मार्गमें चले जाते थे क्योंकि अपनी प्रशंसा सुनकर प्रसन्न होना सज्जनोंको उचित नहीं, इसही कारण श्रीरामचन्द्रजी न प्रसन्नहीहोते नअप्र सन्नही किंतु उदासीनकी भांति राजमार्गमें चले जाते थे॥ १२॥ यद्यपि रामचन्द्रजी उन सब लोगोंकी दृष्टिसे बहुत दूर निकल गये तथापि कोई भी मन और नेत्रों कीदृष्टिको उनसे अलग नहीं कर सका ॥ १३॥ फलतः जिस किसीने रामचन्द्रजीका दर्शन न किया अथवा रामचन्द्रजीने जिसको न देखा वह सज्जनोंके

निकट निन्दाका अधिकारी होता है व उसका आत्माभी उसकी निन्दा करता है ॥ १४ ॥ धर्मात्मा रामचन्द्रजी चारों वर्णोंको समदृष्टिसे देखतेथे इससे वर्णमें ज्ञानकी कुछ आवश्यकता नहीं जिसका जन्म संसारमें है उसे अवश्यही श्रीरामचन्द्रजीका भजन करना चाहिये इसी कारण चारों वर्णोंके लोग रामचन्द्रमें बडा प्रेम करतेथे ॥ १५ ॥ फिर रामचन्द्रजी चौराहे, अच्छे २ वृक्ष, देवालय व सभा आदिके स्थान व उन सबको दाहिनी ओर छोडते हुये राजभवनमें पहुँचनेके लिये गमन करने लगे ॥ १६ ॥ उन्होंने जाते २ देखा कि, राज धवरहर मेघाकार शोभा पारहा है तब रामचन्द्रजी सबसे भले प्रासादमें पहुँचे वह प्रासाद बहुत शृङ्गोंवाले कैलास पर्वतके शिखरके समान शोभायमान था ॥१७॥ जहाँ कि, आकाशको आक्रमण करते हुए देवताओंके विमानोंकी नाईं सहस्रोंसफेद वर्द्धमान (क्रीडा)गृह बने हुए जिनमें हीरा आदि रत्नोंकी झालरें लगी हुई हैं ॥१८॥ मानों पृथ्वीमें दूसरा इन्द्रमन्दिर है ऐसे भवनमें अपनी शोभासे दीप्ति

सर्वेषुसहिधर्मात्मा वर्णानांकुरुतेदयाम् ॥ चतुर्णांहिवयःस्थानांतेनतेतमनुव्रताः ॥१५॥ चतुष्पथान्देवपथांश्चैत्यान्वायतनानिच ॥ प्रदक्षिणं परिहरञ्ज गामनृपतेःसुतः ॥१६॥ सराजकुलमासाद्यमेघसंघोपमैःशुभैः ॥ प्रासादशृंगैर्विविधैः कैलासशिखरोपमैः ॥१७॥ आवरयद्भिर्गगनं विमानैरिवपांडुरैः ॥ वर्धमानगृहैश्चापिरत्नजालपरिष्कृतैः ॥१८॥ तत्पृथिव्यांगृहवरंमहेंद्रसदनोपमम् ॥ राजपुत्रःपितुर्वेश्मप्र विवेशश्रियाज्व लन् ॥ १९॥ सकक्ष्याधन्विभिर्गुप्तास्तिस्रोऽतिक्रम्यवाजिभिः ॥ पदातिरपरेकक्ष्येद्वेजगामनरोत्तमः॥२०॥ ससर्वासमतिक्रम्यकक्ष्यादशरथा त्मजः ॥ सन्निवर्त्यजनंसर्वंशुद्धांतःपुरमत्यगात् ॥२१॥ तस्मिन्प्रविष्टेपितुरंतिकंतदाजनःससर्वोमुदितोनृपात्मजे ॥ प्रतीक्षतेतस्यपुनःस्मनिर्गं मंयथोदयंचंद्रमसःसरित्पतिः॥२२॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये चतुर्विंशतिसा० स०अयोध्याकांडेसप्तदशः सर्गः॥१७॥

मान् महाराज कुमार श्रीरामचन्द्रजी पहुँचे ॥ १९ ॥ रामचन्द्रजी प्रवेश करनेके समय जातेही तीन फाटककोंको देखा यह तीनों फाटक धनुष बाण धारण कियेहुए वीरपुरुषोंसेरक्षितथे रामचन्द्रजी इन तीन फाटकोंमेंतो रथपर बैठेही बैठे चले गये जब चतुर्थ फाटकपर पहुँचे तो रथसे उतरकर पैदल चले और वह नरोत्तम दो फाटकतक पैदल गये ॥२०॥ इस प्रकार दशरथ कुमार सब फाटकोंको नांघकर सब आदमियोंको वहीं छोड़ शुद्धअन्तः पुरमें आये ॥२१॥ जब राजकुमार रामचन्द्रजी अन्तःपुरमें पिताके पासचले गये तब सबही लोग परमानन्दित हुए. समुद्र जिस प्रकार चन्द्रमाके निकलनेकी प्रतिक्षा करता है वैसे ही सब लोग रामचन्द्रके राजभवनसे आनेकी बाट देखने लगे ॥ २२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० अयोध्याकां० भाषायां सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

अनन्तर रामचन्द्रजीने राजा दशरथजीको कैकेयीके सहित दीनभावसे मुँह सुखाये हुये सुन्दर पलँगपै लेटे हुये देखा ॥१॥ पहलेही रामचन्द्रजीने पिताजीके चरणोंमें प्रणाम किया फिर जननी कैकेयीके चरणोंमें बडीसावधानीसे प्रणाम किया ॥२॥ 'राम' यह कहकर महाराज दशरथजीकी वाणी गद्गदहो आई, व इसके अतिरिक्त रामचन्द्रजीसे न कुछ कहाही न उनकी ओर देखही सके ॥३॥ सर्पको पैरसे छूकर जैसे भय होता है ऐसे महाराज दशरथ जीकी अपूर्व भयावह अवस्था देखकर रामचन्द्रजीके अन्तरमें भयका संचार हुआ ॥४॥ राजा की कोई इन्द्रिय भी प्रसन्न नथी, मारे शोक संतापके सब शरीर दुर्बल होगया था। और विषादके मारे दीर्घ निःश्वास त्याग कररहेथे ॥५॥ तरंगमाला सङ्कुल समुद्र जिस प्रकार खलबला जाता है व राहुसे ग्रसे हुये सूर्य की जो दशा होती है, झूँठ कह कर ऋषि लोगोंकी जो दश

सददर्शासनेरामोविषण्णंपितरंशुभे ॥ कैकेय्यासहितंदीनंमुखेनपरिशुष्यता ॥ १ ॥ सपितुश्चरणौपूर्वमभिवाद्यविनीतवत् ॥ ततोववंदेचरणौ कैकेय्याःसुसमाहितः ॥ २ ॥ रामेत्युक्त्वातुवचनंबाष्पपर्याकुलेक्षणः ॥ शशाकनृपतिर्दीनोनोक्षितुंनाभिभाषितुम् ॥ ३ ॥ तदपूर्वंनरपतेर्दृष्ट्वा रूपंभयावहम् ॥ रामोऽपिभयमापन्नःपदास्पृष्ट्वेवपन्नगम् ॥ ४ ॥ इंद्रियैरप्रहृष्टैस्तंशोकसंतापकर्शितम् ॥ निःश्वसंतंमहाराज्यथितंताकुलचेतनम् ॥५॥ ऊर्मिमालिनमक्षोभ्यंक्षुभ्यंतमिवसागरम्॥उपप्लुतमिवादित्यमुक्तनृतमृषिंयथा ॥६॥ अचिंत्यकल्पंनृपतेस्तंशोकमुपधारयन् ॥ बभूवसंरब्धतरः समुद्रइवपर्वणि ॥७॥ चिंतयामासचतुरोरामःपितृहितेरतः ॥ किंस्विदद्यैवनृपतिर्नमांप्रत्यभिनंदति ॥८॥अन्यदामांपितादृष्ट्वाकुपितोऽपिप्रसीदति ॥ तस्यमामद्यसंप्रेक्ष्यकिमायासःप्रवर्तते ॥ ९ ॥ सदीनइवशोकार्तोविषण्णवदनद्युतिः ॥ कैकेयीमभिवाद्यैवरामोवचनमब्रवीत् ॥ १० ॥कच्चिन्मयानापराद्धमज्ञानाद्येनमेपिता ॥ कुपितस्तन्ममाचक्ष्वत्वमेवैनंप्रसादय ॥ ११ ॥

होती है, वही दशा उस समय राजाकी थी ॥६॥ महाराज पिताजीकी इस शोचनीय अवस्थाका क्या कारण है यह विचारकर रामचन्द्रजीके अंतःकरण में ऐसी खलबली उठी जैसे पूर्णमासीके दिन समुद्र उछलता है॥७॥ चतुर व पिताके प्यारे रामचन्द्रजी यह विचार करने लगे कि, आज मुझको देखकर क्यों महाराज पिताजी हर्षित नहीं हुये॥८॥ और दिन जब कभी क्रोधितभी होते तो हमको देख प्रसन्न होजाते, किन्तु आजमुझे देखकर पिताजी क्यों क्लेश पारहे हैं ? ॥९॥ और क्यों शोकसे आर्त विषादित और दीनभावसे बैठे हैं यह शोच विचारकर रामचन्द्रजीजननी कैकेयीको प्रणाम कर पूछने लगे ॥१०॥ कि, मैंने अज्ञानताके वश होकर क्या पिताके चरणोंमें कोई अपराध किया जिसके कारण पिताजी हमसे रूठ गये हैं ? हे माताजी ! हमारा अपराध क्षमा करानेके लिये तुम पिताजीको प्रसन्न करो ॥ ११ ॥

पिताजी मुझसे सदा प्रसन्न रहते थे, फिर आज क्या कारण है जो दुःखित मन हो दीन भावसे बैठे हैं और मुझसे कुछ बोलेभी नहीं इसका क्या कारण है? ॥१२॥ या किसी शारीरिक वा मानसिक संताप अभितापने पिताजीको दुःखित किया है? मैं जानताहूं कि, मनुष्य शरीरधारण करनेवालेको सदैव सुख पाना बहुत दुर्लभ है ॥१३॥ प्रियदर्शन कुमार भरत व शत्रुघ्नका तो कोई अमंगल नहीं हुआ? हमारी सब मातायें तो कुशलपूर्वक हैं॥१४॥ मैं पिताजीको असन्तोष उत्पन्न कराकर, व उनके वचनोंको न माननेसे उनके कोप करनेपर एक मुहूर्त भर भी जीवन धारण नहीं किया चाहता ॥१५॥ जिनकी कृपासे पृथ्वीमें जन्म ग्रहण किया, जो साक्षात् प्रत्यक्ष देवता स्वरूप हैं कौन पुरुष उनके प्रतिकूल आचरण करेगा ❀ ॥१६॥ हे जननी ! आपने अभिमानिनी होकर कोई क्रोधयुक्त वचन तो पिताजीको नहीं कहा ? क्या इसी कारण

अप्रसन्नमनाः किंनु सदा मां प्रति वत्सलः ॥ विषण्णवदनो दीनः सदा मां प्रतिभाषते ॥ १२ ॥ शारीरो मानसो वापि कश्चिदेनं न बाधते ॥ संतापो वाभितापो वा दुर्लभं हि सदा सुखम् ॥ १३ ॥ कच्चिन्न किंचिद्भरते कुमारे प्रियदर्शने ॥ शत्रुघ्ने वा महासत्त्वे मातॄणां वा मम शुभम् ॥ १४ ॥ अतोषयन्महाराजमकुर्वन्वा पितुर्वचः ॥ मुहूर्तमपि नेच्छेयं जीवितुं कुपिते नृपे ॥ १५ ॥ यतो मूलं नरः पश्येत्प्रादुर्भावमिहात्मनः ॥ कथं तस्मिन्न वर्तेत प्रत्यक्षे सति दैवते ॥ १६ ॥ कच्चित्ते परुषं किंचिदभिमानात्पिता मम ॥ उक्तो भवत्या रोषेण येनास्य लुलितं मनः ॥ १७ ॥ एतदाचक्ष्व मे देवि तत्त्वेन परिपृच्छतः ॥ किंनिमित्तमपूर्वोऽयं विकारो मनुजाधिपे ॥ १८ ॥ एवमुक्ता तु कैकेयी राघवेण महात्मना ॥ उवाचेदं सुनिर्लज्जा धृष्टमात्महितं वचः ॥ १९ ॥ न राजा कुपितो राम व्यसनं नास्य किंचन ॥ किंचिन्मनोगतं त्वस्य त्वद्भयान्नानुभाषते ॥ २० ॥ प्रियं त्वामप्रियं वक्तुं वाणी नास्य प्रवर्तते ॥ तदवश्यं त्वया कार्यं यदनेनाश्रुतं मम ॥ २१ ॥

पिताजीको यह चित्त विकार उपस्थित हुआ है ॥१७॥ हे देवि ! ठीक २ जो बात हो सो मुझसे कह दीजिये, ऐसा अपूर्व चित्तविकार राजाको क्यों हुआ ॥१८॥ महात्मा रामचन्द्रजीने जब कैकेयीसे ऐसा कहा, तब लाजरहित कैकेयी अपने हितके लिये कहने लगी ॥१९॥ कि, हे रामचन्द्र! राजा कुपित नहीं हैं, और न उनको किसी प्रकारका दुःखही हुआ है, हां परन्तु उनके मनमें एकबात है जो वह तुम्हारे डरसे नहीं कह सकते हैं ॥ २० ॥ तुम उनके प्राणोंसेभी प्यारे प्रियपुत्रहो, इस कारण महाराज तुमसे कुप्यारी बात नहीं कह सकते हैं जो हो महाराजसे मैंने जो कुछ सुना है वह पालन करना तुमको अवश्यही उचित है ॥२१॥

❀ किसी पुस्तकमें यह पाठान्तर दृष्टि आता है। "आयुर्यशोबलंवित्तमाकांक्षद्भिः प्रियाणिच । पितैवाराधनीयोग्रदैवतं हि पिता महत्" ॥ अर्थात् जिसको आयु यश बल धन कल्याण पानेकी इच्छा हो उसे पिताकाही पूजन करना चाहिये क्योंकि पिताही परम देवता है ।

इन महाराजजीने पूर्वकालमें प्रसन्न होकर मुझे वर देने कहा था सो अब वह वर देकर साधारण मनुष्यकी नाई अछता पछता रहे हैं ॥२२॥ इन्होंने प्रथम मुझसे कहा था कि, जो चाहो सो वर लो सो जिसप्रकार जलके बह जानेपर पुलका बांध धरना वृथा है वैसेही वर देनेको स्वीकार करके अब पछताना किसी अर्थका नहीं ॥ २३ ॥ हे राम ! इस बातको सभी महात्मा लोग जानते हैं कि, सत्यही धर्मका मूल है, अब इस समय जिससे तुम्हारे लिये मेरे ऊपर कोप कर राजा सत्यको न छोडें तुमको ऐसाही उपाय करना चाहिये ॥ २४ ॥ यह जो कहेंगे शुभाशुभका विचार न करके यदि उसके पालन करनेको तैयार हो तो मैं सब बात खोलकर कह सकती हूं ॥२५॥ किंवा यदि राजा तुमसे न कहें तो मैं इनकी कही वार्त्ता जो कुछ तुमसे कहूं वह तुम मानो तो मैं कहनेके तैयार हूं क्योंकि राजा तुमसे न कहेंगे ॥ २६ ॥ जब इस प्रकार कैकेयीने रामचन्द्रजीसे कहा तो रघुवीर बहुत दुःखित हो राजाके निकट बैठी हुई कैकेयीसे

एषमह्यंवरंदत्त्वापुरामामभिपूज्यच ॥ सपश्चात्तप्यतेराजायथाऽन्यःप्राकृतस्तथा ॥ २२ ॥अतिसृज्यददानीतिवरंममविशांपतिः॥सनिरर्थंगत जलेसेतुंबंधितुमिच्छति ॥ २३ ॥ धर्ममूलमिदंरामविदितंचसतामपि ॥ तत्सत्यंनत्यजेद्राजाकुपितस्त्वत्कृतेयथा ॥२४॥ यदितद्वक्ष्यतेरा जाशुभंवायदिवाशुभम् ॥ करिष्यसिततःसर्वमाख्यास्यामिपुनस्त्वहम् ॥ २५ ॥ यदित्वाभिहितंराज्ञात्वयितन्नविपत्स्यते ॥ ततोऽहमभिधा स्यामिनह्येषत्वयिवक्ष्यति ॥ २६ ॥ एतत्तुवचनंश्रुत्वाकेकेय्यासमुदाहृतम् ॥ उवाचव्यथितोरामस्तांदेवींनृपसन्निधौ ॥२७॥ अहोधिङ्नार्हसे देविवक्तुमामीदृशंवचः ॥ अहंहिवचनाद्राज्ञःपतेयमपिपावके ॥२८॥ भक्षयेयंविषंतीक्ष्णंपतेयमपिचार्णवे॥नियुक्तोगुरुणापित्रानृपेणचहितेनच ॥ २९ ॥ तद्ब्रूहिवचनंदेविराज्ञोयदभिकांक्षितम् ॥ करिष्येप्रतिजानेचरामोद्विर्नाभिभाषते ॥३०॥ तमार्जवसमायुक्तमनार्यासत्यवादिनम् ॥ उवाचरामंकैकेयीवचनंभृशदारुणम् ॥ ३१ ॥ पुरादेवासुरेयुद्धेपित्रातेममराघव ॥ रक्षितेनवरौदत्तौसशल्येनमहारणे ॥ ३२ ॥

बोले ॥ २७ ॥ अहो धिक्कार है देवि ! तुम मुझसे ऐसे वचन कहने योग्य नहीं हो मैं राजाके वचनसे और काम तो एक ओर रहे, अग्निमें भी गिर सकता हूं ॥२८॥ और अधिक क्या कहूं मैं परमगुरु हितकारी राजा पिताजीके वचनानुसार तेज विष पी सकता हूं या समुद्रमें भी कूद पडनेसे मुझे अस्वीकारता नहीं है ॥ २९ ॥ हे जननी ! राजाकी क्या इच्छा है, वह मुझसे बताओ, प्रतिज्ञा करताहूं कि, मैं उनके अभिप्रायको पालन करूंगा हे माता ! यह स्मरण रक्खो कि, राम कभी दोप्रकारकी बात नहीं कहना जानता ॥ ३० ॥ जब उन सत्यवादी रामने अतिकोमल सरल वचन कहे तबभी उनसे अतिनिष्ठुर वचन कुटिलकैकेयी बोली ॥ ३१ ॥ हेराम ! पूर्वकालमें जब देव और असुरोंका संग्राम हुआथा, तब तुम्हारे पिताजी वहां इन्द्रकी सहायता करनेगये और

राक्षसोंके अस्त्र शस्त्रोंसे छिन्नभिन्न इनका शरीरहो गया, और यहमूर्च्छित होगये तब मेरेही रक्षा करनेपर वहां इनके प्राण बचे तब उस समय इन्होंने मुझे दोवर देने कहे ॥ ३२ ॥ इससमय मैंने उन्हीं दो वरोंको महाराजसे मांग लिया है ! एक वरसे भरतका राज्याभिषेक होना और दूसरे वरसे आपका वनको जाना ॥ ३३ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! यदि सत्य प्रतिज्ञा करनेवाले अपने पिताजीके वचनोंको तुम सत्य करना चाहो और अपनेको भी सत्य कहनेवाला समझो तो मेरा कहना श्रवण करो ॥ ३४ ॥ तुम्हारे पिताजीने जो कुछ कहा है उसको पालन करके तुम चौदह वर्षके लिये वनको चले जाओ ॥३५॥ हे राम ! वह जो तुम्हारे अभिषेकके लिये जो सब सामग्री इकट्ठी की गई है, इनसे भरतका अभिषेक किया जाय ॥३६॥ तुम जटावल्कलधारणकर उपस्थित राज्यको त्याग

तत्रमेयाचितोराजाभरतस्य भिषेचनम् ॥ गमनंदंडकारण्येतवचाद्यैवराघव ॥३३॥यदिसत्यप्रतिज्ञंत्वंपितरंकर्तुमिच्छसि ॥ आत्मानंचनरश्रेष्ठममवाक्यमिदंशृणु ॥३४॥ सन्निदेशेपितुस्तिष्ठयथानेनप्रतिश्रुतम्॥ त्वयारण्यंप्रवेष्टव्यंनववर्षाणिपंचच ॥३५॥ भरतश्चाभिषिच्येतयदेतदभिषेचनम् ॥त्वदर्थैविहितंराज्ञातेनसर्वेणराघव ॥ ३६ ॥ सप्तसप्तचवर्षाणिदंडकारण्यमाश्रितः ॥ अभिषेकमिदंत्यक्त्वाजटाचीरधरोभव ॥ ३७ ॥ भरतःकोशलपतेःप्रशास्तुवसुधामिमाम् ॥ नानारत्नसमाकीर्णांसवाजिरथसंकुलाम् ॥३८॥ एतेनत्वांनरेन्द्रोऽयंकारुण्येनसमाप्लुतः ॥ शोकासंक्लिष्टवदनोनशक्नोतिनिरीक्षितुम् ॥ ३९ ॥ एतत्कुरुनरेंद्रस्यवचनंरघुनंदन॥सत्येनमहतारामतारयस्वनरेश्वरम्॥ ४० ॥ इतीवतस्यांपरुषंवदंत्यांनचैवरामःप्रविवेशशोकम् ॥ प्रविव्यथेचापिमहानुभावोराजाचपुत्रव्यसनाभितप्तः ॥ ४१ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये चतुर्विंशतिसा०सं० अयोध्याकांडे अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

आजसे चौदह वर्षतक वनमें रहो ॥३७॥ भरतजी कौशलदेशमें रहकर हाथी घोडे रथोंसे पूर्ण अनेक प्रकारके रत्नोंसे भरी हुई पृथ्वीके राज्यका सुख भोगते रहें ॥ ३८ ॥ राजा इसी कारणसे करुणाके वश होकर शोकसे मुख मलीन किये हैं और इसीकारण तुमको नहीं देख सकते हैं ॥ ३९ ॥ हे रघुनन्दन ! तुम अपने पिताका अभीष्ट जान चुकेहो अब यह राजाका वचन मानो हे राम ! बडे सत्यके साथसे उनकी रक्षा करो ॥४०॥ इस प्रकारका कैकेयीका कठिन वचन सुनकर रामचन्द्रजीको तो कुछ भी शोक नहीं हुआ परंतु पुत्रके वन जानेसे क्लेश होंगे ऐसे पुत्रकष्टसे महाप्रतापी राजा दशरथजीको अत्यंत दुःख हुआ ॥४१॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयोध्याकाण्डे भाषायामष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

अनन्तर शत्रुओंके मारनेवाले श्रीरामचन्द्रजी कैकेयीके मुखसे, मरनेके समान पीडादायक वचन सुनकर कुछ भी व्यथित न हो उससे बोले ॥ १ ॥ कि; बहुत अच्छा, मैं राजाके वचन मान कर अभी वनको जाऊंगा, और उनकी प्रतिज्ञा रक्षा करनेके लिये जटा व पेडोंकी छालके कपडे पहरूंगा ॥२॥ परंतु यह जाननेकी मेरी इच्छा हुई है कि, पहलेके समान शत्रुओंके मारनेवाले दुर्धर्ष महाराज पिताजी हमसे क्यों नहीं बोलते ॥३॥ हे देवि ! आप रूठ न जायँ मैं तुमसे कहता हूं कि, मैं जटा वल्कल धारण कर वनको चला जाऊंगा, आप प्रसन्न हों ॥४॥ हितके चाहनेवाले गुरुजी पिता महाराजकी अनुमतिसे ऐसा कौन प्रियकार्य है जिसको निःशंक चित्तसे मैं न करसकूं ॥५॥ जोहो सो हो परन्तु मेरे मनमें एक बातका बडा दुःख है कि, प्यारे भ्राता भरतजीके अभिषेकका वृत्तान्त महाराज पिताजीने

तदप्रियममित्रघ्नोवचनंमरणोपमम् ॥ श्रुत्वानविव्यथेरामःकैकेयींचेदमब्रवीत् ॥१॥एवमस्तुगमिष्यामिवनंवस्तुमहंत्वितः ॥ जटाचीरधरोराज्ञः प्रतिज्ञामनुपालयन् ॥ २॥ इदंतुज्ञातुमिच्छामिकिमर्थंमांमहीपतिः ॥ नाभिनंदतिदुर्धर्षोयथापूर्वमरिंदमः ॥३॥ मन्युर्नचत्वयाकार्योदेविब्रूमि तवाग्रतः ॥ यास्या मिभवसुप्रीतावनंचीरजटाधरः ॥४॥ हितेनगुरुणापित्राकृतज्ञेननृपेणच ॥ नियुज्यमानोविस्रब्धःकिंनकुर्यामहंप्रियम् ॥५॥ अलीकंमानसंत्वेकंहृदयंदहतेमम ॥ स्वयंयन्नाहमांराजाभरतस्याभिषेचनम् ॥ ६ ॥ अहंहिसीतांराज्यंचप्राणानिष्टान्धनानिच ॥ हृष्टोभ्रात्रे स्वयंदद्यांभरतायाप्रचोदितः ॥७॥ किंपुनर्मनुजेंद्रेणस्वयंपित्राप्रचोदितः ॥ तवचप्रियकामार्थंप्रतिज्ञमनुपालयन् ॥८॥ तथाश्वासयह्रीमन्तं किंविदंयन्महीपतिः ॥ वसुधासक्तनयनोमदमश्रूणिमुंचति ॥९॥ गच्छंतुचैवानयितुंदूताःशीघ्रजवैर्हयैः ॥ भरतंमातुलकुलादद्यैवनृपशासनात् ॥१०॥ दंडकारण्यमेषोऽहंगच्छाम्येवहिसत्वरः ॥ अविचार्यपितुर्वाक्यंसमावस्तुंचतुर्दश ॥ ११ ॥

स्वयं मुझसे नहीं कहा ॥ ६ ॥ राजाका कहना तो एक ओर रहा, मैं तुम्हारेही कहनेसे प्रसन्नतापूर्वक भ्राता भरतजीको, राज्य, इष्ट, प्राण बरन् सीताजी तकको दे सकता हूं ॥७॥ फिर महाराज पिताजीकी तो बातही क्या है उनके सत्य पालने और तुम्हारा हितसाधन करनेके लिये मैं किसी कार्यके करनेसे विमुख नहीं हूं ॥८॥ अच्छा मैया ! तुम इस समय महाराजको समझा बुझादो, मैं देखताहूं कि, हमारे पिताजी नीची गर्दन किये बैठे धीरे २ आँसू गिरा रहे हैं, और कुछ लज्जितसे ज्ञात होते हैं ॥ ९ ॥ राजाकी आज्ञासे दूत लोग अभी शीघ्रगामी घोडोंपर सवार होकर हमारे प्यारे भरतजीको मामाके घरसे लिवा लावें ॥१०॥ मैं निःशंकमनसे पिताजीकी आज्ञा अपने शिर माथे चढा अभी चौदह वर्षके निमित्त वनको जाऊंगा कुछ विचार न करूंगा ॥ ११ ॥

तब रानी कैकेयी रामचन्द्रजीके वचन सुन प्रसन्नहो उनका वन जाना ठीक जानकर उन रामचन्द्रजीको पिताका सत्य पालनेके लिये शीघ्रता कराने लगी ॥१२॥ और बोली कि; ऐसा ही होगा भरतको मामाके यहांसे बुलानेके लिये शीघ्रगामी घोडोंपर सवार हो दूतगण जायँगे॥१३॥ परन्तु हे राम! तुमने अबकह दिया कि; हम वनको जाते हैं सो तुम्हें इस वातमें देरी न करनी चाहिये हे राम ! अब शीघ्र वनको जाओ ॥१४॥ सत्य पालन करनेमें तुमको विलम्ब करते देख महाराज लाज पाते हैं और तुमसे कुछ नहीं कह सकते। इसकारण तुम वनको जाकर इनके मनका दुःख दूर करो ॥१५॥ हेरामचन्द्र! तुमसे अधिक क्या कहूं जबतक तुम अयोध्यापुरीको छोडकर वनको नहीं चले जाते तबतक तुम्हारे पिताजी स्नान भोजन कुछ नहीं करेंगे॥१६॥ यह वचन सुन महाराज दशरथजी

सात्दृष्टातस्यतद्वाक्यंश्रुत्वारामस्यकैकयी ॥ प्रस्थानंश्रद्दधानासात्वरयामासराघवम् ॥१२॥ एवंभवतुयास्यंतिदूताःशीघ्रजवैर्हयैः ॥ भरतंमातुलकुलादिहावर्तयितुंनराः ॥ १३ ॥ तवत्वहंक्षमंमन्येनोत्सुकस्यविलंबनम् ॥ रामतस्मादितःशीघ्रंवनंत्वंगंतुमर्हसि ॥ १४ ॥ व्रीडान्वितःस्वयंयच्चनृपस्त्वांनाभिभाषते ॥ नैतत्किंचिन्नरश्रेष्ठमन्युरेषोपनीयताम् ॥१५॥ यावत्त्वंनवनंयातःपुरादस्मादतित्वरन् ॥ पितातावन्नतेराम स्नास्यतेभोक्ष्यतेऽपिवा ॥ १६ ॥ धिक्कष्टमितिनिःश्वस्यराजाशोकपरिप्लुतः ॥ मूर्च्छितोन्यपतत्तस्मिन्पर्यंकेहेमभूषिते ॥ १७ ॥ रामोऽप्युत्थाप्यराजानंकैकेय्याभिप्रचोदिता ॥ कशयेवाहतोवाजीवनंगंतुंकृतत्वरः ॥१८॥ तदप्रियमनार्यायावचनंदारुणोदयम् ॥श्रुत्वागतव्यथोरामःकैकेयींवाक्यमब्रवीत् ॥१९॥ नाहमर्थपरोदेविलोकमावस्तुमुत्सहे ॥ विद्धिमामृषिभिस्तुल्यं विमलंधर्ममास्थितम् ॥ २० ॥ यत्तत्रभवतःकिंचिच्छक्यंकर्तुंप्रियंमया ॥ प्राणानपिपरित्यज्यसर्वथाकृतमेवतत् ॥ २१ ॥ नह्यतोधर्मचरणंकिंचिदस्तिमहत्तरम् ॥ यथापितरिशुश्रूषातस्यवावचनक्रिया ॥ २२ ॥

"हा धिक्--क्या कष्टहै" यह कह और दीर्घ निःश्वास छोडते हुये सोनेके पलँगपर मूर्छित हो गिर पडे ॥१७॥ उस समय श्रीरामचन्द्रजी घबडाकर राजाको उठा कैकेयीके कहनेसे चाबुक खाये हुये घोडेकी नाईं वनके आनेको जल्दी करते हुये॥ १८ ॥ रामचन्द्रजी सौतेली अनाडिन माताके ऐसे दारुण कठोर वचन सुनकर कुछभी व्यथित न हो उनसे कहने लगे॥१९॥ हे देवि! मैं धनके लोभसे संसारमें नहीं रहना चाहता। मुझको तुम ऋषि मुनियोंके समान सुखदुःखका बराबर देखनेवाला उज्ज्वल धार्मिक समझो ॥२०॥ यदि प्राणके दे डालनेसेभी पूजनीय पिताजीका कोई हितकार्य होजाय तो समझलो कि; वह कार्य हुआही रक्खा है ॥ २१ ॥ पिताजीकी सेवा करना और उनके वचनोंका पालन करना इसधर्मके बराबर या इससे अधिकतो कोई धर्म संसारमें है ही नहीं ॥ २२ ॥

पूजनीय पिताजीकी आज्ञा अबतक मुझपर प्रगट नहीं हुई तोभी मैं तुम्हारीही आज्ञासे अभी चौदहवर्ष वनमें बसनेको जाता हूं ॥२३॥ हे देवि ! तुमने हमारी अधीश्वरीहोकरभी इस तुच्छ कार्यके लिये पिताजीसे कहा इससे ज्ञात हुआ कि, तुममेराकोई गुण अभीतक नहीं जानतीहो ॥२४॥ अब मेरे जानेमें कुछ देर नहीं क्योंकि जबतक माता कौशल्याजीसे नहीं पूछलेते और सीताको नहीं समझाते तभीतक देर है । सो उनके पाससे अभी बिदाहोकर आजही वनको जाता हूं ॥२५॥ इस समय भरतजिससे राज्यका पालन व पिताजीकी सेवा करें तुम इस विषयमें भली प्रकार उनको सिखाती पढाती रहियो, क्योंकि यही पुत्रको प्रधान सनातन धर्म है ॥२६॥ रामचन्द्रजीके इस प्रकार मनोहर वचन श्रवण करके राजा दशरथजी का दुःख और भी प्रबल होगया; कुछ कहतो न सके वह महागंभीर

अनुक्तोऽप्यत्रभवताभवत्यावचनादहम् ॥ वनेवत्स्यामिविजनेवर्षाणीहचतुर्दश ॥२३॥ ननूनंमयिकैकेयिकिंचिदाशंससेगुणान् ॥ यद्राजानमवोचस्त्वंममेश्वरतरासती ॥ २४ ॥ यावन्मातरमापृच्छेसीतांचानुनयाम्यहम् ॥ ततोऽद्यैवगमिष्यामिदंडकानांमहद्वनम् ॥ २५ ॥ भरतःपालयेद्राज्यंशुश्रूषेच्चपितुर्यथा ॥तथाभवत्याकर्तव्यंसहिधर्मःसनातनः ॥२६॥ रामस्यतुवचःश्रुत्वाभृशंदुःखगतःपिता ॥शोकादशक्नुवन्वक्तुंप्ररुरोदमहास्वनम् ॥ २७ ॥ वंदित्वाचरणौराज्ञोविसंज्ञस्यपितुस्तदा ॥ कैकेय्याश्चाप्यनार्यायानिष्पपातमहाद्युतिः ॥ २८ ॥ स रामःपितरंकृत्वाकैकेयींचप्रदक्षिणम् ॥ निष्क्रम्यांतःपुरात्तस्मात्स्वंददर्शसुहृज्जनम् ॥ २९ ॥ तंबाष्पपरिपूर्णाक्षःपृष्ठतोऽनुजगामह ॥ लक्ष्मणःपरमक्रुद्धःसुमित्रानंदवर्धनः ॥ ३० ॥ आभिषेचनिकंभांडंकृत्वारामःप्रदक्षिणम् ॥ शनैर्जगामसापेक्षोदृष्टिंतत्राविचालयन् ॥ ३१ ॥

स्वर शोकसे अधीर होकर रोने लगे ॥२७॥ तब द्युतिमान् रामचन्द्रजीने अचेत अवस्थाको प्राप्त हुये पिताजीके व दुष्ट स्वभाववाली कैकेयीके चरणों में प्रणाम किया और वहांसे निकले ॥२८॥ और फिर राजा दशरथजी और कैकेयीकी प्रदक्षिणा कर अंतःपुरसे बाहर आकर अपने इष्ट मित्रोंको देखा ॥२९॥ जानेके समय सुमित्राके आनन्द देनेवाले लक्ष्मणजी भी उनके साथ २ चले, उनकी आँखोंमें आँसू डबडबा रहेथे और क्रोधसे उनका शरीर कांप रहा था * ॥३०॥ जानेके समय रामचन्द्रजीने पात्रमें धरी हुई सब अभिषेक की सामग्रीको देखा व उसकी भी बिदाके समय के अनुसार परिक्रमा की, वन गमन करनेके हेतु चले पर उस पात्रको देखते हुये मन्द २ गमन करने लगे ॥ ३१ ॥

* यद्यपि मूलमें यह वर्णन नहीं है कि लक्ष्मणजीने उपस्थित रहकर रामचन्द्रजीके बन जानेकी सब वार्ता सुनी थी परन्तु टीकाकारका यह अभिप्राय है कि, निकट रहकर सब वार्ता सुनी थी प्रमाण के लिये यह पद लिखा गया "समीपस्थित्यावगतवृत्तांतत्वात"।

राज्याभिषेक होनेको था पर न हुआ इसके न होनेसे रामचन्द्रजीकी कुछ कान्ति नहीं घटी और वह प्रसन्न चित्त रहे, क्योंकि उनमें स्वाभाविक कान्ति थी जिसप्रकार कृष्णपक्ष में चन्द्रमा रोज क्षीण होता है परन्तु उसकी कान्तिनहीं घटती ॥३२॥ यद्यपि रामचन्द्रजी संपूर्ण पृथ्वीके राज्यको छोड मुँह मोड वन कोचले, परन्तु जीवन्मुक्त पुरुष की नाई जिसको किसी बातकी कामनाही नहीं होती वैसेही रामचन्द्रमेंभी किसीने किसी प्रकारका चित्तविकार नहीं देखा ॥३३॥ वह शुभछत्र अलंकृत चँवर बन्धु बान्धव व पुरवासी और रथआदिकोंको छोड ॥ ३४ ॥ मनमेंही दुःख रोक लिया प्रगट न किया अथवा मनमें बहुत प्रसन्न होते हुये (प्रसन्नता इस बातकीथी कि, वनमें जाय राक्षस आदिकोंको मारेंगे) ऊपरी मनसे न बहुतदुःखित सब इन्द्रियोंको वशकिये वनकी इच्छा किये यह अप्रियसंवाद सुनानेके लिये अपनी माता कौशल्याजी के मंदिरको चले ॥३५॥ यद्यपि रामचन्द्रजी अपने जानेमें सब सेविदा होलियेथे तथापि उन श्रीमान्

नचास्यमहतींलक्ष्मींराज्यनाशोऽपकर्षति ॥ लोककांतस्यकांतत्वाच्छीतरश्मेरिवक्षयः ॥ ३२ ॥ नवनंगंतुकामस्यत्यजतश्ववसुंधराम् ॥सर्वलोकातिगस्येवलक्ष्यतेचित्तविक्रिया ॥३३॥ प्रतिषिद्धचशुभंछत्रंव्यजनेचस्वलंकृते ॥ विसर्जयित्वास्वजनंरथंपौरांस्तथाजनान् ॥ ३४ ॥ धारयन्मनसादुःखमिंद्रियाणिनिगृह्यच ॥ प्रविवेशात्मवान्वेश्ममातुरप्रियशंसिवान् ॥ ३५ ॥ सर्वोऽप्यभिजनःश्रीमाञ्छ्रीमतःसत्यवादिनः ॥ नालक्षयतरामस्यकिंचिदाकारमानने ॥ ३६ ॥ उचितंचमहाबाहुर्नजहौहर्षमात्मवान् ॥ शारदःसमुदीर्णांशुश्चंद्रस्तेजइवात्मजम् ॥ ३७ ॥ वाचामधुरयारामःसर्वंसंमानयञ्जनम् ॥ मातुःसमीपं धर्मात्माप्रविवेशमहायशाः ॥ ३८ ॥ तंगुणैःसमतांप्राप्तोभ्राताविपुलविक्रमः ॥ सौमित्रिरनुवव्राजधारयन्दुःखमात्मजम् ॥ ३९ ॥ प्रविश्यवेश्मातिभृशंमुदायुतंसमीक्ष्यतांचार्थविपत्तिमागताम् ॥ नचैवरामोऽत्रजगामविक्रियांसुहृज्जनस्यात्मविपत्तिशंकया ॥ ४० ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आदिकाव्ये च० सा० अ० एकोनविंशःसर्गः ॥ १९ ॥

सत्यकहनेवाले श्रीरामचन्द्रजीके आकारसे किसीने नहीं पहिचाना कि, यह बनको जाते हैं ॥ ३६ ॥ रामचन्द्रजीका स्वभाव हीसदा प्रसन्न चित्त रहनेका था इस कारण उन्होंने ऐसे दुःखोंमें भी हमको नछोडा जिस प्रकार कि; शरद ऋतुका चन्द्रमा अपनी प्रभाको नहीं छोडता ॥ ३७ ॥ महायशस्वी रामचन्द्र जो लोक इधर उधर खडेथे उन सबको मधुर वचनोंसे सम्मानित करते हुये अपनी माता कौशल्याजीके निकट पहुंचे ॥३८॥ रामचन्द्रजीके समान गुणपाये हुए विपुल विक्रमशाली लक्ष्मणजी भी मनका दुःखमनमें छिपाये हुए अपने भैयाके पीछे२ चले ॥३९॥ उस समय कौशल्याजी रामचन्द्रजीके अभिषेकके उत्सवोंमें अनेक प्रकार के उत्सव की तैयारियां कर रही थीं रामचन्द्रजी वहां पहुँचकर इस विपदमें भी धारण किये रहे परन्तु उनको यह चिंता बहुत व्याकुल कर नेलगी कि, कहीं माता मेरा वन जाना सुनकर प्राण त्याग न करदें ॥ ४० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० अयोध्याकांडे भाषायामेकोनविंशतिः सर्गः ॥ १९ ॥

पुरुषव्याघ्र रामचन्द्रजीको बिदा लेने के लिये हाथ जोडे हुये अंतःपुरसे बाहर आतेदेखरनवासमें जो दशरथजीकी और स्त्रियें थीं उनमें अतिआर्तनाद होने लगा ॥१॥ उस समय वह रोरोकर आपसमें कहने लगीं कि, जो रामचन्द्रजीपिताके न कहनेपर भी सबदासदासी मालकिनी व और लोगोंके अभिलाषसदापूर्णकिया करते थे, व जो हमारे एकही सहारे हैं, वही आज वनको जाते हैं॥२॥ जन्मसेही जिस प्रकार कौशल्याजीको मातासमझते वैसेही हमसबको समझते थे वही परम दुलारे रामचन्द्र आज वनकोसिधारे हैं ॥३॥ कोई कडुएबचनकहभीले और वह कुपित न हों और जिन्होंने सब प्रकारसे क्रोधको त्यागही कर दिया है, जो प्यारे २ मनोहर २ वचन कह २ सबको प्रसन्नकरते हैं, वही रामचन्द्रआजी वन गमन करेंगे ॥४॥ हाय ! महाराज कैसे अनसमझ हैं कि, जिन्होंने अनायास अपनीप्रजाकाअनभलकिया, देखो जोसबके एक मात्रसहारे हैं उनकोही सहजसे परित्याग करदिया ॥५॥ इस प्रकार सब महारानियें बछडोंसे छुटी हुई गायोंके समान रोरो कर अपने पति राजा दशरथ

तस्मिंस्तुपुरुषव्याघ्रेनिष्क्रामतिकृतांजलौ ॥ आर्तशब्दोमहाञ्जज्ञेस्त्रीणामंतःपुरेतदा ॥ १ ॥ कृत्येष्वचोदितःपित्रासर्वस्यांतःपुरस्यच ॥ गतिश्च शरणंचासीत्सरामोऽद्यप्रवत्स्यति ॥२॥ कौशल्यायांयथायुक्तोजनन्यांवर्ततेसदा॥ तथैववर्ततेऽस्मासुजन्मप्रभृतिराघवः ॥३॥ नक्रुध्यत्यभिशप्तोऽपिक्रोधनीयानिवर्जयन्॥क्रुद्धान्प्रसादयन्सर्वान्सइतोऽद्यप्रवत्स्यति ॥४॥ अबुद्धिर्बतनोराजाजीवलोकंचरत्ययम् ॥ योगतिंसर्वभूतानां परित्यजतिराघवम् ॥५॥ इतिसर्वामहिष्यस्ताविवत्साइवधेनवः ॥ पतिमाचुक्रुशुश्चापिसस्वनंचापिचुक्रुशुः ॥ ६ ॥ सहिचांतःपुरेघोरमार्तशब्दंमहीपतिः ॥ पुत्रशोकाभिसंतप्तःश्रुत्वाव्यालीयतासने ॥७॥ रामस्तुभृशमायस्तोनिःश्वसन्निवकुंजरः ॥जगामसहितोभ्रात्रामातुरंतःपुरंवशी ॥८॥ सोऽपश्यत्पुरुषंतत्रवृद्धंपरमपूजितम् ॥ उपविष्टंगृहद्वारितिष्ठतश्चापरान्बहून ॥ ९ ॥ दृष्ट्वैवतुतदारामंतेसर्वेसमुपस्थिताः ॥ जयेनजयतांश्रेष्ठंवर्धयंतिस्मराघवम् ॥ १० ॥ प्रविश्यप्रथमांकक्ष्यांद्वितीयायांददर्शसः ॥ ब्राह्मणान्वेदसंपन्नान्वृद्धान्राज्ञाभिसत्कृतान् ॥ ११ ॥

जीकी निन्दा करने लगीं और ऊँचेस्वरसे रोने लगीं ॥६॥ तब रनवासमें इस प्रकार रोने धोने और आर्त्तनादका शब्द श्रवणकरके दशरथजी पुत्रके शोकसेग्रसित होकर व्यालकी नाईं सिकुड आसनसे गिरपडे ॥७॥ और इस ओर इन्द्रियोंके जीतनेवाले रामचन्द्रजी बँधे हुये हाथीके समान घन२ऊँचे २ श्वास लेतेहुये भ्राता लक्ष्मणजीके साथअपनी माताकौशल्याजीके भवनमें प्रवेश करते हुये॥८॥ जाते२प्रथमद्वारपर पहुँचे जिनके द्वारपर एकवृद्ध द्वारपाल बैठा था व उसके सिवाय और भी कई एक रक्षकवहांथे॥९॥ वह सब लोग रामचन्द्रजीको देखतेही उठखडेहुये और उनके धोरे चलेआये, आकरकहा कि, रामचन्द्रजीकीजयहो॥१०॥ तदनन्तर रामचन्द्रजी पहले फाटकको नाँघकर दूसरे फाटकपर जाकर देखते हुये कि, राजाके प्रिय बहुतसे वेदकेजाननेवाले वृद्ध ब्राह्मणवहाँ बैठे हैं॥ ११ ॥

रामचन्द्रजी उन ब्राह्मणोंको प्रणाम करते हुये तीसरी ड्योढी पर पहुँचे वहाँपर देखा कि, बहुतसी स्त्रियां बालक व वृद्ध द्वारकी रक्षा कर रहे थे ॥१२॥ उनमेंसे कुछेक स्त्रियोंने रामचन्द्रजीको आशीर्वाद देकर उनका बहुत सन्मान किया और प्रसन्नमनसे कुमारको आगे कर कौशल्याजीको उनके आनेका समाचार सुनाया ॥१३॥ पुत्रका हितचाहने वाली कौशल्याजीभी नियमसे रात बिताकर उससमय प्रातः कालरामचन्द्रजीकामंगल मनानेके लिये विष्णु भगवान्‌की पूजा कर रहीं थीं ॥१४॥ वह सब रेशमी कपडे पहरे हुई थीं और मंगलाचरण करके परमानन्दितव्रतमें नित्य लगी रह कर होमकररही थीं ॥१५॥ श्रीरामचन्द्रजीने माताके सुन्दर भवनमें प्रवेशकरके देखा कि, कौशल्याजी अग्निमें आहुति दिवारही हैं ॥१६॥ और यहभी देखाकि, देवताओंके कार्यके लिये दही, चावल, घी, लड्डू

प्रणम्यरामस्तान्वृद्धांस्तृतीयायांददर्शसः ॥ स्त्रियोबालाश्चवृद्धाश्चद्वाररक्षणतत्पराः ॥ १२ ॥ वर्धयित्वाप्रहृष्टास्ताःप्रविश्यचगृहंस्त्रियः ॥ न्यवेदयंतत्वरितंराममातुःप्रियंतदा ॥ १३ ॥कौसल्यापितदादेवीरात्रिंस्थित्वासमाहिता ॥ प्रभातेचाकरोत्पूजांविष्णोःपुत्रहितैषिणी ॥१४॥ साक्षौमवसनाहृष्टानित्यंव्रतपरायणा ॥ अग्निंजुहोतिस्मतदामंत्रवत्कृतमंगला ॥१५॥ प्रविश्यतुतदारामोमातुरंतःपुरंशुभम् ॥ ददर्शमातरंतत्र हावयंतींहुताशनम् ॥१६॥ देवकार्यनिमित्तंचतत्रापश्यत्समुद्यतम् ॥ दध्यक्षतंघृतंचैवमोदकान्हविषस्तथा॥१७॥लाजान्माल्यानिशुक्लानिपायसंकृसरंतथा ॥ समिधःपूर्णकुंभांश्चददर्शरघुनंदनः ॥ १८ ॥ तांशुक्लक्षौमसंवीतांव्रतयोगेनकर्शिताम् ॥ तर्पयंतींददर्शाद्भिर्देवतांवरवर्णिनीम् ॥ १९ ॥ साचिरस्यात्मजंदृष्ट्वामातृनंदनमागतम् ॥ अभिचक्रामसंहृष्टाकिशोरंवडवायथा ॥ २० ॥ समातरमुपक्रांतामुपसंगृह्यराघवः ॥ परिष्वक्तश्चबाहुभ्यांमवघ्रातश्चमूर्धनि ॥ २१ ॥ तमुवाचदुराधर्षंराघवंसुतमात्मनः ॥ कौसल्यापुत्रवात्सल्यादिदंप्रियहितंवचः ॥ २२ ॥

खीर, हवि आदि पदार्थधरे हैं ॥ १७ ॥ रामचन्द्रने देखाकि खीलें, सफेद माला, तिल, चावल जौकी खिचरी, खीर व ईंधन और जलसे भरे कलश धरे हैं ॥१८॥ रामचन्द्रजीने श्रेष्ठ कौशल्याजीको सफेद वस्त्र पहरेहुये और बहुत दिनोंसे व्रत करनेके कारण कृशशरीर और देवताओंको जलसे तर्पण करतेहुये देखा ॥ १९ ॥ जननीकौशल्याजीअपनीचिरकामनाके धन रघुनंदन रामचन्द्रजीको पासआते देखकर छोटे बच्चेवाली घोडीकी तरह बहुत प्रफुल्लित हुई और उनके सामने आई ॥२०॥ अब रामचन्द्रजीने माताको प्रणाम किया तो कौशल्याजीनेदोनों हाथ पकडकर उनको हृदयसे लगाया और शिर सूंघा ॥२१॥ तब पुत्र वत्सलतासे महारानी कौशल्याजी अपने दुर्धर्ष पुत्र श्रीरामचन्द्रजीसे यह हितकारी प्रिय मनोहर वचन बोलीं ॥ २२ ॥

हे वत्स ! तुम धर्मवान् वृद्ध राजर्षियोंके समान उमर कीर्ति और कुलके पाने लायक धर्म पावो ॥२३॥ देखो महाराज तुम्हारे पिता कैसे सत्यप्रतिज्ञ हैं कि, आज तुमको युवराजमें अभिषिक्त करनेके लिये उद्यत हुये हैं ॥२४॥ फिर उन्होंने रामचन्द्रजीको बैठनेके लिये आसन दिया, और कहाकि, बैठकर कुछ भोजन करो; यह वचन सुन रामचन्द्र हाथ जोड बोले ॥२५॥ रामचन्द्र तो वन जानेके हेतु बिदा होने आये थे उनको समय कहां था कि, बैठें. इस कारण विनीत स्वभावसे हाथ जोड माताके गौरवकी रक्षाके लिये यह बोले कि, हे देवि ! मैं वनको जाऊँगा आपको निकट बिदा लेनेको इस समय यहां आया हूँ ॥२६॥ हे माता ! आपको सीताको और लक्ष्मणको बडा भय आ पहुँचा है, जिसको आप अबतक कुछ नहीं जानती हैं, बडी विपद तुमको उपस्थित हुई है ॥२७॥ जब मुझको अभी वन जाना है तब

वृद्धानांधर्मशीलानांराजर्षीणांमहात्मनाम् ॥ प्राप्नुह्यायुश्चकीर्तिंचधर्मंचाप्युचितंकुले ॥२३॥ सत्यप्रतिज्ञंपितरंराजानंपश्यराघव ॥ अद्यैवत्वां सधर्मात्मायौवराज्येऽभिषेक्ष्यति ॥२४॥ दत्तमासनमालभ्यभोजनेननिमंत्रितः ॥ मातरंराघवः किंचित्प्रसार्याञ्जलिमब्रवीत् ॥ २५॥ सस्व भावविनीतश्चगौरवाच्चतथानतः ॥ प्रस्थितोदंडकारण्यमाप्रष्टुमुपचक्रमे ॥२६॥ देविनूनंनजानीषेमहद्भयमुपस्थितम् ॥ इदंतवचदुःखायवैदेह्या लक्ष्मणस्यच ॥ २७ ॥ गमिष्येदंडकारण्यंकिमनेनासनेनमे ॥ विष्टरासनयोग्योहिकालोऽयंमामुपस्थितः ॥२८॥ चतुर्दशहिवर्षाणिवत्स्यामिविजनेवने ॥ कंदमूलफलैर्जीवन्हित्वामुनिवदामिषम् ॥२९॥ भरतायमहाराजोयौवराज्यंप्रयच्छति ॥ मांपुनर्दंडकारण्येविवासयतितापसम् ॥ ३० ॥ सषट्चाष्टौचवर्षाणिवत्स्यामिविजनेवने ॥आसेवमानोवन्यानिफलमूलैश्चवर्तयम् ॥३१॥ सानिकृत्तेवसालस्ययष्टिःपरशुनावने ॥ पपातसहसादेवीदेवतेवदिवश्च्युता ॥३२॥तामदुःखोचितांदृष्ट्वापतितांकदलीमिव ॥रामस्तूत्थापयामासमातरंगतचेतसम् ॥ ३३ ॥

इस समय इस आसनके ग्रहण करनेमे क्या ? अब मेरे कुशके आसनपर बैठनेका समय आ पहुँचा है ॥२८॥ इस समय मुझे तपस्वीका भेष बनाकर कन्द, मूल फल भोजन करके समय बिता मुनिकी तरह सुन्दरभोजन त्यागचौदह वर्षतक वनमें रहना पडेगा ॥२९॥ महाराज पिताजी भरतको राज्यगद्दी देंगे व मुझको मुनि व तपस्वीका भेष बनाय वनवास देते हैं ॥३०॥ इस कारण कन्द मूल फल भोजन करते हुये हमको चौदह वर्ष तक वनमें रहना पडेगा ❋ ॥ ॥३१॥ कुल्हाडीसे काटीहुई सालकीलाठीकी जो दशा होती है वैसेही रामचन्द्रजीकी यह वार्त्ता श्रवण करके कौशल्याजी स्वर्गसे गिरेहुये देवताके समान एकाएकी पृथ्वीपर गिरपडी ॥३२॥ रामचन्द्रजीने अपनी माता कौशल्याजीको जो दुःखके योग्य न थीं, अचेतन और केलेके पेडके समान धरतीमें पडीदेखकर उनको उठाया ॥३३॥

❋ दोहा–वर्ष चारिदश विपिन बश, कर पितु वचन प्रमान ।। आय पांय पुनि देखिहौं, मन जनि करसि मलान ।

जिसप्रकार बोझ खैंचनेवाली दीनघोडी छोडनेपर थकावट मिटानेके कारण लोट पोट उठती है वैसेही कौशल्याके अंगोंमें रज लगगईथी उसको श्रीरामचन्द्रजीने अपने हाथोंसे पोंछा ॥३४॥ महारानीजीने कभी दुःख नहीं पायाथाउन्होंनेएकाएक ऐसे दुःखका समाचार सुनकर व्यथितहोपुरुषश्रेष्ठ रामचन्द्र जीसेलक्ष्मणजीके सामनेकहा ॥३५॥ किहे पुत्र ! राघव ! यदि तुमको हम अपने गर्भमें धारण न करतीं और हम विना पुत्रकेही रहतीं तो यह दुःख तो हमें न होता केवल लोग वंध्याही कहते ॥३६॥ हे वत्स ! वंध्यानारीको तो यही दुःखहोता है कि पुत्रमुख नहीं देखा इसके सिवाय दूसरा दुःख उसपर नहीं दृष्टि आता ॥३७॥ हे राम ! हमने सुभगा स्त्रियोंको देखा है जो कि; पतिको परमप्रिय हैं उन्हें जो विशेष सुख है वहभी हमारे भाग्यमें नहीं है; क्योंकि राजा कैकेयीके वश हैं फिर हमने यह शोचा था

उपावृत्योत्थितांदीनांवडवामिववाहिताम्॥पांसुगुंठितसर्वांगींविममर्शंचपाणिना॥३४ साराघवमुपासीनमसुखार्ताखुखोचिता॥ उवाचपुरुषव्या घ्रमुपशृण्वतिलक्ष्मणे ॥३५॥यदिपुत्रनजायेथाममशोकायराघव ॥ नस्मदुःखमतोभूयःपश्येयमहमप्रजाः ॥ ३६ ॥ एकएवहिवंध्यायाःशोको भवतिमानसः ॥ अप्रजास्मीतिसंतापोनह्यन्यः पुत्रविद्यते ॥३७॥नदृष्टपूर्वंकल्याणंसुखंवापतिपौरुषे ॥ अपिपुत्रेविपश्येयमितिरामास्थितंमया ॥३८॥ साबहून्यमनोज्ञानिवाक्यानिहृदयच्छिदाम्॥ अहंश्रोष्येसपत्नीनामवराणांपुरासती ॥ ३९ ॥ अतोदुःखतरंकिंनुप्रमदानांभविष्यति ॥ ममशोकोविलापश्चयादृशोऽयमनंतकः ॥ ४० ॥ त्वयिसन्निहितेऽप्येवमहमासंनिराकृता ॥ किंपुनःप्रोषितेतातध्रुवंमरणमेवहि ॥४१॥अत्यंतंनि गृहीतास्मिभर्तुर्नित्यमसंमता ॥ परिवारेणकैकेय्याःसमावाप्यथवावरा ॥ ४२ ॥

कि, कदाचित् पुत्रके होनेसे यह सब शोक दूरहोंगे इससे प्राणधारण कियेथे. नहीं तो तुम्हारे होनेसे प्रथमही प्राण त्यागन करतीं ॥३८॥ *हाय ! महारानी होकर भी इस समय मुझको सौतोंके मर्मकेभेदन करनेवाले कठोर कडुवे टेढे मेढे वचनं सुनने पडे ॥३९॥ इस सवतके डाहकेसमान स्त्रियोंको और कोई दुःख नहीं है जिसप्रकारका शोकदुःख मुझे है इस प्रकारका दुःख किसीपर विश्वास है कि नहीं आया होगा ॥४०॥ तुम्हारे रहतेभी जब मेरी यह शोचनीय दशाहै यह निरादर है सो अवश्यही तुम्हारे वन चले जानेपर निश्चय मैं मर जाऊंगी ॥४१॥ प्राणनाथके प्रतिकूल होनेसे मैंने कितनीही लांछना सही है. और तो क्या कहूं मैं कैकेयीकी

* चौपाई–इहि विधि रुदन करत महतारी । कहि न जात सो करुणा भारी ॥ पुत्र सनेह विवश प्रभु माता । विवरण भई निबल सब गाता ॥ कौनिहुं भांति धरत नहिं धीरा ॥ व्यापी कठिन विरहकी पीरा ॥ लखि वय जिसमें करत गलानी । पुत्र न वनकी कहो कहानी ॥ वचन हमार मान मत जाओ । वृद्ध समय मत मुझेत्यागो ।

दासीके समान व उससेभी तो हीन हूं ॥ ४२ ॥ देखो अब तुम्हारे यहां होने परभी कोई इष्ट मेरी सेवा करता है वमुझसे बोलताबतराता है, वह इष्ट मित्रभी जिस समय कैकेयीके पुत्रको देखता है उसके और कैकेयीके डरसे हमसे नहीं बोलता ॥ ४३ ॥ विशेषतः कैकेयीका स्वभाव बडाही क्रोध भरा हुआ है, मैं इस खोटी अवस्थामें पडके किस प्रकारसे उस बहुत कडुवे वचन बोलनेवाली कैकेयीका मुख देख सकूंगी ॥ ४४ ॥ हे राम ! देखोयज्ञोपवीतके समयसे भी तुमको सत्रह[1] वर्ष बीते और जन्मसे लेकर पचीसवर्ष व्यतीत हो चुके हैं यही विचारमें थी कि, जब मेरे पुत्रको युवराजपदवी मिलैगी तबमेरे दुःखोंकाअवसान होगा ॥ ४५ ॥ सो हेबेटा ! तुम वनको चले अब फिर वही कैकेयीके कठोर वचन सुननेपडेंगे अतएवइस समयतुम्हारा अभिषेकन होनेसे और वनजानेसे इनदोनों बडेदुःखोंके पडनेसे और दुर्वलशरीर होनेसे अब उसकेवचन मुझसे नहीं सहेजायँगे ॥ ४६ ॥ हे वत्स ! परिपूर्णचन्द्रमाके समान तुम्हारा मुखचन्द्र

योहिमांसेवतेकश्चिदपिवाप्यनुवर्तते ॥कैकेय्याःपुत्रमन्वीक्ष्यसजनोनाभिभाषते॥४३॥नित्यक्रोधतयातस्याःकथंनुखरवादिनम्॥कैकेय्यावदनं द्रष्टुंपुत्रशक्ष्यामिदुर्गता ॥४४॥ सप्तदशचवर्षाणिजातस्यतवराघव ॥ अतीतानिप्रकांक्षन्त्यामयादुःखपरिक्षयम् ॥४५॥ तदक्षयंमहद्दुःखंनोत्स हेसहितुंचिरात् ॥ विप्रकारंसपत्नीनामेवंजीर्णापिराघव ॥४६॥अपश्यंतीतवमुखंपरिपूर्णशशिप्रभम् ॥ कृपणावर्तयिष्यामिकथंकृपणजीविका ॥४७॥उपवासैश्चयोगैश्चबहुभिश्चपरिश्रमैः ॥ दुःखसंवर्धितोमोघंत्वंहिदुर्गतयामया ॥४८॥ स्थिरंनुहृदयंमन्येममेदंयन्नदीर्यते ॥प्रावृषीवम हानद्यास्पृष्टंकूलंनवांभसा ॥४९॥ ममैवनूनंमरणंनविद्यतेनचावकाशोस्थियमक्षयेमम॥ यदंतकोऽद्यैवनमांजिहीर्षतिप्रसह्यसिंहो रुदतींमृगीमिव ॥ ५० ॥ स्थिरंहिनूनंहृदयंममायसंनभिद्यतेयद्भुविनोविदीर्यते ॥ अनेनदुःखेनचदेहमर्पितंध्रुवंह्यकालेमरणंनविद्यते ॥ ५१ ॥

नदेखकरमैं दीनविचारी कठिनशोकमें पडीकिसप्रकारसे जिऊंगी ॥४७॥ मैंने अनेक उपवास, योगाभ्यास व और २ भी अनेकप्रकारके कष्टोंसे तुमको लालन पालनकर इतना बड़ा किया है सोअब वृथा हुआ जो तुम मुझ दुःखियाही माताकोछोडवनको जारहे हो ॥४८॥ निश्चयही तुम्हारा वियोग सुनकर टुकडे २ हो जाता ! जैसे कि वर्षाके समयबडी नदीकाफाट नवीन जलसे पूरित होनेपरभी नहींफटता ॥४९॥ मुझको समझपडा कि मृत्यु मुझे भूलगई और यमराजके यहां भी मेरेलिये स्थाननहीं रहा, यदि ऐसान होता तो सिंह जिस प्रकार रोती हुई हरिणीको बलसे पकडले जाता है वैसेही यमराज क्या मुझको अभीन ले जाते ॥ ५० ॥ मेरा हृदय निश्चयही लोहेका बना हुआहै यदि यह लोहेका न होता तो तुमसे यह तुम्हारे वन जानेकी कठोर वार्ता श्रवण कर पृथ्वी पर

[1] मूलमें सप्तदश (सत्रह) वर्ष है पर यहां यज्ञोपवीतसे जानना ।

गिरनेसे भी यह हृदय क्यों नहीं फटा? ऐसे दुःख पाकरभी जब यह शरीर नहीं छूटा तबइससेज्ञात होता है कि, विना कालआये किसीका मरण नहीं होता ॥ ५१ ॥ हाय! अब मेरी समझमें आया कि, पुत्रके मंगल हितार्थ जो जप, तप, दान और संयमादिक मैंने किये वह भाग्यसे निष्फल होगये जैसे ऊषरपृथ्वीमें बीज डालनेसे निरर्थक हो जाता है ॥ ५२ ॥ यदि महा दुःखियोंको विना समय आये मृत्यु आजाया करती तो मैं शोक दुःखसे घिरी विना बछडेवाली गायके समान तुम्हारे वियोगमें प्राण खोकर उसकाही आसरा लेती ॥ ५३ ॥ अथवा हे चन्द्रमाकेसमान मुखवाले ! तुम्हारे विना मेरे इस जीवन धारण करनेहीसे क्याहै ? दुर्वल गाय जिस प्रकार अपने बच्चेके साथ जातीहै वैसेही तुम्हारे साथ वनको चलूंगी ॥ ५४ ॥ रामजननी कौशल्याजी रामको सत्यबंधनसे बँधा हुआ देख अपनेको अभागी जान और रामचन्द्रजीके पीछे सौतोंसे दुःखपानेका अनुभवकर शोकसे विकल हो बहुत विलाप कलाप

इदंतुदुःखंयदनर्थकानिमेव्रतानिदानानिचसंयमाश्चहि॥तपश्चतप्तंयदपत्यकाम्ययासुनिष्फलंबीजमिवोप्तमूषरे ॥ ५२ ॥ यदिह्यकालेमरणंयदृच्छ यालभेतकश्चिद्गुरुदुःखकर्शितः ॥गताहमद्यैवपरेतसंसदं विनात्वयाधेनुरिवात्मजेनवै॥५३॥अथापिकिंजीवितमद्यमेवृथात्वयाविनाचंद्रनिभानन प्रभ ॥ अनुव्रजिष्यामिवनंत्वयैवगौःसुदुर्बलावत्समिवाभिकांक्षया ॥५४॥भृशमसुखममर्षितायदाबहुविललापसमीक्ष्यराघवम् ॥ व्यसनमुप निशाम्यसामहत्सुतमिवबद्धमवेक्ष्यकिंनरी ॥५५॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ० च० सं० अयोध्याकांडेविंशःसर्गः॥२०॥तथातु विलपंतींतांकौसल्यांराममातरम् ॥ उवाचलक्ष्मणोदीनस्तत्कालसदृशंवचः॥१॥नरोचतेममप्येतदार्येयद्राघवोवनम्॥ त्यक्त्वाराज्यश्रियंगच्छे त्स्त्रियावाक्यवशंगतः ॥ २ ॥ विपरीतश्चवृद्धश्चविषयैश्चप्रधर्षितः ॥नृपःकिमिवनब्रूयाच्चोद्यमानःसमन्मथः ॥३॥ नास्यापराधंपश्यामिनापि दोषंतथाविधम् ॥ येननिर्वास्यतेराष्ट्राद्वनवासायराघवः॥ ४ ॥ (अहंहनिष्येपितरंवृद्धंकामवशंगतम् ॥ स्त्रियायुक्तंचनिर्लज्जंधर्मायुक्तंनृपंयथा ॥ १ ॥) नतंपश्याम्यहंलोकेपरोक्षमपियोनरः ॥ स्वमित्रोऽपिनिरस्तोऽपियोऽस्यदोषमुदाहरेत् ॥ ५ ॥

करने लगी जैसे पुण्यक्षय होनेसे किन्नरी पृथ्वीपर आकर रोती है ॥ ५५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदिका० अयोध्याकाण्डे भाषायां विंशः सर्गः ॥ २० ॥ अनन्तर दीन लक्ष्मणजी, विलाप करतीहुई रामचन्द्रजीकी माताकौशल्याजीसमयसके अनुसार वचन बोले ॥१॥ हे अम्मा ! रघुवीर रामचन्द्रजी स्त्रीकेवशकियेहुए पिताके कहनेसे इस राज्याधिकारको छोड वनकोजातेहैं यह मेरीइच्छाकेविपरीत है॥ २ ॥ पिताजीकी बुद्धि विपरीत होगई है, क्योंकि वह वृद्ध होगयेहैं और इसके सिवाय विषयी कामके वशहैं फिर भला वह स्त्रीके कहनेसे क्या नहीं कह सकतेहैं ॥३॥ मैंने रामचन्द्रजीका ऐसा कोई अपराध या इनमें कोई दोष नहीं देखा जिससे यह राज्य छुडाकर वनको भेजे जायँ ॥४॥ औरकी वार्ता तो दूर रही; अपराधीशत्रुओंमें परोक्षभावसेभीकोई इनका दोषनिकालनेको साहसी नहीं

होता, मैंने तोअबतक अपनेभाईका दोषनिकालनेवालाकिसीको न पाया ॥५॥ विशेषतः जो देवताके सामने सरलस्वभाववाले सब शास्त्र और सबविद्या सीखे सिखाये शत्रुओंके भी प्यारे ऐसे गुणनिधान पुत्रको अकारण धर्मका मुख देखने परभी कौनमनुष्य त्यागकरेगा ॥६॥ महाराज अब बालकसे होगयेहैं उनकी विचारशक्ति बिलकुलही जाती रही। कुछविचारनेका स्थानहै कि कौन पुत्रपहिले भूपालोंके चरित्रोंको यादकरके इनहमारेराजाकीआज्ञामानेगा॥७॥कौशल्याजीसे यहकह फिर श्रीरामचन्द्रजीसे कहाकि, हेरघुनंदन ! इस वनवासकी वार्ताका प्रचार न होते२अर्थात् कोई जबतक नजानेमेरी सहायतासे समस्तराज्यकोआप अपने अधिकारमेंकरलीजिये॥८॥मैंजबकालकेसमानधनुषधारणकरकेआपकेपार्श्वमें खडा हूँगा तब कौन मनुष्य आपके अभिषेकमें बाधादे सकता है ?॥९॥हेपुरुषश्रेष्ठ ! और यदि कोई भी इसके विरुद्ध कार्यकरते तबमैंने२बाणोंको चलाकरमैंअयोध्यापुरीको जनशून्य कर दूंगा इसमें कुछ भी सन्देह न समझिये ॥१०॥ जो मनुष्य

देवकल्पमृजुंदांतंरिपूणामपिवत्सलम्। अवेक्षमाणःकोधर्मंत्यजेत्पुत्रमकारणात् ॥६॥ तदिदंवचनंराज्ञःपुनर्बाल्यमुपेयुषः ॥ पुत्रःकोहृदयेकुर्याद्राजवृत्तमनुस्मरन् ॥७॥ यावदेवनजानातिकश्चिदर्थमिमंनरः॥ तावदेवमयासार्धमात्मस्थंकुरुशासनम् ॥८॥ मयापार्श्वेसधनुषातवगुप्तस्यराघव ॥ कःसमर्थोऽधिकंकर्तुंकृतांतस्येवतिष्ठतः॥९॥ निर्मनुष्यामिमांसर्वामयोध्यांमनुजर्षभ॥ करिष्यामिशरैस्तीक्ष्णैर्यदिस्थास्यतिविप्रिये ॥१०॥ भरतस्याथपक्ष्योवायोवाऽस्यहितमिच्छति ॥ सर्वांस्तांश्चवधिष्यामिमृदुर्हिपरिभूयते ॥ ११ ॥ प्रोत्साहितोऽयंकैकेय्यासंतुष्टोयदिनः पिता ॥ अमित्रभूतोनिःसंगंबध्यतांवध्यतामपि॥१२॥ गुरोरप्यवलिप्तस्यकार्याकार्यमजानतः॥उत्पथंप्रतिपन्नस्यकार्यंभवतिशासनम् ॥१३॥ बलमेष किमाश्रित्यहेतुंवापुरुषोत्तम ॥ दातुमिच्छतिकैकेय्यउपस्थितमिदंतव ॥ १४ ॥ त्वयाचैवमयाचैवकृत्वावैरमनुत्तमम् ॥काऽस्यशक्तिःश्रियंदातुंभरतायारिशासन ॥ १५ ॥

भरतकी ओर उठेगा व उनका हितकरनेवाला होगा मैं उन सबका संहार करूंगा व आपभी इस विषयमें अपनी कोमल प्रकृतिछोडदीजिये क्योंकि राज्यकार्यके विषयकोमल स्वभाववालेका सदाही निरादरहोताहै॥११॥यदि पिताहीकैकेयीके उस किनारेसे उसकी ओर उठकर हमारे विरुद्ध आचरण करें तो अमित्रकेकार्य करनेसे उनकोभीमारडाला जाय अथवा बंदी गृहमें भेजा जाय॥१२॥यदिगुरु भी कार्यअकार्यको न जानकर अभिमानी हो खोटेरस्तेपर चले तो उसकोभीदंडदेना अनुचित नहीं है ॥१३॥ हे पुरुषोत्तम! महाराज पिताजी प्रबल कौनसी युक्तिका आश्रय लेकर बडे होनेके कारण जोराज्य आपको मिलना चाहिये वहकिसकार णसे कैकेयीको देडालनेके लिये तैयार हुये हैं? ॥ १४ ॥ हेशत्रुओंके मारनेवाले ! मैं ठीकही ठीक कहताहूं कि, आपसे और मुझसे वैरकरके कौन है जो यह

राज्य भरतको दे सकता है? मैं तो इतनी सामर्थ्य किसीकी नहीं देखता॥१५॥रामचन्द्रजीसे यह कह कर फिर कौशल्याजीसे कहाकि, हेदेवि! मैं निश्चयही मनसे कहताहूं कि, मैं बडे व प्यारे भ्राताके अधीन हूँ मैं अपने सत्य धनुष बाण दान इन इष्ट वस्तुओंका नाम लेकर इस विषयमें सौगन्ध खाता हूँ॥१६॥यदि श्रीरामचन्द्रजी जलती हुइ आगमें कूद पडें वा वनको चले जायँ तो हे देवी! जान रक्खो कि, लक्ष्मणने प्रथम ही वह मार्ग ले रक्खा है॥१७॥ जिस प्रकार अंधकारकेनाश करनेवाले सूर्य नारायणके उदय होते ही अँधियारेका नाश हो जाता है वैसे ही मैं तुम्हारे सब दुःख दूर करूँगा। हे देवी! आप और भाईसाहब मेरे प्रभावको भलीभाँति देखें ॥१८॥ जो वृद्धावस्थामें बालक के समान हैं जो कैकेयीके ऊपर आसक्त होरहे हैं, कृपणचित्त हैं, जिन का मरणकाल उपस्थित है उनपिताको भी मैं अभीमार

अनुरक्तोऽस्मिभावेनभ्रातरंदेवितत्त्वतः ॥ सत्येनधनुषाचैवदत्तेनेष्टेनतेशपे ॥१६॥ दीप्तमग्निमरण्यंवायदिरामःप्रवेक्ष्यति ॥ प्रविष्टंतत्रमांदेवि त्वंपूर्वमवधारय ॥ १७ ॥ हरामिवीर्याद्दुःखंतेतमःसूर्यइवोदितः ॥ देवीपश्यतुमेवीर्यंराघवश्चैवपश्यतु ॥ १८ ॥ हरिष्येपितरंवृद्धंकैकेय्यासक्तमानसम् ॥ कृपणंचस्थितंबाल्येवृद्धभावेनगर्हितम् ॥१९॥ एतत्तुवचनंश्रुत्वालक्ष्मणस्यमहात्मनः ॥ उवाचरामंकौसल्यारुदंतीशोकलालसा ॥२०॥ भ्रातुस्तेवदतःपुत्रलक्ष्मणस्यश्रुतंत्वया ॥ यदत्रानन्तरंतत्त्वंकुरुष्वयदिरोचते ॥२१॥ नचाधर्म्यंवचः श्रुत्वासपत्न्याममभाषितम् ॥ विहायशोकसंतप्तांगंतुमर्हसिमामितः ॥ २२ ॥ धर्मज्ञइतिधर्मिष्ठधर्मंचरितुमिच्छसि ॥ शुश्रूषमामिहस्थस्त्वंचरधर्ममनुत्तमम् ॥ २३ ॥ शुश्रूषुर्जननींपुत्रस्वगृहेनियतोवसन् ॥ परेणतपसायुक्तःकाश्यपस्त्रिदिवंगतः ॥ २४ ॥ यथैवराजापूज्यस्तेगौरवेणतथाह्यहम् ॥ त्वांसाहंनानुजानामिनगंतव्यमितोवनम् ॥ २५ ॥

डालूंगा॥१९॥महात्मा लक्ष्मणजीके मुखसेयह वचन सुनकर शोकसे व्याकुल चित्त रुदन करती हुई कौशल्याजी रामचन्द्रजीसे बोलीं ॥२०॥ हे वत्स! तुम्हारे भैया लक्ष्मणने जो कहा वह तुमने सुना? यदि ऐसा करना तुम्हें अच्छा लगे तो तुम भी शोच विचार इनको बात मानो ॥२१॥ तुम सौतकी अधर्ममूल बार्त्तासे शोकसे ग्रसित अपनी माता कौशल्याको अकारण छोडकर यहांसे मत जाओ ॥२२॥ हे धर्मज्ञ! यदि तुम्हें धर्मही की कामना है, धर्म करना चाहते हो तोराज्यको छोड कर यही रह जाओ और मेरी सेवा शुश्रूषा करते रहो, इससेही तुम्हें बहुत पुण्य होगा॥२३॥हे पुत्र! बडे तपस्वी महात्मा कश्यपजीने घरमें ही रहकरमाताकी सेवा करनेके प्रभावसे प्रजापति पद प्राप्त किया था और स्वर्गगामी हुये॥२४॥ जिस प्रकार पिताजी तुम्हारे पूजनीय हैं वैसेही मेरा गौरव तुमको करना उचित है,

मैं तुम्हें वन जानेकी सलाह नहीं देती अतएव फिर भी मैं कहती हूं कि, वनको न जाना ॥ २५ ॥ तुम्हारे वियोगसे मेरे सुख भोगने अथवा जीवनही धारण करनेसे क्या प्रयोजन है ? अधिक क्या कहूं ! मैं तुम्हारे साथ तृण खाकर जीनेको भी अपने लिये अच्छा समझती हूं ॥ २६ ॥ हे वत्स! यदि तुम निश्चयही हमें इस शोकके सागर में छोड वनको चलेजाओगे तो उपवास करके मैं अपनेकोमारडालूंगी ॥२७॥ फिर तुम जानलेना कि, समुद्रको जिसप्रकार अपनी माताका कहना न माननेसे पिप्पलाद मुनिके कारण ब्रह्महत्या का पाप लगकर नरकजाना पडाथा वैसेही मेरा कहना न माननेसे तुम्हें नरक जाना पडेगा ॥ २८ ॥ तब धार्मिक रामचन्द्र दीनभावसे रोती व विलाप करती हुई कौशल्याजीसे धर्म शास्त्रके अनुकूल वचन बोले ॥२९॥ हे देवी ! पिताके वचनोंको न माननेकी शक्ति मुझमें नहीं है मैं तुम्हारे चरण पकडकर कहताहूं कि, मातातुम प्रसन्न होवोमुझकोअवश्यही वन जाना पडेगा ॥३०॥ फिर विचार करके देखो कि वनवासीसब

त्वद्वियोगान्नमेकार्य्यंजीवितेनसुखेनच॥त्वयासहममश्रेयस्तृणानामपिभक्षणम् ॥२६॥यदित्वंयास्यसिवनंत्यक्त्वामांशोकलालसाम्॥अहंप्राय मिहासिष्येनचशक्ष्यामिजीवितुम् ॥२७॥ ततस्त्वंप्राप्स्यसेपुत्रनिरयंलोकविश्रुतम् ॥ ब्रह्महत्यामिवाधर्मात्समुद्रःसरितांपतिः ॥२८॥ विलपं तींतथार्दानांकौसल्यांजननींततः॥ उवाचरामोधर्मात्मावचनंधर्मसंहितम् ॥२९॥ नास्तिशक्तिःपितुर्वाक्यंसमतिक्रमितुंमम ॥ प्रसादयेत्वांशि रसागंतुमिच्छाम्यहंवनम् ॥३०॥ ऋषीणांच पितुर्वाक्यंकुर्वतावनचारिणा ॥ गौर्हताजानताधर्मंकंडुनाचविपश्चिता ॥३१॥ अस्माकंतुकुलेपूर्वं सागरस्याज्ञयापितुः ॥ खनद्भिःसागरैर्भूमिमवाप्तःसुमहान्वधः ॥ ३२ ॥ जामदग्न्येनरामेणरेणुकाजननीस्वयम् ॥ कृत्तापरशुनाऽरण्येपितुर्व चनकारणात् ॥३३॥ एतैरन्यैश्चबहुभिर्देवदेवसमैःकृतम् ॥ पितुर्वचनमक्लीबंकरिष्यामिपितुर्हितम् ॥ ३४ ॥ नखल्वेतन्मयैकेनक्रियतेपितृ शासनम् ॥ एतैरपिकृतंदेवियेमयापरिकीर्तिताः ॥ ३५ ॥

शास्त्र पढेहुये महर्षि कण्डुजीने अधर्म कार्य जानकरभी गायको मारडाला परन्तुपिताकी आज्ञा देनेके कारण उनको गोहत्या नहीं लगी ॥३१॥ फिरदेखोहमारेही वंशमें पूर्वकालके मध्य सगरपुत्र अपने पिताकी अनुमतिसे घोडेकी खोजके लियेपृथ्वी खोदकर पीछे सब विनाशको प्राप्त हुयेथे ॥३२॥ जमदग्नि ऋषिके पुत्र धैर्यवान् परशुरामजीने पिताकी आज्ञा पाकर कुठारसे वनमें अपनी माता रेणुकाका शिर काट डाला ॥ ३३ ॥ इन समस्त देवताओंके समान महापुरुषोंने व औरभी अनेक पुरुषोंने पिताकी आज्ञा पालनकी है, अतएव जिस बातके करनेसे पिताका हित होताहो मैं हर्ष सहित उस कार्यको करूंगा॥३४॥ हे माता! केवल मैंही पितृआज्ञा पालन करताहूं सो बात नहीं है वरन् जिन२महात्माओंके नाममैंने तुम्हें बताये वह सब लोग अपने पिताके बचनोंका पालन कियेहुयेहैं॥३५॥

जो धर्म प्रथम नहीं किया गयाहै मैं उस धर्मके करने में प्रवृत्त नहीं होता हूं; वरन्‌जो धर्म अगले पुरुषोंको अंगीकारथा और जो मार्ग उन्होंने लिया था वही कार्य मैं करना चाहता हूं॥३६॥ अतएव पिताजीके वचन मानना मेरा आवश्यकीय कार्य है, मैं इसके प्रतिकूलाचरण नहीं किया चाहता। माताजी ! तुमभी ऐसे कार्यको अधर्मका कार्य मत समझो माता पिताके वचन माननेसे आजतक किसीको अधर्म नहीं हुआ है ॥ ३७ ॥ मातासे इस प्रकार कहकर वाक्य जाननेवालोंमें श्रेष्ठ लक्ष्मणजीसे सब धनुष धारण करनेवालोंमें अग्रगण्य रामचन्द्रजी कहनेलले॥३८॥हे लक्ष्मण! तुम जो मुझसे बहुतबडा स्नेह करते हो इसको मैं भलीप्रकार जानताहूं तुम्हारा बल तुम्हारा वीर्य व दूसरोंके न सहने लायक तेज भी तुममें है और तुम सब कुछ करनेको समर्थ हो ॥३९॥ हे शुभलक्षण लक्ष्मण ! हमारी माता मेरे सत्य शम दमादि नियमोंके अभिप्रायको नहीं जानती हैं इस कारण मेरे वन जानेके अर्थ यह महाशोकसे कातर हुई हैं ॥४०॥ देखो सब धर्मको ही श्रेष्ठ कहकर अंगी

नाहंधर्ममपूर्वंप्रतिकूलंप्रवर्तये ॥ पूर्वैरयमभिप्रेतोगतोमार्गोऽनुगम्यते ॥३६॥ तदेतत्तुमयाकार्यंक्रियतेभुविनान्यथा॥पितुर्हिवचनंकुर्वन्नकश्चिन्नामहीयते॥३७तामेवमुक्त्वाजननींलक्ष्मणंपुनरब्रवीत्॥वाक्यंवाक्यविदांश्रेष्ठःश्रेष्ठःसर्वधनुष्मताम्॥३८तवलक्ष्मणजानामिमयिस्नेहमनुत्तमम्॥ विक्रमंचैवसत्त्वंचतेजश्चसुदुरासदम् ॥३९॥ ममामातुर्महद्दुःखमतुलंशुभलक्षण॥अभिप्रायंनविज्ञायसत्यतेस्यचशमस्यच ॥४०॥ धर्मोहिपरमोलोकेधर्मेसत्यंप्रतिष्ठितम् ॥ धर्मसंश्रित्यमप्येतत्पितुर्वचनमुत्तमम् ॥४१॥ संश्रुत्यचपितुर्वाक्यंमातुर्वाब्राह्मणस्यवा॥नकर्तव्यंवृथावीरधर्ममाश्रित्यतिष्ठता॥४२॥सोऽहंनशक्ष्यामिपुनर्नियोगमतिवर्तितुम्॥ पितुर्हिवचनाद्वीरकैकेय्याहंप्रचोदितः ॥४३॥तदेतांविसृजानार्यांक्षत्त्रधर्माश्रितांमतिम्॥धर्ममाश्रयमातैक्ष्ण्यंमद्बुद्धिरनुगम्यताम्॥४४॥तमेवमुक्त्वासौहार्दाद्भ्रातरंलक्ष्मणाग्रजः॥उवाचभूयःकौसल्यांप्रांजलिःशिरसानतः॥४५॥

कार करतेहैं और धर्ममेंही सत्य टिका है मेरे पिताजीने मुझको जो आज्ञा दी है वह वास्तवमें धर्मकी ही अनुमोदित की हुई है॥४१॥हे वीर! जो धर्मात्मा पुरुष पिता, माता या ब्राह्मणसे कोई बात कहकर कि, जो तुम कहोगे सो हम करेंगे और फिर उसको न करे तो यह बात उचित नहीं इसमें अधर्म होता है ॥४२॥ मैं इसी कारणसे पिताजीकी आज्ञाका उल्लंघन नहीं कर सकता, एक तो पिताजीके वचन और फिर माता कैकेयीकी आज्ञा है; मुझको सबही प्रकारसे इस आज्ञाका पालन करना चाहिये ॥४३॥ मैं इसी कारण तुमको समझाताहूँ कि, क्षत्रियोंके धर्ममें जो तुम्हारी बुद्धि है अर्थात् संग्राम करके मुझे राज्य दिलवाना चाहते हो, इस संकल्प व बुद्धिको अभी मनसे त्याग न कर दो जो धर्म अतिकठोर हो उसको ग्रहण करना अच्छा नहीं कोमल धर्म हम लोगोंको अंगीकार करना उचित है ॥ ४४ ॥ अनन्तर लक्ष्मणाग्रज श्रीरामचन्द्रजी अपने भाई लक्ष्मणजीके सुहृत्प्रेमके कारण यह कहकर फिर शिर झुकाये हाथ जोडे हुये कौशल्याजीसे बोले ॥ ४५ ॥

हे अम्मा! मुझे आज्ञा दो कि, वनको जाऊं, तुम्हें मेरे प्राणोंकी सौगन्ध है जो इस मेरे मंगल कार्यमें तुम किसी प्रकारका शोक न करो अब मेरेजानेके निमित्त स्वस्त्ययनादि करो॥४६॥ मैं राजा ययातिको नाईं जिस प्रकार वह स्वर्गसे पृथ्वीपर गिरकर फिरस्वर्गको चले गये थे वैसेही मैं पिताकी आज्ञा पालनकर चौदह वर्ष वनमें वस अयोध्यापुरीको लाटूँगा ॥४७॥ हे जननि ! तुम मेरे कारण शोक मत करो, मनका शोच मनमेंही रक्खो, बाहर प्रगट करनेसे क्या होगा मैं आपसे सत्यही सत्य कहता हूंकि, पिताके वचनोंको पूरा करके अवश्य गृहको फिरूंगा॥४८॥आप, मैं, जानकी, सुमित्रावलक्ष्मण इन पांच जनोंसे जो पिताजी कहें वह इन पांचोंको अवश्यही करना चाहिये यही हमारा सनातन धर्म है॥४९॥हे जननि ! अपनेमनकादुःख दूर करो और मेरे अभिषेककी वार्ताको मनसे भुला दो, और जिस प्रकार मेरी बुद्धि है कि, वनको जाऊं वैसीही तुम्हारीभीबुद्धि होनी चाहिये कि, वह वनको जाँय तभी अच्छा होगा॥५०॥रामचन्द्रजीके कातरता रहित कोमल धीरतायुक्त

अनुमन्यस्वमांदेविगमिष्यंतमितोवनम्॥शापितासिममप्राणैः कुरुस्वस्त्ययनानिमे ॥४६॥ तीर्णप्रतिज्ञश्चवनात्पुनरेष्याम्यहंपुरीम् ॥ ययातिरिवराजर्षिःपुराहित्वापुनर्दिवम् ॥४७॥ शोकःसंधार्यतांमातर्हृदयेसाधुमाशुचः ॥ वनवासादिहैष्यामिपुनःकृत्वापितुर्वचः ॥४८॥ त्वयामयाचवैदेह्यालक्ष्मणनसुमित्रया ॥ पितुर्नियोगेस्थातव्यमेषधर्मः सनातनः ॥४९॥ अंबसंभृत्यसंभारान्दुःखंहृदिनिगृह्यच ॥ वनवासकृताबुद्धिर्मेमधर्म्याविवर्त्यताम् ॥५०॥ एतद्वचस्तस्यनिशम्यमातासुधर्म्यमव्यग्रमविक्लवंच॥ मृतेवसंज्ञांप्रतिलभ्यदेवीसमीक्ष्यरामंपुनरित्युवाच ॥५१॥ यथैवतेपुत्रपितातथाहंगुरुः स्वधर्मेणसुहृत्तयाच॥ नत्वानुजानामिनमांविहायसुदुःखितामर्हसिपुत्रगंतुम् ॥५२॥ किंजीवितेनेहविनात्वयामेलोकेनवाकिंस्वधयाऽमृतेन ॥ श्रेयोमुहूर्तंतवसन्निधानंममैवकृत्स्नादपिजीवलोकात् ॥५३॥

युक्तिसे भरे यह वचन कहनेपर कौशल्याजी मूर्च्छित पडे हुयेकी समान मानो चैतन्यता पाकर रामचन्द्रजीकीओर एकटक देखतीरहीं और फिर कहने लगीं ॥५१॥हे पुत्र ! हमने तुम्हें यत्न और बडे भारी प्रेमसे लालनपालन किया है अतएव महाराज धर्मसे व सौहार्दसे जिसभांति तुम्हारे पूज्य हैं, वैसेही, मैं हूंअतएव तुमहीं कहो कि, इस समय किस प्रकार मुझ हतभागिनी माताको छोड मुहँ मोड वनको चले जाओगे? मुझे दुःखी छोडकर वनको मत जाओ॥५२॥हे वत्स ! तुम्हें वनवासी कर देनेपर मेरे जीनेहीसे क्या प्रयोजन है? व लोकके और भाईबान्धवोंसे क्या?पतिसे क्या?मरजानेसे पितरलोकमें जाय स्वधा भोगनेसे क्या ? स्वर्गलोकमें गमन कर वहांका आनन्द भोगनेसे क्या?और मोक्षहीसे क्या है यदिसब नातारिश्ता छोड तोडकर केवल एक मुहूर्त भरके लिये भी तुम्हारे निकट रह सकूं

तो इसको मैं अपने लिये मंगल समझती हूं॥५३॥इस समय जैसे अंधकारसे गढेमें गिरे हुये किसी हाथीको लोग लूका(डंडेमें बँधी मसाल)से जलावें औरवह महा दुःखी हो,वैसे ही माताका करुणापूर्वक विलाप सुनकर रामचन्द्रजी अधिक दुःखी हुये कि,माता अधर्ममें प्रवृत्त करती हैं।॥५४॥उन्होंने देखा कि,सामने माता मूर्छित सी खडी है भ्राता लक्ष्मणजी भी कातर और संतापसे तपे हुएहैं,तब धर्मात्मा रामचन्द्रजी धर्मसहित वचन जैसे कि,उस समय कहने उचित थे बोले ॥५५॥ हे लक्ष्मण तुम्हारी जो मुझमें अचल अटल भक्ति विद्यमान है उसको मैं भली भांति जानता हूँ। व तुम्हारा पराक्रम भी ऐसा वैसा नहीं है वरन् दूसरोंके न करने योग्यहै फिर आश्चर्य है कि, मैं तुमको बारंबार निवारण करता हूं परन्तु तुम मेरे अभिप्रायके मर्मको न जानकर माताके सहित मुझको और भी दुःखित कर रहो॥५६॥ इस जीवलोकमें पहले किये हुयेकर्मकी फल उत्पत्तिके कालमें धर्म,अर्थ और काम यह तीनों ही प्राप्त होते हैं सुतराम् जिस कार्यसे पहले कहे हुए धर्म अर्थ आदि प्राप्त

नरैरिवोल्काभिरपोह्यमानोमहागजोध्वांतमभिप्रविष्टः ॥ भूयः प्रजज्वालविलापमेवंनिशम्यरामः करुणंजनन्याः ॥५४॥ समातरंचैवविसंज्ञकल्पा मार्तंचसौमित्रिमभिप्रतप्तम् ॥ धर्मेस्थितोधर्म्यमुवाचवाक्यंयथासएवार्हतितत्रवक्तुम् ॥५५॥ अहंहितेलक्ष्मणनित्यमेवजानामिभक्तिंचपराक्रमंच ॥ ममत्वभिप्रायमसंनिरीक्ष्यमात्रासहाभ्यर्दसिमांसुदुःखम् ॥५६॥ धर्मार्थकामाः खलुजीवलोकेसमीक्षिताधर्मफलोदयेषु ॥ येतत्रसर्वेस्युरसंशयंमेभार्येववश्याभिमतासपुत्रा ॥५७॥ यस्मिंस्तुसर्वेस्युरसन्निविष्टाधर्मोयतः स्यात्तदुपक्रमेत ॥ द्वेष्योभवत्यर्थपरोहिलोकेकामात्मताखल्वतिनप्रशस्ता ॥ ५८ ॥ गुरुश्चराजाचपिताचवृद्धः क्रोधात्प्रहर्षादथवापिकामात् ॥ यद्व्यादिशेत्कार्यमवेक्ष्यधर्मंकस्तंनकुर्यादनृशंसवृत्तिः ॥५९॥ नतेनशक्नोमिपितुःप्रतिज्ञामिमांनकर्तुंसकलांयथावत् ॥ सह्यावयोस्तातगुरुर्नियोगेदेव्याश्चभर्तासगतिश्चधर्मः ॥ ६० ॥

हो जायँ वह हृदयविहारिणी अनुगामिनी पुत्रवती भार्याकी नाईं एकान्त प्रार्थनीय है ॥५७॥ जिस कार्यमें धर्म,अर्थ,कामका सम्बन्ध नहीं है उसका अनुष्ठान करना भला नहीं होता जिस कार्यके करनेसे धर्मकी प्राप्ति हो वही करना उचित और ठीक है,जो आदमी बेपरवाहीकर धर्मको जलाञ्जली दे स्वार्थपर होजातेहैं उनकी सब जगह निन्दा करते हैं। विचार करके देखनेपर धर्मरहित कार्य किसी प्रकारसे प्रशंसनीय नहीं हो सकता ॥ ५८ ॥ देखो संसारमें गुरु राजा पिता व वृद्ध इनकी आज्ञा माननी चाहिये यह शास्त्रमें भी लिखाहै फिर एकतो महाराजगुरुहै फिर राजाहै फिर पिता तिसमें वृद्ध वह काम,क्रोध वा हर्षसे जिस प्रकार की आज्ञा दें फिर धर्म ज्ञान करके कौन उसका अनुष्ठान नहीं करेगा ॥५९॥ वह इस कारण पिताजीने जो प्रतिज्ञा की है उसके विरुद्ध कार्यकरनेकोमैं समर्थ

नहींहूँ । महाराज हमारे पिता हैं हमारे ऊपर उनका सर्वभावसे अधिकार है, विशेषतः माताजीके पति हैं, और वही हमारे एकमात्र गति व धर्म हैं ॥ ६० ॥ क्योंकि, ऐसे धर्मराजके जीते ही व अपने राजकाज करते ही यह विधवा स्त्रीके समान हमारे साथ कैसे चलेंगी ॥ ६१ ॥ हे देवि ! अतएव जिस प्रकार सत्य पालनकरके महाराज ययातिजीने फिर स्वर्ग पायाथा, वैसेही मुझको वनजानेकीआज्ञा दीजिये; और आशीर्वाद कीजिये कि, चौदह बर्ष वनमें रहपिताकेवचनपूरे कर गृहको लौटूँ ॥६२॥ मैं राज्य पानेकी कामनासे पिताजीके कहे हुये वन गमनरूप यशको नहीं छोड सकता विचार करनेसे देखा जाता है तो यह जीवन क्षणभंगुर है अतएव इस जीवनमेंअधर्मानुसार तुच्छ राज्यको भोगकरनेकीमेरीकामनानहींहै ॥६३॥ मानवेंद्र रामचन्द्रजी विवाद रहित मनसे दण्डकारण्यमें प्रवेशकरनेके

तस्मिन्पुनर्जीवतिधर्मराजेविशेषतःस्वेपथिवर्तमाने ॥ देवीमयासार्धमितोऽभिगच्छेत्कथंस्विदन्याविधवेवनारी॥६१॥सामानुमन्यस्ववनंव्रजंतं कुरुष्वनःस्वस्त्ययनानिदेवि ॥ यथासमाप्तेपुनराव्रजेयंयथाहिसत्येनपुनर्ययातिः ॥ ६२ ॥ यशोह्यहंकेवलराज्यकारणान्नपृष्ठतःकर्तुमलंमहोदयम् ॥अदीर्घकालेनतुदेविजीवितेवृणेऽवरामद्यमहीमधर्मतः ॥ ६३ ॥ प्रसादयन्नरवृषभःसमातरंपराक्रमाज्जिगमिषुरेवदंडकान् ॥ अथानुजं भृशमनुशास्यदर्शनंचकारतांहृदिजननींप्रदक्षिणम् ॥ ६४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा०आ० का० च० सा० अ० कां० एकविंशः सर्गः ॥ २१ ॥ अथतंव्यथयादीनंसविशेषममर्षितम् ॥ सरोषमिवनागेंद्ररोषविस्फारितेक्षणम् ॥ १ ॥ आसाद्यरामःसौमित्रिंसुहृदंभ्रातरंप्रियम् ॥ उवाचेदंसधैर्येणधारयन्सत्त्वमात्मवान् ॥२॥ निगृह्यरोषशोकंचधैर्यमाक्रम्यकेवलम् ॥ अवमानंनिरस्यैनंगृहीत्वाहर्षमुत्तमम् ॥ ३ ॥

आशयसेछोटेभ्रातालक्ष्मणजीको इसप्रकारका उपदेश देकर अपनीमाताको प्रसन्न करते हुये और उनकी प्रदक्षिणा करके वहांसे जानेका विचार करनेलगे ॥६४॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० अयोध्याकाण्डे भाषायामेकविंशः सर्गः ॥ २१ ॥ अनन्तर लक्ष्मणजी रामचन्द्रजीका वन जाना स्मरणकरके अतिशयव्याकुल हुये व रामचन्द्रजीकी यह अवस्था वह न सह सके और वह क्रोधयुक्त हाथीके समान दीर्घ निश्वास परित्याग कर क्रोधसे आंखें फैलाये ॥१॥ उस समय रामचन्द्रजी प्रिय भ्राताको सामने करके धीरजके गुणसे अपना चित्त सँभालकर लक्ष्मणजीसे बोले ॥ २ ॥ हे लक्ष्मण ! कैकेयीके ऊपरका क्रोध छोड हमारे राज्य न मिलनेका शोक छोड केवल धीरजको धार इस अपमानको भुलाकर कि, जो पिताने हमें वनको भेजा है और इससे ही उत्तम हर्ष समझकर कि, पिताके

वचनोंका पालन होगा ॥ ३ ॥ जो २ वस्तु मेरे अभिषेकके अर्थ एकत्र है उनकी ओर ध्यान न देकर मेरे वन जाने की तैयारी तुम करो ॥ ४ ॥ मेरा अभिषेक होनेके लिये सब सामग्री इकट्ठी करनेको जिस प्रकार तुमने यत्न किया था अब वैसा ही यत्न अभिषेक न होनेके लिये करो ॥ ५ ॥ मेरे अभिषेकका समाचार पाकर जिनका मन संतापित हुआहै; वह माता कैकेयी जिस प्रकारसे शंकारहितहोजाय तुम अब वैसाही कार्य करनेमें प्रवृत्त हो ॥६॥ हे लक्ष्मण! माता कैकेयीजीके हृदयमें जो शंकामयदुःख उत्पन्नहुआहै;मैं उसको अब एकमुहूर्तभरभीनहीं देखना चाहता॥७॥मैंने ज्ञानसे अथवाअज्ञानसे पितामाताका कोई साधारणभी अपराध कियाहै मुझको तो यह स्मरण नहीं होता ॥८॥ हमारे पिताजी सत्यवादी हैं सत्यके समुद्रहैं सत्यपराक्रम करनेवालेहैं,वह परलोकके भयसे डरेहैं, सो अब उनका

उपक्लृप्तंयदेतन्मेअभिषेकार्थमुत्तमम् ॥सर्वंनिवर्तयक्षिप्रंकुरुकार्यंनिरव्ययम् ॥ ४ ॥ सौमित्रेयोऽभिषेकार्थेममसंभारसंभ्रमः ॥ अभिषेकनिवृत्त्यर्थेसोऽस्तुसंभारसंभ्रमः ॥ ५ ॥ यस्यामदभिषेकार्थेमानसंपरितप्यति ॥ मातानःसायथानस्यात्सविशंकतथाकुरु ॥ ६ ॥ तस्याःशंकामयंदुःखंमुहूर्तमपिनोत्सहे ॥ मनसिप्रतिसंजातंसौमित्रेऽहमुपेक्षितुम् ॥ ७ ॥ नबुद्धिपूर्वंनाबुद्धंस्मरामीहकदाचन ॥ मातृणांवापितुर्वाहंकृतमल्पंचविप्रियम् ॥ ८ ॥ सत्यःसत्याभिसंधश्चनित्यंसत्यपराक्रमः ॥ परालोकभयाद्भीतोनिर्भयोस्तुपितामम ॥९॥ तस्यापिहिभवेदस्मिन्कर्मण्यप्रतिसंहृते ॥सत्यंनेतिमनस्तापस्तस्यतापस्तपेच्चमाम्॥१०॥अभिषेकविधानंतुतस्मात्संहृत्यलक्ष्मण ॥ अन्वगेवाहमिच्छामिवनंगंतुमितःपुरः ॥ ११ ॥ ममप्रव्राजनादद्यकृतकृत्यानृपात्मजा ॥ सुतंभरतमव्यग्रमभिषेचयतांततः ॥ १२ ॥ मयिचीराजिनधरेजटामंडलधारिणि ॥ गतेऽरण्यंचकैकेय्याभविष्यतिमनःसुखम् ॥ १३ ॥ बुद्धिःप्रणीतायेनेयंमनश्चानुसमाहितम् ॥ तंतुनार्हामिसंक्लेष्टुंप्रव्रजिष्यामिमाचिरम् ॥ १४ ॥ कृतांतएवसौमित्रेद्रष्टव्योमत्प्रवासने ॥ राज्यस्यचवितीर्णस्यपुनरेवनिवर्तने ॥ १५ ॥

भय दूर होवे ॥९॥ जो मैं अपने अभिषेककीकामनाकोत्यागनहींकरदूँगातोपिताजीअपने वचनोंका उल्लंघन होते देखकर मनमें संताप पावेंगेऔर फिर इस दुःखसे मेरी मर्मपीडा और भी बढ़ जायगी ॥१०॥ हे लक्ष्मण ! इस कारण इस राज्याभिषेक विधानको त्याग करके वनको जानेकी ही मेरी इच्छा है ॥११॥ मेरे वनमें चले जानेपर कृतकार्यहो माता कैकेयी अपने पुत्र भरतजी को बुलाकर निष्कंटकराज्य दे देवे ॥१२॥ मेरे जटाजूट धारण करने और वल्कल मृगचर्म पहर वनवासी होनेपर कैकेयी आनन्दपूर्वक अपना समय बितावेंगी वे अपने मनमेंसुखीहों॥१३॥जिसने कैकेयीको यह बुद्धि दी है और जिसने फिर इसही बुद्धिकेसमानकार्य साधन करनेमें उसको दृढरक्खा अतएव मैं उसके मनमेंदुःखनहींपहुंचानाचाहतामैं अभी वनको चला जाऊंगा॥१४॥हे भ्रातः ! सुविशाल राज्यके पाने न पानेके

के यह दोनों विषय दैवाधीन हैं; इसमें किसीका कुछ चारा नहीं चलता इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥१५॥ यदि दैव उस विषयका कारण न होता तो जो कैकेयी सदासे हमें बहुत प्यार करती रही, वह इस समय मुझे वनवासदिवानेको ऐसी उतारू जाती? और इसका स्वभावही क्यों ऐसा होजाता ? ॥१६॥ हे लक्ष्मण ! तुमजानते हो कि, मैं सब माताओंको बराबर समझतारहा कभी किसीको पृथक् भावसे नहीं समझा, और कैकेयीभी मुझे व अपने पुत्रभरतको एकही दृष्टिसे देखतीथी ॥१७॥ और अलग २ नहीं समझतीथी अतएव यह सब भाग्यहीका दोष है ❀ व उसने जो मेरा अभिषेक न सहकर मेरे वनवासके हेतु ऐसे कठोर दुर्वचनमुखसेकहे इस विषयमें भाग्यके सिवाय और किसीको दोष दिया जाय ॥१८॥ मैं जानताहूं कि, देवी कैकेयी अतिशय श्रेष्ठ स्वभाव और गुणों करके युक्त है, वह जो साधारण स्त्रियोंके

कैकेय्याः प्रतिपत्तिर्हिकथंस्यान्ममवेदने ॥ यदितस्यानभावोऽकृतांतविहितोभवेत् ॥१६॥ जानासिहियथासौम्यनमातृषुममांतरम् ॥ भूतपूर्वंविशेषोवातस्यामयिसुतेऽपिवा ॥ १७ ॥ सोभिषेकनिवृत्त्यर्थैःप्रवासार्थैश्चदुर्वचैः ॥ उग्रैर्वाक्यैरहंतस्यानान्यद्दैवात्समर्थये ॥ १८ ॥ कथंप्रकृतिसंपन्नाराजपुत्रीतथागुणा ॥ ब्रूयात्साप्राकृतेवस्त्रीमत्पीडचंभर्तृसन्निधौ ॥१९॥ यदचिंत्यंतुतद्दैवंभूतेष्वपिनहन्यते ॥ व्यक्तंमयिचतस्यांचपतितोहिविपर्ययः ॥ २० ॥ कश्चदैवेनसौमित्रेयोद्धुमुत्सहतेपुमान् ॥ यस्यानुग्रहणंकिंचित्कर्मणोऽन्यन्नदृश्यते ॥२१॥ सुखदुःखेभयक्रोधौलाभालाभौभवाभवौ ॥ यस्यकिंचित्तथाभूतंननुदेवस्यकर्मतत् ॥ २२ ॥ ऋषयोऽप्युग्रतपसोदैवेनाभिप्रचोदिताः ॥ उत्सृज्यनियमांस्तीव्रान्भ्रश्यंतेकाममन्युभिः ॥ २३ ॥

समान अपने स्वामीके सामने इसप्रकारसे मर्मकी भेदन करनेवाली बात कहती है इसका मूलकारण अपना दैवही है ॥१९॥ जो चिन्तासे परेहो उसकाही नाम भाग्य है जीव गणोंके मालिक ब्रह्मादि देवगण पर्यन्त जिसको नहीं मेट सकते हैं इस कारणसे मेरा भाग्यही ऐसा है कि, राज्य छोडकर वनको जाना पडा यह भाग्यही है कि, जिसने चलकरके यह दिखलाया ॥२०॥ हे लक्ष्मण ! कर्मके फल भोगनेसिवाय जिसको जाननेका कोई उपाय नहीं है उस भाग्यसे लडनेको कौन पुरुष साहस कर सकता है ? क्योंकि उसके रूपको न कोई देखहीसकता न किसीके विचारमेंही आसकता है ॥२१॥ सुख, दुःख भय, क्रोध हानि, लाभ, बन्धन, मुक्ति इन सबके बीचमेंजो कुछहै सो भाग्यही है ॥२२॥ औरोंकी बातें जाने दीजिये जो कि, कठोरव्रतकरनेवालेउग्रतपजिन्होंने कियेहों ऐसे तपस्वी लोगभीभाग्यकेवशहो

* दोहा—वधिक बधो मृग वाणते रुधिरो दियो बताय । निजहूँ अनहित होत है, तुलसी दुर्दिन पाय ॥१॥ हेलक्ष्मण सुन जाहि जब, होन विधाता वाम । धूरि मेरु सम जनक यम, ताहि कालसम दाम ??॥२॥

व्रत नियम इत्यादि छोडछांडकर काम क्रोधके वशमें हो भ्रष्ट होजाते हैं ॥२३॥ जिस कार्यके करनेको कभी विचार न किया जाय और वह अपने आप एकाएकही होजाय; और जिसका विचार करो वह नहो, बस यही दैवका कर्म समझना चाहिये ॥२४॥ हे लक्ष्मण ! तत्त्वज्ञानकी सहायतासे भली प्रकार करके प्रबोधित होनेपर मेरे अभिषेक मिलनेको था वह नहीं मिला और अब वनवासको जानापडा इसमें तुमको संतप्त होना नहीं पड़ेगा ॥ २५ ॥ अब तुम मेरे उपदेशसे मनका सब दुःख परिताप छोडकरके मेरीसी बुद्धि अपनीभी करलो और जो मैं कहूं सोकरो और मेरे अभिषेकके प्रयोजनीय कार्यसे सबका मन अलग हटादो ॥ २६ ॥ मेरा अभिषेक होनेके लिये अनेकतीर्थोंके जलसे भरेजो कलश आये थे अब इन कलशोंसेमेरा तपस्वीस्नान होगा अर्थात् अब तपस्वीभेष करनेपर इनसे स्नान करूंगा ॥ २७ ॥ अथवा अब अभिषेककी सामग्रीसे प्रयोजनही क्या है? मैं अपने हाथसे कुएँसे जल लाकर उससे तपस्वी व्रतका स्नान पूरा करूंगा ॥ २८ ॥ भाई लक्ष्मण ! राज्या

असंकल्पितमेवेहयदकस्मात्प्रवर्तते ॥निवर्त्यारब्धमारंभैर्ननुदैवस्यकर्मतत् ॥२४॥एतयातत्त्वयाबुद्ध्यासंस्तभ्यात्मानमात्मना ॥ व्याहतेऽप्यभि षेकेमेपरितापोनविद्यते ॥ २५ ॥ तस्मादपरितापःसंस्त्वमप्यनुविधायमाम् ॥ प्रतिसंहारयक्षिप्रमाभिषेचनिकींक्रियाम् ॥२६॥ एभिरेवघटैःस वैरभिषेचनसंभृतः॥ ममलक्ष्मणतापस्येव्रतस्नानंभविष्यति ॥२७॥ अथवाकिंममैतेनराज्यद्रव्यमयेनतु॥ उद्धृतंमेस्वयंतोयंव्रतादेशंकरिष्यति ॥२८॥माचलक्ष्मणसंतापंकार्षीर्लक्ष्म्याविपर्यये॥राज्यंवावनवासोवावनवासोमहोदयः॥२९ नलक्ष्मणास्मिन्ममराज्यविघ्नेमातायवीयस्यभि शंकितव्या ॥ दैवाभिपन्नानपिताकथंचिज्जानासिदैवंहितथाप्रभावम् ॥ ३० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० अयोध्याकांडे द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥ इतिब्रुवतिरामेतुलक्ष्मणोऽवाक्शिराइव ॥ ध्यात्वामध्यंजगामाशुसहसादैन्यहर्षयोः ॥ १ ॥

धिकार जो नहीं प्राप्त हुआ इसकारण तुम कुछ विषाद मतकरना; क्योंकि वास्तवमें विचार करनेसे राज्य और अरण्य इन दोनोंमेंसे वनवासही फलदायक है देखो वनमें जाकर वनवासी ऋषियोंका पालन करसकेंगे, दूसरेपिताके वचनोंका पालनहोजायगा और प्रजापालनके कर्त्तव्याकर्तव्य हैं उनके विचारसे छुट्टी पाना फिर तपस्या करनेसे पवित्रचित्त रहना और वहां दीन अनाथोंकी रक्षा करना इस कारणसे वनवासही श्रेष्ठ है ॥२९॥ हे लक्ष्मण ! तुम भाग्यका प्रभाव भलीभांति जानतेहो; अतएव राज्यके नमिलनेसे और वनको चलनेसे पिताजीका व माता कैकेयीका कुछ दोष मनमें समझना तुमको उचित नहीं है ॥ ३० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयोध्याकांडे भाषायां द्वाविंशः सर्गः ॥२२॥रामचन्द्रजीके इस प्रकार करनेपर अनुज लक्ष्मणजी सहसा दुःख और हर्षके मध्यमें रहकर

शिर झुकाये कुछदेर तक चिन्ता करते रहे, हर्ष तो रामचन्द्रजीकी धीरताको देख हुआ और वनवासका जाना विचार दुःखित हुए इससे समभावमें रहे॥ १ ॥ परन्तु कुछ विलम्ब पश्चात् भौहैं वंकिमाकार कर बिलमें बैठे हुए क्रोधित भुजंगकी नाईं दीर्घ निःश्वास त्याग करने लगे ॥२॥ उस समय लक्ष्मणका मुखभौहैं टेढ़ी होनेसे क्रोधित सिंहके मुखकी नाईं अति भयानक आकारवाला होगया ॥३॥ हाथी जिस प्रकार अपनी शुंड इधर उधर हिलाता है इसी प्रकार लक्ष्मणजी हाथकँपाय शिर इधर उधर हिलायझुलाय॥४॥टेढ़ीदृष्टिसे भाईरामचन्द्रजीको देख कहने लगे आर्य ! आप जो वन जानेके लियेतैयार हुये हैं यदि विचार करकेदेखिये तो यह बात संपूर्णतःभ्रमकी भरी हुई है॥ ५॥ मैं कह सकता हूं कि धर्ममें दोषका प्रसंग और लोकमर्यादाकी रक्षा करना इसकरकेघिराहुआ आपका जो मन है उसमें विषय शीघ्रता आगई है, यदि ऐसा न होता तो आपसरीखे पुरुष कभी ऐसी वार्ता कह सकते ? फिर भाग्यहीके भरोसे सबकुछ है ॥६॥ हे वीर पुरुष श्रेष्ठ ! आप इस

तथातुबद्धाभ्रुकुटींभ्रुवोर्मध्येनरर्षभः ॥ निशश्वासमहासर्पोबिलस्थइवरोषितः ॥ ॥ तस्यदुष्प्रतिवीक्ष्यंतद्भ्रुकुटीसहितंतदा ॥ बभौक्रुद्धस्यसिंहस्यमुखस्यसदृशंमुखम् ॥ ३ ॥ अग्रहस्तंविधुन्वंस्तुहस्तीहस्तमिवात्मनः ॥ तिर्यगूर्ध्वंशरीरेचपातयित्वाशिरोधराम् ॥ ४ ॥ अग्राक्ष्णावीक्षमाणस्तुतिर्यक्भ्रातरमब्रवीत् ॥ अस्थानेसंभ्रमोयस्यजातोवैसुमहानयम् ॥५॥ धर्मदोषप्रसंगेनलोकस्यानतिशंकया ॥ कथंह्येतदसंभ्रांतस्त्वद्विधोवक्तुमर्हति ॥ ६ ॥ यथाह्येवमशौंडीरंशौंडीरःक्षत्रियर्षभः ॥ किंनामकृपणंदैवमशक्तमभिशंससि ॥ ७ ॥ पापयोस्तेकथंनामतयोःशंकानविद्यते ॥ संतिधर्मोपधासक्ताधर्मात्मन्किंनबुध्यसे ॥ ८ ॥ तयोःसुचरितंस्वार्थंशाठ्यात्परिजिहीर्षतोः ॥ यदिनैवंव्यवसितं स्याद्धिप्रागेव राघव ॥ ९ ॥ तयोःप्रागेवदत्तश्चस्याद्वरःप्रकृतश्चसः ॥ १० ॥

निर्बल भाग्यको सरलतासे जीत सकते हैं परन्तु इसको न करके आप इस तुच्छभाग्यकी इतनीप्रशंसा क्यों करते हैं ? ॥७॥ हे धर्मात्मन् ! महाराज अतिशयपापी हैं क्या इन दोनोंकी साडतको आपअबतक नहीं समझे ? आपक्या जानते नहीं हैं कि, संसारमें अनेक लोग केवल अपने स्वार्थके लिये धर्मका झूँठमूठ दावा किया करते हैं देखिये आपके वनवासदेनेमें धर्मकी क्या बात है ?॥८॥विचारकरके देखिये कि,स्वार्थपरतामें पडकरमहाराजपिताजी और कैकेयी शठतापूर्वक आपकोवन वास देते हैं, यदि ऐसा न होता तो सब अभिषेकका सामान तैयार करकराकर फिर आपके अभिषेकमें ऐसा विघ्न उठाकर खडा न कर देते॥९॥यदि वर देनेकी वार्त्ता वास्तवमें ठीक होती तो अभिषेकहोनेके पहलेही उनकीसूचना क्यों नहीं कीगई ? जो हो बड़ेको छोड़ छोटेको राज्य देना यहतो लोकमें बहुत बडी निन्दाकरने

वाली वार्त्ता है॥१०॥यदि कहोकि,राजाने भूलसे वरदान दिया तोभी हानि हो है क्योंकि इस अनुचित कार्यसे लोकमें द्वेष फैल जायगा कि,बडेकेहोते छोटा कैसे राज्यपा सक्ताहै ?परन्तु हे वीरचूडामणे!मैं तो इस घोर बीभत्सकार्यको किसी प्रकारसे नहीं करसकूंगा । यह कर्मलोक औरशास्त्र दोनोंसे विरुद्ध है इसकारण उस विषयमें आप मुझे क्षमाकरिये॥११॥आप जो पिताजीका सत्यपालन करनेके लिये मोहित होते हैं और जिसके प्रभावसे आपकी बुद्धिमें यहहेरफेर हुआ हैमैं उस धर्मके लिये मनसे द्वेष करता हूं ॥१२॥ मैं भली प्रकार जानता हूं कि आपधर्मवान हैं परन्तु अब आप किस कारणसे स्त्रीकेवश हुये राजाके अधर्मसे भरेहुये यह घिनौने वचन धर्म जान पालन करनेको तैयार हुए हैंबस इस समय यही मुझे भारी चिन्ता है॥१३॥आपके राज्याभिषेकमें जो बाधा हुई है, बस केवल वर दे नाही उसका छल समझिये,आश्चर्य है कि आप इस बात को नहीं मानते आप इनके कपटको भी सरलतासे ग्रहण करते हो इस प्रकारके धर्मकी संगति निन्दनीय है आपइस का ध्यान नहीं करते मुझे यही बडा दुःखहै ॥१४॥आप जो धर्मका अनुसरण करके बनजानेको तैयार हुये हैं यह वार्त्ता लोक में बहुत निन्दा की करानेवालीहै जिन

लोकविद्विष्टमारब्धंत्वदन्यस्याभिषेचनम्॥नोत्सहेसहितुंवीरतत्रमेक्षंतुमर्हसि ११ येनैवमागताद्वैधंतवबुद्धिर्महामते॥सोऽपिधर्मोममद्वेष्योयत्प्रसं गाद्विमुह्यसि॥१२॥कथंत्वंकर्मणाशक्तः कैकेयीवशवर्तिनः ॥करिष्यसिपितुर्वाक्यमधर्मिष्ठंविगर्हितम् १३॥यदयंकिल्बिषाद्भेदः कृतोऽप्येवंनगृह्यते॥ जायतेतत्रमेदुःखंधर्मसंगश्चगर्हितः १४ तवायंधर्मसंयोगोलोकस्यास्यविगर्हितः॥मनसापिकथंकामंकुर्यात्त्वांकामवृत्तयोः॥तयोस्त्वाहितयोर्नित्य शत्र्वोःपित्रमिधानयोः १५॥यद्यपिप्रतिपत्तिस्तैदैवीचापितयोर्मतम्॥तथाप्युपेक्षणीयंतेनमेतदपिरोचते १६॥विक्लवोवीर्यहीनोयःसदैवमनुवर्तते॥ वीरास्संभावितात्मानोनदैवंपर्युपासते॥१७॥दैवंपुरुषकारेणयःसमर्थःप्रबाधितुम् ॥ नदैवेनाविपन्नार्थःपुरुषःसोऽवसीदति ॥१८॥द्रक्ष्यन्तित्वद्यदैव स्यपौरुषंपुरुषस्यच॥दैवमानुषयोरद्यव्यक्ताव्यक्तिर्भ वेष्यति॥१९अद्यमेपौरुषहतंदैवंद्रक्ष्यंतिवैजनाः॥यैर्दैवादाहतंतेऽद्यदृष्टंराज्याभिषेचनम्॥२०

की इच्छाही दूषित है, उन महाराज पिताजी और कैकेयीका वचन मानना तोदूर रहा उनकी बातको मनमें भी स्थान नहीं देना चाहिये कहनेसे वो संबंधानुसार महाराज व रानी कैकेयी पिता माता हैं, परन्तु व्यवहार से वास्तविक में यह हमारेदारुण वैरी हैं ॥१५॥यद्यपि आपके मतसे माताके वचन इस विषय में दैवकेकिये हुये हैं, तथापि मुझे तो यह वार्त्ता अच्छी नहीं लगती; क्योंकि ऐसे दैवका कौनभरोसा है ॥१६॥ जिन पुरुषोंमें पुरुषार्थ नहीं है और बहुत तेज हीन हैं,वह लोग ही भाग्य को मानाकरते हैं,जो वीर हैं और जगत् जिनको वीर जानताहै वह लोग दैवपर भरोसा नहीं रखते हैं॥१७॥ जो पुरुष अपने पुरुषार्थ से भाग्यको जीतसक्ते हैं यदि अचानक उनका कोई कार्य बिगड,जायतो वह लोग साहस नहीं हारते वरन् प्रसन्न रहते हैं॥१८॥ भाई साहब!आज सब लोग भाग्यऔर पुरुष कार दोनोंके बल पौरुषको देखैं, जो हो आज भाग्य और मनुष्यके बलाबल की परीक्षा होगी॥१९॥जिन लोगोंने भाग्य की शक्तिसे आपकाराज्याभिषेक हटाया हुआ देखा है,आज वही

लोग हमारे पौरुष के प्रभावसे उस भाग्यको हारा हुआ देखेंगे॥२०॥जैसे दौडते हुये बडे ऊंचे मतवाले हाथीको अंकुश वश कर लेता है, वैसे ही आजमैं अपने पराक्रमसे भाग्यको अपने अधीन करूंगा ॥२१॥पिता दशरथजीकी बात तोजानेही दीजिये जो सब लोकपाल इन्द्र,वरुण,कुबेर यमराज, अग्नि,सूर्यादि वरन् तीनों लोक के सब मनुष्य भी आपके अभिषेक में विघ्न नहीं डाल सकेंगे ॥२२॥ जिन लोगोंकी सलाहसे आपका वन जाना स्थिर हुआ है, आज मैं उन लोगोंकोही चौदह वर्ष के निमित्त वनमें,भेजूंगा ॥२३॥ महाराज पिता और कैकेयी आपका बुरा करके भरतको जो यौवराज्यमें अभिषेक करनेके लिये आशा लगाये बैठे हैं आज यह उनकी आशा निर्मूल करूंगा ॥२४॥ जो कोई हमारे विरुद्ध आचारण करनेको आगे बढेगा उसके लिये हमारा दुर्द्धर्ष पौरुष जितने दुःख का कारण होगा भाग्य बल उसे उतना सुख नहींदे सकेगा ॥ २५ ॥ हे आर्य ! आपहजारों वर्ष तक राज्यका सुख भोगजब वनको जायँगे उस समयआपके

अत्यंकुशमिवोद्दामंगजंमदजलोद्धतम् ॥ प्रधावितमहंदैवंपौरुषेणनिवर्तये ॥ २१ ॥ लोकपालाःसमस्तास्तेनाद्यरामाभिषेचनम् ॥ नचकृत्स्नास्त्रयोलोकाविहन्युःकिंपुनःपिता ॥ २२ ॥ यैर्विवासस्तवारण्येमिथाराजन्समार्थितः ॥ अरण्येतेविवत्स्यंतिचतुर्दशसमास्तथा ॥ २३ ॥ अहंतदाशांधक्ष्यामिपितुस्तस्याश्चयातव ॥ अभिषेकविघातेनपुत्रराज्यायवर्तते ॥ २४ ॥ मद्बलेनविरुद्धायनस्याद्दैवबलंतथा ॥ प्रभविष्यति दुःखाययथोग्रंपौरुषंमम ॥ २५ ॥ ऊर्ध्ववर्षसहस्रांतेप्रजापाल्यमनंतरम् ॥ आर्यपुत्राःकरिष्यंतिवनवासंगतेत्वयि ॥ २६ ॥ पूर्वराजर्षिवृत्त्याहिवनवासोऽभिधीयते ॥ प्रजानिक्षिप्यपुत्रेषुपुत्रवत्परिपालने ॥ २७ ॥ सचेद्राजन्यनेकाग्रेराज्यविभ्रमशंकया ॥ नैवमिच्छसिधर्मात्मन्राज्यंरामत्वमात्मनि॥ २८ ॥ प्रतिजानेचतेवीरमाभूवंवीरलोकभाक्राज्यंचतवरक्षेयमहंवेलेवसागरम् ॥ २९ ॥ मंगलैरभिषिंचस्वतत्रत्वंव्यापृतोभव ॥ अहमेकोमहीपालानलंवारयितुंबलात् ॥ ३० ॥

पुत्रगण प्रजा पालन करके राज्य काज करते रहैंगे। उस समय भी भरतके पुत्र या वह स्वयं राज्य नहीं पासकेंगे ॥२६॥ क्योंकि पूर्वकाल में सब भूपालगण यही करते चले आये हैं कि,वृद्धावस्था में प्रजाको पुत्रके समान पालन करनेके लिये पुत्रोंको सौंपआप वनमें तप करनेके लिये रहेथे। यह नहीं कि,आपकी सी युवा अवस्था में वनको जायँ॥२७॥हे आर्य ! महाराजकाम के वश हो चपलता के दोषसे हमारे विरुद्ध आचरण करते हैं परन्तु इससे आप अपने राज्याधिकारसे मन न हटाइये॥२८॥ हे वीर ! प्रतिज्ञा करता हूं कि,मैं आपके राज्यकी रक्षा करूंगा, यदि न करूं तो वीर लोकको न प्राप्त होऊं आप समझ लीजिये कि तीर भूमिजिस प्रकार सगरकी रक्षा करती है मैं भी आपके निकट वैसेही रहूंगा ॥२९॥अब आपके राज्याभिषेक के लिये जो सब मंगलाचारकी वस्तुयें इकट्ठी की गई हैं,उनसे आप अपना

अभिषेक कराइये यदि इस कार्यमें कोई राजकुमार भी बाधा उठावैतो मैं अकेला सब पृथ्वीके राजाओंको जीत सकता हूँ। अकेले दशरथकी क्या गिनती है ॥३०॥ भाई ! यह हमारी बांहें केवल शरीरकी शोभा बढानेको उत्पन्न नहीं हुई हैं; किन्तु पराक्रमके लिये हैं, केवल आभूषण की भांति धनुष धारण नहीं करताहूं बरन् शत्रुओंका शरीर छेदन करनेके लिये, यह खड्ग केवल भार ही नहीं है बरन् वैरीका मूँड काटनेके लिये हैं, बाण स्तंभरूप नहीं है किन्तु छोडनेको है॥३१॥ यह चारों पदार्थ हमारे शत्रुओंका मथन ही करनेके लिये हैं, जो हमारा शत्रु बनकर रहना चाहता है उसको हम कुछ भी नहीं समझते॥३२॥दूसरोंकी बात क्या कहूं यदि सुरपति इन्द्र भी हमारे साथ इस राज्यके विषय में शत्रुता करनेके लिये तैयार हो तो मैं बिजलीके समान तेज धारवाली तलवारकी सहायतासे उसको भी टुकडे२करके फेंक दूंगा ॥३३॥ मेरा यह खड्ग निरंतर आघात करके हाथियोंकी सूडें घोडोंके हाथ पाँव व पैदलोंके मस्तक काट२कर रणभूमिको चलनेके योग्य न रक्खेगा

नशोभार्थाविमौबाहूनधनुर्भूषणायमे ॥ नासिराबंधनार्थायनशराःस्तंभहेतवः ॥ ३१ ॥ अमित्रमथनार्थायसर्वमेतच्चतुष्टयम् ॥ नचाहंकामये ऽत्यर्थंयःस्याच्छत्रुर्मतोमम ॥ ३२ ॥ असिनातीक्ष्णधारेणविद्युच्चलितवर्चसा ॥ प्रगृहीतेनवैशत्रुंवज्रिणंवानकल्पये ॥ ३३ ॥ खड्गनिष्पेषनि ष्पिष्टैर्गहनादुश्चराचमे ॥ हस्त्यश्वरथिहस्तोरुशिरोभिर्भवितामही ॥ ३४ ॥ खड्गधाराहतामेऽद्यदीप्यमानाइवाग्नयः ॥ पतिष्यंतिद्विषोभू मौमेघाइवसविद्युतः ॥ ३५ ॥ बद्धगोधांगुलित्राणेप्रगृहीतशरासने ॥ कथंपुरुषमानीस्यात्पुरुषाणांमयिस्थिते ॥ ३६ ॥ बहुभिश्चैकमत्य स्यन्नेकेनचबहूञ्जनान् ॥ विनियोक्ष्याम्यहंबाणान्नृवाजिगजमर्मसु ॥ ३७ ॥ अद्यमेऽस्त्रप्रभावस्यप्रभावःप्रभविष्यति ॥ राज्ञश्चाप्रभुतांकर्तुं प्रभुत्वंचतवप्रभो ॥ ३८ ॥ अद्यचंदनसारस्यकेयूरामोक्षणस्यच ॥ वसूनांचविमोक्षस्यसुहृदांपालनस्यच ॥ ३९ ॥

अर्थात् रणभूमि भयंकर हो जायगी ॥३४॥ आज हमारी तलवार के प्रहारसे शत्रुगण रुधिरसे रँगे हुये जलती हुई आग व बिजली सहित मेघकी नाईं शोभित होकर रणभूमि में गिरेंगे ॥३५॥ मैं प्रतिज्ञा करके कहताहूं कि, जब हम गोहेके चमडेसे बना हुआ गुश्ताना टंकार देनेके लिये पहरकर और दिव्य शरासन धारणकरके खडे हो जायँगे, तब कौन वीर पुरुष हमको पराजित कर सकता है ?॥३६॥मैं बहुत सारे बाण चलाकर एक पुरुषको व एक मात्र शराघातसे अनेक लोगोंको विनाश करके हाथी, घोडे और मनुष्योंके मर्मस्थान बराबर छेदन करता रहूंगा॥३७॥ आज महाराजकी प्रभुता मिटाने और आपकी प्रभुता जमानेमें मेराबाहु बल और अस्त्रबल प्रगट होजायगा॥३८॥आज चंदन लगीं हुई मेरी बांहें व अंगद पहरीहुई सदा दानकी देनेवाली सुहृदोंको पालनेवाली सुखकरानेवाली ॥३९॥

रामका कार्य करेंगी तुम्हारे अभिषेकमें विघ्न करनेवाली लोगोंको रोकने वाली और शोक देनेवाली हैं । हम ठीक२कहते हैं कि,हमारी भुजा यह सब काम करेंगी ॥४०॥हे प्रभो ! आप आज्ञा दीजिये कि,कौन धन,प्राण और भाई बन्धुओंसे न्यारा कियाजाय ? मैं आपका दासहूँ मुझे आज्ञा दीजिये जिसप्रकारसे यह पृथ्वी आपके अधिकारमें आजाय,मैं उस कार्यके अनुष्ठान करनेमें यत्नकरूं॥४१॥रघुकुलकेबढानेवाले रामचन्द्रजी लक्ष्मणके ऐसे वचन श्रवण करके उनके आँसू पोंछ वारंवारउनकों समझाने बुझाने लगे और बोले हे वत्स ! मैंने भली भाँति.पिताका सत्यपालन करनाही उचित समझा है, अतएव मैं उस वचनसे किसी प्रकार नहीं हट सकता यहीसत्य मार्ग है॥४२॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा०आदि०अयोध्याकांडे भाषायां त्रयोविंशः सर्गः ॥२३॥ अनन्तर रामजननी कौशल्याजी धर्मात्मा पुत्र रामचन्द्रजीको पिताकी आज्ञा पालन करनेमें तैयार देख आंसूभरे नेत्र किये गद्गद कंठसे बोली॥१॥हे राम ! तुमने महाराज दशरथके औरससे

अनुरूपाविमौबाहूरामकर्मकरिष्यतः॥अभिषेचनविघ्नस्यकर्तॄणांतेनिवारणे॥४०॥ब्रवीहिकोऽद्यैवमयावियुज्यतांतवासुहृत्प्राणयशःसुहृज्जनैः॥ यथातवेयंवसुधावशाभवेत्तथैवमांशाधितवास्मिकिंकरः॥४१॥विमृज्यबाष्पंपरिसांत्व्यचासकृत्सलक्ष्मणंराघववंशवर्धनः॥उवाचपित्रोर्वचनेव्य वस्थितंनिबोधमामेषहिसौम्यसत्पथः ॥४२॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्येच० सा० अ० कां० त्रयोविंशः सर्गः॥२३॥ तंसमीक्ष्यव्यवसितंपितुर्निर्देशपालने॥कौसल्याबाष्पसंरुद्धावचोधर्मिष्ठमब्रवीत्॥१॥ अदृष्टदुःखोधर्मात्मासर्वभूतप्रियंवदः॥मयिजातोदशरथा त्कथमुञ्छेनवर्तयेत्॥२॥यस्यभृत्याश्चदासाश्चमृष्टान्यन्नानिभुंजते॥कथंसभोक्ष्यतेरामोवनेमूलफलान्ययम्॥३॥ कएतच्छ्रद्दधेच्छ्रुत्वाकस्यवान भवेद्भयम्॥गुणवान्दयितोराज्ञःकाकुत्स्थोयद्विवस्यते॥४॥नूनंतुबलवाँल्लोकेकृतांतःसर्वमादिशन्॥लोकेरामाभिरामस्त्वंवनंयत्रगमिष्यसि॥५॥

मेरे गर्भमें जन्म ग्रहण किया है,बालकपनसे दुःख क्या पदार्थ है,तुम जानते नहीं,सब प्राणियोंके प्रिय करने हारे,फिर भला तुमकिस प्रकारसे वनमें जाय कन्द मूल फलोंका आहार कर मुनियोंकी वृत्तिको निबाहोगे॥२॥जहां तुम्हारे नौकर चाकर दासदासी अनेक प्रकारके मीठे व्यंजन भोजन करते रहे वहां तुम किस प्रकार कंद,मूल,फल भोजन करके दिन बिताओगे ॥३॥जब!कोई इस बातको सुनेगा कि,राजाके प्यारे दुःलारे परमप्रिय पुत्ररामचंद्रजी वनको जाते हैं वो इस बातका कौन विश्वास करेगा और जब निश्चयकरके विश्वास होही जायगा ! तो यह जानकर कि,राम वनको भेजे गये,कौन पुत्रपिताको मनहीमन भयका कारण न समझेगा? क्योंकि जब तुम पिताको ऐसे प्यारेथे और उन्होंनेही तुम्हें बनवास दिया फिर पिताओंका क्या भरोसा ? ॥४॥जबतुम सर्व लोकोंके प्यारे रामचन्द्र वनको जाओहो तब सुख दुःखका नियम बनानेवालाभाग्यही सबसेबडा है यह मुझको ठीक निश्चयहो गया यदि ऐसा न होता तो राज्य मिलनेके समय तुम

वनको न जाते ॥ ५ ॥ हे राम ! यह मेरेही मनसे उपजीहुई शोकानल जबतुमको न देखेगी तबजो ऊर्ध्व श्वास आवेगी उस वायुसे वर्द्धित हुआ विलाप कलाप करनेका दुःख ईंधनरूप होकर आंसुओंके रोनेकी आहुति पाय ॥६॥ चिन्तासे उत्पन्न भाफको धूम बनाकर. जो कि, विना तुम्हारे दर्शन कियेचिन्ता होगी सो मुझको भलीभाँति अधिक कृशकरके ॥७॥ जैसे गरमीके दिनोंमें सूर्य भगवान् वृक्ष,लता, घास, फूल, पत्रादिकोंको जलाते हैं वैसेही तुम्हारे विना यह शोकानल मेरे हृदयको भेद करके मुझको भस्म करदेगी॥८॥ हे वत्स ! तुम जहां जाओगे,मैं भी वहीं २ तुम्हारे साथ चलूंगी क्योंकि कभी गाय अपने बच्चेका संग छोडती हैं ? ऐसेही मैंभी तुम्हारा साथ नहीं छोडूँगी ॥९॥जो कुछ शोकसे तपाई हुई माताने कहा उसको सुनकर पुरुषश्रेष्ठ रामचन्द्रजी अपनी दुःखित मातासे बोले ॥ १० ॥ हेमाता ! जननीकैकेयीनेपिता जीकोधोखा देकर बहुतही दुखित किया हैऔर मैंभी इस समय पिताजीसे बिछुड कर वनको

अयंतुमामात्मभवस्तवादर्शनामारुतः ॥ विलापदुःखसमिधोरुदिताश्रुहुताहुतिः ॥ ६ ॥ चिंताबाष्पमहाधूमस्तवागमनचिंतजः ॥ कर्शयित्वा धिकंपुत्रनिःश्वासायाससंभवः ॥ ७ ॥ त्वयाविहीनामिहमांशोकाग्निरतुलोमहान् ॥ प्रधक्ष्यतियथाकक्ष्यंचित्रभानुर्हिमात्यये ॥ ८ ॥ कथंहि धेनुःस्वंवत्संगच्छंतमनुगच्छति ॥ अहंत्वानुगमिष्यामियत्रवत्सगमिष्यसि ॥ ९ ॥ यथानिगदितंमात्रातद्वाक्यंपुरुषर्षभः ॥ श्रुत्वारामोऽब्र वीद्वाक्यंमातरंभृशदुःखिताम् ॥ १० ॥ कैकेय्यावंचितोराजामयिचारण्यमाश्रिते ॥ भवत्याचपरित्यक्तोननूंवर्तयिष्यति ॥ ११ ॥ भर्तुः पुनःपरित्यागोनृशंसःकेवलंस्त्रियाः ॥सभवत्यानकर्तव्योमनसापिविगर्हितः ॥१२॥यावज्जीवतिकाकुत्स्थःपितामेजगतीपतिः॥शुश्रूषाक्रियतां तावत्सहिधर्मः सनातनः॥१३॥ एवमुक्तातुरामेणकौसल्याशुभदर्शना॥ तथेत्युवाचसुप्रीतारामम‌क्लिष्टकारिणम् ॥१४॥एवमुक्तस्तुवचनंरामो धर्मभृतांवरः॥भूयस्तामब्रवीद्वाक्यंमातरंभृशदुःखिताम्॥१५मयाचैवभवत्याचकर्तव्यंवचनंपितुः॥राजाभर्तागुरुःश्रेष्ठःसर्वेषामीश्वरःप्रभुः१६॥

जाताहूं और तिसपर यदि आपभी मेरे साथ वनको चलें तो महाराज कदापि जीते न बचेंगे ॥ ११॥ संसारमें जितनी कुछ निठुरता है वह सबसे अधिक निन्दित जो कार्यहै, वह स्त्रीकाअपने स्वामीका त्याग करनाहै इसकारण हे मैया! यह बाततुममनसेभी न बिचारो,ऐसीबातोंको मनमें स्थानदेनेसेभी पापहै॥१२॥ जगत्पति हमारे पिताजी जबतक जीवित रहैं आप तबतक उनकी सेवा करतीं रहैं समझलो कि, तुम्हारा यही सनातन धर्म है ॥१३॥ श्रेष्ठ कर्म करनेवाली रामचन्द्रजीके ऐसा कहनेपर शुभदर्शनवाली कौशल्याजी प्रीत मनसे ऐसाही है यह रामचन्द्रजीसे कहनेलगीं॥१४॥कि, हे वत्स ! स्वामीकी सेवाशुश्रूषा करना स्त्रियोंका आवश्यक कर्म है, इसमें कोई सन्देहकी वार्ता नहीं है उस समय दुःखित माताको स्वामीकी सेवामें विरक्त देखकर धर्मधारियोंमें श्रेष्ठश्रीरामचन्द्रजी उनसे बडीधीरता व नरमाईके साथ फिर बोले॥१५॥हे जननि! महाराज एक तो आपके पतिहैं और दूसरे मेरे परमगुरुहैं, तीसरेपिताहैं और चौथे सबकेपालन

पोषणकरनेवाले हैं पाँचवें राजा हैं छठे सबमें श्रेष्ठ हैं इस कारण उनकी आज्ञाकापालन करना हम दोनोंको उचित है॥१६॥ मैं प्रतिज्ञा करके कहताहूं कि, चौदहवर्ष तक वनमें घूमघामकर प्रसन्नमनसे लौटकर आपके चरणोंकी सेवाकरूंगा ॥१७॥ अपने प्यारेपुत्रके ऐसे वचन सुनकर पुत्रवत्सला कौशल्याजी आँखोंमें आंसु भर दुःखित हो रुदन करतीहुई बोलीं ॥१८॥ मैं यहां सौतोंके बीचमें किस प्रकार रह सकतीहूं तुमतो वनको जाओ और मैं यहां रहूं हे पुत्र! वनमेंमारी २ फिरनेवाली हरिनीके समान मुझेभी अपने संग ले चलो॥१९॥ यदि तुमनेनिश्चयही वनजानेकाविचार कियाहैतो मुझे यहांमत छोडो। कौशल्याजी रामचन्द्रजीसे इसभांति कह रोने लगीं * तब रामचन्द्रजीउनसे फिरबोले॥२०॥किजबतक स्त्रीजीतीरहै तबतक पतिहीउसका देवताऔर मालिक है,अतएवमहाराजपिताजी इस

इमानितुमहारण्येविहृत्यनवपंचच ॥ वर्षाणिपरमप्रीत्यास्थास्यामिवचनेतव ॥१७॥ एवमुक्त्वाप्रियंपुत्रंबाष्पपूर्णाननातदा ॥ उवाचपरमार्तातु कौसल्यासुतवत्सला ॥१८॥ आसांराममसपत्नीनांवस्तुंमध्येनमेक्षमम् ॥नयमामपिकाकुत्स्थवनंवन्यांमृगीमिव॥१९॥ यदितेगमनेबुद्धिःकृता पितुरपेक्षया॥तांतथारुदतींरामोऽरुदन्वचनमब्रवीत् ॥२०॥जीवंत्याहिस्त्रियाभर्तादैवतंप्रभुरेवच॥ भवत्यांममचैवाद्यराजाप्रभवतिप्रभुः ॥२१॥ नह्यनाथावयंराज्ञालोकनाथेनधीमता ॥ भरतश्चापिधर्मात्मासर्वभूतप्रियंवदः ॥२२॥ भवतीमनुवर्तेतसहिधर्मरतःसदा ॥ यथामयितुनिष्क्रांते पुत्रशोकेनपार्थिवः ॥ २३ ॥ श्रमं नावाप्नुयात्किंचिदप्रमत्तातथाकुरु ॥ दारुणश्चाप्ययंशोकोयथैनंनविनाशयेत् ॥ २४ ॥

कारणसे मुझे व आपको अपनी इच्छानुसार दंड दे सकते है जो कि; हम उनके प्रतिकूल आचरण करें ॥२१॥ महाराजके रहते हम सबको स्वतंत्रनहीं होना चाहिये क्योंकि हमारे प्रभुजीवित हैं तबतक उनके कहनेके अनुसारकार्य करनाचाहिये जो कहोकि, तुम्हारे पीछे कैकेयी दुःख देगी सो कैकेयी तुम्हारा कुछभी न कर सकेगी क्योंकि भरतजीको मैं भलीभांति जानता हूं वह सज्जन धर्मात्मा सर्वलोकोंके प्यारेहैं ॥२२॥ वह सदा सबही प्रकारसे आपका मन प्रसन्न कर नेके लिये यत्नवान् रहेंगे और तुम्हारी आज्ञामें रहेंगे क्योंकि यह सदाधर्ममेंरहते हैं जिससे कि, मेरे वनको चलेजानेपर पुत्रशोकसे व्याकुलहो राजा कष्ट न पावें ॥२३॥ वो किसी प्रकारका दुःख उन्हें न हो इसविषयमें हे अम्मा! तुमबहुतही ध्यान रखियोक्योंकिमुझे यह विश्वासहै कि मेरे वन जानेका शोक प्रबल होकर

* चौ०–बहु विधि विलपि चरण लपटानी । परम अभागिनि आपहि जानी ।। दारुण विरहमहा उर व्यापा । कह्यो न जाय मात सन्तापा ।। कौन हूं भांति धरत नहिंधीरा ? लोचननलिनजातअतिनीरा ।

उनकी मृत्युका कारण हो सकता है॥२४॥ क्योंकि राजा अब वृद्ध होगये हैं उससे उनका हित करनेके लिये सदा ध्यान धरकर उनकी सेवा करना। क्योंकि जो परमोत्तम नारी व्रत उपवासमें रात-दिन लगी रहे॥२५॥ और मन लगाकर पतिकी सेवा न करे वह भी नरकगामिनी होतीहै औरजोस्त्रीतनमनसे अपने स्वामीकी सेवाकरती और कोई पूजा पाठ व्रत इत्यादिकनहीं करतीहै वहभीपतिसेवाकेबलसे स्वर्गको सीधी चलीजाती है॥२६॥ जो स्त्री देवताओंकीपूजा नहीं किया करती और व्रत इत्यादिकजिसको नहीं रुचते और बडोंको जोनहीं नवती परन्तुदिन रात अपने स्वामीका हित करती है वहउत्तमही गति पातीहै॥२७॥ इसलिये जो स्त्री सदा अपना भलाचाहतीहै वह निष्कपट होकर स्वामीकीसेवा करे ! हे देवि! वेद व स्मृति इत्यादि धर्मशास्त्रोंमें यह धर्म लिखाहुआ है इससमय यह प्रार्थना और है कि जब अग्निहोत्रका समयआवै तब पतिकीसेवामेंमनलगाये हुये ॥२८॥ मेरा मंगल मनानेके लिये अक्षतपुष्पोंसे देवताओंकीपूजा करना;

राज्ञोवृद्धस्यसततंहितंचरसमाहिता॥ व्रतोपवासनिरतायानारीपरमोत्तमा ॥ २५ ॥ भर्तारंनानुवर्तेतसाचपापगतिर्भवेत् ॥ भर्तुःशुश्रूषयानारी लभतेस्वर्गमुत्तमम्॥२६॥ अपियानिर्नमस्कारानिवृत्तादेवपूजनात्॥शुश्रूषामेवकुर्वीतभर्तुःप्रियहितेरता ॥२७॥ एषधर्मःस्त्रियानित्योवेदेलोके श्रुतःस्मृतः॥ अग्निकार्येषुचसदासुमनोभिश्चदेवताः ॥२८॥ पूज्यास्तेमत्कृतेदेविब्राह्मणाश्चैवसत्कृताः॥ एवंकालंप्रतीक्षस्वममागमनकांक्षिणी ॥२९॥ नियतानियताहाराभर्तृशुश्रूषणेरता ॥ प्राप्स्यसेपरमंकाममयिपर्यागतेसति ॥३०॥ यदिधर्मभृतांश्रेष्ठोधारयिष्यतिजीवितम् ॥ एव मुक्तातुरामेणबाष्पपर्याकुलेक्षणा ॥३१॥कौसल्यापुत्रशोकार्तारामंवचनमब्रवीत् ॥ गमनेसुकृतांबुद्धिंनतेशक्नोमिपुत्रक ॥३२॥ विनिवर्तयितुं वीरनूनंकालोदुरत्ययः ॥गच्छपुत्रत्वमेकाग्रोभद्रंतेऽस्तुसदाविभो ॥३३॥ पुनस्त्वयिनिवृत्तेतुभविष्यामिगतक्लमा ॥ प्रत्यागतेमहाभागेकृता र्थेचरितव्रते ॥ ३४ ॥

औरव्रतनिष्ठ ब्राह्मणोंकीपूजा करना इस प्रकारसमय व्यतीतकरतेहुयेमेरे आनेकी आकांक्षा किये॥२९॥ पवित्र भावसे पतिकी सेवामें रत रहकर नियमितभोजनकर समय विताना मेरे बनसे लौट आने परतुम्हारीसबमनोकामनापूर्णहोजायगी॥३०॥ यदि धर्मधारनेवालोंमें श्रेष्ठ हमारे पिता जीतेरहें तो निश्चयहीयहबातेंहोंगी राम चन्द्रजीके ऐसा कहनेपर आंखोंमेंआंसूभर गद्गद कंठसे॥३१॥ पुत्रशोकसेकातर कौशल्याजीरामचन्द्रसे बोलींउनकी दोनों आंखोंसे आंसूबह रहेथे,हेपुत्र ! जो तुम निश्चयहीवनकोजाओगे तो तुम्हें वनजानेसेरोकनेकी सामर्थ्यमुझमेंकहां है॥३२॥ मैंने जान लिया कि, अवश्यहोनहारकालकी शक्ति कोकौन बाधासेरोकसकताहै जो हो हे पुत्र ! एकाग्रमनसे वनको जाओ तुम्हारा मंगल हो ॥३३॥ हे महाभाग ! जब तुम्हारा यह व्रत सिद्ध होजायगा अर्थात् पिताकी आज्ञा पालनकर

चौदह वर्ष वनमें रहकर घरको लौटोगे तो मैं सुखीहोऊंगी ॥३४॥ हे पुत्र ! तुम्हें चौदह वर्षके पीछे पिताके ऋणसे छूटाहुआ देखकर मैं परमसुखपाऊंगी । हे पुत्र ! निश्चयही भाग्यकी गति समझ नहीं पडती है ॥३५॥ हे महाबाहो! मेरे वचनोंकी रक्षा न कराकर जिस भाग्यने तुम्हें वनवासीकिया उसभाग्यके समान बडा और कौनबनसकताहै, अच्छाअब तुमवनकोजाओ और निर्विघ्नचौदहवर्षके पीछेफिर इसराजपुरी अयोध्याकोलौटो॥३६॥हाय! मेरेभाग्यमें ऐसेसुखकेदिन कबआवेंगे वहतुम्हारे वनसेलौटनेकासमय अभीआयजिस दिनजटावल्कल धारण किये वन लौटकर तुमकोमल और मनोहरबाणीसे मुझे समझाओगे बुझाओगे ❋ ॥३७॥ इस प्रकार कह देवी कौशल्याजी रामका वनजाना निश्चयजानकर परमचित्तसे रामचन्द्रजीकीवहपरमदर्शनीय अभिराममूर्तिदर्शन करने लगीं और उनकेही मंगल मनानेके लिये मगलाकांक्षिणीहो उनकी स्वस्तिवाचन करनेलगीं॥३८॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयोध्याकांडे भाषायां चतुर्विंशः सर्गः ॥२४॥

पितुरानृण्यतांप्राप्तेस्वपिष्येपरमंसुखम्॥ कृतांतस्यगतिःपुत्रदुर्विभाव्यासदाभुवि ॥३५॥ यत्त्वांसचोदयतिमेवचआविद्धचराघव ॥ गच्छेदानीं महाबाहोक्षेमेणपुनरागतः ॥३६॥ नंदयिष्यसिमांपुत्रसाम्नाश्लक्ष्णेनचारुणा ॥अपीदानींसकालःस्याद्वनात्प्रत्यागतंपुनः॥यत्त्वांपुत्रकपश्येयं जटावल्कलधारिणम् ॥ ३७ ॥ तथाहिरामंवनवासनिश्चितंददर्शदेवीपरमेणचेतसा ॥ उवाचरामंशुभलक्षणवचोबभूवचस्वस्त्ययनाभिकांक्षिणी ॥३८॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्येच० सा० अयोध्याकांडे चतुर्विंशःसर्गः ॥ २४ ॥ ॥ ॥ साविनीयतमायास मुपस्पृश्यजलंशुचि ॥ चकारमातारामस्यमंगलानिमनस्विनी ॥ १ ॥ नशक्यतेवारयितुंगच्छेदानींरघूत्तम ॥ शीघ्रंचविनिवर्तस्ववर्तस्वच सतांक्रमे ॥ २ ॥ यपालयसिधर्मंत्वप्रीत्याचनियमेनच ॥ सवैराघवशार्दूलधर्मस्त्वामभिरक्षतु ॥ ३ ॥ येभ्यःप्रणमसेपुत्रदेवेष्वायतनेषुच ॥ तेचत्वामभिरक्षंतुवनेसहमहर्षिभिः ॥ ४ ॥ यानिदत्तानितेऽस्त्राणिविश्वामित्रेणधीमता ॥ तानित्वामभिरक्षंतुगुणैःसमुदितंसदा ॥ ५ ॥

तब बुद्धिमती कौशल्याजी शोकको मिटाय पवित्र जलसे आचमन करके रामके मंगलार्थ अनेक प्रकारके मंगलकार्य करने लगीं और बोलीं ॥ १ ॥ हे रघुनाथ ! तुमको रोककर मैं यहां नहीं रख सकती क्योंकि तुम पिताके वचनोंपर दृढहो, अतएव तुम साधु सज्जनों के मार्गको अवलंबन करके पिताका सत्यपालन करनेके लिये तैयार होजाओ और शीघ्रही घरको लौटो॥२॥ तुम प्रसन्नमनसे नियमपूर्वक जिस धर्मके अनुष्ठान करनेको तैयार हुयेहो हे राघवशार्दूल ! वही धर्म तुम्हारी रक्षाकरैगा॥३॥ हे पुत्र! तुम देवमन्दिरोंमें जिनसमस्त देवताओंको नित्यप्रणाम करते रहतेहो वह सब देवता महर्षियोंके सहित तुम्हारे वनमें रहनेके समय तुम्हारीरक्षाकरें ॥४॥ बुद्धिमान्‌विश्वामित्रने तुम्हें जितनेसब विचित्र अस्त्रशस्त्र दिये हैं, वहभी सब गुणनिधि तुम्हारे रक्षाकरें॥५॥ हेवत्स !

❋ चौ०–सुदिन सुघरी तात कब होई । जननी जियत बदन बिधु जोई ॥ दोहा–बहुरिवच्छ कहि लाल कहि, रघुपति रघुवर तात । कबहिं बुलाय लगाय उर, हरषि निरखिहौं गात ।

तुम पिताकी सेवा करनेसे माताकी सेवाकरनेसे और पिताकी आज्ञा पालनकरनेसे और सत्यरक्षा पाकर चिरजीवी हो॥६॥ ब्राह्मणोंके होमके ईंधन, कुश, वेदी व देवमन्दिरोंके स्वामीदेवगण सबपर्वतोंके देवताबडे छोटे सबवृक्ष सबकुण्डोंकेदेव तुम्हारी रक्षाकरें॥७॥ हे नरोत्तम ! सबकीट, पतंग, सर्प, सिंह तुम्हारी रक्षाकरें साध्यगण, विश्वदेव उनचास पवनसब महर्षियोंके साथ तुम्हारा कल्याणकरें ॥८॥ धाता, विधाता, पूषा, अर्यमा, इन्द्रादि लोकपाल तुम्हारा मंगल करें॥ ९ ॥ छःऋतु बारहों महीनेसब संवत्‌रात्रि दिन व सब मुहूर्त तुम्हारी स्वस्तिकरें॥१०॥ हे पुत्र! सब अश्विन्यादिनक्षत्रोंके देवतासूर्यादिग्रह सबदेवता श्रुतिस्मृतिमेंकहा धर्म यह सब तुम्हारी रक्षा करें. भगवान् स्कंद, सोम, बृहस्पतिजी॥११॥ सात ऋषियोंसमेत नारदजी तुम्हारी रक्षाकरें। इनके सिवाय सब दिशाओंकेमालिक

पितृशुश्रूषयापुत्रमातृशुश्रूषयातथा ॥सत्येनचमहाबाहोचिरंजीवाभिरक्षितः ॥६॥ समित्कुशपवित्राणिवेद्यश्चायतनानिच ॥ स्थंडिलानिचविप्राणांशैलावृक्षाःक्षुपाह्रदाः ॥ ७ ॥ पतंगाःपन्नगाःसिंहास्त्वांरक्षंतुनरोत्तम ॥ स्वस्तिसाध्यश्चविश्वेचमरुतश्चमहर्षिभिः ॥८॥ स्वस्तिधाताविधाताचस्वस्तिपूषाभगोर्यमा ॥ लोकपालाश्चतेसर्वेवासवप्रमुखास्तथा ॥ ९ ॥ ऋतवःषट्चतेसर्वेमासाःसंवत्सराःक्षपाः॥दिनानिचमुहूर्ताश्चस्वस्तिकुर्वंतुतेसदा ॥१०॥ श्रुतिःस्मृतिश्चधर्मश्चपातुत्वांपुत्रसर्वतः ॥ स्कंदश्चभगवान्देवःसोमश्चसबृहस्पतिः॥ ११ ॥ सप्तर्षयोनारदश्चतेत्वांरक्षंतुसर्वतः ॥तेचापिसर्वतःसिद्धादिशश्चसदिगीश्वराः॥१२॥ स्तुतामयावनेतस्मिन्पांतुत्वांपुत्रनित्यशः ॥ शैलाःसर्वेसमुद्राश्चराजावरुणएवच ॥ १३ ॥ द्यौरंतरिक्षंपृथिवीवायुश्चसचराचरः ॥ नक्षत्राणिचसर्वाणिग्रहाश्चसहदैवतैः ॥१४॥ अहोरात्रेतथासंध्येपांतुत्वांवनमाश्रितम्॥ऋतवश्चापिषट्चान्येमासाःसंवत्सरास्तथा॥१५॥कलाश्चकाष्ठाश्चतथातवशर्मदिशंतुते ॥ महावनेऽपिचरतोमुनिवेषस्यधीमतः ॥ १६ ॥

और सिद्ध ॥१२॥ इन सबकी मैं स्तुतिकरती हूं कि, यह प्रसन्न होकर वनमें तुम्हारी रक्षा करें, सब पर्वत, सबसमुद्र औरराजा वरुण भी॥१३॥ और स्वर्ग; आकाश, पृथ्वी, वायु, चराचरनक्षत्र मण्डल सब गृह व उनमें टिकेहुये देवतागण ॥१४॥ दिन, रात्रि व दोनों सन्ध्याकाल और कलाकाष्ठादि यह सब वनमें तुम्हारी नित्य रक्षाकरते रहें और कल्याणदेते रहें। छओं ऋतु बारहों मास और संवत्भी॥१५॥ कलाकाष्ठा और सब दिशायें तुम्हारामंगल करें। महा वनमें विचरते हुए मुनिवेष धारण किये हुये सब धीमान् तुम्हारी रक्षाकरें ॥ १६॥

तथा देवता लोग दैत्य यह सदा तुम्हें सुखकेदेनेवालेहों। राक्षस व पिशाच जितने क्रूरकर्म भयंकर करनेवाले हैं॥१७॥ और मांसभक्षीहैं हे पुत्र ! वनमें विचरते हुये इन सबका भय तुमको न हो। बन्दर, विच्छू, डांस मच्छर यहभी तुम्हें वनमें दुःख न दें ॥१८॥ और सर्प, कीडे मकोडे आदिभी वनमें तुमको न सतावें, मतवाले हाथी, सिंह, रीछ, व्याघ्र व और २ भेडियां आदि काटनेवाले जीव ॥१९॥ जंगली भैंसा आदि सींगवाले कठोरजन्तु तुमको कष्ट न दे सकें और २ जातिके जो मनुष्यका मांसखानेवाले भयानक जीव हैं॥२०॥उनसबकी मैं यहां आराधना करतीहूंकि, वे बनमें तुम्हें न मारें व जो२ शास्त्रतुमने पढे हैं सबतुम को कल्याणदाई व पराक्रम सिद्धहों ॥२१॥ तुम बहुत सारे कंदमूल फल प्राप्तकरके निर्विघ्नवनमें घूमतेरहो व तुम्हारी यह यात्रा सबके लिये कल्याणदायक

तथादेवाश्चदैत्याश्च भवंतुसुखदाःसदा॥राक्षसानांपिशाचानांरौद्राणांक्रूरकर्मणाम्॥१७॥क्रव्यादानांचसर्वेषांमाभूत्पुत्रकतेभयम्॥प्लवगावृश्चिका दंशामशकाश्चैवकानने ॥१८॥ सरीसृपाश्चकीटाश्चमाभूवन्गहनेतव॥ महाद्विपाश्चसिंहाश्चव्याघ्राऋक्षाश्चदंष्ट्रिणः॥१९॥ महिषाः शृंगिणोरौद्रा नतेद्रुह्यंतुपुत्रक॥नृमांसभोजनारौद्रायेचान्येसर्वजातियाः ॥२०॥ माचत्वांहिंसिषुः पुत्रमयासंपूजितास्त्विह ॥ आगमास्तेशिवाः संतुसिध्यंतुचपराक्रमाः ॥२१॥ सर्वसंपत्तयोरामस्वस्तिमागच्छपुत्रक ॥ स्वस्तितेऽस्त्वांतरिक्षेभ्यः पार्थिवेभ्यः पुनः पुनः ॥२२॥ सर्वेभ्यश्चैवदेवेभ्यो येचतेपरिपंथिनः ॥ शुक्रःसोमश्चसूर्यश्चधनदोऽथयमस्तथा॥२३॥पातुत्वामर्चितारामदंडकारण्यवासिनम् ॥अग्निर्वायुस्तथाधूमोमंत्राश्चर्षिमुखच्युताः ॥२४॥ उपस्पर्शनकालेतुपांतुत्वांरघुनंदन ॥ सर्वलोकप्रभुर्ब्रह्माभूतकर्तृतथर्षयः ॥ २५ ॥ येचशेषाःसुरास्तेतुरक्षंतुवनवासिनम् ॥ इति माल्यैःसुरगणान्गंधैश्चापियशस्विनी ॥२६॥स्तुतिभिश्चानुरूपाभिरानर्चायतलोचना ॥ ज्वलनंसमुपादायब्राह्मणेनमहात्मना ॥ २७ ॥

होवे । पृथ्वीमें अन्तरिक्षादिमें जितने जीव हैं जोकि, यात्रामें दुष्टताकरनेवालेहैं वे सब तुम्हारी यात्रामें मंगल करें॥२२॥ सब देवताजोतुम्हारी यात्रामेंहों वे सब कल्याण करें । हे रामचन्द्र ! तुम्हारे वन जानेपर शुक्र, चंद्रमा, सूर्य, कुबेर व यम॥२३॥ हे राम! यह सबपूजित होकर बनमें तुम्हारीरक्षा करेंगेअग्नि, वायु, धुआं और ऋषियोंके मुखसे उच्चारण कियेहुए सब मंत्र ॥२४॥ व स्नानकरनेके समय बनमें यहसब तुम्हारी रक्षा करेंगे, सब लोकोंके प्रभु सृष्टिके उत्पन्न करनेवाले ब्रह्माजी व और सब ऋषिगण ॥२५॥ व और सबदेवतागण वनमें तुम्हारी रक्षाकरें; इस रीतिसेमाला, गन्ध, अक्षत इत्यादि यशस्विनीकौशल्याजीने ॥२६॥ रामचन्द्रजीका मंगलकरनेके लिये यथायोग्यस्तुतिकर सब देवताओंकी पूजा की फिर अग्नि प्रज्वलित कर महात्मा ब्राह्मणोंके द्वारा ॥ २७ ॥

रामचन्द्रजीके मंगलके लिये आहुति दिलाने लगीं । घी, समिधा, सफेद फूलोंकी माला, सरसों ॥२८॥ आदि सामग्री कौशल्याजीनेएकत्र कराई. यज्ञकराने वाले ब्राह्मणोंने विधिपूर्वक हवन किया, अंतमें उपाध्यायोंने शान्तिपुष्पादि पढी पढाई ॥ २९ ॥ फिर आहुतिके शेषमें जो साकल्य बची उससे लोकपालोंको बलिप्रदान करने लगे तदनंतर शहद, दहीअक्षत और घृत ब्राह्मणोंके हाथोंपर धराय ॥३०॥ रामचन्द्रजीके बन जानेके मंगलार्थ स्वस्तिवाचन किया गया । फिर तिस कारणसे उस यज्ञ करनेवाले ब्राह्मणको यशस्विनी रामचंद्रजीकीमाताने ॥ ३१ ॥ मुँह मांगी दक्षिणा दी और फिर रामचन्द्रजीसे कहने लगीं, जो मंगल सर्व देवताओंके नमस्कार योग्य इन्द्रको॥३२॥वृत्रासुरका ना श करनेकेसमय हुआ था, वैसेही अब तुम्हारा मंगलहो, जो मंगल गरुडजीका गरुडकीविनता

हावयामासविधिनाराममंगलकारणात् ॥ घृतंश्वेतानिमाल्यानिसमिधश्चैवसर्षपान् ॥२८॥ उपसंपादयामासकौसल्यापरमांगना ॥उपाध्यायः सविधिनाहुत्वाशांतिमनामयम् ॥२९॥ हुतहव्यावशेषेणबाह्यंबलिमकल्पयत्॥मधुदध्यक्षतघृतैःस्वस्तिवाच्यंद्विजांस्ततः ॥३०॥ वाचयामास रामस्यवनेस्वस्त्ययनक्रियाम् ॥ ततस्तस्मैद्विजेंद्रायराममातायशस्विनी ॥३१॥ दक्षिणांप्रददौकाम्यांराघवंचेदमब्रवीत् ॥यन्मंगलंसहस्राक्षेसर्व देवनमस्कृते ॥ ३२ ॥ वृत्रनाशेसमभवत्तत्तेभवतुमंगलम् ॥ यन्मंगलंसुपर्णस्यविनताऽकल्पयत्पुरा ॥ ३३ ॥अमृतंप्रार्थयानस्यतत्तेभवतुमंग लम् ॥ अमृतोत्पादनेदैत्यान्घ्नतोवज्रधरस्ययत ॥३४॥ अदितिर्मंगलंप्रादात्तत्तेभवतुमंगलम् ॥त्रिविक्रमान्प्रक्रमतोविष्णोरतुलतेजसः॥३५॥ यदासीन्मंगलंरामतत्तेभवतुमंगलम् ॥ ऋषयःसागराद्वीपावेदोलोकादिशश्चताः॥३६॥मंगलानिमहाबाहोदिशंतुशुभमंगलम् ॥ इतिपुत्रस्यशे षाश्चकृत्वाशिरसिभामिनी ॥३७॥ गंधैश्चापिसमालभ्यराममायतलोचना ॥ औषधींचसुसिद्धार्थांविशल्यकरणींशुभाम् ॥ ३८॥

माताने ॥ ३३ ॥ अमृतको प्रार्थना करनेके समय किया था वही मंगल तुमको प्राप्तहो । अमृतका उद्धारकरनेके लिये वज्रधारी देवराजेन्द्र जब दैत्योंके मारने में प्रवृत्त हुए॥३४॥ और अदिति उनकी माताने जो उनका मंगल किया वही मंगल तुम्हाराहो, अमित पराक्रम वाले भगवान्‌जीने जोबलिके छलनेको वामनरूप बनाया और तीन बार चरण उठाया॥३५॥ सो उनकी माता अदितिने जो मंगल उनका किया था वही मंगल तुमको प्राप्त होय । सब ऋषि, सबसमुद्र, सब द्वीप, वेद, दशों दिशायें और सब लोक॥३६॥ हे महाबाहो राम ! यह सबतुम्हारा मंगल करैं । यह वार्त्ता कहकर भामिनी रामजननीने पुत्रके मस्तकपर चावलचढाये ॥३७॥ उस बडे नेत्रवालीने सब अंगोंमें सुगन्धिकारक वस्तु चन्दन आदि लगाये जिससे रामचन्द्रजी बडे शोभित हुए । फिर 'मूलिका' नाम

औषधि जिसकी सिद्धाई बहुत दिनोंसे ज्ञातथी (सिद्धाई उस औषधीमेंयहथी कि, जो अंगकेभीतर भी बाण आदि शस्त्रघुस जाय तो उससेआपही आप निकल आये) ॥३८॥ और विशल्यकरणी घावदूर करनेवाली औषधी रामचन्द्रजीके हाथमें रक्षाकरनेके लिये बांधदी और फिररामचन्द्रजीके मङ्गलार्थ रक्षा करनेवाले मंत्र जपने लगी । तदनन्तर वह दुःखकी वशवर्तिनीहो कर भी ऊपरसे प्रसन्नकीनाई रामचन्द्रजीसे यहबोली॥३९॥ पर बोलतेही मारे प्रेमके गद्गद वाणीहोआई। उन्होंने बोलनेके पहले रामचन्द्रजीको छातीसे लगा लिया व उनका मस्तकझुका और सूंघ करके॥४०॥ कहा कि, हे पुत्र ! अब तुम सुख पूर्वक जहांइच्छाहो वहां चले जाओतुम रोग रहित शरीरसे पिताकी आज्ञाका पालनकरफिर अयोध्याको लौटकर आओ ॥४१॥ हे वत्स ! मैं तभी सुख पाऊँगी जबतुम वनसे लौटकर राजा होगे और मैं मन भरकरतुम्हें देखूँगी वनसे लौटेहुए तुम्हारा पूर्ण चन्द्रानन देखकर मैं सुखीहूंगी तब मेरेमनका उमाह पूरा होगा मेरी और जान

चकाररक्षांकौसल्यामंत्रैरभिजजापच॥उवाचापिप्रहृष्टेवसादुःखवशवर्तिनी॥३९॥वाङ्मात्रेणनभावेनवाचासंसज्जमानया॥आनम्यमूर्ध्निचाघ्रायपरिष्वज्ययशस्विनी ॥४०॥ अवदत्पुत्रमिष्टार्थोगच्छरामयथासुखम्॥ अरोगंसर्वसिद्धार्थमयोध्यांपुनरागतम्॥४१॥ पश्यामित्वांसुखंवत्ससंधितंराजवर्त्मसु ॥ (भद्रासनगतंरामवनवासादिहागतम् ॥ द्रक्ष्यामिचपुनस्त्वांतुतीर्णवंतंपितुर्वचः॥१॥)मंगलैरुपसंपन्नोवनवासादिहागतः वध्वाश्चममनित्यंत्वंकामान्संवर्धयाहिभो॥४२॥मयार्चितादेवगणाःशिवादयोमहर्षयोभूतगणाःसुरोरगाः ॥ अभिप्रयातस्यवनंचिरायतेहितानिकांक्षंतुदिशश्चराघव ॥४३॥ इतीवचाश्रुप्रतिपूर्णलोचनासमाप्यचस्वस्त्ययनंयथाविधि ॥ प्रदक्षिणंचापिचकारराघवंपुनःपुनश्चापिनिरीक्ष्यसस्वजे ॥ ४४ ॥ तयाहिदेव्याचकृतप्रदक्षिणेनिपीड्यमातुश्चरणौपुनःपुनः ॥ जगामसीतानिलयंमहायशाःसराघवःप्रज्वलितस्तयाश्रिया ॥ ४५ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० अयोध्याकांडे पंचविंशतितमःसर्गः ॥ २५ ॥

कीकी जब कामनापूर्ण करोगे ॥४२॥ हेराम ! शिवादि देवता व महर्षि लोग भूतगण देवता नागसब जिनकी पूजा आजतक हमनेकीहै हे राघव ! वेसब दिशा पति वन जातेहुए तुम्हारा हित बहुत दिनोंतक करते रहें ॥४३॥कौशल्याजी यहकह पुत्रके मंगलार्थस्वस्तिवाचनादि समाप्तकर आंखोंमें आंसूभरबार २ रामचन्द्रजीकी प्रदक्षिणा करने लगीं, और बार २ हृदयसे लगाकर उनके मुखकी ओर एकटक देखती रहीं ॥ ४४ ॥ देवी कौशल्या जब वारंवार इस प्रकार रामचन्द्रजीकी प्रदक्षिणा कर चुकीं तब रामचन्द्रजीभी वारंवार उनके चरणोंमें गिरे फिरमहायशी रामचन्द्रजी अपनी देहके प्रभासे दीप्तिमान् होकर उसस्थानको छोड सीताके भवनकी ओर गमन करने लगे ॥ ४५॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा आ० अयोध्याकांडे भाषायां पंचविंशतितमः सर्गः ॥ २५ ॥

रामचन्द्रजीके लिये स्वस्ति मंगल इत्यादिक हो जानेपर वह धर्ममें स्थिर धर्मात्मा माताके चरणोंमें प्रणामकर बिदा ले वनको चले ॥१॥ रामचन्द्रजी जानेके समय भीडसे भरे हुए राजमार्गको सुशोभित करते हुए अपने गुणोंके प्रभावसे सब का हृदय मथन करते चले जाने लगे ॥२॥ उस समय तक श्री जानकीजीने श्रीरामचन्द्रके वन जानेकी वार्त्ता नहीं सुनी थी सुतरां वह इस आनन्दमें मग्न होरहीथीं कि, आज प्राण प्यारे राजा होंगे॥३॥ वह उस समय राज धर्मके योग्य अनुष्ठान करके प्रसन्नमन और कृतज्ञहृदयसे देवताओंकी पूजा करतीहुई रामचन्द्रजीके आनेकी बाटदेख रहीथीं॥४॥ ऐसेसमय लोकाभिराम रामचन्द्रजीलाजसे कुछ शिर झुकाये हर्षसे भरेहुए जनोंसे भरेहुए शोभायुक्त अपने भवनमें प्रवेश करते हुए॥५॥ जानकीजी अपने प्रीतम रामचन्द्रजीको हर्षकेसमय शोकऔर चिन्तासे व्याकुल इंद्रिय देख कांपती हुई आसनसे उठ बैठी ॥६॥ यद्यपिरामचन्द्रजीने अपने मनकाभाव जानकीजीसे छिपानेकी चेष्टाकी थी इस कारणकि, उनको बहुत

अभिवाद्यतुकौसल्यांरामःसंप्रस्थितोवनम्॥कृतस्वस्त्ययनोमात्राधर्मिष्ठेवर्त्मनिस्थितः॥१॥ विराजयन्राजसुतोराजमार्गंनरैर्वृतम्हृदयान्यामम्‌थेवजनस्यगुणवत्तया॥२॥वैदेहीचापितत्सर्वंनशुश्रावतपस्विनी॥तदेवहृदितस्याश्चयौवराज्याभिषेचनम्॥३॥देवकार्यंस्मसाकृत्वाकृतज्ञाहृष्टचेतना॥अभिज्ञाराजधर्माणांराजपुत्रीप्रतीक्षती॥४ प्रविवेशाथरामस्तुस्वंवेश्मसुविभूषितम्॥ प्रहृष्टजनसंपूर्णंह्रियाकिंचिदवाङ्मुखः ५ अथसीतासमुत्पत्यवेपमानाचतंपतिम्॥अपश्यच्छोकसंतप्तंचिताव्याकुलितेंद्रियम् ॥६॥तांदृष्ट्वासहिधर्मात्मानशशाकमनोगतम्॥तंशोकंराघवःसोढुंततोविवृततांगतः॥७॥विवर्णवदनंदृष्ट्वातंप्रस्विन्नममर्षणम्॥आहदुःखाभिसंतप्ताकिमिदानीमिदंप्रभो॥८ अद्यबार्हस्पतःश्रीमान्युक्तःपुष्येणराघव॥प्रोच्यतेब्राह्मणैःप्राज्ञैःकेनत्वमसिदुर्मनाः॥९ नतेशतशलाकेनजलफेननिभेनच॥आवृतंवदनंवल्गुच्छत्रेणाभिविराजते॥१०व्यजनाभ्यांचमुख्याभ्यांशतपत्रनिभेक्षणम्॥चंद्रहंसप्रकाशाभ्यांवीज्यतेनतवाननम्॥११ वाग्मिनोबंदिनश्चापिप्रहृष्टास्त्वांनरर्षभ॥स्तुवंतोनाद्यदृश्यंतेमंगलैःसूतमागधाः१२॥

क्लेश होगा, परन्तु उनके आकार चेष्टासे सब कुछ प्रकाशित होगया ॥७॥ तब रामचन्द्रजीका मुख मंडल प्रभाहीन और दुःखसे पसीने युक्तदेखकर उनकी प्यारी सुकुमारी जनक दुलारी सीताजीने दुःखित होकर पूंछा कि हे प्राण नाथ! इस अवस्थाका क्या कारण है?॥८॥ आज तो चन्द्रमाके सहित पुष्य नक्षत्रका योग है, और इस लग्नमें बृहस्पतिजी विराजमान हैं। बुद्धिमान ब्राह्मणोंके अभिप्रायसे आजका दिन राज्याभिषेकके लिये अच्छा है, अतएव इससमयइसभावके होनेका क्या कारण है ?॥ ९ ॥ शत शलाकाओंसे बनाहुआ जलके फेनके समान सफेद छत्र तुम्हारे कमनीय मुखपर नहीं लगाया गया इसका क्या कारण है ॥ १०॥ और यह भीबतलाइये कि, चन्द्रमा और हंसके समान दो उजले चँवर तुम्हारे मुखकमलपै क्यों नहीं ढुरते ?॥११॥ हे नरश्रेष्ठ,? फिर बंदी मागध, सूत आदि अनेक

प्रकारके शास्त्र जाननेवाले बहुत बोलनेवाले हर्षितचित्तसे आपकी स्तुतिक्योंनहीं पढते ?॥१२॥ फिर राजतिलक पाये हुये तुम्हारे शिरोवेदज्ञब्राह्मणोंने शहद और दही क्यों नहीं छिडका इसका क्या कारण है ? ॥१३॥ फिर मंत्रीलोग और पुरवासी राज्यनिवासी व सभासदगण अनेक२प्रकारके विचित्र वसन भूषण धारण करके किस कारणासे आपके पीछे२नहीं चलते ॥१४॥ तुम्हारे आगे बहुतही श्रेष्ठ सोनेके गहने पहने वेगगामी चार घोडे जुते हुये फूलोंसे सजा रथ किस कारणसे नहीं चलता यह क्या बात है ॥१५॥ हे वीर ! मुझसे इसका कारण भी समझाकर कहिये कि,तुम्हारे आगे काले मेघके समान बडे २ ऊंचे पर्वताकारवाला देखनेमें सुघड लक्षण वाला हाथी क्यों नहीं चलता ॥१६॥ सेवक गण सोनेकी बनी अति मनोहर चौकी कंधोंपर लियेतुम्हारे आगे क्योंनहीं जाते इसका क्या कारण ? ॥१७॥ जब

नतेक्षौद्रंचदधिचब्राह्मणवेदपारगाः मूर्ध्निमूर्धाभिषिक्तस्यददतिस्मविधानतः ॥१३॥ नत्वांप्रकृतयःसर्वाःश्रेणीमुख्याश्चभूषिताः ॥ अनुव्रजितुमिच्छंतिपौरजानपदास्तथा ॥ १४ ॥ चतुर्भिर्वेगसंपन्नैर्हयैःकांचनभूषणैः ॥ मुख्यःपुष्परथोयुक्तःकिंनगच्छतितेऽग्रतः ॥१५॥ नहस्तीचाग्रतःश्रीमान्सर्वलक्षणपूजितः ॥ प्रयाणेलक्ष्यतेवीरकृष्णमेघगिरिप्रभः ॥१६॥ नचकांचनचित्रंतेपश्यामिप्रियदर्शन ॥ भद्रासनंपुरस्कृत्ययांतंवीरपुरःसरम् ॥१७॥ अभिषेकोयदासज्जःकिमिदानीमिदंतव ॥ अपूर्वोमुखवर्णश्चनप्रहर्षश्चलक्ष्यते ॥१८॥ इतीवविलपंतींतांप्रोवाचरघुनदनः ॥ सीतेतत्रभवांस्तातःप्रव्राजयतिमांवनम् ॥१९॥ कुलेमहतिसंभूतेधर्मज्ञेधर्मचारिणि ॥ शृणुजानकियेनेदंक्रमेणाद्यागतंमम ॥ २० ॥ राज्ञासत्यप्रतिज्ञेनपित्रादशरथेनवै ॥ कैकेय्यैममातेतुपुरादत्तौमहावरौ ॥ २१ ॥ तयाद्यममसज्जेऽस्मिन्नभिषेकेनृपोद्यते ॥ प्रचोदितःससमयोधर्मेण प्रतिनिर्जितः ॥ २२ ॥

कि अभिषेकके लिये सबही सामान तैयार होगया तब फिर तुम्हारे मुख मलीन होनेका क्या कारण है? किसलिये पहिलेके समान दामिनीकी लज्जित करनेवाली मुसकुरानेकीअपूर्व छबिआपके मुखपर दृष्टि नहीं आती ? ॥१८॥ सीतापति रघुनाथजी जानकीका ऐसा विलाप सुनकरके बोले, हे प्राणाधिके ! पूजनीय पिताजीने मुझे वन जानेकी आज्ञा दी है ॥१९॥ हे बडे कुलमें उत्पन्न होनेवाली, धर्म जाननेवाली और धर्म करनेवाली जानकी ! जिस कारणसे मेरे भाग्यमें यह अपूर्व घटना अर्थात् वनवास हुआ है सो कहता हूं सुनो ॥२०॥ सत्य प्रतिज्ञा करनेवाले हमारे पिता राजा दशरथजीने पहले हमारीमाता कैकेयीको दो वर देने अंगीकार किये थे ॥२१॥ आज महाराज पिताजी हमें राज्याभिषेक देते थे परन्तु भाग्य की खुटाईसे कैकेयीने धर्मसे राजाको जीत पहले दो वरोंकी याद दिलादीऔर दोनों वर

मांगे ॥२२॥ महाराज वचन देकर सत्यके बंधनमें बंध चुके थे इस कारण वर देनेको "नहीं दूंगा" यह नहीं कह सके। अब उसी वरके प्रभावसे चौदह वर्षके लिये मुझको वनमें बसनेकी आज्ञा होचुकी है, और भरतजीको पिताजी अभिषेक करेंगे ॥२३॥ अब मैं बन जानेकी सब तैयारी कर चुका हूं, केवल तुम्हारे देखनेकें लिये यहां मेरा आना हुआ है, मैं तुमसे यह कहे जाता हूं कि, तुम भरतके सामने कदापि मेरी प्रशंसा करनेमें प्रवृत्त मत होना ॥२४॥ मैं भलीभांति जानता हूं कि, धनवान् पुरुष दूसरेकी प्रशंसा सुनना अच्छा नहीं समझते अर्थात् उनको दूसरोंकी प्रशंसा अच्छी नहीं लगती। मैं इसी कारण तुमसे मनेकरता हूं कि, भरतके सामने मेरे गुणोंकी वार्त्ता मत जताना ॥२५॥ मैं तुमसे फिरभी विशेष करके समाझाता हूं कि, भरतके सामने मेरे गुण कहनेसे तुम उचित भावसे नहीं रह सकोगी। तुम साधारण रीतिसे जिस प्रकार और घरके लोग रहते हैं; रहना. क्योंकि विशेष सन्मान उसीका होता है जो रानी होती है ॥ २६ ॥

चतुर्दशहिवर्षाणिवस्तव्यंदंडकेमया ॥ पित्रामेभरतश्चापियौवराज्येनियोजितः ॥२३॥ सोऽहंत्वामागतोद्रष्टुंप्रस्थितोविजनंवनम् ॥ भरतस्यसमीपेतेनाहंकत्थ्यः कदाचन ॥२४ ॥ ऋद्धियुक्ताहिपुरुषान सहंतेपरस्तवम् ॥ तस्मान्नतेगुणाः कत्थ्याभरतस्याग्रतोमम॥२५॥ अहंतेनानुवक्तव्योविशेषेणकदाचन ॥ अनुकूलतयाशक्यंसमीपेतस्यवर्तितुम् ॥२६॥ तस्मैदत्तंनृपतिनायौवराज्यंसनातनम् ॥ सप्रसाद्यस्त्वयासीतेनृपतिश्चविशेषतः ॥ २७ ॥ अहंचापिप्रतिज्ञांतांगुरोः समनुपालयन् ॥ वनमद्यैवयास्यामिस्थिरीभवमनस्विनि ॥ २८ ॥ यातेचमयिकल्याणिवनंमुनिनिषेवितम् ॥ व्रतोपवासपरयाभवितव्यंत्वयानघे॥२९॥ कल्यमुत्थायदेवानांकृत्वापूजांयथाविधि ॥ वंदितव्योदशरथः पितामजनेश्वरः ॥ ३० ॥ माताचममकौसल्यावृद्धासंतापकर्शिता ॥धर्ममेवाग्रतः कृत्वात्वत्तः समानमर्हति॥३१॥

महाराज अब भरतजीको यौवराज्य देंगे, वही अब राजा हुये, इससे सब भांति उनको प्रसन्न रखना, क्योंकि राजाको सेवा करनीही चाहिये ॥ २७॥ हे मनस्विनी! मैं पिताकी आज्ञा पालन करने के लिये आजही वनको चला जाऊंगा, तुम इस कारण कुछ चिन्ता न करके मुझसे चित्त लगाये यहांपर स्थिर चित्तसे रहना ॥२८॥ हे कल्याणि! जब मैं मुनिवेष धारण करके मुनिसेवित वनको चलाजाऊंगा, हे पापरहिते! तब तुमभी यहाँव्रत उपासादि नियम करके दिन बिताया करना॥ २९ ॥ आजसे प्रतिदिन बडे भोर ही विस्तरे परसे उठ देवपूजासे निबटनिबटा कर हमारे परम पूजनीय पिता महाराज दशरथजीके चरणोंको प्रणाम करना ॥ ३० ॥ हमारी माता कौशल्याजी एकतो वृद्ध हैं, विशेष करके मेरे वन जानेकेदुःखसे वह और भी दुबली

होगई हैं अतएव धर्मकी मर्यादा रक्षाकरके सदा उनकी सेवा करना तुम्हें उचित हैं॥ ३१॥कौशल्याके अतिरिक्त और भी हमारी माताओंने हमको बडे स्नेहसे अन्न पानादिद्वारा लालन पालन किया है अतएव उनसबकी बंदनाभी तुम नित्यकिया करना क्योंकि हमें सब मातायें समान हैं॥ ३२॥ हमारे प्राणोंसे भी अधिक प्यारे कुमार भरत व शत्रुघ्नको तुम भ्राता व पुत्रवत् सदा समझती रहना ॥ ३३॥ हे वैदेही! भरत इस देशके और इस वंशके राजा होगये, अतएव तुम कदापि उनके अमंगलकी कामना मत करना॥ ३४॥तुम जानरक्खो कि, सुजनता और यत्न सहित राजाओंकी सेवा करनेसे वे लोग प्रसन्न होते हैं और इसकेविपरीत करनेसे क्रोधित हुआ करते हैं ॥ ३५॥ यह लोग अपने औरस पुत्रको भी जो अहित इनका करता हो तो उसी समय त्याग करदेते हैं, किन्तु जिससे कुछ सम्बन्ध न हो

वंदितव्याश्चतेनित्यंयाःशेषाममममातरः ॥ स्नेहप्रणयसंभोगैःसमाहिमममातरः ॥३२॥ भ्रातृपुत्रसमौचापिद्रष्टव्यौचविशेषतः ॥ त्वयाभरतशत्रुघ्नौप्राणैः प्रियतरौमम ॥३३॥ विप्रियंचानकर्तव्यंभरतस्यकदाचन ॥ सहिराजाचवैदहिदेशस्यचकुलस्यच ॥ ३४ ॥ आराधिताहिशीलेन प्रयत्नैश्चोपसेविताः ॥ राजानःसंप्रसीदंतिप्रकुप्यंतिविपर्यये ॥३५॥औरस्यानपिपुत्रान्हित्यजंत्यहितकारिणः॥ समर्थान्संप्रगृह्णंतिजनानपिनराधिपाः ॥ ३६ ॥ सात्वंवसेकल्याणिराज्ञः समनुवर्तिनी ॥ भरतस्यरताधर्मेसत्यव्रतपरायणा ॥ ३७ ॥ अहंगमिष्यामिमहावनंप्रियेत्वयाहि वस्तव्यमिहैवभामिनि॥ यथाव्यलीकंकुरुषेनकस्यचित्तथात्वयाकार्यमिदंवचो मम॥३८॥ इत्यार्षे श्रीम०वा०आ०च०सा०अ०षड्विंशः सर्गः ॥ २६ ॥ एवमुक्तातुवैदेहीप्रियार्हाप्रियवादिनी ॥ प्रणयादेवसंक्रुद्धाभर्तारमिदमब्रवीत् ॥१॥ किमिदंभाषसेरामवाक्यंलघुतयाध्रुवम् ॥ त्वया यदपहास्यंमे श्रुत्वानरवरोत्तम ॥ २ ॥

और वह समर्थ होतो उसकी जरा २ बातमें आदर करनेमें कसर नहीं करते ॥ ३६ ॥ हे जानकि ! मैं तुमसे समझा कर कहता हूँ कि तुम भूपाल भरतकी आज्ञामें रहकर सत्यव्रत धारण करे हुये यहांपर रहो ॥३७॥ हे प्रिये ! हम तो महावनको जाते हैं और तुम यहीं रहो फिरभी तुमसे कहे देते हैं कि, हे भामिनी ! जो जो वार्ता तुमसे कहीं उनमेंसे किसीकोव्यर्थ न करना यह मेरे वचन मानना ॥३८॥ इत्यार्षे श्रीमद्वा० वा० आदि० अयोध्याकांडे भाषायां षड्विंशः सर्गः ॥२६॥ प्रियबोलनेवाली जनककुमारीसे जब रामचन्द्रजीनेऐसा कहा तो वह कुछ एक स्नेहका क्रोध प्रकाशकर उलाहना देती हुई रामचन्द्रजीसे कहने लगी ॥१॥ हे नरश्रेष्ठ!तुम यह क्या छोटे पुरुषोंके समान दीन वार्ता कह रहेहो?मैं क्या कहूं तुम्हारी वार्ता सुनकर मुझसे हँसी नहीं रोकी जाती॥२॥

तुमने जो वार्ता कही वह शस्त्र और अस्त्रोंके जाननेवाले वीर राजकुमारोंके योग्यकदापि नहीं क्योंकि यह अयशकी फैलानेवाली वार्त्ता है. वरन्‌ऐसी वार्त्ताओंका श्रवण करनाभी उचित नहीं है ॥३॥ हे आर्यपुत्र! पिता, माता, भ्राता, पुत्र और पुत्रकी बहू यह सबही अपने २ कर्मके फलका भोग करते हैं; व अपनेही भाग्यके भरोसे रहते हैं॥४॥ किन्तु स्त्रियां अर्द्धाङ्गिनी होनेके कारण इन सबके विपरीत अपने स्वामीके भाग्यका फल भोगती हैं इस कारण मैंभी आपके साथ वनकोचलूंगी॥ ५॥ पिता, माता, भाई, बंधु, सखियें व अपनी आत्मा भी स्त्रीकी गति नहीं हैं, बरन्‌ स्त्रियोंका भरोसा और गति सब स्वामीही है ॥६॥ यदि आप आज वनको जायँ गेही तो मैं भी पैरोंसे कुश कांटा मार्गका हटाती हुई आपके आगे २ चलूंगी ॥७॥ हे नाथ ! तुम्हारा कहा नहीं माना इस कारण कुछ क्रोध मत करना

वीराणांराजपुत्राणांशस्त्रास्त्रविदुषांनृप ॥ अनर्हमयशस्यंचनश्रोतव्यंत्वयेरितम्‌ ॥ ३ ॥ आर्य पुत्रपितामाताभ्रातापुत्रस्तथास्नुषा ॥ स्वानिपुण्यानिभुंजानाः स्वंस्वंभाग्यमुपासते ॥ ४ ॥ भर्तुर्भाग्यंतुनार्येकाप्राप्नोतिपुरुषर्षभ ॥ अतश्चैवाहमादिष्टावनेवस्तव्यमित्यपि ॥ ५ ॥ नपितानात्मजोवात्मानमातानसखीजनः ॥ इहप्रेत्यचनारीणांपतिरेकोगतिःसदा ॥ ६ ॥ यदित्वंप्रास्थितोदुर्गंवनमद्यैवराघव ॥ अग्रतस्तेगमिष्यामिमृद्नंतीकुशकंटकान्‌ ॥ ७ ॥ ईर्ष्यांरोषंबहिष्कृत्यभुक्तशेषमिवोदकम्‌ ॥ नयमांवीरविस्रब्धः पापंमयिनविद्यते ॥ ८ ॥ प्रासादाग्रेविमानैर्वावैहायसगतेनवा ॥ सर्वावस्थागताभर्तुःपादच्छायाविशिष्यते ॥ ९ ॥ अनुशिष्टास्मिमात्राचपित्राचविविधाश्रयम्‌ ॥ नास्मिसंप्रतिवक्तव्यावर्तितव्यंयथामया॥ १० ॥

क्योंकि जिस प्रकार भूडके देशोंमें जहां अधिक पानी नहीं मिलता, तब पथिक एकवार पीनेसे बचा हुआ पानी फिर पीलेता है जिसके पान करनेसे धर्म शास्त्रके अनुसार अधर्म और वैद्यकके मतसे रोग होता है, इस कारण जब अन्न मिलेगाही नहीं तो कंद मूल फल भोजन करूंगी बस इस कारण मुझे साथमें वनको लेही चलो ❋ । मैंने तुम्हारे समीप कोई ऐसा दूषित कार्य नहीं किया है, जिससे तुम मुझे यहां छोडकर वनको चले जाओ॥८॥ स्त्रियोंको धवरहर आदि उत्तम स्थानोंमें विहार करनेसे विमानोंपर चढकर आकाशमें विहरने आदि सुखोंसे अधिक सुख स्वामीके चरणोंकीछायाके आश्रयमें है यह धर्मशास्त्रमें लिखा है ॥९॥ मैंने पिता माताके निकट जो उपदेश पाया है कि; सम्पत्ति विपदमें दूसरी बात न कहकर स्वामीकी सेवा करनी चाहिये । इस कारणसे जो

❋ रागनी श्याम कल्याण तालतीन – (जानकीजी रामचन्द्रजीसे) जो नहिं प्राणनाथ संग लैहो ।। आस्ताई ।। तो तजिहों में प्राण आपने फिर पाछे पछितैहो ।। दुख वनके सब मोहि सुक्ख सम चलत साथ सुख पैहों ।सेवा करों रहों नित आनंद नारव दरशन पैहों ।।

विचार मैंने किया है उसमें आप बाधा न दीजिये ॥१०॥ हे हृदयवल्लभ! मैं मनुष्योंसे शून्य अनेकप्रकारके मृगोंसे भरे हुये व्याघ्र सिंहादि करकेसेवितनिबिडवनमें तुम्हारे साथ चलूंगी ॥११॥ मैं त्रिलोकीके सुख संपत्तिकी कामना न करके केवल पतिव्रताधर्मकी प्रतिष्ठाकी रक्षा करती हुई पिताके घरमें जिसप्रकार सुखसे थी वैसेही अब प्रसन्नता समेत तुम्हारे साथ वनको चलूंगी ॥१२॥ जहां मधुर २ सुगन्धि विराजमान हैं और जहां अनेक प्रकारके जन्तुओंके रहनेका स्थान है उसी वनमें तपस्वियोंका व्रत ग्रहण करके तुम्हारी सेवा करती रहूंगी यही मेरी वासना है ॥१३॥ हे प्राणनाथ ! जब कि, असंख्य पुरुषोंके पालन प्रोषणका भार आप ले सक्ते हैं, तब क्या वनके बीच एक मुझे पालन करनेमें आप समर्थ नहीं होंगे ? ॥ १४ ॥ हे नाथ ! मैं इसी कारणसे आज निश्चयही तुम्हारे

अहंदुर्गंगमिष्यामिवनंपुरुषवर्जितम्नानामृगगणाकीर्णंशार्दूलगणसेवितम् ॥ ११ ॥ सुखंवनेनिवत्स्यामियथैवभवनेपितुः ॥ अचिंतयंती त्रींल्लोकांश्चिंतयंतीपतिव्रतम् ॥ १२ ॥ शुश्रूषमाणातेनित्यंनियताब्रह्मचारिणी ॥ सहरंस्येत्वयावीरवनेषुमधुगंधिषु ॥ १३ ॥ त्वंहिकर्तुंवने शक्तोरामसंपरिपालनम् अन्यस्यापिजनस्येहकिंपुनर्ममानद ॥ १४ ॥ साहंत्वयागमिष्यामिवनमद्यनसंशयः ॥ नाहंशक्यामहा भागनिवर्तयितुमुद्यता ॥ १५ ॥ फलमूलाशनानित्यंभविष्यामिनसंशयः नतेदुःखंकरिष्यामिनिवसंतीत्वयासदा ॥ १६ ॥ अग्रतस्तेग मिष्यामिभोक्ष्येभुक्तवतित्वयि ॥ इच्छामिपरतःशैलान्पल्वलानिसरांसिच ॥ १७ ॥ द्रष्टुंसर्वत्रनिर्भीतात्वयानाथेनधीमता ॥ हंसकारंडवा कीर्णाः पद्मिनीः साधुपुष्पिताः ॥ १८ ॥ इच्छेयंसुखिनीद्रष्टुंत्वयावीरेणसंगता ॥ अभिषेकंकरिष्यामितासुनित्यमनुव्रता ॥ १९ ॥ सहत्व याविशालाक्षरंस्येपरमनंदिनी ॥ एवंवर्षसहस्राणिशतंवापित्वयासह ॥ २० ॥

संग वनको चलूंगी हे महाभाग ! आप किसी प्रकारसेभी मेरे इस उत्साहको नहीं तोड सक्ते हैं ॥१५॥ मैं तुम्हारे साथ फल मूल भोजन कर नित्यही समय बिताऊंगी इसमें कोई संशय नहीं हैं । मैं भोजन पानादिके लिये आपको कुछ दुःख न दूंगी जो मिलेगा सो भोजन करलूंगी ॥१६॥ और क्या कहूं मैं तुम्हारे आगे २ चलूंगी, और तुम जब भोजन कर चुकोगे तब मैं भोजन करूंगी । तुम्हारे साथ रहकर पहाड, छोटे २ सरोवर बडे २ ताल ॥१७॥ सबही निडर मनसे हे बुद्धिमन्! मैं साथ देखूंगी । फिर हंस, कलहंसादि पक्षी बैठेहुये तडागोंमें प्रफुल्लित कमलिनीभी जो खिली हुईहों उनको ॥१८॥ सुखपूर्वक आप वीरके संग देखनेकी इच्छा करती हूं । वहां जो २ नदी आदि पुण्य तीर्थ मिलेंगे उन सबमें आपके संग स्नान करनेकी मेरी बडीही इच्छा है ॥१९॥ कमललोचन ! तुम्हारे साथ ऐसे स्थानोंमें रमण

करती हुई सैकडों व हजारों वर्षभी वनमें वास करना मेरे लिये अच्छा है ॥२०॥ परंतु तुम्हारे विना स्वर्गके सुख भोग करनेको भी मेरी इच्छा नहीं है। हे नरव्याघ्र ! विना तुम्हारे जो स्वर्गमेंभी मेरा वास हो तोभी मुझे अच्छा नहीं लगता ॥२१॥ मैं बन्दर हाथीसे शोभायमान वनमें तुम्हारे चरणोंकी सेवा करके तुम्हारे साथ रहनेकी वासना करती हूं, महाराज ! अधिक क्या कहूं इस प्रकारसे आपके साथ रहनेपर मुझे मेरे पिताजीके भवन समान सुख मिलेगा ॥२२॥ हे नाथ ! मैं तुम्हरे आधीनमें मन रखकर तुम्हारेही पर अनुरक्त रहकर समय बिताती हूं यदि इस अवस्थामें तुम मुझे छोडकर चले जाओगे तो हे प्राणेश्वर ! मैं अपने प्राणोंको नहीं रक्खूंगी । आर्यपुत्र ! मेरे साथ ले चलनेमें तुम्हें कुछ बोझ नहीं मालूम होगा इसकारण मुझे लेचलो ॥२३॥ नरोंमें श्रेष्ठ रामचन्द्रजी धर्मवत्सला सीताजीके

व्यतिक्रमंनवेत्स्यामिस्वर्गोऽपिहिनमेमतः ॥ स्वर्गेऽपिचविनावासो भवितायदिराघव ॥ त्वयाविनानरव्याघ्रनाहंतदपिरोचये ॥ २१ ॥ अहंगमिष्यामिवनंसुदुर्गमंमृगायुतंवानरवारणैश्च ॥ वनेनिवत्स्यामियथापितुर्गृहे तवैवपादावुपगृह्यसंमता ॥२२॥ अनन्यभावामनुरक्तचेतसंत्वयावियुक्तांमरणायनिश्चिताम् ॥ नयस्वमसाधुकुरुष्वयाचनांनातोमयातेगुरुताभविष्यति ॥२३॥ तथाब्रुवाणामपिधर्मवत्सलांनचस्मसीतांनृवरोनिनीषति॥ उवाचचैनांबहुसन्निवर्तनेवनेनिवास्यचदुःखितांप्रति ॥ २४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्ये च० सा० अयोध्याकांडे सप्तविंशःसर्गः ॥२७॥ सएवंब्रुवतींसीतांधर्मज्ञांधर्मवत्सलः ॥ ननेतुंकुरुतेबुद्धिंवनेदुःखानिचिंतयन् ॥ १ ॥ सांत्वयित्वाततस्तांतुबाष्पदूषितलोचनाम् ॥निवर्तनार्थेधर्मात्मावाक्यमेतदुवाचह ॥२॥ सीतेमहाकुलीनासिधर्मेचनिरतासदा ॥ इहाचरस्वधर्मंत्वंयथामेमनसःसुखम् ॥३॥

यह वचन श्रवण करके उनको वनमें संग लेजानेमें राजी नहीं हुए और वनवासके दुःख स्मरण करके जिससे कि श्रीजानकीजी वनको न जायँ ऐसे वचन कहने लगे ॥२४॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयोध्याकांडे भाषायां सप्तविंशः सर्गः ॥२७॥ धर्मवत्सल धर्मज्ञ रामचन्द्रजी धर्मपरायण जानकीजीको ऐसा करते हुये देख वनवासके क्लेश विचार उनको साथ लेजानेमें अप्रसन्न हुए ॥१॥ तदनन्तर धर्मात्म श्रीरामचन्द्रजी रोती हुई जनकनन्दिनीको समझाने लगे कि, जिससे यह वनको न जायँ और बोले ॥ २ ॥ हे सीते ! तुमने बडे कुलमें जन्म ग्रहण किया है, तुम अतिशय धर्मकी जाननेवाली और धर्म करनेवाली हो, मैं तुम्हैं समझाता हूं कि तुम यहां रहकर मेरी बाट जोहती हुई धर्म करती रहो, मैं ऐसा करनेसे बहुत सुखी हूंगा ॥ ३ ॥

हे अबले ! मैं तुम्हें जो उपदेश देता हूं तुम उसहीके अनुसार कार्य करती रहो वनवासमें बहुत दोष हैं उनमेंसे कुछेक कहता हूं सुनो ॥४॥ अतएव तुम वनजानेकी वासना को त्यागकरदो, वनके जानेमें बहुत दोष हैं, और वन दोषोंकी खानि है इसीसे इसका वन नाम है ॥५॥ मैं तुम्हारे हितकेही लिये यह वचन कहता हूं कि, वनके जानेसे दुःखही होते हैं । वनमें सुखका लेशमात्रभी नहीं पाया जाता ॥६॥ क्योंकि पर्वतोंसे स्थान२पर बडी२नदियां बहती हैं जिनका पार होना कठिन है और गिरिगुहाके रहनेवाले सिंह व्याघ्रादिका भयंकर गर्जन सुनाई आता है,जो कि बहुत ही क्लेशका देनेवाला होता है ॥७॥ वह दमन करनेके आयोग्य हिंसक जन्तु वहां निश्शंक होकर घूमा करते हैं और आदमीको देखतेही खानेके लिये प्रस्तुत होजाते हैं अतएव वनमें तो महाकष्टही कष्ट होते हैं ॥८॥ सब नदियोंमें मगर और घडियालादि भरे होते हैं और उन नदियोंमें अँदनभी होती है महाबलवान हाथी भी जो उस अँदरमें फँस जाय तो चिंघाड मार२कर मरजाय बडे२

सीतेयथात्वांवक्ष्यामितथाकार्यंत्वयाऽबले ॥ वनेदोषाहिबहवोवसतस्तान्निबोधमे ॥ ४ ॥ सीतेविमुच्यतामेषावनवासकृतामतिः ॥बहुदोषंहि कांतारंवनमित्यभिधीयते ॥ ५ ॥ हितबुद्ध्याखलुवचोमयैतदभिधीयते ॥ सदासुखंनजनामिदुःखमेवसदावनम् ॥६ ॥ गिरिनिर्झरसंभूतागि रिनिर्दरिवासिनाम्॥सिंहानांनिनदादुःखाःश्रोतुंदुःखमतोवनम् ॥७॥क्रीडमानाश्चविस्रब्धमत्ताःशून्येतथामृगाः ॥ दृष्ट्वासमभिवर्ततेसीतेदुःख मतोवनम् ॥ ८ ॥ सग्राहाःसरितश्चैवपंकवत्यस्तुदुस्तराः ॥ मत्तैरपिगजैर्नित्यमतोदुःखतरंवनम् ॥ ९ ॥ लताकंटकसंकीर्णाःकृकवाकूपना दिताः ॥ निरपाश्चसुदुःखाश्चमार्गादुःखमतोवनम् ॥ १० ॥ सुप्यतेपर्णशय्यासुस्वयं भग्नासुभूतले ॥ रात्रिषुश्रमखिन्नेनतस्माद्दुःखमतोवनम् ॥ ११ ॥ अहोरात्रंचसंतोषःकर्तव्योनियतात्मना ॥ फलैर्वृक्षावपतितैःसीतेदुःखमतोवनम् ॥ १२ ॥

मतवाले हाथी वनमें घूमतेहैं अतएव यह स्थान घोरक्लेशदायक होतेहैं ॥९॥ अधिक करके तो वनके रास्ते बेल पत्ते और काटोंसे ढके रहते हैं इनमार्गों में कभी कुक्कुट आदिकोंका शब्द हुआ करता है । इन स्थानोंपर पीनेको पानीभी नहीं मिला करता है इससे जानलो कि, वनमें बडा दुःख है ॥१०॥ फिर अपने आप पेड परसे गिरे सूखे पत्ते जो पडे होतेहैं उनहींको बिछाकर उनपर शयन करनापडताहै, और कहीं २ यह पत्तेभी नहीं मिलते तो वहां खुरेरी पृथ्वीपरही सोना पडताहै सारे दिवस चलनेसे रात्रिको थकावट आजानेसे ऊंचे नीचेका ध्यान नहीं रहता; बस जहां स्थानमिला वहींसोरहे अतएव वन दुःखकाही देनेवाला है ॥११॥ और पेड़से स्वयंही गिरपडेहुये फल खानको थोडेबहुत मिलते हैं,रातदिन नियमित हो उन्हीं पर आधार रखके मनको सन्तोष देना पडता है इससें हे सीते ! वन

दुःखदाई है ॥१२॥ बरन् सदा फल भी नहीं मिलते कभी २ कडाकाभी होजाया करता है,इसके सिवाय जटायें रखनी पडेंगी, वृक्षोंकीछालोंके वस्त्र पहरने पडेंगे ॥१३॥ देवता पितर और आये हुये पाहुनोंकी पूजा प्रतिदिन विधिपूर्वक करनी पडेगी ॥१४॥ फिर जो लोग कि दिनके नियमसे रहते हैं, उन्हें चाहे गरमी, बरसात,जाडा कुछभी हो, तीन बार स्नान करना पडता है, बस इस बातोंकेहोनेसे वन महादुःखदायक है ॥१५॥ फिर जो कि वानप्रस्थके अवलंबन करनेवाले होते हैं उनको अपने हाथसे फूल तोडकर श्रेष्ठ विधिसे वेदीकी पूजा करनी होती है यह नहीं कि किसी दासी दाससे तुडवा लिये । हे प्रिया ! इससे वन दुःखदाई है॥१६॥ फिर जितना भोजनपान इत्यादि मिल जायगा उतनेहीसे निर्वाह करना होगा क्योंकि वनवासियोंको मनमाना भोजनभी नहीं मिलता इस सेवन महादुःखदाई है ॥ १७ ॥ हवा दिन रात वहां आंधीसी चलती रहती है, और भूखभी वहां नित्य बहुतही लगती है, और अधिक क्या कहूं भयके सबही कारण वहां वर्त्त

उपवासश्चकर्तव्योयथाप्राणेनमैथिलि ॥ जटाभाश्चकर्तव्योवल्कलांबरधारणम् ॥ १३ ॥ देवतानांपितृणांचकर्तव्यंविधिपूर्वकम् ॥ प्राप्तानामतिथीनांचनित्यशःप्रतिपूजनम् ॥१४॥ कार्यस्त्रिरभिषेकश्चकालेकालेचनित्यशः ॥ चरतांनियमेनैवतस्माद्दुःखतरंवनम् ॥१५॥ उपहारश्चकर्तव्यःकुसुमैःस्वयमाहृतैः ॥ आर्षेणविधिनावेद्यांसीतेदुःखमतोवनम् ॥१६॥ यथालब्धेनकर्तव्यःसंतोषस्तेनमैथिलि ॥यथाहारैर्वनचरैःसीतेदुःखमतोवनम् ॥ १७ ॥ अतीववातस्मिमिरंबुभुक्षाचास्तिनित्यशः ॥ भयानिचमहांत्यत्रअतोदुःखतरंवनम् ॥१८॥ सरीसृपाश्चबहवोबहुरूपाश्चभामिनि ॥ चरंतिपथितेदर्पात्ततोदुःखतरंवनम् ॥१९॥ नदीनिलयनाःसर्पानदीकुटिलगामिनः ॥ तिष्ठंत्यावृत्यपंथानमतोदुःखतरंवनम् ॥ ॥२०॥ पतंगावृश्चिकाःकीटादंशाश्चमशकैःसह ॥बाधंतेनित्यमबलेसर्वदुःखमतोवनम् ॥२१॥ द्रुमाःकंटकिनश्चैवकुशाःकाशाश्चभामिनि॥ वनेव्याकुलशाखाग्रास्तेनदुःखमतोवनम् ॥२२॥ कायक्लेशाश्चबहवोभयानिविविधानिच ॥ अरण्यवासेवसतोदुःखमेवसदावनम् ॥ २३ ॥

मान रहते हैं इससे वन दुःखका देनेवाला है॥१८॥ हे भामिनी ! वहां अनेक प्रकारके रूपवाले कीड़ा बीछू आदि जन्तु गर्वसहित घूमा करते हैं इससे वन अति दुःखदाई है ॥१९॥ व वहांकी नदियोंमें सोतेके पानीके सामान टेढी चालवाले सांप वनका रस्ता रोके पडे रहते हैं बस इन कारणोंसे वनमें महाकष्ट है ॥२०॥ और अधिक क्या कहूं वहां पतङ्ग,विच्छू,कीड़े मकोडे,डांस,मच्छर सब सदा बहुत ही व्याधिदेनेवाले हैं अतएव वनसे अधिक कष्ट देनेवाला स्थान और कहांहै ? ॥२१॥ वहांके वृक्ष बहुत करके कांटवाले होते हैं, और वहां सबही जगह कुश और काशसे ढकी रहती हैं, जिन कुशोंके लगतेही हाथ पांव चिर जाते हैं इस कारण वन दुःखदाई है ॥२२॥ इसके सिवाय शरीरको विविध भांतिके दुःखही वहां होते रहते हैं अनेक भय होते हैं बस इसीकारणकहताहूं कि, बनवास अतिही कष्टदायक

होताहै वहां रहनेसे सुख नहीं ॥२३॥ वनमें रहकर क्रोध लोभको एक वारही त्याग करना पडता है और नित्यप्रति तपस्यामें मन लगाना होता है, वहांपर कोई भयका कारणहो तो निर्भय समय व्यतीत करना पडता है. इससे वनमें सदादुःख ही है ॥२४॥ मैं इनही सब कारणोंको देखभालकर तुम्हें वनको साथ नहीं लेजाया चाहता, वनवास करना तुमको मंगलदायक न होगा मैं बहुतही विचार करकेतुम्हें समझाताहूं कि वनवास करना तुम्हें नहीं सजेगा और वह तुम्हें बडाक्लेश देनेवाला होगा ॥२५॥ रामचन्द्रके वन संबंधी इसी प्रकारकी क्लेशदायक वार्ता कहनेपर और वनके चलनेमें महात्मा रामकीसम्मति न देखकर सीताजीनेउसपर कुछभी ध्यान न दिया और दुःखित मनसेकमललोचन रामचन्द्रजीसे कह नेलगीं ॥२६॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयोध्याकांडे भाषायामष्टाविंशः सर्गः ॥२८॥ रामचन्द्रजीके इस प्रकार वचन सुनकर अन्तःकरणसे रोतीहुई मृदु मन्द स्वरसे श्रीजानकीजी बोलीं॥ १ ॥ हे आर्यपुत्र ! तुमने वनवासके जो समस्त दुःख सुनाये इन सबको तुम्हारे स्नेहके आधीन होनेसे मैं गुणके

क्रोधलोभौविमोक्तव्यौकर्तव्यातपसेमतिः॥नभेतव्यंचभेतव्येदुःखंनित्यमतोवनम् ॥२४॥तदलंतेवनंगत्वाक्षमंनहिवनेतव॥ विमृशन्निवपश्यामि बहुदोषकरंवनम् ॥२५॥ वनंतुनेतुंनकृतामतिर्यदाबभूवरमेणतदामहात्मना ॥ नतस्यसीतावचनंचकारतंततोऽब्रवीद्राममिदंसुदुःखिता ॥२६॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च०सा० अयोध्याकांडे अष्टाविंशःसर्गः॥२८॥एतत्तुवचनंश्रुत्वासीतारामस्यदुःखिता॥ प्रसक्ताश्रुमुखीमंदमिदंवचनमब्रवीत् ॥१॥ येत्वयाकीर्तितादोषावनेवस्तव्यतांप्रति॥ गुणानित्येवतान्विद्धितवस्नेहपुरस्कृता॥२॥मृगासिंहागजाश्चैव शार्दूलाःशरभास्तथा ॥ चमराःसृमराश्चैवयेचान्येवनचारिणः ॥३॥ अदृष्टपूर्वरूपत्वात्सर्वेतेतवराघ ॥ रूपंदृष्ट्वापसर्पेयुस्तवसर्वेहिबिभ्यति ॥ ४ ॥ त्वयाचसहगंतव्यंमयागुरुजनाज्ञया ॥ त्वद्वियोगेनमेरामत्यक्तव्यमिहजीवितम् ॥ ५ ॥ नहिमांत्वत्समीपस्थामपिशक्रोऽपिराघव ॥ सुराणामीश्वरःशक्तःप्रधर्षयितुमोजसा॥ ६ ॥ पतिहीनातुयानारीनसाशक्ष्यतिजीवितुम् ॥ काममेवंविधंरामत्वयाममनिदर्शितम् ॥ ७ ॥

समानसमझती हूं ॥२॥ वनमें मृग, सिंह, हाथी, शार्दूल, शरभ-चमरवालीगाय; नील गाय आदिजीवहैं और भी अनेक वनचारी जीव हैं ॥ ३ ॥ उन सबने आपका यह रूप कभी देखा नहीं है, वह इस रूपको देखतेही डरकर भागजायँगे क्योंकि आपसेतो कालभी भयखाता है ॥४॥ मैं अपने गुरुजनोंकी आज्ञासे आपके पीछे २ चलूंगी, क्योंकि विवाहके समय हमारे पिताजीने यही कहके हमें आपको दियाहै कि, यह हमारी पुत्री जानकी तुम्हारे पश्चात् २ परछाईके समान चलेगी फिर मैं यहांकैसे रह सकती हूं । हे नाथ ! तुम यहभी जान रक्खो कि, तुम्हारे बिरहमें प्राण धारण नहीं कर सकती हूं ॥ ५ ॥ हे नाथ !तुम्हारे समीप बैठीहुई मेरा देवता और ईश्वर इन्द्रभी कुछ नहीं कर सकते फिर औरोंकी बात क्यों चलाई? ॥ ६ ॥ हे प्राणपति ! तुमने

हमको उपदेशहीऐसेदिये हैं कि पतिके बिना पतिव्रता स्त्री जीवन धारण नहीं कर सकती फिर मैं आपके बिना किस प्रकार जी सकतीहूं ॥७॥ हे महाप्राज्ञ! जब मैं पिताके घर रहा करतीथी तभी मैंने ज्योतिषियोंकेमुखसेसुनाथाकि, मेरेभाग्यमें वनवास लिखाहै फिर जो बात कर्ममें लिखी है उसके लिये क्या शोच? ॥८॥ सामुद्रिकके लक्षणोंके जाननेवाले पुरुषोंने जो कहाथा अब उसका समय आपहुँचा है मैं बहुत दिनोंसे उत्साहितथी, कब वनको जाना होगा सो बात अब पूरी हुई ॥ ९ ॥ मेरे भाग्यमें अब उन्हीं ब्राह्मणोंके आदेशका समय आया है अतएव मैं तुमारे साथ वनको चलूंगी आप इस विषयमें कुछ बाधा मत दीजिये * ॥ १० ॥ हे स्वामिन्! मैं आपके साथ अवश्य चलूंगी अब वह समय भी आपहुँचा है, जोहो आप मुझे संग ले चलनेकी अनुमति देकरब्राह्मणोंकेवचनोंको सत्यकीजिये ॥११॥ वनवासमें बहुत सारे क्लेश हैं यह बात क्या मैं नहीं जानती हूं? मैं जानती हूं कि, जो पुरुष इन्द्रियोंको जीते नहीं होते हैं उन्हेंही स्त्रियोंके

अथापिचमहाप्राज्ञब्राह्मणानांमयाश्रुतम्॥ पुरापितृगृहेसत्यंवस्तव्यंकिलमेवने ॥८॥ लक्षणिभ्योद्विजातिभ्यःश्रुत्वाहंवचनंगृहे॥ वनवासकृतोत्साहानित्यमेवमहाबल ॥ ९ ॥ आदेशोवनवासस्यप्राप्तव्यःसमयाकिल ॥ सात्वयासहभर्त्राहंयास्यामिप्रियनान्यथा ॥ १० ॥ कृतादेशाभविष्यामिगमिष्यामित्वयासह ॥ कालश्चायंसमुत्पन्नःसत्यवान्भवतुद्विजः ॥ ११ ॥ वनवासेहिजानामिदुःखानिबहुधाकिल ॥ प्राप्यंतेनियतंवीरपुरुषैरकृतात्मभिः ॥१२॥ कन्ययाचपितुर्गेहेवनवासःश्रुतोमया ॥ भिक्षिण्याःशमवृत्तायाममममातुरिहाग्रतः ॥१३॥ प्रसादितश्चवैपूर्वंत्वंमेबहुतिथंप्रभो ॥ गमनंवनवासस्यकांक्षितंहिसहत्वया ॥ १४ ॥ कृतक्षणाहंभद्रंतेगमनंप्रतिराघव ॥ वनवासस्यशूरस्यममचर्याहिरोचते ॥ १५ ॥ शुद्धात्मन्प्रेमभावाद्धिभविष्यामिविकल्मषा भर्तारमनुगच्छंतीभर्ताहिपरदैवतम् ॥ १६ ॥

साथ वनमें सदा क्लेश भोगना पडताहै, न कि आप सरीखे पुरुषोंको ॥१२॥ जब मैं अपने पिताके घर रहा करतीथी और छोटीसीथी तबमुझे याद है कि, एक साधुशीला तपस्विनीने आकर मेरी मातासे कहाथा कि, जानकी वनको जायगी॥ ॥१३॥ हे प्रभो! मैंने बारंबार आपसे कहाथा कि वनविहार करनेको चलिये सो अब तक अभिलाष पूरा नहीं हुआ था, सो अब वह अवसर आया है, अतएव मेरी प्रार्थनाको मानकर मुझे संग ले चलिये ॥ १४ ॥ हे राघव! आपका मंगलहो, मैं तुम्हरी आज्ञादेनेकी बाट जोह रहीहूं, हे महावीर! वनमें तुम्हारीसेवा करनेसे मेरी प्रसन्नताकी सीमा नहीं रहेगी ॥१५॥ हे शुद्धात्मन्! पतिही स्त्रियोंका

* रागिनी कालिंगडा ताल तीन –(रामचन्द्रजी जानकीजीसे) वन मत चलो हमारे साथ ॥ अस्ताई ॥ वनके दुःख न जायें सहाये, तुमरे तो अति कोमल गात । वनफल खाने पडें संगमें, ओढनको वृक्षनके पात ॥ मानो कहा रहो गृह यारी, नारदमुनि कहें- नीकी बात ॥

सबसे बडा देवता है यदि मैं प्रेमभावसे आपके साथ चल सकूं तो मेरा मन और शरीर पवित्र हो जायगा॥१६॥ इस लोककी तो वार्त्ता अलग है तुम्हारा पारलौकिक समागम भी मेरे सुखका कारण होगा यह वार्त्ता मैंने यशस्वी पवित्र ब्राह्मणोंके मुखसे सुनी है ॥१७॥ हे महाबली! जिस स्त्रीको दान धर्मके अनुसार कुशजल हाथमें ले मातापिता जिसवरको देते हैं वह स्त्री परलोकमें भी उसही वर की होती है॥१८॥ अतएव जो स्त्री पतिव्रता और सुशील है उस आत्मवत् मुझ स्त्री को आप क्यों नहीं वनमें संग ले चलते ? ॥ १९ ॥ मैं तुम्हारे सुखमें सुखी और दुःखमें दुःखीहूं और तुम्हारे ऊपर अनुरागिनी हूं पविव्रता हूं तुम्हारी सेवकनी हूं सुख दुःखमें समान चित्तहूं अतएव यह प्रार्थना करती हूं कि, मुझ पतिव्रता स्त्रीको संग लेचलिये ॥ २० ॥ अधिक क्या कहूं यदि इतने पर भी तुम इस दुःखिनीं स्त्रीको संग न ले चलोगे तो निश्चयही मैं विषपान करके या अग्निमें जलकर अथवा जलमें डूब कर प्राण त्यागन करदूंगी ॥२१॥ इस प्रकार सीताजीने रामचन्द्रजीसे

प्रेतभावेहिकल्याणःसंगमोमेसदात्वया॥श्रुतिर्हिश्रूयतेपुण्याब्राह्मणानांयशस्विनाम् ॥१७॥ इहलोकेचपितृभिर्यास्त्रीयस्यमहाबल ॥ अद्भिर्दत्ता स्वधर्मेणप्रेत्यभावेऽपितस्यसा ॥ १८ ॥ एवमस्मात्स्वकांनारींसुवृत्तांहिपतिव्रताम् ॥ नाभिरोचयसेनेतुंत्वंमांकेनेहहेतुना ॥१९॥ भक्तांपतिव्रतां दीनांमांसमांसुखदुःखयोः ॥ नेतुमर्हसिकाकुत्स्थसमानसुखदुःखिनीम् ॥ २० ॥ यदिमांदुःखितामेवंवनंनेतुंनचेच्छसि ॥ विषमग्निंजलंवा हमास्थास्येमृत्युकारणात् ॥ २१ ॥एवंबहुविधंतंसायाचतेगमनंप्रति ॥ नानुमेनेमहाबाहुस्तांनेतुंविजनंवनम् ॥ २२ ॥ एवमुक्तातुसाचिंतांमैथिलीसमुपागता ॥ स्नापयंतीवगामुष्णैरश्रुभिर्नयनच्युतैः ॥२३॥ चिंतयंतींतदातांतुनिवर्तयितुमात्मवान् ॥ क्रोधाविष्टांतुवैदेहींकाकुत्स्थोबहुसांत्वयत् ॥ २४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० अयोध्याकांडे एकोनत्रिंशः सर्गः ॥ २९ ॥

वारंवार वनको संग चलनेकी प्रार्थना की परन्तु रघुनाथजी किसी भांति उन्हें साथ ले चलनेको राजी नहीं हुये ॥ २२ ॥ तब श्रीजानकी श्रीरामचन्द्रजीको अपने साथ वनको लेजानेमें असम्मत देखकर अतिशय दुःखित और चिन्तित हुई और महा विलाप करने लगीं उनकी आँखोंसे निकली हुई आसुओंकी धारा पृथ्वीको भिगोनेलगी * ॥ २३ ॥ रामचन्द्रजी उनको चिन्ता किये और क्रोध किये देख, जिस प्रकार वह वनको न जायँ, इस भांतिजानकीजी को बहुत समझाने बुझाने लगे॥ २४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदि० अयोध्याकांडे भाषायामेकोनत्रिंशः सर्गः ॥ २९ ॥

---

* और बोली ॥ दोहा–राखिय अवधजो अवधि लगि, रहत जानिये प्राना ॥ दीनवन्धु सुन्दर सुखद, शील सनेह निधान ॥१॥ प्राणनाथ करुणायतन, सुन्दर सुखद सुजान ॥ तुम विनु रघुकुलकुमुदविधु, सुरपुर नरक समान ॥ असकहि सीयविकल भइ भारी । वचन वियोग न सकी संभारी ॥

जब रामचन्द्रजीने अनेक प्रकारसे जानकीको समझाया बुझाया तो वनमें जानेहीके लिये फिर पतिसे बोलीं॥१॥ बोलनेके पहले यह विचाराकी, चौडी छातीवाले हमारेराजकुमार निश्चयही मुझे छोडा चाहते हैं,इसकारण स्नेहके कारण कुछ एक क्रोध भी किया और भयभी बहुत माना पीछे आक्षेपके वह वाक्य कि, जिससे प्राणनाथ वनको संगले चलें बोलीं॥२॥ जानकीजीने कहा कि, यदि हमारे पिता मिथिलाधिपति जनकजी यह जानते कि आकार मात्रमें तुम नाममात्रके पुरुष और व्यवहारमें स्त्री हो तो कभी तुम्हारे साथ मेरा विवाह नहीं करते न ऐसे पुरुषको अपना जामाता बनाते॥३॥ सब संसार जो कहा करता है कि आपका तेज तपते सूर्यके तेजसे भी अधिक प्रबल है, यह वार्त्ता इस समय कुछ मिथ्यासी ज्ञातहोती है,क्योंकि ऐसा यदि न होता,तो आप अवश्य ही मुझे वनको संग ले चलते॥४॥ मैं तुमसे यह पूछ तीहूं तुम्हारी उदासी या भयका क्या कारण है? और फिर किस कारण दूसरेकी शरण न रहनेवाली पतिव्रता स्त्रीको परित्याग कर आप वनजानेको तैयार हैं॥५॥ जैसे

सात्वमुत्तमसंविग्नासीताविपुलवक्षसम् ॥ प्रणयाच्चाभि सात्व्यमानातुरामेणमैथिलीजनकात्मजा॥ वनवासनिमित्तार्थंभर्तारमिदमब्रवीत् ॥१॥ मानाच्चपरिचिक्षेपराघवम् ॥२॥ किंत्वामन्यतवैदेहः पितामेमिथिलाधिपः ॥ रामजामातरंप्राप्यस्त्रियंपुरुषविग्रहम् ॥ ३ ॥ अनृतंबतलोकोऽय मज्ञानाद्यदिवक्ष्यति ॥ तेजोनास्तिपरंरामेतपतीवदिवाकरे ॥ ४ ॥ किंहिकृत्वाविषण्णस्त्वंकुतोवाभयमस्तिते ॥ यत्परित्यक्तुकामस्त्वंमामन न्यपरायणाम् ॥ ५ ॥ द्युमत्सेनसुतंवीरंसत्यवंतमनुव्रतम् ॥ सावित्रीमिवमांविद्धित्वमात्मवशवर्तिनीम् ॥ ६ ॥ नत्वहंमनसात्वन्यंद्रष्टास्मि त्वदृतेऽनघ ॥ त्वयाराघवगच्छेयंयथान्याकुलपांसनी ॥ ७॥ स्वयंतुभार्यांकौमारींचिरमध्युषितांसतीम् ॥ शैलूषइवमांरामपरेभ्योदातुमिच्छसि ॥ ८ ॥ यस्यपथ्यंचरामत्थयस्यचार्थेऽवरुध्यसे ॥ त्वतस्यभववश्यश्चविधेयश्चसदानघ ॥ ९ ॥

द्युमत्सेनके पुत्र सत्यवान्‌के संग उनकी पतिव्रता स्त्री सावित्री वनको गईथी वैसेही मुझको आप पतिव्रता समझिये और संग ले चलिये और इसी प्रकार मैं आपके संग चलूंगी ॥६॥ हे राघव! मैंने कभी मनसे भी तुम्हारे सिवाय दूसरे पुरुषको नहीं देखा जैसे कि, कुलकलंकिनी स्त्री पर पुरुषोंको देखा करती हैं हे राम! इसी कारण मैं तो आपके साथही चलूंगी॥७॥ देखिये कुमार अवस्थामें ही मेरा विवाह आपके संग हुआ और मुझे तुम्हारे गृहमें रहते बहुत दिन होगये हैं, परन्तु आप ऐसे सामर्थ्यवान् हैं कि जो पुरुष अपनी भार्या दूसरे पुरुषोंके पास भेज जीविका करते हैं अब आप भी उन्हीं लोगोंके समान मुझे दूसरोंके हाथमें सौंपा चाहते हो यह करना क्या आपको उचित है?॥८॥ हे प्रभो पाप रहित! तुम नित्य जिनका हित चाहते रहते हो, और जिनके कारण आपको राज्यभी नहीं मिल सकता; तुमहीं उनके सेवक अथवावशव र्त्ती हो, परन्तु हमको तो किसी प्रकारके आप उनके वशमें नहीं करसक्के हैं॥९॥ आश्चर्य है कि मैं तो वारंवार तुम्हारे संग वन चलनेको कहरही हूँ परन्तु आप इस बात

पर कुछ ध्यान न धरकर मुझे छोड वन जानेको तैयार हुए हैं ? अधिक तो क्या कहूं तपस्या करना; वनमें रहना या स्वर्गमें रहना जो कुछहो सब तुम्हारे साथही हो ॥१०॥ वनमें तुम्हारे पीछे २ चलनेमें हमको कुछभी क्लेश न मालूम पडेगा, वरन् आपके संग चलनेसे ऐसा ज्ञात होगा कि मानोविहार कि सेजही पर बैठीहूं ॥ ११ ॥ वनके मार्गमें कुश, काश, शर, मुंज इत्यादिक जो कटीले पेडहैं तुम्हारे साथ वनको जानेसे वह मुझे रुई और मृगछालाके समान नरम विदित होंगे ॥१२॥ हे रमण ! महा पवन करके उडी हुई जो धूल मेरे शरीरपर आकर गिरेगी सो आपके संग रहनेसे वह भी मुझको अति उत्तम चंदनकी नाईं ज्ञात होगी ॥ १३ ॥ मैं जब आपके संग वनमें हरी घासके बिछौनेपर सोऊँगी तब पलंगके ऊपर अनेक प्रकारके चित्र विचित्र नरम वस्त्रोंके ऊपर शयन करनेसे सुखसे क्या वह सुख किसीप्रकार कम होगा? कभी नहीं ॥१४॥ तुम अपने हाथसेलाकर जो सब कंद, मूल फल, थोडे या बहुत मुझको दोगे मुझको तो वही सब कंद मूल

समामनादायवनंनत्वंप्रस्थितुमर्हसि॥तपोवार्यदिवारण्यंस्वर्गोवास्यात्त्वयासह ॥१०॥ नचमेभवितातत्रकश्चित्पथिपरिश्रमः ॥ पृष्ठतस्तवगच्छं त्याविहारशयनेष्विव॥११॥कुशकाशशरेषीकायेचकंटकिनोद्रुमाः ॥ तूलाजिनसमस्पर्शामार्गेममसहत्वया ॥१२॥ महावातसमुद्धूतंयान्मा मवकरिष्यति ॥ रजोरमणतन्मन्येपरार्घ्यमिवचंदनम् ॥ १३ ॥ शाद्वलेषुयदाशिश्येवनांतर्वनगोचरा ॥ कुथास्तरणयुक्तेषुकिंस्यात्सुखतरं ततः ॥ १४ ॥ पत्रंमूलंफलंयत्तुअल्पंवायदिवाबहु ॥दास्यसेस्वयमाहृत्यतन्मेऽमृतरसोपमम् ॥ १५ ॥ नमातुर्नपितुस्तत्रस्मरिष्यामिनवे श्मनः ॥ आर्तवान्युपभुंजानापुष्पाणिचफलानिच ॥ १६ ॥ नचतत्रततःकिंचिद्द्रष्टुमर्हसिविप्रियम् ॥ मत्कृतेनचतेशोकोनभविष्यामिदुर्भरा ॥ १७ ॥ यस्त्वयासहसस्वर्गोनिरयोयस्त्वयाविना ॥ इतिजानन्परांप्रीतिंगच्छरामममयासह ॥ १८ ॥अथमामेवमव्यग्रांवनंनैवनयिष्यसि ॥ विषमद्यैवपास्यामिमावशंद्विषतांगमम् ॥ १९ ॥

फल अमृतके समान जान पडेंगे॥१५॥ महाराज ! मैं आपके संग रहकर अपने पिता माता तकको भी स्मरण न करूंगी और नकभीगृहकीयादकरूंगी मैं वहांसदाही वसन्तादिछःऋतुओंके फूल फल सूंघ और भोजन करके सुखी हूंगी ॥१६॥ मेरे कारण वनमें आपको कुछ क्लेश न होगा, न कुछ शोचही होगा; इससे आपको यहनविचारना पडेगा कि इनको वनमें लेतो आये परन्तु अब किस प्रकार पालनपोषण करें ॥१७॥ यह आप भलीभांति समझ लें कि यदि आपके संग रहना हो तो सब जगह स्वर्ग है और आपके बिनासब जगह नरक है बस आपयही सोच विचार कर प्रीति समेत मुझे वनको साथ ले चलिये॥१८॥ बहुत क्या कहूं यदि किसीप्रकारसेभी आप मुझको अपने साथ न लेजायँ; तो आजही विष पान करके मर जाना तो स्वीकार है परन्तु विपक्ष भरतके पक्षमें रहना मुझको अच्छा

नहीं लगता और न मैं यहां रहूंगी ॥१९॥ हे प्राणजीवन ! जो आप मुझे यहां छोडकर चले जायँगे तो परिशेषमें आपके बिना हमारा मरणही होगा इस कारणसे इसी समय आपके सामनेही प्राणत्याग करना अच्छा है ॥ २० ॥ प्रीतम ! चौदह वर्षकी बातको तो एक ओर धर दीजिये मैं तो आपके वियोगमें एक मुहूर्तभर तक भी प्राण नहीं रख सकती हूँ ॥२१॥ जानकीजी इस प्रकार शोकसे संतापित हो बारंबार विलाप और परिताप करने लगी और प्राणवल्लभ रामचन्द्रजीको दृढतर लपटाय बडे ऊँचे स्वरसे रुदन करने लगीं ॥२२॥ वह रामचन्द्रजीके उन न ले जानेवाले वचनोंसे इस भांति तडफडाईं जैसे जहरके बुझे हुये बाण लगनेसे हथिनी मर्माहत हो तडफडाती है, जिस प्रकार अरणी काष्ठ (एक लकडी जिससे आग निकल आती है) से आग निकलती है वैसे ही जानकीजीके नयन युगलसे अश्रुधारा निकलनेलगी ॥२३॥ जिस प्रकार कि, कमलसे पानीकी बून्द चुवें; वैसे ही जानकीजीके नेत्रोंसे स्फटिक मणिके समान सफेद रंगके समान

पश्चादपिहिदुःखेनममवैवास्तिजीवितम् ॥ उज्झितायास्त्वयानाथतदैवमरणंवरम् ॥२०॥ इमंहिसहितुंशोकमुहूर्तमपिनोत्सहे॥किंपुनर्दशवर्षाणित्रीणिचैकंचदुःखिता ॥ २१ ॥इतिसाशोकसंतप्ताविलप्यकरुणंबहु ॥ चुक्रोशपतिमायस्ताभृशमालिंग्यसुस्वरम् ॥२२॥ साविद्धाबहुभिर्वाक्यैर्दिग्धैरिवगजांगना ॥ चिरसंनियतंवाष्पंमुमोचाग्निमिवारणिः ॥ २३ ॥ तस्याःस्फटिकसंकाशंवारिसंतापसंभवम् ॥ नेत्राभ्यांपरिसुस्रावपंकजाभ्यामिवोदकम् ॥ २४ ॥ तत्सितामलचंद्राभमुखमायतलोचनम् ॥ पर्यशुष्यतबाष्पेणजलोद्धृतमिवांबुजम् ॥२५॥ तांपरिष्वज्यबाहुभ्यांविसंज्ञामिवदुःखिताम् ॥ उवाचवचनंरामःपरिविश्वासयंस्तदा ॥२६॥ नदेवितवदुःखेनस्वर्गमप्यभिरोचये ॥ नहिमेऽस्तिभयंकिंचित्स्वयंभोरिवसर्वतः ॥ २७ ॥ तवसर्वमभिप्रायमविज्ञायशुभानने ॥ वासंनरोचयेऽरण्येशक्तिमानपिरक्षणे ॥ २८॥

संतापके आंसू गिरने लगे ॥२४॥ उस समय प्रबल शोककी आगसे सीताजीका पूर्णमासी चन्द्रमाके समान द्युतिवाला मुखमंडल जल सूख जानेपर मुरझाये हुये कमलके समान हो गया ॥ २५ ॥ तब रामचन्द्रजी जानकीजीको मूर्छित हुई सी व बहुतही शोकसे व्याकुल देखकर हृदयसे लगाय समझाते बुझाते हुए उनसे बोले ॥२६॥ हे देवि ! तुमको कष्ट देकर प्राप्त हुए स्वर्गकी भी हम चाह नहीं करते और तुमने यह जो कहा कि, तुम डरके मोहसे संग नहीं ले चलते तो याद रक्खो कि, स्वयम्भू ब्रह्माजीके समान हमको किसी जगह भी डरकी संभावना नहीं है ॥ २७ ॥ तुमने जो कहा कि हजारोंको पालते हो तो क्या मुझे वनमें नहीं रक्षा कर सकोगे सो मैं सब भांति तुम्हारी रक्षा कर सकता हूं परन्तु अबतक तुम्हारे मनकी इच्छा नहीं जानी थी इस कारण तुम्हें साथ ले चलनेकी सम्मति नहीं

दी थी ॥२८॥ हे मैथिलि ! जब कि मेरे साथ जाया ही जाहती हो वा वन जानेको ही निर्मित हुई हो तो जिस प्रकार आत्मतत्त्वके जाननेवाले पुरुष कभी दयाको नहीं छोडते वैसे ही मैं तुमको किसी प्रकार नहीं त्याग कर सकता न ले चलनेसे मेरा यह प्रयोजन नहीं था कि, मैं तुमको त्याग दूं ॥२९॥ प्राचीन कालसे सदाचारमें रत रहनेवाले अपनी स्त्रियोंको साथ लेकर वानप्रस्थ धर्ममें तत्पर हो वनको चले गये थे मैं भी अब वैसा ही करूँगा अर्थात् तुम्हें वनको ले चलूंगा जिस प्रकार सूर्य भगवान्‌की स्त्री सुवर्चला उनके पीछे २ चलती है वैसे ही तुम मेरे साथ चलो ॥३०॥ हे जनकनंदिनी ! मैं कुछ अपने आप वनको नहीं जाता किन्तु पिताजी जो सत्यके वचनसे बँध गये हैं इस ही कारण वनको जाता हूं ॥३१॥ हे सुन्दरी ! पिता माताके वशमें रहना ही पुत्रका प्रधान धर्म है उनकी आज्ञा का उल्लंघन कर जीवन धारण करना अच्छा नहीं समझता ॥३२॥ जो यह कहो कि, दैवके ऊपर भरोसा रख यहीं रहो और पिताका वचन न मानो उससे कुछ भी न होगा

यत्सृष्टासिमयासार्धंवनवासायमैथिलि ॥ नविहातुझयाशक्याप्रीतिरात्मवतायथा ॥२९॥ धर्मस्तुगजनासोरुसद्भिराचरितःपुरा ॥ तंचाहमनुवर्तिष्येयथासूर्यंसुवर्चला ॥ ३० ॥ नखल्वहंनगच्छेयंवनंजनकनंदिनि ॥ वचनंतन्नयतिमांपितुःसत्योपबृंहितम् ॥ ३१ ॥ एषधर्मश्चसुश्रोणिपितुर्मातुश्चवश्यता ॥ आज्ञांचाहंव्यतिक्रम्यनाहंजीवितुमुत्सहे ॥ ३२ ॥ अस्वाधीनंकथंदैवंप्रकारैरभिराध्यते ॥ स्वाधीनंसमतिक्रम्यमातरंपितरंगुरुम् ॥ ३३ ॥ यत्रत्रयंत्रयोलोकाःपवित्रंतत्समंभुवि ॥ नान्यदस्तिशुभापांगेतेनेदमभिराध्यते ॥ ३४ ॥ नसत्यंदानमानौवायज्ञोवाप्याप्तदक्षिणः ॥ तथाबलशराःसीतेयथासेवापितुर्मता ॥ ३५ ॥ स्वर्गोधनंवाधान्यंवाविद्याःपुत्राःसुखानिच ॥ गुरुवृत्त्यनुरोधेननकिंचिदपिदुर्लभम् ॥ ३६ ॥

सो नहीं हो सकता क्योंकि दैव अदृश्य पदार्थ है साधन करनेसे यद्यपि दैवके विषयमें सन्तोष हो जाता है तथापि माता पिता प्रत्यक्ष देवता हैं अतएव उनको उल्लंघन करके दैवके ऊपर बैठे रहनेकी मेरी इच्छा नहीं है ॥३३॥ जिन माता पिता गुरुकी पूजा करनेसे धर्म, अर्थ, कामकी प्राप्ति हो जाती है, और इन तीनोंकी सेवा करनेसे मानों त्रिलोकीकी पूजा सिद्ध हो जाती है, और फिर भला संसारमें माता पिता गुरुकी आज्ञा व पूजा करनेके समान और भी कोई धर्म है ? अर्थात् नहीं है इसी कारण मैं वनको जाता हूं ॥३४॥ विचारकर देखनेसे जाना जाता है कि, पिताकी सेवा करनेसे जो फल परलोकमें प्राप्त होता है, वह फल सत्य बोलने, दानमान करने, बहुत दक्षिणा सहित यज्ञ करनेमें नहीं मिल सकता ॥३५॥ जो कोई पिता माता गुरुकी आज्ञानुसार चलता है उसको स्वर्ग प्राप्ति, धन धान्य विद्या पुत्र और सुख यह सब वस्तु कुछ

दुर्लभ नहीं हैं ॥३६॥ जो महात्मा लोग पिता माता गुरुकी भक्ति करते हैं उन सब महात्माओंको गन्धर्व लोक, देवलोक, ब्रह्मलोक तथा गोलोकतक प्राप्त हो जाता है ॥ ३७ ॥ सत्य धर्ममें स्थिर होकर पिताजीने मुझे जो आज्ञा दी है; प्राणपनसे उसको पालन करूँगा क्योंकि यही मेरा मुख्य धर्म है ॥ ३८ ॥ हे जानकी ! पहिले तो तुम्हें अपने साथ वनको लेजानेकी मेरी इच्छा नहीं थी, परन्तु अब तुम्हारी दृढता देखकर जानेमें बाधा न दे वनके ले चलनेको सम्मत हुआ हूं ॥ ३९ ॥ इससे अब मेरी यह आज्ञा है कि, मेरे साथ वनको चलो हे सुन्दरी ! और जैसा मेरा धर्म है उसके अनुष्ठान करनेमें तुम भी तत्पर हो जाओ ॥ ४० ॥ हे जनकनंदिनि ! तुमने जो वनमें मेरे साथ रहना विचारा है यह बात बहुत ही अच्छी है, और हमारे वंशमें जो बात होती आई है उसके अनुसार ही है ॥ ४१ ॥ अब मैं तुमसे कहता हूं

तथा देवगंधर्वगोलोकान्ब्रह्मलोकांस्तथापरान् ॥ प्राप्नुवंतिमहात्मानोमातापितृपरायणाः ॥३७॥ समापितायथाशास्तिसत्यधर्मपथेस्थितः ॥ तथा वर्तितुमिच्छामिसहिधर्मःसनातनः ॥३८॥ ममसन्नामतिःसीतेनेतुंत्वांदंडकावनम् ॥ वसिष्यामीतिसात्वंमामनुयातुंसुनिश्चिता ॥३९॥ साहिदिष्टानवद्यांगिवनायमदिरेक्षणे ॥ अनुगच्छस्वमांभीरुसहधर्मचरीभव ॥४०॥ सर्वथासदृशंसीतेममस्वस्यकुलस्यच ॥ व्यवसायमनुक्रांताकांतेत्वमतिशोभनम् ॥४१॥ आरभस्वशुभश्रोणिवनवासक्षमाःक्रियाः ॥ नेदानींत्वदृतेसीतेस्वर्गोऽपिममरोचते ॥ ४२ ॥ ब्राह्मणेभ्यश्चरत्नानिभिक्षुकेभ्यश्चभोजनम् ॥ देहिचाशंसमानेभ्यःसंत्वरस्वचमाचिरम् ॥४३॥ भूषणानिमहार्हाणिवरवस्त्राणियानिच ॥ रमणीयाश्चये केचित्क्रीडार्थाश्चाप्युपस्कराः ॥ ४४ ॥ शयनीयानियानानिममचान्यानियानिच ॥ देहिस्वभृत्यवर्गस्यब्राह्मणानामनंतरम् ॥ ४५ ॥ अनुकूलंतुसाभर्तुर्ज्ञात्वागमनमात्मनः ॥ क्षिप्रंप्रमुदितादेवीदातुमेवप्रचक्रमे ॥ ४६ ॥ (ततःप्रविष्टाप्रतिपूर्णमानसायशस्विनीभर्तुरवेक्ष्यभाषितम् ॥ धनानिरत्नानिचदातुमंगनाप्रचक्रमेधर्मभृताम नस्विनी ॥ १ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० अयोध्याकांडेत्रिंशः सर्गः ॥ ३० ॥

कि, तुम अब वनचलनेकी तैयारी करो और दानादि देनेका अनुष्ठान करो हे प्रियतमे ! तुम्हारा संग छोडकर स्वर्गमें बसना भी मुझे नहीं भाता है ॥ ४२ ॥ अब इस समय तुम मांगने वाले ब्राह्मणोंको रत्न आदि और भूखे भिखारियोंको उनके योग्य शीघ्र भोजन दो देर मत करो ॥ ४३ ॥ तुम्हारे बहुमोलके भूषण और अनेक प्रकारके श्रेष्ठ वस्त्र और जो कुछ हमारे तुम्हारे खेलनेकी चीजें हैं वे सब इस समय याचकोंको दे डालो ॥ ४४ ॥ मेरे और अपने शयनकरनेके पदार्थ बिछाने ओढने आदिक और विमान सवारियें इत्यादिक सब विप्रोंको दे दो और उनसे बचे कुचे नौकर चाकरोंको बाँट दो ॥ ४५ ॥ उस समय श्री जानकीजी यह जानकर कि, प्राणपति मुझे वन ले चलनेमें सम्मत हैं बहुत हर्षित हो सब भूषण वसन इत्यादि दान करने लगीं ॥ ४६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० अयोध्याकांडे भाषायां त्रिंशः सर्गः ॥ ३० ॥

जिस समय सीताजीके साथ रामचन्द्रजीकी यह वार्ता हो रहीथीतो उस समय लक्ष्मणजी पहले ही वहां पहुंच गयेथे और दोनोंकी यह सब वार्ता इन्होंने सुनी और श्रवण करते ही इनकी आंखोंसे टप टप आंसू गिरने लगे तब लक्ष्मणजीने बहुत ही कष्टसे शोकके वेगको रोका ॥ १ ॥ वह उस समय भ्राताके चरणोंमें प्रणाम कर और बडी दृढतासे चरण पकड यशस्विनी जनकदुलारी और महाव्रत बडे भाई रामचन्द्रजीसे कहने लगे ॥ २ ॥ * यदि मृग और हाथियोंके विचरण करनेवाले वनमें आपने जाना निश्चय कर ही लिया है तो मैं भी धनुष धारण करके आपके साथ २ चलूँगा ॥ ३ ॥ जहां पतंग और मृगयूथ मधुर स्वरसे अनेक प्रकारके शब्द करते हैं आप उसी रमणीक वनमें मेरे साथ विचरण कीजिये ॥ ४ ॥ मैं आपको छोड करके न देवलोककी चाहना रखता हूं, न

एवं श्रुत्वासंवादंलक्ष्मणः पूर्वमागतः ॥ बाष्पपर्याकुलमुखः शोकंसोढुमशक्नुवन् ॥ १ ॥ सभ्रातुश्चरणौगाढं निपीडचरघुनंदनः ॥सीतामुवाचातिशयांराघवंचमहाव्रतम् ॥ २ ॥ यदिगंतुकृताबुद्धिर्वनंमृगगजायुतम् ॥ अहंत्वाऽनुगमिष्यामिवनमग्रेधनुर्धरः ॥३॥ मयासमेतोऽरण्यानिरयाणि विचरिष्यसि ॥ पक्षिभिर्मृगयूथैश्चसंघुष्टानिसमंततः ॥४ ॥ नदेवलोकाक्रमणंनामरत्वमहंवृणे ॥ ऐश्वर्यंचापिलोकानांकामयेनत्वयाविना ॥ ५ ॥ एवंब्रुवाणःसौमित्रिर्वनवासाय निश्चितः ॥ रामेणबहुभिःसांत्वैर्निषिद्धःपुनरब्रवीत् ॥ ६ ॥ अनुज्ञातस्तुभवतापूर्वमेवयदस्म्यहम् ॥ किमिदानींपुनरपिक्रियतेमेनिवारणम् ॥ ७ ॥ यदर्थंप्रतिषेधोमेक्रियतेगंतुमिच्छतः ॥ एतादिच्छामिविज्ञातुंसंशयोहिममानघ ॥ ८ ॥ ततोऽब्रवीन्महातेजारामोलक्ष्मणमग्रतः ॥ स्थितंप्राग्गामिनंधीरंयाचमानंकृतांजलिम् ॥ ९ ॥ स्निग्धोधर्मरतोधीरःसततंसत्पथेस्थितः ॥ प्रियः प्राणसमोवश्योविधेयश्चसखाचमे ॥ १० ॥

धन सम्पत्तिकी, न अमरत्व अच्छा लगता है; बरन् आपके विना मैं लोकोंके ऐश्वर्य व किसी वस्तुकी इच्छा नहीं करता ॥ ५ ॥ तब रामचन्द्रजीने लक्ष्मणके यह वचन कहने पर और उन्हें वन जानेको तैयार देख बहुत तरहसे समझाया और वन चलनेको मने किया तब फिर लक्ष्मणजी बोले ॥६॥ भाई ! तुमने प्रथम हमें चलनेकी आज्ञा दे दी थी अब क्यों उसका निवारण करते हो॥७॥ जिस कारण कि; मुझे वन जानेसे रोकते हो हे पापरहित! वह मैं जानना चाहता हूं। मुझे बडा सन्देह है कि. तुम अब क्यों रोकते हो ॥ ८ ॥ तब वन जानेको तैयार; धीरभावापन्न, हाथ जोडे खडे हुये लक्ष्मणजीको महातेजस्वी रामचन्द्रजीने रोका और समझाने बुझाने लगे ॥९॥ कि,हे वत्स ! तुम धार्मिकहो, धीरज धरनेवाले हो, अच्छे मार्गपरचलनेवालेहो, और मुझे अपने प्राणोंके समान प्यारेहो, मेरेवशमें

* चौपाई—अति दुःखित हो लखण अधीरा । गहे चरण दोऊ रघुबीरा ॥

हो और मेरे सखाहो ॥१०॥ हे सौमित्रे ! तुम भी यदि आज हमारे साथ वनको चलोगे तब फिर यशस्विनीजननीकौशल्या व सुमित्राजीके प्रतिपालन करनेका भार कौन अपने शिर लेगा ॥११॥ जैसे कि, पृथ्वीसे भाफ निकलता है, उससे मेघ बनते हैं, फिर उसी पृथ्वीपर वह वर्षा करते हैं,वैसेही महा तेजवान् नरनाथ कामके दास वशहो कैकेयीके ऊपर आसक्त हुए हैं इसकारण जो कैकेयी कहैगी पिताजी वही करेंगे फिर हमारी माताओंकी कामना पूर्ण होगी? अर्थात् इनकी कौन सुध लेगा ॥ १२ ॥ केकयराजनन्दिनी कैकेयी यह राज्य जब पालेगी तब महा दुःखित कौशल्यादि सपत्नियोंके साथ बुराईके अति रिक्त भलाई न करेगी और हमारी माताओंको महाक्लेश मिलैगा ॥ १३ ॥ जब भरत राज्य पालेंगे तब वह निश्चयही अपनी माता कैकेयीके वश हो जननी कौशल्या व सुमित्राको सम्पूर्ण रूपसे भूल जायँगे । भला फिर इन विचारियोंकी कौन खबर लेगा ? ॥ १४ ॥ हे भइया ! तुमसे इसी कारणसे कहता हूं कि, तुम

मयाद्यसहसौमित्रेत्वयिगच्छतितद्वनम् ॥ कोभजिष्यतिकौसल्यांसुमित्रांवायशस्विनीम् ॥ ११ ॥ अभिवर्षतिकामैर्यः पर्जन्यःपृथिवीमिव ॥ सकामपाशपर्यस्तोमहातेजामहीपतिः ॥ १२ ॥ साहिराज्यमिदम्प्राप्यनृपस्याश्वपतेःसुता ॥दुःखितानांसपत्नीनांनकरिष्यतिशोभनम् ॥१३॥ नस्मरिष्यतिकौसल्यांसुमित्रांचसुदुःखिताम् ॥ भरतोराज्यमासाद्यकैकेय्यांपर्यवस्थितः ॥१४॥ तामार्यांस्वयमेवेहराजानुग्रहणेनवा ॥सौमित्रेभरकौसल्यामुक्तमर्थममुंचर ॥ १५ ॥ एवंमयिचतेभक्तिर्भविष्यतिसुदर्शिता॥धर्मज्ञगुरुपूजायांधर्मश्चाप्यतुलोमहान् ॥ १६ ॥ एवंकुरुष्वसौमित्रेमत्कृतेरघुनंदन ॥ अस्माभिर्विप्रहीनायामातुर्नोनभवेत्सुखम् ॥१७॥ एवमुक्तस्तुरामेणलक्ष्मणःश्लक्ष्णयागिरा ॥ प्रत्युवाचतदारामंवाक्यज्ञोवाक्यकोविदम् ॥ १८ ॥ तवैवतेजसावीरभरतःपूजयिष्यति ॥ कौसल्यांचसुमित्रांचप्रयतोनास्तिसंशयः ॥ १९ ॥

स्वयं या राजाके अनुग्रहसे, किस प्रकारसे भी हो यहां रहकर माताओंका भरण पोषण करो, हे भाई ! यह मेरा वचन तुमको पूरा करना उचित है ॥१५॥ हे धर्मज्ञ ! इस प्रकारका कार्य करनेसे मेरे प्रति तुम्हारी परम भक्ति प्रकाशित होगी जान रक्खो कि,माता पिता गुरुजनोंकी सेवा करनेसे विशेष धर्म लाभ होता है ॥१६॥ हे वत्स ! तुम हमारे कहनेसे हमारी माताओंके लालन पालन करनेका भार ग्रहण करो, यदि हम भी उनका कुछ ध्यान न कर उनको छोड वनको चले जायँगे तब फिर उनके दुःखकी सीमा नहीं रहेगी ॥ १७ ॥ वाक्यविशारद रामचन्द्रजीने जब इस प्रकार मधुर वचन लक्ष्मणजीसे कहे तब चतुर लक्ष्मणजी विनीत भावसे रामचन्द्रजीसे बोले ॥१८॥ आर्य ! भरतजी आपके प्रतापसे प्रकम्पितहो सदाहीमाताकौशल्या और सुमित्राका प्रतिपालन करेंगे यह

निश्चय है इसमें किसीप्रकारका सन्देह नहीं है ॥१९॥ हे वीर! यदि भरतजी यह राज्यपाकरखोटे रस्तेपर चलें यदि भरतखोटीमति करके गर्वके वशीभूतहो कौशल्या व सुमित्रा माताकी रक्षा व सेवा न करें ॥२०॥ तो मैं उस नीचाशय क्रूरका प्राण अवश्यही संहार करूंगा पिताजीकीतो क्या बात? चाहै त्रिलोकी एकत्रहोकर उनकी ओर खडी होजाय तबभी मैं उनसबको मारडालनेमें किसी प्रकारकी कसर नहीं रक्खूंगा ॥२१॥ जिन्होंने अनुगत नेगचारियोंको असंख्य ग्राम दानकरके देदिये वही हमारी माता कौशल्याजी हम ऐसे हजारों मनुष्योंको विना परिश्रम पालन पोषण कर सकेंगी ॥२२॥ ऐसी अवस्थामें आर्या कौशल्याजी अपने लिये और माता सुमित्राजीके पालन पोषण करनेकेलिये असमर्थ होंगी यह नितान्तही अलीक वार्त्ता है वहअवश्यही अपना और सुमित्राजीका पालन पोषण करनेमें समर्थ हैं ॥२३॥ अतएव यह प्रार्थना है कि, आप हमें अपने साथ वनको लेचलनेकी आज्ञा दीजिये, महाराज! मेरे चलनेसे किसी प्रकारका अधर्म नहीं होगा बरन्

यदिदुःस्थोनरक्षेतभरतोराज्यमुत्तमम् ॥ प्राप्यदुर्मनसावीरगर्वेणचविशेषतः ॥२०॥ तमहंदुर्मतिंक्रूरंवधिष्यामिनसंशयः ॥तत्पक्ष्यानपितान्सर्वांस्त्रैलोक्यमपिकिंतुसा ॥ २१ ॥ कौसल्याबिभृयादार्यासहस्रमद्विधानपि ॥ यस्याःसहस्रंग्रामाणांसंप्राप्तमुपजीविनाम् ॥ २२ ॥तदात्मभरणेचैवममातुस्तथैवच ॥ पर्याप्तामद्विधानांचभरणायमनस्विनाम् ॥ २३ ॥ कुरुष्वमामनुचरंवैधर्म्यंनेहविद्यते ॥ कृतार्थोऽहंभविष्यामितवचाथःप्रकल्प्यते ॥ २४ ॥ धनुरादायसगुणंखनित्रपिटकाधरः॥अग्रतस्तेगमिष्यामिपंथानंतवदर्शयन् ॥ २५ ॥आहरिष्यामितेनित्यंमूलानिचफलानिच ॥ वन्यानिचतथान्यानिस्वाहार्हाणितपस्विनाम् ॥२६॥ भवांस्तुसहवैदेह्यागिरिसानुषुरंस्यते ॥ अहंसर्वंकरिष्यामिजाग्रतःस्वपतश्चते ॥ २७ ॥ रामस्त्वनेनवाक्येनसुप्रीतः प्रत्युवाचतम् ॥ व्रजापृच्छस्वसौमित्रेसर्वमेवसुहृज्जनम् ॥ २८ ॥

इससे मैं तो कृतार्थहोजाऊंगा और आपका हितहोगा, हित यही होगाकि, आप को वनसे तोडकर पुष्प, कंद, मूल फल लादिया करूंगा ॥२४॥ वनके हिंसक जन्तुओंसे रक्षा करनेकेलिये प्रत्यंचा चढाया हुआ धनुष हाथमेंलिये व फलपुष्पादि लेनेके वास्ते एकपिटारी और कुदाल लियेआपके आगे २ मार्ग दिखाताहुआ चलूंगा ॥२५॥ मैं आपके लिये प्रतिदिन तपस्वियोंके भोजन करने योग्य वनसे कंद, मूल, फल ले आया करूंगा ॥२६॥ आप देवी जानकीजीके सहित पर्वतोंके कँगुरोंपर वा कन्दराओंमें विहार करतेरहैं आप जानें कि, मैं जागते सोते सब समयही सब प्रकार आपकीरक्षा करूंगा और सबकार्यआपके साधन करूंगा ॥२७॥ रामचन्द्रजी लक्ष्मणजीके इस प्रकार विनययुक्त वचनसुन अति प्रसन्न हो उनसे बोलेकि, हे भइया! तुम मातासुमित्रा और सब सुहृत्जनोंसे पूछपाछ हमारे

संग वनको चलो ॥२८॥ महात्मा वरुणजीने राजर्षि जनकजीके यज्ञमें प्रसन्न होकर भयानक आकारवाले दो धनुष राजा जनकजीको दियेथे ॥२९॥ व दो अभेद कवच, दो दिव्य तरकस जिनमेंसे चाहे जितने बाण निकालकर छोडे जाओ और वह कभी निबडैंही नहीं और सूर्यकीप्रभाकेसमान चमकतेहुए सुवर्ण को लजानेवाले दो खड्ग ॥३०॥ यह सब अस्त्र शस्त्रादिमहाराज जनकजीने हमें दहेजमें दिये थे व हमने आदरपूर्वक इनको ग्रहण कर गुरुजीके घर उन सबको रखदियाथा हे लक्ष्मण ! इस समय तुम उन सब अस्त्र शस्त्रोंको गुरुजीके घरसे लाकर जल्दी यहां चले आओ ॥३१॥ धनुषधारी लक्ष्मणजीने रामचन्द्रजीकी आज्ञा शिरमाथे चढा वनजानेमें स्थिरमति होकर और जल्दीसे अपने सब सुहृदोंसे बिदालेकी * फिर गुरुजीके यहां जाकर प्रथम कहेसब दिव्यास्त्र लेकररामचंद्र जीके निकट चले आये ॥३२॥ और राजसिंह रामचन्द्रजीको दिव्यमालासुरभित चन्दन अक्षत आदि चढे हुये यह सब अद्भुत आयुध लक्ष्मणजीने दिखलाये

येचराज्ञोददौदिव्येमहात्मावरुणःस्वयम् ॥ जनकस्यमहायज्ञेधनुषीरौद्रदर्शने ॥ २९ ॥ अभेद्यकवचेदिव्येतूणीचाक्षय्यसायकौ ॥आदित्यवि मलाभौद्वौखड्गौहेमपरिष्कृतौ ॥३०॥ सत्कृत्यनिहितंसर्वमेतदाचार्यसद्मनि ॥ सर्वमायुधमादायक्षिप्रमाव्रजलक्ष्मण ॥३१॥ ससुहृज्जनमामंत्र्य वनवासायनिश्चितः ॥ इक्ष्वाकुगुरुमागम्यजग्राहायुधमुत्तमम् ॥३२॥ तद्दिव्यंराजशार्दूलःसत्कृतंमाल्यभूषितम् ॥रामायदर्शयामाससौमित्रिःस र्वमायुधम् ॥३३॥ तमुवाचात्मवान्रामःप्रीत्यालक्ष्मणमागतम् ॥ कालेत्वमागतःसौम्यकांक्षितेममलक्ष्मण ॥३४॥ अहंप्रदातुमिच्छामियदि दंमामकंधनम् ॥ ब्राह्मणेभ्यस्तपस्विभ्यस्त्वयासहपरंतप ॥ ३५ ॥ वसंतीहदृढंभक्त्यागुरुषुद्विजसत्तमाः ॥ तेषामपिचमेभूयःसर्वेषांचोपजी विनाम् ॥ ३६ ॥ वसिष्ठपुत्रंतुसुयज्ञमार्यंत्वमानयाशुप्रवरंद्विजानाम् ॥ अपिप्रयास्यामिवनंसमस्तानभ्यर्च्यशिष्टानपरान्द्विजातीन् ॥३७॥
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० अयोध्याकांडे एकत्रिंशःसर्गः ॥ ३१ ॥

॥३३॥ रामचन्द्रजीनेउन सब अस्त्र शस्त्रोंको देख देखाकर लक्ष्मणजीसे प्रसन्न होकर कहा कि, हे लक्ष्मण ! तुम भले समयपर आये ॥३४॥ हे परंतप ! मेरा जो कुछ धनरत्न आदिहै वह इस समय मैं तुम्हारे सहित ब्राह्मण और तपस्वियोंको दान करूंगा ॥३५॥ मेरे आश्रममें गुरुभक्तिपरायण अनेक ब्राह्मण रहते हैं, उनको और सब नौकरों चाकरोंको धन देना कर्तव्य है ॥३६॥ तुम इस समय द्विजश्रेष्ठ वसिष्ठपुत्रआर्य सुयज्ञको यहांपर लेआओ हमसब उनकी पूजा व द्विजातिगणों का यथाविधि आदर सम्मान पूजा अर्चना कर वनको चले जायँगे ॥३७॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयोध्याकाण्डे भाषायामेकत्रिंशः सर्गः ॥ ३१ ॥

* उस समय सुमित्रा बोलीं ॥ चौ०– तात तुम्हारि मातु बैदेही ॥ पिता राम सब भांति सनेही ॥ जेहि न राम बन लहहिं कलेशू सुतसोइ करहु इहैं उपदेशू ॥ पुत्रवती युवती जग सोई ॥ रघुबर भक्त जासु सुतहोई ॥ जोपै सीय राम बन जाहीं ॥ अवध तुम्हार काज कछु नाहीं ॥ जाहु सुखेन बनहिं बलिजाऊँ ॥ करि अनाथ जन परिजनगाऊँ ॥ दोहा०–भूरिभाग्य भाजन भयउ, मोहि समेत बलि जाउं ॥ जो तुम्हरे मन छांडि छल, कीन रामपद ठाउं ।

तदनन्तर भ्राता रामचन्द्रजीकी हित करनेवाली आज्ञासे लक्ष्मणजी शीघ्रतासे गुरुपुत्र सुयज्ञके आश्रममें गये ॥१॥ वहां पहुँचकर देखा कि ऋषिश्रेष्ठ अग्निहोत्रके गृहमें बैठे पूजाकर रहेहैं तब लक्ष्मणजीने उन्हें प्रणामकर कहा कि हे सखे? भ्राता रामचन्द्र सब राज्याभिषेकको त्यागकर वनको जाते हैं सो उन्होंने आपको बुलाया है आप शीघ्र चलिये देखिये तो सही वह कैसा दुष्कर्म कर रहे हैं ॥२॥ अनन्तर ऋषिश्रेष्ठ सुयज्ञजी यथाविधि संध्यावन्दनादि समाप्त करके लक्ष्मणजीके साथ लक्ष्मीयुक्त रमणीयराम मन्दिरमें पहुँचे ॥३॥ सब वेद वेदान्तके जाननेवाले जलती हुई अग्निके समान दिपते हुये सुयज्ञजीको आये हुये देख जानकीजीके सहित जानकीनाथ हाथ जोड खडे होगये ॥४॥ और जो भूषण मणिजटित सुवर्णके बाजू, कुंडल, जंजीर, मोतियोंकी माला, कंठा, कंकण आदि जो कुछ आप पहरे हुयेथे सब सुयज्ञजीको पहरा दिये ॥५॥ इनके सिवाय और भी बहुत रत्नादिक रामचन्द्रजीने दिये, तब जानकीने रामचन्द्रजीसे कहा कि, आपने तो अपने भूषण

ततःशासनमाज्ञायभ्रातुःप्रियकरंहितम् ॥ गत्वासप्रविवेशाशुसुयज्ञस्यनिवेशनम् ॥१॥ तंविप्रमग्न्यगारस्थंवंदित्वालक्ष्मणोऽब्रवीत् ॥ सखेऽभ्यागच्छपश्यत्वंवेश्मदुष्करकारिणः ॥२॥ ततःसंध्यामुपास्थायगत्वासौमित्रिणासह ॥ ऋद्धसप्राविशल्लक्ष्म्यारम्यंरामनिवेशनम् ॥३॥ तमागतं वेदविदंप्रांजलिःसीतयासह ॥ सुयज्ञमभिचक्रामराघवोऽग्निमिवार्चितम् ॥४॥ जातरूपमयैर्मुख्यैरंगदैःकुंडलैःशुभैः ॥सहेमसूत्रैर्मणिभिःकेयूरैर्वलयैरपि ॥५॥ अन्यैश्चरत्नैर्बहुभिःकाकुत्स्थःप्रत्यपूजयत् ॥ सुयज्ञंसतदोवाचरामःसीताप्रचोदितः ॥६॥ हारंचहेमसूत्रंचभार्यायैसौम्यहारय ॥रशनांचाथसासीतादातुमिच्छतितेसखी ॥७॥ अंगदानिचचित्राणिकेयूराणिशुभानिच ॥ प्रयच्छतिसखीतुभ्यंभार्यायैगच्छतीवनम् ॥८॥ पर्यंकमग्र्यास्तरणंनानारत्नविभूषितम् ॥ तमपीच्छतिवैदेहीप्रतिष्ठापयितुंत्वयि ॥ ९ ॥ नागःशत्रुंजयोनाममातुलोऽयंददौमम ॥ तंतेनिष्कसहस्रेणददामिद्विजपुंगव ॥ १० ॥

सुयज्ञजीको देदिये, मैंभी इनकी स्त्रीको जो कि, मेरी सखी है अपने भूषण दिया चाहतीहूं यह सुन रामचन्द्रजी सुयज्ञजीसे बोले हे सौम्य! तुम अपनी सहधर्मिणीके लिये यह हार माला लेते जाओ मेरेसाथ वनको जानेवाली जानकी यह तुम्हारी स्त्रीको देना चाहती हैं ॥६॥७॥ इसके अतिरिक्त यह चन्द्रहार, यह विचित्र बाजू और बहुत अच्छे केयूर मेखला यह सब अपनी सखी तुम्हारी स्त्रीको देकर मेरे साथ वनको जाना चाहतीहैं सो तुम इन सबको लेते जाओ ॥ ८ ॥ सोनेका पलँगभी जिसके पायोंमें व पाटियोंमें बडे२मोलके हीरे पन्ने आदि जडेहैं वह जिसके ऊपर बडी मोलकी तैयारीका बिछौना बिछा है यहभी जनक कन्या आपको देती हैं. क्योंकि वैसे भूषण पहिरे आपदोनोंइसी प्रकारकी सेजपर सुशोभित होंगे ॥ ९ ॥ हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! हमें हमारे मामाने जो शत्रुंजय नामक हाथी

दियाहै वह तुमको मैं हजार निष्क दक्षिणा देकर दान करताहूं तुम उसको ग्रहण करो ॥१०॥ इस प्रकार जब सुयज्ञजीसे कहागया तबउन ऋषिकुमारने सब धन रत्न ग्रहणकरके प्रसन्न अन्तःकरणसेरामचन्द्रसीता व लक्ष्मणतीनोंजनोंको आशीर्वाददिया ॥११॥ अनन्तर प्रजापति ब्रह्माजीने जिसप्रकार इन्द्रसे कहाथा वैसेही श्रीरामचन्द्रजीने प्यारे बोलने वाले आलस्यरहित प्यारे लक्ष्मणजीसे कहा॥१२॥ हे लक्ष्मण भइया! अबतुम जाकर महर्षि अगस्त्य और विश्वामित्रजीको बुलाकर लेआओ वृष्टि होनेसे जिस प्रकार अन्नकी उत्पत्ति होती है वैसेही तुम धन रत्नादि देकर इनको सुखी करो ॥१३॥ हे महाबाहो! तुम इनको हजार गायें और सोनाचांदी मणि मुक्ता और बहुत धन रत्नादि देकर प्रसन्न करो ॥१४॥ जो ब्राह्मण ज्ञानी कौशल्याजीको नित्य आशीर्वाद दिया करताहै और यजुर्वेदकी तैत्तिरीयशाखाओंका आचार्यहै और सब वेदवेदांतका जाननेवालाहै और नित्य कौशल्याजीको यज्ञकराताहै ॥१५॥ हेलक्ष्मण! तिस ब्राह्मणको रेशमी वस्त्रसवा

इत्युक्तःसतुरामेणसुयज्ञःप्रतिगृह्यतत् ॥ रामलक्ष्मणसीतानांप्रयुयोजाशिषःशिवाः ॥ ११ ॥ अथभ्रातरमव्यग्रंप्रियंरामःप्रियंवदम् ॥ सौमित्रिंतमुवाचेदंब्रह्मेवत्रिदशेश्वरम् ॥ १२ ॥ अगस्त्यंकौशिकंचैवताबुभौब्राह्मणोत्तमौ ॥ अर्चयाहूयसौमित्रेरत्नैसस्यमिवांबुभिः ॥ १३ ॥ तर्पयस्व महाबाहोगोसहस्रेणराघव ॥ सुवर्णरजतैश्चैवमणिभिश्चमहाधनैः ॥ १४ ॥ कौसल्यांचयआशीर्भिर्भक्तःपर्युपतिष्ठति ॥ आचार्यस्तैत्तिरीयाणामभिरूपश्चवेदवित् ॥ १५ ॥ तस्ययानंचदासीश्चसौमित्रेसंप्रदापय॥कौशेयानिचवस्त्राणियावत्तुष्यतिसद्विजः ॥ १६ ॥ सूतश्चित्ररथश्चार्यःसचिवःसुचिरोषितः ॥ तोषयैनंमहार्हैश्चरत्नैर्वस्त्रैर्धनैस्तथा ॥ १७ ॥ पशुकाभिश्चसर्वाभिर्गवांदशशतेनच ॥ येचमेकठकालापाबहवोदंडमाणवाः ॥ १८ ॥ नित्यस्वाध्यायशीलत्वान्नान्यत्कुर्वंतिकिंचन ॥ अलसाःस्वादुकामाश्चमहतांचापिसंमताः ॥ १९ ॥ तेषामशीतियानानि रत्नपूर्णानिदापय ॥ शालिवाहसहस्रंचद्वेशतेभद्रकांस्तथा ॥ २० ॥

रियेंऔर दासदासियों और धनकोदेकर प्रसन्नकरोजिससे वह सन्तुष्ट होजाय॥१६॥ आर्यचित्ररथ जोकि हमारेमंत्री व सारथीहैं और अबबूढ़े होगयेहैं अबउनको बडे२मोलके कपडेगहनेधन और रत्न देकर तृप्त करो॥१७॥ वह हमारे निकट संबंधी कंठ कलाप शाखाओंके पढनेवाले जो सब ब्रह्मचारी हैं तुम उनसबको दश हजार गायें और अनेक प्रकारके यज्ञसम्बन्धी पशु देदो॥१८॥ उन सबको दान देनेका एक मुख्य आशय यही हैकि वह सदा वेद पढा करतेहैंइसकारण और कार्योंके ऊपर वह कुछ ध्यान नहीं देते यद्यपि उनका भिक्षा करनेमें स्वभाव आलसी है किन्तु अच्छे स्वादवाले भोजन करनेको उनकीबडी इच्छारहतीहै उनका तप करना सर्वसम्मत है ॥ १९ ॥ तुम उन सब महात्माओंको रत्नभारसे लदे हुये अस्सी हजार ऊंट बडे २ गाडीमें चलनेवाले एक हजार दोसौ बैल

दे दो॥२०॥ सब प्रकारके अन्न,चना, मूंग आदिके व्यञ्जन बनानेको घी, दधि आदिके लिये बहुत अच्छी बहुतसी गायें देदो व माताकौशल्याजीके पास जो नित्य मेखला पहरे ब्रह्मवादी ब्रह्मचारियोंके समूह रहतेहैं ॥२१॥ हे लक्ष्मण!तुम उनमेंसे प्रत्येकको सहस्र निष्क,सहस्र२गाय देदो और अधिक क्या कहूं जितना दान देनेसे माता कौशल्याजी आनन्दित हों उतना२धन उन सबब्राह्मणोंको देदो॥२२॥ रामचन्द्रजीके यह कहनेपर पुरुषश्रेष्ठ लक्ष्मणजीने स्वयं वहसमस्त धन रत्नादिधनाधिपके समानब्राह्मणोंको देदिये जैसाकि, उनको देना चहिए॥२३॥ जैसे कुबेरकिसीको धनलुटावेजबइस प्रकारसे लक्ष्मणजी सबको धनदेचुके फिर सब बहुतसा धन औरभीनौकरोंचाकरोंको जो कि,आंसू भरे खडेथे॥२४॥ उनको दे उनसे बोलेकि,लक्ष्मणके व हमारे मंदिरमेंजबतक कि, हमवनसे लौटकर नआवें तबतक॥२५॥ तुम रहना इन भवनोंको खाली न पडे रहने देना जितने तुम अब रहते तितनेही रहना जब तक कि, हम वनसे लौटकर घर नआवें. रामचन्द्रजीसे

व्यंजनार्थंचसौमित्रेगोसहस्रमुपाकुरु ॥ मेखलीनांमहसंघःकौसल्यांसमुपस्थितः ॥ २१ ॥ तेषांसहस्रंसौमित्रप्रत्येकंसंप्रदापय ॥ अंबायथानो नंदेच्चकौसल्याममदक्षिणाम् ॥२२॥ तथाद्विजातींस्तान्सर्वाँल्लक्ष्मणार्चयसर्वशः ॥ ततः पुरुषशार्दूलस्तद्धनंलक्ष्मणःस्वयम् ॥ २३ ॥ यथोक्त ब्राह्मणेंद्राणामददाद्धनदोयथा॥ अथाब्रवीद्बाष्पगलांस्तिष्ठतश्चोपजीविनः ॥२४॥ सप्रदायबहुद्रव्यमेकैकस्योपजीवनम्॥लक्ष्मणस्यचयद्वेश्म गृहचयदिदंमम ॥ २५ ॥ अशून्यंकार्यमेकैकंयावदागमनंमम॥ इत्युक्त्वादुःखितंसर्वंजनंतमुपजीविनम् ॥२६॥ उवाचेदंधनाध्यक्षधनमानी यतांमम॥ ततोऽस्यधनमाजह्रुःसर्वमेवोपजीविनः॥२७॥सराशिःसुमहांस्तत्रदर्शनीयोह्यदृश्यत॥ततःसपुरुषव्याघ्रस्तद्धनंसहलक्ष्मणः॥२८॥ द्विजेभ्योबालवृद्धेभ्यःकृपणेभ्योह्यदापयत् ॥ तत्रासीत्पिंगलोगार्ग्यस्त्रिजटोनामवैद्विजः ॥ २९ ॥ क्षतवृत्तिर्वनेनित्यंफालकुद्दाललांगली ॥ तंवृद्धतरुणीभार्याबालानादायदारकान् ॥ ३० ॥

यह वार्त्ता श्रवण कर सब नौकर चाकर दुःखसे रुदन करने लगे॥२६॥ राजकुमार श्रीरामचन्द्रजीने इस प्रकार आदेश देकर खजाञ्चीको सेवक सहित बुला उसे धन लानेके लिये आज्ञादी आज्ञा पातेही खजाञ्चीके सेवक दौड़ गये और थोडीहीदेरमें वहां धनकी राशि लगगई॥२७॥ वह सब देखने योग्य धनके ढेरके ढेर देखकर पुरुषसिंह श्रीरामचन्द्रजी उस धन को लक्ष्मणजीके सहित ॥ २८ ॥ ब्राह्मणोंको, बालकोंको, वृद्धोंको व अतिदीन मनुष्योंको सब देने लगे, उन्हीं दिनोंमें उस देशमें गर्गगोत्री ब्राह्मण जिसका शरीर बिलकुल पीला पड गया था और त्रिजट उसकानामथा ॥ २९ ॥ वह फावडा, कुदाल व हलसे खोदखाद कर अपने दिन व्यतीत करता था तब भी कभी२ उपवास होजाया करता था। उसकी स्त्री पूर्ण युवती थी, परन्तु दरिद्रताके दुःखसे बहुतही दुबली होगई थी

उसने जब सुना कि, रामचन्द्रजी बहुत धन बाँट रहेहैं तब बालकोंको संग लेकर ॥ ३० ॥ उसकी स्त्री देवता स्वरूप अपने स्वामीसे बोली कि, स्त्रियोंके स्वामीही देवता होते हैं इस कारण तुम भी मेरा वचन मानो कि, तुम फावडा और कुदाडी तो फेंकदो जो मैं कहूं उसको ध्यान लगाकर सुनो ॥३१॥ कि, यदि इस समय तुम रामचन्द्रराजकुमारके पास जाओगे तो अवश्यही थोडा बहुत धन तुम्हारे हाथ लगेगा, वह ब्राह्मण अपनी स्त्रीसे ऐसा सुनकर एक बहुत फटे दुपट्टेसे अपने शरीरको ढक ॥ ३२ ॥ राममन्दिरकी ओर चला उसका तेज अंगिरा और भृगु ऋषिके समान था, वह त्रिजट रामचन्द्रजीके पासको गमन करने लगा ॥ ३३ ॥ पांच ड्योढियोंके पार होगया परन्तु किसीने उस जाते हुयेको नहीं रोका अनन्तर ब्राह्मण श्रेष्ठ त्रिजट रामचन्द्रजीके समीप पहुँचा और बोला॥३४॥ कि, हे राजकुमार महाबली! मैं बहुतही दरिद्र हूं और बालबच्चे मेरे कई एक हैं ब्राह्मणोंके कुलमें उत्पन्नहोकर मुझको खेतीवाडी करके जीविका

अब्रवीद्ब्राह्मणंवाक्यंस्त्रीणांभर्ताहिदेवता ॥ अपास्यफालंकुद्दालंकुरुष्ववचनंमम ॥ ३१ ॥रामंदर्शयधर्मज्ञंयदिकिंचिदवाप्स्यसि ॥ सभार्यायावचःश्रुत्वाशाटीमाच्छाद्यदुश्छदाम् ॥ ३२ ॥ सप्रातिष्ठतपंथानंयत्ररामनिवेशनम् ॥ भृग्वंगिरःसमंदीप्त्यात्रिजटंजनसंसदि ॥ ३३ ॥आपंचमायाःकक्ष्यांयानैनंकश्चिदवारयत् ॥ सराममासाद्यतदात्रिजटोवाक्यमब्रवीत् ॥३४॥ निर्धनोबहुपुत्रोऽस्मिराजपुत्रमहाबल ॥ क्षतवृत्तिर्वनेनित्यंप्रत्यवेक्षस्वमामिति ॥ ३५ ॥ तमुवाचततोरामः परिहाससमन्वितम् ॥ गवांसहस्रमप्येकंनचविश्राणितंमया ॥ ३६ ॥ परिक्षिपसिदंडेनयावत्तावदवाप्स्यसि ॥ सशाटींपरितःकट्यांसभ्रांतःपरिवेष्ट्यताम् ॥ ३७ ॥ आविध्यदंडंचिक्षेपसर्वप्राणेनवेगतः ॥ सतीर्त्वासरयूपारदंडस्तस्यकराच्च्युतः ॥३८॥ गोव्रजेबहुसाहस्रपपातोक्षाणसन्निधौ ॥ तपरिष्वज्यधर्मात्माआवाप्यसरयूतटात ॥ ३९ ॥ आनयामासतागावस्त्रिजटस्याश्रमंप्रति ॥ उवाचचतदारामस्तंगार्ग्यमभिसांत्वयन् ॥ ४० ॥

करनी पडती है, अतएव यही प्रार्थना है कि, मेरे ऊपर कृपा करिये॥३५॥ रामचन्द्रजी उस ब्राह्मणकी ऐसी वार्त्ता सुन हँसकर बोले कि, हे विप्रवर ! हमारे पास असंख्य गायें हैं सो अभी तो उनमेंसे एक हजार भी नहीं बाँटी गई हैं ॥ ३६ ॥ इस समय तुम जहाँतक यह अपना डंडा फेंक सकोगे वहाँ तकके घरमें जितनी गायें होंगी मैं वह सबही तुमको देदूंगा, यह सुनकर त्रिजट ब्राह्मणने तुरंत अपना फटाचादरा कमरमें बाँध ॥ ३७ ॥ और डंडा हाथमें ले और उसको अपने पूरे बलके साथ घुमाकर फेंका उसके हाथसे फेंका हुआ डंडा देखते२ सरयू नदीके दूसरी पारगिरा॥३८॥ जहां बहुतसी हजारों गायों व बैलोंका गोठ इकट्ठा था यह देखकर धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजीने उसे हृदयसे लगाया और सरयूके किनारेकी॥३९॥ जितनेमें सब सजी सजाईगायेंथीं उन सबको त्रिजटके

पास उसके आश्रममें भेजदीं और उसब्राह्मणको छातीसे लिपटाय लिया और उस गार्ग्यको समझाते हुये बोले॥४०॥ हेब्राह्मण श्रेष्ठ ! तुमकुछ हमपरक्रोध न करना मैंने डंडा फेंकनेकोजो कहाथा वह तो केवल हँसी थी॥४१॥ तुममें दूरतक डंडा फेंकनेकी शक्तिहै या नहीं इसकीही परीक्षा करनेको मैंने तुमसे यह कार्य करायाथा अब यह पूछताहूं कि, इतनी गायें तो तुम्हारे स्थानमें पहुँच गईं, अब इन गायोंके सिवाय जो कुछ और चाहिये सो मुझसे कहो ॥४२॥ मैं सत्यही कहताहूं कि, तुम इस बातमें कुछभी शोचसंकोच न करो मैं जितने धन सम्पत्तिका अधिकारीहूं यदि वह तुमसरीखे ब्राह्मणोंको देदिया जाय, तब तो मेरे यशकी सीमा न रहेगी, धन दान करनेसे ही सफल होता है न कि, गाड देनेसे॥४३॥ तब द्विजश्रेष्ठ त्रिजट अपनीस्त्री और बालकोंसमेत प्रमुदित मनसे और भी असंख्य धेनु ग्रहण करके बल, यश, प्रीति और सुखकी वृद्धिके हेतु रामचन्द्रजीको बहुत ही आशीर्वाद देताहुआ चला गया ॥४४॥ त्रिजटके चले जानेपर प्रबल पौरुष रामचन्द्रजी

मन्युर्नखलुकर्तव्यःपरिहासोह्ययंमम॥४१॥ इदंहितेजस्तवयद्दुरत्ययंतदेवजिज्ञासितुमिच्छतामया ॥ इदंभवानर्थमभिप्रचोदितोवृणीष्वकिंचेदप रंव्यवस्यसि॥४२॥ ब्रवीमिसत्येननतेस्मयंत्रणाधनंहियद्यन्ममविप्रकारणात् ॥ भवत्सुसम्यक्प्रतिपादनेनमयार्जितंचैवयशस्करंभवेत् ॥४३॥ ततःसभार्यस्त्रिजटोमहामुनिर्गवामनीकंप्रतिगृह्यमोदितः॥यशोबलप्रीतिसुखोपबृंहिणीस्तथाशिषःप्रत्यवदन्महात्मनः॥४४सचापिरामःप्रतिपूर्ण पौरुषोमहाधनंधर्मबलरुपार्जितम् ॥ नियोजयामाससुहृज्जनेचिराद्यथार्हसंमानवचःप्रचोदितः॥४५॥ द्विजःसुहृद्भृत्यजनोऽथवातदादरिद्रभि क्षाचरणश्चयोभवेत् ॥ नतत्रकश्चिन्नबभूवतर्पितोयथार्हसंमाननदानसंभ्रमैः ॥४६॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० अयोध्याकांडेद्वात्रिंशःसर्गः॥३२॥दत्त्वातुसहवैदेह्याब्राह्मणेभ्योधनंबहु॥जग्मतुःपितरंद्रष्टुंसीतयासहराघवौ ॥१॥ ततोगृहीतेप्रेष्याभ्यामशोभे तांतदायुधे॥मालदामभिरासक्तेसीतयासमलंकृते॥२॥ततःप्रासादहर्म्याणिविमानशिखराणिच॥अभिरुह्यजनःश्रीमानुदासीनोव्यलोकयत्॥३॥

अपने धर्म व बलसे इकट्ठा किया हुआ धन रत्नादिक ब्राह्मण व सुहृदोंको नौकर चाकरोंको और मँगताओंको आदर सहित दान करनेलगे ॥ ४५ ॥ उन श्री रामचन्द्रजीके दान देनेको कहांतक वर्णनकिया जाय कि, जितने ब्राह्मण, जितनेसुहृद, जितने नौकर चाकरथे औरजितने फकीर फुकरेथे सब ही मनमाना धन और आदर पाकर परम प्रसन्न होगये, वहांपर ऐसा कोई नहीं था जिसका भली भांति दान सन्मानसे आदर न किया गया हो ॥ ४६ ॥ इत्यर्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयोध्याकांडे भाषायां द्वात्रिंशः सर्गः ॥ ३२ ॥ अनन्तर रामचन्द्रजी व लक्ष्मणजी समस्तधन समस्त ब्राह्मणादिकोंको दानकर सीताजीको संगले पिताजीके दर्शन करनेको चले॥१॥ देवी सीताजीनेअपने हाथसे जो सबअस्त्र,माला चन्दनादिद्वारा सजाये थे उनको उठा कर दासियोंको दिये उन सब कोदो परिचारिका हाथमें लेकर रामचन्द्रजीके पीछे२चलीं ॥२॥ उस समय सबमनुष्य मार्गमेंजातेहुए रामचन्द्रजीको धवरहर व अटारियों और विमानों

पर बैठ २ दीननेत्र और निरुत्साह मनसे देखने लगे ॥३॥ भीडके मारे राजमार्गमें चलना फिरनाबहुतही कठिन हुआ इसी कारणसे दीन जन धवरहरआदिक ऊंचे स्थानोंपर चढकर रामचन्द्रजीको देखते थे ॥४॥ उस समय रामचन्द्रजीको छोटे भाई लक्ष्मण और प्राणसम प्रिया जानकीके सहित पैदल जाते देखकर सब मनुष्य शोकसे व्याकुल होकर कहने लगे॥५॥जिन रामचन्द्रजीके कहींजानेके समय चतुरङ्गिनी सेना साथ जातीथी, वही सीताजीके सहित पैदल इकले चलेजा रहे हैं और पीछे २ उनके लक्ष्मणजी जाते हैं॥६॥ जो रामचन्द्रजी सबऐश्वर्यके सुखोंके जाननेवाले और विलासके आकरस्थान और सबअर्थोंकी कामना पूर्ण करनेवाले हैं वहीं आज धर्मकी प्रतिष्ठासे बँधकर पिताके वचनोंको नहीं तोड सकते ॥७॥ जिन सीताजीको आकाशमें रहनेवाले प्राणिजनभी नहीं देखते थे हाय ! आज उनको राजमार्गमें जानेवाले अनाथ सबके समान देखते हैं ॥८॥ जो जानकीजी सदा अंगराग और लाल चन्दनादि सुगन्धित वस्तुयें अपनेशरीरमें

नहिरथ्याःसशक्यंतेगंतुंबहुजनाकुलाः ॥ आरुह्यतस्मात्प्रासादाद्दीनाःपश्यंतिराघवम् ॥४॥ पदातिंसानुजंदृष्ट्वाससीतंचजनास्तदा॥ऊचुर्बहुजनावाचःशोकोपहतचेतसः ॥ ५ ॥ यंयांतमनुयातिस्मचतुरंगबलंमहत् ॥ तमेकंसीतयासार्धमनुयातिस्मलक्ष्मणः ॥ ६ ॥ ऐश्वर्यस्यरसज्ञःसन्कामानांचाकरोमहान् नेच्छत्येवानृतंकर्तुंवचनंधर्मगौरवात् ॥ ७ ॥ यानशक्यापुराद्रष्टुंभूतैराकाशगैरपि ॥ तामद्यसीतांपश्यंतिराजमार्गगताजनाः ॥ ८ ॥अंगरागोचितांसीतांरक्तचंदनसेविनीम् ॥ वर्षमुष्णंचशीतंचनेष्यत्याशुविवर्णताम् ॥ ९ ॥ अद्यनूनंदशरथःसत्त्वमाविश्यभाषते ॥ नहिराजाप्रियंपुत्रंविवासयितुमर्हति ॥ १० ॥ निर्गुणस्यापिपुत्रस्यकथंस्याद्विनिवासनम् ॥ किंतुनर्यस्यलोकोऽयंजितोवृत्तेनकेवलम् ॥ ११ ॥ आनृशंस्यमनुक्रोशःश्रुतंशीलंदमःशमः ॥ राघवंशोभयंत्येतेषड्गुणाःपुरुषर्षभम् ॥ १२ ॥ तस्मात्तस्योपघातेनप्रजाःपरमपीडिताः ॥ औदकानीवसत्त्वानिग्रीष्मेसलिलसंक्षयात् ॥ १३ ॥

लगाती थीं; अब उनकोही ग्रीष्मकी गरमी वर्षाकी जलधारा और दुःसह शीतका कोप पीला करदेगा ॥९॥ हमारी समझमें ऐसा आता है कि, महाराज दशरथजीको तो निश्चयही भूत पिशाच लगा है, यदि ऐसा न होता तो प्राणोंसे प्यारे बुढौतीमें पाये हुए प्रिय पुत्रको वनवास क्यों देते ?॥१०॥ भइया! आश्चर्य्य है! कि जिन रामचन्द्रजीके आचरणोंकी सब एक वाणीसे प्रशंसा करते हैं उनकी बात तो एक ओर रही कोई निर्गुण पुत्रकेभी साथ ऐसा निठुर व्यवहार नहीं करता ॥ ११ ॥ अहिंसाकरना, दयाकरना, भलीभांति शास्त्रोंकापढना, सुशीलता, इन्द्रियोंको अपने वशमें रखना, शान्तचित्त रहना, यह छओं गुणपुरुषश्रेष्ठ रामचन्द्रजीमें विद्यमान हैं॥१२॥ हम यह भलीभांति जानते हैं कि, ऐसे श्रीरामचन्द्रजीके वन जानेसे जिस प्रकार प्रबलगरमीके तापसे तालावका पानी सूखजानेपर उसमें

जलजीव नहीं रह सकते वैसेही विना रामचन्द्रजीके प्रजा बहुत दुःखी होगी ॥ १३ ॥ जगत्पति रामचन्द्रजीके वनवाससे सबहीको दुःख होगा । जिस प्रकार जड कटजानेसे फल फूल पत्तेसूखजाते हैं सोही अवस्था सारी प्रजाकी रामचन्द्रके विना होगी ॥१४॥ धार्मिक चूडामणि महा कान्तिमान् महात्मा रामचन्द्रजी ही तो सब मनुष्योंके मूल हैं व और दूसरे सब मनुष्य फूल फल पत्ते व शाखा हैं॥१५॥ अतएव लक्ष्मणजी जिस प्रकार साथ जाते हैं, हम भी सब जहां रामच न्द्रजी जायँगे वहींपर गमनकरेंगे क्योंकि पेडकी जड विना फूल पत्ते किसप्रकार रह सक्ते हैं? ॥१६॥ हम सबको रमणीय फुलबाडी, खेत और घरका कुछ प्रयो जन नहीं है, हम इन सबको छोडछाडकर धार्मिक रामचन्द्रजीके दुःखमें दुःखी, सुखमें सुखी रहकर उनके ही साथ चले जायँगे ॥१७॥ अब जितना हमारा जो सबधन आदि पृथ्वीमेंगडा रक्खा है वह उखडजावे, स्थान गायधनधान्यादि सर्वशः छीन लिये जायँ ॥१८॥ गृहके सब देवता भी घरको छोड जावें; घरमें

पीडयापीडितंसर्वंजगदस्यजगत्पतेः ॥ मूलस्यैवोपघातेनवृक्षःपुष्पफलोपगः ॥ १४ ॥ मूलह्येषमनुष्याणांधर्मसारोमहाद्युतिः ॥ पुष्पंफलंच पत्रंचशाखाश्चास्येतरेजनाः॥१५॥तेलक्ष्मणइवक्षिप्रंसपत्न्यसहबांधवाः॥ गच्छंतमनुगच्छामोयेनगच्छतिराघवः ॥१६॥उद्यानानिपरित्यज्यक्षे त्राणिचगृहाणिच ॥ एकदुःखसुखाराममनुगच्छामधार्मिकम् ॥ १७ ॥समुद्धृतनिधानानिपरिध्वस्ताजिराणिच॥ उपात्तधनधान्यानिहृतसारा णिसर्वशः ॥१८॥ रजसाभ्यवकीर्णानिपरित्यक्तानिदैवतैः मूषकैःपरिधावद्भिरुद्बिलैरावृतानिच ॥१९॥ अपेतोदकधूमानिहीनसंमार्जनानिच॥ प्रनष्टबलिकर्मेज्यामंत्रहोमजपानिच ॥ २० ॥ दुष्कालेनेवभग्नानिभिन्नभाजनवंतिच ॥ अस्मत्त्यक्तानिकैकेयीवेश्मानिप्रतिपद्यताम् ॥ २१ ॥ वनंनगरमेवास्तुयेनगच्छतिराघवः ॥ अस्माभिश्चपरित्यक्तंपुरंसंपद्यतांवनम् ॥ २२ ॥ बिलानिदंष्ट्रिणःसर्वेसानूनिमृगपक्षिणः ॥ त्यजंत्वस्मद्भ याद्भीतागजाःसिंहावनान्यपि॥ २३ ॥अस्मत्त्यक्तंप्रपद्यंतुसेव्यमानंत्यजंतुच ॥ तृणमांसफलादानंदेशंव्यालमृगद्विजम् ॥२४॥

सबही जगह धूल छाई हो और कूडाकर्कट पडाहो, चूहे इधर उधर कलाबत्तियें खाते हों और सब जगह भट्टकबिल होजाय ॥१९॥ जलका नाम नहीं रहेगा व धुआं हीन विना बुहारे बटोरे बलिवैश्वदेव यज्ञहीन मंत्र होम जपादि शून्य ॥ २० ॥ अकाल पडनेके समान टूटे फूटे घर और हमारे टूटे फूटे बर्त्तन भाजन और अनेक प्रकारके उत्पात प्रगट होंगे हमसब लोग जब इस पुरीको छोडकर चले जायँगे तब कैकेयी ऐसी पुरीका राज्य करेगी ॥ २१ ॥ हमारी भगवान्से यही प्रार्थना है कि, हे नारायण ! जिस वनमें रामचन्द्रजी जायँ वहां तो नगरवसजाय और हमारी यह छोडी हुई अयोध्यापुरी वन होजाय ॥ २२ ॥ सर्पगण हमारे डरसे डरकर अपने२ बिल, मृगपक्षीगण पडाडोंकी चोटी और हाथी व शेरवनभूमिको छोडदें ॥२३॥ हमसब जिसस्थानको छोडे जातेहैं वह सबमृगपक्षी

गणआदिकयहांआकर अधिकार करें तृणमांसफलादिहीन वन होजाय देशमेंठौर २ सर्प पक्षी व मृगगण विचरण करें ॥ २४ ॥ हम इस समयमनकी प्रसन्नतापूर्वक घरवारको छोड रामचन्द्रजीके संग वनवास करेंगे कैकेयी पुत्र और अपने बन्धु बान्धवों सहित इस पुरीका पालन करती रहे ॥२५॥ यद्यपि रामचन्द्रजीने यह और भी अनेक प्रकारकी बातें नगरवासियोंके मुखसे सुन तथापि उनका मन चलायमान नहीं हुआ और न उन्होंने कुछशोकही किया ॥२६॥ धर्मात्मा महाराजा रामचन्द्रजीक्रम २ से मतवालेहाथीके समान विक्रमवाली चालसे कैलास पहाडके समान पिताजीके भवनकी ओर जाने लगे ॥२७॥ भवनके द्वारपर विनीत पुरुष पहरेदारी कररहेथे । रामचन्द्रजी उनके पास होतेहुए आगे बढे तब थोडीही दूरपर दीन दशाको प्राप्त हुये सुमंत्रजीको देखा॥२८॥ रामचन्द्रजी

प्रपद्यतांहिकैकेयीसपुत्रासहबांधवैः ॥ राघवेणवयंसर्वेवनेवत्स्यामनिर्वृताः ॥२५॥ इत्येवंविविधावाचोनानाजनसमीरिताः ॥ शुश्रावराघवःश्रुत्वानविचक्रेऽस्यमानसम् ॥२६॥ सतुवेश्मपुनर्मातुःकैलासशिखरप्रभम् ॥ अभिचक्रामधर्मात्मामत्तमातंगविक्रमः ॥ २७ ॥ विनीतवीरपुरुषंप्रविश्यतुनृपालयम् ॥ ददर्शावस्थितंदीनंसुमंत्रमविदूरतः ॥ २८ ॥ प्रतीक्षमाणोऽभिजनंतदार्तमनार्तरूपःप्रहसन्निवाथ ॥ जगामरामःपितरंदिदृक्षुःपितुर्निदेशंविधिवच्चिकीर्षुः ॥२९॥ तत्पूर्वमैक्ष्वाकसुतोमहात्मारामोगमिष्यन्नृपमार्तरूपम् ॥ व्यतिष्ठतप्रेक्ष्यतदासुमंत्रंपितुर्महात्माप्रतिहारणार्थम् ॥ ३० ॥ पितुर्निदेशेनतुधर्मवत्सलोवनप्रवेशेकृतबुद्धिनिश्चयः ॥ सराघवःप्रेक्ष्यसुमंत्रमब्रवीन्निवेदयस्वागमनंनृपायमे ॥३१॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० अयोध्याकांडे त्रयस्त्रिंशःसर्गः ॥३३॥

विधिपूर्वक पिताजीकी आज्ञा पालन करनेके लिये वनके जानेको तैयारहो प्रसन्नमनसे हँसते हुयेसे पिताके चरणारविन्द दर्शन करनेकी आशासे द्वारपर उपस्थित हुए वहांपर देखा तो सबही नौकर चाकर व दूसरे आदमी बहुतही दुःखित थे ॥ ॥ २९॥ धर्मवत्सल रामचन्द्रजी पिताके सत्य पालनेको स्थिर निश्चय होकर उनके चरणोंमें बिदा लेनेकी आशासे द्वारपर उपस्थित हुये और सुमंत्रकोपासही देखकर उनसे बोले कि, हमारेआनेका समाचार पिताजीसे कह दो यहबोले ॥ ३० ॥ उनसे कह दो कि, धर्मवत्सल धीर धारण करनेवाले रामचन्द्रजी पिताजीकी आज्ञा माननेमें तत्परहो वनजानेको तैयार हैं, ऐसा हमारे पितासे कहदो यह बात रामचन्द्रने सुमंत्रसेकही ॥ ३१ ॥ इत्यार्षे० श्रीमद्रा० वा० आदि० अयोध्याकांडे० भाषायां त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३३ ॥

अनन्तर कमलपत्रके समान नेत्रवाले श्यामअंग जिनपर कोई उपमाही न लगे ऐसेश्रीरामचन्द्रजीने सुमंत्रकोबुलाकरकहाकि, तुमजाकर हमारे आनेका समाचार पिताजीसे कहो॥१॥ सुमंत्रजी रामचंद्रजीके यह वचन सुन शोकसे व्याकुल हो शीघ्रतासे राजाके पासगये और देखाकि, महाराज दशरथजी शोकसे व्याकुल हो औंधी सांसैं लेरहे हैं ॥२॥ उस समय महाराज दशरथजीकी दशा राहुग्रस्त सूर्यकी नाईंराखसे ढकी अग्निकी नाईं व जलहीन तडागकी नाईं थी॥३॥ महा पंडित सुमंत्रजीने रामचन्द्रजीका समाचारजनातेहुये रामचन्द्रजीके दुःखसे विलाप करते हुये महाव्याकुल महाराज दशरथजीसे हाथ जोडकर कहा ॥४॥ प्रथम सुमंत्रने (जयजीव) ऐसा महाराज दशरथजीसे कहा; फिरमारे भयके बहुत उदास हो धारे२ मधुरवाणीसे बोले॥५॥ हे महाराज पुरुषसिंह! आपके पुत्र श्रीराम चन्द्रजी ब्राह्मणों और नौकर चाकरोंको धन देदिवाकर आपके दर्शनकी आशा लगाये द्वारपर खडे हैं॥६॥ सत्य पराक्रम रामचन्द्रजीने सुहृद् व औरभी सब

ततःकमलपत्राक्षःश्यामोनिरुपमोमहान् ॥ उवाचरामस्तंसूतंपितुराख्याहिमामिति ॥ १ ॥ सरामप्रेषितःक्षिप्रंसंतापकलुषेंद्रियम् प्रविश्यनृपतिंसूतोनिःश्वसंतंददर्शह ॥२॥ उपरक्तमिवादित्यंभस्मच्छन्नमिवानलम् ॥ तटाकमिवनिस्तोयमपश्यज्जगतीपतिम् ॥३॥ आबोध्यचमहाप्राज्ञःपरमाकुलचेतनम् ॥राममेवानुशोचंतसूतःप्रांजलिरब्रवीत् ॥४॥ तंवर्धयित्वाराजानंपूर्वंसूतोजयाशिषा ॥ भयविक्लवयावाचामंदयाश्लक्ष्णयाब्रवीत् ॥५॥अयंसपुरुषव्याघ्रोद्वारितिष्ठतितेसुतः॥ ब्राह्मणेभ्योधनंदत्त्वासर्वंचैवोपजीविनाम् ॥६॥ सत्वांपश्यतुभद्रंतेरामःसत्यपराक्रमः ॥ सर्वान्सुहृदआपृच्छ्चत्वांहीदानींदिदृक्षते ॥७॥ गमिष्यतिमहारण्यंतंपश्यजगतीपते ॥वृतंराजगुणैःसर्वैरादित्यमिवरश्मिभिः॥८॥ससत्यवाक्योधर्मात्मागांभीर्यात्सागरोपमः ॥ आकाशइवनिष्पंकोनरेंद्रःप्रत्युवाचतम् ॥९॥सुमंत्रानयमेदारान्येकेचिदिहमामकाः ॥ दारैःपरिवृतः सर्वैर्द्रष्टुमिच्छामिराघवम् ॥१०॥ सोऽन्तःपुरमतीत्यैवस्त्रियस्तावाक्यमब्रवीत् ॥ आर्योह्वयतिवोराजागम्यतांतत्रमाचिरम् ॥ ११ ॥

वन्धु बान्धवोंसे बिदालेली हैं, अब इस समय आपके चरणारविन्दमें बिदा ग्रहण करनेके कारण उनका यहां आना हुआहै सो तुम्हें देखना चाहते हैं॥७॥सूर्य भगवान् जिस प्रकारअपनीकिरणोंसे सुशोभितरहतेहैं वैसेही श्रीरामचन्द्रजीविविधभांतिके राजगुणोंसेशोभित होकरशोभा पारहेहैं वहअबशीघ्रही महावनको जाना चाहते हैं यदि आज्ञा हो तो यहां आकर वह आपके दर्शन करें ॥८॥ तब समुद्रके समान गंभीरतावाले आकाशके समान निर्मल सदासत्य कहनेवाले राजा दशरथजी सुमंत्रसे बोले ॥९॥ हे सुमंत्र ! हमारी जितनी और सबरानियेहैं तुम सबसे पहले उनसबकोयहां बुलालाओ। अबहम सब रानियोंकेसाथ मिलकर प्राणप्यारे दुलारे पुत्र रामचन्द्रका मुखचन्द्र देखेंगे ॥१०॥ राजाकीआज्ञापातेही सुमंत्रजी रनवासमें प्रवेशकरतेहुये और सब रानियोंसे "हे श्रेष्ठो ! राजाजीआप

सबको बुलाते हैं इससे जल्दीही वहां चलिये" यहबोले॥११॥ सुमंत्रजीके मुखसे वचनसुनकर वह सब महारानियें स्वामीकी आज्ञासे महाराजके निकटजानेको तैयार हुईं ॥१२॥वह सब पतिव्रत धारण करनेवाली दुःखसे जिनकी आंखें लाल होगई हैं ३५० तीनसौपचास रानियें महारानी कौशल्याजीकोआगेकरवहां गई जहां कोपभवनमें कैकेयीके साथ राजा पडेथे ॥१३॥ उन सब रानियोंको आईहुई देख महाराज दशरथजीने सुमंत्रजीसे यह कहाकि "हमारे पुत्र रामको यहां ले आओ" ॥१४॥ आज्ञापातेही सुमंत्रजी, सीता लक्ष्मण सहित रामचन्द्र जीको लेकर राजाके समीप आ पहुँचे॥१५॥ हाथजोडे हुये श्रीरामचन्द्रजीको आते हुये देख अपनी सब दुःखित स्त्रियोंके साथ राजा आसनपरसे उठ खडे हुये ॥ १६ ॥ व अपने पुत्र रामचन्द्रको देख उनको हृदयसे लगानेके लिये बडी शीघ्रतासे महाराज दशरथजी दौडे परन्तु मारे दुःखसे विह्वल तो होई रहेथे व सामर्थ्यहीन हो रहेथे,इस कारण मूर्च्छा आगई बीचही में गिर पडे ॥ १७ ॥

एवमुक्ताः स्त्रियां सर्वाःसुमंत्रेणनृपाज्ञया ॥प्रचक्रमुस्तद्भवनंभर्तुराज्ञायशासनम् ॥१२॥ अर्धसप्तशतास्तत्रप्रमदास्ताम्रलोचनाः कौसल्यांपरि वार्याथशनैर्जग्मुर्धृतव्रताः ॥ १३ ॥ आगतेषुचदारेषुसमवेक्ष्यमहीपतिः ॥ उवाचराजातंसूतंसुमंत्रानयमेसुतम् ॥ १४ ॥ससूतोराममादायल क्ष्मणंमैथिलीन्तथा॥जगामाभिमुखस्तूर्णंसकाशंजगतीपतेः ॥१५॥ सराजापुत्रमायांतंदृष्ट्वाचारात्कृतांजलिम् ॥ उत्पपातासनात्तूर्णमार्तः स्त्री जनसंवृतः ॥ १६ ॥ सोऽभिदुद्राववेगेनरामंदृष्ट्वाविशांपतिः ॥ तमसंप्राप्यदुःखार्तः पपातभुविमूर्च्छितः ॥ १७ ॥ तंरामोऽभ्यपतत्क्षिप्रंलक्ष्मण श्चमहारथः ॥विसंज्ञमिवदुःखेनसशोकंनृपतिंतदा॥१८॥ स्त्रीसहस्रनिनादश्चसंजज्ञेराजवेश्मनि ॥ हाहारामेतिसहसाभूषणध्वनिमिश्रितः॥१९॥ तंपरिष्वज्यबाहुभ्यांतावुभौरामलक्ष्मणौ ॥ पर्यंकेसीतयासार्धंरुदतःसमवेशयन् ॥२०॥ अथरामो मुहूर्तस्यलब्धसंज्ञंमहीपतिम्॥उवाचप्रांज लिर्बाष्पशोकार्णवपरिप्लुतम् ॥ २१ ॥ आपृच्छेत्वांमहाराजसर्वेषामीश्वरोऽसिनः ॥ प्रस्थितंदंडकारण्यंपश्यत्वंकुशलेनमाम् ॥ २२ ॥

तब उस समय महारथीलक्ष्मणजीने और धार्मिकरामचन्द्रजीने शोकसेव्याकुलहो मूर्च्छा प्राप्तहुये राजाकोपृथ्वीपरसे उठाया उससमय पृथ्वीनाथको अपनीकुछसुध नहींथी ॥ १८ ॥ उस समय गहनोंकी झनकारके सहित हजारों स्त्रियें जोकि रनवासमेंथीं उनका हाहाकार शब्द महाराजकी पुरीमें फैलगया सबही कोई "हा राम" यह बोल बोलकर रोने लगे ॥१९॥ तबलक्ष्मण और सीताजीने आंखोंमें आंसू भरके मूर्च्छा प्राप्त महाराज दशरथजीको हाथ पकड व उठाकर पलँगमें लेजाकर बैठाया ॥ २० ॥ थोडी देरके बाद राजाकी मूर्च्छाजागी तब श्रीरामचन्द्रजी हाथ जोडकर शोकके समुद्रमें पडे औररुदनकरतेहुये महाराजदशरथ जीसे बोले ॥ २१ ॥ हे महाराज ! मैं वनके जानेको सर्वथा तैयार हो गयाहूं सो आपहमारे वसबहीके मालिकहैंइसकारण मैं आपसे आज्ञा विदा होनेकी चाह

ताहूँसोआप कृपादृष्टि उठाकर हमारी ओर एक बार देखतो लीजिये ॥२२॥ यद्यपि मैंने अनेक प्रकारसे वनके दुःख कहकर सुनाये व औरभी बहुतसे कारण दिखाये और लक्ष्मण सीताको वनमें अपने साथ नहीं लेजाना चाहा परंतु उन सब बातोंकोभी यह दोनोंजने सुनकर मेरे संग वन जानाही चाहतेहैं ॥ २३ ॥ प्रजापति ब्रह्माजीने जिसभांति सनकादिक अपने पुत्रोंको तपकरनेकी आज्ञादीथी वैसेही उनके समान हम तीनों जनोंको आप वनजानेकीआज्ञा दीजिये और वृथा शोकके अधीनहोकर इसका त्याग कीजिये ॥२४॥ तब राजा दशरथजी व्यग्रता रहित अपने पुत्रको आज्ञा परखते देख उनके ऊपरदृष्टि डालकर बोले ॥२५॥ हे प्राण प्यारे रामचन्द्र! मैंने तो मोहितहोकर कैकेयीको वरदिया है अब मैं तुम्हें क्योंकर वन जानेको कहूं अतएव अबतुम मुझको तो पकडकर बन्दी करो और तुम अयोध्याके राजसिंहासनपर बैठ यहांके राजावनो ॥ २६ ॥ राजाके वचन ऐसे सुनकर धर्मधुरन्धर रामचन्द्रजी हाथ जोडकर बडी चतुरतासे राजासे बोले ॥२७॥ हे

लक्ष्मणंचानुजानीहिसीताचान्वेतुमांवनम् ॥ कारणैर्बहुभिस्तथ्यैर्वार्यमाणोऽनचेच्छतः ॥ २३ ॥ अनुजानीहिसर्वान्नःशोकमुत्सृज्यमानद ॥ लक्ष्मणंमांचसीतांचप्रजापतिरिवात्मजान् ॥२४॥ प्रतीक्षमाणमव्यग्रमनुज्ञांजगतीपतेः ॥ उवाचराजासंप्रेक्ष्यवनवासायराघवम् ॥ २५ ॥ अहं राघवकैकेय्यावरदानेनमोहितः॥अयोध्यायांत्वमेवाद्यभवराजानिगृह्यमाम् ॥२६॥एवमुक्तोनृपतिनारामोधर्मभृतांवरः ॥प्र त्युवाचांजलिंकृत्वा पितरंवाक्यकोविदः ॥ २७ ॥ भवान्वर्षसहस्रायपृथिव्यानृपतेपतिः ॥ अहंत्वरण्येवत्स्यामिनतेराज्यस्यकांक्षिता ॥ २८ ॥ नवपंचचवर्षाणिवन वासेविहृत्यते ॥ पुनः पादौग्रहीष्यामिप्रतिज्ञांतेनराधिप ॥ २९ ॥ रुदन्नार्तः प्रियंपुत्रंसत्यपाशेनसंयुतः कैकेय्याचोद्यमानस्तुमिथोराजातमब्रवीत् ॥ ३० ॥ श्रेयसेवृद्धयेतातपुनरागमनायच ॥ गच्छस्वारिष्टमव्यग्रःपंथानमकुतोभयम् ॥३१॥ नहिसत्यात्मनस्तातधर्माभिमनसस्तव॥ सन्निवर्तयितुंबुद्धिः शक्यतेरघुनंदन ॥ ३२ ॥ अद्यत्विदानींरजनींपुत्रमागच्छ सर्वथा ॥ एकाहदर्शनेनापिसाधुतावच्चराम्यहम् ॥ ३३ ॥

महाराज! आप अबसे और भी हजारों वर्षकी उमर पाकर पृथ्वीका पालन करते रहें। राज्यभोगकरनेकी मुझको कुछभी अभिलाषा नहींहै; क्योंकि मैं आपको थोडाभी मिथ्यावादीनहीं बनाया चाहता क्योंकि मृषा कहनेसे नरक होताहै। बस इसी कारणसे मैं वनमें रहूंगा ॥२८॥ हे पिता! मैं चौदह वर्ष वनवासमें रह और आपकी प्रतिज्ञाको पूर्णकर वहांसे लौट फिर आपके श्रीचरणोंमें प्रणाम करूँगा ॥२९॥ इतनेमेंही कैकेयी रामचन्द्रजीकी बातको समर्थन करती हुई ओटमें बैठी राजासे संकेत कर कह रहीथी कि इनको वन भेजो। यह देख सत्यकी फाँसीमें बँधे रुदन करते परवश राजादशरथ रामचन्द्रजीसे दीन वचन बोले ॥ ३० ॥ हे तात! परलोक और इसलोककीमंगल कामना करतेहुये तुमनिरापदवनकोजाओ तुम्हारे जानेका मार्ग भय करके रहितहो तुम नियतकिये समयके पीछे कुशलपूर्वक यहांपर आओ ॥ ३१ ॥ वत्स! तुम्हारी बुद्धि सत्यात्मा व धर्मात्माहै तुमको दूसरे मार्गमें चलनेकी मेरी क्या किसी की भी सामर्थ्य नहीं है ॥३२॥ अब मेरे कहनेसे आज

की रात और रह जाओ तुमको एकदिनभी और देखनेसे मेरे सुखकी सीमा नहीं रहेगी भला आज तोतुम्हारे साथ पान भोजन करलें ॥३३॥ तुम आजरात और अपनी माता व हमको देखते हुये यहां अवश्यही रहो और कल बडेही भोर वनको चले जाना हम न रोकेंगे ॥ ३४ ॥ हे वत्स ! तुम बहुतही दुष्कर धर्मका कार्य साधन करनेको तैयार हुये हो औरतो मैं क्याकहूं परलोकमें मेरा हित करनेकेवास्ते अपने सब प्यारे और राज्यको त्यागकर तुम वनको जातेहो भला दूसरेसे यह कार्य कहीं होसकता है? ॥३५॥ हे प्रियपुत्र ! तुम्हारा वन जाना मुझको किसी तरह प्रिय नहीं है मैं शपथ खाकर कहता हूँ जिसप्रकार राखसे ढकी अग्निमें कोई हाथ राख समझकर डाल दे और उसका हाथ जल जाय वैसे ही मैं इस टेढे हृदयवाली कैकेयीके वश पड गया और इसने अपना कार्य बना लिया ॥३६॥ मैं तो कुलकलंकिनी केकैयीके माया जालमें पडा और हे वत्स ! तुम इसका फल भोगनेको चले यह भी अच्छी भगवान्‌की लीला है कि कर्म कोई

मातरंमांचसंपश्यन्वसे मामद्यशर्वरीम् ॥ तर्पितःसर्वकामैस्त्वंश्वःकल्येसाधयिष्यसि ॥३४॥ दुष्करंक्रियतेपुत्रसर्वथाराघवप्रिय ॥ त्वयाहिमत्प्रियार्थंतुवनमेवमुपाश्रितम् ॥३५॥ नचैतन्मेप्रियंपुत्रशपेसत्येनराघव॥ छन्नयाचलितस्त्वस्मिस्त्रियाभस्माग्निकल्पया ॥३६॥ वंचनायातुलब्धामेतांत्वंनिस्तर्तुमिच्छसि ॥ अनयावृत्तसादिन्याकैकेय्याभिप्रचोदितः ॥ ३७ ॥ नचैतदाश्चर्यतमंयत्त्वंज्येष्ठः सुतोमम ॥ आपनृतकथंपुत्रपितरंकर्तुमिच्छसि॥३८॥अथरामस्तदाश्रुत्वापितुरार्तस्यभाषितम्॥लक्ष्मणेनसहभ्रात्रादीनोवचनमब्रवीत् ॥३९॥प्राप्स्यामियानद्यगुणान्कोमेश्वस्तान्प्रदास्यति॥अपक्रमणमेवातः सवकामैरहंवृणे॥४०॥इयंसराष्ट्रासजनाधनधान्यसमाकुला॥मयाविसृष्टावसुधाभरतायप्रदीयताम्॥४१॥

करै और इसको भोगे कोई सो तुम इस दुष्टाके जालमें क्यों पडतेहो अर्थात् जो मैंने धोखेसे कहा उसीको मान लेतेहो ❋ ॥३७॥ हे राम! हमारे पुत्रोंमें तुम सबसे बडे और सबसे श्रेष्ठ हो तुम जो अपने पिताके वचन प्रतिपालन करनेको तैयार होगे और पिताका वचन किञ्चित भी झूठा न होने दोगे तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? ॥३८॥ तदनन्तर अनुजसहित रामचन्द्रजी महाराज दशरथजीके ऐसे आर्त्त वचन सुनकर दीनभावसे पिताजीसे बोले रामचन्द्रजीने यह शोचा कि, कैकयीसे तो हम कह चुके हैं कि, अभी वनको जाते हैं, और पिताजी एक रात और हमें रोका चाहते हैं और ऐसा करनेसे हमारे सत्य बोलनेमें अन्तर पडता है, और प्रतिज्ञाको तोडता हूँ तो पिताका मनोरथ सिद्ध न हुआ यह सोच समझ शोकको प्राप्त हो बोले ॥३९॥ पिताजी! आज वन जानेमें जो गुण हमको मिल सकेंगे वह कल जानेमें कौन दे सकेगा, इस कारण अधिक जल्दी अयोध्यापुरीके त्याग करनेकी प्रार्थना मैं आपसे करता हूँ ॥४०॥ अब इस समय आप मेरी छोडी हुई धन धान्यसे भरी

❋ दोहा–और करै अपराध कोउ, और पाव फल भोग। अतिविचित्र भगवन्त गति को जग जानै योग ॥

मनुष्योंसे पूर्ण विविध राज्योंसे घिरी पृथ्वीका भार कुमार भरतको दे दीजिये ॥४१॥ हे पिता! मैंने जो इस समय वन जानेमें स्थिरबुद्धि की है वह मेरी मति किसी प्रकारसे चलायमान नहीं हो सकती। वरद! आपने महारानी कैकेयीजीको दो वर दिये हैं उनका पालन करके सत्यवादी नामसे संसार में विख्यात हूजिये ॥४२॥ पिता! अब इसमें आगा पीछा न विचारिये सब राज्य व खजाना भरतको देही दीजिये जो वचन आप कैकेयीसे हार गये हैं मैं उनका पालन करता हुआ ॥४३॥ चौदह वर्ष तक वनचारियोंके समेत वनमेंवासकरूंगा। आप भरतजीके हाथमें पृथ्वी काभार सौंपते हुए किसी प्रकार का संशय न कीजिये क्योंकी वह सब भांति राज्यकेयोग्य हैं॥४४॥ हे नरश्रेष्ठ! मैं अपने वा अपने इष्ट मित्रोंके सुख के लिये कभी राजसुख भोग करने की इच्छा नहींकरताहूँ, मैं सत्य२कहताहूं कि, आपकी आज्ञा पालन करनेमें जो सुख मुझे होना संभव है वह सुख मुझको किसी पदार्थमें दृष्टि नहीं आता ॥४५॥ आप रुदन न कीजिये दुःखको दूर बहाइये, क्योंकी

वनवासकृताबुद्धिर्नचमेऽद्यचलिष्यति ॥ यस्तुयुद्धेवरोदत्तः कैकेय्यैवरदत्वया ॥ ४२ ॥ दीयतांनिखिलेनैवसत्यस्त्वंभवपार्थिव ॥ अहंनिदेशं भवतोयथोक्तमनुपालन् ॥४३॥ चतुर्दशसमावत्स्येवनेवनचरैःसह ॥ माविमर्शोवसुमतीभरतायप्रदीयताम् ॥ ४४ ॥ नहिमेकांक्षितंराज्यसुख मात्मनिवाप्रियम् ॥ यथानिदेशंकर्तुंवैतवैवरघुनंदन ॥४५॥ अपगच्छतुतेदुःखंमाभूर्वाष्पपरिप्लुतः ॥ नहिक्षुभ्यतिदुर्धर्षः समुद्रःसरितांपतिः ॥ ४६ ॥ नैवाहंराज्यमिच्छामिनसुखंनचमेदिनीम् ॥ नैवसर्वांनिमान्कामान्नस्वर्गंनचजीवितुम् ॥ ४७ ॥ त्वामहंसत्यमिच्छामिनानृतंपुरुषर्ष भ ॥ प्रत्यक्षंतवसत्येनसुकृतेनचतेशपे ॥ ४८ ॥ नचशक्यंमयातातस्थातुंक्षणमपिप्रभो ॥ सशोकंधायस्वेमंनहिमेऽस्तिविपर्ययः ॥ ४९ ॥ अर्थितोह्यस्मिकैकेय्यावनगच्छेतिराघव ॥ मयाचोक्तंव्रजामीतितत्सत्यमनुपालये ॥ ५० ॥

देखिये कि, सरित् पति जो समुद्र है वह कभी चलायमान नहीं होता ॥४६॥ हे पिताजी! अधिक मैं क्या कहूं नतो मुझको राज्य चाहिये, न सुख भोग करनेकी इच्छा है न मैं पृथ्वीका अभिलाषीहूँ, न स्वर्गवास करनेसे मैं प्रसन्न हूं बरन् मैं तो जीवन धारण करनेकी भी कामना नहीं करता ॥४७॥ हे पुरुष श्रेष्ठ! आपसे मैं अपने सत्य और पुण्य की सौगन्ध करके कहताहूं कि, आपकी प्रतिज्ञा सत्य होजावे यही मेरी इच्छा है ॥४८॥ आपके वचनोंका मैं उल्लंघन नहीं करना चाहता और न मुझमें इतनी सामर्थ्य है कि आपके वचनोंको मैं झूठा करूं बस इसही कारणसे रातभरकी क्या चलाई मैं एक घडीभर भी यहां इस पुरीमें वास नहीं कर सकता अब मेरी यही आपके चरणोंमें प्रार्थना है कि मेरे लिये आप अधीर न होइये॥४९॥ देवी कैकेयीजीने हमसे कहा कि, रामचन्द्र! तुम वनको जाओसो हमने भी कहा कि

अच्छाहम वनको जाते हैं अतएव वह जो बात कैकेयीसे कह चुके हैं उसका पालन करना भी कर्त्तव्यही है. हम अपने सत्यको भी नहीं छोड सकते हैं ॥५०॥ हे देव ! आप किसी प्रकारसे घबडाइये मत, मैं वहां जाहांपर कि, शांतमृगगण सदाविचरण करते हैं जहां अनेक प्रकार पक्षियोंकी बोल सुनाई आते हैं मैं ऐसेही वनमें वासकरता रहूंगा,॥५१॥ हे तात ! पिता देवता गणोंका भी देवता होताहै यह वार्त्ता शास्त्रमें लिखी है पिता जो देवताके तुल्य है इसी कारण मैं आपके वचनोंको देवता मानूंगा ॥ ५२ ॥ जब चौदह वर्ष व्यतीत होजायँ गे तब मैं फिर यहांको आही जाऊंगा फिर इस कारण करके संताप करनेका प्रयोजन क्याहै ॥५३॥ हे पुरुषसिंह ! वह आप भली प्रकार जानतेही हैं कि मेरेही कारण सब लोग शोकमें व्याकुल हो रुदन कर रहेहैं अतएव शोकमें अधीर न होकर इन लोगोंको समझाना बुझाना आपका अवश्यही कर्त्तव्यहै ॥५४॥ मैं इस समय पुर देश नगर सहित इस पृथ्वीको परित्याग करताहूं आप भरतको यहदेदीजिये मैं आपकी आज्ञासे बहुत कालतक सुख

माचौत्कंठांकृथादेववनेरंस्यामहेवयम् ॥ प्रशांतहरिणाकीर्णेनानाशकुनिनादिते ॥ ५१ ॥ पिताहिदैवतंतातदेवतानामपिस्मृतम् ॥तस्माद्दैवत मित्येवकरिष्यामिपितुर्वचः ॥ ५२ ॥ चतुर्दशसुवर्षेषुगतेषुनृपसत्तम ॥ पुनर्द्रक्ष्यसिमांप्राप्तंसंतापोऽयंविमुच्यताम् ॥५३॥येनसंस्तंभनीयोऽयं सर्वोबाष्पकुलोजनः ॥ सत्वंपुरुषशार्दूलकिमर्थंविक्रियांगतः ॥५४॥ पुरंचराष्ट्रंचमहींचकेवलामयाविसृष्टाभरतयदीयताम् ॥ अहंनिदेशंभव तोऽनुपालयन्वनंगमिष्यामिचिरायसेवितुम् ॥ ५५ ॥ मयाविसृष्टांभरतोमहीमिमांसशैलखंडांसपुरोपकाननाम् ॥ शिवासुसीमास्वनुशास्तुके वलंत्वयायदुक्तंनृपतेतथास्तुतत् ॥५६॥ नमेतथापार्थिवदीयतेमनोमहत्सुकामेषुनचात्मनःप्रिये॥यथानिदेशेतवशिष्टसंमतेव्यपैतुदुःखंतवमत्कृ तेऽनघ ॥ ५७ ॥ तदद्यनैवानघराज्यमव्ययंनसर्वकामान्वसुधांनमैथिलीम् ॥ नचिंतितंत्वामनृतेनयोजयन्वृणीयसत्यंव्रतमस्तुतेतथा ॥ ५८ ॥ फलानिमूलानिचभक्षयन्वनेगिरींश्चपश्यन्सरितःसरांसिच ॥ वनंप्रविश्यैवविचित्रपादपंसुखीभविष्यामितवास्तुनिर्वृतिः ॥ ५९ ॥

भोग करनेके अर्थ वनको जाता हूं ॥५५॥ भरतजी बेखटके अपने मामाके यहाँसे आकर पर्वत वनसे शोभायमान ग्राम व नगरसे भरी पुरी सीमा युक्त इस पृथ्वीका पालन करते रहें आप जोदो वर कैकेयीको दे चुकेहैं वह किसी प्रकारसे निष्फल न हों मेरी इच्छाहै ॥ ५६ ॥ हे महीपाल ! बहुत अच्छी २ भोग व सुखकर वस्तुओंकी मुझे रुचि नहीं है, प्रीतिकी उपजानेवाली किसी वस्तुकी मुझको इच्छा नहीं है मुझकोतो केवल सज्जनोंकी सराही हुई आपकी आज्ञाका पालन करनाही प्रार्थनीय और शिरोधार्य है। मैं वारंवार कहताहूं कि, आप मेरे लिये कुछ दुःख न करें॥५७॥ अधिक कहनातो व्यर्थ है पर इतनाही कहदेताहूं किआपके मिथ्या वादी हो जानेपर मुझको नतो इस बडे राज्यसे प्रयोजन न अतुलनीय सुखसंपत्तिसे प्रयोजन वरन् आपकी प्रतिज्ञाटूटनेपर मैं प्राणाधिका जानकीसेभीप्रयोजन नहीं रखता । मेरी तो केवल यही प्रार्थना है कि आपके वचन सत्य होजायँ॥५८॥ मैं भाँति२के विचित्र वृक्षोंसे शोभायमान वनमें प्रवेशकरके पहाड नदी और सरोव

रोंको देख और वहाँ कंद, मूल, फल आदि भोजनकरके सुखी रहूंगा । आप यहां विना संदेहके रहिये मेरी कुछ चिन्ता न कीजिये ॥५९॥ रामजीके इस भांति कहनेके उपरान्त राजा दशरथजी मनके दुःख और प्रबल शोकसे सताये जाकर व घबडाकर रामचन्द्रजीको हृदयसे लगा मूर्च्छित हो पृथ्वीपर गिर गये उस समय उनका शरीर चेष्टारहित हो गया ॥६०॥ उस समय कैकेयीके सिवाय और दूसरी सब महारानियें बडे शब्दसे रोने लगीं सब टहलनी दासदासियें "हा कैकेयी ! यह तैंने क्या किया ?" यह कहकर हाहाकार करने लगीं। सुमंत्रजी भी सबकी यह दशा देख रोते हुए मूर्छित हो गये ॥ ६१ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्वा० वाल्मी० आदि० अयोध्या० भाषायां चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥३४॥ तिसके पीछे कुछ विलम्बपश्चात् मूर्च्छाछूटी तो वहक्रोधसे अधीर हो वारंवार लम्बी २ श्वासें लेने लगे । वह अपने दाँतोंको किचकिचा रहे थे वह शिर पीटरहे थे और क्रोधके मारे दोनों हाथ मलरहे थे ॥१॥ उनकी दोनों आंखें लाल हो आईं मुखमंडल

एवंसराजाव्यसनाभिपन्नस्तापेनदुःखेनचपीड्यमानः ॥ आलिंग्यपुत्रंसुविनष्टसंज्ञोभूमिंगतोनैवविचेष्टकिंचित् ॥६०॥ देव्यःसमस्तारुरुदुःस मेतास्तांवर्जयित्वानरदेवपत्नीम् ॥ रुदन्सुमंत्रोऽपिजगाममूर्च्छांहाहाकृतंतत्रबभूवसर्वम् ॥ ६१ ॥ इत्यार्षेश्रीम० वा० आ० च० सा० अयो ध्याकांडेचतुस्त्रिंशःसर्गः ॥ ३४ ॥ ततोनिर्धूयसहसाशिरोनिःश्वस्यचासकृत् ॥ पाणिपाणौविनिष्पिष्यदंतान्कटकटाय्यच ॥ १ ॥ लोच नेकोपसंरक्तेवर्णपूर्वोचितंजहत् ॥ कोपाभिभूतःसहसासतापमशुभंगतः ॥ २ ॥ मनःसमीक्षमाणश्चसूतोदशरथस्यच ॥ कंपयन्निवकैकेय्याहृद यंवाक्शरैःशितैः ॥३॥ वाक्यवज्रैरनुपमैर्निर्भिदन्निवचाशुभैः ॥ कैकेय्याःसर्वमर्माणिसुमंत्रःप्रत्यभाषत ॥ ४ ॥ यस्यास्तवपतिस्त्यक्तोराजा दशरथःस्वयम् ॥ भर्तासर्वस्यजगतःस्थावरस्यचरस्यच ॥ ५ ॥ नह्यकार्यतमंकिंचित्तवदेवीहविद्यते ॥ पतिघ्नींत्वामहंमन्येकुलघ्नीमपिचांततः ॥ ६ ॥ यन्महेंद्रमिवाजय्यंदुष्प्रकंप्यमिवाचलम् ॥ महोदधिमिवाक्षोभ्यंसंतापयसिकर्मभिः ॥ ७ ॥

पीला पड़गया, वह बहुतही बुरे दुःख शोकसे संतापित हुये ॥२॥ सुमंत्रजी मनमें महाराजादशरथजीकेमनकीवार्त्ताजानकर व सबसे अपना सब स्नेह त्याग क वचन बाणसे मानो कैकेयीके हृदयको कँपाते हुये ॥३॥ बाणसमान तीक्ष्ण वचनोंसे कैकेयीके सब सुकुमारस्थानोंकोछेदनकरते सुमंत्रजीकैकेयीसे बोले ॥४॥ हे दुष्ट कैकेयी ! जब कि तूने चराचर महिमंडलके मालिकअपनेस्वामी महाराजदशरथजीहीको छोडदिया ॥५॥ तब फिर संसारमें ऐसा कोई कार्य नहीं है जिसको तुम न करसको तुमसे जो न हो वह थोडा है ! हम जानते हैं कि तुम अपने स्वामीको मारनेवाली और अपने कुलका नाश करनेवालीहो ॥ ६ ॥ इन्द्रके समान किसीसे न जीतेजायँ ऐसे अजेय, पर्वतोंके समान अचल; गंभीरतामें समुद्रके तुल्य तुमने अपनेकर्मके दोषसे ऐसे प्रतापीराजाकोभीचलायमान करदिया ॥ ७ ॥

देखो मैं तुम्हें फिर भी समझाता हूं कि तुमपृथ्वीनाथ राजा दशरथका अपमान मत करो अरी दुष्टे! समझरख कि करोडपुत्रोंके स्नेहसे अधिकस्नेह स्त्रियोंको पतिकी इच्छाके अनुसार चलना है, सो पुत्रको राज्य दिलानेके लिये स्वामीका निरादर करती है ॥८॥ देख राजाके पीछे राज्याधिकारका मालिक अवस्थानुसार बडा बेटा ही होता है, यह रीति इक्ष्वाकुकुलमेंसदासे होती आई है परन्तु तूतोमहाराजके रहतेही वह प्रथा लोप करके भरतको राज्य दिलाना चाहती है॥९॥अच्छी बात है राजा भरतजो हों वही पृथ्वीका पालन करें परन्तु हमसबलोग तो वहींजायँगे जहाँरामचन्द्रजी होंगे ॥१०॥ तुम जो बडेको छुडाकर छोटेकोराज्य दिलवाया चाहतीहो ऐसा निन्दनीयकर्म करनेसे तुम्हाराराज्य कैसे किसी ब्राह्मणके वसने योग्य होगा ॥११॥ मैं ठीकही ठीक कहता हूं कि जिस मार्गसे रामचन्द्रवनको जायँगे

मावमंस्थादशरथंभर्तारंवरदंपतिम् ॥ भर्तुरिच्छाहिनारीणांपुत्रकोटच्याविशिष्यते ॥ ८ ॥ यथावयोहिराज्यानिप्राप्नुवंतिनृपक्षये ॥ इक्ष्वाकुकुलनाथेऽस्मिंस्तंलोपयितुमिच्छसि ॥ ९ ॥ राजाभवतुतेपुत्रोभरतःशास्तुमेदिनीम् ॥ वयंतत्रगमिष्यामोयत्ररामोगमिष्यति ॥ १० ॥ नचतेविषयेकश्चिद्ब्राह्मणोवस्तुमर्हति ॥ तादृशंत्वममर्यादमद्यकर्मकरिष्यसि ॥ ११ ॥ नूनंसर्वेगमिष्यामोमार्गंरामनिषेवितम् ॥ त्यक्तायाबांधवैःसर्वैर्ब्राह्मणैःसाधुभिःसदा ॥ १२ ॥ काप्रीतीराज्यलाभेनतवदेविभविष्यति ॥ तादृशंत्वममर्यादंकर्मकर्तुंचिकीर्षसि ॥ १३ ॥ आश्चर्यमिवपश्यामियस्यास्तेवृत्तमीदृशम्आचरंत्यानविद्दतासद्योभवतिमेदिनी ॥ १४ ॥ महाब्रह्मर्षिसृष्टावाज्वलंतोभीमदर्शनाः ॥ धिग्वाग्दंडानहिंसंतिरामप्रव्राजनेस्थिताम् ॥ १५ ॥ आम्रंछित्त्वाकुठारेणनिंबंपरिचरेत्तुकः ॥ यश्चैनंपयसासिंचेन्नैवास्यमधुरोभवेत् ॥ १६ ॥

वही मार्ग सब साधु ब्राह्मण व हम सबलोगोंका अवलम्बनीय होगा ॥१२॥ मैं तुमसे यह पूछता हूँ कि; जब आत्मीय बन्धु बान्धवगण व सबब्राह्मणहीतुमजो छोडकर चलेजायँगेतब तुम राज्य लेकर कौनसासुख भोग करोगी॥१३॥तुमजो मर्यादा करके रहित इसमहानिन्दित कार्यके करनेपर उतारू हुईहो सोमुझकोबडा आश्चर्य है कि तुम्हारे इस व्यवहारसे पृथ्वीक्योंनहीं फटकर टुकडे२होजाती ॥१४॥जबकि तुम रामचन्द्रजीको वनमें भेजनेके लिये तैयारहुई होफिर वसिष्ठादिब्रह्मर्षिगणअग्निसमान भयंकर धिक्कारसेक्योंनहीं तुमको भस्म करडालते ?॥१५॥ जोहोमहाराजजी जो तुम्हारे मतके अनुकूलहोगये हैं हम नहीं जानते कि इसकाक्या कठोरपरिणाम होगा आश्चर्य है ! कुल्हाडीसे आमके पेडको काटकर कौन आदमीनीमकीसेवा करता है? नीमके पेडको दूध दहीसे सींचिये पर क्या वह मीठाहोगा ? ॥१६॥

ठीक है? जैसा तुम्हारी माताका स्वभाव है वैसाही तुम्हारा है क्योंकि आदमी जो यह कहा करते हैं कि "नींमके पेडसे शहद नहीं टपकता" यह बात कहीं मिथ्या थोडे ही हो सकती है ॥ १७॥ तुम्हारी माता जिस प्रकार पापकार्यमें रत थी सो उसके विषयमें जो कुछ हमने सुना है, वह मैं कहता हूँ तुम सुनो,—पूर्वकालमें महातपस्वी किसी महर्षिने तुम्हारे पिताको एक वरदान दिया था ॥ १८॥ उस ही वरके प्रभावसे तुम्हारे पिता सब जीवोंकी प्रगट अप्रगट सबही प्रकारकी वाणियोंका अर्थ ग्रहणकर लेते थे। व इस ही वरके प्रभावसे वह सब पशु पक्षियोंकी बोली समझते थे ॥ १९॥ एक समय तेजस्वी तुम्हारे पिता लेट रहे थे कि इतनेमें दिव्य कान्तिवाला एक जम्भ पक्षी बोला राजा इस बोलीका मर्म समझकर बहुत हँसे ॥ २०॥ तुम्हारी माता तुम्हारे पिताको हँसता हुआ देखकर बहुत ही क्रोधित हुई और उस हँसनेका कारण पूछने लगी हे राजन्! तुम्हारे हँसनेका क्या कारण है बताओ यदि हे नृपाल! तुम मुझको अपने हँसनेका कारण न बताओगे तो मैं अभी अपने आप अपनेको मार डालूँगी ॥ २१॥

आभिजात्यंहितेमन्येययामातुस्तथैवच॥ नहिनिंबात्स्रवेत्क्षौद्रंलोकेनिगदितंवचः ॥१७॥ तवमातुरसद्ग्राहंविद्मपूर्वंयथाश्रुतम् ॥ पितुस्तेवरदः कश्चिद्ददौवरमनुत्तमम्॥ १८॥सर्वभूतरुतंतस्मात्संजज्ञेवसुधाधिपः ॥ तेनतिर्यग्गतानांचभूतानांविदितंवचः ॥१९॥ततोजृंभस्यशयनेविरुताद्भूरि वर्चसः पितुस्तेविदितोभावःसतत्रबहुधाहसत् ॥२०॥ तत्रतेजननीक्रुद्धामृत्युपाशमभीप्सती॥हासंतेनृपतेसौम्यजिज्ञासामीतिचाब्रवीत् ॥२१॥ नृपश्चोवाचतांदेवींहासंशंसामितेयदि ॥ ततोमेमरणंसद्योभविष्यतिनसंशयः ॥ २२ ॥ मातातेपितरंदेवीपुनःकेकयमब्रवीत शंसमेजीववामावा नमांत्वंप्रहसिष्यसि ॥२३॥ प्रिययाचतथोक्तःसन्केकयःपृथिवीपतिः ॥ तस्मैतंवरदायार्थंकथयामासतत्त्वतः॥२४॥ततःसवरदः साधूराजानं प्रत्यभाषत ॥ म्रियतांध्वंसतांवेयंमाशंसीस्त्वंमहीपते ॥२५॥ सतच्छ्त्वावचस्तस्यप्रसन्नमनसोनृपः॥मातरंतेनिरस्याशुविजहारकुबेरवत् ॥२६॥

तब राजाने कहा कि हे देवी! यदि मैं हँसनेका कारण तुमको बताऊँगा तो अभी मेरी मृत्यु हो जायगी इसमें कुछ संशय नहीं है। क्योंकि ऋषीने वर देते समय कह दिया था कि जो किसीको इस बोलीका अर्थ समझाओगे तो तुम मर जाओगे ॥ २२॥ तुम्हारी माताने फिर तुम्हारे पितासे कहा कि, तुम जीते रहो अथवा मर जाओ परंतु हमें अपने हँसनेका कारण बताओ जो तुम मर भी जाओगे तो आगेको हमें देखकर ठट्ठा तो न करोगे ॥ २३॥ प्यारी रानीने जब हठ की तब राजा उन्हीं महर्षिके पास गये जिन्होंने कि उनको वर दिया था और उनसे अपनी रानीका सब वृत्तान्त कहा ॥ २४॥ तब वर देनेवाले ऋषिने कहा कि, रानी इस वास्ते मरती है तो मर जाने दीजिये, परंतु आप इस बोलीका मर्म उसको न समझाइये यदि इसका वृत्तान्त कह दोगे तो निश्चय ही मर जाओगे क्योंकि मेरा वचन मृषा नहीं होता इससे उस रानीको आप कुछ दण्ड दीजिये अथवा निकाल दीजिये ॥ २५॥ उन ऋषिके ऐसे वचन सुनकर प्रसन्न मनसे तुम्हारे पिताजीने तुम्हारी माताको छोड दिया,

और आप कुबेरके समान विहार करने लगे ॥ २६ ॥ रे कैकेयी ! इस तरह तुम भी अपनी माताके समान महाराजको निन्दनीय मार्गपर चलाती हो, हे पापरूपे ! मोहसे ग्रसे हुए महाराजको तूने बुरे मार्गपर चलाया है॥२७॥ "पुरुष अपने पिताका स्वभाव और स्त्रियें अपनी माताका स्वभाव पाती हैं" यह जो कहावत संसारमें प्रसिद्ध है सो क्या मिथ्या थोडेही हो सकती है॥२८॥ मैं तुम्हें निवारण करता हूं कि तुम अपनी माताके समान स्वभाववाली मत बनो; और जो हमारे महाराज दशरथजी कहें उसमें कोई बाधा मत दो अधिक क्या कहूँ? तुम महाराजकी इच्छानुसार कार्य करके हमारी सबकी रक्षा करो ॥२९॥ मैं फिर भी तुमसे कहता हूँ कि पापकर्ममें पडके तुम सर्व लोकोंके पालन करनेवाले इंद्रके समान महाराजको पापके रास्तेमें मत चलाओ ऐसा करना तुमको उचित नहीं है ॥ ३० ॥ हे देवि ! राजीवलोचन श्रीमान् महाराज दशरथजी जो वर एक खेलहीके समान तुमको दे बैठे हैं; बहुत अच्छा हो कि यदि उन वरोंके अनुसार

तथात्वमपिराजानंदुर्जनाचरितेपथि ॥ असद्ग्राहमिमंमोहात्कुरुषेपापदर्शिनी ॥२७॥ सत्यश्चात्रप्रवादोऽयंलौकिकःप्रतिभातिमा ॥ पितॄन्स मनुजायंतेनरामातरमगनाः ॥ २८ ॥ नैवंभवगृहाणेदंयदाहवसुधाधिपः भर्तुरिच्छामुपास्येहजनस्यास्यगतिर्भव ॥ २९ ॥ मात्वंप्रोत्साहिता पापेर्देवराजसमप्रभम् ॥ भर्तारंलोकभर्तारमसद्धर्ममुपादध ॥३०॥ नहिमिथ्याप्रतिज्ञातंकरिष्यतितवानघः ॥ श्रीमान्दशरथोराजादेविराजी वलोचनः ॥ ३१ ॥ ज्येष्ठोवदान्यःकर्मण्यःस्वधर्मस्यापिरक्षिता ॥ रक्षिताजीवलोकस्यबलीरामोऽभिषिच्यताम् ॥ ३२ ॥ परिवादोहितेदे विमहाँल्लोकेचरिष्यति ॥ यदिरामोवनंयातिविहायपितरंनृपम् ॥ ३३ ॥ स्वराज्यंराघवःपातुभवत्वंविगतज्वरा ॥ नहितेराघवादन्यःक्षमःपुरवरे वसन् ॥ ३४ ॥ रामेहियौवराज्यस्थेराजादशरथोवनम् ॥ प्रवेक्ष्यतिमहेष्वासःपूर्ववृत्तमनुस्मरन् ॥ ३५ ॥ इतिसांत्वैश्चतीक्ष्णैश्चकैकेयींराजसं सदि ॥ भूयःसंक्षोभयामाससुमंत्रस्तुकृतांजलिः ॥ ३६ ॥

कार्य न हो देखो अब भी मान जाओ अभी कुछ नहीं बिगडा है ॥३१॥ और विशेष करके रामचन्द्रजी सब पुत्रोंमें बडे हैं सत्यप्रतिज्ञ हैं सबकार्यमें चतुर हैं अपने धर्मकी रक्षा करनेवाले और सब जीवोंका प्रतिपालन करनेवाले हैं, अच्छा होगा यदि ऐसे बलवान् रामचन्द्रजीको ही राज्यपदपै प्रतिष्ठित कर दो ॥३२॥ हे देवि! यदि रामचन्द्रजी अपने राजा पिता, अपना राज्य छोडकर वनको चले गये तो जानलो किसारे संसारमें तुम्हारा बडाहीघोर अपयश फैल जायगा॥३३॥अतएव इससमय तुमसब मनका क्षोभदूर करके कहदो कि रामचन्द्र राज्यभार लेलें भलीभांति समझलोकि 'रामसे अधिक और कोई तुम्हारा प्रियकार्य नहीं कर सकेगा ॥३४॥ रामचन्द्रजी राज्य पदपर प्रतिष्ठित होनेपर महावीर महाराज दशरथजी पहले पुरुषोंकी प्रथानुसार चौथेपनआजानेसे वनको चले जायँगे॥३५॥सुमंत्रजीने हाथ जोडकरइस सभाके

बीच इस प्रकारसे तीखे और शांतियुक्त वचनोंसे कैकेयीको समझाया बुझाया; परन्तु कैकेयीने इन बातोंपर कुछ ध्यान न दिया॥ ३६॥ नतो शान्तवचन सुनकर वह कुछ चलायमान हुई न तीक्ष्ण वचनसुनके उसको कुछ दुःख हुआ, अधिकतो क्या उस समय उसके मुखका रंग भी तो कुछ फीका नहीं पडा॥ ३७॥ इत्यार्षेश्रीमद्रा० वा० आदि० अयोध्याकाण्डे भाषायां पंचत्रिंशः सर्गः॥ ३५॥ जब राजा दशरथजीने देखा कि, कैकेयी किसी प्रकारसे नहीं मानती तो अपनी प्रतिज्ञाके प्रभावसे दुःखित होकर बार२ ऊंचे श्वास ले सुमन्त्रसे बोले ॥१॥ हे सूत ! तुम रामचन्द्रजीके साथ चलनेके लिये रत्नोंसे पूर्ण चतुरंगिनी सेनाको शीघ्र सजाओ॥२॥ जो कि सब वेश्या पराया चित्त मोहनेवाली और बात बतानेमें बडी चतुर होती हैं वह भी इस सेनाके साथ जायँ बड़े२ धनवान् बनियेभी बहुतसारी रसद लेकर फौजके साथ जायँ॥३॥ जो रामचन्द्र

नैवसाक्षुभ्यतेदेवीनचस्मपरिदूयते ॥ नचास्यासुखवर्णस्यलक्ष्यतेविक्रियातदा॥३७॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० स० अयोध्याकांडे पंचत्रिंशःसर्गः॥३५॥ ततःसुमंत्रमैक्ष्वाकःपीडितोऽत्रप्रतिज्ञया॥सबाष्पमतिनिःश्वस्यजगादेदंपूनर्वचः ॥१॥ सूतरत्नसुसंपूर्णा चतुर्विधबलाचमूः ॥ राघवस्यानुयात्रार्थंक्षिप्रंप्रतिविधीयताम्॥२॥रूपाजीवाश्चवादिन्योवणिजश्चमहाधनाः ॥ शोभयंतुकुमारस्यवाहिनीःसु प्रसारिताः॥३॥ येचैनमुपजीवंतिरमतेयैश्चवीर्यंतः ॥ तेषांबहुविधंदत्त्वातानप्यत्रनियोजय ॥४॥ आयुधानिचमुख्यानिनागराःशकटानिच ॥ अनुगच्छंतुकाकुत्स्थंव्याधाश्चारण्यकोविदाः ॥५॥ निघ्नन्मृगान्कुंजरांश्चपिबंश्चारण्यकंमधु ॥नदांश्चविविधाःपश्यन्नराज्यंसंस्मरिष्यति ॥६॥ धान्यकोशश्चयःकश्चिद्धनकोशश्चमामकः ॥ तौराममनुगच्छेतांवसंतंनिर्जनेवने ॥ ७ ॥ यजन्पुण्येषुदेशेषुविसृजंश्चाप्तदक्षिणाः ॥ ऋषिभिश्चा पिसंगम्यप्रवस्यतिसुखंवने ॥ ८ ॥ भरतश्चमहाबाहुरयोध्यांपालयिष्यति ॥ सर्वकामैःपुनःश्रीमान्रामःसंसाध्यतामिति ॥ ९ ॥

जीके आश्रय करके पालेजाते हैं और जोकि सब पहलवान् लोग वीर्यपरीक्षाके लिये रामचन्द्रजीके समीप कुस्ती लड़ा करते हैं उनको बहुतसारा धनदेकर रामचन्द्रजीके साथकरदो॥४॥सबसे श्रेष्ठ आयुध और छकडे सब रामचन्द्रजीके साथ भेजे जायँ। और अधिक क्या कहूं जो व्याधे कि वनका मार्ग जाने हुए हैं, वह और जो नगरवासी रामके साथ जाना चाहें उनसबको रामचन्द्रजीके साथ करदीजिये ॥५॥ रामचन्द्र वनमें रहकर मृगादिकों का वध करके वनका शहद पीकर और अनेक नदियोंका दर्शनकर सुखी हो अयोध्यापुरीके वासको भूलजायंगे ॥६॥ वह हमारा धनधान्यादि जो कुछ कि खजानेमें है उस सबको सेवक लेकर रामचन्द्रजीके साथ निर्जन वनको जायं॥७॥ प्राणप्यारे दुलारे रामचन्द्र वनमें जाकर जहांकहीं तीर्थस्थान आवें वहां ऋषि आदि महात्माओंके साथ मिलकर बहुतसारी दक्षिणा देकर यज्ञ करें करावें और परम

सुखसे वहां वास करतेरहें ॥८॥अयोध्यापुरीमें जो कुछ कि सुख भोग करनेकी सामग्री है वह सभी रामचन्द्रके साथ भेजदीजाय. और पीछेसे आकर महाबाहु भरतजी अयोध्याका राज्यभार ग्रहण करें, सोभी तबतक कि जबतकरामचन्द्रवनसे न लौटें॥९॥महाराज दशरथजीके ऐसा कहनेपर कैकेयी बहुत भयभीत हुई, उसका मुंह डरके मारे सूख गया और बोलभी बन्द होगया॥१०॥ वह व्याकुल और दुःखित होगई मुखसूख गया फिर राजाके सामने होकर इस प्रकारके वचन कहने लगी ॥११॥ जो इस पुरीसे सब धन और सम्पत्तिही रामचन्द्रके साथ चली जायगी तब फिर भरत इस सूने राज्यको लेकर क्या करेंगे? जब कि मदिरा का सारांश प्रथमही पीलिया जायगा तो फिर रह क्या जाता है ॥१२॥ जबकि लाजरहित कैकेयी ऐसे निठुर कठोर वचन कहे तब राजा दशरथजीके नेत्र क्रोधसे लाल २ होगये; और कैकेयीसे बोले॥१३॥ हे दुष्टे! रामचन्द्रको बनभेजने और भरतके राज्यदिलानेको जो तैंनेकहा सो वहवर तो हमने वहन किया

एवंब्रुवतिकाकुत्स्थेकैकेय्याभयमागतम् ॥ मुखंचाप्यगमच्छोषंस्वरश्चापिव्यरुध्यत ॥ १० ॥ साविषण्णाचसंत्रस्तामुखेनपरिशुष्यता ॥ राजानमेवाभिमुखीकैकेयीवाक्यमब्रवीत् ॥११॥ राज्यंगतधनंसाधोपीतमंडांसुरामिव ॥ निरास्वाद्यतमंशून्यं भरतोनाभिपत्स्यते॥१२॥ कैकेय्यां मुक्तलज्जायांवदंत्यामतिदारुणम् ॥ राजादशरथोवाक्यमुवाचायतलोचनाम् ॥ १३ ॥ वहंतंकिंतुदसिमांनियुज्यधुरिमाहिते ॥ अनार्येकृत्यमारब्धंकिंतुपूर्वमुपारुधः ॥ १४ ॥ तस्यैतत्क्रोधसंयुक्तमुक्तंश्रुत्वावरांगना ॥ कैकेयीद्विगुणंक्रुद्धाराजानमिदमब्रवीत् ॥१५॥ तवैववंशेसगरोज्येष्ठपुत्रमुपारुधत् ॥ असमंजइतिख्यातंतथाऽयंगंतुमर्हति ॥१६॥ एवमुक्तोधिगित्येवराजादशरथोऽब्रवीत् ॥ व्रीडितश्चजनःसर्वःसाचतन्नावबुध्यत ॥ १७ ॥ तत्रवृद्धोमहामात्रः सिद्धार्थोनामनामतः ॥ शुचिर्बहुमतोराज्ञःकैकेयीमिदमब्रवीत्॥१८॥ असमंजोगृहीत्वातुक्रीडतःपथिदारकान् ॥ सरय्वांप्रक्षिपन्नप्सुरमतेतेनदुर्मतिः ॥ १९ ॥

सो वहीकर, फिर अब मुझको और दुःख क्यों देती है तैंने रामचन्द्रके लियेवनवास मांगा था तब इस बातका तो कुछ उल्लेख नहीं किया था कि; उनके साथ कुछधन इत्यादि न जाने पावे ॥ १४ ॥ राजा दशरथजीके इस प्रकार क्रोधयुक्त वचन सुनकरकैकेयीको और भी दूनाक्रोध हो आया उसीसमय राजासे गर्व सहित वचन बोली॥१५॥महाराज ! तुम्हारे वंशमें राजा सगर अपने बडे बेटे असमंजसको राज्य न देकर नगरसे निकाल दिया था इस समय तुमभी वैसेही रामको राज्यसे निकालकरवनको भेज दो ॥१६॥ जब कैकेयीने ऐसा कहा तब महाराज दशरथजी उसको धिक्कारदेने लगे, व वहाँ जितने नर नारी बैठेथे वह उससमय यह सब देखसुनकर बहुतही लज्जित होगये ॥१७॥उसी समय सिद्धार्थ नामक एकवृद्ध वहां बैठा था वह अतिसत्यवादी था, जो राजा दशरथजीका प्रिय औरमंत्री था वह कैकेयीसे बोला ॥१८॥ हेदेवि ! असमंजस बहुतही दुष्टस्वभाववाला और लोकोंको द्रोह करनेवालाथा वह खोटीमतिवाला खेलही खेलमें प्रजाके बालकोंको पकड

कर सरयूमें डुबा देता और उनको देखकर प्रसन्न होता ॥१९॥ उस समय असमंजसका यह कुकर्म देखकर प्रजा बहुतही असंतुष्ट हुई और राजा सगरसे आकर कहा कि, आप हमें या अपने पुत्र असमंजसको राज्यमें रखनेकी इच्छा करते हैं ॥२०॥ तब राजाने कहा कि, हे प्रजागण ! तुम्हारे इस प्रकार भयभीत होनेका क्या कारण है ? राजाके ऐसे वचन सुनकर प्रजा बोली ॥२१॥ कि हे महाराज! आपकापुत्र असमंजस हमारे बालकोंके साथ मार्गमें खेला करता है और फिरउनको पकड२सरयूके पानीमें फेंक देता है जब वह डूबने लगते हैं तो आप देखकर बडाही प्रसन्न होता है॥२२॥ तब प्रजाका हित चाहने वालेराजासगरजीनेप्रजाकेऊपरघोर अत्याचार हुआ जानकर उन प्रजागणोंके हितकेलिये घोरअहितकारी अपने बेटेको परित्याग कर दिया ॥२३॥ राजाकी आज्ञासे यह पापी अपनी स्त्रीके साथ वस्त्र पहरा कर, सवारीपर बैठकर जन्म भरके लिये देशसे निकाला गया॥२४॥ इस प्रकारसे वह पाप बुद्धि अपने कर्मके दोष और फलसे कंद रखनेकीपिटारी और

तंदृष्ट्वानागराःसर्वेंक्रुद्धाराजानमब्रुवन् ॥ असमंजंवृणीष्वैकमस्मान्वाराष्ट्रवर्धन ॥२०॥ तानुवाचततोराजाकिंनिमित्तमिदंभयम् ॥ताश्चापिराज्ञा संपृष्टावाक्यंप्रकृतयोऽब्रुवन् ॥ २१ ॥ क्रीडतस्त्वेषनःपुत्रान्बालानुद्भ्रांतचेतसः ॥ सरय्वांप्रक्षिपन्मौर्ख्यादतुलांप्रीतिमश्नुते ॥२२॥ सतासां वचनंश्रुत्वाप्रकृतीनांनराधिपः॥ तंतत्याजाहितंपुत्रंतासांप्रियचिकीर्षया ॥२३॥ तंयानंशीघ्रमारोप्यसभार्यंसपरिच्छदम् ॥ यावज्जीवंविवास्यो ऽयमितितानन्वशात्पिता ॥२४॥ सफालपिटकंगृह्यगिरिदुर्गाण्यलोकयत् ॥दिशःसर्वास्त्वनुचरन्सयथापापकर्मकृत् ॥२५॥ इत्येनमत्यजद्रा जासगरोवैसुधार्मिकः ॥रामःकिमकरोत्पापंयेनैवमुपरुध्यते ॥२६॥ नहिकंचनपश्यामोराघवस्यागुणंवयम् ॥ दुर्लभोह्यस्यनिरयःशशकस्येव कल्मषम् ॥ २७ ॥ अथवादेवित्वंकंचिद्दोषपश्यसिराघवे ॥ तमद्यब्रूहितत्त्वेनतदारामोविवास्यते ॥ २८ ॥ अदुष्टस्यहिसंत्यागःसत्पथेनिरत स्यच॥निर्दहेदपिशक्रस्यद्युतिंधर्मविरोधवान् ॥२९॥ तदलंदेविरामस्यश्रियाविहतयात्वया ॥ लोकतोऽपिहितेरक्ष्यःपरिवादःशुभानने ॥३०॥

कुदाल लेकर बडी कठिनाईसेपेट भरता हुआ देशसे निकल कर चारों ओर पहाड किले कंदरा आदि देख२कर फिरने लगा ॥२५॥हे देवि! धर्मात्मा महाराज सगरजीने इस कारणसे दुष्टअसमंजसको त्याग करदिया था, परन्तुरामचन्द्रनेतोइस प्रकारका कोई अपराध नहीं किया कि, जिससे उनको बनमें भेज दियाजाय ॥२६॥ हम लोगोंमेंसे कभी किसीने रामचन्द्रजीमें कोई दोष नहीं देखा, चन्द्रमामें तो कलंक देखाभी जाता है पर रामचन्द्रमें तो पाप कुछ भी नहीं पायाजाता ॥२७॥ अथवा हे देवि ! मैं तुमसे ही पूछता हूं तुमहीं बताओ कि, राममें इस प्रकारका कोई दोष है जिससे कि, वहवनको भेज दिये जायं देखाही होतो बताओ ॥२८॥ नहीं तो सज्जनसुमार्गी दुष्टतारहित पुरुषको अकारण परित्यागकरनेसे धर्मकीविरुद्धता होनेके कारणजो इन्द्रके समान तेजभी हो तो वहतेजभी भस्म होजाता है ॥२९॥ हे देवि ! मैं इसीकारण तुमसे कहता हूं कि, तुम रामचन्द्रकी श्री मत नष्टकरो अर्थात् उनसे राज्यछुडाभरतकोमतदिलाओ यदि तुम कुछ विनासोचेबिचारे

रामचन्द्रजीको वनमें भेजहीदोगीतो संसारमें तुम्हारी निन्दा सीमासेबाहर होगी ॥ ३० ॥ मंत्रीसिद्धार्थके ऐसेउदारवचनसुनकर महाराज दशरथजी धीमीवाणीसे शोक युक्त वचन कहकर कैकेयीसे बोले ॥ ३१ ॥ रे पापिनी ! मैं समझ गया कि, वृद्ध सिद्धार्थके अनुकूल बचन तेरे मनकोभाये, न अपना निजका और मेराहित क्या है तू इसको कुछभी नहीं जानती, साधुमार्गमें चलनेकी तेरी इच्छा नहीं है तू इस प्रकारके निन्दनीय नीच कार्यको ही भला समझी है ॥ ३२ ॥ जो हो सो हो मैं तो राज्य, धन, सम्पत्ति और सुखभोगको छोडकर रामचन्द्रके साथवन को जाऊँगा तू अपने पुत्र भरतके साथ सदाके लिये इस राज्यको पूजती रहियो ॥ ३३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्वा० वा० आ० अयोध्याकाण्डे भाषायां षट्त्रिंशः सर्गः ॥ ३६ ॥ महामन्त्री सिद्धार्थके ऐसे वचन सुन व राजाको व्याकुल देखकरविनय व नम्र

श्रुत्वातुसिद्धार्थवचोराजाश्रांततरस्वरः ॥ शोकोपहतयावाचाकैकेयीमिदमब्रवीत् ॥ ३१ ॥ एतद्वचोमेच्छसिपापरूपेहितंनजानासिममात्मनोऽथवा ॥ आस्थायमार्गंकृपणंकुचेष्टाचेष्टाहितेसाधुपथादपेता ॥ ३२ ॥ अनुव्रजिष्याम्यहमद्यरामंराज्यंपरित्यज्यसुखंधनंच ॥ सर्वेंचराज्ञाभरतेनचत्वंयथासुखंभुंक्ष्वचिरायराज्यम् ॥ ३३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आ० च०सा० अ० षट्त्रिंशःसर्गः ॥ ३६ ॥ महामात्रवचः श्रुत्वारामोदशरथन्तदा ॥ अभ्यभाषतवाक्यंतुविनयज्ञोविनीतवत् ॥ १ ॥ त्यक्तभोगस्यमेराजन्वनेवन्येनजीवतः ॥ किंकार्यमनुयात्रेणत्यक्तसंगस्यसर्वतः ॥ २ ॥ योहिदत्त्वाद्विपश्रेष्ठंकक्ष्यायांकुरुतेमनः ॥ रज्जुस्नेहेनकिंतस्यत्यजतःकुंजरोत्तमम् ॥ ३ ॥ तथाममसतांश्रेष्ठकिंध्वजिन्याजगत्पते ॥ सर्वाण्येवानुजानामिचीराण्येवानयंतुमे ॥ ४ ॥ खनित्रपिटकेचोभे समानयतगच्छतः ॥ चतुर्दशवनेवासंवर्षाणिवसतोमम ॥ ५ ॥ अथचिराणिकैकेयीस्वयमाहृत्यराघवम् ॥ उवाचपरिधत्स्वेतिजनौघेनिरपत्रपा ॥ ६ ॥

ताके वचनोंसे रामचन्द्रजीने पितासे कहा ॥ १ ॥ हे राजन् ! जब कि, मैं भोगसुखको छोडछाड वनमें वास करने जाता हूं तब मेरे साथ धनसंपत्ति और शूरसामंत सेना आदिके जानेका क्या प्रयोजन है ? ॥ २ ॥ जो मनुष्य कि; श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको हाथी देडाले और अंबारीके कसनेकी रस्सी देते मोह करे अर्थात् न देतो वहबातउसकी उचित नहीं है ॥ ३ ॥ हे जगत्पति ! मैं माता कैकेयीकी प्रसन्नताके अर्थ सब भरतहीको देता हूं मुझे सेनाधन संपत्ति इत्यादि कुछभी नहीं चाहिये, अब हमारे लिये मुनियोंके पहरने योग्य वस्त्र और वल्कलादि जो चाहिये सो मंगाइये ॥ ४ ॥ हमको चौदह वर्षतक वनमें रहनापडेगा इससे ऐसे वस्त्र आवेंकि, बीचमें फटफटा न जायँ कन्द मूल फलखोदनेके लिये एक खनित्री और एक पिटारी भी चाहिये सो जल्दीसे मँगादी जाय जिससे कि, हम जल्दी वनको चलेजायँ ॥ ५ ॥ तब रामचन्द्रजीके ऐसे

वचन सुनकर कैकेयीने स्वयं जाकर उनको चीर वसनइत्यादिक लादिये और वहां वह सबके बीच और सबकेसामने यहबोली कि, इन वस्त्रोंको पहर वनको जाओ ॥६॥ पुरुषोत्तम रामचन्द्रजीने कैकेयीके दिये हुये वल्कल आदिकोंको पहर लिया और आप जो सूक्ष्म वस्त्र पहर रहेथे उनको उतार डाला ॥७॥ जब रामचन्द्रजीने वल्कल आदिके वस्त्र पहिरे तब अनुज लक्ष्मणजीने भी पिताके सामनेही सुन्दर वस्त्र त्यागकर मुनिवेष धारण किया ॥८॥ रेशमी वस्त्र पहननेवाली जानकीजी भी उन वस्त्रोंको जो उनके लिये कैकेयी लाईथी ले और देखकर ऐसी भयभीत हुईं; जैसे कि, जालको देख मृगी कांप उठती है ॥९॥ कैकेयीके दिये हुये कुशके बने वस्त्र शुभ लक्षणायुक्त जानकी ले अति उदास और लाज युक्त हुई ॥ १० ॥ आंखोंमें से आंसू भरकर धर्मकी जाननेवाली, व धर्मकी देखनेवाली जनक नन्दिनी गन्धर्वराजके समान अपने प्रिय पति रामचन्द्रजीसे बोली ॥११॥ कि हे जीवनसर्वस्व! वनवासी तपस्वी लोग किस प्रकारसे वस्त्र धारण किया

सचीरेपुरुषव्याघ्रः कैकेय्याः प्रतिगृह्यते ॥ सूक्ष्मवस्त्रमवक्षिप्यमुनिवस्त्राण्यवस्तह ॥७॥ लक्ष्मणश्चापितत्रैवंविहायवसनेशुभे ॥ तापसाच्छादने चैवजग्राहपितुरग्रतः ॥ ८ ॥ अथात्मपरिधानार्थंसीताकौशेयवासिनी ॥ सम्प्रेक्ष्यचीरंसंत्रस्तापृषतीवागुरामिव ॥ ९ ॥ साव्यपत्रपमाणेवप्रगृह्य चसुदुर्मनाः ॥ कैकेय्याः कुशचीरेतेजानकीशुभलक्षणा ॥ १० ॥ अश्रुसंपूर्णनेत्राचधर्मज्ञाधर्मदर्शिनी ॥ गंधर्वराजप्रतिमंभर्तारमिदमब्रवीत् ॥ ११ ॥ कथंनुचीरंबध्नंतिमुनयोवनवासिनः ॥ इतिह्यकुशलासीतासामुमोहमुहुर्मुहुः ॥१२॥ कृत्वाकंठेस्मसाचीरमेकमादायपाणिना ॥ तस्थौ ह्यकुशलातत्रव्रीडिताजनकात्मजा ॥१३॥ तस्यास्तत्क्षिप्रमागत्यरामोधर्मभृतांवरः ॥ चीरंबबंधसीतायाः कौशेयस्योपरिस्वयम् ॥१४॥ रामं प्रेक्ष्यतुसीतायाबध्नंतंचीरमुत्तमम् ॥ अंतःपुरचरानार्योमुमुचुर्वारिनेत्रजम् ॥१५॥ ऊचुश्चपरमायत्तारामंज्वलिततेजसम् ॥ वत्सनैवंनियुक्तेयव नवासेमनस्विनी ॥ १६ ॥ पितुर्वाक्यानुरोधेनगतस्यविजनवनम् ॥ तावद्दर्शनमस्यानः सफलंभवतुप्रभो ॥ १७ ॥

करते हैं? इतना कहकर मोहित होगई क्योंकि जानकीजी क्या जानती थीं कि किस प्रकार वनके वस्त्र पहरे जातेहैं ॥१२॥ यद्यपि दो चीर उन्होंने लिये सो एक गलेमें डालकर दूसरा हाथमें लेकर खडी रह गई क्योंकि वह उसका पहरना नहीं जानती थीं कि, कहां पहरा जाय, इस कारणलाजसे शिर झुका खडी रहगई ॥ १३ ॥ धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ रामचन्द्रजीने जब श्रीजानकीजीकी यह दशा देखी तो जल्दीसे उनके निकट जाकर जो रेशमी सारी सीताजी पहररहीथीं उसके ही ऊपर चीरका वस्त्र पहरा दिया ॥१४॥ रामचन्द्रजीको अपने हाथसे सीताजीके शरीरमें चीरवस्त्र पहरातेदेखकर रनवासकी स्त्रियें बहुतही रोदनकरने लगीं जो कि; किसी प्रकार नहीं थमता था ॥१५॥ वह परम तेजस्वी रामचन्द्रजीसे कातर भावसे बोलीं कि, हे वत्स! तुम इन चिंता शील श्रेष्ठ जानकीजीको वनमें अपनेसाथ मत लेजाना ॥१६॥ तुमपिताका सत्यपालनके लिये वनजानेकोतैयार हुए हो सो यदि जानाही चाहतेहो, तो तुमही जाओऔर हमारी यह विनतीहै कि जबतक

तुम बनसे लौटकर यहां आओ तबतक हम सब सीताहीका मुखचन्द्र दर्शन करके सुखी होसकेंगी॥१७॥ हे पुत्र! रामचन्द्र! तुम लक्ष्मणजीको साथ लेकर वन चले जाओ, परन्तु कल्याणी सीताजीको तपस्विनीकी नाईं बनाकर वनवासिनी मतकरो॥१८॥हे कमललोचन! तुम्हें हम धार्मिक और सत्यप्रतिज्ञा करनेवाला जानती हैं न हम ऐसी आशा कर सकती हैं कि तुम हमारे कहनेसे वनको न जाओगे परन्तु एक प्रार्थना तुमसे करतीहैंकि, सीता यही रहें ॥१९॥ अनन्तर रनवासकी स्त्रियोंकी ऐसी प्रार्थना सुनकर भी जानकीजीकी इसविषयमें सम्मति न जानकर रामचन्द्रजीने तुल्य शीलवाली सीताजीके चीर बन्धन नहीं खोले बांधही दिये ॥२०॥ तब कुलगुरुवसिष्ठजी सीताजीकी यह शोचनीय अवस्था देख नेत्रोंमें जल भरकर उनको चीर धारण करनेमें निवारण करते हुये कैकेयीसेबोले ॥२१॥ रे रे कुलमें कलंक लगानेवाली खोटी मतिवाली कैकेयी! तू महाराज दशरथजीको धोखा देकर तेरी जहांतक कामनाथी, उससे कहीं अधिक कार्य करा चुकी॥२२॥ रे

लक्ष्मणेनसहायेनवनंगच्छस्वपुत्रक ॥ नेयमर्हतिकल्याणीवस्तुंतापसवद्वने ॥१८॥ कुरुनोयाचनांपुत्रसीतातिष्ठतुभामिनी ॥ धर्मनित्यःस्वयं स्थातुंनहीदानींत्वमिच्छसि ॥ १९ ॥तासामेवविधावाचः शृण्वन्दशरथात्मजः ॥ बबंधेचतथाचीरंसीतयातुल्यशीलया ॥२०॥ चीरेगृहीतेतु तयासबाष्पोनृपतिंगुरुः॥विनार्यसीतांकैकेयींवसिष्ठोवाक्यमब्रवीत् ॥२१॥ अतिप्रवृत्ते दुर्मेधेकैकेयिकुलपांसनि ॥ वंचयित्वातुराजानंनप्रमा णेऽवतिष्ठसि ॥२२॥ नगंतव्यंवनंदेव्यासीतयाशीलवर्जिते ॥ अनुष्ठास्यतिरामस्यसीताप्रकृतमासनम् ॥२३॥ आत्माहिदाराः सर्वेषांदारसंग्र हवर्तिनाम्॥आत्मेयमितिरामस्यपालयिष्यतिमेदिनीम्॥२४॥अथयास्यतिवैदेहीवनंरामेणसंगता॥वयमत्रानुयास्यामःपुरंचेदंगमिष्यति॥२५॥ अंतपालाश्चयास्यंतिसदारोयत्रराघवः ॥ सहोपजीव्यराष्ट्रंचपुरंचसपरिच्छदम् ॥२६॥ भरतश्चसशत्रुघ्नश्चीरवासावनेचरः ॥ वनेवसंतंकाकुत्स्थ मनुवत्स्यतिपूर्वजम् ॥२७॥ ततःशून्यांगतजनांवसुधांपादपैःसह ॥ त्वमेकाशाधिदुर्वृत्ताप्रजानामहितेस्थिता ॥ २८ ॥

खोटे शीलवाली! देवी जानकीजीको किसी तरह वनमें नहीं भेजा जायगा, यह गृहही पर रहकर रामचन्द्रजीकेराजसिंहासनपर अपना अधिकार करेंगी॥२३॥ सब शास्त्र पुराणोंमें लिखा है कि स्त्री पतिका आधा अंग होतीहै तो वह भी पतिहीकारूप हुई बस सीताजीश्रीरामचन्द्रजीकी अर्द्धाङ्गिनीहोनेसे उनकी मूर्तिहुई अतएव यह अवश्य राज्यका पालन करेंगी॥२४॥यदि जनकललीं महाबली रामचन्द्रजीकेसाथ बनको चली तो जान लेना कि, नगरके सब दूसरे लोगों सहित हम बस वहांचले जायँगे जहाँ रामचन्द्रजी चले जायँगे ॥२५॥ केवल हमही नहीं जायँगे बरन् रनवासके रक्षक और सब नौकरचाकर अपनी २ स्त्री पुत्रोंको व परिवारको सबहीके साथ इस राज्यको परित्यागकर रामके साथ चले जायँगे और दासदासी अपनी २ सामग्रीके साथ नगरभी चला जायगा ॥२६॥ मैं निश्चय ही कह ताहूँ कि, रामचन्द्रजीके वनमें चले जानेपर भरत शत्रुघ्न चीरवस्त्र धारण करके अपने बडे भाईके साथ वनको चले जायँगे ॥२७॥ तब यहपुरी सूनी हो जायगी केवल

पेड ही पेड रह जायँगे तब तू पेडोंपर राज्य किया करना, यहां तो संपूर्णतः वनही वन हो जायेंगे उस समय प्रजागणोंकी अहितकारिणी होकर इस जनशून्य पुरीका इकली पालन करती रहना ॥२८॥ दुष्टे ! तू भली प्रकार जान ले कि जहां श्रीरामचन्द्रका राज्य नहीं है वह किसी प्रकारसे राज्य कहा नहीं जा सकता, और जहां पर कि, रामचन्द्रजी रहे वह वन भी हो तो भी राज्य कहा जा सकता है ॥२९॥ मैं तुझसे अधिक क्या कहूं जब कि, महाराज दशरथजी अप्रसन्नतासे यह पृथ्वी भरतको देते हैं सोजो भरत महाराज दशरथजीके पुत्र होंगे तब तो इस राज्यको किसी प्रकारसे ग्रहण करेंगेही नहीं और मैं यह भी कह देताहूं कि, तेरे ऐसा कुकर्म करने पर वह तेरे साथ भी पुत्रवत् व्यवहार नहीं करेंगे ॥३०॥ मैं भली भांति जानताहूं कि; भरतजी पिताके वंशकी प्रथाको भली भांति जानते हैं कि, इस कुलमें बडेही को राज्य मिलता आया है। यदि तू इस पृथ्वीसे आकाशको चलीजाय तबभी भरत अपने वंशके विरुद्ध कोई आचरण नहीं करेंगे ॥ ३१ ॥ विचार करके देखनेसे जाना जाता है

नहितद्भविताराष्ट्रंयत्ररामोनभूपतिः ॥ तद्वनंभविताराष्ट्रंयत्ररामोनिवत्स्यति ॥ २९ ॥ नह्यदत्तांमहींपित्राभरतःशास्तुमिच्छति ॥ त्वयिवापुत्रवद्व स्तुंयदिजातोमहीपतेः ॥३०॥ यद्यपित्वंक्षितितलाद्गगनंचोत्पतिष्यसि ॥ पितृवंशचरित्रज्ञःसोऽन्यथानकरिष्यति ॥ ३१ ॥तत्त्वयापुत्रगर्धि न्यापुत्रस्यकृतमप्रियम् ॥ लोकेनहिसविद्येतयोनराममनुव्रतः ॥ ३२ ॥ द्रक्ष्यस्यद्यैवकैकेयिपशुव्यालमृगद्विजान् ॥ गच्छतःसहरामेणपादपां श्चतदुन्मुखान् ॥ ३३ ॥ अथोत्तमान्याभरणानिदेविदेहिस्नुषायैव्यपनीयचीरम् ॥ नचीरमस्याःप्रविधीयतेतिन्यावारयत्तद्वसनंवसिष्ठः ॥३४॥ एकस्यरामस्यवनेनिवासस्त्वयावृतःकेकयराजपुत्रि ॥ विभूषितेयंप्रतिकर्मनित्यावसत्वरण्येसहराघवेण ॥ ३५ ॥ यानैश्चमुख्यैःपरिचारकै श्चसुसंवृतागच्छतुराजपुत्री ॥ वस्त्रैश्चसर्वैःसहितैर्विधानैर्नेयंवृतातेवरसंप्रदाने ॥ ३६ ॥

कि तूने पुत्रके हितकी कामना करके उनको जो राज्य दिलायासो तुमने यह पुत्रका हित नहीं किया बरन् अहितही किया है। मैं जानताहूं कि, संसारमें ऐसा कोई मनुष्य नहीं, है जो रामके प्रति अनुरागी न हो और उनके पीछे वनको न चला जाय ॥३२॥ हे कैकेयी ! तू वही देखेगी कि, पशु; पक्षी, सर्प मृग व और भी सब जीव जन्तु रामके साथ वनको चले जायँगे; औरोंके जानेकी वार्त्ता तो छोडदो वृक्षभी चलनेके समय रामचन्द्रजीही की ओर झुकेंगे मानों चलनेको तैयार हैं ॥३३॥ हे देवि ! तुम इस समय चीर वसन छुडाकर अपनी पुत्रवधू जानकीको अच्छे वस्त्राभूषण पहरनेको दो देखो सीताजीके शरीरमें चीर वसन अच्छे नहीं लगते अतएव तुम उनको यह वल्कल वसन मत दो यह कहकर वसिष्ठजी उनवस्त्रोंका निवारण करने लगे ॥३४॥ हे कैकयराजपुत्री ! जबकि तुमने केवल रामचन्द्रजी ही को वन भेजनेका वर मांगा है तब सीताजी वसनविभूषणसे विभूषित हो वनमें अपने स्वामीकी सेवा करनेजायँ तो तुम्हारी हानि क्या है ॥३५॥ मैं कहताहूँ जबकि,

तुमने सीताको वनमें भेजनेका वर ही नहीं मांगा तब वह अच्छी सवारीपर चढकर दास दासियों सहित अनेक प्रकारके भूषण वसनविभूषित हो रामचन्द्रके साथ वनको जायँगी ॥३६॥ यद्यपि अमित प्रभाववाले अग्नि समान विप्रवर वशिष्ठजीने जानकीजीके चीरधारण करनेके संबन्धमें इस प्रकारकहा परन्तु तापसीभावसे रामचन्द्रजीके साथ जानेकी इच्छा किये जानकीजीने किसी प्रकार चीर धारण करनेकी वासना परित्याग नहीं की॥३७॥ इत्यार्षे श्रीमद्वा०वा०आ०अयोध्याकांडे भाषायां सप्तत्रिंशः सर्गः॥३७॥ सनाथा सीताजी जब चीर वस्त्र धारण करके अनाथकी नाईं बन जानेको तैयार हुई, उस समय जितने स्त्री पुरुष वहां थे चिल्लाये और महाराज दशरथजीको धिक्कार देने लगे॥१॥ उनका ऐसा हाहाकार सुनकर महाराज दशरथजी बहुत ही दुःखित हुये, तब उन्होंने समझ लिया कि, अब धर्म व यश न रहेगा, न अब हम जी ही सकेंगे उस समय उनकी नासिकासे क्षण २ में गहरे श्वास आने लगे, फिर राजा कैकेयीसे बोले॥२॥ बाला अवस्थाको प्राप्त दूसरे सुकुमारी इस कारण सदा सुखही भोग

तस्मिंस्तथाजल्पति विप्रमुख्येगुरौनृपस्याप्रतिमप्रभावे॥ नैवस्मसीताविनिवृत्तभावाप्रियस्यभर्तुःप्रतिकारकामा ॥ ३७ ॥ इत्यार्षे श्रीम०वाल्मीकीये आ० च० सा० अयो० सप्तत्रिंशः सर्गः॥३७॥ तस्यां चीरंवसानायांनाथवत्यामनाथवत् ॥ प्रचुक्रोशजनःसर्वोधिक्त्वांदशरथंत्विति ॥ १ ॥ तेनतत्रप्रणादेनदुःखितःसमहीपतिः ॥ (चिच्छेदजीवितेश्रद्धांधर्मेयशसिचात्मनः) सनिःश्वस्योष्णमैक्ष्वाकस्तांभार्यामिदमब्रवीत् ॥ २ ॥ (कैकेयिकुशचीरेणनसीतागंतुमर्हति ॥) सुकुमारीचबालाचसततंचसुखोचिता ॥ नेयंवनस्ययोग्येतिसत्यमाहगुरुर्मम ॥ ३ ॥ इयंहिकस्यापकरोतिकिंचित्तपस्विनीराजवरस्यपुत्री ॥ याचीरमासाद्यवनस्यमध्येजाताविसंज्ञाश्रमणीवकाचित् ॥ ४ ॥ चीराण्यपास्याज्जनकस्यकन्यानेयंप्रतिज्ञाममदत्तपूर्वा ॥ यथासुखंगच्छतुराजपुत्रीवनंसमग्रासहसर्वरत्नैः ॥५॥ सजीवनार्हेणमयानृशंसाकृताप्रतिज्ञानियमेनतावत् ॥ त्वयाहिबाल्यात्प्रतिपन्नमेतत्तन्मादहेद्वेणुमिवात्मपुष्पम् ॥ ६ ॥

नेके योग्य है। इस कारणसे इनका वन जाना किसी भांति उचित नहीं है यह वार्ता हमारे गुरुजीने भी ठीक ठीक कही है॥३॥ आश्चर्य तो इस बातका है कि; श्रेष्ठ राजाकी पुत्री सीताजीने कभी किसीका बुरा नहीं चाहा; सो इनको भी वनवास करनेवाली तपस्विनीके समान चीर पहनने पडे। अहो! किस प्रकारसे इन चीरोंका पहरना होता है यह न जानकर राजपुत्री मोहित सी हो गई थी॥४॥ इस समय पुत्रवधू सीता कुशके चीर वसन त्याग करें और मन इच्छापूर्वक अनेक प्रकारके गहने धन रत्नादि ले अपने पतिके साथ जायँ मैं स्मरण करके कहता हूँ कि मैंने यह प्रतिज्ञा या वर किसीको नहीं दिया कि, रामचन्द्रजीके समान उनको भी वनमें जाना होगा॥५॥ हा! मैंने मृतप्राय होकर रामके वनवास जानेका वर कैकेयीको दिया तो है परन्तु बांसका फूल जिस प्रकार निकलते ही वांसको सुखा देता है वैसे ही तेरी

अज्ञानताके हेतु करके यह प्रवृत्ति मेरे नाश करनेका कारण होगी ॥६॥ मानो कि, रामचन्द्रने तेरा कुछ अनभल कर ही दिया किंतु हे पापीयसि! बताती सही श्रेष्ठ जानकीजीने तेरा क्या बिगाड़ किया है जो तू इनको यह चीर कुशके वसन पहराती है ? ॥७॥ मृगीके समान खिले नेत्रवाली कोमल शीतस्वभावशाली व बुद्धिमान् जनककुमारीने तेरा कब कौन अपकार किया है॥८॥ तुमने जो रामचन्द्रका वनवास मांगकर जो अपना भला चाहा है वही तुम्हारे लिये बहुत है इसके पश्चात् इन और सब महापातकोंका अनुष्ठानकरने से तुझको क्या फल मिलेंगे? एक रामही को वन भेजनेसे तुझको हजारों वर्ष तक नरक भोगना पडेगा ॥९॥ हे देवि! मेरा तो यही विश्वास था कि, तुम रामचंद्रजीके अभिषेकार्थ मेरेपास आई हो सो तुमने इसके बदले रामके वन भेजनेका वर मांगा, सो मुझको धोखेमें पड तुम्हारीबात माननीपडी ॥१०॥ सो अब देखताहूं कि, तेरी दुराशा और भीबढगई है ।क्या आश्चर्य है कि,तूनिरपराधाजनकदुलारी जानकीतकको कुशके चीरवस्त्र पहराकर

रामेणयदितेपापेकिंचित्कृतमशोभनम् ॥ अपकारःकइहतेवैदेह्यादर्शितोऽधमे ॥७॥ मृगीवोत्फुल्लनयनामृदुशीलामनस्विनी ॥ अपकारंकमिवते करोतिजानकात्मजा ॥ ८ ॥ ननुपर्याप्तमेवंतेपापेरामविवासनम् ॥किमेभिःकृपणैर्भूयःपातकैरपितेकृतैः ॥९ ॥ प्रतिज्ञातंमयातावत्त्वयोक्तंदेवि शृण्वता ॥रामंयदभिषेकायत्वमिहागतमब्रवीः ॥ १० ॥ तत्त्वेतत्समतिक्रम्यनिरयंगंतुमिच्छसि ॥ मैथिलीमपियाहित्वमीक्षसेचीरवासिनीम् ॥११॥ एवंब्रुवंतंपितरंरामःसंप्रस्थितोवनम् ॥ अवाक्शिरसमासीनमिदंवचनमब्रवीत् ॥१२॥ इयंधार्मिककौसल्याममातायशस्विनी॥वृद्धा चाक्षुद्रशीलाचनचत्वांदेवगर्हते ॥१३॥ मयाविहीनांवरदप्रपन्नांशोकसागरम् ॥ अदृष्टपूर्वव्यसनांभूयःसंमतुमर्हसि ॥१४॥ इमांमहेंद्रोपमजात गर्धिनींतथाविधातुंजननींममार्हसि ॥ यथावनस्थेमविशोककर्शितानजीवितंन्यस्ययमक्षयंव्रजेत् ॥१५॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० अयोध्याकांडे अष्टत्रिंशः सर्गः॥३८॥रामस्यतुवचःश्रुत्वामुनिवेषधरंचतम्॥समीक्ष्यसहभार्याभीराजाविगतचेतनः॥१॥

भेजनेकी इच्छा करती है । जो कुछ हो निश्चय तुझे इस अपराधके कारण नरकमें जानापडेगा ॥११॥सीताजीकेसंबंधमें इस प्रकार वार्त्ता कहनेपररामचन्द्रजीशिर झुकाये मौन साधे हुये अपने पिता दशरथजीसे बोले * ॥१२॥ हेधार्मिक पिताजी ! हमारी माता यशस्विनी कौशल्याजी बहुतहीबूढी गम्भीर स्वभाववालीकुछआप की निन्दा नहीं करतीं॥१३॥इस कारण अब हमारा वन जाना श्रवण करके और चले जानेमें शोकसागरमें डूबतीहुईकिजिन्होंने इससे पूर्व ऐसादुःखनहीं देखाथा उनका आप अधिक स्नेहसहित सन्मानकियाकरना॥१४॥हे इन्द्रके समान महाराज ! तुम्हारे समीप रहनेवाली कौशल्या हमारी माता आंखोंकी ओटमें हमको नहीं रखना चाहतीं; अब आपसे यही प्रार्थना है कि मेरे वन चलेजानेपर मेरे वियोगसे कहीं माता प्राण न त्यागदें इस कारण इनको सन्मानसेरखना ॥ १५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयो० भाषायामष्टत्रिंशः सर्गः ॥ ३८ ॥ महाराज दशरथजी रामचन्द्रजीके मुखसे इस प्रकारकी वार्त्ता श्रवण करके और

* किसी ग्रंथमें यह अधिक पाठ देखा जाता है "इतीवराजा विलपन्महात्मा शोकस्यनान्तंसववर्श किञ्चित् । भृशातुरत्वाच्च पपात भूमौ तेनैव पुत्रव्यसनेन मग्नः ॥

उनको साक्षात् मुनिवेष धारण किये देख अपनी सब स्त्रियोंके सहित मूर्छित हो गये॥१॥उस समय उनके दुःखका वेग यहांतक बढ गया था कि रामकी ओर राजा दृष्टि उठाकर कुछ देख ही न सके और जो बडी कठिनाईसे देखा तो कुछ बोल नहीं सके ॥२॥ तब महाबाहु दुःखित मनसे रामचन्द्रजीकी ही चिन्ता करते २ एक मुहूर्त्त तक अचेत पडे रहे; तदनन्तर चैतन्य हो रामको स्मरण कर अनेक प्रकारके विलाप कलाप करने लगे॥३॥राजा दशरथजी कहने लगे कि मुझे ऐसा जान पडता है कि, पहले जन्ममें न जानें मैंने कितनी गायोंसे उनके बछडे छुडाये होंगे और न जाने कितने जीवोंकी हत्या की होगी जिससे कि अब मेरी यह दुर्दशा होरही है॥४॥ मैं जानता हूँ कि, बिना समय आये जीवकी मृत्यु नहीं होती यदि ऐसा होता तो कैकेयीका दिया हुआ दुःख मेरी मृत्युका कारण हो जाता॥५॥ औरमृत्यु होनेसे मैं

नैनंदुःखेनसंतप्तःप्रत्यवैक्षतराघवम् ॥ नचैनमभिसंप्रेक्ष्यप्रत्यभाषतदुर्मनाः ॥ २ ॥ समुहूर्तमिवासंज्ञोदुःखितश्चमहीपतिः ॥ विललापमहाबाहू राममेवानुचिंतयन् ॥ ३ ॥ मन्येखलुमयापूर्वंविवत्साबहवः कृताः ॥ प्राणिनोहिंसितावापितन्मामिदमुपस्थितम् ॥ ४ ॥ नत्वेवानागतेकालेदे हाच्च्यवतिजीवितम् ॥ कैकेय्याक्लिश्यमानस्यमृत्युर्ममनविद्यते ॥ ५॥ योऽहंपावकसंकाशंपश्यामिपुरतः स्थितम्॥विहायवसनेसूक्ष्मेतापसा च्छादमात्मजम् ॥ ६ ॥ एकस्याःखलुकैकेय्याःकृतेऽयंक्लिश्यतेजनः ॥ स्वार्थेप्रयतमानायाःसंश्रित्यनिकृतिंत्विमाम् ॥ ७ ॥ एवमुक्त्वातुवचनं बाष्पेणविहतेंद्रियः ॥ रामेतिसकृदेवोक्त्वाव्याहर्तुंनशशाकसः ॥८॥ संज्ञांतुप्रतिलभ्यैवमुहूर्तात्समहीपतिः॥नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यांसुमंत्रमिदम ब्रवीत् ॥ ९ ॥ औपवाह्यंरथंयुक्त्वात्वमायाहिहयोत्तमैः ॥ प्रापयैनंमहाभागमितोजनपदात्परम् ॥१०॥ एवंमध्येगुणवतांगुणानांफलमुच्यते॥ पित्रामात्राचयत्साधुर्वीरोनिर्वास्यतेवनम् ॥११॥

अग्निके संमान दिपते हुए रेशमी महीन वस्त्र छोडे तपस्वियोंके वसन पहरे आगे खडे अपने पुत्रको न देखता॥६॥इस समय मुझे भलीभांति सूझ पडीकि अपने मतलब साधन करनेवाली इकले खोटी कैकेयीसे ही सर्वसाधारणको यह कष्ट पाना पडा ॥७॥जब राजा यह वार्त्ता कह चुके तो उनके दोनों नेत्रसे आंसुओंकी धारा निकलने लगी उन्होंने रामचन्द्रजीसे कुछ कहनेको जैसे ही "राम" यह शब्द कहा वैसे ही उनका गला रुक गया और वह कुछ नहीं कह सके॥८॥तदनन्तर एक मुहूर्त्त कालतक मनमें शोकका वेग धारण कर रुदन करते हुए दीनवचनसे सुमंत्रसेकहने लगे ॥९॥ हे सुमंत्र ! हे महाभाग ! सवारीके जुतने योग्य अच्छे घोडे जोत कर यहां एक रथ ले आओ और उसमें रामचंद्रजीको बैठाकर इस देशके बाहर पहुँचाओ ॥१०॥ देखो शास्त्रोंमें गुणवानोंके गुणका यही फल लिखा है

कि पुत्रमाता पिताकी आज्ञा माने सो आज देख लो कि अपने माता पिताकी आज्ञा मान गुणवान् साधुस्वभाव रामचन्द्रजी वनको जाते हैं ॥११॥ राजाकी ऐसी आज्ञा सुन सुमंत्रजी शीघ्र चलकर सुन्दर घोडे जोत सब तरहसे सजा धजाकर एक रथ ले आये॥१२॥ और हाथ जोडे परमोदार राजकुमार श्रीरामचन्द्रजीसे कहा कि, अच्छे घोडोंसे युक्त (जुता हुआ) सुवर्णसे भूषित रथ आपके लिये तैयार है ॥ १३ ॥ इसके पीछे महाराज दशरथजीने धनाध्यक्ष अर्थात् खजाञ्चीको बुलाया जो कि सब धनागार और तोपखाने की वस्तुओंको जानता था कि कौन वस्तु कहां धरी है जब वह आयातब महाराज दशरथजीने उससे कहा॥१४॥ बडे २ मूल्यवान् कपडे और सबसे अच्छे गहने जो कि चौदह वर्षतक वनमें रहती हुई जानकीके लिए पूरे पडें शीघ्रजाकर लेआओ ॥१५॥ राजाकी आज्ञा पाकर खजांचीकोषागारमें गया और राजाने जिन२पदार्थोंको कहा था उन सबको लेकर शीघ्रतासे लाकर सीताजीको दे दिया ॥१६॥ अयोनिजा जानकीजी

राज्ञोवचनमाज्ञायसुमंत्रःशीघ्रविक्रमः ॥ योजयित्वाययौतत्ररथमश्वैरलंकृतम् ॥१२॥ तंरथंराजपुत्रायसूतःकनकभूषितम् ॥ आचचक्षेंऽजलिं कृत्वायुक्तंपरमवाजिभिः ॥१३॥ राजासत्वरमाहूयव्यापृतवित्तसंचये ॥ उवाचदेशकालज्ञोनिश्चितंसर्वतःशुचि ॥ १४ ॥वासांसिचवराहाणि भूषणानिमहांतिच॥वर्षाण्येतानिसंख्यायवैदेह्याःक्षिप्रमानय ॥१५॥ नरेंद्रेणैवमुक्तस्तुगत्वाकोशगृहंततः ॥प्रायच्छत्सर्वमाहृत्यसीतायैक्षिप्रमेव तत् ॥ १६ ॥ सासुजातासुजातानिवैदेहीप्रस्थितावनम् ॥ भूषयामासगात्राणितैर्विचित्रैर्विभूषणैः ॥ १७ ॥ व्यराजयतवैदेहीवेश्मतत्सुविभूषिता ॥ उद्यतोंऽशुमतःकालेखंप्रभेवविवस्वतः ॥ १८ ॥ तांभुजाभ्यांपरिष्वज्यश्वश्रूर्वचनमब्रवीत् ॥ अनाचरंतींकृपणंमूर्ध्न्युपाघ्रायमैथिलीम् ॥ १९ ॥ असत्यःसर्वलोकेऽस्मिन्सततंसत्कृताःप्रियैः ॥ भर्त्तारंनाभिमन्यंतेविनिपातगतस्त्रियः ॥ २० ॥ एषस्वभावोनारीणामनुभूयपुरासुखम् ॥ अल्पामप्यापदंप्राप्यदुष्यंतिप्रजहत्यपि ॥ २१ ॥

उन सब श्रेष्ठ और चित्र विचित्र आभूषणों को धारण करके बहुतही शोभा पाने लगीं ॥१७॥ प्रातःकालमें उदय होते हुये सूर्यकी किरणोंकी शोभासे जिस प्रकार गगनमंडल रंगाजाकर शोभायमान होता है वैसेही जानकी गहनोंकी चमकके साथ उनको कमनीय कान्तिने उस गृहको शोभितकिया ॥१८॥ जबकि रामचन्द्रजी और सीताजी खडी थीं तब उस समय देवीकौशल्याजीने अपनीअच्छे आचरण करनेवाली पुत्रवधू जानकीको छातीसे चिपटा लिया और उनका शिर सूंघकर कहा ॥१९॥ जो स्त्री परिवारमें भी चाहे सबको प्यारी हो और विपदके समय वह स्वामिसेवासे मन हटाले तो वह स्त्रीत्रिलोकीमें असती कहाकर विख्यात होती है ॥२०॥ वास्तवमें असती स्त्रियोंका स्वभावही इस प्रकारका होता है कि वह जबतक उनका स्वामी सुखसे रहे और उसके पास धनदौलत रहे तबतक तो वह

सुखसे प्रसन्नता सहित रहती हैं। परन्तु जब कोई विपत्ति आकर पडी कि उन्होंने अपने स्वामीके दोष कहने आरंभकिये दोषकहते फिरनातो एकसाधारण बात है वहस्त्रियें तोविपत्तिकालमें अपने स्वामीकात्यागतक कर देती हैं ॥२१॥ अधिक क्या कहूं असत्य कहनेका तो उनका स्वभाव होजाता है और वह दुर्गम स्थानोंमेंभी चली जाया करती हैं,व सब प्रकारके विकार उनमें भरे रहते हैं,और उनके मन पापवृत्तिके वश होजाते हैं, और वह सैकडों भाँतीके रूप लाती हैं,और तनकदेरमें प्रेम छोडदेती हैं और वह सदास्वामीसे अनखाईसी रहती हैं ॥२२॥ वह अपने कुलकी ओरको नहीं देखती, न वहकिसीका भलामानें धर्म और दान ज्ञानको भूलजाती हैं, यदि उनका दोष उनको दिखाभी दिया जाय तो उनको मानती नहीं हैं उनके चंचल चित्त होजाते हैं वे पूर्वोक्त धर्मादिकोंको ग्रहण नहीं करतीं असत्यमें मनलगाये रहती हैं ॥२३॥ परन्तु जिनका चरित्र पवित्र है जो दिनरात सत्यही बोलाकरतीं हैं गुरुजीका उपदेशमाननेमें जो चित्त लगाती हैं, जो कुलीन मर्यादा रक्षाकरनेके लिये न यत्नवान रहती हैं वही सब पतिव्रता स्त्रियें अपने पतिको पुण्यसाधन करनेका मार्ग जानती हैं और पतिहीके कहनेमें रहती हैं, स्त्रियोंकी पतिही

असत्यशीलाविकृतादुर्गाअहृदयाःसदा ॥असत्याःपापसंकल्पाःक्षणमात्रविरागिणः॥२२॥नकुलंनकृतंविद्यानदत्तंनापिसंग्रहः॥ स्त्रीणांगृह्णाति हृदयमनित्यहृदयाहिताः ॥२३ ॥साध्वीनांतुस्थितानांतुशीलेसत्येश्रुतेस्थिते॥ स्त्रीणांपवित्रंपरमंपतिरेकोविशिष्यते ॥ २४ ॥ सत्वयानाव मंतव्यःपुत्रःप्रव्राजितोवनम् ॥ तवदेवसमस्त्वेषनिर्धनःसधनोऽपिवा ॥२५॥ विज्ञायवचनंसीतातस्याधर्मार्थसंहितम्॥कृत्वांजलिमुवाचेदंश्वश्रु मभिमुखेस्थिता ॥२६॥ करिष्येसर्वमेवाहमार्यायदनुशास्तिमाम् ॥ अभिज्ञास्मियथाभर्तुर्वर्तितव्यंश्रुतंचमे॥२७॥नमामसज्जनेनार्यासमानयि तुमर्हति ॥ धर्माद्विचलितुंनाहमलंचंद्रादिवप्रभा ॥२८॥नातंत्रीविद्यतेवीणानाचक्रोविद्यतेरथः॥नापतिःसुखमेधेतयास्यादपिशतात्मजा॥२९॥

एक परम गति है ॥२४॥ सो हे बहू ! मैं तुमसे कहती हूं किइस समयमेरे पुत्ररामचन्द्र वनको जाते हैं अतएव ऐसेसमय चाहे तो यहधनी हों और चाहे निर्धनीहों परन्तु तुमदेवताके समान अपने स्वामीका कभी अनादर मतकरना ॥ २५ ॥ तबजानकीजी धर्म अर्थ युक्त कौशल्याजीके वचन सुनकर आगे बढकर खडी हो आंसू भर हाथ जोडकरउनसे बोली॥२६॥ आर्ये! आपने मुझे जो आज्ञा की है मैं अवश्यही उसकोमानूंगी स्वामीकेलिये स्त्रियोंको जोकुछकरना उचित है वह मैं सब जानती हूं और मैंने माता पिता आदि गुरु जनोंकेमुखसे यह उपदेश सुनेभी हैं॥२७॥ आपसे अधिक क्या कहूं आप मुझे उन झूंठी दुष्टा स्त्रियोंके समान मत समझिये,मैं कहती हूं कि जिस प्रकार चंद्रमाकी किरणें चन्द्रमाको छोडकर कहीं नहीं जातीं वैसेही मैं किसी प्रकार पतिव्रता धर्मसे बाहरनहीं हो सकती ॥२८॥ जिस प्रकार तारके विना वीणानहीं बज सकती और विना पहियेके रथ नहीं चल सकता, वैसेही शत पुत्रोंकी मा होकरभी स्वामिहीन स्त्रीको सुख होनेवाला नहीं

॥२९॥ यह बात ठीक है कि माता पिता और पुत्र अपने वित्तहीके अनुसार वस्तु या सुख दे सकते हैं, परन्तु स्वामीसे जो जो सुख व पदार्थ स्त्रीको प्राप्त होते हैं वह तो अनगिन्त हैं' अतएव ऐसे स्वामीको कौन स्त्री न पूजेगी अर्थात् उसका आदर सत्कार न करेगी ॥३०॥ हे आर्ये! स्वामीकी सेवा करनाही स्त्रियोंका परम धर्म है, मैं सदाही इनकी आज्ञामें रहूंगी कभी इनका अनादर न करूंगी मैं भलीप्रकार जानती हूं कि पतिही हमारे देवता हैं इसकारण मुझे आप और स्त्रियोंके समान न समझिये ॥३१॥ सीताके मुखसे इसभांतिकी मनोहर वार्ता श्रवणकर मारे हर्ष व विषादके कौशल्याजी रोनेलगीं ॥ ३२ ॥ तब उस समय धर्मात्मा रामचन्द्रजी सब माताओंके बीचमें बैठीहुई सबके पूजन योग्य अपनी माता कौशल्याजीको देखकर उससे हाथ जोड बोले ॥३३॥ हे जननि ! तुम मेरे चले जानेपर शोकार्त्त

मितंददातिहिपितामितंभ्रातामितंसुतः ॥ अमितस्यतुदातारंभर्त्तारंकानपूजयेत् ॥३०॥ साहमेवगता श्रेष्ठा श्रुतधर्मपरावरा॥आर्येकिमवमन्ये यंस्त्रियाभर्त्ताहिदैवतम् ॥३१॥ सीतायावचनंश्रुत्वाकौसल्याहृदयंगमम् ॥ शुद्धसत्त्वाममोचाश्रुसहसादुःखहर्षजम् ॥ ३२ ॥ तांप्रांजलिरभिप्रे क्ष्यमातृमध्येऽतिसत्कृताम् ॥रामःपरमधर्मात्मामातरंवाक्यमब्रवीत् ॥३३॥ अंबमादुःखिताभूत्वापश्येस्त्वंपितरंमम ॥ क्षयोऽपिवनवासस्य क्षिप्रमेवभविष्यति ॥३४॥ सुप्तायास्तेगमिष्यंतिनववर्षाणिपंचच ॥ समग्रमिहसंप्राप्तंमांद्रक्ष्यसिसुहृद्वृतम् ॥ ३५ ॥ एतावदभिनीतार्थमुक्त्वा सजननींवचः॥ त्रयः शतशतार्धाहिददर्शावेक्ष्यमातरः ॥३६॥ ताश्चापिसतथैवातामातुर्दशरथात्मजः॥धर्मयुक्तमिदंवाक्यनिजगादकृतांजलिः ॥३७॥ संवासात्परुषंकिंचिदज्ञानादपियत्कृतम्॥तन्मेसमुपजानीतसर्वाश्चामंत्रयामिवः ॥३८॥ वचनंराघवस्यैतद्धर्मयुक्तसमाहितम् ॥ शुश्रुवु स्ताः स्त्रियःसर्वाशोकोपहतचेतसः ॥ ३९ ॥

होकर पिताजीसे कुछ न कहना; थोडेही दिनके बीचमें मेरे वनमेंरहनेकासमयपूरा हो जायगा॥ ३४ ॥ तुम मेरा चौदह वर्षका वनवास पलक मारते हुए चौदह घडीके समान देखोगी । मैं जानकी औरलक्ष्मणकेसहित राजधानीमेंआगयाऐसे आप सोतेहुये जागतेके समान देखेंगी॥ ३५ ॥ अपनी मातासेइसप्रकार कहकर और जो स्त्रियें महाराज दशरथजीकीथीं, सो वेभी सब माताहीथीं उनकी ओर देखा, और उन सबनेभी राजकुमार रामचन्द्रकी ओर भलीभांति निहारा ॥३६॥ वहभी सब माता कौशल्याजीकेही समान दुःख पारही थीं इस कारण हाथ जोड धर्म युक्त उनसे रामचन्द्रजी बोले॥३७॥ कि हे माताओ ! एक साथ रहनेके कारण या भ्रम अथवा अज्ञानतासे मैंने कभी कोई कठोर व्यवहार व कठोर वचन आपको कहाहो तो आप सब उस अपराधको क्षमा कर दीजिये ॥३८॥ रामचन्द्र

जीकेमुखसे ऐसे धर्मयुक्त वचन सुनकर सब महारानियें शोकसे व्याकुल होगईं ॥३९॥ क्रौंचपक्षीकीस्त्रियोंकेविलापसे जिसप्रकारकाशब्दहोता है रामचन्द्रकेवचनसुनकर राजाकी सबरानियोंका हाहाकार करके विलाप करनाभी वैसेही कठिन भावसे उच्चरित होने लगा ॥४०॥ बडा आश्चर्य है कि एक समय जो गृह दशरथजीके मृदङ्ग और ढोलइत्यादिमेघके समानबाजोंके बजनेसे शब्दायमान रहते थे, इस समय वही सब वर रानियोंके करुणा सहित आर्त्तनाद और परितापके दुःखसे छागये ॥४१॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयो० भाषायामेकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥३९॥ अनन्तर रामचन्द्रजीने सीता और लक्ष्मणजीकेसहित दीनभावसे हाथ जोड पिता दशरथजीके चरणोंमें प्रणाम किया और उनकी प्रदक्षिणा करने लगे ॥१॥ फिर पिताजीसे विदा लेकर सहधर्मिणी सीता सहित धर्मात्मा रामचन्द्रजीने शोकसे व्याकुल हो माता कौशल्याजीके चरणोंमें प्रणाम किया ॥२॥ रामचन्द्रजीके प्रणाम कर चुकनेपर पहले लक्ष्मणजीने कौशल्याजीके चरणोंमेंप्रणाम किया फिर अपनी

जज्ञेऽथतासांसन्नादःक्रौंचीनामिवनिःस्वनः ॥ मानवेंद्रस्यभार्याणामेवंवदतिराघवे॥४०॥ मुरजपणवमेघघोषवद्दशरथवेश्मबभूवयत्पुरा ॥ विलपितपरिदेवनाकुलंव्यसनगतंतदभूत्सुदुःखितम् ॥ ४१॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणेवाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० अयोध्याकांडे एकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥ ३९ ॥ अथरामश्चसीताचलक्ष्मणश्चकृतांजलिः ॥ उपसंगृह्यराजानंचक्रुर्दीनाःप्रदक्षिणम् ॥१॥ तंचापिसमनुज्ञाप्यधर्मज्ञः सहसीतया ॥ राघवःशोकसंमूढोजननीमभ्यवादयत् ॥२॥ अन्वक्षंलक्ष्मणोभ्रातुः कौसल्यामभ्यवादयत् ॥ अपिमातुःसुमित्रायाजग्राहचरणौपुनः ॥३॥ तंवंदमानंरुदतीमातासौमित्रिमब्रवीत् ॥ हितकामामहाबाहुंमूर्ध्न्युपाघ्रायलक्ष्मणम् ॥४॥ सृष्टस्त्वंवनवासायस्वनुरक्तःसुहृज्जने ॥ रामेप्रमादंमाकार्षीःपुत्रभ्रातरिगच्छति ॥ ५ ॥ व्यसनीवासमृद्धोवागतिरेषातवानघ॥ एषलोकेसतांधर्मोयज्ज्येष्ठवशगोभवेत् ॥ ६ ॥ इदंहिवृत्तमुचितंकुलस्यास्यसनातनम् ॥ दानंदीक्षाचयज्ञेषुतनुत्यागोमृधेषुहि ॥ ७ ॥

माता सुमित्राजीके चरणोंमें जाय गिरे ॥३॥ और उसके पीछे और माताओंके चरणों की वंदना करते हुए लक्ष्मणजीको देख सुमित्राजी रोनेलगीं, और महाबाहु लक्ष्मणजीकाशिर सूंघ इनकाहितकरनेके लिये बोलीं ॥४॥ हे वत्स! यद्यपि तुम सब सुहृज्जनोंके बहुतही प्यारेहो, तथापि तुम्हारे बडे भ्राता रामचन्द्रवनको जाते हैं; तब सावधानीसे उनकी सेवा करना प्रमाद न करना और उनके साथ वन जाना तुमको उचित है ॥ ५ ॥ हे अनघ! रामचन्द्रके ऊपर दुःसमयहो, वा सुसमय हो, चाहै वहऐश्वर्य सहित या बिना ऐश्वर्यके हों पर जानरक्खो कि, रामही तुम्हारेएकमात्र गतिहैं तुम्हें अधिक क्या समझाऊं बडे भाईके वशमें रहनाही छोटे भाईको उचित है और यही सनातन धर्म है ॥६॥ विशेष करके ऐसा कार्य करना तो इस वंशकी पुरानी रीति है अधिक कहनेका क्या प्रयोजनहै? दान, यज्ञानुष्ठान और रणभूमिमें

प्राणत्याग करदेना इत्यादि यह सब कार्य इसवंशमें परम्परासे चले आते हैं, और यही इसवंशको करनेउचित हैं ॥७॥ सुमित्रा लक्ष्मणजीको इस भांतिसे उपदेश देकर उनको रामचन्द्रजी का अतिशय प्रियजान वारंवार कहनेलगी कि हेपुत्र! विलंब न करके जल्दी रामके साथ वनको जाओ॥८॥हे तात ! तुम इस समयरामचन्द्रजी को तो अपने पितादशरथजानो और जानकीको माता सुमित्रा करके समझो, और जिस वनमें बसो उसे अयोध्या पुरी मानों । और स्वच्छन्दतासे वन जाओ ॥९॥ तब विनयके जाननेवाले सुमंत्रजी जिसप्रकार मातलिइन्द्रसेकहे वैसे ही हाथजोड विनय वचन कहतेहुये श्रीरामचन्द्र से बोले॥१०॥ हे महायशस्वी राजकुमार!रथतैयारहै आपउसमें बैठजाइये,आपजिस स्थान पर कहेंगे में उसी जगह पर आपको ले जाऊंगा ॥११॥ देवी कैकेयीजी आपको चौदह वर्षके लिये वनवासी करचुकी हैं और राजाकोभी यही अभीष्टहै अतएव आजसे उनचौदह वर्षोंका आरम्भ किया जाताहै ॥१२॥ उस समय सुन्दर मुखवाली जनकनन्दिनीजानकीजी प्रफुल्लमनसे

लक्ष्मणत्वेवमुक्त्वासौसंसिद्धंप्रियराघवम् ॥ सुमित्रागच्छगच्छेतिपुनःपुनरुवाचतम्॥८॥ रामंदशरथंविद्धिमांविद्धिजनकात्मजाम् ॥ अयोध्या मटवींविद्धिगच्छतातयथासुखम् ॥९॥ ततःसुमंत्रःकाकुत्स्थंप्रांजलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ विनीतोविनयज्ञश्चमातलिर्वासवंयथा ॥१०॥ रथमारो हभद्रंतेराजपुत्रमहायशः ॥ क्षिप्रंत्वांप्रापयिष्यामियत्रमांरामवक्ष्यसे ॥११॥ चतुर्दशहिवर्षाणिवस्तव्यानिवनेत्वया ॥ तान्युपक्रमितव्यानिया निदेव्याप्रचोदितः ॥ १२ ॥ तंरथंसूर्यसंकाशंसीताहृष्टेनचेतसा ॥ आरुरोहवरारोहाकृत्वालंकारमात्मनः ॥१३॥ वनवासंहिसंख्यायवासांस्या भरणानिच॥ भर्तारमनुगच्छन्त्यैसीतायैश्वशुरोददौ ॥१४॥ तथैवायुधजातानिभ्रातृभ्यांकवचानिच॥ रथोपस्थेप्रविन्यस्यसचर्मकठिनंचयत् ॥ १५ ॥ अथोज्वलनसंकाशंचामीकरविभूषितम् ॥ तमारुरुहतुस्तूर्णंभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ १६ ॥ सीतातृतीयानारूढान्दृष्ट्वारथमचोदयत् ॥ सुमंत्रःसंमतानश्वान्वायुवेगसमाञ्जवे ॥ १७ ॥ प्रयातेतुमहारण्यंचिररात्रायराघवे ॥ बभूवनगरेमूर्च्छाबलमूर्च्छाजनस्यच ॥ १८ ॥

अनेक प्रकारके वस्त्राभूषणोंसे भूषित होकर सबसे, पहले सूर्यके समान उस रथपै चढ़ीं ॥१३॥ जानकीके श्वशुर महाराज दशरथने चौदह वर्षके निमित्त जो उनको गहने और वस्त्रादि दिये थे,वह सब रथपर रक्खे गये॥१४॥ इसी प्रकार रामचन्द्र व लक्ष्मणदोनोंभाइयोंकोसबभांतिकेकवच, अस्त्र शस्त्र,और कुदाल पिटारी जो कुछ दशरथजीने दिये वह दोनों भाइयोंने सब लिये ॥१५॥ तदनन्तर रामचन्द्र व लक्ष्मणजी अस्त्र, कवच, बख्तर और चमडेसे मढी पिटारी आदि रथमें रख आपभी उस सोनेके बनेहुए रथपर शीघ्रतासे चढे॥१६॥ जब रामचन्द्र व लक्ष्मण और सीताजी यही तीनोंजन रथपर सवार हो गयेतब वायुकेसमानवेगवान् घोडे सुमंत्रजीने हांके ॥१७॥ जब कि महावनकी ओर बहुत वर्षोंके निमित्त रथ चलता हुआ,उस समय नगरकेवासी,सेनाके मनुष्य और जितनेभरअयोध्याके

रहनेवाले मनुष्य थे सभी मूर्छित होगये ॥१८॥ चारों ओरही हाहाकारहो रहाथा हाथी सब क्रोधमें भरकर इधर उधर अनिवारित कूदने फांदने लगे घोडे हींसने लगे सब जगहही भयानक कोलाहल होने लगे ॥१९॥ तब नगरके बालक वृद्ध, वनिता सबही अतिशय कातर हुये, जैसे कि गर्मीके तापसे तपा हुआ मनुष्य जल देख कर उसकी ओर बढता है वैसेही उस समय अयोध्याके सबस्त्री पुरुषरामचन्द्रजीकेपीछे२दौडे ॥२०॥ कोई२रथके आगे व कोई२पीछे बगलमें लिपटगये और आसूंभरे मुखसे सब एकस्वरसे सुमंत्रजीसे कहनेलगे॥२१॥कि हे सुमंत्रजी ! तुम घोडोंकी रस्सी थामकर उनको धीरे२चलाओ हमारी इच्छारामचन्द्रजीका मुखचन्द्रदेखनेकी है,क्योंकि फिर बहुत दिनों तक इसमुखका दर्शन न होगा॥२२॥हम सब लोगोंके विचारसे रामचन्द्रजीकी माताका हिया निश्चय लोहेका बना हुआ है,यदि यह न होता तो ऐसे सुकुमाररामचन्द्रजीके वन जानेके समयवहहिया जिया क्यों नहीं फटा ? ॥२३॥ अहो धर्मपरायण सीता देवी परछाईके समान

तत्समाकुलसंभ्रांतंमत्तसंकुपितद्विपम् ॥ हयसिंजितनिर्घोषपुरमासीन्महास्वनम् ॥१९॥ ततःसबालवृद्धासापुरीपरमपीडिता॥ राममेवाभिदुद्राव धर्मार्तःसलिलंयथा ॥ २० ॥ पार्श्वतः पृष्ठतश्चापिलंबमानास्तदुन्मुखाः ॥ बाष्पपूर्णमुखाःसर्वेतमूचुर्भृशनिःस्वनाः ॥ २१ ॥ संयच्छवाजिनांर श्मीन्सूतयाहिशनैःशनैः ॥ मुखंद्रक्ष्यामरामस्यदुर्दर्शनोभविष्यति ॥२२॥ आयसंहृदयंनूनंराममातुरसंशयम् ॥ यद्देवगर्भप्रतिमेवनंयातिनभि द्यते ॥ २३ ॥ कृतकृत्याहिवैदेहीछायेवानुगतापतिम् ॥ नजहातिरताधर्मेमेरुमर्कप्रभायथा ॥२४॥ अहोलक्ष्मणसिद्धार्थःसततंप्रियवादिनम् ॥ भ्रातरंदेवसंकाशंयस्त्वंपरिचरिष्यसि ॥ २५ ॥ महत्येषाहितेबुद्धिरेषचाभ्युदयोमहान् ॥ एषस्वर्गस्यमार्गश्चयदेनमनुगच्छसि ॥२६॥ एवंवदं तस्तेसोढुंनशेकुर्बाष्पमागतम् ॥ नरास्तमनुगच्छंतिप्रियमिक्ष्वाकुनंदनम् ॥२७॥ अथराजावृतस्त्रीभिर्दीनाभिर्दीनचेतनः ॥ निर्जगामप्रियंपुत्रं द्रक्ष्यामीतिब्रुवन्गृहात् ॥ २८ ॥

रामचन्द्रजीके संग वन कोचलकर कृतकार्यहुई हैं । सूर्यकी प्रभा जिसप्रकारसुमेरु पर्वतको नहीं छोडती वैसेही इन्होंने किसी प्रकार रामचन्द्रजीका साथ नहीं छोडा ॥२४॥अहो ! लक्ष्मणका भी जन्म सार्थक है जिन्होंने देवतुल्य सत्यवादी अपने भ्राताको न छोड करके उनकी सेवाका भार ग्रहण किया है और उनहींके संग वनको जाते हैं॥२५॥ हे लक्ष्मण ! तुमसे अधिक क्या कहें तुमने जो रामचन्द्रजीके साथ वन जानेमें स्थिर मति कीहैसो यह तुम्हारी बुद्धि प्रशंसा करनेके योग्य है, तुमने जिस मार्गका अवलम्बन किया है, वास्तवमें उससे तुम्हारी उन्नति और स्वर्गकी प्राप्ति होगी ॥२६॥ सबही यह वार्त्ता कहते२रोने लगे, और सबही अनुरागकेमारे रामचन्द्रजीके पीछे२दौडे यात्राके समय बहुतेरा अमंगलके डरसे आंसुओंको रोका पर आंसुओंको रोक न सके ॥ २७ ॥ इस ओर महाराज

दशरथजीभी सब स्त्रियोंके सहितरुदनकरते हुये दीनभावसे पैदलही रामचन्द्रजीके देखनेको दौडे सबही शोकसे व्याकुल और घबडाये हुयेसे होरहेथे सबहीकेमनमें रामचन्द्रजीके दर्शनकी लालसालगरहीथी ॥२८॥ हाथीको सांकलोंसे बँधा हुआ देखकर हथिनी जिस प्रकार व्याकुल हुआ करती हैं वैसेहीआगे केवल स्त्रियोंकाअति जोरसे रोना सुनाईआने लगा ॥ २९ ॥ उससमय रामचन्द्रके पिता राजादशरथजी ऐसे जान पडतेथे मानों शोककी मूर्ति हैं राजाश्रीमान् थे परन्तु उस समय शोभित न हुये; राहु करके ग्रसे चंद्रमाके समान उस समय उनपर उदासीनता छा रहीथी ॥३०॥ अचिन्त्यात्मासाक्षात्ईश्वर श्रीमान् दशरथपुत्रश्री रामचन्द्रजी शीघ्रतासे रथ चलानेके लिये सुमंत्रको शीघ्रता कराने लगे ॥३१॥ अब सुमंत्रजी बडे संकटमें पडे,एक तरफतो " जल्दी रथ चलाओ" ऐसी रामकीआज्ञा दूसरी ओर "रथको धीरे२चलाओ" यह सब मनुष्योंकी विनती,अतएव एकही समयमें दोनों कार्योंका पूरा करना सुमंत्रके लिये कठिन हुआ ॥३२॥ रामचन्द्रजीके

शुश्रुवेचाग्रतःस्त्रीणांरुदंतीनांमहास्वनः॥यथा नादः करेणूनांबद्धेमहतिकुंजरे ॥२९॥ पिताहिराजाकाकुत्स्थःश्रीमान्सन्नस्तदाबभौ ॥ परिपूर्णः शशीकालेग्रहेणोपप्लुतोयथा ॥ ३० ॥ सचश्रीमानचिंत्यात्मारामोदशरथात्मजः ॥ सूतसंचोदयामासत्वरितंवाह्यतामिति ॥३१॥ रामोयाहीतितंसूतंतिष्ठेतिचजनस्तथा ॥ उभयंनाशकत्सूतःकर्तुमध्वनिचोदितः ॥३२॥ निर्गच्छतिमहाबाहौरामेपौरजनाश्रुभिः॥पतितैरभ्यवहितंप्रणनाशमहीरजः ॥ ३३ ॥ रुदिताश्रुपरिद्यूनंहाहाकृतमचेतनम् ॥ प्रयाणेराघवस्यासीत्पुरं परमपीडितम् ॥ ३४ ॥ सुस्रावनयनैःस्त्रीणामस्रमायाससंभवम् ॥ मीनसंक्षोभचलितैः सलिलंपंकजैरिव ॥३५॥ दृष्ट्वातुनृपतिःश्रीमानेकचित्तगतपुरम् ॥ निपपातैवदुःखेनकृत्तमूलइवद्रुमः ॥ ३६ ॥ ततोहलहलाशब्दोजज्ञेरामस्यपृष्ठतः ॥ नराणांप्रेक्ष्यराजानंसीदंतंभृशदुःखितम् ॥ ३७ ॥

बन जानेके समय रथके पहियोंसे उडी हुई धूलनेजोपृथ्वीको ढकलिया था,अब इस समय पुरवासी लोगोंके अश्रुधारासे भीगकर वह धूलकीच होगई ॥३३॥ जिस समय रामचन्द्रजी वनको चले उस समय अयोध्यापुरी रोनेके शब्दसे आंसुओंके जलसे परिपूर्ण हो गईसब ही हाहाकारका घोर शोर करतेहुये अचेत हो गये इस प्रकार उस समय सबहीपर बहुत कष्ट पडा॥३४॥पुरनारियोंके नेत्रोंसे बराबर आँसुओंकी धारा बहरहीथीं। जैसेकि मछलियोंकेखलबला देनेसे जलउछलकर कमलके पत्तोंपरहो अलग गिरनेकेसमयबहता है इसी भांति सब स्त्रियें फूट२कररो रहीथीं॥३५॥ वृद्ध महाराज दशरथजीकीसब मनुष्योंकीबराबरशोचनीय अवस्था और रामचन्द्रजीके लिये अपनीही समान सबको व्याकुल देख जड कटेहुये पेडके समान दुःखितहो पृथ्वीपर गिरपडे ॥३६॥ इसके पश्चात् रामचंद्रजीके

रथके पीछे जो सब मनुष्य थे वह सब महाराजदशरथजीकीदुःखपूर्ण यह दशा देख हाहाकार कर उठे॥३७॥राजाको सब रनवासकी स्त्रियोंसहित दुःखित और व्याकुल देखकर कोई हा राम ! और कोई २ हा कौशल्या ! ऐसा कहकर शोक प्रकाश करने लगे ॥३८॥ अनन्तर दशरथपुत्र श्रीरामचन्द्रजीने पीछेको दृष्टि फेरकर देखा कि पिता और माता मेरे पीछे २ पैदलही चलेआते हैं और वह शोकसे व्याकुल और विषादसे ग्रसित होरहे हैं ॥३९॥ जंजीरसे बँधा हुआघोडीका बच्चा जिसप्रकारअपनी माताको देखने नहीं पाता वैसेहीरामचन्द्रजी सत्यके बंधनसे बँधरहेथे इसकारणक्या करें मातापिताकी यह अवस्थादेखकरभी फिर उधरसे दृष्टि फेरली॥४०॥सवारियोंमें चलने फिरनेका अभ्यासजिनकोहोरहा हैजोकिसुखकेसिवायदुःखक्यापदार्थहै इसके मर्मकोभी नहीं जानते उनको पैदल चले आते देखकर रामचन्द्रजीनेसुमंत्रसे कहा कि रथ जलदी चलाओ ॥४१॥वे माता पिताका दुःख देखनेमें समर्थ न हुये अकुश लगानेसेमतवाले हाथीकी दशा

हारामेतिजनाः केचिद्राममातेतिचापरे॥ अंतःपुरसमृद्धंचक्रोशंतंपर्यदेवयन् ॥ ३८ ॥ अन्वीक्षमाणोरामस्तुविषण्णंभ्रांतचेतसम् ॥ राजानमातरं चैवददर्शानुगतौपथि ॥ ३९ ॥ सबद्धइवपाशेनकिशोरोमातरंयथा ॥ धर्मपाशेनसंयुक्तःप्रकाशंनाभ्युदैक्षत ॥ ४० ॥ पदातिनौचयानार्हावदुःखार्हौसुखोचितौ ॥ दृष्ट्वासचोदयामासशीघ्रंयाहीतिसारथिम् ॥ ४१ ॥ नहितत्पुरुषव्याघ्रोदुःखजंदर्शनंपितुः ॥ मातुश्चसहितुंशक्तस्तोत्रैर्नुन्नइव द्विपः ॥ ४२ ॥ प्रत्यगारमिवायांतीसवत्सावत्सकारणात् ॥ बद्धवत्सायथाधेनूराममाताऽभ्यधावत ॥ ४३ ॥ तथारुदंतींकौसल्यारथंतमनुधावतीम् ॥ क्रोशंतींरामरामेतिहासीतेलक्ष्मणेतिच ॥ ४४ ॥ रामलक्ष्मणसीतार्थंस्रवंतीवारिनेत्रजम् ॥ असकृत्प्रैक्षतसतांनृत्यंतीमिवमातरम् ॥ ४५ ॥ तिष्ठेतिराजाचुक्रोशयाहियाहीतिराघवः ॥ सुमंत्रस्यबभूवात्माचक्रयोरिवचांतरा ॥४६॥

जिसप्रकार होती है वैसेही पिता माताकी यह दशा देखकर रामचन्द्रजीकी दशा हुई॥४२॥जिसका छोटा बच्चा गोष्ठमें बँधाहो ऐसी गाय दिन भर जंगलमें रहकर संध्याको जिसप्रकार गोठकी ओर दौडती है,वैसेही कौशल्याजीस्नेहकेमारेरथको आगे बढा जाता हुआ देख रामकी ओरको दौडीं॥४३॥ उनकी दोनों आंखोंसे आंसुओंकी धारा बहनेलगी ! वह हा राम!हा सीते ! हा लक्ष्मण ! यह कह कर शोकके मारे व्याकुल हो रथके पीछे२दौडने लगीं ॥ ४४॥ ❀ रामचंद्र जीनेएकबार फिर कर देखा कि,माताकौशल्याजी राम,लक्ष्मण सीताजीको पुकार रोदन करती हुई गिरती पडती भ्रमती हुई चली आती हैं ॥४५॥उस समय महा

❀ (प्रजादुःख वर्णन) रागनी गौड मलार अथवा श्याम कल्याण ताल तीन ।। जवहरि गमन कियो काननको ।। आस्ताई ।। पुरनर नारि सकलव्याकुलह्वै चले जातप्रभुके दरशनको ।। विकलहोय सब कहत परस्पर राखिलेउ कोई राम लखनको ।। तुम बिन नाथजियें हम कैसे । दरशनदो निज आरत जनको ।।१।।

राजादशरथजीतो सुमंत्रसे कहने लगे कि, रथको रोको और रामचन्द्रजीने सुमंत्रसे कहा कि रथको बहुतही शीघ्र चलाओ, उस समय सुमंत्रजी ऐसे कर्त्तव्यहीनहोगये जैसे कि युद्धके लिये तैयार खडीदो सेनाओंके बीचमें कोई पुरुषजानकर किंकर्त्तव्यविमूढ हो जाता है॥४६॥ इस समय रामचंद्रजीने कहा कि, हे सुमंत्र! यदि राजा तुम्हें घुडक कर या धमकाकर कहें कि, तुमने रथ क्यों नहीं थमाया, तब तुम कह देना कि रथके जानेका शब्द इस प्रकार होरहाथा कि मैंने आपकी आज्ञाको नहीं सुना। परन्तु हमारी बात न मानकर जो रथ शीघ्र न चलाओगे तो रथका न चलाना पापका मूल होगा और यहां फिर बडा रोना धोना होगा, औरमुझेबडाकष्ट भोगना पडेगा॥४७॥सुमंत्रजीने रामचन्द्रजीके ऐसे वचन सुनकर रथके साथ जो आदमी आयेथे उनको बिदा किया और जिस प्रकार रथ चल रहाथा उससे भी बडे वेगसे हांका ॥४८॥ उस समय राजाके कुटुम्बके व और दूसरे सब मनुष्य रामचन्द्रजीकी मनही मनमें प्रदक्षिणा करके लौटेतो सही, पर उन सबके मनरामकी

नाश्रौषमितिराजानमुपालब्धोऽपिवक्ष्यसि॥चिरंदुःखस्यपापिष्ठमितिरामस्तमब्रवीत्॥४७सरामस्यवचःकुर्वन्ननुज्ञाप्यचतंजनम्॥ व्रजतोऽपिह यान्शीघ्रंचोदयामाससारथिः ॥४८॥ न्यवर्ततजनोराज्ञोरामंकृत्वाप्रदक्षिणम्॥ मनसाप्याशुवेगेनन्यवर्ततमानुषम्॥४९॥ यमिच्छेत्पुन रायातंनैनंदूरमनुव्रजेत्॥इत्यमात्यामहाराजमूचुर्दशरथंवचः॥५०॥ तेषांवचःसर्वगुणोपपन्नःप्रस्विन्नगात्रःप्रविषण्णरूपः॥निशम्यराजा कृपणः सभार्योव्यवस्थितस्तंसुतमीक्षमाणः॥५१॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आदि० च० सा० अ० चत्वारिंशः सर्गः॥४०॥ तस्मिंस्तुपुरुषव्याघ्रेनिष्क्राम तिकृतांजलौ॥ आर्तशब्दोहिसंजज्ञेस्त्रीणामंतःपुरेमहान्॥१॥ अनाथस्यजनस्यास्यदुर्बलस्यतपस्विनः॥ योगतिःशरणंचासीत्सनाथः क्वनुगच्छति॥२॥ नक्रुध्यत्यभिशस्तोऽपिक्रोधनीयानिवर्जयन्॥ क्रुद्धान्प्रसादयन्सर्वान्सम दुःखः क्वगच्छति॥३॥

ओर ही दौडते रहे ॥४९॥ उस समय महाराज दशरथजीके मंत्री व सेवक महाराजको समझाने लगे कि हे प्रभो! जिसके फिर आनेकी आशा होती है उसको दूरतक पहुंचाने नहीं जाया करते हैं॥५०॥ महाराज दशरथजी मन्त्री आदि सेवकोंके मुखसे यह व्यवस्था सुनकर सब स्त्रियोंसहित रामचन्द्रजीके साथ न जाकर लौटे। वह कुछ देरतक विषादित मनसे एकटक रामचन्द्रके मुखकी ओर देखते रहे उस समय महाराज दशरथजीके सब शरीरमें पसीना आगयाथा॥५१॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयोध्याकांडे भाषायां चत्वारिंशः सर्गः ॥४०॥हाथ जोडकर बिदा होते हुये पुरुष श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीके चले जानेपर रनवासमें रहनेवाली स्त्रियोंका अन्तःपुर में घोर हाहाकार उठा ॥१॥ वह सब यही एक साथ कहने लगीं कि जो अनाथोंके दुर्बलोंके तपस्वियोंके और शोचनीय मनुष्योंके एकमात्र सहारे और आसरे हैं वही रामचन्द्रजी इस समय कहां जाते हैं॥२॥ मिथ्या दोष देनेपर भी जो क्रोधित नहीं होते, जिन्होंने क्रोधको तो एकबार ही त्याग

दिया है, जो क्रोध, किये हुये मनुष्यको प्रसन्न करनेवाले हैं वह जो सुख दुःखको समान समझते हैं वह रामचन्द्रजी इस समय कहां जाते हैं ॥३॥ जो महात्मा तेजवान् श्रीरामचन्द्रजी अपनी गर्भधारिणी माता कौशल्याजीके बराबर हमें समझते हैं वह अब कहां जाते हैं ॥४॥ जो संसारके रक्षा करनेवाले हैं, वह कैकेयीके सताये हुये महाराजके कहनेसे इससमय कहाँ जाते हैं ॥५॥ हाय निश्चयही राजा ज्ञान शून्य हुये हैं यदि ऐसा न होता तो सब जीवोंके आश्रय स्थान स्वरूप धर्मवान्‌सत्यसन्ध रामचन्द्रजीको वनमें क्यों पठाते ॥६॥ यह कह राजा दशरथजीकी सब रानियें बिना बच्चेकी गायोंकेसमान व्याकुल हुईं और शोकके मारे ऊँचे स्वरसे रुदन करने लगीं ॥७॥ रनवासमें पडे हुये वह हाहाकार सुन करके राजा बहुत ही दुःखित हुये, उनके हृदयमें पुत्रशोक का प्रवाह प्रवाहित होनेलगा ॥८॥ उससमय रामचन्द्रजीके विरहमें व्याकुल होकर ब्राह्मणोंने अग्निमें आहुती न दी, बिनाही ऋतुमे बादल आगया । जिससे कि सूर्य छिपगये, हाथियोंने अपनी

कौसल्यायांमहातेजायथामातरिवर्तते॥तथायोवर्ततेऽस्मासुमहात्माक्वनुगच्छति ॥४॥ कैकेय्याक्लिश्यमानेन राज्ञासंचोदितोवनम् ॥ परित्राता जनस्यास्यजगतः क्वनुगच्छति॥५॥अहोनिश्चेतनोराजाजीवलोकस्यसंक्षयम्॥धर्म्यंसत्यव्रतंरामंवनवासेप्रवत्स्यति॥६॥इतिसर्वामहिष्यस्ताविवत्साइवधेनवः ॥ रुरुदुश्चैवदुःखार्ताः सस्वरंचविचुक्रुशुः॥७॥सतमंतःपुरेघोरमार्तशब्दंमहीपतिः॥पुत्रशोकाभिसंतप्तः श्रुत्वाचासीत्सुदुःखितः ॥८॥नाग्निहोत्राण्यहूयंतनापचन्गृहमेधिनः॥अकुर्वन्नप्रजाःकार्यंसूर्यश्चांतरधीयत॥व्यसृजन्कवलान्नागागावोवत्सान्नपाययन्॥९॥त्रिशंकुर्लोहितांगश्चबृहस्पतिबुधावपि॥दारुणाः सोममभ्येत्यग्रहाः सर्वेव्यवस्थिताः॥१०॥नक्षत्राणिगतार्चींषिग्रहाश्चगततेजसः॥विशाखाश्चसधूमाश्चनभसिप्रचकाशिरे ॥११॥ कालिकानिलवेगेनमहोदधिरिवोत्थितः॥रामेवनंप्रव्राजितेनगरंप्रचचालतत्॥१२॥दिशः पर्याकुलाः सर्वास्तिमिरेणेवसंवृताः॥ नग्रहोनापिनक्षत्रंप्रचकाशेनकिंचन ॥ १३ ॥ अकस्मान्नागरःसर्वोजनोदैन्यमुपागमत् ॥ आहारेवाविहारेवानकश्चिदकरोन्मनः ॥ १४ ॥

२ झूलैं गिरादीं, गायोंने बछिया बछडों को दूध न पिलाया ॥९॥ जीवलोककी वार्त्ता तोएक ओर रही वह तो कहेंक्या त्रिशंकु मंगल, बुध और बृहस्पति व सब शनैश्चरादिक क्रूरग्रह रात्रिको वक्रीहो चन्द्रमाके निकट आय थरथर कांपने लगे ॥१०॥ सब नक्षत्र तेजहीन हो गये सब ग्रहोंकी प्रभा जाती रही व विशाखा आदि नक्षत्र भी धूमके सहित प्रकाशित होनेलगे ॥११॥ प्रलयकालके समान प्रचण्ड पवन चलनेलगी, जिससे समुद्रमें भी बडी २ तरंगें उठने लगीं ऐसा विदित होता था कि मानों पृथ्वी डूबाही चाहती है, अयोध्यापुरी तो थरथर काँपनेलगी, मानो उलटना चाहती है यह; सब वार्त्ता रामचन्द्रजीके वन जानेके समय हुई॥१२॥ सब दिशा व्याकुल हो गईं दिनमें अंधियारा फैल गया, ग्रह या नक्षत्र किसीका प्रकाश आकाशमें न रहा॥१३॥ सब नगरवासी नरनारी बालक वृद्धोंका मन अक

स्मात् हीन होगया आहार या विहार करनेमें किसीका मन चलायमान नहीं हुआ ॥१४॥ सब ही शोकसे संतापित होकर गहरे २ श्वास लेने लगे राजा दशरथजीके ऊपर कोप करनेके सिवाय उन लोगोंकी और चेष्टा नहीं थी ॥१५॥ जो लोग कि राजमार्गमें खडे थे वह भी उच्च शब्दसे रोने लगे उस समय किसीने भी सुखका मुख नहीं देखा अब एक २ की अवस्थाको क्या कहें सारा संसार ही उस समय महाव्याकुल था ॥१६॥ उस समय वायु अनुकूलभावसे शीतल मंद सुगंध नहीं चलता था न चन्द्रमाकी सौम्यमूर्ति दृष्टि आती थी न सूर्यनारायणकी किरणोंमें कुछ तेज रह गया था सब जगत् व्याकुल होगया ॥१७॥ अधिक क्या कहें उस समय पुत्रोंने पिता माताका ध्यान छोड दिया था भाई भाईको भूलगया था, स्त्रियोंने स्वामीकी चिन्ता दूर कर दी थी और सब कोई सबको छोडछांडकर एक रामचन्द्रजीके ही ध्यानमें मग्न हो गये ॥१८॥ जो कि रामचन्द्रके मित्र और सगे थे वह दुःख और शोकके भारसे दब गये और उनका ज्ञान जाता रहा और विहारादिककी तो क्या

शोकपर्यायसंतप्तःसततंदीर्घमुच्छ्वसन् ॥ अयोध्यायांजनःसर्वश्चुक्रोशजगतीपतिम् ॥१५॥ बाष्पपर्याकुलमुखोराजमार्गगतोजनः ॥ नहृष्टोल भ्यतेकश्चित्सर्वः शोकपरायणः ॥१६॥ नवातिपवनःशीतोनशशीसौम्यदर्शनः ॥ नसूर्यस्तपतेलोकंसर्वंपर्याकुलंजगत् ॥१७॥ अनर्थिनः सुताः स्त्रीणां भर्तारोभ्रातरस्तथा ॥ सर्वेसर्वंपरित्यज्यराममेवान्वचिंतयन् ॥ १८ ॥ येतुरामस्यसुहृदःसर्वेतेमूढचेतसः ॥ शोकभारेणचक्रांताःशय नंनैवभेजिरे ॥१९॥ ततस्त्वयोध्यारहितामहात्मनापुरंदरेणेवमहीसपर्वता ॥ चचालघोरंभयशोकदीपितासनागयोधाश्वगणाननादच ॥२०॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणेवाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० अयोध्याकांडे एकचत्वारिंशः सर्गः ॥४१॥ यावत्तुनिर्यतस्तस्यरजोरूपमदृश्यत ॥ नैवेक्ष्वाकुवरस्तावत्संजहारात्मचक्षुषी ॥ १ ॥ यावद्राजाप्रियंपुत्रंपश्यत्यत्यंतधार्मिकम् ॥ तावद्व्यवर्धतेवास्यधरण्यांपुत्रदर्शने ॥ २ ॥ नपश्य तिरजोऽप्यस्ययदारामस्यभूमिपः ॥ तदार्तश्चविषण्णश्चपपातधरणीतले ॥ ३ ॥

चलाई उन्होंने नींद तकका त्याग कर दिया ॥१९॥ उससमय वह अयोध्यापुरी रामचन्द्रजीके विरहमें इस प्रकार कांपी जैसे कि वज्रधारण करनेवाले इन्द्रके वज्रसे पहाडोंसहित यह पृथ्वी कांप गई थी। नरनारियोंकी दशा तो जाने दीजिये भय शोकसे समाकुल वह पुरी हाथी घोडे और वीरोंके हाहाकार व आर्तनादसे पूर्ण हो गई ॥२०॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयोध्याकांडे भाषायांमेकचत्वारिंशः सर्गः ॥४१॥ रामचन्द्रजी जब वनको रथपर बैठकर चले गये जबतक रथके पहियोंसे उडती हुई धूल दिखाई दी तबतक महाराज दशरथजी उसी ओरको देखते रहे ॥१॥ जबतक महात्मा राजा दशरथजी धर्मात्मा अपने पुत्रको देखते ही रहे तबतक मानों उनका शरीर पृथ्वीपर बढताही जाता था क्योंकि उठ २ कर बार २ उनको देखते ही जाते थे ॥२॥ किन्तु जब रामचन्द्रजीके पहियोंकी धूल न देखी और प्यारे

पुत्र दृष्टिमार्गसे अतीत हो गये तब महाराज दशरथजी विषादित और अधीर हो पृथ्वीमें अचेत होकर गिर पडे ॥३॥ अनन्तर देवी कौशल्याजी उन्हें उठाकर और उनका दाहिना हाथ पकडकर साथ चलने लगीं और कैकेयी महाराज दशरथजीका वांया हाथ पकड उसके साथ २ हो ली ॥४॥ नीतिशास्त्रके जाननेवाले नियमयुक्त धर्मपरायण महाराज दशरथजी दुष्ट कैकेयीको बांया हाथ पकडे हुये देखकर व्यथित हो कातर वचनसे बोले ॥५॥ रे पापीयसि ! तू मेरे अङ्गोंको मत छुवो मैं तुझको अपनी स्त्री अपनी सखीके भावसे नहीं देखा चाहता तू मेरी कोई नहीं है ॥६॥ अधिक क्या कहूँ जो कि सब तेरे दास दासी हैं वह आजसे मेरे नही और मैं भी उनका नहीं, मैं जानता हूं कि तू सदा अपना स्वार्थ साधन करनेवाली है और धर्मसे भी वर्जित है बस इस कारण मैंने तेरा त्याग कर दिया ॥७॥ मैंने अग्निकी प्रदक्षिणा करके जो तेरा पाणिग्रहण किया था सो लोकमें वा परलोकमें मैं उसके फलकी आशा नहीं करता हूँ इस कारण तुझे छोड दिया क्योंकि जब मैं

तस्यदक्षिणमन्वागात्कौसल्याबाहुमंगना ॥ परंचास्यान्वगात्पार्श्वंकैकेयीसासुमध्यमा ॥ ४ ॥ तांनयेनचसंपन्नोधर्मेणविनयेच ॥ उवाचराजाकैकेयींसमीक्ष्यव्यथितेंद्रियः ॥ ५ ॥ कैकेयिमामकांगानिमास्प्राक्षीः पापनिश्चये ॥ नहित्वांद्रष्टुमिच्छामिनभार्यांनचबांधवी ॥ ६ ॥ येचत्वामनुजीवंतिनाहंतेषांनतेमम ॥ केवलार्थपरांहित्वांत्यक्तधर्मांत्यजाम्यहम् ॥७॥ अगृह्णांयच्चतेपाणिमग्निपर्यणयंचयत् ॥ अनुजानामितत्सर्वमस्मिल्लोकेपरत्रच ॥ ८ ॥ भरतश्चेत्प्रतीतः स्याद्राज्यंप्राप्यैतदव्ययम् ॥ यन्मेसदद्यात्पित्रर्थंमामांतद्दत्तमागमत् ॥ ९ ॥ अथरेणुसमुद्ध्वस्तंसमुत्थाप्यनराधिपम् ॥ न्यवर्ततततदादेवीकौसल्याशोककर्शिता ॥१०॥ हत्वेवब्राह्मणंकामात्स्पृष्ट्वाग्निमिवपाणिना ॥ अन्वतप्यतधर्मात्मापुत्रंसंचिन्त्यराघवम् ॥११॥ निवृत्यैवनिवृत्यैवसीदतोरथवर्त्मसु ॥ राज्ञोनातिबभौरूपंग्रस्तस्यांशुमतोयथा ॥ १२ ॥ विललापसदुःखार्तःप्रियंपुत्रमनुस्मरन् ॥ नगरांतमनुप्राप्तंबुद्ध्वापुत्रमथाब्रवीत् ॥ १३ ॥

जीना ही नहीं चाहता तब स्त्रीका क्या प्रयोजन? ॥८॥ यदि यह अक्षय राज्य प्राप्त करके भरतजीको सन्तोष हो जाय अथवा रामचन्द्रजीको वन भेजनेमें उनकी भी सलाह हो तो मेरे मरनेके पीछे मेरे लिये क्रिया पिंडादिक भरतजी न करें और न उनके दिये पिंडादिक मुझे पहुँचे ॥९॥ अनन्तर शोकसे व्याकुल हुई देवी कौशल्याजीने धूलमें लोटते हुए महाराज दशरथजीको उठाया और घरकी तरफको लौटीं ॥१०॥ अपनी इच्छानुसार ब्रह्महत्या करनेसे वा जलते हुये अङ्गारे पर हाथ धरनेसे जिस प्रकार जलकर पछताना होता है वैसे ही रामचन्द्रजीकी चिन्ता करते हुये महाराज दशरथजीकी अवस्था हो गई ॥११॥ लौटनेके समय राजा बारंबार घूम २ करके रामचन्द्रजीकी ओर दृष्टि करते जाते थे जितना देखा उतने ही घबडाये उस समय राजाका रूप राहुसे ग्रसे हुए सूर्यकी नाईं अच्छा नहीं लगता था ॥१२॥ राजाने यह विचार किया

कि अब प्राणोंके समान प्यारे बेटा नगरके बाहर पहुंच गये होंगे यह समझकर बडा ही विलाप कलाप किया और मनही मन कहने लगे कि॥ १३॥हाय ! जो घोडे हमारे रामको सवारीमें बैठाकर ले गये हैं उनके तो चरण चिह्न राहमें देखते हैं परंतु हमारे प्यारे दुलारे महात्मा रामचन्द्रकामुख अब हमको नहीं दीखता ॥१४॥जो मुपुत्र श्रीरामचन्द्र चन्दनादि सुगंधित वस्तुअङ्गोंमें लगाय सुखसमेत उत्तम तकिया शिरके नीचे धर श्रेष्ठ शय्यापर शयन करते थे और सुन्दर स्त्रियाँ कोई उनपर पंखा हिलाती कोई चँवर करती थी ॥१५॥ आज वही क्या प्राणप्यारे पुत्र कहीं पेडकी छायाका आश्रय ग्रहण करके काठ या पत्थरकी तकिया शिरके नीचे लगाकर रहेंगे ॥१६॥ जिस प्रकार पहाडकी तंग जगहसे हाथी उठता है वैसेही रामचन्द्रजी इस समय दास दासियोंके न होनेसे दुःखित धूल वदनमें लगी हुई पृथ्वी से ऊंधी श्वासें लेते हुये उठेंगे ॥१७॥ वनचारी पुरुषगण इस समय दीर्घबाहु लोकनाथ रामचन्द्रजीको अनाथकी नाई पेडकी छायाको त्याग करके जातेहुये

वाहनानांचमुख्यानांवहतांतंममात्मजम् ॥ पदानिपथिदृश्यंतेसमहात्मानदृश्यते ॥१४॥ यः सुखेनोपधानेषुशेतेचंदनरूषितः ॥ वीज्यमानो महार्हाभिःस्त्रीभिर्ममसुतोत्तमः॥१५॥ सनूनंक्वचिदेवाद्यवृक्षमूलमुपाश्रितः ॥ काष्ठंवायदिवाश्मानमुपधायशयिष्यते ॥१६॥ उत्थास्यतिचमेदिन्याःकृपणःपांसुगुंठितः॥विनिःश्वसन्प्रस्रवणात्करेणूनामिवर्षभः ॥ १७ ॥ द्रक्ष्यंतिनूनंपुरुषादीर्घबाहुंवनेचराः ॥ राममुत्थायगच्छंतंलोकनाथमनाथवत् ॥ १८ ॥ सानूनंजनकस्येष्टासुतासुखसदोचिता ॥ कंटकाक्रमणक्लान्तावनमद्यगमिष्यति ॥ १९ ॥ अनभिज्ञावनानांसानूनं भयमुपैष्यति ॥ श्वापदानर्दितंश्रुत्वागंभीरंरोमहर्षणम् ॥२०॥ सकामाभवकैकेयिविधवाराज्यमावस ॥ नहितंपुरुषव्याघ्रंविनाजीवितुमुत्सहे॥ ॥ २१ ॥ इत्येवंविलपन्राजाजनौघेनाभिसंवृतः ॥ अपस्नातइवारिष्टंप्रविवेशगृहोत्तमम् ॥२२॥ शून्यचत्वरवेश्मांतांसंवृतापणवेदिकाम्॥ क्लांत दुर्बलदुःखार्तानात्याकीर्णमहापथाम् ॥२३॥

देखेंगे ॥१८॥महाराज जनकजीकी प्रिय कन्या जानकी जिन्होंने सदा सुख ही पाया है आज कांटा पत्थर आदि उनके पैरमें लगेंगे और तो भी थककर उनकोचलना ही पडेगा ॥१९॥ मैं भली प्रकार समझा हुआ हूं कि जानकी वनवासके क्लेशको कुछ भी नहीं जानती हैं सो हत्यारे जीवोंके गर्जनेका घोर शोर जिसके सुननेसे रुयें खडे हो जाते हैं सुनकर उनके मनमें अवश्य भय उत्पन्न होगा ॥२०॥ अच्छा कैकेयी ! अब तेरी कामना पूर्ण हुई न?विधवा होकर यहांका राज्य पालन करती रह परन्तु मैं रामचंद्रजीके विरहमें एक क्षण भी जीवन धारण नहीं कर सकता ॥ २१ ॥ इस प्रकार राजा दशरथ सब लोगोंके साथ २विलाप करते जैसे कि कोई मृत्युपर उतारू हो और स्नान किये मरनेको तैयार हो, दुःखसे भरी अयोध्यापुरीमें प्रवेश करते हुए ॥ २२ ॥ पुरीमें प्रवेश करके देखा कि

वहांके सब घरोंमें सूनसान दुकानें सब बन्द हो रहीं हैं वहांके लोग सब थके मांदे दुर्बल दुःखित हैं, राजमार्गमें कोई २मनुष्य चले जाते थे बहुत नहीं हाट बाट चौकमें कोई आदमी नहीं घूमते थे॥२३॥राजा दशरथ अयोध्यानगरीकी यह शोचनीय अवस्था देख और रामकी चिन्ता करते २कातर हो सूर्य जिस प्रकार बादलमें प्रवेश करता है इसी भांति अपने राजभवनमें प्रवेश करते हुए॥२४॥ जैसे विहंगमराज गरुडजी किसी कुंडके सर्पोंका संहार कर डालें और वह कुण्ड शब्दही न हो जाय, इस ही प्रकार रामचंद्र लक्ष्मण और सीताके विरहसे उस गृहकी अवस्था हो गई॥२५॥ अनंतर महीपाल दशरथजीने गद्गद वाणीसे अतिक्षीण गलेसे मधुरस्वरसे धीरे २ द्वारका मार्ग दिखानेवाले प्रतीहारियोंसे कहा ॥२६॥ जहां रामचन्द्रकी माता कौशल्याजीरहती हैं तुम लोग हमें उसी मंदिरको ले चलो क्योंकि और स्थानपर रहकर मेरे हृदयको शांति नहीं होगी॥२७॥राजाकी ऐसी आज्ञा सुन द्वारपाल लोग महाराज दशरथजीको श्रीकौशल्याजीके मंदिरमें

तामवेक्ष्यपुरींसर्वांराममेवानुचिंतयन् ॥ विलपन्प्राविशद्राजागृहंसूर्यइवांबुदम् ॥२४॥ महाह्रदमिवाक्षोभ्यंसुपर्णेनहृतोरगम् ॥ रामेणरहितं वेश्मवैदेह्यालक्ष्मणेनच ॥ २५ ॥ अथगद्गदशब्दस्तुविलपन्वसुधाधिपः ॥ उवाचमृदुमंदार्थंवचनंदीनमस्वरम् ॥२६॥ कौसल्यायागृहंशीघ्रंराममातुर्नयंतुमाम् ॥ नह्यन्यत्रममाश्वासोहृदयस्यभविष्यति॥२७॥ इति ब्रुवंतंराजानमनयन्द्वारदर्शिनः ॥ कौसल्यायागृहंतत्रन्यवेश्यतविनीतवत् ॥२८॥ ततस्तत्रप्रविष्टस्यकौसल्यायानिवेशनम् ॥ अधिरुह्यापिशयनंबभूवलुलितंमनः ॥२९॥पुत्रद्वयविहीनंचस्नुषयाचविवर्जितम् ॥ अपश्यद्भवनंराजानष्टचंद्रमिवांबरम् ॥ ३० ॥ तच्चदृष्ट्वामहाराजोभुजमुद्यम्यवीर्यवान् ॥ उच्चैःस्वरेणप्राक्रोशद्धारामविजहासिनौ ॥३१॥ सुखिताबततंकालंजीविष्यंतिनरोत्तमाः ॥ परिष्वजंतोयेरामंद्रक्ष्यंतिपुनरागतम्॥३२॥अथरात्र्यांप्रपन्नायांकालरात्र्यामिवात्मनः॥ अर्धरात्रेदशरथः कौसल्यामिदमब्रवीत् ॥ ३३ ॥

नम्रतासे ले आये ॥२८॥यद्यपि महाराजदशरथजी कौशल्याजीके मंदिरमें प्रवेशकरके सेजपर लेट तो रहे परन्तु किसी प्रकार उनका मनास्थिर न हो सका॥२९॥ राजादशरथजीको दो पुत्र और पुत्रवधू विहीन होनेसे वह भवन चन्द्रमाहीन आकाशके समान बोध होने लगा ॥३०॥ उस समय महाराज दशरथजी अपने घरको इस प्रकार श्रीहीन देखकर दोनों हाथ ऊपरकोउठा यह कहकर रोने लगे कि, हा वत्स रामचन्द्र ! तुम क्या हम दोनोंको छोडकरही चले गये ॥३१॥ भाई रामचन्द्रके यहां आनेतक जो लोग जियेंगे वह यहांही रहें वह रामचन्द्रजीको देख लपटाय २ मिल भेंटकर सुखी होंगे हमें क्या हमतो जियेंगेही नहीं ॥ ३२ ॥ अनन्तर आपको कालरात्रिके समान रात्रि हो आई जब आधीरात बीती तब कौशल्याजीसे राजाने कहा ॥ ३३ ॥

हे राजमहिषि ! मैं तुम्हें नहीं देख सकताहूँ अतएव तुम मेरा अंग छुवो मेरी दृष्टिरामके संग वनको चलीगई, वह अभीतक वहांसे नहीं लौटीहैं ॥३४॥ तब देवी कौशल्याजीने महाराज दशरथजीके निकटबैठ उनको शयन करा दिया और उनको रामचन्द्रजीकी चिन्तामें व्याकुल देखकर बहुतही दुःखित हुई, और ऊँचे २ श्वासले आप भी विलाप करके रोने लगीं ॥३५॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० अयोध्याकाण्डे भाषायां द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥४२॥ अनन्तर पुत्रके शोकसे दीनहुई देवीकौशल्याजी विस्तरे पर लेटे हुये शोकसेव्याकुल महाराज दशरथजीसे यह बोलीं ॥ १ ॥ कि, हे राघवशार्दूल महाराज । कुटिलस्वभाव कैकेयी रामचन्द्रजीके प्रति विष त्यागन करके केंचलीको छोडे हुये सर्पिणीके समान जहां चाहे वहां फिरेगी यह वही बात हुईकि कोईसांपिनीको पाले और

नत्वांपश्यामिकौसल्येसाधुमांपाणिनास्पृश॥ राममेऽनुगतादृष्टिरद्यापिननिवर्तते॥३४॥तंराममेवानुविचिंतयंतंसमीक्ष्यदेवीशयनेनरेंद्रम्॥ उपोपविश्याधिकमार्तरूपाविनिःश्वसंतंविललापकृच्छ्रम्॥३५॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा०आ०च०सा०अयोध्याकांडे द्विचत्वारिंशःसर्गः॥४२॥ ततः समीक्ष्यशयनेसन्नंशोकेनपार्थिवम् ॥ कौसल्यापुत्रशोकार्तातमुवाचमहीपतिम् ॥१॥ राघवेनरशार्दूलेविषमुक्त्वाहिजिह्मगा ॥ विचरिष्यतिकैकेयीनिर्मुक्तेवहिपन्नगी ॥२॥ विवास्यरामंसुभगालब्धकामासमाहिता ॥ त्रासयिष्यतिमांभूयोदुष्टाहिरिववेश्मनि ॥३॥ अथास्मिन्नगरेरामश्चरन्भैक्षंगृहेवसेत् ॥ कामकारोवरंदातुमपिदासंममात्मजम् ॥ ४ ॥ पातयित्वातुकैकेय्यारामंस्थानाद्यथेष्टतः ॥ प्रवृद्धोरक्षसांभागःपर्वणीवाहिताग्निना ॥ ५ ॥ नागराजगतिर्वीरोमहाबाहुर्धनुर्धरः ॥ वनमाविशतेनूनंसभार्यःसहलक्ष्मणः ॥ ६ ॥ वनेत्वदृष्टदुःखानांकैकेय्यनुमते त्वया ॥ त्यक्तानांवनवासायकान्ववस्थाभविष्यति ॥७॥

वह अपने स्वामीहीको काटे ॥२॥ यह पापिनी कैकेयी रामको वन पठाय अपनामनोरथ सिद्ध कर चुकी है, घरमें किसीके सांप रहता है और उस घरमें रहने वालोंको जोसदा डर रहता है वैसेही यह कैकेयी हम सबको महादुख देगी और डर दिखावेगी ॥३॥ यदि रामचन्द्रजी घर पर रहते और नगरमें रहकर भिक्षाभी मांगकर गुजारा करतेअथवा कैकेयीके दासहोकरभीरहते तोभी मेरे लिये उनके इस वनवास जानेसे तो अच्छाथा ॥४॥ यज्ञ करनेवाले अग्निहोत्री लोग जिस प्रकारपर्वके दिन राक्षसोंका यज्ञ भागनिकालकरफेंकदेते हैं वैसेही अपनी इच्छानुसार कैकेयीने रामचन्द्रजीको यहांसे निकलवाया ॥५॥ गजके समान चाल चलनेवाले धनुर्बाणधारण किये प्रलंबबाहुवीर रामचन्द्रजी अब भैयालक्ष्मण और भार्या जानकी जीके सहितवनमें पहुँच गये होंगे॥६॥ हाय ! वह वनके क्लेशोंको कुछ भी जानतेनहैं उन मेरे

पुत्रको कैकेयीकी सलाहमें आकर तुमने वनको पठाया । प्राणनाथ ! कहो तो सही इस समय उनकी क्या दशा होगी ॥ ७ ॥ * उनके संगमें धन रत्नादि कुछभी नहीं है और विशेष करके उनकी इस समय युवा अवस्था है, तुमने ठीक भोग और सुख करनेके समय उनको वनमें भेजा, मैं कह नहीं सकती कि, वह किस प्रकार इस समय कंदमूल फलादि खाते पीते समयको बितावेंगे ॥८॥ मेरे भाग्यमें क्या ऐसा भी कोई दिनहोगा कि, वत्स रामचन्द्रजीको लक्ष्मण और जानकी सहित यहांपर आये हुये देख शोक ताप छोड आनंदित हूंगी ॥९॥ अहो ! वह कौनसा दिन होगा कि अयोध्यावासी दयावान् वीर रामचन्द्रजीके आने की वार्त्ता श्रवण करके ध्वजा पताकासे इस नगरीको सजावेंगे ॥ १० ॥ कब नरशार्दूल रामचन्द्र व लक्ष्मणजीका आगम संवाद श्रवणकर पूर्णमासीके समुद्रके समान अयोध्या उमड चलेगी ? ॥११॥ वृषभ जिस भांति संध्या समय ग्राममें प्रवेश करनेके समय गायको आगे लेकर चलता है वैसाही सीतानाथ सीताको आगे

तेरत्नहीनास्तरुणाःफलकालेविवासिताः ॥ कथंवत्स्यंतिकृपणाःफलमूलैःकृताशनाः ॥ ८ ॥ अपीदानींसकालःस्यान्ममशोकक्षयःशिवः ॥ सहभार्यंसहभ्रात्रापश्येयमिहराघवम् ॥९॥ श्रुत्वैवोपस्थितौवीरौकदाऽयोध्याभविष्यति ॥ यशस्विनीहृष्टजनासूच्छ्रितध्वजमालिनी ॥१०॥ कदाप्रेक्ष्यनरव्याघ्रावरण्यात्पुनरागतौ ॥ भविष्यतिपुरीहृष्टासमुद्रइवपर्वणि ॥११॥ कदाऽयोध्यांमहाबाहुःपुरींवीरःप्रवेक्ष्यति ॥ पुरस्कृत्यरथेसीतांवृषभोगोवधूमिव ॥१२॥ कदाप्राणिसहस्राणिराजमार्गेममात्मजौ ॥ लाजैरवकरिष्यंतिप्रविशंतावरिंदमौ ॥ १३ ॥ प्रविशंतौकदाऽयोध्यांद्रक्ष्यामिशुभकुण्डलौ॥उदग्रायुधनिस्त्रिंशौसशृंगाविवपर्वतौ॥१४॥ कदासुमनसःकन्याद्विजातीनांफलानिच ॥ प्रदिशंत्यपुरींहृष्टाःकरिष्यतिप्रदक्षिणम् ॥ १५ ॥ कदापरिणतोबुद्ध्याचावयसाचामरप्रभः ॥ अभ्युपैष्यतिधर्मात्मासुवर्षइवलालयन् ॥ १६ ॥ निःसंशयंमयामन्ये पुरावीरकदर्यया ॥ पातुकामेषुवत्सेषुमातॄणांशातिताःस्तनाः ॥ १७ ॥

कर कब रथमें बैठे अयोध्यापुरीमें प्रवेश करेंगे ? ॥१२॥ किस दिन शत्रुओंके नाश करनेवाले रामलक्ष्मणको मार्गोंमें टिके हुये प्राणी धानकी खीलैं अक्षतादि उनके शिरपर वर्षावेंगे॥१३॥अयोध्याकेकिस दिन देख पाऊंगी कि हमारे दो पुत्ररत्न कानोंमें कुंडल पहरे कांधेमें धनुष और हाथमें खड्ग धारणकिये शिखर सहित पर्वतके समान अयोध्यामें आरहे हैं ॥ १४ ॥ कब मेरे दोनों बारे ब्राह्मण और ब्राह्मणोंकी कन्याओंकोफल, मूलप्रदान करके प्रसन्नतासहित उनकी प्रदक्षिणा करेंगे ? ॥१५॥ जलधारा जिस प्रकार सबहीको सन्तुष्ट करती है वैसेही कब बुद्धि व अवस्थासे परिपूर्ण देवताओंके समान रामचन्द्रजीको संगलेकरसबको सन्तुष्ट करते हुये उपस्थित होंगे ॥१६॥ मुझे निश्चय बोध होता है कि, कुकर्म करनेवाली कैकेयीने दूध पीनेके लिये उत्सुक हुये बच्चोंकी माके स्तन काटडाले ॥१७॥

* चौपाई–राम लखन की सुरति संभारे ॥ कौशल्या पावत दुःख भारे ॥

हे महाराज ! सिंह जिस प्रकार गायके बच्चेको उठाले जाता है वैसेही तुमने मुझ पुत्रवत्सलाको बे बच्चेकी कर दिया मुझको ऐसा बोध होता है कि माताका स्तन काटने वाले पातकके वशहो कैकेयीने बलपूर्वक यह कार्य किया है कैकेयीरूपी सिंहनीने मेरे पुत्र वनको भेज दिये ॥१८॥ हे महाराज! रामचन्द्र मेरे इकलौते पुत्र हैं परन्तु मेरे उस एकहीपुत्रमें सब शास्त्रोंका ज्ञान और बहुत गुण एकत्र हुये हैं अतएव ऐसे पुत्रके अनायास वन जानेसे मैं किसप्रकार प्राण धारण करूँगी ॥१९॥ अधिक क्या कहूँ यदि अपने प्रियपुत्र राम और महाबलवान् लक्ष्मणको न देखने पाऊंगी तो मेरा जीवन धारण करना किस कामका है ॥२०॥ अधिक करनेसे क्या है जिस प्रकार ग्रीष्म ऋतुमें प्रचंड मार्तण्ड पृथ्वीको दग्ध कर देता है वैसेही पुत्रके विरहकी शोकानल मुझे तपा रही है ॥ २१ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० अयोध्याकांडे भाषायां त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४३ ॥ धर्मशीला सुमित्राजी सब रानियोंमें श्रेष्ठ कौशल्याजीको इसप्रकार विलाप करते देखकर

साहंगौरिवसिंहेनविवत्सावत्सलाकृता ॥ कैकेय्यापुरुषव्याघ्रबालवत्सेवगौर्बलात् ॥१८॥ नहितावद्गुणैर्जुष्टंसर्वशास्त्रविशारदम् ॥ एकपुत्राविना पुत्रमहंजीवितुमुत्सहे ॥ १९ ॥ नहिमेजीवितेकिंचित्सामर्थ्यमिहकल्प्यते ॥ अपश्यंत्याः प्रियंपुत्रंलक्ष्मणंचमहाबलम् ॥ २० ॥ अयंहिमां दीपयतेऽद्यवह्निस्तनूजशोकप्रभवोमहाहितः॥ महीमिमांरश्मिभिरुत्तमप्रभोयथानिदाघेभगवान्दिवाकरः॥२१॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणेवाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकांडे त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥४३॥ विलपंतींतथातांतुकौसल्यांप्रमदोत्तमाम् ॥ इदंधर्मेस्थिताधर्म्यंसुमित्रावाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥ तवार्येसद्गुणैर्युक्तःसपुत्रःपुरुषोत्तमः ॥ किंतेविलपितेनैवंकृपणंरुदितेनवा ॥२॥ यस्तवार्येगतःपुत्रस्त्यक्त्वाराज्यंमहाबलः ॥ साधुकुर्वन्महात्मानंपितरं सत्यवादिनम् ॥ ३ ॥ शिष्टैराचरितेसम्यक्शश्वत्प्रेत्यफलोदये ॥ रामोधर्मेस्थितःश्रेष्ठोनसशोच्यःकदाचन ॥४॥ वर्ततेचोत्तमांवृत्तिंलक्ष्मणोऽस्मिन्सदानघः ॥ दयावान्सर्वभूतेषुलाभस्तस्यमहात्मनः ॥ ५ ॥

धर्मके समर्थन कियेहुये वचनोंसे धर्मयुक्त वचन बोलीं ॥ १ ॥ हे देवि ! तुम्हारे पुत्र राम पुराणपुरुषोत्तम हैं और वह स्वभावसेही सबगुणयुक्त हैं अतएव उनके लिये दीन भावसे रोना और यह विलाप क्यों करती हो ? ॥२॥ हे आर्ये ! तुम्हारे पुत्र महाबली सत्यके पालनेवाले हैं पिताजीका वचन पालन करने हीके लिये वह महाबलवान् रामचन्द्रजी राज्य परित्याग करके वनवासी हुये हैं ॥३॥ परलोकमें जिसके करनेसे फल मिलता है, सज्जनोंके किये हुये उस धर्ममें जबकि रामचन्द्रजीका स्वाभाविक अनुराग है तब उनके लिये शोक करना किसी भांति उचितनहीं है ॥४॥ फिर लक्ष्मणके लिये भी शोच न कीजिये; क्योंकि लक्ष्मण धर्ममें लगे हैं जो बडे भैया पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीकी सेवा करनेके लिये उनके संग वनको चले गये इससे लक्ष्मणजीको सबभांति लाभही है क्योंकि लक्ष्मणजी

सब प्राणियों पर दया रखते हैं और रामचन्द्रजी भलीभांति उनके शील स्वभावको जानते हैं इससे दोनों भ्राताओंमें प्रीति बढती रहेगी ॥५॥ नित्य २ सुख भोग करने वाली जानकीजीको यद्यपि वनमें दुःख मिलेगा परन्तु जबकि, वह रामचन्द्रजीके संग वनको गई हैं तबउनकोभी दुःख पानेको कुछ संभावना नहीं है ॥६॥ सर्व लोगोंका पालनकरनेवाले रामचन्द्रजी तीन लोकमें जो अपनी अनुपम कीर्तिस्वरूप पताका उड़ा रहे हैं कि पिताकी आज्ञासे राज्य छोड वनको चले गये, क्या इससे सत्वमें निष्ठारखने इन्द्रियोंके जीतनेवाले रामचन्द्रजीका गौरव भलीभांति प्रचारित नहीं होगा?॥७॥ अधिक कहनेसे क्या है तेज तापको फैलानेवाले सूर्य भगवान् भी रामचन्द्रजीकी पवित्रता और माहात्म्य जानकर उनके ऊपर अपनी तीक्ष्ण किरणोंकी सामर्थ्य जनानेमें साहसी नहीं होंगे मुझेपूरा विश्वास है ॥८॥ सर्वकालोंमें सुखकी उपजानेवाली पवन वनमें छूटकर न अति गर्म न अतिठंढीहो रामचन्द्रजीकी सेवा करती रहेंगी ॥९॥ रजनीपति चंद्रमा पापरहित रामचन्द्रजीको लेटा हुआ

अरण्यवासेयद्दुःखंजानंत्येवसुखोचिता ॥ अनुगच्छतिवैदेही धर्मात्मानंतवात्मजम्॥६॥ कीर्तिभूतांपताकांयोलोकेभ्रामयतिप्रभुः ॥ धर्मःसत्य व्रतपरःकिंनाप्राप्तस्तवात्मजः ॥ ७ ॥ व्यक्तंरामस्यविज्ञायशौचंमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ नगात्रमंशुभिःसूर्यःसंतापयितुमर्हति ॥ ८ ॥ शिवः सर्वेषुकालेषुकाननेभ्योविनिःसृतः॥ राघवयुक्तशीतोष्णःसेविष्यतिसुखोऽनिलः॥९॥शयानमनघंरात्रौपितेवाभिपरिष्वजन् ॥ घर्मघ्नःसंस्पृश ञ्शीतश्चन्द्रमाह्लादयिष्यति ॥ १० ॥ ददौचास्त्राणिदिव्यानियस्मैब्रह्मामहौजसे ॥ दानवेंद्रंहतंदृष्ट्वातिमिध्वजसुतंरणे॥११॥ सशूरःपुरुषव्याघ्रः स्वबाहुबलमाश्रितः॥ असंत्रस्तोह्यरण्येऽसौवेश्मनीवनिवत्स्यते॥१२॥यस्येषुपथमासाद्यविनाशंयांतिशत्रवः ॥ कथंनपृथिवीतस्यशासनेस्था तुमर्हति॥ १३ ॥ याश्रीःशौर्यंचरामस्ययाचकल्याणसत्त्वता ॥ निवृत्तारण्यवासास्वंक्षिप्रंराज्यमवाप्स्यति॥ १४ ॥ सूर्यस्यापिभवेत्सूर्योह्यग्ने रग्निःप्रभोःप्रभुः ॥ श्रियाः श्रीश्चभवेदग्र्याकीर्त्याःकीर्तिःक्षमाक्षमा ॥१५॥

देख रात्रि कालमें पिताके समान सुख देने वाली किरणें वर्षाकर उनके अंगोंमें लिपट आनन्दित करेगा ॥१०॥ फिर जिन श्रीरामचन्द्रजीको ब्रह्मर्षि विश्वामित्र जीने तिमिध्वजके पुत्र सुबाहु निशाचरके मरनेकेपीछे अनेक दिव्यास्त्र दिये ॥११॥ वही वीरकुलचूडामणि रघुराजरामचन्द्रजी अपनी भुजाओंके बलसे रक्षितहोकर निर्भयहो घरके समान वनमें रहेंगे ॥१२॥ जिनके शराघातसे शत्रुलोग रणस्थलमें सोजाते हैं उनकी आज्ञामें पृथ्वीक्योंन रहेंगी? सब पृथ्वीको शासन करना तो उनके लिये एक सामान्य वार्ता है ॥१३॥ हे देवि ! मैंने रामचन्द्रमें जिसप्रकार शरीरकी सुन्दरताई देखी है, वैसेही उनमें शूरता और कल्याणभावभी देखा है । और इससे ऐसा बोध होता है कि, वहजल्दी वनसे लौटकर राज्यभार ग्रहण करेंगे॥१४॥ फिर रामचन्द्रजी सूर्यके भी सूर्य; अग्निके भी अग्नि, प्रभुके भी, प्रभु, शोभाकी शोभा,

कीर्त्तिकेभी कीर्त्ति और क्षमाकेभी क्षमा हैं ॥१५॥ वह देवताके भी देवता और सब प्राणियोंके प्राण रखनेवाले हैं । हे देवि ! वह नगरमें या वनमें जहां कहीं भी रहें उनमें कोई किसी प्रकारका दोष नहीं देखसकता ॥१६॥ फिर मुझको यहभी विश्वास है कि पुरुष श्रेष्ठ रामचन्द्रजी पृथ्वी जानकी और विजयलक्ष्मीके साथ बहुत शीघ्र राजपदपर आरूढ होंगे ॥१७॥ अयोध्यामें जितने आदमी हैं सबरामचन्द्रजीको वन जाते हुए देखकर रुदन करतेथे और अबतक सबपर शोक छा रहाहै ॥१८॥ जो किसीके न जीतेजाने योग्य होकरभी चीर वसन धारणकरके वनको गये और साक्षात् लक्ष्मीकारूप जानकीजीउनकेसंग गई हैं फिर उनकेलिये शोच क्या करना उनको क्या दुर्लभ है ॥१९॥ धनुष धारण कियेहुये लक्ष्मणजी खड्ग तीर औरभी अनेक भांतिके हथियार लिये उनकेसाथगये हैं फिर उनको किसी बातकी कमी

दैवतंदेवतानांचभूतानांभूतसत्तमः ॥ तस्यकेह्यगुणादेविवनेवाप्यथवापुरे ॥१६॥ पृथिव्यासहवैदेह्याश्रियाचपुरुषर्षभः ॥ क्षिप्रंतिसृभिरेताभिः सहरामोऽभिषेक्ष्यते ॥१७॥ दुःखजंविसृजत्यश्रुनिष्क्रामंतमुदीक्ष्ययम् ॥ अयोध्यायांजनःसर्वःशोकवेगसमाहतः॥ १८ ॥ कुशचीरधरंवीरं गच्छन्तमपराजितम् ॥ सीतेवानुगतालक्ष्मीस्तस्यकिंनामदुर्लभम् ॥१९॥ अनुग्रंहवरोयस्यबाणखड्गास्त्रभृत्स्वयम् ॥ लक्ष्मणोव्रजतिह्यग्रेतस्य किंनामदुर्लभम् ॥ २० ॥ निवृत्तवनवासंतंद्रष्टासिपुनरागतम् ॥ जहिशोकंचमोहंचदेविसत्यंब्रवीमिते ॥ २१ ॥ शिरसाचरणावेतौवंदमानमनिंदिते ॥ पुनर्द्रक्ष्यसिकल्याणिपुत्रंचंद्रमिवोदितम् ॥ २२ ॥ पुनःप्रविष्टंदृष्ट्वातमाभिषिक्तंमहाश्रियम् ॥ समुत्स्रक्ष्यसिनेत्राभ्यांशीघ्रमानंदजंजलम् ॥ २३ ॥ माशोकोदेविदुःखंवानरामेदृश्यतेऽशिवम् ॥ क्षिप्रंद्रक्ष्यसिपुत्रंत्वंससीतंसहलक्ष्मणम् ॥ २४ ॥ त्वयाशेषोजनश्चायंसमाश्वास्योयतोऽनघे ॥ किमिदानीमिदंदेविकरोषिहृदिविक्लवम् ॥ २५ ॥

होगी, जो चाहियेगासो लक्ष्मण लादेंगे ॥२०॥ हे देवि ! मैं सत्यही सत्य कहरहीहूं कि, तुम यहां फिर रामचन्द्रजीको वनवाससे लौटा हुआ देखोगी; मैं तुम्हेंसमझाती हूं कि तुम शोक और मोहको एकबारही छोड दो॥२१॥हे अनिन्दिते ! तुम उदित हुए कलाधरकी नाई अपने पुत्ररामचन्द्रजीको शीघ्रही अपने चरणोंमें प्रणामकरता हुआ देखोगी ! अब घबडाओ मत॥२२॥ तुम निश्चयही राजलक्ष्मीको प्राप्त अभिषेक पाये हुए अयोध्यामें आये रामचन्द्रको देख आनन्दाश्रु बहाओगी॥२३॥ हे देवि ! तुम शोक मतकरो किसीभांतिभीरामका अमंगल नहीं हो सकता तुम सीता और अनुज लक्ष्मणसहित रामचन्द्रजीको जल्दीही देखोगी॥२४॥कहांतोतुम्हें सब घबराये हुए अयोध्यावासियोंको समझाना चाहिये परन्तु आश्चर्य कि. तुम स्वयंही व्याकुल होगईं. जो हो, अब अकारण शोक प्रकाश करना उचित

नहीं है॥२५॥हे देवि ! जब कि रामसे सत्यमार्गमें चलनेवाले तुम्हारे पुत्र हैं तब फिर तुम्हें शोक किस बातका ? यदि विचार करके देखा जाय तो संसारमें रामचन्द्रके समान कोई साधु पुरुष दृष्टिनहीं आता ॥२६॥जबकि तुम देखोगी रामचन्द्रजी वनसे लौटकर सब सुहृदोंके साथ तुम्हें प्रणाम कर रहे हैं तब मेघमालाके समान तुम्हारे नेत्रोंसे अवश्यही आनन्दकेआसुओंकी वर्षा होगी ॥२७॥ अधिक क्या कहूं तुम्हारे पुत्रश्रीरामचन्द्रजी जल्दीसे अयोध्यापुरीमें लौट कोमल और मोटे हाथोंसे तुम्हारे चरणोंको दावेंगे॥२८॥सबसुहृदोंके संग प्रणामकर सामने बैठे हुए पुत्रके ऊपर आनन्द आसुओंका प्रवाह बरसाओगी जिस प्रकार बादर पर्वतोंके ऊपर जलधारावर्षाते हैं॥२९॥आनन्दकरने वालीसुमित्राजीजोकिवचन बोलनेमें चतुरऔरनिन्दारहित थीं इसप्रकारकेसंतोषितवचनोंसे कौशल्याजीको समझाबुझा

नार्हात्वंशोचितुंदेवियस्यास्तेराघवः सुतः ॥ नहिरामात्परोलोकेविद्यतेसत्पथेस्थितः ॥ २६ ॥ अभिवादयमानंतंदृष्ट्वाससुहृदंसुतम् ॥ मुदाश्रु मोक्ष्यसेक्षिप्रंमेघरेखेववार्षिकी ॥ २७॥ पुत्रस्तेवरदः क्षिप्रमयोध्यांपुनरागतः ॥ कराभ्यांमृदुपीनाभ्यांचरणौपीडयिष्यति ॥ २८ ॥ अभिवाद्यनमस्यंतंशूरंससुहृदंसुतम् ॥ मुदास्रैःप्रोक्षसेपुत्रंमेघराजिरिवाचलम् ॥ २९ ॥ आश्वासयंतीविविधैश्चवाक्यैर्वाक्योपचारेकुशलाऽनवद्या ॥ रामस्यतांमातरमेवमुक्त्वादेवीसुमित्राविरराम रामा ॥ ३० ॥ निशम्यतल्लक्ष्मणमातृवाक्यंरामस्यमातुर्नरदेवपत्न्याः ॥ सद्यःशरीरेविननाश शोकः शरद्गतोमेघइवाल्पतोयः ॥ ३१ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ० अ० चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥ अनुरक्तामहात्मा नंरामंसत्यपराक्रमम्॥ अनुजग्मुः प्रयांतंतंवनवासायमानवाः ॥ १ ॥ निवर्तितेऽतीवबलात्सुहृद्धर्मेणराजनि ॥ नैवतेसंन्यवर्तन्तरामस्यानुगतारथम् ॥ २ ॥ अयोध्यानिलयानांहिपुरुषाणांमहायशाः ॥ बभूवगुणसंपन्नः पूर्णचन्द्रइवप्रियः ॥३॥ सयाच्यमानः काकुत्स्थस्ताभिः प्रकृतिभिस्तदा ॥ कुर्वाणः पितरंसत्यंवनमेवान्वपद्यत ॥४॥

चुप होरहीं ॥३०॥ उस समय लक्ष्मणजीकीमाता सुमित्राजीके यह संतोषदेनेवालेवचन सुनकर दशरथकी पत्नी राममाता कौशल्याजी शोक औरदुःखसे शरद कालीन बिन पानीके बादरके समान हीन होगई ॥ ३१ ॥ इत्यर्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयोध्याकांडे भाषायां चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥ पुरवासीगण रामचन्द्रजीसे बहुतही स्नेह करतेथे इसी कारण वह सत्य पराक्रम महात्मा रामचन्द्रजीके पीछे २ चले गयेथे ॥ १ ॥ यद्यपि राजा दशरथजी तो धर्मानुसार किसी भांति लौटभी परंतु पुरवासी लोगोंने किसीप्रकार रामचन्द्रजीके रथका पीछानहीं छोडा ॥ २ ॥ यशश्वी भगवान् गुणवान् रामचन्द्रजी पूर्णमासीके चन्द्रमाके समान सबही अयोध्यावासियोंके प्यारेथे ॥३॥ यद्यपि मंत्री आदिक अमात्योंने रामचन्द्रजीको लौट चलनेके लिये वारंवार कहाथा, परंतु रामचन्द्रजी

उनकी बातपर ध्यान न देकर पिताका सत्य पालनेके लिये वनको चलेही गये॥४॥ रामचन्द्रजीने वन जानेके समय सबको ऐसी प्रिय दृष्टिसे देखदिया मानों नेत्रोंद्वारा पानही कियेलेतेथे, और फिर अपने पुत्रके समान प्यारीदृष्टिसे देखकर प्रजासे कहा ॥५॥ कि, हे प्रजागण ! तुम सब जिस प्रकार हमसे प्रसन्न रहकर जिस भांतिआदर सत्कार करतेहो सो हमारा कहना मानकर भरतजीके प्रतिहमसे अधिक प्रीति और सम्मान प्रगट करना॥६॥ कैकेयीनन्दन भरतजी बहुतही सुशील हैं वह अवश्यही तुम्हारा हित करनेवाले और जो तुम्हारा प्याराहो ऐसा कार्य करेंगे ॥७॥ भरतजी अवस्थामें बालकके समान हैं परज्ञानबलमें वृद्धोंके तुल्य हैं जैसा उनमें बल,वीर्य बढा हुआ है वैसेही वह गुणवान् भी हैं अधिक कहनेसे क्या है वह भरतजी तुम्हारे सबके पालन कर्ता और राजाहोनेके योग्य हैं अतएव उनके राज्यपर बैठनेसे तुम्हारी सब शंकायें छूट जायँगी ॥८॥ वह युवराज सबही प्रकारसे राज्यपदके योग्य हैं राजामें जो गुण होने चाहिये

अवेक्षमाणः सस्नेहंचक्षुषाप्रपिबन्निव॥उवाचरामः सस्नेहंताःप्रजाःस्वाःप्रजाइव॥५॥याप्रीतिर्बहुमानश्चमय्ययोध्यानिवासिनाम्॥ मत्प्रियार्थं विशेषेणभरतेसाविधीयताम्॥६॥ सहिकल्याणचारित्रःकैकेय्यानंदवर्धनः ॥ करिष्यतियथावद्वः प्रियाणिचहितानिच॥ ७ ॥ ज्ञानवृद्धोवयोबा लोमृदुर्वीर्यगुणान्वितः॥ अनुरूपः सवोभर्ताभविष्यतिभयापहः॥८॥सहिराजगुणैर्युक्तोयुवराजः समीक्षितः॥अपिचापिमयाशिष्टैःकार्यंवोभर्तृ शासनम्॥९॥नसंतप्येद्यथाचासौवनवासंगतेमयि॥महाराजस्तथाकार्योममप्रियचिकीर्षया॥१०॥यथायथादाशरथिर्धर्ममेवाश्रितोभवेत्॥तथा तथाप्रकृतयोरामंपतिमकामयन्॥११॥ बाष्पेणपिहितंदीनंरामःसौमित्रिणासह॥चकर्षेवगुणैर्बद्धंजनंपुरनिवासिनम्॥१२॥ तेद्विजास्त्रिविधंवृद्धा ज्ञानेनवयसौजसा॥वयःप्रकंपशिरसोदूरादूचुरिदंवचः॥१३॥वहंतोजवनारामंभोभोजात्यास्तुरंगमाः॥ निवर्तध्वंनगंतव्यंहिताभवतभर्तरि ॥१४॥

भरतजीमें मुझसे भी अधिक वह सबगुण वर्त्तमान हैं अतएव उनकी आज्ञामें रहना सबभांतिसेतुमको उचित है ॥९॥ मेरे वनजानेपर महाराज पिताजीको किसी प्रकारका कष्ट न पहुंचे सो मेरे हितकेलिये वैसेही कार्य तुम सब करना* ॥१०॥ जैसे २ रामचन्द्रजी उनको धर्मका उपदेश देतेथे वैसे २ ही प्रजागण चाहते थे कि, रामचन्द्रजो राजा हों तो अच्छा है ॥११॥ उस समय लक्ष्मणजी सहित श्रीरामचन्द्रजीने रुदन करते हुये दीन पुरवासियोंको मानो अपनेमें खैंच लिया ॥ १२ ॥ उस समय कई एक ज्ञान--वृद्ध, तपो--वृद्ध और उमरमें भी वृद्ध ब्राह्मण लोग बुढापेके आजानेसे जिनका शिर कांप रहा था वेही रामच न्द्रजी के पीछे २ हुये और दूरसे यह वचन बोले ॥ १३ ॥ वे जल्दीसे चलकर भी बुढापेके कारण बहुत दूर न जा सके और कहने लगे हे वेगगामी

* चौपाई–सोइ सब भांति मोर हितकारी । जाते रहै भुवाल सुखारी ॥

दिव्य जातिके घोडे ! तुम अब आगे मत बढो, देखो हमारे कहने से लौट आओ, तुम्हें अवश्यही अपने प्रभु रामचन्द्रजी का हितकरना चाहिये ॥१४॥ जितने जीवमात्र हैं सुनतेहैं पर घोडेसबसे अधिक सुनते हैं, अतएव तुम हमारी प्रार्थनाको सुनो और आगे रथ लेकर मत बढो॥१५॥ हम जानते हैं कि, तुम्हारे प्रभु रामचन्द्रजीका हृदय अत्यन्त सरल और निर्मल हैं, विशेष करके यह दृढव्रत और वीरोंको धर्मका आश्रय किये हुये हैं, अतएव तुम इनको वनमें न लेजाकर पुरके भीतरलेआओ देखो कैसेही तुम इनको पुरकेबाहर न लेजाना॥१६॥ बूढे पुरुषोंकी रोय२ वह वार्त्ता श्रवणकर रामचन्द्रजीको बडादुःखहुआ और वह रथसे उतर कर पैदल चलने लगे ॥ १७ ॥ वह ब्राह्मणोंसे मिलनेके लिये मन्द २ चालसे सीता और लक्ष्मणजी समेत वनकी ओर को चले । सहज २ चलनेका कारण यह था कि ब्राह्मण लोगभी मेरे पासचले आवें ॥१८॥ वह ब्राह्मणोंको पैदल आते देखकर दयाके वश हुये, और रथको थमाय दिया उसपरसेआप उतर

कर्णवंतिहिभूतानिविशेषेणतुरंगमाः ॥ यूयंतस्मान्निवर्तध्वंयाचनांप्रतिवेदिताः ॥१५॥ धर्मतसविशुद्धात्मावीरःशुभदृढव्रतः ॥ उपवाह्यस्तुवो भर्तानापवाह्यःपुराद्वनम् ॥१६॥ एवमार्तप्रलापांस्तान्वृद्धान्प्रलपतोद्विजान् ॥ अवेक्ष्यसहसारामोरथादवततारह ॥१७॥ पद्भ्यामेवजगामाथस सीतः सहलक्ष्मणः ॥ सन्निकृष्टपदन्यासोरामोवनपरायणः ॥१८॥ द्विजातीन्हिपदातींस्तान्रामश्चारित्रवत्सलः ॥ नशशाकघृणाचक्षुःपरिमो क्तुंरथेनसः ॥ १९ ॥ गच्छंतमेवतंदृष्ट्वारामंसंभ्रांतमानसाः ॥ ऊचुःपरमसंतप्तारामंवाक्यमिदंद्विजाः ॥ २० ॥ ब्राह्मण्यंकृत्स्नमेतत्त्वांब्रह्मण्यम नुगच्छति ॥ द्विजस्कंधाधिरूढास्त्वामग्नयोऽप्यनुयांत्वमी ॥ २१ ॥ वाजपेयसमुत्थानिच्छत्राण्येतानिपश्यनः ॥ पृष्ठतोनुप्रयातानिमेघा निवजलात्यये ॥ २२ ॥ अनवाप्तातपत्रस्यरश्मिसंतापितस्यते ॥ एभिश्छायांकरिष्यामः स्वैश्छत्रैर्वाजपेयकैः ॥ २३ ॥

पडेवह चाहते तो रथपरबैठ शीघ्रतासे आगे बढजाते परन्तुउनका नाम तो दीनबन्धुहै फिरवह कैसे आगे बढते? इसहीकारण ब्राह्मणोंको विमुखन करसके॥१९॥ तब ब्राह्मण लोगोंने प्रार्थना पूर्ण होनेमें सन्देहजाना क्योंकि अब भी रामचन्द्रजी धीरे २ चलेही जाते थे, फिर सब ब्राह्मण दुःखितहो रामचन्द्रजीसेकहने लगे ॥२०॥ हे राजकुमार ! तुम ब्राह्मणोंके ऊपर सदा कृपा किया करतेहो, इसही कारण हम सब ब्राह्मण तुम्हारे साथही चले आतेहैं, हमारे यज्ञकीसामग्रीभी तुम्हारे पीछेहीपीछे आरहीहै और ब्राह्मणोंकेही कन्धोंपर रक्खी हुई अरणि आदि अग्निहोत्रकाभीसामान आता है॥२१॥शरदऋतुमें उठेहुये बादरोंकेसमान वाजपेययज्ञ करनेसे जो छत्र प्राप्त हुये हैं और हमारे ऊपर लगे हुये हैं वहसब आपके पीछे२ आते हैं ॥२२॥ आपके पास कोई छत्र नहींहै सो धूपके तापसे आपको कष्ट

होगा सो हम इन वाजपेय यज्ञसे प्राप्तहुये छत्रोंद्वारा आपकीछाया करेंगे॥२३॥ हमारी जो बुद्धि सदा वेदमन्त्रानुसारही चलतीहै हे वत्स! वही बुद्धि अबतुम्हारे लिये वनको भेजते हैं इसे साथ लेजाइये॥२४॥ जो वेदहमारा परमधन है, जो सदा हृदयमेंही रहताहै, यदि हमआपके साथ वनको जायँतो वही वेद मन्त्र हमारी स्त्रियोंके सती धर्मकी रक्षा करेगा और वहसरलतासे गृहस्थीका कर्म कियेजायँगी॥२५॥ अधिक क्याकहें जबकि हम तुम्हारेसाथ वन जानेको तैयारही हैं तब फिरवनजानेमें सन्देहही क्याहै और किसीसेसम्मति लेनेकीभी आवश्यकतानहीं यदि तुमहमारी बात अनुगामी करके धर्मकेप्रति नदेख हमें छोडही जाओगे तब फिर तुम किस प्रकार धर्मके मार्गपर आरूढ रह सकोगे ॥२६॥ हे राम ! अब कुछ अधिक कहना नहीं चाहते हम हंसके समान सफेद बालशिरपर धारणकिये शिरनवा तुमसे प्रार्थना करतेहैं कितुम वनको न जाओ॥२७॥ औरभी देखोकि, जोसब ब्राह्मण तुम्हारे साथ आरहेहैं इनमेंसे बहुतेरोंने यज्ञका अनुष्ठान आरम्भ

याहिनःसततंबुद्धिर्वेदमंत्रानुसारिणी ॥ त्वत्कृतेसाकृतावत्सवनवासानुचारिणी॥२४ ॥ हृदयेष्ववतिष्ठंते वेदायेनःपरंधनम् ॥ वत्स्यंत्यपिगृहेष्वेवदाराश्चारित्ररक्षिताः ॥ २५ ॥ पुनर्ननिश्चयःकार्यस्त्वद्गतौसुकृतामतिः ॥ त्वयिधर्मव्यपेक्षेतुकिंस्याद्धर्मपथेस्थितम् ॥ २६ ॥ याचितोनोनिवर्तस्वहंसशुक्लशिरोरुहैः॥ शिरोभिर्निभृताचारमहीपतनपांसुलः॥२७॥बहूनावितताय़ज्ञाद्विजानांयइहागताः॥ तेषांसमाप्तिरायत्तातववत्सनिवर्तने ॥२८॥ भक्तिमंतीहभूतानिजंगमाजंगमानिच ॥ याचमानेषुतेषुत्वभक्तिभक्तेषुदर्शय ॥२९॥ अनुगंतुमशक्तास्त्वांमूलैरुद्धतवेगिनः॥ उन्नतावायुवेगेनविक्रोशंतीवपादपाः ॥३०॥ निश्चेष्टाहारसंचाराबृक्षैकस्थाननिश्चिताः ॥ पक्षिणोऽपिप्रयाचंतेसर्वभूतानुकंपनम् ॥ ३१ ॥ एवंविक्रोशतांतेषांद्विजातीनांनिवर्तने ॥ ददृशेतमसातत्रवारयंतीवराघवम् ॥३२॥

कियाहै, हे वत्स! यदितुम वनकेजानेसे न लौटोगे तो इनयाज्ञिक ब्राह्मणोंका यज्ञ किस प्रकारपूराहोगा॥२८॥ औरभी विचारकरके देखोकि संसारमें सब प्रकारके जीव तुम्हारी बहुत ही भक्ति करते हैं और वहजीव भी तुम्हें वन जानेसे निवारण कर रहेहैं, तुमइस वनमें न जाकर अपने भक्तोंको स्नेहकी दृष्टिसे देखो॥२९॥ तुम दृष्टि फेरकर देखो तो बहुत ऊँचे पेडोंकी जड पृथ्वीमें दबी हुईहैं इस कारण यहनहीं चलसकते, अतएव तुम्हारे साथ जानेमें असमर्थहो वायुवेगसे जो इनकी डालियां हिलती हैं सो तुम्हेंवन जानेको निवारणकररही हैं॥३०॥ देखो ! देखो ! यह पशुपक्षीअपने२ भोजनादिककी चिन्ताकोछोडछाड़करकेवल आपकेदर्शन की कामना किये एकत्र हुए वृक्षोंपर बैठे हैं फिर हम चैतन्योंकी क्या चलाई ॥३१॥ ब्राह्मणगण ऊँचे स्वरसे रुदनकर इस भांति विलाप करते चले आते थे,

कि इतनेमें रामचन्द्रजीने देखाकि तमसा नदी आगई मानोंब्राह्मणोंपै कृपा करके वहभी रामचन्द्रजीको वन जानेसे रोका चाहतीहै॥ ३२॥ तबसुमंत्रजीने थके हुए घोडोंको रथसे छोड दिया, और वे घोडे पृथ्वीपर लोटने लगे लोटनेके पीछे घोडोंने पानी पिया और तमसाके निकट तृणादिक चरने लगे ॥ ३३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्वा० वा० आदि० अयोध्याकांडे भाषायां पञ्चचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥ इसके पीछे रामचन्द्रजी मनोहर तमसा नदीके किनारेपर बैठकर सीताजीकी ओर देखते हुए लक्ष्मणजीसेबोले ॥१॥ भैया ! आज बनवासकी यह पहलीही रात्रि है सो तुम अयोध्यापुरीकीयाद करकेकुछ घबडाना मत और जो कुछ कन्दमूल फलमिल उनको खाकर संतोष करना॥२॥ वत्स ! तुम देखोतोकि मृग और पक्षीगण अपने२ घोसलों और मीढोंमें आकरइससूने वनमें कल २ करतेहैं इससे ऐसाज्ञात होता है कि मानों हमारी यह दशा देख यह सब रोरहे हैं ॥३॥ आज हमारेपिताजीकी राजधानी अयोध्या नगरी नरनारियों सहित यहां चलेआये

ततःसुमंत्रोऽपिरथाद्विमुच्यश्रांतान्हयान्संपरिवर्त्यशीघ्रम् ॥ पीतोदकांस्तोयपरिप्लुतांगानचारयद्वैतमसाविदूरे ॥३३॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयो० पंचचत्वारिंशःसर्गः ॥४५॥ ततस्तुतमसातीरंरम्यमाश्रित्यराघवः॥ सीतामुद्वीक्ष्यसौमित्रिमिदंवचनमब्रवीत् ॥१॥ इयमद्यनिशापूर्वासौमित्रेप्रहितावनम् ॥ वनवासस्यभद्रंतेनचोत्कंठितुमर्हसि॥२॥ पश्यशून्यान्यरण्यानिरुदंतीवसमंततः ॥ यथानिलयमायद्भिर्निलीनानिमृगद्विजैः ॥३॥ अद्यायोध्यातुनगरीराजधानीपितुर्मम ॥ सस्त्रीपुंसागतानस्मान्शोचिष्यतिनसंशयः ॥ ४ ॥ अनुरक्ताहिमनुजाराजानंबहुभिर्गुणैः॥ त्वांचमांचनरव्याघ्रशत्रुघ्नभरतौतथा॥५॥ पितरंचानुशोचामिमातरंचयशस्विनीम्॥अपिनांधौभवेतांनौरुदतौतावभीक्ष्णशः ॥ ६ ॥ भरतःखलुधर्मात्मापितरंमातरंचमे ॥ धर्मार्थकामसहितैर्वाक्यैराश्वासयिष्यति ॥७॥ भरतस्यानृशंसत्वंसंचिंत्याहंपुनःपुनः ॥ नानुशोचामिपितरंमातरंचमहाभुज ॥८॥ त्वयाकार्यंनरव्याघ्रमामनुव्रजताकृतम् ॥ अन्वेष्टव्याहिवैदेह्यारक्षणार्थंसहायता ॥९॥

हुये हम सबको निःसन्देह सोचती होगी ॥४॥ पिताके, तुम्हारे, हमारे, भरत और शत्रुघ्नकेइन कई जनोंके व्यवहारसे प्रजाबहुतही वशहोरहीहै और बहुतगुण होनेके कारणप्रजा इनसबसे प्रीतिभी रखतीहै॥५॥ मुझे पिताजी और माताके लियेबहुतहीचिन्ता है, मुझे तो ऐसा जानपडता हैकि वह मेरेलिये दिनरातरोरोकर अन्धेहोजायँगे॥६॥ यद्यपि मुझेयह विश्वासहै कि,धर्मात्मा भरतजी पिता माताकोधर्म अर्थकामसहित वचनोंसे समझाते बुझातेरहेंगे परन्तु तो भी मनव्याकुल होता है॥७॥ हे महाभुजावाले ! भरतजीके शीलस्वभावोंका स्मरण मुझे बार २ आता है और इस कारणसे मैं पिता माताकाभी कुछ शोच नहीं करता ॥८॥ भैय्या लक्ष्मण पुरुषसिंह! तुम जोहमारे संग चले आये यह बहुतही अच्छाकिया नहीं तो सीताकी रक्षाकरनेके लिये हमेंकोई और सहायक ढूँढना पडता॥९॥

हे लक्ष्मण! यद्यपि वनमें अनेक प्रकारके कंद मूल फलोंकी कमी नहींहै परन्तु आजजलही पीकर रात्रि बितादें यह मेरी इच्छा है॥१०॥ लक्ष्मणजीको उपदेश देकरफिर सुमंत्रजीसे बोले कि, हे सुमंत्रजी ! तुम भलीभांति घोडोंकी सेवा करना जिसमेंकिसी प्रकारकी कसर न हो॥११॥ अनंतर सूर्य भगवान्‌के अस्ताचल पहाडकीचोटीपर विराजतेही सुमन्त्रजीने घोडोंको बहुतसादाना और घासआदि दे रामचन्द्रजीके पासआये॥१२॥ फिर सुमन्त्रजीने सायंकालकी सन्ध्याबन्दनादि समाप्तकर और रात्रिको आईहुईदेख लक्ष्मण व रामचन्द्रजी दोनों भाइयोंके शयन करनेकेलिये स्थान बनाय सो रहे॥१३॥ तमसाके किनारे पेडकेपत्तोंकी बनी हुई शय्यादेखकर श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मण व जानकीके साथ उसपर बैठे॥१४॥ रामचन्द्रजीको व श्रीजानकीजीको श्रमसेथका थकाया देखकर लक्ष्मणजी सुमन्त्रके

अद्भिरेवहिसौमित्रेवत्स्याम्यद्यनिशामिमाम्॥एतद्धिरोचतेमह्यंवन्येऽपिविविधेसति॥१०॥ एवमुक्त्वातुसौमित्रिंसुमंत्रमपिराघवः॥अप्रमत्तस्त्वमश्वेषुभवसौम्येत्युवाचह॥११॥सोऽश्वान्सुमंत्रःसंयम्यसूर्येऽस्तंसमुपागते॥ प्रभूतयवसान्कृत्वाबभूवप्रत्यनंतरः॥१२॥उपास्यतुशिवांसंध्यांदृष्ट्वारात्रिमुपागताम् ॥ रामस्यशयनंचक्रेसूतःसौमित्रिणासह॥१३॥ तांशय्यांतमसातीरेवीक्ष्यवृक्षदलैर्वृताम् ॥ रामःसौमित्रिणासार्धंसभार्यःसंविवेशह॥१४॥ सभार्यंसंप्रसुप्तंतुभ्रांतंसंप्रेक्ष्यलक्ष्मणः ॥ कथयामाससूताथरामस्यविविधान्गुणान्॥१५॥ जाग्रतोरेवतांरात्रिंसौमित्रेरुदितोरविः॥ सूतस्यतमसातीरेरामस्यब्रुवतोगुणान् ॥१६॥ गोकुलाकुलतीरायास्तमसायाविदूरतः ॥ अवसत्तत्रतांरात्रिंरामःप्रकृतिभिःसह ॥१७॥ उत्थायचमहातेजाःप्रकृतीस्तानिशाम्यच ॥ अब्रवीद्भ्रातरंरामोलक्ष्मणंपुण्यलक्षणम् ॥१८॥ अस्मद्व्यपेक्षान्सौमित्रेनिर्व्यपेक्षान्गृहेष्वपि ॥ वृक्षमूलेषुसंसक्तान्पश्यलक्ष्मणसांप्रतम् ॥१९॥ यथैतेनियमंपौराःकुर्वन्त्यस्मन्निवर्तने ॥ अपिप्राणान्न्यसिष्यंतिनतुत्यक्ष्यंतिनिश्चयम् ॥२०॥

सहित कथा वार्तामें रामचन्द्रजीके गुण बखानकरने लगे॥१५॥ तमसाके किनारे लक्ष्मण व सुमन्त्रकेवार्ता करते और जागते२ ही रातबीतगयी और प्रातःकाल हो आया॥१६॥ तमसाके किनारे बहुत गायेंचर रहीथीं उसीके कुछ थोडे दूरपर रामचन्द्रजीने सबसमाजसहित वह रात्रि बिताई॥१७॥ तदनन्तर बहुतही तडके श्रीरामचन्द्रजीने उठकर देखा कि, सब अयोध्यावासी घोर नींदमें अचेत पडेहैं तब रामचन्द्रजीने शुभलक्षण लक्ष्मणजीसे कहा॥१८॥ हे लक्ष्मण ! देखो तो प्रजा लोग अपने घरवारका कुछ ध्यान न करके मुझमें चित्तलगाये हुएहैंऔर पेडोंके नीचेबिना कुछ बिछाये थककर सो गये हैं और अबतक नहीं जागे ॥१९॥ हमें वनको न जाने देकर घर ही लौटा ले चलनेकी इनकी वासनाहै; यदि इनका यह मनोरथ सिद्ध नहुआ तो यहसब प्राणत्याग करनेमें भी विलंब न करेंगे॥२०॥

सो जबतक यहसब सोते रहे तबतक हमसब रथपरचढकरयहांसेचले चलें फिर कुछ भयनहीं, क्योंकि तमसासेआगे कुछ दूरतक मार्गभी नहीं तबयह लोग आवेंगे कैसे ?॥२१॥ यह पुरवासीगणमुझसे इतना अनुराग करतेहैंकि जब यह जागजायँ तबइनको छोडकर जाना कोईसहज बात नहीं है और जबकि, यह लोग जानेंगे कि, रामचन्द्र हमें धोखा देकरछोडना चाहते हैं तब तौ यह कभी हमारा साथ न छोडेंगे और न कभीसोवेंगे॥२२॥विचार करके देखनेसे प्रजाओंको अपनेऊपर जो दुःखपडाहो उस दुःखसे उनकाबचानाही राजकुमारोंको उचितहै, इससे हमें अपने दुःखसेदुःखीहुए प्रजाको किसीप्रकार वनमें लेजाना उचित नहींहै॥२३॥ तब लक्ष्मणजी साक्षात्धर्मतुल्य रामचन्द्रजीसे बोले कि, हे प्राज्ञ ! आपकी जोइच्छाहै उसके पालन करनेमें मुझे किसीप्रकारकी आपत्ति नहींहै अतएवआप रथपर सवार हूजिये॥२४॥ फिर रामचन्द्रजीने सुमन्त्रसे कहा कि हे सूत! तुम शीघ्ररथ तैयारकरो मैं यहांसे अभी वनकोजाऊँगा॥२५॥ आज्ञा पातेही बहुत शीघ्रसुमंत्र

यावदेवतुसंसुप्तास्तावदेववयंलघु ॥ रथमारुह्यगच्छामःपंथानमकुतोभयम् ॥२१॥ अतोभूयोऽपिनेदानीमिक्ष्वाकुपुरवासिनः ॥ स्वपेयुरनुरक्ता मांवृक्षमूलेषुसश्रिताः ॥ २२ ॥ पौराह्यात्मकृताद्दुःखाद्विप्रमोच्यानृपात्मजैः ॥ नतुखल्वात्मनायोज्यादुःखेनपुरवासिनः ॥२३॥ अब्रवील्लक्ष्मणोरामसाक्षाद्धर्ममिवस्थितम्॥ रोचतेमेतथाप्राज्ञक्षिप्रमारुह्यतामिति ॥२४॥ अथरामोऽब्रवीत्सूतंशीघ्रंसंयुज्यतांरथः॥ गमिष्यामिततोऽरण्यंगच्छशीघ्रमितःप्रभो ॥२५॥ सूतस्ततःसंत्वरितःस्यंदनंतैर्हयोत्तमैः ॥ योजयित्वातुरामस्यप्रांजलिःप्रत्यवेदयत् ॥ २६ ॥ अयंयुक्तोमहाबाहोरथस्तेरथिनांवर॥ त्वरयाऽऽरोहभद्रंतेससीतः सहलक्ष्मणः ॥२७॥ तंस्यंदनमधिष्ठायराघवःसपरिच्छदः ॥ शीघ्रगामाकुलावर्तांतमसामतरन्नदीम् ॥ २८ ॥ ससंतीर्यमहाबाहुःश्रीमाञ्शिवमकंटकम् ॥ प्रापद्यतमहामार्गमभयंभयदर्शिनाम् ॥२९ ॥ मोहनार्थंतुपौराणांसूतरामोऽब्रवीद्वचः ॥ उदङ्मुखःप्रयाहित्वंरथमारुह्यसारथे ॥३०॥ मुहूर्तंत्वरितंगत्वानिवर्तयरथंपुनः ॥ यथानविद्युःपौरामांतथाकुरुसमाहितः ॥ ३१ ॥

जीने उत्तम घोडेजोत रथको तैयारकिया और रामचन्द्रजीके पास हाथ जोडकर निवेदन किया॥२६॥ हे महाबाहो रथियोंमेंश्रेष्ठ! आपके लिये आपका श्रेष्ठरथ तैयार कर दिया गया अब आप बहुत शीघ्र सीता और लक्ष्मणजीके साथ इस पर सवार हो जाइये॥ २७॥ इतना सुनते ही रामचन्द्रजी सब सामग्रीसहित उस रथपर चढे और भवँर पडती हुई तेज धारावाली तमसा नदीके पार हो गये॥२८॥ जब महाबाहु रामचन्द्रजी तमसाके पार गये तब कुछ दूर तो कटीला टेढामेढा भयंकर रास्ता मिला फिर पीछे२से बहुत सुन्दर मार्ग उनको मिल गया॥२९॥ तबरामचन्द्रजीने पुरवासियोंके मोह लेनेके लिये सारथीसे कहा कि, सुमंत्र! तुम अकेले हमारा रथ उत्तर दिशाकी ओर चलाओ हम उतरते हैं ॥ ३० ॥ तुम मुहूर्त्त भरतक अति वेगसे रथ चलाओ और फिर लौटो तुम इस प्रकारसे

लीकके चिह्न मिटाकर रथ हांको जिससे कोई हमारे जानेका कुछभी वृत्तांत न जानें कि, हम किधरको गयेहैं तुम सावधानीसे यह कार्य करो ॥ ३१ ॥ सुमंत्रजीने रामचन्द्रजीकी आज्ञा पाकर उनके कथनानुसार पहले उत्तर दिशामें रथ ले जाकर फिर लौटाया और वह समाचार रामचन्द्रजीको जनाया॥ ३२॥ जब सुमंत्रजी रथको लौटाकर लाये तब रघुकुलके बढानेवाले श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मण जानकी सहित उसपर सवार हुये, फिर जिसमार्गसे तपोवनको जाना होता है उसी ओरको सुमंत्रजीने घोडे चलाये॥ ३३॥ इस प्रकारमहारथी रामचन्द्रजी रथपर चढके सारथी सहित वनको जाते हुए । जानेकेसमय मंगलार्थ केवल एक बारही जरा दूर रथ उत्तर दिशाको चलाया था ॥ ३४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयोध्याकांडे भाषायां षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४६ ॥ इधर रात्रि बीतकर जब सबेरा हो गया तब सब पुरवासी रामचन्द्रजीके बिना शोकके मारे ऐसे बिलबिलाये कि, चेष्टा रहित होकर मूर्च्छित हो गये॥ १॥

रामस्यतुवचः श्रुत्वातथाचक्रेचसारथिः॥प्रत्यागम्यचरामस्यस्यंदनंप्रत्यवेदयत्॥३२॥ तौसंप्रयुक्तंतुरथंसमास्थितौतदाससीतौरघुवंशवर्धनौ॥ प्रचोदयामासततस्तुरंगमान्ससारथिर्येनपथातपोवनम् ॥३३॥ ततःसमास्थायरथंमहारथःससारथिर्दाशरथिर्वनंययौ ॥ उदङ्मुखंतंतुरथंचकारप्रयाणमांगल्यनिमित्तदर्शनात् ॥ ३४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाकाव्ये अयोध्याकांडे षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥४६॥ प्रभातायांतुशर्वर्यांपौरास्तेराघवंविना ॥ शोकोपहतनिश्चेष्टाबभूवुर्हतचेतसः ॥ १ ॥ शोकजाश्रुपरिद्यूनावीक्षमाणास्ततस्ततः ॥ आलोकमपि रामस्यनपश्यंतिस्मदुःखिताः ॥२॥ तेविषादार्तवदनारहितास्तेनधीमता ॥ कृपणाःकरुणावाचोवदंतिस्ममनीषिणः ॥३॥ धिगस्तुखलुनिद्रां तांययाऽपहतचेतसः ॥ नाद्यपश्यामहेरामंपृथूरस्कंमहाभुजम् ॥४॥ कथंरामोमहाबाहुःसतथावितथक्रियः ॥ भक्तंजनमभित्यज्यप्रवासंतापसोगतः ॥ ५ ॥ योनःसदापालयतिपितापुत्रानिवौरसान् ॥ कथंरघूणांचश्रेष्ठस्त्यक्त्वानोविपिनंगतः ॥ ६ ॥

उन पुरवासियोंके दोनों नेत्रोंसे अखण्ड आंसुओंकी धारा गिरने लगी । यद्यपि यह सब उस समय दुःखित मनसे मार्गकी ओर देख रहे थे परंतु हाय फिर उनको रामचंद्रजीके रथकी धूल दिखलाई नहीं दी ॥ २॥ उन सबके मुख मंडल शोककी कारिषसे ढक गये उस समय वह रामचन्द्रजीका नाम ले२ कर अति करुणा सहित वाणी बोलने लगे॥ ३॥ वह सब बोले कि, इस भारी नींदको धिक्कार है हम सब इसकीही मायासे ज्ञान रहित होकर सो गये जिससे कि, महाबाहु चौडी छातीवाले रामचन्द्रजी अब हमें दृष्टि नहीं आते,किसीने सच कहा है (सोवै सो खोवे जागै सो पावै) ॥ ४॥ फिर हम सब जो सोय ही गयेथे तो भी महाबाहुरामचन्द्रजी अपने सब भक्तोंको शोकसागरमें डुबाकर तपस्वीभेष किये किस प्रकार वनको चले गये हा! कैसी विपद आई॥ ५॥ जो अपने और

प्रिय पुत्रके समान लालन पालन किया करते थे वह रघुवंशियोंमें श्रेष्ठ रामचन्द्रजी किस प्रकार हमको छोड वनवासी हुये ॥ ६ ॥ अच्छा जो हुआ सो हुआ, या तो आज यहांपर हम सब मर जायँगे, अथवा हिमालय पर्वतपर जो महाप्रस्थान नामक स्थान है वहां जाकर बर्फमें गल जायँगे। बात तो यह है कि, रामचन्द्रजीके बिना हमें जीकर करना हीक्या है ?॥७॥ जो वहां न मरे तो यहांजो सूखी लकडियें इधर उधर बहुत पड़ी हैं इन्हें बटोर चिता बना अग्नि दे उसमें गिरकर मरेंगे॥८॥जब हम अयोध्यापुरीमें जायँगे और वहांके निवासी जब रामचन्द्रजीका समाचार पूछेंगे तब क्या उनसे हम यह कहेंगे कि, हम निन्दा रहित प्रियकहनेवाले रामचन्द्रजीको वनमें पहुँचा आये हैं॥९॥ जब बिना रामचंद्रजीके हम लोगोंको अयोध्यावासी देखेंगे तब निश्चय ही बालक, जवान, बूढ़े, स्त्रियें सबही दुःखित होंगे ॥ १० ॥ हमें तो एक नही महादुःख है कि अयोध्यासे हम सब तो रामचन्द्रजीके साथही थे सो अब उनको गवांकर किस प्रकार

इहैवनिधनंयामोमहाप्रस्थानमेववा ॥ रामेणरहितानांनोकिमर्थंजीवितंहितम् ॥७॥ संतिशुष्काणिकाष्ठानिप्रभूतानिमहांतिच ॥ तैःप्रज्वाल्यचितांसर्वेप्रविशामोऽथवावयम् ॥८॥ किंवक्ष्यामोमहाबाहुरनसूयःप्रियंवदः ॥ नीतःसराघवोऽस्माभिरितिवक्तुंकथंक्षमम् ॥९॥ सानूनंनगरीदीनाहष्ट्वास्मान्राघवंविना ॥ भविष्यतिनिरानंदासस्त्रीबालवयोऽधिका ॥ १० ॥ निर्यातास्तेनवीरेणासहनित्यमहात्मना ॥ विहीनास्तेनचपुनः कथंद्रक्ष्यामतांपुरीम् ॥११॥ इतीवबहुधावाचोबाहुमुद्यम्यतेजनाः ॥ विलपंतिस्मदुःखार्ताहृतवत्साइवाग्र्यगाः॥१२॥ ततोमार्गानुसारेणगत्वाकिंचित्ततःक्षणम् ॥ मार्गनाशाद्विषादेनमहतासमभिप्लुताः ॥ १३ ॥ रथमार्गानुसारेणंन्यवर्ततमनस्विनः ॥ किमिदंकिंकरिष्यामोदैवेनोपहताइति ॥१४॥ तदायथागतेनैवमार्गेणक्लांतचेतसः ॥ अयोध्यामगमन्सर्वेपुरींव्यथितसज्जनाम् ॥१५॥ आलोक्यनगरींतांचक्षयव्याकुलमानसाः आवर्तयंततेऽश्रूणिनयनैःशोकपीडितैः ॥ १६ ॥

अयोध्यामें प्रवेश करें ॥११॥ वह सब पुरवासी हाथ उठाकर दुःखितहो बिना बछडेकी गायके समान ऐसे वह और भी बहुत भांतिका विलाप कलाप करने लगे ॥१२॥ फिर रथके पहियोंको लीक देखकर कुछ दूरतक चलेभी गये परन्तु जाते२आगेको लीकका कुछ चिह्न न देखपडा फिर सब औरभी अधिक दुःखित हुये॥१३॥फिर उसी लीकपर हो आये और उपायरहित होकर वहीं लौटे और सब यह कहने लगे कि, "यह क्या बात है ? हमइस समय क्या करें ? हमारा भाग्यही बुरा है" ॥१४॥ फिर इधर उधर बहुतचलने फिरनेसे बहुत थकगये और उपाय रहित होकर अछताते पछताते व दुःख करते सबने अयोध्याका मार्ग लिया ॥१५॥ उन्होंने राजधानी अयोध्यापुरीमें आकर देखा कि, वहां सबही कोई रामचन्द्रजीके विरहसे दीन हो शोकसे व्याकुल हुये आंसू बहा रहे

हैं ॥ १६ ॥ जैसे विना चन्द्रमाके आकाश; बिना जलके सागर शोभाहीन होता है ऐसेही गरुड किसी सरोवरसे कोई सर्प पकडले उस समय उस तालाबकी जो दशा होजाती है वैसेही रामचन्द्रके बिना अयोध्यानगरी शोभाहीन होरही थी ॥ १७ ॥ रामचन्द्रजीके विरहमें अयोध्या निरानन्द और श्रीरहित होगई ॥१८॥ उस समय दुःखकेमारे सबही बावरेसे हो रहे थे उस समय प्रत्यक्ष बातमें भी किसीको अपने परायेका ज्ञान न था । यद्यपि पुरवासी रामचन्द्रजीके विरहमें व्याकुल अतिकष्टसे धनसे भरेपुरे घरोंको लौटथे तथापि उन सबको उस समय यह ज्ञान नहीं था कि,कौन घर अपना और कौन पराया है किसीने न जाना कि, कौन किसके घरमें चलागया ॥ १९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयोध्याकांडे भाषायां सप्त चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४७ ॥ यद्यपि पुरवासियोंने बहुतही कष्टसे नगरमें प्रवेश तो किया परन्तु उनका मुखमंडल पीला पड रहा था और वह शोकसे पीडित भी बहुत होरहे थे सबही मरनेकी

एषरामेणनगरीरहितानातिशोभते ॥ आपगागरुडेनेवह्रदादुद्धृतपन्नगा ॥ १७ ॥ चंद्रहीनमिवाकाशंतोयहीनमिवार्णवम् ॥ अपश्यन्निहतानंद नगरंतेविचेतसः॥१८॥ तेतानिवेश्मानिमहाधनानिदुःखेनदुःखोपहताविशंतः॥ नैवप्रजग्मुःस्वजनंपरंवानिरीक्षमाणाःप्रविनष्टहर्षाः॥१९॥इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आ० अ० सप्तचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४७ ॥ तेषामेवंविषण्णानांपीडितानामतीवच ॥ बाष्पविप्लुतनेत्राणांसशोकानांमुमूर्षया ॥ १ ॥अभिगम्यनिवृत्तानांरामंनगरवासिनाम् ॥ उद्गतानीवसत्त्वानिबभूवुरमनस्विनाम् ॥२॥ स्वंस्वंनिलयमागम्यपुत्रदारैःसमावृताः ॥ अश्रूणिमुमुचुः सर्वेबाष्पेणपिहिताननाः ॥३॥ नचाहृष्यन्नचामोदन्वणिजोनप्रसारयन्॥ नचाशोभंतपण्यानिनापचन्गृहमेधिनः॥४॥ नष्टंदृष्ट्वा नाभ्यनंदन्विपुलंबाधनागमम् ॥ पुत्रंप्रथमजंलब्ध्वाजननीनाप्यनंदत ॥५॥ गृहेगृहेरुदंत्यश्चभर्तारंगृहमागतम् ॥ व्यगर्हयंतदुःखार्तावाग्भिस्तोत्रैरिवद्विपान् ॥ ६ ॥ किंनुतेषांगृहैःकार्यंकिंदारैःकिंधनेनवा ॥ पुत्रैर्वापिसुखैर्वापियेनपश्यंतिराघवम् ॥ ७ ॥

इच्छा किये थे और रो रहे थे ॥ १ ॥ रामचन्द्रजीको जो वन पठाय कर आये तो इस शोकके कारण ऐसे होगये मानों इनके प्राण निकलाही चाहते हैं सुख और शान्तिका तो उनके हृदयमें उस समय नामभी नहीं था ॥ २ ॥ सब पुर वासी लौटकर अपने २ गृहमें गये और पुत्र कलत्र बन्धु बान्धवोंसहित मिलकर रुदन करने लगे ॥३॥ उनके सब साधन और हर्ष लोप होगये, बनियोंने अयोध्यापुरीमें अपनी २ दुकानें नहीं खोलीं व्यापारकी सामग्रियोंको सबने छोड़ दिया सब गृहस्थोंने रसोइयां न चढाई सब भूखे प्यासे बैठे रहे ॥ ४ ॥ खोई हुई चीजके मिलने अथवा बहुत सारा धन पाकरभी किसीको आनंद नहीं होता अधिक क्या कहें जिनके पहलौठीके पुत्र हुए उन माताओंकोभी आनन्द नहीं हुआ ॥५॥ पुरकी नारियें अपने २ स्वामियोंको आया हुआ देखकर रोते रोते उनको कडुवे वचन कहकर उनको दुःखित करनेलगीं, जैसे महावत अंकुशसे हाथीको पीडित करता है ॥ ६ ॥ वह स्त्रियें बोलीं कि, जिन्होंने रामचन्द्रजीका

मुखचन्द्र नहीं निहार पाया उन्हें घर, स्त्री, धन, पुत्र और सुखसे प्रयोजन क्या है ? ॥ ७ ॥ वास्तवमें लक्ष्मण और जानकीजी सत्पुरुष और सती कहलानेके योग्य हैं, क्योंकि वह रामचन्द्रजीकी सेवाशुश्रूषा करनेके लिये उनके साथ वनको गये हैं ॥८॥ रामचन्द्रजी जिस मार्गसे होकर जायँगे वहांकी नदी और सरोवर सबही धन्य होंगे क्योंकि रामचन्द्रजी उसमें स्नान आचमन करेंगे ॥ ९ ॥ बड़े वन अपने छोटे २ रमणीक वनोंसे व नदियां अपने स्रोतोंसे व पर्वत अपने कँगूरोंसे रामचन्द्रजीको सुख देंगे ॥१०॥ कानन (वन) या पर्वत जहांपर श्रीरामचन्द्रजी जायँगे, वह सब उनको अपना प्यारा पाहुना जान आदर सम्मान करनेमें कसर नही करेंगे ॥ ११ ॥ रामचन्द्रजी जहांजायँगे वहीं देखेंगे कि, पेडोंपर विचित्र फूल लगरहे हैं गंजरियां शोभायमान हैं और उनके ऊपर भँवर गुंजार कर रहे हैं ॥ १२ ॥ जब रामचन्द्रजी किसी पर्वतपर जाते होंगे तब वहां चाहे उस ऋतुमें उत्तम फूलनेका समय न हो वह पर्वत अकालमें भी अपने

एकःसत्पुरुषोलोकेलक्ष्मणः सहसीतया॥ योऽनुगच्छतिकाकुत्स्थंरामपरिचरन्वने॥८॥ आपगाःकृतपुण्यास्ताःपद्मिन्यश्चसरांसिच॥ येषुयास्यतिकाकुत्स्थो वगाह्यसलिलंशुचि॥९॥ शोभयिष्यंतिकाकुत्स्थमटव्योरम्यकाननाः॥ आपगाश्चमहानूपाःसानुमंतश्चपर्वताः॥१०॥काननंवापिशैलंवायंरामोऽनुगमिष्यति॥ प्रियातिथिमिवप्राप्तंनैनंशक्ष्यंत्यनर्चितुम्॥११॥ विचित्रकुसुमापीडाबहुमंजरिधारिणः॥राघवंदर्शयिष्यंतिनगाभ्रमरशालिनः॥१२॥अकालेचापिमुख्यानिपुष्पाणिचफलानिच॥ दर्शयिष्यंत्यनुक्रोशाद्गिरयोराममागतम्॥१३॥ प्रस्रविष्यंतितोयानिविमलानिमहीधराः॥विदर्शयंतोविविधान्भूयश्चित्रांश्चनिर्झरान्॥१४॥पादपाःपर्वताग्रेषुरमयिष्यंतिराघवम्॥ यत्ररामोभयंनात्रनास्तितत्रपराभवः॥१५॥ सहिशूरोमहाबाहुःपुत्रोदशरथस्यच॥पुराभवतिनोदूरादनुगच्छामराघवम्॥१६॥ पादच्छायासुखंभर्तुस्तादृशस्यमहात्मनः॥सहिनाथोजनस्यास्यसगतिःसपरायणम्॥१७॥ वयंपरिचरिष्यामः सीतांयूयंचराघवम्॥ इतिपौरस्त्रियोभर्तॄन्दुखार्तास्तत्तदब्रुवन्॥१८॥

ऊपर लगे हुए पेडोंके द्वारा उनकी पहुनाई करेंगे॥१३॥और सब पहाड विविध भांतिके झरनोंको दिखाते हुये और स्वच्छ जल देकर रामचन्द्रजीको सुखीकरेंगे ॥१४॥ वृक्ष सब पर्वतोंके आगे खडे हुए रामको आराम देंगे अधिक क्या कहें ? जहां रामचन्द्रजी रहेंगे वहां डर अथवा हारकी कुछ संभावना नहीं॥१५॥ दशरथात्मज शूरमहाबाहु रामचन्द्रजी अभी बहुत दूर नहीं गये होंगे बस इस समय हम रामचन्द्रजीकेव साथ वनको जायँगी ॥ १६ ॥ अधिक क्या कहें हम उन्हीं महात्मा रामचन्द्रजीके पग छायामें सुखसे बैठनेका अभिलाष करती हैं वह सबके स्वामी और परम गतिके देनेवाले हैं ॥१७॥हम सब महारानी सुखदानी जानकीजीके चरणोंकी सेवा करेंगी, और तुम सब महात्मा रामचन्द्रजीकी सेवामें लगे रहना । पुरकी स्त्रियें दुःखित मनसे अपने२स्वामियोंसे इस प्रकारके वचन

कहती हुई ॥१८॥ वह और भी कहने लगीं कि, वनमें रघुनायकजी सब भांतिसे तुम्हारा योगक्षेम करेंगे और श्रीसीताजी हमारा योग क्षेम अर्थात् भरणपोषण करनेमें यत्न करती रहेंगी ॥१९॥ विचार करके देखो कि, जहां सुख नहीं केवल दुःखही दुःख है जहां मन नहीं लगता और जहां बिल्कुल उदासी है ऐसे घरमें रहनेका क्या प्रयोजन है ? ॥२०॥ कैकेयीके राज्यमें अधर्मही है और यह राज्य बिना मालिकके समान है तब धन और पुत्रादिककी बात तो दूर रहे हमारे जीवन धारण करनेसे भी क्या प्रयोजन है ॥२१॥ धन, संपत्ति व राज्यके लालचसे जिस स्त्रीने सहजही पुत्ररूपी रत्नका त्याग किया वह कुलकलंकिनी कैकेयी और किसको छोडेगी वरन् यह सबको त्याग करेंगी और हम क्या यह सब कुलका संहार करादेगी ॥ २२ ॥ हम अपने २ पुत्रोंकी शपथ करके कहती हैं कि, जब तक कैकेयी जीती रहेगी हम प्राण रहते इसके राज्यमें न रहेंगी चाहे यह हमारा पालनभी करे तोभी हमसे यहां न रहा जायगा ॥२३॥

युष्माकंराघवोऽरण्येयोगक्षेमंविधास्यति ॥ सीतानारीजनस्यास्ययोगक्षेमंकरिष्यति ॥१९॥ कोन्वनेनाप्रतीतेनसोत्कंठितजनेनच ॥ संप्रीयेता मनोज्ञेनवासेनहृतचेतसा ॥२०॥ कैकेय्यायदिचेद्राज्यंस्यादधर्म्यमनाथवत् ॥ नहिनोजीवितेनार्थः कुतःपुत्रैःकुतोधनैः ॥ २१ ॥ ययापुत्रश्चभ र्ताचत्यक्तावैश्वर्यकारणात् ॥ कंसापरिहरेदन्यंकैकेयीकुलपांसनी ॥२२॥ कैकेय्यानवयंराज्येभृतकाहिवसेमहि ॥ जीवंत्याजातुजीवंत्यः पुत्रै रपिशपामहे ॥ २३ ॥ यापुत्रंपार्थिवेंद्रस्यप्रवासयतिनिर्घृणा ॥ कस्तांप्राप्यसुखंजीवेदधर्म्यांदुष्टचारिणीम् ॥ २४ ॥ उपद्रुतमिदंसर्वमनालंभ मनायकम् ॥ कैकेय्यास्तुकृतेसर्वंविनाशमुपयास्यति ॥२५॥ नहिप्रव्रजितेरामेजीविष्यतिमहीपतिः ॥ मृतेदशरथेव्यक्तंविलोपस्तदनन्तरम् ॥२६॥ तेविषंपिबतालोड्यक्षीणपुण्याःसुदुःखिताः ॥ राघवंवानुगच्छध्वमश्रुतिंवापिगच्छत ॥२७॥

जिस लाज न करनेवाली कैकेयीने महीपाल महाराज दशरथजीके प्यारे पुत्रको वन पठाया उस दुष्ट आचरण करनेवाली अधर्मिणी कैकेयीके राज्यमें रह कर कौन सुख भोगकी आशा करेगा ॥ २४ ॥ अबसे राज्यमें बहुतही उपद्रव हुआ करेंगे, व इस राज्यका स्वामीभीकोई न होगा. योग, यज्ञ, लोप हो जायँगे. हम समझ गई कि, इस कैकेई हीसे सबका नाश होगा ॥ २५ ॥ रामचन्द्रजी जब कि, बनको चले गये हैं तब महाराज नहीं जी सकते और जब कि, महाराज दशरथजीहीन रहे तब उनके पीछे यह राज्य अवश्यही लोप हो जायगा ॥ २६ ॥ अब हमारे सब सुकृत जाते रहे हम सबही पुरुषोंके साथ शिलाओंपर विष पीसकर उसको पीकर मरजायँगी अथवा रामचन्द्रजी जहां गये हैं वहां अथवा जहां कैकेईका कोई नामभी न लेता होगा ऐसे दूसरे देशमें चलीजाँयगी ॥ २७ ॥

हमें भली भांति विदित है कि, रामचन्द्रजी विनादोषके वनकोभेजे गये अतएव इस समय हम सब भरतजीके हाथसौंपी गई जैसे कि' कसाईके हाथमें गायको सौंप दिया जाय ॥२८॥ अहो ! क्या कहें पूर्ण चन्द्रमाके समान रामचन्द्रजी वह श्यामवर्ण शत्रुओंके नाश करनेवाले कमलदलके समान जिनके नेत्र, बाहें जिनकी घुटनोंतक लटकती हुईं, दोनों हँसलियें जिनकी गंभीर बनी, लक्ष्मणके वडे भाई ॥ २९ ॥ सबसे प्रथम मधुर बोलनेवालेसत्यवादी महाबलवान् सरल स्वभाव सब लोकको चन्द्रमाके समान प्रियदर्शन ॥३०॥ वही पुरुषशार्दूलमतवाले हाथीकेसमानविक्रमकरनेवाले महारथी महावनमें फिरते हुए वहांके स्थानोंको सुशोभित करेंगे ॥ ३१ ॥ मृत्युके समय जीव जिस प्रकार व्याकुल होता है वैसेही नगरकी नारियें दुःखित और संतापित मनसे रामचन्द्रके लिये

मिथ्याप्रव्राजितोरामःसभार्यःसहलक्ष्मणः॥ भरतेसन्निबद्धाःस्मःसौनिकेपशवोयथा॥२८॥पूर्णचंद्राननःश्यामोगूढजत्रुररिंदमः॥ आजानुबाहुः पद्माक्षोरामोलक्ष्मणपूर्वजः ॥२९॥ पूर्वाभिभाषीमधुरःसत्यवादीमहाबलः ॥ सौम्यश्चसर्वलोकस्यचंद्रवत्प्रियदर्शनः ॥ ३० ॥ नूनंपुरुषशार्दूलोमत्तमातंगविक्रमः ॥ शोभयिष्यत्यरण्यानिविचरन्समहारथः ॥३१॥ तास्तथाविलपंत्यस्तुनगरेनागरस्त्रियः॥चुक्रुशुर्दुःखसंतप्तामृत्योरिव भयागमे:॥३२॥ इत्येवंविलपंतीनांस्त्रीणांवेश्मसुराघवम् ॥ जगामास्तदिनकरोरजनीचाभ्यवर्तत ॥ ३३ ॥ नष्टज्वलनसंतापाप्रशांताध्यायसत्कथा ॥ तिमिरेणानुलिप्तेवतदासानगरीबभौ॥३४॥ उपशांतवणिक्पण्यानष्टहर्षानिराश्रया ॥ अयोध्यानगरीचासीन्नष्टतारमिवांबरम् ॥३५॥ तदास्त्रियोराममनिमित्तमातुरायथासुतेभ्रातरिवाविवासिते ॥ विलप्यदीनारुरुदुर्विचेतसःसुतैर्हितासामधिकोऽपिसोऽभवत् ॥ ३६ ॥

विलापकरनेलगीं ॥ ३२ ॥ इस प्रकार जबकि, नारियें रोरहीथीं तबउनका रोना करुणामय था कि, सूर्य भगवान् उसको सहन न करके छिप गये और रात्री हो आई ॥ ३३ ॥ इस समय फिर नगरमें होमकी अग्नि जलतीहुई नहीं दिखाईदी, शास्त्रोंकी चर्चा और पढना एक साथ बन्दहोगया मानों अंधकार चारों दिशाओंको निगल गया ऐसी नगरी होगई ॥३४॥ बनियोंने सब बनिज व्यापार करना छोड दिया, सबही निराश और आश्रयहीन होगये जिसभांतितारोंसे हीन आकाश शोभा नहीं पाता है वही गति उस समय अयोध्या पुरीकी हुई ॥ ३५ ॥ रामचन्द्रजी अयोध्याजीकी नारियोंके गर्भजात पुत्रोंसेभी अधिक प्यारेथे जैसे कोई अपने भाई व बेटेके निकल जानेसे व्याकुल हो रोया करता है वैसेही नगरीकी नारियें इस प्रकारदीनहो रोनेलगीं ॥ ३६ ॥

इस प्रकार एक२करके नाच, गीत और उत्सव सबही रामचन्द्रजीके विना अयोध्यापुरीमें बंदहो गये, किसीके मनमें हर्षताका नामभी नहीं रहा देशभरमें व्यवहारी वस्तुओंका खरीदना बेंचना सब बंद हो गया इस प्रकार अयोध्यापुरी जलरहित समुद्रके समान उजाडसी होगई * ॥ ३७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा आदि० अयोध्याकांडे भाषायामष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥ अब इधर पुरुषसिंहरामचन्द्रजी पिताजीके वचनोंका स्मरणकरते हुये उसरात्रिके बीतते२बहुतही दूर निकल गये॥१॥मार्गमें जब भोर होगया तब रामचन्द्रजीनेउतरकर संध्योपासनकिया, और संध्याबन्दनादि करके फिर रथ हांका गया ॥ २ ॥ गाँवोंकेसिवा नोंपर खेतीके लिये जुते हुये खेत शोभा पारहे हैं इस प्रकार बहुत सारे ग्राम और फूले फलेहुये बनसब देखते देखाते हुये रामचन्द्रजी चलेजाने लगे ॥३॥

प्रशांतगीतोत्सवनृत्यवादनाविभ्रष्टहर्षापिहितापणोदया॥तदाह्ययोध्यानगरीबभूवसामहार्णवःसंक्षपितोदकोयथा॥३७॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकांडे अष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥ रामोऽपिरात्रिशेषेणतेनैवमहदंतरम् ॥ जगामपुरुषव्याघ्रःपितुराज्ञा मनुस्मरन् ॥ १ ॥ तथैवगच्छतस्तस्यव्यपायाद्रजनीशिवा॥ उपास्यतुशिवांसंध्यांविषयानत्यगाहत ॥ २ ॥ग्रामान्विकृष्टसीमान्तान्पुष्पिता निवनानिच ॥ पश्यन्नतिययौशीघ्रंशनैरिवहयोत्तमैः ॥ ३ ॥ शृण्वन्वाचोमनुष्याणांग्रामसंवासवासिनाम् ॥ राजानंधिग्दशरथंकामस्यवशमा स्थितम् ॥ ४ ॥ हानृशंसाद्यकैकेयीपापापापानुबंधिनी ॥ तीक्ष्णासंभिन्नमर्यादातीक्ष्णकर्मणिवर्तते ॥ ५ ॥ यापुत्रमीदृशंराज्ञःप्रवासयतिधार्मि कम् ॥ वनवासेमहाप्राज्ञंसानुक्रोशंजितेंद्रियम् ॥ ६ ॥ (कथंनाममहाभागासीताजनकनन्दिनी ॥ सदासुखेष्वभिरतादुःखान्यनुभविष्यति ॥१॥) अहोदशरथोराजानिःस्नेहःस्वसुतंप्रति॥ प्रजानामनघंरामंपरित्यक्तुमिहेच्छति॥ ७ ॥ एतावाचोमनुष्याणांग्रामसंवासवासिनाम्॥ शृण्वन्नतिययौ वीरः कोसलान्कोसलेश्वरः॥८॥

इस समयरामचन्द्रजीका रथ बडे वेगसे जाता था परन्तु अनेक प्रकारकी शोभा नयनगोचर होनेसे आरोहणकारियोंको रथका वेगजान नहीं पडा उन्होंने जाते२ ग्रामवासी मनुष्योंके मुखसे इस प्रकार बात सुनी कि कामकेवश राजादशरथको धिक्कार है ॥ ४ ॥ हाय ! पापिनी कैकेयीका स्वभाव कैसा तीखा है और उसका व्यवहारकितना क्रूर है ! कि,उसनेसहजही इसप्रकारकेतीक्ष्णनिन्दनीय कार्यको करडाला॥५॥ हाय ! कैकेयीने धर्मकी मर्यादाको नांघकर महाराज दशरथजीके ऐसे गुणवान् दयानिधान धर्मवान्इन्द्रियोंके जीतनेवाले पुत्रको वन पठाया ॥ ६ ॥ ऐसाज्ञात होता है कि महाराजदशरथजी पुत्रोंसे कुछ स्नेह नहीं करते, जो ऐसा नहीं होता तो ऐसे प्रजाके प्रसन्न करनेवाले पापरहित प्यारे पुत्र रामचन्द्रजीको वनमें क्यों भेजते ? ॥ ७ ॥ कोशलेश्वर श्रीरामचन्द्रजी ग्रामवासी

* दोहा—रामदरशहित नेम व्रत; लगे करन नर नारि ॥ भोगेसुख बहु भांति के; दीन्हें सबन बिसारि ॥

मनुष्योंकी ऐसी बातें श्रवण करते हुए कोशलदेशकी सबसे पीछेकी हद्द पर पहुँचे ॥८॥ फिर चलते २ निर्मल जलसे भरी हुई वेदश्रुति नामक नदीकेपार उतर गये वहांसे दक्षिणदिशाकी ओरको चले ॥९॥ जाते २ शीतल व निर्मल जलवाहिनी सागरगामिनी गोमती नदीको बहते हुये देखा,, इस नदीकी खादरमें बहुत गायें चर रहींथीं ॥१०॥ शीघ्रगामी घोडे जिसमें जुते हुये ऐसे रथ पर बैठे हुये गोमती नदीके पार हो हंस व मोरके शोरसे शब्दायमान स्यन्दिका नदी उतर गये ॥११॥ प्राचीनसमयमें महाराज मनुजीने जो देशइक्ष्वाकुराजा की राजधानीबनानेके लिये दियाथा श्रीरामचन्द्रजी सीताजीको वह दिखाने लगे कि, देखो इसमें अनेक प्रकारके धन धान्ययुक्त देश हैं ॥१२॥ इसके पीछे पुरुषश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी सुमंत्रजीसे मत्त हंस की वाणीके स्वरकेसमान बार २ कहने लगे॥१३ ॥ कि, मैं

ततोवेदश्रुतिंनामशिववारिवहांनदीम् ॥ उत्तीर्याभिमुखःप्रायादगस्त्याध्युषितांदिशम्॥९॥ गत्वातुसुचिरंकालंततःशीतवहांनदीम् ॥ गोमतींगोयुतानूपामतरत्सागरंगमाम् ॥ १० ॥ गोमतींचाप्यतिक्रम्यराघवःशीघ्रगैर्हयैः ॥ मयूरहंसाभिरुतांततारस्यंदिकांनदीम् ॥११॥ समहींमनुनाराज्ञादत्तामिक्ष्वाकवेपुरा ॥ स्फीतांराष्ट्रवृतांरामोवैदेहीमन्वदर्शयत् ॥ १२ ॥ सूत३इत्येवचाभाष्यसारथिंतमभीक्ष्णशः॥हंसमत्तस्वरःश्रीमानुवाचपुरुषोत्तमः ॥१३॥ कदाहंपुनरागम्यसरय्वाः पुष्पितेवने ॥ मृगयांपर्यटिष्यामिमात्रापित्राचसंगतः॥१४॥ नात्यर्थमभिकांक्षामिमृगयांसरयूवने ॥ रतिर्ह्येषाऽतुलालोकेराजर्षिगणसंमता ॥ १५ ॥ राजर्षीणांहिलोकेऽस्मिन्नत्यर्थंमृगयावने ॥ कालेकृतांतांमनुजैर्धन्विनामभिकांक्षिताम् ॥१६॥ सतमध्वानमैक्ष्वाकःसूतंमधुरयागिरा ॥ तंतमर्थमभिप्रेत्यययौवाक्यमुदीरयम् ॥ १७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकांडे एकोनपंचाशः सर्गः ॥ ४९ ॥ ७ ॥ विशालान्कोसलान्रम्यान्यात्वालक्ष्मणपूर्वजः ॥ अयोध्यामुन्मुखो धीमान्प्रांजलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥

देशको लौटकर और पितामातासे मिलकर कब फिर सरयूके किनारेवालेफूलफलेहुए वनोंमें शिकार खेलूंगा॥१४॥ यद्यपि शिकार खेलना मुझे बहुत अच्छा नही लगता परन्तु राजा लोग जो इसे अच्छा कहते हैं इस कारण मैंभीइसकोबुरानहींसमझ सकता और सरयूके तट खेलना चाहता हूं ॥१५॥ इस लोकमें रीति चली आई है कि,बहुधा राजर्षि लोग अपनी प्रसन्नता के लिये वनमें शिकार खेला करते हैं,इसीसे सब पराक्रमी नृपति खेलते चले आये हैं।॥१६॥ महाराजाधिराज श्रीरामचन्द्रजी जो २ आशय देखते उसी प्रयोजनका मधुरालाप सुमंत्रजीसे करते हुए मार्गमें चले जाने लगे ॥ १७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयोध्याकांडे भाषायामेकोनपंचाशः सर्गः ॥ ४९ ॥ अनन्तर बुद्धिमान् श्रीरामचन्द्रजीने बड़ी लम्बी चौडी मनोहर अयोध्याजीकी ओर दृष्टि फेर हाथ जोडकर कहा ॥ १ ॥

हे राजधानी ! तुम रघुवंशियों करके सदासे पाली गई हो मैं तुमसे प्रार्थना करताहूं कि, तुम और तुम्हारे भीतर जितने देवता वसते हैं वह सबही मेरे ऊपर कृपा करैं ॥ २॥ मैं वनमें १४ वर्ष बस और पिताजी के सत्य वचनोंका पालन कर उनसे उऋण होकर पिता माताके सहित एकत्र हो फिर तुम्हारे दर्शन करूंगा॥ ३॥ इतना अयोध्या पुरीसे कह फिर अरुण नयन श्रीरामचन्द्रजी आंखें डबडबाय दाहनी भुजा उठाकर सब देश निवासियोंसे बोले॥ ४॥ हे देशके निवासियो! तुम सबने हमारे प्रति जो दया और सम्मान करना चाहिये उसके करनेमें कसर नहीं की, अतएव इस समय और अधिक श्रम पानेकी आवश्यकता नहीं, इसी कारण तुम सब लौट जाओ और हम भी अपना कार्य साधन करनेके लिये जाते हैं॥ ५॥ रामचन्द्रजीने जब देश निवासियोंसे ऐसा कहा तब यह उनको प्रणाम और प्रदक्षिणा करके घरको जाने लगे और बीच२ में उनको देखने के लिये खडे हो जातेथें और रुदन करके घोर विलाप करतेजाते थे॥ ६॥ जनपदवासी रामचन्द्रजीको देखकर तृप्त नहीं हुए थे, इसलिये खडेही हो रहे और

आपृच्छेत्वांपुरिश्रेष्ठेकाकुत्स्थपरिपालिते ॥ दैवतानिचयानित्वांपालयंत्यावसंतिच॥ २ ॥ निवृत्तवनवासस्त्वामनृणोजगतीपतेः ॥ पुनर्द्रक्ष्यामिमात्राचपिचसहसंगतः ॥ ३ ॥ ततोरुचिरताम्राक्षोभुजमुद्यम्यदक्षिणम् ॥ अश्रुपूर्णमुखोदीनोऽब्रवीज्जानपदंजनम् ॥ ४ ॥ अनुक्रोशोदयाचैव यथार्हंमयिवः कृतः ॥ चिरंदुःखस्यपापीयोगम्यतामर्थसिद्धये ॥ ५ ॥ तेऽभिवाद्यमहात्मानंकृत्वाचापिप्रदक्षिणम् ॥ विलपंतोनराघोरंव्यतिष्ठंश्चक्वचित्क्वचित् ॥६॥ तथाविलपतांतेषामतृप्तानांचराघवः ॥ अचक्षुर्विषयंप्रायाद्यथार्कःक्षणदामुखे ॥ ७ ॥ ततोधान्यधनोपेतान्दानशीलजनाञ्शिवान् ॥ अकुतश्चिद्भयान्रम्यांश्चैत्ययूपसमावृतान्॥ ८ ॥ उद्यानाम्रवणोपेतान्सपन्नसलिलाशयान् ॥ तुष्टपुष्टजनाकीर्णान्गोकुलाकुलसेवितान् ॥ ९ ॥ रक्षणीयान्नरेंद्राणांब्रह्मघोषाभिनादितान् ॥ रथेनपुरुषव्याघ्रःकोसलानत्यवर्तत ॥ १० ॥ मध्येनमुदितंस्फीतंरम्योद्यानसमाकुलम्॥ राज्यंभोज्यंनरेन्द्राणांययौधृतिमतांवरः॥ ११॥

रामचन्द्रजीइतनेमें आगे बढ़गये और इनको दिखाई नहीं दिये जिस प्रकार सूर्यनारायण छिप जानेसे नहीं देख पडते हैं॥ ७॥ रामचन्द्रजीने रथ पर जाते देखा कि, वहां अनेक प्रकारके स्थान धन धान्यसे परिपूर्ण हैं और बहुत सारे लोगोंकी वहां वस्तीहै स्थान२पर गांववालोंके पूजनीय पेड देवमंदिर वृक्ष और यज्ञस्तंभ सबही शोभा विस्तार कर रहे हैं ॥८॥ वहांके सब ही वाग आमके पेडोंसे परिपूर्ण बडे२तालाब निर्मल जलसे शोभित हो रहे थे. सब मनुष्य प्रसन्न और हट्टे कट्टे और स्थान २ पर गौवोंके झुण्डके झुंड अपूर्व शोभा विस्तार कर रहे॥ ९॥ यह सब स्थान राजाओं करके रक्षित वहां सबही जगहवेदध्वनि हो रही । पुरुषश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी रथपर चढे यह सब देखते भालते कोशल देशकी सीमाके पार हुए ॥ १०॥ फिर बीच२में दूसरे राजाओं के राज्य देखे वह सब राजा दशरथजी को कर देतेथे

इन सब स्थानों में बडे२मार्ग और यहसबबडेही शोभा युक्त थे, रामचन्दजीने इनको भी देखा ॥११यहींपर श्रीरामचन्द्रजीने त्रिपथगामिनी गंगाजीको देखा कि, उनका जल शिवारसे रहित शीतल और पवित्र ऋषिगण उनके किनारे बैठे सेवा कर रहे हैं॥१२॥ इसके थोडेही दूर बहुत सारे शोभापूर्ण बहुविध आश्रम देखे, जिनके कुण्डोंमें स्वर्गसे आय २ अप्सरायें प्रसन्नतासे स्नान करती थीं॥१३॥ देवता दानव और किन्नरगणोंने गंगाजीका आश्रय ग्रहण किया है व नाग और गन्धर्वों की स्त्रियों करके सदा गंगाजी सेवित हो रहीथीं ॥१४॥ जिनके निकटही देवतागणोंके क्रीडा करनेके स्थान और क्रीडापर्वत दोनों किनारों पर थे देवताओंकी फुलवाडियें दोनों ओर विराजमानथीं. देवताओंके निमित्त आकाशमें जिनगंगाजी की धार चली गई थीं अनेक प्रकारसे कमल इसमें फूल रहेथे ॥१५॥ गंगा जीमें किसी स्थानपर जो चट्टानसे पानी टकराताथाव मानो उनका भीषण ठट्ठाथा कहीं फेन जलके ऊपर विराज रहाथा वही मानो उनका हँसनाथा.कहीं तो बेणीके

तत्रत्रिपथगांदिव्यांशीततोयामशैवलाम्॥ ददर्शराघवोगंगांरम्यामृषिनिषेविताम्॥१२॥ आश्रमैरविदूरस्थैःश्रीमद्भिःसमलंकृताम्॥ कालेऽप्सरोभिर्हृष्टाभिःसेवितांभोह्रदांशिवाम्॥१३॥ देवदानवगंधर्वैःकिन्नरैरुपशोभिताम् ॥ नागगंधर्वपत्नीभिःसेवितांसततंशिवाम् ॥१४॥ देवाक्रीडशताकीर्णांदेवोद्यानयुतांनदीम् ॥ देवार्थमाकाशगतांविख्यातांदेवपद्मिनीम्॥१५॥ जलाघाताट्टहासोग्रांफेननिर्मलहासिनीम् ॥ क्वचिद्वेणीकृतजलांक्वचिदावर्तशोभिताम् ॥१६॥ क्वचित्स्तिमितगंभीरांक्वचिद्वेगसमाकुलाम् ॥ क्वचिद्गंभीरनिर्घोषांक्वचिद्भैरवनिःस्वनाम् ॥ १७ ॥ देवसंघाप्लुतजलांनिर्मलोत्पलसंकुलाम् ॥ क्वचिदाभोगपुलिनांक्वचिन्निर्मलवालुकाम्॥ १८ ॥ हंससारससंघुष्टांचक्रवाकोपशोभिताम् ॥ सदामत्तैश्चविहगैरभिपन्नामनिंदिताम् ॥१९॥ क्वचित्तीररुहैर्वृक्षैर्मालाभिरिवशोभिताम् ॥ क्वचित्फुल्लोत्पलच्छन्नांक्वचित्पद्मवनाकुलाम् ॥ २० ॥ क्वचित्कुमुदखंडैश्चकुड्मलैरुपशोभिताम् ॥ नानापुष्परजोध्वस्तांसमदामिव चक्वचित् ॥ २१ ॥

समान अतिवेग प्रवाह बहता,कहींनाना प्रकारसे कुंडोंमें भँवर पडरहे थे॥१६॥ कोई तो स्थानस्थिर और गहरा था और वहीं जलका बडा ही वेग था किसी स्थानमें धारके पडनेका शब्द कानोंको आनन्द देनेवाला था और कहीं वही शोर घोर भयंकर सुनाई देता॥१७॥कहीं देवतागण जल विहार कर रहेथे कोई२स्थान निर्मल खिले हुये कमलोंसे शोभायमान थे, किसी जगह रेतके बडे२ढेर लगरहे थे व कहीं करारोंके बराबर जल बहता व कहीं वालुका चमकती थी ॥१८॥ हंस सारस बोल रहे थे, चकवी चकवा किनारेपर बैठे मन्द२बोलते थे जिसके तटपै सदा मतवालेही पक्षीकूकते॥१९॥ कहीं २किनारोंपर पेडोंकी कतारकी कतार लगी थी व कहीं खिले हुए कमल शोभायमान थे कहींकमलके वनके वनलगरहे थे॥२०॥ कहीं २ तो कमल खिलरहे थे व उनकी कमलिनियें ही शोभित

होरहीं थीं, अनेक प्रकारके पुष्पोंके परागसे गंगाजीका जल सुगंधित हो रहा था कहीं न बहुत जोरसे न धीरेसे समभावसेही बहती थी ॥ २१ ॥ इस पापकी नाश करनेवाली नदीका जल बहुतही निर्मल था कहीं मलिनताका नामभी न था । निर्मल मणिके समान चमकता था दिग्गज (दिशाओं केहाथी) वनके हाथी और ग्रामोंके पाले हुए हाथी, इस जलमें क्रीडा कर रहे थे॥२२॥ सुरराज इन्द्रका ऐरावत हाथी और देवताओंकेभी हाथी यहांपर आकरगर्जनकरते व तटके काननोंमें और भी अनेक प्रकारके जीव बोलाकरते इन सब बातोंसे गंगाजीकी ऐसी शोभा होरही थी जैसे सब गहने कपडे पहरनेसे सती स्त्रीकी शोभा होती है॥२३॥ गंगाजीके किनारे अनेक प्रकारके पेड बेलें और पल्लव आदिकोंसे फल पुष्पोंसे छा रहे थे, इस कारणबहुत ढके और गहरे थे. सब पापका नाश करने वाली गंगाजीश्रीवामनरूपीविष्णुजीकेचरणसे निकली थीं॥२४॥जिनमें अनेक प्रकारके जलकपि, नाकें, मगर, मच्छ, सर्पादि जीव रहते हैं जोकि, श्रीमहादेवजीकी

व्यपेतमलसंघातांमणिनिर्मलदर्शनाम्॥दिशागजैर्वनगजैर्मत्तैश्चवरवारणैः॥२२॥ देवराजोपवाह्यैश्चसन्नादितवनांतराम्॥प्रमदामिवयत्नेनभूषितां भूषणोत्तमैः॥२३॥फलपुष्पैःकिसलयैर्वृतांगुल्मैर्द्विजैस्तथा॥विष्णुपादच्युतांदिव्यामपापांपापनाशिनीम्॥२४॥शिशुमारैश्चनक्रैश्चभुजंगैश्चसम न्विताम् ॥ शंकरस्यजटाजूटाद्भ्रष्टांसागरतेजसा॥२५॥समुद्रमहिषींगंगांसारसक्रौंचनादिताम् ॥ आससादमहाबाहुःशृंगबेरपुरंप्रति॥२६॥ताम् र्मिकलिलावर्तामन्ववेक्ष्यमहारथः॥ सुमंत्रमब्रवीत्सूतमिहैवाद्यवसामहे॥२७॥अविदूरादयंनद्याबहुपुष्पप्रवालवान्॥ सुमहानिंगुदीवृक्षोवसामो ऽत्रैवसारथे॥२८॥प्रेक्षामिसरितांश्रेष्ठांसंमान्यसलिलांशिवाम्॥देवमानवगंधर्वमृगपन्नगपक्षिणाम्॥२९॥लक्ष्मणश्चसुमंत्रश्चबाढमित्येवराघवम्॥ उक्त्वातमिंगुदीवृक्षंतदोपययतुर्हयैः॥३०॥ रामोऽभियायतंरम्यंवृक्षमिक्ष्वाकुनंदनः॥रथादवतरत्तस्मात्सभार्यःसहलक्ष्मणः ॥३१॥

जटासे निकल तेजसे समुद्रमें संमिलित हुई हैं ॥२५॥ इसीसे समुद्रकी स्त्री हुई व अनेक प्रकारके सारस, क्रौंच आदि जीव जह बोलतेथे ऐसी श्रीगंगाजीके निकट रामचन्द्रजी पहुँचे जहांसे थोडीही दूर शृंगबेरपुर था॥२६॥ तब कमललोचनश्रीरामचन्द्रजी तरंगोंपर तरंगे जिनमें उठ रहीं ऐसी श्रीगंगाजीके किनारे "आज हम यहीं रहेंगे" यह बात सुमंत्रजीसे कहते हुये॥२७॥रामचन्द्रजी सुमंत्रसे यहभी बोले कि, थोडीही दूरपर पत्ते और फूलोंसे शोभामानजो इंगुदीका वृक्ष है इसमें बहुत फूल फल लगरहे हैं आज इसीकी छायामें निवासकरनेकी मेरी इच्छा है॥२८॥मैं देखता हूं कि, देव, दानव, गंधर्व, यक्ष, पन्नग और पक्षिगण इस नदीके जलको पवित्र जानकर सदा इन गंगाजीकी सेवा करते हैं ॥२९॥ रामचन्द्रजीकीयहवार्ता श्रवणकर सुमंत्र व लक्ष्मणजीने कहा कि, बहुत अच्छा और रथभी इसीसमय इंगुदी वृक्षके निकट लाया गया और रामचन्द्रजी सीतालक्ष्मणसहित रथपरसे उतरे॥३०॥ क्रमसे इक्ष्वाकुनंदन भ्राता लक्ष्मण और जानकीजी रथसे उतरकरउसइंगुदी पेडके

नीचेको चले ॥३१॥ सुमंत्रजी रथसे नीचे उतरकर उत्तम घोडोंको रथसे छोडकर पेडकी छायामें खडेहुए रामचन्द्रजीकेनिकट हाथ जोडकर खडे हुए ॥३२॥ उस समय उस देशमें रामचन्द्रजीका प्राणतुल्य प्रियसखा निषादजातिका बलवान् जो कि "स्थपति" कहकर विख्यात था ऐसा गुहनाक एक राजा बसता था॥३३॥ जब उसने सुना कि, पुरुषसिंह रामचन्द्रजी मेरे राज्यमें आते हैं तब वृद्ध मंत्री और जातिके लोगोंको साथ लेकर रामचन्द्रजीकेपास आया॥३४॥ निषादोंके राजाको दूरसे आते हुये देखकर स्नेहकेमारे रामचन्द्रजी लक्ष्मणको संग लेकर कुछ दूर आगे बढके उससे मिले ॥३५॥ रामचन्द्रजीकी ऐसी अवस्था देख दुःखित हो गुह भेंट करनेसे अपनेको कृतार्थमान विनीत भावसे रामचंद्रजीसे बोला कि, हे महाराज रामचन्द्रजी! अयोध्याजीके समान यहराज्य भी आपका ही है आज्ञा दीजिये

सुमंत्रोऽप्यवतीर्यांथमोचयित्वाहयोत्तमान्॥ वृक्षमूलगतंराममुपतस्थेकृतांजलिः॥३२॥तत्रराजागुहोनामरामस्यात्मसमःसखा॥निषादजात्यो बलवान्स्थपतिश्चेतिविश्रुतः॥३३॥सश्रुत्वापुरुषव्याघ्रंरामंविषयमागतम्॥वृद्धैःपरिवृतोऽमात्यैर्ज्ञातिभिश्चाप्युपागतः॥३४॥ ततोनिषादाधिप तिंदृष्ट्वादूरादुपस्थितम्॥ सहसौमित्रिणारामःसमागच्छद्गुहेनसः॥३५॥ तमार्तःसंपरिष्वज्यगुहोराघवमब्रवीत्॥ यथायोध्यातथेदंतेरामकिंक रवाणिते॥३६॥ईदृशंहिमहाबाहोकःप्राप्स्यत्यतिथिंप्रियम्॥ ततोगुणवदन्नाद्यमुपादायपृथग्विधम् ॥३७॥ अर्घ्यंचोपानयच्छीघ्रंवाक्यंचेदमुवा चह॥ स्वागतंतेमहाबाहोतवेयमखिलामही॥३८॥ वयंप्रेष्याभवान्भर्तासाधुराज्यंप्रशाधिनः॥ भक्ष्यंभोज्यंचपेयंचलेह्यंचैतदुपस्थितम्॥३९॥ शयनानिचमुख्यानिवाजिनांखादनंचते ॥ गुहमेवंब्रुवाणंतुराघवःप्रत्युवाचह॥ ४० ॥ अर्चिताश्चैवहृष्टाश्चभवतासर्वदावयम् ॥ पद्भ्यामभिग माच्चैवस्नेहसंदर्शनेनच॥४१॥ भुजाभ्यांसाधुवृत्ताभ्यांपीडयन्वाक्यमब्रवीत् ॥ दिष्ट्यात्वांगुहपश्यामिह्यरोगंसहबांधवैः ॥४२॥

कि, आपका कौनसा प्रिय कार्य करना होगा॥३६॥हे महाबाहो ! ऐसे प्रिय पाहुने किसके यहां आते हैं यह कहकर गुहनेअलग२गुणवालेअनेकप्रकारके अन्न व्यञ्जन ॥३७॥ और अर्घादिक देनेकी सब सामग्री शीघ्र वहां मँगवाकर रामचन्द्रजीसे कहा हे महाबाहो! आपका आना मंगलकारी हो यह सब पृथ्वी आपहीकी है ॥३८॥ हम सब आपके नौकर चाकर हैं आप हमारे राजा हैं अब आप इस राज्यको लेकर पालन कीजियेआपके लिए यह खाने पीनेके पदार्थ उपस्थित हैं॥३९॥शयन करनेके लिये अच्छे २ पलँग विस्तर और आपके रथमें जुते हुए घोडोंके खानेको घास दाना इत्यादि लाया गया है, जब गुहने इस प्रकार कहा तब रामचन्द्रजी बोले॥४०॥जो कि आपने पैदल आकर इतना स्नेह मुझसे किया तब सब भांतिसे मेरा आदर सन्मान हो गया और मैं तुमसे बहुत ही प्रसन्न हूँ॥४१॥ फिर रामचन्द्रजी साधुओंकी भेटनेवाली

भुजाओंसे गुहको लपटाय कर बोले कि, हे गुह! हमारा भाग्य प्रसन्न दीखता है, जिससे, कि, तुम्हें बन्धु बान्धवोंके सहित अरोग देखते हैं॥४२॥ तुम्हारे राज्यमें, वनोंमें मित्रोंमें और सबही नगरमें कुशल तो है? तुम प्रीतिके सहित मेरे लिए यह जो कुछ पदार्थ लाये हो॥४३॥ इन सबको मैं स्वीकार करता हूँ परंतु इनको ग्रहण करके अपने कार्यमें नहीं ला सकता। क्योंकि हम इस समय फूल फल खानेवाले और कुश चीर मृगचर्म धारण किये हैं॥४४॥ इससे हमे भी वनमें रहनेवाले और तपस्वियोंके समान समझो, हाँ घोडोंके खानेको जो चीज वस्तु लाये हो वही दे जाओ और किसी वस्तुसे हमारा प्रयोजन नहीं ॥ ४५ ॥ आपकी दीहुई इतनीही वस्तुओंसे भलीभांति हमारी पूजा हो जायगी, क्योंकि यह घोडे हमारे पिता महाराज दशरथजीको अत्यन्तही प्रिय हैं ॥ ४६ ॥ इनको जब अच्छी तरहसे भोजन मिला तब जानो हमाराही भली भांति आदर सत्कार हो गया तब गुहने अपने नौकरोंसे कहा कि, घोडोंको तुम लोग जल्दीसे घास दाना

अपितेकुशलंराष्ट्रेमित्रेषुचवनेषुच ॥ यत्त्विदंभवताकिंचित्प्रीत्यासमुपकल्पितम्॥४३॥ सर्वंतदनुजानामिनहिवर्तेप्रतिग्रहे ॥ कुशचीराजिनधरं फलमूलाशनंचमाम् ॥४४॥ विद्धिप्रणिहितंधर्मेतापसंवनगोचरम् ॥ अश्वानांखादनेनाहमर्थीनान्येनकेनचित् ॥४५॥ एतावतात्रभवताभवि ष्यामिसुपूजितः ॥ एतेहिदयिताराज्ञःपितुर्दशरथस्यमे॥४६॥ एतैः सुविहितैरश्वैर्भविष्याम्यहमर्चितः॥ अश्वानांप्रतिपानंचखादनंचैवसोऽन्व शात्॥४७॥गुहस्तत्रैवपुरुषांस्त्वरितंदीयतामिति॥ततश्चीरोत्तरासंगःसंध्यामन्वास्यपश्चिमाम्॥४८॥जलमेवाददेभोज्यंलक्ष्मणेनाहृतंस्वयम्॥ तस्यभूमौशयानस्यपादौप्रक्षाल्यलक्ष्मणः ॥४९॥ सभार्यस्यततोऽभ्येत्यतस्थौवृक्षमुपाश्रितः॥ गुहोऽपिसहसूतेनसौमित्रिमनुभाषयन् ॥ अन्व जाग्रत्ततोराममप्रमत्तोधनुर्धरः ॥ ५० ॥ तथाशयानस्यततोयशस्विनोमनस्विनोदाशरथेर्महात्मनः ॥ अदृष्टदुःखस्यसुखोचितस्यसातदाव्य तीतासुचिरेणशर्वरी ॥ ५१ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकांडे पंचाशः सर्गः ॥ ५० ॥

और पीनेकी वस्तु दो॥४७॥ यह गुहके वचन सुन वे नौकर चाकर सब सामग्री जल्दीसे लाये, तब रामचन्द्रजी वस्त्र उतारसायंकालकी संध्योपासन करने लगे ॥४८॥ जो गंगाजीका जल, लक्ष्मणजी अपने हाथसे भरकर लाये थे केवल वही पीकर रामचन्द्रजी पृथ्वीपर लेट रहे और लक्ष्मणजीने उनके चरण पखारे ॥४९॥ फिर लक्ष्मणजीने जानकीजीके चरण पखारे और तब श्रीरामचन्द्रजी जानकीजीके साथ उस वृक्षके तले सोये तब लक्ष्मणजी कुछ दूर एक वृक्षके तले जा बैठे और गुह व सुमंत्र और अप्रमत्त धनुर्बाण धारण करने वाले लक्ष्मणजी आपसमें वार्त्ता करते हुए रात्रिभर जागे ॥ ५० ॥ यशस्वी दशरथजीके पुत्र रामचन्द्रजी जिन्होंने कभी दुःख नहीं देखा था और सदा सुखही पाते थे उन उपमारहितके सोनेपर लक्ष्मण सुमंत्र गुह रात्रिभर जागकर राजा दशरथ व अयोध्याकी वार्त्ता करते रहे और वह रात शीघ्र बीत गई ॥ ५१ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयोध्याकांडे भाषायांपंचाशः सर्गः ॥ ५० ॥

लक्ष्मणजीको भाईकी रक्षा करते बिना कुछ खाये पिये सारीरात जागते देख कर गुहको बडाही शोक हुआ और वह बहुतही दुःखी होकर लक्ष्मणजीसे बोला ॥ १ ॥ हे राजकुमार ! तुम्हारे निमित्त यह सुखमयी सेज बनाई गई है सो हे तात ! तुम सुखपूर्वक इसपर शयन करके अपना श्रम दूर करो ॥ २ ॥ हम साधारण लोग हैं और क्लेशके सहनेवाले हैं परन्तु तुम सुखही भोगके लायकहो इससे सो रहो। और रामचन्द्रकी रक्षा करनेके लिये हम सब रात्रिभर जागतेही रहेंगे ॥३॥ इस पृथ्वीके ऊपर रामचन्द्रजीसे अधिक हमारा और कोई भी प्यारा नहीं है मैं अपने सत्यकी सौगन्ध करके यह सत्य बात कहता हूं॥४॥ इन रामचन्द्रजीके प्रसादसे मैं बहुत सारा यश धर्म और बहुत धन और बहुत कामकी प्रार्थना करता हूं॥५॥ सीतासहित शयन किये प्रियसखा श्रीरामचन्द्रजीको मैं जातिवाले लोगोंके साथ धनुषबाण धारण करके रक्षा करता रहूंगा॥६॥ मैं इस वनमें सदा घूमता रहता हूं। ऐसी इस वनमें कोई जगह नहीं या कोई बात ऐसी नहीं जो मैं नजानता

तंजाग्रतमदंभेनभ्रातुरर्थायलक्ष्मणम् ॥ गुहःसंतापसंतप्तोराघवंवाक्यमब्रवीत्॥१॥ इयंतातसुखाशय्यात्वदर्थमुपकल्पिता॥ प्रत्याश्वसिहिसाध्वस्यांराजपुत्रयथासुखम् ॥२॥ उचितोऽयंजनःसर्वःक्लेशानांत्वंसुखोचितः॥ गुप्त्यर्थंजागरिष्यामःकाकुत्स्थस्यवयंनिशाम्॥३॥ नहिरामात्प्रियतमोममास्तेभुविकश्चन॥ ब्रवीम्येवचतेसत्यंसत्येनैवचतेशपे ॥४॥ अस्यप्रसादादाशंसेलोकेऽस्मिन्सुमहद्यशः॥ धर्मावाप्तिंचविपुलामर्थंकामौयपुष्कलौ ॥ ५ ॥ सोऽहंप्रियसखंरामंशयानंसहसीतया ॥ रक्षिष्यामिधनुष्पाणिःसर्वथाज्ञातिभिःसह ॥ ६ ॥ नमेऽस्त्यविदितंकिंचिद्वनेऽस्मिंश्चरतःसदा ॥ चतुरंगंह्यतिबलंसुमहत्संतरेमहि ॥७॥ लक्ष्मणस्तुततोवाचरक्ष्यमाणास्त्वयानघ॥ नात्रभीतावयंसर्वेधर्ममेवानुपश्यता ॥ ८ ॥ कथंदाशरथौभूमौशयानेसहसीतया ॥ शक्यानिद्रामयालब्धुंजीवितंवासुखानिवा ॥ ९ ॥ योनदेवासुरैःसर्वैःशक्यःप्रसहितुंयुधि ॥ तंपश्यसुखसंसुप्तंतृणेषुसहसीतया ॥ १० ॥ योमंत्रतपसालब्धोविविधैश्चपराक्रमैः ॥ एकोदशरथस्यैषपुत्रःसदृशलक्षणः ॥ ११ ॥

हूं बडी भारी चतुरंगिनी सेनाके वेगको भी मैं सह सकता हूं अतएव इस समय रामचन्द्रजीकी रखवारी करनेके लिये मैं सब भाँतिसे समर्थ हूँ ॥७॥ लक्ष्मणजीने गुहकी यह वार्त्ता श्रवण करके उससे कहा कि हे निष्पाप! तुम धर्मज्ञ हो जब तुमने रामकी रखवारीका भार लिया तब हमको कुछभी भय नहीं ॥८॥ परंतु श्रीरामचन्द्रजी सीताजी के सहित भूमिपर शयन किये हैं फिर भला मैं किस प्रकारसे सोऊं अथवा भोजन व अन्य सुख भोग करनेमें पडूं ॥९॥ जो रामचन्द्रजी संग्राम भूमिमें समस्त देवदैत्यादिकोंका बल वीर्य सहनेमें समर्थ हैं वही इस समय श्रीजानकीजीके साथ सुखसे तृणों की सेजपर सोय रहे हैं॥ १० ॥ राजा दशरथजीने विविध पराक्रमसे मंत्र और तपके प्रभावसे जिसको पुत्र रूपमें पाया है और जो कि, वह उन सब तपस्या आदि गुणोंसे युक्त हैं सो देखो तो यही उन

दशरथजीके पुत्र हैं ॥ ११ ॥ इनके यहांको चले आनेसे राजा दशरथजी बहुत कालतक नहीं जी सकेंगे, निश्चय यह पृथ्वी शीघ्रही विधवा होगी ॥१२॥ जब रामचन्द्रजी यहाँको चले थे तब सब स्त्रियां हा राम ! हा राम! ऐसा कहकर बहुत रोदनकर निस्तेज हो पृथ्वीमें गिरी थीं, इससे निश्चय अब रामचन्द्रजीके मंदिरमें भयानक होनेके कारण शब्द भी नहीं होता होगा ॥१३॥ राजा दशरथजी देवी कौशल्याजी वह हमारी माता यह तीनों अबतक इस रात्रिमें जीवित हैं अथवा नहीं यह मुझको सन्देह होता है ॥१४॥ शत्रुघ्नका मुख देखती हुई चाहे हमारी माता तो जीती भी रहे पर यह बड़ा दुःख है कि, वीरजननी कौशल्याजी बिना रामचन्द्रजीके अवश्य ही प्राण त्याग करेंगी ॥१५॥ रामचन्द्रजीके ऊपर अनुराग किये हुए जनोंसे भरी हुई सुखमयी लोकप्रिया जो अयोध्यापुरी है हाय ! सो आज राजा दशरथजीके कामवश होनेसे नाश हो जायगी ॥१६॥ महात्मा ज्येष्ठ पुत्रको न देखनेसे राजा दशरथजी व और रानियें ही किस प्रकार शरीरको धारण

अस्मिन्प्रव्रजिते राजा न चिरं वर्तयिष्यति ॥ विधवा मेदिनी नूनं क्षिप्रमेव भविष्यति ॥१२॥ विनद्य सुमहानादं श्रमेणोपरताः स्त्रियः ॥ निर्घोषोपरतं तात मन्ये राजनिवेशनम् ॥ १३॥ कौसल्या चैव राजा च तथैव जननी मम ॥ नाशंसे यदि जीवंति सर्वे ते शर्वरीमिमाम् ॥ १४ ॥ जीवेदपि हि मे माता शत्रुघ्नस्यान्ववेक्षया ॥ तद्दुःखं यदि कौसल्या वीरसूर्विनशिष्यति ॥१५॥ अनुरक्तजनाकीर्णा सुखालोकप्रियावहा ॥ राजव्यसनसंसृष्टा सा पुरी विनशिष्यति ॥१६॥ कथं पुत्रं महात्मानं ज्येष्ठपुत्रमपश्यतः ॥ शरीरं धारयिष्यंति प्राणा राज्ञो महात्मनः ॥१७॥ विनष्टे नृपतौ पश्चात्कौसल्या विनशिष्यति ॥ अनंतरं च माता पि मम नाशमुपैष्यति ॥१८॥ अतिक्रांतमतिक्रांतमनवाप्य मनोरथम् ॥ राज्ये राममनिक्षिप्य पिता मे विनशिष्यति ॥१९॥ सिद्धार्थाः पितरं वृत्तं तस्मिन्काले ह्युपस्थिते ॥ प्रेतकार्येषु सर्वेषु संस्करिष्यंति राघवम् ॥ २० ॥ रम्यचत्वरसंस्थानां संविभक्तमहापथाम् ॥ हर्म्यप्रासादसंपन्नां गणिकावरशोभिताम् ॥ २१ ॥ रथाश्वगजसंबाधां तूर्यनादनिनादिताम् ॥ सर्वकल्याणसंपूर्णां हृष्टपुष्टजनाकुलाम् ॥ २२ ॥

किये रहेंगी ॥१७॥ राजा दशरथजीकी मृत्यु होनेपर देवी कौशल्याजी अवश्य शरीर छोड देंगी और फिर हमारी माताजी भी न जी सकेंगी ॥१८॥ हाय ! मनोरथसे छूटे हुये राजा दशरथजी रामको राज्य देनेकी सब तैयारी कर चुके थे फिर जो राजगद्दी रामको न देने पाये इस कारण हमारे स्नेहके मारे अवश्यही मृत्युके मुखमें गिरे ॥१९॥ पिताजीका जब अंत समय उपस्थित होगा तो नहीं जानते उनके मरनेके पीछे कौन उनकी क्रिया करेगा और जो कोईभी उनका प्रेतकर्म करेगा यथार्थमें वह भाग्यवान् है ॥ २० ॥ जिस अयोध्या नगरीमें रमणीक चौराहे बडे २ मार्ग यथास्थानमें शोभा बिस्तार करते हैं; जहां सैकडों मंदिर और धवरहरे विराजमान हैं जहांपर कि, सोलहों शृंगार किये वेश्यायें अनोखा उजला रूप बनाये शोभित हो रही हैं ॥२१॥ जहां कि, बहुत रथ, हाथी, घोडे मौजूद

हैं जो नगरी किसदा तुर्रहीके शब्दसे शब्दायमान रहती है, जो नगरी सर्व कल्याणसे भरपूर है जहांके निवासी सदा हट्टे कट्टे रहते हैं ॥२२॥ जहांपर कि, आराम देनेवाली फूलोंकी वाटिका हैं जहांपर सदाही अनेक प्रकारकी जातीय सभा हुआ करती हैं उस सर्वकल्याण सम्पन्न पिताकी राजधानीमें वनसे आकर सुख सहित कब प्रवेश करेंगे ॥ २३ ॥ हा ! यदि सुव्रत महात्मा हमारे पिता दशरथजी जीवित रहैं और हम भी वनवाससे कुशलपूर्वक घर लौट आवें तब भलीभांति उनके दर्शन करेंगे ॥ २४ ॥ बड़ीही बात हो जो हम अपने सत्यप्रतिज्ञ भाई रामचन्द्रजीके साथ वनसे लौटकर कुशलपूर्वक अयोध्याको आवैं और पिताजीके साथही अयोध्यामें प्रवेश करें ॥ २५ ॥ महात्मा राजकुमार लक्ष्मणजी दुःखपूरित हृदयसे इस प्रकार विलाप कलाप कर बैठे हुए थे इतनेमें रात्रि बीत गयी ॥ २६ ॥ प्रजाके हित करनेमें राजकुमार लक्ष्मणजी सब ठीक ही ठीक वचन कह रहे थे तब गुहने यह बातें सुनीं और स्नेह भाईचारेके

आरामोद्यानसंपन्नासमाजोत्सवशालिनीम् ॥ सुखिताविचरिष्यंतिराजधानींपितुर्मम ॥२३॥ अपिजीवेद्दशरथोवनवासात्पुनर्वयम् ॥ प्रत्याग म्यमहात्मानमपिपश्यामसुव्रतम् ॥ २४ ॥ अपिसत्यप्रतिज्ञेनसार्धंकुशलिनोवयम् ॥ निवृत्तेवनवासेऽस्मिन्नयोध्यांप्रविशेमहि ॥२५॥परिदेवय मानस्यदुःखार्तस्यमहात्मनः ॥तिष्ठतोराजपुत्रस्यशर्वरीसाऽत्यवर्तत॥२६॥ तथाहिसत्यंब्रुवतिप्रजाहितेनरेंद्रसूनौगुरुसौहृदाद्गुहः ॥मुमोचबा ष्पंव्यसनाभिपीडितोज्वरातुरोनागइवव्यथातुरः॥२७॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आ० अ० एकपंचाशः सर्गः ॥५१॥ प्रभातायांतुशर्वर्यांपृथुव क्षामहायशाः ॥ उवाचरामःसौमित्रिंलक्ष्मणंशुभलक्षणम् ॥ १ ॥ भास्करोदयकालोऽसौगताभगवतीनिशा ॥असौसुकृष्णोविहगःकोकिलस्ता तकूजति ॥२॥ बर्हिणानांचनिर्घोषःश्रूयतेनदतांवने ॥ तरामजाह्नवींसौम्यशीघ्रगांसागरंगमाम् ॥३॥ विज्ञायरामस्यवचःसौमित्रिर्मित्रनंदनः ॥ गुहमामंत्र्यसूतंचसोतिष्ठद्भ्रातुरग्रतः ॥ ४ ॥ सतुरामस्यवचनंनिशम्यप्रतिगृह्यच ॥ स्थपतिस्तूर्णमाहूयसचिवानिदमब्रवीत् ॥ ५ ॥

मारे बहुत दुःखित हुआ और बुखारसे घबराये हाथीके समान आंसू छोडने लगा ॥२७॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० अयोध्याकांडे भाषायामेकपंचाशः सर्गः ॥५१॥ जब रात्रि बीतगई और प्रातःकाल होगया तब बडी छातीवाले महायशस्वी श्रीरामचन्द्रजी शुभ लक्षणयुक्त लक्ष्मणजीसे बोले ॥ १ ॥ हे भ्रातः ! भगवती रात्रि बीतगई अब सूर्य भगवान् उदय होनाही चाहते हैं काली कोकिला इस समय कूक रही है ॥ २ ॥ वनमेंसे मोरका शोरभी सुनाई आता है। हे सौम्य ! आओ हम जल्दीसे इस तेज बहनेवाली सागरगामिनी भागीरथी गंगाजीको उतर चलें ॥३॥ सुमित्रानन्दन लक्ष्मणजी रामचन्द्रजीके यह वचन सुनकर गुह और सुमंत्रजीसे यह समाचार जानकर रामचन्द्रजीके सामने खडे रहे ॥४॥ निषादपतिगुहने भी रामचन्द्रजीके अभिप्रायको जानकर और उसे ग्रहणकर उसी समय

अपने मंत्रियोंको बुलाकर कहा ॥५॥ कि, श्रीरामचन्द्रजीके चढनेके योग्य अच्छे केवटके साथ अतिसुन्दर चित्र विचित्र रँगी रँगाई खूब दृढ जिसमें कहीं कोई छिद्र न हो ऐसी नावजिस घाटपर उतार है वहां शीघ्र पहुँचा दो ॥६॥ गुहकी ऐसी आज्ञा श्रवण करके गुहके मंत्रियोंने एक रुचिर नाव मँगाकर गुहसे निवेदन किया महाराज ! नौका आगई॥७॥इसके पीछे गुहने हाथ जोडकर श्रीरामचन्द्रजीसे कहा कि,हे देव ! आपके वास्ते घाटपर नाव तैयार है अब कौनसा कार्यकरनाहोगा सो आज्ञा कीजिये॥८॥ हे देवकुमारके समान । हे सुव्रत ! सागरगामिनी उतरनेके लिये नौका तैयार है, हे पुरुषव्याघ्र! जल्दी इसपर सवार हो जाइये ॥९॥ महातेजवान् श्रीरामचन्द्रजीगुहसे बोले हमारा कार्यपूरा होगया अब शीघ्र हमारीसामग्री जोहै इसको नौकापर चढाइये॥१०॥ गुहसे यह बात कह कर श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजीने कवच धारण किया और यथास्थानमें खड्ग धनुष और तरकस ग्रहण करके सीताजीके साथ उसमार्गपर चले जिसपर भागीरथी

अस्यवाहनसंयुक्तांकर्णग्राहवतींशुभाम् ॥ सुप्रतारांदृढांतीर्थेशीघ्रंनावमुपाहर ॥ ६ ॥ तंनिशम्यगुहादेशंगुहामात्योगतोमहान् ॥ उपोह्यरुचिरां नावंगुहायप्रत्यवेदयत् ॥ ७ ॥ ततःसप्रांजलिर्भूत्वागुहोराघवमब्रवीत्॥ उपस्थितेयंनौर्देवभूयःकिंकरवाणिते ॥ ८ ॥ तवामरसुतप्रख्यतर्तुंसा गरगामिनीम् ॥ नौरियंपुरुषव्याघ्रशीघ्रमारोहसुव्रत ॥९॥ अथोवाचमहातेजरामोगुहमिदंवचः ॥ कृतकामोऽस्मिभवताशीघ्रमारोप्यतामिति ॥ १० ॥ ततःकलापान्सन्नह्यखड्गंबद्धाचधान्विनौ ॥ जग्मतुर्येनतांगंगांसीतयासहराघवौ ॥ ११ ॥ राममेवंतुधर्मज्ञमुपागत्यविनीतवत ॥ किमहंकरवाणीतिसूतःप्रांजलिरब्रवीत् ॥१२॥ ततोऽब्रवीद्दशरथिःसुमंत्रंस्पृशन्करेणोत्तमदक्षिणेन ॥ सुमंत्रशीघ्रंपुनरेवयाहिराज्ञःसकाशेभवचा प्रमत्तः ॥ १३ ॥ निवर्तस्वेत्युवाचैनमेतावद्धिकृतंमम् ॥ रथंविहायपद्भ्यातुगमिष्यामोमहावनम्॥१४॥ आत्मानंत्वभ्यनुज्ञातमवेक्ष्यार्तःससा रथिः ॥ सुमंत्रःपुरुषव्याघ्रमैक्ष्वाकमिदमब्रवीत् ॥१५॥ नातिक्रांतमिदंलोकेपुरुषेणेहकेनचित्॥तवसभ्रातृभार्यस्यवासःप्राकृतवद्वने ॥१६॥

गंगाजीके उतरनेका मार्गथा और जहां नाव लगतीथी ॥११॥ इस समय सुमंत्रजी विनीतभावसे शिर झुकाय रामके समीप आये और हाथजोडकर कहा कि, मुझे इस समय क्या आज्ञा होती है ॥१२॥ रामचन्द्रजीने सुमंत्रजीको उत्तम दाहिने हाथसे स्पर्श किया और कहा कि; हे सुमंत्र ! जल्दी राजाके पास लौट जाओ और वहां सावधान हो वास करते रहो ॥१३॥तुम लौट जाओगे तो मेरा काम ठीक हो जायगा । हम रथ छोड करकेपैदलही महावनको चले जायंगे ॥१४॥ जब सुमंत्र सारथीको इस प्रकार लौट जानेकी आज्ञा हुई तब वह बहुत दुःखित हुआ और इक्ष्वाकुनन्दन पुरुषसिंह श्रीरामचन्द्रजीसे बोला ॥१५॥ हे देव ! जिस भाग्यके प्रभावसे आप भ्राता और भार्यासहित साधारण मनुष्यके समान वनवासी हुए सो इस लोकमें कोई पुरुषभी उस भाग्यको उल्लंघन नहीं

कर सकता ॥१६॥ ब्रह्मचर्यके करने वा वेदके पढनेसे कोई फल मिलता है ? यह तो मेरा मन मानता नहीं, यदि इनसे कुछ फल होता तो आप किस प्रकार इस दशामेंपड वनको आते? क्योंकि आपनेतो ब्रह्मचर्य और वेद इत्यादि सबही पढा है और किया है। जो कहोकि, मृदुता और सरलतासे फल हैं सो यहभी नहीं क्योंकि, इन सब गुणोंके रहते भी आपसरीखे जनोंपर खोटा भाग्य आही गया ॥१७॥ हे वीर रघुनन्दन! आपभ्राता लक्ष्मण और वैदेहीजीकेसाथ वनमें वासकरकेपरम गति लाभकरेंगे और त्रिलोकीको जीत लेगे क्योंकि तीनों लोकमें ऐसी आज्ञा पालन करनेवाला कोई नहीं दीखता ॥१८॥ परंतु हम आपकीसंगतिसे छूटकर मरनेके तुल्य होगये, अब हमें उस पापकाआचरण करनेवाली कैकेयीके वशमें रहकर दुःख भोगना पडेगा ॥१९॥ आत्माके समान रघुनाथजीके सुहृद सुमंत्रजी रामचन्द्रजीको दूरदेश जाते हुये देखकर इसप्रकारके वचन कहकर हृदयमें बहुतही दुःखित हो रोने लगे ॥ २०॥ कुछ देरतक रोनेके पीछे सुमंत्रजी चुपाय रहे

नमन्येब्रह्मचर्येवास्वधीतेवाफलोदयः॥ मार्दवार्जवयोर्वापित्वांचेद्व्यसनमागतम्॥१७॥ सहराघववैदेह्याभ्राताचैववनेवसन्॥ त्वंगतिंप्राप्स्यसेवीर त्रीँल्लोकांस्तुजयन्निव॥१८॥ वयंखलुहताराम यत्त्वयाह्युपवंचिताः॥ कैकेय्यावशमेष्यामः पापायादुःखभागिनः॥१९॥ इतिब्रुवन्नात्मसमंसुमंत्रः सारथिस्तथा॥ दृष्ट्वादूरगतंरामंदुःखार्तोरुरुदेचिरम्॥२०॥ ततस्तुविगतेबाष्पेसूतंस्पृष्टोदकंशुचिम्॥ रामस्तुमधुरंवाक्यंपुनःपुनरुवाचतम्॥२१॥ इक्ष्वाकूणांत्वयातुल्यंसुहृदंनोपलक्षये॥ यथादशरथोराजामांनशोचेत्तथाकुरु॥२२॥ शोकोपहतचेताश्चवृद्धश्चजगतीपतिः॥ कामभारावसन्नश्चतस्मादेतद्ब्रवीमिते ॥२३॥ यद्यथाज्ञापयेत्किंचित्समहात्मामहीपतिः॥ कैकेय्याःप्रियकामार्थंकार्यंतदविकांक्षया॥२४॥ एतदर्थंहिराज्यानिप्रशासतिनराधिपाः॥ यदेषांसर्वकृत्येषुमनोनप्रतिहन्यते॥२५॥ यद्यथासमहाराजोनालीकमधिगच्छति॥ नचताम्यतिशोकेनसुमंत्रकुरुतत्तथा॥२६॥

और पानीसे मुहँ धोया तब मधुरवचनोंसे बार २ श्रीरामचन्द्रजी उनसे कहनेलगे॥२१॥ सुमंत्रजी! तुम्हारे समान इक्ष्वाकुवंशियोंमें दूसरा सुहृद् और नहीं दृष्टि आता अतएव हमारे पिता महाराज दशरथजी जिससे कि, मेरेवास्ते कुछशोच न करें वही काम तुमको करना चाहिये ॥ २२ ॥ वह वृद्ध राजा एक तो राजकार्यके भारसेही घबडाये हैं, और दूसरे हमारे चले आनेसे उनका चित्त शोकसे हारगया अथवा व्याकुल हुआ है बस यही कारण है कि, मैं तुमसे लौटनेको कहता हूं ॥ २३ ॥ वह महीपति कैकेयीका प्रियकार्य करनेके लिये जो कुछ भी आज्ञा करें उसे विना विचारे किये अति शीघ्र आप किया करना जिससे कि, इस शोकावस्थामें उनको कोई और क्लेश न पहुँचे ॥२४॥ राजा लोग इस निमित्त ही राज्यका शासन किया करते हैं कि, कोई कार्य हो उनके मनके विरुद्ध न होने पावे ॥ २५ ॥ अतएव हे सुमंत्रजी ! उन महाराज दशरथजीका अप्रिय कार्य जिससे न हो और जिससे कि, वह शोकसे घबडा नहीं जायँ बस तुम

ऐसाही कार्य करनेमें सदा यत्न करते रहना ॥ २६ ॥ हमारे पिताने इस दुःखको छोड और कोई दुःख नहीं देखा, वह बूढे तो होही चुकेहैं अतिश्रेष्ठव जितेन्द्रिय इससे हमारे हेतु इनसे प्रणामकर हमारा यह वचन कह देना कि ॥ २७ ॥ हम या लक्ष्मणजी इस बातका कुछ भी शोच नहीं करते कि, अयोध्यापुरीसे निकल कर हमें बनवास करना पडा इस कारण हमारे दुःखकी आप कोई चिन्ता न करना ॥ २८ ॥ चौदह वर्षके बीतनेपर हमको लक्ष्मणजी व जानकीजीको शीघ्रही फिर अयोध्यामें आया हुआ देखेंगे ॥ २९ ॥ हे सुमंत्रजी ! हमारी ओरसे इस प्रकार राजा दशरथजीसे व देवी कौशल्याजीसेभी यही कहना औरभी सबमाता ओंके साथ कैकेयीसेभी वारंवार यही कह देना ॥ ३० ॥ हमारी माता कौशल्याजीसे हमारा और आर्य लक्ष्मणजीका प्रणाम कहकर कहदेना कि, वहसब वनमें रोगरहित हैं ॥ ३१ ॥ और महाराज दशरथजीसे तुम यह कह देना कि, जल्दी भरतजीको बुलालें और उनके आतेहीराजगद्दीउन्हेंदे दें ॥ ३२ ॥ भरतजीको गोदमें

अदृष्टदुःखंराजानंवृद्धमार्यंजितेंद्रियम् ॥ ब्रूयास्त्वमभिवाद्यैवममहेतोरिदंवचः ॥ २७ ॥ नचाहमनुशोचामिलक्ष्मणोनचशोचति ॥ अयोध्याया श्च्युताश्चेतिवनेवत्स्यामहेतिवा ॥ २८ ॥ चतुर्दशसुवर्षेषुनिवृत्तेषुपुनःपुनः ॥ लक्ष्मणंमांचसीतांचद्रक्ष्यसेशीघ्रमागतान् ॥ २९ ॥ एवमुक्त्वातुराजा नंमांतरंचसुमंत्रमे ॥ अन्याश्चदेवीःसहिताःकैकेयींचपुनः पुनः ॥ ३० ॥ आरोग्यंब्रूहिकौसल्यामथपादाभिवंदनम् ॥ सीतायाममचार्यस्यवचनाल्ल क्ष्मणस्यच ॥ ३१ ॥ ब्रूयाश्चापिमहाराजंभरतंक्षिप्रमानय ॥ आगतश्चापिभरतःस्थाप्योनृपमतेपदे ॥ ३२ ॥ भरतंचपरिष्वज्ययौवराज्येऽभिषिच्यच ॥ अस्मत्संतापजंदुःखंनत्वामभिभविष्यति ॥ ३३ ॥ भरतश्चापिवक्तव्योयथाराजनिवर्तसे ॥ तथामातृषुवर्तेथाःसर्वास्वेवाविशेषतः ॥ ३४ ॥ यथाचतवकै केयीसुमित्राचाविशेषतः ॥ तथैवदेवीकौसल्याममममाताविशेषतः ॥ ३५ ॥ तातस्यप्रियकामेनयौवराज्यमवेक्षता ॥ लोकयोरुभयोःशक्यंनित्यदा सुखमेधितुम् ॥ ३६ ॥ निवर्त्यमानोरामेणसुमंत्रःप्रतिबोधितः ॥ तत्सर्ववचनंश्रुत्वास्नेहात्काकुत्स्थमब्रवीत् ॥ ३७ ॥

बिठाकर और यौवराज्यमें अभिषिक्त करके वहमहाराजदशरथजीमेरेविरहसे उत्पन्न हुए संतापसे छूट जायंगे ॥ ३३ ॥ हमारी ओरसे तुम भरतजीसेभी इसप्रकार कह देनाकि, राजाके प्रति जैसाव्यवहार करें वैसेही सब माताओंके साथ भी व्यवहार करें ॥ ३४ ॥ जैसे कि, कैकेयी तुम्हारी माता हैं तैसेही सुमित्रामें कुछ अंतर न समझें वैसेही हमारी माता कौशल्याजी इन तीनों माताओंमें वह कुछ अंतर नहीं ॥ ३५ ॥ तुम पिताजीका प्रियकार्य करनेके अभिप्रायसे सदा राज्यको देखते भालते रहियो और दोनों लोकोंमें सुखदेना अर्थात् इसप्रकारसे प्रजापालनकरना जिसमें इस लोकमें यश और परलोकमें सुख मिले ॥ ३६ ॥ जब सुमंत्रजीको इस प्रकार रामचन्द्रजीने उपदेश दिया और भरत इत्यादिको संदेशा कहा तब सुमंत्रजीने इन सब रचनाको श्रवण करते हुए स्नेहके वचन रामचंद्रजीसे बोले ॥ ३७ ॥

मैं रीतिको छोडकर स्नेहके मारे विकलचित्त हो आपसे जोकुछ अनुचित कहताहूं सो उसको आप क्षमा कर दीजिये, क्योंकि आप भक्तिमान हैं॥३८॥ हे तात ! आपको परित्याग करके आपके वियोगमें पुत्रशोकसे आतुर हुई माताके समान उस अयोध्यापुरीमें मैं किस प्रकार गमन करूं॥३९॥ अयोध्यावासी जिन सबलोगोंने मेरा रथ रामके सहित देखा है सो इस समय रामके विना देखे कैसे जियेंगे और क्यों न वह पुरी विदीर्ण हो जायगी ॥ ४० ॥ महारथी वीरके संग्राममें मारे जानेपर सारथीको खाली रथ लाते हुए देख सेना जिस प्रकारसे शोक करती है वैसेही रामचन्द्रजीका रथ सूना देखकर सब प्रजा दीन और दुःखित होजायगी ॥ ४१ ॥ इस समय आप यद्यपि अयोध्यापुरीसे दूर चले आये हैं तोभी प्रजाओंके मनके आगेही आप बसते हैं। प्रजागण आहार निद्रा छोड छाँडकर दिनभर आपकी चिन्ता करते हैं इसी कारण दुबले हुए जाते हैं। फिर आपका रथ सूना देखकर कैसे धीर धरेंगे ॥ ४२ ॥ हे रामचन्द्रजी ! जिस

यदहंनोपचारेणब्रूयांस्नेहादविक्लवम् ॥भक्तिमानितितत्तावद्वाक्यंत्वंक्षंतुमर्हसि ॥३८॥ कथंहित्वद्विहीनोऽहंप्रतियास्यामितांपुरीम् ॥ तवतात वियोगेनपुत्रशोकतुरामिव ॥३९॥ सराममपितावन्मेरथंदृष्ट्वातदाजनः॥विनारामंरथंदृष्ट्वाविदीर्येतापिसापुरी ॥ ४० ॥ दैन्यंहिनगरीगच्छेद्दृष्ट्वा शून्यमिमंरथम् ॥ सूतावशेषंस्वंसैन्यंहतवीरमिवाहवे ॥ ४१ ॥ दूरेऽपिनिवसंतंत्वांमासेनाग्रतःस्थितम् ॥ चिंतयंतोऽद्यनूनंत्वांनिराहाराः कृताःप्रजाः ॥ ४२ ॥ दृष्टंतद्वैत्वयारामयादृशंत्वत्प्रवासने॥प्रजानांसंकुलंवृत्तंत्वच्छोकक्लांतचेतसाम् ॥ ४३॥ आर्तनादोहियःपौरैरुन्मुक्तस्त्वत्प्रवासने ॥ सरथंमांनिशाम्यैवकुर्युःशतगुणंततः॥४४॥अहंकिंचापिवक्ष्यामिदेवींतवसुतोमया॥ नीतोऽसौमातुलकुलंसंतापंमाकृथाइति॥४५॥ असत्यमपिनैवाहंब्रूयांवचनमीदृशम्॥कथमप्रियमेवाहंब्रूयांसत्यमिदं वचः ॥४६॥ ममतावन्नियोगस्थास्त्वद्बंधुजनवाहिनः ॥ कथंरथंत्वया हीनंप्रवाह्यंतिहयोत्तमाः ॥ ४७ ॥

समय कि, आप वनको चले थे तौ अपने नेत्रोंसेही देखा था कि, प्रजा कैसी आपके शोकसे खिन्नचित्त होगई थी ॥४३॥ जबकि आप वनको चले थे और उस समय जो अयोध्यावासियोंने आर्त्तनाद किया था मुझे खाली रथसमेत लौटा हुआ देखकर वह लोग उससे सौ गुणा हाहाकार मचावेंगे ॥ ४४ ॥ मैं अयोध्याजीमें जाकर क्या कौशल्याजीसे यह कहूंगा कि, हम तुम्हारे पुत्रको उनके मामाके घर पहुँचा आये अब आप उनके लिये कुछ शोक न करें ॥ ४५ ॥ इस प्रकारके मिथ्या वचन भी तो उनसे नहीं कह सकता। अथवा आपके पुत्रको वनमें छोड आये यह कुप्यारा वचन भी मैं उनसे किस प्रकार कहूं ? ॥४६॥ मेरे अधीनमें रहकर इन सब उत्तम घोडोंने आपको या आपके सम्बन्धियोंको सदा अपने ऊपर चढाया है, सो अब इस समय आपसे अलग हुआ रथ यह किसप्रकारसे

लेजायँगे ॥४७॥ हे अनघ! मैं आपके बिना अयोध्या नगरीमें ही किसी भांति नहीं जा सकता, अतएव मुझे अपने साथ वनमें ही जानेकी आज्ञा दीजिये ॥४८॥ यदि मेरे इस प्रकार प्रार्थना करनेपर यदि आप वनको मुझे छोडकर चलेही जायँगे तो आपके त्यागतेही मैं रथके सहित अग्निमें प्रवेश करूंगा? ॥४९॥ हे राघव! यदि आप अपनेसाथ मुझे भी वनको ले चलेंगे तो बनके मध्य तपमें विघ्न करनेवाली जो कुछ बाधायें आपको उपस्थित होंगी मैं रथकेही द्वारा उन सबको रोकलूंगा ॥५०॥ आपके ही निमित्त हमने यहां रथ हांकनेसे सुख उठाया अब यह प्रार्थना करता हूं कि, आपहीके द्वारा वनवासकासुखभी प्राप्त होजावे ॥५१॥ हे रघुनन्दन! आप प्रसन्न हूजिये और मुझको भी अपने वनका साथी कर लीजिये। आप प्रीतिपूर्वक रहें और मैं आपका सारथी हूं अतएव मुझे संग लीजिये ॥ ५२ ॥ हे वीर! यह घोडे यदि वनवासमें आपकी कुछ भी सेवा करसकेंगे तो इनकोभी परमगति मिलजायगी ॥५३॥ मैं यदि वनमें रहकर शिरके बल भी आपकी सेवा

तन्नशक्ष्याम्यहंगंतुमयोध्यांत्वदृतेऽनघ ॥ वनवासानुयानायमामनुज्ञातुमर्हसि ॥४८॥ यदिमेयाचमानस्यत्यागमेवकरिष्यसि ॥सरथोऽग्निंप्रवेक्ष्यामित्यक्तमात्रइहत्वया ॥४९॥ भविष्यंतिवनेयानितपोविघ्नकराणिते ॥ रथेनप्रतिबाधिष्येतानिसर्वाणिराघव ॥५०॥ त्वत्कृतेनमयाप्राप्तंरथचर्याकृतंसुखम् ॥ आशंसेत्वत्कृतेनाहंवनवासकृतंसुखम् ॥५१॥ प्रसीदेच्छामितेऽरण्येभवितुंप्रत्यनंतरः ॥प्रीत्याभिहितमिच्छामिभवमेप्रत्यनंतरः ॥ ५२ ॥ इमेऽपिचहयावीरयदितेवनवासिनः ॥ परिचर्यांकरिष्यंतिप्राप्स्यंतिपरमांगतिम् ॥ ५३ ॥ तवशुश्रूषणंमूर्ध्नाकरिष्यामिवनेवसन् ॥अयोध्यांदेवलोकंवासर्वथाप्रजहाम्यहम् ॥ ५४ ॥ नहिशक्याप्रवेष्टुंसामयाऽयोध्यात्वयाविना ॥ राजधानीमहेंद्रस्ययथादुष्कृतकर्मणा ॥५५॥ वनवासेक्षयप्राप्तेममैषहिमनोरथः ॥ यदनेनरथेनैवत्वांवहेयंपुरींपुनः ॥ ५६ ॥ चतुर्दशहिवर्षाणिसहितस्यत्वयावने ॥ क्षणभूतानियास्यंतिशतसंख्यानिचान्यथा ॥ ५७ ॥ भृत्यवत्सलतिष्ठंतंभर्तृपुत्रगतेपथि ॥ भक्तंभृत्यंस्थितंस्थित्यानमांत्वंहातुमर्हसि ॥ ५८ ॥

कर सकूं तब इसके लिये तो मैं देवलोक व अयोध्याकीवासनाभी त्याग कर सकता हूं ॥५४॥ जिस प्रकार बुरे कर्म करनेवाले अधर्मीजन इन्द्रकी राजधानी अमरावती में प्रवेश नहीं कर सकते, वैसेही पुण्यवान् आपके बिना मैं अयोध्यामें प्रवेश नहीं कर सकता ॥५५॥ हे राजन्! हमारा मनोरथ यही है कि; चौहद वर्ष वनवासका समय बिताकर इसी रथपरचढाकर हम आपको अयोध्यापुरीमें लावें ॥ ५६ ॥ आपके साथ वनमें रहनेसे यह चौदह वर्ष एक क्षणके समान बीतजायँगे, परजो अयोध्यामेंरहूँ तो आपके बिना यही चौदहवर्ष सैकड़ोंवर्षोंके समान बीतेंगे ॥५७॥ हे भक्तवत्सल! आप हमारे स्वामीके पुत्र हैं और मैं आपकेपथकापथिक होनेकी इच्छा करता हूं अर्थात् साथ चलना चाहता हूं मैं आपका भक्त और चाकर हूं अतएव मुझको छोडकर जाना किसीप्रकारसे भी आपको उचित नहीं है ॥५८॥

सुमन्त्रीजी दीनतासे भरे हुये वचनोंसे वारंवार ऐसी प्रार्थना करने लगे, तब सेवकोंके ऊपरकृपा करनेवालेश्रीरामचन्द्रजी सुमन्त्रासे बोले ॥ ५९॥ हे स्वामिवत्सल! हमारे परजो तुम्हारी परमभक्ति है यह मैं भली भांति जानता हूं तथापि जिस कारणसे मैं अब तुम्हें अयोध्याजीमें भेजाता हूं वह श्रवण करो ॥ ६०॥ हमारी छोटी माता कैकेयी तुमको नगरीमें आया हुआ देखकर जानलेगी कि, सत्यहीसत्य रामचन्द्र वनको चले गये जो ऐसेनहोगा तो उसे विश्वास न होगा ॥६१॥ वहमेरे वनचलेजानेसे प्रसन्न होकर फिरधार्मिक महाराज दशरथजीको मिथ्यावादी जानकर शंका न करेगी ॥६२॥ मेरी यही परमइच्छा है और यही प्रार्थना संकल्प है कि, जिससे हमारी छोटी माता भरतसे रक्षित धन सम्पत्तियुक्त राज्यके सुखका भोग करे ॥६३॥ हे सुमंत्रजी! तुम हमारा व महाराज दशरथजीका प्रिय करनेके लिये अयोध्यापुरीको चले जाओ, जो जो

एवंबहुविधंदीनंयाचमानंपुनःपुनः॥रामोभृत्यानुकंपीतुसुमंत्रमिदमब्रवीत् ॥५९॥ जानामिपरमांभक्तिमहंतेभर्तृवत्सल ॥ शृणुचापियदर्थंत्वां प्रेषयामिपुरीमितः ॥६०॥ नगरींत्वांगतंदृष्ट्वाजननीमेयवीयसी ॥ कैकेयीप्रत्ययंगच्छेदितिरामोवनंगतः ॥६१॥ विपरीतेतुष्टिहीनावनवासंग तेमयि ॥राजानंनातिशंकेतमिथ्यावादीतिधार्मिकम् ॥६२॥ एषमेप्रथमःकल्पोयदंबामेयवीयसी॥भरतारक्षितंवृत्तपुत्रराज्यमवाप्स्यते ॥६३॥ ममप्रियार्थंराज्ञश्चसुमंत्रत्वंपुरींव्रज॥संदिष्टश्चापियानर्थांस्तांस्तान्ब्रूयास्तथातथा ॥६४॥ इत्युक्त्वावचनसूतंसांत्वयित्वापुनःपुनः॥ गुहंवचनम क्लीबोरामोहेतुमिदमब्रवीत् ॥६५॥ नेदानींगुहयोग्योऽयंवासोमेसजनेवने॥अवश्यमाश्रमेवासःकर्तव्यस्तद्गतोविधिः ॥६६॥ सोऽहंगृहीत्वानिय मंतपस्विजनभूषणम् ॥ हितकामःपितुर्भूयः सीतायालक्ष्मणस्यच ॥६७॥ जटाः कृत्वागमिष्यामिन्यग्रोधक्षीरमानय॥तत्क्षीरंराजपुत्रायगुहः क्षिप्रमुपाहरत् ॥६८॥लक्ष्मणस्यात्मनश्चैवरामस्तेनाकरोज्जटाः ॥ दीर्घबाहुर्नरव्याघ्रोजटिलत्वमधारयत् ॥ ६९ ॥

सन्देशा जिस २ से कहनेको तुमसे कह दिया है विना घटाये बढाये ज्योंका त्यों सबसे कहदेना ॥६४॥ रामचन्द्रजी इस प्रकारके वचनोंसे बारम्बार सुमन्त्रजीको समझाय दीनभावसे टिके गुहसे यह हेतु युक्त वचन बोले ॥६५॥ हे गुह! अब इस सजन वनमें हमें वास करना उचित नहीं है क्योंकि यहां सब अपनेही लोग रहते हैं, अतः निर्जन आश्रममें वासकरना और उसकेही अनुसार विधिका प्रतिपालन करना हमें उचित है ॥६६॥ मैं पिता सीता और लक्ष्मणका हित करनेके लिये तपस्वी जनोंका भूषण नियम ग्रहण कर और उनको प्रतिपालनकर ॥६७॥ जटा बनाय निर्जनवनको चला जाऊंगा सोजटा बनानेके वास्ते बडका दूध मँगा दीजिये रामचन्द्रजीके यह वचन सुन गुहने बहुत शीघ्र बडका दूध मँगादिया ॥६८॥ रामचन्द्रजीने उस बड़के दूधसे अपनी व लक्ष्मणजीकी जटा बनाई दीर्घबाहु पुरुषसिंह ऐसे

श्रीरामचन्द्रजी जटारखायतपस्वीहुए ॥६९॥ उस समयचीरवसनधारी जटामण्डल विभूषित रामचन्द्र लक्ष्मण दोनों भाई दो ऋषियोंके समान शोभा पानेलगे ॥७०॥ अनन्तर रामचन्द्रजी लक्ष्मणके सहित वैश्वानर व्रत अर्थात् वानप्रस्थ अवलम्वन करते हुये और उस धर्मके अनुसार सब नियम धारण करने में निश्चयकर सहायरूप गुहसे बोले ॥७१॥ हे गुह ! तुम सेना, खजाना, किला और देशकी रक्षा करनेमें सदा सावधान होशियार रहना क्योंकि, राज्यकी रक्षा करना बडा कठिन काम है ॥७२॥ इक्ष्वाकुनंदन श्रीरामचन्द्रजी गुहको यह जताकर अचलायमान चित्तसे शीघ्रताके साथ जानकी व लक्ष्मण के सहित चले॥७३॥ और गंगाजीके किनारे पर पहुँचकर और वहां एक नाव देखकर श्रीरामचन्द्रजी उत्तरगामिनी गंगाजी के शीघ्र पार उतरनेकी इच्छासे बोले ॥७४॥ हे पुरुषव्याघ्र ! तुम धीरे२ चिंताशील सीता देवीको युक्तिपूर्वक इस नावपर चढाय फिर तुमभी चढलो ॥७५॥ लक्ष्मणजीने रामचन्द्रजीकी अनुकूल आज्ञा ग्रहण करके प्रथम सीताजीको नावपर

तौतदाचीरसंपन्नौजटामंडलधारिणौ ॥ अशोभेतामृषिसमौभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥७०॥ ततोवैखानसंमार्गमास्थितःसहलक्ष्मणः ॥व्रतमादिष्टवान्रामःसहायंगुहमब्रवीत् ॥७१॥ अप्रमत्तोबलेकोशेदुर्गेजनपदेतथा ॥ भवेथागुहराज्यंहिदुरारक्षतमंमतम् ॥७२॥ ततस्तंसमनुज्ञाप्यगुहमिक्ष्वाकुनंदनः ॥ जगामतूर्णमव्यग्रःसभार्यःसहलक्ष्मणः ॥७३॥ सतुदृष्ट्वानदीतीरेनावमिक्ष्वाकुनंदनः ॥ तितीर्षुःशीघ्रगांगंगामिदंवचनमब्रवीत् ॥७४॥ आरोहत्वंनरव्याघ्रस्थितांनावमिमांशनैः ॥ सीतांचारोपयान्वक्षंपरिगृह्यमनस्विनीम् ॥७५॥ सभ्रातुःशासनंश्रुत्वासर्वमप्रतिकूलयन् ॥ आरोप्यमैथिलींपूर्वमारुरोहात्मवांस्ततः ॥ ७६ ॥ अथारुरोहतेजस्वीस्वयंलक्ष्मणपूर्वजः ॥ ततोनिषादाधिपतिर्गुहोज्ञातीनचोदयत् ॥ ७७ ॥ राघवोऽपिमहातेजानावमारुह्यतांततः ॥ ब्रह्मवत्क्षत्रवच्चैवजजापहितमात्मनः ॥७८॥ आचम्यचयथाशास्त्रंनदींतांसहसीतया ॥ प्रणमत्प्रतिसंतुष्टोलक्ष्मणश्चमहारथः ॥७९॥ अनुज्ञायसुमंत्रंचसबलंचैवतंगुहम् ॥ आस्थायनावंरामस्तुचोदयामासनाविकान् ॥८०॥ ततस्तैश्चालितानौकाकर्णधारसमाहिता ॥ शुभस्फ्यवेगाभिहताशीघ्रंसलिलमत्यगात् ॥८१॥ मध्यंतुसमनुप्राप्यभागिरथ्यास्त्वनिंदिता ॥ वैदेहीप्रांजलिर्भूत्वातांनदीमिदमब्रवीत् ॥८२॥

चढाया और पीछेसे आप भी चढते हुये॥७६॥ फिर महातेजवान् लक्ष्मणजीके बडे भाई श्रीरामचन्द्रजी भी नावपर चढे। गुहने तीनों जनोंको नावपर चढ़ा हुआ देखकर अपने नौकर चाकरोंको नावके चलानेकी आज्ञा दी ॥७७॥ महातेजस्वी श्रीरामचन्द्रजी नावपर सवार होकर अपना हित करनेके लिये कि, जिससे कुशल सहित पार होजायं जैसा ब्रह्मणों व क्षत्रियोंको जो करना चाहिये वह जप करनेलगे ॥७८॥ सीता और महारथी लक्ष्मणजीने यथाविधि आचमन करके प्रीतिपूर्वक भागीरथी गंगाजीको प्रणाम किया॥७९॥ रामचन्द्रजीने सुमंत्रसे और सेनासहित गुहसे लौटनेको कहकर नावपर बैठ केवटोंसे कहा कि, शीघ्र नाव चलाओ॥ ॥ ८० ॥ तदनन्तर वह डांड पतवार वल्लीयुक्त नौका केवटों द्वारा सावधानीसे खेई जाकर शीघ्रही गंगा जलके ऊपर जाने लगी ॥८१॥ अनिन्दिता वैदेहीजी

धाराके बीचोंबीचमें पहुँच हाथ जोडकर गंगाजीसे विनय करने लगीं॥८२॥हे गंगे ! बुद्धिमान् राजाधिराज दशरथजीके पुत्र श्रीरामचन्द्रजी आपकी रक्षाके सहित हो अपने पिताजीको आज्ञा पालन करनेमें समर्थ हों॥८३॥ और चौदह वर्षतक वनमें रहकर भ्राता लक्ष्मण और हमारे सहित जो कुशल पूर्वक लौटेंगे ॥८४॥ तो हे सुभगे! शुभकाम बढाने वाली गंगे ! हम तीनों जने आनंद मंगल सहित तुम्हारी पूजा करेंगे॥८५॥ हे त्रिपथगे देवि! आप ब्रह्मलोकमें भी व्याप रही हैं और लोकोंमेंभीसमुद्रकी स्त्रीरूपसेदृष्टिआतीहो अतएव सब प्रकार पूजा करनेके योग्यहो॥८६॥ अतएव हे शोभने ! मैं तुम्हें वारंवार नमस्कार करती हूं और तुम्हारी प्रशंसाकर कहती हूं जो पुरुषसिंह रामचन्द्रजी कुशलपूर्वक लौटकर राज्यपावें तो॥८७॥आपकी प्रसन्नताके माहात्म्यसे ब्राह्मणोंको सहस्रों गौ अनेक प्रकारके वस्त्र और बहुत सारे

पुत्रोदशरथस्यायंमहाराजस्यधीमतः ॥ निदेशंपालयत्वेमंगंगेत्वदभिरक्षितः ॥८३॥ चतुर्दशहिवर्षाणिसमग्राण्युष्यकानने ॥ भ्रात्रासहमया चैवपुनःप्रत्यगमिष्यति ॥ ८४ ॥ ततस्त्वांदेविसुभगेक्षेमेणपुनरागता ॥ यक्ष्येप्रमुदितागंगेसर्वकामसमृद्धिनी ॥ ८५ ॥ त्वहित्रिपथगेदेविब्रह्म लोकंसमीक्षसे ॥ भार्याचोदधिराजस्यलोकेऽस्मिन्संप्रदृश्यसे ॥८६॥ सात्वांदेविनमस्यामिप्रशंसामिचशोभने ॥ प्राप्तराज्येनरव्याघ्रेशिवेन पुनरागते ॥८७॥ गवांशतसहस्रंचवस्त्राण्यन्नंचपेशलम् ॥ ब्राह्मणेभ्यःप्रदास्यामितवप्रियचिकीर्षया ॥ ८८ ॥ सुराघटसहस्रेणमांसभूतौदनेन च ॥ यक्ष्येत्वांप्रीयतांदेविपुरींपुनरुपागता ॥ ८९ ॥ यानित्वत्तीरवासीनिदैवतानिचसंतिहि ॥ तानिसर्वाणियक्ष्यामितीर्थान्यायतनानिच ॥ ९० ॥ पुनरेवमहाबाहुर्मयाभ्रात्राचसंगतः॥अयोध्यांवनवासात्तुप्रविशत्वनघोऽनघे ॥९१॥ तथासंभाषमाणासासीतागंगामनिंदिता ॥ दक्षि णादक्षिणंतीरंक्षिप्रमेवाभ्युपागमत् ॥९२॥ तीरंतुसमनुप्राप्यनावंहित्वानरर्षभः ॥ प्रातिष्ठतसहभ्रात्रावैदेह्याचपरंतपः ॥ ९३ ॥

उत्तम २ अन्न दूंगी ॥८८॥ हे देवि ! मैं फिर अयोध्याजीको लौटकर हजार घडे सुन्दर सुरा उत्तम २ पदार्थोंसे जो कि देवताओंके यहां भी नहीं, उन पदार्थों भात व मांस आदिक अन्नोंसे तुम्हारी पूजा करूंगी आप हम सबपर प्रसन्न हूजिये॥८९॥ हे देवि ! जो सब देवताओंके स्थान तुम्हारे तटपर हैं वा जो देवता आपकेतटपर वास करते हैं और आपके किनारे जितने तीर्थ और देव मन्दिर हैं मैं उन सबही की पूजा करूंगी॥९०॥हे अनघे! इससे आप ऐसी आशीश दीजिये कि, जिससे हमारे और लक्ष्मणके सहित निष्पाप महाबाहु रामचन्द्रजी अयोध्यापुरी में प्रवेश करें॥९१॥पतिकी प्यारी अनिन्दिता जानकीजी गंगाजीसे इस भांति कह रही थीं कि, इतने में नाव गंगाजीके दक्षिण किनारे पहुँची ॥९२॥ शत्रुओंके तपाने वाले नरश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी गंगाजीके तीरको प्राप्त होकर नावसे उतर भाई लक्ष्मण और सीताके

साथ दक्षिण दिशाको चले ॥९३॥ अनन्तर महाबाहु श्रीरामचन्द्रजी सुमित्राजीके आनन्द बढानेवाले लक्ष्मणजीसे बोले कि, सघन वनमें अथवा निर्जन वनमें तुम सबही कहीं सीताजीकी रक्षा सावधानीसे करना ॥९४॥ विशेषतः इस मनुष्यहीन वनमें हम सरीखे पुरुषोंको स्त्रीकी रक्षा करना अवश्य कर्त्तव्य है, अतएव तुम आगे २ चलो और सीता तुम्हारे पीछे २ चली चलें ॥९५॥ मैं सीताको और तुम्हारी रक्षा करता हुआ सबसे पीछे २ चलूँगा क्योंकि हे पुरुष श्रेष्ठ! हमको आपसमें एक दूसरेकी रक्षा करने का समय उपस्थित हुआ है ॥९६॥ मैं जन्मसे लेकर अबतक किसी दुःखमें नहीं पड़ा था, सो मैं तो किसी प्रकार यह दुःख सहन करही लूंगा परन्तु आज वैदेहीजी वनवासके दुःखको जानेंगी कि, वनमें ऐसे २ क्लेश होते हैं ॥९७॥ आज जन व मनुष्यों करके रहित व खेत और फुलवाड़ियों आदि करके हीन, बडे २ गढे पडे हुये ऊंचे नीचे विषम वनमें यह जानकीजी चलैं फिरैंगी ॥९८॥ लक्ष्मणजी रामचन्द्रजीके यह वचन श्रवण करके आगे २ चले, बीचमें

अथाब्रवीन्महाबाहुः सुमित्रानंदवर्धनम्॥ भवसंरक्षणार्थाय सजने विजनेऽपि वा ९४ अवश्यं रक्षणं कार्यं मद्विधैर्विजने वने॥ अग्रतो गच्छ सौमित्रे सीता त्वामनुगच्छतु॥९५॥ पृष्ठतोऽनुगमिष्यामि सीतां त्वां चानुपालयन्॥ अन्योन्यस्य हि नो रक्षा कर्तव्या पुरुषर्षभ॥९६॥ नहि तावदतिक्रांता सुकरा काचन क्रिया॥ अद्य दुःखं तु वैदेही वनवासस्य वेत्स्यति॥९७॥ प्रनष्टजनसंबाधं क्षेत्रारामविवर्जितम्॥ विषमं च प्रपातं च वनमद्य प्रवेक्ष्यति ९८ श्रुत्वा रामस्य वचनं प्रतस्थे लक्ष्मणोऽग्रतः॥ अनंतरं च सीताया राघवो रघुनंदनः॥९९॥ गतं तु गंगापरपारमाशु रामं सुमंत्रः सततं निरीक्ष्य॥ अध्वप्रकर्षाद्विनिवृत्तदृष्टिर्मुमोच बाष्पं व्यथितस्तपस्वी॥१००॥ स लोकपालप्रतिमप्रभावस्तीर्त्वा महात्मा वरदो महानदीम्॥ ततः समृद्धाञ्छुभसस्यमालिनः क्षणेन वत्सान्मुदितानुपागमत्॥१०१॥ तौ तत्र हत्वा चतुरो महामृगान्वराहमृश्यं पृषतं महारुरुम्॥ आदाय मेध्यं त्वरितं बुभुक्षितौ वासाय काले ययतुर्वनस्पतिम् ॥१०२॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा०आ०दिकाव्ये अयो० द्विपंचाशः सर्गः॥५२॥ स तं वृक्षं समासाद्य संध्यामन्वास्य पश्चिमाम्॥ रामो रमयतां श्रेष्ठ इति होवाच लक्ष्मणम् ॥१॥

सीताजी और पीछे २ रामचन्द्रजी गमन करने लगे ॥९९॥ जब रामजी गंगाजीके पार होगये तब भी सुमन्त्रजी एकटक दृष्टिसे उनको देखते ही रहे थे, परन्तु रामचन्द्रजी दूर निकल गये और दृष्टि वहांतक न पहुँचसकी तब सुमन्त्रजी निरुपाय और मनमें दुःखित होकर रोने लगे ॥१००॥ वह लोकपालोंके समान प्रभावशाली महात्मा वरद श्रीरामचन्द्रजी महानदी भगवती गंगाजी के पार होकर धन धान्ययुक्त प्रमुदित वनके वत्स्य प्रदेशमें गये ॥१०१॥ तहां रामचन्द्र व लक्ष्मण दोनों भाई ऋष्य, पृषत, वराह और रुरु यह चार महामृग मारके ले आये और भूँखे हुए तब संध्याको वास करनेके लिये एक वृक्षके नीचे गमन करते हुए ॥१०२॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयोध्याकांडे भाषायां द्विपंचाशः सर्गः ॥ ५२ ॥ गुणाभिराम रामचन्द्रजी उस वृक्षके नीचे जाकर और सायंकालके संध्यावन्द

नादि समाप्त करके लक्ष्मणजीसे इस प्रकार बोले॥१॥ भ्रातः ! अपने देशसे बाहर हुये और सुमंत्रका साथ छूटे आज हमें यह पहलीही रात बितानी पडती है सो तुम घरके सुख याद करके उसकी उत्कंठा मत करना ॥२॥आजसे लेकर प्रतिरात्रि हमें निद्राको त्याग करके सब रात्रि जागना पडा करेगा और हम दोंनों को सदा सावधानीसे रहकर सीताजीकी रक्षा क्षेम करनेमें यत्नवान् होना चाहिये ॥३॥ हे सौमित्रे ! आयो हम इस समय किसी प्रकारसे यह रात्रि व्यतीत करें पृथ्वीपर अपने आपसे इकट्ठे किये हुए तृणोंका बिछौना बिछाकर उसपर लेट रहें ॥४॥ बडे २ मोलके विस्तरों बिछौनोंके लेटने योग्य श्रीरामजी भूमिकी सेज पर लेट करके लक्ष्मणजीसे यह वार्ता कहने लगे॥५॥ हे लक्ष्मण ! निश्चयही आज महाराज दशरथजी बडे दुःखसे अचेत हो सो गये होंगे,और कैकेयी अपना मनोरथ पाकर बहुतही आनंद पारही होगी ॥६॥ मुझको एक बडा भारी डर व सन्देद होता है कि, वह देवी कैकेयी भरतको आया देखकर राज्यके लालचसे कहीं

अद्येयंप्रथमारात्रिर्याताजनपदाद्बहिः॥यासुमंत्रेणरहितातांनोत्कंठितुमर्हसि॥२॥ जागर्तव्यमतंद्रिभ्यामद्यप्रभृतिरात्रिषु ॥ योगक्षेमौहिसीताया वर्तेतेलक्ष्मणावयोः॥३॥ रात्रिंकथंचिदेवेमांसौमित्रेवर्तयामहे ॥ अपवर्तामहेभूमावास्तीर्यस्वयमर्जितैः ॥ ४ ॥ सतुसंविश्यमेदिन्यांमहार्हशयनोचितः ॥ इमाःसौमित्रयेरामोव्याजहारकथाःशुभाः ॥५॥ ध्रुवमद्यमहाराजोदुःखंस्वपितिलक्ष्मण ॥ कृतकामातुकैकेयीतुष्टाभवितुमर्हति ॥ ६ ॥ साहिदेवीमहाराजंकैकेयीराज्यकारणात् ॥ अपिनच्यावयेत्प्राणान्दृष्ट्वाभरतमागतम् ॥ ७ ॥अनाथश्चहिवृद्धश्चमयाचैवविनाकृतः ॥ किंकरिष्यतिकामात्माकैकेय्यावशमागतः ॥ ८ ॥ इदंव्यसनमालोक्यराज्ञश्चमतिविभ्रमम् ॥ कामएवार्थधर्माभ्यांगरीयानितिमेमतिः ॥९॥ कोह्यविद्वानपिपुमान्प्रमदायाःकृतेत्यजेत्॥छंदानुवर्तिनंपुत्रंतातोमामिवलक्ष्मण॥१०॥सुखीबतसभार्यश्चभरतःकैकेयीसुतः ॥ मुदितान्कोसलानेकोयोभोक्ष्यत्यधिराजवत् ॥ ११ ॥सहिराज्यस्यसर्वस्यसुखमेकंभविष्यति ॥ तातेतुवयसातीतेमयिचारण्यमाश्रिते ॥ १२ ॥

महाराज दशरथजीके प्राणको तो नाश न करदे ॥ ७ ॥ एक तो राजादशरथजी बूढे हो गये हैं, फिर कामके फंदेमें पडे हैं अजितेन्द्रिय हैं और फिर मेरे यहां चले आनेके दुःखसे व्याकुल होंगे, अतएव अब वह कैकेयीके वशमें पडकर क्या करते होंगे ॥८॥ महाराज दशरथजीकी यह काममें फसी इच्छा और बुद्धिमें भ्रम देखकर, मेरे विचारमें आता है कि,इस संसारमें धर्म और अर्थसे अधिक कामही प्रबल है॥९॥ हे लक्ष्मण ! कोई मूर्ख आदमी भी स्त्रीके वश होकर हमारे समान आज्ञाकारी पुत्रको परित्याग करसकता है,जिस प्रकार हमें महाराज दशरथजीने त्यागा है ॥१०॥ कैकेयीसुत भरतकोही स्त्रीके सहित सुखीकहना चाहिये, क्यों कि, वह अकेले महाराजाधिराजके समान इस समय सब प्रमुदित कौशलराज्य भोगेंगे ॥११॥ मेरे वनको चले आनेसे और राजा बूढे तो होही गये हैंसो उनके

परलोक चले जानेके बाद वह भरतही अकेले सब राज्यका सुख प्राप्त करेंगे ॥१२॥ अर्थ और धर्मको छोडकरके जो केवल कामकेही वश हो जाता है वह इसीप्रकार गिर जाता है जैसे कि, राजादशरथजी गिरे ॥१३॥ हे सौम्य! हमारे मनमें यह बात आती है कि; दशरथजीका नाश करनेके लिये, मुझको वनमें पठानेके वास्ते और भरतको राज्य दिलानेके अर्थही कैकेयी यहां आई ॥१४॥ हे लक्ष्मण! मुझे यह भी सन्देह होता है कि, इस समय कैकेयी सौभाग्यके मदसे मोहित होकर हमसे वैर करनेके कारण माता सुमित्रा और कौसल्या देवीको क्लेश देनेमें कसर न करती होगी ॥१५॥ हमारे लिये सुमित्रा व देवी कौशल्या माता दुःख पाती रहेगी, अतएव हे लक्ष्मण! तुम सबेरा होतेही अयोध्याको चले जाओ ॥१६॥ मैं अकेलाही जानकीके सहित वनको चला जाऊँगा और तुम अनाथा कौशल्या जीके गति समान हो जाओगे ॥१७॥ हे धर्मज्ञ! इस कैकेयीका बडाही ओछा कर्म हैं वह वैरसे अन्यायका कर्म भी कर सकती है उसे माता कौशल्या और सुमित्रा

अर्थधर्मौपरित्यज्ययःकाममनुवर्तते ॥ एवमापद्यतेक्षिप्रंराजादशरथोयथा ॥१३॥ मन्येदशरथांतायमप्राव्राजनायच ॥ कैकेयीसौम्यसंप्राप्ता राज्यायभरतस्यच ॥१४॥ अपीदानींतुकैकेयीसौभाग्यमदमोहिता॥ कौसल्यांचसुमित्रांचसाप्रबाधेतमत्कृते ॥१५॥ मातास्मत्कारणाद्देवीसु मित्रादुःखमावसेत् ॥ अयोध्यामितएवत्वंकालेप्रविशलक्ष्मण ॥१६॥ अहमेकोगमिष्यामिसीतयासहदंडकान् ॥अनाथायाहिनाथस्त्वंकौस ल्यायाभविष्यसि ॥१७॥ क्षुद्रकर्माहिकैकेयीद्वेषादन्यायमाचरेत् ॥ परिदद्याद्धिधर्मज्ञगरंतेममसातरम् ॥१८॥ नूनंजात्यंतरेतातस्त्रियःपुत्रैर्वि योजिताः ॥ जनन्याममसौमित्रेतदद्यैतदुपस्थितम् ॥ १९ ॥ मयाहिचिरपुष्टेनदुःखसंवर्धितेनच ॥ विप्रायुज्यतकौसल्याफलकालेधिगस्तु माम् ॥ २० ॥ मास्मसीमंतिनीकाचिज्जनयेत्पुत्रमीदृशम् ॥सौमित्रेयोऽहमंबायादद्मिशोकमनंतकम् ॥२१॥मन्येप्रीतिविशिष्टा सामत्तोलक्ष्म णसारिका ॥ यत्तस्याःश्रूयतेवाक्यंशुकपादमरेर्दश ॥ २२ ॥

देवीको विष देते हुए भी कुछ नहीं लगता ॥१८॥ हे सौमित्रे! निश्चय ही हमारी माता कौशल्याजीने पहिले जन्ममें अनेक माताओंसे उनके पुत्र अलग किये होंगे नहीं तो ऐसी चित्त में भी न आनेवाली विपत्ति उनपर क्यों पडती? ॥१९॥ हा! माता कौशल्या देवीने हमें बहुत दुःख सह बहुत समयमें पालन पोषण कर इतना बडा किया और जब फल खानेका समय आया तो हम उनको छोडकर यहां चले आये इसमें हमें धिक्कार है ॥२०॥ हे सौमित्रे! मैंने जिस प्रकार अपनी माताको अगाध शोक समुद्रमें डुबाया है सो कोई भी भाग्यशाली ललना मेरे समान दुःखदायक पुत्रको उत्पन्न न करे ॥२१॥ हे लक्ष्मण! हमसे अधिक हमारी माताकी स्नेह सहित पाली हुई वह सारिका ही अच्छी है क्योंकि वह समय २ तोतासे बोलती है कि, "हे शुक! कौशल्याजीके वैरीके पैरमें काट खाओ" इत्यादिक वाक्या

रुप्यसे हमारी माताका मन प्रसन्न किया करती है ॥२२॥ हे अरिन्दम ! मैं उन्हीं छोटे भाग्यवाली अपनी माताके शोकके समय ही जब उनका कुछ उपकार न कर सका तब मेरे होनेसे उनको क्या फल हुआ इससे तो बिनाही पुत्र अच्छी थीं कि, वियोगका दुःख न सहना पड़ता ॥ २३ ॥ हाय अम्मा ! भाग्यवाली हमारी माताजी कहीं कौशल्या देवी मेरे बिना दुःखी हो शोकसमुद्रमें निमग्न और परम दुखियारी होकर इस समय शयन करती होंगी ॥२४॥ हे लक्ष्मण ! मैं क्रोधित होकर इकलाही अयोध्या क्या सब पृथ्वीहीको शरद्वारा अपने वशमें कर सकता हूं परन्तु मेरा वीरत्व प्रकाश करना अब निष्फल है ॥२५॥ क्योंकि हे अनघ ! मैंने अधर्म्म और परलोकका भय करके कुछ नहीं किया और इसी कारणसे आजही मैं इस राजगद्दीपर नहीं बैठ सकता ॥२६॥ जनकरके हीन वनमें रात्रिके समय इस प्रकार व और भी अनेक भाँतिके विलापकलाप करके रामचन्द्रजी दीनभावसे रोदन करके मौन होगये ॥२७॥ शिखाहीन अनल और वेगरहित समुद्रकी नाईं

शोचंत्याश्चाल्पभाग्यायानकिंचिदुपकुर्वता॥पुत्रेणकिम पुत्रायामयाकार्यमरिंदम् ॥२३॥ अल्पभाग्याहिमेमाताकौसल्यारहितामया ॥ शेतेपरमदुःखार्तापतिताशोकसागरे ॥ २४ ॥ एकोह्य हमयोध्यांचपृथिवींचापिलक्ष्मण ॥ तरेयमिषुभिः क्रुद्धोननुवीर्यमकारणम् ॥२५॥ अधर्मभयभीतश्चपरलोकस्यचानघ॥तेनलक्ष्मणनाद्याहमात्मानमभिषेचये ॥२६॥ एतदन्यच्चकरुणंविलप्यविजनेबहु ॥ अश्रुपूर्णमुखोदीनोनिशितूष्णीमुपाविशत् ॥२७॥ विलापोपरतरामंगतार्चिषमिवानलम् ॥ समुद्रमिवनिर्वेगमाश्वासयतलक्ष्मणः ॥ २८ ॥ ध्रुवमद्यपुरीरामअयोध्यायुधिनांवर ॥ निष्प्रभात्वयिनिष्क्रांतेगतचंद्रेवशर्वरी ॥ २९ ॥ नैतदौपयिकंरामयदिदंपरितप्यसे ॥ विषादयसिसीतांचमांचैवपुरुषर्षभ ॥ ३० ॥ नचसीतात्वयाहीनानचाहमपिराघव ॥ मुहूर्तमपिजीवावोजलान्मत्स्याविवोद्धृतौ ॥ ३१ ॥ नहितातंनशत्रुघ्नंनसुमित्रांपरंतप ॥ द्रष्टुमिच्छेयमद्याहंस्वर्गंचापित्वयाविना ॥ ३२ ततस्तत्रसुखासीनौनातिदूरेनिरीक्ष्यताम् ॥ न्यग्रोधेसुकृतांशय्यांभेजातेधर्मवत्सलौ ॥ ३३ ॥

रामचंद्रजीको विलापमें रत देखकर लक्ष्मणजी उनको समझाने लगे ॥२८॥ हे श्रेष्ठ अस्त्र धारण करनेवाले ! आप अयोध्यापुरीसे चले आये हैं, अतएव चंद्रहीन रात्रिके समान आज निश्चयही अयोध्यापुरी प्रभाहीन होगई ॥२९॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! आप जो हमें और सीता देवीको विषादित करते हुये इस प्रकारका शोक कर रहे हैं या आपको उचित नहीं है ॥३०॥ हे राघव ! अब सीताजी और मैं आपसे अलहदा होकर जलसे निकली हुई मछलियोंके समान जरा देर भी नहीं जी सकते हैं ॥ ३१ ॥ मैं आपके बिना क्या पिता शत्रुघ्न क्या सुमित्रा किसीको भी देखनेकी इच्छा नहीं करता बरन् इनकाही क्या मैं आपके विरहमें स्वर्गमें भी रहना भला नहीं समझता ॥३२॥ अनन्तर धर्मवत्सल श्रीरामचन्द्रजी और सीताजी निकटही वटवृक्षके तले शय्याको रचित देखकर तिसपर

शयन करते हुये ॥३३॥ रामचंद्रजी लक्ष्मणजीकी वह गुणभरी वार्त्ता श्रवण करकेइसको सुखप्रद समझते हुये वनवासकेधर्मको अंगीकार करके और फिरजब तक वनमें वसे तबतक ऐसे व्याकुल कभी नहीं हुये और लक्ष्मणजीके साथ रहे॥३४॥उस जनहीन वनमें रघुवंशके बढाने वाले महाबलीरामचंद्र व लक्ष्मणजी पहाडों पर घूमनेवाले दो शेरोंकी नाईं विचरण करने लगे और उनके निकट भी कोई भय सम्भ्रम नहीं आया ॥ ३५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिका० ये अयोध्याकांडे भाषायां त्रिपंचाशः सर्गः ॥ ५३ ॥ राम लक्ष्मण सीताजी उस वटवृक्षके तले वह शुभ रात्रि बिताकर विमल सूर्यदेवके उदय होनेपर उस स्थानसे प्रस्थान करते हुये ॥१॥ वह सीता राम लक्ष्मणजो घने २ बडे वनमें होकर उस ओरको लक्ष्य करके चले कि, जहां भागीरथी गंगा

सलक्ष्मणस्योत्तमपुष्कलंवचोनिशम्यचैवंवनवासमादरात् ॥समाःसमस्ताविदधेपरंतपःप्रपद्यधर्मंसुचिरायराघवः ॥३४॥ ततस्तुत स्मिन्विज नेमहाबलौमहावनेराघववंशवर्धनौ ॥ नतौभयंसंभ्रममभ्युपेयतुर्यथैवसिंहौगिरिसानुगोचरौ॥३५॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा०आ० अयोध्याकांडे त्रिपंचाशः सर्गः॥५३॥ तेतुतस्मिन्महावृक्षेउषित्वारजनींशुभाम् ॥ विमलेऽभ्युदितेसूर्येतस्माद्देशात्प्रतस्थिरे ॥१॥ यत्रभागीरथींगंगायमुना ऽभिप्रवर्तते ॥ जग्मुस्तंदेशमुद्दिश्यविगाह्यसुमहद्वनम् ॥२॥ तेभूमिभागान्विविधान्देशांश्चापिमनोहराम् ॥ अदृष्टपूर्वान्पश्यतस्तत्रतत्रयशस्वि नः ॥ ३ ॥ यथाक्षेमेणसंपश्यन्पुष्पितान्विविधान्द्रुमान् ॥ निवृत्तमात्रेदिवसेरामःसौमित्रिमब्रवीत ॥४॥ प्रयागमभितःपश्यसौमित्रेधूमसुत्त मम् ॥ अग्नेर्भगवतःकेतुंमन्येसन्निहितोमुनिः ॥५॥ नूनंप्राप्ताःस्मसंभेदंगंगायमुनयोर्वयम् ॥ तथाहिश्रूयतेशब्दोवारिणोर्वारिघर्षजः॥६॥ दारूणिपरिभिन्नानिवनजैरुपजीविभिः ॥ छिन्नाश्चाप्याश्रमेचैतेदृश्यंतेविविधाद्रुमाः ॥७॥

और यमुनाका संगम हुआ है ॥ २ ॥ वे दोनों यशस्वी मार्गमें अनदेखे हुये अनेक प्रकारके बिना देखे देश व मनोहर २ भूमिभाग देखते हुये चले जातेथे ॥ ३ ॥ इस प्रकार सुखपूर्वक विविध भाँतिके फूले फले पेडोंके समूह देखते हुये दिन थोडा रह जानेपर रामचन्द्रजी लक्ष्मणसे बोले ॥ ४ ॥ हे सौमित्रे ! प्रयाग तीर्थकी ओरको देखो भगवान् अग्निका चिह्नस्वरूप सुन्दर और सुगन्धित धुआं उठ रहा है बोध होता है कि, भरद्वाजजीका आश्रम यहीं है, देखिये अग्निसे जो धूम निकलता है वह मानों अग्निकी पताका है ॥५॥ और हम निश्चय ही गंगा जमुनाके संगमकी जगह आ पहुँचे हैं ।यह देखो दोनों नदियोंका जल परस्पर मिलनेसे शब्द हो रहा है॥६॥ वनवासी लोगोंने नाना प्रकारके काष्ठ इकट्ठे कर रक्खे हैं सो उन लोगोंके काटे हुए अनेक प्रकारके वृक्ष भी दिखाई देते हैं ॥७॥

अनन्तर सूर्यनारायण पश्चिम दिशा की ओर पहुँचे, व धनुषधारी रामलक्ष्मणजा भी गंगा यमुनाके संगमस्थलमें पहुंचकर भरद्वाजके आश्रममें आये ॥८॥ रामचन्द्रजी आश्रममें पहुँचकर दुष्टमृग और पक्षियोंको त्रास देते हुए मुहूर्त्तभरमें ही भरद्वाजजीके निकट पहुंचे ॥ ९ ॥ अनन्तर सीताजी के साथ दोनों भाई सहसा निकट न जाकर उनके दर्शनकी वांछासे दूर ही खडे रहे ॥१०॥ जब अनुमति मिली तब महाभाग रामचन्द्रजीने पर्णशालामें प्रवेश करके देखाकि, महानुभाव भरद्वाजजी अपने शिष्योंके संग बैठेहुये हैं और भली प्रकारसे व्रत करनेमें यत्नवान् हैं और एकाग्र चित्तसे तपोबल करके जिनको त्रिकालका ज्ञान है॥ ११ ॥ महभाग ऋषिको अग्निहोत्रमें आहुति देते हुए देख रामचन्द्रजीने लक्ष्मण और सीता सहित हाथ जोडकर उसीसमय उन ऋषिके चरणोंमें प्रणाम किया॥१२॥और

धन्विनौतौसुखंगत्वालंबमानेदिवाकरे॥ गंगायमुनयोःसंधौप्रापतुर्निलयंमुनेः॥८॥ रामस्त्वाश्रममासाद्यत्रासयन्मृगपक्षिणः॥ गत्वामुहूर्तमध्वानंभरद्वाजमुपागमत् ॥ ९ ॥ ततस्त्वाश्रममासद्यमुनेर्दर्शनकांक्षिणौ ॥ सीतयानुगतौवीरौदूरादेवावतस्थतुः ॥ १० ॥ संप्रविश्यमहात्मानमृषिंशिष्यगणैर्वृत्तम् ॥ संशितव्रतमेकाग्रंतपसालब्धचक्षुषम्॥११॥ हुताग्निहोत्रंदृष्ट्वैवमहाभागःकृतांजलिः॥ रामःसौमित्रिणासार्धंसीतयाचाभ्यवादयत्॥१२॥ न्यवेदयतचात्मानंतस्मैलक्ष्मणपूर्वजः ॥ पुत्रौदशरथस्यावांभगवन्रामलक्ष्मणौ ॥ १३ ॥ भार्याममेयंकल्याणीवैदेहीजनकात्मजा ॥ मांचानुयाताविजनंतपोवनमनिंदिता ॥१४॥ पित्राप्रव्राज्यमानमांसौमित्रिरनुजःप्रियः॥ अयमन्वगमद्भ्रातावनमेवधृतव्रतः ॥१५॥ पित्रानियुक्ताभगवन्प्रवेक्ष्यामतपोवनम् ॥ धर्ममेवाचरिष्यामस्तत्रमूलफलाशनाः ॥१६॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाराजपुत्रस्यधीमतः ॥ उपानयतधर्मात्मागामर्घ्यमुदकंततः ॥ १७ ॥ नानाविधानन्नरसान्वन्यमूलफलाश्रयान् ॥ तेभ्योददौतप्ततपावासंचैवाभ्यकल्पयत् ॥ १८ ॥

यह कहकर लक्ष्मणजीके बडे भ्राताने अपना पता बताया कि, हे भगवन् ! हम राजा दशरथजीके पुत्र हैं और नाम हमारा राम लक्ष्मण है ॥ १३ ॥ और यह कल्याणी जानकीजी हमारी स्त्री और राजा जनकजीकी पुत्री हैं। यह अनिन्दिता मेरा अनुगमन कर निर्जन तपोवनमें मेरे साथ२आई हैं ॥१४॥ पिताजीने हमको वनको भेजा है इसी कारण हमारे प्रिय अनुज यहभ्राता लक्ष्मणजीभी व्रत धारण किये हुये हमारे साथ वनमें आये हैं ॥१५॥ हे भगवन् ! इस समय अब पिताजीकीही आज्ञासे वनको आये हैं और कन्द मूल फल खाकर धर्मका आचरण करते रहैंगे॥१६॥महात्मा भरद्वाजजीने धीमान् राजकुमार श्रीरामचन्द्रजीके ऐसे वचनसुनकर उनके लिये गौ, अर्घ्य एवं चरण पखारनेके लिये जल मँगा दिया॥१७॥ और भरद्वाजजीने रामचन्द्रजीके लिये अनेक प्रकारके रसीले वनके

कन्दमूलफल व अन्नखानेकोदिये और फिर भोजन नेके देपीछे उत्तम स्थान रहनेको बतादिया॥ १८॥ उन परमतपस्वी महर्षि भरद्वाजजीने मृग, पक्षी और मुनियोंमें घिरेहुये सबके सामने रामचन्द्रजीका आदर किया और स्वागत पूँछा॥ १९॥ जब रामचन्द्रजी उनकी दीहुई पूजाकोग्रहण करके बैठगये, तब महर्षि भरद्वाजजी धर्मयुक्त वचन उनसे कहने लगे॥ २०॥ हे काकुत्स्थनंदन ! तुमको बहुतही दिनोंमें इस आश्रमपर आते हुये देखा और मैंने तुम्हारे वनमें आनेका भी कारण सुन लिया है * ॥ २१॥ अच्छा जो हुआ सो हुआ गंगा यमुनाके संगममें स्थित यह स्थान बहुत ही निर्जन और पवित्र और परमरमणीय है पुण्यस्वरूपहै तुम यहां सुखपूर्वक वास करो॥ २२॥ जब भरद्वाजजीने इस प्रकार कहा तब सब लोकोंके हित करनेमें रत रघुनंदन रामचन्द्रजी यह पवित्र वचन बोले ॥ २३ ॥ हे भगवन् !

मृगपक्षिभिरासीनोमुनिभिश्चसमंततः॥ राममागतमभ्यर्च्यस्वागतेनागतंमुनि ॥१९॥ प्रतिगृह्यतुतामर्चामुपविष्टसराघवम्॥ भरद्वाजोऽब्रवीद्वाक्यधर्मयुक्तमिदंतदा ॥२०॥ चिरस्यखलुकाकुत्स्थपश्याम्यहमुपागतम् ॥ श्रुततवमयाचैवविवासनमकारणम् ॥२१॥ अवकाशोविविक्तोऽयंमहानद्योःसमागमे॥ पुण्यश्चरमणीयश्चवसत्विहभवान्सुखम्॥२२॥ एवमुक्तस्तुवचनंभरद्वाजेनराघवः॥ प्रत्युवाचशुभंवाक्यंरामःसर्वहितेरतः ॥२३॥ भगवन्नितआसन्नःपौरजानपदोजनः ॥ सुदर्शमिहमांप्रेक्ष्यमन्येहमिममाश्रमम् ॥ २४ ॥ आगमिष्यतिवैदेहींमांचापिप्रेक्षकोजनः ॥ अनेनकारणेनाहमिहवासंनरोचये ॥२५॥ एकांतेपश्यभगवन्नाश्रमस्थानमुत्तमम् ॥ रमतेयत्रवैदेहीसुखार्हाजनकात्मजा ॥२६॥ एतच्छ्रुत्वाशुभंवाक्यंभरद्वाजोमहामुनिः॥ राघवस्यतुतद्वाक्यमर्थग्राहकमब्रवीत्॥२७॥ दशक्रोशइतस्तातगिरिर्यस्मिन्निवत्स्यसि॥ महर्षिसेवितःपुण्यःपर्वतःशुभदर्शनः ॥२८॥ गोलांगूलानुचरितोवानरर्क्षनिषेवितः ॥ चित्रकूटइतिख्यातोगंधमादनसन्निभः ॥ २९ ॥

इस आश्रमसे हमारी नगरी अयोध्या और देश बहुत निकट हैं सो अयोध्यावासी व इन देशोंके रहनेवाले हमारे रूपको सुन इस आश्रममें आयेंगे ॥ २४ ॥ बडी भीड लगावेंगे व जानकीजीको देखनेवाली स्त्रियांभी बहुत आवेंगी इस कारण हम यहां रहना अच्छा नहीं समझते, नहीं तो सब भांति का सुख व आराम था ॥२५॥ अतएव हे भगवन् ! जहां रहनेसे सुख पानेके योग्य जनकनंदिनी वैदेहीजी सदा मनके सुख सहित रहें सो आप एक ऐसा एकान्त स्थानमें उत्तम आश्रम बतला दीजिये ॥ २६ ॥ महामुनि भरद्वाजजी रामचन्द्रजीके यह वचन सुन करके उनसे यह अर्थप्रतिपादक वचन बोले ॥ २७ ॥ हे तात ! हमारे इस आश्रमसे दश कोशकी दूरीपर एक पहाड है यह पहाड देखनेमें अति सुंदर और परमपुण्यजनक है और महर्षिगणों करकेसेवित है॥ २८॥ गोपुच्छ वानर और छोटी पूँछवालेवानर और

* बहुत दिनोंमें आये इस वचनके कहनेसे बोध होता है, कि पहले रामावतारमें भी आये थे

रीछ यह उस पर्वतपर घूमा करते हैं और उस पर्वतका नाम चित्रकूट है और वह गंधमादन पहाड़के समान आकारवाला है ॥२९॥ उनके शृङ्गोंको देखतेही लोगोंके मन पापसे दूर और सत्य मार्गकी ओरको दौडते हैं उस मनुष्यका मन कभी मोहमें नहीं लगता॥३०॥ वहां मृत मनुष्यके कपालतुल्य शुष्कमस्तक वाले असंख्य ऋषिगण तपोबलसे सैकडों वर्षतक विहार करके अन्तमें स्वर्गको गये हैं ॥३१॥ वह स्थान बहुत ही निर्जन है मेरी सम्मतिमें तो तुम वहां सुखसहित वास कर सकोगे अथवा हे रामचंद्रजी ! तुम्हारे वनमें रहनेका समय जबतक पूरा हो तबतक तुम हमारे ही साथ इस आश्रममें रहो ॥३२॥ इस प्रकारसे महर्षि भरद्वाजजी सबही अभिलाष पूर्ण करके और हर्ष उपजाकर प्रिय पाहुने रामचन्द्रजीके भ्राता और भार्या सहित विशेष रूपसे पूजा करते हुए ॥३३॥ रामचन्द्रजीका प्रयाग क्षेत्रमें महर्षिभरद्वाजजीके सहित समागम होने और विविध चित्र विचित्र कथा वार्त्ता आरंभ होनेपर क्रमसे पुण्यमयी रात्रि हो आई॥३४॥ सुखपानेके योग्य श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मण

यावताचित्रकूटस्यनरःशृंगाण्यवेक्षते॥ कल्याणानिसमाधत्तनमोहेकुरुतेमनः॥३०॥ ऋषयस्तत्रबहवोविहृत्यशरदांशतम्॥ तपसादिवमारूढाः कपालशिरसासह ॥३१॥ प्रविविक्तमहंमन्येतंवासंभवतःसुखम्॥ इहवावनवासायवसराममयासह ॥३२॥ सरामंसर्वकामैस्तंभरद्वाजःप्रियातिथिम् ॥ सभार्यंसहचभ्रात्राप्रतिजग्राहहर्षयन् ॥३३॥ तस्यप्रयागेरामस्यतंमहर्षिमुपेयुषः ॥ प्रपन्नारजनीपुण्याचित्राःकथयतःकथाः ॥३४॥ सीतातृतीयःकाकुत्स्थःपरिश्रांतःसुखोचितः॥ भरद्वाजाश्रमेरम्येतांरात्रिमवसत्सुखम्॥३५॥ प्रभातायांतुशर्वर्यांभरद्वाजमुपागमत्॥ उवाचनरशार्दूलोमुनिंज्वलिततेजसम्॥३६॥शर्वरींभगवन्नद्यसत्यशीलतवाश्रमे॥उषिताःस्मोहवसतिमनुजानातुनोभवान्॥३७॥रात्र्यांतुतस्यांव्युष्टायां भरद्वाजोऽब्रवीदिदम्॥ मधुमूलफलोपेतंचित्रकूटंव्रजेतिह॥३८॥वासमौपयिकंमन्येतवराममहाबल॥नानानगगणोपेतःकिन्नरोरगसेवितः॥३९॥

और सीता सहित रास्ता चलनेके श्रमसे कातर हो रमणीय भरद्वाजजीके आश्रममें सुखपूर्वक उस रात्रिमें वास करते हुए ॥३५॥ जब रात्रि बीतकर प्रातःकाल हो आया तब श्रीरामचंद्रजी तेजसे प्रकाशमान भरद्वाज मुनिके निकट जाकर यह निवेदन करते हुए ॥ ३६ ॥ हे परमसत्यशील भगवन् ! आज हमने आपके आश्रममें वसके रात बिताई अब जिस स्थानको आपने हमारे बसने योग्य बताया है वहां जाने की आज्ञा दीजिये ॥३७॥ जब रात्रि बीत गई और प्रातःकाल हो आया तब भरद्वाजजीने रामचन्द्रजीसे कहा कि, अब आप मधु, मूल फल, युक्त चित्रकूटपर चले जाइये ॥ ३८ ॥ हे महाबलवान् श्रीरामचन्द्रजी ! हमारी सम्मतिमें चित्रकूट ही तुम्हारे वसनेके योग्य स्थान है वहां अनेक २ प्रकारके वृक्ष लगे हुए हैं और बहुत सारे किन्नर समूह व उरगगण वास करते हैं ॥३९॥

वहां मोरोंका शोर हुआ करता है और बडे २ हाथीभी वहां घूमा करते हैं सो तुम संसारमें विख्यात उसी चित्रकूट पर्वतपर गमन करो ॥४०॥ यह पर्वत परम पवित्र रमणीय और अनेक प्रकारके फल फूलोंसे शोभित है, वहां हाथियोंके यूथ और मृगोंके झुण्डके झुण्ड वनमें घूमा करते हैं ॥ ४१ ॥ और नदी, दरी, झरने सोते, दरारे, पर्वतसानु सबही वहां शोभित हो रहे हैं सो उन सबको वनमें विचरते हुये ही देखोगे ॥४२॥ हे रघुनन्दन! वहां सीताजीके सहित विचरण करनेके समय तुम्हारे मनमें आनंद होगा, क्योंकि वह सब वनचारी जन्तु प्रमोद उपजाया करते हैं ॥४३॥ वहां हर्षित टटीरी और कोकिलायें सब आनन्दित हो शब्द करती हैं जिसके सुनतेही परम प्रसन्नता होती है। एवं मृग और हाथी सबही सदा मतवाले होकर घूमा करते हैं जिनके देखनेसे मन मोह जाता है। इस प्रकारके परम सुख और शुभसंपन्न चित्रकूटपर गमन करके और वहीं आश्रम बना सुखसे उसमें वास करना ॥४४॥ इत्यार्षे० श्रीमद्वा० वा० आदि० अयोध्याकांडे भाषायां चतुष्पंचाशः सर्गः ॥५४॥

मयूरनादाभिरतोगजराजनिषेवितः ॥ गम्यतांभवताशैलश्चित्रकूटःसुविश्रुतः ॥४०॥ पुण्यश्चरमणीयश्चबहुमूलफलैर्युतः ॥ तत्रकुंजरयूथानिमृगयूथानिचैवहि ॥४१॥ विचरंतिवनांतेषुतानिद्रक्ष्यसिराघव ॥ सरित्प्रस्रवणप्रस्थान्दरीकंदरनिर्झरान् ॥४२॥ चरतःसीतयासार्धंनंदिष्यतिमनस्तव॥४३॥प्रहृष्टकोयष्टिभकोकिलस्वनैर्विनोदयंतंचसुखंपरंशिवम् ॥ मृगैश्चमत्तैर्बहुभिश्चकुंजरैःसुरम्यमासाद्यसमावसाश्रयम् ॥४४॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० अयोध्याकांडे चतुष्पंचाशः सर्गः॥५४॥ उषित्वारजनींतत्रराजपुत्रावरिंदमौ॥ महर्षिमभिवाद्याथजग्मतुस्तंगिरिंप्रति॥१॥ तेषांस्वस्त्ययनंचैवमहर्षिःसचकारह॥ प्रस्थितान्प्रेक्ष्यतांश्चैवपितापुत्रानिवौरसान्॥२॥ ततःप्रचक्रमेवक्तुंवचनंसमहामुनिः॥भरद्वाजोमहातेजा रामंसत्यपराक्रमम्॥३॥गंगायमुनयोःसंधिमादायमनुजर्षभ॥ कालिंदीमनुगच्छेतांनदींपश्चान्मुखाश्रिताम्॥४॥ अथासाद्यतुकालिंदींप्रतिस्रोतःसमागताम् ॥ तस्यास्तीर्थंप्रचरितंप्रकामंप्रेक्ष्यराघवौ॥५॥ तत्रयूयंप्लवंकृत्वातरतांशुमतींनदीम्॥ ततोन्यग्रोधमासाद्यमहांतंहरितच्छदम्॥६॥

शत्रुओंके दमन करनेवाले राम और लक्ष्मण वहां रजनी प्रभात करके महर्षिके चरणवंदन पूर्वक चित्रकूटकी ओरको चले ॥१॥ महर्षि भरद्वाजजीने रामचन्द्रजीको जानेके लिये तैयार देखकर पिता जिस प्रकार अपने औरस पुत्रोंका स्वस्त्ययन किया करते हैं ऐसेही श्रीरामचन्द्रजीके मंगलार्थ स्वस्त्ययन किया ॥ २ ॥ स्वस्त्ययन करनेके पीछे परमतेजस्वी महर्षि भरद्वाज सत्यपराक्रम रामचन्द्रजीसे कहने लगे ॥३॥ हे नरश्रेष्ठ ! प्रथम तो जहां गंगा यमुनाका संगम हुआ है तहांसे पश्चिममुख हो यमुनाके किनारे२जाइये ॥ ४ ॥ प्रतिकूलवाहिनीइस कालिंदी यमुनाके किनारे२जाकर देखो कि, सदा आने जानेसे उनके उतरनेकी जगह अत्यन्तही क्षीण होगई है ॥ ५ ॥ घन्नई आदि बनवाय आप उस नदी यमुनाके पारहोना, अनन्तरउसके पार एक बडका बडा पेड है जिसके हरे २

पत्ते हैं ॥६॥ और अनेक२प्रकारके पेड उस बरगदके चारों ओर लगे हैं और उस पेडमें श्यामता भी पाई जाती है सिद्धगण उसकी सेवा किया करते हैं वहां जाकर जानकी हाथ जोडकर उस वृक्षसे आशीर्वाद पानेकी प्रार्थना करें ॥७॥ जो इच्छा हो तो कुछ दिन वहीं वास करना नहीं तो आगेको चले जाना। वहांसे एक कोश दूर चलने पर नीलवर्ण कानन दृष्टिआवेगा ॥८॥ पलाश, बाँसी और बेरियोंके पेडसे यह वन भरा हुआ है और वहां यमुनाके किनारे और भी अनेक प्रकारके वनवृक्षउत्पन्न होते हैं बस यही चित्रकूट जानेका मार्ग है, मैं अनेक बार इस मार्गसे होकर गया हूं ॥९॥ वह मार्ग अतिकोमल है दावानल उस वनमेंकभी नहीं लगती, और इस पंथमें जानेके समय मनमें प्रसन्नता उत्पन्न होती है । महर्षि भरद्वाजजी इसप्रकार मार्गका पता बताकर लौटे ॥१०॥ लौटनेके समय रामचन्द्रजीसे पूँछ लिया कि, अब तो आप चले जायँगे ? तब उन्होंने कहा "हां" और मुनिके चरणोंकी वंदन करके उन्हें लौटाया, मुनिके लौटनेपर रामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीसे कहा ॥११॥ हे भाई! यथार्थमें हम

परितंबहुभिर्वृक्षैः श्यामसिद्धोपसेवितम् ॥ तस्मिन्सीतांजलिंकृत्वाप्रयुंजीताशिषांक्रियाम् ॥७॥ समासाद्यचतंवृक्षंवसेद्वातिक्रमेतवा॥ क्रोशमात्रंततोगत्वानीलंप्रेक्ष्यचकाननम् ॥८॥ सल्लकीबदरीमिश्रंरामवन्यैश्चयामुनैः ॥ सपंथाश्चित्रकूटस्यगतस्यबहुशोमया ॥ ९ ॥ रम्योमार्दवयुक्तश्चदावैश्चैवविवर्जितः ॥ इतिपंथानमादिश्यमहर्षिःसंन्यवर्तत॥१०॥ अभिवाद्यतथेत्युक्त्वारामेणविनिवर्तितः ॥ उपावृत्तेमुनौतस्मिन्रामोलक्ष्मणमब्रवीत् ॥११॥ कृतपुण्याःस्मभद्रंतेमुनिर्यन्नोऽनुकंपते ॥ इतितौपुरुषव्याघ्रौमंत्रयित्वामनस्विनौ ॥ १२ ॥ सीतामेवाग्रतःकृत्वाकालिंदींजग्मतुर्नदीम् ॥ अथसाद्यतुकालिंदींशीघ्रस्रोतस्विनींनदीम् ॥ १३ ॥ चिंतामापेदिरेसद्योनदीजलतितीर्षवः ॥ तौकाष्ठसंघाटमथोचक्रतुःसुमहाप्लवम् ॥१४॥ शुष्कैर्वन्यैःसमाकीर्णमुशीरैश्चसमावृतम् ॥ ततोवैतसशाखाश्चजंबुशाखाश्चवीर्यवान्॥१५॥ चकारलक्ष्मणश्छित्त्वासीतायाःसुखमासनम् ॥ यत्रश्रियमिवाचिंत्यांरामोदाशरथिः प्रियाम् ॥१६॥

लोगोंने पुण्य किया है जिससे कि, महर्षिजी हमारे ऊपर इतनी दया करते हैं मनस्वी पुरुषश्रेष्ठ रामचन्द्र औ लक्ष्मणजी दोनोंजने इस भांति विचार करके ॥१२॥ सीताजीको आगे किये हुये यमुनाजीके तीर गये, और अतिवेगवती व अतिजलवाली नदीको देखते हुये ॥१३॥ पर घाटपर वहां नाव न थी इस कारण इसबातकी बडी चिन्ता करने लगे कि, किस प्रकार जल्दीसे इस नदीके पार होजायँ ? चिन्ता करते २ भरद्वाजजीकी बताई बात याद आई और सूखे बांस आदि इकट्ठे कर एक घन्नई बनाई ॥ १४ ॥ वनकी सूखी लकडियां उसमें लगाई गई, गांठरकी जडको कूट२कर उनमें भरा कि, छेद सब उसके बंद होगये तिसके उपरान्त बेत व नल जामनकी नरम डालियें काट ॥ १५ ॥ महावीर लमणजीने जानकीजीके बैठनेके लिये उस तृणनौकापर एक सुखमय आसन बनादिया आसनबन

जानेके उपरान्त चिन्ता करनेके अयोग्य रूपवाली लक्ष्मीके सम रामने प्राणसम प्यारी जानकीजी को ॥१६॥ जो कि कुछ लजासी रही थींउठाकर उसघन्नई पर चढाया व उनके निकटही सब उनके वस्त्र भूषणादि धरदिये ॥१७॥व कुदाल पिटारी बांस बल्ली आदि वहां धरदिये, प्रथम जानकीजीकोबैठाया फिर आप दोनों भाई चढे और नावको चलाया ॥१८॥ फिर रामचन्द्र व लक्ष्मणजी दोनोंजने यत्नसहित वह नाव ग्रहण करके प्रसन्न मनसे यमुनाके पार होने लगे, जब नाव बीच धारामें पहुँची जो जानकीजीने यमुनाजीको प्रणाम किया ॥१९॥ और हाथ जोडकर कहा कि, हे देवी ! जो कुशलसहित मारे पति अपने पिता की व अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर लौटेंगे और हमारा पतिव्रत धर्मभी अच्छी तरह निभ जायगा, तो मैं तुम्हारी प्रसन्नताके लिये सहस्रों गोदानकरूंगी और सैकडों * सुराके पूर्ण कलसे देकर तुम्हारी पूजा करूंगी॥२०॥तब अवश्यही मैं तुम्हारी पूजा करूंगी। जब आनंदपूर्वक इक्ष्वाकु आदि राजाओंकी पालित अयोध्यापुरीमें

ईषत्सलज्जमानांतामध्यारोपयतप्लवम्॥ पार्श्वेतत्रचवैदेह्यावसनेभूषणानिच॥१७॥ प्लवेकठिनकाजंचरामश्चक्रेसमाहितः॥ आरोप्यसीतांप्रथ मंसंघाटंपरिगृह्यतौ ॥१८॥ ततःप्रतेरतुर्यत्तौप्रीतौदशरथात्मजौ ॥ कालिंदीमध्यमायातासीतात्वेनामवंदत ॥ १९ ॥ स्वस्तिदेवितरामित्वांपा रयेन्मेपतिर्व्रतम् ॥ यक्ष्येत्वांगोसहस्रेणसुराघटशतेनच ॥ २०॥ स्वस्तिप्रत्यागतेरामेपुरीमिक्ष्वाकुपालिताम् ॥ कालिंदीमथसीतातुयाचमाना कृतांजलिः॥२१॥तीरमेवाभिसंप्राप्तादक्षिणंवरवर्णिनी॥ ततः प्लवेनांशुमतींशीघ्रगामूर्मिमालिनीम्॥२२॥तीरजैर्बहुभिर्वृक्षैःसंतेरुर्यमुनांनदीम्॥ तेषुतेप्लवमुत्सृज्यप्रस्थाययमुनावनात् ॥ २३ ॥ श्यामंन्यग्रोधमासेदुःशीतलंहरितच्छदम् ॥ न्यग्रोधंसमुपागम्यवैदेहीचाभ्यवंदत ॥ २४ ॥ नमस्तेऽस्तुमहावृक्षपारयेन्मेपतिर्व्रतम् ॥ कौसल्यांचैवपश्येमसुमित्रांचयशस्विनीम् ॥ २५ ॥

श्रीरामचन्द्रजी आप राजा होंगे, इस प्रकार वरको याचना करती हुई जनकनंदिनीजीने हाथ जोडकर यमुनाजीकी प्रार्थना की ॥२१॥ इस भांति प्रणाम करती हुई सीताजी व दोनों भाई उस बनाई हुई नावके द्वारा शीघ्र गामिनी और तरंगें जिसमें उठरहीं ऐसी सूर्य पुत्री यमुनाजीके दक्षिण किनारेपर पहुँचे ॥२२॥ कालिन्दी के इस किनारे पर अनेक प्रकार के वृक्ष लग रहे थे रामचन्द्र सीता और लक्ष्मणजीने यमुनाके पार होकर उस नावको वहीं छोडदिया ॥ २३ ॥ फिर यमुनाजीके लगे हुये किनारे के वनसे चलकर तीनोंजन सुशीतलहरे २ पत्तों करके शोभायमान श्यामनाम वट वृक्षके समीप उपस्थित हुये जानकीजीने वहां पहुंचकर उस बरगदके वृक्षको प्रणाम किया ॥ २४॥ और कहा कि, हे वटवृक्ष ! हम तुमको नमस्कार करती हैं तुम्हारे प्रसादसे हमारे स्वामी अपने

* यह सुरा देवरूप है अर्थात् महौषधियोंके रससे बनाई जाती है।

व्रतको पूर्ण करें और हम फिर अयोध्याको लौटकर कौशल्याजी और यशस्विनी सुमित्राजी के दर्शन करसकें ॥२५॥ इस प्रकार मनस्विनी सीताजी हाथ जोडकर उसश्याम वटवृक्ष की प्रदक्षिणा करती हुईं। अनन्तर रामचन्द्रजीने अपनी परम अनुकूल वर्तिनी निंदारहित प्राण प्यारी सीताजीको श्याम वटवृक्ष के निकट प्रार्थना करते देखकर ॥२६॥ लक्ष्मणजीसे कहा कि, हे भ्राता भरतानुज ! तुम सीताजीको लेकर आगे २ गमन करो ॥२७॥ हे नरोत्तम ! मैं आयुधधारण किये हुये तुम्हारे (दोनोंके पीछे२चलूंगा, इन जनकनन्दिनी सीताजीके चित्तमें जिस२वस्तुको देखकर आनन्द उपस्थित हो और जो२ फल पुष्प यह प्रार्थना करें ॥२८॥ और जिस चीजसे इनका मन बहले सो तुमको इनको वही२चीज फूल फल लादेना यह कह यमुनाके दक्षिण किनारे २ आगे को चले कि, इतनेमें जिस किसी वृक्ष व पुष्पसे लदी हुई लतादिकको सीताजी देखती थीं॥२९॥उसीका अद्भुत रूप जान् रामचन्द्रजीसे पूँछती थीं कि, यह कौन पेड वा वल्लरी है क्यों न पूछें जब

इतिसीतांजलिंकृत्वापर्यगच्छन्मनस्विनी ॥ अवलोक्यततः सीतामायाचंतीमनिंदिताम्॥ २६ ॥ दयितांचविधेयांचरामोलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ सीतामादायगच्छत्वमग्रतोभरतानुज ॥२७॥ पृष्ठतोऽनुगमिष्यामिसायुधोद्विपदांवर ॥ यद्यत्फलंप्रार्थयतेपुष्पंवाजनकात्मजा॥ २८ ॥ तत्त त्प्रयच्छवैदेह्यायत्रास्यारमतेमनः ॥ (गच्छतोस्तुतयोर्मध्येबभूवजनकात्मजा ॥ मातंगयोर्मध्यगताशुभानागवधूरिव॥१॥) एकैकंपादपंगुल्मं लतांवापुष्पशालिनीम्॥२९॥ अदृष्टरूपांपश्यंतीरामंपप्रच्छसाऽबला ॥ रमणीयान्बहुविधान्पादपान्कुसुमोत्करान्॥३०॥ सीतावचनसंरब्ध आनयामासलक्ष्मणः ॥ विचित्रवालुकजलांहंससारसनादिताम्॥३१॥ रेमेजनकराजस्यसुताप्रेक्ष्यतदानदीम्॥ क्रोशमात्रंततोगत्वाभ्रातरौराम लक्ष्मणौ ॥ बहून्मेध्यान्मृगान्हत्वाचेरतुर्यमुनावने॥३२॥ विहृत्यतेबर्हिणपूगनादितेशुभेवनेवारणवानरायुते॥ समंनदीवप्रमुपेत्यसत्वरंनिवा समाजग्मुरदीनदर्शनाः ॥ ३३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आ० अयो० पंचपंचाशः सर्गः ॥ ५५ ॥

कि, वहां तरह२के रमणीय फले फूले तरु दिखाई देतेथे॥३०॥जो कुछ सीताजी मांगती थीं लक्ष्मणजी भी उनके कहनेके अनुसार कुसुम स्तबक शोभित विविध भांति के रमणीक वृक्ष शाखा लादेनेलगे। उस समय जनक नन्दिनी सीताजी भी विचित्र बालुका करके शोभित, और हंससारसोंके समूह के शब्दसे शब्दायमान विचित्र जलसे युक्त ॥३१॥ यमुनाजीके दर्शनसे जानकी प्रसन्न हुई,इसके पश्चात् राम और लक्ष्मण दोनों भाई एक कोश गमन करने के पीछे यमुना तीरके वनों में बहुत सारे यज्ञीय मृगवध करते हुए घूमने लगे॥३२॥उन्होंने हस्ती और शाखमृगादिकोंसे सेवित मोर के शोरसे शब्दायमान उस मनोहर वन में इच्छानुसार विहार करके संध्याके समय एक रमणीय दरारोंके गढों करके रहित स्थानपर जाकर वास किया ॥३३॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा०आ०अयोध्याकांडे भाषायां पंचपंचाशः सर्गः ॥५५॥

इस प्रकारसे जब रात्रि बीती और वनोंमें सबेरा हो आया तो लक्ष्मणजी रात्रि भरके जो जागे थे इस कारण अभीतक सो रहे थे सो उनको सोते हुये देखकर धीरे २ रामचन्द्रजीने जगाया और कहा ॥ १ ॥ हे सौमित्रे ! अनेक जातियोंके वनैले जीव कैसे मीठे २ स्वरसे चहक रहे हैं इनको सुनो, राह चलनेका यही समय बहुत अच्छा है अतएव हे आततायियोंके दर्पको चूर्ण करनेवाले ! अब उठकर चलो ॥ २ ॥ जब रामचन्द्रजीने यथा कालमें लक्ष्मणजीको जगा दिया तब वह निद्रा और आलस्यको त्याग करके भली प्रकार विश्राम पा उठ खडे हुये ॥ ३ ॥ फिर सब जनोंने उठकर पवित्र यमुनाजीके जलमें हाथ धोया और संध्यावन्दनादि किया और ऋषिगणों करके शोभित चित्रकूटका मार्ग लिया ॥४॥ रामचन्द्रजी व लक्ष्मणजी के सहित जाते २ कमल दलके समान आंखवाली सीताजीसे कहने लगे ॥५॥ हे प्रियतमे! यह देखो वसन्त समय आजानेसे सब भांतिके समस्त फूल खिल रहे हैं, उससे ऐसा मालूम पडता है कि, मानोपलाशके पेडोंमें

अथरात्र्यांव्यतीतायामवसुप्तमनंतरम् ॥ प्रबोधयामासशनैर्लक्ष्मणंरघुपुंगवः ॥ १ ॥ सौमित्रेशृणुवन्यानांवल्गुव्याहरतांस्वनम् ॥ संप्रतिष्ठामहे कालःप्रस्थानस्यपरंतप ॥२॥ प्रसुप्तस्तुततोभ्रात्रासमयेप्रतिबोधितः ॥ जहौनिद्रांचतंद्रांचप्रसक्तंचपरिश्रमम् ॥ ३ ॥ ततउत्थायतेसर्वेस्पृष्ट्वा नद्याःशिवंजलम् ॥ पंथानमृषिभिर्जुष्टंचित्रकूटस्यतंययुः ॥४॥ ततःसंप्रस्थितःकालेरामःसौमित्रिणासह ॥ सीतांकमलपत्राक्षीमिदंवचनमब्र वीत्॥५॥ आदीप्तानिववैदेहिसर्वतःपुष्पितान्नगान् ॥ स्वैःपुष्पैःकिंशुकान्पश्यमालिनःशिशिरात्यये॥६॥ पश्यभल्लातकान्बिल्वान्नरैरनुपसेवि तान् ॥ फलपुष्पैरवनतान्नूनंशक्ष्यामजीवितुम् ॥७॥ पश्यद्रोणप्रमाणानिलम्बमानानिलक्ष्मण ॥ मधूनिमधुकारीभिःसंभृतानिनगेनगे॥८॥ एषक्रोशतिनत्यूहस्तंशिखीप्रतिकूजति ॥ रमणीयेवनोद्देशेपुष्पसंस्तरसंकटे॥९॥ मातंगयूथानुसृतंपक्षिसंघानुनादितम्॥ चित्रकूटमिमंपश्यप्रवृ द्धशिखरंगिरिम् ॥ १० ॥ समभूमितलेरम्यद्रुमैर्बहुभिरावृते ॥ पुण्येरंस्यामहेतातचित्रकूटस्यकानने॥११॥

आग लग गई सब पेडोंके फूलोंसे ऐसी शोभा हो रही है मानो सब माला पहररहे हैं॥६॥ यह देखो वीर वृक्ष और बेलके पेडोंके समूह फल और फूलोंके बोझसे नम रहे हैं, इस निर्जन वनमें दूरतक मनुष्योंका पता नहीं है, अतएव हम निश्चय ही इन फल फूलोंको खा कर जीवन धारन करने में समर्थ होंगे ॥७॥ हे लक्ष्मण ! यह देखो प्रति वृक्षमें ही मधुकर संचित द्रोण * परिमाण (डिंगारे) लटके हुए हैं और इधर देखो सहस्रों मधुमक्खियां इनमें लिपट रही हैं ॥८॥ और यह देखो कोकिल पक्षी रमणीय वन भूमिमें बोल रहा है, उसको देखकर मोर भी उसके पीछे शोरकरता है, चारों ओर फूलोंके पेडोंसे घिरजानेपर यह वनभूमि बहुत घनी हो गई ॥९॥ मतवाले हाथियोंके झुंडके झुंड घूम रहे हैं अनेक प्रकारके पुष्पोंसे युक्त वा वृक्षोंसे शोभायमान चित्रकूट दिखाई देता है ॥१०॥ हे लक्ष्मण ! हम सब

* द्रोण शब्दका अर्थ ३२ सेर सहद जिस चक्रमेंहो ॥

अतिशय मनोहर और बहुत वृक्षोंसे ढके हुये व बहुतही पवित्र ऐसे चित्रकूटके वनके बराबर एक भी भूमिमें आनंद विहार कर सकेंगे ॥११॥ अनन्तर ऐसा कहतेहुये और पैदलही चलतेहुये राम और लक्ष्मण सीताजीके सहित मनोहर व रमणीक चित्रकूट पर पहुँचही गये ॥१२॥ यह पर्वत बहुत सुन्दर था बहुत प्रकारके पशु पक्षी यहां घूम घाम रहेथे और बहुतसारे कंद मूल फलवहां बारहों महीने मिलतेथे और पानीभी इस पर्वतका बहुतही स्वादयुक्त व मीठाथा ॥१३॥ रामचन्द्रजीने वहां पहुँचकर लक्ष्मणजी से कहा कि, हे प्रियदर्शन भ्रातः! यह पर्वत अतिमनोहर है, इस जगह अनेक प्रकारके वृक्ष और लतायें शोभायमान हैं और यहां अनेक भांतिके कंद, मूल, फलभी मिलते हैं। मुझको भलीभांतिसे प्रतीत होता है कि, यहां सहजसेही हमारा निर्वाह हो सकता है ॥१४॥ विशेष करके इस पर्वतपर महात्मा मुनिलोम वास करते हैं अतएव यही हमारे वास करनेके योग्य है, हे भइया ! हमयहीं आश्रम बनाकर रहेंगे॥१५॥ अनन्तर सीता रामचन्द्रजी व लक्ष्मणजी वाल्मी

ततस्तौपादचारेणगच्छंतौसहसीतया ॥ रम्यमासेदतुःशैलंचित्रकूटंमनोरमम्॥१२॥ तंतुपर्वतमासाद्यनानापक्षिगणायुतम् ॥ बहुमूलफलंरम्यं संपन्नसरसोदकम् ॥ १३ ॥ मनोज्ञोऽयंगिरिःसौम्यनानाद्रुमलतायुतः ॥ बहुमूलफलोरम्यःस्वाजीवःप्रतिभातिमे ॥१४॥ मुनयश्चमहात्मानोव संत्यस्मिञ्शिलोच्चये ॥ अयंवासोभवेत्तातवयमत्रवसेमहि॥१५॥ इतिसीताचरामश्चलक्ष्मणश्चकृतांजलिः ॥ अभिगम्याश्रमंसर्वेवाल्मीकिमभि वादयन् ॥१६॥ तान्महर्षिःप्रमुदितःपूजयामासधर्मवित्॥ आस्यतामितिचोवाचस्वागतंतंनिवेद्यच॥१७॥ ततोऽब्रवीन्महाबाहुर्लक्ष्मणंलक्ष्म णाग्रजः॥ सन्निवेद्ययथान्यायमात्मानमृषयेप्रभुः ॥ १८ ॥ लक्ष्मणानयदारूणिदृढानिचवराणिच ॥ कुरुष्वावसथंसौम्यवासेमेऽभिरतंमनः ॥ १९ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वासौमित्रिर्विविधान्द्रुमान् ॥ आजहारततश्चक्रेपर्णशालामरिंदमः ॥२०॥ तांनिष्ठितांबद्धकटांदृष्ट्वारामःसुदर्शनाम् ॥ शुश्रूषमाणमेकाग्रमिदंवचनमब्रवीत् ॥ २१ ॥

किजीके आश्रममें प्रवेशकरके हाथ जोड उनको प्रणाम करते हुये॥१६॥ धर्मात्मा महर्षि वाल्मीकिजीने बहुत प्रमुदित होकर सीतासहित दोनों भाइयोंका सत्कार किया फिर रामचन्द्रजीका आगतस्वागत कर बैठनेको कहा और कहने लगे कि, मैं तुम्हारे आनेका कारण जानताहूं अतएव तुम ऋषियोंके सहित यहीं वास करनेमें प्रवृत्तहो ॥१७॥ महाबाहु रामचन्द्रजी यथारीतिसे वाल्मीकिजीके निकटअपना परिचय देकर लक्ष्मणजी सेकहने लगे ॥१८॥ हे सौम्य! तुम बडे बोझके उठानेमें समर्थ मजबूत अच्छे२ काठ लाकर रहनेके लिये "आश्रम बनाओ इस स्थानमेंवास करनेको हमरा बहुतही जीचाहता है ॥१९॥ अरिन्दम (शत्रुओंके मारनेवाले) लक्ष्मणजी रामचन्द्रजीके ऐसे वचन सुनकर बहुत सारे वृक्षोंसे बहुत डालियें काटलाये और वहां एक कुटी पर्णशाला बनादी ॥२०॥ यह कुटी काठकी बनी और किवाडों

करके युक्त और सुदर्शन देखकर रामचन्द्रजी एकचित्तसे सेवा करनेमें चित्त दिये लक्ष्मणजीसे बोले ॥२१॥ हे सौमित्रे! हम ऐणेय हरिणका मांस लाकर पर्ण शालाधिष्ठात्री देवताकी पूजा करेंगे॥२२॥ क्योंकि जो लोग बहुत दिन जीना चाहते हैं उनको चाहिये कि, किसीगृहकी पूजा किये बिना उसमें नरहें. हे प्रियदर्शन ! इस समय तुम जल्दीसे मृगवध करके लेआओ ॥२३॥ स्मरण करके देखो कि, शास्त्रमें जो नियम लिखे हैं उनको यथा रीतिसे पालन करना उचित है । महाबलवान् लक्ष्मणजी भ्राताकी आज्ञासे॥२४॥ मृगलेआये तब रामचन्द्रजीने फिर उनसे कहा कि तुम इस मृगकेमांसको रांधो, मैं वास्तुपूजा करूँगा॥ २५ ॥ हे सौम्य ! ध्रुवयोग वर्तमान है और यह मुहूर्तभी बहुत शुभ काम देनेवाला है अत एव इस कार्यमें जल्दी करो; तब प्रतापशाली लक्ष्मणजीने यज्ञीय काले मृगको वध करके ॥२६॥ उस जलती हुई आगमें छोड दिया जब खूब पकगया और रुधिरका बहना उसमेंसे बन्द हुआ ॥ २७ ॥ तब लक्ष्मणजीने पुरुषश्रेष्ठ श्रीराम

ऐणेयंमांसमाहृत्यशालांयक्ष्यामहेवयम् ॥२२॥ कर्तव्यंवास्तुशमनंसौमित्रेचिरजीविभिः ॥ मृगंहत्वानयक्षिप्रंलक्ष्मणेहशुभेक्षण ॥२३॥ कर्तव्यःशास्त्रदृष्टोहिविधिर्धर्ममनुस्मर ॥ भ्रातुर्वचनमाज्ञायलक्ष्मणःपरवीरहा॥२४॥ चकारचयथोक्तंहितंरामःपुनरब्रवीत्॥ ऐणेयंमांसमाहृत्यशालांयक्ष्यामहेवयम् ॥ २५ ॥ त्वरसौम्यमुहूर्तोऽयंध्रुवश्चदिवसोह्ययम् ॥ सलक्ष्मणःकृष्णमृगंहत्वामेध्यंप्रतापवान् ॥ २६ ॥ अथचिक्षेपसौमित्रिःसमिद्धेजातवेदसि ॥ तत्तुपक्वंसमाज्ञायनिष्टप्तंछिन्नशोणितम् ॥ २७ ॥ लक्ष्मणःपुरुषव्याघ्रमथराघवमब्रवीत् ॥ अयंसर्वःसमस्तांगःश्रितःकृष्णमृगोमया ॥ २८ ॥ देवतांदेवसंकाशयस्वकुशलोह्यसि ॥ रामःस्नात्वानियतोगुणवाञ्जपकोविदः ॥२९॥ संग्रहेणाकरोत्सर्वान्मंत्रान्सत्रावसानिकान् ॥ इष्ट्वादेवगणान्सर्वान्विवेशावसथंशुचिः ॥३०॥ बभूवचमनोह्लादोरामस्यमिततेजसः ॥ वैश्वदेवबलिंकृत्वारौद्रंवैष्णवमेवच ॥३१॥ वास्तुसंशमनीयानिमंगलानिप्रवर्तयन् ॥ जपंचन्यायतःकृत्वास्नात्वानद्यांयथाविधि ॥ ३२ ॥

चन्द्रजीसे कहा कि, मैंने इस सर्वकामसाधन करनेवाले कालेमृगको अंग प्रत्यंगोंके सहित पकाया है ॥२८॥ देवताओंके समान आप यज्ञकरनेके कार्यको भली भांति जानते हैं सो इस समय देवताओंकी प्रसन्नताके लिये यज्ञ कीजिये, तब वह अमिततेजधारी गुणवान् जप करनेमें चतुर रामचन्द्रजी नहाकर ॥२९॥ संयत चित्तहो संक्षेपसे यज्ञको समाप्त करनेके कारण सब मंत्रोंको पढते हुए, फिर पवित्रताईसे देवताओंकी पूजा करके पर्णशालामें प्रवेश करते हुए ॥३०॥ उस समय उन अपरिमित तेजसम्पन्न रामचन्द्रजीके मनमें हर्ष उत्पन्न हुआ अनन्तर उन्होंने वैश्वदेवके लिये, विष्णुजीके लिये और रुद्रजीके अर्थ बलिप्रदान किया ॥३१॥ फिर वास्तुशान्तिके लिये यथायोग्य मांगलिक अनुष्ठान करनेमें लगे और फिर यथाविधि नदीमें स्नान कर और न्यायानुसार जप करके ॥ ३२ ॥

पापशांतिके लिये विश्वेदेवताओंकी भलीभांति पूजा की। पूजा समाप्त होनेपर आश्रमके अनुरूप बलि देनेके अर्थ देवताओंके लिये वेदियां बनाई; देवतायतन और गणेशजीकी वेदी और विष्णुजीकी वेदीकी प्रतिष्ठा करते हुये फिर राजीवलोचन रामचन्द्रजी उचित फल और मांसद्वारा भूतगणोंकी तृप्ति साधन करके पर्णशालामें प्रवेश करनेका संकल्प करते हुये॥३३॥ देवता लोग जिस प्रकार सुधर्मा सभामें प्रवेश करते हैं वैसेही सीता रामचन्द्रजी व लक्ष्मण सब मिलकर उस वृक्षके पत्तोंसे छाई हुई उचित स्थानमें प्रतिष्ठा कीहुई मनोहर कुटीमें वास करनेके लिये प्रवेश करते हुये ॥ ३४ ॥ परम रमणीय चित्रकूट और अनेक प्रकारके पक्षियोंका जहां आश्रम और सुन्दर २ घाट युक्त माल्यवती नदीके तीरमें वास करके रामचन्द्रजी परम प्रमुदित होते हुये वरन् उनको अयोध्याके बिछुडनेका जो दुःख था वहभी भूलगये ॥ ३५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयोध्याकांडे भाषायां षट्पंचाशः सर्गः ॥ ५६ ॥ अब इधरका वृत्तांत सुनिये कि, जब

पापसंशमनंरामश्चकारबलिमुत्तमम्॥वेदिस्थलविधानानिचैत्यान्यायतनानिच॥आश्रमस्यानुरूपाणिस्थापयामासराघवः॥३३॥(वन्यैर्माल्यैः फलैर्मूलैः पक्वैर्मांसैर्यथाविधि॥अद्भिर्जपैश्चवेदोक्तैर्दर्भैश्चससमित्कुशैः॥१॥ तौतर्पयित्वाभूतानिराघवौसहसीतया॥तदाविविशतुःशालांसुशुभां शुभलक्षणौ॥२॥)तांवृक्षपर्णच्छदनांमनोज्ञांयथाप्रदेशंसुकृतांनिवाताम्॥ वासायसर्वेविविशुःसमेताःसभांयथादेवगणाः सुधर्माम्॥३४॥ (अनेकनानामृगपक्षिसंकुलेविचित्रपुष्पस्तबकैर्द्रुमैर्युते॥ मनोरमेव्यालमृगानुनादितेतदाविजह्रुः सुसुखंजितेन्द्रियाः॥१॥) सुरम्यमासाद्यतुचित्रकूटं नदींचतांमाल्यवतींसुतीर्थाम्॥ ननंदहृष्टोमृगपक्षिजुष्टांजहौचदुःखंपुरविप्रवासात्॥३५॥इत्यार्षेश्रीमद्रामायणे वाल्मीकीयेआदिकाव्येअयो० षट्पंचाशः सर्गः॥५६॥कथयित्वातुदुःखार्तःसुमंत्रेणचिरंसह॥ रामेदक्षिणकूलस्थेजगामस्वगृहंगुहः॥१॥भरद्वाजाभिगमनंप्रयातेचसभाजनम्॥ आगिरेर्गमनंतेषांतत्रस्थैरभिलक्षितम्॥२॥अनुज्ञातःसुमंत्रोऽथयोजयित्वाहयोत्तमान्॥अयोध्यामवनगरींप्रययौगाढदुर्मनाः॥३॥ सवनानिसुगंधीनिसरितश्चसरांसिच॥पश्यन्यत्तोययौशीघ्रंग्रामाणिनगराणिच॥४॥ततःसायाह्नसमयेद्वितीयेऽहनिसारथिः॥ अयोध्यांसमनुप्राप्यनिरानंदां

रामचन्द्रजी शृंगवेरपुरसे गंगाके दक्षिण तीरपर आये तो गुह बहुतही दुखितः होकर सुमंत्रजीके साथ बातें करते हुये अपने घर चलेगये ॥ १ ॥ वह अपने पुरमें टिका हुआ रामचन्द्रजीका प्रयागको भरद्वाजजीके आश्रममें जाना वहां अतिथि सत्कार लाभ करना और चित्रकूट पर्वतपर जाना इत्यादिक सबही बातोंकी खोज लेने लगा ॥ २ ॥ सुमंत्रजी तीन दिन निषादके यहां रहकर फिर गुहसे बिदा ले रथमें उत्तम घोडे जोतकर अकेले वनमें महाखेद करते हुये अयोध्याको चले ॥ ३ ॥ यह सुमंत्रजी बहुतही थोडेसमयमें सुगन्धि पूर्ण कानन नदी सरोवर और ग्राम व नगर समूह देखते २ शीघ्रतापूर्वक दृढचित्त किये हुये जाने लगे ॥ ४ ॥ इतनी जल्दी चले कि, दूसरे दिन संध्याके समय अयोध्यामें प्रवेशकरकेदेखाकि, अयोध्यापुरी निरानन्द होरही है ॥ ५ ॥

किसीओर कोई चुंकारीतक नहीं भरता ऐसाजानपडाकि सब नगरी सूनी है और निरानन्द इसमें व्याप गया है. यह देख सुमंत्रजी बहुतही शोकसे व्याकुल हुये और बहुत दुःखकरते हुये चिन्ता करने लगे ॥६॥ क्या अयोध्यानगरी गज, अश्व, राजा, प्रजासबहीके सहित रामचन्द्रजीकी शोकाग्निमें भस्म होगई ॥७॥ सुमंत्रजी इसप्रकार चिन्ता करते २ तेज चलनेवाले घोडोंके रथपर बैठे हुए शीघ्रतापूर्वक नगरके फाटक पर पहुँचकर नगरमें प्रवेश करते हुए ॥८॥ जैसेही कि, सुमंत्रजी अयोध्यामें घुसे वैसेही सैकडों हजारों प्रजाके लोग "रामचन्द्र कहां हैं ?" यह कहते२उनकी ओरदौडे ॥९॥ सुमंत्रजीने सबहीको यह उत्तर दियाकि, मैं शृंगवेरपुरमें भागीरथी गंगाजीके किनारे महात्मा धार्मिक रामचन्द्रजीको प्रणामकरके उस जगह छोड और उनकी आज्ञाले लौटा हूं ॥१०॥ जब सबने जानाकि रामचन्द्रजी गंगाजीके पारचलेगये तब सबही आंसू भरकर मुखसे "हाय! धिक्कार है" यह कहकर दीर्घ श्वास लेते हुये "हा राम!" यह कहकर रोने लगे ॥११॥ महामति सुमंत्रजीने जाते२उन

ददर्शह॥५॥ सशून्यामिवनिःशब्दांदृष्ट्वापरमदुर्मनाः ॥ सुमंत्रश्चिंतयामासशोकवेगसमाहतः ॥६॥ कच्चिन्नसगजाश्वासासजनासजनाधिपा ॥ रामसंतापदुःखेनदग्धाशोकाग्निनापुरी ॥७॥ इतिचिंतापरः सूतोवाजिभिःशीघ्रयायिभिः॥नगरद्वारमासाद्यत्वरितःप्रविवेशह॥८॥ सुमंत्रमभि धावंतःशतशोऽथसहस्रशः॥ क्वरामइतिपृच्छंतःसूतमभ्यद्रवन्नराः ॥९॥ तेषांशशंसगंगायामहमापृच्छ्यराघवम् ॥ अनुज्ञातोनिवृत्तोऽस्मिधा र्मिकेणमहात्मना ॥१०॥ तेतीर्णाइतिविज्ञायबाष्पपूर्णमुखानराः ॥ अहोधिगितिनिःश्वस्यहारामेतिविचुक्रुशुः ॥११॥ शुश्रावचवचस्तेषांवृंदं वृंदंचतिष्ठताम् ॥ हताःस्मखलुयेनेहपश्यामइतिराघवम् ॥ १२ ॥ दानयज्ञविवाहेषुसमाजेषुमहत्सुच ॥ नद्रक्ष्यामःपुनर्जातुधार्मिकंराममंतरा ॥१३॥ किंसमर्थंजनस्यास्यकिंप्रियंकिंसुखावहम् ॥ इतिरामेणनगरंपित्रेवपरिपालितम् ॥ १४ ॥ वातायनगतानांचस्त्रीणामन्वंतरापणम् ॥ राममेवाभितप्तानांशुश्रावपरिदेवनाम् ॥ १५ ॥ सराजमार्गमध्येनसुमंत्रःपिहिताननः ॥ यत्रराजादशरथस्तदेवोपययौगृहम् ॥१६॥

वृंद २ लोगोंके सबकेही मुखते यह सुनीकि, हम सबको जब रामचन्द्रजीही नहीं देख पडते तब निश्चयही हम सब विनाशको प्राप्त हुए ॥ १२ ॥ हाय ! हम दान यज्ञ व विवाह आदिक बडे२कार्योंको करनेमें महात्माओंको समाजके मध्यमेंबैठे हुए श्रीरामचन्द्रजीको अब न देखेंगे ॥१३॥ हाय! प्रजाओंको किस प्रकार पालन करनाचाहिये किस प्रकारसे उनका प्रियकार्य होगा किस प्रकारके कार्य करनेसेप्रजा सुखमेंरहेगी ? निरन्तरयही चिन्ताकरके वह महात्माश्रीरामचन्द्रजीकी सबको इस प्रकार पालन करते जिस प्रकारकी, पितापुत्रको पालता पोषता है ॥१४॥ सुमंत्रजी बीच बाजारमें जाते २ रामचन्द्रजीके शोकसे संतापित झरोखोंमें बैठी हुई पुरनारियोंके विलाप करनेकी अनेक प्रकारकी ध्वनि श्रवण करने लगे ॥१५॥ राजमार्गमें इस प्रकारके विलाप सुनते सुनाते सुमंत्रजीने अपना मुख ढक लिया

और जहांपर राजा दशरथजी थे उसी घरमें शीघ्रतासहितगये ॥१६॥ वह जल्दी रथसे उतरकर राजगृहमें प्रवेश करके जनोंकी भीडसे परिपूर्ण सात फाटकोंके पार होगये॥१७॥ कोठे विमानों व धवरहरों व सतखंडोंपर चढी स्त्रिया सुमंत्रजीको रामबिना आये हुये देखकर हाहाकार करने लगीं क्योंकि वहसब पहलेही रामके न देखनेसे दुर्बल हो रही थीं॥१८॥ स्त्रियें विमल बडे२नेत्रोंसे आंसुओंकी धारा छोडतीविचारती थीं कि, क्या करें, अब क्या होगा? यह विचार शिर झुकाये हुए पर स्पर एक दूसरीको देखने लगीं उन सबके देखनेसे यह प्रतीत होताःथा कि, इनसबपर बडा भारी दुःख पडा है ॥१९॥ व महाराज दशरथजीकी स्त्रियोंके रोनाभी प्रत्येक धवरहरेसे धीरे२सुन पडता था क्योंकि, उन लोगोंको मारे दुःखके ऊँचे शब्दसे रोनेकी शक्ति ही नहीं रही थी ॥२०॥ वह सब रोय२कर यह कह रहीं थीं कि, सुमंत्रजी यहांसे गये तो रामचन्द्रजीके साथ थे पर अब रामचन्द्रजीके बिना आगये हैं सो अब यह रोती हुई देवी कौशल्याको क्या जवाब देंगे॥२१॥

सोऽवतीर्यरथाच्छीघ्रंराजवेश्मप्रविश्यच ॥ कक्ष्याःसप्ताभिचक्राममहाजनसमाकुलाः॥१७॥ हर्म्यैर्विमानैःप्रासादैरवेक्ष्याथसमागतम् ॥ हाहाकारकृतानार्योरामादर्शनकर्शिताः ॥ १८ ॥ आयतैर्विमलैर्नेत्रैरश्रुवेगपरिप्लुतैः ॥ अन्योन्यमभिवीक्षंतेव्यक्तमार्ततराःस्त्रियः ॥ १९ ॥ ततोदशरथस्त्रीणांप्रासादेभ्यस्ततस्ततः॥ रामशोकाभितप्तानांमंदंशुश्रावजल्पितम् ॥२०॥ सहरामेणनिर्यातोविनाराममिहागतः ॥ सूतःकिंनामकौसल्यांक्रोशंतींप्रतिवक्ष्यति ॥२१॥ यथाचमन्येदुर्जीवमेवंनसुकरंध्रुवम् ॥ आच्छिद्यपुत्रेनिर्यातेकौसल्यायत्रजीवति ॥ २२ ॥ सत्यरूपंतुतद्वाक्यं राजस्त्रीणांनिशामयन्॥ प्रदीप्तइवशोकेनविवेशसहसागृहम् ॥२३ ॥ सप्रविश्याष्टमींकक्ष्यांराजानंदीनमातुरम् ॥ पुत्रशोकपरिद्यूनपमश्यत्पांडुरेगृहे ॥२४॥ अभिगम्यतमासीनंराजानमभिवाद्यच ॥ सुमंत्रोरामवचनंयथोक्तंप्रत्यवेदयत् ॥२५॥ सतूष्णीमेवतच्छ्रुत्वाराजाविद्रुतमानसः ॥ मूर्च्छितोन्यपतद्भूमौरामशोकाभिपीडितः ॥ २६ ॥

हम कहते हैं कि जैसाकुछ दुःखकेसाथ जीवको जीनेका स्वभाव है वैसा सुखकेसाथ जीनेका नहीं. देखो प्रियतम पुत्र रामचन्द्रजीके वनको चले जानेपरभी कौशल्याजी जीवन धारण कररही हैं. सो इसी दुःखकी आशासे कि, पुत्र फिरभी वनसे लौटेंगे इससे तो तभी प्राण देदेती जो इतना कष्ट न सहनापडता ॥२२॥ राजा दशरथजीकी स्त्रियोंके ऐसे सत्यरूपवचन सुनते सुमंत्रजी शोकाग्निकेद्वारा जलतेहुए राजमंदिरमें प्रवेश करते हुए ॥ २३ ॥ वहां देखा तो आठवें फाटकके भीतर जो चन्द्रमाके समान झलक रहा था उनमें राजा दशरथजी पुत्रशोकमें डूबे हुए दुःखित और महा व्याकुल हुए दीनभावसे पीले पडे हुए शय्यापरपडे हैं॥२४॥ यहदेख और राजाके सामने जाकर सुमंत्रजीने प्रणाम किया फिर रामचन्द्रजीने जो कहाथा वह सबबिना कुछ घटाये बढ़ाये निवेदन कर दिया ॥२५॥ राजाने चुप होकर सबही संदेशा सुना और सुनकर शोकसे व्याकुल होकर उनका हृदय गलगया और उस समय वह रामचन्द्रजीकेशोकसे पीडित हो मूर्च्छित हो पृथ्वीपर गिर पडे॥२६॥

पृथ्वीपति राजाको मूर्च्छित और पृथ्वीपर पडादेखरनवासकी समस्तरानियें बाहें उठाकर रोदनकरने लगीं॥ २७॥ तब कौशल्याजीने सुमित्राजीको संग लेकरदोनोंनेएक२ हाथपकडकर पृथ्वीपर गिरे हुए राजाको उठाया और कहनेलगी॥ २८॥ कि, हे महाभाग ! यह सुमंत्रजी दुष्करकर्म करनेवाले रामके दूतबनके वनमें बसते हुए उनके पाससे आपके निकट आये हैं सो आपकिसकारण इनसे नहीं बोलतेहो॥ २९॥ पुत्रको वनवास देकर अब क्यों लज्जित होतेहो उठिये आपका मंगल होवे अबआपकी प्रतिज्ञातोपूरी होगयी अब शोक छोडिये मंत्रीसे बात तो कीजिये, क्योंकि जो शोक करोगेतो आपको कौन समझावे और सहायता करेगा॥ ३०॥ हे देव ! जिसकाभय करके सुमंत्रजीसे रामके समाचार पूछते हिचकतेहो वह कैकेयी इस समय यहां नहीं है, अतएव निश्शंक हो सुमंत्रसे वृत्तांत पूछिये॥ ३१॥ शोकसे व्याकुल होतीहुई कौशल्याजी

ततोऽन्तःपुरमाविद्धंमूर्च्छितेपृथिवीपतौ ॥ उच्छ्रित्यबाहूचुक्रोशनृपतौपतितेक्षितौ ॥२७॥ सुमित्रयातुसहिताकौसल्यापतितंपतिम् ॥ उत्थापयामासतदावचनंचेदमब्रवीत् ॥ २८ ॥ इमंतस्यमहाभागदूतदुष्करकारिणः॥ वनवासादनुप्राप्तकस्मान्नप्रतिभाषसे ॥२९॥ अद्येममनयंकृत्वाव्यपत्रपसिराघव ॥ उत्तिष्ठसुकृतंतेस्तुशोकेनस्यात्सहायता ॥३०॥ देवयस्याभयाद्रामंनानुपृच्छसिसारथिम् ॥ नेहतिष्ठतिकैकेयीविश्रब्धंप्रतिभाष्यताम् ॥ ३१ ॥ सातथोक्त्वामहाराजंकौसल्याशोकलालसा ॥ धरण्यांनिपपाताशुबाष्पविप्लुतभाषिणी ॥३२॥ विलपंतींतथादृष्ट्वाकौसल्यांपतितांभुवि ॥ पतिचावेक्ष्यताःसर्वाःसमंताद्रुरुदुःस्त्रियः ॥ ३३ ॥ ततस्तमंतःपुरनादमुत्थितंसमीक्ष्यवृद्धास्तरुणाश्चमानवाः ॥ स्त्रियश्चसर्वारुरुदुसमंततःपुरंतदासीत्पुनरेवसंकुलम् ॥ ३४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकांडे सप्तपंचाशः सर्गः ॥५७॥ प्रत्याश्वस्तोयदाराजामोहात्प्रत्यागतस्मृतिः ॥ तदाजुहावतंसूतंरामवृत्तांतकारणात् ॥१॥ तदासूतोमहाराजंकृतांजलिरुपस्थितः ॥ राममेवानुशोचंतंदुःखशोकसमन्वितम् ॥२॥ वृद्धंपरमसंतप्तंनवग्रहमिवद्विपम् ॥ विनिःश्वसंतंध्यायंतमस्वस्थमिवकुंजरम् ॥ ३ ॥

गद्गद वचन महाराज दशरथजीसे करती हुई पृथ्वीपर मूर्च्छित हो गिर पडीं ॥ ३२ ॥ कौशल्याजी तो विलाप करते२पृथ्वीपर गिरपडीं थीं तब अपने पति राजा दशरथको मूर्च्छित देखकर और सब रानियें भी चारों ओरसे रोदनकरने लगीं ॥३३॥ उन सबके उस रोनेके शब्दसे वहांके वृद्ध युवा पुरुष और सब दूसरी स्त्रियेंभी रुदन करने लगीं। उस समय उस रनवासमें व पुरमें फिर रोनेका शब्द फैल गया ॥३४॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा०आदि० अयोध्याकांडे भाषायां सप्तपञ्चाशःसर्गः ॥५७॥ अनन्तर राजाकी मूर्च्छा जागी, मोह गया और याद आई तब रामचन्द्रका वृत्तांत जाननेके लिये उन्होंने सारथीको बुलाया ॥१॥ सुमंत्रजी हाथ जोड़े हुये दुःख शोकसे गिरे दुःखित रामचन्द्रको शोचते हुये महाराज दशरथजीके पासआये ॥२॥ वहां आकर देखा कि, महाराजदशरथजी बहुतसन्तापित होकर नये पकडे

हुये हाथीके समान लम्बे२श्वास ले रहे हैं और उनका मनभी व्याकुल हाथीकी नाईं चिन्तामें डूब रहा है,ऐसे राजा दशरथजी वृद्ध होनेके कारण और भी व्याकुल थे ॥३॥ सुमंत्रकी देहमें धूल लगी हुई मुखपर आंसू बहते हुये और जिनका आकार बहुतहो व्याकुल जानपडता था सो उनसे राजा दशरथजी अति कातर वचन बोले ॥४॥ हे सुमन्त्र ! वह बहुतहीसुख भोगनेके लायक धर्मात्मा रामचन्द्रजी इस समय पेडकी छायामें कहां बैठे होंगे ? और भोजन क्या करेंगे ॥५॥ हे सूत ! रामचन्द्रने कभी दुःखका मुख नहीं देखा है परन्तु इस समय बडे दुःखमें पडे हैं वहां बनमें लेटनेके योग्य शाय्या नहीं है, अतएव राजाकेपुत्र होकर किस प्रकारसे अनाथके समान वह पृथ्वीपर लेटेंगे ॥६॥जिनके कहीं जानेपर पैदल रथ और हाथी साथ२चला करते थे वह हमारे राम किस प्रकारसे जनशून्य वनमें रहेंगे ॥७॥ जिस वनमें अजगर और सिंहव्याघ्रादिहत्यारे जीव और काले२सांप सदा घूमाकरते और रहते हैं वहां अति सुकुमार राम और लक्ष्मण सीताके

राजातुरजसासूतंध्वस्तांगंसमुपस्थितम् ॥ अश्रुपूर्णमुखंदीनमुवाचपरमार्तवत् ॥४॥ क्वनुवत्स्यतिधर्मात्मावृक्षमूलमुपाश्रितः॥ सोऽत्यंतसुखितःसूतकिमशिष्यतिराघवः ॥५॥ दुःखस्यानुचितोदुःखंसुमंत्रशयनोचितः॥भूमिपालात्मजोभूमौशेतेकथमनाथवत् ॥६॥ यंयांतमनुयांतिस्म पदातिरथकुंजराः ॥ सवत्स्यतिकथंरामोविजनंधनमाश्रितः ॥७॥ व्यालैर्मृगैराचरितंकृष्णसर्पनिषेवितम् ॥ कथंकुमारौवैदेह्यासार्धंवनपमुपाश्रितौ ॥८॥ सुकुमार्यातपस्विन्यासुमंत्रसहसीतया ॥ राजपुत्रौकथंपादैरवरुह्यरथाद्गतौ ॥ ९ ॥ सिद्धार्थःखलुसूतत्वंयेनदृष्टौममात्मजौ ॥ वनांतंप्रविशंतौतावश्विनाविवमंदरम् ॥ १० ॥ किमुवाचवचोरामःकिमुवाचचलक्ष्मणः ॥ सुमंत्रवनमासाद्यकिमुवाचचमैथिली ॥११॥ आसितंशयितंभुक्तंसूतरामस्यकीर्तय ॥ जीविष्याम्ययमेतेनययातिरिवसाधुषु ॥ १२ ॥

साथ किस प्रकार वास करेंगे ? ॥८॥ हे हे सुमंत्र!वह राजपुत्र होकर तपस्विनी सुकुमारी जानकीके सहित किस प्रकार रथ छोडकर वनको पैदल चले गये ॥९॥ हे सूत ! तुमही सफल मनोरथ हो क्योंकि तुमने उनमेरे वारे रामलक्ष्मणको मन्दराचल पर्वतपर चढते हुये अश्विनी कुमारोंके समान वनमें प्रवेश करते हुये देखा ॥ १० ॥ हे सुमन्त्र ! वनमें जाकर रामचन्द्रजीने क्या कहा? और लक्ष्मण क्या बोले और जानकीने क्या कहा सो मुझसे कहो ॥११॥हे सूत ! तुमरामचन्द्रजीका उपवेशन और भोजन शयनका बखान मुझसे वर्णन करो जिसकेसुननेसेमैं साधुसमागमके द्वारा ययातिकि नाईं कुछेक जीवन धारण कर सकूंगा ॥ १२ ॥

१ पुनि २ पूछत मंत्रिहि राऊ ।। प्रीतम सुवन संदेश सुनाऊ ॥२॥ राजा ययाति स्वर्गमें पहुँचकर अपना पुण्यकहनेलगेसमाप्त करनेपर इन्द्रने कहा जिह्वामें अग्नि देवता वास करते हैं तुम्हारा पुण्य अपने मुँहसे कहनेसे नष्ट हो गया अब नीचेगिरोययाति, बोलेयदि हमें गिराते होतो जहां साधु समागमहोयवहां गिराओ इन्द्रने तथास्तु कह साधुसमागममें गिरायासन्तोंने राजाकी यह दशा देख अपना पुण्य दे फिर स्वर्गमें पहुँचा दिया ।।

जब इस प्रकार राजाने आज्ञा दी तब सुमन्त्रजी गद्गदकण्ठसे और लडखडाती वाणीसे निवेदन करने लगे ॥१३॥ हे महाराज ! धर्मके पालन करनेवाले रघुनन्दन श्रीरामचन्द्रजीने शिर नवाकर आपको प्रणाम किया है और यह कहा है ॥ १४ ॥ कि हे सूत ! तुम मेरी ओरसे मेरा नाम लेकर प्रथमही वंदन करनेके योग्य सब कुछ जाननेवाले पिताजीके चरणोंमें शिरझुकाकर प्रणाम करना ॥१५॥ हे सुमंत्रजी ! तुम हमारी ओरसे सब अंतःपुरवासियोंसे कुशल पूछना फिर विशेष करके उनसे हमारे आरोग्यका समाचार कहना और फिर जिससे जैसा उचितहो प्रणामादि कहना ॥१६॥ माता कौशल्याजीसे हमारी कुशल और प्रणाम कहना और फिर धर्मके विषयमें पूछकर फिर कहना॥१७॥ हे देवि ! आप धर्मानुष्ठानपूर्वक यथासमयमें अग्निहोत्रादि कर कराय देवताओंके समान राजादशरथजीके

इतिसूतोनरेंद्रेणचोदितःसज्जमानया ॥ उवाचवाचाराजानंसबाष्पपरिबद्धया ॥१३॥ अब्रवीन्मेमहाराजधर्ममेवानुपालयन् ॥ अंजलिंराघवः कृत्वाशिरसाभिप्रणम्यच॥१४॥सूतमद्वचनात्तस्यतातस्यविदितात्मनः ॥ शिरसावंदनीयस्यवंद्यौपादौमहात्मनः ॥१५॥ सर्वमंतःपुरंवाच्यंसूतमद्वचनात्त्वया ॥ आरोग्यमविशेषेणयथार्हंमभिवादनम्॥१६॥माताचममकौसल्याकुशलंचाभिवादनम् ॥ अप्रमादंचवक्तव्याब्रूयाश्चैनामिदं वचः ॥ १७ ॥ धर्मनित्या यथाकालमग्न्यागारपराभव ॥ देविदेवस्यपादौचदेववत्परिपालय ॥ १८ ॥ अभिमानंचमानंचत्यक्त्वावर्तस्वमातृषु अनुराजानमार्यांचकैकेयीमंबकारय ॥१९॥कुमारंभरतेवृत्तिर्वर्तितव्याचराजवत् ॥ अप्यज्येष्ठाहिराजानोराजधर्ममनुस्मर ॥२०॥ भरतःकुशलं वाच्योवाच्योमद्वचनेनच ॥ सर्वास्वेवयथान्यायंवृत्तिंवर्तस्वमातृषु ॥२१॥ वक्तव्यश्चमहाबाहुरिक्ष्वाकुकुलनंदनः ॥ पितरंयौवराज्यस्थोराज्यस्थमनुपालय ॥ २२ ॥ अतिक्रांतवयाराजामास्मैनंव्यपरोरुधः ॥ कुमारराज्येजीवस्वतस्यैवाज्ञाप्रवर्तनात् ॥ २३ ॥

चरणोंकी सेवा कियाकरना ॥१८॥ और मानअभिमान छोडकरकेसबपत्नियोंके साथ भी अच्छा नीका व्यवहार किया करना । राजा कैकेयीके कहने में हैं अत एव आप भी कैकेयीको मानें ॥१९॥ और राजधर्म का स्मरण करके यद्यपि भरतजी आपके लडके हैं तोभी उनके प्रति राजाके समान व्यवहार करना क्योंकि बडा न होनेसे भी जो राजा होता है वह सबही तरहसे पूजनीय है ॥२०॥ हे सुमंत्र ! तुम भरतजीको हमारी तरफसे कुशल जनाकर फिर उनसे कहना कि, तुम सब जननियोंके प्रति यथा धर्मानुसार व्यवहार करना ॥ २१ ॥ और तुम महाबाहु इक्ष्वाकुकुल नंदन भरतजीसे यहभी कहना कि, तुम इस समय युवराज हुये हो अतएव सब भांति महाराजकी सेवा और सहायता करना ॥ २२ ॥ और राजा राज्य करते२ बूढे होगये हैं अतएव उनको राज्यभ्रष्ट न करना बरन् जो

कुछ वह कहें वह करके उनकी आज्ञानुसार चलना ॥२३॥ उन्होंने फिर आंखोंमें आंसू भरकर मुझसे भरतजीको यह कहनेको कहा कि, तुम "अपनीही माताके समान उन पुत्रवत्सला माता कौसल्याजीको समझना" ॥२४॥ महाबाहु महायशस्वी पद्मपलाशलोचन रामचन्द्रजीमुझसे यहवार्ता कहते२अखंड धार नेत्रसे जल वर्षाने लगे ॥२५॥ तब लक्ष्मणजीने बहुतही क्रोधित होकर और लंबा श्वास भरकर कहा कि "राजपुत्र होकर हम किस अपराधसे वनको भेजे गये ॥२६॥ राजाने कैकेयीके ओछे वचन मान प्रतिज्ञा कर कार्य अकार्यका कुछ विचार नहीं किया । किसीका क्या बिगड़ा दुःखमें तो सब भांति हमही पडे ॥ २७ ॥ यदि कैकेयीके लोभकेही कारण हों, या वरदान मांगनेहीके सबबसे हो किसीभी प्रकारसे क्यों न हुआ हो रामचन्द्रजीको वनमें भेजनेसे बहुतही अन्याय हुआ है ॥२८॥ यदि ईश्वरके करानेसे उन्होंने ऐसा किया तोभी श्रीरामचन्द्रजीके परित्यागमें ईश्वरकृतिकाभी हेतु विदित नहीं होता, क्योंकि इन रामचन्द्रजी में ऐसा

अब्रवीच्चापिमांभूयोभृशमश्रूणिवर्तयन् ॥ मातेवममभातातेद्रष्टव्यापुत्रगर्धिनी ॥ २४ ॥ इत्येवंमांमहाबाहुर्ब्रुवन्नेवमहायशाः ॥रामोराजीवपत्राक्षोभृशमश्रूण्यवर्तयत्॥२५॥लक्ष्मणस्तुसुसंक्रुद्धोनिःश्वसन्वाक्यमब्रवीत् ॥ केनायमपराधेनराजपुत्रोविवासितः॥२६॥राज्ञातुखलुकैकेय्यालघुचाश्रुत्यशासनम्॥कृतंकार्यमकार्यंवावयंयेनाभिपीडिताः ॥२७॥ यदिप्रव्राजितोरामोलोभकारणकारितम्॥वरदाननिमित्तंवासर्वथादुष्कृतंकृतम्॥२८॥इदंतावद्यथाकाममीश्वरस्यकृतेकृतम् ॥ रामस्यतुपरित्यागेनहेतुमुपलक्षये ॥२९॥ असमीक्ष्यसमारब्धंविरुद्धंबुद्धिलाघवात् ॥ जनयिष्यतिसंक्रोशंराघवस्यविवासनम् ॥३०॥ अहंतावन्महाराजेपितृत्वंनोपलक्षये ॥ भ्राताभर्ताचबंधुश्चपिताचममराघवः ॥ ३१ ॥ सर्वलोकप्रियंत्यक्त्वासर्वलोकहितेरतम्॥सर्वलोकोनुरज्येतकथंचानेनकर्मणा ॥३२॥ सर्वप्रजाभिरामंहिरामंप्रव्राज्यधार्मिकम् ॥ सर्वलोकविरोधेनकथंराजाभविष्यति ॥ ३३ ॥ जानकीतुमहाराजनिःश्वसंतीतपस्विनी ॥ भूतोपहतचित्तेवविष्ठितताविस्मृतास्थिता ॥ ३४ ॥

कोई दोष नहीं जो इन्हें वनको भेजा जाय ॥२९॥ अतएव केवल बुद्धिकी अल्पताके हेतु कर्त्तव्य और अकर्त्तव्यको न विचार करके जो रामचन्द्रजी को वनमें भेजही दिया हैतो इस वनमें भेजनेसे लोक परलोक दोनोंमें राजाकी निन्दा होगी ॥३०॥ हम कुछ पिता माता अदि के वियोग सहकर अयोध्या जानेके लिये ऐसा नहीं कहते; क्योंकि अब तो रामचन्द्रजी ही हमारे स्वामी, भ्राता, बन्धु और पिता हैं ॥३१॥ सब लोगोंके प्यारे व सबही के हित करने में रत जब ऐसे श्रीरामचन्द्रजीको ही राजाने वनमें भेज दिया तब इस कर्मसे कैसे सब लोग प्रसन्न होंगे ॥३२॥ सर्व प्रजाको आराम देनेवाले बडे धर्म वाले श्रीरामचन्द्र जी को वनवाससे सब लोकसे विरुद्ध कर्मकर राजा दशरथजी किस प्रकारसे आपही राजा होंगे" ॥३३॥ हे महाराज! जिस प्रकार किसीका मन भूतके चढनेसेघबडा जाताहै

और वह प्राणी सब चौकडी भूल जाता है, तपस्विनी जानकीजी भी इसी भांति बैठी रहकर केवल ऊँचे श्वास लेने लगीं ॥३४॥ राजपुत्री जानकीजीने इससे पहले कभी कोई ऐसी विपत्ति नहीं देखी थी॥ इस समय वह ऐसी भारी विपत्ति पडी देखकर केवल रोदन करने लगीं और मुझसे कुछ न बोलीं ॥३५॥ अनन्तर मुझे अयोध्याको लौटते देख बहुत सूखे हुये मुखसे स्वामी रामचन्द्रजी की ओर देखकर एकाएक रोने लगीं ॥३६॥ हे राजन्! रामचन्द्रजी भी वैसेही रोते हुये और हाथ जोडे हुये लक्ष्मणजी जिनको हथोंसे थाम रहेथे, जबतक मेरे साथ बातें करते रहे निरपराधा जनक दुलारी भी तबतक वैसेही रोती हुई आपके रथकी ओर तथा मेरी ओर देखती रहीं॥३७॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मी० आदि० अयो० भाषायामष्टपंचाशः सर्गः॥५८॥ हे महाराज! मैं वहांसे लौटा तो सही परन्तु रामचन्द्रजी को वन जाते देखकर रथके घोडे मार्गमें आकर आंसू बहाने लगे और किसी तरह उन्होंने उस समय रथको लेचलना नहीं चाहा॥१॥ अब बहुत कहांतक कहें? मैं राम लक्ष्मण

अदृष्टपूर्वव्यसनाराजपुत्रीयशस्विनी॥तेनदुःखेनरुदतीनैवमांकिंचिदब्रवीत्॥३५॥उद्वीक्षमाणाभर्तारंमुखेनपरिशुष्यता॥मुमोचसहसाबाष्पंप्रयांतमुपवीक्ष्यसा॥३६॥ तथैवरामोऽश्रुमुखः कृतांजलिःस्थितोऽब्रवील्लक्ष्मणबाहुपालितः॥तथैवसीतारुदतीतपस्विनीनिरीक्षतेराजरथंतथैवमाम्॥॥३७॥ इ० श्रीम० वा० आ० अ० अष्टपंचाशः सर्गः॥ ५८॥ ममत्वश्वानिवृत्तस्यनप्रावर्तंतवर्त्मनि॥ उष्णमश्रुविमुंचंतोरामेसंप्रस्थितेवनम्॥१॥ उभाभ्यांराजपुत्राभ्यामथकृत्वाहमंजलिम्॥ प्रस्थितोरथमास्थायतद्दुःखमपिधारयन्॥२॥ गुहेनसार्धंतत्रैवस्थितोऽस्मिदिवसान्बहून्॥ आशयायदिमांरामःपुनःशब्दापयेदिति॥३॥विषयेतेमहाराजमहाव्यसनकर्शिताः॥ अपिवृक्षाःपरिम्लानाःसपुष्पांकुरकोरकाः॥ ४॥ उपतप्तोदकानद्यःपल्वलानिसरांसिच॥ परिशुष्कपलाशानिवनान्युपवनानिच॥५॥ नचसर्पंतिसत्त्वानिव्यालानप्रसरंतिच॥ रामशोकाभिभूतंतंनिष्कूजमिवतद्वनम्॥ ६॥

दोनोंके निकटसे हाथ जोडकर बिदा लेकर और उनके वियोगका दुःख किसी रीतिसे हृदय में धारण कर रथपर चढ इधर को चला ॥२॥ कदाचित् रामचन्द्रजी फिर बुलाकर मुझे अपने साथ ले चलें इस आशासे मैं गुहके सहित कई दिनतक उसके घर में रहा॥३॥ बस वहांसे मैं भी सीधा इधरको चला आताहूं! आते आते मार्ग में देखा कि; आपके राज्यमें सब वृक्ष भी रामचन्द्रजी पर यह विपत्ति पडी देख फूल अंकुर और कलियोंके सहित सूखे और बिल्कुल मुरझाये हुयेसे होगये हैं उसमें अब पहलीसी शोभा और सुकुमारता नहीं है ॥४॥ नदी ताल और छोटी तलैयोंका जल भी सूखनेपर आगया और वनबाग के सब पेडोंके पत्ते बनाय सूखही जानेपर होगये हैं ॥५॥ सब प्राणियों की चलने फिरने की शक्ति जाती रही; वह अब खाने पीनेकी सामग्रीको खोजनेके लिये किसी ओर को गमन नहीं करते; सर्पादिक

हत्यारे जीवभी नहीं चलते फिरते इसप्रकार प्राणिमात्रही रामचंद्रजीके शोकमें चुपचापबैठे हैं, सब वन एक वाणीसे निस्तब्ध और शब्दरहित होगया है॥६॥ सब नदियोंका जल मैला होगया और उनके बीचमें सडेगले कमलफूलोंके पत्ते बहा करते हैं,और उनमेंके सब कमलसंतप्तहोरहे हैं, सब सरोवर सुखाय गये,और उन सबके कमलभी सूखगये। अब तालावोंमें जलचर पक्षी जलमुर्गा इत्यादिक और मछलियां दृष्टि नहीं आतीं ॥ ७ ॥ क्या तो जलके पैदा होनेवाले फूल कमल बबूला, कह्लार आदि और क्या पृथ्वीपर होनेवाले फूल निवारी,गुलाब,चम्पा, चमेली आदिके फूलोंकी मालामें अब पहलेकी भाँति सुगन्धि नहीं रही और ऐसेही सब प्रकारके फल होगये हैं ॥८॥ हे नरश्रेष्ठ! आयोध्यामें जितनी फुलवारियाँथीं सबही शून्य और पक्षियोंकरकेहीन होगई और सबही बागबगीचे चित्तको प्रसन्न करनेवाले नहीं दीख पड़ते ॥९॥ जब मैं अयोध्यामें आया तो किसीने मुझसे बात चीत नहीं की सबही रामचन्द्रजीको न देखकर वारंवार ऊर्ध्व श्वासलेने लगे

लीनपुष्करपत्राश्चनद्यश्चकलुषोदकाः॥ संतप्तपद्माः पद्मिन्योलीनमीनविहंगमाः ॥७॥ जलजानिचपुष्पाणिमाल्यानिस्थलजानिच॥ नातिभां त्यल्पगंधीनिफलानिचयथापुरम् ॥८॥ अत्रोद्यानानिशून्यानिप्रलीनविहगानिच ॥नचाभिरामानारामान्पश्यामिमनुजर्षभ ॥९॥ प्रविशंतम योध्यायांनकश्चिदभिनंदति॥ नरारामम‌पश्यन्तोनिःश्वसंतिमुहुर्मुहुः ॥१०॥ देवराजरथंदृष्ट्वाविनाराममिहागतम् ॥ दूराद्श्रुमुखःसर्वोराजमा र्गेगतोजनः ॥ ११ ॥ हर्म्यैर्विमानैःप्रासादैरवेक्ष्यरथमागतम् ॥ हाहाकारकृतानार्योरामादर्शनकर्शिताः ॥ १२ ॥ आयतैर्विमलैर्नेत्रैरश्रुवे गपरिप्लुतैः ॥ अन्योन्यमभिवीक्षंतेव्यक्तमार्ततराःस्त्रियः ॥ १३ ॥ नामित्राणांनमित्राणामुदासीनजनस्यच ॥अहमार्ततयाकंचिद्विशेषंनोप लक्षये ॥ १४ ॥ अप्रहृष्टमनुष्याचदीननागतुरंगमा ॥ आर्तस्वरपरिम्लानाविनिःश्वसितनिःस्वना ॥ १५ ॥

॥१०॥ हे देव ! राजमार्गमें जो सब लोग गमनागमन कर रहे थे वह सबरामचन्द्रजीको राजमार्गमें न देखकरशोकमें भरकर रोने लगे ॥११॥ रामचंद्रजीके दर्शन की लालसा लगाये और उनके विरहमें जो हाहाकार कर रहीं वह सब स्त्रियां धवरहरे अटारियें और सतखंडोंके ऊपर बैठी हुई रामचन्द्रजीके विना रथ आता देख कर हाहाकार करने लगीं ॥१२॥ और वह सब बहुतही व्याकुल होकर परस्पर एक दूसरीको देखेन लगीं उस समय उनके विशालविमलनेत्रोंसे बहुतआंसूनिक लने लगे, बस उनका यह विलाप देखकर स्पष्ट प्रगट होता था कि, स्त्रियां बहुत ही कातर होरही हैं॥१३॥ इस प्रकार प्रत्येक जनके व्याकुल होनेसे कौन शत्रु है कौन मित्र है और कौन उदासीन है व्याकुलतासे कुछभी कहीं समझमें नहीं आसकता ॥१४॥ अधिक कहांतक कहें अयोध्यापुरीकेमनुष्यमात्रही हर्षशून्य हैं, आनन्दसे रहित और बहुतही मलिन होरहे हैं वह सबही आर्त्तनाद करके जल्दी २ लंबे२श्वास लेते हैं और हाथी घोडेभीसब अतिशय कातरहो रहे हैं ॥ १५ ॥

इस प्रकार रामचन्द्रजीको वनवास देनेसे सबही कोई आतुर हो रहे हैं यह सब देखसुनकर ऐसा बोध होता है मानो कौशल्याजीकी नाईं अयोध्याजीको भी पुत्रकावियोग हुआ है ॥ १६ ॥ राजादशरथजी सुमंत्रके ऐसे दीनवचन सुन गद्गद वाणीसे दोनोंकी नाईं उनसे बोले ॥ १७ ॥ कि हमने पापजन्म और पापका मनोरथकरनेवालीकैकेयीके कहने और उसकेकरानेसे सलाहदेनेमें चतुर वृद्ध मंत्रियोंके साथकर्त्तव्य विचार न करकेरामको वन भेजदिया ॥ १८ ॥ एक साधारण स्त्रीके मोहमें पड़कर न भाईकी संमति ली न मंत्रियोंसे परामर्शकिया न वेदके जाननेवालोंसे व्यवस्था ली, न किसीसेकुछ कहा सुना बस सहसा इस दुष्कर कर्मकोकरडाला ॥ १९ ॥ हे सूत ! निश्चयही बोध होता है एकमात्र होनीके वश हो रही इक्ष्वाकुवंशको उजाडनेके लिये यह दारुण कष्टउपस्थित हुआ है ॥२०॥ हे सुमंत्र ! जो कुछ हुआ सो हुआ पर जो हमने कभी तुम्हारा कुछ उपकार किया हो तो तुमहमें शीघ्रहीरामकेपासलेचलोक्योंकि हमारे

निरानंदामहाराजरामप्रव्राजनातुरा॥कौसल्यापुत्रहीनेवअयोध्याप्रतिभातिमे ॥१६॥ सूतस्यवचनंश्रुत्वावाचापरमदीनया॥ बाष्पोपहतयासूतमिदंवचनमब्रवीत् ॥ १७ ॥ कैकेय्याविनियुक्तेनपापाभिजनभावया॥मयानमंत्रकुशलैर्वृद्धैःसहसमर्थितम् ॥१८॥ नसुहृद्भिर्नचामात्यैर्मंत्रयित्वासनैगमैः ॥ मयायमर्थः संमोहात्स्त्रीहेतोःसहसाकृतः॥१९॥भवितव्यतयानूनमिदंवाव्यसनंमहत् ॥ कुलस्यास्यविनाशायप्राप्तंसूतयदृच्छया॥ २०॥ सूतयद्यस्तितेकिंचिन्मयापिसुकृतंकृतम्॥त्वंप्रापयाशुमांरामंप्राणाःसंत्वरयंतिमाम् ॥२१॥ यद्यद्यापिममैवाज्ञानिवर्तयतुराघवम् ॥ नशक्ष्यामिविनारामंमुहूर्तमपिजीवितुम्॥२२॥अथवापिमहाबाहुर्गतोदूरंभविष्यति॥मामेवरथमारोप्यशीघ्ररामायदर्शय॥२३॥ वृत्तदंष्ट्रोमहेष्वासःक्वासौलक्ष्मणपूर्वजः ॥यदिजीवामिसाध्वेनंपश्येयंसीतयासह ॥२४॥ अतोनुकिंदुःखतरयोऽहमिक्ष्वाकुनंदनम् ॥ इमामवस्थामापन्नोनेहपश्यामिराघवम् ॥ २५ ॥ हारामरामानुजहाहावैदेहितपस्विनि ॥ नमांजानीतदुःखेनम्रियमाणमनाथवत् ॥ २६ ॥

प्राण अब देहसे चला चाहते हैं ॥२१॥ रामचन्द्रजीकेबिनाहम एकमुहूर्तभरको भी नहीं जीसकेंगे हमारेप्राणरक्षा करनेका अबभी कुछप्रयोजनहोतो रामचन्द्रजीको यहां लौटालाओ ॥२२॥ अथवा यदि महाबाहु रामचन्द्रजी दूरनिकलगये हों और उनके लौटालानेकी आशानहोतोहमें शीघ्ररथपरचढाकर रामके दर्शनकराओ ॥ २३ ॥ अहा ! लक्ष्मणके अग्रज महाधनुर्द्धर नयनानन्ददायक कुन्दपुष्पसम दांतवाले वह हमारे प्यारे रामचन्द्रजी कहां हैं ? यदि देहमें प्राणरहें तो सीतासहित प्यारे पुत्रको फिर देखूंगा ॥२४॥ इससे अधिक और दुःखका विषय क्या होगा कि, मैं इक्ष्वाकुकुलनंदन रामचन्द्रजीको इस मरण अवस्थामें नहीं देखसकता॥२५॥ हा राम ! हा लक्ष्मण ! हा निरपराधा जानकी ! मैं जो अनाथके समान अतिकष्टसे इस समय प्राण त्याग करता हूं सो इसकी तुम्हें कुछभी खबर नहीं है ॥२६॥

अनन्तर राजादशरथ दुःखसे चेतनारहित और अपार शोक सागरमें डूबकर कौशल्याजीसे बोले हे देवि ! ॥२७॥ जिन रामचन्द्रजीकाशोक तो महास्रोत है और सीताका जो विरह है वही उसकी अंतसीमा है, दीर्घश्वास जो हैं यही तरंगें उठते हुये भँवर हैं, नेत्रोंका जो जलहै वहीवेग है। २८॥हाथविक्षेप जोहै वही मत्स्य हैं रोना जोहै वही गर्जना है शिरके बाल सैवाल हैं, कैकेयी वडवानलहै ॥२९॥और मेरी आँखोंका जल गंभीरताकी उत्पत्ति करनेवाला है, और पीरउपजानेवाले मंथराके वचन महाग्राहके समान हैं, और जिस करके रामचन्द्रजी वनको भेजे गये हैं उस निठुर कैकेयीके वर दोनों किनारे हैं ॥३०॥ सोहे कौसल्या ! इस प्रकारके महा अथाह शोकसागरमें हम रामचन्द्रजीकेबिना डूबते हैं, इस जन्ममें तौ हमइस शोक पारावारको उतर नहीं सकते, इसमें कुछभी संशय नहीं है ॥३१॥ मैं जो आज प्राण प्यारे रामको लक्ष्मणके सहित देखना चाहता हूं और तौ भी यह देखनेको नहीं मिलते। भला यह हमारे महापातकोंका फल नहीं है तो क्या है? इस प्रकार विलाप

सतेनराजादुःखेनभृशमर्पितचेतनः॥अवगाढःसुदुष्पारंशोकसागरमब्रवीत् ॥२७॥ रामशोकमहावेगःसीताविरहपारगः॥श्वसितोर्मिमहावर्तोबा ष्पवेगजलाविलः ॥ २८ ॥ बाहुविक्षेपमीनोऽसौविक्रंदितमहास्वनः ॥ प्रकीर्णकेशशवालःकैकेयीवडवामुखः ॥२९॥ ममाश्रुवेगप्रभवःकुब्जा वाक्यमहाग्रहः॥वरवेलोनृशंसायारामप्रव्राजनायतः॥३०यस्मिन्बतानिमग्नोऽहंकौसल्येराघवंविना॥ दुस्तरोजीवतादेविमयायशोकसागरः३१॥ अशोभनंयोऽहमिहाद्यराघवंदिदृक्षमाणोनलभेसलक्ष्मणम्॥इतीवराजाविलपन्महायशाःपपाततूर्णंशयनेसमूर्च्छितः॥३२इतिविलपतिपार्थिवेप्र नष्टे करुणतरंद्विगुणंचरामहेतोः॥वचनमनुनिशम्यतस्यदेवीभयमगमत्पुनरेवराममाता ॥३३॥ इत्यार्षे श्रीम०वा०आ०अ०एकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥ ततोभूतोपसृष्टेववेपमानापुनःपुनः ॥ धरण्यांगतसत्त्वेवकौसल्यासूतमब्रवीत् ॥ १ ॥ नयमांयत्रकाकुत्स्थःसीतायत्रचलक्ष्मणः ॥ तान्विनाक्षणमप्यद्यजीवितुंनोत्सहेह्यहम् ॥२॥ निवर्तयरथंशीघ्रंदंडकान्नयमामपि॥ अथतान्नानुगच्छामिगमिष्यामियमक्षयम् ॥ ३ ॥

करते २ परम यशस्वी महाराज दशरथजी तत्कालही मूर्च्छित हो शय्यापर गिर पडे॥३२॥ रामचन्द्रजीके लिये अतिमात्र करुणा स्वरसे विलाप करते २ मूर्च्छित होगये महारानी कौशल्याजीउनका यहविलापसुनकर स्वामीके वियोग दुःखकी शंकासे कि, कहीं राजा प्राणोंको न त्याग करदें इसकारण दूनाभयपाती हुई ॥३३॥ इत्यार्षे० श्रीम० वा० आदि० अयोध्याकांडे भाषायामेकोनषष्टितमः सर्गः ॥५९॥ उस समय कौशल्या भूत लगे मनुष्यकी नाईं वारंवार थरथराय व स्वप्न जागे हुयेके समान धरतीमें गिरती पडती हुई सुमंत्रजीसे बोलीं ॥१॥ जहांपर रामचंद्र हैं जिस स्थानपर लक्ष्मण हैं और जहां सीता है सुमंत्र तुमहमें वहां लेचलो, हम आज उनके बिना क्षणमात्रभी नहीं जी सकेंगी ॥२॥ तुम जल्दी रथ लौटाओ और हमें वनको लेचलो अथवा दूर चले जानेसे वह हमें न मिल सकें तो हम यम

राजके यहां चली जायँगी ॥३॥ तब सुमंत्रजी हाथ जोडकर गद्गद वाणीसे देवी कौशल्याजीको समझाते बुझाते यह बोले ॥४॥ हे देवि! अब आप शोक मोह और दुःखसे उत्पन्न हुये सम्भ्रमका त्यागकर दीजिये, क्योंकि रामचन्द्रजी बडे सुखसे वनमें वसेंगे ॥५॥ और लक्ष्मणजी अति धार्मिक और इन्द्रियोंको अपने वशमें रखनेवाले हैं, वह रामचन्द्रजीके चरणोंकी सेवा करके अपना परलोकबना रहे हैं॥६॥ व श्रीरामचन्द्रजीमें चित्त लगाये सीताजीभी उनके साथ विजन वनमें घरके समान निःशक और आनन्द सहित वास करेंगी॥७॥ हमने उनमें सूक्ष्मतर कुछभी दीनता नहीं देखी, अतएव मुझको सहजही प्रतीत होता है कि सीताजी वनमें रहनेके योग्यही हैं ॥ ८ ॥ जिस प्रकार सीताजी अयोध्याजीके बाग बगीचोंमें जाय विहार करती, थीं सो तिसी भांति सब निर्जन वनोंमेंभी वह वैसेही आनन्द सहितविहार करती हैं ॥९॥ वह पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान मुखवाली सीताजी बालकके समान दुःखको कुछ न समझ निश्चिंत मनसे राम

बाष्पवेगोपहतयासवाचासज्जमानया॥इदमाश्वासयन्देवींसूतःप्रांजलिरब्रवीत्॥४॥ त्यजशोकंचमोहंचसंभ्रमंदुःखजंतथा॥व्यवधूयचसंतापंवनेवत्स्यतिराघवः ॥ ५ ॥ लक्ष्मणश्चापिरामस्यपादौपरिचरन्वने ॥ आराधयतिधर्मज्ञःपरलोकंजितेंद्रियः ॥ ६ ॥ विजनेऽपिवनेसीतावासंप्राप्यगृहेष्विव ॥ विस्रंभंलभतेऽभीतारामेविन्यस्तमानसा ॥ नास्यादैन्यंकृतंकिंचित्सुसूक्ष्ममपिलक्ष्यते ॥ उचितेवप्रवासानांवैदेहीप्रतिभातिमे ॥८॥ नगरोपवनंगत्वायथास्मरमतेपुरा ॥ तथैवरमतेसीतानिर्जनेषुवनेष्वपि ॥९॥ बालेवरमतेसीताबालचंद्रनिभानना॥ रामारामेह्यदीनात्मा विजनेऽपिवनेसती ॥१०॥ तद्गतंहृदयंयस्यास्तदधीनचजीवितम् ॥ अयोध्याहिभवेदस्यारामहीनातथावनम् ॥११॥ परिपृच्छतिवैदेहीग्रामांश्चनगराणिच ॥ गतिंदृष्ट्वानदीनांचपादपान्विविधानपि ॥ १२ ॥ रामंवालक्ष्मणंवापिदृष्ट्वाजानातिजानकी ॥ अयोध्याक्रोशमात्रेतुविहारमिवसश्रिता ॥ १३ ॥ इदमेवस्मराम्यस्याःसहसैवोपजल्पितम् ॥ कैकेयीसंश्रितंजल्पंनेदानींप्रतिभातिमाम् ॥ १४ ॥

रूपी बागमें परमसुखसे विचरती हैं ॥१०॥ जिन सीताजीका मन रामचन्द्रजीमें लगा है तिनका जीवन रघुनाथकेही अधीन है.इस कारण बिना रामचन्द्रजीके यह अयोध्या सीताजीको महावनके समान जान पडती है ॥११॥ वह, वह जिस गांव, नगर, या जिन सब नदियोंकी गतिको देखती हैं या अनेक प्रकारके वृक्ष या जो कुछभी देखती हैं उनका वृत्तांत जानना चाहती हैं ॥१२॥ और रामचन्द्रजी या लक्ष्मणसे उन सबके विषयमें पूछकर उसकोजान लेती हैं और ऐसी प्रसन्न रहती हैं मानो अयोध्याजीसे एक कोशके अन्तर फुलवाडीमें विहार कर रही हैं ॥ १३ ॥ हम सीताजीके इसीसुखको यादकरते हैं जोकि, वह रामचन्द्रजीकेसाथ आनंदमें रहती हैं सो उन्होंने दुःखके वेगवश हो हठात् कोई बात कैकेयीके सम्बन्धमें कहीथी या नहीं ऐसा मुझको स्मरण नहीं आता ॥ १४ ॥

जो बातें प्रमादके वश हो जानेसे कौशल्याजीको सूझीथीं, उन बातोंको सुमंत्रजीने इसभांतिके वचन कहकर संभार करदिया और कौशल्याजीसे अति मधुर आनन्ददायक वचन बोले ॥१५॥ मार्ग चलनेके परिश्रमसे वायुके प्रचण्ड वेगसे संभ्रम व गरमीके तापसे किसीसेभी जानकीजीकी वह चन्द्रकिरण शोभामयी विमलप्रभा मलिन नहीं हुई॥१६॥ अथवा उन चतुर जानकीजीका वह शतपत्र कमलके समान और पूर्ण चन्द्रमाकी दीप्तिके समान दिपता हुआ वदनमंडलभी मलिन नहीं हुआ॥१७॥ उनके दोनों चरण स्वभावसे ही महावरके समान लाल वर्ण हैं, अतएव महावरविहीन होकेभी अबतक इन चरणोंकी पद्मकेशर सहित सुकुमार प्रभाकी कुछहानि नहीं हुई है ॥१८॥ उन्होंने रामचन्द्रजीके प्रति अनुरागके वशहो अबतक गहनोंका त्याग नहीं किया है, वह चरणोंमें पहरी हुई पायजेबकी झनकारसे हंस आदिके शब्दोंको लजाती हुई प्रसन्नतापूर्वक चली जाती हैं ॥ १९ ॥ वह रामचन्द्रजीकी भुजाओंके बलसेर क्षित होकर बनके बीच शेर अथवा व्याघ्र देख किसी

ध्वंसयित्वातुतद्वाक्यंप्रमादात्पर्युपस्थितम् ॥ ह्लादनंवचनसूतोदेव्यामधुरमब्रवीत् ॥१५॥ अध्वनावातवेगेनसंभ्रमेणातपेनच॥ नविगच्छतिवैदेह्याश्चन्द्रांशुसदृशीप्रभा ॥१६॥ सदृशंशतपत्रस्यपूर्णचंद्रोपमप्रभम् ॥ वदनंतद्वदान्यायावैदेह्यानविकम्पते ॥१७॥ अलक्तरसरक्ताभावलक्तरसवर्जितौ॥अद्यापिचरणौतस्याःपद्मकोशसमप्रभौ॥१८नूपुरोत्कृष्टलीलेवखेलंगच्छतिभामिनी॥इदानीमपिवैदेहीतद्रागान्यस्तभूषणा॥१९॥गजंवावीक्ष्यसिंहंवाव्याघ्रंवावनमाश्रिता॥नाहारयतिसंत्रासंबाहूरामस्यसंश्रिता॥२०॥नशोच्यास्तेनचात्मातेशोच्योनापिजनाधिपः॥इदंहिचरितंलोकेप्रतिष्ठास्यतिशाश्वतम् ॥२१॥विधूयशोकंपरिहृष्टमानसामहर्षियातेपथिसुव्यवस्थिता ॥ वनेरतावन्यफलाशनाःपितुःशुभांप्रतिज्ञांप्रतिपालयंतिते॥२२॥तथापिसूतेनसुयुक्तवादिनानिवार्यमाणासुतशोककर्शिता॥नचैवदेवीविररामकूजितात्प्रियेतिपुत्रेतिचराघवेतिच॥२३॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येअयोध्याकांडे षष्टितमःसर्गः॥६०॥वनंगतेधर्मरतेरामेरमयतांवरे॥कौसल्यारुदतीचार्ताभर्तारमिदमब्रवीत्॥१॥

तरहकी कुछ शंका नहीं करतीं ॥ २० ॥ अतएव आप रामचन्द्र, लक्ष्मण व सीताके लिये अपने लिये और दशरथ जीके लिये कुछ भी शोकनकीजिये, जो रामचन्द्रजी करें वहकरनेही दीजिये क्योंकि रामचन्द्रजीको उस अद्भुत चरित्रका चिरकालही संसारमें प्रचार रहेगा ॥२१॥ वह इस समय वनवासी और वनके कंद, मूल फल खानेवाले तपस्वी होगये हैं वे इसीकारणसे एक वारही शोक छोडकर अधिक प्रफुल्ल चित्तसे अपने पिताजीकी परमपवित्रआज्ञा पालन करतेहुए वनमें वसते हैं॥२२॥उस समय कौशल्याजी पुत्रशोकसे बहुतही घबडाकर व्याकुल होगईथीं यद्यपि सुमंत्रजीने इस भांतिकी युक्तिपूर्ण बातोंसे उनको बहुत समझाया परन्तु वह शान्त न होकर"हा प्रियपुत्र ! हा रघुनन्दन !" कहकर वारंवार रुदन करने लगीं ॥२३॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा०आदि०अयो०भाषायां षष्टितमः सर्गः ॥ ६० ॥ जब गुणाभिराम धर्ममें रमण करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी वनको चले गये तो कौशल्याजी बहुतही व्याकुल हृदय हो रोय २ अपने

पतिराजा दशरथजीसे बोलीं॥ १ ॥राजा दशरथ दयालु, बड़े दानी, प्रियवादी, जानकार हैं ऐसातीनों लोकमें आपका बडा यश फैल रहा है ॥ २ ॥ और विशेष करके आप नरश्रेष्ठ हैं फिर भला आपने किस प्रकारसे और किन कारणोंसे पुत्रवधू जानकीको अपनेदोनों पुत्रोंके साथ वनको भेजदिया ? हाय ! जो राम लक्ष्मण बडे सुखसे लालन पालन कियेगये, जिन्होंने कभी लेशमात्र दुःख नहींजाना, सो न जाने अब किस प्रकार वह वनवास के दुःखको सहेंगे॥ ३ ॥ सीताकी यह सोलह वर्ष की तरुण अवस्था; और विशेष करके जिनको सदा सुखही भोग करना उचित है सो वह कोमल अंगवाली जनकलडैती प्यारी जानकी भी न जाने किस तरहसे रहेंगी ? ॥ ४ ॥ अहो ! विशाल नेत्रवाली जानकीने सदाही सुन्दर शोभायुक्त स्वादिष्ट व्यञ्जन भक्षण किये हैं वह अब किस प्रकारसे वनके खट्टे तीखेफल वह समा इत्यादिक अन्न भोजन करेंगी ॥ ५ ॥ हां ! जिन कल्य णीने सदाही मनोहर गीत व बाजे आदिक श्रवण कियेहैं।

यद्यपित्रिषुलोकेषुप्रथितंतेमहद्यशः॥सानुक्रोशोवदान्यश्चप्रियवादीचराघवः॥२॥कथंनरवरश्रेष्ठपुत्रौतेसहसीतया॥ दुःखितौसुखसंवृद्धौकथंदुःखं सहिष्यतः ॥३॥ सानूनंतरुणीश्यामासुकुमारीसुखोचिता॥कथमुष्णंचशीतंचमैथिलीविसहिष्यते ॥४॥ भुक्त्वाशनंविशालाक्षीसूपदंशान्वितं शुभम्॥वन्यंनैवारमाहारकथंसीतोपभोक्ष्यति॥५॥ गीतवादित्रनिर्घोषंश्रुत्वाशुभसमन्विता॥कथंक्रव्यादसिंहानांशब्दंश्रोष्यत्यशोभनम्॥६॥ महेंद्रध्वजसंकाशःक्वनुशेतेमहाभुजः ॥ भुजंपरिघसंकाशमुपाधायमहाबलः ॥७॥ पद्मवर्णंसुकेशांतंपद्मनिःश्वसमुत्तमम् ॥ कदाद्रक्ष्यामिरामस्यवदनंपुष्करेक्षणम् ॥८॥ वज्रसारमयंनूनंहृदयंमेनसंशयः ॥ अपश्यंत्यानतंयद्वैफलतीदंसहस्रधा ॥९॥ यत्त्वयाकरुणंकर्मव्यपोह्यममबांधवाः ॥ निरस्ताःपरिधावंतिसुखार्हाःकृपणावने ॥१०॥ यदिपंचदशेवर्षेराघवःपुनरेष्यति ॥ जह्याद्राज्यंचकोशंचभरतोनोपलक्ष्यते ॥ ११ ॥

इस समय वह किस भांतिसे मांस खानेवाले सिंह इत्यादिक पशुओंका दारुन व कठोर शब्द श्रवण करेंगी ॥ ६ ॥ और इस समय वह महाबल राम इन्द्रकी ध्वजा के तुल्य सबको उत्सव देनेकरानेवाले भूषण रहित परिघ समान भुजाका तकिया बनाकरही शयन करते होंगे ॥ ७ ॥ नजाने फिर हम कितने दिनोंमें रामचन्द्रजी की वह कमल दलके समानबडी आंखें वारिजके समान मनोहर वर्ण और पद्मसदृश सुगन्धि निश्वासयुक्त नरम घुंघराले बाल जिसपर पडे हुये ऐसा सुकुमार वदन देख पावेंगी ? ॥ ८ ॥हमारा हृदय निश्चयही वज्रके समान है इसमें कोई सन्देह नहीं क्योंकि रामको न देखकर अबतक भी इसके हजार टुकडे नहीं होसकते ॥९॥ हे महाराज ! आपने वृद्धोंके सहित परामर्श न करके एकाएक कैसा शोचनीयकर्म किया कि, हमारे प्यारे राम लक्ष्मण सब प्रकारसे सुखकेभागी होकर कैकेयीकी ताडनासे अनाथोंके समान वनमें दौडते फिरते हैं॥१०॥यदि १४ वर्ष बीतने के पीछे पंद्रहवेंमें रामचन्द्र लौट भी आवें और उस

समय भरत उनकी राजगद्दी और खजाना देदें ऐसा तो बोध नहींहोता॥ ११॥ क्योंकि श्राद्ध के समय कोई २ पहले २ अधिक फल मिलनेके लिये जामाता व समधीही आदिको बुलाकर खिलातेहैं और तिसके पीछे जब उनका मनोरथपूर्णहोजाता है तो पीछेसे ब्राह्मणोंको भोजनकरनेकेलिये बुलाते हैं ॥ १२॥ परन्तु ऐसे स्थानपर गुणवान् विद्वान् देवताओंके समानब्राह्मण भोजन नहींकरते चाहे उनकोअमृत क्यों न खानेको मिलताहो क्योंकिउनकामानभंग हो जाताहै॥ १३॥ जिसप्रकारसे कि बैलअपनेसींगोंका कटवाना नहीं सहसकते वैसेही ज्ञानीश्रेष्ठ ब्राह्मणगण भोजनसे बचा हुआ अन्न भोजन नहीं करते॥ १४॥ बस इस रीतिसे छोटे भाई भरतके भोगे हुए राज्यको श्रेष्ठ सब बातोंमें श्रेष्ठभाई रामचन्द्र कैसे अंगीकार करेंगे वे अपना राज्य लियेही रहेंगे॥ १५॥ व्याघ्र कभी पराया मारा हुआ मांस या और पदार्थ कभी नहीं खाता इसी प्रकार पुरुषश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीभरतके भोगे हुये राज्यको कभी ग्रहण करनेकी अभिलाषा नहीं करेंगे॥ १६॥ क्योंकि यज्ञसे

भोजयंतिकिलश्राद्धेकेचित्स्वानेवबांधवान् ॥ ततःपश्चात्समीक्षंतेकृतकार्याद्विजोत्तमान् ॥ १२॥ तत्रयेगुणवंतश्चविद्वांसश्चद्विजातयः ॥ नपश्चात्तेऽभिमन्यंतेसुधामपिसुरोपमाम् ॥ १३ ॥ ब्राह्मणेष्वपिवृत्तेषुभुक्तशेषंद्विजोत्तमाः ॥ नाभ्युपैतुमलंप्राज्ञाःशृंगच्छेदमिवर्षभाः ॥ १४ ॥ एवंकनीयसाभ्रात्राभुक्तंराज्यंविशांपते ॥ भ्राताज्येष्ठोवरिष्ठश्चकिमर्थंनावमन्यते ॥ १५ ॥ नपरेणाहृतंभक्ष्यंव्याघ्रःखादितुमिच्छति ॥ एवमेवनरव्याघ्रःपरलीढंनमन्यते ॥ १६ ॥ हविराज्यंपुरोडाशःकुशायूपाश्चखादिराः ॥ नैतानियातयामानिकुर्वंतिपुनरध्वरे ॥ १७॥ तथाह्यात्तमिदंराज्यंहृतसारांसुरामव ॥ नाभिमंतुमलंरामोनष्टसोममिवाध्वरम् ॥ १८॥ नैवंविधमसत्काररराघवोमर्षयिष्यति॥ बलवानिवशार्दूलोवालधेरभिमर्शनम् ॥ १९ ॥ नैतस्यसहितालोकाभयंकुर्युर्महामृधे ॥ अधर्मंत्विहधर्मात्मालोकंधर्मेणयोजयेत् ॥ २० ॥ नन्वसौकांचनैर्बाणैर्महावीर्योमहाभुजः ॥ युगांतइवभूतानिसागरानपिनिर्दहेत् ॥ २१ ॥

बची हुई खीर, घी; कुश खम्भ व स्रुव इत्यादि फिर दूसरे यज्ञके योग्य नहीं रहतेकारण कि, वह जूंठे होजाते हैं ॥ १७॥ सारनिकाले हुये अमृत केसमान अथवा सोम निकाले हुये यज्ञके समान यह भरतका भोगा हुआ राज्य रामचन्द्रजी किसी प्रकारसे ग्रहण करनेमें सम्मत नहीं होंगे ॥ १८॥ बलवान् सिंह जिसप्रकारअपनी पूंछ घुमानेको नहीं सहसकता वैसेही रामचन्द्रजी ऐसे असत्कारको नहीं सह सकेंगे क्योंकि रामचन्द्रजीको राज्यतो पाने दियानहीं और वह भरतजीका दिया लेलें यह कैसे हो सकताहै ॥ १९॥ रामचन्द्र बहुतही धर्मपरायण हैं व और सब लोकोंकोभी धर्मकी तरफ फेरतेहैं यद्यपि सुर असुरोंसहित सबलोकउनसेसंग्राममें भय करते हैं तथापि वह बलपूर्वक राज्य ग्रहण करके कभी अधर्मसंचय नहीं कर सकते ॥ २० ॥ वे महावीर्यवान् और महाबाहु हैं प्रलयकालमें भगवान् जिस

प्रकार सब संसारको भस्म करतेहैं और सागरको सुखाय देतेहैं वैसेही यह आपनेसुवर्णके बाणोंसे सहजही यह कर्म कर सकतेहैं ॥ २१ ॥ हाय ! मत्स्य जिस प्रकार अपनी संतानहीको खाय जाता है, वैसेही कमललोचन हमारे बारे राम सिंहके समान बलशाली और सब लोकोंमें श्रेष्ठ होकर भी अपने पिताकरके नष्ट हुये ॥ २२ ॥ सनातन ऋषिगणोंने वेदोंमें ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य इन तीनवर्णोंके आचरण करनेके लिये जो उपदेश कियाहै सो आपका उसमें विश्वासनहीं हैं, इसीसे तो अपने परमधार्मिक पुत्रको भी वनमें भेज दिया ॥ २३ ॥ हे महाराज ! विचार करके देखो कि, स्त्रीकी एकगति स्वामी, दूसरी गति पुत्र, तीसरी गति जात बिरादरीके लोग, और चौथी उसको कोई गति नहीं है ॥ २४ ॥परन्तु हाय ! यह दुःख किससे कहूं आप हमारे प्रथम गति हैं तौ सही पर हमारे नहीं हैं, और दूसरी गति जो हमारे पुत्र रामचन्द्र थे उनको वनमें भेजदिया;तीसरीगति सब परिवारवालेभी रामचन्द्रकेविना मरेपडे हैं, मैं विधवा नहींहूं जो रामचं

सताहृशःसिंहबलोवृषभाक्षोनरर्षभः ॥ स्वयमेवहतःपित्राजलजेनात्मजोयथा ॥२२॥ द्विजातिचरितोधर्मःशास्त्रेदृष्टःसनातनैः ॥ यदितेधर्मनिरते त्वयापुत्रेविवासिते ॥ २३ ॥ गतिरेकापतिर्नार्याद्वितीयागतिरात्मजः ॥ तृतीयाज्ञातयोराजंश्चतुर्थीनैवविद्यते ॥ २४ ॥ तत्रत्वंममनेवासिरामश्च वनमाहितः ॥ नवनंगंतुमिच्छामि सर्वथाहाहतात्वया ॥२५॥ हतंत्वयाराष्ट्रमिदंसराज्यंहताःस्मसर्वाःसहमंत्रिभिश्च ॥ हतासपुत्रास्मिहताश्चपौराः सुतश्चभार्याचतवप्रहृष्टौ ॥ २६ ॥ इमांगिरंदारुणशब्दसंहितांनिशम्यरामेतिमुमोहदुःखितः ॥ ततःसशोकंप्रविवेशपार्थिवःस्वदुष्कृतंचापिपुन स्तथास्मरत् ॥२७॥ इत्यार्षे श्री० वा० आ० अ० एकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥ एवंतुक्रुद्धयाराजारामामात्रासशोकया ॥ श्रावितःपरुषंवाक्यंचिं तयामासदुःखितः ॥ १ ॥ चिंतयित्वासचनृपोमोहव्याकुलितेंद्रियः ॥ अथदीर्घेणकालेनसंज्ञामापपरंतपः ॥ २ ॥

द्रजीके साथ वनको चलीजाती बस हमारे धर्मका कोई रक्षक नहीं आपने हमें न इधरका रक्खा न उधरका सब ओरसे नष्ट किया और कहींका न रक्खा ॥ ॥ २५ ॥ और हमहीको नहीं आपने इसी प्रकार अनेक राज्य सहित नगरकोसब मंत्रियों सहित प्रजाको और पुत्रके साथ मुझको व समुदाय नगरवासियोंको नष्ट किया, केवल आपकी भार्या कैकेयी और पुत्र भरत अब परम हर्षितहोंगे ॥ २६ ॥ कौसल्याजीके इस प्रकार मर्मभेदी वचन सुनकर राजा दशरथजी अती वही. दुःखित हुए और हा राम ! कहकर चेतनारहित हो रामचन्द्रजीको स्मरणकरते मूर्च्छित होगये । और फिर चैतन्य होकर शोकसागरमें डूबगये और पहले किये उस बुरे कर्मकी स्मृति आती रही ॥ २७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्वा० वा० आदिकाव्ये अयो० भाषाटीकायामेकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥ ॥ ॥ ॥ शोकके वेगसे क्रोधित हुई रामजननी कौशल्याजीके ऐसे दारुण वचन श्रवण करके राजा दशरथजी दुःखित होकर चिन्ता करने लगे ॥१॥ चिन्ता करते २

उनको मोह उपस्थित होआया और उनकी सब इन्द्रियां विकल हो आईऔर फिर बहुत देरमें उन शत्रुतापनको होश आया ॥२॥ चैतन्यता प्राप्तकरके दीर्घ और बडे श्वासलेतेहुये कौशल्याजीकोपास बैठे देखकर फिर चिन्ता करनेलगे ॥३॥ चिन्ता करते २ उनको यह बात याद आई जो कि, पहले उन्होंने अज्ञानके वश होकर शब्दवेधी बाणसे ऋषिकुमारको मारडालाथा ॥ ४ ॥ एकतोउस शोकसे और एकरामचन्द्रजीके शोकसे उनका चित्त संतापित होकरव्याकुल होने लगा ॥ ५ ॥ वहदोनों शोकोंसे भस्म होनेसे दुःखितहोके देवी कौशल्याजीकोप्रसन्न करनेके लिये हाथजोड शिर झुकाये कांपकर यहकहने लगे ॥६॥ हे प्रिये ! हम हाथ जोडकर तुमको प्रसन्न करते हैं क्योंकि तुम सदा शत्रुओंके ऊपरभी दयाकरती और प्रसन्न रहती हो निन्दारहित हो ॥ ७ ॥ गुणवान् हो व गुणहीनहो

ससंज्ञामुपलभ्यैवदीर्घमुष्णंचनिःश्वसन् ॥ कौसल्यांपार्श्वतोदृष्ट्वाततश्चिंतामुपागमत् ॥३॥ तस्यचिंतयमानस्यप्रत्यभात्कर्मदुष्कृतम् ॥ यदनेनकृतंपूर्वमज्ञानाच्छब्दवेधिना ॥ ४ ॥ अमनास्तेनशोकेनरामशोकेनचप्रभुः ॥ द्वाभ्यामपिमहाराजःशोकाभ्यामभितप्यते ॥ ५ ॥ दह्यमानस्तुशोकाभ्यांकौसल्यामाहदुःखितः ॥ वेपमानोऽजलिंकृत्वाप्रसादार्थमवाङ्मुखः ॥ ६ ॥ प्रसादयेत्वांकौसल्येरचितोऽयंमयांजलिः ॥ वत्सलाचानृशंसाचत्वंहिनित्यंपरेष्वपि ॥७॥ भर्तातुखलुनारीणांगुणवान्निर्गुणोऽपिवा ॥ धर्मंविमृशमानानांप्रत्यक्षंदेविदैवतम् ॥ ८ ॥ सात्वंधर्मपरानित्यंदृष्टलोकपरावरा ॥ नार्हसेविप्रियंवक्तुंदुःखितापिसुदुःखितम् ॥ ९ ॥ तद्वाक्यंकरुणंराज्ञःश्रुत्वादीनस्यभाषितम् ॥ कौसल्याव्यसृजद्बाष्पंप्रणालीवनवोदकम् ॥ १० ॥ सामूर्ध्निबद्ध्वारुदतीराज्ञःपद्ममिवांजलिम् ॥ संभ्रमादब्रवीत्त्रस्तात्वरमाणाक्षरंवचः ॥ ११ ॥ प्रसीदशिरसायाचेभूमौनिपतितास्मिते ॥ याचितास्मिहतादेवक्षंतव्याहंनहित्वया ॥ १२ ॥

कुशील हो या सुशील हो परमधर्मवान् स्त्रियोंके लिये स्वामीही प्रत्यक्ष देवता है ॥ ८ ॥ तुमभीसदा धर्ममेंही तत्पर रहती हो और जानतीहो कि, कौन विषय अच्छा और कौन बुराहै ? अतएव दुःखमें पडके हमारे इस दारुण पुत्रशोकके‌ऊपर ऐसे कुप्यारे वचन तुमको नहीं कहने चाहिये ॥ ९ ॥ दीनभावापन्न महाराज दशरथजीकी ऐसी बातकी सुनकर कौशल्याजीके नेत्रोंसे अंसुओंकीधारा इस भांति बहने लगी जैसे वर्षाकालमें कोठे आदिके नाले बहा करते हैं ॥ १० ॥ कौशल्याजीने रोय २ कर नम्रतापूर्वक महाराज दशरथजीके जोडेहुए हाथ अपने मस्तकपर रख लिये और शीघ्रतापूर्वक डरे हुए वचनोंसे परम आदरपूर्वक महाराज दशरथजीसे बोलीं ॥११॥ हे देव! मैं पृथ्वीपरगिरकर आपकेचरणोंको छूतीहूं आप प्रसन्न हूजिये जब आपने हमसे क्षमा प्रार्थना की सोमैंतो

इससेही मरगई, क्योंकि आपको हमसे क्षमा प्रार्थना करनी ठीक नहीं ॥ १२॥स्वामी! इस लोक औरपरलोकदोनोंमें पति आदर करनेकी सामग्रीहै सो स्वामीको जब इस प्रकार स्त्री सतावे तो वह स्त्री कभी कुलीन नहीं है॥१३॥ हे धर्मवित्! मैं धर्मको जानतीहूं और यहभी जानती हूं कि,आप सत्यवादी हैं। मुझे अतिदारुण पुत्रशोक है। व्याकुल विह्वल होनेसे मेरे मुखसे ऐसीअनुचित वार्त्ता निकलगई ॥१४॥ देखो शोकसे धीरजका नाश होजाताहै और शोकही ज्ञानको नाश करदेताहै और अधिक क्याकहूं शोकसेही सर्वनाश होजाता है बरनूशोकके समानकोई आततार्इ शत्रु नहीं है ॥ १५ ॥ चाहे शत्रुके हाथका प्रहारभी सह लिया जाय परन्तु शोकतौ थोडेसेथोडाभी नहीं सहाजाता बस और पुत्रशोककीव्यथाकहांतक कहूं॥ १६ ॥ गिनतीमें आज पांचरातें रामचन्द्रजीकोवन गयेबीतीहैं; परंतु हमें तो यही पांचरात्रि पांच वर्षकी समान बीतीहैं रामके शोकके मारे हर्षतौ हमसे एक साथही बिदा होगया ॥ १७ ॥ यह कई एक रात्रि रामकी चिन्ता

नैषाहिसास्त्रीभवतिश्लाघनीयेनधीमता ॥ उभयोर्लोकयोर्लोकेपत्यायासंप्रसाद्यते ॥ १३ ॥ जानामिधमधर्मज्ञत्वांजानेसत्यवादिनम् ॥ पुत्रशोकार्तयातत्तुमयाकिमपिभाषितम् ॥ १४ ॥ शोकोनाशयतेधैर्यंशोकोनाशयतेश्रुतम् ॥ शोकोनाशयतेसर्वंनास्तिशोकसमोरिपुः ॥ १५ ॥ शक्यमापतितः सोढुंप्रहारोरिपुहस्ततः ॥ सोढुमापतितःशोकःसुसूक्ष्मोऽपिनशक्यते ॥ १६ ॥ (धर्मज्ञाःश्रुतिवन्तोऽपिच्छिन्नधर्माथसंशयाः ॥ यतयोवीरमुह्यन्तिशोकसंमूढचेतसः ॥ १ ॥) वनवासायरामस्यपंचरात्रोऽद्यगण्यते ॥ यःशोकहतहर्षायाःपंचवर्षोपमोमम ॥१७॥ तंहिचिंतयमानायाःशोकोऽयंहृदिवर्धते ॥ नदीनामिववेगेनसमुद्रसलिलंमहत्॥१८॥एवंहिकथयंत्यास्तुकौसल्यायाःशुभंवचः ॥ मंदरश्मिरभूत्सूर्योरजनीचाभ्यवर्तत॥१९॥ अथप्रह्लादितोवाक्यैर्देव्याकौसल्ययानृपः ॥ शोकेनचस माक्रांतोनिद्रायावशमेयिवान् ॥ २० ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकांडे द्विषष्टितमःसर्गः॥६२॥प्रतिबुद्धोमुहूर्तेनशोकोपहतचेतनः ॥ अथराजादशरथःसचिंतामभ्यपद्यत ॥ १ ॥ रामलक्ष्मणयोश्चैवविवासाद्वासवोपमम् ॥ आपेदेउपसर्गस्तंतमःसूर्यमिवासुरम् ॥ २ ॥

ही करते बीतीहैं। जिसप्रकार नदीके वेगद्वारा समुद्रका जल बढताजाताहैवैसेही रामचन्द्रजीकी चिन्तासे हमारे हृदयमें शोक बढ रहाहै ॥ १८ ॥ कौशल्याजी इस प्रकार शुभकथा कहनेलगीं क्रमसे सूर्यनारायणकी किरणोंका क्षयहुआऔर रजनी उपस्थितहुई ॥ १९ ॥ राजा दशरथ कौशल्याजीके वचनसुनकर कुछेक हर्षितहुए और फिर शोकमें निमग्न हो नींदके वश होगये ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयोध्याकांडे भाषाटीकायां द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२ ॥ एक मुहूर्त्तके पीछे राजा जागे तब मारे शोकसे व्याकुलचित्त हुये और बार २ चिन्ता करने लगे ॥ १ ॥ जिस प्रकार राहु असुरकी अँधियारी ग्रहणके समय सूर्यनारायणको ढक लेतीहै वैसेही रामचन्द्र व लक्ष्मणजीके वनवास देनेका जो उपद्रव था वह इन्द्रके समान राजा दशरथजीको उस समय सतानेलगा ॥ २ ॥

सीतासहित रामचन्द्रजीके वन चले जानेपर राजा दशरथजीको अपने पहले किये दुष्कर्मकी सुधि आई और वह महारानी कौशल्याजीसे उस वृत्तांतको कहनेके अभिलाषी हुये ॥३॥ रामचन्द्रजीके बनमेंचले जानेपर छठवींरात्रिके आधीरात्रिकेसमय उनमहाराज दशरथजीको अपना पहला दुष्कर्म सहसा याद आया ॥४॥ पुत्रशोकसे पीडित हो वह राजा अपने खोटे कर्मको याद कर पुत्रशोकसे दुःखित कौशल्याजीसे बोले ॥ ५ ॥ अयि कल्याणि ! अच्छा या बुरा जो कुछ भी कर्म कियाजाता है सो उसके करनेवालेको उन सब कर्मोंका फल भोगना पडता है ॥ ६ ॥ हे भद्रे ! उनमेंसे जो पुरुष कर्म करनेके पहले उस कर्मकी छुटाई प्रतिष्ठा या अच्छे बुरेका विचार नहीं करताहै उसे ही बालक कहते हैं ॥७॥ जो पुरुषपलाशवृक्षके लाल२सुन्दर२फूल देख फलका लोभी हो आमके पेडको काटकर पलाशकी जडमें जल डाले तो फलके समय निश्चयही उसको पछताना पडताहै,क्योंकिपलाशमें किसीप्रकारके फल नहींआते॥८॥इससे जो पुरुषकर्मको करनेलग

सभार्येहिगतेरामेकौसल्यांकोसलेश्वरः ॥ विवक्षुरसितापांगींस्मृत्वादुष्कृतमात्मनः ॥ ३ ॥ सराजारजनींषष्ठींरामेप्रव्राजितेवनम् ॥ अर्धरात्रेदशरथःसोऽस्मरद्दुष्कृतंकृतम् ॥ ४ ॥ सराजापुत्रशोकार्तःस्मृत्वादुष्कृतमात्मनः ॥ कौसल्यांपुत्रशोकार्तामिदंवचनमब्रवीत् ॥ ५ ॥ यदाचरतिकल्याणिशुभंवायदिवाशुभम् ॥ तदेवलभतेभद्रेकर्ताकर्मजमात्मनः॥६॥गुरुलाघवमर्थानामारंभेकर्मणांफलम् ॥ दोषंवायोनजानातिसबालइतिहोच्यते ॥ ७ ॥ कश्चिदाम्रवनंछित्त्वापलाशांश्चनिषिंचति ॥ पुष्पंदृष्ट्वाफले गृध्नुः सशोचतिफलागमे ॥ ८ ॥ अविज्ञायफलंयोहिकर्मत्वेवानुधावति ॥ सशोचेत्फलवेलायांयथाकिंशुकसेवकः ॥ ९ ॥ सोऽहमाम्रवनंछित्त्वापालाशांश्चन्यषेचयम् ॥ रामंफलागमेत्यक्त्वापश्चाच्छोचामिदुर्मतिः ॥ १० ॥ लब्धशब्देनकौसल्येकुमारेणधनुष्मता ॥ कुमारःशब्दवेधीतिमयापापमिदंकृतम् ॥११॥ तदिदंमेऽनुसंप्राप्तंदेविदुःखंस्वयंकृतम् ॥ संमोहादिहबालेनयथास्याद्भक्षितंविषम् ॥ १२ ॥ यथान्यःपुरुषःकश्चित्पलाशैर्मोहितोभवेत् ॥ एवंमयाप्यविज्ञातंशब्दवेध्यमिदंफलम् ॥ १३ ॥

ताहै और उसकेफलको नहींशोचलेताउसकोभीफलके समय आम काटकर पलाशसींचनेवालेके समान शोक करना पडताहै ॥९॥ सो रामचन्द्रजीके त्याग करनेसे हमनेभी आम्रवनको काटकर पलाशके पेडको जलसे सींचा अतएव इस समयफलभोग करनेके समय शोकका भोग कररहेहैं॥१०॥जो हो हे देवी ! पहले ही कुमार अवस्थामें हमनेशब्दवेधी कहलाकर विख्यातहोनेके अभिलाषसे धनुषधारणकरजोपाप कियाथा हे देवि!सो उसी पापसे अब यह दुःखपडा॥११॥हमआपही इसदुःखके हेतुहैं बालक जिस प्रकार अज्ञानतासे विष भक्षण कर जाय वैसेही हमभी अजानमेंवह पापकर विनाशको प्राप्तहुए॥१२॥साधारण मनुष्य जिस प्रकार पलाशके सुमनपरही मोहित हो जातेहैं और उसके फलकी ओर ध्यान नहीं देते,वैसेही हमनेयह न जाना कि शब्दवेधी होनेसे ऐसा फल होताहै और इसमें अनुरक्तहुआ१३॥

हे देवि ! जब कि,तुम्हारा विवाह नहीं हुआथा और हमइस युवराजपदवीको प्राप्तथेऐसे समय वर्षाका समय आया जिसने कि, हमारे कामवेगको बढाया॥ १४॥ सूर्य देव अपनी तेजकिरणोंसे संसारमें पृथ्वीका समस्तरसखैंच और संसारको तपाकरप्रेतगणसेवित भयंकर दक्षिण दिशाको चलेगये॥ १५॥ गरमीकी ऋतुका प्रभाव एकवारही दूरहोगया स्निग्धबादल चारों ओरसेदेखपडतेथे उनकोदेखकर मेंढक,चातक और मोरसब हर्षितहुए ॥ १६॥ जब वर्षा होनेलगीतब सब पक्षी पंखभीग जानेके कारण इधरउधर उडकर फटफटाने लगे मानोबडेकष्टमेंपडेहैंइसलिये वर्षाकीपवनसे कांपते हुए वृक्षोंपर जाय२चढबैठे ॥ १७॥ वर्षेहुए और बराबर वर्षते हुये वर्षाकेजलसेढकजानेपरसबपर्वतमहासागरके समान शोभाविस्तारकरनेलगे औरचातक आनन्दसे मतवाले होकरउनपर घूमनेलगे ॥ १८॥ और पाण्डुरंगके निर्मल सोतेगेरूआदि विविधधातुओंसे मिलकरधूसर पीले और लाल तथा भस्मसे मिलकर सर्पके समान टेढी गतिसे पर्वतसे झरने लगे ॥ १९॥ इस प्रकार अति सुखकर

देव्यनूढात्वमभवोयुराजोभवाम्यहम् ॥ ततःप्रावृडनुप्राप्तामदकामविवर्धिनी॥ १४॥अपास्यहिरसान्भौमांस्तप्त्वाचजगदंशुभिः ॥ परेताचरितां भीमांरविराचरतेदिशम् ॥ १५ ॥ उष्णमंतर्दधेसद्यःस्निग्धाददृशिरेघनाः ॥ ततोजहृषिरेसर्वेभेकसारंगबर्हिणः ॥ १६ ॥ क्लिन्नपक्षोत्तराःस्नाताः कृच्छ्रादिवपतत्रिणः ॥ वृष्टिवातावधूताग्रान्पादपानभिपेदिरे ॥ १७ ॥ पतितेनांभसाच्छन्नःपतमानेनचासकृत् ॥ आबभौमत्तसारंगस्तोयराशिरिवाचलः ॥ १८ ॥ पांडुरारुणवर्णानिस्रोतांसिविमलान्यपि ॥ सुस्रुवुर्गिरिधातुभ्यः सभस्मानिभुजंगवत् ॥ १९ ॥तस्मिन्नतिसुखेकालेधनुष्मानिषुमान्रथी ॥ व्यायामकृतसंकल्पःसरयूमन्वगांनदीम् ॥ २० ॥ निपानेमहिषंरात्रौगजंवाभ्यागतंमृगम् ॥ अन्यद्वाश्वापदंकिंचिज्जिघांसुरजितेंद्रियः ॥२१॥ अथांधकारेत्वश्रौषंजलेकुंभस्यपूर्यतः ॥ अचक्षुर्विषयेघोषंवारणस्येवनर्दतः ॥ २२ ॥ ततोऽहंशरमुद्धृत्यदीप्तमाशीविषोपमम् ॥ शब्दंप्रतिगजप्रेप्सुरभिलक्ष्यमपातयम् ॥ २३ ॥ अमुंचंनिशितंबाणमहमाशीविषोपमम् ॥ तत्रवागुषसिव्यक्ताप्रादुरासीद्वनौकसः ॥ २४ ॥

वर्षाकालमें हमधनुष बाण ले रथपरसवारहो शिकारखेलने और विचरण करनेकेसमय सरयूके तीरपर पहुँचे ॥ २० ॥ जाते२वहां पहुँचे जहां वनके जीव जल पीने आते थे हमारा यह प्रयोजन था कि, रातमें वहां कोई मृग, महिष, मातंग व और कोई शिकारीजीव आवै तो उसे मारें क्योंकि, तबतक हम इन जीवोंके मारनेके विषयमें इन्द्रियजित न थे ॥२१॥ अनन्तर उस घोर वर्षाकी अँधियारीके मध्य कोई जलमें घडा डुबाने लगा तो उसके भरनेका शब्दहोने लगा तब हमें ऐसा विदित हुआ कि मानो कोई हाथी शब्द कररहा है ॥२२॥ इस प्रकारअनुमान करके उस शब्दको निशाना बना हाथीके मारनेकेलिये तरकससे हमने विषधर सांपके समान जहरीला और दिपताहुआ तीर निकाला और तत्क्षणहीनिशानेकी ओर उसको छोडा ॥ २३ ॥ मैंने जैसेही वह सांपके पांतके समान

विषवाला पैना बाण छोडा वैसेही किसी वनवासीका बोल हमें प्रगट सुनपडा ॥ २४ ॥ व यहभी सुन पडा कि वह हा ! हा ! कह बाणकी व्यथासे व्याकुल हो-जलमें गिरा और वह मनुष्य तो थाही इस कारण साफ बोल सुनाई आया ॥ २५ ॥ कि, हाय ! मैं तपस्वी हूं रात्रिमें जल लेजानेके लिये इस निर्जन नदीपर आयाहूं अतएव मेरे ऊपर किस कारणसे शस्त्राघातहुआ ? इसनिर्जनरात्रिमें नदीके किनारे जल लेनेके लिये आयाथा ॥२६॥ किसने मेरे यह बाण मारा हमने किसीकी कौनसी हानि की ? बनके कंद, मूल, फल खाकर हम जीवनधारणकरतेहैं और वनमें हमारा वासहै हम तौ केवल ऋषिहैं दंडभी नहीं धारणकरते फिर क्यों हमारे ऊपर यह प्रहार हुआ॥२७॥वल्कल मृगचर्म धारण किये हुये जटारखाये हमारे समान तपस्वीका वध शस्त्रसे कैसे किया गया ॥२८ ॥ हमें मारकर किसीका क्या काम चलैगा अथवा हमने किसीका कुछ अनभलभीतोनहींकियाहैयह कार्य निष्फलहै और अनर्थकर्मका करानेवालाहै ॥२९॥ गुरुकीशय्यापर बैठ

हाहेतिपततस्तोयेबाणाद्व्यथितमर्मणः ॥ तस्मिन्निपतितेभूमौवागभूत्तत्रमानुषी ॥ २५ ॥ कथमस्मद्विधेशस्त्रंनिपतेच्चतपस्विनि ॥ प्रविविक्तांनदीं रात्रावुदाहारोऽहमागतः ॥२६॥ इषुणाभिहतःकेनकस्यवापकृतंमया ॥ ऋषेर्हिन्यस्तदंडस्यवनेवन्येनजीवतः ॥२७॥ कथंनुशस्त्रेणवधोमद्विधस्यविधीयते ॥ जटाभारधरस्यैववल्कलाजिनवाससः ॥ २८ ॥ कोवधेनममार्थीस्यात्किवास्यापकृतंमया ॥ एवंनिष्फलमारब्धंकेवलानर्थसंहितम् ॥ २९ ॥ नक्वचित्साधुमन्येतयथैवगुरुतल्पगम् ॥ नेमंतथानुशोचामिजीवितक्षयमात्मनः ॥ ३० ॥ मातरंपितरंचोभावनुशोचामिमद्वधे ॥ तदेतन्मिथुनंवृद्धंचिरकालभृतंमया ॥ ३१ ॥ मयिपंचत्वमापन्नेकांवृत्तिंवर्तयिष्यति॥ वृद्धौचमातापितरावहंचैकेषुणाहतः ॥ ३२ ॥ केन स्मनिहताःसर्वेसुबालेनाकृतात्मना ॥ तांगिरंकरुणंश्रुत्वाममधर्मानुकांक्षिणः ॥ ३३ ॥ कराभ्यांसशरंचापंव्यथितस्यापतद्भुवि ॥ तस्याहंकरुणां श्रुत्वाऋषेर्विलपतोनिशि ॥ ३४ ॥

नेवालेको जिस प्रकार कोई साधु नहीं समझते, ऐसेही उसकोभी कोई साधु नहींकहैगा जिसने कि,हमारा वध कियाहै हमें कुछ अपने प्राणोंके भयसे इतना शोक नहीं है॥३०॥शोक और मरनेका भय तो केवल पिता माताकेलिये करताहूं,उनवृद्धोंका अबतक तौ हमने पालन पोषण किया ॥३१॥ बाण लगनेसे हमारे मर जानेके उपरान्त हमारे बूढे माता पिता किस प्रकार अपना निर्वाह करैंगे ? हमारेमाता पिता तो वृद्ध हैं और हम एक बाणसे मारेगये ॥ ३२ ॥ हाय ! हम और हमारे वह वृद्ध मातापिता सब एकही साथ मरे,हाय!किस बालकबुद्धिने हम सबको मारडाला हे देवि!हमें सदाही धर्मकी आकांक्षा रही अतएव वह करुणा भरी वाणी सुनकर ॥३३॥ मैं बहुतही दुःखित हुआ वरन् दयाके मारे शरीरमें कंपहोनेसे धनुष बाण दोनों हमारे हाथसे गिरपडे रात्रिके समय विलाप करते हुए उस

ऋषिके करुणायुक्त वचन सुन ॥ ३४ ॥ हम शोकसे डक कर्त्तव्याकर्त्तव्यज्ञानरहित होगये फिर मैं दीनभावापन्न और अत्यन्तदुःखितमनसे उठकर उस स्थानको चला॥३५॥और वहां जाकर देखा तो सरयूके तीरपर बाणसे विंधाहुआ जटारखाये जलभरा घडा हाथसे पकडे एक तपस्वी पडाहै ॥ ३६ ॥ सम्पूर्ण शरीरमें रुधिरकी सनी धूरी लगीहै,बाणकी व्यथासे व्यथित हो पृथ्वीपर पडा है उसनेहमको डरे व घबडाये हुए देखा ॥ ३७ ॥ मानो अपने तेजसे हमको जलाता हुआ साही यह क्रूरवचन बोला कि,हे राजन् ! हम वनवासी हैं सो हमने तुम्हारा क्याअपकार किया ॥ ३८ ॥ हम अपने माता पिताके पीनेको जल लेने आयेथे सो आपने हमें मारडाला और एकही बाणसे हमारे मर्मस्थानको घायल किया॥ ३९ ॥ व हमारे दो अंधे पिता माताकोभी मारडाला। वह दोनों दुर्बल और अंधे प्यासे होकर निश्चयही हमारी बाट देखते होंगे ॥४०॥ वह हमारे आनेकीराह जोहते हुए बहुतही कष्टसे प्यासको रोके हुये होंगे । ऐसा बोध होताहै कि,

संभ्रांतःशोकवेगेनभृशमासंविचेतनः ॥ तंदेशमहमागम्यदीनसत्त्वःसुदुर्मनाः ॥३५॥ अपश्यमिषुणातीरेसरय्वास्तापसंहतम् ॥ अवकीर्णजटाभारं प्रविद्धकलशोदकम् ॥ ३६ ॥ पांसुशोणितदिग्धांगंशयानंशल्यवेधितम् ॥ समामुद्वीक्ष्यनेत्राभ्यांत्रस्तमस्वस्थचेतनम् ॥३७॥ इत्युवाचवचः क्रूरंदिधक्षन्निवतेजसा ॥ किंतवापकृतंराजन्वनेनिवसतामया ॥ ३८ ॥ जिहीर्षुरंभोगुर्वर्थंयदहंताडितस्त्वया ॥ एकेनखलुबाणेनमर्मण्यभिहते मयि ॥ ३९ ॥ द्वावंधौनिहतौवृद्धौमाताजनयिताचमे ॥ तौनूनंदुर्बलावंधौमत्प्रतीक्षौपिपासितौ ॥ ४० ॥ चिरमाशांकृतांकष्टांतृष्णांसंधारयिष्यतः ॥ ननूनंतपसोवास्तिफलयोगः श्रुतस्यवा ॥ ४१ ॥ पितायन्मांनजानीतेशयानंपतितंभुवि ॥ जानन्नपिचकिंकुर्यादशक्तश्चापराक्रमः ॥४२॥ भिद्यमानमिवाशक्तिस्त्रातुमन्योनगोनगम् ॥ पितुस्त्वमेवमेगत्वाशीघ्रमाचक्ष्वराघव ॥ ४३ ॥ नत्वामनुदहेत्क्रुद्धोवनमग्निरिवेधितः ॥ इयमेकपदी राजन्यतोमेपितुराश्रमः ॥ ४४ ॥ तंप्रसादयगत्वात्वंनत्वासंकुपितःशपेत् ॥ विशल्यंकुरुमांराजन्मर्ममेनिशितःशरः ॥ ४५ ॥

हमारे ज्ञान और तपका कुछ फलही नहीं॥४१॥पिताजी नहीं जानते कि, हमऐसी दशाको प्राप्तहो पृथ्वीपरपडे हैं और उन्हैंयहसमाचारमिलभीजायतोभी वह क्या कर सकतेहैं क्योंकि,उनमें कुछ पराक्रम नहीं औरअंधे होनेसे चलफिर तोसकतेही नहीं ॥४२॥ एक वृक्षको काटनेसे जिस प्रकार दूसरे पेड उसकी रक्षा करनेमें असमर्थ होतेहैं,ऐसेही वे हैं । हे राघव!आप शीघ्र हमारे पिताके समीप जाकर यह सब वृत्तान्त कहदीजिये ॥४३॥ जबतक हमारे पिताजी वायुसे बढी अग्नि करके वन जलानेके समान आपको भस्म न करडालैं उससे पहलेही आपशीघ्रतासे जाकर पिताजीसे यह वृत्तान्त कह दीजिये. हे राजन्!हमारे पिताजीके आश्रमपर जानेका यह छोटासा पगडंडीका मार्ग है ॥ ४४ ॥ वहां जाकर आपपिताजीको प्रसन्न करें जिससे कि,वहक्रोधित होकर आपको शाप नदें.हे राजन्!

हमारे मर्मस्थानसे यह पैना बाण निकालकर हमें शल्यरहित कीजिये ॥४५॥हे राजन्!नदीका वेग जिस प्रकार ऊँचे रेतेके करोरको काट डालताहै वैसेही यह आपका तेजबाणहमारे मर्ममें चोट देरहाहै इससेहमारी छातीसे यहबाण निकाल,लो तो मरण होजाय ॥ ४६ ॥ हे देवि!उस समय मेरे हृदयमें यह चिन्ता उदय हुई कि, मर्ममें बाण लगेहुये ऋषिकुमारको बहुतहीव्यथा होरहीहै परन्तुजो बाणनिकालताहूं तो यह तापसकुमार अभी मरजायगा और ब्रह्महत्या होगी बाणके निकालनेमें दुःखित और शोकसे व्याकुल और कातरहो इसप्रकारसे चिन्ता कररहाथा ॥४७॥ तब उस मुनिने हमारी चिन्तादशाको देखलिया, और दुःखी हुये मुझसे बडे कष्टसे वह बडी कृपासहित सब कुछ जाननेवाला ऋषि बोला ॥ ४८ ॥ यद्यपि उसको बोलनेकी शक्ति नथी क्योंकि सब शरीर कांप रहाथा और इधर उधर धरतीमें लोटताथा मरनेपर उतारूथा तौभी हमारे ऊपरदयाकरधैर्य्यावलम्बनपूर्वक स्थिरचित्त हो बोला ॥ ४९ ॥ हे राजन् ! हमें वधकर आप

रुणद्धिमृदुसोत्सेधंतीरमंबुरयोयथा ॥ सशल्यःक्लिश्यतेप्राणैर्विशल्योविनशिष्यति ॥४६॥ इतिमामविशच्चिंतातस्यशल्यापकर्षणे॥दुःखितस्यचदी नस्यममशोकातुरस्यच ॥ ४७ ॥ लक्षयामाससऋषिश्चिंतांमुनिसुतस्तदा ॥ ताम्यमानंसमांकृच्छ्रादुवाचपरमार्थवित्॥४८॥सीदमानोविवृत्तांगो चेष्टमानोगतःक्षयम् ॥ संस्तभ्यशोकंधैर्येणस्थिरचित्तोभवाम्यहम् ॥ ४९ ॥ ब्रह्महत्याकृतंतापंहृदयादपनीयताम् ॥ नद्विजातिरहंराजन्माभूत्तेम नसोव्यथा ॥५० ॥शूद्रायामस्मिवैश्येनजातोनरवराधिप ॥ इतीववदतःकृच्छ्राद्बाणाभिहतमर्मणः॥५१॥विघूर्णतोविचेष्टस्यवेपमानस्यभूतले ॥ तस्यत्वाताम्यमानस्यतंबाणमहमुद्धरम् ॥ ५२ ॥ समामुद्वीक्ष्यसंत्रस्तोजहौप्राणांस्तपोधनः ॥ ५३ ॥ जलार्द्रगात्रंतुविलप्यकृच्छ्रंमर्मव्रणंसंततमु च्छ्वसंतम् ॥ ततःसरय्वांतमहंशयानंसमीक्ष्यभद्रेसुभृशंविषण्णः॥५४॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० अयो० त्रिषष्टितमःसर्गः ॥ ६३ ॥

ब्रह्महत्याके डरसे बाण नहीं निकालतेहैं सोब्रह्महत्याकाडरदूरकरदीजिये क्योंकिहम ब्राह्मण नहीं हैं आपके मनकी व्यथा दूरहो ॥५०॥ हम वैश्यसे शूद्रीके गर्भमें उत्पन्न हैं, बाणसे घायल हुए बहुत कष्टसहित जब ऋषिकुमारने ऐसा कहा वहउस समय बाणके लगनेसे बहुत व्याकुल होरहाथा ॥ ५१ ॥ और मारे कष्टके पृथ्वीपर गिरकर तडफडाने लगा और थर २ कांप रहाथा हमने उसकी छातीसेबाण निकाल लिया ॥५२॥ बाणके निकालतेही उस तपस्वीने महाभीत होकर मेरी ओर देख प्राण छोड दिया ॥५३॥ मर्मस्थानमें घाव लगनेसे उसको बहुतही क्लेश हुआ और वह जलमें गिरपडा इस कारणउसका सबशरीर भीगरहाथा इसी अवस्थामें वह वारंवार ऊंचे श्वासलेता और विलापकरताहुआ सरयूनदीकेतीर प्राण त्यागकर अनंत निद्रामें सो गया । हे महारानी!उसको मरा हुआ देख मैं बहुतही दुःखित शोकाकुल और मर्माहत हुआ ॥ ५४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आदि० अयो० भाषाटीकायां त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥

तापसकुमारके अयोग्य वध वृत्तान्तकी सुधि करते हुए धर्मात्मा महाराज दशरथजी विलाप करते २ कौसल्याजीसे यह बोले ॥ १ ॥ हे देवि ! मैं अज्ञानसे यह महापाप कर व्याकुलेन्द्रिय हो अकेला बैठ चिन्ता करनेलगा कि,अब किसप्रकारसे मंगलहो ? ॥२॥ बहुत समझ सोच उस घडेमें निर्मल सरयूका जलभर कर उस मार्गसे उसके पिताके आश्रमकी ओरचला, जो कि उसने बतायाथा॥३॥वहांजाकर उसके वृद्ध पिता माताको देखा उनकी अवस्था अतिशोचनीय और शरीरभी बहुतही दुर्बल होरहाथा, उनको देखकर ऐसा बोधहुआ मानो दोपक्षियोंके पर कट गयेहैं ॥४॥ इसकारण वह उठकर चल फिर नहीं सकते। यद्यपि उनकी यह आशा कि–"पुत्र जल लाता होगा" इस जन्मकेलिये उखाड डालीथी तथापि वह यही आशा किये बैठेथे कि,पुत्र कब जल लेकर आताहै।अब वह बिल्कुल अनाथ होगये क्योंकि,सिवाय पुत्रके दूसरा उनका पालन पोषण करनेवाला कोई न था ॥ ५ ॥ हम शोकाकुल चित्तसे और डरके मारे प्रायः चेतना रहित होगयेथे, सो उस आश्रममें जाकर हमारा शोक औरभी बढा ॥६॥ हमारेपैरोंकी पगाहट पाकर ऋषि अपना पुत्र समझ हमसे बोले "वत्स ! तुम्हैं विलम्ब

वधमप्रतिरूपंतुमहर्षेस्तस्यराघवः ॥ विलपन्नेवधर्मात्माकौसल्यामिदमब्रवीत् ॥ १ ॥ तदज्ञानान्महत्पापंकृत्वासंकुलितेंद्रियः ॥ एकस्त्वचिंतयंबुद्ध्याकथंनुसुकृतंभवेत् ॥ २ ॥ ततस्तंघटमादायपूर्णंपरमवारिणा ॥ आश्रमंतमहंप्राप्ययथाख्यातपथंगतः ॥ ३ ॥ तत्राहंदुर्बलावंधौवृद्धावपरिणायकौ ॥ अपश्यंतस्यपितरौलूनपक्षाविवद्विजौ ॥ ४ ॥ तन्निमित्ताभिरासीनौकथाभिरपरिश्रमौ ॥ तामाशांमत्कृतेहीनाबुपासीनावनाथवत् ॥ ५ ॥ शोकोपहतचित्तश्चभयसंत्रस्तचेतनः ॥ तच्चाश्रमपदंगत्वाभूयःशोकमहंगतः ॥६॥ पदशब्दंतुमेश्रुत्वामुनिर्वाक्यमभाषत ॥ किंचिरायसिमेपुत्रपानीयंक्षिप्रमानय ॥७॥ यन्निमित्तमिदंतातसलिलेक्रीडितंत्वया॥उत्कंठितातेमातेयंप्रविशक्षिप्रमाश्रमम् ॥ ८ ॥ यद्व्यलीकंकृतंपुत्रमात्रातेयदिवामया ॥ नतन्मनसिकर्तव्यंत्वयातातातपस्विना ॥ ९ ॥ त्वंगतिस्त्वगतीनांचचक्षुस्त्वंहीनचक्षुषाम् ॥ समासक्तास्त्वयिप्राणाःकथंत्वंनाभिभाषसे ॥ १० ॥ मुनिमव्यक्तयावाचातमहंसज्जमानया ॥ हीनव्यंजनयाप्रेक्ष्यभीतचित्तइवाब्रुवम् ॥ ११ ॥

किसकारणसे हुआ ? अच्छा अब जलदीसे पानी ले आओ ॥७॥ तात ! जिसकारणसेकि, तुम अबतक जलमें खेल करते रहे,इसकारण तुम्हारी माता बहुत घबडाकर तुम्हैं स्मरण करतीहै अबशीघ्र कुटीमें प्रवेश करो ॥ ८ ॥ हे यशस्वीहमने वा तुम्हारी माताने तुम्हारा कुछ अप्रिय किया हो तो हे तपस्वी ! तुम उसको अपने मनमें मत धरना ॥९॥ हम अगति और नेत्रोंसे हीनहैं, सो तुम्हीहमारे गति और नेत्रहो हमारे प्राण तुमसेही लगे हुये हैं, अतएव तुम आज क्यों नहीं बोलते"॥ १० ॥ ऋषि यह बातें बुढापेके मारे बहुतधीरे२बोलतेथे जिससेकि, वाणी निर्मल नथी इसकारण स्पष्ट शब्द सुनाई नहीं आता था इस कारण

बहुत डरतेहुए हम मुनिसे बोले ॥११॥ बोलनेके समय मनसा वाचा और कर्मकरके बहुत सावधानी व धीरेसे उनके पुत्रका कष्टमय वृत्तान्त कहनेलगे ॥१२॥ हे भगवन्! मैं क्षत्रिय हूं हमारा नाम दशरथहै हम आपके पुत्र नहींहैं आपलोगबडे सज्जनहैं पर यह नहीं जानते कि, अपने कर्मसे क्यों यह दुःखपाया ॥१३॥ हम पनघटकी भूमिमें जल पीनेको आयेहुए किसी हाथी वा और कोई शिकारीजीव मारनेके अभिलाषसे धनुष धारण कर सरयूतीरपर आयेथे ॥ १४ ॥ वहां हमने जलमें घडेके भरनेका जो शब्द सुनातो जानाकि हाथी पानीपी रहाहै यहउसीका शब्द है इसकारण उसके समक्षही बाण चलाया ॥ १५ ॥ तिसके पीछे सरयूके तीर जाकर देखाकि,एक ऋषि मरण तुल्यहोकर भूमिपरपडाहुआ है हमारेबाणसे एक बारही उसका हृदय विदीर्ण होगयाथा ॥ १६ ॥ वह बहुतही विलाप कर रहाथा फिर हम उसके समीप गये परन्तु बाणको उसके हृदयसे न निकालातब उसने कहा कि; हृदयसे बाण निकाल दो तब हमने उसके कहनेसे हृदयमेंसे

मनसः कर्मचेष्टाभिरभिसंस्तभ्यवाग्बलम् ॥ आचचक्षेत्वहंतस्मैपुत्रव्यसनजंभयम् ॥१२॥ क्षत्त्रियोऽहंदशरथोनाहंपुत्त्रोमहात्मनः ॥ सज्जनावम तंदुःखमिदंप्राप्तंस्वकर्मजम् ॥ १३ ॥ भगवंश्चापहस्तोऽहंसरयूतीरमागतः ॥ जिघांसुःश्वापदंकंचिन्निपानेचागतंगजम् ॥१४॥ ततःश्रुतोमयाशब्दो जलेकुंभस्यपूर्यतः ॥ द्विपोऽयमितिमत्वाहंबाणेनाभिहतोमया ॥ १५ ॥ गत्वातस्यस्ततास्तीरमपश्यमिषुणाहृदि ॥ विनिर्भिन्नंगतप्राणंशयानंभुवितापसम् ॥ १६ ॥ततस्तस्यैववचनादुपेत्यपरितप्यतः ॥ समयासहसाबाणउद्धृतोमर्मतस्तदा ॥१७॥सचोद्धृतनबाणेनसहसास्वर्गमास्थितः ॥ भगवंतावुभौशोचन्वृद्धावितिविलप्यच ॥१८॥ अज्ञानाद्भवतःपुत्रःसहसाभिहतोमया ॥ शेषमेवंगतेयत्स्यात्तत्प्रसीदतुमेमुनिः ॥ १९ ॥ सतच्छ्रुत्वावचःक्रूरंमयातदघशंसिना ॥ नाशकत्तीव्रमायासंसकर्तुंभगवानृषिः ॥२०॥ सबाष्पपूर्णवदनोनिःश्वसञ्शोकमूर्च्छितः ॥ मामुवाचमहातेजाःकृतांजलिमुपस्थितम् ॥ २१ ॥यद्येतदशुभंकर्मनस्वंमेकथयेःस्वयम् ॥ फलेन्मूर्धास्मतेराजन्सद्यःशतसहस्रधा ॥ २२ ॥

विंधेहुए बाणको निकाला ॥ १७ ॥ शरके निकालते ही वह उसी समय स्वर्गकोचलेगये। और मरनेके समय आप वृद्धव अंधोंकेलिये उन्होंने बहुतहीशोककिया और विलाप किया ॥ १८ ॥ हमने न जान करके ही सहसा आपके पुत्रकोधोखेसे मारडालाहै, और वह अब स्वर्ग चले गयेहैं अब जो कर्तव्य हो सो कीजिये और मेरेपर प्रसन्न हूजिये ॥ १९ ॥ मेरे किये हुये पापका दारुण वृत्तान्तमेरेही मुखसे सुन वह मुनिराज यद्यपि सब तरहका शाप देसकतेथे पर कुछ न दे सके ॥ २० ॥ परन्तु नेत्रोंमें आंसूभर और शोकसे मूर्च्छित होकर ठंढी२श्वासेंलेते हुये वह महातेजस्वी मुझे हाथ जोडे खडे हुएसे बोले ॥२१॥ हे राजन्! तुमने जो यह दुष्कर कर्मकिया सो यदि इसको तुम आपही अपने मुँहसे नकहतेतो तुम्हारे मस्तकके अभी सैकडों हजारों टुकडे होजाते ॥ २२ ॥

हे राजन् ! क्षत्रधर्मावलम्बी महेन्द्रभी यदि सम्यक् वानप्रस्थधर्मानुष्ठायी पुरुषको जानबूझकरवध करै तो उसको अपने स्थानसे भ्रष्ट होना पडै ॥२३॥हमारेपुत्रके समानब्रह्मवादी तपस्वी ऋषिकेऊपरजो कोई जानबूझकर शरत्यागकरै तो उस तीरचलानेवालेके मस्तकके सात टुकडे होजायँ ॥२४॥ तुमने अनजानमें ही यह निन्दित कर्म कियाहै इसी कारणसे अबतक बचेहो नहीं तो तुम्हारी क्याचलाईसब रघुवंशही आज निर्मूलहोजाता ॥२५॥ हे राजन् ! जो हुआ सो हुआ अब तुम हमें वहां लेचलो हम एकवार अपनेलालकीसूरतको देखाचाहतेहैं क्योंकि फिरउसके साथ इस जन्ममें तो हमारा साक्षात् नहींहोगा॥२६॥ हाय!बच्चाकालकेवश और मूर्च्छितहोकरभूमिमेंपडाहोगा, उसकासबशरीरलोहू लुहान होगा मृग चर्म जोओढेथा वह अलग पडा होगा, व प्राणउसकेधर्मराजकेनिकटपहुँचगये होंगे॥२७॥ हम पुत्रके शोकसे आतुर हुये उन दोनों बूढे बुढियाको उस स्थानमें लेगयेऔरवहअंधे जो थे इस कारण पुत्रको नहीं देखसके तब हमने उनको पुत्रका अंग छुआं

क्षत्त्रियेणवधोराजन्वानप्रस्थेविशेषतः ॥ज्ञानपूर्वंकृतःस्थानाच्च्यावयेदपिवज्रिणम् ॥ २३ ॥ सप्तधातुभवेन्मूर्धामुनौतपसितिष्ठति॥ज्ञानाद्विसृजतः शस्त्रंताद्दशेब्रह्मवादिनि ॥२४॥अज्ञानाद्धिकृतंयस्मादिदंतेतेनजीवसि ॥ अपिह्यकुशलंनस्याद्राघवाणांकुतोभवान् ॥ २५ ॥ नयनौनृपतंदेशमि तिमांचाभ्यभाषत ॥अद्यतंद्रष्टुमिच्छावःपुत्रंपश्चिमदर्शनम् ॥२६॥ रुधिरेणावसिक्तांगंप्रकीर्णाजिनवाससम् ॥ शयानंभुविनिःसंज्ञंधर्मराजवशंगत म् ॥२७॥ अथाहमेकस्तंदेशंनीत्वातौभृशदुःखितौ ॥ अस्पर्शयमहंपुत्रंतंमुनिंसहभार्यया ॥ २८ ॥ तौपुत्रमात्मनःस्पृष्ट्वातमासाद्यतपस्विनौ ॥ निपेततुःशरीरेऽस्यपिताचैनमुवाचह ॥२९॥ नाभिवादयसेमाद्यनचमामभिभाषसे ॥ किंचशेषेतुभूमौत्वंवत्सकिंकुपितोह्यसि ॥३०॥ नन्वहंतेप्रि यःपुत्रमातरंपश्यधार्मिकीम् ॥ किंचनालिंगसेपुत्रसुकुमारवचोवद ॥ ३१ ॥ कस्यवापररात्रेऽहंश्रोष्यामिहृदयंगमम् ॥ अधीयानस्यमधुरंशास्त्रंवा न्यद्विशेषतः ॥३२॥ कोमांसंध्यामुपास्यैवस्नात्वाहुतहुताशनः ॥ श्लाघयिष्यत्युपासीनःपुत्रशोकभयार्दितम् ॥३३॥

दिया॥२८॥वह दोनों पुत्रके निकट पहुँच और उसको छूकर दोनों ही उसकेमृतक शरीरके ऊपर गिरपडे । अनन्तर वृद्ध ऋषि अपने पुत्रको पुकार२कर यह बोले ॥२९॥ लाल! आज तुमने हमें प्रणाम क्यों नहीं किया!और किस कारणसेभूमिपर पडे हो, और कुछ बोलेभी नहीं क्या तुम हमसे रिसाय गये ॥ ३०॥ यदि हमनेही तुम्हारा कुछ अप्रिय किया है तौ तुम्हारी माताने तो कोई अप्रियव्यवहार नहीं किया,अतएव तुम आँखें खोलकर देखो बच्चे!तुम क्यों नहींउठकर हमसे लपट जाते!बोलो अरे एकबार तो मधुरवाणी बोलो ॥ ३१ ॥ आधीरातबीतजातीथी,तिसके पीछे तुम उठाकर मधुर स्वरसे शास्त्र व पुराणका पाठकरतेथे जिसको सुनकर हमबहुतही प्रसन्न होतेथे अब हम किसके मुखसेशास्त्रोंकीवार्त्तासुनकर प्रमुदित हुआकरैंगे॥३२॥हे पुत्र!हमारे शोक और भयसे कातर होजाने

पर अब प्रातःकाल कौन स्नानसंध्योपासन और होमकरहमारेनिकट बैठ हमकोप्रमुदित करैगा ॥३३॥ बेटा ! अंधेहोनेसे हमतो किसीकार्यकोभी नहीं करसकते हममें तो यह सामर्थ्यभी नहीं कि,जल और कंदमूल फलादि संग्रह करके अपनापेट भर सकें।तुमही हमारे स्नान भोजन पानादिका प्रबन्ध करदेतेथे सो अबहमैं छोडकर चले गये अब और कौन कंद मूल फल वनसे लेआकर प्रियपाहुनेकेसमान हमको भोजन करावेगा ॥ ३४ ॥ पुत्र!तुम्हारी यह माताभी वृद्ध, अंधी और बहुतही निराश्रयहै सो तुमही इसके एक सहारे औरबुढापेकी लकडीथे,अबतुम्हारे बिना किस प्रकारसे इसका भरण पोषण करूंगा ॥३५॥ हे आलबाल प्रवाल लाल!तुम ठहरो धर्मराजकेपास मतजाओ अथवा यदि अवश्य ही जाना होतो अभी रुको कल हमारे और माताके साथ इकट्ठे चलना॥३६॥ तुम्हैं छोडकर अनाथ असहाय और शोकसे कृपण हम किसी भांतिभी इस वनमें नहीं रहसकेंगेऔर शीघ्रही हम यमपुरको चले जायँगे ॥ ३७ ॥ वहां यमराजके दर्शनकर

कंदमूलफलंहृत्वायोमांप्रियमिवातिथिम् ॥ भोजयिष्यत्यकर्मण्यमप्रग्रहमनायकम् ॥ ३४ ॥ इमामंधांचवृद्धांचमातरंतेतपस्विनीम् ॥कथंपुत्रभरिष्यामिकृपणांपुत्रगर्धिनीम् ॥३५॥ तिष्ठमामागमःपुत्रयमस्यसदनंप्रति ॥ श्वोमयासहगंतासिजनन्याचसमेधितः ॥ ३६ ॥ उभावपिचशोकार्तावनाथौकृपणौवने ॥ क्षिप्रमेवगमिष्यावस्त्वयाहीनौयमक्षयम् ॥ ३७ ॥ ततोवैवस्वतंदृष्ट्वातंप्रवक्ष्यामिभारतीम् ॥क्षमतांधर्मराजोमेबिभृयात्पितरावयम् ॥ ३८ ॥ दातुमर्हतिधर्मात्मालोकपालोमहायशाः ॥ ईदृशस्यममाक्षय्यामेकामभयदक्षिणाम् ॥ ३९ ॥ अपापोसियथापुत्रनिहतः पापकर्मणा ॥ तेनसत्येनगच्छाशुयेलोकास्त्वस्त्रयोधिनाम् ॥ ४० ॥ यांहिशूरागतिंयांतिसंग्रामेष्वनिवर्तिनः ॥ हतास्त्वभिमुखाःपुत्रगतिंतांपरमांव्रज ॥ ४१ ॥ यांगतिंसगरःशैब्योदिलीपोजनमेजयः ॥ नहुषोधुंधुमारश्चप्राप्तास्तांगच्छपुत्रक ॥ ४२ ॥

उनसे कहैंगे कि,जिस दोषकेकरनेसे हमारा पुत्र हमसे अलग होगयाहै वहआपकोक्षमा करना होगा औरयहभी करना पडैगा कि,यही पुत्रअपने माता पिता हमारा पालन पोषण करै ॥३८॥ हम अनाथ हैं अतएव वह महायशस्वी धर्मात्मालोकपाल यमराज अवश्यही हमको भयरहित यह अक्षय दक्षिणा देदेंगे ॥३९॥ बस हमारी यही प्रार्थनाहै वत्स ! तुम पापरहित हो पर पूर्वजन्ममें कोई तो पापकियाही होगा कि जिससे मारेगये अतएव शस्त्रसे मरेहुये वीरगण जिसलोकमें गमन करतेहैं, सो तुम हमारे सत्यबलसे उसी लोकमें चले जाओ ॥ ४० ॥अथवा जो लोग कि, संग्राममसे न भागकर सन्मुख समरमें प्राण त्यागन करते हैं और जो गतिउनको मिलतीहै तुम्हैं वही परमगति प्राप्तहोवे ॥४१॥ अथवा सगरशैब्य, दिलीप, जनमेजय, नहुष, धुन्धुमार इन सब राजर्षियोंकी जो गति

हुई हे वत्स! उसी गतिको तुम पाओ ॥ ४२ ॥ अथवा सब प्राणियोंको वेद वाद वा तपस्या करनेसे जो गति होती है भूमिदान व नित्य होम करनेसे जो गति होती है या जिस पुरुषका प्रेम अपनी एकमात्र धर्मपत्नीमें लगा रहता है और उसको जो गति होतीहै, वत्स!तुम्हारी भी वही गति हो ॥४३॥ या हजार गोदान करनेसे जो गति होती है अथवा परलोकार्थ अच्छे कर्मकर देह त्याग करनेसे जो गति होती है, बेटा वही गति तुम्हारी हो ॥४४॥ हमारे इस अतिपवित्र तपस्वी वंशमें जन्म लेकर कभी किसीको अशुभगति नहीं प्राप्त हुई इससे मारे गये भी तुम हमारे बान्धव उत्तम गतिको ही प्राप्त करो ॥४५॥ इसप्रकार वह ऋषि वारंवार करुणास्वरसे विलाप करते हुये अपनी स्त्रीके सहित पुत्रके अर्थ जल देनेमें उतारू हुये ॥४६॥ जब उन दोनोंने जलदानादि किया तो वह धर्मवित् ऋषिकुमार अपने

यागतिःसर्वभूतानांस्वाध्यायात्तपसश्चया ॥भूमिदस्याहिताग्नेश्चएकपत्नीव्रतस्यच ॥ ४३॥ गोसहस्रप्रदातॄणांगुरुसेवाभृतामपि ॥ देहन्यासकृतांयाचतांगतिंगच्छपुत्रक ॥४४॥ नहित्वस्मिन्कुलेजातोगच्छत्यकुशलांगतिम् ॥ सतुयास्यतियेनत्वंनिहतोममबांधवः ॥४५॥ एवंसकृपणंतत्रपर्यदेवयतासकृत् ॥ तथोक्त्वाकर्तुमुदकंप्रवृत्तःसहभार्यया ॥४६॥ सतुदिव्येनरूपेणमुनिपुत्रःस्वकर्मभिः ॥ स्वर्गमध्यारुहत्क्षिप्रंशक्रेणसह धर्मवित् ॥ ४७ ॥ आबभाषेचतौवृद्धौशक्रेणसहतापसः ॥ आश्वयचमुहूर्ततुपितरंवाक्यमब्रवीत् ॥ ४८ ॥स्थानमस्मिमहत्प्राप्तोभवतोःपरिचारणात् ॥ भवंतावपिचक्षिप्रंमममूलमुपैष्यथ ॥४९॥एवमुक्त्वातुदिव्येनविमानेनवपुष्मता ॥ आरुरोहदिवंक्षिप्रंमुनिपुत्रोजितेंद्रियः ॥५०॥ सकृत्वाऽथोदकंतूर्णंतापसःसहभार्यया॥मामुवाचमहातेजाः कृतांजलिमुपस्थितम्॥५१॥ अद्यैवजहिमांराजन्मरणेनास्तिमेव्यथा॥यःशरेणैकपुत्रंमांत्वमकार्षीरपुत्रकम् ॥ ५२ ॥ त्वयापि चयदज्ञानान्निहतोमेसबालकः ॥ तेनत्वामपिशप्स्येऽहंसुदुःखमतिदारुणम् ॥ ५३ ॥

कर्मबलसे दिव्य रूप धारणकर इंद्रके सहित बहुत शीघ्र स्वर्गको चला गया ॥४७॥ स्वर्ग जानेके समय इन्द्रके सहित पिता माता दोनोंको एक मुहूर्त भरतक समझाया बुझाया फिर पितासे बोला ॥४८॥ हमने जो आपकी सेवा की थी सो हमकोउसी ही पुण्यकेबलसे यह उत्तमोत्तम स्थान मिला व आप लोग भी बहुत शीघ्र हमारे निकट आवेंगे ॥ ४९ ॥ यह कहकर इंद्रियोंको जीतनेवाला ऋषिकुमार अति देदीप्यमान विमानपर सवारहो उसीसमय स्वर्गको चला गया ॥ ५० ॥ इस ओर परम तेजस्वी अन्धे मुनि भार्याके सहित अतिशीघ्र पुत्रके लिये तर्पण करके हाथ जोड निकटही खडे हुये हमसे बोले ॥ ५१ ॥ हे राजन् ! हमेंभी मारडालो अब मरनेमें हमेंभी कुछ कष्ट नहीं है हमारे यही इकलौता पुत्र था सो तुमने उसको एकही बाणसे मारकर हमें अपुत्र कर दिया ॥ ५२ ॥ तुमने यद्यपि अज्ञानसे

हमारे बालक पुत्रको मारडाला है तथापि हम तुमको अति दुःसह दारुण शाप देते हैं ॥५३॥ हम जिस पुत्रकी मृत्यु होनेसे इस समय महादुःख भोग कर रहे हैं महाराज ! तुम्हें भी ऐसेही पुत्रके शोकसे कष्ट पाकर मरना पड़ेगा ॥५४॥ तुम क्षत्रिय हो विशेष कर अजानपनसेही ऋषिको मारडाला है इसही कारणसे हे नराधिप ! तुमको ब्रह्महत्या नहीं लगी ॥ ५५ ॥ किंतु दाता पुरुषके दानका फल जिस प्रकार अवश्यही होता है वैसेही तुमको भी अतिशीघ्र हमारे समान इस प्रकारकी प्राणनाश करनेवाली घोर दशामें पड़ना होगा ॥ ५६ ॥ इस प्रकार हमें शापदेकर करुणापूर्वक अनेक भांतिसे विलाप कलापकर वहींसे काठ इकट्ठा कर चिता बनाय मृतकको रख आग लगाया दोनों प्राणी चितापर बैठ और भस्म होकर स्वर्गको चले गये ॥५७॥ हे देवि ! मैंने जो उस समय अज्ञानतासे प्रमुग्ध शब्दवेधी होकर जो ऐसा पाप किया था सो आजही चिन्ता करते२अचानक उसकी सुधि आयगई ॥५८॥ हे देवि ! अपथ्य अन्न भोजन करनेसे जिस प्रकार

पुत्रव्यसनजंदुःखंयदेतन्ममसांप्रतम्॥एवंत्वंपुत्रशोकेनराजन्कालंकरिष्यसि ॥५४॥ अज्ञानात्तुहतोयस्मात्क्षत्रियेणत्वयामुनिः ॥ तस्मात्त्वांनाविशत्याशुब्रह्महत्यानराधिप ॥५५॥ त्वामप्येतादृशोभावःक्षिप्रमेवगमिष्यति ॥ जीवितांतकरोघोरोदातारमिवदक्षिणाम् ॥ ५६ ॥ एवंशापंमयिन्यस्यविलप्यकरुणंबहु ॥ चितामारोप्यदेहंतन्मिथुनंस्वर्गमभ्ययात् ॥५७॥ तदेतच्चिन्तयानेनस्मृतंपापंमयास्वयम् ॥ तदाबाल्यात्कृतंदेविशब्दवेध्यनुकर्षिणा ॥५८॥तस्यायंकर्मणोदेविविपाकःसमुपस्थितः ॥ अपथ्यैःसहसंभुक्तेव्याधिरन्नरसेयथा ॥५९॥ तस्मान्मामागतंभद्रेतस्योदारस्यतद्वचः ॥ इत्युक्त्वासरुदंस्त्रस्तोभार्यामाहतुभूमिपः ॥ ६० ॥ यदहंपुत्रशोकेनसंत्यजिष्यामिजीवितम् ॥ चक्षुर्भ्यांत्वांनपश्यामिकौसल्येत्वंहिमांस्पृश ॥ ६१ ॥ यमक्षयमनुप्राप्ताद्रक्ष्यंतिनहिमानवाः ॥ यदिमांसंस्पृशेद्रामः सकृदन्वारभेतवा ॥ ६२ ॥ धनंवायौवराज्यंवाजीवेयमितिमेमतिः ॥ नतन्मेसदृशंदेवियन्मयाराघवेकृतम् ॥ ६३ ॥

रोग पैदा होता है वैसेही हमारी उस पाप कर्मके करनेसे यह दशा हुई उसका फल आ पहुँचा ॥५९॥ हे भद्रे! उदास स्वभाव अन्धमुनिने जो कुछ कहा था इतने दिन पीछे हमको उनहीके वचन प्राप्त हुए हैं । यह इतिहास कहकर राजा दशरथजी रोने लगे और मरणके भयसे भीत होकर कौशल्याजीसे बोले ॥६०॥ हे कौशल्ये ! पुत्रशोकके कारण जो हमारे प्राण निकलने पर हो रहे हैं इससे तुम हमको दृष्टि नहीं आती हो, अतएव तुम हमको स्पर्श करो ॥ ६१ ॥ न दृष्टि आनेका कारण यह है कि, जो लोग यमधामको जाते हैं वह मरणसमय किसीको देख नहीं सकते, हा यदि रामचन्द्र हमको स्वयं छुवैं वा कुछ सहारादें ॥ ६२ ॥ अथवा वह यौवराज्य और खजाना अंगीकार करें तो बोध होता है कि, कदाचित् हम जी जायँ । हे कल्याणि ! हमने वत्सरामचन्द्रके साथ जो

व्यवहार और बर्त्ताव किया है वह किसीप्रकारसे भी शोभनीय नहीं है ॥६३॥ परन्तु उन्होंने जो वर्त्ताव हमारे साथ किया है वह उनकेयोग्यही हुआ है पुत्रदुराचारी भी हो तो भी कोई विचारवान् मनुष्य क्या उसको त्याग कर सकता है ? ॥६४॥ अथवा वनवास देनेसे ऐसा कोई पुत्र है जो पितासे कुछ न कहे ? हां ! न हम ऐसे दयारहित पिता, न परमसुशील पितामें भक्ति करनेवाले रामचन्द्रको छोड और कोई पुत्रही होगा। हे देवि ! अब हमें तुम कुछभी नहीं देख पडती और हमारी स्मरणशक्तिभी लोप होना चाहती है किसी बातकी सुधि नहीं आती ॥६५॥ यह देखो ! यमराजके दूत हमको लेचलनेके लिये जलदी करते हैं, इससे अधिक और दुःखकी क्या बात होगी ? कि मरणके समय ॥६६॥ मैंभी सत्यपराक्रम व धर्मात्मा रामचन्द्रजीको नहीं देख सकता अबजिसके समान दूसरा पुत्रकर्म न कर सके ऐसे पुत्रके न देखनेका शोक ॥६७॥ हमारे प्राणोंको शोषे लेता है जिसप्रकार सूर्यकीकिरणे अल्प वारिको शोषण करलेती हैं; वे लोग

सदृशंतत्तुतस्यैवयदनेनकृतंमयि ॥ दुर्वृत्तमपिकः पुत्रंत्यजेद्भुविविचक्षणः ॥ ६४ ॥ कश्चप्रव्राज्यमानोवानासूयेत्पितरंसुतः ॥ चक्षुषात्वां नपश्यामिस्मृतिर्ममविलुप्यते ॥ ६५ ॥ दूतावैवस्वतस्यैतकौसल्येत्वरयंतिमाम् ॥ अतस्तुकिंदुःखतरंयदहंजीवितक्षये ॥ ६६ ॥ नहि पश्यामिधर्मज्ञंरामंसत्यपराक्रमम् ॥ तस्यादर्शनजः शोकः सुतस्याप्रतिकर्मणः ॥ ६७ ॥ उच्छोषयतिवैप्राणा न्वारिस्तोकमिवातपः ॥ नते मनुष्यादेवास्तेयेचारुशुभकुंडलम् ॥ ६८ ॥ मुखंद्रक्ष्यन्तिरामस्यवर्षेपंचेदशपुनः ॥ पद्मपत्रेक्षणःसुभ्रु सुदंष्ट्रंचारुनासिकम् ॥६९ ॥ धन्याद्रक्ष्यंतिरामस्यताराधिपसमंमुखम् ॥ सदृशंशारदस्येंदोःफुल्लस्यकमलस्यच ॥७०॥ सुगंधिममरामस्यधन्याद्रक्ष्यंतियेमुखम् ॥ निवृत्तवनवासंतमयोध्यांपुनरागतम् ॥ ७१ ॥ द्रक्ष्यंतिसुखिनोरामंशुक्रंमार्गगतंयथा ॥ कौसल्येचित्तमोहेनहृदयंसीदतेतराम् ॥ ७२ ॥ वेदयेनचसंयुक्तान्शब्दस्पर्शरसानहम् ॥ चित्तनाशाद्विपद्यंतेसर्वाण्येवेंद्रियाणिहि ॥ ७३ ॥

मनुष्य नहीं बरन् देवता हैं जो रमणीय कुंडल धारण किये ॥६८॥ आजसे पंद्रहवें वर्ष श्रीरामचन्द्रजीकी पद्मवत् दृष्टि सुंदर भौंहयुक्त व सुन्दरदांत सुंदर नासिका सहित मुखारविंद देखेंगे ॥६९॥ शरदृऋतुके चन्द्रमा और खिलें हुये कमल फूल इन दोनोंहीसे रामचन्द्रकेमुखकी तुलना होसकती है ! जो लोग वह प्रकाशित और सुकुमार वदन मंडलको फिर देखेंगे वही धन्य हैं ॥७०॥ वनवाससे निवृत्त फिर अयोध्यामें आयेहुये श्रीरामचन्द्रजीका कमलसुगंधितमुख जो देखेंगे वही लोग धन्य हैं ॥७१॥ अथवा अपने मार्गको प्राप्तहुए शुक्रकीनाई वनवाससे अयोध्यामें आये हुए रामचन्द्रजीको जो लोगदेखेंगे वह यथार्थमें ही सुखी हैं. हे कौशल्ये ! अबदुःखकी बहुतायतसे मूर्च्छा आकर हमारे चित्तको बहुतघबडाये देती है ॥७२॥ शब्द, स्पर्श और रस यह सबइन्द्रियोंके कार्यभी अब मेरी समझमें नहीं आते; चिन्तनाके

नाश होजानेसे हमारीइन्द्रियांभी सबनष्टहोगईं॥७३॥ तेलके जल जानेसे जिस प्रकारदीपककी ज्योति एकबारही बुझ जाती है; हे कौशल्ये! यह हमारेही हृदयसे उठा शोक हम दीन और अनाथको ॥७४॥ इस प्रकारका गिराये देताहै जिसप्रकारनदीका वेग किनारोंको ढहाताहै। रामचन्द्रजीकोवनमेंभेजकरमैं एकबारही अनाथ होगया अतएव मैं निश्चय विनष्ट होगया। हा राम! हा महाबाहो! हा शोकके हरनेवाले ॥७५॥ हा पितृवत्सल! तुमही हमारे नाथ हो और तुमही हमारे पुत्रहो! तुम कहां गये! हा कौशल्ये! हा सुमित्रे! तुम अब हमें दिखाई नहीं देती हो ॥७६॥ हा दयाहीने! हा कुलनाशिनि! हा परमशत्रु कैकेयी! तैंने क्या किया? इस प्रकार राजा दशरथजी कौशल्या सुमित्राके निकट बहुतहीविलाप और शोक करके अपने प्राणोंको त्यागकरने लगे ॥ ७७ ॥ प्रिय पुत्र रामचन्द्रजीके

क्षीणस्नेहस्यदीपस्यसंरक्तारश्मयोयथा ॥ अयमात्मभवःशोकोमामनाथमचेतनम् ॥ ७४ ॥ संसाधयतिवेगेनयथाकूलंनदीरयः ॥ हाराघव महाबाहोहाममायासनाशन ॥ ७५ ॥ हापितृप्रियमेनाथहाममासिगतःसुत ॥ ॥ हाकौसल्येनपश्यमिहासुमित्रेतपस्विनि ॥ ७६ ॥ हानृशंसेममामित्रेकैकेयिकुलपांसनि ॥ इतिमातुश्चरामस्यसुमित्रायाश्चसन्निधौ ॥ राजादशरथःशोचञ्जीवितांतमुपागमत् ॥ ७७ ॥ तथातु दीनःकथयन्नराधिपः प्रियस्यपुत्रस्यविवासनातुरः ॥ गतेऽर्धरात्रेभृशदुःखपीडितस्तदाजहौप्राणमुदारदर्शनः ॥ ७८ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० अ० चतुः षष्टितमःसर्गः ॥ ६४ ॥ अथरात्र्यांव्यतीतायांप्रातरेवापरेऽहनि ॥ बंदिनःपर्युपातिष्ठंस्तत्पार्थिवनिवेशनम् ॥१॥ सूताःपरम संस्कारामागधाश्चोत्तमश्रुताः ॥ गायकाःश्रुतिशीलाश्चनिगदंतःपृथक्पृथक् ॥ २ ॥

वनमें भेजनेकी अवधिको सोचते हुए वह बहुतही व्याकुल और आतुर होगये थे इस समय बहुतही दुःखसे व्याकुल होकर इस प्रकार विलाप * करते २ आधी रातके समय सुन्दर दर्शनवाले राजा दशरथजीने प्राण त्यागे ॥ ७८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्वा० वा० आदि० अयोध्याकांडे भाषायां चतुःषष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥ तदनन्तर वह रात्रिवीती और प्रभात होनेपर बन्दीगण महाराजके राजद्वारपर आपहुँचे ॥ १ ॥ व्याकरणादि शास्त्रमें बहुत चतुर सूत कुलका कीर्तन करनेमें

---

* दशरथजीका विलाप ॥ रागनी बरवा ताल ३ धीमा ॥ हा रघुनंदन ! प्राण पियारे ॥ आस्ताई॥तुम विन प्राण रहत क्यों तनमें अस दुःख सहत हूं भारे ? ॥१॥ हा लक्ष्मण ! हा राम ! जानकी ! कहां गये जीवन प्राण हमारे ? कित पाऊं तुमको मेरे छौना भयो अँधारो भानु उजारे ॥ कानन जान अवस्था मेरी हा बिधना कस कीन्ह विचारे ॥ कोमल गात उमर है वारी बनके दुःख न जायँ सहारे ॥ इतना कहव्याकुल भयेदशरथ ध्यान नहीं कछुतन मनकारे ॥ जैसे मणिबिन फणिअकुलावत तैसी गति भई नारद प्यारे ॥ १ ॥

निपुण मागध और तान लयस्वरके जाननेवाले अच्छे २ गवैये अपनी२ रीतिके अनुसार राजगुण कीर्त्तन करने लगे ॥२॥ वे लोग बडे ऊंचेस्वर से राजाको आशीर्वाद देने लगे व उनकी स्तुति करने लगे उस स्तुतिके शब्दसे सब घबराकर प्रतिध्वनित होने लगे ॥ ३ ॥ अनन्तर इन सब स्तुति पढनेवालोंमें जो तालीबजाकर वंदना करतेथे वह राजा दशरथजीके अचरजके कार्योंको बखान२तालियाँ बजाने लगे ॥ ४ ॥ उन तालियोंके शब्दसे जागकर राजभवनमें जो राजाके यहां पालेपक्षी थे वह चाहे पींजरोंमें रहते थे या पेडोंकी डालियोंपर सब चहचहाने लगे ॥ ५ ॥ इस प्रकार इन सब पक्षियोंके सुन्दर व मनोहर शब्दसे और सब वीणाओंकी मनलुभानेवाली आवाजसे गवैयोंके आशीर्वाद युक्त गीतनादसे राजगृह गुंजार उठा ॥६॥ तिनके पीछे सदाचार सम्पन्न सेवा करनेमें निपुण सब परिचारक गण पूर्वकालमें जिस प्रकार आया करते थे वैसेही अब आये उनमें स्त्रियां और नपुंसक लोगही अधिक थे ॥ ७ ॥ इस समय स्नानकी

राजानंस्तुवतांतेषामुदात्ताभिहिताशिषाम् ॥ प्रासादाभोगविस्तीर्णःस्तुतिशब्दोह्यवर्तत ॥ ३ ॥ ततस्तुस्तुवतांतेषांसूतानांपाणिवादकाः ॥ अपदानान्युदाहृत्यपाणिवादान्यवादयन् ॥ ४ ॥ तेनशब्देनविहगाःप्रतिबुद्धाश्चसस्वनुः ॥ शाखास्थाःपंजरस्थाश्चयेराजकुलगोचराः ॥ ५ ॥ व्याहृताःपुण्यशब्दाश्चवीणानांचापिनिःस्वनाः ॥ आशीर्गेयंचगाथानांपूरयामासवेश्मतत् ॥६॥ ततःशुचिसमाचाराःपर्युपस्थानकोविदाः ॥ स्त्रीवर्षवरभूयिष्ठाउपतस्थुर्यथापुरा ॥ ७ ॥ हरिचंदनसंपृक्तमुदकंकांचनैर्घटैः ॥ आनिन्युःस्नानशिक्षाज्ञायथाकालंयथाविधि ॥ ८ ॥ मंगलालंभनीयानिप्राशनीयान्युपस्करान् ॥ उपानिन्युस्तथापुण्याःकुमारीबहुलाःस्त्रियः ॥९॥ सर्वं लक्षणसंपन्नंसर्वंविधिवदार्चितम् ॥ सर्वंसुगुणलक्ष्मीव त्तदभूदाभिहारिकम् ॥ १०॥ ततःसूर्योदयंयावत्सर्वंपरिसमुत्सुकम् ॥ तस्थावनुपसंप्राप्तंकिंस्विदित्युपशंकितम् ॥ ११॥ अथयाःकोसलेंद्रस्यशयनंप्रत्यनंतराः ॥ ताःस्त्रियस्तुसमागम्यभर्तारंप्रत्यबोधयन् ॥ १२॥ अथाप्युचितवृत्तास्ताविनयेननयेनच ॥ नह्यस्यशयनंस्पृष्ट्वाकिंचिदप्युपलेभिरे ॥ १३॥

विधियोंको भली भांति जाननेवाले लोग राजादशरथजीके स्नान करनेके लिये कंचनके कलशोंमें जलभर कर उसमें चन्दन मिलाकर अच्छी तरह विधिपूर्वक अपने समयपर लाये ॥८॥ बहुसंख्यक कुमारी स्त्रियोंने पवित्र होकर मंगलके लिये भोजन करने चखने देखने आदिकी शुभवस्तु और पीनेके लिए अनेक प्रकारके जल व दर्पण वस्त्र और आभरणादि और भी अनेक प्रकारकी वस्तु इकट्ठी की ॥९॥ मंगलके लिये आये हुए यह द्रव्य सब प्रकारके सुलक्षणोंसे युक्तथे व सब बहुतही श्रेष्ठ और सुगुण लक्ष्मी सहित थे ॥ १० ॥ फिर सबही राजाके दर्शनार्थ उत्कंठित होकर जबतक सूर्य निकले तबतक यही करते रहे कि, अब आया चाहते हैं परन्तु सूर्य निकलनेपरभी जब राजा न आये तब सबके मनमें शंका हुई और बोले कि, भाई आज क्या बात है जो राजा अबतक नहीं उठे ॥ ११॥ कौशल्यजीके अतिरिक्त और जो सब स्त्रियां महाराजकी सेजसे कुछही दूरपर थीं वे इकट्ठी होकर स्वामीको जगाने लगीं ॥ १२॥ उन्होंने रीतिसहित और विनीत

भावसे अपने पतिकी मेजको भली भांति टटोल कर देखा कि, देहमें प्राण रहनेमे जिसप्रकार स्पंदनादिक होता है सो वहां कुछभी नहीं ॥१३॥ वह सब सोतेहुए मनुष्यका स्वभाव जानती थीं सुतरां उन्होंने अपने पतिके हाथकी नाडी और हृदयकी धडकनको न पाकर राजादशरथजीके जीवित होनेमें शंकाकी ॥ १४ ॥ वह सब स्त्रियां राजाके जीवित होनेमें संदेह देख नदीके सोतेमें जमेहुए वेतोंके समान कांपने लगीं ॥१५॥ जो शंका उनके मनमें आई थी कि, कहीं राजा मरतो नहीं गये? अब वहीउनको निश्चय होगया और कौशल्या सुमित्रा तो पहलेही पुत्र शोकसे हार बैठीं थीं ॥१६॥ सो इस कारणवह ऐसी सोईं कि, उन्होंने राजाका मरना जानाही नहीं क्योंकि वे तो आपही शोकके मारे निस्तेज और पीली पड गईं थीं मानो उनकेभी प्राण न थे।॥१७॥ जैसे बादरके अँधेरेसे छिपे नक्षत्र नहीं शोभित होते वैसेही राजाके समीप कौशल्या सुमित्रा नहीं शोभितहोती थीं ॥ १८ ॥ व और राजस्त्रियां भी मारे शोकके रुदन करतीहुई शोभित नहीं

ताःस्त्रियःस्वप्नशीलज्ञाश्चेष्टांसंचलनादिषु॥तावेपथुपरीताश्चराज्ञःप्राणेषुशंकिताः॥१४॥प्रतिस्त्रोतस्तृणाग्राणांसदृशंसचकाशिरे॥ अथसंदेहमानानांस्त्रीणांदृष्ट्वाचपार्थिवम्॥१५॥ यत्तदाशंकितंपापंतदाजज्ञेविनिश्चयः ॥ कौसल्याचसुमित्राचपुत्रशोकपराजिते ॥ १६ ॥ प्रसुप्तेनप्रबुद्ध्येतेयथाकालसमन्विते॥निष्प्रभासाविवर्णाचसन्नाःशोकेनसन्नता॥१७॥ नव्यराजतकौसल्यातारेवतिमिरावृता॥कौसल्यानंतरंराज्ञःसुमित्रातदनंतरम्॥१८॥ नस्मविभ्राजतेदेवीशोकाश्रुलुलितानना ॥ तेचदृष्ट्वातदासुप्तेउभेदेव्यौचतंनृपम् ॥१९॥ सुप्तमेवोद्गतप्राणमंतःपुरमदृश्यत ॥ ततःप्रचुक्रुशुर्दीनाःसस्वरंतावरांगनाः ॥ २० ॥ करेणवाइवारण्येस्थानप्रच्युतयूथपाः ॥ तासामाक्रंदशब्देनसहसोद्गतचेतने ॥ २१ ॥ कौसल्याचसुमित्राचत्यक्तनिद्रेबभूवतुः ॥ कौसल्याचसुमित्राचदृष्ट्वास्पृष्ट्वाचपार्थिवम् ॥ २२ ॥ हाभर्त्तेतिपरिक्रुश्यपेततुर्धरणीतले ॥ साकोसलेंद्रदुहिताचेष्टमानामहीतले ॥ २३ ॥ नभ्राजतेरजोध्वस्तातारेवगगनच्युता ॥ नृपेशांतगुणेजातेकौसल्यांपतितांभुवि ॥ २४ ॥

होती थीं। उन सब स्त्रियोंने उसी स्थानपर सोतीहुई कौशल्या व सुमित्राजीको देख राजाकोभी मराही देख ॥ १९ ॥ समझलियाकि, इन तीनोंने शरीर छोड दिया: बस शोकके मारे अंतःपुरकी स्त्रियें अतिदीन हो ऊंचे स्वरसे रोने लगीं ॥ २० ॥ जिस प्रकार वनमें अपने समूहसे बिछुडने पर हथनियां चिल्लाने लगती हैं वैसेही इन सबका बडे जोरसे रोना सुन एकाएकी चैतन्यता प्राप्तकर ॥२१॥ कौशल्या व सुमित्राजी जाग उठीं और झटपट राजाको देख उनके छाती आदि अंग टटोल टटोल कर ॥२२॥ हा स्वामिन्! यह कह बडे शब्दसे चिल्लाय उसीसमय पृथ्वीपर गिर पडीं और सारे शरीरमें धूल लगी वह कोशलेन्द्र दुहिता पृथ्वीपर तडफडाय २ लोटने लगीं ॥ २३ ॥ वह आकाशसे गिरे हुये नक्षत्रकी नाईं बहुतहीप्रभारहित होगई और राजाके मरनेसे कौसल्याजीभी भूमिपर गिर

पडीं ॥२४॥ तो और राजाकी स्त्रियोंने कौसल्याजीको ऐसा देखा कि,मानो कोई नागवधू मरी पडी है । अनन्तर राजा दशरथजीकी कैकेयीसे आदि लेकर सब स्त्रियां ॥२५॥ शोकसे संतापित और चेतनारहित हो रोते २ गिरपडीं तब सब रानियोंके रोनेका बडा भारी कुलाहल हुआ ॥२६॥ उस समय पहिलेसे आई हुई उन रानियोंके रोनेका तुमुल शब्द पीछेसे आई हुई कैकेयी इत्यादिके रोनेके शब्दके साथ मिल जानेसे औरभी बढगया और सम्पूर्ण राजभवनमें फैलगया व उसके भयसे भीत हो सब देखनेवाले लोगोंसे आकुल होगया ॥२७॥ उस कालमें राजभवन बहुतही त्रासित और व्यग्र होगया और इस रोनेका समाचार जाननेके लिये बहुतही उत्कंठित लोगोंके आवागमनसे उस स्थानमें चलनेको जगह न रही,सब जगह महा हाहाकार होरहा था ! जितने बन्धु बान्धव थे सब सन्ताप पारहेथे और कहींआनन्दका लेशमात्रनहीं थाबहुत शीघ्र मृतकराजा दशरथजीकेगृहने इसप्रकार व्याकुलता और दुर्दशाकी मूर्ति धारण की॥२८॥ महीपालोंमें

अपश्यंस्ताः स्त्रियः सर्वाहतांनागवधूमिव ॥ ततःसर्वानरेंद्रस्यकैकेयीप्रमुखाःस्त्रियः ॥ २५ ॥ रुदत्यःशोकसंतप्तानिपेतुर्गतचेतनाः ॥ ताभिः सबलवान्नादःक्रोशंतीभिरनुद्रुतः ॥ २६ ॥ येनस्फीतीकृतोभूयस्तद्गृहंसमनादयत् ॥ तत्परित्रस्तसंभ्रांतपर्युत्सुकजनाकुलम् ॥ २७ ॥ सर्वत स्तुमुलाक्रंदंपरितापार्तबांधवम् ॥ सद्योनिपतितानंददीनंविक्लवदर्शनम् ॥ बभूवनरदेवस्यसद्मदिष्टांतमीयुषः ॥ २८ ॥ अतीतमाज्ञायतुपार्थि वर्षभंयशस्विनंतंपरिवार्यपत्नयः ॥ भृशंरुदंत्यःकरुणंसुदुःखिताःप्रगृह्यबाहूव्यलपन्ननाथवत् ॥ २९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकांडे पंचषष्टितमःसर्गः ॥६५॥ तमग्निमिवसंशांतमम्बुहीनमिवार्णवम् ॥गतप्रभमिवादित्यंस्वर्गस्थंप्रेक्ष्यभूमिपम् ॥१॥ कौसल्यावाष्पपूर्णाक्षीविविधंशोककर्शिता ॥ उपगृह्यशिरोराज्ञःकैकेयींप्रत्यभाषत ॥ २ ॥सकामाभवकैकेयिभुंक्ष्वराज्यमकंटकम् ॥ त्यक्त्वा राजानमेकाग्र्यान्नृशंसेदुष्टचारिणि ॥३॥ विहायमांगतोरामोभर्ताचस्वर्गतोमम ॥ विपथेसार्थहीनेवनाहंजीवितुमुत्सहे ॥ ४ ॥

श्रेष्ठ यशोवान् महाराज दशरथजीकों मृतक जानकर सब रानियां महादुःखितहो अत्यन्त करुणाके स्वरसे रोय २ कर दशरथजीके शरीरको चारों ओरसे घेर बांहे उठा २ कर अनाथोंके समान रोदन करने लगीं ॥ २९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० अयोध्याकांडे भाषायां पंचषष्टितमः सर्गः ॥ ३५ ॥ राजा दशरथजीको शिखाहीन अग्निकी नाई,जलहीन समुद्रकी नाई,प्रभाहीन सूर्यकी नाई स्वर्गवासी देख ॥१॥ कौशल्याजी शोकसे कर्षित हो नेत्रोंमें आंसू भरकर और राजाका मस्तक अपनी गोदमें ले कैकेयीसे कहने लगीं ॥ २ ॥ हे नृशंसे ! दुष्टचारिणी कैकेयी ! तेरे मनोरथ इस समय पूरे हुये अकंटक राज्य भोगो,राजाको छोड अकेले सब सुख करो ॥३॥ रामचंद्रजी हमें छोडकर वनको चले गये,प्राणनाथने भी स्वर्गको गमन किया, अब दुर्गम मार्गमें साथछूटगये

पथिककी नाईं हम जीनेकी अभिलाषा नहीं करतीहैं ॥४॥ तुम्हारी समान धर्मत्यागिनी स्त्रीके सिवाय और कौन स्त्री अपने परमदेव स्वामीको छोडकर जीनेकी इच्छा करेगी ?॥५॥ हा! लोभी मनुष्य दोषोंको नहीं समझता केवल शरीरके सुखको देखताहै और किसकारण बिना दोषोंके विचारे हुये अभक्ष्य पदार्थोंकोखा लेता है और उनकी हानियोंको नहीं जानता ऐसे तुझ कैकेयीने कुबरी मथराकेकहनेसे लोभवश हो रघुकुलको जडसे नष्ट करदिया ॥६॥ महाराजने अनुचित कार्यमें लगकर सीताजीके सहित रामचंद्रको वनमें भेजदिया, राजा जनकजीभी यह वार्ता सुनकर हमारेही बातसमान परिताप करेंगे ॥७॥ हम जो आज अनाथ और विधवा होगईं हाय ! को वह कमलदललोचन धर्मात्मा रामचद्र अब तक नहीं जानते। हा ! रामचंद्रजी इस जीवित रहते भी हमारे लेखे तो अदृश्य होगये ॥८॥ और चारु तपस्या करने वाली जोकि, कभी दुःखके योग्य नहीं हैं जिनको सदा सुखही मिलना चाहिये वह जनकराज पुत्री सीतादेवी वनमें अनेक भांतिके

भर्तारंतुपरित्यज्यकास्त्रीदैवतमात्मनः ॥ इच्छेज्जीवितुमन्यत्रकैकेय्यास्त्यक्तधर्मणः ॥५॥ नलुब्धोबुध्यतेदोषान्किंपाकमिवभक्षयन् ॥ कुब्जानिमित्तंकैकेय्याराघवाणांकुलंहतम् ॥ ६ ॥ अनियोगेनियुक्तेनराज्ञारामंविवासितम् ॥ सभार्यंजनकःश्रुत्वापरितप्स्यत्यहंयथा ॥ ७ ॥ समामनाथांविधवांनाद्यजानातिधार्मिकः ॥ रामःकमलपत्राक्षोजीवन्नाशमितोगतः ॥८॥ विदेहराजस्यसुतातथाचारुतपस्विनी ॥ दुःखस्यानुचितादुःखंवनेपर्युद्विजिष्यति ॥९॥ नदतांभीमघोषाणांनिशासुमृगपक्षिणाम् ॥ निशम्यमानासंत्रस्ताराघवंसंश्रयिष्यति ॥ १० ॥ वृद्धश्चैवाल्पपुत्रश्चवैदेहीमनुचिंतयन् ॥ सोऽपिशोकसमाविष्टोनूनंत्यक्ष्यतिजीवितम् ॥ ११ ॥ साहमद्यैवदिष्टांतंगमिष्यामिपतिव्रता ॥ इदंशरीरमालिंग्यप्रवेक्ष्यामिहुताशनम् ॥ १२ ॥ तांततःसंपरिष्वज्यविलपंतींतपस्विनीम् ॥ व्यपनिन्युःसुदुःखार्तांकौसल्यांव्यावहारिकाः ॥ १३ ॥ तैलद्रोण्यांतदामात्याःसंवेश्यजगतीपतिम् ॥ राज्ञःसर्वाण्यथादिष्टाश्चक्रुःकर्माण्यनंतरम् ॥ १४ ॥

दुःख पाकर घबडाती होंगी ॥ ९ ॥ भयंकर शब्दकरनेवाली पक्षियोंकी चिल्लाहटसे भीत होकर सीताको अवश्यही डर लगता होगा और रामचंद्रजीके कंठमें लिपट जाती होंगी ॥ १० ॥ वह वृद्ध और पुत्र जिनके हैंहींनहीं ऐसे विदेह राजा जनकजी सीताकी सुधि करते हुये निश्चयही शोकसे घबडाकर प्राणत्याग करेंगे ॥११॥ अच्छा जो हुआ सो हुआ अब मैंभी आजही पतिव्रतधर्मकीरक्षा करनेके लिये शरीर त्याग करूंगी आज प्राणनाथके शरीरको अग्निमें लपटाय अग्निमें प्रवेश करूंगी ॥ १२ ॥ कौशल्याजी राजा दशरथजीकी लोथसे लिपट कर दुःखित हो इस प्रकारसे विलाप और परिताप कररहीथीं यह देखकर सब दासी आदिक उनको वहांसे दूर लेगईं ॥ १३ ॥ और वसिष्ठप्रभृति मंत्रियोंकीआज्ञानुसार तेल भरी हुई नावमें उन मृतक राजाका शरीर रक्खागया तब पीछे

और राजकार्य किये करायेगये ॥ १४ ॥ सब कुछ जाननेवाले मंत्रियोंने पुत्र बिना राजा दशरथजीके शरीरका संस्कार नहीं करना चाहा क्योंकि वहां उससमय कोई पुत्र न था रामलक्ष्मणवन और भरतशत्रुघ्ननिहाल गयेथे इसकारण शरीर तेलकी नावमें रक्खागया कि,शरीर बिगडे नहीं और कोई पुत्र आवे तब क्रियाहो॥१५॥ जब मंत्री लोगोंने तेल भरी नावमें राजाके शरीर रख दिया यह देखकर सबरानियां यह कह विलाप करने लगीं कि,हाय ! राजा मृतक हो ही गये॥१६॥ नेत्रोंसे जल बरसाती हुईशोकके मारे संतप्त व दीन हुईराजरानियें बाँहें उठारोय२ऐसा विलाप करने लगीं॥१७॥ महाराज ! एक तो हम सदा मीठा बोलनेवाले सत्यसिन्धु रामचन्द्रसे हीनहोकर जीरही हैं उसपर आप क्यों हमें छोडकरस्वर्ग सिधारे ॥ १८ ॥ हाय ! हम विधवा होकर उनरामचन्द्रके विरहमें किसप्रकार दुष्ट

नतुसंकालनंराज्ञोविनापुत्रेणमंत्रिणः ॥ सर्वज्ञाःकर्तुमीषुस्तेततोरक्षंतिभूमिपम् ॥१५॥ तैलद्रोण्यांशायितंतंसचिवैस्तुनराधिपम् ॥ हामृतोऽय मितिज्ञात्वास्त्रियस्ताःपर्यदेवयन् ॥ १६ ॥ बाहूनुच्छ्रित्यकृपणानेत्रप्रस्रवणैर्मुखैः ॥ रुदत्यःशोकसंतप्ताःकृपणंपर्यदेवयन् ॥ १७ ॥ हामहाराज रामेणसंततंप्रियवादिना ॥ विहीनाःसत्यसंधेनकिमर्थंविजहासिनः ॥१८॥ कैकेय्यादुष्टभावायाराघवेणविवर्जिताः ॥कथंसपत्न्यावत्स्यामः समीपेविधवावयम् ॥ १९ ॥ सहिनाथःसचास्माकंतवचप्रभुरात्मवान् ॥ वनंरामोगतःश्रीमान्विहायनृपतिश्रियम् ॥ २० ॥ त्वयातेनचवी रेणविनाव्यसनमोहिताः ॥ कथंवयंनिवत्स्यामः कैकेय्याचविदूषिताः ॥२१॥ ययाचराजारामश्चलक्ष्मणश्चमहाबलः ॥ सीतयासहसंत्यक्ताः साकमन्यंनहास्यति॥२२॥ ताबाष्पेणचसंवीताःशोकेनविपुलेनच॥व्यचेष्टंतिनिरानंदाराघवस्यवरस्त्रियः॥२३॥ निशानक्षत्रहीनेवस्त्रीवभर्तृविव र्जिता॥पुरीनाराजतायोध्याहीनाराज्ञामहात्मना॥२४॥बाष्पपर्याकुलजनाहाहाभूतकुलांगना ॥ शून्यचत्वरवेश्मांतानबभ्राजयथापुरम् ॥२५॥

स्वभाववाली कैकेयीकेसमीपरहैंगी ? ॥ १९ ॥ वह श्रीमान् आत्मवान् राम जोकिसबहीके नाथ थे और हमारे तुम्हारेरक्षाकरनेवालेथेवहभीराज्यलक्ष्मी छोडकरवनको चले गये ॥२०॥ अतएव उनके और आपके विरहमेंदुखिया कैकेयीसे तिरस्कार कीजाती हुई हम लोग यहां कैसी रहेंगी ? ॥२१॥ जिस कैकेयीने आपको रामको महाबली लक्ष्मण और सीताको त्याग करनेमें देर न लगाई फिरवह और किसको छोड सकती है ॥ २२ ॥ महाराज दशरथजीकी वह सब श्रेष्ठ स्त्रियां शोकसे पीडितहो आंसुओंकी धारा छोडती हुई औरआनन्दरहित होकर ठंढे २ श्वासलेने लगीं ॥२३॥ चन्द्र बिना यामिनी और कंत बिन कामिनी जिसप्रकारप्रभाहीन होजाती हैं वैसेही उससमय महात्माराजादशरथके विना अयोध्यानगरी शोभित नहीं होतीथी ॥ २४ ॥ क्योंकि वहांके गृह चौराहे आदि बिना झारे बुहारे रहनेसे

और मनुष्योंके आंसू आये हुये जहाँतहाँ खडे होनेसे सब स्त्रियोंके हाहाकार करनेसे वह नगरी पूर्वकी समान शोभित नहीं होतीथी ॥२५॥ मारे पुत्रशोकके राजा दशरथजीके स्वर्ग चले जानेपर उनकी सब स्त्रियें पृथ्वीमें गिर२कर रोने लगीं कि, इतनेमें सूर्य भगवान् छिप गये और अंधकारको साथ लिये हुये रात हो आई ॥२६॥ इक्ष्वाकुकुलके सब बान्धव और सुहृदोंने मिलकर विचारपूर्वक विना किसी पुत्रके आये पुत्रके विरहसे प्राण त्यागे हुये अचिन्त्यदर्शन राजा दशरथजीके शरीरकीदाहक्रियाकरनी उचित न समझी और उनके शरीरको उसी तेलभरी नावमें रहने दिया ॥२७॥ उससमय महाराज दशरथजीके मरजानेसे अयोध्याके मार्ग और चौराहोंपर आँखोंमें आंसू भरे और गद्गदकण्ठमनुष्योंकी भीड लगनेसे वह नगरी सूर्यहीन गगन और नक्षत्रहीन रात्रिकेसमान प्रभाहीन होगई ॥२८॥ दशरथजीकी मृत्यु होनेसे अयोध्याके वासी क्या स्त्री क्या पुरुष, सब इकठे हो२कर भरत माता कैकेयीको कोसने लगे और सब ऐसे कातर होगये

गतेतुशोकात्त्रिदिवंनराधिपेमहीतलस्थासुनृपांगनासुच॥निवृत्तचारःसहसासुतोरविःप्रवृत्तचाररजनीह्युपस्थिता ॥२६॥ ऋतेतुपुत्राद्दहनंमहीपते र्नारोचयंस्तेसुहृदः समागताः ॥ इतीवतस्मिञ्शयनेन्यवेशयन्विचिंत्यराजानमचिंत्यदर्शनम् ॥२७॥ गतप्रभाद्यौरिवभास्करंविनाव्यपेतनक्ष त्रगणेवशर्वरी ॥ पुरीबभासेरहितामहात्मनाकठास्रकंठाकुलमार्गचत्वरा ॥ २८ ॥ नराश्चनार्यश्चसमेत्यसंघशोविगर्हमाणाभरतस्यमातरम् ॥ तदानगर्यांनरदेवसंक्षयेबभूवुरार्तानचशर्मलेभिरे ॥ २९ ॥ इत्यार्षे ,श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकांडे षट्षष्टितमः सर्गः ॥६६॥ आक्रंदितानिरानंदासास्रकंठजनाविला ॥ अयोध्यायामवततासाव्यतीयायशर्वरी ॥ १ ॥ व्यतीतायांतुशर्वर्यामादित्यस्यो दयेततः ॥ समेत्यराजकर्तारःसभामीयुर्द्विजातयः ॥ २ ॥ मार्कण्डेयोऽथमौद्गल्योवामदेवश्चकाश्यपः ॥ कात्यायनोगौतमश्चजाबालिश्चमहा यशाः ॥ ३ ॥ एतेद्विजाःसहामात्यैःपृथग्वाचमुदीरयन् ॥ वसिष्ठमेवाभिमुखाः श्रेष्ठंराजपुरोहितम् ॥ ४ ॥

कि, किसीप्रकारसे कुछभी सुख न पा सके ॥ २९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयोध्याकांडे भाषायां षट्षष्टितमःसर्गः ॥६६॥ किसीके मनमें किसी प्रकारका कुछआनन्द नहीं सब ही आंसुओंकी धार छोडते हुये बराबर रोरहे थे । इस प्रकार यह रात शोक और दुःखके मारे पहाडके समान बडी होगई ॥ १ ॥ अनन्तर बडेकष्टसे सबेरा हुआ बस प्रभात होहीगया तब सूर्यके निकलतेही सब राजकार्यके निर्वाह करनेवाले ब्राह्मणलोग राजसभामें आये ॥ २ ॥ उस समय मार्कण्डेय, मौद्गल्य, वामदेव, काश्यप, कात्यायन, गौतम और महायशस्वी जाबालिजी ॥ ३ ॥ यह सब ब्राह्मण राजाकी अन्तिम क्रिया करनेके लियेसेवकों सहित राजसभामें इकटे हुए और मंत्रियोंके साथ मिल कर श्रेष्ठ राजपुरोहित वसिष्ठजीके सामने राजकार्यके सम्बन्धमें जिसका जो जो मत

था वैसेही सब अलग २आशय प्रगट करने लगे ॥ ४ ॥ राजा दशरथजी पुत्रशोकसे स्वर्गवासी होगये इस कारण यह रात्रि हम सबको सैकडों वर्षोंके समान जान पडी है,और बहुतही कठिनाईसे इसको विताया है ॥५॥ महाराज स्वर्गमें चलेगये, रामचन्द्रजी वनको सिधारे,महातेजस्वी लक्ष्मणजीने रामचन्द्रजीका साथ लिया ॥ ६ ॥ इस ओर शत्रुओंके मारनेवाले भरत और शत्रुघ्न दोनों भाई केकयराजके राजगृह नामक नगरमें अपने नानाके घर रहते हैं ॥७॥ इससे इक्ष्वाकु वंशियोंमेंसे किसीको आजही राजा बनाना चाहिये,क्योंकि नहीं तो विना राजाके यह हम लोगोंका राज्य शीघ्र नाशको प्राप्तहोजायगा ॥८॥ क्योंकि अराजक देशमें,जहां कि,राजा नहीं होता वहां बिजलीकी चमक सहित अति शब्दसेगर्जनेवाले मेघ दिव्य जलधारा पृथ्वीपर नहीं वर्षाते ॥९॥ अराजक देशमें किसान बीजकी मूठिबोनेके लिये नहींखोलते, अराजक राज्यमें पुत्र पिताका कहना नहीं मानता और स्त्रियां स्वामीके वश नहीं रहतीं॥१०॥अराजकराज्यमें धन नहीं

अतीताशवरीदुःखंयानोवर्षशतोपमा ॥ अस्मिन्पंचत्वमापन्नेपुत्रशोकेनपार्थिवे ॥५॥ स्वर्गस्थश्चमहाराजोरामश्चारण्यमाश्रितः ॥ लक्ष्मणश्चा पितेजस्वीरामेणैवगतःसह ॥ ६ ॥ उभौभरतशत्रुघ्नौकेकयेषुपरंतपौ ॥ पुरेराजगृहेरम्येमातामहनिवेशने ॥७॥ इक्ष्वाकूणामिहाद्यैवकश्चिद्राजा विधीयताम् ॥ अराजकंहिनोराज्यंविनाशंसमवाप्नुयात् ॥८॥ नाराजकेजनपदेविद्युन्मालीमहास्वनः॥अभिवर्षतिपर्जन्योमहींदिव्येनवारिणा ॥९॥ नाराजकेजनपदेबीजमुष्टिःप्रकीर्यते ॥ नाराजकेपितुःपुत्रोभार्यावावर्ततेवशे ॥ १० ॥ अराजकेधनंनास्तिनास्तिभार्याप्यराजके ॥ इद मत्याहितंचान्यत्कुतःसत्यमराजके ॥ ११ ॥ नाराजकेजनपदेकारयंतिसभांनराः ॥ उद्यानानिचरम्याणिहृष्टाःपुण्यगृहाणिच ॥१२॥ नारा जकेजनपदेयज्ञशीलाद्विजातयः ॥ सत्राण्यन्वासतेदांताब्राह्मणाःसंशितव्रताः ॥ १३ ॥ नाराजकेजनपदेमहायज्ञेषुयज्वनः ॥ ब्राह्मणावसुसं पूर्णाविसृजंत्याप्तदक्षिणाः ॥ १४ ॥ नाराजकेजनपदेप्रहृष्टनटनर्तकाः ॥ उत्सवाश्चसमाजाश्चवर्धन्तेराष्ट्रवर्धनाः ॥ १५ ॥

रहताक्योंकि लुटेरे आदिक लूटते हैं,अराजक राज्यमें स्त्रियांभी बिगडजाती हैं,क्यों कि निडर होनेके कारण व्यभिचार करनेलगती हैं,अराजकराज्यमें यहांतक होता है कि, सत्य व्यवहार तो एकबारही लोप हो जाता है ॥ ११ ॥ अराजक राज्यमें सब मनुष्य हर्षित होकर न्यायादि विचार करनेके लिये सभायें नहीं करते अथवा रमणीय फुलवाडियां और पुण्य देनेवाले गृह शिवालय ठाकुर द्वारे इत्यादि नहीं बनाते ॥ १२ ॥ अराजक देशमें उत्तम क्षत्रिय वैश्य उत्तम उत्तम यज्ञ नहीं करते, न जितेन्द्रिय ब्राह्मण गण उनका यज्ञ करतेही हैं ॥१३॥ अराजक राज्यमें सब धनवान् ब्राह्मण बढे बडे यज्ञ नहीं करते कि, जिनमें यज्ञ करने वालोंको बडी दक्षिणा देनी पडती है ॥ १४ ॥ अराजक राज्यम जिनके करनेसे राज्यकीउन्नतिहोती है, ऐसे सभा उत्सवादि नहीं हुआ करतेऔर नाटक

करनेवाले, नचैये;कथक्कड़ आदि प्रसन्नचित्तसे वहां नहीं रहते ॥१५॥ अराजक राज्यमें लेनदेनके करनेवालोंका प्रयोजन व्यर्थ होजाता है और जो मनुष्य कि, कथा पुराणादि सुननेमें बहुतही अनुराग करते हैं फिर वहभी कथा कहनेमें लगेहुयेपौराणिकोंकी कथा नहीं सुनते सुनाते,क्योंकिअराजकता होनेसे उनलोगोंका चित्तही स्थिर नहीं रहता ॥१६॥ अराजक राज्यमें सुवर्णके गहनेपहरनेसे शोभायमान कुमारी कन्यायें संध्याके समय झुंडकेझुंड मिलकर फुलवारियोंमें खेलनेको नहीं जाती कि,न मालूम उनपर कौन क्या उत्पात हो ॥१७॥अराजक राज्यमें धनवानोंके धनकी भली भांति रक्षा नहीं होती क्योंकि, पहरेदारतो रहतेही नहीं और लोग खेती करके व पशुओंको पालपोषकर जीविका निर्वाह करते हैं वहभी किंवाडे खोलकर ठंडी हवामें नहीं सोने पाते ॥ १८ ॥ अराजक राज्यमें कामीपुरुषगण तेजचलनेवाली सवारियों पर चढकर स्त्रियोंके सहित वनविहार करनेको नहीं जाते॥१९॥अराजक राज्यमें साठ वर्षकी उमरवाले

नाराजकेजनपदेसिद्धार्थाव्यवहारिणः ॥ कथाभिरभिरज्यंतेकथाशीलाःकथाप्रियैः ॥ १६ ॥ नाराजकेजनपदेतूद्यानानिसमागताः ॥ सायाह्ने क्रीडितुंयांतिकुमार्योहेमभूषिताः ॥ १७ ॥ नाराजकेजनपदेधनवंतःसुरक्षिताः ॥ शेरतेविवृतद्वाराःकृषिगोरक्षजीविनः ॥ १८॥ नाराजकेजनपदेवाहनैःशीघ्रवाहिभिः ॥ नरानिर्यांत्यरण्यानिनारीभिः सहकामिनः ॥ १९ ॥ नाराजकेजनपदेबद्धघंटाविषाणिनः ॥ अटंतिराजमार्गेषु कुंजराःषष्टिहायनाः ॥ २० ॥ नाराजकेजनपदेशरान्संततमस्यताम् ॥ श्रूयतेतलनिर्घोषइष्वस्त्राणामुपासने ॥२१॥ नाराजकेजनपदेवणिजो दूरगामिनः ॥ गच्छंतिक्षेममध्वानंबहुपण्यसमाचिताः ॥ २२ ॥ नाराजकेजनपदेचरत्येकचरोवशी ॥ भावयन्नात्मनात्मानंयत्रसायंगृहोमुनिः ॥ २३ ॥ नाराजकेजनपदेयोगक्षेमःप्रवर्तते ॥ नचाप्यराजकेसेनाशत्रून्विषहतेयुधि ॥ २४ ॥ नाराजकेजनपदेहृष्टैःपरमवाजिभिः ॥ नराःसंयांतिसहसारथैश्चप्रतिमंडिताः ॥ २५ ॥

और बडे दांतवाले घंटा बांधे हाथी राजमार्गोंमें नहीं घूमा करते ॥२०॥ अराजक राज्यमें बाणविद्या सीखनेवालोंका ताल ठोकना नहीं सुनाई देता यद्यपि उनको बार २ तीर चलाकर सीखना चाहिये ॥ २१ ॥ अराजक राज्यमें दूर देशोंके जानेवाले सौदागर लोग बजारोंमें बिकनेवाली वस्तुओंको ले बेखटके मार्ग नहीं चलसकते, क्योंकि अराजक राज्यमें ठग लुटेरे बहुत हो जाते हैं ॥२२॥ जिनके मन ब्रह्मके ध्यान करनेमें लगे हुये हैं ऐसे अतिजितेन्द्रिय ऋषि लोगभी अराजक राज्यमें संध्याके समय इधरउधर तपमें विघ्न होनेके डरसे नहीं रहते ॥ २३ ॥ अराजक राज्यमें अप्राप्त द्रव्योंकी प्राप्ति और प्राप्त द्रव्योंकी रक्षानहीं होती और बिना मालिकके फौज फर्रा युद्धमें शत्रुओंको नहीं जीत सकती ॥ २४ ॥ अराजक राज्यमें अच्छे२घोडे और सजे

धजे रथोंपर चढकर कोई मनुष्य चिन्ता रहित एकाकी कहींको चले जानेका हियाव नहीं करता ॥२५॥ अराजक राज्यमें शास्त्र विशारद पंडित लोग वनमें या बागमें बैठकर शास्त्रको चिन्ता परस्पर नहीं कह सुन सकते, न वह निर्भय हो वहां रहने पाते ॥२६॥ अराजक राज्यमें व्रत करनेवाले लोग देवताओंकीपूजा करनेके लिये मालामोदक दक्षिणा नहीं इकट्ठी कर सकते॥२७॥ अराजक राज्यमें राजकुमारगण चन्दन और अगरसे अर्चितहो वसंतऋतुके वृक्षोंके समानविराजमान नहीं होते ॥२८॥ नदियां जलहीन होनेसे बिना घास फूंसके वन होनेसे और गौओंके झुण्ड गोपालहीन होनेसे शोचनीय दशा होजाती है वैसेहीराज्यमें अराजकता होनेसे सब भाँतिसे वह राज्य नष्ट होजाता है ॥२९॥ जिस प्रकार रथका चिह्न ध्वजा और अग्निका चिह्न धुवां होता है वैसेही प्रजाओंके ध्वजा रूप चिह्न राजा थेसो यह अब इस लोकको छोडकर देवता होगये हैं ॥३०॥ राज्यमें अराजकता होनेसे कोई किसीको अपना सगा नहीं समझता, सब मनुष्य

नाराजकेजनपदेनराःशास्त्रविशारदाः ॥ संवदंतोपतिष्ठंतेवनेषूपवनेषुवा ॥ २६ ॥ नाराजकेजनपदेमाल्यमोदकदक्षिणाः ॥ देवताभ्यर्चनार्थायकल्प्यंतेनियतैर्जनैः ॥ २७ ॥ नाराजकेजनपदेचंदनागुरुरूषिताः ॥ राजपुत्राविराजंतेवसंतइवशालिनः ॥२८॥ यथाह्यनुदकानद्योयथावाप्यतृणंवनम् ॥ अगोपालायथागावस्तथाराष्ट्रमराजकम् ॥२९॥ ध्वजोरथस्यप्रज्ञानंधूमोज्ञानंविभावसो ॥ तेषांयोनोध्वजोराजासदेवत्वमितोगतः ॥ ३० ॥ नाराजकेजनपदेस्वकंभवतिकस्यचित् ॥मत्स्याइवजनानित्यंभक्षयंतिपरस्परम् ॥३१॥ येहिसंभिन्नमर्यादानास्तिकाश्छिन्नसंशयाः ॥ तेऽपिभावायकल्पंतेराजदडंनिपीडिताः ॥३२॥ यथा दृष्टिःशरीरस्यनित्यमेवप्रवर्तते ॥ तथानरेंद्रोराष्ट्रस्यप्रभवःसत्यधर्मयोः॥३३॥ राजासत्यंचधर्मश्चराजाकुलवतांकुलम् ॥ राजामातापिताचैवराजाहितकरोनृणाम् ॥ ३४ ॥यमोवैश्रवणःशक्रोवरुणश्चमहाबलः ॥ विशिष्यंतेनरेंद्रेणवृत्तेनमहताततः ॥ ३५ ॥ अहोतमइवेदंस्यान्नप्रज्ञायेतकिंचन ॥ राजाचेन्नभवेल्लोकेविभजन्साध्वसाधुनी ॥ ३६ ॥

मछलियोंके समान सर्वदाही परस्पर एक दूसरेका विनाश कियाकरते हैं ॥३१॥ जो सब नास्तिक वर्णाश्रमकी मर्यादोंके बिगाडनेके कारण पहले राजदंडसे दण्ड पाचुकते हैं; वहभी अराजकताको पाय दंडका भय छोड अपनी २ मर्यादा विस्तार करनेमें लग जाते हैं॥३२॥ दृष्टि जिस प्रकार शरीरका हित साधन करने और अहित निवारण करनेमें सदाही तत्पर रहती है वैसेही अपने राज्यमें सत्य व धर्मको उपजाकर प्रजाओंका मंगलसाधन करते हैं ॥३३॥ फलतःराजाही सत्य, राजाही धर्म, राजाही कुलवालोंका कुल राजाही पिता और माता और राजाही सब लोगोंका हितसाधन करता है॥३४॥ इन्द्र, यम, कुबेर और वरुणइन सबसे भी राजाका गौरव अधिक है, क्योंकि लोकपालोंमें केवल एक गुण होता है और राजामें सब लोकपालोंकेगुण वर्त्तते हैं ॥३५॥ अच्छे और बुरेका विचारकरनेवाला राजा

न होता तो जैसे सूर्यके अभावसे अंधकारमें कुछभी नहीं दीख पडता वैसेही कर्तव्याकर्तव्यका कुछ विचार नहीं रहता ॥ ३६ ॥ जबतक महाराज दशरथजी जीतेथे तब भी हम लोगोंने आपके वचनोंको उल्लंघन नहीं किया और अब भी आपही हम सबके गति हैं समुद्र जिस प्रकार तीरभूमिको नहीं नांघ सकता वैसेही हम लोग अपने वचनोंको उल्लंघन नहीं कर सकते॥३७॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! राजा दशरथजीके न रहनेसे हम सबही अकर्मण्य होगये हैं और राज्यभी वनके समान होगया है, इसको भली भांति सोच विचार कर इस समय आप इक्ष्वाकुवंश भरतकों वा और किसीको राजगद्दीपर बैठालिये ॥३८॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा० आदि० अयोध्याकांडे भाषायां सप्तषष्टितमः सर्गः ॥ ६७ ॥ महामुनि वसिष्ठजी इन सब मित्र,मंत्री और श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी यह वार्ता श्रवण कर उनको उत्तर देने लगे ॥ १ ॥ किराजा दशरथजी भरतजीको राज्य दे गये हैं । और वह अपने मामाके यहां शत्रुघ्नके साथ परमसुखपूर्वक बसते हैं ॥ २ ॥ अतएव

जीवत्यपिमहाराजेतवैववचनंवयम् ॥ नातिक्रमामहेसर्वेवेलांप्राप्येवसागरः ॥३७॥ सनःसमीक्ष्यद्विजवर्यवृत्तंनृपंविनाराज्यमरण्यभूतम् ॥ कुमारमिक्ष्वाकुसुतंतथान्यंत्वमेवराजानमिहाभिषेचय ॥ ३८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकांडे सप्तषष्टितमः सर्गः ॥ ६७ ॥ तेषांतद्वचनंश्रुत्वावसिष्ठःप्रत्युवाचह ॥ मित्रामात्यजनान्सर्वान्ब्राह्मणांस्तानिदंवचः ॥ १ ॥ यदसौमातुलकुलेदत्तराज्यःपरंसुखी ॥ भरतोवसतिभ्रात्राशत्रुघ्नेनमुदान्वितः ॥ २ ॥ तच्छीघ्रंजवनादूतागच्छतुत्वरितंहयैः ॥ आनेतुंभ्रातरौवीरौकिंसमीक्षामहेवयम् ॥ ३ ॥ गच्छंत्वितिततःसर्वेवसिष्ठंवाक्यमब्रुवन् ॥ तेषांतद्वचनं श्रुत्वावसिष्ठोवाक्यमब्रवीत् ॥ ४ ॥ एहिसिद्धार्थविजयजयंताशोकनंदन ॥ श्रूयतामितिकर्तव्यंसर्वानेवब्रवीमिवः ॥ ५ ॥ पुरंराजगृहंगत्वाशीघ्रंशीघ्रजवैर्हयैः ॥ त्यक्तशोकैरिदंवाच्यःशासनाद्भरतोमम ॥ ६ ॥ पुरोहितस्त्वांकुशलंप्राहसर्वेचमंत्रिणः ॥ त्वरमाणश्चनिर्याहिकृत्यमात्ययिकंत्वया ॥ ७ ॥

जल्दीसे समाचार लेजानेवाले, दूत उन दोनों वीर भ्राताओंके लिवालानेके लिये शीघ्रगामी घोडोंपर चढ़कर जायँ इस विषयमें और हम क्या शोच विचार कर सकते हैं ॥३॥ तब सबनेही वशिष्ठजीसे कहा कि, दूत गण अभी जाने चाहिये तब उन सबके वचन सुन वशिष्ठजीने कहा ॥ ४ ॥ कि, हे सिद्धार्थ ! हे विजय ! हे जयन्त ! हे अशोक ! हे नन्दन ! मैं तुम सबसे कहता हूं कि, तुमलोग सब मेरे पास आकर जो कुछ तुम लोगोंको करना होगा वह सुनो ॥५॥ तुम सब शीघ्रगामी घोडोंपर सवार होकर शीघ्रतासे राजगृहमेंगमन करके हमारी वार्तानुसार शोकको त्याग करके भरतजीसे यह कहना ॥६॥ कुलपुरोहित वशिष्ठ और शुभानुध्यायी मंत्रियोंने आपकी कुशल क्षेम पूछकर कहा है कि, आप यहांसे बहुतही जल्दी अयो ध्यापुरीको तुरंत चलिये, क्योंकि एक विशेष प्रयोजन आपके

चलनेका हुआ है ॥ ७॥ परंतु खबरदार रघुकुलकी यह अमङ्गल वार्त्ता कि, "रामचन्द्र वनको गये और राजा दशरथ परलोकवासी हुये" उनसे किसी प्रकार मत कहना ॥८॥ तुम लोग इस समय केकयराज और भरतजीके लिये अच्छे २ आभूषण और रेशमी भले २ वस्त्र ग्रहण कर जलदी वहांको चले जाओ अब देर करनेका काम नहीं है ॥९॥ यह कहकर उन्होंने दूतोंको मार्गका खर्च दे दिया उसे ले सब दूत अपने २ घर गये फिर वहांसे बड़ेशीघ्रगामी घोडोंपर चढ कर केकय देशको चले ॥ १० ॥ वह सब दूत यात्राके लिये जो सब चीजलेनी लिवानी थी सो सब लेकर वसिष्ठजीकी आज्ञानुसार शीघ्रतापूर्बक यात्रा करते हुए ॥ ११ ॥ और अपरताल नामक देशकी पश्चिम सीमामें टिके हुए प्रलभ देशके उत्तरमें चलकर उसके मध्यभागमें बहती हुई पालनीनदीकी शोभा देखते हुए जाने लगे ॥ १२ ॥ फिर हस्तिनापुरमें पहुंचकर गंगाजीके पारहो पांचालराज्यको देखते कुरुजांगल देशके मार्गसे होकर पश्चिम दिशाको गमन करने लगे

माचास्मैप्रोषितरामंमाचास्मैपितरंमृतम् ॥ भवंतःशंसिषुर्गत्वाराघवाणामितःक्षयम् ॥ ८ ॥ कौशेयानिचवस्त्राणिभूषणानिवराणिच ॥ क्षिप्रमादायराज्ञश्चभरतस्यचगच्छत ॥ ९ ॥ दत्तपथ्यशनादूताजग्मुःस्वंस्वंनिवेशनम् ॥ केकयांस्तेगमिष्यंतोहयानारुह्यसंमतान् ॥ १० ॥ ततः प्रास्थनिकंकृत्वाकार्यशेषमनंतरम् ॥ वसिष्ठेनाभ्यनुज्ञातादूताःसंत्वरितंययुः ॥ ११ ॥ न्यंतेनापरतालस्यप्रलंबस्योत्तरंप्रति ॥ निषेवमाणास्तेजग्मुर्नदीमध्येनमालिनीम् ॥ १२ ॥ तेहास्तिनपुरेगंगांतीर्त्वाप्रत्यङ्मुखाययुः ॥ पंचालदेशमासाद्यमध्येनकुरुजांगलम् ॥ १३ ॥ सरांसिचसुफुल्लानिनदीश्चविमलोदकाः ॥ निरीक्षमाणाजग्मुस्तेदूताःकार्यवशाद्द्रुतम् ॥ १४ ॥ तेप्रसन्नोदकांदिव्यांनानाविहगसेविताम् ॥ उपातिजग्मुर्वेगेनशरदंडांजलाकुलाम् ॥ १५ ॥ निकूलवृक्षमासाद्यदिव्यंसत्योपयाचनम् ॥ अभिगम्याभिवाद्यंतंकुलिंगांप्राविशन्पुरीम् ॥ १६ ॥ अभिकालंततःप्राप्यतेजोभिभवनाच्च्युताः ॥ पितृपैतामहींपुण्यांतेरुरिक्षुमतींनदीम् ॥ १७ ॥

॥ १३ ॥ मार्गमें प्रफुल्ल सरोवर और निर्मल जलपूर्ण नदी सब उन दूतोंने देखीं परन्तु उन्होंने कार्य आवश्यकीय होनेसे कहीं विलम्ब न किया और शीघ्रता सहित चलने लगे ॥ १४ ॥ अनन्तर वह लोग अनेक प्रकारके जलचर पक्षियोंसे सेवित, सुविपुल और निर्मल जलसे भरी हुई परमरमणीय शरदण्डानदी केतीर पहुंचे ॥१५॥ इसशरदण्डा नदीके किनारेपर सत्योपयाचननामएकवृक्षथा इसके निकट वहसबदूत गये । इस वृक्षमें एकयहगुणथा कि,इससे जो कुछ प्रार्थना कीजाती वह सिद्ध होती थी इसी कारणसे इसका नाम सत्योपयाचन हुआथा। इससे वह सबहीके नमस्कार करने योग्यथा,उन सब दूतोंने इस वृक्षकी प्रदक्षिणाकरके कुलिंगा नामक नगरीमें प्रवेश किया ॥१६॥ वहांसे अभिकाल और अभिकालसे तेजोभिभवननगरमें पहुंचे उसके पीछे इक्ष्वाकुगणोंकी दरपीढियोंसे अधिकारमें

आईहुई परमपवित्र इक्षुमती नदीके पार हुए ॥१७॥ पार होनेके समय इक्षुमतीके किनारे जो सब वेदपारंग ब्राह्मण केवल अंजलिमात्र जलको पीकर जीते थे उनके दर्शन करके बाह्लीक देशमें पहुंचे उसके बीचोबीचमें सुदामा नामक पर्वत मिला ॥ १८ ॥ जिसपर विष्णुजीके चरणोंका चिह्न बना है । उसके पीछे विपाशानदी मिली फिर शाल्मली नदी और बहुतसी नदी वापी, तलाव छोटी तलैया मिलीं ॥१९॥ उससे आगे भांति २ के सिंह,व्याघ्र,मृग,हाथी इत्यादिक देखते अपने स्वामीकी आज्ञाका पालन करते बराबर चलेही गये ॥२०॥ बहुत दूरका मार्ग चलनेसे उनके घोडे सब बहुतही थक गये इससे गिरिव्रजनामक पुरमें कुछ देर ठहरगये वहांसे थोडीही देरमें अति शीघ्र चले ॥ २१ ॥ इस प्रकार वह सब दूत अपने प्रभुका प्रियकार्य करनेकेलिए और रघुवंशका निर्वाह करनेके लिये किसी प्रकारकी ढील न करके रातहीके समय केकयनगरमें पहुंचे॥२२॥इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयोध्याकांडे भाषायामष्टषष्टितमः सर्गः ॥६८॥

अवेक्ष्यांजलिपानाश्चब्राह्मणान्वेदपारगान् ॥ ययुर्मध्येन बाह्लीकान्सुदामानंचपर्वतम् ॥ १८॥ विष्णोःपदंप्रेक्षमाणाविपाशांचापिशाल्मलीम् ॥ नदीर्वापीतटाकानिपल्वलानिसरांसिच ॥ १९ ॥ पश्यंतोविविधांश्चापिसिंहान्व्याघ्रान्मृगान्द्विपान् ॥ ययुःपथातिमहताशासनंभर्तुरीप्सवः ॥ ॥ २० ॥ तेश्रांतवाहनादूताविकृष्टेनसतापथा ॥ गिरिव्रजंपुरवरंशीघ्रमासेदुरंजसा॥२१॥ भर्तुःप्रियार्थंकुलरक्षणार्थंभर्तुश्चवंशस्यपरिग्रहार्थम्॥ अहेडमानास्त्वरयास्मदूतारात्र्यांतुतेतत्पुरमेवयाताः ॥ २२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकांडे अष्टषष्टितमः सर्गः ॥६८॥ यामेवरात्रितेदूताःप्रविशंतिस्मतांपुरीम् ॥ भरतेनापितांरात्रिंस्वप्नोदृष्टोऽयमप्रियः ॥ १ ॥ व्युष्टामेवतुतांरात्रिंदृष्ट्वातंस्वप्नमाप्रियम् ॥ पुत्रोराजाधिराजस्यसुभृशंपर्यतप्यत ॥ २ ॥तप्यमानंतमाज्ञायवयस्याःप्रियवादिनः॥ आयासंविनयिष्यंतःसभायांचक्रिरेकथाः॥ ३ ॥ वादयन्तितदाशांतिंलासयंत्यपिचापरे ॥ नाटकान्यपरेस्माहुर्हास्यानिविविधानिच ॥ ४ ॥ सतैर्महात्माभरतःसखिभिःप्रियबोधिभिः ॥ गोष्ठीहास्यानिकुर्वद्भिर्नप्राहृष्यतराघवः ॥ ५ ॥

जिस रात्रिको वह सब दूतगण उस पुरीमें पहुंचे उसीरातको भरतजीने एक बडा बुरा स्वप्न देखा ॥१॥ राजाधिराजजीकेपुत्र भरतजीने रात्रिके पिछले पहरमें बुरास्वप्न देख बहुतपरिताप किया और उनका शरीर गिरने पडने लगा॥२॥भरतजीके मन और शरीरमें किसी प्रकारका खेद उपजा है यह समझ उनके संग उठने बैठनेवाले प्रियवादी मित्र इस खेदको मिटानेके लिए अनेक प्रकारकी रोचक कथा कहने लगे ॥३॥ उनमेंसे कोई२खेद मिटानेके लिए बीणा बजाने लगे, और किसीने नाच कराना आरंभ कर दिया,व कोई ऐसे २ नाटक आदि पढने लगे जिसमेंहास्य रस प्रधान था ॥४॥ भरतजी को अपना परमप्रीति भाजन यह सब उनकेमित्र जानतेथे औरइनसबने अपनी२युक्तियोंसे ऐसाउपायभी किया जिससेभरतजीको बोध हो॥जोहो दशजने मिल मिलाकर जैसेहँसी दिल्लगी कियाकरते हैं

वैसे ही यह लोग हास परिहास द्वारा रघुनंदन महात्मा भरतजीको किसी प्रकार आनन्दित नहीं करसके ॥५॥ यहदेखकर एक भरतजीका बहुतही प्यारा सखा मित्रमंडली मंडित भरतजीको बोला कि, हे सखे! मित्र लोग अनेक प्रकारसे तुम्हारे चित्तको प्रमुदित करनेकी इच्छा करते हैं परन्तु किस कारण तुम उन सब बातोंमें मन नहीं देते ? ॥ ६ ॥ सखाने जब यह बात कही तब भरतजी उसको उत्तर देतेहुए बोले कि, हे भ्रातः ! जिस कारणसे मैं ऐसा व्याकुल हुआ हूं सो ध्यान धरकर सुनो॥७॥ मैंने रात्रिके पिछले पहरमें यह स्वप्न देखा है कि, पिता दशरथजीके बाल बिखरे हुयेहैं और वह मलीनवस्त्रधारण कियेहैं सो ऐसे पिताजीको हमने पर्वत पर के शिखरसे मैले गोबरके भरे कुंडमें गिरते हुये देखा है ॥८॥ फिर उसके पीछे देखा कि, वह उस गोबरके भरे कुंडमें तैरते२ बारंबार हँसकर मानो अंजलेसी तेल पीरहे हैं ॥९॥ फिर वह बार२ तिलका मिला हुआ भात भोजन कर सब अंगमें तेल लगा तेलमेंही डुबकी लगाते हैं ॥ १० ॥ फिर स्वप्नमेंही

तमब्रवीत्प्रियसखोभरतंसखिभिर्वृतम् ॥ सुहृद्भिः पर्युपासीनः किंसखेनानुमोदसे ॥६॥ एवंब्रुवाणंसुहृदंभरतःप्रत्युवाचह॥ शृणुत्वंयन्निमित्तंमेदैन्यमेतदुपागतम् ॥७॥ स्वप्ने पितरमद्राक्षंमलिनंमुक्तमूर्धजम् ॥ पतंतमद्रिशिखरात्कलुषेगोमयेह्रदे ॥ ८ ॥ प्लवमानश्चमेदृष्टःसतस्मिन्गोमयेह्रदे॥ पिबन्नञ्जलिनातैलंहसन्निवमुहुर्मुहुः ॥ ९ ॥ ततस्तिलौदनंभुक्त्वापुनःपुनरधःशिराः ॥ तैलेनाभ्यक्तसर्वांगस्तैलमेवान्वगाहत ॥१०॥ स्वप्नेऽपिसागरंशुष्कंचंद्रंचपतितंभुवि ॥ उपरुद्धांचजगतींतमसेवसमावृताम् ॥ ११ ॥ औपवाह्यस्यनागस्यविषाणंशकलीकृतम् ॥ सहसाचापिसंशांताज्वलिताजातवेदस ॥ १२ ॥ अवदीर्णांचपृथिवींशुष्कांश्चविविधान्द्रुमान् ॥ अहंपश्यामिविध्वस्तान्सधूमांश्चैवपर्वतान् ॥ १३ ॥ पीठेकार्ष्णायसंचैवनिषण्णंकृष्णवाससम् ॥ प्रहरंतिस्मराजानंप्रमदाःकृष्णपिंगलाः ॥१४॥ त्वरमाणश्चधर्मात्मारक्तमाल्यानुलेपनः ॥ रथेनखरयुक्तेनप्रयातोदक्षिणामुखः ॥ १५ ॥ प्रहसंतीवराजानंप्रमदारक्तवासिनी ॥ प्रकर्षंतीमयादृष्टाराक्षसीविकृतानना ॥ १६ ॥

यह देखा कि, समुद्र सूखगया चन्द्रमा पृथ्वीपर गिर पडे हैं सब भूमि अंधकारसे ढककर मानो अन्तर्धान होगई है ॥११॥ राजाकी सवारीमें जो हाथी रहा करता है उसके दांत मानो खंड २ हो टूट गये हैं, आग जलते २ एकाएकी बुझगई है ॥ १२ ॥ पृथ्वी फटगई है सब पेड सूख गये हैं और यह भी देखा कि सब पर्वत भिन्न२हो गये हैं और उनमेंसे धुआं निकलने लगा है ॥१३॥ व लोहेकी चौकीपर बैठे नीलके रँगेवस्त्र पहरे हमारे पिताजीको कालेपीले दोनों प्रकारके वस्त्र धारण किये स्त्रियां मार रही हैं ॥१४॥ और यह भी कि, धर्मात्मा हमारे पिता राजा दशरथजी शीघ्रता सहित लाल फूलोंका हार पहरे व लालही चन्दन लगाये गधे जुतेहुये रथपर सवार होकर दक्षिण दिशाको चले जातेहैं ॥१५॥ और यह भी देखा कि, कोई विकट वदनवाली राक्षसी लाल वस्त्र पहरे और अट्ट

हास्य करती हुई राजाको बलपूर्वक पकडे हुये लिये जातीहै ॥१६॥ हमने इन भयानक रात्रिमें इसप्रकारका भयानक स्वप्नदेखाहै इससे निश्चय बोध होता है कि, हमारी वा पिताजीकी या रामचन्द्र व लक्ष्मणकी मृत्यु होगी ॥१७॥ क्योंकि जोआदमी स्वप्नमें गधे जुतेहुये रथपर सवार होकर दक्षिणको जाताहै तो बहुतशीघ्र चितामें उसका धुवां निकलता हुआ दृष्टिआताहै ॥१८॥ बस इसी कारणसे हमआज बहुतव्याकुल होगयेहैं और तुम्हारी बातोंसे मनको प्रसन्न नहीं करसकतेहैं क्या कहैं हमारा कंठ इस समय सूखगया है और मन चंचल हो रहाहै ॥१९॥ यह सब भयके कारण यद्यपि इस समय नहीं दीखतेहैं परन्तु मनमें जो भय जम गया है वह किसी प्रकारसे दूर नहीं होता व इससेही हमारे शरीरकी कान्ति भी जाती रहीहै ॥२०॥ और अकस्मात् अनेक प्रकारसे आत्माकी निन्दा करनेकी मेरी इच्छा होतीहै परन्तु निन्दाका कारण कुछ भी दृष्टिमें नहीं आता ॥२१॥ पहिले कभी इस प्रकारसे बुरे स्वप्नका मनमेंभी तो ध्यान नहीं आयाथा बस अब

एवमेतन्मयादृष्टमिमांरात्रिंभयावहाम् ॥ अहंरामोऽथवाराजालक्ष्मणोवामरिष्यति॥ १७॥ नरोयानेन यः स्वप्नेखरयुक्तेनयातिहि॥अचिरात्त स्यधूम्राग्रंचितायांसंप्रदृश्यते ॥ १८ ॥एतन्निमित्तंदीनोऽहंनवचः प्रतिपूजये ॥ शुष्यतीवचमेकंठोनस्वस्थमिवमेमनः॥ १९ ॥ नपश्यामिभय स्थानंभयंचैवोपधारये ॥ भ्रष्टश्चस्वरयोगोमेछायाचापगतामम ॥ २० ॥ जुगुप्सइवचात्मानंनचपश्यामिकारणम् ॥२१ ॥ इमांचदुःस्वप्नगतिं निशम्यहित्वनेकरूपामवितर्कितांपुरा ॥ भयमहत्तद्धृदयान्नयातिमेविचिंत्यराजानमचिंत्यदर्शनम् ॥ २२॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणेवाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकांडे एकोनसप्ततितमः सर्गः ॥ ६९॥ भरतेब्रुवतिस्वप्नंदूतास्तेक्लांतवाहनाः ॥ प्रविश्यासह्यपरिखंरम्यंराजगृहंपुरम्॥१॥ समागम्यचराज्ञातेराजपुत्रेणचार्चिताः ॥ राज्ञःपादौगृहीत्वाचतमूचुर्भरतंवचः ॥ २ ॥

जबसे इस बुरे स्वप्नको देखाहै तबसेही चिन्ता मनमेंउत्पन्न हुई कि,देखिये अब पिताजी देखनेको मिलें अथवा नहीं;इसी कारणसे मन बहुत घबडा गया है और किसी भांतिसे इसकी घबडाहट दूर नहीं होती, सखे ! इससे पहले राजाके दर्शनहोनेमें किसी प्रकारकी चिन्ताही नहींथी ॥२२॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० अयोध्याकाण्डे भाषायामेकोनसप्ततितमः सर्गः ॥ ६९ ॥ मनस्वी भरतजी अपने मित्रोंके साथ इस स्वप्न वृत्तान्तको कहही रहेथे कि, इतनेमें थके थकाये घोडोंपर चढ़ेहुये सब दूत लांघनेके अयोग्य खाई जिसके चारोंओर खुदी हुई ऐसे रमणीय राजगृहमें प्रवेश करते हुये ॥ १ ॥ प्रथम राजासे फिर राज पुत्र युधाजितसे वे दूत मिले राजा और राजपुत्र युधाजितने भली भांति उन दूतों का आदर सत्कार किया अनन्तर दूतगण केकयपति के चरण वन्दन करके भरतजीसे

कहने लगे ॥ २ ॥ कुल पुरोहित वसिष्ठजीने और सब मंत्रियोंने सबही लोगोंने आपकी कुशल क्षेम पूछीहै और यह कहाहै कि,आप जल्दी अयोध्याको आइये क्योंकि यहां एक विशेष कार्य उपस्थित हुआहै ॥३॥ हे विशाललोचन ! उन्होंनेयह सब मूल्यवान् वसन भूषण हमारे संग भेजेहैं सो इन्हें आप लेकर अपने ममाको देदीजिये ॥४॥ हे नृपनन्दन ! इनसब हमारे लाये वसन भूषणोंमेंसे वीस करोडवस्त्र और आभरण आपके नानाकोहैं और दश करोड आपके मामाकोहैं सो आप यह लेकर उनको देदीजिये (यहां कोटि शब्द बहुवाचक है) ॥५॥ तब मामाआदिके प्रति बहुत अनुरक्त हुये राजपुत्र भरतजीने वह समस्त वसनभूषण ग्रहण किये और नाना मामाको वहसब द्रव्य देदिये और दूतोंको भलीभांति खाने पीनेआदिकी सामग्री दे दिलाय भरतजी उनसे बोले ॥६॥ कि,हमारे पिता महाराज दशरथजी तो कुशल हैं ? महात्मा रामचन्द्र व लक्ष्मण आरोग्य तो हैं ? ॥७॥ भला जो धर्मका मर्म भली भांति जानती हैं और धर्मवादिनी व सदाही धर्ममें

पुरोहितस्त्वांकुशलंप्राहसर्वेचमंत्रिणः ॥ त्वरमाणश्चनिर्याहिकृत्यमात्ययिकंत्वया ॥ ३ ॥ इमानिचमहार्हाणिवस्त्राण्याभरणानिच ॥ प्रतिगृह्यविशालाक्षमातुलस्यचदापय ॥ ४ ॥ अत्रविंशतिकोट्यस्तुनृपतेर्मातुलस्यते ॥ दशकोट्यस्तुसंपूर्णास्तथैवचनृपात्मज ॥ ५ ॥ प्रतिगृह्यतु तत्सर्वंस्वानुरक्तःसुहृज्जने ॥ दूतानुवाचभरतःकामैःसंप्रतिपूज्यतान् ॥ ६ ॥ कच्चित्सकुशलीराजापितादशरथोमम ॥ कच्चिदारोग्यतारामे लक्ष्मणेचमहात्मनि ॥ ७ ॥ आर्याचधर्मनिरताधर्मज्ञाधर्मवादिनी ॥ अरोगाचापिकौसल्यामातारामस्यधीमतः ॥ ८ ॥ कच्चित्सुमित्राधर्मज्ञा जननीलक्ष्मणस्यया ॥ शत्रुघ्नस्यचवीरस्यअरोगाचापिमध्यमा ॥ ९ ॥ आत्मकामासदाचंडीक्रोधनाप्राज्ञमानिनी॥ अरोगाचापिमेमाताकैकेयीकिमुवाचह ॥ १० ॥ एवमुक्तास्तुतेदूताभरतेनमहात्मना ॥ ऊचुःसंप्रश्रितंवाक्यमिदंतंभरतंतदा ॥११॥ कुशलास्तेनरव्याघ्रयेषांकुशल मिच्छसि ॥ श्रीश्चत्वांवृणुतेपद्मायुज्यतांचापितेरथः ॥ १२ ॥

रत रहनेवाली वहधीमान्रामचन्द्रजीकी गर्भधारणी आर्या माता कौशल्यजी तो निरोगहैं ? ॥८॥ राजादशरथजीकी मझली रानीधर्मको जाननेवाली वीरलक्ष्मण और शत्रुघ्नकी माता सुमित्राजी आरोग्य तोहैं?॥९॥ और सदाही जो अपनाकार्य सिद्ध होनेकी अभिलाषा करतीहैं और जो यह समझेहुये हैं कि,हमारीसमान कोई ज्ञानवती नहीं है वह अत्यन्त कोपन स्वभाव वाली हमारी माता कैकेयीजी आरोग्य रहकर सुख पाती हैं? तुम्हारे चलते वक्त उन्होंने हमारे लिये कुछकह दिया है ? ॥१०॥ महात्मा भरतजीने जब इस प्रकार कहा तब दूतोंने सविनय और संक्षेप वचनोंसे उन्हें उत्तर दिया ॥११॥ कि नरश्रेष्ठ! आप जिन२की कुशल पूछते हैं वे सब लोग कुशल सहित हैं,इससमय पद्मालयालक्ष्मीजी आपके बरण करने को उद्यत हुई हैं अतएव यात्रा करनेके लिये आप रथ तैयार कराइये॥१२॥

जब दूतोंने इस प्रकार कहा तब भरतजी फिर उनसे बोले कि, हम यह कहकर नानासे बिदाले आवें कि, दूत लोग हमें ले चलनेके लिये अतिशीघ्रता करावे
हैं ॥ १३ ॥ नृपनन्दन भरतजी दूतोंसे यह कहकर और दूतोंकेही कहनेके अनुसार नानासे जाकर बोले ॥ १४ ॥हेराजन् ! दूतगण हमें ले जानेके लिये
शीघ्रता कर रहे हैं अतएव हम अब पिताजीके पास जायँगे और फिर जब कभी आप हमें याद करैंगे तब उसी समय चले आवेंगे ॥१५॥ भरतजीके ऐसा
कहनेपर वह केकय राज भरतजीके नाना भरतजीका शिर सूँघकर उनसे यह शुभ वचन बोले ॥ १६ ॥ हे भरत ! कैकेयी तुमसे पुत्रको पाकर सुपुत्रवतीहुई
है मैं अनुमति देता हूं हे शत्रुदमन ! वहां जाकर मातापितासे यहांकी कुशल क्षेम कहना ॥१७॥ पुरोहित् वसिष्ठजी व अन्य उत्तम २ ब्राह्मणोंसे महाधनुर्द्धारी
राम लक्ष्मण दोनों भाइयोंसे व और सबही छोटे बडोंसे कुशल कहना ॥१८॥ ऐसा कहकर भरतजीका केकयराजने बहुत सत्कार किया और उत्तम बडे हाथी घोडे

भरतश्चापितान्दूतानेवमुक्तोऽभ्यभाषत ॥आपृच्छेऽहंमहाराजंदूताःसंत्वरयंतिमाम् ॥१३॥ एवमुक्त्वातुतान्दूतान्भरतः पार्थिवात्मजः॥ दूतैः
संचोदितोवाक्यंमातामहमुवाचह ॥ १४ ॥ राजन्पितुर्गमिष्यामिसकाशंदूतचोदितः ॥ पुनरप्यहमेष्यामियदामेत्वंस्मरिष्यसि ॥ १५ ॥
भरतेनैवमुक्तस्तुनृपो मातामहस्तदा ॥ तमुवाचशुभवाक्यंशिरस्याघ्रायराघवम् ॥ १६ ॥ गच्छतातानुजानेत्वांकैकेयीसुप्रजास्त्वया ॥ मात
रंकुशलंब्रूयाःपितरंचपरंतप ॥१७॥ पुरोहितंचकुशलंयेचान्येद्विजसत्तमाः ॥ तौचतातमहेष्वासौभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥१८॥ तस्मैहस्त्युत्तमां
श्चित्रान्कंबलानजिनानिच ॥ सत्कृत्यकेकयोराजाभरतायददौधनम् ॥ १९ ॥ अंतःपुरेऽतिसंवृद्धान्व्याघ्रवीर्यबलोपमान् ॥ दंष्ट्रायुक्तान्महाका
याञ्छुनश्चोपायनंददौ ॥२०॥ रुक्मनिष्कसहस्रेद्वेषोडशाश्वशतानि च ॥ सत्कृत्यकैकेयीपुत्रंकेकयोधनमादिशत् ॥२१॥तदामात्यानभिप्र
तान्विश्वास्यांश्चगुणान्वितान् ॥ ददावश्वपतिः शीघ्रंभरतायानुयायिनः ॥ २२ ॥ ऐरावतानैंद्रशिरान्नागान्वैप्रियदर्शनान् ॥ खराञ्शीघ्रान्सुसं
युक्तान्मातुलोऽस्मैधनंददौ ॥ २३ ॥

कीमतीशाल दुशाले और बढियाँ २ मृगचर्म व बहुत धन दिया ॥१९॥ व सब चीजोंके सिवाय बडे २ आकारवाले कुत्ते दिये ! यह सब कुत्ते रनवासहीमें
यत्नपूर्वक पालपोषकर बडे किये गयेथे बडे२तीखे दांतही उनके अस्त्रशस्त्रथे औरउनका बल वीर्य व्याघ्रके समानथा ॥२०॥ अनन्तर राजा कैकेयीके पुत्र भरत
जीका बहुत ही सन्मान आदर करके उनको दो हजार स्वर्णके निष्कभूषण व सोलह सौ १६०० घोडे दिये ॥ २१ ॥ और उनके साथ जानेके लिये कईएक
अपने मन माने, विश्वासी और गुणवान् मन्त्री आदिक कर दिये जो अति वेगसे भरत जीके संग २ चले जायँ ॥ २२ ॥ अनन्तर भरतजीके मामाने
भरतको इन्द्रशिर नामक देशमें उत्पन्न हुये ऐरावत वंशीय देखनेमें परम सुदृश्यउत्तम डील डौलवाले ऐसे बहुत सारे हाथी और भली प्रकारसेबोझा लेचलनेवाले

समर्थ तेज चलनेवाले खच्चर भी दिये ॥ २३ ॥ परन्तु बहुत शीघ्र जो जानेको थे इस लिये भरतजी नाना मामाकी दी हुई इन सबवस्तुओंको लेकर कुछ प्रसन्न न हुये, क्योंकि इन सब चीज वस्तुको ले चलनेमें बडी कठिनाई थी ॥ २४ ॥ दूतोंकी शीघ्रता करानेसे और रात्रिमें भयंकर स्वप्न देखनेसे भरतजीके मनमें उस समय बडी भारी चिंता थी ॥ २५ ॥ भरतजी जल्दी अपने भवनसे बाहर आकर हाथी घोडे और मनुष्योंकरके परिपूर्ण राजमार्गमें आकर उपस्थित हुए ॥ २६ ॥ और उस राजमार्गसे होकर परमश्रेष्ठ रनवासको देखते हुए तब श्रीमान् भरतजीने इस रनवासमें प्रवेश किया । जानेके समय उनको किसीने नहीं रोका टोका ॥ २७ ॥ भरतजीने रनवानमें प्रवेश करके नाना नानी मामा युधाजित व मामीसे विदा लेकर शत्रुघ्नके सहित रथपर चढ अयोध्याको प्रस्थान किया ॥ २८ ॥ नौकर चाकर लोग मण्डलाकार चक्रविशिष्ट सैकडों रथ अश्व ऊँट बैल खच्चर इनसबोंको जोतजात कर भरतजीके पीछे २ चल दिये

सदत्तंकेकयेंद्रेणधनंतन्नाभ्यनंदत ॥ भरतःकैकेयीपुत्रोगमनत्वरयातदा ॥२४॥ बभूवह्यस्यहृदयेचिंतासुमहतीतदा ॥ त्वरयाचापिदूतानांस्वप्नस्यापिचदर्शनात ॥ २५ ॥ सस्ववेश्माभ्यतिक्रम्यरथनागाश्वसंकुलम् ॥ प्रपेदेसुमहच्छ्रीमान्राजमार्गमनुत्तमम् ॥ २६ ॥ अभ्यतीत्यततोऽपश्यदंतः पुरमनुत्तमम् ॥ ततस्तद्भरतःश्रीमानाविवेशानिवारितः ॥ २७ ॥ समातामहमापृच्छ्यमातुलंचयुधाजितम् रथमारुह्यभरतःशत्रुघ्नसहितोययौ ॥ २८ ॥ रथान्मंडलचक्रांश्चयोजयित्वापरंशतन् ॥ उष्ट्रगोऽश्वखरैर्भृत्याभरतंयांतमन्वयुः ॥२९॥ बलेनगुप्तोभरतोमहात्मासहायकस्यात्मसमैरमात्यैः ॥ आदायशत्रुघ्नमपेतशत्रुर्गृहाद्ययौसिद्धइवेंद्रलोकात् ॥ ३० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणेवाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकांडे सप्ततितमः सर्गः ॥७०॥ सप्राङ्मुखोराजगृहादभिनिर्यायवीर्यवान् ॥ ततः सुदामांद्युतिमान्संतीर्यावेक्ष्यतांनदीम् ॥ १ ॥ ह्लादिनींदूरपारांचप्रत्यक्स्रोतस्तरंगिणीम् ॥ शतद्रूमतरच्छ्रीमान्नदीमिक्ष्वाकुनंदनः ॥ २ ॥ ऐलधानेनदींतीर्त्वाप्राप्यचापरपर्वतान् ॥ शिलामाकुर्वतींतीर्त्वाआग्नेयंशल्यकर्षणम् ॥ ३ ॥

॥ २९ ॥ सिद्धलोग जिस प्रकार इन्द्रलोकसे चलते हैं अजातशत्रु महात्मा भरतजी भी वैसे ही अपने नानाके अपने आत्माके सदृश विश्वासी मन्त्री व सेनासमुद्रसे रक्षित होकर शत्रुघ्नजीको साथ ले राजगृहसे प्रस्थान करते हुए ॥ ३० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयोध्याकांडे भाषायां सप्ततितमः सर्गः ॥ ७० ॥ इसके पीछे महावीर भरतजीके राजगृह नगरसे पूर्वको मुखकर जाते२सुदामा नाम नदी मिली उसे देखकर उतरे ॥ १ ॥ अनन्तर ह्लादिनी वा दूरपारा नदी मिली जिसका पश्चिम ओरके पर्वतपर सोता है उसके पीछे सतलज नदी मिली भरतजी उसकेभी पार हुये ॥२॥ फिर ऐलधार गांवके नीचे बहनेवाली अतिवेगवती नदी मिली वह नदी ऐसी मिली उसमें जो वस्तु डालो सो पत्थरकी होजाती उसको उतर अपर्वत नामक देशमें पहुँचे और सिला व अकुर्वती नदीकेपार होकर अग्नि

कोणमें शल्यकर्षण नामक देशमें आये ॥३॥ वहांसे पवित्र होकर वह शिलावहा नदीके दर्शन करके बडे२पहाडोंपर होते हुये चैत्ररथ वनकी ओरको चलते हुये ॥ ४ ॥ अनन्तर सरस्वती और गंगाजीका जहां संगम हुआ है वहां आये उसके आगे वीरमत्स्य देशोंके उत्तरहो भारुण्डनाम वनमें प्रवेशकरते हुये ॥ ५ ॥ अनन्तर अतिशय वेगवती ह्लादिनी और पर्वतोंसे घिरी हुई कुलिंगा नदीके पार होकर यमुनाजीके निकट आये और वहां सेनाको विश्रामादि कराया ॥ ६ ॥ घोडे बहुतही थक गये थे इस प्रकार वह नदीमें खूब लोट २ जुडाय२कर नहाये जलभी मनुष्य व घोडे तथा हाथियोंने खूबही पिया और तीर्थका जल लेकर चले ॥ ७ ॥ जिसप्रकार पवन आकाशमें चलता है वैसेही भरतजी सुन्दर रथपर चढ मनुष्योंके गमनागमनसे शून्य उस महारण्यके पार हुए ॥ ८ ॥ फिर गंगाजी मिली उनका उतरना बडा ही कठिन था इसलिये विख्यात अंशुधान नाम नगरसे प्राग्वट नामक पुरीके निकट गये ॥ ९ ॥ उसी प्राग्वटपुरके मुहा

सत्यसंधःशुचिर्भूत्वाप्रेक्षमाणःशिलावहाम् ॥ अभ्यगात्समहाशैलान्वनंचैत्ररथंप्रति ॥ ४ ॥ सरस्वतींचगंगांचयुग्मेनप्रतिपद्यच ॥ उत्तरान्वीरमत्स्यानांभारुंडंप्राविशद्वनम् ॥ ५ ॥ वेगिनींचकुलिंगाख्यांह्लादिनींपर्वतावृताम् ॥ यमुनांप्राप्यसंतीर्णोबलमाश्वासयत्तदा ॥ ६ ॥ शीतीकृत्वातुगात्राणिक्लांतानाश्वास्यवाजिनः ॥ तत्रस्नात्वाचपीत्वाचप्रायादादायचोदकम् ॥ ७ ॥ राजपुत्रोमहारण्यमनभीक्ष्णोपसेवितम् ॥ भद्रोभद्रेणयानेनमारुतःखमिवात्यगात्॥८भागीरथींदुष्प्रतरांसोंशुधानेमहानदीम्॥उपायाद्राघवस्तूर्णंप्राग्वटेविश्रुतेपुरे॥९॥सगंगांप्राग्वटेतीर्त्वासमायात्कुटिकोष्टिकाम्॥सबलस्तांसतीर्त्वाथसमगाद्धर्मवर्द्धनम्॥१०तोरणंदक्षिणार्धेनजंबूप्रस्थंसमागमत्॥वरूथंचययौरम्यंग्रामंदशरथात्मजः॥११॥तत्ररम्येवनेवासंकृत्वासौप्राङ्मुखोययौ॥ उद्यानमुज्जिहानायाःप्रियकायत्रपादपाः॥१२॥सतांस्तुप्रियकान्प्राप्यशीघ्रानास्थायवाजिनः॥ अनुज्ञाप्याथभरतोवाहिनींत्वरितोययौ ॥ १३ ॥ वासंकृत्वासर्वतीर्थेतीर्त्वाचोत्तरगांनदीम् ॥ अन्यानदीश्चविविधैःपार्वतीयैस्तुरंगमैः ॥१४॥

नेपर गंगाजीको उतर सेनासहित कुटिकोष्टिका नदीके तीर आये और उसको उतर धर्मवर्द्धन ग्राममें पहुँचे ॥ १० ॥ फिर तोरण नाम ग्रामके दक्षिण हो जंबूप्रस्थ नाम गांवमें पहुँचे फिर परममनोरथ बरूथ नाम ग्राममें दशरथनंदन उपस्थित हुए ॥ ११ ॥ वहांके रमणीय वनमें एक रात्रि वास करके पूर्वकी ओरचले और प्रियकर नामक वृक्ष जहां बहुत थे ऐसी उज्जिहाना नाम नदीके उपवनमें पहुँचे॥१२॥वहां पहुँचकर भरतजीने शीघ्रतासे आगेजाता हूँ तुम लोग धीरे २सुसताते हुए चले आओ । सेनाको इस भांतिकी आज्ञा देकर शीघ्रगामी घोडे जिसमेंजुत रहे थे ऐसे रथपर सवार होकर आप बहुत शीघ्र चले ॥१३॥ और सर्वतीर्थ नामक ग्राममें रात्रिभर वास करके फिर पहाड़ी घोडोंकी सहायतासे इस ग्रामकी उत्तर दिशामें बहती हुई नदियोंको व और भी सब नदियोंको पार होकर॥१४॥

कुछ दूरपर हस्तिप्रस्थ नामक गांवमें पहुँचे, वहां कुटिका नदीके पार होकर नरव्याघ्र भरतजी लौहित्य गांवमें कपीवती नदी उतरे ॥१५॥ फिर एक साल नगर के निकट स्थाणु मती नदी मिली, आगे बढ विनतग्रामके धोरे गोमती उत्तीर्ण हुए फिर बलि नगरके निकट शालवन पडा ॥१६॥ वहांसे आगे चले अब जो कुछ हाथी घोडे संग रहगयेथे वे भी बहुतही थक गये परन्तु उस वनको नांघ रात व्यतीत होते व सूर्यके निकलते ॥१७॥ राजा मनुजीकी बसाई अयोध्यापुरी भरतजीने देखी अपने नानाके यहांसे चल सातराति मार्गमें बिता भरतजीको अयोध्यापुरी मिली ॥१८॥ तब दूरसे ही अयोध्यापुरीको देख सारथीसे बोले कि, हे सारथे! यह यशस्विनी अयोध्यापुरी जिसमें अति पुण्यदायक फुलवाडियां विराजमान हैं मुझे अच्छी नहीं लगतीं ॥ १९ ॥ उसकी मृतिका जानों उत्सवहीन होनेके कारण पीली २ लगती है वकोई उत्सव नहीं विदित होता इसमें पूर्वकालमें बडे २ वेदपाठी ब्राह्मण सर्वगुण सम्पन्न यज्ञ किया करते थे॥ २० ॥ व राजर्षि लोग नाना प्रकारसे इसका

हस्तिपृष्ठकमासाद्यकुटिकामप्यवर्तत ॥ ततारचनरव्याघ्रोलौहित्येचकपीवतीम् ॥ १५ ॥ एकसालेस्थाणुमतींविनतेगोमतींनदीम् ॥ कलिंग नगरेचापिप्राप्यसालवनंतदा ॥ १६ ॥ भरतःक्षिप्रमागच्छत्सुपरिश्रांतवाहनः ॥ वनंचसमतीत्याशुशर्वर्यामरुणोदये ॥ १७ ॥ अयोध्यांमनु नाराज्ञानिर्मितांसददर्शह ॥ तांपुरींपुरुषव्याघ्रःसप्तरात्रोषितःपथि ॥ १८ ॥ अयोध्यामग्रतोदृष्ट्वासारथिंचेदमब्रवीत् ॥ एषानातिप्रतीतामेपुण्यो द्यानायशस्विनी ॥ १९ ॥ अयोध्यादृश्यतेदूरात्सारथेपांडुमृत्तिका ॥ यज्विभिर्गुणसंपन्नैर्ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ २० ॥ भूयिष्ठमृद्धैराकीर्णाराज र्षिवरपालिता ॥ अयोध्यायांपुराशब्दःश्रूयतेतुमुलोमहान् ॥ २१ ॥ समंतान्नरनारीणांतमद्यनशृणोम्यहम् ॥ उद्यानानिहिसायाह्नेक्रीडित्वोप रतैर्नरैः ॥ २२ ॥ समंताद्विप्रधावद्भिःप्रकाशंतेममान्यथा ॥ तान्यद्यानुरुदंतीवपरित्यक्तानिकामिभिः ॥ २३ ॥ अरण्यभूतेवपुरीसारथेप्र तिभातिमाम् ॥ नह्यत्रयानैर्दृश्यंतेनराजैर्नचवाजिभिः ॥ निर्यांतोवाभियांतोवानरमुख्यायथापुरा ॥ २४ ॥

पालन किया करते थे और जहां तहां धनधान्ययुक्त लोग आया जाया करते थे प्रथम अयोध्याजीमें चारों ओरसे महातुमुल शब्द ॥२१॥ आते जाते हुए नरनारियोंका सुनाई आता था परन्तु आज वह सुनाई नहीं देता पहले कामी पुरुषगण जो सायंकालके समय उपवनोंमें प्रवेश कर समस्तरात्रि क्रीडा करनेमें बिता ॥ २२ ॥ प्रातःकाल इधर उधर कर धावमान होकर उद्यानकी शोभा बढाते थे वह अब वहां पर विचरण नहीं करते यह उद्यान मानो कामी पुरुषोंकरके छोड देनेसे- हमको देख बिसूर २ रोय रहे हैं ॥२३॥ इससे हमको यह पुरी वनके समान विदित होती है । हे सारथे! सबही पुरी मानों हमको महावनके समान जान पडती है पहिले जिस प्रकार बडे २ लोग हाथी, घोडे व और अनेक प्रकारकी सवारियोंमें चढकर कुछ बाहरसे भीतरको आते थे, क्यों आज कोई आत जाता नहीं देख

पडता ॥ २४ ॥ जनोंकी प्रीतिके संयोगसे इसके बन बागादि अति हर्षित मत्त व गुणवान् मालूम होते थे सो अब वैसे नहीं देखते ॥ २५ ॥ यह देखो किस कारण यह समस्त फुलवारियें जो कामीजनोंके आनन्द कुलाहलसे गूँजती हुई आनन्दित रहती थीं । परन्तु अब यह सब निरानन्दसी ज्ञात होती हैं, इन फुलवारियोंके वृक्षोंके पत्ते ठौर२मार्गमें गिरते हैं मानों वृक्ष रोय रहे हैं॥२६॥देखो सूर्य उदयहोगये हैंऔर हमभी अयोध्याके निकटही पहुँच गये हैं तथापि अब तकभी मृग पक्षियोंका मत्तहो अनुरागमें भरकर कलरव करनेका शोर सुनाई नहीं आता॥२७॥पहिलेकी नाईं कुछेक चन्दन व अगरसे मिली हुई धूपकी सुगन्धिसे सुवासित होकर शोभित वायु नहीं चलती ॥२८॥ प्रथम भेरी,मृदंग वा वीणा आदि बाजोंसे सदाही प्रफुल्ल रीतिसे शब्द उठा करता परन्तु आज किस कारणसे वह शब्द नहीं होता॥२९॥अशुभ और अनिष्टसूचक सब अशकुन पग२पर हमको दृष्टि आते हैं इसकारणसे हमारा मन बहुतही व्याकुल होकर कांप

उद्यानानिपुराभांतिमत्तप्रमुदितानिच ॥ जनानांरतिसंयोगेष्वत्यंतगुणवंतिच ॥ २५ ॥ तान्येतान्यद्यपश्यामिनिरानंदानिसर्वशः ॥स्रस्तपर्णैरनुपथंविक्रोशद्भिरिवद्रुमैः ॥२६॥ नाद्यापिश्रूयतेशब्दोमत्तानांमृगपक्षिणाम् ॥ सरक्तांमधुरांवाणींकलंव्याहरतांबहु ॥ २७ ॥ चंदनागुरुसंपृक्तोधूपसंमूर्च्छितोऽमलः ॥ प्रवातिपवनःश्रीमान्किंनुनाद्ययथापुरा ॥ २८ ॥ भेरीमृदंगवीणानाकोणसंघट्टितः पुनः ॥ किमद्यशब्दोविरतःसदादीनगतिः पुरा ॥ २९ ॥ अनिष्टानिचपापानिपश्यामिविविधानिच ॥ निमित्तान्यमनोज्ञानितेनसीदतिमेमनः ॥ ३० ॥ सर्वथाकुशलंसूतदुर्लभंममबंधुषु ॥ तथाह्यसतिसंमोहेहृदयंसीदतीवमे ॥ ३१ ॥ विषण्णःश्रांतहृदयस्त्रस्तःसंलुलितेंद्रियः ॥भरतःप्रविवेशाशुपुरीमिक्ष्वाकुपालिताम् ॥ ३२ ॥ द्वारेणवैजयंतेनप्राविशच्छ्रांतवाहनः ॥ द्वाःस्थैरुत्थायविजयंपृष्टस्तैःसहितोययौ ॥ ३३ ॥ सत्वनेकाग्रहृदयोद्वास्स्थंप्रत्यर्च्यतंजनम् ॥ सूतमश्वपतेःक्लांतमब्रवीत्तत्रराघवः ॥३४॥ किमहंत्वरयानीतःकारणेनविनावघ ॥ आशुभाशंकिहृदयंशीलंचपततीवमे ॥३५॥

रहाहै ॥३०॥ हे सूत ! विकल होनेका कोई कारण न होनेपरभी बराबर हृदय कांप रह है इससे स्पष्ट विदित होता है कि हमारे बंधु बांधव कुशलसे नहीं हैं ॥३१॥ अनन्तर वह शांतचित्त भरतजी उदास और चलायमान इन्द्रिय व त्रासित होकर शीघ्रही इक्ष्वाकुआदि पालित अयोध्यापुरीमें पैठे ॥३२॥ उस समय भरतजीके चढनेके वाहनभी संपूर्ण थक गयेथे, वे वैजयन्तनामक द्वारसेही पुरीमें प्रवेश करते हुए सब द्वारपाल भरतजीको देख उठ खडे हुए और विजय प्रश्न करके उनके संग २ चलने लगे ॥ ३३ ॥ भरतजीका मन बहुतहीव्याकुल हो रहाथा तथापि उन्होंने द्वारपालोंका यथायोग सत्कार किया और फिर उनसे लौट जानेको कहा और केकयपतिका सारथी जो बहुत ही थक गया था उसे भी कहा कि,तुम भी यहां विश्राम करो और यह बोले॥३४॥हे अनघ पापरहित ! किस वास्ते

बिना कारण बताये शीघ्रतासे हमको यहां बुलाया गया, इस कारण हमारे मनमें अनेक प्रकारकी अशुभ आशंकायें होती हैं और इसी कारण मैं अतिशय अधीर और व्याकुल हो रहा हूँ॥३५॥हे सारथे! राजाओंकी मृत्युसे जो अमंगलके लक्षण दृष्टि आते हैं, जो कि प्रथम हमने सुन रक्खे हैं आज वही सब कुलक्षण हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं॥३६॥ यह देखो गृहस्थोंके सब घर बिना झाडे बुहारे हैं इससे कर्कश जान पडते हैं, किसीके किवाँड ठीक नहीं सब अस्त व्यस्त हैं सब पदार्थोंकी शोभा जाती रही है॥३७॥किसी प्रकारकी पूजाका सम्पर्क न होनेसे धूपकी सुगन्ध कहींसे नहीं आती यहांके परिवारवाले सब भूखे ही दृष्टि आते हैं और नगर वासी बिल्कुल शोभाहीन हो गये हैं॥३८॥ किसी गृहके भवनपर माला आदि नहीं टंग रही हैं सब घरोंके आँगन बिना झारे बुहारे पड़े हैं सबही घर लक्ष्मीहीन होजाने से शोभा विहीन हो गये हैं ॥३९॥ ठाकुरद्वारे और शिवालय शून्य होकर अब पहिलेकी नाईं शोभा नहीं पाते न कोई अब मूर्त्तियोंकी पूजा करता, मानो मूर्त्तियें

श्रुतानुयादृशाः पूर्वंनृपतीनांविनाशने ॥ आकारांस्तानहंसर्वानिहपश्यामिसारथे॥३६॥ संमार्जनविहीनानिपरुषाण्युपलक्षये ॥ असंयतकवाटा निश्रीविहीनानिसर्वशः ॥ ३७ ॥ बलिकर्मविहीनानिधूपसंमोदनेनच ॥ अनाशितकुटुंबानिप्रभाहीनजनानिच ॥३८॥ अलक्ष्मीकानिपश्या मिकुटुंबिभवनान्यहम् अपेतमाल्यशोभानिअसंमृष्टाजिराणिच ॥ ३९ ॥ देवागाराणिशून्यानिनभांतीहयथापुरा ॥ देवतार्चाःप्रविद्धाश्चयज्ञ गोष्ठास्तथैवच ॥ ४० ॥ माल्यापणेषुराजंतेनाद्यपण्यानिवातथा ॥ दृश्यंतिवणिजोऽप्यद्यनयथापूर्वमत्रवै ॥ ४१ ॥ ध्यानसंविग्नहृदयानष्टव्या पारयंत्रिताः ॥ देवायतनचैत्येषुदीनाःपक्षिमृगास्तथा ॥ ४२ ॥ मलिनंचाश्रुपूर्णाक्षंदीनंध्यानपरंकृशम् ॥ सस्त्रीपुंसंचपश्यामिजनमुत्कंठितं पुरे ॥ ४३ ॥ इत्येवमुक्त्वाभरतःसूतंतंदीनमानसः ॥तान्यनिष्टान्ययोध्यायांप्रेक्ष्यराजगृहंययौ ॥ ४४ ॥ शून्यान्यशृंगाटकवेश्मरथ्यांरजोरु णद्वारकवाटयंत्राम् ॥ दृष्ट्वापुरीमिंद्रपुरीप्रकाशांदुःखेनसंपूर्णतरोबभूव ॥ ४५ ॥

वृद्ध होगई हैं न अब यज्ञभूमिमें यज्ञ होते दीखते हैं॥४०॥जहां फूल और हार बिका करतेथे वहां अब कुछभी हार इत्यादिक नहीं बिकते, न बनियेही इस समय पहिलेके समान प्रफुल्लचित्त दृष्टि आते हैं ॥४१॥ चिन्तासे इन वैश्योंका चित्त घबराया हुआसा जान पडता है और लेनदेन व खरीद बिक्री उठाजानेसे सबने अपनी२दूकानें बंद करदी हैं मृग और सब पक्षी व्याकुल हो इकले देवालय जो हरिमन्दिर शिवालय योगी इत्यादिके जो मठ हैं उनमें चुप चाप घूमरहे हैं॥ ॥४२॥ बस नगरके सब जनही मलीन चिन्तायुक्त दुबले पतले नेत्रोंमें आंसू भरे एक दूसरेको प्रीत जाननेको उत्कंठित हुये और महा व्याकुलसे देख पडते हैं ॥४३॥ भरतजी शोकके भारसे ढकेहुए हृदयसे सारथीसे ऐसा कह इस प्रकारके अनिष्ट अयोध्यापुरीमें देखते राजमंदिरकी ओर गमन करने लगे ॥४४॥भरत जीने देखा कि, अयोध्यके चौराहे घर सबसूने पडे हैं और किंवाडों व द्वारोंपर धूल ही धूल दिखाई देती है॥इन्द्रपुरी सदृश अयोध्याकी यह अवस्था देखकर भरतजी

घटनाओंको देखकर भरतजीकी चित्तवृत्ति नितान्त
बहुतही दुःखित होगये ॥४५॥ पहले जो कभी अयोध्यामें नहीं हुआथा, नयन और मनकी अप्रियकरनेवाली घटनाओंको देखकर भरतजीकी चित्तवृत्ति नितान्त
बहुतही दुःखित होगये ॥४५॥ पहले जो कभी अयोध्यामें नहीं हुआथा, नयन और मनकी अप्रिय करनेवाली इस कारण भरतजीने शिर झुकाकर पिताके घरमें प्रवेश किया ॥४६॥
उदास होगई और वह बनाय अप्रसन्न होगये जिससे कि, अयोध्याकीयहअवस्था न दीख पडे इस कारण भरतजीने शिर झुकाकर पिताके घरमें प्रवेश किया ॥४६॥
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आ० अयो० भाषायामेकसप्ततितमः सर्गः ॥ ७१ ॥ भरतजी पिताके घरमें पिताजीको न देखकर माताके दर्शनकी लालसा किये
अपनी माताके मन्दिरको गये॥१॥बहुत दिनोंसे विदेश गये अपने घरमें अब आये हुए अपने पुत्रको देख कैकेयी हर्षमें मग्न हो सोनेकी चौकीसे उसी समय उठ
खडी हुई ॥२॥ धर्मात्मा भरतजीने अपनी माताके घरमें प्रवेश करतेही देखा कि, घरकी शोभा नष्ट होगई है अनन्तर उन्होंने जननीके पवित्र पदयुगल ग्रहण किये

बभूवपश्यन्मनसोऽप्रियाणियान्यन्यदानास्यपुरेबभूवुः ॥अवाक्शिरादीनमनानहृष्टःपितुर्महात्माप्रविवेशवेश्म ॥४६॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे
वाल्मीकीये आदिकाव्येअयोध्याकांडे एकसप्ततितमः सर्गः ॥७१॥ अपश्यंस्तुततस्तत्रपितरंपितुरालये ॥ जगामभरतोद्रष्टुंमातरंमातुरालये
॥१॥ अनुप्राप्तंतुतंदृष्ट्वाकैकेयीप्रोषितंसुतम् ॥ उत्पपाततदाहृष्टात्यक्त्वासौवर्णमासनम् ॥२॥ सप्रविश्यैवधर्मात्मास्वगृहंश्रीविवर्जितम् ॥ भरतः
प्रेक्ष्यजग्राहजनन्याश्चरणौशुभौ ॥ ३ ॥ तंमूर्ध्निसमुपाघ्रायपरिष्वज्ययशस्विनम् ॥ अंकेभरतमारोप्यप्रष्टुंसमुपचक्रमे ॥ ४॥ अद्यतेकतिचि
दात्र्यश्च्युतस्यार्यकवेश्मनः ॥ अपिनाध्वश्रमःशीघ्रंरथेनापततस्तव ॥ ५ ॥ आर्यकस्तेसुकुशलीयुधाजिन्मातुलस्तव ॥ प्रवासाच्चसुखंपुत्रस
र्वंमेवक्तुमर्हसि ॥ ६ ॥ एवंपृष्टस्तुकैकेय्याप्रियंपार्थिवनंदनः ॥ आचष्टभरतःसर्वंमात्रेराजीवलोचनः ॥ ७ ॥ अद्यमेसप्तमीरात्रिश्च्युतस्या
र्यकवेश्मनः॥ अंबायाःकुशलीतातोयुधाजिन्मातुलश्चमे ॥८॥ यन्मेधनंचरत्नंचददौराजापरंतपः ॥ परिश्रांतंपथ्यभवत्ततोऽहंपूर्वमागतः ॥९॥

॥३॥ उस समय कैकेयीने यशस्वी भरतजीका मस्तक सूंघ लिया और छातीसे लपटाय लिया और गोदीमें बिठाकर पूंछा ॥४॥ हे वत्स ! आज तुमको अपने
नानाके यहांसे चलके कै रात्रि बीतीं रथपर चढ शीघ्र आनेसे मार्गमें तुम्हें कोई कष्ट तो नहीं पडा ? ॥५॥ तुम्हारे नाना और मामा युधाजित तो बहुत अच्छी
तरहसे हैं ? वत्स ! तुम जबसे परदेश गए तबसे रहे तो अच्छे यह हमसे कहो ॥६॥ कैकेयीके ऐसा प्रिय कहनेपर राजकुमार राजीवलोचन भरतजी मातासे
सब वृत्तांत कहने लगे ॥७॥ मातः ! मामाका घर छोडे हुए आज हमको सात रातें बीतीं तुम्हारे पिता और भ्राता मेरे मामा दोनोंजनेही अच्छे हैं ॥ ८ ॥ शत्रु
ओंके दमन करनेवाले राजा केकयने जो हमको सब धन रत्नादि दिये थे सो हम उन सबकोमार्गमेंही छोडकर आगे चले आये हैं क्योंकि मार्गमें बाहन बहुतही

थक गये थे ॥९॥ राजाजीका सन्देश लेकर जो दूत गये थे उनके जल्दी करनेहीपर इतनी शीघ्रतासे यहां आये हैं सो इस समय हम जो कुछ पूछें उसका उत्तर दीजिए ॥१०॥ आपका यह स्वर्णभूषित शयन करनेके लायक पलँग क्यों सूना पडा है ? और इक्ष्वाकुवंशीय कोई पुरुषभी हमको आनन्दित नहीं विदित होता ॥११॥ और आपके इस घरमें राजा प्रायः सदाही रहा करते हैं सो आज यहभी यहां नहीं देख पडते. हम उनकोही देखनेके लिए प्रथम यहां आये हैं ॥१२॥ जो हो इस समय पिताजी कहां हैं मुझको यह बताओ क्योंकि, मैं उनके चरणयुगल ग्रहण करूंगा वह क्या हमारी माताओंमें सबसे बड़ी माता कौशल्याजीके घरमें हैं ? ॥१३॥ अनन्तर जोकि सब वृत्तांत जानती थी वह राज्यके लोभसे मोहित हुई कैकेयी न जाने हुए वृत्तान्तको पूछनेमें तैयार भरतजीसे प्रिय वार्त्ताके समान वह

राजवाक्यहरैर्दूतैस्त्वर्यमाणोऽहमागतः ॥ यदहंप्रष्टुमिच्छामितदंबावक्तुमर्हति ॥१०॥ शून्योऽयंशयनीयस्तेपर्यंकोहेमभूषितः ॥ नचायमिक्ष्वाकुजनःप्रहृष्टःप्रतिभातिमे ॥ ११ ॥ राजाभवतिभूयिष्ठमिहांबायानिवेशने ॥ तमहंनाद्यपश्यामिद्रष्टुमिच्छन्निहागतः ॥१२॥ पितुर्ग्रहीष्ये पादौचतंममाख्याहिपृच्छतः ॥ अहोस्विदंबाज्येष्ठायाःकौसल्यायानिवेशने ॥ १३ ॥ तंप्रत्युवाचकैकेयीप्रियवद्घोरमप्रियम् ॥ अजानंतंप्रजानंतीराज्यलोभेनमोहिता ॥ १४ ॥ यागतिःसर्वभूतानांतांगतिंतेपितागतः ॥ राजामहात्मातेजस्वीयायजूकःसतांगतिः ॥ १५ ॥ तच्छ्रुत्वाभरतोवाक्यंधर्माभिजवाञ्छुचिः ॥ पपातसहसाभूमौपितृशोकबलार्दितः ॥ १६ ॥ हाहतोऽस्मीतिकृपणंदीनांवाचमुदीरयन् ॥ निपपातमहाबाहुर्बाहूविक्षिप्यवीर्यवान् ॥ १७ ॥ ततःशोकेनसंवीतःपितुर्मरणदुःखितः ॥ विललापमहातेजाभ्रांताकुलितचेतनः ॥ १८ ॥ एतत्सुरुचिरंभातिपितुर्मेशयनंपुरा ॥ शशिनेवामलंरात्रौगगनंतोयदात्यये ॥ १९ ॥

घोर कुप्यारा वचन कहने लगी ॥१४॥ हे वत्स! संसारमें जो सबही लोगोंकी गति होती है सो तुम्हारे पिता, राजा, महात्मा, तेजस्वी, यज्ञशील और साधु पुरुषोंको आश्रय देनेवाले महाराज दशरथजीकी भी वही गति हुई अर्थात् साकेत लोकको चले गये ॥१५॥ धर्मयुक्तवंशसंभूत सीधे स्वभाव भरतजी यह वार्त्ता सुनते ही पिताजीके शोकके प्रभावसे बहुतही घबडाकर मूर्छितहो पृथ्वीपर गिरपडे ॥१६॥ गिरनेके समय महाबाहुमहाबलवान् भरतजी दोनों बाँहें पृथ्वीपरपटककर " हाय हम मारेगये" ऐसा कहकर व्याकुल और करुणामय वचनकहते हुए ॥१७॥ अनन्तर महातेजवान् भरतजी पिताके मरणके शोक और दुःखसे पीडितहोअज्ञान होगये उनकी सब इंद्रियां शिथिल हो आईं और वह विलाप करने लगे ॥१८॥ पिताजीकी यह सेज पहले बादल चले जानेसे शरत्कालकी रात्रिमें चन्द्रमंडल

मंडित गगनकी नाईं हमको सुन्दर लगती ॥१९॥आज उन बुद्धिमान् पिताजीके विना चन्द्रहीन आकाश और जलहीन सागरकी नाईं यह सेज शोभित नहीं होती ॥२०॥ तपशीलमें श्रेष्ठ भरतजी अपना परमसुकुमार मुखवस्त्रसे ढककर कंठमें बाष्प भरलाये और नेत्रोंसे आंसू छोडते हुए नितान्त व्याकुल चित्तसे विलाप करने लगे ॥२१॥ कुल्हाडीके काटनेसे शालके पेड़का गुद्दा जिस प्रकार गिरजाता है देवताके समान भरतजीभी पिताके शोकसे पीडित होकर भूमिमें गिरगये ॥२२॥यह देखकर कैकेयी उन चन्द्र सूर्य और मातंगके समान तेजस्वी शोकाकुल पुत्रको पृथ्वीसेउठाय जांघपर बैठाय उनकी धूल पोंछ पांछकर बोली॥२३॥ हे सदाशयमहायशवाले राजन् ! उठो२भूमिमें क्यों पडेहो तुम्हारे समान पंडित व पंडितोंकी सभाके भूषण लोग कभी शोक नहीं करते ॥२४॥ हे बुद्धिसम्पन्न ! सूर्यकी प्रभाकेसमान दान,यज्ञ,शील श्रुति और तपस्याके विषयकी तुम्हारी बुद्धिको सब वार्त्ता सूझती हैं जैसे सूर्यकी प्रभा बाहर भीतर सबकहीं प्रवेश करती

तदिदंनविभात्यद्यविहीनंतेनधीमता ॥ व्योमेवशशिनाहीनमप्शुष्कइवसागरः ॥२०॥ बाष्पमुत्सृज्यकंठेनस्वात्मनापरिपीडितः॥प्रच्छाद्यवदनं श्रीमद्वस्त्रेणजयतांवरः ॥ २१ ॥ तमार्तंदेवसंकाशंसमीक्ष्यपतितंभुवि॥निकृत्तमिवसालस्यस्कंधंपरशुनावने ॥२२॥ मातामातंगसंकाशंचंद्रार्क सदृशंसुतम् ॥ उत्थापयित्वाशोकार्तंवचनंचेदमब्रवीत्॥२३॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठकिंशेषेराजन्नत्रमहायशः ॥ त्वद्विधानहिशोचंतिसंतःसदसिसंमताः ॥२४॥ दानयज्ञाधिकाराहिशीलश्रुतितपोऽनुगा॥बुद्धिस्तेबुद्धिसंपन्नप्रभेवार्कस्यमंदिरे ॥२५॥ सरुदित्वाचिरंकालंभूमौपरिविवृत्यच ॥ जननीं प्रत्युवाचेदंशोकैर्बहुभिरावृतः ॥ २६ ॥अभिषेक्ष्यतिरामंतुराजायज्ञंनुयक्ष्यते॥ इत्यहंकृतसंकल्पोहृष्टोयात्रामयासिषम् ॥२७॥ तदिदंह्यन्यथा भूतंव्यवदीर्णमनोमम ॥ पितरंयोनपश्यामिनित्यंप्रियहितेरतम् ॥ २८ ॥ अंबकेनात्यगाद्राजाव्याधिनामय्यनागते॥ धन्यारामादयःसर्वेयैः पितासंस्कृतःस्वयम् ॥ २९ ॥ ननूनंमांमहाराजःप्राप्तंजानातिकीर्तिमान् ॥ उपजिघ्रेत्तुमांमूर्न्धितातःसन्नाम्यसत्वरम् ॥ ३० ॥

है ॥२५॥ अनन्तर बहुत शोकसे गिरे हुए भरतजी बहुत देरतक रोदन करके धरतीपर लोटते रहे और अपनी मातासे यह बोले ॥२६ ॥ माता ! हमारे पिता राजा दशरथजीरामचन्द्रजीको राज्यदेवेंगे या कोई यज्ञ करेंगे यह समझकर हमने हर्ष सहित नानाके यहांसे यात्राकी थी ॥२७॥ परन्तु इस समय उसके विरुद्ध बात देखकर हमारा हृदय टुकडे२ हुआ जाता है ।जो सदाही प्रिय और हितका अनुष्ठान करनेवाले हमारे पिताजी थे उनको हम नहीं देखते ॥२८॥ हमारे पीछे कौनसा रोग लगनेके कारण उन्होंनेप्राण त्याग किये । रामचन्द्र व लक्ष्मणजी इत्यादिक जिन्होंने पिताजीका संस्कारकिया है वही लोग धन्य हैं ॥२९॥ निश्च यही कीर्तिमान् राजा दशरथजी यह नहीं जानते कि,हमनानाके यहांसे आगये । यदि वह जानते होते तो शीघ्र अपना मस्तक झुका हमारा शिर सूंघते ॥३०॥

हाय! अब छूतेही सुख देनेवाला पिताजीका वह हाथ कहां है। जब हमारे सब अंगोंमें धूल लग जाती थी तब वह सदाही उस हाथसे हमको झाड पोंछ देते थे॥ ॥३१॥ यह तो हुआ, अब जो हमारे भ्राता, पिता और बन्धु व हम जिनके आज्ञाकारीदास हैं वे रामचन्द्रजी इस समय कहां हैं शीघ्रहमारा आना उनसे जाय कहो॥३२॥क्योंकि, हम इस कुलके धर्म जानते हैं कि बडा भ्राता पिता केही समान होता है इससे उसकेही चरणोंको ग्रहण करें क्योंकि इस समय वही हमारे रक्षक हैं॥३३॥आर्ये! धर्मज्ञ, धर्मशील, महाभाग सत्यविक्रम, दृढव्रत राजा व हमारे पिता दशरथजी मृत्युके समय हमारे लिये भी कुछ कह गये हैं वह हमारे सुननेकी इच्छा है सो तुम बताओ॥३४॥ व हमारे पिताजी प्रजाओंके एकही परमशिक्षक गुरुथे सत्यविक्रम सत्यसंकल्प थे व जो चलनेके समयमें हमें कुछ आज्ञा दे गये हों तो उसको हम सुना चाहते हैं. जब इसप्रकार पूछा तब कैकेयी बोली॥३५॥हा सीता! हा राम! हा लक्ष्मण! ऐसा कहकर विलाप करते हुए गति पाने

क्वसपाणिःसुखस्पर्शस्तातस्याक्लिष्टकर्मणः॥योहिमांरजसाध्वस्तमभीक्ष्णंपरिमार्जति ॥३१॥ योमेभ्रातापिताबंधुर्यस्यदासोऽस्मिसंमतः॥ तस्य मांशीघ्रमाख्याहिरामस्याक्लिष्टकर्मणः ॥३२॥पिताहिभवतिज्येष्ठोधर्ममार्यस्यजानतः ॥ तस्यपादौग्रहीष्यामिसहीदानींगतिर्मम ॥३३॥धर्मविद्धर्मशीलश्चमहाभागोदृढव्रतः॥ आर्येकिमब्रवीद्राजापितामेसत्यविक्रमः ॥३४॥ पश्चिमंसाधुसंदेशमिच्छामिश्रोतुमात्मनः॥तिपृष्टायथातत्त्वं कैकेयीवाक्यमब्रवीत् ॥३५॥रामेतिराजाविलपन्हासीतेलक्ष्मणेतिच ॥ समहात्मापरंलोकंगतोगतिमतांवरः॥३६॥इतीमांपश्चिमांवाचंव्याजहारपितातव ॥ कालधर्मपरिक्षिप्तःपाशैरिवमहागजः॥३७॥ सिद्धार्थास्तुनराराममागतंसहसीतया॥लक्ष्मणं चमहाबाहुंद्रक्ष्यंतिपुनरागतम् ॥३८॥ तच्छ्रुत्वाविषसादैवंद्वितीयाप्रियशंसनात् ॥ विषण्णवदनोभूत्वाभूयःपप्रच्छमातरम् ॥ ३९ ॥ क्वचेदानींसधर्मात्माकौसल्यानंदवर्धनः॥लक्ष्मणेनसहभ्रात्रासीतयाचसमागतः ॥ ४० ॥ यथापृष्टोयथान्यायमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ मातास्ययुगपद्वाक्यंविप्रियंप्रियशंसया॥ ४१ ॥

वालोंमें श्रेष्ठ महात्मा दशरथजी परलोकमें चले गये हैं॥३६॥महाराज जिस प्रकार पाशसे बँध जाता है वैसेही तुम्हारे पिताजीने कालधर्मके वश होकर मृत्युके समय हमसे यह कहाथा ॥३७॥ जो लोग सीता और लक्ष्मणके समेत महाबाहु रामचन्द्रजीको अयोध्यामें फिर आया हुआ देखेंगे उनकेही सब कार्य सिद्ध हुये और वही धन्य हैं ॥३८॥ जब कैकेयीने यह एक दूसरी अप्रिय वार्त्ता कही तब भरतजी बहुतही उदासहुये और कुछ देरतकचुप रहकर मातासे बोले ॥३९॥ हे माता! कौशल्याजीके आनन्दको बढानेवाले धर्मात्मा रामचन्द्रजी भ्राता और भार्याके सहित इस समय कहां बसते हैं? ॥४०॥जब भरताजीने इसप्रकार पूछा तब उनकी माता कैकेयीने यथारीति सबवृत्तान्त उनको सुनानेकेविचार किया उसने समझा कि, उस दारुण अप्रिय घटनासे भरतका मन अवश्यही प्रसन्न

होगा ॥४१॥ पुत्र ! राजपुत्र रामचन्द्रजी चीरवल्कल धारण करके लक्ष्मण और जानकीके सहित दण्डक नामक महावनको चले गये हैं ॥ ४२ ॥ यह वार्त्ता सुनकर भरतजी जो कि वह अपने वंशका माहात्म्य जानते थे इसकारण रामचन्द्रजीके चरित्रके विषयमें शंकितहो उससे त्रासितहुए अपनी मातासे पूछते हुये ॥४३॥ रामचन्द्रजीने किसी ब्राह्मणका कभी धन हरणभी तो नहीं किया अथवाकिसी कारण किसी निष्पापधनी या दरिद्रको नहीं मार डाला जिसकारण उन्हें वन भेजा, क्योंकि हमारे कुलमें धर्मत्याग करनेवालोंका त्याग करना रीति है ॥ ४४ ॥ अथवा उन राजपुत्रने कभी पराई स्त्रीपर आसक्त होकर उससे कभी रति भीतो नहीं की तब किस कारणसे भ्राता रामचन्द्रजी दण्डकारण्यको भेजे गये ॥४५॥ भरतजीके ऐसे वचन सुनकर चंचल स्वभाववाली कैकेयीने स्वभावसे जैसा कुछ कियाथा उसको व्यौरेवार वर्णन करने लगी ॥४६॥ महात्मा भरतजीके पूछने पर चाहियेथाकि, कुछ संकोचके साथ कहती पर वह अपनी बुद्धिके सामने पंडितोंकी

सहिराजसुतः पुत्रचीरवासामहावनम् ॥ दंडकान्सहवैदेह्यालक्ष्मणानुचरोगतः ॥४२॥ तच्छ्रुत्वाभरतस्त्रस्तोभ्रातुश्चारित्रशंकया ॥ स्वस्यवंशस्यमहात्म्यात्प्रष्टुंसमुपचक्रमे ॥ ४३ ॥ कच्चिन्नब्राह्मणधनंहतंरामेणकस्यचित् ॥ कच्चिन्नाढ्योदरिद्रोवातेनापापोविहिंसितः ॥ ४४ ॥ कच्चिन्नपरदारान्वाराजपुत्रोऽभिमन्यते ॥ कस्मात्सदंडकारण्येभ्राताराामोविवासितः ॥४५॥ अथास्यचपलामातातत्स्वकर्मयथातथम् ॥ तेनैवस्त्रीस्वभावेन व्याहर्तुमुपचक्रमे ॥४६॥ एवमुक्तातुकैकेयीभरतेनमहात्मना ॥ उवाचवचनंहृष्टावृथापंडितमानिनी ॥४७॥ नब्राह्मणधनंकिंचिद्धृतंरामेणकस्यचित् ॥ कश्चिन्नाढ्योदरिद्रोवातेनापापोविहिंसितः ॥४८॥ नरामःपरदारान्सचक्षुर्भ्यामपिपश्यति ॥ मयातुपुत्रश्रुत्वैवरामस्येहाभिषेचनम् ॥४९॥ याचितस्तेपिताराज्यंरामस्यचविवासनम् ॥ सस्ववृत्तिसमास्थायपितातेतत्तथाकरोत् ॥५०॥ रामस्तुसहसौमित्रिःप्रोषितःसहसीतया ॥ तमपश्यन्प्रियंपुत्रंमहीपालोमहायशाः ॥ ५१ ॥ पुत्रशोकपरिद्यूनःपंचत्वमुपपेदिवान् ॥ त्वयात्विदानींधर्मज्ञराजत्वमवलंब्यताम् ॥ ५२॥

भी बुद्धिको कुछ नहीं समझती थी, बड़ी प्रसन्नता व धृष्टतासहित कहने लगी ॥४७॥ वत्स ! रामचन्द्रने किसी ब्राह्मणका कुछभी हरण नहीं कियाव अकारणही किसी निष्पाप धनी व दरिद्रको भी किसी प्रकारसे नहीं मार डाला ॥४८॥ परस्त्री गमन करना तो दूर रहेवहकभी पराईस्त्रीको आंख उठाकर देखते भी नहीं तिसपरभी हे पुत्र ! राम राजा होते हैं यह बात सुनकर ॥ ४९ ॥ मैंने तुम्हारे पिताजीसे तुम्हारे निमित्त राज्यकोमांगा और रामचन्द्रजीको वन भिज वानेकी प्रार्थना की, महाराजनेभी सत्यके वश पड़नेके कारण मेरी प्रार्थना स्वीकारकी ॥५०॥ और इसीकारण उन्होंने रामचन्द्रजीको सीता और लक्ष्मण सहित वनमेंभेज दिया महायशस्वी महीपति राजा दशरथजी उन प्रियपुत्र रामचन्द्रजीके न देखनेसे ॥ ५१ ॥ पुत्रके शोकसे पीडित महादुःखितहो पंचत्वको प्राप्त हुए (अर्थात् स्वर्ग

वासी हुए) हे धर्मज्ञ! अब तुम इसराज्यको ग्रहण करो, क्योंकि तुम्हारे पिताजी तुमको यह राज्य देही गये हैं ॥५२॥ तुम्हारेही वास्ते हमने यह वार्त्ता किया है अतएव हे पुत्र! धैर्य धारण करो, और शोक संतापका त्यागन करदो ॥५३॥ इसी हेतुसे यह राज्य और राजधानी अयोध्यापुरी ज्योंकी त्यों निरुपद्रव द्रव्यसहित तुम्हारे अधीन होगई ॥५४॥ अतएव तुम इस समय वसिष्ठ इत्यादि विधिके जाननेवाले ब्राह्मणोंके साथ मिलकर शीघ्रही यथाविधानसे महापराक्रमी अपने पिताकी प्रेतक्रिया समाप्त करके राजगद्दीपर बैठ जाओ और किसी प्रकारकी उदासीनता मनमें मत करो * ॥५५॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आदि० अयो० भा० टी० द्विसप्ततितमः सर्गः ॥७२॥ पिताजीका मरण और दोनों भाइयोंका वनगमन सुनकर भरतजी दुःखसे अतिसंतप्त होकर वचन बोले ॥१॥ हे माता पिता और पिताके

त्वत्कृतेहिमयासर्वमिदमेवंविधंकृतम् ॥ माशोकंमाचसंतापंधैर्यमाश्रयपुत्रक ॥५३॥ त्वदधीनाहिनगरीराज्यंचैतदनामयम् ॥ ५४ ॥ तत्पुत्र शीघ्रंविधिनाविधिज्ञैर्वसिष्ठमुख्यैःसहितोद्विजेन्द्रैः ॥ संकाल्यराजानमदीनसत्त्वमात्मानमुर्व्यामभिषेचयस्व ॥ ५५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकांडे द्विसप्ततितमः सर्गः ॥७२॥ श्रुत्वाचसपितुर्वृत्तंभ्रातरौचविवासितौ ॥ भरतोदुःखसंतप्तइदंवचनमब्रवीत् ॥ १ ॥ किंनुकार्यंहतस्येहममराज्येनशोचतः ॥ विहीनस्यार्थपित्राचभ्रात्रापितृसमेनच ॥ २ ॥ दुःखेमेदुःखमकरोर्व्रणेक्षारमिवाददाः ॥ राजानं प्रेतभावस्थंकृत्वारामंचतापसम् ॥३॥ कुलस्यत्वमभावायकालरात्रिरिवागता ॥ अंगारमुपगुह्यस्मपितामेनावबुद्धवान् ॥ ४ ॥ मृत्युमापादितो राजात्वयामेपापदर्शिनि ॥ सुखंपरिहृतंमोहात्कुलेऽस्मिन्कुलपांसनि ॥ ५ ॥ त्वांप्राप्यहिपितामेऽद्यसत्यसंधोमहायशाः ॥ तीव्रदुःखाभिसंतप्तो वृतोदशरथोनृपः ॥ ६ ॥

समान भ्रातासे विहीन होकर हम मारे गये अतएव इस प्रकार शोचनीय अवस्थामें राज्य लेकर हम क्या करेंगे ? ॥२॥ तुमने राजा दशरथजीको मारकर और रामचन्द्रजीको तपस्वी बना मानो मेरे जले हुए घावपर नोनघिसकर लगा दुःखके ऊपर दुःख दिया ॥ ३ ॥ तू कालरात्रिके समान कि, जिसमें सब प्राणी मर जाते हैं, हमारे कुलका नाश करनेहीके लिये रघुवंश में आई हाय! हमारे पिताजीनेजलता हुआ अंगारा भेट कर भी उसको न जाना ॥४॥ रे पापदर्शिनी ! तूने अनायासही राजाको मार डाला। रे कुल नाशिनी! तू ने मोहके वश हो एक वारही इस कुलको सुखहीन कर दिया ॥५॥ हमारे पिता सत्य प्रतिज्ञा करने वाले परम

* दोहा–भरतहिं बिसऱ्यो पितु मरण, सुनत राम वनगौन ॥ हेतु आपना समझ जिय थकित रहे धरि मौन ॥

यशस्वी राजा दशरथजीने तुझको घरमें लाकर तीव्र दुःखसे बहुतही संतप्त हो प्राण त्याग किये हैं ॥६॥ तूने क्यों उन धर्म वत्सल हमारे पिता महाराज दशरथजीको मार डाला और क्यों श्रीरामचन्द्रजी को वनमें निकलवाया और वह तेरे कहनेसे किस प्रकार वनको चलेगये ॥७॥ पुत्रशोकसे तापित हुई कौशल्या व सुमित्रा देवी तुझ दुष्टा हमारी माता को पाय जीवितही रहें तो बड़ा दुष्कर काम उनने किया समझो, क्योंकि ऐसे दुःखमें जीना बहुत कठीन है॥८॥ आर्यरामचन्द्रजी अतिशय धार्मिक हैं और वह यह भी जानते हैं कि, गुरुजनोंके साथ कैसा व्यवहार करना उचित है वह सदा तेरे साथ अपनी गर्भ धारिणी माताके समान व्यवहार करते रहे ॥९॥ हमारी बडी माता आगा पीछा देखकर चलनेवाली कौशल्याजी भी सदा तेरी मनमानी बात करती और सगी बहनकी समान तुझसे व्यवहार करती हैं ॥१०॥ हे पापीयसि ! तू उन कौशल्याजीके उन महात्मा पुत्रको किस प्रकारसे चीर वल्कल धारण करा और वनमें भिजवाकर अब उनके लिये शोक नहीं

विनाशितोमहाराजःपितामेधर्मवत्सलः ॥ कस्मात्प्रव्राजितोरामःकस्मादेववनंगतः ॥७॥ कौसल्याचसुमित्राचपुत्रशोकाभिपीडिते॥ दुष्करंय दिर्जीवेतांप्राप्यत्वांजननींमम ॥ ८ ॥ नन्वार्येऽपिचधर्मात्मात्वयिवृत्तिमनुत्तमाम्॥ वर्ततेगुरुवृत्तिज्ञोयथामातरिवर्तते ॥ ९ ॥ तथाज्येष्ठाहिमे माताकौसल्यादीर्घदर्शिनी ॥ त्वयिधर्मंसमास्थायभगिन्यामिववर्तते ॥१०॥ तस्याःपुत्रंमहात्मानंचीरवल्कलवाससम्॥ प्रस्थाप्यवनवासाय कथंपापेनशोचसि ॥११॥ अपापदर्शिनंशूरंकृतात्मानंयशस्विनम् ॥ प्रव्राज्यचीरवसनंकिंनुपश्यसिकारणम् ॥ १२ ॥ लुब्धायाविदितोमन्ये नतेऽहंराघवंयथा॥ यथाह्यनर्थोराज्यार्थंत्वयानीतोमहानयम्॥१३॥ अहंहिपुरुषव्याघ्रावपश्यन्रामलक्ष्मणौ॥ केनशक्तिप्रभावेणराज्यंरक्षितुमु त्सहे ॥ १४ ॥ तंहिनित्यंमहाराजोबलवंतंमहौजसम् ॥ उपाश्रितोऽभूद्धर्मात्मामेरुर्मेरुवनंयथा ॥१५॥ सोऽहंकथमिमंभारंमहाधुर्यसमुद्यतम् ॥ दम्मोधुरमिवासाद्यसहेयंकेनचौजसा ॥ १६ ॥

करती ॥११॥ हाय ! उन विशुद्धात्मा अपापदर्शी परम यशस्वी शूर महात्मा रामचन्द्रजीको मुनिका भेष बना चीरवल्कल धारण करा वनमें भेजनेसे तेरा कौनसा काम निकला ? ॥१२॥ रामचन्द्रजीके प्रति मेरी जैसे निष्कपट भक्ति है उसको तैंने राज्यके लोभ में अंधी होनेसे नहीं जाना इसी कारण तैंने साधारण राज्यके लोभसे यह बडा भारी अन्याय किया ॥१३॥ परन्तु पुरुषसिंह रामचन्द्र व लक्ष्मणजीके न देखनेसे किस शक्ति व सामर्थ्य केप्रभावसे हम इस राज्यकी रक्षा कर सकें ॥१४॥ जिस प्रकार सुमेरु पर्वत अपने समीपस्थ वनके आश्रयसे शोभित होता है वैसेही महात्मा धर्मवान् महाराज दशरथजीने भी अपनी व राज्यकी रक्षा करनेके लिये उन महाबलशालो महातेजस्वी रामचन्द्रजीको आश्रय किया था॥१५॥अतएव हम किस प्रकार और किसके बलसे इस बडे भारी राज्यका भार अकेले उठा

सकेंगे ? जिस प्रकारबडे भारी बैलके खैंचनेके लायक भारको छोटा सा बछड़ा नहीं उठा सकता॥ १६॥ अथवा योग्यबल बुद्धिबल या और किसी उपायसे यदि मैं इस राज्यके भारको सँभाल भी सकूँ किन्तु पुत्रका हित करनेवाली तेरी यह कामना कभी हमपूर्ण नहीं करेंगे कि बेटा राज्य करे और मैं सब सौतोंपर बैठी हुई हुकुम चलाऊँ ॥ १७॥ हे पापनिश्चये ! यदि आर्य रामचन्द्रजी सदाही तेरे प्रति माताके समान श्रद्धा न करते तब तो इसी मुहूर्त हम तुझको त्यागन कर देते ॥ १८॥ रे पापदर्शिनि ! रे सदाचार भ्रष्टे ! हमारे पूर्व पुरुषोंकी रीतिमें कलंक लगानेवाली यह बुद्धि तुझमेंकैसी उत्पन्न हुई जिससे कि, सुजन समाजमें तेरी निन्दा हुई ॥ १९॥ क्योंकि इसकुलमें पीढी व पीढियोंसे यह रीति चली आई है कि, ज्येष्ठही राजा होता है व उससे छोटे भाई उसके अधीन रहते हैं॥ २०॥ रे नृशंसे ! हम समझे कि, तू राज्य धर्मको कुछ नहीं जानती अथवा राज्य धर्मका अनुष्ठान करनेसे जो अक्षय फल मिलता है उसको भी तू नहीं जानती ॥ २१॥ राजकुमारों में जो सबसे बडा हो वही

अथवामेभवेच्छक्तिर्योगैर्बुद्धिबलेनवा ॥ सकामांनकरिष्यामित्वामहपुत्रगर्धिनीम् ॥ १७॥ नमेविकांक्षाजायेतत्यक्तुंत्वांपापनिश्चयाम् ॥ यदिराम स्यनावेक्षात्वयिस्यान्मातृवत्सदा ॥ १८ ॥ उत्पन्नातुकथंबुद्धिस्तवेयंपापदर्शिनी ॥ साधुचारित्रविभ्रष्टेपूर्वेषांनोविगर्हिता ॥ १९ ॥ अस्मिन्कु लेहिसर्वेषांज्येष्ठोराज्येऽभिषिच्यते ॥ अपरेभ्रातरस्तस्मिन्प्रवर्ततेसमाहिताः ॥ २० ॥ नहिमन्येनृशंसेत्वंराजधर्ममवेक्षसे ॥ गतिंवानविजानासिरा जावृत्तस्यशाश्वतीम् ॥ २१ ॥ सततंराजपुत्रेषुज्येष्ठोराजाभिषिच्यते ॥ राज्ञामेतत्समंतत्स्यादिक्ष्वाकूणांविशेषतः ॥ २२ ॥ तेषांधर्मैकरक्षा णांकुलचारित्रशोभिनाम् ॥ अद्यचारित्रशौंडीर्यंत्वांप्राप्यविनिवर्तितम् ॥ २३ ॥ तवापिसुमहाभागेजनेंद्रकुलपूर्वके ॥ बुद्धिमोहःकथमयंसं भूतस्त्वयिगर्हितः ॥ २४ ॥ नतुकामंकरिष्यामितवाहंपापनिश्चये ॥ ययाव्यसनमारब्धंजीवितांतकरंमम ॥ २५ ॥

अवश्य करके राजाका अधिकारी होता है, सभी राज्योंमें विशेष करके इक्ष्वाकुओंका तो यह नियम सदाहीसे चला आता है ॥ २२ ॥ आज तुझसे उस धर्म प्रतिपालक अच्छे चरित्रसे शोभायमान हुये इक्ष्वाकुवंशसे वह सदाचारका गर्वएक बारही निवृत्त होगया, क्योंकि रामचन्द्र ज्येष्ठको राज्य न मिला ॥ २३॥ * हे महाभाग्य शालिनि ! तैंने राजकुलमें जन्म ग्रहण किया है, तथापि किस प्रकारके तुममें इस निन्दनीय बुद्धिसे यह मोह उपस्थित हुआ जिससे तेरी सब संसारमें निन्दा हुई व होती रहेगी तेरे कुलमें भी तो बडेही को राज्य होता है ॥ २४॥ जो कुछ भी हो हे पापनिश्चये ! तैंने हमारे प्राणोंका संहार करनेवाला दारुण काम

* (भरतजी कैकेयीसे) रागनी गिरनारी सोरठ ताल तीन ।। हे माता ! तें कुमति कमाई ।। आस्ताई ।। तुम जानत हो पुत्र आपके वे त्रिभुवन स्वामी सुखदायी ।। मैं कहा करिहौं राज पाट यह उन बिन कछु नाँहि मोहि सुहाई ।। जो मैं करिहौं राज्य अवधपुर तौ नारद सब जगत हँसायी ।

किया अतएव हम किसी प्रकारके भी तेरी अभिलाषा पूर्ण नहीं करेंगे ॥२५॥ पहले तो तेरा अप्रिय करनेके लिये हम अभी स्वजनोंके प्यारे पापरहित बडे भइया रामचन्द्रजीको वनसे लिवाये लाते हैं फिर देखेंगे कि तू क्या करती है ॥२६॥ श्रीरामचन्द्रजीको वनसे लौटाय और दासकी नाईं सुस्थिरचित्त होकर हम उनकी सेवा करेंगे ॥२७॥ महात्मा भरतजी इस प्रकार दुःखदायक वचन कह कैकेयीका मर्मपीडन करते हुए इस प्रकारसे कह शोकसे कातर हो मंदराचल पर्वतकी कंदरामें बैठे हुए सिंहके समान बडे स्वरसे रोदन करने लगे ॥ २८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयोध्याकांडे भाषायां त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥७३॥ भरतजी इसप्रकार यथोचित माताकी निन्दा करके फिर अतिशय क्रोध करके उससे बोले ॥१॥ रे नृशंसे दुराचारिणी कैकेयी ! तू राज्यभ्रष्ट हो और जब कि, तैंने कुलस्त्रीका धर्म त्यागही कर दिया है तब तुझको चाहिये कि, मृतस्वामीके लिये रोदनकर ॥२॥ भला राजाने तेरा क्या बिगाड़ा था और रामचन्द्रजी अतिधार्मिक

एषत्विदानीमेवाहमप्रियार्थंतवानघे ॥ निवर्तयिष्यामिवनाद्भ्रातरंस्वजनप्रियम् ॥२६॥ निवर्तयित्वारामंचतस्याहंदीप्ततेजसः ॥ दासभूतोभविष्यामिसुस्थितेनांतरात्मना ॥२७॥ इत्येवमुक्त्वाभरतोमहात्माप्रियेतरैर्वाक्यगणैस्तुदंस्ताम् ॥ शोकार्दितश्चापिननादभूयःसिंहोयथामंदरकंदरस्थः ॥२८॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकांडे त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥७३॥ तांतथागर्हयित्वातुमातरंभरतस्तदा ॥ रोषेण महताविष्टःपुनरेवाब्रवीद्वचः ॥१॥ राज्याद्भ्रंशस्वकैकेयिनृशंसेदुष्टचारिणि ॥ परित्यक्तासिधर्मेणमामृतंरुदतीभव ॥२॥ किंनुतेदूषयद्रामोराजावाभृशधार्मिकः ॥ ययोर्मृत्युर्विवासश्चत्वत्कृतेतुल्यमागतौ ॥ ३ ॥ भ्रूणहत्यामसिप्राप्ताकुलस्यास्यविनाशनात् ॥ कैकेयिनरकंगच्छमाचताततसलोकताम् ॥ ४ ॥ यत्त्वयाहीदृशंपापंकृतंघोरेणकर्मणा ॥ सर्वलोकप्रियंहित्वाममाप्यापादितंभयम् ॥ ५ ॥ त्वत्कृतेमेपितावृत्तोरामश्चारण्यमाश्रितः ॥ अयशोजीवलोकेचत्वयाहंप्रतिपादितः ॥६॥ मातृरूपेममामित्रेनृशंसेराज्यकामुके ॥ नतेऽहमभिभाष्योऽस्मिदुर्वृत्तेपतिघातिनि ॥७॥

हैं सो उन्होंनेही तेरा कौनसा अपकार किया था कि जिससे तूने एक हीकालमें राजाको मारडाला और रामचन्द्रको वनवास दिया ॥३॥ हे कैकेयी ! इस प्रकार वंशका नाश करनेसे तुझको गर्भपात करानेकी हत्या लगी है अतएव नरकको जा तुझको हमारे पिताजीका लोक प्राप्त न होवे ॥४॥ तैंने सब लोकोंके प्यारे रामचन्द्रजीको वनमें भेजकर स्वामिहत्यारूप यह घोर पाप किया जिससे कि, हमकोभी महा भय उत्पन्न हुआ ॥५॥ तेरेही कारण पिताजी परलोकवासी हुए, तेरेही कारण रामचन्द्रजी वनको गये और सब संसारमें ही तेरे कियेसे मेरा अयश फैला । अब लोग यही कहेंगे कि, वह कैकेयी इन्हींकी माता है जिसने राज्यके लोभमें निज स्वामीको मार रामचन्द्रजीको वनमें भेजा ॥६॥ रे नृशंसचरिते ! राज्यकी चाहनेवाली ! तू माताका रूप धारण किये है परन्तु है हमारी वैरिणी, हे बुरे आचरण

की करनेवाली ! पतिघातिनी ! अब तू मुझसे एक बातभी नकर॥७॥ हे कुलदूषिणि ! तेरेही कारण कौशल्या, सुमित्रा व हमारी और सब दूसरी माताएँ सब ही घोर दुःखमें पतित हुईं॥८॥हमने जान लिया कि, तू धर्मात्मा धर्मराज अश्वपति केकय राजाकी कन्या नहीं है किन्तु हमारे पिताका कुल नाश करने वाली तू केकय राजाके गृहमें राक्षसी पैदा हुई है ॥९॥ देख सत्यहीं जिनका एकमात्र आश्रय और जो सदाही धर्मकी रक्षा करते हैं वह रामचन्द्रभी तेरे कारण वनको गये और पिताजीने भी स्वर्गमें गमन किया ॥१०॥ तेरेही पापसे हम पिताहीन भ्राताहीन और साधुसमाजमें सबके कुप्यारे हुए और यह तेरा किया हुआ पाप मेरे ऊपर पडा ❀ ॥११॥ रे पापाशये । जबकि तूने धर्मका आचरण करनेवाली कौशल्याजीको पति और पुत्रकरके हीन कर दिया तबतो किसी प्रकारसे तेरी अच्छी गति नहीं होगी बरन् तुझको घोर नरकमें जाना पडेगा ॥१२॥ हे क्रूरे ! तू क्या इसको नहीं जान सकी कि, रामचन्द्रजी बन्धुबाधवोंके आश्रय हैं

कौसल्याचसुमित्राचयाश्चान्याममममातरः॥दुःखेनमहताविष्टास्त्वांप्राप्यकुलदूषिणीम्॥८॥नत्वमश्वपतेःकन्याधर्मराजस्यधीमतः॥राक्षसीतत्र जातासिकुलप्रध्वंसिनीपितुः ॥ ९ ॥ यत्त्वयाधार्मिकोरामोनित्यंसत्यपरायणः ॥ वनंप्रस्थापितोवीरःपितापित्रिदिवंगतः ॥ १० ॥ यत्प्रधा नासितत्पापंमयिपित्राविनाकृते॥ भ्रातृभ्यांचपरित्यक्तेसर्वलोकस्यचाप्रिये ॥११॥ कौसल्यांधर्मसंयुक्तांवियुक्तांपापनिश्चये ॥ कृत्वाकंप्राप्स्यसे ह्यद्यलोकंनिरयगामिनी ॥ १२ ॥ किंनावबुध्यसेक्रूरेनियतंबंधुसंश्रयम् ॥ ज्येष्ठंपितृसमंरामंकौसल्यायात्मसंभवम् ॥ १३॥ अंगप्रत्यंगजःपुत्रो हृदयाच्चाभिजायते ॥ तस्मात्प्रियतरोमातुःप्रियएवतुबांधवः ॥ १४ ॥ अन्यदाकिलधर्मज्ञासुरभिःसुरसंमता॥ वहमानौददर्शोर्व्यांपुत्रौविग तचेतसौ ॥ १५ ॥ तावर्धदिवसेश्रांतौदृष्ट्वापुत्रौमहीतले ॥ रुरोदपुत्रशोकेनबाष्पपर्याकुलेक्षणम् ॥ १६ ॥अधस्ताद्व्रजतस्तस्याःसुरराज्ञोमहा त्मनः ॥ बिंदवःपतितागात्रेसूक्ष्माःसुरभिगंधिनः ॥ १७ ॥

जिन्होंने सब शत्रु और इन्द्रियोंको जीत रक्खा है, जो ज्येष्ठ होनेके कारण हमारे पिताके समान हैं जिन्होंने कौशल्याजीके गर्भसे जन्म लिया है ॥१३॥ यों तो सब बन्धु बान्धव प्यारे होते हैं परन्तु सबसे अधिक पुत्र माताको प्यारा होता है कारण कि वह माताके अंग प्रत्यंग और हृदयहीसे जन्म ग्रहण करता है ॥१४॥ किसी समय देवताओंकी पूज्य धर्मात्मा कामधेनुने अपने दो पुत्र बैलोंको हलमें जुते हुए धूपके मारे व्याकुल हुए अचेतन अवस्थामें देखा ॥१५॥ जिनको कि पूरा दो पहर होगयाथा और थकभी गयेथे परन्तु कृषकने तबतक उन्हें नहीं छोडाथा कामधेनुको यह देखकर बडा शोक हुआ और आंसू डाल२ कर रोदन करने लगी ॥१६॥ इसी समय महानुभाव देवराज इन्द्र कामधेनु जहांथी उससे नीचेके मार्ग परजा रहेथे, जानेके समय उनके शरीर पर वह आंसू गिरे जिनमें कामधेनुकी

❀ चौपाई ॥ आंसुन भर भर लेंहि उसांसा । पापिनि सबहि भांति कुल नासा ।

सी गंध आतीथी ॥१७॥ आंसू अपने ऊपर पडा देख देवराज इन्द्रने ऊपरको नजर उठाई तब देखा कि सुरभी आकाशमें खडी रहकर दुःखसे भरे व्याकुल हृदयसे रो रही है ॥१८॥ वज्रपाणि देवराज इन्द्र यशस्विनी कामधेनुको इस प्रकार शोकसे संतप्त देखकर उदास हो हाथ जोडकर बोले ॥१९॥ हे सर्व लोकोंके हित करनेवाली ! किस लिये रुदन करती हो ? कहो हम लोगोंपर तो किसी ओरसे कोई विपद नहीं आई ॥ २० ॥ बुद्धिमान् देवराज इन्द्रजीने जब इस प्रकार कहा तब वाक्य विशारद कामधेनुने धीरज धरकर उन्हे उत्तर दिया ॥ २१ ॥ हे देवराज ! आज कल राक्षसादिकका तो कोई खटका नहीं उनका पाप तो कट गया हमतो दुःखमें पडे हुये अपने पुत्रोंको शोचती हैं ॥ २२ ॥ देखो यह दोनों बैल अतिदुर्बल होरहे हैं तिसपर भी सूर्यकी किरणोंसे संतप्त होरहे हैं दो पहर होगया परन्तु उस दुष्टकिसानने इनको अभीतक नहीं छोडा और वह इनको मारभी रहा है ॥२३॥ वह हमारी देहसे उत्पन्न हुए हैं इसीकारण

निरीक्षमाणस्तांशक्रोददर्शसुरभिस्थिताम्॥आकाशेविष्ठितांदीनांरुदतींभृशदुःखिताम्॥१८॥ तांदृष्ट्वाशोकसंतप्तांवज्रपाणिर्यशस्विनाम्॥इंद्रःप्रांजलिरुद्विग्नःसुरराजोऽब्रवीद्वचः॥१९॥ भयंकच्चिन्नचास्मासुकुतश्चिद्विद्यतेमहत्॥कुतोनिमित्तःशोकस्तेब्रूहिसर्वहितैषिणि ॥२०॥ एवमुक्तातुसुरभिःसुरराजेनधीमता॥प्रत्युवाचततोधीरावाक्यंवाक्यविशारदा॥२१॥शांतंपापंनवःकिंचित्कुतश्चिदमराधिप॥अहंतुमग्नौशोचामिस्वपुत्रौविषमेस्थितौ॥२२॥एतौदृष्ट्वाकृशौदीनौसूर्यरश्मिप्रतापितौ॥वध्यमानौबलीवर्दौकर्षकेणदुरात्मना॥२३॥ममकायात्प्रसूतौहिदुःखितौभारपीडितौ॥यौदृष्ट्वापरितप्येऽहंनास्तिपुत्रसमःप्रियः॥२४॥ यस्याःपुत्रसहस्रैस्तुकृत्स्नंव्याप्तमिदंजगत्॥तांदृष्ट्वारुदतींशक्रोनसुतान्मन्यतेपरम् ॥२५॥ इन्द्रोह्यश्रुनिपातंतंस्वगात्रेपुण्यगंधिनम्॥सुरभिंमन्यतेदृष्ट्वाभूयसींतामिहेश्वरः॥२६ माप्रतिमवृत्तायासलोकधारणकाम्यया॥श्रीमत्यागुणमुख्यायाःस्वभावपरिचेष्टया॥२७॥ यस्याःपुत्रसहस्राणिसापिशोचतिकाम ॥ किंपुनर्यांविनारामकौसल्यावर्तयिष्यति ॥ २८ ॥

उनको दुःखित और हलमें जुतनेके भारसे पीडित देखकर हम मारे शोकसे जलरही हैं । देखो संसारमें पुत्रके समान और कोई प्यारा नहीं है॥२४॥इसप्रकारसे जब कि कामधेनुकेहजारों लाखों पुत्र पृथ्वीपर हैं और वह उन दो पुत्रोंके लिये रो रही है तब यह देखकर इंद्रजीने जाना कि पुत्रके समान और कोई चीज मांकोप्यारी नहींहै॥२५॥ उनके शरीरपर कामधेनुके जो आंसू गिरेथे उनमेंसे अति उत्तम सुगन्धि निकलती हुई देखकर इन्द्रने जान लिया कि; कामधेनु संसारमें सबसे श्रेष्ठ है ॥२६॥ यद्यपि सुरभीके असंख्य पुत्र हैं तथापि लोकके धारणकी कामनासे व सरलस्वभाव पुत्रवत्सलतासे ॥२७॥ इतना शोच किया फिर असंख्य पुत्र होने परभी सुरभीको अपने पुत्रोंको दुःखित देख इतना शोक हुआ तब इकलौते पुत्रकी माता कौशल्याजी रामचन्द्रजीके बिना किस प्रकार जीवन धारण करेंगी

इस समय तुमने जिस प्रकार एकपुत्रा साध्वी कौशल्याजीसे उनका पुत्र छुटा दिया वैसेही तुझको इस लोक व परलोकमें सदाही दुःखभोग करना पडेगा ॥२९॥ हमभी सब भाँतिसे पिता व भ्राताके ऋणसे उऋण होकर अपना अकलंक यश बढावेंगे इसमें कुछभी संशय नहीं है ॥ ३० ॥ वह कलंक इस भाँतिसे मिटेगा कि, हम कोशलाधीशमहाबलवान् महाबाहु महाराज रामचन्द्रजीको काननसे यहां लौटा लाकर स्वयं मुनिगणों करके सेवित वनको चले जाँयगे ॥३१॥ हे खोटे आशयवाली रे पापीयसि ! तैंने जो पाप किया है सो हम उसको किसी प्रकारसे भी सहन नहीं कर सकते क्योंकि यह पुरवासी रामचन्द्रजीके वियोगसे रोय रोय हमको देखेंगे तब हमसे वह राज्य कैसे किया जायगा ?॥३२॥ अतएव इस समय या तो तू अग्निमें प्रवेश करजा वा वनको चलीजा या गलेमें फाँसी लगाकर प्राण त्यागदे क्योंकि और तेरी गति कहीं नहीं है॥३३॥ हम सत्यपराक्रम श्रीरामचन्द्रजीको लौटाकर और उनको राजा बनाकर सनाथ हो जायँगे, हमारे मनका कल्मषभी तभी मिटैगा

एकपुत्राचसाध्वीचविवत्सेयंत्वयाकृता ॥ तस्मात्त्वंसततंदुःखंप्रेत्य चेहचलप्स्यसे ॥२९॥ अहंत्वपचितिंभ्रातुःपितुश्चसकलामिमाम् ॥ वर्धनंय शसश्चापिकरिष्यामिनसंशयः ॥ ३० ॥ आनाय्यचमहाबाहुंकोसलेंद्रंमहाबलम् ॥ स्वयमेवप्रवेक्ष्यामिवनंमुनिनिषेवितम् ॥३१॥ नह्यहंपापसं कल्पेपापेपापंत्वयाकृतम् ॥ शक्तोधारयितुंपौरैरश्रुकंठैर्निरीक्षितः ॥३२॥ सात्वमग्निंप्रविशवास्वयवाविशदंडकान् ॥ रज्जुंबद्ध्वाथवाकंठेनहिते ऽन्य त्परायणम् ॥३३॥ अहमप्यवनींप्राप्तेरामेसत्यपराक्रमे॥कृतकृत्योभविष्यामिविप्रवासितकल्मषः ॥३४॥ इतिनागइवारण्येतोमरांकुशतोदितः पपातभुविसंक्रुद्धोनिःश्वसन्निवपन्नगः ॥३५॥ संरक्तनेत्रःशिथिलांबरस्तथाविधूतसर्वाभरणःपरंतपः ॥ बभूवभूमौपतितोनृपात्मजःशचीपतेःकेतु रिवोत्सवक्षये ॥ ३६ ॥ इति श्री० वा० आ० अ० चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥७४॥ दीर्घकालात्समुत्थायसंज्ञांलब्ध्वासवीर्यवान् ॥ नेत्राभ्याम श्रुपूर्णाभ्यांदीनामुद्वीक्ष्यमातरम् ॥ १ ॥ सोऽमात्यमध्येभरतोजननीमभ्यकुत्सयत् ॥ राज्यंनकामयेजातुमंत्रयेनापिमातरम् ॥ २ ॥

जब कि अयोध्यामें रामचन्द्रजीका फेरा होगा ॥३४॥ भरतजी इस प्रकार विलाप करते २ तोमर और अंकुशके मारनेसे तेजहुए हाथी की नाईं गुस्सेमें भरकर सर्पके समान श्वास छोडते २ पृथ्वीमें गिरे ॥३५॥ सब कपडे जिनके शिथिल हो रहे, गहने जिनके अंगोंसे निकल पडे, लाल नेत्र किये ऐसे भरतजी उत्सवके अंतमें इन्द्रकी ध्वजाके समान पृथ्वीपर मूर्छित हो गिरपडे ॥ ३६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयोध्याकांडे भाषायां चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥७४॥ अनन्तर वीर्यवान भरतजी बहुत देरमें मूर्च्छासे जागकर आशाभंग होनेसे बहुत व्याकुल हो आंसुओंसे पूर्ण अपनी माताकी ओर देखने लगे ॥ १ ॥ भरतजीने मंत्रि योंके बीचमें बैठ अपनी माताको यथोचित घुडका और धमकाकर कहने लगे हमारी कभी राज्य लेनेकी अभिलाषा नहीं है न राज्यका ग्रहण करनेके लिये हमने

कभी माताको परामर्श दिया ॥२॥ न हमको कुछ इसकी खबरथी कि राजाजीने रामचन्द्रजीको राज्य देनेका संकल्प किया है; क्योंकि हम और शत्रुघ्न तो यहांपरसे दूर देशमें पडेथे ॥ ३ ॥ महात्मा रामचन्द्रजी भ्राता व भार्या सहित देशसे निकाले जाकर वनको भेजेगये यह भी हमें मालूम नहीं कि वह क्यों भेजगये ॥४॥ महात्मा भरतजी ऐसा कह ऊंचे स्वरसे विलाप करने लगे. तब देवी कौशल्याजीने बोलको पहँचान कर सुमित्रासे कहा ॥५॥ क्रूर कार्य करनेवाली कैकेयीके पुत्र भरत आये हैं बहुत दिनोंसे उनको देखा जो नहीं है इससे हम उन बुद्धिमान्को देखा चाहती हैं ॥ ६ ॥ रामचन्द्रजीके शोकसे अतिदुर्बलगात, पीला हुआ वदन, प्रायः चेतनारहित हुई कौशल्याजी सुमित्रासे यह कहकर काँपती हुई जहां भरतजी थे वहां को चलीं ॥७॥ और इसी समय राजनंदन भरत और शत्रुघ्नजीने

अभिषेकंनजानामियोऽभूद्राज्ञासमीक्षितः ॥ विप्रकृष्टेह्यहंदेशेशत्रुघ्नसहितोभवम् ॥३॥ वनवासंनजानामिरामस्याहंमहात्मनः ॥ विवासनंचसौमित्रेःसीतायाश्चयथाभवत् ॥४॥ तथैवक्रोशतस्तस्यभरतस्यमहात्मनः॥कौसल्याशब्दमाज्ञायसुमित्रांचेदमब्रवीत् ॥५॥ आगतःक्रूरकार्यायाःकैकेय्याभरतःसुतः ॥ तमहंद्रष्टुमिच्छामिभरतंदीर्घदर्शिनम् ॥ ६ ॥ एवमुक्त्वासुमित्रांतांविवर्णवदनाकृशा ॥ प्रतस्थेभरतोयत्रवेपमानाविचेतना ॥ ७ ॥ सतुराजात्मजश्चापिशत्रुघ्नसहितस्तदा ॥ प्रतस्थेभरतोयेनकौसल्यायानिवेशनम् ॥ ८ ॥ ततःशत्रुघ्नभरतौकौसल्यांप्रेक्ष्यदुःखितौ ॥ परिष्वजेतांदुःखार्तांपतितांनष्टचेतनाम् ॥ ९ ॥ रुदंतौरुदतीदुःखात्समेत्यार्यामनस्विनी ॥ भरतंप्रत्युवाचेदंकौसल्याभृशदुःखिता ॥ १० ॥इदंतेराज्यकामस्यराज्यंप्राप्तमकंटकम् ॥ संप्राप्तंबतकैकेय्याशीघ्रंक्रूरेणकर्मणा ॥ ११ ॥ प्रस्थाप्यचीरवसनंपुत्रंमेवनवासिनम् ॥ कैकेयीकंगुणंतत्रपश्यतिक्रूरदर्शिनी ॥ १२ ॥

भी कौसल्याजी के घरकी ओर प्रस्थान कियाथा ॥८॥ अनन्तर बीचहीमें भरत शत्रुघ्न कौशल्याजीको देख आकर अति दुखित हुए वे दोनों भाई इनको लपट गये व कौशल्याजीभी इनको देखतेही मूर्छितहो गिर पडी ॥९॥ आर्या कौसल्याजी उससमय नितान्त दुःखित हो शोकसे भर रोदन करते हुए भरतजीको लिपटा कर खेद सहित कहने लगीं * ॥१०॥ हे वत्स! तुमने जैसे राज्यकी कामना की थी वैसाही क्रूर कर्म करनेवाली तुम्हारी माताने दारुण कर्म करके निष्कंटक राज्य तुम्हें दिला दिया ॥११॥ हमें राज्यका कुछ दुःख नहीं, पछतावा और दुःख तो केवल इतनाही है; रामको चीर वल्कल धारण करा वन भेजकर क्रूर बुद्धिवाली

* दो०-पितु आज्ञा भूषण वसन, तात तजे रघुबीर। हृदय न हर्ष विषाद कछु, पहरे वल्कलचीर ॥

कैकेयीको कौनसा विशेष फल मिला सो हम नहीं कह सकतीं ॥१२॥ जो हुआ सो हुआ अब हिरण्यनाभि सुवर्णके समान नाभिवाले परम यशस्वी वत्स राम हमारे जहां पर हैं इस समय हमको भी शीघ्र वहीं पर भेज देना कैकेयी को उचित है ॥१३॥ अथवा जिस वनमें श्रीरामचन्द्रजी हैं हम निश्चयही सुमित्राको संगले अग्निहोत्रसन्मुख कर वहां सुखसे चली जायँगी ॥१४॥ अथवा पुरुषव्याघ्र वत्सराम जहां तप करते और दुःख भोगते हैं सो आज तुमको स्वयंही हमें वहांले जाना पडेगा ॥१५॥ कैकेयीने तुमको यह धन धान्यसम्पन्न हाथी, घोडे और रथ पूर्ण बडा भारी राज्य दिलवाया है सो तुम अकेले भोगो ॥१६॥ जब कौशल्याजीने इस प्रकार कठोर वचनोंसे भरतजीकी बहुतही ताडनाकी तब भरतजी ऐसे व्यथित हुए कि जैसे बहुत दिनके अति कठोर पुराने घावमें सुई छेदनेसे भारी पीडा होती है! निरपराध भरतजीको उन वचनोंसे ऐसी कठिन पीडा हुई ॥१७॥ और उसकालमें चेतनालोप होनेसे मूर्छितहोगये फिर चैतन्य हुए और फिर भ्रान्तचित्त हो वारंवार विलाप करके कौशल्याजीके

क्षिप्रमामपिकैकेयीप्रस्थापयितुमर्हति ॥ हिरण्यनाभोयत्रास्तेसुतोमेसुमहायशः ॥ १३ ॥ अथवास्वयमेवाहंसुमित्रानुचरासुखम् ॥ अग्निहोत्रंपुरस्कृत्यप्रस्थास्येयेनराघवः ॥ १४ ॥ कामंवास्वयमेवाद्यतत्रमांनेतुमर्हसि ॥ यत्रासौपुरुषव्याघ्रस्तप्स्यतेमेसुतस्ततः ॥ १५ ॥ इदंहितवविस्तीर्णंधनधान्यसमाचितम् ॥ हस्त्यश्वरथसंपूर्णंराज्यंनिर्यातितंतया ॥१६॥ इत्यादिबहुभिर्वाक्यैःक्रूरैःसंभर्त्सितोऽनघः ॥ विव्यथेभरतस्तीव्रंव्रणेतुद्येवसूचिना ॥ १७ ॥ पपातचरणौतस्यास्तदासंभ्रांतचेतनः ॥ विलप्यबहुधाऽसंज्ञोलब्धसंज्ञस्तदाभवत् ॥१८॥ एवंविलपमानांतांप्रांजलिर्भरतस्तदा ॥ कौसल्यांप्रत्युवाचेदंशोकैर्बहुभिरावृताम् ॥ १९ ॥ आर्येकस्मादजानंतंगर्हसेमामकल्मषम् ॥ विपुलांचममप्रीतिंस्थितांजानासिराघवे ॥२०॥ कृतशास्त्रानुगाबुद्धिर्माभूत्तस्यकदाचन ॥ सत्यसंधःसतांश्रेष्ठोयस्यार्योऽनुमतेगतः ॥२१॥ प्रैष्यंपापीयसांयातुसूर्यंचप्रतिमेहतु ॥ हंतुंपादेनगांसुप्तांयस्यार्योऽनुमतेगतः ॥ २२ ॥ कारयित्वामहत्कर्मभर्ताभृत्यमनर्थकम् ॥ अधर्मोयोऽस्यसोऽस्यास्तुयस्यार्योऽनुमतेगतः ॥ २३ ॥

चरणयुगल पर गिर पडे ॥१८॥ फिर जब चैतन्य हुए तब महाशोकग्रस्त रोदन करती हुई कौशल्याजीसे हाथ जोडकरकहने लगे ॥ १९ ॥ हे आर्ये! हम कुछभी नहींजानते और न हमारा कुछदोष नहीं है और रामचन्द्रजीके प्रति हमारा कैसा विपुल स्नेह है वह भी आप जानती हैं तब फिर निरपराधी मुझको आप क्यों ताडना करती हैं ॥२०॥ वह साधुओंमें श्रेष्ठ सत्य प्रतिज्ञ आर्य रामचन्द्रजी जिसकी सलाहसे वनको गये हों उसको किसी समय भी सत्य शास्त्रानुगामिनी बुद्धि नहोवे ॥२१॥ अथवा आर्य रामचन्द्रजी जिसकी सलाहसे वनको गये हों वह पापात्मा नीच जातिके मनुष्योंका सेवक हो वह सूर्यकी ओर मुखकर मल मूत्रादिक करे और सोती हुई गायको लात मारे ॥२२॥ आर्य रामचन्द्रजी जिसकी सलाहसे वनको गये हों तो उसको वह पापहो जोकि बडा कामकरादेने परभी नोकर की तनख्वाह न देनेपरमालिकको

होता है ॥२३॥ आर्य रामचन्द्रजी जिसकी सलाहसे वनको गये हों तो उसको वह पापहो जो कि पुत्रकी नाईं प्रजा पालनेमें तैयार राजासे कोई विद्रोही होने पर होता है ॥२४॥ करका छठवां अंश हरण करके प्रजाका रक्षा से विमुख राजा को जो अधर्म होता है वही अधर्म उसको होकि जिसकी सलाहसे श्रेष्ठ रामचन्द्रजी वनको गये हों ॥ २५ ॥ यज्ञ, पूजा पाठ अदिकमें तपस्वी व ब्राह्मण आदिकोंको दक्षिणा देनेका करार कर फिर नहीं देनेसेजो पाप होता है वही पाप उसको होकि, जिसके मतसे रामचन्द्रजी वनको गये हैं ॥२६॥ व जिसकी सलाहसे रामचन्द्रजी वनको गये हों उसको वह पाप हो जो हाथी घोडा सहित शस्त्रास्त्र युक्त समरसे भागनेसे होता है ॥२७॥ आर्य रामचन्द्रजी जिसकी अनुमतिसे वनको गये हों वह दुष्टात्मा सूक्ष्म अर्थों समेत पढा हुआ गुरुसे उपदेश पाया हुआ शास्त्र भूल जावे ॥२८॥ जिसके परामर्शसे श्रीराम वनको गये हों वह उन विशाल बाहु और ऊँचे कन्धे वाले व चन्द्रमा और सूर्यके समान तेजस्वी रामचन्द्रजीका राज्याभिषेक न

परिपालयमानस्यराज्ञोभूतानिपुत्रवत् ॥ ततस्तुद्रुह्यतांपापंयस्यार्योऽनुमतेगतः ॥२४॥ बलिषड्भागमुद्धृत्यनृपस्यारक्षितुःप्रजाः ॥ अधर्मो योऽस्यसोस्यास्तुयस्यार्योऽनुमतेगतः ॥ २५ ॥ संश्रुत्यचतपस्विभ्यःसत्रेवैयज्ञदक्षिणाम् ॥ तांचापलपतांपापंयस्यार्योऽनुमतेगतः ॥ २६ ॥ हस्त्यश्वरथसंबाधेयुद्धेशस्त्रसमाकुले ॥ मास्मकार्षीत्सतांधर्मंयस्यार्योऽनुमतेगतः ॥ २७ ॥ उपदिष्टंसुसूक्ष्मार्थंशास्त्रंयत्नेनधीमता ॥ सनाशयतुदुष्टात्मायस्यार्योऽनुमतेगतः ॥ २८ ॥ माचतंव्यूढबाह्वंसंचंद्रभास्करतेजसम् ॥ द्राक्षीद्राज्यस्थमासीनंयस्यार्योऽनुमतेगतः ॥ २९ ॥ पायसंकृसरंछागंवृथासोऽश्नातुनिर्घृणः ॥ गुरूंश्चाप्यवजानातुयस्यार्योऽनुमतेगतः ॥ ३० ॥ गवांस्पृशतुपादेनगुरून्परिवदेतच ॥ मित्रेद्रुह्येतसोऽत्यर्थंयस्यार्योऽनुमतेगतः ॥ ३१ ॥ विश्वासात्कथितंकिंचित्परिवादंमिथःक्वचित् ॥ विवृणोतुसदुष्टात्मायस्यार्योऽनुमतेगतः ॥३२॥ अकर्ताचाकृतज्ञश्चत्यक्तश्चनिरपत्रपः ॥ लोकेभवतुविद्विष्टोयस्यार्योऽनुमतेगतः ॥ ३३ ॥

देखने पावे ॥२९॥ आर्य रामचन्द्रजी जिसकी अनुमतिसे वनको गये हों उनको वह पाप हो जोकि यज्ञमें देवताओंके विना भोग लगाये हुएही खीर तिल दूधमिला हुआ अन्न या विना यज्ञ किये हुए बकरेका मांसखाने और गुरुका अपमान करनेसे होता है ॥३०॥ अथवा जिसके मतसे श्रीरामचन्द्र वनको गये हों उसको वह पाप हो जो गौके शरीरमें लात मारने गुरुकी निन्दा करने और मित्रगणोंमें वैर करनेसे होता है ॥३१॥ श्रीरामचन्द्रजी जिसकी सहायतासे वनको गये हों उस दुरात्माको वह पापहो जो किसीको विश्वास दिलादे कि मैं तेरी बात किसीसे न कहूंगा और तब दूसरा आदमी उससे अपना गुप्त भेद कह दे और फिर वह उसे प्रकाश करदे तो ऐसा करने वालेको जो पाप होता है वही पाप रामचन्द्रजीके वन भिजवाने में जिसकी सलाह होवे उसे हो ॥३२॥ व जिसके मतसे श्रीरामचन्द्रजी वनको गये हों उसको वह पापहो जो कि उपकार नकरनेवाले व भला न माननेवाले व सज्जनोंसे त्यागे जानेवाले निर्लज्ज संसार भरके जीवोंसे वैर करनेवाले को होता है ॥३३॥

अथवा जिसके मतसे श्रीरामचन्द्रजी वनको गये हों उसको वह पापहो जो उन लोगोंको होता है कि घरमें नौकर चाकर स्त्रीपुत्र समेत बैठे अकेले व मीठी या श्रेष्ठ चीज वस्तु खाते और नौकर चाकर या स्त्री पुत्रादिक किसीको नहीं देते हैं॥ ३४॥ जिसकी सलाहसे रामचन्द्रजी वनको गये हों उसको पतिव्रता स्त्री प्राप्त न होसके और वह निःसन्तानही मर जाय और धर्म शास्त्रके अनुसार उसकी क्रिया भी न होसके ॥३५॥ जिसके मतसे श्रीरामचन्द्र वनको गयेहों वह अपनी स्त्रियों में पुत्रके मुँह देखनेके सुखको न पाकर दुःख पाता रहे व उसकी उमर थोडी होजाय ॥३६॥ जिसकी सलाहसे श्रीरामचन्द्रजी वनको गयेहों उसको वह पाप हो जो कि, राजा स्त्री बालक और वृद्धोंके वध करने औ निरपराध नोकर चाकरोंके त्याग करनेसे होता है॥३७॥ अथवा जिसके मतानुसार आर्य रामचन्द्रजी वनको गये हों उसको वह पापहो जो कि सदा मांस, मधु, लाख, लोवा और विष इत्यादि निषिद्ध वस्तुओंको बेच २ उससे घरवाले वा कुटुम्बियोंका पालन पोषण करने वाले लोगोंको होता है

पुत्रैर्दारैश्चभृत्यैश्चस्वगृहेपरिवारितः ॥ सएकोमृष्टमश्नातुयस्यार्योऽनुमतेगतः ॥३४॥ अप्राप्यसदृशान्दाराननपत्यःप्रमीयताम्॥ अनवाप्यक्रियांधर्म्यांयस्यार्योऽनुमतेगतः ॥३५॥ मात्मनःसंततिंद्राक्षीत्स्वेषुदारेषुदुःखितः॥ आयुःसमग्रमप्राप्ययस्यार्योऽनुमतेगतः ॥ ३६ ॥ राजस्त्रीबालवृद्धानांवधेयत्पापमुच्यते ॥ भृत्यत्यागेचयत्पापंतत्पापंप्रतिपद्यताम् ॥३७॥ लाक्षयामधुमांसेनलोहेनचविषेणच॥ सदैवबिभृयाद्भृत्यान्यस्यार्योऽनुमतेगतः ॥ ३८ ॥ संग्रामेसमुपोढेचशत्रुपक्षभयंकरे॥ पलायमानोवध्येतयस्यार्योऽनुमतेगतः ॥ ३९॥ कपालपाणिःपृथिवीमटतांचीरसंवृतः॥ भिक्षमाणोयथोन्मत्तोयस्यार्योऽनुमतेगतः॥ ४० ॥ मद्यप्रसक्तोभवतुस्त्रीष्वक्षेषुचनित्यशः॥ कामक्रोधाभिभूतश्चयस्यार्योऽनुमतेगतः ॥ ४१ ॥ मास्यधर्मेमनोभूयादधर्मंसनिषेवताम् ॥ अपात्रवर्षीभवतुयस्यार्योऽनुमतेगतः॥ ४२ ॥ संचितान्यस्यवित्तानिविविधानिसहस्रशः ॥ दस्युभिर्विप्रलुप्यंतांयस्यार्योऽनुमतेगतः ॥ ४३ ॥

॥३८॥ अथवा आर्य रामचन्द्रजी जिसके मतानुसार वनमें गयेहों उसको वह पापहो जोकि शत्रुकी ओर बढी हुई और भयंकर सेना देख संग्राममें भागजाने वालोंके होता है ॥३९॥ जिसके मतसे रघुनन्दनजी वनको गये हों वह फटे पुराने मैले कुचैले कपडे पहर बावलोंके समान मुर्देकी खोपडी हाथमें लिये द्वार २ पर भिक्षा करता हुआ पृथ्वी में घूमता फिरे ॥४०॥ व जिसके मतसे श्रीरामचन्द्रजी वनको गये हों वह सदा मद्य पीने में स्त्रियोंके साथ मैथुन करने में और जुआ खेलने में बहुतही आसक्त रहे और काम व क्रोधसे सदा उसका निरादर होता रहे ॥४१॥ जिसके मतसे आर्य रामचन्द्रजी वनको गये हों वह सदा अधर्महीकी सेवा किया करे और कुपात्रोंको ही दान दिया करे व कभी उसका मन धर्मकी ओर न जावे॥४२॥ व जिसकी सलाहसे श्रीरामचन्द्रजी वनको भेज गयेहों उसका बहुत यत्नसे

इकट्ठा किया हुआ हजारों रुपयोंका धन चोर चुराकर लेजावें॥४३॥ जिसकी सलाहसे रामचन्द्रजी वनको गयेहों उनको वह पाप लगेजो प्रातःकाल व सायकालकी सन्ध्यामें शयन करनेवालोंको लगता है ॥४४॥ जिसकी सलाहसे बडे भ्राता रामचन्द्रजी वनमें भेजे गये हों घरमें अग्निदेनेसे जो पाप होता है, गुरुकी स्त्रीसे मैथुन करनेसे जो पाप होता हैं और मित्रोंका बुराकरनेसे जो पाप होता है वही पाप उसको होवे॥४५॥ जिसकी अनुमतिसे श्रीरामचन्द्रजी वनको गये हों उसको देवता, पितर तथा पिता व माताकी सेवा करनेको नहीं मिले ॥४६॥ अथवा श्रीरामचन्द्रजी जिसके मतानुसार वनको भेजे गयेहों वह साधुओंके लोकसे, साधुओंकी कीर्तिसे और साधुओंके कर्मसे इसी मुहूर्त भ्रष्ट हो जावे ॥४७॥ अथवा दीर्घबाहु और चौडी छातीवाले आर्य रामचन्द्रजी जिसकी सम्मतिसे वनको गये हों वह अपनी माताकी सेवासे विमुख होकर अनर्थके कार्यमें लगा रहे ॥४८॥ जिसके मतसे श्रीरामचन्द्रजी बन को गयेहों बहुत सेवकोंके होनेपर भी दरिद्र होवे और ज्वररोगसे

उभेसंध्येशयानस्ययत्पापंपरिकल्प्यते ॥ तच्चपापंभवेत्तस्ययस्यार्योऽनुमतेगतः ॥ ४४ ॥ यदग्निदायकेपापंयत्पापंगुरुतल्पगे ॥ मित्रद्रोहेच यत्पापंतत्पापंप्रतिपद्यताम् ॥ ४५ ॥ देवतानांपितॄणांचमातापित्रोस्तथैवच ॥ मास्मकार्षीत्सशुश्रूषांयस्यार्योऽनुमतेगतः ॥ ४६ ॥ सतांलो कात्सतांकीर्त्याःसंजुष्टात्कर्मणस्तथा ॥ भ्रश्यतुक्षिप्रमद्यैवयस्यार्योऽनुमतेगतः॥ ४७॥ अपास्यभ्रातृशुश्रूषामनर्थेसोऽवतिष्ठताम् ॥ दीर्घबाहुर्म हावक्षायस्यार्योऽनुमतेगतः॥४८॥ बहुभृत्योदरिद्रश्चज्वररोगसमन्वितः ॥ समायात्सततंक्लेशंयस्यार्योऽनुमतेगतः ॥ ४९ ॥ आशामाशंसमा नानांदीनानामूर्ध्वचक्षुषाम् ॥ अर्थिनांवितथांकुर्याद्यस्यार्योऽनुमतेगतः ॥ ५० ॥ माययारमतांनित्यंपुरुषःपिशुनोऽशुचिः ॥ राज्ञोभीतस्त्व धर्मात्मायस्यार्योऽनुमतेगतः ॥ ५१ ॥ ऋतुस्नातांसतींभार्यामृतुकालानुरोधिनीम् ॥ अतिवर्तेतदुष्टात्मायस्यार्योऽनुमतेगतः ॥ ५२ ॥ विप्रलुप्तप्रजातस्यदुष्कृतंब्राह्मणस्ययत् ॥ तदेतत्प्रतिपद्येतयस्यार्योऽनुमतेगतः ॥ ५३ ॥

सदा पीडित रहे व सदाही क्लेश भोग कियाकरे ॥४९॥ व जिसके मतानुसार श्रीरामचन्द्रजी वनको गयेहों वह ऊपरको दृष्टि किये हुए दीन भावापन्न अपना मनोरथ जतानेवाले याचकोंकी आशा पूर्ण न कर सके ॥५०॥ जिसकी सलाहसे श्रीरामचन्द्रजी वनको गये हों तो वह कर्कश स्वभाव, क्रूर; अपवित्र और एक मात्र अधर्मके ही वश हो अनेक प्रकार के कपट करता करता जहांतहां फिरता फिरता फिरे और सदा उसको राजाके भवनसे डरना पडा करे॥५१॥ जिसके अभिमतसे रामचन्द्रजी वनको गये हों वह दुष्ट ऋतु समयमें स्नान की हुई अपनी पतिव्रता स्त्रीकी ऋतु रक्षा न कर सके (ऋतुमती स्त्रीके पास न जानेसे पाप होता है) ॥५२॥ अथवा जिसकी सलाहसे आर्य रामचन्द्रजी वनको गये हों उसको वह पाप लगे जो उस ब्राह्मणको लगता है कि, जिसके पुत्र भूखके मारे मरजायँ और वह उसका पालन पोषण न

कर सके ॥५३॥ जिसके परामर्शसे रामचन्द्रजी वनको गये हों उसकी सब इन्द्रियें पापसे कलुषित हो जावें और वह पापात्मा ब्राह्मणके लिये होती हुई पूजाको मिटादे, और बहुत ही छोटा जिस गायका बछडा हो उसको दुहे ॥५४॥ जिसकी सलाहसे आर्य रामचन्द्रजी वनको गयेहों उसको अपनी विवाहिता धर्मपत्नी स्त्रीको छोड पराई स्त्रीसे मैथुन करना पडे और वह अपना धर्म छोडने में अनुरागी हो मोहसे ढँकजावे ॥५५॥ अथवा जिसने रामचन्द्रजी के वन भेजनेमें संकेत किया हो तो पानीके दूषित करनेसे विष देनेसे जो पाप होता है उसको एकाकी इन सब पापोंमें लिप्त होना पडे ॥५६॥ अथवा जिसकी सलाहसे आर्य रामचन्द्रजी वनको गये हैं उसको वह पाप लगे जो कि जल पास होने पर भी बहाना कर जल न दे प्यासे आदमीको टाल देनेसे होता है ॥५७॥ अथवा धर्मके अलग २ शाखाओंका आश्रय करके उनके सम्बन्धमें विवाद करनेसे जो पाप होता है और उस विवादके देखनेसे जो पाप होता है वह पाप उसको लगे कि जिसके

ब्राह्मणायोद्यतांपूजांविहंतुःकलुषेंद्रियः ॥ बालवत्सांचगांदोग्धुर्यस्यार्योऽनुमतेगतः ॥५४॥ धर्मदारान्परित्यज्यपरदारान्निषेवताम् ॥ त्यक्तधर्म रतिर्मूढोयस्यार्योऽनुमतेगतः ॥५५॥ पानीयदूषकेपापंतथैवविषदायके ॥ यत्तदेकःसलभतांयस्यार्योऽनुमतेगतः ॥५६॥ तृषार्तंसतिपानीयेवि प्रलंभेनयोजयन् ॥ यत्पापंलभतेतत्स्याद्यस्यार्योऽनुमतेगतः ॥ ५७ ॥ भक्त्याविवदमानेषुमार्गमाश्रित्यपश्यतः ॥ तेनपापेनयुज्येतयस्यार्यो नुमतेगतः ॥५८॥ एवमाश्वासयन्नेवदुःखार्तोऽनुपपातह ॥ विहीनांपतिपुत्राभ्यांकौसल्यांपार्थिवात्मजः ॥५९॥ तदातंशपथैःकष्टैःशपमानमचेत नम् ॥ भरतंशोकसंतप्तंकौसल्यावाक्यमब्रवीत् ॥ ६० ॥ ममदुःखमिदंपुत्रभूयःसमुपजायते ॥ शपथैः शपमानोहिप्राणानुपरुणत्सिमे ॥६१॥ दिष्ट्यानचलितोधर्मादात्मातेसहलक्ष्मणः ॥ वत्ससत्यप्रतिज्ञोहिसतांलोकानवाप्स्यसि ॥६२॥ इत्युक्त्वाचांकमानीयभरतंभ्रातृवत्सलम् ॥ परि ष्वज्यमहाबाहुरुरोदभृशदुःखिता ॥६३॥ एवंविलपमानस्यदुःखार्तस्यमहात्मनः ॥ मोहाच्चशोकसंरंभाद्बभूवलुलितंमनः ॥ ६४ ॥

परामर्शसे आर्य रामचन्द्रजी वनको गये हैं ॥५८॥ राजपुत्र भरतजी पति पुत्रविहीन कौशल्याजीको इस प्रकार समझाते २ सौगंधें खाते परम दुःखी हो पृथ्वीपर गिर पडे ॥५९॥ वह अति कठोर शपथ करते २ शोकसे सन्तप्त व ज्ञान शून्य हो गये तब कौशल्याजीने उनसे कहा ॥६०॥ हे पुत्र! तुम जो अनेक प्रकारकी सौगंधें खाकर हमारे प्राणों पर आघात देते हो इससे हमें अत्यन्तही दुःख होता है ॥६१॥ जो हो परमसौभाग्य की बात है कि, तुम्हारा मन अनेक प्रकारके शुभ लक्षणोंसे शोभायमान है और धर्मसे विचलित नहीं हुआ है अथवा तुम्हारी प्रतिज्ञा यदि सत्य है तो तुम निश्चयही सद्गतिके अधिकारी होगे ॥६२॥ यह कहकर देवी कौशल्याजी महा बाहु भ्रातृ वत्सल भरतजी को गोदमें लेकर छातीसे लगाय अत्यन्त दुःखमें भरकर रोने लगीं ॥६३॥ उस समय दुःखसे ग्रसित हुये विलाप करते २ भरतजी का मन भी शोककी

अधिकाईसे और शोकसे उत्पन्न हुए मोहके कारण व्याकुल होगया ॥६४॥ कौशल्याजीसे प्यारकिये बारंबार विलाप करते२ चेतनारहित हो पृथ्वीमें गिरते पडते बार२ऊँची श्वास लेते व शोक करते हुए भरतने वह रात्रि बिताई॥६५॥ इत्यार्षेश्रीमद्वा०वा०आदि०अयोध्याकांडे भाषायां पंच सप्ततितमः सर्गः॥७५॥ जब कैकेयीनंदन भरतजी इस प्रकार शोकसे संतप्त हुए तब वचन बोलने वालोंमें श्रेष्ठ वसिष्ठजी उत्तम वचन बोले ॥१॥ हे परमयशस्वी राजकुमार ! तुम्हारा मंगल हो वृथा शोक करनेसे क्या है ? अब समय उपस्थित है अतएव विधिविधानसे राजाकी अन्त्येष्टिक्रिया करो ॥ २ ॥ पृथ्वीमें पडे हुये भरतनेवसिष्ठके यह वचन सुन उठकर उनको साष्टांग प्रणाम किया और सब प्रेतकर्मोंके निर्वाह करनेमें प्रवृत्तहुए ॥ ३ ॥ भरतजीने तेल भरी नौकासे राजाका शरीर निकलवाया

लालप्प्यमानस्यविचेतनस्यप्रनष्टबुद्धेःपतितस्यभूमौ ॥ मुहुर्मुहुर्निःश्वसतश्चदीर्घंसातस्यशोकेनजगामरात्रिः ॥ ६५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० अयोध्याकांडे पंचसप्ततितमः सर्गः ॥७५॥ तमेवंशोकसंतप्तंभरतंकैकयीसुतम् ॥ उवाचवदतांश्रेष्ठोवसिष्ठः श्रेष्ठवागृषिः ॥ १ ॥ अलंशोकेनभद्रंतेराजपुत्रमहायशः ॥ प्राप्तकालंनरपतेःकुरुसंयानमुत्तमम् ॥२॥ वसिष्ठस्यवचःश्रुत्वाभरतोधरणींगतः॥ प्रेतकृत्यानिसर्वाणिकारयामासधर्मवित् ॥३॥ उद्धृत्यतैलसंसेकात्सतुभूमौनिवेशितम् ॥आपीतवर्णवदनंप्रसुप्तमिवभूमिपम् ॥ ४ ॥ संवेश्य शयनेचाग्र्येनानारत्नपरिष्कृते ॥ततोदशरथंपुत्रोविललापसुदुःखितः ॥५॥ किंतेव्यवसितंराजन्प्रोषितेमय्यनागते ॥ विवास्यरामंधर्मज्ञंलक्ष्म णंचमहाबलम् ॥६॥ क्वयास्यसेमहाराजहित्वेमंदुःखितंजनम् ॥ हीनंपुरुषसिंहेनरामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥७॥योगक्षेमंतुतेव्यग्रंकोऽस्मिन्कल्पयिता पुरे॥त्वयिप्रयातेस्वस्तात रामेचवनमाश्रिते ॥ ८ ॥ विधवापृथिवीराजंस्त्वयाहीनानराजते ॥ हीनचंद्रेवरजनीनगरीप्रतिभातिमाम् ॥ ९ ॥

और उसकोभूमिपरस्थापित कराया । बहुत तेलमें रहनेसे राजाका वह शरीर कुछेक पीला पड गया था तौभी यही जान पडता था कि,मानो राजा सोरहे हैं॥४॥अनन्तर भरतजीने उसमृतक शरीरको विविधरत्न लगेहुये उत्तम बिछौनेपर शयनकराकर शोकभराच्छन्न हृदयसे यह कहकर विलापकरने लगे ॥५॥ राजन् ! मैं विदेशमें था इसलिये नहीं आ सका आपने इसही बीचमें क्या समझ धर्मज्ञ रामचन्द्र बलवान् लक्ष्मणजीको वनमें पठादिया ? ॥६॥ हे महाराज ! अमानुषकर्मकर्त्ता पुरुषसिंह रामविहीन हम दुःखितजनोंको छोड कहां जातेहो ॥७॥ अथवा हे तात ! आर्यरामचन्द्रजी वनमेंगये हैं और आप स्वर्गको सिधार गये अतएव कौन पुरुषधीरज धरकर आपकीराजधानी अयोध्यामेंयोगक्षेम प्रजाओंका हित विधान करेगा ॥८॥ हे राजन् ! आपके विना यह पृथ्वी विधवा होगई इसकी अब वह शोभा नहीं

रही आपकी यह राजधानी चन्द्रहीन यामिनीके समान हमें ज्ञात होरही है ॥९॥ जब भरतजीने दीनमनसे इस प्रकार विलाप कलाप करना आरंभ किया तब महर्षि वसिष्ठजी फिर उनसे बोले ॥१०॥ हे महाबाहो ! इससमयधैर्य धारण करके विना विचारे राजाके जितनेप्रेतकर्म कर्त्तव्य हैं उन सबको जैसा हम बताते जायँ वैसे करते जाओ ॥ ११ ॥ महात्मा भरतजीने जो आज्ञा कह वसिष्ठजीके वचनोंको मान ऋत्विक् (जो यज्ञ कराते हैं) पुरोहित (जो सब भांतिसे हित साधना करते हैं)और आचार्य(जो वेद पढ़ाते हैं) इससबोंको इस प्रेतकर्म करानेके लिये बहुत शीघ्रता कराई ॥१२॥उन राजाके अग्निगृहमें जोजोअग्नियें स्थापित थीं उन सबको बाहर निकालकर ऋत्विग् और याजक(उपदेशदेनेवाले) यथाविधि उसमें होम करने लगे॥१३॥ अनन्तर परिचारक लोग चेतनाहीन राजाके शरीरको पालकीमें चढाकर नितान्त मग्नहृदय और गद्गदकंठहो उसपालकीको उठाते हुये ॥१४॥ मार्गमें विविध भांतिके उत्तम २ रेशमी वस्त्र सोना

एवंविलपमानंतंभरतंदीनमानसम् ॥ अब्रवीद्वचनंभूयोवसिष्ठस्तुमहामुनिः ॥ १० ॥ प्रेतकार्याणियान्यस्यकर्तव्यानिविशांपतेः ॥ तान्यव्य ग्रंमहाबाहोक्रियतामविचारितम् ॥ ११ ॥ तथेतिभरतोवाक्यंवसिष्ठस्याभिपूज्यतत् ॥ ऋत्विक्पुरोहिताचार्यास्त्वरयामाससर्वशः ॥ १२ ॥ येत्वग्नयोनरेंद्रस्यअग्न्यागाराद्बहिष्कृताः॥ऋत्विग्भिर्याजकैश्चैवतेहूयंतेयथाविधि ॥ १३ ॥ शिबिकायामथारोप्यराजानंगतचेतनम् ॥ बाष्पकं ठाविमनसस्तमूहुःपरिचारकाः ॥ १४ ॥ हिरण्यंचसुवर्णंचवासांसिविविधानिच ॥प्रकिरंतोजनामार्गेनृपतेरग्रतोययुः ॥ १५ ॥ चंदनागुरुनिर्या सान्सरलंपद्मकंतथा ॥ देवदारूणिचाहृत्यक्षेपयंतितथापरे ॥१६॥ गंधानुच्चावचांश्चान्यांस्तत्रगत्वाथभूमिपम् ॥ तत्रसंवेशयामासुश्चितामध्येत मृत्विजः ॥१७॥ तदाहुताशनंहुत्वाजेपुस्तस्यतदृत्विजः ॥ जगुश्चतेयथाशास्त्रंतत्रसामानिसामगाः ॥१८॥ शिबिकाभिश्चयानैश्चयथार्हंतस्ययोषि तः॥ नगरान्निर्ययुस्तत्रवृद्धैःपरिवृतास्तथा॥१९॥प्रसव्यंचापितंचक्रुर्ऋत्विजोऽग्निचितंनृपम्॥ स्त्रियश्चशोकसंतप्ताःकौसल्याप्रमुखास्तदा॥२०॥

चांदीकी बखेर करते२हजारों मनुष्य राजाकी पाल कीके आगे२चले ॥१५॥ मार्गमें इस भांति करते कराते सरयूके किनारेपर पहुँचे वहां चन्दन, अगर, गुग्गुल सॉखू, पद्मकाष्ठ देवदारु आदि लाय उत्तम चिता बनाई ॥ १६ ॥ इस चितामें और भी अनेक प्रकारके सुगन्धित पदार्थ डालेगये । अनन्तर ऋत्विग् लोगोंने चिताके निकट गमन करके राजाका शरीर चितामें पहुंचा दिया ॥१७॥ इस समय राजाकी ऋत्विग्गण राजकीय परलोकशुद्धिके लिये अनलमें आहुति देकर उससमयके योग्य जप करने लगे और सामगायी ब्राह्मणलोगोंने शास्त्रानुसारसामगान करना आरंभ किया ॥ १८ ॥ राजाकी सब रानियें रथ पालकी आदिक सवारियोंपर चढ वृद्ध लोगोंके साथ नगरसे बाहर निकलीं और जहाँराजाकी चिता जल रही थी वहां पहुँचीं ॥१९॥ फिर ऋत्विजोंने और कौशल्या जीसे

आदि लेकर और भी सबरानियोंने अतीव शोकसे संतप्त होकर उनअग्निको प्राप्त हुए राजाकी प्रदक्षिणा की ॥२०॥ तत्काल करुणामयस्वरसे रोदन करती शोकसेव्याकुलहो चिल्लाती हुई उन हजार२ स्त्रियोंका चिल्लाना सुन पडा ऐसा बोध हुआ मानो क्रौञ्चीगण शब्द करती हैं ॥२१॥ उसके पीछे सबरानियें और शोकसे व्याकुल रोय२ विलाप करती हुई सवारियोंसे उतर सरयूके निकट आईं ॥२२॥ और पुरोहित व भरतजीके सहित सब लोग राजाके लिये तर्पणकर आंसू बहाते हुए नगरमें आये और सबने पृथ्वीपर शयन करके ब्रह्मचर्य धारण कर दश दिन अतिकष्टसे बिताये ॥२३॥ इत्यार्षे श्रीमद्वा० वा० अयो० भाषायां षट्सप्ततितमः सर्गः ॥७६॥ इस प्रकारदशदिनतकसब नियम करते रहे जब ग्यारहवांदिन आयातब एकादशाह किया अब पवित्र हुए जब बारहवां दिन आया तो

क्रौंचीनामिवनारीणांनिनादस्तत्रशुश्रुवे॥आर्तानांकरुणंकालेक्रोशंतीनांसहस्रशः॥२१॥ततोरुदंत्योविवशाविलप्यचपुनःपुनः॥यानेभ्यःसरयूतीरमवतेरुर्नृपांगनाः॥२२॥कृत्वोदकंतेभरतेनसार्धंनृपांगनामंत्रिपुरोहिताश्च॥ पुरंप्रविश्याश्रुपरीतनेत्राभूमौदशाहंव्यनयंतदुःखम्॥२३॥इत्यार्षे श्री०वा०आ०च०सा०अ०षट्सप्ततितमःसर्गः॥७६॥ततोदशाहेऽतिगतेकृतशौचोनृपात्मजः॥ द्वादशेऽहनिसंप्राप्तेश्राद्धकर्माण्यकारयत् ॥१॥ ब्राह्मणेभ्योधनंरत्नंददावन्नंचपुष्कलम्॥(वासांसिचमहार्हाणिरत्नानिविविधानिच॥)बास्तिकंबहुशुक्लंचगाश्चापिबहुशस्तदा॥२॥दासीदासं श्चयानानिवेश्मानिसुमहांतिच॥ब्राह्मणेभ्योददौपुत्रोराज्ञस्तस्यौर्ध्वदैहिकम्॥३॥ततःप्रभातसमयेदिवसेचत्रयोदशे॥ विललापमहाबाहुर्भरतःशोकमूर्च्छितः॥४॥शब्दापिहितकंठश्चशोधनार्थमुपागतः॥ चितामूलेपितुर्वाक्यमिदमाहसुदुःखितः॥ ५ ॥ तातयस्मिन्निसृष्टोऽहंत्वयाभ्रातरिराघवे॥तस्मिन्वनंप्रव्रजितेशून्येत्यक्तोऽस्म्यहंत्वया॥६॥यस्यागतिरनाथायाःपुत्रःप्रव्राजितोवनम्॥तामबांतातकौसल्यांत्यक्त्वात्वंक्वगतोनृप॥७॥

सपिंडादि श्राद्धकरते हुए ॥ १ ॥ लौकिक मंगलार्थ ब्राह्मणोंको बहुतसा धन, रत्न, सोना, चांदी, गायें, छाग आदि दान किये ॥२॥ और बहुतसारे दास, दासियें सवारियें; ऊंट हाथी,घोडे आदि तंबू, कनात, शामियाने सब सामग्रीसे भरे हुए भरतजीने राजाके निमित्त ब्राह्मणोंको दिये ॥३॥ इसके पीछे तेरहवें दिन प्रातःकालके समय महाबाहुभरतजी शोकसेमूर्च्छित हो विलाप करने लगे ॥ ४ ॥ फिर वह पिताजीकी अस्थि बीननेके लिये वहां गये * जहां सरयूके किनारे दशरथजीका दाह कियागया था वहां, गद्गदकंठ हो दुःखसे व्याकुल हुए भरतजी पिताको पुकारकर कहनेलगे ॥५॥ हे तात ! आपने जिनको हमारा भार अर्पणकियाथा वह रामचन्द्रजी इस समय वनवासी हैं अतएव इसबीचआप हमें शून्यमें छोडकर चले गये हैं ॥६॥ राजन् ! जिनहतभागिनी कौशल्याजीके

* कतक कहते हैं चिताकी भस्म बटोरकर स्थलशुद्धि की ऐसाही क्षत्रिय धर्म है ॥

इकलौतेसहारे रामचन्द्रजी वनको चले गये हैं तात ! उन माता कौशल्याजीको इकली छोड अनाथ कर कहां चले गये ? ॥ ७ ॥अनन्तर भरतजी वहीं पर बैठगये जहां उनके पिताका शरीर जलाया था वहांश्वेतरंगकी छाई पडी थी उसको देख भरतजी बहुतही शोकाकुल हुए और विलाप करने लगे ॥ ८ ॥ और दीनभावसे रोय २ व्याकुलहृदय हो मंत्रसे बँधी इन्द्रध्वजाकीनाई पृथ्वीपर गिरपडे । उस समय जो आदमी कि, भरतजीके साथ थे उन्होंने तत्क्षणउनको उठाया ॥९॥पुण्यहीन होजानेके समयराजर्षि ययाति जब पृथ्वीपर पतित हुएथे और उससमय ऋषिगण जिस प्रकार उनके निकट आये थे वैसेही भरतजीके जितने नौकर चाकर मंत्री दीवान आदिथे वह सब शोकके मारे शुचिव्रत भरतजीके निकट आये ॥१०॥ भरतजीको शोकमें भरा और घबडाया हुआ देखकर पिता दशरथजीकी याद करके शत्रुघ्नजीभी मूर्छित हो गिरपडे ॥११॥वह पिताके एक एक करके सबही गुण यादकर नितान्त दुःखित और उनके समान सज्ञारहित

दृष्ट्वाभस्मारुणंतच्चदग्धास्थिस्थानमण्डलम्॥ पितुःशरीरनिर्वाणंनिष्टनन्विषसादह ॥८॥ सतुदृष्ट्वारुदन्दीनःपपातधरणीतले॥ उत्थाप्यमानः शक्रस्ययंत्रध्वजइवोच्छ्रितः ॥ ९ ॥ अभिपेतुस्ततःसर्वेतस्यामात्याःशुचिव्रतम् ॥ अंतकलेनिपतितंययातिमृषयोयथा ॥ १० ॥ शत्रुघ्नश्चापिभरतंदृष्ट्वाशोकपरिप्लुतम्॥विसंज्ञोऽन्यपतद्भूमौभूमिपालमनुस्मरन् ॥११॥ उन्मत्तइवनिश्चित्तोविललापसुदुःखितः॥ स्मृत्वापितुर्गुणांगानितानितानितदातदा ॥ १२ ॥ मंथराप्रभवस्तीव्रःकैकेयीग्राहसंकुलः वरदानमयोक्षोभ्योमज्जयच्छोकसागरः ॥ १३ ॥ सुकुमारंचबालंचसततंलालितंत्वया॥क्वतातभरतंहित्वाविलपंतंगतोभवान्॥१४॥ननुभोज्येषुपानेषुवस्त्रेष्वाभरणेषुच ॥ प्रवारयतिसर्वान्नस्तन्नःकोऽद्यकरिष्यति ॥१५॥ अवदारणकालेतुपृथिवीनावदीर्यते ॥ विहीनायात्वयाराज्ञाधर्मज्ञेनमहात्मना ॥१६॥ पितरिस्वर्गमापन्नेरामेचारण्यमाश्रिते ॥ किंमेजीवितसामर्थ्यंप्रवेक्ष्यामिहुताशनम् ॥ १७॥ हीनोभ्रात्राचपित्राचशून्यामिक्ष्वाकुपालिताम् ॥ अयोध्यांनप्रवेक्ष्यामिप्रवेक्ष्यामितपोवनम् ॥ १८ ॥

हो इस प्रकारसे विलाप करने लगे ॥१२॥ हा मन्थराकी उक्तिसे उत्पन्न शोकसागर कैकेयी ! जिसमें ग्राहउसवरदानरूप अपारशोक सागरमें हम सब डूबगये ॥१३॥ पिता ! आपने निरन्तरजिनको पालन किया है और जिनका बालकस्वभावभी भलीभांति अभीनहीं छूटा है वहभरतजी इस समय रोरहे हैं सो आप इनको छोड कहां चले गये ॥१४॥ भोजन करने पीछेवस्त्रभूषणादि धारण करते सबही विषयमें आप हमलोगोंकोप्रेरण कियाकरते थे अब कौन कहेगा कि, पुत्र ! देर होती है भोजन करो जलपियो अच्छे वस्त्र भूषण धारण करो ॥१५॥ हाय ! आप ऐसे धर्मज्ञ व महात्मा राजा बिना यह पृथ्वी अब दारुण कालमें फट न गई ॥१६॥ हाय ! पिताजी तो स्वर्गको सिधारे और रामचन्द्रजी वनको चले गये अब हम किसप्रकारसे प्राण धारण करें नहीं नहीं जीनेसेक्या होगा अब अग्निमें प्रवेश करेंगे॥ १७ ॥ अथवा भाईकरके हीन और पिताहीन होकर हम इक्ष्वाकुआदिराजाओंकी पालित सूनी अयोध्यापुरीमें प्रवेश नहीं करेंगे

बरन् सीधे तपोवनकोही चले जायँगे॥१८॥ उन दोनों भाइयोंका इस प्रकार विलाप सुनकर व उनके ऊपर बडा कष्ट देखसब नौकर चाकरबहुतही दुःखित हुए ॥१९॥ इस समय भरत शत्रुघ्न दोनोंभाई व्याकुल और थकित होकर सींग कटे हुये बैलोंके समान पृथ्वीपर गिरकर लोटने व छटपटाने लगे॥ २० ॥ यह देखकर उनके पिताके पुरोहित सत्त्वगुणावलंबी सर्वज्ञ महामुनि वसिष्ठजी भरतजीको अपने हाथोंसे उठाय और कहा ॥ २१ ॥ हे विभो ! आज तेरहवां दिन है तुम्हारे पिताजीकी दाहक्रिया पूरीहोगई अतएव भस्मसहित अस्थिसंचयन करनेमें अब किस कारणसे विलंब करतेहो ॥२२॥ संसारमें तीन द्वन्द्व हैं, भूख प्यास; शोक मोह, जरा मृत्यु, जन्म मरण,सुख दुःखऔर लाभालाभ इन कई एक बातोंकोसबहीप्राणी भोग करते हैं;इन बातोंसे कोई नहीं छूटा न यह बातें किसीको थोडी या अधिक व्यापें सबको बराबर व्यापती हैं प्रगट हुआ,बढा, क्षीणहुआ,परिणामको प्राप्त हुआ,नष्ट हुआ यह द्वंद्व'कतक'कहाते हैं अतएव इस

तयोविलापतश्श्रुत्वाव्यसनंचाप्यवेक्ष्यतत् ॥ भृशमार्ततराभूयः सर्वएवानुगामिनः ॥ १९ ॥ ततोविषण्णौश्रांतौचशत्रुघ्नभरतावुभौ ॥ धरायां स्मव्यचेष्टेतांभग्नश्रृंगाविवर्षभौ ॥ २० ॥ ततःप्रकृतिमान्वैद्यःपितुरेषांरोहितः ॥ वसिष्ठोभरतंवाक्यमुत्थाप्यतमुवाचह ॥ २१॥ त्रयोदशोऽयं दिवसःपितुर्वृत्तस्यतेविभो ॥ सावशेषास्थिनिचयेकिमिहत्वंविलंबसे ॥ २२ ॥ त्रीणिद्वंद्वानिभूतेषुप्रवृत्तान्यविशेषतः ॥ तेषुचापरिहार्येषुनैवं भवितुमर्हसि ॥२३॥ सुमंत्रश्चापिशत्रुघ्नमुत्थाप्याभिप्रसाद्यच ॥ श्रावयामासतत्त्वज्ञःसर्वभूतभवाभवौ ॥ २४॥ उत्थितौतौनरव्याघ्रौप्रकाशेते यशस्विनौ ॥ वर्षातपपरिग्लानौपृथगिंद्रध्वजाविव ॥ २५ ॥ अश्रूणिपरिमृद्नंतौरक्ताक्षौदीनभाषिणौ ॥ अमात्यास्त्वरयंतिस्मतनयौ चापराःक्रियाः ॥ २६ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० च० सा० अ० सप्तसप्ततितमः सर्गः ॥ ७७ ॥ ॥ छ ॥

जीवके साधारण धर्ममें तुमको नहीं फँसना चाहिये इससमय तुम शोक और मोहका त्यागन करदो॥ २३ ॥ बसिष्ठजीने तो इसप्रकार भरतजीको समझाया और तत्त्वोंके जाननेवाले सुमंत्रजीने शत्रुघ्नजीको उठाय और भली भांति प्रसन्न करके उनको संसारकी अनित्यताकी बहुत बातें समझाई और सुनाई ॥२४॥ जिस समय परमयशस्वी पुरुषश्रेष्ठ दोनोंभाई पृथ्वीसे उठकर वर्षाऔर घामसे मलिनभाव धारण किये दो इन्द्रध्वज जिसप्रकार शोभित होते हैं वैसेही प्रकाशित होने लगे ॥ २५ ॥ वे दोनोंजन लालनेत्र किये व नेत्रोंके आंसू पोंछतेहुएबोले । तब मंत्री लोगोंने उनको अस्थिसंचयन श्राद्ध व और जो क्रिया कर्म करनेबाकीथे उनके विषयमें शीघ्रता कराई ॥ २६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्वा० वा० आदि० अयो० भाषायां सप्तसप्ततितमः सर्गः ॥ ७७ ॥

सब क्रिया कर्म कर चुकेहुये भरतजीकी शोकसंतप्त हो रामचन्द्रजीके समीप जानेको उद्यत देख लक्ष्मणअनुज शत्रुघ्नजी उनसे बोले ॥१॥ कि सब प्राणियों केही जो दुःख और संकटमें एकमात्रसहारे और अवलंबन वा आत्मा हैं उनहीं रामचन्द्रकी विपत्ति कालमें हम सबभी आश्रय लेते । हाय ! वही महापराक्रमी रामचन्द्रजी स्त्रीसहित वनको भेजे गये ॥२॥ यदि समझ लिया जाय कि, रामचंद्रजीने संकोच करके राजासे इस विषयमें कुछ न कहा परन्तु लक्ष्मणजीने तौबल वान और वीर्यवान् जगत्में विख्यात हैं, फिर उन्होंने क्यों नहीं इस कर्मसे पिताकोरोककर रामचन्द्रजीको वनवाससे छुडाया ॥३॥ रामचन्द्रजीको वनदेनेसे पहिले जब कि लक्ष्मणजीने देखा कि, पिताने स्त्रीके वशहोकर नीतिसे निंदित मार्गमें पैर धरा है तब उसी समय उनको उचित था कि, आपही न्याय अन्यायका बिचार करके राजको इस कर्मके करने रोकदेते ॥४॥ लक्ष्मणके छोटे भाई शत्रुघ्नजी इस प्रकारसे कह रहे थे कि, इतनेमेंही कुबरी सब वस्त्र आभूषणोंसे सज धजकर

अथयात्रांसमीहंतंशत्रुघ्नोलक्ष्मणानुजः ॥ भरतंशोकसंतप्तमिदंवचनमब्रवीत् ॥ १ ॥ गतिर्यः सर्वभूतानांदुःखेकिंपुनरात्मन ॥ स रामः सत्त्वसंपन्नःस्त्रियाप्रव्राजितोवनम् ॥२॥ बलवान्वीर्यसंपन्नोलक्ष्मणोनामयोऽप्यसौ ॥ किंनमोचयतेरामंकृत्वापिपितृनिग्रहम् ॥३॥ पूर्वमेवतुनिग्राह्यः समवेक्ष्यनयानयौ ॥ उत्पथंयः समारूढोनार्याराजावशंगतः ॥ ४ ॥ इतिसंभाषमाणेतुशत्रुघ्नेलक्ष्मणानुजे ॥ प्राग्द्वारेऽभूत्तदाकुब्जासर्वाभरणभूषिता ॥ ५ ॥ लिप्ताचंदनसारेणराजवस्त्राणिबिभ्रती ॥ विविधंविविधैस्तैस्तैर्भूषणैश्चविभूषिता ॥ ६ ॥ मेखलादामभिश्चित्रैरन्यैश्चवरभूषणैः ॥ बभासेबहुभिर्बद्धारज्जुभिरिववानरी ॥ ७ ॥ तांसमीक्ष्यतदाद्वाःस्थोभृशंपापस्यकारिणीम् ॥ गृहीत्वाकरुणंकुब्जांशत्रुघ्नायन्यवेदयत् ॥८॥ यस्याःकृतेवनेरामोन्यस्तदेहश्चवःपिता ॥ सेयंपापानृशंसाचतस्याःकुरुयथाःमति ॥ ९ ॥ शत्रुघ्नश्चतदाज्ञायवचनंभृशदुःखितः ॥ अन्तःपुरचरान्सर्वानित्युवाचधृतव्रतः ॥१०॥

पूर्वके द्वारपर देख परी ॥५॥ उस समय वह सर्वांगमें उत्तम चन्दन लगाये और राजा रानियोंके योग्य कपड़े पहरे और यथास्थानमें वैसेही विविध प्रकारके गहने पहर रही थी॥६॥ उस समय जडाऊ कमरपट्टी बांधने व पाजेबके पहरने इनके अतिरिक्त और भी अनेक प्रकारके उत्तमगहनोंके पहरनेसे कुब्जा रस्सियों से बँधी हुई बानरीके समान बोध होनेलगी॥७॥ द्वारपालने उस महापाप करनेवालीको देखतेही उसी समय बहुत जकडकर पकडा और शत्रुघ्नजीके निकट ले जाकर निवेदन किया ॥ ८ ॥ कि, हे महाराज ! जिससे रामचन्द्रजी वनको गये और आपके पिताभी परलोकवासी हुये यह वही पापपरायणा दयाहीना कुबडी है सो आपको जैसा जचै इस समय वैसाही इसके साथ व्यवहार कीजिये ॥९॥ धर्मात्मा शत्रुघ्नजी यह वार्ता श्रवण कर अत्यन्तही दुःखित हो कर्तव्य

कर्म निश्चय करके रनवासके रहनेवाले सब लोगोंसे कहने लगे ॥१०॥ इस कुबडीने जिस प्रकार कि, हमारे पिता और भाइयोंको दारुणदुःखउपजाया वैसेही उस घोरपाप करनेका इस समय यह भलीभांति फल भोगे॥११॥यह कह कर शत्रुघ्नजीने जबरदस्तीकुब्जाकोसखियोंमेंसे खींचलिया और पृथ्वीपर देमारा तब वह ऐसे शब्दसे चिघाडी कि, सब गृह उसके शब्दसे भरगया॥१२॥ मंथराकी यह दशा देख उसकी सखियें अत्यन्त सन्तप्त हुईं और यह जानकर कि, इस समय शत्रुघ्नजी महाक्रोधित हैं सब इधर उधर दौड खडी हुईं कि, कहीं हम परभी विपत्ति न आवे॥१३॥और वह सब उसकी सखियें सलाह करने लगीं कि, शत्रुघ्नजीने इस समय जो कार्य आरम्भ किया है उससे तो यह ज्ञात होता है कि, यह हम सबकोही मार डालेंगे॥१४॥अतएव इस समय हमें उन दयाशील परम दान देने वाली धर्मज्ञायशस्विनी देवी कौशल्याजीका आश्रयलेना उचित है वह निश्चयही हमको आश्रय देंगी॥१५॥ उन सब कुबरीकी सखियोंने तो इसभांति विचार

तीव्रमुत्पादितंदुःखंभ्रातॄणांमेतथापितुः॥ यथासेयंनृशंसस्यकर्मणःफलमश्नुताम् ॥ ११ ॥ एवमुक्त्वाचतेनाशुसखीजनसमावृता ॥ गृहीताबलवत्कुब्जासातद्गृहमनादयत् ॥ १२ ॥ ततःसुभृशसंतप्तस्तस्याः सर्वःसखीजनः॥ क्रुद्धमाज्ञायशत्रुघ्नंव्यपलायतसर्वशः॥१३॥अमंत्रयतकृत्स्नश्चतस्याःसर्वसखीजनः ॥ यथायंसमुपक्रांतोनिःशेषंनरिःकष्यति ॥ १४ ॥ सानुक्रोशांवदान्यांचधर्मज्ञांचयशस्विनीम् ॥ कौसल्यांशरणंयामसाहिनोऽस्तिध्रुवागतिः ॥ १५ ॥ सचरोषेणसंवीतःशत्रुघ्नःशत्रुशासनः ॥ संचकर्षतदाकुब्जांक्रोशंतींपृथिवीतले ॥१६॥ तस्यांह्याकृष्यमाणायांमंथरायांततस्ततः ॥ चित्रंबहुविधंभांडपृथिव्यांतद्व्यशीर्यत ॥ १७ ॥ तेनभांडेनविस्तीर्णंश्रीमद्राजनिवेशनम् ॥ अशोभतस्तदाभूयःशारदंगगनंयथा ॥१८॥ सबलीबलवत्क्रोधाद्गृहीत्वापुरुषर्षभः॥ कैकेयीमभिनिर्भर्त्स्यबभाषेपरुषंवचः॥१९॥तैर्वाक्यैःपरुषैर्दुःखैःकैकेयीभृशदुःखिता॥ शत्रुघ्नभयसंत्रस्तापुत्रंशरणमागता ॥ २० ॥ तंप्रेक्ष्यभरतःक्रुद्धंशत्रुघ्नमिदमब्रवीत्॥अवध्याःसर्वभूतानांप्रमदाःक्षम्यतामिति ॥२१॥

किया और इधर शत्रुओंके दमन करनेवाले शत्रुघ्नजीने क्रोधमें परिपूर्ण होकर फिरकुब्जाको पृथ्वीमें दे पटका और उसकी चोटीको पकड घसीटने लगे॥१६॥ जब कई झटके इधर उधरको दिये तब कुबडीके विचित्र गहने जो कि, वह शरीरमें पहर रही थी सबके सब टूटकर उसके शरीरसे निकल पडे और कुब्जा चिल्लाने लगी॥१७॥उस समय वह परम सुन्दर राजभवन इन टूटे फूटे गहनोंके इधर उधर पडे रहनेसे इस प्रकार शोभित होने लगा जैसे कि, शरदऋतुका आकाशमण्डल ताराओं करके शोभित होता है॥१८॥अनन्तर पुरुषश्रेष्ठ बलवान् शत्रुघ्नजीने बडेही क्रोधसे झकझोरकर कुब्जाको पकडा यह देखकर कैकेयी उसके छुडाने दौडी तब शत्रुघ्नजीने उससे भी बडे कडुवे असह्य वचन कहे॥१९॥कैकेयी उन सब कष्टदायक कठोर वचनोंको सुन और झकझोरे जानेसे नितान्तकातर व शत्रुघ्नजीके भयसे बहुतही भीत होकर अपने पुत्र भरतजीकी शरण गई॥२०॥ तब भरतजीने शत्रुघ्नजीको महाक्रोधित देखकर उनसे कहा कि, हेप्यारेभैय्या!

स्त्री मात्रही सब प्राणियोंसे अवध्य होती हैं। अतएव मंथराके अपराधको क्षमाकर दीजिये ॥२१॥ रामचन्द्रजी अतिधर्मनिष्ठ हैं यदि वह माताको मार डालने वाला समझकर हमारी निन्दा न करते व हमपर क्रोधित न होते तो हम इस दुराचारिणी पापिनी कैकेयीको भी अभी मार डालते ॥२२॥ कैकेयीकी बात तो एक ओर रही जिस समय वह महात्मा यह जानेंगे की, इन्होंने कुब्जाको मारडाला है तब प्रीति कैसी वह हमारे तुम्हारे साथ बातभी न करेंगे ॥२३॥ भरत जीके यह वचन सुनकर लक्ष्मणजीके छोटे भाई उस दोषयुक्त कार्यके करनेसे निवृत्त हुए और बनाय मूर्छित हुई मंथराको छोड दिया ॥२४॥ तब मंथरा कैकेयीके चरणोंमें गिर कर ऊँधे२श्वासले बडे दुःखसे भरे करुणाके स्वरसे विलाप करने लगी ॥२५॥ शत्रुघ्नजीके घसीटनेसे उसकी चेतना जाती रही है और बहुत

हन्यामहमिमांपापांकैकेयींदुष्टचारिणीम् ॥ यदिमांधार्मिकोरामोनासूयेन्मातृघातकम् ॥२२॥ इमामपिहतांकुब्जांयदिजानातिराघवः ॥ त्वां चमांचैवधर्मात्मानाभिभाषिष्यतेध्रुवम् ॥२३॥ भरतस्यवचःश्रुत्वाशत्रुघ्नोलक्ष्मणानुजः ॥ न्यवर्ततततोदोषात्तांमुमोचचमूर्च्छिताम् ॥२४॥ सापादमूलेकैकेय्यामंथरानिपपातह ॥ निःश्वसंतीसुदुःखार्ताकृपणंविललापह ॥२५॥ शत्रुघ्नविक्षेपविमूढसंज्ञांसमीक्ष्यकुब्जांभरतस्यमाता ॥ शनैःसमाश्वासयदार्तरूपांक्रौंचींविलग्नामिववीक्षमाणाम् ॥ २६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० अयोध्याकांडे अष्टसप्ततितमः सर्गः ॥७८॥ ततःप्रभातसमयेदिवसेऽथचतुर्दशे ॥ समेत्यराजकर्तारोभरतंवाक्यमब्रुवन् ॥१॥ गतोदशरथःस्वर्गंयोनोगुरुतरोगुरुः ॥ रामंप्रव्राज्यवैज्येष्ठंलक्ष्मणंचमहाबलम् ॥२॥ त्वमद्यभवनोराजाराजपुत्रमहायशः ॥ संगत्यानापराध्नोतिराज्यमेतदनायकम् ॥३॥ अभिषेचनिकंसर्वमिदमादायराघव ॥ प्रतिक्षतेत्वांस्वजनः श्रेणयश्चनृपात्मज ॥ ४ ॥

व्याकुल हो पींजरेमें बँधी कौंचीकी नाई इधर उधर देख रही है यह देख भरत माता कैकेयीने उसको धीरे धीरे बहुत समझाया ॥२६॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयो० भाषायामष्टसप्ततितमःसर्गः ॥७८॥ अनन्तर चौदहवेंदिनप्रभातके समय राजकार्यके निर्बाह करनेवाले मंत्रिआदि लोग इकट्ठे हो भरतजीसे कहनेलगे ॥ १ ॥ जो हमारे गुरुकेभी गुरुथे वह राजा दशरथजी ज्येष्ठ रामचन्द्रजी और महाबलवान् लक्ष्मणजीको वनभेज स्वर्गको सिधारगये ॥ २ ॥ इस समय यह राज्य विना राजाका पडा है अतएव आप इसको ग्रहण कीजिये, क्योंकि आप राजाके परमयशस्वी पुत्र हैं और विशेषतः आपने पिताकी आज्ञानुसार राज्यपद ग्रहण करनेसे बडे भाईके विद्यमान रहते राज्यकरनेमें किसीप्रकारका दोष आपको नहीं लगेगा॥३॥ हे रघुवंशीय राजनन्दन ! कुछ हमहीं नहीं

बरन् सबबन्धुबांधव और पुरवासीगण सबही अभिषेककी सामग्री लिये हुए आपकी बाट देख रहे हैं ॥ ४ ॥ हे नरश्रेष्ठभरतजी ! आपअपने पिता व पिताम हादिकोंका राज्यग्रहण करकेअपना अभिषेक कराइये और हम सबका पालन कीजिये ॥५॥ उन सबके यह वचनसुन व जितने पात्र अभिषेकवाली वस्तुओंसे भरेथे सबकी कृतनिश्चय भरतजीने प्रदक्षिणा की फिर दृढव्रतधारी भरतजी सब लोगोंसे कहनेलगे ॥६॥ हमारे कुलकीरीतिके अनुसार बडेहीको राजत्व सदासेही चलाआया है अतएव आपलोग चतुर होकर फिर हमसे राज्य करने को न कहना ॥७॥ आपलोग सब सूक्ष्मासूक्ष्मका विचार कर सकते हैं सो देखिये कि, रामचन्द्रजी हमारे बडे भ्राता हैं वही राजा होंगे और हमवनमें जाकर चौदह वर्षतक रहेंगे ॥८॥ इस समय चतुरंग बलवाली सेना तैयार करके ज्येष्ठ भ्राता श्रीरामचन्द्रजीको हम वनसे लौटालावेंगे ॥९॥ यह सब अभिषेककी सामग्री हम रामचन्द्रजीके अभिषेकके लिये साथ लेकर वनको चलेंगे ॥ १० ॥ और

राज्यंगृहाणभरतपितृपैतामहंध्रुवम् ॥ अभिषेचयचात्मानंपाहिचास्मान्नरर्षभ ॥ ५॥ आभिषेचनिकंभांडंकृत्वासर्वंप्रदक्षिणम् ॥ भरतस्तंजनं सर्वंप्रत्युवाचधृतव्रतः ॥ ६ ॥ ज्येष्ठस्यराजतानित्यमुचिताहिकुलस्यनः ॥ नैवंभवंतोमांवक्तुमर्हंतिकुशलाजनाः ॥७॥ रामःपूर्वोहिनोभ्राताभ विष्यतिमहीपतिः ॥ अहंत्वरण्येवत्स्यामिवर्षाणिनवपंचच ॥८॥ युज्यतांमहतीसेनाचतुरंगमहाबला ॥ आनयिष्याम्यहंज्येष्ठंभ्रातरंराघवंव नात् ॥ ९ ॥ अभिषेचनिकंचैवसर्वमेतदुपस्कृतम् ॥ पुरस्कृत्यगमिष्यामिरामहेतोर्वनंप्रति ॥ १० ॥ तत्रैवतंनरव्याघ्रमभिषिच्यपुरस्कृतम् ॥ आनयिष्यामिवैरामंहव्यवाहमिवाध्वरात् ॥ ११ ॥ नसकामांकरिष्यामिस्वामिमांपुत्रगर्द्धिनीम् ॥ वनेवत्स्याम्यहंदुर्गेरामोराजाभविष्यति ॥ १२ ॥ क्रियतांशिल्पिभिःपंथाःसमानिविषमाणिच ॥ रक्षिणश्चानुसंयांतुपथिदुर्गविचारकाः ॥ १३ ॥ एवंसंभाषमाणंतंरामहेतोर्नृपात्मजम् ॥ प्रत्यु वाचजनःसर्वःश्रीमद्वाक्यमनुत्तमम् ॥ १४ ॥ एवंतेभाषमाणस्यपद्माश्रीरुपतिष्ठताम् ॥ यस्त्वंज्येष्ठेनृपसुतेपृथिवींदातुमिच्छसि ॥ १५ ॥

वहां उन पुरुषसिंह रामचंद्रजीका अभिषेक करके इस प्रकार हम उनको यहां ले आवेंगे कि जिस प्रकार यज्ञशालामें अग्निको लाते हैं ॥ ११ ॥ हमइस माताका नाम धारण करनेवाली अपनी माता कैकेयीका अभिलाष कभीसफल नहीं करेंगे यह चाहती है कि, हम राजा बनें पर इसके विपरीत हम दुर्गभवनमें वासकरेंगे. और रामचन्द्रजी राजा होंगे ॥ १२ ॥ अब प्रथममार्गसुधारनेवाले बेलदारखुदैये आदिक जायँऔर वह बनाकर सब ऊँचे नीचे स्थानोंको बराबर करदें वह बहुत चतुर लोग मार्गकी रक्षाके लिये भी जायँ, जिससे कहीं किसीको किसीसे किसी प्रकारका भय नहो ॥ १३ ॥ नृपनंदन भरतजीने जब रामचन्द्रजीके निमित्त इसप्रकार कहा तब सबलोग यह मनोहर अतिउत्तम वचन बोले ॥ १४ ॥ आपने संपूर्ण पृथ्वीका राज्य ज्येष्ठपुत्र श्रीरामचन्द्रजीको देनेका जो अभिलाष करके

हम सबसे यह अभिप्राय कहा, इसकारण पद्मासना लक्ष्मीदेवी आपको आश्रय करें ॥१५॥ राजकुमार भरतजीके कहे हुए वह अतिउत्तम वचन श्रवणगोचर करके सब किसीके नेत्रोंसे आनन्दके आंसू गिरनेलगे ॥१६॥ अनन्तर उन सब लोगोंने यह वार्त्ता श्रवण कर मंत्रिगण नौकर चाकरोंके सहित प्रफुल्लितहो और एक बारही शोकरहित होकर कहा हे नरवर ! आपके वचनानुसार आपकेसामने मार्ग रखानेवाले खनैये बेलदार आदिकोंको मार्ग बनानेकेलिये विशेषप्रकारसे प्रथमही आज्ञा दीजाचुकी है ॥१७॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयोध्याकांडे भाषायामेकोनाशीतितमः सर्गः ॥७९॥ अनन्तर भरतजीकी आज्ञा व सुमंत्रजीके कहनेसे आगे २ सुन्दर मार्ग बनाने व निवासस्थानोंमें मन्दिरादि बना देनेके लिये पृथ्वीकेतत्त्वोंको जाननेवाले भूमिप्रदेशज्ञ (इन्जीनियर) लोग चले जो कि, पृथ्वीकोदेखतेही जानलेते कि, यहजगह जलसहितहै व निर्जल है । व सूतकर्मको जाननेमें चतुर लोगभी चले जो मन्दिरादि बनानेमें सूधकी सीध ठीक लगातेथे । सबही अपने २ कामोंमें दक्ष थे जहां जिसका कार्य पडे बडी बहादुरीके साथ उसके करनेको तैयार हो जाते । खनैयेभी चले जो कुआं बावडी, नहर आदि खोदनेमें चतुरथे

अनुत्तमंतद्वचनंनृपात्मजःप्रभाषितंसंश्रवणेनिशम्यचः ॥प्रहर्षजास्तंप्रतिबाष्पबिंदवोनिपेतुरार्याननेत्रसंभवाः ॥१६॥ ऊचुस्तेवचनमिदंनिशम्य हृष्टाःसामात्याःसपरिषदोवियातशोकाः ॥ पंथानंनरवरभक्तिमान्जनश्चव्यादिष्टस्तववचनाच्चशिल्पिवर्गः ॥१७॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणेवाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० अयोध्याकांडे एकोनाशीतितमः सर्गः ॥७९॥ अथभूमिप्रदेशज्ञाःसूत्रकर्मविशारदाः ॥ स्वकर्माभिरताःशूराःखनकायंत्रकास्तथा ॥१॥ कर्मांतिकाःस्थपतयःपुरुषायंत्रकोविदाः ॥ तथावर्धकयश्चैवमार्गिणोवृक्षतक्षकाः ॥२॥ सूपकाराःसुधाकारावंशचर्मकृतस्तथा ॥ समर्थायेचद्रष्टारःपुरतश्चप्रतस्थिरे ॥३॥ सतुहर्षात्तमुद्देशंजनौघोविपुलःप्रयान् ॥अशोभतमहावेगःसागरस्येवपर्वणि ॥४॥

व ऐसे कारीगर लोगभी चले जो कि, खोल, नदी आदि पार उतरनेके लिये नाव या घन्नईतुरंतबनासकतेथे ॥१॥ बहुतसे मजदूर लोग जो रोज मजदूरीही पाकर सब काम कर सकें वह स्थपति (मिस्तरी) लोग चले जो थवई कर्मके करनेमें प्रधान होते हैं, यंत्रनिर्माणदक्षलोग चले जोकि नावादिक वस्तुओंके बनानेमें होशियार थे। बढई लोगोंके झुंडके झुंड चले मार्गीलोक चले जो वनके मार्गको अच्छी तरह रखा सकतेथे, तथा वृक्षछेदकलोगचले जो कि, मार्गमें फैले हुये वृक्षोंके काटनेमें चतुर थे ॥ २ ॥ रसोइये चले जोकि, जरा देरमें बहुत मनुष्योंके भोजन बना सकते थे, सुधाकर लोग जो धवरहरा दिकोंकी भीतोंमें मिट्टी व पत्थरादि लगानेमें निपुण थे व वंशचर्मकृत जो लोग बांसका बक्कल काटने छीलनेमें तैयारथे व जो लोग उस मार्गमें कभी न कभीगये थे और विदेशकी सब बातोंको जानते थे वहलोग आगे २ चले ॥३॥ वह विपुल झुंडकेझुंड हर्षसहित उन रामचन्द्रजीके लिये शीघ्रतासे चले, तब इस प्रकारकी

शोभाहुईकि; जिस भांति पूर्णमासीके दिन समुद्रका जल उछलता है ॥४॥ वह मार्गके बनानेमें चतुर लोग अपने दलमेंमिलकर फावडे, कुल्हाडी इत्यादि बहुतसी उपयोगिनी सामग्री संगले आगे २ चले ॥५॥ वहां जाकर उन्होंने बहुत सारेवृक्ष, लता, वल्ली; झाली, ठूंठ, पत्थर व टीले आदिक थे उन सबको काट कूट, पीट. पाट, खोद खादकर बराबर करदिया ॥६॥ जहांकहीं वृक्ष नहीं लगे थे वहांपर वृक्ष लगादिये और जहांकहीं घने वृक्षोंकी बहुतसारी डालियां बढ आई थीं उनको कुल्हाडी फरसे, दरांत आदिसे छांट छूंट समान किया ॥७॥ कुछेक बलवान्‌लोगोंने अतिशय पुष्टठूंठोंको जोबाहुके वेग और मनुष्यादिकोंकेहिलाने व उखाड़नेसे नहींहिलते व उखड़ते थे उखाड २फेंकदिया व जितने दुर्गम स्थान थे सबको खोद पीटकर बराबर कर दिया ॥८॥ व और जो लोग थे वहमार्गके निकट और बीचवाले कुओंको फावडेसे मिट्टी, धूल, कूडा, करकटसे पाटदेते और जहां कहीं गढे आदिक थे उन कोभी बराबर करदेते थे ॥९॥ जहां कहीं छोटी २ नदियां व नाले मिलते मिलाते

तेस्ववारंसमास्थायवर्त्मकर्मणिकोविदाः ॥ करणैर्विविधोपेतैःपुरस्तात्संप्रतस्थिरे ॥ ५ ॥ लतावल्लीश्चगुल्मांश्चस्थाणूनश्मनएवच ॥ जनास्ते चक्रिरेमार्गंछिंदंतोविविधान्द्रुमान् ॥ ६ ॥ अवृक्षेषुचदेशेषुकेचिद्वृक्षानरोपयन् ॥ केचित्कुठारैष्टंकैश्चदात्रैश्छिंदन्क्वचित्क्वचित् ॥ ७ ॥ अपरे वीरणस्तंबान्बलिनोबलवत्तराः ॥ विधमंतिस्मदुर्गाणिस्थलानिचततस्ततः ॥८ ॥ अपरेपूरयन्कूपान्पांसुभिः श्वभ्रमायतम् ॥ निम्नभागांस्तथैवाशुसमांश्चक्रुःसमंततः ॥ ९ ॥ बबंधुर्बंधनीयांश्चक्षोद्यान्संचुक्षुदुस्तथा ॥ बिभिदुर्भेदनीयांश्चतांस्तान्देशान्नरास्तदा ॥ १० ॥ अचिरेणतु कालेनपरिवाहान्बहूदकान् ॥ चक्रुर्बहुविधाकारान्सागरप्रतिमान्बहून् ॥ ११ ॥ निर्जलेषुचदेशेषुमानयामासुरुत्तमान् ॥ उदपानान्बहुविधान्वेदिकापरिमंडितान् ॥ १२ ॥ ससुधाकुट्टिमतलःप्रपुष्पितमहीरुहः ॥ मत्तोद्घुष्टद्विजगणःपताकाभिरलंकृतः ॥१३॥ चंदनोदकसंसिक्तो नानाकुसुमभूषितः ॥ बह्वशोभतसेनायाःपंथाःसुरपथोपमः ॥ १४ ॥

उनमें पुल बांधदेते, जहां कहीं कंकरी गोखरू खपटे आदिक पडे थे उनको बटोरकर फेंकदेते जहां कहीं जलके आनेमें कोई रुकावट थी उस बंधनको भंग करदेते थे ॥१०॥ थोडे कालमेंही जितनी नदियोंकी बहुत धारेंथीं और अनेक प्रकारकी उन सब धाराओंको एक बडी धारा करकेउसपर पुल बांध दिया और अधिक जलसे पूर्ण कर उनको समुद्रके आकारसा बनादिया ॥११॥ और जहां कि,जल नहीं था वहांपर बहुतसी बावलिये तलैये आदि खुदवाकर बहुतसे- सुन्दर २पक्के घाट आदि बनादिये ॥१२॥ इस भांति सेनाके जानेके मार्गमें कहीं विश्राम लेनेके लिये बराबर भूमि सँवारकर बनाई गई कहीं फूले फलेवृक्ष लगाये गये कहीं२ पशु, पक्षीगण मतवाले होकर कल२करनेलगे, कहीं ध्वजापताका लगाई गई ॥१३॥ सब स्थानोंपर अयोध्यासे प्रयाग पर्यन्त सब सडकोंपर चन्दनादि मिश्रित

सुगन्धित वस्तुओंके जलसे छिडकाव कराया गया, व सबही स्थान फूलोंसेसजाये गये उस मार्गने इन्द्रपुरीके मार्गकी तुल्य शोभा पाई ॥१४॥ उन लोगोंको जो जो भरतजीने आज्ञा दीथी वैसेही उन सब लोगोंने सुन्दर रमणीय प्रदेशोंमें अनेक प्रकारके स्वादयुक्त जलवाले जलाशय व मीठे फलवाले वृक्ष लगा दिये॥१५॥ सेनाके रहने व उतरने आदिका जैसा कुछ स्थान भरतजी चाहते थे वैसाही उन अधिकारियोंने अनेक प्रकारकेभूषणोंसे सजादिया॥१६॥जो कि नक्षत्र और सब मुहूर्त्तोंका शुभाशुभ फल जानते थे उन ज्योतिषीलोगोंने शुभ मुहूर्त और शुभ नक्षत्रमें सेनाकेनिवासकी सामग्री स्थापितकी जिसमें महात्मा भरतजीकामंगलहो ॥१७॥ सेनानिवासके स्थानके निकट बडी भारी परिखा खोदी गई और वहां बडे २ तेजस्वी रक्षक लोगभी रक्खे गये थे।इन्द्रनीलमणि निर्मितप्रतिमायें वहां विराजमान कीगई और जगह २ उनसे उतरने चढनेकी सीडियां लगादी गई॥१८॥जगह २ बडे धुस बनादिये गये जिसपर अनेक भाँतिके धवरहरे बनाये जो

आज्ञाप्याथयथाज्ञप्तियुक्तास्तेऽधिकृतानराः ॥ रमणीयेषुदेशेषुबहुस्वादुफलेषुच ॥ १५ ॥ योनिवेशस्त्वभिप्रेतोभरतस्यमहात्मनः॥भूयस्तंशो भयामासुर्भूषाभिर्भूषणोपमम् ॥१६॥ नक्षत्रेषुप्रशस्तेषुमुहूर्तेषुचतद्विदः ॥ निवेशान्स्थापयामासुर्भरतस्यमहात्मनः ॥१७॥ बहुपांसुचयाश्चा पिपरिखाःपरिवारिताः ॥ तत्रेंद्रनीलप्रतिमाःप्रतोलीवरशोभिताः ॥ १८ ॥प्रासादमालासंयुक्ताःसौधप्राकारसंवृताः॥पताकाशोभिताःसर्वेसुनि र्मितमहापथाः ॥ १९ ॥ वितर्दिभिरिवाकाशेविटंकाग्रविमानकैः ॥ समुच्छ्रितैर्निवेशास्तेबभुःशक्रपुरोपमाः॥ २० ॥ जाह्नवींतुसमासाद्यवि विधद्रुमकाननाम् ॥शीतलामलपानीयांमहामीनसमाकुलाम् ॥ २१ ॥सचंद्रतारागणमंडितंयथानभःक्षपायाममलंविराजते ॥ नरेंद्रमार्गःसत दाव्यराजतक्रमेणरम्यःशुभशिल्पिनिर्मितः ॥२२॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ० च० सा० अयो० अशीतितमःसर्गः ॥ ८० ॥

बहुत सुन्दर बनेहुए थे और जिसपर बहुतसी झंडियां लगाईगई थीं, बडी २ सडकें सबके किनारोंपर बनाईगई ॥१९॥ और उनके बडे ऊँचे सतखंडे घरोंके अग्रभागमें कपोतपालिका विराजमान होरही थीं यह सब मंदिर बडे ऊँचे बने थे, देखनेसे ऐसा बोध होता था कि, मानो आकाशमें विमान व मंच अनेक प्रकारके आसन शोभित होरहे हैं यह सब निवेशस्थान इन्द्रपुरीके समान शोभा धारण करते हुये ॥२०॥ इस प्रकार बृहत् २ मछलियों करके युक्त व निर्मल सुशीतल सलिलशालिनी गंगाजीतक विविध वृक्ष व कानन सहित ॥२१॥ मार्ग शिल्पियों करके क्रमसे बनाहुआ वह रमणीय राजमार्ग रात्रिकालमें चन्द्रमा और नक्षत्रमंडलमंडित निर्मल आकाशके समान विराजमान होने लगा ॥२२॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० अयो० भाषायामशीतितमः सर्गः ॥ ८० ॥

अधिकारी लोग तो उधरमार्ग इत्यादिक बनानेको भेजेगये उधर वहआनन्दमयी रात्रि बीती तबप्रातःकालमें विशेषकरके सूत और मागधलोग अनेकप्रकारसेमंग लस्तोत्रोंसे भरतजीकी स्तुति करने लगे ॥१॥ पहरभर रात्रि रहे जागनेके लिये जो नगाडे बजाये जाते थे वह सब सुवर्णके दंडोंसे बजाये जाने लने. उस समय उन सबमें भैरव राग निकलता था इनके अतिरिक्त शत २ शंख ऊंचेस्वरोंसे बजाये गये और भी अनेक२भेरी आदिक बाजे बजते थे ॥२॥ उन महान् बाजोंके शब्दोंने आकाशमंडलतकफैलकर शोकसे संतापित भरतजीकोशोकसेव्याकुलकर दिया ॥३॥ तब भरतजी उस शब्दको सुनकर जागे और यह कहकर जागे कि, अरे ! हम राजा नहीं हैं क्योंकि हमारी स्तुति करतेहो वह बाजाबंद करा दिया फिर शत्रुघ्नजीसे बोले॥४॥हे शत्रुघ्न ! कैकेयीके करनेसे सब लोगका कितना बडा

ततोनांदीमुखींरात्रिंभरतंसूतमागधाः ॥ तुष्टुवुःसविशेषज्ञाःस्तवैर्मंगलसंस्तवैः ॥ १ ॥ सुवर्णकोणाभिहतःप्राणदद्यामदुंदुभिः ॥ दध्मुःशंखांश्चशतशोवाद्यांश्चोच्चावचस्वरान् ॥२॥ सतूर्यघोषःसुमहान्दिवमापूरयन्निव ॥ भरतंशोकसंततंभूयःशोकैररंधयत् ॥३॥ततःप्रबुद्धोभरतस्तंघोषंसन्निवर्त्यच ॥ नाहंराजेतिचोक्त्वातंशत्रुघ्नमिदमब्रवीत् ॥ ४ ॥ पश्यशत्रुघ्नकैकेय्यालोकस्यापकृतंमहत् ॥ विसृज्यमयिदुःखानिराजादशरथोगतः ॥५॥ तस्यैषाधर्मराजस्यधर्ममूलामहात्मनः ॥ परिभ्रमतिराजश्रीर्नौरिवाकर्णिकाजले ॥६॥ योहिनःसुमहान्नाथःसोऽपिप्रव्राजितोवने॥ अनयाधर्ममुत्सृज्यमात्रामेराघवःस्वयम् ॥ ७ ॥ इत्येवंभरतंवीक्ष्यविलपंतमचेतनम् ॥ कृपणारुरुदुःसर्वाःसुस्वरंयोषितस्तदा ॥ ८॥ त तथातस्मिन्विलपतिवसिष्ठोराजधर्मवित् ॥ सभामिक्ष्वाकुनाथस्यप्रविवेशमहायशाः ॥ ९ ॥ शातकुंभमयींरम्यांमणिहेमसमाकुलाम् ॥ सुधर्मामिवधर्मात्मासगणःप्रत्यपद्यत ॥ १० ॥

उपकार हुआ है हमारे ऊपर यह सब दुःख छोडकर राजा दशरथजी तो स्वर्गको चले गये॥५॥उन महात्मा धर्मराजकी यह धर्ममूलक राजश्री इस समय मांझी हीन नौकाके समान समुद्रमें इधर उधर घूमती है॥६॥पिताकी यह दशा हुई, उसपर जो कि, हमारे बडे भारी रक्षकथे, उन श्रीरामचन्द्रजीको हमारी माताने धर्मत्यागकर वनमें भिजवा दिया॥७॥भरतजी चेतना रहित हो इस प्रकार विलाप करते थे तब यह देखकर सब स्त्रियां करुणस्वरसे रोदन करने लगीं॥८॥इस प्रकारसे विलाप हो रहा था कि, इतनेमें राजधर्मके जाननेवाले महायशस्वी वसिष्ठजी इक्ष्वाकुनाथकी सभामेंआये ॥ ९ ॥ यह सब सभा सुवर्णमय रमणीय थी जिधर देखो उधर मणि व सोनाही देखपडता था । जैसे सुधर्मासभामें इन्द्रजी अपने गणोंके साथ आते हैं वैसेही अपने समाजके साथ वसिष्ठजीने इस सभामें

प्रवेश किया ॥१०॥ वहां सुवर्णका एक गोला स्थान बना था उसपर बैठ गये व सर्व वेदज्ञ मुनिराज दूतोंको आज्ञा देने लगे॥११॥ कि तुम लोग बहुत शीघ्र ब्राह्मण, क्षत्रिय, मंत्री सेना और सेनापतियोंको यहां बुला लाओ, क्योंकि एक कार्य ऐसा आ पडा है कि उसको शीघ्र करना पडेगा॥१२॥तुम सब यशस्वी भरत शत्रुघ्न व और दूसरे राजकुमारोंको और सुमंत्र युधाजितसेआदिलेकर और भी सब जितने हितकारी जन हैं उन सबकोही यहां बुलालाओ ॥१३॥ वसिष्ठजी तो इतना कहही रहे थे इतनेमें रथ घोडे और हाथीपर चढेहुए पुरुषोंके आनेसे तुमुल कुलाहल उठा वरन् सब लोग आपसे आप आगये ॥१४॥ अनन्तर देवता जिस प्रकार इन्द्रको देख आनंदित होते हैं वैसेही मंत्री आदि लोग भरतको आता देख इस प्रकार आनंदित हुए कि पहले राजा दशरथजीको देख आनंदित होते थे॥१५॥तब उस समय भरतजीसे शोभित वह सभा बडे२मच्छ व नाकोंकरके युक्त, मणि शंख; सिकतासमन्वित स्थिर समुद्रके समान राजा दशरथजीके

सकांचनमयंपीठंस्वस्त्यास्तरणसंवृतम् ॥ अध्यास्तसर्ववेदज्ञोदूताननुशशासच ॥ ११ ॥ ब्राह्मणान्क्षत्रियान्योधानमात्यान्गणवल्लभान् ॥ क्षिप्रमानयताव्यग्राःकृत्यमात्ययिकंहिनः ॥१२॥ सराजपुत्रंशत्रुघ्नंभरतंचयशस्विनन् ॥ युधाजितंसुमंत्रंचयेचतत्रहिताजनाः ॥ १३ ॥ ततो हलहलाशब्दोमहान्समुदपद्यत ॥ रथैरश्वैर्गजैश्चापिजनानामुपगच्छताम् ॥ १४ ॥ ततोभरतमायांतंशतक्रतुमिवामराः ॥ प्रत्यनंदन्प्रकृतयो यथादशरथंतथा ॥१५॥ ह्रदइवतिमिनागसंवृतस्तिमितजलोमणिशंखशर्करः ॥दशरथसुतशोभितासभासदशरथेवबभूवसापुरा॥१६॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० आयोध्याकांडे एकाशीतितमः सर्गः ॥८१॥ तामार्यगणसंपूर्णांभरतःप्रग्रहांसभाम्॥ददर्शबुद्धिसंपन्नःपूर्णचंद्रांनिशामिव॥१॥आसनानियथान्यायमार्याणांविशतांतदा॥ वस्त्रांगरागप्रभयाद्योतितासासभोत्तमा॥२॥साविद्वज्जनसंपूर्णासभासुरुचिरातथा॥अदृश्यतघनापायेपूर्णचंद्रेवशर्वरी॥३॥राज्ञस्तुप्रकृतीःसर्वाःससंप्रेक्ष्यचधर्मवित् ॥इदंपुरोहितोवाक्यंभरतंमृदुचाब्रवीत्॥४॥

समयमें जिसप्रकार शोभित होती थी इस समय भी वैसेही जान पडने लगी॥१६॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मी० आदि० अ० भाषायामेकाशीतितमः सर्गः॥८१॥ बुद्धिसंपन्न भरतजीने देखा कि,पूज्यजनोंकरके सम्पूर्ण होने और वसिष्ठादि महात्माओंके शोभित होनेसे सभापूर्णचन्द्रशोभिता पूर्णमासीके रात्रिकी समान शोभा पा रही है ॥१॥ सभामें आये हुए श्रेष्ठ जन सब अपने २ आसनपर यथारीति बैठगये, तब उनके अंगराग और वस्त्रोंकी शोभासे शोभित होकर वह श्रेष्ठसभा प्रभा विस्तार करने लगी ॥ २ ॥ शरदृऋतुमें पूर्णचन्द्रसमन्विता रात्रि जिस भांति शोभा पाती है, वैसे ही विद्वान् जनोंके समागमसे वह सभा परमरमणीय हो रही थी ॥ ३ ॥ अनन्तर धर्मके जाननेवाले पुरोहित वसिष्ठजी राजाके सब मंत्री आदिक बान्धवोंको देख भरतजीसे मधुर वचन बोले ॥ ४ ॥

हे भरत ! राजा दशरथ सदा धर्ममार्गमें टिके धनधान्यवती विपुल ऋद्धिसिद्धियुक्त यह पृथ्वी तुमको देकर स्वर्ग को चले गये हैं॥५॥सत्यव्रत धारण करनेवाले रामचन्द्र जीने भी साधुओंके आचरण किये हुये धर्मको स्मरण कर पिताकी आज्ञाको नहीं त्यागा जिस प्रकार चंद्रमा चांदनीको नहीं छोड़ सकता॥६॥इस समय तुम इन मंत्री आदिकोंका आनन्द वर्द्धन करके पिता और भ्राताका दिया हुआ यह अकंटक राज्य भोगो और शीघ्र अपना अभिषेक करालो॥७॥उत्तर, दक्षिण, पश्चिम और पश्चिमान्तके प्रदेशवासी व द्वीपके रहनेवाले जितने राजा हैं समुद्रके तटके और सिंहासन शून्य राजालोग तुम्हें कोटि २ रत्न उपहार देंगे ॥८॥ धर्मके जाननेवाले भरतजीने यह गुरुजीका वचन श्रवणकर शोकमें डूब धर्मकी इच्छासे मनही मनमें रामचन्द्रजीको स्मरण किया॥९॥कलहंस स्वरवाले वह युवा भर तजी सभाके बीच गद्गदकंठ हो विलाप करने लगे और कुछके निन्दासी करते हुए गुरु वसिष्ठजीसे बोले॥१०॥कि ब्रह्मचर्य धारण किये धर्ममें निष्ठा लगाये सब

तातराजादशरथःस्वर्गतोधर्ममाचरन् ॥ धनधान्यवतींस्फीतांप्रदायपृथिवींतव ॥५॥ रामस्तथासत्यवृत्तिःसतांधर्ममनुस्मरन् ॥ नाजहात्पितुरादेशंशशीज्योत्स्नामिवोदितः ॥६॥ पित्राभ्रात्राचतेदत्तंराज्यंनिहतकंटकम् ॥ तद्भुंक्ष्वमुदितामात्यःक्षिप्रमेवाभिषेचय ॥७॥ उदीच्याश्चप्रतीच्याश्चदाक्षिणात्याश्चकेवलाः ॥ कोटचापरांताःसामुद्रारत्नान्युपहरंतुते ॥८॥ तच्छ्रुत्वाभरतोवाक्यंशोकेनाभिपरिप्लुतः ॥ जगाममनसारामंधर्मज्ञोधर्मकांक्षया ॥९॥ सबाष्पकलयावाचाकलहंसस्वरोयुवा ॥ विललापसभामध्येजगर्हेचपुरोहितम् ॥१०॥ चरितब्रह्मचर्यस्यविद्यास्नातस्यधीमतः ॥ धर्मेप्रयतमानस्यकोराज्यंमद्विधोहरेत् ॥११॥ कथंदशरथाज्जातोभवेद्राज्यापहारकः ॥ राज्यंचाहंचरामस्यधर्मंवक्तुमिहार्हसि ॥१२॥ ज्येष्ठःश्रेष्ठश्चधर्मात्मादिलीपनहुषोपमः ॥ लब्धुमर्हतिकाकुत्स्थोराज्यंदशरथोयथा ॥ १३ ॥ अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यंकुर्यांपापमहंयदि ॥ इक्ष्वाकूणामहंलोकेभवेयंकुलपांसनः ॥ १४ ॥ यद्धिमात्राकृतंपापंनाहंतदपिरोचये ॥ इहस्थोवनदुर्गस्थंनमस्यामिकृतांजलिः ॥ १५ ॥

विद्याओंमें कुशल उन बुद्धिमान् रामचन्द्रजीका राज्य मेरे समान कौन जन हरण कर सकता है॥११॥महाराज दशरथजीसे जन्म ग्रहण करके हम किस प्रकारसे राज्यके हरनेवाले हो जावें ? राज्यभी रामचन्द्रजीका और हमभी रामचन्द्रजीके हे महर्षे ! आपके ऐसे स्थलमें धर्मानुसार वार्त्ता कहनी उचित है॥१२॥ साक्षात् दिलीप और नहुषके समान धर्मात्मा ज्येष्ठ और श्रेष्ठ रामचन्द्रही दशरथजीके समान इस राजपरिवारके अधिकारी हैं॥१३॥ असाधुसेवित स्वर्ग विरोधी यह महापाप यदि मुझ करके अनुष्ठित किया जावे,तब सब लोग हमें इक्ष्वाकुकुलका नाश करनेवाला कहेंगे ॥१४॥हमारी माताने जो महापाप किया अर्थात् श्रीरामचन्द्र जीको वनमें भिजवाया सो हमें किसी प्रकार नहीं रुचता अतएव इस समय हम यहींसे हाथ जोडकर कठिन वनमें टिके हुए भ्राता रामचन्द्रजीको

नमस्कार करते हैं ॥१५॥ हम रामचन्द्रजी ही के पीछे चलेंगे वही पुरुषोत्तम इस राज्य में राजा होनेके योग्य हैं वही त्रिभुवन के राजा होने योग्य हैं ॥१६॥ सब ही सभासद् लोग भरतजी का यह धर्म युक्त वचन श्रवण करके राम में अपना चित्त लगा आनन्दके आंसू नेत्रोंसे गिराने लगे ॥१७॥ फिर भरतजीने कहा कि, हम यदि उन आर्य रामचन्द्रजी को वनसे न लौटा सकें तब लक्ष्मणजी की भांति हम भी बनवास ही करेंगे ॥१८॥ हम अच्छे गुणवाले साधु स्वभाव श्रेष्ठ आर्य पुरुषोंके सामने रामचन्द्रजी को वनसे लौटा लानेके लिये जितने कुछ उपाय हैं सबही अवलम्बन करेंगे कोई कसर रक्खेंगे नहीं ॥१९॥ हमने प्रथम ही क्या तनख्वाहवाले क्या बे तनख्वाहवाले (जो मजदूरी लेते हैं) मार्ग बनानेमें चतुर कारीगरों को पंथ तैयार करने के लिये भेज दिया है सो उन्होंने रास्ता सुधार रक्खा होगा अब हम भी वहीं

राममेवानुगच्छामिसराजाद्विपदांवरः॥त्रयाणामपिलोकानांराघवोराज्यमर्हति ॥१६॥ तद्वाक्यंधर्मसंयुक्तंश्रुत्वासर्वेसभासदः ॥ हर्षान्मुमुचुरश्रूणिरामेनिहितचेतसः ॥१७॥ यदित्वार्यंनशक्ष्यामिविनिवर्तयितुंवनात्॥ वनेतत्रैववत्स्यामियथार्योलक्ष्मणस्तथा ॥ १८॥ सर्वोपायंतुवर्तिष्येविनिवर्तयितुंबलात्॥समक्षमार्यमिश्राणांसाधूनांगुणवर्तिनाम्॥१९॥विष्टिकर्मांतिकाःसर्वेमार्गशोधकदक्षकाः॥प्रस्थापितामयापूर्वंयात्राचममरोचते ॥ २० ॥ एवमुक्त्वातुधर्मात्माभरतोभ्रातृवत्सलः ॥ समीपस्थमुवाचेदंसुमंत्रंमंत्रकोविदम् ॥२१॥ तूर्णमुत्थायगच्छत्वंसुमंत्रममशासनात् ॥ यात्रामाज्ञापयक्षिप्रबलंचैवसमानय ॥२२॥ एवमुक्तःसुमंत्रस्तुभरतेनमहात्मना ॥ प्रहृष्टःसोऽदिशत्सर्वंयथासंदिष्टमिष्टवत् ॥२३॥ ताःप्रहृष्टाःप्रकृतयोबलाध्यक्षाबलस्यच ॥ श्रुत्वायात्रांसमाज्ञप्तांराघवस्यनिवर्तने ॥२४॥ ततोयोधांगनाःसर्वाभर्तॄन्सर्वान्गृहेगृहे ॥ यात्रागमनमाज्ञायत्वरयंतिस्महर्षिताः ॥ २५ ॥ तेहयैर्गोरथैःशीघ्रैःस्यंदनैश्चमनोजवैः ॥ सहयोषिद्बलाध्यक्षाबलंसर्वमचोदयन् ॥ २६॥

जाने की इच्छा करते हैं॥२०॥ भ्रातृवत्सल धर्मात्मा भरतजी इसभांति कहकर समीप बैठे हुए सलाह देनेमें चतुर सुमन्त्रजी से बोले ॥२१॥ सुमन्त्र! हमारी आज्ञासे तुम यहांसे उठकर शीघ्र गमन करो हमारे गमनकी वार्त्ता जनाकर सब सेनाको जल्दी तैयार करो कहो कि; रामचन्द्रजी के पास शीघ्र जाना है॥२२॥ जब महात्मा भरतजीने सुमंत्रजीसे इस प्रकार कहा तब आनन्दित हो सुमंत्रजीने सब सेनाको यह आज्ञा दी ॥२३॥ रामचन्द्रजी को वनसे लौटालाने के लिये सब सेनाको भी तैयार होनेको आज्ञा देदी गई है यह सुनकर सब नौकर चाकर आदिक और सेनाध्यक्ष लोग परम आनन्दित हुए ॥२४॥ अनन्तर घर २ में वीरनारियें हर्षित होकर अपने २ वीर पतियोंको रामचन्द्रजी को लौटाकर लानेके लिये वनके जानेको शीघ्रता कराने लगीं ॥२५॥ अब सब सेनाध्यक्ष घोडोंपर सवार होहोकर बैलों

और घोडोंको रथसे जोड़कर सब सेनाको जानेकी आज्ञा देने लगे ॥ २६ ॥ अनन्तर सब सेना चलनेके लिये तैयार होगई है यह देखकरभरतजीने कुलगुरु वसिष्ठजीके निकट बैठे थोरेही बैठे हुए सुमंत्रजी को आज्ञा दी की, हमारा रथ भी शीघ्र तैयार कर लाओ ॥२७॥ सुमंत्रजी जो आज्ञा हो, औरउनके आदेशको स्वीकार कर श्रेष्ठ घोडोंसे जुता हुआ रथ लेकर उनके समीप आये ॥२८॥ वह दृढ, सत्यविक्रम, सत्यधैर्य प्रतापशाली भरतजी महावनमें गये हुए यशस्वी गुरुराम चन्द्रजी को वनसे लौटालानेका मन कियेहुये युक्ति पूर्वक वचन सुमंत्रजीसे बोले॥२९॥ हे सुमंत्रजी ! तुम शीघ्र उठकर सेनाको तैयार रहनेकेलिये सेनाध्यक्षों को सुहृदोंको व और भी मुखिया २ लोगोंको आज्ञा दो कि,हम जगत्के हितके लिये प्रसन्न कर और वनसे लौटाकर रामचन्द्रको ले आवेंगे ॥३०॥भरतजी के

सज्जंतुतद्बलंदृष्ट्वाभरतोगुरुसन्निधौ ॥रथेमंत्वरयस्वेतिसुमंत्रपार्श्वतोऽब्रवीत् ॥२७॥ भरतस्यतुतस्याज्ञांपरिगृह्यप्रहर्षितः॥ रथंगृहीत्वोपययौयुक्तं परमवाजिभिः ॥ २८॥ सराघवःसत्यधृतिःप्रतापवान्ब्रुवन्सुयुक्तंदृढसत्यविक्रमः ॥ गुरुंमहारण्यगतंयशस्विनंप्रसादयिष्यन्भरतोऽब्रवीत्तदा ॥ २९॥ तूर्णंत्वमुत्थायसुमंत्रगच्छबलस्ययोगायबलप्रधानान् ॥ आनेतुमिच्छामिहितंवनस्थंप्रसाद्यरामंजगतोहिताय॥३०॥ ससूतपुत्रोभरतेनस्य म्यगाज्ञापितःसंपरिपूर्णकामः ॥ शशाससर्वान्प्रकृतिप्रधानान्बलस्यमुख्यांश्चसुहृज्जनंच ॥ ३१॥ ततःसमुत्थायकुलेकुलेतेराजन्यवैश्यावृषला श्चविप्राः ॥ अयूयुजन्नुष्ट्ररथान्खरांश्चनागान्हयांश्चैवकुलप्रसूतान् ॥ ३२ ॥ इत्यार्षे श्रीम०वा० च०सा० अयो० द्व्यशीतितमः सर्गः ॥८२॥ ततःसमुत्थितःकल्यमास्थायस्यंदनोत्तमम्॥प्रययौभरतःशीघ्रंरामदर्शनकाम्यया॥१॥अग्रतःप्रययुस्तस्यसर्वेमंत्रिपुरोहिताः ॥ अधिरुह्यहयैर्यु क्तान्रथान्सूर्यरथोपमान् ॥२॥नवनागसहस्राणिकल्पितानियथाविधि ॥ अन्वयुर्भरतंयांतमिक्ष्वाकुकुलनंदनम् ॥ ३ ॥

वचन सुन परिपूर्ण काम सूत सुमंत्रजी ने मुखिया २ लोग सेनाध्यक्ष व सुहृद् लोगोंको यह सब वार्त्ता समझाकर कहदी ॥ ३१ ॥ अनन्तर घर २ में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र लोग उद्योगी होकर ऊंट, रथ, हाथी, खच्चर और अच्छी नसलसे पैदा हुये सब घोडोंको सजाते हुये ॥ ३२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्वा० वा० आ० अयो० भाषायां द्व्यशीतितमः सर्गः ॥ ८२ ॥ उसके पीछे भोर होतेही उठकर भरतजी सुन्दर रथ पर सवार होकर रामचन्द्रजीके दर्शनकी कामना किये शीघ्र ही चले ॥ १ ॥ सब मंत्री औ पुरोहितलोग घोडे जुते हुये सूर्य नारायणके रथके समान प्रभायुक्त रथमें सवार होकर आगे २ जाने लगे ॥ २ ॥ सब प्रकार यथा विधिसे सजे सजाये नौ हजार (९०००) हाथी अनुगमन करने वाले इक्ष्वाकुकुल नन्दन भरतजी के आगे २ चले ॥ ३ ॥

इनके सिवाय साठहजार (६००००) रथ विविध अस्त्र धारण करनेवाले धनुष धारी लोग यशस्वी राजपुत्र भरतजी के आगे चले ॥ ४ ॥ और घोडोंपर चढे हुये एक लाख (१०००००) सवार उन रामचन्द्रजीके पास जानेवाले यशस्वी जितेन्द्रिय सत्यप्रतिज्ञ राजकुमार रघुनंदन भरतजीके साथ २ चले ॥ ५ ॥ कैकेयी, सुमित्रा और यशस्विनी देवी कौशल्याजी रामचन्द्रजीको लौटा लानेके लिये सन्तुष्ट हो परम दीप्तिमान् रथोंपर चढकर चलीं ॥ ६ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके देखनेको जब यह सुजन समाज चले तब प्रसन्न मन हो उनही महात्मा रामचन्द्रजीकी चित्र विचित्र कथा कहते व चर्चा करते सुनते सुनाते चले जाते थे, दूसरी किसी प्रकार की वार्तासे उनको काम नहीं था ॥७॥ वह लोग यही कहते थे कि, कितने दिनोंमें हम जगत्के शोक निवारक चित्तको अपने वश किये हुए महाबली जलधरके समान श्यामवर्णवाले महाबाहु दृढव्रत रामचन्द्रको देखेंगे ॥८॥ जैसे सूर्य भगवान् उदय होतेही त्रिभुवनके अन्धकारको नाश कर देते हैं वैसेही रामचन्द्रजी महाराज दर्शन

षष्टीरथसहस्राणिधन्विनोविविधायुधाः ॥ अन्वयुर्भरतंयांतंराजपुत्रंयशस्विनम् ॥ ४ ॥ शतंसहस्राण्यश्वानांसमारूढानिराघवम् ॥ अन्वयुर्भरतंयांतंराजपुत्रंयशस्विनम् ॥ ५ ॥ कैकेयीचसुमित्राचकौशल्याचयशस्विनी ॥ रामानयनसंतुष्टाययुर्यानेनभास्वता ॥६॥ प्रयाताश्चार्यसंघातारामंद्रष्टुंसलक्ष्मणम् ॥ तस्यैवचकथाश्चित्राःकुर्वाणाहृष्टमानसाः ॥ ७ ॥ मेघश्याममहाबाहुंस्थिरसत्त्वंदृढव्रतम् ॥ कदाद्रक्ष्यामहेरामंजगतःशोकनाशनम् ॥८॥ दृष्टएवहिनःशोकमपनेष्यतिराघवः ॥ तमःसर्वस्यलोकस्यसमुद्यन्निवभास्करः ॥९॥ इत्येवंकथयंतस्तेसंप्रहृष्टाःकथाःशुभाः ॥ परिष्वजानाश्चान्योन्यंययुर्नागरिकास्तदा ॥१०॥ येचतत्रापरेसर्वेसंमतायेचनैगमाः ॥ रामंप्रतिययुर्हृष्टाःसर्वाःप्रकृतयःशुभाः ॥११॥ मणिकाराश्चयेकेचित्कुंभकाराश्चशोभनाः ॥ सूत्रकर्मविशेषज्ञायेचशस्त्रोपजीविनः ॥१२॥ मयूरकाःक्राकचिकावेधकारोचकास्तथा ॥ दंतकाराःसुधाकारायेचगंधोपजीविनः ॥ १३ ॥

देतेही हमारे सब शोकको हर लेंगे ॥९॥ उस काल नगरके रहनेवाले सब मनुष्य आनन्दसहित यह शुभ कथा कहते परस्पर मिलते भेंटते चलने लगे ॥१०॥ अयोध्या नगरीमें जिन प्रसिद्ध बनियोंको भरतजीने आज्ञा दी व जिनको आज्ञा नहीं दी वह बनिये और सबही प्रजागण जो कि, राज्यमें रहते थे सब प्रफुल्लचित्तसे रामचन्द्रजीके दर्शनार्थ चले ॥ ११ ॥ और भी मणियोंमें छेद करनेवाले और उनको खैरातपर उतारनेवाले लोग कुम्हार लोग सुधासूध लगाना- जानते तथा सब शस्त्र बनानेवाले लोग चले ॥१२॥ मयूरके वेधक मोरकी पूंछका छत्र बनानेवाले व लीलासे मोरको पकडनेवाले, क्रकच करपत्रकी आजीविकासे जीनेवाले, वेधक मोती मणिमें सुराख करनेवाले, रोचककांचकी सीसी बनानेवाले, दन्तकार हाथीदांतका काम करनेवाले, सुधाकर सुधालेप करनेवाले, गंधजीवी इत्रफुलेल

बेचनेवाले यह सब चतुर चले ॥१३॥ सुनार और कम्बल बनानेवाले यह सब और अधिकारी लोग भी मुदित मनसे चले । स्नातक जो लोग स्नान कराते हैं गरम जलसे न्हवानेवाले, अंग मलनेवाले, वैद्य, धूपजीवी, मद्यकार ॥ ॥ १४ ॥ धोबी, तुन्नवायक, जुलाहे, दरजी, ग्राम और घोषके रहनेवाले मुखिया २ लोग नट व कैवर्तक सब अपनी २ स्त्रियोंके सहित चले ॥ १५ ॥ सहस्र २ सदाचारपरायण वेदवादी ब्राह्मणगण बैल जुते हुए रथोंपर बैठकर भरत जीके साथ २ चले ॥ १६ ॥ सबही सुन्दर वस्त्र, अरुण रंगके शुद्ध चंदनादि अनुलेपन लगाये सुन्दर २ सवारियोंपर सवार हुए धीरे २ भरतजीके साथ २ चले ॥ १७ ॥ इस प्रकारसे कैकेयीनन्दन भ्रातृवत्सल भरतजी जब रामचन्द्रजीको लौटाने चले तो अतिप्रहृष्ट चतुरंगिणी सेना परमहर्षित और आनन्दमें भर

सुवर्णकाराःप्रख्यातास्तथाकंबलकारकाः ॥ स्नापकोष्णोदकावैद्याधूपिकाः शौंडिकास्तथा ॥१४॥ रजकास्तुन्नवायाश्चग्रामघोषमहत्तराः ॥ शैलूषाश्चसहस्त्रीभिर्यांतिकैवर्तकास्तथा ॥१५॥ समाहितावेदविदविदोब्राह्मणावृत्तसंमताः ॥ गोरथैभरतंयांतमनुजग्मुःसहस्रशः ॥१६॥ सुवेषाःशुद्धवसनास्ताम्रमृष्टानुलेपिनः ॥ सर्वेतेविमलैर्यानैःशनैर्भरतमन्वयुः ॥१७॥ प्रहृष्टमुदितासेनासान्वयात्कैकयीसुतम् ॥ भ्रातुरानयनेयांतंभरतंभ्रातुवत्सलम् ॥१८॥ ते गत्वादूरमध्वानंरथयानाश्वकुंजरैः ॥ समासेदुस्ततोगंगांश्रृंगवेरपुरंप्रति ॥१९॥ यत्ररामसखोवीरोगुहोज्ञातिगणैर्वृतः ॥ निवसत्यप्रमादेनवेशंतंपरिपालयन् ॥२०॥ उपेत्यतीरंगंगायाश्चक्रवाकैरलंकृतम् ॥ व्यवतिष्ठतसासेनाभरतस्यानुयायिनी ॥२१॥ निरीक्ष्यानुत्थितांसेनांतांचगंगांशिवोदकाम् ॥ भरतःसचिवान्सर्वानब्रवीद्वाक्यकोविदः ॥ २२ ॥ निवेशयतमेसैन्यमभिप्रायेणसर्वतः ॥ विश्रांताःप्रतरिष्यामःश्वइमांसागरंगमाम् ॥ २३ ॥ दातुंचतावदिच्छामिस्वर्गतस्यमहीपतेः ॥ और्ध्वदेहनिमित्तार्थमवतीर्योदकंनदीम् ॥ २४ ॥

कर उनके पीछे २ चली ॥ १८ ॥ और जाते २ सब रथ, यान, हाथी, घोडोंपर चढ बहुत दूर चले कि, श्रृंगवेरनगरमें गंगाजीके किनारे पहुँचे ॥१९॥ जहां रामचन्द्रजीका सखा श्रृंगवेरपति वीर गुह अपनी बिरादरीके साथ बसता हुआ सदा अतिसावधानीसे उस देशकी रक्षा किया करता था ॥२०॥ भरतजीके संग चलनेवाली चतुरंगसेना चक्रवाक भूषित भागीरथी गंगाजीके किनारे पहुँचकर वहीं टिकही ॥ २१ ॥ वचन बोलनेमें चतुर भरतजी अपनी सेनाको टिकी देख व सुखद गंगाजीका जल निहार सब मंत्रियोंसे बोले ॥२२॥ किमेरी इच्छामें यह आता है कि, आज विश्राम करके कल समुद्रमें जानेवाली गंगा जीके पार होना चाहिये, अतएव सब सेनाको इच्छानुसार सब जगह टिका दो ॥२३॥ क्योंकि स्वर्गवासी महाराज दशरथजीको परलोकके लिये हम जलदान

गंगाजीमें कल पार होनेके समय करेंगे ॥२४॥ जब भरतजीने इस प्रकार कहा तब मंत्री लोगोंने जो आज्ञा ऐसा कहकर एकान्त चित्तसे अलग २ सब समाजके लोगोंको उनकी इच्छानुसार जहां तहां टिका दिया ॥ २५ ॥ महाभाग भरतजी महानदी गंगाजीके किनारे यथाविधानसे अनेक परिच्छेदसे शोभित अपनी सेनाको टिकाकर यह चिन्ता करने लगे—किस भांतिसे रामचन्द्रजीको लौटाकर लावें, केवल इसी विषयको सोचते हुए वहां वास करते हुए ॥ २६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयोध्याकांडे भाषायां त्र्यशीतितमः सर्गः ॥ ८३ ॥ इधर भरतजीकी चतुरंगिणी सेनागंगाजीके किनारे चारों ओर पड़ी हुई देखकर गुह अपनी बिरादरीवाले लोगोंसे बोला॥ १ ॥ गंगाजीके किनारे जो यह समुद्रके समान पडी हुई सेना दीखती है सो हम इसके अन्तको मनसेभी शोचते हैं परन्तु नहीं पाते ॥२॥ जो यह महाकाय भरतजी खोटी बुद्धि धारण कर रथपर चढ यहां आये तो निश्चयही रामचन्द्रजीसे वैरभाव रखते होंगे जब कि, रथपर

तस्यैवंब्रुवतोऽमात्यास्तथेत्युक्त्वासमाहिताः ॥ निवेशयंस्तांछंदेनस्वेनस्वेनपृथक्पृथक् ॥२५॥ निवेश्यगंगामनुतांमहानदींचमूंविधानैःपरिबर्ह-शोभिनीम् ॥ उवासरामस्यतदामहात्मनोविचिंतमानोभरतोनिवर्तनम् ॥ २६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० अयोध्याकांडेत्र्यशीतितमः सर्गः ॥ ८३ ॥ ततोनिविष्टांध्वजिनींगंगामन्वाश्रितांनदीम् ॥ निषादराजोदृष्ट्वैवज्ञातीन्सपरितोऽब्रवीत् ॥ १ ॥ मपतीयमितःसेनासागराभाप्रदृश्यते ॥ नास्यांतमवगच्छामिमनसापिविचिंतयन् ॥२॥ यदातुखलुदुर्बुद्धिर्भरतःस्वयमागतः ॥ सएषहिमहा-कायःकोविदारध्वजोरथे ॥ ३ ॥ बंधयिष्यतिवापाशैरथवास्मान्वधिष्यति ॥ अनुदासरथिरामंपित्राराज्याद्विवासितम ॥ ४ ॥ संपन्नांश्रिय-मन्विच्छंस्तस्यराज्ञःसुदुर्लभाम् ॥ भरतःकैकेयीपुत्रोहंतुंसमुपगच्छति ॥ ५ ॥ भर्ताचैवसखाचैवरामोदाशरथिर्मम ॥ तस्यार्थकामाःसन्नद्धा गंगानूपेत्रतिष्ठत ॥६॥ तिष्ठंतुसर्वेदाशाश्चगंगामन्वाश्रितानदीम् ॥ बलयुक्तानदीरक्षामांसमूलफलाशनाः ॥ ७ ॥ नावाशतानांपंचानांकैवर्तानां शतंशतम् ॥ सन्नाद्धानांतथायूनांतिष्ठंत्वित्यभ्यचोदयत् ॥ ८ ॥

बड़ी ऊंची कोपिदारकी ध्वजा सोहती है॥३॥तब ऐसा समझ पडता है कि; या तो भरतजी हमें वरुणकी फांसीसे बांधही लेंगे, या तब एकबारही मारडालेंगे और हम सब को इस प्रकार करकराकर पिताके राज्यसे निकले हुए रामचन्द्रजीका वध करेंगे॥४॥फलत कैकेयीके पुत्र भरतजी यह परमदुर्लभ राजश्री भलीभांति अपने अधिकारमें रहनेहीके मनसासे रामचन्द्रजीको मार डालनेकी इच्छा किये जाते हैं ॥५॥ परन्तु वह दशरथकुमार रामचन्द्रजी हमारे स्वामी सखा सब कुछ हैं अतएव तुम सब लोग उनके प्रयोजनके लिये कवच व हथियार बांधकर गंगाकी कछाडेमें तैयार रहो॥६॥ हमारे अधीनके दास लोग सबही गंगाजीके घाटोंको रखाते रहो और फल मूल मांस भक्षण करते रहकर बलवान् हो क्षणमात्रको भी कोई यहांसे न हटे ॥ ७ ॥ पाँचसौ वहने योग्य नावे यहां लगाई जायं और उन एक २ नाव

पर सौ सौ कैवर्त्त और सौ सौ लडाके बख्तरादि पहन पहना कर तैयार इस जगह पर बैठ रहें॥८॥ भरतजी यदि रामचन्द्रजीसे वैर न रखकर उनसे प्रसन्न होंगे तबही उनकी यह सेना आज कुशलपूर्वक गंगापार जायगी नहीं तो नहीं॥९॥ अपने नौकर चाकरोंको यह आज्ञादे निषादपति गुह मछलियां, मांस और शहद यह भेट लेकर भरतजीके पासको चला ॥१०॥ प्रतापशाली समयके जाननेवाले सुमंत्रजी निशादको आता हुआ देखकर बहुतही विनीतभावसे भरतजीसे बोले ॥ ११ ॥ अपनी बिरादरीवाले सहस्रों मनुष्योंके संग साधूत्तम यह वृद्ध गुह आपके भ्राता रामचन्द्रजीका सखा है और विशेषतः यह वनका सबही वृत्तांत जानता है ॥१२॥ उसीसे हे काकुत्स्थनन्दन! यह निषादाधिपति गुह आपको देखताही चला आता है और निश्चय यह भी जानता होगा कि, रामचन्द्र व लक्ष्मणजी कहां हैं ॥१३॥ सुमंत्रजीके यह शुभ वचन श्रवण करके भरतजीने कहा कि, किसी प्रकार शीघ्रही निषादपति हमको देखे, उसको बिना रोके टोके

यदितुष्टस्तुभरतोरामस्येहभविष्यति ॥ इयंस्वस्तिमतीसेनागंगामद्यतरिष्यति ॥९॥ इत्युक्त्वोपायनंगृह्यमत्स्यमांसमधूनिच ॥ अभिचक्राम भरतंनिषादाधिपतिर्गुहः ॥१०॥ तमायांतंतुसंप्रेक्ष्यसूतपुत्रःप्रतापवान् ॥ भरतायाचचक्षेऽथसमयज्ञोविनीतवत् ॥११॥ एषज्ञातिसहस्रेणस्थपतिःपरिवारितः ॥ कुशलोदंडकारण्येवृद्धोभ्रातुश्चतेसखा ॥ १२ ॥ तस्मात्पश्यतुकाकुत्स्थत्वांनिषादाधिपोगुहः ॥ असंशयंविजानीतेयत्रतौ रामलक्ष्मणौ ॥१३॥ एतत्तुवचनंश्रुत्वासुमंत्राद्भरतःशुभम् ॥ उवाचवचनंशीघ्रंगुहःपश्यतुमामिति ॥१४॥ लब्धानुज्ञःसंप्रहृष्टोज्ञातिभिः परिवारितः ॥ आगम्यभरतंप्रह्वोगुहोवचनमब्रवीत् ॥१५ ॥ निष्कुटश्चैवदेशोऽयंवंचिताश्चापितेवयम् ॥ निवेदयामतेसर्वेस्वकेदाशगृहेवस ॥१६॥ अस्तिमूलफलंचैतन्निषादैःस्वयमर्जितम् ॥ आर्द्रंशुष्कंयथामांसंवन्यंचोच्चावचंतथा॥ १७ ॥ आशंसेस्वाशितासेनावत्स्यत्येनांविभावरीम् ॥ अर्चिताविविधैःकामैःश्वःससैन्योगमिष्यसि ॥ १८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्वा० वाल्मी० आदिकाव्ये अयोध्याकांडे चतुरशीतितमः सर्गः ॥८४॥

हमारे पास आने दो ॥ १४ ॥ तदनन्तर गुह भरतजीकी आज्ञा पाकर परम संतुष्ट और अपनी जाति बिरादरीवाले लोगोंके भरतजीके समीप जाकर उनको शिर नवाय हाथ जोडकर बोला ॥ १५ ॥ आपने यहां आगमन करनेके पहले अपने दासोंको कोई आज्ञा नहीं पठाई इससे हम लोगोंको अपने अनुग्रहसे आपने वंचित किया जो हो इस समय सब राज्य आपके निवेदन है आप मुझे अपना दास समझकर मेरे घर वस मुझे पवित्र कीजिये ॥ १६ ॥ इस समय निषादगणोंद्वारा अपने हाथसे लाई यह कंद मूल फल सूखा गीला मांस इसके सिवाय वनकी नानाप्रकारकी छोटी बडी चीज वस्तुओंके ग्रहण करनेकी आज्ञा हो जाय ॥१७॥ मेरे मनमें एक यही बडी भारी अभिलाषा है कि, सब सेना मेरे घरमें आज रात भोजन करके टिकै और आपभी आज मुझकरके भली भांति विविध काम वस्तुओं द्वारा पूजे जाकर कल यात्रा कीजिये ॥ १८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्वा० वा ० आ ० अयो ० भाषायां चतुरशीतितमः सर्गः ॥ ८४ ॥

जब निषादराज गुहने इस प्रकार कहा तो परमप्राज्ञ भरतजी हेतुयुक्त और अर्थसंगत वचनोंसे उत्तर देतेहुए॥१॥ हे गुह मित्र! इससमय हमारी सेनाकी विशेष पहुनाई करनेको जो तुमने अभिलाषाकी है और हमारे गुरु रामचन्द्रजीकी सेवा भी कर चुके हो सो बस इन दोनों बातोंसेही हमारा भलीभाँति सत्कार होगया ॥२॥ परमतेजस्वी श्रीमान् भरतजी इस प्रकार श्रेष्ठ वचनोंके द्वारा गुहसे संभाषणकर मार्गजाननेको फिर उससे बोले ॥३॥ गंगाजीके जलसे व्याप्त हुआ यह देश सहजसे प्रवेश करने वा उतरनेके योग्य नहीं है, अतएव किस रास्तेसे कितने दिनोंमें यहांसे भरद्वाजजीके आश्रममें हम पहुँचेंगे ॥४॥ श्रीमान् राजकुमार भरतजीके यह वचन सुनकर सब दुर्गम स्थानोंके कर्मका जाननेवाला गुह हाथजोडकर भरतजीसे बोला ॥५॥ हे महाबलवान्! राजकुमार! देशमें वहां. या है इसके विषयमें भलीभांति जान रखनेवाले दासलोग भलीभांति विवादरहित होकर साथ चलेंगे और मैं भी आपके संग चलूंगा ॥ ६ ॥ मैं इस समय यह जानना चहता हूं

एवमुक्तास्तुभरतोनिषादाधिपतिंगुहम् ॥ प्रत्युवाचमहाप्राज्ञोवाक्यंहेत्वर्थसंहितम् ॥१॥ ऊर्जितःखलुतेकाम कृतोममगुरोःसखे॥ योमेत्वमीदशीं सेनामभ्यर्चयितुमिच्छसि ॥२॥ इत्युक्त्वासमहातेजागुहंवचनमुत्तमम् ॥ अब्रवीद्भरतःश्रीमान्पंथानंदर्शयन्पुनः ॥३॥ कतरेणगमिष्यामिभरद्वा-जाश्रमंपथा ॥ गहनोऽयंभृशंदेशोगंगानूपोदुरत्ययः ॥४॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाराजपुत्रस्यधीमतः ॥ अब्रवीत्प्रांजलिर्भूत्वागुहोगहनगोचरः ॥५॥ दाशास्त्वानुगमिष्यंतिदेशज्ञाःसुसमाहिताः ॥ अहंचानुगमिष्यामिराजपुत्रमहाबल ॥ ६ ॥ कच्चिन्नदुष्टोव्रजसिरामस्याक्लिष्टकर्मणः ॥ इयंते महतासेनाशंकांजनयतीवमे ॥७॥ तमेवमभिभाषंतमाकाशइवनिर्मलः ॥ भरतःश्लक्ष्णयावाचागुहंवचनमब्रवीत् ॥८॥ माभूत्सकालोयत्कष्टंनमां शंकितुमर्हसि ॥ राघवःसहिमेभ्राताज्येष्ठःपितृसमोमतः ॥९॥ तंनिवर्तयितुंयामिकाकुत्स्थंवनवासिनम् ॥ बुद्धिरन्यानमेकार्यागुहसत्यंब्रवामिते ॥१०॥ सतुसंहृष्टवदनःश्रुत्वाभरतभाषितम् ॥ पुनरेवाब्रवीद्वाक्यंभरतंप्रतिहर्षितः ॥ ११ ॥ धन्यस्त्वंनत्वयातुल्यंपश्यामिजगतीतले ॥ अय-त्नादागतंराज्यंयस्त्वंत्यक्तुमिहेच्छसि ॥ १२ ॥

कि, आप पुण्यकर्म करनेवाले रामचन्द्रजीके साथ कुछ खोटे अभिप्रायसे तो नहीं जाते? आपकी यह बड़ी भारी सेना देखकर मेरे मनमें अत्यन्त शंका होती है ॥ ७ ॥ गुहके इस प्रकार कहनेपर आकाशके समान निर्मल स्वभाव भरतजी निषादसे बोले ॥ ८ ॥ रामचन्द्रजी हमारे बडे भाई और पिताके समान हैं अतएव तुमको हमारे प्रति किसी प्रकारका संदेह न करना चाहिये भगवान् हमसे कभी रघुनंदन रामचन्द्रजीका अनहित न करावे ॥९॥ हे गुह! हम सत्य कहते हैं कि, हम वनवासी काकुत्स्थनन्दन रामचन्द्रजीको वनसे लौटानेके लियेही जाते हैं सो हमारे ऊपर और किसी भांतिकी शंका तुम मत करो ॥१०॥ भरतजीसे यह वार्त्ता सुनकर गुहका वदन प्रफुल्ल होगया वह हर्षित हो फिर भरतजीसे बोला ॥११॥ कि, हे महाराज! आपही धन्य हैं मुझे पृथ्वीमें आपकेसमान कोई दूसरा

दृष्टि नहीं आता, क्योंकि आप अयत्नसे प्राप्त हुए राज्यको त्याग करनेके लिये तैयार हुए हैं ॥ १२ ॥ और आपने जो वनवासी रामचन्द्रजीको फिर लौटालानेकी इच्छा की है उससे निश्चयही आपकी अकीर्ति क्षय होकर सब लोकोंमें यश फैल जायगा ॥१३॥ गुह और भरतजीमें इस प्रकारकी वार्त्ता होते२ सूर्यकी प्रभा नष्ट होगई और रात्रि हो आई ॥१४॥ तब सेनाको जिस २ वस्तुकी आवश्यकता थी सब गुहने मँगा दिया और सब सेना संतुष्ट हो ठौर २ पर सोई व भरतजीभी शत्रुघ्नजीके साथ एक आशनपर विराजे ॥१५॥ उस समय दुःखके न सहने योग्य धर्मविरत महात्मा भरतजीको चिंता करते २ ऐसा शोक उत्पन्न हुआ कि, वह वर्णन नहीं हो सकता॥१६॥ खोडलवाला अग्नि जिस प्रकार दावानलसे सताये हुये वृक्षको दग्ध करता है वैसेही भरतजी उस शोकानलसे भीतरही भीतर जलने लगे

शाश्वतीखलुतेकीर्तिर्लोकाननुचरिष्यति ॥ यस्त्वंकृच्छ्रगतंरामंप्रत्यानयितुमिच्छसि ॥१३॥ एवंसंभाषमाणस्यगुहस्यभरतंतदा ॥ बभौनष्टप्रभः सूर्योरजनीचाभ्यवर्तत ॥१४॥ सन्निवेश्यसतांसेनांगुहेनपरितोषितः ॥ शत्रुघ्नेनसमंश्रीमाञ्छयनंपुनरागतम् ॥१५॥ रामचिंतामयःशोकभत-स्यमहात्मनः ॥ उपस्थितोह्यनर्हस्यधर्मप्रेक्ष्यस्यतादृशः ॥ १६ ॥ अंतर्दाहेनदहनःसंतापयतिराघवम् ॥ वनदाहाग्निसंतप्तंगूढोऽग्निरिवपादपम् ॥ १७ ॥ प्रसूतःसर्वगात्रेभ्यःस्वेदंशोकाग्निसंभवम् ॥ यथासूर्यांशुसंतप्तोहिमवान्प्रसृतोहिमम् ॥१८॥ ध्याननिर्दरशैलेनविनिःश्वसितधातुना दैन्यपादपसंघेनशोकायासाधिशृंगिणा ॥१९॥ प्रमोहानंतसत्त्वेनसंतापौषधिवेणुना ॥ आक्रांतोदुःखशैलेनमञ्जताकैकयीसुतः ॥२०॥ विनिःश्वसन्वैभृशदुर्मनास्ततःप्रमूढसंज्ञःपरमापदंगतः ॥ शमंनलेभेहृदयज्वरार्दितोनरर्षभोयूथहतोयथर्षभः ॥ २१ ॥

॥१७॥ सूर्यकी किरणोंसे गरम होनेपर हिमालयसे जिस प्रकार बर्फ गलकर गिरता है वैसेही भरतजीके सब अंगोंसे उत्पन्न हुआ पसीना निकलने लगा ॥१८॥ उस समय भरतजी बडे भारी दुःखके पर्वतसे दब गये जिस शोक पर्वतमें रामचन्द्रजीका उत्कंठा पूर्वक ध्यान वही मानो छिद्र रहित शिला है, वारंवार लम्बे२ श्वास लेना गेरू इत्यादि धातु हैं, दीनता जो है वही वृक्षोंके समूह है, बड़ा भारी शोकका फैलाव वही मानो कंगूरा है॥१९॥ भारी मोह वही अनन्त जीव शोकसे संताप वही औषधि और वास है इस भांतिके शोकरूपी पहाडसे भरतजी दब गये ॥२०॥ इस प्रकार बडी भारी आपदामें भरतजी फँसे उनकी चेतना जाने लगी और मन अत्यन्त व्याकुल हो गया, दीर्घ श्वास लेने लगे, और भीतरी अन्तरमें उनके दाह होने लगा, वह झुंडसे बिछुडे बैलकी भांति किसी प्रकारसे भी-

शांति नहीं पा सके ॥२१॥ इस समय गुहसे मिले महानुभाव भरतजी परिवार सहित एकाग्र चित्तसे बड़े भाई रामचन्द्रजीकी चिंता करते हुए बहुत दुःखित हुए तब निषादराज गुहने उसको बहुत समझाया बुझाया ॥ २२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयोध्याकांडे भाषायां पंचाशीतितमः सर्गः ॥ ८५ ॥

अनन्तर गहन वनवासी गुह अमितगुणशाली भरतजीसे रामचन्द्रजीके प्रति महात्मा लक्ष्मणजीका जो सद्भाव था वह कहने लगा ॥ १ ॥ कि, रामचन्द्रजीने जब शयन किया तब गुणवान् लक्ष्मणजी रामचन्द्रजीकी रक्षाके लिये धनुषपर रोदेको चढाय वीरासन मारकर बैठे तब मैंने उनसे कहा ॥२॥ तात रघुनन्दन! आपके लिये यह सुखकी देनेवाली सेज तैयारकी गई है आप सुखसहित इस पर सो जाइये, और रामचन्द्रजीके लिये कुछ शंका न कीजिये, और शोक व चिंता

गुहेनसार्धंभरतःसमागतोमहानुभावःसजनःसमाहितः ॥ सुदुर्मनास्तंभरतंतदापुनःशनैःसमाश्वासयदग्रजंप्रति ॥२२॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० अयोध्याकांडे पंचाशीतितमः सर्गः ॥८५॥ आचचक्षेऽथसद्भावंलक्ष्मणस्यमहात्मनः ॥ भरतायाप्रमेयायगुहोगहनगोचरः ॥१॥ तंजाग्रतंगुणैर्युक्तंवरचापेषुधारिणम् ॥ भ्रातृगुप्त्यर्थमत्यंतमहंलक्ष्मणमब्रुवम् ॥२॥ इयंतातसुखाशय्यात्वदर्थमुपकल्पिता ॥ प्रत्याश्वसिहिशेष्वास्यांसुखंराघवनंदन ॥ ३ ॥ उचितोऽयंजनःसर्वोदुःखानांत्वंसुखोचितः ॥ धर्मात्मंस्तस्यगुप्त्यर्थंजागरिष्यामहे वयम् ॥ ४ ॥ नहिरामात्प्रियतरोममास्तिभुविकश्चन ॥ मोत्सुकोभूर्ब्रवीम्येतदथसत्यंतवाग्रतः ॥ ५ ॥ अस्यप्रसादादाशंसेलोकेऽस्मिन्सुमहद्यशः ॥ धर्मावाप्तिंचविपुलामर्थकामौचकेवलौ ॥६॥ सोऽहंप्रियसखंरामंशयानंसहसीतया ॥ रक्षिष्यामिधनुष्पाणिःसर्वैःस्वैर्ज्ञातिभिःसह ॥७॥ नहिमेऽविदितंकिंचिद्वनेऽस्मिंश्चरतःसदा ॥ चतुरंगंह्यपिबलंप्रसहेमवयंयुधि ॥ ८ ॥

का त्याग कर दीजिये ॥ ३ ॥ साधारण मनुष्यही इन दुःखोंके भोग्य हैं, परंतु आप सब प्रकारसे सुख पानेके लायक हैं अतएव हे धर्मात्मन! आप सोइये हमही लोग रामचन्द्रजीकी रक्षाके लिये जागते रहेंगे ॥४॥ अथवा आपके आगे मैं सत्यही सत्य कहता हूं कि, रामचन्द्रजीसे अधिक प्रियतम हमारा पृथ्वीपर और कोई नहीं है इसमें कुछ शंका न कीजिये और बेखटके सो जाइये ॥५॥ रामचन्द्रजीके प्रसादसे मैं इस लोकमें विपुल यश व धर्म, अर्थ और कामके प्राप्त होने की आशा करता हूं ॥ ६ ॥ अतएव मैं जाति बिरादरी वालोंके साथ धनुषबाण धारण करके सीताजीके सहित निद्रित प्रियसखा रामचन्द्रजीकी रक्षा करूंगा ॥७॥ मैं सदा इस वनमें घूमा करता हूं, बस यहां कोई बात ऐसी नहीं है जो मुझको मालूम न हो, और इसके अतिरिक्त चतुरंगिणी सेनाका वेगभी हम सहन

कर सकते हैं ॥८॥ जब इस 'प्रकारसे मैंने कहा तब धर्ममें निष्ठा किये हुए महात्मा लक्ष्मणजी हम सबको नीतिभावसे यह सिखाने लगे ॥९॥ दशरथनन्दन रामचन्द्रजी तो देवी सीताजीकेसहित पृथ्वीपर सो रहे हैं तब भला फिर हम किस प्रकारसे इस सेजपर सोवें प्राणोंके सुखदेनेवाले सब सुखोंको कैसे भोग सकें ॥१०॥ समस्त देव, दावन युद्धमें जिनका पराक्रम नहीं सह सकते; हे गुह ! देखो वही रामचन्द्रजी आज सीताजीके साथ तृणोंकी साथरी पर सोये हैं ॥११॥ जिनको कि, महाराजने अनेक भांतिके परिश्रम और बड़ी तपस्या करके पाया है अतएव इन रामचन्द्रजीके वनवासी होनेसे राजा दशरथ और अधिक दिन नहीं जियेंगे पृथ्वी शीघ्रही विधवा होगी ॥१२॥१३॥ आज राजाकी स्त्रियें सारे दिन ऊंचे स्वरसे रोय२ अब थमकर चुप बैठी होंगी निश्चय ही सब राजभवन आज एक बारही निःशब्द होगा ॥१४॥ फलतः कौशल्या, राजा व हमारी माता सुमित्रा इन तीनोंकी इस रात्रिमें बच जानेकी किसी प्रकार आशा नहीं की जाती यह

एवमस्माभिरुक्तेनलक्ष्मणेनमहात्मना ॥ अनुनीतावयंसर्वेधर्ममेवानुपश्यता ॥९॥ कथंदाशरथौभूमौशयानेसहसीतया ॥ शक्यानिद्रामयालब्धुंजीवितानिसुखानिवा ॥ १० योनदेवासुरैःसर्वैःशक्यःप्रसहितुयुधि ॥ तंपश्यगुहसंविष्टंतृणेषुसहसीतया ॥ ११ ॥ महतातपसालब्धोविविधैश्चपरिश्रमैः ॥ एकोदशरथस्यैषपुत्रःसदृशलक्षणः ॥१२॥ अस्मिन्प्रव्राजितेराजानचिरंवर्तयिष्यति ॥ विधवामेदिनीनूनंक्षिप्रमेवभविष्यति ॥१३॥ विनद्यसुमहानादंश्रमेणोपरताःस्त्रियः ॥ निर्घोषोविरतोनूनमद्यराजनिवेशने ॥१४॥ कौसल्याचैवराजाचतथैवजननीमम ॥ नाशंसेयदितेसर्वेजीवेयुःशर्वरीमिमाम् ॥ १५ ॥ जीवेदपिचमेमाताशत्रुघ्नस्यान्ववेक्षया ॥ दुःखितायाहिकौसल्यावीरसूर्विनशिष्यति ॥ १६ ॥ अतिक्रांतमतिक्रांतमनवाप्यमनोरथम् ॥ राज्येराममनिक्षिप्यपितामेविनशिष्यति ॥१७॥ सिद्धार्थाःपितरंवृत्तंतस्मिन्कालेह्युपस्थिते ॥ प्रेतकार्येषुसर्वेषुसंस्करिष्यंतिभूमिपम् ॥ १८ ॥ रम्यचत्वरसंस्थानांसुविभक्तमहापथाम् ॥ हर्म्यप्रासादसंपन्नांसर्वरत्नविभूषिताम् ॥ १९ ॥

अवश्यही मृतक होगये होंगे ॥१५॥ अथवा यदि जीते भी रहे तो केवल इसी रात्रि तक अधिक नहीं, वा हमारी माता देवी सुमित्रा शत्रुघ्नका मुख देखकर जी सकती हैं परंतु इसमें कोई सन्देह नहीं कि, वीरजननी कौशल्याजी इस प्रकारकी अवस्थामें प्राण त्याग कर देंगी ॥१६॥ पिताजी रामचन्द्रजीको राज्यदेनेका मनोरथ करके फिर एक बारही उस मनोरथको पूरा नहीं करने पाये अतएव श्रीरामचन्द्रजीको राज्याभिषेक न दे सकनेसे अवश्यही मर जायँगे। १७॥ इस भांति समय उपस्थित होनेपर जबकि, पिताजी परलोकमें गमन करेंगे उस समय जो उसके समस्त प्रेतकार्य करेंगे वही लोग भाग्यवान् पुरुष हैं ॥१८॥ अहो! पिताजीकी राजधानीमें अयोध्या रमणीय चौराहों करके युक्त बडे २ मार्गोंमें विभक्त धवरहर व अटारियों और सब प्रकारके रत्नोंसे विभूषित ॥ १९ ॥

हाथी, घोडे और रथोंसे परिपूर्ण विविध भांति के तुरही भेरी इत्यादि बाजोंसे शब्दायमान सब कल्याणोंसे परिपूर्ण सदाही हृष्ट पुष्ट जनोंसे व्याप्त ॥२०॥ और फूलवाटिका उपवन जहां विद्यमान्, सभायें व उत्सवोंसे शोभित ऐसी पुरी में जो लोग विचरण करेंगे वही धन्य हैं और यथार्थ में वही सुखी हैं ॥ २१ ॥ हे गुह ! चौदह वर्षके अन्तमें इस व्रतको पालन कर क्या हम भी सत्यप्रतिज्ञ रामचन्द्रजी के सहित कुशल पूर्वक अयोध्या पुरीमें सुखसे प्रवेश करेंगे ॥ २२ ॥ राजकुमार महात्मा लक्ष्मणजी धनुष बाण हाथमें लिये खड़े रहे और इस प्रकारसे विलाप करते व खडेही खडे सबेरा होगया ॥२३॥ प्रातःकाल निर्मल सूर्य नारायणका उदय हुआ इनही भागीरथीजीके किनारे दोनों भाइयोंने जटा बनाई, फिर हमने नावपर चढाय सुख सहित उनको गंगाके पार उतार दिया ॥ २४ ॥ उस समय हस्तियूथ सदृश महाबलवान् तेजस्वी शत्रुओंके दमन करनेवाले राम लक्ष्मणजी कुछ देर दानकरके जटा व चीर वल्कल धार श्रेष्ठ तरकस और धनुषग्रहण करके सीताजी

गजाश्वरथसंबाधांतुर्यनादविनादिताम् ॥ सर्वकल्याणसंपूर्णांहृष्टपुष्टजनाकुलाम् ॥ २० ॥ आरामोद्यानसंपूर्णांसमाजोत्सवशालिनीम् ॥ सुखिताविचरिष्यंतिराजधानींपितुर्मम ॥ २१ ॥ अपिसत्यप्रतिज्ञेनसार्धंकुशलिनावयम् ॥ निवृत्तेसमयेह्यस्मिन्सुखिताःप्रविशेमहि ॥ २२ ॥ परिदेवयमानस्यतस्यैवंहिमहात्मनः ॥ तिष्ठतोराजपुत्रस्यशर्वरीसात्यवर्तत ॥२३॥ प्रभातेविमलेसूर्येकारयित्वाजटाउभौ ॥ अस्मिन्भागीरथी-तीरेसुखंसंतारितौमया ॥ २४ ॥ जटाधरौतौद्रुमचीरवाससौमहाबलौकुंजरयूथपोपमौ ॥ वरेषुधीचापधरौपरंतपौव्यपेक्षमाणौसहसीतयागतौ ॥ २५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० अयोध्याकांडे षडशीतितमः सर्गः ॥ ८६ ॥ गुहस्यवचनंश्रुत्वाभरतो भृशमप्रियम् ॥ध्यानंजगामतत्रैवयत्रतच्छ्रुतमप्रियम् ॥१॥ सुकुमारोमहासत्त्वःसिंहस्कंधोमहाभुजः ॥ पुंडरीकविशालाक्षस्तरुणःप्रियदर्शनः ॥२॥ प्रत्याश्वस्यमुहूर्तंतुकालंपरमदुर्मनाः ॥ ससादसहसातोत्रैर्हृदिविद्धइवद्विपः ॥३॥ भरतंमूर्च्छितंदृष्ट्वाविवर्णवदनोगुहः ॥ बभूवव्यथितस्तत्रभू-मिकंपेयथाद्रुमः ॥ ४ ॥

के सहित मेरी ओरको देखते हुए चले गये ॥२५॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयोध्याकांडे भाषायां षडशीतितमः सर्गः ॥८६॥ भरतजी गुहके यह महाअप्रिय वचन कि, लक्ष्मणजी ने इस प्रकार विलाप किया था सुनकर वहां पर रामचन्द्र रघुनंदनजी का ध्यान करने लगे ॥१॥ जिन भरतजी के भुजयुगल अतिविशाल कंधे केहरी के समान ऊंचे दोनों नेत्र कमल दलके समान बडे २ जो बहुत ही धैर्यवान सुकुमार युवा अवस्था को प्राप्त व अतिप्रिय दर्शन थे ॥ २ ॥ वार्त्ता सुनते ही उनका मन बहुत ही व्याकुल होगया, फिर एक मुहूर्त्तके पीछे वह कुछ धीरज धरते हुए, तदनन्तर फिर व्याकुल होकर मूर्च्छित होगये जिस प्रकार हाथीके हृदयमें अंकुश विध जावे और वह व्याकुल होकर गिर पड़ता है ॥३॥ भरतजीको मूर्च्छित देखकर निषादराजका वदन मलीन होगया और

वह इस प्रकारसे व्यथित हुए कि, जैसे भूमिकंप होनेसे वृक्ष कांपता है ॥४॥ निकटही बैठे हुए शत्रुघ्नजी भी उस अवस्थाको प्राप्त हुए भरतजीसे मिलकर बड़े २ जोरसे शोकाच्छन्न और चेतनारहित होकर रोदन करने लगे ॥ ५ ॥ यह देखकर भरतजी की सब मातायें वहां चली आई वह उपवाससे और पतिके वियोगसे बहुत ही दुर्बल होरहीं और बहुतही दीन थीं ॥६॥ सब वहां आईं जहां भरतजी पृथ्वी पर पडे थे और उनको चारों ओरसे घेर रोने लगीं कौशल्याजीने बनाय निकट आकर अधिक व्याकुल चित्त हो भरतजीको उठाय हृदयसे लगा लिया ॥७॥ अनन्तर वह पुत्र वत्सला तपस्विनी कौशल्याजी अपने ही पुत्रके समान भरतजीको हृदयसे लगाती हुई और शोक करती हुई रोय २ उनसे पूछने लगीं ॥८॥ बेटा ! कोई रोग तो तुम्हारे शरीरको दुःख नहीं देता ? हाय ! इस राजकुल का अब कोई नहीं रहा ! इस समय तुमही इसके एक जीवनमें सहारे हो ॥९॥ भैया रामचन्द्र भ्राताके सहित इस समय वनको गये हैं राजा स्वर्गको सिधारे अब हम केवल तुम्हारा ही मुख

तदवस्थंतुभरतंशत्रुघ्नोऽनंतरस्थितः ॥ परिष्वज्यरुरोदोच्चैर्विसंज्ञःशोककर्शितः ॥५॥ ततःसर्वाःसमापेतुर्मातरोभरतस्यताः ॥ उपवासकृशादानाभर्तृव्यसनकर्शिताः ॥ ६ ॥ ताश्चतंपतितभूमौरुदत्यःपर्यवारयन् ॥ कौसल्यात्वनुसृत्यैनंदुर्मनाःपरिषस्वजे ॥ ७ ॥ वत्सलास्वयथा वत्समुपगुह्यतपस्विनी ॥ परिपप्रच्छभरतंरुदतीशोकलालसा ॥८॥ पुत्रव्याधिर्नतेकच्चिच्छरीरंप्रतिबाधते ॥ अस्यराजकुलस्याद्यत्वदधीनंहि जीवितम् ॥९॥ त्वांदृष्ट्वापुत्रजीवामिरामेसभ्रातृकेगते ॥ वृत्तेदशरथेराज्ञिनाथएकस्त्वमद्यनः ॥१०॥ कच्चिन्नलक्ष्मणेपुत्रश्रुतंतेकिंचिदप्रियम् ॥ पुत्रवाह्येकपुत्रायाःसहभार्येवनंगते ॥११॥ समुहूर्तंसमाश्वस्यरुदन्नेवमहायशाः ॥ कौसल्यांपरिसांत्व्येदंगुहंवचनमब्रवीत् ॥ १२ ॥ भ्रातामे क्वावसद्रात्रिंक्वसीताक्वचलक्ष्मणः ॥ अस्वपच्छयनेकस्मिन्किंभुक्त्वागुहशंसमे ॥ १३ ॥ सोऽब्रवीद्भरतंहृष्टोनिषादाधिपतिर्गुहः ॥ यद्विधंप्रति पेदेचरामेप्रियहितेतिथौ ॥ १४ ॥ अन्नमुच्चावचंभक्ष्याःफलानिविविधानिच ॥ रामायाभ्यवहारार्थंबहुशोपहृतंमया ॥ १५ ॥ तत्सर्वंप्रत्यनुज्ञासीद्रामःसत्यपराक्रमः ॥ नहितत्प्रत्यगृह्णात्स क्षत्रधर्ममनुस्मरन् ॥ १६ ॥

देखकर जी रही हैं सो तुम्हारे सिवाय कोई इस समय दूसरा ऐसा नहीं है जो हमारी सबकी रक्षा करे ॥१०॥ बेटा ! लक्ष्मणजीकी तो कोई अप्रिय वार्त्ता नहीं सुनी ! अथवा हमारे जो एक पुत्रके अतिरिक्त दूसरा नहीं है और वह भी स्त्री सहित वनको गये उनकी तो कोई अमंगल वार्त्ता नहीं सुनी ॥११॥ परम यशस्वी भरतजी एक मुहूर्त्तमें चेतना पाकर रोय २ कौशल्याजी को समझाने बुझाने लगे और निषादसे बोले ॥१२॥ हे गुह ! हमारे भैया रामचन्द्रजी ने कहां रात्रि बिताई थी और क्या भोजन करके किस आसन पर सोये थे ! सीता और लक्ष्मण कहां थे ? यह सब हमसे कहो ॥१३॥ निषादराज गुहने रामचन्द्रजी सरीखे प्रिय व उपकारी अतिथिके प्रति कैसा व्यहार किया था उनकी निषाद गुह हर्षसहित वर्णन करने लगा और बोला ॥ १४ ॥ कि, रामचन्द्रजी के भोजन करनेके लिये अनेक प्रकारके अन्न खाने योग्य खट्टे, तीखे, मीठे सब प्रकार के फल मैं लाया था ॥१५॥ सत्य पराक्रम रामचन्द्रजीने मुझपर अनुग्रह करनेके लिये सब चीज वचन मात्रसे ग्रहण करली

पर इस धर्मके अनुसार कि, क्षत्रिय किसीकी दी हुई चीज नहीं लेते वह सब चीज वस्तु मुझको ही फेर दी ॥१६॥ और मुझसे यह कहा–सखे! हम क्षत्रिय हैं यह हमारा धर्म है कि, सदा सबको सब कुछ देते रहें न कि लें! यह कहकर उन महात्माने हम सबके ऊपर अनुग्रह किया ॥१७॥ अनन्तर महात्मा लक्ष्मणजीने जल ला दिया, सीताजीके सहित उसको ही पीकर श्रीरामचन्द्र उपवास करके रह गये, उस दिन कुछ भोजन न किया॥१८॥ फिर उनसे बचा कुचा जल लक्ष्मणजीने पी लिया और उसको ही पीकर फिर तीनोंजने चित्त स्थिर करके मौन हो इसी स्थान पर संध्यावंदन किया (तीसरा सुमंत्र था)॥१९॥ जब संध्यावंदन हो चुका तब लक्ष्मणजी अपने हाथसे कुश काटकर ले आये और बहुत शीघ्र रामचन्द्रजी शयन करनेके लिये एक सुंदर आसन बना दिया ॥२०॥ जब रामचन्द्रजीने सीताके सहित इस आसन पर शयन किया तब लक्ष्मण उन दोनोंके चरणपखारकर वहांसे कुछ दूर चले आये ॥२१॥ यही इंगुदीका पेड़ है यह वही तृण पडे हैं रामचन्द्र और सीताजी

नह्यस्माभिःप्रतिग्राह्यंसखेदेयंतुसर्वदा ॥ इतितेनवयंसर्वेअनुनीतामहात्मना ॥ १७ ॥ लक्ष्मणेनयदानीतंपीतंवारिमहात्मना ॥ औपवास्यांतदाकार्षीद्राघवःसहसातया ॥ १८ ॥ ततस्तुजलशेषेणलक्ष्मणोऽप्यकरोत्तदा ॥ वाग्यतास्तेत्रयःसंध्यांसमुपासन्तसंहिताः ॥ १९ ॥ सौमित्रिस्तुततःपश्चादकरोत्स्वास्तरंशुभम् ॥ स्वयमानीयबर्हींषिक्षिप्रंराघवकारणात् ॥२०॥ तस्मिन्समाविशद्रामःस्वास्तरेसहसीतया ॥ प्रक्षाल्यचतयोःपादौव्यपाक्रामत्सलक्ष्मणः ॥२१॥ एतत्तदिंगुदीमूलमिदमेवचतत्तृणम् ॥ अस्मिन्रामश्चसीताचरात्रितांशयितावुभौ ॥२२॥ नियम्यपृष्ठेतुतलांगुलित्रवान्शरैःसुपूर्णाविषुधीपरंतपः ॥ महद्धनुःसज्जमुपोह्यलक्ष्मणोनिशामतिष्ठत्परितोऽस्यकेवलम् ॥ २३ ॥ ततस्त्वहंचोत्तमबाणचापभृत्स्थितोभवंतत्रसयत्रलक्ष्मणः ॥ अतंद्रितैर्ज्ञातिभिरात्तकार्मुकैर्महेंद्रकल्पंपरिपालयंतदा ॥२४॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० च० सा० अ० सप्ताशीतितमः सर्गः ॥ ८७ ॥ तच्छ्रुत्वानिपुणंसर्वंभरतःसहमंत्रिभिः ॥ इंगुदीमूलमागम्यरामशय्यामवेक्षत ॥ १ ॥ अब्रवीज्जननीःसर्वाइहतस्यमहात्मनः ॥ शर्वरीशयिताभूमाविदमस्यविमर्दितम् ॥ २ ॥

दोनोंजनोंने उस रात्रिको यहीं पर शयन करके रात्रि बिताई थी ॥२२॥ उस रात्रिशत्रुओंके दमनकरनेवाले लक्ष्मणःजी नियमानुसार पीठपर तीरोंसे भरा हुआ तरकस लगाये हथेली उँगलियोंमें गुस्ताना व अंगुलित्राण पहरे और हाथमें गुणयुक्त बडा धनुषधारण किये रामचन्द्रजीके चारों ओर देखते हुए घूमते रहे॥२३॥ मैं भी श्रेष्ठ धनुष धारणकरके आलस्यहीन धनुषको धारण करनेवाले अपने बिरादरीके संग उनइन्द्रतुल्य रामचन्द्रजीके रक्षा करता हुआ लक्ष्मणजीके निकट था ॥२४॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० अयोध्याकांडे भाषायां सप्ताशीतितमः सर्गः ॥८७॥ भरतजी मंत्रियोंके संग एक चित्तसे य ह सब वचन सुनकर इंगुदी पेडके तले गये और रामचन्द्रजीके शयन करनेकी शय्याको देखा ॥ १ ॥ और सब माताओंसे बोले महात्मा रामचन्द्रजीने रात्रिको इसी भूमिमें शयन किया था यह कुश उन्हींके

बिछौनेके हैं देखो शरीरसे विमर्दित हुए हैं ॥२॥ जो कि, महाराजाधिराजके वंशमें परभाग्यवान् दशरथजीके पुत्र होकर इस पृथ्वीपर उन्होंने शयन किया सो यह बहुतही अनुचित हुआ ॥३॥ हाय ! पुरुष श्रेष्ठ रामचन्द्र सदाही राजाओंके योग्य अतिकोमल मृगादि चर्मोंके बिछौनोंपर शयन किया है। इस समय वह किस प्रकार भूमिपर सोते होंगे ॥४॥ व जो श्रीरामचन्द्र उच्च धवरहरोंके ऊपर कूटागारोंमें जहांपर कि, सुवर्ण चांदी और पृथ्वीके विकारसे बने हुए पलँग उत्तम बिछौनों करके युक्त बिछे रहते उनपर वह सोते ॥५॥ जो फूल चुनकर लगानेसे चित्र विचित्र होजाते चंदनादि सुगंधित वस्तु उनपर धरी हुई जोकि, सफेद उजले बादलके समान सब सोनेका सामान होता था उस स्थानपर तोता मैना अदिशुभ पक्षी बोलते ॥६॥ अनेक प्रकारकी सुगन्धों और गीतध्वनिसे परिपूर्ण जिनकी सब दीवारोंपर सोना मढा और मेरु पर्वतके समान ऊंचे अति उत्तम धवरहरोंपर जिन्होंने सदा रात्रिको शयन किया है ॥७॥ इस समय ऐसे रामचन्द्रजी किस

महाराजकुलीनेनमहाभागेनधीमता ॥ जातोदशरथेनोर्व्यांनरामःस्वप्तुमर्हति ॥३॥ अजिनोत्तरसंतीर्णेवर स्तरणसंचये ॥ शयित्वापुरुषव्याघ्रः कथंशेतेमहीतले ॥ ४ ॥ प्रासादाग्रविमानेषुवलभीषुचसर्वदा ॥ हैमराजतभौमेषुवरास्तरणशालिषु ॥५॥ पुष्पसंचयचित्रेषुचंदनागुरुगंधिषु ॥ पांडुराभ्रप्रकाशेषुशुकसंघरुतेषुच ॥६॥ प्रसादवरवर्येषुशीतवत्सुसुगंधिषु ॥ उषित्वामेरुकल्पेषुकृतकांचनभित्तिषु ॥७॥ गीतवादित्रनिर्घोषैर्वराभरणनिःस्वनैः ॥ मृदंगवरशब्दैश्चसततंप्रतिबोधितः ॥८॥ बंदिभिर्वंदितःकालेबहुभिःसूतमागधैः ॥ गाथाभिरनुरूपाभिःस्तुतिभिश्चपरंतपः ॥ ९ ॥ अश्रद्धेयमिदंलोकेनसत्यंप्रतिभातिमा ॥ मुह्यतेखलुमेभावःस्वप्नोऽयमितिमेमतिः ॥ १० ॥ ननूनंदैवतंकिंचित्कालेनबलवत्तरम् ॥ यत्रदाशरथीरामोभूमावेवमशेतसः ॥ ११ ॥ यस्मिन्विदेहराजस्यसुताचप्रियदर्शना ॥ दयिताशयिताभूमौस्नुषाददशरथस्य च ॥ १२ ॥

प्रकार भूमिपर शयन करते होंगे ? जो इस धवरहरोंपर शयन करके भोरही गाने बजाने व उत्तम २ भूषणोंके शब्दसे और मृदंग इत्यादि बाजोंके शब्दसे जगाये जाते तो उनके शब्दकोसुनके नींदको छोड देते थे ॥८॥ और यथासमयमें बहुतसे बंदी, मागध, सूत आय २ उनकी अनुरूप कथाओंको गाय गाय स्तुतियोंसे रामचन्द्रजीको आनंदित करते थे ॥९॥ इस समय उन्होंने सब वस्तुओंसे अलग होकर किस प्रकार भूमिमें शयन किया, यह बात तो श्रद्धारहित और असत्य भी प्रतीत होती है इस विषयमें हमारा मनमोहित है ऐसा जान पड़ता है कि मानों हम स्वप्न देख रहे हैं ॥१०॥ अब समझ पड़ा कि, कालसे अधिक बलवान् न कोई देवता है न भाग्य है, नहीं तो श्रीरामचन्द्रजी महाराज दशरथजीके पुत्र होकर भी क्यों पृथ्वी पर शयन करते ?॥११॥ और जो विदेह राजा जनकजीकी कन्या और साक्षात् राजा दशरथजीकी प्रणयपात्री पुत्रवधू, हाय उन प्रियदर्शन सीताजीको भी कालके प्रभावसे पृथ्वीमें शनन करना पडा ॥ १२ ॥

भ्राता रामचन्द्रजीकी यह सेज है, देखो-जैसे २ उन्होंने करवटें ली हैं वैसे ही कड़ी भूमिमें बिछनेसे तृण उनके शरीरसे दबनेके कारण कुचल गये हैं ॥ १३॥ ऐसा विदित होता है कि, कल्याणी सीताजी भी सब गहने पहरे पहराये ही उस सेजपर सो गई हैं, क्योंकि यहां सवही जगह उनके गहनोंसे टूटकर सुवर्णके विंदु गिरे हैं ॥ १४ ॥ ऐसा ज्ञात होता है कि, यहां पर जानकीजीने अपनी सारी धर दी थी, क्योंकि रेशमके तार कुशोंमें लगे हुए शोभा पाय रहे हैं ॥१५॥ हम भी जानते हैं कि; स्वामी रामचन्द्रजीकी सेज सब प्रकार सीताजीको सुखद हुई है कारण कि, जिसके प्राप्त होनेसे सुकुमारी भी सीताजीको बालकपनमें तपस्या करनेसे विदेशके दुःख नहीं जान पड़ते ॥१६॥ हाय ! हम जीतेही जो मारे गये हाय ! हम कैसे निर्लज्ज हैं हमारेही कारण रघुनंदन रामचन्द्रजी अपनी भार्यासहित अनाथकी भांति इस प्रकारकी सेजपर सोये ॥१७॥ हाय ! जिन्होंने सार्वभौम चक्रवर्ती दिलीप, रघु, अज, दशरथ आदिके कुलमें जन्म लिया सब लोकोंके सुखदाई सबके

इयंशय्याममभ्रातुरिदमावर्तितंशुभम् ॥ स्थंडिलेकठिनेसर्वंगात्रैर्विमृदितंतृणम् ॥ १३ ॥ मन्येसाभरणासुप्तासीतास्मिन्शयनेशुभा ॥ तत्र तत्रहिदृश्यंतेसक्ताःकनकबिंदवः ॥ १४ ॥ उत्तरीयमिहासक्तंसुव्यक्तंसीतयातदा ॥ तथाह्येतेप्रकाशंतेसक्ताःकौशेयतंतवः ॥ १५ ॥ मन्येभर्तुः सुखाशय्यायेनबालातपस्विनी ॥ सुकुमारीसतीदुःखंनविजानातिमैथिली ॥ १६ ॥ हाहतोऽस्मिनृशंसोऽस्मि यत्सभार्यःकृतेमम ॥ ईदृशीं राघवःशय्यामधिशेतेह्यनाथवत् ॥ १७ ॥ सार्वभौमकुलेजातःसर्वलोकसुखावहः ॥ सर्वप्रियकरस्त्यक्त्वाराज्यंप्रियमनुत्तमम् ॥ १८ ॥ कथमिंदीवरश्यामोरक्ताक्षःप्रियदर्शनः ॥ सुखभागीनदुःखार्हःशयितोभुविराघवः ॥१९॥ धन्यःखलुमहाभागोलक्ष्मणःशुभलक्षणः ॥ भ्रातरंविषमेकालेयोराममनुवर्तते ॥ २० ॥ सिद्धार्थाखलुवैदेहीपतिंयानुगतावनम् ॥ वयंसंशयिताःसर्वेहीनास्तेनमहात्मना ॥ २१ ॥ अकर्णधारापृथिवीशून्येवप्रतिभातिमे ॥ गतेदशरथेस्वर्गंरामेचारण्यमाश्रिते ॥ २२ ॥

प्रिय करनेवाले उत्तम और प्यारे वे रामचन्द्रजी राज्यको छोड ॥१८॥ जिनका शरीर कमलवत् श्यामवर्ण लोचन युगल रक्तवर्ण, देखनेमें जो अतिमनोहर जिन्होंने सदाही सुख भोगा है, जो कभी दुःखपानेके योग्य नहीं वे इस समय भूमिमें शयन करते हैं॥१९॥इससे अधिक हमारे दुर्भाग्य और दुःखका विषय क्या होगा ? अनेक प्रकारके शुभ लक्षणयुक्त महाबाहु श्रीलक्ष्मणजी धन्य हैं जिन्होंने विपत्तिके समयमें भ्राता रामचन्द्रजीका साथ दिया क्योंकि विपत्तिमें कोई किसीका नहीं होता ॥२०॥ और जानकीजी भी स्वामीके साथ वनको जाकर निश्चयही सफलमनोरथा हुई हैं, हमही केवल उन महात्मा करके हीन होकर संशयकी दशामें पतित हुए ॥२१॥ इस समय राजा दशरथजीके स्वर्ग सिधारने और रामचन्द्रजीके वन चलेजानेसे समस्त पृथ्वी हमको मांझी बिन नावके समान जान पडती है ॥२२॥

रामचन्द्रजी महाराज वनको चले गये हैं तथापि यह पृथ्वी उनकेही भुजबलसे रक्षित होनेके कारण कोई मनमें भी उसके लेनेकी इच्छा नहीं कर सकता फिर भला हम असमर्थ इसको किस प्रकार पालन कर सकते हैं ? न हम इसको ग्रहण करना चाहें ॥२३॥ यद्यपि इस समय अयोध्याके कोटकी कोई रक्षा नहीं करता, हाथी घोडे सब जहां तहां फिरते हैं कोई बाँधनेवाला नहीं पुरके फाटक भी खुले पडे हैं॥२४॥ जो कुछ सेना अयोध्यापुरीमें है वह हर्षरहित है उसे रक्षाकरनेकी कुछ सुधि नहीं इसीसे न्यूनसी विदित होती है और लोग सब दुःखी हैं इसी कारण बाहरसे कोई रक्षा नहीं करता तथापि रामचन्द्रके प्रतापसे शत्रु लोग ऐसा डरते हैं जैसे कोई विषैले भोजनसे डरता हो ॥२५॥ अब आजसे हमभी फल मूलही खायँगे व जटा चीरादि धारणकर तृण बिछाय भूमिमें सोवेंगे ॥२६॥ रामचन्द्रजीको लौटाय वनमें बसेंगे क्योंकि जो समय वनवास करनेको बाकीहो उसे हम पूरा करेंगे जिससे चौदह वर्ष वनमें वासकरनेकी प्रतिज्ञा जो बड़े भाईने की है वह मिथ्या न हो ॥२७॥ हमारे वन-

नचप्रार्थयतेकश्चिन्मनसापिवसुंधराम् ॥ वनेनिवसतस्तस्यबाहुवीर्याभिरक्षिताम् ॥ २३ ॥ शून्यसंवरणारक्षामयंत्रितहयद्विपाम् ॥ अनावृत्त
पुरद्वारांराजधानीमरक्षिताम् ॥ २४ ॥ अप्रहृष्टबलांन्यूनांविषमस्थामनावृताम् ॥ शत्रवोनाभिमन्यंतेभक्ष्यान्विषकृतानिव ॥ २५ ॥ अद्य
प्रभृतिभूमौतुशयिष्येऽहंतृणेषुवा ॥ फलमूलाशनोनित्यंजटाचीराणिधारयन् ॥ २६ ॥ तस्याहमुत्तरंकालंनिवत्स्यामिसुखंवने ॥ तत्प्रति-
श्रुतमार्यस्यनैवमिथ्याभविष्यति ॥ २७ ॥ वसंतंभ्रातुरर्थायशत्रुघ्नोमानुवत्स्यति ॥ लक्ष्मणेनसहायोध्यामार्योमेपालयिष्यति ॥ २८ ॥
अभिषेक्ष्यंतिकाकुत्स्थमयोध्यायांद्विजातयः ॥ अपिमेदेवताःकुर्युरिमंसत्यंमनोरथम् ॥ २९ ॥ प्रसाद्यमानःशिरसामयास्वयंबहुप्रकारंय-
दिनप्रपत्स्यते ॥ ततोऽनुवत्स्यामिचिरायराघवंवनेचरंनार्हतिमामुपेक्षितुम् ॥ ३० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च०
सा० अयोध्याकांडे अष्टाशीतितमः सर्गः ॥ ८८ ॥ व्युष्यरात्रिंतुतत्रैवगंगाकूलेसराघवः ॥ काल्यमुत्थायशत्रुघ्नमिदंवचनमब्रवीत् ॥ १ ॥
शत्रुघ्नोत्थायकिंशेषेनिषादाधिपतिंगुहम् ॥ शीघ्रमानयभद्रंतेतारयिष्यतिवाहिनीम् ॥ २ ॥

वासी होनेपर शत्रुघ्नजी हमारे संग रहेंगे, और श्रीआर्य रामचन्द्रजी लक्ष्मणजीके सहित अयोध्याका पालन करेंगे ॥२८॥ ब्राह्मण लोग इन काकुत्स्थनन्दन रामचन्द्रको अयोध्याकी राज्यपर अभिषिक्त करेंगे, देवताओंसे हमारी यह प्रार्थना है कि, वह हमारे इस मनोरथको सफल करें॥२९॥ चरणोंपर शिर धर मनाने समझाने और अनेक भांतिसे प्रसन्न करनेपरभी यदि महाराज रामचन्द्रजी पिताकी आज्ञाको नहीं त्यागकर अयोध्यामें न लौटेंगे तब हम उनके संग बनकोही चले जायँगे जब हम आर्त वचन कहेंगे तब हमें रामचन्द्रजी कदापि त्याग नहीं कर सकेंगे ॥ ३० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० अयो० भाषायामष्टाशीतितमः सर्गः ॥ ८८ ॥ रघुकुलोत्पन्न महात्मा भरतजी उसी स्थान पर वह रात्रि बिताकर प्रातःकालही उठ शत्रुघ्नजीसे बोले ॥ १ ॥ शत्रुघ्न ! उठो, प्रभात हो गया अब क्यों शयन कर

रहे हो ? तुम्हारा कल्याण हो तुम शीघ्रतासे निषादराज गुहको यहां बुला लाओ जिससे कि, वह शीघ्र सेनाको पार उतार देंगे ॥२॥ जब भरतजीने इस प्रकार आज्ञा की तब शत्रुघ्नजी बोले हम सोये नहीं हैं निरंतर आर्य रामचन्द्रजीकी चिंतना करते हुए आपहीके समान जागते पड़े रहे हैं ॥३॥ नरसिंह भरत और शत्रुघ्नजी इस प्रकार परस्पर वार्तालाप कर रहे थे कि, इतनेमें निषादराज गुह वहां आया और हाथ जोडकर बोला ॥ ४ ॥ हे काकुत्स्थ ! आपने रात्रिमें गंगाजीके किनारे सुखसे तो वास किया ? और सेनासहित आप लोगोंको कोई क्लेश तो नहीं हुआ ? ॥५॥ यह गुहके स्नेहके वश उच्चारण किये हुए वचन सुनकर रामके वश हुये भरतजी भी वैसेही स्नेहसने वचन बोले ॥६॥ हे बुद्धिमान् ! रात्रि सुखसे बीत गई और तुमने हमारा भलीभांतिसे आदर सत्कार किया अब अपने दास केवटोंको आज्ञा दो कि, बहुतसारी नावोंपर चढाकर शीघ्र हमारी सेनाको गङ्गापार उतार दें ॥७॥ भरतजीके ऐसे वचन सुनकर गुहने बड़ी शीघ्रतासे नगरमें प्रवेश किया

जागर्मिनाहंस्वपिमितथैवार्यंविचिंतयन् ॥ इत्येवमब्रवीद्भ्राताशत्रुघ्नोविप्रचोदितः ॥ ३ ॥ इतिसंवदतोरेवमन्योन्यंनरसिंहयोः ॥ आगम्यप्रांजलिःकालेगुहोवचनमब्रवीत् ॥४॥ कच्चित्सुखंनदीतीरेऽवात्सीःकाकुत्स्थशर्वरीम् ॥ कच्चिच्चसहसैन्यस्यतवनित्यमनामयम् ॥५॥ गुहस्यतत्तुवचनंश्रुत्वास्नेहादुदीरितम् ॥ रामस्यानुवशोवाक्यंभरतोऽपीदमब्रवीत् ॥६॥ सुखानःशर्वरीधीमन्पूजिताश्चापितेवयम् ॥ गंगांतुनौभिर्बह्वीभिर्दाशाःसंतारयंतुनः ॥७॥ ततोगुहःसंत्वरितःश्रुत्व भरतशासनम् ॥ प्रतिप्रविश्यनगरंतंज्ञातिजनमब्रवीत् ॥८॥ उत्तिष्ठतप्रबुध्यध्वंभद्रमस्तुहिवःसदा ॥ नावःसमुपकर्षध्वंतारयिष्यामिवाहिनीम् ॥९॥ तेतथोक्ताःसमुत्थायत्वरिताराजशासनात् ॥ पंचनावांशतान्येवसमानिन्युःसमंततः ॥१०॥ अन्याःस्वस्तिकविज्ञेयामहाघंटाधराधराः ॥ शोभमानाःपताकिन्योयुक्तवाहाःसुसंहताः ॥ ११ ॥ ततःस्वस्तिकविज्ञेयांपांडुकंबलसंवृताम् ॥ सनंदिघोषांकल्याणींगुहोनावमुपाहरत् ॥ १२ ॥

और वहां जाकर अपनी बिरादरीके लोगोंसे कहा ॥८॥ अरे भाइयो ! उठो, जागो सदा तुम्हारा मंगल हो; बहुतसी नावें किनारे पर ले आओ आज भरतजीकी सेनाको गंगाजीके पार उतारना होगा ॥९॥ जब उन लोगोंने भरतजीकी ऐसी आज्ञा पायी तो राजाकी आज्ञाको मानकर जल्दी उठे और चारों ओरसे ५०० नावें खैंच उतारू घाटपर लगा दीं ॥१०॥ और राजाओंके बैठने योग्य स्वस्तिक नामक भी नौका कई एक लाईं । यह सब नावें सुवर्णके रंगे चित्र विचित्र समूह द्वारा अतिशय शोभायमान थीं सैकडों टुण्डे जिनपर लगे हुए और मल्लाह भी जिनपर अनेकों बैठे थे जिनपर मजबूत वर्द्धमान् लगे हुए थे झंडियां बँध रहीं थीं उनमें बडे २ घंटे लगे थे ॥११॥ अनन्तर निषादराज गुह स्वयं एक स्वस्तिक नाम निराली राजनौका ले आया यह नाव सब भांतिसे रक्षित थी, उसपर पीले दुशाले इत्यादिक

ऊनीवस्त्र मढ़े हुए थे इसके ऊपर निरंतर मंगलके बाजोंका शब्द होता रहता था ॥१२॥ महाबलवान् भरतजी शत्रुघ्नजी, कौशल्याजी, सुमित्राजी व और दूसरी जो राजा दशरथजीकी रानियें थीं सब उस नावपर चढीं ॥१३॥ गुरु पुरोहित और ब्राह्मणगण तो पहले ही चढ चुके थे। अनंतर नौकर चाकरों सहित राजपरिवार छकडे फिर बाजारकी सामग्री जो थी यह सब चीजें चढाई गई ॥१४॥ चलनेके समय वस्तु देखने भालनेके लिए मशालचियोंका शब्द व गङ्गाजीमें स्नान करनेवालोंका कुलाहल ऐसा हुआ कि, अन्तरिक्षतक जा पहुँचा ॥१५॥ नावोंमें ऐसे वर्द्धमान लगाये गये थे कि, यद्यपि एक एकपै सौ सौ खेनेवाले बैठे थे पर चढे लोगोंको वे आप उडाए हुये लिए जाती थीं ऐसो जल्दी जाती थीं कि, खेनेकी आवश्यकता नहीं थी ॥१६॥ कोई २ नाव तो स्त्रियोंसे ही भरी थी कोई २ घोडोंसे किसी २ पै रथ पालकी तामजामादि सवारियोंके लेचलनेवाले घोडे, बैल आदि चढे थे और धन लदा था ॥ १७ ॥ धीरे २ यह सब नावें दूसरी पार पहुँच गई और

तामारुरोहभरतःशत्रुघ्नश्चमहाबलः ॥ कौशल्याचसुमित्राचयाश्चान्याराजयोषितः ॥१३॥ पुरोहितश्चतत्पूर्वंगुरवोब्राह्मणाश्चये ॥ अनंतरंराजदारास्तथैवशकटापणाः ॥ १४ ॥ आवासमादीपयतांतीर्थंचाप्यवगाहताम् ॥ भांडानिचाददानानांघोषस्तुदिवमस्पृशत ॥१५॥ पताकिन्यस्तुतानावःस्वयंदाशैरधिष्ठिताः ॥ वहंत्योजनमारूढंतदासंपेतुराशुगाः ॥ १६ ॥ नारीणामभिपूर्णास्तुकाश्चित्काश्चित्तुवाजिनाम् ॥ काश्चित्तत्रवहंतिस्मयानयुग्यंमहाधनम् ॥१७॥ तास्तुगत्वापरंतीरमवरोप्यचतंजनम् ॥ निवृत्तःकांडचित्राणिक्रियंतेदासबंधुभिः ॥१८॥ सवैजयंतास्तुगजागजारोहैः प्रचोदिताः ॥ तरंतःस्मप्रकाशंतेसपक्षाइवपर्वताः ॥ १९ ॥ नावश्चारुरुहुस्त्वन्येप्लवैस्तेरुस्तथापरे ॥ अन्येकुंभघटैस्तेरुरन्येतेरुश्चबाहुभिः ॥ २० ॥ सापुण्याध्वजिनीगंगादाशैःसंतारितास्वयम् ॥ मैत्रेमुहूर्तेप्रययौप्रयागवनमुत्तमम् ॥ २१ ॥

आरोहियोंको उतारनेमें लगीं और उतारकर लौटीं गुहबन्धु मल्लाह लोग वह सब नौका लेकर जलके बीच विविध भांतिके खेल करने लगे ॥ १८ ॥ इस समय हाथीवालोंने अपने २ हाथी जलमें उतरनेको पैठाए ध्वजभूषित सब हाथी पंखयुक्त पर्वतके समान शोभा विस्तार करके गंगाजीको पैरने लगे ॥ १९ ॥ कोई २ लोग तो नावपर चढकर पार उतरे कोई २ बांस खैर आदिसेबनी कठनावोंपर चढ पार गये कोई २ मटके घडे बांध घन्नइयोंपर उतरे और कोई २ अपने हाथों सेही पैर गये ॥२०॥ मल्लाहों करके गंगाजीके पार उतारी जाकर वह शोभायमान चतुरंगिणी सेना सूर्य उदय होनेके तीसरे मुहूर्त मैत्रमें परम मनोहर प्रयागके

१ रौद्र सार्प मैत्र पैत्र वासववार्यक वैश्य ब्राह्म प्राज रौद्र अग्नि ऐन्द्र निर्ऋति वरुण यम सायक यह पन्द्रह योग हैं।

वनको कूँच करती हुई ॥ २१ ॥ वहां पहुँच कर महात्मा भरतजीने सब सेनाको यथायोग्य आदरसे वहां टिकाया जिसको जहां सुभीता हुआ वह वहीं टिक रहा फिर भरतजी ऋषिवर भरद्वाजजीकी दर्शनकामनासे मन्त्री पुरोहित और सभासदोंके संग उनके आश्रमकी ओर चले ॥ २२ ॥ फिर सब महानुभाव देवपुरोहित ब्रह्मपरायण और द्विजश्रेष्ठ भरद्वाजजीके आश्रमके निकट पहुँचकर रमणीय पर्णकुटियों व सघन वृक्षोंसे शोभायमान बडे वनको देखते हुए ॥ २३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयो० भाषायामेकोननवतितमः सर्गः ॥ ८९ ॥ आश्रमके जीवजन्तुओंको किसी प्रकारका दुःख न पहुँचे इस कारण पुरुषोत्तम भरतजीने कोशभर पीछे सब सेनाको टिकाया, और आप मंत्रियोंके सहित भरद्वाजजीके दर्शन करनेको चले ॥ १ ॥ वह महात्मा भरतजी सब अस्त्र शस्त्र बडे २ कीमती वस्त्र जो पहर रहेथे उनको उतार केवल रेशमी वस्त्र पहरे पुरोहितवसिष्ठजीको आगे कर चले ॥२॥ अनन्तर उन्होंने दूरसे भरद्वाजजीको देखा तब

आश्वासयित्वाचचमूंमहात्मानिवेशयित्वाचयथोपजोषम् ॥ द्रष्टुंभरद्वाजमृषिप्रवर्यमृत्विक्सदस्यैर्भरतःप्रतस्थे ॥२२॥ सब्राह्मणस्याश्रममभ्यु-पेत्यमहात्मनोदेवपुरोहितस्य ॥ ददर्शरम्योटजवृक्षदेशंमहद्वनंविप्रवरस्यरम्यम् ॥२३॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० अयोध्याकांडे एकोननवतितमः सर्गः ॥८९॥ भरद्वाजाश्रमंगत्वाक्रोशादेवनरर्षभः॥ जनंसर्वमवस्थाप्यजगामसहमंत्रिभिः॥१॥ पद्भ्यामेवतुधर्मज्ञो न्यस्तशस्त्रपरिच्छदः॥वसानोवाससीक्षौमेपुरोधायपुरोहितम्॥२ ततःसंदर्शनेतस्यभरद्वाजस्यराघवः॥मंत्रिणस्तानवस्थाप्यजगामानुपुरोहितम ॥३॥वसिष्ठमथदृष्ट्वैवभरद्वाजोमहातपाः॥संचचालासनात्तूर्णंशिष्यानर्घ्यमितिब्रुवन्॥४॥समागम्यवसिष्ठेनभरतेनाभिवादितः॥ अबुध्यतमहाते-जाःसुतंदशरथस्यतम् ॥५॥ ताभ्यामर्घ्यंचपाद्यंचदत्त्वापश्चात्फलानिच ॥ आनुपूर्व्याचधर्मज्ञःपप्रच्छकुशलंकुले ॥६॥ अयोध्यायांबलेकोशे मित्रेष्वपिचमंत्रिषु ॥ जानन्दशरथंवृत्तंनराजानमुदाहरत् ॥७॥ वसिष्ठोभरतश्चैनंपप्रच्छतुरनामयम् ॥ शरीरेऽग्निषुशिष्येषुवृक्षेषुमृगपक्षिषु ॥८॥

मंत्रियोंको भी वहीं छोड दिया और आप अकेले महामुनि वसिष्ठजीके पीछे २ जाने लगे ॥३॥ महातपस्वी मुनि भरद्वाजजीने वसिष्ठजीको देखतेही शिष्योंको अर्घ्य लानेकी आज्ञा दी और आप आसनसे उठ खडे हुये ॥४॥ और आगे बढ़कर वसिष्ठजीसे मिले फिर भरतजीने भी उनको दंडवत् प्रणाम किया । वसिष्ठजीके संग आये हुए भरतजीको महर्षि भरद्वाजजीने जानलिया कि, यह तेजवान् महाराज दशरथजीके पुत्र हैं ॥५॥ धर्मात्मा भरद्वाजजीने ही दोनोंको यथायोग्य पाद्य, अर्घ्य और विविधि भांतिके फल देकर फिर उनसे कुशल मंगल पूँछते हुए ॥६॥ अयोध्या, सेना, खजाना, मित्र, बांधव, मंत्रीगण और पशु, पक्षी इन सबकी कुशल पूछी परन्तु राजादशरथजीका मरना भरद्वाजजीने सुन लिया था इस कारण उनके विषयमें कुछ नहीं पूछा ॥७॥ वसिष्ठजीने भरद्वाजजीके तपकी, शरीरकी, अग्नि

शिष्य, वृक्ष, मृग, और कुटीके वासी पशु पक्षियोंकी कुशल पूँछी ॥८॥ परम यशस्वी भरद्वाजजीने भरतजीसे और वसिष्ठजीसे कहा कि, मैं सब भांति आनंद मंगलसे हूँ, और फिर रामचन्द्रजीसे स्नेहके वश हो भरतजीसे कहने लगे ॥९॥ हमनेतो यह सुना था कि, तुम राजा हुए हो, अतएव यहां इस समय आनेकी तुमको कौन आवश्यकता हुई, सो हमसे सब कहो, क्योंकि इस विषयका हमारे मनमें विश्वास नहीं होता॥१०॥ देवी कौशल्याजीने शत्रुओंके दमन करनेवाले और सब जगत्‌के आनन्द बढानेवाले जिन रामचन्द्रजीको प्रसव किया जो भ्राता और भार्या सहित वनको गये हैं ॥११॥ जो महायशस्वी स्त्रीके वशमें पडे पिताकी यह आज्ञा कि,-"चौदह वर्षके लिये वनको जाओ" उसके पालन करनेको वनमें गये और वहां वास करते हैं ॥ १२ ॥ उन निष्पाप रामचन्द्रजीका राज्य अकंटक भोग करनेके लिये और लक्ष्मणजीके सहित उनका अनभल करनेके लिये तो इस समय तुम्हारा अभिलाष नहीं हुआ है ? ॥१३॥ भरद्वाजजीके यह कहने पर

स्तथेतितुप्रतिज्ञायभरद्वाजोमहायशाः ॥ भरतंप्रत्युवाचेदंराघवस्नेहबंधनात् ॥९॥ किमिहागमनेकार्यंतवराज्यंप्रशासतः ॥ एतदाचक्ष्वसर्वंमेनहिमेशुध्यतेमनः ॥१०॥ सुषुवेयममित्रघ्नंकौशल्यानंदवर्धनम् ॥ भ्रात्रासहसभार्योयश्चिरंप्रव्राजितोवनम् ॥११॥ नियुक्तःस्त्रीनिमित्तेनपित्रायोऽसौमहायशाः ॥ वनवासीभवेतीहसमाकिलचतुर्दश ॥ १२ ॥ कच्चिन्नतस्यापापस्यपापंकर्तुमिहेच्छसि ॥ अकंटकंभोक्तुमनाराज्यंतस्यानुजस्यच ॥१३॥ एवमुक्तोभरद्वाजंभरतःप्रत्युवाचह ॥ पर्यश्रुनयनोदुःखाद्वाचासंसज्जमानया ॥ १४ ॥ हतोऽस्मियदिमामेवंभगवानपिमन्यते ॥ मत्तोनदोषमाशंकेमैवंमामनुशाधिहि ॥ १५ ॥ नचैतदिष्टंमातामेवदेवोचन्मदंतरे ॥ नाहमेतेनतुष्टश्चनतद्वचनमाददे ॥ १६ ॥ अहंतुतंनरव्याघ्रमुपयातः प्रसादकः ॥ प्रतिनेतुमयोध्यायांपादौचास्याभिवंदितुम् ॥ १७ ॥ तंमामेवंगतंमत्वाप्रसादंकर्तुमर्हसि ॥ शंसमेभगवन्रामःक्वसंप्रतिमहीपतिः ॥ १८ ॥

भरतजीने दुःखके वश हो आंसू भरे हुए नेत्र और गद्गद वाणीसे उत्तर दिया ॥१४॥ हे भगवन् ! आप सर्वज्ञ होकर भी यदि हमें इस प्रकारसे पाखण्डी समझे तो हमारा जीवन और जन्म सबही वृथा है हे महाराज ! हमसे यह उपस्थित विपद् नहीं हुई और न इसको हमने कभी मनमें विचारा ॥१५॥ अतएव हमको ऐसे दुःखदायी वचन मत कहिये हमारे राज्याभिषेक और रामचन्द्रजीके वनवासके विषयमें माता कैकेयीने जो कुछ राजासे कहा है उसमें किसी प्रकारसे मेरी सम्मति नहीं और न उसमें हम किसी भांति संतुष्ट हैं और न हम ऐसे वचनोंको अंगीकार करते हैं ॥१६॥ इसी कारण हम उन पुरुष व्याघ्र रामचन्द्रके प्रसन्न करने और उनके युगलचरण वंदन करनेको यहां आये हैं और उनको अयोध्यामें लौटनेके लिये उनके निकट जाते हैं॥१७॥हे भगवन् ! यही हमारा एक मात्र आशय जानकर आप प्रसन्न होवें और बतावें

कि पृथ्वीनाथ रामचन्द्रजी इस समय कहां हैं? ॥१८॥ उसके पीछे वसिष्ठादि ऋत्विक लोगोंने भी प्रार्थनाकी तब भगवान् भरद्वाजजी प्रसन्न होकर भरतजीसे बोले ॥१९॥ हे पुरुषसिंह! सुप्रसिद्ध रघुकुलमें तुम्हारा जन्म हुआ है, तब गुरुसेवा शत्रुओंका दमन करना व साधुओंके अनुगत होना यह तीन बातें तुममें होनी संभव है ॥२०॥ तुम्हारा जो ऐसा मनोगत भाव है इसको मैं भलीभांति जानता हूँ, तथापि बहुत पुरुषोंके सामने प्रगट होकर वह भाव और भी दृष्ट होजावे, और उसके द्वारा तुम्हारी कीर्त्ति भी भली भांति फैलजावै इस कारणसेही हमने तुमसे ऐसा पूछा ॥२१॥ सीता और लक्ष्मण सहित धर्मके जाननेवाले श्रीरामचन्द्रजीको हम जानते हैं वह तुम्हारे भाई इस समय महापर्वत चित्रकूट पर वास करते हैं।२२।।हे इष्टप्रद धीमान्! कल वहां पर जाना, आज मंत्रियोंके सहित इसही हमारे आश्रम पर वसो तुमको

वसिष्ठादिभिर्ऋत्विग्भिर्याचितोभगवांस्ततः ॥ उवाचतंभरद्वाजःप्रसादाद्भरतंवचः ॥ १९ ॥ त्वय्येतत्पुरुषव्याघ्रयुक्तंराघवंशजे ॥ गुरुवृत्तिर्दमश्चैवसाधूनांचानुयायिता ॥२०॥ जानेचैतन्मनःस्थंतेदृढीकरणमस्त्विति ॥ अपृच्छंत्वांतवात्यर्थंकीर्तिंसमभिवर्धयन् ॥ २१ ॥ जानेचरामंधर्मज्ञंससीतंसहलक्ष्मणम् ॥ अयंवसतितेभ्राताचित्रकूटेमहागिरौ ॥ २२ ॥ श्वस्तुगंतासितंदेशंवसाद्यसहमंत्रिभिः ॥ एतंमेकुरुसुप्राज्ञकामंकामार्थकोविद ॥२३॥ ततस्तथेत्येवमुदारदर्शनःप्रतीतरूपोभरतोऽब्रवीद्वचः ॥ चकारबुद्धिंचमहाश्रमेतदानिशानिवासायनराधिपात्मजः ॥२४॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० अयोध्याकांडे नवतितम सर्गः ॥९०॥ कृतबुधिंनिवासायतत्रैवसमुनिस्तदा ॥ भरतंकैकेयीपुत्रमातिथ्येनन्यमंत्रयत् ॥ १ ॥ अब्रवीद्भरतस्त्वेनंनन्विदंभवताकृतम् ॥ पाद्यमर्घ्यमथातिथ्यंवनेयदुपपद्यते ॥२॥ अथोवाचभरद्वाजोभरतंप्रहसन्निव ॥ जानेत्वांप्रीतिसंयुक्तंतुष्येस्त्वंयेनकेनचित् ॥ ३ ॥

हमारा यह कार्य अवश्य करना होगा अर्थात् यहां वसना होगा ॥२३॥ तब उदारदर्शन प्रसिद्ध यशवाले राजकुमार भरतजीने "जो आज्ञा" यह कहकर उनका वचन विश्वाससे ग्रहण किया, और महर्षि भरद्वाजजीके वहां आश्रममें रात्रिको वसनेका विचार किया ॥२४॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयो० भाषायां नवतितमः सर्गः ॥९०॥ कैकेयी कुमार भरतजीको जब इस प्रकार वहां रात्रिमें वासकरनेकी मति हुई तब महर्षि भरद्वाजजीने अतिथिसत्कार करनेके लिये उनको न्योतादिया ॥१॥ तब भरतजीने उनसे कहा-हे भगवन्! वनमेंजो अर्घ्य पाद्य होता है. आपने उससेही हमारी उचित पहुनई करदी, अब इससे अधिक परिश्रम करनेकी क्या आवश्यकता है? ॥२॥ तब भरद्वाजजीने हँसते २ भरतजीसे कहा कि, हम चाहतेहैं कि, तुमको प्रीतिसे कुछ थोडा भी दिया जावे तो उससेही सन्तुष्ट हो जाते हो ॥ ३ ॥

तुम्हारी सब सेनाको भोजन करानेकी मेरी इच्छा हुई है हे नरेश्वर ! हम जिस प्रकारसे संतुष्ट होवें तुमको वही कार्य करना चाहिये ॥४॥ हे पुरुषप्रिय ! तुम किस कारणसे सेनाको दूर टिकाकर अकेले हमारे आश्रममें आये सेना सहित यहां पर न आनेका कारण क्या है सो कहो? ॥५॥ भरतजी हाथ जोडकर महर्षि भरद्वाजजीसे बोले कि, हे भगवन् ! आपके आश्रमको पीडा होगी इस कारण और आपके भयके मारे हम सेना सहित यहां नहीं आये ॥६॥ क्योंकि राजा या राजकुमारोंको सदा यही कर्तव्य है कि, यत्न पूर्वक तपस्वियोंके आश्रममें किसी प्रकारका उपद्रव न होनेदें ॥७॥ भगवन् ! आपके आश्रममें अवश्यही उपद्रव होता क्योंकि प्रधान २ घोडे, मनुष्य, मतवाले हाथी सब एकबार बहुतसे स्थानको घेर कर हमारे संग २ चलते हैं ॥८॥ वह आश्रमके वृक्षोंको तालाबोंको भूमि और

सेनायास्तुतवैवास्याःकर्तुमिच्छामिभोजनम् ॥ ममप्रीतिर्यथारूपात्वमर्होमनुजर्षभ ॥४॥ किमर्थंचापिनिक्षिप्यदूरेबलमिहागतः ॥ कस्मान्नेहो-पयातोऽसिसबलःपुरुषर्षभ ॥ ५ ॥ भरतःप्रत्युवाचेदंप्रांजलिस्तंतपोधनम् ॥ नसैन्येनोपयातोऽस्मिभगवन्भगवद्भयात् ॥ ६ ॥ राज्ञाहिभगव-न्नित्यंराजपुत्रेणवातथा ॥ यत्नतःपरिहर्तव्याविषयेषुतपस्विनः ॥७॥ वाजिमुख्यामनुष्याश्चमत्ताश्चवरवारणाः ॥ प्रच्छाद्यभगवन्भूमिंमहतीम-नुयांतिमाम् ॥८॥ तेवृक्षानुदकंभूमिमाश्रमेषूटजांस्तथा ॥ नहिंस्युरितितेनाहमेकएवागतस्ततः ॥९॥ आनीयतामितःसेनेत्याज्ञप्तःपरमर्षिणा ॥ तथानुचक्रेभरतःसेनायाःसमुपागमम् ॥१०॥ अग्निशालांप्रविश्याथपीत्वापःपरिमृज्यच ॥ आतिथ्यस्यक्रियाहेतोर्विश्वकर्माणमाह्वयत् ॥११॥ आह्वयेविश्वकर्माणमहंत्वाष्टारमेवच ॥ आतिथ्यंकर्तुमिच्छामितत्रमेसंविधीयताम् ॥ १२ ॥ आह्वयेलोकपालांस्त्रीन्देवाञ्छक्रपुरोगमान् ॥ आतिथ्यंकर्तुमिच्छामितत्रमेसंविधीयताम् ॥१३॥ प्राक्स्रोतसश्चयानद्यस्तिर्यक्स्रोतसएवच ॥ पृथिव्यामंतरिक्षेचसमायांत्वद्यसर्वशः ॥१४॥

पर्णशाला इत्यादिको नष्ट न करदें, इसही कारण उनको दूर रखकर हम आपके पास अकेले आये हैं ॥९॥ तब महर्षि भरद्वाजजीने कहाकि, सेनाको यहीं ले आओ भरतजीने यह आज्ञा पाकर सब सेनाको वहीं बुलाया ॥१०॥ तब महर्षि भरद्वाजजीने अग्निशालामें जाय यथाविधिसे जलपानद्वारा आचमन करके पहुनई करनेके लिये यह कहकर विश्वकर्माको बुलाया॥११॥ भरतजीकी पहुनई करनेकी हमारी इच्छा हुई है, इसी कारण हम सृष्टिशक्तिसंपन्न त्वष्टा नाम विश्वकर्माको बुलाते हैं, क्योंकि सेनासहित जो हमने भरतजीका निमंत्रण किया है सो वह उसके निर्वाहकी सामग्री प्राप्त करें॥१२॥हम अतिथिसत्कार की कामना करके इन्द्र यम, वरुण कुबेर इन चार लोकपालोंको भी बुलातेहैं । वह आकर यहां पहुनई उपयुक्त गृह आदि सब सामग्री ठीक करके समुदायसिद्धि विधान करें॥१३॥पृथ्वी और आकाश

गंगाजीसे आदि लेकर जो सब टेढी बांकी और पूर्वको बहनेवाली नदियां हैं वह सबही इस समय यहां आवें ॥ १४॥ कोई २ मैरेय (मद्यविशेश) कोई २ सुन्दर बनी बनाई मदिरा, और कोई २ ऊखके रसके समान मीठा और शीतल जल चुआवें ॥१५॥ देव, गन्धर्व, विश्वावसु, हाहा, हूहू, दिव्य, अप्सरा और गन्धर्वपत्नी गण इन सबको भी हम बुलाते हैं ॥ १६ ॥ इनके सिवाय घृताची, विश्वाची, मिश्रकेशी, अलम्बुषा, नागदत्ता, हेमा, पर्वतवासिनी, सोमा, अद्रिकृत स्थली इन अप्सराओंका आवाहन करते हैं ॥१७॥ फिर जो इन्द्रजीके निकट रहकर उनकी सेवा करती हैं और जो ब्रह्माजीके पास रहकर शुश्रूषा सेवा किया करती हैं उन सब अच्छे २ वस्त्र आभूषण धारण करनेवाली कामिनियोको तुम्बरू नाम गन्धर्वके साथ हम आह्वान करते हैं ॥१८॥ उत्तरकुरुमें जो कुबेरजीका चैत्ररथनामक दिव्य वन है जिसके सब वृक्ष वस्त्राभूषणरूप पत्र और दिव्य स्त्रीरूप फल समूहसे भूषित हैं वह कुबेरजीका वन भी आज इस आश्रममें चला आवे

अन्याःस्रवंतुमैरेयंसुरामन्याःसुनिष्ठिताम् ॥ अपराश्चोदकंशीतमिक्षुकांडरसोपमम् ॥१५॥ साह्वयेदेवगंधर्वान्विश्वावसुहाहाहुहून् ॥ तथैवाप्सरसो देवगंधर्वैश्चापिसर्वशः ॥१६॥ घृताचीमथविश्वाचींमिश्रकेशीमलंबुषाम् ॥ नागदत्तांचहेमांचसोमामद्रिकृतस्थलीम् ॥ १७ ॥ शक्रंयाश्चोपतिष्ठंतिब्रह्माणंयाश्चभामिनीः ॥ सर्वास्तुंबुरुणासार्धमाह्वयेसपरिच्छदाः ॥१८॥ वनंकुरुषुयद्दिव्यंवासोभूषणपत्रवत् ॥ दिव्यनारीफलंशश्वत्तत्कौबेरमिहैवतु ॥१९॥ इहमेभगवान्सोमोविधत्तामन्नमुत्तमम् ॥ भक्ष्यंभोज्यंचचोष्यंचलेह्यंचविविधंबहु ॥२०॥ विचित्राणिचमाल्यानिपादपप्रच्युतानिच ॥ सुरादीनिचपेयानिमांसानिविविधानिच ॥ २१ ॥ एवंसमाधिनायुक्तस्तेजसाप्रतिमेनच ॥ शिक्षास्वरसमायुक्तंसुव्रतश्चाब्रवीन्मुनि ॥२२॥ मनसाध्यायतस्तस्यप्राङ्मुखस्यकृतांजलेः ॥ आजग्मुस्तानिसर्वाणिदैवतानिपृथक्पृथक् ॥२३॥ मलयंदर्दुरंचैवततःस्वेदनुदोऽनिलः ॥ उपस्पृश्यववौयुक्त्यासुप्रियात्मासुखंशिवः ॥२४॥ ततोऽभ्यवर्षतघनादिव्याकुसुमवृष्टयः ॥ देवदुंदुभिघोषश्चदिक्षुसर्वासुशुश्रुवे ॥२५॥

॥१९॥ इनके सिवाय विविध भांतिके भक्ष्य, भोज्य, चोष्य, लेह्यादि व अनेक प्रकारके अन्न यह आय भगवान् चन्द्रमाजी उत्पन्न करें ॥२०॥ व पेडोंसे चुए विचित्र सुमन, व सुरा आदि पीनेकी वस्तु विविध प्रकारका मांस ॥२१॥ इस प्रकार समाधिद्वारा अद्वितीय तपस्याके प्रभावसे सुव्रत महर्षि भरद्वाजजीने उपयुक्त स्वर और ठीक २ वर्णोच्चारण करके सबका आह्वान किया ॥२२॥ महर्षिजीने हाथ जोडकर पूर्वको मुख कर जब इस प्रकार मनही मनमें ध्यान किया तब ध्यानके करतेही एक २ करके सब देवताओंने आरंभ किया ॥ २३ ॥ उस समय परमानंद देनेवाला सुखद समीर मलयाचल दर्दुराचल नामक दो चन्दन पर्वतोंको स्पर्श करके गरमीका नाश करता हुआ यथाविधिसे मन्द २ चलने लगा ॥ २४ ॥ अनन्तर सब दिव्य मेघोंने विचित्र फूलोंकी वर्षा करनी

आरंभ करदीं सब दिशाओंसे देवताओंके नगाडोंके बजनेका शब्द सुनाई देने लगा ॥२५॥ मनोहर हवाकी लहरें आने लगीं । अप्सरायें नाचने और देव गंधर्व गण संगीत गान करने लगे । वीणा यंत्र मधुर स्वरसे अपनी झंकार करके बज उठे ॥२६॥ इस प्रकारसे नाच गीतादि लय करके युक्त अनेक भांतिकी मनोहर ध्वनिसे स्वर्ग पृथ्वी और प्राणियोंके कर्णरंध्र पूर्ण होगये ॥ २७ ॥ मनुष्योंके श्रवणोंका सुख उपजानेवाला वैसा दिव्य शब्द जब होने लगा तब भरत जीकी सेनाने विश्वकर्माकी चतुराईका विधान कौशलको देखा ॥२८॥ उन्होंने देखा कि, वहां पृथ्वी चारों ओर पांच योजनतक बराबर एकसी और नीलवैडूर्य्य मणिके समान प्रभायुक्त हरी २ घाससे ढक गई ॥ २९ ॥ उस पृथ्वीपर फल लगे हुए बेल, कैथ, बिजौरा, नींबू, कटहर, आमके वृक्ष फलयुक्त शोभा पारहे हैं ॥ ३० ॥ उत्तरकुरु देशसे दिव्य उपभोग चैत्ररथवन और किनारों पर जिसके अनेक प्रकारके वृक्ष लगे हुए सी मनहरण करनेवाली एक सौम्यनाम नदी

प्रववुश्चोत्तमावातानन्नृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ प्रजगुर्देवगंधर्वावीणाःप्रमुमुचुःस्वरान् ॥२६॥ सशब्दोद्यांचभूमिंचप्राणिनांश्रवणानिच ॥ विवेशोच्चा- वचःश्लक्ष्णःसमोलयगुणान्वितः ॥२७॥ तस्मिन्नुपरतेशब्देदिव्येश्रोतसुखेनृणाम् ॥ ददर्शभारतंसैन्यंविधानंविश्वकर्मणः ॥२८॥ बभूवहिसमाभू- मिःसमंतात्पंचयोजना ॥ शाद्वलैर्बहुभिश्छन्नानीलवैदूर्यसन्निभैः ॥ २९ ॥ तस्मिन्बिल्वाःकपित्थाश्चपनसाबीजपूरकाः ॥ आमलक्योबभूवु- श्चचूताश्चफलभूषिताः ॥ ३० ॥ उत्तरेभ्यःकुरुभ्यश्चवनंदिव्योपभोगवत् ॥ आजगामनदीसौम्यातीरजैर्बहुभिर्वृता ॥ ३१ ॥ चतुःशालानिशुभ्रा- णिशालाश्चगजवाजिनाम् ॥ हर्म्यप्रासादसंयुक्ततोरणानिशुभानिच ॥ ३२ ॥ सितमेघनिभंचापिराजवेश्मसुतोरणम् ॥ शुक्लमाल्यकृताकारं दिव्यगंधसमुक्षितम् ॥३३॥ चतुरस्रमसंबाधंशयनासनयानवत् ॥ दिव्यैःसर्वरसैर्युक्तंदिव्यभोजनवस्त्रवत् ॥ ३४ ॥ उपकल्पितसर्वान्नंधौतनिर्म- लभाजनम् ॥ क्लृप्तसर्वासनश्रीमत्स्वास्तीर्णशयनोत्तमम् ॥३५॥ प्रविवेशमहाबाहुरनुज्ञातोमहर्षिणा ॥ वेश्मतद्रत्नसंपूर्णंभरतःकैकेयीसुतः ॥३६॥

आई ॥३१॥ असंख्य सुन्दर श्वेतवर्ण गृह, हस्तिशाला और अश्वशाला वहां आई, बहुतसे चौमहले अतिसुन्दर महल आये जिसमें अनेक प्रकारकी अटारियें व धवरहर आदि बने थे, शुभ तोरणयुक्त ॥३२॥ श्वेतमेघ सन्निभ सुन्दरवंदनवार लगे हुए उजले फूलोंकी मालासे सुगंधित दिव्य सुवासित पदार्थ मिश्रित जलसे छिडके छिडकाये सैकडों राजमंदिर आये ॥३३॥ जिनमें चौकोने अतिविशाल सोने उठने बैठने आदिके स्थान बने, अनेक प्रकारकी जहां सवारियें धरी देवना जिनको भोजन करें ऐसे सब तरहके भोजन व उत्तम वस्त्र धरे ॥३४॥ सब भांति भक्ष्य, भोज्य, चोष्य, लेह्य अन्नयुक्त, धोये निर्मल भोजन करने बनाने आदिके पात्र, सब तरहके बिछौने बिछाये धनधान्ययुक्त सब शयन करनेके योग्यस्थानों पर सुन्दर बिछौने और बिस्तरे बिछे ॥३५॥ कैकेयीनंदन महाबाहु भरतजी

महर्षिजीकी आज्ञासे ऐसे एक रत्नपरिपूर्ण गृहमें प्रवेश करते हुए ॥३६॥ सब मंत्री लोग भी पुरोहित वसिष्ठके साथ भरतजीके अनुगामी हुए और उस गृहका गठन आदि देखकर परम प्रीतिलाभ करते हुए ॥३७॥ वहांपर जो राजाओंके योग्य एक सिंहासन था जिसके धोरे दास सब वस्त्राभूषण पहरे छत्र चमर हाथमें लिये खडे थे सो भरतजीने मंत्रियोंके सहित उस सिंहासनकी प्रदक्षिणाकी ॥३८॥ वह राजासन रामचन्द्रजीके योग्य और वह मानों उसपर बैठेही हैं यह विचारकर भरतजीने प्रणामकर उसकी पूजाकी और फिर खसका पंखालेकर मंत्रीके बैठने योग्य आसनपर आप विराजमान हुए ॥३९॥ तब मंत्रीगण पुरोहित वसिष्ठजी यथायोग्य आसनपर बैठते हुए । प्रथम सेनापति और उनके पीछे शिबिररक्षक आदि बैठे ॥४०॥ जब सब बैठ बैठाय गये तब मुहूर्तभरके बीचहीमें पायसरूप कर्दमशालिनी अर्थात् दूधखांडकी नदियें महर्षि भरद्वाजजीकी आज्ञासे भरतजीके निकट प्राप्त हुईं ॥४१॥ इन नदियोंके दोनों किनारे पीली मिट्टीसे लिपे हुए थे

अनुजग्मुश्चतेसर्वेमंत्रिणःसपुरोहिताः ॥ बभुवुश्चमुदायुक्तास्तंदृष्ट्वावेश्मसंविधिम् ॥३७॥ तत्रराजासनंदिव्यंव्यजनंछत्रमेवच ॥ भरतोमंत्रिभिः सार्धमभ्यवर्ततराजवत् ॥ ३८ ॥ आसनंपूजयामासरामायाभिप्रणम्यच ॥ बालव्यजनमादायन्यषीदत्सचिवासने ॥ ३९ ॥ आनुपूर्व्यान्निषे- दुश्चसर्वेमंत्रिपुरोहिताः ॥ ततःसेनापतिःपश्चात्प्रशास्ताचन्यषीदत ॥४०॥ ततस्तत्रमुहूर्तेननद्यःपायसकर्दमाः ॥ उपातिष्ठंतभरतंभरद्वाजस्य शासनात् ॥ ४१ ॥ आसामुभयतःकूलंपांडुमृत्तिकलेपनाः ॥ रम्याश्चावसथादिव्याब्राह्मणस्यप्रसादजाः ॥ ४२ ॥ तेनैवचमुहूर्तेनदिव्याभरण- भूषिताः ॥ आगुर्विंशतिसाहस्राब्रह्मणाप्रहिताःस्त्रियः ॥ ४३ ॥ सुवर्णमणिमुक्तेनप्रवालेनचशोभिताः ॥ आगुर्विंशतिसाहस्राःकुबेरप्रहिताः स्त्रियः ॥४४॥ याभिर्गृहीतःपुरुषःसोन्मादइवलक्ष्यते ॥ आगुर्विंशतिसाहस्रानंदनादप्सरोगणाः ॥४५॥ नारदस्तुंबुरुर्गोपःप्रभयासूर्यवर्चसः ॥ एतेगंधर्वराजानोभरतस्याग्रतोजगुः ॥ ४६ ॥ अलंबुषामिश्रकेशीपुंडरीकाथवामना ॥ उपानृत्यंतभरतंभरद्वाजस्यशासनात् ॥ ४७ ॥

और श्वेतमृत्तिका (चूना) से पुते हुए दिव्य रमणीय गृह भी शोभा पारहे थे यह सब गृह भरद्वाजजीके प्रसादसे उत्पन्न हुए थे ॥४२॥ अनन्तर उसी समय ब्रह्माजीकी पठाई हुई भांति २के वस्त्राभूषणोंसे सजी-धजी बीस हजार (२००००) स्त्रियां आईं ॥४३॥ इनके सिवाय स्वयं कुबेरजीकी भेजी हुई बीस हजार (२००००) स्त्रियां वहां आईं, जो कि सब मणियें, मोती और सुवर्ण पहरे शोभित हो रही थीं ॥४४॥ जिनके दर्शनमात्रसेही आदमी उन्मत्त और वशीभूतसा देखा जाता वैसी बीस हजार (२००००) अप्सरायें नन्दनवनसे वहां आकर उपस्थित हुईं उसके पीछे सूर्य नारायणके समान दीप्तिमान् नारद तुम्बरू और गोप यह सब गन्धर्व राजा भरतजीके सन्मुख आकर गान करने लगे ॥४५॥४६॥ तब अलम्बुषा, मिश्रकेशी, पुंडरीका और वामना यह सब अप्सरायें महर्षि भरद्वाजजी

की आज्ञासे भरतजीके समीप नाचने गाने लगीं ॥४७॥ चैत्ररथवनमें जो फूल मिलते, नन्दन काननमेंजो सुमन पाये जाते वह समस्त महर्षि भरद्वाजजीके तेजसे उस समय प्रयागमें दिखाई देते थे ॥४८॥ भरद्वाजजीके तेजसे सब बेलके वृक्षोंने पखावजियोंके रूप धारणकर मृदंग बजाया, शमीके वृक्ष ताल बजाते, बहेड़ा और पीपलके पेड़ नर्त्तकोंका करके वहां विराजमान हुए ॥४९॥ अनन्तर ताल, तमाल, तिलक और देवदारुके वृक्ष सब कोई कुब्ज और कोई कोई वामनका रूप धारण करके वहां आये ॥५०॥ सिरस, आंवला, जामुन इन सबके सिवाय जो वनैली लता आदिक थीं वह सब स्त्रियोंका भेष लेकर वहां भरद्वाजजीके आश्रममें उपस्थित हुईं इन सब वृक्ष लता आदिकोंका आना भरद्वाजजीके तेज प्रभावसे हुआ नहीं तो जडोंमें ऐसी शक्ति कहां? ॥५१॥ सुराके पीनेवालोंने सुरापानकी भूखे मनुष्योंने खीर और परमपवित्र मांस भोजन किया, अथवा जिसकी जो इच्छा हुई उसने वही भोजन किया वहां सब वस्तु तैयार धरी थीं ॥५२॥ जैसेही किसीने

यानिमाल्यानिदेवेषुयानिचैत्ररथेवने ॥ प्रयागेतान्यदृश्यंतभरद्वाजस्यतेजसा ॥ ४८ ॥ बिल्वामार्दंगिकाआसन्शम्याग्राहाविभीतकाः ॥ अश्वत्थानर्तकाश्चासन्भरद्वाजस्यतेजसा ॥४९॥ ततःसरलतालाश्चतिलकाःसतामालकाः ॥ प्रहृष्टास्तत्रसंपेतुःकुब्जाभूत्वाथवामनाः ॥५०॥ शिंशपामलकीजंबूर्याश्चान्याःकाननेलताः ॥ प्रमदाविग्रहंकृत्वाभरद्वाजाश्रमेऽवसन्॥५१॥ सुरांसुरापाःपिबतपायसंचबुभुक्षिताः ॥ मांसानिच सुमेध्यानिभक्ष्यंतांयोयदिच्छति ॥ ५२ ॥ उच्छोद्यस्नापयंतिस्मनदीतीरेषुवल्गुषु ॥ अप्येकमेकंपुरुषंप्रमदाःसप्तचाष्टच ॥ ५३ ॥ संवाहंत्यः समापेतुर्नार्योविपुललोचनाः ॥ परिमृज्यतदान्योन्यंपाययंतिवरांगनाः ॥ ५४ ॥ हयान्गजान्खरानुष्ट्रांस्तथैवसुरभेःसुतान् ॥ अभोजयन्वाहनपास्तेषांभोज्यंयथाविधि ॥ ५५ ॥ इक्षूश्चमधुलाजांश्चभोजयंतिस्मवाहनान् ॥ इक्ष्वाकुवरयोधानांचोदयंतोमहाबलाः ॥५६॥ नाश्वबंधोश्वमाज नान्नगजंकुंजरग्रहः ॥ मत्तप्रमत्तमुदितासाचमूस्तत्रसंबभौ ॥ ५७ ॥

स्नान करना चाहा कि, वैसेही एक२ पुरुषको साथ २ आठ २ स्त्रियां नदीके तीरपर लेजा उबटनकरा स्नान कराने लगीं ॥५३॥ बडे २ नेत्रवाली सब वारांगनायें न्हाये हुए पुरुषोंके गीले अंग वस्त्रसे भली भांति शुष्क कर और मींज मांज चरण दाबती हुईं उनको शर्बत आदि पिलानेमें प्रवृत्त हुईं ॥५४॥ साईस, महावत, रथवान आदि श्रेष्ठ हाथी, घोडे, ऊंट और वृषभादिकोंका यथाविधानसे उनके भोजनीय रातब सबको खिलाने लगे ॥५५॥ उनमें इक्ष्वाकुवंशीय प्रधान २ योद्धाओंके जो वाहन थे उनको महाबलवान् उनके मालिकोंने ऊख, लावा, जलेबी आदि खानेके लिये भेजा । वहीं साईस आदिकोंने उनको कराया ॥५६॥ सब साईस व चरकटों आदिकोंने ऐसी मादक वस्तुयें खाई कि, साईसोंने अपने घोडोंको न जाना, और चरकटोंने अपने हाथियोंको न पहँचाना वह समस्त सेना

मादक वस्तुओंके सेवन करनेसे मत्त व मधु पीनेसे प्रमत्त और मुदित होकर वहां भलीभांति शोभित होती हुई ॥५७॥ इसप्रकार सब कोई सब तरहसे इच्छा नुसार भोग लाभकर तृप्तहो लाल चन्दनादि सुगन्ध लगाये और अप्सराओंसे रमणकर सब लोग मतवालोंकीसी बातें कहने लगे ॥ ५८ ॥ भाई ! अब न तो हम अयोध्याहीकोजायँगे न रामचन्द्रजीके साथ दण्डकारण्यमेंही जायँगे भरतजी भी कुशलरहैं जिसके प्रतापसे हमें यह सुख लाभ हुआऔर रामचन्द्रजीभी सुख पूर्वक वनमें विहरें ॥५९॥ हाथियोंके चढनेवाले, घुडसवार,हाथियोंके रक्षक, घोडोंके रक्षक और पैदल योद्धा लोग सबही यह सत्कार पा और मादकवस्तु खा पीकर स्वतंत्र हो इस प्रकारसे कहने लगे ॥६०॥ भरतजीके अनुयायी हजारों मनुष्य अतिशय आह्लादितहो यह कहकर कि "यहीं स्वर्गहै" जोरसे शोर करने लगे ॥६१॥ सेनाके मनुष्य माला पहरे कोई नाचने लगे कोई २ हँस२ गाना गाने लगे, कोई २ हँस २ कर इधर उधर दौडने लगे ॥६२॥ अमृतके समान

तर्पिताःसर्वकामैश्वरक्तचंदनरूषिताः ॥ अप्सरोगणसंयुक्ताःसैन्यावाचमुदीरयन् ॥५८॥ नैवायोध्यांगमिष्यामोनगमिष्यामदंडकान् ॥ कुशलं भरतस्यास्तुरामस्यास्तुतथासुखम् ॥५९॥ इतिपादातयोधाश्चहस्त्यश्वारोहबंधकाः ॥ अनाथास्तंविधिंलब्ध्वावाचमेतामुदीरयन् ॥६०॥ संप्रहृष्टाविनेदुस्तेनरास्तत्रसहस्रशः ॥ भरतस्यानुयातारःस्वर्गोऽयमितिचाब्रुवन् ॥ ६१ ॥ नृत्यंतश्चहसंतश्चगायंतश्चैवसैनिकाः ॥ समंतात्प रिधावंतोमाल्योपेताःसहस्रशः ॥६२॥ ततोभुक्तवतांतेषांतदन्नममृतोपमम् ॥ दिव्यानुद्वीक्ष्यभक्ष्यांस्तानभवद्भक्षणेमतिः ॥ ६३ ॥ प्रेष्याश्चे टयश्ववध्वश्चबलस्थाश्चापिसर्वशः ॥बभूवुस्तेभृशंपीताःसर्वेचाहतवाससः॥ ६४ ॥ कुंजराश्चखरोष्ट्राश्चगोश्वाश्चमृगपक्षिणः ॥ बभूवुःसुभृतास्त त्रनातोह्यन्वमकल्पयन् ॥६५॥ नाशुक्लवासास्तत्रासीत्क्षुधितोमलिनोऽपिवा ॥ रजसाध्वस्तकेशोवानरः कश्चिददृश्यत ॥ ६६ ॥ आजैश्चापि चवाराहैर्निष्ठानवरसंचयैः॥ फलनिर्यूहसंसिद्धैःसूपैर्गंधरसान्वितैः ॥ ६७ ॥

अन्न भोजन करके यद्यपि वह लोग परम तृप्त होगये थे तथापि दिव्य२पदार्थोंको देखकर फिर उनको भोजन करनेकी इच्छा हुई ॥६३॥ सेनामें जितने दास दासी और स्त्रियें थीं उन सबनेही नये२वस्त्र पहनकर बहुत प्रसन्नता पाई क्योंकि उनको ऐसे वस्त्राभूषण नहीं मिलते थे ॥६४॥ और हाथी, घोडे, ऊँट, गाय, बैल, खच्चर, गधे, मृग और पशु सब मनमानी वस्तु खाय २ बहुत अघायगये. फिर उन्होंने किसी पदार्थकी भी इच्छा न की न किसीमें मुँह डाला॥६५॥ अधिक क्या कहिये वहांपर भूँखा जिसको भोजन न मिला हो, मैला कुचैलाजिसके बाल धूलसे अटरहेहो अथवा कोईमैली पोशाक, पहर रहाहो ऐसा कोई आदमी वहाँपर दृष्टि नहीं आता था ॥६६॥ सेनामें जो कुत्ते आदि पलाऊ जीव थे उनके भोजनार्थ आम आदि फलोंके काढेसे पचाये खस्सीशूकरादिकोंका

मांस मूंग उर्द आदिकी दाल हींग आदि सुगन्धित द्रव्योंसे बघारीहुईं व और भीअनेक प्रकारके श्रेष्ठ व्यंजनविद्यमानथे ॥६७॥ लोहेके सैकडोंपात्रोंमेंफूलोंकी पताका किनारे२गडी हुई उनके बीचमें सुन्दर उज्ज्वल भात भरा देख लोग विस्मित होते थे ॥६८॥ उसपांच योजन भूमिके घेरेके चारों ओर जितनेकुयेंथे सबमें खीरहीकी कीचड भरी थी जिसका जो चाहें निकाल कर खाय,गौयें सब कामधेनुके समान थीं कि,जो मांगो सो दें और जितने वृक्षथे वह सब बराबर शहद दूध दही आदिकधारा बहा रहे थे॥६९॥इसके सिवाय जो कि, बडे२तालाबथे वहसब मैरेय नाम मद्यसे भर रहेथे,और भली प्रकारके गरम किये कुण्डोंमें भला रँधा हुआ औरबहुतही साफकिया हुआ मृग, मोर, मुरगा आदिका मांस भरा हुआ था ॥७०॥ अन्न धरनेके लिये सुवर्णके छोटे२हजारों वर्तन थे भात आदि बनानेके अर्थ भी सुवर्णहीके लाख पात्र थे, व भोजन करनेके निमित्तभी सोनेके दशकरोड बर्तन थे ॥ ७१ ॥ लुटिया आपखोरा आदि पानी पीनेके बर्तन अग्नि

पुष्पध्वजवतीःपूर्णाःशुक्लस्यान्नस्यचाभितः ॥ ददृशुर्विस्मितास्तत्रनरालौहीःसहस्रशः ॥६८॥ बभूवुर्वनपार्श्वेषुकूपाःपायसकर्दमाः ॥ ताश्च कामदुघागावोद्रुमाश्चासन्मधुश्च्युतः ॥६९॥ वाप्योमैरेयपूर्णाश्चमृष्टमांसचयैर्वृताः ॥ प्रतप्तपैठरैश्चापिमार्गमायूरकौक्कुटैः ॥ ७० ॥ पात्रीणांचसहस्राणिस्थालीनांनियुतानिच ॥ न्युर्बुदाणिचपात्राणिशातकुंभमयानिच ॥ ७१ ॥ स्थाल्यःकुंभ्यःकरंभ्यश्चदधिपूर्णाःसुसंस्कृताः ॥ यौवनस्यगौरस्यकपित्थस्यसुगंधिनः ॥७२॥ ह्रदाःपूर्णारसालस्यदध्नःश्वेतस्यचापरे ॥ बभूवुःपयसश्चान्येशर्कराणांचसंचयाः ॥७३॥ कल्कांश्चूर्णकषायांश्चस्नानानिविविधानिच ॥ ददृशुर्भाजनस्थानितीर्थेषुसरितांनराः ॥७४ ॥ शुक्लानंशुमतश्चापिदंतधावनसंचयान् ॥ शुक्लांश्चंदनकल्कांश्चसमुद्रेष्ववतिष्ठतः ॥७५॥ दर्पणान्परिमृष्टांश्चवाससांचापिसंचयान् ॥ पादुकोपानहंचैवयुग्मान्यत्रसहस्रशः ॥ ७६ ॥

आदिसे तपे तपाये हुए पवित्र करम्भी दही धरनेके पात्र जिनमें दही भरा रहता बहुत पात्र मट्ठा धरनेके ऐसे थे कि, जिनमें मथनेके पीछे पहर भरतक मट्ठा धरा रहता था । बहुत पात्र केशर आदि पीली वस्तु डाले हुए पीला मट्ठा धरनेके थे, बहुत जीरा आदि सुगंधित वस्तु मिले हुये मट्ठेके थे ॥ ७२ ॥ वहांके सब कुंड सिखरणियोंसे भरे थे, कोई २ दहीसे कोई २ दूधसे कोई २ शक्करहीसे पूर्ण होरहे थे ॥ ७३ ॥ सब लोगोंने नदियोंके नहानेके घाटपर जाकर देखाकि,आंवलादि चुराया हुआ काढा,लावा आदिकाकाढा बर्तनोंमें भरा किनारोंपर धरा है ॥ ७४ ॥ सुन्दर २ दुधारे वृक्षोंकी दँतौनोंके ढेरके ढेर धरे और उज्ज्वल लाल२चन्दन कटोरोंमें घिसाया धरा ॥ ७५ ॥ इसही घाटपर हजारों स्वच्छ दर्पण पवित्र सफेद वस्त्रोंके ढेरकेढेर जूती व खडाउओंकी

हजारों जोडियां धरीं ॥ ७६ ॥ अंजन भरी हुई डिबियां कंघियें कूच जो कि खससे बने डाढी मूछ आदि झाडनेको थे छत्र धनुष कवच विचित्र सेज और आसन ॥७७॥ गधे, ऊँट, हाथी, घोडे आदिकोंको पीनेके पदार्थ भरे हुये कुंड जिसमें स्नान करने और आने जानेके लिये सुन्दर घाटबांधे कमल फूले ॥७८॥ कुंडोंमें मल रहि आकाशके समान साफ जल भरा उतर जानेमें सुलभ नीलवैदूर्य्य मणिके समान ॥ ७९ ॥ हरी २ घासकी सानी पशुओंके लिये बनी, धरी घासके ढेरके ढेर धरे यह देखकरकि, महर्षि भरद्वाजजीने इसप्रकार भरतजीकी पहुनाई की वह स्वप्नसदृश यह व्यापार देखकर सबही आश्चर्यको प्राप्त हुये ॥८०॥ नंदनवनमें देवतालोग जिसप्रकार विहार करतेहैं वैसेही रमणीय भरद्वाजजीकेआश्रममें इस प्रकार खेल और आह्लाद करते २, उस सब सेनाने वह रात्रि बिताई

आंजनीः कंकतान्कूर्चांश्छत्राणिचधनूंषिच ॥ मर्मत्राणानिचित्राणिशयनान्यासनानिच ॥७७॥ प्रतिपानह्रदान्पूर्णान्खरोष्ट्रगजवाजिनाम् ॥ अवगाह्यसुतीर्थांश्चह्रदान्सोत्पलपुष्करान् ॥ ७८ ॥ आकाशवर्णप्रतिमान्स्वच्छतोयान्सुखाप्लवान् ॥ नीलवैदूर्यवर्णाश्चमृदून्यवसंचयान् ॥७९॥ निर्वापार्थंपशूनांतेददृशुस्तत्रसर्वशः ॥ व्यस्मयंतमनुष्यास्तेस्वप्नकल्पंतदद्भुतम् ॥८०॥ दृष्ट्वातिथ्यंकृतंतावद्भरद्वाजमहर्षिणा ॥ इत्येवंरममाणानांदेवानामिवनंदने ॥ ८१ ॥ भरद्वाजाश्रमेरम्येसारात्रिर्व्यत्यवर्तत ॥ प्रतिजग्मुश्चताःसर्वागंधर्वाश्चयथागतम् ॥ भरद्वाजमनुज्ञाप्य ताश्चसर्वावरांगनाः ॥ ८२ ॥ तथैवमत्तामदिरोत्कटानरास्तथैवदिव्यागुरुचंदनोक्षिताः ॥ तथैवदिव्याविविधास्स्रगुत्तमाःपृथग्विकीर्णामनुजैः प्रमर्दिताः ॥८३॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आ० च० सा० अयोध्याकांडे एकनवतितमःसर्गः ॥९१॥ ततस्तांरजनींव्युष्यभरतःसपरिच्छदः ॥ कृतातिथ्योभरद्वाजंकामादभिजगामह ॥१॥ तमृषिःपुरुषव्याघ्रंप्रेक्ष्यप्रांजलिमागतम् ॥ हुताग्निहोत्रोभरतंभरद्वाजोऽभ्यभाषत ॥२॥

॥८१॥ अप्सरायें जो कि, जिस जगहसे आईथीं गन्धर्वगण वरवर्णिनी स्त्रियें जोसब रात्रिको उस आश्रममें रहीं प्रातःकाल होतेही सब स्त्रियां और अप्सरागंधर्वगणइत्यादि भरद्वाजजीकी आज्ञालेजहांसे आये थे वहीं चले गये ॥८२॥ परन्तु भरतजीके अनुयायी सबही मनुष्य वैसेही दर्पित और मदमत्त और वैसेही दिव्य अगुरुसेचर्चित होकर रहे भांति२की श्रेष्ठ और दिव्य मालायें उनके उपभोग करनेके लिये वैसेही इधर उधर गिरने और मनुष्योंसे मली जाने लगीं ॥ ८३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी०आदि अयो० भाषायामेकनवतितमः सर्गः ॥९१॥ अनन्तर भरद्वाजजीके पहुनई करनेपर परिवार सहित भरतजीने वह रात्रि वहांपर बिताई और रामचन्द्रजीको प्राप्तहोनेकी कामनासे महर्षि भरद्वाजजीके समीप आये ॥१॥ पुरुषव्याघ्र भरतजीको हाथ जोडे हुए देखकर निकट आया हुआ देख महर्षि

भरद्वाज जब अग्निहोत्र समाप्त कर चुके तब भरतजीसे बोले ॥ २ ॥ हे अनघ! हमारे इस आश्रममें यह रात्रि तुमने सुखसे तो बिताई ? और तुम्हारे साथके सब आदमी पहुनई पाकर भलीभांति सन्तुष्ट तो हुये॥३॥ यह कह उत्तम तेजस्वी महर्षि भरद्वाजजी आश्रमसे बाहर आये तब भरतजीने हाथ जोड उनको प्रणाम कर कहा ॥४॥ भगवन् ! हमने सब सेना और वाहनादिकोंके संग यह रात्रि सुखसे बिताई और महातपोबल सम्पन्न आपने भी सब सेनासहित हमें विशेष रीतिसे सन्तुष्ट किया है ॥५॥ अतएव सब नौकर चाकरोंके सहित हम सब लोगोंने सुखसे रात्रि बिताई सुखमें वास किया सुखसे खाना पीना किया और हम सबको मार्गमें चलनेसे जो कुछ संताप और थकावट हुई थी वह सब दूर होगई ॥६॥ हे भगवन् ! ऋषिश्रेष्ठ ! इस समय आपसे आज्ञा लेकर हम अपने भ्राताके निकट जाया चाहते हैं आप हमारे ऊपर कृपादृष्टिकी वृष्टि करें ॥ ७ ॥ हे धर्मज्ञ ! यह बताइये कि, महात्माधार्मिक रामचंद्रजीका आश्रम यहांसे कितनी दूर है

कच्चिदत्रसुखारात्रिस्तवास्मद्विषयेगता ॥ समग्रस्तेजनः कच्चिदातिथ्येर्शसमेऽनघ ॥ ३ ॥ तमुवाचांजलिंकृत्वाभरतोऽभिप्रणम्यच ॥ आश्रमादपनिष्क्रांतमृषिमुत्तमतेजसम् ॥४॥ सुखोषितोऽस्मिभगवन्समग्रबलवाहनः ॥ बलवत्तर्पितश्चाहंबलवान्भगवंस्त्वया ॥ ५ ॥ अपेतक्लमसंतापाः सुभिक्षाःसुप्रतिश्रयाः ॥ अपिप्रेष्यानुपादायसर्वेस्मसुसुखोषिताः ॥६॥ आमंत्रयेऽहंभगवन्कामंत्वामृषित्तम ॥ समीपंप्रस्थितंभ्रातुर्मैत्रेणेक्षस्वचक्षुषा ॥ ७ ॥ आश्रमंतस्यधर्मज्ञधार्मिकस्यमहात्मनः ॥ आचक्ष्वकतमोमार्गःकियानितिचशंसमे ॥ ८ ॥ इतिपृष्टस्तुभरतंभ्रातुर्दर्शनलालसम् ॥ प्रत्युवाचमहातेजाभरद्वाजोमहातपाः ॥ ९ ॥ भरतार्धतृतीयेषुयोजनेष्वजनेवने ॥ चित्रकूटगिरिस्तत्ररम्यनिर्दरकाननः ॥१०॥ उत्तरंपार्श्वमासाद्यतस्यमंदाकिनीनदी ॥ पुष्पितद्रुमसंछन्नारम्यपुष्पितकानना ॥ ११ ॥ अनंतरंतत्सरिताश्चित्रकूटंचपर्वतम् ॥ तयोःपर्णकुटीतातत्रतौवसतोध्रुवम् ॥ १२ ॥ दक्षिणेनचमार्गेणसव्यदक्षिणमेवच ॥ गजवाजिसमाकिर्णावाहिनींवाहिनीपते ॥ १३ ॥

उसका मार्ग कौनसा है और कितना अन्तर यहांसे है? ॥८॥जब भरतजीने बड़े भाई रामचन्द्रजीके दर्शनकी लालसासे इस प्रकार पूछातब परमतेजस्वी और परमतपस्वी भरद्वाजजी उत्तर देते हुए॥९॥हे भरत! यहांसे ढाई योजनके अनन्तर जन शून्य अरण्यके मध्यमें चित्रकूट नाम एक रमणीय पर्वत है, जहां कि, अनेक झरने झर रहे हैं और वन अलगही अपनी शोभाका स्ताविर कर रहे हैं ॥१०॥ उस पर्वतके उत्तर बगलमें मंदाकिनी नदी बहरही है, इस नदीकेदोनों किनारोंपर फूले हुए पेड़ लग रहे हैं और रमणीय पुष्पित वन भी वहांही है॥११॥ हे तात ! बस उसीसे मिला हुआ चित्रकूट पर्वत है और तुम रामचंद्रजीकी पर्णकुटी देखोगे वह निश्चय वहीं वास करते हैं ॥ १२ ॥ हे महाभाग ! वाहिनीपते! यमुनाकेदाहिने किनारेपर कुछ दूर चलकरउस मार्गकी शोभादेखोगे मार्गोंके मध्य बाईतरफजो

रास्ता दक्षिणकी ओर गया है बस इसी मार्गपर गज वाजि युक्त सेनाकोचलाना ॥१३॥ तो रामचन्द्रजीके दर्शन तुमको होजायँगे; भरत व भरद्वाजजीकीवार्त्ता सुन सवारियोंमें चढीहुई महाराज दशरथजीकी रानियोंने यह सुनकर कि, अब आगे चलना होगा ॥ १४ ॥ यद्यपि महाराज दशरथजीकी स्त्रियां पैदल जरा देरभी कभी काहेको चलीहोंगी तथापि यात्रा सुन पैदलही आकर महर्षि भरद्वाजजीके चरण युगल ग्रहणकिये। उस समय कांपतीहुई दीन औरदुर्बलसुमित्राजीकेसंग ॥१५॥ आकर कौशल्याजीने परिक्रमा कर महर्षिभरद्वाजजीके चरणयुगल ग्रहण किये । यद्यपि सब लोगोंकी पालक कौशल्याजी हैं तथापि रामचन्द्रजीके अभिषेक होनेका उनका मनोरथ पूरा नहीं हुआ ॥ १६ ॥ उसी समय कैकेयीभी तिन महामुनिकी प्रदक्षिणा करके कुछ लज्जित हो मुनिभरद्वाजजीके चरणोंमें गिरीं ॥१७॥ औरप्रणाम करके जाय दुःखितचित्तसे लाजसे भरतजीके बनाय समीपही खडीहुई तबमहामुनि भरद्वाजजीने भरतसे कहा ॥१८॥ हे रघुनन्दन!

वाहयस्वमहाभागततोद्रक्ष्यसिराघवम् ॥ प्रयाणमितिचश्रुत्वाराजराजस्ययोषितः ॥ १४ ॥ हित्वायानानियानार्हाब्राह्मणंपर्यवारयन् ॥ वेपमानाकृशादीनासहदेव्यासुमित्रया ॥ १५ ॥ कौसल्यातत्रजग्राहकराभ्यांचरणौमुनेः ॥ असमृद्धेनकामेनसर्वलोकस्यगर्हिता ॥ १६॥ कैकेयीतत्रजग्राहचरणौसव्यपत्रपा ॥ तंप्रदक्षिणमागम्यभगवंतंमहामुनिम् ॥ १७ ॥ अदूराद्भरतस्यैवतस्थौदीनमनास्तदा ॥ तत्रपप्रच्छभरतंभरद्वाजोमहामुनिः ॥ १८ ॥ विशेषंज्ञातुमिच्छामिमातृणांतवराघव ॥ एवमुक्तस्तुभरतोभरद्वाजेनधार्मिकः ॥ १९ ॥ उवाचप्रांजलिर्भूत्वावाक्यंवचनकोविदः ॥ यामिमांभगवन्दीनांशोकानशनकर्शिताम् ॥ २० ॥ पितुर्हिमहिषींदेवींदेवतामिवपश्यसि ॥ एषातंपुरुषव्याघ्रंसिंहविक्रांतगामिनम् ॥२१॥ कौसल्यासुषुवेरामंधातारमदितिर्यथा ॥अस्यावामभुजंश्लिष्टायासातिष्ठतिदुर्मनाः ॥२२॥इयंसुमित्रादुःखार्तादेवीराज्ञश्चमध्यमा ॥ कर्णिकारस्यशाखेवशीर्णपुष्पावनांतरे॥२३॥एतस्यास्तौसुतौदेव्याःकुमारौदेववर्णिनौ ॥उभौलक्ष्मणशत्रुघ्नौवीरौसत्यपराक्रमौ ॥२४॥

हम तुम्हारी माताओंका विशेषहाल जानना चाहतेहैं, जब धार्मिक भरद्वाजने भरतजीसे ऐसा कहा ॥१९॥ तबवचन कहनेमें चतुर भरतजी हाथ जोडकरबोलेकि हे भगवन् ! जो यह बहुत दीनमुख शोक वउपासोंके कारण दुर्बल होगईहैं ॥२०॥ पिताजीकी सबसे बड़ी महारानी हैं जो देवीके समान रूप धारण किये हैं सिंह विक्रान्तगामी पुरुषसिंह श्रीरामचन्द्रजीको इन्हीं ॥२१॥ कौशल्याजीने प्रसव किया है जैसे इन्द्रको अदितिजीने उत्पन्न किया है। व जो इन्हींकी बांई भुजासे लपटी उदास खडी हैं ॥ २२ ॥ यह महाराज दशरथजीकी मध्यमा रानी देवी सुमित्राजी हैं जो दुःखसे व्याकुल हो रही हैं । सब पुष्पोंके गिर जानेसे कर्णिकार वृक्षकी शाखा वनमें जिस प्रकार शोभाहीन हो जातीहै वैसेही यह भी दुःखित होरही हैं ॥२३॥ देवताओंके समान रूपवान् वीर्यवान् सत्यविक्रम सुकुमार

लक्ष्मण व शत्रुघ्न इन्हींदेवी सुमित्राजीके कुमार हैं ॥ २४ ॥ और जिसके कारण पुरुषोत्तम रामचन्द्रजी और लक्ष्मण मृत्युसम विपदको प्राप्तहुयेहैं और राजा दशरथजी पुत्रहीन हो स्वर्गको सिधारे हैं ॥ २५ ॥ क्रोधयुक्त स्वभाववाली बुद्धिहीन सदागर्वित रहनेवाली, रूपका घमंडरखनेवाली ऐश्वर्यकी चाहना रखनेवाली, अनाडिन होकरभी अपनेको आर्यवत् समझनेवाली यह कैकेयी है ॥२६॥ सो इस पापाशय और निठुरको हमारी माता जानिये, हम जो इस समय विषय संकटमें पडे हैं सो यही इस संकटकी जडहै ॥२७॥ यह कहते२नरशार्दूल भरतजीकी वाणी गद्गद हो आई वह क्रोधमें भरे भुजंगके समान लंबे२ श्वासलेने लगे तब उनके नेत्र लालहोआये ॥ २८ ॥ महामति महर्षि भरद्वाजजी भरतजीको इस प्रकारसे कहते देखकर स्नेह सहित अर्थयुक्त वचन उनसे बोले

यस्याःकृतेनरव्याघ्रौजीवनाशमितोगतौ ॥ राजापुत्रविहिनश्चस्वर्गंदशरथोगतः ॥२५॥ क्रोधनामकृतप्रज्ञांदृप्तांसुभगमानिनीम् ॥ ऐश्वर्यकामां कैकेयीमनार्यामार्यरूपिणीम् ॥२६॥ ममैतांमातरंविद्धिनृशंसांपापनिश्चयाम् ॥ यतोमूलंहिपश्यामिव्यसनंमहदात्मनः ॥ २७ ॥ इत्युक्त्वा नरशार्दूलोबाष्पगद्गदयागिरा ॥ विनिःश्वस्यसताम्राक्षःक्रुद्धोनागइवश्वसन् ॥२८॥ भरद्वाजोमहर्षिस्तंब्रुवंतंभरतंतदा॥ प्रत्युवाचमहाबुद्धिरिदं वचनमर्थवित् ॥२९॥ नदोषेणावगंतव्याकैकेयीभरतत्वया॥ रामप्रव्राजनंह्येतत्सुखोदर्कंभविष्यति ॥ ३० ॥देवानांदानवानांचऋषीणांभविता त्मनाम् ॥ हितमेवभविष्यद्धिरामप्रव्राजनादिह ॥ ३१ ॥ अभिवाद्यतुसंसिद्धःकृत्वाचैनंप्रदक्षिणम् ॥ आमंत्र्यभरतःसैन्यंयुज्यतामितिचा ब्रवीत् ॥ ३२ ॥ ततोवाजिरथान्युक्त्वादिव्यान्हेमविभूषितान् ॥ अध्यारोहत्प्रयाणार्थंबहून्बहुविधोजनः ॥३३॥ गजकन्यागजाश्चैवहेमक क्ष्याःपताकिनः॥जीमूताइवघर्मांतेसघोषाःसंप्रतस्थिरे॥३४॥ विविधान्यपियानानिमहांतिचलघूनिच॥प्रययुःसुमहार्हाणिपादैरपिपदातयः ॥३५॥

॥२९॥ हे भरत ! तुम कैकेयीको दोषका भागी मत समझो,क्योंकि यह रामचन्द्रजीका वनवास परिणाममें महासुखका हेतु होगा ॥ ३० ॥ रामचन्द्रजीके इस वनवास होनेसे देव दानव और महात्मा ऋषिगणोंका बरन् सबका हितही होगा ॥ ३१ ॥ यह कहकर महर्षि भरद्वाजजीने आशीर्वाद दिया, भरतजी उनकी कृपाको पाकर कृतार्थ हो उनकी सलाह ले प्रदक्षिणा कर सब सेनाको यात्राके लिये तैयार होनेकी आज्ञा देते हुये ॥ ३२ ॥ उस समय वह सैनिक जन अनेक प्रकारके सुवर्ण भूषित दिव्य रथोंमें उत्तम घोडे जोतकर प्रस्थान करनेके लिये उसमें आरोहण करते हुए ॥ ३३ ॥ सोनेकी कील बंधन रज्जु और पताका विशिष्ट हाथी और हथिनियें गरमीके अंतमें शब्दायमान मेघमंडलके समानदशों दिशाओंके निनादित करती हुई चलीं ॥ ३४ ॥ छोटे बडे अनेक

प्रकारके बडे मूल्यवाले याने और सवारियें चलीं और पैदल लोग पैदल चलने लगे ॥३५॥ अनन्तर कौशल्याजीसे आदि लेकर सब राजाकी स्त्रियें प्रमुदित हो रामचन्द्रजीके दर्शनकी कामनासे श्रेष्ठ२यान व सवारियोंपर चढ २ कर चलीं ॥३६॥ श्रीमान् भरतजी सपरिवार तरुण चन्द्र और सूर्यके समान देदीप्यमान शोभायुक्त पालकीपर सवार होकर चलने लगे॥३७॥ वह हाथी घोडे करके युक्त बडी सेना वहांसेदक्षिण दिशाको चली जैसे उसी दिशामेंमेघ उठनेसे शोभा होती है ऐसेही यह सेना शोभायमान होने लगी ॥३८॥यहबडी भारीसेनाचलनेकेसमय भागीरथी गंगाजीके पश्चिम किनारे पर्वत और नदीनालेयुक्त मृगपक्षियों से सेवितशोभायमान वनकोनांघकरचली ॥ ३९ ॥ सेनामेंजोहाथी और घोडे थे वह बहुतही प्रफुल्लित होगये व वनके मृग और पक्षी समूह इस सेनाको देख अधिक भयभीत हुए उसकाल भरतजीकी विपुल वाहिनी सेना महावतमें प्रवेश करके परम शोभा विस्तार करती हुई ॥ ४० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि०

अथयानप्रवेकैस्तुकौसल्याप्रमुखाःस्त्रियः ॥ रामदर्शनकांक्षिण्यःप्रययुर्मुदितास्तदा ॥ ३६ ॥ चंद्रार्कतरुणाभासांनियुक्तांशिबिकांशुभाम् ॥ आस्थायप्रययौश्रीमान्भरतःसपरिच्छदः ॥३७॥ साप्रयातामहासेनागजवाजिसमाकुला ॥ दक्षिणांदिशमावृत्यमहामेघइवोत्थितः ॥३८॥ वनानिचव्यतिक्रम्यजुष्टानिमृगपक्षिभिः ॥ गंगायाःपरवेलायांगिरिष्वथनदीष्वपि ॥ ३९ ॥ सासंप्रहृष्टद्विपवाजियूथावित्रासयंतीमृगपक्षिसंघान् ॥ महद्वनंतत्प्रविगाहमानाराजसेनाभरतस्यतत्र ॥४०॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० च०सा०अ० द्विनवतितमः सर्गः ॥९२॥ तयामहत्यायायिन्याध्वजिन्यावनवासिनः॥ अर्दितायूथपामत्ताःसयूथाःसंप्रदुद्रुवुः ॥१॥ ऋक्षापृषतमुख्याश्चरुरवश्चसमंततः ॥ दृश्यंतेवनवाटेषुगिरिष्वपि नदीषुच ॥२॥ ससंप्रतस्थेधर्मात्माप्रीतोदशरथात्मजः ॥ वृतोमहत्यानादिन्यासेनयाचतुरंगया ॥३॥ सागरौघानिभासेनाभरतस्यमहात्मनः॥ महींसंछादयामासप्रावृषिद्यामिवांबुदः ॥४ ॥ तुरंगौघैरवततावारणैश्चमहाबलैः ॥ अनालक्ष्याचिरंकालंतस्मिन्कालेबभूवसा ॥ ५ ॥

अयो० भाषायां द्विनवतितमः सर्गः ॥९२॥ जब उस महासेनाने इस भांति प्रस्थानकिया तब वनवासी यूथपतिमतवाले सब हाथी उस सेनासे पीडा पाकर अपने २ झुण्डोंको संगले चारों ओरको दौडे ॥१॥ नदियोंके तीरपर पर्वतोंके शिखरपर और वनोंमें रीछ बुन्दकियोंवाले मृग या सब जीव सब दिशाओंमें व्याकुल भावसे दौडते हुए दृष्टि आये ॥ २ ॥ दशरथकुमार महात्मा भरतजी गर्जनकरके धावमान होतीहुई असंख्य चतुरंगिणी सेनाके साथ प्रसन्न मनहो चलने लगे ॥३॥ जिम प्रकार वर्षाकालमें मेघ आकाश मंडलको ढक लेते हैं वैसेही महात्मा भरतजीकी सागरके समानलहरें लेती हुई बड़ी भारी सेनासे पृथ्वी पूर्ण होगई ॥ ४ ॥ उसकाल महाबलवान हाथी और घोडोंके झुंडसे भलीभांति ढकी हुई पृथ्वी बहुत दूरतक श्याम होनेसे देख नहीं पडती थी ॥ ५ ॥ बहुत चले

आकर सब वाहन बहुतही थकगये तब श्रीमान् भरतजीरे मंत्रिश्रेष्ठ वसिष्ठजीसे कहा ॥ ६ ॥ हे भगवन् ! जैसा कि, हम देखते हैं और जैसा सुना है और जिस प्रकारकि स्वयं भरद्वाजजीने इस देशके चिह्न बताये थे, उससे स्पष्ट विदित होता है कि, हम अपने मनमाने स्थानपर पहुँच गये ॥ ७ ॥ महाराज ! देखो यह वही चित्रकूट पर्वत है, यह वही मन्दाकिनी नदी है और दूसरे नीले बादरोंके समान यह वही वनभी दिखाई देता है ॥ ८ ॥ देखिये इस समय हमारे पर्वताकार हाथी चित्रकूटके रमणीय सब स्थानोंको पीडित कररहे हैं ॥ ९ ॥ यह देखिये जिस प्रकार वर्षाऋतुमें सजल श्याम जलधरमंडल पानी वर्षाते हैं वैसेही वृक्षसब इस समय हाथियोंकी सूंडोंके आघातसे हिलकर पर्वतके कँगूरोंपर फूलोंकी वर्षा कर रहे हैं ॥ १० ॥ हे शत्रुघ्न ! किन्नरोंके रहनेके स्थानको देखो । हमारी सेना के घोडेजो चारों ओर फैलगये हैं उससे यह स्थान बड़े मकरों करके पूर्णसमुद्रके समान शोभा पारहा है ॥ ११ ॥शरत्कालमें

सगत्वादूरमध्वानंसंपरिश्रांतवाहनः॥उवाचवचनंश्रीमान्वसिष्ठंमंत्रिणांवरम् ,॥६॥ यादृशंलक्ष्यतेरूपंयथाचैवमयाश्रुतम्॥ व्यक्तंप्राप्ताःस्मतंदेशंभरद्वाजोयमब्रवीत् ॥ ७ ॥ अयंगिरिश्चित्रकूटस्तथामंदाकिनीनदी ॥ एतत्प्रकाशतेदूरान्नीलमेघनिभंवनम् ॥ ८ ॥ गिरेःसानूनिरम्याणि चित्रकूटस्यसंप्रति ॥ वारणैरवमृद्यंतेमामकैःपर्वतोपमैः ॥ ९ ॥ मुंचंतिकुसुमान्येतेनगाःपर्वतसानुषु ॥ नीलाइवातपापायेतोयंतोयधराघनाः ॥ १० ॥ किन्नराचरितंदेशंपश्यशत्रुघ्नपर्वते ॥ हयैःसमंतादाकीर्णंमकरैरिवसागरम् ॥११॥ एतेमृगगणाभांतिशीघ्रवेगाःप्रचोदिताः ॥ वायुप्रविद्धाःशरदिमेघजालाइवांबरे ॥ १२ ॥ कुर्वंतिकुसुमापीडाञ्शिराःसुसुरभीनमी ॥ मेघप्रकाशैःफलकैर्दाक्षिणात्यानरायथा ॥१३॥ निष्कूजमिवभूत्वेदंवनंघोरप्रदर्शनम्॥ अयोध्येवजनाकीर्णासंप्रतिप्रतिभातिमे ॥ १४ ॥ खुरैरुदीरितोरेणुर्दिवंप्रच्छाद्यतिष्ठति॥ तंवहत्यनिलःशीघ्रंकुर्वन्निवममप्रियम् ॥१५॥ स्यंदनांस्तुरगोपेतान्सूतमुख्यैरधिष्ठितान् ॥ एतान्संपततःशीघ्रंपश्यशत्रुघ्नकानने ॥ १६ ॥

वायुवेगसे चलते हुए मेघोंके झुंड जिसप्रकार आकाशमंडलमें शोभा पाते हैं समस्त वैसेही शीघ्रगामी सेनासे चलाये जाकर मृगगण शोभायमानहोरहे हैं ॥१२॥ नीले जलधरसदृश प्रकाशमान नीली डालें जैसे दक्षिणके लोग शिरपर धरेरहते हैं वैसेही यह हमारी सेनाके लोग शिरोंपै कैसे महकदार काले फूलोंकेगुच्छे धरे हैं ॥१३॥यह स्वभावसेही निर्जनशब्द रहित देखे जानेपरभी इस समय हमारे आगमनसे मनुष्योंसे भरी पुरी अयोध्या पुरीके समान प्रतीत होता है॥१४॥ घोडोंकी खुरतालोंसे उड़ी हुई धूलके समूहसे आकाश ढक गया है मानो पवनहमारा हितही साधन करनेके लिये उसधूलको शीघ्र आकाशमें उडा लेजाती है ॥ १५ ॥ हे शत्रुघ्न ! देखो प्रधान २ सारथियोंके बैठनेसे यह घोडे जुते हुए सब रथ वनमें अति शीघ्रतासे चले जाते हैं ॥ १६ ॥

यह देखो प्रियदर्शन मोर डरके मारे कैसे चले जाते हैं, व ऐसेही और पक्षीभी अनेक स्थानोंसे उडे हुए जा रहेहैं ॥१७॥ यह स्थान बहुतही मनोहर और परम सुन्दर लगता है । तपस्वी लोग यहां रहा करते हैं इस कारणसे यह मार्ग स्वर्गकेसमान है ॥ १८ ॥ यह देखो वनके नीचे चितेरे मृग अपनी २ हिरनियोंकेसाथ मिलकर ऐसे मनोहर दिखाई देते हैं मानों फूलोंसे सजा दिये हैं ॥ ॥ १९ ॥ हे सेनाकेलोगो ! तुम लोग इस समय विधिविधानसे जाकर जिससे कि पुरुषोत्तम रामचन्द्र व लक्ष्मणजी मिल जायँ ठौर २ पर खोज करो, और सब वनको जरा २ करकै देखो ॥२०॥ शस्त्र धारण किये शूरवीर पुरुषोंने जब भरतजीकी यह आज्ञा सुनी तो उसी समय बनमें प्रवेश करके उन्होंने एकजगह धूँआं उठता हुआ देखा ॥२१॥ धूयेंको उठाहुआ देखकर वह लोग लौटे और

एतान्वित्रासितान्पश्यबर्हिणःप्रियदर्शनान् ॥ एवमापततःशैलमधिवासंपतत्रिणाम् ॥१७॥ अतिमात्रमयंदेशोमनोज्ञःप्रतिभातिमे॥तापसानांनिवासोऽयंव्यक्तंस्वर्गपथोऽनघ ॥ १८ ॥ मृगामृगीभिःसहिताबहवःपृषतावने ॥ मनोज्ञरूपालक्ष्यंतेकुसुमैरिवचित्रिताः ॥ १९ ॥ साधुसैन्याःप्रतिष्ठंतांविचिन्वंतुचकाननम् ॥ यथातौपुरुषव्याघ्रौदृश्येतेरामलक्ष्मणौ ॥ २० ॥ भरतस्यवचःश्रुत्वापुरुषाःशस्त्रपाणयः ॥ विविशुस्तद्वनंशूराधूमाग्रंददृशुस्ततः ॥२१॥ तेसमालोक्यधूमाग्रमूचुर्भरतमागताः ॥ नामनुष्येभवत्यग्निर्व्यक्तमत्रैवराघवौ ॥२२॥ अथनात्रनरव्याघ्रौराजपुत्रौपरंतपौ ॥ अन्येरामोपमाःसंतिव्यक्तमत्रतपस्विनः ॥ २३ ॥ तच्छ्रुत्वाभरतस्तेषांवचनंसाधुसंमतम् ॥ सैन्यानुवाचसर्वांस्तानमित्रबलमर्दनः ॥२४॥ यत्ताभवंतस्तिष्ठंतुनेतोगंतव्यमग्रतः ॥ अहमेवगमिष्यामिसुमंत्रोधृतिरेवच ॥ २५ ॥ एवमुक्त्वाततःसैन्यास्तत्रतस्थुःसमंततः ॥ भरतोयत्रधूमाग्रंतत्रदृष्टिंसमादधत् ॥ २६ ॥

भरतजीसे आकर निवेदन किया कि,जहां मनुष्यका समागम नहीं वहां अग्नि किस प्रकार हो सकती है ? इस कारणसे स्पष्ट बोध होता है कि,निश्चयही यहां राम लक्ष्मण हैं ॥२२॥ अथवा वह शत्रुओंके दमन करनेवाले पुरुषसिंह रामचन्द्र महाबलवान् लक्ष्मणजी नहोंतब रामचन्द्रजी॥ तुल्य कोईदूसरे तपस्वीलोगयहां होंगे इसमें तो कोई भी सन्देह नहींहै ॥२३॥ शत्रुओंके बलको मथन करनेवाले भरतजी सेनाके लोगोंके यह न्यायानुसार वचनसुनकर उनसे बोले ॥२४॥ तुम सब लोग स्थिर और सावधान होकर यहीं टिके रहो यहांसेआगे न जाना मंत्रीसुमंत्रऔर धृति मंत्रीकेसाथ हमही अकेले आगेको जायँगे।अशोकमंत्रीकानाम धृतिभी था ॥ २५ ॥ सेनाके लोग इस वार्त्ताको सुनकर इधर उधर टिक रहे तब भरतजीने वहांपर दृष्टि डाली जहां कि,धुँआ उठता दिखाई देता था ॥२६॥

उस काल भरतजीकी आज्ञानुसार सेना यथाविधि टिक रही और सामनेही धुयेंको उठता हुआ देखकर उन्होंने समझ लिया कि, परमप्रीति भाजन रामचन्द्रजीसे अब मिलनेमें देर नहीं है यह विचार कर लोग परमप्रफुल्लित हुए ॥ २७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० ,वा० आदि० अयो० भाषायां त्रिनवतितमः सर्गः ॥ ९३ ॥ गिरिवर चित्रकूटके प्रियकारी श्रीरामचन्द्रजी बहुत समयसे उस पर्वतपर वास करते रहे । जानकीका प्रिय करने व अपने चित्तको लुभानेके कारण ॥१॥ जैसे शचीनाथ इन्द्रजी इन्द्राणीको नंदनवनकी शोभा दिखाते हैं वैसे ही जानकीनाथ भार्या जानकीजी की चित्र विचित्र चित्रकूट की शोभा दिखाने लगे ॥२॥ रामचन्द्रजी बोले कि, भद्रे ! इस रमणीय चित्रकूट की शोभा को देखकर क्या राज्यनाश, क्या भाई बन्धुओंसे बिछुडना इन सब किसी बातोंसे या और किसी कारणसे अब मेरा मन कुछ भी दुःखित नहीं है ॥ ३ ॥ हे कल्याणि ! देखो अनेक प्रकार विहंगोंके समूह इस पर्वत के वनमें वास करते हैं, और

व्यवस्थितायाभरतेनसाचमूर्निरीक्षमाणापिचभूमिमग्रतः ॥ बभूवहृष्टानचिरेणजानतीप्रियस्यरामस्यसमागमंतदा ॥ २७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणेवाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० अयोध्याकांडे त्रिनवतितमः सर्गः ॥९३॥ दीर्घकालोषितस्तस्मिन्गिरौगिरिवरप्रियः ॥ वैदेह्याः प्रियमाकांक्षन्स्वंचचित्तंविलोभयन् ॥ १ ॥ अथदाशरथिश्चित्रंचित्रकूटमदर्शयत् ॥ भार्याममरसंकाशःशचीमिवपुरंदरः ॥२॥ नराज्यभ्रंशनं भद्रेनसुहृद्भिर्विनाभवः ॥ मनोमेबाधतेदृष्ट्वारमणीयमिमंगिरिम् ॥३॥ पश्येममचलंभद्रेनानाद्विजगणयुतम् ॥ शिखरैःखमिवोद्विद्धैर्धातुमद्भिर्विभूषितम् ॥४॥ केचिद्रजतसंकाशाःकेचित्क्षतजसन्निभाः ॥ पीतमांजिष्ठवर्णाश्चकेचिन्मणिवरप्रभाः ॥५॥ पुष्पार्ककेतकाभाश्चकेचिज्ज्योतीरसप्रभाः विराजंतेऽचलेंद्रस्यदेशाधातुविभूषिताः ॥६ नानामृगगणैर्द्वीपितरक्ष्वृक्षगणैर्वृतः ॥ अदुष्टैर्भात्ययंशैलोबहुपक्षिसमाकुलः ॥७॥ आम्रजंब्वसनैर्लोध्रैः प्रियालैःपनसैर्धवैः ॥ अंकोलैर्भव्यतिनिशैर्बिल्वतिंदुकवेणुभिः ॥८ काश्मर्यारिष्टवरणैर्मधूकैस्तिलकैरपि ॥ बदर्यामलकैर्नीपैर्वेत्रधन्वनबीजकैः ॥९॥

विविध धातुओंके द्वारा रँगीले शिखरमानों आकाशको भेद करके इस पर्वत की शोभाको बढा रहे हैं ॥ ४ ॥ इस पर्वतके कोई २ शृङ्ग तो चांदीके समान चमकीले हैं, कोई शिखर रुधिर समान लाल हैं, कोई २ शिखर पीले और मजीठकी लताके समान लाल रंगके और कोई २ इन्द्रनीलमणिकी प्रभाके समान हैं ॥ ५ ॥ इस पर्वत राजके समान पुष्पराग स्फटिक और केतकी कुसुमके समान रंगके और कोई २ नक्षत्रोंके और पारेके रंगके समान विराजते हैं ॥ ६ ॥ पुष्टताको छोड शान्त स्वभाव अनेक भांतिके मृग, केहरी, शेर, चीते आदि और रीछोंके समूह व और अनेक प्रकारके विहंगमोंकरकेहोनेसे इस गिरिराज चित्रकूटने अति मनोहर शोभा धारण की है॥७॥ अधिकाईसे आम जामुन, असना, लौंग, चिरौंजी, कटहर, अकुहर, तिनिश, बेल. तेंदआ. बांस ॥८॥ काश्मरी, नींब, वरुण,

महुआ, तिलक, बेर, आंवला, कदंब, वेत, बिजौरा, नींबू ॥९॥ इनसे आदि लेकर और अनेक प्रकारके फल और छाया युक्त मनोहर वृक्षोंके समूह करके व्याप्त होनेसे यह चित्रकूट पर्वत शोभा विस्तार कर रहाहै ॥१०॥ हे भद्र ! यहदेखोरमणीय पर्वतके कंगूरोंपरमनस्वी किन्नरकेजोडे सबकामहर्षणदेशोंमेंविहार कर रहेहैं यहां इनकी सब इच्छा पूर्ण होती हैं इसी कारण यह प्रसन्नहैं ॥११॥ किन्नरोंके श्रेष्ठ खड्ग और विद्याधरोंकी स्त्रियोंके विचित्र वस्त्रसब मनोहर क्रीडा करनेके स्थानोंमें वृक्षोंकी टहनियोंपर लटक रहेहैं, सो तुम देखो ॥ १२ ॥ स्थान २ पर झरनोंके झरनेसे और सोते जो पृथ्वी को भेदकर निकले हैं उनके बहनेसे यह गिरिवर मद चूतेहुए हाथीके समान शोभा पा रहाहै ॥१३॥ यह देखो ! समीर गुफाओंके मुखसे निकल अनेकप्रकारके फूलोंकी विविध भांति की सुगंधि लाकर नासिकाको तृप्तकर रहीहै सो इस पवनके लगने से किसको हर्ष नहीं होता ! ॥१४॥ अयि अनिन्दिते ! हम तुम्हारे और लक्ष्मणके सहित

पुष्पवद्भिः फलोपेतैश्छायावद्भिर्मनोरमैः॥एवमादिभिराकीर्णः श्रियंपुष्पत्ययंगिरिः ॥१०॥ शैलप्रस्थेषुरम्येषुपश्येमान्कामहर्षणान् ॥ किन्नरा न्द्वंद्वशोभद्रेरममाणान्मनस्विनः॥११॥शाखावसक्तान्खड्गांश्चप्रवराण्यंबराणिच॥पश्यविद्याधरस्त्रीणांक्रीडोद्देशान्मनोरमान् ॥१२॥ जलप्रपा तैरुद्भेदैर्निष्पंदैश्चक्वचित्क्वचित् ॥ स्रवद्भिर्भात्ययंशैलःस्रवन्मदइवद्विपः ॥ १३ ॥गुहासमीरणोगंधान्नानापुष्पभवान्बहून् ॥ घ्राणतर्पणमभ्ये त्यकंनरंनप्रहर्षयेत् ॥ १४ ॥ यदीहशरदोनेकांस्त्वयासार्धमनिंदिते ॥ लक्ष्मणेनचवत्स्यामिनमांशोकःप्रधर्षति ॥ १५ ॥ बहुपुष्पफले रम्येनानाद्विजगणायुते॥विचित्रशिखरेह्यस्मिन्रतवानस्मिभामिनि ॥१६॥ अनेनवनवासेनममप्राप्तंफलद्वयम्॥पितुश्चानृण्यताधर्मेभरतस्यप्रियं तथा ॥ १७ ॥ वैदेहिरमसेकच्चिच्चित्रकूटेमयासह ॥ पश्यंतीविविधान्भावान्मनोवाक्कायसंमतान् ॥१८॥ इदमेवामृतंप्राहूराज्ञिराजर्षयःपरे ॥ वनवासंभवार्थायप्रेत्यमेप्रपितामहाः ॥ १९ ॥ शिलाःशैलस्यशोभंतेविशालाःशतशोऽभितः ॥ बहुलाबहुलैर्वर्णैर्नीलपीतसितारुणैः ॥२०॥

यदि बहुत वर्षोंतक भी यहां वासकरें तो भी शोक हमारे मनको बाधानहींकरेगा॥१५॥ हे भामिनी ! बहुविध पुष्प फल सम्पन्न अनेक जातिके पक्षियों करके परिपूर्ण और विचित्र शिखरयुक्त यह रमणीय चित्रकूट हमको बहुत प्रसन्न करताहै॥१६॥इस वनवासके द्वारा हमको दो फल प्राप्त हुए। प्रथमतो सत्य धर्मपालन करके पिताजीके ऋणको चुकाया, दूसरे भरतजी परम प्रसन्न हुए ॥१७॥ हे जानकि ! हमारे साथ इस चित्रकूट पर्वत पर मन वचन और देहानुकूल विविध परमप्रीति कर नये२पदार्थ देख तुम्हारे चित्तको भी आनन्द देताहै॥१८॥हे राज्ञि! राजर्षियों राजाओंकेलिये इसप्रकारसेनियमसहित वनवासकरनेको अमृतके समान कहा है, हमारे पुरुष मनु आदिकोंने भी वनवासको परलोकका मंगल करनेवालाकहाहै,॥१९॥यह देखो ! चारों ओर पर्वतनाथ चित्रकूटकी सैकडोंविशाल चित्त

विचित्र शिलायें सफेद, पीली, नीली; लाल२विविध भांतिके रंगोंसे शोभा पारही हैं॥२०॥रात्रिमें इस पर्वतराज पर हजारों:ओषधिव लतायेंसब अपनी२प्रभासे दीप्तहो प्रज्वलितअग्निकी शिखाके समान बहुत ही शोभाविस्तार करतीहैं॥२१॥हे भामिनी ! यह देखो इस पर्वतके कोई२स्थान तो गृहके समानहैं, कोई फूल वाडियोंके समानहैं और कोई स्थान बहुत मनुष्योंके रहने योग्यहै क्योंकि, वह एक चट्टानहीसे शोभित होकर परमशोभा विस्तार करते हैं॥२२॥ स्वयं चित्र कूट मानो पृथ्वीको भेद करके ऊपरको उठकर विराजमान हुआहै । यहदेखो यह चित्रकूटकेही सब श्रृंग सब ओर शोभायमान दृष्टि आतेहैं॥२३॥यहदेखो हे कमल नयनी ! कमलव पुत्रजीवकव भोजपत्रादि वृक्षोंके पत्तोंके गुच्छे देखो तो कामीलोग इन कमलोंके दलोंके बिछौना बिछाते हैं ॥२४॥ हेजानकि ! यह देखो कामीजनोंके पहरनेसे मलीगई और त्यागी हुई कमल फूलोंकी माला सब इधर उधर पडी हैं और वहां अनेक प्रकारके फल फूल भी इधर उधर पडेहैं

निशिभांत्यचलेंद्रस्यहुताशनशिखाइव ॥ ओषध्यःस्वप्रभालक्ष्म्याभ्राजमानाःसहस्रशः ॥२१॥ केचित्क्षयनिभादेशाःकेचिदुद्यानसन्निभाः ॥ केचिदेकशिलाभांतिपर्वतस्यास्यभामिनि ॥२२॥ भित्त्वेववसुधांभातिचित्रकूटःसमुत्थितः ॥ चित्रकूटस्यकूटोऽयंदृश्यतेसर्वतःशुभः ॥२३॥ कुष्ठस्थगरपुन्नागभूर्जपत्रोत्तरच्छदान् ॥ कामिनांस्वास्तरान्पश्यकुशेशयदलायुतान् ॥२४॥ मृदिताश्चापविद्धाश्चदृश्यंतेकमलस्रजः ॥कामिभि र्वनितेपश्यफलानिविविधानिच ॥ २५ ॥ वस्वौकसारांनलिनीमतीत्यैवोत्तरान्कुरून ॥ पर्वतश्चित्रकूटोऽसौबहुमूलफलोदकः ॥ २६ ॥ इमं तुकालंवनितेविजह्रिवांस्त्वयाचसीतेसहलक्ष्मणेन ॥ रतिंप्रपत्स्येकुलधर्मवर्धिनींसतांपथिस्वैर्नियमैःपरैःस्थितः ॥ २७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा मायणे वाल्मीकीयेआ० च० सा० अयो० चतुर्नवतितमःसर्गः ॥ ९४ ॥ अथशैलाद्विनिष्क्रम्यमैथिलींकोसलेश्वरः ॥ अदर्शयच्छुभजलां रम्यांमंदाकिनींनदीम् ॥१॥

॥२५॥ विविध भांतिके मूल फल और स्वच्छ जल सम्पन्न यह चित्रकूट पर्वत कुबेरजीकी अलकापुरी और इन्द्रजीकी अमरावती व उत्तरकुरु देशका अनादर करता शोभा पारहा है ॥ २६ ॥ आर्य प्रिय सीते ! यदि हम इस चौदह वर्ष के वनवासमें तुम्हारे और लक्ष्मणजी के श्रेष्ठ नियमानुसार साधुओंकी पदवी का आश्रय करके इस चित्रकूट पर विहार करने पावें तो कुल और धर्म दोनोंहीकी परम उन्नति करके सुखी हो सकेंगे ॥ २७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० आर्यौध्याकांडे भाषायां चतुर्नवतितमः सर्गः ॥ ९४ ॥ अनन्तर कोशलपति रामचन्द्रजी पर्वतकी शोभा दिखानेसे निवृत हो पर्वतसे निकल शुभ जलवाली रमणीय मंदाकिनी नदी दिखाने लगे ॥ १ ॥

श्रीकमलनयन करुणा अयन श्रीरामचन्द्रजी सुन्दर चन्द्रमाके समान मुखवाली स्त्रियोंमें श्रेष्ठ जनककुमारीसे कहने लगे ॥२॥ हे प्रिये ! हंस और सारस पक्षियों करके सेवित फूलवाली विचित्र किनारे युक्त रमणीय मंदाकिनी नदीको देखो ॥३॥ किनारोंपर भाँति २ के फूल, फलके पेड उत्पन्न होनेसे यह मंदाकिनी कुबेरकी पुरीके समान विराजमान है ॥४॥ इस नदीके सबही घाट अतिमनोहर हैं यह मुझको बहुतही प्रीति उपजा रहे हैं, अभी मृगयूथ इन घाटों पर जल पीकर गये हैं इससे यहांका जल गंदला हो रहा है ॥५॥ हे प्रिये ! यह देखो जटा और मृगचर्म धारण किए ऋषिलोग वृक्षोंकी छाल व पत्ते पहरे यथा समयमें इस मंदाकिनीके जलमें स्नान करते हैं ॥६॥ हे विशालाक्षि ! इस ओर यह सब दृढव्रतधारण किये मुनिलोग नियमके वश हो ऊपरको बांह उठाये सूर्य भगवान्‌की उपासनामें लग रहे

अब्रवीच्चवरारोहांचंद्रचारुनिभाननाम् ॥ विदेहराज्यस्यसुतांरामोराजीवलोचनः ॥ २ ॥ विचित्रपुलिनांरम्यांहंससारससेविताम् ॥ कुसुमैरुप संपन्नांपश्यमंदाकिनींनदीम् ॥ ३ ॥ नानाविधैस्तीररुहैर्वृतांपुष्पफलद्रुमैः ॥ राजंतींराजराजस्यनलिनीमिवसर्वतः ॥४॥ मृगयूथनिपीतानिक लुषांभांसिसांप्रतम् ॥ तीर्थानिरमणीयानिरतिंसंजनयंतिमे ॥ ५ ॥ जटाजिनधराःकालेवल्कलोत्तरवाससः ॥ ऋषयस्त्ववगाहंतेनदींमंदाकि नींप्रिये ॥ ६ ॥ आदित्यमुपतिष्ठंतेनियमादूर्ध्वबाहवः ॥ एतेपरेविशालाक्षिमुनयःसंशितव्रताः ॥ ७ ॥ मारुतोद्धूतशिखरैःप्रनृत्तइवपर्वतः ॥ पादपैःपुष्पपत्राणिसृजद्भिरभितोनदीम् ॥८॥ क्वचिन्मणिनिकाशोदांक्वचित्पुलिनशालिनीम् ॥ क्वचित्सिद्धजनाकीर्णांपश्यमंदाकिनींनदीम् ॥९॥ निर्धूतान्वायुनापश्यविततान्पुष्पसंचयान्॥ पोप्लूयमानानपरान्पश्यत्वंतनुमध्यमे॥ १० ॥ पश्यैतद्वल्गुवयसोरथांगाह्वयनाद्विजाः ॥ अधिरोहतिकल्याणिनिष्कूजंतःशुभागिरः ॥ ११ ॥ दर्शनंचित्रकूटस्यमंदाकिन्याश्चशोभने ॥ अधिकंपुरवासाच्चमन्येतवचदर्शनात् ॥ १२ ॥

हैं ॥७॥ मृदु मंद समीरके हिल्लोलसे चित्रकूटमें शिखरों परके पेड कांपकर इस नदीके इधर उधर फूलोंके ढेर छोड रहे हैं इससे ऐसा जान पडता है मानो यह चित्रकूट पर्वत नृत्य करके पुष्पांजलि दे रहा है ॥८॥ देखो कहीं कहीं इस मंदाकिनीका जल मणिके समान उज्ज्वल है; कहीं २ रेती शोभा दे रही है और कहीं २ सिद्ध लोग बैठे तप करते हैं ॥९॥ हे पतली कटिवाली ! वह फूलोंके ढेरकेढेर कुछ तो जलमें पडे हैं और हवासे चालित होकर बहे जाते हैं और कुछ जलके ऊपरही तैरते हैं सो तुम देखो ॥१०॥ हे कल्याणि ! इस ओरको देखो! चारुभाषी चक्रवाकपक्षी सब मीठी २ वाणीसे बोलते हैं, और कछाडमें बैठे हैं ॥११॥ हे शोभने ! अयोध्यामें रहनेसे हमको इस चित्रकूटके तुम्हारे और मंदाकिनीके देखनेसे कहीं चढ बढकर सुख होता है ॥१२॥

तपस्या और शमदमकरनेसे निष्पाप सिद्ध पुरुषलोग नित्य जिसके जलसे स्नान करते हैं सो इस समय तुम हमारे सहित ऐसी मंदाकिनी नदीमें स्नान करो॥ १३॥ हे भामिनी ! लालकमल और सफेद पद्मोंको जलमें डुबाती हुई इस मंदाकिनी नदीमें तुम सखीके समान निर्भय स्नान करो॥ १४॥ हे सीते ! तुम यहांके व्यालोंको पुरजनोंके समान गिरि चित्रकूटको अयोध्याके समान और इस मंदाकिनी नदीको सरयूके समान मनमें समझो ॥ १५॥ हे वैदेही ! लक्ष्मणजी परम धर्मात्मा हैं और हमारी आज्ञाके पालनेवाले हैं और तुमभी हमारी अनुकूल भार्या होकर सदाही हमें प्रसन्न करती रहतीहो ॥ १६॥ इसप्रकार तुम्हारे सहवासमें रह रात्रिकाल स्नान व मधुपान और कंद मूलफल भोजन करके अब हमको अयोध्या वा राज्यकी कुछभी इच्छा नहीं है ॥ १७॥ गजयूथ करके मथित, सिंह, मातंग और वानरगणों करके जिसका जल पियागया ऐसी पुष्पित धनवाली, फूलोंके समूहसे शोभायमान कुसुमनिकर विभूषिता इस रमणीय मंदाकिनी नदीमें स्नान करके

विधूतकल्मषैःसिद्धैस्तपोदमशमान्वितैः॥ नित्यविक्षोभितजलांविगाहस्वमयासह ॥१३॥ सखीवच्चविगाहस्वसीतेमंदाकिनींनदीम् ॥ कमलान्यवमज्जंतीपुष्कराणिचभामिनि॥१४॥ त्वंपौरजनवद्व्यालानयोध्यामिवपर्वतम् ॥ मन्यस्ववनितेनित्यंसरयूवदिमांनदीम्॥ १५ ॥ लक्ष्मणश्चैवधर्मात्मामन्निदेशेव्यवस्थितः ॥ त्वंचानुकूलावैदेहिप्रीतिंजनयतीमम ॥ १६॥ उपस्पृशंस्त्रिषवणंमधुमूलफलाशनः॥ नायोध्यायैनराज्यायस्पृहयेचत्वयासह॥ १७इमांहिरम्यांगजयूथलोडितांनिपीततोयांगजसिंहवानरैः॥सुपुष्पितांपुष्पभरैरलंकृतांनसोऽस्तियःस्यान्नगतक्लमःसुखी १८॥ इतीवरामोबहुसंगतंवचःप्रियासहायःसरितंप्रतिब्रुवन्॥ चचाररम्यंनयनांजनप्रभंसचित्रकूटंरघुवंशवर्धनः॥१९॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणेवा०आ०च०सा०अयो०पंचनवतितमःसर्गः९५रामस्तुनलिनींरम्यांचित्रकूटंचपर्वतम्॥उत्तरेतुगिरेःपादेचित्रकूटस्यराघवः १॥ ददर्शकंदरंरम्यंशिलाधातुसमन्वितम् ॥ सुखप्रसेकैस्तरुभिःपुष्पभारावलंबिभिः ॥२॥ संवृतंचरहस्यंचमत्तद्विजगणायुतम् ॥ तद्दृष्ट्वासर्वभूतानांमनोदृष्टिहरंवनम् ॥३॥

ऐसा कोई पुरुष नहीं है जो सुखी और थकावट रहित न होजाय ॥१८॥ रघुवंशके बढानेवाले श्रीरामचन्द्रजी मंदाकिनीके माहात्म्यमें ऐसे २ अनेक वचन कहते नयनाञ्जनके समान रमणीय चित्रकूट पर प्रिया जानकीजीके साथ विचरण करने लगे ॥ १९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आ० अयो० भाषायां पंचनवतितमः सर्गः ॥ ९५ ॥ सुंदर कमलवाली मंदाकिनी और चित्रकूट पर्वतको देखते २ रामचन्द्रजी चित्रकूटके उत्तरके तटपर गये ॥ १ ॥ वहां उसकी शिला और धातुओंसे युक्त सुन्दर कन्दरा देखी जहांके सुन्दर वृक्ष फूलोंके बोझसे लद रहे थे और नीचेको झुक रहे थे ॥ २ ॥ वह सम्पूर्ण प्राणियोंकी दृष्टिहरनेहारा वन मतवाले पक्षियोंके समूहसे गुप्त और प्रगट था यह देखकर ॥ ३ ॥

और वनको देखकर आश्चर्य प्राप्त हो रामचन्द्र जानकीजीसे बोले, प्रिये ! इस पर्वतकी कंदराको देख क्या तुम्हारा मन प्रसन्न होता है ? नेत्र सुखीहोते हैं॥४॥ यदि तुम थक गई हो तो कुछ देर यहां विश्राम करो तुम्हारे निमित्त यहां यह सुन्दर चिकनीं शिला विद्यमान है ॥५॥जिसके दोनों तरफ वृक्षोंके होनेसे उसके फूलोंकी केशर पड़ी हुई है । रामचन्द्रजीके यह कहनेपर स्वभावसे चतुर जानकीजी ॥६॥ बहुतही नम्रतासे यह मनोहर वचन बोलीं, हे रघुनंदन ! आपके वचन मुझे अवश्य मानने योग्य हैं ॥७॥ मैं बहुत आज फिरी चलीहूं इससे थकगई हूं जो तुम्हारा बैठनेका मनोरथ है तो बैठिये यह कहकर सुन्दरमुखवाली जानकी उस शिलाके निकटगई ॥८॥ वह सुन्दर अंगवाली स्वामीके संग विहार करनेकी इच्छासे बैठीं उन बुद्धिमती जानकीजीको देखकर रामचन्द्रजी बोले ॥९॥ प्यारी ! सब पदार्थ फूल खिलेहुये हितकारी वृक्षोंको देखो । हे देवि ! पर्वतमें यह शोभायमान सुन्दर फूलोंसे युक्त॥१०॥ हाथीके दांत लगनेसे जिनकी छाल छिल गई हैं उनमेंसे गोंद

उवाचसीतांकाकुत्स्थोवनदर्शनविस्मितः ॥ वैदेहिरमतेचक्षुस्तवास्मिन्गिरिकंदरे ॥४॥ परिश्रमविघातार्थंसाधुतावदिहास्यताम् ॥ त्वदर्थमिहविन्यस्तात्वियंश्लक्ष्णसमाशिला॥५॥यस्याः पार्श्वे तरुः पुष्पैः प्रविष्टइवकेसरैः॥राघवेणैवमुक्तासासीताप्रकृतिदक्षिणा ॥६॥ उवाचप्रणयस्निग्धमिदंश्लक्ष्णतरंवचः॥अवश्यकार्यंवचनंतवमेरघुनंदन॥७ बहुशोभ्रमितश्चाद्यतवचैवंमनोरथः॥एवमुक्त्वावरारोहाशिलांताम्रुपसर्पह॥८॥ सहभर्त्रानवद्यांगीरंतुकामामनस्विनी ॥ तामेवंब्रुवतींसीतांरामोवचनमब्रवीत् ॥ ९ ॥ रम्यंपश्यसिभूतार्थंवनंपुष्पितपादपम् ॥ पश्यदेविगिरौरम्येरम्यपुष्पांकितानिमान् ॥१०॥ गजदंतक्षतान्वृक्षान्पश्यनिर्यासवर्षिणः॥झिल्लिकाविरुतैर्दीर्घैरुदतीवसमंततः ॥११॥पुत्रप्रियोऽसौशकुनिः पुत्रपुत्रेतिभाषते ॥मधुरांकरुणांवाचंपुरेवजननीमम ॥१२॥ विहगोभृंगराजोऽयंशालस्कंधसमास्थितः ॥ संगीतमिवकुर्वाणःकोकिलेनावकूजति ॥१३॥ अयंवाबालकःशंकेकोकिलानांविहंगमः ॥ सुखबद्धमसंबद्धंतथाह्येषप्रभाषते ॥१४॥एषाकुसुमितानूनंपुष्प भारानतालता॥दृश्यतेमामिवात्यर्थंश्रमाद्देवित्वमाश्रिता ॥१५॥ एवमुक्ताप्रियस्यांकेमैथिलीप्रियभाषिणी ॥ भूयस्तरांत्वनिंद्यांगीसमारोहतभामिनी ॥ १६ ॥

निकलता है ऐसे वृक्षोंको देखो जिसमें अनेक प्रकारके पक्षी (कोकिलादि) ऊंचे स्वरसे चारों ओर बोल रहे हैं ॥ ११ ॥ पुत्रको प्यार करनेवाला शकुनी पक्षी पुत्र २ रट रहा है, जैसे पहले मेरी माता कौशल्या बहुत मनोहर और करुणाभरी वाणीसे मुझको पुकारा करती थी ॥१२॥ यह भृंगराजनामवाला पक्षी शाल वृक्षकी शाखापर बैठाहुआ कोकिल सहित मानो संगीत कररहा है॥१३॥ यह देखो मानो यह पक्षी कोकिलाओंके बालकोंका शब्द मुझे विदित होता है,सुखसे पूर्ण मिलाहुआ यह बोलताहुआ ॥१४॥ यह जो खिलीहुई फूलोंके बोझसे डालियें झुकरही हैं सो ऐसा विदित होता है कि, जैसे तुम श्रमितहो मेरा आश्रय करती हो ऐसेही यह चाहती हैं॥१५॥यह कहनेपर प्यारी बोलने वालीजानकी निन्दारहित जिनका शरीर परमसुन्दर अपने स्वामीकी गोदीमें लेटरही ॥ १६ ॥

वह देवकन्याओंके समान जानकीजी जब गोदीमें लेटरहीं, तब काममें अर्पण कियेहुए रामके मनको बहुत प्रसन्न करती हुई ॥१७॥ उससमय रामचन्द्रजीने सुन्दर मनसिलको लेकर अपने हाथसे जानकीजीके माथेमें सुन्दर तिलक किया ॥१८॥ बालक सूर्यकी समान रंगवाले पर्वतकी धातुके तेजसे जानकीका मुख शुक्लपक्षके समान प्रकाशित होने लगा ॥१९॥ तब रघुनाथजीने फूलोंका पराग ले अपने हाथसे मलकर बडे प्रसन्नहो जानकीजीके बालोंमें लगाया ॥ २० ॥ इस प्रकारसे रामचन्द्रजी उस शिलामें अनेकप्रकारसे रमण कर जानकीजीके साथ वहाँसे दूसरे स्थानको चले गये ॥२१॥ तहां जानकीजी जाते२ वानरयूथपको देख घबडाकर रामचन्द्रजीसे चिपट गईं उसवनमें मृगादिकबहुत थे॥२२॥ बडी भुजावाले रघुनाथजी जानकीजीको घबडायी हुई देख उन्हें हृदयसे लगा समझाने

अंकेतुपरिवर्तंतीसीतासुरसुतोपमा ॥ हर्षयामासरामस्यमनोमनसिजार्पितम् ॥१७॥ सनिघृष्यांगुलिंरामोधौतेमनःशिलोच्चये॥ चकारतिलकंत स्याललाटेरुचिरंतदा ॥१८॥ बालार्कसमवर्णेनतेजसागिरिधातुना॥ चकासेविनिविष्टेनससंध्येवनिशासिता ॥१९॥ केसरस्यचपुष्पाणिकरेणा मृद्यराघवः॥अलकंपूरयामासमैथिल्याःप्रीतमानसः॥२०॥अभिरम्यतदातस्यांशिलायांरघुनंदनः॥अन्वीयमानोवैदेह्यादेशमन्यंजगामह ॥२१॥ विचरंतीतदासीताददर्शहरियूथपम्॥वनेबहुमृगाकीर्णेवित्रस्तारामममाश्लिषत्॥२२॥ रामस्तांपरिरभ्यांगींपरिरभ्यमहाभुजः॥सांत्वयामासवामो रूवभर्त्स्याथवानरम् ॥२३॥ मनःशिलायास्तिलकःसीतायाःसोऽथवक्षसि ॥ समदृश्यतसंक्रांतोरामस्यविपुलौजसः ॥२४॥ प्रजहासतदासी तागतेवानरपुंगवे॥ दृष्ट्वाभर्तरिसंक्रांतमपांगंसमनःशिलम्॥२५॥नातिदूरेत्वशोकानांप्रदीप्तमिवकाननम् ॥ ददर्शपुष्पस्तबकैस्तर्जद्भिरिववानरैः ॥ २६ ॥ वैदेहीत्वब्रवीद्राममशोककुसुमार्थिनी॥वयंतदधिगच्छामोवनमिक्ष्वाकुनंदन॥२७॥ तस्याः प्रियेस्थितोरामोदेव्यादिव्याथरूपया ॥ सहितस्तदशोकानांविशोकः प्रययौवनम् ॥ २८ ॥ तदशोकवनंरामःसभार्योऽभ्यचरत्तदा ॥ गिरिपुत्र्यापिनाकीवसहहैमवतंवनम् ॥ २९ ॥

लगे और उस वानरयूथपको घुडक दिया ॥२३॥ वह जो मनसिलका तिलका लगा दिया था वह जानकीजीके लिपटजानेसे बडे पराक्रमी रामचन्द्रजीकी छातीमें लग गया ॥२४॥ जब वह बडा वानर चलागया तब जानकीजी हँसने लगीं फिर अपने माथेसे छुटा हुआ मनसिलका तिलक रामचन्द्रकी छातीमें लगा देखा॥२५॥ फिर थोडीही दूर अशोकवृक्षोंके वनको अग्निकान्तिके समान देख औ यह भी देखा कि,उनके गुच्छे वानर तोड रहे और किलकारी मार रहे हैं ॥ २६ ॥ जानकीजीअशोक वृक्षके गुच्छे लेनेकी इच्छासेरामचन्द्रजीसे बोलीं, हे रघुनन्दन ! मैं उस वनमें जानेकी इच्छा करती हूं॥२७॥उन देवकन्याओंकी समान रूपवाली जानकीके प्रियकरनेको रामचन्द्र उधरकोचले और वह शोकरहित जानकीजीकेसाथ उस अशोकवृक्षके वनमें पहुँचे ॥२८॥ तब राम सहित उसचन्द्रजी जानकी

अशोक वनमें विचरने लगे जिसप्रकार हिमालयके वनमें शिवजीपार्वतीसहित विचरतेहैं ॥२९॥ वे दोनों परस्पर एक दूसरेको अशोकवृक्षके नये पत्ते गुच्छे फूल पहराकर सजाने लगे, उन दोनों कामियोंको जो श्यामऔर गोरे वर्ण थे शोभित करते हुए ॥३०॥ उन दोनोंने वनमाला बनाकर गलेमें पहरली वे दोनों स्त्री और पुरुष परस्पर एक दूसरेको अत्यन्त शोभित करते हुए ॥३१॥ इस प्रकार सीताके प्रिय महाराज रामचन्द्रजी प्रियाको अनेक स्थान दिखाते हुए अपने सुन्दर शोभायमान आश्रममें आये ॥३२॥ इनकेपीछे बडेभाईसे प्रेम करने वाले भाई लक्ष्मणजीभी चले, उस समय पुण्यरूप लक्ष्मणजी विविधधर्म दिखलाते हुए चले आये ॥३३॥ उस समय बाणसे मारे हुए दश पवित्र काले मृग अच्छी प्रकारसे सुखाये हुये अग्निमें पक्व किये हुए लक्ष्मणजीने तैयार कर रक्खे थे और अनेक

तावन्योन्यमशोकस्यपुष्पैः पल्लवधारिभिः ॥ समलंचक्रतुरुभौकामिनौनीललोहितौ ॥ ३० ॥ आबद्धवनमालौतौकृतापीडावतंसकौ ॥ भार्यापतीतावचलंशोभयांचक्रतुर्भृशम् ॥३१॥ एवंसविविधान्देशान्दर्शयित्वाप्रियांप्रियः ॥ आजगामाश्रमपदंसुसंश्लिष्टमलंकृतम् ॥३२॥ प्रत्युज्जगामतंभ्रातालक्ष्मणोगुरुवत्सलः॥ दर्शयन्विविधंधर्मंसौमित्रिः सुकृतंतदा ॥ ३३ ॥ शुद्धबाणहतांस्तत्रमेध्यान्कृष्णमृगान्दश ॥ राशीकृतान्शुष्यमाणानन्यान्कांश्चनकांश्चन ॥ ३४ ॥ तद्दृष्ट्वाकर्मसौमित्रेर्भ्राताप्रीतोऽभवत्तदा॥ क्रियतांबलयश्चेतिरामःसीतामथान्वशात् ॥ ॥ ३५ ॥ अग्रंप्रदायभूतेभ्यःसीताथवरवर्णिनी॥ तयोरुपददद्भ्रात्रोर्मधुमांसंचतद्भृशम् ॥ ३६ ॥ तयोस्तुष्टिमथोत्पाद्यवीरयोःकृतशौचयोः ॥ विधिवज्जानकीपश्चाच्चक्रेसाप्राणधारणम् ॥ ३७ ॥ शिष्टंमांसंनिकृष्टंयच्छोषणायावकल्पितम् ॥ तद्रामवचनात्सीताकाकेभ्यःपर्यरक्षत ॥३८॥ तांददर्शतदाभर्ताकाकेनायासितांदृढम् ॥ यस्याहारांतरचरःकामचारीविहंगमः ॥३९॥ काकेनारोध्यमानांतांसामुमोहतदातुरम् ॥ साचुकोपान वद्यांगीभर्तृप्रणयदर्पिता ॥ ४० ॥

वस्तु तैयार करली थीं ॥३४॥ भाईका यह कार्य देखकर रामचन्द्र बहुत प्रसन्न हुए और जानकीजीसे बोले कि, अब बलिकर्म करना उचितहै ॥३५॥ सुन्दर महारानी जानकीजी प्रथम प्राणियोंके निमित्तबलि प्रदान करके पीछे दोनों भ्राताओंको वह शहत और मांस देती हुई॥३६॥ जब वह दोनों भाई महावीर भोजन कर कुल्ला आदि करके पवित्र हुए, पीछे जानकीने आपभी कुछ थोड़ासा भोजन किया ॥३७॥ बाकी जो निकृष्ट मांस बचरहा वह सुखानेको रखदिया और रामके कहनेसे जानकी कौओंसे उनकी रक्षा करने लगीं॥३८॥ तबरामचन्द्रजी देखने लगे कि, जानकीको कौवे दिक करनेलगे कि यथेच्छ फिरनेवाला एक कौआउस मांसके भोजन करनेको आया ॥३९॥ उस कौवेने जानकीको बहुत दिक किया औरवह मोहको प्राप्त होगई और स्वामीके प्रणयसे दर्पितहुई जानकी

उस काकके ऊपर बडी क्रोधित हुई ॥ ४० ॥ इधर उधर उस काकको जाकर निवारण करके लगीं,और वहभी उन क्रोध स्वभाववालीको पंख चोंच नख नोंक मारनेसे क्रोधं दिलाता हुआ ॥ ४१ ॥ उससे जानकीके होंठ फडकने लगे, भ्रुकुटी टेढी होगई,मुख लाल होगया यह देख कर रामचन्द्रजीने उस कौवेको फटकारा ॥ ४२ ॥ वह धृष्ट कौआ रघुनाथजीका निरादर करके जानकीके ऊपर आघात करने लगा यह देखकर रघुनाथजीको बडाक्रोध हुआ ॥ ४३ ॥ तत्काल रामचन्द्रने एक सींक उठाकर (बलवान् तो थेही) ऐषीक अस्त्रसे उसे संयोजित करके काएको निशाना बनाकर पुरुषसिंहने उसके ऊपर बाण छोडा॥ ॥ ४४ ॥ उसबाणके डरसे भागता हुआ वह कौआ त्रिलोकीमें घूमता फिरा वह हारके भीतर फिरनेवाला पक्षी देवताओंसे वरदान पाये हुये था ॥ ४५ ॥

इतश्चेतश्चतांकाकोवारयंतीपुनःपुनः ॥ पक्षतुंडनखाग्रैश्चकोपयामासकोपनाम् ॥४१॥ तस्याःप्रस्फुरमाणौष्ठंभ्रुकुटीपुटसूचितम् ॥ मुखमालोक्यकाकुत्स्थस्तंकाकंप्रत्यषेधयत् ॥४२॥ सधृष्टमानोविहगोरामवाक्यमचिंतयन् ॥ सीतामभिपपातैवततश्चुक्रोधराघवः॥४३॥ सोऽभिमंत्र्य शरैषीकामैषीकास्त्रेणवीर्यवान् ॥ काकंतमभिसंधायससर्जपुरुषर्षभः ॥४४॥सतेनाभिद्रुतःकाकस्त्रींल्लोकान्पर्यगात्ततः॥ देवैर्दत्तवरः पक्षीहारांतरचरोलघुः ॥ ४५ ॥ यत्रयत्रागमत्काकस्तत्रतत्रददर्शह ॥ इषीकभूतसंकाशांसरामंपुनरागमत् ॥ ४६ ॥ समूर्ध्नान्यपतत्काकोराघवस्यमहात्मनः ॥ सीतायास्तत्रपश्यंत्यामानुषीमैरयद्गिरम् ॥४७॥ प्रसादंकुरुमेरामप्राणैःसामग्र्यमस्तुमे ॥ अस्त्रस्यास्यप्रभावेणशरणंनलभेक्वचित् ॥ ४८ ॥ तंकाकमब्रवीद्रामःपादयोःशिरसागतम् ॥ सानुक्रोशतयाधीमानिदंवचनमर्थवत् ॥ ४९ ॥ मयारोषपरीतेनसीताप्रियहितार्थिना ॥ अस्त्रमेतत्समाधायत्वद्वधायाभिमंत्रितम् ॥५०॥ यत्तुमेचरणौमूर्ध्नागतस्त्वंजीवितेप्सया ॥ अत्रास्त्यवेक्षात्वयिमेरक्ष्योहिशरणागतः ॥ ५१ ॥

जहां२वह कौआ जाता था तहां२उस बाणको देखता था अग्निकेसमान ऐषीक अस्त्र उसकेपीछे फिरताथा जबकहीं ठिकाना नहीं लगा तब फिर रामचन्द्रके पास आया ॥ ४६ ॥ वह महात्मा रामचन्द्रके चरणोंमें आकर अपना शिर रखदेता हुआ और जानकीके देखते२मनुष्य वाणीसे यह बोला ॥४७॥ हे रामचन्द्र! मेरे ऊपर प्रसन्नहोकर मुझे प्राणदान कीजिये,मुझे इस अस्त्रके प्रभावसे त्रिलोकीमें कहीं शरण नहीं मिली ॥४८॥ उसकौवेको रामचन्द्र पैरोंमें पड़ाहुआ देखकर महाबुद्धिमान् उसके ऊपर दया करके कहने लगे,क्योंकि वह सब वार्त्ता को जानते थे ॥४९॥ सीताके हित करनेवाले मैंने क्रोधको प्राप्त होकर तेरे मारनेके निमित्त इस अस्त्रका प्रयोग कियाहै ॥५०॥ अब तू जो जीनेकी इच्छासे मेरी शरण आयाहै और मेरे चरणोंमें अपना शिररक्खा है तो इस कारण तेरे शरण

आजानेसे अब मैं इस बाणसे तेरी रक्षा करूंगा ॥५१॥ और मेरा बाणभी अमोघ है खाली नहीं जाता इसकारण तेरे किसी एक अंगका अवश्य नाश होग बतला कि तेरा कौनसा अंग नष्ट किया जाय ॥५२॥ बस हे काक! इतनाही मैं तेरा प्रिय कर सकताहूं इस अस्त्रकी भेटमें प्राणखोनेके बदले कोई एक अंग देना अच्छा है ॥५३॥ जब रामचन्द्रजीने ऐसा कहा तब वह चतुर पक्षी विचार कर दो आँखोंमेंसे एक आंख देना स्वीकार करताहुआ कहाभी है "जो धन जाता जानिये, आधा दीजे बांट" ॥५४॥ यह विचार कर कौआ बोला हे राम ! मैं एक आंख देना अच्छा समझताहूं । हे नरोंमें श्रेष्ठ! मैं आपकी कृपासे एक आंखसेही जीवन धारण करता रहूंगा ॥५५॥ तब वह रामका छोडा हुआ अस्त्र उसकी आंखपर गिरा कौवेकी एक आंख फूट जानेसे जानकीजी बड़ी विस्मित हुई ॥५६॥ कौआ रामचन्द्रको प्रणाम करशिर झुका अपने स्थानको चला गया लक्ष्मणके सहित रामचंद्रजी शेष कार्य संपादन करने लगे ॥५७॥ यह सर्गक्षेपक है ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा०

अमोघंक्रियतामस्त्रमेकमंगंपरित्यज ॥ किमंगंशातयतुतेशरैषीकाब्रवीहिमे ॥५२॥ एतावद्धिमयाशक्यंतवकर्तुंप्रियंखग ॥ एकांगहीनंह्यत्रेण जीवितंमरणाद्वरम् ॥ ५३ ॥ एवमुक्तस्तुरामेणसंप्रधार्यसवायसः ॥ अभ्यगच्छद्द्वयोरक्ष्णस्त्यागमेकस्यपंडितः ॥ ५४ ॥ सोऽब्रवीद्राघवंकाको नेत्रमेकंत्यजाम्यहम् ॥ एकनेत्रोऽपिजीवेऽहंत्वत्प्रसादान्नराधिप ॥ ५५ ॥ रामानुज्ञातमस्त्रंतत्काकस्यनयनेपतत् ॥ वैदहीविस्मितातत्रकाकस्य नयनेहते ॥५६॥ निपत्यशिरसाकाकोजगामाशुयथेप्सितम् ॥ लक्ष्मणानुचरोरामश्चकारानंतरक्रियाः ॥५७॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीयेआदिकाव्येच० सा० अयोध्याकांडे अयंप्रक्षिप्तः सर्गः ॥१॥ तांतदादर्शयित्वातुमैथिलींगिरिनिम्नगाम् ॥ निषसादगिरिप्रस्थेसीतांमांसे नछंदयन् ॥ १ ॥ इदंमेध्यमिदंस्वादुनिष्टप्तमिदमग्निना ॥ एवमास्तेसधर्मात्मासीतयासहराघवः ॥ २ ॥ तथातत्रासतस्तस्यभरतस्योपयायिनः ॥ सैन्यरेणुश्चशब्दश्चप्रादुरास्तांनभःस्पृशौ ॥३॥ एतस्मिन्नतरेत्रस्ताःशब्देनमहताततः ॥ अर्दितायूथपामत्ताःस्वयूथाद्दुद्रुवुर्दिशः ॥४॥ सतंसैन्यसमुद्धूतंशब्दंशुश्रावराघवः ॥ तांश्चविप्रद्रुतान्सर्वान्यूथपानन्ववैक्षत ॥ ५ ॥

वाल्मी० आदि० अयो० भाषायां प्रक्षिप्तः सर्गः ॥१॥ उस समय श्रीरामचन्द्रजी जनककुमारी सीताजीको पहाडी नदी मन्दाकिनीके दर्शन कराकर चट्टानपर बैठगये. वह मंत्रोंसे पवित्र मांस सीताजीको दिखाय कहने लगे ॥१॥ हे जानकी ! यह मांस अतिपवित्र है और स्वादयुक्त है और अग्निमेंभी भलीभांतिपकाया गया है । धर्मात्मा रामचन्द्रजी सीताजीसे यह कहते हुए चित्रकूट पर्वतकी चट्टानपर बैठे हैं ॥ २ ॥ कि इतनेहीमें उनके समीप आती हुई भरतजीकी सेनके चलनेसे उड़ी हुई धूलि दिखाई दी और सेनाका कुलाहलभी आकाशको व्याप्त कर श्रवणगोचर हुआ ॥३॥ इस अवसरमें वह महाशब्द सुनकर यूथ पति मतवाले हाथी डरकर और व्याकुल चित्त होकर अपने २ झुंडको ले २ कर चारों ओरको भागखडे हुए ॥ ४ ॥ रामचन्द्र रघुनन्दनजीने उस सेनाके उठेहुए महा

हाहाकार शब्दको सुना और दौडते घबडाते हुए यूथपति हाथियोंको इधरउधर भागते हुए भी देखा ॥५॥ सब जीवोंको भागते देख, और यह महाकुलाहल सुनकर श्रीरामचन्द्रजी तेजसे प्रकाशमान सुमित्रानन्दन लक्ष्मणजीसे कहनेलगे ॥६॥ हे लक्ष्मण ! सुमित्रा देवी तुमसे पुत्रको पाकर सुपुत्रवती हुई हैं । इस समय देखो तो भयंकर बादलके गर्जनेकी समान गंभीर तुमुल शब्द कहांसे सुनाई देता है ॥७॥ यह देखो सघन वनके वसनेवाले मृग, भैंसे, हाथियोंके समूह, सिंहगणोंके सहित महाभीत होकर सहसा दशों दिशाओंको भग जाते हैं ॥८॥ हे सौमित्र ! या तो कोई राजा या राजकुमार वनमें शिकार खेलनेको आया है, या और किसी बनैले जीवसे ऐसा उत्पात हो रहा है जो कुछहो इसका वृत्तांत तुम्हें जानना उचित है ॥९॥ हे लक्ष्मण ! इस चित्रकूट पर्वतपर तो पशु पक्षीभी सरलतासे नहीं घूम घाम सकते हैं, फिर किसने आकर यहां ऐसा उत्पात मचाया ? अतएव तुम सब वृत्तांत ज्योंका त्यों जानकर शीघ्र यहां आवो ॥१०॥ लक्ष्मणजीने बहुत शीघ्र

तांश्चविप्रद्रुतान्दृष्ट्वातंचश्रुत्वामहास्वनम् ॥ उवाचरामःसौमित्रिंलक्ष्मणंदीप्ततेजसम् ॥६॥ हंतलक्ष्मणपश्येहसुमित्रासुप्रजास्त्वया ॥ भीमस्तनितगंभीरंतुमुलःश्रूयतेस्वनः ॥७॥ गजयूथानिवारण्येमहिषावामहावने ॥ वित्रासितामृगाःसिंहैःसहसाप्रद्रुतादिशः ॥८॥ राजावाराजपुत्रोवामृगयामटतेवने ॥ अन्यद्वाश्वापदंकिंचित्सौमित्रेज्ञातुमर्हसि ॥९॥ सुदुश्चरोगिरिश्चायंपक्षिणामपिलक्ष्मण ॥ सर्वमेतद्यथातत्त्वमभिज्ञातुमिहार्हसि ॥१०॥ सलक्ष्मणःसंत्वरितः सालमारुह्यपुष्पितम् ॥ प्रेक्षमाणोदिशःसर्वाःपूर्वांदिशमवैक्षत ॥११॥ उदङ्मुखःप्रेक्षमाणोददर्शमहतींचमूम् ॥ गजाश्वरथसंबाधांयत्तैर्युक्तांपदातिभिः ॥१२॥ तामश्वरथसंपूर्णांरथध्वजविभूषिताम् ॥ शशंससेनांरामायवचनंचेदमब्रवीत् ॥१३॥ अग्निंसंशमयत्वार्यःसीताचभजतांगुहाम् ॥ सज्जंकुरुष्वचापंचशरांश्चकवचंतथा ॥१४॥ तंरामःपुरुषव्याघ्रोलक्ष्मणंप्रत्युवाचह॥अंगावेक्षस्वसौमित्रेकस्येमांमन्यसेचमूम्॥१५॥एवमुक्तस्तुरामेणलक्ष्मणोवाक्यमब्रवीत्॥दिधक्षन्निवतांसेनांरुषितः पावकोयथा॥१६॥

तासे एक फूले हुए शालके पेडपर चढ चारों ओर देख फिर पूर्व दिशाकी ओर दृष्टि डाली ॥ ११ ॥ जब उधर कुछ न देखा फिर उन्होंने उत्तर दिशाकी ओर निहारा तब उपद्रवका कारण देखा कि, हाथी, घोडे, रथों करके युक्त सजी सजाई पैदलों करके सहित एक बडी भारी सेना चली आती है ॥१२॥ लक्ष्मणजी रामचन्द्रजीसे हाथी घोडों करके पूर्ण रथकी पताकाओंसे भूषित उस सेनाका वृत्तान्त निवेदन करके कहने लगे ॥ १३ ॥ कि, आप जल्दी अग्निको बुझाकर धनुष बाण कवच बख्तर आदि धारण कीजिये और जबतक आप इस सेनाका नाश करें तबतक जानकी भी किसी गुहामें बैठी रहें॥१४॥ पुरुषसिंह श्रीरामचन्द्रजीने प्रतिउत्तर दिया कि हे वत्स सौमित्र ! यह तो तुम भलीभांति देखलो कि, यह सेना है किसकी इसके चिह्न देखकर विचार करो ॥१५॥ रामचन्द्रजी

के ऐसे वचन सुन लक्ष्मणजी क्रोधसे अग्निके समान हो, उस सेनाको मानो जलाने के लिये यह बोले ॥१६॥ स्पष्ट दृष्टि आताहै कि, कैकेयी कुमार भरत राज्य पाकर अब उसको अकंटक भोगकरनेके लिये हम दोनों जनोंको मारडालनेके अर्थ यहां आतेहैं ॥१७॥ देखिये यह जो बहुत बडा शोभायमान वृक्ष ठीक २ दीख पडताहै उसकेही समीप रथके ऊपर यह उजले २ स्कंध धारण किये कोविदारकी ध्वजा विराजमान हो रहीहै ॥१८॥ यह देखिये ! घुड़सवार लोगभी बडे २ धावा मारनेवाले शीघ्र गामी घोडोंपर सवार होकर इसी ओरको चले आतेहैं और हथियोंके सवारभी परमहर्षसे अपना २ चिह्न धारण किये हाथियों पर सवार हुए विराजमान होरहेहैं॥१९॥ इससे भलीभांति विदित होताहै कि, यह भरतजीकीही सेनाहै। हे वीर ! हम दोनोंजन इस धनुष बाणको ग्रहणकरके इस पर्वतपरही बैठे रहें अथवा दोनोंजन कवच धारण करके हथियार लगाये तैयार इसीस्थानपर बैठे रहें ॥२०॥ कोविदार ध्वजा धारण करनेवाले भरतजी निश्चयही युद्धमें

संपन्नंराज्यमिच्छंस्तुव्यक्तंप्राप्याभिषेचनम् ॥ आवांहंतुसमभ्येतिकैकेय्याभरतःसुतः ॥ १७ ॥ एषवैसुमहाञ्छ्रीमान्विटपीसंप्रकाशते ॥ विराजत्युज्ज्वलस्कंधःकोविदारध्वजोरथे ॥ १८ ॥ (असौहिसुमहास्कन्धोविटपीचमहाद्रुमः ॥ विराजतेमहासैन्येकोविदारध्वजोरथे ॥ १ ॥) भजंत्येतेयथाकाममश्वानारुह्यशीघ्रगान् ॥ एतेभ्राजंतिसंहृष्टागजानारुह्यसादिनः ॥ १९ ॥ गृहीतधनुषावावांगिरिंवीरश्रयावहे ॥ अथवेहैवतिष्ठावःसन्नद्धावुद्यतायुधौ ॥२०॥ अपिनौवशमागच्छेत्कोविदारध्वजोरणे ॥ अपिद्रक्ष्यामिभरतंयत्कृतेव्यसनंमहत् ॥ २१ ॥ त्वयाराघवसंप्राप्तंसीतयाचमयातथा ॥ यन्निमित्तंभवान्राज्याच्च्युतोराघवशाश्वतात् ॥ २२ ॥ संप्राप्तोयमरिर्वीरभरतोवध्यएवहि ॥ भरतस्यवधेदोषंनाहंपश्यामिराघव ॥ २३ ॥ पूर्वापकारिणंहत्वानह्यधर्मेणयुज्यते ॥ पूर्वापकारीभरतस्त्यागेधर्मश्चराघव ॥ २४ ॥ एतस्मिन्निहतेकृत्स्नामनुशाधिवसुंधराम् ॥ अद्यपुत्रंहतंसंख्येकैकेयीराज्यकामुका ॥ २५ ॥

हमारे वशमें होजाँयगे, यह बड़ेही हर्षकी बातहै । जिनके कारण हम लोगोंपर यह महाकष्ट आकर पड़ाहै आज देखेंगे कि, वह भरत कैसेहैं ॥२१॥ हे रघुनंदन! आप हम व सीताजी जिनके लिये महाकठोर खोटी दशामें पड़ेहैं और विशेष करके आप जिनके लिये निरंतर राज्यसे च्युत हुयेहैं ॥२२॥ हे वीर! इस समय वही परमशत्रु भरत यहां पर आयेहैं सो उनको मारही डारिये, क्योंकि यह वध करनेकेही लायकहैं हमको तो भरतके वध करनेमें कोई दोष नहीं दृष्टिआता ॥२३॥ जो आदमी पहले अपकार करे उसके मार डालनेसे कोई अधर्म नहीं होता, हे रघुनंदन ! भरतने हमारा प्रथमही अपकार कियाहै अतएव उसको छोड देनेसेही अधर्म होगा ॥२४॥ भरतजीके मारेजानेपर आप विघ्नरहितहोकरसबपृथ्वीकाराज्यभोगकीजियेगा । राज्य पाने की इच्छा किये कैकेयी आज अपनेपुत्र

को लडाईमें मरा हुआ देखेगी॥२५॥ हमारे हाथसेहाथीके तोडे हुये वृक्षके समान भरतको मराहुआ देख कैकेयी बहुतही दुःखितहोगी,हमककैयीकोभी बंधुबांधवों और उस दुष्ट कुबरीके सहित मार डालेंगे॥२६॥आज यह पृथ्वी महापापसे छूटजायगी ! हे मानके देनेवाले! आज यह बहुतदिनोंकाक्रोध व असत्कार॥२७॥ शत्रुओंकी सेना पर छोडते हैं जैसे कोई सूखे तिनकोंके ढेरपर अग्नि छोडे आजही चित्रकूट का वन अपने तीखे बाणोंसे॥२८॥ शत्रुओंकेशरीरकोकाट २ उनके निकले हुए रक्तसे सींचेंगे ।बाणोंसे छिन्न भिन्न हृदय हाथी घोडोंको ॥२९॥ हमारे मारे हुए इस वनमें कुत्ते घसीटगे, इस महावनमें बाणोंसे व धनुषसे हम ॥३०॥ सेना सहित भरतको मारकर निःसन्देह उऋण हो जायँगे ॥३१॥इत्यार्षे श्रीमद्वा० वा० आदि०अयोध्या० भाषायां षण्णवतितमः सर्गः ॥९६॥ श्रीरामचन्द्रजी

मयापश्येत्सुदुःखार्ताहस्तिभिन्नमिवद्रुमम्॥कैकेयींचवधिष्यामिसानुबंधांसबांधवाम् ॥२६॥ कलुषेणाद्यमहतामेदिनीपरिमुच्यताम् ॥ अद्येमं संयतंक्रोधमसत्कारंचमानद ॥ २७ ॥मोक्ष्यामिशत्रुसैन्येषुकक्षेष्विवहुताशनम् ॥ अद्यैवचित्रकूटस्यकाननंनिशितैःशरैः ॥ २८ ॥ छिंदञ्छत्रुशरीराणिकरिष्येशोणितोक्षितम्॥शरैर्निर्भिन्नहृदयान्कुंजरांस्तुरगांस्तथा ॥ २९ ॥ श्वापदाःपरिकर्षन्तुनरांश्चनिहतान्मया ॥ शराणांधनुषश्चाहमनृणोऽस्मिन्महावने॥३०॥ससैन्यंभरतंहत्वाभविष्यामिनसंशयः॥३१॥इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०च०सा० अयो०षण्णवतितमःसर्गः॥ ॥९६॥ सुसंरब्धंतुभरतंलक्ष्मणंक्रोधमूर्च्छितम्॥रामस्तुपरिसांत्व्याथवचनंचेदमब्रवीत् ॥ १ ॥ किमत्रधनुषाकार्यमसिनावासचर्मणा॥ महाबलेमहोत्साहेभरतेस्वयमागते ॥ २ ॥ पितुःसत्यंप्रतिश्रुत्यहत्वाभरतमाहवे ॥ किंकरिष्यामिराज्येनसापवादेनलक्ष्मण ॥ ३ ॥ यद्द्रव्यंबांधवानांवामित्राणांवाक्षयेभवेत् ॥नाहंतत्प्रतिगृह्णीयांभक्ष्यान्विषकृतानिव ॥ ४ ॥ धर्ममर्थंचकामंचपृथिवींचापिलक्ष्मण ॥ इच्छामिभवतामर्थे एतत्प्रतिशृणोमिते ॥५॥भ्रातृणांसंग्रहार्थंचसुखार्थंचापिलक्ष्मण ॥ राज्यमप्यहमिच्छामिसत्येनायुधमालभे ॥ ६ ॥

सुमित्रानंदन लक्ष्मणजी को भरतजीके प्रति ऐसे लडनेको उद्यत और बहुत ही क्रोधित देखकर भली भांति समझाते बुझाते कहने लगे ॥ १ ॥ महाबल महोत्साह भरतजी जबकि, आपही आयेहैं तब धनुष तलवार और ढालसे क्या प्रयोजनहै ? ॥२॥ हे लक्ष्मण ! हम यह प्रतिज्ञा करके पिताजीके सत्यकापालन करेंगे,अब भरतको वधकर इस दुर्नामतायुक्त राज्यको लेकर क्या करेंगे॥३॥भाई बन्धु या मित्रलोगोंकेनाश होनेसे जो वस्तुप्राप्त होवै हम उसको विषमिलेहुए भोजनके समानकभीग्रहणकरनेकी अभिलाषा नहींकरते॥४॥हे लक्ष्मण!हमतुमसेप्रतिज्ञाकरके कहतेहैं किकेवल तुम सबभ्राताओंकेही लिये धर्म, अर्थ,काम अथवा पृथ्वीके ग्रहणकरनेकी इच्छाकरतेहैं॥५॥ हम सत्यही सत्य और हथियारोंकोछूकरकहतेहैं कि,सब भ्राताओंका भलीभांति पालन और सुख साधनकरनेके लिये

हम राज्यकी अभिलाषा करते हैं ॥६॥ हे सौम्य! सागरों करके युक्त यद्यपि यह पृथ्वीभी हमको दुर्लभ नहीं है परन्तु अधर्मसे इन्द्रका पद ग्रहण करनेको भी हमारी अभिलाषा नहीं है ॥ ७ ॥ हे मानदेनेवाले ! तुम्हारे बिना भरतके बिना और शत्रुघ्नके बिना हमको यदि कुछ सुख होता हो तो ऐसा सुख अग्निमें जल जावे ॥८॥ हे पुरुषोत्तम ! हे वीर! हमको ऐसा जान पड़ता है कि प्राणोंके समान प्यारे भाइयोंके ऊपर स्नेह रखनेवाले भरत इस कुलमें बडेहीको राज्य मिलता है इस कुलधर्मको स्मरण कर अयोध्यामें आये होंगे ॥९॥ और हे पुरुषोत्तम ! जब उन्होंने यह सुना कि, जटा बल्कल धारण कराय हमको वनवास हुआ व संगमें जानकीजी व तुमको भी आया हुआ सुना ॥१०॥ तब मारे स्नेहके आक्रांतहृदय हो और शोकसे व्याकुलचित्त होकर हमको देखनेके लिये आये हैं और किसी कारणसे उनका आना नहीं हुआ है ॥११॥ श्रीमान् भरतजी जननी कैकेयीपर क्रोध प्रकाश कर अप्रिय वचन कह पिताजीको प्रसन्न कर हमको राज्य देनेके लिये

नेयंममहीसौम्यदुर्लभासागरांबरा ॥ नहीच्छेयमधर्मेणशक्रत्वमपिलक्ष्मण॥७॥ यद्विनाभरतंत्वांचशत्रुघ्नंवापिमानद॥ भवेन्ममसुखंकिंचिद्भ स्मतत्कुरुतांशिखी ॥८॥ मन्येऽहमागतोऽयोध्यांभरतोभ्रातृवत्सलः ॥ ममप्राणैःप्रियतरःकुलधर्ममनुस्मरन् ॥९॥ श्रुत्वाप्रव्राजितंमांहिजटाव ल्कलधारिणम्॥जानक्यासहितंवीरत्वयाचपुरुषोत्तम ॥१०॥ स्नेहेनाक्रांतहृदयःशोकेनाकुलितेंद्रियः ११॥ द्रष्टुमभ्यागतोह्येषभरतोनान्यथा गतः ॥ अंबांचकैकयींरुष्यभरतश्चाप्रियंवदन् ॥ प्रसाद्यपितरंश्रीमान्राज्यंमेदातुमागतः ॥ १२ ॥ प्राप्तकालंयथैषोऽस्मान्भरतोद्रष्टुमर्हति ॥ अस्मासुमनसाप्येषनाहितंकिंचिदाचरेत् ॥१३॥ विप्रियंकृतपूर्वंतेभरतेनकदानुकिम् ॥ ईदृशंवाभयंतेऽद्यभरतंयद्विशंकसे ॥१४॥ नहितेनिष्ठु रंवाच्योभरतोनाप्रियंवचः ॥ अहंह्यप्रियमुक्तःस्यांभरतस्याप्रियेकृते ॥१५॥ कथंनुपुत्राःपितरंहन्युःकस्यांचिदापदि ॥ भ्राताभ्रातरंहन्यात्सौ मित्रेप्राणमात्मनः ॥१६॥ यदिराज्यस्यहेतोस्त्वमिमांवाचंप्रभाषसे॥ वक्ष्यामिभरतंदृष्ट्वाराज्यमस्मैप्रदीयताम् ॥ १७ ॥ उच्यमानोहिभरतो मयालक्ष्मणतद्वचः ॥ राज्यमस्मैप्रयच्छेतिबाढमित्येवमंस्यते ॥ १८ ॥

आये हैं कुछ लड़ने भिड़नेको नहीं आये ॥१२॥ ऐसी विपत्तिके समय जब कि, यह हमको देखनेके निमित्त आते हैं तब वह कभी मनसेभी हमारे प्रति अहिताचरण करेंगे ऐसा समझ नहीं पडता ॥१३॥ भरतजीने पहले कब तुम्हारा क्या अनिष्ट किया ?जो उनके लिये तुम उनसे डरकर इस प्रकार भयकी वार्त्ता कहते हो ॥१४॥ भरतजीको किसी भांतिकी निठुर व अप्रिय वार्त्ता कहनी तुमको उचित नहीं है भरतजीको खोटे वचन कहनेसे मानो वह हमकोही कहेगये ॥१५॥ हे लक्ष्मण ! जहां कैसीही भारी विपत्ति क्यों न आ पडे पिता किसी प्रकारसे भी पुत्रका अथवा भ्राता प्राणके समान भ्राताका कभी वध नहीं करसकता ॥१६॥ यदि तुम राज्यही लेनेके लिये इस प्रकारकी वार्त्ता कह रहे हो तो भरतजीसे मिलतेही हम कहेंगे कि भइया ! राज्य लक्ष्मणको देदो ॥१७॥ हे लक्ष्मण ! हम सत्यही

कहते हैं जब कि, भरतजीसे हम कहेंगेकि लक्ष्मणको राज्य देदो तब भरतजी निश्चयही इस बातको मान कहेंगे कि, अच्छा हम राज्य दिये देते हैं ॥१८॥ धर्मशील भ्राता रामचन्द्रजीके इस प्रकार कहनेपर उनकेहितैषी लक्ष्मणजी लाजसे संकुचित होकर ऐसेहोगये मानो अपने शरीरके अंगोंमें पैठे जाते हैं ॥ १९ ॥ अनन्तर लक्ष्मणजीने लज्जित होकर उत्तर दियाकि महाराज ! हम भरतजीको ऐसा समझेंगे मानो स्वयं पिता दशरथजी ही आपके देखनेको आये हैं ॥ २० ॥ लक्ष्मणजीको लज्जित हुआ देखकर रघुनंदन महाबाहु रामचन्द्रजीनेकहा कि हमभी तुम्हारी बातकोमानते हैं,और हमभी ऐसेही समझते हैं, कि हमारे देखनेको आरहे हैं॥२१॥ अथवा हमकोभी यही बात समझ पडती है, कि, वह हमको सुखके योग्य समझकर वनवासके दुःखोंको स्मरण करते हुए निश्चयही हमें अयोध्याजीको लौटानेके लिये आये हैं और हमको लौटाकर ले जायँगे ॥२२॥ अथवा वह रघुराज श्रीमान् हमारे पिताजी अत्यन्तही सुखके पानेके योग्य इन जनककुमारी

तथोक्तोधर्मशीलेनभ्रात्रातस्यहितेरतः॥ लक्ष्मणःप्रविवेशेवस्वानिगात्राणिलज्जया॥१९॥ तद्वाक्यंलक्ष्मणः श्रुत्वाव्रीडितःप्रत्युवाचह॥त्वांमन्ये द्रष्टुमायातःपितादशरथःस्वयम् ॥ २० ॥ व्रीडितंलक्ष्मणंदृष्ट्वाराघवःप्रत्युवाचह॥ एषमन्येमहाबाहुरिहास्मान्द्रष्टुमागतः॥२१॥ अथवानौध्रुवं मन्येमन्यमानःसुखोचितौ॥वनवासमनुध्यायगृहायप्रतिनेष्यति ॥२२॥ इमांचाप्येषवैदेहीमत्यंतसुखसेविनीम्॥ पितामेराघवःश्रीमान्वना दादाययास्यति ॥ २३ ॥ एतौतौसंप्रकाशेतेगोत्रवंतौमनोरमौ ॥ वायुवेगसमौवीरौजवनौतुरगोत्तमौ ॥ २४ ॥ सएषसुमहाकायःकंपतेवाहि नीमुखे ॥नागःशत्रुंजयोनामवृद्धस्तातस्यधीमतः॥२५॥ नतुपश्यामितच्छत्रपांडुरंलोकविश्रुतम्॥ पितुर्दिव्यंमहाभागसंशयोभवतीहमे॥२६॥ वृक्षाग्रादवरोहत्वंकुरुलक्ष्मणमद्वचः ॥ इतीवरामोधर्मात्मासौमित्रिंतमुवाचह ॥२७॥ अवतीर्यतुसालाग्रात्तस्मात्ससमितिंजयः ॥ लक्ष्मणः प्रांजलिर्भूत्वातस्थौरामस्यपार्श्वतः ॥ २८॥ भरतेनाथसंदिष्टासंमर्दोनभवेदिति ॥ समंतात्तस्यशैलस्यसेनावासमकल्पयत् ॥ २९ ॥

जानकीजीको वनसे लौटाकर ले जायँगे॥२३॥ यह देखो श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न हुए वायु वेगके समान शीघ्र चलनेवाले अत्यन्त बलशाली उनके दोनों मनोहरघोडे अब भलीभांति दिखाई पडते हैं ॥२४॥ यह देखो बुद्धिमान् पिताजीका वह बडे डीलडौलवाला वृद्ध शत्रुञ्जय नामक हाथी भी सेनाके आगे २ चला आता है॥२५॥ परन्तु हे महाभाग ! पिताजीका पांडुवर्ण लोकविख्यात दिव्य छत्र देख न पडनेसे हमारे मनमें सन्देह होता है ॥२६॥ अतएव हे लक्ष्मण ! तुम वृक्षसे नीचे उतरकर जो हम कहें सो करो । जब धर्मात्मा रामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीसे इस प्रकार कहा ॥२७॥ तब युद्धमें जीतनेवाले लक्ष्मणजी शालके पेडकी शाखासे नीचे उतरकर हाथ जोडकर श्रीरामचन्द्रजीके पास आय खडे हुए ॥ २८ ॥ इस ओर रामचन्द्रजीके आश्रमको किसी प्रकारकी पीडा न पहुँचे इस कारण भरतजीकी

आज्ञामे सब सेना चित्रकूट पर्वतके चारों ओर बड़ी दूरके घेरेमें टिक रही ॥२९॥ वह हाथी घोडों करके युक्त भरतजीकी सेना पर्वतके किनारे छःछः कोशतकपड़ी ॥ ३० ॥ जब इस प्रकारका नीतिके ज्ञाता भरतजीने रघुनंदन श्रीरामचन्द्रजीकी प्रसन्नताके लिये धर्मको आगेकर स्वर्गको त्याग इसप्रकार चित्रकूटमें सेनाको टिकाया तब वह सेना अत्यंत ही शोभित होने लगी॥ ३१ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्वा० वा० आदि० अयो० भाषायां सप्तनवतितमः सर्गः ॥ ९७ ॥ वह प्राणियोंमें श्रेष्ठ परमशक्तिमान् गुरुकी शुश्रूषा करनेवाले भरतजी सेनाको इस भांतिसे टिकाकर पिताके वचनोंको पालन करनेवाले श्रीरघुनंदन रामचन्द्रजीके पास पैदलही जानेकी इच्छा करते हुए ॥ १ ॥ इसी कारण भलीभांति सिखाईपढाई सब सेनाके इच्छानुसार टिकजानेपर भरतजीने भ्राता शत्रुघ्नसे कहा॥ २ ॥ हे सौम्य !

अध्यर्धमिक्ष्वाकुचमूर्योजनंपर्वतस्यह ॥ पार्श्वेन्यविशदावृत्यगजवाजिनराकुला ॥३०॥ साचित्रकूटेभरतेन सेनाधर्मंपुरस्कृत्यनिधूयदर्पम् ॥ प्रसादनार्थंरघुनंदनस्यविरोचतेनीतिमताप्रणीता ॥३०॥ इत्यार्षे श्रीम० वाल्मी० आ० च० सा० अयो० सप्तनवतितमः सर्गः ॥९७॥ निवेश्यसेनांतुविभुःपद्भ्यांपादवतांवरः ॥ अभिगंतुंसकाकुत्स्थमियेषगुरुवर्तकम् ॥१॥ निविष्टमात्रेसैन्येतुयथोद्देशंविनीतवत् ॥ भरतोभ्रातरंवाक्यंशत्रुघ्नमिदमब्रवीत् ॥ २ ॥ क्षिप्रंवनमिदंसौम्यनरसंघैःसमंततः ॥ लुब्धैश्चसहितैरेभिस्त्वमन्वेषितुमर्हसि ॥ ३ ॥ गुहोज्ञातिसहस्रेणशरचापासिपाणिना ॥ समन्वेषतुकाकुत्स्थावस्मिन्परिवृतःस्वयम् ॥ ४ ॥ अमात्यैःसहपौरैश्चगुरुभिश्चद्विजातिभिः ॥ सहसर्वंचरिष्यामिपद्भ्यांपरिवृतःस्वयम् ॥५॥ यावन्नरामंद्रक्ष्यामिलक्ष्मणंवामहाबलम् ॥ वैदेहींवामहाभागांनमेशांतिर्भविष्यति ॥ ६ ॥ यावन्नचंद्रसंकाशंतद्द्रक्ष्यामिशुभाननम् ॥ भ्रातुःपद्मविशालाक्षंनमेशांतिर्भविष्यति ॥७॥ सिद्धार्थःखलुसौमित्रिर्यश्चंद्रविमलोपमम् ॥ मुखंपश्यतिरामस्यराजीवाक्षंमहाद्युति ॥८॥

तुम शीघ्रही बहुतसे मनुष्य और इन सब निषादोंके साथ मिलकर इस वनमें चारों ओर रामचन्द्रजीको ढूंढो ॥ ३ ॥ स्वयं निषादराज गुह भी अपनी जातिवाले सहस्रों मनुष्यों को संग ले शर धनुष और खड्ग लेकर राम लक्ष्मणजीको इस वनमें ढूंढे ॥ ४ ॥ हमभी अपने समुदाय मंत्री नगरवासी गुरुवसिष्ठजी व ब्राह्मणोंके साथ पैदल चलकर समस्त वनमें ढूंढते हुए विचरण करेंगे ॥५॥ जबतक रामचन्द्रजीको महाबलवान् लक्ष्मणजीको अथवा महाभागा सीताजीको न देखलेंगे तबतक हमको शांति नहीं प्राप्त होगी ॥ ६ ॥ जबतक बड़े भाई रामचन्द्रजीके पद्मदलसम विशाल नेत्र और चन्द्रतुल्य सुकुमार वदन मंडल न देख लेंगे तबतक हमको शान्ति नहीं प्राप्त होगी ॥ ७ ॥ सदाही जो रामचन्द्रजीको निर्मल और चन्द्रमा सदृश परमतेजवान और कमलनेत्रसे युक्त मुखमण्डल देखते हैं वह लक्ष्मणही

कृतार्थहैं ॥८॥ जबतक श्रीरामचन्द्रजी महाराजके राजचिह्नोंसे अंकित चरणयुगल अपने मस्तकपर नहीं लगावेंगे तबतक मेरा मन स्थिर नहीं होगा॥ ९ ॥ राज्यके योग्य श्रीरामचन्द्रजी पितामहादिकोंके सिंहासनपर विराजमान होकरजबतकअभिषेकके जलसे नहीं भीजेंगे तबतक हमें शान्ति प्राप्त नहीं होगी॥१०॥ वह महाभाग्यवती जनककुमारी वैदेहीजी भी धन्यहैं, क्योंकि वह सागरपर्यन्त पृथ्वीके पति रामचन्द्रजीके साथवनको गईहैं ॥११॥ हिमालय पर्वतके समान यह चित्रकूट पर्वत भी धन्य है। क्योंकि जिस पर्वतपर राघवेंद्रश्रीरामचन्द्रजी कुबेरकी नाईं बसतेहैं ॥१२॥ सर्पादिक दुष्ट जन्तुओं करके पूर्ण यह दुर्गम वनभी कृत कृत्य हो गया है क्योंकि इस महावनमें शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महाराज रामचन्द्रजी वास करते हैं ॥१३॥ महातेजस्वी महाबाहु पुरुषोत्तम भरतजी यह कहकर पैदलही महावनमें प्रवेश करते हुए ॥ १४ ॥ बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ महात्मा भरतजी पर्वतके कँगूरोंपर जमे हुए फूले फले वृक्ष समूहोंके बीचमें होकर गमन करनेलगे

यावन्नचरणौभ्रातुःपार्थिवव्यंजनान्वितौ ॥ शिरसाप्रग्रहीष्यामिनमेशांतिर्भविष्यति ॥ ९ ॥ यावन्नराज्येराज्यार्हःपितृपैतामहेस्थितः ॥ अभिषिक्तोजलक्लिन्नोनमेशांतिर्भविष्यति ॥ १० ॥ कृतकृत्यामहाभागावैदेहीजनकात्मजा ॥ भर्तारंसागरांतायाःपृथिव्यायानुगच्छति ॥ ११ ॥ सुशुभश्चित्रकूटोसौगिरिराजसमोगिरिः ॥ यस्मिन्वसतिकाकुत्स्थःकुबेरइवनंदने ॥१२॥ कृतकार्यमिदंदुर्गंवनंव्यालनिषेवितम् ॥ यदध्यास्ते महाराजोरामःशस्त्रभृतांवरः ॥ १३ ॥ एवमुक्त्वामहाबाहुर्भरतःपुरुषर्षभः ॥ पद्भ्यामेवमहातेजाःप्रविवेशमहद्वनम् ॥१४॥ सतानिद्रुमजालानिजातानिगिरिसानुषु ॥ पुष्पिताग्राणिमध्येनजगामवदतांवरः ॥१५॥ सगिरेश्चित्रकूटस्यसालमारुह्यसत्वरम् ॥ रामाश्रमगतस्याग्नेर्ददर्शध्वजमुच्छ्रितम् ॥१६॥ तंदृष्ट्वाभरतःश्रीमान्मुमोदसहबांधवः ॥ अत्ररामइतिज्ञात्वागतःपरमिवांभसः ॥ १७ ॥ सचित्रकूटेतुगिरौनिशम्यरामाश्रमंपुण्यजनोपपन्नम् ॥ गुहेनसार्धंत्वरितोजगामपुनर्निवेश्यैवचमूंमहात्मा ॥ १८ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० च० सा० अयोध्याकांडे अष्टनवतितमः सर्गः ॥९८॥ निविष्टायांतुसेनायामुत्सुकोभरतस्ततः ॥ जगामभ्रातरंद्रष्टुंशत्रुघ्नमनुदर्शयन् ॥ १ ॥

॥१५॥ चलते २ चित्रकूट पर्वतके एक शाल वृक्षपर आरोहण करके रामचन्द्रजीके आश्रममें लगी हुई ध्वजाको देखा व आगका धुआँ भी देख पडा ॥ १६ ॥ इन चिह्नोंको देखकर और यह जानकर कि, रामचन्द्रजी यहीं हैं। भरतजी समुदाय बन्धु बांधवोंके सहित बहुतही हर्षित हुये जैसे कोई जलमें डूबता हुआ पार पहुँच जानेसे प्रफुल्लित होता है ॥ १७॥ इस भांति गिरिराज चित्रकूटपर तपस्वियोंसे सेवित रामचन्द्रजीके आश्रमको जानकर उन महात्मा भरतजीने फिर ढूँढनेके अर्थ गुहके सहित शीघ्र वहांको प्रस्थान किया और जो सेना इधर उधर थी उसको भी वहीं टिका दिया ॥ १८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आदि० अयो० भाषायामष्टनवतितमः सर्गः ॥ ९८ ॥ जब सब सेना टिकटिकाय गई तब भरतजी उत्सुकहो शत्रुघ्नजीको रामाश्रमके

चिह्नादि दिखाते २ भ्राता रामचन्द्रजीके दर्शनकी वासनासे गमन करने लगे ॥१॥ ऋषि वसिष्ठजीसे "आपहमारीमाताओंको ले आइये" यह कहकर गुरुवत्सल भरतजी अतिशीघ्रतासे आगे चले ॥२॥ सुमन्त्र और शत्रुघ्नजी भी उनके पीछे जाने लगे, रामचन्द्रजीको दर्शनका जिसप्रकारसे भरतजीको आनंद था वैसेही निषाद गुह और शत्रुघ्नजीको रामचन्द्रजीके दर्शनकी चटापटी लग रहीथी ॥३॥ श्रीमान् भरतजीने जाते २ तपस्वियोंके आश्रमके बीचोबीचमें भ्राता रामचन्द्रजीकी पर्णकुटी देखी ॥४॥ भरतजीने देखा कि, पर्णशालाके सामनेही होमके लिये टूटे हुये काष्ठ और पूजाके लिये फूल बीनकर रक्खे हुए हैं ॥५॥ भरतजीने औरभी देखा कि, पीछे मार्ग न पहँचानाजाकर मनसे उतरजाय इस कारण आश्रमवासीरामलक्ष्मणजीने किसी २ स्थानामें वृक्षोंपर फटे हुये चीर बाँधेथे ॥६॥ भरतजीने यहभी देखा कि, उस पर्ण कुटीमें शीतनिवारण करनेके लिये मृग और महिषका सूखा गोबर तापनेके अर्थ ढेरों रक्खा है ॥७॥ महाबाहु धृतिमान् भरतजीगमनकरते २ हर्षसहित शत्रुघ्नजी और

ऋषिंवसिष्ठंसंदिश्यमातृर्मेशीघ्रमानय ॥ इतित्वरितमग्रेसजगामगुरुवत्सलः ॥ २ ॥ सुमंत्रस्त्वपिशत्रुघ्नमदूरादन्ववर्तत ॥ रामदर्शनजस्तर्षोभ रतस्येवतस्यच ॥३ ॥ गच्छन्नेवाथभरतस्तापसालयसंस्थिताम् ॥ भ्रातुःपर्णकुटींश्रीमानुटजंचददर्शह ॥ ४ ॥ शालायास्त्वग्रतस्तस्याददर्श भरतस्तदा ॥ काष्ठानिचावभग्नानिपुष्पाण्यपचितानिच ॥ ५ ॥ सलक्ष्मणस्यरामस्यददर्शाश्रममेयुषः ॥ कृतंवृक्षेष्वभिज्ञानंकुशचीरैःक्वचित्क्व चित् ॥ ६ ॥ ददर्शभवनेतस्मिन्महतःसंचयान्कृतान् ॥ मृगाणांमहिषाणांचकरीषैःशीतकारणात् ॥७॥ गच्छन्नेवमहाबाहुर्द्युतिमान्भरतस्तदा शत्रुघ्नंचाब्रवीद्धृष्टस्तानमात्यांश्चसर्वशः ॥ ८ ॥ मन्येप्राप्ताःस्मतंदेशंभरद्वाजोयमब्रवीत् ॥ नातिदूरेहिमन्येऽहंनदींमंदाकिनीमितः ॥९॥ उच्चै र्बद्धानिचीराणिलक्ष्मणेनभवेदयम् ॥ अभिज्ञानकृतःपंथाविकालेगंतुमिच्छता ॥१०॥ इतश्चोदात्तदंतानांकुंजराणांतरस्विनाम् ॥ शैलपार्श्वेपरिक्रां तमन्योन्यमभिगर्जताम् ॥ ११ ॥ यमेवाधातुमिच्छंतितापसाःसततंवनेतस्यासौदृश्यतेधूमःसंकुलःकृष्णवर्त्मनः ॥१२॥ अत्राहंपुरुषव्याघ्रंगुरु सत्कारकारिणम् ॥ आर्यंद्रक्ष्यामिसंहृष्टंमहर्षिमिवराघवम् ॥ १३ ॥

सुमंत्रादिक मन्त्रियोंसे बोले ॥८॥ महर्षि भरद्वाजजीने जिसको बतायाथा सो जानपडता है कि, हम उसी स्थानपर पहुँचगये। नदीमन्दाकिनीभी यहांसे कुछ दूर नहीं मालूम होती ॥९॥ यह देखो वृक्षोंकी ऊपरकी डालियोंमें जो कपड़े बँधे हैं सो लक्ष्मणनेही बांधेहोंगे, क्योंकि समय विशेषअर्थात् अंधकारके समय जलआदि लाना पडे तो मार्ग न भूल जायँ इस कारण लक्ष्मणजी ने यह कपडे बांधदिये हैं ॥१०॥ वेगवान् बडे दांतवाले हाथी सब परस्परगर्ज गर्जकर पर्वतीले इस मार्गपर सदाही आते जाते रहते हैं ॥११॥ तपस्वीलोग वनमें जिसको अधीन करनेकी इच्छा करते हैं यह उसी अग्निका वडा कृष्णवर्णका धुआँ देख पडता है ॥१२॥ अतएव इसी स्थानपर हम साक्षात् महर्षिके समान गुरुजनोंका वचन पूरा करनेवाले पुरुषश्रेष्ठ आर्यरामचन्द्रजीके दर्शन परमप्रसन्नता से करेंगे ॥१३॥

अनन्तर रघुनन्दन भरतजी एकमुहूर्ततक चलकरमन्दाकिनी नदीसे समीपस्थ चित्रकूट पर्वतपर जा उपस्थित हुये और साथके मंत्रीपरिजनोंसे बोले ॥१४॥ जो कि संसारभरमें सब पुरुषोंसे श्रेष्ठ हैं वह लोगोंके प्रति श्रीरामचन्द्रजी निर्जनस्थानको प्राप्तहो वीरासनमारे बैठे हैं अतएव हमारे जीवन और जन्मको धिक्कार है ॥१५॥ जोकि सब लोगोंकेनाथहैं वही हैं ॥१६॥ हमारीसब महाद्युतिमान् श्रीरामचद्रजी हमारेही कारण दारुण दुरवस्थोंमें पड़े औरसब भांतिके सुखभोगसेछूटकरवन २ में वास करते लोगोंमें निन्दा हुई है अतएव इस समय उसीही कलंकको धोनेकेलिये और रामचन्द्रजीकेप्रसन्नकरनेको उनकेसीताजीके और लक्ष्मणके चरणों परगिरेंगे ॥ १७ ॥ दशरथकुमार भरतजी वनके बीच इस प्रकार अछताते पछताते विलाप करते२ परमपुण्यवती, मनको अधिकलुभानेवालीपर्णशालाकेदर्शनकरतेहुए ॥१८॥ शाल, ताल, और अश्वकर्ण आदि वृक्षोंके पत्तोंसे यह पर्णशाला छाई हुईथी, देखनेसे वह ऐसी बोध होती थी, मानो कोमल विशाल यज्ञवेदी फूलोंके समूह व कुशोंसे आच्छा

अथगत्वामुहूर्ततुचित्रकूटंसराघवः ॥ मंदाकिनीमनुप्राप्तस्तंजनंचेदमब्रवीत् ॥१४॥ जगत्यांपुरुषव्याघ्रआस्तेवीरासनेरतः॥जनेंद्रोनिर्जनंप्राप्य धिङ्मेजन्मसजीवितम् ॥१५॥ मत्कृतेव्यसनंप्राप्तोलोकनाथोमहाद्युतिः ॥ सर्वान्कामान्परित्यज्यवनेवसतिराघवः॥१६॥ इतिलोकसमाकृष्टः पादेष्वद्यप्रसादयन् ॥ रामंतस्यपतिष्यामिसीतायालक्ष्मणस्यच ॥१७॥ एवंसविलपंस्तस्मिन्वनेदशरथात्मजः॥ ददर्शमहतींपुण्यांपर्णशालां मनोरमाम् ॥ १८ ॥ सालतालाश्वकर्णानांपर्णैर्बहुभिरावृताम् ॥ विशालांमृदुविस्तीर्णांकुशैर्वेदिमिवाध्वरे ॥ १९ ॥ शक्रायुधनिकाशैश्च कार्मुकैर्भारसाधनैः॥रुक्मपृष्ठैर्महासारैःशोभितांशत्रुबाधकैः॥२०॥अर्करश्मिप्रतीकाशैर्घोरैस्तूणगतैःशरैः॥ शोभितांदीप्तवदनैःसर्पैर्भोगवतीमिव ॥ २१ ॥ महारजतवासोभ्यामसिभ्यांचविराजिताम्॥ रुक्मबिंदुविचित्राभ्यांचर्मभ्यांचापिशोभिताम् ॥२२॥ गोधांगुलित्रैरासक्तैश्चित्रकांचनभूषितैः ॥ अरिसंघैरनाधृष्यांमृगैःसिंहगुहामिव ॥२३॥ प्रागुदक्प्रवणांवेदिविशालांदीप्तपावकाम् ॥ ददर्शभरतस्तत्रपुण्यांरामनिवेशने ॥ २४ ॥

दित रहती है ॥१९॥ सुवर्णके पंख लगे हुए इन्द्रके धनुषकी समान भार साधन और शत्रुओंके निवारण करनेवाले महासार बाणोंके समीप रहनेसेयह पर्णशाला शोभायमाम हो रही थी ॥२०॥ इनके सिवाय वहां तरकसम सूर्यके प्रभाकी समान जोसमस्त भयंकर तीरथेउनसे दीप्तिमान् भुजंगोंसे घिरीनागोंकी भोगवती पुरीके समान शोभा पारही थी ॥२१॥ सुनहरी कब्जा और सुनहरी म्यानबाली तलवारोंमे शोभायपान व सुवर्णके बिन्दु लगे हुये ऐसी ढालोंसे शोभित ॥२२॥ मृगयूथ जैसे किसी प्रकार सिंहके रहनेकी गुहामें नहीं जासकते वैसेही कांचनभूषित चित्र विचित्र गोधांगुलि जोइधर उधर रक्खी थीं इसकारण शत्रुलोगभी उस पर्णशालाका पराजय नहीं कर सकते ॥ २३ ॥ उसके पीछे भरतजीने उन महाराज रामचन्द्रजीके वासस्थानमें प्रदीप्त अग्नियुक्त ईशान कोणकी ओर

अति विशाल वेदी देखी ॥ २४ ॥ भरतजी एकमुहूर्त भरतक तो पर्णशालाको देखते रहे, फिर उसी पर्णशालामें बैठे जटाजूट धारण किये बडे भाई रामचन्द्रजीको देखा ॥ २५ ॥ भरतजीने सन्मुख जाकर देखा कि, चीर वल्कल पहर मृगचर्म धारण किये अग्निके समान निर्भय रामचन्द्रजी बैठेहैं ॥ २६ ॥ उनकी भुजायें घुटनोंतक आवें इतनी बडी, कंधे सिंहके कंधोंकी समान ऊंचे, नेत्रयुगल कमलदलके समान; वह सागरपर्यंत पृथ्वीके मालिक और धर्मचारी ॥ २७ ॥ कुशके आसन जिस परबिछरहे ऐसे चौतरेपर सीता और लक्ष्मणजीकेसाथ साक्षात् सनातन ब्रह्मके समान बैठे थे ॥ २८ ॥ उनको देखकर कैकेयीकुमार धर्मात्मा भरतजी दुःख और मोहसे व्याकुल होकर रामचन्द्रजीकी ओरको दौडे ॥ २९ ॥ देखतेही व्याकुल होगये किसी प्रकारसेभी धीरजको धारण नहीं कर सके । अनन्तर गद्गदकंठ होकर प्रगट विलाप करनेलगे और कुछ न बोलसके फिर धीरज धर बड़ी कठिनाईसे बोले ॥ ३० ॥ सभाके बीचमें जिन हमारे बडे भ्राताकी उपासना करना

निरीक्ष्यसुमुहूर्ततुददर्शभरतोगुरुम् ॥ उटजेराममासीनंजटामंडलधारिणम् ॥ २५ ॥ कृष्णाजिनधरंतंतुचीरवल्कलवाससम् ॥ ददर्शराममासीनमभितः पावकोपमम् ॥ २६ ॥ सिंहस्कंधंमहाबाहुंपुंडरीकनिभेक्षणम् ॥ पृथिव्याःसागरांतायाभर्तारंधर्मचारिणम् ॥ २७ उपविष्टंमहाबाहुंब्रह्माणमिवशाश्वतम् ॥ स्थंडिलेदर्भसंस्तीर्णेसीतयालक्ष्मणेनच ॥ २८ ॥ तंदृष्ट्वाभरतःश्रीमान्दुःखमोहपरिप्लुतः ॥ अभ्यधावतधर्मात्माभरतः कैकेयीसुतः ॥ २९ ॥ दृष्ट्वैवविल लापार्तोबाष्पसंदिग्धयागिरा ॥ अशक्नुवन्वारयितुंधैर्याद्वचनमब्रुवन् ॥ ३० ॥ यःसंसदिप्रकृतिभिर्भवेद्युक्तउपासितुम् ॥ वन्यैर्मृगैरुपासीनःसोऽयमास्ते ममाग्रजः ॥ ३१ ॥ वासोभिर्बहुसाहस्रैर्योमहात्मापुरोचितः ॥ मृगाजिनेसोऽयमिहप्रवस्तेधर्ममाचरन् ॥ ३२ ॥ अधारयद्योविविधाश्चित्राःसुमनसःसदाः ॥ सोऽयंजटाभारमिमंसहतेराघवःकथम् ॥ ३३ ॥ यस्ययज्ञैर्यथादिष्टैर्युक्तोधर्मस्यसंचयः ॥ शरीरक्लेशसंभूतंसधर्मंपरिमार्गते ॥ ३४ ॥ चंदनेनमहार्हेणयस्यां गमुपसेवितम् ॥ मलेनतस्यांगमिदंकथमार्यस्यसेव्यते ॥ ३५ ॥ मन्निमित्तमिदंदुःखंप्राप्तोरामःसुखोचितः ॥ धिग्जीवितंनृशंसस्यममलोकविगर्हितम् ३६ ॥

मंत्री आदि सबही पुरुषोंको एकमात्र कर्तव्यहै सो वनमें मृगयूथ इन हमारे बडे भाईकी उपासना कर रहेहैं ॥ ३१ ॥ नगरके योग्य हजारों मूल्यवान वसनोंसे सज धजकर जिन महात्माकी शोभा बढती थी वही आज हमारे बडे भाई धर्माचरण करनेके आशयसे मृगचर्मपर बैठे हैं ॥ ३२ ॥ जो सदाही विविध भांतिके चित्र विचित्र पुष्पोंकी माला धारण करतेथे आजवही रघुकुल प्रदीपकारी रामचन्द्रजी न जाने किस प्रकारसे जटाओंके भारको सहन कर रहेहैं ॥ ३३ ॥ ऋत्विकों (यज्ञ करनेवालों) के द्वारा यज्ञ करा करके जिनको धर्मका संचय करना उचित था वह अपने आपही शरीरको कष्ट देकर धर्मका संचय कर रहेहैं ॥ ३४ ॥ महामूल्य चन्दन जिनके अंगमें लगायाजाता था उन्हीं श्रेष्ठ रामचन्द्रजीका शरीर इस समय मलीनहो गया है, सो हमारे बडे भाई इसे कैसे सह सकते हैं? ॥ ३५ ॥ सुखके भोगकरने लायक श्रीरामचन्द्रजी हमारेही कारण यहदारुण दुःख पारहेहैं अतएव हमारे इस सर्वलोकमें निन्दित मूर्ख व निर्लज्जजीवनको धिक्कारहै ॥ ३६ ॥

इसप्रकार महाव्याकुल हो विलाप करते २ और रोते२भरतजी दुःखकी अधिकाईके वश रामचन्द्रजीके चरणयुगलोंको प्राप्त न होकर बीचही पृथ्वीमें गिरपड़े उनका मुखकमल पसीनेके जलसे परिपूर्ण हो गया ॥३७॥ उस काल दुःखसे बहुतही संतापित और दीन होनेके कारण महाबलवान् राजकुमार भरतजी केवल एकबार "आर्य" यही शब्द कहकर फिर और कुछ नहीं कह सके ॥ ३८ ॥ इतने आंसुआये इतनी बाफ मुँहमें भर आई कि, गला रुक जानेके कारण तपस्वी रामचन्द्रजीको देख "आर्य यही शब्द कहकर वाक्शक्ति शून्यही होगये ॥ ३९ ॥ उसीसमय शत्रुघ्नजीने रोदन करते२ रामचन्द्रजीके चरणयुगलका वंदन किया;तब रामचन्द्रजी उन दोनोंको छातीसे लगाया चिटपटाय आंसुओंकी वर्षा करने लगे॥४०॥ सूर्य और चन्द्रमा जिस प्रकार शुक्र और वृहस्पतिके साथ आकाशमडलमें मिलित होतेहैं राम और लक्ष्मणजी भी वैसेही गुह और सुमंत्रसे मिले ॥४१॥ उस काल हाथियोंपर सवारी करनेके योग्य श्रीराम लक्ष्मण

इत्येवंविलपन्दीनः प्रस्विन्नमुखपंकजः ॥ पादावप्राप्यरामस्यपपातभरतोरुदन्॥३७॥दुःखाभितप्तोभरतोराजपुत्रोमहाबलः ॥ उक्त्वार्येतिसकृद्दीनंपुनर्नोवाचकिंचन ॥ ३८ ॥ बाष्पैः पिहितकंठश्चप्रेक्ष्यरामंयशस्विनम् ॥ आर्येत्येवाभिसंक्रुश्यव्याहर्तुंनाशकत्ततः ॥३९॥ शत्रुघ्नश्चापिरामस्यववंदेचरणौरुदन्॥तावुभौचसमालिंग्यरामोऽप्यश्रूण्यवर्तयत्॥४०॥ ततःसुमंत्रेणगुहेनचैवसमीयतूराजसुतावरण्ये ॥ दिवाकरश्चैवनिशाकरश्चयथांबरेशुक्रबृहस्पतिभ्याम्॥४१॥तान्पार्थिवान्वारणयूथपार्हान्समागतांस्तत्रमहत्यरण्ये॥ वनौकसस्तेऽभिसमीक्ष्यसर्वेत्वश्रूण्यमुंचन्प्रविहायहर्षम्॥४२॥इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येच०सा०अयोध्याकांडेनवनवतितमःसर्गः॥९९जटिलंचीरवसनंप्रांजलिंपतितंभुवि॥ ददर्शरामोदुर्दर्शंयुगांतेभास्करंयथा॥१॥कथंचिदभिविज्ञायविवर्णवदनंकृशम्॥भ्रातरंभरतंरामःपरिजग्राहपाणिना॥२॥आघ्रायरामस्तंमूर्ध्निपरिष्वज्यचराघवम्॥अंकेभरतमारोप्यपर्यपृच्छतसादरम्॥३॥क्वनुतेऽभूत्पितातातयदरण्यंत्वमागतः ॥ नहित्वंजीवतस्तस्यवनमागंतुमर्हसि ॥४॥

भरत शत्रुघ्न राजकुमारोंको उस महावनमें पैदल आये हुये देखकर वनवासी लोग आनंदरहित होकर नेत्रोंसे आंसू बरसाने लगे ॥ ४२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० अयो० भाषायां नवनवतितमः सर्गः ॥ ९९ ॥ जटाजूट रखाये चीर धारणकिये श्रीरामचन्द्रजीने भरतजीको हाथ जोड पृथ्वी पर गिरते हुये देखा मानों प्रलयकालमें कठिनाईसे देखनेयोग्य सूर्यनारायण तेजहीन होकर पृथ्वीमें गिर पडेहैं ॥ १ ॥ और उसकेपीछे श्रीरामचन्द्रजी भरतजीका पीला वदन और दुर्बल शरीर देख किसी प्रकारसे उनको भरत जानकर दोनों हाथोंसे पकडकर उठाने लगे ॥२॥ अनन्तर भरतजी के मस्तकको सूँघकरउनको छातीसे लगाय और गोदीमें लेकर आदर पूर्वक पूँछने लगे ॥३॥ हे भइया ! हमारे पिताजी कहांहैं ? जो तुमवनको आयेहो पिताजीकेरहते हुये तुम्हारा वनमें आना

उचित नहीं हुआ॥४॥जो हुआ सो हुआ अनेक दिनोंके पीछे तुम नानाके घरसे आये हो सो देखकर हम सुखी हुए। प्यारे भइया ! तुम किस कारण इस भयंकर आकार वाले वनमें आये हो॥५॥हे भइया ! तुम वनमें जो आये हो;सो पिताजी तो अच्छी तरहसे राज्य करते हैं?उन्होंने शोकसे घिरकर सहसा परलोकको तो गमन नहीं किया ? ॥६॥ हे प्रियदर्शन!तुम बालक हो सो तुम्हारे हाथसे चिरस्थाई राज्यपद तो नष्ट नहीं हुआ ? हे सत्यपराक्रम!तुम पिताजी की सेवाको भलीभांति करते हो ? ॥७॥ राजसूय और अश्वमेध इत्यादि यज्ञोंके करनेवाले धर्ममें मति किये हुए सत्यप्रतिज्ञ हमारे पिता राजा दशरथजी तो कुशलसे हैं ॥८॥ हे भ्रातः! जोकि विद्वान हैं सदाही वेदप्रणीत धर्मके करनेवाले हैं परमतेजवान् इक्ष्वाकुवंशियोंके पुरोहित हैं उन ब्रह्म निष्ठजीका तो तुम यथायोग्य सत्कार करते हो ॥ ९ ॥

चिरस्यबतपश्यामिदूराद्भरतमागतम् ॥ दुष्प्रतीकमरण्येऽस्मिन्किंतातवनमागतः ॥५॥ कच्चिन्नुद्धरतेतातराजायत्त्वमिहागतः ॥कच्चिन्नदीनः सहसाराजालोकांतरंगतः ॥६॥ कच्चित्सौम्यनतेराज्यंभ्रष्टंबालस्यशाश्वतम् ॥ कच्चिच्छुश्रूषसेतातपितुः सत्यपराक्रम ॥७॥ कच्चिद्दशरथोराजाकुशलीसत्यसंगरः ॥राजसूयाश्वमेधानामाहर्ताधर्मनिश्चितः ॥ ८ ॥ सकच्चिद्ब्राह्मणोविद्वान्धर्मनित्योमहाद्युतिः ॥ इक्ष्वाकूणामुपाध्यायोयथावत्तातपूज्यते ॥ ९ ॥ तातकच्चिच्चकौसल्यासुमित्राचप्रजावती ॥सुखिनीकच्चिदार्याचदेवीनंदतिकैकयी ॥१०॥ कच्चिद्विनयसंपन्नः कुलपुत्रोबहुश्रुतः ॥ अनसूयुरनुद्रष्टासत्कृतस्तेपुरोहितः ॥११॥ कच्चिदग्निषुतेयुक्तोविधिज्ञोमतिमानृजुः ॥हुतंचहोष्यमाणंचकालेवेदयतेसदा ॥ १२ ॥ कच्चिद्देवान्पितॄन्भृत्यान्गुरून्पितृसमानपि॥वृद्धांश्चतातवैद्यांश्चब्राह्मणांश्चाभिमन्यसे ॥१३॥ इष्वस्त्रवरसंपन्नमर्थशास्त्रविशारदम्॥ सुधन्वानमुपाध्यायंकच्चित्त्वंतातमन्यसे ॥ १४ ॥

हे तात ! आर्या कौशल्याजी व पुत्रवती सुमित्राजी तो अच्छी हैं ? और परमश्रेष्ठ देवी कैकेयीजी तो आनन्दसे हैं ? ॥१०॥ हे तात ! विनयसंपन्न सब शास्त्रोंके जाननेवाले,निन्दा रहित उत्तम कुलमें उत्पन्न,सब भले कर्मोंमें निपुण वसिष्ठजीके पुत्र पुरोहितका सत्कार करते हो ? ॥११॥ तुम्हारे अग्निहोत्रके कार्यमें नियुक्त सब होमकी विधियोंको जाननेवाला सरलचित्त पुरोहित अपने समय पर हवन किये हुए व जिसमें हवन करनेको बाकी रहता है उसको जगाते रहते हैं ? ॥१२॥ हे प्यारे ! देवताओंके,नौकर चाकरोंको, पिताहीके समान गुरुजनों, वृद्धोंको,वैद्योंको और ब्राह्मणोंको सब भांतिसे तुम मानते तो हो ? ॥ १३ ॥ हे तात ! श्रेष्ठ अस्त्रशस्त्र सम्पन्न राजनीति विशारद न्यायशास्त्रमें अतिकुशल सुधन्वा नामक धनुर्वेदाचार्यका तो कुछ अपमान नहीं किया ? ॥ १४ ॥

हे भइया ! अपने समानविश्वासी शूरवीर सब शास्त्रके पढे,इशारेसे मनकी बातकोजाननेवाले,जितेंद्रिय ऐसे जिनमें गुणहों उन पुरुषोंको तुमने मंत्री तो किया है ॥१५॥ हे रघुनन्दन!नीतिशास्त्रोंके जाननेवाले श्रेष्ठमंत्रियोंसे यत्नपूर्वक एकान्त भेदकी सलाह लेनाही राजाओंकी विजयका मूलहै सो तुम ऐसा करते हो ? ॥१६॥ भलाकभी सन्ध्याकालमेंसोय तोनहीं जाते?व अकालमें तो नहीं जाग पडते ? समयपर जागते हो?एक पहर रात्रि रहे जाकर अपना प्रयोजनसिद्ध होनेके उपायको विचारते हो?॥१७॥तुमको एकहीके साथ अथवा बहुतोंके साथ बैठाकर तो सलाह नहीं करते?तुम्हारा स्थिर कियाहुआ मंत्र सब राज्यमें प्रचारिततो नहीं हो जता? ॥१८॥ हे रघुनन्दन!भला किसी कार्यको निश्चय करके थोडे ही में सध जाय और महाफलका देनेवाला हो ऐसे कामको आरंभ करनेमें कुछ देर तो नहीं करते ?

कच्चिदात्मसमाःशूराःश्रुतवंतोजितेंद्रियाः॥कुलीनाश्चेंगितज्ञाश्चकृतास्तेतातमंत्रिणः॥१५॥मंत्रोविजयमूलंहिराज्ञांभवतिराघव ॥ सुसंवृतोमंत्रिधुरैरमात्यैःशास्त्रकोविदैः ॥१६॥ कच्चिन्निद्रावशंनैषिकच्चित्कालेऽवबुध्यसे॥कच्चिच्चापररात्रेषुचिंतयस्यर्थनैपुणम् ॥१७॥ कच्चिन्मंत्रयसेनैकः कच्चिन्नबहुभिःसह ॥ कच्चित्तेमंत्रितोमंत्रोराष्ट्रंनपरिधावति ॥१८॥ कच्चिदर्थंविनिश्चित्यलघुमूलंमहोदयम्॥ क्षिप्रमारभसेकर्मनदीर्घयसिराघव ॥ १९ ॥ कच्चिन्नुसुकृतान्येवकृतरूपाणिवापुनः ॥ विदुस्तेसर्वकार्याणिकर्तव्यानिपार्थिवाः ॥ २० ॥ कच्चिन्नतर्कैर्युक्त्यावायेचाऽप्यपरिकीर्तिताः ॥ त्वयावातववामात्यैर्बुध्यतेतातमंत्रितम्॥२१॥ कच्चित्सहस्रैर्मूर्खाणामेकमिच्छसिपंडितम् ॥ पंडितोह्यर्थकृच्छ्रेषुकुर्यान्निःश्रेयसंमहत् ॥ २२ ॥ सहस्राण्यपिमूर्खाणां यद्युपास्तेमहीपतिः ॥ अथवाप्ययुतान्येवनास्तितेषुसहायता ॥ २३ ॥ एकोऽप्यमात्योमेधावीशूरोदक्षोविचक्षणः ॥ राजानंराजपुत्रंवाप्रापयेन्महतींश्रियम् ॥ २४ ॥

॥१९॥ तुम्हारे कार्य सर्व प्रकारसे भलीभांति होजाने पर अथवा पूरे होने ही पर तो सब छोटे २ राजा जानते हैं उन कर्मोंके होनेसे प्रथम तो वह उनको नहीं जान सकते हैं ? ॥ २० ॥ शत्रुलोग तो कोई उपायान्तरकरके तुम्हारी अप्रकाशित सलाहको तो जान लेनेमें समर्थ नहीं होते ? किंतु तुम या तुम्हारे मन्त्री लोगतो सदा युक्तिपूर्वक तुम्हारे दुश्मनोंकी सलाहको जानते हैं ॥ २१ ॥ जब अर्थ समझनेकी कठिनता आपडती है तब पंडितलोगही कल्याण साधन करते हैं अतएव तुम सहस्र मूर्खोंको छोडकर एकजन पंडितकी कामना करते हो या नहीं ॥२२॥ राजा यदि हजार अथवा दश हजार मूर्खोंका प्रतिपालन करे तथापि उनकेद्वारा कुछ भी सहायता नहीं प्राप्त हो सकती ॥ २३ ॥ बुद्धिमान्, शूर, चतुर और होशियार ऐसे केवल एक मंत्री से भी राजा व राजपुत्रोंको विपुल सम्पत्ति प्राप्त

होती है ॥२४॥ हे भाई ! तुम उत्तम, कार्यमें उत्तम मध्यम कार्यमें मध्यम और अधमकार्यमें अधम नौकर चाकरोंको नियुक्त करतेहो अथवा नहीं ? ॥२५॥ हे भ्रातः ! जो कि सब मंत्री आदि रिशबत नहीं ग्रहण करते, जिनकी बाहरी और भीतरीइंद्रियें शुद्ध हैं जो कि बाप दादाके समयसे मंत्रीपदपर चले आते हैं सो ऐसे मंत्रियों को तो तुम श्रेष्ठ कामोंमें नियोजित करते हो या नहीं ॥२६॥ हे कैकेयीनन्दन ! राज्यके मध्यमें प्रजागण तो कठोर दंडसे नितान्त दंडित नहीं होते ? मंत्री लोग तो तुम्हारा अपमान नहीं करते ? ॥२७॥ कुलकी स्त्रियां जिस प्रकार अतिकामी पुरुषको जो बलपूर्वक परस्त्री गमन करता है, उसे पतित व भ्रष्ट समझती हैं अथवापतितपुरुष जिस प्रकार लोगोंसे वर्जित होकर रहता है, इस प्रकार यज्ञके करनेवाले ऋषिलोग तो तुम्हारी अवज्ञा नहीं करते ? ॥ २८ ॥ उपायसोच नेमें बहुत चतुर कि जब चाहें तब राजाके विरुद्ध कोई जाल किया और जब चाहें तब उसे मेट दिया, वियाविशारद जोकि कोई ऐसी विद्या जानता हो कि

कच्चिन्मुख्यामहत्स्वेवमध्यमेषुचमध्यमाः ॥जघन्याश्चजघन्येषुभृत्यास्तेतातयोजिताः ॥२५॥अमात्यानुपधार्तीतान्पितृपैतामहाञ्छुचीन् ॥ श्रेष्ठाञ्छ्रेष्ठेषुकच्चित्त्वंनियोजयसिकर्मसु॥२६॥कच्चिन्नोग्रेणदंडेनभृशमुद्वेजिताःप्रजाः ॥राष्ट्रेतवावजानंतिमंत्रिणः कैकेयीसुत॥२७॥ कच्चित्त्वांनाव जानंतियाजकाः पतितंयथा॥उग्राःप्रतिग्रहीतारंकामयानमिवस्त्रियः ॥ २८ ॥ उपायकुशलंवैद्यंभृत्यंसंपदूणेरतम् ॥ शूरमैश्वर्यकामंचयोनहंति सहन्यते ॥२९॥ कच्चिद्धृष्टश्चशूरश्चधृतिमान्मतिमाञ्छुचिः ॥ कुलीनश्चानुरक्तश्चदक्षः सेनापतिःकृत ॥३०॥ बलवंतश्चकच्चित्तेमुख्यायुद्धविशा रदाः॥ दृष्टापदानाविक्रांतास्त्वयासत्कृत्यमानिताः॥३१॥कच्चिद्बलस्यभक्तंचवेतनंचयथोचितम् ॥ संप्राप्तकालंदातव्यंददासिनविलंबसे ॥३२॥ कालातिक्रमणेह्येवभक्तवेतनयोर्भृताः ॥ भर्तुरप्यतिकुप्यंतिसोऽनर्थः सुमहान्कृतः ॥ ३३ ॥

जिससेराजाका कुछअनिष्ट होसके । जोकि राजाको मारकर आप स्वतंत्रतासे राज्यका भोग करना चाहता हो, शूर बलवानभी हो ऐसे मंत्रीको जो राजालोग नष्ट नहीं करते हैं वे उस मंत्रीके वा वैद्यके हाथसे स्वयं नष्ट होते हैं । तुम्हारे तो ऐसा नहीं है अर्थात् ऐसामंत्री वैद्य भृत्य नहीं रखना चाहिये॥२९॥भला तुमने धीर धारणकरनेवाला, बुद्धिमान्, पवित्र, शूर, ढीठ, अच्छे कुलमें उत्पन्न हुआ, स्वामीके कार्यमें तत्पर और चतुर पुरुषको सेनापति किया है वा नहीं॥३०॥ दोतीन वार जिन लोगोंके बल विक्रमका परिचय और परीक्षा होगईहै वैसे बलवान युद्ध विशारदविक्रमविशेष रखनेवाले पुरुषोंका तुम आदरसत्कार करतेहो वा नहीं? ॥ ३१ ॥ वा सेना आदिके सैनिक तथा और चाकरोंको प्रतिदिन भोजन और मासिक नौकरीका रुपया तो महीनेभरमें देदेतेहो ? विलंब तो नहीं करते ? ॥३२॥क्योंकि नौकर चाकरलोगोंको जब यथा समय भोजन और तनख्वाह नहीं मिलती तबवह अपने मालिकपर क्रोध करतेहैंऔर उससेउनका चित्त फिर

जाता है। इस प्रकारनौकर चाकरोंकी प्रभुपर विरक्ति होनेसे महाअनर्थ होजाताहै॥३३॥ भला तुम्हारे वंशवाले प्रधान २ सरदारलोग तो तुम्हारे ऊपर अनुरक्त हैं ? और तुम्हारे लिये एकचित्त होकर वह प्राणतक देडालनेको तैयार हो सकते हैं ॥३४॥ हे भ्रातः ! अपनेही देशका रहनेवाला ज्योंका त्यों संदेशा कहने वाला यह नहींकि कुछ अपनी ओरसे घटाबढादिया अपनेमनसे भी यथार्थप्रश्नोत्तर करनेवाला विद्वान्अनुकूलऔर पंडित ऐसेपुरुषको तुमने अपने दूतके काममें नियोजित किया है वा नहीं ?॥३५॥ भला जो नीतिशास्त्रमें राजाओंके लिये मंत्री १ पुरोहित २ युवराज ३ सेनापति ४द्वारपाल ५ रनवासकी रक्षा कर नेवाला (खोजा) ६ कारागाराध्यक्ष अर्थात् जेलखानेकादारोगा ७ खजानची ८राजाकी आज्ञा के अनुसार औरोंको आज्ञा देनेवाला ९ वकील १० धर्माध्यक्ष ११ व्यवहारोंका निर्णय करनेवाला १२ फौजकी तनख्वाह बाटनेवाला १३ ठेकेदार १४ नगराध्यक्ष (कोतवाल) १५ डाँडोंपे रहनेवाला और उसका रक्षक १६ दुष्टोंको दंड देनेकाअधिकारी फर्रास१७ जल पर्वत कोट इनकी रक्षाकरनेवाला१८ये अठारहहैं मंत्रीके समान इन लोगोंको रखना चाहिये सोतुमरखते हो

कच्चित्सर्वेनुरक्तास्त्वांकुलपुत्राःप्रधानतः॥कच्चित्प्राणांस्तवार्थेषुसंत्यजंतिसमाहिताः॥३४॥कच्चिज्जानपदोविद्वान्दक्षिणःप्रतिभानवान् ॥ यथो क्तवादीदूतस्तेकृतोभरतपंडितः ॥३५॥ कच्चिदष्टादशान्येषुस्वपक्षेदशपंचच॥त्रिभिस्त्रिभिरविज्ञातैर्वेत्सितीर्थानिचारणैः ॥३६॥ कच्चिद्व्यपास्ता नहितान्प्रतियातांश्चसर्वदा ॥ दुर्बलाननवज्ञायवर्तसेरिपुसूदन॥३७॥ कच्चिन्नलोकायतिकान्ब्राह्मणांस्तातसेवसे॥ अनर्थकुशलाह्येतेबालाःपं डितमानिनः ॥ ३८ ॥ धर्मशास्त्रेषुमुख्येषुविद्यमानेषुदुर्बुधाः ॥ बुद्धिमान्वीक्षिकींप्राप्यनिरर्थंप्रवदंतिते ॥ ३९ ॥

वा नहीं सोभी औरोंकेराज्यके ये१८जोहैं इनमेंमंत्री पुरोहित युवराज इन तीन जनोंके सिवाय सेनापत्यादि १५ अपने समीप व प्रत्येक विषयके लिये कमसेकम तीनदूत रखते हो ? व हरकारों की कभी परीक्षा भी लेते रहतेहोकि यह लोग कहांपर कौन २ कार्य कर रहे हैं॥३६॥ हे शत्रुओंके मारनेवाले ! जिनअपने शत्रुओंको तुमने अपना या राज्यका बुरा करनेके कारण अपने राज्यसे निकाल दियाहै और वेही लोग फिर राज्यमें वसने आवें सो बिना अच्छीतरह परीक्षा लिये उनको दुर्बल समझ कि, यह हमारा क्या करेंगे लाओ वसने दें उनको अपने राज्यमें वसने तो नहीं देते ? क्योंकि ऐसे लोग अपने पिछले वैरका कभी नहीं भूलते ॥३७॥ भ्रातः ! जो ब्राह्मणलोग केवल तर्कशास्त्रही पढे हैं और वाममा र्गी हैंऔर बौद्धमत केअनुयायी हैं,वे लोग अपनेको वृथाही पंडित अनुमानकर अभिमान करते हैं केवल लोगोंका अनर्थ करनाही उनकी चतुराई है सो तुम ऐसे लोगोंकी सेवा तो नहीं करते॥३८॥ क्योंकि यह लोग बडे दुर्बुद्धि पंडित होते हैं यद्यपि सब मनुस्मृत्यादि धर्म शास्त्र व वेद सब विद्यमान हैंपर दुष्ट कुछ नहीं देखते बरन् अपने मनमाना तर्ककर इन धर्मशास्त्रोंके विपरीत ना

स्तिकोंके धर्म बतादेतेहैं जो सदा निरर्थकहैं ॥३९॥ हे तात । भला हमारे पूर्व पुरुष इक्ष्वाकु, दिलीप, रघु श्रेष्ठ दशरथादिकी भोगी हुई, दृढ द्वार लगी जिसमेंहाथी घोडोंके समूहके समूह आते जातेहैं ॥४०॥ जो कि; हजार २ अपने २ कर्मोंमें लगे हुये उत्साही जितेन्द्रिय ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यइनसे सदा परिपूरितहैं॥४१॥ भांति भांतिके आकारवाले महलदुमहले चौमहले जिसमें जहां अनेक विद्याओंके जाननेवाले मनुष्यव्याप्त हैं उस ऋषि सिद्धियुक्त सार्थक नाम धारणकरनेवाली अयोध्यापुरीकी उत्तम प्रकारसे रक्षा करतेहो ? ॥ ४२ ॥ हे भरत ! जहांहजारों देव मंदिर शोभा पारहे हैं और सब मनुष्य सुख स्वच्छंदतासे रहते हैं बहुत सारे देवस्थान गौशाला तालावोंसे जिसकी शोभाकी सीमा नहींहै ॥४३॥ जहांके सब स्त्री पुरुष महाहर्षित रहतेहैं समाजोंके उत्सव होने हुवानेसे सुशोभित, जिसके प्रान्त अच्छे बलिष्ठ पशुओंसे शोभित जहां हत्याका नाम और गंधतक नहीं॥४४॥बहुतसी नदी तालावोंसे संयुक्त हिंसाकारी जन्तुओंसे हीन जहां किसी प्रकारका

वीरैरध्युषितांपूर्वमस्माकंतातपूर्वकैः ॥ सत्यनामांदृढद्वारांहस्त्यश्वरथसंकुलाम् ॥४०॥ ब्राह्मणैःक्षत्त्रियैर्वैश्यैः स्वकर्मनिरतैः सदा॥ जितेन्द्रियै र्महोत्साहैर्वृतामार्यैः सहस्रशः ॥४१॥ प्रासादैर्विविधाकारैर्वृतांवैद्यजनाकुलाम् ॥ कच्चित्समुदितांस्फीतामयोध्यांपरिरक्षसे ॥४२॥ कच्चिच्चैत्यशतैर्जुष्टः सुनिविष्टजनाकुलः ॥ देवस्थानैःप्रपाभिश्चतटाकैश्चोपशोभितः ॥४३॥ प्रहृष्टनरनारीकः समाजोत्सवशोभितः ॥ सुकृष्टसीमापशुमान्हिंसाभिरभिवार्जितः ॥४४॥ अदेवमातृकोरम्यः श्वापदैःपरिवर्जितः ॥ परित्यक्तोभयैः सर्वैः खनिभिश्चोपशोभितः ॥४५॥ विवर्जितोनरैःपापैर्ममपूर्वैःसुरक्षितः ॥ कच्चिज्जनपदःस्फीतःसुखंवसतिराघव ॥४६॥ कच्चित्तेदयिताःसर्वेकृषिगोरक्ष्यजीविनः॥ वार्तायांसांप्रतंतातलोकोऽयंसुखमेधते ॥४७॥ तेषांगुप्तिपरीहारैःकच्चित्तेभरणंकृतम् ॥ रक्ष्याहिराज्ञाधर्मेणसर्वेविषयवासिनः ॥४८॥ कच्चित्स्त्रियःसांत्वयसेकच्चित्तास्ते सुरक्षिताः ॥ कच्चिन्नश्रद्दधास्यासांकच्चिद्गुह्यंनभाषसे ॥ ४९ ॥

कोईडर नहीं जहां किसीका भय नहीं और रत्नोंकी खानेशोभा पारहीहैं॥४५॥जिस जगह कोई पापात्मा मनुष्यहैही नहीं जो स्थान कि;हमारे पहलेपुरुषाओंसे रक्षित था, हे भरतजी ! वह धन धान्य युक्त देश तो कुशलपूर्वक बसताहै ? ॥४६॥ हे भइया ! जो लोग खेती करके और पशुओंका पालन करके अपना गुजारा करतेहैं इनसे विशेष प्रसन्न तो रहते हो ? यह सबमनुष्य वाणिज्यके कार्य में नियुक्त रहकर धन धान्ययुक्त होतेहैं ॥४७॥ तुम उन लोगोंकी चोरीडाके आदिसे रक्षाकरके भली भांति उन लोगों का भरण पोषण करते हो ? क्योंकि, अपने अधिकारके सबही लोगोंकी रक्षा राजाका परमकर्त्तव्य है ॥४८॥ भला अपनी स्त्रियोंको तो समझाते रहकर उनकी रक्षा भलीभाँति करतेहो, उनका विश्वास करके कोई अपना गुप्त वृत्तान्त तो उनसे नहीं कहदेते ? क्योंकि स्त्रियोंके पेटमेंकोई बात

पचती नहीं॥४९॥ जिन सब वनोंमें हाथी होतेहैं वह सब नागवन भली प्रकारसे रखाये तो जातेहैं ? भला तुम गाय बैल इत्यादिको तो भली भाँति पालन पोषण करते हो ? हाथी हथिनी और घोड़ोंकेपालनेसे तुम्हारी कभीतृप्ति तो नहीं होतीकि बहुतहोगये अबपालकर क्या करेंगे ॥५०॥ हे राजकुमार ! प्रतिदिन दोपहरसे पहले उठकर अच्छे२वस्त्राभूषण धारणकर प्रजाओंकोसभामें औरराजमार्गमें विचरकर दर्शन तो देते हो ॥५१॥ कर्मचारी लोग निःशंक भावसे तो तुम्हारे निकटनहीं चले आते,या मारे डरके अतिदूर तो नहीं रहते ? क्योंकि राजाओंका मध्यभावसे सेवन करना चाहिये ॥५२॥ तुम्हारे सब दुर्ग तो धन धान्य हथियार जल अनेक प्रकारकी कलों व धनुर्द्धारी आदिकोंसे पूर्णहैं वा नहीं? ॥५३॥ हे भरत ! तुम्हारी आमदनी बहुत और खर्चबहुतही कमहै ? हे राजकुमार! तुम्हारा खजाना नाच तमाशे गानेवाले और नट आदिक अपात्रोंमें खर्च करनेसे तौ खाली नहींहोता है ॥ ५४ ॥ तुम देवताओंकलिये, पितरोंके लिये ब्राह्मणोंके लिये और

कच्चिन्नागवनंगुप्तंकच्चित्तेसंतिधेनुकाः॥कच्चिन्नगणिकाश्वानांकुंजराणांचतृप्यसि ॥५०॥कच्चिद्दर्शयसेनित्यंमानुषाणांविभूषितम्॥उत्थायो त्थायपूर्वाह्णेराजपुत्रमहापथे ॥५१॥ कच्चिन्नसर्वेकर्मांताः प्रत्यक्षास्तेऽविशंकया ॥ सर्वेवापुनरुत्सृष्टामध्यमेवात्रकारणम् ॥५२॥ कच्चिद्दुर्गाणिसर्वाणिधनधान्यायुधोदकैः ॥ यंत्रैश्चप्रतिपूर्णानितथाशिल्पिधनुर्धरैः ॥ ५३ ॥ आयस्तेविपुलःकच्चित्कच्चिदल्पतरोव्ययः॥ अपात्रेषुन तेकच्चित्कोशोगच्छतिराघव॥५४॥देवतार्थेचपित्रर्थे ब्राह्मणाभ्यागतेषुच । योधेषुमित्रवर्गेषुकच्चिद्गच्छतितेव्ययः ॥ ५५ ॥ कच्चिदार्योऽपि शुद्धात्माक्षारितश्चापकर्मणा ॥ अदृष्टःशास्त्रकुशलैर्नलोभाद्बध्यतेशुचिः ॥५६॥ गृहीतश्चैवपृष्टश्चकालेदृष्टःसकारणः॥ कच्चिन्नमुच्यतेचोरो धनलोभान्नरर्षभ ॥५७॥ व्यसनेकच्चिदाढ्यस्यदुर्बलस्यचराघव ॥ अर्थविरागाः पश्यंतितवामात्याबहुश्रुताः ॥ ५८ ॥

अतिथिसेवामें और योद्धालोग व मित्र लोगोंके भरण पोषण करनेमें तौ धन खर्च करतेहो अथवा नहीं ॥५५॥ अच्छे चरित्रवाले साधुलोग जो झूंठे अपवादोंसे दूषितहो विचारके लिये न्यायालयमें आवें और धर्मशास्त्रके जाननेवाले वकील करके किसी प्रकार यदि उनका दोष प्रमाणित नहींहो तब धनके लोभसे तुमउन निर्दोषियोंको दंड तो नहीं देते ॥५६॥ अथवा हेपुरुषोत्तम ! चोरके पकड़े जाने पर साक्षीके द्वारा उसकीचोरी प्रमाणित होनेया चोरी करनेके सब लक्षण प्रगट पानेपरभी विना दंड लिये धनके लोभसे तुम उसको नहीं छोड देते ॥ ५७ ॥ हे रघुनंदन ! धनी और गरीबमें परस्पर झगडा होने तुम्हारे बहुत शास्त्रोंके जाननेवाले मंत्रीलोग बहुत कहे सुने जानेपरभी निर्लोभहो इस झगडेका विचार करते हैं अथवा नहीं ॥ ५८ ॥

हे भरत ! जब मिथ्या अपराधसे युक्त निरपराधीको दंड दिया जाता है तब उनके नेत्रोंसे जो आँसुओंकी बूँदें गिरती हैं उनसे दंडदेनेवाले राजा व राजसे वकके पुत्र पशु धनादिकको वह आंसू नाश कर देते हैं ॥ ५९ ॥ हे भरत ! बालक बूढे शौर बडे२वैद्योंको तुम दानमान वचन इन तीनों उपायोंसे भली भांति वशमें तो करलेते हो ॥ ६० ॥ गुरु, बूढे, तपस्वी अतिथि व चौराहेके बीचमें लगे हुए वृक्ष और विद्या, सदाचार; सिद्धकाम ब्राह्मणगणइन सबको तुम नित्य नमस्कार करतेहो वा नहीं ? ॥६१॥ अर्थद्वारा धर्म अथवा धर्मके द्वारा अर्थको या काम व लोभसेइन दोनोंकोतो नहीं रोक देतेहो कि,न होनेपातेहों ? ॥ ६२ ॥ हे जीतनेवालोंमें श्रेष्ठ ! कालको जाननेवाले हे वरद ! धर्म अर्थ, काम इन तीनोंको तो यथाकालमें विभाग करके तुम सेवा करते हो ? ॥ ६३ ॥

यानिमिथ्याभिशस्तानांपतंत्यश्रूणिराघव ॥ तानिपुत्रपशून्घ्नंतिप्रीत्यर्थमनुशासतः ॥ ५९ ॥ कच्चिद्वृद्धांश्चबालांश्चवैद्यान्मुख्यांश्चराघव ॥ दानेनमनसावाचात्रिभिरेतैर्बुभूषसे ॥६०॥ कच्चिद्गुरूंश्चवृद्धांश्चतापसान्देवतातिथीन् ॥ चैत्यांश्चसर्वान्सिद्धार्थान्ब्राह्मणांश्चनमस्यासि ॥६१॥ कच्चिदर्थेनवाधर्ममर्थंधर्मेणवापुनः ॥ उभौवाप्रीतिलोभेनकामेननविबाधस ॥ ६२ ॥ कच्चिदर्थंचकामंचधर्मंचजयतांवर ॥ विभज्यकाले कालज्ञसर्वान्वरदसेवसे ॥ ६३ ॥ कच्चित्तेब्राह्मणाः शर्मसर्वशास्त्रार्थकोविदाः॥ आशंसन्तेमहाप्राज्ञपौरजानपदैः सह ॥६४॥ नास्तिक्यमनृतं क्रोधंप्रमादंदीर्घसूत्रताम् ॥ अदर्शनंज्ञानवतामालस्यंपंचवृत्तिताम् ॥ ६५ ॥ एकचिंतनमर्थानामनर्थज्ञैश्चमंत्रणम् ॥ निश्चितानामनारंभंमंत्र स्यापरिरक्षणम् ॥ ६६ ॥ मंगलाद्यप्रयोगंचप्रत्युत्स्थानंचसर्वतः ॥ कच्चित्त्वंवर्जयस्येताव्राजदोषांश्चतुर्दश ॥ ६७ ॥ दशपंचचतुर्वर्गान्सप्तवर्गं चतत्त्वतः ॥ अष्टवर्गंत्रिवर्गंचविद्यास्तिस्रश्चराघवः ॥ ६८ ॥

हे महाप्राज्ञ ! धर्मशास्त्रके अर्थोंको जाननेमें विशारद ब्राह्मण लोग नगरवासी और देशवासी पुरुषोंके साथ मिलकर तुम्हारा सब प्रकारसे कल्याण चाहते हैं वा नहीं ॥ ६४ ॥ भला नास्तिकपना, झुँठाई, क्रोध, अहंकार सुस्ती, ज्ञानवानोंका न देखना, अलस, देखने सूँघने खाने आदिके वशीभूत होना ॥ ६५ ॥ अकेलेही राजकार्यकेलिये विचारकरना या ऐसे लोगोंसे सलाह लेना जो उस बातको नहीं जानते किसीबातका निश्चय करके कि, उसको अमुक दिन करेंगे और उस दिन उसमें हाथ न लगाना,सलाहकी स्थिर हुई बात सबसेकह देना ॥६६॥ प्रत्येक कामके प्रारंभ करनेमें मंगलशब्दोंका उच्चारण न करना, नीच व छोटे लोगोंको देखकर उठ खडे होना यह जो राजाओंके चौदहदोष होते हैं उनको तुमनेअलग किया है अथवा नहीं ॥६७॥ हे भरत ! दशवर्ग,पांचवर्ग, चार,वर्ग,सात वर्ग, आठ

वर्ग, तीन वर्ग व तीनों विद्या ॥ ६८ ॥ इन्द्रियोंका जीतना, षट् वर्ग, देवता व मनुष्योंसे दुःख राज्यकृत २० वर्ग ५ प्रकृति १२ मंगल ॥६९॥ यात्राविधान, दंडविधान, मिलाप करना बिगाड करना इनमें जो करनेवाले हैं व जो नहीं करनेवाले हैं उनको बिचारसहित करतेहो वा नहीं? इनमें दशवर्ग यह हैं शिकारखेलना, जूआखेलना दिनकोसोना, बतबढाव करना, स्त्रियोंका अतिसेवक, नशा खाना, गाना सुनना, बाजोंका सुनना, नाचका देखना और वृथा फिरना । पांच वर्ग यह हैं, नदी ताला बादिकोंके जलके बीचमें किला बनाना, पहाडोंपर किला बनाना, वृक्षोंके बीचमें ऊषरमें किला बनाना, हथियारोंके बीचमें किला बनाना यहीपांचप्रकारके दुर्ग हैं चार वर्ग यह हैं--साम(समझना) दान देकर दुश्मनको काबूमें लाना, दुश्मनोंमें फूट करादेना, दंड देना; सातवर्ग; यह हैं--स्वामी, मंत्री, देश, किला बनाना, खजाना रखना' सेना रखना, मित्र रखना यह सातों राज्यके अंग हैं । आठ वर्ग यह हैं--चुगली, साहस, द्रोह, पराये गुणोंको न सहसकना, निन्दा करना, किसीसे करे हुए अर्थकोबुरा बताना, कठोर वचन कहना, दंड देना यह आठोंक्रोधसे उत्पन्न होते हैं कोई २ लोग इनको अष्टवर्ग कहते हैं । तीन वर्ग यह हैं--धर्म करना, अपने लिये धन इकट्ठा करना, काम और तीन विद्या यह हैं--तीनों वेदोंका पढना, खेती वाणिज्यादि राजनीति । छः वर्ग यह हैं--मिलाप करना, वैर करना, आक्रमण कर

इंद्रियाणांजयंबुद्धचापाड्गुण्यंदैवमानुषम् ॥ कृत्यंविंशतिवर्गंचतथाप्रकृतिमंडलम् ॥ ६९ ॥
यात्रादंडविधानंचद्वियोर्नीसंधिविग्रहौ ॥ कच्चिदेतान्महाप्राज्ञयथावदनुमन्यसे ॥ ७० ॥

ना, अपने किलेमें बैठा रहना; शत्रुओंसे दूर रहना व दूररखना भागकर कहीं जाय रहना; दैवयोगसे राज्यमें यह दुःख होते हैं--आग लगाना, अतिजल वर्षाना, महामारी, हैजे आदिकी बीमारियोंका होना, अकाल पडना, मरना, मनुष्योंसे यह दुःख होते हैं; राज्यके नौकर चाकरोंसे, चोरोंसे, दुश्मनोंसे, राजाके भाई बन्धुओंसे राजाके लालचीहोनेसे । वराज्यकृत्य यह हैं--किसीको नौकर न रखना, लालची न रहना, जो माननेके योग्य हो उसका अपमान न करना। आप सदा कोपकिये हुए न रहे, वृथा किसीको कुपित न करे, बहुत डरा न करे, न किसीको डरपावै । वीस वर्गयह हैं--बालक, वृद्ध, सदारोगीरहताहो, जातिसे बाहर निकालाहुआ हो, डरपोक हो, औरोंको डरवाता हो, लोभी हो, लोभीका सम्बंधीहो; प्रजा जिससे विरक्त होती हो, इंद्रियोंके सुखमें अतिशय आसक्तहो, बहुत आदमीके साथ सलाह करनेवाला हो, देवब्राह्मणोंकी निन्दा करनेवालाहो, भाग्यहीनहो, जो भाग्यहीके भरोसे हाथपै हाथधरे बैठा रहताहो, अकालका सताया हुआहो, बडा पहलवान हो, अपने देशका रहनेवालाहो, जिसके बहुत शत्रु नहीं तथा समयपर कार्यको न करे, और सत्य कर्म करनेमें जिसकी रुचि नहीं, सन्धिके अयोग्य यह वीस वर्ग हैं । पांच प्रकृति यह हैं--मंत्री, देशवासी, किला, खजाना, दंड देना । राजमंडल यह हैं--शत्रु, मित्र, शत्रुका मित्र, शत्रुके मित्रका मित्र, परममित्र जो विजयकी इच्छा करके किसीपै

चढा जाताहो उसके आगे २ चले, पार्ष्णिग्राह, आक्रन्द; पार्ष्णिग्राहासार, आक्रन्दासार यह पीछे २ चलें. व जो ऐसे नही मध्यभाव रखते हों वे दोनों संग २ चलें। पांच प्रकारका यात्रा विधान है--विगृह्ययान, सन्ध्यायान सम्भूययान, प्रसंगतोयान, उपेक्ष्ययान। जहां बडी बहादुरीके सहित सेनापतियोंको संग लेकर यात्रा कीजाय वह विगृह्ययान है, जहां जिस शत्रुपर चढाई हो उससे मिलापकर और शत्रुके ऊपर चढाई कीजाय वह सन्ध्यायान है, जहाँ, वीरोंको संगलेखुला खुलीकेसाथ यात्रा कीजाय वहसम्भूययान है, जहां तैयारी और दुश्मनपर कीजाय व बीचमेंऔरके ऊपर जाय पहुँचे वह प्रसंगतोयान है, जहां शत्रुको प्रबल जान उसको छोड उसके मित्रपर चढाई कीजायवह उपेक्ष्ययानहै व दंड विधान सेनाकी रचनाको कहतेहैं ॥७०॥ हे मतिमान! नीतिशास्त्रमें जिस प्रकार सलाह करनेको नियम लिखा है तुम उसके अनुसार तीन या चार मंत्रीयोंको लेकर उनमेंसे प्रत्येकके साथ अलग २ सलाह करते हो वा सबको एक संगही बैठाकर सलाह करते हो? ॥७१॥ तुम्हारे पढे हुए वेद सब कर्त्तव्य कार्यके अनुष्ठानद्वारा, सब क्रियायें इच्छा नुसार फलप्रसवद्वारा स्त्रियें सब धर्मका आचरण करके संतानद्वारा और शिक्षा वा

मंत्रिभिस्त्वंयथोद्दिष्टंचतुर्भिस्त्रिभिरेववाकच्चित्समस्तैर्व्यस्तैश्चमंत्रंमंत्रयसेबुध ॥७१॥ कच्चित्तेसफलावेदाः कच्चित्तेसफलाःक्रियाः ॥ कच्चित्ते सफलादाराः कच्चित्तेसफलंश्रुतम् ॥७२॥ कच्चिदेषैवतेबुद्धिर्यथोक्तामममराघव ॥ आयुष्याचयशस्याचधर्मकामार्थसंहिता ॥ ७३ ॥ यांवृत्तिं वर्ततेतातोयांचनःप्रपितामहः ॥ तांवृत्तिंवर्तसेकच्चिद्याचसत्पथगाशुभा ॥ ७४ ॥ कच्चित्स्वादुकृतंभोज्यमेकोनाश्नासी राघव ॥ कच्चिदाशंसमानेभ्योमित्रेभ्यःसंप्रयच्छसि॥ ७५॥ राजातुधर्मेणहिपालयित्वामहीपतिर्दंडधरःप्रजानाम् ॥ अवाप्यकृत्स्नांवसुधांयथावदितश्च्युतःस्वर्गमुपैतिविद्वान् ॥ ७६ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० च० सा० अ० शततमः सर्गः ॥ १०० ॥

शास्त्रचर्य्या भली प्रकार विधान द्वारा, यह सब सफल तो हुए हैं ? ॥ ७२ ॥ हे रघुवीर ! यह सब हमारे कहे हुए विषयोंमें तुम्हारी बुद्धि, आयु बढानेवाली, यशको बढानेवाली और धर्म, अर्थ, काम इन तीन विषयोंके भली प्रकार अनुगत है ? ॥ ७३ ॥ हमारे पिता और प्रपितामहोंने जो वृत्ति अवलंबन की थी तुमने उस परमपवित्र और श्रेष्ठ मार्गपर चलानेवाली वृत्तिका अवलंबन किया है ? ॥ ७४ ॥ हे भरत ! तुम स्वादवान् भोजनके पदार्थ औरोंको न देकर इकले तो नहीं खाजाते ? जो मित्रलोग व कुडम्बी वहांपर होते हैं उनको भी देते हो ॥७५॥ देखो जो विद्वान् धर्मवान् राजा क्षत्रिय दंड धारण करके धर्मानुसार प्रजाका पालन करता है वह सब पृथ्वीको यथाविधिसे भोग करता है वह अन्तकालमें शरीरको छोडकर स्वर्गको चला जाता है ॥ ७६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदि० अयो० भाषायां शततमः सर्गः ॥ १०० ॥

इस प्रकार रामचन्द्रजी गुरुवत्सल भरतजीसे कुशल प्रश्नके मिषसे उपदेश कर फिर भ्राता लक्ष्मणके सहित भरतजीसे पूछने लगे ॥१॥ हे भइया ! किसकारण तुम जटा वल्कल धारण करके यहां आये ? सो स्पष्ट करके कहो हमें सुननेकी इच्छा हुई है ॥२॥ तुम राज्यको त्याग करके जिस कारण छालके कपड़े पहर और जटाधारी होकर यहां आयेहो सो सब इस समय तुमको प्रकाशित करनाचाहिये॥३॥ काकुत्स्थ कुलमें उत्पन्न महात्मा रामचन्द्रजीने जब इस प्रकार कहा तब कैकेयी पुत्र भरतजी अतिकष्टसे शोकके वेगको रोके हाथ जोडकर बोले॥४॥ तब हे आर्य! महाबाहु पिता दशरथजी हमारी माता कैकेयीके कहनेसे ज्येष्ठ पुत्रको छोड़ छोटेको राज्य दे पुत्रशोकसे पीडित यशहीन होकर हम सब को परित्याग करके स्वर्ग को चले गयेहैं ॥५॥ हे शत्रुओंके तपानेवाले ! हमारी माता कैकेयी

तंतुरामःसमाज्ञायभ्रातरंगुरुवत्सलम् ॥ लक्ष्मणेनसहभ्रात्राप्रष्टुंसमुपचक्रमे ॥१॥ किमेतदिच्छेयमहंश्रोतुंप्रव्याहृतंत्वया ॥ यस्मात्त्वमागतोदेशमिमचीरजटाजिनी ॥ २ ॥ यन्निमित्तमिमंदेशंकृष्णाजिनजटाधरः ॥ हित्वाराज्यप्रविष्टस्त्वंतत्सर्ववक्तुमर्हसि ॥३ ॥ इत्युक्तः कैकयीपुत्रःकाकुत्स्थेनमहात्मना ॥ प्रगृह्यबलवद्भूयःप्रांजलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥४॥ आर्यतातःपरित्यज्यकृत्वाकर्मसुदुष्करम् ॥ गतःस्वर्गमहाबाहुःपुत्रशोकाभिपीडितः ॥ ५ ॥ स्त्रियानियुक्तःकैकेय्याममामात्रापरंतप ॥ चकारसामहत्पापमिदमात्मयशोहरम् ॥ ६ ॥ साराज्यफलमप्राप्यविधवाशोककर्शिता ॥ पतिष्यतिमहाघोरेनरकेजननीमम ॥ ७ ॥ तस्यमेदासभूतस्यप्रसादंकर्तुमर्हसि ॥ अभिषिंचस्वचाद्यैवराज्येनमघवानिव ॥ ८ ॥ इमाःप्रकृतयःसर्वाविधवामातरश्चयाः ॥ त्वत्सकाशमनुप्राप्ताःप्रसादंकर्तुमर्हसि ॥९॥ तथाऽनुपूर्व्यायुक्तश्चयुक्तंचात्मनिमानद॥राज्यंप्राप्नुहिधर्मेणसकामान्सुहृदःकुरु ॥ १० ॥ भवत्वविधवाभूमिःसमग्रापतिनात्वया ॥ शशिनाविमलेनेवशारदीरजनीयथा ॥ ११ ॥ एभिश्चसचिवैःसार्धंशिरसायाचितोमया ॥ भ्रातुःशिष्यस्यदासस्यप्रसादंकर्तुमर्हसि ॥ १२ ॥

नेभी उस महापापमें लगकर अपने वंशको नष्ट कियाहै॥६॥इससमय यह हमारीमाता राज्य प्राप्तिकी आशासे हाथ धो विधवा और शोकसे व्याकुल होकर महाघोर नरकमें पडेगी ॥७॥ मैं अबभी आपका वही दास हूं अतएव आप हमपर प्रसन्न होवें। और आजही आप इन्द्रकेसमान राज्यपर अभिषिक्त होवें॥८॥ यहसब प्रजा और यह विधवा मातायें आपको प्रसन्न करनेके लिये यहां आई हैं अतएव आप प्रसन्न होवें ॥ ९ ॥ हे मानद ! आप बडे होनेसे राज्यके अधिकारी हैं और आप ही को राजगद्दीपर बैठना उचितहै अतएव धर्मानुसार राज्य ग्रहण करके बन्धु बान्धव इष्ट मित्रोंकी कामना पूर्ण करो ॥ १० ॥ शरदृतुकी रात जिस प्रकार विमल चन्द्रमाके द्वारा पतियुक्त होतीहै वैसे ही समुद्र करके सहित यह पृथ्वी आपको पतित्वमें वरण करके सधवा होवे ॥ ११ ॥ हम आपके भ्राता,

शिष्य और दास हैं सो अब मंत्रियोंके सहित शिर झुका कर प्रार्थना करते हैं कि आप प्रसन्न होवें ॥१२॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! यह परम्परासे चलेहुये बाप दादा परदादाओं करके मान पाये हुये मंत्रीलोग बार २ कामना कर रहे हैं कि आप अयोध्या की राज गद्दीपर बैठे वस इनकी प्रार्थना पर ध्यान देना उचितहीहै ॥१३॥ यह कहके महाबाहु कैकेयी कुमार भरतजी नेत्रोंमें आंसू भरकर फिर रामचन्द्रजीके चरणोंपर अपना मस्तक धरदेते हुए ॥१४॥ और बारंबार मतवाले हाथीके समान दीर्घ श्वास लेते हुये देखकर रामचन्द्रजी उनको उठा छातीसे लगाकर कहनेलगे॥१५॥ हे अरिसूदन ! हमारे समान अच्छे कुलमें उत्पन्न हुआ सत्त्वम्पन्न तेजवान् और व्रताचारी मनुष्य किस प्रकारसे पिताकी आज्ञाको उल्लंघन करके पापमें पडेगा ॥१६॥ हे भरत ! हम तो तुम्हारा कुछ जरासा भी दोष नहीं देखतेबाल कपनकी चंचलताके वश होकर तुमको अपनी माताकी भी निन्दा करनी नहीं चाहिये॥१७॥ हे पापरहित ! हे महाप्राज्ञ ! पिता इत्यादि गुरुजन अपने अनु

तदिदंशाश्वतंपित्र्यंसर्वंसचिवमंडलम्॥ पूजितंपुरुषव्याघ्रनातिक्रमितुमर्हसि ॥१३॥ एवमुक्त्वामहाबाहुःसबाष्पःकैकयीसुतः ॥ रामस्यशिर सापादौजग्राहभरतःपुनः ॥१४॥ समत्तमिवमातंगंनिःश्वसंतंपुनःपुनः ॥ भ्रातरंभरतं रामःपरिष्वज्येदमब्रवीत् ॥ १५ ॥ कुलीनःसत्त्वसंपन्न स्तेजस्वीचरितव्रतः ॥राज्यहेतोःकथंपापमाचरेन्मद्विधोजनः ॥ १६ ॥ नदोषंत्वयिपश्यामिसूक्ष्ममप्यरिसूदन ॥ नचापिजननींबाल्यात्त्वंवि गर्हितुमर्हसि ॥ १७ ॥ कामकारोमहाप्राज्ञगुरूणांसर्वदानघ ॥ उपपन्नेषुदारेषुपुत्रेषुचविधीयते ॥१८॥ वयमस्ययथालोकेसंख्याताःसौम्यसा धुभिः ॥ भार्याःपुत्राश्चशिष्याश्चत्वमपिज्ञातुमर्हसि ॥१९॥वनेवाचीरवसनंसौम्यकृष्णाजिनांबरम् ॥राज्येवापिमहाराजोमांवासयितुमीश्वरः ॥ २० ॥ यावत्पितरिधर्मज्ञेगौरवंलोकसत्कृते ॥ तावद्धर्मकृतांश्रेष्ठजनन्यामपिगौरवम् ॥ २१ ॥ एताभ्यांधर्मशीलाभ्यांवनंगच्छेतिराघव ॥ मातापितृभ्यामुक्तोऽहंकथमन्यत्समाचरे ॥२२॥त्वयाराज्यमयोध्यायांप्राप्तव्यंलोकसत्कृतम्॥ वस्तव्यंदंडकारण्येमयावल्कलवाससा ॥२३॥

गत स्त्री और पुत्रोंके साथ सदा इच्छानुसार व्यवहार करसकते हैं ॥१८॥ हे सौम्य ! संसार में साधुलोग स्त्री पुत्र और चेलोंको जिस प्रकार आज्ञाकारी कहा कर मानते हैं, सब वैसेही पिताजीके निकट हमभी हैं, इस बातको तुम्हें जानलेना उचित है॥१९॥हे प्रियदर्शन ! महाराज दशरथजी हमें चीरवसनऔर मृग चर्म धारण कराके वनमें या राज्यमें जहां इच्छाहो उसी स्थानमें वास करा सकते हैं ॥२०॥ हे धर्मज्ञ! हे धार्मिकश्रेष्ठ ! सर्व लोकोंको सत्कार किये हुए पिताका जिस प्रकार गौरव करना उचित है;माताकी भी वैसेही प्रतिष्ठा करनी चाहिये ॥२१॥ हे भरत ! इन धर्मशाली पिता और माता करके "वनको जाओ" यह आज्ञा पाकर हम किस प्रकार उसको उल्लंघन कर दूसरी मति करैं?॥२२॥ तुम अयोध्यामें सर्वलोकों की सम्मतिसे राजसिंहासन पर बैठोगे और हमें चीरवल्कल

धारण करके वनमें वास करना होगा ॥ २३ ॥ महाराज दशरथजीने सर्व लोकोंकेसमक्ष यह विभागकी व्यवस्था करके स्वर्गमें प्रस्थान किया है ॥ २४ ॥ इस समय वही लोकोंके गुरु धर्मात्मा राजाही तुम्हारे प्रमाण हैं जिस प्रकार वह विभाग करके गये हैं वैसाही राज्यभोग करना तुमको उचित है ॥ २५॥ हे सौम्य ! हम भी चौदह वर्ष दण्डक वनमें रहकर उन महात्मा पिताजीका दिया हुआ हिस्सा भोग करेंगे । देखो ! दशरथजी हमारे पिता साक्षात् इन्द्रके समान और सब लोगोंके पूजनीय हैं । उन महात्मा ने हमसे जो कहा है वही हमारे लिये हितकारी है । इसके सिवाय सब लोगोंका अक्षय राज्यभी हमें अच्छा नहीं लगता ॥२६॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा आदि० अयो० भाषायामेकाधिकशततमः सर्गः ॥१०१॥ रामचन्द्रजीके वचन सुन भरतजी बोले कि, हम धर्महीन हैं अतएव राजधर्मके सीखनेसे हमें प्रयोजन क्या है ॥१॥ हे नरश्रेष्ठ ! हम सूर्यवंशियोंमें यह धर्म बहुत दिनोंका चला आता है कि, राजाके बडे बेटेके होते छोटा पुत्र कभी राज्यका

एवमुक्त्वामहाराजोविभागंलौकसन्निधौ ॥ व्यादिश्येचमहाराजोदिवंदशरथोगतः ॥ २४ ॥ सचप्रमाणंधर्मात्माराजालोकगुरुस्तव ॥ पित्राद त्तंयथाभागमुपभोक्तुंत्वमर्हसि ॥ २५ ॥ (चतुर्दशसमाःसौम्यदंडकारण्यमाश्रितः ॥ उपभोक्ष्येत्वहंनत्तं भागंपित्रामहात्मना ॥ १) यदब्र वीन्मांनरलोकसत्कृतःपितामहात्माविबुधाधिपोपमः ॥ तदेवमन्येपरमात्मनोहितंनसर्वलोकेश्वरभावमव्ययम् ॥ २६॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदि च० सा० अयो० एकाधिकशततमः सर्गः ॥ १०१ ॥ रामस्यवचनंश्रुत्वाभरतःप्रत्युवाचह ॥ किंमेधर्माद्विहीनस्यराजध र्मःकरिष्यति ॥ १ ॥ शाश्वतोऽयंसदाधर्मःस्थितोऽस्मासुनरर्षभ ॥ ज्येष्ठेपुत्रेस्थितेराजानकनीयान्भवेन्नृपः ॥२॥ ससमृद्धांमयासार्धमयोध्यां गच्छराघव ॥ अभिषेचयचात्मानंकुलस्यास्यभवायनः ॥३॥ राजानंमानुषंप्राहुर्देवत्वेसमतोमम ॥ यस्यधर्मार्थसहितंवृत्तमाहुरमानुषम् ॥ ४ ॥ केकयस्थेचमयितुत्वयिचारण्यमाश्रिते ॥ धीमान्स्वर्गंगतोराजायायजूकःसतांमतः ॥ ५ ॥ निष्क्रांतमात्रेभवतिसहसीतेसलक्ष्मणे ॥ दुःखशो काभिभूतस्तुराजात्रिदिवमभ्यगात् ॥ ६ ॥ उत्तिष्ठपुरुषव्याघ्रक्रियतामुदकंपितुः ॥ अहंचायंचशत्रुघ्नःपूर्वमेवकृतोदकौ ॥ ७ ॥

अधिकारी नहीं हो सकता ॥२॥ इससे हे रघुवीर ! आप हमारे साथ धन धान्य युक्त अयोध्या पुरी को गमन करके अपने वंशका कल्याण करने के लिये राजगद्दी पर बैठिये॥३॥देखो सब ही कोई राजा हमारे पिताजी को मनुष्य ही कहते थे परन्तु हम जानते हैं कि, वह देवता थे. क्योंकि उनके धर्मानुमोदित चरित्र मनुष्योंमें कभी संभव नहीं हो सकते ॥४॥ जब कि हम केकयराज्यमें अपने मामाके यहां रहे और आप दण्डकवनमें चले आये, तब साधुसम्मत यज्ञ करनेवाले बुद्धिमान राजादशरथजी स्वर्गको चलेगये ॥ ५ ॥ आप सीता, लक्ष्मण सहित जैसेही कि, अयोध्याजीसे चलेआये वैसेही राजा दशरथजी दुःख और शोकसे घिरकर स्वर्ग को चले गये ॥ ६ ॥ हे पुरुषसिंह ! आप इस समय उठकर पिताजीको जलाञ्जलि दीजिये हम और शत्रुघ्नजी पहलेही तर्पण कर चुके हैं॥ ७॥

हे रघुनंदन ! पंडित लोग कहते हैं कि, प्यारे पुत्रकाही दिया हुआ पिण्ड और जलआदि पितरोंके लोकमें पितरोंके निमित्त सदा रहता है, सो आपही पिताजीके प्यारे और बडे पुत्र हैं ॥८॥ विशेष करके आपकेही बिछुडनेसे आपकेही लिये शोक करते और आपकेही याद करते२ पिताजी परलोकको चले गयेहैं । अंतसमय आपके देखनेको उनकी बहुतही इच्छा हुईथी और आपके प्रति उनका चित्त इस प्रकार लगाहुआ था कि, अपने चित्तको वह किसी प्रकार आपमेंसे नहीं हटासके ॥९॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयो० भाषायां द्व्युत्तरशततमः सर्गः ॥१०२॥ रामचन्द्रजीने भरतजीके मुखसे पिताकेमरनेकी जब करुणाभरी बात सुनी तो उनको मूर्च्छा आगई ॥१॥ दैत्योंके शत्रु इन्द्र जिस प्रकार दानवोंके शत्रुओंपर संग्राममें वज्र छोडते हैं इसी प्रकार वाणीरूपी वज्रके समान भरतजीके वचन

प्रियेणकिलदत्तंहिपितृलोकेषुराघव॥ अक्षय्यंभवतीत्याहुर्भवांश्चैवपितुःप्रियः ॥८॥त्वामेवशोचंस्तवदर्शनेप्सुस्त्वय्येवसक्तामनिवर्त्यबुद्धिम् ॥ त्वयाविहीनस्तवशोकरुग्नस्त्वांसंस्मरन्नेवगतःपिताते ॥ ९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० अयोध्याकांडे द्व्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १०२ ॥ तांश्रुत्वाकरुणांवाचंपितुर्मरणसंहिताम् ॥ राघवोभरतेनोक्तांबभूवगतचेतनः ॥ १ ॥ तंतुवज्रमिवोत्सृष्टमाहवेदानवारिणा ॥ वाग्वज्रंभरतेनोक्तममनोज्ञंपरंतपः ॥ २ ॥ प्रगृह्यरामोबाहूवैपुष्पितांगइवद्रुमः ॥ वनेपरशुनाकृत्तस्तथाभुविपपातह ॥ ३ ॥ तथाहिपतितंरामंजगत्यांजगतीपतिम् ॥ कूलघातपरिश्रांतंप्रसुप्तमिवकुंजरम्॥ ४ ॥ भ्रातरस्तेमहेष्वासंसर्वतःशोककर्शितम् ॥ रुदंतःसहवैदेह्यासिषिचुःसलिलेनवै ॥५॥ सतुसंज्ञांपुनर्लब्ध्वानेत्राभ्यामश्रुमुत्सृजन् ॥ उपाक्रामतकाकुत्स्थःकृपणंबहुभाषितुम् ॥ ६ ॥ सरामःस्वर्गतंश्रुत्वापितरंपृथिवीपतिम् ॥ उवाचभरतंवाक्यंधर्मात्माधर्मसंहितम् ॥ ७ ॥ किंकरिष्याम्ययोध्यायांताते दिष्टांगतिंगते ॥ कस्तांराजवराद्धीनामयोध्यांपालयिष्यति ॥ ८ ॥

सुन ॥२॥ रामचन्द्रजी दोनों बाहैं शिथिल कर वनके बीच फरसे द्वारा काटे हुए खिले फूलों करके युक्त वृक्षके समान पृथ्वीपर गिर पडे ॥३॥ जगत्पति रामचन्द्रजी जब इस प्रकार पृथ्वीमें गिर पडे तबऐसा बोध हुआ कि, मानो कोई मतवाला हाथी नदीका करार तोडते २थककर नींद लेनेके लिये लेटगया ॥४॥ तब रामचन्द्रजीको मूर्च्छित हुआ देख सब भाई जानकीजीके सहित शोकसे व्याकुलहो कर जब रोते२ उन महाधनुषधारी रामचन्द्रजीके सब शरीरपर जल छिडकने लगे ॥५॥ रामचन्द्रजी फिर चैतन्यता प्राप्त करके आंसुओंके जलको वर्षाते हुए अनेक प्रकारके विलाप कलाप करते हुए ॥६॥ वह धर्मात्मा रामचन्द्रजी यह सुनकर कि, पिताजी स्वर्गको चले गये हैं धर्मसंगत वचन भरतजीसे बोले ॥७॥ पिताजी जब स्वर्गको चलेगये तो अबहम अयोध्यापुरीमें जाकर क्या करेंगे, उन नृपा

लश्रेष्ठ विहीन अयोध्यापुरीकी कौन पालन करेगा ? ॥८॥ हमारा जाना अब वृथा है । जिन्होंने हमारेही शोकसे प्राणत्यागकिये हम उनका कुछभी सत्कार न करसके हमारे और उन महात्माके कार्यमें बहुत प्रभेद है ॥९॥ हे निष्पाप भरत ! तुम्हारेही मनोरथ सिद्ध हुए कि, तुमने शत्रुघ्नकेसहित पिताजीके सब प्रेतकार्य किये ॥१०॥ हम अभी क्या बरनू वनवाससेभी लौटकर उन प्रधान पुरुषहीन बहुनायक नरेन्द्रवर्जित अयोध्यापुरीमें नहीं जाना चाहते हैं ॥११॥ हे परन्तप ! हमारे पिताजी परलोकको चलेगये हैं, अतएव जबहम वनवास समाप्तकरके अयोध्याजीमें जायँगे तो हमें कौन हिताहितके उपदेश देगा ॥१२॥ पहले पिताजी हमको अपनी आज्ञा पालन करनेमें तैयार देखकर समझाते बुझाते हुए जो वचनबोला करते थे वह समस्त श्रवण सुखदाई मनोहर वचन अब किससेसुनेंगे॥१३॥

किंनुतस्यमयाकार्यंदुर्जातेनमहात्मनः ॥ योमृतोममशोकेनसमयानचसंस्कृतः ॥९॥ अहोभरतसिद्धार्थोयेनराजात्वयानघ ॥ शत्रुघ्नेनचसर्वेषुप्रेतकृत्येषुसत्कृतः ॥ १० ॥ निष्प्रधानामनेकाग्रांनरेंद्रेणविनाकृताम् ॥ निवृत्तवनवासोऽपिनायोध्यांगंतुमुत्सहे ॥११॥ समाप्तवनवासंमामयोध्यायांपरंतप ॥ कोऽनुशासिष्यतिपुनस्तातेलोकांतरेगते ॥१२ ॥पुराप्रेक्ष्यसुवृत्तंमांपितायान्याहसांत्वयन्॥ वाक्यानितानिश्रोष्यामिकुतःकर्णसुखान्यहम् ॥ १३॥एवमुक्त्वाथभरतंभार्यामभ्येत्यराघवः ॥ उवाचशोकसंतप्तःपूर्णचंद्रनिभाननाम् ॥ १४ ॥ सीतेमृतस्तेश्वशुरःपितृहीनोऽसिलक्ष्मण॥भरतोदुःखमाचष्टेस्वर्गतिंपृथिवी पतेः ॥ १६ ॥ ततोबहुगुणंतेषांबाष्पंनेत्रेष्वजायत॥ तथाब्रुवतिकाकुत्स्थेकुमाराणांयशस्विनीम् ॥ १६ ॥ ततस्तेभ्रातरःसर्वेभृशमाश्वास्यदुःखितम् ॥ अब्रुवञ्जगतीभर्तुःक्रियतामुदकंपितुः ॥ १७॥ सासीतास्वर्गतंश्रुत्वाश्वशुरंतंमहानृपम् ॥ नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यांनशशाकेक्षितुंप्रियम् ॥ १८ ॥ सांत्वयित्वातुतांरामोरुदतींजनकात्मजाम् ॥ उवाचलक्ष्मणंतत्रदुःखितोदुःखितंवचः ॥ १९ ॥

शोकसे तपाये हुए श्रीरामचन्द्रजी भरतजीसे यह कहकर सीताकेसामने होउन पूर्णचन्द्रवदनवालीसे बोले॥ १४ ॥ हे सीते ! तुम्हारे ससुर परलोकको चलेगये लक्ष्मण ! तुमपिताहीन होगये—भरतजी राजाकी यह शोककी उपजानेवाली मरणवार्त्ता दुःखित होकर कहते हैं ॥ १५ ॥ काकुत्स्थनंदन श्रीरामचन्द्रजीने जब ऐसा कहा तब यशवान् सब राजकुमार रोने लगे ॥१६॥ उसके पीछे उन सब भाइयोंने शोकसे व्याकुल रामचन्द्रजीको समझा बुझाकर कहा कि, इस समय आप जगत्पति महाराजको तिलांजलि दीजिये ॥१७॥ जब सीताजीने सुनाकि, ससुरमृतक होगये हैं तो उनकेदोनों नेत्रोंसे आंसुओंकी झडी लगगई और वह किसी प्रकार उस समयप्रीतम रामचन्द्रजीको नहीं देखसकीं ॥ १८ ॥ तब रामचन्द्रजी उन रोतीहुई जानकीको समझा बुझाकर शोकसे दुःखितहो लक्ष्मणजीसे करु

णाके भरे वचन बोले ॥१९॥ हे लक्ष्मण! तुम इस समय इंगुदीके बीजोंको पीसकर यहां लेआओ और एक टुकडा नये कपडेकाभी लेआओ हम महात्मा पिताजी कीजलक्रिया करनेके निमित्त चलेंगे ॥२०॥ सीता आगे २ चलें तुम इनके पीछे२चलो और हम सबके पीछे२चलेंगे क्योंकि, इस दारुण मृतक जलक्रिया वाले समयमें चलनेकी यही परिपाटी है ॥२१॥ उस समय इक्ष्वाकुगणोंके प्राचीन प्रधान ज्ञानवान् महामति कोमल और चतुर राममें दृढभक्ति करनेवाले ॥२२॥ सुमंत्रजीने भरत, लक्ष्मण व शत्रुघ्न तीनों राजपुत्रोंको बहुत समझायबुझाय रामचन्द्रजीका हाथपकड कल्याणरूप जलयुक्त मन्दाकिनी नदीके घाटपर धीरे२ उतारा ॥ २३ ॥ जो घाट मन्दाकिनी नदीके तीरपर उतरनेका था वह अति सुन्दर था विशेषतः उसके चारों ओर फूले हुए वन थे, इस कारण मन्दाकिनी

आनयेंगुदिपिण्याकंचीरमाहरचोत्तरम् ॥ जलक्रियार्थंतातस्यगमिष्यामिमहात्मनः ॥ २० ॥ सीतापुरस्ताद्व्रजतुत्वमेतामभितोव्रज ॥ अहं पश्चाद्गमिष्यामिगतिर्ह्येषासुदारुणा ॥ २१ ॥ ततोनित्यानुगस्तेषांविदितात्मामहामतिः मृदुर्दांतश्चकांतश्चरामेचदृढभक्तिमान् ॥ २२ ॥ सुमंत्रस्तैर्नृपसुतैःसार्धमाश्वास्यराघवम् ॥ अवतारयदालंब्यनदींमंदाकिनींशिवाम् ॥ २३ ॥ तेसुतीर्थांततःकृच्छ्रादुपगम्ययशस्विनः ॥ नदींमंदाकिनींरम्यासदापुष्पितकाननाम् ॥२४॥ शीघ्रस्रोतसमासाद्यतीर्थंशिवमकर्दमम् ॥ सिषिचुस्तूदकंराज्ञेतत एतद्भवत्विति॥२५॥ प्रगृह्यतुमहीपालोजलपूरितमंजलिम् ॥ दिशंयाम्यामभिमुखोरुदन्वचनमब्रवीत् ॥ २६ ॥ एतत्तेराजशार्दूलविमलंतोयमक्षयम् ॥ पितृलोकगतस्याद्यमद्दत्तमुपतिष्ठतु ॥ २७ ॥ ततोमंदाकिनीतीरात्प्रत्युत्तीर्यसराघवः ॥ पितुश्चकारतेजस्वीनिवापंभ्रातृभिःसह ॥ २८ ॥ ऐंगुदंबदरैर्मिश्रंपिण्याकंदर्भसंस्तरे ॥ न्यस्यरामःसुदुःखार्तोरुदन्वचनमब्रवीत् ॥ २९ ॥

मनोहर मूर्त्ति धारण किये हुए थी। सीताजीके साथ परमयशवान सब राजकुमारही शोकके मारे विकलहो अतिकष्टसे गिरते पडते वहां पहुँचे ॥२४॥ उसके पीछे वह कीचड रहित चौडे लंबे समतल घाटपर उतर करके "एतद्भवतु" कहकर पिता दशरथजीके लिये जल देनेमें प्रवृत्त हुए ॥ २५ ॥ मही पाल रामचन्द्रजी उस समय जलसे भरी अंजली लेकर दक्षिणको मुख करके खडेहो रोते २ कहने लगे ॥ २६ ॥ हे राजशार्दूल ! आप पितृलोक को चले गयेहैं अतएव इस समय आपके लिये मेरे हाथका दिया हुआ निर्मल जल अक्षय होकर पितृलोकमें तुम्हें प्राप्त होवे ॥ २७ ॥ अनन्तर तेजवान रामचन्द्रजीने भ्राताओंके सहित मन्दाकिनीके किनारेसे थोडीही दूरपर जाकर पिता दशरथजीके लिये पिंडदान किया ॥ २८ ॥ रामचन्द्रजी कुशोंके सहित बेर मिलाकर

तिलके खोल सहित इंगुदीके पिंड अर्पण करके अत्यन्तही दुःखितहो रोदन करते२बोले॥२९॥ हे महाराज! जो आजकल हम खाते हैं वही इस समय आप भोजन कीजिये। आदमी जो कुछ कि आप खाताहै उसके पितृदेवतासभी वही आहार करते हैं ऐसा शास्त्रमें लिखा है ॥३०॥ फिर नरश्रेष्ठ रामचन्द्रजी जिसमार्गसे नदीके किनारेपर उतरकर आये थे उसी मार्गसे मन्दाकिनीके बाहर जाय रमणीय कंगूरा सहित चित्रकूट पर्वतपर आरोहण करते हुए ॥ ३१ ॥ उसके पीछे श्रीराम चन्द्रजी अपनी पर्णकुटीके द्वारपर आये और एकहाथसे लक्ष्मण व एक हाथसे भरतका हाथ पकड लिया ॥ ३२ ॥ गर्जते हुय शेरके समान पर्वतपर सीता जीके साथ रोते हुए सब भाइओंके रोनेके शब्दसे दशोंदिशा भरगईं ॥३३॥ इस प्रकार महाबलवान् भाई लोग जब पिता दशरथजीको जल दे दिलाकर रोतेरहे

इदंभुंक्ष्वमहाराजप्रीतोयदशनावयम् ॥ यदन्नःपुरुषोभवतितदन्नास्तस्यदेवताः ॥३०॥ ततस्तेनैवमार्गेणप्रत्युत्तीर्यसरित्तटात् ॥आरुरोहनरव्याघ्रोरम्यसानुंमहीधरम् ॥ ३१ ॥ ततःपर्णकुटीद्वारमासाद्यजगतीपतिः ॥ परिजग्राहपाणिभ्यामुभौभरतलक्ष्मणौ ॥ ३२ ॥ तेषांतुरुदतांशब्दात्प्रतिशब्दोऽभवद्गिरौ ॥ भ्रातॄणांसहवैदेह्यासिंहानांनर्दतामिव ॥३३॥ महाबलानांरुदतांकुर्वतामुदकंपितुः ॥ विज्ञायतुमुलंशब्दंत्रस्ताभरतसैनिकाः ॥ ३४ ॥अब्रुवंश्चापिरामेणभरतःसंगतोध्रुवम् ॥ तेषामेवमहाञ्छब्दःशोचतांपितरंमृतम् ॥ ३५ ॥ अथवाहान्परित्यज्यतंसर्वेऽभिमुखाःस्वनम् ॥ अप्येकमसोजग्मुर्यथास्थानंप्रधाविताः ॥३६॥ हयैरन्येगजैरन्येरथैरन्येस्वलंकृतैः ॥सुकुमारास्तथैवान्येपद्भिरेवनरायययुः ॥ ३७ ॥ अचिरप्रोषितंरामंचिरविप्रोषितंयथा ॥ द्रष्टुकामोजनःसर्वोजगामसहसाऽऽश्रमम् ॥ ३८ ॥

तब भरतजीकी सेनाके लोगोंका कठोर शब्द सुना तब वह सब डर गये और आपसमें कहने लगे ॥३४॥ कि निश्चय ही भरत श्रीरामचन्द्रजीसे मिल गये हैं और अब स्वर्गवासी पिताजीके मरनेसे शोक करके रोरहे हैं, बस यह उनकेही रोनेका ऐसा कठोर शब्द हो रहाहै ॥३५॥ उसके पीछे सेनाके लोग अपनी२ सवारियोंको छोडछांड़कर जहांसे शब्द होता था उसी ओरको ताककर एक मनसे शीघ्रतासे उस तरफको सबके सब पैदलही धाये परंतु सुकुमार जिनसे पैदल चला नहीं जाता था वह लोग कोई हाथी कोई घोडे कोई शोभायमान रथपरही चढकर दौडे ॥३६॥३७॥ रामचन्द्रजी यद्यपि थोडेही दिनहुये थे कि अयोध्यासे चले आयेथे परन्तु सबही लोग यह विचारक कि मानो रामचन्द्रजी बहुतही दिनोंसे परदेशमें वास करते हैं उनको देखनेके लिये एकाएकी झटपट

आश्रममें पहुँचे ॥३८॥ चारो भाइयोंका समागम देखनेके लिये घोडे आदिकोंके खुर व रथादिके पहियोंकी पुष्टियोंसे पृथ्वी खोदते हुये अनेक प्रकारकी सवारियोंपर चढ २ सब लोग गये ॥ ३९ ॥ पृथ्वीपर भली भांति उन रथके पहियोंके चलनेका व और सवारियोंका ऐसा शब्द हुआ मानोंबादरोंके आजानेसे आकाशमें कडी कडक होरहीहै ॥४०॥ परिवारवाले बडे २ हाथी जितने कि, उसवनमें थे उस शब्दको सुन और घबडाकर अपने २ बच्चे व हथिनियोंके साथ मदकी गंधसे आकाशको सुगंधित करते भागकर दूसरे वनमें चलेगये ॥४१॥ सुअर हरिण, सिंह, भैंसा, नीलगाय, व्याघ्र, गोकर्ण (मृगविशेष) चमरगाय और चीते आदि सब मृग बहुतही डरगये ॥४२॥ चकई चकवा, हंस, जलमुरगियां, कोकिला व क्रौंचादि पक्षी चेतनारहित हो गिरते पडते दशों दिशाओंको भाग

भ्रातॄणांत्वरितास्तेतुद्रष्टुकामाःसमागमम् ॥ ययुर्बहुविधैर्यानैःखुरनेमिसमाकुलैः ॥३९॥ साभूमिर्बहुभिर्यानैरथनेमिसमाहता ॥ मुमोचतुमुलंशब्दंद्यौरिवाभ्रसमागमे ॥ ४० ॥ तेनवित्रासितानागाः करेणुपरिवारिताः ॥ आवासयंतोगंधेनजग्मुरन्यद्वनंततः ॥ ४१ ॥ वराहामृगसिंहाश्चमहिषाः सृमरास्तथा ॥ व्याघ्रगोकर्णगवयावित्रेसुःपृषतैःसह॥४२॥ रथाह्वहंसानत्यूहाःप्लवाःकारंडवाःपरे ॥ तथापुंस्कोकिलाःक्रौंचाविसंज्ञाभेजिरेदिशः ॥४३॥ तेनशब्देनवित्रस्तैराकाशंपक्षिभिर्वृतम् ॥ मनुष्यैरावृताभूमिरुभयंप्रबभौतदा ॥ ४४ ॥ ततस्तंपुरुषव्याघ्रंयशस्विनमकल्मषम् ॥ आसीनंस्थंडिलेराममंददर्शसहसाजनः ॥४५॥ विगर्हमाणः कैकेयींमंथरासहितामपि॥ अभिगम्यजनोरामंबाष्पपूर्णमुखोऽभवत् ॥४६॥तान्नरान्बाष्पपूर्णाक्षान्समीक्ष्याथसुदुःखितान् ॥ पर्यष्वजतधर्मज्ञः पितृवन्मातृवच्चसः ॥ ४७ ॥ सतत्रकांश्चित्परिषस्वजेनरान्नराश्च केचित्तुतमभ्यवादयन्॥'चकारसर्वान्सवयस्थबांधवान्यथार्हमासाद्यतदानृपात्मजः ॥४८॥

खडे हुए ॥४३॥ उस कालमें उस शब्द करके डरे हुए पक्षियोंसे आकाशमण्डल और मनुष्यों करके पृथ्वीकी अतिशय शोभा उत्पन्न हुई ॥४४॥ अनन्तर सब लोगोंने वहां शीघ्र जाकर देखा कि, यशवान् और निष्पाप पुरुषसिंह रामचन्द्रजी एक चौतरे पर बैठे हैं ॥ ४५ ॥ यह देखकर वह सब लोग कैकेयी और अहितकी करनेवाली मंथराकी निन्दा करते २ रामचन्द्रजीके सामने जाकर रोने लगे ॥ ४६ ॥ धर्मज्ञ श्रीरामचन्द्रजी उन सबको बहुतही दुःखित और रोते हुए देखकर किसीको माताके समान किसीको पिताके समान बोले ॥ ४७ ॥ मिलनेके योग्य मनुष्योंसे जब रामचन्द्रजी मिले तब और लोगोंनेभी रामचन्द्रजीको प्रणाम किया उसकाल नृपकुमार श्रीरामचन्द्रजी अपनी बराबरकी उमरवाले और बंधु बांधवोंसे यथायोग्य व्यवहार करते हुए ॥ ४८ ॥

उसके पीछे आयेहुऐ सब लोगोंने जब रोना आरंभ किया, तब मृदंगके शब्दके समान महाघोर शब्द उठकर आकाश पृथ्वी पर्वतोंकी गुहाओंमें टकराकर सुनाई आने लगे ॥४९॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयो० भाषायां त्र्युत्तरशततमः सर्गः ॥१०३॥ इस ओर वसिष्ठजी रामचंद्रके दर्शनकी अभिलाषा करके दशरथजीकी रानियोंकोआगेकर जहां श्रीरामचंद्र थेवहांपर चले॥१॥ मन्दाकिनी नदीकीओरको मंद२गमन करते२कौसल्यादिक सब रानियोंने राम लक्ष्मणके स्नान करने का नदीका घाट देखा ॥२॥ उसको देखकर देवी कौसल्याजी मुख सुखाय रोकर बहुतही व्याकुल हो सुमित्रा व और दूसरी रानियोंसे कहने लगीं ॥३॥ जो कि राज्यसे वनको भेजे गये हैं और जिसकेसब कर्म अमानुषीय हैं उन हमारे बारेप्राणोंसे प्यारे अनाथ राम लक्ष्मण और सीताके नहानेका यह घाट है, वह यहां अति

ततः सतेषांरुदतांमहात्मनांभुवंचखंचानुविनादयन्स्वनः ॥ गुहागिरीणांचदिशश्चसंततंमृदंगघोषप्रतिमोविशुश्रुवे ॥४९॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० च० सा० अयो० त्र्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १०३ ॥ वसिष्ठः पुरतः कृत्वादारान्दशरथस्यच ॥ अभिचक्रामतंदेशंरामदर्शनतर्षितः॥१॥ राजपत्न्यश्चगच्छंत्योमंदंमंदाकिनींप्रति ॥ ददृशुस्तत्रतत्तीर्थंरामलक्ष्मणसेवितम् ॥२॥ कौसल्याबाष्पपूर्णेनमुखेनपरिशुष्यता ॥ सुमित्राम ब्रवीद्दीनांयाश्चान्याराजयोषितः ॥ ३ ॥ इदंतेषामनाथानांक्लिष्टमक्लिष्टकर्मणाम् ॥ वनेप्राक्कलनंतीर्थंयेतेनिर्विषयीकृताः ॥ ४ ॥ इतः सुमित्रे पुत्रस्तेसदाजलमतंद्रितः ॥ स्वयंहरतिसौमित्रिर्ममपुत्रस्यकारणात् ॥ ५ ॥ जघन्यमपितेपुत्रःकृतवान्नतुगर्हितः ॥ भ्रातुर्यदर्थरहितंसर्वंतद्गर्हितं गुणैः ॥ ६ ॥ अद्यायमपितेपुत्रःक्लेशानामतथोचितः ॥ नीचानर्थसमाचारंसज्जंकर्मप्रमुंचतु ॥७॥ दक्षिणाग्रेषुदर्भेषुसाददर्शमहीतले ॥ पितुरिंगुदिपिण्याकंन्यस्तमायतलोचना ॥ ८ ॥ तंभूमौपितुरार्त्तेनन्यस्तंरामेणवीक्ष्यसा ॥ उवाचदेवीकौसल्यासर्वादशरथस्त्रियः ॥ ९ ॥

कष्टसे स्नानादि करते होंगे ॥४॥ हे सुमित्राजी ! तुम्हारे पुत्र लक्ष्मण आलस्यको छोडकर हमारे पुत्रके लिये अपने हाथसे भरकर इस जगहसे जल ले जाते हैं ॥५॥ किन्तु इस प्रकारज लादि भर लानेके कार्य नीच हैं पर इससे तुम्हारे पुत्रकी कुछ निन्दा नहीं होगी कारण कि यदि बडे भाई रामचन्द्रजी के लिये यह काम नहोता तो निश्चय निन्दा की बातथी ॥६॥ जोहो अब रामके अयोध्याजी में लौटालानेपर सदा सुखपाने लायक, दुःखके अयोग्य लक्ष्मणजीको यह सब नीच मनुष्योंके करने लायक कष्टकारी कार्य नहीं करने पडेंगे॥७॥ इस प्रकार कहते२बडे नेत्रवाली देवी कौसल्याजीने देखा कि, रामचन्द्रजीने पिताके लिये जो इंगुदीके बीजोंको पीसकर जो पिंड दिया है वह वहां भूमिपर उन कुशोंपर रक्खा था जिनकी फुनगी दक्षिण और जड उत्तरको थी ॥८॥ इस प्रकार जब कौसल्याजी ने

देखा कि रामने शोकसे ग्रस्त होकर पिताके लिये भूमिमें यह पिंड रक्खाहै तब सब और रानियोंको पुकारकर बोलीं ॥९॥ हे सब स्त्रियो ! जो इक्ष्वाकुओंके नाथ हैं उन राजा दशरथजीके लिये श्रीरामचन्द्रजीने यथा विधानसे यह पिंड दियेहैं ॥१०॥ देखो, साक्षात् देवताओंके समान अनेक प्रकारके भोजन करनेवाले महात्मा दशरथजीके लिये इंगुदीके पिंड किसी प्रकारसे उचित नहीं ज्ञात होते ॥११॥ क्योंकि, चारों समुद्र तक सब वसुधा को इन्द्रके समान भोगकर अब वह राजा किस प्रकार इंगुदीके पिंड भोजन करेंगे ॥१२॥ हाय! इस लोकमें इससे अधिक हमारे लिये और दुःख क्या होगा कि, बुद्धिमान् रामचन्द्रजीने पिताजीके लिये इंगुदीके फलके पीठका पिंड दिया ॥१३॥ रामचन्द्रजीके दिये हुए यह इंगुदीके पिंड देखकर क्यों नहीं हमारा हृदय दुःखसे हजार टुकडे होजाता ॥१४॥ लोकमें जो जिस प्रकार का भोजन करताहैं उसके पितृलोगभी निश्चय वही आहारकरतेहैं यह जो संसारमें कहावत चलीआतीहै सो आज सत्य ज्ञात होतीहै ॥१५॥

इदमिक्ष्वाकुनाथस्यराघवस्यमहात्मनः ॥ राघवेणपितुर्दत्तंपश्यतैतद्यथाविधि ॥१० ॥ तस्यदेवसमानस्यपार्थिवस्यमहात्मनः ॥ नैतदौपयिकं मन्येभुक्तभोगस्यभोजनम् ॥ ११ ॥ चतुरंतांमहींभुक्त्वामहेंद्रसदृशोभुवि ॥ कथमिंगुदिपिण्याकंसाभुंक्ते वसुधाधिपः ॥१२॥ अतोदुःखतरं लोकेनकिंचित्प्रतिभातिमे ॥ यत्ररामः पितुर्दद्यादिंगुदीक्षोदमृद्धिमान् ॥१३॥ रामेणेंगुदिपिण्याकंपितुर्दत्तंसमीक्ष्यमे ॥ कथंदुःखेनहृदयंनस्फोटतिसहस्रधा ॥१४॥ श्रुतिस्तुखल्वियंसत्यालौकिकीप्रतिभातिमे ॥ यदन्नःपुरुषोभवतितदन्नास्तस्यदेवताः ॥ १५ ॥ एवमार्तासपत्न्यस्ताजग्मुराश्वास्यतांतदा ॥ ददृशुश्चाश्रमेरामंस्वर्गच्युतमिवामरम् ॥ १६ ॥ तंभोगैःसंपरित्यक्तंरामंसंप्रेक्ष्यमातरः ॥ आर्तामुमुचुरश्रूणिसस्वरंशोककर्शिताः ॥१७॥ तासांरामःसमुत्थायजग्राहचरणांबुजान् ॥मातृणांमनुजव्याघ्रःसर्वासांसत्यसंगरः ॥१८॥ताः पाणिभिःसुखस्पर्शैर्मृद्वंगुलितलैः शुभैः ॥प्रममार्जूरजः पृष्ठाद्रामस्यायतलोचनाः ॥१९॥ सौमित्रिरपिताःसर्वामातृःसंप्रेक्ष्यदुःखितः ॥ अभ्यवादयदासक्तंशनैरामादनंतरम् ॥२०॥

कौसल्याजी जब इसप्रकार व्याकुल होगईं तब राजा दशरथजी की और दूसरीरानियें उनको समझानेबुझाने लगीं और रामचन्द्रजीके आश्रममें पहुँचकरउनसबने देखा कि रामचन्द्रजी स्वर्गसे गिरे हुए देवताके समान वहां बैठेहैं ॥१६॥ वह सब प्रकारके सुख भोगके पदार्थ छोड बैठे हुएहैं ऐसा रामचन्द्रजी को सब मातायें देख मारे शोकके पीडित और बहुतही व्याकुलहो रोने लगीं ॥१७॥ सत्य प्रतिज्ञा करनेवाले पुरुषोंमें सिंह रामचन्द्रजीने उनको देखते ही उठकर सब माताओंके चरण कमल ग्रहण किये ॥१८॥ बडे२नेत्रवाली सब रानियें कोमल परमसुन्दरसुख देनेवाले हाथोंसे रामचन्द्रजीके पीठकी धूल भली प्रकारसे झाडने व पोछने लगीं ॥१९॥ तब लक्ष्मणजीभी सब माताओंकी यह व्यवस्था देख अतिदुःखित हुए और रामचन्द्रजीके पीछे धीरे२उनमें मन लगाकर उन सबमाताओंकोप्रणाम

करते हुए ॥२०॥ सब रानियोंने जैसा रामचन्द्रजी केसाथ व्यवहार किया वैसा ही व्यवहार शुभलक्षणवाले दशरथजीके पुत्र लक्ष्मणजीके साथ किया, क्योंकि यह भी तो महाराज दशरथजीके ही पुत्रथे फिर स्नेह कम क्यों हो?॥२१॥सीताजी भी मनमें बहुत ही दुःखितहो रोने लगीं और सब सासुओंके परोंमें पड आगे खडी हो गईं ॥२२॥ दुःखिनी कौसल्याजी जिसप्रकार माताबेटीको लिपटालेऐसेही वनवाससे जिनका शरीर दुर्बल होगयाहै जो अतिदीनहैं, ऐसी जनकदुलारी सीताजीको छातीसे लगाकर कहने लगीं ॥२३॥ जो कि राजा जनकजीकी लाडलडैती प्यारी बेटी महाराजाधिराज चक्रवर्ती दशरथजीकी पुत्रवधू व रामचन्द्रजी की स्त्री हो फिर तुमने किस प्रकारइस जन रहित वनमें दुःख पाये ॥२४॥ अहो जानकी! धूपके तापसे मुर्झाये हुए कमलके समान व मलेमींजे हुए लालकम लकी नाईं धूरिलगे हुये सुवर्णकी नाईं और बादरोंसे ढके हुये चंद्रमाकीनाईं ॥२५॥ तुम्हारा मुख मलीन देखकर आग जिसप्रकार काठको जलादेतीहै वैसेहीयहशो

यथारामेतथातस्मिन्सर्वाववृतिरेस्त्रियः ॥ वृत्तिंदशरथाज्जातेलक्ष्मणेशुभलक्षणे ॥२१॥ सीतापिचरणांस्तासामुपसंगृह्यदुःखिता ॥ श्वश्रूणामश्रुपूर्णाक्षीसंबभूवाग्रतःस्थिता ॥२२॥तांपरिष्वज्यदुःखार्तामातादुहितरंयथा ॥ वनवासकृतांदीनांकौसल्यावाक्यमब्रवीत् ॥२३॥ विदेहराजन्यसुतास्नुषादशरथस्यच ॥ रामपत्नीकथंदुःखंसंप्राप्ताविजनेवने ॥२४॥ पद्ममातपसंतप्तंपरिक्लिष्टमिवोत्पलम् ॥ कांचनंरजसाध्वस्तंक्लिष्टंचंद्रमिवांबुदैः ॥ २५ ॥ मुखंतेप्रेक्ष्यमांशोकोदहत्यग्निरिवाश्रयम् ॥ भृशंमनसिवैदेहिव्यसनारणिसंभवः ॥ २६ ॥ ब्रुवंत्यामेवमार्तायांजनन्यांभरताग्रजः ॥ पादावासाद्यजग्राहवसिष्ठस्यचराघवः ॥ २७ ॥ पुरोहितस्याग्निसमस्यतस्यवैबृहस्पतेरिंद्रइवामराधिपः ॥ प्रगृह्यपादौसुसमृद्धतेजसः सहैवतेनोपविवेशराघवः ॥ २८ ॥ ततोजघन्यंसहितैःस्वमंत्रिभिःपुरप्रधानैश्चतथैवसैनिकैः ॥ जनेनधर्मज्ञतमेनधर्मवानुपोपविष्टोभरतस्तदाग्रजम् ॥२९॥ उपोपविष्टस्तुतदातिवीर्यवांस्तपस्विवेषेणसमीक्ष्यराघवम् ॥ श्रियाज्वलंतंभरतःकृतांजलिर्यथामहेंद्रःप्रयतःप्रजापतिम् ॥ ३० ॥

ककी आग हमारे मनको जरायेडालतीहै ॥२६॥ माता कौसल्याजी दुःखसे पीडित हो इसप्रकार कहरहीथीं भरतजीके बडे भ्राता रामचन्द्रजीने वसिष्ठजीके निकट आकर उनके चरणारविन्द छुए ॥२७॥ इन्द्र जिसप्रकार सुरगुरु बृहस्पतिजीके चरण छूतेहैं रामचन्द्रजीभी वैसेही अग्निके समान तेजवान् पुरोहित वसिष्ठजीके चरणोंकी वंदना करके उनके साथही आसनपर बैठे ॥ २८ ॥ तब धर्मात्मा भरतजीअपने मंत्रियोंके साथ प्रधान २ पुरवासियोंके साथ वीरगण व और दूसरे धर्मवान् लोगोंके साथ पीछेकी ओर रामचन्द्रजीके समीपहो बैठे ॥ २९ ॥ इस प्रकारसे महावीर भरतजी देवराज इन्द्र जिसप्रकार ब्रह्माजीके निकट बैठते हैं वैसेही लक्ष्मीसे प्रकाशमान रामचन्द्रजीके समीप बैठकर पवित्र मनसे मुनिका भेष किये हुए रामचन्द्रजीकी ओर हाथ जोडे देखते रहे ॥ ३० ॥

उन भरतजीको इस प्रकार बैठे हुए देखकर वह अब रामचन्द्रजीसे प्रणाम और आदर मानकरके कौनसी युक्ति सहित बात कहेंगे, सो श्रवण करनेके लिये जितने वसिष्ठआदि श्रेष्ठजनथे सबको यही सुननेका कौतूहल था ॥३१॥ उस कालमें सत्यवचन बोलनेवाले श्रीरामचन्द्रजी महानुभाव लक्ष्मणजी और धार्मिक भरतजी यह सब सुहृदगणोंके साथ शोभित होकर सभासदोंके साथ बैठे हुए तीन यज्ञकी अग्नियोंके समान शोभा धारण करते हुए ॥ ३२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्वा० वा० आदि अयो० भाषायांचतुरुत्तरशततमः सर्गः ॥१०४॥ अनन्तर वह पुरुषसिंह बंधु बांधवोंसे घिरे हुए शोक करते २ व रामचन्द्रजीके लोटानेका उपाय सोचते हुए वह रात्रि बितादेते हुए ॥१॥ जब प्रभात होगया तब बंधु भ्राता व बांधवोंके साथ मन्दाकिनी नदीपर जप होम समाप्त करके रामचन्द्रजीके समीप उपस्थित हुए ॥२॥ और सबही चुपचाप हो रामचन्द्रजीके निकट बैठे रहे किसीने कोई बात नहीं की। उसके पीछे भरतजी सुहृदोंके बीचमें बैठे हुए रामच

किमेषवाक्यंभरतोऽद्यराघवं प्रणम्यसत्कृत्यचसाधुवक्ष्यति ॥ इतीवतस्यार्यजनस्यतत्त्वतोबभूवकौतूहलमुत्तमं तदा ॥३१॥ सराघवःसत्यधृतिश्चलक्ष्मणोमहानुभावोभरतश्चधार्मिकः ॥वृताःसुहृद्भिश्चविरेजिरेऽध्वरेयथासदस्यैःसहितास्त्रयोग्नयः ॥३२॥ इत्यार्षे श्रीम०वा०आ०च०सा० अ० चतुरुत्तरशततमः सर्गः ॥१०४॥ ततःपुरुषसिंहानांवृतानांतैःसुहृद्गणैः ॥ शोचतामेवरजनीदुःखेनव्यत्यवर्तत ॥१॥ रजन्यांसुप्रभातायांभ्रातरस्तेसुहृद्वृताः ॥ मंदाकिन्यांहुतंजप्यंकृत्वाराममुपागमन् ॥ २ ॥ तूष्णींतेसमुपासीनानकश्चित्किंचिदब्रवीत् ॥ भरतस्तुसुहृन्मध्येराममंवचनमब्रवीत् ॥३॥ सांत्विताममामिकामातादत्तंराज्यमिदंमम तद्ददामितवैवाहंभुंक्ष्यराज्यमकंटकम् ॥ ४ ॥ महतेवांबुवेगेनभिन्नःसेतुर्जलागमे ॥ दुरावरंत्वदन्येनराज्यखंडमिदंमहत् ॥५॥ गतिंखरइवाश्वस्यताक्ष्यर्स्येवपतत्रिणः ॥ अनुगंतुंनशक्तिर्मेगतिंतवमहीपते ॥ ६ ॥ सुजीवन्नित्यशस्तस्ययःपरैरुपजीव्यते ॥ रामतेनतुदुर्जी वंयःपरानुपजीवति ॥ ७ ॥

न्द्रजीसे कहने लगे ॥३॥ राजा दशरथजीने पहले हमारी माता कैकेयीको राज्य देकर संतोष कराया, फिर माताने यह राज्य हमें दे डाला सो अब हम यह राज्य आपको देते हैं अतएव इसको आप निष्कंटक होकर भोगो ॥४॥ आपके सिवाय इस बडी राज्यकी रक्षा करनेको कोई भी समर्थ नहीं है वर्षाके समय जलके वेगसे जब पुल टूट जाता है तब जलका वेग किसीका रोका नहीं रुक सकता है ॥५॥ हे महीपाल ! गधा जिस प्रकार घोडेकी व और पक्षी गरुडकी चालको नहीं पाय सकते वैसेही आपके राज्यके पालन करनेंकी सामर्थ्यको हम नहीं पहुंच सकते ॥६॥ जो मनुष्य सदाही औरोंकी सेवा करके जीता है उसका जीना जैसा दुःखके साथ है और बहुत सारे नौकर चाकर जिसको आश्रय करके जीविका निर्वाहकरते हैं उसका जीवन वैसाही सुखके साथ बीतता है अतएव

यह राज्यका पालन करना आपहीको शोभा देता है ॥७॥ जैसे किसीने कोई पेड लगाया जब बढा तब उसकी बडी२ डालियां हुई तब आदमी उसपर नहीं चढ सकता, ऐसाही मैं राज्य नहीं कर सकता ॥८॥ और जब उस पेडपर फूलभी आये और फल न लगे तो जिसके लिये लगाया गया था उसकी प्रीतिको वह अनुभव नहीं कर सकता ॥९॥ बस इस कहनेको आप अपने राज्यपानेके लिये समझजाइये, क्योंकि आपही सबसे श्रेष्ठ हैं और राज्यके पालनेकी सामर्थ्य रखते हैं । हम आपके भृत्य हैं जब हमारा आप पालन पोषण नहीं करते तब किस कामकी आपकी बुद्धि हुई ॥१०॥ अतएव हे महाराज ! अनेक जातियोंके बडे२ प्रजाके लोग शत्रुओंके नाशकरनेवाले आपको प्रतापवान् सूर्यके समान तपते हुए राजगद्दीपर बैठे हुए देखें ॥११॥ हे काकुत्स्थ! मतवाले हाथी गर्वसहित गर्जते हुए आपके साथ २ चले और वनवासमें सब स्त्रियें एकचित्त हो मंगलकी ध्वनि करें ॥१२॥ जब भरतजीने रामचन्द्रजीको प्रसन्न करनेके लिये ऐसा कहा तब

यथातुरोपितोवृक्षःपुरुषेणविवर्धितः ॥ ह्रस्वकेनदुरारोहोरूढस्कंधोमहाद्रुमः ॥ ८ ॥ सयदापुष्पितोभूत्वाफलानिनविदर्शयेत् ॥ सतांनानुभवेत्प्रीतिंयस्यहेतोःप्ररोपितः ॥ ९ ॥ एषोपमामहाबाहोतदर्थंवेत्तुमर्हसि ॥ यत्रत्वमस्मान्वृषभोभर्ताभृत्यान्नशाधिहि ॥१०॥ श्रेणयस्त्वां महाराजपश्यंत्वग्र्याश्चसर्वशः ॥ प्रतपंतमिवादित्यंराज्येस्थितमरिंदमम् ॥११॥ तथानुयानेकाकुत्स्थमत्तानर्दंतुकुंजराः ॥ अंतःपुरगतानार्यो नंदंतुसुसमाहिताः ॥ १२ ॥ तस्यसाध्वनुमन्यंतनागराविविधाजनाः ॥ भरतस्यवचःश्रुत्वारामंप्रत्यनुयाचतः ॥ १३ ॥ तमेवंदुःखितंप्रेक्ष्य विलपंतंयशस्विनम् ॥ रामःकृतात्माभरतंसमाश्वासयदात्मवान् ॥१४॥ नात्मनःकामकारोहिपुरुषोऽयमनीश्वरः ॥ इतश्चेतरतश्चैनंकृतांतः परिकर्षति ॥१५॥ सर्वेक्षयांतानिचयाःपतनांताःसमुच्छ्रयाः ॥ संयोगाविप्रयोगांतामरणांतंचजीवितम् ॥ १६ ॥ यथाफलानांपक्वानांनान्यत्र पतनाद्भयम् ॥ एवंनरस्यजातस्यनान्यत्रमरणाद्भयम् ॥ १७ ॥

पुरवासी बडे २ प्रतिष्ठित व छोटे दरजेके लोग सबहीने यह कहा कि, वाह२ भरतजी बहुत ठीक कहते हैं ॥१३॥ तब तेजवान् धीरजके धारण करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी भरतजीको दुःखितचित्तसे विलाप करते देखकर बहुत भांतिसे समझाते बुझाते हुए बोले ॥१४॥ कि हे भरत ! यह जीव स्वभावसे ही पराधीन है अपनी इच्छानुसार कार्यकरनेको इसको कोई शक्ति नहीं है सबका ग्रास करनेवाला काल इसको लोग परलोक दोनोंमें अपने वश करके चलाता है ॥१५॥ अतएव कैकेयी वा राजा कोईभी हमारे वनवासके कारण नहीं हैं यह सब बात कालकेही वश होनेसे हुई है, जहां संयोग है वहांही वियोग, जहां जीवनहै वहांही मरण, जहां संग्रह है वहांही क्षय, और जहाँ उन्नति (बढोतरी) है वहीं पतना घटी है ॥१६॥ जब कि, फल पकजाता है तब जैसा कि, गिरनेके सिवाय उसकी और

गति नहीं होती, वैसेही जन्मलेनेसे निश्चयही मरण होता है किसी प्रकार यह टल नहीं सकता पकेफल गिरनेके सिवाय, जन्म लेनेवालेको मरनेके सिवाय और भयनहीं ॥१७॥ बडे २ मजबूत खंब जिन घरमें लगेहों वह भी पुराना होनेपर गिरही जाता है ऐसेही मनुष्यमात्रही बुढापा आजानेसे मरही जाते हैं॥१८॥ जो गत बीत जाती है वह फिर किसी प्रकार लौटकर नहीं आती देखो यमुनाजीका पूर्ण जलसमुद्रमें मिल जाताहै परन्तु फिर लौटकर नहीं आता ॥१९॥ गरमीके मौसिममें सूर्यनारायणकी किरण जिस प्रकार जलको सुखा डालती है, वैसेही दिन व रात नियम सहित बीतते हुए चले जाकर हरेक प्राणीकी उमरको घटातेहैं ॥२०॥ इस विषयमें किसी प्रकारकाविलंब नहीं होता आदमी बैठाही रहे, या चलता फिरता रहे, उसकी उमर घटतीही जातीहै अतएव तुम अपनेही लिये शोक करो पराये कारण शोक क्यों करतेहो? ॥२१॥ मौत साथमें चलतीहै, साथमें बैठतीहै और साथही बहुत दूरभी चलकर लौट आतीहै, बस मौतके हाथसे छुटकारा

यथागारंदृढस्थूणंजीर्णंभूत्वोपसीदति ॥ तथावसीदंतिनराजरामृत्युवशंगताः ॥१८॥ अत्येतिरजनीयातुसानप्रतिनिवर्तते ॥यात्येवयमुनापूर्णं समुद्रमुदकार्णवम् ॥१९॥ अहोरात्राणिगच्छंतिसर्वेषांप्राणिनामिह ॥ आयूंषिक्षपयंत्याशुग्रीष्मेजलमिवांशवः ॥२०॥ आत्मानमनुशोचत्वं किमन्यमनुशोचसि ॥ आयुस्तुहीयतेयस्यस्थितस्याथगतस्यच ॥ २१ ॥ सहैवमृत्युर्व्रजतिसहमृत्युर्निषीदति ॥ गत्वासुदीर्घमध्वानंसहमृत्युर्निवर्तते॥२२॥ गात्रेषुवलयःप्राप्ताःश्वेताश्चैवशिरोरुहाः॥ जरयापुरुषोजीर्णःकिंहिकृत्वाप्रभावयेत् ॥२३॥ नदंत्युदितआदित्येनंदंत्यस्तमितेऽहनि ॥ आत्मनोनावबुध्यंतेमनुष्याजीवितेशयम् ॥२४॥ हृष्यंत्यृतुमुखंदृष्ट्वानवंनवमिवागतम् ॥ ऋतूनांपरिवर्तेनप्राणिनांप्राणसंक्षयः ॥२५॥ यथाकाष्ठंचकाष्ठंचसमेयातांमहार्णवे ॥ समेत्यतुव्यपेयातांकालमासाद्यकंचन ॥ २६ ॥

पानेकी किसीको सामर्थ्य नहीं है ॥२२॥ जब सब अंगोंकी खाल सुकुड गई बाल सफेद होगये बुढ़ापा आजनेसे देह अत्यन्त जर्जर होगई तब फिर पुरुष क्या कर सकता है ? ॥२३॥ सूर्यके उदय होनेसे मनुष्योंके आनंदकी सीमा नहीं रहती जब कि, सूर्य छिपेहैं तबभी आनंदित होते हैं परन्तु सूर्यभगवान् के प्रतिदिन उदय अस्त होनेसे अपनी उमर जो घटती चली जातीहै इस बातको जीव नहीं जानता ॥ ॥२४॥ जैसे २ वसन्तादि नये २ ऋतु मनुष्य देखते हैं तो उनको देख कर प्रसन्न होतेहैं परन्तु इन ऋतुओंके अदल बदलसे उमर घटती जाती है इसको वह कुछभी नहीं जानते ॥ २५ ॥ जैसे समुद्रमें दो काठ एकही संग डाल दियेजायँ तब कुछदेरतक तो वह दोनोंही साथ बहेंगे फिर कालान्तरमें कोई कहीं, कोई कहीं चला जायगा, फिर दोनोंका मिलना कठिन है॥२६॥

वैसेही स्त्री, पुत्र, जाति, भाई, बंधु, पशु, पक्षी, धन कुछ कालके लिये परस्पर मिल जाते हैं और फिर अलग २ होजाते हैं, इस प्रकार इन दृश्यमान पदार्थ समूहोंका अलग होना निश्चयही है ॥ २७ ॥ फलतः जब मृत्यु संसारका स्वभावही है कोई प्राणीभी इसको उल्लंघन नहीं कर सकता फिर परलोकमें गये हुए पिताजीके लिये शोक प्रकाश कर उनके प्रेतत्वके निवारण करनेकी किसको सामर्थ्य है ॥ २८ ॥ जैसे कुछ पथिकोंका झुंड मार्गमें चलाजाता हो और कोई राहमें बैठा हुआ मनुष्य उनसे कहे कि, तुम्हारे पीछे २ हमभी आते हैं ॥ २९ ॥ ऐसेही बापदादे परदादोंके लिये हुये मार्गपर एक एक दिन सबको अवश्यही गमन करना पडेगा इसभांति जब कि, मरनाही पडेगा तब फिर मरे हुएके लिये शोच करना उचित नहीं है ॥ ३० ॥ जैसे नदी आदिका जल प्रवाहकी ओर बहताही चला जाता है फिर लौटकर नहीं आता ऐसेही आयु भी केवल जाती है आती नहीं; सो यह सब देख भालकर आत्माको सुखसाधनके लिये धर्मकार्यमें लगाना उचित है. क्योंकि सुखभोग करनेके ही कारण मनुष्योंका जन्म

एवंभार्याश्चपुत्राश्चज्ञातयश्चवसूनिच॥समेत्यव्यवधावंतिध्रुवोह्येषांविनाभवः॥२७॥नात्रंकश्चिद्यथाभावप्राणींसमतिवर्तते॥ तेनतस्मिन्नसामर्थ्यंप्रेतस्यास्त्यनुशोचतः॥२८॥ यथाहिसार्थंगच्छंतंब्रूयात्कश्चित्पथिस्थितः॥ अहमप्यागमिष्यामिपृष्ठतोभवतामिति॥२९॥एवंपूर्वैर्गतोमार्गःपितृपैतामहैर्ध्रुवः॥ तमापन्नःकथंशोचेद्यस्यनास्तिव्यतिक्रमः॥ ३० ॥ वयसःपतमानस्यस्रोतसोवानिवर्तिनः॥आत्मासुखेनियोक्तव्यःसुखभाजःप्रजाःस्मृताः॥ ३१ ॥ धर्मात्मासुशुभैःकृत्स्नैःक्रतुभिश्चाप्तदक्षिणैः॥ सनशोच्यःपितातातस्वर्गतःसत्कृतःसताम्॥ ३२ ॥ सजीर्णंमानुषंदेहंपरित्यज्यपिताहिनः॥देवीमृद्धिमनुप्राप्तोब्रह्मलोकविहारिणीम्॥३३॥तंतुनैवंविधःकश्चित्प्राज्ञःशोचितुमर्हति॥ त्वद्विधोमद्विधश्चापिश्रुतवान्बुद्धिमत्तरः॥ ३४ ॥ एतेबहुविधाःशोकाविलापरुदितेतदा॥वर्जनीयाहिधीरेणसर्वावस्थासुधीमता॥३५॥सस्वस्थोभवमाशोकोयात्वाचावसातांपुरीम्॥तथापित्रानियुक्तोसिवशिनावदतांवर॥३६॥यत्राहमपितेनैवनियुक्तःपुण्यकर्मणा॥तत्रैवाहंकरिष्यामिपितुरार्यस्यशासनम्॥३७॥

हुआ है ॥ ३१ ॥ हे भ्रातः हमारे पिताजीभी परमधार्मिक और साधुलोगोंको पूजनीय थे, वह यथाविधि दक्षिणाके साथ अनेक पवित्र यज्ञ करके स्वर्गको सिधारे हैं वहांभी उनका सत्कार होगा फिर उनके लिये शोककरना ठीक नहीं ॥ ३२ ॥ पिताजी पुराने मनुष्योंके चोलेको छोड़कर ब्रह्मलोकमें विहार करनेवाली देवताओंके देहको प्राप्त हुए होंगे ॥ ३३ ॥ अतएव उन पिताजीके लिये शोक करना हमतुम सरीखे बुद्धिमान शास्त्रोंके जाननेवाले ज्ञानवान् पुरुषोंको उचित नहीं ॥ ३४ ॥ तुम धैर्यवान् बुद्धिमान् हो तुमको इस प्रकारका शोक करना विलाप करना रोनाधोना अवश्य त्याग करदेना चाहिये ॥ ३५ ॥ अब तुम सावधान हो शोक मत करो और अयोध्यापुरीमें जाकर वास करो। हे वाग्मिश्रेष्ठ ! सत्य वचन कहनेवाले पिताजी तुमको अयोध्यापुरीमें रहनेकी आज्ञा दे गये हैं ॥ ३६ ॥ वह पुण्य कर्मके करनेवाले परमपूजनीय पिताजी हमको जैसी आज्ञा देगये हैं हमभी वनमें टिके हुए उसका पालन करेंगे ॥ ३७ ॥

हे शत्रुओंको दमन करनेवाले ! उनकी आज्ञाको उल्लंघन करना हमारे लिये किसी प्रकारसे ठीक न होगा तुमकोभी सदा उनका मान करना चाहिये क्योंकि, हमारे तुम्हारे दोनोंके पिता व बन्धु वही ठहरे ॥ ३८ ॥ हे भरतजी ! हम वनवास करके धर्मचारियोंकरके सम्मत उन पिताजीके वचनोंका कर्मद्वारा पालन करेंगे ॥ ३९ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! जिनको परलोकके जीतनेकी अभिलाषा है उन धर्मवान् और सरल पुरुषोंको अपनेसे गुरु पिता आदिकोंके कहनेके अनुसार कार्य करना चाहिये ॥४०॥ हे नरोत्तम हमारे पिताजीके पवित्र चरित्र विचार करके अपने स्वभावके गुणोंसे परलोकमें अपना हित करनेकी चिन्तामें लगो ॥४१॥ महात्मा श्रीरामचन्द्रजी पिताजीकी आज्ञाके प्रतिपालन करनेकेलिये अपने लघुभ्राता भरतजीसे इस प्रकारके अर्थयुक्त वचन कहकर मुहूर्त्त भरतक चुपाय रहे ॥४२॥

इत्यार्षे श्रीमद्वा० वा० आदि० अयो० भाषायां पंचोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०५ ॥ प्रजावत्सल श्रीरामचन्द्रजी मन्दाकिनी नदीके तीरपर जब इस प्रकारके

नमयाशासनंतस्यत्यक्तुन्याय्यमरिंदम ॥ सत्वयापिसदामान्यःसवैबंधुःसनःपिता ॥ ३८ ॥ तद्वचःपितुरेवाहंसम्मतंधर्मचारिणाम् ॥ कर्मणापालयिष्यामिवनवासेनराघव ॥ ३९ ॥ धार्मिकेणानृशंसेननरेणगुरुवर्तिना ॥ भवितव्यंनरव्याघ्रपरलोकंजिगीषता ॥ ४० ॥ आत्मानमनुतिष्ठत्वं स्वभावेननरर्षभ ॥ निशाम्यतुशुभंवृत्तंपितुर्दशरथस्यनः ॥ ४१ ॥ इत्येवमुक्त्वावचनंमहात्मापितुर्निदेशप्रतिपालनार्थम् ॥ यवीयसंभ्रातरमर्थवच्चप्रभुर्मुहूर्ताद्विररामरामः ॥४२॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० च० सा० अ० पंचोत्तरशततमःसर्गः ॥ १०५ ॥ एवमुक्त्वातु विरतेरामेवचनमर्थवत् ॥ ततोमंदाकिनी तीरेरामंप्रकृतिवत्सलम् ॥ १ ॥ उवाचभरतश्चित्रंधार्मिकोधार्मिकंवचः ॥ कोहिस्यादीदृशोलोके यादृशस्त्वमरिंदम ॥ २ ॥ नत्वांप्रव्यथयेद्दुःखंप्रीतिर्वानप्रहर्षयेत् ॥ संमतश्चापिवृद्धानांतांश्चपृच्छसिसंशयान् ॥ ३ ॥ यथामृतस्तथाजीव न्यथासतितथासति ॥ यस्यैषबुद्धिलाभःस्यात्परितप्येतकेनसः ॥ ४ ॥

सार्थक वचन कहकर मौन होरहे ॥१॥ तब धर्मात्मा भरतजी सब एकत्र हुए लोगों के समाजको विस्मयउपजाते हुए धार्मिक वचन कहने लगे, हे शत्रुओंके नाशकरने वाले ! जैसे कि, आप हैं ऐसा पृथ्वी पर दूसरा और कौन है ॥ २ ॥ आप दुःखके पडनेसे कुछ दुःखित नहीं होते सुख होनेसे कुछ हर्षित नहीं होते, सब वृद्धलोग आप को बहुत मानते हैं तथापि धर्म विषयमें कोई सन्देह होनेपर आप उन लोगोंसे पूछाकरते हैं ॥ ३ ॥ मृतकसे जैसे स्त्री पुत्र और देह इत्यादिका सम्बन्ध नहीं रहता इसी प्रकार जीवित मनुष्यसे भी कुछ नहीं है अतएव मृतक और जीवित इन दोनोंमें भेद नहीं उसपर अविद्यमान पदार्थोंसे जिसको परितापादि उत्पन्न नहीं होते और विद्यमान वस्तुमें भी जिसका यही ज्ञान है फिर वह किस कारणसे परिताप करेगा ॥ ४ ॥

हे नरनाथ ! जो मनुष्य आपके समान इस लोक व परलोक के वृत्तान्त जाने हुये हैं ह ऐसी विषम अवस्थामें पड़कर भी शोक नहीं करते ॥ ५ ॥ हे रघुनाथ ! आप देवताओंके समान पराक्रमी, महात्मा, सत्यसंकल्प, सब कुछ जाननेवाले सर्वदर्शी और बुद्धिमान् हैं ॥ ६ ॥ और प्राणियोंकी उत्पत्ति प्रलयको विशेषरूपसे आप जानते हैं जब कि,आप इन समस्त गुणोंसे युक्त हैं तब आपको बहुत असह्य दुःख भी नहीं घबड़ा सकता परन्तु हमारे समान मनुष्य जो इन दुःखोंके पडनेसे अधमरे होजायँगे इसमें विचित्रताही क्या है ? ॥७॥जो हो जब कि हम परदेशमें अपने मामाके यहां थे तब ओछे स्वभाव वाली हमारी माता कैकेयीने जो पाप किया, हमारे लिये किया है, वह किसी प्रकारसे हमारी इच्छा के अनुकूल न था, न उसमें हमारी किसी प्रकारसे सलाहथी अतएव हमारे ऊपर प्रसन्न हूजिये ॥ ८ ॥ हम धर्मके बन्धनमें बँधरहे हैं इसी कारण इस समय इस पाप करनेवाली दण्डदेनेके योग्य माताको हमने कठोरदण्ड देकर

परावरज्ञोयश्चस्याद्यथात्वंमनुजाधिप ॥ सएवव्यसनंप्राप्यनविषीदितुमर्हति ॥५॥ अमरोपमसत्त्वस्त्वंमहात्मासत्यसंगरः ॥ सर्वज्ञःसर्वदर्शी चबुद्धिमांश्चासिराघव ॥ ६ ॥ नत्वमेवंगुणैर्युक्तप्रभवाभवकोविदम् ॥ आवषह्यतमंदुःखमासादयितुमर्हसि ॥ ७ ॥ प्रोषितेमयियत्पापंमा त्रामत्कारणात्कृतम् ॥ क्षुद्रयातदनिष्टंमेप्रसीदतुभवान्मम॥ ८ ॥ धर्मबंधेनबद्धोऽस्मितेनेमांनेहमातरम् ॥ हन्मितीव्रेणदंडेनदंडार्हांपापका रिणीम् ॥ ९ ॥ कथंदशरथाज्जातःशुभाभिजनकर्मणः ॥ जानन्धर्ममधर्मंचकुर्यांकमजुगुप्सितम् ॥ १० ॥ गुरुःक्रियवान्वृद्धश्चराजाप्रेतः पितेतिच ॥ तातंनपरिगर्हेऽहंदैवतंचेतिसंसदि ॥ ११ ॥ कोहिधर्मार्थयोर्हीनमीदृशंकर्मकिल्बिषम् ॥ स्त्रियःप्रियचिकीर्षुःसन्कुर्याद्धर्मज्ञधर्म वित् ॥ १२ ॥ अंतकालेहिभूतानिमुह्यंतीतिपुरा श्रुतिः ॥ राज्ञैवंकुर्वतालोकेप्रत्यक्षासाश्रुतिःकृता ॥ १३ ॥

नहीं मार डाला क्योंकि, धर्म शास्त्रमें स्त्री अवध्य लिखी है ॥९॥ श्रेष्ठवंशमें उत्पन्न हुए सदा शुभ कर्म करनेवाले राजा दशरथजीसे उत्पन्न होकर और धर्म अधर्मको जानकर भी हम किस प्रकारसे ऐसा निन्दित कार्य करनेमें प्रवृत्त हों॥१०॥ सब यज्ञकी क्रियाओंके करनेवाले गुरु वृद्धावस्थाको प्राप्त महीपाल पिताजी भी परलोकको चले गये हैं । इस कारण सभाके बीचउनकी भी निन्दा हम नहींकर सकते॥११॥किन्तु हे धर्मके जाननेवाले ! कौन धर्मात्मा पुरुष साधारण स्त्री का प्रिय करनेकी कामनासे ऐसा धर्मसे विरुद्ध परमनिन्दनीय कार्य करनेमें प्रवृत्त होगा ? ॥ १२ ॥ विनाशकाले विपरीत बुद्धिः' अर्थात् मरनेके समय सबकी बुद्धि नाशको प्राप्त हो जाती है यह जो कहावत लोकमें प्रसिद्ध है सो राजा दशरथजीने बुद्धिवपरीत कार्य करके उसकहावतको प्रत्यक्ष कर दिखाया ॥१३॥

जो हुआ सो हुआ पिताजीने कैकेयीके कोप करनेके भयसे, चित्तके विक्षेपसे, अविचारसे या उसमें कुछ अपनाही प्रयोजन समझ कर निन्दनीय कार्य कर डाला ॥१४॥ पिताका पतन निवारण करे इसी कारण पुत्रको अपत्य कहते हैं और जो कि, पुत्र पिताके सब दोषोंका निवारण न करे वह अपत्य नाम धारण करनेके लायक नहीं होता ॥१५॥ इस समय वास्तवमें आप अपत्य का कार्य कीजिये, महाराज दशरथजीने धर्मको उल्लंघन करके जो कर्म किया है पंडित लोग उसकी निन्दा करते हैं सो आप राज गद्दीपर बैठ उस निन्दाको छिपाले ॥१६॥ अतएव हमने जो कुछ कहा उसके अनुसार आप हमारा, कैकेयीका, पिताजीका सुहृद् और बन्धुबान्धव नगरवासी व देशवासी मनुष्योंका बरन् सब काही उद्धार कीजिये ॥१७॥ कहां क्षत्रिय धर्म और कहां जनशून्य वन! कहां प्रजापालन ! और कहां जटाधारण! अतएव पिताजीके आदेश किये हुए ऐसे विरुद्ध कार्यमें आपको प्रवृत्त होना उचित नहीं है ॥१८॥ हे महाप्राज्ञ ! जिससे कि प्रजापालन

साध्वर्थमभिसंधायक्रोधान्मोहाच्चसाहसात् ॥ तातस्ययदतिक्रांतंप्रत्याहरतुतद्भवान् ॥१४॥ पितुर्हिसमतिक्रांतंपुत्रोयःसाधुमन्यते ॥ तदपत्यंमतंलोकेविपरीतमतोन्यथा ॥१५। तदपत्यंभवानस्तुमाभवान्दुष्कृतंपितुः॥ अतियत्तत्कृतंकर्मलोकोधीरविगर्हितम् ॥१६॥ कैकेयींमांचतातंचसुहृदोबांधवांश्चनः ॥ पौरजानपदान्सर्वांस्त्रातुंसर्वमिदंभवान् ॥ १७ ॥ क्वचारण्यंक्वचक्षात्रंक्वजटाःक्वचपालनम् ॥ ईदृशंव्याहतंकर्मनभवान्कर्तुमर्हति ॥१८ ॥ एषहिप्रथमोधर्मःक्षत्रियस्याभिषेचनम् ॥ येनशक्यंमहाप्राज्ञप्रजानांपरिपालनम् ॥१९॥ कश्चप्रत्यक्षमुत्सृज्यसंशयस्थमलक्षणम् ॥ आयतिस्थंचरेद्धर्मंक्षत्रबन्धुरनिश्चितम् ॥२०॥ अथक्लेशजमेवत्वंधर्मंचरितुमिच्छसि ॥ धर्मेणचतुरोवर्णान्पालयन्क्लेशमाप्नुहि ॥२१॥ चतुर्णामाश्रमाणांहिगार्हस्थ्यंश्रेष्ठमुत्तमम् ॥ आहुर्धर्मज्ञधर्मज्ञास्तंकथंत्यक्तुमिच्छसि ॥२२॥ श्रुतेनबालःस्थानेनजन्मनाभवतोह्यहम् ॥ सकथंपालयिष्यामिभूमिंभवतितिष्ठति ॥ २३ ॥ हीनबुद्धिगुणोबालोहीनस्थानेनचाप्यहम् ॥ भवताचविनाभूतोनवर्तयितुमुत्सहे ॥ २४ ॥

करनेमें समर्थ हुआ जाय वह अभिषेचन ही क्षत्रियका मुख्य धर्म है ॥१९॥ इस प्रकारसे प्रत्यक्ष सुखका देनेवाला प्रजापालनेका व्रत छोडकर के कौन क्षत्रिय लक्षण रहित, अतिउचित भाववाले संशययुक्त बहुत कालमें सिद्धहोनेवाले वानप्रस्थमें पडनेके लिये तैयार होगा ॥२०॥ यदि शरीरको कष्ट देनेवाले धर्मकोही करनेकी आपकी बडी इच्छा है तो धर्मानुसार ब्राह्मणादि चारों वर्णोंके पालन करनेका कष्ट आप भोगिये ॥२१॥ हे धर्मज्ञ ! धर्मात्मा लोग चारों आश्रमके मध्यमें गृहस्थआश्रमको ही अच्छा कहते हैं फिर आप किस कारणसे गृहस्थ आश्रमके त्याग करनेको तैयार हुए हैं ? ॥ २२ ॥ क्या विद्यामें, क्या जन्ममें, क्या स्थानमें, सबही भांति हम आपसे छोटे हैं फिर आपके रहते हुए हम किस प्रकार से पृथ्वी का पालन कर सकते हैं ॥ २३ ॥ हम बुद्धिहीन गुणहीन,

स्थानहीन, अनुज और बालक हैं आपके बिना इकले किसी स्थानमें रहनेका भी हमको साहस नहीं है फिर राज्य पालन करने की बात तो एक ओर रही॥२४॥ अतएव हे धर्मज्ञ ! आप ही धर्मानुसार बंधुबांधवों के सहित स्वस्थचित्त से इस शत्रुरहित उत्तम निष्कंटक पिताजी के राज्य को पालन कीजिये ॥२५॥ हे मंत्र के जाननेवाले ! सब प्रजा आदिकोंके साहित और वसिष्ठजीके साथमंत्रोंके जाननेवाले ऋत्विक् लोग एकत्र होकर व सब मंत्री आदिक यहीं आपका अभिषेक करदें ॥२६॥ देवराज इन्द्रजीने जिस प्रकार बल विक्रमसे अपने शत्रुओंको जीत मरुतगणोंके साथस्वर्गमें प्रवेश किया था वैसेही आपभी अभिषिक्तहो बलपूर्वक अरातिवंशध्वंस करके प्रजा पालनेके लिये हमारे सहित अयोध्यामें गमन करें॥२७॥ और वहां रहकर देवऋण, ऋषिऋण और पितृऋण इन तीनों ऋणोंको उतार शत्रुओंको जलातेहुए और सर्व कामनाओंको पूर्ण करतेहुए बंधुबांधवोंकी तृप्ति करके हमको सेवक बनाय आज्ञा किया कीजिये ॥२८॥ हे आर्य ! आपके अभिषेकसे बन्धु बान्धव और सुहृद

इदंनिखिलमप्यग्र्यंराज्यंपित्र्यमकंटकम् ॥ अनुशाधिस्वधर्मेणधर्मज्ञःसहबांधवैः ॥ २५ ॥ इहैवत्वाभिषिंचंतुसर्वाः प्रकृतयःसह ॥ ऋत्विजः सवसिष्ठाश्चमंत्रविन्मंत्रकोविदाः॥२६॥अभिषिक्तस्त्वमस्माभिरयोध्यांपालनेव्रज॥विजित्यतरसालोकान्मरुद्भिरिववासवः ॥२७॥ऋणानित्रीण्यपाकुर्वन्दुर्हृदःसाधुनिर्दहन् ॥ सुहृदस्तर्पयन्कामैस्त्वमेवात्रानुशाधिमाम् ॥२८॥अद्यार्यमुदिताःसंतुसुहृदस्तेऽभिषेचने ॥ अद्यभीताःपलायंतु दुष्प्रदास्तेदिशोदश ॥२९॥आक्रोशंममातुश्चप्रमृज्यपुरुषर्षभ॥ अद्यतत्रभवंतंचपितरंरक्षकिल्बिषात् ॥३०॥ शिरसात्वाभियाचेऽहंकुरुष्वकरुणांमयि ॥ बांधवेषुचसर्वेषुभूतेष्विवमहेश्वरः ॥ ३१ ॥ अथवापृष्ठतःकृत्वावनमेवभवानितः ॥ गमिष्यतिगमिष्यामिभवतासार्धमप्यहम् ॥३२॥ तथाभिरामोभरतेनताम्यताप्रसाद्यमानः शिरसामहीपतिः ॥ नचैवचक्रेगमनायसत्त्ववान्मतिंपितुस्तद्वचनेप्रतिष्ठितः ॥ ३३ ॥ तदद्भुतं स्थैर्यमवेक्ष्यराघवेसमंजनोहर्षमवापदुःखितः ॥ नयात्ययोध्यामितिदुःखितोऽभवत्स्थिरप्रतिज्ञत्वमवेक्ष्यहर्षितः ॥ ३४ ॥

लोग सन्तुष्ट होवें और शत्रुलोग भयभीत होकर दशों दिशाओंको भाग जायँ॥२९॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! आपके वनवास दिलानेका कलंक जो हमारी माताको लगा है उसको धो डालिये और पूजनीय पिताजीकीभी पापसे रक्षा कीजिये ॥३०॥ हम शिर झुकाकर प्रार्थना करते हैं कि, महादेवजी जिसप्रकार सबही प्राणियोंपर दया करते हैं वैसेही आपभी हमारे और सबबन्धु बांधवोंके ऊपर दया कीजिये ॥३१॥ यदि हमारी यह प्रार्थना अस्वीकार कर यहांसे आप दूसरे वनको चले जायँगे तो हमभी आपके साथ२चलेंगे॥३२॥ यद्यपि भरत जीने ऐसे दीनभावसे चरणोंपर शिर धर रामचन्द्रजीको बहुत मनाय समझाया तथापि सत्यवान् महीपाल श्रीरामचन्द्रजी पिताजीकी आज्ञा पालन करनेकेलिये दृढसंकल्प हुए और अयोध्याका लौटजाना किसी भांति उन्होंने स्वीकार नहीं किया॥३३॥ श्रीरामचन्द्रजीका इस प्रकारसे

स्थिरपन देखकर सबही कोई जो अयोध्यासे आये थे हर्ष विषादमें एकसाथ मग्न होगये यह विचार करतो उन्हें शोकहुआ कि, रामचन्द्रजी अयोध्याको नहीं जायेंगे और हर्ष उनकी स्थिर प्रतिज्ञाको देखकर हुआ ॥३४॥ प्रधान२पुरवासी लोग वेदवादी ब्राह्मण लोग मूर्च्छित हुये व आंसू डालती हुई माता लोग भरतजीकी प्रशंसा करने लगीं और सब उनके साथ मिलकर अयोध्याजीको लेचलनेके लिये श्रीरामचन्द्रजीसे प्रणतभाव हो प्रार्थना करने लगे ॥३५॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदि० अयो० भाषायां षडुत्तरशततमः सर्गः ॥१०६॥ जब भरतजी फिर कुछ बोलेतब उनके बडे भाई परम माननीयश्रीरामचन्द्रजी जातिवाले लोगोंके सामने उत्तर देतेहुये ॥१॥ कि तुम नृपसत्तम दशरथजीसे कैकेयीके गर्भमें उत्पन्न हुये हो फिर तुम्हारी सबबातें ठीकही ठीक होंगी इसमें संदेह क्या है ?॥२॥ किन्तु भइया ? पहले हमारे पिता दशरथजी जबतुम्हारी माता कैकेयीका विवाह करने गये थे तब तुम्हारे नानाको उन्होंने यह वचन दिया था कि, आपकी

तमृत्विजोनैगमयूथवल्लभास्तथाविसंज्ञाश्रुकलाश्चमातरः ॥ तथाब्रुवाणंभरतंप्रतुष्टुवुःप्रणम्यरामंचययाचिरेसह ॥ ३५ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रा० वा० आ० च० सा० अयो०षडुत्तरशततमः सर्गः ॥ १०६ ॥ पुनरेवंब्रुवाणंतंभरतंलक्ष्मणाग्रजः ॥ प्रत्युवाचततः श्रीमाञ्ज्ञातिमध्येसुसत्कृतः ॥१॥ उपपन्नमिदंवाक्यंयस्त्वमेवमभाषथाः ॥ जातःपुत्रोदशरथात्कैकेय्यांराजसत्तमात् ॥२॥ पुराभ्रातःपिता नःसमातरंतेसमुद्वहन् ॥ मातामहेसमाश्रौषीद्राज्यशुल्कमनुत्तमम् ॥ ३ ॥ देवासुरेचसंग्रामेजनन्यैतवपार्थिवः ॥ सम्प्रहृष्टोददौराजावरमाराधितःप्रभुः ॥ ४ ॥ ततसासंप्रतिश्रायतवमातायशस्विनी ॥ अयाचतनरश्रेष्ठंद्वौवरौवरवर्णिनी ॥ ५ ॥ तवराज्यंनरव्याघ्रममप्रव्राजनंतथा ॥ तच्चराजातथातस्यैनियुक्तःप्रददौवरम् ॥ ६ ॥ तेनपित्राहमप्यत्रनियुक्तःपुरुषर्षभ ॥ चतुर्दशवनेवासंवर्षाणिवरदानिकम् ॥ ७ ॥ सोऽहंवनमिदंप्राप्तो निर्जनंलक्ष्मणान्वितः ॥ सीतयाचाप्रतिद्वंद्वःसत्यवादेस्थितःपितुः ॥ ८ ॥

इस कन्यासे जो पुत्र होगा हम उसकोही राज्य देंगे ॥३॥ फिर जबकि, देवता और असुरोंके संग्राममें असुरोंसे लडते२राजा दशरथजी मूर्च्छित होगये थेऔर कैकेयीने बहुतही सहायता करके उन्हें चैतन्य किया था तब राजा दशरथजीने परमप्रसन्न होकर दोवर दिये ॥४॥ हेनरश्रेष्ठ! इसही कारण यशस्विनी सुन्दर बोलने वालीतुम्हारी माताने राजाको विशेषरूप प्रतिज्ञासे बांधकर यह दोनों वरमांगे थे॥५॥ हे नरवर! राजानेभी उसकरके प्रार्थना किये जानेपर तुम्हारा राज्य और हमारा वनवास यह दो वर उसको दिये ॥६॥ हे पुरुषवर! उसी वरदानके निमित्त हमभी पिताजीकी आज्ञासे दंडकवनमें चौदह वर्ष वास करनेके लिये नियुक्त हुये हैं ॥ ७ ॥ अब पिताजीकी आज्ञासे उनके सत्यकी रक्षा करनेके लिये सीता और लक्ष्मणजीके सहित विवादरहित हो इस निर्जन वनमें आकर बसे हैं ॥ ८ ॥

हे राजेन्द्र ! अब तुमभी शीघ्रही अयोध्यामें जाय अपना अभिषेक कराय हमारे समान पिताजीके सत्यका पालन करो यह तुमको अवश्यही कर्त्तव्य है ॥९॥ हे धर्मज्ञ ! हमारे लिये तुमको पिताजीका ऋण छुटाना उनका उद्धार करना व कैकेयीका राज्य पर बैठकर संतोष करना होगा ॥१०॥ हे भ्रातः ! ऐसा सुना जाता है कि, पहले समयमें यशवान् गयराजा गया देशमें यज्ञ करते हुये, उन्होंने पितरोंको प्रसन्न करनेके लिये यह गाथा गाई थी ॥११॥ जिसके हेतुसे कि, पुत्र पिताको पुन्नाम नरकसे उद्धार और इष्ट व पूर्त्तकार्य द्वारा पिताको स्वर्गलोकमें भेजकर सब भांतिसे उनकी रक्षा करता रहता है इसी हेतुसे उसको पुत्र कहते हैं ॥१२॥ सब मनुष्य इसी कारणसे विद्या और गुणसम्पन्न पुत्रोंकी कामना करते हैं और उनको उत्पन्न करते हैं कि, उसमेंसे कोई तो पुत्र गयाको जाकर श्राद्ध करेहीगा

भवानपितथेत्येवपितरंसत्यवादिनम् ॥ कर्तुमर्हतिराजेंद्रक्षिप्रमेवाभिषिंचनात् ॥ ९ ॥ ऋणान्मोचयराजानंमत्कृतेभरतप्रभुम् ॥ पितरंत्राहि धर्मज्ञमातरंचाभिनंदय ॥१०॥ श्रूयतेधीमतातातश्रुतिर्गीतायशस्विना ॥ गयेनयजमानेनगयेष्वेवपितन्प्रति ॥ ११ ॥ पुन्नाम्नोनरकाद्यस्मात्पि तरंत्रायतेसुतः ॥ तस्मात्पुत्रइतिप्रोक्तःपितॄन्यः पातिसर्वतः ॥१२॥ एष्टव्याबहवः पुत्रागुणवंतोबहुश्रुताः ॥ तेषांवैसमवेतानामपिकश्चिद्गयां व्रजेत् ॥१३॥ एवंराजर्षयःसर्वेप्रतीताःरघुनंदन ॥ तस्मात्त्राहिनरश्रेष्ठपितरंनरकात्प्रभो ॥ १४॥ अयोध्यांगच्छभरतप्रकृतीरुपरंजय ॥ शत्रुघ्नसहितो वीरसहसर्वैर्द्विजातिभिः ॥१५॥ प्रवेक्ष्यदंडकारण्यमहमप्यविलंवयन् ॥ आभ्यांतुसहितोवीरवैदेह्यालक्ष्मणेनच ॥ १६ ॥ त्वंराजाभरतभव स्वयंनराणांवन्यानामहमपिराजराण्मृगाणाम् ॥ गच्छत्वंपुरवरमद्यसंप्रहृष्टःसंहृष्टस्त्वहमपिदंडकान्प्रवेक्ष्ये ॥१७॥ छायांतेदिनकरभाःप्रबाध मानंवर्षत्रंभरतकरोतुमूर्ध्निशीताम् ॥ एतेषामहमपिकाननद्रुमाणांछायांतामतिशयनींशनैःश्रयिष्ये ॥ १८ ॥

॥१३॥ हे रघुनन्दन ! सब राजा लोग इसी बातपर विश्वास करके पुत्र उत्पन्न करते हैं अतएव नरश्रेष्ठ ! तुमभी तो चार भाई हो सो पिताजीका नरकसे उद्धार करो ॥१४॥ हे वीर ! अब तुम सब द्विजाति और नौकर चाकर व प्रजा लोगोंके संग शत्रुघ्नजीके साथ अयोध्यामें जाकर राज्य करो ॥ १५ ॥ हे वीर हमभी और कुछ देर न करके सीतालक्ष्मण इन दोनों जनोंके साथ जल्दीही दंडकारण्यको जायंगे ॥१६॥ हे भरत! तुम तो जाकर मनुष्योंके राजा होवो और हमभी वनचारी पशुओंके महाराज होवे अब तुम प्रफुल्ल चित्तसे नगरी श्रेष्ठ अयोध्याको गमन करो और हमभी इस ओर हर्षयुक्त होकर दंडकारण्यमें प्रवेश करें ॥१७॥ हे भरत ! सूर्य की किरणोंको लजानेवाला राजकीय श्वेतछत्र तुम्हारे मस्तक परशीतल छाया करे और इस ओर हमभी सुख सहित उन सब सघन वनोंके

पेडोंकी छायामें उनके पत्तोंका आश्रम करेंगे ॥ १८ ॥ हे भरत ! बडे बुद्धिमान् शत्रुघ्न तुम्हारी सहायता करते रहेंगे और सर्वलोकोंमें विख्यात यह लक्ष्मण भी हमारी सहायता करेंगे तुम कुछ विषाद मत करो ❀ ॥ १९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मीकीये आदि० अयोध्याकांडे सप्तोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०७ ॥ धर्मज्ञ रामचन्द्रजी इस प्रकार भरतजीको समझा बुझा रहे थे कि, इतनेमें ब्राह्मण श्रेष्ठ जाबालिजी धर्मविरुद्ध वचन उससे बोले॥१॥हे रामचन्द्रजी ! तुम श्रेष्ठबुद्धि वाले और तपस्वी हो फिर साधारणलोगोंके समान तुम्हारी पिताजीके वचन पालनेके विषयकी बुद्धि निरर्थक न होवे ॥ २ ॥ जगत्में कौन किसका भाई बन्धु है ? और किसीसे किसका क्या अच्छा बुरा होसकता है ? प्राणी इकलाही जन्म लेता है और फिर इकलाही विनाशको प्राप्त होजाता है॥३॥ उससे हे रामचन्द्रजी ! यह हमारी माता हैं यह हमारे पिता हैं ऐसा संम्बन्ध मानकर जो पुरुष इसमें आसक्त होता है उसको मतवाला समझना चाहिये विचार करके देख

शत्रुघ्नस्त्वतुलमतिस्तुतेसहायः सौमित्रिर्मर्मविदितः प्रधानमित्रम् ॥ चत्वारस्तनयवरावयंनरेंद्रंसत्यस्थंभरतचराममाविषीद ॥१९॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणेवाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० अयोध्याकांडे सप्तोत्तरशततमः सर्गः॥१०७॥ आश्वासयंतंभरतंजाबालिर्ब्राह्मणोत्तमः॥ उवाचरामंधर्मज्ञंधर्मापेतमिदंवचः ॥ १ ॥ साधुराघवमाभूत्तेबुद्धिरेवंनिरर्थिका ॥ प्राकृतस्यनरस्येवह्यार्यबुद्धेस्तपस्विनः ॥ २ ॥ कःकस्य पुरुषोबंधुःकिमाप्यंकस्यकेनचित् ॥ एकोहिजायतेजंतुरेकएवविनश्यति ॥ ३ ॥ तस्मान्मातापिताचेतिरामसज्जेतयोनरः॥ उन्मत्तइवसज्ञेयोना स्तिकश्चिद्धिकस्यचित् ॥ ४ ॥ यथाग्रामांतरंगच्छन्नरः कश्चिद्बहिर्वसेत् ॥ उत्सृज्यचतमावासंप्रतिष्ठेतापरेहनि॥५॥ एवमेवमनुष्याणांपिता माताग्रृहंवसु ॥ आवासमात्रंकाकुत्स्थसज्जंतेनात्रसज्जनाः॥६॥ पित्र्यंराज्यंसमुत्सृज्यसनार्हसिनरोत्तम॥आस्थातुंकापथंदुःखंविषमंबहुकंटकम् ॥ ७ ॥ समृद्धायामयोध्यायामात्मानमभिषेचय ॥ एकवेणीधराहित्वानगरीसंप्रतीक्षते ॥ ८ ॥

नेसे कोईभी किसीका नहीं है ॥४॥ जिस प्रकार कोई मनुष्य दूसरे गांवमें जानेके समय किसी बीचवाले गांवकी चौपालके बाहर टिक रहे और दूसरे दिन उसको छोडकर वहांसे चला जाता है ॥ ५ ॥ मनुष्यका पिता,माता गृह और धनादि संपत्तिके साथभी ऐसाही थोडी देरका टिकाऊ संबन्ध है,सज्जन मनुष्य इसी कारणसे इसमें आसक्त नहीं होते हैं ॥ ६ ॥ हे नरश्रेष्ठ! पिताके राज्यको एकबारही त्यागकर बहुतसारे विघ्नवाले और भयंकर दुःखदाई वनके मार्गका आश्रय लेना तुम्हें किसी प्रकारसे भी उचित नहीं है ॥ ७ ॥ आप सब धनधान्ययुक्त अयोध्यापुरीमें जाकर अपना अभिषेक कराइयें, अयोध्या नगरी एकवेणी

* दोहा–यहि प्रकार समझायकर भरतहि श्रीरघुनाथ । सजल दृष्टि अति प्रेमसे धरयोशीशपरहाथ ॥

धारण किये विरहिनीके समान जिसका पति परदेश गया हो, आपके आनेकी राह देख रही है ॥ ८ ॥ हे नृपकुमार ! इस समय आप स्वर्गमें इन्द्र के समान बडे २ मोलकी राजाओंके लायक भोग्य वस्तुओंका भोग करते हुए परम सुखसे विहरिए ॥९॥ न दशरथजी आपके कोई हैं, न आप दशरथजीके कोई हैं, उस कारण राजा कोई और है व आप कोई और हैं, अतएव जो हम कहते हैं सो करो॥१०॥ जीवके जन्मके विषयमें पिता तो एक वीर्यका कारण मात्र है क्योंकि, ऋतुमती माताके गर्भमें इकट्ठा होकर मिला हुआ वीर्य और रक्तही जीवके जन्म होनेका कारण है॥११॥ राजा वहीं परगये हैं जहांपर कि, उनकोनिश्चय ही जानाथा, प्रवृत्तिही प्राणियोंकी इस प्रकारसे है फिर तो आप वृथा पुरुषार्थके भोगसे अपनेको छुडाते हैं॥१२॥ प्रत्यक्षसिद्ध पुरुषार्थ प्राप्त होतेभी जो लोग उसको त्यागकर धर्मके बटोरनेमें लगे रहते हैं उनकेही लिये हमको शोक होता है औरकेलिये नहीं क्योंकि इस प्रकारसे धर्म इकट्ठा करनेवाले लोग इसलोकमें कष्टपाते हैं

राजभोगाननुभवन्महार्हान्पार्थिवात्मज॥ विहरत्वमयोध्यायांयथाशक्रस्त्रिविष्टपे ॥९॥ नतेकश्चिद्दशरथस्त्वंचतस्यनकश्चन ॥ अन्योराजात्वमन्यस्तुतस्मात्कुरुयदुच्यते॥ १० ॥ बीजमात्रंपिताजंतोःशुक्रंशोणितमेवच ॥ संयुक्तमृतुमन्मात्रापुरुषस्येहजन्मतत् ॥ ११ ॥ गतःसनृपतिस्तत्रगंतव्यंयत्रतेनवै॥ प्रवृत्तिरेषाभूतानांत्वंतुमिथ्याविहन्यसे ॥ १२ ॥ अर्थधर्मपरायेयेतांस्तान्छोचामिनेतरान्॥ तेहिदुःखमिहप्राप्यविनाशंप्रेत्यलेभिरे॥१३॥ अष्टकापितृदैवत्यमित्ययंप्रसृतोजनः॥ अन्नस्योपद्रवंपश्यमृतोहिकिमशिष्यति ॥१४॥ यदिभुक्तमिहान्येनदेहमन्यस्यगच्छति ॥ दद्यात्प्रवसतांश्राद्धंनतत्पथ्यशनंभवेत् ॥ १५ ॥ दानसंवननाह्येतेग्रंथामेधाविभिःकृताः ॥ यजस्वदेहिदीक्षस्वतपस्तप्यस्वसंत्यज ॥ १६ ॥

और परलोकमेंभी विनाशको प्राप्त होते हैं ॥१३॥ लोग जो अष्टकादि श्राद्धको पितरोंका परममंगल करनेवाला विचारकर उसका अनुष्ठान करते हैं सो उससे केवल ढेरके ढेर अन्नका नाश होजाता है और कुछ नहीं होता जरा विचारकरके देखो कि मरे हुएको किसी प्रकारसे भोजन पहुँच सकता है ? कभी नहीं॥१४॥ और यदि किसी पुरुषके भोजन करानेपर वह भोजन किसी दूसरेके शरीरमें पहुँच जाताहो तबतो विदेशके जानेवाले लोगोंको मार्ग केलिये भोजन देना अनुचित है, बस उसके अर्थ किसी ब्राह्मणके भोजन करनेसेही उस भोजन किये अन्नद्वारा उसकी तृप्ति हो जायगी । इस करण लोग जो पितरोंकी तृप्तिके लिये श्राद्धमें ब्राह्मण भोजन कराते हैं सो वृथा है उससे तो केवल परिश्रमही होता है॥१५॥ फलतः और उपायोंसे जीविकाके निर्वाह होनेमें क्लेश देखकर कुछेक बुद्धिमान् लोगोंने मनुष्योंको चतुराईसे वश करने दान करानेके लिये अपने उपायस्वरूप वेदादिक ग्रंथ हैं उनका प्रचार किया और उनमें यज्ञ करो, देवपूजन

करो, गुरुदीक्षा लो और संन्यासधर्म ग्रहण करो, यह उपदेश लिख दिये हैं पामर लोगोंको धोखा देना और सरलतासे उनका धन ग्रहण करना यहीवेदादि कोंका मुख्य प्रयोजन है ॥ १६ ॥ आपबुद्धिमान् हो अतएव विचार करके देखो कि, इस लोकके सिवाय परलोकमें सुखका प्रयोजन कुछ भी नहीं है जो प्रत्यक्ष यह राज्य सुख है सो आपकोइसेही भोगकरना चाहिये न कि, अप्रत्यक्ष पिताजी के वचन पालन करनेसे धर्म मिलेगा, ऐसे कार्यमें मत लगो॥ १७॥ भरतजी तो आपको प्रसन्न करते हैं सो इस समय आप साधु और पंडित लोगोंकी बुद्धिको अनुसरण करके राज्य ग्रहण करो ॥ १८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा आदि० अयो० भाषायामष्टोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०८ ॥ सत्यपराक्रम श्रीरामचन्द्रजी जाबालिजी की यह वार्त्ता सुनकर उस वार्त्ताके विरुद्ध अपनी सुन्दर अचल बुद्धिसे विचारे हुए वेदके प्रमाणित वचन बोले ॥ १ ॥ आपने जो हमारा हित करनेकी कामनासे जो कुछ कहा वह वास्तवमें अनुचित होनेपर भी

सनास्तिपरमित्येतत्कुरुबुद्धिंमहामते ॥ प्रत्यक्षंयत्तदातिष्ठपरोक्षंपृष्ठतःकुरु ॥ १७॥ सतांबुद्धिंपुरस्कृत्यसर्वलोकनिदर्शिनीम् ॥ राज्यंसत्वंनिगृह्णीष्वभरतेनप्रसादितः॥ १८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० च० सा०अयोध्याकांडे अष्टोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०८ ॥ जाबालेस्तुवचः श्रुत्वारामःसत्यपराक्रमः ॥ उवाचपरयासूक्त्याबुद्ध्याविप्रतिपन्नया ॥ १ ॥ भवान्मेप्रियकामार्थंवचनंयदिहोक्तवान् ॥ अकार्यंकार्यसंकाशमपथ्यंपथ्यसन्निभम् ॥ २ ॥ निर्मर्यादस्तुपुरुषःपापाचारसमन्वितः ॥ मानंनलभतेसत्सुभिन्नचारित्रदर्शनः ॥३॥ कुलीनमकुलीनंवावीरंपुरुषमानिनम् ॥ चारित्रमेवव्याख्यातिशुचिंवायदिवाशुचिम् ॥ ४ ॥ अनार्यस्त्वार्यसंस्थानःशौचाद्धीनस्तथाशुचिः ॥ लक्षण्यवदलक्षण्योदुःशीलः शीलवानिव॥ ५ ॥ अधर्मंधर्मवेषेणयद्यहंलोकसंकरम् ॥ अभिपत्स्येशुभंहित्वाक्रियाविधिविवर्जितम् ॥ ६ ॥

वा उसका परिणाम दुःखका मूल होनेपर भी ऐसी बनावटसे कहा गया है कि, सबसे पहिले वह सब वचन करनेके योग्यही हैं ॥२॥ जो कुछ हो जो पुरुष अच्छे मार्गको त्याग करके खोटे मार्गमें गमन करे,पापका आचरण करे और साधु व पंडितों करके जो समस्त शास्त्र हैं उनको त्याग करके वेदविरुद्ध नास्तिक आदि लोगों के शास्त्रोंमें अपनी रुचि दिखावे सो ऐसे पुरुषका कभी सज्जनोंके समाजमें आदर नहीं होता ॥३॥ कुलीन, वीर वा डरपोक पवित्र व अपवित्र जो कोई पुरुष हो वह वेदका कहा हुआ मार्ग लेतेही सर्व सिद्ध होजाता हैऔर जो कोई विरुद्ध कार्य करता है वह कैसाही कुलीन, वीर, पवित्र हो परन्तु निन्दित हो जाता है ॥ ४ ॥ और कहां तक कहैं वैदिक सदाचार अवलंबन करनेपर अश्रेष्ठ श्रेष्ठ, अपवित्र पवित्र, लक्षण रहित लक्षणयुक्त और खोटे शीलवाले शीलयुक्त होजाते हैं ॥ ५ ॥ हमयदि ऐसा वेष धारण करके उक्तलोक संकरकारी अधर्मके मार्ग में विचरण करें तो हमको भी उसके लिये अशुभकी प्राप्ति होगी

॥ ६ ॥ और कार्य अकार्यके जाननेमें चतुर चेतनवान् सब पुरुष हमको लोक दूषण और खोटा व्रत धारण करनेवाला विचार कर किसी भाँति भी हमारा मान नहीं करेंगे ॥ ७ ॥ बस जब की, हम आपके उपदेश देनेके अनुसार कार्य करें तब हमारे सत्यपालन करनेके विषयकी जो प्रतिज्ञा है वह टूट जायगी तब हम किस प्रकारसे स्वर्ग प्राप्त करनेमें समर्थ होंगे ॥ ८ ॥ जब हम आपके उपदेश के अनुसार कार्य करके स्वेच्छाचारी होजायँ तो हमारी देखा देखी यह सब लोग अपना मनमाना कार्य करनेलगेंगे क्योंकि जिस प्रकारसे कि, राजाका व्यवहार होता है बस वैसाही प्रजा भी वर्त्तने लगती है ॥ ९ ॥ सत्य वचन और सर्व भूतोंपर दया करनी यही सनातन राजधर्म है अतएव राज्य सत्यसेही प्रतिष्ठित है अधिक क्या कहैं सब लोक भी इकले सत्यसेही टिकते हैं ॥ १० ॥ ऋषि लोग और देवतालोग केवल इकले सत्यही का आदर करते हैं संसार में केवल सत्य वचन बोलने वालाही अक्षय लोकमें चला

कश्चेतयानःपुरुषःकार्याकार्यविचक्षणः ॥ बहुमन्येतमांलोकेदुर्वृत्तंलोकदूषणम् ॥७॥ कस्ययास्याम्यहंवृत्तंकेनवास्वर्गमाप्नुयाम् ॥ अनया वर्तमानोऽहंवृत्त्याहीनप्रतिज्ञया॥८॥कामवृत्तोन्वयंलोकःकृत्स्नःसमुपवर्तते॥यद्वृत्ताःसंतिराजानस्तद्वृत्ताःसंतिहिप्रजाः॥९॥सत्यमेवानृशंसं चराजवृत्तंसनातनम् ॥ तस्मात्सत्यात्मकंराज्यंसत्येलोकःप्रतिष्ठितः ॥१०॥ ऋषयश्चैवदेवाश्चसत्यमेवहिमेनिरे ॥ सत्यवादीहिलोकेऽस्मिन्प रंगच्छतिचाक्षयम् ॥११॥ उद्विजंतेयथासर्पान्नरादनृतवादिनः ॥ धर्मःसत्यपरोलोकेमूलंसर्वस्यचोच्यते ॥१२॥ सत्यमेवेश्वरोलोकेसत्येधर्मः सदाश्रितः ॥सत्यमूलानिसर्वाणिसत्यान्नास्तिपरंपदम् ॥॥ १३ ॥ दत्तमिष्टंहुतंचैवतप्तानिचतपांसिच ॥ वेदाःसत्यप्रतिष्ठानास्तस्मात्सत्परो भवेत् ॥१४॥ एकःपालयतेलोकमेकःपालयतेकुलम् ॥ मज्जत्येकोहिनिरयएकः स्वर्गेमहीयते ॥१५॥ सोऽहंपितुर्निदेशंतुकिमर्थंनानुपालये॥ सत्यप्रतिश्रवःसत्यंसत्येनसमयीकृतम् ॥ १६ ॥

जाता है ॥ ११ ॥ जिस प्रकार कि, लोग सांपसे डरते हैंऐसेही झूंठ बोलने वालोंसे लोग डरते हैं सत्यपरायण धर्मही संसारमें सब का मूल है ऐसा कहा गया है ॥ १२ ॥ लोकमें सत्यही ईश्वर है सत्यमेंही धर्म टिका हुआ है, सत्यसेही सबका आरंभ है और सत्यसे अधिक परम पद और दूसरा नहीं है ॥ १३ ॥ दान, यज्ञ, होम और तपस्या इत्यादिक कर्म जो कि, वेदमें हैं वे वेद भी सत्यमेंही टिके हैं अतएव सबको ही केवल सत्यपालन करनेके तैयार होना चाहिये ॥ १४ ॥ कोई लोग तो ऐसे हैं कि, एकही कुलका पालन पोषण करते हैं कोई लोकभर को पालते पोषते हैं, कोई नरकमें डूबते तैरते हैं कोई स्वर्गमें पूजित होते हैं ॥ १५ ॥ इस प्रकारके धर्म और अधर्मको जानकर भी हम किस प्रकारसे सत्य प्रतिज्ञा और सदाचार में लगे हुए पिताजीकी आज्ञा पालन

करनेमें विमुख होजायँ जब कि, हमने भी कहा है कि सत्यका पालन करेंगे ॥ १६ ॥ अतएव लोभ मोह अज्ञान क्रोध हम किसी के भी वश पड कर पिताजीके सत्यका जो पुल है उसको किसी प्रकारसे नहीं तोडेंगे कह चुके सो कह चुके, अब सोच विचार हीक्या ? ॥ १७ ॥ फिर हमने यह भी सुनाहै कि, असत्य कहनेवाले चंचल स्वभाव जिसका चित्त स्थित न हो ऐसे पुरुषका दिया हुआ अन्न पानी रुपया पैसा देवता अथवा पितर कोई ग्रहण नहीं करते

नैवलोभान्नमोहाद्वानचाज्ञानात्तमोन्वितः ॥ सेतुंसत्यस्यभेत्स्यामिगुरोःसत्यप्रतिश्रवः ॥ १७ ॥ असत्यसंधस्यसतश्चलस्यास्थिरचेतसः ॥ नैवदेवानपितरःप्रतीच्छंतीतिनःश्रुतम् ॥ १८ ॥ प्रत्यगत्ममिमंधर्मंसत्यंपश्याम्यहंध्रुवम् ॥ भारः सत्पुरुषश्चीर्णस्तदर्थमभिनंद्यते ॥ १९ ॥ क्षात्त्रंधर्ममहंत्यक्ष्येह्यधर्मंधर्मसंहितम् ॥ क्षुद्रैर्नृशंसैर्लुब्धैश्चसेवितंपापकर्मभिः ॥ २० ॥

॥ १८ ॥ जीवनकी स्थिति बढानेके लिये ही जिसकी सृष्टि हुई है सो ऐसे इस सत्य पालन करनेको हम सब धर्मोंसे बडा धर्म समझते हैं प्राचीन समय के साधु लोगोंके भी सत्यपालन करनेके कारण इस प्रकारसे जटा भार अपने ऊपर लादें हैं इस ही कारण पुराना वृत्त समझकर हम भी इससे आनन्दित होते हैं ❀ ॥ १९ ॥ नीच निर्लज्ज लोभीऔर पापीलोग जो धर्मके समान दिखाईदेनेवाले अधर्भ कार्योंकी सेवाकर इस धर्मकाअनुष्ठान करते हैं सो हम इस

❀ सत्यव्रतनाम एक राजा था उसने अपने नामका एक गंज रचा और यह आज्ञा दी कि जो व्यापारी यहां आवेगा उसकी वस्तु जो बिक नेसे रहेगी वह सायंकालको खरीदली जायगी ऐसाही होता रहा एक लोहेकी मूर्ति शनैश्चर देवकी प्रतिष्ठित एक दिन लायाऔर उसने उस मूर्तिका मोल(१०००००) एक लक्ष मुद्रा बताया और उसका फल यह कहा कि,जो मनुष्य इसको लेकर घरमें रक्खे उसका धर्म लक्ष्मी यश कर्म नाश हो जाय और उसके घरमें अधर्म दरिद्र अयश अभाग्यका वास होय यह फल सुनकर किसीने मोल नहीं ली तब सांझ समय वह लुहार उस मूर्तिको लेकर राजाके यहां आया और कहा कि महाराज आप सत्यव्रत हैं मेरी मूर्ति आपने नहीं ली तब राजाने मूर्तिका फल सुनकर भी (१०००००) एक लक्ष मुद्रा देकर खरीदली और अपने घर रक्खी जब प्रहररात्रि भई तब राजा सोने गया अर्द्धरात्रिके समय एक सुन्दर स्त्रीका रूप धरे राजलक्ष्मीराजाके समीप आई राजाने पूछा कि, तुमकौन हो ? तब लक्ष्मीने कहा कि, हम आपकी राज्यलक्ष्मी हैं अब शनैश्चर देव आये हमारा क्या काम है अब हमारी भगिनी दरिद्राका निवास होगा फिर धर्म आये राजाने पूछा कि, आप कौन हो ? उन्होंने कहा कि हम तुम्हारे धर्म हैं अब शनैश्चर आये हैं हम जाते हैं यह सुनकर राजाने कहा कि, जाइये धर्म विदा हुए तदुपरि यश आये और राजासे यही कहकर चले गये फिर कर्म आये वह भी राजासे वैसीही शनैश्चरकी स्थिति कहकर बिदा हुये राजाने किसी को नहीं रोका फिर सत्यदेवजी महाराज जब आये और राजासेकहकर चलने लगे तब राजाने उठकर उनका हाथ पकड़ा और कहा कि, आप कहां जाते हो ? मैंने तो आपहीके रखनेके लिये शनैश्चरको लिया क्योंकि शनैश्चरके नलेने से मेरा सत्य जाता था अब आप विराजिये और सब लक्ष्मी आदि गये उनको जाने दीजिये सत्यसे कुछ उत्तर न बना रहना पड़ा सत्यदेवकी स्थिति हुई फिर जहां सत्य है तहां सब हैं लक्ष्मी धर्म कर्म, यश सब लौट आये इनके आनेसे दरिद्र अधर्म अभाग्य अयश नष्ट हुये राजाकी सत्य प्रतिज्ञा होनेसे शनैश्चर देवने कुछ भी फल न किया इस कारण सब मनुष्योंको चाहिये कि, सर्वदा सत्यका आचरण करें ॥

धर्मको त्याग करते हैं परन्तु ठीक क्षत्रिय धर्मको हम कभी त्याग नहीं करेंगे॥२०॥इस प्रकारसे धर्म करेंगे,पहले मनमें संकल्प करले व करे नहीं शरीरसे जो पापके कर्म करे फिर उसको छिपानेके लिये मिथ्या बोले। यह मानसिक, कायिक और वाचिक तीन प्रकारके पाप हैं ॥ २१ ॥ भूमि, कीर्त्ति, यश और लक्ष्मी यह सब सत्य कहनेवाले पुरुषकी ही प्रार्थना करते हैं और सज्जन लोग केवल सत्यकेही अनुसार कार्य करते हैं अतएव हम सच्चे अंतःकरणसे सत्यकाही आसरा लेवेंगे ॥२२॥ आपने जो विशेष बनाय२कर युक्तियुक्त बातोंसे हमको राज्य पालनकी आज्ञा करके उनकी श्रेष्ठता जो दिखाई सो यह बार्ता कभी न्याय सम्मत नहीं हो सकती ॥ २३ ॥ हम जटाधारण और चीर वसन पहन कर वनमें वास करेंगे जब कि साक्षात् गुरु पिताजीसे यह प्रतिज्ञा कर आये हैं तब फिर अब किस भांति पिताजीके वचनोंको छोडकर भरतजीकी बात मान वनको न चले जायँ ॥२४॥ और जब कि, हमने पिताजीके निकट यह दृढ

कायेनकुरुतेपापंमनसासंप्रधार्यतत् ॥ अनृतंजिह्वयाचाहत्रिविधंकर्मपातकम् ॥ २१ ॥ भूमिःकीर्तिर्यशोलक्ष्मीःपुरुषंप्रार्थयंतिहि ॥ सत्यंसमनु वर्ततेसत्यमेवभजेत्ततः ॥ २२ ॥ श्रेष्ठंह्यनार्यमेवस्याद्यद्भवानवधार्यमाम् ॥ आहयुक्तिकरैर्वाक्यैरिदंभद्रंकुरुष्वह ॥ २३ ॥ कथंह्यहंप्रतिज्ञाय वनवासमिमंगुरोः ॥ भरतस्यकरिष्यामिवचोहित्वागुरोर्वचः॥२४॥ स्थिरामयाप्रतिज्ञाताप्रतिज्ञागुरुसंनिधौ ॥ प्रहृष्टमानसादेवीकैकेयीचाभव त्तदा॥ २५ ॥ वनवासंवसन्नेवंशुचिर्नियतभोजनः ॥ मूलपुष्पफलैःपुण्यैःपितॄन्देवांश्चतर्पयन् ॥ २६ ॥ संतुष्टपंचवर्गोऽहलोकयात्रांप्रवाहये ॥ अकुहःश्रद्दधानःसन्कार्याकार्यविचक्षणः ॥२७॥ कर्मभूमिमिमांप्राप्यकर्तव्यंकर्मयच्छुभम् ॥ अग्निर्वायुश्चसोमश्चकर्मणांफलभागिनः ॥ २८ ॥ शतंक्रतूनामाहृत्यदेवराट्त्रिदिवंगतः॥ तपांस्युग्राणिचास्थायदिवंप्राप्तामहर्षयः ॥ २९ ॥

प्रतिज्ञा की थी तब देवी कैकेयी उस समयमनमें बडीही प्रफुल्लित हुई थीं सो उनको इस समय कष्ट देना हमको किसी प्रकारसे ठीक नहीं लगता ॥ २५ ॥ उससे हम वनहीमें रहकर पवित्र चित्तसे नियत समयपर कंद मूल फल पुष्पादि भोजन करते देवता व पितरोंका तर्पण करते रहेंगे ॥२६॥ पांचों इंद्रियोंको सन्तुष्ट रख कपटता रहित गुरुवचनमें श्रद्धा करते कार्य अकार्यमें चतुर हो सज्जनोंकी मर्यादाका पालन करेंगे ॥ २७ ॥ क्योंकि इस भारतवर्ष कर्मभूमिमें जन्म लेकर शुभ कर्मोंकाही करना उचित है क्योंकि कर्मोंके फलके भागी अग्नि, वायु और चंद्रमा हैं अर्थात् कर्मानुसारही इन सबके लोकोंकी प्राप्ति होती है ॥ २८ ॥ देवराज इंद्रजी १०० सौ यज्ञकरके स्वर्ग लोकके राजा हुए और महर्षि लोक भी तप करके स्वर्गको गये ॥ २९ ॥

उग्रतेजवान् नृपनंदन श्रीरामचन्द्रजी इस प्रकारसे जाबालिके नास्तिकतासे भरे वचन सुनकर उनको न सहसके और वचनोंकी निंदा करते हुए फिर उससे बोले॥ ३०॥ साधुलोग सत्य धर्म सब प्राणियोंके ऊपर दया करना प्यारे वचन और देवता ब्राह्मण व अतिथिसत्कार इनही बातोंको स्वर्गप्राप्तिका कारण बताते हैं ॥ ३१॥ हमारे इस वचनके अनुसार सावधान ब्राह्मण लोग अनुकूल तर्कको ग्रहणकरके धर्मको मुख्य समझ सब धर्मोंका आचरण करते हुये ब्रह्मलोकादिकी आकांक्षा करते हैं और वहां चलेभी जाते हैं ॥ ३२॥ आप धर्मके मार्गसे एकवारही भ्रष्ट हुये हैं आप बड़े भारी नास्तिक हैं, आपकी बुद्धि भी वेदके विरुद्धमार्गमें लगी हुई है अतएव पिताजीनेजो आपको यज्ञके कार्यमें वरण कियाव बुलाया सो उनके इस कार्यकी हम निन्दा करते हैं॥ ३३॥ चोरको जिस प्रकार दंड दिया जाता है बुद्धिके मतवाले नास्तिकोंको भी वैसाही दंड देना ठीक है, अतएव प्रजा लोगोंकी बुद्धि शुद्ध करनेकेलिये राजाको अवश्यही नास्तिकको दंडदेनाचाहिये ॥ ३४॥

अमृष्यमाणः पुनरुग्रतेजा निशम्य तन्नास्तिकवाक्यहेतुम् ॥ अथाब्रवीत्तं नृपतेस्तनूजो विगर्हमाणो वचनानि तस्य ॥ ३०॥ सत्यं च धर्मं च पराक्रमं च भूतानुकंपां प्रियवादितां च ॥ द्विजातिदेवातिथिपूजनं च पंथानमाहुस्त्रिदिवस्य संतः॥ ३१ ॥ तेनैवमाज्ञाय यथावदर्थमेकोदयं संप्रतिपद्य विप्राः ॥ धर्मं चरंतः सकलं यथावत्कांक्षंति लोकागममप्रमत्ताः ॥ ३२॥ निंदाम्यहं कर्म कृतं पितुस्तद्यस्त्वामगृह्णाद्विषमस्थबुद्धिम्॥ बुद्ध्यानयैवंविधया चरंतं सुनास्तिकं धर्मपथादपेतम् ॥ ३३॥ यथा हि चोरः स तथा हि बुद्धिस्तथागतं नास्तिकमत्र विद्धि ॥ तस्माद्धि यः शक्यतमः प्रजानां स नास्तिकेनाभिमुखो बुधः स्यात् ॥ ३४॥ त्वत्तो जनाः पूर्वतरे द्विजाश्च शुभानि कर्माणि बहूनि चक्रुः॥ छित्त्वा सदेमं च परं च लोकं तस्माद्द्विजाः स्वस्तिकृतं हुतं च ॥ ३५॥ धर्मे रताः सत्पुरुषैः समेतास्तेजस्विनो दानगुणप्रधानाः ॥ अहिंसका वीतमलाश्च लोके भवन्ति पूज्या मुनयः प्रधानाः ॥ ३६॥ इति ब्रुवंतं वचनं सदोषं रामं महात्मानमदीनसत्त्वम् ॥ उवाच पथ्यं पुनरास्तिकं च सत्यं वचः सानुनयं च विप्रः ॥ ३७ ॥

अधर्माचारी नास्तिकके साथ ब्राह्मण व ज्ञानवान् पुरुषको बातभी न करनी चाहिये, आपसे जो लोग कि, बहुत श्रेष्ठ थे सो प्राचीन समयमें ऐसे बहुतसारे ब्राह्मणोंने बहुतसारे शुभ कार्योंको किया, क्या इसलोक क्या परलोकमें कहीं भी उनको किसी प्रकारके फलकी कामना नहीं थी ॥ ३५ ॥ वह लोग जोकि अहिंसा और सत्य तपस्या करना दान करना और पराया उपकार करना इत्यादि यज्ञोंको करना कराना इन्हीं सब बातोंके लिये वेदोंके प्रमाण झलक रहे हैं जो कि, एकमात्र धर्ममें ही तत्पर हैं, तेजस्वी हैं हिंसा नहीं करते और सदा शुद्धभाव धारण करनेवाले हैं, जो लोग विशेषकरके दानदेनेमें प्रधान हैं, साधुओंका संग करनेवाले हैं सो ऐसे वसिष्ठादि प्रधान २ ऋषि लोगही संसारमें सबके पूजनीय होते हैं आपके समान नास्तिक मतको धारण करनेवाले मुनि कदापि पूजे जानेके योग्य नहीं हैं ॥ ३६ ॥ महा सत्यवान् दीनता रहित रामचन्द्रजीने क्रोधमें भरकर जाबालिजीसे जब ऐसे वचन कहने आरंभ किये तब फिर जाबालिजी विनय

युक्त हो सत्यसम्मत आस्तिक वचन बोले ॥३७॥ हम स्वयं नास्तिक नहीं हैं न हम नास्तिककीसी वार्त्ता कहते हैं और यह तो कभी होही नहीं सकता कि, परलोक नहीं है,समय देखकर हम आस्तिक और नास्तिक होजाते हैं ॥ ३८ ॥ जिस समय हमने नास्तिककेसे वचन कहे थे वह समय अब चलागया । हे श्रीरामचन्द्रजी ! आपको वनवाससे लौटानेके कारणही और तुम्हारी प्रीतिके वश होनेसे हमने ऐसा कहा था ॥ ३९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि अयो० भाषायां नवोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०९ ॥ श्रीरामचन्द्रजी इस समय क्रोधित हो गये हैं यह जानकर वसिष्ठजी उनसे बोले कि,प्राणी जो सदा बार२इस लोक और परलोकमें आगमन करते हैं जाबालिजी भी इसको भली भांति जानते हैं यह नास्तिक नहीं हैं ॥१॥ यह केवल आपको वनबाससे लौटानेकीही कामना

ननास्तिकानांवचनंब्रवीम्यहंननास्तिकोऽहंनचनास्तिकिंचन॥समीक्ष्यकालंपुनरास्तिकोभवंभवेयकालेपुनरेवनास्तिकः॥३८॥ सचापिकालोऽय मुपागतःशनैर्यथामयानास्तिकवागुदीरिता ॥ निवर्तनार्थंतवरामकारणात्प्रसादनार्थंचमयैतदीरितम् ॥ ३९ ॥ इत्यार्षे श्री०वा०आदि०च०सा० अयो० नवोत्तरशततमःसर्गः॥१०९॥क्रुद्धमाज्ञायरामंतुवसिष्ठःप्रत्युवाचह ॥ जाबालिरपिजानीतेलोकस्यास्यगतागतिम्॥१॥निवर्तयितुकाम स्तुत्वामेतद्वाक्यमब्रवीत् ॥ इमांलोकसमुत्पत्तिंलोकनाथनिबोधमे ॥२॥ सर्वंसलिलमेवासीत्पृथिवीतत्रनिर्मिता ॥ ततःसमभवद्ब्रह्मास्वयंभू र्दैवतैःसह॥ ३॥ सवराहस्ततोभूत्वाप्रोज्जहारवसुंधराम् ॥ असृजच्चजगत्सर्वंसहपुत्रैः कृतात्मभिः ॥ ४ ॥ आकाशप्रभवोब्रह्माशाश्वतोनित्य अव्ययः॥ तस्मान्मरीचिः संजज्ञेमरीचेःकश्यपःसुतः ॥५॥ विवस्वान्कश्यपाज्जज्ञेमनुर्वैवस्वतः स्वयम् ॥ सतुप्रजापतिःपूर्वमिक्ष्वाकुस्तुमनोः सुतः ॥ ६ ॥ यस्येयंप्रथमंदत्तासमृद्धामनुनामही ॥ तमिक्ष्वाकुमयोध्यायांराजानंविद्धिपूर्वकम् ॥७॥

करके इस प्रकारके वचन बोले थे हे लोकनाथ ! सब लोकोंकी उत्पत्तिका वृत्तान्त तुम हमसे श्रवण करो ॥२॥ सृष्टिसे पहले इस सब जगतमें जलही जल था उसी जलके मध्य पृथ्वी बनाई गई कोई काल पाकर विराट्रूपी ब्रह्माजी समस्त देवताओंके साथ हुये ॥ ३ ॥ब्रह्माजीसे वाराहजीका अवतार होकरभगवान् विष्णुजी जलके बीचसे पृथ्वीको उद्धार करके लावे और सृष्टि उत्पन्न करनेकी सामर्थ्य रखनेवाले अपने पुत्रोंके साथ ब्रह्माजीने सबसृष्टि रची॥४॥ यह आका शसेउत्पन्न हुये हैं यह सदारहते हैं अव्यय हैं; इन ब्रह्माजीसे भगवान् मरीचिकाजन्म हुआ मरीचिसे कश्यप उत्पन्न हुए ॥ ५ ॥ कश्यपजीसे विवस्वान् (सूर्य) बिवस्वान्से स्वयंवैवस्वत मनुने जन्म ग्रहण किया यह वैवस्वत मनुही प्रजापतियोंमें पहले हुए और इनकेही बडे बेटे इक्ष्वाकु हुए ॥६॥ मनुजीने इक्ष्वाकुहीको

प्रथम धन धान्ययुक्त यह सब पृथ्वीदान की, इन इक्ष्वाकुहीको अयोध्याका प्रथम राजा जानो ॥७॥ इक्ष्वाकुके पुत्र श्रीमान् कुक्षि नामस विख्यात हुये हे वीर ! कुक्षिसे विकुक्षिकी उत्पत्ति हुई ॥८॥ विकुक्षिके पुत्र महातेजवान् प्रतापशाली बाण हुए बाणके पुत्र महाबाहु और महातप करनेवाले अनरण्यजी उत्पन्न हुये ॥९॥ साधुओंमें श्रेष्ठ महाराज अनरण्यके राजकालमें कभी सूखा या अकाल नहीं पड़ा उनके राज्यमें कोई चोर भी न था ॥१०॥ हे महाराज ! अनरण्यजीसे महाराज पृथुजीने जन्म ग्रहण किया, राजापृथुके पुत्र परमतेजवान् त्रिशंकुजी उत्पन्न हुए ॥११॥ यह त्रिशंकुजी ऐसे सत्यवादीथे कि शरीर सहित स्वर्गमें चले गये थे त्रिशंकुजीके पुत्र परमयशवान् धुन्धुमार हुये * ॥१२॥ धुन्धुमारजीसे महातेजवान् युवनाश्वजीका जन्म हुआ श्रीमान् मान्धाता युवनाश्वके पुत्ररूपसे उत्पन्न हुये ॥१३॥ मान्धा

इक्ष्वाकोस्तुसुतः श्रीमान्कुक्षिरित्येवविश्रुतः॥ कुक्षेरथात्मजोवीरविकुक्षिरुदपद्यत ॥८॥ विकुक्षेस्तुमहातेजाबाणः पुत्रः प्रतापवान्॥ बाणस्यच महाबाहुरनरण्योमहातपाः ॥ ९ ॥ नानावृष्टिर्बभूवास्मिन्नदुर्भिक्षः सतांवरे ॥ अनरण्येमहाराजेतस्करोवापिकश्चन ॥ १० ॥ अनरण्यान्महाराजपृथूराजाबभूवह ॥ तस्मात्पृथोर्महातेजास्त्रिशंकुरुदपद्यत ॥ ११ ॥ ससत्यवचनाद्वीरः सशरीरोदिवंगतः ॥ त्रिशंकोरभवत्सूनुर्धुंधुमारोमहायशाः ॥१२॥ धुंधुमारान्महातेजायुवनाश्वोव्यजायत ॥ युवनाश्वसुतःश्रीमान्मांधातासमपद्यत॥१३॥ मांधातुस्तुमहातेजाःसुसंधिरुदपद्यत ॥ सुसंधेरपिपुत्रौद्वौध्रुवसंधिःप्रसेनजित् ॥ १४ ॥ यशस्वीध्रुवसंधेस्तुभरतोरिपुसूदनः ॥ भरतात्तुमहाबाहोरसितोनामजायत ॥ १५ ॥ यस्यैते प्रतिराजानउदपद्यंतशत्रवः ॥ हैहयास्तालजंघाश्वशूराश्वशशबिंदवः ॥१६॥ तांस्तुसर्वान्प्रतिव्यूह्ययुद्धेराजाप्रवासितः ॥ सचशैलवरेरम्येबभूवाभिरतोमुनिः ॥ १७ ॥ द्वेचास्यभार्येगर्भिण्यौबभूवतुरितिश्रुतिः ॥ तत्रचैकामहाभागाभार्गवंदेववर्चसम् ॥ १८ ॥

ताजीके परम तेजवान् सुसन्धि जन्मे सुसन्धिके दो पुत्र हुए ध्रुवसंधि और प्रसेनजित्॥१४॥ उनमें ध्रुवसंधिके पुत्र रिपुसूदन और यशवान भरतजी हुए महाबाहु भरतसे असितका जन्म हुआ॥१५॥ हैहय तालजंघ और शशबिंदु व शूर इन चारोंने राजा असितके विरुद्ध शिर उठाया और बैर भाव किया ॥१६॥ युद्धके समय राजा असितने इन सबके विरुद्ध सेनाका किला बनाकर इनको घेरा, परंतु फिर उनका हारना कठिन समझकर वनका आश्रय और मुनियोंकी वृत्ति धारण करके परम मनोहर पर्वतराज हिमालयपर तपस्या करनेकेलिये वसते हुए॥१७॥ इस प्रकार प्रसिद्ध है कि उनकी दो स्त्रियोंके उस समय गर्भथा उनमें से एक भाग्यवती

---

* सूर्यकुलमें राजर्षि हरिश्चन्द्रका नाम नहीं आया, इससे ऐसा ज्ञात होता है कि, धुन्धुमारहीका दूसरा नाम हरिश्चन्द्र हो युवनाश्वहीका नाम रोहिताश्वहो और हरिश्चन्द्रका पुत्र मान्धाता है ।

कमलफलकेसे नेत्रवाली रानीने पुत्ररत्नकी कामनासे देवताके समान तेजस्वी भृगुनन्दनच्यवनकी उपा ना की और दूसरी रानीने सौतका गर्भ नष्ट करनेके लिये उस को गरल दिया था ॥१८॥१९॥ भृगुनन्दन च्यवनजी उस समय हिमालयपर वासकरते थे।कालिन्दीनामकप्रथम रानीने उन ऋषिकी शरणमें जाकर विधि सहित उनकी वंदनाकी ॥ २० ॥ महर्षि च्यवनने जाना कि, इसे पुत्र पानेकी इच्छा है,तब प्रसन्न होकर उस पुत्रकी कामना करनेवाली रानीसे कहा कि,हे देवि ! तुम्हारे बडा महात्मा लोकविख्यात पुत्र उत्पन्न होगा ॥ २१ ॥ यह धर्मात्मा भयानक स्वभाव वंशका बढानेवाला होगा और यह शत्रुओंका संहार करे गा रानी कालिन्दी यह वरदान सुनकर बडा हर्ष मानकर उनकी प्रदक्षिणा करने लगी ॥ २२ ॥ उनकी आज्ञा ले घरको आई और वहां कमलदल समान नेत्र व ब्रह्माजीके समान पुत्र उत्पन्न किया ॥ २३ ॥ इस पुत्रके जन्म होनेसे पहिले दूसरी रानीने सवतिया डाहसे जो अपनी सौतका गर्भ नष्ट करनेको

ववंदेपद्मपत्राक्षीकांक्षिणीपुत्रमुत्तमम् ॥ एकागर्भविनाशायसपत्न्यैगरलंददौ ॥ १९ ॥ भार्गवश्च्यवनोनामहिमवंतमुपाश्रितः ॥ तमृषिंसा भ्युपागम्यकालिंदीत्वभ्यवादयत् ॥ २० ॥ सतामभ्यवदत्प्रीतोवरेप्सुंपुत्रजन्मनि ॥ पुत्रस्तेभवितादेविमहात्मालोकविश्रुतः ॥ २१ ॥ धार्मि कश्चसुभीमश्चवंशकर्तारिसूदनः ॥ श्रुत्वाप्रदक्षिणंकृत्वामुनितमनुमान्यच ॥ २२ ॥ पद्मपत्रसमानाक्षंपद्मगर्भसमप्रभम् ॥ ततः सागृहमागम्य पत्नीपुत्रमजायत ॥ २३ ॥ सपत्न्यातुगरस्तस्यैदत्तोगर्भजिघांसया ॥ गरेणसहतेनैवतस्मात्ससगरोऽभवत् ॥२४॥ सराजासगरोनाम यः समु द्रमखानयत् ॥ इष्ट्वापर्वणिवेगेनत्रासयानइमाः प्रजाः ॥ २५ ॥ असमंजस्तुपुत्रोऽभूत्सगरस्येतिनः श्रुतम् ॥ जीवन्नेवसपित्रातुनिरस्तः पापक र्मकृत् ॥२६॥ अंशुमानपिपुत्रोऽभूदसमंजस्यवीर्यवान् ॥ दिलीपोंऽशुमतःपुत्रोदिलीपस्यभगीरथः ॥२७॥ भगीरथात्ककुत्स्थश्चकाकुत्स्थायेनतु स्मृताः ॥ काकुत्स्थस्यतुपुत्रोऽभूद्रघुर्येनतुराघवाः ॥२८॥ रघोस्तुपुत्रस्तेजस्वीप्रवृद्धः पुरुषादकः ॥ कल्माषपादःसौदासइत्येवंप्रथितोभुवि ॥२९॥

विष दिया था उसी गर अर्थात् विषके साथ पुत्रका जन्म होनेसे उसका सगरनाम हुआ ॥ २४ ॥ इनराजा सगरजीने प्राचीन समयमें यज्ञमें दीक्षित होकर खोद नेके वेगसे सब प्रजाके लोगोंको उकसाकर पुत्रोंकी सहायतासे समुद्र खुदवाया ॥२५॥ ऐसा सुना है कि, इन सगरजीके एक असमंजस पुत्र थे यह परमभागवत होनेके कारण यह इच्छा रखते कि यदि हम घरसे निकाल भी दिये जांय तो अच्छा है वहां पर एकान्तमें बैठ भगवान् का भजन करें इस कारण अयोध्यावा सियोंके लडके सरयूमें डुबा देतेथे सो ऐसे पाप करनेसे सगरजीने इनको घरसे निकाल दिया ॥२६॥ असमंजसके पुत्र महा वीर्यवान् अंशुमान् हुये, अंशुमान्के पुत्र दिलीपजी हुये दिलीपके भगीरथ जन्मे ॥२७॥ भगीरथजीके पुत्र ककुत्स्थ ककुत्स्थके पुत्र रघु इनही ककुत्स्थजी और रघुजीसे काकुत्स्थ और राघवनामक वंशपरंपरायें चलीं ॥ २८ ॥ रघुजीसे तेजवान् प्रवृद्ध, पुरुषादक, कल्माषपाद और सौदास नामक पृथ्वीपर विख्यात चारों पुत्रोंका जन्म हुआ ॥ २९ ॥

कल्माषपादके पुत्र शंखण हुये यह लोकप्रसिद्ध वीर्यको पाकर दैवात् सेना सहित हमारे शापसे नाशको प्राप्त होगये॥ ३०॥इन शंखणके पुत्र सुदर्शन नाम थे परम वीर्यवान् श्रीमान् सुदर्शनजीसे अग्निवर्ण उत्पन्न हुए अग्निवर्ण के पुत्र शीघ्रग हुए ॥३१॥ शीघ्रगके पुत्र मरु मरुके पुत्र प्रशुश्रुव प्रशुश्रुवके पुत्र महामति अंबरीषजी हुये ॥३२॥ अंबरीषके पुत्र सत्य विक्रमवान् नहुष हुये नहुषके पुत्र परम धार्मिक नाभाग हुए॥ ३३॥ नाभागके दो पुत्र अज और सुव्रत हुए,उनमें अजके पुत्र धर्मात्मा राजादशरथजी हुए ॥३४॥ तुम उन्हीं महाराज दशरथजीके ज्येष्ठ पुत्र रामचन्द्र नामसे विख्यात हो अतएव तुमहीं अपने पिता दशरथका राज्यग्रहण करके संसारका पालन करो ॥ ३५ ॥ इक्ष्वाकुके वंशमें बडाही पुत्र राजा होता चला आया है, ज्येष्ठके वर्त्तमान रहते छोटेको राज्यका अभिषेक नहीं होता ॥३६॥तुम रघुवंशियोंका यह सब

कल्माषपादपुत्रोऽभूच्छंखणस्त्वितिनः श्रुतम्॥ यस्तुतद्वीर्यमासाद्यसहसैन्योव्यनीनशत्॥ ३० ॥ शंखणस्यतुपुत्रोऽभूच्छूरःश्रीमान्सुदर्शनः ॥ सुदर्शनस्याग्निवर्णअग्निवर्णस्यशीघ्रगः ॥३१॥ शीघ्रगस्यमरुत्पुत्रोमरोःपुत्रःप्रशुश्रुवः ॥ प्रशुश्रुवस्यपुत्रोऽभूदंबरीषोमहामतिः॥३२॥ अंबरीषस्यपुत्रोऽभून्नहुषः सत्यविक्रमः ॥ नहुषस्यचनाभागः पुत्रः परमधार्मिकः॥ ३३॥ अजश्चसुव्रतश्चैवनाभागस्यसुतावुभौ ॥ अजस्यचैवधर्मात्मा राजादशरथःसुतः॥ ३४॥ तस्यज्येष्ठोऽसिदायादोरामइत्यभिविश्रुतः॥ तद्गृहाणस्वकंराज्यमवेक्षस्वजगन्नृप ॥३५॥ इक्ष्वाकूणांहिसर्वेषांराजा भवतिपूर्वजः ॥ पूर्वेजेनावरःपुत्रोज्येष्ठोराजाभिषिच्यते॥ ३६॥ सराघवाणांकुलधर्ममात्मनः सनातनंनाद्यविहंतुमर्हसि॥ प्रभूतरत्नामनुशाधिमेदिनींप्रभूतराष्ट्रांपितृवन्महायशाः॥३७॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणे वाल्मीकीयेआदिकाव्येच०सा०अयोध्याकांडे दशोत्तरशततमः सर्गः॥११०॥ वसिष्ठःसतदारामसुक्त्वाराजपुरोहितः ॥ अब्रवीद्धर्मसंयुक्तंपुनरेवापरंवचः॥१॥ पुरुषस्येहजातस्यभवंतिगुरवः सदा ॥ आचार्यश्चैवकाकुत्स्थ पितामाताचराघव॥ २ ॥ पिताह्येनंजनयतिपुरुषंपुरुषर्षभः॥ प्रज्ञांददातिचाचार्यस्तस्मात्सगुरुरुच्यते ॥ ३ ॥

सनातन कुल धर्म विनाश करनेके योग्य नहीं हो तिससे अपने पिताके समान यशवान् होकर बहुत रत्नादिसंयुक्त और बहुत राज्ययुक्त इस समस्त पृथ्वीका पालन कीजिये ॥३७॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० अयो० भाषायां दशोत्तरशततमः सर्गः ॥११०॥ राज पुरोहित वसिष्ठजी उस समय रामचन्द्रजीसे ऐसा कह फिर धर्मसम्मत दूसरी वार्त्ता कहने लगे ॥ १ ॥ हे काकुत्स्थ ! हे राम ! पुरुषके जन्म होनेपर उसके तीन गुरु होते हैं, पिता माता और आचार्य ॥ २ ॥ हे पुरुषसिंह ! पिता माता तो शरीर मात्रसे पुरुषको जन्म देते हैं,परन्तु आचार्य उसको सब बातें सिखाकर पंडित बनाता है व उसपरआज्ञा करता है इस कारणएक आचार्य ही

गुरु कहाता है ॥३॥ हे शत्रुओंको तपानेवाले ! हम तुम्हारे पिता और तुम्हारे दोनोंहीके श्रेष्ठ गुरु व आचार्य हैं अतएव हमारे वचन प्रतिपालन करनेसे तुम सद्गतिसे भ्रष्ट नहीं होगे ॥४॥ हे तात ! देखिये यह सब तुम्हारी ही प्रजा हैं, जातिवाले हैं और तुम्हारे आधीनके छोटे २ राजा हैं इनके प्रति धर्माचरण करनेसे तुम कदापि सद्गतिसे भ्रष्ट नहीं होगे ॥५॥ तुम्हारी माता अतिशय धर्मवाली और वृद्ध हैं सो इन माताके वचनोंका उल्लंघन करना तुमको उचित नहीं है इनकी आज्ञा पालन करनेसे भी तुमको सद्गतिसे भ्रष्ट नहींहोना पडेगा ॥६॥ हे धर्मज्ञ ! सत्य पराक्रम करनेवाले रघुनन्दन ! तुम्हें राज्यपर अभिषेक करने के लिये भरतजी प्रार्थना कर रहे हैं सो इनकी बात माननेसे भी तुम सद्गतिसे भ्रष्ट नहीं होगे ॥७॥ गुरु वसिष्ठजी जब स्वयं मधुर वाणीसे इस प्रकार कह कर आसन पर बैठगये तब पुरुष श्रेष्ठ रामचन्द्रजीने उत्तर दिया ॥८॥ कि, माता पिता पुत्रकी जो सेवा करते हैं उनके बदलेमें पुत्र जोकुछ किया चाहै तो नहीं कर सकता ॥९॥ क्योंकि वे

सतेऽहंपितुराचार्यस्त्वचैवपरंतप ॥ ममत्वंवचनंकुर्वन्नातिवर्तेःसतांगतिम् ॥४॥ इमांहितेपरिषदोज्ञातयश्चनृपास्तथा ॥ एषुताततचरन्धर्मंनातिवर्तेः सतांगतिम् ॥५॥ वृद्धायाधर्मशीलायामातुर्नार्हस्यवर्तितुम् ॥ अस्याहिवचनंकुर्वन्नातिवर्तेःसतांगतिम् ॥ ६ ॥ भरतस्यवचःकुर्वन्याचमानस्य राघव ॥ आत्मानंनातिवर्तेस्त्वंसत्यधर्मपराक्रम ॥ ७ ॥ एवंमधुरमुक्तःसगुरुणाराघवःस्वयम् ॥ प्रत्युवाचसमासीनंवसिष्ठंपुरुषर्षभः ॥ ८ ॥ यन्मातापितरौवृत्तंतनयेकुरुतःसदा ॥ नसुप्रतिकरंतत्तुमात्रापित्राचयत्कृतम् ॥९॥ यथाशक्तिप्रदानेनस्वापनोच्छादनेनच ॥ नित्यंचप्रियवादेनत थासंवर्धनेनच ॥१०॥ सहिराजादशरथःपिताजनयितामम ॥ आज्ञापयन्मांयत्तस्यनतन्मिथ्याभविष्यति ॥११॥ एवमुक्तेनरामेणभरतःप्रत्य नंतरम् ॥ उवाचविपुलोरस्कःसूतंपरमदुर्मनाः ॥१२॥ इहतुस्थंडिलेशीघ्रंकुशानास्तरसारथे ॥ आर्यंप्रत्युपवेक्ष्यामियावन्मेसंप्रसीदति ॥१३॥ निराहारोनिरालोकोधनहीनोयथाद्विजः ॥ शयेपुरस्ताच्छालायांयावन्मांप्रतियास्यति ॥ १४ ॥

अपनी सामर्थ्यसे अधिक जैसे भी हो पुत्रको उत्तम २ भोजन वस्त्रादि देते प्रथम बहुत छोटेपनसे सुवाते, करवट लेवाते तेल उबटना लगा मधुर २ वचन कह प्यार दुलार करते उसके बढने व जीनेका बहुतेरा उपाय करते ॥१०॥ महाराज दशरथजी हमारे पिता पालन पोषण करने वाले व राजा हैं इससे उहोंने जो कुछ कि हमें आज्ञा कीहै वह हमसे कदापि मिथ्या नहीं होगी ॥११॥ जब श्रीरामचन्द्रजीने इस प्रकारसे कहा तो चौडे छातीवाले भरतजी चित्तमें बहुतही दुःखी होकर निकट बैठे हुए सारथी सुमंत्रजीसे बोले ॥१२॥ हे सारथे ! इस चबूतरे पर तुम शीघ्रही कुशोंको बिछादो, आर्य रामचन्द्रजी जब तक हमारे ऊपर प्रसन्ननहीं होवेंगे तबतक हम इन कुशों पर धन्ना देकर बैठे रहेंगे ॥१३॥ यह हमारे वचनोंको अंगीकार कर जब तक कि, अयोध्या को न लौट चलेंगे तबतक खर्चरखानेवाले लोगों करके धन हीन

महाजन ब्राह्मण जिस प्रकार अपने धनको लौटानेकी कामनासे ऋषियोंके द्वारपर हत्या देकर बैठजाताहै वैसेही हमभी विनाभोजनकिये नयन मूंद इनके सामने पर्णकुटीके द्वारपर इन कुशोंपर पडे रहैंगे॥ १४॥ परन्तु सुमंत्रजी कुशोंके बिछानेमें रामचन्द्रजीकी आज्ञाचाहकर विलम्ब करनेलगे यह देखकर भरतजीमनमें दुःखीहो आपकुश बिछायभूमिपर बैठे॥ १५॥ भरतजीको इसप्रकार कुशोंपर बैठे हुए देखकररार्जर्षियोंमें श्रेष्ठ रामचन्द्रजी भरतजीसे बोले कि, हे भइया भरत! हमने कौन अन्याय कियाहै जो तुम हमारे ऊपर धन्ना ❀ देतेहो॥ १६॥ धनको खोयेहुए ब्राह्मणही धनपानेके लिये लोगोंको रोकनेके कारण एककरवटसे कर्जदारके द्वारपर धन्ना देसकते हैं किन्तु तिलकधारी क्षत्रिय लोगोंके लिये यह धन्ना देनेकी विधि किसी प्रकारसे नहीं है ॥ १७॥ अतएव हे पुरुषसिंह! इस दारुण व्रतको त्याग करके उठो और बहुत शीघ्र इस वनकीभूमिसे श्रेष्ठ पुरी अयोध्याको गमन करो॥ १८॥ भरतजीउसी रीति धन्ना दिये पडे रहकर चारों ओर बैठे हुए पुरवासी और देशवासी सब

सतुराममवेक्षंतंसुमंत्रंप्रेक्ष्यदुर्मनाः ॥ कुशोत्तरमुपस्थाप्यभूमावेवास्थितःस्वयम्॥ १५॥ तमुवाचमहातेजारामोराजर्षिसत्तमः ॥ किंमांभरतकुर्वाणं तातप्रत्युपवेक्ष्यसे॥ १६॥ ब्राह्मणोह्येकपार्श्वेननरान्रोद्धुमिहार्हति॥ नतुमूर्धाभिषिक्तानांविधिःप्रत्युपवेशने॥ १७॥ उत्तिष्ठनरशार्दूलहित्वेतद्दारुणं व्रतम् ॥ पुरवर्यामितःक्षिप्रमयोयांध्याहिराघव ॥ १८॥ आसीनस्त्वेवभरतःपौरजानपदंजनम् ॥ उवाचसर्वतःप्रेक्ष्यकिमार्यंनानुशासथ ॥ १९॥ तेतदोचुर्महात्मानंपौरजानपदाजनाः॥ काकुत्स्थमभिजानीमःसम्यग्वदतिराघवः ॥ २० एषोऽपिहिमहाभागःपितुर्वचसितिष्ठति॥ अतएवनशक्ताः स्मव्यावर्तयितुमंजसा ॥ २१ ॥ तेषामाज्ञायवचनंरामोवचनमब्रवीत् ॥ एवंनिबोधवचनंसुहृदांधर्मचक्षुषाम् ॥ २२ ॥ एतच्चैवोभयंश्रुत्वा सम्यक्संपश्यराघव॥ उत्तिष्ठत्वंमहाबाहोमांचस्पृशतथोदकम् ॥ २३ ॥

लोगोंकी ओर दृष्टि फेरकर कहने लगे तुम सब लोग किसकारणसे आर्यरामचन्द्रजीको घर लौट चलनेके लियें नहीं कहते ॥ १९॥ तब पुरवासी देशवासी सब ही एक स्वरसे भरतजीसे बोले कि, आपने काकुत्स्थनन्दन महात्मा रामचन्द्रजीसेजोकुछ कहा सो ठीकहै जो आप कह रहेहैं यह हमजानतेहैं कि, सत्य है॥ २०॥ परन्तु यह महाभाग रामचन्द्रजीपिताके वचनोंको पालनेमें दृढ संकल्पकिये हुएहैं यहभी सबभांतिसे उचितही है अतएव हमलोग किसीको अटल प्रतिज्ञासे नहीं हटा सकते; न हममें इतना सामर्थ्य है ॥ २१॥ उन सबलोगोंके वचनोंको सुनकर रामचन्द्रजी भरतजीसे बोले कि, देखो धर्मके जाननेवाले इष्टमित्र लोग क्या कहरहे हैं सो श्रवण करो ॥ २२॥ हे रघुनंदन ! यह लोग तुम्हारे और हमारे दोनोंकेही विषयमें जोबातकहेंगे वह सुन उसपर भलीभांति विचारकरके देखो, हे महाबाहो ! तुम क्षत्रियके

❀ विना भोजन किये मुख ढक एकही करवटसे कुशोंपर या पृथ्वीपर घरके द्वारे खड़े रहना।

अयोग्य धन्नादेनेके कर्मको मत करो और इस पापका प्रायश्चित्त करनेके लिये हमें और जलको छुआ, क्योंकि हम तुम्हारे बडेहैं ॥२३॥ इसके पीछे भरतजी उठकर और जलको छूकहने लगे कि हे सभामें विराजनेवाले सभासद और मंत्री ! सबही कोई हमारी बात सुनो ॥२४॥ कि,हमने कभी पिताजीसे यह राज्य नहीं मांगा था न इसके लिये हमने माता कैकेयीसे कहा था न परम धर्मके जाननेवाले आर्य श्रीरामचन्द्रजीको वनभिजवानेमें हमारी सलाहथी ॥ २५ ॥ तो भी यदि वनमेंही वास करके पिताजीके वचनोंका अवश्यही पालन होना चाहिये तो इनके बदलेमें हमही चौदह वर्ष वनमें वास करेंगे ॥ २६ ॥ धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी भरतजीके इन सत्यवचनोंसे विस्मित होकर इकट्ठे हुए पुरवासियोंकी ओर देखकर बोले॥२७॥ कि,पिता दशरथजीने अपने जीतेजी जो वस्तु बेंच डाली वा मोलली या किसीके यहांधरोहर धरदीअथवा अपने यहां किसीकोधरोहररक्खी हम व भरतदोनोंकोचाहियेकिउसकेविपरीत न करके उनकी आज्ञाको ज्योंक

अथोत्थायजलंस्पृष्ट्वाभरतोवाक्यमब्रवीत॥शृण्वंतुमेपरिषदोमंत्रिणःशृणुयुस्तथा॥२४॥नयाचेपितरंराज्यंनानुशासामिमातरम्॥एवंपरमधर्मज्ञं नानुजानामिराघवम्॥२५॥ यदित्ववश्यंवस्तव्यंकर्तव्यंचपितुर्वचः॥ अहमेवनिवत्स्यामिचतुर्दशवनेसमाः॥२६॥धर्मात्मातस्यसत्येनभ्रातुर्वाक्येनविस्मितः॥उवाचरामःसंप्रेक्ष्यपौरजानपदंजनम्॥२७॥विक्रीतमाहितंक्रीतंयत्पित्राजीवतामम॥नतल्लोपयितुंशक्यंमयावाभरतेनवा॥२८॥ उपाधिर्नमयाकार्योवनवासेजुगुप्सितः॥युक्तमुक्तंचकैकेय्यापित्रामेसुकृतंकृतम्॥२९॥जानामिभरतंक्षांतंगुरुसत्कारकारिणम्॥सर्वमेवात्रकल्याणं सत्यसंधेमहात्मनि॥३०॥ अनेनधर्मशीलेनवनात्प्रत्यागतःपुनः॥भ्रात्रासहभविष्यामिपृथिव्याःपतिरुत्तमः॥३१॥वृतोराजाहिकैकेय्यामयातद्वचनंकृतम्॥अनृतान्मोचयानेनपितरंतंमहीपतिम्॥३२॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवा०आदि०च०सा०अयो०एकादशोत्तरशततमःसर्गः ॥१११॥

त्यों मानें जब कि,हममें ही वनवास करनेकी सामर्थ्य है ॥२८॥ तब हम साधुओंसेनिन्दा किया हुआ यह दुष्कर्म न करेंगे कि,अपने बदले भरतजीकोनव भेजें कैकेयीने जो कहा है अच्छाही कहा है और पिताजीने भी जो किया है सो अच्छाही किया है ॥२९॥ यह हम भली भांति जानते हैंकि भरतजी क्षमाशील और गुरुजनोंका सत्कार करनेवाले हैं अतएव राज्यका पालनादिकरना यह सबकल्याणके कार्य यहसत्यप्रतिज्ञा करनेवाले महात्मा भरतजीको ही शोभा पाते हैं॥३०॥ हम भी इन धर्मशील भाईके साथ वनसे लौटकर पृथ्वीका पालन करेंगे ॥ ३१ ॥ भइया ! कैकेयीने राजासे जो वर मांगा था कि, राम चौदहवर्षको वनमें जाय और भरतको राज्य हो सो इस कारण हमने राजाको झुंठाईसे छुडाया और कैकेयीके उन वचनोंका पालन किया ॥ ३२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० अयो० भाषायामेकादशोत्तरशततमः सर्गः ॥ १११ ॥

नारद इत्यादि महर्षि लोग अतुल तेजवान् दोनों भाइयोंका यह रोमहर्षण समा गम देख विस्मयको प्राप्त हो वहां आये ॥ १ ॥ मुनिलोग और महर्षिलोग छिपे रहकर उन महाभागवाले रामचन्द्रजी और भरतजीकी प्रशंसा करनेलगे ॥ २ ॥ जोकि यह धर्मज्ञ और धर्ममें बली रामचन्द्रजो और भरतजी जिनके पुत्र हैं वह धन्य हैं इन दोनोंकी कथावार्त्ता सुनकर हम सबलोगही परमप्रसन्न हुए ॥ ३ ॥ उसकेपीछे ऋषि लोगोंने बहुत शीघ्र रावणके वध करनेकी अभिलाषामें एकमत होकर नृपश्रेष्ठ भरतजीसे कहा ॥ ४ ॥ हे अटलप्रतिज्ञा करनेवाले शुभ चरित्र युक्त महायशवान् भरतजी ! तुमने भले वंशमें जन्म लिया है सो यदि पिताजोको सुखी करने की इच्छा हो तो जो श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं उसकेही अनुसार तुमको कार्य करना चाहिये ॥ ५ ॥ हम सबक एक यही बडा अभिलाष है कि, महाराज श्रीरामचन्द्रजी पिताजीके

तमप्रतिमतेजोभ्यांभ्रातृभ्यांरोमहर्षणम् ॥ विस्मिताःसंगमंप्रेक्ष्यसमुपेतामहर्षयः ॥ १ ॥ अंतर्हितामुनिगणाःस्थिताश्चपरमर्षयः ॥ तौभ्रातरौ महाभागौकाकुत्स्थौप्रशशंसिरे ॥ २ ॥ सदार्यौराजपुत्रौद्वौधर्मज्ञौधर्मविक्रमौ ॥ श्रुत्वावयंहिसंभाषामुभयोःस्पृहयामहे ॥ ३ ॥ ततस्त्वृषि गणाःक्षिप्रंदशग्रीववधैषिणः ॥ भरतंराजशार्दूलमित्यूचुःसंगतावचः ॥ ४ ॥ कुलेजातमहाप्राज्ञमहावृत्तमहायशः ॥ ग्राह्यंरामस्यवाक्यंतेपितरं यद्यवेक्षसे ॥ ५ ॥ सदानृणमिमंरामंवयमिच्छामहेपितुः ॥ अनृणत्वाच्चकैकेय्याःस्वर्गंदशरथोगतः ॥ ६ ॥ एतावदुक्त्वावचनंगंधर्वाःसमह र्षयः ॥ राजर्षयश्चैवतथासर्वेस्वांस्वांगतिंगताः ॥ ७ ॥ ह्लादितस्तेनवाक्येन शुशुभेशुभदर्शनः ॥ रामःसंहृष्टवदनस्तानृषीनभ्यपूजयत् ॥ ८ ॥ त्रस्तगात्रस्तुभरतःसवाचासज्जमानया ॥ कृतांजलिरिदंवाक्यंराघवंपुनरब्रवीत् ॥ ९ ॥ रामधर्ममिमंप्रेक्ष्यकुलधर्मानुसंततम् ॥ कर्तुमर्हसिकाकुत्स्थ ममममातुश्चयाचनाम् ॥ १० ॥ रक्षितुंसुमहद्राज्यमहमेकस्तुनोत्सहे ॥ पौरजानपदांश्चापिरक्तान्रञ्जयितुंतदा ॥ ११ ॥ ज्ञातयश्चापियोधाश्च मित्राणिसुहृदश्चनः ॥ त्वामेवहिप्रतीक्षंतेपर्जन्य मिवकर्षकाः ॥ १२ ॥

ऋणसे उऋण होजावें कैकेयीका कर्जनिपटा देनेसे राजा दशरथजीको स्वर्ग प्राप्त हुआ ॥ ६ ॥ गन्धर्वलोग महर्षिलोग और राजर्षिलोग तो यह वचन कहकर हर्षितचित्त हो अपने स्थानको चले गये ॥ ७ ॥ शुभदर्शन श्रीरामचन्द्रजी इनवचनोंको सुन प्रफुल्लित हो परमशोभायुक्त प्रसन्न वदनसे उन सब ऋषियोंकी भली भांति प्रशंसा करने लगे ॥ ८ ॥ यह सुनके भरतजी थरथराय उठे व अतिगदगद वाणीसे हाथ जोड श्रीरामचन्द्रजीसे बोले ॥ ९ ॥ हे आर्य ! बडेकोही राज्यका अधिकारी होना कर्त्तव्य है, ऐसा कुलधर्म भलीभांति विचार करके आपको माता कौशल्याजीकी प्रार्थना पूर्ण करनी होगी ॥ १० ॥ इकले इस बडे राज्यकी रक्षा करने अथवा विशेष अनुरागी पुरवासी और देशवासी लोगोंका मन रंजनकरनेमें हम उत्साहित नहीं होते ॥ ११ ॥ जाति बिरादरीवाले लोग, शूरवीर लोग इष्ट

मित्र लोग सबही जलधारा वर्षानेवाले मेघकी आशा करते उत्सुक किसानकेसमान एक मात्र आपहीके राज्य करनेकी बाट जोह रहे हैं ॥ १२ ॥ तिससे हे महाबुद्धिमान् आप इस राज्यको ग्रहण करके आपही किसीसेइसको पालन कराइये । हे काकुत्स्थ ! आप जिसके प्रति राज्यके पालनेका भार अर्पण करेंगे वही पुरुष प्रजापालन करनेमें समर्थ होगा ॥१३॥ यह कहकर भरतजी अपने भइयाके चरणोंमेंगिर पडे और उनको मधुर वचनोंसे पुकारकर अति विनीतभावसे वारंवार प्रार्थना करने लगे ॥ १४ ॥ यह देखकर श्रीरामचन्द्रजी मतवाले हंसके समान मनोहर कंठवाले कमलदलसम नेत्रवाले श्यामवर्ण भरतजीको अपनीगोदमें लेकर कहने लगे ॥ १५ ॥ हे तात ! हमें वनवाससे रोकने और बैठानेके लिये बुद्धि तुममें हुई है सो यह बुद्धि स्वभावसे ही और शिक्षाके बलसे ही उपजी है इस बुद्धिके बलसेही राज्यपालन करनेमें भी तुम्हारी भली योग्यता होगी और सामर्थ्य देखता हूँअतएव तुम राज्यकरनेके लिये अधिक उत्साही

इदंराज्यंमहाप्राज्ञस्थापयप्रतिपद्यहि ॥ शक्तिमान्सहिकाकुत्स्थलोकस्यपरिपालने ॥ १३ ॥ एवमुक्त्वापतद्भ्रातुःपादयोभरतस्तदा ॥ भृशंसंप्रार्थयामासराघवेतिप्रियंवदन् ॥१४॥ तमंकेभ्रातरंकृत्वारामोवचनमब्रवीत् ॥ श्यामंनलिनपत्राक्षंमत्तहंसस्वरःस्वयम् ॥ १५ ॥ आगतात्वामियंबुद्धिःस्वजावैनयिकीचया॥ भृशमुत्सहसेताततरक्षितुंपृथिवीमपि॥१६॥ अमात्यैश्चसुहृद्भिश्चबुद्धिमद्भिश्चमंत्रिभिः॥सर्वकार्याणिसंमंत्र्यमहांत्यपिहिकारय ॥१७॥ लक्ष्मीश्चंद्रादपेयाद्वाहिमवान्वाहिमंत्यजेत् ॥ अतीयात्सागरोवेलांनप्रतिज्ञामहंपितुः ॥ १८॥ कामाद्वाताततलोभाद्वामात्रातुभ्यमिदंकृतिम् ॥ नतन्मनसिकर्तव्यंवार्तितव्यंचमातृवत् ॥१९॥ एवंब्रुवाणंभरतःकौसल्यासुतमब्रवीत् ॥ तेजसादित्यसंकाशंप्रतिपच्चंद्रदर्शनम् ॥२०॥ अधिरोहार्यपादाभ्यांपादुकेहेमभूषिते॥ एतेहिसर्वलोकस्ययोगक्षेमंविधास्यतः ॥२१॥

होओ ॥१६॥और मंत्री बुद्धिमान् और इष्टमित्रोंके साथ सलाह करके सब बडे२कार्य कराय लेना ॥१७॥ चन्द्रमासे यदि शोभा विचलित हो जाय, हिमालय परभी यदि बरफ न रहे और समुद्रभी यदि वेला भूमिको नांघ जाय तथापि यह किसी प्रकार पिताकी प्रतिज्ञा पालनेको नहीं छोड सकते ॥ १८ ॥ तिससे हे तात ! ऐसा मत समझो कि; तुम्हारी माताने इच्छा वा लोभके वश होकर ऐसा किया है यह सोचकर उससे माता केही समान व्यवहार करना ॥ १९ ॥ जब श्रीरामचन्द्रजीने ऐसा कहा तो तेजसे सूर्य समान व दूजके चन्द्रमाके समान दर्शनीय कौसल्या कुमारसे भरतजी बोले ॥ २० ॥ हे आर्य ! तब इन सोनेकी बनी हुई खडाउंको चरणसे छूकर यह हमेंदे दीजिये इन दोनों खडाऊंओंमेंही इतनी शक्ति होजायगी कि, यही सब लोगका

योगक्षेम कर सकेंगी ॥२१॥ तब पुरुषसिंह महातेजस्वी श्रीरामचन्द्रजीने दोनों खडाऊँ पहर फिर उनको उतार कर महात्मा भरतजीको देदीं ॥२२॥ तब भरतजीने भक्तिसहित उन दोनों खडाउओंको प्रणामकरके श्रीरामचन्द्रजीसे कहाकि आजसे लेकर १४वर्षतक जटा चीर धारण किये ॥२३॥ कंद,मूल,फल खाकर तुम्हारे आगमनकी आकांक्षा किये हे रघुनंदन! नगरके बाहर वास करेंगे ॥२४॥ और सब राजकार्य आपकी खडाउओंको अर्पण करेंगे हे रघुनंदन! जिस दिन चौदहवां वर्ष पूर्ण होगा ॥२५॥ और उस दिनभी यदि आपको अयोध्यामें आये हुए न देखेंगे तो हम अग्निमें प्रवेशकर जांयगे तब रामचन्द्रजीने कहाकि, हां ऐसा ही होगा हम उसी दिन आजायंगे यह कह भरतको भेंट ॥२६॥ फिर शत्रुघ्नजीको छातीसे लगाया श्रीरामचन्द्रजी बोले कि, हे शत्रुघ्न ! तुम सदा कैकेयीकी रक्षा करते रहना, कदापि उनके प्रति रोष प्रकाश मत करना ॥ २७ ॥ इस विषयमें हम तुमको सीताकी और अपनी शपथ दिलाये देते हैं यह कह नेत्रोंमें

सोऽधिरुह्यनरव्याघ्रः पादुकेव्यवमुच्यच ॥ प्रायच्छत्सुमहातेजा भरतायमहात्मने ॥२२॥ सपादुकेसंप्रणम्यरामंवचनमब्रवीत् ॥ चतुर्दशहिवर्षाणि जटाचीरधरोह्यहम् ॥२३॥ फलमूलाशनोवीरभवेयंरघुनंदन ॥ तवागमनमाकांक्षन्वसन्वैनगराद्वहिः ॥ २४ ॥ तवपादुकयोर्न्यस्यराज्यतंत्रंपरंतप ॥ चतुर्दशेहिसंपूर्णेऽवर्षेऽहनिरघूत्तम ॥२५॥ नद्रक्ष्यामियदित्वांतुप्रवेक्ष्यामिहुताशनम् ॥ तथेतिचप्रतिज्ञायतंपरिष्वज्यसादरम् ॥ २६ ॥ शत्रुघ्नंचपरिष्वज्यवचनंचेदमब्रवीत् ॥ मातरंरक्षकैकेयींमारोषंकुरुतांप्रति ॥२७॥ मयाचसीतयाचैवशप्तोऽसिरघुनंदन ॥ इत्युक्त्वाश्रुपरीताक्षो भ्रातरंविससर्जह ॥२८॥ सपादुकेतेभरतःस्वलंकृते महोज्ज्वलेसंपरिगृह्यधर्मवित ॥ प्रदक्षिणंचैवचकारराघवंचकारचैवोत्तमनागमूर्धनि॥२९॥ अथानुपूर्व्याप्रतिपूज्यतंजनंगुरूंश्चमंत्रीन्प्रकृतीस्तथानुजौ॥व्यसर्जयद्राघववंशवर्धनः स्थितःस्वधर्मेहिमवानिवाचलः॥३०॥तंमातरोबाष्पगृहीतकंठ्योदुःखेननामंत्रयितुंहिशेकुः ॥ सचैवमातॄरभिवाद्यसवारुदन्कुटींस्वांप्रविवेशरामः ॥ ३१ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० च० सा० अ० द्वादशाधिकशततमः सर्गः ॥११२॥

जल भरकर दोनों भाइयोंको बिदा किया॥२८॥तब धर्मवान् भरतजी व परमउज्ज्वल और सजी धजी खडाऊँ ग्रहण करके रामचन्द्रजीकी परिक्रमा करते हुए। और जिसहाथीपर कि सदा राजा दशरथजी चढते थे उनकेही ऊपर भरतजीने उन खडाउओंको धर दिया ॥ २९ ॥ उसके पीछे हिमालयके समान अपने धर्ममें अचल टिके हुये रघुवंशके बढानेवाले श्रीरामचन्द्रजी यथायोग्य गुरु मंत्री प्रजाके लोग व अनुज भरत औ शत्रुघ्न आदिको भली भांति आदर सहित बिदाकरते हुए ॥३०॥ बाफसे कंठ रुकजाने और शोकके मारे बहुतही व्याकुल होजानेसे माताओंमेंसे कोईभी रामचन्द्रजीसे बोल न सकी श्रीरामचन्द्रजीसबहीको प्रणाम करके रोते बिलखते हुए अपनी कुटीमें प्रवेश करते हुए ॥ ३१ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्वा० वा० आ० अ० भाषायां द्वादशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११२ ॥

उसके पीछे शत्रुञ्जय हाथीपरसे खडाऊं उतार कर भरतजी अपने मस्तकपरधारणकर प्रफुल्लचित्तसे शत्रुघ्नजीके साथ रथमें बैठे ॥१॥ वसिष्ठजी, वामदेवजी, दृढव्र तधारी जाबालिजी व और भी सलाह देनेवालोंमें चतुर विशेष सन्मान पानेके लायक सब मंत्री लोगभी आगे२चले ॥२॥ सब लोगही महागिरि चित्रकूटकी परिक्रमा करत पूर्वकी ओर रमणीय मन्दाकिनी नदीके सामन गमन करने लगे ॥३॥ भरतजी विविध भांतिके मनोहर धातु देखते२चित्रकूटके उत्तरीय मैदानमें होकर सेना सहित चले ॥४॥ उस कालमें चित्रकूट पर्वत की कुछ थोडीही दूर पर जहांकि महर्षि भरद्वाजजी मुनियोंके सहित वास करते थे वह आश्रम भरतजीने अपने ऊंचेरथपरसे देखा ॥५॥ तब कुलके प्रसन्न करनेवाले बुद्धिमान् भरद्वाजजीके आश्रममें आगए तब भरतजीने नीचे उतर कर महर्षिजीके चरणों कीवंदना की ॥ ६ ॥ अनन्तर भरद्वाजजीने प्रसन्न होकर भरतजीसे कहा कि,हे तात ! रामचन्द्रजीसे मिलकर तुम कृतार्थहोगये अब यह तो बताओ कि, रामचन्द्रजी

ततः शिरसिकृत्वातुपादुकेभरतस्तदा ॥ आरुरोहरथंहृष्टःशत्रुघ्नसहितस्तदा॥१॥ वसिष्ठोवामदेवश्चजाबालिश्चदृढव्रतः ॥ अग्रतःप्रययुःसर्वेमं त्रिणोमंत्रपूजिताः॥२॥ मंदाकिनींनदींरम्यांप्राङ्मुखास्तेययुस्तदा ॥प्रदक्षिणंचकुर्वाणाश्चित्रकूटंमहागिरिम् ॥३॥ पश्यन्धातुसहस्राणिरम्या णिविविधानिच॥ प्रययौतस्यपार्श्वेनससैन्योभरतस्तदा॥४॥ अदूराच्चित्रकूटस्यददर्शभरतस्तदा ॥ आश्रमंयत्रसमुनिर्भरद्वाजःकृतालयः॥५॥ सतमाश्रममागम्यभरद्वाजस्यवीर्यवान् ॥ अवतीर्यरथात्पादौववंदेकुलनंदनः ॥ ६ ॥ ततोहृष्टोभरद्वाजोभरतंवाक्यमब्रवीत्॥ अपिकृत्यंकृतं तातरामेणचसमागतम् ॥७॥ एवमुक्तःसतुततोभरद्वाजेनधीमता ॥ प्रत्युवाचभरद्वाजंभरतोधर्मवत्सलः ॥८॥ सयाच्यमानोगुरुणामयाचदृढवि क्रमः॥ राघवःपरमप्रीतोवसिष्ठंवाक्यमब्रवीत् ॥९॥ पितुःप्रतिज्ञांतामेवपालयिष्यामितत्त्वतः ॥ चतुर्दशहिवर्षाणियाप्रतिज्ञापितुर्मम ॥१०॥ एवमुक्तोमहाप्राज्ञोवसिष्ठःप्रत्युवाचह ॥ वाक्यज्ञोवाक्यकुशलंराघवंवचनंमहत्॥११॥ एतेप्रयच्छसंहृष्टःपादुकेहेमभूषिते ॥ अयोध्यायांमहाप्रा ज्ञयोगक्षेमकरोभव ॥१२॥ एवमुक्तोवसिष्ठेनराघवः प्राङ्मुखःस्थितः ॥ पादुकेहेमअकृतेममराज्यायतेददौ ॥ १३ ॥

आये तोसही ॥ ७ ॥ जब बुद्धिमान् महर्षि भरद्वाजजीने ऐसा कहा तब धर्मवत्सल भरतजीने उत्तर दिया ॥ ८ ॥ कि,हमने और स्वयं गुरु देव वसिष्ठजीने बारंबार प्रार्थना की तब दृढ विक्रमवान् रामचन्द्रजीने प्रसन्न होकर वसिष्ठजीसे कहा ॥ ९ ॥ पिताजीने जो हम को वनवास चौदह वर्षका दिया है सो हम धर्ममें टिके रहकर उसही आज्ञाका पालन करेंगे ॥ १० ॥ वचन बोलनेवालोंमें चतुर पंडित वसिष्ठजी यह बात सुनकर उन वाक्यविशारद रघुनन्दन श्रीरामचन्द्रजीसे अच्छे वचन बोलते हुए ॥ ११ ॥ कि हे महापंडित ! तब इस समय आप प्रसन्न चित्तसे प्रतिनिधिके समान सुवर्णसे सजी अपनी यह खडाऊंही देकर अयोध्याभर का क्षेम कीजिये ॥ १२ ॥ रघुनन्दन श्रीरामचन्द्रजी वसिष्ठजी महाराज के यह वचन सुन पूर्वमुख हो हमको यह राज्यके

पालनेकी सामर्थ्य रखनेवाली सुवर्ण लगी खडाउवें देते हुए ॥ १३ ॥ हम उनही महात्मा श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञासे उनके लिवालानेसे निवृत्त होकर शुभ खडाउवें ग्रहण कर अयोध्याही को लौटते हैं ॥ १४ ॥ महात्मा भरतजीके यह शुभ वचन सुन महर्षि भरद्वाजजी भी उनसे श्रेष्ठ वचन बोले ॥ १५ ॥ शील व्रत जानने वालोंमें श्रेष्ठ पुरुषव्याघ्र ! तुममें यह आश्चर्यकी बात नहीं जसी सुजनता तुममें है क्योंकि जहां गढा होता है वहां जल टिकता ही है ॥ १६ ॥ और क्या कहैं जबकि, तुम जिनके ऐसे धर्मात्मा और धर्मवत्सल पुत्रहो तब तो तुम्हारे पिता वह महाबाहु दशरथजी सब प्रकारही पितृऋणसे छूट गये ॥ १७ ॥ जब महापंडित भरद्वाजजीने ऐसा कहा तब भरतजी हाथ जोडकर उनके दोनों चरणोंको पकडकर उनसे विदामांगते हुये ॥ १८ ॥ अनन्तर श्रीमान् भरतजीने भरद्वाजजी की बार२परिक्रमा कर सब मंत्रियोंके सहित अयोध्याको यात्रा की ॥ १९ ॥ भरतजीके साथ जो सेना थी वह भी भरतजीको गमन करते

निवृत्तोऽहमनुज्ञातोरामेणसुमहात्मना॥अयोध्यामेवगच्छामिगृहीत्वापादुकेशुभे॥१४॥एतच्छुत्वाशुभंवाक्यंभरतस्यमहात्मनः॥भरद्वाजःशुभः तरंमुनिर्वाक्यमुदाहरत्॥१५॥ नैतच्चित्रंनरव्याघ्रेशीलवृत्तविदांवरे ॥ यदार्यंत्वयितिष्ठेत्तुनिम्नोत्सृष्टमिवोदकम् ॥ १६ ॥ अनृणःसमहाबाहुपि तादशरथस्तव ॥ यस्यत्वमीदृशःपुत्रोधर्मात्माधर्मवत्सलः ॥ १७ ॥ तमृषिंतुमहाप्राज्ञमुक्तवाक्यंकृतांजलिः ॥ आमंत्रयितुमारेभेचरणावुप गृह्यच ॥ १८ ॥ ततःप्रदक्षिणंकृत्वाभरद्वाजंपुनःपुनः ॥ भरतस्तुययौ श्रीमानयोध्यांसहमंत्रिभिः ॥ १९ ॥ यानैश्चशकटैश्चैवहयैर्नागैश्च साचमूः ॥ पुनर्निवृत्ताविस्तीर्णाभरतस्यानुयायिनी ॥ २० ॥ ततस्तेयमुनांदिव्यांनदींतीर्त्वोर्मिमालिनीम् ॥ ददृशुस्तांपुनः सर्वेगंगांशिव जलांनदीम् ॥ २१ ॥ तांरम्यजलसंपूर्णांसंतीर्यसहबांधवः ॥ शृंगवेरपुरंरम्यंप्रविवेशससैनिकः ॥ २२ ॥ शृंगवेरपुराद्भूयअयोध्यांसंददर्शह॥ अयोध्यांतुतदादृष्ट्वापित्राभ्रात्राविवर्जिताम्॥२३॥भरतोदुःखसंतप्तः सारथिं चेदमब्रवीत्॥ सारथेपश्यविध्वस्ता अयोध्यानप्रकाशते॥ निराका रानिरानंदादीनाप्रतिहतस्वना ॥ २४ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० च० स० अयो० त्रयोदशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११३ ॥

देखकर चली उनमें के लोग कोई कोई रथ, हाथी, घोडोंपर चढ २ कर उनके साथ २ चले ॥ २० ॥ उसके पीछे सब सेना तरंगें उछलती हुई यमुना नदीके पार होकर फिर पवित्र जलवाली भागीरथी गंगाजीके दर्शन करती हुई ॥ २१ ॥ भरतजी सेना सहित और बन्धुबान्धवों सहित रमणीय जलसंपूर्ण गंगाजीके पारहोकर अतिरमणीय शृंगवेरपुरमें प्रवेश करते हुये॥ २२ ॥ शृंगवेरपुरसे चलकर फिर अयोध्यापुरीको देखा जो की: पिताभ्रातासे हीन थी॥ २३ ॥ ऐसी दुःखित नगरी देख भरतजीने दुःखसे संतापित होकर सारथी सुमंत्रजीसे कहाकि, हे सारथे ! देखो शोभाहीना अलंकार विहीना, निरानन्दा दीना और शब्दहीना होनेसे अयोध्या अब पहलेके समान प्रकाशमान नहीं होती ॥ २४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अयो० भाषायां त्रयोदशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११३ ॥

इसप्रकार महायशवान् भरतजी गंभीरध्वनि निकलते रथपर बैठे हुये शीघ्रही अयोध्यापुरीमें प्रवेश करते हुये ॥१॥ वहां देखा कि, चारों ओर बिल्लियां वउल्लु वोंसे अयोध्या पूर्ण थी और सब घरोंके किवाँड बन्दथे रात्रि जिस प्रकारकी घोर अँधेरेसे ढकजाती है और उसमें जरा प्रकाश नहीं मालूम पडताक्योंकि वह अनिवार कलोंचेसे भरी होती है वैसेही अयोध्यापुरीकी सब शोभा छितराय गई कहीं कुछ रोशनी नहीं थी ॥२॥ अथवा शशधर चन्द्रमा उदित हुये राहुग्रहसे ग्रसे जाकर जिस प्रकार दुःखित होते हैं और उस समय उनकी प्यारी स्त्री प्रज्वलित प्रकाशवाली दिव्यकांतियुक्त रोहिणी जिस भांति निःसहाय होकर टिकी रहती है वैसेही अयोध्याकी दशा होरहीथी ॥३॥ अथवा गर्मियोंके समयमें जब पहाडी नदियोंका पानी धूपके तापसे गरम और मैला होजाता और वहांके जल विहंग भी गरमीके तापसे ऊबकर दूसरी जगह चलेजाते और मछलियां मरजातीं और जन्तुभी वहां नहीं रहते उस समय पहाडी नदीकी जो शोचनीय अवस्था होती है वैसेही अयोध्याकी

स्निग्धगंभीरघोषेणस्यंदनेनोपयान्प्रभुः॥अयोध्यांभरतः क्षिप्रंप्रविवेशमहायशाः ॥१॥ बिडालोलूकचरितामालीननरवारणाम् ॥तिमिराभ्या हतांकालीमप्रकाशांनिशामिव ॥२॥ राहुशत्रोःप्रियांपत्नींश्रियाप्रज्वलितप्रभाम् ॥ ग्रहेणाभ्युदितेनैकांरोहिणीमिवपीडिताम् ॥ ३ ॥ अल्पो ष्णक्षुब्धसलिलांघर्मतप्तविहंगमाम् ॥ लीनमीनझषग्राहांकृशांगिरिनदीमिव॥४॥ विधूमामिवहेमाभांशिखामग्नेःसमुत्थिताम् ॥ हविरभ्युक्षितां पश्चाच्छिखांविप्रलयंगताम् ॥५॥ विध्वस्तकवचांरुग्णगजवाजिरथध्वजाम् ॥ हतप्रवीरामापन्नांचमूमिवमहाहवे ॥ ६ ॥ सफेनांसस्वनांभूत्वा सागरस्यसमुत्थिताम् ॥ प्रशांतमारुतोद्धूतांजलोर्मिमिवनिःस्वनाम् ॥ ७ ॥ त्यक्तांयज्ञायुधैःसर्वैरभिरूपैश्चयाजकैः ॥ सुत्याकालेसुनिर्वृत्तेवे दिंगतरवामिव ॥ ८ ॥ गोष्ठमध्येस्थितामार्तामचरंतींनवंतृणम् ॥ गोवृषेणपरित्यक्तांगवांपत्नीमिवोत्सुकाम् ॥ ९ ॥

दशा हो रही थी ॥४॥ अथवा यज्ञीय घृतके स्पर्शसे प्रज्वलित अग्निकी शिखा जिस प्रकार पहलेतो धुयेंसे रहित होकर सोनेके समान उजलीज्योतिका प्रकाश करके उठे और फिर जलके छिडकनेसे वह सहसा बुझ जाती है और अच्छी नहीं लगती वैसेही रामचन्द्रजीके विरहमें अयोध्या होरही थी ॥५॥ सब कवचोंकेछिन्न भिन्न होनेसे और महायुद्धमें वीरोंके मारे जानेसे और हाथी घोडे रथ और ध्वजाओंके छिन्न भिन्न होनेसे विपदकी घिरी सेनाजिस प्रकारसे हो जाती है वैसेही अयोध्या होगई थी ॥६॥ अथवा प्रबल वायुके वेगसे समुद्रकी लहरें जैसे झाग सहित गर्जकर उठती हैं और पीछे मंद पवन चलनेके कारण शब्दरहित होजाती हैं यही दशा अयोध्यापुरीकी हो रही थी ॥७॥ अथवा यज्ञके हो चुकनेपर यज्ञके करानेवालोंने जिसको त्याग कर दिया है. ऐसे यज्ञके स्रुवादिपात्रोंके न रहनेसे जिसमें पहलेके समान वेदोंके पाठके शब्दभी न होतेहों ऐसी पड़ी हुई यज्ञशालाके समान अयोध्यापुरीकी दशा होरही थी ॥८॥ अथवा बैलके छोड देनेसे तरुण

गाय जैसे उसके विरहकी उत्कंठासे बहुतही व्याकुल होकर नई२घासको न खाय और दीन होकर कठिनाईसे गोठमें टिकीहो यही दशा अयोध्यापुरीकी होरहीथी ॥९॥ अथवा गजमुक्ता जैसे पद्मराग और स्फटिकादि अतिदेदीप्यमान श्रेष्ठजातिकी मणियोंसे अलग रहनेसे शोभा नहीं पाती सो यहीदशा अयोध्याजीकीहोरहीथी ॥१०॥ पुण्यके क्षीण होजानेसे अपनेस्थानकरके चलायमानहोनेसे और आकाशसे गिरनेसे तारा जिसप्रकार झलकहीन होजाता है वैसेही अयोध्या प्रभाहीनहोरहीथी॥११॥अथवा वसन्तकेअन्तमें मधुपान करनेसे मतवाले भ्रमरों करके युक्तखिले हुए फूलवालीवनकीलता जिसप्रकार भयंकर दावानलकी आगसे झुलसजाय ऐसीही अयोध्यापुरीकी दशा थी ॥१२॥ राजमार्गोंपर कहीं भी छिडकाव नहींहोरहाथाबाजारकी दुकानें सब बन्द होरही थीं जैसे बादरसे घिरीहुई नक्षत्र चन्द्र युक्तरात्रि शोभित नहीं होती वेसही अयोध्यापुरी थी॥१३॥अयोध्यापुरी उस समय ऐसीजानपडती थीमानों मदपी नेवालोंके विरहसे मद करके हीन टूटे फूटे

प्रभाकराद्यैःसुस्निग्धैःप्रज्वलद्भिरिवोत्तमैः ॥ वियुक्तांमणिभिर्जात्यैर्नवांमुक्तावलीमिव ॥ १० ॥ सहसाचरितांस्थानान्महींपुण्यक्षयोद्गताम् ॥ संहृतद्युतिविस्तारांतारामिवदिवश्च्युताम् ॥ ११ ॥ पुष्पनद्धांवसंतांतेमत्तभ्रमरशालिनीम्॥द्रुतदावाग्निविप्लुष्टांक्लांतांवनलतामिव॥ १२ ॥ संमूढनिगमांसर्वांसंक्षिप्तविपणापणाम् ॥ प्रच्छन्नशशिनक्षत्रांद्यामिवांबुधरैर्युताम् ॥१३॥क्षीणपानोत्तमैर्भग्नैःशरावैरभिसंवृताम्॥हतशौण्डामिवध्वस्तांपानभूमिमसंस्कृताम् ॥१४॥ वृक्णभूमितलांनिम्नांवृक्णपात्रैःसमावृताम् ॥ उपयुक्तोदकांभग्नांप्रपांनिपतितामिव ॥१५॥ विपुलांविततांचैवयुक्तपाशांतरस्विनाम् ॥ भूमौबाणैर्विनिकृत्तांपतितांज्यामिवायुधात् ॥१६॥ सहसायुद्धशौंडेनहयारोहेणवाहिताम् ॥ निहतांप्रतिसैन्येनवडवामिवपातिताम् ॥ १७ ॥ भरतस्तुरथस्थःसञ्श्रीमान्दशरथात्मजः ॥ वाहयंतंरथश्रेष्ठंसारथिंवाक्यमब्रवीत् ॥ १८ ॥ किंनुखल्वद्यगंभीरोमूर्च्छितोननिशाम्यते ॥ यथापुरमयोध्यायांगीतवादित्रनिःस्वनः ॥ १९ ॥

पात्रोंसे भरा बिना झाडा बुहारा खुले हुये स्थानमें मद्यालय पडा है ॥१४॥ अथवा क्या चबूतरे क्या पानीपीनेके बरतन,क्या खंब सबही चीजवस्तु जिसकी टूटगई हैं जलका लेश नहीं है ऐसी दशा धारण किये मानो कोई पौशाला पृथ्वी पर गिर पडीहै यही अयोध्यानगरीकी दशा थी॥१५॥ अथवा विपुल(बडी) धनुषकी प्रत्यंचा मानों बलवान् वीर लोगोंके वाण लगनेसे टूटधनुषसे गिरपृथ्वी पर पडीहै ऐसेही अयोध्यापुरीजानपडती थी ॥१६॥ अथवा युद्ध करनेमें मतवाले सवारकरके बलपूर्वक चलाया हुआ घोडामानों दुश्मनकी सेनासे मारा जाकर पृथ्वीपरपड़ाहो यहीअयोध्याकीदशा होरहीथी ॥१७॥ श्रीमान् दशरथनन्दन भरतजी रथमें बैठे हुए उन रथ चलानेवालोंमें चतुर सुमंत्रजीसे बोले ॥१८॥ कि,पहले जो अयोध्यामें दशों दिशाओंमें छाजानेवाला गंभीरगीत और बाजोंका

शब्द होताथा आज वह नहीं सुनाई आता ॥ १९ ॥ वारुणीमालायें चंदन और अगर इन सबकी गंध अब पहलेके समान चारों ओर फैली हुई नहीं जान पडती॥ २० ॥ इसके सिवाय रथादि सवारियोंका शब्द घोडोंका हिनहिनाना मतवाले हाथियोंका चिंघाडनाभी नहीं सुनाई आता ॥२१॥ श्रीरामचन्द्रजीके वन चले जाने पर अयोध्यानगरीके युवापुरुषोंने संतापित होकर अगर, चन्दन औरबडे२ मोलके हार शरीरपर धारणकरने लगाने छोड दिये ॥२२॥ सब प्रजा लोग पहलेके समान चित्रविचित्र मालायें धारण कर बाहर समीर सेवन करने नहीं जातेसब नगरहीरामचन्द्रजीके शोकसे ऐसा व्याकुल हो रहाहै कि नगरीमें उत्सवका नामतक भी सुनाई नहीं देता ॥२३॥ बस, जब किहमारे बडे भाई श्रीरामचन्द्रजी वनको चले गये तोउनके संगही संग नगरीकी सब शोभा और द्युति

वारुणीमदगंधश्चमाल्यगंधश्चमूर्च्छितः ॥ चंदनागुरुगंधश्चनप्रवातिसमंततः ॥ २० ॥ यानप्रवरघोषश्चसुस्निग्धहयनिःस्वनः ॥ प्रमत्तगजनादश्चमहांश्चरथनिःस्वनः ॥ २१ ॥ नेदानींश्रूयतेपुर्यामस्यांरामेविवासिते ॥ चंदनागुरुगंधांश्चमहार्हांश्चवनस्रजः ॥ २२ ॥ गतेरामेहितरुणाः संतप्तानोपभुंजते ॥ बहिर्यात्रांनगच्छंतिचित्रमाल्यधरानराः ॥ २३ ॥ नोत्सवाःसंप्रवर्तंतेरामशोकार्दितेपुरे ॥ साहिनूनंममभ्रात्रापुरस्यास्यद्युतिर्गता ॥ २४ ॥ नहिराजत्ययोध्येयंसासारेवार्जुनीक्षपा ॥ कदानुखलुमेभ्रातामहोत्सवइवागतः ॥ २५ ॥ जनयिष्यत्ययोध्यायांहर्षंग्रीष्मइवांबुदः ॥ तरुणैश्चारुवेषैश्चनरैरुन्नतगामिभिः ॥ २६ ॥ संपतद्भिरयोध्यायांनाभिभांतिमहापथाः ॥ इतिब्रुवन्सारथिनादुःखितोभरतस्तदा ॥ २७ ॥ अयोध्यांसंप्रविश्यैवविवेशवसतिंपितुः ॥ तेनहीनांनरेंद्रेणसिंहहीनांगुहामिव ॥ २८ ॥

चली गई ❋ ॥ २४॥ इस समय वेगवान् वृष्टिकी धाराओंसे युक्तशरत् कालकी रात्रिके समान अयोध्यामें कुछभी शोभा या सुन्दरताई नहीं है, कितने दिनोंमें हमारे भइया आर्य रामचन्द्रजी बडे उत्सवके समान फिर अब यहां आवेंगे ? ॥ २५ ॥ कितने दिनोंमें फिर वह ग्रीष्मकालीन बादलके समान अयोध्यामें आयकर सब जनोंको हर्ष उत्पन्न करावेंगे ? इस समय प्रथमके समान अयोध्याजीमें लोग सुन्दर वेषसे सज धजकर सवारियोंपर चढे ॥२६॥ बडे२ राजमार्गोंमें शोभा विस्तार नहीं करते, सारथीसे इस प्रकार कहते२ भरतजी दुःखित होकर ॥ २७ ॥ अयोध्यामें प्रवेश करते हुए और सबसे पहले सिंह हीनगुफाके समान

❋ दोहा–अहह राम बिन यह पुरी, भई कान्तिसे हीन । जित तित बिल्लाते फिरें, नगर नारि नर दीन ।।कब आवहिंगे श्याम घन, भ्राता मम श्रीराम ।। कब होइ है शोभामई, पुरी महासुख धाम ।।२।। भजन–पुरी यह शोभाहीन लखात ।। द्वारबन्द सूने सब फाटक कोउ न आवत जात ।। कमलबिना सरवर नहिं राजत भये वृक्ष बिन पात ।। हाय त्यागकर गये हमारे बड़े भ्रात और तात ।। मिश्र उन्हीं को सुमिरण करकर दुर्बल भये सब गात ।। १ ।।

राजा दशरथजी जिसमें नहीं ऐसे पिताजीके भवनको गये ॥ २८ ॥ पूर्वकालके विषय देवासुर संग्राममें सूर्य नारायण जब राहु करके ग्रसे गये थे उससमयमें उन्होंने जिस प्रकार तेजहीन होकर देवताओंको शोक उपजाया था वैसेही दशरथजीका रनवास उनके विरहसे शोभाहीन और सब भांति बिना झाडा बुहारा देखकर भरतजी महादुःखित हुए और रोने लगे ॥ २९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० अयो० भाषायां चतुर्दशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११४ ॥ उसके पीछे दृढव्रतधारी भरतजी सब माताओंको अयोध्याजीमें यथास्थानमें टिकाय मारे शोकके तपे हुए वसिष्ठादि गुरुजनोंसे बोले ॥ १ ॥ कि, अब हम नंदिग्राममें जाकर रहेंगे सो इसके विषयमें हम आप सबलोगोंसे सलाह पूछते हैं वहीं रहते२ पिता और भ्राताके विरहका दुःख सहेंगे ॥२॥ पिताजी तो स्वर्गको सिधारे हैं और पिताके समान बडे भाईभी वनको चलेगये सो वह महायशवान् रामचन्द्रजीही अयोध्याके राजा हैं; सो हम राज्य करनेके लिये महाराज रामचन्द्रजीहीकी

तदातदंतःपुरमुंज्झितप्रभसुरैरिवोत्कृष्टमभास्करंदिनम् ॥ निरीक्ष्यसर्वत्रविभक्तमात्मवान्मुमोचबाष्पभरतःसुदुःखितः ॥२९॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा मायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च०सा०अयोध्याकांडे चतुर्दशाधिकशततमः सर्गः॥ ११४ ॥ ततोनिक्षिप्यमातृस्ताअयोध्यायांदृढव्रतः ॥ भरतःशोकसंतप्तोगुरूनिदमथाब्रवीत् ॥ १ ॥ नंदिग्रामंगमिष्यामिसर्वानामंत्रयेऽत्रवः ॥तत्रदुःखमिदंसर्वंसहिष्येराघवंविना ॥२॥ गतश्चाहो दिवंराजावनस्थःसगुरुर्मम ॥रामंप्रतिक्षेराज्यायसहिराजामहायशाः ॥३॥ एतच्छ्रुत्वाशुभंवाक्यंभरतस्यमहात्मनः॥ अब्रुवन्मंत्रिणःसर्वेवसि ष्ठश्चपुरोहितः॥४॥सुभृशंश्लाघनीयंचयदुक्तंभरतत्वया॥ वचनंभ्रातृवात्सल्यादनुरूपंतवैवतत्॥५नित्यंतेबंधुलुब्धस्यतिष्ठतोभ्रातृसौहृदे॥मार्ग मार्यंप्रपन्नस्यनानुमन्येतकःपुमान्॥६॥मंत्रिणांवचनंश्रुत्वायथाभिलषितंप्रियम्॥ अब्रवीत्सारथिंवाक्यंरथोमेयुज्यतामिति ७॥प्रहृष्टवदनःसर्वा मातृःसमभिभाष्यच॥आरुरोहरथंश्रीमाञ्शत्रुघ्नेनसमन्वितः॥८ आरुह्यतुरथंक्षिप्रंशत्रुघ्नभरतावुभौ॥ययतुःपरमप्रीतौवृतौमंत्रिपुरोहितैः॥९॥

बाट देखें ॥ ३ ॥ महात्मा भरतजीके यह कल्याणदायक शुभ वचन श्रवण करके मंत्रीलोग और पुरोहित वसिष्ठ इत्यादि सब ही बोले ॥४॥ कि, हेभरतजी ! तुमने भ्राताके स्नेहवश होकर जो वचन कहे हैं वह बहुतही अच्छेहैं क्यों न हो यह वचन तुम्हारे ही कहनेयोग्यहैं ॥५॥ तुम सदाही भाई बन्धुओंमें अनुरागीहो और भ्राताओंकी मित्रतामें टिकेहो और सदा श्रेष्ठपदवी तुमने धारणकररक्खी है फिर भला कौन पुरुष तुम्हारी बातको न मानेगा ॥६॥ भरतजी गुरु व मंत्री लोगोंके अपनी अभिलाषाके अनुसार प्यारे वचन सुनकर सुमंत्रको यह आज्ञा देते हुए कि "हमारा रथ सजाओ" ॥७॥ फिर जब कि, रथ तैयार होगया तब प्रसन्न वदनसे सब माताओंसे यथाविधि भलीभांति भाषण कर बिदाले शत्रुघ्नजीके सहित रथपर बैठे॥८॥ भरत और शत्रुघ्नजी तेज चलनेवाले रथपर सवार होकर मंत्री

और पुरोहित लोगोंके साथ जाने लगे ॥९॥ वसिष्ठादि द्विजातिलोग पूर्वदिशाकी ओरको चले जहांसे कि नंदिग्रामको मार्ग गयाथा उसी रास्तेपर आगे२चले ॥१०॥ जब भरतजी वहांसे चले तब उनकी सेनाभी विना बुलायेही उनके पीछे२जाने लगी और पुरवासी लोगभी सेनाके साथ२ चले ॥११॥ इस ओर भाइयोंके अनुरागी धर्मात्मा भरतजी रामकी खडाउवें शिरपर धारणकर रथपर सवारहो बहुत शीघ्र नंदिग्राममें पहुँचे ॥१२॥ उसके पीछे वह शीघ्रही नंदिग्राममें प्रवेशकर शीघ्रही रथसे उतर गुरु लोगोंसे बोले ॥१३॥ कि,भइया श्रीरामचन्द्रजीने यह श्रेष्ठ राज्य हमें धरोहरकी समान सौंपा है सो उनकी यह स्वर्णलगी हुई दोनों पादुका इस राज्यकी रक्षा करेंगी ॥१४॥ अनन्तर भरतजी रामचन्द्रजीकी दीहुई वह खडाऊं अपने शिरसे लगाय दुःखसे बहुतही तपकर सब गुरु मंत्री आदि जनोंसे बोले ॥१५॥ तुम सब लोग आर्य रामचन्द्रजीकी चरणस्वरूप इन खडा उवोंपर शीघ्रतासे छत्र लगाओ क्योंकि, इन पादुकाओंके द्वारा राज्यमें मानों धर्म

अग्रतोगुरवःसर्वेवसिष्ठप्रमुखाद्विजाः ॥ प्रययुःप्राङ्मुखाःसर्वेनंदिग्रामोयतोभवेत ॥ १० ॥ बलंचतदनाहूतंगजाश्वरथसंकुलम् ॥ प्रययौभरते यातेसर्वेचपुरवासिनः ॥ ११ ॥ रथस्थःसतुधर्मात्माभरतोभ्रातृवत्सलः ॥ नंदिग्रामंययौतूर्णंशिरस्यदायपादुके ॥ १२ ॥ भरतस्तुततःक्षिप्रंनंदिग्रामंप्रविश्यसः ॥ अवतीर्यरथात्तूर्णंगुरूनिदमभाषत ॥१३॥ एतद्राज्यंममभ्रात्रादत्तंसंन्यासमुत्तमम् ॥ योगक्षेमवहेचेमेपादुकेहेमभूषिते ॥ १४ ॥ भरतःशिरसाकृत्वासंन्यासंपादुकेततः ॥ अब्रवीद्दुःखसंतप्तःसर्वंप्रकृतिमंडलम् ॥ १५ ॥ छत्रंधारयतक्षिप्रमार्यपादाविआभ्यांराज्येस्थितौमौमतौ ॥ धर्मःपादुकाभ्यांगुरोर्मम ॥ १६॥ भ्रात्रातुमयिसंन्यासोनिक्षिप्तःसौहृदादयम् ॥ तमिमंपालयिष्यामिराघवागमनंप्रति ॥ १७ ॥ क्षिप्रंसंयोजयित्वातुराघवस्यपुनःस्वयम् ॥ चरणौतौतुरामस्यद्रक्ष्यामिसहपादुकौ ॥ १८ ॥ ततोनिक्षिप्तभारोऽहंराघवेणसमागतः ॥ निवेद्यगुरवेराज्यंभजिष्येगुरुवर्तिताम् ॥ १९ ॥ राघवायचसंन्यासंदत्त्वेमेवरपादुके ॥ राज्यंचेदमयोध्यांचधूतपापोभवाम्यहम् ॥ २० ॥ सवल्कलजटाधारीमुनिवेषधरःप्रभुः ॥ नंदिग्रामेऽवसद्वीरःससैन्योभरतस्तदा ॥ २१ ॥

व्यवहार टिकाहै क्योंकि यह हमारे परमगुरुकी पादुकाहैं॥१६॥ भाई रामचंद्रजीने सौहार्दके वश होकर हमको यह राज्यरूप परम कठिन थाती अर्पण की है सो वह जितने दिनतक कि,अयोध्यामें लौटकर नहीं आतेहैं तबतक हम विधिविधानसे इसराज्यका पालन करेंगे॥१७॥ फिर जब कि, वह अयोध्याजीमें आजायँगे तब हम अपने हाथसे उनके चरणोंमें यह,पादुका पहरादेंगे और फिर पादुका पहरे हुए उनके दर्शन करेंगे ॥१८॥ उसके पीछे उनकेसाथ मिलकर उनका राज्य उनको देदेंगे अपने ऊपरसे सब बोझ अलगकर गुरुजनोंकी जैसी सेवा करनी चाहिये वैसी सेवा श्रीरामचन्द्रजीकी करेंगे ॥१९॥ उसकाल थातीरूप यह दोनों खडाऊं राज्य और अयोध्याजीके सहित उनको लौटा देकर हम सब पापसे छूट जायंगे ॥२०॥ यह कहकर वीरवर प्रभु भरतजी उससमय चीरवसन और जटा

धारण करके मुनियोंका वेष धारणकर सब सेनासहित नंदिग्राममें रहने लगे॥२१॥वह अपने हाथ छत्र और चँवर पादुकाओं पर धारणकर राज्यके पालनेका सब वृत्तान्त रामचन्द्रही समझकर खडाउवोंसे कहकर उसको करते कि, अमुक कार्य किया जाता है॥२२॥ इसप्रकार श्रीमान् भरतजी पादुकाओंका अभिषेक कराय आप उसके अधीनमें सदामें राजकार्य करनेमें लगे रहते ॥२३॥ उस समय राज्यके पालन करनेमें जो कुछ करना होता, और जो कुछ बडे २ मोलकी नजरें भटें आतीं वह सब प्रथम पादुकाओंके निवेदन करदी जातीं और फिर यथाविधिसे उनका व्यवहार किया जाता ॥२४॥ इत्यार्षे श्रीमद्वा० वा० आ० अयो० भाषायां पंचदशाधिकशततमः सर्गः ॥११५॥ जबकि, भरतजी अयोध्याजीमें लौटआकर नंदिग्राममें वास करने लगे तब इस ओर श्रीरामचन्द्रजीने देखा कि

सवालव्यजनंछत्रंधारयामाससस्वयम् ॥ भरतःशासनंसर्वंपादुकाभ्यांनिवेदयन् ॥२२॥ ततस्तुभरतःश्रीमानभिनषिच्यार्यपादुके॥तदधीनस्तदा राज्यंकारयामाससर्वदा॥२३॥तदाहियत्कार्यमुपैतिकिंचिदुपायनंचोपहृतंमहार्हम्॥सपादुकाभ्यांप्रथमंनिवेद्यचकारपश्चाद्भरतोयथावत्॥२४॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० च० सा० अयो० पंचदशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११५ ॥ प्रतियातेतुभरतेवसन्रामस्तदावने ॥ लक्षयामाससोद्वेगम- थौत्सुक्यंतपस्विनाम् ॥ १ ॥ येतत्रचित्रकूटस्यपुरस्तात्तापसाश्रमे ॥ राममाश्रित्यनिरतास्तानलक्षयदुत्सुकान् ॥ २ ॥ नयनैर्भ्रुकुटीभिश्चरामं निर्दिश्यशंकिताः ॥ अन्योन्यमुपजल्पंतःशनैश्चक्रुर्मिथःकथाः ॥३॥ तेषामौत्सुक्यमालक्ष्यरामस्त्वात्मनिशंकत ॥ कृतांजलिरुवाचेदमृषिंकु- लपतिंततः ॥ ४ ॥ नकच्चिद्भगवन्किंचित्पूर्ववृत्तमिदंमयि ॥ दृश्यतेविकृतंयेनविक्रियंतेतपस्विनः ॥ ५ ॥

यहां के तपस्वी लोग कुछ डर गये हैं, और यहांसे दूसरे आश्रमों में जानेका विचार किये हैं ❋ ॥ १ ॥ प्रथम जो सब तपस्वी लोग चित्रकूट के उन आश्रमोंमें रामचन्द्रजी को आश्रय करके सदा आनंदसे रहते थे इस समय वह सब रामचन्द्रजी को देख कुछ कहने को मन करते थे ॥२॥ वह भौंहें टेढीकर रामचन्द्रजीको देखकर शंकायुक्त ही परस्पर धीरे २ कुछ कहते थे यह राम स्त्री सहित यहां रहते हैं इस कारण राक्षसादिक इनके लेनेकी शंकासे यहां आकर हमें दुःख देते हैं इससे और कहीं चलें ॥३॥ तब रामचन्द्रजीने जाना कि; यह लोग हमसे कुछ डर से गये हैं तब हाथ जोडकर उन सबोंके मालिक ❋ वाल्मीकिजी से कहा॥४॥कि, हे भगवन् ! हमने पहला आचरण किया राज्योचित व्यवहार में क्या कुछ बुराई देखी की; जिस कारण करके आप लोगों

• चैत्रशुक्ला दशमी पुष्यनक्षत्रमें रामको वनवास हुआ पूर्नोंके दिन अर्द्धरात्रिमें राजा दशरथका मरण हुआ फिर एक पखवारे भरतका आगमन अयोध्यामें हुआ एक पखवारा दशरथजीकी क्रियामें व्यतीत हुआ इस प्रकार वैशाख बीत कर ज्येष्ठके प्रारंभमें भरतजी चित्रकूट गये फिर वर्षा आजानेसे कार्तिक शुक्ल पूर्णिमातक रामचंद्र चित्रकूटपर रहे तब मुनियोंकी उत्कंठा हुई कुछ भरतके ही चले आनेपर नहीं ।।❋ यह वाल्मीकि ऋषि और हैं ग्रंथकर्ता नहीं हैं ॥

के मन में यह विकार पैदा हुआ है ? ॥५॥ अथवा ऋषि लोगोंने हमारे छोटे भाई महानुभाव लक्ष्मणजी को प्रमादके वश हो जानेसे कुछ अन्यायका आचरण करते देखा है ? ॥६॥ या हमारी सेवा और टहलमें मन लगाये हुये सुकुमारी जनकदुलारी सीताजीने तो भ्रममें पडकर आपके विरुद्ध कोई आचरण नहीं किया ? ॥७॥ बडे तपवाले और वृद्ध उस आश्रमके मालिक ऋषिराज वाल्मीकिजी मानों जराके प्रभावसे कांपते हुए सब भूतोंपर दया करनेवाले रामचन्द्रजी से बोले ॥८॥ हे तात! पवित्र स्वभाववाली सदा कल्याणहीमें जिनकी प्रीति है वह जानकीजी किसी के साथ और विशेष करके ऋषियोंके ही साथ, क्या कभी किसी प्रकार के युक्ति विरुद्ध व्यवहार कर सकती हैं ?कभी नहीं ॥९॥ तबभी आपके ही अर्थ ऋषि लोग इसी ऊपर राक्षस लोगोंने अत्याचार करना आरंभ किया है वह सब ऋषि लोग इसी भयसे भीत होकर परस्पर इस प्रकारसे बातें करते हैं परन्तु आपसे कुछ कह नहीं सकते ॥ १० ॥ रावण का छोटा भाई खर नाम राक्षस

प्रमादाच्चरितंकिंचित्कच्चिन्नावरजस्यमे ॥ लक्ष्मणस्यर्षिभिर्दृष्टंनानुरूपंमहात्मनः ॥६॥ कच्चिच्छुश्रूषमाणावःशुश्रूषणपरा मयि ॥ प्रमदाभ्युचितांवृत्तिंसीतायुक्तांनवर्तते॥७अथर्षिर्जरयावृद्धस्तपसाचजरांगतः॥वेपमानइवोवाचरामंभूतदयापरम्॥८कुतःकल्याणसत्त्वायाःकल्याणाभिरतेः सदा ॥ चलनंतातवैदेह्यास्तपस्विषुविशेषतः ॥९॥ त्वन्निमित्तमिदंतावत्तापसान्प्रतिवर्तते ॥ रक्षोभ्यस्तेनसंविग्नाःकथयंतिमिथःकथाः ॥१०॥ रावणावरजःकश्चित्खरोनामेहराक्षसः॥उत्पाटयतापसान्सर्वाञ्जनस्थाननिवासिनः॥११॥धृष्टश्चजितकाशीचनृशंसःपुरुषादकः॥अवलिप्तश्चपापश्चत्वांचतातनमृष्यते॥१२॥त्वंयदाप्रभृतिह्यस्मिन्नाश्रमेतातवर्तसे॥ तदाप्रभृतिरक्षांसिविप्रकुर्वंतितापसान् ॥१३॥ दर्शयंतिहिबीभत्सैःक्रूरैर्भीषणकैरपि॥ नानारूपैर्विरूपैश्चरूपैरसुखदर्शनैः ॥१४अप्रशस्तैरशुचिभिःसंप्रयुज्यचतापसान्॥प्रतिघ्नंत्यपरान्क्षिप्रमनार्याःपुरतःस्थितान्॥१५॥

रहता है वह जनस्थानके रहनेवाले सब तपस्वियोंको दुःख देता है ॥ ११॥ वह दुष्ट बडाही ढीठ है, उस निर्लज्ज नरका मांस खानेवालेने काशीपुरी भी जीती है सो अब यह आपका रहना यहां नहीं सहन करके हम लोगोंको भी आपका अनुयायी जानकर कष्ट देता है ॥१२॥ हे तात ! जबसे कि, तुमने इस आश्रममें आकर वास किया है तबसे यह राक्षस लोग ब्राह्मण और तपस्वी लोगोंको और भी दुःख देते हैं ॥ १३ ॥ वह लोग बीभत्स, क्रूर भयानक, विकट अनेक प्रकारकी मूर्तियां धारण करके तपस्वी लोगोंको डरवाते हैं ॥ १४ ॥ कभी वह लोग अनेक प्रकारके पापमूल और अपवित्र पदार्थ लोगोंके आश्रमोंमें डालकर ऋषियोंका बडा अनभल करते हैं वह अधिकतर सीधेसाधे स्वभाववाले ऋषियोंको देखपाते हैं बस वैसेही उनको सताते हैं ॥ १५ ॥

और वह राक्षस लोग छिप २ कर सब स्थानोंमें ही फिरते हैं और जहां किसी सोते या अचेत ऋषिको पाते हैं सब तत्क्षणही उनको मार डालते हैं और अपनी प्रसन्नता प्रगट करते हैं ॥ १६ ॥ और होमके समय स्रुक् इत्यादिक यज्ञ के पात्र इधर उधर फेक कर आग को जलसे बुझाकर कलशों को तोड डालते हैं ॥१७॥ अब इसही कारणसे यह सब ऋषि लोग इन सब दुरात्माओं करके उपद्रव होते हुए आश्रमोंके त्याग करनेकी इच्छा किये हमने किसी और स्थानपर चलनेके लिये कह रहे हैं ॥१८॥ हे रामचन्द्रजी ! पापात्मा राक्षस लोग जिसमें कि, तपस्वियों का प्राण न मारने पावें इस कारणसे अब हम इस आश्रमको त्याग कर देते हैं॥१९॥इस आश्रमके निकट ही महर्षि अश्वका जो कंदमुल फलयुक्त विचित्र तपोवन है हम सब मुनियोंके साथ वहींको चले जांयगे क्योंकि वहां मुनिके डरसे राक्षस लोग नहीं जाते ॥२०॥ हे तात! जो विचारमें आवे तो आप भी हमारे साथ चले चलें क्योंकि यह राक्षस तुम्हारे

तेषुतेष्वाश्रमस्थानेष्वबुद्धमवलीयच ॥ रमंतेतापसांस्तत्रनाशयंतोऽल्पचेतसः ॥१६॥ अवक्षिपंतिस्रुग्भांडानग्नीन्सिचंतिवारिणा ॥ कलशांश्च प्रमर्दंतिहवनेसमुपस्थिते॥१७॥तैर्दुरात्मभिराविष्टानाश्रमान्प्रजिघांसवः॥गमनायान्यदेशस्यचोदयंत्यृषयोऽद्यमाम् ॥ १८॥तत्पुरारामशारीरी-मुपर्हिंसांतपस्विषु ॥ दर्शयतिहिदुष्टास्तेत्यक्ष्यामइममाश्रमम ॥ १९ ॥ बहुमूलफलंचित्रमविदूरादितोवनम् ॥ अश्वस्याश्रममेवाहंश्रयिष्ये सगणःपुनः ॥२०॥ खरस्त्वय्यपिचायुक्तंपुरारामप्रवर्तते॥सहास्माभिरितोगच्छयदिबुद्धिःप्रवर्तते॥२१॥ सकलत्रस्यसंदेहोनित्यंयुक्तस्यराघव॥ समर्थस्यापिसहितोवासोदुःखमिहाद्यते॥२२॥ इत्युक्तवंतंरामस्तंराजपुत्रस्तपस्विनम् ॥ नशशाकोत्तरैर्वाक्यैरवबद्धुंसमुत्सुकम् ॥२३॥ अभिनंद्य समापृच्छ्यसमाधायचराघवम्॥सजगामाश्रमंत्यक्त्वाकुलैःकुलपतिःसह॥२४॥रामःसंसाध्यऋषिगणमनुगमनादेशात्तस्मात्कुलपतिमभिवाद्य ऋषिम् ॥ सम्यक्प्रीतैस्तैरनुमतउपदिष्टार्थःपुण्यंवासायस्वनिलयमुपसंपेदे ॥ २५ ॥

साथ भी अयोग्यही कर्म करेगा ॥२१॥हे रघुनन्दन! यद्यपि आप सदा सावधान रहते हैं और राक्षसोंका नाश करनेमें भी आप भली भांति सामर्थ्य रखते हैं परन्तु स्त्रीके सहित इस आश्रममें शंकित चित्तसे रहना बहुत ही क्लेशदायी होगा॥२२॥ उस आश्रमके स्वामी वाल्मीकिजी दूसरे आश्रमको जाना ही चाहते हैं यह देखकर राजकुमार रामचन्द्रजी किसी प्रकारसे भी ऐसी कोई बात उनसे न कह सके जिससे कि, वह वहांसे न जाते॥२३॥ अनन्तर आश्रमके स्वामी; खिन्न चित्त हुए रामचन्द्रजी की प्रशंसा कर बहुत समझा बुझा उस आश्रमको छोड सब संगियों को साथ ले चले॥२४॥इस प्रकार जब कि, वह लोग वहांसे गमन करने को तैयार हुए तब रामचन्द्रजी भी कुछ दूरतक उनके साथ चले गये और फिर आश्रमस्वामीकी आज्ञाले वह प्रणाम कर अपनी कुटीको आये जब रामचन्द्रजी लौट

तब सबही ऋषियोंने प्रीतिसहित भली भांतिकरने योग्य कार्योंका उपदेश देकर उनको बिदादी ॥ २५ ॥ वह प्रभु श्रीरामचन्द्रजी उस तपस्वी विहीन आश्रमको क्षणभरके लिये भी तो अकेला नहीं छोडते थे परंतु उस स्थानके निकटवाले तपस्वी अनुगत हो सदा रामचंद्रजीके पास आया जाया करते थे ॥ २६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० अयो० भाषायांषोडशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११६ ॥ जब सब तपस्वी लोग वहांसे चले गये तो श्रीरामचन्द्रजी विविध कारणोंसे चिन्तायुक्त होकर वहां रहनेके अभिलाषी नहीं थे अर्थात् वह भी वहां रहना नहीं चाहते थे ॥ १ ॥ वह विचारते थे कि, यहाँ माताओंसे नगरवासियोंके और भइया भरतसे वरन् सबसेही हमारा मिलाप हुआ था सो उनकी सदाही याद आती रहकर हमें शोकाकुल करती है ॥ २ ॥ विशेषतः इस स्थानमें जो महात्मा भरतजीकी सेना टिकी थी उसके हाथी घोडोंने जो लीद और मूत्र त्याग किया था सो इस कारण यह आश्रम भूमि अपवित्र होगई और दुर्गन्धि आती है ॥ ३ ॥ इससे हम इस

आश्रममृषिविरहितंप्रभुःक्षणमपिनजहौसराघवः ॥ राघवंहिसततमनुगतास्तापसाश्चार्षचरितेधृतगुणाः ॥ २६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० च० सा० अ० षोडशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११६ ॥ राघवस्त्वपयातेषुसर्वेष्वनुविचिंतयन् ॥ नतत्रारोचयद्वासंकारणैर्बहुभिस्तदा ॥ १ ॥ इहमेभरतोदृष्टोमातरश्चसनागराः ॥ साचमेस्मृतिरन्वेतितान्नित्यमनुशोचतः ॥ २ ॥ स्कंधावारनिवेशेनतेनतस्यमहात्मनः ॥ हयहस्तिकरीषैश्चउपमर्दः कृतोभृशम् ॥ ३ ॥ तस्मादन्यत्रगच्छामइतिसंचिंत्यराघवः ॥ प्रातिष्ठतसवैदेह्यालक्ष्मणेनचसंगतः ॥ ४ ॥ सोऽत्रेराश्रममासाद्यतंववंदेमहायशाः ॥ तंचापिभगवानत्रिः पुत्रवत्प्रत्यपद्यत ॥ ५ ॥ स्वयमातिथ्यमादिश्यसर्वमस्यसुसत्कृतम् ॥ सौमित्रिंचमहाभागंसीतांचसमसांत्वयत् ॥ ६ ॥ पत्नींचसमनुप्राप्तांवृद्धामामंत्र्यसत्कृताम् ॥ सांत्वयामासधर्मज्ञःसर्वभूतहितेरतः ॥ ७ ॥ अनसूयांमहाभागांतापसींधर्मचारिणीम् ॥ प्रतिगृह्णीष्ववैदेहीमब्रवादृषिसत्तमः ॥ ८ ॥ रामायचाचचक्षेतांतापसींधर्मचारिणीम् ॥ दशवर्षाण्यनावृष्ट्यादग्धेलोकेनिरंतरम् ॥ ९ ॥

आश्रमको त्याग दूसरे स्थानको चले इस प्रकार सोच विचार कर राम सीता और लक्ष्मणजीके साथ वहांसे चल दिये ॥ ४ ॥ इसके पीछे वह महायशवान् रामचन्द्रजी अत्रिजीके आश्रममें पहुँचे और उनकी वंदना करते हुए भगवान अत्रिजीनेभी उनको पुत्रके समान ग्रहण किया ॥ ५ ॥ अपने हाथसे अर्घ्य पाद्यादि देकर भलीभांति आदर किया फिर महाभाग लक्ष्मण और सीताजीकी भी भली भांति कुशल क्षेम जिज्ञासा की ॥ ६ ॥ सर्वभूतोंका हितकरनेमें रत धर्मके जाननेवाले अत्रिजीने वहां वर्तमान अपनी वृद्ध स्त्री तापसी अनसूयाजीको बुलाया व बडे आदरसे बैठाकर समझाया ॥ ७ ॥ कि, महाभाग्यवान् परमतपस्विनी धर्मचारिणी अनसूयाजी ! जानकीजीका आदर सम्मान करो यह वचन ऋषिश्रेष्ठने कहा ॥ ८ ॥ उसके पीछे उन रामचन्द्रजीके निकट धर्मचारिणी अनसूयाजीका वृत्तान्त अत्रिजी कहने लगे कि

एक समय दश वर्ष पानी न वर्षनेसे यह संसार जला जाता था ॥९॥ तब इन दृढ नियममें निष्ठा करनेवाली अनसूयाजीने अपनी कठोर तपस्याके बलसे फिर कंदमूल फल उत्पन्न किये व मुनियोंके स्नान पान करनेके लिए गंगजी को भी अपने पास बुला लिया॥ १०॥ हे तात! इन्होंने व्रत व अनुष्ठानसहित दश हजार वर्षतक जो घोर कठिन तपस्याकी है उसके प्रभावसे सब ऋषि लोगोंकी तपस्याके विघ्न एक बारही लोप होगये हैं॥ ११॥ हे पापरहित ! फिर इन अनसूयाजीने देवतालोगोंका कार्य साधन करनेके लिए बहुतही शीघ्रतायुक्त हो दशरात्रिकी एकरात्रि की थी इनही सब कारणसे यह अनुसूयाजी तुम्हारी माताके समान हैं और पूजनीय हैं * ॥१२॥ इससे वैदेहीजी इस समय क्रोध रहित मनवाली सब भूतोंके नमस्कार करनेके योग्य इन वृद्ध तपस्विनीजीके पास चली जायँ ॥१३॥

ययामूलफलेसृष्टेजाह्नवीचप्रवर्तिता ॥ उग्रेणतपसायुक्तानियमैश्चाप्यलंकृता ॥ १० ॥ दशवर्षसहस्राणिययातप्तंमहत्तपः ॥ अनसूयाव्रतैस्तातप्रत्यूहाश्चनिबर्हिताः ॥ ११॥ देवकार्यनिमित्तंचययासंत्वरमाणया ॥ दशरात्रंकृतारात्रिःसेयंमातेवतेऽनघ ॥ १२॥ तामिमांसर्वभूतानांनमस्कार्यांतपस्विनीम् ॥ अभिगच्छतुवैदेहीवृद्धामक्रोधनांसदा ॥ १३॥ एवंब्रुवाणंतमृषिंतथेत्युक्त्वासराघवः ॥ सीतामालोक्यधर्मज्ञामिदंवचनमब्रवीत् ॥ १४॥ राजपुत्रिश्रुतंत्वेतन्मुनेरस्यसमीरितम् ॥ श्रेयोऽर्थमात्मनःशीघ्रमभिगच्छतपस्विनीम् ॥ १५॥ अनसूयेतियालोकेकर्मभिःख्यातिमागताताांशीघ्रमभिगच्छत्वमभिगम्यांतपस्विनीम् ॥ १६ ॥ सीतात्वेतद्वचःश्रुत्वाराघवस्ययशस्विनी ॥ तामत्रिपत्नींधर्मज्ञामभिचक्राममैथिली ॥ १७ ॥

भगवान् अत्रिजीने जब इस प्रकार कहा तब रामचन्द्रजी जो आज्ञा कह धर्मजाननेवाली सीताजीकी ओर देखकर बोले ॥ १४॥ हे राजपुत्री ! महार्षिजीने जो कहा वह तुमने विशेषतः सब सुना सो इस समय अपने कल्याणके लिये शीघ्र इस तपस्विनी अनसूयाजीके पास जाकर इनकी सेवा करो ॥ १५ ॥ इन्होंने बहुतही तप किया है और यह सबही लोगोंमें आदर पानेके योग्य हैं यह अपने कर्मके प्रभावसे सब संसारमें अनसूया नामसे विख्यात हुई हैं सो तुम शीघ्र ही इनकी शरणमें जाओ॥ १६॥ यशवान् जनकनन्दिनीजीने स्वामी रामचन्द्रजीके यह वचन सुनकर उन धर्मकी जाननेवाली अत्रिकी स्त्री अनसूयाकी प्रदक्षिणा की॥ १७॥

---

* एक समय अनसूयाजीकी सखी को माण्डव्यऋषिने शाप दिया कि दशरातोंके मध्यमें किसी प्रभातको तु विधवा हो जायगी तब अपनी सखी विधवा न हो जाय इस कारण अनसूयाजीने कहा कि अब सवेराही न होगा जो हमारी सखी विधवा हो इस कारण दशदिन तकरात्रिही बनी रही जब देवताओंने इनकी बड़ी स्तुतिको तो दशदिनबाद दिन निकला व इनकी सखी भी सुहागन रही क्योंकि मुनि का शाप दशही रातोंके बीच में किसी प्रभातमें उसके पतिके मरनेको था ॥

जरा अवस्थाके आजानेसे उनका सब शरीर शिथिल था सब अंगोंकी खाल सुकुड गई थी केश श्वेत होगये थे और हवाके वेगसे कांपते हुए केले के समान उनका देह सदाही कांपता था ॥१८॥ सीताजीने उन महाभाग पतिव्रता अनसूयाजीको प्रणाम किया और अपना नाम प्रकाश करके परिचय भी देती हुई॥१९॥ उन दयावती पतीव्रता महाभागा अनसूयाजीको प्रणाम करके जानकीजी उनके पैरोंमें पडीं और हाथजोड प्रफुल्लचित्तसे कुशल प्रश्न करने लगीं ॥ २० ॥ वृद्धा ऋषिकी स्त्री महाभागा धर्मचारिणी जनक नंदिनीजीको देख समझाकर बोलीं कि, तुम जो सदाही धर्मका पालन करती हो यह बडेही सौभाग्यकी बातहै ॥ २१ ॥ हे भामिनि ! जातिजन सन्मान धनसंपत्ति इनको छोड छाडकर जो तुम वनवासका व्रत धारण किये हुए रामचन्द्रजीके साथ वनको आयीहो यह बडेही भाग्यकी बात है ॥ २२ ॥ स्वामी नगरमें या वनमें जहां कहीं भी रहे, अच्छा बुरा जैसा कुछ भी हो सो जो स्त्रियें उसकोही अपना परम प्रियतम जानती

शिथिलांवलितांवृद्धांजरापांडुरमूर्धजाम् ॥ सततंवेपमानांगींप्रवातेकदलीमिव ॥१८॥ तांतुसीतामहाभागामनसूयांपतिव्रताम् ॥ अभ्यवादयदव्यग्रास्वंनामसमुदाहरत् ॥१९॥ अभिवाद्यचवैदेहीतापसींतांदमान्विताम् ॥ बद्धांजलिपुटाहृष्टापर्यपृच्छदनामयम् ॥२०॥ ततःसीतांमहाभागांदृष्ट्वातांधर्मचारिणीम् ॥ सांत्वयंत्यब्रवीद्वृद्धादिष्ट्याधर्ममवेक्षसे ॥२१॥ त्यक्त्वाज्ञातिजनंसीतेमानवृद्धिंचमानिनि ॥ अवरुद्धंवनेरामंदिष्ट्यात्वमनुगच्छसि ॥२२॥ नगरस्थोवनस्थोवाशुभोवायदिवाशुभः ॥ यासांस्त्रीणांप्रियोभर्तातासांलोकामहोदयाः॥२३॥ दुःशीलःकामवृत्तोवाधनैर्वापरिवर्जितः स्त्रीणामार्यस्वभावानांपरमंदैवतपतिः॥२४॥ नातोविशिष्टंपश्यामिबांधवंविमृशंत्यहम्॥ सर्वत्रयोग्यंवैदेहितपःकृतमिवाव्ययम्॥२५ नत्वेवमनुगच्छंतिगुणदोषमसत्स्त्रियः॥ कामवक्तव्यहृदयाभर्तृनाथाश्चरंतिया:॥२६॥ प्राप्नुवंत्ययशश्चैवधर्मभ्रंशंचमैथिलि ॥ अकार्यवशमापन्नाः स्त्रियोयाःखलुतद्विधाः ॥ २७ ॥ त्वद्विधास्तुगुणैर्युक्तादृष्टलोकपरावराः ॥ स्त्रियःस्वर्गेचरिष्यंतियथापुण्यकृतस्तथा ॥ २८ ॥

हैं उन सब स्त्रियोंके लिये महोदय लोकोंकी सृष्टि हुई है ॥ २३ ॥ अथवा स्वामी खोटे शीलवालाहो स्वेच्छाचारी (जो मनमें आवै सो करने वाला) धनहीन हो जैसाभी हो परन्तु आर्यस्वभाव स्त्रियोंका वही परम देवता है ॥ २४ ॥ हे जानकी ! स्वामीसे अधिक स्त्रियोंका बन्धु कोई नहीं है यह बात हमने विचारली है क्योंकि पति इस लोक और परलोक दोनोंमें ही अक्षय तपस्याके समान सुख देनेवाला है ॥ २५ ॥ जिनका हृदय कामके वश है ऐसी सत्यभ्रष्ट स्त्रियें जो कि, भरण पोषणही के लिये केवल स्वामीको स्वामी समझती हैं सो दुष्ट स्त्रियें ऐसा करनेके गुण दोषोंको नहीं जानतीं ॥ २६ ॥ हे जानकी ! ऐसी स्त्रियां जिनका वर्णन किया गया निश्चयही कुकर्म वश होकर अपना अयश फैलाती हैं और उनका धर्म भ्रष्ट हो जाता है ॥ २७ ॥ किन्तु जो स्त्रियां कि, तुम्हारी समान पतिव्रता गुणोंसे भूषित हैं और वह यह भी जानती हैं कि, लोकमें क्या अच्छा और क्या बुरा है वैसी

स्त्रियां वास्तवमें पुण्यवानोंके समान स्वर्गमें घूमा करती हैं ॥२८॥ इससे तुम पतिव्रता स्त्रियोंके नियमानुसार चलकर अच्छे मार्गका आश्रय ले सदा स्वामीकी सहधर्मचारिणी हो ऐसा करनेसे यश और अपार धर्म दोनोंही तुमको प्राप्त होंगे ॥ २९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० अयो० भाषायां सप्तदशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११७॥ निन्दारहित अनसूयाने जब इस प्रकार कहा तब जनकनन्दिनी जानकीजीने उनके वचनोंकी बडी बडाई कर उनको पूजा और धीरे २ कहने लगीं ॥ १ ॥ आपने जो उपदेश किया कि, पतिही स्त्रियोंका गुरु है सो आपके ऐसा कहनेसे कुछ आश्चर्य नहीं है, और हम भी इस बातको जानती हैं ॥२॥ स्वामी दरिद्र हो और चाहे उसका चालचलन कैसा ही बुरा हो परन्तु उसके प्रतिदुविधाको छोडकर दया सहित व्यवहार करना हमारी समान स्त्रियोंको अवश्य कर्त्तव्य है ॥ ३ ॥ फिर जब कि, स्वामी जितेन्द्रिय हो अपनेसे अधिक प्रेम करता हो अतिशय धर्मनिष्ठ, माता पिताके समान प्रिय करनेवाला उत्तम गुणधारी सुन्दर हो तो उसके प्रति स्त्री उचित

तदेवमेतंत्वमनुव्रतासतीपतिप्रधानासमयानुवर्तिनी ॥ भवस्वभर्तुः सहधर्मचारिणीयशश्चधर्मंचततःसमाप्स्यसि ॥ २९ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० च० सा० अयोध्याकांडेसप्तदशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११७॥ सात्वेवमुक्तावैदेहीत्वनसूयानसूयया ॥ प्रतिपूज्यवचोमंदंप्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ १ ॥ नैतदाश्चर्यमार्यायांयन्मांत्वमनुभाषसे ॥ विदितंतुममाप्येतद्यथानार्याःपतिर्गुरुः ॥२॥ यद्यप्येषभवेद्भर्ताअनार्योवृत्तिवर्जितः ॥ अद्वैधमत्रवर्तव्यं तथाप्येषमयाभवेत् ॥३॥ किंपुनर्योगुणश्लाघ्यःसानुक्रोशोजितेंद्रियः ॥ स्थिरानुरागोधर्मात्मामातृवत्पितृवत्प्रियः ॥४॥ यांवृत्तिंवर्ततेरामः कौशल्यायांमहाबलः ॥ तामेवनृपनारीणामन्यासामपिवर्तते ॥५॥ सकृद्दृष्टास्वपिस्त्रीषुनृपेणनृपवत्सलः ॥ मातृवद्वर्ततेवीरोमानमुत्सृज्यधर्मवित् ॥६॥ आगच्छंत्याश्चविजनंवनमेवंभयावहम् ॥ समाहितंहिमेश्वश्र्वाहृदयेयत्स्थिरंमम ॥७॥ पाणिप्रदानकालेचयत्पुरात्वग्निसन्निधौ ॥ अनुशिष्टंजनन्यामेवाक्यंतदपिमेधृतम् ॥ ८ ॥ नविस्मृतंतुमेसर्ववाक्यैःस्वैर्धर्मचारिणि ॥ पतिशुश्रूषणान्नार्यास्तपोनान्यद्विधीयते ॥ ९ ॥

व्यवहार करेगी इसमें विचित्रताही क्या है ॥४॥ हमारे महाबलवान् स्वामी रामचन्द्रजी अपनी माता आर्या कौशल्याजीके साथ जिस प्रकारका व्यवहार करते हैं सो उसी भांतिका भाव राजाकी और स्त्रियोंमें रखते हैं ॥५॥ इतना ही नहीं वरन् जिस स्त्रीको राजा दशरथजीने एक वार मात्र भी अपनी प्रियाके समान देखा है, राजाके प्यारे वीरवर धर्मज्ञ श्रीरामचन्द्रजी उस स्त्रीसे तो माताके व्योहार करते हैं ॥६॥ हम जब कि इस भयावने विजनवनको चली थीं तब सास कौशल्याजीने आपके समान हमें जो उपदेश प्रदान किया था वह हमारे हृदयमें अटलभावसे विराज रहा है ॥७॥ जब हमारा विवाह हुआ था तब उस समय अग्निके सामने हमारी माताने जो उपदेश किये थे वह भी हमारे हृदयमें धरे हैं ॥८॥ हे धर्मचारिणी! पतिसेवाके सिवाय स्त्रीको और सेवा नहीं करनी चाहिये इत्यादि जो उपदेश हमारे

बंधु बान्धवोंने किये हैं उनको जरा भी नहीं भूली ॥ ९ ॥ देवी सावित्रीजी पतिकी सेवा करके स्वर्गमें वास करती हैं, आप भी सावित्रीहीके समान पतिकी सेवा करके सब सिद्धियोंको प्राप्त हुई हो और स्वर्गको जाओगी॥१०॥ सब स्त्रियोंमें श्रेष्ठ और स्वर्गकी देवी रोहणीको भी एक मुहूर्त्तभर भी चन्द्रमासे अलग नहीं पाया जाता ॥११॥ इसही प्रकारसे और भी अरुधन्ती आदि श्रेष्ठ स्त्रियें स्वामीके प्रति अचल भक्तियुक्त हो सबही पतिसेवा स्वरूप अपने २ पुण्य कर्मोंके प्रभावसे स्वर्गमें वास करती हैं॥१२॥ जब श्रीसीताजीने इस प्रकार कहा तब अनसूयाजी यह सुनकर अतिशय हर्षको प्राप्त हुई और श्रीसीताजीका शिर सूँघ हर्षसे भरकर बोलीं॥१३॥ हमने अनेक प्रकारसे नियम पूर्वक अनुष्ठानोंके द्वारा जो तपस्या इकट्ठी की है! सो हे शुचिस्मिते! जनकनंदिनी! उस तपोबलसे हम तुमको इस समय वरदान देना चाहती हैं तुम वर मांगो ॥१४॥ हे मैथिलि! तुम्हरे वचन जैसे युक्तिसंगत हैं वैसेही महापवित्र भी हैं इस कारण हम अतिशय सन्तुष्ट हुई हैं अतएव कहो तुम्हारा क्या

सावित्रीपतिशुश्रूषांकृत्वास्वर्गेमहीयते ॥ तथावृत्तिश्चयातात्वपतिशुश्रूषयादिवम् ॥१०॥ वरिष्ठासर्वनारीणामेषाचदिविदेवता ॥ रोहिणीनविनाचंद्रंमुहूर्तमपिदृश्यते ॥११॥ एवंविधाश्चप्रवराःस्त्रियोभर्तृदृढव्रताः ॥ देवलोकेमहीयंतेपुण्येनस्वेनकर्मणा ॥१२॥ ततोऽनसूयासंहृष्टाश्रुत्वोक्तंसीतयावचः ॥ शिरस्याघ्रायचोवाचमैथिलींहर्षयंत्युत ॥ १३ ॥ नियमैर्विविधैराप्तंतपोहिमहदस्तिमे ॥ तत्संश्रित्यबलंसीतेछंदयेत्वांशुचिव्रते ॥१४॥ उपपन्नंचयुक्तंचवचनंतवमैथिलि ॥ प्रीताचास्म्युच्यतांसीतेकरवाणिप्रियंचकिम् ॥१५॥ तस्यास्तद्वचनंश्रुत्वाविस्मितामंदविस्मया ॥ कृतमित्यब्रवीत्सीतातपोबलसमन्विताम्॥१६॥ सात्वेवमुक्ताधर्मज्ञातयाप्रीततराभवत् ॥ सफलंचप्रहर्षंतेहंतसीतेकरोम्यहम् ॥१७॥ इदंदिव्यंवरंमाल्यंवस्त्रमाभरणानिच ॥ अंगरागंचवैदेहिमहार्हमनुलेपनम् ॥ १८ ॥ मयादत्तमिदंसीतेतवगात्राणिशोभयेत् ॥ अनुरूपमसंक्लिष्टंनित्यमेव भविष्यति ॥ १९ ॥ अंगरागेणदिव्येनलिप्तांगीजनकात्मजे ॥ शोभयिष्यसिभर्तारंयथाश्रीर्विष्णुमव्ययम् ॥ २० ॥

प्रिय कार्य करें॥१५॥ धर्मको जाननेवालीं तपके बलसे युक्त अनसूयाजीकी यह वचन सुनकर जानकीजी उनके वैभवके विषयमें विस्मित हो मृदुमंद हँसकर उनसे बोलीं कि, आपकी कृपासेही हमारी सब कामना पूर्ण होगई ॥१६॥ धर्मकी जाननेवाली अनसूयाजी सीताजीके यह वचन सुन औरभी प्रसन्न होकर कहने लगीं कि, हे जानकी! तुमको देखकर जो हमें बहुतही हर्ष उत्पन्न हुआ है इससे हम अवश्यही उसके उचित दान करके वह हर्ष सफल करेंगी॥१७॥ इससे हे जनकनंदिनि! यह दिव्यमाला श्रेष्ठ वस्त्रभूषण केशर मिला और कपूर मिलाचंदन और बडे मोलका उबटन॥१८॥ हम तुम्हे देती हूँ इन सब वस्तुओंके व्यवहार करनेसे तुम्हारे शरीरकी शोभा होगी इनमें कुछ संदेह नहीं इन सब वस्तुओंका व्यवहार नित्य प्रति करनेसे भी यह कभी मैली नहीं होंगी॥१९॥हे जानकि!

यह दिव्य केशर आदि मिलाया अंगराग है इसको लगानेसे लक्ष्मीजी जिसप्रकार विष्णुजीकी शोभाको बढाती हैं वैसेही तुम अपने स्वामीकी शोभाको बाढावोगी ॥२०॥ तब श्रीसीताजीने अनसूयाजीके बहुत श्रेष्ठ परम प्रीतिसे दिये वह वस्त्राभूषण अंगराग व माला इत्यादि ग्रहणकी ॥२१॥ इस प्रकार जनकदुलारी जानकीजी प्रीतिसे दी हुई वस्तुयें लेकर हाथ जोड धीर भावसे तपस्विनी अनसूयाजीकी उपासना करने लगीं ॥२२॥ जानकीजीको देखकर दृढव्रत धारण करनेवाली अनसूयाजी किसी प्रकारकी प्रियवार्ता सुननेकी इच्छासे जानकीजीसे पूछने लगीं ॥२३॥ कि, हे जानकि ! हमने सुना है कि, इन परम यशवान् रामचन्द्रजीने स्वयंवरमें तुमको पाया है ॥२४॥ हे जानकि ! सो इस समय हम तुम्हारे स्वयंवरका वृत्तान्त विस्तारसे सुननेकी इच्छा करती हैं इससे जो कुछ हुआ था वह समस्तही

सावस्त्रमंगरागंचभूषणानिस्रजस्तथा ॥ मैथिलीप्रतिजग्राहप्रीतिदानमनुत्तमम् ॥२१॥ प्रतिगृह्यचतत्सीताप्रीतिदानंयशस्विनी ॥ श्लिष्टांजलिपुटा धीरासमुपास्ततपोधनाम् ॥२२॥ तथासीतामुपासीनामनसूयादृढव्रता ॥ वचनंप्रष्टुमारेभेकथांकांचिदनुप्रियाम् ॥२३॥ स्वयंवरेकिलप्राप्तात्वमनेनयशस्विना ॥ राघवेणेतिमेसीतेकथाश्रुतिमुपागता ॥२४॥ तांकथांश्रोतुमिच्छामिविस्तरेणचमैथिलि ॥ यथाभूतंचकात्स्न्र्येनतन्मेत्वंवक्तुमर्हसि ॥२५॥ एवमुक्तातुसासीतातापसींधर्मचारिणीम् ॥ श्रूयतामितिचोक्त्वावैकथयामासतांकथाम् ॥२६॥ मिथिलाधिपतिर्वीरोजनकोनामधर्मवित् ॥ क्षत्रकर्मण्यभिरतोन्यायतःशास्तिमेदिनीम् ॥ २७ ॥ तस्यलांगलहस्तस्यकृषतःक्षेत्रमंडलम् ॥ अहंकिलोत्थिताभित्त्वाजगतींनृपतेः सुता ॥२८॥ समांदृष्ट्वानरपतिर्मुष्टिविक्षेपतत्परः ॥ पांसुगुंठितसर्वांगींविस्मितोजनकोऽभवत् ॥२९॥ अनपत्येनचस्नेहादंकमारोप्यचस्वयम् ॥ ममेयंतनयेत्युक्त्वास्नेहोमयिनिपातितः ॥ ३० ॥ अंतरिक्षेचवागुक्ताप्रतिमामानुषीकिल ॥ एवमेतन्नरपतेधर्मेणतनयातव ॥ ३१ ॥

हमको तुम सुनाओ ॥ २५ ॥ जनककुमारी सीताजी यह वचन श्रवण कर धर्मचारिणी तापसी अनसूयाजीसे बोलीं कि; हम कहती हैं आप सुनें यह कहकर स्वयंवरका वृत्तान्त कहने लगीं ॥२६॥ कि, जनकनामक मिथिलापुरीमें जो धार्मिक महावीर राजा हैं वह क्षत्रियधर्मके विशेष अनुरागी होकर धर्मानुसार पृथ्वीका पालन करते हैं ॥२७॥ उन्होंने यज्ञके लिये जब हल हाथमें लिया और क्षेत्र जोतने लगे तब हम पृथ्वीको भेदकर उसी हलके आगेसे उनकी पुत्रीरूप होकर निकल आईं ॥२८॥ हमारे सब शरीरमें धूल लग रही थी उस समय वह महाराज पृथ्वीमें बीज बोते थे सो हमको देख बडे विस्मित हुए ॥२९॥ और स्नेहके मारे हमें अपनी गोदमें बैठा लिया उनके कोई संतान नहीं थी इसी कारण वह हमें अपनी बेटी समझ हमसे बडाही स्नेह करने लगे ॥३०॥ उसी समय आकाशमें मनुष्यके बोलकी समान यह

देववाणी हुई "हेराजन् ! यह कन्या तुम्हारे क्षेत्रमें उत्पन्न हुई है अतएव यह तुम्हारी कन्या हुई!" ॥३१॥ धर्मात्मा पिता राजा जनकजी यह देववाणी सुनकर परमानन्दको प्राप्त हुये वह हमको पाकर ऐसे हर्षित हुये मानों बडी ऋद्धिसिद्धि संपत्ति उन्हें मिली ॥३२॥ अनन्तर उन्होंने हमको अभीष्ट द्रव्यके समान पुत्रके इच्छा करती हुई अपनी पटरानीको हमें सौंप दिया वह भी हमको माताके समान प्रेम और स्नेहसे लालन पालन करने लगीं॥ ३३ ॥ पिताजी हमको विवाहकी उमरपर पहुँची देखकर धन नाश होनेसे निधनकी नांई व्याकुल चित्त हो चिन्ता करने लगे ॥३४॥ क्योंकि कन्याका पिता चाहे साक्षात् इन्द्रकी समान भी हो तो भी वरके पक्षवाले बराबर दरजेके वा नीचेके लोगोंसे असन्मान प्राप्त होता ही है ॥३५॥ उस निरादरके होनेसे कुछ विलंब नहीं देखकर राजा जनकजी चिंताके समुद्रमें एकबारही डूब गये जहाजहीन वणिकके समान किसी भांते भी उस चिन्ता समुद्रके पार न जा सके ॥३६॥ हमको अयोनिसे उत्पन्न

ततःप्रहृष्टोधर्मात्मापितामेमिथिलाधिपः ॥ अवाप्तोविपुलामृद्धिंमामवाप्यनराधिपः॥३२॥दत्ताचास्मीष्टवद्देव्यैज्येष्ठायैपुण्यकर्मणे॥ तयासंभाविताचास्मिस्निग्धयामातृसौहृदात् ॥३३॥ पतिसंयोगसुलभंवयोदृष्ट्वातुमेपिता ॥ चिंतामभ्यगमद्दीनोवित्तनाशादिवाधनः ॥ ३४ ॥ सदृशाच्चापकृष्टाच्चलोकेकन्यापिताजनात् ॥ प्रधर्षणमवाप्नोतिशक्रेणापिसमोभुवि ॥३५॥ तांधर्षणामदूरस्थांसंदृश्यात्मनिपार्थिवः ॥ चिंतार्णवगतःपारंनाससादाप्लवोयथा ॥३६॥ अयोनिजांहिमांज्ञात्वानाध्यगच्छत्सचिंतयन् ॥ सदृशंचानुरूपंचमहिपालःपतिंमम ॥३७॥ तस्यबुद्धिरियंजाताचिंतयानस्यसंततम् ॥ स्वयंवरंतनूजायाःकरिष्यामीतिधर्मतः ॥३८॥ महायज्ञेतदातस्यवरुणेनमहात्मना॥दत्तंधनुर्वरंप्रीत्यातूणीचाक्षय्यसायकौ ॥३९॥ असंचाल्यंमनुष्यैश्चयत्नेनापिचगौरवात् ॥ तन्नशक्तानमयितुंस्वप्नेष्वपिनराधिपाः ॥४०॥तद्धनुःप्राप्यमेपित्राव्याहृतंसत्यवादिना ॥ समवायेनरेंद्राणांपूर्वमामंत्र्यपार्थिवान् ॥ ४१ ॥

हुई देखकर वह अनेक चिन्ता करके भी कहीं हमारे समान योग्यपात्र न पासके इस कारण वह सदाही चिंता करते रहे ॥३७॥ उसके पीछे उनके मनमें यह बात आई कि, धर्मानुसार कन्याका स्वयंवर करना चाहिये उसीमें जो पुरुष योग्य होगा उसीको देंगे॥३८॥ प्राचीन समय में महात्मा वरुणसे जनकजीके पूर्वपुरुष देव रातको देवताओंकी प्रार्थनासे दक्षके यज्ञमें शिवके प्रसादसे धनुष और अक्षय बाणोंसे पूर्ण दो तरकस मिले थे ॥ ३९ ॥ यह धनुष उतना भारी था कि, यत्न करने परभी देवता दैत्य मनुष्यादि उसको चलायमान नहीं कर सकते थे और राजा लोग स्वप्नमें भी जिसको नहीं चला सकते थे॥४०॥ हमारे पिता सत्यवादी राजा जनकजीने पुरुषानुक्रमसे वह धनुषपाय प्रथम उन्होंने राजाओंको न्यौता देकर एकत्रित किया और फिर उन सबके सामने बोले ॥ ४१ ॥

कि आप लोगोंमेंसे जो इस धनुषको उठाकर इसमें प्रत्यंचा चढा देगा तो इसमें कुछ संदेह नहीं है कि हमारी कन्या उसकी भार्या होगी ॥४२॥ राजा लोग इस पहाडके समान बोझवाले धनुषरत्नको देखकर उसके उठानेमें उद्यत हुए परंतु सफल मनोरथ न हो सके और धनुषको प्रणाम करके चले गये ॥४३॥ इसके पीछे बहुत दिनोंके बाद यह महाद्युतिमान् श्रीरामचंद्रजी विश्वामित्रजीके साथ पिताजीका यज्ञ देखनेको वहां आये ॥ ४४ ॥ पिता जनकजीने भ्राता लक्ष्मणके सहित आये सत्य पराक्रमवान् रामचन्द्रजी और धर्मात्मा विश्वामित्रजीकी बडी पूजाकी ॥४५॥ फिर वहां विश्वामित्रजीने पिता जनकजीसे कहा कि, यह राम और लक्ष्मण राजा दशरथजीके पुत्र हैं और वह आपका धनुष देखना चाहते हैं ॥४६॥ जब महर्षि विश्वामित्रजीने इस प्रकार कहा तब जनकजीने देवताओंका

इदंचधनुरुद्यम्यसज्यंयःकुरुतेनरः ॥ तस्यमेदुहिताभार्याभविष्यतिनसंशयः ॥४२॥ तच्चदृष्ट्वाधनुःश्रेष्ठंगौरवाद्गिरिसन्निभम् ॥ अभिवाद्यनृपाजग्मुरशक्तास्तस्यतोलने ॥ ४३ ॥ सुदीर्घस्यतुकालस्यराघवोऽयंमहाद्युतिः ॥ विश्वामित्रेणसहितोयज्ञंद्रष्टुंसमागतः ॥४४॥ लक्ष्मणेनसहभ्रात्रा रामःसत्यपराक्रमः ॥ विश्वामित्रस्तुधर्मात्मामम पित्रासुपूजितः ॥ ४५ ॥ प्रोवाचपितरंतत्रराघवौरामलक्ष्मणौ ॥ सुतौदशरथस्येमौधनुर्दर्शनकांक्षिणौ ॥ ४६ ॥ इत्युक्तस्तेनविप्रेणतद्धनुःसमुपानयत् ॥ तद्धनुर्दर्शयामासराजपुत्रायदैविकम् ॥ ४७ ॥ निमेषांतरमात्रेण तदानम्यमहाबलः ॥ ज्यांसमारोप्यझटितिपूरयामासवीर्यवान् ॥ ४८ ॥ तेनापूरयतावेगान्मध्येभग्नंद्विधाधनुः ॥ तस्यशब्दोऽभवद्भीमःपतितस्याशनेर्यथा ॥४९॥ ततोऽहंतत्ररामायपित्रासत्याभिसंधिना ॥ उद्यतादातुमुद्यम्यजलभाजनमुत्तमम् ॥५०॥ दीयमानांनतुतदाप्रतिजग्राहराघवः ॥ अविज्ञाय पितुश्छन्दमयोध्याधिपतेः प्रभोः ॥ ५१ ॥ ततःश्वशुरमामंत्र्यवृद्धंदशरथंनृपम् ॥ ममपित्रात्वहं दत्तारामायविदितात्मने ॥ ५२ ॥

दिया हुआ वह धनुष सैकडों वीरोंसे उठवा मँगवाकर रामचन्द्रजीको दिखा दिया ॥४७॥ महाबलवान् वीर्यवान् श्रीरामचन्द्रजीने पलकमारतेमें उस धनुषको झुकाय ऊपर प्रत्यंचा चढा दी और फिर उसको टंकोर दिया ॥ ४८ ॥ बडे जोरके साथ चढानेसे वह महाधनुष टूटकर दो टुकडे हो गये उसके टूटनेसे बिजली गिरने के समान महाभयानक शब्द हुआ ॥४९॥ तब उसी समय सत्य प्रतिज्ञा करनेवाले पिताजी श्रेष्ठ जल मँगाय और उसको ग्रहणकर हमें रामचन्द्रजीके हाथमें सौंपनेको तैयार हुए ॥५०॥ परन्तु रामचन्द्रजीने विना पिताजीकी आज्ञाको पाये कि, अयोध्याधिपति महाराज दशरथजीकी जब आज्ञा होगी तबही हम इनको ग्रहण करेंगे यह कह उस समय इन्होंने हमें ग्रहण न किया ॥ ५१ ॥ उसके पीछे हमारे पिताजीने हमारे श्वसुर वृद्ध महाराज दशरथजीको अयोध्यासे बुलाकर

उनकी आज्ञासे इन सब लोकोंमें विख्यात रामचन्द्रजी के करकमल में हमें सौंप दिया ॥५२॥ और हमारी छोटी बहन साध्वी शुभदर्शनवाली उर्मिलाको लक्ष्मण जीको भार्या बनानेके लिये दिया ॥५३॥ जबसे हमारे पिताजीने स्वयंवरमें रामचन्द्रजीके करमें हमें समर्पण किया है तबसे हम धर्मानुसार पराक्रमवालोंमें श्रेष्ठ पतिकी सेवा करनेमें अनुरागिणी हैं ॥ ५४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० अयो० भाषायामष्टादशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११८ ॥ धर्म जाननेवाली अनसूयाजी यह बडी कथा श्रवण करके जानकीजी का शिर सूँघकर दोनों बाहोंसे पकड इनको छातीसे लगाकर बोलीं ॥ १ ॥ जिस प्रकार स्वयंवर हुआ था वह तुमने समस्त ही साफ २ पदयुक्त विचित्र और मनोहर वाणीसे कहा और हमने सुना ॥२॥ हे मधुरभाषिणी ! परन्तु अब सूर्य भगवान् अस्ताचलको जाया चाहते हैं तुम्हारी इस कथामें हमारा जी बहुत लगता है परन्तु अब रात्रि होने चाहती है ॥३॥ पक्षी गण जो भोजनकी खोजमें दशों दिशाओंको

ममचैवानुजासाध्वीऊर्मिलाशुभदर्शना ॥ भार्यार्थेलक्ष्मणस्यापिदत्तापित्राममस्वयम् ॥५३॥ एवंदत्तास्मिरामायतथातस्मिन्स्वयंवरे ॥ अनुरक्तास्मिधर्मेणपतिंवीर्यवतांवरम् ॥५४॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० च० सा० अयो० अष्टादशाधिकशततमः सर्गः ॥११८॥ अनसूयातुधर्मज्ञाश्रुत्वातांमहतींकथाम् ॥ पर्यष्वजतबाहुभ्यांशिरस्याघ्रायमैथिलीम् ॥१॥ व्यक्ताक्षरपदंचित्रंभाषितंमधुरंत्वया ॥ यथास्वयंवरंवृत्तंतत्सर्वंच श्रुतंमया ॥२॥ रमेयंकथयातेतुदृढंमधुरभाषिणि ॥ रविरस्तंगतःश्रीमानुपोह्यरजनींशुभाम् ॥३॥ दिवसंपरिकीर्णानामाहारार्थंपतत्रिणाम् ॥ संध्याकालेनिलीनानांनिद्रार्थंश्रूयतेध्वनिः ॥४॥ एतेचाप्यभिषेकार्द्रामुनयःकालशोद्यताः ॥ सहिताउपवर्ततेसलिलाप्लुतवल्कलाः ॥५॥ अग्निहोत्रेचऋषिणाहुतेचविधिपूर्वकम् ॥ कपोतांगारुणोधूमोदृश्यतेपवनोद्धतः ॥६॥ अल्पवर्णाहितरवोघनीभूताः समंततः ॥ विप्रकृष्टेंद्रियेदेशेनप्रकाशंतिवैदिशः ॥ ७ ॥ रजनीचरसत्त्वानिप्रचरंतिसमंततः ॥ तपोवनमृगाह्येतेवेदितीर्थेषुशेरते ॥ ८ ॥

उड २ कर गये थे अब सन्ध्या होती देखकर बसेरा लेनेके लिये अपने २ घोसलोंमें आते हैं और उनका शब्द हो रहा है ॥४॥ मुनि लोग स्नान करके गीले शरीर जलका कलशा हाथमें लिये आपसमें मिलकर अपने २ आश्रमोंको लौटे हैं उनके चीर बल्कल भीगे हुए हैं ॥ ५ ॥ ऋषि लोगोंने जो विधिविधानसे अग्निहोत्रमें होम किया है उससे कबूतरके कंठमें जो रोवें होते हैं उनके समान लाल वर्ण का धुवां वायुके वेग आकाशमें उठा हुआ दिखाई देता है ॥ ६ ॥ अब अँधेरा होता चला आता है क्योंकि जिन पेडोंमें थोडेभी पत्ते हैं वह भी अन्धकारसे घने जान पडते हैं स्पष्ट नहीं दिखाई देते दिशा नहीं प्रकाशित होतीं ॥७॥ देखो चारों ओर निशाचर घूमते हैं और यह सब आश्रमोंके मृग पवित्र वेदियोंके ऊपर शयन कर रहे हैं ॥ ८ ॥

हे सीते ! रात्रि तारागणोंसे सज धजकर आईहै चन्द्रमा भी चटकीली चांदनी का विस्तार करते आकाशमें उदित हो रहे हैं ॥९॥ अच्छा अब आज्ञा है कि, तुम इस समय जाकर रामचन्द्रजी की सेवा करो मधुर कथा वार्त्तासे हम बहुत ही सन्तुष्ट हुई हैं ॥१०॥ हे मैथिलि ! इस समय तुम हमारे सामने वस्त्राभूषण पहरकर हमारी प्रीतिको और भी बढ़ाओ वत्से जानकि! दिव्य गहनोंके पहरनेसे तुम्हारी विचित्र शोभा होगी ॥ ११ ॥ तब सुरकन्याके समान दिव्य लावण्य वाली जानकी जी भली भांति धह सब वस्त्राभूषण पहर शिर झुका अनसूयाजीके चरणोंकी वन्दना करके रामचन्द्रजी के निकट आई ॥ १२ ॥ वचन बोलने वालोंमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी सीताको वस्त्राभूषण धारण किये हुये देखकर तपस्विनी अनसूयाजी की इतनी प्रीति देख परम प्रफुल्लित हुए ॥ १३ ॥ अनंतर प्रीति सहित

संप्रवृत्तानिशासीतेनक्षत्रसमलंकृता॥ज्योत्स्नाप्रावरणश्चंद्रोदृश्यतेऽभ्युदितोंऽबरे॥९॥ गम्यतामनुजानामिरामस्यानुचरीभव॥ कथयंत्याहिमधुरंत्वयाहमपितोषिता ॥१०॥ अलंकुरुचतावत्त्वंप्रत्यक्षंममसैथिलि ॥प्रीतिंजनयमेवत्सेदिव्यालंकारशोभिनी ॥ ११ ॥ सातदासमलंकृत्यसीताथ्रसुतोपमा ॥ प्रणम्यशिरसापादौरामंत्वभिमुखीययौ ॥१२॥ तथातुभूषितांसीतांददर्शवदतांवरः ॥ राघवःप्रीतिदानेनतपस्विन्याजहर्षच ॥ १३ ॥न्यवेदयत्ततः सर्वंसीतारामायमैथिलि॥ प्रीतिदानंतपस्विन्यावसना भरणस्रजम् ॥१४॥ प्रहृष्टस्त्वभवद्रामोलक्ष्मणश्चमहारथः मैथिल्याःसत्क्रियांदृष्ट्वामानुषेषुसुदुर्लभाम्॥१५॥ ततःसशर्वरींप्रीतःपुण्यांशशिनिभाननाम् ॥ अर्चितस्तापसैःसर्वैरुवासरघुनंदनः ॥१६॥तस्यांरात्र्यांव्यतीतायामभिषिच्यहुताग्निकान्॥आपृच्छेतांनरव्याघ्रौतापसान्वनगोचरान् ॥१७॥ तावूचुस्तेवनचरास्तापसाधर्मचारिणः॥वनस्यतस्य संचारंराक्षसैःसमभिप्लुतम् ॥ १८ ॥ रक्षांसिपुरुषादीनिनानारूपाणि राघव ॥ वसंत्यस्मिन्महारण्येव्यालाश्चरुधिराशनाः ॥ १९ ॥

अनसूयाजीने जो वस्त्राभूषण और मालायें इत्यादि दी थीं उन सबके प्राप्त होनेका वृत्तांत जानकीजीने श्रीरामचन्द्रजीसे कहा ॥ १४ ॥ इस प्रकार अनसूयाजी की प्रीति का दान चराचर मनुष्य लोकमें दुर्लभ है इस कारणसे श्रीरामचन्द्रजी व महारथी लक्ष्मणजी दोनों महाहर्षित हुए ॥ १५ ॥ उसके पीछे श्रीरामचन्द्रजी तपस्वियोंसे पूजे जाकर और चारु चन्द्रवदनी सीताजीको देखकर प्रीति सहित उस रात्रिमें वहां सोये ॥ १६ ॥ जब रात बीती प्रभात हो आया तब रामलक्ष्मण दोनोंजने न्हाय धोय संध्याकर अनलमें आहुतिदे उस आश्रमके वासी ऋषियोंके पास जाकर विदा मांगने लगे ॥ १७ ॥ तब धर्मचारी वनवासी तपस्वी लोगोंने श्रीरामचन्द्रजीसे कहा कि, महाराज ! राक्षस लोगोंने इस वनमें महा उपद्रव आरम्भ किया है ॥१८॥ हे रघुनन्दन !

अनेक प्रकारके रूप धारी मनुष्यका मांसखानेवाले राक्षस गण और रुधिर पीनेवाले व्याघ्र सिंह सर्प हत्यारे जीव जन्तु इस गहन वनमें वास करते हैं ॥ १९ ॥ वह सब अपवित्र व असावधान ब्रह्मचारी तपस्वी लोगोंको भक्षण करजाते हैं इससे हे महाराज ! तुम उनका निवारण करो ॥ २० ॥ महर्षि लोगोंका वनमें से फल लानेका यही मार्ग है सो आप भी इस मार्गसे होकर दुर्गम वनमें गमन कर सकेंगे ॥ २१ ॥ जब तपस्वी लोगोंने हाथ जोड

उच्छिष्टंवाप्रमत्तंवातापसंब्रह्मचारिणम् ॥ अदंत्यस्मिन्महारण्येतान्निवारयराघव ॥२०॥ एषपंथामहर्षीणांफलान्याहरतांवने ॥ अनेनतुवनं दुर्गगंतुंराघवतेक्षमम् ॥२१॥ इतीरितः प्रांजलिभिस्तपस्विभिर्द्विजैःकृतस्वस्त्ययनःपरंतपः ॥ वनंसभार्यःप्रविवेशराघवःसलक्ष्मणः सूर्यइवा भ्रमंडलम् ॥ २२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्येचतुर्विंशतिसाहस्र्यां संहितायामयोध्याकांडे एकोनविंशाधिकशत तमः सर्गः ॥ ११९ ॥ समाप्तमयोध्याकांडम् ॥ ॥ छ ॥ अतः परमारण्यकांडम् ॥ तस्यायमाद्यःश्लोकः ॥ प्रविश्यतुमहारण्यंदंडकारण्य मात्मवान् ॥ रामोददर्शदुर्धर्षस्तापसाश्रममंडलम् ॥ १ ॥

मंगल आशीर्वाद देकर इस प्रकार कहा तो शत्रुओंके तपानेवाले श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मण और सीताजी के साथ मेघमंडलमें सूर्यके समान वनके बीच प्रवेश करते हुए ॥ २२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्येऽयोध्या कांडे पण्डितज्वालाप्रसादकृतभाषानुवादे एकोनविंशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११० ॥

इति अयोध्याकांड समाप्त २.



इदं वाल्मीकीयरामायणेऽयोध्याकाण्डं भाषाटीकासमेतं मुम्बय्यां
क्षेमराज-श्रीकृष्णदास श्रेष्ठिना स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर"-
(स्टीम्) मुद्रणालये मुद्रयित्वा प्रकाशितम् ।

इति श्रीवाल्मीकीयरामायणेऽयोध्याकाण्ड भा०टी०समेत समाप्तम्

अथ श्रीवाल्मीकीयरामायणेऽरण्यकाण्डं भाषाटीकासमेतं प्रारभ्यते

अरण्यकाण्डम्–३.





दोहा—कटि निषंग कांधे धनुष, माथे तिलक विशाल। शत्रुशाल सुरपालकर, वंदौं दशरथलाल ॥ १ ॥

आत्मवान् महादुर्धर्ष श्रीरामचन्द्रजीने दंडक नामक महावनमें प्रवेश करके तपस्वी लोगोंके आश्रम मंडल देखे ॥१॥ जिन आश्रमोंमें जगह२कुश चीर पडे हैं जहां ब्रह्मविद्याकी लक्ष्मीका तेज अच्छी तरह विराजमान हो रहा है, जैसे सूर्यनारायण आकाशमें रहते हैं और उनको मारे प्रकाशके कोई नहीं निहार सकता, तैसेही बहुत तपस्वियोंके आश्रम ब्रह्मविद्याके प्रभाव करके तेजवान् होनेसे बडी कठिनतासे देखने योग्य हैं ॥२॥ वह आश्रम सब जीवोंके आसरा लेनेके थल हैं, उनके आंगन सदाही झाड बुहारकर स्वच्छ कियेजाते और चारों ओर अनेक प्रकारके पशुपक्षियोंसे जो सदा पूर्ण रहते ॥३॥ अप्सराओंके झुण्डके झुण्ड सदा यहां आकर इनके समीप नाच गाकर इनकी पूजा करते, जहां बडे विस्तारकी यज्ञशाला बनी है, जिनमें अग्निकुंड स्रुव मृगचर्म और कुशादि धरे हैं ॥४॥ होम करनेका ईंधन जलके

श्रीगणेशायनमः ॥ प्रविश्यतुमहारण्यंदंडकारण्यमात्मवान् ॥ रामोददर्शदुर्धर्षस्तापसाश्रममण्डलम् ॥१॥ कुशचीरपरिक्षिप्तंब्राह्म्यालक्ष्म्या समावृतम् ॥ यथाप्रदीप्तदुर्दर्शंगगनेसूर्यमंडलम् ॥२॥ शरण्यंसर्वभूतानांसुसंमृष्टाजिरंसदा ॥ मृगैर्बहुभिराकीर्णंपक्षिसंघैःसमावृतम् ॥३॥ पूजितचोपनृत्तंचनित्यमप्सरसांगणैः ॥ विशालैरग्निशरणैःस्रुग्भांडैरजिनैःकुशैः ॥४॥ समिद्भिस्तोयकलशैःफलमूलैश्चशोभितम् ॥ आरण्यैश्चमहावृक्षैःपुण्यैःस्वादुफलैर्वृतम् ॥५॥ बलिहोमार्चितंपुण्यंब्रह्मघोषनिनादितम् ॥ पुष्पैश्चान्यैःपरिक्षिप्तंपद्मिन्याचसपद्मया ॥ ६ ॥ फलमूलाशनैर्दांतैश्चीरकृष्णाजिनांबरैः ॥ सूर्यवैश्वानराभैश्चपुराणैर्मुनिभिर्युतम् ॥ ७ ॥ पुण्यैश्चनियताहारैःशोभितंपरमर्षिभिः ॥ तद्ब्रह्मभवनप्रख्यंब्रह्मघोषनिनादितम् ॥ ८ ॥ ब्रह्मविद्भिर्महाभागैर्ब्राह्मणैरुपशोभितम् ॥ तद्दृष्ट्वाराघवःश्रीमांस्तापसाश्रममंडलम् ॥ ९ ॥

भरे हुए कलश व कंद मूल फल भोजन करनेके लिये रक्खे हैं, और बडी २ जातके बनैले स्वादयुक्त फल पवित्र २ वृक्षोंके समूहोंमें लगरहे हैं ॥५॥ इन सब आश्रमोंमें नित्यही बलि और होम होता है, प्रतिदिन पुण्यमय वेदध्वनि उठती है अनेक प्रकारके फूलभी इधर उधर खिल रहे हैं और विचित्र कमल जिनमें खिले हुए ऐसी तलैयें भी विराजमान हो रही हैं ॥६॥ इन सब आश्रमोंमें कंद मूल फल खानेवाले चीर मृगचर्म वल्कलादि धारण करनेवाले सूर्य और अग्निके समान प्रकाशमान नियत समय पर बोलने, देखने, सुननेवाले, जितेन्द्रिय, प्राचीन चतुर वृद्ध मुनियोंके समूह वास करते हैं ॥७॥ नियताहारी पवित्र परमार्षियोंके समूहसे शोभित और सदा वेद पढनेका शब्द प्रतिध्वनित होनेसे सब आश्रम ब्रह्मलोकके समान शोभायमान हैं ॥८॥ महातेजवान् श्रीमान् रामचन्द्रजी महाभाग ब्रह्मको पहुँचाने हुए

ब्राह्मणगणोंसे शोभित उनतपस्वियोंके आश्रम मंडलको देखकर ॥९॥ अपने महाधनुषकी प्रत्यंचा उतारकर उनकी ओर चले, दिव्यज्ञानसंपन्न महर्षियोंने रामचन्द्रजीको देखा व जाना ॥१०॥ इस कारण प्रसन्न हो सबही श्रीरामचन्द्रजी व महायशस्विनी श्रीजानकीजीके सम्मुख वे मुनिलोग चले फिर चन्द्रमाके समान धर्मका आचरण करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीको उदय देख ॥११॥ व लक्ष्मण जानकीजीको भी निहार सब दृढव्रत मुनियोंने मंगलके आशीर्वाद दिये और उनका भलीभांति आदर सम्मान किया ॥१२॥ वह सब वनवासी ऋषिलोग बिस्मिताकार होकर रामचन्द्रजीके रूपकी सुन्दरता, लावण्यता, सुकुमारता और सुवेषता देखकर विचार करने लगे कि, ऐसे सुकुमार वनमें क्योंकर आये ॥१३॥ वह सब मुनिलोग अचरजमें आकर रामचन्द्र लक्ष्मण और जानकीजीको विना पलक मारे एकटक देखने लगे ॥१४॥ सर्वजीवोंके ऊपर दया करनेवाले बडे भाग्यशाली ऋषि लोगोंने अपूर्व अतिथि रामचन्द्रजीको पर्णकुटीमें लाय टिकाया

अभ्भगच्छन्महातेजाविज्यंकृत्वामहद्धनुः ॥ दिव्यज्ञानोपपन्नास्तेरामंदृष्ट्वामहर्षयः ॥ १० ॥ अभिजग्मुस्तदाप्रीतावैदेहींचयशस्विनीम् ॥ तेतुसोममिवोद्यंतंदृष्ट्वावैधर्मचारिणम् ॥११॥ लक्ष्मणंचैवदृष्ट्वातुवैदेहींचयशस्विनीम् ॥ मंगलानिप्रयुंजानाःप्रत्यगृह्णन्दृढव्रताः॥१२॥रूपसंहननंलक्ष्मींसौकुमार्यंसुवेषताम्॥ददृशुर्विस्मिताकारारामस्यवनवासिनः॥१३॥ वैदेहींलक्ष्मणंरामंनेत्रैरनिमिषैरिव ॥ आश्चर्यभूतान्ददृशुःसर्वेतेवनवासिनः॥१४॥अत्रैनंहिमहाभागाःसर्वभूतहितेरताः ॥ अतिथिंपर्णशालायांराघवंसन्न्यवेशयन्॥१५॥ततोरामस्यसत्कृत्यविधिनापावकोपमाः॥ आजह्रुस्तेमहाभागाःसलिलंधर्मचारिणः॥१६॥ मंगलानिप्रयुंजानामुदापरमयायुताः ॥ मूलंपुष्पंफलंसर्वमाश्रमंचमहात्मनः ॥ १७ ॥ निवेदयित्वाधर्मज्ञास्तेतुप्रांजलयोऽब्रुवन्॥धर्मपालोजनस्यास्यशरण्यश्चमहायशाः ॥१८॥ पूजनीयश्चमान्यश्चराजादंडधरोगुरुः॥इंद्रस्यैवचतुर्भागःप्रजारक्षतिराघव ॥१९॥ राजातस्माद्वरान्भोगान्रम्यान्भुंक्तेनमस्कृतः ॥ तेवयंभवतारक्ष्याभवद्विषयवासिनः ॥२०॥

॥१५॥ पहुँचतेही प्रथम भलीभांति कुशलप्रश्न कर सत्कार कर अग्निके समान तेजवाले धर्मात्मा ऋषि लोगोंने सुन्दर पवित्र जल लाय चरण इत्यादि धोनेको दिया ॥१६॥ अनन्तर उन समस्त धर्मके जाननेवाले ऋषि लोगोंने परम हर्षयुक्त हो मंगल आशीर्वाद प्रयोग करके सुन्दर कंद फलादि खानेको दिया और आश्रम रहनेको दिया ॥१७॥ फिर सब धर्मके जाननेवाले ऋषि लोग हाथजोड कर श्रीरामचन्द्रजीसे बोले कि; आपहम लोगोंके धर्मपाल शरण्य हैं व परम यशस्वी हैं ॥१८॥ आप परम पूजनीय व मान्यभी हैं। क्योंकि, दंडधारी राजा गुरुके समान होता है राजा इन्द्रका चौथा भाग होता है इस कारण सबही प्रकार आप पूजा करनेके योग्य हैं; क्योंकि, जब आपही प्रजाकी रक्षा करते हैं तो उनके अर्थ धर्म, काम, मोक्ष चारों पदार्थ सिद्ध होजाते हैं ॥१९॥ सबलोगोंके नमस्कार

रनेसे राजा श्रेष्ठ है और वह श्रेष्ठ रमणीय भोगोंको भी भोग करता है। हे राघव! हम लोग आपके राज्यमें वास करते हैं अतएव आपको हमारी रक्षा करनी चाहिये ॥२०॥ हे राजन्! नगरमें रहो या वनमें ही रहो आपही हमलोगोंके राजा हैं सो आपको हमारी रक्षा करनी चाहिये यदि आप कहें कि, तुम लोगभी तपोबलसे अपनी रक्षा कर सकते हो सो नहीं, क्योंकि हम लोगोंने क्रोधका त्यागकर इन्द्रियोंको जीत एक बारही दंड देना छोड दिया है ॥ २१ ॥ तपस्याके सिवाय हम लोगोंका और कुछ धन नहीं है, अतएव गर्भ के बालकके समान आपको हमारी रक्षा करनी उचित है, यह कहकर उन सब ऋषिमुनियोंने विविध प्रकारके पुष्प और वन फलद्वारा लक्ष्मण व सीता सहित रामचन्द्रजी की पूजा की ॥ २२ ॥ इसी प्रकारसे और भी सिद्ध तापस मुनिलोगोंने अग्निके समान तेजस्वी उन प्रभु ईश्वर रामचन्द्रजीकी यथाविधानसे पूजा की ॥ २३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० आरण्यकांडे भाषायां प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥ श्रीरामचन्द्रजी इस प्रकार अच्छी

नगरस्थोवनस्थोवात्वंनोराजाजनेश्वरः॥न्यस्तदंडावयंराजञ्जितक्रोधाजितेंद्रियाः॥२१॥रक्षणीयास्त्वयाशश्वद्गर्भभूतास्तपोधनाः॥एवमुक्त्वा फलैर्मूलैःपुष्पैरन्यैश्चराघवम्॥वन्यैश्चविविधाहारैःसलक्ष्मणमपूजयन्। २२ ॥ तथान्येतापसाःसिद्धारामंवैश्वानरोपमाः ॥ न्यायवृत्ताय थान्यायंतर्पयामासुरीश्वरम् ॥२३॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च०सा०अरण्यकांडे प्रथमः सर्गः ॥१॥ कृतातिथ्यो ऽथरामस्तुसूर्यस्योदयनंप्रति ॥ आमंत्र्यसमुनीन्सर्वान्वनमेवान्वगाहत ॥१॥ नानामृगगणाकीर्णमृक्षशार्दूलसेवितम् ॥ ध्वस्तवृक्षलतागुल्मंदु र्दर्शसलिलाशयम्॥२॥निष्कूजमानशकुनिझिल्लिकागणनादितम्॥लक्ष्मणानुचरोरामोवनमध्यंददर्शह ॥३॥ सीतयासहकाकुत्स्थस्तस्मिन्घो रमृगायुते ॥ ददर्शगिरिशृंगाभंपुरुषादंमहास्वनम् ॥ ४ ॥ गभीराक्षंमहावक्त्रंविकटंविकटोदरम् ॥ बीभत्संविषमंदीर्घंविकृतंघोरदर्शनम् ॥५॥

पहुनई पाकर जब प्रभात हुआ तब उन आश्रमवासी सब मुनियोंसे पूछ पाछकर वनमें विचरण करने लगे ॥१॥ इस वनमें अनेक भांतिके जीव जन्तु विद्यमान थे रीछ और शार्दूल भी घूम रहे थे। इस वनके पेड व बेलें सब सूख गई थीं और सब ताल तलैयें सूखकर भयावनी हो गई थीं ॥२॥ इस वनमें पक्षियोंका चहचहाना नहीं आता था न भौंरोंकी गुंजार हो रही थी केवल झिल्लीकी झनकार सुनाई आती थी। इस प्रकार रामचन्द्रजीने इस वनकी दशा देखी ॥ ३ ॥ उसके पीछे काकुत्स्थ रामचन्द्रजी सीताजीके साथ उस घोर पशुओं करके सेवित वनमें पहाडके शिखरकी समान मनुष्यके खानेवाले बड़े शब्द करनेवाले एक राक्षसको देखते हुए ॥ ४ ॥ इस राक्षसकी आंखें बहुतही गंभीर थीं, वदन अति विशाल था, थोंद महा विकट थी, इसके शरीरका गठन अति भयंकर था वह राक्षस ऐसा भयावना था कि, जिसे देखके ही मनुष्य डर जाय, कहीं टेढ़ा, कहीं सीधा, कहीं ऊंचा खाली, बराबर अंग कोई न था; उसकी सूरत बड़ी

डरावनी थी ॥५॥ वह राक्षस रुधिरसे भीगा व्याघ्रका चमडा ओढे था जिस समय वह श्वास लेताथा तो प्रलयकालके समान सब भूतोंको त्रास उपजानेवाला विदित होताथा ॥६॥ वह तीन शेर, चार व्याघ्र, दो भेंडिये, दश चीतल मृग व दांत सहित चरबी लगा एक हाथीका मस्तक लिये था ॥७॥ जो लोहेके शूलमें बिंधा हुआ था और बडाही चिल्ला रहा था फिर वह रामचन्द्र लक्ष्मण और मैथिली सीताजीको देख ॥८॥ महाक्रोधके वश होकर संहारके कालमें कृतान्तके समान उनके ऊपरकी ओर दौडा व महाभयावनी गर्जना करके पृथ्वीको कँपाता हुआ ॥९॥ विदेहराजकी दुहिता सीताजीको गोदमें लेकर श्रीरामचन्द्रजीसे बोला कि, तुम दोनों जन जटा चीर धारण किये वनमें स्त्रीसहित आये हो इससे अपनेको मराहुआही समझो ॥ १० ॥ शर, चाप, तलवार हाथ

वसानंचर्मवैयाघ्रंवसार्द्रंरुधिरोक्षितम् ॥ त्रासनंसर्वभूतानांव्यादितास्यमिवांतकम् ॥६॥ त्रीन्सिंहांश्चतुरोव्याघ्रान्द्वौवृकौपृषतान्दश॥ सविषाणंवसादिग्धंगजस्यचशिरोमहत् ॥७॥ अवसज्यायसेशूलेविनदंतंमहास्वनम् ॥ सरामंलक्ष्मणंचैवसीतांदृष्ट्वाचमैथिलीम् ॥८॥ अभ्यधावत्सुसंक्रुद्धःप्रजाकालइवांतकः ॥ सकृत्वाभैरवंनादंचालयन्निवमेदिनीम् ॥९॥ अंकेनादायवैदेहीमपक्रम्यतदाऽब्रवीत् ॥ युवांजटाचीरधरौसभार्यौक्षीणजीवितौ ॥१०॥ प्रविष्टौदंडकारण्यंशरचापासिपाणिनौ ॥ कथंतापसयोर्वांचवासःप्रमदयासह ॥११॥ अधर्मचारिणौपापौकौयुवांमुनिदूषकौ ॥ अहंवनमिदंदुर्गंविराधोनामराक्षसः ॥१२॥ चरामिसायुधोनित्यमृषिमांसानिभक्षयन् ॥ इयंनारीवरारोहाममभार्याभविष्यति ॥१३॥ युवयोःपापयोश्चाहंपास्यामिरुधिरंमृधे ॥ तस्यैवंब्रुवतोदुष्टंविराधस्यदुरात्मनः ॥१४॥ श्रुत्वासगर्वितंवाक्यंसंभ्रांताजनकात्मजा॥ सीताप्रवेपितोद्वेगात्प्रवातेकदलीयथा ॥१५॥ तांदृष्ट्वाराघवःसीतांविराधांकगतांशुभाम् ॥ अब्रवील्लक्ष्मणंवाक्यंमुखेनपरिशुष्यता ॥१६॥

लेकर इस वनमें आये हो फिर यह तो मुझसे कहो कि, तुम्हारे साथ यह स्त्री क्योंकर है ? ॥११॥ तुम लोग अधर्मका आचरण करनेवाले पापस्वभावी हो और तुमसे मुनियोंके चरित्रको कलंक लगा है सो तुम लोग कौनहो ? हम राक्षस हैं हमारा नाम विराध है हम दुर्गम वनमें रहते हैं ॥ १२ ॥ हम प्रतिदिन ऋषियोंका मांस खातेहुए हथियार बांधकर इस दुर्गमवनमें फिरा करते हैं इस वरारोहा स्त्रीको हम अपनी भार्या बनावेंगे ॥ १३ ॥ तुम दोनों महापापी हो इससे युद्धकर हम तुम्हारा दोनोंका रुधिर पियेंगे जब दुष्टात्मा विराधने ऐसे दुर्वचन कहे ॥ १४ ॥ ऐसे गर्वीले वचन सुनकर जनककुमारी सीताजी बहुतही घबराईं जिस प्रकार प्रचंड पवनके वेगसे केला कांप जाय इसी प्रकार उनका शरीर भयसे कांपने लगा ॥१५॥ श्रीरामचन्द्रजी शुभ सीताजीको विराध राक्षस

सकी गोदमें गई देखकर उदास हो लक्ष्मणजीसे बोले ॥१६॥ हे सौम्य ! राजा जनकजीकी कन्या शुभाचरण करनेवाली हमारी स्त्री सीताजीका विराधकी गोदीमें स्थित होना देखो ॥१७॥ यह यशस्विनी राजपुत्री अत्यंत सुखसे पालन पोषण की गई सो अब यह राक्षसके वश पडीं सो वरदान मांगनेसे जो कैकेयीकी इच्छा थी वह आज सफल हुई ॥१८॥ जो कैकेयी अपने पुत्रको राज्य दिलाकरभी संतोषसे न रही उसने बडी दूरका आगम देखा कि, यदि यहां रहेंगे तो हमारे पुत्रका राज्य अटल नहीं रहेगा इससे वनवास दिलवाय ॥१९॥ समस्त प्राणियोंका प्यारा जानकर हमको वनमें भिजवाया अब उन बिचली माता कैकेयी देवीका मनोरथ सफल हुआ ॥२०॥ हे लक्ष्मण ! इससे अधिक और दुःख क्या होगा कि, राज्य हरा गया पिताजीका मरण हुआ जानकीजीको राक्षसने छुआ भला इससे बढकर कोई दुःख है? ॥२१॥ जब रामचन्द्रजीने ऐसा कहा तब शोकसे आंसू भरे हुए, मंत्रसे बँधे सर्पके समान ऊँधे श्वाससे गर्जकर महाक्रोधयुक्त हो लक्ष्मणजी

पश्यसौम्यनरेंद्रस्यजनकस्यात्मसंभवाम् ॥ममभार्यांशुभाचारांविराधांकेप्रवेशिताम् ॥१७॥अत्यंतसुखसंवृद्धांराजपुत्रींयशस्विनीम् ॥यदभिप्रेतमस्मासुप्रियंवरवृतंचयत् ॥१८॥ कैकेयास्तुसुसंवृत्तंक्षिप्रमद्यैवलक्ष्मण ॥ यानतुष्यतिराज्येनपुत्रार्थेदीर्घदर्शिनी ॥ १९ ॥ ययाहंसर्वभूतानांप्रियःप्रस्थापितोवनम् ॥ अद्येदानींसकामासायामातामध्यमामम ॥ २० ॥ परस्पर्शात्तुवैदेह्यानदुःखतरमस्तिमे ॥ 'पितुर्विनाशात्सौमित्रेस्वराज्यहरणात्तथा॥२१॥ इतिब्रुवतिकाकुत्स्थेबाष्पशोकपरिप्लुतः ॥ अब्रवील्लक्ष्मणःक्रुद्धोरुद्धोनागइवश्वसन् ॥२२॥ अनाथइवभूतानांनाथस्त्वंवासवोपमः ॥ मयाप्रेष्येणकाकुत्स्थकिमर्थंपरितप्यसे ॥२३॥ शरेणनिहतस्याद्यमयाक्रुद्धेनरक्षसः ॥ विराधस्यगतासोर्हिमहीपास्यतिशोणितम् ॥२४॥ राज्यकामेममक्रोधोभरतेयोबभूवह ॥ तंविराधेविमोक्ष्यामिवज्रीवज्रमिवाचले॥२५॥ ममभुजबलवेगवेगितःपततुशरोऽस्यमहान्महोरसि ॥व्यपनयतुतनोश्चजीवितंपततुततश्चमहींविघूर्णितः ॥ २६ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० च० सा०अरण्य० द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

बोले ॥२२॥ हे काकुत्स्थ ! आप इन्द्रके समान सब प्राणियोंके स्वामी होकर विशेषतःमुझसरीखे सेवकके विद्यमान रहते इस प्रकारका विलाप क्यों करते हैं? ॥२३॥ हम क्रोधित होकर इस विराध राक्षसको बाण मारते हैं, बस बाणके लगते ही यह प्राण छोडदेगा और पृथ्वी इसका रुधिर पियेगी॥ २४ ॥ राज्यकी कामना करते हुए भरतजीपर जो क्रोध हमको उत्पन्न हुआ था सो वज्रधारण करनेवाले इन्द्रसे जिस प्रकार पर्वतोंपर वज्र छोडाथा उसी भांति मैंभी यह क्रोध विराधपर छोडता हूँ ॥२५॥ हमारी भुजाओंके बलोंके वेगसे वेगयुक्त होकर हमारे छोडे तीर इसके हृदयमें जाकर गडेंगे, इसका जीवन नाशको प्राप्त होजायगा और यह घूम २ कर पृथ्वीपर गिर जायगा ॥ २६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आदि० अरण्यकांडे भाषायां द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

फिर वह विराध राक्षस अपने वचनकी ध्वनिसे समस्त वनको पूर्ण करता हुआ यह बोला—जो मैं पूछताहूं सो बताओ, कि, तुम कौनहो और कहांको जाओगे ? ॥१॥ उस अंगारेके समान जलते वदनवाले राक्षसने जब इसप्रकार पूछा तब महातेजस्वी श्रीरामचन्द्रजी इक्ष्वाकुकुलमें अपना जन्म बताकर कहनेलगे ॥२॥ कि, हम क्षत्रियहैं और जो धर्म क्षत्रियोंके हैं वह भी हम सब करतेहैं इस समय हम वनमें आये हैं इसबातको तू जान, हम लोगभी तुझको जाननेकी इच्छा करते हैं कि, तू कौन है? और किस कारण इस दंडकारण्यमें विचरण करता है ॥३॥ उसके पीछे विराध राक्षस उन सत्यपराक्रम करनेवाले श्रीरामचंद्रजीसे बोला कि, राम! मैं अपना वृत्तान्त कहताहूँ श्रवण करो ॥४॥ मैं जवनामक राक्षसका पुत्र हूँ मेरी माताका नाम शतह्रदा है इस पृथ्वीके बीच सब राक्षस हमको विराध

अथोवाचपुनर्वाक्यंविराधःपूरयन्वनम् ॥ पृच्छतोममहिब्रूतंकौयुवांक्वगमिष्यथः ॥ १ ॥ तमुवाचततोरामोराक्षसंज्वलिताननम् ॥पृच्छंतसु महातेजाइक्ष्वाकुकुलमात्मनः ॥ २ ॥ क्षत्रियौवृत्तसम्पन्नौविद्धिनौवनगोचरौ ॥ त्वांतुवेदितुमिच्छावःकस्त्वंचरसिदंडकान् ॥३॥ तमुवाच विराधस्तुरामंसत्यपराक्रमम्॥हंतवक्ष्यामितेराजन्निबोधममराघव॥४॥ पुत्रःकिलजवस्याहंमाताममशतह्रदा॥ विराधइतिमामाहुःपृथिव्यांसर्व राक्षसाः ॥५॥ तपसाचाभिसंप्राप्ताब्रह्मणोहिप्रसादजा॥ शस्त्रेणावध्यतालोकेऽच्छेद्याभेद्यत्वमेवच॥६॥उत्सृज्यप्रमदामेनामनपेक्षौयथागतम् ॥ त्वरमाणौपलायेथांनवांजीवितमाददे ॥ ७ ॥ तंरामःप्रत्युवाचेदंकोपसंरक्तलोचनः ॥ राक्षसंविकृताकारंविराधंपापचेतसम् ॥८॥ क्षुद्रधिक्त्वां तुहीनार्थंमृत्युमन्वेषसेध्रुवम् ॥ रणेप्राप्स्यसिसंतिष्ठनमेजीवन्विमोक्ष्यसे ॥ ९ ॥ततःसज्यंधनुःकृत्वारामःसुनिशिताञ्शरान् ॥ सुशीघ्रमभिसं धायराक्षसंनिजघानह ॥ १० ॥

नामसे पुकारा करतेहैं ॥५॥ मैंने तपस्या करके ब्रह्माजीके प्रसादसे किसी शस्त्रद्वारा हम न मारे जाँय न हमारे अंगही कट टूट सकें न हम मारे जायं ऐसा वरदान पाया है ॥ ६ ॥ अतएव तुम लोग युद्धकी वासना छोड शीघ्रतासे इस स्त्रीको यहींपर त्यागकर जिस स्थानसे आये हो वहींको चले जाओ क्योंकि,मैं तुम्हारा जीव नहीं लेना चाहता ॥ ७ ॥ तब रामचंद्रजी क्रोधसे लाल २ नेत्र कर उस पापनिरत विकटाकार राक्षसको यह उत्तर देते हुए—रे अधम ! तुझको धिक्कार है तेरा आशय और इच्छा बहुत बुरी है तू निश्चयही मृत्युको खोजता है सो अभी उसको प्राप्त होगा खडाहो, जबतक तू जीता रहेगा तबतक तेरा निस्तार हमसे नहीं ॥ ८ ॥ ९ ॥ अनन्तर श्रीरामचंद्रजीने अतिशीघ्र धनुषपर बाण चढाकर बहुत सारे तेजबाण उस राक्षसको लक्ष्य करके छोडे ॥ १० ॥

उन्होंने धनुषपर रोदाचढाय सुवर्णके पंखेलगे अतिवेगवान् गरुड और पवनके समान शीघ्रगामी सात तीर चलाये ॥११॥ वह सातोबाण मोरकी पूँछके समान चित्र विचित्र विराधकी देहको भेदकर रुधिरमें लिपट अग्निके समान चमकते हुए पृथ्वीपर गिरे ॥ १२ ॥ तब वह राक्षस बाणसे बिंधकर विदेहराजकुमारी सीताजीको पृथ्वीपर बैठाकर शूलउठा क्रोधमेंभर रामचन्द्र व लक्ष्मणजीकी ओरको दौडा ॥१३॥ वह बहुतही चिल्लाता हुआ इन्द्रध्वजके समान शूल धारण कर मुख फैलाये यमराजके समान शोभा धारण करता हुआ ॥ १४ ॥ उस राक्षसको आता देख दोनों भाई उस यमराजके समान विराध राक्षसपर दीप्तिमान्बाणोंकी वर्षा करनेलगे ॥१५॥ तब उस अतिभयानक राक्षसने हँसकर खडेहो जँभाई ली, जब कि, उसने जँभाई ली तब उसके शरीरसे वह सब शीघ्रगामी बाण निकलकर

धनुषाज्यागुणवतासप्तबाणान्मुमोचह ॥ रुक्मपुंखान्महावेगान्सुपर्णानिलतुल्यगान् ॥ ११ ॥ तेशरीरंविराधस्यभित्त्वाबर्हिणवाससः॥ निपेतुःशोणितादिग्धाधरण्यांपवाकोपमाः ॥ १२ ॥ सविद्धोन्यस्यवैदेहींशूलमुद्यम्यराक्षसः ॥ अभ्यद्रवत्ससंक्रुद्धस्तदारामंसलक्ष्मणम् ॥ १३ ॥ सविनद्यमहानादंशूलशक्रध्वजोपमम् ॥ प्रगृह्याशोभततदाव्यात्ताननइवांतकः ॥ १४ ॥ अथतौभ्रातरौदीप्तंशरवर्षववर्षतुः ॥ विराधेराक्षसेतस्मिन्कालांतकयमोपमे ॥ १५ ॥ सप्रहस्यमहारौद्रःस्थित्वाऽजृंभतराक्षसः ॥ जृंभमाणस्यतेबाणाःकायान्निष्पेतुराशुगाः ॥ १६ ॥ स्पर्शात्तुवरदानेनप्राणान्संरोध्यराक्षसः ॥ विराधःशूलमुद्यम्यराघवावभ्यधावत ॥ १७ ॥ तच्छूलंवज्रसंकाशंगगनेज्वलनोपमम् ॥ द्वाभ्यांशराभ्यांचिच्छेद रामःशस्त्रभृतांवरः ॥ १८ ॥ तद्रामविशिखैश्छिन्नंशूलंतस्यापतद्भुवि ॥ पपाताशनिनाच्छिन्नंमेरोरिवशिलातलम् ॥ १९ ॥ तौखड्गौक्षिप्रमुद्यम्यकृष्णसर्पाविवोद्यतौ ॥ तूर्णमापेततुस्तस्यतदाप्रहरतांबलात् ॥ २० ॥

पृथ्वीपर गिरे ॥१६॥ उसके पीछे वह विराध राक्षस बहुतही दुःखको प्राप्त होकरभी ब्रह्माजीके वरदानदेनेसे मरा नहीं और जीता रहा व शूल उठाकर श्रीराम लक्ष्मणके सामनेको दौडा ॥ १७ ॥ उस कालमें वह वज्रसमान शूलका अग्रभाग आकाशको छूता अग्निके समान रूप धारण करता हुआ । तब शस्त्र धारण करनेवालोंसे श्रेष्ठ रामचन्द्रजीने दो बाणोंसे उस शूलको काटडाला ॥१८॥ जिस प्रकार वज्रसे कटकर मेरुपर्वतकी बडी शिला पृथ्वीपर गिरे वैसेही् श्रीरामचन्द्र-जीके बाणसे टुकडे २ होकर विराध राक्षसका शूल पृथ्वीपर गिरा॥१९॥ जब उसका शूल कट गया तब राम और लक्ष्मण अतिशीघ्र काटनेको तैयार काले नागके समान दोखड्ग ले उसके सामनेको दौडे और उसके समीप जा बलवीर्यसे खड्ग उसके ऊपर प्रहार करने लगे ॥ २० ॥

तब वह राक्षस उन दोनों नरश्रेष्ठों करके अधमरासा होकर अपने दोनोंहाथोंसे दोनोंको पकड यह सोचनेलगा कि, इनको कहीं दूर लेजाकर पटक २ कर मारडालूँ ॥२१॥ तबतकभी उस राक्षसका शरीर नहीं कांपा उसके पीछे श्रीरामचन्द्रजी उस राक्षसके मनकी बातको जानकर लक्ष्मणजीसे बोलेकि, भला होगा यह राक्षस अपने कंधोंपर चढाकर इस मार्गमें चले ॥२२॥ हे सुमित्रानन्दन ! यह राक्षस जहां हमको लेजानेकी इच्छा करताहै वहां लेजाये । क्योंकि यह जिस रास्तेपर हमें लिये जाता है वही हमारे जानेका मार्ग है ॥२३॥ उस अतिबलवान् विराध राक्षसने अपने बल द्वारा राम और लक्ष्मणको दो बालकोंके समान अपने दोनों कन्धोंपर उठा लिया ॥२४॥ फिर उन दोनों जनोंको कन्धोंपर बैठाकर भयानक वनकी ओर चिल्लाता हुआ वह निशाचर दौडने लगा ॥२५॥ फिर वह राक्षस अनेक भांतिके वृक्ष लगे विविध प्रकारके पक्षियोंके समूहसे मनोहर श्रृगालों करके युक्त चीते व्याघ्रों सर्पोंसे भरे और महा मेघके समान निविड वनमें

सवध्यमानःसुभृशंभुजाभ्यांपरिगृह्यतौ॥अप्रकंप्यौनरव्याघ्रौरौद्रःप्रस्थातुमैच्छत॥२१॥ तस्याभिप्रायमाज्ञायरामोलक्ष्मणमब्रवीत्॥ वहत्वयमलंतावत्पथानेनतुराक्षसः॥२२॥यथाचेच्छतिसौमित्रेतथावहतुराक्षसः ॥अयमेवहिनःपंथायेनयातिनिशाचरः ॥२३॥ सतुस्वबलवीर्येणसमुत्क्षिप्यनिशाचरः॥ बालाविवस्कंधगतौचकारातिबलोद्धतः ॥२४॥ तावारोप्यततःस्कंधंराघवौरजनीचरः ॥ विराधोविनदन्घोरंजगामाभिमुखोवनम् ॥ २५ ॥ वनंमहामेघनिभंप्रविष्टोद्रुमैर्महद्भिर्विविधैरुपेतम् ॥ नानाविधैःपक्षिकुलैर्विचित्रंशिवायुतंव्यालमृगैर्विकीर्णम् ॥ २६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा०अरण्यकांडे तृतीयः सर्गः ॥३॥ ह्रियमाणौतुकाकुत्स्थौदृष्ट्वासीतारघूत्तमौ॥उच्चैःस्वरेणचुक्रोशप्रगृह्यसुमहाभुजौ॥१॥एषदाशरथीरामःसत्यवाञ्छीलवाञ्छुचिः॥रक्षसारौद्ररूपेणह्रियतेसहलक्ष्मणः॥२॥ मामृक्षाभक्षयिष्यंतिशार्दूलद्वीपिनस्तथाः॥मांहरोत्सृजकाकुत्स्थौनमस्तेराक्षसोत्तम॥३॥तस्यास्तद्वचनंश्रुत्वावैदेह्यारामलक्ष्मणौ॥वेगंप्रचक्रतुर्वीरौवधेतस्यदुरात्मनः॥४॥

प्रवेश करता हुआ ॥२६॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अरण्यकांडेभाषायां तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥ जब विराध रघुनंदन रामचन्द्र और लक्ष्मणजीको हरण करके ले चला यहदेखकर सीताजी अपनी बड़ी २ बाहें उठाकर बडे जोरसे रोय २ विलापकरने लगीं ॥१॥ और बोलीं कि—हा ! यह भयंकर आकारवाला राक्षस साधु स्वभाववाले सत्यमें रत पवित्र दशरथकुमार श्रीरामचन्द्र व लक्ष्मणजीको हरे लिये जाता है ॥ २ ॥ कोई चीता व व्याघ्र भेड़िया अकेली पाकर हमको खा जायगा इससे हे राक्षसोंमें श्रेष्ठ ! हम तुमको नमस्कार करती हैं कि, तुम इन दोनोंको छोड दो हमें खालो ॥ ३ ॥ बल वीर्यवाले रामचन्द्र और लक्ष्मणजीने जानकीजीके ऐसे दीन वचन सुनकर उस दुरात्मा विराधके मार डालनेमें बड़ी शीघ्रता की ॥ ४ ॥

सुमित्रानंदन लक्ष्मणजीने उस भयानक राक्षस का बायां हाथ और श्रीरामचन्द्रजीने शीघ्रतासे उसका दाहिना हाथ तोड डाला ॥५॥ जब दोनों हाथ टूट गये तब मेघवर्ण विराध भग्नचित्त हो मूर्च्छाको प्राप्त होकर उसी समय पृथ्वीपर गिर पडा तब ऐसा बोध हुआ मानो कोई पर्वत वज्रकी चोटसे फटकर पृथ्वीपर गिरा ॥६॥ जब वह गिर गया तब श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजीने लात मुक्कों घूसोंसे उसको खूब मारा और बारंबार पृथ्वीपर उठा २ कर पटकने लगे और फिर बहुत ही घसीटा ॥७॥ वह विराध पहले भी रामचन्द्रजीके बहुत बाणोंसे बिंधा और खड्ग के प्रहारसे शरीर छिन्न भिन्न भी हुआ था और इस समय बार २ पृथ्वीपर पटका भी गया परन्तु तो भी नहीं मरा क्योंकि ब्रह्माजीका वरदान था ॥८॥ दीनको शरण देनेवाले श्रीरामचन्द्रजी पर्वतके समान विराध राक्षसको सबही प्रकारसे अवध्य देख लक्ष्मणजीसे बोले ॥९॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! इस राक्षसने ऐसी तपस्या की है कि, शस्त्रकी सहायतासे बाँधकर इसको कोई भी नहीं जीत सकता, अतएव इसको जीता हुआ ही

तस्यरौद्रस्यसौमित्रिःसव्यंबाहुंबभंजह ॥रामस्तुदक्षिणंबाहुंतरसातस्यराक्षसः॥५॥सभग्नबाहुःसंविग्नःपपाताशुविमूर्च्छितः ॥ धरण्यांमेघसंकाशोवज्रभिन्नइवाचलः॥६॥मुष्टिभिर्बाहुभिःपद्भिःसूदयंतौतुराक्षसम्॥ उद्यम्योद्यम्यचाप्येनंस्थंडिलेनिष्पिपेषतुः॥७॥ सविद्धोबहुभिर्बाणैःखड्गाभ्यांचपरिक्षतः॥ निष्पिष्टोबहुधाभूमौनममारसराक्षसः॥८॥तंप्रेक्ष्यरामःसुभृशमवध्यमचलोपमम् ॥ भयेष्वभयदःश्रीमानिदंवचनमब्रवीत्॥९॥ तपसापुरुषव्याघ्रराक्षसोऽयंनशक्यते ॥ शस्त्रेणयुधिनिर्जेतुंराक्षसंनिखनावहे ॥१०॥ कुंजरस्येवरौद्रस्यराक्षसस्यास्यलक्ष्मण ॥ वनेऽस्मिन्सुमहच्छ्वभ्रंखन्यतांरौद्रवर्चसः ॥११॥इत्युक्त्वालक्ष्मणंरामःप्रदरःखन्यतामिति॥तस्थौविराधमाक्रम्यकंठेपादेनवीर्यवान्॥१२॥तच्छ्रुत्वाराघवेणोक्तंराक्षसःप्रश्रितंवचः ॥ इदंप्रोवाचकाकुत्स्थविराधःपुरुषर्षभम् ॥ १३ ॥ हतोहंपुरुषव्याघ्रशक्रतुल्यबलेनवै ॥ मयातुपूर्वंत्वंमोहान्नज्ञातःपुरुषर्षभ ॥ १४ ॥ कौसल्यासुप्रजास्तातरामस्त्वंविदितोमया॥ वैदेहीचमहाभागालक्ष्मणश्चमहायशाः ॥ १५ ॥

पृथ्वीमें गाड़कर दाबे देते हैं ॥१०॥ हे लक्ष्मण ! तुम इस समय हाथीके समान प्रचण्ड स्वभाव वाले इस राक्षसके लिये वनमें एक अति बडा गढा खोदो ॥११॥ वीर्यवान् लक्ष्मणजीको इस प्रकार गढा खोदनेकी आज्ञा देकर श्रीरामचन्द्रजी अपने चरणसे राक्षसका गला दबाकर खडे रहे ॥१२॥ इस समय निशाचर विराध पुरुष श्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजीके यह वचन श्रवण करके विनय सहित यह बोला ॥१३॥ हे पुरुषसिंह ! मैं आपके इन्द्रतुल्य पराक्रमसे ही अधमरा हो गया हूं, हे नरश्रेष्ठ ! मैंने अबतक अज्ञानसे आपको नहीं पहचाना ॥१४॥ हे तात ! इस समय जाना कि, आप श्रीरामचन्द्रजी हैं सती कौशल्याजीने आपको पाकर श्रेष्ठ पुत्रवती हुई हैं और इन महाभाग्यवती जानकी और परम कीर्तिमान् लक्ष्मणजीको भी मैंने भलीभांति पहचान लिया ॥१५॥ मैं पहले तुम्बरुनाम गंधर्व था, विश्रवाके

पुत्र कुबेरजीने हमको शाप दिया बस उसी शापके वश हम इस पापी निशाचर योनिको प्राप्त हुए ॥१६॥ जब उन्होंने हमको शापदिया तब मैंने बहुत विनय करके प्रसन्न किया तब महायशवाले वैश्रवणजीने हमसे कहा कि, जब दशरथजीके पुत्र रामचन्द्रजी युद्धमें तुम्हारा वध करेंगे ॥ १७ ॥ तब फिर तुम गंधर्वका शरीर पाकर स्वर्गमें आओगे, और शाप उन्होंने इस कारण दिया था कि, मैं समयपर उनकी सेवामें नहीं उपस्थित हुआ था तब उन्होंने अतिशय क्रोधारूढ होकर यह शाप दिया कि, राक्षस हो जा ॥ १८ ॥ और उनकी सेवामें न पहुँचनेका यह कारण था कि, मैं रंभा अप्सरा पर मोहित हो रहा था तब राजा वैश्रवणने मुझको यह शाप दिया, सो अब मैं तुम्हारे प्रसादसे इस घोर शापसे छूट गया ॥१९॥ हे परंतप ! अब मैं अपने स्थानको जाता हूं आपका भला हो कि, हमको इस शापसे छुडाया अब ऐसा कीजिये कि, यहांसे कुछ दूर शरभंगका आश्रम है ॥ २० ॥ यहांसे छः कोसकी दूरी पर महाप्रतापी शरभंग नाम

अभिशापादहंघोरांप्रविष्टोराक्षसींतनुम् ॥ तुंबुरुर्नामगंधर्वःशप्तोवैश्रवणेनहि ॥१६॥ प्रसाद्यमानश्चमयासोऽब्रवीन्मांमहायशाः ॥यदादाशरथी रामस्त्वांवधिष्यतिसंयुगे ॥ १७ ॥ तदाप्रकृतिमापन्नोभवान्स्वर्गंगमिष्यति ॥ अनुपस्थीयमानोमांसक्रुद्धोव्याजहारह ॥१८॥ इतिवैश्रवणो राजारंभासक्तमुवाचह ॥ तवप्रसादान्मुक्तोऽहमभिशापात्सुदारुणात् ॥१९॥ भुवनंस्वंगमिष्यामिस्वस्तिवोऽस्तुपरंतप ॥ इतोवसतिधर्मात्मा शरभंगःप्रतापवान् ॥२०॥ अध्यर्धयोजनेतातमहर्षिःसूर्यसन्निभः ॥ तंक्षिप्रमभिगच्छत्वंसतेश्रेयोऽभिधास्यति ॥२१॥ अवटेचापिमांरामनिक्षिप्यकुशलीव्रज ॥ रक्षसांगतसत्त्वानामेषधर्मःसनातनः ॥२२॥ अवटेयेनिधीयंतेतेषांलोकाःसनातनाः ॥ एवमुक्त्वातुकाकुत्स्थंविराधःशरपीडितः ॥२३॥ बभूवस्वर्गसंप्राप्तोन्यस्तदेहोमहाबलः ॥ तच्छ्रुत्वाराघवोवाक्यंलक्ष्मणंव्यादिदेशह ॥२४॥ कुंजरस्येवरौद्रस्यराक्षसस्यास्यलक्ष्मण ॥ वनेऽस्मिन्सुमहाञ्छ्वभ्रःखन्यतांरौद्रकर्मणः ॥२५॥ इत्युक्त्वालक्ष्मणंरामःप्रदरःखन्यतामिति ॥तस्थौविराधमाक्रम्यकंठेपादेनवीर्यवान् ॥२६॥

महात्मा रहते हैं उन महर्षिका तेज सूर्यकेसमान है आप उनके पास शीघ्रही जाइये वह आपका कल्याण शीघ्रही करेंगे ॥ २१ ॥ हे रामचन्द्रजी ! अब हमें गढेमें डालकर कुशलपूर्वक चले जाइये, गढेमें दबना ही मरनेके पीछे राक्षसोंका सनातन धर्म है ॥ २२ ॥ जो कि, राक्षस मरनेके पीछे गडहा खोदकर दाब दिये जाते हैं उनको अक्षय लोकोंकी प्राप्ति होती है, बाणसे पीडित महाबलवान् विराध रामचन्द्रजीसे यह कह ॥२३॥ देहको त्यागकर स्वर्गको प्राप्त होनेको हुआ, श्रीरामचन्द्रजीने राक्षसके ऐसे वचन सुनकर लक्ष्मणजीको आज्ञा दी ॥२४॥ कि, हे लक्ष्मण ! तुम इस वनके बीच प्रचंड हाथीकेसमान भीम कर्म करनेवाले राक्षसके दाबनेको एक बहुत बडागडहा खोदो ॥२५॥ लक्ष्मणजीको गडहा खोदनेकी आज्ञा देकर वीर्यवान् रामचन्द्रजी स्वयं भी अपने पैरसे विराधका

गला दबाकर खडे रहे ॥२६॥ फिर लक्ष्मणजीने खन्ता लेकर महात्मा विराधके निकटही एक बडा गडहा खोदा ॥२७॥ फिर रामचन्द्रजीने गधेके से कान जिसमें लगेहुए हैं ऐसे विराधके मस्तक परसे अपना चरण हटालिया और उसको उठाकर उस गडहेमें डाल दिया उस समय विराध अति घोर शब्दसे चिल्लाने लगा ॥२८॥ युद्धमें दृढचित्त और सत्य विक्रम करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी व लक्ष्मणजी दोनोंने हर्षसहित विकटाकार उस बडे राक्षसका संग्राममें पराजय करा और अपनी भुजाओंके बलसे उठाकर उस रोते हुएको गडहेमें डाल कर पाट दिया ॥२९॥ सब कुछ जाननेमें चतुर वह दो नरश्रेष्ठ तीखे बाण व खड्गसे असुर विराधका संहार न होते देखकर बुद्धिके प्रभावसे गडहेमें उसके मरनेके उपाय जानकर और उसमें ही उसको डालकर वध करते हुए ॥ ३० ॥ श्रीरामचन्द्रजीने जिस प्रकार अपने प्रयो

ततःखनित्रमादायलक्ष्मणःश्वभ्रमुत्तमम्॥अखनत्पार्श्वतस्तस्यविराधस्यमहात्मनः ॥२७॥ तमुक्तकंठमुत्क्षिप्यशंकुकर्णमहास्वनम्॥विराधंप्राक्षिपच्छ्वभ्रेनदंतंभैरवस्वनम्॥२८॥ तमाहवेदारुणमाशुविक्रमौस्थिरावुभौसंयतिरामलक्ष्मणौ ॥ मुदान्वितौचिक्षिपतुर्भयावहंनदंतमुत्क्षिप्यबलेनराक्षसम् ॥२९॥ अवध्यतांप्रेक्ष्यमहासुरस्यतौशितेनशस्त्रेणतदानरर्षभौ ॥ समर्थ्यचात्यर्थविशारदावुभौबिलेविराधस्यवधंप्रचक्रतुः॥३०॥ स्वयंविराधेनहिमृत्युमात्मनःप्रसह्यरामेणयथार्थमीप्सितः॥निवेदितःकाननचारिणास्वयंनमेवधःशस्त्रकृतोभवेदिति॥३१॥ तदेवरामेणनिशम्यभाषितंकृतामतिस्तस्यबिलप्रवेशने ॥बिलंचतेनातिबलेनरक्षसाप्रवेश्यमानेनवनंविनादितम् ॥ ३२ ॥ प्रहृष्टरूपाविवरामलक्ष्मणौविराधमुर्व्यांप्रदरेनिपात्यतम् ॥ ननंदतुर्वीतभयौमहावनेदिविस्थितौचंद्रदिवाकराविव॥ (ततस्तुतौकाञ्चनचित्रकार्मुकौनिहत्यरक्षःपरिगृह्यमैथिलीम् ॥विजह्रतुस्तौमुदितौमहवानंदिविस्थितौचंद्रदिवकराविव ॥ १ ॥) ॥३३॥ इत्यार्षे श्री० वा० आ० च० सा० आरण्यकांडे चतुर्थःसर्गः ॥४॥

जनानुसार विराधको मृत्युके मुखमें डालनेका अभिलाष किया, काननचारी विराधने भी वैसे ही अपने प्राण त्यागनेकी कामनासे स्वयं रामचन्द्रजीसे कहा था कि, तुम शस्त्रसे हमको नहीं मार सकोगे " ३१ ॥ रामचंद्रजीने विराधके ऐसे वचन सुन उसको गडहेमें दबानेका विचार किया, उसके पीछे उस गढेमें डालनेके समय विराध ऐसा घोर चिल्लाया कि, उस शब्दसे सब वन और वह गढा एक साथ ही भर गया ॥ ३२ ॥ इस प्रकार महावनमें श्रीरामचन्द्र व लक्ष्मणजी उस विराध राक्षसको पृथ्वीमें पाट पूटकर दोनोंही एक प्रकार हर्षसे भर खिल गये और भयहीन होकर उस समय वह दोनों जन आकाशमें उदय हुये सूर्य चन्द्रमाके समान दीप्तिमान होने लगे ॥ ३३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अरण्यकांडे भाषायां चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

तत्पश्चात् वीर्यवान् श्रीरामचन्द्रजीने भीमबलवाले राक्षसको मारकर सीताजी को प्रेम सहित लपटाय बहुत समझाया बुझाया ॥१॥ और तेजसे दीप्तिमान अपने छोटे भाई लक्ष्मणजीसे बोले कि; यह वन स्वभावसेही दुर्गम और कष्टका देनेवाला है । इससे पहले कभी इस भांतिका वन हम लोगोंने नहीं देखा ॥२॥ इससे शीघ्रही तपोधन शरभंगजीके आश्रमको चलेचलो यह कहकर श्रीरामचन्द्रजी शरभंगजीके आश्रमकी ओर को चले ॥३॥ वहां पहुँचकर तपोबलसे जिनकी आत्मा शुद्ध हुई है, देवताओंका सा प्रभाव जिनमें है ऐसे महर्षि शरभंगजीके निकट एक बडे अचरजकी बात रामचन्द्रजीने देखी ॥४॥ कि, सूर्यके अग्निकी प्रभाके समान देवराज इन्द्र अपने शरीरकी प्रभासे प्रकाशित देवताओंके साथ श्रेष्ठ रथपर चढे हैं ॥५॥ उनका रथ पृथ्वीमें न खडाहोकर आकाश मार्गमें ही टिका है उनके सब गहनोंमेंसे चमक निकल रही और पहरने के वस्त्र बहुतही उजले थे ॥६॥ वैसेही वस्त्राभूषणोंसे सजे हुए और भी अनेक महात्मा उनकी पूजा कर रहे हैं रामचन्द्रजीने दूरसे

हत्वातुतंभीमबलंविराधंराक्षसंवने॥ततःसीतांपरिष्वज्यसमाश्वास्यचवीर्यवान् ॥१॥ अब्रवीद्भ्रातरंरामोलक्ष्मणंदीप्ततेजसम् ॥ कष्टंवनमिदंदुर्गं नचस्मोवनगोचराः॥२अभिगच्छामहेशीघ्रंशरभंगंतपोधनम्॥आश्रमंशरभंगस्यराघवोऽभिजगामह॥३॥ तस्यदेवप्रभावस्यतपसाभावितात्मनः॥ समीपेशरभंगस्यददर्शमहदद्भुतम् ॥४॥ विभ्राजमानंवपुषासूर्यवैश्वानरप्रभम् ॥ रथप्रवरमारूढमाकाशेविबुधानुगम् ॥५॥ असंस्पृशंतंवसुधां ददर्शविबुधेश्वरम्॥संप्रभाभरणंदेवंविराजोंबरधारिणम्॥६॥तद्विधैरेवबहुभिःपूज्यमानंमहात्मभिः ॥ हरितैर्वाजिभिर्युक्तमंतरिक्षगतंरथम्॥७॥ ददर्शादूरतस्तस्यतरुणादित्यसन्निभम् ॥ पांडुराभ्रघनप्रख्यंचंद्रमंडलसन्निभम्॥८॥अपश्यद्विमलंछत्रंचित्रमाल्योपशोभितम् ॥ चामरव्यजने चाग्र्येरुक्मदंडेमहाधने ॥९॥ गृहीतेवरनारीभ्यांधूयमानेचमूर्धनि ॥ गंधर्वामरसिद्धाश्चबहवःपरमर्षयः ॥१०॥ अंतरिक्षगतंदेवंगीर्भिरग्र्याभिरै डयन्॥सहसंभाषमाणेतुशरभंगेनवासवे ॥११॥ दृष्ट्वाशतक्रतुंतत्ररामोलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ रामोऽथरथमुद्दिश्यभ्रातुर्दर्शयताद्भुतम् ॥ १२ ॥

देखा कि, इन्द्रका सूर्यके समान प्रभावाला हरितवर्ण व श्यामवर्णके घोडे जिसमें जुते रहे ऐसा रथ अन्तरिक्षमें खडा है ॥७॥ जिसकी दीप्ति दुपहरियाके सूर्यके समान पाण्डुवर्णके बादलके समान है उज्ज्वल चन्द्रमंडलके समान गोल ऐसे रथको श्रीरामचन्द्रजीने देखा ॥८॥ उसमेंका छत्र बहुतही उज्ज्वल है उसपर चित्र विचित्र मालायें लटक रही हैं फिर चामर व्यजन देखे जिनमें सुवर्णकी दंडी लगरही थीं जो बडे मोलके और बडे श्रेष्ठ थे ॥९॥.दो उत्तम स्त्रियें छत्र और चमरको धारण किये इन्द्रजीके मस्तक पर घुमाती थीं बहुत सारे गंधर्व; देवता, सिद्ध और परमर्षिगण एक साथ मिलकर ॥ १० ॥ श्रेष्ठ वचनोंसे उन देवराज इन्द्रकी स्तुति कर रहे थे उसकालमें इन्द्रजी महर्षि शरभंगजी के साथ वार्त्ता लाप करनेमें लगे हुए थे ॥११॥ श्रीरामचन्द्रजी उन्हें देख उनके रथको बता

भाई लक्ष्मणको अचरजके सहित वह दिखाकर कहने लगे ॥१२॥ हे भइया ! देखो परम दीप्तिमान्, श्रीयुक्त सूर्यके समान देदीप्यमान यह विचित्र रथ अन्तरिक्षमें टिका हुआ शोभा पारहा है ॥१३॥ हमने पहले शत यज्ञ करनेवाले इन्द्रजीके घोडोंकी जो वार्त्ता सुनी थी,सो यह अन्तरिक्षमें टिके हुये निश्चय वही घोडे होंगे ॥१४॥ हे पुरुषसिंह ! इसे रथके चारों ओर जो सैकडों खड्ग हाथमें लिये, कुण्डल पहरे युवापुरुष खडे हैं ॥ १५ ॥ जिन सबकी ही छाती बडी चौडी है, बाहें परिघके समान विशाल हैं,पहरनेके कपडे जिनके लाल हैं,जो लोग कि, व्याघ्रके समान दुर्द्धर्ष हैं,अर्थात् उनके पास कोई नहीं जासकता ॥ १६ ॥ जिन सबोंके ही गलेमें जलती हुई अग्निके समान हार शोभा पारहे हैं और पच्चीस२ वर्षकीसीही उमर जानपडती है ॥१७॥ यह सब पुरुष श्रेष्ठ जिस प्रकार

अर्चिष्मंतंश्रियाजुष्टमद्भुतंपश्यलक्ष्मण॥ प्रतपंतमिवादित्यमंतरिक्षगतंरथम् ॥१३॥ येहयाःपुरुहूतस्यपुराशक्रस्यनःश्रुताः॥ अंतरिक्षगतादिव्यास्तइमेहरयोध्रुवम् ॥१४॥ इमेचपुरुषव्याघ्रयेतिष्ठंत्यभितोदिशम् ॥ शतंशतंकुंडलिनोयुवानःखड्गपाणयः ॥ १५॥ विस्तीर्णविपुलोरस्काःपरिघायतबाहवः ॥शोणांशुवसनाःसर्वेव्याघ्राइवदुरासदाः ॥ १६ ॥ उरोदेशेषुसर्वेषांहाराज्वलनसंनिभाः॥रूपंबिभ्रतिसौमित्रेपंचविंशतिवार्षिकम् ॥ १७॥ एतद्धिकिलदेवानांवयोभवतिनित्यदा॥यथेमेपुरुषव्याघ्रादृश्यंतेप्रियदर्शनाः ॥१८॥इहैवसहवैदेह्यामुहूर्तंतिष्ठलक्ष्मण ॥ यावज्जानाम्यहंव्यक्तंकएषद्युतिमान्रथे ॥१९॥ तमेवमुक्त्वासौमित्रिमिहैवस्थीयतामिति ॥ अभिचक्रामककाकुत्स्थःशरभंगाश्रमंप्रति ॥२०॥ततःसमभिगच्छंतंप्रेक्ष्यरामंशचीपतिः॥ शरभंगमनुज्ञाप्यविबुधानिदमब्रवीत् ॥ २१ ॥ इहोपयात्यसौरामोयावन्मांनाभिभाषते॥ निष्ठांनयततावत्तुततोमांद्रष्टुमर्हति ॥ २२ ॥ जितवंतंकृतार्थंहितदाहमचिरादिमम् ॥ कर्मह्यनेनकर्तव्यंमहदन्यैःसुदुष्करम् ॥ २३ ॥

कि, प्रियदर्शन जान पडते हैं, वैसेही सबदेवतागण ऐसे रूपव उमरवाले जानपडाकरते हैं व इनकाशरीर सदाऐसाही रहता है कि,मानों पच्चीस वर्षकीही अवस्था है ॥ १८ ॥ इससे हे लक्ष्मण ! वैदेहीजीके सहित यहांपर एकमुहूर्त्तभरतक तुम टिकेरहो जबतककि, हम स्पष्ट२यह न जान आवेंकि, रथवाले द्युतिमान् तेजस्वी पुरुष कौन हैं ? ॥१९॥ लक्ष्मणजीसे यह कह कि, तुम यहीं टिके रहो रामचन्द्रजी शरभंगजीके आश्रमको गमन करने लगे॥२०॥श्रीरामचन्द्रजीको आतेहुये देख शचीनाथ इन्द्रजी शरभंगजीसे विदाले अनुचर देवताओंसे बोले॥ २१ ॥ यह रामचन्द्रजी इस ओरको चले आते हैं, सो जबतक कि, यह हमसे कुछ बोलसकें इससे पहलेही तुम हमको और जगह ले चलो जिससे यह हमको देख न सके ॥ २२ ॥ इनको अभी और लोगोंके न करने योग्य बडा कठिन विशेष

भारी कार्यकरना पडेगा । जबकि, यह राक्षसको जीतकर कृतकार्य होंगे तब इनके दर्शन करेंगे जोअभी दर्शन करें तो न जाने रावण यह वृत्तान्त जानकर क्या कुछ उपद्रव कर उठावे ॥ २३॥ उसके पीछे वज्रधारी इन्द्रजी महर्षिशरभंगजीसे आज्ञाले और उनका विशेषसन्मान करके घोडे जुते हुए रथपर बैठकरस्वर्ग चले गये ॥२४॥ जब सहस्राक्ष इन्द्रजी चले गये तब रामचन्द्रजी भ्राता औरभार्या सीताजीके सहित अग्निहोत्रमें बैठे हुये शरभंगजीके समीप आये ॥ २५ ॥ राम लक्ष्मण और सीताजी सबनेही उनके दोनों चरणपकडे तबशरभंगजीने उनको टिकनेके लिये स्थान बतादिया और भोजनादिकेलिये निमंत्रणभी करा दिया और बैठनेको कहा तब श्रीरामचन्द्रजी सीताजी लक्ष्मणजी वहांपर बैठे ॥ २६॥ उसके पीछे रघुनन्दन रामचन्द्रजीसे शरभंगजीसे इन्द्रके वहां आनेका कारण पूछा तब शरभंगजीने इन्द्रके आनेका सब वृत्तांत कह सुनाया ॥ २७ ॥ और बोले हे राघव ! यह वरदाता इन्द्रजी हमको ब्रह्मलोकमें ले जानेकी इच्छासे

अथवज्रीतमामंत्र्यमानयित्वाचतापसम् ॥ रथेनहययुक्तेनययौदिवमरिंदमः ॥२४॥ प्रयातेतुसहस्राक्षेराघवःसपरिच्छदः॥ अग्निहोत्रमुपासीनंश रभंगमुपागमत् ॥ २५ ॥ तस्यपादौचसंगृह्यरामःसीताचलक्ष्मणः ॥ निषेदुस्तदनुज्ञातालब्धवासानिमंत्रिताः ॥ २६ ॥ ततःशक्रोपयानंतुपर्य पृच्छतराघवः ॥ शरभंगश्चतत्सर्वंराघवायन्यवेदयत् ॥२७॥मामेषवरदोरामब्रह्मलोकंनिनीषति॥ जितमुग्रेणतपसादुष्प्रापमकृतात्मभिः॥२८॥ अहंज्ञात्वानरव्याघ्रवर्तमानमदूरतः॥ब्रह्मलोकंनगच्छामित्वामदृष्ट्वाप्रियातिथिम् ॥२९॥ त्वयाहंपुरुषव्याघ्रधार्मिकेणमहात्मना ॥ समागम्यग मिष्यामित्रिदिवंचावरंपरम्॥३०॥ अक्षयानरशार्दूलजितालोकामयाशुभाः ॥ ब्राह्म्याश्चनाकपृष्ठ्याश्चप्रतिगृह्णीष्वमामकान् ॥ ३१ ॥ एवमु क्तोनरव्याघ्रः सर्वशास्त्रविशारदः॥ ऋषिणाशरभंगेनराघवोवाक्यमब्रवीत् ॥ ३२ ॥

यहां आये थे हमने उग्रतप करके उस लोकको जीतलिया है कि, जिसका जीतना बिना परमात्माके भजन किये बहुत दुर्लभ है ॥ २८ ॥ परन्तु हे पुरुषसिंह श्रीरामचन्द्रजी ! आप निकटही आगये हैं यह जानकर आप सरीखे प्रिय पाहुनेके साथ बिना मिले ब्रह्मलोकको नहीं गया ॥ २९ ॥ हे पुरुषव्याघ्र ! आपही परमधर्मनिष्ठ और महात्मा हैं सो हमारे मनमें यह है कि, आपसे मिलकर फिर स्वर्ग या ब्रह्मलोक कहींको चले जायँगे ॥ ३० ॥ हे नरश्रेष्ठ ! हमने स्वर्ग और ब्रह्मलोक इत्यादि जितनेभर शुभ और अक्षय लोक हैं सबहीको जय करलिया है सो अपनी तपस्यासे जीतेहुए वह सब लोकही हम आपके अर्पण करते हैं आप उनको ग्रहण कीजिये ॥ ३१ ॥ महर्षि शरभंगजीने जब इस प्रकार कहा [illegible] शास्त्रोंके

जाननेवाले पुरुषश्रेष्ठ रामचन्द्रजी उनसे बोले ॥३२॥ हे महामुने ! यदि आप कहें तो जो लोक आपने जीते हैं हम उन सबको यहीं बुलादें परन्तु इस वनमें आपकी आज्ञा लेकर हम वसना चाहते हैं सो बताइये कि, कौनसे स्थानमें वास करें ॥३३॥ इन्द्रके समान बलवान् रघुनन्दन श्रीरामचन्द्रजीने जब इस प्रकार कहा तब फिर महापंडित शरभंगजी बोले ॥३४॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! इस वनमें सुतीक्ष्ण नामक परमतेजस्वी धार्मिक और जितेन्द्रिय एक महर्षि वास करते हैं वह तुम्हारा भला करेंगे और रहनेको स्थान भी बतावेंगे ॥३५॥ और यह जो पुष्पों करके शोभित मन्दाकिनी नदी पूर्वकी ओरको बहरही है सो इसकेकिनारे२ही चले जाइये बस महर्षि सुतीक्ष्णका आश्रम आजायगा ॥३६॥ हे पुरुषशार्दूल ! वहां जानेका यह मार्ग दृष्टि आता है हे तात ! सर्प जिसप्रकार पुरानी केचलीको छोडकर चलाजाता है वैसेही हम भी इससमय यह पुराना देह छोडेंगे आप एक मुहूर्ततक हमारे ऊपर दृष्टि करके इस स्थानपर खड़े रहिये ॥३७॥ यह कह कर

अहमेवाहरिष्यामिसर्वांल्लोकान्महामुने॥आवासंत्वहमिच्छामिप्रदिष्टमिहकानने॥३३राघवेणैवमुक्तस्तुशक्रतुल्यबलेनवै॥शरभंगोमहाप्राज्ञःपुनरेवाब्रवीद्वचः ॥३४॥ इहराममहातेजाःसुतीक्ष्णोनामधार्मिकः ॥ वसत्यरण्येनियतःसतेश्रेयोविधास्यति॥३५॥इमांमंदाकिनींरामप्रतिस्रोतामनुव्रज ॥ नदींपुष्पोडुपवहांततस्तत्रगमिष्यसि ॥३६॥ एषपंथानरव्याघ्रमुहूर्तंपश्यतातमाम्॥यावज्जहामिगात्राणिजीर्णांत्वचमिवोरगः ॥३७॥ ततोऽग्निंससमाधायहुत्वाचाज्येनमंत्रवत्॥शरभंगोमहातेजाःप्रविवेशहुताशनम्॥३८॥ तस्यरोमाणिकेशांश्चतदावह्निर्महात्मनः ॥जीर्णांत्वचंतदस्थीनियच्चमांसंचशोणितम् ॥३९॥ सचपावकसंकाशःकुमारःसमपद्यत ॥ उत्थायाग्निचयात्तस्माच्छरभंगोव्यरोचत ॥४०॥ सलोकानाहिताग्नीनामृषीणांचमहात्मनाम्॥देवानांचव्यतिक्रम्यब्रह्मलोकंव्यरोहत॥४१॥ सपुण्यकर्माभुवनेद्विजर्षभःपितामहंसानुचरंददर्शह ॥ पितामहश्चापिसमीक्ष्यतंद्विजंननंदसुस्वागतमित्युवाच ॥४२॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० अरण्यकांडे पंचमः सर्गः ॥५॥

परमतेजस्वी शरभंगजी यथाविधि अग्निमें ईंधन लगाय मंत्र पढ घृतसे आहुतिदे उसमें प्रवेश करतेहुए ॥३८॥ भगवान् अग्निजीने क्षणमात्रमेंही उन महात्मा शरभंगजीके समस्तरुवें, केश, हड्डी, मांस, रुधिर और पुरानी खाल इत्यादि जलाडाली ॥३९॥ तब शरभंगजी साक्षात् अग्निके समान मूर्तिमान् कुमारका रूपधारण कर अग्निके ढेरसे निकलकर शोभा पानेलगे और उनका पहला रूपजाता रहा ॥४०॥ उसके पीछे वह अग्निहोत्र करनेवाले महात्मा ऋषिगणोंके और देवताओंके सब लोकोंको नांघकर ब्रह्मलोकको चलेगये ॥४१॥ वहां जाकर पुण्य कर्मकरनेवाले ब्राह्मण श्रेष्ठ शरभंगजी अनुचरवेष्टित पितामह ब्रह्माजी के दर्शन करतेहुए, ब्रह्माजीने भी उन द्विजश्रेष्ठके दर्शनकर उनको अपने घोरे बिठाय कुशल प्रश्न कर सब वृत्तांत पूछा ॥४२॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अरण्यकांडेभाषायां पंचमः सर्गः ॥५॥

शरभंगजी जब ब्रह्मलोकको चलेगये तब दंडकवनवासी मुनिगण इकट्ठे होकर तेजसे देदीप्यमान रामचन्द्रजी की शरणमें आये ॥१॥ उनमें वैखानस जो कि, प्रजापतिके नखोंसे उत्पन्न हुए थे, वालखिल्य जो रेतसे उत्पन्न हुए हैं, कुछ सम्प्रक्षाल थे जो परमात्माके चरणोंके धोनेसे हुये थे, कुछ मरीचिप थे जो सूर्य या चन्द्रमाकी किरणकोही पीकर रहते, कुछ अश्मकुट्ट थे जो पत्थरसे कूट २ कर कच्चाही अन्न भक्षण करते; कुछ पत्राहार तापस थे जो केवल पत्तेही भोजन करते ॥२॥ कुछ दन्तोलूखली थे जिनके दांतही ओखलीके समान थे अर्थात् कच्चा अन्न दांतोंसेही चबा जाते थे, कुछ उन्मज्जक थे जो सदा कंठतकजलमें डूबे रहते, बहुत सारे गात्रशय्य थे जो विना बिछाये पृथ्वीपर ही सोते, बहुत अशय्य थे जो सोतेही नहीं कुछ बिछाते ही नहीं, वैसेही पृथ्वीपर पडे रहते थे, बहुत अनवकाशक थे जिनको वेदाध्ययन और पूजा पाठ करनेसे छुट्टीही नहीं मिलती थी ॥३॥ बहुतसे मुनि जलाहारी थे जो जलही पीकर रहते, कुछ वायुभोजी थे जो केवल हवाही खाकर जीते, कोई

शरभंगेदिवंप्राप्तेमुनिसंघाःसमागताः। अभ्यगच्छंतकाकुत्स्थंरामंज्वलिततेजसम् ॥१॥ वैखानसावालखिल्याःसंप्रक्षालामरीचिपाः ॥ अश्मकुट्टाश्चबहवःपत्राहाराश्चतापसाः ॥ २ ॥ दंतोलूखलिनश्चैवतथैवोन्मज्जकाःपरे ॥ गात्रशय्याअशय्याश्चतथैवानवकाशिकाः ॥ ३ ॥ मुनयःसलिलाहारावायुभक्षास्तथापरे ॥ आकाशनिलयाश्चैवतथास्थंडिलशायिनः ॥४॥ तथोर्ध्ववासिनोदांतास्तथार्द्रपटवाससः ॥ सजपाश्चतपोनिष्ठास्तथापंचतपोन्विताः ॥५॥ सर्वेब्राह्म्याश्रियायुक्तादृढयोगसमाहिताः ॥ शरभंगाश्रमेराममभिजग्मुश्चतापसाः ॥६॥ अभिगम्यचधर्मज्ञारामंधर्मभृतांवरम् ॥ ऊचुःपरमधर्मज्ञमृषिसंघाःसमागताः ॥७॥ त्वमिक्ष्वाकुकुलस्यास्यपृथिव्याश्चमहारथः ॥ प्रधानश्चापिनाथश्चदेवानांमघवानिव ॥८॥

आकाशनिलय थे जो बिना ऊपर कुछ छाये छुये खुले मैदानमें पडे रहते, कुछ स्थण्डिलशायी थे जो पृथ्वीपर पडे रहते ॥४॥ कुछ ऊर्ध्वबाहु थे जो कि, सदा ऊपरहीको हाथ उठाये रहते, कुछ दान्त थे जिनकी इन्द्रिय सदा अपने २ समयपरही अपनी २ वासनाको चहतीं, कुछ ऋषि ऐसे थे जो सदा गीले वस्त्र पहरे रहते ऐसे आर्द्रपटवासस, बहुत जपी जो सदा जप किया करते। कुछ तपोनिष्ठ थे जो सदा तपही करके भगवान्‌का ध्यान किया करते। कुछ पंचतपानुष्ठाई थे जो गरमियोंमें पंचाग्नि तापा करते थे ॥५॥ यह जितने भर ऋषि लोग थे सब पर ब्राह्मी श्री विराजमान थी, सबके चित्त दृढ योगाभ्यासमें लगरहे थे, यह सब तपस्वीगण शरभंगजीके आश्रममें आकर रामचन्द्रजीके शरणापन्न हुए ॥६॥ इस प्रकार धर्मात्मा ऋषिलोग सब वहां आकर धार्मिकश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीसे कुशल प्रश्न पूछकर बोले ॥७॥ हे परम धर्मज्ञ ! तुम रथीगणोंमें श्रेष्ठ हो; इक्ष्वाकु कुलके मध्यमें प्रधानहो, इन्द्रजी जिसप्रकार संसारकी रक्षा करते हैं वैसेही तुम भी सब लोगोंकी

रक्षा करते हो ॥८॥ आप यश और विक्रम द्वारा तीनों लोकोंमें विख्यात होगये हैं पितृव्रतत्व सत्यवचन और धर्म सर्वांगसे पूर्ण धर्म तुममें टिके हैं ॥९॥ हे महात्मन् ! आप धर्म के जानने वाले और धर्म प्रिय हैं, अतएव हे नाथ! हम प्रार्थनावान् होकर आपसे जो कुछ कहें सो उसके लिये क्षमा कर ॥१०॥ हे नाथ ! जो राजा प्रजासे पैदावारी का छठावाँ हिस्सा लेते हैं और फिर भी प्रजाको पुत्रके समान पालन नहीं करते हैं उन नरपतियोंको महा अधर्म होता है ॥११॥ हे रामचन्द्रजी ! जो सदा यत्न करके और सावधान होकर अपने अधिकारमें वास करती हुई प्रजाको अपने प्राणोंके समान या प्राणोंसे भी अधिक प्रिय अपने पुत्रोंके समान सदा रक्षा करते हैं ॥१२॥ वह महीपाल इस लोकमें बहुवर्ष व्यापिनी स्थाई कीर्ति प्राप्त करके अन्त समय ब्रह्म लोकमें जाकर विशेष आदर मान पाते हैं ॥१३॥ ऋषिमुनि लोग

विश्रुतस्त्रिषुलोकेषुयशसाविक्रमेणच ॥ पितृव्रतत्वंसत्यंचत्वयिधर्मश्चपुष्कलः ॥९॥ त्वामासाद्यमहात्मानंधर्मज्ञंधर्मवत्सलम् ॥ अर्थित्वान्नाथ वक्ष्यामस्तच्चनःक्षंतुमर्हसि ॥१०॥ अधर्मःसुमहान्नाथभवेत्तस्यतुभूपतेः ॥ योहरेद्बलिषड्भागंनचरक्षतिपुत्रवत् ॥ ११ ॥ युंजानःस्वानिवप्राणान्प्राणैरिष्टान्सुतानिव ॥ नित्ययुक्तःसदारक्षन्सर्वान्विषयवासिनः ॥ १२ ॥ प्राप्नोतिशाश्वतींरामकीर्तिंसबहुवार्षिकीम् ॥ ब्रह्मणःस्थान मासाद्यतत्रचापिमहीयते ॥ १३ ॥ यत्करोतिपरंधर्मंमुनिर्मूलफलाशनः ॥ तत्रराज्ञश्चतुर्भागःप्रजाधर्मेणरक्षतः ॥ १४ ॥ सोऽयंब्राह्मणभूयिष्ठो वानप्रस्थगणोमहान् ॥ त्वन्नाथोनाथवद्रामराक्षसैर्हन्यतेभृशम् ॥ १५ ॥ एहिपश्यशरीराणिमुनीनांभावितात्मनाम् ॥ हतानांराक्षसैर्घोरैर्बहूनां बहुधावने ॥ १६ ॥ पंपानदीनिवासानामनुमंदाकिनीमपि ॥ चित्रकूटालयानांचक्रियतेकदनंमहत् ॥ १७ ॥ एवंवयंनमृष्यामोविप्रकारांतप स्विनाम् ॥ क्रियमाणंवनेघोरंरक्षोभिर्भीमकर्मभिः ॥ १८ ॥

कंदमूल फल खाकर जो परम धर्म बटोरते हैं सो धर्मानुसार प्रजाकी रक्षा करनेवाले राजाको उस धर्म का चौथा भाग प्राप्त होता है ॥१४॥ सो वही यह महान् वानप्रस्थ ऋषिगण जिनमें कि, ब्राह्मणही अधिक हैं आप सा रखवाला पाकर भी नितान्त अनाथकी नाईं राक्षसों करके मारे जाते हैं ॥१५॥ विशुद्ध चित्तवाले मुनिगणों के शरीर समस्त वनमें अनेक प्रकार के भयानक राक्षसोंसे मारे जाकर जहां तहां पडे हैं सो आपआकर देखो ॥१६॥ हम यह बात कुछ मिथ्या नहीं कहते आप स्वयं ही आकर देख लीजिये कि, पंपा और नदियों तथा मंदाकिनी के तीरपर बसनेवाले और चित्रकूट निवासी बहुत सारे मुनिलोग राक्षसोंसे महादुःख पारहे हैं उन मुनि लोगोंका नाश हुआ जाता है ॥१७॥ भयंकर कर्म करनेवाले राक्षसगण तपस्वी लोगोंका नाश करते हैं सो यह दुःख हम लोगोंपर नहीं सहजाता ॥ १८॥

इससे हे शरण्य ! हम आश्रय लेनेके लिये आपके निकट आये हैं हे श्रीरामचन्द्रजी ! आप हम लोगों की रक्षा कीजिये। क्योंकि निशाचरगण हम लोगोंका नाशकिये देते हैं ॥१९॥ हे राजकुमार ! इस पृथ्वी पर आप के सिवाय हमारी कोई गति नहीं हैं हे रघुकुल चूडामणि ! राक्षसों के हाथसे हम सब की आप रक्षा करें ॥२०॥ धर्मात्मा काकुत्स्थनन्दन श्रीरामचन्द्रजी उन तपस्वी ऋषि लोगोंकी ऐसी विपद उनके मुखसे सुनकर सबसे बोले ❀ ॥२१॥ कि, हमसे इस प्रकार कहने की आपको कुछ आवश्यकता नहीं है, हम तो आप लोगोंकी आज्ञाके पालन करनेवाले हैं सो केवल आप अपनेही कार्य करनेको हमें चाहे जिस वनको भेज दीजिये ॥ २२ ॥ जबकि, हम इस वनमें आये हैं तब आपलोगोंको जो डर राक्षसोंसे है उसहीको मिटानेके अर्थव पिताजीकी आज्ञा पालनेके लिये इन दोनों कार्योंके अतिरिक्त और कार्य करनेको हम नहीं आये ॥२३॥ हम जो इस वनमें आये हैं सो आप लोगोंके कार्यको साधन करनेहीके लिये आये हैं क्योंकि जो पिताजीहीकी आज्ञा पालन

ततस्त्वांशरणार्थंचशरण्यसमुपस्थिताः ॥ परिपालयनोरामवध्यमानान्निशाचरैः ॥ १९ ॥ परात्त्वत्तोगतिर्वीरपृथिव्यांनोपपद्यते ॥ परिपालय नःसर्वान्राक्षसेभ्योनृपात्मज ॥२०॥ एतच्छ्रुत्वातुकाकुत्स्थस्तापसानांतपस्विनाम्॥इदंप्रोवाचधर्मात्मासर्वानेवतपस्विनः ॥ २१ ॥ नैवमर्हथमां वक्तुमाज्ञाप्योऽहंतपस्विनाम् ॥ केवलेनस्वकार्येणप्रवेष्टव्यंवनंमया ॥२२॥ विप्रकारमपाक्रष्टुंराक्षसैर्भवतामिमम् ॥ पितुस्तुनिर्देशकरःप्रविष्टोऽ हमिदंवनम् ॥ २३ ॥ भवतामर्थसिद्ध्यर्थमागतोऽहंयदृच्छया ॥ तस्यमेयेवनवासोभविष्यतिमहाफलः ॥२४॥ तपस्विनांरणेशत्रून्हंतुमिच्छा मिराक्षसान् ॥ पश्यंतुवीर्यमृषयःसभ्रातुर्मेतपोधनाः ॥ २५ ॥ दत्त्वावरंचापितपोधनानांधर्मेधृतात्मासहलक्ष्मणेन ॥ तपोधनैश्चापिसहार्यदत्तः सुतीक्ष्णमेवाभिजगामवीरः ॥२६॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० च० सा० अर० षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥ रामस्तुसहितोभ्रात्रासीतयाचपरंतपः ॥ सुतीक्ष्णस्याश्रमपदंजगामसहतैर्द्विजैः ॥१॥

करनी होती तो किसी औरही ओरको चले जाते, अब हमारा वनवास सफल होजायगा क्योंकि आपका कार्यभी सधेगा ॥२४॥ हमने वनमें तपस्वीलोगोंके शत्रु राक्षसोंके संहार करनेका संकल्प किया है, तपोबलसे युक्त ऋषिलोग हमारे और हमारे भ्राताके बाहुबलको देखें॥२५॥ धर्मधुरन्धर वीर रामचन्द्रजी तपस्वी लोगोंको ऐसा वरदान दे उन लोगोंकी पूजा प्राप्त कर और उन्होंने साथ ले लक्ष्मणके सहित सुतीक्ष्णऋषिके आश्रमकी ओर चले ❀ ॥ २६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० . अरण्यकाण्डे भाषायां षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥ शत्रुओंके तपानेवाले श्रीरामचन्द्रजी भ्राता लक्ष्मण, सीता और ब्राह्मणोंके साथ

* चौपाई–आरत वचन सुनत रघुनायक। बोले वचन धरे धनुसायक ॥ * दोहा– निशिचरहीन करौंमहि, भुज उठायप्रणकीन ॥ सकल मुनिनके आश्रमन, जायजाय सुखदीन ॥

सुतीक्ष्णजीके आश्रममें आये॥१॥शरभंगजीके आश्रमसे बहुत दूर चल कर मार्गमें बहुतसारी जलवाली विविधि नदियोंको उतरकर सुमेरुके समान ऊँचे एक निर्मल पर्वतको देखते हुए॥२॥उसके पीछे इक्ष्वाकुके वंश बढानेवाले प्रधान दो रघुवीर सीताजीके सहित अनेक प्रकारके वृक्ष जिसमें विराज रहे हैं ऐसे वनमें प्रवेश करते हुए॥३॥श्रीरामचन्द्रजीने उस घोर वनमें प्रवेश करके अनेकप्रकारके फल फूलवाले वृक्षोंके झुण्डसे घिरा हुआ जिसपर चीर और मालायें टँग रही थीं ऐसा एक आश्रम देखा॥४॥फिर रामचन्द्रजीने वहां तप करनेमें चित्त लगाये मलिन कमलके फूलोंकी माला धारण किये अथवा पाप दूर करनेके निमित्त कमलासनसे बैठे हुए सुतीक्ष्णको देखकर उनसे यथाविधि संभाषण किया॥५॥हे भगवन्! हमारा नाम रामचन्द्र है आपके दर्शन करनेके लिये यहां आये हैं, अतएव हे धर्मज्ञ! हे अक्षततपःप्रभाव सम्पन्न महर्षे! आप हमसे बोलिये॥६॥ तब वह अतिधीर सुतीक्ष्णजी ऋषि धार्मिकश्रेष्ठ रामचन्द्रजीकी ओर देखते हुए दोनों बाहोंसे पकड उनको हृदयसे लगा

सगत्वादूरमध्वानंनदीस्तीर्त्वाबहूदकाः॥ ददर्शविमलंशैलंमहामेरुमिवोन्नतम् ॥२॥ ततस्तदिक्ष्वाकुवरौसततंविविधैर्द्रुमैः॥ काननंतौविविशतुःसीतयासहराघवौ॥ ३ ॥ प्रविष्टस्तुवनंघोरंबहुपुष्पफलद्रुमम् ॥ ददर्शाश्रममेकांतेचीरमालापरिष्कृतम् ॥ ४ ॥ तत्रतापसमासीनंमलपंकजधारिणम् ॥ रामःसुतीक्ष्णंविधिवत्तपोधनमभाषत ॥ ५ ॥ रामोहमस्मिभगवन्भवतंद्रष्टुमागतः॥ तन्माभिवदधर्मज्ञमहर्षेसत्यविक्रम ॥६॥ सनिरीक्ष्यततोधीरोरामंधर्मभृतांवरम् ॥ समाश्लिष्यचबाहुभ्यामिदंवचनमब्रवीत् ॥७॥ स्वागतंतेरघुश्रेष्ठरामसत्यभृतांवर ॥ आश्रमोऽयंत्वयाक्रांतः सनाथइवसांप्रतम् ॥८॥ प्रतीक्षमाणस्त्वामेवनारोहेऽहंमहायशः॥ देवलोकमितोवीरदेहंत्यक्त्वामहीतले ॥९॥ चित्रकूटमुपादायराज्यभ्रष्टोऽसिमेश्रुतः॥ इहोपयातःकाकुत्स्थदेवराजःशतक्रतुः॥ १० ॥ उपागम्यचमेदेवोमहादेवःसुरेश्वरः॥ सर्वाँल्लोकाञ्जितानाहममपुण्येनकर्मणा ॥ ११ ॥ तेषुदेवर्षिजुष्टेषुजितेषुतपसामया ॥ मत्प्रसादात्सभार्यस्त्वंविहरस्वसलक्ष्मणः॥ १२ ॥

कर बोले॥७॥ हे श्रीरामचन्द्रजी! तुम भले आये! हे रघुश्रेष्ठ! हे धार्मिकवर! आपके पदार्पण करनेसे आज यह आश्रम सफल हुआ॥८॥ हे परम यशवाले श्रीरामचन्द्रजी! हे वीर! हम आपके ही दर्शनकी अभिलाषा किये इतने दिनतक पृथ्वीमें रहे और देवलोकको नहीं गये॥९॥ हमने इन्द्रसे यह भी सुना है आप राज्य छोड कर चित्रकूटमें आये हैं। हे काकुत्स्थ! यहां देवराज इन्द्रके आनेका यह प्रयोजन था कि॥१०॥हमने ऐसे पुण्य कर्म किये हैं कि, जिनसे सब लोक जीत लिये सो देव इन्द्रजी यही कहने आये थे कि, आप इस लोकको छोडकर उन लोकोंमें वास कीजिये॥११॥ सो हमें आपके दर्शनकी अभिलाषा थी इससे वहां नहीं गये अब हम प्रसन्न होकर आपको वरदान देते हैं कि, आप हमारे प्रसादसे भ्राता लक्ष्मण और भार्या सीताजीके सहित जो कि, हमने तपस्यासे पाये हैं उन सब देव

र्षियोंकरके सेवित लोकोंमें आनन्दसे वसकर कालव्यतीत कीजिये ॥१२॥ पुरन्दर इन्द्रजीत जिस प्रकार ब्रह्माजीसे बोलते हैं वैसेही आत्मज्ञानी श्रीरामचन्द्रजी कठोर तपके तेजसे प्रदीप्यमान सत्यवादी महर्षि सुतीक्ष्णजीसे बोले ॥१३॥ महामुने ! जब हम चाहेंगे तब आपही उन लोकोंको ग्रहण कर लेंगे इस समय हम यह प्रार्थना करते हैं कि, इस समय इस वनमें हमारे रहनेको आप स्थान बता दीजिये ॥१४॥ गौतमवंशीय महात्मा शरभंगजीके मुखसे हमने यह बात सुनी है कि, आप सबही कुछ वृत्तांत जानते हैं और सब प्राणियोंका हित साधन करनेमें रत हैं ॥१५॥ जगत्प्रसिद्ध महर्षि सुतीक्ष्णजीसे जब रामचन्द्रजीने ऐसा कहा तो वह अतिशय आनन्दित होकर मधुर वचन बोले ॥१६॥ श्रीरामचन्द्र ! यही आश्रम बहुतही श्रेष्ठ है इसमें अनेकानेक ऋषि लोग वसते हैं और कन्दमूल फल भी इस आश्रममें सब समय बहुत सारे मिला करते हैं अतएव तुम इस स्थानमें ही बसकर विहार करो ॥ १७ ॥ आश्रममें अनेक बडे २ शरीरवाले मृग-

तमुग्रपदसंदीप्तंमहर्षिंसत्यवादिनम् ॥ प्रत्युवाचात्मवान्रामोब्रह्माणमिववासवः ॥१३॥ अहमेवाहरिष्यामिस्वयंलोकान्महामुने ॥ आवासंत्वह मिच्छामिप्रदिष्टमिहकानने ॥१४॥ भवान्सर्वत्रकुशलःसर्वभूतहितेरतः ॥ आख्यातंशरभंगेनगौतमेनमहात्मना ॥१५॥ एवमुक्तस्तुरामेणमह र्षिर्लोकविश्रुतः॥अब्रवीन्मधुरंवाक्यंहर्षेणमहतायुतः॥१६॥अयमेवाश्रमोरामगुणवान्रम्यतामिति॥ऋषिसंघानुचरितःसदामूलफलैर्युतः॥१७॥ इममाश्रममागम्यमृगसंघामहीयसः अहत्वाप्रतिगच्छंतिलोभयित्वाऽकुतोभयाः ॥१८॥ नान्योदोषोभवेदत्रमृगेभ्योऽन्यत्रविद्धिवै ॥ तच्छ्रुत्वा वचनंतस्यमहर्षेर्लक्ष्मणाग्रजः॥१९॥उवाचवचनंधीरोविगृह्यसशरंधनुः॥तानहंसुमहाभागमृगसंघान्समागतान्॥२०॥हन्यांनिशितधारेणशरे- णानतपर्वणा॥भवांस्तत्राभिषज्येतकिंस्यात्कृच्छ्रतरंततः॥२१॥एतस्मिन्नाश्रमेवासंचिरंतुनसमर्थये॥तमेवमुक्त्वोपरमंरामःसंध्यामुपागमत्॥२२॥

गण आकर निडर हो इधर उधर सबको अपने रूपसे लुभाते हुए घूमा करते हैं उनसे कोई नहीं बोलता और फिर भी लौट जाते हैं ॥१८॥ अतएव आप जानलें कि, कुछ थोडा बहुत डर है भी वह केवल पशुगणोंकाही भय है इसके सिवाय इस स्थानमें और कोई भय नहीं है महर्षिके ऐसे वचन सुनकर श्रीराम- चन्द्रजी ॥१९॥ धनुष और शर ग्रहण करके उनसे बोले कि, हे महानुभाव ! उन आये हुए मृगके झुण्डोंको ॥२०॥ अपने पैने धारवाले बाणोंसे हम संहार कर डालेंगे परन्तु ऐसा करनेसे आपको कष्ट होगा सो इससे हमें बडा कष्ट होगा ॥२१॥ यह वचन सुन ऋषिराज कुछ न बोले तब रामचन्द्रजीने जाना कि, मुनि मृगोंका वध नहीं चाहते तब उनसे बोले कि, इस मृगबाधित आश्रम पर वहुत दिनोंतक रहनेकी हमारी इच्छा नहीं है यह कहकर रामचन्द्रजी सन्ध्या

करनेको गये ॥ २२ ॥ सायंकालकी सन्ध्या करके श्रीरामचन्द्रजी वहीं सुतीक्ष्णजीके आश्रमपर लक्ष्मण और जानकीजीके सहित बसे ॥२३॥ उसके पीछे सन्ध्या होनेके पश्चात् जब रात्रि हो आई तब महात्मा सुतीक्ष्णजीने आपही तपस्वियोंके भोजन करने योग्य अन्न उन दो पुरुषश्रेष्ठोंको प्रदान किया और बहुत भांतिसे आदर भी करते हुये ॥ २४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदि० अरण्यकाण्डे भाषायां सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥ श्रीरामचन्द्रजी सुतीक्ष्ण करके इस प्रकार पूजे जाकर लक्ष्मणजीके सहित रात्रि इसी आश्रमपर व्यतीत करके प्रभात होते ही जागे ॥ १ ॥ और सीताजीके सहित यथाकालसे उठकर श्रीरामचन्द्रजीने उस जलसे स्नानकरा व हाथ पैर धोया जोकि, कमलोंकी सुवाससे युक्त था ॥ २ ॥ फिर श्रीरामचन्द्र लक्ष्मण और वैदेहीजी देवताओंके

अन्वास्यपश्चिमांसंध्यांतत्रवासमकल्पयत्॥ सुतीक्ष्णस्याश्रमेरम्येसीतयालक्ष्मणेनच ॥२३॥ ततःशुभंतापसयोग्यमन्नंस्वयंसुतीक्ष्णःपुरुषर्षभाभ्याम् ॥ ताभ्यांसुसत्कृत्यददौमहात्मासंध्यानिवृत्तौरजनींसमीक्ष्य ॥२४॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० च० सा० अरण्यकांडे सप्तमः सर्गः ॥७॥ रामस्तुसहसौमित्रिःसुतीक्ष्णेनाभिपूजितः ॥ परिणाम्यनिशांतत्रप्रभातेप्रत्यबुध्यत ॥१॥ उत्थायचयथाकालंराघवःसहसीतया ॥ उपस्पृश्यसुशीतेनतोयेनोत्पलगंधिना ॥२॥ अथतेऽग्निंसुरांश्चैववैदेहीरामलक्ष्मणौ ॥ काल्यंविधिवदभ्यर्च्यतपस्विशरणेवने ॥३॥ उदयंतंदिनकरंदृष्ट्वाविगतकल्मषाः ॥सुतीक्ष्णमभिगम्येदंश्लक्ष्णंवचनमब्रुवन् ॥४॥ सुखोषिताःस्मभगवंस्त्वयापूज्येनपूजिताः॥ आपृच्छामःप्रयास्यामोमुनयस्त्वरयंतिनः ॥५॥ त्वरामहेवयंद्रष्टुंकृत्स्नमाश्रममंडलम्॥ऋषीणांपुण्यशीलानांदंडकारण्यवासिनाम्॥६॥अभ्यनुज्ञातुमिच्छामःसहैभिर्मुनिपुंगवैः॥ धर्मनित्यैस्तपोदांतैर्विशिखैरिवपावकैः ॥७॥ अविषह्यातपोयावत्सूर्योनातिविराजते ॥ अमार्गेणागतांलक्ष्मींप्राप्येवान्वयवर्जितः ॥ ८ ॥

कालोचित विधानानुसार अग्नि आदिदेवताओंकी पूजा उस तपस्वी सेवित वनमें करते हुए ॥ ३ ॥ और उदय होते हुए सूर्य भगवानके दर्शन कर निष्पाप वे कुमार सुतीक्ष्णके निकट आकर विनीत मनोहर वचनसे बोले॥४॥ हे भगवन् ! आपके निकट पहुनई पाकर हम इस रात्रिमें यहां बहुत सुखसे बसे अब हम दण्डकारण्यमें जायँगे इस कारण आपकी अनुमति चाहते हैं क्योंकि यह ऋषि लोग हमको चलनेके अर्थ शीघ्रता करा रहे हैं॥५॥ दण्डकारण्यवासी पवित्र स्वभाववाले ऋषि लोगोंके समस्त आश्रममण्डल दर्शन करनेके लिये हमारी इच्छा हुई है सो हम उनको शीघ्र देखेंगे।॥६॥ अब इच्छा है कि, आप आज्ञा देगें तो हम इन सब बिना धुवेंवाली अग्निके समान प्रभायुक्त सत्यनिष्ठ तप करके जिन्होंने अपनी इंद्रियोंको जीत लिया है ऐसे मुनिश्रेष्ठोंके साथ चले जायँ ॥ ७ ॥ अन्याय करके प्राप्त हुई लक्ष्मीको पाकर

जिस प्रकार पुरुषान पुरुषोंके संबंध छोड मनुष्य असह हो उठता है, सूर्यका ताप वैसा असह न होते २ ॥८॥ हम यहां चलनेकी वासना करते हैं श्रीरामचन्द्रजीने यह कहकर लक्ष्मण और सीताजीके साथ सुतीक्ष्णजीके चरणोंकी वन्दनाकी ॥९॥ मुनिश्रेष्ठ सुतीक्ष्णजीने चरणवन्दन करते हुए उन दोनों राम और लक्ष्मणजीको उठाकर गाढ आलिङ्गन किया और उनसे स्नेह साने वचन बोले ॥१०॥ हे श्रीरामचन्द्रजी! लक्ष्मणजी और छायाके समान साथ चलनेवाली इन सीताजीके संग आप निर्विघ्न मार्गमें चले जायं ॥११॥ हे वीर ! योगमें जिनके चित्त लगे हुए हैं ऐसे दण्डकारण्यवासी सब ऋषियोंके रमणीय आश्रम देख आइये ॥ १२ ॥ अनेक प्रकारके बहुत कंद मूल फल सहित फूले हुए वनोंमें जिनमें भले २ श्रेष्ठ मृगगण रहते हैं और पक्षियोंके झुण्डके झुण्ड भरे हैं ॥१३॥ जहां स्वच्छ जलवाली

तावदिच्छामहेगंतुमित्युक्त्वाचरणौमुनेः ॥ ववंदेसहसौमित्रिःसीतयासहराघवः ॥९॥ तौसंस्पृशंतौचरणावुत्थाप्यमुनिपुंगवः ॥ गाढमाश्लिष्यसस्नेहमिदंवचनमब्रवीत् ॥ १० ॥ अरिष्टंगच्छपंथानंरामसौमित्रिणासह ॥ सीतयाचानयासार्धंछाययेवानुवृत्तया॥११॥ पश्याश्रमपदंरम्यं दंडकारण्यवासिनाम् ॥ एषांतपस्विनांवीरतपसाभावितात्मनाम् ॥१२॥ सुप्राज्यफलमूलानिपुष्पितानिवनानिच ॥ प्रशस्तमृगयूथानिशांत पक्षिगणानिच ॥ १३ ॥ फुल्लपंकजखंडानिप्रसन्नसलिलानिच ॥ कारंडवविकीर्णानितटाकानिसरांसिच ॥१४॥ द्रक्ष्यसेदृष्टिरम्याणिगिरिप्रस्रवणानिच ॥ रमणीयान्यरण्यानिमयूराभिरुतानिच ॥ १५ ॥ गम्यतांवत्ससौमित्रेभवानपिचगच्छतु ॥ आगंतव्यंचतेदृष्ट्वापुनरेवाश्रमंप्रति ॥ १६ ॥ एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वाकाकुत्स्थःसहलक्ष्मणः ॥ प्रदक्षिणंमुनिंकृत्वाप्रस्थातुमुपचक्रमे ॥ १७ ॥ ततः शुभतरेतूणीधनुषीचायतेक्षणा ददौसीतातयोर्भ्रात्रोःखड्गौचविमलौततः ॥१८॥ आबध्यचशुभेतूणीचापेचादायसस्वने॥ निष्क्रांतावाश्रमाद्गंतुमुभौतौरामलक्ष्मणौ ॥ १९ ॥

ताल तलैयोंमें कमल फूल रहे हैं और उन्हीं तालाबों पर हंस और कारंडवादि पक्षी विराज रहे हैं ॥१४॥ और इनके अतिरिक्त देखनेमें अति मनोहर पर्वतोंके झरने और जहां मोर शोर कर रहे हैं ऐसे वन भी आप देखेंगे ॥१५॥ वत्स सौमित्रे ! गमन करो श्रीरामचन्द्रजी ! आप भी जायँ, परन्तु इन सब आश्रमोंके दर्शन करके फिर भी इस स्थानमें आप लौट कर आवें ॥१६॥ जब सुतीक्ष्णजी यह बोले तब श्रीरामचन्द्रजी कहाकि ऐसाही होगा यह कहकर लक्ष्मणजीके साथ सुतीक्ष्णजीकी परिक्रमा करजानेके लिये तैयार हुये ॥१७॥ अनन्तर बडे २ नेत्रवाली सीताजीने दोनों भाइयोंको श्रेष्ठ तरकस धनुष और दो निर्मल खड्ग दिये जोकि रामचन्द्रजीने व लक्ष्मणजीने खोलकर धर दिये थे ॥१८॥ तब श्रीरामचन्द्रजी व लक्ष्मणजी दोनों शुभ तरकस बांध और दो शब्द सहित धनुष कांधेमें ढाल यात्रा

करनेके लिये आश्रमसे बाहर हुए॥१९॥ रूपवान् दोनों रघुवीरोंने महर्षिसुतीक्ष्णजीकी आज्ञा पाकर धनुष बाण और असि धारण करके सीताजीके सहित शीघ्र यात्रा की ॥२० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा आ० अरण्यकाण्डे भाषायामष्टमः सर्गः ॥८॥ रघुनंदन रामचन्द्रजी जब सुतीक्ष्णजीकी आज्ञा लेकर यात्रा करते हुए तब सीताजी स्नेह साने मनोहर वचन श्रीरामचन्द्रजीसे बोलीं ॥१॥ यद्यपि आप अतिशय महात्मा हैं परन्तु परम सूक्ष्म रूपसे विचार कर देखनेसे आप अधर्म को संचय करते हैं इस समय कामज व्यसनसे निवृत्त होते ही यह अधर्म नहीं होगा ॥२॥ कामज व्यसन तीन प्रकारके हैं मिथ्या वाक्य अर्थात् झूंठ बोलना व इससे भी परम भारी और दो पाप हैं॥३॥ पर स्त्री गमन (पराई स्त्रीसे भोग करना) और विना वैरके ही वृथा प्राणी को मार डालना यह पाप बडे भारी हैं हे रघुनन्दन !

शीघ्रंतौरूपसंपन्नावनुज्ञातौमहर्षिणा॥प्रस्थितौधृतचापासीसीतयासहराघवौ ॥२०॥ इत्यार्षेश्रीम०वा०आ०च०सा०अर०अष्टमःसर्गः ॥ ८ ॥
सुतीक्ष्णेनाभ्यनुज्ञातंप्रस्थितंरघुनंदनम्॥हृद्ययास्निग्धयावाचाभर्तारमिदमब्रवीत्॥१॥अधर्मंतुसुसूक्ष्मेणविधिनाप्राप्यतेमहान् ॥निवृत्तेनचशक्योऽयंव्यसनात्कामजादिह ॥२॥ त्रीण्येवव्यसनान्यत्रकामजानिभवंत्युत ॥ मिथ्यावाक्यंतुपरमंतस्माद्गुरुतरावुभौ ॥३॥ परदाराभिगमनंविनावैरंचरौद्रता ॥ मिथ्यावाक्यंनतेभूतंनभविष्यतिराघव ॥ ४ ॥ कुतोऽभिलषणंस्त्रीणांपरेषांधर्मनाशनम्॥ तवनास्तिमनुष्येंद्रनचाभूत्ते कदाचन ॥५॥ मनस्यपितथारामनचैतद्विद्यतेक्वचित् ॥ स्वदारनिरतश्चैवनित्यमेवनृपात्मज ॥ ६ ॥ धर्मिष्ठःसत्यसंधश्चपितुर्निर्देशकारकः ॥ (सत्यसंधमहाभागश्रीमँल्लक्ष्मणपूर्वज ॥) त्वयिधर्मश्चसत्यंचत्वयिसर्वंप्रतिष्ठितम् ॥ ७ ॥ तच्चसर्वंमहाबाहोसत्यंवोढुंजितेंद्रियैः ॥ तववश्येंद्रियत्वंचभूतानांशुभदर्शन ॥८॥ तृतीयंयदिदंरौद्रंपरप्राणाभिहिंसनम् ॥ निर्वैरंक्रियतेमोहात्तच्चतेसमुपस्थितम् ॥ ९ ॥

आपने कभी मिथ्या वचन नहीं कहा न कभी आप आगेको कहेंगे ॥४॥ हे नरश्रेष्ठ ! और आप धर्मका नाश करनेवाला पर स्त्री गमन नहीं करते सो हे नरनाथ! न तो यह बात आपमें कभी हुई न होगी ॥५॥ आपने किसी कारण वश होकर मनके बीचमें भी पराई स्त्रीकी अभिलाषा नहीं की हे राजकुमार ! आप सदाही अपनी स्त्रीमें अनुरागी रहते हैं ॥६॥ आप धर्मात्मा और सच्ची प्रतीज्ञा करनेवाले हैं पिताजी की आज्ञा पालन कर रहे हैं धर्म और सत्य सब आपमें ही टिके हुये हैं ॥ ७ ॥ हे महाबाहो ! जो लोग जितेन्द्रिय हैं वह लोग ही इन सब बातोंका पालन कर सकते हैं। हे शुभदर्शन! सब प्राणी आपकी जितेन्द्रियताको जानते हैं ॥८॥ परन्तु विना अपराध प्राणियों की हिंसा करनेका जो यह भयानक तीसरा व्यसन है इस समय वही व्यसन आपमें उपस्थित हुआ है ॥ ९ ॥

हे वीर ! आपने प्रतिज्ञा की है कि, दंडकारण्यवासी ऋषि लोगोंकी रक्षा करने के लिये युद्धमें हम राक्षसोंके प्राण संहार करेंगे॥१०॥इसीकारण आपने धनुषबाण ग्रहण करके लक्ष्मण सहित दंडक नामसे जो वन विख्यात है उसमें यात्रा की है॥११॥अत एव आपको यात्रा करते हुए देखकर और अंगीकार पालनरूप व्रत जान कर आपके पारलोकिक और ऐहिक सुखके विषयमें हमारे मनको बडी चिंता होरही है॥१२॥हे वीर ! दंडकारण्य का जाना हमें अच्छा नहीं लगता सो इसका कारण भी कहती हैं आप श्रवण करें ॥१३॥ हे महाराज ! आप धनुषबाण ग्रहण करके भाई के सहित वनको जायँगे वहांपर जो आप किसी राक्षसको देख पावेंगे तो कहीं अवश्य ही बाणत्याग करेंगे ॥ १४ ॥ निकट रक्खा हुआ काठ जैसे अग्निके तेजको बढाता है तैसेही यह धनुष जिसके पास रहता है वह भी

प्रतिज्ञातस्त्वयावीरदंडकारण्यवासिनाम् ॥ ऋषीणांरक्षणार्थायवधःसंयतिरक्षसाम् ॥१०॥ एतन्निमित्तंवचनंदंडकाइतिविश्रुतम् ॥ प्रस्थितस्त्वं सहभ्रात्राधृतबाणशरासनः ॥११॥ ततस्त्वां प्रस्थितंदृष्ट्वाममचिंताकुलंमनः ॥ तद्वृत्तंचिंतयंत्यावैभवेन्निःश्रेयसंहितम् ॥ १२ ॥ नहिमेरोचते वीरगमनंदंडकान्प्रति॥कारणंतत्रवक्ष्यामिवदंत्याः श्रूयतांमम ॥१३॥ त्वंहिबाणधनुष्पाणिर्भ्रात्रासहवनंगतः॥दृष्ट्वावनचरान्सर्वान्कच्चित्कुर्याः शरव्ययम् ॥१४॥क्षत्रियाणामिहधनुर्हुताशस्येंधनानिच ॥ समीपतःस्थितंतेजोबलमुच्छ्रयतेभृशम् ॥१५॥ पुराकिलमहाबाहोतपस्वीसत्यवाञ्छुचिः॥कस्मिंश्चिदभवत्पुण्येवनेरतमृगद्विजे ॥१६॥ तस्यैवतपसोविघ्नंकर्तुमिंद्रःशचीपतिः ॥ खड्गपाणिरथागच्छदाश्रमंभटरूपधृक्॥१७॥ तस्मिंस्तदाश्रमपदेनिहितःखड्गउत्तमः ॥ संन्यासविधिनादत्तःपुण्येतपसितिष्ठतः ॥१८॥ सतच्छस्त्रमनुप्राप्यन्यासरक्षणतत्परः॥ वनेतुविचरत्येवरक्षन्प्रत्ययमात्मनः ॥ १९ ॥ यत्रगच्छत्युपादातुंमूलानिचफलानिच ॥ नविनायातितंखड्गंन्यासरक्षणतत्परः ॥ २० ॥

किसी न किसीपर चलायाही चाहता है क्योंकि क्षत्रियोंके पास रहकर धनुष उनके बलको बढाता है ॥१५॥ हे महाबाहो ! पहले कोई मृगपक्षियों करके युक्त पुण्यमय वनके बीच एक सत्यमें टिके हुए पवित्र आचरण करनेवाले तपस्वी रहते थे॥१६॥ शचीपति इन्द्रजी इन ऋषिको तपस्यामें विघ्न करनेके लिये योद्धाका वेष बनाय खड्ग हाथमें लेकर उनके आश्रममें आये॥१७॥और उस आश्रममें उस तपोनिष्ठ पवित्र मुनिके पास धरोहर की भांति खड्ग रखकर चले गये ॥१८॥ मुनिजी इस अस्त्रको पाकर इसकी रक्षा करनेके लिये बहुत यत्न करने लगे और विश्वास घातक न बनना पडे इस कारण इस अस्त्रको संगही लेकर वनमें घूमने लगे ॥१९॥ वह धरोहर वस्तुकी रक्षा करनेमें इतना यत्न करते कि, जब कहींसे कंदमूल फल लेनेके लिये जाते तो भी बिना इस खड्ग के गमन नहीं करते

थे ॥२०॥ सदा खड्ग संगलिये फिरनेसे सहज २ में मुनि का विश्वास तप करनेसे हट गया और उनका स्वभाव कठोर होगया ॥२१॥ उसके पीछे वह उसी शस्त्रसे प्राणियों को मारने लगे और मतवालेसे होगये और अधर्मसे घिर शस्त्र साथ रखनेसे अन्त समय नरकको गये॥ २२ ॥ शस्त्रको पास रखनेसे पहिले ऐसा हुआ था इसी कारणसे पंडित लोग शस्त्र संयोगको अग्नि संयोगके समान विकार हेतु कहा करते हैं॥ २३ ॥ हे प्राणनाथ! हम आपसे बहुत स्नेह करती हैं इस कारण आपको स्मरण दिलाती हूँ कुछ हम आपको शिक्षा नहीं करतीं। हे वीर ! आप धनुष धारण करके ऐसा कार्य मत कीजिये ॥ २४ ॥ निरपराध दंडकवासी राक्षसोंको मारनेका विचार मत कीजिये, हे वीर ! बिना अपराध किसीका भी वध करना आपको उचित नहीं है ॥२५॥ वनमें विचरते हुए क्षत्रियोंका धनुष धारण करना निरपराध जीवोंको मारनेके लिये नहीं वरन् दुःखी लोगोंकी रक्षाही करनेके लिये है ॥ २६ ॥ वनवासी को क्या शस्त्र धारण करना उचित

नित्यंशस्त्रंपरिवहन्क्रमेणसतपोधनः ॥ चकाररौद्रींस्वांबुद्धिंत्यक्त्वातपसिनिश्चयम् ॥ २१ ॥ ततःसरौद्राभिरतःप्रमत्तोधर्मकर्षितः ॥ तस्य शस्त्रस्यसंवासाज्जगामनरकंमुनिः ॥ २२ ॥ एवमेतत्पुरावृत्तंशस्त्रसंयोगकारणम् ॥ अग्निसंयोगवद्धेतुःशस्त्रसंयोगउच्यते ॥ २३ ॥ स्नेहाच्चबहुमानाच्चस्मारयेत्वांतुशिक्षये ॥ नकथंचनसाकार्यागृहीतधनुषात्वया ॥२४॥ बुद्धिर्वैरंविनाहंतुंराक्षसान्दंडकाश्रितान्॥ अपराधंविनाहंतुंलोकोवीरनमंस्यते ॥२५॥ क्षत्रियाणांतुवीराणांवनेषुनियतात्मनाम् ॥ धनुषाकार्यमेतावदार्तानामभिरक्षणम् ॥ २६ ॥ क्वचशस्त्रंक्वचवनंक्वचक्षात्रंतपः क्व च ॥ व्याविद्धमिदमस्माभिर्देशधर्मस्तुपूज्यताम् ॥२७॥ कदर्यकलुषाबुद्धिर्जायतेशस्त्रसेवनात् ॥ पुनर्गत्वात्वयोध्यायांक्षत्रधर्मंचरिष्यसि ॥ २८ ॥ अक्षयातुभवेत्प्रीतिःश्वश्रूश्वशुरयोर्मम ॥ यदिराज्यंहिसंन्यस्यभवेस्त्वंनिरतोमुनिः ॥२९॥ धर्मादर्थःप्रभवतिधर्मात्प्रभवतेसुखम् ॥ धर्मेणलभतेसर्वंधर्मसारमिदंजगत् ॥ ३० ॥ आत्मानंनियमैस्तैस्तैःकर्षयित्वाप्रयत्नतः ॥ प्राप्यतेनिपुणैर्धर्मोनसुखाल्लभतेसुखम् ॥ ३१ ॥

है तपस्वियोंमें क्या क्षत्रियोंका स्वभाव शोभा पाता है ? कहां शस्त्र ? कहां वन? कहां क्षत्रिय धर्म? कहां तप ! यह सब कर्म एक दूसरेसे विरुद्ध हैं इससे वनकाही धर्म यहां पर वर्तना चाहिये ॥ २७ ॥ बराबर शस्त्रका व्यवहार करनेसे बुद्धि कादर और मलीन हो जाती है जब आप अयोध्याजीको लौट चलेंगे तब फिर क्षत्रियोंके धर्मका आचरण कर लेना ॥ २८ ॥ आप राज्य परित्याग करके जो यहांपर ऋषियोंके धर्मका आचरण करेंगे तो हमारे सास और श्वसुर दशरथजी की प्रीति भी आपमें अधिक होगी। क्योंकि उन्होंने भी यही आज्ञा दी है कि; मुनिवेष धारण कर वनमें वसो ॥२९॥ धर्मसे ही अर्थका लाभ होता है धर्मसे ही सुख उत्पन्न होता है, वरन् धर्मसेही सब कुछ प्राप्त होता है इस कारण धर्म ही संसारमें एकमात्र सार वस्तु है अतएव आप भी धर्मकाही आचरण कीजिये ॥३०॥ चतुर मनुष्य

बहुत यत्नसे शरीरको कष्ट देदुर्बल करके धर्मका लाभ करते हैं, क्योंकि शारीरिक सुखजनक उपायसे धर्म प्राप्त नहीं होता ॥३१॥ हे प्रियदर्शन ! तुम सदा शुद्धचित्त होकर, तपोवनमें करने योग्य जो धर्मानुष्ठान हैं उनके करनेमें मन लगाओ त्रिभुवनके सूक्ष्मातिसूक्ष्म सब विषयही आपको विदित हैं तब फिर कौन धर्म विषयमें आपको समझा सकता है ? ॥ ३२ ॥ हमने केवल स्त्रियोंके स्वभावसे जो चंचलता होती है उसके ही वश होकर ऐसा कहा उस समय अनुज लक्ष्मणके साथ विचार करके जो उचित समझा जाय, विलम्ब न लगाकर उसको कीजिये ॥३३॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा वा आदि० अरण्यकांडे भाषायां नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

पतिकी भक्ति करनेवाली मैथिली जानकीजीके ऐसे वचन कहनेपर परमधर्मनिष्ठ रामचन्द्रजी उनको सुनकर अपनेको भलीभांति समाहृत जान उत्तर देते हुए ॥१॥ हे धर्मज्ञे देवि जानकी ! तुमने स्नेह वचनसे क्षत्रियकुलका धर्म बताकर जो कुछ कहा वह सबही हितकारी और बहुत अच्छा है ॥२॥ किंतु देवी ! कोई

नित्यंशुचिमतिःसौम्यचरधर्मंतपोवने॥सर्वंतुविदितंतुभ्यंत्रैलोक्यमपितत्त्वतः॥३२॥स्त्रीचापलादेतदुपाहृतंमेधर्मंचवक्तुंतवकःसमर्थः॥विचार्यबुद्ध्यातुसहानुजेनयद्रोचतेतत्कुरुमाचिरेण ॥३३॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० अरण्यकांडे नवमः सर्गः ॥९॥

वाक्यमेतत्तुवैदेह्याव्याहृतंभर्तृभक्तया ॥ श्रुत्वाधर्मेस्थितोरामःप्रत्युवाचाथजानकीम् ॥१॥ हितमुक्तंत्वयादेविस्निग्धयासदृशंवचः ॥ कुलंव्यपदिशंत्याचधर्मज्ञेजनकात्मजे ॥ २ ॥ किंनुवक्ष्याम्यहंदेवित्वयैवोक्तमिदंवचः ॥ क्षत्रियैर्धार्यतेचापोनार्तशब्दोभवेदिति ॥३॥ तेचार्तांदंडकारण्येमुनयःसंशितव्रताः ॥ मांसीतेस्वयमागम्यशरण्यंशरणंगताः ॥४॥ वसंतःकालकालेषुवनेमूलफलाशनाः ॥ नलभंतेसुखंभीरुराक्षसैःक्रूरकर्मभिः ॥ ५ ॥ भक्ष्यंतेराक्षसैर्भीमैर्नरमांसोपजीविभिः ॥ तेभक्ष्यमाणामुनयोदंडकारण्यवासिनः ॥ ६ ॥ अस्मानभ्युपपद्येतेमामूचुर्द्विजसत्तमाः ॥ मयातुवचनंश्रुत्वातेषामेवंमुखाच्च्युतम् ॥७॥ कृत्वावचनशुश्रूषांवाक्यमेतदुदाहृतम् ॥ प्रसीदंतुभवंतोमेह्रीरेषातुममातुला ॥ ८ ॥

दुःखित होकर वचन न सुनावे इसही कारण क्षत्रियलोग धनुष धारण करते हैं सो यह वार्ता कहकर तुमने स्वयंही अपने प्रश्नका उत्तर देलिया है फिर भला हम और क्या उत्तर दें ॥३॥ दंडकारण्यके रहनेवाले महातपस्वी ऋषिलोग दुःखित होकर स्वयंही यहां आकर हमको सबका शरणदेनेवाला समझ हमारी शरण आये ॥४॥ अयि भीरु ! वह लोग नित्य फल मूल भक्षण करके वनमें वास करते हैं परंतु क्रूरकर्म करनेवाले राक्षसोंके उपद्रवकरनेसे वह मुनिगण सुख नहीं पा सकते ॥ ५ ॥ इसके सिवाय राक्षस नर मांसभोजी तो होतेही हैं सो वैसे नर मांसोपवीजी भयंकर स्वभाववाले राक्षसोंसे अनेक मुनि लोग भक्षण किये गये हैं ॥६॥ उनसे बचे कुचे दंडकारण्यवासी मुनिलोगोंने हमारे निकट आ हमसे यह सब दुःखका वृत्तांत कहा तब हम उनके ऐसे वचन सुन॥७॥ उनकी प्रतिष्ठा करते हुए उनसे बोले

कि, आप हमपर प्रसन्न हूजिये हमको बहुत लज्जा आती है कि आपके ऐसे दुःखित वचन सुनें ॥८॥ क्योंकि आप लोग स्वभावसेही हम लोगोंके पूज्य हैं किंतु इस समय आप हमारी शरणमें आये अनन्तर हमने उनके सामनेही कहा कि, हमें क्या करना होगा सो आज्ञा दीजिये ॥९॥ तब सबहीने एकत्र हो मिल कर कहा राम ! दंडकारण्यमें बहुसंख्यक कामरूप निशाचरोंने एकत्र होकर अतिशय कष्ट देना आरंभ किया है॥१०॥आप उनके हाथोंसे हमारा उद्धार कीजिये हे अनघ ! होम करनेके काल और पौर्णमासी अमावास्याके दिन जब हम यज्ञ करने लगते हैं ॥११॥ तब वह मांसके खानेवाले राक्षस लोग आय २ कर हठ सहित यज्ञविध्वंस करते और हमको सताते हैं अतएव इन राक्षसोंसे व्याकुल महातपस्वी लोगोंको ॥ १२ ॥ आप बचाइये उन लोगोंको हम पराजित नहीं कर सकते तपमें रत ऋषिगण इस प्रकार राक्षसोंके दुःखफंदेमें फँसकर छुटकारा पानेकी वासनासे आपकी शरण लेते हैं । आपही हमलोगोंके परम गति हैं

यदीदृशैरहंविप्रैरुपस्थेयैरुपस्थितः ॥ किंकरोमीतिचमयाव्याहृतंद्विजसंनिधौ ॥ ९ ॥ सर्वैरेवंसमागम्यवागियंसमुदाहृता ॥ राक्षसैर्दंडकारण्येबहुभिःकामरूपिभिः ॥१०॥ अर्दिताःस्मभृशंरामभवान्नस्तत्ररक्षतु ॥ होमकालेतुसंप्राप्तेपर्वकालेषुचानघ॥११॥धर्षयतिस्मदुर्धर्षाराक्षसाः पिशिताशनाः ॥ राक्षसैर्धर्षितानांचतापसानांतपस्विनाम्॥१२॥ गतिंमृगयमाणानांभवान्नःपरमागतिः ॥ कामंतपःप्रभावेणशक्ताहंतुंनिशाचरान् ॥१३॥ चिरार्जितंनचेच्छामस्तपःखंडयितुंवयम् ॥ बहुविघ्नंतपोनित्यंदुश्चरंचैवराघव ॥१४॥ तेनशापंनमुंचामोभक्ष्यमाणाश्चराक्षसैः ॥ तदर्द्यमानान्रक्षोभिर्दंडकारण्यवासिभिः ॥१५॥ रक्षकस्त्वंसचभ्रात्रात्वन्नाथाहिवयंवने ॥ मयाचैतद्वचःश्रुत्वाकार्त्स्न्येनपरिपालनम् ॥ १६ ॥ ऋषीणांदंडकारण्येसंश्रुतंजनकात्मजे ॥ संश्रुत्यचनशक्ष्यामिजीवमानःप्रतिश्रवम् ॥ १७ ॥

यद्यपि हम तपस्याके प्रभावसे स्वयंभी राक्षसोंका संहार कर सकते हैं ॥१३॥ तथापि बहुत कालकी बटोरी हुई तपस्याके क्षय करनेको हमारा अभिलाष नहीं होता । हे रघुनन्दन ! तपस्या जैसे कि, बहुत कष्टोंसे इकट्ठी होती है वैसेही इकट्ठा करनेके समय इसमें अनेक विघ्न भी होते हैं ॥१४॥ उसी कारणसे राक्षसलोग खा भी लेते हैं पर हम उनको शाप देकर नहीं मारते क्योंकि तपका फल शाप देनेसे नहीं रहता इससे दंडकारण्यवासी राक्षसोंसे सताये हुए हम लोगोंकी ॥१५॥ भ्राता लक्ष्मणके सहित आप रक्षा करें क्योंकि आपही हमारे रक्षकर्ता हैं जब हमने मुनियोंके ऐसे वचन सुने तब उनसे कहा कि, आप लोगोंका पालन हम सब प्रकारसे करेंगे ॥१६॥ हे जानकी ! हमने दंडकारण्यवासी तपस्विगणोंकी यह वार्ता सुनकर उनकी रक्षा करनेकी प्रतिज्ञा की है सो प्राण रहते इस प्रतिज्ञाके

पालन करनेमें किसी भांति विमुख नहीं होंगे ॥ १७ ॥ एकतो ऋषिगणोंके सामने प्रतिज्ञा फिर उसमें सत्यही हमारा भी परम अभीष्ट है। फिर भला हम इसके विपरीत कैसे कर सकते हैं ? हे सीते ! तुम्हें, लक्ष्मणको और अपने प्राणको भी हम त्याग कर सकते हैं॥१८॥ परन्तु प्रतिज्ञा करके विशेषतः ब्राह्मणोंके विषयमें सो हम कभी त्याग नहीं कर सकते इससे ऋषिलोगोंका पालन करना हमारा परम कार्य है ॥ १९ ॥ ऋषि लोगोंके न कहने पर भी जब कि, सबही भांतिसे उन लोगोंकी रक्षा करना हमारा आवश्यकीय कार्य है, फिर भला प्रतिज्ञा करके किस प्रकार उस कार्यसे विमुख हों जो हो, हे सीते ! तुमने हमारे प्रति स्नेह और सौहार्दसे जो वचन कहे सोभी हमने जाने ॥२०॥ इससे हम बहुत सतुष्ट हैं, क्योंकि कोई भी कुप्यारे मनुष्यसे हितकारी वचन नहीं कहता।

मुनीनामन्यथाकर्तुंसत्यमिष्टंहिमेसदा ॥ अप्यहंजीवितंजह्यांत्वांवासीतेसलक्ष्मणाम् ॥१८॥ नतुप्रतिज्ञांसंश्रुत्यब्राह्मणेभ्योविशेषतः तदवश्यंमयाकार्यमृषीणांपरिपालनम् ॥१९॥ अनुक्तेनापिवैदेहिप्रतिज्ञायकथंपुनः॥ममस्नेहाच्चसौहार्दादिदमुक्तंत्वयावचः ॥२०॥ परितुष्टोऽस्म्यहंसीते नह्यनिष्टोऽनुशास्यते ॥ सदृशंचानुरूपंचकुलस्यतवशोभने ॥ सधर्मचारिणीमेत्वंप्राणेभ्योऽपिगरीयसी ॥२१॥इत्येवमुक्त्वावचनंमहात्मासीतां प्रियांमैथिलराजपुत्रीम् ॥ रामोधनुष्मान्सहलक्ष्मणेनजगामरम्याणितपोवनानि ॥ २२॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० च० सा० अरण्यकांडे दशमः सर्गः ॥१०॥ अग्रतः प्रययौरामः सीतामध्येसुशोभना ॥ पृष्ठतस्तुधनुष्पाणिऽनुजगामह ॥ १ ॥ तौपश्यमानौविविधाञ्शैलप्रस्थान्वनानिच॥नदीश्चविविधारम्याजग्मतुःसहसीतया॥२॥सारसांश्चक्रवाकांश्चनदीपुलिनचारिणः ॥ सरांसिचसपद्मानियुतानिजलजैःखगैः ॥३॥

हे शोभने ! तुमने हमसे अपने वंशके योग्य उचित वचनही कहे हैं, तुम हमारी धर्मचारिणी हो; हम तुमको प्राणसेभी अधिक प्यारी समझते हैं ॥२१॥ धनुष धारण किये हुए महानुभाव श्रीरामचन्द्रजी जनकदुलारी सुकुमारी सीताजीसे इस प्रकारके वचन कहकर लक्ष्मणजीके सहित परम रमणीय तपोवनों में गमन करते हुए ॥ २२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अरण्यकाण्डे भाषायां दशमः सर्गः ॥ १० ॥ श्रीरामचद्रजी आगे, सुशोभित सीताजी बीचमें और लक्ष्मणजी धनुष धारण करके पीछे २ जाने लगे ॥ १ ॥ उन दोनों भाइयोंने जानकीजीके सहित जानेके समय विविध भांतिके पर्वत, वन, नदी, तालाब आदि देखे ॥ २ ॥ सारस और चकवा चकवी नदियोंके किनारे घूम रहे थे औग कमलके फूल फूले हुए जलमुरगादि

आदिकों करके युक्त सरोवर देखे ॥३॥ चीता, बाघ आदिकोंके झुण्डके झुण्ड, सुविशाल सींग जिनके ऐसे मदसे उन्मत्त भैंसे वराह और वृक्षोंके वैरी हाथी ॥४॥ देखते दिखाते चले उसके पीछे जब दिवाकर अस्ताचलसम्मुखीन हुए तब रामचन्द्र लक्ष्मण व सीताजीने बहुत दूर चलकर एक योजनमें विस्तार है जिसका ऐसा एक तालाब देखा ॥५॥ उस तालाबमें हाथियोंके झुण्डके झुण्ड नहा रहे, बहुत सारे लाल और श्वेत कमलके फूल खिल रहे, जलपक्षी सारस और हंस कल्लोलकर रहे थे ॥६॥ और उसका जल अति निर्मल था श्रीरामचन्द्र लक्ष्मण व जानकीजीने उस रमणीय सरोवर पर गीत और बाजेका शब्द सुना, परन्तु कोई गाने बजानेवाला दिखाई न दिया ॥७॥ महारथी श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मणजी दोनों कौतूहलके वश होकर धर्म भृत् नामक ऋषिसे पूछते हुए ॥८॥ हे महर्षे ! यह बडे आश्चर्यका शब्द सुनकर हम

यूथबंधाश्चपृषतांमदोन्मत्तान्विषाणिनः ॥ महिषांश्चवराहांश्चगजांश्चद्रुमवैरिणः ॥४॥ तेगत्वादूरमध्वानंलंबमानेदिवाकरे ॥ ददृशुःसहितार-म्यंतटाकंयोजनायतम् ॥५॥ पद्मपुष्करसंबाधंगजयूथैरलंकृतम् ॥ सारसैर्हंसकादंबैःसंकुलंजलजातिभिः ॥६॥ प्रसन्नसलिलेरम्येतस्मिन्सर-सिशुश्रुवे ॥ गीतवादित्रनिर्घोषोनतुकश्चनदृश्यते ॥७॥ ततःकौतूहलाद्रामोलक्ष्मणश्चमहारथः ॥ मुनिंधर्मभृतंनामप्रष्टुंसमुपचक्रमे ॥८॥ इदमत्य-द्भुतंश्रुत्वासर्वेषांनोमहामुने ॥ कौतूहलंमहज्जातंकिमिदंसाधुकथ्यताम् ॥९॥ तेनैवमुक्तोधर्मात्माराघवेणमुनिस्तदा ॥ प्रभावंसरसःक्षिप्रमाख्या-तुमुपचक्रमे ॥ १० ॥ इदंपंचाप्सरोनामतटाकंसार्वकालिकम् ॥ निर्मितंतपसारामममुनिनामांडकर्णिना ॥११॥ सहितेपेतपस्तीव्रंमांडकर्णिर्महा-मुनिः ॥ दशवर्षसहस्राणिवायुभक्षोजलाशये ॥१२॥ ततःप्रव्यथिताःसर्वेदेवाःसाग्निपुरोगमाः ॥ अब्रुवन्वचनंसर्वेपरस्परसमागताः ॥ १३ ॥ अस्माकंकस्यचित्स्थानमेषप्रार्थयतेमुनिः ॥ इतिसंविग्नमनसःसर्वेतत्रदिवौकसः ॥१४॥ ततःकर्तुंतपोविघ्नंसर्वैर्देवैर्नियोजिताः ॥ प्रधानाप्स-रसःपंचविद्युच्चलितवर्चसः ॥ १५ ॥

सबकोही बडा कौतूहल हुआ है अतएव इस घटनाका सविशेषसमस्त वर्णन कीजिये ॥९॥ जब श्रीरामचन्द्रजीने इस प्रकार कहा तब धर्मात्मा ऋषि तत्क्षण इस सरो-वरके प्रभावका वर्णन करने लगे ॥१०॥ ऋषि बोले हे रामचन्द्र ! इस तडागका नाम पंचाप्सर है इसमें सदा जल रहता है कभी सूखता नहीं ! महर्षि मांडकर्णिने तपोबलसे इसको बनाया है ॥११॥ वह महामुनि मांडकर्णि दश हजार वर्ष केवल पवन भोजन करते यहां रह कठोर तप करते रहे ॥१२॥ इस तपस्यासे इन्द्र, वरुण, कुबेर, अग्नि, सूर्यादि देवता सब बहुतही व्यथित होकर परस्पर इकठे होकर कहने लगे ॥१३॥ यह ऋषि हममेंसे किसीका पद पानेके लिये तप करते हैं । इस प्रकार निश्चय करके देवताओंके अंतःकरण महाउद्विग्न होगये ॥ १४ ॥ तब उन सब देवताओंने मिलकर उनके तपमें विघ्न करनेकी अभिलाषासे बिजलीके

समान प्रभावाली पांच मुख्य अप्सराओंको भेजा ॥१५॥ अप्सराओंने भी देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये अपने और पराये विषयक जाननेवाले महर्षि मांडकर्णिजीको मदनके मदसे मतवाला कर दिया ॥१६॥ ऋषिजीने उन पांचों अप्सराओंको अपनी स्त्रीकी भांति ग्रहण करके उनके लिये इस शरोवरमें न दीखने वाला सुन्दर घर बनाया ॥१७॥ पांचों अप्सरायें यथासुखसे इस गृहमें वास करके तपके प्रभावसे युवा अवस्थाको प्राप्त हुये उन ऋषिका मन मुदित करनेको उनके संग बिहार करने लगीं ॥१८॥ मुनिजीके सहित विहार करती हुई उन अप्सरागणोंकेही बाजे बजाने और गानेका यह शब्द है और उन्हींके गहनोंका यह मनोहर शब्द सुनाई देता है ॥१९॥ महायशस्वी श्रीरामचन्द्रजी भ्राता लक्ष्मणजीके सहित विशुद्धचित्त महर्षिजीकी इस कथाको सुन बडा अचरज पाते हुए

अप्सरोभिस्तत स्ताभिर्मुनिर्दृष्टपरावरः ॥ नीतोमदनवश्यत्वंदेवानांकार्यसिद्धये ॥१६॥ ताश्चैवाप्सरसःपंचमुनेःपत्नीत्वमागताः ॥ तटाकेनिर्मितंतासांतस्मिन्नंतर्हितंगृहम् ॥ १७ ॥ तत्रैवाप्सरसःपंचनिवसंत्योयथासुखम् ॥ रमयंतितपोयोगान्मुनिंयौवनमास्थितम् ॥ १८॥ तासासंक्रीडमानानामेषवादित्रनिःस्वनः॥ श्रूयतेभूषणोन्मिश्रोगीतशब्दोमनोहरः॥१९॥ आश्चर्यमितितस्यैतद्वचनंभावितात्मनः॥राघवःप्रतिजग्राहसहभ्रात्रामहायशाः ॥ २० ॥ एवंकथयमानःसददर्शाश्रममंडलम् ॥ कुशचीरपरिक्षिप्तंब्राह्म्यालक्ष्म्यासमावृतम् ॥२१॥ प्रविश्यसहवैदेह्यालक्ष्मणेनचराघवः ॥ तदातस्मिन्सकाकुत्स्थःश्रीमत्याश्रममंडले ॥२२॥ उषित्वासुसुखंतत्रपूज्यमानोमहर्षिभिः ॥ जगामचाश्रमांस्तेषांपर्यायेणतपस्विनाम् ॥२३ ॥ येषामुषितवान्पूर्वंसकाशेसमहास्त्रवित् ॥ क्वचित्परिदशान्मासानेकसंवत्सरंक्वचित् ॥२४॥ क्वचिच्चचतुरोमासान्पंचषट्चापरान्क्वचित् ॥ अपरत्राधिकान्मासानध्यर्धमधिकंक्वचित् ॥ २५ ॥ त्रीन्मासानष्टमासांश्चराघवोन्यवसत्सुखम् ॥ तत्रसंवसतस्तस्य मुनीनामाश्रमेषुवै ॥ २६ ॥

॥२०॥ और कैसे अचरजकी बात है यह कहते २ चारों ओर कुश चीर जिसमें पड़े, ब्राह्मी, शोभासमन्वित आश्रममंडलको श्रीरामचन्द्रजी देखते हुए ॥ २१ ॥ वह बहुत शीघ्र भ्राता लक्ष्मण और भार्या जानकीजीके सहित वनशोभासम्पन्न आश्रमोंमें प्रवेश करते हुए॥२२॥जब वहां ऋषियोंने कंद मूल फलोंसे उनकी पूजाकी तब रामचन्द्रजी वहां सुखसे बसे, फिर बारी२से रामचन्द्रजी सबही ऋषियोंके आश्रमोंपर गये और पूजा पाते हुए ॥२३॥ वह महास्त्रवित् श्रीरामचन्द्रजी पहले जिनके आश्रममें बसे थे, उस समय फिर उनके आश्रममें जाते हुए । वह किसी आश्रममें पूरे दश महीने कहीं पूरे वर्षभर ॥२४॥ कहीं चार महीने, कहीं पांच महीने कहीं छःमहीने कहीं एक वर्षसे भी अधिक, कहीं पखवाडेसे अधिक कहीं तीन महीने और कहीं २ साढे तीन २ महीने ॥ २५ ॥ कहीं तीन मास, कहीं

आठ महीनेतक रहे, कहीं इससे न्यूनाधिक रहे, ऐसे उन मुनियोंके आश्रमोंपर श्रीरामचन्द्रजी बसे ॥२६॥ सबही जगह वह सुखसाहित रहे उन आश्रमोंमें वसतेहुए ऋषि लोगोंके अनुकूलतासे सीता सहित दशवर्ष श्रीरामचन्द्रजीने बिता दिये ॥२७॥ इस प्रकारसे धर्मके जाननेवाले श्रीरामचन्द्रजी सीताके साथ सब पुण्य आश्रमोंम घूमघा मकर फिर महर्षि सुतीक्ष्णजीके आश्रममें आये जहां मुनिगणोंने उनकी बडी पूजा की ॥२८॥ वहां पर शत्रुओंके मारनेवाले श्रीरामचन्द्रजी कुछेक दिन रहकर एक दिन विनय सहित उन महामुनि सुतीक्ष्णजीसे ॥२९॥ श्रीरामचन्द्रजी पूछते हुए कि, हे भगवन् ! इस वनमें मुनियोंमें श्रेष्ठ भगवान् अगस्त्यजी ॥३०॥ वसते हैं, यह बात हमने बहुत ऋषि लोगोंसे सुनी है परन्तु यह हमने अबतक न जान पाया कि, उन महातपस्वीजीके रहनेका कौन वन है ? ॥३१॥ फिर यह भी

रमतश्चानुकूल्येनययुःसंवत्सरादश ॥ परिसृत्यचधर्मज्ञोराघवःसहसीतया ॥ २७ ॥ सुतीक्ष्णस्याश्रमपदंपुनरेवाजगामह ॥ सतमाश्रममागम्य मुनिभिःपरिपूजितः ॥ २८ ॥ तत्रापिन्यवसद्रामःकिंचित्कालमरिंदमः॥ अथाश्रमस्थोविनयात्कदाचित्तंमहामुनिम् ॥२९॥ उपासीनःसकाकु त्स्थःसुतीक्ष्णमिदमब्रवीत् ॥ अस्मिन्नरण्येभगवन्नगस्त्योमुनिसत्तमः ॥३०॥ वसतीतिमयानित्यंकथाःकथयतांश्रुतम् ॥ नतुजानामितंदेशंवन स्यास्यमहत्तया ॥ ३१ ॥ कुत्राश्रमपदंरम्यंमहर्षेस्तस्यधीमतः ॥ प्रसादार्थंभगवतःसानुजःसहसीतया ॥ ३२ ॥ अगस्त्यमधिगच्छेयम भिवादयितुंमुनिम् ॥ मनोरथोमहानेषहृदिसंपरिवर्तते ॥३३॥ यदहंतंमुनिवरंशुश्रूषेयमपिस्वयम् ॥ इतिरामस्यसमुनिःश्रुत्वाधर्मात्मनोवचः ॥ ३४ ॥ सुतीक्ष्णःप्रत्युवाचेदंप्रीतोदशरथात्मजम् ॥ अहमप्येतदेवत्वांवक्तुकामःसलक्ष्मणम् ॥ ३५ ॥ अगस्त्यमभिगच्छेतिसीतयासहरा घव ॥ दिष्ट्यात्विदानीमर्थेऽस्मिन्स्वयमेवब्रवीषिमाम् ॥ ३६ ॥ अयमाख्यामितेरामयत्रागस्त्योमहामुनिः ॥ योजनान्याश्रमात्तातयाहिच त्वारिवैततः ॥ दक्षिणेनमहाञ्छ्रीमानगस्त्यभ्रातुराश्रमः ॥ ३७ ॥

नहीं जानते कि उन धीमान् महर्षिजी का उस वनमें रमणीक आश्रम कौनसा है ? उनके प्रसादके लिये लक्ष्मण और जानकी के सहित ॥३२॥ अगस्त्यजीके पास हम प्रणाम करनेको जाया चाहते हैं । इस प्रकारका महा मनोरथ हमारे हृदयके वर्त रहा है ॥३३॥ वहांपर जाकर हम स्वयं मुनिराजजी की सेवा करेंगे । इस प्रकार सुतीक्ष्णजी धर्मात्मा रामचन्द्रजी की बाणी सुन ॥३४॥ दशरथजीके प्यारे दुलारे पुत्र श्रीरामचन्द्रजीसे बोले कि, हम लक्ष्मण सहित आपसे यह बत लानेको हीथे कि ॥३५॥ आप लक्ष्मण व जनककुमारी सीताजीके सहित अगस्त्यजीके निकट जाइये सो बडे भाग्यकी बात है कि, आपनेही अपने मुखसे यह वार्त्ता पूँछी ॥३६॥ हे रामचन्द्रजी ! महर्षि अगस्त्यजी जिस वनमें रहते हैं उसको हम बताते हैं, हे तात ! इस आश्रमसे दक्षिण दिशाकी ओर सोलह कोश मार्ग

चले जाइये, तब अगस्त्यजीके भ्राताका आश्रम आपको दृष्टि आवेगा ॥३७॥ इस आश्रम कीभूमि बडी वसमान है यहां पिप्पलीके वृक्षोंका वन शोभित होरहा है और नाना भांतिके पक्षी शब्द करते हैं ऐसे परम मनोहर और विविध भांतिके फल पुष्प युक्त वनके देशमें यह आश्रम प्रतिष्ठित है ॥३८॥ वहां पर स्वच्छ वारिसे भरे बहुत सारे सरोवर हैं, हंस कारंडवाकुल, चकवा चकवी और सारसइत्यादि जलमें खेल कियाकरते हैं ॥३९॥ हे रामचन्द्रजी ! उस आश्रममें आप एक रात्रि वास करके प्रभात होतेही उस आश्रमके निकटस्थ वनको करवटमें छोड दक्षिण की ओरको गमन कीजिये ॥४०॥ बस चार कोश मार्ग चलतेही विविध भाँतिके वृक्षोंसे घिरा हुआ रमणीय वनमें हर्षित अगस्त्यजीके रहनेका आश्रम देखोगे ॥४१॥ सीता और लक्ष्मणजी तुम्हारे साथ वहां वास करके परम प्रसन्न होंगे

स्थलीप्रायवनोद्देशेपिप्पलीवनशोभिते ॥ बहुपुष्पफलेरम्येनानाविहगनादिते ॥ ३८ ॥ पद्मिन्योविविधास्तत्रप्रसन्नसलिलाशयाः ॥ हंसकारंडवाकीर्णाश्चक्रवाकोपशोभिताः ॥ ३९ ॥ तत्रैकांरजनींव्युष्यप्रभातेरामगम्यताम् ॥ दक्षिणांदिशमास्थायवनखंडस्यपार्श्वतः ॥ ४० ॥ तत्रागस्त्याश्रमपदंगत्वायोजनमंतरम् ॥ रमणीयेवनोद्देशेबहुपादपशोभिते ॥ ४१ ॥ रंस्यतेतत्रवैदेहीलक्ष्मणश्चत्वयासह ॥ सहिरम्योवनोद्देशो बहुपादपसंयुतः ॥४२॥ यदिबुद्धिःकृताद्रष्टुमगस्त्यंतंमहामुनिम् ॥ अद्यैवगमनेबुद्धिंरोचयस्वमहामते ॥ ४३ ॥ इतिरामोमुनेःश्रुत्वासहभ्रात्राभिवाद्यच ॥ प्रतस्थेऽगस्त्यमुद्दिश्यसानुजःसहसीतया ॥४४॥ पश्यन्वनानिचित्राणिपर्वतांश्चाभ्रसन्निभान् ॥ सरांसिसरितश्चैवपथिमार्गवशानुगान् ॥ ४५ ॥ सुतीक्ष्णेनोपदिष्टेनगत्वातेनपथासुखम् ॥ इदंपरमसंहृष्टोवाक्यंलक्ष्मणमब्रवीत् ॥४६॥ एतदेवाश्रमपदंनूनंतस्यमहात्मनः ॥ अगस्त्यस्यमुनेर्भ्रातुर्दृश्यतेपुण्यकर्मणः ॥४७॥ यथाहीमेवनस्यास्यज्ञाताःपथिसहस्रशः ॥ सन्नताःफलभारेणपुष्पभारेणचद्रुमाः ॥ ४८ ॥

क्योंकि वह अनेक प्रकारके वृक्षोंसे युक्त वन अतिरमणीय है ॥४२॥ हे महामते ! यदि महर्षि अगस्त्यजीके दर्शन करनेकी अभिलाषा है तो आजही जानेका विचार कीजिये ॥४३॥ श्रीरामचन्द्रजी सुतीक्ष्ण मुनिकेऐसे विचार सुन उनको प्रणाम करके भ्राता लक्ष्मण और जानकीके सहित अगस्त्यजीके देखनेको प्रस्थान करते हुए ॥४४॥ मार्गमें जानेके समय बहुत सारे विचित्र वन, बादलोंके समान ऊँचे २ पहाड, नदी सरोवर सब ही श्रीरामचन्द्रजी देखते जाते थे ॥४५॥ इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी सुतीक्ष्णजी के बताये हुए मार्गमें यथा सुखसे गमन करके परम प्रसन्न और हर्षित हो लक्ष्मणजीसे बोले ॥४६॥ कि, निश्चयही पुण्य कर्म करनेवाले महात्मा अगस्त्यऋषि के भ्राताका यह आश्रम दिखाई देता है ॥४७॥ क्योंकि जिस प्रकारसे सुना था वैसेही मार्गमें इस वनको आते २ फल और

फूलोंके बोझसे झुके हुए सैकडों हजारों पेड हमने देखे हैं ॥४८॥ यह देखो पके हुए पिप्पलीके फूलोंकी कडवी गन्ध पवन वेगसे बहीहुई चली आती है ॥४९॥ स्थान २ मे इकठे किये हुये काठके बोझ और छिन्न वैडूर्यमणि के वर्णके समान हरे कुश भी यहां देख पडते हैं ॥५०॥ आश्रममें स्थित हुईअग्निकी यह वही धूमशिखा, कृष्णमेघ युक्त पर्वतके शिखरके समान वनके बीच दृष्टि आती है ॥५१॥ और यह ब्राह्मण लोग स्वच्छ तीर्थके जलमें स्नान करके अपने लाये हुए फूलोंके समूहसे इष्ट देवता की पूजा कर रहे हैं ॥५२॥ हे साम्य! महर्षि सुतीक्ष्णजी के मुखसे जैसा श्रवण किया था उसीके अनुसार यहांपर सब कुछ देखकर हमको निश्चयही जान पडता है कि, यही अगस्त्य जी के भ्राता का आश्रम है ॥५३॥ जिन महर्षि अगस्त्यजीने सब लोकोंके हित करनेकी कामनासे बल सहित साक्षात् मृत्यु के समान दैत्यको मारकर इस दक्षिण दिशाको

पिप्पलीनांचपक्वानांवनादस्मादुपागतः ॥ गंधोऽयंपवनोत्क्षिप्तःसहसाकटुकोदयः ॥ ४९ ॥ तत्रतत्रचदृश्यंतेसंक्षिप्ताःकाष्ठसंचयाः ॥ लूनाश्च परिदृश्यंतेदर्भावैडूर्यवर्चसः ॥५०॥ एतच्चवनमध्यस्थंकृष्णाभ्रशिखरोपमम् ॥ पावकस्याश्रमस्थस्यधूमाग्रंसंप्रदृश्यते ॥ ५१ ॥ विविक्तेषुच तीर्थेषुकृतस्नानाद्विजातयः ॥ पुण्योपहारंकुर्वंतिकुसुमैःस्वयमर्जितैः ॥५२॥ ततःसुतीक्ष्णवचनंयथासौम्यमयाश्रुतम् ॥ अगस्त्यस्याश्रमोभ्रा तुर्नूनमेषभविष्वति ॥५३॥निगृह्यतरसामृत्युंलोकानांहितकाम्यया ॥ यस्यभ्रात्राकृतेयंदिक्छरण्यापुण्यकर्मणा ॥५४॥ इहैकदाकिलक्रूरोवाता पिरपिचेल्वलः ॥ भ्रातरौसहितावास्तांब्राह्मणघ्नौमहासुरौ ॥ ५५ ॥ धारयन्ब्राह्मणंरूपमिल्वलःसंस्कृतंवदन् ॥ आमंत्रयतिविप्रान्सश्राद्धमु द्दिश्यनिघृणः ॥ ५६ ॥ भ्रातरंसंस्कृतंकृत्वाततस्तंमेषरूपिणम् ॥ तान्द्विजान्भोजयामासाश्राद्धदृष्टेनकर्मणा ॥ ५७ ॥ ततोभुक्तवतांतेषां विप्राणामिल्वलोऽब्रवीत् ॥ वातापेनिष्क्रमस्वेतिस्वरेणमहतावदन् ॥५८॥ ततोभ्रातुर्वचःश्रुत्वावातापिर्मेषवन्नदन् ॥ भित्त्वाभित्त्वाशरीराणि ब्राह्मणांनांविनिष्पतत् ॥५९॥ ब्राह्मणानांसहस्राणितैरेवंकामरूपिभिः ॥ विनाशितानिसंहत्यनित्यशःपिशिताशनैः ॥ ६० ॥

भी सब के वसने योग्य कियाहै ॥५४॥ ऐसा प्रसीद्ध है कि पहले एक समय महा असुर ब्राह्मणोंका घात करनेवाले वातापी और इल्वल नामक दो क्रूर कर्म करनेवाले भाई इकठे इस वनमें वास करते थे ॥५५॥ उन दोनोंमें से निर्दयी इल्वल जब श्राद्ध का समय आवे तो ब्राह्मण का वेष धर संस्कृत उच्चारण करके ब्राह्मणों का निमंत्रण करे ॥५६॥ जब सब ब्राह्मण आजावें तब अपने भ्राता मेष रूपी वातापी को श्राद्ध के कहे अनुष्ठान के अनुसार उत्तम रूपसे रांधकर सब ब्राह्मणोंको भोजन करा देवै ॥५७॥ उसके पीछे जब ब्राह्मण भोजन कर चुके तब इल्वल अति ऊँचे स्वरसे (वातापी! निकल आओ) यह वचन कहता ॥५८॥ वातापी भ्राता का शब्द सुनकर मेढे के समान शब्द करता हुआ ब्राह्मणों के शरीर फाड २ निकल आता ॥५९॥ यह इच्छानुसार रूप धारणकरनेवाले मांसभोजी असुर इस

प्रकारसे परस्पर मिल प्रतिपादनकर सहस्र २ ब्राह्मणोंकी हत्या करते ॥६०॥ यह देखकर महर्षि अगस्त्यजीने देवताओंकी प्रार्थनाके वश होकर श्राद्धमें उस महा असुर वातापीको भक्षण करलिया, ऐसी बात प्रसिद्ध है ॥६१॥ जब श्राद्धपूरा होगया इसप्रकारसे कहके ब्राह्मणोंके हाथ धुलानेके लिये जल देकर "वातापी! बाहर निकल आओ" यह कहकर इल्वल भ्राताको पुकारने लगा ॥६२॥ जब इल्वलने बार २ अपने भाईको पुकारा तब यह देखकर मुनियोंमें श्रेष्ठ अगस्त्यजीने हँसकर विप्रघाती इल्वलसे कहा ॥६३॥ हमने तुम्हारे मेषरूपी भ्राता वातापीको पचा डाला, वह यमराजके गृहको चला गया सो अब उसको बाहर होनेकी सामर्थ्य कहां ? ॥६४॥ निशाचर इल्वल भाईके मरनेकी वार्त्ता सुनकरके क्रोधयुक्त हो महर्षि अगस्त्यजीको मारनेको तैयार हुआ ॥ ६५ ॥ जैसेही वह मारनेको दौडा कि महर्षिजीने प्रज्वलित अग्निके समान दृष्टिसे एकबार देख दिया बस देखने मात्रसे ही वह भस्म हो गया और प्राण त्यागन कर दिये ॥६६॥ जिन्होंने ब्राह्मणगणोंके ऊपर

अगस्त्येनतदादेवैः प्रार्थितेनमहर्षिणा ॥ अनुभूयकिलश्राद्धेभक्षितःसमहासुरः ॥ ६१ ॥ ततःसंपन्नमित्युक्त्वादत्त्वाहस्तेऽवनेजनम् ॥ भ्रातरंनिष्क्रमस्वेतिचेल्वलःसमभाषत ॥६२॥ सतदाभाषमाणंतुभ्रातरंविप्रघातिनम् ॥ अब्रवीत्प्रहसन्धीमानगस्त्योमुनिसत्तमः ॥६३॥ कुतोनिष्क्रमितुंशक्तिर्मयाजीर्णस्यरक्षसः ॥ भ्रातुस्तुमेषरूपस्यगतस्ययमसादनम् ॥ ६४॥ अथतस्यवचःश्रुत्वाभ्रातुर्निधनसंश्रितम् ॥ प्रधर्षयितुमारेभेमुनिंक्रोधान्निशाचरः ॥६५॥ सोऽभ्यद्रवद्द्विजेंद्रंतंमुनिनादीप्ततेजसा ॥ चक्षुषानलकल्पेननिर्दग्धोनिधनंगतः ॥ ६६ ॥ तस्यायमाश्रमोभ्रातुस्तटाकवनशोभितः ॥ विप्रानुकंपयायेनकर्मेदंदुष्करंकृतम् ॥ ६७ ॥ एवंकथयमानस्यतस्यसौमित्रिणासह ॥ रामस्यास्तंगतःसूर्यःसंध्याकालोऽभ्यवर्तत ॥ ६८ ॥ उपास्यपश्चिमांसंध्यांसहभ्रात्रायथाविधि ॥ प्रविवेशाश्रमपदंतमृषिंचाभ्यवादयत् ॥ ६९ ॥ सम्यक्प्रतिगृहीतस्तुमुनिनातेनराघवः ॥ न्यवसत्तांनिशामेकांप्राश्यमूलफलानिच ॥७०॥ तस्यांरात्र्यांव्यतीतायामुदितेरविमंडले ॥ भ्रातरंतमगस्त्यस्यह्यामंत्रयतराघवः ॥७१॥

दयाके वश होकर इस प्रकारका औरके न करने योग्य अनुष्ठान किया था उन अगत्यजीके महात्मा भाईका ही यह तडागमय शोभित आश्रम है ॥६७॥ श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीके साथ यह वार्त्ता कहतेही रहे कि इतनेमें भगवान् भास्कर अस्ताचलचूडावलम्बी हुए और संध्या हो आई ॥६८॥ तब श्रीरामचंद्रजीने भ्राता लक्ष्मणजीके सहित विधिवत् सायंकालकी संध्या समाप्त करके अगस्त्यजीके भाईके आश्रममें प्रवेश किया और अगस्त्यजीके भाईको प्रणाम किया ॥६९॥ और अगस्त्यजीके भाईने भी उनका भलीभांति शिष्टाचार किया और कंद मूल फल खानेको दिये सो भोजनकर श्रीरामचन्द्रजी एक रात्रि वहांपर बसे ॥ ७० ॥ फिर जब रात बीतगयी और सूर्यनारायण निकल आये तब श्रीरामचन्द्रजीने बिदाकी प्रार्थना करते ऋषिसे निवेदन किया ॥ ७१ ॥

कि हे भगवन् ! हम आपको प्रणाम करते हैं हमने यहां बडे सुखसे यह रात्रि बिताई अब इस समय बिदा दीजिये अब आपके बडे भाई गुरुदेव अगस्त्यजीके दर्शन करनेकी हमारी अभिलाषा हुई है ॥७२॥ यह कहकर ऋषिकी आज्ञा ले उनके आश्रमका वन देखते भालते सुतीक्ष्णमुनिके बताये हुए आश्रमको जाते हुए ॥७३॥ जानेके समय वनके मध्यमें शत२नीवार, पनस, शाल, वञ्जुल, तिनिश, चिरबिल्व (नक्कमाल) मधूक, बेल ॥७४॥ तिन्दुक इत्यादि वृक्ष परस्पर फूलोफली लताओंसे शोभित सैकडों हजारों वृक्ष श्रीरामचन्द्रजीने देखे ॥७५॥ अनेक प्रकारके पक्षीगण मतवाले होकर उन वृक्षोंपर गुंजार कर रहे थे, कुसुमित शिखर लता और वानरगणोंके निकट रहनेसे वहां अतिशय शोभा हो रही और हाथियोंकी सूंडके आघातसे उन वृक्षोंकी टहनियां टूट फूट रहीं थीं ॥७६॥ यह देखकर राजीव लोचन श्रीरामचंद्रजी

अभिवादयेत्वाभगवन्सुखमस्म्युषितोनिशाम् ॥ आमंत्रयेत्वांगच्छामिगुरुंतेद्रष्टुमग्रजम् ॥ ७२ ॥ गम्यतामितितेनोक्तोजगामरघुनंदनः ॥ यथोद्दिष्टेनमार्गेणवनंतच्चावलोकयन् ॥७३॥ नीवारान्पनसान्सालान्वंजुलांस्तिनिशांस्तथा ॥ चिरिबिल्वान्मधूकांश्चबिल्वानथचतिंदुकान् ॥७४॥ पुष्पितान्पुष्पिताग्राभिर्लताभिरुपशोभितान् ॥ ददर्शरामःशतशस्तत्रकांतारपादपान् ॥ ७५ ॥ हस्तिहस्तैर्विमृदितान्वानरैरुपशोभितान् ॥ मत्तैःशकुनिसंघैश्चशतशःप्रतिनादितान् ॥ ७६ ॥ ततोऽब्रवीत्समीपस्थंरामोराजीवलोचनः ॥ पृष्ठतोऽनुगतंवीरंलक्ष्मणंलक्ष्मिवर्धनम् ॥ ७७ ॥ स्निग्धपत्रायथावृक्षायथाक्षांतामृगद्विजाः ॥ आश्रमोनातिदूरस्थोमहर्षेर्भावितात्मनः ॥ ७८ ॥ अगस्त्यइतिविख्यातोलोकेस्वेनैवकर्मणा ॥ आश्रमोदृश्यतेतस्यपरिश्रांतश्रमापहः ॥ ७९ ॥ प्राज्यधूमाकुलवनश्चीरमालापरिष्कृतः ॥ प्रशांतमृगयूथश्चनानाशकुनिनादितः ॥ ८० ॥ निगृह्यतरसामृत्युंलोकानांहितकाम्यया ॥ दक्षिणादिक्कृतायेनशरण्यापुण्यकर्मणा ॥ ८१ ॥ तस्येदमाश्रमपदंप्रभावाद्यस्यराक्षसैः ॥ दिगियंदक्षिणात्रासाद्दृश्यतेनोपभुज्यते ॥ ८२ ॥

अपने पीछे आतेहुए निकटवर्ती लक्ष्मीके बढानेवाले लक्ष्मणजीसे बोले ॥७७॥ इन सब वृक्षोंके पत्ते जैसे चिकने दिखाई देते हैं और मृगगण जैसे शान्तचित्त दृष्टि आते हैं सो इन सब बातोंसे ज्ञात होता है कि उन विशुद्धचित्त महर्षि अगस्त्यजीका आश्रम अब अधिक दूर नहीं है ॥७८॥ जिन्होंने अनेक कर्मद्वारा लोकमें प्रसिद्ध अगस्त्यनाम पाया है, उनही महर्षिजीका थके हुए लोगोंके श्रमका हरनेवाला यह आश्रम दिखाई देता है ॥७९॥ यज्ञका धुवाँ वनमें छाय रहा है वृक्षोंकी डालियोंपर चीर वस्त्र टँगरहे हैं, वैरको छोडे हुए सब मृग इधर उधर घूम रहे हैं, अनेक प्रकारके पक्षी मधुर२नाद कर रहे हैं ॥८०॥ जिन्होंने मनुष्योंका हित करनेकी कामनासे बलसहित मृत्यु और असुरोंको जीतकर दक्षिणदिशाको सबके वासयोग्य कर दिया है ॥८१॥ और जिनके प्रभावसे राक्षसलोग त्रासित होकर

इस दक्षिण दिशाको ओर केवल देखते और आते तो हैं परन्तु किसीको पीड़ा नहीं दे सकते; उन्हीं पुण्यकर्म करनेवाले महर्षि अगस्त्यजीका यह आश्रम है ॥ ८२ ॥ उन पवित्र वेत्ता अगस्त्यजीने जबसे इस आश्रममें आकर वास किया है तबसे निशाचरलोग वैर छोडकर शान्तचित्त होगये हैं ॥ ८३ ॥ भगवान् अगस्त्यजीकी यह दक्षिणदिशा आगस्त्यादिक नामसे त्रिलोकीमें प्रसिद्ध होगई है और उनके प्रभावसे क्रूरकर्म करनेवाले निशाचरगणोंके दबजानेसे यह दिशा मुनिलोगोंके वास करने योग्य होगई है ॥ ८४ ॥ पर्वतोंमें श्रेष्ठ विन्ध्याचल उनकी आज्ञाका प्रतिपालन हीकरता हुआ सूर्यका मार्ग रोकनेके लिये और निरंतर नहीं बढता ❀ ॥ ८५ ॥ लोगोंके बीचमें विख्यात कर्म करनेवाले दीर्घायु महर्षि अगस्त्यजीका विनय युक्त मृगगणसेवित यही आश्रम है ॥ ८६ ॥ जबकि, हम सर्वलोकोंमें पूजित सदा साधु

यदाप्रभृतिचाक्रांतादिगियंपुण्यकर्मणा ॥ तदाप्रभृतिनिर्वैराःप्रशांतारजनीचराः ॥ ८३ ॥नाम्नाचेयंभगवतोदक्षिणादिक्प्रदक्षिणा ॥ प्रथितात्रिषुलोकेषुदुर्धर्षाक्रूरकर्मभिः ॥ ८४ ॥ मार्गंनिरोद्धुंसततंभास्करस्याचलोत्तमः ॥ संदेशंपालयंस्तस्यविंध्यशैलोनवर्धते ॥ ८५ ॥ अयंदीर्घायुषस्तस्यलोकेविश्रुतकर्मणः ॥ अगस्त्यस्याश्रमःश्रीमान्विनीतमृगसेवितः ॥ ८६ ॥ एषलोकार्चितःसाधुर्हितेनित्यंरतःसताम् ॥ अस्मानधिगतानेषश्रेयसायोजयिष्यति ॥ ८७ ॥ आराधयिष्याम्यत्राहमगस्त्यंतंमहामुनिम् ॥ शेषंचवनवासस्यसौम्यवत्स्याम्यहंप्रभो ॥ ८८ ॥ अत्रदेवाःसगंधर्वाःसिद्धाश्चपरमर्षयः ॥ अगस्त्यंनियताहाराःसततंपर्युपासते ॥ ८९ ॥ नात्रजीवेन्मृषावादीक्रूरोवायदिवाशठः ॥ नृशंसपापवृत्तोवामुनिरेषतथाविधः ॥ ९० ॥ अत्रदेवाश्चयक्षाश्चनागाश्चपतगैःसह ॥ वसंतिनियताहाराधर्ममाराधयिष्णवः ॥ ९१ ॥

लोगोंका हित चाहनेवाले साधुचरित्र इन महर्षि अगस्त्यजीके आश्रममें जायँगे, तब वह अवश्यही हमारा मंगलविधान करेंगे ॥ ८७ ॥ हे शुभदर्शन! हम इसी आश्रममें रहकर महर्षि अगस्त्यजीकी आराधना करेंगे और वनवासका शेष समय यहीं बिता देंगे ॥ ८८ ॥ इस आश्रममें देवता गन्धर्व, तपस्या करके सिद्ध हुए महर्षिलोग निराहार रहकर सदाही अगस्त्यजीकी भलीभांति सेवा किया करते हैं ॥ ८९ ॥ महर्षि अगस्त्यजीका प्रभाव ऐसा है कि, इनके आश्रममें झूँठ बोलनेवाला, शठ, दुष्ट, निर्लज्ज, पाप परायण पुरुष किसी भांति जीता हुआ नहीं रह सकता ॥ ९० ॥ इस आश्रममें देव, यक्ष, नाग और पक्षीगण धर्मकी आराधना करनेके लिये

❀ एक समय अगस्त्यजीका शिष्य विन्ध्याचलपर्वत सूर्यका मार्ग रोकनेके लिये, अधिकतासे बढ़ने लगा यह देख देवता बहुत भय भीत हो अगस्त्यजीकी शरण जाकर कहने लगे कि आप अपने शिष्यको इस दुर्घट कार्यके करनेसे निवारण कीजिये तब अगस्त्यजी विन्ध्याचलके निकट गये पर्वतने इन्हें देखकर प्रणाम किया और चरण पकड़े पकड़े पूछा गुरुदेव ! आज्ञा कीजिये ! कैसे आगमन हुआ अगस्त्यजी बोले जबतक हम लौटकर न आवें तबतक तुम योंहीं पड़े रहो, विध्यने तथास्तु कहा तबसे अगस्त्यजी दक्षिण दिशामें आकर रहने लगे और फिर उधर न गये विन्ध्याचल गुरु आज्ञासे आजतक लेट रहा है ॥

नियताहारी होकर वास करते हैं ॥९१॥ महात्मा महर्षि लोग इस आश्रममें सिद्धहो देह त्याग नवीन देह धारण कर सूर्यतुल्य देदीप्यमान विमानमें सवारहो स्वर्गको गये हैं ॥९२॥ जो समस्त पवित्र कर्म करनेवाले प्राणीगण इस आश्रममें रहते हैं वह देवताओंकी उपासना करके देवताओंके प्रसादसे देवत्व, यक्षत्व और विविध राज्योंको प्राप्त होते हैं ॥९३॥ हे सुमित्राकुमार ! हम इस समय उसही आश्रममें आय पहुँचे हैं । तुम पहले प्रवेश करके उन मुनिसे यह निवेदन करदो कि हम सीताके सहित उनके आश्रममें आये हैं ॥९४॥ इत्यार्षे श्रीमद्वा० वा० आदि० अरण्यकांडे भाषायामेकादशः सर्गः ॥११॥ ऐसा जब रामचन्द्रजीने कहा, तब उनके छोटे भइया लक्ष्मणजी आश्रममें प्रवेश करके अगस्त्यजीके शिष्यके समीप पहुँच कर कहने लगे ॥१॥ कि राजा दशरथ जीके बडे पुत्र महाबलवान् श्रीरामचन्द्रजी अपनी स्त्री

अत्रसिद्धामहात्मानोविमानैःसूर्यसंनिभैः ॥ त्यक्त्वादेहान्नवैर्देहैःस्वर्याताःपरमर्षयः ॥ ९२ ॥ यक्षत्वममरत्त्वंचराज्यानिविविधानिच ॥ अत्र देवाःप्रयच्छंतिभूतैराराधिताःशुभैः ॥९३॥आगताःस्माश्रमपदंसौमित्रेप्रविशाग्रतः॥ निवेदयेहमांप्राप्तमृषयेसहसीतया॥९४॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्येच० सा० अरण्यकांडे एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥ सप्रविश्याश्रमपदंलक्ष्मणोराघवानुजः ॥ अगस्त्यशिष्यमासाद्यवाक्यमेतदुवाचह ॥ १ ॥ राजादशरथोनामज्येष्ठस्तस्यसुतोबली ॥ रामःप्राप्तोमुनिंद्रष्टुंभार्ययासहसीतया ॥ २ ॥ लक्ष्मणोनाम तस्याहंभ्रातात्ववरजोहितः ॥ अनुकूलश्चभक्तश्चयदितेश्रोत्रमागतः ॥ ३ ॥ तेवयंवनमत्युग्रंप्रविष्टाःपितृशासनात् ॥ द्रष्टुमिच्छामहेसर्वेभगवंतंनिवेद्यताम् ॥ ४ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वालक्ष्मणस्यतपोधनः ॥ तथेत्युक्त्वाग्निशरणंप्रविवेशनिवेदितुम् ॥ ५ ॥ सप्रविश्यमुनिश्रेष्ठंतपसादुष्प्रधर्षणम् ॥ कृतांजलिरुवाचेदंरामागमनमंजसा ॥ ६ ॥ यथोक्तंलक्ष्मणेनैवशिष्योऽगस्त्यस्यसंमतः ॥ पुत्रौदशरथस्येमौरामोलक्ष्मणएवच ॥ ७ ॥ प्रविष्टावाश्रमपदंसीतयासहभार्यया ॥ द्रष्टुंभवंतमायातौशुश्रूषार्थमरिंदमौ ॥ ८ ॥

सीताजीके साथ महर्षिजीके चरणोंका दर्शन करनेको आये हैं॥२॥ और हमारा नाम लक्ष्मण हैं, हम उनके हितकारी परमभक्त और उनके अनुकूल चलनेवाले उनके छोटे भाई हैं सोकदाचित आपने हमारी वार्त्ता सुनीही होगी॥३॥ हमने पिताजीकी आज्ञासे अतिभयंकर वनमें प्रवेश किया है औ अब भगवान् अगस्त्यमुनिके दर्शन करनेकी हमको अभिलाषा हुई है, सो आप उनसे यह वृत्तान्त निवेदन कर दीजिये ॥४॥ वह तपोधन लक्ष्मणजीके यह वचन श्रवणकर उनसे आपका आना निवेदन करता हूं यह कहकर इस वार्त्ताको महर्षि अगस्त्यजीसे कहनेके निमित्त अग्निगृहमें प्रवेश करता हुआ ॥५॥ और वहां पहुँचकर हाथ जोड़ तपोबलसे प्रदीप्त मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजीसे रामचन्द्रजीके आनेका समाचार कहा ॥६॥ अगस्त्यजीका शिष्य लक्ष्मणजीके वचनके अनुसार कहने लगा कि, अयोध्याजीके राजा दशरथ कुमार राम और लक्ष्मण ॥ ७ ॥ आपके आश्रममें अपनी भार्यासहित आये हैं, वह शत्रुतापन आपकी सेवा करने व देखनेके लिये यहां आये हैं ॥ ८ ॥

सो इसमें जैसा कर्त्तव्य हो वही आज्ञा आप कीजिये, शिष्यके मुखसे रामचन्द्र व लक्ष्मणजीका आगमन सुन ॥९॥ और महा भाग्यवती सीताजीके भी आगमनकी वार्त्ता सुनकरके महर्षि अगस्त्यजी बोले, कि बडे भाग्यकी बात है बहुत दिनोंपर श्रीरामचन्द्रजी हमारे दर्शन करनेको यहां आये हैं ॥१०॥ और मैंने भी मनसे इसके समागमकी आकांक्षाकी थी इससे आगे जाकर आदर मानसहित श्रीरामचन्द्रजीको भ्राता और स्त्री सहित ॥११॥ यहां लिवालाओ और अब तक तुम किस कारणसे उनको यहां नहीं लिवालाये, जब महात्मा धर्मज्ञ अगस्त्यजीने इस प्रकार कहा ॥१२॥ तो शिष्य कर जोडकर जो आज्ञा अभी लिवाये लाता हूं कह और प्रणामकरके तभी वहांसे बाहर आ आदर सहित लक्ष्मणजीसे बोला ॥१३॥ आपमें राम कौनसे हैं? वह भगवान् अगस्त्यजीके दर्शन करनेके लिये आवें और स्वयं प्रवेश करें अनन्तर लक्ष्मण उन शिष्यके

यदत्रानंतरंतत्त्वमाज्ञापयितुमर्हसि ॥ ततःशिष्यादुपश्रुत्यप्राप्तंरामंसलक्ष्मणम् ॥ ९ ॥ वैदेहींचमहाभागामिदंवचनमब्रवीत् ॥ दिष्ट्यारामश्चिरस्याद्यद्रष्टुंमांसमुपागतः ॥१०॥ मनसाकांक्षितंह्यस्यमयाप्यागमनंप्रति॥ गम्यतांसत्कृतोरामःसभार्यःसहलक्ष्मणः॥११ प्रवेश्यतांसमीपंमेकिमयंनप्रवेशितः॥ एवमुक्तस्तुमुनिनाधर्मज्ञेनमहात्मना ॥१२॥ अभिवाद्याब्रवीच्छिष्यस्तथेतिनियतांजलिः ॥ तदानिष्क्रम्यसंभ्रांतःशिष्योलक्ष्मणमब्रवीत्॥ १३॥ क्वासौरामोमुनिंद्रष्टुमेतुप्रविशतुस्वयम्॥ ततोगत्वाश्रमपदंशिष्येणसहलक्ष्मणः १४॥ दर्शयामासकाकुत्स्थंसीतांचजनकात्मजाम्॥ तंशिष्यःप्रश्रितंवाक्यमगस्त्यवचनंब्रुवन्॥ १५ प्रावेशयद्यथान्यायंसत्कारार्हंसुसत्कृतम्॥ प्रविवेशततोरामःसीतयासहलक्ष्मणः॥१६॥ प्रशांतहरिणाकीर्णमाश्रमंह्यवलोकयन्॥ सतत्रब्रह्मणःस्थानमग्नेःस्थानंतथैवच ॥१७॥ विष्णोःस्थानंमहेंद्रस्यस्थानंचैवविवस्वतः॥ सोमस्थानंभगस्थानंस्थानंकौबेरमेवच॥ १८॥ धातुर्विधातुःस्थानेचवायोःस्थानंतथैवच॥ स्थानंचपाशहस्तस्यवरुणस्यमहात्मनः॥ १९॥ स्थानंतथैवगायत्र्यावसूनांस्थानमेवच॥ स्थानंचनागराजस्यगरुडस्थानमेवच॥२०॥ कार्तिकेयस्यचस्थानंधर्मस्थानंचपश्यति॥ ततःशिष्यैःपरिवृतोमुनिरप्यभिनिष्पतत्॥२१॥

सहित वहां गये जहां श्रीरामचन्द्रजी थे ॥१४॥ और उस शिष्यको जनककुमारी सीता व श्रीरामचन्द्रजीको दिखा दिया, उस शिष्यने बड़ी नरमाईसे अगस्त्यजीके वचन श्रीरामचन्द्रजीसे जाय कहे ॥१५॥ यथानियम भली भांति आदर सत्कार करके श्रीरामचन्द्रजीको लक्ष्मण व सीताजीके सहित आश्रममें प्रवेश कराया ॥१६॥ उस आश्रममें प्रवेश करनेके समय श्रीरामचन्द्रजीने देखा कि, परमशान्तस्वभाव हरिण चारों ओर बैठे हैं, ब्रह्मा, शिव ॥१७॥ विष्णु, इन्द्र, सूर्य, चन्द्रमा, भग, कुबेर ॥ १८ ॥ धाता, विधाता, पवन, पाशहस्त महात्मा वरुण ॥ १९ ॥ गायत्री, वसु, नागराज वासुकी आदि सर्प, गरुड ॥ २० ॥ कार्तिकेय और धर्म, इन सबकी पूजाके निमित्त अलग २ स्थान बने हुए एक २ करके श्रीरामचन्द्रजीने देखे मुनि अगस्त्यजीभीअपने शिष्योंके संग होम

शालामेंसे निकले॥ २१ वीर्यवान् श्रीरामचंद्रजी सब तपस्वियोंमें बडे तेजवान् अगस्त्यजीको सामनेसे आते देखकर लक्षणयुक्त लक्ष्मणजीसे बोले ॥ २२ ॥ हे लक्ष्मण ! भगवान् अगस्त्यजी ऋषि कुटीसे बाहर निकलते हैं इस समय हम उदारता युक्त होकर उन तपःप्रकाशित ऋषिवरके निकट गमन करेंगे ॥ २३ ॥ ऐसा कहकर महाबाहु श्रीरामचन्द्रजी कुटीसे बाहर आये हुए सूर्यके समान तेजवान् महर्षि अगस्त्यजीके चरण छूकर प्रणाम करते हुए ॥ २४ ॥ धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी सीता और लक्ष्मणजीके सहित ऋषिजीके चरणोंकी वंदना करके कर जोड उनके आगे खडे रहे ॥ २५ ॥ यह देखकर महर्षि अगस्त्य जीने आदर सहित रामचन्द्रजीको ग्रहण किया, चरण पखारनेके लिये जल मँगवा दिया, आसन देकर बैठनेकी अनुमति दी फिर कुशल प्रश्न किया ॥ २६ ॥ उसके पीछे अगस्त्यजीने अग्निमें आहुति देकर उन आये हुए पाहुनोंको अर्घ्य दिया और वानप्रस्थ धर्मके अनुसार आहार करनेकी सामग्री दी ॥ २७ ॥ अनन्तर धर्मके जाननेवाले महर्षि अगस्त्यजी

तंददर्शाग्रतोरामोमुनीनांदीप्ततेजसम् ॥ अब्रवीद्वचनंवीरोलक्ष्मणंलक्ष्मिवर्धनम् ॥ २२ ॥ बहिर्लक्ष्मणनिष्क्रामत्यगस्त्योभगवानृषिः ॥ औदार्येणावगच्छामिनिधानंतपसामिदम् ॥ २३ ॥ एवमुक्त्वामहाबाहुरगस्त्यंसूर्यवर्चसम् ॥ जग्राहापततस्तस्यपादौचरघुनंदनः ॥ २४ ॥ अभिवाद्यतुधर्मात्मातस्थौरामःकृतांजलिः ॥ सीतयासहवैदेह्यातदारामःसलक्ष्मणः ॥ २५ ॥ प्रतिगृह्यचकाकुत्स्थमर्चयित्वासनोदकैः ॥ कुशलप्रश्नमुक्त्वाचआस्यतामितिसोऽब्रवीत् ॥ २६ ॥ अग्निंहुत्वाप्रदायार्घ्यमतिथीन्प्रतिपूज्यच ॥ वानप्रस्थेनधर्मेणसतेषांभोजनंददौ ॥ २७ ॥ प्रथमंचोपविश्याथधर्मज्ञोमुनिपुंगवः ॥ उवाचराममासीनंप्रांजलिंधर्मकोविदम् ॥ २८ ॥ अन्यथाखलुकाकुत्स्थतपस्वीसमुदाचरन् ॥ दुःसाक्षीवपरेलोकेस्वानिमांसानिभक्षयेत् ॥ २९ ॥ राजासर्वस्यलोकस्यधर्मचारीमहारथः ॥ पूजनीयश्चमान्यश्चभवान्प्राप्तःप्रियातिथिः ॥ ३० ॥ एवमुक्त्वाफलैर्मूलैःपुष्पैश्चान्यैश्चराघवम् ॥ पूजयित्वायथाकामततोऽगस्त्यस्तमब्रवीत् ॥ ३१ ॥ इदंदिव्यंमहच्चापंहेमवज्रविभूषितम् ॥ वैष्णवंपुरुषव्याघ्रनिर्मितंविश्वकर्मणा ॥ ३२ ॥

प्रथम स्वयं बैठ पीछे कर जोडकर बैठेहुए धर्मपंडित श्रीरामचन्द्रजीसे बोले ॥ २८ ॥ हे रामचन्द्रजी ! तपस्वी यदि पाहुनेका सत्कार न करके उसके प्रति और कोई अन्यथा आचरण करे तो वह झूंठी गवाही देनेवाले मनुष्यके समान परलोकमें अपना मांस भक्षण करता है ॥ २९ ॥ फिर आप तो महारथी और सब लोकोंके धर्मचारी राजा हैं उसपर आपने प्रिय अतिथिकी भांति हमारे आश्रममें आगमन किया है अतएव आपकी पूजा और सन्मान करनाहमारा सब भांतिसे कर्तव्य है ॥ ३० ॥ यह कहकर महर्षिजी फल, फूल, पुष्प व और भी उत्तम २ वनके पदार्थोंसे यथाभिलषित भांतिसे रामचन्द्रजीकी पूजा करके फिर कहने लगे ॥ ३१ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! यह विश्वकर्माका बनाया हुआ स्वर्ण और वज्र मणिसे विभूषित दिव्य और बडा वैष्णव चाप ॥ ३२ ॥

और सूर्यके समान प्रभाव सम्पन्न उत्तम बाण यह दोनों चीजें हमें ब्रह्माजीने दी है और इन्द्रजीने दो तरकस जिनके बाण कभी नहीं निवडते हमको दिये हैं ॥३३॥ तीखे बाणोंसे परि पूर्ण और अग्निके समान चमकते हुए यह उत्तम दो तरकस और यह स्वर्ण मय कोशबद्ध खड्ग इन्द्रजीने हमको दिये हैं॥३४॥ हे श्रीरामचन्द्रजी पहले भगवान् विष्णुजीने इस वैष्णव धनुषकी सहायतासे युद्धमें महाबली छली असुरोंका संहार करके देवताओंको दीप्तिमती लक्ष्मी प्रदान की थी ॥ ३५ ॥ हे मानद ! वज्रधर इन्द्रजी जिस प्रकार वज्र धारण करते हैं,तुम भी तैसे ही पवित्र यश प्राप्त करनेके अर्थ यह शर चाप खड्ग और दो तरकस ग्रहण करो॥३६॥ महा तेजस्वी भगवान् महर्षि अगस्त्यजी ऐसा कहकर महापंडित प्रवीण रामचन्द्रजीको वह समस्त अतिश्रेष्ठ वैष्णव आयुध देकर फिर बोले ॥३७॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा०

अमोघःसूर्यसंकाशोब्रह्मदत्तःशरोत्तमः ॥ दत्तोमममहेंद्रेणतूणीचाक्षय्यसायकौ ॥३३॥ संपूर्णौनिशितैर्बाणैर्ज्वलद्भि रवपावकैः ॥ महाराजत कोशोऽयमसिर्हेमविभूषितः ॥३४॥अनेनधनुषारामहत्वासंख्येमहासुरान् ॥ आजहारश्रियंदीप्तांपुराविष्णुर्दिवौकसाम् ॥ ३५ ॥ तद्धनुस्तौच तूणीचशरंखड्गंचमानद ॥ जयायप्रतिगृह्णीष्ववज्रंवज्रधरोयथा ॥३६॥ एवमुक्त्वामहातेजाःसमस्तंतद्वरायुधम् ॥ दत्त्वारामायभगवानगस्त्यः पुनरब्रवीत् ॥३७॥इत्यार्षे श्री० वा० आ० च० सा० अरण्यकांडे द्वादशःसर्गः ॥१२॥रामप्रीतोऽस्मिभद्रंतेपरितुष्टोऽस्मिलक्ष्मण॥ अभि वादयितुंयन्मांप्राप्तौस्थःसहसीतया ॥ १ ॥ अध्वश्रमेणवांखेदोबाधतेप्रचुरश्रमः ॥ व्यक्तमुत्कंठतेवापिमैथिलीजनकात्मजा ॥ २ ॥एषाचसु कुमारीचखेदैश्चनविमानिता ॥ प्राज्यदोषंवनंप्राप्ताभर्तृस्नेहप्रचोदिता ॥ ३ ॥ यथैषारमतेरामइहसीतातथा कुरु ॥दुष्करंकृतवत्येषावनेत्वाम भिगच्छती ॥ ४ ॥ एषाहिप्रकृतिःस्त्रीणामासृष्टेरघुनंदन ॥ समस्थमनुरज्यंतेविषमस्थंत्यजंतिच ॥ ५ ॥

वा० आदि०अरण्यकाण्डे भाषायां द्वादशः सर्गः ॥१२॥ हे श्रीरामचन्द्र ! तुम जो सीता सहित हमको प्रणाम करने आये हो इससे हम तुम्हारे और लक्ष्मणके प्रति बहुतही प्रसन्न हुए हैं, तुम्हारा मंगल होवे ॥१॥ यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि,मार्ग चलनेकी थकावटसे तुमको महाकष्ट हुआ है । जनक कुमारी सुकुमारी जानकीजी भी विश्राम करना चाहती हैं ॥२॥ ये बडी ही सुकुमार हैं; इन्होंने भला कभी काहे को कष्ट सहा होगा परंतु पतिसे स्नेहके कारण इस बडेकष्ट देने वाले वनमें ये आई हैं ॥ ३ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! जानकीजीका मन जिसमें प्रसन्न रहे वही तुमको करना चाहिये, क्योंकि तुम्हारे साथ २ वनको आकर इन्होंने बडा दुष्कर कार्य किया है ॥ ४ ॥ हे रघुनन्दन ! जबसे स्वयंभूकी उत्पत्ति हुई है तबसे स्त्रियोंका स्वभावही ऐसा है कि, धनवान् पुरुषको ग्रहण

करती और दरिद्रको त्याग करती हैं ॥५॥ स्त्रियाँ विजलीकी चपलता; अस्त्रोंकी तीक्ष्णता, गरुड और पवनकी शीघ्रताका अनुकरण करती हैं ॥६॥ परन्तु इन तुम्हारी भार्या जानकीजीमें इन सबमेंसे कोई दोषभी नहीं है। यह देवताओंके बीचमें अरुन्धतीके समानप्रशंससनीय और कीर्तिमती हैं ॥७॥ हे शत्रु दमन कारी ! तुम सुमित्राकुमार और सीताजीके साथ जिस देशमें वास करोगे वही देश शोभायमान हो जायगा ॥८॥ जब ऋषिने इस प्रकार कहा तब ;श्रीरामचन्द्रजीने हाथ जोड विनीत वचनसे अग्निके समान तेजस्वी उन महर्षि अगस्त्यजीसे कहा ॥ ९ ॥ हे मुनिवर ! हमारे, हमारी भार्याके और हमारे भ्राताके गुणोंसे जो आप प्रसन्न हुए हैं इससे मैं धन्य और अनुग्रहभाजन हुआ ॥ १० ॥ इससे आज्ञा कीजिये कि, ऐसा कोई स्थान है जहां वनभी बडा हो और जलभी सरलतासे प्राप्त हो जाया करे और वहां हम कुटी बनाकर स्वच्छन्दतासे वास कर सकें ॥ ११ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके वचन श्रवण करके धर्मात्मा मुनिवर

शतह्रदानांलोलत्वंशस्त्राणांतीक्ष्णतांयथा॥ गरुडानिलयोःशैघ्यमनुगच्छंतियोषितः ॥६॥ इयंतुभवतोभार्यादोषैरेतैर्विवर्जिता॥ श्लाघ्याचव्य पदेश्याचयथादेवीष्वरुंधती ॥ ७ ॥ अलंकृतोऽयंदेशश्चयत्रसौमित्रिणासह॥ वैदेह्याचानयारामवत्स्यसित्वमरिंदम ॥ ८ ॥ एवमुक्तस्तुमुनिनारा घवःसंयतांजलिः॥ उवाचप्रश्रितवाक्यमृषिंदीप्तमिवानलम् ॥ ९ ॥ धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मियस्यमेमुनिपुंगवः ॥ गुणैःसभ्रातृभार्यस्यगुरुर्नः परितुष्यति ॥ १०॥ किंतुव्यादिशमेदेशंसोदकंबहुकाननम् ॥ यत्राश्रमपदंकृत्वावसेयंनिरतःसुखम् ॥ ११ ॥ ततोऽब्रवीन्मुनिश्रेष्ठःश्रुत्वाराम स्यभाषितम् ॥ ध्यात्वामुहूर्तंधर्मात्माततोवाचवचःशुभम् ॥ १२ ॥ इतोद्वियोजनेतातबहुमूलफलोदकः ॥ देशोबहुमृगःश्रीमान्पंचवट्यभिवि श्रुतः ॥ १३ ॥ तत्रगत्वाश्रमपदंकृत्वासौमित्रिणासह॥ रमस्वत्वंपितुर्वाक्यंयथोक्तमनुपालयन् ॥१४॥ विदितोह्येषवृत्तांतोममसर्वस्तवानघ ॥ तपसश्चप्रभावेणस्नेहाद्दशरथस्यच ॥ १५ ॥ हृदयस्थंचतेछंदोविज्ञाततंपसामया ॥ इहवासंप्रतिज्ञायमयासहतपोवने ॥१६॥

मुहूर्त भरतक चिंता करके शुभ वचन बोले ॥ १२ ॥ हे वत्स ! इस स्थानसे आठ कोशके अन्तर पर पंचवटी नामक विख्यात एक अति सुन्दर स्थान है उस स्थानमें फल, मूल और जल बहुतायतसे मिलता है और अनेक प्रकार के पशु भी वहां वास करते हैं ॥१३॥ तुम लक्ष्मणजी के साथ वहां जाओ और आश्रम बना कर पिता दशरथजी का सत्य पालन करते हुए सुखसे वास करो ॥१४॥ हे पाप रहित ! हम स्नेह के वश होनेकेकारण तप के प्रभावसे तुम्हारा और दशरथ का समस्त वृत्तांत जानते हैं कारण, दशरथजी का हमसे बडा स्नेह था नहीं तो ऐसे वृत्तांत जाननेकी क्या आवश्यकता थी ॥१५॥ और हम तपके प्रभावसे यह जानते हैं कि आपके मनमें क्या है जो कि यह प्रतिज्ञा करके हमारे निकट आप बसेंगे और फिर अब वास स्थान की वार्त्ता क्यों पूछते हो ?

अर्थात् हमारे निकट राक्षस नहीं आ सकते आप उनको मारना चाहते हैं इस कारण आप यहां रहना नहीं चाहते ॥ १६ ॥ इसी कारण हम कहते हैं कि; तुम पंचवटीको चले जाओ; वह बनैला देश अति रमणीय है वहां सीता के मनको भी सन्तोष होगा ॥ १७ ॥ पंचवटी बडाई करनेके योग्य है, और बहुत दूर भी नहीं है, इस गोदावरी के निकटही है । मिथिलेश दुलारी वहां पर प्रसन्न होकर रहेंगी ॥१८॥ हे महाबाहो !वह बहुत फल मूल करके युक्त अनेक भांतिके विहंगमोंसे परि पूर्ण पुण्यमय और निर्जन देश अति रमणीय है ॥ १९ ॥ तुम भी सदाचारी और रक्षा कार्य करनेमें समर्थ हो उस स्थानमें वास कर के तपस्वी लोगोंका पालन भली प्रकार कर सकोगे ॥ २० ॥ हे वीर ! यह जो महुयेके वृक्षोंका महावन दिखलाई देता है उसके उत्तर ओर होकर तुमको

अतश्चत्वामहन्ब्रूमिगच्छपंचवटीमिति ॥ सहिरम्योवनोद्देशोमैथिलीतत्ररंस्यते ॥१७॥ सदेशःश्लाघनीयश्चनातिदूरेचराघव ॥गोदावर्याःसमीपे चमैथिलीतत्ररंष्यते ॥ १८ ॥ प्राज्यमूलफलैश्चैवनानाद्विजगणैर्युतः ॥ विविक्तश्चमहाबाहोपुण्योरम्यस्तथैवच ॥ १९ ॥ भवानपिसदाचारः शक्तश्चपरिरक्षणे ॥ अपिचात्रवसन्रामतापसान्पालयिष्यसि ॥ २० ॥ एतदालक्ष्यतेवीरमधूकानांमहावनम् ॥ उत्तरेणास्यमंतव्यंन्यग्रोधमपि गच्छता ॥ २१ ॥ ततःस्थलमुपारुह्यपर्वतस्याविदूरतः ॥ ख्यातःपंचवटीत्येवनित्यपुष्पितकाननः ॥ २२ ॥ अगस्त्येनैवमुक्तस्तुरामःसौमि त्रिणासह ॥ सत्कृत्यामंत्रयामासतमृषिंसत्यवादिनम् ॥ २३ ॥ तौतुतेनाभ्यनुज्ञातौकृतपादाभिवंदनौ ॥ तमाश्रमंपंचवटींजग्मतुःसहसीत या ॥ २४ ॥ गृहीतचापौतुनराधिपात्मजौविषक्ततूर्णीसमरेष्वकातरौ ॥ यथोपदिष्टेनपथामहर्षिणाप्रजग्मतुःपंचवटींसमाहितौ ॥ २५ ॥
इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० च० सा०अरण्यकांडे त्रयोदशःसर्गः ॥ १३ ॥

जाना होगा, फिर उसके पीछे तुमको न्यग्रोध वृक्षोंका वन प्राप्त होगा ॥ २१ ॥उसके पीछे विशेष स्थानपर पहुँचनेसे तुमको एक पर्वत दिखाई देगा, उस पर्वत के कुछ दूरही विख्यात पंचवटी का वन है वह सदाही फूला फला रहता है ॥२२॥ श्रीअगस्त्यजी के ऐसे वचन श्रवण करके श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीके सहित सत्यवादीऋषिका भली भांति आदर सत्कार करके उनसे बिदा मांगते हुये ॥ २३ ॥अगस्त्यजीकी आज्ञा पाकर दोनोंजन उनके चरणोंकी वन्दना करकेसीता जीके साथ पंचवटीआश्रमके लिये चले ॥२४॥ समरमें न डरनेवाले दोनों नृपकुमार धनुष धारण कर और तरकस बांधकर महर्षि अगस्त्यजीने जो मार्ग बता दिया था अति सावधानीसे उस मार्ग द्वारा पंचवटी की यात्रा करते हुए ॥२५॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० अरण्यकांडे भाषायां त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

अनन्तर श्रीरामचन्द्रजीने पंचवटी के मार्गमें जाते२एक भयानक पराक्रमवान् महा शरीरवाले गीधको देखा ॥१॥ महाभाग श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मणजी वनमें इस पक्षीको देख राक्षस समझ कर उससे पूछने लगे कि, तुम कौन हो ॥२॥ गीध मधुर और प्यारे वचनोंसे उनको प्रसन्न करके बोला, कि–हे वत्स! तुम हमको अपने पिताका मित्र समझो ॥३॥ तब श्रीरामचन्द्रजी उसको पिता का मित्र जानकर पूजा करते हुए प्रेम भावसे उसका कुल और नाम पूछा ॥४॥ श्रीरामचन्द्रजी के वचन सुनकर गीध सब जीवोंकी उत्पत्ति के वर्णन का प्रसंग वर्णन करके अपना कुल और नाम कहने लगा॥५॥ हे महाबाहो! हे राघव! पूर्वकालमें जो कि, प्रजापति हुए थे, हम क्रमशः उन सबका नाम बतलाते हैं आप श्रवण कीजिये ॥६॥ कर्दम उन सबमें बडे थे, उनके पीछे विकृत, शेष, संश्रय, वीर्यवान्, बहुपुत्र ॥७॥ स्थाणु,

अथपंचवटींगच्छन्नंतरारघुनंदनः ॥ आससादमहाकायंगृध्रंभीमपराक्रमम् ॥१॥ तंदृष्ट्वातौमहाभागौवनस्थंरामलक्ष्मणौ ॥ मेनातेराक्षसंपक्षिंब्रुवाणौकोभवानिति ॥२॥ ततोमधुरयावाचासौम्ययाप्रीणयन्निव ॥ उवाचवत्समांविद्धिवयस्यंपितुरात्मनः॥३॥सतंपितृसखंमत्वापूजयामास राघवः ॥ सतस्यकुलमव्यग्रमथपप्रच्छनामच॥४॥ रामस्यवचनंश्रुत्वाकुलमात्मानमेवच ॥आचचक्षेद्विजस्तस्मैसर्वभूतसमुद्भवम् ॥५॥ पूर्वकालेमहाबाहोयेप्रजापतयोऽभवन् ॥ तान्मेनिगदतःसर्वानादितःशृणुराघव ॥६॥ कर्दमःप्रथमस्तेषांविकृतस्तदनंतरम्॥ शेषश्चसंश्रयश्चैवबहुपुत्रश्चवीर्यवान् ॥७॥ स्थाणुमरीचिरत्रिश्चक्रतुश्चैवमहाबल ॥ पुलस्त्यश्चांगिराश्चैवप्रचेताःपुलहस्तथा ॥८॥ दक्षोविवस्वानपरोऽरिष्टनेमिश्चराघव ॥ कश्यपश्चमहातेजास्तेषामासीच्चपश्चिमः ॥ ९ ॥ प्रजापतेस्तुदक्षस्यबभूवुरितिविश्रुताः॥ षष्टिर्दुहितरोरामयशस्विन्योमहायशः॥१०॥कश्यपः प्रतिजग्राहतासामष्टौसुमध्यमाः॥अदितिंचदितिंचैवदनूमपिचकालकाम् ॥११॥ ताम्रांक्रोधवशांचैवमनुंजाप्यनलामपि ॥ तास्तुकन्यास्ततः प्रीतकश्यपःपुनरब्रवीत् ॥ १२ ॥ पुत्रांस्त्रैलोक्यभर्तॄन्वैजनयिष्यथमत्समान् ॥ अदितिस्तन्मनारामदितिश्चदनुरेवच ॥ १३ ॥

मरीचि, अत्रि, महा बलवान् क्रतु, पुलस्त्य, अंगीरा, प्रचेता, पुलह ॥८॥ दक्ष, विवस्वान् अरिष्टनेमि यह क्रमसे उत्पन्न हुए। महात्मा कश्यप उन सबमें छोटे थे ॥९॥ हे महा यशस्वी श्रीरामचन्द्रजी! उनमें दक्ष प्रजापति के यशस्विनी लोकमें विख्यात ६० कन्यायें उत्पन्न हुईं ॥१०॥ उनमें अति सुन्दरी आठ कन्याओंका कश्यपजी विवाह करते हुए। उनके नाम अदिति, दिति, दनु, कालका ॥११॥ ताम्रा, क्रोधवशा, मनु व अनला; विवाह हो जानेपर प्रसन्न हो कश्यपजी इन दक्ष कन्याओंसे बोले ॥१२॥ कि; तुम हमारे समान त्रिलोकी का भरण पोषण करनेवाले पुत्र उत्पन्न करो यह सुन दिति अदिति दनु ॥१३॥

और कालका यह तो वैसे पुत्र प्राप्त करनेके लिये अभिलाषिनी हुई और शेष चारोंने पतिके कहनेमें ध्यान न लगाया अदितिके ३३ देवता हुए ॥ १४ ॥ अदितिके गर्भमें १२ आदित्य ८ वसु ११ रुद्र २ अश्विनीकुमार उपजे । और दितिने भी बडे यशस्वी दैत्य उत्पन्न किये ॥ १५ ॥ पहले वन और समुद्रसहित यह पृथ्वी उनकी ही थी । हे अरिन्दम ! दनुने अश्वग्रीवनामक एक पुत्र उत्पन्न किया ॥ १६ ॥ और कालकाने नरक और कालक नामकदो पुत्र उत्पन्न किये क्रौञ्ची, भासी, श्येनी, धृतराष्ट्री और शुकी ॥ १७ ॥ ताम्रासे यह लोक विख्यात पांच कन्या जन्मीं उनमेंक्रौञ्चीसे उलूक पैदा हुये भासीसे भास जन्मे ॥ १८ ॥ श्येनीने अति तेजस्वी श्येन और गीधोंको प्रसव किया और धृतराष्ट्रीसे सब हंस ॥ १९ ॥ और चकवा चकवियोंको भी उसीने उत्पन्न किया शुकीके नता कन्या

कालकाचमहाबाहोशेषास्त्वमनसोऽभवन् ॥ अदित्यांजज्ञिरेदेवास्त्रयस्त्रिंशदरिंदम ॥ १४ ॥ आदित्यावसवोरुद्राअश्विनौचपरंतप ॥ दितिस्त्व जनयत्पुत्रान्दैत्यांस्तातयशस्विनः ॥ १५ ॥ तेषामियंवसुमतीपुरासीत्सवनार्णवा ॥ दनुस्त्वजनयत्पुत्रमश्वग्रीवमरिंदम ॥ १६ ॥ नरकंकालकं चैवकालकापिव्यजायत ॥ क्रौंचींभासींतथाश्येनींधृतराष्ट्रींतथाशुकीम् ॥ १७ ॥ ताम्रातुसुषुवेकन्याःपंचैतालोकविश्रुताः ॥ उलूकाञ्जनयत्क्रौं चीभासीभासान्व्यजायत ॥ १८ ॥ श्येनीश्येनांश्चगृध्रांश्चव्यजायतसुतेजसः ॥ धृतराष्ट्रीतुहंसांश्चकलहंसांश्चसर्वशः ॥ १९ ॥ चक्रवाकांश्चभ द्रंतेविजज्ञेसापिभामिनी ॥ शुकीनतांविजज्ञेतुनतायांविनतासुता ॥ २० ॥ दशक्रोधवशारामविजज्ञेप्यात्मसंभवाः ॥ मृगींचमृगमंदांचहरींभ द्रमदामपि ॥ २१ ॥ मातंगीमथशार्दूलींश्वेतांचसुरभींतथा ॥ सर्वलक्षणसंपन्नांसुरसांकद्रुकामपि ॥ २२ ॥ अपत्यंतुमृगाःसर्वेमृग्यानरवरोत्तम ॥ ऋक्षाश्चमृगमंदायाःसृमराश्चमरास्तथा ॥ २३ ॥ ततस्त्विरावतींनामजज्ञेभद्रमदासुताम् ॥ तस्यास्त्वैरावतःपुत्रोलोकनाथोमहागजः ॥ २४ ॥ हर्याश्चहरयोऽपत्यंवानराश्चतपस्विनः ॥ गोलांगूलाश्चशार्दूलीव्याघ्रांश्चाजनयत्सुतान् ॥ २५ ॥ मातंग्यास्त्वथमातंगाअपत्यंमनुजर्षभ ॥ दिशागजंतुकाकुत्स्थश्वेताव्यजनयत्सुतान् ॥ २६ ॥

हुई और नताके विनय उत्पन्न हुई ॥ २० ॥ हे राम ! क्रोधवशाके दश कन्या उत्पन्न हुई उनके नाम यह हैं यथा--मृगी, मृग, मंदा, हरी भद्रमदा ॥ २१ ॥ मातंगी, शार्दूली, श्वेता, सुरभी, सुरसा, कद्रुका यह सब कन्यायें शुभ लक्षणसम्पन्न थीं ॥ २२ ॥ हे नर श्रेष्ठ ! समस्त मृग मृगीसे उत्पन्न हुए और काले व सफेद रीछ सृमर चमरी आदि मृगमन्दाके जन्मे ॥ २३ ॥ भद्रमदाने इरावती नामक कन्या प्रसव की उसका पुत्र लोकपाल महागज ऐरावत हुआ ॥ २४ ॥ सिंह वानर और गोपुच्छगण हरीके उत्पन्न हुए शार्दूलीने व्याघ्रोंको प्रसव किया ॥ २५ ॥ हे पुरुषवर श्रीरामचन्द्रजी ! सब हाथी मातङ्गीके पुत्र हुए । श्वेताने

दिग्गजोंको उत्पन्न किया ॥२६॥ सुरभीके दो कन्या हुई, यशस्विनी--रोहिणी और गन्धर्वी ॥२७॥ रोहिणीने गौ बैल आदिकोंको और गन्धर्वीने अश्वोंको प्रसव किया, हे राम ! सुरसाने नागोंको प्रसव किया और कद्रूके सर्प उत्पन्न हुए ॥२८॥ महात्मा कश्यपजीकी दूसरी स्त्री मनुसे ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र सब मनुष्य जन्मे ॥२९॥ सो ऐसी कहावत चली आती है, कि मुखसे ब्राह्मण, वक्षःस्थलसे क्षत्रिय, जंघाओंसे वैश्य और चरणोंसे शूद्रोंकी उत्पत्ति हुई ॥३०॥ अनलाने परम श्रेष्ठ फलयुक्त वृक्ष जने, विनता शुकीकी पौत्री और कद्रू सुरसाकी कन्या व्रहन हुई ॥३१॥ उनमें कद्रूसे सहस्रों नाग पुत्र उत्पन्न किये यही सब पृथ्वीको धारण किये हुए हैं और विनताके दो पुत्र गरुण व अरुण हुए ॥३२॥ हम उनही गरुडजीसे उत्पन्न हुए हैं, सम्पाति हमारे बडे भाई हैं। हे अरिनाशक ! हमारा नाम जटायु व हमारी

ततोदुहितरौरामसुरभिर्देव्यजायत॥रोहिणींनामभद्रंतेगंधर्वींचयशस्विनीम् ॥२७॥ रोहिण्यजनयद्गावोगंधर्वीवाजिनःसुतान् ॥ सुरसाजनयन्नागान्रामकद्रूश्चपन्नगान्॥ २८ ॥ मनुर्मनुष्याञ्जनयत्कश्यपस्यमहात्मनः॥ ब्राह्मणान्क्षत्रियान्वैश्याञ्शूद्रांश्चमनुजर्षभ ॥२९॥ मुखतोब्राह्मणाजाताउरसःक्षत्त्रियास्तथा ॥ ऊरुभ्यांजज्ञिरेवैश्याःपद्भ्यांशूद्राइतिश्रुतिः॥३०॥ सर्वान्पुण्यफलान्वृक्षाननलापिव्यजायत ॥ विनताचशुकीपौत्रीकद्रूश्चसुरसास्वसा ॥३१॥ कद्रूर्नागसहस्रंतुविजज्ञेधरणीधरान् ॥ द्वौपुत्रौविनतायास्तुगरुडोऽरुणएवच ॥ ३२ ॥ तस्माज्जातोऽहमरुणात्संपातिश्चममाग्रजः ॥ जटायुरितिमांविद्धिश्येनीपुत्रमरिंदम ॥३३॥ सोऽहंवाससहायस्तेभविष्यामियदीच्छसि ॥ सीतांचतातरक्षिष्येत्वयियातेसलक्ष्मणे ॥३४॥जटायुषंतुप्रतिपूज्यराघवोमुदापरिष्वज्यचसन्नतोऽभवत्॥ पितुर्हिशुश्रावसखित्वमात्मवाञ्जटायुपासंकथितंपुनःपुनः ॥३५॥ पतत्रसीतांपरिदायमैथिलींसहैवतेनातिबलेनपक्षिणा॥जगामतांपंचवटींसलक्ष्मणोरिपून्दिधक्षन्सवनानिपालयन् ॥३६॥ इत्यार्षे श्रीम०वा० आ० च० सा० आरण्यकांडे चतुर्दशः सर्गः ॥१४॥ ततःपंचवटींगत्वानानाव्यालमृगायुताम् ॥ उवाचलक्ष्मणंरामोभ्रातरंदीप्ततेजसम् ॥१॥

माताका नाम श्येनी जानिये ॥३३॥ हे तात ! यदि इच्छा होवे तो हम तुम्हारी बनमें बसने के समय सहायता करें और जब तुम लक्ष्मण जीकेसहित कहीं वनमें कंद, मूल, फल लेनेजाया करोगे तो हम सीताजीकी रक्षा किया करेंगे ॥३४॥ रामचन्द्रजी प्रफुल्लतासे जटायुको भेंट और उसकी पूजा कर उसको प्रणाम करते हुए और पिताजीके साथ जो मित्रता उसकी थी सो उसे जटायुके मुखसे वारंवार श्रवण करने लगे॥३५॥ फिर वह बलवान् जटायुके हाथमें सीताजीकी रक्षाका भार सौंप कर उसकोसाथले लक्ष्मणजीके सहित शत्रुओंको जलाते वनकी रक्षा करनेके लिये सुप्रसिद्ध पंचवटी में गमन करते हुए ॥३६॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० अरण्यकांडे भाषायां चतुर्दशः सर्गः ॥१४॥ उसके पीछे यह अनेक प्रकारके सर्प और पशुयुक्त पंचवटीमें गमन करके तेजमे प्रकाशमान भ्राता लक्ष्मणमे बोले ॥१॥

हे सौम्य ! महर्षि अगस्त्यजीने जिसको बसाया था अब हम उसी सदा फूले फले वन करके शोभायमान पंचवटीमें आगये हैं ॥ २ ॥ आश्रम बनानेके योग्य स्थान निर्णय करनेमें तुम भली भांति चतुर हो इससे इस काननके चारों ओर दृष्टि डालिये कि, कौनसे स्थानमें हमारे मनमाना आश्रम बन सकता है ॥३॥ हे लक्ष्मण ! जिस स्थानमें तुम हम अ.र जानकीजी विशेष प्रसन्नता सहित रह सकें और जल भी जहां निकट ही हो? ऐसे स्थानको तुम खोजो ॥४॥ जिस जगह बन और जल दोनों रमणीय और पावन हों व ईंधन, पुष्प, कुश जल जहां निकट ही पाया जावे ऐसा स्थान देखो ॥५॥ श्रीरामचन्द्रजीने जब इस प्रकार कहा तब लक्ष्मणजीने कर जोडकर सीताजीके सामने श्रीरामचन्द्रजीसे कहा ॥६॥ हे भाई साहब ! हम आपके विद्यमान रहते सैकडों वर्ष तक भी स्वाधीन नहीं हैं न कुछ विचारही सकते हैं और हमारा विचार ठीक भी नहीं है इससे अब आप स्वयं ही मनोहर स्थान देखभाल हमको वहां आश्रम बनानेकी आज्ञा दीजिये ॥७॥ महाद्यु

आगताःस्मयथोद्दिष्टंयंदेशंमुनिरब्रवीत् ॥ अयंपंचवटीदेशःसौम्यपुष्पितकाननः ॥२॥ सर्वतश्चार्यतांदृष्टिःकाननेनिपुणोह्यसि ॥ आश्रमःकतरस्मिन्नोदेशेभवतिसंमतः ॥ ३ ॥ रमतेयत्रवैदेहीत्वमहंचैवलक्ष्मण ॥ तादृशाद्दृश्यतांदेशःसन्निकृष्टजलाशयः ॥४॥ वनरामण्यकंयत्रजलरामण्यकंतथा ॥ सन्निकृष्टंचयस्मिंस्तुसमित्पुष्पकुशोदकम् ॥५॥ एवमुक्तस्तुरामेणलक्ष्मणःसंयतांजलिः ॥ सीतासमक्षंकाकुत्स्थमिदंवचनमब्रवीत् ॥६॥ परवानस्मिकाकुत्स्थत्वयिवर्षशतंस्थिते ॥ स्वयंतुरुचिरेदेशेक्रियतामितिमांवद ॥७॥ सुप्रीतस्तेनवाक्येनलक्ष्मणस्यमहाद्युतिः ॥ विमृशन्रोचयामासदेशंसर्वगुणान्वितम् ॥ ८ ॥ सतंरुचिरमाक्रम्यदेशमाश्रमकर्मणि ॥ हस्तेगृहीत्वाहस्तेनरामःसौमित्रिमब्रवीत् ॥ ९ ॥ अयंदेशःसमःश्रीमान्पुष्पितैस्तरुभिर्वृतः ॥ इहाश्रमपदंरम्यंयथावत्कर्तुमर्हसि ॥ १० ॥ इयमादित्यसंकाशैःपद्मैःसुरभिगंधिभिः ॥ अदूरेदृश्यतेरम्यापद्मिनीपद्मशोभिता ॥ ११ ॥ यथाख्यातमगस्त्येनमुनिनाभावितात्मना ॥ इयंगोदावरीरम्यापुष्पितैस्तरुभिर्वृता ॥ १२ ॥ हंसकारंडवाकीर्णाचक्रवाकोपशोभिता ॥ नातिदूरेनचासन्नेमृगयूथनिपीडिता ॥ १३ ॥

तिमान् श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीके यह वचन सुन परम प्रसन्न हो विचार करके सर्व गुणोंकरके युक्त एक मनोहर स्थान खोज लेते हुए ॥ ८ ॥ यह स्थान सब भांतिसे मनोहर और आश्रम बनानेके योग्य था वहां श्रीरामचन्द्रजी पदार्पण कर अपने हाथसे लक्ष्मणजीका हाथ पकड़ बोले ॥९॥ यह स्थान परम श्रीसम्पन्न है भूमि यहां की बराबर है और फूले हुए वृक्षोंसे घिराहुआ है इससे तुम इस स्थानमें वित्तानुसार पर्णकुटी बनाओ ॥१०॥ सूर्यके समान उज्ज्वल चित्त प्रसन्न करनेवाली सुगन्धि जिनमें आरही है ऐसे कमलके फूलोंके सहित यह पुष्करणी यहांसे निकट ही बहरही है ॥११॥ विशुद्धात्मा महर्षि अगस्त्यजीने जिस प्रकार कहाथा यह वैसे ही फुलाने वृक्षोंसे शोभित गोदावरी दृष्टि आती है ॥१२॥ यहां हंस औ कारंडव बोल रहे हैं चकवा चकवी पक्षियोंसे शोभायमान यह नदी न यहां से बडी

दूर है न बहुत ही निकट हीहै मृगोंके यूथके यूथ जहां घूम रहे हैं ॥ १३ ॥ खिले हुए वृक्षों से शोभित मोर गण जहां नाद कर रहे हैं बहुत गुफा जिस विद्यमान परममनोहर देखने में दिव्य बडे २ ऊंचे यह सब पहाड दिखाई देते हैं ॥१४॥ उन सब पहाडोंके स्थान सुवर्ण चांदी और ताम्रवर्णकी विचित्र रचनासे सजे हुए हाथियोंके समान शोभा पा रहे हैं ॥१५॥ साल, ताल, तमाल; खजूर, कटहल, निवार, तिनिश, पुन्नागसे शोभित ॥१६॥ आम्र अशोक, तिलक, केतकी और चंपाआदि पुष्प, गुल्म, लता इत्यादि वृक्षोंसे शोभायमान ॥१७॥ स्यन्दन, चन्दन; कदंब, लकुच, धव, अश्वकर्ण, खैर, शमी, ढाक और पटल इन तरुवरोंसे भी घिरे हुए हैं ॥१८॥ हे लक्ष्मण । यह स्थान अतिशय पवित्र, अतिशय मनोहर, अनेक प्रकारके मृग और पक्षियोंसे परिपूर्ण है, सो जटा

मयूरनादितारम्याःप्रांशवोबहुकंदराः॥दृश्यंतेगिरयःसौम्याःफुल्लैस्तरुभिरावृताः॥१४॥सौवर्णैराजतैस्ताम्रैर्देशेदेशेतथाशुभैः॥गवाक्षिताइवाभांति गजाःपरमभक्तिभिः॥१५॥सालैस्तालैस्तमालैश्चखर्जूरैःपनसैर्द्रुमैः॥ नीवारैस्तिनिशैश्चैवपुन्नागैश्चोपशोभिताः॥१६॥ चूतैरशोकैस्तिलकैःकेतकैरपिचंपकैः ॥ पुष्पगुल्मलतोपेतैस्तैस्तैस्तरुभिरावृताः ॥ १७ ॥ स्यंदनैश्चंदनैर्नीपैःपनसैर्लकुचैरपि ॥ धवाश्वकर्णखदिरैःशमीकिंशुकपाटलैः ॥ १८॥ इदंपुण्यमिदंरम्यमिदंबहुमृगद्विजम् ॥ इहवत्स्यामसौमित्रेसार्धमेतेनपक्षिणा ॥ १९ ॥ एवमुक्तास्तुरामेणलक्ष्मणःपरवीरहा ॥ अचिरेणाश्रमंभ्रातुश्चकारसुमहाबलः ॥ २० ॥ पर्णशालांसुविपुलांतत्रसंघातमृत्तिकाम् ॥ सुस्तंभांमस्करैर्दीर्घैःकृतवंशांसुशोभनाम् ॥ २१ ॥ शमीशाखाभिरास्तीर्यदृढपाशावपाशिताम् ॥ कुशकाशशरैःपर्णैःसुपरिच्छादितांतथा ॥२२॥ समीकृततलांरम्यांचकारसुमहाबलः ॥ निवासंराघवस्यार्थेप्रेक्षणीयमनुत्तमम् ॥२३॥सगत्वालक्ष्मणःश्रीमान्नदींगोदावरींतदा॥स्नात्वापद्मानिचादायसफलःपुनरागतः ॥ २४ ॥

युके सहित इस स्थानपर हम वास करेंगे ॥ १९ ॥ जब श्रीरामचन्द्रजीने ऐसा कहा तब श्रीलक्ष्मणजीने बहुतशीघ्र रामचन्द्रजीके रहनेकेलिये परम श्रेष्ठ एक स्थान बनाया ॥२०॥ उसमें बडी भारी पर्णशाला बनाई, भीतें मिट्टीसे उठादीं, सुन्दर खम्भ गाड दिये, ऊपर लम्बे २ बांस धरे ॥२१॥ उन तिरछे बांसों पर शमीकी डालियें काट २ कर छादीं फिर उन शाखाओंको रस्सियोंसे अति दृढता सहित बांध दिया, कुश, काश, और शर पत्रसे भलीभांति उसको छाकर बराबर करदिया ॥ २२ ॥ उसपर शमीकी डालियोंकी बत्तियें छा कसकर बांधदीं, ऐसा मनोहर स्थान लक्ष्मणजीने श्रीरामचन्द्रजीके रहनेके लिये बनाया ॥ २३ ॥ जब स्थान बनचुका तो श्रीमान् लक्ष्मणजी गोदावरी नदीमें नहाकर वहांसे कमलके फूल और अनेक फल लेकर आश्रमको लौटे ॥ २४ ॥

फिर लक्ष्मणजीने फूलोंसे यथाविधि वास्तुशान्ति करके उस कुटीको पवित्र कर श्रीरामचन्द्रजीको दिखाया ॥२५॥ श्रीरघुनंदन रामचन्द्रजी सीताके सहित लक्ष्मणजीकी बनाई वह शुभदर्शन कुटी देखकर परम प्रसन्न हुए ॥२६॥ और बहुतही हर्षमें भरकर दोनों बाँहोंसे लक्ष्मणजीको स्नेह सहित अपनी छातीमें लगा लिया और बडे मनोहर प्रेमसने वचन बोले ॥२७॥ हे कार्यकरनेमें चतुर ! हम तुमपर बहुतही प्रसन्न हुए हैं तुमने यह बडा भारी कार्य किया सो इसकार्यका तुमको पुरस्कार देना चाहिये अतएव उसके बदलेहीमें हमने तुमसे भेंटकी ॥२८॥ हेलक्ष्मणजी ! तुम्हारे समान विचारवान् सबका भाव जाननेवाले, उपकार माननेवाले और धर्मके जाननेवाले पुत्रके रहते राजा दशरथजीकी मृत्यु नहीं हुई ॥२९॥ लक्ष्मीके बढानेवाले श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणसे ऐसा कहकर परमसुख भोगमय बहुत फल युक्त

ततःपुष्पबलिंकृत्वाशांतिंचसयथाविधि ॥ दर्शयामासरामायतदाश्रमपदंकृतम् ॥ २५ ॥ सतंदृष्ट्वाकृतंसौम्यमाश्रमंसहसीतया ॥ राघवःपर्णशालायांहर्षमाहारयत्परम् ॥२६ ॥सुसंहृष्टःपरिष्वज्यबाहुभ्यांलक्ष्मणंतदा ॥ अतिस्निग्धंचगाढंचवचनंचेदमब्रवीत्॥ २७॥प्रीतोऽस्मितेमहत्कर्मत्वयाकृतमिदंप्रभो ॥ प्रदेयोयन्निमित्तंतेपरिष्वंगोमयाकृतः ॥ २८ ॥ भावज्ञेनकृतज्ञेनधर्मज्ञेनचलक्ष्मण ॥ त्वयापुत्रेणधर्मात्मानसंवृत्तःपितामम ॥ २९ ॥ एवंलक्ष्मणमुक्त्वातुराघवोलक्ष्मिवर्धनः ॥ तस्मिन्देशेबहुफलेन्यवसत्ससुखंसुखी ॥३०॥ कंचित्कालंसधर्मात्मासीतयालक्ष्मणेनच ॥ अन्वास्यमानोन्यवसत्स्वर्गलोकेयथामरः ॥३१॥इत्यार्षेश्रीम० वा० आ० च०सा० अर० पंचदशः सर्गः॥१५॥ वसतस्तस्यतुसुखंराघवस्यमहात्मनः ॥ शरद्व्यपायेहेमंत ऋतुरिष्टःप्रवर्तते ॥ १ ॥ सकदाचित्प्रभातायांशर्वर्यांरघुनंदनः ॥ प्रययावभिषेकार्थंरम्यांगोदावरींनदीम् ॥ २ ॥ प्रह्वःकलशहस्तस्तुसीतयासहवीर्यवान् ॥पृष्ठतोऽनुव्रजन्भ्रातासौमित्रिरिदमब्रवीत् ॥ ३ ॥ अयंसकालःसंप्राप्तःप्रियोयस्तेप्रियंवद ॥ अलंकृतइवाभातियेनसंवत्सरःशुभः ॥ ४ ॥ नीहारपरुषोलोकःपृथिवीसस्यमालिनी ॥ जलान्यनुपभोग्यानिसुभगोहव्यवाहनः ॥ ५ ॥

उस आश्रमपदमें वास करने लगे ॥३०॥ वह धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी सीता और लक्ष्मण करकेसेवित होनेपर देवलोकमें देवताके समान वहां कुछ दिन वास करते हुए ॥३१॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अरण्यकाण्डे भाषायां पंचदशः सर्गः ॥१५॥ महात्मा रामचन्द्रजीके वहां सुखसे वास करते २ शरत्काल बीता और सबका प्यारा हेमन्त समय आया ॥१॥ एक समय रात्रि बीतकर प्रभात हुआ तो उस समय श्रीरामचंद्रजी स्नान करनेके लिये रमणीक गोदावरीनदीपर जाते हुए ॥२॥ वीर्यवान् भ्राता लक्ष्मणजी सीताजीके साथ जलकाकलश हाथमें लेकर उनके पीछे २ चलते हुए नम्रतासे बोले ॥३॥ हेप्रिय बोलनेवाले ! जो इस समय आपको प्यारा है यहवही हेमन्तकाल उपस्थित हुआ है ।इस हेमन्तके समागमसेही शुभ संवत्सर मानो सजकरही मनोहर हुआ है ॥४॥ शरदीके प्रभावसे सबही लोगोंमें

शरीर रूखे होगये और पृथ्वी अनाजोंमे भरपूर होरही है और अग्निही इस समय लोगोंको प्रिय लगती है, शरदीसे पानी नहीं छुआ जाता ॥५॥ इस समय मनुष्य गण नये अनाजसे देवता और पितरोंकी विशेषभांतिसे पूजाकरके नवसस्यनिमित्त यज्ञ करते हुए निष्पाप हुए हैं ॥६॥ इस समय सब देशोंमें काम्य वस्तु दही, दूध, गोरस आदि बहुत प्राप्त होता है, इस समय विजयकी इच्छा किये हुए राजालोग देशोंमें घूमनेके लिये यात्रा करते हैं ॥७॥ दक्षिण दिशामें सूर्यभगवान्‌का अधिक अनुराग होनेसे उत्तर दिशा तिलकहीन स्त्रीकी नाई शोभारहित होगई है ॥८॥ एकतो हिमालयपर स्वभावसेही बहुत पाला पडता है उसपर अब सूर्यभगवान् उससे बहुत दूर होगये हैं, उससे हिमवानका हिमालय (पालेका घर) नाम ठीक २ हो रहा है ॥९॥ इस समय दुपहरियामें घूमना अच्छा लगता है धूप लगनेसे सुख होता है, इस समय सूर्य सबके सुख देनेवाले; और छाया तथा जल एकबारही नहीं सेवन किया जाता ॥१०॥ अब सूर्यनारायणका वह पहलासा तेज नहीं है, कुहरा

नवाग्रयणपूजाभिरभ्यर्च्यपितृदेवताः ॥ कृताग्रयणकाःकालेसंतोविगतकल्मषाः ॥ ६ ॥ प्राज्यकामाजनपदाःसंपन्नतरगोरसाः ॥ विचरंतिम हीपालायात्रार्थंविजिगीषवः ॥ ७ ॥ सेवमानेदृढंसूर्येदिशमंतकसेविताम् ॥ विहीनतिलकेवस्त्रीनोत्तरादिक्प्रकाशते ॥ ८ ॥ प्रकृत्याहिमकोशा ढ्योदूरसूर्यश्चसांप्रतम् ॥ यथार्थनामासुव्यक्तंहिमवान्हिमवान्गिरिः ॥९॥ अत्यंतसुखसंचारामध्याह्नेस्पर्शतःसुखाः ॥ दिवसाःसुभगादित्याश्छा यासलिलदुर्भगाः ॥ १० ॥ मृदुसूर्याःसुनीहाराःपटुशीताःसमाहिताः ॥ शून्यारण्याहिमध्वस्तादिवसाभांतिसांप्रतम् ॥ ११ ॥ निवृत्ताकाशश यनाःपुष्यनीताहिमारुणाः ॥ शीतवृद्धतरायामास्त्रियामायांतिसांप्रतम् ॥१२॥ रविसंक्रांतसौभाग्यस्तुषारारुणमंडलः ॥ निःश्वासांधइवादर्श श्चंद्रमानप्रकाशते ॥ १३ ॥ ज्योत्स्नातुषारमलिनापौर्णमास्यांनराजते ॥ सीतेवचातपश्यामालक्ष्यतेनचशोभते ॥ १४ ॥ प्रकृत्याशीतलस्पर्शो हिमविद्धश्चसांप्रतम् ॥ प्रवातिपश्चिमोवायुःकालेद्विगुणशीतलः ॥ १५ ॥

पडने व पवन चलनेसे जाडा बहुतही अधिक पडता है जिस जाडेके पडनेसे जीवमात्रही जडी भूत होगये, उससे सबही वन सूनेसे जान पडते हैं प्रभातकाल हिमग्रस्त होकर प्रकाशित ॥११॥ पुष्य नक्षत्रयुक्त इस पौषमासमें और पाला पडती हुई धूसर वर्ण इनदिनोंकी रात्रिमें विना छाये हुए स्थानमें नहीं सोया जाता अब रात्रि योंमें शीत अधिक पडता हैं ॥१२॥ जिसप्रकार श्वासकी बाफ लगनेसे दर्पण अन्धासा हो जाता है, वैसेही सुखसेव्यतादि सबही सौभाग्य इस समय सूर्यसे दबजाने और बर्फकेद्वारा किरणोंके ढक जाने और धूसरवर्ण होजानेसे चन्द्रमाकाभी अब प्रकाश नहीं है ॥१३॥ तुषारकरके मलीन होनेसे चांदनी अब पूर्णमासीकी रात्रिमें भी नहीं खिलती केवल दीखती; जैसे सीताजी धूपके लगनेसे श्याम होगई हैं और शोभित नहीं होतीं ॥१४॥ स्वभावतः शीतलतायुक्त पछांहिया पवन अब हिमसे

आवृत और उससे मिलकर दूना शीतलहो चलरहा है ॥१५॥ यव और गेहुँओं करके पूर्ण ओस जिनमें पडी हुई ऐसे समस्त वन सूर्यके उदय होनेपर शब्द करते हुए सारस और क्रौंचादिक पक्षियोंसे व्याप्त होकर शोभा विस्तार करते हैं ॥१६॥ सुवर्णके वर्णवाले शालिसमूह खजूरके फूलके समान तंदुल भरी हुई बालोंके लगनेसे कुछएक झुकेहुए विराज रहे हैं ॥१७॥ सूर्य आकाशमें ऊँचे उठकर चन्द्रमाके समान शीतल अल्प प्रकाशमय दृष्टि आते हैं क्योंकि इधर उधर फैली हुई उनकी किरणें पालेसे ढक रही हैं ॥१८॥ धूपका तेज सबेरे २तो कुछ होताही नहीं दुपहरको कुछएक सुखका देनेवाला होता है और उसी समय वर्ण कुछ पीला पडजानेसे पृथ्वीमें शोभित होता है ॥१९॥ प्रभातमें ओसकी बून्दोंके गिरनेसे हरी २ घास गीली होरही है उस घासपर सूर्यकी किरणें पडनेसे वनभूमिकी सीमा नहीं रहती ॥२०॥ वनैला हाथी अधिक प्यासा होनेपरभी शीतल जल छूतेही उसी समय सूँड खैंच लेता है ॥२१॥ डरपोक आदमी जिस प्रकार युद्धमें

बाष्पच्छन्नान्यरण्यानियवगोधूमवंतिच॥शोभंतेऽभ्युदितेसूर्येनदद्भिः क्रौंचसारसैः ॥ १६ ॥ खर्जूरपुष्पाकृतिभिःशिरोभिःपूर्णतंडुलैः ॥ शोभंतेकिंचिदालंबाःशालयःकनकप्रभाः ॥ १७ ॥ मयूखैरुपसर्पद्भिर्हिमनीहारसंवृतैः ॥ दूरमभ्युदितःसूर्यःशशांकइवलक्ष्यते ॥१८॥ आग्राह्यवीर्यःपूर्वाह्णेमध्याह्नेस्पर्शतःसुखः ॥ संसक्तःकिंचिदापांडुरातपःशोभतेक्षितौ ॥१९॥ अवश्यायनिपातेनकिंचित्प्रक्लिन्नशाद्वला॥वनानांशोभतेभूमिर्निविष्टतरुणातपा ॥२०॥ स्पृशन्सुविपुलंशीतमुदकंद्विरदःसुखम् ॥ अत्यंततृषितोवन्यःप्रतिसंहरतेकरम् ॥२१॥ एतेहिसमुपासीनाविहगाजलचारिणः॥ नावगाहंतिसलिलमप्रगल्भाइवाहवम् ॥२२॥ अवश्यायतमोनद्धानीहारतमसावृताः ॥ प्रसुप्ताइवलक्ष्यंतेविपुष्पावनराजयः ॥ २३ ॥ बाष्पसंच्छन्नसलिलारुतविज्ञेयसारसाः ॥ हिमार्द्रवालुकास्तीरैःसरितोभांतिसांप्रतम् ॥ २४ ॥ तुषारपतनाच्चैवमृदुत्वाद्भास्करस्यच॥ शैत्यादगाग्रस्थमपिप्रायेणरसवज्जलम् ॥२५॥ जराझर्झरितैःपत्रैःशीर्णकेसरकर्णिकैः॥ नालशेषाहिमध्वस्तानभांतिकमलाकराः ॥ २६ ॥

नहीं जाते, वैसेही यह जलचर पक्षीगण जलके समीप बैठे रहकरभी किसी प्रकारसे जलमें डुबकी नहीं मारते ॥ २२ ॥ प्रसून शून्य वन श्रेणी रात्रिमें ओस और अंधकारसे ढकजाने और प्रभातको कुहरेके अँधेरेसे छिप जानेपर ऐसी लगती है मानों सोय रही है ॥ २३ ॥ अब समस्त नदियें बाफसेकी हुई हैं और उनके तीरका रेतभी पालेके पडनेसे गीला होरहा है और शब्द करते हुए सारसोंके घूमनेसे सब नदियें बहुतही शोभायुक्त हुई हैं २४ ॥ बर्फके गिरने और सूर्यका तेज मंद होनेसे शीतके वशहो पर्वतोंके अग्रभागका जलभी प्रायः स्वादिष्ट होगया है ॥ २५ ॥ अब जराके वश होजानेसे पत्तोंके गिरजाने और पँखुडियोंके टूटजाने व हिमग्रस्त होजानेसे कमलफूलमें केवल डंडीमात्र रह गई है अब कमलाकर सरोवर शोभा नहीं पाते ॥ २६ ॥

हे पुरुषश्रेष्ठ ! इस दारुण हेमन्तकालमें धर्मात्मा भरतजी आपकी भक्तिके वश हो नगरमें रहकर भी दुःखका बोझ सहन करते हुए तपस्या करते होंगे ॥२७॥ और राज्य मान और अनेक प्रकारके राज्योचित सुख छोडकर नियत समय पर आहार करके तपस्वी हो शीतल पृथ्वीपर शयन करते होंगे ॥२८॥ वह निश्चय प्रतिदिन, इस समय निरालस्य हो मन्त्री आदिकोंके साथ सरयू नदीमें, नहानेके लिए जाते होंगे ॥२९॥ भरतजी स्वभावसेही सुकुमार हैं और और परमसुखसे पलकर इतने बडे हुए हैं, सो अब वह किस प्रकारसे पाला पडते हुये प्रभातकालमें सरयूके जलसे स्नान करते होंगे? ॥३०॥ आर्य ! वह कमलनेत्र 'श्यामवर्ण बडाई करके युक्त शोभायमान्, सूक्ष्मोदर, धर्मज्ञ सत्यवादी, श्रीमान्, परस्त्रीविमुख, जितेन्द्रिय ॥३१॥ प्रिय वचन बोलनेवाले शत्रुओंका दमन करनेवाले लंबी भुजावाले लज्जाशील श्रीमान् भरतजी सब

अस्मिंस्तुपुरुषव्याघ्रकालेदुःखसमन्वितः ॥ तपश्चरतिधर्मात्मात्वद्भक्त्याभरतःपुरे ॥ २७ ॥ त्यक्त्वाराज्यंचमानंचभोगांश्चविविधान्बहून् ॥ तपस्वीनियताहारःशेतेशीतेमहीतले ॥ २८ ॥ सोऽपिवेलामिमांनूनमभिषेकार्थमुद्यतः ॥ वृतःप्रकृतिभिर्नित्यंप्रयातिसरयूंनदीम् ॥२९॥ अत्यंतसुखसंवृद्धःसुकुमारोहिमार्दितः ॥ कथंत्वपररात्रेषुसरयूमवगाहते ॥ ३० ॥ पद्मपत्रेक्षणःश्यामःश्रीमान्निरुदरोमहान् ॥ धर्मज्ञःसत्यवादीचह्रीनिषेधोजितेंद्रियः ॥३१॥ प्रियाभिभाषीमधुरोदीर्घबाहुररिंदमः ॥ संत्यज्यविविधान्सौख्यानार्यंसर्वात्मनाश्रितः ॥३२॥ जितःस्वर्गस्तवभ्रात्राभरतेनमहात्मना ॥ वनस्थमपितापस्येयस्त्वामनुविधीयते ॥ ३३ ॥ नपित्र्यमनुवर्तंते मातृकंद्विपदाइति ॥ ख्यातोलोकप्रवादोऽयंभरतेनान्यथाकृतः ॥ ३४ ॥ भर्तादशरथोयस्याःसाधुश्चभरतःसुतः ॥ कथंनुसांबाकैकेयीतादृशीक्रूरदर्शिनी ॥ ३५ ॥ इत्येवंलक्ष्मणेवाक्यंस्नेहाद्वदति धार्मिके ॥ परिवादंजनन्यास्तमसहन्राघवोऽब्रवीत् ॥ ३६ ॥

सुख भोगको जलांजलि देकर अन्तःकरणसे आपकोही आश्रय किये हुए हैं ॥३२॥ हे वनवासिन् ! यद्यपि आपके भ्राता महात्मा भरतजी तापस धर्मका आश्रय करके वनवासी नहीं हुए हैं तथापि उन्होंने आपके अनुरूप कार्य कर स्वर्गको जीत लिया है ॥३३॥ जगत्में जो यह कहावत चली आती है कि, मनुष्योंमें पिताका भाव नहीं आता वरन् माताहीका स्वभाव आता है सो भरतजीने इस कहावतके विरुद्ध कर दिखाया, क्योंकि उनमें कैकेयीका स्वभाव नहीं है ॥ ३४ ॥ परन्तु श्रीराजाधिराज महाराज दशरथजी जिसके स्वामी और साधु भरतजी जिसके पुत्र वह जननी कैकेयी किस प्रकारसे ऐसी क्रूर बुद्धिवाली हुई ? ॥३५॥ महात्मा लक्ष्मणजीने जब भाईके स्नेहके वश हो इस प्रकार कहा तब श्रीरामचन्द्रजी माता कैकेयीकी वह निन्दा न सहते हुए कहने लगे ॥ ३६ ॥

हे भइया ! मँझिली माता कैकेयीकी निन्दा मत करो, तुम केवल इक्ष्वाकुनाथ भरतजीकेही गुणगणोंका बखान करो ॥३७॥ यद्यपि हमारी बुद्धि एक मात्र वनवासमें निश्चित और दृढव्रत हुई है, तथापि भरतजीके स्नेहके वश होकर बावरीसी होगई है ॥३८॥ भरतजीकी प्रिय मधुर हृदयको अमृतकी नाईं सिंचन करनेवाली मनको आह्लाद देनेवाली वार्त्ता बार २ हमारे मनमें स्मरण होरही है ॥३९॥ नहीं जानते कि, कितने दिनोंमें फिर महात्मा भरतजी और शत्रुघ्नजीसे तुम्हारे सहित हम मिलेंगे ॥ ४० ॥ रघुनन्दन श्रीरामचन्द्रजी इस प्रकारसे विलाप करते २ भ्राता लक्ष्मण और सीताके सहित गोदावरी नदीपर पहुँचकर स्नान करते हुये ॥४१॥ फिर सबने गोदावरीके जलसे पितृगणों और देवताओंके तर्पण करके उदित सूर्य व और दूसरे देवताओंका स्तोत्र किया ॥४२॥ भगवान् भूतनाथ पार्वती और

नतेऽम्बामध्यमातातगर्हितव्याकदाचन ॥ तामेवेक्ष्वाकुनाथस्यभरतस्यकथांकुरु ॥३७॥ निश्चितैवहिमेबुद्धिर्वनवासेदृढव्रता ॥ भरतस्नेहसंतप्ताबालिशीक्रियतेपुनः ॥३८॥ संस्मराम्यस्यवाक्यानिप्रियाणिमधुराणिच ॥ हृद्यान्यमृतकल्पानिमनःप्रह्लादनानिच ॥३९॥ कदाह्यहंसमेष्यामिभरतेनमहात्मना ॥ शत्रुघ्नेनचवीरेणत्वयाचरघुनंदन ॥४०॥ इत्येवंविलपंस्तत्रप्राप्यगोदावरींनदीम् ॥ चक्रेऽभिषेकंकाकुत्स्थःसानुजःसहसीतया ॥४१॥ तर्पयित्वाऽथसलिलैस्तैःपितॄन्दैवतानपि ॥ स्तुवंतिस्मोदितंसूर्यंदेवताश्चतथाऽनघाः ॥४२॥ कृताभिषेकःसरराजरामःसीताद्वितीयःसहलक्ष्मणेन ॥ कृताभिषेकस्त्वगराजपुत्र्यारुद्रःसनंदिर्भगवानिवेशः ॥४३॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मी० आदिकाव्येच० सा० आरण्यकांडे षोडशः सर्गः ॥१६॥ कृताभिषेकोरामस्तुसीतासौमित्रिरेवच ॥ तस्माद्गोदावरीतीरात्ततोजग्मुःस्वमाश्रमम् ॥१॥ आश्रमंतदुपागम्यराघवःसहलक्ष्मणः ॥ कृत्वापौर्वाह्णिकंकर्मपर्णशालामुपागमत् ॥२॥ उवाससुखितस्तत्रपूज्यमानोमहर्षिभिः ॥ सरामःपर्णशालायामासीनःसहसीतया ॥३॥ विरराजमहाबाहुश्चित्रयाचंद्रमाइव ॥ लक्ष्मणेनसहभ्रात्राचकारविविधाःकथाः ॥४॥ तदासीनस्यरामस्यकथासंसक्तचेतसः ॥ तंदेशंराक्षसीकाचिदाजगामयदृच्छया ॥५॥

नन्दीके सहित स्नान करके जिस प्रकारसे शोभाको प्राप्त होते हैं सीताजी और लक्ष्मणजीके सहित नहाकर श्रीरामचन्द्रजीने भी वैसीही शोभा धारण की ॥४३॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अरण्यकांडे भाषायां षोडशः सर्गः ॥१६॥ श्रीरामचन्द्रजी, सीताजी व लक्ष्मणजी तीनों जन स्नान करके गोदावरीके तीरसे आश्रमको लौटे ॥१॥ और श्रीरामचन्द्रजीने आश्रममें पहुँचकर लक्ष्मणजी के साथ प्रथम काल की सब क्रिया कर पर्णशालामें प्रवेश किया ॥२॥ और महर्षि लोगोंसे पूजे जाकर वहां सुखसे वास करने लगे. उसकाल सीताजीके सहित पर्णशालामें आसीन होनेसे ॥३॥ महाबाहु रामचन्द्रजी चित्रा नक्षत्र युक्त चन्द्रमाके समान शोभा पाने लगे । उसके पीछे भ्राता लक्ष्मणजी के सहित रामचन्द्रजीने अनेक प्रकार की कथा वार्त्ता आरंभ करदी ॥४॥ इस प्रकारसे बैठे रहकर कथा वार्त्ता कहनेमें

लगे हुये हैं कि,इतनेहीमें कोई राक्षसी अपनी इच्छासे घूमती हुई वहां आई ॥५॥ वह राक्षसीशूर्पणखा नामवाली दशवदन रावणकी बहन थी वह देवताओंके समान रामचन्द्रजीके निकट आकर उनको देखती हुई ॥ ६ ॥ उसने देखा कि;रामचन्द्रजी का वदन प्रदीप्ति मान हैं, बाँहें घुटनोंतक आती हैं, दोनों नेत्र कमलदलके समान बडे हैं,चाल हाथीके समान है,शिर पर जटा धारण कियेहुए हैं ॥७॥ अंग प्रत्यंग अतिकोमल हैं,बल विक्रम अपार है । शरीर राजलक्षणों करके युक्त है,वर्ण नीले कमलके समान श्यामता लिये हुए है, कोटि मदन के समान सुन्दर हैं ॥ ८ ॥ इसप्रकार साक्षात् इन्द्रके समान श्रीरामचन्द्रजी को देखकर राक्षसी कामसे मोहित हुई । श्रीरामचन्द्रजी का वदनमण्डल श्रेष्ठ था । राक्षसी का मुख खराब था.रामचन्द्रजीका मध्य देश गोलाकार व राक्षसीका उदर अति बृहत् था ॥ ९ ॥ श्रीरामचन्द्रजी के दोनों नेत्र अति विशाल व राक्षसी की आंखे अति बुरी थीं,रामचन्द्रके अतिश्रेष्ठ घूंघरवाले बाल थे और

सातुशूर्पणखानामदशग्रीवस्यरक्षसः॥भगिनीराममासाद्यददर्शत्रिदशोपमम् ॥६॥ दीप्तास्यंचमहाबाहुंपद्मपत्रायतेक्षणम् ॥ गजविक्रांतगमनंजटामंडलधारिणम्॥७॥सुकुमारंमहासत्त्वंपार्थिवव्यंजनान्वितम्॥राममिंदीवरश्यामंकंदर्पसदृशप्रभम्॥८॥ बभूवेंद्रोपमंदृष्ट्वाराक्षसीकाममोहिता॥ सुमुखंदुर्मुखीरामंवृत्तमध्यंमहोदरी ॥९॥ विशालाक्षंविरूपाक्षीसुकेशंताम्रमूर्धजा॥ प्रियरूपंविरूपासासुस्वरंभैरवस्वना ॥१०॥ तरुणंदारुणावृद्धादक्षिणंवामभाषिणी ॥ न्यायवृत्तंसुदुर्वृत्ताप्रियमप्रियदर्शना ॥ ११ ॥शरीरजसमाविष्टाराक्षसीराममब्रवीत्॥ जटीतापसवेषेणसभार्यःशरचापधृक् ॥ १२ ॥ आगतस्त्वमिमंदेशंकथंराक्षससेवितम् ॥ किमागमनकृत्यंतेतत्त्वमाख्यातुमर्हसि ॥ १३ ॥ एवमुक्तस्तुराक्षस्याशूर्पणख्यापरंतपः ॥ऋजुबुद्धितयासर्वमाख्यातुमुपचक्रमे॥१४॥ आसीद्दशरथोनामराजात्रिदशविक्रमः ॥ तस्याहमग्रजःपुत्रोरामोनामजनैःश्रुतः ॥१५॥

राक्षसी के केश ताम्रवर्ण थे । श्रीरामचन्द्रजी प्रिय रूपवान् और राक्षसी महाभयानक रूप थी,श्रीरामचन्द्रजीका अतिमधुर स्वर था और राक्षसी का स्वर नितान्त कर्कश भीषण और भयंकर था ॥१०॥ श्रीरामचन्द्रजी युवा थे, व राक्षसी महावृद्धा थी,श्रीरामचन्द्रजी अति मधुर वचन बोलनेवाले,व राक्षसी अत्यन्त कर्कशभाषिणी थी, श्रीरामचन्द्रजी न्यायवृत्त और राक्षसीदुर्वृत्ता थी, श्रीरामचन्द्रजी देखनेमें जैसे प्यारे थे, वह राक्षसी देखनेमें वैसेही कुप्यारीथी ॥ ११ ॥ ऐसी शूर्पणखा महाकामातुर होकर श्रीरामचन्द्रजी से बोली कि, तुमजटा रखाये तपस्वीका वेष धारे धनुष बाण लिये स्त्री सहित ॥१२॥ किस कारणसे राक्षसोंसे सेवित दिशामें आये हो तुम्हारे यहां पर आनेका क्या प्रयोजन है ? सो यथार्थ कहो ॥१३॥ शत्रुओंके तपानेवाले श्रीरामचन्द्रजी राक्षसी शूर्पणखाकी यह वार्त्ता सुनकर सरलता सहित कुछ न छिपाते हुए सब वर्णन करनेलगे ॥१४॥ श्रीरामचन्द्रजी बोले कि, देवताओंके समान विक्रमवान् दशरथजी नामक एक

राजा थे हम उनके ज्येष्ठ पुत्र हैं लोकमें हमारा नाम राम है ॥१५॥ और इनका नाम लक्ष्मण है, यह हमारे आज्ञाकारी छोटे भ्राता हैं और यह विदेह कुमारी हमारी भार्या है इनका सीता ऐसा नाम है ॥ १६ ॥ पिता और माता कैकेयीके कहनेसे धर्म के लाभकी आशा और धर्मकी रक्षा करनेके कारण वनमें वास करनेके लिये हम इस स्थानमें आये हैं॥ १७॥ इस समय यह हमारी इच्छा तुमको जाननेकी हुई है, तुम कौन हो किसकी बेटी हो और किसकी स्त्री हो ? हमें तो ऐसा जान पड ता है कि, तुम राक्षसोंका मनमोहनेवाली राक्षसी हो॥ १८॥ और तुम किस लिये यहां आई सो सत्यही सत्य कहो ? यह वचन सुनकर वह मदनसे आतुर हुई राक्षसी बोली॥ १९॥ हे रामचन्द्र ! तुम ठीक २ हमारा परिचय सुनो हम कहती हैं; हम शूर्पणखा नामक कामरूपा राक्षसी हैं ॥२०॥ सबको भय उपजाती हुई अकेली इस वनमें घूमा करती हैं. हमारे भइया का नाम रावण है सो कदाचित् तुमने इसका वृत्तान्त व नाम सुनाही होगा॥ २१॥ हमारे और दो भाइयोंका

भ्रातायंलक्ष्मणोनामयवीयान्मामनुव्रतः॥ इयंभार्याचवैदेहीममसीतेतिविश्रुता॥ १६॥ नियोगात्तुनरेंद्रस्यपितुर्मातुश्चयंत्रितः ॥ धर्मार्थंधर्मकांक्षी चवनंवस्तुमिहागतः ॥१७॥ त्वांतुवेदितुमिच्छामिकस्यत्वंकासिकस्यवा ॥ त्वंहितावन्मनोज्ञांगीराक्षसीप्रतिभासिमे। ।१८॥ इहवाकिंनिमि त्तंत्वमागताब्रूहितत्त्वतः ॥ साब्रवीद्वचनंश्रुत्वाराक्षसीमदनार्दिता ॥१९॥ श्रूयतांरामतत्त्वार्थंवक्ष्यामिवचनंमम॥ अहंशूर्पणखानामराक्षसीकाम रूपिणी ॥२०॥ अरण्यंविचरामीदमेकासर्वभयंकरा॥ रावणोनाममेभ्राताबलीयान्राक्षसेश्वरः ॥ वीरोविश्रवसःपुत्रोयदितेश्रोत्रमागतः ॥२१॥ प्रवृद्धनिद्रश्चसदाकुंभकर्णोमहाबलः॥ विभीषणस्तुधर्मात्मानतुराक्षसचेष्टितः ॥ २२ ॥ प्रख्यातवीर्यौचरणेभ्रातरौखरदूषणौ॥ २३ ॥ तानहंस मतिक्रांतारामत्वापूर्वदर्शनात्॥ समुपेताऽस्मिभावेनभर्तारंपुरुषोत्तमम् ॥ २४ ॥ अहंप्रभावसंपन्नास्वच्छंदबलगामिनी ॥ चिरायभवभर्तामेसी तयाकिंकरिष्यसि ॥ २५ ॥ विकृताचविरूपाचनसेयंसदृशीतव ॥ अहमेवानुरूपातेभार्यारूपेणपश्यमाम् ॥ २६ ॥

नाम कुम्भकर्ण और विभीषण है, कुम्भकर्ण अति बलवान् है और सदा सोताही रहता है और विभीषण परम धार्मिक है राक्षसोंके चरित्र उसमें नहीं हैं ॥ २२ ॥ खर और दूषण यह दोनों भी हमारे भ्राता रणमें बडे वीर्यवान और बलशाली लोकमें प्रसिद्ध हैं॥ २३॥ हे पुरुष श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी ! तुमको प्रथम देखतेही हम उन सब को छोड छाँड तुम्हारा अपूर्व रूप देख पुरुषोत्तम जान प्रेमके मारे अपना पति बनाने के लिये यहां आई हैं ॥२४॥ हममें बडा पराक्रम है, और बल होने के कारण जहां इच्छा होती है वहीं स्वच्छन्दता से घूमती रहती हूं सो तुम सदा के लिये हमारे स्वामी होना । इस सीता को लेकर क्या करोगे ॥२५॥ यह सीता विकटाकार और कुरूपा है, किसी भांति भी यह तुम्हारे योग्य नहीं है हम को देखो, हम हीं रूप के हेतु तुम्हारी भार्या बनने के योग्य हैं ॥२६॥

हम तुम्हारे इस भ्राता के सहित इस मानवी, कुरूपा, असती, कराला और नतोदरी सीता को भक्षण कर जाँयगी ॥ २७ ॥ तुम कामभोगमें तत्पर होकर हमारे हितसे और पर्वतोंके शृंगोंको देखते हुए दंडकारण्यमें विचरण करोगे ॥ २८ ॥ वचन बोलनेमें चतुर रघुनन्दन श्रीरामचन्द्रजी यह वचन सुन ऊँचे स्वरसे हँसकर क्रूर नयना शूर्पणखासे बोले ॥ २९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अरण्यकाण्डे भाषायां सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने उपहास करनेके लिये हँसकर मधुर वचनसे उस कामके फंदमें फँसी शूर्पणखासे कहा ॥ १ ॥ अयि कल्याणी ! हमारा विवाह होगया है यह सीताजी हमारी स्त्री हैं सो तुम सरीखी स्त्रियोंको सौतका होना बहुतही दुःखका विषय है ॥ २ ॥ परंतु हमारे यह छोटे भ्राता लक्ष्मणजी सचरित्र श्रीमान् वीर्यवान् और प्रियदर्शन हैं। इनका विवाह अभी नहीं हुआ है अथवा अकृतदार इनके निकट स्त्री नहीं है अथवा इन्होंने स्त्रीपरिग्रह नहीं किया है ॥ ३ ॥ इन्होंने पहले कभी स्त्रीका सुख नहीं भोगा है इसी कारण

इमांविरूपामसतींकरालांनिर्णतोदरीम् ॥ अनेनसहतेभ्रात्राभक्षयिष्यामिमानुषीम् ॥ २७ ॥ ततःपर्वतशृंगाणिवनानिविविधानिच ॥ पश्यन्सहमयाकामीदंडकान्विचरिष्यसि ॥ २८ ॥ इत्येवमुक्तःकाकुत्स्थःप्रहस्यमदिरेक्षणाम् ॥ इदंवचनमारेभेवक्तुंवाक्यविशारदः ॥ २९ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आदिकाव्ये च० सा० आरण्यकांडे सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥ तांतुशूर्पणखांरामःकामपाशावपाशिताम् ॥ स्वेच्छयाश्लक्ष्णयावाचास्मितपूर्वामथब्रवीत् ॥ १ ॥ कृतदारोऽस्मिभवतिभार्येयंदयितामम ॥ त्वद्विधानांतुनारीणांसुदुःखाससपत्नता ॥ २ ॥ अनुजस्त्वेषमेभ्राताशीलवान्प्रियदर्शनः ॥ श्रीमानकृतदारश्चलक्ष्मणोनामवीर्यवान् ॥ ३ ॥ अपूर्वीभार्ययाचार्थीतरुणःप्रियदर्शनः ॥ अनुरूपश्चतेभर्तारूपस्यास्यभविष्यति ॥ ४ ॥ एनंभजविशालाक्षिभर्तारंभ्रातरंमम ॥ असपत्नावरारोहेमेरुमर्कप्रभायथा ॥ ५ ॥ इतिरामेणसाप्रोक्ताराक्षसीकाममोहिता ॥ विसृज्यरामंसहसाततोलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ ६ ॥ अस्यरूपस्यतेयुक्ताभार्याऽहंवरवर्णिनी ॥ मयासहसुखंसर्वान्दंडकान्विचरिष्यसि ॥ ७ ॥ एवमुक्तस्तुसौमित्रीराक्षस्यावाक्यकोविदः ततःशूर्पनखींस्मित्वालक्ष्मणोयुक्तमब्रवीत् ॥ ८ ॥ कथंदासस्यमेदासीभार्याभवितुमिच्छसि ॥ सोऽहमार्येणपरवान्भ्रात्राकमलवर्णिनी ॥ ९ ॥

यह विवाहार्थी हुए हैं और विशेष करके यह युवा हैं इससे यह सब प्रकारके तुम्हारे लायक स्वामी होंगे ॥ ४ ॥ हे बडे नेत्रों वाली सूर्यकी प्रभा जिस प्रकारसे सुमेरुकी भजन करती है तुमभी वैसेही सौत रहित होकर हमारे भाईकी स्वामीकी भांतिसे सेवा करो ॥ ५ ॥ वह कामसे मोहित हुई राक्षसी रामचन्द्रजीके यह वचन सुनकर तुरन्त लक्ष्मणजीके निकट जा कर कहने लगी ॥ ६ ॥ मैं सब स्त्रियोंसे अधिक सुन्दरी हूं इससे तुम्हारे इस रूप लायक ही भार्या बनूंगी तुम हमारे सहित सुखपूर्वकसमस्त वनोंमें विचरण करोगे ॥ ७ ॥ उस राक्षसीसे ऐसा सुन वचन बोलनेमें चतुर सुमित्रानन्दन लक्ष्मणजी मन्द२हँसकर उससे यह युक्तियुक्त वचन बोले ॥ ८ ॥ अयि कमलवर्णे ! हम दास हैं फिर किस कारण तुम हमारी स्त्री बनकर दासी बननेकी अभिलाषिणी हुई हो ! हम इन बडे भ्राता

रामचन्द्रजीके दास हैं ॥९॥ हे विशालनेत्र वाली ! तुम सिद्धकामा और आनन्दिता होकर सर्वभावसे संपत्तिमान् हमारे बडे भ्राता आर्य श्रीरामचंद्रजीकी दूसरी स्त्री बनो क्योंकि उनसे विवाह करनेमें तुम्हारी विधि भली मिलेगी ॥ उनका श्यामरंग तुम्हारे वर्णसे कुछ२ मिलता हुआ है परंतु हमारा तुम्हारा रंग कुछ भी नहीं मिलता ॥१०॥ फिर जब इनसे विवाह कर लोगी तो यह कुरूपा, असती जिनके सामने और कोई सती नहीं भय उपजानेवाली, कृशोदरी और वृद्धा भार्या को त्याग करके तुममें ही अनुरागी हो जायंगे ॥११॥ अयि बरवर्णिनि ! अयि वरारोहे ! कौन चतुर पुरुष है जो तुम्हारे इस श्रेष्ठरूपका अनादर करके मानुषीमें अनुरागीहोगा ? ॥१२॥ जब लक्ष्मणजीने इस प्रकार कहातो बडेपेटवालीसब लोकोंको डरावनेवाली निशाचरी शूर्पणखा उस हँसीकी बातको न समझ करलक्ष्मणजीकी

समृद्धार्थस्यसिद्धार्थामुदितामलवर्णिनी ॥ आर्यस्यत्वंविशालाक्षिभार्याभवयवीयसी ॥१०॥ एतांविरूपामसतींकरालांनिर्णतोदरीम् ॥ भार्यां वृद्धांपरित्यज्यत्वामेवैषभजिष्यति ॥११॥ कोहिरूपमिदंश्रेष्ठंसंत्यज्यवरवर्णिनि ॥ मानुषीषुवरारोहेकुर्याद्भावंविचक्षणः ॥ १२ ॥ इतिसा लक्ष्मणेनोक्ताकरालानिर्णतोदरी ॥ मन्यतेतद्वचःसत्यंपरिहासाविचक्षणा ॥ १३ ॥ सारामंपर्णशालायामुपविष्टंपरंतपम् ॥ सीतयासहदुर्धर्षमब्र वीत्काममोहिता ॥१४॥ इमांविरूपामसतींकरलांनिर्णतोदरीम् ॥ वृद्धांभार्यामवष्टभ्यनमांत्वंबहुमन्यसे ॥१५॥ अद्येमांभक्षयिष्यामिपश्यतस्त वमानुषीम् ॥ त्वयासहचरिष्यामिनिःसपत्नायथासुखम् ॥ १६ ॥ इत्युक्त्वामृगशावाक्षीमलातसदृशेक्षणा ॥ अभ्यगच्छत्सुसंक्रुद्धामहोल्कारो हिणीमिव ॥ १७ ॥ तांमृत्युपाशप्रतिमामापतंतींमहाबलः ॥ निगृह्यरामःकुपितस्ततोलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ १८ ॥ क्रूरैरनार्यैःसौमित्रेपरिहासः कथंचन ॥ नकार्यःपश्यवैदेहींकथंचित्सौम्यजीवतीम् ॥ १९ ॥

बातको सत्यही समझी ॥१३॥ उसके पीछे वह मोहित होकर पर्णकुटीमें सीताजीके साथ बैठे हुए शत्रुओंके तपानेवाले अजेय श्रीरामचन्द्रजीसे कहनेलगी ॥१४॥ कि, तुम इस बुढिया कुरूपा कृशोदरी भय उपजानेवाली असती स्त्रीमें अनुरागी होकर हमारा आदर सन्मान नहीं करते ॥१५॥ इससे तुम्हारे सामने ही इसी मुहूर्त्तमें हम इस मानुषीको भक्षण करेंगी और सौतहीन होकर यथासुखसे घूमा करेंगी ॥ १६ ॥ यह कहकर जलते अंगारेके समान चमकते हुए नेत्रोंवाली निशाचरी महाक्रोधमें भरकर हरिणके बच्चोंके समान नेत्रवाली सीताजीके समानेको दौडी जैसे रोहिणीकी ओर उल्का धावमान हो ॥ १७ ॥ उस यमकी फांसीके समान राक्षसीको सामनेआते देखकर श्रीरामचंद्रजी क्रोधमें भर उसको रोक लक्ष्मणसे बोले ॥ १८ ॥ हे लक्ष्मण क्रूरस्वभाववाले ! दुष्टोंके

साथमें हँसी करनाभी किसी भांति कर्तव्य नहीं है। देखो इस परिहासके होनेसेही जानकीजीको अपने जीवनमें संदेह हुआ है॥१९॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! इस समय तुम इस कामसे मत्त हुई बडे पेटवाली कुरूपिणी असती राक्षसीको और भी कुरूप करदो ॥ २० ॥ महाबलवान् श्रीलक्ष्मणजीने श्रीरामचन्द्रजीके यह वचन सुनकर महाक्रोधित होतलवार उठा कर उनके सामनेही राक्षसी शूर्पणखाके नाक कान काट डाले ॥२१॥ नाक कान कटाये हुए घोर स्वभाववाली वह राक्षसी उस समय विकट शब्दसे चिल्लातीहुई जहांसे आई थी उसी वनकी ओर शीघ्रतासे दाडी॥२२॥ अति भयंकर शरीरवाली कुरूपा वह राक्षसी शरीरमें रुधिर लगाये हुए वर्षकालीन बादरके समान विविध प्रकारके शब्द करने लगी ॥ २३ ॥ उसके पीछे वह बाहें उठाकर घावोंसे रुधिर बहाती गर्जती हुई महावनमें प्रवेश कर गई ॥२४॥ वहां प्रवेश करके उसी कुरूप रूपसे राक्षसगणोंसे घेरेहुए जनस्थानवासी उग्र तेजवान् अपने भाई खरके निकट जाकर आकाशसे वज्रपातके समान पृथ्वीमें

इमांविरूपामसतीमतिमत्तांमहोदरीम्॥राक्षसींपुरुषव्याघ्रविरूपयितुमर्हसि ॥२०॥इत्युक्तोलक्ष्मणस्तस्याः क्रुद्धोरामस्यपश्यतः ॥ उद्धृत्यखड्गंचिच्छेदकर्णनासेमहाबलः ॥२१॥ निकृत्तकर्णनासातुविस्वरंसाविनद्यच ॥तथागतंप्रदुद्रावघोराशूर्पणखावनम् ॥ २२ ॥ साविरूपामहाघोरराक्षसीशोणितोक्षिता॥ ननादविविधान्नादान्यथाप्रावृषितोयदः ॥२३॥ साविक्षरंतीरुधिरंबहुधाघोरदर्शना॥ प्रगृह्यबाहूगर्जंतीप्रविवेशमहावनम् ॥ २४ ॥ ततस्तुसाराक्षससंघसंवृतंखरंजनस्थनगतंविरूपिता ॥ उपेत्यतंभ्रातरमुग्रतेजसंपपातभूमौगगनाद्यथाऽशनिः ॥ २५ ॥ ततः सभार्यंभयमोहमूर्च्छितासलक्ष्मणंराघवमागतंवनम् विरूपणंचात्मनिशोणितोक्षिताशशंससर्वंभगिनीखरस्वसा॥२६॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० अरण्यकांडे अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥ तांयथापतितांदृष्ट्वाविरूपांशोणितोक्षिताम्॥ भगिनींक्रोधसंतप्तः खरःपप्रच्छराक्षसः ॥१॥ उत्तिष्ठतावदाख्याहिप्रमोहंजहिसंभ्रमम् ॥ व्यक्तमाख्याहिकेनत्वमेवंरूपाविरूपिता ॥ २ ॥ कःकृष्णसर्पमासीनमाशीविषमनागसम् ॥ तुदत्यभिसमापन्नमंगुल्यग्रेणलीलया ॥ ३ ॥

गिरी ॥२५॥ रुधिर जिसके सब अंगोंमेंलगा हुआ भय और मोहसे जिसका चित्त ठिकाने नहीं ऐसी उस खरकी बहिन राक्षसी शूर्पणखाने खरसे स्त्री और भ्राताके सहित श्रीरामचन्द्रजीका वनमें आना और उनसे अपने नाक कान काटे जानेका सब वृतान्त कह सुनाया ॥ २६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा०आदि० अरण्य० भाषायामष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥ राक्षस खर अपनी बहन कुरूपाको शरीरमें रुधिर लगा हुआ और पृथ्वीमें पडाहुआ देखकर क्रोधसे संतापित हो पूँछने लगा ॥१॥ खरने कहा, उठकर बैठो, वृत्तान्त तो कहो, मूर्च्छा और चित्तकी चपलताको छोडो, स्पष्ट २ कहो कि,किसने तुमको ऐसा विरूप किया? ॥ २ ॥ किसने सामने बैठे हुए, कुण्डली बाँधे हुए निरपराध विषधर काले सांपको खेलसे ही उंगली के पोरुएसे छेडकर जगाया है ? ॥ ३ ॥

उसने तेरे साथ कुत्सित व्यापार कर अब भयंकर विष पिया अपने गलेमें कालकी फांसी डाली सोवह अज्ञानी इस बातको जो विपत्ति उसके ऊपर पडेगी उसको नहीं समझा है ॥४॥ बल विक्रम सम्पन्न यमराजके समान जलनेवाली कामरूपिणी यम समान तुम किसके पासगई थी, कि जिसने तुम्हारी यह दशा की है ॥ ५ ॥ देव गन्धर्व भूत और महात्मा ऋषि लोगोंमें कौन ऐसा वीर्यवान् है कि, जिसने तुमको विरूप किया है ॥ ६ ॥ देवताओंमें पाक शासन सहस्र लोचन इन्द्रके सिवाय, ब्रह्माण्डमें हम ऐसा और किसीके नहीं देखते जो हमारा अप्रिय कार्य करे ॥७॥ हंस जिस प्रकार जलसे मिले हुए दूधको अलग कर पीलेता है आज हम भी प्राणहरणकारी तीरोंके समूहसे उसके शरीरसे प्राण अलग करेंगे कि; जिसने तुमको विरूप किया है ॥ ८ ॥ समरमें मुझ करके शरजालद्वारा

कालपाशंसमासज्ज्यकंठेमोहान्नबुध्यते ॥ यस्त्वामद्यसमासाद्यपीतवान्विषमुत्तमम् ॥४॥ बलविक्रमसंपन्नाकामगाकामरूपिणी ॥ इमामवस्थां नीतात्वंकेनांतकसमागता ॥५॥ देवगंधर्वभूतानामृषीणांचमहात्मनाम् ॥ कोऽयमेवंमहावीर्यस्त्वांविरूपांचकारह ॥६॥ नहिपश्याम्यहंलोकेयः कुर्यान्ममविप्रियम् ॥ अमरेषुसहस्राक्षंमहेंद्रंपाकशासनम् ॥७॥ अद्याहं मार्गणैःप्राणानादास्येजीवितांतगैः ॥ सलिलेक्षीरमासक्तंनिष्पिबन्निवसा रसः ॥८॥ निहतस्यमयासंख्येशरसंकृत्तमर्मणः ॥ सफेनंरुधिरंकस्यमेदिनीपातुमिच्छति ॥९॥ कस्यपत्ररथाःकायान्मांसमुत्कृत्यसंगताः ॥ प्रहृष्टाभक्षयिष्यंतिनिहतस्यमयारणे ॥१०॥ तंनदेवानगंधर्वानपिशाचानराक्षसाः ॥ मयाऽपकृष्टंकृपणंशक्तास्त्रातुंमहाहवे ॥११॥ उपलभ्यशनैः संज्ञांतंमेशंसितुमर्हसि ॥ येनत्वंदुर्विनीतेनवनेविक्रम्यनिर्जिता ॥ १२ ॥ इतिभ्रातुर्वचः श्रुत्वाक्रुद्धस्यचविशेषतः ॥ ततःशूर्पणखावाक्यंसबाष्प मिदमब्रवीत् ॥ १३ ॥ तरुणौरूपसंपन्नौसुकुमारौमहाबलौ ॥ पुंडरीकविशालाक्षौचीरकृष्णाजिनांबरौ ॥१४॥ फलमूलाशनौदांतौतापसौब्रह्म चारिणौ ॥ पुत्रौदशरथस्यास्तांभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ १५ ॥

छिन्नमर्म किस मरे हुए पुरुषका फेन सहित रुधिर पृथ्वीने पीनेकी इच्छा की है ? ॥९॥ लडाई में मुझ करके मारे हुए किस पुरुषके देहसे मांस नोच२करआनंद सहित चील गिद्धादि पक्षी खायँगे ॥१०॥ हमसंग्राममें जिसके ऊपर चढाई करेंगे उस हतभागेको क्या देवता, क्या गन्धर्व क्या पिशाच, क्या राक्षस,कोई भी उद्धार करनेको समर्थ नहीं होगा ॥११॥ इस समय तुम सहज२सावधान होकर हमसे कहो कि,किस दुष्ट व्यक्तिने वनमें पराक्रम प्रकाश करके तुमको पराजित किया है ? ॥ १२ ॥ महाक्रोधित हुए अपने भाई खरके यह वचन सुनकर शूर्पणखा आंसू पोंछती बोली ॥ १३ ॥ कि तरुण रूप सम्पन्न सुकुमार महाब लवान् कमलनयन चीर व मृगचर्म धारण किये ॥१४॥ कन्द मूल फलके खानेवाले,जितेन्द्रिय, तपस्वी, ब्रह्मचारी, राजा दशरथके दो पुत्र राम लक्ष्मण ॥१५॥

वह देखनेमें गन्धर्वराजके समान और राजलक्षणों करके युक्त जान पडतेहैं वह दोनों जन देव हैं, अथवा दानव इसका कुछ निश्चय नहीं हो सकता ॥ १६ ॥ हमने देखा है कि, वहां पर उन दोनों जनोंके साथ एक रूपवती सब भूषण धारण किये हुए युवावस्थाको प्राप्त स्त्री भी है ॥१७॥ उन दोनों भाइयोंने मिलकर उस स्त्रीके कहनेसे, जैसे कोई अनाथ कुलटा स्त्रीकी दुर्दशा करता है, वही दशा हमारी की अर्थात् नाक कान काट डाले ॥१८॥ हम कुटिल चरित्रवाली उस स्त्रीका और उन दोनों जनोंका झाग सहित रुधिर समरमें पान करनेकी इच्छा करती हैं ॥१९॥ तुम हमारी यह पहली अभिलाषा पूर्ण करो, हम संग्राममें उस स्त्रीका और उन दोनोंका खून पियेंगी ॥२०॥ जब शूर्पणखाने यह वचन कहे तब खरने क्रोधित होकर महाबलवान् यमके समान (१४) राक्षसोंको आज्ञा दी कि॥२१॥ शस्त्र लगाए हुए. चीर मृगचर्म पहरे हुए दो मनुष्य घोर दण्डकारण्यमें स्त्री सहित आये हैं ॥ २२ ॥ सो तुम उन दोनों जनोंको और दुष्टा स्त्रीको मार करके

गंधर्वराजप्रतिमौपार्थिवव्यंजनान्वितौ ॥ देवौवादानवावेतौनतर्कयितुमुत्सहे ॥१६॥ तरुणीरूपसंपन्नासर्वाभरणभूषिता ॥ दृष्टातत्रमयानारीतयोर्मध्येसुमध्यमा ॥१७॥ ताभ्यामुभाभ्यांसंभूयप्रमदामधिकृत्यताम् ॥ इमामवस्थांनीताऽहंयथाऽनाथाऽसतीतथा ॥१८॥ तस्याश्चानृजुवृत्तायास्तयोश्चहतयोरहम् ॥ सफेनंपातुमिच्छामिरुधिरंरणमूर्धनि ॥१९॥ एषमेप्रथमःकामःकृतस्तत्रत्वयाभवेत् ॥ तस्यास्तयोश्चरुधिरंपिबेयमहमाहवे ॥२०॥ इतितस्यांब्रुवाणायांचतुर्दशमहाबलान् ॥ व्यादिदेशखरःक्रुद्धोराक्षसानंतकोपमान् ॥२१॥ मानुषौशस्त्रसंपन्नौचीरकृष्णाजिनांबरौ ॥ प्रविष्टौदंडकारण्यंघोरंप्रमदयासह ॥ २२ ॥ तौहत्वातांचदुर्वृत्तामुपावर्तितुमर्हथ ॥ इयंचभगिनीतेषांरुधिरंममपास्यति ॥२३॥ मनोरथोऽयमिष्टोऽस्याभागिन्याममराक्षसाः ॥ शीघ्रंसंपाद्यतांगत्वातौप्रमथ्यस्वतेजसा ॥२४॥ युष्माभिर्निहतौदृष्ट्वातावुभौभ्रातरौरणे ॥ इयंप्रहृष्टामुदितारुधिरंयुधिपास्यति ॥२५॥ इतिप्रतिसमादिष्टाराक्षसास्तेचतुर्दश ॥ तत्रजग्मुस्तयासार्धंघनावातेरिताइव ॥२६॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० च० सा० अर० एकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥ ततःशूर्पणखाघोराराघवाश्रममागता ॥ राक्षसानांचचक्षेतौभ्रातरौसहसीतया ॥ १ ॥

लौट आओ, क्योंकि हमारी बहन उनका रुधिर पियेगी ॥ २३ ॥ हे राक्षसों ! तुम लोग शीघ्र जाकर बलसे उन दोनों जनोंको संहार करके हमारी बहनका यह अभीष्ट मनोरथ पूरा करो ॥२४॥ तुमने युद्धमें उन दोनों भाइयोंको मार डाला है देख कर हमारी यह बहन अतिशय संतोषित और हर्षित होकर युद्धके स्थलमें उनका रुधिर पियेगी ॥२५॥ इस प्रकारकी आज्ञा पाकर यह चौदह राक्षस वायुसे चलायमान मेघकेसमान शूर्पणखाके साथ जहां श्रीरामचन्द्रजी थे, उस स्था नकीयात्रा करते हुए ॥ २६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्वा० वा०आ० अरण्य० भाषायामेकोनविंशः सर्गः ॥१९॥ उसके पीछे शूर्पणखा श्रीरामचन्द्रजीके आश्रममें आई और राक्षसोंको सीताजीके सहित उन दोनों भ्राताओंको दिखा दिया ॥ १ ॥

उन राक्षसोंने पर्ण शालामें महाबलवान् श्रीरामचन्द्रजीको श्रीसीताजीके सहित बैठा और लक्ष्मणजीसे सेवित् देखा ॥ २ ॥ श्रीमान् रघुनन्दनं रामचन्द्रजी इन राक्षसोंको आया हुआ देखकर दीप्तिसे तेजवान् भ्राता लक्ष्मणजीसे बोले ॥ ३ ॥ हे लक्ष्मण ! एक घडी भर तुम सीताजीके निकट रहो । इतनेमें हम इस राक्षसीके पक्षपाती इन सब राक्षसोंको मार डालें ॥४॥ तब विदितात्मा लक्ष्मणजी श्रीरामचन्द्रजीके वचन श्रवण करके तथास्तु कह उनकी बात शिर माथे चढाते हुए ॥ ५ ॥ व इधर धर्मात्मा श्रीरामचन्द्र भी सुवर्णभूषित महाधनुषमें रोदा चढाय इन सब राक्षसोंसे बोले ॥६॥ हम दो भ्राता हैं. नाम हमारा राम व लक्ष्मण है राजा दशरथजीके पुत्र हैं हम सीता सहित इस दुर्गम दण्डकारण्यमें आये हैं ॥७॥ हम फल मूल खानेवाले अपनीइन्द्रियोंकोजीते हुए हैं तपस्वी

तेरामंपर्णशालायामुपविष्टंमहाबलम् ॥ ददृशुः सीतयासार्धंलक्ष्मणेनापिसेवितम् ॥२॥ तांदृष्ट्वाराघवःश्रीमानागतांस्तांश्चराक्षसान् ॥ अब्रवीद्भ्रा तरंरामोलक्ष्मणंदीप्ततेजसम् ॥३॥ मुहूर्तंभवसौमित्रेसीतायाःप्रत्यनंतरः ॥ इमानस्यावधिष्यामिपदवीमागतानिह ॥ ४ ॥ वाक्यमेतत्ततः श्रुत्वारामस्यविदितात्मनः ॥ तथेतिलक्ष्मणोवाक्यंराघवस्यप्रपूजयन् ॥५॥ राघवोऽपिमहच्चापंचामीकरविभूषितम् ॥ चकारसज्यंधर्मात्मा तानिरक्षांसिचाब्रवीत् ॥६॥ पुत्रौदशरथस्यावांभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ प्रविष्टौसीतयासार्धंदुश्चरंदंडकावनम् ॥७॥ फलमूलाशनौदांतौतापसौ ब्रह्मचारिणौ ॥ वसंतौदंडकारण्येकिमर्थमुपहिंसथ ॥ ८ ॥ युष्मान्पापात्मकान्हंतुंविप्रकारान्महाहवे ॥ ऋषीणांतुनियोगेनसंप्राप्तःसशरासनः ॥ ९ ॥ तिष्ठतैवात्रसंतुष्टानोपावर्तितुमर्हथ ॥ यदिप्राणैरिहार्थोवोनिवर्तध्वंनिशाचराः ॥ १० ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाराक्षसास्तेचतुर्दश ॥ ऊचु र्वाचंसुसंक्रुद्धाब्रह्मघ्नाःशूलपाणयः ॥ ११ ॥ संरक्तनयनाघोरारामंसंरक्तलोचनम् ॥ परुषामधुराभाषंहृष्टादृष्टपराक्रमम् ॥ १२ ॥

और धर्मचारी होकर दण्डकारण्यमें वास करते हैं, सो तुम किस कारण हमारे ऊपर चढाई करते हो ? ॥ ८ ॥ यदि कहो कि, तुम तपस्वी होकरधनुष क्यों धारण किये हो तो इसका उत्तर यह है कि, तुम लोग पापात्मा हो सो महावनमें ऋषि लोगोंकी आज्ञासे हम तुमको विनाश करनेके लिये धनुष धारण कर यहां आये हैं ॥ ९ ॥ सन्तुष्ट होकर इसी स्थानमें खडे रहो, आगे न बढ़ो, हे निशाचरगण ! यदि प्राणोंका मोह होवे और तुम इसका प्रयोजन समझते हो तो यहां से लौट जाओ हम किसीको नहीं मारेंगे ॥१०॥ ब्रह्मघाती, शूलधारी भयंकर यह चौदह राक्षस श्रीरामचन्द्रजीके यह वचन श्रवण करके महाक्रोधित हो बोले ॥११॥ सबही लाल२नेत्र कर रामचन्द्रजीके प्रति कठोर वचन कहते थे वह सब श्रीरामचन्द्रजीके पराक्रमको नहीं जानते थे इससे हर्षयुक्त हो मधुर

वचन बोलनेवाले श्रीरामचन्द्रजीसे बोले ॥१२॥ तुमने हमारे प्रभु महात्मा खरको क्रोध उपजाया है, इस कारण अभी युद्धमें हमारे हाथसे मारे जाकर तुमको शीघ्रही प्राण छोडने पडेंगे ॥१३॥ तुम इकले हो और हम बहुत हैं, इसलिये लडाईमें युद्ध करना तो दूर है हमारे समाने भी तुम खडे नहीं हो सकोगे ॥१४॥ हमारी इन बाहोंसे परिघ, शूल और पटासे घायल होकर तुमको प्राणवीर्य और हाथमें धारण किया हुआ धनुष त्याग करना पडेगा ॥१५॥ यह चौदह राक्षस इस भांतिसे कह कर महा क्रोधित हो आयुध और खड्ग उठाकर श्रीरामचन्द्रजीके सम्मुख दौडे ॥१६॥ और यह सब दुर्जय अस्त्र शस्त्र शूलादि श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर चलाने लगे। उन चौदह राक्षसोंके चलाये हुए शूल आदि श्रीरामचन्द्रजीने ॥ १७ ॥ चौदह ही स्वर्णभूषित बाणोंसे काटकर फेंक दिये। ततपश्चात् महातेजवान्

क्रोधमुत्पाद्यनोभर्तुःखरस्यसुमहात्मनः॥त्वमेवहास्यसेप्राणान्सद्योऽस्माभिर्हतोयुधि॥१३॥काहितेशक्तिरेकस्यबहूनांरणमूर्धनि॥अस्माकमग्र तःस्थातुंकिंपुनर्योद्धुमाहवे ॥ १४ ॥ एभिर्बाहुप्रयुक्तैश्चपरिघैःशूलपट्टिशैः ॥ प्राणांस्त्यक्ष्यसिवीर्यंचधनुश्चकरपीडितम् ॥१५॥ इत्येवमुक्त्वा संरब्धाराक्षसास्तेचतुर्दश ॥ उद्यतायुधनिस्त्रिंशाराममेवाभिदुद्रुवुः ॥१६॥ चिक्षिपुस्तानिशूलानिराघवंप्रतिदुर्जयम् ॥ तानिशूलानिकाकुत्स्थः समस्तानिचतुर्दश॥ १७ ॥तावद्भिरेवचिच्छेदशरैःकांचनभूषितैः ॥ ततःपश्चान्महातेजानाराचान्सूर्यसन्निभान् ॥१८॥ जग्राहपरमक्रुद्धश्चतुर्द शशिलाशितान्॥गृहीत्वाधनुरायम्यलक्ष्यानुद्दिश्यराक्षसान्॥१९॥ मुमोचराघवोबाणान्वज्रानिवशतक्रतुः॥तेभित्त्वारक्षसांवेगाद्वक्षांसिरुधिर प्लुताः॥२०॥ विनिष्पेतुस्तदाभूमौवल्मीकादिवपन्नगाः॥तैर्भग्नहृदयाभूमौभिन्नमूलाइवद्रुमाः॥२१॥निपेतुःशोणितस्नाताविकृताविगतासवः॥ तान्भूमौपतितान्दृष्ट्वाराक्षसीक्रोधमूर्च्छिता ॥ २२ ॥ उपगम्यखरंसातुकिंचित्संशुष्कशोणिता॥ पपातपुनरेवार्तासनिर्यासेववल्लरी॥ २३ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने सूर्यके समान प्रभावाले बाण ग्रहण कर ॥१८॥ उनको धनुष पर चढाय महाक्रोधवान् हो चौदह राक्षसोंको ताक कर शिलापर पैनाये बाण ॥१९॥ छोडे, जिस प्रकार इन्द्र वज्र छोडते हैं। यह सब नाराच अति वेगसे राक्षसोंकी छातियोंमें प्रवेश कर रुधिरमें सने ॥२०॥ पृथ्वीमें गिरे जिस प्रकार बँमईमेंसे सांप निकला करते हैं, राक्षस भी इन सब बाणोंसे छिन्न भिन्न हृदय हो पृथ्वीमें गिरे, जैसे जड कटे हुए वृक्ष भूमिमें गिर पडते हैं ॥२१॥ वह राक्षस कलेजेमें बाण लगनेके कारण रुधिरमें सराबोर हो रहे थे, प्राण जाते रहे थे उनकी सूरतें बिगड गई थीं ऐसा उन राक्षसोंको गिरा हुआ देख कर राक्षसी शूर्प णखा क्रोधसे अधीरा होकर ॥२२॥ अपने भाई खरके पास जा फिर कातर हो गिर पडी उस समय उसके शरीरका रक्त कुछेक सूख गया था इस कारण वह

गोंदलगी लताके समान दृष्टि आती थी॥२३॥ राक्षसी अपने भ्राता खरके निकटशोकसे पीडित हो घोर चिल्लाने लगी और उदासीन मुखव विकट शब्दसे रोने लगी ॥२४॥ खरकी बहन शूर्पणखा राक्षसी युद्धमें राक्षसोंको मारा हुआ देखवेगसे दौड आकर खरसे बोली कि, राक्षस सब मारे गये ॥२५॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अरण्यकाण्डे भाषायां विंशतितमः सर्गः ॥ २० ॥ अनर्थके निमित आई हुई शूर्पणखाको फिर पृथ्वीमें पडी हुई देखकर क्रोधमें भर खर फिर जोरसे कहने लगा॥१॥ कि, हमने तुम्हारा प्रिय कार्य करनेके लिये मांसखानेवाले चौदह राक्षसोंको आज्ञा दी है सो अब फिर तुम किस कारणसे रोरही हो? ॥२॥ वह राक्षस जो कि, हमने भेजे हैं सब हमारे अनुरागी भक्त और सदा ही हित करनेवाले हैं वह किसीके मारेसे मरनेवाले नहीं हैं और सब ही अंतः

भ्रातुःसमीपशोकार्तासससर्जनिनदंमहत् ॥ सस्वरंमुमुचेबाष्पंविवर्णवदनातदा ॥२४॥ निपातितान्प्रेक्ष्यरणेतुराक्षसान्प्रधाविताशूर्पणखापुनस्ततः ॥ वधंचतेषांनिखिलेनरक्षसांशशंससर्वंभगिनीखरस्यसा ॥ २५ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा०आ०च०सा०अर० विंशतितमः सर्गः॥२०॥ सपुनःपतितांदृष्ट्वाक्रोधाच्छूर्पणखांपुनः ॥ उवाचव्यक्तयावाचातामनर्थार्थमागताम्॥ १ ॥ मयात्विदानींशूरास्तेराक्षसाःपिशिताशनाः ॥ त्वत्प्रियार्थंविनिर्दिष्टाःकिमर्थंरुद्यतेपुनः ॥ २ ॥भक्ताश्चैवानुरक्ताश्चहिताश्चममनित्यशः ॥ हन्यमानानहन्यंतेनकुर्युर्वचोमम ॥ ३ ॥ किमेतच्छ्रोतुमिच्छामिकारणंयत्कृतेपुनः ॥ हानाथेतिविनर्दंतीसर्पवच्चेष्टसेक्षितौ ॥४॥ अनाथवद्विलपसिकिंतुनाथेमयिस्थिते ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठमामैवंवैक्लव्यंत्यज्यतामिति॥ ५ ॥ इत्येवमुक्तादुर्धर्षाखरेणपरिसांत्विता ॥ विमृज्यनयनेसास्रेखरंभ्रातरमब्रवीत् ॥ ६ ॥ अस्मीदानीमहंप्राप्ताहृतश्रवणनासिका॥शोणितौघपरिक्लिन्नात्वयाचपरिसांत्विता ॥७॥ प्रेषिताश्चत्वयाशूराराक्षसास्तेचतुर्दश ॥ निहंतुंराघवंघोरंमत्प्रियार्थंसलक्ष्मणम् ॥८॥

करणसे हमारी आज्ञा का पालन करते रहते हैं॥ ३ ॥ फिर तुम किस कारण हा नाथ! २ कह बार बार चिल्लाकर सर्पके समान लोट रही हो, सो इसका क्या कारण है ? उसको मैं जानना चाहता हूं ॥ ४ ॥ हमसा रक्षक होने पर भी तुम कि कारण अनाथ के समान विलाप करती हो ? उठो और शोकका त्याग करो ॥ ५ ॥ खरने जब इस प्रकार कह कर विशेष भांतिसे शूर्पणखाको समझाया बुझाया तब दुर्द्धर्ष शूर्पणखा आंसू भरे नेत्रोंको पोंछ बोली ॥ ६ ॥ कि हमारे नाक कान दोनोंही गये हैं और मैं खूनसे भीज गई हूं इस अवस्थामें पहलेके समान फिर तुम्हारे पास आई हूं और तुमने हमको बहुत समझाया बुझाया ॥ ७ ॥ परन्तु तुमने हमारा प्रिय कार्य करनेकी कामनासे लक्ष्मण सहित भयानक रामचन्द्रको मार डालने के लिये

जो वीर चौदह राक्षस भेजेथे ॥ ८ ॥ रामचन्द्रजीने मर्मभेदी बाणोंको छोडकर शूल, पटा आदि हाथमें लिये हुए क्रोधपरायण उन सबही राक्षसोंको युद्धमें मारडाला ॥९॥ अतिशय तेजस्वी राक्षसोंको क्षण भरमें ही पृथ्वीपर पडा हुआ देख और रामचन्द्रका यह भारी कार्य देख मुझको महाभय लगता है॥ १० ॥ मैं डरी हुई हूं, उत्कंठित हूं और विषादित होकर सबही जगह भय देखती हुई तुम्हारी शरणमें आई हूं ॥११॥ तुम किस कारणसे हमारा उद्धार नहीं करते हम विषादरूप मगर और गोहोंसे भरे हुए तरंग उठते हुए गंभीर शोकसागरमें डूब रही हैं॥१२॥ जो मांस खानेवाले राक्षस हमारे साथ तुमने भेजे थे उन सबको रामचन्द्रने तीखे बाणोंसे मारडाला ॥१३॥ यदि हमारे ऊपर और उन सब राक्षसों की सन्तानोंके ऊपर तुमको दयाहो, यदि रामचन्द्रसे युद्ध करनेकी शक्ति

तेतुरामेणसामर्षाःशूलपट्टिशपाणयः ॥ समरेनिहताःसर्वेसायकैर्मर्मभेदिभिः ॥९॥ तान्भूमौपतितान्दृष्ट्वाक्षणेनैवमहाजवान्॥ रामस्यचमहत्कर्ममहांस्त्रासोऽभवन्मम॥ १० ॥ साऽस्मिभीतासमुद्विग्नाविषण्याचनिशाचर ॥शरणंत्वांपुनःप्राप्तासर्वतोभयदर्शिनी ॥११॥ विषादनक्राध्युषिते परित्रासोर्मिमालिनि ॥ किंमांनत्रायसेमग्नांविपुलेशोकसागरे ॥ १२ ॥ एतेचनिहिताभूमौरामेणनिशितैःशरैः ॥ येचमेदवींप्राप्ता राक्षसाः पिशिताशनाः ॥ १३ ॥ मयितेयद्यनुक्रोशोयदिरक्षःसुतेषुच ॥ रामेणयदिशक्तिस्तेतेजोवास्तिनिशाचर॥ १४ ॥ दंडकारण्यनिलयंजहिराक्षसकंटकम् ॥ यदिरामममित्रघ्नंनत्वमद्यवधिष्यसि ॥१५॥ तवचैवाग्रतःप्राणांस्त्यक्ष्यामिनिरपत्रपा॥ बुद्ध्याऽहमनुपश्यामिनत्वंरामस्यसंयुगे ॥ १६ ॥ स्थातुंप्रतिमुखेशक्तःसबलोऽपिमहारणे॥ शूरमानीनशूरस्त्वंमिथ्यारोपितविक्रमः ॥१७॥ अपयाहिजनस्थानात्त्वरितःसहबांधवः॥ जहित्वंसमरेमूढान्यथातुकुलपांसन ॥१८॥ मानुषौतौनशक्नोषिहंतुंवैरामलक्ष्मणौ॥ निःसत्त्वस्याल्पवीर्यस्यवासस्तेकीदृशस्त्विह ॥ १९ ॥

और तेज तुममें हो॥१४॥तब तो राक्षस कुलके कण्टक रूप दंडकारण्यवासी रामचन्द्रको आजही मार डालो यदि शत्रुओंके मारनेवाले रामचंद्रजीको तुम आज ही संहार न कर डालोगे॥१५॥तो हम लाजरहित होकर तुम्हारे सामने ही प्राण त्याग करेंगी,क्योंकि हमें अपनी बुद्धिसे जान पडता है कि,तुम संग्राममें ॥१६॥ रामचन्द्रके सामने खडे न हो सकोगे,यद्यपि तुम्हारेसाथ चतुरंगिणी सेना भी भारी है और तुम अपनेको शूर कहकर अभिमान भी करतेहो किन्तु वास्तवमें तुम शूर नहीं हो और तुम्हारा विक्रम भी मिथ्या कहनेके ही लिये है॥१७॥हेमूढ ! हे कुलाधम ! तुम इस मुहूर्त्तमें ही बन्धु बान्धव कुटुम्ब सहित इस जनस्थानसे भाग जाओ नहींतो राम और लक्ष्मणको संग्राममें संहार करो॥१८॥राम लक्ष्मण मनुष्य हैं यदि उनको मारनेको भी सामर्थ्य तुममें नहीं है तो हीनवीर्य दुर्बल होकर किसप्रकारसे

यहां रह सकोगे ॥१९॥ रामचन्द्रके तेजसे निन्दित हो थोडे हीसमयमें तुम्हारा नाश हो जायगा । दशरथ कुमाररामचन्द्र स्वभावसे ही अतिशय तेजस्वी हैं ॥२०॥ और उनके भाई लक्ष्मण भी महावीर्यवान् हैं कि, जिन्होंने हमारे नाक कान काट डाले हैं इस प्रकारसे वह बडे उदरवाली राक्षसी बहुभाँतिसे विलाप कर ॥२१॥ अपने भ्राता खरके निकट शोकके मारे व्याकुल हो अचेत होगई और दुःखसे व्याकुल हो दोनों हाथोंसे छाती पीट २ कर रोने लगी ॥ २२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा०आदि०अरण्यकाण्डे भाषायामेकविंशः सर्गः ॥ २१ ॥ शूर्पणखाने जब क्रोधमें भर कर इस प्रकार खरका तिरस्कार किया तब तेजस्वभाववाला शूरवीर खर राक्षसोंकी सभाके बीचमें उससे कठोर वचन कहने लगा ॥ १ ॥ कि, तुम्हारा अपमान होनेसे जो क्रोध हमको हुआ है उसकी तुलना नहीं है, घावमेंछोडे हुए नमकीन जलके समान इस क्रोधको धारण करनेकी हममेंशक्ति नहीं है॥ २ ॥ रामचंद्र और लक्ष्मण तो मनुष्य हैं हममें जो पराक्रम है

रामतेजोऽभिभूतोहित्वंक्षिप्रंविनशिष्यसि ॥सहितेजःसमायुक्तोरामोदशरथात्मजः॥२०॥भ्राताचास्यमहावीर्योयेनजास्मिविरूपिता ॥एवंविलप्यबहुशोराक्षसीप्रदरोदरी ॥२१॥ भ्रातुःसमीपेशोकार्तानिष्टसंज्ञाबभूवह॥कराभ्यामुदरंहत्वारुरोदभृशदुःखिता ॥२२॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा०आ०च०सा०अर० एकविंशःसर्गः॥२१॥एवमाधर्षितःशूरःशूर्पणख्याखरस्ततः ॥उवाचरक्षसांमध्येखरःखरतरंवचः॥१॥तवापमानप्रभवः क्रोधोऽयमतुलोमम॥नशक्यतेधारयितुंलवणांभइवोल्बणम्॥२नरामंगणयेवीर्यान्मानुषंक्षीणजीवितम्॥आत्मदुश्चरितैःप्राणान्हतोयोऽद्यविमोक्षते ॥३॥ बाष्पःसधार्यतामेषसंभ्रमश्चविमुच्यताम्॥अहंरामंसहभ्रात्रानयामियमसादनम्॥४॥परश्वधहतस्याद्यमंदप्राणस्यभूतले ॥ रामस्यरुधिरंरक्तमुष्णंपास्यसिराक्षसि ॥५॥ संप्रहृष्टावचःश्रुत्वाखरस्यवदनाच्युतम्॥ प्रशशंसपुनर्मौर्ख्याद्भ्रातरंरक्षसांवरम् ॥६॥ तयापरुषितःपूर्वंपुनरेवप्रशंसितः॥अब्रवीद्दूषणंनामखरःसेनापतिंतदा ॥७॥ चतुर्दशसहस्राणिममचित्तानुवर्तिनाम्॥रक्षसांभीमवेगानांसमरेष्वनिवर्तिनाम् ॥८॥

उससे हम रामको कुछ नहीं गिनते उस रामने जो कुकर्म किया है उसके पापसे वह आजही निहत होकर प्राण त्याग करेगा ॥ ३ ॥ इस कारण तुम रोना धोना छोड़ डरका त्याग करो हम अवश्यही रामके सहित लक्ष्मणको यमपुरीमें पठावेंगे ॥ ४ ॥ अयि राक्षसि ! अद्य मरणोन्मुख रामचंद्रजी जब हमारे शरसे घायल होकर मरजायंगे तब तुम उनका लाल लाल गरम २ रुधिर पान करना ॥ ५ ॥ शूर्पणखा खरके मुखसे निकले हुए यह वचन सुन मोहसे अधिक हर्षमें भर फिर उस राक्षस श्रेष्ठ खरकी बडाई करने लगी॥ ६ ॥ जब निशाचरी शूर्पणखाने प्रथम निन्दाकी और फिर प्रशंसाकी तब तत्क्षण खर; दूषणनामक अपनेसेनापतिसे बोला ॥ ७ ॥ कि, हे शुभदर्शन ! जो सब भांतिसे हमारा प्रिय अनुष्ठान करनेवाले हैं, जो कभी युद्धमें पीठ नहीं दिखाते

अति वेगवान् भयंकर चौदह हजार राक्षस॥८॥जो लोगोंकी हत्या करके सदा खेल करते जिनका पराक्रम भयानक और जिनका वर्ण नीले बादरके समान है ऐसे राक्षसोंको सब प्रकारसे सजाकर हमारे सामने लाओ ॥९॥ इसके सिवाय शीघ्र चलनेवाला रथ, धनुष, विचित्र बाण समूह, तेजधारवाली अनेक भांतिकी शक्तियें और खड्गभी लेआओ ॥१०॥ हे रण पंडित ! महानुभाव राक्षसोंके प्रथमही महात्मा पुलस्त्य वंशसे उत्पन्न हुए जो रामचन्द्र राक्षसोंको मारनेके लिये आये हैं उन दुर्विनीत रामचन्द्रके वधार्थ संग्राममें आगे जानेकी इच्छा करते हैं ॥११॥ खरने जब इस प्रकार कहा तो दूषण तुरन्तही विचित्रवर्णवाले श्रेष्ठ घोडे जिसमें जुते हुए सूर्यके समान चमकता हुआ रथ खरके समीप ले आया ॥१२॥ इस रथका आकार मेरु पर्वतके समान सब गहने इसमें तपाये हुए सुवर्णके लगे थे पहिये सुवर्णके बने

नीलजीमूतवर्णानांलोकहिंसाविहारिणाम् ॥ सर्वोद्योगमुदीर्णानांरक्षसांसौम्यकारय ॥९॥ उपस्थापयमेक्षिप्रंरथंसौम्यधनूंषिच॥ शरांश्चचित्रान्खड्गांश्चशक्तीश्चविविधाःशिताः ॥ १० ॥ अग्रेनिर्यातुमिच्छामिपौलस्त्यानांमहात्मनाम् ॥ वधार्थंदुर्विनीतस्यरामस्यरणकोविदः ॥ ११ ॥ इतितस्यब्रुवाणस्यसूर्यवर्णमहारथम्॥सदश्वैःशबलैर्युक्तमाचचक्षेऽथदूषणः ॥१२॥ तंमेरुशिखराकारंतप्तकांचनभूपणम्॥हेमचक्रमसंबाधंवैदूर्यमयकूबरम् ॥ १३ ॥ मत्स्यैःपुष्पैर्द्रुमैःशैलैश्चंद्रकांतैश्चकांचनैः ॥ मांगल्यैःपक्षिसंघैश्चताराभिश्चसमावृतम्॥१४॥ ध्वजनिस्त्रिंशसंपन्नंकिंकिणीवरभूषितम्॥सदश्वयुक्तंसोमर्षादारुरोहखरस्तदा ॥ १५ ॥ खरस्तुतन्महत्सैन्यंरथचर्मायुधध्वजम् ॥ निर्यातेत्यब्रवीत्प्रेक्ष्यदूषणःसर्वराक्षसान् ॥ १६ ॥ ततस्तद्राक्षसंसैन्यंघोरचर्मायुधध्वजम् ॥ निर्जगामजनस्थानान्महानादंमहाजवम् ॥१७॥ मुद्गरैःपट्टिशैःशूलैःसुतीक्ष्णैश्चपरश्वधैः ॥ खड्गैश्चक्रैरथस्थैश्चभ्राजमानैःसतोमरैः ॥ १८ ॥ शक्तिभिःपरिघैर्घोरैरतिमात्रैश्चकार्मुकैः ॥ गदासिमुसलैर्वज्रगृहीतैर्भीमदर्शनैः ॥ १९ ॥

थेऔर दोनों गुम्मजभी वैदूर्य मणिके बने थे ॥१३॥ जिसमें मछली, पुष्प, द्रुम, शैल, चन्द्रकांतमणि यह सुवर्णके लगे हुए थे और सुवर्णके ही पक्षी और तारागणभी इस रथमें जड रहे थे ॥१४॥ छोटी २ पेटियां इसमें लगी हुई थीं खर क्रोधमें भरा हुआ कुछभी बिलम्ब न करके ध्वजा पताका युक्त अच्छे घोडे करके चलाये जाते हुए रथपर सवार हुआ ॥१५॥ खरको सवार हुआ देखकर दूषणने रथचर्म आदि हथियार लिये; ध्वजायुक्त बडी सेनाको युद्धके लिये पयान करनेकी आज्ञा दी, उनसे जब सब राक्षसोंसे इस प्रकार कहा ॥१६॥ तब भयंकर चर्म ध्वजायुक्त वह राक्षसोंकी सेना महा वेगसे महा कोलाहल मचाती हुई जनस्थानसे चली॥१७॥ उस सेनामें राक्षस मुद्गर, पटा, तेजशूल, फरसे खड्ग, चक्र व तोमरादि शस्त्र धारण किये शोभायमान थे ॥१८॥ शक्ति,

परिघ, महाभयंकर धनुष, गदा, तलवार, मूसल, और भयंकर अस्त्र शस्त्र ग्रहण कर राक्षस जनस्थानसे निकले ॥ १९ ॥ इस प्रकार खरके मनकी बात करनेवाले बडे भयंकर स्वरूप चौदह हजार राक्षस जनस्थानसे बाहर हुए ॥ २० ॥ वह भयंकर राक्षस जब महावेगसे धावमान हुये तब इसको देखकर खरका रथ भी कुछ उनके निकट पहुँचा ॥ २१ ॥ सारथीने खरकी आज्ञा जानकर विचित्र वर्णवाले सुवर्णके गहने पहने घोडोंको शीघ्रतासे चलाया ॥२२॥ उस समय रिपुघाती खरका चलता हुआ रथ अपने शब्दसे सहसा दिशा विदिशाओंको भर देता हुआ ॥२३॥ अतिबलवान् वह बडे स्वरवाला खर क्रोधमें भर यमराजके समानशत्रु संहार करनेमें विशेष शीघ्रता युक्त हो बोला वर्षनेवाले महा मेघके समान गर्जता हुआ सारथीसे बोला कि, रथ जलदी जलदी चलाओ

राक्षसानांसुघोराणांसहस्राणिचतुर्दश॥ निर्यातानिजनस्थानात्खरचित्तानुवर्तिनाम्॥२०॥तांस्तुनिर्धावतोदृष्ट्वाराक्षसान्भीमदर्शनान्॥खरस्याथरथःकिंचिज्जगामतदनंतरम् ॥२१॥ ततस्तान्छबलानश्वांस्तप्तकांचनभूषितान्॥ खरस्यमतमाज्ञाय सारथिःपर्यचोदयत् ॥२२॥ संचोदितो रथःशीघ्रंखरस्यरिपुघातिनः॥शब्देनापूरयामासदिशःसंप्रदिशस्तथा॥२३॥प्रवृद्धमन्युस्तुखरःखरस्वरोरिपोर्वधार्थंत्वरितोयथांतकः॥ अचूचुदत्सारथिमुन्नदन्पुनर्महाबलोमेघइवाश्मवर्षवान्॥२४॥इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदि० अरण्यकांडे द्वाविंशः सर्गः ॥२२॥ तत्प्रयातंबलंघोरमशिवंशोणितोदकम्॥ अभ्यवर्षन्महाघोरस्तुमुलोगर्दभारुणः॥१॥निपेतुस्तुरगास्तस्यरथयुक्तामहाजवाः॥समेपुष्पचितेदेशेराजमार्गेयदृच्छया ॥ २ ॥श्यामंरुधिरपर्यंतंबभूवपरिवेषणम्॥अलातचक्रप्रतिमंप्रतिगृह्यदिवाकरम्॥३॥ततोध्वजमुपागम्यहेमदंडंसमुच्छ्रितम्॥ समाक्रम्य महाकायस्तस्थौगृध्रःसुदारुणः ॥ ४ ॥ जनस्थानसमीपेचसमाक्रम्यखरस्वनाः ॥ विस्वरान्विविधान्नादान्मांसादान्मृगपक्षिणः ॥ ५ ॥

॥ २५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अरण्यकांडे भाषायां द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥ जब इस प्रकारके वह भयंकर राक्षसों की सेना युद्ध करनेके लिये चली, तब गर्दभकी समान धूसरवर्ण महा डरावने मेघ आकाशमें उठ कर कडा शब्द करके रुधिर मिला हुआ जल वर्षाने लगे ॥ १ ॥ खरके रथमें जो तेज चलनेवाले घोडे जुत रहे थे, वे राजमार्गमें चलनेके समय सहसा फूल बिछी हुई बराबर हुई पृथ्वीमें भी गिर पडे ॥ २ ॥ सूर्यमण्डलके चारों ओर श्यामवर्ण का घेरा बन गया, इस घेरे का बाहरी भाग अरुण वर्ण और आकार अङ्गारचक्रके समान गोल था ॥ ३ ॥ इसके पीछे बडे आकारवाला भयंकर गिद्ध बडी ऊँची सुवर्ण की रथकी ध्वजाके निकट आकर पंख उठाकर उसके ऊपर बैठ गया ॥ ४ ॥ विकट शब्दकारी मांस खानेवाले पशु पक्षीगण जनस्थानके समीप आकर भयंकर शब्द करके चिल्लाने लगे ॥ ५ ॥

भयंकर सियार पूर्व दिशामें राक्षसोंका अमंगल दायक भयंकर घोर शब्द करने लगे ॥ ६ ॥ मतवाले हाथियों के समान भयंकर मूर्तिवाले मेघ जलके समान रुधिर की वर्षा करके वहां के सब आकाशको एक बारही छालेते हुए॥७॥रुवें खडाकरनेवाला ऐसा घोर अन्धकार छाया कि, दिशा विदिशा समस्त एकसा थही उससे ढकगई, फिर कुछ भी दृष्टि न आया ॥८॥ सन्ध्या रुधिरसे भीगे वस्त्रके समान वर्ण धारण करके अकालमेंही प्रकाशित होगई भयंकर पशुपक्षीगणोंने सम्मुखमुख करके कठोर स्वरसे चिल्लाना आरम्भ किया॥९॥ श्वेत चील सियार और गिद्धगण खरको भय उपजाते हुए ऊँचे स्वरसे शब्द करने लगे और युद्धमें जिनका बोलना महा अमङ्गलका उपजानेवाला हैं, ऐसी शृगालियां भी भय उपजाती हुई॥१०॥ सेनाके सामने मुखसे अग्नि निकालती हुई घोर शोर करने

व्याजह्रुरभिदीप्तायांदिशिवैभैरवस्वनम् ॥अशिवंयातुधानानांशिवाघोरामहास्वनाः । ६॥ प्रभिन्नगजसंकाशास्तोयशोणितधारिणः॥आकाशंत दनाकाशंचक्रुर्भीमांबुवाहकाः ॥७॥बभूवतिमिरंघोरमुद्धतंरोमहर्षणम्॥ दिशोवाप्रदिशोवापिसुव्यक्तंनचकाशिरे॥८॥ क्षतजार्द्रसवर्णाभासंध्या कालंविनाबभौ ॥ खरंचाभिमुखंनेदुस्तदाघोरामृगाःखगाः॥९॥कंकगोमायुगृध्राश्चचुक्रुशुर्भयशंसिनः॥नित्याशिवकरायुद्धेशिवाघोरनिदर्शनाः ॥१०॥ नेदुर्बलस्याभिमुखंज्वालोद्गारिभिराननैः॥ कबंधःपरिघाभासोदृश्यतेभास्करांतिके ॥११॥ जग्राहसूर्यंस्वर्भानुरपर्वणिमहाग्रहः॥ प्रवा तिमारुतःशीघ्रंनिष्प्रभोऽभूद्दिवाकरः॥१२॥उत्पेतुश्चविनारात्रिंताराःखद्योतसप्रभाः ॥ संलीनमीनविहगानलिन्यःशुष्कपंकजाः ॥१३॥ तस्मि न्क्षणेबभूवुश्चविनापुष्पफलैर्द्रुमाः॥उद्धूतश्चविनावातंरेणुर्जलधरारुणः ॥ १४ ॥ चीचीकूचीतिवाश्यंतोबभूवुस्तत्रसारिकाः ॥ उल्काश्चापिसनि र्घोषानिपेतुर्घोरदर्शनाः ॥ १५ ॥ प्रचचालमहीचापिसशैलवनकानना ॥ खरस्यचरथस्थस्यनर्दमानस्यधीमतः ॥ १६ ॥

लगीं सूर्यके निकट परिघाकार कबंध दिखाई देने लगा॥११॥महाग्रह राहुके विना अमावास्या और पर्वकालके ही सूर्यको ग्रस लिया पवन प्रचण्ड चलने लगी सूर्यकी दीप्ति जाती रही॥१२॥और रात्रि न होनेपर भी तारागण पटबीजनेके समान चमककर उदय हुए, तालाबोंके कमल सूख गये मछली भी सागर सरोवरमें ही लीन होगई और पक्षीभी नाशको प्राप्त हो गये ॥१३॥ उस समय सब वृक्ष फलफूल करके रहित हो गये और विना पवनके चलने पर भी महा धूरि उडने लगी बादल लाल होगये ॥१४॥ उसकाल मैना पक्षी सिखाये हुये शब्दोंको त्याग करके (चीची कूची इत्यादि) अर्थ रहित शब्द करने लगी घोर भयावनी उल्कायें बडे शब्दसे कांप करके पृथ्वीपर गिरने लगीं॥१५॥और वन उपवन और पर्वत सहित पृथ्वी कांपने लगी धीमान् खर रथमें बैठकर गर्जन करनेलगा॥१६॥

खरकी बाईं भुजा बहुतही कांपनेलगी, स्वर बिगड गया, इसप्रकार इधर उधर देखते२उसके दोनों नेत्रोंमें आंसू भर आये ॥१७॥ उस खरके शिरमें वारंवार पीर होनेलगी,तथापि मोहके मारे वह संग्राममें जानेसे नहीं लौटा,इन सब रोमहर्षण महाउत्पातोंको उपस्थित हुआ देख॥१८॥खर हँसता२सब राक्षसोंसे बोला कि, यह तो घोर दिखाई देनेवाले महाउत्पात इस समय हो रहे हैं इनको देखकर मैं ॥१९॥ ऐसे कुछ नहीं समझता कि, बलवान् जिस प्रकार दुर्बलोंको नहीं गिनता वैसेही हमारे पराक्रम इन उत्पातोंको मनमें स्थान नहीं देते जो हम क्रुद्ध होवें तो तीखे बाणोंसे आकाशमंडलसे तारागणोंको भी पृथ्वीपर गिरादें॥२०॥ हम क्रोधित हों तो यमराजकी भी मृत्यु शोध लावें, इससे हम बलमें दर्पित रामचन्द्रको उसके भाई लक्ष्मण सहित ॥ २१ ॥ तीखे बाणोंके आघातसे विना

प्राकंपतभुजःसव्यःखरश्चास्यावसज्जत ॥ सास्रासंपद्यतेदृष्टिःपश्यमानस्यसर्वतः ॥१७॥ ललाटेचरुजोजातानचमोहान्न्यवर्तत ॥तान्समीक्ष्य महोत्पातानुत्थितान्रोमहर्षणान्॥१८॥ अब्रवीद्राक्षसान्सर्वान्प्रहसन्सखरस्तदा॥महोत्पातानिमान्सर्वानुत्थितान्घोरदर्शनान् ॥ १९ ॥ नचिं तयाम्यहंवीर्याद्बलवान्दुर्बलानिव॥ताराअपिशरैस्तीक्ष्णैःपातयेयंनभस्तलात् ॥ २० ॥ मृत्युंमरणधर्मेणसंक्रुद्धोयोजयाम्यहम् ॥ राघवंतंबलो त्सिक्तंभ्रातरंचापिलक्ष्मणम्॥२१॥अहत्वासायकैस्तीक्ष्णैर्नोपावर्तितुमुत्सहे॥ यन्निमित्तंतुरामस्यलक्ष्मणस्यविपर्ययः॥२२॥सकामाभगिनीमेऽ स्तुपीत्वातुरुधिरंतयोः॥नक्वचित्प्राप्तपूर्वोमेसंयुगेषुपराजयः। ।२३॥ युष्माकमेतत्प्रत्यक्षंनानृतंकथयाम्यहम् ॥ देवराजमपिक्रुद्धोमत्तरावतगामि नम्॥२४॥ वज्रहस्तंरणेहन्यांकिंपुनस्तौचमानवौ ॥ सातस्यगर्जितंश्रुत्वाराक्षसानांमहाचमूः ॥२५॥ प्रहर्षमतुलंलेभेमृत्युपाशावपाशिता ॥ समेयुश्चमहात्मानोयुद्धदर्शनकांक्षिणः ॥२६॥ ऋषयोदेवगंधर्वाःसिद्धाश्चसहचारणैः ॥समेत्यचोचुःसहितास्तेऽन्योन्यंपुण्यकर्मणः॥ २७ ॥

मारडाले हुए नहीं लौटेंगे।जिसके लिये रामचन्द्र व लक्ष्मणकी विपरीत बुद्धि हुई और उन्होंने उसके नाक कान काट डाले॥२२॥ऐसी हमारी बहन शूर्पणखा भ्राताके सहित रामका रुधिर पीकर सफल मनोरथ होवे और हमें पराजय होनेका कुछ डरही नहीं,क्योंकि आजतक हम किसी संग्राममें पहले नहीं हारे हैं॥२३॥सो तुम लोगों को ज्ञात ही है इस कारण हम मिथ्या नहीं कहते जो हम क्रुद्ध हो जायँ तो मत्त ऐरावत हाथीपर असवार इन्द्रको॥२४॥यद्यपि रणके मध्य उसके हाथमें वज्र भी हो तथापि मारडालें फिर राम लक्ष्मणके मारनेमें क्या बडी बात है!वह तो मनुष्य हैं यह कहकर खर गर्जने लगा जिसे श्रवण कर राक्षसोंकी बडी भारी सेना॥२५॥ अतुलित हर्षित हुई, यद्यपि यमके फंदमें फँसी थी इस ओर युद्धके देखनेकी वासनासे महात्मा लोग आये ॥ २६ ॥ उनमें ऋषिगण देवगण गन्धर्वगण व सिद्ध

लोग सबही आये । वह पुण्य कर्म करनेवाले वहां सबही एकत्र होकर परस्पर कहने लगे ॥ २७ ॥ कि गौ, ब्राह्मण सुखसे रहैं इसके सिवाय और भी सब लोकसम्मत प्राणियोंका मंगल होवे और श्रीरघुनन्दन श्रीरामचन्द्रजी युद्धम पुलस्त्यवंशी राक्षसोंको जीते ॥ २८ ॥ जैसे चक्रधारी विष्णुजीने समस्त असुरश्रेष्ठोंको जीता था । परमर्षिगण ऐसे;व और भी अनेक प्रकारके वचन परस्पर कहने लगे ॥ २९ ॥ विमानोंमें बैठे हुए देवता लोग कौतूहलके वश होकर मृत्यु जिनकी निकट आई है ऐसे राक्षसोंकी बडी सेनाको देखने लगे ॥ ३० ॥ इस समय खर रथपर चढा हुआ सेनाके अगले भागमें हुआ तब उसके अगल बगल श्येनगामी, पृथुश्याम, यज्ञशत्रु, विहङ्गम ॥ ३१ ॥ दुर्जय, परवीराक्ष, परुष, कलिकार्मुक, हेममाली, महामाली, सर्वास्य और रुधिराशन । यह बारह महावीर राक्षस खरको

स्वस्तिगोब्राह्मणेभ्योऽस्तुलोकानांयेचसंमताः ॥ जयतांराघवोयुद्धेपौलस्त्यान्रजनीचरान् ॥ २८ ॥ चक्रहस्तोयथाविष्णुःसर्वानसुरसत्तमान् ॥ एतच्चान्यच्चबहुशोब्रुवाणाःपरमर्षयः ॥ २९ ॥ जातकौतूहलास्तत्रविमानस्थाश्चदेवताः ॥ ददृशुर्वाहिनींतेषांराक्षसानांगतायुषाम् ॥ ३० ॥ रथेनतुखरोवेगात्सैन्यस्याग्राद्विनिःसृतः (तंदृष्ट्वाराक्षसंभूयोराक्षसाश्चविनिःसृताः ॥) श्येनगामीपृथुग्रीवोयज्ञशत्रुर्विहंगमः ॥ ३१ ॥ दुर्जयःकरवीराक्षःपुरुषःकालकार्मुकः ॥ हेममालीमहामालीसर्पास्योरुधिराशनः ॥ ३२ ॥ द्वादशैतेमहावीर्याःप्रतस्थुरभितःखरम् ॥ महाकपालःस्थूलाक्षःप्रमाथस्त्रिशिरास्तथा ॥ चत्वारएतेसेनाग्रेदूषणंपृष्ठतोऽन्वयुः ॥ ३३ ॥ साभीमवेगासमराभिकांक्षिणीसुदारुणाराक्षसवीरसेना ॥ तौराजपुत्रौसहसाभ्युपेत्यमालाग्रहाणामिवचंद्रसूर्यौ ॥ ३४ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० च०सा० अरण्यकाण्डे त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥ आश्रमंप्रतियातेतुखरेखरपराक्रमे ॥ तानेवौत्पातिकान्रामःसहभ्रात्राददर्शह ॥ १ ॥ तानुत्पातान्महाघोरान्रामोदृष्ट्वाऽत्यमर्षणः ॥ प्रजानामहितान्दृष्ट्वावाक्यंलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ २ ॥ इमान्पश्यमहाबाहोसर्वभूतापहारिणः ॥ समुत्थितान्महोत्पातान्संहर्तुंसर्वराक्षसान् ॥ ३ ॥

घेरे हुए जाते थे ॥ ३२ ॥ महाकपाल, स्थूलाक्ष, प्रमाथ और त्रिशिरा, यह चार राक्षस दूषण सेनापतिके पीछे चले जाते थे ॥ ३३ ॥ जिस प्रकार ग्रहजालचन्द्र और सूर्यको प्राप्त होता है, वैसेही भीमवेग सुदारुण महाबलवान् राक्षसगण संग्रामकी अभिलाषा किये हुये सहसा राजपुत्र रामचन्द्र और लक्ष्मणजीके निकट पहुँचे ॥ ३४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्वा० वा० आ० अरण्यकांडे भाषायां त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥ इस भाँति तीक्ष्ण पराक्रमवाला खर जब रामचन्द्रजीके आश्रमकी ओर चला तब श्रीरामचन्द्रजीने भ्राता लक्ष्मणके सहित वह उत्पात जो कि, खरके चलनेके समय हुये थे सब देखे ॥ १ ॥ श्रीरामचन्द्रजी प्रजागणोंके अमंगलकारी महाघोर इन सब उत्पातोंको देखकर अस्वस्थचित्तसे लक्ष्मणजीसे बोले ॥ २ ॥ हे महाबाहो ! सब प्राणियोंके प्राणनाश करनेवाले यह बडे भारी उत्पात राक्षसकुलका संहार

करनेके लिये होरहे हैं सो तुम देखो ॥३॥ गर्दभके समान धूसर वर्णवाले बादलोंका समूह इस आकाशमें इधर उधर दौडकर बडे शब्दसे गर्जरुधिर वर्षाता है॥४॥ हे चतुर! हमारे सब बाणोंसे धुआं निकलता है,सो यह युद्ध होनेका आनन्द मना रहे हैं,और स्वर्ण जिनकी पीठमें लगा हुआ है ऐसे धनुषभी विचलित हो रहे हैं ॥५॥ वनचर पक्षीगण जिस प्रकारसे शब्द करते हैं इससे राक्षसोंको भय और प्राणसंशय आकर उपस्थित हुआ है ॥ ६॥ अब शीघ्रही महायुद्ध होगा इसमें कुछभी सन्देह नहीं है परन्तु हे वीर! हमारा यह दहना हाथ बार २ फडककर हमारे जयकी सूचना करता है ॥७॥ हे शूर ! हमारी जय और शत्रुओंकी पराजय निकट आय पहुँची है,तुम्हारा वदनभी प्रसन्न और प्रभायुक्त देख पडता है ॥८॥ हे लक्ष्मण ! युद्ध करनेके लिये तैयार हुए जिन पुरुषोंका

अमीरुधिरधारास्तुविसृजंतेखरस्वनाः॥ व्योम्निमेघाविवर्ततेपरुषागर्दभारुणाः॥४॥ सधूमाश्चशराःसर्वेममयुद्धाभिनंदिताः॥रुक्मपृष्ठानिचापानिविचेष्टंतेविचक्षण ॥ ५ ॥ यादृशाइहकूजंतिपक्षिणोवनचारिणः ॥ अग्रतोनोभयंप्राप्तंसंशयोजीवितस्यच ॥ ६ ॥ संप्रहारस्तुसुमहान्भविष्यतिनसंशयः ॥ अयमाख्यातिमेबाहुःस्फुरमाणोमुहुर्मुहुः ॥७॥ सन्निकर्षेतुनःशूरजयंशत्रोःपराजयम् ॥ सुप्रभंचप्रसन्नंचतववक्त्रंहिलक्ष्यते ॥८॥ उद्यतानांहियुद्धार्थंयेषांभवतिलक्ष्मण ॥ निष्प्रभंवदनंतेषांभवत्यायुःपरिक्षयः ॥ ९ ॥ रक्षसांनर्दतांघोषःश्रूयतेऽयंमहाध्वनिः ॥ आहतानांचभेरीणांराक्षसैःक्रूरकर्मभिः ॥ १० ॥ अनागतविधानंतुकर्तव्यंशुभमिच्छता ॥ आपदाशंकमानेनपुरुषेणविपश्चिता ॥११॥ तस्माद्गृहीत्वावैदेहींशरपाणिर्धनुर्धरः ॥ गुहामाश्रयशैलस्यदुर्गांपादपसंकुलाम् ॥१२॥ प्रतिकूलितुमिच्छामिनहिवाक्यमिदंत्वया ॥ शापितोममपादाभ्यांगम्यतांवत्समाचिरम् ॥१३॥ त्वंहिशूरश्चबलवान्हन्याएतान्नसंशयः ॥ स्वयंनिहंतुमिच्छामिसर्वानेवनिशाचरान् ॥ १४ ॥

मुख मलीन हो जाता है,इससे उनलोगोंकी आयुका क्षय होता है ॥९॥ राक्षसोंके घोर और गंभीर गर्जनका यह शब्द भी अब सुनाई आता है व उन क्रूर कर्म करनेवाले राक्षसोंके भेरीकी ध्वनि भी अब सुनाई आती है ॥ १० ॥ इस कारण कल्याणके चाहनेवाले पंडित पुरुष विपत्तिकी शंका रहनेसे प्रथमही उस आनेवाली विपत्तिका ऐसा उपाय करते हैं कि; जिससे वह विपत्ति निकट न आवे ॥ ११ ॥ इस कारण तुम धनुष धारण करके जानकीजीको ले वृक्षों करके युक्त दुर्गम पर्वतकी कन्दरामें चले जाओ ॥ १२ ॥ तुम हमारे इन वचनोंके प्रतिकूल आचरण मत करना । वत्स ! हम तुमको अपने चरणोंकी सौगन्ध देते हैं कि, तुम शीघ्रही जानकीको लेकर गिरिगुहामें चले जाओ ॥ १३ ॥ तुम शूर और बलवान् हो, निश्चय इन राक्षसोंका वध करसकते हो इसमें सन्देह

नहीं है परन्तु हम आपही इन सर्व निशाचरोंके मार डालनेकी इच्छा करते हैं ॥१४॥ जब श्रीरामचन्द्रजीने ऐसा कहा तब लक्ष्मणजी सीताजीके सहित शर और चाप ग्रहण करके दुर्गम पर्वतकी कन्दरामें चले गये ॥१५॥ जब जानकीजीके साथ लक्ष्मणजी पर्वतकी कन्दरामें चले गये तब श्रीरामचन्द्रजी बडे हर्षित हुए और कवच व बाण रघुनन्दनजीने ग्रहण किया ॥ ६॥ अग्नि वर्णवाले कवचके धारण करनेसे श्रीरामचन्द्रजी अन्धकारमध्यमेंसे उठे हुये महाअग्निके समान जान पडने लगे ॥ १७ ॥ तत्पश्चात् वीर्यवान श्रीरामचन्द्रजी धनुषको उठाय, बाणोंको ग्रहण कर प्रत्यञ्चाकी टंकारके शब्दसे दशों दिशाओंको पूर्ण करते हुए भली भांतिसे दृढ वहां खडे होगये ॥१८॥ उस समय महात्मा देवगण, गंधर्वगण, सिद्धगण और चारणगण संग्राम देखनेकी अभिलाषासे वहां आये ॥१९॥ लोकमें जो ब्रह्मर्षि प्रसिद्ध हैं वह सब महर्षिभी वहां आये वह सब पुण्यकर्म करनेवाले एकत्र होकर परस्पर मिल कहने लगे ॥ २० ॥ गौ ब्राह्मण व और

एवमुक्तस्तुरामेण लक्ष्मणःसहसीतया ॥ शरानादायचापंचगुहांदुर्गांसमाश्रयत् ॥१५॥ तस्मिन्प्रविष्टेतुगुहांलक्ष्मणेसहसीतया ॥ हंतनिर्युक्तमित्युक्त्वारामःकवचमाविशत् ॥१६॥ सतेनाग्निनिकाशेनकवचेनविभूषितः ॥ बभूवरामस्तिमिरेमहानग्निरिवोत्थितः ॥१७॥ सचापमुद्यम्यमहच्छरानादायवीर्यवान् ॥ संबभूवास्थितस्तत्रज्यास्वनैःपूरयन्दिशः ॥१८॥ ततोदेवाःसगंधर्वाःसिद्धाश्चसहचारणैः ॥ समेयुश्चमहात्मानोयुद्धदर्शनकांक्षया ॥१९॥ ऋषयश्चमहात्मानोलोकेब्रह्मर्षिसत्तमाः ॥ समेत्यचोचुःसहितास्तेऽन्योन्यंपुण्यकर्मणः ॥२०॥ स्वस्तिगोब्राह्मणानांचलोकानांचेतिसंस्थिताः ॥ जयतांराघवोयुद्धेपौलस्त्यान्रजनीचरान् ॥२१॥ चक्रहस्तोयथायुद्धेसर्वानसुरपुंगवान् ॥ एवमुक्त्वापुनःप्रोचुरालोक्यचपरस्परम् ॥२२॥ चतुर्दशसहस्राणिरक्षसांभीमकर्मणाम् ॥ एकश्चरामोधर्मात्माकथंयुद्धंभविष्यति ॥२३॥ इतिराजर्षयःसिद्धाःसगणाश्चद्विजर्षभाः ॥ जातकौतूहलास्तस्थुर्विमानस्थाश्चदेवताः ॥२४॥ आविष्टंतेजसारामंसंग्रामशिरसिस्थितम् ॥ दृष्ट्वासर्वाणिभूतानिभयाद्विव्यथिरेतदा ॥ २५ ॥

सब लोकोंका सब प्रकारसे मंगल हो और श्रीरामचन्द्रजी युद्धमें पुलस्त्यवंशीय निशाचरोंको जीतें ॥ २१ ॥ जिस प्रकार श्रीविष्णुजीने चक्र हाथमें लेकर असुर श्रेष्ठोंको हराया था ऐसे रामचन्द्रजी जीते । इस प्रकार कहकर वह फिर परस्पर अवलोकन करते हुए कहने लगे ॥२२॥ कि, भयंकर कर्म करनेवाले राक्षस तो चौदह हजार (१४०००) हैं और धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी इकले हैं, सो इससे कह नहीं सकते कि, किस प्रकार युद्ध होगा ॥२३॥ इस प्रकारसे राजर्षिगण, सिद्धगण, विद्याधरादि समस्त देवयोनिगण प्रधान प्रधान ब्रह्मर्षिगण कौतूहलाक्रांत चित्त किये विमानों पर स्थित हुए वहां खडेथे ॥२४॥ महा तेजस्वी श्रीरामचन्द्रजीको तेजमें प्रविष्ट हुये समर स्थलमें अकेला खडा देख, प्राणिमात्रही भयके मारेदुःखीहुये कि न जाने महाराजको आज कैसा परिश्रम पडेगा और कैसे

इन १४००० हजार दुष्टोंसे लड़ेंगे?॥२५॥ महात्मा रुद्रजी जब क्रोध करते हैं और उनका रूप जैसा हो, वैसाही क्लेशरहित कर्म करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीका रूप होगया जिसके समान विकराल रूप और नहीं था॥२६॥आकाशमें देव,गन्धर्व और चारण लोग ऐसा कहही रहे हैं कि,इतनेमें महागंभीर शब्दकरती अति घोर ढाल खड्गादि हथियार लिये॥२७॥चारों ओरसे राक्षसोंकी सेना अनी बनी ठनी आपहुँची, जो वीरपनेकी वार्ता आपसमें कर रही थी॥२८॥उस सेनाके कोई२लोग धनुषकी प्रत्यञ्चा खैंच२बजाते कोई बार२जँभाई लेते कोई ऊँचे स्वरसे चिल्लाते और कोई नगाडोंकोही बजाते थे॥२९॥इस सब सेनाके राक्षसोंका ऐसा घोर शब्द हुआ कि,जिससे वह वन भरगया और उस शब्दसे बनचारी पशु पक्षी भी घबडा गये ॥३०॥ और लौटकर पीछे को न देखते हुये जिस जगह

रूपमप्रतिमंतस्यरामस्याक्लिष्टकर्मणः॥बभूवरूपंक्रुद्धस्यरुद्रस्येवमहात्मनः ॥२६॥ इतिसंभाष्यमाणेतुदेवगंधर्वचारणैः॥ ततोगंभीरनिर्ह्रादंघोरचर्मायुधध्वजम् ॥२७॥ अनीकंयातुधानानांसमंतात्प्रत्यपद्यत ॥ वीरालापान्विसृजतामन्योन्यमभिगच्छताम् ॥२८॥ चापानिविस्फारयतांजृंभतांचाप्यभीक्ष्णशः॥विप्रघुष्टस्वनानांचदुंदुभींश्चाभिनिघ्नताम् ॥२९॥ तेषांसुविपुलःशब्दः पूरयामासतद्वनम् ॥ तेनशब्देनवित्रस्ताश्वासितावनचारिणः ॥३०॥ दुद्रुवुर्यत्रनिःशब्दंपृष्ठतोनावलोकयन् ॥ तच्चानीकंमहावेगंरामंसमनुवर्तत ॥ ३१ ॥ धृतनानाप्रहरणंगंभीरंसागरोपमम् ॥ रामोऽपिचारयंश्चक्षुःसर्वतोरणपंडितः ॥ ३२ ॥ ददर्शखरसैन्यंतद्युद्धायाभिमुखोगतः ॥ वितत्यचधनुर्भीमंतूण्याश्चोद्धृत्यसायकान् ॥ ३३ ॥ क्रोधमाहारयत्तीव्रंवधार्थंसर्वरक्षसाम् ॥दुष्प्रेक्ष्यश्चाभवत्क्रुद्धोयुगांताग्निरिवज्वलन् ॥३४॥ तंदृष्ट्वातेजसाविष्टंप्राव्यथन्वनदेवताः॥ तस्यरुष्टस्यरूपंतुरामस्यददृशेतदा ॥ दक्षस्येवक्रतुंहंतुमुद्यतस्यपिनाकिनः ॥ ३५ ॥

वह शब्द श्रवणगोचर न होवे वहांको भागे।व इस ओर राक्षसी सेना धूम धामसे श्रीरामचन्द्रजीके निकट आ पहुँची॥३१॥उस सेनाके वीरगण अनेक प्रकारके हथियार धारण किये थे,वह सेना समुद्र समान उफनती चली आती थी,समर पंडित श्रीरघुनन्दन रामचन्द्रजीने नेत्र डाल चारों ओर निहारा तो॥३२॥युद्ध करनेको खरकी सेना उनके सोंही चली आती है,तब श्रीरामचन्द्रजीने धनुषको उठाय और तरकसमेंसे बाणसमूहको ग्रहणकर॥३३॥ राक्षसकुलका संहार करनेके लिये महाक्रोध किया,उस समय श्रीरामचन्द्रजीका ऐसा विकट स्वरूप होगया मानों प्रलयकालकी अग्नि है ॥३४॥ वन देवता लोग उनका वह तेज सम्पन्न स्वरूप देखकर बडेही व्यथित हुये क्योंकि उन्होंने वह भयावना रामचन्द्रजी का रूप काहेको देखा था! परन्तु दक्षका यज्ञ विनाश करनेको तैयार महादेवजी के समान

श्रीरामचन्द्रजी की वह क्रोध भरी मूर्ति उस समय उन सबने देखीथी॥३५॥जैसे नीले रंगके बादर सूर्योदयमें शोभा पाते हैं। राक्षस सेना भी अग्निसम वर्म,कवच, रथ आभरण और धनुषयुक्त होकरा उस काल वैसाही शोभा पानेलगी ॥३६॥ इत्यार्षे श्रीमद्वा० वा० आदि० अरण्यकांडे भाषायां चतुर्विंशः सर्गः ॥ २४॥
अपने साथियोंके साथ आश्रममें आकर खरने शत्रुओंके मारनेवाले श्रीरामचन्द्रजीको क्रोधमें भरे और धनुष ग्रहण किये देखा ॥ १ ॥ ऐसा देखकर उसने कठोर प्रत्यंचा युक्त धनुष उठाकर सारथीसे ऊँचे स्वरसे कहा कि रामचन्द्रके सामने रथ ले चलो॥२॥सारथीने खरकी आज्ञानुसार जहां महाबाहु श्रीरामचन्द्रजी धनुषपर टंकार देते हुए इकले खडे थे वहां पर घोडोंको चलाया॥३॥खरको रामचन्द्रके आगे जाता हुआ देखकर उसके मंत्री श्येनगम्यादि बारह राक्षस उनके

तत्कार्मुकैराभरणैरथैश्चतद्वर्मभिश्चाग्निसमानवर्णैः॥बभूवसैन्यंपिशिताशनानांसूर्योदयेनीलमिवाभ्रजालम् ॥३६॥ इत्यार्षे श्रीम० वा०आ० च० सा० अर० चतुर्विंशः सर्गः ॥ २४ ॥ अवष्टब्धधनुंरामंक्रुद्धंतंरिपुघातिनम् ॥ ददर्शाश्रममागम्यखरःसहपुरःसरैः ॥ १ ॥ तंदृष्ट्वासगुणंचापमुद्यम्यखरनिःस्वनम् ॥ रामस्याभिमुखंसूतंचोद्यतामित्यचोदयत् ॥ २ ॥ सखरस्याज्ञयासूतस्तुरगान्समचोदयत् ॥ यत्ररामोमहाबाहुरेकोधुन्वन्धनुःस्थितः ॥ ३ ॥ तंतुनिष्पतितंदृष्ट्वासर्वतोरजनीचराः ॥ मुंचमानामहानादंसचिवाःपर्यवारयन् ॥ ४ ॥ सतेषांयातुधानानांमध्येरथगतःखरः ॥ बभूवमध्येताराणांलोहितांगइवोदितः ॥ ५ ॥ ततःशरसहस्रेणराममप्रतिमौजसम् ॥ अर्दयित्वामहानादंननादसमरेखरः ॥ ६ ॥ ततस्तभीमधन्वानंक्रुद्धाःसर्वेनिशाचराः ॥ रामंनानाविधैःशस्त्रैरभ्यवर्षंतदुर्जयम् ॥ ७ ॥ मुद्गरैरायसैःशूलैःप्रासैःखड्गैःपरश्वधैः ॥ राक्षसाःसमरेशूरंनिजघ्नूरोषतत्पराः ॥ ८ ॥ तेबलाहकसंकाशामहाकायामहाबलाः ॥ अभ्यधावंतकाकुत्स्थंरथैर्वाजिभिरेवच ॥ ९ ॥ गजैःपर्वतकूटाभैरामंयुद्धेजिघांसवः ॥ तेरामेशरवर्षाणिव्यसृजन्रक्षसांगणाः ॥ १० ॥

चारों ओर हो लिये॥४॥तब रथपर चढा हुआ खर दुर्विनीत राक्षसोंके बीचमें ऐसा शोभित होता था,जैसे ताराओंके बीचमें प्रदीप्त मंगलग्रह शोभित होता है॥५॥ अनन्तर वह खर श्रीरामचन्द्रके ऊपर युद्धमें हजार बाण छोडकर महाशब्दसे चिल्लाने लगा ॥६॥ उसके पीछे सब निशाचर क्रोधित होकर भयंकर धनुषधारी, निवारण करनेके अयोग्य दुर्जय श्रीरामचन्द्रको ताककर विविध भांतिके शर वर्षाने लगे॥७॥वह राक्षस सेना युद्धमें क्रोधितहो अनेक२लोहेके सुन्दर शूल,फांसी; तलवार और फरसे आदिसे श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर प्रहार करने लगी ॥८॥ फिर वह बडे२शरीरवाले महा बलवान् मेघ समान निशाचरगण रथ, घोडे, हाथियोंपर चढ २ युद्धमें श्रीरामचन्द्रजीको मार डालनेके लिये उनके ऊपर दौडे ॥ ९ ॥ उनमें कुछ राक्षस पर्वतोंके श्रृंग समान आकारवाले हाथियोंपर चढकर

श्रीरामचन्द्रजीको युद्धमें मार डालनेके लिये आये,इस कारण वह सब रामचन्द्रजी पर बाणोंकी वर्षा करनेलगे॥१०॥ जैसे मेघमाला पर्वतोंपर वर्षा करती हैं वैसेही बाणवर्षा उन निशाचरोंने श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर की,सब राक्षसोंके मध्य जानकीजीवन कैसे शोभित होते थे॥११॥जैसे प्रदोष की यामिनियोंमें पार्षदोंके मध्य महादेवजी शोभित होते हैं। राक्षसोंके चलाये अस्त्र शस्त्र श्रीरामचन्द्रजीने॥१२॥अपने बाणोंके सहित ग्रहण किये,जैसे नदियोंकी धाराओंको महोदधि ग्रहण करता है यद्यपि श्रीरामचन्द्रजीके अंगमें अति घोर वह अस्त्र शस्त्र लगे थे पर इससे उनको कुछ व्यथा न हुई॥१३॥जैसे प्रकाशमान बहुतसे वज्रोंसे हिमालय पर्वतको पीडा नहीं होती। सर्व शरीरमें बाणोंके लगनेसे रुधिर बहनसे श्रीरामचन्द्रजी ऐसे शोभित हुये॥१४॥जैसे सन्ध्याकालीन बादरोंके बीचमें होनेसे सूर्य भगवान् शोभित होते हैं। रघुनन्दनजीकी यह अवस्था देख देव, गन्धर्व और सिद्ध व परमर्षिगण बडे विषादित हुये॥१५॥ कारण कि,अकेले रामचन्द्रजीको सहस्रों निशाचर

शैलेंद्रमिवधाराभिर्वर्षमाणामहाघनाः ॥ सर्वैःपरिवृतोरामोराक्षसैःक्रूरदर्शनैः ॥११॥ तिथिष्विवमहादेवोवृतःपारिषदांगणैः ॥ तानिमुक्तानि शस्त्राणियातुधानैःसराघवः ॥ १२ ॥ प्रतिजग्राहविशिखैर्नद्योघानिवसागरः ॥ सतैःप्रहरणैर्घोरैर्भिन्नगात्रोनविव्यथे ॥ १३ ॥ रामःप्रदीप्तैर्बहुभिर्वज्रैरिवमहाचलः ॥ सविद्धःक्षतजादिग्धःसर्वगात्रेषुराघवः ॥१४॥बभूवरामःसंध्याभ्रैर्दिवाकरइवावृतः ॥ विषेदुर्देवगंधर्वाःसिद्धाश्चपरमर्षयः ॥१५॥ एकंसहस्रैर्बहुभिस्तदादृष्ट्वासमावृतम् ॥ ततोरामस्तुसंक्रुद्धोमंडलीकृतकार्मुकः ॥ १६ ॥ ससर्जनिशितान्बाणाञ्छतसऽथशोहस्रशः ॥ दुरावारान्दुर्विषहान्कालपाशोपमान्रणे ॥ १७ ॥ मुमोचलीलयाकंकपत्रान्कांचनभूषणान् ॥ तेशराःशत्रुसैन्येषुमुक्तारामेणलीलया ॥१८॥ आददूरक्षसांप्राणान्पाशाःकालकृताइव॥भित्त्वाराक्षसदेहांस्तांस्तेशरारुधिराप्लुताः ॥१९॥ अंतरिक्षगतारेजुर्दीप्ताग्निसमतेजसः ॥ असंख्येयास्तुरामस्यसायकाश्चापमंडलात् ॥ २० ॥ विनिष्पेतुरतीवोग्रारक्षःप्राणापहारिणः ॥ तैर्धनूंषिध्वजाग्राणिचर्माणिकवचानिच ॥ २१ ॥

घेरे हुये थे। ऋषि आदिकोंकी यह अवस्था देख श्रीरामचन्द्रजीने महा क्रोधयुक्त हो धनुषको जोरसे खैंच॥१६॥ शत२सहस्र२अति तीखे बाण छोडे वे सब बाण किसीके रोकनेसे नहीं रुकते,वरन् अनिवार्य थे सहन करनेके योग्य नहीं थे और देखनेमें यमराजकी फांसीके समान थे॥१७॥श्रीरामचन्द्रजीने लीलापूर्वक सुवर्णसे चित्र विचित्र कंकपत्र युक्त बाण शत्रुकी सेनामें चलाये। वह सब बाण शत्रुकी सेनामें पहुँच२॥१८॥ चलाई हुई यमकी फाँसियोंके समान राक्षसोंका देह भेद व प्राण ग्रहण करके रुधिरके लगनेसे लाल रंगके हो॥१९॥आकाशमें जाकर जलती हुई अग्निके समान शोभा पाने लगे, उस समय श्रीरामचन्द्रजीके चापमंडलसे बाण छूटे॥२०॥ श्रीरामचन्द्रजी उन सब बाणोंसे राक्षसोंके शत २ शरासन और सहस्र २ शरासन, ध्वजाके, अग्रभाग,ढाल, कवच ॥ २१ ॥

हाथके गहनों करके युक्त बाहु हाथियोंकी शुण्डके समान जंघायें सैकडो हजारों काट डालीं॥२२॥इनके अतिरिक्त सुवर्णके कवच धारण किये घोडे रथ और सारथी महावत व सवार सहित हाथी घुडसवार सहित घोडे॥२३॥इन सबको प्रत्यंचासे छूटे हुए श्रीरामचन्द्रके बाणोंने छिन्न भिन्न किया और पैदलोंको भी संहार करके यमराज के भवनमें पहुँचाया ॥२४॥ राक्षसगण,अग्रभाग जिनका महातीक्ष्ण है ऐसे नालीक नाराच और विकर्ण समूहसे कटकुट कर भयंकर शब्द कर आरत पुकारने लगे॥२५॥शुष्क वनश्रेणी जिस प्रकार अग्निको पाकर भली प्रकार घूम२कर जलती है,वैसेही राक्षस सेना भी श्रीरामचन्द्रजीके मर्मभेदी बाणोंसे पीडित होकर सुख प्राप्त करनेको समर्थ नहीं हो सकी ॥ २६ ॥ उस सेनाके कोई २ महा बलवान् शूरवीर राक्षस महा क्रोधित होकर श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर

बाहून्सहस्ताभरणानूरून्करिकरोपमान् ॥ चिच्छेदरामःसमरेशतशोऽथसहस्रशः ॥२२॥ हयान्कांचनसन्नाहान्रथयुक्तान्ससारथीन् ॥ गजांश्चसगजारोहान्सहयान्सादिनस्तदा ॥२३॥ चिच्छिदुर्बिभिदुश्चैवरामबाणागुणच्युताः ॥ पदातीन्समरेहत्वाअनयद्यमसादनम् ॥२४॥ ततो नालीकनाराचैस्तीक्ष्णाग्रैश्चविकर्णिभिः ॥ भीममार्तस्वरंचक्रुश्छिद्यमानानिशाचराः ॥२५॥ तत्सैन्यंविविधैर्बाणैरर्दितंमर्मभेदिभिः॥नरामेणसुखंलेभेशुष्कंवनमिवाग्निना ॥ २६ ॥ केचिद्भीमबलाःशूराःप्रासाञ्शूनान्परश्वधान् ॥ चिक्षिपुःपरमक्रुद्धारामायरजनीचराः ॥ २७ ॥ तेषां बाणैर्महाबाहुःशस्त्राण्यावार्यवीर्यवान्॥ जहारसमरेप्राणांश्चिच्छेदचशिरोधरान् ॥ २८ ॥ तेछिन्नशिरसःपेतुश्छिन्न चर्मशरासनाः ॥ सुपर्णवातविक्षिप्ताजगत्यांपादपायथा ॥ २९ ॥ अवशिष्टाश्चयेतत्रविषण्णास्तेनिशाचराः ॥ खरमेवाभ्यधावंतशरणार्थंशराहताः ॥ ३० ॥ तान्सर्वान्धनुरादायसमाश्वास्यचदूषणः ॥ अभ्यधावत्सुसंक्रुद्धः क्रुद्धंक्रुद्धइवांतकः ॥३१॥ निवृत्तास्तुपुन सर्वेदूषणाश्रयनिर्भयाः ॥ राममेवाभ्यधावंतसालतालशिलायुधाः ॥ ३२ ॥

प्रास,फरसे और शूल इत्यादि चलाने लगे ॥२७॥ महाबाहु वीर्यवान् श्रीरामचन्द्रजी अपने बाणोंसे राक्षसोंके चलाये हुए अस्त्र शस्त्रोंको रोक उनके प्राण हरण करके उनके मस्तक भी उडा देते हुए॥२८॥गरुडजीके उडनेके समय जो उनके पंखोंसे पवन निकलती है जिस प्रकारसे उसे वृक्षसमूह पृथ्वी पर गिरनेके हैं वैसेही राक्षसगण छिन्न मस्तक हो पृथ्वीपर गिरने लगे उनका धनुष और ढाल तलवार भी टूट टाट गई॥२९॥बचे बचाये राक्षस श्रीरामचन्द्रजीके बाणोंसे घायल होनेके कारण व्याकुल हो मलीनभावसे खरकी शरणमें गये ॥ ३० ॥ यह देखकर दूषण महाक्रोधित होकर धनुष संभाल भागे हुए राक्षसों को धीर बंधाता हुआ क्रोधित कालके समान रोषपरायण श्रीरामचन्द्रजी के सम्मुख दौडा ॥ ३१ ॥तब रणसे भागे हुए निशाचर गण दूषणका आसरा पाय लौट कर शाल,ताल,

शिला,पाश,मुद्गर और शूल इन सब आयुधोंको धारण कर श्रीरामचन्द्रजीके सामने धाये ॥ ३२॥ उन राक्षसोंने संग्राममें आतेही शूल, मुद्गर, पाशादि अस्त्र शस्त्रोंकी वर्षा श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर की ॥ ३३॥ फिर वृक्षोंकी वर्षा और शिलाकी वृष्टि प्रारंभ होनेपर उस समय भयानक और घोर लोमहर्षण संग्राम होने लगा ॥३४॥ उधरसे राक्षसगण श्रीरामचन्द्रजीपर अस्त्र शस्त्र चला रहे थे इधरसे श्रीरामचन्द्रजी राक्षसोंपर बाणवर्षा करते थे, यह देखकर राक्षसोंने फिर अस्त्र शस्त्रोंसे श्रीरामचन्द्रजीको पीडित किया ॥ ३५ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने देखा कि, सर्व दिशा विदिशा राक्षसोंसे भर गई हैं और हमभी उनके बाणोंसे ढक गये हैं ॥ ३६ ॥ यह देख श्रीरामचन्द्रजीने बडा शब्दकर भयंकर राक्षसगणोंके ऊपर परम देदीप्यमान गान्धर्वास्त्र चलाया ॥ ३७ ॥ इस गान्धर्वास्त्रके चलानेके पीछे

शूलमुद्गरहस्ताश्चपाशहस्तामहाबलाः ॥ सृजंतःशरवर्षाणिशस्त्रवर्षाणिसंयुगे ॥३३॥ द्रुमवर्षाणिमुंचंतःशिलावर्षाणिराक्षसाः ॥ तद्बभूवाद्भुतयुद्धंतुमुलंरोमहर्षणम् ॥३४॥ रामस्यास्यमहाघोरंपुनस्तेषांचरक्षसाम् ॥ तेसमंतादभिक्रुद्धाराघवंपुनरार्दयन् ॥३५॥ ततःसर्वादिशोदृष्ट्वाप्रदिशश्चसमावृताः ॥ राक्षसैःसर्वतःप्राप्तैःशरवर्षाभिरावृतः ॥३६॥ सकृत्वाभैरवंनादमस्त्रंपरमभास्वरम् ॥ समयोजयद्गांधर्वंराक्षसेषुमहाबलः ॥३७॥ ततःशरसहस्राणिनिर्ययुश्चापमंडलात् ॥ सर्वादशदिशोबाणैरापूर्यंतसमागतैः ॥३८॥ नाददानंशरान्घोरान्विमुंचंतंशरोत्तमान् ॥ विकर्षमाणंपश्यंतिराक्षसास्तेशरार्दिताः ॥३९॥ शरांधकारमाकाशमावृणोत्सदिवाकरम् ॥ बभूवावस्थितोरामःप्रक्षिपन्निवताञ्छरान् ॥४०॥ युगपत्पतमानैश्चयुगपच्चहतैर्भृशम् ॥ युगपत्पतितैश्चैवविकीर्णावसुधाऽभवत् ॥४१॥ निहताःपतिताःक्षीणाश्छिन्नाभिन्नाविदारिताः ॥ तत्रतत्रस्मदृश्यंतेराक्षसास्तेसहस्रशः ॥ ४२ ॥ सोष्णीषैरुत्तमांगैश्चसांगदैर्बाहुभिस्तथा ॥ ऊरुभिर्बाहुभिश्छन्नैर्नानारूपैर्विभूषणैः ॥ ४३ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके धनुषसे हजार २ बाण निकलने लगे; उन निकलते हुए बाणोंसे समस्त दिशायें भरगई ॥३८॥ राक्षसगण इस समय यह नहीं देख सके कि, श्रीरामचन्द्रजी श्रेष्ठ और भयंकर शर कब ग्रहण करते, कब छोडते और कब धनुषको आकर्षण करते हैं परन्तु केवल उनके बाणोंसे महा व्यथित होनेलगे ॥३९॥श्रीरामचन्द्रजीके बाणोंसे अन्धकार उत्पन्न होकर दिवाकर सहित आकाशमंडलको ढकलेता हुआ परन्तु श्रीरामचन्द्रजी बराबर शरधारा छोडते चले जाते थे ॥४०॥ उस बाणधारासे अनेक २ राक्षस महा घायल हुए कोई २ गिरे हुए कोई २ गिरते हुए दिखाई देते थे ऐसे राक्षसोंसे पृथ्वी पूर्ण होगई ॥ ४१ ॥ रणभूमिमें सर्वत्रही सहस्र २ राक्षस पतित; छिन्नभिन्न, विदारित और कंठगतप्राण दृष्टि आने लगे ॥४२॥ श्रीरामचन्द्रजीके बाणोंसे छिन्नभिन्न, पगडी सहित

मस्तक, बाजूयुक्त बाँह व अनेक २ भांतिके गहने ॥४३॥ अश्व, हस्ती, रथ, चमर, व्यजन छत्र व नाना प्रकारकी ध्वजाओंसे ॥४४॥ वह शूल पटादि शस्त्रोंसे जोकि रामचन्द्रजीके बाणोंसे कट २ टूट गये थे, यह पृथ्वी अति भयंकर होगई ॥४५॥ इस प्रकार बहुतसे राक्षसोंको मारे हुए व पृथ्वीमें पडे देख बचे बचाये राक्षसगण अतिशय कातर होकर शत्रुओंके जीतनेवाले श्रीरामचन्द्रजीके सन्मुख जानेको समर्थ नहीं हुए॥४६॥ इत्यार्षे श्रीमद्वा० वाल्मी० आदि० अर० भा० टी० पंचविंशःसर्गः॥२५॥ महाबाहु दूषणने अपनी सेनाको श्रीरामचन्द्रजीसे डरीहुई देख भयंकर वेषवाले आक्रमण करनेके अयोग्य॥१॥ पांच हजार राक्षसोंको जो कि समरसे लौटनाही नहीं चाहते थे और महावेगवान थे उनको युद्ध करनेके लिये आज्ञा दी॥२॥ वह सब राक्षस समरमें जाय शूल, पटा, खड्ग और वृक्षादिक व बाणोंकी

हयैश्चद्विपमुख्यैश्चरथैर्भिन्नैरनेकशः॥ चामरव्यजनैश्छत्रैर्ध्वजैर्नानाविधैरपि॥४४॥ रामेणबाणाभिहतैर्विच्छिन्नैःशूलपट्टिशैः खड्गैःविच्छिन्नैःसमरे भूमिर्विस्तीर्णाऽभूद्भयंकरा ॥४५॥ तान्दृष्ट्वानिहतान्सर्वैराक्षसाःपरमातुराः ॥ नतत्रचलितुंशक्तारामंपरपुरंजयम् ॥ ४६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्वा० वा० आ० च० सा० अर० पं० चविंशः सर्गः ॥२५॥ दूषणस्तुस्वकंसैन्यंहन्यमानंविलोक्यच ॥ संदिदेशमहाबाहुर्भीमवेगान्दुरासदान् ॥१॥ राक्षसान्पंचसाहस्रान्समरेष्वनिवर्तिनः ॥ तेशूलैःपट्टिशैःखड्गैःशिलावर्षैर्द्रुमैरपि ॥२॥ शरवर्षैरविच्छिन्नंववर्षुस्तंसमंततः ॥ तद्द्रुमाणांशिलानां चवर्षंप्राणहरंमहत् ॥ ३ ॥ प्रतिजग्राहधर्मात्माराघवस्तीक्ष्णसायकैः ॥ प्रतिगृह्यचतद्वर्षंनिमीलितइवर्षभः ॥ ४ ॥ रामःक्रोधंपरंलेभेवधार्थंसर्वरक्षसाम् ॥ ततःक्रोधसमाविष्टःप्रदीप्तइवतेजसा ॥ ५ ॥ शरैरभ्यकिरत्सैन्यंसर्वतःसहदूषणम् ॥ ततःसेनापतिःक्रुद्धोदूषणःशत्रुदूषणः ॥६॥ शरैरशनिकल्पैस्तंराघवंसमवारयत् ॥ ततोरामःसुसंक्रुद्धःक्षुरेणास्यमहद्धनुः ॥७॥ चिच्छेदसमरेवीरश्चतुर्भिश्चतुरोहयान् ॥ हत्वाचाश्वान्शरैस्तीक्ष्णैरर्धचंद्रेणसारथेः ॥८॥ शिरोजहारतद्रक्षस्त्रिभिर्विव्याधवक्षसि ॥ सच्छिन्नधन्वाविरथोहताश्वोहतसारथिः ॥ ९ ॥

वर्षा लगातार श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर करने लगे, वह वृक्ष और पर्वतोंकी वर्षा प्राणोंकी हरण करनेवाली थी॥३॥ धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजीने अपने तीखे बाणोंपरही उस वर्षाका ग्रहण किया और उसे ग्रहण करके नेत्र बंद कर लिये ॥४॥ फिर बडा कोप किया और सब राक्षसोंके संहार करनेका संकल्प किया उस समय क्रोध और तेजसे प्रकाशमान होते हुए श्रीरामचन्द्रजीने॥५॥ दूषणसहित सेनाके ऊपर बाणोंकी वर्षा की। फिर शत्रुदूषण सेनापति दूषण क्रोधित होकर॥६॥ वज्रके समान बाणोंसे श्रीरामचन्द्रजीको निवारण करने लगा तब श्रीरामचंद्रजीने महाक्रोधकर छुरेके समान तेज बाणोंसे दूषणका धनुष ॥७॥ काटकर चार बाणोंसे उसके रथमें जो घोडे नधे थे उनको मार डाला अश्वोंको तीक्ष्ण बाणोंसे वधकर अर्द्धचन्द्र बाणसे उसके सारथीका ॥ ८ ॥ शिर काटडाला और तीन

बाण राक्षस खरकी छातीमें मारे तब दूषणका धनुषभी टूटा; रथभी चूर्ण हुआ और घोडे व सारथीभी उसके मारे गये ॥९॥ तब उसने जिसके देखनेसे संनाटे हो रुएं खडे हो जायँ ऐसा पहाडके शृंग समान एक परिघ ग्रहण किया वह सुवर्णके बन्धोंसे बँधा देवताओंकी सेनाको मर्दन करनेवाला ॥ १० ॥ लोहेकी कीलोंसे जडा शत्रुओंकी चरबी जिसमें लगी हुई वज्रके समान कठोर व शत्रुपुरके द्वारका निवारण करनेवाला ॥११॥ ऐसे महासर्पके समान उस परिघको ले संग्राममें क्रूरकर्मकारी दूषण राक्षस श्रीरामचन्द्रकी ओर धाया ॥१२॥ श्रीरामचन्द्रजीने उस दौडे आते हुए दूषणके भूषणसहित दोनों कर काट डाले ॥१३॥ हाथोंके कट जानेपर उसका वह वृहदाकार परिघ स्थान भ्रष्ट होकर इन्द्रध्वजाके समान समरमें गिरा ॥ १४ ॥ हाथ कटजानेसे दूषणभी इस भांति पृथ्वीमें

जग्राहगिरिशृंगाभंपरिघंलोमहर्षणम् ॥ वेष्टितंकांचनैःपट्टैर्देवसैन्याभिमर्दनम् ॥१०॥ आयसैःशंकुभिस्तीक्ष्णैःकीर्णंपरवसोक्षितम् ॥ वज्राशनिसमस्पर्शंपरगोपुरदारणम् ॥११॥ तंमहोरगसंकाशंप्रगृह्यपरघंरणे ॥ दूषणोऽभ्यपतद्रामंक्रूरकर्मानिशाचरः ॥१२॥ तस्याभिपतमानस्यदूषणस्यचराघवः ॥द्वाभ्यांशराभ्यांचिच्छेदसहस्ताभरणौभुजौ ॥१३॥ भ्रष्टस्तस्यमहाकायःपपातरणमूर्धनि॥परिघश्छिन्नहस्तस्यशक्रध्वजइवाग्रतः ॥ १४ ॥ कराभ्यांचविकीर्णाभ्यांपपातसुविदूषणः ॥ विषाणाभ्यांविशीर्णाभ्यांमनस्वीवमहागजः ॥ १५ ॥ दृष्ट्वातंपतितंभूयोदूषणंनिहतंरणे ॥ साधुसाध्वितिकाकुत्स्थंसर्वभूतान्यपूजयन् ॥१६॥एतस्मिन्नंतरेक्रुद्धास्त्रयःसेनाग्रयायिनः॥संहत्याभ्यद्रवन्रामंमृत्युपाशावपाशिताः ॥ १७ ॥ महाकपालःस्थूलाक्षःप्रमाथीचमहाबलः ॥ महाकपालोविपुलंशूलमुद्यम्यराक्षसः ॥१८॥ स्थूलाक्षःपट्टिशंगृह्यप्रमाथीचपरश्वधम् ॥ दृष्ट्वैवापततस्तांस्तुराघवःसायकैःशितैः ॥१९॥तीक्ष्णाग्रैःप्रतिजग्राहसंप्राप्तानतिथीनिवा ॥ महाकपालस्यशिरश्चिच्छेदरघुनंदनः ॥ २० ॥

गिरा जैसे दांत टूट जानेपर महामनस्वी गजराज पृथ्वीमें गिरता है ॥१५॥ दूषणको संग्राममें मरा हुआ और पृथ्वीमें पडा हुआ देखकर सबही प्राणी साधु २ कहकर श्रीरामचन्द्रजीकी प्रशंसा करने लगे ॥१६॥ इसीसमय उस खरके तीन सेनापति जो निशाचर सेनाके आगेही चले थे परस्पर मिलकर मृत्युकी फाँसीसे बँधकर क्रोधमें भरकर श्रीरामचन्द्रजीके सम्मुख धाये ॥१७॥ इन तीनोंके नाम महाकपाल, स्थूलाक्ष और महा बलवान् प्रमाथी थे, इनमें महा कपाल विशाल शूल उठाय ॥ १८ ॥ स्थूलाक्ष पटा लेकर, व प्रमाथी फरसा ग्रहण करके श्रीरामचन्द्रजीकी ओर चले, इन तीनोंको अपने ऊपर आया हुआ देख श्रीरामचन्द्रजीने तीक्ष्ण बाणोंसे ॥१९॥ इनकी अगवानी की जैसे मनुष्य आये हुए पाहुनोंकी अगवानी व उचित पूजा करते हैं और महा कपालका तो रघुनन्दनजीने

शिर ही उडा दिया ॥२०॥ व अगणित बाणोंसे प्रमाथी का माथा और स्थूलाक्षकी मोटी आंखोंको पूरण कर दिया ॥२१॥ यह तीनों कटे हुए वृक्षोंकी नाईं पृथ्वीमें गिर पडे। इसके पीछे पांच हजार जो दूषणके अनुयायी राक्षस थे उन सबको अति क्रोधकर एक क्षणभरमें ॥ २२ ॥ संहार कर उन सबको श्रीदशरथ कुमारने यमपुरको पठा दिया; तब दूषण व उनके अनुगामी सैन्यको मारा गया हुआ सुन ॥२३॥ खरने क्रोधित होकर महा बलवान् और दूसरे सेनापतियोंको इस प्रकारसे आज्ञा दी कि, सेनापति लोगो! दूषण तो अपने अनुगामियों समेत मारा गया ॥ २४ ॥ बस अब तुम सब राक्षसगण एकत्र हो बडी भारी सेनाको साथ लेकर विविध आकार के अस्त्र शस्त्र छोडकर मनुष्याधम रामचन्द्रको मार डालो॥२५॥खर सेनापतियोंसे इस प्रकार कहकर क्रोधमें भर

असंख्येयैस्तुबाणौघैःप्रममाथप्रमाथिनम्॥ स्थूलाक्षस्याक्षिणीस्थूलेपूरयामाससायकैः ॥ २१ ॥ सपपातहतोभूमौविटपीवमहाद्रुमः॥ दूषणस्यानुगान्पंचसाहस्रान्कुपिताःक्षणात् ॥ २२ ॥ हत्वातुपंचसाहस्रैरनयद्यमसादनम् ॥ दूषणंनिहतंश्रुत्वातस्यचैवपदानुगान् ॥२३॥ व्यादिदेशखरःक्रुद्धःसेनाध्यक्षान्महाबलान् ॥ अयंविनिहतःसंख्येदूषणःसपदानुगः ॥ २४ ॥ महत्यासेनयासार्धंयुद्धारामंकुमानुषम् ॥शस्त्रैर्नानाविधाकारैर्हनध्वंसर्वराक्षसाः ॥ २५ ॥ एवमुक्त्वाखरःक्रुद्धोराममेवाभिदुद्रुवे ॥ श्येनगामीपृथुग्रीवोयज्ञशत्रुर्विहंगमः ॥ २६ ॥दुर्जयःकरवीराक्षःपरुषःकलकार्मुकः ॥ हेममालीमहामालीसर्पास्योरुधिराशनः ॥ २७ ॥ द्वादशैतेमहावीर्याबलाध्यक्षाःससैनिकाः ॥ राममेवाभ्यधावंतविसृजंतःशरोत्तमान् ॥ २८ ॥ ततःपावकसंकाशैर्हेमवज्रविभूषितैः ॥ जघानशेषंतेजस्वीतस्यसैन्यस्यसायकैः ॥ २९ ॥ तेरुक्मपुंखाविशिखाःसधूमाइवपावकाः ॥ निजघ्नुस्तानिरक्षांसिवज्राइवमहाद्रुमान् ॥ ३० ॥ रक्षसांतुशतंरामःशतेनैकेनकर्णिना ॥ सहस्रंतुसहस्रेणजघानरणमूर्धनि ॥३१॥ तैर्भिन्नवर्माभरणाश्छिन्नभिन्नशरासनाः ॥ निपेतुःशोणितादिग्धाधरण्यांरजनीचराः ॥ ३२ ॥

आपही श्रीरामचन्द्रजीके सम्मुख दौडा श्येनगामी, पृथुग्रीव, यज्ञशत्रु, विहङ्गम॥२६॥दूर्जय, परवीराक्ष, पुरुष कालकार्मुक, हेममाली, सर्प्पास्य, महामाली; रुधिराशन॥२७॥ यह बारह महावीर सेनापति अपनी सेनाके साथ श्रेष्ठ बाण वर्षाते हुए श्रीरामचन्द्रजीके सम्मुख धाये॥२८॥इन सब राक्षसोंको तेजस्वी श्रीरामचन्द्रजीने अपने ऊपर आता हुआ देखकर हेमवज्र विभूषित अग्नितुल्य बाणोंसे खरकी इस बची बचाई सेनापर प्रहार करना आरंभ किया॥२९॥वज्र पडनेसे जिस प्रकार बडे२वृक्ष गिर जाते हैं वैसेही श्रीरामचन्द्रजीके सुवर्ण के पंखवाले सधूम अग्निके समान बाणोंसे राक्षसोंको संहार करनेलगे॥३०॥श्रीरामचन्द्रजीने एक शत बाण चलाकर एकशत राक्षसोंका संहार किया; व हजार बाण चलाकर राक्षसोंका प्राण ले लिया ॥ ३१ ॥ राक्षसगण रुधिरमें सने हुए पृथ्वीमें गिरे उनके कवच भूषण

और धनुष छिन्न भिन्न और विदीर्ण हो गये॥३२॥यज्ञकी वेदीपर जिस प्रकार कुछ बिछे होते हैं वैसेही संग्रामकी समस्त पृथ्वी रुधिरसे सराबोर बाल खुले हुए राक्षसोंसे व्याप्त हो रही थी॥३३॥सब राक्षसोंके मारे जानेसे वनभूमि उनके मांस व रुधिरकी कीचसे ढककर क्षण भरमें ही महा भयंकर नरकके समान होगयी ॥३४॥मनुष्य शरीर धारी रामचन्द्रने इकलेही विना रथपर चढे चौदह हजार भयंकर कर्म करनेवाले राक्षसोंको मार डाला॥३५॥सब सेनाके बीचमेंमहारथी खर, त्रिशिरा और शत्रुओंके हनन करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी केवल यह तीन जन शेष रहे ॥ ३६ ॥ बचे बचाये राक्षस सबही लक्ष्मणजीके बडे भाई श्रीरामचन्द्रजीसे मारे गये, यह समस्त राक्षस अतिशय बलवान, भयंकर व बडे दुःखसे सहनेके योग्य थे ॥ ३७ ॥ इस प्रकार महा संग्राममें समस्त भयंकर बलवान् राक्षसोंको

तैर्मुक्तकेशैः समरे पतितैः शोणितोक्षितैः ॥ विस्तीर्णा वसुधा कृत्स्ना महावेदिः कुशैरिव ॥३३॥ तत्क्षणे तु महाघोरं वनं निहतराक्षसम्॥ बभूव निरयप्रख्यं मांसशोणितकर्दमम् ॥३४॥ चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम् ॥ हतान्येकेन रामेण मानुषेण पदातिना ॥३५॥ तस्य सैन्यस्य सर्वस्य खरः शेषो महारथः॥ राक्षसस्त्रिशिराश्चैव रामश्चारिपुसूदनः॥३६॥ शेषा हता महावीर्या राक्षसा रणमूर्धनि ॥ घोरा दुर्विषहाः सर्वे लक्ष्मणस्याग्रजेन ते ॥३७॥ ततस्तु तद्भीमबलं महाहवे समीक्ष्य धर्मेण रतं बलीयसा ॥ रथेन रामं महता खरस्ततः समाससादेन्द्र इवोद्यताशनिः ॥ ३८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० अरण्यकांडे षड्विंशः सर्गः॥२६॥ खरं तु रामाभिमुखं प्रयांतं वाहिनीपतिः ॥ राक्षसस्त्रिशिरा नाम सन्निपत्येदमब्रवीत्॥१॥ मां नियोजय विक्रांतं त्वं निवर्तस्व साहसात् ॥ पश्य रामं महाबाहुं संयुगे विनिपातितम्॥२॥ प्रतिजानामि ते सत्यमायुधं चाहमालभे॥ यथा रामं वधिष्यामि वधार्हं सर्वरक्षसाम् ॥३॥ अहं वास्य रणे मृत्युरेष वा समरे मम ॥ विनिवर्त्य रणोत्साहं मुहूर्तं प्राश्निको भव ॥ ४ ॥

श्रीरामचन्द्रजीसे मरा हुआ देखकर खर बडे भारी रथपर सवार होकर वज्र उठाये हुए इन्द्रके समान रामचन्द्रजीके मारनेको चला॥ ३८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अरण्यकाण्डे भाषायां षड्विंशः सर्गः ॥ २६ ॥ इसके पीछे खर जब श्रीरामचन्द्रजीके सम्मुख धाया, तब सेनापति त्रिशिरा राक्षस उसके समीप आकर कहने लगा ॥ १ ॥ मैं विक्रमवान् हूं आप यह साहस त्याग करके मुझको रामचन्द्रको मार डालनेके लिये नियत करके समरमें महाबाहु रामचन्द्रको मुझकरके मारा हुआही देखिये॥२॥ मैं आपके समीप हथियार छूकर सत्यही प्रतिज्ञा करताहूं कि; समस्त राक्षसोंके मारने योग्य रामचन्द्रजीको मैं निश्चयही मार डालूंगा॥३॥या तो संग्राममें मैंही मरूंगा, अथवा इन रामकोही मार डालूंगा आप क्षणके लिये रणके उत्साहको छोडकर दोनों ओरका युद्ध देखते रहिये॥४॥

राम मारे जायंगे तो आप आनन्दित चित्तसे जनस्थानको चले जाइये,और जो मेरा संहार होवे तो आपस्वयंही युद्ध करनेके लिये रामचन्द्रके सम्मुख होना ॥५॥ त्रिशिरा मृत्युके लोभसे इस प्रकार खरको प्रसन्न करके युद्ध करनेके लिये उसकी आज्ञा लेकर श्रीरामचन्द्रजी के सामने दौडा ॥ ६ ॥ तीन शृंगवाले पर्वतके समान वह तीन शिरवाला राक्षस देदीप्यमान घोडे जुते हुए रथमें चढकर श्रीरामचन्द्रजी के सम्मुख धाया ॥७॥ और महामेघ जिस प्रकार जल धारा वर्षाता हुआ हो वैसे ही जलके भीगे नगाडेके समान शब्द करने लगा॥८॥रघुनन्दन श्रीरामचन्द्रजीने त्रिशिरा राक्षसको अपने सम्मुख आते देख धनुष उठाय शब्द कर तीखे बाण चढाय ॥ ९ ॥ त्रिशिराके मारे, उस समय अतिबलवान् सिंह और हाथीके समान श्रीरामचन्द्रजी और त्रिशिराका तुमुल संग्राम आरंभ

प्रहृष्टोवाहतेरामेजनस्थानंप्रयास्यसि॥मयिवानिहतेरामंसंयुगायप्रयास्यसि ॥५॥ खरस्त्रिशिरसातेनमृत्युलोभात्प्रसादितः॥गच्छयुद्ध्येत्यनुज्ञातोराघवाभिमुखोययौ ॥६॥ त्रिशिरास्तुरथेनैववाजियुक्तेनभास्वता॥ अभ्यद्रवद्रणेरामंत्रिशृंगइवपर्वतः ॥ ७ ॥ शरधारासमूहान्समहामेघइवोत्सृजन् ॥व्यसृजत्सदृशंनादंजलार्द्रस्येवदुंदुभेः ॥८॥ आगच्छंतंत्रिशिरसंराक्षसंप्रेक्ष्यराघवः ॥ धनुषाप्रतिजग्राहविधुन्वन्सायकान्शितान् ॥ ॥ ९ ॥ससंप्रहारस्तुमुलोरामत्रिशिरसोस्तदा॥संबभूवातिबलिनोःसिंहकुंजरयोरिव ॥१०॥ ततस्त्रिशिरसाबाणैर्ललाटेताडितस्त्रिभिः ॥अमर्षीकुपितोरामःसंरब्धइदमब्रवीत्॥११॥ अहोविक्रमशूरस्यराक्षसस्येदृशंबलम्॥ पुष्पैरिवशरैर्योऽहंललाटेऽस्मिपरिक्षतः ॥१२॥ ममापिप्रतिगृह्णीष्वशरांश्चापगुणाच्च्युतान्॥एवमुक्त्वस्तुसंरब्धःशरानाशीविषोपमान् ॥१३॥ त्रिशिरोवक्षसिक्रुद्धोनिजघानचतुर्दश॥ चतुर्भिस्तुरगानस्यशरैः सन्नतपर्वभिः॥१४॥ न्यपातयत्तेजस्वीचतुरस्तस्यवाजिनः ॥अष्टभिःसायकैःसूतंरथोपस्थेन्यपातयत् ॥ १५ ॥

हुआ जिसके देखनेसे रोम खडे होजाते थे ॥ १० ॥ इसके अनन्तर क्रोध न करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी त्रिशिरा करके तीन बाणोंके द्वारा ताडित होकर जो उनके माथेमें लगे थे,उनके लगनेसे रोषयुक्त हो गर्वित वचन कहने लगे॥११॥ कि अरे! विक्रमशूर निशाचर! बस तेरा इतनाही बल है, कि तेरे चलाये हुए बहुत सारे बाण हमारे माथेमें फूलोंके समान लगे मानो हमारी परीक्षा ली, हम तो जानते थे कि, तुममें कुछ विक्रम होगा, सो कुछभी नहीं ॥१२॥ क्या आश्चर्य है? अब तू हमारे धनुषके रोदेसे छूटे हुए बाणोंके समूहको ग्रहण कर । यह कह बडा क्रोधकर विषधर सर्पोंके समान ॥१३॥ श्रीरामचन्द्रजीने चौदह बाण त्रिशिराके हृदयमें मारे और चार घोडोंको सन्नतपर्व बाणोंसे ॥ १४ ॥ महातेजवान् श्रीरामचन्द्रजीने मार डाला और आठ बाणोंसे रथपरही उसके

सारथीको मार गिराया ॥१५॥ व एक बाणसे अति ऊँची उसकी ध्वजाको काटडाला; जब सारथी और घोडे उसके मारे गये तब त्रिशिरा रथसे कूदनेको हुआ ॥ १६ ॥ तो उसी बीचमें महापराक्रमी श्रीरामचन्द्रजीने क्रोधसे अनेक बाण उसके हृदयमें मारे जिनके लगनेसे वह फिर शस्त्र ग्रहण करनेको समर्थ नहीं हुआ ॥ १७ ॥ फिर अप्रमेय आत्मा श्रीरामचन्द्रजीने क्रोधमें भरकर वेगवान् तीन बाणोंकी महायतासे उसके तीनों शिर काट डाले, उसके पीछे धुवेंके समान रुधिर गिराता श्रीरामचन्द्रजीके बाणोंसे पीडित त्रिशिरा ॥१८॥ समरमें गिरा,जिसके शिर पहलेही गिर गये थे। त्रिशिराके मारे जानेके पीछे शेष राक्षस भागकर खरकी शरणमें गये ॥१९॥ और वहांभी खडे न होकर सिंह करके भय पाये हुए मृगयूथके समान भागेही गये तिनको भागे हुए देख खर रोषमें भर तिनको लौटाय शीघ्रतासे श्रीरामचन्द्रजीकी ओर दौडा जैसे राहु चंद्रमाकी ओर दौडता है ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि०

रामश्चिच्छेदबाणेनध्वजंचास्यसमुच्छ्रितम् ॥ ततोहतरथात्तस्मादुत्पतंतंनिशाचरम् ॥१६॥ चिच्छेदरामस्तंबाणैर्हृदयेसोऽभवज्जडः ॥ सायकै श्चाप्रमेयात्मासामर्षात्तस्यरक्षसः ॥ १७ ॥ शिरांस्यपातयत्त्रीणिवेगवद्भिस्त्रिभिःशरैः ॥ सधूमशोणितोद्गारीरामबाणाभिपीडितः ॥ १८ ॥ न्यपतत्पतितैःपूर्वंसमरस्थोनिशाचरः ॥ हतशेषास्ततोभग्नाराक्षसाःखरसंश्रयाः ॥१९॥द्रवंतिस्मनतिष्ठंतिव्याधत्रस्तामृगाइव ॥ तान्खरोद्रवतो दृष्ट्वानिवर्त्यरुषितस्त्वरन्॥राममेवाभिदुद्रावराहुश्चंद्रमसंयथा॥२०॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा०आ०च०सा० अरण्यकांडे सप्तविंशः सर्गः ॥२७॥निहतंदूषणंदृष्ट्वारणेत्रिशिरसासह।खरस्याप्यभवत्त्रासोदृष्ट्वारामस्यविक्रमम् ॥१॥ सदृष्ट्वाराक्षसंसैन्यमविषह्यंमहाबलम्॥हतमेकेनरामेण दूषणस्त्रिशिराअपि॥२॥ तद्बलंहतभूयिष्ठंविमनाःप्रेक्ष्यराक्षसः॥आससादखरोरामंनमुचिर्वासवंयथा॥३॥ विकृष्यबलवच्चापंनाराचान्रक्तभोज नान् ॥खरश्चिक्षेपरामायक्रुद्धानाशीविषानिव ॥ ४ ॥ ज्यांधुन्वन्सुबहुशःशिक्षयाऽस्त्राणिदर्शयन् ॥ चचारसमरेमार्गाञ्शरैरथगतःखरः ॥५॥

अरण्यकांडे भाषाटीकायां सप्तविंशः सर्गः ॥ २७ ॥ दूषण और त्रिशिरा राक्षसको माराहुआ देख संग्राममें श्रीरामचन्द्रजीकी शूरता निहार खरके मनमें भी भयका संचार हुआ ॥ १ ॥ खर विचार करने लगाकि, दूषण और त्रिशिराको, सहनके अयोग्य पराक्रमवान् महाबलवान् राक्षसी सेनाके सहित अकेले रामचन्द्रने संग्राममें मारडाला ॥ २ ॥ ऐसा विचार करताहुआ राक्षस खर उदास होकर श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर दौडा, जैसा नमुचिदैत्य इन्द्रके ऊपर दौडा था ॥ ३ ॥ और बडे जोरसे धनुष खैंचकर श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर, क्रोधित सर्पके विषके समान रुधिर पान करनेवाले बाण छोडे ॥ ४ ॥ फिर वह प्रत्यंचाको बारंबार टंकारता, अपनी शिक्षा और अस्त्रोंको दिखाता हुआ अनेक भांतिके बाण छोडते २ संग्राम भूमिमें

रथपर घूमने लगा ॥ ५ ॥ और सब दिशा विदिशाओंको उस महारथी खरने बाणोंसे पूर दिया ! रामचन्द्रजीने सबदिशाओंको बाणोंसे भरा देख बडा भारी धनुष हाथमें लिया ॥ ६ ॥ व अग्निके अंगारोंके समान सहन करनेके अयोग्य सायक समूहसे आकाशको पूर्ण कर दिया जैसे मेघमंडल वृष्टि करते हैं ॥७॥ आकाश खर और श्रीरामचन्द्रजीके छूटे हुए बाणोंसे छाकर सब प्रकारसे अवकाशरहित होगया अर्थात् पृथ्वी आकाशके बीच २ में सबही जगह बाणही बाण भरेथे ॥ ८ ॥ तब परस्पर एक दूसरेको मारडालनेकी इच्छासे छोडे हुए बाणोंके जाल करके आकाशके छा जानेसे सूर्य भगवान् भी छिप गये ॥९॥ इसकेपीछे महावत महागजको जिसप्रकार अंकुश मारता है वैसेही खर तीखे नालीक नाराच और विकीर्ण अस्त्र शस्त्रोंसे श्रीरामचन्द्रजीको घायल करने लगा॥१०॥ उस समय सबही प्राणी रथमें बैठे धनुषधारी खरको राक्षस पाशधारी यमराजके समान देखने लगे ॥ ११ ॥ उस काल खरने अपनी समस्त सेनाके विनाश

ससर्वाश्चदिशोबाणैःप्रदिशश्चमहारथः ॥ पूरयामासतंदृष्ट्वारामोऽपिसुमहद्धनुः ॥ ६ ॥ ससायकैर्दुर्विषहैर्विस्फुलिंगैरिवाग्निभिः ॥ नभश्चकाराविवरंपर्जन्यइववृष्टिभिः ॥ ७ ॥ तद्बभूवशितैर्बाणैःखररामविसर्जितैः ॥पर्याकाशमनाकाशंसर्वतःशरसंकुलम् ॥ ८ ॥ शरजालावृतःसूर्योनतदास्मप्रकाशते ॥ अन्योन्यवधसंरंभादुभयोःसंप्रयुज्यतोः ॥ ९ ॥ ततोनालीकनाराचैस्तीक्ष्णाग्रैश्चविकार्णिभिः ॥आजघानरणेरामंतोत्रैरिवमहाद्विपम् ॥ १० ॥ तंरथस्थंधनुष्पाणिंराक्षसंपर्यवस्थितम् ॥ ददृशुःसर्वभूतानिपाशहस्तमिवांतकम् ॥ ११ ॥ हंतारंसर्वसैन्यस्यपौरुषेपर्यवस्थितम् ॥ परिश्रांतंमहासत्त्वंमेनेरामंखरस्तदा ॥१२॥ तंसिंहमिवविक्रांतंसिंहविक्रांतगामिनम् ॥ दृष्ट्वानोद्विजतेरामःसिंहःक्षुद्रमृगंयथा ॥ १३ ॥ ततःसूर्यनिकाशेनरथेनमहताखरः ॥आससादाथतंरामंपतंगइवपावकम् ॥१४॥ ततोऽस्यसशरंचापंमुष्टिदेशेमहात्मनः ॥खरश्चिच्छेदरामस्यदर्शयन्हस्तलाघवम् ॥ १५ ॥ सपुनस्त्वपरान्सप्तशरानादायमर्मणि ॥ निजघानरणेक्रुद्धःशक्राशनिसमप्रभान् ॥१६॥ ततःशरसहस्रेणराममप्रतिमौजसम् ॥ अर्दयित्वामहानादंननादसमरेखरः ॥ १७ ॥

करनेवाले पुरुषार्थमें टिके हुए धैर्यवान् महाबली श्रीरामचन्द्रजीको रण करनेसे थके समझा ॥ १२ ॥ और सिंहके समान विक्रम दिखाता हुआ इधर उधर घूमने लगा । सिंह जिस प्रकार मृगके छौनाको देखकर नहीं डरता वैसेही श्रीरामचन्द्रजी खरको देख कुछ भी नहीं घबडाये ॥ १३ ॥ अनन्तर खर सूर्य समान द्युतिशाली महारथपर चढकर श्रीरामचन्द्रजीके निकट पहुँचा, जिस प्रकार आगके धोरे पतंग पहुँचते हैं ॥१४॥ उसके पीछे महात्मा श्रीरामचन्द्रजीको खरने अपने हाथोंकी फुरती दिखाई और रामचन्द्रजीका बाण चढा हुआ धनुष मुट्ठीके धोरेसे काट डाला ॥१५॥ फिर क्रोधमें भरकर इन्द्रके वज्र के तुल्य प्रतापशाली तीखे सात बाण ग्रहण करके श्रीरामचन्द्रजीके मर्मस्थानमें मारे ॥१६॥ और फिर सैकडों हजारों बाणोंसे रामचन्द्रजी को पीडित कर

समरमें अपना उपमा रहित तेज दिखाता हुआ महा शब्दसे गर्जने लगा॥१७॥उस समय श्रीरामचन्द्रजीका सूर्यके समान प्रकाश मान कवच,सुन्दर तेज धारवाले बाणोंके समूहसे छिन्न भिन्न होकर पृथ्वीमें गिर पडा॥१८॥उस समय रघुनंदन श्रीरामचन्द्रजी का सब शरीर बाणोंसे विंध गया,तब श्रीरामचन्द्रजी क्रोधित होकर प्रज्वलित धूम रहित अग्निकी शोभा धारण करते हुए॥१९॥उसके पीछे उन शत्रुओंका नाश करनेवाले श्रीरामचन्द्र शत्रुओंका संहार करनेके लिये और एक गंभीर शब्द करनेवाले धनुष पर रौंदा चढाते हुए॥२०॥श्रीरामचन्द्रजी महर्षि अगस्त्यजी का दिया हुआ वह बृहत् वैष्णव धनुष उठाकर खरके ऊपर क्रोधित होकर धाये॥२१॥तदनन्तर सुवर्णके पंख लगे तीखे बडे भारी बाणोंसे समरमें श्रीरामचन्द्रजीने खरकी ध्वजा काट डाली॥२२॥वह सुन्दर सुवर्णकी ध्वजा सहसा छिन्न

ततस्तत्प्रहतंबाणैःखरमुक्तैःसुपर्वभिः ॥पपातकवचंभूमौरामस्यादित्यवर्चसम्॥१८॥ सशरैरर्पितःक्रुद्धःसर्वगात्रेषुराघवः ॥ रराजसमरेरामोविधूमोऽग्निरिवज्वलन् ॥१९॥ ततोगंभीरनिर्ह्रादंरामः शत्रुनिवर्हणः ॥ चकारांतायसारिपोःसज्यमन्यन्महद्धनुः॥२०॥सुमहद्वैष्णवंयत्तदतिसृष्टंमहर्षिणा॥ वरंतद्धनुरुद्यम्यखरंसमभिधावत ॥ २१ ॥ ततःकनकपुंखैस्तुशरैःसन्नतपर्वभिः ॥ चिच्छेदरामःसंक्रुद्धःखरस्यसमरेध्वजम् ॥ २२ ॥ सदर्शनीयोबहुधाविच्छिन्नःकांचनोध्वजः ॥ जगामधरणींसूर्योदेवतानामिवाज्ञया ॥ २३ ॥ तंचतुर्भिःखरःक्रुद्धोरामंगात्रेषुमार्गणैः ॥विव्याधहृदिमर्मज्ञोमातंगमिवतोयदैः ॥ २४ ॥ सरामोबहुभिर्बाणैःखरकार्मुकनिःसृतैः ॥ विद्धोरुधिरसिक्तांगोबभूवरुषितोभृशम् ॥ २५ ॥ सधनुर्धन्विनांश्रेष्ठःसंगृह्यपरमाहवे॥मुमोचपरमेष्वासःषट्शरानभिलक्षितान् ॥ २६ ॥ शिरस्येकेनबाणेनद्वाभ्यांबाह्वोरथार्पयत्॥ त्रिभिश्चंद्रार्धवक्रैश्चवक्षस्यभिजघानह ॥ २७ ॥ ततःपश्चान्महातेजानाराचान्भास्करोपमान् ॥ जघानराक्षसःक्रुद्धस्त्रयोदशशिलीमुखान् ॥ २८ ॥

होकर गिरनेके समयमें ऐसी शोभा धारण करती हुई जैसी कभी कभी देवताओंके नियमसे सूर्यनारायण पृथ्वीमें आयकर शोभित हो॥२३॥यह देखकर मर्मजाननेवाले खरने क्रोधित हो चार बाण छोडकर, जिस प्रकार लोग भालोंसे मतवाले हाथीको मारते हैं,वैसेही श्रीरामचन्द्रजीके हृदयको व और दूसरे मर्मस्थानोंको घायल किया॥२४॥उस समय वह महा धनुर्द्धारी श्रीरामचन्द्रजी,खरके धन्वासे छूटे हुए बहुतसे बाणोंसे विंधे जाकर—और रुधिरमें भीग महाक्रोधित हुए॥२५॥ और धनुष धारियोंमें श्रेष्ठ दृढभावसे श्रेष्ठ धन्वा ग्रहण करके खरको भली भांति निशाना बनाय उसके ऊपर छःबाण छोड ॥२६॥ उनमेंसे एक बाणसे खरका मस्तक बींधा दो बाणोंसे दोनों भुजाओंको घायल किया,और अर्द्धचन्द्रतुल्य टेढे तीन बाणोंसे खरकी छातीमें प्रहार किया॥२७॥उनके पीछे इन्द्र समान महाबलवान्

तेजस्वी श्रीरामचन्द्रजीने बडा क्रोधकर सूर्यके समान,धार धराये हुए तेरह बाण ग्रहण करके उस खर निशाचरको निशाना बनाकर छोडे ॥२८॥श्रीरामचन्द्र जीने एक बाणसे रथका युग (जुआ) चार बाणोंसे चार चित्र विचित्र घोडे, और एक बाणसे उसके सारथी का मस्तक छेदन कर दिया॥२९॥ तीन बाणोंसे रथके तीनों बाँस और दो बाणोंसे दोनों पहिये और बारह बाणोंसे खरका बाण सहित शरासन युक्त बायां हाथ॥३०॥काटकर हँसते २ वज्र समान तेरहवें एक बाणसे खरको इन्द्र समान श्रीरामचन्द्रजीने मारा॥३१॥तब वह खर राक्षस धनुष रहित;रथ रहित,सारथी रहित होकर गदा ले रथसे कूद पृथ्वी पर खडा हो गया॥३२॥उस काल विमान में बैठे हुए देवता और महर्षि गण महारथी श्रीरामचन्द्रजी का यह कार्य अवलोकन करके परम हर्ष प्राप्त करते हुए और परस्पर एकत्र हो हाथ जोडकर स्तुति कर श्रीरामचन्द्रजी की पूजा करते हुए ॥३३॥ इत्यार्षे श्रीमद्वा० वा० आदि० अरण्यकांडे भाषायामष्टाविंशः सर्गः ॥ २८ ॥

रथस्ययुगमेकेनचतुर्भिःशबलान्हयान् ॥ षष्ठेनचशिरःसंख्येचिच्छेदखरसारथेः ॥२९॥ त्रिभिस्त्रिवेणून्बलवान्द्वाभ्यामक्षंमहाबलः ॥ द्वादशेनतु बाणेनखरस्यसकरंधनुः ॥ ३० ॥ छित्त्वावज्रनिकाशेनराघवःप्रहसन्निव ॥ त्रयोदशेनेंद्रसमोबिभेदसमरेखरम् ॥ ३१ ॥ प्रभग्नधन्वाविरथोहताश्वोहतसारथिः ॥ गदापाणिरवप्लुत्यतस्थौभूमौखरस्तदा ॥ ३२ ॥ तत्कर्मरामस्यमहारथस्यसमेत्यदेवाश्चमहर्षयश्च ॥ अपूजयन्प्रांजलयः प्रहृष्टास्तदाविमानाग्रगताःसमेताः ॥ ३३ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० च०सा० अरण्यकांडे अष्टाविंशःसर्गः ॥२८॥ खरंतुविरथंरामोगदापाणिमवस्थितम् ॥ मृदुपूर्वंमहातेजाःपरुषंवाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥ गजाश्वरथसंबाधेबलेमहतितिष्ठता ॥ कृतंतेदारुणंकर्मसर्वलोकजुगुप्सितम् ॥ २ ॥ उद्वेजनीयोभूतानांनृशंसःपापकर्मकृत् ॥ त्रयाणामपिलोकानामीश्वरोपिनतिष्ठति ॥३॥ कर्मलोकविरुद्धंतुकुर्वाणंक्षणदाचर ॥ तीक्ष्णंसर्वजनोहंतिसर्पंदुष्टमिवागतम् ॥ ४ ॥ लोभात्पापानिकुर्वाणःकामाद्वायोनबुध्यते ॥ हृष्टःपश्यतितस्यांतंब्राह्मणीकरकादिव ॥ ५ ॥

इसके पीछे खर रथहीन और हाथमें गदा धारण करके जब पृथ्वीमें खडा होगया तब महातेजस्वी श्रीरामचन्द्रजी बोलनेमें मधुर परंतु वास्तवमें कठोर वचनसे खरसे बोले॥१॥हे खर; तैंने हाथी अश्व और रथादियुक्त सेनाके मध्यमें टिक कर सर्व लोकमें निन्दित महा भयंकर कर्म किया है॥२॥यदि त्रिलोकीका स्वामी भी निर्लज्ज होकर पाप कर्म करे और सर्व प्राणियोंको घबडानेवाला हो तो वह भी अपने पदसे भ्रष्ट हो जाता है॥३॥अरे निशाचर!सभी पुरुष लोकोंके विरुद्ध कर्म करनेवाले तीक्ष्ण स्वभाववाले पुरुषको, आये हुए काल सर्पके समान संहार कर डालते हैं ॥ ४ ॥ जो व्यक्ति फल जानकर भी लोभ या कामदेवके वश होकर हिंसा,पर स्त्री गमन इत्यादि पाप कर्म करता है वह निश्चय ही उस पाप फलको पाता है,जैसे अकाल वृष्टिके साथ गिरे हुए पत्थरोंको लालचसे ब्राह्मणी(बाहनी नामक

कीडा)खाकर मर जाता है॥५॥रे राक्षस!दंडकारण्य वासी मर्माचरण करनेवाले महा तेजवान् तपस्वियोंको मारकर तुझको कैसा बुरा फल प्राप्त होगा सो नही जानता ॥६॥अथवा जो क्रूरस्वभाववाले जन चिरकाल पाप कर्म करके लोगोंसे निन्दा पानेके पात्र होजाते हैं, वह जन ऐश्वर्य पाकर भी जड गले हुए वृक्षके समान बहुत दिनोंतक नहीं रह सकता अर्थात् गिर पडता है॥७॥वृक्ष जिस प्रकार समय पाय कर फूलते हैं,वैसेही समयके आजाने पर पाप कर्मका भयावना फल निश्चय ही प्राप्त होता है ॥८॥ हे निशाचर! जिस प्रकार विष मिलाहुआ अन्न खानेसे शीघ्रही मृत्यु होती है;वैसेही पापकर्म करने का फल थोडेही समयमें फलजाता है ॥९॥ रे राक्षस ! भयानक पाप कर्म करनेवाले और लोकोंका बुरा चाहनेवाले दुष्टों को बाणोंसे मारनेकेही लिये ऋषिलोगोंने मुझे राजाकर यहाँ पठाया है ॥१०॥ सर्प

वसतोदंडकारण्येतापसान्धर्मचारिणः ॥ किंनुहत्वामहाभागान्फलंप्राप्स्यसिराक्षस ॥६॥ नचिरंपापकर्माणःक्रूरालोकजुगुप्सिताः ॥ ऐश्वर्यं प्राप्यतिष्ठंतिशीर्णमूलाइवद्रुमाः ॥७॥ अवश्यंलभतेकर्ताफलंपापस्यकर्मणः ॥ घोरंपर्यागतेकालेद्रुमःपुष्पमिवार्णवम् ॥८॥ नचिरात्प्राप्यतेलोकेपापानांकर्मणांफलम् ॥ सविषाणामिवान्नानांभुक्तानांक्षणदाचर ॥९॥ पापमाचरतांघोरंलोकस्याप्रियमिच्छताम् ॥ अहमासादितोराज्ञाप्राणान्हंतुंनिशाचर ॥ १० ॥ अद्यभित्त्वामयामुक्ताःशराःकांचनभूषणाः॥विदार्यापिपतिष्यंतिवल्मीकमिवपन्नगाः ॥११॥ येत्वयादंडकारण्येभक्षिताधर्मचारिणः॥तानद्यनिहतःसंख्येससैन्योऽनुगमिष्यसि ॥ १२ ॥ अद्यत्वांनिहतंबाणैःपश्यंतुपरमर्षयः ॥ निरयस्थंविमानस्थायेत्वयानिहताःपुरा ॥ १३ ॥ प्रहरस्वयथाकामंकुरुयत्नंकुलाधम॥ अद्यतेपातयिष्यामिशिरस्तालफलंयथा ॥ १४ ॥ एवमुक्तस्तुरामेणक्रुद्धःसंरक्तलोचनः ॥ प्रत्युवाचततोरामंप्रहसन्क्रोधमूर्च्छितः॥१५॥ प्राकृतान्राक्षसान्हत्वायुद्धेदशरथात्मज॥आत्मनाकथमात्मानमप्रशंस्यंप्रशंससि ॥१६॥

जिसप्रकार बमईको फोड कर पृथ्वी पर निकल आताहै; वैसेही इस समय हमारे शरासनसे छूटे हुए बाण तेरे शरीरको चीर फार कर निकल आवेंगे ॥११॥ पहले तैंने जिन २ दंडकारण्य वासी धर्म चारी तपस्वीजनोंको भक्षण कियाहै सो तू आज हमसे युद्धमें मारा जाकर सेना सहित उनके पीछे२जायगा॥१२॥ पहले जो समस्त तापस तुम करके मारे गये हैं, आज वह विमानमें बैठकर तुमको हमारे बाणसे मरा और नरकमें जाता हुआ देखें ॥१३॥ रे नीचकुलमें उत्पन्न हुए तू भली भांतिसे यत्न करकेहमारे ऊपर प्रहार कर, किन्तु आज हम निश्चयही तालफलके समान तेरा शिर काट कर गिरादेंगे ॥ १४ ॥जब श्रीरामचन्द्रजीने ऐसा कहा तब क्रोधके वश होकर खरके दोनों नेत्र लाल हो आये और क्रोधके मारे ज्ञान रहित हो खर हँसते २ श्रीरामचन्द्रजीसे बोला ॥ १५ ॥ रे दशरथ कुमार ! समरमें

साधारण राक्षसोंको मार वास्तवमें प्रशंसित न होने पर भी तू आपही किस प्रकारसे अपनीप्रशंसा करता है ॥१६॥ बलवान् पराक्रम शाली नरगण तेजके मारे गर्वित होकर किसी समय भी अपनी प्रशंसा नहीं किया करते ॥१७॥ जिनका चित्त शुद्ध नहीं है, ओछा स्वभाव है ऐसे क्षत्रियोंमें अधम लोग ही तुम्हारे समान निरर्थक गर्व प्रगट किया करते हैं॥१८॥मृत्यु समय के निकट आजाने पर कौन वीर अपने वंशका परिचय देकर प्रशंसाके अयोग्य विषयमें अपनी प्रशंसा करता है ॥१९ ॥ जिस प्रकार आग अपने तापसे सुवर्ण के समान पीतल की अधमताई प्रगट करती है वैसेही तुमने जो अपनी प्रशंसा की इससे तुम्हारा ओछापनही प्रगट हुआ ॥२०॥ तुम क्या गदा धारण किये हुए समरमें टिके देखकर विविध धातुओंके आकार धराधर पर्वत के समान हमको अकम्पनीय नहीं समझते हो ? ॥२१॥ हम

विक्रांताबलवंतोवायेभवंतिनरर्षभाः ॥ कथयंतिनतेकिंचित्तेजसाचातिगर्विताः ॥ १७॥ प्राकृतास्त्वकृतात्मानोलोकेक्षत्त्रियपांसनाः ॥ निरर्थकं विकत्थंतेतथारामविकत्थसे ॥१८॥ कुलंव्यपदिशन्वीरःसमरेकोऽभिधास्यति ॥ मृत्युकालेतुसंप्राप्तेस्वयमप्रस्तवेस्तवम् ॥१९॥सर्वथातुलघुत्वंते कत्थनेनविदर्शितम् ॥ सुवर्णप्रतिरूपेणतप्तेनेवकुशाग्निना ॥२०॥ नतुमामिहतिष्ठंतंपश्यसित्वंगदाधरम्॥धराधरमिवाकंप्यंपर्वतंधातुभिश्चितम् ॥ २१ ॥ पर्याप्तोऽहंगदापाणिर्हंतुंप्राणान्रणेतव ॥ त्रयाणामपिलोकानांपाशहस्तइवांतकः ॥२२॥ कामंबह्वपिवक्तव्यंत्वयिवक्ष्यामिनत्वहम् ॥ अस्तंप्राप्नोतिसविताायुद्धविघ्नस्ततोभवेत् ॥२३॥चतुर्दशसहस्राणिराक्षसानांहतानिते ॥ त्वद्विनाशात्करोम्यद्यतेषामश्रुप्रमार्जनम् ॥ २४ ॥ इत्युक्त्वापरमक्रुद्धःसगदांपरमांगदाम्॥खरश्चिक्षेपरामायप्रदीप्तामशनिंयथा॥२५॥ खरबाहुप्रमुक्तासाप्रदीप्तामहतीगदा ॥ भस्मवृक्षांश्चगुल्मांश्चकृत्वाऽगात्तत्समीपतः ॥२६॥ तमापतंतींमहतींमृत्युपाशोपमांगदाम् ॥ अंतरिक्षगतांरामश्चिच्छेदबहुधाशरैः॥ २७ ॥

लीलासे ही गदा हाथमें लेकर समरमें पाश धारी यमराज के समान तुम्हारी नहीं बरन् त्रिलोकी के सबही प्राणियोंका संहार कर सकते हैं॥२२॥ हमको तुमसे और भी कुछ कहना था, परन्तु उसको अब कुछ नहीं कहेंगे क्योंकि, सूर्य अस्त होने पर आ गये हैं सो विशेष देर लगानेसे युद्धमें विघ्न हो जायगा ॥२३॥तुमने जो १४००० चौदह हजार राक्षस मार डाले हैं सो अब तुझको मार कर उनके स्त्री पुत्रादिकोंके आंसू पोछेंगे ॥२४॥ यह कहकर खरने महा क्रोधित हो अति श्रेष्ठ सुवर्णके बंद बँधी हुई गदा जो उसके हाथमें थी वह देदीप्यमान इन्द्रके वज्रके समान उसने रामचन्द्रजी के ऊपर चलाई ॥२५॥ यह प्रज्वलित बडी गदा उसके भुजासे छूट कर अगल बगलके वृक्ष लतादिकोंको जलाती हुई श्रीरामचन्द्रजीके समीप आने लगी ॥२६॥ तब श्रीरामचन्द्रजी बाण जाल चलाकर साक्षात् मृत्यु केफंदके समान

निकट आती हुई, उस बडी गदाको आकाशमेंही खंड२कर डाला॥२७॥अतीव हिंसा करनेके स्वभाववाली सांपिन जिस प्रकार मंत्र और औषधिप्रभावसे गिर जाती है वैसेही यह गदा श्रीरामचन्द्रजीके बाणोंसे टुकडे२हो पृथ्वीमें गिर पडी॥२८॥इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अरण्यकांडे भाषायामेकोनत्रिंशः सर्गः॥२९॥ धर्मवत्सल श्रीरामचन्द्रजी अपने बाणोंसे उस गदाको काट कर मुसकाय क्रोध भर खरसे कहने लगे ॥१॥ रे राक्षसाधम ! बस तुमने इतनाही अपना सब बल दिखाया तुम हम करके हीनबल होकर वृथा क्यों गर्जना करते हो।॥२॥तुम केवल निरर्थक बकवाद करनेमें समर्थ हो। तुम्हारी गदाने हमारे बाणोंसे टुकडे होकर पृथ्वीमें गिरकर तुम्हारे विश्वासको नष्ट किया॥३॥और तुमने जो कहा था कि, मरे हुए राक्षसोंके स्त्री पुत्रादिकोंके आंसू पोंछेंगे सो तुम्हारी यह बात भी मिथ्या हुई ॥४॥

साविशीर्णाशरैर्भिन्नापपातधरणीतले ॥ गदामंत्रौषधिबलैर्व्यालीवविनिपातिता ॥२८॥ इत्यार्षे श्रीम०वा० आ०च०सा०अरण्यकांडे एकोनत्रिंशः सर्गः॥२९॥ भित्त्वातुतांगदांबाणैराघवोधर्मवत्सलः॥स्मयमानइदंवाक्यंसंरब्धमिदमब्रवीत् ॥१॥एतत्तेबलसर्वस्वंदर्शितंराक्षसाधम ॥ शक्तिहीनतरोमत्तोवृथात्वमुपगर्जसि ॥ २ ॥ एषाबाणविनिर्भिन्नागदाभूमितलंगता ॥ अभिधानप्रगल्भस्यतवप्रत्ययघातिनी ॥३॥ यत्त्वयोक्तं विनष्टानामिदमश्रुप्रमार्जनम् ॥ राक्षसानांकरोमीतिमिथ्यातदपितेवचः ॥४॥नीचस्यक्षुद्रशीलस्यमिथ्यावृत्तस्यरक्षसः ॥प्राणानपहरिष्यामिगरुत्मानमृतंयथा॥५॥अद्यतेभिन्नकंठस्यफेनबुद्बुदभूषितम् ॥ विदारितस्यमद्बाणैर्महीपास्यतिशोणितम्॥६॥पांसुरूषितसर्वांगःस्रस्तन्यस्तभुजद्वयः ॥ स्वप्स्यसेगांसमाश्लिष्यदुर्लभांप्रमदामिव ॥७॥प्रवृद्धनिद्रेशयितेत्वयिराक्षसपांसने ॥ भविष्यंतिशरण्यानांशरण्यादंडकाइमे ॥८॥ जनस्थानेहतस्थानेतवराक्षसमच्छरैः॥ निर्भयाविचरिष्यंतिसर्वतोमुनयोवने॥९॥अद्यविप्रसरिष्यंतिराक्षस्योहतबांधवाः॥ बाष्पार्द्रवदनादीनाभयादन्यभयावहाः ॥१०॥ अद्यशोकरसज्ञास्ताभविष्यंतिनिरर्थिकाः ॥ अनुरूपकुलाःपत्न्योयासांत्वंपतिरीदृशः ॥ ११ ॥

और गरुडजीने जिस प्रकार अमृत हरण किया था,इस समय हम भी वैसेही नीच ओछे स्वभाववाले झूंठी प्रतिज्ञा करनेवाले तुम्हारे प्राण हरण करेंगे।॥५॥ आज हमारे बाणों करके विदारित होनेसे जब तुम्हारा शिर कट जायगा,तब पृथ्वी तुम्हारे गलेका झाग सहित रुधिर पान करेगी ॥६॥ आज तुम शिथिलहो गिरेहुए दोनों हाथोंसे सर्वांगमें रुधिर लगाये हुये दुर्लभ स्त्री के समान पृथ्वी को चिपटा कर शयन करोगे॥७॥रे राक्षस कुलके सान करनेवाले ! यह दंडक वन सब लोकोंका आश्रय स्वरूप ऋषिगणोंका आश्रम हो जायगा॥८॥ रे राक्षस ! मेरे बाण समूह करके जनस्थान राक्षस शून्य होनेसे मुनिगण निर्भय होकर सब प्रकारसे इस वनमें घूमेंगे ॥ ९ ॥ भयंकर सब राक्षसियें बन्धु बान्धवोंके मारे जानेसे रुदन करती हुई हमारे भयसे आज जनस्थानसे भाग जायँगी ॥ १० ॥ तुम जिनके पति

हो सो वह तुम्हारेही समान वंशकी स्त्रियें आज शोकरसके मर्म को जानकर हीनवीर्य होजायँगी ॥११॥ रे निलज्ज! क्षुद्रात्मा! ब्राह्मण कंटक! मुनिगण तुमसे शंका करके अग्निमें आहुति दिया करतेहैं सो आजसे वह भय जाता रहेगा ॥१२॥ जब रघुकुमार श्रीरामचन्द्रजीने महाक्रोधके वश होकर इसप्रकार कहा तब निशाचरखर क्रोध युक्त हो फिर बडे ऊंचे स्वरसे रामचंद्रजीको दुर्वाक्य कहता हुआ बोला ॥१३॥ कि, तुम निश्चय ही गर्वितहो और भय होनेपर भी भय नहीं करते; इसी कारण मृत्युके वश होकर क्या कहने लायक क्या न कहने लायक है, उसको नहीं समझ सकते ॥ १४ ॥ जो पुरुष कालकी फाँसीमें बँध जातेहैं, उनकी अंतःकरणादि छः इन्द्रियोंकी विषयवृत्ति जाती रहनेके कारण उसको कार्याकार्यका ज्ञान नहीं रहता ॥ १५ ॥ निशाचर खरने श्रीरामचन्द्रजीसे इस प्रकार कहकर भ्रुकुटी टेढीकर निकट ही बहुत बडा एक शालका वृक्ष देखा ॥१६॥ उस बडे भारी शालके पेडको देखकर युद्धमें उसको ही अपना अस्त्ररूप बनानेके लिये खरने

नृशंसशीलक्षुद्रात्मन्नित्यंब्राह्मणकंटक॥ त्वत्कृतेशंकितैरग्नौमुनिभिःपात्यतेहविः ॥१२॥ तमेवमभिसंरब्धंब्रुवाणंराघवंवने ॥ खरो निर्भर्त्सयामासरोषात्खरतरस्वरः ॥१३॥ दृढंखल्ववलिप्तोऽसिभयेष्वपिचनिर्भयः ॥ वाच्यावाच्यंततोहित्वंमृत्योर्वश्योनबुध्यसे ॥ १४ ॥ कालपाशपरिक्षिप्ताभवंतिपुरुषाहिये ॥ कार्याकार्यंनजानंतितेनिरस्तषडिंद्रियाः ॥ १५ ॥ एवमुक्त्वाततोरामंसंरुध्यभ्रुकुटिंततः ॥ सददर्शमहासालमविदूरेनिशाचरः ॥ १६ ॥ रणेप्रहरणस्यार्थेसर्वतोह्यवलोकयन् ॥ सतमुत्पाटयामाससंदष्टदशनच्छदम् ॥१७॥ तंसमुत्क्षिप्यबाहुभ्यांविनर्दित्वामहाबलः ॥ राममुद्दिश्यचिक्षेपहतस्त्वमितिचाब्रवीत् ॥ १८ ॥ तमापतंतंबाणौघैश्छित्त्वारामःप्रतापवान् ॥ रोषमाहारयत्तीव्रंनिहंतुंसमरेखरम् ॥ १९ ॥ जातस्वेदस्ततोरामोरोषरक्तांतलोचनः ॥ निर्बिभेदसहस्रेणबाणानांसमरेखरम् ॥ २० ॥ तस्यबाणांतराद्रक्तंबहुसुस्रावफेनिलम् ॥ गिरेःप्रस्रवणस्येवधाराणांचपरिस्रवः ॥२१॥ विकलःसकृतोबाणैःखरोरामेणसंयुगे ॥ मत्तोरुधिरगंधेनतमेवाभ्यद्रवद्द्रुतम् ॥ २२ ॥

किचकिचाकर उसको उखाड लिया ॥१७॥ और घोर गंभीर शब्द करके दोनों भुजाओंसे इस वृक्षको उठा 'लो तुममारे गये' यह कह कर वह वृक्ष श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर चलाया ॥१८॥ प्रतापवान् श्रीरामचन्द्रजीने अपने ऊपर आते हुये इस शालके वृक्षको अनेक बाणोंसे काट डालकर युद्धमें खरको मारडालनेके लिये महाकोप किया ॥१९॥ महाक्रोध करनेके कारण श्रीरामचन्द्रजीके नयन लाल २ हो आये, शरीरसे पसीना निकलने लगा, उन्होंने हजार बाणोंसे खरके अंगको छिन्न भिन्न कर डाला ॥२०॥ पर्वतके झरनेसे जिस प्रकार पानीकी धारा निकलती रहतीहै, वैसेही खरकी देहमें जो बाण लगनेके कारण छिद्र हो गयेथे, उससे रुधिर गिरने लगा ॥ २१ ॥ खर श्रीरामचंद्रजीके बाणोंसे व्याकुल हो और रुधिरगन्धसे मतवाला होकर श्रीरामचंद्रजीके सामने बहुत शीघ्रतासे धाया ॥ २२ ॥

यह रुधिरसे डूबा हुआ और अतिशय क्रोधाविष्ट होकर इसप्रकारसे दौडा कि, कृतास्त्र श्रीरामचंद्रजी शीघ्रतासे दो तीन पग पीछेको हटगये ॥२३॥ इसके पीछे श्रीराम चंद्रजीने खरके मारडालनेके लिये दूसरे ब्रह्मदंडके समान अग्निसमान बाणग्रहण किया ॥२४॥ धीमान् देवराज इन्द्रजीने यह बाण श्रीरामचंद्रजीको अगस्त्यद्वारा दिया था धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजीने वही बाण धनुषपर चढाकर खरके ऊपर छोडा ॥२५॥ जब श्रीरामचंद्रजीने धनुषको खैंचकर वह महाबाण छोडा तब वहबाण वज्रके समान शब्द करता हुआ खरकी छातीमें लगा ॥२६॥ खर उस बाणकी अग्निसे भस्म होकर श्वेतारण्यमें रुद्रकरके भस्म हुए अन्धकासुरके समान पृथ्वीमें गिरपडा ॥२७॥ वृत्रासुर जिसप्रकार वज्रसे, नमुचि जिसप्रकार फेनसे; और बलासुर जिसप्रकार इन्द्रकेवज्रसे हत होकर गिरेथे खरभी वैसेही श्रीरामचन्द्रजीके

तमापतंतंसंक्रुद्धंकृतास्त्रोरुधिराप्लुतम् ॥ अपासर्पद्द्वित्रिपदंकिंचित्त्वरितविक्रमः ॥२३॥ ततःपावकसंकाशंवधायसमरेशरम्॥ खरस्यरामोजग्राहब्रह्मदंडमिवापरम् ॥२४॥ सतद्दत्तंमघवतासुरराजेनधीमता॥ संदधेचसधर्मात्मामुमोचचखरंप्रति ॥२५॥ सविमुक्तोमहाबाणोनिर्घातसमनिःस्वनः॥ रामेणधनुरायम्यखरस्योरसिचापतत् ॥२६॥ सपपातखरोभूमौदह्यमानःशराग्निना ॥ रुद्रेणेवविनिर्दग्धःश्वेतारण्येयथांधकः ॥२७॥ सवृत्रइववज्रेणफेनेननमुचिर्यथा॥ बलोवेंद्राशनिहतोनिप पातहतःखरः ॥२८॥ एतस्मिन्नंतरेदेवाश्चारणैःसहसंगताः॥ दुंदुभींश्चाभिनिघ्नंतःपुष्पवर्षंसमंततः ॥२९॥ रामस्योपरिसंहृष्टाववर्षुर्विस्मितास्तदा॥ अर्धाधिकमुहूर्तेनरामेणनिशितैःशरैः ॥३०॥ चतुर्दशसहस्राणिरक्षसांकामरूपिणाम्॥ खरदूषणमुख्यानांनिहतानिमहामृधे॥३१॥अहोबतमहत्कर्मरामस्यविदितात्मनः ॥ अहोवीर्यमहोदार्ढ्यंविष्णोरिवहिदृश्यते ॥ ३२ ॥

बाणसे नाश होकर पृथ्वीमें गिरा ॥२८॥ इस समय देवतागण चारणोंके सहितमहाहर्ष और विस्मययुक्त होकर नगाडे बजाते हुए श्रीरामचंद्रजीके ऊपर चारों ओरसे फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥२९॥ और सब देवता चारणगण फूल बरसाकर बडे विस्मित हुए कि, डेढही मुहूर्त्तमें तीखे बाणोंसे श्रीरामचंद्रजीने ॥३०॥ इस महायुद्धमें खरदूषण इत्यादि मुख्य राक्षसोंके सहित कामरूपी चौदह हजार राक्षसोंको मार डाला ॥३१॥ साक्षात् विष्णुजीके समान सर्वदर्शी श्रीरामचंद्रजी

१ कावेरीनदीके किनारे श्वेतारण्यमें एक श्वेत नाम राजर्षि तप करते थे,तब अन्धकासुर उन्हें मारनेको धाया उस समय शिवजीने लात मारकर उस राक्षसका संहार किया ॥२॥ बृहस्पतिजीके रूठ जानेपर जब इन्द्रने विश्वरूप को पुरोहित किया तब इन्द्रने गुप्त रूपसे दैत्योंके निमित्त उसे आहुति देते देख मारडाला विश्वरूपके मरनेपर उसके यज्ञकुंडसे वृत्रासुरको उत्पन्न किया जिसका बड़ा युद्ध इंद्रके साथ हुआ तब इन्द्रनेदधीचि ऋषिसे उनकी जांघका हाड मांग वज्रबनाय उससे वृत्रासुरकासंहार किया ॥ ३ ॥ नमुचि दैत्यकोब्रह्मा का वरदान था तुम गीले सूखे किसी प्रकारके आयुधसे न मरोगे तब इन्द्र वज्रमें फेनलपेटकर मारा जी जो गीला सूखा नहीं था ॥ राम राम कहि तन तर्जाहि. पार्वाहि पद निर्वाण । करि उपाय रिपु मारे, छिनमें कृपानिधान ॥

का क्याही बडा आश्चर्यका कार्य है अहो ! क्या अद्भुत वीर्य है ! और क्या विस्मय उपजानेवाली दृढता हमने देखी ! ॥ ३२ ॥ यह बात कहते२एकत्र हुए सब देवतालोग अपने२स्थानको चले गये उसके पीछे राजर्षि व महर्षिगण एकत्र होकर आये ॥ ३३ ॥ अगस्त्यजीके सहित श्रीरामचंद्रजीकी बड़ाई कर मुदित होकर सब ऋषिश्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजीसे बोले कि, इसी कारणसे महातेजस्वी इन्द्रजी ॥ ३४ ॥ शरभंगजीके पुण्य आश्रममें आपके निकट आये थे । इसी कारणसे महर्षिगण बडे उपायसे आपको यहां पर लाये हैं ॥ ३५ ॥ बस एक यही कार्य था कि, केवल इन पाप कर्म करनेवाले राक्षसोंको मरवाना था क्योंकि यह सब हमारे शत्रु थे, सो हे दशरथकुमार ! आपने यह हमारा कार्य सिद्ध किया ॥ ३६ ॥ अब महर्षिलोग दंडकारण्यमें अपना २ धर्म स्वच्छन्द हो करेंगे मुनिगण इतना कह ही रहे थे कि, इतनेमें वीर लक्ष्मणजी सीताजीके सहित ॥ ३७ ॥ गिरिगुहासे सुखसहित बाहर आकर अपने आश्रममें प्रवेश करते हुए

इत्येवमुक्त्वातेसर्वेययुर्देवायथागतम् ॥ ततोराजर्षयःसर्वेसंगताःपरमर्षयः ॥ ३३ ॥ सभाज्यमुदितारामंसागस्त्याइदमब्रुवन् ॥ एतदर्थंमहातेजामहेंद्रःपाकशासनः ॥३४॥ शरभंगाश्रमंपुण्यमाजगामपुरंदरः ॥ आनीतस्त्वमिमंदेशमुपायेनमहर्षिभिः ॥३५॥ एषांवधार्थंशत्रूणांरक्षसांपापकर्मणाम् ॥ तदिदंनःकृतंकार्यंत्वयादशरथात्मज ॥३६॥ स्वधर्मंप्रचरिष्यंतिदंडकेषुमहर्षयः ॥ एतस्मिन्नंतरेवीरोलक्ष्मणःसहसीतया ॥३७॥ गिरिदुर्गाद्विनिष्क्रम्यसंविवेशाश्रमेसुखी ॥ ततोरामस्तुविजयीपूज्यमानोमहर्षिभिः ॥३८॥ प्रविवेशाश्रमंवीरोलक्ष्मणेनाभिपूजितः ॥ तंदृष्ट्वाशत्रुहंतारंमहर्षीणांसुखावहम् ॥३९॥ बभूवहृष्टावैदेहीभर्तारंपरिषस्वजे ॥ मुदापरमयायुक्तादृष्ट्वारक्षोगणान्हतान् ॥४०॥ रामंचैवाव्ययंदृष्ट्वातुतोषजनकात्मजा ॥ ४१ ॥ ततस्तुतराक्षससंघमर्दनंसंपूज्यमानंमुदितैर्महात्मभिः ॥ पुनःपरिष्वज्यमुदान्वितानना बभूवहृष्टाजनकात्मजातदा ॥४२॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० च० सा० अर० त्रिंशःसर्गः ॥ ३० ॥

इसके पीछे विजयी श्रीरामचन्द्रजी महर्षियों करके पूजित होकर ॥ ३८ ॥ और लक्ष्मणजीसे भी पूजित हो अपने आश्रममें आगमन करते हुए नित महर्षियोंके आनंद बढानेवाले शत्रुओंके दमन करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी को देख ॥ ३९ ॥ श्रीजानकी प्रसन्न हुईं, और अपने पति श्रीरामचन्द्रजीसे अति प्रेम पूर्वक मिलीं, और फिर राक्षसोंको मरे हुए देख परम सुख माना तथा ॥ ४० ॥ श्रीरामचन्द्रजी को समस्तही निरापद देखकर श्रीजानकीजी अति संतोष को प्राप्त हुईं ॥ ४१ ॥ अनन्तर सुकुमारी जनक दुलारी परम प्रेम और हर्षमें भर कर राक्षसकुलके संहार करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीसे फिर मिलीं और महात्मा ऋषिगण प्रफुल्लित होकर अनेक २ प्रकारसे श्रीरामचन्द्रजीकी पूजा करने लगे ॥ ४२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्वा० वाल्मी० आदि० अरण्यकांडे भाषायां त्रिंशः सर्गः ॥ ३० ॥

खरदूषण त्रिशिरा आदिक राक्षसोंके मारेजानेपर अकम्पन नामक राक्षस शीघ्रतासे जनस्थानसे पलायनकर लंकामें जाकर रावणसे कहने लगा ॥ १ ॥ हे राजन् ! जनस्थानवासी अनेक राक्षस संग्राममें मारेगये और उनके स्वामी खरकाभीसंहारहोगया । और मैं किसी भांतिसे जीता बच यहां भागकर आयाहूँ ॥२॥ जब अकम्पनने ऐसा कहा तो क्रोधमें भरनेके कारण रावणके नेत्र लाल हो आये और वह अपने तेजसे अकंपनको भस्मसा करताहुआ बोला ॥३॥ किसकी उमर बीत चुकी ? त्रिलोकी में किसको आश्रय मिलना दुर्लभ हुआ है? वह कौन है ? जिसनेहमारा महाभयंकर जनस्थान ध्वंस कर दिया ॥ ४ ॥ हमारा अप्रिय कार्य करके इन्द्र, यम, कुबेर अथवा विष्णुभी सुखसे नहीं रह सकते ॥ ५ ॥ हम कालके भी काल हैं हम अग्निकोभी जला सकते हैं, अधिक क्य कहैं हम मृत्युको भी मृत्युधर्ममें

त्वरमाणस्ततोगत्वाजनस्थानादकंपनः॥प्रविश्यलंकांवेगेनरावणंवाक्यमब्रवीत् ॥१॥ जनस्थानस्थिताराजन्राक्षसाबहवोहताः ॥ खरश्चनिहतः संख्येकथंचिदहमागतः ॥ २ ॥ एवमुक्तोदशग्रीवःक्रुद्धःसंरक्तलोचनः ॥ अकंपनमुवाचेदंनिर्दहन्निवतेजसा ॥ ३ ॥ केनभीमंजनस्थानंहतंमम परासुना ॥ कोहिसर्वेषुलोकेषुगतिंनाधिगमिष्यति ॥ ४ ॥ नहिमेविप्रियंकृत्वाशक्यंमघवतासुखम् ॥ प्राप्तुंवैश्रवणेनापिनयमेनचविष्णुना ॥५॥ कालस्यचाप्यहंकालोदहेयमपिपावकम् ॥ मृत्युंमरणधर्मेणसंयोजयितुमुत्सहे ॥ ६॥ वातस्यतरसावेगंनिहंतुमपिचोत्सहे ॥ दहेहमपि संक्रुद्धस्तेजसादित्यपावकौ ॥ ७ ॥ तथाक्रुद्धंदशग्रीवंकृतांजलिरकंपनः ॥ भयात्संदिग्धयावाचारावणंयाचतेऽभयम् ॥ ८ ॥ दशग्रीवोऽभयं तस्मैप्रददौरक्षसांवरः ॥ सविस्रब्धोऽब्रवीद्वाक्यमसंदिग्धमकंपनः ॥ ९ ॥ पुत्रोदशरथस्यास्तेसिंहसंहननोयुवा ॥ रामोनाममहास्कंधोवृत्तायत महाभुजः ॥ १० ॥ श्यामःपृथुयशाःश्रीमानतुल्यबलविक्रमः ॥ हतस्तेनजनस्थानेखरश्चसहदूषणः ॥११॥ अकंपनवचःश्रुत्वारावणोराक्षसाधिपः॥नागेंद्रइवनिःश्वस्यइदंवचनमब्रवीत्॥ १२॥

योजित कर सकते हैं ॥६॥ हम क्रोधित हों तो अग्नि और सूर्यको भी भस्मकरडालें और हम अपने वेगसे पवनका भी वेग रोक सकते हैं ॥ ७ ॥ दशवदन रावण जब इस प्रकारसे क्रोधित हुआ तब अकंपनने मारेभयके हाथ जोड सन्दिग्ध वचनोंसे अभयदान मांगा ॥८॥ तब राक्षसवर दशाननने अकंपनको अभय दिया, तब अकंपन विश्वास करस्पष्ट २ वृत्तांत कहने लगा ॥९॥ कि, श्रीराजा दशरथजीकेपुत्र सिंहसमान पुष्ट अंगवाले युवावस्थाको प्राप्त एक रामचंद्रनामकहैं । उनके ऊँचे कन्धे व बडी२भुजा हैं ॥ १० ॥ श्यामरूप;शोभायमान अपने तुल्य किसीदूसरेका बल विक्रय न रखनेवाले उन्हीं श्रीरामचंद्रजीने जनस्थानमें दूषणके सहित खरका संहार किया है ॥ ११ ॥ राक्षसोंका राजा रावण अकंपनकी यहवार्ता सुनकर मदसे अन्धे हाथीके समान श्वास लेता हुआ यह वचन कहनेलगा

हे अकम्पन ! तू यह तो बता कि, रामचन्द्र समस्त देवता और इन्द्रके साथ मिलकर क्या जनस्थानमें आगमन करते हैं ? ॥ १३ ॥ अकम्पन रावणके ऐसे वचन सुनकर उसके निकट फिर महात्मा श्रीरामचन्द्रजी का बल और विक्रम कीर्त्तन करके कहने लगा ॥१४॥ कि, रामचन्द्रजी महातेजस्वी हैं सर्व धनुषधारण करनेवालोंमें श्रेष्ठ हैं, दिव्य शस्त्रास्त्रोंके गुणोंसे सम्पन्न संग्राममें बडेही धर्मात्मा इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी हैं ॥१५॥ उनका छोटा भाई लक्ष्मणजी भी उनकेही समान हैं उनका शब्द देवदुन्दुभी के समान है, दोनों नेत्र अरुणवर्ण हैं और उनका मुखमंडल पूर्णमासीके चन्द्रमाके समान है ॥१६॥ वायु जिसप्रकार अग्निकेसाथमिल कर जनस्थानको जला डालती है श्रीराज श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीने भी वैसेही लक्ष्मणजीके साथ मिलकर जनस्थानको ध्वंस कर डालाहै ॥१७॥ महात्मा देवतालोग वहां नहीं आये थे केवल श्रीरामचन्द्रजीनेही फलक लगेहुए सुवर्ण पंखयुक्त बाण छोडे थे इसकारण इस विषयमें संदेह करनेका प्रयोजन नहींहै ॥१८॥ श्रीरामके

ससुरेंद्रेणसंयुक्तोरामःसर्वामरैःसह ॥ उपयातोजनस्थानंब्रूहिकच्चिदकंपन ॥१३॥ रावणस्यपुनर्वाक्यंनिशम्यतदकंपनः॥आचचक्षेबलंतस्यविक्रमंचमहात्मनः ॥ १४ ॥ रामोनाममहातेजाःश्रेष्ठःसर्वधनुष्मताम् ॥ दिव्यास्त्रगुणसंपन्नःपरंधर्मंगतोयुधि ॥१५॥ तस्यानुरूपोबलवान्रक्ताक्षोदुंदुभिस्वनः ॥ कनीयाँल्लक्ष्मणोभ्राताराकाशशिनिभाननः ॥१६॥ सतेनसहसंयुक्तःपावकेनानिलोयथा॥श्रीमान्राजवरस्तेनजनस्थानंनिपातितम् ॥१७॥ नैवदेवामहात्मानोनात्रकार्याविचारणा ॥ शरारामेणतूत्सृष्टारुक्मपुंखाःपतत्रिणः ॥ १८ ॥ सर्पाःपंचाननाभूत्वाभक्षयंतिस्मराक्षसान् ॥ येनयेनचगच्छंतिराक्षसाभयकर्शिताः ॥ १९ ॥ तेनतेनस्मपश्यंतिराममेवाग्रतःस्थितम् ॥ इत्थंविनाशितंतेनजनस्थानंतवानघ ॥ २० ॥ अकंपनवचःश्रुत्वारावणोवाक्यमब्रवीत् ॥ गमिष्यामिजनस्थानंरामंहंतुंसलक्ष्मणम् ॥ २१ ॥ अथैवमुक्तेवचनेप्रोवाचेदमकंपनः ॥ शृणुराजन्यथावृत्तंरामस्यबलपौरुषम् ॥ २२ ॥असाध्यःकुपितोरामोविक्रमेणमहायशाः ॥ आपगायास्तुपूर्णायावेगंपरिहरेच्छरैः ॥ २३ ॥

सब बाणोंने पंचमुखी सर्प होकर राक्षसोंको भक्षण कियाहै । राक्षस लोग युद्धमें भयभीत हो जिस जिस दिशाको भागने लगे ॥१९॥ उसी २ ओर उन्होंने देखा कि, रामचन्द्र उनके आगे खडे हैं हे निष्पाप ! इसप्रकार उन्होंने आपका अधिकार किया हुआ जनस्थान उजाड डाला "इसमें रामचंद्रजी की अनंत शक्ति ईश्वरता सूचन करीहै" ॥२०॥ अकम्पनकी यह भयानक वार्त्ता सुनकर रावणने कहा कि, हम राम लक्ष्मणको मारनेके कारण अभी जनस्थानको जायँगे ॥२१॥ जब रावणने इस प्रकार कहा तब अकंपन कहने लगा कि, हे राजन् ! राममें जिसप्रकार बल और पौरुष और चरित्र है उसको श्रवण करो ॥२२॥ कि, जब महायशस्वी श्रीरामचन्द्रजी क्रोध करें तो उनको निवारण करनेको ब्रह्मादि देवताओंको भी साध्य नहींहै वह जलसे पूर्ण नदीका वेग भी अपने बाणोंसे रोक सकतेहैं ॥२३॥

आकाश मंडलसे ग्रह नक्षत्र और सर्व तारागणों को रामचंद्रजी गिरा सकते हैं और वह विपदमें पडी हुई पृथ्वी को भी उबार सकते हैं॥२४॥ समुद्रकी वेला भूमिको तोड ताडकर रामचन्द्र सबलोकोंको जलमेंडुबो सकतेहैं वह अपने बाणोंसे सागरका अथवा पवनका वेग भी रोक सकते हैं॥२५॥ और वह महायशस्वी श्रीरामचन्द्रजी श्रेष्ठपुरुष अपने विक्रमसे समस्तलोकोंका संहार करके फिर नई प्रजाको उत्पन्न कर सकते हैं ॥२६॥ हे दशानन ! पापात्मा लोग जिसप्रकार स्वर्गके जीतनेक सामर्थ्य नहीं रखते सो आप या आपके राक्षस लोग कोई भी युद्धमें श्रीरामचन्द्रके जीतनेको समर्थ नहीहैं ॥ २७ ॥ मैं तो यह जानता हूं कि, देवासुर सब एकत्र होकर भी उनको नहीं बध करसकते, तो भी उनके मारनेको एक उपाय है सो चित्तदेकर सुनिये ॥२८॥ सीता नामक उनकी स्त्री एक लोकके मध्यमें

सतारग्रहनक्षत्रंनभश्चाप्यवसादयेत्॥असौरामस्तुसीदंतींश्रीमानभ्युद्धरेन्महीम् ॥२४॥ भित्त्वावेलांसमुद्रस्यलोकानाप्लावयेद्विभुः ॥ वेगंवापिसमुद्रस्यवायुंवाविधमेच्छरैः ॥२५॥ संहृत्यवापुनर्लोकान्विक्रमेणमहायशाः ॥ शक्तः श्रेष्ठःसपुरुषःस्रष्टुंपुनरपिप्रजाः ॥ २६ ॥ नहिरामोदशग्रीवशक्योजेतुंरणेत्वया ॥ रक्षसांवापिलोकेनस्वर्गःपापजनैरिव ॥ २७ ॥ नतंवध्यमहंमन्येसर्वैर्देवासुरैरपि॥ अयंतस्यवधोपायस्तन्ममैकमनाःशृणु ॥ २८ ॥ भार्यातस्योत्तमालोकेसीतानामसुमध्यमा ॥ श्यामासमविभक्तांगीस्त्रीरत्नंरत्नभूषिता ॥ २९ ॥ नैवदेवीनगंधर्वीनाप्सरानचपन्नगी ॥ तुल्यासीमंतिनीतस्यमानुषीतुकुतोभवेत् ॥ ३० ॥ तस्यापहरभार्यांत्वंतंप्रमथ्यमहावने ॥ सीतयारहितोरामोनचैवहिभविष्यति ॥३१॥ अरोचयततद्वाक्यंरावणोराक्षसाधिपः ॥ चिंतयित्वामहाबाहुरकंपनमुवाचह ॥३२॥ बाढंकल्यंगमिष्यामिएकःसारथिनासह ॥ आनेष्यामिचवैदेहीमिमांहृष्टोमहापुरीम् ॥३३॥ तदेवमुक्त्वाप्रययौखरयुक्तेनरावणः॥ रथेनादित्यवर्णेनदिशःसर्वाःप्रकाशयन् ॥३४॥

सर्व श्रेष्ठ श्यामा अवस्थावाली है वह स्त्रियोंमें रत्नकी नाईं है वह रत्नोंसे भूषित है युवाअवस्था आरही है इसके सब अंग बराबर हैं कोई छोटा नहीं ॥२९॥ न देवी न देवता, न गन्धर्वी, न अप्सरा, न पन्नगी, कोई भी उसकी तुल्यता नहीं कर सकती फिर मनुष्यकी स्त्री किसभांति उसके समान हो सकती है ! ॥३०॥ सो अब महावनमें जाकर किसीप्रकार छल बल चतुराईसे उनकी वह स्त्री हर लीजिये जब उनकी स्त्री हरी जायगी तब राम न बचेंगे बरन् अवश्यही मर जायँगे ॥ ३१ ॥ यह बात महाबाहु राक्षसराज रावणके मनको भायी। वह शोच विचार करके अकम्पनसे बोला ॥ ३२ ॥ कि, अच्छा ! हम अकेले सारथीके साथ वहाँ जायँगे और जानकीको हर्ष सहित इस लंकापुरीमें लावेंगे ॥३३॥ इसप्रकार कहकर राक्षसराज रावण सूर्यके समान प्रभाववाले रथपर जिस रथमें खच्चर जुते थे सवार

हो समस्त दिशा विदिशाओंको प्रकाशित करता हुआ चला ॥३४॥ राक्षसेन्द्रका वह रथ तारागणोंके मार्ग वेगसे भरा हुआ चलनेके कारण मेघमंडलमें रामचन्द्रके समान शोभा विस्तार करताहुआ ॥ ३५ ॥ इसके पीछे रावण बहुत दूर चलकर ताडकाके पुत्र मारीचके स्थानपर पहुँचा मारीचने विविध प्रकारके खाने पीनेके पदार्थोंसे राक्षसनाथ रावणकी पूजा की । वह पदार्थ मनुष्योंके भक्षण करनेके अयोग्य ॥ ३६ ॥ जब मारीच इस प्रकार आसन, जल और खाने पीनेकी वस्तुओंसे रावणकी पूजा कर चुका तब अर्थयुक्त वचन रावणसे बोला ॥ ३७ ॥ राजन् ! राक्षसाधिप ! राक्षसगण कुशल हैं ? परन्तु आपके शीघ्र यहां आगमन करनेसे मुझको राक्षसोंकी कुशलमें शंका होती है ॥ ३८ ॥ जब मारीचने इसप्रकार कहा तो वचन बोलनेमें चतुर महातेजस्वी रावण कहने लगा ॥ ३९ ॥ हे तात ! बडे कठिन कर्म करनेवाले रामचन्द्रजीने हमारे खर आदि जो सीमारक्षक (हदकी रखवाली करनेवाले) थे उनको मारडाला और अब जनस्थानको भी

सरथोराक्षसेंद्रस्यनक्षत्रपथगोमहान् ॥ चंचूर्यमाणःशुशुभेजलदेचंद्रमाइव ॥३५॥ सदूरेचाश्रमंगत्वाताटकेयमुपागतम् ॥ मारीचेनार्चितोराजा भक्ष्यभोज्यैरमानुषैः ॥ ३६ ॥ तंस्वयंपूजयित्वातुआसनेनोदकेनच ॥ अर्थोपहितयावाचामारीचोवाक्यमब्रवीत् ॥३७॥ कच्चित्सुकुशलंराजँल्लोकानांराक्षसाधिप ॥ आशंकेनाधिजानेत्वंयतस्तूर्णमुपागतः॥ ३८॥ एवमुक्तोमहातेजामारीचेनसरावणः ॥ ततःपश्चादिदंवाक्यमब्रवीद्वाक्यकोविदः ॥३९॥ आरक्षोमेहतस्तातरामेणाक्लिष्टकारिणा ॥ जनस्थानमवध्यंतत्सर्वंयुधिनिपातितम् ॥ ४० ॥ तस्यमेकुरुसाचीव्यंतस्यभार्यापहारणे ॥ राक्षसेंद्रवचःश्रुत्वामारीचोवाक्यमब्रवीत् ॥४१॥ आख्याताकेनवासीतामित्ररूपेणशत्रुणा ॥ त्वयाराक्षसशार्दूलकोननंदतिनंदितः ॥४२॥ सीतामिहानयस्वेतिकोऽब्रवीतिब्रवीहिमे ॥ रक्षोलोकस्यसर्वस्यकःशृंगंछेत्तुमिच्छति ॥४३॥ प्रोत्साहयतियश्चत्वांसचशत्रुरसंशयम् ॥ आशीविषमुखाद्दंष्ट्रामुद्धर्तुंचेच्छतित्वया ॥ ४४ ॥ कर्मणाऽनेनकेनासिकापथंप्रतिपादितः ॥ सुखसुप्तस्यतेराजन्प्रहृतंकेनमूर्धनि ॥ ४५ ॥

युद्धमें समस्तही विध्वंस कर दिया है ॥ ४० ॥ इसकारणसे तुमको रामचन्द्रजी की स्त्री हर लानेके कार्यमें हमारी सहायता करनी होगी । मारीच असुरनाथ रावणकी यह वार्त्ता सुनकर कहने लगा ॥४१॥ कि, किस मित्ररूपी शत्रुने तुमसे सीताकी वार्त्ता कही ? हे राक्षसश्रेष्ठ ! आपके विशेष भांति सन्तुष्ट करनेपर भी कोई आपसे सन्तुष्ट नहीं ज्ञात हो तो ॥ ४२ ॥ "सीताको लंकामें ले आओ" यह बात किसने आपसे कही, सो बताओ । किसने समस्त राक्षसकुलके शृंग काटनेकी इच्छा कीहै ॥ ४३ ॥ जिसने आपको इसप्रकार उत्साह दिया है वह निश्चयही तुम्हारा शत्रु है. कारण कि; उसने सर्पके मुखसे दांत निकालनेके लिये आपको आगे बढाया है ॥४४॥ किसने ऐसा कर्म करके तुम्हारे विनाशका मार्ग खोजा अर्थात् तुम्हें इस मार्गमें चलाना चाहा ? राजन् ! आप सुखसे सो रहे थे

सो किसने तुम्हारे मस्तकपर प्रहार किया ॥४५॥ हे रावण ! विशुद्धवंश सूर्यकुलही जिनकी लम्बी शुण्ड है प्रतापही जिनका मद है, जिनकी बडी भुजायेंही दोनों दांत हैं उन रामरूप मदवाले हाथीको संग्राममें दर्शन करनेके योग्य आप नहीं हैं ॥ ४६ ॥ हे राजन् ! संग्रामके मध्यकी स्थिरताके लिये उत्सुकता ही मानोबाल हैं चतुर राक्षसगणरूपी मृगोंके नाश करनेवाले वाणही मानों जिनके अंग हैं, पूर्ण पैने खड्ग ही जिनके दांत हैं, सो इस प्रकारके रामरूप सोतेहुए सिंहको जगादेनेके योग्य आप नहीं हैं ॥ ४७ ॥ हे राक्षसराज ! धनुषरूप प्राणोंको हरण करनेवाले ग्राहादिक हिंसक जन्तुओंसे युक्त बाहुद्वारा बाणोंके छोडने रूप दलदलसे भरे और बाणरूप तरंगोंसे युक्त घोर युद्ध जलसे भरे अतिघोर रामरूप पातालके मुखमें कूदना तुमको उचित नहीं है ॥४८॥ इसकारण हे लंकेश्वर राक्षसेंद्र ! प्रसन्न होओ और प्रसन्न होकर सीधे २ लंकाको चले जाओ और वहां जाकर नित्य अपनी स्त्रियोंके सहित सुखसे विहार करो। और भार्यासहित

विशुद्धवंशाभिजनाग्रहस्ततेजोमदःसंस्थितदोर्विषाणः ॥ उदीक्षितुंरावणनेहयुक्तःससंयुगेराघवगंधहस्ती ॥४६॥ असौरणांतःस्थितिसंधिवालो विदग्धरक्षोमृगहानृसिंहः ॥ सुप्तस्त्व याबोधयितुंनशक्यःशरांगपूर्णोनिशितासिदंष्ट्रः ॥४७॥ चापापहारेभुजवेगपंकेशरोर्मिमालेसुमहाहवौघे ॥ नरामपातालमुखेऽतिघोरेप्रस्कंदितुंराक्षसराजयुक्तम् ॥४८॥ प्रसीदलंकेश्वरराक्षसेंद्रलंकांप्रसन्नोभवसाधुगच्छ ॥ त्वंस्वेषुदारेषुरमस्वनित्यं रामःसभार्योरमतांवनेषु ॥४९॥एवमुक्तोदशग्रीवोमारीचेनसरावणः ॥ न्यवर्ततपुरींलंकांविवेशचगृहोत्तमम् ॥५०॥ इत्यार्षे श्रीम० वा०आ० च० स० अरण्यकांडेएकत्रिंशःसर्गः ॥३१॥ ततःशूर्पणखादृष्ट्वासहस्राणिचतुर्दश ॥ हतान्येकेनरामेणरक्षसांभीमकर्मणाम् ॥ १ ॥ दूषणंच खरंचैव हतंत्रिशिरसंरणे ॥ दृष्ट्वापुनर्महानादान्ननादजलदोपमा ॥ २ ॥ सादृष्ट्वाकर्मरामस्यकृतमन्यैःसुदुष्करम् ॥ जगामपरमोद्विग्नालंकांरावणपालिताम् ॥ ३ ॥ साददर्शविमानाग्रेरावणंदीप्ततेजसम् ॥ उपोपविष्टंसचिवैर्मरुद्भिरिववासवम् ॥४॥ आसीनंसूर्यसंकाशेकांचनेपरमासने ॥ रुक्मवेदिगतंप्राज्यंज्वलंतमिवपावकम् ॥ ५ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने भी वनमें आनन्द भोगें ॥४९॥ जब मारीचने इस प्रकार कहा तब दशवदन रावण लंकाको लौटकर अपने श्रेष्ठ गृहमें प्रवेश करता हुआ ॥५०॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अरण्यकांडे भाषायामेकत्रिंशः सर्गः ॥३१॥ इस अवसरमें इधर इकले श्रीरामचन्द्रजीसे भयंकर कर्म करनेवाले चौदह हजार राक्षसोंको मरे हुए देखकर ॥ १ ॥ व खरदूषण और त्रिशिराको मरा हुआ देखकर शूर्पणखा मेघके समान गंभीर शब्दसे गर्जने लगी ॥ २ ॥ औरं के करनेके अयोग्य श्रीरामचन्द्रजी का किया कर्म देखकर अति उकसा के रावणपालिता लंका नगरीको शूर्पणखा गई ॥ ३ ॥ वहां जाकर देखा कि, महातेजस्वी रावण विमान पर बैठा है देवतागण जिस प्रकार इन्द्रके निकट बैठे रहते हैं, मंत्रीगण वैसेही रावणके धोरे बैठे हैं ॥ ४ ॥ सूर्यके समान प्रकाशित हुए सुवर्णमय

श्रेष्ठ आसन पर बैठनेसे, सुवर्णमय वेदिमध्यगत प्रज्वलित अग्निके समान उसकी शोभा हो रही है ॥ ५ ॥ देवता, गन्धर्व भूत व महात्मा ऋषि लोगोंके जीतने अयोग्य अति भयंकर मुँह बाये मानों दूसरा यमराजही बैठा था ॥ ६ ॥ फिर देवताओं व राक्षसोंके मणियुक्त वज्रकक्ष घाव सहित और ऐरावत हाथीके दांतोंसे बडा भारी चिह्न छातीमें विद्यमान ॥ ७ ॥ उसकी बीस भुजा व दशशिर, पोशाक बडी सुहावन मनभावन चौडी छाती और शरीर राज लक्षणयुक्त ॥८॥ वह जो वैडूर्य मणि पहर रहा है, उसकी देह की कान्ति भी वैडूर्य मणिके सदृश थी कानोंके कुंडल तपाये हुए सुवर्ण के बने, बीसों भुजा परम सुन्दर, दातोंकी कतार अति सुन्दर, वदनमंडल अतीव महान्, आकार पर्वतके समान ॥ ९ ॥ देवताओंके सहित सैकडों संग्रामोंमें विष्णु चक्रके लगनेसे व और २ अनेक महा संग्रामोंमें

देवगंधर्वभूतानामृषीणांचमहात्मनाम्॥अजेयंसमरेघोरंव्यात्ताननमिवांतकम् ॥६॥ देवासुरविमर्देषुवज्राशनिकृतव्रणम् ॥ ऐरावतविषाणाग्रैरुत्कृष्टकिणवक्षसम् ॥७॥ विंशद्भुजंदशग्रीवंदर्शनीयपरिच्छदम् ॥ विशालवक्षसंवीरंराजलक्षणलक्षितम् ॥८॥ नद्धवैदूर्यसंकाशंतप्तकांचनभूषणम् ॥ सुभुजंशुक्लदशनंमहास्यंपर्वतोपमम् ॥ ९ ॥ विष्णुचक्रनिपातैश्चशतशोदेवसंयुगे ॥ अन्यैःशस्त्रैःप्रहारैश्चमहायुद्धेषुताडितम् ॥ १० ॥ अहतांगैःसमस्तैस्तंदेवप्रहरणैस्तदा॥अक्षोभ्याणांसमुद्राणांक्षोभणंक्षिप्रकारिणम् ॥११॥ क्षेप्तारंपर्वताग्राणांसुराणांचप्रमर्दनम्॥उच्छेत्तारंचधर्माणांपरदाराभिमर्शनम् ॥१२॥ सर्वदिव्यास्त्रयोक्तारंयज्ञविघ्नकरंसदा ॥ पुरींभोगवतींगत्वापराजित्यचवासुकिम्॥१३॥तक्षकस्यप्रियांभार्यांपराजित्यजहाररयः॥कैलासंपर्वतंगत्वाविजित्यनरवाहनम् ॥१४॥ विमानंपुष्पकंतस्यकामगंवैजहाररयः॥वनंचैत्ररथंदिव्यंनलिनींनंदनंवनम् ॥१५॥

अस्त्रोंके प्रहारसे बहुत भांति ताडित हुआ ॥ १० ॥ और उसके सब अंग भी देवताओं करके शस्त्रद्वारा घायल हुए हैं, किसीसे चलायमान नहीं हों ऐसे समुद्रोंको भी खलबलानेकी जिसमें विशेष सामर्थ्य है, और शीघ्रही सब कार्य करने वाला ॥११॥ सब पर्वतोंके कंगूरोंको उखाड़ डालनेवाला देवताओंका मर्दन करनेवाला सब धर्मोंका जडसे उखाडनेवाला पराई पतिव्रतास्त्रियोंका सत्यहरणकारी ॥१२॥ दिव्यास्त्रोंका प्रयोग कारी और सर्व यज्ञ विघ्नकारी. भोगवती नगरीमें जाय नाग जरा वासुकीको जीत ॥१३॥ तक्षक नामक सर्पकी पराजय करता हुआ उसकी प्रिय स्त्रीको हरण करनेवाला कैलास पर्वतपर गमन करके नरवाहनकुबेरको जीतनेवाला ॥ १४ ॥ और उसका मन इच्छासे चलनेवाला पुष्पक विमान हरण करनेवाला; चैत्र रथ नामक दिव्यवन, नलिनी, नन्दन, कानन ॥ १५ ॥

और भी सब देवताओंके उद्यानोंका विनाश क्रोधसे जिसने कर दियाहै फिर उदय होते हुए महा भाग्य चन्द्रमा व सूर्यको ॥१६॥ दोनों बाँहोंसे निवारण करनेवाला पर्वतोंकेसमान ऊंचा व वीर्यवान् व दश हजार वर्ष वनमें तपकर ॥१७॥ ब्रह्माजीको अपने शिर काट २ कर जिसने चढा दिये थे, देव, दानव, गन्धर्व, पिशाच, पतंग वा उरग ॥१८॥ किसीके द्वारा भी जिसको मृत्युका भय नहीं, जिसने केवल मनुष्यों को कुछ न समझनेसे अभय नहीं माँगा और ब्राह्मण लोग यज्ञोंमें मंत्र पढ २ कर जिसकी स्तुति करने लगे थे ॥१९॥ यह महाबलवान् रावण होम शालामें गमन करके पवित्र सोमको नष्टकर देता और दक्षिणा देनेके समय यज्ञको ध्वंसकर देता सर्वदा ब्राह्मण सहनादिक क्रूरकार्योंको किया करता ॥२०॥ सदा प्रजागणों का अहित आचरण करता कर्कश था अनेक प्रकार की पीडा देकर सब लोकोंका भय उपजाने वाला होनेके कारण लोक उसको रावण कहा करते थे ॥२१॥ राक्षसी शूर्पणखाने अपने क्रूर महाबली भ्राताको देखा वह

विनाशयतियः क्रोधाद्देवोद्यानानिवीर्यवान् ॥ चन्द्रसूर्यौमहाभागावुत्तिष्ठंतौपरंतपौ ॥ १६ ॥ निवारयतिबाहुभ्यांयः शैलशिखरोपमः ॥ दशवर्षसहस्राणितपस्तप्त्वामहावने ॥१७॥ पुरास्वयंभुवेधीरः शिरांस्युपजहारयः ॥ देवदानवगंधर्वपिशाचपतगोरगैः ॥१८॥ अभययस्यसंग्रामेमृत्युतोमानुषादृते ॥ मंत्रैरभिष्टुतंपुण्यमध्वरेषुद्विजातिभिः ॥१९॥ हविर्धानेषुयः सोममुपहंतिमहाबलः ॥ प्राप्तयज्ञहरंदुष्टंब्रह्मघ्नंक्रूरकारिणम् ॥२०॥ कर्कशंनिरनुक्रोशंप्रजानामहितेरतम् ॥ रावणंसर्वभूतानांसर्वलोकभयावहम् ॥२१॥ राक्षसीभ्रातरंक्रूरंसाददर्शमहाबलम् ॥ तंदिव्यवस्त्राभरणंदिव्यमाल्योपशोभितम् ॥२२॥ आसनेषूपविष्टंतंकालेकालमिवोद्यतम् ॥ राक्षसेंद्रंमहाभागंपौलस्त्यकुलनंदनम् ॥२३॥ उपगम्याब्रवीद्वाक्यंराक्षसीभयविह्वला ॥ रावणंशत्रुहंतारंमंत्रिभिः परिवारितम् ॥२४॥ तमब्रवीद्दीप्तविशाललोचनंप्रदर्शयित्वाभयलोभमोहिता ॥ सुदारुणंवाक्यमभीतचारिणीमहात्मनाशूर्पणखाविरूपिता ॥ २५ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ० च०सा० अरण्यकांडे द्वात्रिंशः सर्गः ॥३२॥

रावण दिव्यवस्त्र, दिव्य गहने और दिव्यमाला पहर रहाथा ॥२२॥ आसनपर भली प्रकारसे बैठा था, उस काल कालकी मूर्तिसा प्रतीत होता था ऐसा राक्षस नाथ महाभाग पौलस्त्यकुल नंदन रिपुओंका नाश करनेवाला ॥ २३ ॥ इस प्रकारके गुणोंसे युक्त रावणको देख लक्ष्मणजीने जो नाक, कान काट डाले थे इस कारण भयसे विह्वल हो, मंत्रियोंके बीचमें बैठे हुए रावणसे बोली ॥ २४ ॥ इस प्रकारकी निशाचरी जो कि श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा कुरूपको प्राप्त होगई थी जिसका नाम शूर्पणखा था वह निर्भय दारुण वचन कहती हुई लोभसे मोहित भय दिखाती हुई दीप्तिमान् बड़े नेत्रवाले रावणसे बोली ॥ २५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदि० अर० भाषायां द्वात्रिंशः सर्गः ॥ ३२ ॥

उस समय दीन होरही शूर्पणखा क्रोध युक्त हो बस लोकोंके रुवानेवाले रावणसे मंत्रिगणोंके सामने कडुवे वचन कहने लगी ॥१॥ कि,तुम स्वेच्छाचारी हो कर सदाही काम भोगमें मतवाले रहते हो और तुम किसी विषयमें किसीका भी निषेध करना या बाधा देना नहीं मानते। इसी कारण अवश्यही जाननेके योग्य जो इससमय भयंकर विपद आ पहुँची है,तुम उसको नहीं जानते ॥२॥ परन्तु जो राजा स्त्री इत्यादिक ग्राम्य भोगवस्तुओंमें सदाही आसक्त रहता,स्वेच्छाचारी और लोभी होता है। प्रजागण श्मशानकी अग्निके समान उस राजाका आदर नहीं करते ॥३॥ जो राजा यथाकालमें अपने सब कार्योंको नहीं करता है वह राजा और उसके कार्य न करनेसे अपने राज्य सहित विनाशको प्राप्त होता है ॥४॥ जो राजा स्त्री आदिकोंके आधीन रहकर दूतोंको नियुक्त करके प्रजाका हाल नहीं जानता है तो हाथी जिसप्रकार दूसरे ही दल २ वाली नदीको त्याग करके चले जाते हैं, प्रजालोग भी वैसेही उस राजाको त्याग देतेहैं ॥५॥ औरभी

ततःशूर्पणखादीप्तारावणंलोकरावणम् ॥ अमात्यमध्येसंक्रुद्धापरुषंवाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥ प्रमत्तःकामभोगेषुस्वैरवृत्तोनिरंकुशः ॥ समुत्पन्नं भयंघोरंबोद्धव्यंनावबुध्यसे॥२॥सक्तंग्राम्येषुभोगेषुकामवृत्तंमहीपतिम् ॥ लुब्धंनबहुमन्यंतेश्मशानाग्निमिवप्रजाः॥३॥स्वयंकार्याणियःकालेना नुतिष्ठतिपार्थिवः ॥सतुवैसहराज्येनतैश्चकार्यैर्विनश्यति॥४॥ अयुक्तचारंदुर्दर्शमस्वाधीनंनराधिपम् ॥वर्जयंतिनरादूरान्नदीपंकमिवद्विपाः ॥५॥ येनरक्षंतिविषयमस्वाधीनंनराधिपाः ॥ तेनवृद्ध्याप्रकाशंतेगिरयःसागरेयथा ॥६॥ आत्मवद्भिर्विगृह्यत्वंदेवगंधर्वदानवैः॥अयुक्तचारश्चपलःकथं राजाभविष्यसि॥७॥त्वंतुबालस्वभावश्चबुद्धिहीनश्चराक्षस॥ ज्ञातव्यंतंनजानीषेकथंराजाभविष्यसि॥८॥ येषांचाराश्चकोशश्चनयश्चजयतांवर ॥ अस्वाधीनानरेंद्राणांप्राकृतैस्तेजनैःसमाः॥ ९ ॥ यस्मात्पश्यंतिदूरस्थान्सर्वानर्थान्नराधिपाः ॥ चारेणतस्मादुच्यंतेराजानोदीर्घचक्षुषः॥१०॥

जो नृपति लोग अपने आधीनमें न आये हुए राज्यको उपाय करके अपने वश नहीं करलेते, वह समुद्रमें पडे हुए पर्वतोंके समान प्रकाशको नहीं प्राप्त होते ॥६॥ एक तो तुम स्वभावसे ही चंचल हो और दूसरे कुछ तुम आचार भी नहीं करते भला फिर विशुद्धचित्त देव दानव और गन्धर्वोंसे वैर करके तुमकिसप्रकार राज्य कर सकोगे ? ॥७॥ हे राक्षस ! तुम बुद्धि रहित हो,बालकों कैसा तुम्हारा स्वभावहै और जिस बातको जानना उचित है,उसकोभी नहीं जानते भला फिर किसप्रकारसे अपने इस राज्यकी रक्षा कर सकोगे ? ॥८॥ हे विजयी श्रेष्ठ ! जिन राजा लोगोंके आधीन खजाना,दूत और नीति नहीं होती, ऐसे राजा लोग साधारण मनुष्योंके समान हैं ॥९॥ राजा लोग सब जगह अपनेदूतोंको नियुक्त करकेसब दूरका वृत्तांत मानों देखते रहते हैंइसी कारण वह दीर्घचक्षु कहे जाते

हैं ॥१०॥ हम जानती हैं कि, तुमने कहीं भी दूतादि नहीं नियत कियेहैं और तुम साधारण बुद्धिवाले मंत्रियोंकेसाथ सदाही बैठे रहते हो इसीकारणसे निजजन और जनस्थानका जो नाश होगया है उसको तुम नहीं जानते ॥११॥ देखो! अतिकठिन कर्म करनेवाले रामचन्द्रने इकलेही भयंकर कर्मकरनेवाले चौदह हजार राक्षसखर दूषणसहित मारडाले ॥१२॥ उन रामचन्द्रजीने ऋषिगणोंको अभय करदिया है समस्तदंडकारण्यको निष्कंटक और जनस्थानको भयभीत कर दिया है॥१३॥ परन्तु हे रावण! तुम तो लोभी मतवाले और सदाही पराये आधीन रहनेवाले हो इसीकारण तुम नहीं जानते कि तुम्हारे राज्यपर क्या भय आ पहुँचा है॥१४॥ जो राजा अतितीक्ष्ण स्वभाववाला, असावधान, गर्वित, शठ और अल्पदान करनेवाला होता है, विपदके समय प्रजा भी उस राजाकी रक्षा करनेके लिये कोई यत्न नहीं करती ॥ १५ ॥ जो राजा अतिशय अभिमानी होता, क्रोध स्वभाववाला होता और जो अपने आपही अपना गौरव करता है, कोई जिसकी बातको

अयुक्तचारंमन्येत्वांप्राकृतैःसचिवैर्युतः॥स्वजनंचयतःस्थानंनिहतंनावबुध्यसे ॥११॥ चतुर्दशसहस्राणिरक्षसांभीमकर्मणाम् ॥हतान्येकेनरामेण खरश्चसहदूषणः ॥१२॥ ऋषीणामभयंदत्तंकृतक्षेमाश्चदंडकाः ॥ धर्षितंचजनस्थानंरामेणाक्लिष्टकारिणा॥१३॥त्वंतुलुब्धप्रमत्तश्चपराधीनश्चरा क्षस ॥ विषयेस्वेसमुत्पन्नंयद्भयंनावबुध्यसे ॥१४॥ तीक्ष्णमल्पप्रदातारंप्रमत्तंगर्वितंशठम् ॥ व्यसनेसर्वभूतानिनाभिधावंतिपार्थिवम् ॥१५॥ अतिमानिनमग्राह्यमात्मसंभावितंनरम् ॥ क्रोधनंव्यसनेहंतिस्वजनोऽपिनराधिपम् ॥१६॥ नानुतिष्ठतिकार्याणिभयेषुनबिभेतिच ॥ क्षिप्रंराज्या च्च्युतोदीनस्तृणैस्तुल्योभवेदिह ॥ १७ ॥ शुष्ककाष्ठैर्भवेत्कार्यंलोष्ठैरपिचपांसुभिः ॥ नतुस्थानात्परिभ्रष्टैःकार्यंस्याद्वसुधाधिपैः ॥ १८ ॥ उपभुक्तंयथावासःस्रजोवामृदितायथा ॥ एवंराज्यात्परिभ्रष्टःसमर्थोऽपिनिरर्थकः॥१९॥ अप्रमत्तश्चयोराजासर्वज्ञोविजितेंद्रियः ॥ कृतज्ञोधर्मशी लश्चसराजातिष्ठतेचिरम् ॥ २० ॥ नयनाभ्यांप्रसुप्तोवाजागर्तिनयचक्षुषा ॥ व्यक्तक्रोधप्रसादश्चसराजापूज्यतेजनैः ॥ २१ ॥

नहीं सुनते । विपदके समय उसके सगेही उसका नाश कर देते हैं ॥१६॥ जो राजा राजकार्यको अपने हाथसे नहीं करता और भय होनेपर भी नहीं डरता, ऐसे राजाको शीघ्रही राज्य भ्रष्ट होना पडता है और सबही कोई उसे तृणके समान जानने लगतेहैं ॥१७॥ सूखे काठ ढेले और धूलसेभी बहुत कार्य हो सकते हैं, परन्तु राज्य भ्रष्ट हुए राजासे कोई कार्यभी नहीं हो सकता ॥१८॥ पहरा हुआ वस्त्र और मलगिजी माला जिसप्रकार किसी कार्यकी नहीं होती; राज्यभ्रष्ट राजाभी वैसेही शान्तिसम्पन्न होकर भी निरर्थक कहाता है॥१९॥ जो राजा प्रमादहीन, सर्वज्ञ, भली भाँतिसे जितेन्द्रिय, कृतज्ञ और धर्ममें रत होते हैं वही राजप दपर चिरस्थायी होते हैं ॥२०॥ जो राजा नेत्रोंसे निद्रित होनेपर भी नीतिरूप नेत्र विस्तार करके जागते रहते हैं, और जिनका क्रोध व प्रसन्नता कार्यके समय

प्रकट हो वह राजाही लोकसमाजमें पूजेजाते हैं॥२१॥ परन्तु हे रावण ! तुम कुबुद्धि और इनसमस्त गुणोंसे रहित हो,कारण कि राक्षसोंका वह सर्वनाश हुआ और तुमने दूतोंके द्वारा उसका कुछ भीवृत्तान्त न जाना ॥२२॥ तुम केवल पराया अपमान करते हो सदाही भोगविलासमें मतवाले बने रहते हो देशकालका निश्चय करना नहीं जानते और गुणदोषका विचार करनेका सामर्थ्य तुम्हारी बुद्धि नहीं रखती. इस कारण तुमको शीघ्रही विपद्ग्रस्त और राज्यभ्रष्ट होना पडेगा ॥२३॥ धन,बल और गर्वयुक्त राक्षसनाथ रावण शूर्पणखाको इसप्रकारसे अपने समस्त दोष कहते हुए देखकर बुद्धि लगाय बहुतही देरतक मनही मन विचारता रहा॥२४॥ इत्यार्षे श्रीमद्वा० वाल्मी० आदि० अरण्यकाण्डे भाषायां त्रयस्त्रिंशः सर्गः॥३३॥ शूर्पणखामंत्रियोंकी सभाके बीचमें अनेक प्रकारके कटु वचन कह रही है यह

त्वंतुरावणदुर्बुद्धिर्गुणैरेतैर्विवर्जितः ॥ यस्यतेऽविदितश्चारैरक्षसांसुमहान्वधः ॥२२॥ परावमंताविषयेषुसंगवान्नदेशकालप्रविभागतत्त्ववित् ॥ अयुक्तबुद्धिर्गुणदोषनिश्चयेविपन्नराज्योनचिराद्विपत्स्यते ॥२३॥ इतिस्वदोषान्परिकीर्तितांस्तयासमीक्ष्यबुद्ध्याक्षणदाचरेश्वरः॥ धनेनदर्पेण बलेनचान्वितोविचिंतयामासचिरंसरावणः ॥ २४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ० च० सा० अरण्यकांडे त्रयस्त्रिंशः सर्गः॥३३॥ ततःशूर्पणखांदृष्ट्वाब्रुवतींपरुषंवचः ॥अमात्यमध्येसंक्रुद्धःपरिपप्रच्छरावणः ॥ १ ॥ कश्चरामःकथंवीर्यःकिंरूपःकिंपराक्रमः ॥ किमर्थंदंडकारण्यंप्रविष्टश्चसुदुस्तरम् ॥ २ ॥ आयुधंकिंचरामस्ययेनतेराक्षसाहताः ॥ खरश्चनिहतःसंख्येदूषणस्त्रिशिरास्तथाः॥३॥ तत्त्वंब्रूहिमनोज्ञांगिकेनत्वंचविरूपिता ॥ इत्युक्ताराक्षसेंद्रेणराक्षसीक्रोधमूर्च्छिता ॥ ४ ॥ ततोरामंयथान्यायमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ दीर्घबाहुर्विशालाक्षश्चीरकृष्णाजिनांबरः ॥ ५ ॥ कंदर्पसमरूपश्चरामोदशरथात्मजः ॥ शक्रचापनिभंचापंविकृष्यकनकांगदम् ॥६॥ दीप्तान्क्षिपतिनाराचान्सर्पानिवमहाविषान् ॥ नाददानंशरान्घोरान्विमुंचंतंमहाबलम् ॥ ७ ॥

देखकर रावणने क्रोधित होकर पूछा ॥१॥ राम कौन हैं?उनका वीर्य,रूपऔर पराक्रम कैसा है ? वह किसकारणसे इस दुस्तर दंडकारण्यमें आये हैं ? ॥२॥ उन्होंने जिनसे कि,खर दूषण और त्रिशिरा आदि राक्षसोंको युद्धमें मार डालावह उन रामचन्द्रजीके आयुध कैसे हैं ? ॥ ३ ॥ हे मनोहर शरीरवाली ! तुमको किसने विरूप कर दिया ?सब यथार्थ ही कहो ।जब राक्षसराज रावणने इसप्रकारसे कहा तबराक्षसी क्रोधसे मूर्छित हो ॥४॥ जैसेका तैसा ठीक २ श्रीरामचन्द्रजीका वृत्तांत कहने लगी। उसने कहा रामचन्द्र दशरथके पुत्र कामदेवकेसमान रूपवान्, दीर्घबाहु और विशालनेत्र, वल्कल व मृगचर्म धारण किये हुए ॥ ५ ॥ उनका धनुष इन्द्रके धनुषके समान है उसमें सुवर्णके बंद लगे हैं, उसधनुषको खेंचकर ॥ ६ ॥ तेज विषवाले सर्पोंके समान प्रदीप नाराच रामचन्द्र

छोडते हैं यह हमने नहीं देखा ॥७॥ धनुषको जिससमय खैंचते हैं, यह भी हमने नहीं देखा केवल इतनाही देखा है कि बाण वर्षा करके वह संग्राममें राक्षसोंका संहार करते थे॥८॥ जैसे इन्द्र अकालमें ओले वर्षाकर श्रेष्ठ अन्नका नाश कर देते हैं उसी प्रकार भयंकर वीर्यवान् १४००० हजार राक्षसोंको ॥९॥ तीक्ष्णबाणोंके प्रहारसे अकेले पैदल रामचन्द्रजीने मारडाला। केवल आधेही मुहूर्त्तमें खरको दूषणके सहित संहार कर ॥१०॥ ऋषिगणोंको अभयदे समस्त दंडकवनको मंगलमय करदिया ॥११॥ उन आत्मज्ञानी महात्मा श्रीरामचन्द्रजीने स्त्रीके वधकी शंका करके, केवल नाककानही काटकर हमहीको अकेली छोडा है॥१२॥ लक्ष्मणनाम रामचन्द्रका छोटा भाई महातेजस्वी गुण और विक्रममें अपने बडे भ्राताके तुल्य हैं, वह उनकाही अनुरागी भक्त है। वह अतिषय बुद्धिमान्, बलवान् और वीर्यवान्॥१३॥ विक्रमवान्, क्रोधाविष्ट है, सबहीके जीतनेवाले, और आप किसीके जीते जाने योग्य नहीं है और श्रीरामचन्द्रजीके दाहिने हाथ, वरन्न शरीरके बाहर रहनेवाले प्राण हैं ॥१४॥

नकार्मुकंविकर्षंतंरामंपश्यामिसंयुगे ॥ हन्यमानंतुतत्सैन्यंपश्यामिशरवृष्टिभिः ॥ ८ ॥ इंद्रेणेवोत्तमंसस्यमाहतंत्वश्मवृष्टिभिः॥ रक्षसांभीमवीर्याणांसहस्राणिचतुर्दश ॥ ९ ॥ निहतानिशरैस्तीक्ष्णैस्तेनैकेनपदातिना ॥ अर्धाधिकमुहूर्तेनखरश्चसहदूषणः ॥ १० ॥ ऋषीणामभयंदत्तंकृतक्षेमाश्चदंडकाः ॥ ११ ॥ एकाकथंचिन्मुक्ताहंपरिभूयमहात्मना ॥ स्त्रीवधंशंकमानेनरामेणविदितात्मना ॥ १२ ॥ भ्राताचास्यमहातेजागुणतस्तुल्यविक्रमः ॥ अनुरक्तश्चभक्तश्चलक्ष्मणोनामवीर्यवान् ॥१३॥ अमर्षीदुर्जयोजेताविक्रांतोबुद्धिमान्बली ॥ रामस्यदक्षिणोबाहुर्नित्यंप्राणोबहिश्चरः ॥ १४ ॥ रामस्यतुविशालाक्षीपूर्णेन्दुसदृशानना ॥ धर्मपत्नीप्रियानित्यंभर्तुःप्रियहितेरता ॥१५॥ सासुकेशीसुनासोरूःसुरूपाचयशस्विनी ॥ देवतेववनस्यास्यराजतेश्रीरिवापरा ॥१६॥ तप्तकांचनवर्णाभारक्ततुंगनखीशुभा ॥ सीतानामवरारोहावैदेहीतनुमध्यमा ॥ १७ ॥ नैवदेवीनगंधर्वीनयक्षीनचकिन्नरी ॥ तथारूपामयानारीदृष्टपूर्वामहीतले ॥ १८ ॥

और रामचन्द्रजीकी जो स्त्री है उसके नेत्र बडे२ हैं और वदन पूर्णमासीके चन्द्रमाके समान है, रामचन्द्रको बहुत प्यार करती है और वह सदा पतिकी प्यारी औरहित करनेवाला कर्म करती है॥ १५ ॥ उस यशस्विनी रामचन्द्रजीकी स्त्रीके केश, नासिका, ऊरू और रूप अति उत्तम है। वह मानो उस वनकी अधिष्ठात्री देवी और दूसरी लक्ष्मीके समान विराजमान होरही है ॥१६॥ उसके वर्णकी ज्योति तपाये हुए सुवर्णके समान है, कमर पतली और नखोंकी पंक्तिका शिर लाल है। वह अतिशय सुन्दरता युक्त है और सब स्त्रियोंकी शिरोमणि है उन्होंने विदेह वंशमें जन्म ग्रहण किया है, और वह सीतानामसे संसारमें विख्यात है ॥१७॥ न देवी न गधर्वी न यक्षिणी न किन्नरी किसीकी सुन्दरताई भी उसकी शोभाके संगमें नहीं चल सकती यहां तक कि, कभी हमने इस पृथ्वीपर इस प्रकारकी रूपवती

रमणी नहीं देखी ॥ १८ ॥ वह सीता जिसकी स्त्री हों और वह जिसको हर्षमें भरकर भेंटेवह पुरुष समस्त प्राणी क्या, वरन् इन्द्रसेभी अधिकसुखसे जीवन बिताता है ॥ १९ ॥ सीताकेसबही अंग सब लोकोंके प्रशंसा करनेके योग्य हैंऔर पृथ्वीमें उसका रूप अतुलनीय है । वह सुशीला तुम्हारेही लायक भार्या है और तुम उसकेही अनुरूप पति हो ॥२०॥ उसके दोनों पयोधर ऊंचे हैं,जंघा अति विशाल है और मुखमण्डल अति श्रेष्ठ है उसको हम सोच विचार कर तुम्हारी स्त्री होनेके योग्य जानने गई थी ॥ २१ ॥ हे महाभुज ! सो इस कार्यको करतेहुए ही क्रूरलक्ष्मणने हमारे नाक कान काट डाले,उस पूर्णचन्द्रमुखवाली विदेह कुमारीको देखतेही॥२२॥ तुमफूलबाणधारीके पुष्पबाणोंका लक्ष्य बनोगे, यदि उसको अपनी स्त्री बनानेका तुम्हारा आशय हो तो शीघ्रही रामचन्द्रके जीतने

यस्यसीताभवेद्भार्यायंचतुष्टापरिष्वजेत्॥अभिजीवेत्ससर्वेषुलोकेष्वपिपुरंदरात् ॥१९॥ सासुलीलावपुःश्लाघ्यारूपेणाप्रतिमाभुवि ॥तवानुरूपाभार्यासात्वंचतस्याःपतिर्वरः ॥२०॥ तांतुविस्तीर्णजघनांपीनोत्तुंगपयोधराम् ॥ भार्यार्थेतुतवानेतुमुद्यताऽहंवराननाम् ॥२१॥ विरूपितास्मिक्रूरेणलक्ष्मणेनमहाभुज ॥ तांतुऽदृष्ट्वाद्यवैदेहींपूर्णचंद्रनिभाननाम् ॥२२॥मन्मथस्यशराणांचत्वंविधेयोभविष्यसि॥ यदितस्यामभिप्रायोभार्यात्वेतवजायते॥शीघ्रमुद्ध्रियतांपादोजयार्थमिहदक्षिणः॥२३॥ रोचतेयदितेवाक्यंममैतद्राक्षसेश्वर ॥ क्रियतांनिर्विशंकेनवचनंममरावण ॥२४ ॥ विज्ञायैषामशक्तिंचक्रियतांचमहाबल ॥ सीतातवानवद्यांगीभार्यात्वेराक्षसेश्वर ॥ २५ ॥ निशम्यरामेणशरैरजिह्मगैर्हताञ्जनस्थानगतान्निशाचरान् ॥ खरंचबुद्धानिहतंचदूषणंत्वमद्यकृत्यंप्रतिपत्तुमर्हसि ॥ २६ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्ये च० सा० अरण्यकांडे चतुस्त्रिंशःसर्गः ॥३४॥ ततःशूर्पणखावाक्यंतच्छ्रुत्वारोमहर्षणम् ॥ सचिवानभ्यनुज्ञायकार्यंबुद्ध्वाजगामह ॥१॥ तत्कार्यमनुगम्यांतर्यथावदुपलभ्यच ॥ दोषाणांचगुणानांचसंप्रधार्यबलाबलम् ॥ २ ॥

को दहिना चरण आगे धरकर चलो ॥२३॥हे राक्षसराज रावण ! हमारा यह वचन यदि तुम्हें रुचा हो तो जो हमनेकहा उसको चित्तमें शंका त्यागकर करो ॥ २४ ॥ हे महाबल ! तुम उनको असमर्थ और अपनेको समर्थ जानकर इस सर्वांगसुन्दरी सीताको स्त्री बनानेमें यत्नवान् होओ ॥२५॥ रामचंद्रजीने सीधे चलनेवाले बाणोंसे समस्त उन जनस्थानवासी राक्षसोंको खरदूषणकेसहित मारडाला है यह सुनकर अब जो कुछ कर्तव्य हो सो करो ॥२६॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदि०अरण्यकांडे भाषायां चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥३४॥ शूर्पणखाके यह रोमहर्षण वचन सुन कर्तव्य स्थिरकर मंत्रियोंकी सम्मति ले रावण जनस्थानमें जानेको तैयार हुआ ॥१॥ गमन करनेके समय उस कार्यको भली भांतिसे जानकर और उसके सब विषयोंको भली प्रकार सोच विचार करगुणभी समझ लेता

हुआ, बल, अबल सब जानलिया, उसने जानकीका हरलाना महात्मा रामचन्द्रजीसे वैर करना ठीक जांचा ॥२॥ सब कर्तव्योंका मनमें निश्चय कर स्थिरबुद्धि हो प्रथम रमणीक यानशालामें गया ॥ ३ ॥ और यानशालामें पहुँच कर राक्षसराज रावण गुप्तभावसे सारथीसे बोला कि, शीघ्रही रथ तैयार करो ॥ ४ ॥ रावणके ऐसा कहते ही एक क्षणमें शीघ्रता करनेवाले सारथीने जो रथ रावणकी इच्छानुसार था उस रथको सजाया ॥ ५ ॥ रावण उस इच्छानुसार कंचनसे बने हुए रत्नभूषित पिशाचवदनवाल खच्चड जिसमें जुते हुए, ऐसे रथपर सवार हुआ ॥६॥ जब वह रथ चला तब उसका शब्द मेघोंके गर्जनेके समान होता था । कुबेरका छोटा भाई राक्षसपति श्रीमान् दशानन उस रथपर चढ नदनदीपति समुद्रकी ओर चला ॥७॥ रावणके ऊपर जो चमर और छत्र लगे थे वह दोनों

इतिकर्तव्यमित्येवंकृत्वानिश्चयमात्मनः ॥ स्थिरबुद्धिस्ततोरम्यांयानशालांजगामह ॥ ३ ॥ यानशालांततोगत्वाप्रच्छन्नंराक्षसाधिपः ॥ सूतंसचोदयामासरथःसंयुज्यतामिति ॥४॥ एवमुक्तःक्षणेनैवसारथिर्लघुविक्रमः॥ रथंसंयोजयामासतस्याभिमतमुत्तमम् ॥ ५ ॥ कामगंरथमास्थायकाचनंरत्नभूषितम् ॥ पिशाचवदनैर्युक्तंखरैःकनकभूषणैः ॥ ६ ॥ मेघप्रतिमनादेनसतेनधनदानुजः ॥ राक्षसाधिपतिःश्रीमान्ययौनदनदीपतिम् ॥ ७॥ सश्वेतवालव्यजनःश्वेतच्छत्रोदशाननः ॥ स्निग्धवैदूर्यसंकाशस्तप्तकांचनभूषणः ॥ ८ ॥ दशग्रीवोविंशतिभुजोदर्शनीयपरिच्छदः ॥ त्रिदशारिर्मुनींद्रघ्नोदशशीर्षइवाद्रिराट् ॥ ९ ॥ कामगंरथमास्थायशुशुभेराक्षसाधिपः॥ विद्युन्मंडलवान्मेघःसबलाकइवांबरे ॥१०॥ सशैलसागरानूपंवीर्यवानवलोकयन् ॥ नानापुष्पफलैर्वृक्षैरनुकीर्णसहस्रशः ॥११॥ शीतमंगलतोयाभिःपद्मिनीभीःसमंततः ॥ विशालैराश्रमपदैर्वेदिमद्भिरलंकृतम् ॥१२॥ कदल्यटविसंशोभंनालिकेरोपशोभितम् ॥ सालैस्तालैस्तमालैश्चतरुभिश्चसुपुष्पितैः ॥ १३ ॥

श्रेष्ठ थे, रावणके देहकी कांतिवैदूर्यमणिके समान नीली थी; वह सब तपाये हुए सुवर्णके भूषण पहरे हुए था ॥८॥ उसके दशमुख, दश गर्दन और बीस भुजा थीं, देवगणोंका शत्रु और मुनियोंके हनन करनेको यह रावण साक्षात् पाशकँगूरों करके युक्त पर्वतराजसा दिखाई देता था ॥९॥ वह रावण उस यथेच्छाचारीविमान पर चढकर ऐसा शोभित हुआ मानों सौदामिनीके संग घनश्याम बगलोंकी पांतिके साथ गगनमंडलमें जाता है ॥१०॥ रावण चलते२ समुद्रके तीर पर पहुँचा, बीचमें उसने बहुतसे पर्वत व समुद्रकी तलैटीके देश देखे वह स्थान अनेक प्रकारके पुष्प फल और वृक्षोंसे शोभायमान था॥११॥ शीतल मंगल जलयुक्त तलैयां वहांपर थीं वेदीयुक्त और बडे २ आश्रमोंसे वह देश अलंकृत था ॥ १२ ॥ केलेका वन चारों ओर लगा, नारियलके पेड अलगही लहलहा रहे थे और

शाल ताल, तमालादि नाना जातिके पुष्पित वृक्ष लगे थे ॥१३॥ वह स्थान जो सदा नियमित भोजनमें मग्न रहते ऐसे परमहर्षियोंसे शोभायमान था, नाग गरुड गन्धर्व और सहस्रों किन्नर भी वहांपर थे ॥१४॥ और कामदेवको जिन्होंने जीत रक्खा है, ऐसे सिद्ध और चारणगण भी उस स्थानमें शोभित हो रहेथे, आज्य, धूम्र, वैखानस, साख, व लखिल्य, मरीचि आदिसे व्याप्त ॥१५॥ दिव्य वस्त्राभूषण दिव्यमाला और दिव्यरूप स्त्रियोंसे व्याप्त था । क्रीडा व रतिकी विधि जाननेवाली हजारों अप्सराओंके साथ सिद्धगण विहार करते थे ॥१६॥ देवोंकी श्रीसंपन्न स्त्रियांभी घूम रही थीं. अमृत पीनेवाले देवदानवोंके समूहभी इधर उधर फिरते थे ॥१७॥ हंस क्रौञ्च मंडूक और सारस समूह चारों ओर बोल रहे थे । वैदूर्यमणिके समान नीलवर्णके पत्थर वहां पर विराजते थे और समुद्रतरंगोंकी हिलोरवश वह

अत्यंतनियताहारैःशोभितंपरमर्षिभिः ॥ नागैःसुपर्णैर्गंधर्वैःकिन्नरैश्चसहस्रशः ॥१४॥ जितकामैश्चसिद्धैश्चचारणैश्चोपशोभितम् ॥आजैर्वैखान सैर्माषैर्वालखिल्यैर्मरीचिपैः ॥१५॥ दिव्याभरणमाल्याभिर्दिव्यरूपाभिरावृतम् ॥ क्रीडारतिविधिज्ञाभिरप्सरोभिःसहस्रशः ॥१६॥ सेवितंदे वपत्नीभिःश्रीमतीभिरुपासितम् ॥देवदानवसंघैश्चचरितंत्वमृताशिभिः॥ १७॥हंसक्रौंचप्लवाकीर्णंसारसैःसंप्रसादितम् ॥ वैदूर्यप्रस्तरंस्निग्धंसांद्रं सागरतेजसा ॥ १८॥ पाण्डुराणिविशालानिदिव्यमाल्ययुतानिच ॥ तूर्यगीताभिजुष्टानिविमामानिसमंततः ॥१९॥ तपसाजितलोकानांकाम गान्यभिसंपतन् ॥ गंधर्वाप्सरसश्चैवददर्शधनदानुजः ॥२०॥ निर्यासरसमूलानांचंदनानांसहस्रशः॥ वनानिपश्यन्सौम्यानिघ्राणतृप्तिकराणिच ॥२१॥ अगुरूणांचमुख्यानांवनान्युपवनानिच ॥ तक्कोलानांचजात्यानांफलानांचसुगंधिनाम् ॥ २२ ॥ पुष्पाणिचतमालस्यगुल्मानिमरिच स्यच॥मुक्तानांचसमूहानिशुष्यमाणानितीरतः ॥२३॥ शैलानिप्रवरांश्चैवप्रवालनिचयांस्तथा ॥ कांचनानिचशृंगाणिराजतानितथैवच॥२४॥

देश सदाही शीतल और स्निग्ध भावकरके युक्त था ॥१८॥ इन सब वस्तुओंके सिवाय रावण दिव्यमालायुक्त, गीत और बाजोंकी ध्वनि जिसमेंहोरही ऐसे श्वेतवर्ण विशाल विमानोंको चारों ओर देखने लगा ॥१९॥ जिन लोगोंने अपने तपोबलसे अनेक लोकोंको जीतलिया है और इच्छाचारी विमानोंपर जो बैठे हैं कुबेरके छोटेभाई रावणने जानेके समय मार्गमें उन गन्धर्वगणोंको अप्सराओंके साथ देखा ॥ २० ॥ वहांपर वनमें गोंद रस मूलसहित हजारों सुन्दर नासिकाको अपनी सुगंधिसे तृप्त करनेवाले चंदनके वृक्ष देखे ॥२१॥ अगरके मुख्य वन उपवन अंकोलवृक्षोंके सुगन्धित पुष्पित और जायफलके फलित वन उपवनादि देखे ॥२२॥ तमालनाम एक वृक्षके फूल और काली मिर्चके गुल्मसमूह समुद्रके किनारे फूले व मोतियोंके समूह गिरे हुए देखे ॥२३॥ पर्वत में मूँगोंकी चट्टानोंके

समूह व चांदी सुवर्णके शृंगभी रावणने देखे ॥ २४ ॥ सुविमल जलपूर्ण अद्भुत मनोहर सोते धनधान्यके सहित स्त्रीरत्नयुक्त ॥२५॥ हाथी घोडे सहित अनेक प्रकारकेनगर देखते हुए रावणकेशीतल मंदसुगंधपवन सहित ॥२६॥ सिन्धुराजका अनूप किनारा देखा, वह देखनेमें स्वर्गकेही तुल्य था, वहांपर सब ओरसे मुनियों करके सेवित मेघसमश्याम एक बरगदका वृक्ष देखा ॥२७॥ उसकी समस्त शाखा चारों ओर शतयोजनके घेरमें फैल रही थीं जहांपर पहले बडे शरीर वाले हाथी और कछुएको ॥२८॥ गरुडजी भोजन करनेके लिये, इस पेडकी एक शाखापरबैठे थे पक्षियोंके स्वामी गरुडजीके बोझसे उसकी एक डाली ॥ २९ ॥ जिसमें बहुत पत्र लगे थे टूट गई थी उसी शाखाका आश्रयकर वैखानस, माष, मरीचिपायी वालखिल्य ॥३०॥ और धूम्राख्य परमर्षिगण मिलकर तपस्या कररहे थे। धर्मात्मा

प्रस्रवाणिमनोज्ञानिप्रसन्नान्यद्भुतानिच॥ धनधान्योपपन्नानिस्त्रीरत्नैरावृतानिच ॥२५॥ हस्त्यश्वरथगाढानिनगराणिविलोकयन्॥ तंसमंसर्वतः स्निग्धंमृदुसंस्पर्शमारुतम् ॥२६॥ अनूपेसिंधुराजस्यददर्शत्रिदिवोपमम्॥ तत्रापश्यत्समेघाभंन्यग्रोधंमुनिभिर्वृतम् ॥ २७ ॥समंताद्यस्यताः शाखाःशतयोजनमायताः ॥ यस्यहस्तिनमादायमहाकायंचकच्छपम् ॥२८॥ भक्षार्थंगरुडःशाखामाजगाममहाबलः ॥ तस्यतांसहसाशाखां भारेणपतगोत्तमः ॥२९॥ सुपर्णःपर्णबहुलांबभंजाथमहाबलः ॥ तत्रवैखानसामाषावालखिल्यामरीचिपाः ॥३०॥ अजाबभूवुर्धूम्राश्चसंगताःप रमर्षयः ॥ तेषांदयार्थंगरुडस्तांशाखांशतयोजनम् ॥ ३१ ॥ भग्नामादायवेगेनतौचोभौगजकच्छपौ ॥ एकपादेनधर्मात्माभक्षयित्वातदामिषम् ॥ ३२ ॥ निषादविषयंहत्वाशाखयापतगोत्तमः ॥ प्रहर्षमतुलंलेभेमोक्षयित्वामहामुनीन् ॥३३॥ सतुतेनप्रहर्षेणद्विगुणीकृतविक्रमः ॥ अमृता नयनार्थंवैचकारमतिमान्मतिम् ॥ ३४ ॥ अयोजालानिनिर्मथ्यभित्त्वारत्नगृहंवरम् ॥ महेंद्रभवनाद्गुप्तमाजहारामृतंततः ॥ ३५ ॥ तंमह र्षिगणैर्जुष्टंसुपर्णकृ तलक्षणम् ॥ नाम्नासुभद्रंन्यग्रोधंददर्शधनदानुजः ॥ ३६ ॥

गरुडजीने उन ऋषियोंके प्रति दया करके एक पैरसेही उस शतयोजनकी ॥ ३१ ॥ टूटीहुई शाखाको पकड दूसरे पैरसे गज कच्छपको दबाय महात्मा उनका मांस खाकर ॥३२॥ उस टूटी हुई शाखाकी सहायतासे समस्त निषाद देशको नाशकर दिया इसप्रकार मुनिगणोंको बचाकर गरुडजी परमहर्षित हुए थे ॥३३॥ अनन्तर उस हर्षके वशहो गरुडजीका विक्रम दूना बढ गया, तौ इसकारण मतिमान् गरुडजी अमृतके लानेका विचार करते हुए ॥३४॥ और लोहेके जालको तोडताड रत्न मय श्रेष्ठ गृह फोडफाडमहेन्द्रभवनसे अमृत लेआयेथे ॥ ३५ ॥ सो इससमय कुबेरका अनुज रावण गरुणह्नित महर्षिगणसेवित सुभद्रनामक इस वटवृक्षको देवता

हुआ ॥ ३६ ॥ वहांसे नदीपति समुद्रके दूसरी पार जाकर दूसरे वनमें परमपवित्र रमणीक एक निर्जन आश्रम रावणने देखा ॥ ३७ ॥ कि, मारीचनामक निशाचर मृगचर्म और जटाजूट धारण करके नियताहार कर वहां वास करता है ॥ ३८ ॥ राक्षस मारीच रावणको देखतेही मिला और यथाविधानसे विविधभांतिकी अमानुषी भोग्य वस्तुओंसे रावणकी पूजा करता हुआ ॥ ३९ ॥ इस प्रकार भोजनकी सामग्री व जलसे स्वयं रावणकी पूजाकर मरीच अर्थयुक्त वचन बोला ॥ ४० ॥ राजन् राक्षसेश्वर ! आपकी और लंकाकी कुशलता तो है ? फिर आप किस कारणसे यहां शीघ्रही पधारे हैं ॥ ४१ ॥ जब मारीचने ऐसा कहा तब वचन बोलनेमें चतुर महातेजस्वी रावणने इस प्रकार कहना आरम्भ किया ॥ ४२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अरण्यकांडे भाषायां पंचत्रिंशः सर्गः ॥ ३५ ॥

तंतुगत्वापरंपारंसमुद्रस्यनदीपतेः ॥ ददर्शश्रममेकांतेपुण्येरम्येवनांतरे ॥ ३७ ॥ तत्रकृष्णाजिनधरंजटामंडलधारिणम् ॥ ददर्शनियताहारंमारीचं नामराक्षसम् ॥ ३८ ॥ सरावणःसमागम्यविधिवत्तेनरक्षसा ॥ मारीचेनार्चितोराजासर्वकामैरमानुषैः ॥ ३९ ॥ तंस्वयंपूजयित्वाचभोजनेनोदके नच ॥ अर्थोपहितयावाचामारीचोवाक्यमब्रवीत् ॥ ४० ॥ कच्चित्तेकुशलंराजँल्लंकायांराक्षसेश्वर ॥ केनार्थेनपुनस्त्वंवैतूर्णमेवइहागतः ॥ ४१ ॥ एवमुक्तोमहातेजामारीचेनसरावणः ॥ ततःपश्चादिदंवाक्यमब्रवीद्वाक्यकोविदः ॥ ४२ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च०सा० अरण्यकांडे पंचत्रिंशः सर्गः ॥ ३५ ॥ मारीचश्रूयतांतातवचनंममभाषतः ॥ आर्तोऽस्मिममचार्तस्यभवान्हिपरमागतिः ॥ १ ॥ जानीषेत्वंजनस्था नंभ्रातायत्रखरोमम ॥ दूषणश्चमहाबाहुःस्वसाशूर्पणखाचमे ॥ २ ॥ त्रिशिराश्चमहाबाहूराक्षसःपिशिताशनः ॥ अन्येचबहवःशूरालब्धलक्षानिशा चराः ॥ ३ ॥ वसन्तिमन्नियोगेनअधिवासंचराक्षसाः ॥ बाधमानामहारण्येमुनीन्येधर्मचारिणः ॥ ४ ॥ चतुर्दशसहस्राणिरक्षसांभीमकर्मणाम् ॥ शूराणांलब्धलक्षाणांखरचित्तानुवर्तिनाम् ॥ ५ ॥ तेत्विदानींजनस्थानेवसमानामहाबलाः ॥ संगताःपरमायत्तारामेणसहसंयुगे ॥ ६ ॥

तात मारीच ! कहता हूं श्रवण करो । हम बडे दुःखी हैं, तुमही विपदके समय हमारी परमगति हो ॥ १ ॥ जिस स्थानमें हमारा भाई खर और महाबाहु दूषण व बहन शूर्पणखा रहा करती थी उस जनस्थानको तुम जानते ही हो ॥ २ ॥ मांसका खानेवाला राक्षस त्रिशिरा व और भी बहुत निशाचर युद्धमें उत्साही व शूरवीर ॥ ३ ॥ मेरी आज्ञा पालन करते हुए वहां वास करतेथे । वह सब निशाचरगण महावनमें धर्मचारी ऋषियोंके अनुष्ठानमें सदाही बाधा दिया करते थे ॥ ४ ॥ इन सब राक्षसोंकी संख्या १४००० चौदह हजार थी वह सबही भयंकर कर्म करनेवाले शूर युद्धमें उत्साही और खरके चित्तके अनुसार कार्य करनेवाले थे ॥ ५ ॥ इस समय जनस्थानके

रहनेवाले महाबलवान् खर इत्यादि राक्षस युद्धमें रामचन्द्रके साथ॥६॥विविध भाँतिके अस्त्र शस्त्र धारण करके व दुर्भेद्य कवच बांधकर युद्धमें भिडे थे तबरामचन्द्रने महा क्रोध करके॥७॥कुछ भी कठोर वचन न कहकर धनुष बाण चढाय उनको छोड चौदह हजार उग्रतेजवान् राक्षसोंको॥८॥मनुष्य रामचन्द्रने खर व दूषण सहित सबको संग्राममें त क्ष्ण'दीप्तिमान् नाराचोंसे सहार किया॥९॥ और त्रिशिराको भी मार दंडकवनको अभय कर दिया ।उस रामचन्द्रका आचरणभी ठीक नहीं मालूम होता; क्योंकि उसके पिताने उसको निर्लज्ज जानकर स्त्री सहित घरसे निकाल दिया है ॥१०॥ वही दुःशील, कर्कश, तीक्ष्ण, मूर्ख, लोभी और अविजितेंद्रिय क्षत्रियकुलकलंक रामचन्द्र इस राक्षसोंकी सेनाका मारडालनेवाला है ॥११॥ जो धर्मका त्याग और अधर्मका आश्रय करके सदाही प्राणियोंका

नानाशस्त्रप्रहरणाःखराप्रमुखराक्षसाः ॥ तेनसंजातरोषेणरामेरणमूर्धनि ॥७॥ अनुक्त्वापरुषंकिंचिच्छरैर्व्यापारितंधनुः ॥ चतुर्दशसहस्राणिरक्षसामुग्रतेजसाम् ॥८॥ निहतानिशरैर्दीप्तैर्मानुषेणपदातिना । खरश्चनिहतःसंख्येदूषणश्चनिपातितः ॥ ९ ॥ हत्वात्रिशिरसंचापिनिर्भयादंडकाः कृताः ॥ पित्रानिरस्तःक्रुद्धेनसभार्यःक्षीणजीवितः ॥ १० ॥ सहंतातस्यसैन्यस्यरामःक्षत्रियपांसनः॥अशीलःकर्कशस्तीक्ष्णोमूर्खोलुब्धोऽजितेंद्रियः ॥११॥त्यक्तधर्मात्वधर्मात्माभूतानामहितेरतः॥येनवैरंविनाऽरण्येसत्त्वमास्थायकेवलम् ॥१२॥ कर्णनासापहारेणभगिनीमेविरूपिता ॥ अस्यभार्यांजनस्थानात्सीतांसुरसुतोपमाम् ॥१३॥ आनयिष्यामिविक्रम्यसहायस्तत्रमेभव ॥ त्वयाह्यहंसहायेनपार्श्वस्थेनमहाबल ॥१४॥ भ्रातृभिश्चसुरान्सर्वान्नाहमत्राभिचिंतये ॥ तत्सहायोभवत्वंमेसमर्थोह्यसिराक्षस ॥१५॥ वीर्येयुद्धेचदर्पेचनह्यस्तिसदृशस्तव ॥ उपायतोमहाञ्छूरोमहामायाविशारदः ॥ १६ ॥ एतदर्थमहंप्राप्तस्त्वत्समीपंनिशाचर ॥ शृणुतत्कर्मसाहाय्येयत्कार्यंवचनान्मम ॥ १७ ॥

अहित करनेमें रतरहता है जिसने विना वैरही केवल अपने बलके घमंडमें आय ॥१२॥ नाक कान काटकर हमारी बहन शूर्पणखाको विरूप करदिया । इस कारण जनस्थानसे ले उसकी स्त्री सीता जो कि देवताओंसे भी बढकर रूपमें है॥१३॥हम अपने विक्रमसे ले आवेंगे तुमको हमारी सहायता करनी होगी,तुम महाबलवान् सहायके साथ॥१४॥व अपने भाइयोंके संग हम सारे देवताओंको भी कुछ नहीं गिनते, इससे हे मारीच ! तुम हमारे इस विषयमें सहायक हो क्योंकि तुम समर्थहो ॥ १५ ॥ तुम महाशूरहो और सब प्रकारकी माया जानतेहो वीर्यमें, युद्धमें दर्पमें और उपायमें तुम्हारे समान दूसरा कोई नहीं है ॥ १६ ॥ हे निशाचर ! सी कारणसे इस समय हम तुम्हारे समीप आये हैं इस समय हमारी सहायता करनेके लिये जो कुछ तुमको करनाहोगा सो हम कहते हैं,तुम श्रवण करो ॥१७॥

तुम चांदीकी बिंदियेंयुक्त स्वर्णके मृग बनकर रामचन्द्रकेआश्रममें सीताके सामने इधरउधर फिरना ॥१८॥ सीतामृगरूपी तुमकोदेखकरनिःसंदेहही अपने स्वामी रामचन्द्रऔर लक्ष्मणसे यह कहेगी कि,इसमृगको पकड दो ॥१९॥ जब वह रामचन्द्र और लक्ष्मण मृगको पकडनेके लिये आश्रमसे दूर निकल जांयगे तब हमशून्य आश्रम पाकर सीताको सुखसहित निर्विघ्न ले आवेंगे,जिसप्रकार राहु चन्द्रमाकी प्रभाको हरण कर लेताहै ॥२०॥ जब उनकी स्त्री हरलीं जायगी तब रामचन्द्र शोककेमारे दुर्बल हो जायँगे तब कृतार्थ होकर यथासुख और निःशंक चित्तसे रामचन्द्रजीको संग्राममें जीतलेंगे ॥२१॥ रावणके ऐसे वचन सुनतेही महा मारीचका मुख सूख गया और वह अतिशय भयभीत हो गया ॥२२॥ और चिन्ताके वश होकर अपने सूखे होंठोंको जीभसे चाटने लगा और उसकेनेत्र मानो

सौवर्णस्त्वंमृगोभूत्वाचित्रोरजतबिंदुभिः ॥ आश्रमेतस्यरामस्यसीतायाःप्रमुखेचर ॥१८॥ त्वांतुनिःसंशयंसीताहृष्ट्वातुमृगरूपिणम् ॥ गृह्यता मितिभर्तारंलक्ष्मणंचाभिधास्यति ॥१९॥ ततस्तयोरपायेतुशून्येसीतांयथासुखम्॥ निराबाधोहरिष्यामिराहुश्चंद्रप्रभामिव ॥२०॥ ततःपश्चा त्सुखंरामेभार्याहरणकर्शिते ॥ विस्रब्धंप्रहरिष्यामिकृतार्थेनांतरात्मना ॥२१॥ तस्यरामकथांश्रुत्वामारीचस्यमहात्मनः ॥ शुष्कंसमभवद्वक्त्रं परित्रस्तोबभूवच ॥२२॥ ओष्ठौपरिलिहञ्छुष्कौनेत्रैरनिमिषैरिवमृतभूतइवार्तस्तुरावणंसमुदैक्षत ॥२३॥ सरावणंत्रस्तविषण्णचेतामहावने रामपराक्रमज्ञः ॥ कृतांजलिस्तत्त्वमुवाचवाक्यंहितंचतस्मैहितमात्मनश्च ॥ २४ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आदि० च० सा० अरण्य०षट्त्रिंशः सर्गः ॥३६॥ तच्छ्रुत्वाराक्षसेंद्रस्यवाक्यवाक्यविशारदः॥प्रत्युवाचमहातेजामारीचोराक्षसेश्वरम् ॥१॥ सुलभाःपुरुषाराजन्सततंप्रियवादिनः अप्रियस्यचपथ्यस्यवक्ताश्रोताचदुर्लभः ॥ २ ॥ ननूनंबुध्यसेरामंमहावीर्यगुणोन्नतम्॥ अयुक्तचारश्चपलोमहेंद्रवरुणोपमम् ॥ ३ ॥

निमेषहीन होगये। मारीच आर्तभावसे मृतक तुल्य होकर रावणकी ओर देखता रह गया ॥२३॥ वह पहलेहीसे महावनमें श्रीरामचन्द्रजीके पराक्रमको जानता था इसी कारणसे भयभीत और शोकचित्तसे हाथ जोडकर रावणसे अपने व उसके हितके करनेवाले वचन बोला ॥ २४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्वा० वाल्मी० आदि० अरण्यकांडे भाषायां षट्त्रिंशः सर्गः ॥ ३६ ॥ महातेजस्वी राक्षसराजके यह वचन सुन वाक्य विशारद मारीच उससे बोला ॥१॥ हे राजन् ! मुँहदेखी कहने वाले लोग बहुत मिलते हैं किन्तु सुननेमें कुप्यारे और वास्तवमें हितकारी हों ऐसे वचनोंके कहने सुननेवाले दोनोंही संसारमें कम मिलते हैं ॥ २ ॥ एक तो तुमने दूतोंको नहीं नियुक्त कर रक्खा है कि, जिससे सब स्थानोंका वृत्तांत तुमको मिलता रहे दूसरे तुम्हारा स्वभाव चंचल है। इसी कारणसे

रामचन्द्र जो साक्षात् महेंद्र और कुबेरके समान महावीर्यवान् और श्रेष्ठगुणोंकरके युक्त हैं इस बातको तुमने नहीं जाना ॥ ३ ॥ हे तात ! रामचन्द्रसे वैर करनेमें क्या राक्षस कुलका मगल होगा ? रामचन्द्र क्रोधित होनेपर क्या सर्व लोक राक्षसोंसे शून्य नहीं कर सकते हैं ? ॥ ४ ॥ क्या जानकी तुम्हारी ही नाशकरनेके लिये तो उत्पन्न नहींहुई हैं कहीं सीताकेले आनेका यह व्यवहार तुम्हारे दुःखका कारण न हो ? ॥५॥ तुम इच्छानुसार चलनेवाले और निरंकुश हो अर्थात् तुम्हारे कहने सुननेवाला कोई नहीं है । इस कारण तुम्हारे राजा होते समस्त लंका तुम्हारे और सब राक्षसोंके साथ क्या विनष्ट नहीं होगी ? अर्थात् अवश्य होगी ॥६॥ तुम्हारे समान जो राजा बुरे शीलवाला पापबुद्धि और इच्छानुसार चलनेवाला होता है, वह राजा अपनेको, समस्त राज्यको अपने कुटुंबियोंको नाशकरनेका कारणहोता है ॥७॥ रामचंद्र अपने पिता करके नहीं त्यागे गये हैं । वह मर्यादा रहितभी नहीं हैं अथवा लोभी, दुःशील और क्षत्रि

अपिस्वस्तिभवेत्तातसर्वेषामपिरक्षसाम् ॥ अपिरामोनसंक्रुद्धःकुर्याल्लोकानराक्षसान् ॥४॥ अपितेजीवितांतातनोत्पन्नाजनकात्मजा ॥ अपिसीतानिमित्तंचनभवेद्व्यसनंमहत् ॥५॥ अपित्वामीश्वरंप्राप्यकामवृत्तंनिरंकुशम् ॥ नविनश्येत्पुरीलंकात्वयासहसराक्षसा ॥६॥ त्वद्विधःकामवृत्तोहिदुःशीलःपापमंत्रितः ॥ आत्मानंस्वजनंराष्ट्रंसराजाहंतिदुर्मतिः ॥ ७ ॥ नचपित्रापरित्यक्तोनामर्यादःकथंचन ॥ नलुब्धोनचदुःशीलोनचक्षत्रियपांसनः ॥८॥ नचधर्मगुणैर्हीनःकौसल्यानंदवर्धनः ॥ नचतीक्ष्णोहिभूतानांसर्वभूतहितेरतः ॥९॥ वंचितंपितरंदृष्ट्वाकैकेय्यासत्यवादिनम् ॥ करिष्यामीतिधर्मात्माततःप्रव्रजितोवनम् ॥१०॥ कैकेय्याःप्रियकामार्थंपितुर्दशरथस्यच ॥ हित्वाराज्यंचभोगांश्चप्रविष्टोदंडकावनम् ॥११॥ नरामःकर्कशस्तातनाविद्वान्नाजितेंद्रियः ॥ अनृतंनश्रुतंचैवनैवत्वंवक्तुमर्हसि ॥ १२ ॥ रामोविग्रहवान्धर्मःसाधुःसत्यपराक्रमः ॥ राजासर्वस्यलोकस्यदेवानामिववासवः ॥ १३ ॥

यवंशकेनाशकभीनहीं हैं ॥८॥ कौशल्याकुमार अपनी माताके आनंदको बढानेवाले धर्मसे वा गुणोंसे हीन नहीं हैं; उनका तीक्ष्णस्वभाव नहीं है ! और वह सदा सब प्राणियोंका अहित करनेमें रतभी नहीं हैं बरन् सबका हित करनेमें तत्पर हैं ॥९॥ अपने सत्यवादी पिताको कैकेयी करके ठगा हुआ देखकर वह रामचन्द्रजी उनके सत्यकी रक्षा करनेके लिये वनको आये हैं ॥१०॥ और पिता दशरथ व रानी कैकेईका प्रिय कार्य करने की वासनासे राज्यसुखको जलांजलि देकर श्रीरामचंद्रजी दंडकारण्यमें आये हैं ॥११॥ हे तात ! रामचन्द्र कर्कश स्वभाववाले भी नहीं मूर्खभी नहीं हैं, अजितेंद्रियभी नहीं हैं और मिथ्या कहनातो दूर है, वह इस झूठाईके प्रसंगमें भीनहीं हैं। सो उनके प्रति ऐसे वचन कहना उचित नहीं है ॥१२॥ अधिक कहांतक कहूं, रामचंद्र धर्ममूर्ति हैं, साधु हैं, सत्यपराक्रमवान् हैं और इन्द्र जिस प्रकार देवताओंके

स्वामी हैं वैसेही वह भी सब लोकोंके राजा हैं ॥१३॥ वह अपने तेजसे जनककुमारी जानकीजीकी रक्षाकरते हैं तुम किसप्रकारसे उनकी जानकीजीको हरण करनेकी इच्छाकरते हो ? क्योंकि उनके हरण करनेकी इच्छा करनामानों सूर्यकी किरणोंको हाथसे पकडना है ॥१४॥ सब बाणही जिसकी शिखा हैं धनुष और खड्ग जिसके ईंधन हैं, और जिसकी सीमामें गमन करना असंभव है सो उस रामरूप प्रज्वलित अग्निमें सहसा प्रवेश करना तुमको उचित नहीं है ॥ १५ ॥ धनुषका चढानाही जिसका प्रकाशित मुख है बाणही जिसकी दीप्ति है इसीसे असह्य धनुर्बाण धारण किये; इसीसे तीक्ष्ण और शत्रुओंकी सेनाके संहारकर्त्ता ॥१६॥ कृतांत समान रामचंद्रजीके सन्मुख राज्यसुख जीवन और अपना इष्ट छोडकर तुमको जाना उचित नहीं, यदि गयेभी तो जातेही तुम्हारा नाश होजायगा ॥ १७ ॥ उनके तेजकी तुलना नहीं है जानकी उनकीही स्त्री हैं और सदाही उनके धनुर्बलका आश्रय करके वनमें वास करती है । तुम किसी भांतिभी जानकीको हरण नहीं

कथंनुतस्यवैदेहींरक्षितांस्वेनतेजसा ॥ इच्छसिप्रसभंहर्तुंप्रभामिवविवस्वतः ॥१४॥ शरार्चिषमनाधृष्यंचापखड्गेन्धनंरणे ॥ रामाग्निंसहसादीप्तं नप्रवेष्टुंत्वमर्हसि ॥१५॥ धनुर्व्यादितदीप्तास्यंशरार्चिषममर्षणम् ॥ चापबाणधरंतीक्ष्णंशत्रुसेनापहारिणम् ॥ १६ ॥ राज्यंसुखंचसंत्यज्यजीवितंचेष्टमात्मनः ॥ नात्यासादयितुंताततरामांतकमिहार्हसि ॥१७॥ अप्रमेयंहितत्तेजोयस्यसाजनकात्मजा ॥ नत्वंसमर्थस्तांहर्तुंरामचापाश्रयांवने ॥१८॥ तस्यवैनरसिंहस्यसिंहोरस्कस्यभामिनी ॥ प्राणेभ्योऽपिप्रियतराभार्यानित्यमनुव्रता ॥१९॥ नसाधर्षयितुंशक्यामैथिल्योजस्विनःप्रिया ॥ दीप्तस्येवहुताशस्यशिखासीतासुमध्यमा ॥२०॥ किमुद्यमंव्यर्थमिमंकृत्वातेराक्षसाधिप ॥ दृष्टश्चेत्त्वंरणेतेनतदंतमुपजीवितम् ॥२१॥ जीवितंचसुखंचैवराज्यंचैवसुदुर्लभम् ॥ ससर्वैःसचिवैःसार्धंविभीषणपुरस्कृतैः ॥२२॥ मंत्रयित्वासधर्मिष्ठैःकृत्वानिश्चयमात्मनः ॥ दोषाणांचगुणानांचसंप्रधार्यबलाबलम् ॥२३॥ आत्मनश्चबलंज्ञात्वाराघवस्यचतत्त्वतः ॥ हिताहितंविनिश्चित्यक्षमंत्वंकर्तुमर्हसि ॥ २४ ॥

कर सकोगे ॥१८॥ सिंहके समान चौडी छातीवाले नरसिंह रामचन्द्रजी नित्य अनुगत सीताजीको प्राणसेभी प्यारी समझते हैं ॥ १९ ॥ प्रज्वलित अग्निकी शिखाके समान तेजस्वी रामचन्द्रजीकी प्रिय स्त्री श्यामा अवस्थावाली जानकीको हरलानेकी किसीको भी सामर्थ्य नहीं है ॥२०॥ हे राक्षसराज ! तुम्हारे इस निरर्थक उद्यमसे प्रयोजन क्या है ? जो वनमें रामचन्द्रजीकहीं तुम्हें मिलभी गये तो वहीं तुम्हारे जीवनकी इतिश्री होजायगी ॥ २१ ॥ देखो राज्यसुख प्राण यह इस संसारमें महादुर्लभ हैं इससे जो सुख भोग किया चाहो तो रामचन्द्रजीसे वैरभाव न करो अब यहांसे जाय सब विभीषणादि मंत्रियोंके साथ॥ २२ ॥ सलाहकर अपना मतभी स्थिर कर गुणदोषोंको विचार रामचन्द्रजीके और अपने बलको जांचकर ॥२३॥ फिर रामचन्द्रजीके बलमें अपना बलमिथ्या जान

मेरी रायमें तो तुमको चुप रहना उचित है । बस तुम्हारा हित इसीमें होगा हमारे इन कडे वचनोंको जो मैंने आपका हित करनेके लिये कहे हैं क्षमा करना ॥२४॥ हमें कोसलाधिप दशरथजीके पुत्र श्रीरामचन्द्रजीके साथ तुम्हारे युद्धमें समागम करना अच्छा नहीं लगता, इस कारण हे राक्षसनाथ ! फिरभी तुम्हारे हितकी युक्तियुक्त वार्ता कहता हूं श्रवण करो ॥ २५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अरण्यकांडे भाषायां सप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥ मैं एक समय अपने बलवीर्य के घमंडके मारे पृथ्वीपर घूमता हुआ फिरता था मेरे पर्वतके समान शरीरमें सहस्र हाथियोंका बल था ॥ १ ॥हाथमें परिघ आयुध लिये मस्तक पर किरीट कानमें तपाये हुए सोनेके बने कुण्डल पहरे था । मेरे देह की कान्ति नीले बादरोंके समान थी इसप्रकारकी अवस्थामें लोकोंको भय उपजाता हुआ॥ २॥ मैं दंडक वनमें घूम २ कर ऋषि लोगोंका मांस भक्षण करता था, अनन्तरधर्मात्मा महामुनि विश्वामित्रजी मेरे भयसे भीत होकर ॥ ३ ॥ स्वयं जाकर राजा

अहंतुमन्येतवनक्षमंरणेसमागमंकोसलराजसूनुना ॥ इदंहिभूयःशृणुवाक्यमुत्तमंक्षमंचयुक्तंचनिशाचराधिप ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा०अरण्यकांडे सप्तत्रिंशः सर्गः ॥३७॥ कदाचिदप्यहंवीर्यात्पर्यटन्पृथिवीमिमाम् ॥ बलंनागसहस्रस्यधारयन्पर्वतोपमः ॥ १ ॥ नीलजीमूतसंकाशस्तप्तकांचनकुंडलः ॥ भयंलोकस्यजनयन्किरीटीपरिघायुधः ॥२॥ व्यचरन्दंडकारण्यमृषिमांसानिभक्षयन् ॥ विश्वामित्रोऽथधर्मात्मामद्वित्रस्तोमहामुनिः ३॥स्वयंगत्वादशरथंनरेंद्रमिदमब्रवीत् ॥अयंरक्षतुमांरामःपर्वकालेसमाहितः॥४॥ मारीचान्मेभयंघोरंसमुत्पन्नंनरेश्वर॥इत्येवमुक्तोधर्मात्माराजादशरथस्तदा ॥५॥ प्रत्युवाचमहाभागंविश्वामित्रंमहामुनिम्॥ऊनद्वादशवर्षोऽयमकृतास्त्रश्चराघवः ॥६॥ कामंतुममतत्सैन्यंमयासहगमिष्यति ॥ बलेनचतुरंगेणस्वयमेत्यनिशाचरम् ॥७॥ वधिष्यामिमुनिश्रेष्ठशत्रुंतवयथेप्सितम्॥ एवमुक्तःसतुमुनीराजानमिदमब्रवीत ॥ ८ ॥ रामान्नान्यद्बलंलोकेपर्याप्तंतस्यरक्षसः ॥ देवतानामपिभवान्समरेष्वभिपालकः ॥ ९ ॥

दशरथसे यह बोले कि,अमावास्या और पूर्णमासीको जब हम समाधि अवस्थामें रहेंगे उससमय इन रामचन्द्रको हमारी रक्षा करनी होगी ॥४॥ हे राजन् ! मारीच राक्षससे हमको घोर भय उत्पन्न हुआ है । जब ऋषिने इसप्रकार कहा तब धर्मात्मा राजा दशरथ ॥५॥ उन महर्षि महाभाग विश्वामित्रको प्रत्युत्तर देते हुए कि, रामकी अवस्था अभी सोलह वर्षसे भी कम है और अस्त्रविद्या भी अभी इन्हें नहीं आती ॥६॥ इसकारण इनको नहीं देसकते परन्तु तुम्हारा कार्य करनेके लिये हम अपनी बडी भारी चतुरंगिनी सेना सहित चलकर वहां उस निशाचरको॥७॥ यमलोकमें पठावेंगे जो कि,आप का शत्रु है,जिसका संहार करना आपको अभीष्ट है विश्वामित्रजी राजा दशरथजीके यह वचन सुन उनसे बोले ॥ ८ ॥ यद्यपि यह सत्य है कि,आप संग्राममें देवताओंके भी रक्षकहो और तुम्हारा किया कर्म तीनों

लोकोंमें प्रगट है परन्तु रामचन्द्रके सिवाय और किसीका भी बल इस राक्षसका नाश करनेमें समर्थ नहीं होगा,इस कारण हे परंतप! तुम्हारी जो बडी भारी चतुरंगिनी सेना है वह यहीं रहे ॥९॥१०॥ यह महातेजस्वी रामचन्द्र बालक होनेपर भी राक्षसोंका नाश करनेमें समर्थ होंगे इससे हम इनको लेजायँगे। हे राजन्! तुम्हारा कल्याण हो ॥११॥महर्षि विश्वामित्रजी यह कहकर श्रीरामचन्द्रजी को साथ ले परम प्रीति युक्त हो अपने सिद्धाश्रममें आये ॥१२॥ उसके पीछे जब महर्षि विश्वामित्रजी यज्ञ करनेके लिये दीक्षित हुए,तब श्रीरामचन्द्रजी विचित्र धनुष की टंकार करते हुए विश्वामित्रजी के समीप आये ॥१३॥ उनके गलेमें सुवर्णकी माला, मस्तक पर अलकें, हाथमें धनुष,दोनों नेत्र परम सुन्दर,एकमात्र जांघिया पहरे ब्रह्मचारी शरीर श्यामलवर्ण और अति सुन्दरताईसे,शोभायमान, तबतक उनके रेख इत्यादि पुरुष चिह्न नहीं प्रगट हुए थे ॥१४॥ वह अपने तेजसे समस्त दंडकारण्य को सुशोभित करके द्वितीयाके चंद्रमाके समान उदय होते हुए

आसीत्तवकृतंकर्मत्रिलोकविदितंनृप ॥ काममस्तिमहत्सैन्यंतिष्ठत्विहपरंतप ॥१०॥ बालोऽप्येषमहातेजाःसमर्थस्तस्यनिग्रहे॥गमिष्येराममादायस्वस्तितेऽस्तुपरंतप ॥११॥ एत्येवमुक्त्वासमुनिस्तमादायनृपात्मजम् ॥ जगामपरमप्रीतोविश्वामित्रःस्वमाश्रमम् ॥१२॥ तंतथादंडकारण्येयज्ञमुद्दिश्यदीक्षितम् ॥ बभूवोपस्थितोरामश्चित्रंविस्फारयन्धनुः ॥ १३ ॥ अजातव्यंजनःश्रीमान्बालःश्यामःशुभेक्षणः ॥ एकवस्त्रधरोधन्वीशिखीकनकमालया ॥१४॥ शोभयन्दंडकारण्यंदीप्तेनस्वेनतेजसा ॥ अदृश्यततदारामोबालचंद्रइवोदितः ॥१५॥ ततोऽहंमेघसंकाशस्तप्तकांचनकुंडलः ॥बलीदत्तवरोदर्पादाजगामाश्रमांतरम् ॥ १६ ॥ तेनदृष्टःप्रविष्टोऽहंसहसैवोद्यतायुधः ॥ मांतुदृष्ट्वाधनुःसज्यमसंभ्रांतश्चकारह ॥ ॥१७॥ अवजानन्नहंमोहाद्बालोऽयमितिराघवम् ॥ विश्वामित्रस्यतांवेदिमभ्यधावंकृतत्वरः ॥१८॥ तेनमुक्तस्ततोबाणःशितःशत्रुनिबर्हणः ॥ तेनाहंताडितःक्षिप्तःसमुद्रेशतयोजने ॥ १९ ॥ नेच्छतातातमांहंतुंतदावीरेणरक्षितः ॥ रामस्यशरवेगेननिरस्तोभ्रांतचेतनः ॥ २० ॥

दिखलाईदेने लगे॥१५॥ उस समय तप्तकञ्चन कुण्डलधारी मेघ का रंग धारण करके ब्रह्माजीके दिये हुए वर प्रभावसे बल मदसे दर्पित हो विश्वामित्रजीके आश्रममें आये ॥ १६ ॥ मैं जैसेही उनसे छिपकर हथियार लेकर आया वैसेही हमको आया हुआ देखतेही श्री रामचन्द्रजीने तत्क्षणात् आयुध उठाकर हर्षित हो धनुष पर शर चढाया ॥१७॥ बहुतही मोहवश होनेके कारण हम बालक समझ उनको ध्यानमें न लाकर बडी शीघ्रतासे विश्वामित्रजी की यज्ञवेदीके ऊपरको दौडे ॥१८॥ यह देखकर श्रीरामचन्द्रजीने शत्रुओंके मारने वाले तीखे बाणोंको चला हमें घायल कर शतयोजन दूर समुद्रमें फेंक दिया ॥ १९ ॥ हे तात! हमारे मारने की,इच्छा उस समय उनको नहीं थी इसी कारणसे उन्होंने उस समय हमको संहार न कर रक्षा की उसके पीछे हम रामचन्द्रजी के बाण वेगसे मूर्च्छित

होकर उतनी दूर चले गये ॥ २० ॥ गंभीर समुद्रके जलमें गिरे और बहुत देरके पीछे चैतन्यता प्राप्त कर लंकामें आये ॥२१॥ इस प्रकारसे हमने तो रक्षा पाई, परन्तु कठिन कर्म करनेवाले रामचन्द्रने अशिक्षितास्त्र और बालक होनेपर भी हमारे सहायक सब राक्षसोंको मारडाला ॥२२॥ इसी कारणसे निवारण करता हूं कि, यदि तुम रामचन्द्रजीके साथ युद्ध करोगे तो भयंकर विपदमें पडकर नाशको प्राप्त हो जाओगे ॥ २३ ॥ और अपने आप यत्न करके समाज उत्सवोंके देखनेवाले और क्रीडा रतिकी विधि जाननेवाले राक्षसोंके कारण वृथा संताप बटोरोगे ॥२४॥ बस सीताही के लिये अटा और अटारी वा धवरहरोंसे पूर्ण नानारत्न भूषिता लंका नगरीको तुम नाशवान् देखोगे ॥२५॥ जिस प्रकार किसी तालावमें सर्प होते हैं तो वहांकी बिचारी मछलियां भी गरुड करके मारडाली जाती हैं, इसी प्रकार जो लोग पाप नहीं करते, ऐसे शुद्धात्मा पुरुष भी पापात्माके आश्रयमें रहनेसे उस पापात्माके पापसे विनाश को प्राप्त होते हैं॥२६॥

पातितोऽहंतदातेनगंभीरेसागरांभसि॥ प्राप्यसंज्ञांचिरात्तातलंकांप्रतिगतःपुरीम्॥२१॥ एवमस्मिंतदामुक्तःसहायास्तेनिपातिताः अकृतास्त्रेण रामेणबालेनाक्लिष्टकर्मणा ॥ २२ ॥तन्मयावार्यमाणस्तुयदिरामेणविग्रहम्॥ करिष्यस्यापदंघोरांक्षिप्रंप्राप्यनशिष्यसि ॥२३॥ क्रीडारतिविधिज्ञानांसमाजोत्सवदर्शिनाम्॥ रक्षसांचैवसंतापमनर्थंचाहरिष्यसि ॥ २४ ॥ हर्म्यप्रसादसंबाधांनानारत्नविभूषिताम् ॥ द्रक्ष्यसित्वंपुरींलंकांविनष्टांमैथिलीकृते ॥२५॥ अकुर्वन्तोऽपिपापानिशुचयःपापसंश्रयात् ॥ परपापैर्विनश्यंतिमत्स्यानागह्रदेयथा ॥२६॥ दिव्यचंदनदिग्धांगान्दिव्याभरणभूषितान् ॥ द्रक्ष्यस्यभिहतान्भूमौतवदोषात्तुराक्षसान् ॥२७॥ हृतदारान्सदारांश्चदशविद्रवतोदिशः॥ हतशेषानशरणान्द्रक्ष्यसित्वंनिशाचरान् ॥ २८ ॥ शरजालपरिक्षिप्तामग्निज्वालासमावृताम् ॥ प्रदग्धभवनांलंकांद्रक्ष्यसित्वमसंशयम् ॥२९॥ परदाराभिमर्शात्तुनान्यत्पापतरंमहत्॥ प्रमदानांसहस्राणितवराजन्परिग्रहे॥३०॥ भवस्वदारनिरतःस्वकुलंरक्षराक्षसान्॥ मानंवृद्धिंचराज्यंचजीवितंचेष्टमात्मनः ॥ ३१ ॥

इस कारण तुम देखोगे कि, तुम्हारे निजके दोषसे दिव्यचंदन शरीरमें लगाये हुए, दिव्य वस्त्राभूषण पहरे हुए निशाचर गण समूल भूमिमें गिरेंगे ॥ २७ ॥ और मरनेसे बचे आश्रय रहित राक्षस गण कोई स्त्री रहित हो कोई स्त्रीके सहित दशों दिशाओंको भागेंगे ॥२८॥ तुम शरजालसे छाई हुई अग्निकीशिखासे पीडित हुई, ऐसी लंकापुरी के सब ही गृह एक ही कालमें भस्म हुए देखोगे ॥ २९ ॥ क्योंकि पराई स्त्रीके हरण करने के तुल्य और कोई भारी पाप नहीं है हे राजन् ! तुम्हारे रनवासमें सैकडों हजारों स्त्रियां विराजमान हैं ॥ ३० ॥ तुम अपनी ग्रहण की हुई उनकी समस्त स्त्रियोंमें आसक्त रहकर अपने वंश, अभीष्ट प्राण, राज्य; संपद, मान और राक्षसकुलकी रक्षा करो ॥ ३१ ॥

यदि परम सुन्दरी स्त्रियें मित्रोंके साथ सदाही सुख भोगनेकी इच्छा करते हो तो रामचन्द्रजीका अप्रिय कार्य मत करो ॥ ३२ ॥ हम तुम्हारे सुहृद हैं इसी कारण बारंबार तुमको निवारण करते हैं यदि इतने पर भी तुम बलपूर्वक सीताको हर लाओगे तो निश्चयही तुमको रामबाणसे बन्धु बान्धवोंसहित क्षीणबल और क्षीणप्राण होकर यमराजके भवनमें जाना पडेगा ॥ ३३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्वा० वा० आ० अरण्यकांडे भाषायामष्टात्रिंशः सर्गः ॥ ३८ ॥ उस कालमें तो हम किसी प्रकारसे रामचन्द्रजीके द्वारा इस भांति युद्धमें छूटगयेथे, इससमय वह कहता हूं जो अब हुआ है, सो तुम श्रवण करो ॥ १ ॥ जब दो मृगरूपी राक्षसोंके साथ दंडकारण्यको गये वहांभी इसी प्रकार पराजित हुए ॥ २ ॥ जब हम दंडकारण्यको गयेथे तो हमारी बडी अग्निके समान तो जिह्वा थीं, बडे तीखे दांतथे,

कलत्राणिचसौम्यानिमित्रवर्गंतथैवच ॥ यदीच्छसिचिरंभोक्तुंमाकृथारामविप्रियम् ॥ ३२ ॥ निवार्यमाणःसुहृदामयाभृशंप्रसह्यसीतांयदिधर्षयिष्यसि ॥ गमिष्यसिक्षीणबलःसबांधवोयमक्षयंरामशरास्तजीवितः ॥ ३३ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० च० सा० अर० अष्टत्रिंशः सर्गः ॥ ३८ ॥ एवमस्मितदामुक्तःकथंचित्तेनसंयुगे ॥ इदानीमपियद्वृत्तंतच्छृणुष्वयदुत्तरम् ॥ १ ॥ राक्षसाभ्यामहंद्वाभ्यामनिर्विण्णस्तथाकृतः ॥ सहितोमृगरूपाभ्यांप्रविष्टोदंडकावने ॥ २ ॥ दीप्तजिह्वोमहादंष्ट्रस्तीक्ष्णशृंगोमहाबलः ॥ व्यचरन्दंडकारण्यंमांसभक्षोमहामृगः ॥ ३ ॥ अग्निहोत्रेषुतीर्थेषुचैत्यवृक्षेषुरावण ॥ अत्यंतघोरोव्यचरंस्तापसांस्तान्प्रधर्षयन् ॥ ४ ॥ निहत्यदंडकारण्येतापसान्धर्मचारिणः ॥ रुधिराणिपिबंस्तेषांतन्मांसानिचभक्षयन् ॥ ५ ॥ ऋषिमांसाशनःक्रूरस्त्रासयन्वनगोचरान् ॥ तदारुधिरमत्तोऽहंव्यचरंदंडकावनम् ॥ ६ ॥ तदाहंदंडकारण्येविचरन्धर्मदूषकः ॥ आसादयंतदारामंतापसंधर्ममाश्रितम् ॥ ७ ॥ वैदेहींचमहाभागांलक्ष्मणंचमहारथम् ॥ तापसंनियताहारंसर्वभूतहितेरतम् ॥ ८ ॥ सोऽहंवनगतंरामंपरिभूयमहाबलम् ॥ तापसोऽयमितिज्ञात्वापूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ ९ ॥

बडे २ सींगथे, महाबलवान् भयंकर रूप था और दंडकारण्यमें मांस खाते हुए महामृगरूपसे हम विचरण करते थे ॥ ३ ॥ फिरजहां २ तीर्थरूपी वृक्ष थे, अग्निहोत्र होते थे, वहींपर तपस्वियोंको संहार भक्षण करतेहुए हम घूमते थे ॥ ४ ॥ उस दंडकवनमें धर्मात्मा ऋषिगणोंके संहार २ उनका रुधिर पान करके मांस खा जाते थे ॥ ५ ॥ और महा कुटिल स्वभाववाले हो जो कोई मिलता उसे भय उपजाते, इस भांति रुधिरपीनेसे मतवालेहो हम दंडकवनमें घूमते थे ॥ ६ ॥ जब तपस्वीधर्मका अवलंबन कियेहुए रामचन्द्रको हमने पीडित किया जब कि, वह वनमें फिरते थे ॥ ७ ॥ वह महाभाग्यवाली जानकीजीको भी डरवाया, तब महारथी तप स्वीरूप सब प्राणियोंका हित करनेमें तत्पर लक्ष्मणजीकोभी पीडित किया ॥ ८ ॥ फिर महाबलवान् वनमें घूमनेवाले रामचन्द्रजीको तपस्वी मान पहले वैरका स्मरण

कर ॥९॥ मार डालनेकी इच्छासे क्रोधित हो, यद्यपि उनके पराक्रमको जानतेथे तथापि अपने बडे २ सींग आगेको झुकाय मृगरूपसे उनपर धावमान हुए ॥ १० ॥ तब उन्होंने कानके समीपतक धनुषको खैंचकर तीन नाराच हम तीन मृगोंके ऊपर चलाये, वह बाण गरुड व पवनकी गति समान चले॥ ११ ॥ वह वज्रसम आकारवाले अतिघोर रक्त पीनेवाले बाण हम तीनोंके ऊपर आगमन करनेलगे ॥१२॥ हम बडे मूर्ख थे, पहलेही रामचन्द्रसे भय देखकर उनका पराक्रम भली भांति जानतेथे तो भी लडे, परन्तु हम तो उनका पराक्रम जान भागकर किसी रीतिसे बच गये। परन्तु वह हमारे सहाई राक्षस रामचन्द्रजीके दो बाणोंसे मारे गये ॥ १३ ॥ हे रावण ! हम किसी प्रकारसे रामचन्द्रजीके बाणसे अपने प्राणोंको बचा तबसे तपस्वीका धर्मग्रहणकर चित्तको रोकेहुए इस स्थानमें योगका अवलम्बन करके तपस्या करते हैं ॥ १४ ॥ तबसे हम फांसी हाथमें लिये यमराजके समान उन चीर व मृगचर्म धारण किये धनुषधारी रामच

अभ्यधावंसुसंक्रुद्धस्तीक्ष्णशृंगोमृगाकृतिः॥जिघांसुरकृतप्रज्ञस्तंप्रहारमनुस्मरन्॥१०॥ तेनत्यक्तास्त्रयोबाणाःशिताःशत्रुनिबर्हणाः ॥ विकृष्य सुमहच्चापंसुपर्णानिलतुल्यगाः॥११॥ तेबाणावज्रसंकाशाःसुघोरारक्तभोजनाः ॥ आजग्मुःसहिताःसर्वेत्रयःसन्नतपर्वणः ॥ १२ ॥पराक्रमज्ञोरा मस्यशठोदृष्टभयःपुरा॥ समुत्क्रांतस्ततोमुक्तस्तावुभौराक्षसौहतौ ॥१३॥ शरेणमुक्तोरामस्यकथंचित्प्राप्यजीवितम् ॥ इहप्रव्राजितोयुक्तस्ताप सोऽहंसमाहितः ॥१४॥ वृक्षेवृक्षेहिपश्यामिचीरकृष्णाजिनांबरम् ॥ गृहीतधनुषंरामंपाशहस्तमिवांतकम् ॥ १५ ॥ अपिरामसहस्राणिभीतः पश्यामिरावण॥रामभूतमिदंसर्वमरण्यंप्रतिभातिमे॥१६॥राममेवहिपश्यामिरहितेराक्षसेश्वर ॥ दृष्ट्वास्वप्नगतंराममुद्भ्रमामीवचेतनः ॥ १७ ॥ रकारादीनिनामानिरामत्रस्तस्यरावण ॥ रत्नानिचरथाश्चैववित्रासंजनयंतिमे ॥ १८ ॥ अहंतस्यप्रभावज्ञोनयुद्धंतेनतेक्षमम् ॥ बलिंवानमुचिं वापिहन्याद्धिरघुनंदनः ॥ १९ ॥

न्द्रको मानो प्रत्येक वृक्षके तले देखते हैं ॥ १५ ॥ हम भयके मारे भीतहोनिरन्तर सहस्रों रामको जहांतहां देखते हैं। इस समस्तही वनमें मानों श्रीरामचन्द्रजी हमको दिखाई देरहे हैं॥ १६ ॥ हे राक्षसेश्वर ! हम रामचन्द्र करके हित स्थानमें भी बराबर केवल उन्हीं रामचन्द्रको देखते हैं । बरन् स्वप्नमेंभी उनको देख कर मैं डरके जागतेके समान उधर दौडने लगता हूं ॥ १७ ॥ हे रावण ! हम तुमसे अधिक कहांतक कहें कि,हम रामचन्द्रसे यहांतक डर गयेहैं कि—रत्नरथ इत्यादि जिन शब्दोंके आदिम रकार है उन शब्दोंके श्रवण करनेसेभी हमें डरलगता है ❁ ॥१८॥ हम भलीभांति उन रघुनंदन रामचंद्रजीके पराक्रमको जानते

❁ "दोहा" रावणराके सुनतही, रहत न मोहिं तन प्राण। बिन रघुनंदनसों न छल, करहु वचन मम मान ॥

हैं। इस कारणसे उनके साथ युद्ध करना तुमको उचित नहींहै। वह राम बलि अथवा नमुचिको संहार करनेमें भी समर्थ हैं॥१९॥ हे रावण ! तुम रामचंद्रके साथ युद्ध करो वा न करो, परन्तु यदि हमको देखनेका अभिलाष करते हो तो हमारे साथ श्रीरामचन्द्रजीकी वार्त्ता मत करो नहीं तो हम यहांसे चले जायँगे ॥२०॥ इस लोकमें धर्मका अनुष्ठान करनेवाला योगयुक्त होकरभी बहुतसे पुरुष पराया अपराध करनेसे सपरि वार विनाशको प्राप्त हुए हैं ॥२१॥ इसीप्रकार तुम्हारे अपराधसे हमको नष्ट होना पडेगा हे निशाचर ! जो तुम्हारी इच्छा हो सो करो परन्तु हम तुम्हारे साथ नहीं चलेंगे, हमें अपने प्राण प्यारे हैं ॥२२॥ वह महातेजवान् महाबुद्धिमान् महाबलवान् रामचंद्रजी वास्तवमेंही निशाचरोंके काल हैं ॥२३॥ यद्यपि पहले जनस्थानका रहनेवाला अपावन खर, शूर्पणखाके लिये रामचन्द्रसे मार

रणेरामेणयुद्धचस्वक्षमांवाकुरुरावण ॥ नतेरामकथाकार्यायदिमांद्रष्टुमिच्छसि॥२०॥बहवःसाधवोलोकेयुक्ताधर्ममनुष्ठिताः ॥ परेषामपराधेन विनष्टाःसपरिच्छदाः ॥२१॥ सोऽहंपरापराधेनविनशेयंनिशाचर॥कुरुयत्तेक्षमतत्त्वमहंत्वांनानुयामिवै ॥२२॥ रामश्चहिमहातेजामहासत्त्वोम हाबलः ॥ अपिराक्षसलोकस्यभवेदंतकरोऽपिहि ॥ २३ ॥ यदिशूर्पणखाहेतोर्जनस्थानगतःखरः ॥ अतिवृत्तोहतःपूर्वंरामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ अत्रब्रूहियथातत्त्वंकोरामस्यव्यतिक्रमः ॥ २४ ॥ इदंवचोबधुहितार्थंनामयायथोच्यमानंयदिनाभिपत्स्यसेसबांधवस्त्यक्ष्यसिजीवितंरणेहतो ऽद्यरामेणशरैरजिह्मगैः ॥ २५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० अरण्यकांडे एकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥ ३९ ॥ मारीचस्यतुतद्वाक्यक्षमंयुक्तंचरावणः ॥ उक्तोनप्रतिजग्राहमर्तुकामइवौषधम् ॥ १ ॥ तंपथ्यहितवक्तारंमारीचंराक्षसाधिपः ॥ अब्रवीत्परु षंवाक्यमयुक्तंकालचोदितः ॥ २ ॥ दुष्कुलैतदयुक्तार्थंमारीचमयिकथ्यते॥ वाक्यंनिष्फलमत्यर्थंबीजमुप्तमिवोषरे ॥ ३ ॥

डाला गया है, परन्तु इस विषयमें रामचन्द्रजीका क्या अपराध है सो तुम्हीं सत्य २ कहो ॥२४॥ तुम हमारे बन्धुहो इस कारणसे हमने तुम्हारे मंगलहीके लिये यह सत्य वचन कहे, यदि तुम हमारे वचनोंको न मानकर रामचन्द्रसे वैर करोगे तो निश्चयही बन्धु बान्धवों सहित रामचन्द्रजीके बाणोंसे युद्धमें विनाशको प्राप्त हो तुमको प्राण परित्यागकरना पडेगा ॥ २५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अरण्यकांडे भाषायामेकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥३९॥ जिस प्रकार मृत्यु जिसकी निकट है ऐसा रोगी औषधि ग्रहण नहीं करता तैसेही सहनेके योग्य व उचित मारीचके वचन रावणने ग्रहण नहीं किये ॥१॥ उस काल प्रेरित निशाचरपति रावणने मंगलजनक और युक्तियुक्त संगत वचन कहनेवाले मारीचसे अयोग्य व कठोर वचन कहे ॥ २ ॥ हे मारीच ! तुमने जो यह राजप्रतिकूलवचन हमसे

कहे, यह अयोग्य है और ऊसरमें बीज बोनेके समान ॥३॥ तुम्हारे वचन मुझे युद्धमें रामसे नहीं हरा सकते कारण कि, वह मूर्ख पापशील साधारण मनुष्य है ॥४॥ निष्फल जो पुरुष साधारण स्त्रीके कहनेसे माता पिता राज्य और सुहृद्गणोंकोछोडकर एकसाथ वनमें चला आया है यह मूर्खता नहीं तो क्या है ॥५॥ सो हम तुम्हारे सामने अवश्यही युद्धमें खरके नाशकरनेवाले उस रामकी प्राणसे अधिक प्यारी भार्याको हरण करेंगे ॥ ६ ॥ रे मारीच ! हमने अपनी बुद्धिसे अपने हृदयमें ऐसा निश्चय करही लिया है, सो इन्द्रके सहित सुरासुरगण भी इसके विरुद्ध नहीं कर सकते । अर्थात् हमको इस संकल्पसे नहीं हटा सकते ॥ ७ ॥ यदि हम इस कार्यके विषयमें कर्त्तव्याकर्त्तव्य निश्चय करनेको तुमसे पूछते तब तुमको उसके दोष, गुण, हानि लाभ, उपाय इत्यादि कहने उचित थे ॥ ८ ॥ जो ज्ञानवान्

त्वद्वाक्यैर्नतुमांशक्यभेत्तुंरामस्यसंयुगे ॥ मूर्खस्यपापशीलस्यमानुषस्यविशेषतः ॥ ४ ॥ यस्त्यक्त्वासुहृदोराज्यंमातरंपितरंतथा ॥ स्त्रीवाक्यंप्राकृतंश्रुत्वावनमेकपदेगतः ॥५॥ अवश्यंतुमयातस्यसंयुगेखरघातिनः ॥ प्राणैःप्रियतरासीताहर्तव्यातवसंनिधौ ॥६॥ एवंमेनिश्चिताबुद्धिर्हृदिमारीचविद्यते ॥ नव्यावर्तयितुंशक्यासेंद्रैरपिसुरासुरैः ॥७॥ दोषंगुणंवासंपृष्टस्त्वमेवंवक्तुमर्हसि ॥ अपायंवाउपायंवाकार्यस्यास्यविनिश्चये ॥ ८ ॥ संपृष्टेनतुवक्तव्यंसचिवेनविपश्चिता ॥ उद्यतांजलिनाराज्ञोयइच्छेद्भूतिमात्मनः ॥९॥ वाक्यमप्रतिकूलंतुमृदुपूर्वंशुभंहितम् ॥ उपचारेणवक्तव्योयुक्तंचवसुधाधिपः ॥ १० ॥ सावमर्दंतुयद्वाक्यमथवाहितमुच्यते ॥ नाभिनंदेततद्राजामानार्थीमानवर्जितम् ॥ ११ ॥ पंचरूपाणिराजानोधारयंत्यमितौजसः ॥ अग्नेरिंद्रस्यसोमस्ययमस्यवरुणस्यच ॥१२॥ औष्ण्यंतथाविक्रमंचसौम्यंदंडंप्रसन्नताम् ॥ धारयंतिमहात्मानोराजानःक्षणदाचर ॥१३॥ तस्मात्सर्वास्ववस्थासुमान्याःपूज्याश्चनित्यदा ॥ त्वंतुधर्ममविज्ञायकेवलंमोहमाश्रितः ॥ १४ ॥

मंत्री अपने ऐश्वर्यके अभिलाषी होते हैं वह राजा करके पूछे जानेपर हाथ जोड पूछे हुए विषयका उत्तर नम्रतासे निवेदन करते हैं ॥९॥ कारण कि, राजाओंके समीप उपचारयुक्त, मनोहर मंगलजनक, अप्रतिकूल वचनही कहने ठीक हैं ॥१०॥ मंगलजनक वचनसेभी यदि अपमान होता हो तो माननीय राजालोग उस सम्मानरहित वचनोंको सुन प्रसन्न नहीं होते अथवा ग्रहण नहीं करते ॥ ११ ॥ हे निशाचर ! अमित तेजस्वी महात्मा भूपतिलोग, अग्नि, इन्द्र, चन्द्र, यम और वरुण इनपांच देवताओंका रूप धारण करते हैं ॥ १२ ॥ इससे ही हे मारीच ! उनमें अग्निकी गरमाई, इन्द्रका पराक्रम, चन्द्रमाकी शीतलताई, यमराजके समान दंडता और वरुणके समान प्रसन्नता होती है ॥ १३ ॥ इस कारणसे सबही अवसरमें पूजा व सम्मान करना योग्य है । तुम धर्मका विषय

कुछभी न जानकर केवल मायाके आधीन हो रहे हो ॥१४॥ इसीसे तुम्हारे गृहमें आनेपर भी तुमने हमारी पूजा न की, बरन् दौरात्म्यके वश होकर ऐसे कठोर वचन कहता है हे राक्षस! हमने तुमसे इस कार्यके गुण नहीं पूछे न यह कि, इस कार्यका करना कर्तव्य है अथवा नहीं॥१५॥हे अमित विक्रम ! हमने तो तुमसे यही कहा था कि तुम इस कार्यमें सहायता करो ॥१६॥ यह मेरे वचनानुसार जो कार्य तुमको करना होगा हम उसको कहते हैं तुम श्रवण करो कि, तुम रजत बिन्दु विचित्र सुवर्णमृग होकर॥१७॥उन रामचन्द्रके आश्रममें जाकर विदेहराजकुमारी सीताके सामने विचरण कर उनको लुभा अपने अभिलषितस्थानको चले जाओ॥१८॥जनककुमारी सीताजी तुमको मायामयसुवर्ण देखकर विस्मयको प्राप्त हो रामसे शीघ्रमृगके ले आनेको कहेगी॥१९॥ उसके पश्चात् जब काकुत्स्थ

अभ्यागतंतुदौरात्म्यात्परुषंवदसीदृशम् ॥ गुणदोषौनपृच्छामिक्षयंचात्मनिराक्षस ॥१५॥ मयोक्तमपिचैतावत्त्वांप्रत्यमितविक्रम ॥ अस्मिंस्तुसभवान्कृत्येसाहाय्यंकर्तुमर्हति ॥ १६ ॥ श्रृणुतत्कर्मसाहाय्येयत्कार्यंवचनान्मम ॥ सौवर्णस्त्वंमृगोभूत्वाचित्रोरजतबिंदुभिः ॥ १७ ॥ आश्रमेतस्यरामस्यसीतायाःप्रमुखेचर ॥ प्रलोभयित्वावैदेहींयथेष्टंगंतुमर्हसि ॥ १८ ॥ त्वांहिमायामयंदृष्ट्वाकांचनंजातविस्मया ॥ आनयैनमितिक्षिप्रंरामंवक्ष्यतिमैथिली ॥ १९ ॥ अपक्रांतेचकाकुत्स्थेदूरंगत्वाप्युदाहर ॥ हासीतेलक्ष्मणेत्यंवेरामवाक्यानुरूपकम् ॥ २० ॥ तच्छ्रुत्वा रामपदवींसीतयाचप्रचोदितः ॥ अनुगच्छतिसंभ्रांतसौमित्रिरपिसौहृदात् ॥२१॥ अपक्रांतेचकाकुत्स्थेलक्ष्मणेचयथासुखम् ॥ आहरिष्यामि वैदेहींसहस्राक्षःशचीमिव ॥ २२ ॥ एवंकृत्वात्विदंकार्यंयथेष्टंगच्छराक्षस ॥ राज्यस्यार्धंप्रदास्यामिमारीचनवसुव्रत ॥२३॥ गच्छसौम्यशिवं मार्गंकार्यस्यास्यविवृद्धये ॥ अहंत्वानुगमिष्यामिसरथोदंडकावनम् ॥ २४ ॥

नन्दन राम आश्रमसे बाहरआकर पीछे धावें तब तुम उनको बहुत दूरतक ले जाना ! और वहां ठीक रामचन्द्रजीके बोलसा शब्द बनाकर बडे जोरसे "हासीता हा लक्ष्मण ! " ऐसा वचन उच्चारण करना ॥ २० ॥ तब ऐसा शब्द सुनकरके सीताकी प्रेरणासे व भाईकी सुहृदताके प्रेमसे लक्ष्मणजी भी सम्भ्रांतचित्त हो रामके निकट चले जाँयगे,॥२१॥इस प्रकार राम लक्ष्मण दोनोंही जब उस आश्रमसे चले जाँयगे तब हम सीताको सुखसे हरण करेंगे ! जिसप्रकार इन्द्रने शचीका हरण किया था ॥२२॥ हे सुव्रत निशाचर मारीच ! तुम इस प्रकार कार्यको पूरा करके जहां इच्छा हो वहां चलेजाना इस कार्यके पूरा होनेपर हम तुमको आधा राज्य देंगे ॥२३॥हे शुभदर्शन ! तुम इस कार्यको पूर्ण करनेके लिये दंडकारण्यके मार्गमें मंगलसहित चलो,हम भी रथपर चढकर तुम्हारे पीछे२ चलते हैं ॥२४॥

हम रामको ठगकर बिना युद्ध किये सीताको प्राप्त कर कृतकार्य हो फिर लंकापुरीको तुम्हारे सहित लौटेंगे ॥२५॥ हे निशाचर मारीच ! यदि तुम हमारे वचनोंके
प्रतिकूल करोगे तो अभी हम तुमको मार डालेंगे, यह मेरा कार्य बलसे तुमको अवश्य करना होगा कोई पुरुष राजाको विरुद्ध आचरण करके सुख सम्पत्ति नहीं
पासकता ॥२६॥ रामचन्द्रके निकट जानेसे तुम्हारे जीवनमें संशय मात्र है; परन्तु हमारे साथ विरुद्धाचरण करनेसे इसी समय तुम्हारी मृत्यु निश्चय होगी, सो
अपनी बुद्धिसे यथोचित विचार कर इस विषयमें जो कर्त्तव्य हो सो करो ॥२७॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा०आदि०अरण्यकांडे भाषायां चत्वारिंशः सर्गः ॥४०॥
मारीच राक्षसपति रावणकरके राजाके समान मनोगत विषयमें आज्ञा पाकर शंकारहित चित्तसे यह कठोर वचन बोला ॥१॥ कि, हे निशाचरराज ! किस पाप

प्राप्यसीतामयुद्धेनवंचयित्वातुराघवम् ॥ लंकांप्रतिगमिष्यामिकृतकार्यःसहत्वया ॥२५॥ नोचेत्करोषिमारीचहन्मित्वामहमद्यवै ॥ एतत्का
र्यमवश्यंमेबलादपिकरिष्यसि ॥ राज्ञोविप्रतिकूलस्थोनजातुसुखमेधते ॥ २६ ॥ आसाद्यतंजीवितसंशयस्तेमृत्युर्ध्रुवोह्यद्यमयाविरुध्यतः ॥
एतद्यथावत्परिगण्यबुद्ध्यायदत्रपथ्यंकुरुतत्तथात्वम् ॥२७॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० अरण्यकांडे चत्वा
रिंशः सर्गः ॥४०॥आज्ञप्तोरावणेनेत्थंप्रतिकूलंचराजवत् ॥ अब्रवीत्परुषंवाक्यंनिःशंकोराक्षसाधिपम् ॥१॥ केनायमुपदिष्टस्तेविनाशःपापक
र्मणा ॥ सपुत्रस्यसराज्यस्यसामात्यस्यनिशाचर ॥ २ ॥ कस्त्वयासुखिनाराजन्नाभिनंदतिपापकृत् ॥ केनेदमुपदिष्टंतेमृत्युद्वारमुपायतः ॥३॥
शत्रवस्तवसुव्यक्तंहीनवीर्यानिशाचर ॥ इच्छंतित्वांविनश्यंतमुपरुद्धंबलीयसा ॥ ४ ॥ केनेदमुपदिष्टंतेक्षुद्रेणाहितबुद्धिना ॥ यस्त्वामिच्छ
तिनश्यंतंस्वकृतेननिशाचर ॥ ५ ॥ वध्याःखलुनवध्यंतेसचिवास्तवरावण ॥ येत्वामुत्पथमारूढंननिगृह्णंतिसर्वशः ॥ ६ ॥ अमात्यैःकाम
वृत्तोहिराजाकापथमाश्रितः ॥ निग्राह्यःसर्वथासद्भिःसनिग्राह्योनगृह्यसे ॥ ७ ॥

कर्म करनेवाले पुरुषने तुम्हें राज्य, मंत्रिवर्ग और पुत्रोंके सहित विनाशहोनेका यह उपदेश दिया है ? ॥२॥ कौन पापात्मा तुम्हारे सुखसे सुखी नहीं होसकता है
किस पापीने उपायके छलसे यह तुम्हारी मृत्युका उपाय तुम्हें बतला दिया है ? ॥३॥ हे राक्षसनाथ ! तुम्हारे हीनवीर्यशत्रु लोग निश्चयही बलवान् पुरुषके
साथ तुम्हारा विरोध कराकर तुम्हारा नाश होता देखनेके अभिलाषी हुए हैं ॥४॥ हे रावण ! किस दुष्टबुद्धिवालेने तुमको ऐसा उपदेश दिया है ? उस दुष्टका यही
अभिलाष है कि, तुम अपने कर्मोंके प्रभावसे ही नाशको प्राप्त होओ ॥५॥ हे रावण ! मंत्रिगण किसी प्रकारसे मार डालनेके योग्य नहीं होते; परन्तु जो खोटे
रस्तेमें चलनेसे तुमको नहीं रोकते, वही मार डालनेके योग्य हैं ॥६॥ देखो तुम कामके वश होकर खोटे मार्गमें चलना चाहते हो और तुम्हारे मंत्री तथापि तुमको सब

प्रकारसे नहीं रोकते, श्रेष्ठ मंत्रियोंका राजा कुमार्गसे निगृहीत करना चाहिये ऐसा करनेसे राजा समझ सकते हैं ॥७॥ हे निशाचर ! हे विजय करनेवालोंमें उत्तम मंत्रिगण अपने स्वामीकी ही प्रसन्नतासे धर्म, अर्थ, काम व यशको प्राप्त होते हैं ॥८॥ और जो स्वामीकी ही प्रसन्नता न हुई तो सबही व्यर्थ जाता है और स्वामीके गुणोंमें विकार होनेके कारण सबही दुःख पाते हैं, और प्रजापर भी महाभय प्राप्त होता है ॥९॥ नरपाल प्रजाओंके यश व धर्मकी प्राप्तिके मूल होते हैं, इस कारण सबही अवस्थामें भलीभाँति राजाकी रक्षा करनी ठीक है ॥१०॥ हे निशाचर ! अति तीक्ष्ण स्वभाववाला सबका अनभल चाहनेवाला महात्माओंके आगे नम्रतासे नहीं रहनेवाला राज्यका पालन नहीं कर सकता है ॥११॥ जो मंत्री लोग बडी कठोर आज्ञा राजासे कह कर प्रकाशित कर देते हैं, फिर वे लोगभी राजासे दुःख पाते हैं । जैसे अयोग्य ऊँचे रथ हांकनेवाले मंदबुद्धि सारथी भी मालिकके साथ रथगिरनेसे नष्ट होते हैं ॥१२॥ इस लोकमें अनेक मनुष्य

धर्ममर्थंचकामंचयशश्चजयतांवर ॥ स्वामिप्रसादात्सचिवाःप्राप्नुवंतिनिशाचर ॥८॥ विपर्ययेतुतत्सर्वंव्यर्थंभवतिरावण ॥ व्यसनंस्वामिवैगुण्यात्प्राप्नुवंतीतरेजनाः ॥९॥ राजमूलोहिधर्मश्चयशश्चजयतांवर ॥ तस्मात्सर्वास्ववस्थासुरक्षितव्यानराधिपाः ॥१०॥ राज्यंपालयितुंशक्यंनतीक्ष्णेननिशाचर ॥ नचातिप्रतिकूलेननाविनीतेनराक्षस ॥ ११ ॥ येतीक्ष्णमंत्राःसचिवाभुज्यंतेसहतेनवै ॥ विषमेषुरथाःशीघ्रंमंदसारथयोयथा ॥१२॥ बहवःसाधवोलोकेयुक्तधर्ममनुष्ठिताः ॥ परेषामपराधेनविनष्टाःसपरिच्छदाः ॥ १३ ॥ स्वामिनाप्रतिकूलेनप्रजास्तीक्ष्णेनरावण ॥ रक्ष्यमाणानवर्धंतेमृगागोमायुनायथा ॥१४॥ अवश्यंविनशिष्यंतिसर्वेरावणाराक्षसाः ॥ येषांत्वंकर्कशोराजादुर्बुद्धिरजितेंद्रियः ॥१५॥ तदिदंकाकतालीयंघोरमासादितंमया ॥ अत्रत्वंशोचनीयोसिससैन्योविनशिष्यसि ॥१६॥ मांनिहत्यतुरामोऽसावचिरात्त्वांवधिष्यति ॥ अनेनकृतकृत्योस्मिम्रियेचाप्यरिणाहतः ॥१७॥ दर्शनादेवरामस्यहतंमामवधारय ॥ आत्मानंचहतंविद्धिहृत्वासीतांसबांधवम् ॥ १८ ॥

उचित धर्मानुष्ठान किये अपने पदके योग्य पराये अपराधसे बंधुबांधवोंसहित नाशको प्राप्त होगये हैं ॥१३॥ हे दशानन ! प्रजाप्रतिकूलाचारी तीक्ष्ण स्वभाव राजाकरके रक्षमान होकर, सियारों करके रक्षित शशाआदि मृगगणोंकी नाईं आगे प्रजा वृद्धिको प्राप्त नहीं होती ॥१४॥ अरे रावण ! तुम खोटीबुद्धिवाले हो इन्द्रियोंके वश हुए हो, कडे स्वभाववाले हो ऐसे जो तुम जिनके राजाहो वह समस्त ही निशाचर अवश्यही मृत्युके ग्रास हो जाँयगे ॥१५॥ जिससे कि, तुम ससैन्य भावना की हुई मृत्युसे मरेहुए शोचनीय हो, वैसेही तुम्हारा हमारे ऊपरभी काकतालीयन्यायके समान अकस्मात् यह घोर दुःख आन पडा है ॥१६॥ रामचन्द्रजी हमको मारकर फिर तुम्हारा संहार करेंगे। युद्ध करके शत्रुके हाथसे मारे जानेपर हमतो कृतार्थ हो जायँगे ॥१७॥ परन्तु तुम निश्चय जानो कि, हमतो

रामको देखतेही मरे धरे हैं और यह भी भलीभांति समझ रक्खो कि, सीताकोहरण करते ही तुमभी अपने परिवारसहित मारे जाओगे ॥१८॥ यदि हमारे साथ मिल रामचन्द्रजीको धोखा दे तुम सीता महारानीको आश्रमसे लेभी आये, तो हमारी, तुम्हारी, लंकापुरीकी, व निशाचरगणोंकी किसीकी भी रक्षा न होगी ॥ १९ ॥ यदि तुम हमारे इन हितकारी वचनोंको न सुनकर ऐसा कार्य करनेसे नहीं रुकोगे तो तुम्हारा नाश हो जायगा क्योंकि, जिस मनुष्यकी आयु क्षीण होजाती है वह किसी सुहृदके हितकारी वचनोंको नहीं माना करता ॥२०॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा०आ० अरण्यकांडे भाषायामेकचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥ मारीचने राक्षसराज रावणसे ऐसे कठोर वचन कह कर फिर उसके भयसे भीतहो यह भी कह दिया कि, अच्छा हम चलते हैं ॥१॥ वह धनुर्बाणधारी और खड्ग धारण किये हुए रामचंद्रजी आयुध उठाकर हमारी ओर व तुम्हारी ओर देखें तो तुम अपने व हमारे प्राण गये ही जानो ॥ २ ॥ हे तात ! रामचन्द्रजीसे कैसा ही पराक्रम

आनयिष्यसिचेत्सीतामाश्रमात्सहितोमया ॥ नैवत्वमपिनाहंवैनैवलंकानराक्षसाः ॥ १९ ॥ निवार्यमाणस्तुमयाहितैषिणानमृष्यसेवाक्यमिदनिशाचर॥परेतकल्पाहिगतायुषोनरा।हितंनगृह्णंतिसुहृद्भिरीरितम् ॥२०॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० अरण्यकांडे एकचत्वारिंशः सर्गः ॥४१॥ एवमुक्त्वातुपरुषंमारीचोरावणंततः॥गच्छावेत्यब्रवीद्दीनोभयाद्रात्रिंचरप्रभोः ॥ १ ॥ दृष्ट्वाहंपुनस्तेनशरचापासिधारिणा॥मद्वधोद्यतशस्त्रेणनिहतंजीवितंचमे ॥२॥ नहिरामंपराक्रम्यजीवन्प्रतिनिवर्तते॥ वर्ततेप्रतिरूपोऽसौयमदंडहतस्यते ॥ ३ ॥ किंतुकर्तुंमयाशक्यमेवंत्वयिदुरात्मनि॥ एषगच्छाम्यहंतातस्वस्तितेऽस्तुनिशाचर ॥४॥ प्रहृष्टस्त्वभवत्तेनवचनेनसराक्षसः॥परिष्वज्यसुसंश्लिष्टमिदंवचनमब्रवीत् ॥५॥ एतच्छौंडीर्ययुक्तंतेमच्छंदवशवर्तिनः ॥ इदानीमसिमारीचःपूर्वमन्योहिराक्षसः ॥ ६ ॥ आरुह्यतामयंशीघ्रंखगोरत्नविभूषितः॥ मयासहरथोयुक्तःपिशाचवदनैःखरैः ॥ ७ ॥

प्रकाश कर कोई भी जीवित नहीं लौट सकता, फिर हम तो तुम्हारे खोटे आचारोंके कारण यमराजरूप रामचन्द्रके बाणोंसे मृत्युको प्राप्त हो तुम्हारे ही समान हो जायँगे अर्थात् हम तुम दोनों मारे जायँगे ॥३॥ तुम्हारे ऊपर अपना सामर्थ्य प्रकाश करके जीता हुआ रहना संभव नहीं क्योंकि, तुम अति दुरात्मा हो हम तुम्हारा करही क्या सकते हैं ? हे राक्षसराज ! तुम्हारा मंगल हो हम चलते हैं ॥४॥ राक्षसपति रावण मारीचके यह वचन सुन परमहर्षित हो उससे भलीभांति भेटा और यह वचन बोला ॥५॥ कि, तुमने हमारे अभिप्रायके अनुसार जब कार्य करनेको कहा तब यही वचन तुम्हारा वीरोचित हुआ । पहले तुम एक साधारण मारीच राक्षस थे पर अब तुम हमारे समान हुए ॥६॥ अब तुम हमारे साथ शीघ्रही इन रत्नविभूषित अन्तरिक्षमें टिकेहुए रथपर जिसमें कि, पिशाचोंके समान खच्चर

जुत रहे हैं बैठो ॥ ७ ॥ फिर वहां पहुँचकर विदेहराज कुमारी सीताको लुभाकर इच्छानुसार स्थानमें चलदेना । तब हम रामलक्ष्मण रहित शून्य आश्रममें प्रवेश करके बलपूर्वक सीताको हर लावेंगे ॥८॥ ऐसा सुनकर ताडका तनय मारीचने कहा कि, बहुत अच्छा चलिये । तत्पश्चात् रावण व मारीच विमान समान उस रथपर चढ ॥ ९ ॥ शीघ्रतासे उस आश्रमसे चले,और अनेक भांतिके पतन वन ॥ १० ॥ पर्वत नदी राज्य व नगरोंको देखते भालते दण्डकारण्यमें आये जहां रामचन्द्रजीका आश्रम था ॥ ११ ॥ और आश्रमको मारीचके सहित रावणने देखा और दोनों जने उस रत्नभूषित रथसे उतरे ॥१२॥ और मारीचका हाथ पकड कर रावण कहने लगा कि, हे सखे ! वनमें केलोंके वृक्षोंसे घिरा हुआ रामचन्द्रका आश्रम दिखाई देता है ॥ १३ ॥ जिस कारणसे कि, हम लोग

प्रलोभयित्वावैदेहींयथेष्टंगंतुमर्हसि॥ तांशून्येप्रसभंसीतामानयिष्यामिमैथिलीम् ॥८॥ ततस्तथेत्युवाचैनंरावणंताटकासुतः ॥ ततोरावणमारीचौविमानमिवतंरथम् ॥ ९ ॥ आरुह्याययतुःशीघ्रंतस्मादाश्रममंडलात् ॥ तथैवतत्रपश्यतौपत्तनानिवनानिच ॥ १० ॥ गिरींश्चसरितःसर्वाराष्ट्राणिनगराणिच ॥ समेत्यदंडकारण्यंराघवस्याश्रमंततः ॥ ११ ॥ ददर्शसहमारीचोरावणोराक्षसाधिपः ॥ अवतीर्यरथात्तस्मात्ततःकांचनभूषणात् ॥ १२ ॥ हस्तेगृहीत्वामारीचंरावणोवाक्यमब्रवीत् ॥एतद्रामाश्रमपदंदृश्यतेकदलीवृतम् ॥ १३ ॥ क्रियतांतत्सखेशीघ्रंयदर्थंवयमागताः ॥ सरावणवचःश्रुत्वामारीचोराक्षसस्तदा ॥ १४ ॥ मृगोभूत्वाऽऽश्रमद्वारिरामस्यविचचारह ॥सतुरूपंसमास्थायमहदद्भुतदर्शनम् ॥१५॥ मणिप्रवरशृंगाग्रःसितासितमुखाकृतिः॥ रक्तपद्मोत्पलमुखइंद्रनीलोत्पलश्रवाः ॥ १६ ॥ किंचिदत्युन्नतग्रीवइंद्रनीलनिभोदरः ॥ मधूकनिभपार्श्वश्चकंजकिंजल्कसन्निभः ॥ १७ ॥ वैदूर्यसंकाशखुरस्तनुजंघःसुसंहतः ॥ इंद्रायुधसवर्णेनपुच्छेनोर्ध्वविराजितः ॥१८॥ मनोहरस्निग्धवर्णोरत्नैर्नानाविधैर्वृतः ॥ क्षणेनराक्षसोजातोमृगःपरमशोभनः ॥ १९ ॥

यहां आये हैं, इस समय शीघ्रतासे उस कार्यका आरंभ करो। निशाचर मारीच रावणके यह वचन सुनकर ॥१४॥ महा अद्भुत मृगरूप धारण करकेरामचन्द्रजीके आश्रमके द्वारपर फिरने लगा ॥ १५ ॥ इस मृगके सींगोंका अग्रभाग मणिप्रवर सदृश था और मुखकी आकृति श्वेतकृष्ण वर्णोंसे चित्रित थी, वदनमण्डल कमलके फूलके समान, श्रवण युगल इन्द्रनील पद्मके समानथे ॥ १६ ॥ गर्दन कुछएक ऊँची उदरभी इन्द्रनीलमणिकी समता रखता था, पीछेका भाग महुयेके सुमनके समान और वर्ण पद्मरागके तुल्य था ॥ १७ ॥ खुरियें वैदूर्य मणिके तुल्य थीं, दोनों जांघे पतली थीं सब संधियें एक दूसरीसे गठी हुई थीं और पूंछ इन्द्रधनुषके समान ऊपरको उठी हुई विराजमान होरही थीं ॥ १८ ॥ उसका वर्ण चिकना और मनोहर था और शरीर उसका अनेक भांतिके रत्नोंसे

विभूषित था उस मारीच राक्षसने क्षणभरमें यह परम शोभा युक्त मृगमूर्ति धारण की ॥१९॥ उस वनको शोभित करता हुआ और श्रीरामचन्द्रजीके आश्रम कोभी अपने परम मनोहर देखने योग्य रूपसे वह राक्षस प्रकाशमान करने लगा ॥२०॥ जानकीजीको ललचानेके लिये अनेक प्रकारकी धातुओंसे चित्रविचित्र रूप धारण किये चारों ओर हरी २ घास चरता हुआ वह मृग रामचन्द्रजीके आश्रमपर विचरने लगा ॥ २१ ॥ उसके शरीरपर सैकडों चांदीके बिन्दु ऐसे लगे थे कि, जिनके देखनेसे परम प्रीति उपजे वह मृग कभी २ वृक्षोंकी कोंपलके नये २ पत्ते खाता हुआ घूमने लगा ॥२२॥ कभी केलोंकी बगियामें और कार्णिकारके वनमें प्रवेश करके और कभी श्रीसीताजीकी दृष्टिके सम्मुख जाकर इसप्रकार आश्रमके इधर उधर वह मृग मन्द गतिसे चलने लगा ॥ २३ ॥ पीठपर सुवर्णके द्वारा चित्र विचित्र होनेसे उस काल इस महामृगकी अतिशय शोभा हुई थी; वह यथा सुखसे रामचन्द्रजीके निकट घूमने लगा ॥ २४ ॥ आश्रममें घूमनेके

वनंप्रज्वलयन्रम्यंरामाश्रमपदंचतत्॥मनोहरंदर्शनीयंरूपंकृत्वासराक्षसः॥२०॥ प्रलोभनार्थंवैदेह्यानानाधातुविचित्रितम्॥विचरन्गच्छतेशष्प शाद्वलानिसमंततः॥२१॥रौप्यैर्बिंदुशतैश्चित्रभूत्वाचप्रियनंदनः॥विटपीनांकिसलयान्भक्षयन्विचचारह॥२२॥कदलीगृहकंगत्वाकार्णिकारानित स्ततः ॥ तमाश्रमंमंदगतिःसीतासंदर्शनंततः ॥ २३ ॥राजीवचित्रपृष्ठःसविरराममहामृगः ॥ रामाश्रमपदाभ्याशेविचचारयथासुखम्॥ २४॥ पुनर्गत्वानिवृत्तश्चविचचारमृगोत्तमः ॥ गत्वामुहूर्तंत्वरयापुनःप्रतिनिवर्तते ॥२५॥ विक्रीडंश्चपुनर्भूमौपुनरेवनिषीदति ॥ आश्रमद्वारमागम्य मृगयूथानिगच्छति॥२६मृगयूथैरनुगतःपुनरेवनिवर्तते॥सीतादर्शनमाकांक्षन्राक्षसोमृगतांगतः॥२७॥परिभ्रमतिचित्राणिमंडलानिविनिष्पतन्॥ समुद्वीक्ष्यचसर्वेतंमृगायेऽन्येवनेचराः॥२८॥उपगम्यसमाघ्रायविद्रवंतिदिशोदश॥राक्षसःसोपितान्वन्यान्मृगान्मृगवधेरतः॥२९प्रच्छादनार्थंभा वस्यनभक्षयतिसंस्पृशन्॥तस्मिन्नेवततःकालेवैदेहीशुभलोचना३० कुसुमापचयेव्यग्रापादपानत्यवर्तत॥कर्णिकारानशोकांश्चचूतांश्चमदिरेक्षणा३१

कभी इधर उधर खेलता; कभी आश्रमके द्वारपर आकर सुखसे चरते हुए मृगझुण्डोंके साथ चरने लगता ॥२६॥ कभी मृगोंके साथही साथ आकर फिर सीताजीको दिखाई देनेकी वांछासे फिर आश्रममें चला आता, जानकीके दर्शनकी इच्छासे वह राक्षस मृगहो गया ॥२७॥ इसप्रकार वह मृगताको प्राप्त होकर विचित्र मंडलोंसे कूद फांद करने लगा इसकी कूद फांद देख और वनके मृग ॥ २८ ॥ उसके निकट आये और उसको सूंघतेही दशो दिशाओंको भागने लगे ॥ मारीच यद्यपि सदा मृगोंको मारनेमें रत था ॥ २९ ॥ तथापि उसने अपना भाव छिपानेके लिये उन मृगोंको भक्षण नहीं किया केवल स्पर्श करने लगा ॥ इसी समय शुभ लोचना वैदेहीजी ॥ ३० ॥ उन्मादक दृष्टिसे देखती फूल चुननेके लिये कभी अशोक कभी कर्णिकार और कभी आम वृक्षके निकट जाती थीं ॥ ३१ ॥

समय कभी दौडता कभी ठिठक कर खडा होजाता; कभी मुहूर्त भरतक आगेको आश्रममें चलता; कभी फिर झटपट लौट आता ॥ २५ ॥

वनवास करनेके अयोग्य उनरुचिरवदना सीताजीनेफूल चुनतेहुए, घूमते २उस रत्नमय मृगको देखा ॥३२॥ उसके सब अंग मुक्तामणियोंसे चित्रित थे। ऐसी वराङ्गना और अति सुन्दर दांत व अधरवाली जानकीजीने भलीभांति उस मृगको देखा, इस मृगके रुयें चांदी और गेरू धातुके समान थे ॥३३॥ श्रीजानकीजी विस्मयसे प्रफुल्ल नेत्रोंसे स्नेह सहित उस मृगको देखने लगीं, मायामयमृग भी रामप्यारी सीताजीकी ओर देखता रहा ॥३४॥ अनन्तर वह मृग उस वनको प्रकाशित करता हुआ इधर उधर घूमने लगा। जनककुमारी श्रीसीताजी अनेक रत्नमय अदृष्टपूर्व (जो पहले कभी नहीं देखा) मृगको देखकर अति विस्मयको प्राप्त हुई ॥३५॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अरण्यकांडे भाषायां द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४२ ॥ सुश्रोणी, फूल चुनती हुई सीताजीने इस मृगके शरीरके मध्य चांदीके विंदु

कुसुमान्यपचिन्वंतीचचाररुचिरानना ॥ अनर्हावनवासस्यसातंरत्नमयंमृगम् ॥३२॥ मुक्तामणिविचित्रांगंददर्शपरमांगना ॥ तंवैरुचिरदंतोष्ठंरू प्यधातुतनूरुहम् ॥३३॥ विस्मयोत्फुल्लनयनासस्नेहंसमुदैक्षत ॥ सचतांरामदयितांपश्यन्मायामयोमृगः ॥३४॥ विचचारततस्तत्रदीपयन्नि वतद्वनम् ॥ अदृष्टपूर्वंदृष्ट्वातंनानारत्नमयंमृगम् ॥ विस्मयंपरमंसीताजगामजनकात्मजा ॥३५॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च०सा०अरण्यकांडे द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥४२॥ सातंसंप्रेक्ष्यसुश्रोणीकुसुमानिविचिन्वती ॥ हेमराजतवर्णाभ्यांपार्श्वाभ्यामुपशोभितम् ॥१॥ प्रहृष्टाचानवद्यांगीमृष्टहाटकवर्णिनी ॥ भर्तारमपिचक्रंदलक्ष्मणंचैवसायुधम् ॥२॥ आहूयाहूयचपुनस्तंमृगंसाधुवीक्षते ॥ आगच्छागच्छशी घ्रंवैआर्यपुत्रसहानुज ॥३॥ तवाहूतौनरव्याघ्रौवैदेह्यारामलक्ष्मणौ ॥ वीक्षमाणौतुतंदेशंतदाददृशतुर्मृगम् ॥ ४ ॥ शंकमानस्तुतंदृष्ट्वालक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत् ॥ तमेवैनमहंमन्येमारीचंराक्षसंमृगम् ॥ ५ ॥ चरंतोमृगयांहृष्टाःपापेनोपाधिनावने ॥ अनेननिहताराजानःपापरूपिणा ॥ ६ ॥ अस्यमायाविदोमायामृगरूपमिदंकृतम् ॥ भानुमत्पुरुषव्याघ्रगंधर्वपुरसन्निभम् ॥ ७ ॥

शोभायमान देख दोनों बगल उसके सुवर्ण व चांदीके देखे ॥१॥ यह देख कर परमहर्षित आनन्दितांगी, विशुद्ध वरवर्णिनी सीताजीने आयुध धारण किये हुये रामचन्द्र व लक्ष्मणजीको पुकारा ॥ २ ॥ हे आर्यपुत्र! लक्ष्मणके सहित शीघ्र आवो इस प्रकारसे कह कर रामचन्द्रजीको पुकारते २ उस मृगकी ओर देखने लगीं ॥३॥ सीताजीके पुकारनेपर पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी दोनों जने इधर उधर देखते वहां आये और इस मृगको देखा ॥४॥ परन्तु लक्ष्मणजी मृगको देख शकित हो श्रीरामचन्द्रजीसे कहने लगे कि, महाराज हमें तो ऐसा समझ पडता है कि, यह मृगरूपी निशाचर मारीच है ॥५॥ यह पापात्मा मारीच मृगरूप धारण करके परमहर्षसहित आखेटको वनमें आये हुए राजालोगोंको मारडाला करता है ॥६॥ यह राक्षस मायाका जाननेवाला है, उसने मायाके

बलसे इस प्रकार मृग रूप धारणकर लिया है । हे पुरुषसिंह! मृगरूप गन्धर्व नगरके समान अब रमणीय और परमदीप्ति युक्त है, परन्तु वास्तवमें यह मृग नहीं है ॥७॥ हे रघुनन्दन ! इस प्रकार रत्न चित्रित मृग कभी पृथ्वीपर नहीं हो सकता । हे जगन्नाथ ! यह निश्चय ही माया है इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥८॥ जब लक्ष्मणजी इस प्रकार कहने लगे तब कुछ एक मुस्काई हुई सीताजीने राक्षसके छलसे मोहित हो लक्ष्मणजीको इस कहनेसे रोकदिया और आप परमहर्षित हो बोलीं ॥९॥ हे आर्यपुत्र ! इस अभिराम मृगने हमारे मनको हरण किया है हे महाबाहो ! इसको पकड लाओ हम इस मृगके साथ खेला करेंगी ॥१०॥ क्योंकि हमारे इस पुण्याश्रममें बहुतसे पुण्यदर्शन मृगगण चमर सृमर घूमाकरते हैं, जिनकी काली और सफेद पूँछ होती है ॥११॥ और ऋक्ष, पृषत वानर व किन्नरादि भी घूमते हैं यह बड़े महाबलवान् और रूपवान् हैं ॥१२॥ परन्तु हे राजन् ! पहले कभी इस प्रकारका मृग हमारी दृष्टिमें नहीं आया, तेज क्षमा कांतिमें यह मृगोंमें श्रेष्ठ ज्ञात होता है ॥१३॥

मृगोह्येवंविधोरत्नविचित्रोनास्तिराघवजगत्यांजगतीनाथमायैषाहिनसंशयः॥८एवंब्रुवाणंकाकुत्स्थंप्रतिवार्यशुचिस्मिता॥उवाचसीतासंहृष्टाछ द्मनाहृतचेतना॥९॥आर्यपुत्राभिरामोसौमृगोहरतिमेमनः॥ आनयैनंमहाबाहोक्रीडार्थंनोभविष्यति१०॥इहाश्रमपदेऽस्माकंबहवःपुण्यदर्शनाः॥ मृगाश्चरंतिसहिताश्चमराःसृमरास्तथा॥११॥ऋक्षाःपृषतसंघाश्चवानराःकिन्नरास्तथा॥ विहरंतिमहाबाहोरूपश्रेष्ठामहाबलाः॥१२॥नचान्यःसह शोराजन्दृष्टःपूर्वंमृगोमया॥तेजसाक्षमयादीप्त्यायथाऽयंमृगसत्तमः१३॥नानावर्णविचित्रांगोरत्नभूतोममाग्रतः॥द्योतयन्वनमव्यग्रंद्योततेशशिस न्निभः॥१४॥अहोरूपमहोलक्ष्मीःस्वरसंपच्चशोभना॥मृगोऽद्भुतोविचित्रांगोहृदयंहरतीवमे१५॥यदिग्रहणमभ्येतिजीवन्नेवमृगस्तव॥आश्चर्यभूतं भवतिविस्मयंजनयिष्यति१६॥समाप्तवनवासानांराज्यस्थानांपुनःपुनः॥अंतःपुरेविभूषार्थोमृगएषभविष्यति॥१७॥भरतस्यार्यपुत्रस्यश्वश्रूणां चममप्रभो॥मृगरूपमिदंदिव्यंविस्मयंजनयिष्यति॥१८॥जीवन्नयदितेऽभ्येतिग्रहणंमृगसत्तमः॥अजिनंनरशार्दूलरुचिरंतुभविष्यति॥१९॥

इसका सबही शरीर विविधि वर्णोंसे विचित्र हो रहा है। मध्य २ में रत्नोंके बिन्दु बने हैं । यह मृग चन्द्रमाके समान वनभूमिको शान्तभावसे प्रकाशित करता हुआ हमारे सम्मुख विराजमान हो रहा है ॥ १४ ॥ अहह ! क्या सुन्दरताई है अहो क्या श्री है ! अहो क्या शोभा है ! क्या मधुर इसका बोल है ! यह अपूर्व विचित्र अंगवाला मृग हमारे मनको चुराये लेता है ॥ १५ ॥ यदि आप इसको जीता हुआ ही पकड देगे तो बडा अपूर्व यह पदार्थ सदा निकट रहकर विस्मय उपजाता रहा करेगा ॥१६॥ जब हम वनवासके व्रतको पूरा करके फिर अपने राज्यमें चलेंगी तब यह मृग हमारे रनवासका भूषण होगा॥१७॥ हे प्रभो ! भरतजीको, आपको, हमारी सासोंको बरन् सबको ही यह दिव्य मृगरूप विस्मय उत्पन्न करावेगा ॥१८॥ हे पुरुषोत्तम ! यदि इस मृगको आप जीता न

पकड सकें, तो इसका चर्मही परम मनोहर होगा ॥१९॥ इस निहत मृगके सुवर्णमय चर्मका आसन बिछा कर उसपर बैठ तुम्हारे सहित भगवान्‌की पूजा करनेको हमारा अभिलाष हुआ है ॥२०॥ यद्यपि स्वामीको इस प्रकारकी प्रेरणा करना स्त्रियोंके लिये स्वेच्छाचारिता है और भयंकर व अनुचितभी है, तथापि इस मृगकी विचित्र देहने हमको बहुतही विस्मय उपजाया है ॥२१॥ उसके कंचनके समान रोम भली श्रेष्ठ मणिके समान शृंग, प्रभातकालीन सूर्यकी नाईं और आकाशके समान प्रकाशमान ॥२२॥ रूपसे श्रीरामचन्द्रजीके हृदयमें भी विस्मयकी अवाई हुई, सीताजीके ऐसे वचन सुनकर और उस अद्भुत मृगको देख ॥२३॥ उसके शरीरकी सुन्दरताईसे रामचन्द्रजी लुभाये, उसपै सीताजीने प्रेरणाकी इस कारण हर्षितचित्त हो श्रीरामचन्द्रजी भ्राता लक्ष्मणसे बोले ॥२४॥ कि, हे लक्ष्मण ! अवलोकन करो इस मृगका

निहतस्यास्यसत्त्वस्यजांबूनदमयत्वचि ॥ शष्पबृस्यांविनीतायामिच्छाम्यहमुपासितुम् ॥ २० ॥ कामवृत्तमिदंरौद्रंस्त्रीणामसदृशंमतम् ॥ वपुषात्वस्यसत्वस्यविस्मयोजनितोमम ॥ २१ ॥ तेनकांचनरोम्णातुमणिप्रवरशृंगिणा ॥ तरुणादित्यवर्णेननक्षत्रपथवर्चसा ॥२२॥ बभूवराघवस्यापिमनोविस्मयमगतम् ॥ इतिसीतावचःश्रुत्वादृष्ट्वाचमृगमद्भुतम् ॥२३॥ लोभितस्तेनरूपेणसीतयाचप्रचोदितः ॥ उवाचराघवोहृष्टो भ्रातरंलक्ष्मणंवचः ॥२४॥ पश्यलक्ष्मणवैदेह्यास्पृहामुल्लसितामिमाम् ॥ रूपश्रेष्ठतयाह्येषमृगोऽद्यनभविष्यति ॥ २५ ॥ नवनेनंदनोद्देशेनचैत्ररथसंश्रये ॥ कुतःपृथिव्यांसौमित्रेयोऽस्यकश्चित्समोमृगः ॥२६॥ प्रतिलोमानुलोमाश्चरुचिरारोमराजयः ॥ शोभंतेमृगमाश्रित्यचित्राःकनकबिंदुभिः ॥ २७ ॥ पश्यास्यजृंभमाणस्यदीप्तामग्निशिखोपमाम् ॥ जिह्वांमुखान्निःसरंतींमेघादिवशतह्रदाम् ॥ २८ ॥ मसारगल्लर्कमुखःशंखमुक्तानिभोदरः ॥ कस्यनामानिरूप्योऽसौनमनोलोभयेन्मृगः ॥ २९ ॥

श्रेष्ठरूप देख कर जानकीजीको अभिलाषा उल्लसित हो उठी है। अतएव इस समय इसका प्राण धारण करना असंभव है ॥२५॥ हे लक्ष्मण ! क्या वनमें क्या नन्दनमें क्या चैत्ररथ काननमें अथवा पृथ्वीमें किसी स्थानमें भी इसके समान मृग नहीं है ॥ २६ ॥ देखो इसके रोमोंकी पँक्तियें कुछ सीधी कुछ बंकिमाकार कैसी शोभाको प्राप्त हो रही हैं, और उसपर उसमें सुवर्ण बिन्दुओंके चित्रित होनेसे और भी सुन्दरताई आई है ॥ २७ ॥ देखो भय्या ! मेघसे बिजली जैसी चमकती है वैसेही जमुहाई लेनेके समय उसके मुखसे अग्निकी शिखाके समान प्रदीप्त जीभ निकलती है ॥२८॥ इसका मुखमंडल इन्द्रनीलमणि निर्मित पानपात्रके आकारसा है। पेट शंख और मोतीके समान है, और इसके स्वरूपका निर्णय करना दुःसाध्य है इसको देखनेसे किसका मन मोहित नहीं होता ॥२९॥

इसका रूप पक्के सुवर्णकी प्रभासे परिपूर्ण है, और नानाप्रकारके रत्नमय है ऐसा दिव्य स्वरूप दृष्टि आनेसे किसका मन विस्मयको प्राप्त नहीं होता ? ॥३०॥ धनुर्धारी नृपतिगण महावनमें शिकार करनेके लिये प्रवृत्त हो मांसके लिये अथवा विहारके लिये बहुत मृगोंको मार डालते हैं ॥३१॥ अधिक करके वह राजा लोग मृगवधमें उद्यत होकर बडे २ वनोंमें मणि रत्न सुवर्णादि धातुरूप धनका संग्रह भी करते हैं ॥३२॥ हे लक्ष्मण ! इस प्रकार धनधान्यकी राशिसे खजाना बढता है । इस लिये वनमें सबही पुरुषोंकी ब्रह्मकीनाई मनकी इच्छा सफल होती है ॥३३॥ हे लक्ष्मण ! अर्थकी इच्छा करनेवाला पुरुष अर्थसाधन वस्तुके कारण निःसंशय चित्तसे उसकार्यमें लगे तो अर्थ शास्त्रज्ञ पंडित लोग उसकोही ठीक अर्थ कहते हैं ॥ ३४ ॥ इस कारणसे इस मृगके वध करनेमें कुछ दुविधा करनेकी आवश्यकता नहीं है । सुमध्यमा जानकीजी हमारे साथ इस मृगरत्नके श्रेष्ठ व सुवर्णमय चर्मपर बैठेंगी ॥ ३५ ॥ क्या कदली और प्रियमृगका चर्म

कस्यरूपमिदंदृष्ट्वाजांबूनदमयप्रभम्॥नानारत्नमयंदिव्यंनमनोविस्मयंव्रजेत्॥३०॥ मांसहेतोरपिमृगान्विहारार्थंचधन्विनः॥घ्नंतिलक्ष्मणराजानोमृगयायांमहावने ॥३१॥ धनानिव्यवसायेनविचीयंतेमहावने ॥ धातवोविविधाश्चापिमणिरत्नसुवर्णिनः ॥ ३२ ॥तत्सारमखिलंनृणांधनंनिचयवर्धनम् ॥ मनसाचिंतितंसर्वंयथाशुक्रस्यलक्ष्मण ॥ ३३ ॥ अर्थीयेनार्थकृत्येनसंव्रजत्यविचारयन् ॥ तमर्थमर्थशास्त्रज्ञाःप्राहुरर्थ्याःसुलक्ष्मण ॥३४॥ एतस्यमृगरत्नस्यपरार्ध्येकांचनत्वचि ॥ उपवेक्ष्यतिवैदेहीमयासहसुमध्यमा ॥ ३५ ॥ तेनकादलीनप्रियकीनप्रवेणीनचाविकी ॥ भवेदेतस्यसदृशीस्पर्शेऽनेनेतिमेमतिः ॥ ३६ ॥ एषचैवमृगःश्रीमान्यश्चदिव्योनभश्चरः ॥ उभावेतौमृगौदिव्यौतारामृगमहीमृगौ ॥ ३७ ॥ यदिवायंतथायन्मांभवेद्वदसिलक्ष्मण॥मायैषाराक्षसस्येतिकर्तव्योस्यवधोमया॥३८॥ एतेनहिनृशंसेनमारीचेनाकृतात्मना ॥ वनेविचरतापूर्वंहिंसितामुनिपुंगवाः ॥३९॥ उत्थायबहवोयेनमृगयायांजनाधिपाः ॥ निहताःपरमेष्वासास्तस्माद्वध्यस्त्वयंमृगः ॥ ४० ॥

क्या प्रवेणीनामक छागलका चर्म, क्या मेषादिकका चर्म । कोई भी चर्म इस मृगके चर्मके समान कोमल, चिकना व मनोहर हमको नहीं ज्ञात होता है ॥ ३६ ॥ यहही मृग श्रीमान् है, और आकाशमें जो मृग विचरण करते हैं, वेही श्रीमान् हैं, बस इससे वह तारा मृग (मृगशिरा नक्षत्र) और यह महीमृग यही दोनों मृग दिव्य हैं ॥३७॥ हे लक्ष्मण ! तुम कहते हो कि, यह राक्षसकी माया है, सो यदि वास्तवमें ऐसाही हो तोभी हमको इसका संहार करना कर्त्तव्यही है ॥३८॥ क्योंकि देखो इस दुरात्मा निर्दय मारीचने वनमें घूमते २ अनेक मुनिश्रेष्ठोंको मारडाला है ॥३९॥ और अहेर खेलने जब राजालोग इस वनमें आये तो इस राक्षसने इसी भांति मायामृग वनकर परमधनुर्धर अनेक राजाओंका संहार किया है । इस कारण इस मृगको मारनाही कर्त्तव्य है ॥ ४० ॥

पेटमें रहते हुए ही जिस प्रकार खिच्चडीका गर्भ अपनी माताको मार डालता है वैसेही पूर्व समय इस वनमें राक्षस वातापी भी तपस्वी ब्राह्मणोंके पेटमें प्रवेश करके उनको संहार किया करता था ॥४१॥ बहुतकालके पीछे किसी समय वह वातापी तेजस्वी महामुनि अगस्त्यजीको प्राप्त होकर उनके द्वारा पचाया गया था ॥४२॥ फिर जब कि श्राद्धके पूर्ण होने उपरान्त वातापीको राक्षसरूप धारण करनेका इच्छुक देखा तब भगवान् अगस्त्यजी मुसकाय कर बोले ॥ ४३ ॥ वातापी ! तूने अपने तेजसे ज्ञानरहित हो इस जीवलोकमें अनेक श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको मारडाला है इसीकारणसे हमने तुमको पचाडाला ॥४४॥ हे लक्ष्मण ! जो हमारे समान धर्मनिरत और जितेंद्रिय पुरुषका निरादर करता है उस राक्षसके प्राण वातापीके ही समान नष्ट हो जाते हैं ॥४५॥ अतएव मारीच इस आश्रममें आकर अगस्त्यजी करके

पुरस्तादिहवातापिःपरिभूयतपस्विनः ॥ उदरस्थोद्विजान्हंतिस्वगर्भोऽश्वतरीमिव॥४१॥सकदाचिच्चिराल्लोकेआससादमहामुनिम्॥ अगस्त्यंतेजसायुक्तंभक्ष्यस्तस्यबभूवह ॥४२॥ समुत्थानेचतद्रूपंकर्तुकामंसमीक्ष्यतम्उत्स्मयित्वातुभगवान्वातापिमिदमब्रवीत् ॥ ४३ ॥ त्वयाऽविगण्यवातापेपरिभूताश्चतेजसा ॥ जीवलोकेद्विजश्रेष्ठास्तस्मादसिजरांगतः ॥४४॥ तद्रक्षोपिनभवेदेववातापिरिवलक्ष्मण ॥ मद्विधंयोऽतिमन्येतधर्मनित्यंजितेंद्रियम् ॥ ४५ ॥ भवेद्धतोऽयंवातापिरगस्त्येनेवमागतः॥ इहत्वंभवसन्नद्धोयंत्रितोरक्षमैथिलीम् ॥ ४६ ॥ अस्यामायत्तमस्माकंयत्कृत्यंरघुनंदन॥अहमेनंवधिष्यामिग्रहीष्याम्यथवामृगम् ॥४७॥ यावद्गच्छामिसौमित्रेमृगमानायितुंद्रुतम् ॥ पश्यलक्ष्मणवैदेहींमृगत्वाचिगतांस्पृहाम् ॥ ४८ ॥त्वचाप्रधानयाह्येषमृगोऽद्यनभविष्यति ॥ अप्रमत्तेनतेभाव्यमाश्रमस्तेनसीतया ॥ ४९ ॥ यावत्पृषतमेकेनसायकेनानिहन्म्यहम् ॥हत्वैतच्चर्मचादायशीघ्रमेष्यामिलक्ष्मण ॥ ५० ॥

वातापीकी नाईं हमारे द्वारा मारडाला जायगा । इससमय तुम कवच इत्यादि बांधकर यत्नसहित सीताजीकी रक्षा करो ॥४६॥ हे रघुनन्दन! हमारा कर्त्तव्यकार्य जानकीके आधीन है इसलिये तुम सावधानीसे यहां टिके रहो हम इस मृगको मारही डालेंगे अथवा जीताही पकड लावेंगे ॥४७॥ हे लक्ष्मण ! इस मृगचर्म लेनेकी जानकीको बडी अभिलाषा हुई है देखो अब हम बहुत शीघ्रतासे इस मृगको पकडनेके लिये जायँगे ॥४८॥ इस मृगका चर्म सब मृगोंसे अच्छा है, आज निश्चयही इसको प्राण त्याग करना पडेगा लक्ष्मण ! हम जबतक इस मृगको नहीं मारडालें तबतक तुम सीताजीके साथ सावधानतासे आश्रममें टिके रहो ॥४९॥ हे लक्ष्मण ! मैं एक बाणसे शीघ्रही मृगको मारकर इसका चर्म ले आऊँगा जबतक हम लौटकर न आवें तबतक तुम सावधानीसे यहांपर रहना ॥५०॥

हे लक्ष्मण ! तुम जानकीको लेकर अतिबलवान् बुद्धिमान् अच्छे कार्योंके करनेमें चतुर, बली श्रेष्ठ जटायुके साथ निरन्तर शंकित और सावधानीसे यहांपर रहना ॥ ५१ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्वा० वा० आदि० अरण्यकाण्डे भाषायां त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥४३॥ परमतेजस्वी रघुनन्दन रामचन्द्रजी भ्राता लक्ष्मणजीको इस प्रकारसे समझाय बुझाय सुवर्णनिर्मित मुष्टि लगा हुआ खड्ग हाथमें लेते हुए ॥१॥ उसके पीछे जिसका बिचला भाग तीन जगहसे झुका हुआ था, ऐसा अपना भूषणस्वरूप धनुष ग्रहण करके और तरकश बांध करके प्रचंड पराक्रमी श्रीरामचन्द्रजी गये ॥२॥ वह मृगश्रेष्ठ मृगोंका राजा रामचन्द्रजीको अपने सम्मुख आता हुआ देखकर भयके मारे अन्तर्धान हो फिर थोडी दूरपै उनको दीख पडा ॥३॥ श्रीरामचन्द्रजी भी खड्ग और धनुष बाण धारण करके जिस ओर मृग था

प्रदक्षिणेनातिबलेनपक्षिणाजटायुषाबुद्धिमताचलक्ष्मण॥भवाप्रमत्तःप्रतिगृह्यमैथिलींप्रतिक्षणंसर्वतएवशंकितः ॥ ५१ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० च० सा० अर० त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥४३॥ तथातुतंसमुद्दिश्यभ्रातरंरघुनंदनः ॥ दधारासिंमहातेजाजांबूनदमयत्सरुम् ॥ १ ॥ ततस्त्रिविनतंचापमादायात्मविभूषणम् ॥ आबध्यचकलापौद्वौजगामोदग्रविक्रमः ॥ २ ॥ तंवन्यराजोराजेंद्रमापतंतंनिरीक्ष्यवै॥बभूवांतर्हितस्त्रासात्पुनःसंदर्शनेऽभवत् ॥३॥ बद्धासिर्धनुरादायप्रदुद्रावयतोमृगः ॥ तंस्मपश्यतिरूपेणद्योतयंतमिवाग्रतः ॥ ४ ॥ अवेक्ष्यावेक्ष्यधावंतंधनुष्पाणिर्महावने ॥ अतिवृत्तमिषोपाताल्लोभयानंकदाचन ॥ ५ ॥ शंकितंतुसमुद्भ्रांतमुत्पतंतमिवांबरम् ॥ दृश्यमानमदृश्यंचवनोद्देशेषुकेषुचित् ॥६॥ छिन्नाभ्रैरिवसंवीतंशारदंचंद्रमंडलम् ॥ मुहूर्तादिवददृशेमुहुर्दूरात्प्रकाशते ॥७॥ दर्शनादर्शनेनैवसोऽपाकर्षतराघवम् ॥ सदूरमाश्रमस्यास्यमारीचोमृगतांगतः ॥८ ॥ आसीत्क्रुद्धस्तुकाकुत्स्थोविवशस्तेनमोहितः ॥ अथावतस्थेसुश्रांतश्छायामाश्रित्यशाद्वले ॥ ९ ॥

उस ओरको धाये । और देखते हुए कि, मृग अपने रूपसे चारोंओरको प्रकाश करता हुआ मानो सामनेही विराज रहा है ॥४॥ कभी वह मृग शार्ङ्गपाणि रामको वारंवार देखकर वनमें दौड़ता कभी कुलांच मारकर दूरही रहता, कभी अपने रूपसे लुभाता ॥५॥ कभी शंकित और भ्रांतचित्त होकर मानो आकाशको चला जायगा ऐसी छलांग मारता कभी अदृश्य हो जाता, कभी दिखाई पडने लगता ॥ ६ ॥ और कभी छिन्नभिन्न मेघसमूहमें घिरे हुए शारदीय चन्द्रमण्डलके समान मुहूर्त भरमें अदृश्य हो जाता और मुहूर्तमात्रमें दूर दिखाई देता ॥७॥ इस प्रकारसे मृगरूपी मारीच छलबलकर दीखता छिपता रामचन्द्रजीको आश्रमसे बहुत दूर ले गया ॥८॥ रामचन्द्रजी उसकी मायासे मोहित और नितान्त अवश होकर क्रोधसे घिरे और बहुतही थक कर एकपेडकी छायाके

नीचे हरी दूबके खेतमें बैठ गये ॥९॥ मृगरूपी मारीचने उनको उन्मादित कर दिया था, वह मारीच फिर अन्य मृगोंके साथ बहुत निकटही रामचन्द्रजीको दृष्टि आया ॥१०॥ वह मारीच राक्षस श्रीरामचन्द्रजीको अपने पकडनेका अभिलाषी जानकर दौडा और मारे भयके उस समय फिर अन्तर्धान हो गया ॥११॥ और बहुत दूर जाकर फिर वृक्ष समूहोंके नीचे दिखाई दिया, महातेजवान् रामचन्द्रजी यह देखकर अब इस मृगका मार डालना ही निश्चय करते हुए ॥ १२ ॥ उन्होंने रोषसे भरकर फिर तरकशसे सूर्यके समान शत्रुका नाश करने वाला प्रज्वलित एक बाण निकाला ॥ १३ ॥ और उसको दृढ धनुषपर चढा बलसे खैंच जलती हुई अग्निके समान प्रकाशित उस मृगपर ॥ १४ ॥ ब्रह्माका बनाया हुआ अति प्रज्वलित अस्त्र उस मृगरूपी राक्षस मारीचके योग्यही छोडा ॥ १५ ॥ शरश्रेष्ठ ब्रह्मास्त्रने छूटतेही वज्रके समान मृगरूपी मारीचका हृदय विदारण किया तब वह मारीच अतिशय आतुर होकर ताडके

सतमुन्मादयामासमृगरूपोनिशाचरः ॥ मृगैःपरिवृतोऽथान्यैरदूरात्प्रत्यदृश्यत ॥१०॥ ग्रहीतुकामंदृष्ट्वातंपुनरेवाभ्यधावत ॥ तत्क्षणादेवसंत्रा सात्पुनरंतर्हितोऽभवत् ॥११॥ पुनरेवततोदूराद्वृक्षखंडाद्विनिःसृतः ॥ दृष्ट्वारामोमहातेजास्तंहंतुंकृतनिश्चयः ॥१२॥ भूयस्तुशरमुद्धृत्यकुपित स्तत्रराघवः ॥ सूर्यरश्मिप्रतीकाशंज्वलंतमरिमर्दनः॥१३॥ संधायसदृढंचापेविकृष्यबलवद्बली ॥ तमेवमृगमुद्दिश्यज्वलंतमिवपन्नगम्॥१४॥ मुमोचज्वलितंदीप्तमस्त्रंब्रह्मविनिर्मितम् ॥ सभृशंमृगरूपस्यविनिर्भिद्यशरोत्तमः ॥१५॥ मारीचस्यैवहृदयंबिभेदाशनिसन्निभः ॥ तालमात्रम थोत्प्लुत्यन्यपतत्सभृशातुरः ॥१६॥ व्यनदद्भैरवंनादंधरण्यामल्पजीवितः॥म्रियमाणस्तुमारीचोजहौतांकृत्रिमांतनुम् ॥१७॥ स्मृत्वातद्वचनं रक्षोदध्यौकेनतुलक्ष्मणम् ॥ इहप्रस्थापयेत्सीतातांशून्येरावणोहरेत् ॥ १८ ॥ सप्राप्तकालमाज्ञायचकारचततःस्वनम्॥ सदृशंराघवस्येवहासीते लक्ष्मणेतिच ॥१९॥ तेनमर्मणिनिर्विद्धंशरेणानुपमेनहि ॥ मृगरूपंतुतत्त्यक्त्वाराक्षसंरूपमास्थितः ॥ २० ॥

वृक्ष समान ऊपरको उछल पृथ्वीपर गिर पडा ॥ १६ ॥ और क्षीणप्राण मरनेके निकट पहुँच पृथ्वीपर गिरकर भयंकर शब्दसे बहुत चिल्लाया । उस राक्षसने मरनेके समय वह अपनी बनावटी छलकी देह त्याग कर दी ॥ १७ ॥ अनन्तर मारीच मरनेके समय उस मायामय देहको त्याग रावणकी आज्ञा स्मरण कर विचारने लगा कि, किस उपायका अवलम्बन करनेसे सीता लक्ष्मणको यहां भेजें और रावण शून्य आश्रमको पाकर सीताको हरण कर ले॥१८॥ यह विचार कर अपना काल आया हुआ जान रावणकी उपदेश की हुई सम्मतिके अनुसार "हा सीते ! हा लक्ष्मण !" कह कर रामचन्द्रके समान कंठस्वर बनाकर उस राक्षसने चिल्लाना आरंभ किया ॥१९॥ श्रीरामचन्द्रजीके अनुपम बाणसे उसका मर्मस्थान इतना विंध गया था, कि फिर वह मृगरूप धारण नहीं

कर सका और राक्षसमूर्ति ग्रहण की ॥२०॥ मरनेके समय मारीचकी देह बडी भारी हो गई उस भयंकर निशाचर मारीचको भूमिमें गिरा ॥२१॥ रुधिरसे लिपटा पृथ्वीमें लोटता हुआ श्रीरामचन्द्रजीने देखा और मनही मनमें सीता और लक्ष्मणके वचन स्मरण करके आश्रमकी ओर लौटे ॥२२॥ आश्रमको लोटनेके समय विचारने लगे कि, लक्ष्मणजीने पहलेही कहा कि यह मारीचकी माया है। उनकीही बात इस समय सत्य हुई यथार्थही मारीचको हमने मार डाला ॥२३॥ इस समय मारीचने "हा सीते! हा लक्ष्मण !" बडे ऊँचे शब्दसे कहकर प्राण त्याग किये हैं, न जानें सीता इस शब्दको सुनकर क्या करेंगी ॥२४॥ अथवा महाबाहु लक्ष्मणजी किस अवस्थाको प्राप्त होंगे? इस प्रकार चिन्ता करते २ धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजीके रोम खडे हो गये ॥२५॥ उस काल मृगरूपी राक्षसको मार डालकर और इसका इस प्रकार

चक्रेससुमहाकायोमारीचोजीवितंत्यजन् ॥ तंदृष्ट्वापतितंभूमौराक्षसंभीमदर्शनम् ॥२१॥ रामोरुधिरसिक्तांगंचेष्टमानंमहीतले ॥ जगाममनसासीतांलक्ष्मणस्यवचःस्वनम् ॥२२॥ मारीचस्यतुमायैषापूर्वोक्तालक्ष्मणेनतु ॥ तत्तथाह्यभवच्चाद्यमारीचोऽयंमयाहतः ॥ २३ ॥ हासीतेलक्ष्मणेत्येवमाक्रुश्यतुमहास्वनम् ॥ममारराक्षसःसोऽयंश्रुत्वासीताकथंभवेत् ॥ २४ ॥ लक्ष्मणश्चमहाबाहुःकामवस्थांगमिष्यति ॥ इतिसंचिंत्यधर्मात्मारामोहृष्टतनूरुहः ॥२५॥ तत्ररामंभयंतीव्रमाविवेशविषादजम् ॥ राक्षसंमृगरूपंतंहत्वाश्रुत्वाचतत्स्वनम् ॥२६॥ निहत्यपृषतंचान्यंमांसमादायराघवः ॥ त्वरमाणोजनस्थानंससाराभिमुखंतदा ॥ २७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० अरण्यकांडेचतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥ आर्तस्वरंतुतंभर्तुर्विज्ञायसदृशंवने ॥ उवाचलक्ष्मणंसीतागच्छजानीहिराघवम् ॥ १ ॥ नहिमेजीवितंस्थानेहृदयंवावतिष्ठते ॥ क्रोशतःपरमार्तस्यश्रुतःशब्दोमयाभृशम् ॥ २ ॥ आक्रंदमानंतुवनेभ्रातरंत्रातुमर्हसि ॥ तंक्षिप्रमभिधावत्वंभ्रातरंशरणैषिणम् ॥ ३ ॥

चिल्लाना सुनकर विषादके मारे तीव्र भयसे रामचन्द्रजी भीत हुए ॥२६॥ उसके पीछे वह एक और मृगको मार कर और उसका मांस ग्रहण करके शीघ्रतासे जनस्थानकी ओर चले ॥ २७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अरण्यकाण्डे भाषायां चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥ यहां आश्रममें वनके मध्य स्वामीके समान बहु करुणाका शब्द सुनकर सीताजी लक्ष्मणसे बोलीं, जाकर देख आओ रामचंद्रजीको क्या हुआ ? ॥ १ ॥ वह महाआर्त वचनसे चिल्ला रहे हैं यह शब्द सुनकर हमारा मन प्राण अपने २ ठिकाने नहीं है ॥२॥ वनके बीच ऊंचे स्वरसे रोतेहुए अपने भ्राताका उद्धार करना तुमको अवश्य कर्तव्य है.

इस कारण तुम वेगही शरणार्थी अपने भ्राताकी रक्षाके लिये दौडो ॥३॥ गाय बैल जिस प्रकार सिंहके वशमें पडता है तुम्हारे भैयाभी वैसेही राक्ष सके वशमें पडे हैं, परन्तु लक्ष्मणजीको मृग मारनेको गमन करनेके समय जो रामचंद्रजी आज्ञा दे गयेथे उसको स्मरण करके सीताजीसे इस प्रकार कहे जानेपर भी रामचंद्रजीके समीप नहीं गये ॥४॥ तब सीताजी नितान्त क्षुभित होकर लक्ष्मणजीसे बोलीं कि, हे लक्ष्मण ! तुम रामचंद्रजीके मित्ररूपी शत्रु हो ॥ ५ ॥ देखो तुम इस प्रकारकी अवस्थामें भी उनकी रक्षा करनेके लिये नहीं जाते, इससे समझपडा कि, तुम हमको लेलेनेके लिये रामचन्द्रजीके विनाशकी कामना करते हो ॥६॥ निश्चयही हमारे प्रति लुभानेसे तुम उनके समीप नहीं जाते इसी कारणसे रामचन्द्रजीकी यह विपद् तुमको प्रिय लगती है । और तुमको उनसे कुछ स्नेह नहीं

रक्षसांवशमापन्नंसिंहानामिवगोवृषम् ॥ नजगामतथोक्तस्तुभ्रातुराज्ञायशासनम् ॥ ४ ॥ तमुवाचततस्तत्रक्षुभिताजनकात्मजा॥सौमित्रेमित्ररूपेणभ्रातुस्त्वमसिशत्रुवत् ॥५॥ यस्त्वमस्यामवस्थायांभ्रातरंनाभिपद्यसे ॥ इच्छसित्वंविनश्यंतंरामंलक्ष्मणमत्कृते ॥६॥ लोभात्तुमत्कृतेनूनंनानुगच्छसिराघवम्॥व्यसनंतेप्रियंमन्येस्नेहोभ्रातरिनास्तितते ॥७॥ तेनतिष्ठसिविश्रब्धःतमपश्यन्महाद्युतिम् ॥ किंहिसंशयमापन्नेतस्मिंन्निहमयाभवेत् ॥८॥ कर्तव्यमिहतिष्ठंत्यायत्प्रधानस्त्वमागतः॥ एवंब्रुवाणांवैदेहींबाष्पशोकसमन्विताम् ॥ ९ ॥ अब्रवील्लक्ष्मणस्त्रस्तांसीतांमृगवधूमिव ॥ पन्नगासुरगंधर्वदेवदानवराक्षसैः ॥१०॥ अशक्यस्तववैदेहिभर्ताजेतुंनसंशयः ॥ देविदेवमनुष्येषुगंधर्वेषुपतत्रिषु॥११॥राक्षसेषुपिशाचेषुकिन्नरेषुमृगेषुच॥दानवेषुचघोरेषुनसविद्येतशोभने १२॥योरामंप्रतियुध्येतसमरेवासवोपमम्॥अवध्यःसमरेरामोनैवंत्वंवक्तुमर्हसि ॥१३॥

है ॥७॥ इसी कारण तुम महाद्युतिमान् रामचन्द्रजीको न देख करभी निश्चिन्त बैठे हो । किन्तु तुम जो रामचन्द्रजीके अधीनमें होकर वनमें आये तो उनके यहां संशयापन्न होनेसे ॥ ८ ॥ मुझसे यहां रहकर क्या कार्य होगा ? जब वैदेहीजीने आँखोंमें आंसू भरकर यह कहा कि, तुम्हारी तो यह दशा रही तो अब हम क्या करें ॥९॥ तब मृगीके समान डरी हुई सीताजीसे लक्ष्मणजी बोले कि, हे विदेहकुमारी ! नाग, असुर, गन्धर्व, देव, दानव राक्षस ॥१०॥ कोई भी आपके स्वामीको जीतनेमें समर्थ नहीं है; इसमें कुछभी सन्देह नहीं है । हे देवि ! मनुष्य, गन्धर्व, पक्षी ॥ ११ ॥ राक्षस, पिशाच, किन्नर, मृग व अतिघोर जीव इनमें ऐसा कोईभी नहीं है ॥ १२ ॥ जो इन्द्रके समान पौरुषी श्रीरामचन्द्रजीका सामना करसके फलतः उनको समरमें कोई मारभी नहीं सकता, इस

लिये तुमको ऐसा अनुचित नहीं कहना चाहिये ॥१३॥ और रामचन्द्रजीके बिना अकेली इस वनके बीच त्याग करनेको भीकिसी प्रकारसे हमारा साहस नहीं
होता, इत्यादि बलवान् देवगण भी अपने बलसे रामचन्द्रजीके बलको नहीं रोक सकते ॥१४॥ अथवा सब त्रिलोकी समस्त देवतागणोंके सहित एकत्र मिल
कर भी रामचन्द्रजीके पराजय करनेको सामर्थ्य नहीं रखते इससे आप शोक त्यागकरके स्थिर चित्त हूजिये ॥१५॥ आपके स्वामी रामचन्द्रजी मृगोत्तमको
हनन करके शीघ्रही लौटेंगे और हम निश्चय कहते हैं कि; यह शब्द उनका नहीं है और न कोई यह देवप्रेरित शब्द है ॥१६॥ निशाचर मारीचही गन्धर्व
नगर सदृशी मिथ्या माया विस्तार करके इसप्रकार शब्द चिल्लाकर कर रहा है । हे जानकि ! महात्मा रामकरके आप हमारे निकट सौंपी गई हैं ॥१७॥ इसी
कारणसे आपको त्याग करनेमें हमारा उत्साह नहीं होता । हे कल्याणि! हे वरारोहे ! इन सब राक्षसोंके सहित हमारी शत्रुता होगई है ॥१८॥ हे देवि !

नत्वामस्मिन्वनेहातुमुत्सहेराघवंविना॥ अनिवार्यंबलंतस्यबलैर्बलवतामपि ॥१४॥ त्रिभिर्लोकैःसमुदितैःसेश्वरैःसमरैरपि॥हृदयंनिर्वृतंतेऽस्तु
संतापस्त्यज्यतांतव ॥ १५ ॥आगमिष्यतितेभर्ताशीघ्रंहत्वामृगोत्तमम्॥नसतस्यस्वरोव्यक्तंनकश्चिदपिदैवतः ॥ १६ ॥ गंधर्वनगरप्रख्यामा
यातस्यचरक्षसः ॥ न्यासभूतासिवैदेहिन्यस्तामयिमहात्मना॥१७॥ रामेणत्वंवरारोहेनत्वांत्यक्तुमिहोत्सहे॥कृतवैराश्चकल्याणिवयमेतैर्निशा
चरैः ॥१८॥ खरस्यनिधनेदेविजनस्थानवधंप्रति॥राक्षसाविविधावाचोव्याहरंतिमहावने ॥१९॥ हिंसाविहारावैदेहिनचिंतयितुमर्हसि॥लक्ष्मणे
नैवमुक्तातुक्रुद्धासंरक्तलोचना ॥ २० ॥ अब्रवीत्परुषंवाक्यंलक्ष्मणंसत्यवादिनम् ॥ अनार्यकरुणारंभनृशंसकुलपांसन ॥ २१ ॥ अहंतवप्रियं
मन्येरामस्यव्यसनंमहत् ॥ रामस्यव्यसनंदृष्ट्वातेनैतानिप्रभाषसे ॥ २२ ॥

खरको मार और जनस्थानको विध्वंस करनेमें राक्षसलोग इस महावनमें हमारे ऊपर अनेक प्रकारके मोहिनी मायाके वचन प्रयोग किया करते हैं॥१९॥ हे जानकि!
साधु लोगोंकी हिंसा करनाही राक्षस लोगोंका एकमात्र खेल है ।इस कारण इस विषयमें चिन्ता करना किसी प्रकारसे भी आपको उचित नहीं है। जबलक्ष्मणजीने
इस प्रकार कहा तब क्रोधके मारे जानकीजीके नेत्र लाल हो आये ॥२०॥ वह कठोर वचन सत्यवादी लक्ष्मणजीसे बोलीं कि, रे नृशंस ! कुलनाशक ! तुम
श्रीरामचन्द्रको मरवाकर दया करके हमारी रक्षा करनेको तैयार हुए हो, इस कारणसे यह ध्यान आर्यजनोचित नहीं है ॥२१॥ हमने जाना कि; राम
चन्द्रजीकी यह बडी भारी विपद् तुम्हारी परम प्यारी हुई है इसी कारण तुम उनको विपद्में पडा हुआ देखकर ऐसा कहते हो ॥ २२ ॥

हे लक्ष्मण! तुम्हारे समान सदा क्रूरस्वभावव गुप्त पापी शत्रुके मनमें जो ऐसा निन्दनीय पाप रहेगा तो इसमें आश्चर्यही क्या है? ॥२३॥ तुम्हारा स्वभाव बडा खोटा है रामचन्द्रजी जो अकेलेही वनको आनेलगे, तब हमारी लालच करके तुम भी अकेलेही उनके साथ आये अथवा छिप कर भरतके भेजे हुये तुम स्वामीके साथ आये हुए हो ॥२४॥ किन्तु हे लक्ष्मण! तुमने या भरतने जो मनमें सोचा है, वह सिद्ध नहीं होगा। क्योंकि हम पद्मपलाशलोचन, नीलोत्पलश्याम ॥२५॥ श्रीरामचन्द्रजीकी स्त्री होकर किस प्रकारसे अन्य जनकी अभिलाषा नहीं करेंगी। इससे हे लक्ष्मण! हम तुम्हारे सामने निश्चयही प्राण त्याग देंगी ॥२६॥ क्यों कि रामचन्द्रजीके बिना क्षण कालभी हम इस लोकमें प्राण धारण नहीं कर सकतीं। सीताजीके इस प्रकार रोमहर्षण कठोर वचन ॥२७॥ सुन जितेन्द्रिय लक्ष्मणजी हाथ जोडकर उनसे

नैवचित्रंसपत्नेषुपापंलक्ष्मणयद्भवेत् ॥ त्वद्विधेषुनृशंसेषुनित्यंप्रच्छन्नचारिषु ॥ २३ ॥ सुदुष्टस्त्वंवनेराममेकमेकोऽनुगच्छसि ॥ ममहेतोःप्रतिच्छन्नःप्रयुक्तोभरतेनवा ॥ २४ ॥ तन्नसिध्यतिसौमित्रेतवापिभरतस्यवा ॥ कथमिंदीवरश्यामंरामंपद्मनिभेक्षणम् ॥ २५ ॥ उपसंश्रित्यभर्तारं कामयेयंपृथग्जनम् ॥ समक्षंतवसौमित्रेप्राणांस्त्यक्ष्याम्यसंशयम् ॥ २६ ॥ रामंविनाक्षणमपिनैवजीवामिभूतले ॥ इत्युक्तःपरुषंवाक्यंसीतया रोमहर्षणम् ॥ २७ ॥ अब्रवील्लक्ष्मणःसीतांप्रांजलिःसजितेंद्रियः ॥ उत्तरंनोत्सहेवक्तुंदैवतंभवतीमम ॥२८॥ वाक्यमप्रतिरूपंतुनचित्रंस्त्रीषुमैथिलि ॥ स्वभावस्त्वेषनारीणामेषुलोकेषुदृश्यते ॥ २९ ॥ विमुक्तधर्माश्चपलास्तीक्ष्णाभेदकराःस्त्रियः ॥ नसहेहीदृशंवाक्यंवैदेहिजनकात्मजे ॥ ३० ॥ श्रोत्रयोरुभयोर्मध्येतप्तनाराचसंनिभम् ॥ उपशृण्वंतुमेसर्वेसाक्षिणोहिवनेचराः ॥३१॥ न्यायवादीयथावाक्यमुक्तोऽहंपरुषंत्वया ॥ धिक्त्वामद्यविनश्यतींयन्मामेवंविशंकसे ॥ ३२ ॥

बोले कि, आप हमारा साक्षात् देवता हैं, इस प्रकार उत्तर देनेको हमारा साहस नहीं होता ॥२८॥ परन्तु हे जानकि! आपने जो यह अयोग्य वार्ता कही है सो स्त्रियोंके लिये इसका कहना कुछ विचित्र बात नहीं है, क्योंकि इस लोकमें स्त्रियोंका स्वभाव ऐसा देखाही जाता है ॥२९॥ स्त्रियोंकी जाति स्वभावसे ही क्रूर, चञ्चल, धर्मज्ञानहीन है; यह पिता पुत्र इत्यादिमें परस्पर भेद करा देती हैं, किन्तु हे जानकि! तुम्हारी यह वार्ता हमसे नहीं सही जाती है ॥३०॥ अति तपे हुए बाणोंकी नाई यह तुम्हारे वचन हमारे दोनों कानोंको विद्धकर रहे हैं। अच्छा! वनवासी देवतागण सबही हमारे साक्षी रहकर श्रवण करें ॥३१॥ हमने यथार्थ वार्ता कही है तथापि तुमने हमको कठोर वचन कहे तुमको धिक्कार है! निश्चयही तुम्हरा विनाशकाल उपस्थित है (राक्षसकुलकी नाश करनेवाली तुझको धिक्कार

है यह गूढ है) जो हमपर ऐसी शंका करती हो ॥३२॥ हम सदाही गुरुजनोंकी आज्ञाका पालन करते हैं, रामचन्द्रजीकी आज्ञा मान तुम्हें छोड नहीं जाते थे । किंतु तुमने स्त्रीके स्वभाव और दुष्ट प्रकृति वश होकर हमको दुर्वचन कहे । हे वरानने ! जहां रामचन्द्रजी हैं हमभी वहां जाते हैं, तुम कुशल क्षेमसे रहो ॥३३॥ और समस्त वन देवता गण तुम्हारी रक्षा करें, हे विशालाक्षि ! बडे २ बुरे शकुन हमारे सामने प्रगट हो रहे हैं, इस कारणसे फिर रामचन्द्रजीके साथ आकर तुमको कुशल सहित देखें ॥३४॥ जब लक्ष्मणजीने इस प्रकारसे कहा तब जनकनन्दिनी सीताजी अविरलवाहिनी अश्रुधारासे भीज कर रोते २ लक्ष्मणजीसे बोलीं ॥३५॥ हे लक्ष्मण ! राम बिना हम गोदावरीमें डूब मरेंगी अथवा फाँसीसे प्राणत्याग करेंगी अथवा किसी ऊँचे पर्वत इत्यादिक पर चढकर

स्त्रीत्वाद्दुष्टस्वभावेनगुरुवाक्येव्यवस्थितम् ॥ गच्छामियत्रकाकुत्स्थःस्वस्तितेऽस्तुवरानने ॥ ३३ ॥ रक्षंतुत्वांविशालाक्षिसमग्रावनदेवताः ॥ निमित्तानिहिघोराणियानिप्रादुर्भवंतिमे ॥ अपित्वांसहरामेणपश्येयंपुनरागतः ॥३४॥ लक्ष्मणेनैवमुक्तातुरुदतीजनकात्मजा ॥ प्रत्युवाचततो वाक्यंतीव्रबाष्पपरिप्लुता ॥३५॥ गोदावरींप्रवेक्ष्यामिहीनारामेणलक्ष्ण ॥ आबधिष्येऽथवात्यक्ष्येविषमेदेहमात्मनः ॥३६॥ पिबामिवाविषं तीक्ष्णंप्रवेक्ष्यामिहुताशनम् ॥ नत्वहंराघवादन्यंकदापिपुरुषंस्पृशे ॥३७॥ इतिलक्ष्मणमाश्रुत्यसीताशोकसमन्विता ॥ पाणिभ्यांरुदतीदुःखा दुदरंप्रजघानह ॥३८॥ तामार्तरूपांविमनारुदंतींसौमित्रिरालोक्यविशालनेत्राम् ॥ आश्वासयामासनचैवभर्तुस्तंभ्रातरंकिंचिदुवाचसीता ॥३९॥

वहांसे अपनी देहको नीचे गिरा देंगी ॥ ३६ ॥ या तीक्ष्ण विष पान करेंगी, अथवा अग्निमें प्रवेश करेंगी ॥*॥ तथापि श्रीरामचन्द्रजीके बिना और किसी पुरुषको हम कभी स्पर्श नहीं करेंगे ॥३७॥ सीताजी इस प्रकार शोकयुक्त होकर रोते२लक्ष्मणजीसे ऐसा कहकर दुःखके मारे अपना उदर पीटने लगीं (सर्व राक्षसोंके नाश बिना मेरी उदरपूर्ति न होगी यह ध्वनि है) ॥३८॥ लक्ष्मणजीने विशालनयना जनकदुलारी सीताजीको महाआर्त भावसे रोते देखकर बहुत सम

---

* कूर्म पुराणसे भी सिद्ध है कि जानकीको यही प्रतिज्ञा पूर्ण थी कि अन्य पुरुषको स्पर्श न करूंगी अग्निमें प्रवेश कर जाऊंगी इससे भी ध्वनि निकलती है कि जानकी अग्निमें प्रवेशकर गई थीं और यह मायाकी जानकी ने लक्ष्मणसे ऐसे वचन कहे क्योंकि मायासे ही ऐसा होता है यथा–जगाम शरणं वह्निमावसथ्यं शुचिस्मिता ।। प्रपद्य पावकंदेवं साक्षिणं विश्वतो मुखम् ।। आत्मानंदीप्तिवपुषंसर्वभूतहृदिस्थितिम् । गृहीत्वा मायया वेषं चरन्ती विजने वने ।। सामाहर्तुं मनश्चक्रे तापसः किल कामिनीम् ।

झाया बुझाया परन्तु फिर जानकीजीने अपने देवर लक्ष्मणजीसे और कुछ न कहा ॥ ३९ ॥ उसेके पीछे जितेन्द्रिय और विशुद्धचित्त लक्ष्मणजी हाथ जोड प्रणाम कर कुछ एक विनती करते हुए और वारम्वार उनकी ओर देखते दुःखित हो रामचन्द्रजीके निकटको चले ॥४०॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आ० अरण्यकांडे भाषायां पंचचत्वारिंशः सर्गः ॥४५॥ लक्ष्मणजी जानकीकी कटूक्तिसे पीडित हो क्रोधमें भरकर श्रीरामचन्द्रजीको देखनेकेलिये अतिव्यग्रचित्तसे चले ॥१॥ उसके पीछे दशानन रावण यह सुअवसर पाकर यतीका रूपधारण कर शीघ्रही श्री सीताजीके सामने आया ॥२॥ वह कोमल गेरुआ वस्त्र पहरे शिरपर वार रखाये छत्री लगाये खडाऊं पहरे, बांये कंधेपर लाठी और कमंडलु हाथमें ॥३॥ वह अतिबली ऐसा त्रिदंडी सन्यासीका रूप बना सीताजीके सन्मुख हुआ, जब

ततस्तुसीतामभिवाद्यलक्ष्मणःकृतांजलिःकिंचिदभिप्रणम्य॥ अवेक्षमाणोबहुशः समैथिलींजगामरामस्यसमीपमात्मवान्॥४०॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० आरण्यकांडे पंचचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥ तयापरुषमुक्तस्तुकुपितोराघवानुजः ॥ सविकांक्षन्भृशंरामंप्रतस्थेनचिरादिव ॥१॥ तदासाद्यदशग्रीवः क्षिप्रमंतरमास्थितः॥अभिचक्रामवैदेहींपरिव्राजकरूपधृक् ॥२॥ श्लक्ष्णकाषायसंवीतः शिखीछत्रीउपानही॥वामेचांसेऽवसज्ज्याथशुभेयष्टिकमंडलू ॥ ३ ॥ परिव्राजकरूपेणवैदेहीमन्ववर्तत ॥ तामाससादातिबलोभ्रातृभ्यांरहितां वने ॥ ४ ॥ रहितांसूर्यचंद्राभ्यांसंध्यामिवमहत्तमः॥ तामपश्यत्ततोबालांराजपुत्रींयशस्विनीम् ॥५॥ रोहिणींशशिनाहीनांग्रहवद्भृशदारुणः॥ तमुग्रंपापकर्माणंजनस्थानगताद्रुमाः ॥६॥ संदृश्यनप्रकंपंतेनप्रवातिचमारुतः॥ शीघ्रस्रोताश्चतदृष्ट्वावीक्षंतंरक्तलोचनम् ॥७॥ स्तिमितंगंतुमारेभेयद्गोदावरीनदी॥रामस्यत्वंतरंप्रेप्सुर्दशग्रीवस्तदंतरे ॥८॥ उपतस्थेचवैदेहींभिक्षुरूपेणरावणः॥अभव्योभव्यरूपेणभर्तारमनुशोचतीम् ॥९॥

कि दोनों भाई आश्रममें नहीं थे ॥४॥ जिस प्रकार बिना चन्द्र सूर्यके सन्ध्याकालमें महा अंधकार होजाता है, वैसेही बिना राम और लक्ष्मणके सीताजीके निकट दशानन आकर परम यशस्विनी जनकपुत्री सीताजीको देखने लगा ॥५॥ जैसे चन्द्रमाकरके हीन रोहिणी नक्षत्रको राहु देखे जनस्थानके समस्तवृक्ष उग्रस्वभाव पापकरने वाले रावणको देखकर ॥६॥ हिलने झुलनेसे रहित होगये पवनका चलना बंद होगया। लाल २ नेत्र किये सीताजीके प्रति उसकी दृष्टिको लगा देख नदी भी शीघ्र गतिको त्याग मंद २ बहने लगी ॥७॥ गोदावरी नदीका जल भी शंकाके वश होकर मंद २बहने लगा इसी अवसरमें रामचन्द्रजीका अन्तर चाहनेवाला दशग्रीव ॥८॥ भिक्षुकका वेश बनाकर वैदेहीजीके निकट आ पहुँचा, यह महाकुरूप दशानन अतिरूपवती अपने पतिके लिये शोक करती हुई ॥९॥

जानकीजीको ऐसा प्राप्त हुआ जिस प्रकार चित्रानक्षत्रके निकट शनि आता है; वहां पहुँच उसने ऐसा टीपटापका संन्यासी वेष बनाया, जिस प्रकार तिनकोंसे कोई कुएँको पाटे, और वहां आनेवाला चट उसमें गिरे ॥१०॥ ऐसा छद्मवेशी साधुका वेष धारण किये हुए रावण उन यशस्विनी रामदयिता जानकीजीकी ओर देखकर खडा हुआ ॥११॥ सुन्दर स्वरूप दशनपंक्ति जिनकी मनोहर; वदन पूर्णचन्द्रसमान जो जानकीजी पर्णशालामें बैठी अपने पतिके शोकसे पीडित होरही थीं ॥१२॥ तिन कमलनेत्रा पीताम्बरधारण किये जानकीजीके निकट वह निशाचर हर्षसहित पहुँचा ॥१३॥ ऐसी जानकीजीको देख रावण कामके बाणसे मारा हुआ पीडित हुआ उस समय वेदका उच्चार करके जानकीजीकी प्रशंसा करके कहने लगा ॥ १४ ॥ तुम तीनों लोकमें उत्तमहो और पद्मिनीके

अभ्यवर्ततवैदेहींचित्रामिवशनैश्चरः॥सहसाभव्यरूपेणतृणैःकूपइवावृतः ॥१०॥ अतिष्ठत्प्रेक्ष्यवैदेहींरामपत्नींयशस्विनीम् ॥ तिष्ठन्संप्रेक्ष्यच तदापत्नींरामस्यरावणः ॥११॥शुभांरुचिरदंतोष्ठींपूर्णचंद्रनिभाननाम् ॥ आसीनांपर्णशालायांबाष्पशोकाभिपीडिताम् ॥१२॥ सतांपद्मपलाशाक्षींपीतकौशेयवासिनीम्॥अभ्यगच्छतवैदेहींहृष्टचेतानिशाचरः ॥१३॥ दृष्ट्वाकामशराविद्धोब्रह्मघोषमुदीरयन् ॥ अब्रवीत्प्रश्रितंवाक्यंरहितेराक्षसाधिपः ॥ १४ ॥ तामुत्तमांत्रिलोकानांपद्महीनामिवश्रियम्॥ विभ्राजमानांवपुषारावणःप्रशशंसह ॥१५॥ रौप्यकांचनवर्णाभेपीतकौशेयवासिनि ॥ कमलानांशुभांमालांपद्मिनीवचबिभ्रती ॥ १६ ॥ ह्रीःश्रीःकीर्तिःशुभालक्ष्मीरप्सरावाशुभानने ॥ भूतिर्वात्वंवरारोहेरतिर्वास्वैरचारिणी ॥ १७ ॥ समाःशिखरिणःस्निग्धाःपांडुरादशनास्तव ॥ विशालेविमलेनेत्रेरक्तांतेकृष्णतारके ॥ १८ ॥ विशालंजघनंपीनमूरूकरिकरोपमौ ॥ एतावुपचितौवृत्तौसंहतौसंप्रगल्भितौ ॥ १९ ॥

समान मनोहर कमलफूलोंसे समाकुल हो रही हो ऐसी प्रशंसा रावणने की ॥१५॥ फिर कहा कि, हे शुभानने ! तुम्हारा वर्ण विशुद्धकांचनके सदृशहै तिसपर तुम पीले वर्णके रेशमी वस्त्र पहरेहो, कमलफूलोंकी माला गलेमें धारण कियेहो ॥१६॥ हे वरारोहे ! तुमहीं श्री, कीर्ति, लक्ष्मी, अप्सरा, अथवा भूति हो या साक्षात् रतिके समान हो जो वनमें इच्छानुसार विहार करती है सो बतलाओ कि, तुम कौन हो ॥१७॥ तुम्हारे सब दांत परस्पर समान हैं, उनका अग्रभाग कुन्दकी कोर सदृश मनोहर और श्वेतवर्ण है । तुम्हारे नेत्रयुगल विशाल, निर्मल, अरुणाई लिये और कृष्णताराओं करके युक्त हैं ॥ १८ ॥ तुम्हारा जघन अतिपीन व विशाल है और जांघें हाथीकी शुण्डके समान चढा उतार, बडे २ गोलाकार एकमें एक मिले कुछ कम्पायमान ॥ १९ ॥

तुम्हारे दोनों उरोज पीन हैं और जिनका अग्रभाग उठा हुआ है, परम मनोहर हैं और चिकने तालफलके आकारवाले हैं और उनपर मणियोंकी माला पडी हैं ॥२०॥ फलतः तुम्हारे दांत नेत्र और मुसकुराना सबही कुछ रमणीय है हे रमणीय ! नदी जिस प्रकार जलके वेगसे कूलको हरण करती है तैसेही तुमभी इन सबसे हमारे चित्तको हरण करती हो ॥२१॥ तुम्हारे केश परम सुन्दर हैं, दोनों पयोधर अत्यन्त घने हैं और तुम्हारा मध्यदेश अर्थात् कमर इतनी पतली है कि, मुट्ठीके बीचमें आजाय । क्या देवी; क्या गन्धर्वी, क्या यक्षी,क्या किन्नरी ॥२२॥ कोईभी तुम्हारे समान रूपवती नहीं हैं । हमने इससे पहले पृथ्वीपर तुम्हारे समान रूपवती राजरानी नहीं देखी, तुम्हारा रूप, यौवन, सुकुमारता ॥२३॥ और इस निर्जन वनमें वास यह चारोंही त्रिलोकीमें श्रेष्ठ हैं, इस कारण बाहर चली आओ। तुम्हारा कल्याण हो वनवास करना तुमको उचित नहीं है ॥२४॥ यहां तो कामरूपी भयंकर राक्षस गण रहा करते हैं, तुम तो अतिरमणीय

पीनोन्नतमुखौकांतौस्निग्धतालफलोपमौ ॥ मणिप्रवेकाभरणौरुचिरौतौपयोधरौ ॥२०॥ चारुस्मितेचारुदतिचारुनेत्रविलासिनि ॥मनोहरासि मेरामेनदीकूलमिवांभसा ॥२१॥ करांतमितमध्यासिसुकेशेसंहतस्तनि ॥ नैवदेवीनगंधर्वीनयक्षीनचकिन्नरी ॥२२॥ नैवंरूपामयानारीदृष्टपूर्वा महीतले॥ रूपमग्र्यंचलोकेषुसौकुमार्यंवयश्चते ॥ २३ ॥ इहवासश्चकांतारेचित्तमुन्माथयंतिमे॥ साप्रतिक्रामभद्रंतेनत्वंवस्तुमिहार्हसि ॥२४॥ राक्षसानामयंवासोघोराणांकामरूपिणाम्॥ प्रासादाग्राणिरम्याणिरनगरोपनानिच ॥२५॥ सपन्नानिसुगंधीनियुक्तान्याचरितुंत्वया ॥वरंमाल्यं रंगंधंवरंवस्त्रंचशोभने ॥२६॥ भर्तारंचवरंमन्येत्वद्युक्तमसितेक्षणे ॥ कात्वंभवसिरुद्राणांमरुतांवाशुचिस्मिते ॥२७॥ वसूनांवावरारोहेदेवताप्र तिभासिमे ॥ नेहगच्छंतिगंधर्वानदेवानचकिन्नराः ॥२८॥ राक्षसानामयंवासः कथंतुत्वमिहागता ॥ इहशाखामृगाःसिंहाद्वीपिव्याघ्रगावृकाः ॥ २९ ॥ ऋक्षास्तरक्षवःकंकाःकथंतेभ्योनबिभ्यसे ॥ मदान्वितानांघोराणांकुञ्जराणांतरस्विनाम् ॥ ३० ॥

प्रासादशिखर, नगर व उपवनोंमें ॥२५॥ जहां सब योग्य वस्तु प्रस्तुत हैं, और सुगन्धि पदार्थ धरे रहते हैं वह स्थान तुम्हारे रहनेके योग्य है, श्रेष्ठमालायें, श्रेष्ठ सुगन्धियें. श्रेष्ठही वस्त्रोंके तुम भोगने योग्य हो॥२६॥ हे असितेक्षणी ! फिर तुम्हारे लिये स्वामीभी तो श्रेष्ठही चाहिये. हे शुचिस्मिते ! रुद्रगण अथवा मरुद्गण॥२७॥ या आठ वसुओंमेंसे किसीकी स्त्री हो, हे वरारोहे ! हमको तो तुमस्पष्टही देवता प्रतीत होतीहो, क्योंकि यहां गन्धर्व, देवता किन्नर कोई नहीं आने-पाते ॥२८॥ यहां वनमें तो राक्षस गणही वास किया करते हैं, फिर तुम यहां किस प्रकारसे आई हो, यहां तो वनमें वानर, सिंह, चीता, व्याघ्र, भेडिया, मृग ॥ २९ ॥ गैंडे, मृग पक्षी जीव कंक ऋक्षादि जीव रहते हैं सो इनको देखकर तुम क्यों नहीं डरती हो ? और मतवाले कठोर मन शीघ्र चलनेवाले हाथियोंसे ॥३०॥

तुम अकेली कैसी इस महावनमें नहीं डरती हो ? हे वरानने ! तुमकौन हो, किसकी स्त्री हो, कहांसे आई हो और किस कारण इस दंडकारण्यमें ॥३१॥ अकेली विचरती हो ? क्योंकि यह जगह घोर राक्षसों करके युक्त इस प्रकारके महात्मा रावणने वैदेहीजीकी प्रशंसा की ॥३२॥ उसको ब्राह्मण वेष धारण किये आया हुआ देख जानकीजीने यथाविधि अतिथि सत्कारसे सब भांति उसकी पूजा की ॥ ३३ ॥ प्रथम बैठनेके लिये आसन दिया फिर चरण धोनेको जल, पुनः फलाहारादिक जो रक्खे थे वह सौम्यदर्शन रावणको निवेदन किये ॥३४॥ ब्राह्मणका वेष धारण किये लाल वस्त्र पहरे सन्यासीके समान पात्रलिये जानकीजीने महात्माकी उपेक्षा न करनी चाहिये इस कारण ब्राह्मणकेही समान रावणको निमंत्रण करके कहा ॥३५॥ हे विप्र ! आप कुशासनपर सुखसहित बैठ जा

कथमेकामहारण्येन बिभेषिवरानने ॥ काऽसिकस्यकुतश्चत्वंकिन्निमित्तंचदंडकान् ॥३१॥ एकाचरसिकल्याणिघोरान्राक्षससेवितान् ॥ इतिप्रशस्तावैदेहीरावणेन महात्मना ॥ ३२ ॥ द्विजातिवेषेणहितंदृष्ट्वारावणमागतम्॥सर्वैरतिथिसत्कारैःपूजयामासमैथिली ॥ ३३ ॥ उपानीयासनं पूर्वंपाद्येनाभिनिमंत्र्यच॥अब्रवीत्सिद्धमित्येवतदातसौम्यदर्शनम् ॥ ३४ ॥ द्विजातिवेषेणसमीक्ष्यमैथिलीसमागतंपात्रकुसुंभधारिणम्॥ अशक्यमुद्द्वेष्टुमुपायदर्शनान्यमंत्रयद्ब्राह्मणवत्तथागतम् ॥३५॥ इयंबृसी ब्राह्मणकाममास्यतामिदंचपाद्यंप्रतिगृह्यतामिति॥इदंचसिद्धंवनजातमुत्तमंत्वदर्थमव्यग्रमिहोपभुज्यताम् ॥ ३६ ॥ निमंत्र्यमाणःप्रतिपूर्णभाषिणींनरेंद्रपत्नींप्रसमीक्ष्यमैथिलीम् ॥ प्रसह्यतस्याहरणेदृढंमनःसमर्पयामासवधायरावणः ॥ ३७ ॥ ततःसुवेषंमृगयागतंपतिंप्रतीक्षमाणासहलक्ष्मणंतदा ॥ निरीक्षमाणाहरितंददर्शतन्महद्वनंनैवतुरामलक्ष्मणौ॥ ३८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० अरण्यकांडे षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४६ ॥

इये और यह पाद्य ग्रहण कीजिये, व यह वनके फल सब आपकेही लिये रक्खेहैं इनको भोजन कीजिये ॥ ३६ ॥ नरेन्द्रभार्या जानकीजीने जब इस प्रकार निमंत्रण किया तब रावण उनकी ओर देख अपना मन अर्पण कर अपने वध करानेको बलपूर्वक उनके हरले जानेका निश्चय करता हुआ ॥ ३७ ॥ परमप्रिय मूर्ति रामचन्द्रजी लक्ष्मणजीके सहित मृगया करने गयेथे जानकी उस समय उनकी बाट देखती हुई इधर उधर दृष्टि करने लगी, तो केवल चारों ओर बडी विस्तारवाली हरेवर्णकी वनभूमि ही दृष्टि आई, परन्तु राम लक्ष्मणजी दिखाई नहीं दिये ॥ ३८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अरण्यकांडे भाषायां षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४६ ॥

जब संन्यासी वेष धारी रावणने हरण करनेके अभिलाषसे इस भांति पूछा तब सीताजी आपही आप विचार करने लगीं ॥१॥ कि एक तो यह ब्राह्मण है दूसरे अतिथि है जो हम इससे नहीं बोलतीं, तो कदाचित शाप न देदे, एक मुहूर्त भर यह शोच विचारकर जानकीजी उससे बोलीं ॥२॥ आपका कल्याण हो । हम मिथिला नरेश महात्मा जनकजीकी तो कन्या हैं और श्रीरामचन्द्रजीकी प्रिय भार्या हैं हमारा नाम सीता है ॥३॥ विवाह होनेके पीछे इक्ष्वाकुवंशियोंकी राजधानी अयोध्या नगरीमें बारह वर्षतक रहकर पूर्ण मनोरथ हो अनेक प्रकारके मनुष्योंको दुर्लभ सुख हमने भोगे ॥४॥ फिर तेरहवें वर्षमें राजा दशरथजीने मंत्रिगणोंके साथ सलाह करके रामचन्द्रजीके अभिषेक करनेका उद्योग किया ॥५॥ उनकी आज्ञानुसार सब अभिषेककी तैयारियां होने लगीं, उस समय हमारी माननीया सासु

रावणेनतुवैदेहीतदापृष्टाजिहीर्षुणा ॥ परिव्राजकरूपेणशशंसात्मानमात्मना॥१॥ ब्राह्मणश्चातिथिश्चैषअनुक्तोहिशपेतमाम् ॥ इतिध्यात्वामुहूर्तं तुसीतावचनमब्रवीत् ॥२॥ दुहिताजनकस्याहंमैथिलस्यमहात्मनः ॥ सीतानामास्मिभद्रंतेरामस्यमहिषीप्रिया ॥३॥ उषित्वाद्वादशसमाइक्ष्वाकूणांनिवेशने ॥ भुंजानामानुषान्भोगान्सर्वकामसमृद्धिनी ॥४॥ तत्रत्रयोदशेवर्षेराजाऽमन्त्रयतप्रभुः॥ अभिषेचयितुंरामंसमेतोराजमंत्रिभिः ॥ ५ ॥ तस्मिन्संभ्रियमाणेतुराघवस्याभिषेचने ॥ कैकेयीनामभर्तारंममार्यायाचतेवरम् ॥ ६ ॥ परिगृह्यतुकैकेयीश्वशुरंसुकृतेनमे ॥ ममप्रव्राजनंभर्तुर्भरतस्याभिषेचनम् ॥७॥ द्वावयाचतभर्तारंसत्यसंधंनृपोत्तमम् ॥ नाद्यभोक्ष्येनचस्वप्स्येनपास्येचकदाचन॥८॥एषमेजीवितस्यांतोरामोयदभिषिच्यते ॥ इतिब्रुवाणांकैकेयींश्वशुरोमेसपार्थिवः ॥ ९ ॥ अयाचतार्थैरन्वर्थैर्नचयाच्ञांचकारसा ॥ ममभर्तामहातेजावयसापंचविंशकः ॥ १० ॥ अष्टादशहिवर्षाणिममजन्मनिगण्यते ॥ रामेतिप्रथितोलोकेसत्यवाञ्छीलवाञ्छुचिः ॥११॥

कैकेयीजीने अपने स्वामी राजा दशरथजीसे दो वर मांगे ॥६॥ कैकेयीजीने अपनी कृतिके बलसे श्वसुरको धर्मके वशमें करके हमारे स्वामी रामचन्द्रजीको वनवास और भरतजीको अभिषेक यह दो वर नृपति श्रेष्ठ सत्यप्रतिज्ञ राजा दशरथजीसे मांगे ॥७॥ और उन्होंने सत्यप्रतिज्ञ, नृपतिश्रेष्ठ अपने स्वामी राजा दशरथजीसे यह भी कहाकि जो रामचन्द्रजीका अभिषेक होगा तो हम किसी प्रकारसे भी भोजन पान व शयन न करेंगी ॥८॥ और यही हमारे जीवनका अन्त हो जायगा जो रामचन्द्रजीका अभिषेक हुआ तो हम न जियेंगी । जब कैकेयीने इस प्रकार कहा तो हमारे श्वसुर महाराज दशरथजीने ॥९॥ उनसे बहुत धनादि देनेकी प्रार्थना की परन्तु उन कैकेयीने न मानी उस समय महा तेजवान् हमारे स्वामी पचीस वर्षके ॥१०॥ और हमारी आयु जन्मसे गणना करके अठारह वर्षकी थी, हमारे

स्वामी राम नामसे विख्यात हैं, वह सत्यवान, सुशील, निर्मल स्वभाव ॥११॥ विशाल नेत्र, सर्वप्राणियोंके हितकारी महाबाहु हैं, परन्तु इनके पिता महाराज दशरथजी कामसे आर्त हो गये थे ॥ १२ ॥ इस कारण कैकेयीका प्रिय करनेके लिये उन्होंने इस प्रकारके गुणसम्पन्न रामचन्द्रजीको अभिषेकार्थ अपने पिताके निकट आये तो ॥१३॥ कैकेयीने शीघ्रही उनसे यह वचन कहा कि, हे रघुनन्दन ! तुम्हारे पिताजीने तुमको जो आज्ञा दी है वह हमसे सुनो ॥ १४ ॥ हे काकुत्स्थ ! भरतको यह निष्कण्टक राज्य देना होगा और तुम्हें चौदह वर्षके लिये वनमें रहना पडेगा ॥ १५ ॥ इस कारण तुम वनमें जाकर पिताके सत्यकी रक्षा करोऔर मिथ्यावादी न करो, पिताको इस ऋणसे छुडाओ; तब दृढव्रत हमारे स्वामी, श्रीरामचंद्रजीने निडर होकर कैकेयीसे ऐसाही होगा, यह

विशालाक्षोमहाबाहुःसर्वभूतहितेरतः ॥ कामार्तश्चमहाराजःपितादशरथःस्वयम् ॥१२॥ कैकेय्याःप्रियकामार्थंतंरामंनाभ्यषेचयत्॥अभिषेकायतुपितुःसमीपंराममागतम् ॥ १३ ॥कैकेयीममभर्तारमित्युवाचद्रुतंवचः ॥ तवपित्रासमाज्ञप्तंममेदंशृणुराघव ॥ १४ ॥ भरतायप्रदातव्यमिदंराज्यमकंटकम् ॥ त्वयातुखलुवस्तव्यंनववर्षाणिपंचच ॥ १५ ॥ वनेप्रव्रजकाकुत्स्थपितरंमोचयामृतात् ॥ तथेत्युवाचतांरामः कैकेयीमकुतोभयः ॥ १६ ॥ चकारतद्वचःश्रुत्वाभर्ताममदृढव्रतः ॥ दद्यान्नप्रतिगृह्णीयात्सत्यंब्रूयान्नचानृतम् ॥१७॥ एतद्ब्राह्मणरामस्यव्रतंधृतमनुत्तमम् ॥ तस्यभ्रातातुवैमात्रोलक्ष्मणोनामवीर्यवान् ॥ १८ ॥ रामस्यपुरुषव्याघ्रःसहायःसमरेऽरिहा ॥ सभ्रातालक्ष्मणोनामब्रह्मचारीदृढव्रतः ॥ १९ ॥ अन्वगच्छद्धनुष्पाणिःप्रव्रजंतंमयासह ॥ जटीतापसरूपेणमयासहसहानुजः ॥ २० ॥ प्रविष्टोदंडकारण्यंधर्मनित्योदृढव्रतः॥ तेवयंप्रच्युताराज्यात्कैकेय्यास्तुकृतेत्रयः ॥२१॥ विचरामो द्विजश्रेष्ठवनंगंभीरमोजसा ॥ समाश्वसमुहूर्तंतुशक्यंवस्तुमिहत्वया ॥ २२ ॥

कहा ॥१६॥ हमारे दृढ व्रत धारी स्वामीने उनके वचन सुनकर उसीके अनुसार कार्य किया । हे विप्र ! वह केवल लोकोंको दान किया करते हैं; परंतु कभी किसीसे कुछ ग्रहण नहीं करते, सदाही सत्य कहते हैं कभी मिथ्या नहीं कहते ॥१७॥ हे ब्राह्मण ! बस यही रामचंद्रजीका श्रेष्ठ व्रत । उनके सौतेले भाई लक्ष्मणजी अतिशय वीर हैं ॥ १८ ॥ व सदा रामजीके संग रहा करते हैं पुरुष व्याघ्र हैं समरमें निहारतेही शत्रुका संहार करते हैं ब्रह्मचारी और दृढव्रतधारी हैं ॥१९॥ धनुष बाण हाथमें ले, जटा रखाय तपस्वीका भेष बनाय रामचन्द्रजीके व हमारे साथ २ वनमें चले आये ॥ २० ॥ इस प्रकार दृढ व्रतधारीरामचन्द्रजी लक्ष्मण और अपनी स्त्री सहित जटा रखाय तपस्वी भेष धारण कर दंडकारण्यमें आये ॥ २१ ॥ हे द्विज श्रेष्ठ ! अब हम तीन जन कैकेयीके

कारण राज्य भ्रष्ट होकर अपने तेजके प्रभावसे गंभीर वनमें विचरण करते हैं । हे द्विज श्रेष्ठ ! एक मुहूर्त भर विश्राम करो ॥२२॥ अभी हमारे स्वामी बहुत सारे वनफूल, मूल और रुरु, वराह व गोधा वध करके बहुत मांस द्रव्य ले यहां आते होंगे जब वह आवेंगे तब आपका भली भांतिसे सत्कार होगा इससे विराजिये ॥२३॥ इस समय आप अपना नाम गोत्र और वंश सत्य सत्य कहिये हे द्विज ! किस कारणसे आप इस दंडकारण्यमें अकेले घूमते हैं ॥२४॥ जब सीताजीने इस प्रकारके वचन कहे तो महाबलवान् राक्षसराज रावण उनको तीखा उत्तर देता हुआ बोला ॥२५॥ हे जानकी ! सुर असुर और मनुष्य सहित समस्त लोक जिससे डरके मारे थर२ कांपते हैं हम वही राक्षसोंके राजा रावण हैं ॥ २६ ॥ तुम्हारा लावण्य कांचनके समान है और तुम रेशमी वस्त्र पहररहीहो, हे अनिन्दिते ! तुमको देखकर अपनी स्त्रियोंमें अब हमारा कुछ भी अनुराग नहीं रहा ॥२७॥ हम बहुत सारी स्त्रियें अनेक स्थानोंसे हरकर लाये हैं

आगमिष्यतिमेभर्तावन्यमादायपुष्कलम् ॥ रुरून्गोधान्वराहांश्चहत्वाऽऽदायामिषंबहु ॥२३॥ सत्वंनामचगोत्रंचकुलमाचक्ष्वतत्त्वतः ॥ एकश्च दंडकारण्येकिमर्थंचरसिद्विज ॥२४॥ एवंब्रुवत्यांसीतायांरामपत्न्यांमहाबलः ॥ प्रत्युवाचोत्तरंतीव्रंरावणोराक्षसाधिपः ॥२५॥ येनवित्रासिता लोकाःसदेवासुरमानुषाः ॥ अहंसरावणोनामसीतेरक्षोगणेश्वरः ॥२६॥ त्वांतुकांचनवर्णाभांदृष्ट्वाकौशेयवासिनीम् ॥ रतिंस्वकेषुदारेषुनाधिगच्छाम्यनिंदिते ॥ २७ ॥ बह्वीनामुत्तमस्त्रीणामाहृतानामितस्ततः ॥ सर्वासामेवभद्रंतेममाग्रमहिषीभव ॥ २८ ॥ लंकानामसमुद्रस्यमध्येममम हापुरी ॥ सागरेणपरिक्षिप्ता निविष्टागिरिमूर्धनि ॥२९॥ तत्रसीतेमयासार्द्धंवनेषुविचरिष्यसि ॥ नचास्यवनवासस्यस्पृहयिष्यसिभामिनी ॥३०॥ पंचदास्यःसहस्राणिसर्वाभरणभूषिताः ॥ सीतेपरिचरिष्यंतिभार्याभवसिमेयदि ॥३१॥ रावणेनैवमुक्तातुकुपिताजनकात्मजा ॥ प्रत्युवाचानवद्यांगीतमनादृत्यराक्षसम् ॥ ३२ ॥

सो तुम उनसबके बीचमें पटरानी बनो॥२८॥तुम्हारा मंगल हो हे जानकि ! चारों तरफ समुद्रसे घिरी हुई पर्वतके शिर त्रिकूटपर लंकानामक जो नगरी है वह हमारीही है ॥२९॥ तुम वह हमारे साथ महावनोंमें विचरण किया करोगी हे भामिनि ! वहां विचरण करनेपर फिर तुमको इस वनमें रहनेकी इच्छा नहीं रहेगी ॥ ३० ॥ हे सीते ! यदि तुम हमारी भार्या बनोगी तो सर्व वस्त्राभूषण भूषित पांच हजार दासियें तुम्हारी सेवा किया करेंगी ॥ ३१ ॥ "रावण यह जानता था कि, मैंने ऐसे पाप किये हैं कि जिससे जप तप करनेसे कदाचित् मुक्ति नहीं प्राप्त होसकती इस कारण विरोध करके राम जिनको तत्त्वसे ईश्वर जानता था उनके हाथसे मरनेमें मुक्ति प्राप्ति विचार कर जानकीजीसे ऐसे वाक्य कहे कि जो ऐसे निष्ठुर वचन कहूं तो शीघ्र अधिक पाप करनेसे रामचन्द्रके हाथ

परमपद पाऊँगा" अनिन्दिता जानकीजी राक्षसराज रावण करके इस प्रकार कही जानेपर महाक्रोधित हुई, और उसका अनादर करके कहने लगीं ॥३२॥ जो यहां पर्वत सुमेरुके समान सबके आश्रय देनेवाले अकंपनीय, महासागरके समान क्षोभरहित हैं, ऐसे महेंद्र तुल्य हम स्वामी रामचन्द्रजीकी अनुगता हैं ॥३३॥ जो सब शुभलक्षण युक्त वटवृक्षके समान हैं, हम उनकी सत्यप्रतिज्ञ महाभाग रामचन्द्रजीकी अनुगता हैं ॥ ३४ ॥ जो आजानुबाहुवालेही हैं, विशाल हृदय हैं, और सिंहके समान विक्रमके साथ चलनेवाले हैं हम उनहीं नृसिंह और सिंहसदृश रामचन्द्रजीकी अनुगता हैं ॥३५॥ उनका मुख पूर्णचन्द्रमाके समान है, कीर्ति बहुतही विस्तारित हो रहीं है और बाहें जिनकी अति बडी हैं हम उनहीं राजकुमार जितेन्द्रिय रामचन्द्रजीकी अनुगता हैं ॥३६॥ तुम शृगाल होकर सिंहीका अभिलाष करते हो परन्तु तुम हमको नहीं ले सकते, जैसे सूर्यकी प्रभाको कोई नहीं छू सकता ऐसेही श्रीरामचन्द्रजीके तेजरूप अग्निसे घिरी हमको तुम पानेकी

महागिरिमिवाकंप्यंमहेंद्रसदृशंपतिम् ॥ महोदधिमिवाक्षोभ्यमहंराममनुव्रता ॥३३॥ सर्वलक्षणसंपन्नंन्यग्रोधपरिमंडलम् ॥ सत्यसंधंमहाभाग महंराममनुव्रता ॥ ३४ ॥ महाबाहुंमहोरस्कंसिंहविक्रांतगामिनम् ॥ नृसिंहंसिंहसंकाशमहंराममनुव्रता ॥३५॥ पूर्णचंद्राननंरामंराजवत्संजितेंद्रियम् ॥ पृथुकीर्तिंमहाबाहुमहंराममनुव्रता ॥३६॥ त्वंपुनर्जंबुकः सिंहीमामिहेच्छसिदुर्लभाम् ॥ नाहंशक्यात्वयास्प्रष्टुमादित्यस्यप्रभायथा ॥३७॥ पादपान्कांचनान्नूनंबहून्पश्यसिमंदभाक् ॥ राघवस्यप्रियांभार्यांयस्त्वमिच्छसिराक्षस ॥ ३८ ॥ क्षुधितस्यचसिंहस्यमृगशत्रोस्तरस्विनः ॥ आशीविषस्यवदनाद्दंष्ट्रामादातुमिच्छसि ॥ ३९ ॥ मंदरंपर्वतश्रेष्ठंपाणिनाहर्तुमिच्छसि ॥ कालकूटंविषंपीत्वास्वस्तिमान्गतुमिच्छसि ॥४०॥ अक्षिसूच्याप्रसृजसिजिह्वयालेढिचक्षुरम् ॥ राघवस्यप्रियांभार्यामधिगंतुंत्वमिच्छसि ॥ ४१ ॥

सामर्थ्य नहीं रखते ॥३७॥ अरे अभागे राक्षस ! जब कि, तैंने रघुनन्दन श्रीरामचन्द्रजीकी भार्याके रहनेका अभिलाष किया है, तब तू निश्चयही सब वृक्षोंको सुवर्णमय देखता होगा (स्वप्नमें सोनेका वृक्ष देखना मृत्युरूप है) अर्थात् तुमको हमारा प्राप्त करना ऐसा दुर्लभ है जैसे कोई दरिद्र सुवर्णके सहस्रों पेड अपने गृहमेंदेखनेकी इच्छा करे ॥ ३८ ॥ मृगारि शीघ्रगामी और बडे क्षुधित सिंहके मुखसे या विषधर सर्पके मुखसे तुम दांत निकालनेकी इच्छा करते हो ॥ ३९ ॥ तुम पर्वतवर मन्दराचलको भुजासे उत्पाटन करना चाहते हो, और कालविष पीकर भी इस शरीर सहित कुशल जाना चाहते हो ॥४०॥ क्या तुम सूची (सुई) से अपने नेत्रोंको खुजानेकी इच्छा करते हो या छुरेकी धारको आपनी रसनासे चाटना अच्छा समझते हो, क्योंकि जो तुम श्रीरामचन्द्र

जीकी परमप्यारी स्त्री नारी हमको पानेकी इच्छाकरते हो ॥ ४१ ॥ तुम ग्रीवामें पर्वतका शिखर बांध समुद्र उतरना विचारते हो, और सूर्य चन्द्रमा दोनोंको उभय भुजासे पकडना चाहते हो ॥ ४२ ॥ जो कि, तुमने श्रीरामचन्द्रजीकी प्यारी नारीको बलपूर्वक प्राप्त होनेकी इच्छा की है सो यह इच्छा ऐसी है, जैसे कोई जलती हुई अग्नि वस्त्रमें बांधकर लेजाना चाहै ॥ ४३ ॥ तुमने जो रामचन्द्रजीकी कल्याणव्रतवाली भार्याको हरनेकी इच्छाकी है;सो यह इच्छा लोहेके त्रिशूलोंके बीचमें चलनेके समान है ॥ ४४ ॥ सिंह और शृगालमें, क्षुद्रनदी व सागरमें, अमृत और सिरकेमें भेद है उतना भेद श्रीरामचन्द्रजी और तुममें है ॥ ४५ ॥ कांचन शीशे और लोहेमें, चन्दन जल और कीचडमें, वनमें हाथी और विलावमें जिनका अन्तर है, उतनाही अन्तर श्रीरामचन्द्रजी और

अवसज्ज्यशिलांकंठेसमुद्रंततुमिच्छसि ॥ सूर्यचन्द्रमसौचोभौपाणिभ्यांहर्तुमिच्छसि ॥ ४२ ॥ योरामस्यप्रियांभार्यांप्रधर्षयितुमिच्छसि ॥ अग्निंप्रज्वलितंदृष्ट्वावस्त्रेणाहर्तुमिच्छसि ॥ ४३ ॥ कल्याणवृत्तांयोभार्यांरामस्याहर्तुमिच्छसि॥ अयोमुखानांशूलानांमध्येचरितुमिच्छसि ॥ रामस्यसदृशींभार्यांयोऽधिगंतुंत्वमिच्छसि ॥ ४४ ॥ यदंतरंसिंहसृगालयोर्वनेयदंतरंस्यंदनिकासमुद्रयोः ॥ सुराग्र्यसौवीरकयोर्यदंतरंतदन्तरं दाशरथेस्तवैवच ॥ ४५ ॥ यदंतरंकांचनसीसलोहयोर्यदंतरंचंदनवारिपंकयोः ॥ यदंतरंहस्तिबिडालयोर्वनेतदंतरंदाशरथेस्तवैवच ॥ ४६ ॥ यदंतरंवायसवैनतेययोर्यदंतरंमद्गुमयूरयोरपि ॥ यदंतरं हंसकगृध्रयोर्वनेतदंतरंदाशरथेस्तवैवच ॥४७॥ तस्मिन्सहस्राक्षसमप्रभावेरामेस्थिते कार्मुकबाणपाणौ॥ हृतापितेऽहंनजरांगमिष्येआज्यंयथामक्षिकयाऽवगीर्णम् ॥ ४८ ॥ इतीवतद्वाक्यमदुष्टभावासुदुष्टमुक्त्वारजनीचरंतम् ॥ गात्रप्रकंपाद्व्यथिताबभूववातोद्धतासाकदलीवतन्वी ॥ ४९ ॥

तुममें है ॥ ४६ ॥ गरुड और काकमें, मोरे और जलमुर्गीमें, हंस और गीधमें जितना अन्तर उतना अन्तर श्रीरामचन्द्रजी और तुममें है ॥ ४७ ॥महेन्द्रसम प्रभावशाली श्रीरामचन्द्रजी जो धनुषबाण धारण किये इस पृथ्वीपर टिके हैं, तो यदि तुम हमको हरभी ले जाओगे तो तुम्हारे यहां हम वृद्धावस्थाको प्राप्त न होंगी, अर्थात् वह बहुत शीघ्र तुमको मारकर हमको ले आवेंगे । जिस प्रकार घृतमें मक्खी पड जाय तो घृत दूषित नहीं होता, वरन् मक्खीही प्राण देती है अर्थात् हमारा कुछ न होगा तुमही मारे जाओगे ॥ ४८ ॥ जिस प्रकार पवनके चलनेसे कदलीका वृक्ष कंपायमान होकर हिलने लगता है, वैसेही शुद्ध स्वभाववाली तन्वंगी जानकीजी दुष्ट राक्षससे इस प्रकारके वचन कह थर२कांपने लगीं ॥ ४९ ॥

तिन जनकात्मजा सीताजीको कंपायमान देखकर मृत्युसम प्रभाव युक्त रावण उनको डरवानेके लिये अपना कुल नाम और कर्म कहने लगा ॥ ५० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्वा० वा० आदि० अरण्यकाण्डे भाषायां सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४७ ॥ जब सीताजीने इस प्रकारसे कठोर वचन कहे तब रावणने महाक्रोधित होकर भ्रुकुटी टेढी करके कहा ॥१॥ हे वरवर्णिनी ! हम कुबेरके सौतेले भाई हैं हम परम प्रातापशालीका नाम दशग्रीव रावण है तुम्हारा मंगल हो ॥ २ ॥ जिस प्रकार प्रजागण मृत्युसे भय करते हैं, वैसेही हमारे भयसे भीत होकर देव, गन्धर्व, पिशाच, पन्नग और उरगगण समस्तही सदा भागते हैं ॥ ३ ॥ हमने किसी कारण वशसे क्रोधमें भरद्वन्द्व करके संग्राममें विक्रम प्रकाश करके सौतेले भाई कुबेरको सब प्रकारसे जीत लिया है ॥ ४ ॥ इस कारण वह हमसे डरकर धनधान्य ऋद्धि सिद्धिसे भरी पुरी अपनी लंकापुरी त्यागकर पर्वतराज कैलासमें वास करते हैं ॥ ५ ॥ हे भद्रे ! हमने अपने वीर्यके प्रभावसे उन कुबेरकी

तांवेपमानामुपलक्ष्यसीतांसरावणोमृत्युसमप्रभावः ॥कुलंबलंनामचकर्मचात्मनःसमाचचक्षेभयकारणार्थम् ॥ ५० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्वा०वाल्मीकीये आदि० च० सा० अरण्यकांडे सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥४७॥ एवंब्रुवत्यांसीतायांसंरब्धःपरुषंवचः ॥ ललाटेभ्रुकुटिंकृत्वारावणःप्रत्युवाचह ॥ १ ॥ भ्रातावैश्रवणस्याहंसापत्नोवरवर्णिनि ॥ रावणोनामभद्रंतेदशग्रीवःप्रतापवान् ॥ २ ॥ यस्यदेवाःसगंधर्वाःपिशाचपतगोरगाः ॥ विद्रवंतिसदाभीतामृत्योरिवसदाप्रजाः ॥ ३ ॥ येनवैश्रवणोभ्रातावैमात्रःकारणांतरे ॥ द्वंद्वमासादितःक्रोधाद्रणेविक्रम्यनिर्जितः ॥ ४ ॥ मद्भयार्तःपरित्यज्यस्वमधिष्ठानमृद्धिमत् ॥ कैलासंपर्वतश्रेष्ठमध्यास्तेनरवाहनः ॥ ५ ॥ यस्यतत्पुष्पकंनामविमानंकामगंशुभम् ॥ वीर्यादावर्जितंभद्रेयेनयामिविहायसम् ॥६॥ ममसंजातरोषस्यमुखं दृष्ट्वैवमैथिलि ॥ विद्रवंतिपरित्रस्ताःसुराःशक्रपुरोगमाः ॥ ७ ॥ यत्रतिष्ठाम्यहंतत्रमारुतोवातिशंकितः ॥ तीव्रांशुःशिशिरांशुश्चभयात्संपद्यतेदिवि ॥ ८ ॥ निष्कंपपत्रास्तरवोनद्यश्चस्तिमितोदकाः ॥ भवंतियत्रतत्राहंतिष्ठामिचचरामिच ॥ ९ ॥ ममपारेसमुद्रस्यलंकानामपुरीशुभा ॥ संपूर्णाराक्षसैर्घोरैर्यथेंद्रस्यामरावती ॥ १० ॥

इच्छानुसार चलनेवाला परम सुन्दर पुष्पक नामक विमानभी हरण कर लिया है हम उसी विमानमें बैठ कर आकाश मार्गमें चलते हैं ॥ ६ ॥ हे मैथिलि ! हमें क्रोध उत्पन्न हुआ कि, हमारा मुख देखतेही इन्द्रादि मुख्य देवतागण महाभयभीत होकर दशोंदिशाओंको भाग जाते हैं ॥ ७ ॥ जहांपर हम रहा करते हैं, वायु वहां पर शंका सहित चला करती है और सूर्य भी हमारे भयसे आकाशमंडलमें चन्द्रमाके समान देख पडता है ॥ ८ ॥ अधिक क्या कहें ? जहांपर हम बैठते व घूमते घामते हैं वहां पर वृक्षोंके पत्ते भी नहीं हिलते डुलते, नदियोंका जल भी बहनेसे रुक जाता है ॥ ९ ॥ समुद्रके पार हमारी लंका नामक परम सुन्दर नगरी है पुरी देखनेमें इन्द्रकी दूसरी अमरावती है भयंकर निशाचरगण उसमें रहा करते हैं ॥ १० ॥

और वहां पर श्वेत धवरहर वृक्ष बहुतसे शोभित हो रहे हैं,उस लंका पुरीके सब फाटक वैडूर्यमणिके बने हैं और परकोटा सुवर्णका है चारोंओर जिसके समुद्र रूपी खाँई है जिससे यह पुरी परम मनोहारिणी होगई है ॥ ११ ॥ वहां पर सदाही बाजोंकी ध्वनि गूँजती रहती है । उसमें हाथी घोडे और रथ समूह बहुत भर रहे हैं । वहां की सब फुलवाडियें अभिलषित फल देनेवाले वृक्षोंसे युक्त हैं जिससे वाडियोंकी अति शोभा हो रही है ॥ १२ ॥ हे राजपुत्री सीते ! तुम हमारे साथ उस नगरीमें वास करोगी, तब फिर मनुष्योंकी स्त्रियोंको कभी स्मरण भी नहीं करोगी ॥ १३ ॥ हे मनस्विनी वरवार्णिनी ! वहां पर तुम वह दिव्य भोगकरके जो मनुष्यों को महादुर्लभ है क्षीणायु रामचंद्रका कभी मनमें स्मरण न करोगी ॥ १४ ॥ और दशरथजीने भरतजीको राज्याभिषेक करके मन्दवीर्यवाले अपने बडे पुत्र श्रीरामचन्द्रजी को वनमें भेज दिया ॥१५॥ हे बडे २ नेत्रवाली ! तुम उन राज्यभ्रष्ट गतवित्त तपस्वी रामके साथ रहकर क्या

प्राकारेणपरिक्षिप्तापांडुरेणविराजिता॥हेमकक्ष्यापुरीरम्यावैदूर्यमयतोरणा ॥ ११॥ हस्त्यश्वरथसंबाधातूर्यनादविनादिता ॥ सर्वकामफलैर्वृक्षैः संकुलोद्यानभूषिता ॥१२॥ तत्रत्वंवसहेसीतेराजपुत्रिमयासह ॥ नस्मरिष्यसिनारीणांमानुषीणांमनस्विनि ॥ १३ ॥ भुञ्जानामानुषान्भोगा न्दिव्यांश्चवरवर्णिनि ॥ नस्मरिष्यसिरामस्यमानुषस्यगतायुषः ॥ १४ ॥ स्थापयित्वाप्रियंपुत्रंराज्येदशरथोनृपः ॥ मंदवीर्यस्ततोज्येष्ठःसुतः प्रस्थापितोवनम् ॥ १५ ॥ तेनकिंभ्रष्टराज्येनरामेणगतचेतसा॥ करिष्यसिविशालाक्षितापसेनतपस्विना ॥१६॥ रक्षराक्षसभर्तारंकामयस्वय मागतम् ॥ नमन्मथशराविष्टंप्रत्याख्यातुंत्वमर्हसि ॥ १७ ॥ प्रत्याख्यायहिमांभीरुपश्चात्तापंगमिष्यसि॥ चरणेनाभिहत्येवपुरूरवसमुर्वशी ॥१८॥ अंगुल्यानसमोरामोममयुद्धेसमानुषः ॥ तवभाग्येनसंप्राप्तंभजस्ववरवर्णिनि ॥ १९ ॥ एवमुक्तातुवैदेहीक्रुद्धासंरक्तलोचना ॥ अब्रवी त्परुषंवाक्यंरहितेराक्षसाधिपम् ॥ २० ॥ कथंवैश्रवणंदेवंसर्वदेवनमस्कृतम् ॥ भ्रातरंव्यपदिश्यत्वमशुभंकर्तुमिच्छसि ॥ २१ ॥

करोगी ? ॥१६॥ हम समस्त राक्षसोंके राजा, कामबाणसे वींधेजाकर तुम्हारे पास आपही आये हैं सो हमारा निरादर करना तुमको उचित नहीं है ॥१७॥ हे भीरु ! हमारा निरादर करनेसे पीछे तुमको पछताना पडेगा । जिस प्रकार उर्वशी राजा पुरूरवाको लात मारकर संतापिता हुई थी ॥१८॥ राम मनुष्य है वह युद्धमें हमारी एक अंगुलीके समान भी नहीं होगा । हे वरवर्णिनि ! हम तुम्हारे सौभाग्यसे ही यहां आये हैं,इससे तुम हमको अपना पति बनाओ ॥१९॥ जब रावणने इस प्रकार के वचन कहे, तब सीताजीके नेत्र क्रोधके मारे लाल २ होगये । वह उस निर्जन वनमें रावणसे यह कठोर वचन बोलीं ॥ २० ॥सब देवताओंके नमस्कार करनेके योग्य उन परम पूजनीय कुबेरजीको अपना भाई बताकर तुम किस प्रकार निन्दनीय कार्य करनेका अभिलाष करतेहो ? ॥२१॥

हे राक्षस ! तुम्हारे समान खोटी बुद्धिवाला कर्कश और अजितेन्द्रिय पुरुष जिनका राजा है उनही सबही राक्षसगणोंको प्राप्त होना पडेगा ॥ २२ ॥ हे रावण ! इन्द्रपत्नी शचीको हरण करके चाहे कोई जीवित रह जाय परन्तु राम भार्या हमको हरण करके कौन पुरुष बच कल्याण पासकता है ? ॥ २३ ॥ रे राक्षस ! अत्यन्त रूपवती देवराज इन्द्रके पीछे उनकी भार्याको बलपूर्वक हरण करके चाहे किसीका जीवित रहना संभव भी हो परन्तु हम समान स्त्रीको रामचन्द्रजीके पीछे अपमानता करके अमृत पिया हुआ पुरुष भी मृत्युके हाथसे नहीं बच सकेगा ॥ २४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अरण्य कांडे भाषायामष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥ प्रातापवान् दशग्रीव रावण सीताजी के यह वचन सुनकर हाथ पर हाथ मारअपने शरीर को बहुत बढाता हुआ ॥ १ ॥ उसके पीछे वचन बोलने में चतुरदशशीश फिर जानकीजीसे बोला समझ पडा कि तुम उन्मत्तसी हो गई हो । क्या हमारा वीर्य और

अवश्यंविनशिष्यंतिसर्वेरावणराक्षसाः॥येषांत्वंकर्कशोराजादुर्बुद्धिरजितेंद्रियः ॥२२॥ अपहृत्यशचींभार्यांशक्यमिंद्रस्यजीवितम् ॥ नहिराम स्यभार्यांमामानीयस्वस्तिमान्भवेत् ॥२३॥जीवेच्चिरंवज्रधरस्यपश्चाच्छचींप्रधृष्याप्रतिरूपरूपाम् ॥ नमादृशींराक्षसधर्षयित्वापीतामृतस्या पितवास्तिमोक्षः ॥ २४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० अरण्यकांडे अष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥ सीता यावचनंश्रुत्वादशग्रीवःप्रतापवान् ॥ हस्तेहस्तंसमाहन्यचकारसुमहद्वपुः ॥१॥ समैथिलींपुनर्वाक्यंबभाषेवाक्यकोविदः॥ नोन्मत्तयाश्रुतौम न्येममवीर्यपराक्रमौ ॥ २ ॥ उद्वहेयंभुजाभ्यांतुमेदिनींमंबरेस्थितः ॥ आपिबेयंसमुद्रंचमृत्युंहन्यांरणेस्थितः ॥३॥ अर्कंतुद्यांशरैस्तीक्ष्णैर्विभि द्यांहिमहीतलम् ॥ कामरूपेणउन्मत्तेपश्यमांकामरूपिणम् ॥ ४ ॥ एवमुक्तवतस्तस्यरावणस्यशिखिप्रभे ॥ क्रुद्धस्यहरिपर्यंतेरक्तेनेत्रेबभूवतुः ॥ ५ ॥ सद्यसौम्यंपरित्यज्यतीक्ष्णरूपंसरावणः ।। स्वरूपंकालरूपाभंभेजेवैश्रवणानुजः ॥ ६ ॥

पराक्रम तुम्हारे श्रवण गोचर नहीं हुआ ! ॥ २ ॥ हम आकाशमें टिके रहकर अपनी दोनों भुजाओंसे पृथ्वीको उठा सकते हैं, सब समुद्रके जलकोभी पीसकते हैं, और युद्धमें यमराजको भी व्यथित कर सकते हैं ॥ ३ ॥ और तीखे बाणजालसे आकाशमें टिके हुए सूर्यको भी मार सकते और पृथ्वीमें गिरा सकते हैं तीक्ष्ण बाणोंसेध्रुवलोकको भी नष्ट कर महातलको विदीर्ण करदूं हे अपने चित्तमें उन्मत्त हुई ! मेरा कामरूप देख ॥ ४ ॥ इस प्रकार कहतेही क्रोधयुक्त होनेके कारण रावणके सांवरे नेत्र लाल होकर जलती हुई अग्निकी समानताको पहुँचे ॥ ५ ॥ फिर वह कुबेरका छोटा भाई रावण दंडीभेषको त्यागकर शीघ्रही यमरूप समान अपना तीक्ष्ण रूप धारण करता हुआ ॥ ६ ॥

और महाक्रोध परायण होकर तपाये सोनेके बने हुए गहनोंसे सुशोभित होकर नील मेघसदृश श्रीमान् निशाचररूप प्रगट हुआ ॥७॥ उस समय वह दशमुख बवीस भुजावाला होगया, और छलसे जो दंडीका भेष बनाया था उसको छोड दिया और बडी कायावाला बन गया॥८॥ उस राक्षसपति रावणने पहलारूप धारण कर लिया, परन्तु वस्त्र लाल रंगकेही पहरे रहा, और रमणीरत्न सीताजीको देखकर॥९॥ उन सूर्यके समान प्रभावाली, काले बालों करके युक्त वस्त्राभूषण धारण किये हुए जानकीजीसे कहने लगा ॥१०॥ कि, त्रिभुवन विख्यात स्वामीके प्राप्त करनेकी यदि इच्छाहोतो हे वरारोहे ! हमारा आश्रय ग्रहण करो, हम ही तुम्हारे समान पति हैं ॥११॥ तुम बहुत कालके लिये हमारा भजन करो, हमहीं तुम्हारे वांछित और बडाई करने योग्य पति हैं। हे भद्रे ! हम कभी ऐसा आचरण नहीं करेंगे जो तुम्हें प्यारा न हो॥१२॥ तुम मनुष्यके प्रति प्रीति त्याग करके हमारी ओर अपना प्रेम लगाओ राज्यसे भ्रष्ट परिमित आयुवाले अर्थरहित राममें

सरक्तनयनः श्रीमांस्तप्तकांचनभूषणः॥ क्रोधेनमहताविष्टोनीलजीमूतसंनिभः ॥७॥ दशास्योविंशतिभुजोबभूवक्षणदाचरः ॥ सपरिव्राजकच्छद्मम्महाकायोविहायतत् ॥ ८ ॥ प्रतिपेदेस्वकंरूपंरावणोराक्षसाधिपः॥रक्तांबरधरंस्तस्थौस्त्रीरत्नंप्रेक्ष्यमैथिलीम् ॥९॥ सतामसितकेशांतांभास्करस्यप्रभामिव ॥ वसनाभरणोपेतांमैथिलींरावणोऽब्रवीत् ॥ १० ॥ त्रिषुलोकेषुविख्यातंयदिभर्तारमिच्छसि॥मामाश्रयवरारोहेतवाहंसदृशः पतिः ॥११॥ मांभजस्वचिरायत्वमहंश्लाघ्यःपतिस्तव ॥ नैवचाहंक्वचिद्भद्रेकरिष्येतवविप्रियम् ॥१२॥ त्यज्यतांमानुषोभावोमयिभावःप्रणीयताम् ॥ राज्यच्च्युतमसिद्धार्थंरामंपरिमितायुषम् ॥१३॥ कैर्गुणैरनुरक्तासिमूढेपण्डितमानिनि ॥ यःस्त्रियोवचनाद्राज्यंविहायससुहृज्जनम् ॥१४॥ अस्मिन्व्यालानुचरितेवनेवसतिदुर्मतिः ॥ इत्युक्त्वामैथिलीवाक्यंप्रियार्हांयवादिनीम् ॥ १५ ॥ अभिगम्यसुदुष्टात्माराक्षसःकाममोहितः ॥ जग्राहरावणःसीतांबुधःखेरोहिणीमिव ॥ १६ ॥ वामेनसीतांपद्माक्षींमूर्धजेषुकरेणसः॥ ऊर्वोस्तुदक्षिणेनैवपरिजग्राहपाणिना ॥१७॥ तंदृष्ट्वागिरिशृंगाभंतीक्ष्णदंष्ट्रंमहाभुजम् ॥ प्राद्रवन्मृत्युसंकाशंभयार्तावनदेवताः॥ १८ ॥

॥१३॥ किन गुणोंसे तुम अनुरागिणी हुई हो; हे मूढे ! पंडितमानिनि मैथिलि ! जो रामचन्द्रजीके कहनेसे राज्य और सुहृद्गणोंको छोडकर ॥१४॥ जोकि हम हिंसक जन्तुओंके वास करनेकी भूमिमें वनके बीच वह दुर्मति रहता है। इस प्रकार प्रिय वचन कहनेके योग्य प्रिय वचन बोलनेवाली मैथिलीजीसे॥१५॥ यह कह कर अति दुष्टात्मा रावण जानकीजीके समीप आया और उनको ग्रहण किया, उस समय ऐसा बोध हुआ मानों आकाशके बीच बुधने रोहिणीको ग्रहण किया, ॥ १६ ॥ उस समय सीता महारानी रावणके कठोर वचन सुन और इसका रूप देख कर कुछऐसी मूर्छितसी होगई थीं कि, शापके डरसे वामबाहुसे तो रावणने उनपद्माक्षीका केशपाश और दाहिनी भुजासे दोनों चरणोंको पकड उठा लिया ॥ १७ ॥ वनदेवता लोकभी उस समय उस पर्वतशृंगसदृश तीक्ष्ण

डाढवाले महासर्पतुल्य रावणको देख भयभीत होकर दशों दिशाओंको भागगये ॥ १८ ॥ देखतेही रावणका वह मायामय स्वर्णमंडित गर्दभ जुता हुअ भयंकर शब्दकारी दिव्य रथ वहांपर आ पहुंचा ॥ १९ ॥ उस रथको देख रावणने गंभीर स्वर कठोर वचनोंसे जानकीजीको डाटा और धमकाया और उनको गोदमें लेकर रथमें डाल दिया ॥ २० ॥ यशस्विनी सीताकी उस करके गृहीत होजाने पर और भयसे व्याकुल हो हा राम ! हा राम ! कहकर पुकार करने लगीं, परन्तु रामचंद्रजी उस समय बहुत दूरथे ॥२१॥ रावणके प्रति जानकीजीका कुछभी अनुराग नहीं था इस कारणसे वह अपने छुडानेके लिये यथाशक्य चेष्टा करनेलगीं, परंतु कामके वशहुआ रावण पन्नगराजकी स्त्रीके समान उनको लेकर आकाशको उडगया ॥ २२ ॥ इसप्रकारसे

सचमायामयोदिव्यः खरयुक्तः खरस्वनः ॥ प्रत्यदृश्यतहेमांगोरावणस्यमहारथः ॥ १९ ॥ ततस्तांपरुषैर्वाक्यैरभितर्ज्यमहास्वनः ॥ अंकेनादाय वैदेहींरथमारोहयत्तदा ॥ २० ॥ सागृहीताऽतिचुक्रोशरावणेनयशस्विनी॥रामेतिसीतादुःखार्तारामंदूरंगतंवने ॥ २१ ॥ तामकामांसकामार्तः पन्नगेंद्रवधूमिव॥विचेष्टमानामादायउत्पपाताथरावणः ॥२२॥ ततःसाराक्षसेंद्रेणह्रियमाणाविहायसा॥भृशंचुक्रोशमत्तेवभ्रांतचित्तायथाऽऽतुरा ॥ २३ ॥ हालक्ष्मणमहाबाहोगुरुचित्तप्रसादक ॥ ह्रियमाणांनजानीषेरक्षसाकामरूपिणा ॥ २४ ॥ जीवितंसुखमर्थंचधर्महेतोःपरित्यजन् ॥ ह्रियमाणामधर्मेणमांराघवनपश्यसि ॥ २५ ॥ ननुनामाविनीतानांविनेतासिपरंतप ॥ कथमेवंविधंपापनत्वंशाधिहिरावणम् ॥ २६ ॥ ननुसद्योऽविनीतस्यदृश्यतेकर्मणःफलम्॥ कालोप्यंगीभवत्यत्रसस्यानामिवपंक्तये ॥२७॥

राक्षसराज रावण आकाशमें जानकीहरण करके लेचला जानकीजी कुछ मत्त भ्रान्तचित्त और आतुरके समान यह कहकर बडेजोरसे विलाप करने लगीं ॥ २३ ॥ हा गुरुचित्तप्रसादक ! महाबाहु लक्ष्मणजी ! कामरूपी राक्षस करके मैं हरी जातीहूं सो इसको तुम नहीं जानतेहो ॥ २४ ॥ हा राम ! तुम धर्मकीरक्षा करनेके लिये प्राण, सुख, संपत्ति सबकाही त्याग करते हो, इस समय हम अधर्मके द्वारा हरी जाती हैं सो क्यों नहीं हमें आकर बचाते ? ॥ २५ ॥ हे शत्रुओंके तपानेवाले ! जो अविनयी होते हैं आप उनका सदाही शासन किया करते हैं फिर क्यों नहीं ऐसे ही पापात्मा रावणका शासन करते हो ? ॥ २६ ॥ अन्यायी पुरुषके कर्मका फल शीघ्रही नहीं मिलता, जिस प्रकार अनाजके पकनेमें कुछ समयका प्रयोजन होता है इसी प्रकार समय आनेपर अन्यायका फल मिलता है ॥ २७ ॥

हे रावण! तुमने कालके प्रभावसे चेतना रहित होकर यह जो कर्म किया इसकेलिये तुमको रामचन्द्रजीसे प्राणान्त करनेवाली घोर विपत्तिमें पडना होगा ॥ २८॥ हाय! हम धर्मकी इच्छाकरनेवाली यशस्वी रामचन्द्रजीकी धर्मपत्नी होकरभी हरीजाती हैं। इतने दिन पीछे सब कुटुम्बियों सहित कैकेयीकी मनोकामना पूर्णहुई ॥ २९॥ इस पुष्पित कर्णिकार और जनस्थान, सबसेही हम यह प्रार्थना करती हैं कि, सब रामचन्द्रजीसे कह देना कि, रावण सीताजीको हरण कर लेगया है ॥ ३०॥ हे हंस सारससेवित तरंगिणी गोदावरी ! हम तुम्हारी वंदना करती हैं, तुम भी शीघ्ररामचन्द्रजीसे यह कह देना कि, रावण जानकीको हरण करके ले गया है ॥ ३१ ॥ इस विविध प्रकारके वृक्ष काननमें जो देवता वास करते हैं, हम उन सबको नमस्कार करती हैं, वह भी हमारे स्वामी श्रीरामचन्द्रजीसे हमारे हरणकी वार्ता कहें ॥ ३२॥

त्वंकर्मकृतवानेतत्कालोपहतचेतनः ॥ जीवितांतकरंघोरंरामाद्व्यसनमाप्नुहि ॥२८॥ इंतेदानींसकामातुकैकेयीबांधवैःसह ॥ ह्रियेयंधर्मकामस्य धर्मपत्नीयशस्विनः ॥ २९ ॥ आमंत्रयेजनस्थानंकर्णिकारांश्चपुष्पितान् ॥ क्षिप्रंरामायशंसध्वंसीतांहरतिरावणः॥ ३० ॥ हंससारससंघुष्टांवं देगोदावरींनदीम्॥क्षिप्रंरामायशंसध्वंसीतांहरतिरावणः ॥३१॥ दैवतानिचयान्यास्मिन्वनेविविधपादपे॥नमस्करोम्यहंतेभ्योभर्तुःशंसतमांहृ ताम् ॥३२॥ यानिकानिचिदप्यत्रसत्त्वानिविविधानिच ॥ सर्वाणिशरणंयामिमृगपक्षिगणानिवै ॥३३॥ ह्रियमाणांप्रियांभर्तुःप्राणेभ्योऽपिग रीयसीम् ॥ विवशातेहृतासीतारावणेनेतिशंसत ॥३४॥ विदित्वातुमहाबाहुरमुत्रापिमहाबलः ॥ आनेष्यतिपराक्रम्यवैवस्वतहृतमपि ॥३५॥ सातदाकरुणावाचोविलपंतीसुदुःखिता ॥ वनस्पतिगतंगृध्रंददर्शायतलोचना ॥ ३६ ॥ सातमुद्वीक्ष्यसुश्रोणीरावणस्यवशंगता ॥ समाक्रंदद्भय परादुःखोपहितयागिरा ॥ ३७ ॥ जटायोपश्यमामार्यह्रियमाणामनाथवत् ॥ अनेनराक्षसेंद्रेणकरुणंपापकर्मणा ॥ ३८ ॥

इस वनमें मृग, पक्षी इत्यादि जो कोई प्राणी भी बसते हैं, हम उन सबकीही शरणआती हैं ॥ ३३॥ वह सबही पशु पक्षी हमारे स्वामीसे उनकी प्यारी स्त्रीके हरनेका वृत्तान्त सुनावें; और कहें कि, विवश होकर सीता रावण करके हरी गई हैं ॥ ३४ ॥ हमको यदि यमराज भी हरकर ले जांय और महाबाहु रामचन्द्रजीको समाचार मिल जावे तो वह अपने पराक्रम प्रकाश करके कहांसे भी हमको ले आवेंगे॥ ३५ ॥ विशाल नेत्रवाली जानकीजीको अतिशय दुःखित होकर विलापकरते २ अचानक देखा कि, गृध्रराज जटायु पेड परबैठे हैं ॥ ३६ ॥ जटायुको देखकर रावणके वशमें पडी हुई सुश्रोणी जानकीजी भयके मारे दुःखित हो रोकर बोलीं ॥३७॥ आर्य जटायु! अवलोकन करो यह पापात्मा राक्षसराज रावण हमकोअनाथकी समान निर्दय भावसे हरण करकेलिये जाता है ॥ ३८ ॥ आप इस महा

बलवान् विजय चिह्नधारी दुर्मति क्रूर आयुध धारी निशाचर रावणको क्या निवारण नहीं कर सकेगे? ॥ ३९ ॥ आप इस निशाचरको निवारण करनेमें समर्थ नहीं हैं, इस कारणही श्रीरामचन्द्रजीसे हमारे हरणकी वार्ता ठीक २ कह देना, और लक्ष्मणजीसे यह सब वृत्तान्त ब्यौरेवार कहना ॥ ४० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अरण्यकाण्डे भाषायामेकोनपंचाशः सर्गः ॥ ४९ ॥ जटायु भोजन करके गहरी नींदमें सो रहे थे यह शब्द सुनतेही जाग पडे और रावण और जानकी दोनोंको देखा ॥ १ ॥ फिर पर्वतके शृंग समान बडी तेज चोंचवाले और वृक्षपर बैठे हुए श्रीमान् पक्षिराज जटायु मीठे वचनसे रावणको पुकारते हुए ॥ २ ॥ भ्रातः दशवदन ! हम पुराण धर्म निरत और सत्य प्रतिज्ञ हैं, इनकीरक्षाकी हमने प्रतिज्ञा की है इस कारण तुम हमारे सामने ऐसा निन्दनीयकाम करनेमें प्रवृत्त न होवो ॥ ३ ॥

नैपवारयितुंशक्यस्त्वयाक्रूरोनिशाचरः ॥ सत्त्ववाञ्जितकाशीचसायुधश्चैवदुर्मतिः ॥ ३९ ॥ रामायतुयथातत्त्वंजटायोहरणंमम ॥ लक्ष्मणायच तत्सर्वमाख्यातव्यमशेषतः ॥ ४० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा अरण्यकांडे एकोनपंचाशःसर्गः ॥ ४९ ॥ तंशब्द मवसुप्तस्तुजटायुरथशुश्रुवे ॥ निरैक्षद्रावणंक्षिप्रंवैदेहींचददर्शसः ॥ १ ॥ ततःपर्वतशृंगाभस्तीक्ष्णतुंडःखगोत्तमः ॥ वनस्पतिगतःश्रीमान्व्याजहार शुभांगिरम् ॥ २ ॥ दशग्रीवस्थितोधर्मेपुराणेसत्यसंश्रवः ॥ भ्रातस्त्वंनिंदितंकर्मकर्तुनार्हसिसांप्रतम् ॥ ३ ॥ जटायुर्नामनाम्नाहंगृध्रराजोमहा बलः ॥ राजासर्वस्यलोकस्यमहेंद्रवरुणोपमः ॥ ४ ॥ लोकानांचहितेयुक्तोरामोदशरथात्मजः ॥ तस्यैपालोकनाथस्यधर्मपत्नीयशस्विनी ॥ ५ ॥ सीतानामवरारोहायांत्वंहर्तुमिहेच्छसि ॥ कथंराजास्थितोधर्मेपरदारान्परामृशेत् ॥ ६ ॥ रक्षणीयाविशेषेणराजदारामहाबल ॥ निवर्तयगतिंनी चांपरदाराभिमर्शनात् ॥ ७ ॥ नतत्समाचरेद्धीरोयत्परोस्यविगर्हयेत् ॥ यथात्मनस्तथान्येषांदारारक्ष्याविमर्शनात् ॥ ८ ॥

हम महाबलवान् गृध्रराज जटायु हैं और दशरथकुमार श्रीरामचन्द्रजीभी साक्षात् महेन्द्र और वरुणजीके समान सब लोकोंके राजा हैं ॥ ४ ॥ वह सब लोकोंके हितकारी कार्य करनेको तैयार रहते हैं; यह वरारोहा यशस्विनी उन्हीं लोकनाथ रामचन्द्रजीकी धर्म पत्नी हैं ॥ ५ ॥ सीता इनका नाम है जिनको तुम हरण करनेको उद्यत हो सो तुम प्रजा पालनरूप धर्ममें स्थिर रहकर किस प्रकारसे पराई स्त्रीको हरण करोगे ॥ ६ ॥ हे महाबलवान् ! विशेष कर राजपत्नियोंकी रक्षा करना सब भांतिसे कर्त्तव्य है, अतएव तुम पराई स्त्रीके हरण करने रूप ओछे विषयकी नीच बुद्धिको निवारण करो ॥ ७ ॥ जिस कर्मके करनेसे लोकमें निन्दा हो धीर पुरुष कभी ऐसे कार्यको नहीं किया करते हैं । अपनी स्त्रीके समान पराई स्त्रीको परपुरुषके स्पर्शसे रक्षा करना सबही पुरुषोंको कर्त्तव्य है ॥ ८ ॥

हे पौलस्त्यनदनशात्रुसे ! निश्चित न होनेपर भी शिष्ट जब राजाके अनुवर्ती होकर अनेकानेक धर्म, अर्थ अथवा काम विषयके अनुष्ठानमें रत होते हैं ॥ ९ ॥ राजाही धर्म; राजाही काम और राजाही समस्त द्रव्योंमें उत्तम रत्नस्वरूप है धर्म; काम व पाप समस्तही राजकमल हैं ॥ १० ॥ हे राक्षसराज! हम नहीं कह सकते कि, तुम पापस्वभाव और चपल होकर किस प्रकार दुष्कर्म करनेवाले जनको देवयोनि प्राप्त होनेके समान ऐसे ऐश्वर्यको प्राप्त हुए ॥ ११ ॥ जो पुरुष स्वेच्छाचारी होता है वह उस अपने स्वभावको त्यागन नहीं कर सकता, क्योंकि दुरात्माओंके स्थानोंमें पुण्य कभी टिक नहीं सकता है ॥ १२ ॥ महाबल धर्मात्मा रामचन्द्रजीने तुम्हारे नगर व अधिकारमें कोई अपराध नहीं किया है, फिर तुम किस कारणसे उनका अपराध करते हो ॥ १३ ॥ देखो ! जनस्थानका रहनेवाला खर अति

अर्थंवायदिवाकामंशिष्टाःशास्त्रेष्वनागतम् ॥ व्यवस्यंत्यनुराजानंधर्मंपौलस्त्यनंदन ॥ ९ ॥ राजाधर्मश्चकामश्चद्रव्याणांचोत्तमोनिधिः ॥ धर्मःशुभंवापापंवाराजमूलंप्रवर्तते ॥ १० ॥ पापस्वभावश्चपलःकथंत्वंरक्षसांवर ॥ ऐश्वर्यमभिसंप्राप्तोविमानमिवदुष्कृती ॥ ११ ॥ कामस्वभावोयःसोऽसौनशक्यस्तंप्रमार्जितुम् ॥ नहिदुष्टात्मनामार्यमावसत्यालयेचिरम् ॥ १२ ॥ विषयेवापुरेवातेयदारामोमहाबलः ॥ नापराध्यतिधर्मात्माकथंतस्यापराध्यसि ॥ १३ ॥ यदिशूर्पणखाहेतोर्जनस्थानगतःखरः ॥ अतिवृत्तोहतःपूर्वंरामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ १४ ॥ अत्रब्रूहियथातत्त्वंकोरामस्यव्यतिक्रमः ॥ यस्यत्वंलोकनाथस्यहृत्वाभार्यांगमिष्यसि ॥ १५ ॥ क्षिप्रंविसृजवैदेहींमात्वाघोरेणचक्षुषा ॥ दहेद्दहनभूतेनवृत्रमिंद्राशनिर्यथा ॥ १६ ॥ सर्पमाशीविषंबद्धावस्त्रांतेनावबुध्यसे ॥ ग्रीवायांप्रतिमुक्तंचकालपाशंनपश्यसि ॥ १७ ॥ सभारःसौम्यभर्तव्योयोनरंनावसादयेत् ॥ तदन्नमपिभोक्तव्यंजीर्यतेयदनामयम् ॥ १८ ॥ यत्कृत्वानभवेद्धर्मोनकीर्तिर्नयशोध्रुवम् ॥ शरीरस्यभवेत्खेदःकस्तत्कर्मसमाचरेत् ॥ १९ ॥

शय दुष्ट था इससे सरलता करनेवाले रामने शूर्पणखाके लिये यदि उसको मार डाला है ॥ १४ ॥ तो इसमें रामचन्द्रजीका क्या अपराध है तुम वही लोकनाथ रामचन्द्रजीकी भार्या हरण करनेके लिये जाते हो ॥ १५ ॥ अभी जानकीको छोड दो, इन्द्रने जिसप्रकार वज्रसे वृत्रासुरको जला डाला था वैसेही कहीं रामचन्द्रजी तुमको अनलकल्प रूप भयंकर दृष्टिसे भस्म न कर दें ॥ १६ ॥ तुमने जो अपने वस्त्रके अचलमें महाविषैला सर्प बांधा है सो उसको तुमने सर्प नहीं जाना है; अथवा तुम उस कालपाशको नहीं देखते हो जो तुम्हारे गलेमें पडी है ॥ १७ ॥ हे सौम्य! जिसभारको वहन करनेसे दब जाना न पडे वही बोझा लेकर चलना चाहिये । और जो सहजहीसे पच जावे, और किसी प्रकार पीडा न करे उसही अन्नको खाना चाहिये ॥ १८ ॥ इस कार्यके करनेसे धर्म, कीर्ति वा चिर स्थाई यश, किसीके

मिलने की भी संभवना न हो, बरन् उलटा उससे शरीरमें खेद हो, भला ऐसे कार्यके करनेकी कौन पुरुष इच्छा करेगा ? ॥ १९ ॥ हे रावण! हमें साठ हजार वर्ष जन्म लिये हुए, तबसे विधिपूर्वक पिता पितामहादिकोंका पक्षियोंका राज्य पालन करते हैं ॥ २० ॥ यद्यपि हम बूढे हो गये हैं और तुम युवा धनुर्बाण धारी कवच सम्पन्न और रथ पर सवार हो तथापि हमारे सामने तुम निरापद जानकीको न लेजा सकोगे* ॥२१॥ मेरे देखते तुम बलसे जानकीको हरण नहीं कर सकते, जैसे कोई न्यायके तर्क और हेतुओंसे अचलवेदकी श्रुतिको हरण नहीं कर सकता अर्थात् अन्यथा नहीं कर सकता ॥२२॥ यदि तुम शूर हो युद्ध करो। अथवा हे रावण! एक मुहूर्त भर ठहर, पहले खर जिस प्रकार पृथ्वी पर शयन कर चुका तुम भी वैसेही मारे जाकर पृथ्वीपर शयन करोगे ॥२३॥ जिन रामने वारंवार

षष्टिवर्षसहस्राणिजातस्यममरावण ॥ पितृपैतामहंराज्यंयथावदनुतिष्ठतः ॥ २० ॥ वृद्धोऽहंत्वंयुवाधन्वीसरथःकवचीशरी ॥ नचाप्यादाय कुशलीवैदेहींमेगमिष्यसि ॥ २१ ॥ नशक्तस्त्वंबलाद्धर्तुंवैदेहींममपश्यतः ॥ हेतुभिर्न्यायसंयुक्तैर्ध्रुवांवेदश्रुतीमिव ॥ २२ ॥ युध्यस्वयदिशूरोऽसिमुहूर्तंतिष्ठरावण ॥ शयिष्यसेहतोभूमौयथापूर्वंखरस्तथा ॥ २३ ॥ असकृत्संयुगेयेननिहतादैत्यदानवाः ॥ नचिराच्चीरवासास्त्वांरामोयुधिवधिष्यति ॥२४॥ किंनुशक्यंमयाकर्तुंगतौदूरंनृपात्मजौ ॥ क्षिप्रंत्वंनश्यसेनीचतयोर्भीतोनसंशयः ॥ २५ ॥ नहिमेजीवमानस्यनयिष्यतिशुभामिमाम् ॥ सीतांकमलपत्राक्षींरामस्यमहिषींप्रियाम् ॥ २६ ॥ अवश्यंतुमयाकार्यंप्रियंतस्यमहात्मनः ॥ जीवितेनापिरामस्यतथादशरथस्यच ॥ २७ ॥ तिष्ठतिष्ठदशग्रीवमुहूर्तंपश्यरावण ॥ वृंतादिवफलंत्वांतुपातयेयंरथोत्तमात् ॥ २८ ॥

युद्धमें दैत्य और दानवोंको मारडाला है, सो जटावल्कल धारी रामचन्द्रजी शीघ्र ही संग्राममें तुमको वध करेंगे ॥२४॥ वह दो राजकुमार राम लक्ष्मण अभी दूर हैं हम क्या करें, रे नीच ! तुमको शीघ्रही उनसे भीत होकर विनाशको प्राप्त होना पडेगा इसमें कुछ संदेह नहीं है ॥२५॥ और जब तक कि हम जीते हैं तबतक कभी तुम हमारे सामने रामचन्द्रजीकी प्रिय स्त्री कमलनेत्रा सुखभावा इन जानकीजीको ले नहीं जा सकोगे ॥२६॥ क्योंकि जब तक हम जीवित हैं तबतक प्राणतक भी देकर महात्मा रामचन्द्र और दशरथजीका प्रिय कार्य हमको अवश्य करना उचित है ॥२७॥ इस कारण हे रावण! एक मुहूर्त खडा रह, खडा रह,

* भजन—गीधराज मुनि आरत वानी ॥ नैनउठाय विलोकन लागे रघुकुल तिलक नारि पहिचानी ॥१॥ परी अधम निश्चरकेवशमें जात पुकारत शारंगपानी ॥२॥ महाक्रोधमेंभरअधीरहो राररकनकी मनमेंठानी ॥३॥ पवन समान बेगसों धाये बोले ठहर तनक अभिमानी ॥४॥ चोर समान लियेसीताको जात कहां बचके अभिमानी॥५॥यह कह चोंच मार रथ तोरयो रथीमार सुमिरेसुखदानी ॥ पुनि रावणको कियो मूर्च्छित लई उतार सीय महरानी ॥ ६ ॥ यह बलदेव भक्तके कर्तव युग युग कीरत चली सोहानी ॥ ७ ॥

तुझको हम देखेंगे जिस प्रकार बौर से फल तोड लिया जाता है वैसेही तुमको हम रथसे नीचे गिरावेंगे ॥ २८ ॥ रे निशाचर ! जब तक हमारे प्राण हैं तबतक भली भांति हम तुम्हारी युद्धकी पहुनई करेंगे ॥ २९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अर० भाषायां पंचाशः सर्गः ॥ ५० ॥ पक्षिराज जटायुने जब इस प्रकारसे कहा तब शुद्ध सुवर्णके बने कुण्डल पहर राक्षस राज रावण क्रोधके मारे लाल २ नेत्र कर उनके सामने बडे वेगसे दौडा ॥१॥ फिर गगन मण्डलमें वायु प्रेरित दो मेघोंकी टक्कर जिस प्रकार लगती है वैसेही इन दोनोंका महाघोर संग्राम आरंभ हुआ ॥ २॥ पर लगे हुए माला पहरे हुए दो श्रेष्ठ पर्वतोंके समान गृध्रराज जटायु और राक्षसेन्द्र रावण का अद्भुत संग्राम उपस्थितहुआ॥ ३॥उसके पीछे रावणने महा बलवान् गृध्रराजके ऊपर अनवरत महाभयंकर

युद्धातिथ्यंप्रदास्यामियथाप्राणंनिशाचर॥२९॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्येच० सा० अरण्यकांडे पंचाशः सर्गः ॥५०॥ इत्युक्तःक्रोधताम्राक्षस्तप्तकांचनकुंडलः॥ राक्षसेंद्रोऽभिदुद्रावपतगेंद्रममर्षणः ॥१॥ ससंप्रहारस्तुमुलस्तयोस्तस्मिन्महामृधे॥ बभूववातोद्धृतयोर्मेघयोर्गगनेयथा ॥ २॥ तद्बभूवाद्भुतंयुद्धंगृध्रराक्षसयोस्तदा ॥ सपक्षयोर्माल्यवतोर्महापर्वतयोरिव ॥ ३ ॥ ततोनालीकनाराचैस्तीक्ष्णाग्रैश्चविकर्णिभिः ॥ अभ्यवर्षन्महाघोरैर्गृध्रराजंमहाबलम् ॥४॥ सतानिशरजालानिगृध्रःपत्ररथेश्वरः॥ जटायुःप्रतिजग्राहरावणास्त्राणिसंयुगे ॥ ५॥ तस्यतीक्ष्णनखाभ्यांतुचरणाभ्यांमहाबलः॥ चकारबहुधागात्रेव्रणान्पतगसत्तमः ॥ ६ ॥ अथक्रोधाद्दशग्रीवोजग्राहदशमार्गणान् ॥ मृत्युदंडनिभान्घोराञ्छत्रोर्निधनकांक्षया ॥ ७ ॥ सतैर्बाणैर्महावीर्यःपूर्णमुक्तैरजिह्मगैः ॥ बिभेदनिशितैस्तीक्ष्णैर्गृध्रंघोरैःशिलीमुखैः ॥८॥ सराक्षसरथेपश्यज्जानकींबाष्पलोचनाम् ॥ अचिंतयित्वाबाणांस्तान्राक्षससंसमभिद्रवत् ॥ ९ ॥

तीक्ष्ण फलक लगे हुए नालीक और नाराचवविकार्णि समूह बाणोंकी वर्षा की॥४॥पक्षिराज जटायुने युद्धमें रावणके चलाये हुए अस्त्र और समस्त शरजाल ग्रहण किया॥५॥और गृध्रराजने अति तीखे नाखून लगे हुए अपने दोनों चरणोंसे रावणके शरीरमें सहस्रों घाव कर दिये,अपने शरीरमें घाव हुए देख महावीर दशवदन रावणने क्रोधपूर्ण हो शत्रुको मारनेकी इच्छासे यमराजके दंडके समान भयंकर दश बाण ग्रहण किये॥६॥७॥और कान तक धनुषको खैंचकर उन सीधे चलनेवाले तीखे रुधिरके प्यारे भयंकर शिलीमुख बाणोंको छोडकर जटायुको विंध दिया॥८॥राक्षस राज रावणके रथमें रुदन करती हुई जानकीजीको देखकर पक्षिराज जटायु

उन समस्त बाणोंको कुछ न गिनते हुई रावणके सम्मुख दौडे॥९॥और अपने दोनोंचरणोंसे तेजस्वी जटायुने रावणका मणिमुक्ताभूषित बाणसहित शरासन तोडडाला ॥१०॥अपने धनुष बाणको टूटा हुआ देखकर रावण महा क्रोध युक्त हो दूसरा धनुष ग्रहण करके जटायु परशत२सहस्र२बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥११॥उस समय पक्षिराज जटायु उस शरसमूहसे बिंधकर घोसलेमें बैठे हुए पक्षीके समान शोभित होने लगे॥१२॥उसके पीछे महातेजस्वी जटायुजीने अपने दोनों पंखोंसे उस शर जालको तोडताड फिर अपने पंजोंसे रावणके महा धनुषको तोड डाला॥१३॥और पंखोंके प्रहारसे महातेजस्वी जटायुने रावणका अग्निके समान प्रदीप्त कवच भी खण्ड २ कर दिया ॥ १४ ॥ समरमें रावणका सुवर्णमय दिव्य कवच तोडकर जटायुजीने अतिशय शीघ्र चलनेवाले पिशाचरव गधोंको जो रावणके

ततोऽस्यसशरंचापंमुक्तामणिविभूषितम् ॥ चरणाभ्यांमहातेजाबभंजपतगोत्तमः ॥१०॥ततोऽन्यद्धनुरादायरावणःक्रोधमूर्च्छितः ॥ ववर्षशरव र्षाणिशतशोथसहस्रशः ॥ ११ ॥ शरैरावारितस्तस्यसंयुगेपतगेश्वरः ॥ कुलायमभिसंप्राप्तःपक्षिवच्चबभौतदा ॥१२॥ सतानिशरजालानिपक्षा भ्यांतुविधूयह ॥ चरणाभ्यांमहातेजाबभंजास्यमहद्धनुः ॥ १३ ॥ तच्चाग्निसदृशंदीप्तंरावणस्यशरावरम् ॥ पक्षाभ्यांचमहातेजाव्यधुनोत्पतगेश्वरः ॥ १४ ॥ कांचनोरश्छदान्दिव्यान्पिशाचवदनान्खरान् ॥ तांश्चास्यजवसंपन्नाञ्जघानसमरेबली ॥१५॥ अथत्रिवेणुसंपन्नंकामगंपावकार्चिषम् मणिसोपानचित्रांगंबभंजचमहारथम् ॥१६॥ पूर्णचंद्रप्रतीकाशंछत्रंचव्यजनैःसह ॥पातयामासवेगेनग्राहिभीराक्षसैःसह ॥१७॥ सारथेश्चास्य वेगेनतुंडेनचमहच्छिरः ॥ पुनर्व्यपहनच्छ्रीमान्पक्षिराजोमहाबलः ॥ १८ ॥ सभग्नधन्वाविरथोहताश्वोहतसारथिः ॥ अंकेनादायवैदेहींपपा तभुविरावणः ॥ १९ ॥ दृष्ट्वानिपतितंभूमौरावणंभग्नवाहनम् ॥ साधुसाध्वितिभूतानिगृध्रराजमपूजयन् ॥ २० ॥

रथमें जुते थे मार डाला ॥ १५ ॥ फिर वेगमें भरकर रावणकी इच्छानुसार चलनेवाले अग्निके समान प्रभाववाले मणिरचित सोपान युक्त तीन बांस जिनमें लगे हुए रावणके रथको भी जटायुने तोडा॥१६॥छत्र आदि धारण करनेवाले राक्षसोंके सहित पूर्णचन्द्रमाके समान छत्र और व्यजनभी जटायुने नीचे गिराया ॥ १७ ॥ और फिर अपनी चोंचके प्रहारसे सारथीका बडा भारी शिर भी बडे वेगसे जटायुने काटा, इस प्रकार परमश्रीसम्पन्न महाबलवान् पक्षिराज करके ॥१८॥ शरासन छिन्न रथके टूट जानेपर सारथी और घोडोंके मरजानेसे जानकीजीको दोनों भुजाओंसे पकडे हुए रावण पृथ्वीपर गिरा॥१९॥रावणकी सवारीको टूटी फूटी देख, स्वयं रावणको भी पृथ्वीपर गिरा देख, समस्त प्राणी वारंवार " साधु साधु ! " कहकर गृध्रराजकी बडाई करने लगे ॥ २० ॥

उसके पीछे रावण बडी उमर होनेके कारण बुढापा ग्रस्त पक्षियूथपति जटायुको थका हुआ देख हर्ष सहित मैथिली सीताजीको ग्रहण कर आकाशमार्गमें गमन करने लगा ॥ २१ ॥ रावणके समस्तही युद्धसाधन विनष्ट और हत होगये थे, केवल एक खड्ग बच रहा था । वह रावण उस अवस्थामें भी नितान्त हृष्टचित्त होकर जानकीजीको गोदीमें बैठाय जानेको तैयार हुआ ॥ २२॥ महातेजस्वी गृध्रराज जटायु बडे जोरसे कूद रावणके सामने दौडे और उसको भली भांति रोककर कहने लगे ॥ २३ ॥ अरे अल्पज्ञानी रावण ! तू समस्त राक्षसकुलको विनाशकरनेके लियेही उन वज्र समान बाण धारण करने वालेश्रीराम चन्द्रजीकी इन जानकीजीको हरण करता है ॥ २४ ॥ हम समझेकि प्यासा होकर मनुष्य जिस प्रकार जल पीता है तूभी वैसेही मित्र, बन्धु, मंत्री, चतुरंग सेना और दास दासी इत्यादि समस्त परिजनोंके सहित विष पीनेको तयार हुआ है ॥ २५॥ मूर्खलोग जिस प्रकार कर्मके फलको न जानकर शीघ्रही विषपीकर विनाशको

परिश्रांतंतुतंदृष्ट्वाजरयापक्षियूथपम् ॥ उत्पपातपुनर्हृष्टोमैथिलींगृह्यरावणः ॥ २१ ॥ तंप्रहृष्टंनिधायांकेरावणंजनकात्मजाम् ॥ गच्छंतंखड्गशेषं चप्रणष्टहतसाधनम् ॥ २२ ॥ गृध्रराजःसमुत्पत्यरावणंसमभिद्रवत् ॥ समावार्यमहातेजाजटायुरिदमब्रवीत् ॥ २३ ॥ वज्रसंस्पर्शबाणस्यभार्यां रामस्यरावण ॥ अल्पबुद्धेहरस्येनांवधायखलुरक्षसाम् ॥ २४ ॥ समित्रबंधुःसामात्यःसबलःसपरिच्छदः ॥ विषपानंपिबस्येतत्पिपासितइवोद कम् ॥ २५ ॥ अनुबंधमजानंतकर्मणामविचक्षणाः ॥ शीघ्रमेवविनश्यंतियथात्वांविनशिष्यसि ॥ २६ ॥ बद्धस्त्वंकालपाशेनक्वगतस्तस्यमो क्ष्यसे ॥ वधायबडिशंगृध्रसामिषंजलजोयथा ॥२७॥ नहिजातुदुराधर्षौकाकुत्स्थौतवरावण ॥ धर्षणंचाश्रमस्यास्यक्षमिष्येतेतुराघवौ ॥२८॥ यथत्वयाकृतंकर्मभीरुणालोकगर्हितम् ॥ तस्कराचरितोमार्गोनैषवीरनिषेवितः ॥ २९ ॥ युध्यस्वयदिशूरोसिमुहूर्तंतिष्ठरावण ॥ शयिष्यसिहतो भूमौयथाभ्राताखरस्तथा ॥ ३० ॥

प्राप्त होते हैं वैसेही तुम्हारा सब परिवारके साथ सत्यानाश हो जायगा ॥ २६ ॥ तू कालकी फांसीमें बँधा है, मछली जिस प्रकार मांसका टुकडा लगी हुईवंशीको ग्रहण करनेके अर्थ अपना प्राण खोनेको उसके सामनेको दौड़ती है और निश्चयही उसके प्राण जाते हैं । सो इसी प्रकार तूभी किसी स्थानमें गमन करके भी इस भांतिकी कालफांसीसे न छूटेगा ॥ २७ ॥ हे रावण ! राम लक्ष्मणको कोई नहीं जीत सकता । सो तू जो इस आश्रमका निरादर कर जानकीजीको लिये चला जाता है इस बातको वह सुनकरभी तुझे किसी भांति क्षमा नहीं करेंगे ॥ २८ ॥ तुम डरपोक ने सर्वलोक निन्दित जैसे कर्मका अनुष्ठान किया है सो ऐसे मार्गमें तस्कर लोग चला करते हैं, और वीर लोग इस मार्गमें नहीं चलते ॥२९॥ अरे रावण ! यदि तुझमें शूरता हो तो युद्ध कर ! नहीं तो एक मुहूर्त

ठहर बस अपने भ्राता खरके समान तूभी पृथ्वीमें शयन करेगा ॥ ३० ॥ मृत्युके समय लोग जिस प्रकारके कार्यको करते हैं सो तूभी अपना नाश करनेके लिये उसी भांतिके अधर्म कार्य करनेको तैयार हुआ है ॥ ३१ ॥ जिस अधर्मकार्यके करनेसे केवल पापही होता है, उस कार्यके करनेमें कौन जन हाथ डालता है? इंद्रादि लोकपाल अथवा स्वयं भगवान् ब्रह्माजीभी नहीं करते ॥ ३२ ॥ महाबलवान् जटायु इस प्रकारका नीतियुक्त वचन कह कर दशानन रावणकी पीठपर चिपटगये ॥ ३३ ॥ महावत दुष्ट हाथीपर चढकर जिसप्रकार अंकुश और भाला आदिसे उसके मस्तकको बींधता है, जटायुने भी वैसेही रावणको पकड अपने तीक्ष्ण नखोंकी चोटसे भली भांति घायल किया ॥ ३४ ॥ और इसी भांतिसे चोंचके आघात और पंजोंके प्रहारसे रावणकी पीठ नोचकर फिर उन्होंने नाखून

परेतकालेपुरुषोयत्कर्मप्रतिपद्यते॥विनाशायात्मनोऽधर्म्यंप्रतिपन्नोसिकर्मतत् ॥३१॥ पापानुबंधोवैयस्यकर्मणःकोनुतत्पुमान् ॥ कुर्वीतलोकाधिपतिःस्वयंभूर्भगवानपि ॥३२॥ एवमुक्त्वाशुभंवाक्यंजटायुस्तस्यरक्षसः ॥ निपपातभृशंपृष्ठेदशग्रीवस्यवीर्यवान् ॥३३॥ तंगृहीत्वानखैस्तीक्ष्णैर्विददारसमंततः ॥अधिरूढोगजारोहोयथास्याद्दुष्टवारणम् ॥ ३४ ॥ विददारनखैरस्यतुण्डंपृष्ठेसमर्पयन् ॥ केशांश्चोत्पाटयामासनखपक्षमुखायुधः ॥ ३५ ॥ सतदागृध्रराजेनक्लिश्यमानोमुहुर्मुहुः ॥ अमर्षस्फुरितोष्ठःसन्प्राकंपतचराक्षसः ॥३६॥ संपरिष्वज्यवैदेहींवामेनांकेनरावणः ॥ तलेनाभिजघानार्तोजटायुंक्रोधमूर्च्छितः ॥ ३७ ॥ जटायुस्तमतिक्रम्यतुण्डेनास्यखगाधिपः ॥ वामबाहून्दशतदाव्यपाहरदरिंदमः ॥ ३८ ॥ संछिन्नबाहोःसद्योवैबाहवःसहसाऽभवन् ॥ विषज्वालावलीयुक्तावल्मीकादिवपन्नगाः ॥ ३९ ॥ ततःक्रोधाद्दशग्रीवःसीतामुत्सृज्यवीर्यवान् ॥ मुष्टिभ्यांचरणाभ्यांचगृध्रराजमपोथयत् ॥ ४० ॥

पंख और चोंचरूपी इन हथियारोंकी सहायतासे राणके सब बाल उखाड डाले ॥ ३५ ॥ गृध्रराजके बारंबार प्रहार करनेसे रावण अतिपीडित हो गया, और क्रोधमें भरनेके कारण उसके अधर और सब शरीर कांपने लगे ॥ ३६ ॥ तब रावणने अतिव्याकुल और मूर्च्छित होकर बाईं बगलमें भली भांति जानकीको दाब जटायुको एकलात मारी ॥ ३७ ॥ शत्रुदमनकारी पक्षिराज जटायुजीने उस लातके प्रहारको सहकर अपनी चोंचसे रावणके दशोंबायें हाथ मर्दनकर उखाड डाले ॥ ३८ ॥ बाहें उखड जानेपर भी रावणके शरीरसे सहसा नये हाथ निकल आये उस समय ऐसा ज्ञात हुआ मानो विषमज्वालायुक्त सर्पगण बमईसे बाहर निकले ॥ ३९ ॥ इसके पीछे वीर्यवान् दशवदन क्रोधमें भर जानकीजीको छोड मुक्के और लातोंसे जटायुजीको मारने लगा ॥ ४० ॥

और जटायुजी भी उसे खुरचने व काटने लगे तब अनुपमपराक्रम गृध्रराज और राक्षसराजका घोर युद्ध होने लगा ॥ ४१ ॥ जटायुजी रामचन्द्रजीके उपकार करनेको युद्ध करते थे तब रावणने खड्ग उठाकर उनके दोनों पंख दो चरण और दो बगलें काट डालीं ॥ ४२ ॥ जब घोर कर्म करनेवाले निशाचरने पंख काटडाले तब गृध्रराज जटायु मृत्युके निकट पहुंच कर तत्क्षण पृथ्वीमें गिरे ॥ ४३ ॥ उनको रुधिरलगी देहसे पृथ्वीमें गिरा हुआ देखकर सीताजी दुःखित हो बन्धुके समान शीघ्रतासे उनकी ओर दौडीं ॥ ४४ ॥ लंकापति रावणने नीले मेघके समान विपुल वीर्यवान् श्वेतवर्णयुक्त छातीवाले और भूपतित जटायुजीको बुझी हुई दावानलके समान शांत देखा ॥ ४५ ॥ अनन्तर चन्द्रवदना जनककुमारी सीताजी रावणके वेगसे मर्दित व पृथ्वीपर पडे हुए जटायुको दोनों बाहोंसे

ततोमुहूर्तंसंग्रामोबभूवातुलवीर्ययोः ॥ राक्षसानांचमुख्यस्यपक्षिणांप्रवरस्यच ॥४१॥ तस्यव्यायच्छमानस्यरामस्यार्थेसरावणः ॥ पक्षौपादौच पार्श्वौचखड्गमुद्धृत्यसोऽच्छिनत् ॥४२॥ सच्छिन्नपक्षः सहसारक्षसारौद्रकर्मणा ॥ निपपातमहागृध्रोधरण्यामल्पजीवितः ॥४३॥ तंदृष्ट्वापतितं भूमौक्षतजार्द्रंजटायुषम् ॥ अभ्यधावतवैदेहीस्वबंधुमिवदुःखिता ॥४४॥ तंनीलजीमूतनिकाशकल्पंसपांडुरोरस्कमुदारवीर्यम् ॥ ददर्शलंकाधिपतिः पृथिव्यांजटायुषंशांतमिवाग्निदावम् ॥४५॥ ततस्तुतंपत्ररथंमहीतलेनिपातितंरावणवेगमर्दितम् ॥ पुनश्चसंगृह्यशशिप्रभाननारुरोदसीताजनकात्मजातदा ॥४६॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० च० सा० अर० एकपंचाशः सर्गः ॥५१॥ सातुताराधिपमुखीरावणेननिरीक्ष्यतम् ॥ गृध्रराजं विनिहतंविललापसुदुःखिता ॥१॥ निमित्तंलक्षणस्वप्नंशकुनिस्वरदर्शनम् ॥ अवश्यंसुखदुःखेषुनराणांपरिदृश्यते ॥२॥ ननूनंरामजानासिमहद्व्यसनमात्मनः ॥ धावंतिनूनंकाकुत्स्थमदर्थंमृगपक्षिणः ॥३॥ अयंहिकृपयाराममांत्रातुमिहसंगतः ॥ शेतेविनिहतोभूमौममाभाग्याद्विहंगमः ॥४॥

पकडकर वारंवार विलाप करके रोने लगीं ॥ ४६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० अर० भाषायामेकपंचाशः सर्गः ॥ ५१ ॥ रावणसे गृध्रराजका नाश देखकर चंद्रमुखी जानकीजी महादुःखित हो यह कहकर विलाप करने लगीं ॥ १ ॥ नेत्रोंका फडकना कृष्ण पुरुष दर्शनादि विषयके स्वप्न, पक्षियोंका देखना और पक्षियोंका स्वर श्रवण करना इत्यादि निश्चयही मनुष्योंके होनहार सुख दुःखकी सूचना करते हैं ऐसा देखा जाता है ॥ २ ॥ हे काकुत्स्थ रामचन्द्र ! आज निश्चयही मृग और पक्षिगण इस विपदकी सूचना करके हमारा वियोग जतानेको तुम्हारे सामने दौडते होंगे, तथापि तुम इस अपने बडे कष्टको नहीं जानते हो ॥ ३ ॥ हे काकुत्स्थ ! यह विहंगम जटायु कृपा करके हमारा उद्धार करनेके लिये यहां आकर हमारे ही भाग्य दोषसे निहत हो पृथ्वीपर पडे हैं ॥ ४ ॥

हे नाथ रामचन्द्रजी ! लक्ष्मणजी ! तुम यहां पर हमारी रक्षा करो, यह कहकर स्त्रीरत्न सीताजी अतिशय शंकित होकर बडे जोरसे रुदन करने लगीं । उनके रोनेको निकटवर्ती प्राणियोंने सुना ॥ ५ ॥ उनके सब गहने और माला इत्यादि मैली होगई और अनाथकी नाईं विलाप करने लगीं तब राक्षसपति रावण उनके सम्मुख दौडा ॥ ६ ॥ और जटायुको पकडे हुए सीताजीको देखकर वारम्वार, इसे छोडो, इसे छोड़ो ऐसा रावणने कहा जिस प्रकार लता वृक्षोंको घेर लेती है ऐसे जटायुको पकडे जो सीताजी बैठी थीं उनके समीप ऐसी दशामें रावण आया ॥ ७ ॥ इस समय सीताजी रामचंद्रजीके विरहके मारे वनमें वारंवार राम२करके बडे शब्दसे रुदन करती हुई चिल्लाने लगीं तब साक्षात् यमराजके समान रावणने अपना नाश करनेके लिये उनके केश ग्रहण किये ॥ ८ ॥ जब जानकीजीका इस प्रकारसे अपमान हुआ तब सचराचर समस्त जगत् मर्यादा शून्य होकर घोर निबिड अंधकारसे छागया ॥ ९ ॥ फिर उस समय पवनका

त्राहिमामद्यकाकुत्स्थलक्ष्मणेतिवरांगना ॥ सुसंत्रस्तासमाक्रंदच्छृण्वतांतुयथांतिके ॥५॥ तांक्लिष्टमाल्याभरणांविलपंतीमनाथवत् ॥ अभ्यधावतवैदेहींरावणोराक्षसाधिपः ॥ ६ ॥ तांलतामिववेष्टंतीमालिंगंतींमहाद्रुमान् ॥ मुंचमुंचेतिबहुशःप्रापतांराक्षसाधिपः ॥ ७ ॥ क्रोशंतींरामरामेतिरामेणरहितांवने ॥ जीवितांतायकेशेषुजग्राहांतकसंनिभः ॥ ८ ॥ प्रधर्षितायांवैदेह्यांबभूवसचराचरम् ॥ जगत्सर्वममर्यादंतमसांधेनसंवृतम् ॥९॥ नवातिमारुतस्तत्रनिष्प्रभोऽभूद्दिवाकरः ॥ दृष्ट्वासीतांपरामृष्टांदेवोदिव्येनचक्षुषा ॥१०॥ कृतंकार्यमितिश्रीमान्व्याजहारपितामहः ॥ प्रहृष्टाव्यथिताश्चासन्सर्वेतेपरमर्षयः ॥ ११ ॥ दृष्ट्वासीतांपरामृष्टांदंडकारण्यवासिनः ॥ रावणस्यविनाशंचप्राप्तंबुद्ध्वायदृच्छया ॥ १२ ॥ सतुतांरामरामेतिरुदतींलक्ष्मणेतिच ॥ जगामादायचाकाशंरावणोराक्षसेश्वरः ॥ १३ ॥

चलना बन्द हो गया, प्रभाकर प्रभाशून्य हो गये उसी समय दिव्य दृष्टिसे यह केशाकर्षण घटना देखकर ब्रह्माजीने जाना कि रावण सीताको हर लें गया * ॥ १० ॥ और श्रीमान् देवपितामह ब्रह्माजीने सब देवताओंसे यह बात कही कि अब कार्य सिद्ध हुआ, क्योंकि अब अवश्यही श्रीरामचन्द्रजी रावणको मार डालेंगे यह सुनकर कि, अब देवताओंको कष्ट न होगा इससे तो सब देवगण हर्षितहुए व जानकीजीका हरण सुन परम दुःखित हुए ॥ ११ ॥ जानकीको हरीहुई देखकर दंडकारण्यवासियोंने भी जानलिया कि, दैव योगसे रावणका विनाश आ पहुँचा इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ १२ ॥ इसओर सीताजीबार

* रागनी वरुणाताल ॥ रोवनकर शिर धुनत जानकी ॥ हा रघुपति कित गये छोड़ मुहि रक्षाकीजे आन प्रानकी ॥ कपटभेष धरिदुष्ट हरण कियो सुधिन रही माँहि रेख आनकी ॥ हा लक्ष्मण तव वचन न माने अपने हित में आप हीनकी । मम रोवन सुनिकुन्त न फोऊ क्या इच्छा है कृपानिधानकी ॥ मारद काल आप नियरानो मति बौरानी यातुधानकी ॥

म्बार राम और लक्ष्मणजीका नाम लेकर रोने लगीं राक्षसराज उनको ग्रहण करके आकाशमार्गमें गमन करने लगा ॥ १३ ॥ तपे हुए सुवर्णके गहने पहने पीले रेशमी वस्त्र पहरे राज नंदिनी जानकीजी अतीवशोभान्विता सौदामिनी बिजलीके समान दीप्ति धारण करती हुई ॥ १४ ॥ उस कालमें सीताजीके पीतवसन उडनेके कारण रावण भी अग्निद्वारा प्रदीप्त पर्वतके समान अधिक विराजमान हुआ परम कल्याणी सीताजीके शरीरमें जो सुगन्धियुक्त अरुण वर्णके कमलदल थे वह समस्त दशाननके अंगपर गिरते जाते थे ॥ १५ ॥ १६ ॥ इसके सिवाय जानकीजीके विशुद्ध स्वर्ण वर्णके रेशमी वस्त्र आकाशमें उडकर सन्ध्याकालीन सूर्य किरण शोभान्वित मेघोंके समान शोभा विस्तार करने लगे ॥ १७ ॥ और सीताका निर्मल मुख मंडल रावणके अंगमें रहनेके कारण श्रीरामचन्द्रजीके बिना मृणालरहित कमलके समान किसी भांति शोभित नहीं हुआ ॥ १८ ॥ नील मेघको भेदन कर उदय होते हुए चंद्रमाके समान सुन्दर ललाटसहित सुन्दर केश पर्यंत पद्म

तप्ताभरणवर्णांगीपीतकौशेयवासिनी ॥ रराजराजपुत्रीतुविद्युत्सौदामनीयथा ॥ १४ ॥ उद्धूतेनचवस्त्रेणतस्याःपीतेनरावणः ॥ अधिकंपरिबभ्राजगिरिर्दीप्तइवाग्निना ॥ १५ ॥ तस्याःपरमकल्याण्यास्ताम्राणिसुरभीणिच ॥ पद्मपत्राणिवैदेह्याअभ्यकीर्यंतरावणम् ॥ १६ ॥ तस्याःकौशेयमुद्धूतमाकाशेकनकप्रभम् ॥ बभौचादित्यरागेणताम्रमभ्रमिवातपे ॥ १७ ॥ तस्यास्तद्विमलंवक्रमाकाशेरावणांकगम् ॥ नरराजविनारामंविनालमिवपंकजम् ॥ १८ ॥ बभूवजलदंनीलंभित्त्वाचंद्रइवोदितः ॥ सुललाटंसुकेशांतंपद्मगर्भाभमव्रणम् ॥ १९ ॥ शुक्लैःसुविमलैर्दंतैःप्रभावद्भिरलंकृतम् ॥ तस्याःसुनयनंवक्रमाकाशेरावणांकगम् ॥ २० ॥ रुदितंव्यपमृष्टास्रंचंद्रवत्प्रियदर्शनम् ॥ सुनासंचारुताम्रोष्ठमाकाशेहाटकप्रभम् ॥ २१ ॥ राक्षसेंद्रसमाधूतंतस्यास्तद्वदनंशुभम् ॥ शुशुभेनविनारामंदिनाचन्द्रइवोदितः ॥ २२ ॥ साहेमवर्णानीलांगंमैथिलीराक्षसाधिपम् ॥ शुशुभेकांचनीकांचीनीलंगजमिवाश्रिता ॥ २३ ॥ सापद्मपीताहेमाभारावणंजनकात्मजा ॥ विद्युद्घनमिवाविश्यशुशुभेतप्तभूषणा ॥ २४ ॥

गर्भसम प्रकाशित विस्फोटकके चिह्नरहित ॥ १९ ॥ दीप्तिमान् श्वेतवर्ण दन्तपंक्तिकी प्रभासे सुशोभित सुन्दर नेत्रयुक्त जानकीजी का वदन रावणके अंगमें स्थित आकाशमें इस प्रकारसे शोभापाने लगा ॥ २० ॥ अनवरत रोदनयुक्त आंसुओंके जलसे मलीनचन्द्रमाके समान प्रिय दर्शन सुन्दर नासिका सहित, मनोहर, व लालअधरों करके युक्त सुवर्णके समान आकार कांतिवाला ॥ २१ ॥ रावण करके कंपाय मान हुआ तिन श्रीजानकीजीका मुखमंडल आकाशमें दिनके चन्द्रमाके समान बिना श्रीरामचन्द्रजीके शोभाको प्राप्त नहीं हुआ ॥ २२ ॥ सुवर्णकी बनी हुई क्षुद्रघंटिका जिस प्रकार नीलवर्णके हाथीके आश्रयमें शोभा पाती है, स्वर्णवर्ण जानकीजी भी वैसेही रावणके साथ शोभाको प्राप्त हुई ॥ २३ ॥ सीताजी पद्मकेशरवर्ण और सुवर्णके समान कांतियुक्त थीं और उनके सब गहने तपे हुए सुव

र्णके बने थे इस कारण रावणके सामने वह ऐसी शोभा धारण करती हुई कि,जिसप्रकार बिजली मेघमें विराजमान रहती है ॥२४॥ उसकालमें सीताजीके गहनोंकेशब्दसे दशानन शब्द करते हुए सुविमल नीलवर्ण मेघकी समानता धारण करता हुआ ॥२५॥ जब सीताजीको रावण हरकर ले चला तो उनके मस्तकसे फूलोंकी झडीसी लगकर पृथ्वीपर गिरने लगी ॥२६॥ परन्तु वही पुष्पवृष्टि रावणके गमनवेगसे उत्पन्न हुए पवन द्वारा कँपाई जाकर फिर कुबेरके छोटे भाई रावण केही चारों ओर गिरने लगी ॥ २७ ॥ वह सीताजीके शिरके फूलोंकी झडी रावणके चारों ओर सुमेरुपर्वतके चारों ओर नक्षत्रोंकी पांतिके समान शोभित होती थी ॥२८॥ उसी समय जानकीजीके चरणसे रत्नभूषित नूपुर खसककर बिजलीके मंडलके समान पृथ्वीपर गिर पडा ॥२९॥ श्रीजानकीजी नवतरुपल्लवके समान रक्तवर्णवाली थीं, उनके साथ नीलेवर्णका रावण सुवर्णकी कन्या युक्त हस्तीके समान शोभा पानेलगा. इससे जानकीजी हाथी की सुवर्णकी कौंधनीके

तस्याभूषणघोषेणवैदेह्याराक्षसेश्वरः॥बभूवविमलोनीलःसघोषइवतोयदः ॥२५॥ उत्तमांगच्युतातस्याःपुष्पवृष्टिःसमंततः ॥ सीतायाह्रियमाणायाःपपातधरणीतले ॥ २६ ॥ सातुरावणवेगेनपुष्पवृष्टिःसमंततः ॥ समाधूतादशग्रीवंपुनरेवाभ्यवर्तत ॥ २७ ॥ अभ्यवर्ततपुष्पाणांधारावैश्रवणानुजम् ॥ नक्षत्रमालाविमलामेरुंनगमिवोत्तमम् ॥२८॥ चरणान्नूपुरंभ्रष्टंवैदेह्यारत्नभूषितम्॥विद्युन्मंडलसंकाशंपपातधरणीतले ॥२९॥ तरुप्रवालरक्तासानीलांगंराक्षसेश्वरम्॥ प्रशोभयतवैदेहीगजंकक्ष्येवकांचनी ॥ ३० ॥तांमहोल्कामिवाकाशेदीप्यमानांस्वतेजसा॥ जहाराकाशमाविश्यसीतांवैश्रवणानुजः ॥ ३१ ॥ तस्यास्तान्यग्निवर्णानिभूषणानिमहीतले ॥ सघोषाण्यवशीर्यंतक्षीणास्ताराइवांबरात् ॥३२॥ तस्याःस्तनांतराद्भ्रष्टोहारस्ताराधिपद्युतिः ॥ वैदेह्यानिपतन्भातिगंगेवगगनच्युता ॥ ३३ ॥ उत्पातवाताभिरतानानाद्विजगणायुताः ॥ माभैरितिविधूताग्राव्याजह्रुरिवपादपाः ॥ ३४ ॥

समान शोभा पाने लगीं ॥ ३० ॥ श्रीसीताजी महाज्वालाके समान अपने तेजसे आकाशके बीच देदीप्यमान होने लगी, कुबेरका भाई रावण उसी अवस्थामें उनको आकाशमार्गमें गमन करके ले जाने लगा ॥३१॥ उस समय सीताजीके अग्नि वर्णवाले शब्दायमान उनकी देहसे खसककर सब भूषण पृथ्वीमें गिरनेलगे, उस समय ऐसा बोध हुआ मानो पुण्य क्षीण हुए तारागण आकाशसे गिररहे हैं ॥ ३२ ॥ सीताजीका चन्द्रसदृश दीप्तिवाला हार उनके दोनों उरोजोंके मध्यमें भ्रष्ट होकर गगनसे गिरीहुई गंगाजीके समान शोभा विस्तार करता गिरने लगा ॥ ३३ ॥ उत्पातकी वायुके चलनेसे शिरसमूह कंपित होनेके कारण विविध विहंगयुक्त वृक्ष मानो जानकीजीसे "कुछभय नहीं है" यह कहने लगे ॥ ३४ ॥

कमलदलोंके विध्वंस हो जानेसे और मत्स्य इत्यादिक जलचरोंके व्याकुल हो जाने पर सब सरोवर सखीके समान उत्साह रहित जानकीजीके शोकसे विह्वल होरहे थे ॥ ३५॥ सिंह व्याघ्र, मृग और पक्षिसमूह क्रोधमें भर कर सीताजीकी परछाईके पकडनेके लिये चारों ओरसे आकर उनके पीछे २ दौडने लगे ॥ ३६ ॥ जानकीके हर जानेसे समस्त पर्वत शृंगरूप बाहुपरम्परा उठाकर झरनेरूप अश्रुधारा कुवदनसे मानो रुदनही करने लगे ॥ ३७॥ श्रीमान् सूर्यनारायणभी उस अवस्थामें जानकीजीको देखकर दीन और तेजहीन होगये और उनका मण्डल प्रदेश धूँधला होगया ॥ ३८॥ जब कि, रावण रामभार्या सीताजीको हरण करके लिये जाता है, तब फिर सत्य, दया, धर्म, सरलता और सुशीलता सबही संसारसे लोप हो गई यदि ऐसा न होता तो रावण कैसे जानकीजीको हरता ? ॥ ३९॥ सबही प्राणी

नलिन्योध्वस्तकमलास्त्रस्तमीनजलेचराः ॥ सखीमिवगतोत्साहांशोचंतीवस्ममैथिलीम् ॥३५॥ समंतादभिसंपत्यसिंहव्याघ्रमृगद्विजाः॥अन्वधावंस्तदारोषात्सीतांछायानुगामिनः॥ ३६ ॥ जलप्रपातास्रमुखाःशृंगैरुच्छ्रितबाहुभिः॥ सीतायांह्रियमाणायांविक्रोशंतीवपर्वताः ॥ ३७ ॥ ह्रियमाणांतुवैदेहींदृष्ट्वादीनोदिवाकरः ॥ प्रविध्वस्तप्रभःश्रीमानासीत्पांडुरमंडलः॥३८॥ नास्तिधर्मःकुतःसत्यंनार्जवंनानृशंसता ॥ यत्ररामस्य वैदेहींसीतांहरतिरावणः ॥ ३९॥ इतिभूतानिसर्वाणिगणेशःपर्यदेवयन् ॥ वित्रस्तकादीनमुखारुरुदुर्मृगपोतकाः ॥४०॥ उद्वीक्ष्योद्वीक्ष्यनयनैर्भयादिवविलक्षणैः॥सुप्रवेपितगात्राश्चबभूवुर्वनदेवताः॥४१॥ विक्रोशंतींदृढंसीतांदृष्ट्वादुःखंतथागताम्॥ तांतुलक्ष्मणरामेतिक्रोशंतींमधुरस्वराम् ॥ ४२ ॥ अवेक्षमाणांबहुशोवैदेहींधरणीतलम् ॥ सतामाकुलकेशांतांविप्रमृष्टविशेषकाम्॥ जहारात्मविनाशायदशग्रीवोमनस्विनीम् ॥ ४३ ॥ ततस्तुसाचारुदतीशुचिस्मिताविनाकृताबंधुजनेनमैथिली ॥ अपश्यतीराघवलक्ष्मणावुभौविवर्णवक्त्राभयभारपीडिता ॥ ४४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदिकाव्ये च० सा० अरण्यकांडे द्विपंचाशः सर्गः ॥५२ ॥

झुण्डके झुण्ड मिलकर यह विलाप करने लगे, मृगछौनागण त्रासित होकर वारंवार शोभारहित नेत्रोंसे दीनमुख हो रोने लगे ॥४०॥ नेत्र खोले २ बार २ यह देखवन देवताओंका शरीर मारे भयके थराथरा कांपने लगा ॥ ४१ ॥ "राम राम" लक्ष्मणके कह २ कर जोरसे रोती व दुःखसे पुकारती जानकीजीको मधुर स्वरसे बोलती हुई देखकर वनदेवतोंने वडा दुःख माना ॥४२॥ और बार २ उनको पृथ्वीपर निहारती हुई कि, कदाचित् रामचन्द्र आजायँ, तिलकविसन हुआ व्याकुलचित्त बुद्धिमती जानकीजीको अपना सर्वनाश करानेके निमित्तही रावण हरकर लेगया ॥४३॥ अनन्तर मनोहर दन्तवाला मन्द २ हास्य युक्त; जानकीजी राम और लक्ष्मण दोनोंको नहीं देखने पर बन्धुजनोंके विरहसे मलीनमुखी और भयसे बहुतही पीडित हुई ॥४४॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० अरण्य० भाषायां द्विपंचाशः सर्गः ॥ ५२॥

रावणको आकाशमें उडता हुआ देखकर जनक कुमारी सुकुमारी सीताजी महाभीत होकर घबडाई और बहुतही दुःखित हुई ॥ १ ॥ क्रोध करनेकेकारण और रोते २ उनके दोनों नेत्र लाल हो आये, वह आर्तस्वरसे रोकर उस कालमें भयंकर नेत्र कियेहुए राक्षसपतिसे कहने लगीं ॥ २ ॥ रे राक्षसाधम रावण ! हमको अकेली पाकर चोरी करके तू लिये भागा जाता है अरे क्या इस नीच कर्मसे तुझे लाज नहीं आती ? ॥ ३ ॥ हे दुरात्मन् ! मैं जान गई कि तू डरपोक स्वभाववाला है इसी कारणसे हमारे हरण करनेका अभिलाष कर मायामय मृगरूप बना हमारे स्वामी रामचन्द्रजीको छलसे दूर ले गया ॥ ४ ॥ और इससमय हमारी रक्षा करनेके लिये जो तैयार हुए थे उन हमारे श्वशुरके सखा गृध्रराज जटायुजीको भी तैंने मार डाला ॥ ५ ॥ हे राक्षसाधम ! इससेही जानागया कि, तुझमें कुछ वीरता नहीं है, तूने केवल हमको अपना नामही सुना कर हरण किया, कुछ तुझ करके हम जीती नहीं गई । हाँ, राम लक्ष्मणसे युद्ध कर हमें जीतता तौ एक बात थी ॥ ६ ॥ रे नीच !

खमुत्पतन्तं तं दृष्ट्वा मैथिली जनकात्मजा ॥ दुःखिता परमोद्विग्ना भये महति वर्तिनी ॥ १ ॥ रोषरोदनताम्राक्षी भीमाक्षं राक्षसाधिपम् ॥ रुदती करुणं सीता ह्रियमाणा तमब्रवीत् ॥ २ ॥ न व्यपत्रपसे नीच कर्मणानेन रावण ॥ ज्ञात्वा विरहितां यो मां चोरयित्वा पलायसे ॥ ३ ॥ त्वयैव नूनं दुष्टात्मन्भीरुणा हर्तुमिच्छता ॥ ममापवाहितो भर्ता मृगरूपेण मायया ॥ ४ ॥ यो हि मामुद्यतस्त्रातुं सोऽप्ययं विनिपातितः ॥ गृध्रराजः पुराणोऽसौ श्वशुरस्य सखा मम ॥ ५ ॥ परमं खलु ते वीर्यं दृश्यते राक्षसाधम ॥ विश्राव्य नामधेयं हि युद्धे नास्मि जिता त्वया ॥ ६ ॥ ईदृशं गर्हितं कर्म कथं कृत्वा न लज्जसे ॥ स्त्रियाश्चाहरणं नीच रहिते च परस्य च ॥ ७ ॥ कथयिष्यन्ति लोकेषु पुरुषाः कर्म कुत्सितम् ॥ सुनृशंसमधर्मिष्ठं तव शौण्डीर्यमानिनः ॥ ८ ॥ धिक्ते शौर्यं च सत्त्वं च यत्त्वया कथितं तदा ॥ कुलाक्रोशकरं लोके धिक्ते चारित्रमीदृशम् ॥ ९ ॥ किं शक्यं कर्तुमेवं हि यज्जवेनैव धावसि ॥ मुहूर्तमपि तिष्ठस्व न जीवन्प्रतियास्यसि ॥ १० ॥ न हि चक्षुःपथं प्राप्य तयोः पार्थिवपुत्रयोः ॥ ससैन्योऽपि समर्थस्त्वं मुहूर्तमपि जीवितुम् ॥ ११ ॥

शून्यमें पराई स्त्रीके हरण करने का यह नीच निन्दनीय कार्य करके तू लज्जित नहीं होता ॥ ७ ॥ रे अपने को शूर माननेवाले ! तूने जो यह अति निर्लज्ज और निन्दनीय कार्य किया है सो इसकी सब पुरुष चरचा कर २ के तुझे बुरा कहेंगे ॥ ८ ॥ तूने जो अपनी शूरताई की और शारीरिक बलकी वार्ता कही सो तेरी इस शूरताको धिक्कार है ! तेरे इस बलको भी धिक्कार है ! तेरे कुलके कलंक जनक ऐसे चरित्र पर भी धिक्कार है ॥ ९ ॥ तू इस प्रकारसे हरण करके शीघ्रताके साथ दौडा जाता है फिर भला हम क्या कर सकें ? हां । यदि एक मुहूर्त भी तू खडा रहे, तो प्राण लेकर नहीं लौटने पावेगा ॥ १० ॥ राजकुमार रामचन्द्र और लक्ष्मणजी की दृष्टिके आगे आते ही तू सेना सहित एक मूहूर्त भर भी प्राण धारण नहीं कर सकेगा ॥ ११ ॥

पक्षी जिस प्रकार वनमें लगी हुई दावानलको नहीं छू सकता, वैसेही उन राजकुमारोंके बाणोंका स्पर्श सहन करने की किसी भांति तुझमें सामर्थ्य नहीं है ॥ १२ ॥ इसकारण हे रावण! भली भांति अपना हिताहित विचार करके सीधी तरहसे हमको छोड दे, नहीं तो हमारे स्वामी अपने भ्राताके सहित हमारे इस पकडे जानेपर महाक्रोधित हो ॥ १३ ॥ यदि तू हमको न छोड देगा तो तेरा विनाश करनेके लिये यत्न करेंगे, तू जिस आशयसे हमको हरण करके लिये जाता है ॥ १४ ॥ सो हे नीच राक्षस वह तेरा आशय सिद्ध नहीं होगा हम उन देव समान अपने स्वामीको न देखने पर ॥ १५ ॥ शत्रुके वशमें रह कर बहुत कालतक प्राण धारण करनेको समर्थ न होंगी, हमको समझ पडता है कि तू अपना कल्याण और हित नहीं देखता ॥ १६ ॥ जिस प्रकार मृत्युके समय लोगोंकी बुद्धि विपरीत हो जाती है अथवा मरनेके

नत्वंतयोःशरस्पर्शंसोढुंशक्तः कथंचन ॥ वनेप्रज्वलितस्येवस्पर्शमग्नेर्विहंगमः ॥ १२ ॥ साधुकृत्वात्मनःपथ्यंसाधुमांमुंचरावण ॥ मत्प्रधर्षण संक्रुद्धोभ्रात्रासहपतिर्मम ॥ १३ ॥ विधास्यतिविनाशायत्वंमांयदिनमुंचसि ॥ येनत्वंव्यवसायेनबलान्मांहर्तुमिच्छसि ॥ १४ ॥ व्यवसायस्तुतेनी चभविष्यतिनिरर्थकः ॥ नह्यहंतमपश्यंतीभर्तारंविबुधोपमम् ॥ १५ ॥ उत्सहेशत्रुवशगाप्राणान्धारयितुंचिरम् ॥ ननूनचात्मनःश्रेयःपथ्यंवा समवेक्षसे ॥ १६ ॥ मृत्युकालेयथामर्त्योविपरीतानिसेवते ॥ मुमूर्षूणांतुसर्वेषांयत्पथ्यंतन्नरोचते ॥ १७ ॥ पश्यामीहहिकंठेत्वांकालपाशावपा शितम् ॥ यथाचास्मिन्भयस्थानेनबिभेषिनिशाचर ॥ १८ ॥ व्यक्तंहिरण्मयांस्त्वंहिसंपश्यसिमहीरुहान् ॥ नदींवैतरणींघोरांरुधिरौघविवाहि नीम् ॥ १९ ॥ खड्गपत्रवनंचैवभीमंपश्यसिरावण ॥ तप्तकांचनपुष्पांचवैदूर्यप्रवरच्छदाम् ॥ २० ॥ द्रक्ष्यसेशाल्मलींतीक्ष्णामायसैःकंट कैश्चिताम् ॥ नहित्वमीदृशंकृत्वातस्यालीकंमहात्मनः ॥ २१ ॥

निकट किसी को पथ्य रुचिकर नहीं होता ॥ १७ ॥ हे राक्षस ! तू इस समय के कार्यमें भी भय नहीं करता, इस कारण हम देखती हैं कि तेरा गला कालकी फाँसीसे बँधगया है ॥ १८ ॥ और स्पष्टही समझ पडता है कि, तेरी मृत्यु जो निकट है इससे सब वृक्ष तुझे सुवर्ण के दृष्टि आते होंगे, कारण की जिन कीमृत्यु निकट होती है, उनको वृक्ष सुवर्ण केही दीखते हैं और रक्त वाहिनी भयंकर वैतरनी नदी ॥ १९ ॥ और महा भीषण खड्गरूप पत्र युक्त वृक्षोंका वन तू अति शीघ्र देखेगा और उत्कृष्ट वैडूर्य मणिमय पत्ते लगे हुए तपाये हुए सुवर्ण के बने फूल फल लगे हुए ॥ २० ॥ और भी महत् कंटकाकीर्ण सुतीक्ष्ण शाल्मली वृक्ष यह सब बहुत शीघ्र तुझको दिखाई देंगे । उन महात्मा रामचन्द्रजीका ऐसा अप्रिय कार्य करके नहीं जी सकोगे ॥ २१ ॥

जिस प्रकार विषका पीनेवाला बहुत देर तक नहीं प्राण रख सकता, रे निर्घृण रावण! इन सब बातोंसे स्पष्ट है कि, तू कठिन कालकी फांसीसे बँधा है ॥२२॥ हमारे महात्मा स्वामी के सन्मुख संग्राममें प्राप्त होकर फिर तुम्हारा कहीं निस्तारा नहीं फिर तू कहां जायकर बचेगा, उन्होंने अकेले ही बिना अपने भ्राताकी सहायता के एक निमेष मात्रमें ॥२३॥ चौदह हजार राक्षस मार डाले, वही सब अस्त्र शस्त्रोंके जाननेवाले महा बलवान् वीर्य सम्पन्न श्रीरामचन्द्रजी ॥२४॥ सुतीक्ष्ण बाणोंके समूह से अपनी प्रिय भार्याके हरनेवाले तुझको अवश्यही मार डालेंगे रावणके हाथोंके बीच में बैठी बैदेहीजी भय और शोकयुक्त होकर इस प्रकारसे व और भी बहुत भांतिसे कठोर वचनके साथ करुणास्वरसे विलाप करने लगीं ॥२५॥ वह महा व्याकुल होकर अपने छुडानेकी चेष्टा करती हुई करुणा सहित विलाप करके अनेक वचन

धारितुंशक्ष्यसिचिरंविषंपीत्वेवनिर्घृणम् ॥ बद्धस्त्वंकालपाशेनदुर्निवारेणरावण ॥२२॥ क्वगतोलप्स्यसेशर्ममममभर्तुर्महात्मनः ॥ निमेषांतरमात्रेणविनाभ्रातरमाहवे ॥ २३ ॥ राक्षसानिहतायेनसहस्राणिचतुर्दश ॥ कथंसराघवोवीरःसर्वास्त्रकुशलोबली ॥२४॥ नत्वांहन्याच्छरैस्तीक्ष्णैरिष्टभार्यापहारिणम् ॥ एतच्चान्यच्चपरुषंवैदेहीरावणांकगा ॥ भयशोकसमाविष्टाकरुणंविललापह ॥ २५॥ तदाभृशार्तांबहुचैवभाषिणींविलापपूर्वंकरुणंचभामिनीम् ॥ जहारपापस्तरुणींविचेष्टतींनृपात्मजामागतगात्रवेपथुः ॥२६॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ० च० सा० अरण्यकांडे त्रिपंचाशः सर्गः ॥ ५३ ॥ ह्रियमाणातुवैदेहीकंचिन्नाथमपश्यती ॥ ददर्शगिरिशृंगस्थान्पंचवानरपुंगवान् ॥ १ ॥ तेषांमध्येविशालाक्षीकौशेयंकनकप्रभम् ॥ उत्तरीयंवरारोहाशुभान्याभरणानिच ॥ २ ॥ मुमोचयदिरामायशंसेयरितिभामिनी ॥ वस्त्रमुत्सृज्यतन्मध्येनिक्षिप्तंसहभूषणम् ॥३॥ संभ्रमात्तुदशग्रीवस्तत्कर्मचनबुद्धवान् ॥ पिंगाक्षास्तांविशालाक्षींनेत्रैरनिमिषैरिव ॥ ४ ॥

कहने लगीं; उस समय पापाचारी रावण अपने शरीरको कँपाता हुआ उनको हरण करके ले चला ॥२६॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अरण्यकांडे भाषायां त्रिपंचाशः सर्गः ॥५३॥ जब रावण हरण करके ले चला तब जानकीजी और किसीको रक्षा करनेवाला न पाकर चली जाने लगीं और जाते २ उन्होंने पर्वतके श्रृंगपर बैठे हुए प्रधान पांच बंदरोंको देखा ॥१॥ तब उन बडे नेत्रवाली जानकीजीने सुवर्ण के रंग का अपना एक वस्त्र व कुछ गहने उतार उन बन्दरोंके बीचमें ॥२॥ इस विचारसे डाल दिये कि, ये कदाचित् रामचन्द्रजीसे यह सब वृत्तान्त कह भी सकते हैं। वह जानकी का छोडा हुआ वस्त्र व भूषण वन्दरों के बीचमें गिरा ॥३॥ जानकीजीके वस्त्र और भूषण डालनेका यह कर्म घबडाहट के मारे रावण ने नहीं जाना, उस कालमें सीताजी बहुतही रुदन कर रही थीं उनको अनिमेष लोचनसे ॥४॥

पीली आखोंवाले वानरश्रेष्ठों ने सीताजीको अपने नेत्रोंसे वारंवार देख लिया व रावण पम्पापुरीको नांघ लंकापुरीकी ओर ॥५॥ रोती हुई सीताजीको लेकर चला गया, अपनी मूर्तिमान् मृत्युस्वरूप सीताजीको हरणकरके रावणके हर्षकी सीमा न रही ॥६॥ वह तेज डाढवाली और तेज विषवाली सर्पिणीकी समान सीताजीको अंगमें भरकर आकाश मार्गमें होकर बहुतसे पर्वत वन नदियां व तडागादि देखता हुआ ॥७॥ बडी शीघ्रताके साथ रावण मत्स्य, कच्छप, मगर नाके इत्यादिकों के स्थान समुद्रको उतर गया, जिस प्रकार कि कमानसे छूटा हुआ बाण अति शीघ्रतासे सीधा चलता है ॥८॥ जब रावणने जानकीजीको हरण किया, तब जगन्माताका हरण होनेके कारण क्षुभित होकर वरुणालय समुद्र तरंगविहीन होगया, और उसके मीन और बडे२ सब सर्प व्याकुल हो गये ॥९॥ इस

विक्रोशंतींतदासीतांददृशुर्वानरोत्तमाः ॥ सचपंपामतिक्रम्यलंकामभिमुखःपुरीम् ॥५॥ जगाममैथिलींगृह्यरुदतींराक्षसेश्वरः ॥ तांजहारसुसंहृष्टोरावणोमृत्युमात्मनः ॥ ६ ॥ उत्संगेनैवभुजगींतीक्ष्णदंष्ट्रांमहाविषाम् ॥ वनानिसरितः शैलान्सरसिचविहायसा ॥ ७ ॥ सक्षिप्रंसमतीयायशरश्चापादिवच्युतः ॥ तिमिनक्रनिकेतंतुवरुणालयमक्षमम् ॥ ८ ॥ सरितांशरणंगत्वासमती यायसागरम् ॥ संभ्रमात्परिवृत्तोर्मीरुद्धमीनमहोरगः ॥ ९ ॥ वैदेह्यांह्रियमाणायांबभूववरुणालयः ॥ अंतरिक्षागतावाचःससृजुश्चारणास्तथा ॥ १० ॥ एतदंतोदशग्रीवइतिसिद्धास्तदाऽब्रुवन् ॥ सतुसीतांविचेष्टंतीमंकेनादायरावणः ॥ ११ ॥ प्रविवेशपुरींलंकांरूपिणींमृत्युमात्मनः ॥ सोऽभिगम्यपुरींलंकांसुविभक्तमहापथाम् ॥ १२ ॥ संरूढकक्ष्यांबहुलांस्वमंतःपुरमाविशत् ॥ तत्रतामसितापांगींशोकमोहसमन्विताम् ॥ १३ ॥ निदधेरावणःसीतांमयोमायामिवासुरीम् ॥ अब्रवीच्च दशग्रीवःपिशाचीर्घोरदर्शनाः ॥ १४ ॥

प्रकार जानकीजीके हरण करनेके समय यह दशा तो नदीनाथ की हुई और अन्तरिक्षमें विचरण करनेवाले चारणगण कहने लगे ॥ १० ॥ कि, अब रावण किसी प्रकार नहीं बच सकता, यहींतक इसके जीवनका शेष होगया। सिद्धगण भी ऐसाही कहने लगे इस ओर रावण चेष्टारहित मूर्छित सीताजीको गोदीमें लिये ॥११॥ अपनी लंकापुरीमें ले आया, वह सीताजीको नहीं लाया बरन् कहींसे अपनी मृत्युको मोल ले आया। उस समय लंकानगरीमें बडे २ चौराहे और मार्ग सुशोभित हो रहे थे ॥१२॥ वहां पहुँचकर अपने परम सुन्दर रनवासमें रावणने शोक मोहसे युक्त तिन परमसुन्दरीको जाकर बैठा दिया ॥१३॥ उस समय ऐसा बोध हुआ मानो मयदानव अपने पुरमें आसुरी माया ले आया है. दशानन सीताजीको अपने रनवासमें स्थापन करके घोरदर्शन पिशाचिनियोंको आज्ञा देता

हुआ ॥१४॥ कि, तुम भली भांतिसे इनकी रक्षा करो । कोई स्त्री व पुरुष हमारी बिना आज्ञा इन सीताको नहीं देखने पावे मुक्ता, मणि, सुवर्ण, वस्त्र, भूषण ॥१५॥ इत्यादि जिस२वस्तुकी यह इच्छा करे वह समस्तही इनको दी जाय यह मेरी आज्ञा है व जो कोई स्त्री तुममेंसे इन जानकीको अप्रिय वचन ॥ १६ ॥ ज्ञानसे व अज्ञानसे कहेगी वह निज शरीरमें अपने प्राणोंको न समझे इस तरह सब रक्षा करनेवालियोंसे कह महाप्रतापवान् रावण ॥ १७ ॥ रनवाससे बाहर आ विचार करने लगा कि, इस समय हमको क्या करना उचित है यह सोच उसने इधर उधर देखा तो आगेही मांसके खानेवाले आठ राक्षस बैठे थे ॥१८॥ उन राक्षसोंको देखकर ब्रह्माजीके वरदानसे मोहित हुआ रावण उन राक्षसोंके बल वीर्यकी प्रशंसा करने लगा ॥ १९ ॥ तुम लोग अनेक भांतिके अस्त्र शस्त्र

यथानैनांपुमान्स्त्रीवासीतांपश्यत्यसंमतः ॥ मुक्तामणिसुवर्णानिवस्त्राण्याभरणानिच ॥१५॥ यद्यदिच्छेत्तदेवास्यादेयंमच्छंदतोयथा॥याचव क्ष्यतिवैदेहींवचनंकिंचिदप्रियम् ॥ १६ ॥ अज्ञानाद्यदिवाज्ञानान्नतस्याजीवितंप्रियम् ॥ तथोक्त्वाराक्षसीस्तास्तुराक्षसेंद्रःप्रतापवान् ॥ १७॥ निष्क्रम्यांतःपुरात्तस्मात्किंकृत्यमितिचिंतयन् ॥ ददर्शाष्टौमहावीर्यान्राक्षसान्पिशिताशनान् ॥१८॥ सतान्दृष्ट्वामहावीर्योवरदानेनमोहितः ॥ उवाचतानिदंवाक्यंप्रशस्यबलवीर्यतः ॥ १९ ॥ नानाप्रहरणाःक्षिप्रमितोगच्छतसत्वराः ॥ जनस्थानंहतस्थानंभूतपूर्वंखरालयम् ॥ २० ॥ तत्रा स्यतांजनस्थानेशून्येनिहतराक्षसे ॥ पौरुषंबलमाश्रित्यत्रासमुत्सृज्यदूरतः ॥ २१ ॥ बहुसैन्यंमहावीर्यंजनस्थानेनिवेशितम् ॥ सदूषणखरंयुद्धे निहतंरामसायकैः ॥ २२ ॥ ततःक्रोधोममापूर्वोधैर्यस्योपरिवर्धते ॥ वैरंचसुमहज्जातंरामंप्रतिसुदारुणम् ॥२३॥ निर्यातयितुमिच्छामितच्चवैरं महारिपोः ॥ नहिलप्स्याम्यहंनिद्रामहत्वासंयुगेरिपुम् ॥ २४ ॥

धारण करके शीघ्र इस स्थानसे जहांपर खर रहा करता था उस जनशून्य जनस्थानको जाओ ॥ २० ॥ और तुम लोग वहां बल और पौरुषका आश्रय लेकर किसीकाभी डर न करके जनशून्य जनस्थानमें जाय टिके रहो ॥२१॥ वहांपर खर और दूषणके सहित हमारी जो महावीर्यवान् बहुतसारी सेना रहती थी वह समस्त रामचंद्रके बाणसे खरदूषण सहित मारी गई ॥ २२ ॥ इस कारणसे हमको बडा क्रोध हुआ है, और इससेही हम बडे वीर्यवान्का धीरजभी लोप होगया इस समय रामचन्द्रके प्रति हमारा महावैरभाव उपस्थित हुआ है ॥ २३ ॥ सो इस समय परमशत्रु रामके प्रति वह अपना क्रोध हम प्रगट करना चाहते हैं, जबतक हम युद्ध में उस महाशत्रुका वध नहीं करलेते; तबतक हमको सुखकी नींद न आवेगी ॥ २४ ॥

जिस प्रकार निर्धन पुरुष धन प्राप्त करके सुखी होता है, वैसेही खर दूषणके मारने वाले रामचन्द्रजीका नाश करके हमभी सुखी होंगे ॥ २५ ॥ तुम लोग जनस्थानमें रहकर राम किस समय क्या करते हैं,सदाही इस विषयकी यथा तथा खोज खबर लेते रहो ॥२६॥तुम लोग बडी सावधानीसे वहां पर चले जाओ, और सदा उस रामचन्द्रको मार डालनेके लिये यत्न करते रहना॥२७॥हमने पहले संग्राममें अनेक वार तुम लोगोंके बलको जान लिया है, बस इसी कारणसे हमने तुम लोगोंको जनस्थानमें बिठाया ॥२८॥ वह आठ राक्षस इन अर्थयुक्त मीठे वचनोंको सुन और रावणको प्रणाम कर लंका छोड करके जनस्थानकी ओर गुप्तभावसे सबके सब चले ॥ २९ ॥ इसप्रकारसे रावण श्रीजानकीजीको परम हर्षितचित्तसे ग्रहण करके और उनको अपने रनवासमें टिका, रामचन्द्रजी,

तंत्विदानीमहंहत्वाखरदूषणघातिनम् ॥ रामशर्मोपलप्स्यामिधनंलब्ध्वेवनिर्धनः ॥ २५ ॥ जनस्थानेवसद्भिस्तुभवद्भीराममाश्रिता ॥ प्रवृत्तिरुपनेतव्याकिंकरोतीतितत्त्वतः ॥ २६ ॥ अप्रमादाच्चगंतव्यंसर्वैरेवनिशाचरैः॥ कर्तव्यश्चसदायत्नोराघवस्यवधंप्रति ॥२७॥ युष्माकंतुबलंज्ञातंबहुशोरणमूर्धनि ॥ अतश्चास्मिञ्जनस्थानेमयायूयंनिवेशिताः ॥२८॥ ततःप्रियंवाक्यमुपेत्यराक्षसामहार्थमष्टावभिवाद्यरावणम् ॥ विहायलंकांसहिताःप्रतस्थिरेयतोजनस्थानमलक्ष्यदर्शनाः ॥ २९ ॥ ततस्तुसीतामुपलभ्यरावणःसुसंप्रहृष्टःपरिगृह्यमैथिलीम् ॥ प्रसज्ज्यरागेणचवैरमुत्तमंबभूवमोहान्मुदितःसरावणः ॥ ३० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा०अर० चतुष्पंचाशः सर्गः ॥ ५४ ॥ संदिश्य राक्षसान्घोरान्रावणोऽष्टौमहाबलान् ॥ आत्मानंबुद्धिवैक्लव्यात्कृतकृत्यममन्यत ॥ १ ॥ सचिंतयानोवैदेहींकामबाणैःप्रपीडितः ॥ प्रविवेशगृहंरम्यंसीतांद्रष्टुमभित्वरन् ॥ २ ॥ सप्रविश्यतुतद्वेश्मरावणोराक्षसाधिपः ॥अपश्यद्राक्षसीमध्येसीतांदुःखपरायणाम् ॥ ३॥ अश्रुपूर्णमुखींदीनांशोकभारावपीडिताम् ॥ वायुवेगैरिवाक्रांतांमज्जंतींनावमर्णवे ॥ ४ ॥

से महाशत्रुता करके मोहयुक्त हो परमानंदित हुआ ॥ ३० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अरण्यकांडे भाषायां चतुष्पंचाशः सर्गः ॥ ५४ ॥ रावणकी मतिमें भ्रम होगया था इसी कारणसे वह घोर महाबलवान् आठराक्षसोंको जनस्थानमें भेजकर अपनेको कृतकृत्य समझता हुआ कि, अब हमें कोईकार्य करने को शेष नहीं रहा ॥ १ ॥ अनन्तर वह बराबर जानकीजीका स्मरण करते हुए कामबाणसे पीडित होकर उन जानकीजीको देखनेके लिये शीघ्रता से अपने रमणीय गृहमें प्रवेश करता हुआ ॥२॥राक्षसपति रावणने उस घरमें प्रवेश करके दुःखपरायण सीताजीको राक्षसियोंके बीचमें बैठी हुई देखा ॥३॥ सीताजी शोकके भारसे महापीडा पाय अतिशय दीनभावको प्राप्त हो नेत्रोंसे आंसू बहाती हुई बठी थीं, उस समय ऐसा बोध होता था मानो नौका वायुके वेगसे कांपकर जलमें

डूबीहुई है ॥४॥ अथवा जैसे मृगी यूथसे बिछुडकर कुत्तोंसे घिरी हो सीताजी शोकके वश पडनेसे विवश और व्याकुल हो शिर झुकाये बैठी थीं ॥५॥ राक्षसपति रावणसन्मुख होकर उन शोकसे दीन हुई सीताजीकी इच्छा न रहनेपरभी बलात्कारसे उनको उस देवगृह सदृश दिव्यभवनको दिखाने लगा॥६॥ यहघर अनेकप्रकार के अटाअटारी और धवरहरोंसे परिपूर्ण है, सहस्रों स्त्रियां इसमें हैं वे अनेक प्रकारके पक्षी और विविधभाँतिके रत्नभी इस गृहमें हैं॥७॥ उसके सब थंभ हाथी दांतके बने थे सुवर्ण, स्फटिक, रजत और वैदूर्य निर्मित परमचित्रित और देखनेमें मनके हरण करनेवाले थे॥८॥ वहांपर समस्त वंदनवारें तपाये हुए सुवर्णकी बनी हुई थीं, और वहांपर निरन्तर दिव्य दुन्दुभी आठपहर बजती रहती थीं, रावण सीताजीके सहित इस गृहकी सुवर्णसे बनी हुई विचित्र सीढ़ियोंपर चढा ॥९॥ वह घर हाथीदांत

मृगयूथपरिभ्रष्टांमृगींश्वभिरिवावृताम् ॥ अधोगतमुखींसीतांतामभ्येत्यनिशाचरः ॥५॥ तांतुशोकवशांदीनामवशांराक्षसाधिपः ॥ सबलाद्दर्शयामासगृहंदेवगृहोपमम् ॥६॥ हर्म्यप्रासादसंबाधंस्त्रीसहस्रनिषेवितम् ॥ नानापक्षिगणैर्जुष्टंनानारत्नसमन्वितम् ॥७॥ दांतकैस्तापनीयैश्चस्फाटिकैराजतैस्तथा॥ वज्रवैदूर्यचित्रैश्चस्तंभैर्दृष्टिमनोरमैः ॥८॥ दिव्यदुंदुभिनिर्घोषंतप्तकांचनभूषणम् ॥ सोपानकांचनंचित्रमारुरोहतयासह ॥ ९ ॥ दांतकाराजताश्चैवगवाक्षाःप्रियदर्शनाः ॥ हेमजालावृताश्चासंस्तत्रप्रासादपंक्तयः ॥१०॥ सुधामणिविचित्राणिभूमिभागानिसर्वशः ॥ दशग्रीवःस्वभवनेप्रादर्शयतमैथिलीम् ॥ ११ ॥ दीर्घिकाःपुष्करिण्यश्चनानापुष्पसमावृताः ॥ रावणोदर्शयामाससीतांशोकपरायणाम् ॥१२॥ दर्शयित्वातुवैदेहींकृत्स्नंतद्भवनोत्तमम् ॥ उवाचवाक्यंपापात्मासीतांलोभितुमिच्छया ॥ १३ ॥ दशराक्षसकोटचश्चद्वाविंशतिरथापराः ॥ वर्जयित्वाजनान्वृद्धान्बालांश्चरजनीचराम् ॥ १४ ॥

और चांदीनिर्मित होनेके कारण अतिसुन्दर हजारों जालियें वहां लगी हुई थीं; जिनको देखतेही मन हर जाय और भीबहुतसे घर वहां बने थे जिसमें सुवर्णके जँगले लगे थे ॥१०॥ सब भूमि भाग सुधा धवलित और मणिसमूह चित्रित रहनेके कारण विचित्र शोभा देरहा था, इस प्रकारका भवन रावणनेसीताजीको दिखाया ॥ ११ ॥ उस मंदिरमें जगह २ बावली और छोटी२तलैयें भी बनी थीं जिनमें अनेक प्रकारके पुष्प खिल रहे थे, दशग्रीव रावणने जानकीजीको यह सब कुछ दिखाया ॥१२॥ इस प्रकारसे पापात्मा रावण जानकीजीको लुभानेकी इच्छासे अपना वह समस्त दिव्य गृह दिखला कर कहने लगा ॥ १३॥ कि,हे जानकी ! यहां बत्तीस करोड राक्षस बालक और बूढोंको छोड कर हमारे अधीन हैं ॥ १४ ॥

उन सब भयंकर कर्म करनेवाले राक्षसोंके हम स्वामी हैं। और हमारे इकलेही एक सहस्र दास हैं ॥ १५ ॥ अब हमारा यह समस्त राज्य तुम्हारेही वशमें है हे विशालाक्षि ! हमारा जीवनपर्यन्त भी तुम्हारे अधीन है, अधिक क्या कहें तुम हमारे प्राणोंसेभी प्यारी हो ॥ १६ ॥ हे मैथिलि ! हमारे रनवासमें जो सब उत्तम स्त्रियां हैं, सो तुम हमारी भार्या होकर सबके ऊपर पटरानी बनो ॥ १७ ॥ हे जानकी ! हमने जो कुछ कहा, वह तुम्हारे लिये विशेष हितकारी है, तुम इस बातमें राजी होजाओ दूसरी भांतिका अभिप्राय करके क्या करोगी, तुम्हारे कारण हम बहुतही संतापित हुए हैं सो तुम प्रसन्न होकर हमको भजो ॥ १८ ॥ चारों ओर सौ योजन समुद्रसे घिरी हुई शतयोजनके विस्तारवाली इस लंकापुरीको इन्द्रके सहित समस्त देव दानवभी किसी प्रकारका भय नहीं करा सक ते ॥ १९ ॥ क्या देवता, गन्धर्व, क्या यक्ष, क्या ऋषि इन लोगोंने हम किसीकोभी ऐसा नहीं देखते जो वीरतामें हमारी समान हो ॥ २० ॥ तो फिर भला

तेषांप्रभुरहंसीतेसर्वेषांभीमकर्मणाम् ॥ सहस्रमेकमेकस्यममकार्यंपुरःसरम् ॥ १५ ॥ यदिदंराज्यतंत्रंमेत्वयिसर्वंप्रतिष्ठितम् ॥ जीवितंचविशाला क्षित्वंमेप्राणैर्गरीयसी ॥ १६ ॥ बह्वीनामुत्तमस्त्रीणांममयोऽसौपरिग्रहः ॥ तासांत्वमीश्वरीसीतेममभार्याभवप्रिये ॥ १७ ॥ साधुकिंतेऽन्यथाबुद्ध्या रोचयस्ववचोमम ॥ भजस्वमाभितप्तस्यप्रसादंकर्तुमर्हसि ॥ १८ ॥ परिक्षिप्तासमुद्रेणलंकेयंशतयोजना ॥ नेयंधर्षयितुंशक्यासेंद्रैरपिसुरासुरैः ॥ १९ ॥ नदेवेषुनयक्षेषुनगंधर्वेषुनर्षिषु ॥ अहंपश्यामिलोकेषुयोमेवीर्यसमोभवेत् ॥ २० ॥ राज्यभ्रष्टेनदीनेनतापसेनपदातिना ॥ किंकरिष्य सिरामेणमानुषेणाल्पतेजसा ॥ २१ ॥ भजस्वसीतेमामेवभर्ताहंसदृशस्तव ॥ यौवनंत्वध्रुवंभीरुरमस्वेहमयासह ॥ २२ ॥ दर्शनेमाकृथाबुद्धिं राघवस्यवरानने ॥ कास्यशक्तिरिहागंतुमपिसीतेमनोरथैः ॥ २३ ॥ नशक्योवायुराकाशेपाशैर्बद्धुंमहाजवः ॥ दीप्यमानस्यवाप्यग्नेर्ग्रहीतुंविमलाः शिखाः ॥ २४ ॥ त्रयाणामपिलोकानांनतंपश्यामिशोभने ॥ विक्रमेणनयेद्यस्त्वांमद्बाहुपरिपालिताम् ॥ २५ ॥

दीन, तपस्वी, राज्यभ्रष्ट, पादचारी; अल्पप्राण मनुष्य रामको लेकर तुम क्या करोगी ? ॥ २१ ॥ इस कारणसे हे सीते ! हमही तुम्हारे योग्य पति हैं, तुम हमाराही भजन करो, हे भीरु ! यौवन सदा नहीं रहता इससे हमारे साथ इस लंका नगरीमें विहार करो ॥ २२ ॥ हे वरानने ! अब तुम रामचन्द्रके देखनेकी आशा छोडो ! उनमें क्या शक्ति है जो वह मनोरथमें से भी यहां पर आसकें ? ॥ २३ ॥ जिस प्रकार कोई महा प्रचंड पवन आकाश चलते हुए बांधा चाहै, परन्तु नहीं बांध सकता, ऐसेही रामभी यहां नहीं आसकता ॥ २४ ॥ हे शोभने ! समस्त भुवनोंमें हम ऐसा किसीको नहीं देखते कि, जो पराक्रम प्रकाश करके हमारी भुजाओंसे रक्षित तुमको ले जासके ॥ २५ ॥

अतएव तुम इस विशाल लंकाके राज्यका पालन करो, हमारे समान सब पुरुष तुम्हारे आज्ञाकारी दास हो जायँगे। और हमकोभी यदि सेवक समझ कर ग्रहण करो तो हमभी तुम्हारी आज्ञाके अधीन हो जायँगे । सब देवतागण बरनू स्थावर जंगमादि समस्त जगत् तुम्हाराही दास हो जायगा ॥ २६ ॥ अब तुम अभिषेकके जलसे धौतदेहा होकर सन्तुष्ट चित्तसे हमको तृप्त करो, पहले जन्मके तुम्हारे जो कुछ पाप थे वह सब वनवास करनेसे क्षयको प्राप्त होगये ॥ २७ ॥ अब तुम लंकामें रहकर अपने पहले किये हुए पुण्योंके फलको प्राप्त हो । हे मैथिली ! यहांपर जो दिव्य मालायें दिव्य गन्ध ॥ २८ ॥ और दिव्य भूषण रक्खे हैं तुम उन सबको हमारे साथ भोग करो ! हे सुमध्यमे ! भाई कुबेरका पुष्पक नाम ॥ २९ ॥ विमान सूर्यके समान प्रकाशमान हमारे यहां है कुबेरके साथ संग्राम करके उसको हम जीत लाये हैं, वह अति विशाल रमणीय है उसका वेग मनके वेगके समान है ॥ ३० ॥ सो हे सीते ! उस विमानपर चढकर तुम हमारे

लंकायाःसुमहद्राज्यमिदंत्वमनुपालय॥त्वत्प्रेष्यामद्विधाश्चैवदेवाश्चापिचराचरम् ॥२६॥ अभिषेकजलक्लिन्नातुष्टाचरमयस्वच॥दुष्कृतंयत्पुराकर्मवनवासेनतद्गतम्॥२७॥ यच्चतेसुकृतंकर्मतस्येहफलमाप्नुहि ॥इहसर्वाणिमाल्यानिदिव्यगंधानिमैथिलि ॥२८॥ भूषणानिचमुख्यानितानिसेवमयासह ॥ पुष्पकंनामसुश्रोणिभ्रातुर्वैश्रवणस्यमे ॥२९॥ विमानंसूर्यसंकाशंतरसानिर्जितंरणे । विशालंरमणीयंचतद्विमानंमनोजवम् ॥ ३० ॥ तत्रसीतेमयासार्धंविहरस्वयथासुखम्॥ वदनंपद्मसंकाशंविमलंचारुदर्शनम् ॥३१॥ शोकार्तंतुवरारोहेनभ्राजतिवरानने ॥ एवंवदतितस्मिन्सावस्त्रांतेनवरांगना ॥३२॥ पिधायेंदुनिभंसीतामंदमश्रूण्यवर्तयत् ॥ ध्यायंतीतामिवास्वस्थांसीतांचिंताहतप्रभाम् ॥३३॥ उवाचवचनंवीरोरावणोरजनीचरः ॥ अलंव्रीडेनवैदेहिधर्मलोपकृतेनते ॥३४॥ आर्षोऽयंदेविनिष्पंदोयस्त्वामभिभविष्यति ॥ एतौपादौमयास्निग्धौशिरोभिःपरिपीडितौ ॥ ३५ ॥

साथ विहार सुख सहित करो । हे वरानने ! पद्मके समान परम सुन्दर और सुविमल कान्ति सम्पन्न तुम्हारा मुख ॥ ३१ ॥ शोकके मारे मलीन होनेसे अब शोभित नहीं होता इस कारण तुम शोक न करो जब रावणने इस प्रकारसे कहा तब पतिव्रता शिरोमणि सीताजी वस्त्रकी आडमें ॥ ३२ ॥ अपना चन्द्रसमान वदन मंडल ढककर रोने लगीं; चिन्तासे उनका देह पीला पड गया, वह बहुतही अस्वस्थके समान ध्यानमें मग्न हो गईं ॥ ३३ ॥ इसको देखकर वीर्यवान् निशाचर रावण उनसे बोला कि, हे वैदेही ! धर्म लोप हो जानेकी शंकासे लज्जित मत होवो ॥ ३४ ॥ देखो तुम्हारे प्रति हम ऋषि गणोंकेही उपदेश किये हुए विधिक्रमसे प्रणय बन्धन बांधनेको तैयार हुए हैं ऋषियोंने राक्षस विवाह बलात्कार ग्रहणसे लिखा है यहलो हम अपने दशों शिरोंसे तुम्हारे मनोहर चरणोंको दबाते हैं ॥ ३५ ॥

हमारे प्रति प्रसन्नता प्रगट करनेमें और विलंब मत करो, हम तुम्हारे वशवर्ती दास हो जायँगे, हमने कामके वश होकर यह जो वार्ता कही देखो इसका कोई अंश निरर्थक नहीं जाय ॥ ३६ ॥ रावणने कभी इस प्रकारसे किसी स्त्रीके चरणोंमें प्रणाम नहीं किया था न शिर धरा था। दशानन मृत्युके वश होकर जनक नंदिनी मैथिलीजीसे इस प्रकार कहकर मनमें समझा कि, यह हमारी ही हो गई ॥ ३७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अर० भाषायां पंचपंचाशः सर्गः ॥ ५५ ॥ शोकसे तपी हुई जानकीजी यह वचन सुन कुछ भय न करके मनही मन रावणको तृण समान समझती हुई उत्तर देती हुई कि ॥ १ ॥ राजा दशरथ साक्षात् धर्मके पर्वत सदृश अभेद्य सेतु और सत्य प्रतिज्ञासे सर्व संसारमें विख्यात थे, श्रीरामचन्द्रजी उनकेही पुत्र हैं ॥२॥ यह भी धर्मात्माके नामसे तीनों भुवनोंमें विख्यात हैं, वही दीर्घबाहु विशाल लोचन श्रीरामचन्द्रजी हमारे स्वामी और साक्षात् देवता हैं ॥ ३ ॥उनके कंधे सिंहके समान हैं, वह महाद्युतिमान

प्रसादंकुरुमेक्षिप्रंवश्योदासोऽहमस्मिते॥इमाःशून्यमयावाचःशुष्यमाणेनभाषिताः ॥ ३६॥ नचापिरावणःकांचिन्मूर्ध्नास्त्रींप्रणमेतह ॥ एवमुक्त्वादशग्रीवोमैथिलींजनकात्मजाम्॥ कृतांतवशमापन्नोममेयमितिमन्यते ॥ ३७ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० च०सा० अर० पंचपंचाशः सर्गः ॥५५॥ सातथोक्तातुवैदेहीनिर्भयाशोककर्शिता॥तृणमंतरतःकृत्वारावणंप्रत्यभाषत॥१॥राजादशरथोनामधर्मसेतुरिवाचलः॥ सत्यसंधः परिज्ञातोयस्यपुत्रःसराघवः ॥ २ ॥ रामोनामसधर्मात्मात्रिषुलोकेषुविश्रुतः ॥ दीर्घबाहुर्विशालाक्षोदैवतंसपतिर्मम ॥३॥ इक्ष्वाकूणांकुलेजातः सिंहस्कंधोमहाद्युतिः ॥ लक्ष्मणेनसहभ्रात्रायस्तेप्राणान्वधिष्यति ॥४॥ प्रत्यक्षंयद्यहंतस्यत्वयावैधर्षिताबलात् ॥ शयितात्वंहतःसंख्येजनस्थानेयथाखरः ॥ ५ ॥ यएतेराक्षसाःप्रोक्ताघोररूपामहानलाः ॥ राघवेनिर्विषाःसर्वेसुपर्णेपन्नगायथा ॥ ६॥ तस्यज्याविप्रमुक्तास्तेशराःकांचनभूषणाः ॥ शरीरंविधमिष्यंतिगंगाकूलमिवोर्मयः ॥ ७ ॥ असुरैर्वासुरैर्वात्वंयद्यवध्योसिरावण ॥ उत्पाद्यसुमहद्वैरंजीवंस्तस्यनमोक्ष्यसे ॥ ८ ॥

और इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुये हैं वे भ्राता लक्ष्मणके सहित हो अवश्यही तेरे प्राणोंका वध करने यहां आवेंगे ॥ ४ ॥ यदि हम उनके सन्मुख बल पूर्वक इस प्रकारसे खैंची जातीं तब तो युद्धमें खरके समान निहत होकर तुमको भीरण भूमिमें शयन करना पडता ॥ ॥५॥ तुमने जिन सब घोर तर महाबलवान् राक्षसोंकी वार्त्ता कही सो गरुडके निकट सर्प समूहके समान रामचन्द्रजीके निकट यह सब राक्षस हीनबल विहीनतेज हो जायँगे ॥ ६ ॥ तरंग जिस प्रकार गंगाजीके किनारेकोतोडती हैं वैसेही श्रीरामचन्द्रजी अपने धनुषसे छूटे हुए उन स्वर्णभूषित बाणोंके समूहसे राक्षसोंके शरीरका भेदन करेंगे ॥ ७ ॥ हे रावण ! यद्यपि तू देव दानवोंसे अवध्य है, परन्तु रामचन्द्रके साथ यह बडा भारी वैर करके किसी प्रकार तेरे प्राण न बचेंगे ॥ ८ ॥

वह बलवान् श्रीरामचंद्रजीही तुम्हारे बचे हुए जीवनका समय पूरा कर देंगे ॥ इस यज्ञस्तम्भसे बँधे हुए पशुके समान अब तुम्हारा जीना दुर्लभ है ॥ ९ ॥ यदि श्रीरामचन्द्रजी क्रोध भरे नेत्रोंकी दृष्टिसे एक बारही तुझकोदेखें तो हे राक्षस ! तू तत्क्षणही भस्म हो जायगा जिस प्रकार महादेवजीकी नेत्राग्निसे कामदेव भस्म हो गया था ॥ १० ॥ जो चन्द्रमाकोभी आकाशसे पृथ्वीपर गिरा सकते या नाश कर सकते हैं वह सीताको भी अवश्यही यहां आकर इस स्थानसे छुडावेंगे ॥ ११ ॥ तेरी उमर बीतचुकी, श्री जाती रही, वीर्य समाप्त हो गया, इन्द्रियां भी अपने २ कार्यसे शिथिल हो गईं इससे विदित होता है कि, तुम्हारे लिये लंका नगरी निश्चयही विधवा हो जायगी ॥ १२ ॥ तुमने जो पापकार्य किया है इसका परिणाम कभी सुखकर नहीं होगा, क्योंकि तूने बिना विचारे भावके बिना बलात्कार कर पतिकी सेवासे हमको अलग किया है ॥१३॥ हमारे वह महाद्युतिमान् स्वामी अपनेभ्राता लक्ष्मणके सहित केवल अपने वीर्यका

सतेजीवितशेषस्यराघवोंतकरोबली॥पशोर्यूपगतस्येवजीवितंतवदुर्लभम् ॥९॥ यदिपश्येत्सरामस्त्वांरोषदीप्तेनचक्षुषा ॥ रक्षस्त्वमद्यनिर्दग्धो यथारुद्रेणमन्मथः ॥१०॥ यश्चंद्रंनभसोभूमौपातयेन्नाशयेतवा॥सागरंशोषयेद्वापिससीतांमोचयेदिह ॥११॥ गतासुस्त्वंगतश्रीकोगतसत्त्वोगतेंद्रियः॥लंकावैधव्यसंयुक्तात्वत्कृतेनभविष्यति॥१२॥नतेपापमिदंकर्मसुखोदर्कंभविष्यति॥याऽहंनीताविनाभावंपतिपार्श्वात्त्वयाबलात्॥१३॥ सहिदेवरसंयुक्तोममभर्तामहाद्युतिः॥निर्भयोवीर्यमाश्रित्यशून्येवसतिदंडके ॥१४॥ सतेवीर्यंबलंदर्पमुत्सेकंचयथाविधम् ॥ व्यपनेष्यतिगात्रेभ्यःशरवर्षेणसंयुगे ॥१५॥ यदाविनाशोभूतानांदृश्यतेकालचोदितः ॥ तदाकार्येप्रमाद्यंतिनराःकालवशंगताः ॥१६॥ मांप्रधृष्यसतेकालःप्राप्तोऽयंराक्षसाधम॥आत्मनोराक्षसानांचवधायांतःपुरस्यच॥१७नशक्यायज्ञमध्यस्थावेदिःस्रुग्भांडमंडिता॥द्विजातिमंत्रसंपूताचंडालेनावमर्दितुम्॥१८॥

आश्रय लेकर निडर हो निर्जन वनमें वास करते हैं ॥१४॥ वह संग्रामस्थलमें बाणोंकी वर्षा करकेतेरी देहसे बल, वीर्य, घमंड व सब अहंकार अलग कर देंगे ॥ १५ ॥ कालके वश होकर जब कि प्राणियोंका नाश निकट आ जाता है, तब वह कालके वश होकर कार्य अकार्यका विचार करनेमें ज्ञान रहित हो जाते हैं ॥ १६ ॥ रे राक्षसाधम ! जब कि, तैंने हमारा अपमान किया है, तब स्वयं तेरा, समस्त राक्षसोंका और सर्व रनवासोंके नाश होनेका काल आ पहुँचा है ॥ १७ ॥ जिस प्रकार ब्राह्मणोंकरके मंत्रसे पडी हुई यज्ञकी सामग्रीसे विभूषित यज्ञ वेदी चंडालके छूने योग्य नहीं होती वैसाही हम भी तेरे स्पर्श करनेके योग्य नहीं हैं ॥ १८ ॥

रे राक्षसाधम ! रे पापात्मा ! हम नित्य धर्मपरायण श्रीरामचन्द्रजीकी धर्मपत्नी हैं, मन वचन कायसे स्वामी हीके प्रति दृढव्रता हैं; इस कारण हम किसी प्रकारसे भी तेरे छूनेके योग्य नहीं हैं ॥ १९ ॥ जो हंसिनी कमलपुष्पोंके मध्यमें राजहंसके साथ नित्य क्रीडा करती है वह किस प्रकारसे तृणोंके बीच बैठे हुए मुद्गर (जलकाकविशेष) के प्रति दृष्टि डालगी ? ॥ २० ॥ रे राक्षस ! यह देह स्वभावसेही संज्ञाहीन है इसको बांध, या इस पर आघात दे जो तेरी इच्छा हो सो कर हम किसी प्रकारसे इस शरीरकी रक्षा नहीं करेंगी हमें प्राणोंसे कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ २१ ॥ आर अधिक तू जो हमारे शरीरको स्पर्श करे तो हम अपने जीतेजी यह कलंक पृथ्वीपर विस्तारनहीं कर सकेंगी ! वैदेहीजी इस प्रकारसे कठोर वचन कह ॥ २२ ॥ फिर रावणसे

तथाऽहंधर्मनित्यस्यधर्मपत्नीदृढव्रता ॥ त्वयास्प्रष्टुंनशक्याहंराक्षसाधमपापिना ॥१९॥ क्रीडंतीराजहंसेनपद्मखंडेषुनित्यशः ॥ हंसीसातृणमध्यस्थंकथंद्रक्ष्येतमद्गुकम् ॥२०॥ इदंशरीरंनिःसंज्ञंबंधवाघातयस्ववा ॥ नेदंशरीरंरक्ष्यंमेजीवितंवापिराक्षस ॥ २१॥ नतुशक्यमपक्रोशंपृथिव्यांदातुमात्मनः ॥ एवमुक्त्वातुवैदेहीक्रोधात्सुपरुषंवचः ॥ २२ ॥रावणंजानकीतत्रपुनर्नोवाचकिंचन॥ सीतायावचनंश्रुत्वापरुषंरोमहर्षणम् ॥ २३ ॥ प्रत्युवाचततःसीतांभयसंदर्शनंवचः ॥ शृणुमैथिलिमद्वाक्यंमासान्द्वादशभामिनि॥२४॥ कालेनानेननाभ्येषियदिमांचारुहासिनि ॥ ततस्त्वांप्रातराशार्थंसूदाश्छेत्स्यंतिलेशशः॥ २५ ॥ इत्युक्त्वापरुषंवाक्यंरावणःशत्रुरावणः ॥ राक्षसीश्चततःक्रुद्धइदंवचनमब्रवीत् ॥ २६ ॥ शीघ्रमेवहिराक्षस्योविरूपाघोरदर्शनाः ॥ दर्पमस्यापनेष्यंतुमांसशोणितभोजनाः ॥२७॥ वचनादेवतास्तस्यसुघोराघोरदर्शनाः ॥ कृतप्रांजलयोभूत्वामैथिलींपर्यवारयन् ॥ २८ ॥सताःप्रोवाचराजासौरावणोघोरदर्शनाः ॥ प्रचल्यचरणोत्कर्षैर्दारयन्निवमेदिनीम् ॥२९॥

और कुछ न बोलीं. तब रावण सीताजीके कठोर और रोमहर्षण वचन सुनकर ॥ २३ ॥ सीताजीको डरवानेकेलिये कहने लगा कि, हे मैथिलि ! मेरे वचन सुनो मैं बारह महीनेतक कुछ न कहूँगा ॥२४॥ हे चारुहासिनि! इस समयके मध्यमें यदि तुम हमको न प्राप्त होगी तो रसोई करनेवाले हमारे प्रातःकलेवेके लिये तुमको टुकडे २ कर काट डालेंगे ॥ २५ ॥ शत्रुओंको रुवानेवाला रावण इस प्रकारसे कठोर वचन कहकर फिर क्रोधित हो राक्षसियोंको आज्ञा देता हुआ ॥ २६ ॥ हे विकटरूपा, घोरदर्शना; रक्तमांसभोजिनी राक्षसीगण ! तुम सब शीघ्रही जानकीका समस्त गर्व तोड डालो ॥ २७ ॥ वह घोर दर्शना निशाचरीगण यहं सुन तत्क्षणही हाथ जोड जो आज्ञा कहकर रावणके कहनेके अनुसार सीताजीको घेर लेती हुई ॥ २८ ॥ यह देखकर रावण मानों

पृथ्वीको कंपित और विदीर्ण करता हुआ कई एक पग चल कर उन घोर दर्शनवाली राक्षसियोंको विशेष रूपसे फिर आज्ञा करता हुआ ॥२९॥ तुम जानकीको अशोक वनमें लेकर चली जाओ और सब मिल कर सदा इनको घेरे रहकर गूढभावसे इनकी रक्षा करो ॥ ३० ॥ वनकी हथिनीको जिसप्रकार वशमें किया जाता है; तुम सबभी उसी तरहसे घोर तर्जन करके अथवा समझा बुझाकर इनको हमारे वशमें लाओ ॥३१॥ जब राक्षसेन्द्र रावणने इस भांति आज्ञा की, तब राक्षसिये सीताजीको घेरकर अशोकवनमें ले गईं ॥३२॥ अनेक जातिके मनवांछित पुष्प फल सम्पन्न वृक्षसमूह और सब काल मतवाले ही विविध भांतिके विहंगम इस अशोक वनकी शोभाको बढाते थे ॥ ३३ ॥ शोकके वशमें पडी हुई जनकदुलारी मैथिलीजी अशोक वनके मध्य राक्षसियोंके वशमें

अशोकवनिकामध्येमैथिलीनीयतामिति ॥तत्रयेरक्ष्यतांगूढंयुष्माभिःपरिवारिता ॥३०॥ तत्रैनांतर्जनैर्घोरैःपुनःसांत्वैश्चमैथिलीम् ॥ आनयध्वं वशंसर्वावन्यांगजवधूमिव ॥३१॥इतिप्रतिसमादिष्टाराक्षस्योरावणेनताः ॥ अशोकवनिकांजग्मुर्मैथिलींपरिगृह्यतु ॥ ३२ ॥ सर्वकामफलैर्वृक्षैर्नानापुष्पफलैर्वृताम् ॥सर्वकालमदैश्चापिद्विजैःसमुपसेविताम् ॥ ३३ ॥ सातुशोकपरीतांगीमैथिलीजनकात्मजा ॥ राक्षसीवशमापन्नाव्याघ्रीणांहरिणीयथा ॥ ३४ ॥ शोकेनमहतात्रस्तामैथिलीजनकात्मजा ॥ नशर्मलभतेभीरुःपाशबद्धामृगीयथा ॥ ३५ ॥ नविंदतेतत्रतुशर्ममैथिलीविरूपनेत्राभिरतीवतार्जिता ॥ पतिंस्मरंतीदयितंचदेवरंविचेतनाऽभूद्भयशोकपीडिता ॥ ३६ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० च० सा० अरण्यकांडे षट्पंचाशःसर्गः ॥५६॥ प्रवेशितायांसीतायांलंकांप्रतिपितामहः ॥ तदाप्रोवाचदेवेंद्रंपरितुष्टंशतक्रतुम् ॥१॥ त्रैलोक्यस्यहितार्थायरक्षसामहितायच॥ लंकांप्रवेशितासीतारावणेनदुरात्मना ॥२॥

पडकर रहीं, जिस प्रकार व्याघ्रनियोंमें हरिणी रहती है ॥ ३४ ॥ अशोक वनमें फांसीसे बँधी डरपोक मृगीके समान अतिशय शोकमें सीताजी रहीं, वह वहां पर किसी भांतिका सुख न प्राप्त कर सकीं ॥ ३५ ॥ विरूप नेत्रवाली राक्षसियों करके घुडकी डर पाई व धमकाई जाकर परमप्रिय स्वामी और देवरको सदा स्मरण करके और शोकसे सतानेके कारण चेतना रहित होकर जानकीजीने वहां किसी प्रकार शान्ति नहीं पाई ॥ ३६ ॥इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदि० अरण्यकांडे भाषायां षट्पंचाशः सर्गः ॥ ५६ ॥ जिस समय जानकीजीको लंकामें रावण लेगया उस समय ब्रह्माजीने देवोंके राजा इन्द्रसे इस प्रकार के वचन कहे ॥ १ ॥ त्रिलोकीके हित करनेके निमित्त और राक्षसोंके नाशके निमित्त दुरात्मा रावण जानकीजीको लंकामें ले गया है ॥ २ ॥

वहां महाभाग्यवाली पतिव्रतधर्मयुक्त जो सदा सुखहीसे इतनी बडी हुई हैं अपने स्वामीको न देखकर और राक्षसोंको देखकर ॥३॥ राक्षसियोंसे घिरी हुई पतिव्रत धर्मवाली जानकी समुद्रके बीचमें जो लंकापुरी है उसमें स्थित हैं ॥४॥ रामचन्द्रजी किस प्रकार जानेंगे कि वहां निन्दारहित जानकीजी है ? बडे कष्ट और दुःखसे रामचन्द्रजीको स्मरण करती हुई जानकी ॥५॥ भोजनादिके न करनेसे निश्चय प्राणोंको त्यागन करदेंगी; सो जानकीजीकी प्राण रक्षा करनेमे हमको बडा सन्देह है ॥६॥ सो तुम शीघ्र यहांसे जाकर सुन्दर मुखवाली जानकीका दर्शनकर लंका पुरीमें प्रवेश कर यह हवि ले जाकर जानकीजीको देदो ॥७॥ जब यह वचन ब्रह्माजीने कहा तब रावणकीलंकापुरीमें इन्द्रजी आये और निद्राको अपने साथ लेते आये ॥८॥ तब इन्द्रने निद्रादेवीसे कहा कि, तू जाकर राक्षसोंको

प्रतिव्रतामहाभागानित्यंचैवसुखैधिता ॥ अपश्यंतीचभर्तारंपश्यंतीराक्षसीजनम् ॥३॥ राक्षसीभिःपरिवृताभर्तृदर्शनलालसा ॥ निविष्टाहिपुरी लंकातीरेनदनदीपतेः ॥ ४ ॥ कथंज्ञास्यतितांरामस्तत्रस्थांतामनिंदिताम् ॥ दुःखंसंचितयंतीसाबहुशःपरिदुर्लभा ॥५॥ प्राणयात्रामकुर्वाणाप्राणांस्त्यक्ष्यत्यसंशयम् ॥ सभूयःसंशयोजातःसीतायाःप्राणसंक्षये ॥६॥ सत्वंशीघ्रमितोगत्वासीतांपश्यशुभाननाम् ॥ प्रविश्यनगरींलंकांप्रयच्छहविरुत्तमम् ॥७॥ एवमुक्तोऽथदेवेंद्रःपुरींरावणपालिताम् ॥ आगच्छन्निद्रयासार्द्धंभगवान्पाकशासनः ॥ ८ ॥ निद्रांचोवाचगच्छत्वंराक्षसान्संप्रमोहय ॥ सातथोक्तामघवतादेवीपरमहर्षिता ॥ ९ ॥ देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थंप्रामोहयतराक्षसान् ॥ एतस्मिन्नंतरेदेवःसहस्राक्षःशचीपतिः ॥१०॥ आससादवनस्थांतांवचनंचेदमब्रवीत् ॥ देवराजोऽस्मिभद्रंतेइहचास्मिशुचिस्मिते ॥११॥ अहंत्वांकार्यसिद्ध्यर्थंराघवस्यमहात्मनः ॥ साहाय्यं कल्पयिष्यामिमाशुचोजनकात्मजे ॥ १२ ॥ मत्प्रसादात्समुद्रंसतरिष्यतिबलैःसह ॥ मयैवेहचराक्षस्योमाययामोहिताःशुभे ॥१३॥ तस्मादन्नमिदंसीतेहविष्यान्नमहंस्वयम् ॥ सत्वांसंगृह्यवैदेहिआगतःसहनिद्रया ॥ १४ ॥

मोहितकर । निद्रादेवी इन्द्रके यह वचन सुनकर परम प्रसन्न हुई ॥९॥ देवताओंकी कार्यसिद्धिके निमित्त राक्षसोंको मोहित करती हुई इसी अवसरमें इन्द्राणीके पति इन्द्रजी ॥१०॥ उस स्थानमें प्राप्तहो वनमें स्थित हुई जानकीसे बोले कि, हे भद्रे! मैं देवताओंका राजा इन्द्र हूं. हे सुन्दर हास्ययुक्त जानकी ! ॥११॥ मैं तुम्हारे और रामचन्द्रके कार्य सिद्ध करनेके निमित्त सहाय करनेको आयाहूं हे जनककुमारी ! तुम शोच मत करो ॥१२॥ मेरी कृपासे सेनासहित रामचन्द्रजी सागर तर जायँगे हे कल्याणी ! मेरीही मायाने इन राक्षसियोंको मोहित किया है ॥१३॥ इसी कारण हे जानकी ! मैं यह हवि अन्न तुम्हें देनेको निद्राके साथ आया हूं

सो हे जानकी ! तुम इसे लो ॥१४॥ हे जानकी ! मेरे हाथसे ये हवि भक्षण करने से तुमको क्षुधा और तृषा दशहजार वर्ष तक भीन व्यापेगी ॥१५॥ जब इन्द्रने ऐसा कहा तो डरती हुई जानकी बोलीं कि, मैं यह कैसे जानूं कि तुम शचीके पतिइन्द्र हो ॥१६॥ जो चिह्न राम लक्ष्मणके साथ मैंने आपके देखेथे यदि तुम देवताओंके राजा इन्द्र हो तो उन चिह्नोंको दिखाओ ॥ १७ ॥ इन्द्रजी जानकीजीके वचन सुन पैरोंसे पृथ्वी न स्पर्श करते हुए और नेत्रोंका पलक लगना बन्द हो गया देवताओंकी यही पहचान है कि पैरोंसे पृथ्वी नहीं स्पर्श करते उनके नेत्रोंके पलकनहीं लगते ॥ १८ ॥ धूलि रहित वस्त्र धारण किये हुए जो फूल मलीन न हों ऐसे फूलोंकी माला धारण किये इन लक्षणोंसे जानकीजी इन्द्रको पहचान परम हर्षित हुई ॥ १९ ॥ और

एतदत्स्यसिमद्धस्तान्नत्वांबाधिष्यतेशुभे॥क्षुधातृषाचरंभोरुवर्षाणामयुतैरपि ॥१५॥ एवमुक्तातुदेवेंद्रमुवाचपरिशंकिता॥कथंजानामिदेवेंद्रंत्वामिहस्थंशचीपतिम्॥१६॥देवलिंगानिदृष्टानिरामलक्ष्मणसन्निधौ॥तानिदर्शयदेवेंद्रयदित्वंदेवराट्स्वयम्॥१७॥सीतायावचनंश्रुत्वातथाचक्रेशचीपतिः॥पृथिवींनास्पृशत्पद्भ्यामनिमेषेक्षणानिच॥१८॥अरजोऽम्बरधारीचनम्लानकुसुमस्तथा॥तंज्ञात्वालक्षणैःसीतावासवंपरिहर्षिता॥१९॥ उवाचवाक्यंरुदतीभगवद्राघवंप्रति॥सहभ्रातामहाबाहुर्दिष्ट्यामेश्रुतिमागतः॥२०॥ यथामेश्वशुरोराजयथाचमिथिलाधिपः ॥ तथात्वामद्यपश्यामिसनाथोमेपतिस्त्वया ॥२१॥तवाज्ञयाचदेवेंद्रपयोभूतमिदंहविः॥अशिष्यामित्वयादत्तंरघूणांकुलवर्धनम्॥२२॥इंद्रहस्ताद्गृहीत्वाततपायसंसाशुचिस्मिता॥न्यवेदयतभर्त्रेसालक्ष्मणायचमैथिली ॥२३॥यदिजीवतिमेभर्तासहभ्रात्रामहाबलः॥ इदमस्तुतयोर्भक्त्यातदाश्नात्पायसंस्वयम् ॥ २४ ॥ इतीवतत्प्राश्यहविर्वराननाजहौक्षुधादुःखसमुद्भवंचतम् ॥ इंद्रात्प्रवृत्तिमुपलभ्यजानकीकाकुत्स्थयोःप्रीतमनाबभूव॥ २५ ॥

फिर रोती हुई बोलीं, हे भगवन् ! भाग्यसे महाबाहु रामचन्द्रका नाम उनके भाई सहित आज मैंने सुना ॥ २० ॥ जैसे मेरे श्वशुर दशरथजी पिता जनकजी हैं तैसे ही आज मैं तुम्हें देखती हूं तुमसे मेरे पति सनाथ हुए ॥ २१ ॥ हे देवेन्द्र ! तुम्हारी आज्ञासे यह दूध की बनी खीर रघुकुलके बढानेहारी तुम्हारे हाथकी दी हुई मैं खाऊँगी ॥ २२॥ सुहासिनी जानकीजीने वह हवि इन्द्रके हाथसे लेकर प्रथम अपने स्वामी रामचन्द्र और देवर लक्ष्मणजी को निवेदित की ॥ २३ ॥ और कहा कि, यदि मेरे महाबली भर्ता लक्ष्मण भाई सहित जीवित हैं तो यह जो मैं प्रेमसे देती हूं वह पायस ग्रहण करें ॥ २४ ॥ वह सुमुखी इस प्रकार खीरको निवेदन करपीछे आप भक्षण करती हुई जिसके खातेही भूख प्यास का दुःख जाता रहा, इन्द्रसे

यह कथा सुनकर कि. रामचन्द्रजी शीघ्र आवेंगे. रामचन्द्रमें मन लगाती हुई ॥ २५॥ वह इन्द्र भी उस समय रामचन्द्र की कार्य सिद्धिके निमित्त प्रसन्न होकर स्वर्ग को गये, और वह महात्मा चलते समय जानकीजीको समझा कर निद्रा सहित स्वर्ग को पधारे। यह सर्ग क्षेपक है ॥ २६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा ० वा० आदि० अरण्यकांडे भाषायां क्षेपकः सर्गः ॥ उस ओर श्रीरामचन्द्रजी मृगरूपसे विचरण करनेवाले कामरूपी निशाचर मारीच को संहार करके शीघ्रही आश्रमके मार्गको लौटे ॥ १ ॥ और श्रीजानकीजी को देखनेके लिये अति वेगसे चले। इसी समय में एक सियार उनकी पीठके पीछे महा कठोरशब्द करने लगा ॥ २ ॥ श्रीरामचन्द्रजी सियारसे इस रोमाञ्चकर दारुण बोल को सुन अति भयभीत हो मनही मनमें शंका करने लगे ॥ ३ ॥ जिस प्रकार का शब्द यह सियार कर रहा है, इससे तो ऐसा जान पडता है कि, कोई अशुभ होगा। इस समय राक्षसोंने जानकीजीको भक्षण न कर लिया हो, और सीताजी कुशलसे हों तभी

सचापिशक्रस्त्रिदिवालयंतदाप्रीतोययौराघवकार्यसिद्धये॥आमन्त्र्यसीतांसततोमहात्माजगामनिद्रासहितःस्वमालयम् ॥२६॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मा० आदिकाव्ये च० सा० अरण्यकांडेप्रक्षिप्तः सर्गः॥राक्षसंमृगरूपेणचरंतंकामरूपिणम्॥निहत्यरामोमारीचंतूर्णंपथिन्यवर्तत॥१॥ तस्यसंत्वरमाणस्यद्रष्टुकामस्यमैथिलीम्॥ क्रूरस्वनोऽथगोमायुर्विननादास्यपृष्ठतः ॥२॥ सतस्यस्वरमाज्ञायदारुणंरोमहर्षणम् ॥ शंकमायासगोमायोःस्वरेणपरिशंकितः ॥३॥ अशुभंबतमन्येहंगोमायुर्वाशतेयथा ॥ स्वस्तिस्यादपिवैदेह्याराक्षसैर्भक्षणंविना ॥४॥ मारीचेनतुविज्ञायस्वरमालक्ष्यमामकम्॥ विक्रुष्टंमृगरूपेणलक्ष्मणःशृणुयाद्यदि ॥५॥ ससौमित्रिःस्वरंश्रुत्वातांचहित्वाथमैथिलीम् ॥ तयैवप्रहितःक्षिप्रंमत्सकाशमिहैष्यति॥६॥ राक्षसैःसहितैर्नूनंसीतायाईप्सितोवधः ॥ कांचनश्चमृगोभूत्वाव्यपनीयाश्रमात्तुमाम् ॥७॥ दूरंनीत्वाथमारीचोराक्षसोभूच्छराहतः ॥ हालक्ष्मणहतोस्मातियद्वाक्यंव्याजहारह ॥८॥ अपिस्वस्तिभवेद्द्वाभ्यांरहिताभ्यांमयावने ॥ जनस्थाननिमित्तंहिकृतवैरोस्मिराक्षसैः॥ ९ ॥

मंगल है ॥ ४ ॥ मृगरूपी मारीचने जानबूझकर हमारे बोलके समान जो चिल्लाहटकी है, यदि लक्ष्मणने उस बोलको सुना हो ॥ ५ ॥ बस लक्ष्मणजी उस स्वरके सुनतेही तुरंत सीताजी करके भेजे जाकर सीताको छोडकर वहशीघ्रही हमारे निकट आवेंगे ॥ ६ ॥ निश्चयही राक्षसोंने मिलकर जानकीके वध करनेकी अभिलाषा की है और इसी कारणसे राक्षस मारीचने सुवर्णमृगरूप धारण करके हमको आश्रमसे बहुत दूर किया ॥ ७ ॥ और हमको दूर लाकर फिर हमारे बाणसे घायल होकर लक्ष्मणको भी यहां लानेके, लिये हाय लक्ष्मण ! हम मारे गये यह कहकर उस राक्षसने प्राण छोडे ॥ ८ ॥ इस शब्दको सुन लक्ष्मणभी तो चलेही आये होंगे' फिर जब वनमें आश्रमपर हमदोनों भाई न रहे तो कैसे कहें कि, मंगल होगा। कारण कि, जनस्थानका नाश करनेके कारण हमसे

और राक्षसोंसे भारी वैर है ॥ ९ ॥ और उस पर यह हमको घोर दुर्निमित्त दिखाई देते हैं, आत्मवान् श्रीरामचन्द्रजी शृगालका शब्द सुनकर इस प्रकार चिन्ता करते २ ॥ १० ॥ लौटकर बडी शीघ्रतासे आश्रमकी ओर गमन करने लगे। मृगरूपी मारीच जो उनको आश्रमसे दूर ले आया था, इस कारण रामचन्द्रजी जल्दीसे आश्रमको चले ॥ ११ ॥ और शंकित चित्त होकर श्रीरामचन्द्रजी आश्रममें पहुँचे तब सब मृग पक्षीगण इनके मनको देखकर उदास सब इनके निकट आये ॥ १२ ॥ वह सब मृग पक्षीगण उस कालमें रामचन्द्रजीकी बाईं तरफ होकर कठोर स्वरसे शब्द करने लगे, उन महाघोर सब दुर्निमित्तोंको देखकर श्रीरामचन्द्रजीने देखा तो ॥ १३ ॥ प्रभाहीन हुए लक्ष्मणजी चले हैं देखते ही देखते लक्ष्मणजी रामचन्द्रजीके निकट आ पहुँचे ॥ १४ ॥ रामचन्द्रजीको विषादित व दुःखित देखकर लक्ष्मणजीभी विषादित और दुःखित हुए। तब श्रीरामचन्द्रजी

निमित्तानिचघोराणिदृश्यंतेऽद्यबहूनिच ॥ इत्येवंचिंतयन्रामः श्रुत्वागोमायुनिःस्वनम् ॥ १० ॥ निवर्तमानस्त्वरितोजगामाश्रममात्मवान् ॥ आत्मनश्चापनयनंमृगरूपेणरक्षसा ॥ ११ ॥ आजगामजनस्थानंराघवःपरिशंकितः ॥ तंदीनमानसंदीनमासेदुर्मृगपक्षिणः ॥ १२ ॥ सव्यंकृत्वामहात्मानंघोरांश्चससृजुःस्वरान् ॥ तानिदृष्ट्वानिमित्तानिमहाघोराणिराघवः ॥ १३ ॥ ततोलक्ष्मणमायांतंददर्शविगतप्रभम् ॥ ततोविदूरेरामेणसमीयायसलक्ष्मणः ॥ १४ ॥ विषण्णःसन्विषण्णेनदुःखितोदुःखभागिना ॥ सजगर्हेऽथतंभ्राताहृष्ट्वालक्ष्मणमागतम् ॥ १५ ॥ विहायसीतांविजनेवनेराक्षससेविते ॥ गृहीत्वाचकरंसव्यंलक्ष्मणंरघुनंदनः ॥ १६ ॥ उवाचमधुरोदर्कमिदंपरुषमार्तवत् ॥ अहोलक्ष्मणगर्ह्यंतेकृतंयत्त्वंविहायताम् ॥ १७ ॥ सीतामिहागतःसौम्यकच्चित्स्वस्तिभवेदिति ॥ नमेऽस्तिसंशयोवीरसर्वथाजनकात्मजा ॥ १८ ॥

अपने भ्राता लक्ष्मणजीकी निन्दा करने लगे ॥ १५ ॥ क्यों कि लक्ष्मणजी सीताजीको राक्षस सेवित सूने वनमें अकेली छोड कर आये थे लक्ष्मणजीका बाँया हाथ पकडकर श्रीरामचन्द्रजी ॥ १६ ॥ आर्तके समान श्रवण कठोर परिणाममधुर वचन कहने लगे कि, हे लक्ष्मण ! तुम सीताजीको त्यागकर जो यहां चले आये हो, यह तुमने अतीव निन्दाका कार्य किया है ॥ १७ ॥ हे शुभदर्शन ! तुमने जो अकेली छोडा इससे क्या सीताका भला होगा ? कभी नहीं । हे वीर ! जनककुमारी अब आश्रममें नहीं हैं इस बातमें हमको अब कुछ संशय नहीं होता ॥ १८ ॥

पगपगपर जिस प्रकारके अशकुन हो रहे हैं इससे यह ज्ञात होता है कि, या तो सीताको कोई वनचारी राक्षस चुराकर ले गया या मारकर खागया होगा ॥ १९ ॥ हे लक्ष्मण ! जनककुमारीजी सब प्रकारसे कुशल हैं क्या हम ऐसा देख पावेंगे ? हे पुरुषसिंह ! क्या जानकी सबप्रकार कुशलसे जीती हैं ? ॥ २० ॥ हे महाबलवान् ! यह मृगगण, सियार और पक्षीगण सूर्यकी ओरको मुख करके महाभयंकर शब्द कर दशों दिशाओंको देखते हैं मानो इनमें आग लगी है। ऐसे अशकुन देखकर किस प्रकार कह दें कि, राजपुत्री सीताजी कुशलसे हैं ? ॥ २१ ॥ यह मृगरूपी राक्षसभी हमको ललचाकर दूर ले आया, जिसको फिर हमने बहुतही परिश्रम करके किसी भांति मार डाला, मरनेके समय उसने निज राक्षस मूर्ति धारण की

विनष्टाभक्षितावापिराक्षसैर्वनचारिभिः ॥ अशुभान्येवभूयिष्ठंयथाप्रादुर्भवंतिमे ॥ १९ ॥ अपिलक्ष्मणसीतायाःसामग्र्यंप्राप्नुयावहे ॥ जीवंत्याः पुरुषव्याघ्रसुतयाजनकस्यवै ॥ २० ॥ यथावैमृगसंघाश्चगोमायुश्चैवभैरवम् ॥ वाशंतेशकुनाश्चापिप्रदीप्तामभितोदिशम् ॥ अपिस्वस्तिभवेत्तस्याराजपुत्र्यामहाबल ॥ २१ ॥ इदंहिरक्षोमृगसंनिकाशंप्रलोभ्यमांदूरमनुप्रयातम् ॥ हतंकथंचिन्महताश्रमेणसराक्षसोऽभून्म्रियमाणएव ॥ २२ ॥ मनश्चमेदीनमिहाप्रहृष्टंचक्षुश्चसव्यंकुरुतेविकारम् ॥ असंशयंलक्ष्मणनास्तिसीताहृतामृतावापथिवर्ततेवा ॥ २३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० अरण्यकांडे सप्तपंचाशः सर्गः ॥ ५७ ॥ सदृष्ट्वालक्ष्मणंदीनंशून्यंदशरथात्मजः ॥ पर्यपृच्छतधर्मात्मावैदेहीमागतंविना ॥ १ ॥ प्रस्थितंदंडकारण्यंयामामनुजगामह ॥ क्वसालक्ष्मणवैदेहीयांहित्वात्वमिहागतः ॥ २ ॥ राज्यभ्रष्टस्यदीनस्यदंडकान्परिधावतः ॥ क्वसादुःखसहायामेवैदेहीतनुमध्यमा ॥ ३ ॥

॥ २२ ॥ हमारा मनभी बहुतही दीन और घबडाया हुआ है, और बांई आंखभी फडक रही है। हे लक्ष्मण ! निःसन्देह सीता आश्रममें नहीं, या तो उनको कोई हरण करके ले गया; या मार्गमें मरी पडी होंगी ॥ २३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदि० अरण्यकांडे भाषायां सप्तपंचाशः सर्गः ॥ ५७ ॥ लक्ष्मणजी महादीन और उदासमन हो रहे थे। उनको सीताके बिना आता हुआ देखकर धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी पूँछने लगे ॥ १ ॥ हे लक्ष्मण ! जब हम वनको आये और उस समय जो हमारे साथही वनको आई थीं, और तुम जिनको छोडकर यहां आये हो; वह सीता कहां हैं ? ॥ २ ॥ जब हम राज्यसे भ्रष्ट होकर दीन भावसे दंडकारण्यको आये और उस समय जो हमारे दुःखमें सहाय हुई, वह तनुमध्यमा जानकीजी कहां हैं ? ॥ ३ ॥

जिसके बिना हम एक मुहूर्त्त भर भी प्राण धारण करनेको उत्साही नहीं, वह देव कन्याके समान प्राणसहाय जानकीजी कहां हैं ? ॥ ४ ॥ हे लक्ष्मण ! हम उन तपाये हुए सुवर्णके समान प्रभावाली जनकात्मजाके बिना देवताओंकी प्रभुताई अथवा पृथ्वीकी रजाई लेनेकी भी अभिलाषा नहीं करते ॥ ५ ॥ वह हे वीर ! हमारी प्राणोंसेभी प्यारी जानकी क्या अभीतक जीती हैं, क्या हमने जो चौदह वर्षतक वनमें रहनेकी प्रतिज्ञा की है यह मिथ्या तो न होजायगी ? ॥ ६ ॥ हे लक्ष्मण ! सीताके लिये प्राण त्यागने पर और तुम्हारे अयोध्यामें लौटजानेपर कैकेयी क्या सफल मनोरथ और सुखी होगी ॥ ७ ॥ कैकेयी इस प्रकार अपने पुत्रकी राज्यप्राप्तिसे जब सिद्धकाम होगी, तब क्या मृतपुत्रा, दीना, तपस्विनी हमारी माता कौसल्याजीको विनयके साथ उनकी

यांविनानोत्सहेवीरमुहूर्तमपिजीवितुम् ॥ क्वसाप्राणसहायामेसीतासुरसुतोपमा ॥ ४ ॥ पतित्वममराणांहिपृथिव्याश्चापिलक्ष्मण ॥ विनातांत पनीयाभांनेच्छेयंजनकात्मजाम् ॥५॥ कच्चिज्जीवतिवैदेहीप्राणैः प्रियतरामम ॥ कच्चित्प्रव्राजनंवीरनमेमिथ्याभविष्यति ॥६॥सीतानिमित्तंसौ मित्रेमृतेमयिगतेत्वयि ॥ कच्चित्सकामाकैकेयीसुखितासाभविष्यति ॥७॥ सपुत्रराज्यांसिद्धार्थांमृतपुत्रातपस्विनी ॥उपस्थास्यतिकौसल्याक च्चित्सौम्यनकेकयीम् ॥८॥ यदिजीवतिवैदेहीगमिष्याम्याश्रमंपुनः ॥ संवृत्तायदिवृत्तासाप्राणांस्त्यक्ष्यामिलक्ष्मण॥ ९ ॥ यदिमामाश्रमग तंवैदेहीनाभिभाषते ॥ पुरःप्रहसितासीताविनशिष्यामिलक्ष्मण ॥१०॥ ब्रूहिलक्ष्मणवैदेहीयदिजीवतिवानवा ॥ त्वयिप्रमत्तेरक्षोभिर्भक्षितावा तपस्विनी ॥ ११ ॥ सुकुमारीचबालाचनित्यंचादुःखभागिनी ॥ मद्वियोगेनवैदेहीव्यक्तंशोचतिदुर्मनाः ॥१२॥ सर्वथारक्षसातेनजिह्मेनसुदुरा त्मना॥ वदतालक्ष्मणेत्युच्चैस्तवापिजनितंभयम् ॥१३॥

सेवा करनी होगी ॥ ८ ॥ हे लक्ष्मण ! वैदेही यदि जीवित हैं तब तो हम फिर आश्रमको चलते हैं, और वह शुद्धचारिणी यदि परलोकमें चली गई हैं, तो हमभी प्राण त्यागन करेंगे ॥ ९ ॥ जब हम आश्रममें पहुँचेंगे और सीता सन्मुख हँस कर यदि हमसे न बोलेंगी तबही हम प्राण त्यागेंगे ॥ १० ॥ इस कारणसे हे लक्ष्मण ! तुम बताओ कि, जानकी जीवित हैं ? अथवा तुम्हारी असावधानतासे उन तपस्विनी जानकीजीकोराक्षसोंने तो नहीं भक्षण कर लिया ॥ ११ ॥ वैदेहीजी कुमारी हैं, बालिका हैं और दुःख भोग करनेके अयोग्य हैं, वह इस समय हमारे दुःखसे निश्चय ही दुःखी हो शोच करके शोक करती होंगी ॥ १२ ॥ अतिशय दुरात्मा क्रूर निशाचर मारी चने ऊंचे शब्दसे (हा लक्ष्मण !) कह कर सब प्रकारसे तुमको भय

उत्पन्न करा दिया है ॥ १३ ॥ हम जानते हैं कि, हमारे बोलके समान वह बोल जानकीजीने सुनकर तुमको यहां पर भेजा है और तुमभी हमारे देखनेके लिये शीघ्रही यहां आये हो ॥ १४ ॥ तुमने सीताजीको अकेली वनमें छोड यहां आकर बडा कष्ट कर कार्य किया है । इससे निर्दयी राक्षसोंको हमारे किये हुए अपकारका प्रतिकार करनेको तुमने अवसर दे दिया ॥१५॥ खरको मारडालनेसे मांसभोजी राक्षसगण बहुतही दुःखित होगये हैं । उन घोर निशाचरोंने निश्चयही जानकीको मार डाला होगा इसमें सन्देह नहीं है ॥ १६ ॥ हाय ! शत्रुसूदन लक्ष्मण ! हम सब भांतिसे विपद्में डूबे अब क्या करैं ? हमको शंका होती है कि, यह विपद् अवश्य होनहार है ॥ १७ ॥ श्रीरामचन्द्रजी सुमुखी जानकीजीके लिये इस प्रकार चिंता करके लक्ष्मणजीके सहित शीघ्रतासे जनस्थानमें आये ॥ १८ ॥ क्षुधा, श्रम और प्यासके मारे रामचन्द्रजीका मुख सूख गया था उन्होंने शोकित चित्तसे दीर्घ निःश्वास

श्रुतश्चमन्येवैदेह्यासस्वरःसदृशोमम ॥ त्रस्तयाप्रेषितस्त्वंचद्रष्टुंमांशीघ्रमागतः ॥१४॥सर्वथातुकृतंकष्टंसीतामुत्सृजतावने ॥ प्रतिकर्तुंनृशंसानां रक्षसांदत्तमंतरम् ॥१५॥ दुःखिताःखरघातेनराक्षसाःपिशिताशनाः ॥तैःसीतानिहताघोरैर्भविष्यतिनसंशयः ॥१६॥ अहोऽस्मिन्व्यसनमग्नःसर्वथारिपुनाशन॥किंत्विदानींकरिष्यामिशंकेप्राप्तव्यमीदृशम् ॥१७॥ इतिसीतांवरारोहांचिंतयन्नेवराघवः॥आजगामजनस्थानंत्वरयासहलक्ष्मणः ॥१८॥ विगर्हमाणोऽनुजमार्तरूपंक्षुधाश्रमेणैवपिपासयाच॥विनिःश्वसञ्शुष्कमुखोविषण्णःप्रतिश्रयंप्राप्यसमीक्ष्यशून्यम् ॥१९॥ स्वमाश्रमंसप्रविगाह्यवीरोविहारदेशाननुसृत्यकांश्चित्॥एतत्तदित्येवनवासभूमौप्रहृष्टरोमाव्यथितोबभूव॥२०॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० अरण्यकांडे अष्टपंचाशः सर्गः ॥५८॥ अथाश्रमादुपावृत्तमंतरारघुनंदनः॥परिपप्रच्छसौमित्रिंरामोदुःखादिदंवचः ॥१॥ तमुवाचकिमर्थंत्वमागतोऽपास्यमैथिलीम् ॥ यदासातवविश्वासाद्वनेविरहितामया ॥ २ ॥

त्याग करते लक्ष्मणजीकी आर्य भावसे निन्दा करते २ इस प्रकारसे आश्रममें आयकर देखा तो वहां सीता नहीं हैं वह आश्रम शून्य पडा है ॥ १९ ॥ जब सीताजीको न देखा तब श्रीरामचन्द्रजी आश्रममें प्रवेश करते सीताजीके खेलनेके सब स्थान और वनवासके उठने बैठनेके स्थानमें ढूंढने लगे, परन्तु वहांभी जनक नन्दिनीको न पाया, तब श्रीरामचन्द्रजीने जानकीजीके उठने बैठने और खेलनेके स्थानोंको बिसूर २ स्मरण किया. करतेही उनके रोम खडे हो गये और बहुत घबडाये ॥२०॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अरण्यकांडे भाषायामष्टपंचाशः सर्गः ॥५८॥ जब इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीने आश्रममेंमार्गमें वचन कहे और वह लक्ष्मण कुछ न बोले तब फिर महा दुःखी हो रामचन्द्र सुमित्राकुमारसे बोले ॥ १ ॥ भाई ! तुम कैसे सीताजीको

छोड कर यहां चले आये ? जब कि हम तुम्हारे ही विश्वासपर सीताको वनके बीच छोड आये हैं ॥ २ ॥ यह देखतेही कि तुम सीताजीको त्याग कर यहां आये हो, हमारा मन जो महाअनिष्टकी शंका करके व्यथित होता था वह हमारी शंका सत्यही सत्य हुई ॥ ३ ॥ तुमको मार्गमें दूरसेही जानकीके विना अकेला आता देख कर हमारा हाथ वामनेत्र और हृदयका बायां भाग फडकने लगा ॥ ४ ॥ शुभलक्षण युक्त लक्ष्मणजी रामचन्द्र जीकी यह वार्त्ता सुन महा दुःखित हो श्रीरामचन्द्रजीसे बोले ॥ ५ ॥ हम आप अपनी इच्छानुसार सीताजीको त्याग करके यहां नहीं आये वरन् उनके पठाये हुयेही आपके निकट आये हैं ॥ ६ ॥ आपके बोलके समान बोल बनाकर जो किसीने (हमें बचाओ) कह कर भय और व्याकुलताके

दृष्ट्वैवाभ्यागतंत्वांमेमैथिलींत्यज्यलक्ष्मण ॥ शंकमानंमहत्पापंयत्सत्यंव्यथितंमनः॥३॥स्फुरतेनयनंसव्यंबाहुश्चहृदयंचमे॥दृष्ट्वालक्ष्मणदूरेत्वां सीताविरहितंपथि ॥४॥ एवमुक्तस्तुसौमित्रिर्लक्ष्मणःशुभलक्षणः॥भूयोदुःखसमाविष्टोदुःखितंराममब्रवीत् ॥५॥नस्वयंकामकारेणतांत्यक्त्वा ऽहमिहागतः॥ प्रचोदितस्तयैवोग्रैस्त्वत्सकाशमिहागतः ॥६॥ आर्येणेवपराक्रुष्टंलक्ष्मणेतिसुविस्वरम्॥ परित्राहीतियद्वाक्यंमैथिल्यास्तच्छ्रुति गतम् ॥७॥ सातमार्तस्वरंश्रुत्वातवस्नेहेनमैथिली ॥ गच्छगच्छेतिमामाहरुदतीभयविक्लवा ॥ ॥८॥ प्रचोद्यमानेनमयागच्छेतिबहुशस्तया ॥ प्रत्युक्तामैथिलीवाक्यमिदंतत्प्रत्ययान्वितम् ॥ ९ ॥ नतत्पश्याम्यहंरक्षोयदस्यभयमावहेत् ॥ निर्वृताभवनास्त्येतत्केनाप्येतदुदाहृतम् ॥१०॥ विगर्हितंचनीचंचकथमार्योऽभिधास्यति॥त्राहीतिवचनंसीतेयस्त्रायेत्त्रिदशानपि ॥११॥ किंनिमित्तंतुकेनापिभ्रातुरालंब्यमेस्वरम् ॥ विवरंव्याहृतंवाक्यंलक्ष्स्मणत्राहिमामिति ॥ १२ ॥

स्वरसे जो चीत्कार किया था, सो वह चिल्लाहट जानकीजीके श्रवणगोचर हुई ॥ ७ ॥ उन्होंने लक्ष्मण हमें बचाओ वह करुणाका बोल सुन कर भयसे विकल हो आपके स्नेहके मारे रोते रोते हमसे यह कहना आरम्भ किया कि शीघ्रजाओ ॥ ८ ॥ वह वारंवार हमसे जानेको कहने लगीं तब हमने उनको विश्वास दिलानेकेलिये यह वार्त्ता कही ॥ ९ ॥ हम ऐसा किसी राक्षसको नहीं देखते जो श्रीरामचन्द्रजीको भय उपजासके, इससे यह करुणाका वचन रामचन्द्रजीका नहीं, वरन् यह वचन किसी राक्षसने या और किसीने कहा होगा इस कारण आप बेखटके रहें ॥ १० ॥ हे सीते ! जो देवताओंकीभी रक्षा कर सकते हैं, वह श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी "हमको बचाओ" यह नीच जनोचित वार्त्ता किस प्रकारसे कह सकते हैं ॥ ११ ॥ इस कारणसे किसीने किसी

कारणवश रामचन्द्रजीके बोलसा बोल बनाकर "लक्ष्मण हमको बचाओ" यह व्याकुल स्वरसे चिल्लाहट की है इसमें कुछ भी सन्देह नहीं ॥ १२ ॥ हे शोभने ! किसी राक्षसने त्रासके मारे "बचाओ" यह शब्द किया है । इससे आप नीच स्त्रीजनोचित मनोवेदना त्याग कर दीजिये ॥ १३ ॥ व्याकुल होने की कोई आवश्यकता नहीं है; न घबडाने का कुछ प्रयोजन; इस बात का विचार आप छोडें; क्योंकि लोकमें ऐसा कोई पुरुष नहीं है जो संग्राममें श्रीरघुनन्दन रामचन्द्रजीको ॥ १४ ॥ जीतसके आजके समयही क्या बरन् कभी ऐसा नहीं हुआ और न आगेको होगा, श्रीरामचन्द्रजीको तो संग्राममें इन्द्रादि देवता भी नहीं जीत सकते ॥ १५ ॥ मोहित चित्त वैदेहीजीने हमारे यह वचन सुन आंसूत्याग कर रोते २ हमको यह दारुण वचन कहे ॥ १६ ॥ कि हमारे प्रति तुम्हारा अत्यन्त पाप भाव स्थापित हुआ है, परंतु भ्राताके विनष्ट होने पर तुम किसी भांतिसे हमको प्राप्त नहीं

राक्षसेनेरितंवाक्यंत्रासात्त्राहीतिशोभने॥नभवत्याव्यथाकार्याकुनारीजनसेविता॥१३॥अलंविक्लवतांगंतुंस्वस्थाभवनिरुत्सुका॥नचास्तित्रिषु लोकेषुपुमान्योराघवंरणे॥१४॥जातोवाजायमानोवासंयुगेयःपराजयेत्॥अजेयोराघवोयुद्धेदेवैःशक्रपुरोगमैः॥१५॥एवमुक्तातुवैदेहीपरिमोहि तचेतना॥उवाचाऽश्रूणिमुंचंतीदारुणंमामिदंवचः॥१६॥भावोमयितवात्यर्थंपापएवनिवेशितः॥विनष्टेभ्रातरिप्राप्तुंनचत्वंमामवाप्स्यसे॥१७॥ संकेताद्भरतेनत्वंरामंसमनुगच्छसि॥क्रोशंतंहियथाऽत्यर्थंनैनमभ्यवपद्यसे॥१८॥रिपुःप्रच्छन्नचारीत्वंमदर्थमनुगच्छसि॥राघवस्यांतरंप्रेप्सुस्त थैनंनाभिपद्यसे॥१९॥एवमुक्तस्तुवैदेह्यासंरब्धोरक्तलोचनः॥क्रोधात्प्रस्फुरमाणोष्ठआश्रमादभिनिर्गत॥२०॥एवंब्रुवाणंसौमित्रिंरामःसंताप मोहितः॥अब्रवीद्दुष्कृतंसौम्यतांविनात्वमिहागतः॥२१॥जानन्नपिसमर्थंमांरक्षसामपवारणे॥अनेनक्रोधवाक्येनमैथिल्यानिर्गतभवान्॥२२॥

कर सकोगे ॥ १७ ॥ हम समझी कि तुम भरतके गुप्त भावसे पठाये श्रीरामचंद्रजी के साथ आये हो, इसीसे रामचंद्रजी का आर्तनाद करना सुनकर भी तुम उनकी सहायतार्थ नहीं जाते ॥ १८ ॥ अथवा तुम हमारे गुप्त शत्रु हो, हमारे ही लेलेनेके लिये रामचंद्रजी के पीछे २ वनमें फिरते हो और सर्वदा अवसर ढूँढते हो कि, कब रामचंद्रजी कहीं को जायँ, और हम इनको ग्रहण करें इस प्रकार से तुम उनकी सहायता करने के लिये नहीं जाते ॥ १९ ॥ जब वैदेहीजीने इस प्रकार कहा, तब अति क्रोधके मारे हमारे नेत्र लाल हो आये रोषमें भरकर अधर फडकने लगे और हम तैसे ही आश्रमसे चल खडे हुए ॥ २० ॥ जब लक्ष्मणजीने इस प्रकारका कहना आरंभ किया, तब रामचंद्रजी शोकसे मोहित होकर उनसे बोले कि, हे सौम्य ! तुम जो जानकीको छोड कर यहां चले आये वह अतिशय दुष्कर कर्म हुआ ॥ २१ ॥ देखो, राक्षसोंका बल निवारण करनेकी हममें विलक्षण

सामर्थ्य है, उसको जान बूझकर भी तुम जानकीके यह क्रोध वचन सुन आश्रमसे बाहर चले आये ॥ २२ ॥ एक तो स्त्री, दूसरे क्रोधित; ऐसी जानकीके कठोर वचनोंसे तुमभी उनको छोड कर यहांपर चले आये इससे हम तुम्हारे ऊपर प्रसन्न नहीं हुए ॥ २३ ॥ तुमने सीताके वचन सुन क्रोधके वश हो हमारी आज्ञाका उल्लंघन किया इससे तुम्हारा कार्य बहुतही निन्दनीय हुआ है ॥ ॥ २४ ॥ देखो ! यह राक्षस जो मृग बन कर हमको आश्रमसे दूरतक लाया वह हमारे बाणसे मरा हुआ पडा है ॥२५॥ हमने धनुष चढा खैंच उसपर बाणचढा लीलासेही एक बाणका इसके ऊपर प्रहार किया जिस बाणके लगनेसे इस राक्षसने मृगतनु छोड विकलस्वर करबाजू पहरे हुए निशाचरका शरीर धारण किया ॥ २६ ॥ उस कालहमारे बाणसे घायल होकर दूरसे ही श्रवणगोचर हो इस प्रकारका हमारा बोल बनाकर इस राक्षसके दारुण आर्त्तनाद करनेसे तुम उसको सुन इस समय जानकीको छोड कर यहां आये हो ॥ २७ ॥ इत्यार्षे

नहितेपरितुष्यामित्यक्त्वायदसिमैथिलीम्क्रुद्धायाःपरुषंश्रुत्वास्त्रियायत्त्वमिहागतः॥२३॥ सर्वथात्वपनीतंतेसीतयायत्प्रचोदितः॥क्रोधस्यवश मागम्यनाकरोःशासनंमम॥२४॥असौहिराक्षसःशेतेशरेणाभिहतोमया॥मृगरूपेणयेनाहमाश्रमादपवाहितः ॥ २५ ॥ विकृष्यचापंपरिधायसा यकंसलीलबाणेनचताडितोमया ॥ मार्गींतनुंत्यज्यचविक्लवस्वरोबभूवकेयूरधरःसराक्षसः ॥ २६ ॥ शराहतेनैवतदार्तयागिरास्वरंममालंब्य सुदूरसुश्रवम् ॥उपाहृतंतद्वचनंसुदारुणंत्वमागतोयेनविहायमैथिलीम् ॥२७॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणे वाल्मी० आदिकाव्ये च० सा० अरण्य कांडेएकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥ भृशमाव्रजमानस्यतस्याधोवामलोचनम् ॥ प्रास्फुरच्चास्खलद्रामोवेपथुश्चास्यजायते ॥ १ ॥उपा लक्ष्यनिमित्तानिसोऽशुभानिमुहुर्मुहुः ॥ अपिक्षेमंतुसीतायाइतिवैव्याजहारह ॥ २ ॥ त्वरमाणोजगामाथसीतादर्शनलालसः ॥शून्यमावसथं दृष्ट्वाबभूवोद्विग्नमानसः ॥ ३ ॥ उद्भ्रमन्निववेगेनविक्षिपन्रघुनंदनः ॥ तत्रतत्रोटजस्थानमभिवीक्ष्यसमंततः ॥ ४ ॥

श्रीमद्रा० वा० आदि० अरण्यकांडे भाषायामेकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥ आश्रममें आनेकेसमय श्रीरामचन्द्रजीके वामनेत्रके नीचेका भाग अत्यन्तही फडकने लगा, पग २ पर चरण फिसलता और शरीर कांप रहा था इन अपशकुनोंका यह प्रभाव है कि, जिसकार्यके लिये जाओ उसकी सिद्धि नहीं होती ॥ १ ॥ श्रीरामचन्द्रजी वारंवार अपशकुन होते देखकर आपही कहने लगे कि, जाने सीता कुशलसे हैं अथवा नहीं ॥ २ ॥ यहशोचते विचारते सीताके दर्शन करनेकी लालसासे शीघ्र २ चलकर देखते हुए, कि आश्रम सूना पडा है यह देखकर श्रीरामचन्द्रजी बहुत उकसाये ॥ ३ ॥ वह वेग सहित इधर उधर भुजायें चला और घूमकर समस्त पर्णशालाके स्थान २ करके खोजने लगे ॥ ४ ॥

रामचन्द्रजीने पर्णशालामें गमन करके देखा कि, वहां सीता नहीं हैं जानकी बिना हेमंत ऋतुके समागमसे ध्वस्तपद्मिनीके समान हो पर्णशाला अत्यन्त श्रीविहीन अवस्था में पडी थी ॥५॥ वनदेवतागण आश्रमको श्रीभ्रष्ट और विध्वस्त देखकर एक बारही छोडकर चलेगये आश्रमके मृग पक्षी और समस्त पुष्पभी मलीन होगये थे, वहांपरके वृक्ष मानों रोरहे थे ॥ ६ ॥ मृगचर्म और कुश इधर उधर पडे और कुशासन छिन्न भिन्न और गिरे पडेथे, पर्णशालाकी ऐसी अवस्था देखकर श्रीरामचन्द्रजी वारंवार यह कहकर विलाप करने लगे ॥ ७ ॥ कि, निश्चय जानकीहरी गई, वा मृतक होगई अथवा किसी करके भक्षण करडाली गई या वह डरपोक स्वभाववाली छिप रही हैं या वनमें चली गई हैं ॥ ८ ॥ अथवा वह फूल फल चुननेके लिये कहीं वनमें चली गई हैं वा जल लानेके लिये सरोवर

ददर्शपर्णशालांचसीतयारहितांतदा॥श्रियाविरहितांध्वस्तांहेमंतेपद्मिनीमिव॥५॥ रुदंतमिववृक्षैश्चग्लानपुष्पमृगद्विजम्॥ श्रियाविहीनंविध्वस्तं संत्यक्तंवनदैवतैः ॥ ६ ॥ विप्रकीर्णाजिनकुशंविप्रविद्धबृसीकटम् ॥ दृष्ट्वाशून्योटजस्थानंविललापपुनपुनः ॥ ७ ॥ हतामृतावानष्टावा भक्षितावाभविष्यति ॥ निलीनाप्यथवाभीरुरथवावनमाश्रिता ॥८॥ गताविचेतुंपुष्पाणिफलान्यपिचवापुनः ॥ अथवापद्मिनींयाताजलार्थं वानदींगता ॥ ९ ॥ यत्नान्मृगयमाणस्तुनाससादवनेप्रियाम् ॥ शोकरक्तेक्षणःश्रीमानुन्मत्तइवलक्ष्यते ॥ १० ॥ वृक्षाद्वृक्षंप्रधावन्सगिरींश्चा पिनदीनदम् ॥ बभ्रामविलपन्रामःशोकपंकार्णवप्लुतः ॥११॥ अस्तिकच्चित्त्वयादृष्टासाकदंबप्रियाप्रिया ॥ कदंबयदिजानीषेशंससीतांशुभान नाम् ॥१२॥ स्निग्धपल्लवसंकाशांपीतकौशेयवासिनीम् ॥ शंसस्वयदिसादृष्टाबिल्वबिल्वोपमस्तनी ॥१३॥ अथवाऽर्जुनशंसत्वंप्रियांतामर्जुन प्रियाम् ॥ जनकस्यसुतातन्वीयदिजीवतिवानवा ॥ १४ ॥

वा नदीपर गई होंगी ॥ ९ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने यत्नपूर्वक ढूंढने भालने पर भी वनके बीच प्रियाको कहीं न पाया तब शोकके मारे उनके नेत्र लाल २ होगये उस समय वह उन्मत्तोंके समान फिरने लगे ॥ १० ॥ श्रीरामचन्द्रजी शोकके समुद्रमें डूबकर एक वृक्षसे दूसरे वृक्षके नीचे दौडकर जानेलगे और विलाप करते २ नद नदी और पर्वतोंपर घूमने लगे ॥ ११ ॥ अनन्तर श्रीरामचन्द्रजी उन्मत्तके समान कदम्बादि वृक्षोंसे सीताजीको पूछने लगे कि हे कदम्ब ! तुमने उन कदम्बप्रिया हमारी प्राणप्यारी जानकीजीको देखा है ? यदि देखा हो तो उन शुभाननाकी वार्त्ता हमसे कहो ॥ १२ ॥ हे बिल्व ! वह बिल्वसदृश स्तनवाली पल्लव समान कान्तियुक्त पीले रेशमी वस्त्र धारण किये सीताको यदि तुमने देखाहो तो बताओ ॥ १३ ॥ अथवा हे अर्ज्जुन ! प्रिया तुमको अतिशय

चाहती थीं, सो वह क्षीणांगी जनककुमारी जीवित हैं या नहीं सो बताओ ॥ १४ ॥ अथवा यह ककुभवृक्ष ककुभके समान जांघवाली सीताको निश्चयही जानता होगा क्यों कि इस वृक्षपर लता पुष्प फल सबही लगे हैं ॥१५॥ और भ्रमरगणोंके संगीत रवसे परिपूर्ण शोभा पा रहा है। हे वनस्पति ! तुम सब वृक्षोंमें प्रधान हो और जानकीजीभी सब रमणीयोंमें श्रेष्ठ हैं अतएव वह कहां हैं सो बताओ ❀ अथवा प्रिया तिलक पुष्पको बहुत प्यार करती थी इससे यह तिलक वृक्ष निश्चयही उनके वृत्तान्तको जानता होगा ॥१६॥ हे अशोक! तुम शोकको दूर किया करते हो, इससे शोकसे हतचित्त मुझको प्रियाके साथ मिलाकर अपने नामवाला कर दो ॥ १७ ॥ हे ताल ! यदि तुमने उन पक्कतालकी समान स्तनवाली जानकीको देखा है और हमारे ऊपर कुछ भी दया करते हो

ककुभः ककुभोरूपांव्यक्तंजानातिमैथिलीम् ॥लतापल्लवपुष्पाढ्योभातिह्येषवनस्पतिः॥१५॥भ्रमरैरुपगीतश्चयथाद्रुमवरोह्यसि ॥ एषव्यक्तंविजानातितिलकस्तिलकप्रियाम् ॥ १६ ॥ अशोकशोकापनुदशोकोपहतचेतनम् ॥ त्वन्नामानंकुरुक्षिप्रंप्रियासंदर्शनेनमाम् ॥१७॥ यदितालत्वयादृष्टापक्कतालोपमस्तनी॥कथयस्ववरारोहांकारुण्यंयदितेमयि॥१८॥यदिदृष्टात्वयाजम्बुजांबूनदसमप्रभा ॥ प्रियांयदिविजानासिनिःशंकंकथयस्वमे॥१९॥अहोत्वंकर्णिकाराद्यपुष्पितःशोभसेभृशम्॥कर्णिकारप्रियांसाध्वींशंसदृष्टायदिप्रिया॥२०॥ चूतनीपमहासालान्पनसान्कुररांस्तथा॥दाडिमानपितान्गत्वादृष्ट्वारामोमहायशाः॥२१॥बकुलानथपुन्नागांश्चंदनान्केतकांस्तथा ॥ पृच्छन्रामोवनेभ्रांतउन्मत्तइवलक्ष्यते॥२२॥

वह वरा तव रोहा सीता कहां है ? सो हमको बता दो ॥ १८ ॥ हे जामुन ! यदि जाम्बूनद सुवर्ण सम प्रभावाली हमारी प्रियाको तुमने देखा है तो निःशंकचित्तसे बताओ ॥ १९ ॥ हे कर्णिकार ! आज तुम पुष्पित होकर अत्यन्त शोभा पारहे हो और हमारी प्रिया भी तुमसे बहुतही स्नेह करती थीं सो यदि कहीं उन साध्वीको देखा हो तो कहो ॥ २० ॥ इसी प्रकार आम, नीम, महाशाल, कटहल, व अनारको देख २ कर श्रीरामचन्द्रजी उनसे कहते थे ॥२१॥ और बकुल, पुन्नाग, चन्दन, केतकी आदि औरवृक्षोंके नीचे २ जाकर भ्रान्तचित्त हो उन्मत्तके समान श्रीरामचन्द्रजी वनमें विचरनेलगे ॥ २२ ॥

❀ रागिनी प्रभाती ताल एकताला । सीता बिनु देख फुटी सोचत रघुराई ।। आस्ताई ।। लक्ष्मण तुम कहा कौन इकली सियछांड़दीन निश्चर कोइ दाव चीन्ह लेगयो उडाई ।।१।। सिय विनव्याकुल शरीर मन न तनक धरत पीर कौन हरैं नीर दृढ़ चले बहाई ।।२।। प्रेमविवश रामभये द्रुमलतासे पूछन गये शोकविवश बोलत नहिं सब रहे मुरझाई ।।३।।आगे गृध्र भेटभई ताने सकल बातकहीं तेहिका प्रभु मोक्ष दई नारद बलि जाई ।। ४ ।।

उसके पीछे श्रीरामचन्द्रजी मृग इत्यादि पशुओंसे पूछते हुए बोलेकि, हे मृग ! तुम क्या उन मृगछौनाकीसी आंखोंवाली सीताका कुछ वृत्तान्त जानते हो ? अथवा वह मृगलोचना मृगीगणोंके साथ मिलकर घूमती होगी ॥ २३ ॥ हेगज ! तुम्हारी ही सूंड समान आकार वाली उनकी जांघें हैं, यदि तुमने उनको देखाहो तो कहो ? इससे हे गजराज ! हमें बता दो कि, वह कहां है ? ॥ २४ ॥ हेशार्दूल ! उन चन्द्रवदना हमारी प्यारी मैथिलीको यदि देखा हो तो हमारा विश्वासकरके हमें बता दो । तुमको कुछ भय नहीं है अर्थात् तुम इस बातसे डरो न कि, हम तुम्हें मार डालेंगे ॥ २५ ॥ हे प्रिये ! हे कमलेक्षणे ! तुम अब क्यों दौडी जातीहो ? हमने अब निश्चयही तुमको देख लिया है तुम किस कारणसे इन वृक्षोंके मध्यमें छिपकर हमसे नहीं बोलती हो ? ॥ २६ ॥ हे वरारोहे ! हम वारंवार कहते हैं कि,तुम खडी रहो, व इधर उधर दौडती न फिरो, क्या हमारे ऊपर तुमको दया नहीं आती ? तुम तो कभी

अथवामृगशावाक्षींमृगजानासिमैथिलीम् ॥ मृगविप्रेक्षणीकांतामृगीभिःसहिताभवेत् ॥२३॥ गजसागजनासोरूर्यदिदृष्टात्वयाभवेत् ॥ तांमन्ये विदितांतुभ्यमाख्याहिवरवारण॥२४॥शार्दूलयदिसादृष्टाप्रियाचंद्रनिभानना ॥ मैथिलीममविस्रब्धःकथयस्वनतेभयम् ॥२५॥ किंधावसिप्रियेनूनंदृष्टासिकमलेक्षणे ॥ वृक्षैराच्छाद्यचात्मानंकिंमांनप्रतिभाषसे ॥२६॥ तिष्ठतिष्ठवरारोहेनतेस्तिकरुणामयि ॥ नात्यर्थंहास्यशीलासिकिमर्थंमामुपेक्षसे॥२७॥पीतकौशेयकेनासिसूचितावरवर्णिनि॥धावंत्यपिमयादृष्टातिष्ठयद्यस्तिसौहृदम्॥२८॥नैवसानूनमथवाहिंसिताचारुहासिनी॥ कृच्छ्रंप्राप्तंहिमांनूनंयथापेक्षितुमर्हति ॥ २९ ॥ व्यक्तंसाभक्षिताबालाराक्षसैःपिशिताशनैः ॥ विभज्यांगानिसर्वाणिमयाविरहिताप्रिया ॥ ३० ॥ नूनंतच्छुभदंतोष्ठंसुनासंशुभकुंडलम् ॥ पूर्णचंद्रनिभंग्रस्तंमुखंनिष्प्रभतांगतम् ॥ ३१ ॥

हमारे साथ इतना उपहास नहीं करती थीं अब क्यों हमारीउपेक्षा करती हो ? ॥ २७ ॥ हे वरवर्णिनी ! हमने तुम्हारे पीले रेशमी वस्त्र देख कर तुमको पहँचान लिया है और यह भी हम देख रहे हैं कि, तुम भागही रहीहो इससे यदि तुम कुछ प्रेम हमारे साथ रखती हो तो लौट आओ और भागती न फिरो ॥ २८ ॥ अथवा हे चारुहासिनी !हमने जिसको देखा है वह तुम नहीं हो, तुमकोतो निश्चयही किसीने मार डाला, यदि ऐसा न होता तो इस दारुण क्लेशके समय भीक्या तुम भी हमको छोड सकती हो ? ॥ २९ ॥ स्पष्ट विदित होता है कि, मांसखानेवाले राक्षसोंने हमारा वियोग पाई हुई हमारी प्रियाके अंगोंको खंड २ करके खा लिया ॥ ३० ॥ अहो ! इनका वह मनोहर दांतवाला, श्रेष्ठ नासिका युक्त शुभकुंडल-मण्डित पूर्ण चन्द्रमाके समान वदन राक्षसोंकरके

ग्रस्त हो जाने पर निश्चयही प्रभा-हीन हो गया होगा ॥ ३१ ॥ उनकी कोमल गरदन हार आदि भूषणोंसे भूषित जिसके वर्णकी ज्योति चन्दनके समान चिकनी और विशद है सो राक्षसोंने ऐसीमनोहर गरदनको भी खा डाला, राक्षसोंने जब हमारी प्रियाको भक्षण किया होगा तो न जाने उन्होंने कितना विलाप किया होगा ॥ ३२ ॥ उनकी दोनों बांहें पल्लवके समान कोमल और हाथोंके गहनोंसे सुशोभित हैं निश्चय ही राक्षसोंने इधर उधर फेंक फांक कर उनको खा लिया उस कालमें उन दोनों बाहोंका अग्रभाग अवश्य कंपित हुआ होगा ॥ ३३ ॥ हाय ! हम क्या राक्षसोंके भोजनार्थ ही उनको आश्रममें अकेली छोड कर यहां आये थे इससे ही वह बन्धु बान्धव युक्त होकर भी राक्षसोंके पेटमें पड गई और कोई बन्धु बान्धव काम न आया ॥ ३५ ॥ हे लक्ष्मण ! क्या तुमने प्राणप्यारीको कहीं देखा है ! हा प्रिया ! हा सीते ! हा भद्रे ! तुम कहां गई ! इन शब्दोंको रामचन्द्रजी बार २ कहते थे ॥ ३४ ॥

साहिचंदनवर्णाभाग्रीवाग्रैवेयकोचिता॥कोमलाविलपंत्यास्तुकांतायाभक्षिताशुभा ॥३२॥ नूनंविक्षिप्यमाणौतौबाहूपल्लवकोमलौ ॥ भक्षितौ वेपमानाग्रौसहस्ताभरणांगदौ ॥ ३३ ॥ मयाविरहिताबालारक्षसांभक्षणायवै ॥ सार्थेनैवपरित्यक्ताभक्षिताबहुबांधवा ॥ ३४ ॥ हालक्ष्मणमहा बाहोपश्यसेत्वंप्रियांक्वचित् ॥ हाप्रियेक्वगताभद्रेहासीतेतिपुनःपुनः ॥३५॥ इत्येवंविलपन्रामःपरिधावन्वनाद्वनम् ॥ क्वचिदुद्भ्रमतेयोगात्क्वचि द्विभ्रमतेबलात् ॥ ३६ ॥ क्वचिन्मत्तइवाभातिकांतान्वेषणतत्परः ॥ सवनानिनदीःशैलान्गिरिप्रस्रवणानिच ॥ काननानिचवेगेनभ्रमत्यपरि संस्थितः ॥ ३७ ॥ तदासगत्वाविपुलंमहद्वनंपरीत्यसर्वंत्वथमैथिलींप्रति ॥ अनिष्ठिताशःसचकारमार्गणेपुनः प्रियायाःपरमंपरिश्रमम् ॥ ३८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदि० च० सा० अरण्यकांडे षष्टितमः सर्ग ॥ ६० ॥

इस प्रकार वारंवारविलाप करते २ रामचन्द्रजी वन २में वेग सहित घूमने लगे, कहीं ठोकर खाकर गिर पडते और कभी २ सब वन तथा दिशा विदिशाओंमें घूमने लगते ॥ ३६ ॥कभी रामचन्द्रजी उन्मत्तके समान दृष्टि आते कभी २ प्रियाके ढूँढनेमें तत्पर होकरवेग सहित नदी पर्वत झरने और समस्त वनोंमें भ्रमण करने लगे ॥ ३७ ॥ उस समयश्रीरामचन्द्रजी स्थिर होकर कहीं भी न रह सकते । और एक महावनमें प्रवेश करके उसमें चारों ओर जानकीजी को एक २ वृक्ष और एक २ स्थल ढूँढनेपर भी रामचन्द्र जीका अभिलाष पूर्ण नहीं हुआ । परन्तु वह फिर भी प्यारी सुकुमारी जनकदुलारीकी खोज करनेमें परिश्रम करने लगे ॥ ३८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदि० अरण्यकांडे भाषायां षष्टितमः सर्गः ॥ ६० ॥

इस प्रकार ढूँढते भालते श्रीरामचंद्रजी फिर आश्रममें आये तो देखा कि, शून्य पडा है, पर्णशालामें कोई नहीं है आसन भी इधर उधर पडे हैं ॥ १ ॥ सब ओर वहांपर देख और वैदेहीजीको न पाकर श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीके दोनों हाथ पकड रोकर बोले ॥ २ ॥ हे लक्ष्मण ! सीता कहां हैं ? इस आश्रमसे किस स्थानको चली गई हैं ? हे सौमित्रे ! प्रियाको किसने हरण किया, वा भक्षण किया ? ॥३॥ हे सीते ! यदि वृक्षकी आडमें छिपी रहकर तुम्हें उपहास करने को इच्छा हुई हो, तब तो जितना चाहिये था उतना उपहास होगया; अब अधिक न दुःखी करो । देखो ! हम महादुःखमें पडनेसे व्याकुल हो रहे हैं सो इस समय आकर तुम शीघ्र हमको धीरज दो और समझाओ ॥ ४ ॥ हे सौम्ये ! तुम जो इन सब विश्वासी मृगछौनोंके सहित खेल करती थीं सो इस समय यह सब तुम्हारे विना नेत्रोंसे अश्रुजल भरे चिंता कर रहे हैं ॥५॥ हे लक्ष्मण ! सीताके विरहमें हम कभी जीवन धारण नहीं कर सकते, उनके

दृष्ट्वाऽऽश्रमपदंशून्यंरामोदशरथात्मजः ॥ रहितांपर्णशालांचप्रविद्धान्यासनानिच ॥ १ ॥ अदृष्ट्वातत्रवैदेहींसन्निरीक्ष्यचसर्वशः ॥उवाचरामः प्राकुश्यप्रगृह्यरुचिरौभुजौ ॥ २ ॥ क्वनुलक्ष्मणवैदेहीकंवादेशमितोगता ॥ केनाहृतावासौमित्रेभक्षिताकेनवाप्रिया ॥३॥वृक्षेणावार्ययदिमांसी तेहसितुमिच्छसि ॥ अलंतेहसितेनाद्यमांभजस्वसुदुःखितम् ॥ ४ ॥ यैःपरिक्रीडसेसीतेविश्वस्तैर्मृगपोतकैः ॥ एतेहीनास्त्वयासौम्येध्यायत्य स्राविलेक्षणाः ॥ ५ ॥ सीतयारहितोऽहंवैनहिजीवामिलक्ष्मण ॥ वृतंशोकेनमहतासीताहरणजेनमाम् ॥ ६ ॥ परलोकेमहाराजोनूनंद्रक्ष्यतिमे पिता ॥ कथंप्रतिज्ञांसंश्रुत्यमयात्वमभियोजितः ॥७॥ अपूरयित्वातंकालंमत्सकाशमिहागतः ॥ कामवृत्तमनार्यंवामृषावादिनमेवच ॥ ८ ॥ धिक्त्वामितिपरेलोकेव्यक्तंवक्ष्यतिमेपिता ॥ विवशंशोकसंतप्तंदीनंभग्नमनोरथम् ॥ ९ ॥ मामिहोत्सृज्यकरुणंकीर्तिर्नरमिवानृजुम् ॥ क्वगच्छ सिवरारोहेमांनोत्सृजसुमध्यमे ॥ १० ॥

हर जानेसे उत्पन्न हुए घोरतर शोकने हमको ढक लिया है ॥ ६ ॥ पितृदेव महाराज दशरथजीको निश्चयही हम पर लोकमें मिलेंगे, और वह निश्चयही हमसे यह कहेंगे कि, हे राम ! हमने तो तुम को प्रतिज्ञा पूर्ण करनेको कहा था, और तुमने भी स्वीकार किया था कि हम चौदह वर्ष वनमें बसेंगे ॥ ७ ॥ सो तुम उस प्रतिज्ञाको पूर्ण विना कियेही इस समय कैसे यहां पर आये ? स्वेच्छाचारी, मिथ्यावादी और नीचतायुक्त तुमको ॥ ८ ॥ धिक्कार है ! सो निश्चयही इस प्रकारके वचन पिताजी हमें कहेंगे. विवश शोकसे व्याकुल दीन और मनोरथ टूटे हुए ॥ ९ ॥ व दया करनेके योग्य हमको यहां छोड कहां जाती हो, ? जिस प्रकार कुटिल मनुष्यको कीर्ति छोड़ देती है । हे वरारोहे ! हे सुमध्यमे ! तुम हमको न छोडो ॥ १० ॥

हम तुम्हारे विरहमें अपना जीवन परित्याग करेंगे, श्रीरामचन्द्रजी सीताके दर्शनाभिलाषी होकर इस प्रकार विलाप करने लगे ॥ ११ ॥ परन्तु दुःखसे आर्त हुए उन्होंने जानकीजीको न देखा; इस कारण वह जानकीके शोकमें निमग्न होकर ॥ १२ ॥ अतीव दल २ में फँसे हुए महागजके समान बहुतही व्याकुल होगये । रामचन्द्रजीकी यह दशा देख लक्ष्मणजी उनके हितकी कामनासे कहने लगे ॥१३॥ हे महाद्युतिमान् ! आप विषाद न कीजिये । हमारे साथ यत्न कीजिये तब अवश्यही सीताका दर्शन मिलेगा । हे वीर ! यह बहुत कन्दराओंसे शोभित जो गिरिवर है ॥ १४ ॥ इस वनमें घूमना जानकीजीको बहुत प्यारा है, क्योंकि वनको देख वह सदा मत्त हो जाती थीं सो क्या अचरज है कि, वह वन देखने न चली गई हों अथवा कोई

त्वयाविरहितश्चाहंत्यक्ष्येजीवितमात्मनः ॥ इतीवविलपन्रामःसीतादर्शनलालसः ॥ ११॥ नददर्शसुदुःखार्तोराघवोजनकात्मजाम् ॥ अनासादयमानंतंसीतांशोकपरायणम् ॥ १२॥ पंकमासाद्यविपुलंसीदंतमिवकुंजरम् ॥ लक्ष्मणोराममत्यर्थमुवाचहितकाम्यया ॥ १३॥ माविषादंमहाबुद्धेकुरुयत्नंमयासह ॥ इमंगिरिवरंवीरबहुकंदरशोभितम् ॥ १४ ॥ प्रियकाननसंचारावनोन्मत्ताचमैथिली ॥ सावनंवाप्रविष्टास्यान्नलिनींवासुपुष्पिताम् ॥ १५ ॥ सरितंवापिसंप्राप्तामीनवंजुलसेविताम् ॥ वित्रासयितुकामावालीनास्यात्काननेक्वचित ॥ १६ ॥जिज्ञासमानावैदेहीत्वांमांचपुरुषर्षभ ॥ तस्याह्यन्वेषणेश्रीमन्क्षिप्रमेवयतावहे ॥ १७ ॥ वनंसर्वंविचिनुवोयत्रसाजनकात्मजा ॥ मन्यसेयदिकाकुत्स्थमास्मशोकेमनःकृथाः ॥ १८ ॥ एवमुक्तःससौहार्दाल्लक्ष्मणेनसमाहितः ॥ सहसौमित्रिणारामोविचेतुमुपचक्रमे ॥ १९ ॥ तौवनानिगिरींश्चैवसरितश्चसरांसिच ॥ निखिलेनविचिन्वंतौसीतांदशरथात्मजौ ॥ २० ॥

पुष्प शोभित कमलयुक्त तलैया देखने गई हों ॥ १५ ॥ अथवा मत्स्ययुक्त और बेतसयुक्त नदीपर तो न चलीं गई हों अथवा हम तुमको त्रासितकरनेकी कामनासे इस वनके किसी स्थानमें तो न छिप रही हों ॥ १६ ॥ हे पुरुषसिंह ! वह यह जाननेके लिये वनमें लुकाई हैं कि, हम वा आप किस प्रकारसे उनको खोजकर पालेंगे; सो हमको चाहिये कि, उनके खोजनेका अवश्य यत्न करें ॥ १७ ॥ हे काकुत्स्थ ! आप तो भी यही मानते हो कि, जानकी इसी वनमें हैं तब तो इस वनके सबही आश्रमोंमें खोजेंगे, अब शोक न कीजिये ॥ १८ ॥ जब सौहार्दके वश होकर लक्ष्मणजीने इस प्रकार कहा तब रामचन्द्रजी सावधान चित्त होकर लक्ष्मणजीको संग ले ढूंढने लगे ॥ १९ ॥ वन, गिरि, तालाब, एक २ करके दोनों भाइयोंने सीताको ढूंढनेके लिये छाने ॥ २० ॥

फिर उन पर्वतोंके कंगूरे, चट्टान व शिखर व सब रत्ती २ खोजे पर जानकीजीके दर्शन न हुए ॥ २१ ॥ उस कालमें समस्त पर्वतको ढूंढभालकर श्रीरामचन्द्र लक्ष्मणजीसे बोले कि, हे भाई ! इस पर्वत पर प्यारी जनकदुलारी तो दृष्टि नहीं आतीं ॥ २२ ॥ लक्ष्मणजी समस्त दंडकारण्यमें विचरण करते हुए भी जानकीजीको न पाकर दुःखसे संतप्त हो प्रदीप्त तेजवाले अपने भ्राता रामचन्द्रजीसे बोले ॥ २३ ॥ कि, महाबलवान् विष्णुजीने जिसप्रकार बलिको बांध कर इस पृथ्वीको प्राप्त किया था हे बुद्धिमान् ! आपभी वैसेही जनककुमारी सीताजीको पावेंगे ॥ २४ ॥ वीर लक्ष्मणजीके यह वचन सुन दुःखसे चित्त हरे हुए श्रीरामचन्द्रजी अति दीनतासे बोले ॥ २५ ॥ हे महाबुद्धिमान् ! सारा बन खिले हुये कमलाकर सरोवर बहुत सारी

तस्यशैलस्यसानूनिशिलाश्चशिखराणिच ॥ निखिलेनविचिन्वंतौनैवतामभिजग्मतुः ॥ २१ ॥ विचित्यसर्वतःशैलंरामोलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ नेहपश्यामिसौमित्रेवैदेहींपर्वतेशुभाम् ॥ २२ ॥ ततोदुःखाभिसंतप्तोलक्ष्मणोवाक्यमब्रवीत् ॥ विचरन्दंडकारण्यंभ्रातरंदीप्ततेजसम् ॥ २३ ॥ प्राप्स्यसेत्वंमहाप्राज्ञमैथिलींजनकात्मजाम् ॥ यथाविष्णुर्महाबाहुर्बलिंबद्ध्वामहीमिमाम् ॥२४॥ एवमुक्तस्तुवीरेणलक्ष्मणेनसराघवः॥उवाचदीनयावाचादुःखाभिहतचेतनः ॥ २५ ॥ वनंसुविचितंसर्वंपद्मिन्यःफुल्लपंकजाः ॥ गिरिश्चायंमहाप्राज्ञबहुकंदरनिर्झरः ॥ नपश्यामिवैदेहींप्राणेभ्योऽपिगरीयसीम् ॥ २६ ॥ एवंसविलपन्रामःसीताहरणकार्शितः ॥ दीनःशोकसमाविष्टोमुहूर्तंविह्वलोऽभवत् ॥२७॥ सविह्वलितसर्वांगोगतबुद्धिर्विचेतनः ॥ विषसादातुरोदीनोनिःश्वस्याशीतमायतम् ॥ २८ ॥ बहुशःसतुनि श्वस्यरामोराजीवलोचनः ॥ हाप्रियेतिविचुक्रोशबहुशोबाष्पगद्गदः ॥ २९ ॥ तंसांत्वयामतसातोलक्ष्मणःप्रियबांधवम् ॥ बहुप्रकारंशोकार्तःप्रश्रितःप्रश्रितांजलिः ॥ ३० ॥

कन्दराओंसे युक्त बहुत झरनोंसे सुशोभित यह पर्वत जरा २ करके देखा व ढूंढा तथापि प्राणोंसे भी बहुत भारी प्यारी जानकीजीके दर्शन हमने न पाये ॥ २६ ॥ सीताजीके हरणसे संतापित हो श्रीरामचन्द्रजी शोकसे दुःखी और व्याकुल होकर इस प्रकार विलाप करते २ एक मुहूर्त भर तक विह्वल हो रहे ॥ २७ ॥ वे बुद्धिहीन और चैतन्यता रहित हो गये और सर्व शरीर विह्वल हो गया इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी अतिशय व्याकुल और स्पन्दनाहीन होकर लम्बे २ श्वास लेकर विलाप करने लगे लगे ॥ २८ ॥ इसके पश्चात् राजीवलोचन श्रीरामचन्द्रजीने वारंबार श्वास ले हाप्रिये ! ऐसा कह गद्गद हो आसू भर बडे शब्दसे रोदनकरन आरम्भ किया ॥२९॥ रामचन्द्रजीको देखकर उनके प्रिय भ्राता लक्ष्मणजी शोकमे आरत हो विनय सहित हाथ जोड उनको

समझाने बुझाने लगे ॥३०॥ परन्तु श्रीरामचन्द्रजी उनके मुखसे निकले हुए वचनोंका अनादर करके प्रियतमा सीताजीके अदर्शनसे वारंवार रोदन करने लगे ॥३१॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अरण्यकांडे भाषायामेकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥ महाबाहु धर्मात्मा कमल लोचन श्रीरामचन्द्रजी सीताजीके दर्शन न पाकर के शोकसे मारे चेतना रहित हो विलाप करने लगे ॥ १ ॥ वह सीताजीके दर्शन न पाकर भी, मानों उनको देखही रहे हैं इस भाव करके कामबाणसे पीडित हो विलाप युक्त दुःखके साने वचन कहने लगे ॥२॥ हे प्रिये ! तुम पुष्पोंको अतिशय प्यार करती हो सो इस समय अशोक शाखा समूहद्वारा अपना शरीर ढककर हमारे शोकको अतिशय बढाती हो ॥ ३ ॥ हे देवि ! तुम्हारी दोनों जांघे केलेके खंभकी सदृश हैं तुमने उनको कदलीसे छिपा रक्खा है सो हम

अनादृत्यतुतद्वाक्यंलक्ष्मणोष्ठपुटच्युतम् ॥ अपश्यंस्तांप्रियांसीतांप्राक्रोशत्पुनःपुनः ॥ ३१ ॥इत्यार्षे श्रीमद्रा०वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० अरण्यकांडे एकषष्टितमः सर्ग॥ ६१ ॥ सीतामपश्यन्धर्मात्माशोकोपहतचेतनः ॥ विललापमहाबाहुरामःकमललोचनः ॥१ ॥ पश्यन्निवचतांसीतामपश्यन्मन्मथार्दितः ॥ उवाचराघवोवाक्यंविलापाश्रयदुर्वचम् ॥ २ ॥ त्वमशोकस्यशाखाभिःपुष्पप्रियतराप्रिये ॥आवृणोषिशरीरंतेममशोकविवर्धिनी ॥३॥कदलीकांडसदृशौकदल्यासवृतावुभौ ॥ ऊरूपश्यामितेदेविनासिशक्तानिगूहितुम् ॥ ४ ॥ कार्णिकारवनभद्रेहसंतीदेविसेवसे ॥ अलंतेपरिहासेनममबाधावहेनवै ॥ ५ ॥ विशेषेणाश्रमस्थानेहासोऽयंनप्रशस्यते ॥ अवगच्छामितेशीलंपरिहासप्रियंप्रिये ॥६॥ आगच्छत्वंविशालाक्षिशून्योऽयमुटजस्तव ॥ सुव्यक्तंराक्षसैःसीताभक्षितवाहृतापिवा ॥ ७ ॥ नहिसाविलपंतंमामुपसंप्रैतिलक्ष्मण॥एतानिमृगयूथानिसाश्रुनेत्राणिलक्ष्मण ॥ ८ ॥ शंसंतीवहिमेदेवींभक्षितांरजनीचरैः॥हाममार्येक्वयातासिहासाध्विवरवर्णिनि ॥ ९ ॥

उनको देख रहे हैं तुम अब उनको नहीं छिपा सकती हो ॥४॥ भद्रे ! तुम हँसते २ कार्णिकारके वनमें प्रवेश करती हो, परन्तु हमको पीडन करके और अधिक उपहास करनेका प्रयोजन नहीं है ॥५॥ विशेष करके आश्रमके स्थानमें परिहास करना अच्छा नहीं होता । हे प्रिये ! यह तो हम जानते हैं कि, स्वभावसेही तुम परिहासप्रिया हो ॥६॥ परंतु हे विशालाक्षी ! यह पर्णशाला सूनी पडी है इस कारण आओ । हे लक्ष्मण निश्चय होता है कि, सीताको राक्षसोंने भक्षण कर लिया अथवा वह उनको हरण करके ले गये ॥ ७ ॥ इसी कारण वह हमको विलाप करते हुए देखकर भी हमारे निकट नहीं आतीं, हे लक्ष्मण ! इस पर ये मृगयूथ गण रोदन करते हैं ॥ ८ ॥ यह भी मानों यही कह रहे हैं कि, राक्षसोंने सीताका भक्षण कर लिया । हा ! अच्छे शीलवाली साध्वी ! हा

वरवर्णिनी सुमुखि ! हा आर्या ! तुम कहां गई हो ॥ ९ ॥ अब सीताकरके रहित देशको गमन करना पडेगा, इतने दिनोंके पीछे कैकेयी देवी सफल मनोरथ हुई क्योंकि अब वह देखेंगी कि, सीता सहित गये थे और आये सीता रहित ! ॥ १० ॥ किस प्रकारसे हम सीता रहित अपने रनवासमें प्रवेश करेंगे ? सब लोग हमको वीर्यरहित और निर्दयी कह कर निन्दा करेंगे॥११॥ सीताजीके बिना संग होनेसे निश्चयही हमको कातरता प्राप्त हो जायगी कारण कि, जब हम वनवास करके घरको लौटेंगे और उस समय मिथिलानाथ जनकजी ॥ १२ ॥ कुशल पूछेंगे तो किस प्रकार हम उनको अवलोकन करनेमें समर्थ होंगे ? विदेहराज निश्चय हमको विना सीताके देख कर ॥ १३ ॥ अपनी पुत्री जानकीके विनाशसे सतप्त हो मोहके वश हो जायँगे । पिता दशरथजीही धन्य हैं ! क्योंकि वे स्वर्गमें वास करते हैं । अथवा अब हम भरतकी पालित अयोध्यापुरीको न जायँगे ॥१४॥ अयोध्याकी बात तो एक ओर रही सीताके

हासकामाद्यकैकेयीदेविमेऽद्यभविष्यति ॥ सीतयासहनिर्यातोविनासीतामुपागतः ॥१०॥ कथंनामप्रवेक्ष्यामिशून्यमन्तःपुरंमम ॥ निर्वीर्यइ तिलोकोमांनिर्दयश्चेतिवक्ष्यति ॥ ११ ॥ कातरत्वंप्रकाशंहिसीतापनयनेनमे ॥ निवृत्तवनवासश्चजनकंमिथिलाधिपम् ॥१२॥ कुशलंपरिपृच्छं तंकथंशक्ष्येनिरीक्षितुम्॥ विदेहराजोनूनंमांदृष्ट्वाविरहितंतया ॥१३॥ सुताविनाशसंतप्तोमोहस्यवशमेष्यति ॥ "तातएवकृतार्थःसतत्रैववसता दिति ॥ अथवानगमिष्यामिपुरींभरतपालिताम् ॥ १४ ॥ स्वर्गोपिहितयाहीनःशून्यएवमतोमम ॥ तन्मामुत्सृज्यहिवनेगच्छायोध्यापुरीं शुभाम् ॥१५॥ नत्वहंतांविनासीतांजीवेयंहिकथञ्चन॥गाढमाश्लिष्यभरतोवाच्योमद्वचनात्त्वया ॥१६॥ अनुज्ञातोऽसिरामेणपालयेतिवसुंध राम् ॥ अंबाचममकैकेयीसुमित्राचत्वयाविभो ॥ १७ ॥ कौसल्याचयथान्यायमभिवाद्यामममाज्ञया ॥ रक्षणीयाप्रयत्नेनभवतासूक्तचारिणा ॥१८॥ सीतायाश्चविनाशोऽयंममचामित्रसूदन॥ विस्तरेणजनन्यामेविनिवेद्यस्त्वयाभवेत् ॥ १९ ॥

बिना तो हम स्वर्गको भी शून्य समझते हैं, इस कारण हे लक्ष्मण ! तुम अब हमको इस वनमें छोडकर अयोध्याको चले जाओ ॥ १५ ॥ हम जानकीके विना किसी प्रकारभी जीवन धारण करनेको समर्थ नहीं हैं । तुम हमारी ओरसे भली भांति भरतजीको गाढ आलिंगन कर कहना ॥ १६ ॥ कि, रामचन्द्र जीने यह आज्ञा की है कि, तुमहीं इस राज्यका पालन करो । हे विभो ! माता कैकेयी व सुमित्रा अपनी मातासे ॥ १७ ॥ और कौसल्याजीसे इनमेंसे प्रत्येकको हमारी अज्ञानुसार यथायोग्य तुम प्रणाम कह देना और सदा नीके वचनोंमे समझा बुझाकर यत्नसहित उनकी रक्षा भी करते रहना ॥ १८ ॥ हे शत्रुके मारनेवाले ! और मेरी माताजीसे सीताजीके व हमारे विनाशका वृत्तान्त भी विस्तार सहित तुम निवेदन कर देना ॥ १९ ॥

श्रीरामचन्द्रजी सुकेशी सीताके विरहमें महाव्याकुल होकर इस प्रकारसे विलाप करने लगे, तब भयके मारे लक्ष्मणजीका मुख पीला पडगया मन व्यथित हुआ और वह बहुतही आतुर होगये ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदि० अरण्यकांडे भाषायां द्विषष्टितमः सर्गः ॥६२॥ राजकुमार श्रीरामचन्द्रजी प्रिया विन हो शोक मोहसे आतुर होनेके कारण लक्ष्मणजीको विषाद उत्पन्न कराते हुए आपभी बडे तीव्र विषादको प्राप्त हुए ॥ १ ॥ तिसके पीछे वह विपुल शोकमें डूब कर लंबे २ श्वास लेते हुए रोते २ शोकसे घिरे हुए लक्ष्मणजीको उपस्थित विपदके अनुरूप वचन कहने लगे ॥ २ ॥ हम समझते हैं कि, हमारे समान बुरे कर्म करनेवाला दूसरा पुरुष पृथ्वीपर और नहीं हैं, देखो, एकके पीछे एक इस प्रकार लगातार शोक इकट्ठे होकर हमारे मन और

इतिविलपतिराघवेतुदीनेवनमुपगम्यतयाविनासुकेश्या॥भयविकलमुखस्तुलक्ष्मणोऽपिव्यथितमनाभृशमातुरोबभूव ॥२०॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० च० सा० अर० द्विषष्टितमः सर्गः ॥६२॥ सराजपुत्रःप्रिययाविहीनःशोकेनमोहेनचपीडचमानः॥विषादयन्भ्रातरमार्तरूपोभूयोविषादेप्रविवेशतीव्रम् ॥१॥ सलक्ष्मणंशोकवशाभिपन्नंशोकेनिमग्नोविपुलेतुरामः ॥ उवाचवाक्यंव्यसनानुरूपमुष्णंविनिःश्वस्यरुदन्सशोकम् ॥२॥ नमद्विधोदुष्कृतकर्मकारीमन्येद्वितीयोऽस्तिवसुंधरायाम् ॥ शोकानुशोकोहिपरंपरायामामेतिभिंदन्हृदयंमनश्च ॥३॥ पूर्वंमयानूनमभीप्सितानिपापानिकर्माण्यसकृत्कृतानि॥ तत्रायमद्यापतितोविपाकोदुःखेनदुःखंयदहंविशामि ॥४॥ राज्यप्रणाशःस्वजनैर्वियोगपितुर्विनाशोजननीवियोगः ॥ सर्वाणिमेलक्ष्मणशोकवेगमापूरयंतिप्रविचिंतितानि ॥५॥ सर्वंतुदुःखंममलक्ष्मणेदंशांतंशरीरेवनमेत्यक्लेशम् ॥ सीतावियोगात्पुनरभ्युदीर्णंकाष्ठैरिवाग्निःसहसोपदीप्तः ॥ ६ ॥

हृदयको बेधे डालते हैं ॥ ३ ॥ पहले जन्ममें हमने इच्छानुसार वारंवार बहुत सारे पाप कर्म किये हैं आज उनका फल मिलरहा है। इसी कारण हमारे ऊपर दुःखके ऊपर दुःख पड रहे हैं ॥ ४ ॥ राज्यका नाश होना, पिताजी का मरना, माताजी का वियोग होना और बन्धु बान्धवोंसे छूटना, यह सब बातें जब याद आती हैं तो हमारे शोकके वेग कोपरिपूर्ण कर देती हैं ॥ ५ ॥ हे लक्ष्मण ! वनमें आकर सीताके साथ रहनेसे वह सब दुःखही छूट गये थे बरन् शरीरको क्लेशका नाम नहीं जान पडता था, परन्तु आज जानकी के वियोगसे, काष्ठके संयोगसे सहसा प्रदीप्त हुए अग्निके समान वहीदुःख फिर प्रबल हो गये हैं ॥ ६ ॥

निश्चयही कोई राक्षस उन भीरुस्वभाववाली आर्या सीताको आकाश मार्गसे आय हरण करके लेगया है इसमें कोई सन्देह नहीं है कि, उस समय सुन्दर बोलनेवालीने भयके विवश हो विकृतस्वरसे वारंवार रोदन किया होगा ॥ ७ ॥ सुंदर सदाही हरिचंदन लगानेके योग्य हमारी प्रियाके दौनों सुन्दरकुचोंमें निश्चयही राक्षसोंने भक्षण करनेके समय उनमें रुधिर लगा दिया होगा जिससे वह शोभित नहीं होते होंगे-हाय ! इतनेपर भी हमारे प्राण नहीं जाते ॥ ८ ॥ अबहम इस शरीरसे उनको न भेंट सकेंगे उनका मुखमंडल घूंघरवाले बालोंके बीचमें शोभित और सुन्दर, सुमधुर, सुकोमल और साफ चिकना सँवारा हुआ है; सो जानकीको राक्षसके वश होनेसे राहुके मुखमें ग्रसे हुए चंद्रमाके समान निश्चय उस मुखकी अब सब सुंदरताई अलग होगयी होगी ॥ ९ ॥ पतिव्रता प्रियाकी वह सुन्दगरदन सदाही हारके गुच्छोंसे भूषित रहती थी सो रुधिरपान करनेवाले राक्षसोंने सूनेमें पाकर

सानूनमार्यामम राक्षसेनह्यभ्याहृताखंसमुपेत्यभीरुः ॥ अप्यस्वरंसुस्वरविप्रलापाभयेनविक्रंदितवत्यभीक्ष्णम् ॥ ७ ॥ तौलोहितस्यप्रियदर्शनस्यसदोचितावुत्तमचंदनस्य॥वृत्तौस्तनौशोणितपंकदिग्धौनूनंप्रियायाममनाभिपातः ॥८॥ तच्छ्लक्ष्णसुव्यक्तमृदुप्रलापंतस्यामुखंकुंचितकेशभारम् ॥ रक्षोवशंनूनमुपागतायानभ्राजतेराहुमुखेयथेंदुः ॥९॥ तांहारपाशस्यसदोचितांतांग्रीवांप्रियायाममसुव्रतायाः॥रक्षांसिनूनंपरिपीतवंतिशून्येहिभित्त्वारुधिराशनानि ॥ १० ॥ मयाविहीनाविजनेवनेसारक्षोभिराव‍ृत्यविकृष्यमाणा॥ नूनंविनादंकुररीवदीनासामुक्तवत्यायतकांतनेत्रा ॥११॥ अस्मिन्मयासार्धमुदारशीलाशिलातलेपूर्वमुपोपविष्टा॥कांतस्मितालक्ष्मणजातहासात्वामाहसीताबहुवाक्यजातम्॥१२॥गोदावरीयंसरितांवरिष्ठाप्रियाप्रियायाममनित्यकालम् ॥ अप्यत्रगच्छेदितिचिंतयामिनैकाकिनीयातिहिसाकदाचित् ॥ १३ ॥ पद्मानना पद्मपलाशनेत्रापद्मानिवानेतुमभिप्रयाता ॥ तदप्ययुक्तंनहिसाकदाचिन्मयाविनागच्छतिपंकजानि ॥ १४ ॥

निश्चयही उसको भेदकर रुधिरपान किया होगा ॥ १० ॥ हमारे न होनेपरनिर्जन वनमें राक्षसोंने चारों ओरसे घेर कर जब उनको खेंचना आरंभ किया होगातो उस समय वह बडे नेत्रवाली सीताने निश्चयही कुररीके समान विलाप किया होगा ॥ ११ ॥ हे लक्ष्मण ! वह हास्यमुख उदारस्वभाववाली सीता प्रथम हमारे साथ इसशिलातलपर तुम्हारे निकट बैठकर हँसते २ तुमसे कितनीबातें कहती थीं ॥ १२ ॥ यह नदियोंमें श्रेष्ठ गोदावरी है, जो हमारी प्रिया को सर्वदाही बहुत प्यारी थी, सोहमारे मनमें यह बात भी आती है कि, कदाचित् वह इस नदीके तीरपर चली गईहों । परन्तु नहीं वह अकेली यहां पर कभी नहीं आती थीं ॥ १३ ॥ तब क्या वहकमलदलके समान नेत्रवाली कमल मुखी जानकी कमल लेनेको चली गयी हैं ? यह भी किसी

प्रकार ठीक नहीं हो सकता, क्योंकि वह कभी हमारे विना कमल लेने नहींजाती थीं ॥ १४ ॥ अथवा वह इस पुष्पित वृक्षसमूह शोभित अनेक जातिके विहंगमोंसे पूर्ण यह वन अपनी इच्छानुसार देखनेको गई हैं यह भी बात किसी भांति संभव नहीं होसकती, क्योंकि उनका डरपोक स्वभाव है अकेली वनके मध्य प्रवेशकरनेसे वह बहुत डरती थीं ॥ १५ ॥ हे भगवन् ! सूर्य ! आप सबके कृताकृतको जानते हैं, और सत्य मिथ्या सबके साक्षी भी आप हैं. इस कारणसे शोकहत हमकोबतला दीजिये कि, हमारी प्रिया कहां चली गई अथवा कौन उनको हरकर लेगया ॥ १६ ॥ हे पवन ! समस्त लोकोंमें ऐसा कुछ नहीं है जो नित्यही तुम्हारे ज्ञानमार्गमें उदित न होता हो इससे बतला दीजिये कि, हमारी उन कुलमर्य्यादारक्षिणी सीताने प्राण दिये हैं या

कामंत्विदंपुष्पितवृक्षखंडंनानाविधैःपक्षिगणैरुपेतम् ॥ वनंप्रयातानुतदप्ययुक्तमेकाकिनीसातिबिभेतिभीरुः ॥१५॥ आदित्यभोलोककृताकृतज्ञलोकस्यसत्यानृतकर्मसाक्षिन् ॥ ममप्रियासाक्कगताहृतावाशंसस्वमेशोकहतस्यसर्वम् ॥१६॥ लोकेषुसर्वेषुचनास्तिकिंचिद्यत्तेननित्यंविदितंभवेत्तव ॥ शंसस्ववायोकुलपालिनींतांमृताहृतावापथिवर्ततेवा ॥ १७ ॥ इतींवतंशोकविधेयदेहंरामंविसंज्ञंविलपंतमेव ॥ उवाचसौमित्रिरदीनसत्त्वोन्याय्येस्थितःकालयुतंचवाक्यम् ॥ १८ ॥ शोकंविसृज्याद्यधृतिंभजस्वसोत्साहताचास्तुविमार्गणेस्याः ॥ उत्साहवंतोहिनरानलोकेसीदंतिकर्मस्वतिदुष्करेषु ॥ १९ ॥ इतीवसौमित्रिमुदग्रपौरुषंब्रुवंतमार्तंरघुवंशसत्तमः ॥ नचिंतयामासधृतिंविमुक्तवान्पुनश्चदुःखंमहदप्युपागमत् ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदि० च० सा० अर० त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥ सदीनोदीनयावाचालक्ष्मणंवाक्यमब्रवीत् ॥ शीघ्रंलक्ष्मणजानीहिगत्वागोदावरींनदीम् ॥ १ ॥

वह किसीसे हरी गई हैं अथवा कहीं मार्गमें टिक रही हैं ॥ १७ ॥जब श्रीरामचन्द्रजीने शोकयुक्त शरीरसे अचेतन अवस्थामें विलाप करना आरंभ कियातब न्यायशास्त्रमें स्थित हो अदीन हुये सौमित्रि लक्ष्मण उनसे समयानुसार वचन बोले ॥ १८ ॥ हे आर्य ! शोक छोडकर धीरज धारण करके उत्साहयुक्त हो जानकीजी को ढूँढिये । उत्साही पुरुष संसारी दुष्कर कार्य करनेमें भी कभी नहीं घबडाते ॥ १९ ॥ बडे पौरुषी लक्ष्मणजीने जब ऐसा कहा तब रघुवंशियोंमें उत्तम श्रीरामचन्द्रजीने उस वचनको चिन्तनीय समझ कर न गिना वरन् वह एक बारही धीरजकोछोड कर फिर महादुःखमें डूबगये ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अरण्यकांडे भाषायां त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥ रावणकी हममें दृढ मनुष्यबुद्धि होजाय इस कारण फिर विलाप करने

लगे दीनभावापन्न श्रीरामचन्द्रजी दीन वचन कह लक्ष्मणजीसे बोले कि, हे लक्ष्मण ! शीघ्र गोदावरी नदीपर जाकर जान आओ ॥ १ ॥ कि, सीता कमलफूल लेनेको तो वहां नहीं चली गई हैं जब श्रीरामचन्द्रजीने ऐसा कहा तो लक्ष्मणजी फिर ॥ २ ॥ शीघ्र २ पग धरके गोदावरी नदीपर गये और उस रमणीय घाटवाली गोदावरीके चारोंओर जरा २ करके ढूँढभाल रामचन्द्रजीसे शीघ्रही आकर कहा ॥ ३ ॥ कि, हमने सबही घाटोंपर ढूँढा परन्तु कहींपर उनको न पाया पुकारा भी परतु उन्होंने न सुना। हे आर्य ! जाने कौन देशमें क्लेशहारिणी जानकीजी चली गई हैं ॥४॥ सो उन सूक्ष्म मध्यम स्थानवालीका पता हम नहीं जानते। लक्ष्मणजीके वचन सुन कर रामचन्द्र और भी दीन व संतापसे मोहित हो ॥ ५ ॥ श्रीरामचन्द्रजी आपही गोदावरी नदीके तटपर गये और वहां खडे होकर पूछने लगे कि, सीता कहां हैं ? ॥ ६ ॥ समस्त प्राणियोंने तथा गोदावरी नदी किसीने भी श्रीरामचन्द्रजीको यह न बताया

अपिगोदावरींसीतापद्मान्यानयितुंगता॥ एवमुक्तस्तुरामेणलक्ष्मणःपुनरेवहि ॥२॥ नदींगोदावरींरम्यांजगामलघुविक्रमः ॥ तांलक्ष्मणस्तीर्थवतींविचित्वाराममब्रवीत् ॥३॥ नैनांपश्यामितीर्थेषुक्रोशतोनशृणोतिमे ॥कंनुसादेशमापन्नावैदेहीक्लेशनाशिनी ॥४॥ नहितंवेद्मिवैरामयत्रसातनुमध्यमा ॥ लक्ष्मणस्यवचःश्रुत्वादीनःसंतापमोहितः ॥५॥ रामःसमभिचक्रामस्वयंगोदावरींनदीम् ॥ सतामुपस्थितोरामःक्वसीतेत्येवमब्रवीत् ॥६॥ भूतानिराक्षसेंद्रेणवधार्हेणहृतामपि ॥ नतांशशंसूरामायतथागोदावरींनदी ॥७॥ ततःप्रचोदिताभूतैःशंसचास्मैप्रियामिति ॥ नचसाह्यवदत्सीतांपृष्टारामेणशोचता ॥८॥ रावणस्यचतद्रूपंकर्माणिचदुरात्मनः ॥ ध्यात्वाभयात्तुवैदेहींसानदीनशशंसह ॥९॥ निराशस्तुतयानद्यासीतायादर्शनेकृतः ॥ उवाचरामःसौमित्रिंसीतादर्शनकर्षितः ॥१०॥ एषागोदावरीसौम्यकिंचिन्नप्रतिभाषते॥ किंनुलक्ष्मणवक्ष्यामिसमेत्यजनकंवचः ॥ ११ ॥ मातरंचैववैदेह्याविनातामहमप्रियम् ॥ यामेराज्यविहीनस्यवनेवन्येनजीवतः ॥ १२ ॥

कि, मारे जानेके योग्य राक्षस रावण सीताको हरकर ले गया है ॥ ७ ॥ तब पृथ्वी; जल वायु, अग्नि, आकाश इन पांच भूतोंने व प्राणियोंने गोदावरी नदीसे कहा कि, रामचन्द्रजीसे सीताको बताओ और शोच करते हुए रामचन्द्रजीने भी पूछा परन्तु गोदावरीने न बताया ॥ ८ ॥ न बतानेका कारण यह हुआ कि, रावणका रूप और उस दुष्टात्माके कार्योंका स्मरण करके मारे भयसे गोदावरी नदीने श्रीरामचन्द्रजीसे सीताको न बताया ॥ ९ ॥ इस प्रकार जब गोदावरीने सीताजीके दर्शनसे निराश किया तब श्रीरामचन्द्रजी सीताके विरहसे व्यथित होकर लक्ष्मणजीसे बोले ॥ १० ॥ हे शुभदर्शन ! यह गोदावरी तो कुछ भी उत्तर नहीं देती परंतु हम सीताके विना अपने देशमें जाकर पिता जनकजीसे क्या कहेंगे ॥ ११ ॥ और वैदेहीजीकी मातासे विना जानकीके कैसे सुप्रिय वचन कहेंगे; जो जानकीजी राज्यविहीन वनमें कंद मूलादि भोजन कर जीते हुए हमारे ॥ १२ ॥

सबशोक अपनयन करती थीं वह वैदेहीजी कहां गई ? हम जातिके लोगोंसे सहायक विहीन होनेके कारण और सीताजीका दर्शन न पानेके कारण ॥१३॥ जागरित रहनेसे रात्रि हमको बडी जान पडेगी, अब हम मन्दाकिनी नदी जटास्थान और झरना झरता हुआ यह पर्वत ॥ १४ ॥ इन सबही स्थानोंमें विचरण किया करेंगे, जिससे कि सीताजीको देखें । हे वीर ! यह मृगगण हमको बार २ देखते हैं ॥१५॥ इनके संकेतोंसे जान पडता है कि, मानो यह हमसे कुछ कहा चाहते हैं, लक्ष्मणजीसे ऐसा कह उन मृगोंको देख पुरुषश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी उन मृगोंसे बोले ॥१६॥ हे मृगो ! सीता कहां है ? यह कहतेही आंसू निकल वाणी गद्गद होगई; जब महाराज श्रीरामचन्द्रजीने ऐसा कहा तो वह सब मृग सहसा उठ खडे हुए ॥१७॥ और जिस दिशाको रावण जानकीजीको हरण कर

सर्वव्यपानयच्छोकंवैदेहीक्वनुसागता॥ज्ञातिवर्गविहीनस्यवैदेहीमप्यपश्यतः ॥१३॥ मन्येदीर्घाभविष्यंतिरात्रयोममजाग्रतः ॥ मंदाकिनींजन स्थानमिमंप्रस्रवणंगिरिम् ॥ १४ ॥ सर्वाण्यनुचरिष्यामियदिसीताहिलभ्यते॥एतेमहामृगावीरामामीक्षंतेपुनःपुनः ॥१५॥वक्तुकामाइवहिमेइं गितान्युपलक्षये ॥ तांस्तुदृष्ट्वानरव्याघ्रोराघवःप्रत्युवाचह ॥ १६ ॥ क्वसीतेतिनिरीक्षन्वैबाष्पसंरुद्धयागिरा ॥ एवमुक्तानरेंद्रेणतेमृगाःसहसो त्थिताः ॥१७॥ दक्षिणाभिमुखाःसर्वेदर्शयंतोनभःस्थलम् ॥ मैथिलीह्रियमाणासादिशंयामभ्यपद्यत ॥ १८ ॥ तेनमार्गेणगच्छंतोनिरीक्षंतेनरा धिपम् ॥ येनमार्गंचभूमिंचनिरीक्षंतेस्मतेमृगाः ॥१९॥ पुनर्नदंतोगच्छंतिलक्ष्मणेनोपलक्षिताः ॥ तेषांवचनसर्वस्वंलक्षयामासचेंगितम् ॥२०॥ उवाचलक्ष्मणोधीमाञ्ज्येष्ठंभ्रातरमार्तवत ॥ क्वसीतेतित्वयापृष्टायदिमेसहसोत्थिताः ॥२१॥ दर्शयंतिक्षितिंचैवदक्षिणांचदिशंमृगाः ॥ साधुग च्छावहेदेवदिशमेतांचनैर्ऋतीम् ॥२२ ॥ यदितस्यागमःकश्चिदार्यावासाथलक्ष्यते ॥ बाढमित्येवकाकुत्स्थःप्रस्थितोदक्षिणांदिशम् ॥२३॥

लेगयाथा उसी दक्षिण दिशाको मुख कर आकाशकी ओर निहार २ देखने लगे ॥१८॥ वह सब मृगगण वारंवार उसी दक्षिण दिशाकी ओर मुखकर चिघाडते और फिर श्रीरामचन्द्रजीकी ओर देख दक्षिणको दौडते ॥१९॥ मृगगणोंकी यह धावमान होने और शब्दोंकी दशा देख लक्ष्मणजीने उनके हृदयकावृत्तान्त जान लिया ॥२०॥ अत्यन्त धीमान् लक्ष्मणजी अपने बडे भ्राता रामचन्द्रजीसे आरतके समान बोले कि, हे देव ! जब आपने इन मृगोंसे पूछा कि, सीता कहां हैं ? तब यह सब एक एक उठ खडे होकर ॥ २१ ॥ दक्षिण दिशाकी ओर पृथ्वीको दिखाने लगे । इस कारण चलिये हम लोगभी इसी दक्षिण दिशाको चले चलें ॥२२॥ क्योंकि कदाचित् आपही सीता वहां मिल जायँ अथवा उनकी प्राप्तिका कोई उपाय मिल जावे, तब श्रीरामचन्द्रजी ऐसाही हो कहकर दक्षिण

दिशाकी ओर चले ॥२३॥ इसके पश्चात् २ लक्ष्मणजी आगे २ आप चले, दोनों भाईजन इधर उधर देखते भागते वे आपसमें बात चीत करते २ चले ॥२४॥ आगे चलकर देखा तो कहींपर फूल पडे हैं। पृथ्वीपर फूलोंकी वृष्टि पडी देखकर श्रीरामचन्द्रजी ॥२५॥ बडे दुःखित हो दुःखित लक्ष्मणजीसे बोले कि, हे लक्ष्मण! हम जानते हैं कि, यह वही पुष्प हैं ॥ २६ ॥ जो हमने वैदेहीजीको दियेथे और उन्होंने यह सब अपने अंगोंमें धारण किये थे, यह अभी कुम्हलाये नहीं, ऐसा बोध होता है कि, हमारा प्रिय करनेके लिये सूर्य, पवन, तपस्विनी पृथ्वीने ॥ २७ ॥ इन पुष्पोंकी रक्षा की है, महाबाहु धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी पुरुषश्रेष्ठ लक्ष्मण जीसे ऐसा कह ॥ २८ ॥ बहुत सारे झरने जिसमें झररहे ऐसे सामनेवाले पर्वतसेपुकारकर बोले, हे पर्वतश्रेष्ठ ! तुमने क्या उन सर्वाङ्गसुन्दरीको देखा

लक्ष्मणानुगतःश्रीमान्वीक्षमाणोवसुंधराम्‌एवंसंभाषमाणौतावन्योन्यंभ्रातरावुभौ ॥२४॥ वसुंधरायांपतितंपुष्पमार्गमपश्यताम् ॥ पुष्पवृष्टिं निपतितांदृष्ट्वारामोमहीतले ॥२५॥ उवाचलक्ष्मणंवीरोदुःखितोदुःखितंवचः ॥ अभिजानामिपुष्पाणितानीमानीहलक्ष्मण ॥ २६ ॥ अपिनद्धानिवैदेह्यामयादत्तानिकाननेमन्येसूर्यश्चवायुश्चमेदिनीचयशस्विनी ॥ २७॥ अभिरक्षंतिपुष्पाणिप्रकुर्वंतोममप्रियम् ॥ एवमुक्त्वामहाबाहु लंक्ष्मणंपुरुषर्षभम् ॥ २८ ॥ उवाचरामोधर्मात्मागिरिंप्रस्रवणाकुलम् ॥ कच्चित्क्षितिभृतांनाथदृष्टासर्वांगसुंदरी ॥२९॥ रामारम्येवनोद्देशेमयाविरहितात्वया ॥ क्रुद्धोऽब्रवीद्गिरिंतत्रसिंहःक्षुद्रमृगंयथा ॥ ३० ॥ तांहेमवर्णांहेमांगींसीतांदर्शयपर्वत ॥ यावत्सानूनिसर्वाणिनतेविध्वंसयाम्यहम् ॥ ३१ ॥ एवमुक्तस्तुरामेणपर्वतोमैथिलींप्रति ॥ दर्शयन्निवतांसीतांनादर्शयतराघवे ॥ ३२ ॥ ततोदाशरथीरामउवाचचशिलोच्चयम्॥ ममबाणाग्निनिर्दग्धोभस्मीभूतोभविष्यसि ॥ ३३ ॥ असेव्यःसर्वतश्चैवनिस्तृणद्रुमपल्लवः॥इमांवासरितंचाद्यशोषयिष्यामिलक्ष्मण ॥ ३४ ॥

है ? ॥ २९ ॥ हमारी प्रिया हमारे विना रमणीय इस वनमें देखी है ? जब इस पर्वतने इनकी बातका कुछ उत्तर न दिया तब यह क्रुद्ध होकर उस पर्वतसे बोले जिस प्रकार सिंह छोटेमृगोंसे कडक कर बोलता है ॥ ३० ॥ हे पर्वत ! जबतक हम तुम्हारे शृंग तोड न डालें; तबतक तुम सोनेके समान वर्णवाली हमारी सीताजीको हमें दिखादो ॥ ३१ ॥ जब रामचन्द्रजीने ऐसा कहा तो मानों वह पर्वत जानकीजीको जानता हुआ श्रीरामचन्द्रजीको बताना चाहता था परन्तु रावणके भयसे नहीं बताया ॥३२॥ तब श्रीरामचन्द्रजी उस पर्वतसे फिर बोले कि, तुम हमारे बाणानलकी अनंत अग्निसे भस्म हो जाओगे ॥ ३३ ॥ फिर तृण वृक्ष पल्लवादि जल जानेसे कोई तुम्हारा आश्रय न लेगा। हे लक्ष्मण ! आज इस गोदावरी नदीकोभी शुष्क करदेंगे ॥ ३४ ॥

यदि यह सबहमारी चंद्रमुखी सीताको नहीं बताते तो हम ऐसाही करेंगे इस प्रकारसे श्रीरामचन्द्रजी क्रोधान्वित होकर मानों उनको नेत्रोंसे भस्मही किये देते थे ॥ ३५ ॥ इधर उधरदेखते २ श्रीरामचन्द्रजीने पृथ्वीपर देखा जहां कि, राक्षसके चरणचिह्न बनेथे, व उसी स्थानपर भयभीत और रामचन्द्रजीके दर्शनकी इच्छा किये इधर उधर दौडती हुई ॥ ३६ ॥ राक्षसके अनुसरण करनेसे जानकीजीकेभी पैरोंके चिह्नउन चिह्नोंके बीचमें बने देखे सीताजीके व राक्षसके पद एकमें मिले देख रामचन्द्रजीने बडा क्रोध किया, ॥ ३७ ॥ धनुष व तूणीर (तरकस) को भी टूटाफूटा पृथ्वीपर पडा देख रथकोभी रत्ती २ चूर्ण देख व्याकुल हो चकित होतेहुए श्रीरामचन्द्रजी अपने प्यारे भ्रातासेबोले ॥ ३८ ॥ हे लक्ष्मण ! देखो जानकीजीके गहनोंके सुवर्णबिन्दु

यदिनाख्यातिमेसीतामद्यचंद्रनिभाननाम् ॥ एवंप्ररुषितोरामोदिधक्षन्निवचक्षुषा ॥ ३५ ॥ ददर्शभूमौनिष्क्रांतंराक्षसस्यपदंमहत् ॥ त्रस्तायारामकांक्षिण्याःप्रधावत्या इतस्ततः ॥ ३६ ॥ राक्षसेनानुसृप्तायावैदेह्याश्चपदानितु ॥ ससमीक्ष्यपरिक्रांतंसीतायाराक्षसस्यच ॥३७॥भग्नंधनुश्चतूणींचविकीर्णंबहुधारथम् ॥ संभ्रांतहृदयोरामःशशंसभ्रातरंप्रियम् ॥ ३८ ॥पश्यलक्ष्मणवैदेह्याःकीर्णाःकनकबिंदवः ॥ भूषणानांहिसौमित्रेमाल्यानिविविधानिच ॥३९॥ तप्तबिंदुनिकाशैश्चचित्रैःक्षतजबिंदुभिः ॥ आवृतंपश्यसौमित्रेसर्वतोधरणीतलम् ॥ ४० ॥ मन्येलक्ष्मणवैदेहीराक्षसैःकामरूपिभिः ॥ भित्त्वाभित्त्वाविभक्तावाभक्षितावाभविष्यति ॥ ४१ ॥ तस्यानिमित्तंसीतायाद्वयोर्विवदमनायोः ॥ बभूवयुद्धंसौमित्रेघोरंराक्षसयोरिह ॥ ४२ ॥ मुक्तामणिचितंचेदंरमणीयंविभूषितम् ॥ धरण्यांपतितंसौम्यकस्यभग्नंमहद्धनुः ॥४३॥ राक्षसानामिदंवत्ससुराणामथवापिवा ॥ तरुणादित्यसंकाशंवैदूर्यगुलिकाचितम् ॥ ४४ ॥

और बहुत सारी मालायें यहां पर टूटी पडी हैं ॥ ३९ ॥ हे भइया ! इस ओर देखो भूमिमें चारों ओर सुवर्णबिंदुसम विचित्रित रक्तबिंदुसमूह छिटक रहे हैं यह सीताका तो रुधिर नहीं है ? ॥ ४० ॥ हे भइया लक्ष्मण ! हमको जान पडता है कि, कामरूपी राक्षसोंने जानकीजीके खंड २ कर आपसमें बांटचूट उनको खा डाला॥४१॥ हे लक्ष्मण ! ऐसा समझमें आता है कि, सीताके लिये झगडा होनेसे यहां दो राक्षसोंका घोर युद्ध हुआ था इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ ४२ ॥ हे सौम्य ! किसीका यह मुक्तामणिसे बना आ रमणीय विभूषित धनुष पृथ्वी पर टूटा हुआ पडा है ॥ ४३ ॥ हे वत्स ! या तो यह धनुष राक्षसों

वा देवताओंका है प्रातःकालके सूर्यके समान अरुण (लाल) वैदूर्यमणिकी मूठ इसमें लगी है ॥ ४४ ॥ किसीका यह सुवर्णका कवच भी रत्ती २टूटा हुआ पृथ्वी पर पडा है और यह शतशत शलाकासमन्वित दिव्यमालाशोभित छत्र किसका भूमि पर पडा है?॥४५॥ हेसौम्य! इसका दंडा टूट गया है किसनेतोडा है व सोनेकी गर्दनी पडी, पिशाचोंके समान मुखवाले गधेभी ॥४६॥ महाभयंकर व बडे आकारवाले किसीके रणमें मरे पडे हैं! फिर दीप्तिमान् अग्निके समान अतिदेदीप्यमान समरमें स्वामीका प्रकाश करनेवाला ध्वजायुक्त किसीका युद्धमें काम देनेवाला रथभी पडा है ॥ ४७ ॥ जो जगह २ पटकने व देमारनेसे टूट गया है वह किसीके रथके लम्बे २ बांसभी सुवर्णके विभूषणोंसे भूषित ॥ ४८ ॥ हे लक्ष्मण टूटे फूटे पडे हैं, जिनको देखनेसे भय उत्पन्न होता है।

विशीर्णपतितंभूमौकवचंकस्यकांचनम् ॥ छत्रंशतशलाकंचदिव्यमाल्योपशोभितम् ॥४५॥ भग्नदंडमिदंसौम्यभूमौकस्यनिपातितम् ॥ कांचनोरश्छदाश्चेमेपिशाचवदनाःखराः ॥४६॥ भीमरूपामहाकायाःकस्यवानिहतारणे ॥ दीप्तपावकसंकाशोद्युतिमान्समरध्वजः ॥४७॥ अपविद्धश्च भग्नश्चकस्यसांग्रामिकोरथः ॥ रथाक्षमात्राविशिखास्तपनीयविभूषणाः ॥४८॥ कस्येमेनिहताबाणाःप्रकीर्णाघोरदर्शनाः ॥ शरावरौशरैःपूर्णौविध्वस्तौपश्यलक्ष्मण ॥४९॥ प्रतोदाभीषुहस्तोऽयंकस्यवासारथिर्हतः ॥ पदवीपुरुषस्यैषाव्यक्तंकस्यापिरक्षसः ॥ ५० ॥ वैरंशतगुणंपश्यममतैर्जीवितान्तकम् ॥ सुघोरहृदयैःसौम्यराक्षसैःकामरूपिभिः ॥ ५१ ॥ हृतामृतावावैदेहीभक्षितावातपस्विनी ॥ नधर्मस्त्रायतेसीतांह्रियमाणांमहावने ॥५२॥ भक्षितायांहिवैदेह्यांहृतायामपिलक्ष्मण ॥ केहिलोकेप्रियंकर्तुंशक्ताःसौम्यममेश्वराः ॥ ५३ ॥ कर्तारमपिलोकानांशूरंकरुणवेदिनम् ॥ अज्ञानादवमन्येरन्सर्वभूतानिलक्ष्मण ॥ ५४ ॥

बाणोंसे पूर्ण किसीके तूणीरभी पृथ्वीमें पडे हैं ॥ ४९ ॥ देखो! चाबुक और वाग हाथमें लिये किसीका सारथी भीमृतक पडा है, देखो यह किसी पुरुष राक्षसके जानेका प्रगट मार्ग बना है ॥ ५० ॥हे शुभदर्शन! किस कारणसे अतीव कठिन हृदय कामरूप निशाचरगणोंके सहित हमारा पहलेसे शतगुण अधिक वैर हो गया? तुम देखलेना कि, इससे उनके जीवन अंत होगा ॥५१॥ या तो राक्षसोंने सीताको हर लिया वा भक्षण कर लियाका, अथवा उन तपस्विनीने प्राणत्याग करदिया होगा; किंतु जब इस महारण्यमें जानकीजी मरणके निकट पहुँचीं तब पतिव्रत धर्मनेभी उनकी रक्षा न की ॥५२॥ हेलक्ष्मण! इस प्रकारसे जब कि, जानकी हरी गई और उस समय धर्मने भी उनकी रक्षा न की तब संसारमें ईश्वरीय शक्ति सम्पन्न और कौन पुरुष हमारा प्रिय करनेमें समर्थ होगा?॥ ५३॥ प्राणीगण इनही

सब कारणोंसे अज्ञानप्रयुक्त समस्त लोकोंके कर्त्ता परमदयालु सुरवर परमेश्वरको नहीं मानते हैं ॥ ५४ ॥ हमारा स्वभाव अतिशय कोमल है,
और सर्वदाही हम सब लोकोंका हित कार्य करते हैं और करुणासहित उनका शुभाशुभ विधान करते हैं परन्तु हम सीताका उद्धार न करसके, इस कारण इन्द्रादि देवता
गण निश्चयही हमको वीर्यरहित समझेंगे ॥ ५५ ॥ हे लक्ष्मण ! विचार करके देखो ! कि हमको प्राप्त होकर दया दाक्षिण्यादि समस्त गुण दोषरूपमें बदल
गये इन दोषोंसे हम छिप गये ,, अब कोई हमको पराक्रमवान् नहीं समझता इससे अभी सब प्राणी व राक्षसोंका नाश करनेके लिये ॥ ५६ ॥ चन्द्रमाकी
चांदनीको मिटाय, महासूर्यके समान उदयवत् हमारा प्रकाश देखो; जो कि सुशीलता इत्यादि गुणोंको छोड जबसबको ठीक करते हैं ॥ ५७ ॥ हे लक्ष्मण!
तुम देखते रहो कि अब यक्ष, गन्धर्व, पिशाच, राक्षस, किन्नर वा मनुष्य कोई भी सुख प्राप्त करनेको समर्थ नहीं होगा, ॥ ५८ ॥ हे लक्ष्मण ! आज

मृदुंलोकहितेयुक्तंदांतंकरुणवेदिनम् ॥ निर्वीर्यइतिमन्यंतेनूनंमांत्रिदशेश्वराः ॥५५॥ मांप्राप्यहिगुणोदोषःसंवृत्तःपश्यलक्ष्मण ॥ अद्यैवसर्वभूतानां
रक्षसामभवायच ॥५६॥ संहृत्यैवशशिज्योत्स्नांमहान्सूर्यइवोदितः ॥ संहृत्यैवगुणान्सर्वान्ममतेजःप्रकाशते ॥५७॥ नैवयक्षानगंधर्वानपिशा
चानराक्षसाः ॥ किन्नरावामनुष्यावासुखंप्राप्स्यंतिलक्ष्मण ॥ ५८ ॥ ममास्त्रबाणसंपूर्णमाकाशंपश्यलक्ष्मण ॥ असंपातंकरिष्यामिह्यद्यत्रैलो
क्यचारिणाम् ॥ ५९ ॥ सन्निरुद्धग्रहगणमावारितशाकरम् ॥ विप्रणष्टानलमरुद्भास्करद्युतिसंवृतम् ॥ ६० ॥ विनिर्मथितशैलाग्रंशुष्यमाण
जलाशयम् ॥ ध्वस्तद्रुमलतागुल्मंविप्रणाशितसागरम् ॥६१॥ त्रैलोक्यंतुकरिष्यामिसंयुक्तंकालकर्मणा ॥ नतेकुशलिनींसीतांप्रदास्यंतिममे
श्वराः ॥ ६२ ॥ अस्मिन्मुहूर्तेसौमित्रेममद्रक्ष्यंतिविक्रमम् ॥ नाकाशमुत्पतिष्यंतिसर्वभूतानिलक्ष्मण ॥ ६३ ॥

हमारे बाणसमूहसे समस्त आकाश व्याप्त हो जायगादेखो आज हम त्रिलोकवासी प्राणियोंके गमनागमन रोके देते हैं, आज हम त्रिलोकीको कालके कव
रमें निक्षेप करेंगे ॥ ५९ ॥ जब हम सबका गमनागमन रोक देंगे तो इससे ग्रहोंकी चाल रुक जायगी, चंद्रमा अन्तर्हित हो जायँगे, वायु अग्नि और सूर्य
इत्यादिकी द्युतिके नाश होनेसे सब जगह गाढा अंधकार छा जायगा ॥ ६० ॥ सबही शैलशिखर मथित हो जायँगे, समुद्र सूख जायँगे,
वृक्षलता और गुल्म विध्वंस होजायँगे और वन एक साथही उजड जांयगे ॥६१॥ हम तीनों लोकोंका नाशकर देंगे, यदि इन्द्रादि देवगण मंगलमय जानकीजीको
न देंगे ॥६२॥ तो हमारा पराक्रम देखना । हे लक्ष्मण! इसी मुहूर्तमें वे हमारे पराक्रमको देखें कि, इस समय आकाशमेंभी कूटकर कोई न बच सकेगा ॥६३॥

हे लक्ष्मण ! आज हमारे चापकेमुखसे छूटे हुये शरजालसे निरन्तर मर्दित होकर सब जगत् महाव्याकुल मर्यादाशून्य हो जायगा, और मृग व पक्षि गण सबहीसब भाँतिसे भ्रान्त और विनष्ट ही होजायँगे ॥६४॥ आजहम सीताकेलिये कानतक प्रत्यंचा खैंच छोडेहुए बाणोंसे सबसंसार पिसाच और राक्षसोंसे रहित कर देंगे ॥ ६५ ॥ इस संसारमें कोई हमारे इन बाणोंको निवारण नहीं कर सकेगा, आज देवता लोग देखेंगे कि समूहके समूह बाण हम करके रोष और क्रोधमें भरकर चलाये हुए कितनी २ दूरपर जाकर गिरते हैं, न देवता न दैत्य न पिशाच न राक्षस ॥६६॥ जब हमारे क्रोधसे तीनोंलोकोंका नाश हुआ तब कोईभी रक्षा न पावेगा अधिक क्या कहैं सुर, असुर, यक्ष और राक्षसोंके समस्तही लोक ॥ ६७ ॥ हमारे बाणजालसे खंड२होकर गिरेंगे आज

समाकुलममर्यादंजगत्पश्याद्यलक्ष्मण ॥ आकर्णपूर्णैरिषुभिर्जीवलोकदुरावरैः ॥ ६४ ॥ करिष्येमिथलीहेतोरपिशाचमराक्षसम् ॥ मम रोषप्रयुक्तानांविशिखानांबलंसुराः ॥ ६५ ॥ द्रक्ष्यंत्यद्यविमुक्तानाममर्षाद्दूरगामिनाम् ॥ नैवदेवानदैतेयानपिशाचानराक्षसाः ॥ ६६ ॥ भविष्यंतिममक्रोधात्त्रैलोक्येऽपिप्रणाशिते ॥ देवदानवयक्षाणांलोकायेरक्षसामपि॥ ६७ ॥ बहुधानिपतिष्यंतिबाणौघैःशकलीकृताः॥ निर्मर्यादानिमाँल्लोकान्करिष्याम्यद्यसायकैः॥६८॥हृतांमृतांवासौमित्रेनदास्यंतिममेश्वराः॥ तथारूपांहिवैदेहींनदास्यंतियदिप्रियाम् ॥ ६९॥ नाशयामिजगत्सर्वंत्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ यावद्दर्शनमस्यावैतापयामिचसायकैः ॥ ७० ॥ इत्युक्त्वाक्रोधताम्राक्षःस्फुरमाणोष्ठसंपुटः ॥ वल्कलाजिनमाबध्यजटाभारमबंधयत ॥ ७१ ॥ तस्यक्रुद्धस्यरामस्यतथाभूतस्यधीमतः ॥ त्रिपुरंजघ्नुषःपूर्वंरुद्रस्येवबभौतनुः ॥ ७२ ॥ लक्ष्मणादथचादायरानिष्पीडचकार्मुकम् ॥ शरमादायसंदीप्तंघोरमाशीविषोपमम् ॥ ७३ ॥

हम बाणोंको छोड कर इन समस्त लोकोंको मर्यादाशून्य करेंगे ॥ ६८ ॥ हे लक्ष्मण ! प्रियवैदेही मरही गयी हों अथवा हरीही गयी हों सो किसी अवस्थामें हों यदि ब्रह्मादि देवगण उन्हें हमको न देदें ॥ ६९ ॥ हम चराचर सहित इस जब जगत्का विनाश कर डालेंगे और जब तक हम सीताको न देख पावेंगे तबतक बाणोंसे चराचरको संतापित करेंगे ॥ ७० ॥ यह कह कर क्रोधसे श्रीरामचन्द्रजीकी आंखें लाल २ हो आईं; होठ फडकने लगे; श्रीरामचन्द्रजीने चीर वल्कल मृगचर्म और जटाजूट कस कर बांधा ॥ ७१ ॥ उस कालमें धीमान् रामचन्द्रजीने क्रोधित होकर जब ऐसे कार्यका अनुष्ठान किया तब उनका देह ऐसा प्रतिभात होने लगा कि जैसे पूर्व कालमें रुद्रजी त्रिपुर वध करनेको तैयार हुये थे ॥ ७२ ॥ अनन्तर उन्होंने लक्ष्मणजीके निकटसे धनुष ग्रहण कर और दृढ रूपसे

धार करके सर्पविष सदृशघोर प्रदीप्त सायक ॥७३॥ श्रीरामचन्द्रजीने उनध नुषपर चढाया ओर प्रलयकालकी अग्निके समान क्रोधमें बरकर कहने लगे ॥७४॥
हे लक्ष्मण! जरा, मृत्यु, काल और विधि यह सब जिस प्रकारसे प्राणिमात्रके रोकनेसे नहीं रुक सकते, वैसेही हम क्रोधिव हुए हैं। निःसन्देह कोई हमको
निवारण नहीं करसकेगा ॥७५॥ सुदन्तयुक्ता निन्दारहित मिथिलराजनंदिनी सीताको बिना प्राप्त हुए हम देव, गन्धर्व, मनुष्य, पन्नग और पर्वत सहित समस्त
जगत् मार्दित कर डालेंगे ॥ ७६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० अर० भाषायां चतुःषष्टितमःसर्गः ॥ ६४ ॥ सीताजीके हरणसे कातर हुए श्रीरामचन्द्रजी
सन्तापित हो संवर्तक प्रलयकालकी अग्निके समान लोकोंका नाश करनेको तैयार हुए ॥ १ ॥ प्रलयकालमें समस्त जगत् दग्ध करनेके अभिलाषी महादेवजी

संदधेधनुषिश्रीमान्रामःपरपुरंजयः ॥ युगांताग्निरिवक्रुद्धइदंवचनमब्रवीत् ॥ ७४ ॥ यथाजरायथामृत्युर्यथाकालोयथाविधिः ॥ नित्यंनप्रति
हन्यंतेसर्वभूतेषुलक्ष्मण॥ तथाहंक्रोधसंयुक्तोननिवार्योस्म्यसंशयम्॥ ७५ ॥ पुरेवमेचारुदतीमनिंदितांदिशंतिसीतांयदिवाद्यमैथिलीम्॥ सदे
वगंधर्वमनुष्यपन्नगंजगत्सशैलंपरिवर्तयाम्यहम् ॥ ७६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० अरण्यकांडे चतुःषष्टि
तमः सर्गः ॥ ६४ ॥ तप्यमानंतदारामंसीताहरणकर्शितम् ॥ लोकानामभवेयुक्तंसांवर्तकमिवानलम् ॥ १ ॥ वीक्षमाणंधनुःसज्यंनिःश्वसंतं
पुनःपुनः॥दग्धुकामंजगत्सर्वंयुगांतेचयथाहरम् ॥ २ ॥ अदृष्टपूर्वंसंक्रुद्धंदृष्ट्वारामंसलक्ष्मणः॥अब्रवीत्प्रांजलिर्वाक्यंमुखेनपरिशुष्यता ॥ ३ ॥
पुराभूत्वामृदुर्दांतःसर्वभूतहितेरतः नक्रोधवशमापन्नःप्रकृतिंहातुमर्हसि ॥ ४ ॥ चंद्रेलक्ष्मीःप्रभासूर्येगतिर्वायौभुविक्षमा ॥ एतच्चनियतंनि
त्यंत्वयिचानुत्तमंयशः ॥ ५ ॥ एकस्यनपाराधेनलोकान्हंतुंत्वमर्हसि ॥ ननुजानामिकस्यायंभग्नः सांग्रामिकोरथः ॥ ६ ॥

के समान वारंवार श्वास त्याग करते हुए प्रत्यंचायुक्त शरासनको श्रीरामचन्द्रजी देखने लगे॥ २ ॥ लक्ष्मणजी श्रीरामचन्द्रजीका अदृष्टपूर्व जो पहले कभी नहीं देखा
था, ऐसा क्रोध देखकर शुष्कमुख बना हाथ जोड उनसे बोले ॥ ३ ॥ आपपहलेसे मृदु; सर्व इन्द्रियोंको जीतनेवाले और सर्वभूतोंके हितकारी कार्य करनेमें
तैयार हैं सो इस समय क्रोधके वश होकर अपना स्वभाव छोडना आपको योग्य नहीं है ॥ ४ ॥ चन्द्रमामें श्री,वायु में गति; पृथ्वीमें क्षमा, सूर्यमें
दीप्ति, इन चारों में यह चार पदार्थ नित्य हैं और आपमें यश सहित यह चारों पदार्थ विद्यमान हैं॥ ५ ॥ एक जनके अपराधसे समस्त लोकको हनन
करना आपको उचित नहीं है, निश्चयही हम जानते हैं कि, यह जो रथ टूटा पडा है यह एकही जनकाहै बहुतों का नहीं ॥ ६ ॥

किन्तु यह जुआ युक्त और परिच्छेद सहित रथ किसका है और क्यों कर टूटा है इसको हम नहीं जानते, देखिये यह स्थान खुरियोंसे खुदखुदाय रहा है और रुधिरसे भीगनेके कारण अतिशय भयंकर हो रहा है ॥ ७ ॥ निश्चयही यहां पर संग्राम हुआ है और इन सब कारणोंसे यह भी बोध होता है कि एक रथीके सहित और किसी पशु का युद्ध हुआ है दो जनोंका युद्ध नहीं हुआ है ॥ ८ ॥ बडी भारी सेनाके चरणचिह्न यहां पर नहीं दृष्टि आते इस लिये एक जनके अपराधसे समस्त लोकोंको विनाश करना आपको उचित नहीं है ॥ ९ ॥ राजा लोग चराचर पर अतिशय शान्त और मृदुस्वभाववाले होते हैं, और अपराधानुसार दंड दिया करते हैं आप भी सर्वदा सब भूतोंके शरण्य और परम गति हैं ॥ १० ॥ हे रघुनन्दन ! संसारमें कौन पुरुष आपकी भार्या का वियोग आपसे अच्छा समझता है कारण कि नदी, समुद्र, पर्वत, देवता, गन्धर्व; दानव, सरित्, सागर ॥ ११ ॥ और शैल, कोई भी आपका

केनवाकस्यवहेतोःसंयुगःसपरिच्छदः ॥ खुरनेमिक्षतश्चायंसिक्तोरुधिरबिंदुभिः ॥७॥ देशोनिवृत्तसग्रामःसुघोरःपार्थिवात्मज ॥ एकस्यतुविम र्दोऽयंनद्वयोर्वदतांवर ॥८॥ नहिवृत्तंहिपश्यामिबलस्यमहतःपदम्॥नैकस्यतुकृतेलोकान्विनाशयितुमर्हसि॥९॥युक्तदंडाहिमृदवःप्रशांतावसुधा धिपाः ॥सदात्वंसर्वभूतानांशरण्यःपरमागतिः ॥ १० ॥ कोनुदारप्रणाशंतेसाधुमन्येतराघव ॥ सरितःसागरा शैलादेवगंधर्वदानवाः ॥ ११ ॥ नालंतेविप्रियंकर्तुंदीक्षितस्येवसाधवः॥येनराजन्हृतासीतातमन्वेषितुमर्हसि१२मद्दितीयोधनुष्पाणिःसहायैःपरमर्षिभिः॥समुद्रंवाविचेष्यामःपर्व तांश्चवनानिच॥१३॥गुहाश्चविविधाघोराःपद्मिन्योविविधास्तथा॥देवगंधर्वलोकांश्चविचेष्यामःसमाहिताः ॥ १४ ॥ यावन्नाधिगमिष्यामस्तवभा र्यापहारिणम्नचेत्साम्नाप्रदास्यंतिपत्नींतेत्रिदशेश्वराः॥कोशलेंद्रततःपश्चात्प्राप्तकालंकरिष्यसि॥१५॥शीलेनसाम्नाविनयेनसीतांनयेननप्राप्स्य सिचेन्नरेन्द्र॥ततःसमुत्सादयहेमपुंखैर्महेन्द्रवज्रप्रतिमैःशरौघैः॥ १६॥इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा०आ०च०सा० अरण्यकांडेपंचषष्टितमःसर्गः ॥६५॥

अप्रिय नहीं करते जैसे यजमानका अप्रिय साधुलोग नहीं कर सकते। हे राजन् ! जिसने सीताको हरण किया है इस समय उस जनका खोज करना आप का कर्त्तव्य हुआ है ॥ १२ ॥ आप हमारे साथ धनुष हाथमें लेकर चलिये और परमर्षिगणोंको सहायक बनाय समुद्र वन पर्वत ढूँढेंगे॥ १३ ॥ विविध प्रकारकी ताल तलैयां व गुफायें और देवता गन्धर्वोंके लोक समस्तही यत्न सहित आप ढूँढिये ॥ १४ ॥ जब तक कि आपकी स्त्रीके हरनेवालेको न पावेंगे, और इस प्रकार शान्तभावसे ढूंढनेपर भी इन्द्रादि देवगण यदि आपकी भार्याको न दें तब हे कौशलेन्द्र ! पीछेसे आप उनको यथायोग्य दंड दीजियेगा ॥१५॥ हे नरेन्द्र ! शीलतासे सामसे और विनय अवलम्बन करके भी यदि आप सीताको न पावें, तब आप इन्द्रके वज्र सदृश सुवर्णपंखवाले शरजालसे समस्त संसारको संहार कर डालियेगा ॥ १६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अरण्यकाण्डे भाषायां पंचषष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणके वाक्यसे क्रोध त्यागकर इसप्रकार शोकसंतप्त और महा मोहसे युक्त चेतना रहित होकर अनाथोंके समान विलाप करना आरम्भ किया ॥ १ ॥ लक्ष्मणजी उनके चरण छूकर एक मुहूर्तभरतक उनको समझाते बुझाते हुए कहने लगे ॥ २ ॥ कि राजा दशरथजीने अनेक तपस्या और बहु विधि धर्मानुष्ठान करके आपको प्राप्त किया था जिस प्रकार देवता लोगोंने अमृतको बडे २ उपायोंसे प्राप्त किया था ॥ ३ ॥ भरतजीसे जैसा जैसा सुना था उससे तो यही ज्ञात होता है कि राजा दशरथ आपहीके गुणोंमें बंधकर व आपकेही वियोगमें देव लोकको प्राप्त हुए हैं ॥ ४ ॥ हे काकुत्स्थ ! यदि आपही इस आई हुई विपद्को न झेलेंगे तो अल्पप्राण मनुष्य कौन सह सकेगा ? ॥ ५ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! आप अपने चित्तको सँभालिये । विपद् अग्निके

तंतथाशोकसंतप्तंविलपंतमनाथवत् ॥मोहेनमहतायुक्तंपरिद्यूनमचेतसम् ॥१॥ततःसौमित्रिराश्वास्यमुहूर्तादिवलक्ष्मणः॥ रामंसंबोधयामासच रणौचाभिपीडयन् ॥२॥ महतातपसाचापिमहताचापिकर्मणा॥राज्ञादशरथेनासील्लब्धोमृतमिवामरैः ॥३॥ तवचैवगुणैर्बद्धस्त्वद्वियोगान्महीप तिःराजादेवत्वमापन्नोभरतस्ययथाश्रुतम् ॥ ४ ॥ यदिदुःखमिदंप्राप्तंकाकुत्स्थनसहिष्यसे ॥ प्राकृतश्चाल्पसत्त्वश्चइतरःकःसहिष्यति ॥ ५ ॥ आश्वसिहिनरश्रेष्ठ प्राणिनःकस्यनापदः ॥ संस्पृशंत्यग्निवद्राजन्क्षणेनव्यपयांतिच ॥६॥ लोकस्वभावएवैषययातिर्नहुषात्मजः ॥ गतःशक्रे णसालोक्यमनयस्तंसमस्पृशत् ॥ ७ ॥ महर्षिर्योवसिष्ठस्तुयःपितुर्नःपुरोहितः ॥ अह्नापुत्रशतंजज्ञेतथैवास्यपुनर्हतम् ॥ ८ ॥ याचेयंजगतोमा तासर्वलोकनमस्कृता ॥ अस्याश्चचलनंभूमेर्दृश्यतेकोशलेश्वर ॥९॥ यौधर्मौजगतोनेत्रौयत्रसर्वंप्रतिष्ठितम् ॥ आदित्यचंद्रौग्रहणमभ्युपेतौमहा बलौ ॥ १० ॥ सुमहांत्यपिभूतानिदेवाश्चपुरुषर्षभ ॥ नदैवस्यप्रमुंचंतिसर्वभूतानिदेहिनः ॥ ११ ॥

समान सबही प्राणियोंको स्पर्श करती है किन्तु क्षण कालमेंही दूर चली जाती है ॥ ६ ॥ लोकका स्वभावही यह है देखिये नहुष पुत्र ययाति, इन्द्र पदवी प्राप्त करके भी अनीतिसे स्वर्गसे च्युत हुआ था ॥ ७ ॥ जो हमारे पिताजीके पुरोहित हैं, उन महर्षि वसिष्ठजीने एक दिनमें शत पुत्र उत्पन्न किये और एक दिनमें ही विश्वामित्रसे वह सब नष्ट हो गये ॥ ८ ॥ हे कौशलेश्वर ! जगन्माता, सर्व लोकके नमस्कार करने योग्य इस पृथ्वीका भी चलायमान होना पाया जाता है अर्थात् भूंकपादि दुःख इसको हुआ करते हैं ॥ ९ ॥ जो सूर्य चन्द्रमा जगत्के नेत्र और साक्षात् धर्मस्वरूप हैं, और जिनमें समस्त संसार टिका हुआ है उन महाबलवान् सूर्य चन्द्रमाका भी ग्रहण हो जाता है ॥ १० ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! इस प्रकारसे अति महत् भूत और देवतालोग भी जब दैवके वश है तब साधारण शरीरधारी प्राणियोंकी क्या गिनती है ? ॥ ११ ॥

अधिक क्या कहें इन्द्रादि देवताओंमें भी नीति और अनीति सुख दुःख सुना जाया करता है, इससे हे नरसिंह ! आपअब व्यथित न हूजिये ॥ १२ ॥ हे रघुनन्दन ! यदि जानकीजी हरी गई हों, वा मृतक होगई हों तो भी साधारण पुरुषोंके समान आप को शोक करना योग्य नहीं है ॥१३॥ हे वीर ! आपके समान सर्वदर्शी और हितदर्शी मनुष्यगण सचराचर बडी भारी विपद् पडने परभी शोक नहीं करते ॥१४॥ हे नर श्रेष्ठ ! आप भली भांति विचार करके यथार्थतासे शुभाशुभका विचार कीजिये । आपके समान महाप्राज्ञ पुरुषगण बुद्धिसे विचार करके शुभाशुभ भली भांतिसे जानलेते हैं ॥१५॥ जिनके गुण और दोष जबतक प्रगट दृष्टिमें नहीं आते, तबतक उन सब अध्रुव अर्थात् अस्थिर कर्मोंके अनुष्ठानसे कभी इष्ट फलकी प्राप्तिकी आशा नहीं होसकती और उनका जानना बिना क्रिया योगके नहीं होता ॥१६॥ हे वीर ! आपनेही प्रथम हमको अनेक बार इस प्रकारका उपदेश दिया है और आपको उपदेश देनेमें तो साक्षात् बृहस्पतिजी

शक्रादिष्वपिदेवेषुवर्तमानौनयानयौ ॥ श्रूयेतेनरशार्दूलनत्वंव्यथितुमर्हसि ॥ १२ ॥ मृतायामपिवैदेह्यांनष्टायामपिराघव ॥ शोचितुंनार्हसेवीरयथाऽन्यःप्राकृतस्तथा ॥१३॥ त्वद्विधानहिशोचंतिसततंसर्वदर्शनाः ॥ सुमहत्स्वपिकृच्छ्रेषुरामानिर्विण्णदर्शनाः ॥ १४ ॥ तत्त्वतोहिनरश्रेष्ठबुद्ध्यासमनुचिंतय ॥ बुद्ध्यायुक्तामहाप्राज्ञाविजानंतिशुभाशुभे ॥ १५ ॥ अदृष्टगुणदोषाणामध्रुवाणांतुकर्मणाम् ॥ नांतरेणक्रियांतेषांफलमिष्टंचवर्तते ॥ १६ ॥ मामेवंहिपुरावीरत्वमेवबहुशोक्तवान् ॥ अनुशिष्याद्धिकोनुत्वामपिसाक्षाद्बृहस्पतिः ॥१७॥ बुद्धिश्चतेमहाप्राज्ञदेवैरपिदुरन्वया ॥ शोकेनाभिप्रसुप्तंतेज्ञानंसंबोधयाम्यहम् ॥ १८ ॥ दिव्यंचमानुषंचैवमात्मनश्चपराक्रमम् ॥ इक्ष्वकुवृषभावेक्ष्ययतस्वद्विषतांवधे ॥ किंतेसर्वविनाशेनकृतेनपुरुषर्षभ ॥ तमेवतुरिपुंपापंविज्ञायोद्धर्तुमर्हसि ॥ २० ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० अरण्यकांडे षट्षष्टितमः सर्गः ॥ ६६ ॥ पूर्वजोऽप्युक्तवाक्यस्तुलक्ष्मणेनसुभाषितम् ॥ सारग्राहीमहासारंप्रतिजग्राहराघवः ॥ १ ॥

भी समर्थ नहीं ॥१७॥ हे महाप्राज्ञ ! आपकी बुद्धिको देवता लोगभी नहीं पहुँच सकते अब आपकी वह बुद्धि शोकसे इस प्रकार ढक रही है, किइस समय हम उसको जगा रहे हैं ॥१८॥ हे इक्ष्वाकुप्रवर ! आप अपना दिव्य और मानवी पराक्रम विचार शत्रुसंहार करनेमें यत्न कीजिये ॥ १९ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! आपको समस्त लोकोंके संहार करनेका क्या प्रयोजन है? आप उसी अपने शत्रुको जानकर उसे विध्वंस कर सीताको बचाइये ॥२०॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदि० अरण्यकाण्डे भाषायां षट्षष्टितमः सर्गः ॥ ६६ ॥ लक्ष्मणजीके इस प्रकार अतिशय सारगर्भ सुन्दर वचन कहने पर सारके ग्रहण करनेवाले महाबाहु रामचन्द्रजीने उनको ग्रहण किया ॥ १ ॥

उसके पीछे वह अपना बढा हुआ क्रोध शांतकर विचित्र धनुष धारण करके लक्ष्मणजीसे कहने लगे ॥२॥ हे वत्स! हम इस समय कहां जांय क्या करें और किस उपायसे जानकीको प्राप्त होवें? सो तुम इसका विचार करो ॥३॥ तब लक्ष्मणजी अति संतापित रामचन्द्रजीसे बोले कि इस जनस्थानको ही ढूंढना और खोज करना आपको उचित है ॥ ४ ॥ बहुत सारे राक्षसों करके समाकीर्ण और विविध भांतिके लता वृक्षोंसे युक्त इस जनस्थानमें अनेक गिरि गुहा कंदरा ॥५॥ पत्थरोंकी चट्टानें और अनेक जातिवाले मृगगणोंसे पूर्ण गुफायें किन्नर गन्धर्व गणोंके फिरनेके स्थान और भवन जहां बहुत सारे हैं ॥६॥ सो आप हमारे सहित सावधान होकर इन सब जगहको ढूंढ लीजिये, आपके समान बुद्धि सम्पन्न महात्मा पुरुषोत्तम ॥ ७ ॥ आपदके समय कभी नहीं विचलते, जैसे

सनिगृह्यमहाबाहुःप्रवृद्धंरोषमात्मनः ॥ अवष्टभ्यधनुश्चित्रंरामोलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ २ ॥ किंकरिष्यावहेवत्सक्ववागच्छावलक्ष्मण ॥ केनोपायेन पश्यावःसीतामिहविचिंतय ॥ ३ ॥ तंतथापरितापार्तंलक्ष्मणोवाक्यमब्रवीत् ॥ इदमेवजनस्थानंत्वमन्वेषितुमर्हसि ॥४॥ राक्षसैर्बहुभिःकीर्णं नानाद्रुमलतायुतम् ॥ संतीहगिरिदुर्गाणिनिर्दराःकंदराणिच ॥५॥ गुहाश्वविविधाघोरानानामृगगणाकुलाः ॥ आवासाःकिन्नराणांचगंधर्वभवनानिच ॥६॥ तानियुक्तोमयासार्धंसमन्वेषितुमर्हसि ॥ त्वद्विधाबुद्धिसंपन्नामहात्मानोनरर्षभाः ॥ ७ ॥ आपत्सुनप्रकंपंतेवायुवेगैरिवाचलाः ॥ इत्युक्तस्तद्वनंसर्वंविचचारसलक्ष्मणः ॥८॥ क्रुद्धोरामःशरंघोरंसंधायधनुषिक्षुरम् ॥ ततःपर्वतकूटाभंमहाभागंद्विजोत्तमम् ॥ ९ ॥ ददर्शपतितं भूमौक्षतजार्द्रंजटायुषम् ॥ तंदृष्ट्वागिरिशृंगाभरामोलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ १० ॥ अनेनसीतावैदेहीभक्षितानात्रसंशयः ॥ गृध्ररूपमिदंव्यक्तंरक्षोभ्रमतिकाननम् ॥ ११ ॥ भक्षयित्वाविशालाक्षीमास्तेसीतांयथासुखम् ॥ एनंवधिष्येदीप्ताग्रैःशरैर्घोरैरजिह्मगैः ॥ १२ ॥

वायुके वेगसे पर्वत नहीं कांपते, यह सुन श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीके साथ समस्त वन खोजा ॥ ८ ॥ उस समय श्रीरामचन्द्रजीने बडा कोपकरके पैनी धार वाला भयंकर बाणभी धनुषपर चढाया था, वहां जाते २ पर्वतके समान आकारवाले बडे भाग्यवान् पक्षिश्रेष्ठ ॥ ९ ॥ जटायुको पृथ्वीपर पडा और रुधिरसे लिपटा हुआ देखा उसको पर्वतकी शृंगकी आकारवाला देख श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीसे बोले ॥ १० ॥ इसमें कुछ संशय नहीं है कि इस गृध्ररूपी वनचर निशाचरनेही जानकीको भक्षणकर लिया है, बस यही ठीक २ जान पडता है यह राक्षस गृध्र बना बनमें घूमता है ॥११॥ यह राक्षस उन विशालाक्षी सीताको भक्षण करके यथासुखसे विश्राम कर रहा है। इस कारण हम सीधे चलनेवाले अग्निके समान प्रकाशमान भयंकर बाणोंसे इसका संहार करेंगे ॥१२॥

श्रीरामचन्द्रजी यह कहकर क्रोधित हो समुद्रपर्यन्त पृथ्वीको कँपाते हुये धनुषपर तीक्ष्ण बाण चढाय उसके देखनेको चले ॥ १३ ॥ उसके पीछे पक्षिराज जटायु सफेन रुधिर उगलता हुआ अतिशय कातर वचनोंसे उन दशरथकुमार श्रीरामचन्द्रजीसे बोला ॥ १४ ॥ आयुष्मान् तुम औषधीके समान जिसको इस महावनमें खोजते हो, वह देवीजानकी और हमारे प्राण दोनोंही रावणने हर लिये हैं ॥१५॥ हे रघुनंदन ! महाबलवान् दशानन आपके और लक्ष्मणजीके आश्रममें न रहने पर सूनेसे जानकीको हर ले जाता हुआ मैंने देखा है ॥ १६ ॥ उस समय हमने सीताजीको छुटानेके लिये सन्मुख हो युद्ध करके उसके रथ और छत्रको तोड डाला तब रावण पृथ्वीमें गिरा ॥१७॥ यह जो धनुष और बाण टूटे हुये पडे हैं यह उसकेही हैं और हे रामचन्द्रजी !

इत्युक्त्वाऽभ्यपतद्द्रष्टुंसंधायधनुषिक्षुरम् ॥ क्रुद्धोरामःसमुद्रांतांचालयन्निवमेदिनीम् ॥१३॥ तंदीनदीनयावाचासफेनरुधिरंवमन् ॥ अभ्यभाषतपक्षीसरामंदशरथात्मजम् ॥ १४ ॥ यामोषधीमिवायुष्मन्नन्वेषसिमहावने ॥ सादेवीममचप्राणारावणेनोभयंहृतम् ॥ १५ ॥ त्वयाविरहितादेवीलक्ष्मणेनचराघव ॥ ह्रियमाणामयादृष्टारावणेनबलीयसा ॥१६॥ सीतामभ्यवपन्नोऽहंरावणश्चरणेप्रभो ॥ विध्वंसितरथच्छत्रःपतितोधरणीतले ॥ १७ ॥ एतदस्यधनुर्भग्नमेतेचास्यशरास्तथा ॥ अयमस्यरणेरामभग्नःसांग्रामिकोरथः ॥ १८ ॥ अयंतुसारथिस्तस्यमत्पक्षनिहतोभुवि ॥ परिश्रांतस्यमेपक्षौछित्त्वाखड्गेनरावणः ॥ १९ ॥ सीतामादायवैदेहीमुत्पपातविहायसम् ॥ रक्षसानिहतंपूर्वंमांनहंतुंत्वमर्हसि ॥२०॥ रामस्तस्यतुविज्ञायसीतासक्तांप्रियांकथाम् ॥ गृध्रराजंपरिष्वज्यपरित्यज्यमहद्धनुः ॥२१॥ निपपातावशोभूमौरुरोदसहलक्ष्मणः॥ द्विगुणीकृततापार्तोरामोधीरतरोऽपिसन् ॥ २२ ॥ एकमेकायनेकृच्छ्रेनिःश्वसंतंमुहुर्मुहुः ॥ समीक्ष्यदुःखितोरामः सौमित्रिमिदमब्रवीत् ॥ २३ ॥

यह उसकाही संग्राममें काम देनेवाला रथ है जो टूटा हुआ पडा है ॥१८॥ और यह सारथीभी उसीका है जो हमारे पंखोंके प्रहारसे मरकर पृथ्वीमें पडा है बूढे होनेके कारण जब हम लड़ते २ थक गये तब राक्षसनाथ रावणने खड्गसे हमारेपंख काट डाले ॥ १९ ॥ और वह सीताजीको लेकर आकाशमार्गमें चला गया, प्रथम तो हम रावण करके मारेही गये हैं सो इस समय हमारा वध करना आपको उचित नहीं है ॥ २० ॥ श्रीरामचन्द्रजी गिद्धके मुखसे सीताजीके विषयक प्रिय वचन सुनतेही महाधनुषको त्याग करके आलिंगन करते हुए ॥ २१ ॥ और शोकसे अवश हो पृथ्वीमें गिर कर लक्ष्मणजीके सहित रोदन करने लगे । यद्यपि श्रीरामचन्द्रजी महावीर थे तथापि दूना संताप पाकर बहुत व्याकुल होगये ॥२२॥ उस काल जटायुको एकांतमें पडे वरंवार

ऊँधी श्वास लेते हुए देख शोकसे आतुर हो श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीसे कहा ॥ २३ ॥ हम राज्यसे भ्रष्ट हुए; वनमें वास हुआ सीताजी हरी गईं और जटा युकी मृत्यु होगई हमारे खोटे कर्मसे उपस्थित हुई यह विपत्ति अग्निकोभी भस्म कर सकती है ॥ २४ ॥ हम अपने भाग्यकी क्या बात कहें ! हम इस दुःखके संतापसे शांति पानेके लिए तलहीन तटहीन महासागरभी उतरें ! तो वह सरित्स्वामी समुद्रभी निश्चयही हमारे दुर्भाग्यके प्रभावसे एक बारही सूख जायगा ॥ २५ ॥ सचराचर लोकोंमें हमसा अधिक मंदभाग्य और कोई नहीं है क्योंकि हमने इतना बडा दुःखका जाल पाया है ॥ २६ ॥ यह महाबली गिद्धराज हमारे पिताके प्रिय सखा हैं, सो यहभी हमारे भाग्यके फेरसे घायल होकर पृथ्वीपर शयन कररहे हैं ❀ ॥ २७ ॥ रघुनन्दन श्रीरामचन्द्रजी इस प्रकारके

राज्यंभ्रष्टंवनेवासःसीतानष्टामृतोद्विजः ॥ ईदृशीयंममालक्ष्मीर्दहेदपिहिपावकम् ॥ २४ ॥ संपूर्णमपिचेदद्यप्रतरेयंमहोदधिम् ॥ सोपिनूनंममा लक्ष्म्याविशुष्येत्सरितांपतिः ॥ २५ ॥ नास्त्यभाग्यतरोलोकेमत्तोऽस्मिन्सचराचरे ॥ येनेयंमहतीप्राप्तामयाव्यसनवागुरा ॥२६॥ अयंपितुर्व यस्योमेगृध्रराजोमहाबलः ॥ शेतेविनिहतोभूमौममभाग्यविपर्ययात् ॥ २७ ॥ इत्येवमुक्त्वाबहुशोराघवःसहलक्ष्मणः ॥ जटायुषंचपस्पर्शपितृ स्नेहंनिदर्शयन् ॥ २८ ॥ निकृत्तपक्षंरुधिरावसिक्तंतंगृध्रराजंपरिगृह्यराघवः ॥ क्वमैथिलीप्राणसमागतेतिविमुच्यवाचंनिपपातभूमौ ॥ २९ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० च० सा० अरण्यकांडे सप्तषष्टितमः सर्गः ॥ ६७ ॥ रामःप्रेक्ष्यतुतंगृध्रंभुविरौद्रेणपातितम् ॥ सौमित्रिंमित्रसंपन्न मिदंवचनमब्रवीत् ॥ १ ॥ ममायंनूनमर्थेषुयतमानोविहंगमः ॥ राक्षसेनहतःसंख्येप्राणांस्त्यजतिमत्कृते ॥२॥ अतिखिन्नःशरीरेऽस्मिन्प्राणो लक्ष्मणविद्यते ॥ तथास्वरविहीनोऽयंविक्लवंसमुदीक्षते ॥ ३ ॥

अनेक वचन कहते लक्ष्मणजीके सहित पिताके समान स्नेह दिखाते हुए जटायुको स्पर्श करते हुए ॥ २८ ॥ फिर श्री रामचन्द्रजी पंख कटे रुधिरमें डूबे गृद्ध राज जटायुको चिपटकर "हमारी प्राणप्रिया मैथिली कहां गई है" यह कहकर पृथ्वीमें गिर पडे ॥ २९॥ इत्यार्षे श्री० वा० आ० अरण्यकांडे भाषाटीकायां सप्तषष्टितमः सर्गः ॥ ६७ ॥ श्रीरामचन्द्रजी भयंकर राक्षसके प्रहारसे पृथ्वी पर पडे हुए जटायुको देखकर परम बन्धु सुमित्रापुत्रसे कहते हुए ॥ १ ॥ निश्चयही यह पक्षी हमारे लियेयत्न करके हमारेही लिए राक्षससे मारे जाकर अब प्राण त्याग करते हैं ॥ २ ॥ हे लक्ष्मण ! इनका बोल

❀ सवैया–दीन मलीन अधीन है अंग विहग परयो क्षिति खिन्न दुखारी ॥ राघव दीन दयालु कृपालु को देख दुखी करुणा भइभारी ॥ गीधको गोदमें राख कृपानिधि नैन सरोजनमें भरि वारी ॥ बारहि बार सुधारत पंख जटायुकी धूरि जटानसों झारी ॥१॥ गीधको गोदमें राख कृपानिधि देखत नैननसों जल डारें । टूक हो जाते हैं सीताबियाके जोकी सनेहकथाको विचारें । छोड़ चले केहि हेतु हमें हम सोह तिहारी है संग सिधारें ॥ यों कहि राम भरे जलनैन जटायुकी धूरिज टानसों झारें ॥२॥

धीमा पड गया और दृष्टि हीन हो आई है और प्राणभी अतिमात्र व्याकुलहोकर कुछेक इनकी देहमें टिके रहे हैं ॥ ३ ॥ हे जटायु ! तुम्हारा कल्याणहो, यदिफिर तुममें बोलनेकी शक्ति हो तो सीता हरणका वृत्तांत और तुम कैसे मारे गये, यह सब कह दीजिये ॥ ४ ॥ और रावणने किस निमित्त आर्या जानकीजीको हरण किया और हमने उनका क्या अपराध किया था जो वह हमारी प्राणप्यारीको हरण करके लेगया ॥५॥ हे विहंगवर ! हरणके समय जानकीका वह पूर्ण शशिसदृश मनोरम मुखमंलड कैसा हो गया था ? और उन्होंने उस समय क्या कहा था ॥ ६ ॥ उस राक्षसराज रावणका वीर्य रूप और कर्म किस प्रकारका है ? हे तात ! उसका निवास कहांपर है ? जो हम पूछते हैं सो सब बता दीजिये ॥ ७ ॥ तब धर्मात्मा जटायु लडखडाती वाणीसे विलाप करते व पूछते हुए श्रीरामचन्द्रजीसे यह वचन बोला॥ ८ ॥ राक्षसोंके राजा दुरात्मा रावणने वायु और दुर्दिन (जब कि आकाशमें बादल

जटायोयदिशक्नोषिवाक्यंव्याहरितुंपुन ॥ सीतामाख्याहिभद्रंतेवधमाख्याहिचात्मनः ॥ ४ ॥ किंनिमित्तोजहारार्यारावणस्तस्यकिंमया ॥ अपराधंतुयंदृष्ट्वारावणेनहृताप्रिया ॥ ५ ॥कथंतच्चंद्रसंकाशंमुखमासीन्मनोहरम् ॥ सीतयाकानिचोक्तानितस्मिन्कालेद्विजोत्तम ॥ ६ ॥ कथं वीर्यःकथंरूपःकिंकर्मासचराक्षसः ॥ क्वचास्यभवनंतातब्रूहिमेपरिपृच्छतः ॥ ७ ॥ समुद्वीक्ष्यसधर्मात्माविलपंतमनाथवत् ॥ वाचाविक्लवया राममिदंवचनमब्रवीत् ॥ ८॥ साहृताराक्षसेंद्रेणरावणेनदुरात्मना ॥ मायामास्थायविपुलांवातदुर्दिनसकुलाम् ॥ ९ ॥ परिक्लांतस्यमेतातप क्षौछित्त्वानिशाचरः ॥ सीतामादायवैदेहींप्रयातोदक्षिणामुखः ॥ १० ॥ उपरुध्यंतिमेप्राणादृष्टिर्भ्रमतिराघव ॥ पश्यामिवृक्षान्सौवर्णानुशीर कृतमूर्धजान् ॥ ११ ॥ येनयातिमुहूर्तेनसीतामादायरावणः विप्रनष्टंधनंक्षिप्रंतत्स्वामीप्रतिपद्यते ॥ १२ ॥ विंदोनाममुहूर्तोऽसौनचकाकुत्स्थ सोऽबुधत् ॥ झषवद्वडिशंगृह्यक्षिप्रमेवविनश्यति ॥ १३ ॥

आ जाते हैं) कारिणी महामायाका आश्रय करके सीताका हरण किया है ॥ ९ ॥ हे तात ! जब हम लडते २ बहुत थक गये तब निशाचर हमारे दोनों पंख काट सीताको ग्रहण करके दक्षिण दिशाको चला गया ॥ १० ॥ हे रघुनन्दन ! अब हमारे प्राण रुकते हैं और दृष्टिभी भ्रमित होती है और हमको सब वृक्ष सुवर्णके दिखाई देते हैं, मानो सब वृक्ष अपने शिरके केशोंमें खश और फूलोंकी माला पहर रहे हैं ॥ ११ ॥ रावण जिस मुहूर्तमें धनका स्वामी अपना बहुत दिनका नष्ट (खोया हुआ) धनभी शीघ्र प्राप्त करलेता है, अर्थात् इस मुहूर्तकी खोई हुई चीज शीघ्र मिल जाती है ॥ १२ ॥ इस मुहूर्तका नाम विंद है, इस मुहूर्तकी खोई हुई वस्तु शीघ्र मिल जाती है सो रावण इसको नहीं जानता है, हे राम ! इस कारण वंशीका मांस ग्रहण करनेसेकाली

मछलीके समान शीघ्र उसका विनाश होगा ॥ १३ ॥ इस मुहूर्तमें खोई वस्तुही नहीं मिलती किन्तुशत्रुका नाशभी होता है, तुमभी जानकीजीकेप्राप्त होनेके विषयमें और कुछ संदेह न करो रावणको संग्राममें मारकर शीघ्रही सीताके सहित बिहारकरनेको तुम समर्थ होगे ॥ १४ ॥ उसके पीछे रामचन्द्रजीके साथ संभाषण करनेवाले सावधान चित्त मरनेके निकट गिद्धराज जटायुके मुखसे मांसयुक्त रुधिर बहने लगा ॥ १५ ॥ उस समय जटायुने रावण विश्रवाका पुत्र और कुबेरका भाई है केवल इतनाही कहकर दुर्लभ प्राण त्याग करदिये ॥ १६ ॥ श्रीरामचंद्रजी हाथ जोडे बोलिये ! बोलिये! इस प्रकारसे कहने लगे उसी समय उनके सामनेही जटायुके प्राण शरीरको त्याग करके आकाशको चले गये ॥ १७ ॥ उस समय गिद्धराज चरण युगल फैलाय अपना शरीर फटफटाय भूमिमें शिर

नचत्वयाव्यथाकार्याजनकस्यसुतांप्रति ॥ वैदेह्यारंस्यसेक्षिप्रंहत्वातंरणमूर्धनि ॥ १४ ॥ असंमूढस्यगृध्रस्यरामप्रत्युनुभाषतः॥ आस्यात्सुस्राव रुधिरंम्रियमाणस्यसामिषम् ॥ १५ ॥पुत्रोविश्रवसःसाक्षाद्भ्रातावैश्रवणस्यच॥इत्युक्त्वादुर्लभान्प्राणान्मुमोचपतगेश्वरः ॥ १६॥ ब्रूहिब्रूहीति रामस्यब्रुवाणस्यकृतांजलेः॥त्यक्त्वाशरीरंगृध्रस्यप्राणाजग्मुर्विहायसम् ॥ १७ ॥ सनिक्षिप्यशिरोभूमौप्रसार्यचरणौतथा ॥ विक्षिप्यचशरीरंस्वंपपातधरणीतले ॥ १८ ॥ तंगृध्रंप्रेक्ष्यताम्राक्षंगतासुमचलोपमम् ॥ रामःसुबहुभिर्दुःखैर्दीनःसौमित्रिमब्रवीत्॥ १९ ॥ बहूनिरक्षसांवासे वर्षाणिवसतासुखम् ॥ अनेनदंडकारण्येविशीर्णमिहपक्षिणा ॥ २० ॥ अनेकवार्षिकोयस्तुचिरकालसमुत्थितः सोऽयमद्यहतःशेतेकालोहि दुरतिक्रमः ॥ २१ ॥ पश्यलक्ष्मणगृध्रोऽयमुपकारीहतश्चमे ॥ सीतामभ्यवपन्नोहिरावणेनबलीयसा ॥ २२ ॥ गृध्रराज्यंपरित्यज्यपितृपैतामहं महत्॥ममहेतोरयंप्राणान्मुमोचपतगेश्वरः ॥ २३ ॥ सर्वत्रखलुदृश्यंतेसाधवोधर्मचारिणः॥शूराःशरण्याःसौमित्रेतिर्यग्योनिगतेष्वपि॥ २४ ॥

गिराय पृथ्वीमें गिरपड़े ॥ १८ ॥ श्रीरामचन्द्रजी पर्वतसमान बडे आकारवाले ताम्रवत् रक्तनेत्र गृध्रको मरा हुआ देख कर दुःखित हो लक्ष्मणजीसे बो ॥ १९ ॥ राक्षसोंके वसनेयोग्य दंडकारण्यमें बहुत वर्षोंसे यह जटायुजी रहते थे, सो आज उन्होंने देह त्याग करदिया ॥२०॥ इस प्रकार यह अनेक वर्षत जीवित थे, वह आज निहत होकर पृथ्वीमें शयन कर रहे हैं, हम समझे कि, कालको उल्लंघन करना सहज नहीं है॥२१॥ हे लक्ष्मण ! देखो ये गृध्र हमार कैसा उपकारी है, सीताजीका उद्धार करनेमें तैयार होकर बलीरावण दुरात्मा करके यह मारे गये हैं ॥२२॥ और हमारे निमित्त पितृपितामह प्राप्त महत्राज्य परित्याग करके इनगृध्रराजने प्राण छोडे हैं ॥२३॥ हम जानते हैं कि, सभीजातियोंमें शूरता युक्तशरण देनेवाले धर्माचरण करनेवालेसाधु देखे जाते हैं ॥२४॥

सो मनुष्यादिके सिवाय पक्षि आदि तिर्यग्योनिमें भी ऐसे लोग देखे जाते हैं हे सौम्य ! हमारेही लिये इस गृध्रने प्राण छोडे हैं इसलिये इसकी मृत्युसे सीताके हरणसेभी अधिक हमको दुःख हुआ है ॥२५॥ महायशस्वी श्रीमान् राजा दशरथजी जिस प्रकारसे हमारे पूजनीय और माननीय हैं परोपकार करने और पिताजीका सखा होनेसे यह विहंगम श्रेष्ठभी वैसे ही हैं ॥२६॥ हे सुमित्रानंदन ! तुम काष्ठ ले आओ हम अग्नि उत्पन्न करके हमारे लिये प्राण दिये हुए इन गृध्रराजका दाह करेंगे ॥२७॥ हे लक्ष्मण ! यह जाटायु पक्षियोंके राजा, और घोर कर्म करनेवाले राक्षसके हाथसे मारे गये हैं, हम इनको चितापर रखकर दाह करेंगे ॥ २८ ॥ यज्ञशील और आहिताग्नियोंकी जो गति होती है समरसे पराङ्मुख न होनेवाले और भूमिदान करनेवाले पुरुषोंकी जो गति.होती है ॥ २९ ॥

सीताहरणजंदुःखंनमेसौम्यतथागतम् ॥ यथाविनाशोगृध्रस्यमत्कृतेचपरंतप ॥२५॥ राजादशरथःश्रीमान्यथाममममहायशाः ॥ पूजनीयश्चमान्यश्चतथाऽयंपतगेश्वरः ॥२६॥ सौमित्रेहरकाष्ठानिनिर्मंथिष्यामिपावकम् ॥ गृध्रराजंदिधक्ष्यामिमत्कृतेनिधनंगतम् ॥ २७ ॥ नाथंपतगलोकस्यचितिमारोपयाम्यहम् ॥ इमंधक्ष्यामिसौमित्रेहतंरौद्रेणरक्षसा ॥ २८ ॥यागतिर्यज्ञशीलानामाहिताग्नेश्चयागतिः ॥ अपरावर्तिनांयाचयाचभूमिप्रदायिनाम् ॥२९॥ मयात्वंममनुज्ञातोगच्छलोकाननुत्तमान् ॥ गृध्रराजमहासत्त्वसंस्कृतश्चमयाव्रज ॥ ३० ॥ एवमुक्त्वाचितांदीप्तामारोप्यपतगेश्वरम् ॥ ददाहरामोधर्मात्मास्वबंधुमिवदुःखितः ॥३१॥ रामोऽपिसहसौमित्रिर्वनंयात्वासवीर्यवान् ॥ स्थूलान्हत्वामहारोहीननुतस्तारतंद्विजम् ॥३२ ॥ रोहिमांसानिचोद्धृत्यपेशीकृत्वामहायशाः ॥ शकुनायददौरामोरम्येहरितशाद्वले ॥ ३३ ॥ यत्तत्प्रेतस्यमर्त्यस्यकथयंतिद्विजातयः ॥ तत्स्वर्गगमनंक्षिप्रंतस्यरामोजजापह ॥ ३४ ॥

हे महाबलवान् गृध्रराज ! तुम हम करके संस्कृत और हमारीही आज्ञासे उन सब श्रेष्ठ गतियोंको प्राप्त होवो ॥ ३० ॥ धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी इस प्रकारसे यह कहकर दुःखित हो अपने बंधुके समान पक्षिराज जटायुको जलती हुई चितामें चढाकर दाह करते हुए ॥३१॥ फिर वह महायशस्वी वीर्यवान् श्रीरामचन्द्रजी सुमित्रानन्दन लक्ष्मणजीके साथ वनमें गये और बडे आकारवाले मृगोंका वध कर उनका मांस ले फिर वहां आये जहां जटायुको दाह किया था । वहां आ जटायुको पिंड देनेके लिये तृण लाये ॥ ३२ ॥ और उस समस्त मांसके टुकडे२कर डाले और उनके पिंड बना उनको हरीघासपर रख जटायुके अर्थ प्रदान किये ॥ ३३ ॥ ब्राह्मण लोग प्रेतपुरुषकी स्वर्गप्राप्ति होनेके लिये जिन मंत्रोंका जप किया करते हैं श्रीरामचन्द्रजी जटायुको शीघ्र स्वर्ग प्राप्त करानेके लिये

उन्हीं समस्त मंत्रोंका जप करनेलगे ॥३४॥ उसके पीछे राजकुमार श्रीरामचन्द्रजी व लक्ष्मणजी दोनोंजन गोदावरीनदीपर जाकर जटायुकेलिये तर्पण करते हुए ॥ ३५ ॥ वह दोनों जन स्नान करके शास्त्रमें कही हुई विधिके अनुसार जल देकर पिंड व तिलाञ्जलि देते हुए ॥३६॥ गृध्रराज जटायु दुष्कर कार्य करते हुए युद्धमें मारे जाकर और महर्षिसदृश श्रीरामचन्द्रजीके हाथसे संस्कृत हो परमपवित्रपुण्यगतिको प्राप्त हुए ॥ ३७ ॥ तब राम और लक्ष्मण दोनों जन जलादि क्रिया समाप्त करके पक्षिश्रेष्ठ जटायुके प्रति पितृ बुद्धि स्थापित कर वहांसे प्रस्थान करते हुए और सीताजीके खोजनेमें मन लगा कर सुरश्रेष्ठ विष्णु और इन्द्रजीके समान वनमें प्रवेश करते हुए ॥ ३८ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अरण्यकाण्डे भाषायामष्टषष्टितमः सर्गः ॥ ६८ ॥ ॥ ॥ ॥

ततोगोदावरींगत्वानदींनरवरात्मजौ ॥ उदकंचक्रतुस्तस्मैगृध्रराजायतावुभौ॥३५॥शास्त्रदृष्टेनविधिनाजलंगृध्रायराघवौ ॥ स्नात्वातौगृध्रराजायउदकंचक्रतुस्तदा॥३६॥सगृध्रराजःकृतवान्यशस्करंसुदुष्करंकर्मरणेनिपातितः॥महर्षिकल्पेनचसंस्कृतस्तदाजगामपुण्यांगतिमात्मनःशुभाम् ॥ ३७ ॥ कृतोदकौतावपिपक्षिसत्तमेस्थिरांचबुद्धिंप्रणिधायजग्मतुः ॥प्रवेश्यसीताधिगमेततोमनोवनंसुरेन्द्राविवविष्णुवासवौ ॥३८॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्येच०सा०अरण्यकांडे ॥ अष्टषष्टितमः सर्गः ॥६८॥ कृत्वैवमुदकंतस्मैप्रस्थितौराघवौतदा ॥ अवेक्षंतौवनेसीतांजग्मतुःपश्चिमांदिशम् ॥१॥ तांदिशंदक्षिणांगत्वाशरचापासिधारिणौ ॥ अविप्रहतमैक्ष्वाकौपंथानंप्रतिपेदतुः ॥ २ ॥ गुल्मैर्वृक्षैश्चबहुभिर्लताभिश्चप्रवेष्टितम् ॥ आवृतंसर्वतोदुर्गंगहनघोरदर्शनम् ॥३॥ व्यतिक्रम्यतुवेगेनगृहीत्वादक्षिणांदिशम् ॥ सुभीमंतन्महारण्यंव्यतियातौमहाबलौ ॥४॥ ततःपरंजनस्थानात्त्रिक्रोशंगम्यराघवौ ॥ क्रौंचारण्यंविविशतुर्गहनंतौमहौजसौ ॥ ५ ॥ नानामेघघनप्रख्यंप्रहृष्टमिवसर्वतः ॥ नानावर्णैःशुभैपुष्पैर्मृगपक्षिगणैर्युतम् ॥ ६ ॥

जब पक्षिराज जटायुकी जलक्रिया होचुकी तब श्रीरामचन्द्र व लक्ष्मणजी दोनों वहांसे चलकर वनमें सीताजीको ढूँढते भालते हुए पश्चिमदिशाकी ओर चले ॥ १ ॥ और धनुष बाण खड्ग हाथमें लेकर दोनों भ्राता जिस मार्गमें तबतक कोई मनुष्य नहीं गया था उसी पश्चिम दक्षिणकोणवाले मार्गको चले ॥ २ ॥ उसमार्गमें अनेक प्रकारके झाड वृक्ष वल्ली लता आदि लगनेके कारण वह चारोंओरसे घिर रहाथा, इसी कारणसे वह अतिभयानक व दुर्गम बोध होता था ॥ ३ ॥ उस मार्गमें होकर फिर वह महाबलवान् दोनों रघुवीर दक्षिण दिशा की ओर बडे वेगसे महावनमें हो करके चले ॥ ४ ॥ इस प्रकारसे जाते २ जनस्थानसे तीन कोश दूर क्रौञ्च नामक घने वनमें पहुँचे ॥ ५ ॥ यह वन अतिशय दुर्गम देखनेमें बहुत सारे मेघोंके समान महा घना था, अनेक

प्रकारके सुन्दर फूलोंके खिले रहनेसे मानों वह सब भाँतिसे हर्ष पूरित था और मृग व पक्षी भी उसमें बहुत थे ॥६॥ दोनों भ्राता सीताजीके हरणसे दुःखित हो और उनके दर्शनकी कामनासे वह वन ढूँढते २ शान्तिकेवश स्थान २ पर खडे हो जाने लगे ॥७॥ फिर वह पूर्व की ओर तीन कोश चलकर क्रौंचारण्यको नांघकर मातंगमुनिके आश्रमको देखते हुए ॥ ८ ॥ उस आश्रम का वन महा भयंकर था और भयंकर स्वभाववाले अनेक जातिके मृग और पक्षी वहां बहुत थे और अनेक प्रकारके वृक्षोंसे घिरे रहनेके कारण वह वन बडा घना था ॥ ९ ॥ फिर उस वनमें श्रीरामचन्द्रजी व लक्ष्मणजीने पातालके समान गहरी एक गुफा देखी, इस गुफामें नित्यही अंधकार रहता था ॥ १० ॥ श्रीरामचन्द्रजी व लक्ष्मणजीने उसके निकट पहुँच कर उसमें भयंकर आकार वाली और विकृत वदन एक राक्षसीको देखा ॥ ११ ॥ राक्षसी देखने में अति भयंकर थी, खाल कडी थी थोडे पराक्रमियोंको बडा भय देनेवाली भयंकर क्रूरता युक्त लम्बा पेट

दिदृक्षमाणौवैदेहींतद्वनतौविचिन्वतुः ॥ तत्रतत्रावतिष्ठंतौसीताहरणदुःखितौ ॥७॥ ततःपूर्वेणतौगत्वनत्रिक्रोशंभ्रातरौतदा ॥ क्रौंचारण्यमतिक्रम्यमतंगाश्रममंतरे ॥८॥ दृष्ट्वातुतद्वनंघोरंबहुभीममृगद्विजम् ॥ नानावृक्षसमाकीर्णंसर्वंगहनपादपम् ॥९॥ ददृशातेगिरौतत्रदरींदशरथात्मजौ ॥ तानालसमगंभीरांतमसानित्यसंवृताम् ॥ १० ॥ आसाद्यचनरव्याघ्रौदर्यास्तस्याविदूरतः ॥ ददर्शतुर्महारूपांराक्षसींविकृताननाम् ॥ ११ ॥ भयदामल्पसत्त्वानांबीभत्सांरौद्रदर्शनाम् ॥ लंबोदरींतीक्ष्णदंष्ट्रांकरालींपरुषत्वचम् ॥१२॥ भक्षयतींमृगान्भीमान्विकटांमुक्तमूर्धजाम् ॥ अवैक्षतांतुतौतत्रभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ १३ ॥ सासमासाद्यतौवीरौव्रजंतंभ्रातुरग्रतः ॥ एहिरंस्यावहेत्युक्त्वासमालंभतलक्ष्मणम् ॥१४॥ उवाचचैनंवचनंसौमित्रिमुपगुह्यच ॥ अहंत्वयोमुखीनामलाभस्तेत्वमसिप्रियः ॥ १५ ॥ नाथपर्वतदुर्गेषुनदीनांपुलिनेषुच ॥ आयुश्चिरमिदंवीरत्वंमयासहरंस्यसे ॥ १६ ॥ एवमुक्तस्तुकुपितखड्गमुद्धृत्यलक्ष्मणः ॥ कर्णनासस्तनंतस्यानिचकर्ताऽरिसूदनः ॥ १७ ॥

तीक्ष्ण डाढें बडी विकराल ॥ १२ ॥ स्वभाव अति भयंकर था, बडे २ मृगोंको वह भक्षण करती, रूप बडा भयावना शिरके बाल खुले, ऐसी उस राक्षसीको दोनों भाइयोंने देखा ॥१३॥ उसके पीछे वह निशाचरी रामचन्द्रजीके आगे खडे हुए लक्ष्मणजीके निकट आकर कहने लगी कि "आओ हम तुमसे विहार करें" ऐसा कहकर उसने लक्ष्मणजीको ग्रहण किया ॥१४॥ और राक्षसी उनको चिपटा कर कहनेलगी कि, हे नाथ ! हमारा अयोमुखी नाम है, अब तुमको परम लाभ हुआ और तुमही हमारे प्यारे हुये ॥१५॥ हे नाथ ! हमारे सहित सब जीवन तक नदियोंके किनारों पर और नाना प्रकार के पर्वतोंपर तुम विहार किया करना ॥ १६ ॥ शत्रुओंका नाश करनेवाले लक्ष्मणजीने इस बातसे क्रोधित होकर खड्ग उठाकर उस राक्षसीके नाक कान व स्तन काटडाले ॥ १७ ॥

जब उसके कान नाक व स्तन काटडालेगये तब वह घोर दर्शनवाली राक्षसी विकट शब्दसे चिल्ला कर शब्द करती हुई जहाँसे आई थी वहां को दौडी ॥१८॥ जब वह वहांसे भाग गई महा तेजवान् शत्रुओंके मारनेवाले श्रीराम लक्ष्मण दोनों भाई वेग सहित चलते हुए एक गहन वनमें पहुँचे ॥१९॥ वहां पहुँचकर सत्यवक्ता, शीलवान् पवित्र स्वभाव और परम तेजस्वी लक्ष्मणजी हाथ जोडकर तेजसे प्रदीप्तमान श्रीरामचन्द्रजीसे बोले ॥ २० ॥ हे भ्रातः! हमारा बायां हाथ जल्दी २ फडकता है और मन मानो बहुत उकसाता है और प्रायः दुर्लक्षण भी बहुत दृष्टि आते हैं ॥ २१ ॥ इससे हे आर्य ! आप सज करके तैयार हो रहे हैं; और हमारी बात सुनें यह सब अपशकुन स्पष्टही कहे देते हैं फिर, भय आयाही चाहता है ॥२२॥ परन्तु विजय हमारी अवश्य होगी। क्योंकि यह अतिभयानक वञ्चुलक पक्षी मानों हमारी युद्ध विजय कहता हुआ शब्द कर रहा है ॥ २३ ॥ फिर जब महा तेजस्वी श्रीराम लक्ष्मणजी उस समस्त बनको ढूँढ रहे

कर्णनासेनिकृत्तेतुविस्वरंविननादसा ॥ यथागतंप्रदुद्राव:राक्षसीघोरदर्शना ॥ १८ ॥ तस्यांगतायांगहनंव्रजंतौवनमोजसा ॥ आसेदतुरमित्रघ्नौ भ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ १९ ॥ लक्ष्मणस्तुमहातेजाःसत्यवाञ्छीलवाञ्छुचिः ॥ अब्रवीत्प्रांजलिर्वाक्यंभ्रातरंदीप्ततेजसम् ॥२०॥ स्पंदतेमेदृढं बाहुरुद्विग्नमिवमेमनः ॥ प्रायशश्चाप्यनिष्टानिनिमित्तान्युपलक्षये ॥२१॥ तस्मात्सज्जीभवार्यत्वंकुरुष्ववचनंमम ॥ ममैवहिनिमित्तानिसद्यःशंसं तिसम्भ्रमम् ॥ २२ ॥ एषवंचुलकोनामपक्षीपरमदारुणः ॥ आवयोर्विजयंयुद्धेशंसन्निवविनर्दति ॥२३॥ तयोरन्वेषतोरेवंसर्वंतद्वनमोजसा ॥ संजज्ञेविपुलःशब्दःप्रभंजन्निवतद्वनम् ॥ २४ ॥ संवेष्टितमिवात्यर्थंगहनंमातरिश्वना ॥ वनस्यतस्यशब्दोऽभूद्वनमापूरयन्निव ॥ २५ ॥ तंशब्दंकांक्षमाणस्तुरामःखड्गासहानुजः ॥ ददर्शसुमहाकायंराक्षसंविपुलोरसम् ॥ २६ ॥ आसेदतुश्चतद्रक्षस्तावुभौप्रमुखेस्थितम् ॥ विवृद्धमशिरोग्रीवंकबंधमुदरेमुखम् ॥ २७ ॥ रोमभिर्निशितैस्तीक्ष्णैर्महागिरिमिवोच्छ्रितम् ॥ नीलमेघनिभंरौद्रंमेघस्तानितनिःस्वनम् ॥ २८ ॥

थे कि, इतनेहीमें एक विपुल शब्द मानो उस वनको विध्वंस करता हुआ होने लगा ॥ २४ ॥ उस वनमें एकाएकी प्रचण्ड पवन चलने लगा और इस वायु के चलनेसे वृक्ष परस्पर टकराने लगे। उसमेंसे एक शब्द समस्त वनको शब्दायमान करता हुआ उत्पन्न हुआ ॥ २५ ॥ श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजी के सहित खड्ग धारण करके "यह शब्द कहांसे हुआ" यह जाननेके लिये अभिलाषी होकर इधर उधर देखते थे कि, चौडी छातीवाला बृहदाकार एक राक्षस सहसा देखपडा ॥ २६ ॥ उसका पेट बहुत बडा व नाम उसका कबन्ध था वह श्रीरामचन्द्रजी के आगे आकर खडा हो गया, उसका मस्तक और गर्दन नहीं था शरीर बहुत बडा था, मुख पेटमें था ॥ २७ ॥ रुवें भालेके समान तीखे और सीधे आकार, उसका महापर्वत के समान ऊँचा था, स्वर मेघोंके

गर्जनेके तुल्य, रंग नीले मेघके समान, व स्वभाव और आकार उसका बडा भयंकर था ॥ २८ ॥ और उसका एक नेत्र माथेमें था वह अग्निकी ज्वालाके समान प्रदीप्त और बडी२धूमिली पलकें उस पर थीं और वह नेत्र बडा भी बहुत था ॥ २९ ॥ और उसका दूसरा नेत्र छातीमें था वह नेत्रअतिशय भयंकर और तीक्ष्ण दिखाई देता था, उसका मुखभी बडा भारी था और उसके मुखमें बडे दातोंकीपंक्तियां थीं वह उस मुखसे मानो लीलेही लेता था होठ चाट रहा था ॥३०॥ और वह अपनीचार २ कोशकी लंबी दोनों बाहोंसे पकड २ ऋक्ष, सिंह, मृगादिकोंको भक्षण करता चला आता था ॥ ३१ ॥ वह अपनी दोनों बाहोंसे विविध प्रकारके मृग, पक्षी, ऋक्ष और मृगयूथोंको पकडता और अपने मुखमें छोडताथा ॥ ३२ ॥ जिस मार्गसे होकर रामलक्ष्मणजीका जाना था, वह उसीको रोके हुए खडा था, तब राम लक्ष्मणजीने घूमकरएक कोश पर जाकर देखा तो ॥ ३३ ॥ अति घोरदर्शन दारुण भयंकराकार बडे

अग्निज्वालानिकाशेनललाटस्थेनदीप्यता ॥ महापक्ष्मेणपिंगेनविपुलेनायतेनच ॥ २९ ॥ एकेनोरसिघोरेणनयनेनसुदर्शिना ॥महादंष्ट्रोपपन्नंतलेलिहानंमहामुखम् ॥३०॥ भक्ष्यंतंमहाघोरानृक्षसिंहमृगद्विजान् ॥ घोरौभुजौविकुर्वाणमुभौयोजनमायतौ ॥३१॥ कराभ्यांविविधान्गृह्य ऋक्षान्पक्षिगणान्मृगान् ॥ आकर्षंतंविकर्षंतमनेकान्मृगयूथपान् ॥३२॥ स्थितमावृत्यपंथानंतयोर्भ्रात्रोःप्रपन्नयोः ॥ अथतंसमतिक्रम्यक्रोशमात्रंददर्शतुः ॥३३॥ महांतंदारुणंभीमंकबंधंभुजसंवृतम् ॥ कबंधमिवसंस्थानादतिघोरप्रदर्शनम् ॥३४॥ समहाबाहुरत्यर्थंप्रसार्यविपुलौभुजौ ॥ जग्राहसहितावेषराघवौपीडयन्बलात् ॥ ३५ ॥ खड्गिनौदृढधन्वानौतिग्मतेजौमहाभुजौ ॥ भ्रातरौविवशंप्राप्तौकृष्यमाणौमहाबलौ ॥ ३६ ॥ तत्रधैर्याच्चशूरस्तुराघवोनैवविव्यथे ॥ बाल्यादनाश्रमाच्चैवलक्ष्मणस्त्वभिविव्यथे ॥३७॥ उवाचचविषण्णःसन्राघवंराघवानुजः ॥ पश्यमांविवशंवीरराक्षसस्यवशंगतम् ॥ ३८ ॥

शरीरवाला कबन्ध दिखलाई पडा वह अपनी दोनों भुजाओंसे जीवजन्तुओंको सब प्रकारसे पकडता था और उसके शरीरकी गठन देखनेसे ठीकही वह कबन्ध ज्ञात होता था ॥३४॥ फिर महाबलवान् कबन्धने दोनोंबडी २ बांहें फैलाकर राम और लक्ष्मण दोनोंकोही बलसे पीडन करके दोनोंको एक साथहीं ग्रहण करलिया ॥३५॥ दृढ धनुष और खड्ग धारण किये हुए तीव्र तेजवान् महाबलवान् महाबाहु वह दोनों भ्राता कबन्धसे खैंचे जाकर अवश हो गये ॥३६॥ श्री रामचन्द्रजी तो स्वभावसे धैर्यवान् और शूरता सम्पन्न थे, वह तो कुछ भी व्याकुल न हुये, परन्तु लक्ष्मणजी बालक औरअनाथ होनेके कारण एक बारही महा व्याकुल हो गये ॥३७॥ और शोक करके राघवनंदन बडे भ्राता श्रीरामचन्द्रजीसे बोले, कि हे वीर ! देखो हम विवश होकर राक्षसके वश हुये हैं ॥ ३८ ॥

इस कारण एक मात्र हमकोही देकर छूट जाइये और हमें इस राक्षसके आगे बलिकी भांति देकर यथा सुखसे आप भाग जाइये ॥ ३९ ॥ काकुत्स्थ राम ! हम निश्चयही समझते हैं कि, आपशीघ्रहीवैदेहीको प्राप्त होंगे और पिता पितामहका राज्यभी शीघ्रही आप करेंगे ॥४०॥ अब इस समय यही प्रार्थना है कि आप राज्यपद पर प्रतिष्ठित होकर सदाही हमको स्मरण करते रहा कीजियेगा जब लक्ष्मणजीने इस प्रकार कहा तब रामचंद्रजी उनसे बोले ॥ ४१ ॥ कि हे वीर ! वृथा भीत न हूजिये तुम सरीखे पुरुष कभी व्यथित नहीं होते हैं, दोनों भाइयोंसे इसी समय वह क्रूर ॥ ४२ ॥ महाबाहु दानवश्रेष्ठ कबन्ध कहने लगा कि, तुम्हारे कंधे बैलोंके समान ऊँचे हैं और हाथमें तुमने बडे२ धनुष और खड्ग धारण किये हैं सो बताओ कि, तुम कौन हो ? ॥४३॥ तुम लोग भाग्यसे इस भयंकर

मयैकेनतुनिर्युक्तःपरिमुच्यस्वराघव ॥ मांहिभूतबलिंदत्त्वापलायस्वयथासुखम् ॥ ३९ ॥ अधिगंतासिवैदेहीमचिरेणेतिमेमतिः ॥ प्रतिलभ्यच काकुत्स्थपितृपैतामहींमहीम् ॥ ४० ॥ तत्रमांरामराज्यस्थः स्मर्तुमर्हसिसर्वदा ॥ लक्ष्मणेनैवमुक्तस्तुरामःसौमित्रिमब्रवीत् ॥ ४१ ॥ मास्मत्रासं वृथावीरनहित्वादृग्विषीदति ॥ एतस्मिन्नन्तरेक्रूरोभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ ४२ ॥ तावुवाचमहाबाहुःकबंधोदानवोत्तमः ॥ कौयुवांवृषभस्कंधौमहा खड्गधनुर्धरौ ॥ ४३ ॥ घोरंदेशमिमंप्राप्तौदैवेनममचाक्षुषौ ॥ वदतंकार्यमिहवांकिमर्थंचागतौयुवाम् ॥४४॥ इमदेशमनुप्राप्तौक्षुधार्तस्येहतिष्ठतः ॥ सबाणचापखड्गौचतीक्ष्णशृंगाविवर्षभौ ॥ ४५ ॥ मांतूर्णमनुसंप्राप्तौदुर्लभंजीवितंहिवाम् ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाकबंधस्यदुरात्मनः ॥ ४६ ॥ उवाचलक्ष्मणंरामोमुखेनपरिशुष्यता ॥ कृच्छ्रात्कृच्छ्रतरंप्राप्यदारुणंसत्यविक्रम ॥ ४७ ॥ व्यसनंजीवितांतायप्राप्तमप्राप्यतांप्रियाम् ॥ कालस्यसुमहद्वीर्यंसर्वभूतेषुलक्ष्मण ॥ ४८ ॥

देशमेंआकर नेत्रोंके सन्मुख पडे हो तुम्हारा यहां पर क्या कार्य है और तुम किस कारणसे यहां पर आयेहो सो कहो ॥४४॥ हम भूखे होकर यहां पर टिक रहे हैं सो धनुष बाण और खड्ग धारण किये हुए तेज सींगवाले बैलके समान यहां पर हमारे मुखमें आय पडे हो ॥४५॥ परन्तु अब हमारे मुखमें पड तुम्हारा जीवित रहना दुर्लभ है दुरात्मा कबन्धके यह वचन सुनकर ॥ ४६ ॥ श्रीरामचन्द्रजी वदन सुखाकर लक्ष्मणजीसे बोले कि, हे सत्यविक्रम ! प्रिया सीताजीके हरणसे विषम विपद आपडी है, सो इससे निश्चयही प्राण संहार होनेकी संभावना है उसके ऊपर फिर वारंवार यह कष्टके ऊपर कष्ट पड रहे हैं ॥४७॥ अब तो यह महादुःख हमको प्राप्त हुआ है, अब प्रियाके पानेकी भी आशा त्याग करें । हे लक्ष्मण ! सब प्राणियोंमें कालका बडा वीर्य दिखलाई देता है ॥ ४८ ॥

हे नरश्रेष्ठ ! लक्ष्मण ! देखो हम तुमदोनों कालकेही प्रभावसे कैसे दुःखमें पडे हैं; प्राणियोंको दुःख देनेमें कालकोकुछभी डर नहीं है ॥ ४९ ॥ कालके वश हो बडे शूरवीर अस्त्र शस्त्रोंके जाननेवाले पुरुषभी रेतेसे बनाये हुए पुलके समान संग्राममें खस जाते हैं ॥ ५० ॥ सत्य और अनतिक्रमणीय, दृढविक्रमसम्पन्न, प्रतापवान् महायशस्वी दशरथनंदन बुद्धिमान् श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीको देख ऐसा कहते २ ज्ञानके प्रभावसेअपने चित्तको स्थिर किया ॥ ५१ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आदि० अरण्यकाण्डे भाषायामेकोनसप्ततितमः सर्गः ॥ ६९ ॥ श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मण इन दोनों भाइयोंको अपनी बाँहोंकी फांसीमें बँधाहुआ वहां खडा देख कबन्ध उनसे बोला ॥ १ ॥ अरे क्षत्रियश्रेष्ठ ! दोनों जन ! हम भूखे हुए हैं, विधाताने तुम दोनोंको चेतनारहित करके हमारे खानेको भेज दिया है इस लिये हमको देख अब तुम क्या राह देख रहे हो ? तैयार होवो ॥२॥ उसके ऐसे वचन सुनकर लक्ष्मणजी दुःखित व विक्रमप्रकाश

त्वांचमांचनरव्याघ्र व्यसनैःपश्यमोहितौ ॥ नहिभारोऽस्तिदैवस्यसर्वभूतेषुलक्ष्मण ॥४९॥ शूराश्चबलवंतश्चकृतास्त्राश्चरणाजिरे ॥ कालाभिपन्नाःसीदंति यथावालुकसेतवः ॥ ५० ॥ इतिब्रुवाणोदृढसत्यविक्रमो महायशादाशरथिःप्रतापवान् ॥ अवेक्ष्यसौमित्रिमुदग्रविक्रमंस्थिरांतदास्वांमतिमात्मनाऽकरोत् ॥ ५१ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणेवाल्मीकीयेआदिकाव्येच० सा० अरण्यकांडे एकोनसप्ततितमः सर्गः ॥ ६९ ॥ तौतुतत्रस्थितौदृष्ट्वाभ्रातरौराम लक्ष्मणौ ॥ बाहुपाशपरिक्षिप्तौकबंधोवाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥ तिष्ठतः किंनुमांदृष्ट्वाक्षुधार्तंक्षत्रियर्षभौ ॥ आहारार्थंतुसंदिष्टौदैवेनहतचे तनौ ॥ २ ॥ तच्छ्रुत्वालक्ष्मणोवाक्यंप्राप्तकालंहितंतदा ॥ उवाचार्तिंसमापन्नो विक्रमेकृतनिश्चयः ॥ ३ ॥ त्वांचमांचपुरातूर्णमादत्तेराक्षसाधमः ॥ तस्मादसिभ्यामस्याशु बाहूछिंदावहेगुरू ॥ ४ ॥ भीषणोऽयंमहाकायोराक्षसोभुजविक्रमः ॥ लोकंह्यतिजितंकृत्वाह्यावांहंतुमिहेच्छति ॥ ५ ॥ निश्चेष्टानांवधोराजन्कुत्सितोजगतीपतेः ॥ क्रतुमध्योपनीतानांपशूनामिवराघव ॥ ६ ॥ एतत्संजल्पितंश्रुत्वातयोःक्रुद्धस्तुराक्षसः ॥ विदार्यास्यंततोरौद्रंतौभक्षयितुमारभत् ॥ ७ ॥

करनेमें कृतनिश्चय होकर उस कालके अनुसार वाक्य श्रीरामचन्द्रजीसे बोले ॥ ३ ॥ कि; यह राक्षसाधम हम दोनोंही जनको पकडे हुए हैं इसकारण आइये हम अभी दो खड्गोंसे इसके बडे भारी दोनों हाथ काट डालें ॥ ४ ॥ यह बडे आकारवाला भयंकर राक्षस केवल अपनीभुजाओंकीही सहायतासे सब लोकोंको सर्वप्रकारसे जीत अब हम तुमको मारनेके लिये तैयार हुआ है ॥ ५ ॥ परन्तु हे राजन् ! यज्ञमें आये हुए छागोंकी समान चेष्टा रहित होकर मरना क्षत्रियोंके लिये बहुतही निन्दाकी बात है ॥ ६ ॥ श्रीराम लक्ष्मणजीकी ऐसी वार्त्ता सुन निशाचर कबन्ध क्रोधित होकर मुँहबाय उनको भक्षण करनेके लिये तैयार हुआ ॥ ७ ॥

तब देश और कालके जाननेवाले श्रीराम और लक्ष्मण दोनों भ्राताओंने खड्ग ग्रहण करके उसकी दोनों भुजायें कन्धेपरसे काट डालीं ॥ ८ ॥ चतुर श्रीरामचन्द्रजीने उसकी दाहिनी भुजा और वीर्यवान् लक्ष्मणजीने उसकी बांई भुजा शीघ्रतासे काट डाली ॥ ९ ॥ जब बाहें काट डाली गईं तब भयंकर शब्द करता हुआ महाबाहु कबंध मेघके समान घोर शब्द करके गगनमंडल और दशों दिशाओंको अपने शब्दसे भर देता हुआ गिर पडा ॥ १० ॥ फिर अपनी दोनों भुजाओंको कटी हुई देख कर दानव कबंध रुधिरसे डूबाहुआ दोनों भाइयोंसे बोला कि, तुम कौन हो ? ॥ ११ ॥ जब कबन्धने इस प्रकारसे पूछा तब महाबलवान् शुभ लक्षणयुक्त काकुत्स्थ लक्ष्मणजी कबंधसे रामचन्द्रजीका परिचय देते हुये बोले ॥१२॥ यह इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुए हैं और श्रीराम नामसे यह लोकमें विख्यात हैं और हम इनके छोटे भाई हैं हमारा नाम लक्ष्मण है ॥१३॥ सौतेली जननी कैकेयी करके इनकी राज्यप्राप्ति रोकी जाकर

ततस्तौदेशकालज्ञौखड्गाभ्यामेवराघवौ॥अच्छिंदतांसुसंहृष्टौबाहूतस्यांसदेशयोः॥८॥ दक्षिणोदक्षिणंबाहुमसक्तमसिनाततः ॥ चिच्छेदरामो वेगेनसव्यंवीरस्तुलक्ष्मणः ॥ ९ ॥ सपपातमहाबाहुश्छिन्नबाहुर्महास्वनः ॥ खंचगांचदिशश्चैवनादयञ्जलदोयथा ॥१०॥ सनिकृत्तौभुजौदृष्ट्वा शोणितौघपरिप्लुतः ॥ दीनःपप्रच्छतौवीरौकौयुवामितिदानवः॥११॥इतितस्यब्रुवाणस्यलक्ष्मणःशुभलक्षणः॥शशंसतस्यकाकुत्स्थंकबंधस्य महाबलः ॥१२॥ अयमिक्ष्वाकुदायादोरामोनाजमनैःश्रुतः॥तस्यैवावरजंविद्धिभ्रातरंमांचलक्ष्मणम्॥१३॥ मात्राप्रतिहतेराज्येरामःप्रव्राजितो वनम् ॥ मयासहचरत्येषभार्ययाचमहद्वनम् ॥१४॥ अस्यदेवप्रभावस्यवसतोविजनेवने॥ रक्षसापहृताभार्यायामिच्छंताविहागतौ ॥ १५ ॥ त्वंतुकोवाकिमर्थंवाकबंधसदृशोवन ॥ आस्येनोरसिदीप्तेनभग्नजंघोविचेष्टसे ॥ १६ ॥ एवमुक्तःकबंधस्तुलक्ष्मणेनोत्तरंवचः ॥ उवाचवचनंप्रीत स्तदिंद्रवचनंस्मरन्॥१७॥ स्वागतंवांनरव्याघ्रौदिष्ट्यापश्यामिवामहम्॥ दिष्ट्याचेमौनिकृत्तौमेयुवाभ्यांबाहुबंधनौ ॥ १८ ॥

सर्वत्यागी करा यह वनको पठाये सो यह हमारे और अपनी भार्याके साथ बनमें विचरण करते थे ॥ १४ ॥ कि वनमें वास करनेके समय इन देवतुल्य प्रतापशाली श्रीरामचन्द्रजीकी भार्याहरी गई हैं सो उनको ही ढूँढते २ हम यहांपर आये हैं॥ १५ ॥ और तुम कौन हो ? जो कबन्धके समान वनमें घूमते हो ? तुम्हारी जांघ टूटी हुई है और अतिशय दीप्ति युक्त वदनमंडल छातीमें लगा हुआ हैं ॥ १६ ॥ जब लक्ष्मणजीने ऐसा कहा तब इन्द्रके वचनका स्मरण करता हुआ कबन्ध प्रसन्न होकर बोला ॥ १७ ॥ कि आप लोग दोनोंही पुरुषोंमें श्रेष्ठ हैं । आप अच्छी तरहसे तो आये ? आज भाग्यसेही हमने आप लोगोंको देखा है और आपने जो हमारे बन्धनरूप हाथ काट डाले सो यहभी हमारे बडे सौभाग्यकी बात है इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ १८ ॥

जिस भाँतिसे हमारा इस विरूपताका रूप था, व जिस ऊधमसे हम इस कुरूपताको प्राप्त हुए सो सब ज्योंका त्यों कहते हैं आप श्रवण करे ॥ १९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्वा० वा० आदि० अरण्यकांडे भाषायां सप्ततितमः सर्गः ॥ ७० ॥ हे महाबाहु श्रीरामचन्द्रजी ! पूर्वकालमें हमारा रूप अत्यन्त सुन्दर अचिंतनीय ऐश्वर्य महाबल व पराक्रमयुक्त और तीनों लोकोंमें विख्यात था ॥ १ ॥ और सूर्य चन्द्रमा व इन्द्रके शरीरके समान हमाराही रूपथा, सो ऐसा रूप धारण कर हम तीनों लोकोंको डरपाने लगे ॥ २ ॥ हम घूम २ कर वनवासी ऋषि लोगोंको भयभीत करते थे एक समय जाते २ हमने स्थूलशिरा नामक महर्षिको कोपित कराया ॥ ३ ॥ वे महर्षिजी विविधभांतिके वनके फूल फलादि इकट्ठे कर रहे थे कि, हमने अपने रूपके गर्वसे उनको धिक्कारा और क्रोधित कराया

विरूपंयच्चमेरूपंप्राप्तंह्यविनयाद्यथा ॥ तन्मेशृणुनरव्याघ्रतत्त्वतःशंसतस्तव ॥ १९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मी० आदिकाव्येच० सा० अरण्यकांडे सप्ततितमः सर्गः ॥ ७० ॥ पुरामममहाबाहोमहाबलपराक्रमम् ॥ रूपमासीन्ममाचिंत्यंत्रिषुलोकेषुविश्रुतम् ॥ १ ॥ यथासूर्यस्यसोमस्यशक्रस्यचयथावपुः ॥ सोऽहंरूपमिदंकृत्वालोकवित्रासनंमहत् ॥ २ ॥ ऋषीन्वनगतात्रामत्रासयामिततस्ततः ॥ ततःस्थूलशिरानाममहर्षिः कोपितोमया ॥ ३ ॥ सचिन्वन्विविधंवन्यंरूपेणानेनधर्षितः ॥ तेनाहमुक्तःप्रेक्ष्यैवघोरशापाभिधायिना ॥ ४ ॥ एतदेवनृशंसंतेरूपमस्तुविगर्हितम् ॥ समयायाचितःक्रुद्धःशापस्यांतोभवेदिति ॥ ५ ॥ अभिशापकृतस्येतितेनेदंभाषितंवचः ॥ यदाछित्त्वाभुजौरामस्त्वांदहेद्विजनेवने ॥ ६ ॥ तदात्वंप्राप्स्यसेरूपंस्वमेवविपुलंशुभम् ॥ श्रियाविराजितंपुत्रंदनोस्त्वंविद्धिलक्ष्मण ॥ ७ ॥ इंद्रशापादिदंरूपंप्राप्तमेवंरणाजिरे ॥ अहंहितपसोग्रेणपितामहमतोषयम् ॥ ८ ॥ दीर्घमायुःसमेप्रादात्ततोमांविभ्रमोऽस्पृशत् ॥ दीर्घमायुर्मयाप्राप्तंकिंमांशक्रःकरिष्यति ॥ ९ ॥

तब उन्होंने हमारी ओर देख अति घोर शाप दिया ॥ ४ ॥ कि जाओ मूर्ख ! तुम्हारा रूपभी हमाराहीसा कुरूप हो जायगा, अब हमने क्रोधयुक्त हो उनको शाप देते हुए देखा तो शापके उद्धारके लिये प्रार्थना की, कि इसका निवारण कब होगा ॥ ५ ॥ तब शापके अन्त होनेके लिये उन्होंने कहा कि, जिस समय श्रीरामचन्द्रजी तुम्हारे हाथ काट डालेंगे और विजन वनमें तुमको फूँक देंगे, ॥ ६ ॥ बस उसी समय तुम अपना सुविपुल और मनोहर रूप प्राप्त कर लोगे, सो हे लक्ष्मण ! हम श्रीमान् दनुके पुत्र हैं ॥ ७ ॥ संग्राममें इन्द्रजीके शापसे यह कबंधकासा रूप हमने पाया है उसका ठीक२वृतान्त यह है कि आगे हमने अत्युग्र तप करके ब्रह्माजीको प्रसन्न किया ॥ ८ ॥ तब उन्होंने हमको दीर्घायु प्रदान की उसके पीछे हमारे

चित्तमें भ्रम हुआ और जिससे हमने गर्वित होकर विचारा कि, इन्द्र हमारा क्या कर सकते हैं क्योंकि अब तो हमने दीर्घायु पाली है ॥ ९ ॥ ऐसी बुद्धि स्थिर हो संग्राममें हमने इन्द्रको ललकारा तब उन्होंने अपना सौ धारका वज्र हमारे ऊपर छोडा जिसके लगनेसे ॥ १० ॥ मस्तक कनपटी आदि सब अंग हमारे शरीरके भीतर पैठ गये । उसके पीछे हमने अपनी मौत चाही भी परन्तु उन्होंने हमें यमपुरीको न भेजा ॥ ११ ॥ वरन् केवल उन्होंने इतना ही कहा कि, जाओ पितामह ब्रह्माजीका वचन सत्य होवे और तुम बहुत दिनोंतक जीवित रहो तब हमने उनसे कहा कि आपका वज्र लगनेसे हम शिर कनपटी मुख आदि अंगोंसे रहित हो गये फिर भला हम किस प्रकारके विना कुछ खायेपिये दीर्घकालतक जीवन धारण करनेमें समर्थ होंगे ॥ १२ ॥ इस बातको सुन कर इन्द्रजीने कहा कि, बहुत अच्छा अब तेरी बाहैं एक योजन लम्बी होजायँगी और दीर्घकालतक जीवित भी रहोगे ॥ १३ ॥ यह कह कर उन्होंने

इत्येवंबुद्धिमास्थायरणेशक्रमधर्षयम् ॥ तस्यबाहुप्रमुक्तेनवज्रेणशतपर्वणा ॥१०॥ सक्थिनीचशिरश्चैवशरीरेसंप्रवशितम्॥समयायाच्यमानः सन्नानयद्यमसादनम् ॥ ११ ॥ पितामहवचःसत्यंतदस्त्वितिममाब्रवीत्॥अनाहारःकथंशक्तोभग्नसक्थिशिरोमुखः॥ १२ ॥वज्रिणाभिहतःका लंसुदीर्घमपिर्जीवितुम् ॥सएवमुक्तःशक्रोमेबाहूयोजनमायतौ ॥१३॥ तदाचास्यंचमेकुक्षौतीक्ष्णदंष्ट्रमकल्पयत् ॥ सोऽहंभुजाभ्यांदीर्घाभ्यां संक्षिप्यास्मिन्वनेचरान् ॥ १४ ॥सिंहद्वीपिमृगव्याघ्रान्भक्षयामिसमंततः ॥ सतुमामब्रवीदिंद्रोयदारामःसलक्ष्मणः॥ १५ ॥ छेत्स्यतेसमरेबा हूतदास्वर्गंगमिष्यसि ॥ अनेनवपुषाताततवनेऽस्मिन्राजसत्तम॥ १६॥ यद्यत्पश्यामिसर्वस्यग्रहणंसाधुरोचये ॥ अवश्यंग्रहणंरामोमन्येऽहंसमुपै ष्यति ॥ १७॥ इमांबुद्धिंपुरस्कृत्यदेहन्यासकृतश्रमः ॥ सत्वंरामोसिभद्रंतेनाहमन्येनराघव ॥ १८ ॥शक्योहंतुंयथातत्त्वमेवमुक्तंमहर्षिणा ॥ अहंहिमतिसाचिव्यंकरिष्यामिनरर्षभ ॥ १९ ॥

हमारे पेटमें बडे २ दांत सहित मुखभी बना दिया तबसे हम अपने बडे दोनों हाथ फैलाकर वनचरोंको पकड २ मुखमें डाल लेते हैं॥१४॥ उनमें सिंह व्याघ्र ऋक्ष आदि जो मिलते उनको पकड२कर हम भक्षण किया करते थे, इन्द्रजीने फिर यह भी कहाथा कि, जब श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी ॥१५॥ समरमें तुम्हारे दोनों हाथ काटेंगे तब तुम स्वर्गको जाओगे । तबसे हे राजसत्तम ! हम इसी शरीरसे इस वनमें ॥ १६ ॥ जिस २ को देख लेते हैं उस २को ग्रहण कर लेते हैं व यहभी हमको निश्चय था कि, इन्द्रके वचनानुसार कोई न कोई अवश्य हमको मिलता रहेगा ॥१७॥ सदा अपना ऐसाही बिचार रखते हैं कुछ विशेष श्रमभी नहीं करते थे, सो इस समय हमने सत्य २जाना कि, श्रीरामचन्द्रजी आपहीहैं क्योंकि और कोई हमको नहीं मारसकता॥१८॥ क्योंकि महर्षिजीने जो

कुछ कहा सो सत्यही हुआ है इस कारण हे रामचन्द्रजी ! और तो हमसे कुछ नहीं हो सकता परन्तु हेनरश्रेष्ठ ! बुद्धिद्वारा आपकी कुछ सहायता कर सकेंगे ॥ १९ ॥ अर्थात् जब आप हमको अग्निमें जलादेंगे तब हम आपको एक मित्र बतावेंगे, जब इस प्रकारसे उस दनुके पुत्रने महात्मा धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजीसे कहा तो ॥ २० ॥ लक्ष्मणजीके सामने उससे श्रीरामचन्द्रजी बोले कि, रावण करके हमारी यशस्विनी भार्या सीताजी हरी गई हैं ॥ २१ ॥ हम उस समय भ्राताके सहित जनस्थानसे सुखपूर्वक कहीं पर चले गये थे, तब वह उनको हरण करके ले गया था हम राक्षस रावणका केवल नाममात्र जानते हैं परन्तु उनका रूप ॥ २२ निवास व प्रभाव कुछभी नहीं जानते केवल शोकसे आर्त हुए अनाथके समान इसी भांतिसे वन २ में घूपते फिरते हैं ॥ २३ ॥ सो तुम हमारे ऊपर उपकार करके हमारे ऊपर दया करो सो बताओ और हाथियोंके दांतोंसे टूटे हुए सूखे काठ बटोर कर तुमको ॥ २४ ॥ एक गढा खोद हे वीर !

मित्रंचैवोपदेक्ष्यामियुवाभ्यांसंस्कृतोग्निना ॥ एवमुक्तस्तुधर्मात्मादनुनातेनराघवः॥२०॥इदंजगादवचनंलक्ष्मणस्यचपश्यतः॥ रावणेनहृताभार्यासीताममयशस्विनी ॥२१॥ निष्क्रांतस्य जनस्थानात्सहभ्रात्रायथासुखम् ॥नाममात्रंतुजानामिनरूपंतस्यरक्षसः ॥२२॥ निवासंवाप्रभावंवावयंतस्यनविद्महे ॥ शोकार्तानामनाथानामेवंविपरिधावताम् ॥२३॥कारुण्यंसदृशंकर्तुमुपकारेणवर्तताम्॥ काष्ठान्यानीयभग्नानिकालेशुष्काणिकुंजरैः ॥२४॥ धक्ष्यामस्त्वांवयंवीरश्वभ्रेमहतिकल्पिते ॥ सत्वंसीतांसमाचक्ष्वयेनवायत्रवाहृता ॥२५ ॥कुरुकल्याणमत्यर्थंयदिजानासितत्त्वतः ॥ एवमुक्तस्तुरामेणवाक्यं दनुरनुत्तमम् ॥२६॥ प्रोवाचकुशलोवक्तावक्तारमपिराघवम् ॥ दिव्यमस्तिनमेज्ञानंनाभिजानामिमैथिलीम् ॥ २७ ॥ यस्तांवक्ष्यतितंवक्ष्येदग्धःस्वंरूपमास्थितः ॥ योभिजानातितद्रक्षस्तद्वक्ष्येरामतत्परम् ॥२८॥ अदग्धस्यहिविज्ञातुंशक्तिरस्तिनमेप्रभो ॥ राक्षसंतुमहावीर्यंसीतायेनहृतातव॥ २९ ॥ विज्ञानंहिमहद्भ्रष्टंशापदोषेणराघव ॥ स्वकृतेनमयाप्राप्तंरूपंलोकविगर्हितम् ॥ ३० ॥

हम उसमें तुमको जलादेंगे अब जो पुरुष सीताको हरण करके जिस जगह लेगया है सो समस्त हमसे कहो ॥ २५ ॥ यदि यथार्थही तुम इस बातको जानते हो तो हमारा बडा मंगल हो जायगा. जब श्रीरामचन्द्रजीने ऐसा कहा तो वह दानवश्रेष्ठ ॥ २६ ॥ अच्छा बोलनेवाला श्रीरामचन्द्रजीसे बडी कुशलताके साथ कहने लगा, हमको अभी दिव्य ज्ञान नहीं है इस कारण यह नहीं जानते कि,जानकीकहां हैं ॥२७॥ परन्तु जो तुमको उन्हें बतावेगा, उसको हम तुम्हें बतावेंगे; आप हमें भस्म कीजिये फिर हम अपना पहला रूप प्राप्त करके जो कि रावणको जानता है उसको आपसे बतावेंगे ॥२८॥ हे प्रभो ! जिस महावीर्य राक्षसने आपकी सीताजीको हरण किया है सो बिना भस्म हुए हम किसी प्रकारसे भी उसको न जान सकेंगे ॥२९ ॥ हे राम ! पहले हममें बडा विज्ञान था सो इस

शापके प्रभावसे हमारा वह दिव्यज्ञान नष्ट होगया और हम अपनेही कर्मके दोषसे ऐसे संसारमें निन्दित रूपको प्राप्त हुए हैं ॥ ३० ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! जबतक सूर्य भगवान्के घोडे थककर अस्ताचलको न चले जायँ, क्योंकि अब अस्ताचलको जानाही चाहते हैं इससे पहलेही आप हमको गढेमें डालकर यथाविधि भस्म कर दीजिये ॥ ३१ ॥ महावीर रघुनन्दन ! जब यथाविधि आप हमको गढेमें रख कर फूक देंगे तब हम बतलावेंगे कि, कौन रावणको जानता है ॥ ३२ ॥ हे राघव हे वीर ! आप उस अच्छीवृत्तिवाले पुरुषके साथ मित्रता करलेना वह पराक्रमी वीर आपकी बडी भारी सहायता करेगा ॥३३॥ हे महाराज ! त्रिलोकीमें ऐसा कुछ भी नहीं है जिसको यह पुरुष न जानता हो वह प्रथम किसी बडेही कारणके वश होकर त्रिलोकीमें घूमा है ॥३४॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० अर० भाषायामेकसप्ततितमः सर्गः ॥ ७१ ॥ जब कबन्धने उन दोनों वीर शिरोमणियोंसे ऐसा कहा तब नरश्रेष्ठ श्रीरामचंद्र

किंतुयावन्नयात्यस्तंसविताश्रान्तवाहनः ॥ तावन्मामवटेक्षिप्त्वादहरामयथाविधि ॥ ३१ ॥ दग्धस्त्वयाहमवटेन्यायेनरघुनंदन ॥ वक्ष्यामितंमहावीरयस्तंवेत्स्यतिराक्षसम् ॥ ३२ ॥ तेनसख्यंचकर्तव्यंन्याय्यवृत्तेनराघव ॥ कल्पयिष्यतितेवीरसाहाय्यंलघुविक्रमः ॥ ३३ ॥ नहितस्यास्त्यविज्ञातंत्रिषुलोकेषुराघव ॥ सर्वान्परिवृतोलोकान्पुरावैकारणांतरे ॥ ३४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आ० च० सा० अरण्यकांडे एकसप्ततितमः सर्गः ॥ ७१ ॥ एवमुक्तौतुतौवीरौकबंधेननरेश्वरौ ॥ गिरिप्रदरमासाद्यपावकंविससर्जतुः ॥ १ ॥ लक्ष्मणस्तुमहोल्काभिर्ज्वलिताभिःसमंततः॥ चितामादीपयामाससाप्रजज्वालसर्वतः ॥ २ ॥ तच्छरीरंकबंधस्यघृतपिंडोपमंमहत् ॥ मेदसापच्यमानस्यमंदंदहतपावकः ॥ ३ ॥ सविधूयचितामाशुविधूमोऽग्निरिवोत्थितः ॥ अरजेवाससीबिभ्रन्माल्यंदिव्यंमहाबलः ॥ ४ ॥ ततश्चितायावेगेनभास्वरोविरजांबरः ॥ उत्पपाताशुसंहृष्टःसर्वप्रत्यंगभूषणः ॥ ५ ॥ विमानेभास्वरेतिष्ठन्हंसयुक्तेयशस्करे ॥ प्रभयाचमहातेजादिशोदशविराजयन् ॥ ६ ॥

व लक्ष्मणजीने पर्वतकी गुफामें लेजाकर उसको अग्नि देदी ॥ १ ॥ लक्ष्मणने बडी २ उल्काओंको प्रज्वलित करके चारों ओरसे अग्नि लगादी जब चिता भलीभाँतिसे जलने लगी ॥ २ ॥ तब कबन्धका घीके पिंडेके समान चरबीसे परिपूर्ण बडा भारी शरीर अग्निसे धीरे २ जलने लगा ॥ ३ ॥ जब चिता जल कर रहगई तब महाबलवान् कबंध उसीसमय चिताको कम्पायमान करता हुआ निर्मल वस्त्र और दिव्य माला धारण करके धुआँरहित अग्निके समान उसमेंसे निकला ॥ ४ ॥ और दिव्य कांति युक्त शरीरसे वेगमें भर आनंदसहित उसी समय आकाशको गया उसके समस्त अंग प्रत्यंग गहनोंसे भूषित थे ॥ ५ ॥ उसके पीछे वह अतिशय उजले हंसयुक्त यशस्कर विमानमें बैठ कर अपनी शरीरकी प्रभासे दशों दिशाओंको प्रकाशता हुआ ॥ ६ ॥

आकाशमें उठ श्रीरामचन्द्रजीकी ओर दृष्टि करके कहने लगा हे रघुनंदन ! जिस उपायसे आप सीताको प्राप्त कर सकेंगे वह रीति ठीक सुनो ॥७॥ सन्धि, विग्रह, याने आसन द्वैधीभाव और समाश्रय यह जो छैःयुक्ति व उपाय हैं सो राजालोग इनकी सहायता हीसे सब बातोंका विचार करते हैं और विना इनका आश्रय लिये किसी कार्यकी भी सिद्धि नहीं होती॥८॥ सो इसमें दुर्दशाके समय समाश्रय नामक जो उपाय है, उसका आश्रय करना कहा है सो जब बहुतही दुर्दशा होजाय तब लोग उसका आश्रय करते हैं सो इस समय आपको भी इसी समाश्रयके आश्रय लेनेका प्रयोजन हुआ है, क्योंकि इस समय आप लक्ष्मणजी के सहित वैसेही दुर्दशासे ग्रसे जाकर राज्यादिसे भ्रष्ट हुए हैं। और इसी कारणसे आपके ऊपर आपकी स्त्रीका हरण स्वरूप महा दुःख भी आकर पडा है ॥ ९ ॥ इस कारणसे हे राजवर ! आपको दूसरेसे जिसका परिवार भी बहुत हो; उससे अवश्यही मित्रता करनी होगी, हमने भली भांतिसे शोच विचार कर देख लिया है कि ऐसे उपायका

सोंतरिक्षगतोवाक्यंकबंधोराममब्रवीत्॥शृणुराघवतत्त्वेनयथासीतामवाप्स्यसि ॥७॥ रामषड्युक्तयोलोकेयाभिःसर्वंविमृश्यते॥परिमृष्टोदशांते नदशाभागेनसेव्यते ॥ ८ ॥ दशाभागगतोहीनस्त्वंहरामसलक्ष्मणः ॥ यत्कृतेव्यसनंप्राप्तंत्वयादारप्रधर्षणम् ॥ ९ ॥ तदवश्यंत्वयाकायःससुहृत्सुहृदांवर॥अकृत्वानहितेसिद्धिमहंपश्यामिचिंतयन्॥१०॥श्रूयतांरामवक्ष्यामिसुग्रीवोनामवानरः॥भ्रात्रानिरस्तःक्रुद्धेनवालिनाशक्रसूनुना॥११॥ ऋष्यमूकेगिरिवरेपंपापर्यंतशोभिते॥निवसत्यात्मवान्वीरश्चतुर्भिःसहवानरैः॥१२॥वानरेंद्रोमहावीर्यस्तेजोवानमितप्रभः॥सत्यसंधोविनीतश्चधृतिमान्मतिमान्महान्॥१३॥दक्षःप्रगल्भोद्युतिमान्महाबलपराक्रमः॥भ्रात्राविवासितोवीरराज्यहेतोर्महात्मना ॥१४॥सतेसहायोमित्रंचसीतायाःपरिमार्गणे॥भविष्यतिहितेराममाचशोकेमनःकृथाः॥१५॥भवितव्यंहितच्चापिनतच्छक्यमिहान्यथा॥कर्तुमिक्ष्वाकुशार्दूलकालोहिदुरतिक्रमः॥१६॥

अवलंबन न करनेसे आपके कार्य की सिद्धि नहीं होगी ॥१०॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! सुनिये एक सुग्रीव नामक वानर है उसके भाई का नाम जो कि, इन्द्रकापुत्र है वालि है, उस वालिने क्रोधकर सुग्रीवको घरसे निकाल दिया है ॥११॥ अब वह सुग्रीव ऋष्यमूक पर्वत पर अपने चार वानरोंके सहित रहता है यह ऋष्यमूक पर्वत चारों ओर पंपातक शोभित हो रहा है ॥१२॥ वह वानरेन्द्र सुग्रीव महावीर्यवान् महा तेजस्वी, महा दीप्तिमान्, सत्यप्रतिज्ञ; नीतिशास्त्र का जाननेवाला, धारणशक्ति युक्त महान् ॥ १३ ॥ दक्ष प्रगल्भ प्रकाशमान् और महा बल पराक्रम युक्त है परन्तु उस महात्माको राज्यके कारण वालिने घरसे निकाल दिया है ॥ १४ ॥ वह निश्चयही सीताके ढूंढने भालने में आपका सहायक और मित्र होगा, सो आप अब शोक करनेमें आपने मनको न लगाइये वहां जाइये ॥ १५ ॥ कोई भी होनहारको नहीं भेट सकता, जो होनहार है वह अवश्यही होगा, हे इक्ष्वाकु श्रेष्ठ ! कालकी गति बड़ी दुर्गम है ॥ १६ ॥

इस कारणसे हे वीर ! आप शीघ्रही इस स्थानसे महापराक्रमवान् सुग्रीव के पास जाकर उससे मित्रता करलीजिये, हे रघुनंदन ! इसी समय आप चलेजाइये ॥१७॥ प्रज्वलित अग्निके सम्मुख उसको साक्षी कर सुग्रीवसे मित्रता कीजिये परन्तु उस वानरनाथका अपमान आप कभी न कीजिये ॥ १८ ॥ क्योंकि वह कृतज्ञ है कामरूपी इच्छानुसार रूप धारण करलेनेवाला है, वीर्यवान् भी है, और विशेषकरके इस समय स्वयंभी किसीकी सहायता चाहता है सो आप भी उसके कार्य को करदेंगे ॥ १९ ॥ फिर वह कार्य का चाहनेवाला सुग्रीव सफलमनोरथ हो आपका कार्य भी अवश्य कर देगा वह ऋक्षराजकी स्त्रीमें सूर्य भगवान्‌से उत्पन्न हुआ है, इससे वह साधारण वानर नहीं है और इस समय भाई की शंकासे पंपाके किनारे २ फिरा करता है ॥ २० ॥ वह सूर्यनारायण

गच्छशीघ्रमितोवीरसुग्रीवंतंमहाबलम् ॥ वयस्यंतंकुरुक्षिप्रमितोगत्वाऽद्यराघव ॥ १७ ॥ अद्रोहायसमागम्यदीप्यमानेविभावसौ ॥ नचतेसोऽवमंतव्यःसुग्रीवोवानराधिपः ॥ १८ ॥ कृतज्ञःकामरूपीचसहायार्थीचवीर्यवान् ॥ शक्तौह्यद्ययुवांकर्तुंकार्यंयस्यचिकीर्षितम् ॥ १९ ॥ कृतार्थोवाऽकृतार्थोवातवकृत्यंकरिष्यति ॥ सऋक्षरजसःपुत्रःपंपामटतिशंकितः ॥२०॥ भास्करस्यौरसःपुत्रोवालिनाकृतकिल्बिषः ॥ सनिधायायुधंक्षिप्रमृष्यमूकालयंकपिम् ॥ २१ ॥ कुरुराघवसत्येनवयस्यंवनचारिणम् ॥ सहिस्थानानिकात्स्न्र्येनसर्वाणिकपिकुंजरः ॥ २२ ॥ नरमांसाशिनांलोकेनैपुण्यादधिगच्छति ॥ नतस्याविदितंलोकेकिंचिदस्तिहिराघव ॥ २३ ॥ यावत्सूर्यःप्रतपतिसहस्रांशुःपरंतप ॥ सनदीर्विपुलाञ्छैलान्गिरिदुर्गाणिकंदरान् ॥ २४ ॥ अन्विष्यवानरैःसार्धंपत्नींतेऽधिगमिष्यति ॥ वानरांश्चमहाकायान्प्रेषयिष्यतिराघव ॥ २५ ॥ दिशोविचेतुंतांसीतांत्वद्वियोगेनशोचतीम् ॥ अन्वेष्यतिवरारोहांमैथिलींरावणालये ॥ २६ ॥

का औरस पुत्र वालिके संग बैर होनेकेकारण दुःखित है; इससे आप अस्त्र शस्त्र अग्निके समीप धरकर ऋष्यमूक पर्वत पर बैठे हुए उस वानरनाथसे ॥ २१ ॥ सत्यताके साथ मित्रताई कीजिये, हे राघव ! वह वानर श्रेष्ठ सब स्थानोंमें कपिकुंजरोंके साथ जाजाकर ॥ २२ ॥ फिर भली भांतिसे नरमांसके खानेवाले राक्षसोंके भी लोकमें जासकता है हे राघव ! ऐसा कोई स्थान नहीं जिसे सुग्रीव न जानता हो ॥२३॥ हे शत्रुओंके तपानेवाले रघुनंदनजी ! सहस्र किरण सूर्य भगवान्‌की किरणें जहां तक पडती हैं उतने बीचमें जितनी २ नदियां और बडे २ पर्वत व पर्वतोंकी गुफा हैं ॥२४॥ समस्त जगत्‌में जहां कहीं आपकी भार्या जानकीजीहों हे रघुनंदन ! वह सुग्रीव ढूंढकर आपसे मिला देगा कारण कि, वह तुरंत सब दिशाओंमें बडे शरीर वाले वानरोंको पठावेगा ॥२५॥ व तुम्हारेवियोगसे शोच करती हुई श्रीजा

नकीजीको वह रावणके घरमें हुई तो वहांसे भी ढूंढ लाकर आपको मिला देगा ॥ २६ ॥ अनाथा निंदा रहित सीताजी मेरु पर्वतके शिखरके अग्रभागमें हों अथवा पातालमें निवास करती हों, कपिराज सुग्रीवजी वहीं जाकर राक्षसोंका नाश करके आपकी भार्या सीताको ले आवेंगे और आपसे मिला देंगे ॥ २७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अरण्यकांडे भाषायां द्विसप्ततितमः सर्गः ॥७२॥ इस कबन्ध प्रकारसे सीताजीके शोधका उपाय बताकर फिर भी श्रीरामचन्द्रजीसे यह अर्थयुक्त वचन बोला ॥१॥ कि हे श्रीरामचन्द्रजी! यही वहांका कल्याणदायक मार्ग है जिधर यह फूले हुए मनोहर वृक्ष लग रहे हैं, जो यहांसे पश्चिमकी ओर दृष्टि आते हैं ॥२॥ उन वृक्षोंमें जामुन, चिरोंजी, बट, पाकर, तेंदू, पीपल, कठचंपा, आम आदि अनेक प्रकारके हैं ॥३॥ और धवई, नागकेशर, अगेथू, तिलक, किलवार,

समेरुशृंगाग्रगतामनिंदितांप्रविश्यपातालतलेऽपिवाश्रिताम् ॥ प्लवंगमानामृषभस्तवप्रियांनिहत्यरक्षांसिपुनःप्रदास्यति ॥ २७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मी० आदि० च० सा० अरण्यकांडे द्विसप्ततितमः सर्गः ॥७२॥ दर्शयित्वातुरामायसीतायाःपरिमार्गणे ॥ वाक्यमन्वर्थमर्थज्ञःकबंधःपुनरब्रवीत ॥ १ ॥ एषरामशिवःपंथायत्रैतेपुष्पिताद्रुमाः ॥ प्रतीचींदिशमाश्रित्यप्रकाशंतेमनोरमाः ॥ २ ॥ जंबूप्रियालपनसान्यग्रोधप्लक्षतिंदुकाः ॥ अश्वत्थाःकर्णिकाराश्चचूताश्चान्येचपादपाः ॥३॥ धन्वनानागवृक्षाश्चतिलकानक्तमालकाः ॥ नीलाशोकाःकदंबाश्चकरवीराश्चपुष्पिताः ॥ ४ ॥ अग्निमुख्याअशोकाश्चसुरक्ताःपारिभद्रकाः ॥ तानारुह्याथवाभूमौपातयित्वाचतान्बलात् ॥ ५ ॥ फलान्यमृतकल्पानिभक्षयित्वागमिष्यथः ॥ तदतिक्रम्यकाकुत्स्थवनंपुष्पितपादपम् ॥ ६ ॥ नंदनप्रतिमंत्वन्यत्कुरवस्तूत्तराइव ॥ सर्वकालफलायत्रपादपामधुरस्रवाः ॥७॥ सर्वेचऋतवस्तत्रवनेचैत्ररथेयथा ॥ फलभारनतास्तत्रमहाविटपधारिणः ॥ ८ ॥ शोभंतेसर्वतस्तत्रमेघपर्वतसंनिभाः ॥ तानारुह्याथवाभूमौपातयित्वाथवासुखम् ॥ ९ ॥

श्याम, अशोक, कदम्ब, कदैल, यह सब पुष्पित वृक्ष लगे हैं ॥४॥ हरे हरे अशोक नींबके वृक्ष सब प्रकार और भी उत्तम २ वृक्ष हैं सो आप उनपर चढके अथवा बलसे हिलाकर फल भूमिमें गिराकर ॥५॥ अमृत समान फल खाते पीते हुए दोनों चले जाओ, हे काकुत्स्थ ! उस फूले वृक्षद्वारा परिपूर्ण वनसे आप निकल जायेंगे ॥६॥ तब और एक नन्दन और उत्तर कुरुदेशके समान वन मिलेगा, जिसमें सब कालमें फले ऐसे मीठे फलवाले वृक्षभी लग रहे हैं ॥७॥ उस वनमें सब समयमें सब ऋतु चैत्ररथ वनके समान विद्यमान रहती हैं, वह सब वृक्ष फलभारसे झुके हुए देख पडते हैं ॥८॥ वह सब मेघों और पर्वतोंके समान शोभायमान

होते हैं। वहांपरभी उनपर चढकर अथवा जोरसे हिला झुला भूमिमें गिराकर जैसा ठीक समझा जाय ॥९॥ अमृतके समान फल वह वृक्ष आपको देंगे इस भाँतिसे दोनों भ्राता पर्वतोंपर होते हुए इस वनमें जायँ ॥१०॥ फिर पंपानामक सरोवरपर पहुँचोगे, इस सरोवरमें शिवार, शर्करा (कंकर) और बिछलनी भूमि नहींहै सब घाट बराबर बने हैं ॥११॥ हे राम! इसमें रेती बहुत श्रेष्ठहै विविध भांतिके कमल उसमें फूलते हैं, हंस राजहंस, क्रौंच, कुरर आदिपक्षी ॥१२॥ पम्पाके जलमें पैरते हुए मनोहर शब्द बोलते हैं, वह मनुष्योंको देखकर भी नहीं डरते, क्योंकि पहले उन्हें किसीने कभी नहीं मारा है ॥१३॥ हे श्रीरघुनन्दन! आप स्थूल शरीरवाले घीके पिंडके समान इन पक्षियोंको और रोहित; चक्रतुंड व नल नामक मछलियोंको वहांपर भक्षण कीजिये ॥१४॥ हे श्रीरामचन्द्रजी! जिनके पंख

फलान्यमृतकल्पानिलक्ष्मणस्तेप्रदास्यति ॥ चंक्रमंतौवरान्शैलान्शैलाच्छैलंवनाद्वनम् ॥ १० ॥ ततः पुष्करिणींवीरौपंपांनामगमिष्यथः ॥ अशर्करामविभ्रंशांसमतीर्थामशैवलाम् ॥११॥ रामसंजातवालूकांकमलोत्पलशोभिताम् ॥ तत्रहंसाः प्लवाःक्रौंचाःकुरराश्चैवराघव ॥ १२ ॥ वल्गुस्वराणिकूजंतिपंपासलिलगोचराः ॥ नोद्विजंतेनरान्दृष्ट्वावधस्याकोविदाःपुरा ॥ १३ ॥ घृतपिंडोपमान्स्थूलांस्तान्द्विजान्भक्षयिष्यथः ॥ रोहितांश्चक्रतुंडांश्चनलमीनांश्चराघव ॥ १४ ॥ पंपायामिषुभिर्मत्स्यांस्तत्ररामवरान्हतान् ॥ निस्त्वक्पक्षानयस्तप्तानकृशानेककंटकान् ॥१५॥ तवभक्त्यासमायुक्तोलक्ष्मणःसंप्रदास्यति ॥ भृशंतान्खादतोमत्स्यान्पंपायाःपुष्पसंचये ॥ १६ ॥ पद्मगंधिशिवंवारिसुखशीतमनामयम् ॥ उद्धृत्यसतदाक्लिष्टंरूप्यस्फटिकसंनिभम् ॥ १७ ॥ अथपुष्करपर्णेनलक्ष्मणःपाययिष्यति ॥ स्थूलान्गिरिगुहाशय्यान्वानरान्वनचारिणः ॥ १८ ॥ सायाह्नेविचरन्रामदर्शयिष्यतिलक्ष्मणः ॥ अपांलोभादुपावृत्तान्वृषभानिवनर्दतः ॥ १९ ॥ स्थूलान्पीतांश्चपंपायांद्रक्ष्यसित्वंनरोत्तम ॥ सायाह्नेविचरन्रामविटपीमाल्यधारिणः ॥२०॥

नहीं होते और बडे शरीर जिनके होते हैं; त्वक् और बहुत कांटों करके युक्त ऐसी श्रेष्ठ मछलियोंको बाणोंसे मारकर और अग्निमें भूनकर आप पंपासरपर भक्षण कीजिये ॥१५॥ इसके सिवाय लक्ष्मणजी आपके प्रति भक्तिके वश होकर वहांके कमलपुष्पोंमें विचरती हुई उक्त मछलियोंके समूह आपको देंगे ॥१६॥ पंपाका जल कमलपुष्पोंकी सुगंधिसे युक्त रोगविहीन स्वास्थ्यकर सुशीतल, चांदी और स्फटिक मणिके समान निर्मल है जिसके पीनेसे कोई भी क्लेश नहीं होता ॥१७॥ उस समयमें लक्ष्मणजी पुरैनके पत्तोंका दोना बना वह जल लाकर आपको पिलावेंगे और बडे २ बन्दर पर्वतोंकी कन्दराओं और वृक्षोंके रहनेवाले ॥१८॥ सन्ध्याके समय घूमनेके कालमें लक्ष्मणजी आपको दिखावेंगे, वह बडे २ वानर जल पीनेके अर्थ बैलोंके समान शब्द करते हुए आते हैं ॥ १९ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! फिर

पंपापर बडे हृष्ट पुष्ट नीले पीले भी बहुतसे बन्दर वृक्षोंकी शाखा हाथमें लिये हुए सन्ध्याके समय विचरते आप देखेंगे ॥ २० ॥ पंपाका शीतल जल देखकर व पीकर आप शोक भूल जाएँगे और वहां फूले हुए तिलक, नक्तमालक आदिक वृक्ष हैं ॥२१॥ और हे रघुनंदन ! वहांपर भांति २के कमल भी फूल रहे हैं परन्तु उन पुष्पोंकी माला बनाकर पहरनेवाले वहांपर कोई पुरुष नहीं रहते ॥२२॥ वह फूल न कभी मुरझाते हैं; न अपने आपसे गिरते हैं कारण कि, वहां पर मतंग ऋषिके चेले जो ऋषिलोग हैं, वह एकाग्रचित्त हो कर वहां रहते थे ॥२३॥ वह सब शिष्य ऋषिलोग अपने गुरूजीके लिये वनके फल फूल लेने जाते हुये बोझके मारे थक जानेपर उनके शरीरसे जो पसीनेकी बूंदें पृथ्वीपर गिर पडती थीं ॥२४॥ वही स्वेदबिन्दु इस कालमें उनके तपके प्रभावसे पुष्प होगये हैं

शिवोदकंचपंपायांदृष्ट्वाशोकंविहास्यसि ॥ सुमनोभिश्चितास्तत्रतिलकानक्तमालकाः ॥ २१ ॥ उत्पलानिचफुल्लानिपंकजानिचराघव ॥ नता निकश्चिन्माल्यानितत्रारोपयितानरः ॥ २२ ॥ नचवैग्लानतांयांतिनचशीर्यंतिराघव॥मतंगशिष्यास्तत्रासन्नृषयःसुसमाहिताः ॥२३॥ तेषां भाराभितप्तानांवन्यमाहरतांगुरोः ॥ येप्र पेतुर्महींतूर्णंशरीरात्स्वेदबिंदवः ॥ २४ ॥ तानिमाल्यानिजातानिमुनीनांतमसातदा ॥ स्वेदबिंदुसमु त्थानिनविनश्यंतिराघव ॥ २५ ॥ तेषांगतानाद्यापिदृश्यतेपरिचारिणी ॥ श्रमणीशबरीनामकाकुत्स्थचिरजीविनी ॥ २६ ॥ त्वांतुधर्मेस्थि तानित्यंसर्वभूतनमस्कृतम् ॥ दृष्ट्वादेवोपमंरामस्वर्गलोकंगमिष्यति ॥ २७ ॥ ततस्तद्रामपंपायास्तीरमाश्रित्यपश्चिमम् ॥ आश्रमस्थानम तुलंगुह्यंकाकुत्स्थपश्यसि ॥ २८ ॥ नतत्राक्रमितुंनागाःशक्नुवंतितदाश्रमे ॥ ऋषेस्तस्यमतंगस्यविधानात्तच्चकाननम् ॥ २९ ॥ मतंगवनमि त्येवविश्रुतंरघुनंदन ॥ तस्मिन्नंदनसंकाशेदेवारण्योपमेवने ॥ ३० ॥

हे रघुनन्दन ! ऋषिलोगोंके पसीनेकी बूंदोंसे उत्पन्न होनेके कारण यह सब पुष्प अविनाशी होगये हैं ॥२५॥ यद्यपि सब ऋषिलोग वहांसे अन्तर्धान होगये हैं परन्तु अबतक उनकी परिचारिका श्रमणी नामक शबरी वहांपर दृष्टिआती है ॥ २६ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! आप साक्षात् देवताओंके समान सब लोगोंके नमस्कार करने योग्य हैं नित्य धर्मपरायण श्रमणी आपको अवलोकन करके स्वर्गको चली जायगी ॥ २७ ॥ हे काकुत्स्थनन्दन ! जब आप पंपाके पश्चिम तीरपर जायँगे तब महर्षि मतंगका अनेक आश्रमोंमें गुप्त आश्रम दृष्टि आवेगा ॥ २८ ॥ पृथ्वीमें यह आश्रम अतुलनीय है मतंग मुनिजीके प्रभावके वशसे हाथीभी इस आश्रम काननको नहीं खलबला सकते ॥ २९ ॥ इसी कारणसे वह वन मतंग वनके नामसे प्रसिद्ध हुआ है हे रघुनंदन ! वह वन देवताओंके

नंदनवनके समान रमणीय है ॥ ३० ॥ उसमें अनेक प्रकारके पक्षी सुहावनी बोली बोलते हैं वहां प्रवेश करके आप अच्छी तरहसे विहार कर सकेंगे और पंपाके सामनेही वृक्षसमूहसे सुशोभित ऋष्यमूक पर्वत है ॥ ३१ ॥ इस कठिन आरोहण करनेके योग्य पर्वतकी रक्षा छोटे सर्प किया करते हैं, और यह पर्वत उदार ब्रह्माजी करके पहले समयमें बनाया गया था ॥३२॥ उस उदार पर्वतके शृंगपर जो पुरुष शयन करके स्वप्नमें जो धन प्राप्तकरे जागनेपरभी उसको वही धन मिलता है ॥३३॥ अधर्म कार्य करनेमें रत पापकर्म करनेवाले पुरुषके उस पर्वतपर चढने पर राक्षस लोग उसके शयन करनेके समय उसको पकडकर वहीं संहार करदेते हैं ॥ ३४ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! उसके पीछे आप मतंगाश्रम पंनिवासी पातटविहारी हाथियोंके बच्चोंका घोर शब्द श्रवण करोगे ॥३५॥ उन सबके सिवाय आप कुछएक लाल वर्णकी मदधारा चुआतेहुए मेघवर्ण वेगयुक्त हाथियोंके दलके दल इधर उधर घूमते हुए देखोगे ॥ ३६ ॥ वे हाथी पंपाका

नानाविहगसंकीर्णेरंस्यसेरामनिर्वृतः ॥ ऋष्यमूकस्तुपंपायाःपुरस्तात्पुष्पितद्रुमः ॥३१॥ सुदुःखारोहणश्चैवशिशुनागाभिरक्षितः ॥ उदारोब्रह्मणाचैवपूर्वकालेऽभिनिर्मितः ॥ ३२ ॥ शयानःपुरुषोरामतस्यशैलस्यमूर्धनि ॥ यःस्वप्नेलभतेवित्तंतत्प्रबुद्धोऽधिगच्छति ॥ ३३ ॥ यस्त्वेनंविषमाचारःपापकर्माधिरोहति ॥ तत्रैवप्रहरंत्येनंसुप्तमादायराक्षसाः ॥ ३४ ॥ ततोपिशिशुनागानामाक्रंदश्रूयतेमहान् ॥ क्रीडतांरामपंपायांमतंगाश्रमवासिनाम् ॥३५॥ सक्तारुधिरधाराभिःसंहत्यपरमद्विपाः ॥ प्रचरंतिपृथक्कीर्णामेघवर्णास्तरस्विनः ॥३६॥ तेतत्रपीत्वापानीयंविमलंचारुशोभनम् ॥ अत्यंतसुखसंस्पर्शंसर्वगंधसमन्वितम् ॥ ३७ ॥ निवृत्ताःसंविगाहंतेवनानिवनगोचराः ॥ ऋक्षांश्चद्वीपिनश्चैवनीलकोमलकप्रभान् ॥३८॥ रुरूनपेतानजयान्दृष्ट्वाशोकंप्रहास्यसि ॥ रामतस्यतुशैलस्यमहतीशोभतेगुहा ॥३९॥ शिलापिधानाकाकुत्स्थदुःखंचास्याःप्रवेशनम् ॥ तस्यागुहायाःप्राग्द्वारेमहाञ्शीतोदकोह्रदः ॥ ४० ॥ बहुमूलफलोरम्योनानानगसमाकुलः ॥ तस्यांवसतिधर्मात्मासुग्रीवःसहवानरैः ॥४१॥ कदाचिच्छिखरेतस्यपर्वतस्यावतिष्ठति ॥ कबन्धस्त्वनुशास्यैवंताबुभौराममलक्ष्मणौ ॥ ४२ ॥

निर्मल सुन्दर और अत्यन्त सुखकारी सुवासित नीर पीकरके ॥३७॥ पंपासरोवरके विहारसे निवृत्त हो वनमें विहार किया करते हैं। हे श्रीरामचन्द्रजी ! वहां पर आप रीछ, गैंडे, व्याघ्र और नीलमणिवत् कोमलकान्तिवाले ॥३८॥ कोमल और सुन्दर वनैले पशु रुरु मृग देख शोक परित्याग कर दखोगे, हे श्रीरामचन्द्रजी ! उस पर्वतकी कंदराभी अति शोभायमान है ॥३९॥ उस कंदराके द्वारपर सदाही भारी शिला लगी रहती है इस कारण सरलतासे उसमें प्रवेश करना नहीं हो सकता उस गुफाके पूर्वद्वारपर एक बडा भारी अचल जलका कुंड है ॥४०॥ उस कुंडके किनारेपर बहुतसे फूल व फलोंसे युक्त अनेक २ भांतिके रमणीय वृक्ष लगे हैं और वहींपर धर्मात्मा सुग्रीवजी वानरोंके सहित वास करते हैं ॥४१॥ और वह सुग्रीवजी कभी २ उस पर्वतके शिखरपरभी बैठे रहते हैं, इस प्रकारसे

वह कबंध श्रीराम लक्ष्मणजीसे बताय ॥४२॥ फूलोंकी माला पहरे, सूर्यके समान प्रकाशित आकाशमें टिका हुआ शोभित होने लगा, उस बडे भाग्यवाले को श्रीराम लक्ष्मणजीने देखकर ॥४३॥ उस कबंधसे कहा कि, अच्छा इस समय हम सुग्रीवके निकट जाते हैं और तुमभी स्वर्गको जाओ, उसने भी दोनों भाइयोंसे कहा आप अपने कार्यकी सिद्धिके निमित्त जाइये॥४४॥ तब कबंध श्रीराम लक्ष्मणजीकी आज्ञा लेकर प्रसन्न होकर स्वर्गको चला ॥४५॥ उस कालमें कबंध अपना पहला रूप प्राप्त करके शोभा समन्वित और प्रदीप्तशरीर होकर श्रीरामचन्द्रजीकी ओर दृष्टि करके कहने लगा कि आप सुग्रीवके साथ मित्रता स्थापन कीजिये ॥ ४६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि अरण्यकांडे भाषायां त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥ ७३ ॥ जब कबंध इस प्रकारसे कहकर स्वर्गको चला

स्रग्वीभास्करवर्णाभःखेव्यरोचतवीर्यवान् ॥ तंतुखस्थंमहाभागंतावुभौरामलक्ष्मणौ ॥४३॥ प्रस्थितौत्वंव्रजस्वेतिवाक्यमूचतुरंतिके ॥ गयतां कार्य्यसिद्ध्यर्थमितितावब्रवीत्सच ॥ ४४ ॥ सुप्रीतौतावनुज्ञाप्यकबंधःप्रस्थितस्तदा ॥ ४५ ॥ सतत्कबंधःप्रतिपद्यरूपंवृतःश्रियाभास्वर सर्वदेहः ॥ निदर्शयन्राममवेक्ष्यखस्थःसख्यं कुरुष्वेतितदाभ्युवाच ॥ ४६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० अरण्यकांडे त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥७३॥ तौकबंधेनतंमार्गंपंपायादर्शितंवने ॥ आतस्थतुर्दिशंगृह्यप्रतीचींनृवरात्मजौ ॥ १ ॥ तौशैलेष्वाचितानेकान्क्षौद्रपुष्पफलद्रुमान् ॥ वीक्षंतौजग्मतुर्द्रष्टुंसुग्रीवंरामलक्ष्मणौ ॥ २ ॥ कृत्वातुशैलपृष्ठेतुतौवासंरघुनंदनौ ॥ पंपायाःपश्चिमंतीरंराघवावुपतस्थतुः॥३॥तौपुष्करिण्याःपंपायास्तीरमासाद्यपश्चिमम् ॥ अपश्यतांततस्तत्रशबर्यारम्यमाश्रमम् ॥४॥ तौतमाश्रममासाद्यद्रुमैर्बहुभिरावृतम्॥सुरम्यमभिवीक्षंतौशबरीमभ्युपेयतुः ॥५॥ तौदृष्ट्वातुतदा सिद्धासमुत्थायकृतांजलिः॥पादौजग्राहरामस्यलक्ष्मणस्यचधीमतः ॥ ६ ॥

गया तब श्रीराम लक्ष्मणजी कबंधका बताया हुआ मार्ग लेकर पंपासरोवरकी ओर पश्चिम दिशाको चले ॥ १ ॥ जिस समय श्रीराम लक्ष्मणजी सुग्रीवके देखनेको जा रहेथे उस समय पर्वतों शिखरोंपर मधु समान स्वादयुक्त फल व फूलवाले अनेक २ वृक्ष उनके नयनगोचर होने लगे ॥ २ ॥ वह दोनों भ्राता मार्गमें एक रात्रि एक पर्वतके ऊपर रहकर प्रभात होतेही पंपाके पश्चिम किनारे पर जा पहुँचे ॥ ३ ॥ पंपाके पश्चिमकिनारे पर पहुँचकर शबरीका रमणीय आश्रम श्रीराम लक्ष्मणजीने देखा ॥४॥ और उस विविध वृक्षसमूहसे समाकीर्ण रमणीय आश्रमको देखते हुए उसमें प्रवेश करके शबरीके निकट आये ॥५॥ तब सिद्ध शबरी श्रीराम लक्ष्मणजीको देखतेही हाथ जोडे हुए बुद्धिमान् दोनों भाइयोंके चरणोंमें प्रणाम करती हुई॥ ६ ॥

और यथाविधिसे पाद्य आचमनीय भी शबरीने दिया, उसके पीछे श्रीरामचन्द्रजी धर्मनिरता शबरीसे बोले ॥ ७ ॥ कि, तुमने सुख व विघ्नोंकोजीत लिया है, तुम्हारा तप बढता तो है, हे तपोधने ! ॥८॥ तुम्हारे सब नियम तो भली भांतिसे चले आते हैं, तुम्हारे मनको तो सदा सुख रहता है ? हे चारुभाषिणी ! तुम्हारे गुरुकी सेवा करनी तो तुम्हें फलवती हुई है॥ ९ ॥ जब श्रीरामचन्द्रजीने इस प्रकार पूछा तो सिद्ध लोगोंकी अभिमता और तपःसिद्धा शबरी सामने निकल कर उनसे निवेदन करती हुई ॥१०॥ आज आपके दर्शनोंसे मेरे तपकी सिद्धि हुई, जन्म सफल हुआ, गुरुगणोंकी पूजा भलीभांतिसे होगई ॥ ११॥ और तपस्याभी सार्थक होगई । हे पुरुषोत्तम! आपदेवताओंमें श्रेष्ठ हैंसबके अन्तरात्मा हैं सो इससमय आपकी पूजा करनेसे हमें ब्रह्मलोक प्राप्त होगया ॥१२॥

पाद्यमाचमनीयंचसर्वंप्रादाद्यथाविधि ॥ तामुवाचततोरामःश्रमणींधर्मसंस्थिताम् ॥ ७ ॥ कच्चित्तेनिर्जिताविघ्नाःकच्चित्तेवर्धतेतपः॥ कच्चित्ते नियतःकोपआहारश्चतपोधने ॥ ८ ॥ कच्चित्तेनियमाःप्राप्ताःकच्चित्तेमनसःसुखम् ॥ कच्चित्तेगुरुशुश्रूषासफलाचारुभाषिणि ॥ ९ ॥ रामेणतापसीपृष्टासासिद्धासिद्धसंमता ॥ शशंसशबरीवृद्धारामायप्रत्यवस्थिता ॥ १० ॥ अद्यप्राप्तातपःसिद्धिस्तवसंदर्शनान्मया ॥ अद्यमेसफलंजन्मगुरवश्चसुपूजिताः ॥ ११ ॥ अद्यमेसफलंतप्तंस्वर्गश्चैवभविष्यति ॥ त्वयिदेववरेरामपूजितेपुरुषर्षभ ॥१२ ॥ तवाहंचक्षुषासौम्यपूतासौम्यमानद ॥ गमिष्याम्यक्षयाँल्लोकांस्त्वत्प्रसादादरिंदम ॥ १३ ॥ चित्रकूटंत्वयिप्राप्तेविमानैरतुलप्रभैः ॥ इतस्तेदिवमारूढायानहंपर्यचारिषम् ॥१४॥ तैश्चाहमुक्ताधर्मज्ञैर्महाभागैर्महर्षिभिः॥आगमिष्यतितेरामःसुपुण्यमिममाश्रमम् ॥१५॥ सतेप्रतिग्रहीतव्यःसौमित्रिसहितोऽतिथिः ॥ तंचदृष्ट्वावराँल्लोकानक्षयांस्त्वंगमिष्यसि ॥ १६ ॥ एवमुक्तामहाभागैस्तदाहंपुरुषर्षभ ॥ मयातुसंचितंवन्यंविविधंपुरुषर्षभ ॥ १७॥

हे सौम्य ! हे मान देनेवाले ! हे शत्रुघाती ! आपके शुभकारी नेत्रोंकी दृष्टि पडनेसे हम पवित्र हो गई, अब आपके प्रसादसे हमको सब अक्षय लोकोंकी प्राप्ति होजायगी ॥१३॥ जिनकी हम सेवा करती थीं वह ऋषि आपके चित्रकूट पर्वतपर पधारते ही अनुपम देदीप्यमान देव विमानोंमें चढकर इस आश्रमसे स्वर्गकोचले गये हैं ॥१४॥ वह सब महाभाग्यवान् धर्मात्मा महर्षिलोग स्वर्ग जानेके समय हमसे कह गये कि, श्रीरामचन्द्रजी तुम्हारे इस पुण्यजनक आश्रममें आवेंगे ॥ १५ ॥ सोतुम लक्ष्मणजीकी और उन श्रीरामचन्द्रजीकी अतिथिके समान आदर सत्कारसे पूजा करना; उनके दर्शन करनेसेही तुमको सर्व अक्षय लोकोंकी प्राप्ति हो जायगी ॥१६॥ हे पुरुषोत्तम ! उस समय वह महाभाग्यशाली महर्षिलोग हमसे इस प्रकार कह गये थे, हे पुरुषश्रेष्ठ ! तभीसे हमने विविध भाँतिके भले भले फल ढूँढकर ॥१७॥

आपकी सेवाके लिये धर रक्खे हैं यह सब फल इसी पंपाके तीरवाले वृक्षोंके हैं, धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी शबरीकरके इस प्रकार कहे जाकर उससे यह वचन बोले ॥१८॥ कारण कि, श्रीरामचन्द्रजीने अपने मनमें विचार लिया कि, यह परमात्माकोभीभली भाँति जानती है यह समझ उससे कहा कि, हमने कबन्धसे तुम्हारा प्रभाव और आचारका माहात्म्य ॥१९॥ श्रवण किया था सो तुम यदि उचित समझो तो हम प्रत्यक्ष उनका वृत्तान्त देखनेकी इच्छा करते हैं, श्रीरामचन्द्रजीके मुखसे निकला हुआ ऐसा वचन सुन ॥२०॥ शबरी उन दोनों भ्राताओंको वह बडा वन दिखाकर कहने लगी कि, मृगऔर पक्षियोंसे परिपूर्ण काले बादरके समान श्याम रंगका यह वन देखिये ॥ २१ ॥ हे रघुनंदन ! इस वनका नाम मतंग वन प्रसिद्ध है. हे महाद्युतिमान् ! इस वनमें विशुद्धात्मा हमारे गुरु लोग मंत्रपूजित यज्ञ

तवार्थेपुरुषव्याघ्रपंपायास्तीरसंभवम् ॥ एवमुक्तःसधर्मात्माशबर्याशबरीमिदम् ॥ १८ ॥ राघवःप्राहविज्ञानेतांनित्यमबहिष्कृतामृदनोःसका शात्तत्त्वेनप्रभावंतेमहात्मनाम् ॥१९॥ श्रुतंप्रत्यक्षमिच्छामिसंद्रष्टुंयदिमन्यसे ॥ एतत्तुवचनंश्रुत्वारामवक्त्रविनिःसृतम् ॥२०॥शबरीदर्शयामास तावुभौतद्वनंमहत् ॥ पश्यमेघघनप्रख्यमृगपक्षिसमाकुलम् ॥ २१ ॥ मतंगवनमित्येवविश्रुतंरघुनंदन ॥ इहतेभावितात्मानोगुरवोमेमहाद्युते ॥ जुहवांचक्रिरेनीडंमंत्रवन्मंत्रपूजितम् ॥ २२ ॥ इयंप्रत्यक्स्थलीवेदीयत्रतेमेसुसत्कृताः ॥ पुष्पोपहारंकुर्वंतिश्रमादुद्वेपिभिःकरैः ॥ २३ ॥ तेषां तपःप्रभावेणपश्याद्यापिरघूत्तम ॥ द्योतयंतीदिशःसर्वाःश्रियावेद्यतुलप्रभा ॥ २४ ॥ अशक्नुवद्भिस्तैर्गंतुमुपवासश्रमालसैः ॥ चिंतितेनागता न्पश्यसमेतान्सप्तसागरान् ॥ २५ ॥ कृताभिषेकैस्तैर्न्यस्तावल्कलाःपादपेष्विह ॥ अद्यापिनविशुष्यंतिप्रदेशेरघुनंदन ॥ २६ ॥ देवकार्याणि कुर्वद्भिर्यानीमानितुतानिवै ॥ पुष्पैःकुवलयैःसार्धंम्लानत्वंनतुयांतिवै ॥ २७ ॥

करनेके लिये वेदके मंत्रोंसे कालहरण करते थे ॥ २२ ॥ यह वही प्रत्यक्स्थल नामक वेदी है; जिस वेदीपर बैठ कर हमारे परम गुरु लोग पुष्पांजलि सहित श्रमयुक्त हाथोंसे देवताओंकी पूजा करतेथे ॥ २३ ॥ हे रघुवर ! देखिये यह वही अनुपम प्रभायुक्त वेदी उनके तपोबलसे आजभी अपनी दीप्तिसे दशों दिशा ओंको दिपा रही है ॥२४॥ जब वह ऋषि लोग उपवासोंके परिश्रमसे आलसी होकरस्नान करनेको जानेमें सामर्थ्यहीन होगये, तब उनके चिन्ता करतेही यह सात समुद्र यहां आगये सो आप देखिये ॥२५॥ हे रघुनंदन! ऋषिलोगोंने स्नान करके यहां वृक्षोंपर जो अपने गीले वस्त्र टांग दिये हैं सो वह अबतक नहीं सूखे हैं ॥२६॥ उन्होंने देवताओंका कार्य साधन करनेके लिये नीले कमलोंके सहित यह जो समस्त पुष्प देवताओंको चढाये थे सो वह अब तक नहीं मुरझाये हैं ॥२७॥

आप सब वन देख चुके और जो बात श्रवण करनेके योग्य थी वह श्रवणभी करचुके अब हमने इस देहके छोडनेका अभिलाष किया है सो आप आज्ञा दीजिये ॥२८॥ जिनका यह आश्रम है और जिनकी हम परिचारिका हैं उन विशुद्धात्मा महर्षियोंके निकट जानेका हमारा अभिलाष हुआ है ॥ २९ ॥ श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीके सहित शबरीकी यह धर्मयुक्त वार्ता सुनकर अतिशय हर्षित हुये और बोले कि, यह बडे आश्चर्यकी बात है ॥ ३० ॥ उसके पीछे श्रीरामचन्द्रजी दृढव्रतवाली शबरीसे बोले कि,, हे भद्रे ! तुमने हमारी पूजा भलीभाँतिसे की अब सुख सहित जहां जाना चाहती हो वहांपर चली जाओ ❀ ॥ ३१ ॥ जब श्रीरामचन्द्रजीने इस प्रकारसे आज्ञा दी तब जटा, चीर और कृष्णमृगचर्मके वस्त्र पहरी हुई शबरी अपने शरीरको अनलमें

कृत्स्नंवनमिदंदृष्टंश्रोतव्यंचश्रुतंत्वया ॥ तदिच्छाम्यभ्यनुज्ञातात्यक्ष्याम्येतत्कलेवरम् ॥ २८ ॥ तेषामिच्छाम्यहंगंतुंसमीपंभावितात्मनाम् ॥ मुनीनामाश्रमोयेषामहंचपरिचारिणी ॥ २९ ॥ धर्मिष्ठंतुवचःश्रुत्वाराघवःसहलक्ष्मणः ॥ प्रहर्षमतुलंलेभेआश्चर्यमितिचाब्रवीत् ॥ ३० ॥ तामुवाचततोरामःशबरींसंशितव्रताम् ॥ अर्चितोऽहंत्वयाभद्रेगच्छकामंयथासुखम् ॥३१॥इत्येवमुक्ताजटिलाचीरकृष्णाजिनाम्बरा ॥ अनुज्ञातातुरामेणहुत्वात्मानंहुताशने ॥ ३२ ॥ ज्वलत्पावकसंकाशास्वर्गमेवजगामह॥ दिव्याभरणसंयुक्तादिव्यमाल्यानुलेपना ॥ ३३ ॥ दिव्याम्बरधरातत्रबभूवप्रियदर्शना ॥ विराजयंतीतंदेशंविद्युत्सौदामनीयथा ॥ ३४ ॥ यत्रतेसुकृतात्मानोविहरंतिमहर्षयः ॥ तत्पुण्यंशबरीस्थानंजगामात्मसमाधिना ॥ ३५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा०अरण्यकांडे चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥ ७४ ॥

आहुती दे ॥ ३२ ॥ प्रज्वलित अग्निके समान स्वर्गको चली गई । स्वर्गमें गमन करनेके समय उसके आभरण मालायें व चन्दनादि सुगन्धित लगानेके सब पदार्थ दिव्य होगये ॥ ३३ ॥ उस कालमें वह दिव्यही वस्त्र पहरनेके कारण परम मनोहारिणीदृष्टि आती थी, और वह दीप्तिमान् विद्युत्के समान उस स्थानको प्रकाशित करने लगी ॥ ३४ ॥ उनके गुरु वह विशुद्धात्मा महर्षि गण जिस स्थानमें विराजमान थे श्रमणी भी आत्मसमाधिके प्रभावसे परम पवित्र उस पुण्यलोकको चली गई ॥ ३५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आ० अरण्यकांडे भाषायां चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥ ७४ ॥

❀ भामिनि जो तैं नेह लगायो।। मुक्त भई सब आश पासते ब्रह्मलोक फल पायो।। युगयुगकीरति चलि है तेरी कियो ऋषिन मन भायो।। प्रातकाल तेरी सुमिरन करिकैं रंनको पाप नशायो ।।यों बलदेव प्रसाद कहै प्रभु वेद विरद अस गायो।।

जब शबरी अपनी तपस्याके प्रभावसे स्वर्गको चली गई तब धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीके सहित चिन्तना करने लगे ॥ १ ॥ वह उन धर्मात्मा महर्षि गणोंका अद्भुत प्रभाव विचार एकही परमहितकारी अपने भ्राता श्रीलक्ष्मणजीसे बोले ॥ २ ॥ हे सौम्य ! हमने उन विशुद्धात्मा महर्षियोंके आश्चर्य युक्त यह आश्रम देखे यहांपर मृग और व्याघ्र लोग वैरभाव छोड कर विचरण करते हैं और अनेक प्रकारके पक्षीभी वास करते हैं ॥ ३ ॥ उनके स्थापन किये हुये इन सप्त सागर तीर्थोंमें हमने यथा विधानसे स्थान और पितृलोगोंका तर्पण भी किया ॥ ४ ॥ इससे हमारे अशुभ भी नष्ट होगये और कल्याणभी प्राप्त होगया. हे लक्ष्मण ! इससे हमारा मन इस समय बहुतही प्रफुल्ल होरहा है ॥ ५ ॥ और हे नरव्याघ्र ! इस समय हमारा हृदय भी शुभभावसे पूरित है सो अब

दिवंतुतस्यांयातायांशबर्यांस्वेनतेजसा ॥ लक्ष्मणेनसहभ्रात्राचिंतयामासराघवः ॥१॥ चिंतयित्वातुधर्मात्माप्रभावंतंमहात्मनाम्॥ हितकारिणमेकाग्रंलक्ष्मणंराघवोऽब्रवीत् ॥ २ ॥ दृष्टोमयाश्रमःसौम्यबह्वाश्चर्यःकृतात्मनाम् ॥ विश्वस्तमृगशार्दूलोनानाविहगसेवितः ॥३॥ सप्तानांचसमुद्राणांतेषांतीर्थेषुलक्ष्मण ॥ उपस्पृष्टंचविधिवत्पितरश्चापितर्पिताः ॥ ४ ॥ प्रणष्टमशुभंयन्नःकल्याणंसमुपस्थितम् ॥ तेनत्वेतत्प्रहृष्टंमेमनोलक्ष्मणसंप्रति ॥ ५ ॥ हृदयेमेनरव्याघ्रशुभमाविर्भविष्यति ॥ तदागच्छगमिष्यावःपंपांतांप्रियदर्शनाम् ॥ ६ ॥ ऋष्यमूकोगिरिर्यत्रनातिदूरेप्रकाशते ॥ यस्मिन्वसतिधर्मात्मासुग्रीवोंऽशुमतःसुतः ॥ ७ ॥ नित्यंवालिभयात्त्रस्तश्चतुर्भिःसहवानरैः ॥ अहंत्वरेचतंद्रष्टुंसुग्रीवंवानरर्षभम् ॥ ८ ॥ तदधीनंहिमेकार्यंसीतायाःपरिमार्गणम् ॥ इतिब्रुवाणंतंवीरंसौमित्रिरिदमब्रवीत् ॥ ९ ॥ गच्छावस्त्वरितंतत्रममापित्वरतेमनः ॥ आश्रमात्तुततस्तस्मान्निष्क्रम्यसविशांपतिः ॥ १० ॥ आजगामततःपंपांलक्ष्मणेनसहप्रभुः ॥ समीक्षमाणःपुष्पाढ्यंसर्वतोविपुलद्रुमम् ॥ ११ ॥ कोयष्टिभिश्चार्जुनकैःशतपत्रैश्चकीचकैः ॥ एतैश्चान्यैश्चबहुभिर्नादितंतद्वनंमहत् ॥ १२ ॥

अच्छा ही होगा इस कारण हम उस मनोहर पंपासर पर चलें ॥ ६ ॥ जिस पंपाके निकटही ऋष्यमूक पर्वत प्रकाशित होरहा है जहांपर धर्मात्मा सूर्यके पुत्र, सुग्रीवजी वसते हैं ॥ ७ ॥ नित्य वालीके भयसे भीतचारों वानरों सहित रहते हैं हम चारों वानरोंके सहित शीघ्रही उन वानरश्रेष्ठ सुग्रीवजीको वहां पर देखने चलेंगे ॥८॥ कारण कि, सीताजीको खोजना हमारा कार्य है। वह उन्हीं सुग्रीवके हाथमें है; जब श्रीरामचन्द्रजीने ऐसा कहा तब लक्ष्मणजी उनसे बोले॥९॥ कि हमारा मनभी शीघ्रता करता है इस कारण जल्दी चलिये यह सुन पृथ्वीश्वर दोनों भाई उस मतंगाश्रमसे चले ॥ १० ॥ और वहांसे चलकर पंपाके तीरपर पहुँचे वहां पर देखा तो उसके चारों ओर अनेक प्रकारके पुष्पित वृक्ष लगे थे ॥११॥ वहांपर पहुँचनेके समय कोयल अर्जुन तोता मैना आदि पक्षीगण वहां पर

शब्द कर रहे थे ऐसा शब्दायमान होता हुआ यह महावन ॥१२॥ ऐसा जाति २ के वृक्ष और समस्त सरोवरोंको देखते कामसे संतप्त हो श्रीरामचन्द्रजी उस श्रेष्ठ ह्रदके तीर पहुँच गये ॥१३॥ उस ह्रदका जल अतिमीठा शीतल है और यह मतंगसर नामसें विख्यात था ऐसे उस उत्तम जल बहतेहुए मतंगसरमें श्रीरामचन्द्रजीने स्नान किया ॥१४॥ तब वहांपर अव्याकुलतासे और मोहिनी चित्तसे श्रीरामचन्द्रजी गये फिर दशरथकुमार श्रीरामचन्द्रजीने शोकसे व्याकुल हो ॥ १५ ॥वहां प्रवेश किया जो पुरैनके पत्तोंसे छाया और कमल फूलोंसे युक्त है उस पंपासरोवरपर तिलक, अशोक, पुन्नाग, बकुल उद्दाल इत्यादि बहुत लगा रहे हैं ॥ १६ ॥ मनोहर वन उसके किनारे पर लगाहुआ है, पद्मोंकरके आवृत और स्फटिकके समान निर्मल जल और सुखस्पर्श चिकना रेतीसे घिरा हुआ है ॥ १७ ॥ वह पंपासर मछलियें और कछुओंसे शोभित है, फैली फली बेलें जिसको सखियोंके समान घेरे हुये हैं जिसके किनारे २ बहुतसे वृक्ष लगे

सरामोविविधान्वृक्षान्सरांसिविविधानिच ॥ पश्यन्कामाभिसंतप्तोजगामपरमंह्रदम् ॥ १३ ॥ सतामासाद्यवैरामोदूरात्पानीयवाहिनीम् ॥ मतंगसरसंनामह्रदंसमवगाहत ॥ १४ ॥ तत्रजग्मतुरव्यग्रौराघवौहिसमाहितौ ॥ सतुशोकसमाविष्टोरामोदशरथात्मजः ॥१५॥ विवेशनलिनीं रम्यांपंकजैश्चसमावृताम् ॥ तिलकाशोकपुन्नागबकुलोद्दालकाशिनीम् ॥ १६ ॥ रम्योपवनसंबाधांरम्यसंपीडितोदकाम् ॥ स्फटिकोपमतोयांतांश्लक्ष्यवालुकसंतताम् ॥ १७ ॥ मत्स्यकच्छपसंबाधांतीरस्थद्रुमशोभिताम् ॥ सखीभिरिवसंयुक्तांलताभिरनुवेष्टिताम् ॥ १८ ॥ किन्नरोरगगंधर्वयक्षराक्षससेविताम् ॥ नानाद्रुमलताकीर्णांशीतवारिनिधिंशुभाम् ॥ १९ ॥ पद्मसौगंधिकैस्ताम्रांशुक्लांकुमुदमंडलैः ॥ नीलांकुवलयोद्घाटैर्बहुवर्णांकुथामिव ॥ २० ॥ अरविंदोत्पलवतींपद्मसौगंधिकायुताम् ॥ पुष्पिताम्रवणोपेताबर्हिणोद्घुष्टनादिताम् ॥ २१ ॥ सतांदृष्ट्वा ततःपंपांरामःसौमित्रिणासह ॥ विललापचतेजस्वीरामोदशरथात्मजः॥ २२ ॥

हुये हैं ॥ १८ ॥ गन्धर्व, किन्नर, सर्प, यक्ष, और राक्षसगण उनके इधर उधर घूमते हैं और वह अनेक जातिके वृक्ष और लताओंसे घिरा हुआ है, उसका जल शीतल और महाशोभायमान है ॥ १९ ॥ वह कहीं लाल कमल और कह्लारसे छारहा है इससे लाल वर्ण और कहीं नीले कमल फूलोंके खिलनेसे नीला और कहीं बबूलोंसे छायाजानेके कारण श्वेत वर्ण होगया है और अनेक वर्णोंसे चित्रित होनेके कारण रंग बिरंगी हाथीकी झूलके समानशोभायमान है ॥ २० ॥ वह अरविन्द, उत्पल और पुष्पित आमवनके समूहसे पूरित और मयूरोंके शब्दसे शब्दायमान ॥ २१ ॥ पंपासरोवरको रामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीके सहित देखा उसको देखकर, तेजस्वी दशरथकुमार श्रीरामचन्द्रजी विलाप करने लगे ॥ २२ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने फिर देखा कि, तिलक, बीजपूरक; वट, लोधद्रुम, पुष्पित करवीर, फूला हुआ पुन्नाग ॥ २३ ॥ मालती; कुन्द;गुल्म, भांडीर, निचुल, अशोक, सप्तपर्ण, केतकी चमेली अतिमुक्तक ॥ २४ ॥ इत्यादि और भी अनेक प्रकारके वृक्ष वहां शोभित हो रहे हैं. श्रीरामचन्द्रजी बोले, इसके ही किनारे पहले कहा हुआ धातुओंसे सजा हुआ पर्वत ॥२५॥ विख्यात ऋष्यमूक विचित्र पुष्प युक्त वृक्षोंसे युक्त है, महात्मा हरि ऋक्षराजके पुत्र ॥ २६ ॥ महावीर सुग्रीव नाम करके वहां वसते हैं सो हे नरश्रेष्ठ ! उस वानरनाथ सुग्रीवके पास चलें ॥ २७ ॥ सत्य विक्रमवान् श्रीरामचन्द्रजी फिर लक्ष्मणजीसे बोले कि, हे लक्ष्मण ! हम राज्यभ्रष्ट दीन और सीतागतप्राण होकर किस भांतिसे सीताके विरहमें जीवन धारण करें ? ॥ २८ ॥ श्रीरामचन्द्रजी सीताजीमें चित्त

तिलकैर्बीजपूरैश्चवटैःशुक्लद्रुमैस्तथा ॥ पुष्पितैःकरवीरैश्चपुन्नागैश्चसुपुष्पितैः ॥२३॥ मालतीकुंदगुल्मैश्चमंडीरैर्निचुलैस्तथा ॥ अशोकैःसप्तपर्णैश्चकेतकैरतिमुक्तकैः ॥ २४ ॥ अन्यैश्चविविधैर्वृक्षैःप्रमदेवोपशोभिताम् ॥ अस्यास्तीरेतुपूर्वोक्तःपर्वतोधातुमंडितः ॥ २५ ॥ ऋष्यमूकइतिख्यातश्चित्रपुष्पितपादपः ॥ हरिऋक्षरजोनाम्नःपुत्रस्तस्यमहात्मनः ॥ २६ ॥ अध्यास्तेतुमहावीर्यःसुग्रीवइतिविश्रुतः॥ सुग्रीवमभिगच्छत्वंवानरेंद्रंनरर्षभ ॥ २७ ॥ इत्युवाचपुनर्वाक्यंलक्ष्मणं सत्यविक्रमः ॥ कथंमयाविनासीतांशक्यंलक्ष्मणजीवितुम् ॥ २८ ॥ इत्येवमुक्त्वामदनाभिपीडितःसलक्ष्मणंवाक्यमनन्यचेतनः॥ विवेशपंपांनलिनीमनोरमांतमुत्तमंशोकमुदीरयाणः ॥२९॥ क्रमेणगत्वाप्रविलोकयन्वनंददर्शपंपांशुभदर्शकाननाम् ॥अनेकनानाविधपक्षिसंकुलांविवेशरामःसहलक्ष्मणेन॥३०॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीयेआदिकाव्येचतुर्विंशतिसाहस्र्यांसंहितायामरण्यकांडे पंचसप्ततितमः सर्गः ॥ ७५ ॥ समाप्तमिदमारण्यकाण्डम् ॥ अतःपरंकिष्किन्धकांडंभविष्यतितस्यायमाद्यःश्लोकः ॥ सतांपुष्करिणींगत्वापद्मोत्पलझषाकुलाम् ॥ रामःसौमित्रिसहितोविललापाकुलेंद्रियः ॥ १ ॥

लगाये और मदनसे पीडित हो लक्ष्मणजीसे ऐसा कह महाशोक प्रकाश करते हुये उस कमलपुष्पोंसे युक्त मनोहर पंपाके तीरमें पैठतेहुये ॥ २९ ॥ और चारों ओरका विविध भांति वन देखते भालते जाते हुए धीरे२ अनेक प्रकारके पक्षियोंके समूहसे आकुल सुन्दर वन शोभित पंपासरमें लक्ष्मणके सहित रामचन्द्र पैठे ॥ ३० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० अरण्यकांडे भाषायां पंचसप्ततितमः सर्गः ॥ ७५ ॥ इसके आगे किष्किंधाकांड है जिसके प्रथम श्लोकका यह आशय है—कमल लालकमल मछलियोंसे युक्त पंपासरोवरके किनारे लक्ष्मणसहित जाकर महात्मा रामचन्द्र व्याकुलेन्द्रिय हो विलाप करने लगे ॥

दोहा—रघुनन्दन संकटहरन, विघ्न विनाशन आप। ब्रह्म सच्चिदानंदघन, दूर करो संताप ॥
गुणसागर नागर परम, नरतनु धारि खरार। लीला विस्तारी जगत, नित मंगल दातार ॥
जो नर नित सुमिरन करैं, गुणगण प्रभुके गाय। वे बिनु श्रम संसारके, पार भये सुख पाय ॥
भक्तन हित कारण धरो, प्रभुने मनुज शरीर। ऋषि मुनियनकी दासकी, दूर करी सब पीर ॥
कृपा अनुग्रह अस करो, रहैं तुम्हारे ध्यान। प्रभु ज्वालापरसादको, यह वरदान न आन ॥
जिमि २ ऋषियनसों भयो, प्रभुको शुभ संवाद। सो सब भाषामें कियो, बुध ज्वालापरसाद ॥
पढहिं सन्तजन कृपाकरि, सुमिरहिं लक्ष्मणराम। यामें कुछ संशय नहीं, सिद्ध होत सब काम ॥



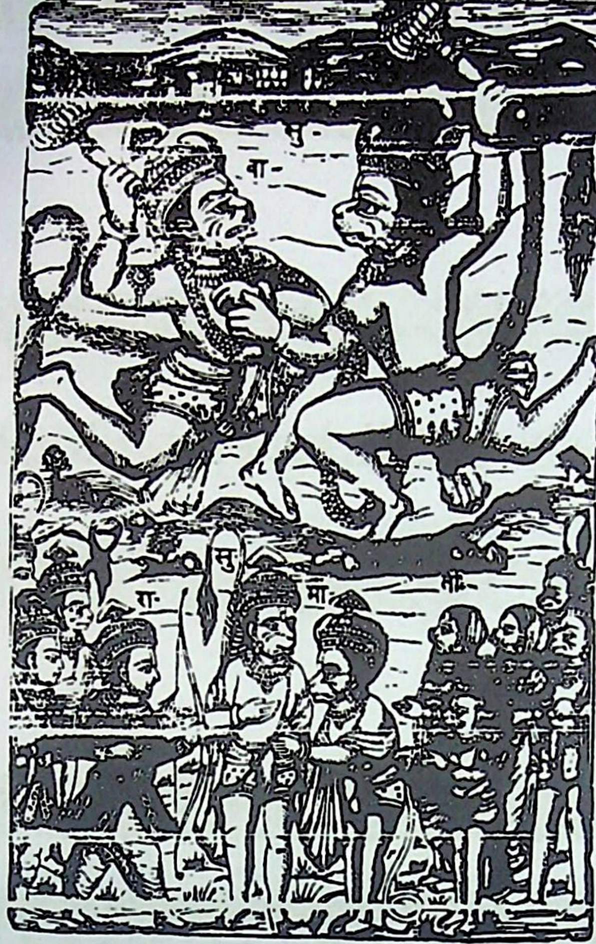
इदं वाल्मीकीयरामायणेऽरण्यकाण्डं भाषाटीकासमेतं मुम्बय्यां
क्षेमराज-श्रीकृष्णदास श्रेष्ठिना स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर"-
(स्टीम्) मुद्रणालये मुद्रयित्वा प्रकाशितम् ।

इति श्रीवाल्मीकीयरामायणेऽरण्यकाण्डं भाषाटीकासमेतं समाप्तम्

अथ श्रीवाल्मीकीयरामायणेकिष्किंधाकाण्डं भा.टी.समेतं प्रारभ्यते

किष्किधाकाण्डम्—४







दोहा–सीता ढूँढन चित्त दिये, बाण विराजत हाथ ॥ श्यामवरण दुखहरणभव, वंदौं श्रीरघुनाथ ॥ १ ॥

श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः। जब इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीके सहित पद्म, उत्पल, और मछलियोंसे परिपूर्ण उस परम मनोहर पुष्करिणीपर गये तब उनकी इंद्रियें व्याकुल होगईं, उससमय वह बहुभाँतिसे विलाप करने लगे ॥ १ ॥ और फिर जब उस पंपासरोवरको भली भाँति देखा, तब हर्षमें भरनेके कारण उनकी इंद्रियां कांपने लगीं, और वह कामदेवके वश हो लक्ष्मणजीसे बोले ॥ २ ॥ हे सुमित्राकुमार ! देखो २ वैदूर्यमणिके समान स्वच्छ जलवाली पंपा, खिले हुए कमल और कमलपत्र व विविध भांति वृक्षोंके विराजित होनेपर कैसी शोभित होती है ॥ ३ ॥ देखो लक्ष्मण ! पंपाके निकटवाले वन कैसे मनोहर दिखलाई देते हैं और वहां ऊँचे शिखरवाले शैल और वृक्ष कैसे मनोहररूपसे विराज रहे हैं ॥ ४ ॥ तुम विचार करके देखो कि, हमारा हृदय राज्य भ्रष्ट

श्रीसीतारामचंद्राभ्यां नमः॥ सतांपुष्करिणींगत्वापद्मोत्पलझषाकुलाम् ॥रामःसौमित्रिसहितोविललापाकुलेंद्रियः ॥१॥ तत्रदृष्ट्वैवतांहर्षादिंद्रियाणिचकंपिरे ॥ सकामवशमापन्नःसौमित्रिमिदमब्रवीत् ॥ २ ॥ सौमित्रेशोभतेपंपावैदूर्यविमलोदका ॥ फुल्लपद्मोत्पलवतीशोभिताविविधैर्द्रुमैः ॥३॥ सौमित्रेपश्यपंपायाःकाननंशुभदर्शनम् ॥ यत्रराजंतिशैलावाद्रुमाःसशिखराइव ॥४॥ मांतुशोकाभिसंतप्तमाधयःपीडयंतिवै ॥ भरतस्यचदुःखेनवैदेह्याहरणेनच ॥५॥ शोकार्तस्यापिमेपंपाशोभतेचित्रकानना ॥ व्यवकीर्णाबहुविधैःपुष्पैःशीतोदकाशिवा ॥ ६ ॥ नलिनैरपिसंछन्नाह्यत्यर्थंशुभदर्शना ॥ सर्पव्यालानुचरितामृगद्विजसमाकुला ॥ ७ ॥ अधिकंप्रविभात्येतन्नीलपीतंतुशाद्वलम् ॥ द्रुमाणांविविधैःपुष्पैःपरिस्तोमैरिवार्पितम् ॥ ८ ॥ पुष्पभारसमृद्धानिशिखराणिसमंततः ॥ लताभिःपुष्पिताग्राभिरुपगूढानिसर्वतः ॥ ९ ॥ सुखानिलोऽयंसौमित्रेकालःप्रचुरमन्मथः ॥ गंधवान्सुरभिर्मासोजातपुष्पफलद्रुमः ॥ १० ॥

होनेसे, भरतजीके जटावल्कलादि धारण करनेसे व सीताजीका हरण हो जानेके शोकसे बहुतही सन्तापित हैं और इससे मनको पीडा भी होती है और मातापिताके छूटनेका भी महाःदुख है ॥५॥ तथापि शीतल जलवाली, अनेक प्रकारके पुष्पोंसे शोभित, विचित्र कानन युक्त यह पंपा शोकसे व्याकुल हमारे मनको हरण करके सुख और शांति देरही है ॥६॥ यह पम्पासरोवर कमल, फूलोंसे व उनके पत्रोंसे छा रहा है उसका दर्शन बडाही मनोहर है. इस पर सर्प, व्याल, मृग व पक्षीगण सदाही घूमा करते हैं ॥ ७ ॥ यह नीला पीला व हरित शाद्वल वृक्षोंके ढेरके ढेर फूलोंके गिरनेसे अधिकतर शोभा पा रहा है ॥८॥ पुष्प भारसे शोभित सब तरु शिखर पुष्पिताग्र लताबेलोंसे घिरनेके कारण परम शोभा धारण कर रहे हैं ॥ ९ ॥ हे सुमित्रासुवन! इस स्थानमें पंचबा

णका जगानेवाला वसन्तकाल वर्त्तमान है, सुखदायक समीर सन सन करके मन्द २ चल रही है, मनोहर मधुमास (चैत) मधुर सुगंधि सहित आया हुआ है, वृक्षोंके शिखर फूल फलसे शोभित हो रहे हैं इस कारणसे यह स्थान कैसा मनोहर होगया है ? ॥ १० ॥ हे लक्ष्मण! देखो जिस प्रकारसे जलचर गण जलकी वर्षा करते हैं, वैसेही पुष्प वर्षणकारी वनोंका कैसा अपूर्व मनोहर रूप प्रकाशित हो रहा है ॥ ११ ॥ मनोहर पत्थरोंके ऊपर उगे हुए वृक्ष पवनके वेगसे कंपायमान हो पृथ्वीके ऊपर फूलोंके ढेरके ढेर छोड उसको ढके लेते हैं ॥ १२ ॥ हे भइय्या ! देखो वृक्षोंके ऊपरसे बहुतसे फूल गिर पडे हैं और बहुत फल चारों ओर गिर रहे हैं इससे ऐसा जान पडता है मानों पवन उन फूलोंकी राशिसे विहार कर रहा है ॥१३॥ और पवन बहु कुसुम शाली वृक्षोंकी शाखाओंको इधर उधर कम्पायमान कर रहा है इस लिये मधुपान मत्त भ्रमरगण अपने २ स्थानसे खसक कर पवनका पीछा करते हैं ॥ १४ ॥

पश्यरूपाणिसौमित्रेवनानांपुष्पशालिनाम् ॥ सृजतांपुष्पवर्षाणिवर्षंतोयमुचामिव ॥११॥ प्रस्तरेषुचरम्येषुविविधाकाननद्रुमाः ॥ वायुवेगप्रचलिताः पुष्पैरवाकिरंतिगाम् ॥१२॥ पतितैःपतमानैश्चपादपस्थैश्चमारुतः ॥ कुसुमैःपश्यसौमित्रेक्रीडतीसवमंततः ॥ १३ ॥ विक्षिपन्विविधाःशाखानगानांकुसुमोत्कटाः ॥ मारुतश्चलितःस्थानैःषट्पदैरनुगीयते ॥१४॥ मत्तकोकिलसन्नादैर्नर्तयन्निवपादपान् ॥ शैलकंदरनिष्क्रांतः प्रगीतइवचानिलः ॥१५॥ तेनविक्षिपताऽत्यर्थंपवनेनसमंततः ॥ अमीसंसक्तशाखाग्राग्रथिताइवपादपाः ॥१६॥ सएवसुखसंस्पर्शोवातिचंदनशीतलः ॥ गंधमभ्यवहन्पुण्यंश्रमापनयनोऽनिलः ॥१७॥ अमीपवनविक्षिप्ताविनदंतीवपादपाः ॥ षट्पदैरनुकूजद्भिर्वनेषुमधुगंधिषु ॥ १८ ॥ गिरिप्रस्थेषुरम्येषुपुष्पवद्भिर्मनोरमैः ॥ संसक्तशिखराःशैलाविराजंतिमहाद्रुमैः ॥ १९ ॥ पुष्पसंछन्नशिखरामारुतोत्क्षेपचंचलाः ॥ अमीमधुकरोत्तंसाःप्रगीताइवपादपाः ॥ २० ॥

और पवन मतवाले कोकिल कुलके कलरव रूप मृदंगकी ध्वनिसे नृत्य सीखकर पर्वतकी कन्दराओंसे निकसनेके समय मानों गान कर रहा है ॥१५॥ हे लक्ष्मण ! और देखो; यह पवन सब शाखाओंको कम्पायमान करके मानों सब वृक्षोंको बांध देता है ॥ १६ ॥ यह पवन चन्दनके समान शीतल और सुखस्पर्श व महकता हुआ पुण्य रूप होकर प्राणियोंका आश्रय धारण करता है और निश्चय श्रम दूर करता है ॥१७॥ यह देखो मधुगन्धयुक्त वनमें पवनद्वारा हिलनेसे सब वृक्ष गुंजार करते हुये भौरोंकेद्वारा मनोहर शब्दकर रहे हैं ॥१८॥ फिर पर्वत अपने ऊपर उत्पन्न मनोरम महावृक्षोंके द्वारा मानों शिखरयुक्त होकर विराजमान हो रहे हैं ॥ १९ ॥ वृक्षोंकी फुनगियां फूलोंके द्वारा ढकजानेसे और उनके ऊपर भौरोंके गुंजार करने व पवन वेगके कारण उनके चलायमान होनेसे ऐसा जान

पडता है मानों वृक्षोंने एक बारही नृत्य व गीत आरंभ कर दिया है ॥ २० ॥ देखो लक्ष्मण ! कठचम्पेके वृक्षके पीत फूलोंसे छाये रहनेके कारण ऐसे जान पडते हैं मानों वह सुवर्ण के गहने पहने पीताम्बरधारी पुरुषोंके समान शोभा पारहे हैं ॥ २१ ॥ हे लक्ष्मण ! इस वसंतकालमें अनेक भांतिके पक्षीगण मनोहर ध्वनि कर रहे हैं इससे हमारा सीताजी का विरह दुःख एकवारही उकसाता है ॥ २२ ॥ इस समय हम जानकीजीके विरहानलसे महासंतप्त होरहे हैं, उसके ऊपर यह पंचबाण अतिशय पीडा देरहा है और कोकिला कलकंठसे ध्वनि करके मानों हमारे प्रति अपना साहस दिखारही हैं ॥ २३ ॥ यह देखो, मनोरम वनके झरनोंमें सब जलकुक्कुटहर्षित होकर कल निनाद करके कामदेवसे पीडित हुए हमको शोचनीय और शोकातुर किये देते हैं ॥ २४ ॥ पहले जब हम प्रियाके सहित एक आश्रममें रहते थे, उस समय यह कोकिल कलनादसे बोलता था तब आनंदित होकर सीता हमको बुला कर परम प्रसन्न होती

सुरपुष्पितांस्तुपश्यैतान्कर्णिकारान्समंततः ॥ हाटकप्रतिसंछन्नान्नरान्पीतांबरानिव ॥२१॥ अयंवसंतः सौमित्रेनानाविहगनादितः ॥ सीतयाविप्रहीणस्यशोकसंदीपनोमम ॥२२॥ मांहिशोकसमाक्रांतंसंतापयतिमन्मथः ॥ हृष्टंप्रवदमानश्चसमाह्वयतिकोकिलः ॥ २३ ॥ एषदात्यूहकोहृष्टोरम्येमांवननिर्झरे ॥ प्रणदन्मन्मथाविष्टंशोचयिष्यतिलक्ष्मण ॥ २४ ॥ श्रुत्वैतस्यपुराशब्दमाश्रमस्थाममप्रिया॥ मामाहूयप्रमुदितापरमंप्रत्यनंदतः ॥ २५ ॥ एवंविचित्राःपतगानानारावविराविणः वृक्षगुल्मलतापश्यसंपतिसमंततः ॥ २६ ॥ विमिश्राविहगाःपुंभिरात्मव्यूहाभिनंदिता ॥ भृंगराजप्रमुदिताःसौमित्रमधुरस्वराः ॥ २७ ॥ अस्याःकूलेप्रमुदिताःसंघशःशकुनास्त्विह ॥ दात्यूहरतिविक्रंदैःपुंस्कोकिलरुतैरपि ॥ २८ ॥ स्वनंतिपादपाश्चेमेममानंगप्रदीपकाः ॥ अशोकस्तबकांगारषट्पदस्वननिःस्वनः ॥ २९ ॥ मांहिपल्लवताम्रार्चिर्वसंताग्निःप्रधक्ष्यति ॥ नहितांसूक्ष्मपक्ष्माक्षींसुकेशींमृदुभाषिणीम् ॥ ३० ॥

थी ॥२५॥ यह देखो ! चित्र विचित्र अनेक प्रकारके पक्षी विविध भांतिके शब्दोंसे ध्वनि करते हुए चारों ओर वृक्ष लता और पौधोंपर उड २ कर बैठते हैं ॥ २६ ॥ भइया यह देखो ! अनेक जातिके पक्षी और भ्रमर मधुर स्वरसे बोलनेवाले अपने २ जोडेके साथ मिल और हर्षित होकर झुण्डके झुण्ड घूम रहे हैं ॥ २७ ॥ इस पंपाके किनारे पर पक्षियोंके झुण्डके झुण्ड जलमुरगी कोकिलाकी बोलीके समान बोल आनंदित होते हैं ॥ २८ ॥ यह सब वृक्ष भ्रमर गणोंके गुंजार करनेसे मानों बोल रहे हैं व इसी कारणसे हमको कामोद्दीप्त कराते हैं. अशोकके पत्ते अंगारोंके समान, भ्रमर गुंजार बडे शब्दके समान ॥ २९ ॥ नये २ अरुण रंग की ज्वालाके समान हो वसंत ऋतु अग्नि बन हमको भस्म कर रहा है। अब सूक्ष्मपलकनेत्रा, सुकेशी व मीठे वचन बोलनेवाली ॥ ३० ॥

जानकीजीके विना देखे हमारे जीवित रहनेका क्या प्रयोजन है ? कारण कि यह सुन्दर वनयुक्त वसंत समय ॥ ३१ ॥ कोकिला का शब्द जिसका डांड है वह हमें और जानकीजी को एक संग साथ रहनेसे सुखदायी होता; फिर कामको प्रयासों समेत वसंतके गणोंसे बढा ॥३२॥ यह शोकानल अतिशीघ्र हमको भस्मकर देगा, प्राणप्यारी जानकीको विना देखे इन सुन्दर वृक्षोंके देखनेसे ॥ ३३ ॥ यह काम बढाही जायगा, तिसपर विना देखे जानकीके यह हमको शोकही उपजाता है ॥ ३४ ॥ यह वसंतकाल देखतेही देखते ठंडी पवन चलाय स्वेदको बंद करता है और मृगशावकनयनी श्रीजानकीजी की चिंता और शोकके मारे व्याकुल कराय हमको ॥३५॥ बहुतही संतापित करता है और ऐसेही चित्र रथ नामक वनका यह महाक्रूर पवन भी हमको तपाता है। और यह मोर नाचते हुए इधर उधर शोभायमान हो रहे हैं ॥ ३६ ॥ मानो स्फटिक मणियोंके झरोंखोंमें बैठे हुए अपने पंख पवनसे हिला झुला रहे हैं, यह सब अपनी २

अपश्यतोमेसौमित्रेजीवितेऽस्तिप्रयोजनम् ॥ अयंहिरुचिरस्तस्याःकालोरुचिरकाननः ॥ ३१ ॥ कोकिलाकुलसीमांतोदयितायाममानघ ॥ मन्मथायाससंभूतोवसंतगुणवर्धितः ॥३२॥ अयंमांधक्ष्यतिक्षिप्रंशोकाग्निर्नचिरादिव॥अपश्यतस्तांवनितांपश्यतोरुचिरान्द्रुमान् ॥३३॥ ममा यमात्मप्रभवोभूयस्त्वमुपयास्यति ॥ अदृश्यमानावैदेहीशोकवर्धयतीहमे ॥३४॥ दृश्यमानोवसंतश्चस्वेदससर्गदूषकः ॥ मांहिसामृगशावाक्षी चिंताशोकबलात्कृम् ॥ ३५ ॥ संतापयतिसौमित्रेक्रूरश्चैत्रवनानिलः ॥ अमीमयूराःशोभंतेप्रनृत्यंतस्ततस्ततः ॥३६॥ स्वैःपक्षैःपवनोद्धूतैर्ग वाक्षःस्फाटिकैरिव ॥ शिखिनीभिःपरिवृतास्तएतेमदमूर्छिताः ॥ ३७ ॥ मन्मथाभिपरीतस्यममन्मथवर्धनाः ॥ पश्यलक्ष्मणनृत्यंतंमयूरमुप नृत्यति ॥३८॥ शिखिनीमन्मथार्तैषाभर्तारंगिरिसानुनि ॥ तामेवमनसारामांमयूरोऽप्यनुधावति॥३९॥ वितत्यरुचिरौपक्षौरुतैरुपहसन्निव ॥ मयूरस्यवनेनूनंरक्षसानहृताप्रिया ॥ ४० ॥ तस्मान्नृत्यतिरम्येषुवनेषुसहकांतया ॥ ममत्वयंविनावासःपुष्पमासेसुदुःसहः ॥ ४१ ॥

मोरनियोंके साथ उन्मत्त हो रहे हैं ॥३७॥ यह सब मोर कामदेवसे व्याकुल हुए हमको अधिक काम बढाते हैं, हे लक्ष्मण ! देखो इस नृत्य करते हुए मोरके पास ॥ ३८ ॥ कामसे व्याकुल हुई मोरनी कैसी पर्वतों, परके कँगूरों पर जारही है। और उसी मोरनीके निकट मनसे मोर भी दौडता है ॥ ३९ ॥ फिर पंख फैलाय खडा हो जाता है, कुछ विलम्ब में अपनी बोली बोल मानो उस मोरनीको हँसाता है । हम जानते हैं कि, जिस वनमें हमारी प्राण जीवनी हरी गई हैं उस वनमें मोर नहीं थे ॥४०॥ इसी कारण यह मोर अपनी स्त्री के साथ इस रमणीयवनमें नाचता है, यदि इसके सन्मुख जानकीजी हरी जातीं तो शोकके कारण इसको नाचने की याद नहीं रहती। हे लक्ष्मण ! विना जानकीजीके यह चैत्रमास हमको तो बडा ही दुष्कर जान पडता है ॥ ४१ ॥

क्योंकि इस समयमें पशु पक्षियोंमें भी प्रियानुराग प्रगट करते हैं, देखो लक्ष्मण ! यह मोरनियें कामसे पीडित हो मोरोंके पास दौडी जाती हैं ॥४२॥ हाय ! यदि वह विशाल नेत्रवाली देवी जानकीजी इस समय न हरी जाती, तो वह भी मदनसे चंचलायमान मन होकर हमारे निकट प्राप्त होने की वासना करतीं ॥ ४३ ॥ हे लक्ष्मण ! देखो इस वसंतके समयमें पुष्पभारसे छाये वन समूहोंके सब पुष्प हमारे जानेतो अतिशय निष्फल हो रहे हैं ॥ ४४ ॥ वृक्षोंके अति सुन्दर मनोहर पुष्प भ्रमरगणोंके सहित पृथ्वीपर गिररहे हैं पर विना सीताके हमारे लेखे व्यर्थ हैं॥ ४५ ॥ हमारे चित्तको मतवालकरनेवाले पक्षीगण हर्षित होकर झुण्ड २ कलरव करके कलध्वनि कर रहेहैं परस्पर एक दूसरेको बुलाते हैं ॥ ४६ ॥ हाय ! जब कि यहां वसंत है, तब तो उन प्राणप्यारी के निकट भी

पश्यलक्ष्मणसंरागस्तिर्यग्योनिगतेष्वपि ॥ अधुनाशिखिनीकामाद्भर्तारमभिवर्तते ॥ ४२ ॥ ममाप्येवंविशालाक्षीजानकीजातसंभ्रमा ॥ मदने नाभिवर्तेतयदिनापहृताभवेत् ॥४३॥ पश्यलक्ष्मणपुष्पाणिनिष्फलानिभवतिमे ॥ पुष्पभारसमृद्धानांवनानांशिशिरात्यये ॥४४॥ रुचिराण्य पिपुष्पाणिपादपानामतिश्रिया ॥ निष्फलानिमहींयांतिसमंमधुकरोत्करैः ॥ ४५ ॥ नदंतिकामंशकुनामुदिताःसंघशःकलम् ॥ आह्वयंतइ वान्योन्यंकामोन्मादकराममम ॥ ४६ ॥ वसंतोयदितत्रापियत्रमेवसतिप्रिया ॥ नूनंपरवशासीतासापिशोचत्यहंयथा ॥४७॥ नूनंनतुवसंतस्तं देशंस्पृशतियत्रसा ॥ कथंह्यसितपद्माक्षीवर्तयेत्सामयाविना ॥४८॥ अथवावर्ततेतत्रवसंतोयत्रमेप्रिया ॥ किंकरिष्यतिसुश्रोणीसातुनिर्भर्त्सिता परैः ॥ ४९ ॥ श्यामापद्मपलाशाक्षीमृदुभाषाचमेप्रिया ॥ नूनंवसंतमासाद्यपरित्यक्ष्यतिजीवितम् ॥५०॥ दृढंहिहृदयेबुद्धिर्ममसंपरिवर्तते ॥ नालंवर्तयितुंसीतासाध्वीमद्विरहंगता ॥ ५१ ॥

वसन्त का उदय हुआ होगा। यदि हुआ होगा तो हम विना, हमारे समान वहभी परवश होने के कारण निःसन्देह कातर और शोक सेव्याकुल हुई होंगी ॥ ४७ ॥ यदि वहां वसन्त का उदय भी न हुआ हो तथापि वह नलिननयनी हमारे विना वहां किस प्रकारसे रहती होगी ? ॥ ४८ ॥ अथवा यदि उसस्थानमें वसन्त वियमानभी हो तथापि वह सुश्रोणी सीता शत्रुओंसे भयभीत और घुडकी जाकर क्या करेंगी ? सो कुछ हमारी समझमें नहीं आता ॥४९॥ हाय ! वह श्यामा; कमलदलके समान नेत्रयुक्त मृदुभाषण करनेवाली जनकनन्दनीजीवसन्तकालको प्राप्त होकर हमारे विरहमें निश्चयही प्राण त्याग देंगी इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ५० ॥ हमने बुद्धिसे हृदयमें निश्चय किया है कि, हमारे विरहमें वह साध्वी पतिव्रता सीताजी कभी जीवित नहीं रह सकेंगी ॥ ५१ ॥

जानकीजीके हृदयका भी निश्चयही हमारे प्रति स्थापित है, और हमारा भावभी निश्चयही सीताके प्रति लगा हुआ है ॥ ५२ ॥ यह पुष्पगंध वहन करनेवाला सुशीतल व स्पर्शसे सुख उपजानेवाला वायु स्त्रीकी चिन्ता करते हुए हमारे निमित्त अग्निके समान उष्ण लगता है ॥५३॥ पहले सीताजीके साथ रहते जिसको सदाही हम परम मित्र समझते थे, इस समय सीताजीके विना वही समीर हमको शोर उत्पन्न करनेवाला होरहा है ॥ ५४ ॥ सीताजीके संयोग समयमें इस काक पक्षीने आकाशमें उडकर अपनी कठोर बोली बोल जानकीजीको वियोगकी सूचना दी थी. अब इस समय जब कि, उनका वियोग हो रहा है; तब यह पक्षी प्रसन्नतासे वृक्षपर बैठा फिर उनके मिलनेको जाता रहा है ॥ ५५ ॥ इसलिये इस विहंगमने ही सीताजीको हरणकर लिया है और फिर यही पक्षी हमारे

मयिभावोहिवैदेह्यास्तत्त्वतोविनिवेशितः ॥ ममापिभावःसीतायांसर्वथाविनिवेशितः ॥५२॥ एषपुष्पवहोवायुःसुखस्पर्शोहिमावहः ॥ तांविचिंतयतःकांतांपावकप्रतिमोमम ॥ ५३ ॥ सदासुखमहंमन्येयंपुरासहसीतया ॥ मारुतःसविनासीतांशोकसंजननोमम ॥५४॥ तांविनाथविहंगोऽसौपक्षीप्रणदितस्तदा ॥ वायसःपादपगतःप्रहृष्टमभिकूजति ॥५५॥ एषवैतत्रवैदेह्याविहगःप्रतिहारकः ॥ पक्षीमांतुविशालाक्ष्याःसमीपमुपनेष्यति ॥५६॥ पश्यलक्ष्मणसंनादंवनेमदविवर्धनम् ॥ पुष्पिताग्रेषुवृक्षेषुद्विजानामवकूजताम् ॥५७॥ विक्षिप्तांपवनेनैतामसौतिलकमंजरीम् ॥ षट्पदःसहसाभ्येतिमदोद्धूतामिवप्रियाम् ॥५८॥ कामिनामयमत्यंतमशोकःशोकवर्धनः ॥ स्तबकैःपवनोत्क्षिप्तैस्तर्जयन्निवमांस्थितः ॥५९॥ अमीलक्ष्मणदृश्यन्तेचूताःकुसुमशालिनः ॥ विभ्रमोत्सिक्तमनसःसांगरागानराइव ॥ ६० ॥ सौमित्रेपश्यपंपायाश्चित्रासुवनराजिषु ॥ किन्नरानरशार्दूलविचरंतियतस्ततः ॥ ६१ ॥

साथ उन विशाल नयना जानकीजीका मिलन करा देगा ॥ ५६ ॥ हे लक्ष्मण ! यह सुनो; फूले हुये वृक्षकी फुनगीपर बैठे कूजन करके यह पक्षीगण मंदानंद बढानेवाला मधुर शब्द कर रहे हैं ॥ ५७ ॥ देखो यह सब भ्रमर तिलकमंजरीके ऊपर बैठे परम सुखसे मधु पीरहे थे, सो अचानक पवनसे ताडित होकर फिर वेगसहित तिलकमंजरीके निकट जा रहे हैं, जैसे कोई मदसे कम्पायमान अपनी प्रियाके निकट पहुँचता है ॥५८॥ यह अशोक वृक्ष कामीजनोंको अत्यन्तही शोकको बढानेवाला होता है, देखो, मानों यह पवनसे कंपित होकर अपने पत्तों द्वारा हमको डरपाता हुआ खडा है॥५९॥ हे लक्ष्मण ! यह फूले हुए आपके वृक्ष मानों कामके रससे आसक्त व अंगराग लगाये हुये मनुष्यके समान ही खडे हैं सो तुम देखो ॥ ६० ॥ हे पुरुषसिंह लक्ष्मण ! यह देखो ! इस पंपाके तीरवाले विचित्र वनमें किन्नर लोग जिधर तिधर विचरण करते हुए घूम रहे हैं ॥ ६१ ॥

हे लक्ष्मण ! तुम यह देखो कि यहां पर यह सुगंधित कमल जलमें तरुण सूर्यके समान शोभा विस्तार रहे हैं ॥६२॥ यह प्रसन्नसलिला पंपा सुगंधियुक्त नील व अरुण कमलोंसे और हंस कारण्डव इत्यादि जलचर पक्षियोंसे व्याप्त होकर शोभा पा रहे हैं ॥ ६३ ॥ जलमें जो कमलफूल तरुण सूर्यके समान शोभा विस्तार कर रहे हैं सो भ्रमरोंके समूह उनकी घँगोलोंपर बैठे हैं, यह पंपा सरोवर चारों ओर कमल फूलोंके छा जानेसे अपूर्व शोभा प्रगट कर रहा है ॥६४॥ इस पंपाकी बगलवाले विचित्र वन बराबर चक्रवाकोंके झुंडोंसे और पानी पीनेके अभिलाषी मृग और हाथियोंके दलसे युक्त होकर शोभा पाते हैं ॥६५॥ देखो, लक्ष्मण ! इसके विमल जलमें पवनसे उत्पन्न हुई लहरोंके द्वारा ताडित होकर यह कमलफूल नर्तकीके समान विराजमान हैं ॥ ६६ ॥ हे लक्ष्मण !

इमानिशुभगंधीनिपश्यलक्ष्मणसर्वशः ॥ नलिनानिप्रकाशंतेजलेतरुणसूर्यवत् ॥ ६२ ॥ एषाप्रसन्नसलिलापद्मनीलोत्पलायुता ॥ हंसकारंडवाकीर्णापंपासौगंधिकायुता ॥ ६३ ॥ जलेतरुणसूर्याभैःषट्पदाहतकेसरैः ॥ पंकजैःशोभतेपंपासमंतादभिसंवृता ॥ ६४ ॥ चक्रवाकयुतानित्यंचित्रप्रस्थवनांतरा ॥ मातंगमृगयूथैश्चशोभतेसलिलार्थिभिः ॥६५॥ पवनाहतवेगाभिरूर्मिभिर्विमलेंभसि ॥ पंकजानिविराजंतेताड्यमानानिलक्ष्मण ॥ ६६ ॥ पद्मपत्रविशालाक्षींसततंप्रियपंकजाम् ॥ अपश्यतोमेवैदेहींजीवितंनाभिरोचते ॥६७॥ अहोकामस्यवामत्वंयोगतामपिदुर्लभाम् ॥ स्मारयिष्यतिकल्याणींकल्याणतरवादिनीम् ॥६८॥ शक्योधारयितुंकामोभवेदभ्यागतोमया ॥ यदिभूयोवसंतोमांनहन्यात्पुष्पितद्रुमः ॥६९॥ यानिस्मरमणीयानितयासहभवंतिमे ॥ तान्येवरमणीयानिजायंतेमेतयाविना ॥७०॥ पद्मकोशपलाशानिद्रष्टुंदृष्टिर्हिमन्यते ॥ सीतायानेत्रकोशाभ्यांसदृशानीतिलक्ष्मण ॥ ७१ ॥

इस समय पद्मपलासनेत्रवाली प्रियापंकजा जनकसुताके विना देखे हम अब जीवन धारण करनेका अभिलाष नहीं करते ॥ ६७ ॥ अहो ! कामकी कैसी कुटिलता है ? देखो ! जिसके साथ वियोग हो गया और जिसका मिलना अति दुर्लभ है सो यह कुटिलता; उनही कल्याणके वचन करनेवाले कल्याणी प्रियाकी बार २ स्मृति दिलाती है ॥ ६८ ॥ अहो ! हम इस कठिन मदनको भी धारण कर सकते हैं किन्तु यह फूले हुए वृक्ष और वसंत बहुत पीडित करता है इसलिये हम बहुतही सामर्थ्यहीन होगये हैं ॥ ६९ ॥ उन जानकीजीके साथ रहकर जिनको हम परम रमणीय समझते थे, इस समय सीताके विरहमें वही हमको अत्यन्त अप्रिय लगते हैं ॥ ७० ॥ यह कमलदल सीताजीके नेत्रोंकी समता धारण करते हैं यह समझकर हमारे नेत्र उनके

दर्शनमें मन लगाये हैं ॥ ७१ ॥ दूसरे वृक्षोंके मध्यमें हो बाहर निकलकर कमलकेशरको छूकरके सीताजीके श्वास पवनके समान यह मनोहर समीर बह रही है ॥ ७२ ॥ हे लक्ष्मण ! पंपाकी दक्षिण तरफको देखो कि, गिरि श्रृंगोंके ऊपर कठचंपाके वृक्षोंको फूली हुई शोभायमान शाखायें कैसी मनोहर दीख रही हैं ॥ ७३ ॥ यह पर्वतराज विविध भाँतिके गेरु आदि धातुओंसे विभूषित होकर वायुवेगसे उठाहुआ विचित्र रेणुजाल विस्तार कर रहा है ॥ ७४ ॥ गिरिकी सब स्थलियां पल्लवहीन सब भाँतिसे खिले हुए टेसूके वृक्षोंसे प्रदीप्त अग्निके समान शोभित होरही हैं ॥ ७५ ॥ पंपाके तीरवाले वृक्ष

पद्मकेसरसंसृष्टोवृक्षांतरविनिःसृतः ॥ निःश्वासइवसीतायावातिवायुर्मनोहरः ॥७२॥ सौमित्रेपश्यपंपायादक्षिणेगिरिसानुषु ॥ पुष्पितांकर्णिकारस्ययष्टिंपरमशोभिताम् ॥ ७३ ॥ अधिकंशैलराजोऽयंधातुभिस्तुविभूषितः ॥ विचित्रंसृजतेरेणुंवायुवेगविघट्टितम् ॥ ७४ ॥ गिरिप्रस्थास्तु सौमित्रेसर्वतःसंप्रपुष्पितैः ॥ निष्पत्रैःसर्वतोरम्यैःप्रदीप्ताइवकिंशुकैः ॥७५॥ पंपातीररुहाश्चेमेसंसिक्तामधुगंधिनः ॥ मालतीमल्लिकापद्मकरवीराश्चपुष्पिताः ॥७६॥ केतक्यःसिंदुवाराश्चवासंत्यश्चसुपुष्पिताः ॥ मातुलिंगाश्चपूर्णाश्चकुंदगुल्माश्चसर्वशः ॥७७॥ चिरिविल्वामधूकाश्चवंजुलाबकुलास्तथा ॥ चंपकास्तिलकाश्चैवनागवृक्षाश्चपुष्पिताः ॥ ७८ ॥ पद्मकाश्चैवशोभंतेनीलाशोकाश्चपुष्पिताः ॥ लोध्राश्चगिरिपृष्ठेषुसिंहकेसरपिंजराः ॥ ७९ ॥ अंकोलाश्चकुरंटाश्चचूर्णकाःपारिभद्रकाः ॥ चूताःपाटलयश्चापिकोविदाराश्चपुष्पिताः ॥८०॥ मुचुकुंदार्जुनाश्चैवदृश्यंतेगिरिसानुषु ॥ केतकोद्दालकाश्चैवशिरीषाःशिंशपाधवाः ॥८१॥ शाल्मल्यःकिंशुकाश्चैवरक्ताःकुरबकास्तथा ॥ तिनिशानक्तमालश्चचंदनाःस्यंदनास्तथा ॥ ८२ ॥ हिंतालास्तिलकाश्चैवनागवृक्षाश्चपुष्पिताः ॥ पुष्पितान्पुष्पिताग्राभिर्लताभिःपरिवेष्टितान् ॥ ८३ ॥

इसके जलसे सींचे जाकर सदा बढते रहते हैं. इस पंपाके किनारे पर कुसुमित मालती, मल्लिका, कँवल, कँदेला, ॥७६॥ केतकी, सिन्दुवार, चमेली, बिजौरा नीबू, पुरैन, कुन्द ॥७७॥ चिलेलु, महुआ, अशोक, बकुल; चम्पा, तिलक, नाग, वृक्ष, ॥७८॥ नीलकमल फला हुआ, अनिल, अशोक, लोध्र, सिंहकेशर, पिंजर गिरिपृष्ठ ॥ ७९ ॥ अंकोल, कुरंट, चूर्णक; नींब आम, पाटलि; फूला हुआ कोविदार ॥८०॥ मुचुकुन्द, अर्जुन, केतकी, दूसरी जातिकी शतावरी शिरस खैर शीशम, यहभी पहाडके श्रृंगोंपर दिखलाई देते हैं ॥८१॥ शाल, टेसू, लाल कुरबक; तिनिश, नक्तमाल, चन्दन, स्यन्दन ॥ ८२ ॥ दूसरी जातिके तिलक, फूलेहुए नागवृक्ष यह सब वृक्ष फलरहे हैं व इनके अग्रभागमें फली हुई बेलें लिपट रही हैं. इससे यह अति शोभित हो रहे हैं ॥ ८३ ॥

हे लक्ष्मण! देखो, पंपाके किनारे यह अति चित्र विचित्र, विविध भाँतिके वृक्ष देखो कि, इनकी डालियां पवनके लगनेसे कैसी हिल रही हैं और उनसे कैसी शोभा होती है ॥८४॥ उन वृक्षोंमें बेलैं ऐसी लिपट रही हैं, जैसे कामसे उन्मत्त हो श्रेष्ठ स्त्रियें अपने २ पतिको चिपट जाती हैं; और देखो कि, पवन इस वृक्षसे उस वृक्षको इस पर्वतसे उस पर्वतको एक वनसे दूसरे वनको जाकर ॥ ८५ ॥ बहुत सारा रसचख आनन्दित होकर महकता है. पंपाके किनारे वाले किसी २ वृक्षकी शाखायें अधिक पुष्पयुक्त होनेके कारण सुशोभित हो सुगन्धित होरही हैं॥ ८६॥ और कोई कुछेक निकली हुई कलियोंकी मंजरीसे श्यामवर्णके समान शोभा पारहे हैं; 'यह फूल मीठे हैं, यह स्वादयुक्त हैं, व यह फूल खिलाहुआ है' ॥८७॥ इस प्रकार समझ और अनुरागी होकर भ्रमरगण उड २ कर पुष्पोंपर बैठते

द्रुमान्पश्येहसौमित्रेपंपायारुचिरान्बहून् ॥ वातविक्षिप्तविटपान्यथासन्नान्द्रुमानिमान् ॥ ८४ ॥ लताःसमनुवर्ततेमत्ताइववरस्त्रियः ॥ पादपात्पादपंगच्छञ्छैलाच्छैलंवनाद्वनम् ॥८५॥ वातिनैकरसास्वादसंमोदितइवानिलः ॥ केचित्पर्याप्तकुसुमाःपादपामधुगंधिनः ॥८६॥ केचिन्मुकुलसंवीताःश्यामवर्णाइवाबभुः ॥ इदंमृष्टमिदंस्वादुप्रफुल्लमिदमित्यपि ॥ ८७ ॥ रागरक्तोमधुकरःकुसुमेष्वेवलीयते ॥ निलीयपुनरुत्पत्य सहसान्यत्रगच्छति ॥ मधुलुब्धोमधुकरःपंपातीरद्रुमेष्वसौ ॥८८॥ इयंकुसुमसंघातैरुपस्तीर्णासुखाकृता ॥ स्वयंनिपतितैर्भूमिःशयनप्रस्तरैरिव ॥ ८९ ॥ विविधाविविधैःपुष्पैस्तैरेवनगसानुषु ॥ विस्तीर्णाःपीतरक्ताभाःसौमित्रेप्रस्तराःकृताः ॥ ९० ॥ हिमांतेपश्यसौमित्रेवृक्षाणांपुष्पसंभवम् ॥ पुष्पमासेहितरवःसंघर्षादिवपुष्पिताः ॥९१॥ आह्वयंतइवान्योन्यंनगाःषट्पदनादिताः ॥ कुसुमोत्तंसविटपाःशोभंतेबहुलक्ष्मण ॥ ९२ ॥ एषकारंडवःपक्षीविगाह्यसलिलंशुभम् ॥ रमतेकांतयासार्धकाममुद्दीपयन्निव ॥ ९३ ॥

हैं और रस लेकर उडके और फूलों पर बैठ जाते हैं; इस प्रकारसे मधुके लोभी मधुकर पंपाके तीरवाले वृक्षोंपर बैठते उठते हैं ॥ ८८ ॥ देखो तो इस भूमिपर कैसे फूल बिछे हैं, इस कारण यह सुखसहित शयन करनेके योग्य है यह पुष्प अपने आप गिरे हैं, किसीने तोड कर नहीं गिराये, परन्तु ऐसे गिरे हैं मानो शयन करनेके लिये सेज बिछाई गई है ॥ ८९ ॥ इस पर्वतके सब कँगूरोंपर पीले लाल इत्यादि विविध भाँतिके पुष्पसमूह द्वारा विविध भाँतिकी चादरसी बिछरही हैं ॥ ९० ॥ हे लक्ष्मण ! हिमके अन्त वसंतकालमें वृक्षगणोंकी पुष्पोत्पत्ति देखो ! मानो सब वृक्ष एक दूसरेको पुकार २ पुष्प उत्पन्न कर रहे हैं ॥ ९१ ॥ वृक्षसमूहोंकी फूलभरी शाखायें मानो भौरोंकी गुंजारसे परस्पर पुकार २ शोभा विस्तार कररही हैं ॥ ९२ ॥ देखो, लक्ष्मण ! यह कारण्डव पक्षी इस विमल जलमें डुबकी मार कामदेवको जगाताही हुआ मानो अपनी स्त्रीके सहित रमण कररहा है ॥ ९३ ॥

मन्दाकिनीके समान पम्पाका यहरूप और मनको रमानेवाले इसके गुणोंका समूह, जो पृथ्वीपर विख्यातहै सो यह ठीक है ॥९४॥ हे लक्ष्मण! हम यदि इस स्थानमें उन पतिव्रता सीताजीके दर्शन पातेतो इन्द्रपुरी व अयोध्याकी भी इच्छान करके इस स्थानमेंही वास करते ॥ ९५ ॥ हे लक्ष्मण ! जो हम तुम्हारे साथ इन रमणीक हरे भरे क्षेत्रोंमें वास करें तो हमारी और जगह वास करनेकी वासना न रहे ॥ ९६ ॥ विविध भाँतिके पुष्पसमूह और विविध वर्णके यह वृक्ष, इस वनमें बिना प्राणप्यारीके हमको विविध भाँतिकी चिन्ता उत्पन्न कराते हैं ॥ ९७ ॥ हे लक्ष्मण ! चकई चकवा, जलमुरगी और बत्तक आदि सेवित

यदिदृश्येतसासाध्वीयदिचेहवसेमहि ॥ स्पृहयेयंनशक्रायनायोध्यायैरघूत्तम ॥९५॥ नह्येवंरमणीयेषुशाद्वलेषुतयासह ॥ रमतोमेभवेच्चिंतानस्पृहान्येषुवाभवेत् ॥ ९६ ॥ अमीहिविविधैःपुष्पैस्तरवोविविधच्छदाः ॥ काननेऽस्मिन्विनाकांतांचिंतामुत्पादयंतिमे॥९७॥ पश्यशीतजलांचेमांसौमित्रेपुष्करायुताम् ॥ चक्रवाकानुचरितांकारंडवनिषेविताम् ॥९८॥ प्लवैःक्रौंचैश्चसंपूर्णांमहामृगनिषेविताम् ॥ अधिकंशोभतेपंपाविकूजद्भिर्विहंगमैः ॥९९॥ दीपयंतीवमेकामंविविधामुदितादि्वजाः ॥ श्यामांचंद्रमुखींस्मृत्वाप्रियांपद्मनिभेक्षणाम् ॥ पश्यसानुषुचित्रेषुमृगीभिःसहितान्मृगान् ॥ १०० ॥ मांपुनर्मृगशावाक्ष्यावैदेह्याविरहीकृतम् ॥ व्यथयंतीवमेचित्तंसंचरंतस्ततस्ततः ॥ १ ॥ अस्मिन्सानुन्रिम्येहिमत्तद्विजगणाकुले ॥ पश्येयंयदितांकांततःस्वस्तिभवेन्मम ॥ २ ॥ जीवेयंखलुसौमित्रेमयासहसुमध्यमा ॥ सेवेतयदिवैदेहीपंपायाःपवनंशुभम् ॥ ३ ॥

मंदाकिन्यास्तुयदिदंरूपमेतन्मनोहरम् ॥ स्थानेजगतिविख्याताग्गुणास्तस्यामनोरमाः ॥९४॥

शीतल जलयुक्त, कमल सहित इस पंपाको देखो ॥ ९८ ॥ करांकुल जलबुड्डी जलकर पक्षियोंसे सेवित व किनारे २ और दूसरा पक्षियोंके बोलनेसे यह पंपा अधिक शोभायमान हो रही है ॥ ९९ ॥ यह प्रमुदित विविध भाँतिके पक्षी हमें उन पंकजनयनी चन्द्रमुखी श्यामा ❋ जनकनंदिनी, प्रिया जानकीजी स्मृति दिलाते हैं। और देखो ! इन विचित्र पर्वतके कँगूरों पर मृगगण हरिणियोंके साथ ॥ १०० ॥ इधर उधर विहार करके मृगशावकनयनी वैदेहीके विरहमें हमको व्यथित कर रहे हैं ॥ १०१ ॥ यदि हम मतवाले पक्षियोंसे पूर्ण इस मनोहर कंगूरेपर उन प्राणप्यारीका दर्शन पावें तबही हमको शान्ति और सुखकी प्राप्ति हो सकती है ॥ १०२ ॥ हे लक्ष्मण ! यदि वह सुमध्यमा पतिव्रता जानकीजी हमारे साथ इस पंपाकी पवन सेवन करें तबही हम जीवन धारण करनेको समर्थ होवें ॥ १०३ ॥

❋ जो नारी शीत कालमें उष्ण और उष्ण कालमें शीतल होती है और जिसके सर्वांग निन्दारहित हो उसको श्यामा कहते हैं।

हे लक्ष्मण ! कमलकी सुगन्धि वहन करनेवाले शोकविनाशन इस पंपाके पुण्यवान् पवनकोधन्य पुरुषही सेवन करते हैं ॥ १०४ ॥ वह श्यामा, कमलनयनी जनककुमारी सीताजी हमारे विरहमें अवश होकर प्राण धारण करनेमें कभी समर्थ नहीं होंगी ॥ १०५ ॥ हाय ! वह धर्मशील, सत्यवादी, महाराज जनकजी जब सभाके बीचमें हमसे सीताजीकी कुशल पूँछेंगे तब हम उनसे क्या कहेंगे ? ॥ १०६ ॥ हम अतिशय मंदभागी होनेसेही पिताजीने हमको वनमें पठाया तो भी सीताजी हमारे साथ २ आईं ! हा इस प्रकारके पतिव्रत धर्ममें टिकी-हुई सीताजी इस समय कहां हैं ? ॥१०७॥ हाय लक्ष्मण ! हम राज्यभ्रष्ट और हतबुद्धि होकर वनको आये सो उस समय जो जानकीजी हमारे साथ २ आई थी उन सीताजीके बिना उस समय दीन होकर हम किस प्रकारके प्राण धारण

पद्मसौगंधिकवहंशिवकोकविनाशनम् ॥ धन्यालक्ष्मणसेवंतेपंपायावनमारुतम् ॥ ४ ॥ श्यामापद्मपलाशाक्षीप्रियाविरहितामया ॥ कथंधारयतिप्राणान्विवशाजनकात्मजा ॥५॥ किंनुवक्ष्यामिधर्मज्ञंराजानंसत्यवादिनम् ॥ जनकंपृष्टसीतंतंकुशलंजनसंसदि ॥६॥ यामामनुगतामंदंपित्राप्रस्थापितंवनम् ॥ सीताधर्मसमास्थायक्वनुसावर्ततेप्रिया ॥७॥ तयाविहीनःकृपणःकथंलक्ष्मणधारये ॥ यामामनुगताराज्याद्भ्रष्टंविहतचेतसम् ॥ ८ ॥ तच्चार्वंचितपद्माक्षंसुगंधिशुभमव्रणम् ॥ अपश्यतोमुखंतस्याःसीदतीवमतिर्मम ॥९॥ स्मितहास्यांतरयुतंगुणवन्मधुरंहितम् ॥ वैदेह्यावाक्यमतुलंकदाश्रोष्यामिलक्ष्मण ॥११०॥ प्राप्यदुखंवनेश्यामामांमन्मथविकार्शितम् ॥ नष्टदुःखेवहृष्टेवसाध्वीसाध्वभ्यभाषत ॥११॥ किंनुवक्ष्याम्ययोध्यायां कौसल्यांहिनृपात्मज ॥ क्वसास्नुषेतिपृच्छंतींकथंचापिमनस्विनीम् ॥ १२ ॥ गच्छलक्ष्मणपश्यत्वंभरतं भ्रातृवत्सलम् ॥ नह्यहंजीवितुंशक्तस्तामृतेजनकात्मजाम् ॥ १३ ॥

करनेको समर्थ हों ? ॥ १०८ ॥ उन सीताजीका कमल समान मनोहर शीतला आदिके दागोंसे रहित सुगन्धयुक्त मुखकमल न देख पाकर हमारा मन मोहके वशहो व्याकुल हुआ जाता है ॥ १०९ ॥ हे लक्ष्मण ! उन सीताजीका मुसकानसहित गुणयुक्त सुमधुर हितकारी अतुल वचनामृत कभी हम फिरभी श्रवण कर सकेंगे ? ॥११०॥ वह सर्व सुलक्षणवाली श्यामासाध्वी वनमें हमको प्राप्त होकर दुःखके समय भी सुखिनी होकर वचनामृत वर्षाकर हमको सुखी करतीं ॥१११॥ हे राजकुमार लक्ष्मणजी ! जब कि हम अयोध्याको लौटेंगे तब मनस्विनी कौसल्याजी "सीता कहां है ?" यह पूछेंगी तबहम उनसे क्या कहेंगे ? ॥ ११२ ॥ हे लक्ष्मण ! इस समय तुम निश्चय जानो कि, हम सीताके विना कभी जीवन धारण करनेको समर्थ नहीं होंगे,इसलिये हमारा मरण निश्चय

जान तुम अयोध्याजीको चले जाकर, भरतजीके साथ मिलो॥ ११३ ॥ महात्मा श्रीरामचन्द्रजीने इस प्रकार अनाथ के समान जब विलाप करना आरंभ किया तब लक्ष्मणने उनसे अर्थयुक्त वचन कहने आरंभ किये ॥११४॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! आप शोकका त्याग कीजिये आप पुरुषोत्तम हैं, इसलिये आपको शोक करना उचित नहीं है. आपसरीखे न्यायवान्, धीरवान्, निष्पाप पुरुषोंमें ऐसी शोकबुद्धिका होना सब भाँतिसे असंभव है ॥ ११५ ॥ प्रियजनके विरहसे उत्पन्न हुए दुःख और स्नेहको छोड दीजिये. अतिशय स्नेहयुक्त अर्थात् तेलमें पडनेसे गीली बत्तीभी जल जाती है॥११६॥ यदि रावण पातालमें वा उससेभी अधिक गुप्तदेशमें भागजाय, तथापि कदापि वह जीवित नहीं रह सकता ॥ ११७ ॥ वह पापमतिवाला राक्षस कहां रहता है ? और उसकी क्या इच्छा है पहले इसबातको आपजान लीजिये, तब इसके पीछे या तो वह सीताको छोडही देगा अथवा मारा जायगा ॥ ११८ ॥ यदि रावण जानकीजीको न देगा

इतिराममहात्मानंविलपंतमनाथवत् ॥ उवाचलक्ष्मणोभ्रातावचनंयुक्तमव्ययम् ॥१४॥ संस्तंभरामभद्रंतेमाशुचःपुरुषोत्तम ॥ नेदृशानांमतिर्मंदा भवत्यकलुषात्मनाम् ॥१५॥ स्मृत्वावियोगजंदुःखंत्यजस्नेहंप्रियेजने ॥ अतिस्नेहपरिष्वंगाद्वर्तिरार्द्राऽपिदह्यते ॥१६॥ यदिगच्छतिपातालंत तोऽभ्यधिकमेववा ॥ सर्वथारावणस्तातनभविष्यतिराघव ॥१७॥ प्रवृत्तिर्लभ्यतांतावत्तस्यपापस्यरक्षसः ॥ ततोहास्यतिवासीतांनिधनंवागमि ष्यति ॥१८॥ यदियातिदितेर्गर्भंरावणःसहसीतया ॥ तत्राप्येनंहनिष्यामिनचेद्दास्यतिमैथिलीम् ॥ १९ ॥ स्वास्थ्यंभद्रंभजस्वार्यत्यज्यतांकृ पणामतिः ॥ अर्थोहिनष्टकार्यार्थैरयत्नेनाधिगम्यते ॥ १२० ॥ उत्साहोबलवानार्यनास्त्युत्साहात्परंबलम् ॥ सोत्साहस्यहिलोकेषुनकिंचिदपि दुर्लभम् ॥ २१ ॥ उत्साहवंतःपुरुषानावसीदंतिकर्मसु ॥ उत्साहमात्रमाश्रित्यप्रतिलप्स्यामजानकीम् ॥२२॥ त्यज्यतांकामवृत्तत्वंशोकंसंन्य स्यपृष्ठतः ॥ महात्मानंकृतात्मानमात्मानंनावबुध्यसे ॥ २३ ॥

तब वह सीताजीकेसहित चाहे (दैत्यमाता) दितिके गर्भमें चलाजाय तो भी हम उसको निःसन्देह मारडालेंगे ॥११९॥ हे आर्य ! आप मनकी दीनताको छोड कर स्वस्थ हूजिये आप तो जानतेही हैं कि नष्ट कार्य विना यत्नकिये कभी सिद्ध नहीं होता ॥१२०॥ हे आर्य ! उत्साहही बलवान् है, उत्साहसे अधिक श्रेष्ठबल और कुछ भी नहीं है. इस संसारमें उत्साहको कुछ भी दुर्लभ नहीं है, इसलिये उत्साहका अवश्यही आसरा लेना चाहिये ॥१२१॥ उत्साहयुक्त पुरुषगण कभी नहीं घबडाते, इसलिये हम केवल उत्साहकाही अवलम्बन करके जानकीजीको फिर प्राप्त करलेंगे । इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ १२२ ॥ आप महात्मा और कृतविद्य हैं सो आप इस समय अपने आत्मस्वरूपको नहीं जानते, इस लिये शोकको त्याग करके यह कामी पुरुषोंकीसी वृत्ति छोडदीजिये॥१२३॥

जब श्रीलक्ष्मणजीने इस प्रकारसे समझाया बुझाया तब शोकसे हतचित्त हुए श्रीरामचन्द्रजी शोक और मोहको छोडकर धैर्य धारण किया ॥ १२४ ॥ तब अचिन्त्य पराक्रम श्रीरामचन्द्रजी अव्यग्र चित्तसे उस वृक्षसमूहसे परिपूर्ण मनोहर पंपासरको घूम २ देखने लगे ॥ १२५ ॥ तिसके पीछे लक्ष्मणजीके सहित उद्विग्नचित्त हुये वनस्थली, झरने व कंदराओंको अवलोकन करते २ सबका विचार करते सीताजीके दुःखसे उपहत चित्त हो आगे चले ॥ १२६ ॥ सुस्थिरचित्त महात्मा मत्त मातंगके समान चाल चलनेवाले लक्ष्मणजी श्रीरामचन्द्रजी काइष्ट विचार करते हुए धर्मके बलसे और पराक्रमसे उनकी रक्षा करने लगे ॥ १२७ ॥ अद्भुतदर्शन श्रीरामचन्द्रजी व लक्ष्मण दोनोंजने ऋष्यमूक पर्वतके निकट विचरण कर रहे थे कि, उसी समय वानरगणोंके राजा

एवंसंबोधितस्तेनशोकोपहतचेतनः ॥ त्यज्यशोकंचमोहंचरामोधैर्यमुपागमत् ॥२४॥ सोऽभ्यतिक्रामदव्यग्रस्तामचिंत्यपराक्रमः ॥ रामःपंपां सुरुचिरांरम्यांपारिप्लवद्रुमाम् ॥२५॥ निरीक्षमाणःसहसामहात्मासर्ववनंनिर्झरकंदरंच ॥ उद्विग्नचेताःसहलक्ष्मणेनविचार्यदुःखोपहतः प्रतस्थे ॥ २६ ॥ तमत्तमातंगविलासगामीइच्छंतमव्यग्रमनामहात्मा ॥ सलक्ष्मणोराघवमिचेष्टोररक्षधर्मेणबलेनचैव ॥ २७ ॥ तावृष्यमूकस्यसमीपचारीचरन्ददर्शाद्भुतदर्शनीयौ ॥ शाखामृगाणामधिपस्तरस्वीवितत्रसेनैवविचेष्टचेष्टम् ॥२८॥ सतौमहात्मागजमंदगामीशाखामृगस्तत्रचरंश्चरंतौ ॥ दृष्ट्वाविषादंपरमंजगामचिंतापरीतोभयभारभग्नः ॥ २९ ॥ तमाश्रमंपुण्यसुखंशरण्यसदैवशाखामृगसेवितांतम् ॥ त्रस्ताश्चदृष्ट्वाहरयोविजग्मुर्महौजसौराघवलक्ष्मणौतौ ॥ १३० ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आदि० च० सा० किष्किंधाकाण्डे प्रथमःसर्गः ॥ १ ॥

सुग्रीवजीने ऋष्यमूककी ओर घूमते २ इन दोनों जनोंको देखा, वह उनको देख त्रासयुक्त हो भोजनादिकी चेष्टासे विरत हुए ॥१२८ ॥ श्रीराम लक्ष्मणजीभी उसी स्थानमें घूमने लगे, गजतुल्य मंद चाल चलनेवाले महात्मा वह शाखामृग उस स्थानमें घूमकर चिन्तायुक्त और भयसे अतिभीतहो उन राम लक्ष्मणजी को देख अति विषादको प्राप्त हुए ॥ १२९ ॥ उन वानरगणों करके सेवनीय मतंगमुनिके शापसे वालि जिसमें प्रवेश नहीं कर सकता था ! ऐसे पुण्याश्रममें वानर सुग्रीवादि वहां सदा रहा करते थे । इस समय महावीर्यवान् श्रीरामचन्द्रजी व लक्ष्मणजीको वहां आते हुये देखकर वह शाखामृग अतिशय भीत औरत्रासित हुए ॥ १३० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायां प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

उन अति श्रेष्ठ आयुध धारण किये हुए महात्मा श्रीराम लक्ष्मण दोनों भाइयोंको देखकर वानर राज सुग्रीव अत्यन्तभय पाय गये ॥ १ ॥ वह वानर वर व्याकुल चित्त हो दशों दिशाओमें देखते किसी एक स्थानमें स्थिर होकर न टिक सके ॥ २ ॥ उन महा बलवान् दोनों वीरोंको देखकर सुग्रीवजीने वहां ठहर नेकी इच्छा न की; उन अतिडरे हुए कपि श्रेष्ठ का चित्त अत्यन्त विषादको प्राप्त हुआ ॥ ३ ॥ वह धर्मात्मा सुग्रीवजी परम व्यग्रचित्तसे सब वानरों के साथ ऊंच नीच का विचार करने लगा ॥ ४ ॥ वानर राज सुग्रीव श्रीरामलक्ष्मण दोनों भाइयोंको देख बडी ऊबके साथ अपने मंत्रियों से कहने लगे कि ॥ ५ ॥ यह दोनों वीर निश्चयही वालिके भेजे हुए चीरवसन पहर, बहुरूप बना यहां पर आकर इस वनमें घूम रहे हैं ॥ ६ ॥ इसके पीछे सुग्रीवजीकेसाथी इन

तौतुदृष्ट्वामहात्मानौभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ वरायुधधरौवीरौसुग्रीवः शंकितोऽभवत् ॥१॥ उद्विग्नहृदयःसर्वादिशःसमवलोकयन् ॥ नव्यतिष्ठत कस्मिंश्चिद्देशेवानरपुंगवः ॥२॥ नैवचक्रेमनः स्थातुंवीक्ष्यमाणौमहाबलौ ॥ कपेः परमभीतस्यचित्तंव्यवससादह ॥३॥ चिंतयित्वासधर्मात्मा विमृश्यगुरुलाघवम् ॥ सुग्रीवः परमोद्विग्नःसर्वैस्तैर्वानरैः सह ॥४॥ ततःससचिवेभ्यस्तुसुग्रीवः प्लवगाधिपः ॥ शशंसपरमोद्विग्नःपश्यंस्तौराम लक्ष्मणौ ॥ ५ ॥ एतौवनमिदंदुर्गंवालिप्रणिहितौध्रुवम् ॥ छद्मनाचीरवसनौप्रचरंताविहागतौ ॥ ६ ॥ ततःसुग्रीवसचिवादृष्ट्वापरमधन्विनौ ॥ जग्मुर्गिरितटात्तस्मादन्यच्छिखरमुत्तमम् ॥७॥ तेक्षिप्रमभिगम्याथयूथपायूथपर्षभम् ॥ हरयोवानरश्रेष्ठंपरिवार्योपतस्थिरे ॥८॥ एवमेकायन गताःप्लवमानागिरेर्गिरिम् ॥ प्रकंपयंतोवेगेनगिरीणांशिखराणिच ॥९॥ ततःशाखामृगाःसर्वेप्लवमानामहाबलाः ॥ बभंजुश्चनगांस्तत्रपुष्पि तान्दुर्गमाश्रितान् ॥ १० ॥ आप्लवंतोहरिवराःसर्वतस्तंमहागिरिम् ॥ मृगमार्जारशार्दूलांस्त्रासयंतोययुस्तदा ॥ ११ ॥

धनुषधारी श्रीराम लक्ष्मणजीको देखकर उस गिरिके तटसे दूसरे पर्वत के शिखर पर चले गये ॥ ७ ॥ उनमेंसे बडे २ यूथोंके अधिपति वानरगण शीघ्रतासे यूथ पति सुग्रीवजीके निकट जाकर उनको घेरकर खडे हुए ॥ ८ ॥ इस प्रकार एकही स्थान नियत करके वह वानर गण पर्वतके कंगूरों को कंपित करते हुए एक शिखर से दूसरे शिखर पर कूदफांद करने लगे ॥ ९ ॥ उसके पीछे वह सब महा बलवान् वानर गण छलांग मार २ कर उस पर्वत पर के जमे हुए फूले फले वृक्षोंकोउखाडनेलगे ॥ १० ॥ अनन्तर वह बडे २ महा बलवान् कपिगण उस महा पर्वतके सब स्थानोंमें मृग, बिलाव, बाघादिकों को त्रास उपजाकर कूदफांद कर चलने लगे ॥ ११ ॥

फिर सुग्रीवजी के मुख्य २ साथी जो कि, मंत्री थे वह कपिश्रेष्ठ सुग्रीवजी के सन्मुख जा हाथ जोड कर खडे हो गये ॥ १२ ॥ तब वचन बोलनेमें अत्यन्त चतुर हनुमानूजी बालिके डरसे अनिष्टकी शंका करते हुए भय भीत सुग्रीवजीसे बोले कि ॥ १३ ॥ सब वानर गण भय का त्याग करें. कारण कि, यह मलयाचल पर्वत है; यहां पर वालि के भयकी कोई संभावना नहीं ॥ १४ ॥ हे वानर श्रेष्ठ सुग्रीवजी ! आप जिसके भय की शंका करके व्याकुल चित्त होकर भाग आये हो उस दुर्दर्शन क्रूर स्वभाववाले वालिको हम यहाँ नहीं देखते हैं ॥ १५ ॥ हे सौम्य ! जिस पाप कर्म करनेवाले अपने बडे भाईसे आपको डर है वह दुष्टात्मा वाली यहां पर नहीं है, इस लिये उस करके कोई भय का कारण भी हम नहीं देखते हैं ॥ १६ ॥ हे कपीश्वर ! आश्चर्य है कि,

ततःसुग्रीवसचिवाःपर्वतेंद्रेसमाहिताः ॥ संगम्यकपिमुख्येनसर्वेप्रांजलयःस्थिताः ॥१२॥ ततस्तुभयसंत्रस्तंवालिकिल्बिषशंकितम् ॥ उवाचहनुमान्वाक्यंसुग्रीवंवाक्यकोविदः ॥१३॥ संभ्रमस्त्यज्यतामेषसर्वैर्वालिकृतेमहान् ॥ मलयोऽयंगिरिवरोभयंनेहास्तिवालिनः ॥१४॥ यस्मादुद्विग्नचेतास्त्वंविद्रुतोहरिपुंगव ॥ तंक्रूरदर्शनंक्रूरंनेहपश्यामिवालिनम् ॥१५॥ यस्मात्तवभयंसौम्यपूर्वजात्पापकर्मणः ॥ सनेहवालीदुष्टात्मानतेपश्याम्यहंभयम् ॥१६॥ अहोशाखामृगत्वंतेव्यक्तमेवप्लवंगम ॥ लघुचित्ततयाऽऽत्मानंनस्थापयसियोमतौ ॥१७॥ बुद्धिविज्ञानसंपन्नइंगितैःसर्वमाचर ॥ नह्यबुद्धिंगतोराजासर्वभूतानिचास्तिहि ॥ १८ ॥ सुग्रीवस्तुशुभंवाक्यंश्रुत्वासर्वंहनूमतः ॥ ततःशुभतरंवाक्यंहनूमंतमुवाचह ॥ १९ ॥ दीर्घबाहूविशालाक्षौशरचापासिधारिणौ ॥ कस्यनस्याद्भयंदृष्ट्वाह्येतौसुरसुतोपमौ ॥२०॥ वालिप्रणिहिताविवशंकेऽहंपुरुषोत्तमौ ॥ राजानोबहुमित्राश्चविश्वासोनात्रहिक्षमः ॥ २१ ॥ अरयश्चमनुष्येणविज्ञेयाश्छन्नचारिणः ॥ विश्वस्तानामविश्वस्ताश्छिद्रेषुप्रहरंत्यपि ॥ २२ ॥

आप अपना शाखा मृगत्व स्पष्टही कर रहे हैं. आप वानर जाति हैं उसी लघुचित्तताके कारण आप अपनी बुद्धिको स्थिर नहीं कर सकते हैं ॥१७॥ आप बुद्धि और विज्ञान युक्त हो संकेत मात्रसे आपको सब काम कर लेने चाहिये. राजा कुबुद्धिका आश्रय करके सर्व जीवोंकी रक्षा नहीं कर सकता ॥१८॥ सुग्रीवजी हनुमानूजीके यह शुभकारी वचन सुनकर उनसे अति हितकारी वचन कहने लगे कि ॥१९॥ हे हनुमन् ! ये तो दीर्घबाहु युक्त बडी २ आंखोंवाले शर चाप व खड्ग धारण किये हुए देवताओंके पुत्र समान हैं. इन दोनों वीरोंको देख कर किसको भय उपस्थित नहीं होगा ? ॥२०॥ हम जानते हैं कि, ये दोनों पुरुष श्रेष्ठ वालिकेही भेजे हुए यहां आये हैं, क्योंकि राजा लोगोंके बहुत सारे मित्र हुआ करते हैं; इस कारण इस विषयमें विश्वास न करना चाहिये ॥२१॥ मनुष्योंको

अवश्य जानना कर्त्तव्य है कि, शत्रु लोग गुप्तरूपसे घूमा करते हैं. अविश्वासी वह शत्रुगण विश्वासी पुरुषोंको समय पाते ही मार डालते हैं ॥२२॥ वाली कार्य करनेमें बडा कुशल है वह इस बातको भली प्रकार कर सकता है, अर्थात् हमें मारडाल सकता है, क्योंकि राजा लोग बहुदर्शी अर्थात् उपायोंके जाननेवाले होते हैं, इस लिये मनुष्योंको चाहिये कि, प्राकृत वेशमें उनके आशयको जाने ॥ २३ ॥ इस लिये हे कपिवर ! स्वाभाविक वेशसे जाकर उन दोनों जनोंके सामाचार रूप और बोल चालसे भली भांति जानकर आओ ॥ २४ ॥ तुम हर्षित मनसे जाकर प्रशंसा व इङ्गितसे उनको विश्वासमें लाकर उनके मनका भाव जान लेना ॥ २५ ॥ हे वानर वर ! तुम हमारी ओरको मुखकर, उनके धनुष धारण करके इस वनमें आनेका कारण और प्रयोजन जान आओ ॥ २६ ॥ ऐसा करनेसे यदि यह लोग विशुद्ध भाव युक्त होंगे तो भी तुमको अवश्य ज्ञात हो जायगा और भाषण व रूपादिद्वारा यदि वह दुष्टभाव रखते

कृत्येषुवालीमेधावीराजानोबहुदर्शिनः ॥ भवंतिपरहंतारस्तेज्ञेयाःप्राकृतैर्नरैः ॥२३॥ तौत्वयाप्राकृतनैवगत्वाज्ञेयौप्लवंगम ॥ इंगितानांप्रकारै श्चरूपव्याभाषणेनच ॥ २४ ॥ लक्षयस्वतयोर्भावंप्रहृष्टमनसौयदि ॥ विश्वासयन्प्रशंसाभिरिंगितैश्चपुनःपुनः ॥२५॥ ममैवाभिमुखंस्थित्वा पृच्छत्वंहरिपुंगव ॥ प्रयोजनंप्रवेशस्यवनस्यास्यधनुर्धरौ ॥२६॥ शुद्धात्मानौयदित्वेतौजानीहित्वंप्लवंगम ॥ व्याभाषितैर्वारूपैर्वाविज्ञेयादु ष्टताऽनयोः ॥२७॥ इत्येवंकपिराजेनसंदिष्टोमारुतात्मजः ॥ चचारगमनेबुद्धिंयत्रतौरामलक्ष्मणौ ॥२८॥ तथेतिसंपूज्यवचस्तुतस्यकपिःसुभी तस्यदुरासदस्य ॥ महानुभावोहनुमान्ययौतदासयत्ररामोऽतिबलीसलक्ष्मणः ॥ २९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० किष्किन्धाकांडे द्वितीयः सर्गः ॥२॥ वचोविज्ञायहनुमान्मासुग्रीवस्यमहात्मनः ॥ पर्वताहृष्यमूकात्तुपुप्लुवेयत्रराघवौ ॥१॥ कपिरूपंपरि त्यज्यहनुमान्मारुतात्मजः ॥ भिक्षुरूपंततोभेजेशठबुद्धितयाकपिः ॥२॥ ततःसहनुमान्वाचाश्लक्ष्णयासुमनोज्ञया ॥ विनीतवदुपागम्यराघवौ प्रणिपत्यच ॥ ३ ॥ आबभाषेचतौवीरौयथावत्प्रशंशसच ॥ संपूज्यविधिवद्वीरौहनुमान्वानरोत्तमः ॥ ४ ॥

होंगे तो वह भी सब समझ पडेगा ॥२७॥ कपिराज सुग्रीवजी से इस प्रकार आज्ञा पाकर पवनपुत्र हनुमानूजीने श्रीराम लक्ष्मणजीके निकट जानेका निश्चय किया ॥ २८ ॥ महानुभाव कपिवर हनुमानूजीने उन अतिभीत दुर्द्धर्ष सुग्रीवजीके वचन मान जहां वे महाबलवान् श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीके सहित विचरते थे उस स्थानमें गमन किया ॥२९॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायां द्वितीयः सर्गः ॥२॥ हनुमानूजीने महात्मा सुग्रीवजीके वचन सुनकर ऋष्यमूक पर्वतसे राम लक्ष्मणजीके निकट कूद कर गमन किया ॥१॥ जब हनुमानजी चले तो इन्होंने कपट बुद्धिका आश्रय करके कपि रूप छोड भिक्षुकका रूप धारण किया ॥२॥ उसके पीछे हनुमानूजी विनीत होकर उनके निकट जा प्रणाम करके मधुरवाणीसे नम्रतापूर्वक उन दोनों भाताओंसे बोले ॥३॥ प्रथम तो उन दोनों वीरोंकी बडी

प्रशंसा की, और फिर वानरोत्तम हनुमान्‌जीने विधिविधानसे उनकी पूजाभी की ॥४॥ फिर मृदुभावसे उन सत्यपराक्रम दोनों वीरोंसे कहने लगे कि आप राजर्षिसदृश और देवतुल्य व्रतधारी तपस्वी और ब्रह्मचारियोंमें अग्रणीय ॥५॥ इन सब मृग और दूसरे वनचारियोंको भयभीत करते हुए किस कारणसे इस देशमें आये हैं! ॥६॥ आप लोग पंपाके तीरवाले वृक्षोंको चारों ओरसे देखकर इस पुण्यजलवाली नदीकी शोभाको बढा रहे हो ॥७॥ आपलोग कृतकार्य, धैर्यवान्, सुवर्णकी कांतिके समान चीर पहरे, बडी बांहोंवाले, और ऊँचे श्वासें लेते हुए कौन हैं जो अपना अपूर्व रूप दिखा इन वनवासिनी प्रजाओंको पीडा देते हो? ॥८॥ आपका देखना सिंहके समान है; आप महाबलवान् और महापराक्रम युक्त हैं, और आप दोनों जनोंके इन्द्रधनुषके समान धनुष देखकर ज्ञात होता है कि, आप देखतेही शत्रुओंका नाश कर देंगे ॥ ९ ॥ हम देखते हैं कि, आप श्रीमान् रूपसम्पन्न वृषभतुल्य पराक्रम करनेवाले हाथीकी शुंड समान चढा उतारवाली

उवाचकामतोवाक्यंमृदुसत्यपराक्रमौ॥राजर्षिदेवप्रतिमौतापसौसंशितव्रतौ ॥५॥ देशंकथमिमंप्राप्तौभवंतौवरवर्णिनौ ॥ त्रासयंतौमृगगणान्यांश्चवनचारिणः ॥ ६ ॥ पंपातीररुहान्वृक्षान्वीक्षमाणौसमंततः ॥ इमांनदींशुभजलांशोभयंतौतरस्विनौ ॥७॥ धैर्यवंतौसुवर्णाभौकौयुवांचीरवाससौ ॥ निःश्वसंतौवरभुजौपीडयंताविमाःप्रजाः॥८॥सिंहविप्रेक्षितौवीरौमहाबलपराक्रमौ ॥ शक्रचापनिभेचापेगृहीत्वाशत्रुनाशनौ ॥ ९ ॥ श्रीमंतौरूपसंपन्नौवृषभश्रेष्ठविक्रमौ ॥ हस्तिहस्तोमभुजौद्युतिमंतौनरर्षभौ ॥ १० ॥ प्रभयापर्वतेंद्रोऽसौयुवयोरवभासितः ॥ राज्यार्हावमरप्रख्यौकथंदेशमिहागतौ ॥ ११ ॥ पद्मपत्रेक्षणौवीरौजटामंडलधारिणौ ॥ अन्योन्यसदृशौवीरौदेवलोकादिहागतौ ॥ १२ ॥ यदृच्छयेववसुंप्राप्तौचंद्रसूर्यौवसुंधराम् ॥ विशालवक्षसौवीरौमानुषौदेवरूपिणौ ॥ १३ ॥ सिंहस्कंधौमहोत्साहौसमदाविवगोवृषौ ॥ आयताश्चसुवृत्ताश्चबाहवःपरिघोपमाः ॥ १४ ॥ सर्वभूषणभूषार्हाःकिमर्थंनविभूषिताः ॥ उभौयोग्यावहंमन्येरक्षितुंपृथिवीमिमाम् ॥ १५ ॥

लम्बी भुजायें धारण किये द्युतिमान् नरश्रेष्ठ हैं ॥१०॥ आप दोनों जनोंकी प्रभासे यह पर्वत प्रकाशित हो रहा है और दोनोंही जन आपराज्य करनेके योग्य हो यहांपर कैसे आये ? ॥ ११ ॥ आप दोनों जनोंके नयन कमलदलके समान हैं और आप दोनों वीर जटामण्डल व परस्पर एक दूसरेसे मिलता हुआ रूप धारण किये हैं; हमारी समझमें तो देवताओंके लोकसे आप यहां पर आये हो ॥१२॥ अथवा आप लोग चन्द्रमा सूर्य तो नहीं हैं, जो देवलोकसे अपनी इच्छानुसार मनुष्यलोकमें आये हैं ? आप लोग विशाल वक्षस्थलसहित मनुष्योंका रूप धारण किये कोई देवही हो, मानों वीररसही दो रूप धारण कर आया है ॥ १३ ॥ आप दोनों वीरोंके कँधे सिंहके समान हैं, आप मानों मदयुक्त वृषभही हों, बाहें आपकी लँबी, गोल और परिघाकार हैं ॥१४॥ आप सब भूषणधारण करनेके योग्य होनेपर भी किस कारणसे भूषण धारण नहीं कर रहे हैं ? हम आप दोनों जनोंको ऐसा समझते हैं कि आप इस पृथ्वीकी रक्ष

करनेके योग्य हैं ॥ १५ ॥ वन सागर विन्ध्यहिमालयादि पर्वत सहित भूमिका पालन करनेके योग्य आप हैं यह जो दो धनुष आप धारण किये हैं यह भी चित्र विचित्र सचिक्कण और चित्र विचित्र चन्दनाद्यनुलेपन युक्त हैं ॥१६॥ यह आपके धनुष वज्रधारी इन्द्रके धनुषके समान प्रकाशित होते हैं औरआप दोनों जनोंके तरकसभी तीखे नाराचोंसे भरपूर हैं ॥ १७ ॥ जितने इनमें बाण हैं यह शत्रुको स्पर्श करतेही प्राण लेनेवाले हैं; और प्रज्वलित सर्पके समान दीप्तिवाले बडे लंबे चौडे तपाये हुए सुवर्णसे भूषित जिनमें कब्जे लगे ॥१८॥ यह खड्ग विराजमान हैं; मानों कैंचुली छोडे हुए सर्प हैं । फिरहम आपसेइस प्रकार कह रहे हैं; परन्तुआप लोगहमसे क्यों नहीं भाषण करते ? ॥१९॥ हे वीरो ! इससमय हमारा आप परिचय श्रवण करें, सुग्रीव नामक एक धर्मात्मा

संपूर्णांश्चशितै ससागरवनांकृत्स्नांविंध्यमेरुविभूषिताम् ॥ इमेचधनुषीचित्रेश्लक्ष्णेचित्रानुलेपने ॥ १६ ॥ प्रकाशेतेयथेंद्रस्यवज्रेहेमविभूषते ॥ संपूर्णाश्चशितै बाणैस्तूणाश्चाशुभदर्शनाः ॥ १७ ॥ जीवितांतकरैर्घोरैर्ज्वलद्भिरिवपन्नगैः ॥ महाप्रमाणौविपुलौतप्तहाटकभूषणौ ॥ १८ ॥ खड्गावेतौवि राजेतेनिर्मुक्तभुजगाविव ॥ एवंमांपरिभाषंतंकस्माद्वैनाभिभाषथः ॥ १९ ॥ सुग्रीवोनामधर्मात्माकश्चिद्वानरपुंगवः ॥ वीरोविनिकृतोभ्रात्राज गद्भ्रमतिदुःखितः ॥ २० ॥ प्राप्तोऽहंप्रषितस्तेनसुग्रीवेणमहात्मना ॥ राज्ञावानरमुख्यानांहनुमान्नामवानरः ॥ २१ ॥ युवाभ्यांसहिधर्मात्मा सुग्रीवःसख्यमिच्छति ॥ तस्य मांसचिवंवित्तंवानरंपवनात्मजम् ॥२२॥ भिक्षुरूपप्रतिच्छन्नंसुग्रीवप्रियकारणात् ॥ ऋष्यमूकादिहप्राप्तंकाम गंकामचारिणम् ॥२३॥ एवमुक्त्वातुहनुमांस्तौवीरौरामलक्ष्मणौ ॥ वाक्यज्ञोवाक्यकुशलःपुनर्नोवाचकिंचन॥२४॥एतच्छ्रुत्वावचस्तस्यरामोल क्ष्मणमब्रवीत् ॥ प्रहृष्टवदनःश्रीमान्भ्रातरंपार्श्वतःस्थितम् ॥ २५ ॥

श्रेष्ठ वानर है, वह अपने बडे भाईसे निकाले जाकर त्रासित व दुःखित होकर इस समस्त पृथ्वीपर भ्रमण किया करते हैं ॥ २० ॥ हम उनके वानरोंमें मुख्य हनुमान् नाम वानर उन वानरराज महात्मा सुग्रीवजीके भेजे हुए आपके पास आये हैं ॥ २१ ॥ उन धर्मात्मा सुग्रीवजीने आपके साथ मित्रता करनेकी इच्छा की है, हम पवनकेपुत्र उन सुग्रीवजीके मंत्री और साथी हैं ॥२२॥ यदि कहो कि, वानरके मंत्री भिक्षुक कैसे ? उसपर कहते हैं कि,हमकाम चारी और इच्छानुसार चलनेवाले, सुग्रीवजीकी प्रियकामनासे भिक्षुकके रूपसे गुप्त वेषमें आपके निकट आये हैं ॥ २३ ॥ वचनके जाननेवाले और बोल नेमें चतुर हनुमानूजी श्रीरामचन्द्रजी तथा लक्ष्मणजी दोनों वीरोंसे ऐसा कह कर फिर कुछ न बोले ॥ २४ ॥ श्रीमान् रामचन्द्रजी उनके यह वचन

सुन प्रफुल्लवदन होकर बगलमें खडे हुए अपने भ्राता लक्ष्मणजीसे बोले ॥ २५ ॥ कि यह हनुमान् महात्मा कपिराज सुग्रीवजीके मंत्री हैं, व उन्हीं का प्रिय करनेकी कामनासे हमारे पास आये हैं ॥ २६ ॥ हे लक्ष्मण ! सुग्रीवजीके सचिव वाक्यविशारद शत्रुओंका नाश करनेवाले इन कपिश्रेष्ठसे तुम मधुर वचनोंके साथ वार्त्ता करो ॥ २७ ॥ तुम यहभी जानलो कि जिस पुरुषने ऋग्वेद नहीं पढा, यजुर्वेद अथवा सामवेद भी नहीं पढे,वह पुरुष कभी ऐसे वचन कहनेमें समर्थ नहीं होसकता कि जैसे वचन इन्होंने कहे ॥ २८ ॥ हम समझते हैं कि इन वानरश्रेष्ठने निश्चय समस्त व्याकरण शास्त्र पढा है, क्योंकि यह हमारे साथ बहुत देरसे गीर्वाण भाषा बोले रहे हैं, परन्तु उसमें इन्होंने एकभी दूषित शब्दका प्रयोग नहीं किया ॥ २९ ॥ इनके मुख, नेत्र ललाट

सचिवोऽयंकपींद्रस्यसुग्रीवस्यमहात्मनः ॥ तमेवकांक्षमाणस्यममांतिकमिहगतः ॥२६॥ तमभ्यभाषसौमित्रेसुग्रीवसचिवंकपिम् ॥ वाक्यज्ञंमधुरैर्वाक्यैःस्नेहयुक्तमरिंदम ॥ २७ ॥ नानृग्वेदविनीतस्यनायजुर्वेदधारिणः ॥ नासामवेदविदुषःशक्यमेवंविभाषितुम् ॥ २८ ॥ नूनंव्याकरणंकृत्स्नमनेनबहुधाश्रुतम् ॥ बहुव्याहरताऽनेननकिंचिदपशब्दितम् ॥ २९ ॥ नमुखेनेत्रयोश्चापिललाटेचभ्रुवोस्तथा ॥ अन्येष्वपिच्सर्वेषुदोषःसंविदितःक्वचित् ॥३०॥ अविस्तरमसंदिग्धमविलंबितमव्यथम् ॥ उरस्थंकंठगंवाक्यंवर्ततेमध्यमस्वरम् ॥३१॥ संस्कारक्रमसंपन्नामद्भुतामविलंबिताम् ॥ उच्चारयतिकल्याणींवाचंहृदयहर्षिणीम् ॥३२॥ अनयाचित्रयावाचात्रिस्थानव्यंजनस्थया ॥ कस्यनाराध्यतेचित्तमुद्यतासेररेरपि ॥ ३३ ॥ एवंविधोयस्वदूतोनभवेत्पार्थिवस्यतु ॥ सिध्यंतिहिकथंतस्यकार्याणांगतयोऽनघ ॥ ३४ ॥ एवंगुणगणैर्युक्तायस्यस्युःकार्यसाधकाः ॥ तस्यसिध्यंतिसर्वेऽर्थादूतवाक्यप्रचोदिताः ॥ ३५ ॥

अथवा भौंह आदि और अंगोंमें बोलनेके समय कोई दोष नहीं पाया जाता ॥ ३० ॥ इनके वचन विस्तारसे रहित हैं, संदेह युक्त नहीं होते, इन्होंने स्पष्ट मध्यम स्वरमें विना देर लगाये हुए अन्तरमें टिके हुए कंठगत सब वचन कहे हैं ॥ ३१ ॥ इन्होंने जो कुछ कहा सो संस्कारयुक्त अविलम्बित अद्भुत कल्याणदायिनी हृदय हरण करनेवाली मनोहर वाणीसे कहा है ॥ ३२ ॥ छाती, कंठ व शिर इन तीन स्थानोंसे निकली हुई इनकी विचित्र वाणी श्रवण करतेही हाथमें खड्ग उठाये हुए शत्रुका चित्तभी प्रसन्न करदे; (इन वाक्योंसे महावीरजीकी सर्वज्ञता और शास्त्रज्ञता सूचित की) ॥३३॥ हे लक्ष्मण ! जिस राजाके ऐसे श्रेष्ठ दूत हैं उस राजाके सब कार्य क्यों न सिद्ध होंगे ? ॥ ३४ ॥ जिनके इस प्रकारके गुणवान् कार्य साधन करनेवाले दूत विद्यमान हों उनके

सब कार्य निःसन्देह सिद्ध होजाते हैं ॥३५॥ जब श्रीरामचन्द्रजीने इस प्रकारसे कहा तब वचन बोलनेमें चतुर लक्ष्मणजी पवनपुत्र सुग्रीवजीके मन्त्री हनुमान्जीसे कहने लगे, कि ॥३६॥ हे बुधवर! महातमा सुग्रीवजीके गुण हमलोग जानते हैं और उन्हीं कपिश्रेष्ठ सुग्रीवजीको हम खोजते हैं ॥३७॥ हे वानरश्रेष्ठ! सुग्रीवजीके कहनेसे तुमने जो कुछ कहा है वैसाही हम तुम्हारे वचनोंका गौरव करके करेंगे इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥३८॥ इसके पीछे कपिश्रेष्ठ पवनपुत्र हनुमान्जी लक्ष्मणजीके यह वचनसुन करके अत्यन्त हर्षित हुये. और जयकी सिद्धिके विषयमें मनको समाधानकर सुग्रीव और श्रीरामजन्द्रजीमें मित्रता करानेकी इच्छा करते हुये ॥३९॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायां तृतीयः सर्गः ॥३॥ हनुमान्जी श्रीलक्ष्मणजीके वह मधुरभाव भरे वचन श्रवण करके अत्यन्त

एवमुक्तस्तुसौमित्रिःसुग्रीवसचिवंकपिम् ॥ अभ्यभाषतवाक्यज्ञोवाक्यज्ञंपवनात्मजम् ॥ ३६ ॥ विदितानोगुणाविद्वन्सुग्रीवस्यमहात्मनः ॥ तमेवचावांमार्गावःसुग्रीवंप्लवगेश्वरम् ॥ ३७ ॥ यथाब्रवीषिहनुमन्सुग्रीववचनादिह ॥ तत्तथाहिकरिष्यावोवचनात्तवसत्तम ॥ ३८ ॥ तत्तस्यवाक्यंनिपुणनिशम्यप्रहृष्टरूपःपवनात्मजःकपिः ॥ मनःसमाधायजयोपपत्तौसख्यंतदाकर्तुमियेषताभ्याम् ॥३९॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीयेआदिकाव्ये च० सा० किष्किंधाकांडे तृतीयःसर्गः ॥ ३ ॥ ततःप्रहृष्टोहनुमान्कृत्यवानितितद्वचः ॥ श्रुत्वामधुरभावंचसुग्रीवंमनसागतः ॥ १ ॥ भाव्योराज्यागमस्तस्यसुग्रीवस्यमहात्मनः ॥ यदयंकृत्यवान्प्राप्तःकृत्यंचैतदुपागतम् ॥ २ ॥ ततःपरमसंहृष्टोहनूमान्प्लवगोत्तमः ॥ प्रत्युवाचततोवाक्यंरामंवाक्यविशारदम् ॥ ३ ॥ किमर्थंवचनंघोरंपंपाकाननमंडितम् ॥ आगतःसानुजोदुर्गंनानाव्यालमृगायुतम् ॥४॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वालक्ष्मणोरामचोदितः ॥ आचचक्षेमहात्मानंरामंदशरथात्मजम् ॥५॥ राजादशरथोनामद्युतिमान्धर्मवत्सलः ॥ चातुर्वर्ण्यंस्वधर्मेणनित्यमेवाभिपालयन् ॥ ६ ॥

हर्षित चित्त हुये और मनही मनमें इन्होंने सुग्रीवजीके कार्यकी सिद्धि जानी ॥ १ ॥ और विचारा कि, महात्मा सुग्रीवजीको राज्य प्राप्त होनेकी विलक्षण संभावना है, क्योंकि यह कृतकार्य दोनों वीर अचानक यहां पर आपहुँचे हैं और इनके साथ मित्रताई होनेकी भी पूरी २ आशा है ॥ २ ॥ अनन्तर वानरोंमें श्रेष्ठ हनुमान्जी अत्यन्त हृष्ट होकर वचन बोलनेमें कुशल श्रीरामचन्द्रजीसे पूछने लगे ॥ ३ ॥ कि, आप अपने छोटे भाईके साथ पंपाके कानन शोभित, अनेक प्रकारके हिंसक जन्तुओंसे परिपूर्ण घोर दुर्गम वनमें किस कारणसे आये हैं? ॥ ४ ॥ हनुमानजीके यह वचन श्रवण करके, लक्ष्मणजी श्रीरामचन्द्रजीके आदेशसे पवनपुत्रको सब बताने लगे ॥ ५ ॥ कि, अयोध्यानगरीमें दशरथजीनामक धर्मवत्सल द्युतिमान् एक राजा

हुये ये उनक धर्मके अनुसार नित्यही चारों वर्णोंकी प्रजाका पालन करते रहते थे॥६॥ अपने द्वेष करनेवाला कोई नहीं हुआ और उन्होंने भी किसीके प्रति वैरभाव प्रकाश नहीं किया दूसरे ब्रह्माजीकेसमान समस्त जीवोंका लालन पालन और रक्षा करते थे ॥७॥ उन्होंने बहुत २ दक्षिणा सहित अनेक अग्निष्टोमादि यज्ञ किये। यह रामचन्द्रजी लोकमें विख्यात उनके प्रथम पुत्र हैं ॥८॥ ये समस्त प्राणियोंको शरण देनेवाले और पिताकी आज्ञाका पालन करनेवाले हैं, दशरथजीके यह सबमें बडे पुत्र व गुणवान् हैं ॥९॥ सब राजलक्षणों करके युक्त और समस्त राज्यसम्पदविशिष्ट हैं। यह राज्यभ्रष्ट होकर हमारे साथ वनमें वास करनेके लिये यहां पर आये हैं ॥१०॥ जिस प्रकार महातेजस्वी सूर्य नारायण प्रभाके सहित इस अस्ताचलचूडावलंवी होते हैं, वैसेही ये प्रिया भार्या सीताके सहित इस स्थानमें आर्य थे॥११॥ हम इनके छोटे भाई हैं कृतज्ञ और बहुज्ञ हैंइनके गुणगणोंसे वश होकर हम इनकी सेवा किया करते हैं और लक्ष्मण हमारा नाम है

नद्वेष्टाविद्यतेतस्यसतुद्वेष्टिनकंचन ॥ सतुसर्वेषुभूतेषुपितामहइवापरः ॥ ७ ॥ अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्टवानाप्तदक्षिणैः ॥ तस्यायंपूर्वजःपुत्रोरामो नामजनैःश्रुतः ॥ ८ ॥ शरण्यःसर्वभूतानांपितुर्निर्देशपारगः ॥ ज्येष्ठोदशरथस्यायंपुत्राणांगुणवत्तमः ॥ ९ ॥ राजलक्षणसंयुक्तःसंयुक्तोराज्य संपदा ॥ राज्याद्भ्रष्टोमयावस्तुंवनेसार्धमिहागतः॥१०॥ भार्ययाचमहाभागसीतयाऽनुगतोवशी ॥ दिनक्षयेमहातेजाःप्रभयेवदिवाकरः ॥११॥ अहमस्यावरोभ्रातागुणैर्दास्यमुपागतः॥ कृतज्ञस्यबहुज्ञस्यलक्ष्मणोनामनामतः ॥१२॥ सुखार्हस्यमहार्हस्यसर्वभूतहितात्मनः॥ ऐश्वर्येणविही नस्यवनवासेरतस्यच ॥१३॥ रक्षसाऽपहृताभार्यारहितेकामरूपिणा ॥ तच्चनज्ञायतेरक्षःपत्नीयेनास्यवाहृता ॥१४॥ दनुर्नामदितेःपुत्रःशापा द्राक्षसतांगतः ॥ आख्यातस्तेनसुग्रीवःसमर्थोवानराधिपः ॥ १५ ॥ सज्ञास्यतिमहावीर्यस्तवभार्यापहारिणम् ॥ एवमुक्त्वादनुःस्वर्गंभ्राजमानो दिवंगतः ॥ १६ ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातंयाथातथ्येनपृच्छतः ॥ अहंचैवचरामश्चसुग्रीवंशरणंगतौ ॥ १७ ॥

॥ १२ ॥ ये सुख भोगनेके योग्य राज्य पानेके लायक और सर्व जीवोंके हितकारी होने पर भी ऐश्वर्यसे विहीन हो कर वनवासमें निरत हुए हैं ॥ १३ ॥ इन श्रीरामचन्द्रजी की भार्या कामरूपी राक्षस करके हरी गई है जिस राक्षसने सीताको हरण किया है उसको अभीतक हमने नहीं जान पाया है ॥ १४ ॥ दनु नामक दितीका एक पुत्र शापके वशसे कबन्धराक्षस हुआ था उस राक्षसने ही वानर पति सुग्रीवजी का और उनकी सामर्थ्य का वर्णन कर हमसे कहा कि ॥ १५ ॥ वह वानरनाथ महा वीर्यवान् सुग्रीवजी ही तुम्हारी भार्याके हरण करनेको जानते होंगे वह कबन्ध राक्षस दनु हमसे ऐसा कह दिव्य रूपसे दीप्तिमान् हो वर्गको चला गया ॥१६॥ हे हनुमन् ! इस प्रकार तुम्हारे पूछनेसे जो कुछ वृत्तांत था सो सब मैंने यथार्थही कह दिया. अब हमने व श्रीरामचन्द्रजीनेसुग्रीवजी

की शरण ग्रहण की ॥ १७ ॥ जो श्रीरामचन्द्रजी पहले बहुतसा धर्मादि दान करके बहुतसे यशको प्राप्त हुए हैं, जो पहले लोकोंके नाथ थे वही इस समय सुग्रीवजी का आश्रय हम करते हैं॥१८॥ सीता जिनकी पुत्रवधू और जो कि लोकोंके शरण देनेवाले और धर्म वत्सल थे उन्हीं लोक गणोंका आश्रय देने वाले दशरथजीके पुत्र श्रीरामचन्द्रजी सुग्रीवजी की शरण लेते हैं ॥ १९ ॥ जो धर्मात्मा पहले लोकोंके आश्रय देनेवाले और शरण देनेवाले थे सो वहीगुरु श्रीरामचन्द्रजी अब सुग्रीवजी की शरण लेते हैं॥ २० ॥ जिनकी प्रसन्नतासे समस्त लोक प्रसन्न हो जाते थे, वही श्रीरामचन्द्रजी अब वानरराज सुग्रीवजी की शरण ग्रहण कर प्रसन्नताकी इच्छा करते हैं ॥ २१ ॥ पूर्व समयमें जिन राजा दशरथजीने सर्व गुण युक्त पृथ्वीनाथोंका सन्मान किया था॥ २२ ॥ उनकेही सर्व लोकमें विख्यात ज्येष्ठ पुत्र श्रीरामचन्द्र वानरेन्द्र सुग्रीवजी की शरण लेते हैं ॥२३॥ यह श्रीरामचन्द्रजी इस समय अपनी प्रियाके शोकसे व्याकुल

एषदत्त्वाचवित्तानिप्राप्यचानुत्तमंयशः ॥ लोकनाथःपुराभूत्वासुग्रीवंनाथमिच्छति ॥१८॥ सीतायस्यस्नुषाचासीच्छरण्योधर्मवत्सलः॥तस्य पुत्रःशरण्यश्चसुग्रीवंशरणंगतः ॥१९॥ सर्वलोकस्यधर्मात्माशरण्यःशरणंपुरा ॥ गुरुर्मेराघवःसोऽयंसुग्रीवंशरणंगतः ॥ २० ॥ यस्यप्रसादेसततंप्रसीदेयुरिमाःप्रजाः ॥ सरामोवानरेंद्रस्यप्रसादमभिकांक्षते ॥२१॥ येनसर्वगुणोपेताःपृथिव्यांसर्वपार्थिवाः ॥ मानिताःसततंराज्ञासदादशरथेनवै ॥ २२ ॥ तस्यायंपूर्वजःपुत्रस्त्रिषुलोकेषुविश्रुतः॥सुग्रीवंवानरेंद्रंतुरामःशरणमागतः ॥२३॥ शोकाभिभूतेरामेतुशोकार्तेशरणंगते ॥ कर्तुमर्हतिसुग्रीवःप्रसादंसहयूथपैः ॥ २४ ॥ एवंब्रुवाणंसौमित्रिंकरुणंसाश्रुपातनम् ॥ हनूमान्प्रत्युवाचेदंवाक्यंवाक्यविशारदः ॥२५॥ ईदृशाबुद्धिसंपन्नाजितक्रोधाजितेंद्रियाः ॥ द्रष्टव्यावानरेंद्रेणदिष्ट्यादर्शनमागताः ॥ २६ ॥ सहिराज्याच्चविभ्रष्टःकृतवैरश्चवालिना ॥ हृतदारोवनेत्रस्तोभ्रात्राविनिकृतोभृशम् ॥ २७ ॥ करिष्यतिससाहाय्यंयुवयोर्भास्करात्मजः ॥ सुग्रीवःसहचास्माभिःसीतायाःपरिमार्गणे ॥ २८ ॥

होकर सुग्रीवजीकी शरणमें आये हैं इस लिये सब वानरयूथोंके सहित सुग्रीवजीको रामचन्द्रजीके प्रति प्रसन्न होकर इनके सब कार्य अवश्यही करने चाहिये ॥ २४ ॥ वाक्यविशारद हनुमानूजी लक्ष्मणजीके वह रोरो करके कहे हुये वचन सुन कर यह उत्तर देने लगे ॥२५॥ कि, जितेन्द्रिय, बुद्धिमान् ऐसे महात्मा पुरुष के साथ सुग्रीवजी को अवश्य मिलना चाहिये, क्योंकि ऐसे लोग निःसन्देह भाग्यसेही निकट आते हैं ॥ २६ ॥ वह सुग्रीवजी भी राज्य हुए भ्रष्ट हैं, और बालिके साथ वैरबँधनेसे उस करके सताये और निकाले हुए भय भीत होकर वनमें वास करते हैं, इसी कारण से वालिने उनकी स्त्रीको भी हरण कर लिया है ॥ २७ ॥ वह सूर्य पुत्र सुग्रीवजी हम लोगोंके साथ मिलकर सीताजीके ढूंढनेमें अवश्यही आपकी सहायता करेंगे ॥ २८ ॥

हनुमानूजी सुमधुर और कोमल वचनोंसे यह वार्ता कह कर फिर श्रीरामचन्द्रसे बोले कि, हे वीर ! अब हम सुग्रीवजी के पासको चलेंगे ॥ २९ ॥ जब हनुमानूजी ने ऐसा कहा तब धर्मात्मा लक्ष्मणजी हनुमानूजी की यथा योग्य प्रशंसा कर श्रीरामचद्रंजी से बोले कि ॥ ३० ॥ हे राघव ! यह वानर पवन पुत्र जिस प्रकारसे हर्षित होकर बात कहते हैं इससे ज्ञात होता है कि सुग्रीवजी भी कुछ कार्य आपसे करावेंगे, और आप का भी सब कार्य सिद्ध हो जायगा ॥ ३१ ॥ पवन कुमार हनुमानूजी जिस प्रकारसे हर्षित होकर प्रसन्न वदनसे स्पष्ट वार्ता कर रहे हैं इससे ज्ञात होता है कि, इन्होंने कभी झूंठ नहीं बोला ॥ ३२ ॥ उसके पीछे महा पंडित पवन पुत्र हनुमानूजी उन दोनों रघुवीरों को लेकर सुग्रीवजीके पास चलने लगे ॥ ३३ ॥ तब कपिश्रेष्ठ

इत्येवमुक्त्वाहनुमाञ्श्लक्ष्णंमधुरयागिरा ॥ बभासेसाधुगच्छामःसुग्रीवमितिराघवम् ॥२९॥ एवंश्रुवतंधर्मात्माहनूमंतंसलक्ष्मणः॥ प्रतिपूज्ययथान्यायमिदंप्रोवाचराघवम् ॥ ३० ॥ कपिःकथयतेहृष्टोयथाऽयंमारुतात्मजः ॥ कृत्यवान्सोऽपिसंप्राप्तःकृतकृत्योऽसिराघव ॥ ३१ ॥ प्रसन्नमुखवर्णश्चव्यक्तंहृष्टश्चभाषते ॥ नानृतंवक्ष्यतेवीरोहनूमान्मारुतात्मजः ॥ ३२ ॥ ततःसस्तुमहाप्राज्ञोहनूमान्मारुतात्मजः ॥ जगामादायतौवीरौहरिराजायराघवौ ॥ ३३ ॥ भिक्षुरूपंपरित्यज्यवानरंरूपमास्थितः ॥ पृष्ठमारोप्यतौवीरौजगामकपिकुंजरः ॥३४॥ सतुविपुलयशाःकपिप्रवीरःपवनसुतःकृतकृत्यवत्प्रहृष्टः ॥ गिरिवरमुरुविक्रमःप्रयातःसशुभमतिःसहरामलक्ष्मणाभ्याम् ॥ ३५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० किष्किंधाकांडे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥ ऋष्यमूकात्तुहनुमान्गत्वातंमलयंगिरिम् ॥ आचचक्षेतदावीरौकपिराजायराघवौ ॥ १ ॥ अयंरामोमहाप्राज्ञसंप्राप्तोदृढविक्रमः ॥ लक्ष्मणेनसहभ्रात्रारामोऽयसत्यविक्रमः ॥ २ ॥ इक्ष्वाकूणांकुलेजातोरामोदशरथात्मजः ॥ धर्मेनिगदितश्चैवपितुर्निर्देशकारकः ॥ ३ ॥

हनुमानूजी ने भिक्षुकका रूप छोड वानर रूप धारण कर अपनी पीठकर दोनों वीरोंको चढाय सुग्रीवजी के निकट गमन किया ॥ ३४ ॥ वह विपुल यशस्वी कार्य करनेमें वीर अमित पराक्रम और विमल चित्त पवन पुत्र कृतकृत्यके समान हर्षित हो श्रीराम लक्ष्मण सहित उस गिरिवर पर जा पहुँचे ॥३५॥ इत्यार्षे श्रीद्राम ०वा० आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायां चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥ हनुमानजी ऋष्यमूक पर्वत परसे मलयाचल पर जाय सुग्रीवजीसे श्रीराम लक्ष्मणजीकी आगमनवार्त्ता निवेदन करके कहने लगे ॥ १ ॥ कि; यही महापंडित सत्यपराक्रम विपुल वीर्यशाली श्रीरामचन्द्रजी हैं यह भ्राता लक्ष्मण जीके साथ इस स्थानमें आये हैं ॥ २ ॥ इन श्रीरामचंद्रजीने इक्ष्वाकुओंके विशुद्ध वंशमें दशरथजीके औरससे जन्म ग्रहण किया है. यह अपनेधर्मको

पालनेकेलिये पिताकी आज्ञा पाकर उसके पालन करनेमें यत्नवान् हुए हैं ॥ ३ ॥ जिस नृपतिश्रेष्ठ दशरथजीने राजसूय और अश्वमेधादि यज्ञोंमें अग्निको तृप्त किया, और यज्ञोंमें सैकडों हजारों गायें और मणियें दक्षिणा दीं ॥ ४ ॥ जिन्होंने तपस्या और सत्य वचन द्वारा पृथ्वीका पालन किया उनकी स्त्रीके लिये उनके पुत्र यह श्रीरामचन्द्रजी वनमें आये हैं ॥५॥ तबसे यह महात्मा बराबर वनमें वास करते थे कि, किसी समय रावण आकर इनकी भार्याको हरण कर लेगया सो यह आपकी शरण आये हैं ॥ ६ ॥ ये श्रीराम लक्ष्मणजी पूजनीय जनोंमें अग्रणीय हैं यह दोनों जने आपके साथ मित्रता करनेकी वासनासे यहां आये हैं, आप इनका सत्कार पूजन करो ॥ ७ ॥ कपिराज सुग्रीवजी हनुमानजीके वचन सुन कर प्रीतिपूर्वक प्रफुल्ल देहसे श्रीरामचन्द्रजीसे बोले ॥ ८ ॥ कि आप धर्मशील विनीत, सबके वत्सल और महातपस्वी हैं महात्मा हनुमानजीने आपके समस्त गुण हमको बताये हैं,

जरासूयाश्वमेधैश्चवह्निर्येनाभितार्पितः॥दक्षिणाश्चतथोत्सृष्टागावःशतसहस्रशः॥४॥ तपसासत्यवाक्येनवसुधातेनपालिता॥स्त्रीहेतोस्तस्यपुत्रो ऽयंरामोऽरण्यंसमागतः ॥५॥ तस्यास्यवसतोऽरण्येनियतस्यमहात्मनः ॥ रावणेनहृताभार्यासत्वांशरणमागत ॥६॥ भवतासख्यकामौतौभ्रा तरौरामक्ष्लमणौ ॥ प्रगृह्यचार्चयस्वैतौपूजनीयतमावुभौ॥७॥श्रुत्वाहनूमतोवाक्यंसुग्रीवोवानराधिपः॥दर्शनीयतमोभूत्वाप्रीत्योवाचचराघवम् ॥८॥भवान्धर्मविनीतश्चसुतपाःसर्ववत्सलः॥आख्यातावायुपुत्रेणतत्त्वतोमेभवद्गुणाः॥९॥तन्ममैवैषसत्कारोलाभश्चैवोत्तमःप्रभो॥ यत्त्वमिच्छ सिसौहार्दंवानरेणमयासह॥१०॥रोचतेयदिमेसख्यंबाहुरेषप्रसारितः॥गृह्यतांपाणिनापाणिर्मर्यादाबध्यतांध्रुवा॥११॥एतत्तुवचनंश्रुत्वासुग्रीवस्य सुभाषितम्॥संप्रहृष्टमनाहस्तंपीडयामासपाणिना॥१२॥हृष्टःसौहृदमालंब्यपर्यष्वजतपीडितम्॥ततोहनूमान्संत्यज्यभिक्षुरूपमरिंदमः॥१३॥

॥ ९ ॥ हे राघव ! हम वानर हैं, हमारे साथ आपने जो मित्रता करनेकी वासना की है यह हमारा सत्कार और परमलाभही है ॥ १० ॥ यदि हमारे साथ मित्रताई करनेकी आप वासना करते हों तो हम अपने दोनों हाथ पसारते हैं, आप हमको अपने करकमलसे ग्रहण करके निश्चित ही हाथसे हाथ मिलाय सदाहीके लिये प्रतिज्ञापूर्वक मित्रतारूपकी मर्यादा स्थापित कीजिये ॥ ११ ॥ श्रीरामचन्द्रजी सुग्रीवके यह सुखकर वचन सुनकर अत्यन्त हर्षित हुए और अपने हाथसे सुग्रीवका हाथ पकडा ॥ १२ ॥ तब सुग्रीवजी भी सीताजीके वियोगसे पीडित श्रीरामचन्द्रजीसे भली भाँति मिले भेंटे, उसके पीछे शत्रुओंके मर्दन करनेवाले हनुमान्जीने भिक्षुकका रूप त्याग दिया जो कि उन्होंने सुग्रीवको विश्वास दिलानेके लिये धारण किया था ॥ १३ ॥

भिक्षुकका रूप त्याग हनुमानूजी दो काष्ठको ले आये और घिस कर उनमेंसे अग्नि निकाली फिर पुष्पादि द्वारा उस दीप्तमान अग्निका पूजा कर ॥ १४ ॥ श्रीरामचन्द्रजी और सुग्रीवजीके बीचमें उस अग्निको धर दिया तब वह दोनों उन दीप्तमानू अग्निकी प्रदक्षिणा करने लगे ॥१५॥ उसके पीछे श्रीरामचन्द्रजी और सुग्रीवजी दोनों परम प्रसन्नतासे मित्र होगये फिर वानरेंद्र व नरेंद्र दोनों ॥ १६ ॥ परस्पर एक दूसरेको देखकर तृप्त नहीं होते थे "आप हमारे प्रियसखा व हृदयनिवासी हैं, हमारा व आपका सुख दुःख एक है" ॥ १७ ॥ सुग्रीवजीने हर्षित होकर यह वचन श्रीरामचन्द्रजीसे कहा, एक साखूकी शाखा जो अनेक पुष्पपत्रोंसे भूषित थी अपने हाथोंसे तोड ॥१८॥ भूमिपर बिछादी, तब सुग्रीवजी स्वयं श्रीरामचन्द्रजीके साथ उसी शाखा पर बैठे और पवनपुत्र हनुमानजीने लक्ष्मणजीके लिये हर्षित होकर ॥ १९ ॥ परम पुष्पित चन्दन वृक्षकी शाखा बैठनेको दी, तत्पश्चात् प्रसन्न हर्षित ही सुग्रीवजी मधुर वाणीसे

काष्ठयोःस्वेनरूपेणजनयामासपावकम् ॥ दीप्यमानंततोवह्निपुष्पैरभ्यर्च्यसत्कृतम् ॥१४॥ ततोमध्येतुसुप्रीतोनिदधौसुसमाहितः ॥ ततोऽग्निंदीप्यमानंतौचक्रतुश्चप्रदक्षिणम् ॥१५॥ सुग्रीवोराघवश्चैववयस्यत्वमुपागतौ ॥ ततःसुप्रीतमनसौतावुभौहरिराघवौ ॥१६॥ अन्योन्यमभिवीक्षंतौनतृप्तिमभिजग्मतुः ॥ त्वंवयस्योऽसिहृद्योमेएकंदुःखंसुखंचनौ ॥१७॥ सुग्रीवोराघवंवाक्यमित्युवाचप्रहृष्टवत् ॥ ततःसुपर्णबहुलांभंक्त्वाशाखांसुपुष्पिताम् ॥१८॥ सालस्यास्तीर्यसुग्रीवोनिषसादराघवः ॥ लक्ष्मणायाथसंहृष्टोहनूमान्मारुतात्मजः ॥ १९ ॥ शाखांचंदनवृक्षस्यददौपरमपुष्पिताम् ॥ ततःप्रहृष्टःसुग्रीवःश्लक्ष्णंमधुरयागिरा ॥२०॥ प्रत्युवाचतदारामंहर्षव्याकुललोचनः ॥ अहंविनिकृतोरामचरामीहभयार्दितः ॥२१॥ हृतभार्योवनेत्रस्तोदुर्गमेतदुपाश्रितः ॥ सोहंत्रस्तोवनेभीतोवसाम्युद्भ्रांतचेतनः ॥२२॥ वालिनानिकृतोभ्रात्राकृतवैरश्चराघव ॥ वालिनोमेमहाभागभयार्तस्याभयंकुरु ॥ २३ ॥ कर्तुमर्हसिकाकुत्स्थभयंमेनभवेद्यथा ॥ एवमुक्तस्तुतेजस्वीधर्मज्ञोधर्मवत्सलः ॥ २४ ॥

॥ २० ॥ प्रफुल्ललोचन श्रीरामचन्द्रजीसे बोले कि, हे श्रीरामचन्द्रजी ! हम घरसे खदेडे जाकर भयभीत हो भ्रमण किया करते हैं ॥ २१ ॥ हमारी स्त्री भी हरी गई है और हम त्रासित होकर इस दुर्गम वनमें वास करते हैं, हमारा चित्त क्षणमात्रको अविचलित नहीं होता, रात दिन डरके मारे व्याकुल रहा करते हैं ॥२२॥ हे राघव ! हमारे बडे भाई वालिने हमारे साथ वैर करके घरसे निकाल दिया है हे महाभाग ! हम वालिके भयसे भीत हुये हैं, सो आप हमारा उस भयसे उद्धार कीजिये ॥ २३ ॥ हे काकुत्स्थ ! जिससे वालि करके हमको कुछ भी भय न रहे वैसाही उपाय करना आपको सब भाँति उचित है जब सुग्रीवने यह कहा, तब धर्मज्ञ, तेजस्वी, धर्मवत्सल ॥ २४ ॥

काकुत्स्थलतिलक श्रीरामचन्द्रजी हँसकर सुग्रीवजीसे बोले कि हे कपिवर ! हमारे साथ मित्रता करनेमें तुम्हारा विशेष उपकार होगा, यह हम भलीभाँति जानते हैं ॥ २५ ॥ इसमें कुछ सन्देह नहीं है कि, तुम्हारी भार्याको हरण करनेवाले वालिको हम मार डालेंगे; देखो ! हमारे ये सूर्यकी प्रभाके तुल्य तीक्ष्ण फलकयुक्त अमोघ बाण ॥ २६ ॥ उस दुष्ट वालिके ऊपर वेगसहित गिरेंगे और वह सायक कंकपत्र लगे इन्द्रके वज्रके समान ॥ २७ ॥ अति तेज सीधे क्रोधायमान भुजंगके समान वालिको डसेंगे तुम अब वालिको तीक्ष्ण और विष समान ॥ २८ ॥ बाणोंसे मार कर दूसरे पर्वतकी समान पृथ्वीपर गिरा हुआ देखोगे अपना हित करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीके वचन सुन सुग्रीवजी परम प्रसन्न होकर उनसे कहने लगे ॥ २९ ॥

प्रत्यभाषतकाकुत्स्थःसुग्रीवंप्रहसन्निव ॥ उपकारफलंमित्रंविदितंमेमहाकपे ॥२५॥ वालिनंतंवधिष्यामितवभार्यापहारिणम् ॥ अमोघाःसूर्यसंकाशाममेमेनिशिताःशराः ॥२६॥ तस्मिन्वालिनिदुर्वृत्तेनिपतिष्यंतिवेगिताः ॥ कंकपत्रप्रतिच्छन्नामहेंद्राशनिसंनिभाः ॥ २७॥ तीक्ष्णाग्राऋजुपर्वाणःसरोषाभुजगाइव॥ तमद्यवालिनंपश्यतीक्ष्णैराशीविषोपमैः ॥२८॥ शरैर्विनिहतंभूमौप्रकीर्णमिवपर्वतम्॥ सतुतद्वचनंश्रुत्वाराघवस्यात्मनोहितम् ॥ सुग्रीवःपरमप्रीतपरमंवाक्यमब्रवीत् ॥२९॥ तवप्रसादेननृसिंहवीरप्रियांचराज्यंचसमाप्नुयामहम् ॥ तथाकुरुत्वंनरदेववैरिणंयथानहिंस्यात्सपुनर्ममाग्रजम् ॥ ३० ॥ सीताकपींद्रक्षणदाचराणांजीवहेमज्वलनोपमानि ॥ सुग्रीवरामप्रणयप्रसंगेवामानिनेत्राणिसमंस्फुरंति ॥ ३१ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० किष्किंधाकांडे पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥ पुनरेवाब्रवीत्प्रीतोराघवंरघुनंदनम् ॥ अयमाख्यातितेरामसेवकोमंत्रिसत्तमः ॥ १ ॥ हनूमान्यन्निमित्तंत्वंनिर्जनंवनमागतः ॥ लक्ष्मणेनसहभ्रात्रावसतश्चवनेतव ॥ २ ॥रक्षसापहृताभार्यामैथिलीजनकात्मजा ॥ त्वयावियुक्तारुदतीलक्ष्मणेनचधीमता ॥ ३ ॥

कि, हे नरसिंहवीर ! हम आपके प्रसादसे राज्य और भार्या प्राप्त करेंगे हे नरदेव ! हमारा शत्रु बडा भाई वालि जिससे हमको मार नहीं सके आप ऐसा उपाय कर दीजिये ॥ ३० ॥ उन श्रीरामचन्द्र और सुग्रीवजीकी मित्रताई होनेके समयमें जानकीके वालिके और राक्षसोंके बाँये नेत्र जो कमल, सुवर्ण और अग्निके समान हैं एक बारही फडकने लगे ॥ ३१ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायां पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥ उसके पीछे सुग्रीवजी प्रसन्न होकर फिर श्रीरामचन्द्रजीसे कहने लगे कि,हे श्रीरामचन्द्रजी ! हम आपका वृत्तांत जानते हैं. हमारे श्रेष्ठ मंत्री और तुम्हारे सेवक ॥ १ ॥ हनुमानूजीने हमें यह सब बतला दिया है कि, जिस निमित्त आप भ्राता लक्ष्मणजीके सहित वनमें आकर वास करते हैं ॥ २ ॥ आपकी भार्या

मिथिलेशकुमारी जानकीजीको राक्षस हरण कर लेगया, आप और धीमान् लक्ष्मणजीके न रहनेपर रुदन करती हुई सीताजीको वह ले गया है ॥ ३ ॥ वह तो अवसर देख रहा था जैसेही आप दोनों जन दूर गये वैसेही वह उनको लेगया कुछ दूर जानेके पीछे उसे गृध्रराज जटायु मिले. और उन्होंने सीता हरणका विरोध किया, तब राक्षस उनको संहार सीताजीको ले गया, और आपको भार्यावियोग दुःख देदिया ॥ ४ ॥ जो हुआ सो हुआ, परन्तु अब हम थोडेही कालमें यह आपका भार्या वियोग दुःख दूर करेंगे, हम नष्ट हुई देवश्रुतिके समान सीताजीको उद्धार करके आपके निकट ले आवेंगे इसमें कुछ सन्देह नहीं है । हे शत्रुनाशन ! वह रसातल वा आकाश कहीं भी क्यों न हों मैं आपकी भार्याको लाकर मिला दूंगा ॥५॥६॥ हे श्रीरामचन्द्रजी हमारा यह वचन आप सत्यही जानें इंद्रके सहित शुरगण व समस्त असुरगण इनमेंसे कोई भी जानकीजीको नहीं छिपा सकेगा ॥ ७ ॥ हे महाबाहु !

अंतरंप्रेप्सुनातेनहत्वागृध्रंजटायुषम् ॥ भार्यावियोगजंदुःखंप्र पितस्तेनरक्षसा ॥४॥ भार्यावियोगजंदुखंनचिरात्त्वंविमोक्ष्यसे ॥ अहंतामानयिष्यामिनष्टांदेवश्रुतीमिव ॥ ५ ॥ रसातलेवावर्ततींवर्ततींवानभस्तले ॥ अहमानीयदास्यामितवभार्यामरिंदम ॥ ६ ॥ इदंतथ्यंममवचस्त्वमवेहिचराघव॥नशक्यासाजरयितुमपिसेंद्रैःसुरासुरैः॥७॥तवभार्यामहाबाहोभक्ष्यंविषकृतंयथा॥त्यजशोकंमहाबाहोतांकांतामानयामिते।८।अनुमानात्तुजानामिमैथिलीसानसंशयः। ह्रियमाणामयादृष्टारक्षसारौद्रकर्मणा।९। कोशंतीरामरामेतिलक्ष्मणेतिचविस्वरम्।स्फुरंतीरावणस्यांकेपन्नगेंद्रवधूर्यथा॥१०॥आत्मनापंचमंमांहिदृष्ट्वाशैलतलेस्थितम्॥उत्तरीयंतयात्यक्तंशुभान्याभरणानिच॥११॥ तान्यस्माभिर्गृहीतानिनिहितानिचराघव॥ आनयिष्याम्यहंतानिप्रत्यभिज्ञातुमर्हसि॥१२॥ तमब्रवीत्ततोरामःसुग्रीवप्रियवादिनम्॥ आनयस्वसखेशीघ्रंकिमर्थंप्रविलंबसे॥१३॥

आपको भार्याको विषके समान पचानेको कोई समर्थ नहीं होगा हम निश्चयही उनको ले आवेंगे; इसलिये आप शोक छोड दीजिये ॥ ८ ॥ हम अनुमानसे समझते हैं कि, वह दुष्टा चारी 'रावण जब उनको हरण करके लिये जा रहा था, तब हमने उनको देखा था, कदाचित् वही जनककुमारी होंगी ॥ ९ ॥ उस समय वह 'राम राम ! और लक्ष्मण !' यह कहकर बडे शब्दसे रोरही थीं उस समय वह रावणके वशमें पडीं पन्नगराज वधूके समान प्रगट होरही थीं ॥ १० ॥ उस समय हम और हमारे चार मंत्रियोंको इस पर्वतपर बैठे देख उन्होंने अपना उत्तरीय वस्त्र और उत्तम २ कुछ गहने छोडे ॥ ११ ॥ हमने उन सब आभूषणादिकोंको उठाकर धर रक्खा है, हम उन सबको ला दिखाते हैं आप उन सबको पहँचान लीजिये ॥ १२ ॥ जब सुग्रीवजीने ऐसा कहा तब प्रिय बोलनेवाले श्रीरामचन्द्रजी सुग्रीवसे बोले कि हे सखे ! बिलम्ब क्यों करते हो उनको शीघ्र

ले आओ ॥ १३ ॥ श्रीरामचन्द्रजीसे इस प्रकार कहे जाकर सुग्रीवने उनका प्रिय करनेकी कामनासे शैलकाननसे शीघ्र पर्वतकी गहन कंदरामें प्रवेश
किया ॥ १४ ॥ वानरनाथने शीघ्र वह उत्तरीय वस्त्र और वे सब गहने लाय 'यह देखिये !' यह कर शीघ्र रामचन्द्रजीको दिखाये ॥ १५ ॥ श्रीरामचन्द्रजी
वस्त्र और गहने देख व ग्रहण कर कुहरसे ढके चन्द्रमाके समान अश्रुयुक्त हो रुद्धकंठ हुये ॥ १६ ॥ वह सीताजीके स्नेहसे उत्पन्न आंसुओंसे दूषित
हो 'हा प्रिये !' कहकर धीरज छोड पृथ्वीपर गिर पडे ॥ १७ ॥ श्रीरामचन्द्रजी उन उत्तम गहनोंको बार २ हृदयमें लगा दिलमें बैठे क्रोधित सर्पके
समान ऊंधे २ श्वास छोडने लगे ॥ १८ ॥ जब आंसुओंका वेग कम हुआ तब बगलमें बैठे हुये लक्ष्मणजीको देख शोकके वेगसे श्रीरामचन्द्रजी और भी

एवमुक्तस्तुसुग्रीवःशैलस्यगहनांगुहाम् ॥ प्रविवेशततःशीघ्रंराघवप्रियकाम्यया ॥१४॥ उत्तरीयंगृहीत्वातुसतान्याभरणानिच॥ इदंपश्येतिरामा-
यदर्शयामासवानरः ॥ १५ ॥ ततोगृहीत्वावासस्तुशुभान्याभरणानिच ॥ अभवद्बाष्पसंरुद्धोनीहारेणेवचंद्रमाः ॥ १६ ॥ सीतास्नेहप्रवृत्तेनस
तुबाष्पेणदूषितः ॥ हाप्रियेतिरुदन्धैर्यमुत्सृज्यन्यपतत्क्षितौ ॥ १७ ॥ हृदिकृत्वासबहुशस्तमलंकारमुत्तमम् ॥ निःशश्वासभृशंसर्पोबिलस्थइव
रोषितः ॥१८॥ अविच्छिन्नाश्रुवेगस्तुसौमित्रिंप्रेक्ष्यपार्श्वतः ॥ परिदेवयितुंदीनंरामःसमुपचक्रमे ॥१९॥ पश्यलक्ष्मणवैदेह्यासंत्यक्तंह्रियमाणया ॥
उत्तरीयमिदंभूमौशरीराद्भूषणानिच ॥२०॥ शाद्वलिन्यांध्रुवंभूम्यांसीतयाह्रियमाणया ॥ उत्सृष्टंभूषणमिदंतथारूपंहिदृश्यते ॥२१॥ एवमुक्त-
स्तुरामेणलक्ष्मणोवाक्यमब्रवीत् ॥ नाहंजानामिकेयूरेनाहंजानामिकुंडले ॥ २२ ॥ नूपुरेत्वभिजानामिनित्यंपादाभिवंदनात् ॥ ततस्तुराघवो
वाक्यंसुग्रीवमिदमब्रवीत् ॥ २३ ॥ ब्रूहिसुग्रीवकंदेशंह्रियंतीलक्षितात्वया ॥ रक्षसारौद्ररूपेणममप्राणप्रियाहृता ॥ २४ ॥

विलाप करने लगे ॥ १९ ॥ वह बोले, देखो लक्ष्मण ! जब जानकीजी हरण की जाती थीं तब उन्होंने यह उत्तरीय वस्त्र और यह भूषण पृथ्वीपर फेंक
दिये थे ॥ २० ॥ हरणके समय सीताजीने हरी घासवाली भूमिपर यह भूषण अपने अंगोंसे निकालकर डाल दिये हैं देखो ! यह सब वैसेके वैसेही हैं, कुछ
मलीन नहीं हुये ॥ २१ ॥ इस रीतिसे रामचन्द्रने लक्ष्मणजीसे कहा, तब लक्ष्मणजी कहने लगे कि, मैं जानकीजीके बाहुभूषण नहीं जानता हूं और
कर्णकुंडल भी नहीं जानता हूं ॥२२॥ परन्तु नित्य प्रति श्री जानकीजीके चरणोंको नमस्कार करनेसे केवल उनके पादभूषण नूपुर मात्रको जानता हूं, तब
श्रीरामचन्द्रजीने सुग्रीवजीसे पूछा ॥ २३ ॥ कि, हे सुग्रीवजी ! तुमने उन हरण की जाती हुईको कहां देखा ? किस स्थान में उग्ररूपी राक्षस हमारी प्राणप्रिया

सीताजीको हरण करके ले गया ? ॥ २४ ॥ और वह राक्षस कहां वास करता है कि जिसके करनेसे हमपर बड़ी विपद् पडी है सो तुम बताओ उसके निमित्त हम सब राक्षसोंका संहार करेंगे ॥ २५ ॥ उसने जनकसुताको हरणकर हमको क्रोध उपजाया, मानो यह अपनी मृत्युका बंदद्वार आपही खोल लिया ॥ २६ ॥ हे कपिपते ! जिस राक्षसने हमारी अत्यंत प्यारी भार्याका अपमान कर उनको बनसे हरण कर लिया है, तुम उस राक्षसका नाम बताओ, हम उस शत्रुका तत्काल संहार कर यमपुरीमें पठावेंगे ॥२७॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मी० आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायां षष्ठः सर्गः ॥६॥ वानरराज सुग्रीवजीके श्रीरामचन्द्रजी यह आर्तवचन श्रवण कर, हाथ जोड आंसू भर गद्गदस्वरसे कहने लगे ॥ १ ॥ कि हे श्रीरामचन्द्रजी ! हम उस अत्यन्त पाप मति और बुरे कुलमें उत्पन्न उस राक्षसका स्थान, कुल, विक्रम या उसकी सामर्थ्यको कुछ भी नहीं जानते हैं ॥ २ ॥ परन्तु हे अरिदम !

क्ववावसतितद्रक्षोमहद्व्यसनदंमम ॥ यन्निमित्तमहंसर्वान्नाशयिष्यामिराक्षसान् ॥२५॥ हरतामैथिलींयेनमांचरोषयताध्रुवम् ॥ आत्मनोजीवितांतायमृत्युद्वारमपावृतम् ॥२६॥ममदयिततमाहृतावनाद्रजनिचरेणविमथ्ययेनसा॥ कथयममरिपुंतमद्यवैप्लवगपतेयमसंनिधिंनयामि॥२७॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदि० च० सा० किष्किंधाकांडे षष्ठः सर्गः ॥६॥ एवमुक्तस्तुसुग्रीवोरामेणार्तेनवानरः ॥ अब्रवीत्प्रांजलिर्वाक्यंसबाष्पंबाष्पगद्गदः ॥१॥ नजानेनिलयंतस्यसर्वथापापरक्षसः ॥ सामर्थ्यंविक्रमंवापिदौष्कुलेयस्यवाकुलम् ॥ २ ॥ सत्यंतुप्रतिजानामित्यजशोकमरिंदम॥करिष्यामितथायत्नंयथाप्राप्स्यसिमैथिलीम्॥३॥ रावणंसगणंहत्वापरितोष्यात्मपौरुषम्॥तथास्मिकर्तानचिराद्यथाप्रीतो भविष्यसि ॥४॥ अलंवैक्लव्यमालंब्यधैर्यमात्मगतस्मर ॥ त्वद्विधानांनसदृशमीदृशंबुद्धिलाघवम् ॥५॥ मयापिव्यसनंप्राप्तंभार्याविरहजंमहत् ॥ नाहमेवंहिशोचामिधैर्यंनचपरित्यजे ॥ ६ ॥ नाहंतामनुशोचामिप्राकृतोवानरोऽपिसन् ॥ महात्माचविनीतश्चकिंपुनर्धृतिमान्महान् ॥ ७ ॥

हम सत्य करके प्रतिज्ञा करते हैं कि जिससे जानकीजी प्राप्त हो जावें हम वैसा करनेमें सब भांति यत्न करेंगे, इसलिए आप शोक छोड दीजिये ॥३॥ रावणको वंशसहित संहारकर आपके पौरुषका विस्तार कर आप जिससे शीघ्र प्रसन्न और संतुष्ट होवें, हम वही कार्य करेंगे ॥ ४ ॥ आप इतने विकल न हूजिये, अपने धीरजका आश्रय लीजिये; आपके समान पुरुषोंको इस प्रकारकी लघुता का आश्रय लेना, स्त्रीके लिये शोक करना उचित नहीं है ॥ ५ ॥ हमको स्त्रीके हर जानेसे उत्पन्न महादुःख प्राप्त हुआ है, तथापि हमने धैर्यका परित्याग करके शोकका आश्रय नहीं लिया ॥ ६ ॥ हमने अति नीच वानर जाति होकर भी शोक नहीं किया; फिर आप तो महात्मा विनीत और धीरवान् पुरुष हैं, सो आप तो कभी भी शोक नहीं करेंगे,

इसमें अधिक कहनाही क्या ? ॥७॥ आप शोकसे निकला हुआ अश्रुजल अपने धीरजके बलसे रोकिये, कारण कि, पराक्रमी पुरुषोंकी मर्यादा और धारण शक्ति आप त्याग करनेके योग्य नहीं हैं ॥ ८ ॥ धीरजवान पुरुष, विपद्के समयमें धनकी कमीमें भयके समय वा प्राणशंका उपस्थित होने पर भी अपनी बुद्धिसे विचार कर कार्य करनेसे कभी व्याकुल नहीं होते ॥ ९ ॥ जो मूढ पुरुष नित्य ही विकलाई का आश्रय लेता है, वह पुरुष बोझसे लदी नौकाके समान अवश्यही शोकके जलमें डूब जाता है ॥१०॥ यह हम आपके निकट हाथ जोडकर कहते हैं कि, आप प्रसन्न होवें और पौरुष का आश्रय करके अपने अंतरमें शोक को बैठानेका अवकाश न दें ॥ ११ ॥ जो पुरुष शोक किया करते हैं उनको सुख नहीं होता, वरन् उनका तेज भी

बाष्पमापतितंधैर्यान्निगृहीतुंत्वमर्हसि ॥ मर्यादासत्त्वयुक्तानांधृतिनोत्स्रष्टुमर्हसि ॥८॥ व्यसनेवार्थकृच्छ्रेवाभयेवाजीवितांतगे ॥ विमृशंश्वस्वया बुद्धयाधृतिमान्नावसीदति ॥९॥ बालिशस्तुनरोनित्यंवैक्लव्यंयोऽनुवर्तते ॥ समज्जत्यवशःशोकेभाराक्रांतेवनौर्जले ॥ १० ॥ एषोऽञ्जलिर्मयाबद्धःप्रणयात्त्वांप्रसादये ॥ पौरुषंश्रयशोकस्यनांतरंदातुमर्हसि ॥ ११ ॥ येशोकमनुवर्ततेनतेषांविद्यतेसुखम् ॥ तेजश्चक्षयतेतेषांनत्वंशोचितुमर्हसि ॥१२॥ शोकेनाभिप्रपन्नस्यजीवितेचापिसंशयः ॥ सशोकंत्यजराजेंद्रधैर्यमाश्रयकेवलम् ॥ १३ ॥ हितंवयस्यभावेनब्रूमिनोपदिशामिते ॥ वयस्यतांपूजयन्मेनत्वंशोचितुमर्हसि ॥१४॥ मधुरंसांत्वितस्तेनसुग्रीवेणसराघवः ॥ मुखमश्रुपरिक्लिन्नंवस्त्रांतेनप्रमार्जयत् ॥१५॥ प्रकृतिस्थस्तुकाकुत्स्थः सुग्रीववचनात्प्रभुः ॥ संपरिष्वज्यसुग्रीवमिदंवचनमब्रवीत् ॥ १६ ॥ कर्तव्यंयद्वयस्येनस्निग्धेनचहितेनच ॥ अनुरूपंचयुक्तंचकृतंसुग्रीवतत्त्वया ॥१७॥

क्षीण हो जाता है, इस लिये आप शोकका परित्याग कीजिये ॥१२॥ हे राजेन्द्र अत्यन्त ! शोक करनेवाले मनुष्योंके जीवनमें भी संशय हो जाता है, इस लिये आप शोक को छोड करके केवल धीरज धारण कीजिये ॥ १३ ॥ हम मित्रभावसे ही हितकी बात कहते हैं, कुछ आपको उपदेश नहीं देते सो आप हमारी मित्रताका आदर करके शोकका परित्याग कीजिये ॥ १४ ॥ जब सुग्रीवके इस प्रकार सुमधुर समझानेवाले वचन सुने तब श्रीरामचन्द्रजीने वस्त्रके सिरेसे अश्रुपरिपूर्ण वदन पोंछ डाला ॥ १५ ॥ लोकनाथ काकुत्स्थकुल तिलक प्रभु श्रीरामचन्द्रजी श्रीसुग्रीवजी के वचनोंसे अपनी प्रकृतिमें टिक धीरज धारण करते हुए, वानरराज सुग्रीवजीको हृदयसे लगाय मिले और कहने लगे कि, ॥ १६ ॥ हे सुग्रीव ! स्नेहयुक्त

हितकारी चतुर सखाको जो समयके अनुसार कर्त्तव्य और उचित है वह समस्त ही तुमने किया ॥१७॥ तुम्हारे समझानेसे हमें स्वस्थ और अपनी प्रकृति पर स्थिर किया विशेष करके ऐसे समयमें हमें तुम्हारे समान बन्धु मिलने महादुर्लभ हैं ॥१८॥ परन्तु तुम घोर दुरात्मा रावणका संहार करने और जनक कुमारी की खोज करनेके लिये विशेष यत्न करो ॥१९॥ और हम भी विश्वासयुक्त चित्तसे जिस कार्य को करें वह भी तुम हमसे कहो, क्योंकि वर्षाकाल के समय अच्छे खेतमें बीज बोये हुए के समान तुम्हारे भी सब विचार सफल हैं ॥ २० ॥ हे वानर शार्दूल ! हमने जो अभिमानसे तुमसे कहा कि हम वालिको मारही डालेंगे, इस वाक्यको भी तुम सत्य जानो ॥ २१ ॥ हम पहले कभी मिथ्या वचन नहीं बोले और न कभी आगेको बोलेंगे, हमने अब सत्यही सत्य तुमसे

एषचप्रकृतिस्थोऽहमनुनीतस्त्वयासखे ॥ दुर्लभोहीदृशोबंधुरस्मिन्कालेविशेषतः ॥१८॥ किन्तुयत्नस्त्वयाकार्योमैथिल्याःपरिमार्गणे ॥ राक्षसस्यचरौद्रस्यरावणस्यदुरात्मनः ॥१९॥ मयाचयदनुष्ठेयंविस्रब्धेनतदुच्यताम् ॥ वर्षास्विवचसुक्षेत्रेसर्वसंपद्यतेतव ॥२०॥ मयाचयदिदंवाक्यमभिमानात्समीरितम् ॥ तत्त्वयाहरिशार्दूलतत्त्वमित्युपधार्यताम् ॥ २१ ॥ अनृतंनोक्तपूर्वंमेनचवक्ष्येकदाचन ॥ एतत्तेप्रतिजानामिसत्येनैवशपाम्यहम् ॥२२॥ततःप्रहृष्टःसुग्रीवोवानरैःसचिवैःसह॥राघवस्यवचःश्रुत्वाप्रतिज्ञातंविशेषतः ॥२३॥ एवमेकांतसंपृक्तौततस्तौनरवानरौ ॥ उभावन्योन्यसदृशसुखंदुःखमभाषताम् ॥२४॥ महानुभावस्यवचोनिशम्यहरिर्नृपाणामधिपस्यतस्य ॥ कृतसमेनेहरिवीरमुख्यस्तदाचकार्यंहृदयेन विद्वान् ॥ २५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मी० आदि० च० सा० किष्किधाकांडे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥ परितुष्टस्यसुग्रीवस्तेनवाक्येन हर्षितः ॥ लक्ष्मणस्याग्रजंशूरमिदंवचनमब्रवीत् ॥१॥ सर्वथाऽहमनुग्राह्योदेवतानांनसंशयः ॥ उपपन्नोगुणोपेत सखायस्यभवान्मम ॥ २ ॥

प्रतिज्ञा और शपथ की ॥२२॥ उसके पीछे सुग्रीवजीने हर्षित हो श्रीरामचन्द्रजीके वचन सुनकर अपने बडे २ मंत्रियोंके साथ भली भांति अपने मनमें समझ लियाकि श्रीरामचन्द्रजीने जो प्रतिज्ञा की है वह अब पूरी हुई ॥ २३ ॥ इस प्रकार से एकान्तमें मिलकर नर वानर दोनोंने आपसमें अपने २ सुख दुःख प्रकट किये ॥२४॥ नृपगणोंके अधीश्वर महानुभाव श्रीरामचन्द्रजीके वचन सुनकर वानर प्रधान सुग्रीवजी मनही मनमें विचार करने लगे कि अब निःसन्देह हमारा कार्य सिद्ध हो जायगा ॥ २५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० किष्किन्धाकाण्डे भाषायां सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥ जब श्रीरामचन्द्रने प्रसन्न होकर ऐसे वचन कहे तो सुग्रीवजी हर्षित होकर वीरवर लक्ष्मणजीके बडे भ्राता श्रीरामचन्द्रजीसे बोले ॥ १ ॥ कि, अब हम निःसन्देह सर्व प्रकारसे देवतागणोंके

अनुगृहीत हुये; क्योंकि आप समान गुणवान् पुरुषके साथ हमारी मित्रता हुई ॥ २ ॥ हे शुद्धात्मा प्रभो ! जब आप सहाय हैं तब तो हम देवताओंका भी स्वराज्य लेनेमें समर्थ हैं और राज्य लेना तो एक अति साधारण बात है ॥ ३ ॥ हे राघव ! जब कि हमने रघुवंशमें उत्पन्न हुए पुरुषसे अग्निके सन्मुख मित्रता प्राप्त की तब अवश्यही हम अपने बन्धु बान्धव और सुहृद्गणोंके प्रीतिपात्र और माननीय हुये, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ४ ॥ और हमको भी आप अपना योग्यही मित्र समझिये हमारे अंतः करणमें आपके प्रति जिस प्रकारका स्नेहभाव उदय हुआ है उसको हम कहने और प्रगट करनेमें समर्थ नहीं हैं ॥ ५ ॥ हे इन्द्रिय जीतनेवालोंमें प्रथम गिने जानेके योग्य ! आप सरीखे कृतविद्य महात्मागणोंमें सखाओंकी निश्चल प्रीति होगी, इसमें सन्देहही क्या है ? ॥ ६ ॥ साधु मित्र लोग साधुसखाओंके सुवर्ण चांदी व और दूसरे उत्तम २ गहने आदिको अपना देखकर अलग नहीं देखते, वरन्न भेदरहित

शक्यंखलुभवेद्रामसहायेनत्वयाऽनघ ॥ सुरराज्यमभिप्राप्तंस्वराज्यंकिमुतप्रभो ॥ ३ ॥ सोऽहंसमाज्योबंधूनांसुहृदांचैवराघव ॥ यस्याग्निसाक्षिकं मित्रंलब्धंराघववंशजम् ॥४॥ अहमप्यनुरूपस्तेवयस्योज्ञास्यसेशनैः ॥ नतुवक्तुंसमर्थोऽहंत्वयिआत्मगतान्गुणान् ॥५॥ महात्मनांतुभूयिष्ठं त्वद्विधानां तात्मनाम् ॥ निश्चलाभवतिप्रीतिर्धैर्यमात्मवतांवर ॥ ६ ॥ रजतंवासुवर्णंवाशुभान्याभरणानिच ॥ अविभक्तानिसाधूनामवगच्छं-तिसाधवः ॥७॥ आढ्योवापिदरिद्रोवादुःखितःसुखितोऽपिवा ॥ निर्दोषश्चसदोषश्चवयस्यःपरमागतिः ॥ ८ ॥ धनत्यागःसुखत्यागेदेशत्या-गोपिवाऽनघ ॥ वयस्यार्थेप्रवर्ततेस्नेहंदृष्ट्वातथाविधम् ॥ ९ ॥ तत्तथेत्यब्रवीद्रामःसुग्रीवंप्रियदर्शनम् ॥ लक्ष्मणस्याग्रतोलक्ष्म्यावासवस्येवधी-मतः ॥ १० ॥ ततोरामंस्थितंदृष्ट्वालक्ष्मणंचमहाबलम् ॥ सुग्रीवःसर्वतश्चक्षुर्वनेलोलमपातयत् ॥ ११ ॥ सददर्शततःसालमविदूरेहरीश्वरः ॥ सुपुष्पमीषत्पत्राढ्यंभ्रमरैरुपशोभितम् ॥ १२ ॥

होकर परस्परही समझते हैं कि यह अपना है सो उनका, और उनका है सो हमारा ॥७॥ धनवान्हीं हो वा निर्धन हो, दुःखी हो वा सुखी हो अथवा दोष रहित हो वा दोषयुक्त हो परन्तु मित्र मित्रहीको परम गति समझते हैं ॥ ८ ॥ हे पापरहित ! जो परस्पर एक स्नेहहीको देखते हैं वह परस्पर मित्रके लिये धनको छोड सुखसे मुँह मोड और देशतकसे रिश्ता तोड मित्रके अनुसार बर्ताव करते हैं, और उसे कभी नहीं छोडते हैं ॥ ९ ॥ सुग्रीवजीके यह वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजी, उत्फुल्लकान्ति धारण किये हुए इन्द्र समान धीमान् लक्ष्मणजीके सन्मुख उन प्रियदर्शन वानरराजसे बोले कि, हे सखे ! निःसन्देह यह जो आपने कहा सबही यथार्थ है ॥ १० ॥ इसके पीछे सुग्रीवजीने, श्रीरामचन्द्रजी और महाबलवान् लक्ष्मणजीको पृथ्वीपर बैठा हुआ देख चंचलभावसे चारों ओर दृष्टि डाली ॥ ११ ॥ तब वानरश्रेष्ठ सुग्रीजीने देखा कि, उत्तम पुष्प और कुछेक पत्तोंसे युक्त भ्रमरगणोंसे सुशोभित ऐसा समीपही एक शालका

वृक्ष लगा है ॥ १२ ॥ तब वृक्षकी बहुत पत्तोंवाली एक मनोहर शाखा तोड श्रीरामचन्द्रजीके लिये आसन बना उसके सहित उसपर आपभी बैठे ॥ १३ ॥ सुग्रीव और रामचन्द्रजीको बैठा देखकर हनुमान्‌जीने भी लक्ष्मणजीके लिये एक शालशाखा तोड आसन बना दिया और उसपर विनीतभावसे लक्ष्मणजीको बैठाया ॥ १४ ॥ तब सुप्रसन्नमन सागरके समान गंभीर स्वभावयुक्त श्रीरामचन्द्रजीको शालपुष्प परिपूर्ण उस गिरिवर पर बैठे हुए देख कर ॥ १५ ॥ सुग्रीवजी हर्षित मधुर हितकारी वचनोंसे प्रेम और हर्षमें भरनेके कारण व्याकुल होकर श्रीरामचन्द्रजी से बोले ॥ १६ ॥ कि, हम अपने भ्रातासे अपकारको प्राप्त हो भार्याको खोय और भयसे कातर होकर इस ऋष्यमूक पर्वतपर विचरते हैं ॥ १७ ॥ सो यहां परभी वालिके भयसे त्रासित

तस्यैकांपर्णबहुलांशाखांभंक्त्वासुशोभिताम्॥रामस्यास्तीर्यसुग्रीवोनिषसादसराघवः।१३॥तावासीनौततोदृष्ट्वाहनूमानपिलक्ष्मणम्॥शालशाखांसमुत्पाट्यविनीतमुपवेशयत् ॥ १४ ॥ सुखोपविष्टंरामंतुप्रसन्नमुदधिंयथा ॥ सालपुष्पावसंकीर्णेतस्मिन्गिरिवरोत्तमे ॥ १५ ॥ ततःप्रहृष्टः सुग्रीवःश्लक्ष्णयाशुभयागिरा ॥ उवाचप्रणयाद्रामंहर्षव्याकुलिताक्षरम् ॥ १६ ॥ अहंविनिकृतोभ्रात्राचराम्येषभयार्दितः ॥ ऋष्यमूकंगिरिवरं हृतभार्यःसुदुःखितः ॥१७॥ सोऽहंत्रस्तोभयेमग्नोवनेसंभ्रांतचेतनः ॥ वालिनानिकृतोभ्रात्रा कृतवैरश्चराघव ॥१८॥ वालिनोमेभयार्तस्यसर्वलोकाभयंकर ॥ ममापित्वमनाथस्यप्रसादंकर्तुमर्हसि ॥ १९ ॥ एवमुक्तस्तुतेजस्वीधर्मज्ञोधर्मवत्सलः ॥ प्रत्युवाचसकाकुत्स्थःसुग्रीवंप्रहसन्निव ॥ २० ॥ उपकारफलंमित्रमपकारोरिलक्षणम् ॥ अद्यैवतंवधिष्यामितवभार्यापहारिणम् ॥ २१ ॥ इमेहिमेमहाभागपत्रिणस्तिग्मतेजसः ॥ कार्तिकेयवनोद्भूतःशराहेमविभूषिताः ॥ २२ ॥ कंकपत्रपरिच्छन्नामहेंद्राशनिसंनिभाः ॥ सुपर्वाणःतीक्ष्णाग्राःसरोषाभुजगाइव ॥ २३ ॥

और चेतनारहित रहा करते हैं; कारण कि हमारे भ्राता वालिने वैर करके गृहसे हमको निकाल दिया है ॥ १८ ॥ हे सर्व लोकोंको अभय देनेवाले! हम वालिके भयसे महा आर्त और अनाथ होगये हैं सो हमारे ऊपर आप प्रसन्न हूजिये ॥ १९ ॥ जब सुग्रीवजीने ऐसा कहा तब धर्मज्ञ, धर्मवत्सल, तेजस्वी श्रीरामचन्द्रजी हँसते हुए उनसे बोले ॥ २० ॥ कि उपकार करनेहीसे मित्र और अपकार करनेहीसे शत्रु होता है, इस लिये हम आजही तुम्हारी भार्याके हरण करनेवाले उस वालिको मार डालेंगे ॥ २१ ॥ हे महाभाग ! ये देखो हमारे यह कार्त्तिकेय वनसे उत्पन्न सुवर्ण भूषित बडे वेगवाले तीखे बाण ॥२२॥ कि जिनकी शिखा व नली चील्हके पंखोंके समान बनी हैं और इन्द्रके वज्रके समान सुपर्वा तीखे फलयुक्त हैं जो क्रोधसहित सर्पके समान हैं ॥ २३ ॥

हम तुम्हारी भार्याके हरनेवाले पापी शत्रू भ्राता वालिको इन्हीं अपने बाणोंसे पर्वतके समान गिराकर मार डालेंगे सो तुम देखोगेही ॥ २४ ॥ वाहिनी सेनाके पति सुग्रीवजी श्रीरामचन्द्रजीके ऐसे वचन सुन अतुलहर्षको प्राप्त होकर 'साधु ! साधु !' कह श्रीरामचन्द्रजीकी बडाई करने लगे ॥ २५ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! हम शोकके मारे व्याकुल हैं और आप शोकसे पीडित पुरुषोंकी गति हैं, सो आपको हम अपना मित्र जानकर अपना दुःख प्रगट करते हैं ॥ २६ ॥ आपने अपना हाथ दे अग्निको साक्षी करके हमको अपना मित्र बनाया है सो हम सत्यही सत्य कहते हैं, आप हमारे प्राणों से भी अधिक प्यारे माननीय हैं ॥ २७ ॥ हम अपना विश्वासी मित्र समझकर आपसे अपना सब वृत्तांत कहते हैं, क्योंकि अपना वृत्तांत आपके निकट कहनेसे हमारे मनका दुःख बहुत हलका हो जाता है ॥ २८ ॥ इस प्रकारसे कहते २ सुग्रीवजीके नेत्रोंमें आँसू आगये और उनकी वाणी कफसे दूषित होगई जिससे

वालिसञ्ज्ञममित्रंतेभ्रातरंकृतकिल्बिषम् ॥शरैर्विनिहतंपश्यविकीर्णमिवपर्वतम् ॥२४॥राघवस्यवचःश्रुत्वासुग्रीवोवाहिनीपतिः॥प्रहर्षमतुलंलेभे साधुसाध्विितिचाब्रवीत् ॥ २५ ॥ रामशोकाभिभूतोऽहंशोकार्तानांभवान्गतिः ॥ वयस्य इतिकृत्वाहित्वय्यहंपरिदेवये ॥२६॥ त्वंहिपाणिप्रदानेनवयस्योमेऽग्निसाक्षिकम् ॥ कृतःप्राणैर्बहुमतःसत्येनचशपाम्यहम् ॥२७॥ वयस्यइतिकृत्वाचविस्रब्धःप्रवदाम्यहम् ॥ दुःखमंतर्गतंतन्मेमनोहरतिनित्यशः ॥२८॥ एतावदुक्त्वावचनंबाष्पदूषितलोचनः ॥ बाष्पदूषितयावाचानोच्चैःशक्नोतिभाषितुम् ॥ २९ ॥ बाष्पवेगंतुसहसानदीवेगमिवागतम् ॥ धारयामासधैर्येणसुग्रीवोरामसंनिधौ ॥३०॥ सनिगृह्यतुतंबाष्पंप्रमृज्यनयनेशुभे ॥ विनिःश्वस्यचतेजस्वीराघवंपुनिरूचिवान् ॥ ३१ ॥ पुराहंवालिनारामराज्यात्स्वादवरोपितः ॥ परुषाणिचसंश्राव्यनिर्धूतोऽस्मिबलीयसा ॥ ३२ ॥ हृताभार्याचमेतेनप्राणेभ्योऽपिगरीयसी ॥ सुहृदश्चमदीयायेसंयताबंधनेषुते ॥ ३३ ॥ यत्नवांश्चसदुष्टात्मामद्विनाशायराघव ॥ बहुशस्तत्प्रयुक्ताश्चवानराहिहतामया ॥ ३४ ॥

कि फिर वह ऊंचे स्वरसे कुछ न बोल सके ॥ २९ ॥ वानरराज सुग्रीवजीने नदीके वेगके समान आगे हुए आँसुओंके वेगको सहसा अपने धीरजसे धारणकर लिया, क्योंकि उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीके निकट बैठकर रोना उचित जाना ॥ ३० ॥ तेजस्वी वानरश्रेष्ठ सुग्रीवजी आँसुओंका वेग रोक दोनों नेत्रोंको पोछ श्री रामचन्द्रजीसे बोले ॥ ३१ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! पहले हमारे बडे भाई बलवान् वालिने हमको हमारे राज्यसे भ्रष्ट कर कठोर वचन सुनकर घरमे निकाल दिया ॥ ३२ ॥ उसीने हमारी प्राणसे भी अधिक प्यारी स्त्रीको हरण करके हमारे सब इष्टमित्रोंको बांध रक्खा है ॥३३॥ हे राघव ! वह दुष्टात्मा हमारा नाश करनेके लिये अनेकवार यत्न कर चुका है, परन्तु हमको मारनेके लिये उसके भेजे हुए सब वानरोंको हमने मार डाला है ॥ ३४ ॥

हम उसी हेतुसे मनमें शंका आ जानेसे आपको देखकर आपके निकट आनेमें डरे थे, क्योंकि भयसे सब पुरुष डरा करते हैं ॥ ३५ ॥ केवल यही हनुमानादि चार वानर हमारी सहायता करते हैं, हम अतिशय कष्टमें पडने परभी इन्हींके आश्रयसे प्राण धारण करते हैं ॥३६॥ ये हमारे स्नेही मित्र वानरगण हमारी सब प्रकारसे रक्षा करते हैं ये लोग हमारे बैठनेपर बैठते और हमारे कहींको चलनेपर साथ चलते हैं ॥ ३७ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! बहुत कहनेसे क्या है ? हमने अपना सबही वृत्तांत संक्षेपसे कह दिया है, हमारे शत्रु और बडे भाई बालिका पौरुष अत्यन्त विख्यात है ॥ ३८ ॥ उसका नाश होनेसेही हमारा दुःख भी नाश को प्राप्त होगा, उसका वध होनेहीमें सुख और जीवन संचारकी आशा हो सकती है ॥३९॥ हमने शोकसे पीडित होकर जो अपने शोकके

शंकयात्वेतयाहंचदृष्ट्वात्वामपिराघव ॥ नोपसर्पाम्यहंभीतोभयेसर्वेहिबिभ्यति ॥ ३५ ॥ केवलंहिसहायामेहनुमत्प्रमुखास्त्विमे ॥ अतोऽहंधारयाम्यद्यप्राणान्कृच्छ्रगतोऽपिसन् ॥ ३६ ॥ एतेहिकपयःस्निग्धामांरक्षंतिसमंततः ॥ सहगच्छंतिगंतव्येनित्यंतिष्ठंतिचास्थिते ॥ ३७ ॥ संक्षेपस्त्वेषमेरामकिमुक्त्वाविस्तरंहिते ॥ समेज्येष्ठोरिपुर्भ्रातावालीविश्रुतपौरुषः ॥ ३८ ॥ तद्विनाशेऽपिमेदुःखंप्रमृष्टंस्यादनंतरम् ॥ सुखंमेजीवितंचैवतद्विनाशनिबंधनम् ॥३९॥ एषमेरामशोकांतःशोकार्तेननिवेदितः ॥ दुःखितसुखितोवापिसख्युर्नित्यं सखागतिः ॥४०॥ श्रुत्वैतच्चवचोरामः सुग्रीवमिदमब्रवीत् ॥ किंनिमित्तमभूद्वैरंश्रोतुमिच्छामितत्त्वतः ॥ ४१ ॥ सुखंहिकारणंश्रुत्वावैरस्यतववानर ॥ आनंतर्याद्विधास्यामिसधार्यबलाबलम् ॥४२॥ बलवान्हिममामर्षःश्रुत्वात्वामवमानितम् ॥ वर्धतेहृदयोत्कंपीप्रावृड्वेगइवांभस ॥४३॥ हृष्टःकथयविस्रब्धो यावदारोप्यतेधनुः ॥ मृष्टश्चहिमयाबाणोविरस्तश्चरिपुस्तव ॥ ४४ ॥

नाश करनेका उपाय बताया है, बस इससे हमारा दुःख जा सकता है, दुखितही हो; वा सुखीहीहो मित्रही मित्रकी गति होता है ॥४०॥ सुग्रीवजीके ऐसे वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजी बोले; तुम्हारा वैर बालिसे किस कारण हुआ सो उनको हम यथार्थरूपसे श्रवण करनेकी इच्छा करते हैं ॥४१॥ हे वानरवर ! तुम्हारे बीचमें वैर होनेका कारण सुन बलाबल विचार कर फिर तुम्हारा कार्य करेंगे ॥ ४२ ॥ तुम्हारा अपमान सुनकर हमारा हृदय कम्पनकारी कोप बलवान् हो बर्षाकालीन वारिवेगके समान बढता जाता है ॥ ४३ ॥ हम जबतक धनुष नहीं चढाते हैं तबतक तुम हर्षितचित्तसे सब वृत्तांत कह दो, जैसेही कि, हम बाण छोडेंगे वैसेही तुम्हारा रिपु मर जायगा, इस बातकी निःसंदेह ठीक २ कर जानो ॥ ४४ ॥

महात्मा श्रीरामचन्द्रजीसे इस प्रकार कहे जाकर सुग्रीवजी अपने चार मंत्रियोंसहित अतुलित हर्षको प्राप्त हुए ॥ ४५ ॥ उसके पीछे सुग्रीवजीने प्रसन्न वदन हो बालिसे वैर होनेका कारण श्रीरामचन्द्रजीसे वर्णन करना आरम्भ किया ॥ ४६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायामष्टमः सर्गः ॥८॥ सुग्रीवजी कहते हैं कि वालिनामक शत्रुओंका विनाशक हमारा बडा भाई पिताका और जबतक वैर न हुआ था तबतक हमारा अत्यन्त प्रिय था ॥ १ ॥ जब पिताजी की मृत्यु हुई तब बालिको बडा पुत्रही राज्यका अधिकारी समझ मंत्रियोंने परस्पर सम्मतिकर इसको वानरोंका राजा बनाया ॥ २ ॥ वह पिता पितामहादिकोंका राज्य पालन करने लगे और हम उनके निकटही दासके समान विनीत भावसे रहने लगे ॥३॥ पहले किसी समयमें मायावी नामक तेजस्वी दनुपुत्र के साथ स्त्रीके निमित्त वालिका वैर हुआ था वह दानव पहले मयका पुत्र था, फिर दुंदुभीका पुत्र हुआ ॥४॥ एक समय जबकि, रात्रिके

एवमुक्तस्तुसुग्रीवःकाकुत्स्थेनमहात्मना ॥ प्रहर्षमतुलंलेभेचतुर्भिःसहवानरैः ॥४५॥ ततःप्रहृष्टवदनःसुग्रीवोलक्ष्मणाग्रजे ॥ वैरस्यकारणंतत्त्व माख्यातुमुपचक्रमे ॥४६॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्येच० सा० किष्किन्धाकांडेऽष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥ वालीनाममम भ्राताज्येष्ठःशत्रुनिषूदनः ॥ पितुर्बहुमतोनित्यंममचापितथापुर ॥१॥ पितर्युपरतेतस्मिञ्ज्येष्ठोऽयमितिमंत्रिभिः ॥ कपीनामीश्वरोराज्येकृतः परमसंमतः ॥ २ ॥ राज्यंप्रशासतस्तस्यपितृपैतामहंमहतअहंसर्वेषुकालेषुप्रणतःप्रेष्यवत्स्थितः ॥ ३ ॥ मायावीनामतेजस्वीपूर्वजोदुदुभेः सुतः ॥ तेनतस्यमहद्वैरंवालिनः स्त्रीकृतंपुरा ॥ ४ ॥ सतुसुप्तेजनेरात्रौकिष्किंधाद्वारमागतः ॥ नर्दतिस्मसुसंरब्धोवालिनंचाह्वयद्रणे ॥ ५ ॥ प्रसुप्तस्तुममभ्रातानर्दतोभैरवस्वनम् ॥ श्रुत्वानममृषेवालीनिष्पपातजवात्तदा ॥ ६ ॥ सतुवैनिःसृत;क्रोधात्तंहंतुमसुरोत्तमम् ॥ वार्यमाणस्ततः स्त्रीभिर्मयाचप्रणतात्मना ॥७॥ सतुनिर्धूयताःसर्वानिर्जगाममहाबलः ॥ ततोऽहमपिसौहार्दान्निःसृतोवालिनासह ॥ ८ ॥ सतुमेभ्रातरंदृष्ट्वामां चदूरादवस्थितम् ॥ असुरोजातसंत्रासःप्रदुद्रावतदाभृशम् ॥ ९ ॥

कालमें सब सो रहे थे कि वहीं मायावी किष्किन्धा पुरीके द्वारपर आकर वालिको रण करनेके लिये पुकारने लगा ॥५॥ हमारे भ्राता वाली उस समय सोते थे, उसका भयंकर शब्द सुन और उसके न सहसकनेपर वेगसहित बाहरको चले ॥ ६ ॥ वहांसे झपट क्रोधके वशमें हो उस असुरश्रेष्ठको मारनेके लिये तैयार हुये उसके पीछे समस्त स्त्रियोंने और हमने भी उनको निवारण किया ॥७॥ परन्तु महाबली वालिने किसीकी एक बात न सुनी और महा बलवान् होनेके कारण संग्राम करनेके लिये चल दिये, तब सुहृदयताके स्नेहसे हम भी उनके पीछे २ चले गये ॥ ८ ॥ वह असुर हमारे भ्राता वालिको व हमको उनके पीछे २ दूरसे आता हुआ देखकर भयभीत हो वेगसहित भागने लगा ॥ ९ ॥

जब वह त्रासित होकर वेग सहित दौडा हम दोनों जन भी उसके पीछे २ वेगयुक्त हो दौडे, क्योंकि निशानाथके उदय होनेके उस समय चांदनी खिल रही थी ॥ १० ॥ वह राक्षस भागते २ पृथ्वी तृणों करके छाये हुए एक दुर्गम और बडे खोहमें प्रवेश कर गया, तब हम दोनों भाई उस गुफाके आगे जाकर खडे रहे ॥ ११ ॥ उस शत्रुको गुफामें बैठा हुआ देख हमारे भ्राता वालि क्रोधसे मूर्च्छित हो हमसे बोले ॥ १२ ॥ कि, हे सुग्रीव ! जब तक हम उस शत्रुका संहार करके न फिरें तब तक तुम यहीं पर खडे रहना ॥ १३ ॥ हमने उनके साथ बिलमें जानेके लिये प्रार्थना की, परन्तु उन्होंने अपने चरण को सौगन्ध दिला हमको साथ चलनेसे रोका और आप उस बिलमें प्रवेश कर गये ॥ १४ ॥ जब वह बिलमें प्रवेश कर गये तब हमको बिलके द्वार

तस्मिन्द्रवतिसंत्रस्तेह्यावांद्रुततरंगतौ ॥ प्रकाशोऽपिकृतोमार्गश्चंद्रेणोद्गच्छतातदा ॥१०॥ सतृणैरावृतंदुर्गंधरण्याविवरंमहत् ॥ प्रविवेशासुरोवेगादावामासाद्यविष्ठितौ ॥ ११ ॥ तंप्रविष्टंरिपुंदृष्ट्वाबिलंरोषवशंगतः ॥ मामुवाचततोवालीवचनंक्षुभितेंद्रियः ॥१२॥ इहतिष्ठाद्यसुग्रीवबिलद्वारिसमाहितः ॥ यावदत्रप्रविश्याहंनिहन्मिसमरेरिपुम् ॥१३॥ मयात्वेतद्वचःश्रुत्वायाचितःसपरंतपः ॥ शापयित्वासमांपद्भ्यांप्रविवेशबिलंततः ॥ १४ ॥ तस्यप्रविष्टस्यबिलंसाग्रःसंवत्सरोगतः ॥ स्थितस्यचबिलद्वारिसकालोव्यत्यवर्तत ॥ १५ ॥ अहंतुनष्टंतंज्ञात्वास्नेहादागतसंभ्रमः ॥ भ्रातरंनप्रपश्यामिपापशंकिचमेमनः ॥१६॥ अथदीर्घस्यकालस्यबिलात्तस्माद्विनिःसृतम् ॥ सफेनंरुधिरंदृष्ट्वाततोऽहंभृशदुःखितः ॥ १७ ॥ नर्दतामसुराणांचध्वनिर्मेश्रोत्रमागतः ॥ निरस्तस्यचसंग्रामेक्रोशतोनिःस्वनोगुरोः ॥ १८ ॥ अहंत्ववगतोबुद्ध्याचिह्नैस्तैर्भ्रातरंहतम् ॥ पिधायचबिलद्वारंशिलयागिरिमात्रया ॥ १९ ॥

पर खडे २ एक वर्षसे भी अधिक काल बीत गया ॥ १५ ॥ जब एक वर्ष बीत गया तब हमने जाना कि हमारे भाई विनाशको प्राप्त हुए इससे हमारा चित्त भी स्नेहके मारे अत्यन्त चंचल होगया और हम अनिष्टकी शंका करने लगे ॥ १६ ॥ तथापि हम वहां खडेही रहे तब कुछ दिन पीछे उस बिलमें फेन सहित रुधिर निकलने लगा सो देख कर हम अत्यन्त दुःखित हुए, कारण कि, वालिका रुधिर इसी प्रकार था ॥ १७ ॥ तब गर्जना करनेवाले असुरगणोंका घोर शब्द हमको सुनाई आया, परन्तु संग्राममें गये बडे भाई साहब, वालिका हमको कोई शब्द न सुन पडा ॥१८॥ हमने इन चिह्नोंसे जाना कि हमारे भाई साहब मारे गये तब इस कारणसे एक पर्वताकार शिला उस गुफाके द्वारपर अडादी ॥ १९ ॥

और शोकार्त्त चित्तसे उनकी जल किया करके हम किष्किन्धामें आये, हे श्रीरामचन्द्रजी! यद्यपि हमने वालिके वधकी वार्ता बहुतही छिपाई परन्तु मंत्रीलोगोंने किसी प्रकारसे जान लिया ॥ २० ॥ उसके पीछे उन सब मंत्रियोंने मिल कर हमारी इच्छा न रहते भी हमको राज्य पर बैठा दिया तब हम यथा न्यायसे राज्यका पालन करते थे ॥ २१ ॥ कि इतनेमें वालि उस रिपु दानवको संहार करके घर आगये, और हमको राज्य सिंहासन पर बैठे देखकर क्रोधसे लाल २ नेत्र कर लिये ॥ २२ ॥ तब उस समय उसने हमारे मंत्रियोंको बँधवा कर उनका कठोर वचनोंसे तिरस्कार किया, हे राघव! यद्यपि हममें इतना बल था कि उस पापाचारी वालिको बांध लेते ॥ २३ ॥ परन्तु भ्राता की प्रतिज्ञा मान हमारी बुद्धि ऐसी न हुई कि, हम उन्हें बँधुआ करें जब

शोकार्तश्चोदकंकृत्वाकिष्किंधामागतःसखे ॥ गूहमानस्यमेतत्त्वंयत्नतोमंत्रिभिःश्रुतम् ॥२०॥ ततोऽहंतैःसमागम्यसामेतैरभिषेचितः ॥ राज्यं प्रशासतस्तस्यन्यायतोममराघव ॥२१॥ आजगामरिपुंहत्वादानवंसतुवानरः ॥ अभिषिक्तंतुमांदृष्ट्वाक्रोधात्संरक्तलोचनः ॥२२॥ मदीया-न्मंत्रिणोबद्धापरुषंवाक्यमब्रवीत ॥ निग्रहेचसमर्थस्यतंपापंप्रतिराघव ॥ २३ ॥ नाप्रावर्ततमेबुद्धिर्भ्रातृगौरवयंत्रिता ॥ हत्वाशत्रुंसमेभ्राताप्र-विवेशपुरंतदा ॥२४॥ मानयंस्तंमहात्मानंयथावच्चाभिवादयम् ॥ उक्ताश्चनाशिषस्तेनप्रहृष्टेनांतरात्मना ॥२५॥ नत्वापादावहंतस्यमुकुटेनास्पृ-शंप्रभो ॥ अपिवालीममक्रोधान्नप्रसादंचकारसः ॥ २६ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० किष्किंधाकांडे नवमः सर्गः ॥ ९ ॥ ततःक्रोधसमाविष्टंसंरब्धंतमुपागतम् ॥ अहंप्रसादयांचक्रेभ्रातरंहितकाम्यया ॥ १ ॥ दिष्ट्याऽसिकुशलीप्राप्तोनिहतश्चत्वया रिपुः ॥ अनाथस्यहिमेनाथस्त्वमेकोनाथनंदनः ॥२॥ इदंबहुशलाकंतेपूर्णचंद्रमिवोदितम् ॥ छत्रंसवालव्यजनं प्रतीच्छस्वमयाधृतम् ॥ ३ ॥

उन्होंने अपने शत्रुको मारकर पुरमें प्रवेश किया ॥ २४ ॥ तब हमने सन्मान करके उन महात्माके चरण ग्रहण कर प्रणाम किया, परन्तु न तो वह प्रसन्नही हुये और न हमको आशीर्वाद ही दिया ॥ २५ ॥ हमने बार २ उनके चरणोंमें अपना मुकुटसहित मस्तक धरकर प्रणाम किया परन्तु वालि क्रोधके वश हो किसी प्रकारसे भी हमारे ऊपर प्रसन्न न हुए ॥२६॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्किन्धकांडे भाषायां नवमः सर्गः ॥९॥ तब हम उनके व अपने हितकी कामनामे, वेगसे आये हुए क्रोधसे भरकर बैठे अपने भ्राताको प्रसन्न करने लगे ॥१॥ हे अनाथोंकी रक्षा करनेवाले! बडे भाग्यकी बात है कि आप शत्रुका संहार करके कुशल सहित फिर अपने गृहको आये हैं। हम अनाथ हैं, हमारे तो एक आपही नाथ हैं ॥ २ ॥ यह पूर्ण चन्द्रमाके समान दीप्तिमान

बहुशलाका युक्त छत्र और चवर जो कि इतने दिनों हम धारण करते थे सो अब इनको आप धारण कीजिये ॥ ३ ॥ हे नृपवर ! हम उस बिलके द्वारपर एक वर्षतक खडे रहे इससे बहुत कातर हो गये परन्तु जब बिलसे उत्पन्न हुई शोणितकी धारा अवलोकन करके ॥ ४ ॥ शोक और घबडाहटसे हमारा हृदय अत्यन्त चंचल हुआ और सब इंद्रियें भी अत्यन्त व्याकुल हो आईं तब हम पर्वतके शिखरसे गुफाका द्वार रोककर ॥ ५ ॥ उस स्थानसे फिर आकर किष्किन्धामें चले आये, मंत्रियोंने और पुरके लोगोंने हमको अत्यन्त विषादित देखकर ॥ ६ ॥ राजसिंहासन पर बैठा दिया, परन्तु राजसिंहासन पर बैठनेकी हमारी इच्छा नहीं थी । जो हो आप हमारे इस अपराधको क्षमा कीजिये, आप अबभी पहलेहीके समान राजा हैं और जैसे प्रथम हम आपके सेवक थे वैसे ही अब भी हैं ॥ ७ ॥ और हम जो राजसिंहासन पर बैठाये गये; यह बात तो आपके न होनेपर थी, जैसै आप मंत्रियोंको छोड गयेथे वैसेही सब मंत्री

आर्तस्तस्यबिलद्वारिस्थितः संवत्सरंनृप ॥ दृष्ट्वाचशोणितंद्वारिबिलाच्चापिसमुत्थितम् ॥ ४ ॥ शोकसंविग्नहृदयोभृशंव्याकुलितेंद्रियः ॥ अपिधायबिलद्वारंशैलशृंगेणतत्तदा ॥५॥तस्माद्देशादपाक्रम्यकिष्किंधांप्रविशंपुनः ॥ विषादात्त्विहमांदृष्ट्वापौरैर्मंत्रिभिरेवच ॥ ६ ॥ अभिषिक्तोनकामेनतन्मेक्षंतुंत्वमर्हसि ॥ त्वमेवराजामानार्हःसदाचाहंयथापुरा ॥७॥ राजभावे नियोगोऽयंममत्वद्विरहात्कृतः ॥ सामात्यपौरनगरंस्थितंनिहतकंटकम् ॥ ८ ॥ न्यासभूतमिदंराज्यंतवनिर्यातयाम्यहम् ॥ माचरोषंकृथाःसौम्यममशत्रुनिषूदन ॥ ९ ॥ याचेत्वांशिसाराजन्मयाबद्धोऽयमंजलिः॥बलादस्मिन्समागम्यमंत्रिभिःपुरवासिभिः ॥१०॥ राजभावनियुक्तोऽहंशून्यदेशजिगीषया ॥ स्निग्धमेवंब्रुवाणंमांसविनिर्भर्त्सयंवानरः ॥ ११ ॥ धिक्त्वामितिचमामुक्त्वाबहुतत्तदुवाचह ॥ प्रकृतीश्चसमानीयमंत्रिणश्चैवसंमतान् ॥ १२ ॥ मामाहसुहृदांमध्येवाक्यंपरमगर्हितम् ॥ विदितंवोमयारात्रौमायावीसमहासुरः ॥ १३ ॥

भी अबतक हैं, और राज्यमें शत्रु भी कोई नहीं है ॥ ८ ॥ हमारे पास तो आपका यह राज्य मानो थातीकी भांति रक्खा रहा. अब आप इसको लेलें । हे शत्रुनिषूदन सौम्य ! हमारे ऊपर अब आप रोष न करें ॥ ९ ॥ हे राजन् ! हम आपके आगे हाथ जोड शिर झुकाकर यह प्रार्थना करते हैं, कि मंत्री और पुरवासियोंने बलात्कारसे ॥ १० ॥ हमको राज्य करनेमें लगा दिया था, इस कारणसे कि, आपके न रहनेपर सूने देशमें कोई शत्रु चढ न आवे और इसे जीत न ले हे श्रीरामचन्द्रजी! इस प्रकार हमने विनीतभावसे ऐसे २ मधुर वचन कहे, पर उन हमारे बडे भ्राताने हमारा बडा अपमान कर ॥११॥ तुझको धिक्कार है, तुझको धिक्कार है वारंवार ऐसे कठोर वचन कहे तत्पश्चात् सब प्रजा और मंत्री व और नौकर चाकरोंको बुलाकर ॥१२॥ सब सुहृद्गणोंके मध्यमें

हमको अत्यन्त दुर्वचन कहने लगे कि, तुम सब लोग जानते हो कि, पहले मायावी नामक महा असुर रात्रिमें यहां आया था ॥ १३ ॥ उसने क्रोधित और युद्धाकांक्षी होकर हमको पुकारा तब उसका पुकारना सुन कर हम राजगृहसे बाहर निकले ॥ १४ ॥ और हमारे पीछे २ यह दारुण हमारे भाई भी चले, उस रात्रिमें वह बलवान् असुर हम दोनोंको देखकर ॥ १५ ॥ भयके मारे त्रासित हो भाग चला, तब हमभी बराबर उसके पीछे २ दौडे गये, तब वह बडे वेगसे भागते २ एक बिलमें प्रवेश कर गया ॥१६॥ तब उस दुष्ट व कठोरचित्त असुरको एक गुफामें घुसा देखा तब हमने इस अति क्रूरदर्शन अपने भाईसे कहा कि ॥ १७ ॥ इस असुरको बिना मारे हम नहीं जायँगे, सो जबतक हम इसको मारकर न आवें तबतक तुम इस गुफाके द्वारपर हमारी राह

सतुहृष्टै मांसमाह्वयतक्रुद्धोयुद्धाकांक्षीतदापुरा ॥ तस्यतद्भाषितंश्रुत्वानिःसृतोऽहंनृपालयात् ॥ १४ ॥ अनुयातश्चमांतूर्णमयंभ्रातासुदारुणः ॥ सतुदृष्ट्वैवमांरात्रौसद्वितीयंमहाबलः ॥ १५ ॥ प्राद्रवद्भयसंत्रस्तोवीक्ष्यावांसमुपागतौ ॥ अभिद्रुतस्तुवेगेनविवेशमहाबिलम् ॥ १६ ॥ तंप्रविष्टंविदित्वातुसुघोरंसुमहद्बिलम् ॥ अयमुक्तोऽथमेभ्राताम‌यातुक्रूरदर्शनः ॥ १७ ॥ अहत्वानास्तिमेशक्तिःप्रतिगन्तुमितःपुरीम् ॥ बिलद्वारिप्रतीक्षत्वं यावदेनंनिहन्म्यहम् ॥ १८ ॥ स्थितोऽयमितिमत्वाहंप्रविष्टस्तुदुरासदम् ॥ तंमेमार्गयतस्तत्रगतःसंवत्सरस्तदा ॥ १९ ॥ सतुदृष्टोमयाशत्रुरनिर्वेदाद्भयावहः ॥ निहतश्चमयासद्यःससर्वैःसहबंधुभिः ॥ २० ॥ तस्यवचप्रवृत्तेनरुधिरौघेणतद्बिलम् ॥ पूर्णमासीद्दुराक्रामंस्तनतस्तस्यभूतले ॥ २१ ॥ सूदयित्वातुतंशत्रुंविक्रांततमहंसुखम् ॥ निष्क्रामंनेहपश्यामिबिलस्यापिहितंमुखम् ॥ २२ ॥ विक्रोशमानस्यतुमेसुग्रीवेतिपुनःपुनः ॥ यतःप्रतिवचोनास्तिततोऽहंभृशदुःखितः ॥ २३ ॥ पादप्रहारैस्तुमयाबहुभिःपरिपातितम् ॥ ततोऽहंतेननिष्क्रम्यपथापुरमुपागतः ॥ २४ ॥ तत्रानेनास्मिसंरुद्धोराज्यंमृगयताऽत्मनः ॥ सुग्रीवेणनृशंसेनविस्मृत्यभ्रातृसौहृदम् ॥ २५ ॥

देखते रहना ॥ १८ ॥ हम जानकर कि, सुग्रीव तो द्वारपर खडेही हैं, उस दुर्गम बिलमें घुसे सो वहांपर उसे ढूँढते ढूँढतेही हमें एक वर्ष लग गया ॥ १९ ॥ संवत्सर बीतनेके पीछे मारे डरके व्याकुल वह हमें मिला बस हमने देखतेही उसको बन्धु बांधवों सहित मार डाला ॥ २० ॥ संहार करनेके समय वह ऐसा चिल्लाया कि उससे और उसके मुखसे निर्गत रुधिर धारसे वह गुफा पूर्ण होगई ॥२१॥ उस महाबलवान् शत्रुको संहार करके जब हम सुखपूर्वक गुफाके बाहरको आरहेथे तब देखा कि गुफाका द्वार बन्द पडा है ॥२२॥ हम ''भइया सुग्रीव ! सुग्रीव'' कहकर जोरसे पुकारने लगे परन्तु उस समय कुछ उत्तर न पाकर हमबडे दुःखी हुए ॥२३॥ फिरहम बहुतसारे चरण प्रहारोंकेद्वारा उस शिलाको ढकेलउस गुफासे निकल नगरमें आये हैं ॥२४॥ यहसुग्रीव भायपनका

स्नेह भुलाकर राज्यके लोभसे हमको गुफामें बंद कर आया इससे हमको अत्यन्त क्रोध हुआ है ॥ २५ ॥ वानरराज निर्भय बालिने ऐसा कहकर एक मात्र धोती पहराकर हमको घरसे निकाल दिया ॥ २६ ॥ हे रामचन्द्रजी ! हमारी स्त्रीको हरण करके उस वालिने हमको बहुतही मार दी, उस वालिके ही भयसे समुद्र वनयुक्त यह समस्त पृथ्वी भर हम घूमते थे ॥ २७ ॥ हम अपनी स्त्रीके हरण होजानेके दुःखसे महादुःखित हो इस ऋष्यमूक पर्वतपर चले आये । क्योंकि, यहां पर मतंगजीके शापसे वालि नहीं आसकता ॥ २८ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! हमने आपसे वालिके वैर भाव होनेका समस्तही कारण कहसुनाया, देखिये इसमें हमारा कुछ भी अपराध नहीं हैं बरन् हम विना अपराधही यह महादुःख पारहे हैं ॥ २९ ॥ हे सर्वलोकको अभय देनेवाले ! वालिको मारकर इसके भयसे भीत और व्याकुल हमारे ऊपर आप प्रसन्न हूजिये ॥ ३० ॥ वे तेजस्वी धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी यह धर्मसाने वचन

एवमुक्त्वातुमांतत्रवस्त्रेणैकेनवानरः ॥ तदानिर्वासयामासवालीविगतसाध्वसः ॥२६॥ तेनाहमपविद्धश्चहृतदारश्चराघव ॥ तद्भयाच्चमहींसर्वांक्रांतवान्सवनार्णवाम् ॥ २७ ॥ ऋष्यमूकंगिरिवरंभार्याहरणदुःखितः ॥ प्रविष्टोऽस्मिदुराधर्षंवालिनःकारणान्तरे॥२८॥ एतत्तेसर्वमाख्यातंवैरानुकथनंमहत् ॥ अनागसामयाप्राप्तंव्यसनंपश्यराघव ॥ २९ ॥ वालिनश्चभयात्तस्यसर्वलोकभयापह ॥ कर्तुमर्हसिमेवीरप्रसादंतस्यनिग्रहात् ॥ ३० ॥ एवमुक्तःसतेजस्वीधर्मज्ञोधर्मसंहितम् ॥ वचनंवक्तुमारेभेसुग्रीवंप्रहसन्निव ॥३१॥ अमोघाःसूर्यसंकाशानिशितामेशराइमे ॥ तस्मिन्वालिनिदुर्वृत्तेपतिष्यंतिरुषान्विताः ॥ ३२ ॥ यावत्तंनहिपश्येयंतवभार्यापहारिणम् ॥ तावत्सजीवेत्पापात्मावालीचारित्रदूषकः ॥ ३३ ॥ आत्मानुमानात्पश्यामिमग्नस्त्वंशोकसागरे ॥ त्वामहंतारयिष्यामिबाढंप्राप्स्यसिपुष्कलम् ॥ ३४ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाहर्षपौरुषवर्धनम् ॥ सुग्रीवःपरमप्रीतःसुमहद्वाक्यमब्रवीत् ॥३५॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० किष्किन्धाकांडेदशमः सर्गः ॥१०॥ रामस्यवचनंश्रुत्वाहर्षपौरुषवर्धनम् ॥ सुग्रीवःपूजयांचक्रेराघवंप्रशशंसच ॥ १ ॥

सुन हँसकर सुग्रीवजी बोले ॥३१॥ हे सुग्रीव ! हमारे ये तीखे सूर्यसमान प्रकाशित अमोघ बाण उस दुराचारी वालिके ऊपर क्रोधमें भरकर गिरेंगे ॥ ३२ ॥ हम जबतक तुम्हारी भार्याको हरण करनेवाले उस वालिको नहीं देख पाते हैं; तभी तकही वह कुचरित्र पापाचारी जीवित रहेगा ॥३३॥ अपने हम अनुभवसे देखते हैं कि, तुम शोकसागरमें डूब रहे हो हम तुमको इस शोकसागरसे उद्धार करेंगे और तुमको फिर तुम्हारा राज्य प्राप्त हो जायगा ॥ ३४ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके हर्ष और पौरुषके बढानेवाले वचन सुनकर सुग्रीवजी परम प्रसन्न हो बडे अर्थयुक्त वचन बोले ॥३५॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायां दशमः सर्गः ॥ १० ॥ श्रीरामचन्द्रजीके हर्ष और पुरुषार्थके बढानेवाले वचन सुनकर सुग्रीवजी उनकी पूजा कर प्रशंसा करनेलगे ॥ १ ॥

कि, आप क्रोधित होकर रुधिरके प्यासे प्रज्वलित सुतीक्ष्ण मर्मभेदी बाणोंसे निश्चयही प्रलयकालीन सूर्य भगवान्‌के समान सम्पूर्ण लोकोंको भस्म कर सकते हैं ॥ २ ॥ प्रथम आप वालिका पौरुष धीरता और वीर्य हमसे सावधान चित्त होकर श्रवण कर लीजिये फिर जैसा उचित हो समझ बूझ कर कीजिये ॥ ३ ॥ वालि सूर्योदयके प्रथम ही पश्चिम समुद्रसे पूर्व और दक्षिण समुद्र और उत्तर समुद्रके किनारे तक घूम आता है; परंतु इतना चलनेसे भी वह कुछ नहीं थकता ॥ ४ ॥ वह महा वीर्यवान् वालि पर्वतोंके अग्रभाग पर चढकर शिखरोंको उखाड कर ऊपर को उछाल देता है और फिर उनको हाथसे पडक लेता है ॥ ५ ॥ वालिने अपना बल प्रकाश करनेके लिये, वनमें लगे हुए बहुतेरे सारवान् वृक्षोंको उखाड कर चूर्ण कर दिया है ॥ ६ ॥ कैलास

असंशयंप्रज्वलितैस्तीक्ष्णैर्मर्मातिगैःशरैः ॥ त्वंदहेःकुपितोलोकान्युगांतइवभास्करः ॥२॥ वालिनःपौरुषंयत्तद्यच्चवीर्यंधृतिश्चया ॥ तन्ममैकमनाःश्रुत्वाविधत्स्वयदनंतरम् ॥३॥ समुद्रात्पश्चिमात्पूर्वंदक्षिणादपिचोत्तरम् ॥ क्रामत्यनुदितेसूर्येवालीव्यपगतक्लमः ॥४॥ अग्राण्यारुह्यशैलानांशिखराणिमहांत्यपि ॥ ऊर्ध्वमुत्पात्यतरसाप्रतिगृह्णातिवीर्यवान् ॥५॥ बहवःसारवंतश्चवनेषुविविधाद्रुमाः ॥ वालिनातरसाभग्नाबलंप्रथयताऽऽत्मनः ॥६॥ महिषोदुंदुभिर्नामकैलासशिखरप्रभः ॥ बलंनागसहस्रस्यधारयामासवीर्यवान् ॥ ७ ॥ सवीर्योत्सेकदुष्टात्मावरदानेनमोहितः ॥ जगामसमहाकायःसमुद्रंसरितांपतिम् ॥ ८ ॥ ऊर्मिमंतमतिक्रम्यसागरंरत्नसंचयम् ॥ ममयुद्धंप्रयच्छेतितमुवाचमहार्णवम् ॥ ९ ॥ ततःसमुद्रोधर्मात्मासमुत्थायमहाबलः ॥ अब्रवीद्वचनंराजन्नसुरंकालचोदितम् ॥ १० ॥ समर्थोनास्मितेदातुंयुद्धंयुद्धविशारद ॥ श्रूयतांत्वभिधास्यामियस्तेयुद्धंप्रदास्यति ॥ ११ ॥ शैलराजोमहारण्येतपस्विशरणंपरम् ॥ शंकरश्वशुरोनाम्नाहिमवानितिविश्रुतः ॥ १२ ॥ महाप्रस्रवणोपेतोबहुकंदरनिर्झरः ॥ ससमर्थस्तवप्रीतिमतुलांकर्तुमर्हति ॥ १३ ॥

पर्वतके शिखरके समान दुन्दुभी नामक वीर्यवान् महिष हजार हाथियोंका बल अपने शरीरमें धारण करता था ॥ ७ ॥ वीर्य के मदसे मतवाला बन और वरदान पानेके काहण मोहित हो वह महा काय दुंदुभी समुद्रके निकट गया ॥ ८ ॥ वह रत्नाकर समुद्रकी तरंगोंको रोक समुद्रसे बोला कि तुम हमको युद्धदान दो ॥ ९ ॥ तब धर्मात्मा महा बलवान् समुद्रने उठ कर उस बलसे मतवाले दुष्ट काल प्रेरित असुरसे कहा ॥ १० ॥ हे युद्धविशारद ! तुम्हारे साथ युद्ध करनेकी हममें सामर्थ्य नहीं है. हां जो पुरुष तुम्हारे साथ युद्ध करेगा उसको बतलाते हैं श्रवण करो ॥ ११ ॥ महा अरण्यमें हिमवान् नामसे विख्यात तपस्वियोंको आश्रय देनेवाले, शिवजीके श्वशुर एक पर्वत राज हैं ॥ १२ ॥ उस गिरिमें बहुतसे झरने, कंदरा और सोते विद्यमान हैं सो वह गिरिराज

तुमको प्रसन्न करनेमें समर्थ होंगे, अर्थात् तुमसे युद्ध कर सकेंगे ॥१३॥ वह असुर श्रेष्ठ समुद्रको अपनेसे डरा हुआ जानकर धनुषसे छूटे हुये बाणके समान शीघ्रताके सहित सीधा हिमालयके वनमें पहुँचा ॥ १४ ॥ और उन पर्वतराज पर पहुँच उनकी ऐरावत हस्ती के तुल्य सफेद शिलायें पृथ्वीपर फेंक २ कर सिंहनाद करने लगा ॥ १५ ॥ तब श्वेत जलधर तुल्य सौम्य; प्रीतिको उपजाने वाला आकार धारण कर हिमवान्‌जी अपने एक शिखर पर खडे होकर दुन्दुभीसे बोले ❀ ॥१६॥ हे धर्मवत्सल दुन्दुभे ! तुम हमको क्लेश न दो जो लोग रणकार्य को कुछ भी नहीं जानते हम तो उन तपस्वियोंके आश्रयदाता हैं ॥ १७ ॥ बुद्धिमान् गिरिराज हिमवान्‌के ऐसे वचन सुन कर दुंदुभी क्रोधसे लाल २ नेत्र कर उनसे बोला ॥ १८ ॥ यदि तुम हमारे साथ युद्ध करनेकी

तंभीतमितिविज्ञायसमुद्रमसुरोत्तमः ॥ हिमवद्वनमागम्यशरश्चापादिवच्युतः ॥१४॥ ततस्तस्यगिरेःश्वेतागजेंद्रप्रतिमाःशिलाः ॥ चिक्षेपबहुधाभूमौदुंदुभिर्विननादच ॥ १५ ॥ ततःश्वेतांबुदाकारःसौम्यःप्रीतिकराकृतिः ॥ हिमवानब्रवीद्वाक्यंस्वएवशिखरेस्थितः ॥ १६ ॥ क्लेष्टुमर्हसिमांनत्वंदुंदुभेधर्मवत्सल ॥ रणकर्मस्वकुशलस्तपस्विशरणोह्यहम् ॥१७॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वागिरिराजस्यधीमतः ॥ उवाचदुंदुभिर्वाक्यंक्रोधात्संरक्तलोचनः ॥ १८ ॥ यदियुद्धेऽसमर्थस्त्वंमद्भयाद्वानिरुद्यमः ॥ तमाचक्ष्वप्रदद्यान्मेयोहियुद्धंयुयुत्सतः ॥ १९ ॥ हिमवानब्रवीद्वाक्यं श्रुत्वावाक्यविशारदः ॥ अनुक्तपूर्वंधर्मात्माक्रोधात्तमसुरोत्तमम् ॥ २० ॥ वालीनाममहाप्राज्ञशक्रपुत्रःप्रतापवान् ॥ अध्यास्तेवानरःश्रीमान्किष्किंधामतुलप्रभाम् ॥२१॥ ससमर्थोमहाप्राज्ञस्तवयुद्धविशारदः ॥ द्वंद्वयुद्धंसदातुंतेनमुचेरिववासवः ॥२२॥तंशीघ्रमभिगच्छत्वंयदियुद्धमिहेच्छसि ॥ सहिदुर्मर्षणोनित्यंशूरःसमरकर्मणि ॥ २३ ॥

इच्छा किये हुयेसे कौन पुरुष युद्ध कर सकता है; तुम उसको हमें बता दो ॥ १९ ॥ वचन बोलनमे चतुर धर्मात्मा हिमाचलजी, उसके ऐसे वचन सुनकर उस क्रोधसे मतवाले असुर श्रेष्ठसे बोले ॥२०॥ हे महाप्राज्ञ ! वालि नामक इन्द्रका पुत्र बडा प्रतापी वानर है, वह अतुल प्रभावाली किष्किन्धा नाम नगरीमें वास करता है ॥ २१ ॥ वह महाप्राज्ञ वालि तुम्हारे साथ युद्ध करनेकी सामर्थ्य रखता है जिस प्रकार नमुचि दैत्यके साथ इन्द्रने युद्ध किया था, ऐसाही वालि तुम्हारे साथ द्वंद्वयुद्ध करेगा ॥ २२ ॥ यदि तुम को युद्ध करनेकी इच्छा हो तो तुम शीघ्रही उसके निकट चले जाओ वह समरकर्ममें कुशल. शूर और अतिशय तेजस्वी है ॥ २३ ॥

❀ यह शरीरधारी हिमालयकी देवशक्ति है ॥

जब हिमाचलजीने ऐसा कहा तो दुंदुभी क्रोध युक्त हो अतिशीघ्रता के सहित वालिकी किष्किन्धा नाम नगरीमें आया ॥२४॥ उस असुरने वर्षाकालके समय आकाशमें जलपूर्ण महामेघके समान तेजसींगयुक्त अपना महा भयानक रूप धारण किया ॥२५॥ फिर महा बलवान् दुंदुभी किष्किन्धाके द्वारपर आ भूमिको कंपाता हुआ नगाडेके शब्द समान गर्जना करने लगा ॥२६॥ वह दर्पमें भरे मतवाले हाथी के समान किष्किन्धाके द्वार वाले वृक्ष तोड और अपने खुरोंसे भूमिको विदीर्ण कर सींगोंसे खोदने लगा ॥ २७ ॥ उस समय वालि रनवासमें स्त्रियोंके निकट बैठा था, वह उस शब्दको न सहन कर तारागणोंके सहित चन्द्रमाके समान सब स्त्रियोंके साथ बाहर चला आया ॥ २८ ॥ समस्त वन चारियोंका और वानर गणोंका राजा वालि दुंदुभी से स्पष्ट २ थोडे अक्ष

श्रुत्वाहिमवतोवाक्यंकोपाविष्टःसदुंदुभिः ॥ जगामतांपुरींतस्यकिष्किंधांवालिनस्तदा ॥२४॥ धारयन्माहिषंवेपंतीक्ष्णशृंगोभयावहः ॥ प्रावृषीवमहामेघस्तोयपूर्णोनभस्तले ॥२५॥ ततस्तुद्वारमागत्यकिष्किंधायामहाबलः ॥ ननर्दकंपयन्भूमिंदुंदुभिर्दुंदुभिर्यथा ॥२६॥ समीपजान्द्रुमान्भंजन्वसुधांदारयन्खुरैः॥विषाणेनोल्लिखन्दर्पात्तद्वारंद्विरदोयथा ॥२७॥ अंतःपुरगतोवालीश्रुत्वाशब्दममर्षणः ॥ निष्पपातसहस्त्रीभिस्ताराभिरिवचंद्रमाः ॥ २८ ॥ मितंव्यक्ताक्षरपदंतमुवाचसदुंदुभिम् ॥ हरीणामीश्वरोवालीसर्वेषांवनचारिणाम् ॥ २९ ॥ किमर्थंनगरद्वारमिदंरुद्ध्वाविनर्दसे ॥ दुंदुभेविदितोमेऽसिरक्षप्राणान्महाबल ॥३०॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वावानरेंद्रस्यधीमतः ॥ उवाचदुंदुभिर्वाक्यंक्रोधात्संरक्तलोचनः ॥३१॥ नत्वंस्त्रीसंनिधौवीरवचनंवक्तुमर्हसि ॥ ममयुद्धंप्रयच्छाद्यततोज्ञास्यामितेबलम् ॥३२॥ अथवाधारयिष्यामिक्रोधमद्यनिशामिमाम् ॥ गृह्यतामुदयःस्वैरंकामभोगेषुवानर ॥३३ ॥ दीयतांसंप्रदानंचपरिष्वज्यचवानरान् ॥ सर्वशाखामृगेंद्रस्त्वंसंसाधयसुहृज्जनम् ॥ ३४ ॥

रोंमें बोला कि, ॥ २९ ॥ हे महाबलवान् दुंदुभे ! तुम किस कारण इस नगरके द्वारको रोके हुये गर्जना कर रहे हो ? हम तुम्हारा बल जानते हैं और तुमभी हमारा बल भलीभांति जानते हो, इस कारणसे इस समय अपने प्राणोंकी रक्षा करो ॥ ३० ॥ वानरश्रेष्ठ बुद्धिमान् वालिके ऐसे वचन सुनकर क्रोधसे लाल २ नेत्रकर दुंदुभी वालिसे बोलाकि, ॥ ३१ ॥ हेवीर ! तुम अपनी स्त्रियोंके निकटही अपनी बडाईके वचन कह रहे हो; यह वीरको उचित नहीं. आज हमारे साथ युद्ध करो, तब तुम्हारा बल जाना जायगा ॥ ३२ ॥ अथवा अब हमारा त्रिकालमें अपने क्रोधको रोके रहते हैं, तबतक तुम सूर्यके उदय होनेतक कामभोगमें आसक्त हो इन स्त्रियोंके सहित रात्रि बिताओ ॥ ३३ और तुम सब वानरगणोंसे मिल भेंट लो और सब सुहृदोंको

भी आदर मानसे प्रसन्न कर आओ । प्रभात हम तुमसे युद्ध कर लेंगे ॥ ३४ ॥ किष्किन्धापुरीको चारों ओरसे देखभाल लो और अपने पुत्रोंमेंसे किसीको राज्यसिंहासन भी दे दो, अपनी स्त्रियोंसे क्रीडा भी करलो, क्योंकि हम तुम्हारा सब अहंकार तोड तुमको मार डालेंगे ॥ ३५ ॥ जो पुरुष मत्त, प्रमत्त, भागे हुये, आयुध रहित, दुबले और तुम्हारे समान मदसे मोहित पुरुषको मारता है वह गर्भहत्याके पापको प्राप्त होता है, इस कारणइस समय हम तुमको नहीं मारते हैं ॥ ३६ ॥ यह श्रवण कर हँसता हुआ बालि उस क्रोधमें भरे मन्दमति असुरसे बोला कि, यह लो हमने तारा आदि स्त्रियोंको त्याग किया ॥ ३७ ॥ यदि तुम संग्राम करनेमें निडर हो, तब तो हमको मतवाला मत समझो, कारण कि यह स्त्रियों करके उपजा हुआ मद युद्धमें

सुहृष्टांकुरुकिष्किंधांकुरुष्वात्मसमंपुरे॥क्रीडस्वचसमंस्त्रीभिरहंतेदर्पशासनः ॥ ३५ ॥ योहिमत्तंप्रमत्तंवाभग्नंवारहितंकृशम् ॥ हन्यात्सभ्रूणहा लोकेत्वद्विधंमदमोहितम् ॥३६॥ सप्रहस्याब्रवीन्मंदंक्रोधात्तमसुरेश्वरम् ॥ विसृज्यताःस्त्रियःसर्वास्ताराप्रभृतिकास्तदा ॥३७॥ मत्तोऽयमिति मामंस्थायद्यभीतोसिसंयुगे ॥ मदोऽयंसंप्रहारेऽस्मिन्वीरपानंसमर्थ्यताम् ॥३८॥ तमेवमुक्त्वासंक्रुद्धोमालामुत्क्षिप्यकांचनीम् ॥ पित्रादत्तां महेंद्रेणयुद्धायव्यवतिष्ठत ॥ ३९ ॥ विषाणयोर्गृहीत्वातंदुंदुभिंगिरिसंनिभम् ॥ अविध्यततदावालीविनदन्कपिकुंजरः॥४०॥वालीव्यापादयां चक्रेननर्दचमहास्वनम् ॥श्रोत्राभ्यामथरक्तंतुतस्यसुस्रावपात्यतः॥४१॥तयोस्तुक्रोधसंरंभात्परस्परजयैषिणोः ॥ युद्धंसमभवद्घोरंदुंदुभेर्वालि नस्तदा ॥ ४२ ॥ अयुध्यततदावालीशक्रतुल्यपराक्रमः ॥ मुष्टिभिर्जानुभिःपद्भिःशिलाभिःपादपैस्तथा ॥ ४३ ॥ परस्परंघ्नतोस्तत्रवानरा सुरयोस्तदा ॥ आसीद्धीनोऽसुरोयुद्धेशक्रसूनुर्व्यवर्धत ॥ ४४ ॥

बल होनेके अर्थ वीरोंके मदपानके समान जानो ॥ ३८ ॥ उस असुरसे इस प्रकार कहकर, क्रोधयुक्त बालि अपने पिता इंद्रकी दी हुई जय देनेवाली काञ्चनमय माला गलेमें पहन कर युद्ध करनेके लिये तैयार होगया ॥ ३९ ॥ कपिश्रेष्ठ वालिने उस पर्वतसमान दुन्दुभीके दोनों सींग पकड घोर शब्द कर उसको ढकेल कर गिरा दिया और बडी गर्जना की ॥ ४० ॥ वालि दुन्दुभीको गिरा कर सिंहनाद करके गर्जने लगा । बालिने दुन्दुभीको इतने बलसे गिराया कि उसके कानोंसे रुधिर बहने लगा ॥४१॥ फिर परस्पर जीतनेकी इच्छा किये वालि और दुन्दुभीका क्रोधमें भरनेके कारण महाघोर संग्राम आरम्भ हुआ ॥ ४२ ॥ इंद्रतुल्य पराक्रमशाली वाली लात, घूंसा; जांघ, शिला और वृक्षोंके द्वारा युद्ध करने लगा ॥ ४३ ॥ इस प्रकारसे

वानर और असुरका युद्ध होने लगा युद्ध होते २ असुरका बल क्षीण होता और बालिका बल बढता जाता था ॥ ४४ ॥ तब बालिने दुन्दुभीको पकड कर पृथ्वीपर पटक दिया, उस प्राण विनाशक युद्धमें दुन्दुभी बालि करके चूर्ण कर डाला गया ॥ ४५ ॥ दुन्दुभीके नाक कान आदिसे बहुतसा रुधिर निकलने लगा वह महाबाहु असुर पृथ्वीपर गिर कर प्राण त्याग करता हुआ ॥ ४६ ॥ बालिने उस विगतप्राण और चेतना रहित असुरको अपनी बाहोंसे पकड और घुमाकर एकबार ही एक योजनके अंतरपर फेंक दिया ॥ ४७ ॥ वह जब वेगसहित फेंका जारहा था तब उसके मुखसे रुधिरकी बूँदें पवनके संहारसे छिटक कर मतंगमुनिके आश्रम पर गिरीं ॥ ४८ ॥ हे महाभाग ! मुनिश्रेष्ठ मतंगजी अपने आश्रम पर रुधिरकी बूंदें गिरी हुई देख विचारने लगे कि यह कौन है ? ॥ ४९ ॥ कि जिस दुरात्मानें हमको रुधिरसे भिगो दिया ? वह दुर्बुद्धि मूढ और अज्ञानी पुरुष कौन है ? ॥ ५० ॥

तंतुदुंदुभिमुद्यम्यधरण्यामभ्यपातयत् ॥ युद्धेप्राणहरेतस्मिन्निष्पिष्टोदुंदुभिस्तदा ॥ ४५ ॥ स्रोतोभ्योबहुरक्तंतुतस्यसुस्रावपात्यतः ॥ पपात चमहाबाहुःक्षितौपंचत्वमागतः॥४६॥ तंतोलयित्वाबाहुभ्यांगतसत्त्वमचेतनम् ॥ चिक्षेपवेगवान्वालीवेगेनैकेनयोजनम् ॥ ४७ ॥ तस्यवेग प्रविद्धस्यवक्रात्क्षतजबिंदवः ॥ प्रपेतुर्मारुतोत्क्षिप्तामतंगस्याश्रमंप्रति ॥ ४८ ॥ तान्दृष्ट्वापतितांस्तत्रमुनिःशोणितविप्रुषः ॥ क्रुद्धस्तस्यम हाभागचिंतयामासकोन्वयम् ॥४९॥ येनाहंसहसास्पृष्टःशोणितेनदुरात्मना ॥कोऽयंदुरात्मादुर्बुद्धिरकृतात्माचबालिशः ॥५०॥ इत्युक्त्वास विनिष्क्रम्यददृशेमुनिसत्तमः ॥ महिषपर्वताकारंगतासुंपतितंभुवि ॥५१॥ सतुविज्ञायतपसावानरेणकृतंहितत् ॥ उत्ससर्जमहाशापंक्षेप्तारंवा नरंप्रति ॥ ५२ ॥ इहतेनाप्रवेष्टव्यंप्रविष्टस्यवधोभवेत् ॥ वनंमत्संश्रयंयेनदूषितंरुधिरस्रवैः ॥५३॥ क्षिपतापादपाश्चेमेसंभग्नाश्चासुरींतनुम्॥ समंतादाश्रमंपूर्णंयोजनंमामकंयदि ॥५४॥ आक्रमिष्यतिदुर्बुद्धिर्व्यक्तंसनभविष्यति ॥येचास्यसचिवाः केचित्संश्रितामामकंवनम् ॥ ५५ ॥ नचतैरिहवस्तव्यंश्रुत्वायांतुयथासुखम् ॥ तेपिवायदितिष्ठंतिशपिष्येतानपिध्रुवम् ॥ ५६ ॥

यह कह कर मुनिवरजीनें बाहर निकल कर देखा तो एक पर्वताकार भैंसा विगतप्राण होकर पृथ्वीपर पडा है ॥ ५१ ॥ उन्होंनें तपोबलसे जानलिया कि यह कार्य बालि वानरका किया हुआ है । तब उन्होंनें उसके फेंकनेवाले वानरको महाघोर शाप दिय ा॥ ५२ ॥ कि जिस वानरने हमारा आश्रित यह वन रुधिर बहानेसे दूषित किया है वह यहां पर नहीं आ सकेगा और जो आवेगा तो तत्क्षण मर जायगा ॥ ५३ ॥ असुरकी देह फेंककर जिसने हमारे आश्रमके बहुतसे वृक्ष तोड डाले हैं वह यदि हमारे आश्रममें प्रवेश करेगा वरन् इस आश्रमके चारों ओर किनारे २ चार कोशके घेरमें भी ॥ ५४ ॥ वह दुर्बद्धि आजायगा तो भी निश्चयही प्राण त्याग करेगा । उसका सखा या मंत्री जो कोईभी हमारे वनमें वास करेगा ॥ ५५ ॥ उनके भी प्राणका

नाश हो जायगा । वह लोग यहां पर वास नहीं करने पावेंगे सो वह हमारे वचन सुनकर कहीं और बसनेको चले जायँ यदि वे लोग यहां वास करेंगे तो हम उनको भी यही शाप देवेंगे ॥ ५६ ॥ कारण कि इस वनकी रक्षा हम नित्यही पुत्रवत् करते हैं और जो कोई बालिकी ओरका वानर यहांपर रहेगा तो उसके रहनेसे पत्र अंकुरका विनाश होगा और फलमूलादिभी नहीं रहेंगे ॥ ५७ ॥ आजके दिनतक हमारे शापकी मर्यादा है, प्रभात होतेही बालिकी ओरके जिस किसी वानरको भी यहां पर हम देखेंगे, तो वह बन्दर हजारों वर्षतक यहांपर पर्वत होकर रहेगा ॥ ५८ ॥ उसके पीछे उस वनके रहनेवाले सब वानरगण मुनिजीके यह वचन सुनकर वहांसे चले गये, तब उनको वहांसे निकल आये हुये देखकर वालि बोला ॥ ५९ ॥ मातंगवनके रहनेवाले तुम सब लोग किसी निमित्तसे हमारे निकट आए हो, सब वनवासी कुशल सहित तो हैं ॥ ६० ॥ उन सब वानरोंने सुवर्णमालाधारी

वनेऽस्मिन्मामकेनित्यंपुत्रवत्परिरक्षते ॥ पत्रांकुरविनाशायफलमूलाभवायच ॥५७॥ दिवसश्चाद्यमर्यादायंद्रष्टाश्वोऽस्मिवानरम् ॥ बहुवर्षसहस्राणिसवैशैलोभविष्यति ॥ ५८ ॥ ततस्तैवानराःश्रुत्वागिरंमुनिसमीरितम् ॥ निश्चक्रमुर्वनात्तस्मात्तान्दृष्ट्वावालिरब्रवीत् ॥ ५९ ॥ किंभवंतःसमस्ताश्चमतंगवनवासिनः ॥ मत्समीपमनुप्राप्ताअपिस्वस्तिवनौकसाम् ॥ ६० ॥ ततस्तेकारणंसर्वंतथाशापंचवालिनः ॥ शशंसुर्वानराःसर्वे वालिनेहेममालिने ॥६१॥ एतच्छ्रुत्वातदावालीवचनंवानरेरितम् ॥ समहर्षिंसमासाद्ययाचतेस्मकृतांजलिः ॥६२॥ महर्षिस्तमनादृत्यप्रविवेशाश्रमंप्रति ॥ शापधारणभीतस्तुवालीविह्वलतांगतः ॥६३ ॥ ततःशापभयाद्भीतऋष्यमूकंमहागिरिम् ॥ प्रवेष्टुंनेच्छतिहरिर्द्रष्टुंवापिनरेश्वर ॥६४॥ तस्याप्रवेशंज्ञात्वाहमिदंराममहावनम् ॥ विचरामिसहामात्योविषादेनविवर्जितः ॥६५॥ एषोऽस्थिनिचयस्तस्यदुंदुभेःसंप्रकाशते ॥ वीर्योत्सेकान्निरस्तस्यगिरिकूटनिभोमहान् ॥६६॥

वालिसे वह समस्त कारण कह सुनाया और यहभी बता दिया कि, आपको मुनिजीने शाप दिया है ॥ ६१ ॥ वालि वानरगणोंके वचन सुनकर महर्षि मतंगजीके निकट जा हाथ जोड उनको प्रसन्न करने लगा ॥ ६२ ॥ परन्तु महर्षिजी उसकी बातोंको एक न सुनकर अपने आश्रममें चले गये, और वालि शापके भयसे अत्यन्त विह्वल होगया ॥ ६३ ॥ हे नरनाथ श्रीरामचन्द्रजी ! फिर वालि ऋषिके शापके भयसे भीत होकर कभी महागिरि ऋष्यमूक पर्वतपर प्रवेश करनेकी इच्छा नहीं करता, बरन् इस पर्वतको कभी देखने भी नहीं आता ॥ ६४ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! इस वनमें इसका आना नहीं हो सकता यह जानकर हम विषादरहित हो मंत्रियोंके साथ इस वनमें वास करते हैं ॥ ६५ ॥ यह देखिये ! उस मदोन्मत्त, गतप्राण महाअसुर दुन्दुभीकी

बडी २ हड्डियोंका ढेर गिर शिखरके तुल्य यहां प्रकाशित हो रहा है, जिसको वालिने अपने वीर्यकी वृद्धिसे यहां उठाकर फेंक दिया था ॥ ६६ ॥ यह जो सात शालके वृक्ष बहुत शाखाओं करके युक्त एकही जगह छत्ता बाँधकर जमे हैं, सो कभी २ वालि अपने बल वीर्यको प्रगट करनेके लिये एक वृक्षकी भी जड पकड हिलाता तो यह सातों वृक्ष हिल जाते थे ॥ ६७ ॥ हे नृपवर ! यह हमने आपसे बालिके अद्भुत महावीर्यका वर्णन किया सो आप उस वालिको संग्रामके मध्य किस प्रकारसे संहार करनेमें समर्थ होंगे ? ॥ ६८ ॥ सुग्रीवजीने जब ऐसा कहा तब लक्ष्मणजी हँस कर सुग्रीवजीसे बोले कि, श्रीरामचन्द्रजी कौनसे कर्मको कर डालें कि, जिससे तुमको वालिके वधका विश्वास होजाय ? ॥ ६९ ॥ सुग्रीवजी बोले कि, पहिले वालि इन शालके सातों वृक्षोंमेंसे एकको पकड जब चाहता था तब एकही बारमें बारम्बार सब वृक्षोंको हिला देता था ॥ ७० ॥ सो रामचन्द्रजी यदि एक बाणसे इनमेंसे कोई एक

इमेचविपुलाःसालःसप्तशाखावलंबिनः ॥ यत्रैकंघटतेवालीनिष्पत्रयितुमोजसा ॥ ६७ ॥ एतदस्यासमंवीर्यंमयारामप्रकाशितम् ॥ कथंतंवालिनंहंतुंसमरेशक्ष्यसेनृप ॥ ६८ ॥ तथाब्रुवाणंसुग्रीवंप्रहसँल्लक्ष्मणोऽब्रवीत् ॥ कस्मिन्कर्मणिनिर्वृत्तेश्रद्दध्यावालिनोवधम् ॥ ६९ ॥ तमुवाचाथसुग्रीवःसप्तसालानिमान्पुरा ॥ एवमेकैकशोवालीविव्याधाथसचासकृत् ॥७०॥ रामोनिर्दारयेदेषांबाणेनैकेनचद्रुमम् ॥ वालिनंनिहतंमन्येद्दृष्ट्वारामस्यविक्रमम् ॥ ७१ ॥ हतस्यमहिषस्यास्थिपादेनैकेनलक्ष्मण ॥ उद्यम्यप्रक्षिपेच्चापितरसाद्वेधनुःशते ॥ ७२ ॥ एवमुक्त्वातुसुग्रीवोरामंरक्तांतलोचनः ॥ ध्यात्वामुहूर्तंकाकुत्स्थंपुनरेववचोऽब्रवीत्॥ ७३ ॥ शूरश्चशूरमानीचप्रख्यातबलपौरुषः ॥ बलवान्वानरोवालीसंयुगेष्वपराजितः ॥ ७४ ॥ दृश्यंतेचास्यकर्माणिदुष्कराणिसुरैरपि ॥ यानिसंचिंत्यभीतोऽहमृष्यमूकमुपाश्रितः ॥ ७५ ॥ तमजय्यमधृष्यंचवानरेंद्रममर्षणम् ॥ विचिंतयन्नमुंचामिऋष्यमूकममुंत्वहम् ॥॥ ७६ ॥

वृक्षभी तोड डालें तबही हम इनका विक्रम देखकर वालिको मरा हुआ समझें ॥ ७१ ॥ यदि उस मरेहुए भैंसेकी इन सब अस्थियोंको एक चरणसे उठाकर शीघ्रता सहित श्रीरामचन्द्रजी दो शत धनुषकी दूरीपर फेंकदें तो भी हम बालिको मरा हुआ समझें ॥ ७२ ॥ रक्तवर्ण लोचनवाले सुग्रीवजी लक्ष्मणजीसे ऐसा कह, श्रीरामचन्द्रजी वालिको मार सकेंगे या नहीं ऐसी चिन्ता करके फिर श्रीरामचन्द्रजीसे बोले ॥ ७३ ॥ शूरश्रेष्ठ वालि वीरश्रेष्ठ पुरुषकेही साथ युद्ध करनेका अभिलाष किया करता है उसका वीर्य व पराक्रम लोकमें प्रसिद्ध है वह अत्यन्त बलवान् और युद्धमें जीतनेके अशक्य है ॥ ७४ ॥ उसके सब कार्य देवताओंको भी दुष्कर दृष्टि आते हैं। उन्हीं सब सब कार्योंकी चिन्तना करते हुए हम ऋष्यमूक पर्वतपर भी अत्यन्त भीत और चिंतायुक्त रहते हैं ॥ ७५ ॥ उस अजेय, ढिठाई करनेसे बाहर और सहन करनेके अयोग्य बालिकी चिन्तना करते हुए हम इस ऋष्यमूक पर्वतको नहीं छोड सकते हैं ॥ ७६ ॥

हनुमानादि पांच मंत्रियोंके साथ जो कि हममें प्रीति रखते हैं उद्विग्न और शंकितहो इस महावनमें विचरण करते हैं ॥ ७७ ॥ हे मित्रवत्सल पुरुष श्रेष्ठ ! आप वांछनीय उत्तम मित्र मिले हैं हिमालयके समान सारयुक्त जानकर हमने आपका आश्रम लिया है ॥ ७८ ॥ हे राघव ! हम उस बलशाली दुष्ट अपने भ्राता बालिका बल जानते हैं, परंतु समरमें आपका वीर्य कैसा है इसको हम अभी तक नहीं जानते, इस कारणसे वालिके मारनेमें दुबिधा समझते हैं ॥७९॥ न हम आपकी तुलना वालिके बराबर करते हैं, न आपका निरादर करते हैं और न भय दिखाते हैं परंतु उस वालिके भयंकर कर्मोंको विचार हम अत्यन्त कातर होते हैं ॥ ८० ॥ परंतु हे श्रीरामचन्द्रजी! आपकी वाणी, धीरता और आकृतिहीसे आपकी वीरशालिताका प्रमाण मिलता है. ये सबही गुण राखसे

उद्विग्नःशंकितश्चाहंविचरामिमहावने ॥ अनुरक्तैःसहामात्यैर्हनुमत्प्रमुखैर्वरैः ॥७७॥ उपालब्धंचमेश्लाघ्यंसन्मित्रंमित्रवत्सल ॥ त्वामहंपुरुषव्याघ्रहिमवन्तमिवाश्रितः ॥ ७८ ॥ किंतुतस्यबलज्ञोऽहंदुर्भ्रातुर्बलशालिनः ॥ अप्रत्यक्षंतुमेवीर्यंसमरेतवराघव ॥ ७९ ॥ नखल्वहंत्वांतुलयेनावमन्येनभीषये ॥ कर्मभिस्तस्यभीमैश्चकातर्यंजनितंमम ॥ ८० ॥ कामंराघवतेवाणीप्रमाणंधैर्यमाकृतिः ॥ सूचयंतिपरंतेजोभस्मच्छन्नमिवानलम् ॥ ८१ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वासुग्रीवस्यमहात्मनः ॥ स्मितपूर्वमतोरामःप्रत्युवाचहरिंप्रति ॥ ८२ ॥ यदिनप्रत्ययोऽस्मासुविक्रमेतववानर ॥ प्रत्ययंसमरेश्लाघ्यमहमुत्पादयामिते ॥८३॥ एवमुक्त्वातुसुग्रीवसांत्वयँल्लक्ष्मणाग्रजः ॥राघवोदुंदुभेःकायंपादांगुष्ठेनलीलया ॥ ८४ ॥ तोलयित्वामहाबाहुश्चिक्षेपदशयोजनम् ॥ असुरस्यतनुंशुष्कांपादांगुष्ठेनवीर्यवान् ॥ ८५ ॥ क्षिप्तंदृष्ट्वाततःकायंसुग्रीवःपुनरब्रवीत् ॥ लक्ष्मणस्याग्रतोरामंतपंतमिवभास्करम् ॥ हरीणामग्रतोवीरमिदंवचनमर्थवत् ॥ ८६ ॥

ढकी हुई अग्निके समान आपके तेजकी सूचना करते हैं ॥८१॥ महात्मा सुग्रीवजीके यह वचन सुन श्रीरामचन्द्रजी मंद मुसकाय उनसे कहने लगे ॥ ८२ ॥ हे वानरनाथ ! यदि हमारे पराक्रममें तुम्हारा विश्वास नहीं है तो हम शीघ्रही समरके विषय उत्तम विश्वास उत्पन्न कराये देते हैं ॥ ८३ ॥ लक्ष्मणजीके बडे भाई श्रीरामचन्द्रजीने ऐसा कह सुग्रीवजीको समझाय और अपने पैरके अँगूठे दुन्दुभीकी देह लीलापूर्वक ॥ ८४ ॥ उठाकर दशयोजन अर्थात् चालीस कोसपर फेंक दी. इस प्रकार सूखे हुये असुरके तनको पैरके अँगूठेसे महाबाहु वीर्यवान् श्रीरामचन्द्रजीने उठाकर फेंका ॥ ८५ ॥ तो इसको देखकर सुग्रीवजी वानरगणोंके और लक्ष्मणजीके आगे दीप्तिमान् सूर्यनारायणके समान श्रीरामचन्द्रजीसे फिर यह अर्थयुक्त वचन बोले कि ॥ ८६ ॥

हे सखे ! पहले यह देह गीला और मांससहित था, तब उससमय हमारे भाईवालिने बडे परिश्रमसे यह देह उठाकर फेंकाथा ॥८७॥ हे रघुनन्दन ! यह देह इससमय मांस हीन; लघु और तृणतुल्य है, सो उसको आपने हर्ष युक्त हो विना परिश्रमके उठाकर फेंक दिया ॥८८॥ हे राघव ! सो इसके फेंकनेसे आपका बल अधिक है या बालिका बल अधिक है यह नहीं जाना गया । क्योंकि गीलीऔर सूखी वस्तुके बोझ में बडा भारी अन्तर होताहै ॥८९॥ अभी आपकेऔर वालिके बल जाननेके विषयमें संशय रहा । जो हो, जिस समय कि, आप इनमेंसे एक भी शालके वृक्षको तोड डालेंगे, तो बलाबल सब जाना जायगा ॥ ९० ॥ आप इस हाथीके सूंडके समान धनुषपर रोदा चढाकर कानतक खींच महा शर छोडिये ॥९१॥ आपका छोडा हुआ बाण निश्चयही इस शालके वृक्षको तोड

आर्द्रःसमांसप्रत्यग्रःक्षिप्तःकायःपुरासखे ॥ परिश्रांतेनमत्तेनभ्रात्रामेवालिनातदा ॥८७॥ लघुःसंप्रतिनिर्मांसस्तृणभूतश्चराघव ॥ क्षिप्तएवंप्रहर्षेणभवतारघुनंदन ॥ ८८ ॥ नात्रशक्यंबलंज्ञातुंतववातस्यवाऽधिकम् ॥ आर्द्रशुष्कमितिह्येतत्सुमहद्राघवांतरम् ॥ ८९ ॥ सएवसंशयस्ताततवतस्यचयद्बलम् ॥ सालमेकंविनिर्भिद्यभवेद्व्यक्तिर्बलाबले ॥९०॥ कृत्वैतत्कार्मुकंसज्यंहस्तिहस्तमिवापरम् ॥ आकर्णपूर्णमायम्यविसृजस्वमहाशरम् ॥९१॥ इमंहिसालंप्रहितस्त्वयाशरोनसंशयोऽत्रास्तिविदारयिष्यति ॥ अलंविमर्शेनममप्रियंध्रुवंकुरुष्वराजन्प्रतिशापितोमया ॥९२॥ यथाहितेजस्सुवरःसदारविर्यथाहिशैलोहिमवान्महाद्रिषु ॥ यथाचतुष्पत्सुचकेसरीवरस्तथानराणामसिविक्रमेवरः ॥९३॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० किष्किंधाकांडे एकादशः सर्गः ॥११॥ एतच्चवचनंश्रुत्वासुग्रीवस्यसुभाषितम् ॥ प्रत्ययार्थंमहातेजारामोजग्राहकार्मुकम् ॥१॥ सगृहीत्वाधनुर्घोरंशरमेकंचमानदः ॥ सालमुद्दिश्यचिक्षेपपूरयन्सरवैर्दिशः ॥ २ ॥

डालेगा इसमें कुछ संदेह नहीं है । और इस विषयमें कुछ विचार करनेका भी प्रयोजन नहीं; क्योंकि आप सौगन्ध करके हमसे मित्रता करनेमें नियुक्त हुए हैं ॥९२॥ जिस प्रकारसे तेजयुक्त नक्षत्रादिकोंके मध्यमे दिवाकर, पर्वतोंके समूहके मध्यमें हिमवान् और चौपायोंके मध्यमें केसरी सिंह श्रेष्ठ है वैसेही आप मनुष्योंमें विक्रम करनेके विषयमें श्रेष्ठ हैं, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है ॥ ९३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० किष्किन्धाकांडे भाषायामेकादशः सर्गः ॥ ११ ॥ सुग्रीवजी के कहे हुए ऐसे वचन सुनकर महातेजस्वी श्रीरामचन्द्रजीने उनको विश्वास दिलाने के लिये धनुष ग्रहण किया ॥ १ ॥ मानप्रद श्रीरामचन्द्रजीने

उसघोरतर धनुष पर एक बाण चढाय उसके शब्दसे दशों दिशाओंको पूर्ण करके, शालके वृक्षके ऊपर वह बाण छोडा ॥ २ ॥ सुवर्णके समान चमकता हुआ वह बाण बलवान् श्रीरामचन्द्रजी के द्वारा चलाया जाकर सातों तालके वृक्षोंको तोडता, पर्वतको फोडता भूमिमें प्रवेश करगया ॥ ३ ॥ थोडेही समयमें वह सायक महावेगसे सातों वृक्षोंको तोड कर घूम घाम फिर उसी तरकसमें आनकर प्राप्त हुआ ॥ ४ ॥ वानर श्रेष्ठ सुग्रीवजी श्रीरामचन्द्रजी के बाणवेगसे सातों तालके वृक्षोंको टूटा हुआ देखकर परम विस्मय को प्राप्त हुए ॥ ५ ॥ तब सुग्रीवजी के मालादि सब भूषण खसक पडे, उन्होंने पृथ्वी पर गिर शिर झुका श्रीरामचन्द्रजी को प्रणाम किया और श्रीरामचन्द्रजी के ऊपर प्रीति प्रगटाय हाथ जोड कर खडे हो गये ॥ ६ ॥ सुग्रीवजी श्रीरामचन्द्रजी का यह कर्म देखकर प्रसन्न हो सर्वशास्त्र विशारद वीरवर धर्मज्ञ श्रीरामचन्द्रजी से बोले कि ॥ ७ ॥ हे पुरुष श्रेष्ठ ! आप वालिको मार डालेंगे; इसमें सन्देहही क्या हैं;

सविसृष्टोबलवताबाणःस्वर्णपरिष्कृतः ॥ भित्त्वातालान्गिरिप्रस्थंसप्तभूमिंविवेशह ॥३॥ सायकस्तुमुहूर्तेनसालान्भित्वामहाजवः ॥ निष्पत्य चपुनस्तूर्णंतमेवप्रविवेशह ॥ ४ ॥ तान्दृष्ट्वासप्तनिर्भिन्नान्सालान्वानरपुंगवः ॥ रामस्यशरवेगेनविस्मयंपरमंगतः ॥५॥ समूर्ध्नान्यपतद्भूमौ प्रलंबीकृतभूषणः ॥ सुग्रीवःपरमप्रीतोराघवायकृतांजलिः ॥ ६ ॥ इदंचोवाचधर्मज्ञंकर्मणातेनहर्षितः ॥ रामंसर्वास्त्रविदुषांश्रेष्ठशूरमवस्थितम् ॥ ७ ॥ सेंद्रानपिसुरान्सर्वांस्त्वंबाणैःपुरुषर्षभ॥समर्थःसमरेहंतुंकिंपुनर्वालिनंप्रभो ॥८॥ येनसप्तमहासालागिरिर्भूमिश्चदारिता ॥ बाणेनैकेन काकुत्स्थस्थातातेकोरणाग्रतः ॥ ९ ॥ अद्यमेविगतःशोकःप्रीतिरद्यपरामम ॥ सुहृदंत्वांसमासाद्यमहेंद्रवरुणोपमम् ॥१०॥ तमद्यैवप्रियार्थंमे वैरिणंभ्रातृरूपिणम् ॥ वालिनंजहिकाकुत्स्थमयाबद्धोऽयमंजलिः ॥११॥ ततोरामःपरिष्वज्यसुग्रीवंप्रियदर्शनम् ॥ प्रत्युवाचमहाप्राज्ञोलक्ष्मणानुगतंवचः ॥ १२ ॥ अस्माद्गच्छामिकिष्किंधांक्षिप्रंगच्छत्वमग्रतः ॥ गत्वाचाह्वयसुग्रीववालिनंभ्रातृगंधिनम् ॥ १३ ॥

क्योंकि आप इन्द्र के सहित सब देवताओंको संग्राममें संहार कर सकते हैं फिर वालि बिचारा तो है ही क्या ? ॥ ८ ॥ आपने एकही बाणसे सप्ततात तोडे और पर्वतकी भूमि फोड डाली, इस लिये रणमें आपके आगे कौन पुरुष ठहर सकता है ? ॥ ९ ॥ इन्द्र और वरुणके तुल्य आपको सुहृद पाय आज हमारा शोक बीता और उत्तम प्रीति उत्पन्न हुई ॥ १० ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! यह हम आपको हाथ जोडते हैं कि, आप हमारी प्रसन्नता केलिये वैरीरूप हमारे भ्राताको मार डालिये ॥ ११ ॥ महाप्राज्ञ श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीके समान प्रियतम, प्रिय दर्शन सुग्रीवजीको भेंटकर कहने लगे कि ॥ १२ ॥ हे सुग्रीव ! अब यहांसे शीघ्रही किष्किन्धा पुरीको चलो और तुम आगे २ गमन करके उस अपने निंदित भाई वालिको पुकारो पीछेसे हम भी आते हैं ॥१३॥

यह कहकर श्रीरामचन्द्रजी व और भी सब वानर किष्किन्धा पुरी जाय वृक्षोंसे देह छिपाय सघनवनमें खडे हो गये ॥ १४ ॥ सुग्रीवजी अपने वस्त्रोंको कसकर पहर वालिको पुकारनेके लिये घोर शब्द करने लगे, मानो आकाशको भेदन करतेही हुए घोर शब्द कर रहे थे ॥ १५ ॥१६॥ अपने भाई सुग्रीवकी वह गर्जना सुन महा बलवान् वाली क्रोधसे अधीरहो अस्ताचलके समीपमें निकलते हुए सूर्यनारायणके समान बडे वेग सहित अपने पुरसे निकला उसके पीछे आकाशमें बुध और मंगल ग्रहोंके समान वालि और सुग्रीवका तुमुल युद्ध होने लगा ॥१७॥ दोनों भाई क्रोधसे अधीर हो वज्र चपेट और वज्रतुल्य घूसोंके प्रहारसे परस्पर चोट चलाने लगे ॥१८॥ तब श्रीरामचन्द्रजी धनुष धारण करएक ही प्रकार का रूप धारण किये हुए दो अश्विनीकुमारों के समान दोनों भाइयोंको अवलोकन

सर्वेतेत्वरितंगत्वाकिष्किंधांवालिनःपुरीम् ॥ वृक्षैरात्मनमावृत्यह्यतिष्ठन्गहनेवने ॥ १४ ॥ सुग्रीवोऽप्यनदद्घोरंवालिनोह्वानकारणात् ॥ गाढंपरिहितोवेगान्नादैर्भिन्दन्निवांबरम् ॥ १५ ॥ तंश्रुत्वानिनदंभ्रातुःक्रुद्धोवालीमहाबलः ॥ निष्पपातसुसंरब्धोभास्करोऽस्ततटादिव ॥ १६ ॥ ततःसुतुमुलंयुद्धंवालिसुग्रीवयोरभूत् ॥ गगनेग्रहयोर्घोरंबुधांगारकयोरिव ॥ १७ ॥ तलैरशनिकल्पैश्चवज्रकल्पैश्चमुष्टिभिः ॥ जघ्नतुःसमरेऽन्योन्यंभ्रातरौक्रोधमूर्च्छितौ ॥ १८ ॥ ततोरामोधनुष्पाणिस्तावुभौसमुदैक्षत ॥ अन्योन्यसदृशौवीरावुभौदेवाविवाश्विनौ ॥ १९ ॥ यन्नावगच्छत्सुग्रीवंवालिनंवापिराघवः ॥ ततोनकृतवान्बुद्धिंमोक्तुमंतकरंशरम् ॥२०॥ एतस्मिन्नंतरेभग्नःसुग्रीवस्तेनवालिना ॥ अपश्यन्राघवंनाथमृष्यमूकंप्रदुद्रुवे ॥ २१ ॥ क्लांतोरुधिरसिक्तांगःप्रहारैर्जर्जरीकृतः ॥ वालिनाभिद्रुतःक्रोधात्प्रविवेशमहावनम् ॥ २२ ॥ तंप्रविष्टंवनंदृष्ट्वावालिशापभयात्ततः ॥ मुक्तोह्यसित्वमित्युक्त्वासनिवृत्तोमहाबलः ॥ २३ ॥

करने लगे ॥ १९ ॥ जब तक श्रीरामचन्द्रजीने भली भांति यह न पहँचाना कि इनमें कौन वालि और कौन सुग्रीव है तबतक वह प्राणनाशकारी बाण न चलाया ॥ २० ॥ रामचन्द्रजी तो इस विचारमें थे कि, इतनेहीमें सुग्रीवजी वालिसे हारकर भागे वह श्रीरामचन्द्रजीको न देख पाकर ऋष्यमूक पर्वतकी ओर दौडने लगे ॥ २१ ॥ वालिभी क्रोधमें भरकर पीछेही पीछे दौडा तब थके हुए सुग्रीवजी उसके प्रहारसे जर्जर हो रुधिरमें डूब कर महावनमें प्रवेश करते हुए ॥ २२ ॥ महाबलवान् वालि उस वनमें सुग्रीवको पैठा हुआ देख शापके भयसे वहां नहीं जा सका और बोला, जाओ अब तुम वच गये, यह

कह वहांसे लौट आया ॥२३॥ श्रीरामचन्द्रजी भी लक्ष्मण और हनुमान्‌जीके सहित जहांपर सुग्रीव थे उसी वनमें प्रवेश करते हुए ॥ २४ ॥ सुग्रीवजी लक्ष्मणके सहित श्रीरामचन्द्रजीको आगमन करते हुए देखकर लज्जित हो नीचा मस्तक किये पृथ्वीको देखते दीन वचनसे बोले कि ॥ २५ ॥ हे मित्र ! आपने विक्रम दिखा और "वालिको युद्धके लिये पुकारो" ऐसा कह कर कुछ भी न किया, शत्रुसे हमको बडी मार दिलवाई, इससे आपका क्या कार्य हुआ ? ॥२६॥ हे राघव ! जो उसी समय आप कह देते कि, हम बालिको न मारेंगे तोही अच्छा था, कारण कि, हम यहांसे वहां क्यों जाते ? ॥२७॥ जब महात्मा सुग्रीवजीने इस प्रकार दीन वचन कहे तब श्रीरामचन्द्रजी करुणा कर उनसे बोले कि ॥२८॥ हे सुग्रीव ! तुम क्रोधको त्यागन करो जिस कारणसे हमने बाण न चलाया उस कारणको तुम सुनो ॥ २९ ॥ वस्त्राभूषण, वेष, प्रमाण और चालसे तुम दोनोंमें परस्पर एक होनेके कारण कुछ भी अंतर नहीं देख पडता था

राघवोऽपिसहभ्रात्रासहचैवहनूमता ॥ तदेववनमागच्छत्सुग्रीवोयत्रवानरः ॥२४॥ तंसमीक्ष्यागतंरामंसुग्रीवःसहलक्ष्मणम् ॥ ह्रीमान्दीनमुवाचेदं वसुधामवलोकयन् ॥२५॥ आह्वयस्वेतिमामुक्त्वादर्शयित्वाचविक्रमम् ॥ वैरिणाघातयित्वाचकिमिदानींत्वयाकृतम् ॥२६॥ तामेववलांवक्तव्यं त्वयाराघवतत्त्वतः ॥ वालिनंननिहन्मीतिततोनाहमितोव्रजे ॥२७॥ तस्यचैवंब्रुवाणस्यसुग्रीवस्यमहात्मनः ॥ करुणंदीनयावाचाराघवःपुनरब्रवीत् ॥२८॥ सुग्रीवश्रूयतांतातक्रोधश्चव्यपनीयताम् ॥ कारणंयेनबाणोऽयंसमयानविसर्जितः ॥२९॥ अलंकारेणवेषेणप्रमाणेनगतेनच ॥ त्वंचसुग्रीववालीचसदृशौस्थःपरस्परम् ॥३०॥ स्वरेणवर्चसाचैवप्रेक्षितेनचवानर ॥ विक्रमेणचवाक्यैश्चव्यक्तिंवांनोपलक्षये ॥३१॥ ततोऽहं रूपसादृश्यान्मोहितोवानरोत्तम ॥ नोत्सृजामिमहावेगंशरंशत्रुनिबर्हणम् ॥३२॥ जीवितांतकरंघोरंसादृश्यात्तुविशंकितः ॥ मूलघातोननौस्याद्धिद्वयोरितिकृतोमया ॥ ३३ ॥ त्वयिवीरविपन्नेहिअज्ञानाद्राघवान्मया ॥ मौढ्यंचममबाल्यंचख्यापितंस्यात्कपीश्वर ॥ ३४ ॥

॥ ३० ॥ स्वर, वचन, कान्ति और विक्रममें भी तुम दोनों जन समान थे इससे हमने उस समय न जाना कि कौन वाली और कौन सुग्रीव है ॥३१॥ हे वानरश्रेष्ठ ! इसी कारणसे हम रूप और समानताके दिखावसे मोहित हो महावेगवान् शत्रुविनाशकारी बाण न चला सके ॥ ३२ ॥ तुम दोनोंका एकसा रूपही देखनेके कारण शंकित हो, प्राणोंका अंत करनेवाला घोर बाण छोडनेको हम असमर्थ हुये । यदि तुम दोनोंको सादृश्यताके हेतुसे तुम्हारेही बाण लगजाय, तो बस मूलकाही विनाश होजाय, अर्थात् न हमें सीता मिले न तुम्हें राज्य. बस यही बात हमारी शंकामें मूलकारण हुई ॥३३॥ हे कपीश्वर ! अज्ञानताके कारण बड़ी शीघ्रतासे यदि कहीं तुम्हारेही बाण लग जाता तब हमारी मूर्खता और बालकताका निःसन्देह सब जगह प्रचार हो जाता ॥३४॥

हे वानर ! अभयदान देकर यदि फिर उसकाही वध किया जाय तो बडाभारी अद्भुत पातक होता है । यहभी तुम मानलो कि, हम लक्ष्मण और श्रेष्ठवर्णवाली सीताजी ॥ ३५ ॥ सबही तुम्हारे हैं और तुम्हारेही अधीन हैं क्योंकि इस वनमें तुमही हमारे एकमात्र रक्षाके करनेवाले हो, इस लिये तुम फिर युद्ध करनेको जाओ और कुछ शंका न करो ॥ ३६ ॥ तुम इसही मुहूर्तमें देखोगे कि वाली हमारे बाणसे घायल होकर पृथ्वीमें गिर कर छटपटाता है ॥ ३७ ॥ हे वानरश्रेष्ठ ! तुम कोई चिह्न धारण किये जाओ कि, जिसके द्वन्द्व युद्ध करनेके समय हम तुमको पहचान लें ॥ ३८ ॥ हे लक्ष्मण ! तुम यह सुन्दर खिली हुई गजपुष्पी उखाडकर इन महात्मा सुग्रीवजीके गलेमें पहरा दो ॥ ३९ ॥ उसके पीछे महात्मा लक्ष्मणजीने पर्वतके तटपर उत्पन्न हुई कुसुम

दत्ताभयवधोनामपातकंमहदद्भुतम् ॥ अहंचलक्ष्मणश्चैवसीताचवरवर्णिनी ॥३५॥ त्वदधीनावयंसर्वेवनेऽस्मिन्शरणंभवान् ॥ तस्माद्युध्यस्व भूयस्त्वंमामाशंकीश्चवानर ॥ ३६ ॥ एतन्मुहूर्तेतुमयापश्यवालिनमाहवे ॥ निरस्तमिषुणैकेनचेष्टमानंमहीतले ॥३७॥ अभिज्ञानंकुरुष्वत्वमा त्मनोवानरेश्वर॥ येनत्वामभिजानीयांद्वंद्वयुद्धमुपागतम् ॥३८॥ गजपुष्पीमिमांफुल्लामुत्पाटचशुभलक्षणाम्॥ कुरुलक्ष्मणकंठेऽस्यसुग्रीवस्यम हात्मनः ॥ ३९ ॥ ततोगिरितटेजातामुत्पाटचकुसुमायुताम् ॥ लक्ष्मणोगजपुष्पींतांतस्यकंठेव्यसर्जयत् ॥ ४० ॥ सतयाशुशुभेश्रीमाँल्लतया कंठसक्तया ॥ मालयेवबलाकानांससंध्यइवतोयदः ॥ ४१ ॥ विभ्राजमानोवपुषारामवाक्यसमाहितः ॥ जगामसहरामेणकिष्किंधांपुनरापसः ॥४२॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० किष्किंधाकांडे द्वादशः सर्गः ॥१२॥ ऋष्यमूकात्सधर्मात्माकिष्किंधांलक्ष्म णाग्रज ॥ जगामसहसुग्रीवोवालिविक्रमपालिताम् ॥ १ ॥ समुद्यम्यमहच्चापंरामःकांचनभूषितम् ॥ शरांश्चादित्यसंकाशान्गृहीत्वारणसाध कान् ॥ २ ॥ अग्रतस्तुययौतस्यराघवस्यमहात्मनः ॥ सुग्रीवःसंहतग्रीवोलक्ष्मणस्यमहाबलः ॥ ३ ॥

राशियुक्त गजपुष्पलता लाकर सुग्रीवजीके गलेमें डालदी ॥ ४० ॥ तब सुग्रीवजी उस कंठस्थितलताके द्वारा, बगलोंकी मालासे सुशोभित संध्याकालके जल धरके समान शोभायमान होने लगे ॥ ४१ ॥ सुग्रीवजी, श्रीरामचन्द्रजीके वचनोंपर ध्यान देकर अपनी देहसे दीपने लगे और श्रीरामचन्द्रजीके साथ फिर किष्किन्धापुरीको चले ॥ ४२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायां द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥
वह धर्मात्मा लक्ष्मणके बडे भ्राता श्रीरामचन्द्रजीने सुग्रीवके सहित वालिके विक्रमसे पाली जाती हुई किष्किन्धा पुरीको गमन किया ॥ १ ॥ श्रीरामचन्द्रजी सुवर्णभूषित बडा धनुष उठाकर आदित्यतुल्य रणमें कार्यको सिद्ध करनेवाले बाण ग्रहण करके गमन करनेलगे ॥ २ ॥ दृढ गर्दनवाले सुग्रीवजीभी महाबलीमहा

बली महात्मा श्रीराम लक्ष्मणजीके आगे २ चलने लगे ॥ ३ ॥ फिर पीछे वीर हनुमान् और वीर्यवान् नल नील और महातेजस्वी तार ये चार वानर सुग्रीवजीके सेनापति और मंत्री भी चले ॥ ४ ॥ ये सब मार्गमें फूलोंके भारसे झुके पेड, स्वच्छ जल बहनेवाली समुद्रगामिनी नदियां और तडाग देखते जातेथे.॥ ५ ॥ कंदरायें, पर्वत, झरने और गुफा बडे २ शिखर और प्रिय दर्शन दर्रे देखते हुये ॥ ६ ॥ वैडूर्यमणिके समान विमल जल बहते फूले हुये कमलफूलोंसे युक्त, शोभायमान तडाग मार्गमें देखते जाते थे ॥ ७ ॥ जहां तहां कारंडव, सारस, हंस, वंजुल, जलकुक्कुट; चक्रवाक इत्यादि पक्षी मधुर बोल रहे थे ॥ ८ ॥ कोमल घास व अंकुर चरकर निर्भय हो वनमें फिरनेवाले वनस्थलियोंमें बहुत सारे हिरण इन्होंने बैठे हुये देखे ॥ ९ ॥

पृष्ठतोहनुमान्वीरोनलोनीलश्चवीर्यवान् ॥ तारश्चैवमहातेजाहरियूथपयूथपः ॥ ४ ॥ तेवीक्षमाणावृक्षांश्चपुष्पभारावलंबिनः ॥ प्रसन्नांबुवहाश्चैवसरितःसागरंगमाः ॥ ५ ॥ कंदराणिचशैलांश्चनिर्दराणिगुहास्तथा ॥ शिखराणिचमुख्यानिदरीश्चप्रियदर्शनाः ॥ ६ ॥ वैदूर्यविमलैस्तोयैःपद्मैश्चाकोशकुड्मलैः ॥ शोभितान्सकलान्मार्गेतटाकांश्चावलोकयन् ॥ ७ ॥ कारंडैःसारसैर्हंसैर्वंजुलैर्जलकुक्कुटैः ॥ चक्रवाकैस्तथाचान्यैःशकुनैःप्रतिनादितान् ॥ ८ ॥ मृदुशष्पांकुराहारान्निर्भयान्वनचारिणाम् ॥ चरतांसर्वतःपश्यन्स्थलीषुहरिणान्स्थितान् ॥ ९ ॥ तटाकवैरिणश्चापिशुक्लदंतविभूषितान् ॥ घोरानेकचरान्वन्यान्द्विरदान्कूलघातिनः ॥ १० ॥ मत्तान्गिरितटोद्घुष्टान्पर्वतानिवजंगमान् ॥ वानरान्द्विरदप्रख्यान्महीरेणुसमुक्षितान् ॥ ११ ॥ वनेवनचरांश्चान्यान्खेचरांश्चविहंगमान् ॥ पश्यंतस्त्वरिताजग्मुःसुग्रीववशवर्तिनः ॥१२॥ तेषांतुगच्छतांतत्रत्वरितंरघुनंदनः ॥ द्रुमषंडवनंदृष्ट्वारामःसुग्रीवमब्रवीत् ॥ १३ ॥ एषमेघइवाकाशेवृक्षषंडःप्रकाशते ॥ मेघसघातविपुलःपर्यंतकदलीवृतः ॥ १४ ॥ किमेतज्ज्ञातुमिच्छामिसखेकौतूहलंमम ॥ कौतूहलापनयनंकर्तुमिच्छाम्यहं त्वया ॥ १५ ॥

तडागोंके शत्रु और श्वेत दाँतोंसे भूषित; घोररूप, करारे गिरानेवाले वनैले हाथी भी जाते २ देखे ॥ १० ॥ जल बहानेवाले पर्वतोंके तीर किलकिलाते जंगम पर्वताकार हाथि योंकी नाई रेणु उडाते प्राकृत वानर भी जाते २ देखे ॥ ११ ॥ और वनमें चरने वाले अन्य जीवगणोंको, व आकाशमें चरनेवाले पक्षियोंको देखते सुग्रीवजीके वशवर्त्ती सब वानर चले जाते थे ॥ १२ ॥ वे वानर जब कि, बडे वेगसे चल रहे थे तब श्रीरामचन्द्रजी वृक्षोंसे परिपूर्ण एक वृक्षझुंडको देखकर सुग्रीवजीसे बोले कि ॥ १३ ॥ इस वृक्षझुंडके चारोंओर वृक्षोंका समूह लगा है सो यह मिले हुये बादलोंकी समूहोंके तुल्य प्रकाशमान होता है ॥ १४ ॥ हे सखे ! यह सब क्या है ? इसके जाननेके लिये हमें बडा कौतूहल उत्पन्न हुआ है, सो तुम हमारे इस कौतूहलको दूर करो ॥ १५ ॥

महात्मा श्रीरामचन्द्रजीका यह वचन सुनकर सुग्रीवजी मार्गमेंही चलते २ उस बनका वृत्तान्त वर्णन करने लगे ॥१६॥ हे राघव ! श्रमका विनाश करनेहारा, बडे विस्तारवाला उद्यान और, वनयुक्त स्वादुफल और जलयुक्त यह आश्रम ॥ १७ ॥ जो दृष्टि आता है, इसमें सप्तजन नामक दृढव्रत धारण करनेवाले सात मुनि रहा करते थे, यह सातों ऋषि नीचेको शिर किये रात्रि दिन जलमें रहते ॥१८॥ यह मुनिलोग सातवें रोज केवल पवनका आहार करतेथे और अचल वास करते, इस प्रकारसे वह मुनिगण सातसौ वर्षतक तपस्या कर अपने २ शरीर सहित स्वर्गको चले गये ॥ १९ ॥ उन मुनिलोगोंकेही प्रभावसे यह आश्रम वृक्षोंके कोटसे घिरा हुआ है इस आश्रममें इन्द्रके सहित सुर और असुर गणभी कुछ उपद्रव नहीं कर सकते ॥२०॥ पक्षी या दूसरे वनचारी जीवगण इस आश्रमके

तस्यतद्वचनंश्रुत्वाराघवस्यमहात्मनः ॥ गच्छन्नेवाचचक्षेऽथसुग्रीवस्तन्महद्वनम् ॥१६॥ एतद्राघवविस्तीर्णमाश्रमंश्रमनाशनम् ॥ उद्यानवनसंप न्नंस्वादुमूलफलोदकम् ॥१७॥ अत्रसप्तजनानाममुनयःसंशितव्रताः ॥ सप्तैवासन्नधःशीर्षानियतंजलशायिनः ॥१८॥ सप्तरात्रेकृताहारावायुना चलवासिनः ॥ दिवंवर्षशतैर्याताःसप्तभिःसकलेवराः ॥१९॥ तेषामेतत्प्रभावेणद्रुमप्राकारसंवृतम् ॥ आश्रमंसुदुराधर्षमपिसेंद्रैःसुरासुरैः ॥२०॥ पक्षिणोवर्जयंत्येतत्तथान्येवनचारिणः ॥ विशंतिमोहाद्येप्यत्रननिवर्ततितेपुनः ॥ २१ ॥ विभूषणरवाश्चात्रश्रूयंतेसकलाक्षराः ॥ तूर्यगीतस्वन श्चापिगंधोदिव्यश्चराघव ॥ २२ ॥ त्रेताग्नयोऽपिदीप्यंतेधूमोह्येषप्रदृश्यते ॥ वेष्टयन्निववृक्षाग्रान्कपोतांगारुणोघनः ॥२३॥ एतेवृक्षाःप्रकाशंते धूमसंसक्तमस्तकाः॥ मेघजालप्रतिच्छन्नावैदूर्यगिरयोयथा ॥ २४ ॥ कुरुप्रणामंधर्मात्मंस्तेषामुद्दिश्यराघव ॥ लक्ष्मणेनसहभ्रात्राप्रयतःसंहता ञ्जलिः ॥ २५ ॥ प्रणतिह्रियेतेषामृषीणांभवितात्मनाम् ॥ नतेषामशुभंकिंचिच्छरीरेरामविद्यते ॥ २६ ॥

भीतर नहीं जाते और जो कोई मोहके वश हो इसमें चला भी जाँय सो वे वहांसे लौट नहीं सकते ॥२१॥ यहांसे अप्सराओंके मधुरगीत और गहनोंके शब्द, व बाजोंकी ध्वनि सुनाई आया करती है और दिव्य गन्धभी यहांसे आती रहती है ॥२२॥ इस आश्रममें तीन अग्निभी दीप्तमान् रहते हैं. इधर निहारिये कि, कपोतेके रंगका यह धूसरवर्णवाला धुवां इन सब वृक्षोंमें छाय रहा है ॥२३॥ मेघोंसे घिरे हुये वैडूर्यमणिके समान धूमयुक्त होनेके कारण ये वृक्ष प्रकाश मान हो रहे हैं ॥२४॥ हे धर्मात्मन् ! आप लक्ष्मणजीके सहित सावधान चित्तसे हाथ जोडकर इन मुनिजनोंके लिये प्रणाम कीजिये ॥ २५ ॥ क्योंकि हे श्रीरामचन्द्रजी ! जोपुरुष इन सिद्धात्मा ऋषिलोगोंको प्रणाम करते हैं उनके शरीरमें किंचित् मात्रभी पाप नहीं ठहर सकता ॥ २६ ॥

जब सुग्रीवजीने ऐसा कहा, तब श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीके सहित हाथ जोडकर उन महात्मा मुनिजनोंके लिये प्रणाम किया॥ २७ ॥ उनको प्रणाम कर धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी भ्राता लक्ष्मण, सुग्रीव व और भी सब वानर हर्षित होकर गमन करने लगे ॥२८॥ वह सब जन सप्तजन आश्रमसे दूर जाकरवालिकी पाली हुई उस दुर्द्धर्ष किष्किंधा नगरीमें पहुँचे ॥ २९ ॥ फिर श्रीराम, लक्ष्मण औ वानरगण अपने २ उग्र तेजवाले अस्त्र शस्त्रोंको धारण कर शत्रुको मार डालनेके लिये इंद्रपुत्र वालिकी प्रतिपालित किष्किन्धानगरीमें दूसरी वार आये ॥ ३० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आ० किष्किन्धाकांडे भाषायां त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥ वह सबजन वालिकी किष्किन्धापुरीमें शीघ्रतासे पहुँच अपने२शरीरोंको वृक्षोंसे छिपाकर सघन वनमें खडे होगये ॥ १ ॥ बडी गर्दनवाले और वनको देख प्रसन्न होनहार सुग्रीवजी चारों ओर दृष्टि डाल बडा कोप कर ॥ २ ॥ साथ आये हुए जनोंके साथ अत्यन्त घोर गर्जन कर वालिको

ततोरामःसहभ्रात्रालक्ष्मणेनकृतांजलिः॥समुद्दिश्यमहात्मानस्तानृषीनभ्यवादयत्॥२७॥अभिवाद्यचधर्मात्मारामोभ्राताचलक्ष्मणः॥सुग्रीवो वानराश्चैवजग्मुःसंहृष्टमानसाः॥२८॥ तेगत्वादूरमध्वानंतस्मात्सप्तजनाश्रमात्॥ददृशुस्तांदुराधर्षांकिष्किंधांवालिपालिताम्॥२९॥ततस्तुरा मानुजरामवानराःप्रगृह्यशस्त्राण्युदितोग्रतेजसः॥ पुरींसुरेशात्मजवीर्यपालितांवधायशत्रोःपुनरागतास्त्विह ॥ ३० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० किष्किंधाकांडेत्रयोदशः सर्गः ॥१३॥ सर्वेतेत्वरितंगत्वाकिष्किंधांवालिनःपुरीम् ॥ वृक्षरात्मानमावृत्यव्य तिष्ठन्गहनेवने ॥ १ ॥ विसार्यसर्वतोदृष्टिंकाननेकाननप्रियः ॥ सुग्रीवोविपुलग्रीवःक्रोधमाहारयद्भृशम् ॥ २ ॥ ततस्तुनिनदंघोरंकृत्वायुद्धा यचाह्वयत् ॥ परिवारैःपरिवृतोनादैर्भिदन्निवांबरम् ॥३॥ गर्जन्निवमहामेघोवायुवेगपुरःसरः ॥ अथबालार्कसदृशोदृप्तसिंहगतिस्ततः ॥ ४ ॥ दृष्ट्वारामंक्रियादक्षंसुग्रीवोवाक्यमब्रवीत ॥ हरिवागुरयाव्याप्तांतप्तकांचनभूषणाम् ॥ ५ ॥ प्राप्ताःस्मध्वजयंत्राढ्यांकिष्किंधांवालिनःपुरीम् ॥ प्रतिज्ञायाकृतावीरत्वयावालिवधेपुरा ॥ ६ ॥ सफलांकुरुतांक्षिप्रंलतांकालइवागतः ॥ एवमुक्तस्तुधर्मात्मासुग्रीवेणसराघवः ॥ ७ ॥

संग्राम करनेके लिये पुकारने लगे, उनके नादसे आकाशमंडल मानो फटा जाता था ॥ ३ ॥ वायुके वेगसे चलायमान महामेघके समान गर्जकर बालसूर्य सदृश सिंहसम गतिवाले सुग्रीवजी ॥ ४ ॥ श्रीरामचन्द्रजीको कार्य करनेमें चतुर देखकर बोले कि, हे महाराज ! वानरोंके बन्धनसे घिरी, तपाये सुवर्णके समाय देदीप्यमान ५ ॥ और ध्वजयंत्रादियुक्त वालिकी किष्किन्धा पुरीमें हम लोग पहुँच गये, हे वीर ! आपने पहले वालिका वध करनेके लिये जो प्रतिज्ञा की है ॥ ६ ॥ उसको आप शीघ्र पूर्ण कीजिये, जिस प्रकार फलने फूलनेका समय आकर वृक्षलताओंको पुष्पफलसे पूर्ण कर देता है। जब धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजीसे सुग्रीवजीने कहा ॥ ७ ॥

तब शत्रुओंका संहार करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी उनसे बोले कि, गजवेल धारण कराय तुम्हारी देहमें जो यह पहँचान ॥ ८ ॥ लक्ष्मणजीने बताई है, उस गजलताके धारण करनेसे तुम्हारी ग्रीवा और भी शोभित होती है ॥ ९ ॥ जैसे कभी आकाशमें नक्षत्रोंकी मालाके निकट आजानेसे सूर्य भगवान् शोभायमान् होते हैं आज इस समयतक तो वालिके द्वारा की हुई शत्रुता और भय तुमको प्राप्त है ॥ १० ॥ परन्तु आज एकही बाणद्वारा रणस्थलमें वह विनाश कर देंगे. हे सुग्रीव ! आज तुम भ्रातारूपी शत्रुको शीघ्र हमें दिखा दो ॥ ११ ॥ वह आज हमारे बाणसे घायल होकर वनमें धूलके ऊपर गिरकर छटपटावेगा, यदि इतनेपर भी उसके प्राण रहजायँ, अर्थात् वह जीता हुआ बचकर फिर तुम्हें दीख पडे ॥ १२ ॥ तब तुम इस स्थानसे चले जाना, और हमारी निन्दा करना या हमको धिक्कार देना, हमने केवल एकही बाणसे तुम्हारे सन्मुख सात तालवृक्ष तोड डाले हैं ॥ १३ ॥ उससे

तमेवोवाचवचनंसुग्रीवंशत्रुसूदनः ॥ कृताभिज्ञानचिह्नस्त्वमनयागजसाह्वया ॥ ८ ॥ लक्ष्मणेनसमुत्पाट्ययैषाकंठेकृतातव ॥ शोभसेऽप्यधिकं वीरलतयाकंठसक्तया ॥९॥ विपरीतइवाकाशेसूर्योनक्षत्रमालया ॥ अद्यवालिसमुत्थंतेभयंवैरंचवानर ॥ १० ॥ एकेनाहंप्रमोक्ष्यामिबाणमोक्षे णसंयुगे ॥ ममदर्शयसुग्रीववैरिणंभ्रातृरूपिणम् ॥११॥ वालीविनिहतोयावद्वनेपांसुषुचेष्टते ॥ यदिदृष्टिपथंप्राप्तोजीवन्सविनिवर्तते ॥ १२ ॥ ततोदोषेणमागच्छेत्सद्योगर्हेच्चमांभवान् ॥ प्रत्यक्षंसप्ततेसालामयाबाणेनदारिताः ॥१३॥ ततोवेत्सिबलेनाद्यवालिनंनिहतंरणे॥ अनृतंनोक्तपूर्वं मेचिरंकृच्छ्रेपितिष्ठता॥१४॥धर्मलोभपरीतेननचवक्ष्येकथंचन॥सफलांचकरिष्यामिप्रतिज्ञांजहिसंभ्रमम्॥१५॥प्रसूतंकलमक्षेत्रंवर्षेणेवशतक्रतुः॥ तदाह्वाननिमित्तंचवालिनोहेममालिनः ॥ १६ ॥ सुग्रीवकुरुतंशब्दंनिष्पतेद्येनवानरः ॥ जितकाशीजयश्लाघीत्वयाचाधर्षितःपुरात ॥१७॥

तुम जानलो कि वाली हमारे बाणसे मरा हुआ धरा है हमने प्रथम कभी कष्टमें पडनेसे भी मिथ्या वचन नहीं कहा ॥ १४ ॥ कारण कि, धर्मका लोभ हमको बहुतही है । इससे मिथ्या नहीं कहते, हम निःसंदेह अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करेंगे. तुम भ्रम व शोकको छोडो ॥ १५ ॥ जैसे इन्द्रजी वर्षा करके धान्यके खेतोंको फलवान् करते हैं ऐसेही हम पराक्रम करेंगे । इसलिये हे सुग्रीव ! उस सुवर्णमाला धारण किये हुए वालिको पुकारो ॥१६॥ और तुम ऐसा शब्द करो कि, जिससे वाली क्रोधयुक्त होकर शीघ्रही बाहर चला आवे। क्योंकि, वाली विजयको सदाही चाहता है और बडाईके पानेकी इच्छा किये सदाही घूमा करता है और पहले कभी तुम उसको पराजितभी नहीं कर सकेहो, इस कारणसे वह शब्द सुन शीघ्रही आवेगा, इसमें कोई संदेह नहीं ॥१७॥

इससे तुम्हारा पुकारना श्रवण करतेही वाली तुरंत आवेगा; क्योंकि वह अत्यन्त रणप्रिय है इसके अतिरिक्त समरमें शत्रुकी गर्जना सुनकर वाली नहीं सह सकेगा ॥ १८ ॥ जो अपने वीर्यको जानते हैं वे शत्रुका गर्जन विशेष करके स्त्रियोंके सामने सुनकर कभी चुपचाप नहीं बैठे रहते । ऐसे श्रीरामचन्द्र जीके वचन सुनकर सुवर्णके समान सुवर्णवाले सुग्रीवजी ॥ १९ ॥ भयंकर शब्दसे आकाशमण्डलको मानो भेदन करतेही हुये गर्जन करने लगे । उस शब्दसे त्रासित और प्रभाहीन होकर गाय बैल आदि जानवर इधर उधर भागने लगे ॥ २० ॥ जैसे राजाकी ओरसे कुछ दोष होनेपर कुलकी स्त्रियें तितर बितर हो फिरती हैं ऐसेही संग्राम भूमिसे भागे हुए घोडोंके समान सब मृगगण भागने लगे ॥ २१ ॥ और क्षीणपुण्य ग्रहगणोंके समान आकाशमें उडते हुये पक्षी पृथ्वीमें गिरने लगे ॥ २२ ॥ उसके पीछे पवनसे जलायमान होनेके कारण चंचल तरंगे जिसमें उठती हों ऐसे नदियोंके पति समुद्र तुल्य,

निष्पतिष्यत्यसंगेनवालीसप्रियसंयुगः ॥ रिपूणांधर्षितंश्रुत्वामर्षयंतिनसंयुगे ॥१८॥ जानंतस्तुस्वकंवीर्यंस्त्रीसमक्षंविशेषतः ॥ सतुरामवचः श्रुत्वासुग्रीवोहेमपिंगलः ॥१९॥ ननर्दक्रूरनादेनविनिर्भिंदन्निवांबरम् ॥ तत्रशब्देनवित्रस्तागावोयांतिहतप्रभाः ॥२०॥ राजदोषपरामृष्टाःकुलस्त्रिय इवाकुलाः ॥ द्रवंतिचमृगाःशीघ्रंभग्नाइवरणेहयाः ॥ २१ ॥ पतंतिचखगाभूमौक्षीणपुण्याइवग्रहाः ॥२२॥ ततः सजीमूतकृतप्रणादोनादंह्यमुंच त्वरयाप्रतीतः ॥ सूर्यात्मजःशौर्यविवृद्धतेजाःसरित्पतिर्वाऽनिलचंचलोर्मिः ॥ २३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीयेआदिकाव्ये च० सा० किष्किंधाकांडे चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥ अथतस्यनिनादंतंसुग्रीवस्यमहात्मनः ॥ शुश्रावांतःपुरगतोवालीभ्रातुरमर्षणः ॥१॥ श्रुत्वातुतस्य निनदंसर्वभूतप्रकंपनम् ॥ मदश्चैकपदेनष्टःक्रोधश्चापादितोमहान् ॥२॥ ततोरोषपरीतांगोवालीसकनकप्रभः ॥ उपरक्तइवादित्यःसद्योनिष्प्रभ तांगतः ॥३॥ वालीदंष्ट्राकरालस्तुक्रोधाद्दीप्ताग्निलोचनः ॥ भात्युत्पतितपद्माभःसमृणालइवह्रदः ॥ ४ ॥

सूर्यपुत्र सुग्रीवजी, श्रीरामचन्द्रजीके वचनोंका विश्वास कर अपनी शूरतासे वर्द्धित तेज होकर मेघके समान गर्ज २ घोर शब्द करने लगे ॥ २३ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० किष्किन्धाकाण्डे भाषायां चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥ उस समय वाली रनवासमें अपनी स्त्रियोंके बीचमें बैठा था । उससे महात्मा सुग्रीवजीकी घोर गर्जना सुनकर न सहा गया ॥ १ ॥ सर्व प्राणियोंको कंपायमान करनेवाला वह नाद सुनकर एकबारही वालिका सब मद नष्ट होगया और महा क्रोधित हुआ ॥ २ ॥ सुवर्णके समान दीप्तिशाली वाली क्रोधसे परिपूर्ण होकर राहुसे ग्रसे हुये सूर्यके समान तत्कालही प्रभाहीन होगया ॥ ३ ॥ क्रोधके मारे दांत बाहर निकल आनेसे कराल आकारवाले वालिके नेत्र जलती हुई अग्निके समान होगये उस समय वह ऐसा ज्ञात होता था कि, जिस

प्रकार किसी कुडसे कमल फूल तोड लिये जांय, और कमलकी डंडियें ऊपर चमकने लगें ॥ ४ ॥ वह सहनेके अयोग्य शब्द श्रवण कर वाली पैर धरनेसे मानो पृथ्वीको फाडताही हुआसा बडे वेगसे बाहरको चला ॥ ५ ॥ तब तारा वालिको लिपट कर सौहार्द दिखाती भयके मारे व्याकुल हो, आगेकी भलाईके लिये यह वचन बोली कि ॥ ६ ॥ हे वीरवर ! नदीके वेगके समान आये हुये इस क्रोधको आप त्यागकर दीजिये, जिस प्रकार शयनसे प्रातःकाल उठकर रात्रिकी धारण कीहुई फूलमाला लोग त्याग कर देते हैं ॥ ७ ॥ हे वीरेन्द्र ! आप कल प्राप्तःकालही संग्राम कर लीजिये, क्योंकि आपका शत्रु अत्यन्त लघु है, और इस समय युद्ध न करनेसे किसी प्रकारकी तुम्हारी छुटाई भी नहीं होती है ॥ ८ ॥ आप जो सहसाही युद्ध करनेके लिये बाहर जाते हैं सो मेरी सम्मतिमें यह ठीक नहीं और जिस कारणसे मैं रोकती हूँ वह भी श्रवण कीजिये ॥ ९ ॥ यही सुग्रीव पहले महा क्रोधकर तुम्हें युद्धके

शब्दंदुर्मर्षणंश्रुत्वानिष्पपाततततोहरिः ॥ वेगेनचपदन्यासैर्दारयन्निवमेदिनीम् ॥५॥ तंतुतारापरिष्वज्यस्नेहाद्दर्शितसौहृदा ॥ उवाचत्रस्तसंभ्रांताहितोदर्कमिदंवचः ॥ ६ ॥ साधुक्रोधमिमंवीरनदीवेगमिवागतम् ॥ शयनादुत्थितःकाल्यंत्यजभुक्तामिवस्रजम् ॥७॥ काल्यमेतेनसग्रामंकरिष्यसिचवानर ॥ वीरतेशत्रुबाहुल्यंफल्गुतावानविद्यते ॥८॥ सहसातवनिष्क्रामोममतावन्नरोचते ॥ श्रूयतामभिधास्यामियन्निमित्तंनिवार्यते ॥९॥ पूर्वमापतितःक्रोधात्सत्वामाह्वयतेयुधि ॥ निष्पत्यचनिरस्तस्तेहन्यमानोदिशोगतः ॥१०॥ त्वयातस्यनिरस्तस्यपीडितस्यविशेषतः ॥ इहैत्यपुनराह्वानंशंकांजनयतीवमे ॥ ११ ॥ दर्पश्चव्यवसायश्चयादृशस्तस्यनर्दतः ॥ नादस्यचसंरंभोनैतदल्पंहिकारणम् ॥१२॥ नासहायमहंमन्येसुग्रीवंतमिहागतम् ॥ अवष्टब्धसहायश्चयमाश्रित्यैषगर्जति ॥ १३ ॥ प्रकृत्यानिपुणश्चैवबुद्धिमांश्चैववानरः ॥ नापरीक्षितवीर्येणसुग्रीवःसख्यमेष्यति ॥ १४ ॥

लिये पुकारकर तुम्हारे आघातसे समरमें विमुख किस अवस्थाको प्राप्त हो भागा था ? ॥ १० ॥ वह ऐसा समर विमुख और बहुत मार पाकर भी यहां आकर फिर तुम्हें पुकारता है इससे हमको शंका होती है ॥ ११ ॥ इस समय उसका जिस प्रकारका अहंकार वर्त्ताव और घोर गर्जन श्रवण किया जाता है उससे ज्ञात होता है कि, अल्प कारणसे कदापि वह यहां पर नहीं आया ॥ १२ ॥ हम विचार करती हैं कि सुग्रीव बिना सहायके इस समय यहां नहीं आया, बरन् वह एक बडा भारी सहायक पाय यहां आकर गर्ज रहा है ॥ १३ ॥ और सुग्रीव स्वभावसेही बुद्धिमान् और चतुर वानर है, उसने बिना बल वीर्यकी परीक्षा किये कभी किसीसे मित्रता न की होगी ॥ १४ ॥

हे वीरवर ! हमने पहले ही कुमार अंगदसे जो वृत्तांत सुना है, वही हितंकर वचन आज कहती हैं, तुम श्रवण करो ॥१५॥ कि, कुमार अंगद कहीं वनको घूमनेके लिये चला गया था, वहां पर दूतोंने उससे आकर निवेदन किया ॥१६॥ उन्होंने कहा कि, अयोध्याके राजा इक्ष्वाकुकुल उत्पन्न महाराज दशरथजी के पुत्र समरमें दुर्जय श्रीराम व लक्ष्मणजी वनको आये हैं ॥ १७ ॥ सुग्रीवजीका प्रियकार्य साधन करनेके लिये वह दोनों दुर्द्धर्ष वीर तैयार हुए हैं, वही संग्राम स्थलमें सुग्रीवके बडे सहाय बने हैं ॥ १८ ॥ वही रामचन्द्रजी प्रलय कालकी अग्निके समान शत्रुओंके विनाश करनेके लिये उठे हैं, वह साधुओंके आश्रयदाता वृक्ष, और दुःखी जनोंके परमगति हैं ॥ १९ ॥ वे दोनों भाई आर्त जनोंको अभय देनेवाले, यशके भाजन, ज्ञान और विज्ञानसे युक्त

पूर्वमेवमयावीरश्रुतंकथयतोवचः ॥ अंगदस्यकुमारस्यवक्ष्याम्यद्यहितंवचः ॥१५॥ अंगदस्तुकुमारोऽयंवनांतमुषनिर्गतः ॥ प्रवृत्तिस्तेनकथिता चारैरासीन्निवेदिता ॥ १६ ॥ अयोध्याधिपतेःपुत्रौशूरौसमरदुर्जयौ ॥ इक्ष्वाकूणांकुलेजातौप्रस्थितौरामलक्ष्मणौ ॥१७॥ सुग्रीवप्रियकामार्थं प्राप्तौतत्रदुरासदौ ॥ सतेभ्रातुर्हिविख्यातःसहायोरणकर्मणि ॥१८॥ रामःपरबलामर्दीयुगांताग्निरिवोत्थितः ॥ निवासवृक्षःसाधूनामापन्नानांपरा गतिः ॥१९॥ आर्तानांसंश्रयश्चैवयशसश्चैकभाजनम् ॥ ज्ञानविज्ञानसंपन्नोनिदेशेनिरतःपितुः ॥ २० ॥ धातूनामिवशैलेंद्रोगुणानामाकरोमहान् ॥ तत्क्षमोनविरोधस्तेसहतेनमहात्मना ॥ २१॥ दुर्जयेनाप्रमेयेणरामेणरणकर्मसु ॥ शूरवक्ष्यामितेकिंचिन्नचेच्छाम्यभ्यसूयितुम् ॥ २२ ॥ श्रूयतां क्रियतांचैवतववक्ष्यामियद्धितम् ॥ यौवराज्येनसुग्रीवंतूर्णसाध्वीभिषेचय ॥२३॥ विग्रहंमाकृथावीरभ्रात्राराजन्यवीयसा ॥ अहंहितेक्षमंमन्येतेन रामेणसौहृदम् ॥ २४ ॥ सुग्रीवेणचसंप्रीतिंवैरमुत्सृज्यदूरतः ॥ लालनीयोहितेभ्रातायवीयानेषवानरः ॥ २५ ॥

पिताकी आज्ञामें ॥ २० ॥ जिस प्रकार शैलराज हिमवान् धातुसमूहोंके आकर हैं, वैसेही श्रीरामचन्द्रजीको गुण समूहकी महाखान जानो सो उन महात्मा श्रीरामचन्द्रजीसे विरोध करके तुम्हाराभला नहीं होगा ॥ २१ ॥ हे शूर ! श्रीरामचन्द्रजी रण कालमें अजीत और अप्रमेय हैं तुम उनके साथ विरोध कर मंगल न पाओगे । हे वीर ! हम कुछ तुम्हारी निन्दा नहीं करती हैं ॥ २२ ॥ बरन् हितकारी वचन कहती हैं सो तुम श्रवण करके वैसाही करो, वह यह कि, तुम शीघ्रतासे सुग्रीवको युवराजपदवी दे दो ॥२३॥ हे वीरेंद्र ! तुम छोटे भाईकेसाथ विरोध न करो हमारी तो यह इच्छा है कि; तुम्हारी और श्रीरामचन्द्रजीकी प्रीति हो जाय ॥२४॥ और दूसरे हमारी यह भी इच्छा है कि; वैरभाव त्याग कर सुग्रीवके ऊपर तुम प्रसन्न हो जाओ, क्योंकि यह सुग्रीव तुम्हारा छोटा भाई

है; इससे तुम्हें अवश्य ही इसका लालन पालन करना चाहिये, सो ऐसा करनेसे तुम्हारा मंगल होगा ॥२५॥ सुग्रीव ऋष्यमूकपै रहै, अथवा यहांपै रहै, वह आपका बन्धुही है, इस समस्त पृथ्वीपर उसके समान आपका बन्धु हम दूसरा नहीं देखती हैं ॥ २६ ॥ इस कारण वैरभाव छोड कर दान मानादि द्वारा सत्कार कर उसको ग्रहण कीजिये. फिर वह स्वयंही वैरभाव छोड तुम्हारे निकट रहने लगेगा ॥ २७ ॥ कडी गर्दनवाला सुग्रीव तुम्हारा परम बन्धु है; सो आप उसके साथ सुहृदयता स्थापन कर लीजिये, इसके सिवाय तुम्हारी दूसरी गति हम नहीं देखतीं ॥२८॥ यदि तुम हमको अपना हित करनेवाली जानते हो, और यदि हमारा प्रिय कार्य करना तुम चाहते हो, तो हम अपना प्रिय पति समझकर जो कुछ तुमसे प्रार्थना करती हैं उन हमारेवचनोंको अच्छे जानकर

तत्रवासन्निहस्थोवासर्वथाबंधुरेवते ॥ नहितेनसमंबंधुभुविपश्यामिकंचन ॥२६॥ दानमानादिसत्कारैःकुरुष्वप्रत्यनंतरम् ॥ वैरमेतत्समुत्सृज्यतवपार्श्वेसतिष्ठतु ॥२७॥ सुग्रीवोविपुलग्रीवोमहाबंधुर्मतस्तव ॥ भ्रातृसौहृदमालंब्यनान्यामतिरिहास्तिते ॥२८॥ यदितेमत्प्रियंकार्यंयदिचावैषिमांहिताम् ॥ याच्यमानःप्रियत्वेनसाधुवाक्यंकुरुष्वमे ॥२९॥ प्रसीदपथ्यंशृणुजल्पितंहिमेनरोषमेवानुविधातुमर्हसि ॥ क्षमोहितेकोशलराजसूनुनानविग्रहःशक्रसमानतेजसा ॥ ३० ॥ तदाहिताराहितमेववाक्यंतंवालिनंपथ्यमिदंबभाषे ॥ नरोचतेतद्वचनंहितस्यकालाभिपन्नस्यविनाशकाले ॥३१॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्येच० सा० किष्किंधाकांडे पंचदशःसर्गः ॥१५॥ तामेवंब्रुवतींतारांताराधिपनिभाननाम् ॥ वालीनिर्भर्त्सयामासवचनंचेदमब्रवीत् ॥ १ ॥ गर्जतोऽस्यसुसंरब्धंभ्रातुःशत्रोर्विशेषतः ॥ मर्षयिष्यामिकेनापिकारणेनवरानने ॥२॥ अधर्षितानांशूराणांसमरेष्वनिवर्तिनाम् ॥ धर्षणामर्षणंभीरुमरणादतिरिच्यते ॥ ३ ॥

आप वैसाही करिये ॥ २९ ॥ हे वीरेंद्र ! तुम हमारे हितकारी वचन श्रवण कर क्रोधके वशमें न पडो, क्योंकि इन्द्रतुल्य तेज सम्पन्न उन कौशलराजपुत्रों के साथ विरोध करनेसे तुम्हारा कल्याण नहीं होगा ॥३०॥ उस समय ताराने वालिसे इस प्रकारके हितकर वचन कहे, परन्तु विनाशके समय कालसे ग्रसे हुए वालीको वह वचनकुछ भी न भाये ॥३१॥ सत्य कहा है कि "विनाशकाले विपरीत बुद्धिः"॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा०आदि०किष्किन्धाकांडेभाषायां पंचदशः सर्गः ॥१५॥ चन्द्रवदनी ताराने जब वालिसे इस प्रकार कहा, तो वह ताराको धिक्कारता हुआ ऐसे वचन बोला कि ॥१॥ हे श्रेष्ठमुखवाली! हमारा भ्राता हमारा बडा शत्रु और फिर इस समय गर्वसहित गर्जन कर रहा है तब भला हम किस प्रकारसे इसके गर्जनको सहलें? ॥२॥ जो लोग शत्रु करके कभी नहीं जीते गये और

जो शूर रणस्थलसे विना शत्रुके जीते कभी नहीं लौटे हे भीरु ! उनके लिये अपमानका सहन करना मरनेसे भी अधिक जानो ॥ ३ ॥ इसलिये रणस्थलमें युद्धाभिलाषी हीनग्रीव सुग्रीवका गर्वसहित गर्जना हम किसी प्रकार नहीं सहसकते ॥ ४ ॥ हे प्रिये ! श्रीरामचन्द्रजीके कार्योंको विचार कर हमारे लिये विषाद करना तुमको उचित नहीं है, क्योंकि वह धर्मके जाननेवाले और कृतज्ञ हैं, वह कभी पापका कार्य नहीं करेंगे ॥ ५ ॥ तुम और सब स्त्रियोंके सहित लौट जाओ, हमारे पीछे २ न आओ, हमारे प्रति तुम्हारी सुहृदता और भक्ति जितनी चाहिये उतनी दिखाई जाचुकी ॥ ६ ॥ हम संग्राममें जा सुग्रीवके सहित युद्ध कर उसका दर्प चूर्ण करेंगे, परन्तु उसको प्राणोंसे नहीं मारेंगे (सो तुम उसके मरनेकी शंका छोड दो) ॥७॥ हम रणमें खडे हुए सुग्रीवके प्रति विशेष अत्याचार नहीं करेंगे; केवल वृक्षोंके प्रहारसे और घूसोंसे उसे मारेंगे, जिससे वह पीडित हो अपनी गुफाको चला जायगा ॥८॥ हे तारे ! वह दुरात्मा

सोढुंनचसमर्थोऽहंयुद्धकामस्यसंयुगे॥सुग्रीवस्यचसंरंभंहीनग्रीवस्यगर्जितम् ॥४॥ नचकार्योविषादस्तेराघवंप्रतिमत्कृते॥ धर्मज्ञश्चकृतज्ञश्चकथं पापंकरिष्यति ॥५॥ निवर्तस्वसहस्त्रीभिःकथंभूयोनुगच्छसि॥सौहृदंदर्शितंतावन्मयिभक्तिस्त्वयाकृता ॥६॥ प्रतियोत्स्याम्यहंगत्वासुग्रीवं जहिसंभ्रमम्॥ दर्पंचास्यविनेष्यामिनचप्राणैर्वियोक्ष्यते ॥ ७ ॥ अहंह्याजिस्थितस्यास्यकरिष्यामियदीप्सितम् ॥ वृक्षैर्मुष्टिप्रहारैश्चपीडितः प्रतियास्यति ॥ ८ ॥ नमेगर्वितमायस्तंसहिष्यतिदुरात्मवान् ॥ कृतंतारेसहायत्वंदर्शितंसौहृदंमयि ॥९॥ शापितासिममप्राणैर्निवर्तस्वजनेनच ॥ अलंजित्वानिवर्तिष्येतमहंभ्रातरंरणे ॥ १० ॥ तंतुतारापरिष्वज्यवालिनंप्रियवादिनी ॥ चकाररुदतीमंदंदक्षिणासाप्रदक्षिणम् ॥११॥ ततः स्वस्त्ययनंकृत्वामंत्रविद्विजयैषिणीअंतःपुरंसहस्त्रीभिःप्रविष्टाशोकमोहिता ॥ १२ ॥ प्रविष्टायांतुतारायांसहस्त्रीभिःस्वमालयम् ॥ नगर्यांनिर्ययौक्रुद्धोमहासर्पइवश्वसन् ॥ १३ ॥ सनिःश्वस्यमहारोषोवालीपरमवेगवान् ॥ सर्वतश्चारयन्दृष्टिंशत्रुदर्शनकांक्षया ॥ १४ ॥

हमारा हंकार और प्रहारादि नहीं सह सकेगा, इसमें कुछ संदेह नहीं कि, तुमने हमारी बुद्धिकी सहायता करके सुहृदता दिखाई ॥९॥ तुमको हमारे प्राणोंकी शपथ है कि; तुम इन सब स्त्रियोंके साथ लौट जाओ, हम रणस्थलमें भ्राताको केवल जीतही कर लौट आवेंगे; उसे प्राणोंसे नहीं मारेंगे ॥१०॥ प्रियवादिनी दक्षिणा नायिका तारा वालिको भेंटकर उसकी प्रदक्षिणा कर मंद मंद रोते २ वहांसे लौटी ॥११॥ स्वस्तिके मंत्र जाननेवाली तारा शोकसे मोहित हो विजयकी इच्छासे स्वस्तिवाचन करके सब स्त्रियोंके साथ अन्तःपुरमें चली गई ॥ १२ ॥ जब सब स्त्रियोंके साथ तारा अपने घरमें चली गई, तब वाली क्रोधित हुए महासर्पके समान श्वास लेता हुआ नगरीसे बाहर निकला ॥ १३ ॥ वानरराज वालिने लँबे २ श्वास लेकर बडे वेगसे आय रोषमें भर शत्रुके देख

नेकी वासनासे चारों ओरको दृष्टि डाली ॥१४॥ उसके पीछे श्रीमान् वालिने सुवर्णसम पिंगलनेत्र, कच्छ कसकर बाँधे हुए, पृथ्वीपर दृढरूपसे खडे देदीप्यमान अनलतुल्य सुग्रीवजीको देखा ॥ १५ ॥ महाबलवान् परमक्रोधित वाली सुग्रीवजीको इस प्रकारसे खडा देख आपभी वस्त्रोंको कसकर पहन लेता हुआ ॥ १६ ॥ वीर्यवान् वाली कच्छ बांध मुक्का उठाय सुग्रीवजीके सम्मुख जाय युद्धके लिये समयको देखने लगा ॥१७॥ सुग्रीवजी भी दृढ मुक्का बांधकर दर्पमें भर सुवर्णकी माला पहरे वालिके मारनेके लिये तैयार हुए ॥ १८ ॥ रणपंडित क्रोधसे लाल २ नेत्रवाले सुग्रीवको महावेगसे आता हुआ देखकर वाली बोला ॥ १९ ॥ यह देखो, सब उँगलियोंको सकोडकर ! हमारे दृढरूपसे जो यह मुष्टिका बाँधी है, उसको हम महावेगसे तुम्हारे प्राण लेनेके लिये चलावेंगे

सददर्शततःश्रीमान्सुग्रीवंहेमपिंगलम् ॥ सुसंवीतमवष्टब्धंदीप्यमानमिवानलम् ॥ १५ ॥ तंसदृष्ट्वामहाबाहुःसुग्रीवंपर्यवस्थितम् ॥ गाढंपरिदधेवासोवालीपरमकोपनः ॥१६॥ सवालीगाढसंवीतोमुष्टिमुद्यम्यवीर्यवान् ॥ सुग्रीवमेवाभिमुखोययौयोद्धुंकृतक्षणः ॥१७॥ श्लिष्टंमुष्टिंसमुद्यम्यसंरब्धतरमागतः ॥ सुग्रीवोऽपिसमुद्दिश्यवालिनंहेममालिनम् ॥ १८ ॥ तंवालीक्रोधताम्राक्षंसुग्रीवंरणकोविदम् ॥ आपतंतंमहावेगमिदंवचनमब्रवीत् ॥ १९ ॥ एषमुष्टिर्महान्बद्धोगाढः सुनियतांगुलिः ॥ मयावेगविमुक्तस्तेप्राणानादाययास्यति ॥२०॥ एवमुक्तस्तुसुग्रीवःक्रुद्धोवालिनमब्रवीत् ॥ तवचैषहरन्प्राणान्मुष्टिःपततुमूर्धनि ॥२१॥ ताडितस्तेनतंक्रुद्धःसमभिक्रम्यवेगतः ॥ अभवच्छोणितोद्गारीसापीडइवपर्वतः ॥ २२ ॥ सुग्रीवेणतुनिःशंकंसालमुत्पाट्यतेजसा ॥ गात्रेष्वभिहतोवालीवज्रेणेवमहागिरिः ॥ २३ ॥ सतुवृक्षेणनिर्भग्नसालताडनविह्वलः ॥ गुरुभारभराक्रांतानौः ससार्थेवसागरे ॥२४॥ तौभीमबलविक्रांतौसुपर्णसमवेगितौ ॥ प्रवृद्धौघोरवपुषौचन्द्रसूर्याविवांबरे ॥२५॥ परस्परममित्रघ्नौछिद्रान्वेषणतत्परौ ॥ ततोऽवर्धतवालीतुबलवीर्यसमन्वितः ॥ २६ ॥

॥२०॥ जब वालिने ऐसा कहा तब सुग्रीवजी भीउससे क्रोधित होकर बोले कि, देख ! हमने जो यह मुक्का बांधा है वह भी तुम्हारे मस्तक पर पडकर प्राण लेही लेगा ॥ २१ ॥ तब वालिने अत्यन्त क्रोधित होकर वेगसे जाकर सुग्रीवजीके मुक्का मारा। उस मुक्केके लगनेसे सुग्रीवजी झरने सहित पर्वतके समान रुधिर उगलने लगे ॥२२॥ फिर सुग्रीवजीने झट पट उठकर अतितेजीसे निःशंक हो एक शालका वृक्ष उखाड वालिको मारा, जैसे इन्द्रजीने वज्रसे पर्वतोंको मारा था ॥ २३ ॥ उस वृक्षके लगनेसे विह्वल हो वाली समुद्रके मध्य चलती बहुत बोझसे लदी हुई नावके समान चल विचल होने लगा ॥ २४ ॥ वह भयंकर बल वीर्यशाली, गरुडतुल्य वेगवान् घोरतर देहधारी वाली और सुग्रीव चन्द्रमा सूर्यके समान शोभा देने लगे ॥२५॥ एक दूसरेका दोष ढूँढनेमें तैयार

हुए वे दोनों वीर परस्पर चोट चलाने लगे लडते २ बलवीर्य युक्त वाली समरमें जयशाली हो बढा ॥ २६ ॥ और सूर्यपुत्र महाबलवान् सुग्रीवजी हीनबल होने लगे वालिने इनका गर्व खर्व कर डाला; और इनका विक्रमभी कम होनेपर आया ॥ २७ ॥ परन्तु सुग्रीवजी श्रीरामचन्द्रजीके दिखानेके अर्थ वालिके ऊपर कोपकर,जड व शाखासहित वृक्ष उखाड, पर्वत शिखर और वज्रसम धारवाले नखोंसे ॥२८॥ और मुष्टिका, जांघ, चरण और बांहोंसे फिर लडने लगे और वालि भी इन्हीं आयुधोंसे लडता था, इस कारण इन दोनोंजनोंका संग्राम ऐसा हुआ कि जैसा इन्द्रजीके साथ वृत्रासुरका हुआ था ॥ २९ ॥ वह वनचारी दोनों वानर रुधिरसे नहाय महा मेघके समान घोर शब्दसे परस्पर तर्जन गर्जन करने लगे ॥ ३० ॥ तब श्रीरामचन्द्रजी देखा कि, सुग्रीव अब बहुतहीहीन बल होगये हैं,इस कारणसेही वारंवार सब दिशाओंकी ओर निहारते हैं ॥ ३१ ॥ इस प्रकार महातेजस्वी श्रीरामचन्द्रजी सुग्रीवको भयातुर देखकर

सूर्यपुत्रोमहावीर्यः सुग्रीवःपरिहीयते ॥ वालिनाभग्नदर्पस्तुसुग्रीवोमंदविक्रमः ॥ २७ ॥ वालिनंप्रतिसामर्षोदर्शयामासराघवम् ॥ वृक्षैःसशाखैःशिखरैर्वज्रकोटिनिभैर्नखैः ॥२८॥ मुष्टिभिर्जानुभिःपद्भिर्बाहुभिश्चपुनःपुनः ॥ तयोर्युद्धमभूद्घोरंवृत्रवासवयोरिव ॥२९॥ तौशोणिताक्तौयुध्येतांवानरौवनचारिणौ ॥ मेघाविवमहाशब्दैस्तर्जमानौपरस्परम् ॥ ३० ॥ हीयमानमथापश्यत्सुग्रीवंवानरेश्वरम् ॥ प्रेक्षमाणंदिशश्चैवराघवःसमुहुर्मुहुः ॥ ३१ ॥ ततोरामोमहातेजाआर्तंदृष्ट्वाहरीश्वरम् ॥ सशरंवीक्षतेवीरोवालिनोवधकांक्षया ॥३२॥ ततोधनुषिसंधायशरमाशीविषोपमम् ॥ पूरयामासतच्चापंकालचक्रमिवांतकः ॥ ३३ ॥ तस्यज्यातलघोषेणत्रस्ताःपत्ररथेश्वराः ॥ प्रदुद्रुवुर्मृगाश्चैवयुगांतइवमोहिताः ॥ ३४ ॥ मुक्तस्तुवज्रनिर्घोषः प्रदीप्ताशनिसन्निभः ॥ राघवेणमहाबाणोवालिवक्षसिपातितः ॥ ३५ ॥ ततस्तेनमहातेजावीर्ययुक्तःकपीश्वरः ॥ वेगेनाभिहतोवालीनिपपातमहीतले ॥ ३६ ॥ इंद्रध्वजइवोद्धूतः पौर्णमास्यांमहीतले ॥ आश्वयुक्समयेमासिगतसत्त्वोविचेतनः ॥ ३७ ॥

वालिके संहार करनेकी इच्छासे वारंवार बाणी और दृष्टिपात करने लगे ॥ ३२ ॥ फिर विषधर सर्पके समान एक बाण धनुषपर चढाकर उस यमराजके कालचक्रके समान धनुषको टंकारने लगे ॥ ३३ ॥ जब श्रीरामचन्द्रजीने धनुषको टंकारा तो उस शब्दसे मृग व पक्षिगण युगान्त होनेके दुकालके समान मोहको प्राप्त हो वेगसहित भागनेलगे ॥ ३४ ॥ फिर श्रीरामचन्द्रजीने प्रदीप्त अग्निके समान वज्रतुल्य शब्द करता हुआ वह महाबाण छोडा वह वालिकी छातीमें जाकर महावेगसे लगा ॥ ३५ ॥ तब महातेजवान् वीर्यवान् वानरराज वाली बाणके वेगसे घायल होकर पृथ्वीपर गिरपडा ॥ ३६ ॥ जिस प्रकार आश्विनमासमें पूर्णमासीके अंतमें इन्द्रध्वज गिर पडता है वैसेही वालिके प्राण निकलने लगे, और वह मूर्च्छित होगया ॥ ३७ ॥

कफके मारे उसका कंठ रुकगया और सहज २ आर्त स्वर उसने प्रगट किया ॥ ३८ ॥ जिस प्रकार श्रीशंकरजी मुखसे धूमसहित अग्नि छोडते हैं वैसेही कालके समान नरोत्तम श्रीरामचन्द्रजीने शत्रुओंका नाश करनेवाला वह सुवर्णविभूषित बाण वालिपर छोडा ॥ ३९ ॥ फिर शरीरसे निकलते हुए रुधिरसे भीगा हुआ पर्वतपरसे पडेहुए पुष्पित अशोक वृक्षके समान इन्द्रसुत वाली चेतनारहित हो पवनवेगसे टूटे हुए इन्द्रध्वजके समान पृथ्वीपर गिर पडा ॥ ४० ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० किष्किन्धाकांडे भाषायां षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥ जब श्रीरामचन्द्रजीने बाण मारा, तब वह रणशूर वाली उस बाणसे घायल हो कटे हुये वृक्षके समान पृथ्वीपर गिर पडा ॥ १ ॥ उज्ज्वल सुवर्णके भूषण धारण किये हुये वाली डोरी छोड दिये हुये इन्द्रध्वजके समान गिरकर अपने

बाष्पसंरुद्धकंठस्तुवालीचार्तस्वरःशनैः ॥३८॥ नरोत्तमःकालइवांतकोपमंशरोत्तमंकांचनरूपभासितम् ॥ ससर्जदीप्तंतममित्रमर्दनंसधूममग्निंमुखतोयथाहरः ॥ ३९ ॥ अथोक्षितःशोणिततोयविस्रवैः प्रपुष्पिताशोकइवाचलोद्गतः ॥ विचेतनोवासवसूनुराहवेप्रभ्रंशितेंद्रध्वजवत्क्षितिंगतः ॥ ४० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० किष्किंधाकांडेषोडशः सर्गः॥ १६ ॥ ततःशरेणाभिहतोरामेणरणकर्कशः ॥ पपातसहसावालीनिकृत्तइवपादपः ॥१॥ सभूमौन्यस्तसर्वांगस्तप्तकांचनभूषणः ॥ अपतद्देवराजस्यमुक्तरश्मिरिवध्वजः ॥२॥ अस्मिन्निपतितेभूमौहर्यक्षाणांगणेश्वरे ॥ नष्टचंद्रमिवव्योमनव्यराजतमेदिनी ॥३॥ भूमौनिपतितस्यापितस्यदेहंमहात्मनः ॥ नश्रीर्जहातिनप्राणानतेजोनपराक्रमः ॥ ४ ॥ शक्रदत्तावरामालाकांचनीरत्नभूषिता ॥ दधारहरिमुख्यस्यप्राणांस्तेजःश्रियंचसा ॥५॥ सतयामालयावीरोहैमयाहरियूथपः ॥ संध्यानुगतपर्यंतःपयोधरइवाभवत् ॥६॥ तस्यमालाचदेहश्चमर्मघातीचयःशरः ॥ त्रिधेवरचितालक्ष्मीःपतितस्यापिशोभते ॥ ७ ॥ तदस्त्रंतस्यवीरस्यस्वर्गमार्गप्रभावनम् ॥ रामबाणासनक्षिप्तमावहत्परमांगतिम् ॥ ८ ॥

सब अंग पृथ्वी लुटापरता हुआ ॥२॥ जब वानरगणोंका राजा वाली पृथ्वीपर गिर पडा तब उसके राज्यकी भूमि चन्द्रमारहित आकाशके समान शोभाहीन होगई ॥ ३ ॥ यद्यपि वालि पृथ्वीपर गिरपडा, परंतु उस महात्माके लक्ष्मी तेज प्राण और पराक्रम कुछ न गये ॥ ४ ॥ क्योंकि इन्द्रकी दीहुई अति उत्तम रत्नभूषित सुवर्णकी माला, उस वानरश्रेष्ठके प्राण, तेज और देह लक्ष्मीको धारण किये रही थी ॥ ५ ॥ वानरराज वाली उस सुवर्णकी मालासे सन्ध्या कालीन जलधरके समान शोभा धारण करनेलगे ॥ ६ ॥ यद्यपि वालि गिर पडा परन्तु उस समयभी ऐसा शोभित होताथा कि, मानो लक्ष्मी माला, देह और मर्मघाती शर इन रूपोंमें प्रगट हो शोभायमान होरही है ॥७॥ श्रीरामचन्द्रजीके धनुषसे छूटा हुआ स्वर्गका साधक वह बाण उस वीर वालिको परमगति

को देनेवाला हुआ ॥ ८ ॥ युद्धस्थलमें शिखाररहित अग्निके समान गिरेहुये पुण्य क्षय होनेपर देवलोकसे खसे हुए ययातिके तुल्य ॥ ९ ॥ युगान्तके समय पृथ्वीमें गिरे हुये सूर्यके समान, इन्द्रके समान दुर्धर्ष और उपेंद्रके समान दुस्सह ॥ १० ॥ ऐसे चौडी छातीवाले महाबाहु प्रदीप्तवदन सिंहलोचन इन्द्रके पुत्र हेममाली वालिको ॥११॥ रणस्थलमें देख श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीके सहित उसके निकट गये, जहां वह वीर बुझीहुई अग्निके समान पृथ्वीपर गिरा पडा था ॥१२॥ श्रीरामलक्ष्मणजी बहुत मानके योग्य उस वीरश्रेष्ठ वालिके निकट उसको देखते २ गये ॥१३॥ वाली महाबलवान् श्रीरामचन्द्रजीको व लक्ष्मणजीको देखकर धर्मयुक्त कठोर वचन बोला ॥ १४ ॥ अल्पतेज, अल्पप्राण, चेतनारहित, भूमिपतित वालि श्रीरामचन्द्रजीसे गर्वित वचन कहने लगा ॥ १५ ॥ हे राम !

तंतथापतितंसंख्येगतार्चिषमिवानलम् ॥ ययातिमिवपुण्यांतेदेवलोकादिहच्युतम् ॥९॥ आदित्यमिवकालेनयुगांतेभुविपातितम् ॥ महेंद्रमिवदुर्धर्षमुपेंद्रमिवदुःसहम् ॥ १० ॥ महेंद्रपुत्रंपतितंवालिनंहेममालिनम् ॥ व्यूढोरस्कंमहाबाहुंदीप्तास्यंहरिलोचनम् ॥११॥ लक्ष्मणानुचरोरामोददर्शोपससर्पच ॥ तंतथापतितंवीरंगतार्चिषमिवानलम् ॥ १२ ॥ बहुमान्यंचतंवीरंवीक्षमाणंशनैरिव ॥ उपयातौमहावीर्यौभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ १३ ॥ तंदृष्ट्वाराघवंवालीलक्ष्मणंचमहाबलम् ॥ अब्रवीत्परुषंवाक्यंप्रश्रितंधर्मसंहितम् ॥ १४ ॥ सभूमावल्पतेजोसुर्निहतोनष्टचेतसः ॥ अर्थसंहितयावाचागर्वितंरणगर्वितम् ॥ १५ ॥ पराङ्मुखवधंकृत्वाकोऽत्रप्राप्तस्त्वयागुणः ॥ यदहंयुद्धसंरब्धस्त्वत्कृतेनिधनंगतः ॥ १६ ॥ कुलीनःसत्त्वसंपन्नस्तेजस्वीचरितव्रतः ॥ रामःकरुणवेदीचप्रजानांचहितेरतः ॥१७॥ सानुक्रोशोमहोत्साहःसमयज्ञोदृढव्रतः ॥ इत्येतत्सर्वभूतानिकथयंतियशोभुवि ॥ १८ ॥ दमःशमःक्षमाधर्मोधृतिःसत्त्वंपराक्रमः ॥ पार्थिवानांगुणाराजन्दंडश्चाप्यपकारिषु ॥१९॥ तान्गुणान्संप्रधार्याहमग्र्यंचाभिजनंतव ॥ तारयाप्रतिषिद्धःसन्सुग्रीवेणसमागतः ॥ २० ॥

आपके सहित हमने सम्मुख युद्ध नहीं किया फिर भला आपने हमको मारकर किस गुणको प्राप्त किया ? हम सुग्रीवके साथ युद्ध करनेमें लगे रहकर आपके द्वारा मारे गये ॥१६॥ हे राम ! आप करुणामय प्रजागणोंके हितमें निरत, कुलीन सत्त्वसम्पन्न, तेजस्वी, वेदविहित कर्मकारी ॥१७॥ महोत्साही, दृढव्रतधारी, उचित अनुचित कालके जाननेवाले और लज्जाशील हैं ऐसा पृथ्वीके सबही मनुष्य इस प्रकारसे कहकर आपका यश बखानते हैं ॥ १८ ॥ दम, शम, क्षमा, धर्म, धीरज, सत्यता और पराक्रम व अपकारीको दंड देना वह समस्त राजा लोगोंके गुण हैं ॥ १९ ॥ सो हम आपमें यही समस्त गुण सुना

करतेथे और यहभी ज्ञात था कि, सत्कुलमें जन्मे हैं, इसी वास्ते ताराके रोकनेपर भी हम सुग्रीवसे युद्ध करने आये ॥ २० ॥ हम दूसरेके सहित वह विचार कर युद्धमें नियुक्त थे कि आप धर्मको छोडकर हमको क्यों मारने लगे हैं और इसी कारणवश आपकी ओरसे कुछ चिन्ता न की, हमारी बुद्धि आपके दर्शनसे पहले यह थी कि, आप धर्मके प्रतिपालक हैं परन्तु अब यह बुद्धि जाती रही ॥२१॥ अब हमने भलीप्रकार चीन्ह लिया कि आप धर्मध्वज अधार्मिक, तृणोंसे ढकेहुये अंधकूपके समान नष्टात्मा हो ॥२२॥ और सज्जनोंका वेष धारण किये हुये पापिष्ठी, ढके हुए पावकतुल्य कपटधर्मसे छिपे हो, हमने पहले न जाना कि, आप ऐसे हैं ॥ २३ ॥ आपके राज्यमें या नगरमें हमने कोई पाप वा बुरा आचरण नहीं किया फिर आपने विना अपराधके किस कारणसे हमें मारा ? हम नहीं जानते कि आप कौन हैं ॥ २४ ॥ हम नित्य फल मूल भोजन करने वाले वनवासी वानर सुग्रीवसे युद्ध करते थे, कुछ आपको

नमामन्येनसंरब्धंप्रमत्तंवेद्धुमर्हसि॥इतितेबुद्धिरुत्पन्नाबभूवादर्शनेतव ॥२१॥ सत्वांविनिहतात्मानंधर्मध्वजमधार्मिकम्॥ जानेपापसमाचारं तृणैःकूपमिवावृतम् ॥२२॥ सतांवेषधरंपापंप्रच्छन्नमिवपावकम्॥ नाहंत्वामभिजानामिधर्मच्छद्माभिसंवृतम् ॥२३॥ विषयेवापुरेवातेयदापापं करोम्यहम् ॥ नचत्वामवजानेऽहंकस्मात्त्वंहंस्यकिल्बिषम् ॥ २४ ॥ फलमूलाशनंनित्यंवानरंवनगोचरम् ॥ मामिहप्रतियुध्यंतमन्येनचसमा गतम् ॥२५॥ त्वंनराधिपतेःपुत्रःप्रतीतःप्रियदर्शनः ॥ लिंगमप्यस्तितेराजन्दृश्यतेधर्मसंहितम् ॥२६॥ कःक्षत्रियकुलेजातःश्रुतवान्नष्टसंशयः ॥ धर्मलिंगप्रतिच्छन्नःक्रूरंकर्मसमाचरेत् ॥ २७ ॥ त्वंराघवकुलेजातोधर्मवानितिविश्रुतः ॥ अभव्योभव्यरूपेणकिमर्थंपरिधावसे ॥ २८ ॥ साम दानंक्षमाधर्मःसत्यंधृतिपराक्रमौ ॥ पार्थिवानांगुणाराजन्दंडश्चाप्यपकारिषु ॥ २९ ॥ वयंवनचराराममृगामूलफलाशिनः ॥ एषाप्रकृतिरस्माकं पुरुषस्त्वंनरेश्वर ॥ ३० ॥ भूमिर्हिरण्यंरूपंचनिग्रहेकारणानिच ॥ तत्रकस्तेवनेलोभोमदीयेषुफलेषुवा ॥ ३१ ॥

तो नहीं छेडा था फिर आपने क्यों हमें मारा ? ॥ २५ ॥ हे राजन् ! आप राजा दशरथजीके पुत्र प्रियदर्शन हैं और आपमें धर्मानुसार चिह्न भी दृष्टि आते हैं जिससे ज्ञात होता है कि आप कभी अधर्म न करते होंगे ॥२६॥ क्षत्रिय कुलमें उत्पन्न हुआ वेद जाननेवाला इसलिये संशय रहित धर्म चिह्न धारण करके कौन पुरुष क्रूरकर्मका आचरण करता है ? ॥२७॥ आपने रघुकुलमें जन्म लिया है, संसारमें धर्मवान्‌के नामसे आप विख्यात हैं, फिर भला शुभरूप धारण करके आपने अधर्म कर्म क्यों किया ? ॥ २८ ॥ हे राजन् ! साम, दान, क्षमा, सत्य, धर्म धीरज और पराक्रम व शत्रुको दंड देना यह समस्तराजाओंके गुण हैं ॥ २९ ॥ हे नरेश्वर ! हम तो फल मूलके भोजन करनेवाले वनचर पशुतुल्य हैं, हमारी बुद्धि पशुके समान होजाय तो आश्चर्य नहीं, परन्तु आप नगर वासी पुरुष हैं (आपका ऐसा स्वभाव क्योंकर हुआ) ॥ ३० ॥ आप सोना चांदी रूप इत्यादिकोंके ऊपरही विवाद व युद्ध कर सकते हैं,हम वनवासी और

फलोंके खानेवाले हैं सो हमारे फलमूलके ऊपर आप किसी प्रकार लोभ नहीं कर सकते ॥ ३१ ॥ नीति, विनय, अनुग्रह व निग्रह इन चार बातोंके अति रिक्त राजा लोग और किसी बातमें स्वेच्छाचारी नहीं होते ॥ ३२ ॥ आप स्वेच्छाचारी कोपनस्वभाव चंचलचित्त राजकार्योंमें अयोग्य हैं, जहां तहां धनुषसे बाण छोडते फिरते हैं ॥ ३३ ॥ मनुष्योंके राजा होनेपर भी धर्ममें आपका आदर नहीं. यथार्थ अर्थमें बुद्धि स्थिर नहीं है, बरन् आप स्वेच्छाचारी होकर इन्द्रिय गणोंके वशमें पड खिचे फिरते हैं॥३४॥ हे श्रीरामचन्द्रजी । हम बिन अपराधीको बाणसे मार अति निन्दनीय कर्मका अनुष्ठान कर आप सज्जनोंके बीचमें क्या कहेंगे ? ॥ ३५ ॥ राजघाती, ब्रह्मघाती, गोवध करनेवाला प्राणियोंको मारनेवाला चोर नास्तिक परिवेत्ता[1] ये सब पुरुष नरकको जाते हैं ॥ ३६ ॥ चुगली करनेवाला, कादर मित्रका मारनेवाला व गुरुतल्पग[2] ये लोगभी निःसन्देह पापियोंके लोकको जाते हैं इसमें संशय नहीं ॥ ३७ ॥

नयश्चविनयश्चोभौनिग्रहानुग्रहावपि ॥ राजवृत्तिरसंकीर्णाननृपाःकामवृत्तयः ॥३२॥ त्वंतुकामप्रधानश्चकोपनश्चानवस्थितः ॥ राजवृत्तेषुसंकीर्णः शरासनपरायणः ॥ ३३ ॥ नतेस्त्यपचितिर्धर्मेनार्थेबुद्धिरवस्थिता ॥ इंद्रियैःकामवृत्तःसन्कृष्यसेमनुजेश्वर ॥ ३४ ॥ हत्वाबाणेनकाकुत्स्थमामिहानपराधिनम् ॥ किंवक्ष्यसिसतांमध्येकर्मकृत्वाजुगुप्सितम् ॥ ३५ ॥ राजहाब्रह्महागोघ्नश्चोरःप्राणिवधेरतः ॥नास्तिकःपरिवेत्ताचसर्वेनिरयगामिनः ॥३६॥ सूचकश्चकदर्यश्चमित्रघ्नोगुरुतल्पगः ॥ लोकंपापात्मनामंतेगच्छंतेनात्रसंशयः ॥३७॥ अधार्यंचर्ममेसद्भीरोमाण्यस्थिचवर्जितम् ॥ अभक्ष्याणिचमांसानित्वद्विधैर्धर्मचारिभिः ॥३८॥ पंचपंचनखाभक्ष्याब्रह्मक्षत्त्रेणराघव ॥ शल्यकःश्वाविधोगोधाशशःकूर्मश्चपंचमः ॥ ३९ ॥ चर्मचास्थिचमेरामनस्पृशंतिमनीषिणः ॥ अभक्ष्याणिचमांसानिसोऽहंपंचनखोहतः ॥ ४० ॥ तारयावाक्यमुक्तोऽहंसत्यंसर्वज्ञयाहितम् ॥ तदतिक्रम्यमोहेनकालस्यवशमागतः ॥ ४१ ॥

हम लोगोंका चर्म आप सरीखे सज्जनोंके धारण करने योग्य नहीं; हमारे रुवें और हड्डियेंभी सज्जनलोग नहीं ग्रहण करते और मांसभी आप सरीखे धर्म चारीगणोंके अयोग्य है (इस कारण राजाओंके आखेट धर्मका बहाना भी आप हमपर नहीं कर सकते) ॥ ३८ ॥ हे राघव ! गैंडा, सई, गोह, खरगोश, शशा और कछुआ ये पांच पंचनखवाले जीव ब्राह्मण और क्षत्रियोंके भक्षण करने योग्य हैं ॥ ३९ ॥ बुद्धिमान् लोग वानरका चमडा, हड्डी और रुवेंको स्पर्शतक नहीं करते और मांस तो हमारा अभक्ष्यही है सो हम उन्हीं पंचनखवाले वानरको आपने किस कारणसे वध किया ? ॥ ४० ॥ हाय ! सर्वज्ञानसम्पन्न ताराने हमको पहिले ही सत्य और हितकारी वचन कहे थे, परन्तु हम अज्ञानवश उनके वचनोंको न मानकर कालके कराल गालमें

१ बड़े भाईका विवाह विनाही हुये छोटा जो विवाह लेता है उसको 'परिवेत्ता' कहते हैं २ गुरुकी स्त्रीको हरण करनेवाला ॥

अचानक आपडे ॥ ४१ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! विधर्मी पतिको प्राप्त कर जिस प्रकार सुशील स्त्री सनाथ नहीं होती वैसेही आपको पाय पृथ्वी सनाथ नहीं हुई ॥ ४२ ॥ महाराज दशरथजी तो महात्मा पुरुष थे; उनसे शठ पराया बुरा करनेवाले नीच मिथ्याभाषी आपने किस प्रकारसे जन्म ग्रहण किया ? ॥ ४३ ॥ रामरूप हस्तीने सज्जन लोगोंका धर्म उल्लंघन कर सदाचारकी रस्सी तोड और धर्मरूप अंकुशको न मानकर हमको मार डाला ॥४४॥ अशुभ अयुक्त, सज्जनोंसे निंदित कार्य कर जब आप सज्जन समाजमें बैठेंगे, तब उन लोगोंसे आप क्या कहेंगे ? ॥ ४५ ॥ हे राम ! आपने हम उदासीन जनके ऊपर ऐसा विक्रम प्रकाश किया; परन्तु अपकारी पुरुषके ऊपर आपका पराक्रम दृष्टि नहीं आता ॥ ४६ ॥ हे राजकुमार ! यदि आप प्रगट होकर हमसे

त्वयानाथेनकाकुत्स्थनसनाथावसुंधरा ॥ प्रमदाशीलसंपूर्णापत्येवचविधर्मणा ॥ ४२ ॥ शठोनैकृतिकःक्षुद्रोमिथ्याप्रश्रितमानसः ॥ कथंद शरथेनत्वंजातःपापोमहात्मना ॥ ४३ ॥ छिन्नचारित्र्यकक्ष्येणसतांधर्मातिवर्तिना ॥ त्यक्तधर्मांकुशेनाहंनिहतोरामहस्तिना ॥ ४४ ॥ अशुभं चाप्ययुक्तंचसतांचैवविगर्हितम् ॥ वक्ष्यसेचेदृशंकृत्वासद्भिःसहसमागतः ॥ ४५ ॥ उदासीनेषुयोऽस्मासुविक्रमोऽयंप्रकाशितः ॥ अपकारि षुतेरामनैवंपश्यामिविक्रमम् ॥ ४६ ॥ दृश्यमानस्तुयुध्येथामयायुधिनृपात्मज ॥ अद्यवैवस्ततंदेवंपश्येस्त्वंनिहतोमया ॥ ४७ ॥ त्वयाऽदृश्ये नतुरणेनिहतोऽहंदुरासदः ॥ प्रसुप्तःपन्नगेनेवनरःपापवशंगतः ॥ ४८ ॥ सुग्रीवप्रियकामेनयदहंनिहतस्त्वया ॥ मामेवयदिपूर्वंत्वमेतदर्थमचो दयः ॥ मैथिलीमहमेकाह्नातवचानीतवान्भवेः ॥ ४९ ॥ राक्षसंचदुरात्मानंतवभार्यापहारिणम् ॥ कंठेबद्ध्वाप्रदद्यांतेऽनिहतंरावणंरणे ॥ ५० ॥ न्यस्तांसागरतोयेवापातालेवापिमैथिलीम् ॥ आनयेयंतवादेशाच्छ्वेतामश्वतरीमिव ॥ ५१ ॥

संग्राम करते तो अभी हमसे मारे जाकर निःसन्देह आप यमराजका भवन देखते ॥ ४७ ॥ हे राम ! सर्प जिस प्रकार सोतेहुए मनुष्यको दंशकर मारडा लते हैं आपने भी वैसेही अप्रगट रहकर अतिशय दुर्द्धर्ष हमको प्राणसे मार डाला ॥ ४८ ॥ तुमने सुग्रीवका प्रिय करने और अपनी स्त्री प्राप्त करनेके लिये हमको र डाला. परन्तु यदि पहिलेहीसे आप हमें जतादेते तो हम एक दिनके बीचमें निःसन्देह आपकी भार्या मैथिलीको ला देते ॥ ४९ ॥ और निःसं देह तुम्हारी भार्याके हरण करनेवाले दुरात्मा राक्षस रावणको संग्राममें बिना हने उसके गलेमें रस्सी बांधकर आपके निकट ले आते ॥ ५० ॥ मैथिली समुद्रके जलमें वा पातालमें अथवा जहां कहीं होतीं तौभी आपकी आज्ञा पातेही उन्हें आपके पास ले आते जैसे मधु कैटभ दैत्य करके हरीहुई शुक्ल

यजुर्वेदकी श्रुतिको हयग्रीवजी ले आयेथे ॥ ५१ ॥ यह तो ठीकही ठीक होता कि हमारे स्वर्ग जानेपर सुग्रीव राजा होजाय परन्तु यह कार्य अत्यन्त अनुचित हुआ कि आपने हमको अधर्मसे मार डाला ॥ ५२ ॥ एक दिन सबहीको कालके गालमें जाना है, फिर इससे हम मृत्युको प्राप्त हुए तो क्या हुआ ? परन्तु आप हमको अधर्मसे वधकर जब राज्य प्राप्त करेंगे और उस समय राज्यस्थित प्रजागण प्रश्न करेंगे तो उनको आप क्या योग्य उत्तर देंगे ? यह विचार लेना ॥ ५३ ॥ इतना कहनेपर बाणकी चोटसे व्यथित होकर वानरराज महात्मा वालिका मुख सूखकर पीला पडगया और वह सूर्यसमान तेजवान् रामचन्द्रजीको देखते २ मौन होरहा ॥ ५४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० कि० कांडे भाषायां सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥ ॥ ॥ ॥
श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा घायल होनेसे उद्विग्न मन हुआ वाली, श्रीरामचन्द्रजीसे इस प्रकार धर्म अर्थ सहित हितकारी व कठोर वचन बोला ॥ १ ॥ यह

युक्तंयतप्राप्नुयाद्राज्यंसुग्रीवःस्वर्गतेमयि ॥ अयुक्तंयदधर्मेणत्वयाऽहंनिहतोरणे ॥ ५२ ॥ काममेवंविधिलोकःकालेनविनियुज्यते ॥ क्षमंचेद्भवताप्राप्तमुत्तरंसाधुचिंत्यताम् ॥५३॥ इत्येवमुक्त्वापरिशुष्कवक्त्रःशराभिघाताद्व्यथितोमहात्मा ॥ समीक्ष्यरामंरविसन्निकाशंतूष्णींबभौवानरराशसूनुः ॥५४॥ इत्यार्षे श्रीम०वा०आ० च०सा०कि० सप्तदशः सर्गः ॥१७॥ इत्युक्तःप्रश्रितंवाक्यंधर्मार्थसहितंहितम् ॥ परुषंवालिनारामोनिहतेनविचेतसा ॥१॥ तंनिष्प्रभमिवादित्यंमुक्ततोयमिवांबुदम् ॥ उक्तवाक्यं हरिश्रेष्ठमुपशांतमिवानलम् ॥२॥ धर्मार्थगुणसंपन्नंहरीश्वमनुत्तमम् ॥ अधिक्षिप्तस्तदारामःपश्चाद्वालिनमब्रवीत् ॥३॥ धर्ममर्थंचकामंचसमयंचापिलौकिकम् ॥ अविज्ञायकथंबाल्यान्मामिहाद्यविगर्हसे ॥४॥ अपृष्ट्वाबुद्धिसंपन्नान्वृद्धानाचार्यसंमतान् ॥ सौम्यंवानरचांचल्यात्त्वंमांवक्तुमिहेच्छसि ॥ ५ ॥ इक्ष्वाकूणामियभूमिःसशैलवनकानना ॥ मृगपक्षिमनुष्याणांनिग्रहानुग्रहेष्वपि ॥ ६ ॥ तांपालयतिवर्मात्माभरतःसत्यवानृजुः ॥ धर्मकामार्थतत्त्वज्ञोनिग्रहानुग्रहेरतः ॥ ७ ॥

वानर प्रभाहीन सूर्यके समान और बुझी हुई आगके समान तेजरहित हुआ ॥ २ ॥ धर्म अर्थ गुणयुक्त, उत्तम वानरनाथ वालिसे बहुत निन्दा किये जानेपर श्रीरामचन्द्रजी बोले कि ॥ ३ ॥ हे वाली ! धर्म अर्थ, काम, समय, लौकिक और आचार इन सबको विनाजाने तुम बालकके समान हमारी निन्दा क्यों करते हो ? ॥ ४ ॥ तुम आचार्य; समस्त वृद्ध और बुद्धिमानोंके बिना पूछेही वानरस्वभावही की चपलताके हेतु हमारी निन्दा करनेकी इच्छा करते हो ॥ ५ ॥ इक्ष्वाकुवंशियों के पूर्व पुरुष मनुजीने शैल वन और काननादि सहित यह पृथ्वी हम लोगोंको दी, इससे इस पृथ्वीपर जितने मृग, पक्षी व मनुष्य हैं सबपर अनुग्रह और दंड करनेका अधिकार हमहीको है ॥ ६ ॥ सत्यशाली, सरलस्वभाव; दंड और अनुग्रह करनेमें निरत,

धर्म अर्थ व कामके तत्त्वको जाननेवाले; धर्मात्मा भरतजी इस समय इस पृथ्वीका पालन करते हैं ॥७॥ जिसमें नीति विनय और सत्य देखा जाय वही देश कालज्ञाता पुरुष राजा हो सकता है, सो यह सब भरतजीमें हैं ॥८॥ हम वऔर दूसरे नृपतिगण, उनसे धर्माचरण करनेके निमित्त आज्ञा पाकर इस सम्पूर्ण पृथ्वीपर विचरते हैं ॥ ९ ॥ जब कि नृपतिश्रेष्ठ धर्मवत्सल भरतजी समस्त पृथ्वीका पालन कर रहे हैं, तब कौन पुरुष धर्मका अप्रिय साधन करनेमें समर्थ हो सकता है ? ॥ १० ॥ हम अति उत्तम अपने धर्ममें टिके रहे, भरतजीकी आज्ञा शिरपर धारण कर, धर्ममार्ग छोडनेवाले पुरुषोंका विचार किया करते हैं ॥११॥ तुमने धर्मको क्लेश देकर निन्दनीय कर्म किया है–तुम राजधर्मका अपमानकर उसमें नहीं टिकेहुए अधिक कर कामाधीन हुए हो ॥१२॥ धर्ममें और

नयश्चविनयश्चोभौयस्मिन्सत्यंचसुस्थितम् ॥ विक्रमश्चयथादृष्टःसराजादेशकालवित् ॥ ८ ॥ तस्यधर्मकृतादेशावयमन्येचपार्थिवाः ॥ चरामोवसुधांकृत्स्नांधर्मसंतानमिच्छवः ॥९॥ यस्मिन्नृपतिशार्दूलेभरतेधर्मवत्सले ॥ पालयत्यखिलांपृथ्वींकश्चरेद्धर्मविप्रियम् ॥ १० ॥ तेवयंमार्गविभ्रष्टंस्वधर्मेपरमेस्थिताः ॥ भरताज्ञांपुरस्कृत्यचिंतयामोयथाविधि ॥११॥ त्वंतुसंक्लिष्टधर्मश्चकर्मणाचविगर्हितः ॥ कामतंत्रप्रधानश्चनस्थितोराजवर्त्मनि ॥१२॥ ज्येष्ठोभ्रातापितावापियश्चविद्यांप्रयच्छति ॥त्रयस्तेपितरोज्ञेयाधर्मेचपथिवर्तिनः ॥१३॥ यवीयानात्मनःपुत्रःशिष्यश्चापिगुणोदितः॥पुत्रवत्तेत्रयश्चिंत्याधर्मश्चैवात्रकारणम् ॥१४॥ सूक्ष्मःपरमविज्ञेयःसतांधर्मःप्लवंगम ॥ हृदिस्थःसर्वभूतानामात्मावेदशुभाशुभम् ॥ १५ ॥ चपलश्चपलैःसार्द्धंवानरैरकृतात्मभिः ॥ जात्यंधइवजात्यंधैर्मंत्रयन्प्रेक्षसेनुकिम् ॥१६॥ अहंतुव्यक्ततामस्यवचनस्यब्रवीमिते ॥ नहिमांकेवलंरोषात्त्वंविगर्हितुमर्हसि ॥ १७ ॥ तदेतत्कारणंपश्ययदर्थंत्वंमयाहतः ॥ भ्रातुर्वर्तसिभार्यायांत्यक्त्वाधर्मंसनातनम् ॥ १८ ॥

अच्छे मार्गमें चलनेवाले बडे भ्राता, पिता औरजो विद्या पढावे ये तीनोंजन पिताके तुल्य होते हैं ॥१३॥ छोटाभाई, पुत्रऔर गुणवान् शिष्य इनतीनों जनोंको पुत्रके तुल्य समझना चाहिये. इससे धर्महीं कारणरूप गिना जाता है ॥१४॥ हे वानर ! सज्जनोंका परमधर्म अति सूक्ष्म है सो प्राणिमात्रके हृदयमें टिकाहुआ आत्मा शुभ अशुभसमस्तही जान सकता है ॥१५॥ तुम चपलस्वभाव जन्मान्ध और मूढहो चपलबुद्धि व जन्मान्ध वानरगणोंके सहितसलाहकर व उनके निकट उठने बैठनेसे तुमभी वैसे ही होगये हो ॥१६॥ तुमश्रवण करो कि, हम यह वचन स्पष्ट प्रगट कर कहते हैं कि, तुम केवल रोषमें भर हमारी निन्दाकरते होसो यह तुमको उचित नहीं है ॥ १७ ॥ हम तुमको यह भी बतलाते हैं कि, जिस कारणसे हमने तुमको मारा है तुम सनातनधर्मको छोड छोटे भ्राताकी स्त्रीसे

रमण करतेहो सो इसका विचार तुमही करलो कि यह बात उचित है वा अनुचित ॥ १८ ॥ महात्मा भ्राता सुग्रीवके जीवित रहते पापचारी तुमने उसकी स्त्री रुमा कि जो पतोहूके समान मानी जाती है उससे कामके अधीन हो रमण किया ॥१९॥ इसलिये तुमने कामाचारी हो धर्मके मार्गको उल्लंघन किया । उस भ्रातृभार्याकी धर्षणा करनेके हेतु यह दंड तुमको दिया है ॥ २० ॥ हे वानरवर ! लोकोंके व्यवहारकी मर्यादाको उल्लंघन करनेवाले सदाचार विमुख पुरुषको मारनेके सिवाय हम और कोई दंड नहीं देखते ॥२१॥ हम श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न हुये क्षत्रिय पापको नहीं सहसकते, भगिनी, छोटे भ्राताकी स्त्रीसे ॥ २२ ॥ रमणकरनेवाले पुरुषको मार डालनाही ठीक दंड है, महीपाल भरतजीने हमको इसी प्रकारकी आज्ञा की है, हमने उनके आज्ञानुसारही कार्य किया है ॥२३॥ तुमने धर्मकी मर्यादाको तोडा है, जो गुरु होकर धर्मकी मर्यादा तोडे तो परलोकमें धर्मपालक होकर उसको भी बिना दंड दिये

अस्यत्वंधरमाणस्यसुग्रीवस्यमहात्मनः ॥ रुमायांवर्तसेकामात्स्नुषायांपापकर्मकृत् ॥ १९ ॥ तद्व्यतीतस्यतेधर्मात्कामवृत्तस्यवानर ॥ भ्रातृभार्याभिमर्शेऽस्मिन्दंडोयंप्रतिपादितः ॥ २० ॥ नहिलोकविरुद्धस्यलोकवृत्तादपेयुषः ॥ दंडादन्यत्रपश्यामिनिग्रहंहरियूथप ॥ २१ ॥ नच तेमर्षयेपापंक्षत्रियोऽहंकुलोद्गतः ॥ औरसींभगिनींवापिभार्यांवाप्यनुजस्ययः ॥ २२ ॥ प्रचरेतनरःकामात्तस्यदंडोवधःस्मृतः ॥ भरतस्तुमही पालोवयंत्वादेशवर्तिनः ॥२३॥ त्वंचधर्मादतिक्रांतःकथंशक्यमुपेक्षितुम् ॥ गुरुधर्मव्यतिक्रांतंप्राज्ञोधर्मेणपालयन् ॥२४॥ भरतःकामयुक्तानांनिग्रहेपर्यवस्थितः ॥ वयंतुभरतादेशावधिंकृत्वाहरीश्वर ॥ त्वद्विधान्भिन्नमर्यादान्निग्रहीतुंव्यवस्थिताः ॥ २५ ॥ सुग्रीवेणचमेसख्यंलक्ष्मणे नयथातथा ॥ दारराज्यनिमित्तंचनिःश्रेयसकरःसमे ॥२६॥ प्रतिज्ञाचमयादत्तातदावानरसंनिधौ ॥ प्रतिज्ञाचकथंशक्यामद्विधेनानवेक्षितुम् ॥ २७ ॥ तदेभिःकारणैःसर्वैर्महद्भिर्धर्मसंश्रितैः ॥ शासनंतवयद्युक्तंतद्भवाननुमन्यताम् ॥ २८ ॥

नहीं छोड सकते ॥ २४ ॥ भरतजीने कामाधीन हो स्वेच्छानुसार चलनेवाले पुरुषोंके दंड देनेकी व्यवस्था की है, सो हम लोग उन भरतकी आज्ञा पालन करके तुम्हारे समान धर्मकी मर्यादा तोडनेवाले पुरुषोंका विनाश करते हैं ॥ २५ ॥ जैसे लक्ष्मणजीके संग हमारी मित्रताई है, वैसेही सुग्रीवजी भी हमारे सखा हैं, सो सुग्रीवजी हमारी मित्रतासे अपना राज्य व स्त्री पानेके लिये हमारे निकट आये हैं इस लिये जिसतरहसे उनका कल्याण हो वही करना हमारा कर्त्तव्य है ॥ २६ ॥ और दूसरे हमने सब वानरोंके सहित प्रतिज्ञा भी की है कि, तुम्हारा राज्य और तुम्हारी स्त्री तुम्हें देदेंगे, सो भला हमारे समान पुरुष प्रतिज्ञाको किस प्रकारसे त्याग कर सकते हैं ? ॥ २७ ॥ इन सब धर्मसंयुक्त बडे कारणोंके निमित्त हमने तुमको दण्ड दिया है सो तुमभी इसको

उचितही समझो ॥ २८ ॥ तुमको दंड देना सब भाँतिसेही धर्मानुसार ज्ञात होता है मित्रका उपकार करना भी धर्मचारी पुरुषोंका अवश्यही कर्तव्य है ॥ २९ ॥ सो तुमको दण्ड देकर हमने धर्महीका वर्ताव किया है, महात्मा मनुजीके चरित्रवान् दो श्लोक हमने सुन रक्खे हैं सो उनको हमने तथा सबही धर्मकुशल जनोंने ग्रहण किया है ॥ ३० ॥ उन श्लोकोंका अर्थ यह है कि, पाप करनेवाले मनुष्यगण राजदंड ग्रहण करके सुकृत करनेवाले पुरुषोंके समान निर्मल होकर स्वर्गमें गमन करते हैं ॥ ३१ ॥ चोरको दंड देने वा मार डालनेसेही वह पापसे छुटजाता है 'हम पापी हैं इसलिये हमको आप दण्ड दीजिये' यह कहकर जो पापी राजाके निकट चला जाय उसको राजा दण्ड दे अथवा न देकर कृपा दिखा छोड दे तो उन दोनों बातोंसे पापी तो अपने पापसे छुटगया परन्तु छोड देनेसे उस पापका भागी राजा होता है, इसलिये हमने तुमको दण्ड दिया ॥ ३२ ॥ शिष्टाचारका भी प्रमाण देते

सर्वथाधर्मइत्येवद्रष्टव्यस्तवनिग्रहः ॥ वयस्यस्योपकर्तव्यंधर्ममेवानुपश्यता ॥२९॥ शक्यंत्वयापितत्कार्यंधर्ममेवानुवर्तता ॥ श्रूयतेमनुनागीशोश्लोकौचारित्रवत्सलौ ॥ गृहीतौधर्मकुशलैस्तथातच्चरितंमया ॥ ३० ॥ राजभिर्धृतदंडाश्चकृत्वापापानिमानवाः ॥ निर्मलाःस्वर्गमायांति संतःसुकृतिनोयथा ॥ ३१ ॥ शासनाद्वापिमोक्षाद्वास्तेनःपापात्प्रमुच्यते ॥ राजात्वशासन्पापस्यतदवाप्नोतिकिल्बिषम् ॥ ३२ ॥ आर्येणमम मांधात्राव्यसनंघोरमीप्सितम् ॥ श्रवणेनकृतेपापेयथापापंकृतंत्वया ॥ ३३ ॥ अन्यैरपिकृतंपापंप्रमत्तैर्वसुधाधिपैः ॥ प्रायश्चित्तंचकुर्वंतितेनतच्छाम्यतेरजः ॥ ३४ ॥ तदलंपरितापेनधर्मतःपरिकल्पितः ॥ वधोवानरशार्दूलनवयंस्ववशेस्थिताः ॥ ३५ ॥ शृणुचाप्यपरंभूयःकारणंहरिपुंगव ॥ तच्छ्रुत्वाहिमहद्वीरनमन्युंकर्तुमर्हसि ॥ ३६ ॥ नमेतत्रमनस्तापोनमन्युर्हरिपुंगव ॥ वागुराभिश्चपाशैश्चकूटैश्चविविधैर्नराः ॥ ३७ ॥ प्रतिच्छन्नाश्चदृश्याश्चगृह्णंतिसुबहून्मृगान् ॥ प्रधावितान्वावित्रस्तान्विस्रब्धानतिविष्ठितान् ॥ ३८ ॥

हैं जैसा कि, पाप तुमने किया है; वैसाही पाप एक समय किसी श्रमण (आर्हत संन्यासी) ने किया था कि, जिसको हमारे पूर्व पुरुष मान्धाताजीने घोर दंड दिया ॥३३॥ और राजालोगोंने भी प्रथम पापियोंको दण्ड दिया है, अधिक क्या कहें ? पाप करनेवाले पुरुष कभी आप भी पापका प्रायश्चित करके शुद्ध हुआ करते हैं ॥३४॥ हे वानरशार्दूल ! पछतावा करनेसे कुछ प्रयोजन नहीं है हमने धर्मानुसार ही तुम्हारा संहार किया है; क्योंकि हमभी धर्मशास्त्रके वश हैं कुछ स्वाधीन नहीं हैं ॥३५॥ हे कपिश्रेष्ठ ! इस विषयमें और भी कारण है वह भी तुम्हें बताते हैं उनको सुनकर तुम मनमें उपजा हुआ क्रोध छोडदो ॥३६॥ हे वानरश्रेष्ठ ! न तो इसलिये कुछ हमारे मनको संताप है न कुछ क्रोधही है क्योंकि बहुतसारे मांसखानेवाले नरगण जाल, फांसी, व विविध भांतिके कपट कर॥३७॥ छिपकर वा प्रगट होकर भागते और डरे हुएवा

विश्वास कर बैठेहुए मृगोंको पकडते हैं ॥ ३८ ॥ जो राजालोग सावधान या असावधान दुष्ट मृगोंको काननमें हनन करते हैं उनकोभी मनुष्यवध करनेके समान अघ नहीं प्राप्त होता; चाहे मांसके अर्थ वा यज्ञार्थ चाहे जिसके लिये मारे उन्हें कुछ भी दोष नहीं होता ॥ ३९ ॥ बहुत सारे धर्मके जाननेवाले राजर्षि लोगोंने शिकार खेलते २ अनेक वनैले मृग मार डाले हैं; इसी कारणसे हमने तुमको बाण मारकर संहार किया। क्योंकि तुम भी तो शाखामृग ही हो ॥ ४० ॥ चाहे तुम हमसे युद्ध करते थे या न करते थे परन्तु थे तो मृगही, इससे हमने तुमको मारा ॥ ४१ ॥ हे वानरश्रेष्ठ! राजालोग दुर्लभ और शुभकारी धर्म और जीवनतक दान कर देते हैं कुछ संदेह नहीं ॥ ४२ ॥ राजालोगोंको न मारना चाहिये, उनके ऊपर क्रोध कर तर्जनादि न करना चाहिये और न कुप्यारे वचन कहें, क्योंकि यह राजालोग देवता हैं, मनुष्यके रूपमें पृथ्वीपर फिरा करते हैं ॥ ४३ ॥ तुम धर्मका मार्ग न जानकर केवल

प्रमत्तानप्रमत्तान्वानरामांसाशिनोभृशम् ॥ विध्यंतिविमुखांश्चापिनचदोषोऽत्रविद्यते ॥३९॥ यांतिराजर्षयश्चात्रमृगयांधर्मकोविदाः ॥ तस्मात्त्वं निहतोयुद्धेमयाबाणेनवानर ॥ ४० ॥ अयुध्यन्प्रतियुध्यन्वायस्माच्छाखामृगोह्यसि ॥४१॥ दुर्लभस्यचधर्मस्यजीवितस्यशुभस्यच ॥ राजानोवानरश्रेष्ठप्रदातारोनसंशयः ॥ ४२ ॥ तान्नहिंस्यान्नचाक्रोशेन्नाक्षिपेन्नाप्रियंवदेत् ॥ देवामानुषरूपेणचरंत्येतेमहीतले ॥४३॥ त्वंतुधर्ममविज्ञायकेवलंरोषमास्थितः ॥ विदूषयसिमांधर्मेपितृपैतामहेस्थितम् ॥ ४४ ॥ एवमुक्तस्तुरामेणवालीप्रव्यथितोभृशम् ॥ नदोषंराघवेदध्यौधर्मेऽधिगतनिश्चयः ॥ ४५ ॥ प्रत्युवाचततोरामंप्रांजलिर्वानरेश्वरः ॥ यत्त्वमात्थनरश्रेष्ठतत्तथैवनसंशयः ॥ ४६ ॥ प्रतिवक्तुंप्रकृष्टेहिनापकृष्टस्तुशक्नुयात् ॥ यदयुक्तंमयापूर्वंप्रमादाद्वाक्यमप्रियम् ॥४७॥ तत्रापिखलुमांदोषंकर्तुंनार्हसिराघव ॥ त्वंहिदृष्टार्थतत्त्वज्ञःप्रजानांचहितेरतः ॥४८॥

क्रोधके वश हो पिता पितामहादिकोंके धर्ममें टिके हुये हमारी निन्दा करते हो ॥ ४४ ॥ जब श्रीरामचन्द्रजीने ऐसा कहा, तब वालि अपने कहेहुये पहले कठोर वचनोंका पछतावा कर व्यथित होने लगा और भलीभांतिसे धर्मके तत्त्वको जानकर फिर उसने पहले रामचन्द्रजीमें दोष बुद्धि की थी सो त्यागदी ॥ ४५ ॥ तब उसने हाथ जोडकर श्रीरामचन्द्रजीसे कहा कि; हे नरश्रेष्ठ! इस बातमें कुछ संशय नहीं कि, आपने हमसे जो कुछ कहा वह सब सत्यही सत्य है ॥४६॥ श्रेष्ठ पुरुषके आगे नीच पुरुष बोलनेको समर्थ नहीं होता, हमने पहले अज्ञानताके मारे जो वचन कहे थे ॥ ४७ ॥ सो उनसे आप कुछ दोष न ग्रहण करें आप प्रमाणित धर्मादितत्त्वके यथार्थही विचारकर्ता हैं; और इसमें भी कुछ सन्देह नहीं की, आप प्रजागणोंका हित करनेमें निरत भी हैं॥४८॥

इसमें कुछ संशय नहीं कि, आपकी स्थिरबुद्धि कार्य कारणके सिद्ध करनेमें निपुण है ॥ ४९ ॥ हे धर्मज्ञ ! हम धर्म उल्लंघन करनेवाले पुरुषोंके अग्रणी और पापी हैं सो आप धर्मयुक्त वचनोंसे हमको उत्तम लोक देकर प्रतिपालन कर लीजिये ॥ ५० ॥ वालि दलदलमें फँसेहुये हाथीके समान आर्त्त स्वरसे श्रीरामचन्द्रजीसे दीन वचन बोला उस समय उसका कंठ आंसुओंसे रुक गया था ॥ ५१ ॥ हम अपने लिये, ताराके लिये और वानरगणोंके लिये शोक नहीं करते, हम तो केवल सोनेके बाजू पहरे बालक अंगदके ही लिये शोक करते हैं, क्योंकि मैं तो भगवान्से मारा गया; तारासे सुग्रीव प्रीति करेगा, वानर सेवा कर रह जायँगे, बस अंगदका कहीं ठीक नहीं ॥ ५२ ॥ जब वह बच्चाही था तबसे हमने उसका लालन पालन किया, वह हमको न देखकर दीनभावको प्राप्त हो उस तडागके समान सूख जायगा कि, जिसका जल हाथियोंने पीलिया हो ॥ ५३ ॥ हे राम ! ताराके गर्भसे उत्पन्न

कार्यकारणसिद्धौचप्रसन्नाबुद्धिरव्यया ॥४९॥ मामप्यवगतंधर्माद्व्यतिक्रांतपुरस्कृतम् ॥ धर्मसंहितयावाचाधर्मज्ञपरिपालय ॥ ५० ॥ बाष्पसंरुद्धकंठस्तुवालीसार्तरवःशनैः ॥ उवाचरामंसंप्रेक्ष्यपंकलग्नइवद्विपः ॥ ५१ ॥ नचात्मानमहंशोचेनतारांनापिबांधवान् ॥ यथापुत्रंगुणज्येष्ठमंगदंकनकांगदम् ॥५२॥ सममादर्शनाद्दीनोबाल्यात्प्रभृतिलालितः ॥ तटाकइवपीतांबुरुपशोषंगमिष्यति ॥५३॥ बालश्चाकृतबुद्धिश्चएकपुत्रश्चमेप्रियः ॥ तारेयोरामभवतारक्षणीयोमहाबलः ॥ ५४ ॥ सुग्रीवेचांगदेचैवविधत्स्वमतिमुत्तमाम् ॥ त्वंहिगोप्ताचशास्ताचकार्याकार्यविधौस्थितः ॥५५॥ यातेनरपतेवृत्तिर्भरतेलक्ष्मणेचया ॥ सुग्रीवेचांगदेराजंस्तांचिंतयितुमर्हसि ॥५६॥ मद्दोषकृतदोषांतांयथातारांतपस्विनीम् ॥ सुग्रीवोनावमन्येततथाऽवस्थातुमर्हसि ॥ ५७ ॥ त्वयाह्यनुगृहीतेनशक्यंराज्यमुपासितुम् ॥ त्वद्वशेवर्तमानेनतवचित्तानुवर्तिना ॥ ५८ ॥

हमारे इकलौते, कच्चीबुद्धियुक्त महा बलवान् अंगद बालककी आप रक्षा कीजिये, हे महाराज ! कहीं मेरे पुत्रको कष्ट न हो ॥ ५४ ॥ सुग्रीवकी बुद्धि ऐसी बदल दीजिये कि, वह अंगदसे प्रीति करनेलगे । क्योंकि आप कार्य अकार्यके विधानमें सबके सिखलाने और रक्षा करनेवाले हैं इस कारण इनको आप भलीभांतिसे पालते पोषते रहिये ॥५५॥ हे नरेश्वर ! आप भरत और लक्ष्मणजीमें जिस प्रकारकी स्नेहबुद्धि रखते हैं, वही बुद्धि सुग्रीव और अंगदके प्रति कीजिये ॥ ५६ ॥ हमने दोष किया है, कहीं यह समझकर ताराको दोष न दिया जाय. हे रामचन्द्रजी ! आप ऐसा कीजिये कि, जिससे शोचनीय उस स्त्रीको सुग्रीव प्रतिपालन करे व निरादर न करे ॥ ५७ ॥ आपके वशमें रहकर आपके चित्तका अनुयायी और आपके अनुग्रहका भाजन

होकर वह वानरराजको, पालनकर सकता है ॥ ५८ ॥ समस्त पृथ्वीको पालन कर सकता और स्वर्गका राज्य भी करनेमें निःसन्देह समर्थ हो सकता है. फिर इस तुच्छ राज्यकी क्या चलाई ? हे श्रीरामचन्द्रजी ! हम इसी लिये तारा करके रोके जानेपर भी आपके हाथसे अपने वधकी वांछा कर ॥ ५९ ॥ भ्राता सुग्रीवके साथ द्वंद्वयुद्ध करने लगे. वानरराज वालि रामचन्द्रजीसे यह कह चुप हो रहा ॥ ६० ॥ तब श्रीरामचन्द्रजी धर्मार्थयुक्त साधु संमत वचनोंसे ज्ञानी वालिको समझाने लगे ॥ ६१ ॥ हे वानरश्रेष्ठ वालि ! हमने गुप्तवधरूप अकार्य किया है, ऐसा तुम कभी मत समझना और ऐसाभी न समझना कि, तुमको हमने इसलिये मारा है कि, तुमने अपने भाईकी स्त्रीको हर लिया है; क्योंकि हम तुमसे अधिक परिशोधित बुद्धिद्वारा धर्म और शास्त्रानुसार

शक्यंदिवंचार्जयितुंवसुधांचापिशासितुम् ॥ त्वत्तोऽहंवधमाकांक्षन्वार्यमाणोऽपितारया ॥५९॥ सुग्रीवेणसहभ्रात्राद्वंद्वयुद्धमुपागतः ॥ इत्युक्त्वावा नरोरामंविरराममहरीश्वरः ॥ ६० ॥ सतमाश्वासयद्रामोवालिनंव्यक्तदर्शनम् ॥ साधुसंमतयावाचाधर्मतत्त्वार्थयुक्तया ॥६१॥ नवयंभवताचिंत्या नाप्यात्माहरिसत्तम ॥ वयंभवद्विशेषेणधर्मतःकृतनिश्चयाः ॥६२॥ दंडयेयःपातयेद्दंडंदंडयोयश्चापिदंडयते ॥ कार्यकारणसिद्धार्थावुभौतौनाव सीदतः ॥६३॥ तद्भवान्दंडसंयोगादस्माद्विगतकल्मषः ॥ गतःस्वांप्रकृतिंधर्म्यांदंडदिष्टेनवर्त्मना ॥६४॥ त्यजशोकंचमोहंचभयंचहृदयेस्थि तम् ॥ त्वयाविधानंहर्यग्र्यनशक्यमतिवर्तितुम् ॥६५॥ यथात्वय्यंगदोनित्यंवर्ततेवानरेश्वर ॥ तथावर्तेतसुग्रीवेमयिचापिनसंशयः ॥ ६६ ॥ सतस्यवाक्यंमधुरंमहात्मनःसमाहितंधर्मपथानुवर्तितत् ॥ निशम्यरामस्यरणावमर्दिनोवचःसुयुक्तंनिजगादवानरः ॥ ६७ ॥

कार्य करते हैं, वस यही बात तुमभी समझो ॥ ६२ ॥ जो पुरुष दंड पाने योग्य जनको दंड देता है, और दंड पाने लायक जन जिस करके दंड पाता है उसकी कार्यसिद्धि और कारणसिद्धि विनाशको नहीं प्राप्त होती ॥ ६३ ॥ इसलिये दण्ड पाकर तुम पापसे छूट गय और दंडसे बताये हुए मार्गद्वारा तुम अपने धर्मसंयुक्त मार्गको प्राप्त होगये ॥ ६४ ॥ हे वानरश्रेष्ठ ! तुम अपने हृदयमें टिकाहुआ शोक और मोह दूर कर दो क्योंकि पहले किये हुए कर्मोंको तुम उल्लंघन करनेमें समर्थ नहीं हो सकते ॥ ६५ ॥ जिस प्रकारसे अंगदमें तुम भाव रखतेथे वही भाव हमारा और सुग्रीवका उसमें रहे, इसमें कुछ संदेह नहीं है, उसकी प्रीति हममें होगी ॥ ६६ ॥ वालि उन महात्मा रणजयी श्रीरामचन्द्रजीके धर्मयुक्त सावधान मधुरवचन सुनकर उनसे बोला ॥ ६७ ॥

हे इन्द्रके समान भीमविक्रम श्रीरामचन्द्रजी ! हमने बाणके आघातसे चेतनारहित और बुद्धिहीन हो जो कुछ दुर्वचन कहा हो सो आप प्रसन्न होकर हमारे इस अपराधको क्षमा कर दीजिये ॥ ६८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायामष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥ बाणसे पीडित हो वानरराज वालि श्रीरामचंद्रजीके हेतुयुक्त वचन सुन फिर कुछ उत्तर न दे सका ॥ १ ॥ एक तो सुग्रीवजीके मारेहुए पत्थरोंकी चोट व वृक्षोंकी चोटसे वालि के अंग छिन्नभिन्न और घायल हो रहेथे तिसपर श्रीरामचन्द्रजीके बाणसे आहत हो दीर्घश्वास लेता हुआ वह मरणान्तमें मोहको प्राप्त हुआ ॥ २ ॥ वालिकी भार्या ताराने रनवासमें यह वार्त्ता सुनी कि, वानरशार्दूल वालि संग्रामस्थलमें श्रीरामचन्द्रजीके चलाये हुए बाणसे मारा गया ॥ ३ ॥ पुत्रके सहित तारा पतिके मारे जानेकी दारुण वार्त्ता सुनकर उद्विग्नचित्त हो गिरिकंदरसे निकलकर किष्किन्धापुरीसे सहसा चली ॥ ४ ॥ अंगदजीके सब जो महाबल रक्षा

शराभितप्तेनविचेतसामयाप्रभाषितस्त्वंयदजानताविभो ॥ इदंमहेंद्रोपमभीमविक्रमप्रसादितस्त्वंक्षममेनरेश्वर ॥ ६८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा० आ० च० सा० कि०अष्टादशःसर्गः ॥ १८ ॥ सवानरमहाराजःशयानःशरपीडितः ॥ प्रत्युक्तोहेतुमद्वाक्यैर्नोत्तरंप्रतिपद्यत ॥ १ ॥ अश्मभिः परिभिन्नांगःपादपैराहतोभृशम् ॥ रामबाणेनचाक्रांतोजीवितांतेमुमोहसः ॥ २ ॥ तंभार्याबाणमोक्षेणरामदत्तेनसंयुगे ॥ हतंप्लवगशार्दूलंतारा शुश्राववालिनम् ॥ ३ ॥ सासपुत्राऽप्रियंश्रुत्वावधभर्तुःसुदारुणम् ॥ निष्पपातभृशंतस्मादुद्विग्नागिरिकंदरात् ॥४॥ येत्वंगदपरीवारावानराहि महाबलाः ॥ तेसकार्मुकमालोक्यरामंत्रस्ताःप्रदुद्रुवुः ॥ ५ ॥ साददर्शततस्त्रस्तान्हरीनापततोद्रुतम् ॥ यूथादिवपरिभ्रष्टान्मृगान्निहतयूथपान् ॥ ६ ॥ तानुवाचसमासाद्यदुःखितान्दुःखितासती ॥ रामवित्रासितान्सर्वाननुबद्धानिवेषुभिः ॥ ७ ॥ वानराराजसिंहस्ययस्ययूयंपुरःसराः ॥ तंविहायसुवित्रस्ताःकस्माद्द्रवतदुर्गताः ॥८॥ राज्यहेतोःसचेद्भ्राताभ्रात्राक्रूरेणपातितः ॥ रामेणप्रसृतैर्दूरान्मार्गणैर्दूरपातिभिः ॥ ९ ॥

करनेवाले थे वह धनुष धारणकिये श्रीरामचन्द्रजीको देख भयके मारे भागने लगे ॥ ५ ॥ फिर ताराने देखा कि निहत यूथपति और यूथसे बिछुडे हुए मृगगणोंकी नाईं वानरगण डरकर भाग रहे हैं ॥ ६ ॥ दुःखिता तारा शरद्वारा शयन करते हुएके समान श्रीरामचन्द्रजी करके त्रासित वालिको देख भागते हुए वानरोंके निकट गमन करके कहने लगी ॥ ७ ॥ हे वानरगण ! तुम लोग जिस राजसिंहके आगे होकर युद्ध करते थे इस समय उसको त्याग चित्तमें भ्रमित हो क्यों भागे जाते हो ? ॥ ८ ॥ राज्यके लिये उन वानरराजके क्रूर भ्राता सुग्रीवजीसे भेजे जाकर श्रीरामचन्द्रजीने दूर खडे हो दूर जानेवाले बाणसे क्या उन वानरराज वालिको मारडाला ? ॥ ९ ॥

कपिकी स्त्रीके वचन सुनकर कामरूपी वानरगण वालिकी स्त्री तारासे कालोचित प्रबोध वचन कहने लगे ॥ १० ॥ हे तारे ! आपका शत्रु अभी जीवित है इसलिये आप लौट जाकर अंगदकी रक्षा और पालन कीजिये काल रामरूप धर वालिको अपने पुरमें लिये जाता है ॥ ११ ॥ वालिके द्वारा छोडे हुए बहुतसारे वृक्ष औ शिलाओंको व्यर्थ करके श्रीरामचन्द्रजीने इन्द्रके समान वालिको वज्रतुल्य बाणके प्रहारसे मारडाला ॥ १२ ॥ हे वानरराजप्रिये ! जब इन्द्रसमान वह वानरराज वालि मारे गये तब यह समस्त वानरगण श्रीरामचन्द्रजीके बलसे भीत होकर चारोंओरको भागते हैं ॥ १३ ॥ इस समय आप वीरगणोंसे नगर की रक्षा करके अंगदको राज्यसिंहासन पर बैठा दीजिये जब वह राज्यपर बैठ जायँगे तो सब वानरगण इन वालिपुत्रकी सेवा करेंगे

कपिपत्न्यावचःश्रुत्वाकपयःकामरूपिणः ॥ प्राप्तकालमविश्लिष्टमूचुर्वचनमंगनाम् ॥ १० ॥ जीवपुत्रेनिवर्तस्वपुत्रंरक्षस्वचांगदम् ॥ अंतकोरामरूपेणहत्वानयतिवालिनम् ॥ ११ ॥ क्षिप्रान्वृक्षान्समाविध्यविपुलाश्चतथाशिलाः ॥ वालीवज्रसमैर्बाणैर्वज्रेणेवनिपातितः ॥ १२ ॥ अभिभूतमिदंसर्वंविद्रुतंवानरंबलम् ॥ अस्मिन्प्लवगशार्दूलेहतेशक्रसमप्रभे ॥ १३ ॥ रक्ष्यतांनगरीशूरैरंगदश्चाभिषिच्यताम् ॥ पदस्थंवालिनःपुत्रंभजिष्यंतिप्लवंगमाः ॥ १४ ॥ अथवारुचितंस्थानमिहतेरुचिरानने ॥ अविशंतिचदुर्गाणिक्षिप्रमद्यैववानराः ॥ १५॥ अभार्याःसहभार्याश्चसंत्यत्रवनचारिणः ॥ लुब्धेभ्योविप्रलब्धेभ्यस्तेभ्योनःसुमहद्भयम् ॥१६॥ अल्पांतरगतानांतुश्रुत्वावचनमंगना ॥ आत्मनःप्रतिरूपंसाबभाषेचारुहासिनी ॥ १७ ॥ पुत्रेणममकिंकार्यंराज्येनापिकिमात्मना ॥ कपिसिंहेमहाभागेतस्मिन्भर्तरिनश्यति ॥१८॥ पादमूलंगमिष्यामितस्यैवाहंमहात्मनः ॥ योऽसौरामप्रयुक्तेनशरेणविनिपातितः ॥ १९ ॥

॥ १४ ॥ हे सुमुखी ! अथवा यह स्थान तुमको अच्छा लगेगा तो सुग्रीवादि वानरगण शीघ्रतासे इस स्थानमें और किले आदिकमें प्रवेश करेंगे ॥ १५ ॥ जब यह लोग किलेमें चले जायँगे; तो भार्याहीन भार्यासहित टिके हुए जो वनचारी वानरगण इस स्थानमें टिके हैं उनको सुग्रीवादि वानरगणोंसे महाभय प्राप्त होगा क्योंकि इन लोगोंने पहले सुग्रीवादिसे बडाछल किया है ॥ १६ ॥ चारुहासिनी तारा थोडी दूर खडे हुए वानरोंके वचन श्रवण करके अपने योग्य वचन उनसे कहने लगी ॥ १७ ॥ उन महाभाग कपिश्रेष्ठ हमारे पतिके मरजानेसे हमको पुत्र, राज्य व जीवनसे क्या प्रयोजन है ? ॥ १८ ॥ जो हमारे पति श्रीरामचन्द्रजीके छोडे हुए बाणसे मारे गये हैं, हम उन्हीं महात्माके चरणकमलकी शरणमें गमन करेंगी ॥ १९ ॥

यह कहकर शोकसे विह्वल हुई तारा रोते २ दौड दुःखके मारे दोनों हाथोंसे शिर और छातीको पीटने लगी ॥ २० ॥ उस सतीने शीघ्रतासे चलकर पृथ्वीपर पडेहुए अपने पतिको देखा. कैसा कि जो संग्राममेंसे न भोगनेवाले, वानरोंकोही मारनेवाले थे ॥ २१ ॥ तथा जो वज्र चलानेवाले इन्द्रके समान, पर्वतसमूहोंको उखाडकर फेंकनेवाले व महाप्रचंड पवनयुक्त महामेघके समान घोर शब्द करनेवाले थे ॥ २२ ॥ जो इन्द्रतुल्य पराक्रमवान्, वृष्टिके बाद तेजरहित हुए मेघके समान, शूर, भयंकर गर्जन करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीसे गिराये ॥ २३ ॥ वा मांसके लिये व्याघ्रके द्वारा मारे हुए हाथीके समान थे ॥ २४ ॥ और सर्वलोकसे पूजित पताकासहित वैदिक मंत्रसे अर्चित अंतरमें भुजंगयुक्त बमईको सर्पके निमित्त गरुडने जैसे उन्मथित किया हो ऐसे विध्वंसित

एवमुक्त्वाप्रदुद्रावरुदतीशोकमूर्च्छिता ॥ शिरश्चोरश्चबाहुभ्यांदुःखेनसमभिघ्नती ॥२०॥ साव्रजंतीददर्शाथपतिंनिपतितंभुवि ॥ हंतारंवानरेंद्राणांसमरेष्वनिवर्तिनाम् ॥ २१ ॥ क्षेप्तारंपर्वतेंद्राणांवज्राणामिववासवम् ॥ महावातसमाविष्टंमहामेघौघनिःस्वनम् ॥२२॥ शक्रतुल्यपराक्रांतंदृष्ट्वेवोपरतंघनम् ॥ नर्दंतंनर्दतांभीमंशूरंशूरेणपातितम् ॥ २३ ॥ शार्दूलेनामिषस्यार्थेमृगराजमिवाहतम् ॥ २४ ॥ अर्चितंसर्वलोकस्यसपताकंसवेदिकम् ॥ नागहेतोःसुपर्णेनचैत्यमुन्मथितंयथा ॥ २५ ॥ अवष्टभ्यावतिष्ठंतंददर्शधनुरूर्जितम् ॥ रामंरामानुजंचैवभर्तुश्चैवतथानुजम् ॥ २६ ॥ तानतीत्यसमासाद्यभर्तारंनिहतंरणे ॥ समीक्ष्यव्यथिताभूमौसभ्रांतानिपपातह ॥ २७ ॥ सुप्तेवपुनरुत्थायआर्यपुत्रेतिवादिनी ॥ रुरोदसापतिंदृष्ट्वासंवीतंमृत्युदामभिः ॥२८॥ तामवेक्ष्यतुसुग्रीवःशोचतींकुररीमिव ॥ विषादमगमत्कष्टंदृष्ट्वाचांगदमागतम् ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० किष्किंधाकांडे एकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥

देवालयके समान दुर्दशाग्रस्त वालिको दूरही से देखा ॥ २५ ॥ और भूमिमें खडे महाधनुष चढाये श्रीरामचन्द्रजीके सहित लक्ष्मण और अपने पतिके छोटे भाई सुग्रीवको ताराने देखा ॥ २६ ॥ इन सबको लांघ रणस्थलमें गिरे हुए अपने स्वामीको देखकर व्यथित और उद्विग्न हो तारा गिर पडी ॥ २७ ॥ फिर तारा सोती हुईके समान उठकर "हा आर्यपुत्र !" ऐसा कह पतिको मृत्युके पाशसे बँधा देख रोने लगी ॥ २८ ॥ सुग्रीवजी कुररीकी समान रोती हुई ताराको और उसके पुत्र अंगदको देख विषादके मारे दुःख समुद्रमें डूब गये ॥ २९ ॥ इ० श्रीमद्रा० वा० आ० कात्यायनकुमारपंडितज्वालाप्रसादमिश्र कृत भाषायां किष्किन्धाकांडे एकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥

जब चन्द्रवदनी ताराने श्रीरामचन्द्रके धनुषसे छूटे प्राणविनाशी बाणसे मरे हुए अपने पतिको देखा ॥ १ ॥ तब वह वालिके निकट जाकर बाणसे हत हुए उस कुंजरके समान गिरे हुयेसे लिपट भलीभांति मिली ॥ २ ॥ फिर पर्वतके समान दीप्तिमान पडे हुए वृक्षकी नाईं वालिको देखकर शोक और सन्तप्त हृदयसे तारा विलाप करने लगी ॥ ३ ॥ हे दारुण विक्रम ! वानरश्रेष्ठ वीरवर ! इस समय हम आपके आगे खडी हैं सो तुम हमसे क्यों नहीं बोलते हो ? ॥ ४ ॥ हे वानरश्रेष्ठ ! उठकर उत्तम सेजपर शयन करो आप सरीखे नृपश्रेष्ठ इसप्रकार पृथ्वीके ऊपर शयन नहीं करते हैं ॥ ५ ॥ हे वसुधाधिप ! यह पृथ्वी तुमको अत्यन्त प्यारी है; क्योंकि हमको छोडकर मरे, हुए भी तुम शरीरसे पृथ्वीको चिपटाये हुए हो ॥ ६ ॥ हे वीर ! हम जानगई कि, तुम

रामचापविसृष्टेनशरेणांतकरेणतम् ॥ दृष्ट्वाविनिहतंभूमौताराताराधिपानना ॥ १ ॥ सासमासाद्यभर्तारंपर्यष्वजतभामिनी ॥ इषुणाभिहतंदृष्ट्वा वालिनंकुंजरोपमम् ॥ २ ॥ वानरंपर्वतेंद्राभंशोकसंतप्तमानसा ॥ तारातरुमिवोन्मूलंपर्यदेवयतातुरा ॥ ३ ॥ रणेदारुणविक्रांतप्रवीरप्लवतांवर ॥ किमिदानींपुरोभागामद्यत्वंनाभिभाषसे ॥ ४ ॥ उत्तिष्ठहरिशार्दूलभजस्वशयनोत्तमम् ॥ नैवंविधाःशेरतेहिभूमौनृपतिसत्तमाः ॥ ५ ॥ अतीवखलुतेकांतावसुधावसुधाधिप ॥ गतासुरपितांगात्रैर्मांविहायनिषेवसे ॥६॥ व्यक्तमद्यत्वयावीरधर्मतःसंप्रवर्तता ॥ किष्किंधेवपुरीरम्या स्वर्गमार्गेविनिर्मिता ॥ ७ ॥ यान्यस्माभिस्त्वयासार्धंवनेषुमधुगंधिषु ॥ विहृतानित्वयाकालेतेषामुपरमः कृतः ॥ ८ ॥ निरानंदानिराशाऽहंनिमग्नाशोकसागरे ॥ त्वयिपंचत्वमापन्नेमहायूथपयूथपे ॥९॥ हृदयंसुस्थितंमह्यंदृष्ट्वानिपतितंभुवि ॥ यन्नशोकाभिसंतप्तंस्फुटतेऽद्यसहस्रधा ॥ १० ॥ सुग्रीवस्यत्वयाभार्याहृतासचविवासितः ॥ यत्तत्तस्यत्वयाव्युष्टिःप्राप्तेयंप्लवगाधिप ॥ ११ ॥ निःश्रेयसपरामोहात्त्वयाचाहंविगर्हिता ॥ यैषाब्रुवंहितंवाक्यंवानरेंद्रहितैषिणी ॥ १२ ॥

यहां धर्म और शास्त्रके अनुसार ही चलतेथे इससे स्वर्गके रास्तेमें कोई दूसरी अतिरमणीक पुरी किष्किन्धा नगरीके तुल्य तुमने बनाली है ॥ ७ ॥ हमने वसंतके समयमें जो विहार सुगंधित वनोंमें आपके साथ किये हैं, उन सबको आपने शेष कर दिया ॥ ८ ॥ हे यूथपोंके नाथ ! आपके मर जानेसे हम निरानन्द और निराश होकर शोकसागरमें डूबी ॥ ९ ॥ हमारा हृदय बडा कठिन है जो आपको पृथ्वीपर पडे देखकरभी मारे शोकके संतापित हो विदीर्ण होकर सहस्र खण्ड नहीं होजाता ॥ १० ॥ हे वानरनाथ ! आपने सुग्रीवकी स्त्रीको हरण करके उनको जो राज्यसे निकाल दिया आज उसी कार्यका यह फल प्राप्त हुआ ॥ ११ ॥ हे वानरश्रेष्ठ ! हमने आपकी कुशलकी वांछाकर और हितैषिणी हो जो हितकारी वचन कहेथे सो आपने न मान

कर हमारी निन्दा की थी ॥ १२ ॥ हे आर्य ! इस समय हम समझती हैं कि, आप रूपयौवनसंपन्न अनुकूल नायिका अप्सरागणोंके चित्त मथोगे इसमें कुछ संदेह नहीं ॥१३॥ हे वीर ! हमने निश्चय जाना कि, जीवनका अन्त करनेवाला काल निश्चय है, क्योंकि स्वयं अवश होकर भी सुग्रीवके वशकरके कालने तुम्हारे प्राण हरण कर लिये हैं ॥ १४ ॥ यद्यपि तुम सुग्रीवके साथ युद्ध करनेमें लगरहेथे तथापि काकुत्स्थकुलतिलकजीने अधर्मका अनुसरण करके तुम्हारा वध किया और इसपर भी वह नहीं पछताते ॥ १५ ॥ इससे पहले हमने कभी कोईदुःख नहीं पाया है सो इस समय हम अत्यन्त दीन अनाथ व कृपाके योग्य हो शोकसंतापित हृदयसे वैधव्य यंत्रणाका भोग करेंगी, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ १६ ॥ हे वत्स अंगद ! तुम्हारे कनिष्ठ तात सुग्रीव इस समय क्रोधसे मूर्छित होरहे हैं हम नहीं कह सकती कि, तुम कुमार उन सुग्रीवसे सुखके योग्य होकर किस प्रकारकी दुरव

रूपयौवनदृप्तानांदक्षिणानांचमानद ॥ नूनमप्सरसामार्यचित्तानिप्रमथिष्यसि ॥ १३ ॥ कालोनिःसंशयोनूनंजीवितांतकरस्तव ॥ बलाद्येना वपन्नोऽसिसुग्रीवस्यावशोवशी ॥१४॥ अस्थानेवालिनंहत्वायुध्यमानंवरेणच ॥ नसंतप्यतिकाकुत्स्थःकृत्वाकर्मसुगर्हितम् ॥१५॥ वैधव्यशो कसंतापंकृपणाकृपणासती॥अदुःखोपचितापूर्ववर्तयिष्याम्यनाथवत् ॥१६॥ लालितश्चांगदोवीरःसुकुमारःसुखोचितः ॥ वत्स्यतेकामवस्थांमे पितृव्येक्रोधमूर्च्छिते ॥ १७ ॥ कुरुष्वपितरंपुत्रसुदृष्टंधर्मवत्सलम् ॥ दुर्लभंदर्शनंतस्यतववत्सभविष्यति॥१८॥ समाश्वासयपुत्रंत्वंसंदेशंसं दिशस्वमे ॥ मूर्ध्निचैनंसमाघ्रायप्रवासंप्रस्थितोह्यसि ॥ १९ ॥ रामेणहिमहत्कर्मकृतंत्वामभिनिघ्नता ॥ आनृण्यंतुगतंतस्यसुग्रीवस्यप्रतिश्रवे ॥ २० ॥ सकामोभवसुग्रीवरुमांत्वंप्रतिपत्स्यसे ॥ भुंक्ष्वराज्यमनुद्विग्नःशस्तोभ्रातारिपुस्तव ॥२१॥ किंमामेवंप्रलपतींप्रियांत्वंनाभिभाषसे ॥ इमाःपश्यवराबह्वीर्भार्यास्तेनवानरेश्वर ॥ २२ ॥

स्थाको भोगोगे ॥ १७ ॥ हे वत्स पुत्र ! इस समय तुम अपने धर्मवत्सल पिताको भली भांतिसे देखलो; क्योंकि इस समयसे उनका दर्शन महादुर्लभ हो जायगा ॥ १८ ॥ हे नाथ ! हे वीरश्रेष्ठ ! इस समय तुम सदाके लिये परदेशको जातेहो, इसलिये इस अपने पुत्रको समझाते बुझाते जाओ और हमारे प्रति कुछ आज्ञा करके पुत्रका मस्तक सूंघिये ! ॥ १९ ॥ तुम्हें मारकर श्रीरामचन्द्रजीने बडा भारी कर्म किया, वह ऐसा करके उस प्रतिज्ञासे उऋण हुये जो उन्होंने सुग्रीवके साथ की थी ॥२०॥ हे सुग्रीव ! तुम्हारे शत्रु भ्राता अब मारे गये, इस समय तुम सफल मनोरथ हो रुमाको प्राप्त करो, और उद्विग्नता छोडकर राज्य भोगो ॥ २१ ॥ हे वानरेश्वर ! हम आपकी प्रिय भार्या आपके सन्मुखही रोदन कर रही हैं, सो तुम हमसे क्यों नहीं बोलते ? यह देखिये

तुम्हारी और भी बहुतसारी स्त्रियां यहां आकर विलाप कर रही हैं ॥ २२ ॥ वे वानरी ताराके इस भांति विलाप कलाप सुन और दूसरी वानरियें अंगदको ग्रहण कर दीन व दुःखित हो रोदन करने लगीं ॥ २३ ॥ हे अङ्गदधारिन् वीरवर ! इस गुणयुक्त सुन्दर बाजूबन्दवाले प्रिय पुत्र अंगदको परित्याग करके तुम सदाके लिये विदेश जातेहो, सो यह अत्यन्त अनुचित कर्म होता है ॥२४॥ हे महाबाहो ? यदि हमने कोई अपराध किया हो, तो उसका विचार करके क्षमा कर दीजिये । हे वानरवंशनाथ ! देखिये, हम अपना शिर तुम्हारे चरणोंपर धरती हैं ॥ २५ ॥ निन्दा रहित ताराने सब वानरियोंके सहित करुणाके वचन कह विलाप कर वालिके निकटही बैठ मरणव्रत ग्रहण कर प्राण त्यागनेका निश्चय किया ॥२६॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायां

तस्याविलपितं श्रुत्वावानर्यःसर्वतश्चताः ॥ परिगृह्यांगदंदीनादुःखार्ताःप्रतिचुक्रुशुः ॥२३॥ किमंगदंसांगदवीरबाहोविहाययातोऽसिचिरंप्रवासम् ॥ नयुक्तमेवंगुणसंनिकृष्टंविहायपुत्रंप्रियचारुवेषम् ॥ २४ ॥ यद्यप्रियंकिंचिदसंप्रधार्यकृतंमयास्यात्तव दीर्घबाहो ॥ क्षमस्वमेतद्धरिवंशनाथव्रजामिमूर्ध्नातववीरपादौ ॥ २५ ॥ तथातुताराकरुणरुदंतीभर्तुःसमीपेसहवानरीभिः ॥ व्यवस्यतप्रायमनिंद्यवर्णाउपोपवेष्टुंभुवियत्रवाली॥ ॥ २६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० किष्किंधाकांडे विंशः सर्गः ॥ २० ॥ ततोनिपतितांतारांच्युतांतारामिवाम्बरात् ॥ शनैराश्वासयामासहनूमान्हरियूथपः ॥ १ ॥ गुणदोषकृतंजंतुःस्वकर्मफलहेतुकम् ॥ अव्यग्रस्तदवाप्नोतिसर्वंप्रेत्यशुभाशुभम् ॥ २ ॥ शोच्याशोचसिकंशोच्यंदीनंदीनानुकंपसे ॥ कश्चकस्यानुशोच्योऽस्तिदेहेस्मिन्बुद्बुदोपमे ॥ ३ ॥ अंगदस्तुकुमारोऽयंद्रष्टव्योजीवपुत्रया ॥ आयत्यांचविधेयानिसमर्थान्यस्यचिंतया ॥ ४ ॥

विंशतितमः सर्गः ॥२०॥ फिर आकाशसे गिरे तारेके समान ताराको पृथ्वीपर पडी हुई देख कर वानरयूथपति हनुमान् जीउसको धीरे धीरे समझाने बुझाने लगे ॥१॥ समस्त जीव जन्तुगण मरणके अनंतर अपने कर्मके हेतु शमादिगुण और रागादि दोष कृतकार्य करके परलोकमें बलात्कार शुभ वा अशुभ फलकी प्राप्ति करते हैं ॥२॥ तुम भी पापपुण्यरूपी कर्मकी फांसीसे बँधीहुई हो,इसलिये स्वयं शोचेजानेके योग्य होकर भी तुम किसके लिये शोक करती हो?और कर्मानुसार फल पाय दीन हो किस दीनके ऊपर दया कर रही हो, इस पानीके बबूलेके तुल्य देहका कौन शोच करती हो ? सो तुम हमें बताओ ॥ ३ ॥ यह तुम्हारे पुत्र कुमार अंगद जीवित हैं; तुम अपने स्वामी वालिकी परलोकके लिये उचित क्रियाका यत्न करो ॥ ४ ॥

प्राणियोंकी सद्गति कुछ नियत नहीं है इसलिये इस लोकमें लौकिक शुभ कर्मोंको किया करते हैं ॥ ५ ॥ जिस वानरेन्द्रके जीवन समयसे शत २ सहस्र २ वा अर्बुद वानर इनकी आशा बांधकर जीवन धारण करते थे यह वही वानरश्रेष्ठ इस समय काल कवलमें पतित होगये हैं ॥ ६ ॥ जब कि, यह नीतिशास्त्रद्वारा राजकार्य देख कर साम दान क्षमादि परायण होकर धर्मजितों के मार्गको प्राप्त हुऐ,तुम फिर इनके लिये शोक क्यों करतीहो ? ॥७॥ हे निन्दारहित चरितवाली! समस्त वानरगण तुम्हारे पुत्र अंगद और वानरपतिका समस्त राज्य तुम्हारे ही वशमें होगा इसमें कुछभी सन्देह नहीं है॥८॥इस लिये इन शोकसे संतापित अंगदजीको और सुग्रीवजीको कुछआज्ञा दीजिये, तुम करके प्रेरित हो यह अगद यहांका राज्य करें ॥९॥ यह अंगद पुत्र तुम्हारा विद्यमान है; इसलिये तुम शोक न करो

जानास्यनियताचमेवंभूतानामागतिंगतिम् ॥ तस्माच्छुभंहिकर्तव्यंपंडितेनेहलौकिकम् ॥ ५ ॥ यस्मिन्हरिसहस्राणिशतानिनियुतानिच ॥ वर्तयंतिकृताशानिसोऽयंदिष्टान्तमागतः ॥ ६ ॥ यदयंन्यायदृष्टार्थःसामदानक्षमापरः ॥ गतोधर्मजितांभूमिंनैनंशोचितुमर्हसि ॥ ७ ॥ सर्वेचहरिशार्दूलाःपुत्रश्चायंतवांगदः ॥ हर्यृक्षपतिराज्यंचत्वत्सनाथमनिंदिते ॥ ८ ॥ ताविमौशोकसंतप्तौशनैःप्रेरयभामिनि ॥ त्वयापरिगृहीतोऽयमंगदःशास्तुमेदिनीम् ॥ ९ ॥ संततिश्चयथादृष्टाकृत्यंयच्चापिसांप्रतम् ॥ राज्ञस्तत्क्रियतांसर्वमेषकालस्यनिश्चयः ॥ १० ॥ संस्कार्योहरिराजस्तुअंगदश्चाभिषिच्यताम् ॥ सिंहासनगतंपुत्रंपश्यंतीशांतिमेष्यसि ॥ ११ ॥ सातस्यवचनंश्रुत्वाभर्तृव्यसनपीडिता ॥ अब्रवीदुत्तरंताराहनूमंतमवस्थितम् ॥ १२ ॥ अंगदप्रतिरूपाणांपुत्राणामेकतःशतम् ॥ हतस्याप्यस्यवीरस्यगात्रसंश्लेषणंवरम् ॥ १३ ॥ नचाहंहरिराज्यस्यप्रभावम्यंगदस्यवा ॥ पितृव्यस्तस्यसुग्रीवःसर्वकार्येष्वनंतरः ॥ १४ ॥

और वालिकी समस्त क्रिया इन अगदजीको करनी चाहिये,क्योंकि इस समय इन सब कर्मोंका करनाही ठीक २होगा॥१०॥वानरराज वालिका अग्निसंस्कार करके अंगदका राज्याभिषेक कीजिये. इसमें कुछ सन्देह नहीं है, कि जब आप अपने पुत्रको सिंहासन पर बैठे देखेंगी तब अवश्यही शान्ति प्राप्त करेंगी ॥ ११ ॥ हनुमानूजीके यह वचन सुनकर स्वामीके मरणसे अति दुःखित तारा वहां खडे हुए हनुमानूजीसे बोली कि ॥ १२ ॥ अगदके समान शतपुत्रोंसे अधिक इन गतप्राण वीरश्रेष्ठ हमारे स्वामीके शरीरको आलिंगन देना निःसन्देह हमारे लिये श्रेष्ठ है ॥१३॥ स्त्री होनेके कारणसे हम सुग्रीव या अंगदजीकी स्वामिनी अथवा राज्य योग्य नहीं हो सकतीं. इस हमारे स्वामीके पीछे अंगदके कनिष्ठ तात सुग्रीवही समस्त राज्यकार्यके स्वामी होंगे ॥ १४ ॥

हे हनुमन् ! हम अंगदको राज्यपर अभिषिक्त करें इस प्रकारकी बुद्धि करना कदापि कर्तव्य नहीं है, क्योंकि पिताही पुत्रका बन्धु है. माता बन्धु नहीं हो सकती ॥ १५ ॥ वानरराज स्वामीके आश्रय बिना इस लोक वा परलोकमें हमारा मंगलकर और कुछ भी नहीं है. इन सन्मुख खडे हुए निहत वीरकरके सेवित इस शय्याकी सेवा करना अर्थात् मरनाही हमारे लिये निःसन्देह अतिश्रेयस्कर है ॥ १६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्वा० वा० आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायामेकविंशः सर्गः ॥२१॥ मृत्यु सेजपर पडे हुये वालिने चारों ओर निहारते २ मंद २ श्वास ले अंगदके आगे खड़े हुये सुग्रीवजीको देखा ॥१॥ वाली विजय प्राप्त किये उन वानरवर सुग्रीवजीसे स्नेहसहित यह स्पष्टवचन बोला कि ॥२॥ हे सुग्रीव ! पहले किये हुये रोषके कारण इस समय वा आगेको भी हमारे प्रति दोषबुद्धिका

नह्येषाबुद्धिरास्थेयाहनूमन्नंगदंप्रति ॥ पिताहिबंधुपुत्रस्यनमाताहरिसत्तम ॥१५॥ नहिममहरिराजसंश्रयात्क्षमतरमस्तितपरत्रचेहवा ॥ अभिमुखहतवीरसेवितंशयनमिदंममसेवितुंक्षमम् ॥१६॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० किष्किंधाकांडे एकविंशः सर्गः ॥२१॥ वीक्ष्यमाणस्तुमंदासुःसर्वतोमंदमुच्छ्वसन् ॥ आदावेवतुसुग्रीवंददर्शानुजमग्रतः ॥१॥ तंप्राप्तविजयंवालीसुग्रीवंप्लवगेश्वरम् ॥ आभाष्यव्यक्तयावाचासस्नेहमिदमब्रवीत् ॥२॥ सुग्रीवदोषेणनमांगंतुमर्हसिकिल्बिषात् ॥ कृष्यमाणंभविष्येणबुद्धिमोहेनमांबलात् ॥३॥ युगपद्विहितंतातनमन्येसुखमावयोः ॥ सौहार्दंभ्रातृयुक्तंहितदिदंजातमन्यथा ॥४॥ प्रतिपद्यत्वमद्यैवराज्यमेषांवनौकसाम् ॥ मामप्यद्यवगच्छंतंविद्धिवैवस्वतक्षयम् ॥ ५ ॥ जीवितंचहिराज्यंचश्रियंचविपुलांतथा ॥ प्रजहाम्येषवैतुर्णमहंचागर्हितंयशः ॥६॥ अस्यांत्वहमवस्थायांवीरवक्ष्यामियद्वचः ॥ यद्यप्यसुकरंराजन्कर्तुमेवत्वमर्हसि ॥ ७ ॥ सुखार्हंसुखसंवृद्धंबालमेनमबालिशम् ॥ बाष्पपूर्णमुखंपश्यभूमौपतितमंगदम् ॥ ८ ॥

तुम परित्याग करदेना ॥३॥ हम दोनों भाइयोंमें एकवार ही भायपनका सुख और राज्यसुख नहीं रहा, वरन् इसके विपरीत वैरभाव रहा, विधाताने राज्य सुख हम तुमको एक साथ भोगना नहीं लिखा था ॥ ४ ॥ तुम इस समय इन वनवासी लोगोंके राजा होवो और हम इस समय यमपुरको जाते हैं इसमें अब कुछ विलम्ब नहीं है ॥ ५ ॥ हम इस समय जीवन; राज्य, विपुल राज्यलक्ष्मी और अनिंदित यश समस्तही परित्याग करते हैं ॥ ६ ॥ हे वीर ! हम इस मरणावस्थामें जो कुछ कहते हैं वह दुष्कर होनेसे भी तुमको अवश्य करना चाहिये क्योंकि ऐसे समयकी बात सब कोई मानते हैं ॥ ७ ॥ सुखके योग्य और सुखसेही पालनकर बड़े हुये बुद्धिमान् बालक अंगदके मुखको देखो कि जो रोता हुआ पृथ्वीपर पडा है ॥ ८ ॥

सो हमारे प्राणोंसे भी अधिक प्यारे गुणवान् इस पुत्रको अपने पुत्रके समान पालन करना, जिस प्रकार हम इसके समस्त प्रयोजन सिद्ध करतेथे वैसेही अब तुम करते रहना ॥ ९ ॥ हे वानरेश्वर ! जैसे हम प्रथम इसके सब प्रकारसे पिता; दाता, परित्राता, रक्षक और भयमें अभय देनेवाले थे; वैसेही इस समय तुम हो कारण कि पिता और पितृव्य समानही हैं ॥ १० ॥ तुम्हारे तुल्य पराक्रमवान् वह श्रीमान् ताराकुमार अंगद राक्षसों के वध करनेके समय तुम्हारे आगे २ चलेगा ॥ ११ ॥ यह तेजस्वी युवा तारापुत्र बलवान् अंगद रणमें विक्रम प्रगट करके हमारे ही समान समस्त कार्य करेगा ॥ १२ ॥ यह सुषेणकी पुत्री यह तारा सूक्ष्मार्थ के निर्णय करने वा अनेक प्रकारके उत्पाती कामोंका विचार करनेमें बडी निपुण है

भयेष्वभयदश्चैवयथाऽहंप्लवगेश्वर ॥ १० ॥ एषातारात्मजःश्रीमांस्त्वयातुल्यपराक्रमः ॥ रक्षसांचवधेतेषामग्रतस्तेभविष्यति ॥ ११ ॥ अनुरूपाणिकर्माणिविक्रम्यबलवान्रणे ॥ करिष्यत्येषतारेयस्तेजस्वीतरुणोऽंगदः ॥ १२ ॥ सुषेणदुहिताचेयमर्थसूक्ष्मविनिश्चये ॥ औत्पातिकेचविविधेसर्वतःपरिनिष्ठिता ॥ १३ ॥ यदेषासाध्वितिब्रूयात्कार्यंतन्मुक्तसंशयम् ॥ नहितारामतंकिंचिदन्यथापरिवर्तते ॥ १४ ॥ राघवस्यशतेकार्यंकर्तव्यमविशंकया ॥ स्यादधर्मोह्यकरणेत्वांचहिंस्यादमानितः ॥ १५ ॥ इमांचमालामाधत्स्वदिव्यांसुग्रीवकांचनीम् ॥ उदाराश्रीःस्थिताह्यस्यासम्प्रजह्यान्मृतेमयि ॥ १६ ॥ इत्येवमुक्तःसुग्रीवोवालिनाभ्रातृसौहृदात् ॥ हर्षंत्यक्त्वापुनर्दीनोग्रहग्रस्तइवोडुराट् ॥ १७ ॥ तद्वालिवचनाच्छांतःकुर्वन्युक्तमतंद्रितः ॥ जग्राहसोऽभ्यनुज्ञातीमालांतांचैवकांचनीम् ॥ १८ ॥

ममप्राणैःप्रियतरंपुत्रंपुत्रमिवौरसम् ॥ मयाहीनमहीनार्थं सर्वतःपरिपालय ॥ ९ ॥ त्वमप्यस्यपितादातापरित्राताचसर्वशः ॥

॥ १३ ॥ यह साध्वी यह अच्छा है यह बुरा है इत्यादि जो कुछ कहे, उसको तुम संशयरहित होकर करना, देखो ! इस ताराकी सम्मति कभी अन्यथा नहीं हो सकती ॥ १४ ॥ तुम निःशंकचित्त होकर श्रीरामचन्द्रजीके कार्यकी साधना करना यदि न करोगे तो अधर्म होगा, तब अपनी अपमानता और धर्मभ्रष्ट होने से यह रामचन्द्रजी तुमको मारही डालेंगे ॥ १५ ॥ हे सुग्रीव ! यह दिव्यकाञ्चनीय माला तुम पहरलो, क्योंकि इसमें अति उत्तम विजय लक्ष्मी वास करती है, सो हम मरे हुये भी इस मालाको पहरे रहेंगे तो इसकी श्री जाती रहेगी, इस कारण तुम इसको अभी धारण करलो ॥ १६ ॥ जब वालिने भायपनके मारे स्नेह युक्त हो ऐसा कहा तब सुग्रीवजी हर्ष परित्याग करके राहुसे ग्रसेहुये चन्द्रमाके समान मलीन मूर्ति होगये ॥ १७ ॥ सुग्रीवजीने

स्थिर चित्तसे वालिके कहेहुये वचनोंके अनुसार कार्य कर उसकी आज्ञा लेकर वह काञ्चनीमाला पहरली ॥ १८ ॥ मृत्युके निकट पहुँचा वालि वह काञ्चनी माला सुग्रीव को दे आगे खडे हुए अपने पुत्र अंगदसे स्नेहके वश हो कहने लगा ॥ १९ ॥ तुम प्रिय व अप्रिय वचन सहते, देशकाल के अनुसार सुख दुःख भुगतते इन सुग्रीवके वश होवो ॥ २० ॥ हे महाबाहो ! पहले हम जिस प्रकार तुम्हारे अपराध करनेपरभी तुम्हारा लालन पालन करते थे, सो यदि अबभी वैसेही अपराध करोगे तो सुग्रीव तुमको अधिक प्यार नहीं करेंगे इसलिये सब भांतिसे सुग्रीवजीकी सेवा करना ॥ २१ ॥ हे अरिन्दम ! तुम इनके अमित्र वा शत्रुके साथ न मिलना. सुग्रीवही तुम्हारे ईश्वर और पालन कर्त्ता हैं तुम शांत हो वशमें रहना ॥ २२ ॥ अब तुम इनसे अति स्नेह न करना और न शत्रुता क्योंकि यह दोनोंही महादोषकी खानि हैं, इसलिये इन दोनोंके मध्यमें होकर तुम चलते रहना ॥ २३ ॥ इस प्रकार कहते

तांमालांकांचनींदत्त्वादृष्ट्वाचैवात्मजंस्थितम् ॥ संसिद्धःप्रेत्यभावायस्नेहादंगदमब्रवीत् ॥ १९ ॥ देशकालौभजस्वाद्यक्षममाणःप्रियाप्रिये ॥ सुखदुःखसहःकालेसुग्रीववशगोभव ॥ २० ॥ यथाहित्वंमहाबाहोलालितःसततंमया ॥ नतथावर्तमानंत्वांसुग्रीवोबहुमन्यते ॥२१॥ नास्यामित्रैर्गतंगच्छेर्मांशत्रुभिररिंदम ॥ भर्तुरर्थपरोदांतःसुग्रीववशगोभव ॥२२॥ नचातिप्रणयःकार्यःकर्तव्योऽप्रणयश्चते ॥ उभयंहिमहादोषं तस्मादंतरदृग्भव ॥२३॥ इत्युक्त्वाथविवृत्ताक्षःशरसंपीडितोभृशम् ॥ विवृतैर्दशनैर्भीमैर्बभूवोत्क्रांतजीवितः ॥२४॥ ततोविचुक्रुशुस्तत्रवानराहतयूथपाः॥ परिदेवयमानास्तेसर्वेप्लवगसत्तमा ॥ २५ ॥ किष्किंधाह्यद्यशून्याचस्वर्गतेवानरेश्वरे ॥ उद्यानानिचशून्यानिपर्वताःकाननानिच ॥ २६ ॥ हतेप्लवगशार्दूलेनिष्प्रभावानराःकृताः ॥ येनदत्तंमहद्युद्धंगंधर्वस्यमहात्मनः ॥२७॥ गोलभस्यमहाबाहोर्दशवर्षाणिपंचच ॥ नैवरात्रौनदिवसे तद्युद्धमुपश्याम्यति ॥ २८ ॥ ततःषोडशमेवर्षेगोलभोविनिपातितः ॥ तंहत्वादुर्विनीतंतुवालीदंष्ट्राकरालवान् ॥ २९ ॥

हुये बाणसे पीडित वालिके नेत्र दांत घूमने और निकलकर भयंकराकार होगये और उसका प्राणवायु निकल गया ॥ २४ ॥ फिर समस्त वानर और वानरपतिगण ऊंचे स्वरसे विलाप और परिताप करने लगे ॥२५॥ जब वानर नाथ वालि स्वर्गको चला गया तब किष्किन्धानगरी और वहांकी समस्त फूलवाडियां वन पर्वत सूने होगये ॥ २६ ॥ वानरश्रेष्ठ गन्धर्वगणोंका पराजय करनेवाला वालि महात्मा जब मारा गया तब समस्त वानरगण प्रभाहीन होगये जिस महात्मा वालिने गन्धर्वके साथ महायुद्ध किया था ॥ २७ ॥ उस गन्धर्वका नाम गोलभ था, उस महाबलवान्‌से पंद्रह वर्षतक विना दिन रात्रिमें विश्राम लिये वालिने घोर युद्ध किया ॥ २८ ॥ फिर सोलहवें वर्षमें वालिने उसको मारा था, कराल डाढवाले वालिने उस दुर्विनीत गन्धर्वको मार

कर ॥ २९ ॥ हमारा सब काम महाभयसे उद्धार कियाथा । हाय ! वह वालि क्यों मारागया ? ॥ ३० ॥ जिस प्रकार सिंहयुक्त महावनमें गोयूथपति मर जाय तब वहांपर गायें सुख नहीं पातीं ऐसेही वानरनाथ वालिके मरजानेसे वानरगण किसी प्रकारसे सुख न पासके ॥ ३१ ॥ तब तारा महादुःखके समुद्रमें डूबकर अपने मृतक स्वामीका मुख निहार जैसे आश्रित लता छिन्न महावृक्षको चिपटकर पृथ्वीमें गिरती है वैसेही वालिको लिपटाय भूमि पर गिरी ॥३२॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायां द्वाविंशः सर्गः ॥२२॥ फिर तारा कपिराज वालिका मुख चुम्बन करती जगत विख्यात अपने मृतक स्वामीसे कहने लगी कि ॥ १ ॥ हे वीरश्रेष्ठ ! तुम हमारे वचन न सुनकर पथरीली वा विषम दुःख देनेवाली पृथ्वीपर शयन कर रहे हो ॥ २ ॥ हे

सर्वाभयंकरोऽस्माकंकथमेषनिपातितः ॥ ३० ॥ हतेतुवीरेप्लवगाधिपेतदावनेचरास्तत्रनशर्मलेभिरे ॥ वनेचराःसिंहयुतेमहावनेयथाहिगावोनिहतेगवांपतौ ॥ ३१ ॥ ततस्तुताराव्यसनार्णवप्लुतामृतस्यभर्तुर्वदनंसमीक्ष्यसा ॥ जगामभूमिंपरिरभ्यवालिनंमहाद्रुमंछिन्नमिवाश्रितालता ॥ ३२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आ० च० सा० किष्किंधाकांडे द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥ ततःसमुपजिघ्रंतीकपिराजस्यतन्मुखम् ॥ पतिंलोकश्रुताताराम‍ृतंवचनमब्रवीत् ॥ १ ॥ शेषेत्वंविषमेदुःखमकृत्वावचनंमम ॥ उपलोपजितेवीरसुदुःखेवसुधातले ॥ २ ॥ मत्तःप्रियतरानूनंवानरेंद्रमहीतव ॥ शेषेहितांपरिष्वज्यमांचनप्रतिभाषसे ॥ ३ ॥ सुग्रीवस्यवशंप्राप्तोविधिरेषभवत्यहो ॥ सुग्रीवएवविक्रांतोवीरसाहसिकप्रिय ॥४॥ ऋक्षवानरमुख्यास्त्वांबालिनंपर्युपासते ॥ तेषांविलपितंकृच्छ्रमंगदस्यचशोचतः ॥५॥ ममचेमागिरःश्रुत्वाकिंत्वंनप्रतिबुध्यसे ॥ इदंतद्वीरशयनंतत्रशेषेहतोयुधि ॥ ६ ॥ शायितानिहतायत्रत्वयैवरिपवःपुरा ॥ विशुद्धसत्त्वाभिजनप्रिययुद्धममप्रिय ॥ ७ ॥ मामनाथांविहायैकांगतस्त्वमसिमानद ॥ शूरायनप्रदातव्याकन्याखलुविपश्चिता ॥ ८ ॥

वानरनाथ ! हम जानती हैं कि, पृथ्वी तुमको हमसे अधिक प्यारी है, क्योंकि उसको चिपटकर शयन कर रहे और हमसे बोलते तक नहीं ॥ ३ ॥ यह रामरूप विधि सुग्रीवके वशमें होगया वह सुग्रीव आजही अपनी भार्यासे मिल जायगा इसलिये सुग्रीवही विक्रमवान् और साहसी जान पडता है ॥ ४ ॥ जो बडे २ ऋच्छ और मुख्य २ वानरगण बलवान् आपकी सेवा करते थे उनका और शोक करते हुये कष्टकारक अंगदका रोदन ॥ ५ ॥ और हमारा यह विलाप श्रवण करके तुम क्यों नहीं जागते हो ? हे वीर ! जिस पर तुम संग्राममें परकर शयन किये हो यह वह स्थल है ॥ ६ ॥ कि, जहां तुम्हारे हाथोंसे मरकर शत्रुगण शयन किया करते थे, हे विशुद्ध बलयुक्त लोकोंके व युद्धके प्रियकारी ! हमारे प्यारे ॥ ७ ॥ हमारा आदर मान करनेवाले ! हम अनाथ हैं सो तुम

हमको छोडकर कहाँ चले जातेहो ? पंडित लोगोंको उचित है कि, शूर पुरुषको अपनी कन्या न विवाहें ॥ ८ ॥ क्योंकि देखो, शूरकी भार्या हम शीघ्रही विधवा हुईं. हाय ! हमारा मानभी गया और अधिक स्थिर सुख भी विनाशको प्राप्त हुआ ॥ ९ ॥ हम इस समय अगाध विपुल शोकसागरमें डूब गईं हम जानती हैं कि, हमारा हृदय अत्यन्त कठिन और लोहेका बना हुआ है ॥ १० ॥ जो लोहेका बना हुआ न होता तो प्राणप्यारे स्वामीको मरा हुआ देखकर अबतक शतखंड होजाता. हाय ! हमारे प्रिय स्वामी स्वभावसे ही हमको प्रिय व सुहृद हैं ॥ ११ ॥ सो संग्राम करनेमें पराक्रमवान् व शूर होनेपरभी वह मृत्युको प्राप्त हुये. जो नारी पतिहीना है वह पुत्रवती भी होय तोभी उसे ॥ १२ ॥ पंडितगण विधवाही कहते हैं,

शूरभार्यांहतांपश्यसद्योमांविधवांकृताम् ॥ अवभग्नश्चमेमानोभग्नायेशाश्वतीगतिः ॥ ९ ॥ अगाधेचनिमग्नाऽस्मिविपुलेशोकसागरे ॥ अश्मसारमयंनूनमिदंमेहृदयंदृढम् ॥ १० ॥ भर्तारंनिहतंदृष्ट्वायन्नाद्यशतधाकृतम् ॥ सुहृच्चैवचभर्ताचप्रकृत्याचममप्रियः ॥ ११ ॥ प्रहारेचपराक्रांतः शूरःपंचत्वमागतः ॥ पतिहीनातुयानारीकामंभवतुपुत्रिणी ॥१२॥ धनधान्यसमृद्धापिविधवेत्युच्यतेबुधैः॥ स्वगात्रप्रभवेवीरशेषेरुधिरमंडले ॥ १३ ॥ कृमिरागपरिस्तोमेस्वकीयेशयनेयथा ॥ रेणुशोणितसंवीतंगात्रंतवसमंततः ॥ १४ ॥ परिरब्धुंनशक्नोमिभुजाभ्यांप्लवगर्षभ ॥ कृतकृत्योद्यसुग्रीवोवैरेऽस्मिन्नतिदारुणे ॥ १५ ॥ यस्यरामविमुक्तेनहृतमेकेषुणाभयम् ॥ शरणेहृदिलग्नेनगात्रसंस्पर्शनेतव ॥ १६ ॥ वार्यामित्वांनिरीक्षंतीत्वयिपंचत्वमागते ॥ उद्बबर्हशरंनीलस्तस्यगात्रगतंतदा ॥ १७ ॥

चाहे उसको कितनाही धन धान्य हो. हे वीर ! अपनेही अंगोंसे निकले रुधिरके घेरमें तुम सोते हो ❋ ॥ १३ ॥ मानों वीरवधुओंके समान रंगवाले अपनी शय्या पर ही आप शयन किये हो । हे वानरनाथ ! तुम्हारे अंगोंमें धूल और रुधिर जहां तहां लग रहा है ॥ १४ ॥ इस कारण हम अपनी दोनों बाहोंसे तुमको लिपट नहीं सकतीं; इस अति दारुण शत्रुतामें सुग्रीव कृतार्थ होगये ॥ १५ ॥ क्योंकि श्रीरामचन्द्रजीके छूटे हुये एकही बाणसे जिसका भय दूर होगया, हम उसी हृदयमें लगे हुये बाणके कारण तुम्हारे अंग स्पर्श नहीं कर सकतीं ॥ १६ ॥ हाय क्या कष्ट है ! कि, तुम्हारे मरनेपर भी हम हृदयसे न लगा सकीं । तारा इस प्रकारसे विलाप कर रही थी इतनेमें वीरनीलने आकर वालिके हृदयसे बाण निकाला ॥ १७ ॥

❋ जँहि पिय तहीं सबै सुख साज ॥ पिय विहीन सुरपुरको सुख सखि आवै कौने काज॥पिया विना धनधाम कामकिमि जराजाओ यह राज ॥ पियबिन तिय चाहे सुख संपत्ति परे तासुपर गाज ॥ विधवा होय सजावत तनुको लागत जाहि न लाज ॥ तापरदुःख पडैगो अतिही जाय कहाँ सो भाज ॥ मिश्र यही कर्त्तव्य सबनको राम भजो शिरताज ॥ नाहित पर मँझधार सिन्धु विच डूबहिं सकल समाज ॥

वह बाण इस भांति निकाला जैसे गिरिगुहामें टिका हुआ सर्प निकलता है. उस बाणके निकलनेके समय प्रभा भी हुई॥१८॥ जिसप्रकार अस्ताचलके ऊपर उदय हुई सूर्यनारायणकी द्युति शोभायमान होती है। तत्पश्चात् वालिके सब आहत स्थानोंमें से रुधिरका प्रवाह निकला ॥ १९ ॥ जैसे धराधरसे रक्तवर्ण गेरूसे मिलकर जलधारा निकलती है रणकी धूलमें लोटते हुये अपने शूर पतिको ॥२०॥ नेत्रवारिसे तारा धोती हुई, और सब अंगोंमें रक्तलगे मृतक पतिको देख ॥ २१ तारा पिंगलनेत्र निजसुत अंगदसे कहने लगी कि, हे बेटा ! अन्तकालके समयको प्राप्त हुये अपने पिताकी अति दारुण अवस्था देखो ॥ २२ ॥ जो शत्रुता बलात्कारसे इन्होंने की यह उसी कर्मका फल है. हे पुत्र ! प्रातःकालीन सूर्य भगवान्‌के समान ज्वलित देह और यमसदनको जाते अपने पिता

गिरिगह्वरसंलीनंदीप्तमाशीविषंयथा ॥ तस्यनिष्कृष्यमाणस्यबाणस्यापिबभौद्युतिः ॥१८॥ अस्तमस्तकसन्नद्धरश्मेर्दिनकरादिव ॥ पेतुःक्षतजधारास्तुव्रणेभ्यस्तस्यसर्वशः ॥ १९ ॥ ताम्रगैरिकसंपृक्ताधाराइवधराधरात् ॥ अवकीर्णंविमार्जंतीभर्तारंरणरेणुना ॥ २० ॥ अस्रैर्नयनजैः शूरंसिषेचास्त्रसमाहतम् ॥ रुधिरोक्षितसर्वांगंदृष्ट्वाविनिहतंपतिम् ॥ २१ ॥ उवाचतारापिंगाक्षंपुत्रमंगदमंगना ॥ अवस्थांपश्चिमांपश्यपितुःपुत्रसुदारुणाम् ॥ २२ ॥ संप्रसक्तस्यवैरस्यगतोंतःपापकर्मणा ॥ बालसूर्योज्ज्वलत्तनुंप्रयातंयमसादनम् ॥२३॥ अभिवादयराजानंपितरंपुत्रमानदम् ॥ एवमुक्तःसमुत्थायजग्राहचरणौपितुः ॥२४॥ भुजाभ्यांपीनवृत्ताभ्यामंगदोऽहमितिब्रुवन् ॥ अभिवादयमानंत्वामंगदंत्वंयथापुरा ॥ २५ ॥ दीर्घायुर्भवपुत्रेतिकिमर्थंनाभिभाषसे ॥ अहंपुत्रसहायात्वामुपासेगतचेतनम् ॥ सिंहेनपातितंसद्योगौःसवत्सेवगोवृषम् ॥ २६ ॥ इष्ट्वासंग्राममयज्ञेनरामप्रहरणांभसा ॥ तस्मिन्नवभृथेस्नातःकथंपत्न्यामयाविना ॥ २७ ॥

जीको भली भाँति देखलो ॥२३॥ हे पुत्र ! तुम मान देनेवाले राजा अपने पिताको प्रणाम करो, ऐसा सुनकर उसने उठ पिताजीके चरणोंको ग्रहण कर ॥२४॥ और गोल२दोनों बाहोंसे चरण थामकर कहा कि, मैं "अंगद हूँ" तब ताराने कहा कि, जिस प्रकार पहले प्रणाम करनेपर आप कहते थे कि ॥२५॥ 'दीर्घायु होवो ' यह कहकर अब आशीर्वाद क्यों नहीं देते? फिर ताराने कहा कि, सिंहसे मारे हुये वृषभको देख दुःखित हुई गायके समान मृत्युको प्राप्त हुये तुम्हारे निकट अपने पुत्रके सहित हम बैठी हैं ॥२६॥ तुम संग्राम यज्ञ पूर्ण कर चुके हो इस समय पत्नीके बिना राम अस्त्ररूप बारिद्वारा तुम्हारा

अवभृथ स्नान यज्ञान्त स्नान किस प्रकार पूर्ण हुआ ? ॥ २७ ॥ देवराज इन्द्रने संग्राममें सन्तुष्ट होकर जो सुवर्णकी माला तुमको दीथी वह माला इस समय हम तुमको धारण किये नहीं देखतीं इसका क्या कारण है ? ॥ २८ ॥ हे मानद ! चारों ओर घूमते हुये सूर्यकी प्रभा जिस प्रकार अस्ताचलको नहीं परित्याग करती है वैसे ही प्राण निकल जानेपरभी राजश्री आपको नहीं छोडती है ॥ २९ ॥ हाय ! हमने हितकारी जो वचन कहे थे उनको सुनकर भी आपने ग्रहण नहीं किया, इस समय युद्धस्थलमें निहत आपके सहित पुत्रवती हमभी विनाशको प्राप्त हुई । हाय ! इस समय लक्ष्मी देवी हमको भी परित्याग कर गई ॥ ३० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायां त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥ अत्यन्त वेगशाली अतिकठिनसे तरने योग्य अतुल शोकसमुद्रमें डूबती हुई ताराको विलाप करते देखकर वालिके छोटे भाई सुग्रीव अपने भ्राताके

यादत्तादेवराजेनतववतुष्टेनसंयुगे ॥ शातकौंभींप्रियांमालांतातेपश्यामिनेहकिम् ॥ २८ ॥ राज्यश्रीर्नजहातित्वांगतासुमपिमानद ॥ सूर्यस्याव र्तमानस्यशैलराजमिवप्रभा ॥ २९ ॥ नमेवचः पथ्यमिदंत्वयाकृतंचास्मिशक्ताहिनिवारणेतव ॥ हतासपुत्रास्मिहतेनसंयुगेसहत्वयाश्रीर्विजहा तिमामपि ॥ ३० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च०सा० किष्किंधाकांडे त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥ तामाशुवेगेनदुरा सदेनत्वभिप्लुतांशोकमहार्णवेन ॥ पश्यंस्तदावाल्यनुजस्तरस्वीभ्रातुर्वधेनाप्रतिमेनतेपे ॥ १ ॥ सबाष्पपूर्णेनमुखेनपश्यन्क्षणेननिर्विण्णमना मनस्वी ॥ जगामरामस्यशनैःसमीपंभृत्यैर्वृतःसंपरिदूयमानः ॥२॥ सतंसमासाद्यगृहीतचापमुदात्तमाशीविषतुल्यबाणम् ॥ यशस्विनंलक्ष्मण लक्षितांगमवस्थितंराघवमित्युवाच ॥ ३ ॥ यथाप्रतिज्ञातमिदंनरेंद्रकृतंत्वयादृष्टफलंचकर्म ॥ ममाद्यभोगेषुनरेंद्रसूनोमनोनिवृत्तंहतजीवितेन ॥ ४ ॥ अस्यांमहिष्यांतुभृशंरुदत्यांपुरेऽतिविक्रोशतिदुःखतप्ते ॥ हतेनृपेसंशयितेंगदेचनरामराज्येरमतेमनोमे ॥ ५ ॥ क्रोधादमर्षादतिवि प्रधर्षाद्भ्रातुर्वधोमेऽनुमतःपुरस्तात् ॥ हतेत्विदानींहरियूथपेऽस्मिन्सुतीक्ष्णमिक्ष्वाकुवरप्रतप्स्ये ॥ ६ ॥

मारे जानेसे अत्यन्त संतापको प्राप्त हुये ॥ १ ॥ ताराको रोती हुई निहार मनस्वी सुग्रीवजी अत्यन्त दुःखित और खिन्नमन हो सब नौकर चाकरोंके साथ धीरे २ श्रीरामचन्द्रजीके समीप चले ॥ २ ॥ सुग्रीवजी वहां पहुँचकर उग्र भुजंग समान बाणयुक्त शरासनधारी शास्त्रोंमें कहे हुये लक्षणों करके सहित रामचन्द्रजीको बैठे हुए देखकर बोले कि ॥ ३ ॥ हे नरनाथ ! आपने जो प्रतिज्ञा की थी, उसको तो आपने कार्यद्वारा पूरा करदिया; परन्तु अब हम इस निंदनीय जीवनके भोग करनेकी इच्छा नहीं करते ॥ ४ ॥ हमारे भाई वालिके मरजानेसे यह तारा अंगद और पुरवासी लोग दुःखित व संतप्त होकर रोदन कर रहे हैं, इस लिये राज्यके लाभ करनेको हमारा मन सुख शान्ति प्राप्त नहीं करता ॥५॥ क्रोधके कारण वैर अमर्षके हेतु धर्षणा और अपमानता

होनेसे पहले भ्राताका वध हमारी मतिके अनुकूल था। परन्तु हे इक्ष्वाकुश्रेष्ठ ! वानरराज वालिके मारे जानेसे इस समय हम अत्यन्तही तीव्रतासे संतापित होरहे हैं॥६॥ उन पर्वतश्रेष्ठ ऋष्यमूक शैलपर वास कर जैसे तैसे जीविका निर्वाह करना हम अच्छा समझते हैं,परन्तु भय्याको मारकर स्वर्ग प्राप्त होनाभी हमें अच्छा नहीं लगता॥७॥ इन मतिमान् महात्माने हमसे कहा था कि,हम तुमको मारनेकी इच्छा नहीं रखते हैं,तुम जहां इच्छा हो वहां चले जाओ.यह उनके वचन उन्हीं महात्माके योग्य थे परन्तु यह हमारे वचन और भ्राताके मारनेका कर्म करानेवाली दुष्टबुद्धि हमारे योग्य हुई कि,हम नीचने उनको मारही डाला॥८॥कामभोगमें अत्यन्त आसक्त होनेके कारण हमने भ्राता होकर भी राज्य और उसके सुखका व भ्राताके वधरूप दुःखका अन्तर न विचारा। हाय! महागुणसम्पन्न भाईका वध

श्रेयोऽद्यमन्येममशैलमुख्येतस्मिन्हिवासश्चिरमृष्यमूके॥यथातथावर्तयतःस्ववृत्त्यानेमंनिहत्यत्रिदिवस्यलाभः॥७॥नत्वाजिघांसामिचरेतियन्मा मयंमहात्मामतिमानुवाच॥तस्यैवतद्रामवचोनुरूपमिदंवचःकर्मचमेनुरूपम् ॥८॥भ्राताकथंनाममयागुणस्यभ्रातुर्वधंरामविरोचयेत॥राज्यस्यदुः खस्यचवीरसारंविचिंतयन्कामपुरस्कृतोऽपि९॥वधोहिमेमतोनासीत्स्वमाहात्म्यव्यतिक्रमात् ॥ममासीद्बुद्धिदौरात्म्यात्प्राणहारीव्यतिक्रमः १० द्रुमशाखावभग्नोऽहंमुहूर्तपरिनिष्टनन् ॥ सांत्वयित्वात्वनेनोक्तोनपुनःकर्तुमर्हसि ॥११॥ भ्रातृत्वमार्यभावश्चधर्मश्चानेनरक्षितः ॥ मयाक्रोधश्चका मश्चकपित्वंचप्रदर्शितम्॥१२॥अचिंतनीयंपरिवर्जनीयमनीप्सनीयंस्वनवेक्षणीयम्॥प्राप्तोऽस्मिपाप्मानमिदंवयस्यभ्रातुर्वधात्त्वाष्ट्रवधादिवेंद्रः१३।

किसप्रकारसे सर्वसम्मत सुखदायक वा कीर्तिकारक हो सकता है?॥९॥हाय!अपने बडेपनका उल्लंघन होना विचार हमारा वध करनेको उन महात्माकी इच्छा न थी, परन्तु भ्राताके प्राण हरनेवाले हम नीचने बुद्धिकी दुष्टताके हेतु निःसन्देह उस महात्माको उल्लंघन कर दिया॥१०॥जबकी, वाली युद्धमें हमको मारना प्रारंभ करता और हम जब भागकर रोया और चिल्लाया करते,तब वह हमसे समझा बुझाकर कहते कि जाओ,ऐसा कार्य फिर मत करना परन्तु हमको वध नहीं करते॥११॥महात्मावालिने अपनी श्रेष्ठताकी बडाई और भायपनकी रक्षा. की परंतु हमने निःसन्देह काम क्रोध और वानरता दिखाई है॥१२॥देवराज इन्द्रजी विश्वकर्माके पुत्र विश्वरूप* ब्राह्मणको बध करके जिस प्रकार पापको प्राप्त हुए थे हमने भी भ्राताका वध कर वैसेही यह दीनताके अयोग्य,वर्जनीय,दर्शनके अयोग्य;कामनाके अयोग्य,भ्रातृवधरूप

* जब विश्वरूपको इन्द्रने अपना पुरोहित किया और पीछे उसेराक्षसोंसे मिला देख मारडाला तब इन्द्रको ब्रह्महत्यालगी तब ब्रह्माजीने उसे चार जगह बांटा. पृथ्वीको एकभाग दिया जिससे यह जहां तहां ऊपर हो गई वृक्षोंको एक भाग दिया जो गोंदरूप हुआ फीकडका गोंद छोड़ बाकी गोंद अशुद्ध हैं जलको एक भाग दिया जो काईरूप है, एक भाग स्त्रीको दिया जो महीने महीने रजस्वला होकर छूनेके अयोग्य होती हैं।

पाप बटोरा ॥ १३ ॥ पृथ्वी, जल, वृक्ष और स्त्रियोंने इंद्रजीके उस पापको ग्रहण किया था, परन्तु हम वानर जातिका पाप कौन ग्रहण करनेकी इच्छा करेगा ? ॥ १४ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! इस प्रकारका अयुक्त कुलनाशक कर्म करके हम तो प्रजागणोंके समान और यौवराज्य पदवीके भी योग्य नहीं हैं, फिर भला राज्यप्राप्तिके योग्य हम कैसे होसकते हैं?॥१५॥ वृष्टिसे वर्षे हुये जलका वेग जिसप्रकार नीचे ही की ओरको गिरता है वैसेही अतिनीच पापकारी लोकोंके अपकार करनेवाला हमारा यह महान् शोकवेग हममें स्थिर हुआ है ॥ १६ ॥ सहोदर भ्राताका मारा जानाही जिसके शरीरके अन्यान्यभाग, व लोम हैं और सहोदर भाईके विनाशसे उत्पन्न हुआ संताप जिसके हाथ, नेत्र, शिर और दंत हैं; वह मतवाला पापमय महाहाथी, नदीके किनारेके समान हमको

पाप्मानमिंद्रस्यमहीजलंचवृक्षाश्चकामंजगृहुःस्त्रियश्च ॥ कोनामपाप्मानमिमंसहेतशाखामृगस्यप्रतिपत्तमिच्छेत् ॥१४॥ नार्हामिसंमानमिमं प्रजानांनयौवराज्यंकुतएवराज्यम् ॥ अधर्मयुक्तंकुलनाशयुक्तमेवंविधंराघवकर्मकृत्वा ॥ १५ ॥ पापस्यकर्तास्मिविगर्हितस्यक्षुद्रस्यलोकापकृतस्यलोके ॥ शोकोमहान्मामभिवर्ततेऽयंवृष्टेर्यथानिम्नमिवांबुवेगः ॥ १६ ॥ सोदर्यघातापरगात्रवालःसंतापहस्ताक्षिशिरोविषाणः ॥ एनोमयोमामभिहंतिहस्तीदीप्तोनदीकूलमिवप्रवृद्धः ॥ १७ ॥ अहोबतेदंनृवराविषह्यंनिवर्ततेमेहृदिसाधुवृत्तम् ॥ अग्नौविवर्णंपरितप्यमानंकिट्टंयथाराघवजातरूपम् ॥१८॥ महाबलानांहरियूथपानामिदंकुलंराघवमन्निमित्तम्॥अस्यांगदस्यापिचशोकतापादर्धस्थितप्राणमितीवमन्ये॥१९॥ सुतःसुलभ्यःसुजनःसुवश्यःकुतस्तुपुत्रःसदृशोंऽगदेन॥ नचापिविद्येतसवीरदेशोयस्मिन्भवेत्सोदरसंनिकर्षः ॥२०॥ अद्यांगदोवीरवरोनजीवेज्जीवेतमातापरिपालनार्थम् ॥ विनातुपुत्रंपरितापदीनासानैवजीवेदितिनिश्चितंमे ॥ २१ ॥

बोझसे गिराये देता है ॥ १७ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! पीला सुवर्ण अग्निके मध्यमें तपाये जानेसे नौसादरके द्वारा जिस प्रकार मैलको परित्याग कर देता है वैसे ही इस असह पापके द्वारा जन्म जन्मांतरोंमें बटोरा हुआ हमारा पुण्य दूर होरहा है ॥ १८ ॥ हे रामचन्द्रजी ! अङ्गदजीके शोकसंताप करनेसे हमारे निमित्त महाबलवान् वानर श्रेष्ठगणोंके कुलके आधे प्राण तो नाशको प्राप्त हुए हैं ऐसा हम विचार करते हैं ॥ १९ ॥ हे वीरवर ! पुत्रका होना सुलभ है, अपने सब सुजन सुलभ वशमें हो सकते हैं,परन्तु अंगदके समान गुणवान् पुत्र कहां प्राप्त होगा?क्योंकि यह रो रो कर अपने प्राण दे रहे हैं और ऐसा देशभी कहीं नहीं है जहांपर हम अपने उन सहोदर भ्राता वालिको प्राप्त कर सकेंगे ॥ २० ॥ इस समय अपनी माताका पालन करनेके लिये यह अंगद वालिके विना जीवन

धारण नहीं कर सकता और ताराभी पुत्र अंगदके बिना कदापि ना जियेंगी यही हमारा स्थिर निश्चय है ॥२१॥ इसलिये हम इस पापी जीवनको रखनेकी इच्छा कदापि नहीं करते. हम अपने भ्राता वालि और अंगदजीसे मित्रताईकी इच्छा करके अग्निमें प्रवेश करें और यह समस्त वानरगण आपकी इच्छामें रहकर सीताजी को खोजेंगे ॥ २२ ॥ हे मनुजेन्द्रनन्दन ! हमारे विद्यमान न रहनेसे भी, यह वानर लोग आपके समस्त कार्य साधन करेंगे। सो हम कुलनाशक जीवनधारण करनेके अयोग्य व पाप करनेवाले को आप मरनेकी आज्ञा दीजिये ॥ २३ ॥ वालिके छोटे भाई सुग्रीवजी ने अत्यन्त कातर होकर जब इस प्रकासे कहा तब शत्रुओंके तपानेवाले श्रीरामचन्द्रजी अश्रुपूर्ण नेत्र होकर एक मुहूर्त तक उदास रहे ॥ २४ ॥ उस समय पृथ्वीके समान क्षमावान्

सोऽहंप्रवेक्ष्याम्यतिदीप्तमग्निंभ्रात्राचपुत्रेणचसख्यमिच्छन् ॥ इमेविचेष्यंतिहरिप्रवीराःसीतांनिदेशेपरिवर्तमानाः ॥२२॥ कृत्स्नंतुतेसेत्स्यतिकार्यमेतन्मय्यप्यतीतेमनुजेन्द्रपुत्र ॥ कुलस्यहंतारमजीवनार्हंरामानुजानीहिकृतागसंमाम् ॥२३॥ इत्येवमार्तस्यरघुप्रवीरःश्रुत्वावचोवालिजघन्यजस्य ॥ संजातबाष्पःपरवीरहंतारामोमुहूर्तंविमनाबभूव॥२४॥ तस्मिन्क्षणेऽभीक्ष्णमवेक्षमाणःक्षितिक्षमावान्भुवनस्यगोप्ता॥रामोरुदंतींव्यसनेनिमग्नांसमुत्सुकःसोऽथददर्शताराम् ॥२५॥ तांचारुनेत्रांकपिसिंहनाथांपतिंसमाश्लिष्यतदाशयानाम् ॥ उत्थापयामासुरदीनसत्त्वांमंत्रिप्रधानाकपिराजपत्नीम् ॥२६॥ साविस्फुरंतीपरिरभ्यमाणाभर्तुःसमीपादपनीयमाना ॥ ददर्शरामंशरचापपाणिंस्वतेजसासूर्यमिवज्वलंतम् ॥ २७ ॥ सुसंवृतंपार्थिवलक्षणैश्चतंचारुनेत्रंमृगशावनेत्रा ॥ अदृष्टपूर्वंपुरुषप्रधानमयंसकाकुत्स्थइतिप्रजज्ञे ॥ २८ ॥ तस्येंद्रकल्पस्यदुरासदस्यमहानुभावस्यसमीपमार्या ॥ आर्ताऽतितूर्णंव्यसनंप्रपन्नाजगामतारापरिविह्वलंती ॥ २९ ॥

भुवनके रक्षाकर्ता श्रीरामचन्द्रजी शोकके मारे अतिशय दुःखमें डूबी रोती हुई ताराके प्रति वारंवार दृष्टि करने लगे ॥२५॥ तब मुख्य २ मंत्रियोंने उदारबुद्धि; कपिराजपत्नी सुन्दरनेत्रवाली ताराको वालिकी देहसे लिपटी हुई पडी देख उसको पृथ्वीपरसे उठाया ॥ २६ ॥ जब मंत्री लोग पतिके निकटसे उसको लिये आते थे तब तारा हाथ पैर छटपटाकर पतिके निकट जानेकी इच्छा करने लगी;और जब मंत्री उसको श्रीरामचंद्रजीके निकट लेही आये;तब उसने धनुषबाण धारण किये अपने तेजसे दीप्तिमान् दिवाकरके समान श्रीरामचन्द्रजीको देखा ॥ २७ ॥ मृगनयनी ताराने सुन्दर नेत्रवाले; पहले कभी न देखे हुये सर्व राजलक्षण सम्पन्न पुरुषश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीको देखकर यह वही रघुवीर रामचन्द्रजी हैं, यह जान लिया ॥२८॥ अति दुःखित आर्या तारा उन दुर्द्धर्ष इन्द्रतुल्य

पराक्रम महानुभाव श्रीरामचन्द्रजीके निकट आर्त और विह्वल होकर शीघ्र जा पहुँची ॥२९॥ शोकसे मारे चंचल स्वभाव सम्पन्न संभ्रांत शरीरवाली मनस्विनी तारा शुद्धभावयुक्त, रणस्थलमें उत्कर्ष कर्म करनेवालेउन श्रीरामचन्द्रजीके समीप प्राप्त हो उनसे कहने लगी कि ॥ ३० ॥ आप दुर्द्धर्ष हैं आपके गुण किसीके प्रमाण करनेके योग्य नहीं; आप इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले, उत्तम धर्मयुक्त, बडे सावधान, उदार कीर्ति, चतुर, पृथ्वीके तुल्य क्षमा करनेवाले, और अरुण कमलनयन हैं ॥३१॥ आपके अंग अतिशय दृढ हैं, आप महाबलवान् धनुष बाण धारण करनेवाले, प्रियशरीरधारी लक्ष्मीयुक्त राज्य छोड अपने अंगसे उत्पन्न मंगलकर्मयुक्त हो अर्थात् मनुष्य देहका अभ्युदय छोड दिव्यदेहके अभ्युदयसे युक्त हुए हो ॥३२॥ आपने जिस बाणसे हमारे प्राणसमान प्यारे पति वालिको मारा है, उसी बाणसे आप हमको भी मार डालिये, इस बाणसे मरनेके कारण हम उनके निकट पहुँच जांयगी, क्योंकि हमारे प्राणपति हमारे बिना दूसरी

तंसासमासाद्यविशुद्धसत्त्वंशोकेनसंभ्रांतशरीरभावा।मनस्विनीवाक्यमुवाचतारारामंरणोत्कर्षणलब्धलक्ष्यम् ॥ ३० ॥ त्वमप्रमेयश्चदुरादसश्च जितेंद्रियश्चोत्तमधर्मकश्च॥अक्षीणकीर्तिश्चविचक्षणश्चक्षितिक्षमावान्क्षतजोपमाक्ष ॥३१॥ त्वमात्तबाणासनबाणपाणिर्महाबलःसंहननोपपन्नः ॥ मनुष्यदेहाभ्युदयंविहायदिव्येनदेहाभ्युदयेनयुक्तः ॥३२॥ येनैवबाणेनहतःप्रियोमेतेनैवबाणेनहिमांजहीहि ॥ हतागमिष्यामिसमीपमस्यनमां विनावीररमेतवाली॥३३॥स्वर्गेऽपिपद्मामलपत्रनेत्रसमेत्यसंप्रेक्ष्यचमामपश्यन्॥नह्येषउच्चावचताम्रचूडाविचित्रवेषाप्सरसोभजिष्यत्॥ ३४॥ स्वर्गेऽपिशोकंचविवर्णतांचमयाविनाप्राप्स्यतिवीरवाली॥रम्येनगेंद्रस्यतटावकाशेविदेहकन्यारहितोथयात्वम् ॥३५॥ त्वंत्वेथतावद्वनिताविहीनःप्राप्नोतिदुःखंपुरुषःकुमारः॥तत्त्वंप्रजानञ्जहिमांनवालीदुःखंममादर्शनजंभजेत ॥ ३६ ॥ यच्चापिमन्येतभवान्महात्मास्त्रीघातदोषस्तुभवेतमह्यम् ॥ आत्मेयमस्येतिहिमांजहित्वंनस्त्रीवधःस्यान्मनुजेंद्रपुत्र ॥ ३७ ॥

स्त्रीसे रमण नहीं करते ॥३३॥ हे अमलकमलदलनेत्र! हमारे प्राणनाथ स्वर्गमें पहुँच वहाँ हमको न देखकर अनेक प्रकारके फूल मणि और मुक्ता आदिकोंसे जूडा गूंथे विचित्र अप्सराओंकी भी भजना न करेंगे ॥ ३४ ॥ हे वीर ! आप जिस प्रकारसे जानकी के बिरहमें दुःखित हो हिमालयके मनोहर निम्नदेशमें भी रमण नहीं करते वैसे ही हमारे बिना वालि भी स्वर्गमें शोकके मारे निःसंदेह पीले पड जायँगे ॥ ३५ ॥ आप जानते हैं कि, स्त्रीके बिना कुमार पुरुष दुःखको प्राप्त होता है,सो यह जानकर आप हमको मार डालिये, क्योंकि फिर वालिको हमारे न देखनेका दुःख न मिलेगा ॥ ३६ ॥ हे राजपुत्र ! आप महात्मा होनेसे कदाचित् विचार करेंगे कि, स्त्रीके मारनेसे हमको स्त्रीहत्यासे उत्पन्न पाप लग सकता है, परन्तु यह पाप आपको कदापि नहीं लग सकेगा क्योंकि, इस तारा और वालिकी आत्माको आप एकही समझिये इस लिये आपको स्त्रीवध करनेका पाप नहीं लगेगा ॥ ३७ ॥

आप जानते हैं कि, शास्त्रोंके प्रयोग वेदोंके वचनोंसे स्त्री पुरुषकी आत्मा अलग २ नहीं हो सकती है. इसलिये ज्ञानी लोग कहा करते हैं कि, लोकमें स्त्रीके दानसे अधिक और कोई दान नहीं है ॥३८॥ हे वीर ! आप धर्मको विचार हमको संहार वालिको स्त्रीका दान कीजिये कि जिससे आपको स्त्री दान करनेका फलप्राप्त होगा और स्त्रीहत्याका पाप फिर किस प्रकारसे आपको लग सकता है ? ॥३९॥ हम अनाथ हैं ! इससेअतिपीडित अनाथ पतिके आलिंगनसे छुटाकर और जगह ले आई गई और आर्त हैं सो हमको वध न करना आपका बडा अनुचित कर्म है । क्योंकि हम मातंग सम विलासगामी वानरश्रेष्ठ बुद्धिमान् ॥ ४० ॥ इन्द्रकी दी हुई सुवर्णकी माला धारण किये हुए वालिके बिना जीवन धारण नहीं कर सकतीं. महात्मा विभु श्रीरामचन्द्रजीसे जब ताराने ऐसा कहा तब श्रीरामचन्द्रजी उसको समझाते हुए हितकारी वचन बोले कि ॥ ४१ ॥ हे वीरभार्ये ! तुम उदास न होवो. ये सब लोक ब्रह्माजीके बनाये हुए हैं ।

शास्त्रप्रयोगाद्विविधाच्चवेदादनन्यरूपाः पुरुषस्यदाराः ॥ दारप्रदानाद्धिनदानमन्यत्प्रदृश्यतेज्ञानवतांहिलोके ॥ ३८ ॥ त्वंचापिमांतस्यममप्रियस्यप्रदास्यसेधर्ममवेक्ष्यवीर ॥ अनेनदानेननलप्स्यसेत्वमधर्मयोगंममवीरघातात् ॥ ३९ ॥ आर्तामनाथामपनीयमानामेवंगतांनार्हसिमामहंतुम् ॥ अहंहिमातंगविलासगामिनाप्लवंगमानामृषभेणधीमता ॥ ४० ॥ विनावराहोत्तमहेममालिनाचिरंनशक्ष्यामिनरेंद्रजीवितुम् ॥ इत्येवमुक्तस्तुविभुर्महात्मातारांसमाश्वास्यहितंबभाषे ॥ ४१ ॥ मावीरभार्येविमतिंकुरुष्वलोकोहिसर्वोविहितोविधात्रा ॥ तंचैवसर्वंसुखदुःखयोगंलोकोऽब्रवीत्तेनकृतंविधात्रा ॥ ४२ ॥ त्रयोऽपिलोकाविहितंविधानंनातिक्रमंतेवशगाहितस्य ॥ प्रीतिंपरांप्राप्स्यसितांतथैवपुत्रश्चतेप्राप्स्यतियौवराज्यम् ॥ ४३ ॥ धात्राविधानंविततंहिथैवनशूरपत्न्यः परिदेवयंति ॥ आश्वासितातेनमहात्मनातुप्रभावयुक्तेनपरंतपेन ॥ सावीरपत्नीध्वनतामुखेनसुवेषरूपाविररामतारा ॥ ४४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० किष्किंधाकांडे चतुर्विंशः सर्गः ॥ २४ ॥

यह भी जानलो; सबही कहते हैं कि, समस्त सुख दुःखका संयोग वियोग यह सब ब्रह्माजीही करते हैं ॥ ४२ ॥ इन तीनों लोकोंकी सृष्टि करके ब्रह्माजीनेही उनकी सब विधि नियत की है, सो सब लोक उस विधिके ही वशमें रहते हैं और किसी प्रकारसे भी उस विधिका उल्लंघन करनेको समर्थ नहीं होते जब तुम्हारा पुत्र युवराजपदवीको प्राप्त होगा, उससे तुम फिर भी वालिकी संयोगजनित प्रीतिको प्राप्त होगी और सुख भोग करती रहोगी ॥ ४३ ॥ विधाताने शूरलोगोंका विधानही इस प्रकारसे निर्माण किया है तुम समझलो कि, वीरोंकी स्त्रियां कभी विलाप नहीं करतीं, प्रभावशाली और परवीरके हनन करनेवाले महात्मा श्रीरामचन्द्रजीने जब इस प्रकारसे समझाया तब सुवेशधारिणी वीरनारी ताराने विलाप करना छोड दिया ॥ ४४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्किन्धाकाण्डे भाषायां चतुर्विंशः सर्गः ॥ २४ ॥

सुग्रीव, तारा और अंगद इनके समान ही जिनको शोक उत्पन्न हुआ है वे लक्ष्मण सहित श्रीरामचन्द्रजी सबको समझाने के योग्य यह वचन बोले कि ॥१॥ शोक करनेसे मृतकका परलोकमें कल्याण नहीं होता है इससे मृतकजनका भला होवे तुम सबको वही करना चाहिये इसलिये शोक और संतापसे कुछ प्रयोजन नहीं, अब तुम सब वालिकी पारलौकिक क्रियाओंको करो ॥ २ ॥ लोकाचारकी रीतिको अवश्य करना चाहिये; इसलिये रो पीटकर तुम सबने लोकरीतिको पाला किन्तु काल उल्लंघन करनेके लिये तुम्हारे हाथसे किसी कर्मका साधन न होगा. क्योंकि कालका उल्लंघन करनेमें कोई समर्थ नहीं हो सकता ॥ ३ ॥ नियति अर्थात् काल ही लोकके उत्पन्न करनेका कारण है, कालही कर्म साधन करनेका कारण है और काल ही सब प्राणियों के नियोग करनेमें कारण है॥४॥ कोईभी किसीका कर्त्ता नहीं हैं कोईभी किसीके नियोग करनेमें ईश्वर अर्थात् समर्थ नहीं है, सब लोक पहले किये हुये कर्मोंके वश हो

ससुग्रीवंचतारांचसांगदांसहलक्ष्मणः॥समानशोकःकाकुत्स्थःसांत्वयन्निदमब्रवीत्॥१॥ नशोकपरितापेनश्रेयसायुज्यतेमृतः ॥ यदत्रानंतरंकार्यंतत्समाधातुमर्हथ ॥२॥ लोकवृत्तमनुष्ठेयंकृतंवोबाष्पमोक्षणम् ॥ नकालादुत्तरंकिंचित्परंकर्मउपासितुम् ॥ ३ ॥ नियतिःकारणंलोकेनियतिःकर्मसाधनम् ॥ नियतिःसर्वभूतानांनियोगेष्विहकारणम्॥४॥ नकर्ताकस्यचित्कश्चिन्नियोगेनापिचेश्वरः ॥ स्वभावेवर्ततेलोकस्तस्यकालःपरायणम् ॥ ५ ॥ नकालःकालमत्येतिनकालःपरिहीयते ॥ स्वभावंचसमासाद्यनकिंचिदतिवर्तते ॥ ६ ॥ नचकस्यास्तिबंधुत्वंनहेतुर्नपराक्रमः नमित्रज्ञातिसंबंधःकारणंनात्मनोवशः ॥ ७ ॥ किंतुकालपरीणामोद्रष्टव्यःसाधुपश्यता ॥ धर्मश्चार्थश्चकामश्चकालक्रमसमाहितः ॥ ८ ॥ इतःस्वांप्रकृतिंवालीगतःप्राप्तःक्रियाफलम् ॥ सामदानार्थसंयोगैःपवित्रंप्लवगेश्वरः ॥ ९ ॥

स्थिति कर रहे हैं ॥ ५ ॥ कालरूप ईश्वर कालको अर्थात् जन्म मरणादि रूप व्यवस्थाको उल्लंघन नहीं कर सकता भगवान् काल कभी हीन नहीं होते, पहले किये हुये कर्मसे प्राप्त होकर, कोई जीव देवताओंको भी उल्लंघन नहीं कर सकता अर्थात् जो उत्पत्तियोगसे उत्पन्न होता है जो नष्टवान् है सो नष्ट ही होजाता है॥६॥ काल किसीसे बंधुता नहीं रखता अर्थात् काल प्राप्त होनेपर सबहीको संहार करता है कालका हेतु नहीं, कालके ऊपर किसीका पराक्रम नहीं चल सकता अर्थात् महापराक्रमशाली पुरुष भी कालको प्राप्त हो मरजाता है, काल किसीसे मित्र या जातिका सम्बन्ध नहीं रखता, और कालहीके कारणसे काल किसीके वशमें नहीं रहता है ॥ ७ ॥ धर्म अर्थ और काम कालके परिपाक स्वरूप होकर कालचक्रके अधीन हो रहे हैं सो इसको विवेकवान् जन देखते रहते हैं ॥ ८ ॥ यह वानरराज वालि साम, दान और अर्थके संयोगसे पवित्र क्रियाफलको प्राप्त हो

यहांसे अपनी प्रकृतिमें चला गया है ॥ ९ ॥ महात्मा वालिने काल धर्मको प्राप्त होकर स्वर्गका लाभ किया है, इसलिये निजधर्मसे संयोग होनेके हेतु उसने निःसन्देह जय पाई है ॥ १० ॥ वानरराज वाली जिसको प्राप्त हुआ है, वह सर्वोपरि श्रेष्ठ काल है, इसलिये संताप करनेका कुछ प्रयोजन नहीं है । इससमय कालोचित कर्त्तव्य कर्म तुमको करने चाहिये ॥ ११ ॥ जब श्रीरामचन्द्रजी यह वचन कह चुके तब परवीरघाती लक्ष्मणजी चेतना रहित वानरप्रभु सुग्रीवसे बोले ॥ १२ ॥ हे सुग्रीव ! तुम दाह और अंगदके साथ इस समय वालिके प्रेत कार्यकी क्रिया आरंभ कर पहले दाह कर्म निर्वाह करो ॥ १३ ॥ नौकर चाकरोंको आज्ञा दो कि वह वालिकी दाह क्रिया करनेके लिये सूखे बहुतसारे दिव्य चन्दनादि काष्ठ ले आवें ॥ १४ ॥

स्वधर्मस्यचसंयोगाज्जितस्तेनमहात्मना॥स्वर्गःपरिगृहीतश्चप्राणानपरिरक्षता ॥१०॥ एषावैनियतिःश्रेष्ठायांगतोहरियूथपः ॥ तदलंपरितापेन प्राप्तकालमुपास्यताम् ॥ ११ ॥ वचनांतेतुरामस्यलक्ष्मणःपरवीरहा ॥ अवदत्प्रश्रितंवाक्यंसुग्रीवंगतचेतसम् ॥ १२ ॥ कुरुत्वमस्यसुग्रीवप्रेत कार्यमनंतरम् ॥ तारांगदाभ्यांसहितोवालिनोदहनंप्रति ॥ १३ ॥ समाज्ञापयकाष्ठानिशुष्काणिचबहूनिच ॥ चंदनानिचदिव्यानिवालिसंस्का रकारणात् ॥१४॥ ममाश्वासयदीनंत्वमंगदंदीनचेतसम् ॥ माभूर्बालिशबुद्धिस्त्वंत्वदधीनमिदंपुरम् ॥ १५॥ अंगदस्त्वानयेन्माल्यंवस्त्राणि विविधानिच॥घृतंतैलमथोगंधान्यच्चात्रसमनंतरम् ॥१६॥ त्वंतारशिबिकांशीघ्रमादायागच्छसंभ्रमात् ॥ त्वरागुणवतीयुक्ताह्यस्मिन्कालेविशे षतः ॥१७॥ सज्जीभवंतुप्लवगाःशिबिकावाहनोचिताः॥समर्थाबलिनश्चैवनिहरिष्यंतिवालिनम् ॥ १८ ॥ एवमुक्त्वाथसुग्रीवंसुमित्रानंदवर्धनः तस्थौभ्रातृसमीपस्थोलक्ष्मणःपरवीरहा ॥१९॥ लक्ष्मणस्यवचःश्रुत्वातारःसंभ्रांतमानसः॥प्रविवेशगुहांशीघ्रंशिबिकासक्तमानसः ॥ २० ॥

तुम इस समय दीन अंगदको समझाओ बुझाओ, तुम स्वयं इस समय मूढबुद्धि न करो और इस समय यह पुरी अपनेही अधीन जानो ॥ १५ ॥ इस समय माला और विविध प्रकारके वस्त्र, घृत, तैल और गंधादि, जिस जिस वस्तुका प्रयोजन हो वह सब अंगद लावें ॥ १६ ॥ हे सचिव तार ! तुम शीघ्र जाकर शिविका ले आओ शीघ्रता करना, इस समय विशेष भांतिसे गुणका कार्य जानता (अर्थात् शिविका शीघ्र ले आओगे तो अच्छा होगा) ॥ १७ ॥ शिविकाको वहन करनेके योग्य वानरगण बलवान् वालिको उठानेके लिये तैयार होवें ॥ १८ ॥ सुमित्राजीके आनन्द बढानेवाले परवीरघाती लक्ष्मणजी सुग्रीवसे यह कहकर अपने भाईके निकट खडे रहे ॥ १९ ॥ सचिवश्रेष्ठ तारने लक्ष्मणजीके यह वचन सुनकर संभ्रांतमन हो शिविका लानेके लिये

शीघ्रतासे गुहामें प्रवेश किया ॥ २० ॥ वह तार उसके उठानेके योग्य शूर वानर गण करके उठाई हुई पालकीको लेकर फिर उस स्थानमें आया जहां श्रीराम चन्द्रजी थे ॥२१॥ वह पालकी बहुतही उत्तम थी, उसमें बैठनेके लिये अच्छे २ आसन बने थे यह दिव्य और रथके तुल्य थी। काष्ठके उत्तम चित्रित काम इसमें किये गये थे, पक्षियोंके आकार बन रहे थे॥२२॥ वह सुघटित चित्रित पैदल सिपाहियोंसे भूषित थी, सिद्ध लोगोंके विमानके समान उसमें जालिये और झरोखे लग रहे थे ॥ २३ ॥ और प्रवेश करनेके लिये सुन्दर द्वार बने थे उसके सबही अंग सुडौल थे वह बडी लम्बी चौडी थी, कारीगरोंने उसको काठका बनाया था और शोभाके लिये उसके भीतर एक क्रीडापर्वत भी बन रहा था, शिल्पियोंने उसमें अपनी अतिमहीन. मनोहर कारीगरी दिखाई

आदायशिबिकांतारःसतुपर्यापतत्पुनः॥ वानरैरुह्यमानांतांशूरैरुद्वहनोचितैः ॥ २१ ॥ दिव्यांभद्रासनयुतांशिबिकांस्यंदनोपमाम् ॥ पक्षिकर्म भिराचित्रांद्रुमकर्मविभूषिताम् ॥ २२ ॥ आचितांचित्रपत्तीभिःसुनिविष्टांसमंततः ॥ विमानमिवसिद्धानांजालवातायनायुताम् ॥२३॥ सुनि युक्तांविशालांचसुकृतांशिल्पिभिःकृताम्॥ दारुपर्वतकोपेतांचारुकर्मपरिष्कृताम् ॥ २४ ॥ वराभरणहारैश्चचित्रमाल्योपशोभिताम्॥ गुहागह नसंछन्नांरक्तचंदनभूषिताम् ॥२५॥ पुष्पाढ्यैःसमभिच्छन्नांपद्ममालाभिरेवच॥ तरुणादित्यवर्णाभिर्भ्राजमानाभिरावृताम् ॥ २६ ॥ ईदृशींशिबि कांदृष्ट्वारामोलक्ष्मणमब्रवीत्॥ क्षिप्रंविनीयतांवालीप्रेतकार्यंविधीयताम् ॥२७॥ ततोवालिनमुद्यम्यसुग्रीवःशिबिकांतदा ॥ आरोपयतविक्रोश न्नंगदेनसहैवतु ॥ २८॥ आरोप्यशिबिकांचैववालिनंगतजीवितम्॥ अलंकारैश्चविविधैर्माल्यैर्वस्त्रैश्चभूषितम् ॥ २९ ॥ आज्ञापयत्तदाराजासुग्रीवः प्लवगेश्वरः ॥ और्ध्वदेहिकमार्यस्यक्रियतामनुकूलतः ॥ ३० ॥

थी ॥ २४ ॥ बहु मूल्यवान् भूषण व हार और चित्रविचित्र फूलोंके धरनेसे वह शिबिका शोभित थी, वन व कन्दरादिक सबही उसमें रची गई थीं, रक्त चन्दनके कामसे वह सब जगह सजाई गई थी ॥ २५ ॥ पद्मादि पुष्पोंके हजारों हार उसमें टंग रहे थे, इससे वह प्रातःकालीन सूर्यके समान सब ओरसे प्रकाशित हो रही थी ॥ २६ ॥ ऐसी शिबिका अवलोकन करके श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीसे कहा कि, शीघ्र वालिको इस शिबिका अर्थात् (पालकी) पर चढाकर इसका प्रेतकार्य व दाहकार्य कराया जाय ॥ २७ ॥ अंगदके सहित सुग्रीवजी ने रोते २ वालिको उठाय उस पालकी पर लिटाया ॥२८॥ गतप्राण वालिको विविध भांतिके उत्तम हार, वस्त्र, पुष्प और गहनोंसे सजायकर उस शिबिका पर चढाया ॥ २९ ॥ तब वानरराज सुग्रीव

जीने यह आज्ञा दी कि, हमारे भाई वालिकी क्रिया विधिविधानसे कीजाय, उसमें किसी प्रकार भेद न पडने पावे ॥ ३० ॥ विविध भांतिके बहुत सारे रत्नोंकी बखेर करते २ वानरगण आगे २ चलें और उनके पीछे शिबिका चले ॥ ३१ ॥ हे वानरगण ! जिसप्रकारसे पृथ्वीमें राजा लोगोंकी महान् धनसं पत्ति देखी जाती है, वैसेही हमारे भाई बालिकी सत्क्रिया निर्वाह होवे ॥ ३२॥ ऐसी आज्ञाको प्राप्त कर तार आदि वानर अंगदजी को आगे लेकर जैसा सुग्रीवजीने कहा था वैसेही क्रिया करनेका आरंभ करने लगे जैसे महाराजाधिराजोंकी क्रिया की जाती है ॥ ३३ ॥ सब वानरगण रोते चिल्लाते पुकारते मरे हुए अपने परम बन्धु स्नेही मित्रके कारण चले जाते थे तिनके पीछे वानरियें जो कि वालिके वशमें थीं चलीं॥३४॥जिनका प्राणपति मरगया था ऐसी

विश्राणयंतोरत्नानिविविधानिबहूनिच॥अग्रतःप्लवगायांतुशिबिकातदनंतरम् ॥ ३१ ॥ राज्ञामृद्धिविशेषाद्धिदृश्यंतेभुवियादृशाः॥तादृशैरिह कुर्वंतुवानराभर्तृसत्क्रियाम् ॥ ३२ ॥ तादृशंवालिनःक्षिप्रंप्राकुर्वन्नौर्ध्वदेहिकम् ॥ अंगदंपरिरभ्याशुतारप्रभृतयस्तथा ॥ ३३ ॥ क्रोशंतःप्रययुः सर्वेवानराहतबांधवाः॥ततःप्रणिहिताःसर्वावानर्योऽस्यवशानुगाः ॥ ३४ ॥ चुक्रुशुर्वीरवीरेतिभूयःक्रोशंतिताःप्रियम्॥ताराप्रभृतयःसर्वावानर्योह तबांधवाः ॥ ३५ ॥अनुजग्मुश्चभर्तारंक्रोशंत्यःकरुणस्वनाः ॥ तासांरुदितशब्देनवानरीणांवनांतरे ॥ ३६ ॥ वनानिगिरयश्चैवविक्रोशंतीवस र्वतः ॥ पुलिनेगिरिनद्यास्तुविविक्तेजलसंवृते ॥ ३७ ॥ चितांचक्रुःसुबहवोवानरावनचारिणः ॥ अवरोप्यततःस्कंधाच्छिबिकांवानरोत्तमाः ॥ ३८ ॥ तस्थुरेकांतमाश्रित्यसर्वेशोकपरायणाः॥ ततस्तारापतिंदृष्ट्वाशिबिकातलशायिनम्॥३९॥ आरोप्यांकेशिरस्तस्यविललापसुदुःखि ता॥हावानरमहाराजहानाथममवत्सल॥४०॥हामहार्हमहाबाहोहाममप्रियपश्यमाम् ॥ जनंनपश्यसीमंत्वंकस्माच्छोकाभिपीडितम् ॥ ४१ ॥

तारा इत्यादि वानरीगण "वीर ! वीर ! प्यारे प्यारे" शब्द करके रोदन करती थीं ॥३५॥ वह सब करुणा भरे शब्दसे रोते २ पतिके पीछे २ चली, उन वानरियोंके रोने और चिल्लानेके शब्दसे उस वनके मानो ॥ ३६ ॥ सब वन और पर्वत रोदन करने लगे इस प्रकारसे गमन कर पर्वतके नीचे बहती हुई नदीके तीरमें कि जहांसे जल निकटही था ॥ ३७ ॥ ऐसे निर्जन स्थानमें वनचारी वानरोंने चिता बनाई. उन वानर श्रेष्ठोंने अपने कन्धोंसे शिविका चिताके निकट ही उतार दी ॥३८॥ और शोकके मारे व्याकुल हो सबके सब एकान्तमें खडे हो रहे. तब तारा अपने पतिको शिबिकापर पडा हुआ देखकर॥३९॥ उसका सिर अपनी गोदीमें रखकर महादुःखित हो विलाप करने लगी हा वानर महाराज ! हा हमारे प्यारे ! ॥४०॥ हा हमारे पूज्य ! हा महाबाहो ! हा

हमारे प्रिय ! तुम हमको देखो ! यह सब वानरगण शोकसे पीडित होरहे हैं सो तुम इन सबको क्यों नहीं देखते हो ? ॥ ४१ ॥ हे मानद ! यद्यपि प्राण छूट गये हैं परन्तुतो भी तुम्हारा मुख हर्षित हो रहा है और अस्त होते हुए सूर्यकी भांति जीवितके समान जान पडता है ॥ ४२ ॥ हे वानरराज ! यह रामरूप काल तुमको परलोकमें ले जानेके लिये खेंच रहा है, इन रामचन्द्रजीने रणस्थलमें एकही बाणको चलाय इन सब वानरियोंके सहित हमको विधवा कर दिया ॥ ४३ ॥ हे राजेन्द्र ! यह समस्त वानरियें झपटकर चलना नहीं जानती हैं यह पैदलही इतनी दूर दौडी चली आई हैं, सो क्या आई हुई इनको तुम नहीं देखते हो ? ॥ ४४ ॥ हे कपिश्रेष्ठ ! यह सब चन्द्रवदना आपकी भार्या इष्ट चाहने वाली हैं, सो तुम इनको और सुग्रीवको क्यों नहीं देखते हो ॥ ४५ ॥ हे राजन् ! ये तार आदि सचिव लोग और पुरवासी तुमको घेरे हुए विषादित होरहे हैं सो तुम इनको क्यों नहीं देखते ? ॥४६॥

प्रहृष्टमिहतेवक्त्रंगतासोरपिमानद ॥ अस्तार्कसमवर्णंचदृश्यतेजीवतोयथा ॥४२॥ एषत्वांरामरूपेणकालःकर्षतिवानर ॥ येनस्मविधवाःसर्वाः कृताएकेषुणारणे ॥४३॥ इमास्तास्तवराजेंद्रवानर्योऽप्लवगास्तव ॥ पादैर्विकृष्टमध्वानमागताःकिंनबुध्यसे ॥ ४४ ॥ तवेष्टानुचैवेमाभार्याश्चं द्रनिभाननाः ॥ इदानींनेक्षसेकस्मात्सुग्रीवंप्लवगेश्वर ॥४५॥ एतेहिसचिवाराजंस्तारप्रभृतयस्तव ॥ पुरवासिजनश्चायंपरिवार्यविषीदति ॥ ४६ ॥ विसर्जयैनान्सचिवान्यथापुरमरिंदम ॥ ततःक्रीडामहेसर्वावनेषुमदनोत्कटाः ॥ ४७ ॥ एवंविलपतींतारांपतिशोकपरीवृताम् ॥ उत्थापयंतिस्म तदावानर्यःशोककर्शिताः ॥४८॥ सुग्रीवेणततःसार्धंसोऽगदःपितरंरुदन् ॥ चितामारोपयामासशोकेनाभिप्लुतेंद्रियः ॥४९॥ ततोऽग्निंविधिवद्द त्त्वासोपसव्यंचकारह ॥ पितरंदीर्घमध्वानंप्रस्थितंव्याकुलेंद्रियः ॥ ५० ॥ संस्कृत्यवालिनंतंतुविधिवत्प्लवगर्षभाः ॥ आजग्मुरुदकंकर्तुंनदींशुभ जलांशिवाम् ॥ ५१ ॥ ततस्तेसहितास्तत्रअंगदंस्थाप्यचाग्रतः ॥ सुग्रीवतारासहिताःसिषिचुर्वानराजलम् ॥ ५२ ॥

हे शत्रुनाशक ! आप सब मंत्रियोंको विदा कीजिये, फिर हम तुम सब मिलकर कामसे मत्त हो यहां वनमें विहार करेंगे ॥४७॥ पतिशोकसे व्याकुल हुई ताराने जब इस प्रकार विलाप किया, तब शोकसे आर्त हुई, और वानरियोंने उसको उठाया ॥ ४८ ॥ फिर सुग्रीवजीके साथ अंगदजीने रोते २ शोकके मारे व्याकुल इन्द्रिय होकर वालिको चिताके ऊपर धर दिया ॥ ४९ ॥ उसके पीछे विकलेंद्रिय अंगदजीने विधिपूर्वक लम्बे मार्गमें गमन करनेवाले अपने पिता वालिको अग्नि प्रदानकर उनकी अपसव्य प्रदक्षिणा की ॥ ५० ॥ इस प्रकार वानरश्रेष्ठगण विधिपूर्वक वालिका सत्कार करके जलक्रिया करनेके लिये पवित्र और निर्मल जलवाली नदीपर गये ॥ ५१ ॥ वहां पहुँच अंगदजीको आगे कर सुग्रीव तार इत्यादि सबही वानरगण वालिके अर्थ जल देने लगे ॥ ५२ ॥

महाबलवान् श्रीरामचन्द्रने सुग्रीव ही के समान शोक कर उनके ही साथ दीनभावसे बालिका प्रेतकार्य कराया ॥ ५३ ॥ फिर श्रीरामचन्द्रजीके एक बाणसे मरे हुए और प्रदीप्त अग्नितुल्य तेजस्वी अतिबलवान् वालिको अग्नि द्वारा प्रदीप्त और दग्ध करके सुग्रीवजी श्रीरामचन्द्र व लक्ष्मणके निकट आये ॥ ५४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायां पंचविंशः सर्गः ॥२५॥ बालिकी दाहक्रिया कर शोकरूपी आगसे संतापित हुए उदासमन गीलेवस्त्र पहरे सुग्रीवजी जब रामचन्द्रजीके निकट आये, तब बडे २ बानर चारों ओरसे उनको घेरकर खडे हुए ॥ १ ॥ सब वानरलोग महाबाहु सरलतासे कर्म करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीके निकट, ब्रह्माजीके समीपवर्ती ऋषियोंके समान हाथ जोडे हुए खडे रहे ॥ २ ॥ फिर तरुण सूर्यके समान लाल मुख वाले सुवर्णके

सुग्रीवेणेवदीनेनदीनोभूत्वामहाबलः॥ समानशोकःकाकुत्स्थःप्रेतकार्याण्यकारयत् ॥५३॥ ततोऽथतंवालिनमग्र्यपौरुषंप्रकाशमिक्ष्वाकुवरेषुणाहतम् ॥ प्रदीप्यदीप्ताग्निसमौजसंतदासलक्ष्मणंराममुपेयिवान्हरिः ॥ ५४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा०आ० च० सा० किष्किंधाकांडे पंचविंशः सर्गः ॥ २५ ॥ ततःशोकभिसंतप्तसुग्रीवंक्लिन्नवाससम् ॥ शाखामृगमहामात्राःपरिवार्योपतस्थिरे ॥ १ ॥ अभिगम्यमहाबाहुंराममक्लिष्टकारिणम् ॥ स्थिताःप्रांजलयःसर्वेपितामहमिवर्षयः ॥ २॥ ततःकांचनशैलाभस्तरुणार्कनिभाननः अब्रवीत्प्रांजलिर्वाक्यंहनूमान्मारुतात्मजः ॥ ३ ॥ भवत्प्रसादात्काकुत्स्थपितृपैतामहंमहत् ॥ वानराणांसुदंष्ट्राणांसंपन्नबलशालिनाम् ॥ ४ ॥ महात्मनांसुदुष्प्रापंप्राप्तंराज्यमिदंप्रभो॥भवतासमनुज्ञातःप्रविश्यनगरंशुभम् ॥ ५ ॥ संविधास्यतिकार्याणिसर्वाणिससुहृद्गणः॥स्नातोयंविविधैर्गंधैरौषधैश्चयथाविधि ॥ ६ ॥ अर्चयिष्यतिमाल्यैश्चरत्नैश्चत्वांविशेषतः ॥ इमांगिरिगुहांरम्यामभिगंतुंत्वमर्हसि ॥ ७ ॥

पर्वतके तुल्य पवनपुत्र हनुमानूजी हाथ जोडकर बोले कि ॥ ३ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! आपके प्रसादसे इन सुग्रीवजीने बडे २ दांतवाले बल और ऐश्वर्य सम्पन्न महात्मा वानर लोगोंका यह पितामहादिकोंका राज्य प्राप्त किया ॥४॥ हे प्रभो! आपकी कृपासे महात्मा लोगोंको भी दुष्प्राप्य यह राज्य इन्हें मिला इसलिये अब आपकी आज्ञा पाय अपनी सुन्दर किष्किन्धा नगरीमें प्रवेश कर ॥ ५ ॥ सब सुहृद्गणोंके साथ समस्त कार्य सम्पन्न करेंगे. फिर वह विविध भांतिकी सुगन्धि और औषधियोंसे विधि विधानसहित स्नान कर ॥ ६ ॥ रत्नमालादि द्वारा भली भांतिसे आपको पूजेंगे सो इसलिये आप कृपा करके

इस रमणीय गिरिगुहामें वसीहुई किष्किन्धा पुरीको चलिये ॥ ७ ॥ और स्वामी सम्बन्ध बांधकर इन सब वानरोंको हर्षित कीजिये. शत्रुदमनकारी खरारि श्रीरामचंद्रजीको जब हनुमान्‌जी ने ऐसा कहा ॥ ८ ॥ तब अतिबुद्धिमान् वाक्य विशारद श्रीरामचन्द्रजी हनुमान्‌जीसे बोले कि; हे साधो ! हम चौदह वर्षतक ग्राम या नगरमें ॥ ९ ॥ प्रवेश नहीं करेंगे; क्योंकि हमको पिताजीकी ऐसेही आज्ञा है और हम उस आज्ञाके वश हैं। उस समृद्धिशाली दिव्य गुहामें वानरश्रेष्ठ सुग्रीव ॥ १० ॥ प्रवेश करें और तुम सब शीघ्रही विधिपूर्वक उनको राज्यपर अभिषेकित करो. श्रीरामचन्द्रजीने हनुमान्‌जीसे ऐसा कह फिर सुग्रीवसे कहा ॥ ११ ॥ कि, तुम लोकाचारके जाननेवाले हो, इसलिये इन बल विक्रमशाली बीर अंगदको युवराज पदवी देदेना ॥ १२ ॥ यह

कुरुष्वस्वामिसंबधंवानरान्सप्रहर्षय॥एवमुक्तोहनुमताराघवःपरवीरहा ॥ ८ ॥ प्रत्युवाचहनूमंतंबुद्धिमान्वाक्यकोविदः ॥ चतुर्दशसमाःसौम्यग्रामंवायदिवापुरम् ॥ ९ ॥ नप्रवेक्ष्यामिहनुमन्पितुर्निर्देशपारगः ॥सुसमृद्धांगुहांदिव्यांसुग्रीवोवानरर्षभः ॥ १० ॥ प्रविष्टोविधिवद्वीरःक्षिप्रंराज्येभिषिच्यताम् ॥ एवमुक्त्वाहनूमंतंरामःसुग्रीवमब्रवीत् ॥ ११ ॥ वृत्तज्ञोवृत्तसंपन्नमुदारबलविक्रमम् ॥ इममप्यंगदंवीरंयौवराज्येभिषेचय ॥ १२ ॥ ज्येष्ठस्यहिसुतोज्येष्ठःसदृशोविक्रमेणच ॥ अंगदोयमदीनात्मायौवराजस्यभाजनम् ॥ १३ ॥ पूर्वोयंवार्षिकोमासःश्रावणःसलिलागमः ॥ प्रवृत्ताःसौम्यचत्वारोमासावार्षिकसंज्ञिताः ॥१४॥नायमुद्योगसमयःप्रविशत्वं पुरींशुभाम् ॥ अस्मिन्वत्स्याम्यहसौम्यपर्वतेसहलक्ष्मणः ॥ १५ ॥ इयंगिरिगुहारम्याविशालायुक्तमारुता॥प्रभूतसलिलासौम्यप्रभूतकमलोत्पला ॥ १६ ॥ कार्तिकेसमनुप्राप्तेत्वंरावणवधे यत ॥ एषनःसमयःसौम्यप्रविशत्वंस्वमालयम् ॥ १७ ॥

तुम्हारे बडे भाई वालिका पुत्र तुम्हारे समान बडा विक्रमशाली है इसलिये उदार आत्मा अंगद सब भांतिसे युवराज पदवीके योग्य हैं ॥ १३ ॥ हे सौम्य! जिसमें वर्षा होती है ऐसाजो चौमासा है, तो उसमें जलका वर्षानेवाला यह श्रावण मास पहला है ॥ १४ ॥ इसलिये इस समय सीताजीके खोजनेकी तैयारी नहीं होसकती इसलिये तुम अपनी पुरीमें प्रवेश करो और हम लक्ष्मणजीके सहित इस पर्वतपर वास करते हैं ॥ १५ ॥ हे सौम्य ! यह गिरिगुहा पवनयुक्त, मनोहर, विशाल जलयुक्त और सारे कमल जिसमें खिले हुए हैं ऐसे जलाशयोंसे शोभित है इसलिये यह सब भांतिसे हमारे वास करने योग्य है ॥ १६ ॥ जब कार्तिकमास

लगे तब तुम रावणका नाश होनेके लिये यत्न करना। हे सौम्य ! यही प्रतिज्ञा है इसलिये अब तुम अपनी पुरीको चले जाओ ॥१७॥ तुम राज्यपर स्थापित होकर सुहृद्गणोंके हर्षको बढाओ; वानरश्रेष्ठ सुग्रीवजीने श्रीरामचन्द्रजीसे ऐसी आज्ञा पाकर ॥१८॥ वालिपालित मनोरम किष्किन्धापुरीमें प्रवेश किया वानरेन्द्र सुग्रीवजी जब किष्किन्धापुरी प्रवेश करते हुए तब सहस्र २ वानरोंने ॥१९॥ उनको घेरे हुए पुरीमें प्रवेश किया, फिर समस्त प्रजाके लोगोंने वानरश्रेष्ठ सुग्रीव जीको पुरीमें आये हुये देखकर ॥ २० ॥ मस्तक झुका पृथ्वीमें गिरकर प्रणाम किया तब सुग्रीवजीने प्रेमसहित कुशल पूँछ २ कर उन सबको उठाया ॥ २१ ॥ महाबलवान् वीर्यवान् सुग्रीवजी फिर भ्राताके रनवासमें गये, तब उन भीम विक्रम करनेवाले वानरश्रेष्ठ सुग्रीवजीको देख ॥ २२ ॥ सब

अभिषिंचस्वराज्येसुहृदःसंप्रहर्षय॥ इतिरामाभ्यनुज्ञातःग्रीसुवोवानरर्षभः ॥ १८ ॥ प्रविवेशपुरींरम्यांकिष्किंधांवालिपालिताम् ॥तंवानरसहस्राणिप्राविष्टवानरेश्वरम् ॥ १९॥ अभिवार्यप्रविष्टानिसर्वतःप्लवगेश्वरम्॥ततःप्रकृतयःसर्वाद्दृष्ट्वाहरिगणेश्वरम्॥२०॥प्रणम्यमूर्ध्नापतितावसुधायांसमाहिताः॥सुग्रीवःप्रकृतीःसर्वाःसंभाष्योत्थाप्यवीर्यवान् ॥२१॥ भ्रातुरंतःपुरंसौम्यंप्रविवेशमहाबलः॥ प्रविष्टंभीमविक्रांतंसुग्रीवंवानरर्षभम् ॥२२॥ अभ्यषिंचंतसुहृदःसहस्राक्षमिवामराः॥तस्यपांडुरमाजह्रुश्छत्रंहेमपरिष्कृतम् ॥२३ ॥ शुक्लेचवालव्यजनेहेमदंडेयशस्करे ॥ तथारत्नानिसर्वाणिसर्वबीजौषधानिच ॥२४॥ सक्षीराणांचवृक्षाणांप्ररोहान्कुसुमानिच॥शुक्लानिचैववस्त्राणिश्वेतंचैवानुलेपनम्॥ २५ ॥ सुगंधीनिचमाल्यानिस्थलजान्यंबुजानिच ॥ चंदनानिचदिव्यानिगंधांश्चविविधान्बहून् ॥ २६ ॥ अक्षतंजातरूपंचप्रियंगुमधुसर्पिषी ॥दधिचर्मंचवैयाघ्रंपराध्यौंचाप्युपानहौ ॥ २७ ॥ समालंभनमादायगोरोचनंमनःशिलाम् ॥ आजग्मुस्तत्रमुदितावराःकन्याश्चषोडश ॥ २८ ॥ ततस्तेवानरश्रेष्ठमभिषेक्तुंयथाविधि ॥ रत्नैर्वस्त्रैश्चभक्ष्यैश्चतोषयित्वाद्विजर्षभान् ॥ २९ ॥

इन्द्रतुल्य बन्दरों व सुहृदोंने उनको राज्यपर स्थापित किया और सुवर्णकी डंडी लगा हुआ श्वेत छत्र उनके लिये ले आये ॥ २३ ॥ और केशोंके दो शुक्ल चमर लाये, उनमेंभी सुवर्णकी डंडी लगीथीं. अनेक प्रकारके रत्न समस्त बीज और सब औषधियें एकत्रित कीं ॥ २४ ॥ क्षीरवाले वृक्षोंके अंकुर, सब भांतिके फूल, शुक्लवस्त्र; शुक्लही उबटन ॥ २५ ॥ सुगंधियुक्त हार, स्थलकमल, दिव्यचंदन, विविध भांतिकी सुगन्धें ॥ २६ ॥ अक्षत, सुवर्ण, प्रियंगु, मधु, सरसों, दही, व्याघ्रचर्म, बडे मोलकी दोनों उपानह (जूता) ॥ २७ ॥ और समालम्भन नामका अनुलेपन, गोरोचन, मैनशिल, इत्यादि अभिषेककी सामग्रियें लाई जाने लगीं फिर सुलक्षणयुक्त सोलह कन्या हर्षित होकर अभिषेकके स्थानमें आई ॥ २८ ॥ फिर वानरश्रेष्ठका अभिषेक कराने

के लिये रत्न वस्त्र और भोजनसे श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको संतोपित किया गया ॥२९॥ तत्पश्चात् वेदशास्त्रज्ञ जनोंने किनारेपर कुश बिछाय प्रदीप्त अग्निमें मंत्रपढ २ कर घृतकी आहुति दी ॥३०॥ पीछे जब होम होगया तब सुवर्णयुक्त श्रेष्ठ बिछौनोंसे बिछा हुआ चित्र और मालाओंसे शोभित रमणीय प्रासादके शिखापर ॥३१॥ श्रेष्ठ सिंहासनपर पूर्वको मुख करवाय सुग्रीवजीको बैठाय विविध मंत्र पढकर सब नदी, नद, व अनेक प्रकारके तीर्थोंसे ॥ ३२ ॥ और सब समुद्रोंसे लाया हुआ विमल जल सब वानरश्रेष्ठोंने स्वर्णके कलशोंमें भर दिया ॥३३॥ पवित्र वृषभके सींगोंमें सुवर्णके कलशोंमें भरकर लाय २ शास्त्रके दिखाये मार्गा नुसार और महर्षियोंकी बताई हुई विधिके समान ॥ ३४ ॥ गय, गवाक्ष, गवय, शरभ, गन्धमादन, मैन्द, द्विविद, हनुमान् और जाम्बवान् ॥ ३५ ॥

ततःकुशपरिस्तीर्णेसमिद्धजातवेदसम् ॥ मंत्रपूतेनहविषाहुत्वामंत्रविदोजनाः ॥ ३० ॥ततोहेमप्रतिष्ठानेवरास्तरणसंवृते ॥ प्रासादशिखरेरम्ये चित्रमाल्योपशोभिते ॥३१॥ प्राङ्मुखंविधिवन्मंत्रैःस्थापयित्वावरासने॥नदीनदेभ्यःसंहृत्यतीर्थेभ्यश्चसमंततः॥३२॥ आहृत्यचसमुद्रेभ्यः सर्वेभ्योवानरर्षभाः ॥ अपःकनककुंभेषुनिधायविमलंजलम्॥३३॥ शुभैर्ऋषभशृंगैश्चकलशैश्चवकांचनैः ॥शास्त्रदृष्टेनविधिनामहर्षिविहितेनच ॥३४॥ गजोगवाक्षोगवयःशरभोगंधमादनः ॥ मैन्दश्चद्विविदश्चैवहनूमाञ्जांबवांस्तथा ॥ ३५ ॥ अभ्यषिंचंतसुग्रीवंप्रसन्नेनसुगंधिना ॥ सलि लेनसहस्राक्षंवसवोवासवंयथा ॥ ३६ ॥ अभिषिक्तेतुसुग्रीवेसर्वेवानरपुंगवाः ॥ प्रचुक्रुशुर्महात्मानोहृष्टाःशतसहस्रशः ॥ ३७ ॥ रामस्यतुवचः कुर्वन्सुग्रीवोवानरेश्वरः ॥ अंगदं संपरिष्वज्ययौवराज्येभ्यषेचयत् ॥ ३८ ॥ अंगदेचाभिषिक्तेतुसानुक्रोशाःप्लवंगमाः ॥साधुसाध्वितिसुग्रीवं महात्मानोह्यपूजयन् ॥ ३९ ॥रामंचैवमहात्मानंलक्ष्मणंचपुनःपुनः ॥ प्रीताश्चतुष्टुवुःसर्वेतादृशेतत्रवर्तिनि ॥ ४० ॥ हृष्टपुष्टजनाकीर्णापताका ध्वजशोभिता ॥ बभूवनगरीरम्याकिष्किंधागिरिगह्वरे ॥ ४१ ॥

इन्होंने विमल सुगन्धियुक्त जलसे सुग्रीवजीको स्नान कराया,जैसे आठों वसुओंने इन्द्रजीको स्नान कराया था ॥ ३६ ॥ जब इस प्रकारसे सुग्रीवजीका अभि षेक होगया तब प्रधान २ सैकडों हजारों वानरगण हर्षित हो आनन्द ध्वनि करने लगे ॥ ३७ ॥ वानरराज सुग्रीवजीने श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा प्रति पालन करके अंगदजीको भेंट युवराज पदवीपर अभिषिक्त किया ॥३८॥ जब अंगदजीभी युवराजकी पदवीपर अभिषिक्त होचुके तब महात्मा वानरगण हर्षकी ध्वनि करके "बहुत अच्छा" "बहुत अच्छा" शब्दकर सुग्रीवजीकी बडाई करने लगे ॥ ३९ ॥ जब सुग्रीव और अंगदजीका अभिषेक होगया तब सब कपिगण प्रसन्न होकर महात्मा श्रीराम और लक्ष्मणजीकी स्तुति करने लगे ॥ ४० ॥ गिरि गुहामें बसीहुई किष्किन्धापुरी हृष्टपुष्ट जनोंके चलने फिरने और

ध्वजा पताकाओंसे सुशोभित होकर मनोरमरूप बना शोभा पाने लगी ॥ ४१ ॥ अभिषेकका सब वृत्तान्त श्रीरामचन्द्रजीसे कह कपि सेनापति महावीर्यवान् सुग्रीवजी, अपनी स्त्री रुमाको प्राप्त होकर सुरराजके समान वानरराज्यपर स्थापित हुए ॥४२॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० कि० कांडे भाषायां षड्विंशः सर्गः ॥२६॥ अभिषेक हो जानेपर श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा लेसब वानरोंके सहित सुग्रीवजी जब किष्किन्धापुरीमें चले गये तब श्रीरामचन्द्रजी अपने भ्राताके सहित प्रस्रवण पर्वतपर चले गये ॥ १ ॥ यह पर्वत शार्दूलमृगगणोंके शब्दसे युक्त और भयंकर गर्जन करनेवाले तथा सिंहके झुण्डोंसे भरपूर अनेक प्रकारकी झाडी लता और वृक्षोंसे परिपूर्ण था ॥२॥ तथा रीछ, वानर, गोपुच्छ और बिलावादि करके सेवित मेघराशि तुल्यदृष्टि आनेवाला, पवित्र करनेवाला, कल्याणकर

निवेद्यरामायतदामहात्मनेमहाभिषेकंकपिवाहिनीपतिः ॥ रुमांचभार्यामुपलभ्यवीर्यवानवापराज्यंत्रिदशाधिपोयथा ॥४२॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणेवाल्मीकीये आदिकाव्येच०सा० किष्किधाकांडेषड्विंशः सर्गः॥२६॥अभिषिक्तेतुसुग्रीवेप्रविष्टेवानरेगुहाम्॥आजगामसहभ्रात्रारामःप्रस्रवणंगिरिम् ॥१॥ शार्दूलमृगसंघुष्टंसिंहैर्भीमरवैर्वृतम् ॥ नानागुल्मलतागूढंबहुपादपसंकुलम् ॥२॥ ऋक्षवानरगोपुच्छैर्मार्जारैश्चनिषेवितम्॥ मेघराशिनिभंशैलंनित्यंशुचिकरंशिवम् ॥ ३ ॥ तस्यशैलस्यशिखरेमहतीमायतांगुहाम् ॥ प्रत्यगृह्णतवासार्थंरामःसौमित्रिणासह ॥ ४ ॥ कृत्वाचसमयंरामःसुग्रीवेणसहानघः॥ कालयुक्तंमहद्वाक्यमुवाचरघुनंदनः ॥ ५ ॥ विनीतंभ्रातरंभ्रातालक्ष्मणंलक्ष्मिवर्धनम्॥इयंगिरिगुहारम्या विशालायुक्तमारुता॥६॥अस्यांवत्स्यामसौमित्रेवर्षरात्रमरिंदम ॥ गिरिशृंगमिदंरम्यमुत्तमंपार्थिवात्मज॥७॥श्वेताभिःकृष्णताम्राभिःशिलाभिरुपशोभितम्॥नानाधातुसमाकीर्णंनदीदर्दुरसंयुतम् ॥८॥ विविधैर्वृक्षषंडैश्चचारुचित्रलतायुतम् ॥ नानाविहगसंघुष्टंमयूरवरनादितम् ॥ ९ ॥

और शोभायमान था ॥ ३ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीके सहित उस पर्वतके शिखर पर एक बडी लम्बी चौडी गुफा अपने वास करनेके लिये स्वीकारकी ॥ ४ ॥ विमलात्मा रघुनन्दन श्रीरामचन्द्रजी सुग्रीवसे वर्षाभर इस पर्वतपर रहनेका नियमकर लक्ष्मीके बढानेवाले विनीत भ्राता लक्ष्मणजीसे कालोचित महा वचन बोले कि, यह पर्वतकी गुफा बहुत बडी है और चारों ओरसे पवन आती है ॥ ५ ॥ ६ ॥ हे शत्रुघाती लक्ष्मण ! अब चौमासेभर यहीं बसेंगे क्योंकि हे राजकुमार! पर्वतका यह शृङ्गभी अति उत्तमव रमणीय है ॥७॥ यह श्वेत,काली और लाल वर्णोंकी शिलाओंसे शोभायमान है, अनेकप्रकारके धातुद्रव्य इसमें पूर्ण हैं और नदीके मेढकभी इसमें हैं ॥ ८ ॥ यह विविध वृक्षोंके समूहसे मनोहर विचित्र लतायुक्त नानाविधि विहंगम व उत्तमोत्तम मोरोंके शब्दसे

शब्दायमान है॥९॥और खिली हुई मालती; कुन्द, गुल्म, सिन्दुरा, शिरस, कदम्ब, अर्जुन, सर्जादि वृक्षोंसे सुशोभित भी है॥ १०॥हे नृपात्मज ! खिले हुये कमलके फूलोंसे भूषित यह जलाशय पानीके बढनेसे हमारी गुहाके धोरेही होजायगा ॥११॥ यह गुफा पूर्वकी ओरको नीची है इस कारण वास करनेमें बडा सुख देगी और पश्चिमकी ओरको ऊंची है सो वर्षा होनेपर पवनकी झकझोरसे इसमें जलभी नहीं आने पावेगा ॥१२॥ हे लक्ष्मण ! इस गुहाके द्वारपर नीचेमें शोभायमान लम्बी चौडी अलग अंजनके समान काली शिला पडी है ॥ १३ ॥ हे वत्स लक्ष्मण ! यह देखो उत्तरकी ओर अंजनके ढेरके तुल्य उदित मेघके समान सुशोभित पर्वतके शिखर विराजमान हैं ॥ १४ ॥ दक्षिणकी ओर भी कैलास पर्वतके शिखरके समान श्वेत मेघोंके तुल्य अनेक प्रकारकी धातुओंसे रंगा हुआ

मालतीकुंदगुल्मैश्चसिंदुवारैःशिरीषकैः ॥ कदंबार्जुनसर्जैश्चपुष्पितैरुपशोभितम् ॥ १०॥ इयंचनलिनीरम्याफुल्लपंकजमंडिता ॥नातिदूरेगुहायानौभविष्यतिनृपात्मज॥ ११ ॥प्रागुदक्प्रवणेदेशेगुहासाधुभविष्यति॥पश्चाच्चैवोन्नतासौम्यनिवातेयंभविष्यति॥१२॥गुहाद्वारेचसौमित्रेशिलासमतलाशिवा॥कृष्णाचैवायताचैवभिन्नांजनचयोपमा ॥ १३॥ गिरिशृंगमिदंतातपश्यचोत्तरतःशुभम्॥भिन्नांजनचयाकारमंभोधरमिवोदितम् ॥ १४ ॥ दक्षिणस्यामपिदिशिस्थितंश्वेतमिवांबरम् ॥ कैलासशिखरप्रख्यंनानाधातुविराजितम् ॥ १५ ॥ प्राचीनवाहिनींचैवनदींभृशमकर्दमाम् ॥ गुहायाःपरतःपश्यत्रिकूटेजाह्नवीमिव ॥ १६ ॥ चंदनैस्तिलकैःसालैस्तमालैरतिमुक्तकैः ॥ पद्मकैःसरलैश्चैवअशोकैश्चैवशोभिताम् ॥ १७॥ वानीरैस्तिमिदैश्चैवबकुलैःकेतकैरपि ॥ हिंतालस्तिनिशैर्नीपैर्वेतसैःकृतमालकैः ॥ १८ ॥ तीरजैःशोभिताभातिनानारूपैस्ततस्ततः ॥ वसनाभरणोपेताप्रमदेवाभ्यलंकृता ॥ १९ ॥ शतशःपक्षिसंघैश्चनानानादविनादिता ॥ एकैकमनुरक्तैश्चचक्रवाकैरलंकृता ॥२०॥ पुलिनैरतिरम्यैश्चहंससारससेविता ॥ प्रहसंत्यवभात्येषानानारत्नसमन्विता॥ २१ ॥

यह गिरिशृंग शोभा पारहा है ॥१५॥ यह देखो गुहाके अग्रभागमें चित्रकूट पर्वतके निकट बहती हुई मन्दाकिनी नदीके समान कीचड रहित पूर्ववाहिनी नदी बहती है ॥१६॥ इसके तटपर चन्दन, तिलक, शाल, तमाल अतिमुक्तक, पद्मक और अशोक वृक्ष शोभित हो रहे हैं ॥१७॥ तथा वानीर, तिनिद, बकुल, केतक हिन्ताल, तिनिश, नीप, वेत, कृतमा लक आदि वृक्ष शोभायमान हैं ॥१८॥ यह नदी किनारोंपर लगे हुए अनेक प्रकारके वृक्षोंसे सब जगह ऐसी शोभायमान है जैसे वस्त्र व भूषण धारण किये हुए युवा स्त्री शोभा पाती है ॥ १९ ॥ अनेक प्रकारके पक्षियोंके अनेक प्रकारके शब्दोंसे शब्दायमान और परस्पर अनुराग करते हुए चकवा चकवियोंसे यह सुशोभित हो रही है ॥ २० ॥ फिर वह नदी हंस और सारसोंके द्वारा सेवित होनेसे अनेक प्रकारके रत्नोंसे विभूषित

हो अपने रमणीक किनारोंसे मानों हँस रही है ॥२१॥ इस नदीमें किसी २ जगह नीले कमल कहीं २ लाल कमल और कहीं २ दिव्य शुक्ल वर्णवाले कुमुदके फूलोंसे शोभा होरही है ॥२२॥ यह रमणीया सौम्यदर्शन नदी शत २ जलपक्षी, मोर और क्रौंचोंके कलरवसे शब्दायमान होकर भी मुनिगणोंसे सेवित है॥२३॥ देखो इस स्थलमें चन्दनके वृक्षोंकी श्रृंगार और दशों दिशा मानो सब हमारे मनके अनुसारही उदित होकर शोभा पारही हैं ॥ २४ ॥ अहो लक्ष्मण ! यह क्या परम रमणीय स्थान है हे पर वीरघाती ! आओ, हम इस स्थानमें परम सुखसे वास करें ॥२५॥ हे राजकुमार ! मनको रमण करनेवाली चित्रविचित्र काननवाली सुग्रीवजीकी किष्किन्धा नगरीभी यहांसे निकटही बसती है ॥ २६ ॥ हे विजयिश्रेष्ठ ! यह सुनो शब्द करनेवाले वानरोंकी मृदंग

क्वचिन्नीलोत्पलैश्छन्नाभातिरक्तोत्पलैःक्वचित्॥क्वचिदाभातिशुक्लैश्चदिव्यैःकुमुदकुड्मलैः ॥२२॥ पारिप्लवशतैर्जुष्टाबर्हिक्रौंचविनादिता॥रम णीयानदीसौम्यमुनिसंघनिषेविता ॥२३ ॥ पश्यचन्दनवृक्षाणांपंक्तीःसुरुचिराइव ॥ ककुभानांचदृश्यंतेमनसैवोदितासमम् ॥२४ ॥ अहोसु रमणीयोऽयंदेशशत्रुनिषूदन ॥ दृढंरंस्यावसौमित्रेसाध्वत्रनिवसावहे ॥ २५ ॥ इतश्चनातिदूरेसाकिष्किंधाचित्रकानना ॥ सुग्रीवस्यपुरीरम्याभ विष्यतिनृपात्मज ॥ २६ ॥ गीतवादित्रनिर्घोषश्रूयतेजयतांवर ॥ नर्दतांवानराणांचमृदंगाडंबरैःसह ॥ २७ ॥ लब्ध्वाभार्यांकपिवरःप्राप्यरा ज्यंसुहृद्वृतः॥ध्रुवंनंदतिसुग्रीवःसंप्राप्यमहतींश्रियम् ॥ २८ ॥इत्युक्त्वान्यवसत्तत्रराघवःसह लक्ष्मण ॥ बहुदृश्यदरीकुंजेतस्मिन्प्रस्रवणेगिरौ ॥२९॥ सुसुखेहिबहुद्रव्येतस्मिन्हिधरणीधरे॥वसतस्तस्यरामस्यरतिरल्पाऽपिनाभवत् ॥३०॥ हृतांहिभार्यास्मरतःप्राणेभ्योऽपिगरीयसीम्॥ उदयाभ्युदितंदृष्ट्वाशशांकंसविशेषतः॥३१॥आविवेशनतंनिद्रानिशासुशयनंगतम् ॥ तत्समुत्थेनशोकेनबाष्पोपहतचेतनम् ॥ ३२॥

ध्वनिके सहित गीत और बाजा बजानेका शब्द सुनाई आता है ॥ २७ ॥ कपिवर सुग्रीवजी राज्य स्त्री और महत् राज्यलक्ष्मी प्राप्त करके सुहृद्गणोंके सहित प्रीति और महा आनंद प्राप्त करेंगे ॥ २८ ॥ यह कहकर श्रीरामचन्द्रजी गुहा और कुंजयुक्त उस प्रस्रवण पर्वतपर लक्ष्मणजीके सहित वास करने लगे ॥२९॥ उस बहुत द्रव्य सम्पन्न व सुखाकर ऐसे पर्वतपर वास करनेपर भी श्रीरामचन्द्रजीको कुछभी प्रसन्नता न हुई ॥ ३० ॥ क्योंकि प्राणसे भी अधिक प्यारी उन हरीहुई भार्या सीताजीको जब स्मरण करते और विशेष करके उस समय जब कि, उदयाचल पर उदित होते हुये निशानाथ चन्द्रमाको अवलोकन करते ॥ ३१ ॥ तब सीताजीसे उत्पन्न हुए शोकके आँसुओंसे हतबुद्धि हो श्रीरामचन्द्रजी सुखकी सेजपर शयन करकेभी रात्रिमें निद्रा प्राप्त

नहीं कर सकते थे ॥ ३२ ॥ नित्य शोकपरायण श्रीरामचन्द्रको शोक करते देखकर उनकेही समान दुःखी लक्ष्मणजी श्रीरामचन्द्रजीसे विनय सहित वचन बोले कि ॥ ३३ ॥ हे वीरवर ! आप व्यथित होकर शोक न कीजिये कारण यह कि, आप जानते हैं कि, शोक करनेवाले लोग सदा कष्टही पाया करते हैं ॥ ३४ ॥ हे रघुनंदन ! आप लोकमें नित्यही कर्मके अनुष्ठान करनेवाले; देवपरायण, आस्तिक, धर्मशील और उद्यमशाली हैं ॥ ३५ ॥ जो आप किसी प्रकारका उद्योग न करके अपना चित्त ऐसाही व्याकुल किये रहेंगे तो वह कपटचारी राक्षस रावण संग्राममें किस प्रकार आपके हाथसे मरेगा ? ॥ ३६ ॥ आप अपने मानसक्षेत्रसे शोकवृक्ष जडसे उखाड डालिये और व्यवसाय बुद्धि स्थिर कीजिये ऐसा करनेसे आप सपरिवार रावणका संहार

तशोचमानंकाकुत्स्थंनित्यशोकपरायणम् ॥तुल्यदुःखोऽब्रवीद्भ्रातालक्ष्मणोनुनयंवचः ॥ ३३ ॥ अलंवीरव्यथांगत्वानत्वंशोचितुमर्हसि ॥ शोचतोह्यवसीदंतिसर्वार्थाविदितंहिते ॥३४॥ भवान्क्रियापरोलोकेभवान्देवपरायणः ॥ आस्तिकोधर्मशीलश्चव्यवसायीचराघव ॥ ३५ ॥ नह्यव्यवसितःशत्रुंराक्षसंतंविशेषतः ॥ समर्थस्त्वंरणेहंतुंविक्रमेजिह्मकारिणम् ॥ ३६ ॥ समुन्मूलयशोकंत्वंव्यवसायंस्थिरीकुरु ॥ ततःसपरिवारंतंराक्षसंहंतुमर्हसि॥३७॥पृथिवीमपिकाकुत्स्थससागरवनाचलाम् ॥ परिवर्तयितुंशक्तःकिंपुनस्तंहिरावणम् ॥ ३८ ॥ शरत्कालंप्रतीक्षस्व प्रावृट्कालोऽयमागतः॥ ततःसराष्ट्रंसगणंरावणंतंवधिष्यसि ॥३९॥ अहंतुखलुतेवीर्यंप्रसुप्तंप्रतिबोधये ॥ दीप्तैराहुतिभिःकालेभस्मच्छन्नमिवानलम्॥४०॥लक्ष्मणस्यहितद्वाक्यंप्रतिपूज्यहितंशुभम् ॥ राघवःसुहृदंस्निग्धमिदंवचनमब्रवीत् ॥ ४१ ॥ वाच्यंयदनुरक्तनस्निग्धेनचहितेनच॥ सत्यविक्रमयुक्तेनतदुक्तंलक्ष्मणत्वया॥४२॥एषशोकः परित्यक्तः ॥ सर्वकार्यावसादकः॥विक्रमेष्वप्रतिहतंतेजप्रोत्साहयाम्यहम् ॥ ४३॥

करनेको समर्थ हो सकेंगे ॥ ३७ ॥ हे रघुवीर ? आप वन, सागर और पर्वतोंके सहित इस पृथ्वीको उलट पलट कर सकते हैं फिर रावणका मारना तो एक साधारण बात है ॥ ३८ ॥ अब यह वर्षाकाल आगया है, सो इसके बीतने पर आप शरत्कालके आनेकी बाट देखिये जैसेही शरत्काल आया कि, रावणको उसकी सेना व राज्यसहित वध कर डालिये ॥ ३९ ॥ जैसे भस्मसे ढकी हुई अग्निको आहुति देकर प्रदीप्त करते हैं वैसेही आपके सोते हुये वीर्यको उकसाते हैं ॥ ४० ॥ लक्ष्मणजीके शुभकारी व हितकारी उन वचनोंका आदर करके, सुहृद् और स्नेही लक्ष्मणजीसे श्रीरामचन्द्रजी बोले कि ॥ ४१ ॥ हे लक्ष्मण ! तुमने अनुरक्त, स्निग्ध, हितकर और सत्यविक्रमी लोगोंके यथार्थही वचन कहे ॥ ४२ ॥ यह लो, हमने समस्त कार्योंके विनाश करनेवाले शोकको

परित्याग कर विक्रमके विषयमें रुके हुए तेजको उत्साहित किया ॥ ४३ ॥ अब हम सुग्रीव और सब नदियोंकी प्रसन्नताही राह देखते हुए तुम्हारे वचनों को मान शरदकालकी बाट देखते रहेंगे (अर्थात् सुग्रीवभी बहुत दिनोंके दुःखपाये हुए विश्राम पालेंगे और नदियें भी बरसात बीतनेपर उतर जायँगी) ॥ ४४ ॥ वीरपुरुषोंके साथ जो कुछ भी उपकार किया जाता है, तो वे भी अवश्यही उसका प्रत्युपकार करते हैं. इससे निश्चय है कि, सुग्रीव हमसे उपकार पाकर प्रत्युपकार करेंगे, यदि अकृतज्ञ होकर वह प्रत्युपकार न करें तो उन महात्मागणोंका मन (जिनके साथ पहले उपकार किया गया हो) अर्थात् मित्रादि नाशको प्राप्त होजाते हैं ॥ ४५ ॥ फिर लक्ष्मणजी श्रीरामचन्द्रजीके वचन ठीक २ समझकर अपनी शोभित बुद्धि दिखातेहुए मनोज्ञश्रीरामचन्द्रजीसे हाथ जोड कहने लगे ॥ ४६ ॥ हे नरेन्द्र ! आपने जो कहा यही मेराभी मत है वानरवर सुग्रीव शीघ्रही सहायता करनेमें नियुक्त होंगे, आप वर्षाकालको बिताते हुए शरदकालकी राह

शरत्कालंप्रतीक्षिष्येस्थितोऽस्मिवचनेतव ॥ सुग्रीवस्यनदीनांचप्रसादमनुपालयन् ॥ ४४ ॥ उपकारेणवीरस्तुप्रतिकारेणयुज्यते ॥ अकृतज्ञोप्रति कृतोहंतिसत्त्ववतांमनः ॥ ४५ ॥ तदेवयुक्तंप्रणिधायलक्ष्मणःकृतांजलिस्तत्प्रतिपूज्यभाषितम् ॥ उवाचरामंस्वभिरामदर्शनंप्रदर्शयन्दर्शनमात्म नःशुभम् ॥ ४६ ॥ यथोक्तमेतत्तवसर्वमीप्सितंनरेंद्रकर्तानचिरात्तुवानरः ॥ शरत्प्रतीक्षःक्षमतामिमंभवाञ्जलप्रपातंरिपुनिग्रहेधृतः ॥ ४७ ॥ नियम्यकोपंपरिशाल्यतांशरत्क्षमस्वमासांश्चतुरोमयासह ॥ वसाचलेऽस्मिन्मृगराजसेवितेसंवर्तयञ्शत्रुवधेसमर्थः ॥ ४८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा मायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० किष्किधाकांडे सप्तविंशसर्गः ॥ २७ ॥ सतदावालिनंहत्वासुग्रीवमभिषिच्यच ॥ वसन्माल्यवतःपृष्ठे रामोलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ १ ॥ अयंसकालःसंप्राप्तःसमयोऽद्यजलागमः ॥ संपश्यत्वंनभोमेघैःसंवृतंगिरिसंनिभैः ॥ २ ॥ नवमासधृतंगर्भभास्कर स्यगभस्तिभिः ॥ पीत्वारसंसमुद्राणांद्यौःप्रसूतेरसायनम् ॥ ३ ॥

परखिये. वर्षाकाल बीतने पर शत्रुका बध करना ॥ ४७ ॥ आप क्रोधको शांत करके हमारे सहित एकत्र वासकर वर्षाकालके चौमासेको बिता शरद समयकी राह परखिये । आप अवश्यही शत्रुके मारडालनेमें समर्थ हैं । इस समय आप मृगराज सेवित इस पर्वतपर वास कीजिये ॥ ४८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायां सप्तविंशः सर्गः ॥ २७ ॥ इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी वालिको मारकर सुग्रीवको राज्य दे माल्यवान् पर्वतपर वास कर लक्ष्मणजीसे कहने लगे कि ॥ १ ॥ यह वर्षाकाल आ पहुँचा देखो ! पर्वतोंके समान मेघोंके समूहोंसे आकाश मण्डल ढक गया ॥ २ ॥ स्वर्ग स्थली, समुद्रका जलरूप रस सूर्यकी किरणोंके द्वारा पीकर कार्तिकादि नव मासतक गर्भधारण करके लोकोंका जीवन स्वरूप जलरूप रसायन छोडती है ॥ ३ ॥

सूर्यभगवान् आकाशमें आरोहण करके कुटज और अर्जुन मालाके समान मेघ सोपान श्रेणीसे उस गगनमण्डलको अलंकृत करते हैं ॥ ४ ॥ सन्ध्यासमयकी ललाईसे और अंतभागमें श्वेतवर्ण स्निग्धमेघरूप छिन्न वस्त्रोंने मानों आकाशके घाव स्थानोंमें पट्टी बाँध रक्खी हैं ॥ ५ ॥ मन्द पवनरूप निःश्वास युक्त सन्ध्याकी ललाई मानो चन्दन लगाये हुये है, श्वेतवर्णके मेघोंसे युक्त आकाश मानो कामातुर हो गयासा जान पडता है ॥ ६ ॥ ग्रीष्मके तापसे महाकष्टित नये पानीके छिडके जानेसे शोकसे संतापित यह पृथ्वी सीताजीके समान आंसू छोडती है ॥ ७ ॥ मेघके उदरसे निकले हुये, कपूरलगे जलके समान शीतल और केतकीकी सुगंधियुक्त पवन अंजलिद्वारा पान करनेके योग्य होगया है ॥ ८ ॥ उस पर्वतपर अर्जुनके सब वृक्ष कुसुमित

शक्यमंबरमारुह्यमेघसोपानपंक्तिभिः ॥ कुटजार्जुनमालाभिरलंकर्तुंदिवाकरः ॥ ४ ॥ संध्यारागोत्थितैस्ताम्रैरंतेष्वपिचपांडुभिः ॥ स्निग्धैरभ्रपटच्छेदैर्बद्धव्रणमिवांबरम् ॥५॥ मंदमारुतनिःश्वासंसंध्याचंदनरंजितम् ॥ आपांडुजलदंभातिकामातुरमिवांबरम् ॥ ६॥ एषाधर्मपरिक्लिष्टा नववारिपरिप्लुता ॥ सीतेवशोकसंतप्तामहीबाष्पंविमुंचति ॥ ७ ॥ मेघोदरविनिर्मुक्ताःकर्पूरदलशीतलाः ॥ शक्यमंजलिभिःपातुंवाताःकेतकगंधिनः ॥८॥ एषफुल्लार्जुनःशैलःकेतकैरभिवासितः ॥ सुग्रीवइवशांतारिर्धाराभिरभिषिच्यते ॥ ९ ॥ मेघकृष्णाजिनधराधारायज्ञोपवीतिनः ॥ मारुतापूरितगुहाःप्राधीताइवपर्वताः ॥ १० ॥ कशाभिरिवहैमीभिर्विद्युद्भिरभिताडितम् ॥ अंतस्तनितनिर्घोषंसवेदनमिवांबरम् ॥ ११ ॥नीलमेघाश्रिताविद्युत्स्फुरंतीप्रतिभातिमे॥ स्फुरंतीरावणस्यांकेवैदेहीवतपस्विनी ॥ १२ ॥ इमास्तामन्मथवतांहिताःप्रतिहतादिशः ॥ अनुलिप्ताइवघनैर्नष्टग्रहनिशाकराः ॥ १३ ॥

हो गये हैं, केतकीकी सुगंधियुक्त और सुग्रीवके समान शत्रुसहित होकर जलकी धारसे अभिषेकित होरहे हैं ॥ ९ ॥ मेघरूप चीर वल्कलधारी, धारारूप यज्ञोपवीतयुक्त गुहाके मुखमें पवन शब्दयुक्त सब पर्वत, वेदाध्ययन करनेवाले बटुकगणोंके समान शोभायमान हो रहे हैं ॥ १० ॥ इस वर्षाकालमें आकाशस्थल बिजलीरूप सुवर्णके कोडेसे ताडित होकर हृदयमें वेदना पाय घोर शब्द कर रहा है ॥ ११ ॥ हम विचार करते हैं कि, नीलमेघकी गोदीमें बैठी हुई बिजली चमककर रावणके अंकमें बैठी कृपा करनेके योग्य तपस्विनी जानकीजीके समान प्रकाशित हो रही है ॥ १२ ॥ यह सब दिशायें मेघोंमें छारही हैं इसलिये तारागण और चन्द्रादि छिप गये हैं; इसलिये इस समय यह सब दिशायें कामीगणोंको सुखकी देनेवाली हो गई हैं ॥१३॥

हे लक्ष्मण ! कहीं २ नदीवारिके संयोगसे उत्पन्न हुई बाफयुक्त वर्षाके आनेसे समुत्सुक पर्वतके शृंगोंपर पुष्पित कुटजवृक्ष सीताके शोकसे उत्पन्न हमको कामोद्दीपन कराते हुये टिके हैं ॥ १४ ॥ हे लक्ष्मण ! इस वर्षाकालमें धूल उडनी बन्द होगई है. वायु पालायुक्त हो चलता है; ग्रीष्मकालके समस्त दोष हो शान्तिको प्राप्त होजाते हैं; राजाओंकी यात्रा बंद होगई और परदेशी मनुष्य अपनी प्यारीके विरहमें रहनेसे असमर्थ हो अपने २ देशको चले आते हैं ॥ १५ ॥ इस समयमें सब चक्रवाक अपनी २ प्यारी चकवीके सहित बसनेके लिये मानससरोवर पर चले जाते हैं । और इस समय बराबर वर्षा होनेके कारणसे मार्गोंमें रथादि सवारियोंका चलनाभी बन्द हो गया है ॥ १६ ॥ इससमयमें कहीं प्रकाश है कहीं अप्रकाशहै, क्योंकि आकाश

क्वचिद्बाष्पाभिसंरुद्धान्वर्षागमसमुत्सुकान्॥ कुटजान्पश्यसौमित्रेपुष्पितान्गिरिसानुषु ॥ ममशोकाभिभूतस्यकामसंदीपनान्स्थितान् ॥ १४॥ रजःप्रशांतंसहिमोऽद्यवायुर्निदाघदोषप्रसराःप्रशांताः ॥ स्थिताहियात्रावसुधाधिपानांप्रवासिनोयांतिनराःस्वदेशान् ॥१५॥ संप्रस्थितामानस वासलुब्धाःप्रियान्विताःसंप्रतिचक्रवाकाः ॥ अभीक्ष्णवर्षोदकविक्षतेषुयानानिमार्गेषुनसंपतंति ॥ १६ ॥ क्वचित्प्रकाशंक्वचिदप्रकाशंनभःप्र कीर्णांबुधरंविभाति ॥ क्वचित्क्वचित्पर्वतसंनिरुद्धंरूपंयथाशांतमहार्णवस्य ॥ १७ ॥व्यामिश्रितंसर्जकदंबपुष्पैर्नवंजलंपर्वतधातुताम्रम् ॥ मयूर केकाभिरनुप्रयातंशैलापगाःशीघ्रतरंवहंति ॥ १८ ॥ रसाकुलंषट्पदसंनिकाशंप्रभुज्यतेजंबुफलंप्रकामम् ॥ अनेकवर्णंपवनावधूतंभूमौपतत्याम्र फलंविपक्वम्॥ १९ ॥विद्युत्पताकाःसबलाकमालाःशैलेंद्रकूटाकृतिसंप्रकाशाः ॥ गर्जंतिमेघाःसमुदीर्णनादामत्तागजेंद्राइवसंयुगस्थाः॥ २० ॥ वर्षोदकाप्यायितशाद्वलानिप्रवृत्तनृत्तोत्सवबर्हिणानि ॥ वनानिनिर्वृष्टबलाहकानिपश्यापराह्णेष्वधिकंविभांति ॥ २१ ॥

मण्डल मेघसमूहसे छारहा है और कहीं पर्वतोंसे संरुद्ध होरहा है इसलिए तरंगहीन महासमुद्रके समान शोभायमान है ॥ १७ ॥ साखू और कदम्बके फूलोंसे युक्त, पर्वतकी धातुओंसे मिश्रित, ताम्रवर्ण मोरोंकी बोलीसे शब्दायमान, पहाडी नदियें शीघ्रतासे बही जाती हैं ॥ १८ ॥ इस समयमें सब जीवगण रसयुक्त भ्रमरोंके समान, अनेक जम्बू फलोंको भक्षण करते हैं और पवनसे संचालित अनेक वर्णके पके हुए आमफल पृथ्वीपर गिर रहे हैं ॥ १९ ॥ बिजलीरूप पताका लगाये और बगलोंकी पंक्तियुक्त माला पहरे शैल शिखर तुल्य भयंकर नाद करनेवाले मेघगण रणमें खडे हुए मतवाले हाथियोंके समान गर्जना कर रहे हैं ॥ २० ॥ जिनके तृणयुक्त सब स्थान वर्षाके जलसे तृप्त हो गये हैं और जिनमें मोर सदासेही नाच रहे हैं और

मेघगण अतिवर्षा करके अब थम रहे हैं, सो ऐसे वन अपराह्नकालमें अधिक शोभा धारण किये हुये हैं ॥ २१ ॥ इस कालमें बकमालायुक्त सब मेघ बहुत सारे पानीका बोझ लादेहुये पर्वतोंके बडे २ शृंगोंपर बार २ विश्राम करके फिर चले जाते हैं ॥ २२ ॥ गर्भ धारण करनेके लिये मेघके प्रति काम युक्त बकपंक्ति हर्षवती हो वायुसे कंपायमान श्रेष्ठ कमल फूलोंकी मालाके समान मनोहर आकाशके गलेमें पडकर शोभा पारही है ॥ २३ ॥ इस समय नई उत्पन्न हुई इन्द्रवधू, वीरबहूटियोंके मध्यमें पडनेसे चित्रित तृणोंसे ढकी हुई भूमि, मध्य २ में लाखके रंगकी बिंदियां लगाय श्वेत वर्णका कम्बल ओढे स्त्रीके समान शोभित है ॥ २४ ॥ इस वर्षाकालमें क्रम २ से निद्रा केशवको और नदियें द्रुत वेगसे सागरको बकपांति हर्षित होकर मेघको. और

समुद्वहंतःसलिलातिभारंबलाकिनोवारिधरानदंतः॥ महत्सुशृंगेषुमहीधराणांविश्रम्यविश्रम्यपुनःप्रयांति ॥२२॥ मेघाभिकामापरिसंपतंतीसंमोदिताभातिबलाकपंक्तिः ॥ वातावधूतावरपौंडरीकीलंबेवमालारुचिरांबरस्य ॥ २३ ॥ बालेंद्रगोपांतरचित्रितेनविभातिभूमिर्नवशाद्वलेन ॥ गात्रानुपृक्तेनशुकप्रभेणनारीवलाक्षोक्षितकंबलेन ॥ २४ ॥ निद्राशनैःकेशवमभ्युपैतिद्रुतंनदीसागरमभ्युपैति॥हृष्टाबलाकाघनमभ्युपैतिकांतासकामाप्रियमभ्युपैति ॥२५॥ जातावनांताःशिखिसुप्रनृत्ताजाताःकदंबाःसकदंबशाखाः ॥ जातावृषागोषुसमानकामाजातमहीसस्यवनाभिरामा ॥२६॥ वहंतिवर्षंतिनदंतिभांतिध्यायंतिनृत्यंतिसमाश्वसंति ॥ नद्योघनामत्तगजावनांताःप्रियाविहीनाःशिखिनःप्लवंगमाः ॥२७॥ प्रहर्षिताःकेतकिपुष्पगंधमाघ्रायमत्तावननिर्झरेषु॥प्रपातशब्दाकुलितागजेंद्राःसार्धमयूरैःसमदानदंति ॥२८॥ धारानिपातैरभिहन्यमानाःकदंबशाखासुविलंबमानाः ॥ क्षणार्जितंपुष्परसावगाढंशनैर्मदंषट्चरणास्त्यजंति ॥२९ ॥ अंगारचूर्णोत्करसंनिकाशैःफलैःसुपर्याप्तरसैःसमृद्धैः ॥ जंबूद्रुमाणांप्रविभांतिशाखानिपीयमानाइवषट्पदौघः ॥ ३० ॥

कामिनी स्त्रियाँ अपने पतिको प्राप्त होती हैं ॥ २५ ॥ इस समय वनोंमें मोर नाच रहे हैं कदमके पेडोंकी डालियोंमें पुष्प खिल रहे हैं, वृषभ गायोंके ऊपर कामातुर हो रहे हैं और मही अनाज और वनसे मनोहर होगई है ॥२६॥ इस समय नदियां बही जाती हैं मेघ वर्ष रहे हैं मतवाले हाथी गर्ज रहे हैं वन चमक रहे हैं प्यारीके विरहमें विरहीगण ध्यान कर रहे हैं, मोरगण नाच रहे हैं और वानरगण आशायुक्त हो श्वास ले रहे हैं ॥ २७ ॥ नवीन झरनोंपर हाथी केतकी पुष्पकी सुगंधि सूँघकर मतवाले हृष्ट और जल गिरनेके शब्दसे आकुलित हो मोरगणोंके सहित शब्द करते हैं ॥२८॥ कदम्बकी डाली पर अनुरागी हुये भौंरोंके झुण्ड जलकी धारा गिरनेसे आहतहो पहले क्षणका इकट्ठा किया हुआ गाढ पुष्परस रूप मद परित्याग किये देते हैं ॥२९॥ जामनके वृक्षोंकी डालियें

अंगार चूर्ण समूह तुल्य अधिकरसवाले फलकेसमूहसे, भ्रमरगणोंसे पी जातीहुईसी प्रकाशमानहो रही हैं ॥३०॥ विद्युत्‌रूप पताकासे अलंकृत गंभीर महाशब्द युक्त मेघगण रण करनेको तैयार हाथियोंके समान शोभित होते हैं ॥ ३१ ॥ पर्वत वनके चलने वाले अपने मार्गमें टिके हुए युद्धकी कामना किये गजेन्द्र गणके मेघकी गर्जना सुन दूसरे शत्रु हाथीके गर्जनेकी शंका कर युद्ध करनेके लिये लौट रहे हैं ॥३२॥ किसी २ जगह भ्रमरगण गुञ्जार कर रहे हैं, कहीं मोर नाच रहे हैं कहीं हाथियोंके झुण्ड मतवाले होकर शोभा पारहे हैं, इस प्रकारसे समस्त वन सब वस्तुओंसे प्रकाशित होते हैं ॥ ३३ ॥ कदम्ब, सर्ज्ज, अर्जुन, कन्दलयुक्त मधु समान वारिसे पूर्ण वनभूमि मदमाते मोरोंके शब्द और नृत्यसे मद्यपान करनेके स्थानके समान जान पडती है

तडित्पताकाभिरलंकृतानमुदीर्णगंभीरमहारवाणाम् ॥ विभांतिरूपाणिबलाहकानांरणोत्सुकानामिववानराणाम् ॥ ३१ ॥मार्गानुगःशैलवनानुसारीसंप्रस्थितोमेघरवंनिशम्य॥युद्धाभिकामःप्रतिनादशंकीमत्तोगजेद्रःप्रतिसंनिवृत्तः ॥ ३२ ॥क्वचित्प्रगीताइवषट्पदौघःक्वचित्प्रमत्ताइवनीलकंठैः॥क्वचित्प्रमत्ताइववारणेन्द्रैर्विभांत्यनेकाश्रययिणोवनांताः ॥ ३३ ॥ कदंबसर्जार्जुनकंदलाढ्यावनांतभूमिर्मधुवारिपूर्णा॥मयूरमत्ताभिरुतप्रनृत्तैरापानभूमिप्रतिमाविभाति ॥३४॥मुक्तासमाभंसलिलंपतद्वैसुनिर्मलंपत्रपुटेषुलग्नम् ॥ हृष्टाविवर्णच्छदनाविहंगाःसुरेंद्रदत्तंतृषिताःपिबंति ॥ ३५ ॥ षट्पादतंत्रीमधुराभिधानंप्लवंगमोदीरितकंठतालम् ॥ आविष्कृतंमेघमृदंगनादैर्वनेषुसंगीतमिवप्रवृत्तम् ॥ ३६ ॥ क्वचित्प्रनृत्तैःक्वचिदुन्नदद्भिःक्वचिच्चवृक्षाग्रनिषण्णकायैः ॥ व्यालंबबर्हाभरणैर्मयूरैर्वनेषुसंगीतमिवप्रवृत्तम् ॥ ३७ ॥ स्वनैर्घनानांप्लवगाःप्रबुद्धाविहायनिद्रांचिरसंनिरुद्धाम् ॥ अनेकरूपाकृतिवर्णनादानवांबुधाराभिहतानदंति ॥ ३८ ॥

॥ ३४ ॥ मोतीके समान गिरा, पत्तोंपर लगा इन्द्रका दिया निर्मल जल पीले विवर्ण पंखवाले प्यासे पक्षीगण हर्षित होकर पान कर रहे हैं ॥ ३५ ॥ भ्रमर ध्वनिरूप मधुर गीत और उसमें वानरोंकी ध्वनि कंठताल, मेघशब्द मृदंगध्वनि इस प्रकारसे वनमें मानो संगीत होना प्रारम्भ हुआ है ॥ ३६ ॥ कभी नृत्य करके कभी शब्द करके कभी वृक्षकी डालियोंपर बैठ करके कभी लंबे पंखोंको भूषण रूप विस्तार करके मोरगण वनस्थलमें संगीत कर रहे हैं ॥ ३७ ॥ वानरगण मेघोंके शब्दसे बहुत दिनोंसे ग्रहण की हुई निद्राको परित्याग करके जागरित हो, अनेक प्रकारका रूप धरि व अनेक प्रकारका शब्द

करके नये जलकी धारासे पीडित हो किल २ कर रहे हैं ॥ ३८ ॥ समस्त नदियें चक्रवाक समूहको अपने किनारोंसे हटाती और अपने ढहे हुये कँगूरोंको जलवेगसे बहाती, वर्षा जलसे पूर्ण होनेके कारण मदान्ध हो भोग करनेकी इच्छासे अपने स्वामी समुद्रके निकट चली जाती हैं ॥ ३९ ॥ नील मेघोंके समूहमें आसक्त: नील जल भरे बादल दावाग्निसे दग्ध हुये पहाडोंमें दावाग्निदग्ध सब पर्वत एक दूसरेकी जडमें बँधे हुयेसे ज्ञात होते हैं ॥ ४० ॥ इस कालमें नीप और अर्जुनके पुष्पकी सुगन्धिसे वसे हुए वनके रमणीय स्थलोंमें मोर मतवाले होकर नाच रहे हैं । हरी घासपर बीरबहूटियां शोभा पाय रहीं हैं. और हाथी भी इधर उधर झूम २ कर फिर रहे हैं ॥ ४१ ॥ भ्रमरगण हर्षित होकर नये जलकी धारासे पुष्परस विहीन कमलफूलोंको त्याग, पुष्परस सहित कदम्बके

नद्यःसमुद्वाहितचक्रवाकास्तटानिशीर्णान्यपवाहयित्वा ॥ दृप्तानवप्रावृतपूर्णभोगाद्दतस्वभर्तारमुपोषयंति ॥ ३९ ॥ नीलेषुनीलानववारिपूर्णामेघेषुमेघाःप्रतिभांतिसक्ताः॥दवाग्निदग्धेषुदवाग्निदग्धाःशैलेषुशेलाइवबद्धमूलाः ॥४० ॥प्रमत्तसन्नादितबर्हिणानिसशक्रगोपाकुलशाद्वालानि ॥ चरंतिनीपार्जुनवासितानिगजाःसुरम्याणिवनांतराणि ॥ ४१ ॥ नवांबुधाराहतकेसराणिध्रुवंपरिष्वज्यरोसरुहाणि ॥ कदंबपुष्पाणिसकेसराणि नवानिहृष्टाभ्रमराःपिबंति ॥ ४२ ॥ मत्तागजेंद्रामुदितांगवेंद्रावनेषुविक्रांततरामृगेंद्राः ॥ रम्यानगेंद्रानिभृतानरेंद्राःप्रक्रीडितोवारिधरैःसुरेंद्रः॥ ॥ ४३॥मेघाःसमुद्भूतसमुद्रनादामहाजलौघैर्गगनावलंबाः॥नदीस्तटाकानिसरांसिवापीर्महींचकृत्स्नामपवाहयंति ॥४४॥ वर्षप्रवेगाविपुलाः पतंतिवांतिप्रवाताःसमुदीर्णवेगाः ॥ प्रनष्टकूलाः प्रवहंतिशीघ्रंनद्योजलैर्विप्रतिपन्नमार्गाः ॥४५॥ नरैर्नरेंद्राइवपर्वतेंद्राःसुरेंद्रनीतैपवनोपनीतैः ॥ घनांबुकुंभैरभिषिच्यमानारूपश्रियंस्वामिवदर्शयंति ॥ ४६ ॥

नये पुष्पोंको पान कर रहे हैं ॥ ४२ ॥ इस कालके समय वनमें गजेन्द्रगण मत्त वृषभगण मुदित सिंहगण अतिशय पराक्रम कर रहे हैं, पर्वत मनोहर हैं नृपतिगण उद्योगविहीन हैं और इन्द्रजी मेघोंसे क्रीडा करनेमें लग रहे हैं ॥ ४३ ॥ महाजलकी धारवाले गगनमें फैले हुए मेघगण समस्त समुद्रोंमें शब्द उठा रहे हैं; और नदी तडाग सरोवर वापियोंको पूर्ण करते पृथ्वीके ऊपर जल बहा रहे हैं ॥४४॥ इस कालमें अति वेग सहित वर्षाकी धार गिरती है पवन भी अतिवेगसे चलती है नदियें किनारोंको तोडती फाडती कुमार्गमें दहाडती चली जाती हैं ॥ ४५ ॥ मनुष्यगण जिस प्रकारसे राजाको स्नान कराते हैं,

वैसेही इन्द्रजीके दिये पवन करके आये मेघरूप घोडोंके द्वारा स्नान करके पर्वतगण मानों अपना रूप दिखलाते हैं ॥ ४६ ॥ इस कालमें मेघोंसे ढकेहुए आकाशमें तारागण और सूर्यके दर्शन नहीं होते हैं। धरणी नवीन जलकी धारासे तृप्त होगई, सब दिशाओंमें अंधकार छा जानेके कारण उनमें कुछभी प्रकाश विदित नहीं होता ॥ ४७ ॥ पर्वतोंके बडे २ शिखर जलधाराके गिरनेसे धोये जाकर और महाप्रभाववाले विपुल लंबे मोती रूप झरनोंके द्वारा अधिक शोभायमान होरहे हैं ॥ ४८ ॥ पर्वतोंके बडे २ झरनोंका पानी चट्टानों पर वेगसहित बहता हुआ, मोरोंके शब्दसे युक्त पर्वतोंकी गुफाओंमें टूटे हुए डोरेवाले हारके समान छितरा कर गिर रहा है ॥ ४९ ॥ पर्वतोंके विपुल वेगवान झरने गिरिशृङ्गोंकी तली धोते हुए महावेगसे गिरकर महा गुफाओंमें मुक्तासमूहके समान रोके जाते हैं ॥ ५० ॥ स्वर्गीय स्त्रीगणोंके रति कार्यके मर्दनसे टूटकर अतुल मोतियोंके हारके समान चारों ओर जल

घनोपगूढंगगनंनतारानभास्करोदर्शनमभ्युपैति ॥ नवैर्जलौघैर्धरणीवितृप्तातमोविलिप्ता न दिशःप्रकाशाः॥४७॥महांतिकूटानिमहीधराणांधरा विधौतान्यधिकंविभांति॥महाप्रमाणैर्विपुलैःप्रपातैर्मुक्ताकलापैरिवलंबमानैः॥४८॥ शैलोपलप्रस्खलमानवेगाः शैलोत्तमानांविपुलाः प्रपाताः॥ गुहासुसन्नादितबर्हिणासुहाराविकीर्यंतइवावभांति ॥ ४९॥ शीघ्रप्रवेगाविपुलाःप्रपातानिर्धौतशृङ्गोपतलागिरीणाम् ॥ मुक्ताकलापप्रतिमाःप तंतोमहागुहोत्संगतलैर्धियंते ॥ ५० ॥ सुरतामर्दविच्छिन्नाःस्वर्गस्त्रीहारमौक्तिकाः ॥ पतंतिचातुलादिक्षुतोयधाराःसमंततः ॥ ५१ ॥ विली यमानैर्विहगैर्निमीलद्भिश्चपंकजैः ॥ विकसंत्याचमालत्यागतोऽस्तंज्ञायतेरविः ॥ ५२ ॥ वृत्तायात्रानरेंद्राणांसेनापथ्येववर्तते ॥ वैराणिचैवमा र्गाश्चसलिलेनसमीकृताः ॥५३॥ मासिप्रोष्ठपदेब्रह्मब्राह्मणानांविवक्षताम् ॥ अयमध्यायसमयःसामगानामुपस्थितः ॥ ५४ ॥ विवृत्तकर्माय तनोनूनंसंचितसंचयः ॥ आषाढीमभ्युपगतोभरतःकोशलाधिपः ॥ ५५ ॥

धारा गिर रही हैं ॥ ५१ ॥ पक्षियोंके घोसलोंमें चलेजानेसे और कमलफूलोंके बंद होनेसे मालती पुष्पके खिलनेसे, सूर्यका अस्त हो जाना जाता है, नहीं तो बराबर बादलोंके छाये रहनेसे सूर्यभगवान्का अस्त नहीं जाना जासकता ॥ ५२ ॥ इस कालमें नृपति लोगोंकी यात्रा बंद हो रही है जो किसी राजाकी सेना किसी शत्रुपर चढ चली थी वह भी मार्गमें जहांकी तहां रही और वैर व मार्गको जलने समान कर दिया ॥ ५३ ॥ वेद पढनेकी अभिलाषा किये साम जाननेवाले ब्राह्मणोंका यह भाद्रपद रूप वेद पढनेका समय आपहुँचा है ॥ ५४ ॥ कौशलाधिपति भरतजी अब कर लेने आदिके सब कार्योंसे निवट जीवन साधन करनेकी समस्त वस्तुयें एकत्र कर आषाढी पूर्णिमासे कुछ विशेष अनुष्ठान करने लगे होंगे ॥ ५५ ॥

इस समय सरयू नदी वर्षाके जलसे पूर्ण होगई होगी, इस समय सरयू नदीका वेग ऐसा बढता होगा, कि जैसे हमको आये देख अयोध्यावासी प्रजा कोलाहल करेगी ॥५६॥ वर्षाके गुणसमूह भली भांति प्रकाशित हो रहे हैं । इस समय सुग्रीव विजय करके वह बडा भारी राज्य पाय अपनी स्त्रियोंके साथ विविध भांतिके सुखभोगोंमें आसक्त होरहे हैं ॥५७॥ हे लक्ष्मण ! परन्तु हमारी प्यारी हरी गई हैं और हमारा बडा भारी राज्यभी छूट गया; सो जलसे कटते हुए नदीके किनारेके समान इस समय हम दुःखी हो रहे हैं ॥५८॥ हमारा शोक अति बडा है वर्षा अतिशय दुर्गम है रावण महाशत्रु है यह सबही हमको बडे अपार ज्ञात होते हैं ॥५९॥ इस वर्षाहीके कारण शत्रुपर चढाई नहीं की जाती, क्योंकि मार्ग सब अति दुर्गम हो रहे हैं इससे सुग्रीवजीने सीताजीके ढूंढ भालनेके विषयमें हमसे

नूनमापूर्यमाणायाःसरय्वावर्धतेरयः॥मांसमीक्ष्यसमायांतमयोध्यायाइवस्वनः॥५६॥ इमाःस्फीतगुणावर्षाःसुग्रीवःसुखमश्नुते ॥ विजितारिः सदारश्चराज्येमहतिचस्थितः॥५७॥ अहंतुहृतदारश्चराज्याच्चमहतश्च्युतः ॥ नदीकूलमिवक्लिन्नमवसीदामिलक्ष्मण ॥५८॥ शोकश्चममविस्तीर्णोवर्षाश्चभृशदुर्गमाः॥ रावणश्चमहाञ्छत्रुरपारः प्रतिभातिमे ॥५९ ॥ अयात्रांचैवदृष्ट्वेमांमार्गांश्चभृशदुर्गमान् ॥ प्रणतेचैवसुग्रीवेनमयाकिंचिदीरितम् ॥६०॥ अपिचापिपरिक्लिष्टंचिराद्दारैःसमागतम्॥आत्मकार्यगरीयस्त्वाद्वक्तुंनेच्छामिवानरम्॥६१ ॥स्वयमेवहिविश्रम्यज्ञात्वाकालमुपागतम्॥उपकारंचसुग्रीवोवेत्स्यतेनात्रसंशयः॥६२॥तस्मात्कालप्रतीक्षोऽहंस्थितोऽस्मिशुभलक्ष्मण ॥ सुग्रीवस्यनदीनांचप्रसादमभिकांक्षयन् ॥६३॥ उपकारेणवीरोहिप्रतिकारेणयुज्यते॥अकृतज्ञोप्रतिकृतोहंतिसत्त्ववतांमनः॥६४ ॥ अथैवमुक्तःप्रणिधायलक्ष्मणःकृताञ्जलिस्तत्प्रतिपूज्य भाषितम् ॥ उवाचरामंस्वभिरामदर्शनंप्रदर्शयन्दर्शनमात्मनःशुभम् ॥ ६५ ॥

कहाभी था परन्तु तब हमने उनसे कुछभी न कहा ॥६०॥ और सुग्रीव अत्यन्त कष्ट पाकर अपनी स्त्रियोंसे मिले हैं और हमारा कार्य अत्यन्त भारी थोडे समयमें नहीं होगा; इसी कारण हम उनसे कुछ कहनेकी इच्छा नहीं करते ॥६१॥ इसमें कुछ सन्देह नहीं है कि, सुग्रीव विश्राम करके आपही समयको आया जना उपकारका स्मरण करेगा ॥६२॥ इस लिये हे लक्ष्मण ! हम सब बंदियोंकी और सुग्रीवकी प्रसन्नताको चाहते यहां पर कालकी प्रतीक्षा किये टिके हैं ॥६३॥ वीर लोग उपकार करनेवालेका अवश्यही प्रत्युपकार किया करते हैं और जो उपकारको प्राप्त होकर उसको नहीं मानते तो वीरगणोंका मन असन्तुष्ट हो जाताहै; क्योंकि कोई किसीके साथ उपकार करनेका उत्साह नहीं करते ॥ ६४ ॥ जब श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणजीसे इस प्रकार कहा, तो वह हाथ जोड उन

वचनोंका आदर करते हुए अपना विश्वास उनपर प्रगट करके मनकी जाननेवाले श्रीरामचन्द्रजीसे बोले ॥ ६५ ॥ हे महाराज ! आपने कुछ कहा, उस सबको सुग्रीवजी शीघ्रही करेंगे, इस समय आप शरद्कालको परखतेहुए शत्रुके विनाशमें बुद्धि लगाइये इस वर्षाकालको बिता दीजिये ॥ ६६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायामष्टाविंशः सर्गः ॥ २८ ॥ विगत विद्युत और विगतवारिद, सारससमूहसे निनादित मनोहर चांदनीसे अनुलिप्त विमल आकाशको अवलोकन करके सुग्रीवजीके निकट हनुमानूजी गये ॥ १ ॥ सुग्रीव अत्यन्त समृद्धिशाली होकर धर्म और अर्थको इकट्ठा करनेके विषयमें शिथिल और असत् पुरुषोंके मार्ग अर्थात् कामवृत्तिमें अत्यन्त आसक्तचित्त ॥ २ ॥ और सब कार्योंमें निवृत्त वालिके मारनेसे कृतकार्य हुए । समस्त

यदुक्तमेतत्तवसर्वमीप्तिनरेंद्रकर्तानचिराद्धरीश्वरः॥शरत्प्रतीक्षःक्षमतामिदंभवाञ्जलप्रपातंरिपुनिग्रहेधृतः॥६६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० किष्किधाकांडे अष्टाविंशः सर्गः ॥ २८॥ समीक्ष्यविमलंव्योमगतविद्युद्बलाहकम् ॥ सारसाकुलसंघुष्टंरम्यज्योत्स्नानुलेपनम् ॥ ॥ १ समृद्धार्थंचसुग्रीवंमंदधर्मार्थसंग्रहम् ॥ अत्यर्थंचासतांमार्गमेकांतगतमानसम् ॥२॥ निवृत्तकार्यं सिद्धार्थंप्रमदाभिरतं सदा॥प्राप्तवंतमभिप्रेतान्सर्वानेव मनोरथान्॥३॥स्वांचपत्नीमभिप्रेतांतारांचापिसमीप्सिताम् ॥ विहरंतमहोरात्रंकृतार्थंविगतज्वरम् ॥ ४ ॥ क्रीडन्तमिवदेवेशंगंधर्वाप्सरसांगणैः॥मंत्रिषुन्यस्तकार्यंचमंत्रिणामनवेक्षकम् ॥५॥ उच्छिन्नराज्यसंदेहंकामवृत्तमिवस्थितम् ॥निश्चितार्थोऽर्थतत्त्वज्ञःकालधर्मविशेषवित् ॥६॥ प्रसाद्यवाक्यैर्विविधैर्हेतुमद्भिर्मनोरमैः ॥ वाक्यविद्वाक्यतत्त्वज्ञंहरीशंमारुतात्मजः ॥७॥ हितंतथ्यंचपथ्यंच सामधर्मार्थनीतिमत् ॥ प्रणयप्रीतिसंयुक्तंविश्वासकृतनिश्चयम् ॥ ८ ॥

इष्ट और मनोरथ लाभ किये हुए राज्यको प्राप्त कर ॥३॥ अपनी स्त्री रुमा और वांछा करने योग्य ताराका प्राप्त करके व्यथारहित हो ॥४॥ अप्सरागणोंके सहित देवराज इन्द्रके समान दिनरात विहार करते हैं सब राज्यभार मंत्रीलोगोंके ऊपर छोड करके फिर उसको देखतेभी नहीं ॥५॥ वह मंत्रीगणोंके काईकी चतुरतासे राज्यके पालन करनेके विषयमें संदेह न करके कामवृद्धकी नाईकिये हुए हैं ऐसे सुग्रीवको देख अर्थतत्त्वके जाननेवाले सब अर्थोंको निश्चित किये कालोचित धर्मतत्त्वको जाननेवाले ॥ ६ ॥ वाक्यविशारद श्रीहनुमानूजी प्रीतियुक्त हेतुसम्पन्न मनोहर वचनोंसे वाक्यतत्त्वके जाननेवाले वानरपतिको ॥ ७ ॥ समझाय प्रसन्न कर सत्ययुक्त हितकारी साधक साम, धर्म, अर्थ व नीतियुक्त प्रेम प्रीतिसम्पन्न विश्वास निश्चय किये वचन ॥ ८ ॥

सुग्रीवजीके निकट जाकर हनुमान्‌जी बोले कि, आपने राज्य यश और कुलकी चली आई हुई विपुल राज्यलक्ष्मी प्राप्त कीहै ॥९॥ इस समय मित्रगणोंका शेष कार्य साधन करनेके कर्त्तव्यका यत्न करना आपको उचित है। जो कालजाननेवाला पुरुष मित्रलोगोंमें सदाही साधुताके भावसे वर्त्तता है ॥ १० ॥ उसका राज्य, कीर्ति और प्रताप वृद्धिको प्राप्त होता है। जिसका खजाना, सेना और इंद्रियादि युक्त देह और दंड मित्रोंके सहित समान हैं वह पुरुष बड़े राज्यको भोगता है ॥ ११ ॥ इस कारण अच्छे चरित्रवाले आप हानिरहित मार्गमें टिककर जाना हुआ मित्रका कार्य यथाविधिसे कीजिये ॥ १२ ॥ जो मनुष्य समस्त कार्यको परित्याग करके मित्रके कार्यको करनेमें यत्नवान् नहीं होता, वह उत्साहविहीन और चंचलित होकर अनर्थकी परम्परासे वृद्धिमें रुकजाता

हरीश्वरमुपागम्यहनूमान्वाक्यमब्रवीत् ॥ राज्यंप्राप्तंयशश्चैवकौलीश्रीरभिवर्धिता ॥ ९ ॥ मित्राणांसंग्रहःशेषस्तद्भवान्कर्तुमर्हति ॥ योहिमित्रेषुकालज्ञःसततंसाधुवर्तते ॥ १० ॥ तस्यराज्यंचकीर्तिश्चप्रतापश्चापिवर्धते॥ यस्यकोशश्चदंडश्चमित्राण्यात्माचभूमिप ॥ समान्येतानिसर्वाणिसराज्यंमहदश्नुते ॥ ११ ॥ तद्भवान्वृत्तसंपन्नःस्थितःपथिनिरत्यये ॥ मित्रार्थमभिनीतार्थंयथावत्कर्तुमर्हति ॥ १२ ॥ संत्यज्यसर्वकर्माणिमित्रार्थेयोनवर्तते ॥ संभ्रमाद्विकृतोत्साहःसोऽनर्थैर्नावरुध्यते ॥ १३ ॥ योहिकालव्यतीतेषुमित्रकार्येषुवर्तते॥ सकृत्वामहतोऽप्यर्थान्नमित्रार्थेनयुज्यते ॥ ॥ १४ ॥ तदिदंमित्रकार्यंनःकालातीतमरिंदम ॥ क्रियतांराघवस्यैतद्वैदेह्याःपरिमार्गणम् ॥ १५ ॥ नचकालमतीतंतेनिवेदयतिकालवित् ॥ त्वरमाणोऽपिसप्राज्ञस्तवराजन्वशानुगः ॥ १६ ॥ कुलस्यहेतुःस्फीतस्यदीर्घबंधुश्चराघवः ॥ अप्रमेयप्रभावश्चस्वयंचाप्रतिमोगुणैः ॥ १७ ॥ तस्यत्वंकुरुवैकार्यंपूर्वंतेनकृतंतव ॥ हरीश्वरकपिश्रेष्ठाज्ञापयितुमर्हसि ॥ १८ ॥

है ॥ १३ ॥ जो समयको बिताकर मित्रका कार्य करते हैं वह चाहे बडे भारी अर्थको भी साधन करदें परन्तु कालके बीतनेसे वह बिना हुएहीके समान है इसलिये समय बीतने पर कार्यका करना न करना बराबर है ॥१४॥ इसलिये हे शत्रुओंके मारनेवाले ! अब समय बीताही चाहता है सो अब जानकीके ढूँढने भालनेरूप श्रीरामचन्द्रजीका कार्य पूरा कीजिये ॥ १५ ॥ समयके जाननेवाले रामचन्द्र तुमसे नहीं कहेंगे कि, अब समय बीतता है यद्यपि वह महात्मा रामचन्द्रजी शीघ्रही अपने कार्यको साधन करनेकी इच्छा करते हैं परन्तु आपके वश हो वह विलम्ब कर रहे हैं ॥ १६ ॥ आपके इस बडे कुल राज्यकी प्राप्तिके हेतु और दीर्घ कालके बन्धु उन श्रीरामचन्द्रजीका अतुल प्रभाव है और वह गुणगणोंसे अनुपम हैं ॥ १७ ॥ हे कपिनाथ ! उन्होंने पह

लेही आपका कार्य पूरा कर दिया है सो इस समय आप उनका कार्य करनेके लिये श्रेष्ठ वानरगणोंको आज्ञा दीजिये ॥ १८ ॥ प्रेरणाके विना स्वयंही विचारकर कार्य करनेसे, समयका उल्लंघन नहीं होता, जो कार्यकि, आज्ञा किये जाने अर्थात् प्रेरणा होनेपर किया जाता है, वह कार्य होजानेपर भी उस कार्यका काल व्यतीतहो जाता है इससे हुआ न हुआ बराबर है ॥१९॥ हे वानरनाथ! यदि आपका कोई पुरुष उपकार न करे तो भी आप उसका उपकार किया करते हैं, फिर श्रीरामचन्द्रजीने तो वालिको मार करके आपको राज्य प्रदान किया है, सो आप जो उनका उपकार करेंगे उसमें कहनाही क्या ? ॥ २० ॥ आप वानर और रीछोंके राजा हैं और श्रीरामचन्द्रजी शक्तिमान् और अतिशय विक्रमशाली हैं आप श्रीरामचन्द्रजीकी प्रसन्नताके हेतु उनका कार्य करनेके लिये क्यों तैयार नहीं होते ? ॥ २१ ॥ दशरथकुमार श्रीरामचन्द्रजी सुर असुर और भुजंगोंकोभी बाणोंसे अपने वशमें

नहितावद्भवेत्कालोव्यतीतश्चोदनादृते ॥ चोदितस्यहिकार्यस्यभवेत्कालव्यतिक्रमः ॥१९॥ अकर्तुरपिकार्यस्यभवान्कर्ताहरीश्वर ॥ किंपुनः प्रतिकर्तुस्तेराज्येनचवधेनच ॥ २० ॥ शक्तिमानतिविक्रांतोवानरर्क्षगणेश्वरः ॥ कर्तुंदाशरथेःप्रीतिमाज्ञायांकिंनुसज्जसे ॥२१॥ कामंखलुशरैः शक्तःसुरासुरमहोरगान् ॥ वशेदाशरथिःकर्तुंत्वत्प्रतिज्ञामवेक्षते॥२२॥ प्राणत्यागाविशंकेनकृतंतेनमहत्प्रियम् ॥ तस्यमार्गामवैदेहींपृथिव्याम पिचांबरे॥ २३ ॥देवदानवगंधर्वाअसुराःसमरुद्गणाः ॥ नचयक्षाभयंतस्यकुयुः किमिवराक्षसाः ॥२४॥ तदेवंशक्तियुक्तस्यपूर्वप्रतिकृतस्तथा ॥ रामस्यार्हसिपिंगेशकर्तुंसर्वात्मनाप्रियम् ॥ २५ ॥ नाधस्तादवनौनाप्सुगतिर्नोपरिचांबरे ॥ कस्यचित्सज्जतेऽस्माकंकपीश्वरतवाज्ञया ॥ २६ ॥ तदाज्ञापयकःकिंतेकुतोवापिव्यवस्यतु ॥ हरयोह्यप्रधृष्यास्तेसंतिकोटचग्रशोऽनघ ॥ २७ ॥

करनेको समर्थ हैं, वह तो केवल आपकी प्रतिज्ञाको परखते हैं ॥ २२ ॥ उन्होंने प्राण त्यागन करनेकी आशंका न करके आपका बडा भारी कार्य किया है, इस लिये हम पृथ्वी व आकाशमें जहां कहीं भी हो जानकीजीको ढूंढ लावेंगे ॥ २३ ॥ देव, दानव, गन्धर्व असुर, मरुद्गण और यक्षगण सबही रणमें रामचन्द्रजीसे भय करते हैं, फिर उनसे राक्षस गण क्यों भय नहीं करेंगे ? ॥ २४ ॥ इस प्रकारके शक्तियुक्त श्रीरामचन्द्रजीने पहले ही आपका उपकार किया है, इस लिये हे कपिराज!इस समय सब प्रकारसे आपको उनका उपकार करना उचित है ॥२५॥ हे कवीन्द्र ! आपकी आज्ञासे हम वानरोंकेमध्यमें किसीकी गति पृथ्वीके नीचे, जलमें अथवा आकाशमें न होगी ? ॥ २६ ॥ हे अनघ ! करोडों दुर्द्धर्ष वानर आपके वशमें हैं, सो आप आज्ञा दीजिये कि,

कौन किस स्थानमें जाय ॥ २७ ॥ यथाकालमें उत्तमरूपसे निरूपित हनुमानजीके यह वचन सुनकर बुद्धिमान् सुग्रीवजीने उन वचनोंमें उत्तम मति की ॥ २८ ॥ उस समय मतिमान् सुग्रीवजीने नित्य हितकारी और उद्यमशील नील वीरके समस्त दिशाओंसे सेना इकट्ठी करनेके लिये आज्ञा दी ॥ २९ ॥ सुग्रीवजीने कहा कि–जिससे समस्त यूथपालगण अपने २ सेनापतियोंके सहित अपनी समस्त सेना ले यहां पर चले आवें, तुमको ऐसा यत्न करना चाहिये ॥ ३० ॥ उनमेंसे जो कि, शीघ्र चलनेवाले सब दिशाओंको जाननेवाले और दृढ संकल्प करनेवाले हैं, उन को तुम बहुतही शीघ्र हमारे पास भेज देना ॥ ३१ ॥ और तुम स्वयं सेनापति आदिकोंको देखते भालते रहो ॥ ३२ ॥ जो जो वानर लोग एक पखवाडेके बीचमें इस स्थानमें नहीं आवेगा उसे

तस्यतद्वचनंश्रुत्वाकालेसाधुनिरूपितम्॥सुग्रीवःसत्त्वसंपन्नश्चकारमतिमुत्तमाम्॥२८॥संदिदेशातिमतिमान्नीलंनित्यकृतोद्यमम्॥दिक्षुसर्वासुसर्वेषांसैन्यानामुपसंग्रहे ॥२९॥ यथासेनासमग्रामेयूथपालाश्चसर्वशः ॥समागच्छंत्यसंगेनसेनाग्र्येणतथाकुरु ॥ ३० ॥ येत्वंतपालाःप्लवगाःशीघ्रगाव्यवसायिनः ॥ समानयंतुतेशीघ्रंत्वरिताःशासनान्मम॥ ३१ ॥ स्वयंचानंतरंकार्यंभवानेवानुपश्यतु ॥ ३२ ॥ त्रिपंचरात्रादूर्ध्वंयःप्राप्नुयादिहवानरः॥ तस्यप्राणांतिकोदंडोनात्रकार्याविचारणा ॥ ३३ ॥ हरींश्चवृद्धानुपयातुसांगदोभवान्ममाज्ञामधिकृत्यनिश्चितम् ॥ इतिव्यवस्थांहरिपुंगवेश्वरोविधायवेश्मप्रविवेशवीर्यवान्॥३४॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मी० आदि० च०सा०किष्किंधाकांडे एकोनत्रिंशः सर्गः ॥ २९॥ गृहंप्रविष्टेसुग्रीवेविमुक्तेगगनेघनैः ॥ वर्षरात्रेस्थितोरामःकामशोकाभिपीडितः ॥ १ ॥ पांडुरंगगनंदृष्ट्वाविमलंचंद्रमंडलम् ॥ शारदींरजनींचैव दृष्ट्वाज्योत्स्नानुलेपनाम् ॥ २ ॥ कामवृत्तंचसुग्रीवंनष्टांचजनकात्मजाम् ॥ दृष्ट्वाकालमतीतंचमुमोहपरमातुरः ॥ ३ ॥

बिना विचारे प्राणदंड देदो ॥ ३३ ॥ हमारी आज्ञाके वशमें टिके वृद्ध वानरगणोंके निकट तुमहीं अंगदके साथ चले जाओ । वानर श्रेष्ठ वीर्यवान् सुग्रीवजी इस प्रकार व्यवस्था करके राजमंदिरमें प्रवेश करते हुये ॥ ३४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० किष्किन्धाकांडे भाषायामेकोनत्रिंशः सर्गः ॥ २९ ॥ इधर तो सुग्रीव राजमंदिरमें गये उधर गगनमण्डल मेघरहित हुआ और बरसात की रातोंके बीत जाने पर श्रीरामचन्द्रजी कामशोकसे पीडित हुये ॥ १॥ वह आकाशमण्डल निर्मल विमल चन्द्रमण्डलकी चांदनीसे युक्त शरद ऋतुकी रात्रि देख ॥ २ ॥ जनक कुमारी सीताको हरा हुआ सुग्रीवको कामासक्त और कालको बीतजाता हुआ देख अत्यन्त कातर और मोहित हुये ॥ ३ ॥

अनन्तर मतिमान् नृपति श्रीरामचन्द्रजी एक महूर्त भरमें चित्तकी सावधानताको प्राप्तकर जानकीजीकी चिंता करने लगे, क्योंकि वही बारबार इनके मनमें बसी रहती थी ॥ ४ ॥ आकाशमंडल मेघ और बिजलीसे रहित होनेके कारण विमल हुआ और सरोवरोंमें सारसकी पुकार सुन श्रीरामचन्द्रजी अति आरत बाणीसे विलाप करने लगे ॥ ५ ॥ वह हेम धातु विभूषित पर्वतके अग्रभागमें बैठ शरदऋतुका आकाश देख मनही मनमें प्रियाका ध्यान करने लगे ॥ ६ ॥ जो सारस तुल्य शब्द करने वाली सारसगणोंके शब्द सुनकर आश्रममें आनंदित होतीं वह इस समय किस प्रकारसे मन बहलाती होंगी ! ॥ ७ ॥ वह मृगशावकनयनी सुवर्णके पुष्प सदृश पुष्पयुक्त आसनके वृक्षोंको देखकर हमको विना देखे किस प्रकारसे मन मुदित करती होंगी ॥ ८ ॥ जो मधुर

सतुसंज्ञामुपागम्यमुहूर्तान्मतिमान्नृपः ॥ मनःस्थामपिवैदेहींचिंतयामासराघवः ॥ ४ ॥दृष्ट्वाचविमलव्योमगतविद्युद्बलाहकम् ॥ सारसारावसंघुष्टंविललापार्तयागिरा ॥५॥ आसीनःपर्वतस्याग्रेहेमधातुविभूषिते ॥ शारदंगगनंदृष्ट्वाजगाममनसाप्रियाम् ॥ ६ ॥ सारसारावसंनादैःसारसारावनादिनी ॥ याश्रमेरमतेबालासाद्यमेरमतेकथम् ॥ ७ ॥ पुष्पितांश्चासनान्दृष्ट्वाकांचनानिवनिर्मलान् ॥ कथंसारमतेबालापश्यंतीमामपश्यती ॥ ८ ॥ यापुराकलहंसानांकलेनकलभाषिणी ॥ बुध्यतेचारुसर्वांगीसाद्यमेरमतेकथम् ॥ ९ ॥ निःस्वनंचक्रवाकानांनिशम्यसहचारिणाम् ॥ पुंडरीकविशालाक्षीकथमेषाभविष्यति ॥ १० ॥ सरांसिसरितोवापीःकाननानिवनानिच ॥ तांविनामृगशावाक्षींचरन्नाद्यसुखंलभे ॥ ११ ॥ अपितांमद्वियोगाच्चसौकुमार्याच्चभामिनीम् ॥ सुदूरंपीडयेत्कामःशरद्गुणनिरंतरः ॥ १२ ॥ एवमादिनरश्रेष्ठोविललापनृपात्मजः ॥विहंगइवसारंगःसलिलंत्रिदशेश्वरात्॥ १३ ॥ततश्चंचूर्यरम्येषुफलार्थीगिरिसानुषु॥ ददर्शपर्युपावृत्तोलक्ष्मीवाँल्लक्ष्मणोऽग्रजम् ॥ १४॥

भाषण करनेवाली श्रीजानकीजी प्रथम कलहंसों के शब्दको श्रवण कर जागती थीं, वह सर्वांगश्रेष्ठ इस समय किस प्रकारसे आनंदको प्राप्त करती होंगी ? ॥९॥ वह कमलदलके समान आंखों वाली जानकीजी चक्रवाकोंका कलशब्द श्रवण करके किस प्रकारसे जीवन धारण करनेको समर्थ होंगी ? ॥ १० ॥ हम उन मृगनयनीके बिना सरोवर, नदियें वापी, वन और काननमें विचरण करके कुछ भी सुख प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं होते हैं ॥ ११ ॥ एकतो हमारा विरह दूसरे सुकुमारताके हेतु अपने साथ शरदके गुणोंसे नित्य प्राकृत कामदेव उनको अतिशय पीडा देता होगा॥ १२॥सारंग नामक चातक पक्षी इन्द्रजीसे जिस प्रकार कातर होकर जलकी प्रार्थना करता है, वैसेही राजकुमार श्रीरामचंद्रजी अनेक भांतिके विलाप करने लगे ॥१३॥ फिर लक्ष्मीयुक्त लक्ष्मणजी जो की, भाईके

दुःखसे दुःखी, फलोंको लानेके लिये पर्वतोंके कगूरोंपर गये थे, लौट आकर अपने बडे भाई साहबको देखते हुये॥ १४॥ मनस्वी लक्ष्मणजी अति शीघ्रतासे दुस्सह चिन्ता युक्त ज्ञानहीन और अति दीन श्रीरामचंजीको देखकर उनका विषाद दूर करनेके लिये अति दीनतासे बोले ॥ १५॥ हे आर्य ! आप आत्म पौरुषको पराजित कर, और कामके वश हो क्या कर्म करते हैं ? आप शोक करके चित्तकी एकाग्रता दूर कर रहे हैं ऐसे समयमें आप समाधि योगकर समस्त दुःखोंका नाश कीजिये ॥ १६ ॥ हे प्रभो ! आप धीरज धारण करके शौच स्नानादि क्रिया योग कर मनको निर्मल कर लीजिये, और यथाकालमें समाधि योगके अनुगत हो सब कार्योंका समाधान कीजिये ॥ १७ ॥ हे नरनाथ ! जानकीजी आपसेही सनाथ होसकती हैं, वह दूसरेसे कभी सनाथ

सचिंतयादुःसहयापरीतंविसंज्ञमेकंविजनेमनस्वी ॥ भ्रातुर्विषादात्त्वरितोऽतिदीनःसमीक्ष्यसौमित्रिरुवाचदीनम् ॥१५॥ किमार्यकामस्यवशंग तेनकिमात्मपौरुष्यपराभवेन ॥ अयंह्रियासंह्रियंतेसमाधिःकिमत्रयोगेननिवर्तंतेन ॥ १६ ॥ क्रियाभियोगंमनसःप्रसादंसमाधियोगानुगतंच कालम् ॥ सहायसामर्थ्यमदीनसत्त्वःस्वकर्महेतुंचकुरुष्वतात ॥१७॥ नजानकीमानववंशनाथत्वयासनाथासुलभापरेण ॥ नचाग्निचूडांज्वलि तामुपेत्यनदह्यतेवीरवरार्हकश्चित् ॥ १८ ॥ सलक्षणंलक्ष्मणमप्रधृष्यंस्वभावजंवाक्यमुवाचरामः ॥ हितंचपथ्यंचनयप्रसक्तंससामधर्मार्थसमा हितंच ॥१९॥ निःसंशयकार्यमवेक्षितव्यंक्रियाविशेषोऽप्यनुवर्तितव्यः ॥ नतुप्रवृद्धस्यदुरासदस्यकुमारवीर्यस्यफलंचचिंत्यम् ॥२०॥ अथप द्मपलाशाक्षीमैथिलीमनुचिंतयन् ॥ उवाचलक्ष्मणंरामोमुखेनपरिशुष्यता ॥ २१ ॥ तर्पयित्वासहस्राक्षःसलिलेनवसुंधराम् ॥ निर्वर्तयित्वा सस्यानिकृतकर्माव्यवस्थितः ॥ २२ ॥ दीर्घगंभीरनिर्घोषाःशैलद्रुमपुरोगमाः ॥ विसृज्यसलिलंमेघाःपरिशांतानृपात्मज ॥ २३ ॥

नहीं होसकतीं, क्योंकि प्रज्वलित अग्निकी ज्वालाको प्राप्त होकर कौन नहीं दग्ध होता अर्थात् अग्निवत् जानकीजीकी ज्वालासे रावणका नाश होजायगा ॥ १८ ॥ श्रीरामचन्द्रजी लक्षणयुक्त दुर्द्धर्ष लक्ष्मणजीसे तत्त्वार्थ नीति, सम्मत पथ्य और हितकारी व धर्मयुक्त वचन बोले ॥ १९ ॥ हे लक्ष्मण कुमार ! तुमने जो कहा है उस कर्मयोग व ज्ञानयोगका निश्चयही साधन करना उचित है अति दुःखसे वृद्धिको प्राप्त हुए सहन करनेके अयोग्य इस अपने वीर्य बलके फलकी भी अवश्य चिंता करनी चाहिये ॥ २० ॥ फिर कमलदलनेत्रवाली जानकीजीका स्मरण करके रामचन्द्रजीका मुख विवर्ण होगया और वह लक्ष्मणजीसे बोले ॥ २१ ॥ इन्द्रजी वर्षाकी धारासे पृथ्वीको तृप्तकर अन्न उपजानेके कार्यको पूरा कर अब सिद्ध काम हुए ॥ २२ ॥ हे राजकुमार !

मेघगण धीर गंभीर शब्द युक्त पर्वत व नदियोंके समीप आय जल वर्षाय २ अब थकगये ॥ २३ ॥ नीले कमलकी पखुडियोंके समान श्याम रंगके मेघ सब दिशाओंको श्याम रंगमय करते हुए मद रहित हाथीके समान शान्त वेगसे चलने लगे ॥ २४ ॥ कुटज और अर्जुन पुष्पकी सुगन्धिवाला जल अपने गर्भमेंसे वर्षाय पवनसे उठे हुए बादल विचरण करके अब शांत होगये हैं ॥ २५ ॥ हे पाप रहित लक्ष्मण ! मेघ मातंग मोर और झरने इन सबका शब्द एकबारही बन्द होगया है ॥ २६ ॥ महामेघके समूहोंसे धुए हुए विचित्र कँगूरे पर्वतोंके समूह चन्द्रमाकी किरणोंके पडनेसे शोभायमान होरहे हैं ॥ २७ ॥ इस समय शतावरीके वृक्षोंकी डालियोंमें तारा चन्द्र और सूर्यकी प्रभामें उत्तम गजेन्द्रगणोंकी लीलामें अपनी लक्ष्मीका भाग करके शरत्काल आ

नीलोत्पलदलश्यामाःश्यामीकृत्वादिशोदश ॥ विमदाइवमातंगाःशांतवेगाःपयोधराः ॥२४॥ जलगर्भामहामेघाकुटजार्जुनगंधिनः ॥ चरित्वा विरताःसौम्यवृष्टिवाताःसमुद्यताः ॥ २५ ॥ घनानांवारणानांचमयूराणांचलक्ष्मण ॥ नादःप्रस्रवणानांचप्रशांतःसहसानघ ॥ २६ ॥ अभिवृष्टामहामेघैर्निर्मलाश्चित्रसानवः ॥ अनुलिप्ताइवाभांतिगिरयश्चंद्ररश्मिभिः ॥२७॥ शाखासुसप्तच्छदपादपानांप्रभासुताराकनिशाकराणाम् ॥ लीलासुचैवोत्तमवारणानांश्रियंविभज्याद्यशरत्प्रवृत्ता ॥ २८ ॥ संप्रत्यनेकाश्रयचित्रशोभालक्ष्मीशरत्कालगुणोपपन्ना ॥ सूर्याग्रहस्तप्रतिबोधितेषुपद्माकरेष्वभ्यधिकंविभाति ॥ २९ ॥ सप्तच्छदानांकुसुमोपगंधीषट्पादवृंदैरनुगीयमानः ॥ मत्तद्विपानांपवनानुसारीदर्पंविनेष्यन्नधिकंविभाति ॥ ३० ॥ अस्यागतैश्चारुविशालपक्षैःस्मरप्रियैःपद्मरजोवकीर्णैः ॥ महानदीनांपुलिनोपयातैःक्रीडंतिहंसाःसहचक्रवाकैः ॥ ३१ ॥ मदप्रगल्भेषुचवारणेषुगवांसमूहेषुचदर्पितेषु ॥ प्रसन्नतोयासुचनिम्नगासुविभातिलक्ष्मीर्बहुधाविभक्ता ॥ ३२ ॥ नभःसमीक्ष्यांबुधरैर्विमुक्तंविमुक्तबर्हाभरणावनेषु ॥ प्रियासुरक्ताविनिवृत्तशोभागतोत्सवाध्यानपरामयूराः ॥ ३३ ॥

पहुँचा है ॥ २८ ॥ इस समय शरत्कालकी गुणयुक्त लक्ष्मीकी शोभाने अनेक वस्तुओंमें आश्रय लिया है; वह लक्ष्मी सूर्यनारायणकी पहिली किरणसे खिले हुए कमल फूलोंमें अधिक शोभायमान होरही हैं ॥ २९ ॥ यह शरत्काल शतावरीके फूलोंको सुगंधि युक्त करता, भ्रमर गणोंमें ध्वनि उपजाता पवनके पीछे २ चलता मतवाले हाथियोंका दर्प चूर्ण करके अधिक शोभित हो रहा है ॥ ३० ॥ इस समय हंसगण, मनोहर विशाल पंखवाले, कामप्रिय, पद्मपरागसे सने, महानदियोंके किनारोंपर खडे हुए चक्रवाकोंके झुंड सहित विहार कर रहे हैं ॥ ३१ ॥ मतवाले हाथियोंके झुण्डमें घमंडी वृषभोंमें और नदियोंके निर्मल जलमें शरद्लक्ष्मी खण्ड २ होकर शोभायमान हो रही है ॥ ३२ ॥ आकाशमण्डलको बादलोंसे छुटा हुआ देख,

वनोंमें भूषणरूप पंख पसार, प्रियामें अनुरागशून्य शोभाशून्य और उत्सव शून्य होकर समस्त मोरगण ध्यान कर रहे हैं ॥ ३३ ॥ मन हरण करनेवाली सुगन्ध बहुत सारे सुवर्णके समान रंगके उजले आसन वृक्षोंकी डालियें फूलोंके भारसे झुककर वनस्थलीको महाशोभायमान कर रही हैं ॥ ३४ ॥ तडाग प्रिय अपनी २ प्यारी हथिनियोंके साथ रहनेवाले, वनके फूलोंके सूँघनेवाले, मदके भारसे आलसी हुये, मदसे उत्कट गजेन्द्रसमूहोंकी गति अति धीमी पड गई है ॥ ३५ ॥ आकाशमण्डलका वर्ण विमल असिके तुल्य हो गया है, नदियोंके जलका प्रवाह अत्यन्त घट गया है, पवन कमल फूलकी गन्धसे युक्त और शीतल होकर चलती है, सब दिशायें अंधकारसे छूटकर प्रकाशित हो रही हैं ॥ ३६ ॥ सूर्यनारायणकी धूपका ताप लगनेसे

मनोज्ञगंधैःप्रियकैरनल्पैः पुष्पाग्रभारावनताग्रशाखैः ॥ सुवर्णगौरैर्नयनाभिरामैरुद्द्योतितानीववनांतराणि ॥ ३४ ॥ प्रियान्वितानांनलिनीप्रियाणांवनप्रियाणांकुसुमोद्गतानाम् ॥ मदोत्कटानांमदलालसानांगजोत्तमानांगतयोऽद्यमंदाः ॥ ३५ ॥ व्यक्तनभःशस्त्रविधौतवर्णंकृशप्रवाहानिनदीजलानि ॥ कह्लारशीताः पवनाः प्रवांतितमोविमुक्ताश्चदिशः प्रकाशा॥३६॥ सूर्यातपक्रामणनष्टपंकाभूमिश्चिरोद्घाटितसांद्ररेणुः ॥ अन्योन्यवैरेणसमायुतानामुद्योगकालोऽद्यनराधिपानाम् ॥ ३७ ॥ शरद्गुणाप्यायितरूपशोभाःप्रहर्षिताःपांसुसमुत्थितांगाः ॥ मदोत्कटाः संप्रतियुद्धलुब्धावृषागवांमध्यगतानदंति ॥ ३८ ॥ समन्मथातीव्रतरानुरागाकुलान्वितामंदगतिःकरेणूः ॥ मदान्वितंसंपरिवार्ययांतंवनेषुभर्तारमनुप्रयाति ॥ ३९ ॥ त्यक्त्वावराण्यात्मविभूषितानिबर्हाणितीरोपगतानदीनाम् ॥ निर्भर्त्स्यमानाइवसारसौघैःप्रयांतिदीनाविमनामयूराः ॥ ४० ॥ वित्रास्यकारंडवचक्रवाकान्महारवैर्भिन्नकटागजेंद्राः ॥ सरस्सुबुद्धांबुजभूषणेषुविक्षोभ्यविक्षोभ्यजलंपिबंति ॥ ४१ ॥

पृथ्वीपरके कीचडका नाश होगया, धूल उडने लगी यह शरदृतु परस्पर वैर किये हुए नृपतिलोगोंकी चढाई करनेका समय है ॥३७॥ इस समय शरद्के गुणसे बैलोंका रूप और शोभा बढ जाती है, बडे प्रसन्न, धूरियुक्त अंगवाले मदमत्त वृषभ इस समय युद्धकी इच्छा किये हुये गायोंके बीचमें खडे शब्द करते हैं ॥ ३८ ॥ कामसे व्याप्त होनेसे जिनका अनुराग बढगया है ऐसी अपने परिवारके सहित धीरे २ गमन करनेवाली हथिनी वनमें मतवाले चलते हुये अपने पतिके पीछे घेरती हुई चलती हैं ॥३९॥ अपने सुन्दर पंखरूप भूषणका त्याग किये मोरगण नदीके किनारोंपर रहनेवाले सारसोंसे धमकी पाकर दीन मलीन हो चले जाते हैं॥४०॥ गजेन्द्रगणोंके गलफुओंको भेदकर मदकी धार निकल रही है वह गजराज खिले हुये कमलफूलोंसे युक्त सवारमें बैठे हुये कारण्डव

और चक्रवाकोंको पीडित करके जल पी रहे हैं ॥४१॥ सारसगणोंके शब्दसे शब्दायमान; कीचड रहित, वालुकासे पूर्ण बैल गायोंसे युक्त नदियोंके समूहमें हंसगण हर्षित होकर कूदते फांदते हैं ॥ ४२ ॥ इस समय नदी मेघ, झरने जल अति बढा हुआ पवन, मोर और उत्सव रहित वानरोंका शब्द बन्द हो गया है ॥४३॥ इस समय अनेक वर्णवाले और नये मेघोंके उदय होनेपर जो चल फिर नहीं सकते थे, इस कारण मृतकके तुल्य घोर विषधर बहुत दिनोंसे भूखे सर्पगण, बिलसे निकलकर घूम रहे हैं ॥ ४४ ॥ इस समय शोभायमान चन्द्रमाकी किरणोंका स्पर्श होनेसे, तारारूप नेत्र पुतलियोंके तारे धारण किये हर्षवती सन्ध्या आकाशस्थलको छोड देती है ॥ ४५ ॥ इस समय उदय हुआ चन्द्रमा रात्रिके मुखके समान, तारागण खुले हुये मनोहर नेत्रोंके समान और

व्यपेतपंकासुसवालुकासुप्रसन्नतोयासुसगोकुलासु ॥ ससारसारावविनादितासुनदीषुहंसानिपतंतिहृष्टाः ॥ ४२ ॥ नदीघनप्रस्रवणोदकानामति प्रवृद्धानिलबर्हिणानाम् ॥ प्लवंगमानांचगतोत्सवानांध्रुवंरवाः संप्रतिसंप्रनष्टाः ॥ ४३ ॥ अनेकवर्णाःसुविनष्टकायानवोदितेष्वंबुधरेषुनष्टाः ॥ क्षुधार्दिताघोरविषाबिलेभ्यश्चिरोषिताविप्रसरंतिसर्पाः ॥ ४४ ॥ चंचच्चंद्रकरस्पर्शहर्षोन्मीलिततारका ॥ अहोरागवतीसंध्याजहातुस्वयमंबरम् ॥ ४५ ॥ रात्रिःशशांकोदितसौम्यवक्त्रातारागणोन्मीलितचारुनेत्रा ॥ ज्योत्स्नांशुकप्रावरणाविभातिनारीवशुक्लांशुकसंवृतांगी ॥ ४६ ॥ विपक्वशालिप्रसवानिभुक्त्वाप्रहर्षितासारसचारुपंक्तिः ॥ नभःसमाक्रामतिशीघ्रवेगावातावधूताग्रथितेवमाला ॥ ४७ ॥ सुप्तैकहंसंकुमुदैरुपेतंमहाह्रदस्थंसलिलंविभाति ॥ घनैर्विमुक्तंनिशिपूर्णचंद्रंतारागणाकीर्णमिवांतरिक्षम् ॥ ४८ ॥ प्रकीर्णहंसाकुलमेखलानांप्रबुद्धपद्मोत्पलमालिनीनाम् ॥ वाप्युत्तमानामधिकाद्यलक्ष्मीर्वरांगनानामिवभूषितानाम् ॥ ४९ ॥

चांदनी श्वेत वसनोंके समान है इस कारणसे इस समय रात्रि वस्त्र धारण किये हुये अच्छे लक्षणवाली स्त्रीके समान विराजमान है ॥४६॥ इस समय सारसगण पके हुए धानोंकी बालें खाय, हर्षित होकर पवनसे चलायमान मालाके समान वेग सहित आकाशमें उडे जा रहे हैं ॥४७॥ इस समय इस महाकुण्डके जलमें एक हंस सो रहा है,और उसही सरोवरमें बहुत सारे बबूलेभी शोभा पारहे हैं, इसे ऐसी शोभा हो रही है, मानो रात्रिके समय नक्षत्रगणोंसे युक्त मेघ सहित आकाशमें पूर्ण चन्द्रमा निकले हुए शोभा पारहे हैं ॥४८॥ इस शरदकालमें हंसगण वापियोंके चन्द्रहार स्वरूप; खिले हुए कमल फूल मानो उनकी माला

हैं सो इन वस्तुओंसे शोभित होनेके कारण वह वापियें विभूषित उत्तम स्त्रियोंके समान शोभा धारण किये हुये हैं ॥ ४९ ॥ प्रभातकालमें बाँसोंका शब्दरूप नगाडोंद्वारा मिला पवनका किया हुआ शब्द गुफाओंकी ध्वनि और बनैले बैलोंके शब्दसे मिलकर मानों परस्पर एक दूसरेके शब्दको बढ़ा रहा है ॥५०॥ जिनमें धोये हुये विमल महीन कपडेके तुल्य खिले हुये फूल हैं; ऐसी हँसती हुई व मन्द कम्पायमान नई काशके समूहोंसे नदियोंके किनारे शोभायमान हो रहे हैं ॥ ५१ ॥ वनके साथ मधुपान करनेमें चतुर मतवाले हर्षित भ्रमरगण, कमल फूल और आसन पुष्पके परागसे रँग, गौरवर्णहो सुगन्धिके लोभसे पवनमें उडे जा रहे हैं॥५२॥निर्मल जल,खिले हुए फूलोंके समूह,क्रौंचका शोर पके हुए धानोंका वन, मन्द पवन और विमल चन्द्रमा यह सब वर्षाका जाना

वेणुस्वरव्यंजिततूर्यमिश्रः प्रत्यूषकालेऽनिलसंप्रवृत्तः॥संमूर्च्छितोगह्वरगोवृषाणामन्योन्यमापूरयतीवशब्दः॥५०॥नवैर्नदीनांकुसुमप्रहासैर्व्याधूयमानैर्मृदुमारुतेन ॥ धौतामलक्षौमपटप्रकाशैःकूलानिकाशैरुपशोभितानि ॥५१॥ वनप्रचंडामधुपानशौंडाःप्रियान्विताःषट्चरणाःप्रहृष्टाः॥ वनेषुमत्ताःपवनानुयात्रांकुर्वंतिपद्मासनरेणुगौराः॥५२॥ जलंप्रसन्नंकुसुमप्रहासंक्रौंचस्वनंशालिवनंविपक्वम् ॥ मृदुश्चवायुर्विमलश्चचंद्रः शंसंति वर्षव्यपनीतकालम्॥५३॥मीनोपसंदर्शितमेखलानांनदीवधूनांगतयोऽद्यमंदाः॥कांतोपभुक्तालसगामिनीनांप्रभातकालेष्विवकामिनीनाम्॥५४॥ सचक्रवाकानिलशैवलानिकाशैर्दुकूलैरिवसंवृतानि ॥ सपत्ररेखाणिसरोचनानिवधूमुखानीवनदीमुखानि ॥५५॥ प्रफुल्लबाणासनचित्रितेषुप्रहृष्टषट्पादनिकूजितेषु॥गृहीतचापोद्यतदंडचंडःप्रचंडचापोऽद्यवनेषुकामः॥५६॥लोकंसुवृष्ट्यापरितोषयित्वानदीस्तटाकानिचपूरयित्वा ॥ निष्पन्नसस्यांवसुधांचकृत्वात्यक्त्वानभस्तोयधराःप्रनष्टाः॥५७॥ दर्शयंतिशरन्नद्यःपुलिनानिशनैःशनैः॥ नवसंगमसव्रीडाजघनानीवयोषितः ॥५८॥

और शहद ऋतुका आना बता रहे हैं॥५३॥इस समय प्रभातकालमें अपने पतियों करके भोगी जानेसे आलस्य पाई हुई कामिनियोंके समान,मीनरूप तगडी धारण किये नदी वधूटियोंकी गति मन्द होगई है ॥५४॥ चक्रवाक व शिवारयुक्त काशरूपी वसन पहरे हुए नदियोंके मुख पत्र रेखा[युक्त और रोचन लगाये हुए वधूटियोंके मुखके समान शोभा धारण किये हुए हैं॥५५॥प्रफुल्ल बाण और आसन पुष्पोंसे चित्र विचित्र हर्षित भ्रमरोंकी गुंजारसे गुंजायमान;वनोंमें प्रचंड धनुषधारण किये कामदेव विरही जनोंको दंड देनेके लिये अत्यन्त प्रचंड होगया ॥५६॥ मेघ अति वृष्टिसे सब लोगोंको संतुष्ट कर, नदी तडागोंको पूर्ण और वसुधाको धान्यसे पूरित कर, इस समय आकाश मण्डलको त्याग चले गये हैं ॥ ५७ ॥ इस समय नदियें धीरे २ अपने किनारे दिखाती हैं, जैसे नवीन

आई हुई वधुयें नये संगमसे लज्जाशील हो अपने २ पतिको अपने जंघादि अंग शनैः २ दिखाती हैं ॥ ५८ ॥ हे सौम्य ! निर्मल जलाशय सारसोंके शब्दसे शब्दायमान चक्रवाकोंसे पूर्ण समस्त जलसे शोभायमान हो रहे हैं ॥ ५९ ॥ हे राजकुमार ! परस्पर वैर रखनेवाले और एक दूसरेके जीतनेका अभिलाष किये राजा लोगोंके उद्योग करनेका यह समय आगया है ॥ ६० ॥ राजालोगोंकी यात्रा करनेका यही समय है परन्तु यात्राकी उपयोगी तैयारियोंको करते अबतक सुग्रीव दृष्टि नहीं आते ॥६१॥ इस समय पर्वतके शिखरोंपर आसन, सतावरी, कोविदार, दुपहरिया व श्याम आदि तरुगण फूले

प्रसन्नसलिलाःसौम्यकुरराभिविनादिताः ॥ चक्रवाकगणाकीर्णाविभांतिसलिलाशयाः ॥ ५९ ॥ अन्योन्यबद्धवैराणांजिगीषूणांनृपात्मज ॥ उद्योगसमयःसौम्यपार्थिवानामुपस्थितः ॥६०॥ इयंसाप्रथमायात्रापार्थिवानांनृपात्मज ॥ नचपश्यामिसुग्रीवमुद्योगचतथाविधम् ॥ ६१ ॥ असनाःसप्तपर्णाश्चकोविदाराश्चपुष्पिताः ॥ दृश्यंतेबंधुजीवाश्चश्यामाश्चगिरिसानुषु ॥६२॥ हंससारसचक्राह्वैःकुररैश्चसमंततः ॥ पुलिनान्यव कीर्णानिनदीनांपश्यलक्ष्मण ॥ ६३ ॥ चत्वारोवार्षिकामासागतावर्षशतोपमाः ॥ ममशोकाभितप्तस्यतथासीतामपश्यतः ॥६४॥ चक्रवाकीव भर्तारंपृष्ठतोऽनुगतावनम् ॥ विषमंदंडकारण्यमुद्यानमिवचांगना ॥ ६५ ॥ प्रियाविहीनेदुःखार्तेहृतराज्येविवासिते ॥ कृपांनकुरुतेराजासुग्रीवो मयिलक्ष्मण ॥ ६६ ॥ अनाथोहृतराज्योऽयंरावणेनचधर्षितः ॥ दीनोदूरगृहःकामीमांचैवशरणंगतः ॥ ६७ ॥

हुए दृष्टि आते हैं ॥ ६२ ॥ हे लक्ष्मण ! देखो इस समय हंस, सारस चक्रवाक और कुरर आदि पक्षी नदियोंकी रेतियोंमें बैठे हैं ॥ ॥ ६३ ॥ हम प्राण प्यारी सीताजीको न देखनेसे और उनके शोकसे अत्यन्त आरत होगये हैं; इस लिये हमारे लिये तो यह वर्षाका चौमासा मानों सौ वर्षके समान बीता है ❋ ॥ ६४ ॥ प्राणजीवनी भार्या सीताजी भयंकर दंडकारण्यको उद्यानकेसमान जान करके चकवीकी नांई वन आनेके समय हमारे पीछे २ आईथीं ॥६५॥ हे लक्ष्मण ! प्रियाविहीन राज्य हराये दुःखी आरत वनमें निकलेहुए हमपर सुग्रीव क्यों नहीं कृपा करते ॥ ६६ ॥ कि इन अनाथ राज्य खोये, रावणसे

❋ २ जानकी विन जीवन अति भारी ॥ आस्ताई ॥ पल पखवाडे घडी महीने दिवस वर्ष सम बीते । रात्रिकालयुगसे लागत हैं यहगति भई हमारी ॥ अबल जान घर जनते न्यारे लख यहकाम सतावे । ताहूपर सुग्रीव विरतहो हमरी सुरत विसारी ॥ जानकी० विमलाकाश सरोवर निर्मल भये शरदके आये । या अवसर मोहिं मैन सतावे सुमन बाणकर धारी ॥ जानकी० । वरषत नीर नेत्रसे अविरल नेह महादुखदाई । जनक लडैतीके विन देखे हैं बलदेव दुखारी ॥ जानकी० ॥

पीडित दीन, घरसे निकाले हुये कामी रामने हमारी शरण ग्रहणकी है ॥६७॥ यही कारण विचार कर दुरात्मा सुग्रीव तुच्छ व पाराजित समझकर हमारा निरादर करता है ॥ ६८ ॥ सीताजीके ढूँढने का समय स्थिरकर और प्रतिज्ञा कर वह दुर्मति सुग्रीव कृतार्थ हो इस समय उसको स्मरण कर नहीं जागता ॥ ६९ ॥ तुम हमारे वचन सुन किष्किन्धानगरीमें गमन कर उस मूर्ख व स्त्री के सुखमें आसक्त वानर सुग्रीवसे कहना ॥ ७० ॥ कि, जो पुरुष कार्यार्थी होकर आये हुए और प्रथम अपना उपकारको किये हुए पुरुषको आशा देकर फिर उसका कार्य पूरा नहीं करता वह इस लोकमें अधम पुरुष कहा जाता है ॥७१॥ अच्छा हो, वा बुरा हो जो वचन दिया गया है, ऐसे वचन को जो पुरुष सत्य रूपमें ग्रहण करते हैं, वही निःसन्देह वीर और पुरुषोंमें श्रेष्ठ हैं ॥७२॥

इत्येतैःकरणैःसौम्यसुग्रीवस्यदुरात्मनः ॥ अहंवानरराजस्यपरिभूतःपरं तपः ॥ ६८ ॥ सकालंपरिसंख्यायसीतायाःपरिमार्गणे ॥ कृतार्थःसमकृत्वादुर्मतिर्नावबुध्यते ॥ ६९ ॥ सकिष्किंधांप्रविश्यत्वंब्रूहिवानरपुंगवम् ॥ मूर्खंग्राम्यसुखेसक्तंसुग्रीवंवचनान्मम ॥७०॥ अर्थिनामुपपन्नानांपूर्वंचाप्युपकारिणाम् ॥ आशांसंश्रुत्ययोहंतिसलोकेपुरुषाधमः ॥ ७१ ॥ शुभंवायदिवापापंयोहिवाक्यमुदीरितम् ॥ सत्येनपरिगृह्णातिसवीरः पुरुषोत्तमः ॥७२॥ कृतार्थाह्यकृतार्थानांमित्राणांनभवंतिये ॥ तान्मृतानपिक्रव्यादाःकृतघ्नान्नोपभुञ्जते ॥ ७३ ॥ नूनंकांचनपृष्ठस्यविकृष्टस्यमयारणे ॥ द्रष्टुमिच्छसिचापस्यरूपंविद्युद्गणोपमम् ॥ ७४ ॥ घोरंज्यातलनिर्घोषंक्रुद्धस्यममसंयुगे ॥ निर्घोषमिववज्रस्यपुनःसंश्रोतुमिच्छसि ॥ ७५ ॥ काममेवंगतेयस्यपरिज्ञातेपराक्रमे ॥ त्वत्सहायस्यमेवीरनचिंतास्यन्नृपात्मज ॥७६॥ यदर्थमयमारंभःकृतपरपुरंजय ॥ समयंनाभिजानातिकृतार्थःप्लवगेश्वरः ॥ ७७ ॥

जो लोग अपना काम निकाल लेते हैं; और जिसका कार्य सिद्ध नहीं हुआ है ऐसे मित्रके कार्य वा उपकारको साधन नहीं करते उनके मरनेपर मांसके खानेवाले जन्तुगण भी उनके मांसको नहीं खाते ॥ ७३ ॥ तुम निश्चयही संग्राम स्थलमें हमसे खैंचे हुए सुवर्णकी पीठवाले और बिजलीके समानगुण युक्त धनुषका रूप देखनेकी इच्छा करते हो ॥ ७४ ॥ तुम फिर यह श्रवण करनेकी इच्छा करते हो कि, हम संग्राम भूमिमें क्रोधित हो वज्रके शब्द के समान प्रत्यंचा की घोर टंकार कर ॥ ७५ ॥ हे वीर ! कुमार नृपात्मज ! जब कि, हम उसका सब जानते हैं और वह तुम्हारे सहाय युक्त हमारे पराक्रमको भी जानता है तो भी उस सुग्रीवको यह चिन्ता नहीं कि, यह वालिकी तरह मुझे मार डालेंगे बडे आश्चर्य की बातहै ॥७६॥ हे पराये पुरको जीतनेवाले लक्ष्मण।

वानरराज सुग्रीव कृतार्थ होकर किस कारण इस समय वालीके वध और इस मित्रताईको स्मरण नहीं करते हैं ? ॥ ७७ ॥ वर्षाके बीतने परही प्रतिज्ञाके पूर्ण करनेका समय है, सो यह चार मासभी बीत गये तथापि वह विहार के सुखमें आसक्त होकर हमारी प्रतिज्ञाको नहीं जानता ॥ ७८ ॥ वह सुग्रीव अपने मंत्री और इष्ट मित्रगणोंके सहित मधुपानमें मत्त होकर हमारे ऊपर दया नहीं प्रगट करते ॥ ७९ ॥ हे महाबलवान् ! हेवीरश्रेष्ठ ! इस समय तुम जाकर सुग्रीवसे हमारे क्रोधका रूप निवेदन करो और यह सब कठोर वचन भी उनसे कह देना ॥८०॥ जिस मार्गमें मारा जाकर वालि गया है; वह मार्ग कुछ इस समय छोटा नहीं होगया है, वह सबही भांतिसे हमारे वशमें है । हे सुग्रीव ! तुम अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार कार्य करो अपने भाई वालीकी राहमें न जाओ ॥ ८१ ॥ हमने रणस्थलमें केवल एक बाणसे वालीको मार डाला, परन्तु तुम जो सत्यसे भ्रष्ट हुए तो तुमको हम बन्धु बांधवों सहित मार डालेंगे ॥ ८२ ॥

वर्षासमयकालंतुप्रतिज्ञायहरीश्वरः ॥ व्यतीतांश्चतुरोमासान्विहरन्नवबुध्यते ॥ ७८ ॥ सामात्यपरिषत्क्रीडन्पामेवोपसेवते ॥ शोकदीनेषुना स्मासुसुग्रीवःकुरुतेदयाम् ॥ ७९ ॥ उच्यतांगच्छसुग्रीवस्त्वयावीरमहाबल ॥ ममरोषस्ययद्रूपंब्रूयाश्चैनमिदंवचः ॥ ८० ॥नससंकुचितःपंथा येनवालीहतोगतः ॥ समयेतिष्ठसुग्रीवमावालिपथमन्वगाः ॥८१॥ एकएवरणेवालीशरेणनिहतोमया ॥ त्वांतुसत्यादतिक्रांतंहनिष्यामिसबां धवम् ॥८२॥ यदेवंविहितेकार्येयद्धितंपुरुषर्षभ ॥ तत्तद्ब्रूहिनरश्रेष्ठत्वराकालव्यतिक्रमम्ः ॥८३॥ कुरुष्वसत्यंममवानरेश्वरप्रतिश्रुतंधर्ममवे क्ष्यशाश्वतम् ॥ मावालिनंप्रेतगतोयमक्षयेत्वमद्यपश्यर्मेमचोदितःशरैः ॥ ८४ ॥ सपूर्वजंतीव्रविवृद्धकोपंलालप्यमानंप्रसमीक्ष्यदीनम् ॥ चका रतीव्रांमतिमुग्रतेजाहरीश्वरेमानववंशवर्धनः ॥ ८५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० किष्किंधाकांडे त्रिंशः सर्गः ॥ ३० ॥ सकामिनंदीनमदीनसत्त्वंशोकाभिपन्नंसमुदीर्णकामम् ॥ नरेंद्रसूनुर्नरदेवपुत्रंरामानुजःपूर्वजमित्युवाच ॥ १ ॥

हे पुरुषश्रेष्ठ ! इस विषयमें और भी करने योग्यकार्य जो कि, हितकारी हों वह सब उनसे कह देना, क्योंकि इस शीघ्रतासे करने योग्य कार्यमें विलंब होगया है ॥८३॥ और यह भी कह देना कि, हे वानरेश्वर ! नित्य धर्म,दर्शन करके जो प्रतिज्ञा तुमने की है उसको तुम पूरा करो देखो कहीं तुम हमारे छोडे हुए बाणसे मरकर वालीको मत देखना ॥ ८४ ॥ वह मानव वंशके बढानेवाले उग्र तेजवान् लक्ष्मणजी, यह देखकर कि, बडे भाई साहबका क्रोध अत्यन्त बढता जाता है और यह दीन भावसे विलाप कर रहे हैं, सुग्रीवके प्रति अत्यन्त क्रोधित हुए ॥८५॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायां त्रिंशः सर्गः ॥ ३० ॥ श्रीरामचन्द्रजी के छोटे भाई नरेंद्रपुत्र लक्ष्मणजी, अगाध वीर्य कामसे उत्पन्न हुए शोकसे युक्त नरेंद्रपुत्र राजकुमार अपने ज्येष्ठभ्राता श्रीरामचन्द्र

जी से इसप्रकार बोले ॥१॥ वह वानर साधु लोगोंके चरित्र पर नहीं टिकेगा वह मित्रताका मूल राज्य लाभ रूपफल भी मनमें न समझेगा, और वानर राज लक्ष्मीको भी भोग नहीं करेगा और उसकी बुद्धि प्रतिज्ञाके प्रति पालन करनेमें भी आगे नहीं बढेगी ॥ २ ॥ वह अपनी बुद्धि क्षय हो जानेके कारणसे स्त्री आदिकोंके सुखमें आसक्त होगया है आपको प्रसन्नताके हेतु उसकी यह बुद्धि नहीं होगी कि, उसका प्रत्युपकार करें, वह इस समय मरकर वालीको देखे ! इस दुष्टबुद्धि सुग्रीवको राज्य देना कुछ उचित नहीं हुआ ॥३॥ हमारे क्रोधको वेग उकसा आता है, जिसके धारण करनेमें हम समर्थ नहीं हैं आज यह मिथ्यावादी सुग्रीवको मार करके अङ्गदको राज्य दे देंगे, वह वालिपुत्र मुख्य २ वानरगणों के सहित सीताजीको खोजेंगे ॥ ४ ॥ इतना कह और धनुष धारण करके लक्ष्मणजी खडे होगये । तब पर वीर घाती श्रीरामचन्द्रजी रणस्थलमें प्रचण्ड कोपशाली लक्ष्मणजी की ओर देखकर उनको नम्र करते हुये बोले ॥ ५ ॥ हे

नवानरःस्थास्यतिसाधुवृत्तेनमन्यतेकर्मफलानुषंगान् ॥ नभोक्ष्यतेवानरराज्यलक्ष्मींतथाहिनातिक्रमतेऽस्यबुद्धिः ॥२॥ मतिक्षयाद्ग्राम्यसुखेषु सक्तस्तवप्रसादात्प्रतिकारबुद्धिः ॥ हतोऽग्रजंपश्यतुवीरवालिनंनराज्यमेवंविगुणस्यदेयम् ॥ ३ ॥ नधारयेकोपमुदीर्णवेगंनिहन्मिसुग्रीवमसत्य मद्य ॥ हरिप्रवीरैःसहवालिपुत्रोनरेंद्रपुत्र्याविचयंकरोतु ॥४॥ तमात्तबाणासनमुत्पतंतंनिवेदितार्थंरणचंडकोपम् ॥ उवाचरामःपरवीरहंतास्ववी क्षितंसानुनयंचवाक्यम् ॥५॥ नहिवैत्वद्विधोलोकेपापमेवंसमाचरेत् ॥ कोपमार्येणयोहंतिसवीरःपुरुषोत्तमः ॥६॥ नेदमत्रत्वयाग्राह्यंसाधुवृत्ते नलक्ष्मण ॥ तांप्रीतिमनुवर्तस्वपूर्ववृत्तंचसंगतम् ॥७॥ सामोपहितयावाचारूक्षाणिपरिवर्जयन् ॥ वक्तुमर्हसिसुग्रीवंव्यतीतंकालपर्यये ॥ ८ ॥ सोऽग्रजेनानुशिष्टार्थोयथावत्पुरुषर्षभः ॥ प्रविवेशपुरींवीरोलक्ष्मणःपरवीरहा ॥ ९ ॥ ततःशुभमतिःप्राज्ञोभ्रातुःप्रियहितेरतः ॥ लक्ष्मणः प्रतिसंरब्धोजगामभवनंकपेः ॥ १० ॥ शक्रबाणासनप्रख्यंधनुःकालांतकोपमम् ॥ प्रगृह्यगिरिशृंगाभंमंदरःसानुमानिव ॥ ११ ॥

लक्ष्मणजी ! तुम सरीखे पुरुष मित्र वधरूप पापका आचरण नहीं करते जो पुरुष उचित ज्ञानसे कोपका संहारकर डालता है, वही वीर और पुरुषोंके मध्यमें श्रेष्ठ है ॥ ६ ॥ हे लक्ष्मण ! वह मित्रघातरूप अकार्य तुमको करना उचित नहीं है तुम सुग्रीवके प्रति साधुताका बर्ताव करके पहलेके समान प्रसन्न हो जाओ ॥ ७ ॥ तुम रूखे वचनोंको छोड करके समयका उल्लंघन करनेवाले सुग्रीवको समझाते बुझाते हुए हितकर वचन कहना ॥ ८ ॥ जब रामचन्द्र जीने ऐसा कहा तो पुरुषश्रेष्ठ; परवीरघाती वीरवर लक्ष्मणजी अपने बडे भाईकी आज्ञासे किष्किन्धापुरीमें प्रवेश करते हुये ॥ ९ ॥ फिर शुभमति बुद्धिमान् भ्राताका हित करनेमें रत लक्ष्मणजीने कोप प्रगट करते हुये कपिराज सुग्रीवके भवनमें प्रवेश किया ॥ १० ॥ मन्दराचल पर्वतके तुल्य लक्ष्मणजी

इन्द्रके धनुषके समान कालान्तक यमके समान पर्वतके शिखरके तुल्य धनुष धारण करके गमन करते हुये ॥ ११ ॥ मनमें विचारा कि, जैसे उत्तर प्रत्युत्तर भाई साहबने सुग्रीवसे कहनेको कहे हैं, उन्हींके अनुसार कार्य करना उचित है, यही विचार बृहस्पतिजीके समान बुद्धिमान् लक्ष्मणजीने सब उत्तर शोचलिये ॥ १२ ॥ और उसही मध्यमें अपने बडे भ्राताकी कामक्रोधाग्निसे युक्त लक्ष्मणजी बडे वेगसे चले अतिवेगसे चलनेके कारण अप्रसन्न हुए वायुके समान चले जाते थे ॥ १३ ॥ वेगवान् लक्ष्मणजी शाल, ताल, अश्वकर्ण इत्यादि वृक्षोंको गिराते जाते और पर्वतके शृंगोंको तोडते उखाडते इधर उधर फेंकते जाते ॥ १४ ॥ वह पर्वतकी शिलाओंको अपने दोनों चरणोंसे खंड २ करते, दूर २ पर चरण धरते, कार्यके वशहो अतिशीघ्रतासे चलने लगे; उस समय ऐसा ज्ञात होता था कि मानो कोई मतवाला हाथी तोडता फोडता चला आता है ॥ १५ ॥ इक्ष्वाकुश्रेष्ठ लक्ष्मणजीने बडे २ पर्वतोंके बीचमें

यथोक्तकारीवचनमुत्तरंचैवसोत्तरम् ॥ बृहस्पतिसमोबुद्ध्यामत्वारामानुजस्तदा ॥ १२ ॥ कामक्रोधसमुत्थेनभ्रातुःक्रोधाग्निनावृतः ॥ प्रभंजन इवाप्रीतःप्रययौलक्ष्मणस्ततः ॥ १३ ॥ सालतालाश्वकर्णांश्चतरसापातयन्बलात् ॥ पर्यस्यन्गिरिकूटानिद्रुमानन्यांश्चवेगितः ॥१४॥ शिलाश्च शकलीकुर्वन्पद्भ्यांगजइवाशुगः ॥ दूरमेकपदंत्यक्त्वाययौकार्यवशाद्द्रुतम् ॥ १५ ॥ तामपश्यद्बलाकीर्णांहरिराजमहापुरीम् ॥ दुर्गामिक्ष्वाकुशार्दूलःकिष्किंधांगिरिसंकटे ॥ १६ ॥ रोषात्प्रस्फुरमाणोष्ठःसुग्रीवंप्रतिलक्ष्मणः ॥ ददर्शवानरान्भीमान्किष्किधायांबहिश्चरान् ॥ १७ ॥ तंदृष्ट्वावानराःसर्वेलक्ष्मणंपुरुषर्षभम् ॥ शैलशृंगाणिशतशःप्रवृद्धांश्चमहीरुहान् ॥ जगृहुःकुंजरप्रख्यावानराःपर्वतांतरे ॥ १८ ॥ तान्गृहीतप्रहरणान्सर्वान्दृष्ट्वातुलक्ष्मणः ॥ बभूवद्विगुणंक्रुद्धोबह्विंधनइवानलः ॥ १९ ॥ तंतेभयपरीतांगाःक्षुब्धंदृष्ट्वाप्लवंगमाः ॥ कालमृत्युयुगांताभंशतशोविद्रुतादिशः ॥ २० ॥ ततःसुग्रीवभवनंप्रविश्यहरिपुंगवाः ॥ क्रोधमागमनंचैवलक्ष्मणस्यन्यवेदयन् ॥ २१ ॥

बसी हुई सेनासमूहसे परिपूर्ण दुर्गम कपिराजपुरी किष्किन्धा नगरीको देखा ॥ १६ ॥ सुग्रीवके ऊपर क्रोध करनेसे लक्ष्मणजीके अधर फडकने लगे; उन्होंने किष्किन्धानगरीके बाहर घूमते हुये बहुतसे बडे २ बन्दरोंको देखा ॥ १७ ॥ कुंवरके समान वानरगणोंने पुरुष श्रेष्ठ लक्ष्मणजीको क्रोधित देख भयभीत हो पर्वतोंपर जाय बडे २ पर्वतोंके शिखर और वृक्ष ग्रहण करलिये और खडे होगये ॥ १८ ॥ लक्ष्मणजी उन वानरगणोंको आयुध ग्रहण किये हुए देखकर बहुत लकडी डालनेसे प्रज्वलित हुई अग्निके समान दूने क्रोधित होगये ॥ १९ ॥ तब शत २ वानरगण प्रलयकालकी मृत्युके समान लक्ष्मणजीको अत्यन्त क्रोधित देखकर चारों ओर भाग खडे हुये ॥ २० ॥ उनमेंसे प्रधान २ वानरोंने सुग्रीवके भवनमें प्रवेश करके लक्ष्मणजीके क्रोधमें

भरकर आनेका समस्त वृत्तान्त निवेदन किया ॥ २१ ॥ कामसे आसक्त हुआ सुग्रीव उस समय ताराके सहित मिलकर सुखभोग रहा था; उसने उन कपि श्रेष्ठोंके वह वचन नहीं सुने ॥ २२ ॥ जब सुग्रीव कुछ न बोले तब मंत्रियोंकी आज्ञासे कि जबतक हम बुलाने जाँय तबतक कुमारको वहां ठह राओ पर्वत व हाथियोंकी अनुहार मेघसमान वानरगण रोम फुलाकर लक्ष्मणजीके रोकनेके लिये किष्किन्धापुरीसे निकले ॥ २३ ॥ वह सबही वानर नख और डाढरूप आयुधवाले विकटाकार और सबही सिंहके समान भयंकर डाढवाले दृष्टि आते थे ॥ २४ ॥ किसीमें दश हाथीका किसीमें शत हस्तीका और किसीमें हजार हस्तियोंका बल था इन सब वानरोंकी एक सीही कान्तिथी ॥ २५ ॥ जब यह बाहर आये तो क्रोधित हुये लक्ष्मणजी उन वृक्षधारी महावलवान् वानरोंसे व्याप्त किष्किन्धानगरीको देखते हुये ॥ २६ ॥ तब महावीर्यवान् समस्त वानर दुर्गकोटकेबाहर दीवारीसे बाहर परिखाके

तारयासहितःकामीसक्तःकपिवृषस्तदा ॥ नतेषांकपिसिंहानांशुश्राववचनंतदा॥२२॥ततःसचिवसंदिष्टाहरयोरोमहर्षणाः॥गिरिकुंजरमेघाभान गराग्निर्ययुस्तदा ॥ २३ ॥ नखदंष्ट्रायुधाःसर्वेवीराविकृतदर्शनाः ॥ सर्वेशार्दूलदंष्ट्राश्चसर्वेविवृतदर्शनाः ॥ २४ ॥ दशनागबलाःकेचित्केचि द्दशगुणोत्तराः ॥ केचिन्नागसहस्रस्यबभूवुस्तुल्यवर्चसः ॥ २५ ॥ ततस्तैःकपिभिर्व्याप्तांद्रुमहस्तैर्महाबलैः ॥ अपश्यल्लक्ष्मणःक्रुद्धःकिष्किंधांतां दुरासदाम् ॥ २६ ॥ ततस्तेहरयःसर्वेप्राकारपरिखांतरात् ॥ निष्क्रम्योदग्रसत्त्वास्तुतस्थुराविष्कृतंतदा ॥ २७ ॥सुग्रीवस्यप्रमादंचपूर्वजस्या र्थमात्मवान्॥दृष्ट्वाक्रोधवशंवीरःपुनरेवजगामसः ॥२८॥ सदीर्घोष्णमहोच्छ्वासःकोपसंरक्तलोचनः॥बभूवनरशार्दूलःसधूमइवपावकः ॥२९॥ बाणशल्यस्फुरज्जिह्वःसायकासनभोगवान् ॥ स्वतेजोविषसंभूतःपंचास्यइवपन्नगः ॥ ३० ॥ तंदीप्तमिवकालाग्निंनागेंद्रमिवकोपितम् ॥ समा साद्यांगदस्त्रासाद्विषादमगमत्परम् ॥ ३१ ॥सोंगदंरोषताम्राक्षःसंदिदेशमहायशाः ॥ सुग्रीवःकथ्यतांवत्सममागमनमित्युत ॥३२॥

पार आकर प्रकाशित भावसे लडनेको खडे होगये ॥ २७ ॥ जितेन्द्रिय वीरवर लक्ष्मणजी सुग्रीवका प्रमाद और अपने भ्राता श्रीरामचन्द्रजीके कार्यको विचार कर बहुत क्रोध करते हुये ॥ २८ ॥ लंबे २ और गर्म २ श्वास ले क्रोधके मारे लाल २ नेत्र होनेसे नरश्रेष्ठ लक्ष्मणजी धूमसहित अग्निके समान प्रकाशित होने लगे ॥ २९ ॥ फल लगे हुये बाणही मानो लपलपाती हुई प्रज्वलित जीभ धारण किये हुये धनुषही जिसका शरीर है ऐसे विषभरे पांच शिरवाले भुजंगके समान वह प्रकाशमान हुये ॥ ३० ॥ कालाग्निके समान प्रदीप्त और क्रोध किये हाथीके समान प्रकाशमान लक्ष्मणजीको देखकर अंगद अत्यंत शोकातुर हुये ॥ ३१ ॥ महायशस्वी लक्ष्मणजीने क्रोधके मारे लाल २ नेत्र कर अंगदजीको आज्ञा दी कि, हे वत्स हमारे

आनेकी वार्ता सुग्रीवसे निवेदन करो ॥ ३२ ॥ उससे कहना कि हे शत्रुनाशक ! श्रीरामचन्द्रजीके छोटे भाई लक्ष्मण अपने भ्राताके सन्तापसे सन्तापित हो तुम्हारे पास आय द्वारपर खडे हैं ॥ ३३ ॥ हे परवीरघाती ! यदि तुम्हारी रुचि होय तो उनके वचनका प्रतिपालन करो। हे वत्स ! इतनी बात कहकर तुम वहांसे लौट आना ॥३४॥ अंगद लक्ष्मणजीके यह वचन सुन शोकोपहत चित्त हो अपने चाचा सुग्रीवसे जाकर बोले कि, हे तात ! रामचन्द्रजीके छोटे भाई लक्ष्मणजी यहां आये हैं ॥ ३५ ॥ कार्य करनेमें चतुर अंगदजी लक्ष्मणजीके तीव्र वचनोंसे दीन वदन भ्रांतचित्तहो सुग्रीवके निकट जाकर पहले रुमाके दोनों चरणोंकी वन्दना करते हुए ॥ ३६ ॥ उग्र तेजस्वी अंगदजीने सुग्रीवजीके दोनों चरण ग्रहण करके फिररुमाके चरणोंमें प्रणाम कर फिर ताराको प्रणाम

एषरामानुजःप्राप्तस्त्वत्सकाशमरिंदम॥भ्रातुर्व्यसनसंतप्तोद्वारितिष्ठतिलक्ष्मणः॥ ३३ ॥ तस्यवाक्यंयदिरुचिःक्रियतांसाधुवानर ॥ इत्युक्त्वाशीघ्रमागच्छवत्सवाक्यमरिंदम ॥३४॥लक्ष्मणस्यवचःश्रुत्वाशोकाविष्टोऽङ्गदोब्रवीत् ॥ पितुःसमीपमागम्यसौमित्रिरयमागतः ॥ ३५ ॥अथांगदस्तस्यसुतीव्रवाचासंभ्रांतभावःपरदीनवक्त्रः ॥ निर्गत्यपूर्वंनृपतेस्तरस्वीततोरुमायाश्चरणौववंदे ॥ ३६॥ संगृह्यपादौपितुरुग्रतेजाजग्राहमातुःपुनरेवपादौ ॥ पादौरुमायाश्चनिपीडयित्वानिवेदयामासततस्तदर्थम्॥ ३७॥ सनिद्राक्लांतसंवीतोवानरोनविबुद्धवान् ॥ वभूवमदमत्तश्चमदनेनचमोहितः ॥ ३८ ॥ ततःकिलकिलांचक्रुर्लक्ष्मणंप्रेक्ष्यवानराः ॥ प्रसादयंतस्तंक्रुद्धंभयमोहितचेतसः ॥ ३९ ॥ तेमहौघनिभंदृष्ट्वावज्राशनिसमस्वनम् ॥ सिंहनादंसमंचक्रुर्लक्ष्मणस्यसमीपतः ॥ ४० ॥ तेनशब्देनमहताप्रत्यबुध्यतवानरः ॥ मदविह्वलताम्राक्षोव्याकुलःस्रग्विभूषणः ॥ ४१ ॥ अथांगदवचःश्रुत्वातेनैवचसमागतौ ॥ मंत्रिणौवानरेंद्रस्यसंमतोदारदर्शनौ ॥ ४२ ॥

कर लक्ष्मणजीके आनेकी वार्ता कही ॥ ३७ ॥ वह मदनमोहित मदमत्त वानर सुग्रीव निद्रासे क्लांत चित्त होनेके कारण अंगदजीके वचन और प्रणामको न जान सका ॥ ३८ ॥ फिर भय मोहित वानरगण लक्ष्मणजीको क्रोधित देखकर उसको प्रसन्न करते २ भय तथा क्रोधसे किलकिला शब्द कर उठे ॥ ३९ ॥ उन वानरलोगोंने लक्ष्मणजीको देखकर सुग्रीवके निकट जाय उनको जगानेके लिये वज्रतुल्य और महासमुद्रके महातरंगके समान भयंकर शब्द करना प्रारम्भ किया ॥ ४० ॥ उस बडे भारी शब्दसे वानरराज सुग्रीवकी नींद टूटी, उस समय मारे मदके नेत्र अरुण होरहे और माला आदि गहने खस रहे थे वह बहुत व्याकुल चित्त हो जाग पडे ॥ ४१ ॥ जब सुग्रीव जागरित होगये तब अंगदजीके मुखसे समस्त वचन सुनकर परामर्श देनेमें

चतुर व प्रियदर्शन दो मंत्री सुग्रीवजीके पास आये ॥४२॥ वह यक्ष प्रभाव और प्रभावशाली चतुर धर्म और अर्थके विषयमें ऊँच नीच कहनेके निमित्त आये हुए दोनों मंत्री लक्ष्मणजीके आनेके विषय में कहने लगे ॥ ४३ ॥ वह दोनों मंत्री आसन पर बैठ सेवकोंसे उपास्यमान अर्थ युक्त वचनोंसे सुग्रीवको प्रसन्न करके बोले कि जिस प्रकार सुरपतिको देवतागण प्रसन्न करते हैं ॥ ४४ ॥ हे राजन् ! आपको राज्य दिलानेवाले वह त्रिलोकीका राज्य करने योग्य महाभाग सत्यप्रतिज्ञ दोनों भाई श्रीरामलक्ष्मणजी मनुष्यभावको प्राप्त हुये हैं अर्थात् मनुष्य नहीं ईश्वर हैं ॥ ४५ ॥ उन दोनोंमेंसे एक जन लक्ष्मणजी धनुष धारण करके पुरीके द्वारपर खडे हुए हैं, उनकेही निमित्त वानरगण भीत और कंपित होकर शब्द कर रहे हैं ॥ ४६ ॥ वह यह श्रीरामचन्द्रजीके भ्राता लक्ष्मणजी कि, जो अपने बडे भाईके वचन कोही सारथी बना और कर्त्तव्य अर्थके निश्चयरूप रथपर श्रीरामचन्द्रजीके

यक्षश्चैवप्रभावश्चमंत्रिणावर्थधर्मयोः ॥ वक्तुमुच्चावचंप्राप्तंलक्ष्मणंतौशशंसतुः ॥ ४३ ॥ प्रसादयित्वासुग्रीवंवचनैःसार्थनिश्चितैः ॥ आसीनंपर्युपासीनौयथाशक्रंमरुत्पतिम् ॥४४॥ सत्यसंधौमहाभागौभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ मनुष्यभावंसंप्राप्तौराज्यार्हौराज्यदायिनौ ॥ ४५ ॥ तयोरेकोधनुष्पाणिर्द्वारितिष्ठतिलक्ष्मणः ॥ यस्यभीताःप्रवेपंतोनादान्मुंचंतिवानराः ॥ ४६ ॥ सएषराघवभ्रातालक्ष्मणोवाक्यसारथिः ॥ व्यवसायरथःप्राप्तस्तस्यरामस्यशासनात् ॥४७॥ अयंचतनयोराजंस्तारायादयितोंगदः ॥ लक्ष्मणेनसकाशंतेप्रेषितस्त्वरयानघ ॥४८॥ सोयंरोषपरीताक्षोद्वारितिष्ठतिवीर्यवान् ॥ वानरान्वानरपतेचक्षुषानिर्दहन्निव ॥ ४९ ॥ तस्यमूर्ध्नाप्रणामंत्वंसपुत्रःसहबांधवः ॥ गच्छशीघ्रंमहाराजरोषोह्यद्योपशाम्यताम् ॥ ५० ॥ यथाहिरामोधर्मात्मातत्कुरुष्वसमाहितः ॥ राजंस्तिष्ठस्वसमयेभवसत्यप्रतिश्रवः ॥ ५१ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ० च० सा० किष्किंधाकांडे एकत्रिंशः सर्गः ॥ ३१ ॥

वचन मान यहांपर आये हैं ॥ ४७ ॥ हे राजन् ! हे अनघ ! यह ताराके पुत्र अंगदजी उन्हीं लक्ष्मणजीके भेजे हुए तुम्हारे पास अतिशीघ्र आये हैं॥४८॥ हे वानरपते ! वह लक्ष्मणजीही क्रोधसे लाल नेत्र किये मानो अपनी लोचनाग्निसे वानरगणको जलातेही हुए द्वारपर खडे हैं ॥ ४९ ॥ हे राजन् ! आप इस समय पुत्र और बान्धवगणोंके सहित शीघ्र जाकर मस्तक झुकाकर प्रणाम करके उनके रोषको शान्त कीजिये ॥ ५० ॥ हे राजन् ! धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजीने जिस प्रकारसे आपका कार्य साधन किया है आप सत्यनिष्ठ हो सावधान चित्तसे उनकी प्रतिज्ञाका पालन कीजिये ॥ ५१ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा ॥ आदि० किष्किंधाकांडे भाषायां एकत्रिंशः सर्गः ॥ ३१ ॥

अंगदजीके वचन सुन उन मंत्रिगणोंके सहित आत्मवान् सुग्रीवजी कोपायमान लक्ष्मणजीको प्रसन्न करनेके लिये आसनसे खडे होगये ॥ १ ॥ मंत्रके विषयमें निष्ठावान् मंत्रकुशल सुग्रीवजी गुरु लघु विचार कर मंत्र जाननेवाले मंत्रियोंसे कुछ न बोले ॥२॥ हमने कोई दुष्ट वचन नहीं कहा, और कोई दुष्ट कार्य नही किया, फिर श्रीरामचन्द्रके भ्राता लक्ष्मणजी किस निमित्त कुपित हुए हैं । इस बातकी हमें बडी चिंता है ॥ ३ ॥ हम जानते हैं कि हमारे असुहृद् दोषोंके ढूंढनेवाले शत्रुलोगोंने हमारे दोष निःसन्देह रामानुज लक्ष्मणजीसे कहे हैं ॥ ४ ॥ इस विषयमें यथाविधि और यथाबुद्धि तुम सब लोग विचार करो कि यही बात है, अथवा कुछ और ॥ ५ ॥ हमको श्रीरामचन्द्र व लक्ष्मणजीसे कुछ भय नहीं है; किन्तु विना अपराधसे कोपित हुये मित्रसेही

अंगदस्यवचःश्रुत्वासुग्रीवः सचिवैः सह ॥ लक्ष्मणंकुपितंश्रुत्वामुमोचासनमात्मवान् ॥१॥ सचतानब्रवीद्वाक्यंनिश्चित्यगुरुलाघवम् ॥ मंत्रज्ञान्मंत्रकुशलोमंत्रेषुपरिनिष्ठितः ॥२॥ नमेदुर्व्याहृतंकिंचिन्नापिमेदुरनुष्ठितम् ॥ लक्ष्मणोराघवभ्राताक्रुद्धःकिमितिचिंतये ॥३॥ असुहृद्भिर्ममामित्रैर्नित्यमंतरदर्शिभिः ॥ ममदोषानसंभूतान्श्राविताराघवानुजः ॥ ४ ॥ अत्रतावद्यथाबुद्धिःसर्वैरेवयथाविधि ॥ भावस्यनिश्चयस्तावद्विज्ञेयोनिपुणंशनैः ॥ ५ ॥ नखल्वस्तिममत्रासोलक्ष्मणान्नापिराघवात् ॥ मित्रंत्वस्थानकुपितंजनयत्येवसंभ्रमम् ॥ ६ ॥ सर्वथासुकरंमित्रंदुष्करंप्रतिपालनम् ॥ अनित्यत्वात्तुचित्तानांप्रीतिरल्पेपिभिद्यते ॥ ७ ॥ अतोनिमित्तंत्रस्तोहंरामेणतुमहात्मना ॥ यन्ममोपकृतंशक्यंप्रतिकर्तुंनतन्मया ॥ ८ ॥ सुग्रीवेणैवमुक्तेतुहनूमान्हरिपुंगवः ॥ उवाचस्वेनतर्केणमध्येवानरमंत्रिणाम् ॥ ९ ॥ सर्वथानैतदाश्चर्यंयत्त्वंहरिगणेश्वर ॥ नविस्मरस्यविस्रब्धमुपकारंकृतंशुभम् ॥१०॥ राघवेणतुवीरेणभयमुत्सृज्यदूरतः ॥ त्वत्प्रियार्थंहतोवालीशक्रतुल्यपराक्रमः ॥ ११ ॥

भय हुआ करता है ॥६॥ मित्रताई करना सदाही सरल है परंतु मित्रताका निबाहना ही कठिन कार्य है, क्योंकि चित्तकी अस्थिरतासे हुये अल्प कारणसे प्रीतिमें भेद पड जाता है ॥ ७ ॥ इस निमित्तही हम महात्मा श्रीरामचन्द्रजीसे त्रासित हुए हैं क्योंकि जो प्रत्युपकार करनेको हम समर्थ हैं वह अबतक हमने पूरा नहीं किया ॥ ८ ॥ जब सुग्रीवजीने इस प्रकार कहा तो मंत्रिगणोंके श्रेष्ठ हनुमान्‌जी अपने तर्कसे बोले हुए मंत्रियोंके बीचमें बोले ॥ ९ ॥ हे कपिगणेश्वर ! आप जो उत्तम उपकारको नहीं भूलते यह कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है क्योंकि महात्मा लोगोंका स्वभावही ऐसा होता है ॥ १० ॥ श्रीरामचन्द्रजीने भयको छोड करके दूरसेही आपका प्रिय कार्य करनेके लिये इन्द्रतुल्य पराक्रमशाली वालीको

मार डाला ॥ ११ ॥ इस लिये श्रीरामचन्द्रजी प्रेमके हेतुसेही आपके प्रति क्रोधित हुए हैं, इसमें कुछभी सन्देह नहीं है, उस प्रेमके कोपके हेतुही उन्होंने इन लक्ष्मीवान् लक्ष्मणजीको आपके पास भेजा है ॥ १२ ॥ हे कालके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ ! आपने भोगके समय मतवाले होकर समयको नहीं जाना, इस समय आप देखिये कि, सीताजीके ढूँढनेका काल सुशोभित शरदऋतु आई है,इस लिये खिले हुये शतावरीके वृक्षोंसे पृथ्वी शोभायमान हो रही है ॥ १३ ॥ आकाशमंडलमें ग्रह नक्षत्र सब निर्मल होगये, मेघ जहांके तहां बिलाय गये दिक् सरित्, और समस्त सरोवर प्रसन्न होगये हैं ॥ १४ ॥ हे कपिश्रेष्ठ ! सीता जीके ढूँढनेके निमित्त उद्योग करनेका समय आगया और उसको आपने अबतक नहीं जाना, आप तो भोगसुखमेंही मतवाले हैं बस इसी कारणसे लक्ष्म णजी यहांपर आये हैं ॥ १५ ॥ हतभार्या इस लिये अत्यन्त कातर महात्मा श्रीरामचन्द्रजीके पुरुषान्तर (लक्ष्मणजी) से सुने हुए कठोर वचन आप सहन

सर्वथाप्रणयात्क्रुद्धोराघवोनात्रसंशयः ॥भ्रातरंसंप्रहितवाँल्लक्ष्मणंलक्ष्मिवर्धनम् ॥ १२ ॥ त्वंप्रमत्तोनजानीषेकालंकालविदांवर ॥ फुल्लसप्तच्छद श्यामाप्रवृत्तातुशरच्छुभा ॥१३॥ निर्मलग्रहनक्षत्राद्यौःप्रनष्टबलाहका ॥ प्रसन्नाश्चदिशःसर्वाःसरितश्चसरांसिच ॥१४॥ प्राप्तमुद्योगकालंतुनावै षिहरिपुंगव॥त्वंप्रमत्तइतिव्यक्तंलक्ष्मणोऽयमिहागतः ॥ १५ ॥आर्तस्यहृतदारस्यपरुषंपुरुषांतरात्॥ वचनंमर्षणीयंतेराघवस्यमहात्मनः॥१६॥ कृतापराधस्यहितेनान्यत्पश्याम्यहंक्षमम् ॥ अंतरेणांजलिंबद्ध्वालक्ष्मणस्यप्रसादनात्॥ १७ ॥नियुक्तैर्मंत्रिभिर्वाच्योह्यवश्यंपार्थिवोहितम्॥इतए वभयंत्यक्त्वाब्रवीम्यवधृतंवचः॥१८॥अभिक्रुद्धःसमर्थोहिचापमुद्यम्यराघवः॥सदेवासुरगंधर्वंवशेस्थापयितुंजगत् ॥ १९ ॥नसक्षमःकोपयितुंयः प्रसाद्यःपुनर्भवेत्॥पूर्वोपकारंस्मरताकृतज्ञेनविशेषतः॥२०॥तस्यमूर्ध्नाप्रणम्यत्वंसपुत्रःससुहृज्जनः॥ राजंस्तिष्ठस्वसमयेभर्तुर्भार्येवतद्वशे॥२१॥

करें ॥१६॥ आपने अपराध किया है इसलिये हाथ जोडकर लक्ष्मणजीकी प्रसन्नताके सिवाय और किसी कार्यसे हम आपका मंगलकार्य नहीं देखते ॥१७॥ राजकार्यमें नियुक्त मंत्रीलोगोंको उचित है कि, राजासे अवश्यही हितकर वचन कहें, इस कारणसे ही भय छोडकर हमने यह निश्चित वचन आपसे कहे ॥ १८ ॥ श्रीरामचन्द्रजी क्रोधित हो धनुष चढाकर देव, असुर और गन्धर्वोंके सहित समस्त जगत् अपने वशमें रख सकते हैं ॥ १९ ॥ विशेष करके पहला उपकार स्मरण किये हुए कृतज्ञ होकर उनको फिर भी प्रसन्न करना होगा, सो ऐसे पुरुषोंपर क्रोध करना उचित नहीं है ॥२०॥ हे राजन् ! आप पुत्र और इष्ट मित्रोंके सहित मस्तकझुका प्रणाम करके अपनी प्रतिज्ञामें टिकिये कि, जैसे स्त्रीका कल्यान पतिके अधीनमें रहनेहीसे होता है ॥२१॥

हे कपीन्द्र ! श्रीराम और उनके भाई श्रीलक्ष्मणजीकी आज्ञाका मनके द्वाराभी उल्लंघन करना आपका कर्त्तव्य नहीं है और आपका मन वालिवधके हेतु इन्द्रतुल्य पराक्रमशाली श्रीरामचन्द्रजीके अमानुषिक बलको तो जानताही है॥२२॥इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा०आदि०किष्किन्धाकांडे भाषायां द्वात्रिंशः सर्गः॥३२॥ हनुमानजीने तो इस प्रकारसे सुग्रीवजीको समझाया बुझाया, तब परवीरत्वविनाशी लक्ष्मणजी अंगदजीके द्वारा सुग्रीवकी आज्ञाको प्राप्तकर श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा पालन करनेके हेतु मनोहर गुहामें वसी किष्किन्धापुरीमें प्रवेश करते हुये ॥ १ ॥ द्वारपर खडे हुए महाबलवान् समस्त वानर लक्ष्मणजीको देख हाथ जोडकर खडे होगये ॥ २ ॥ दशरथकुमार लक्ष्मणजीको क्रोधसे लम्बे २ श्वास लेते हुए देखकर कपिगण त्रासित होगये और इनको रोक न

नरामरामानुजशासनंत्वयाकपींद्रयुक्तंमनसाप्यपोहितुम्॥मनोहितेज्ञास्यतिमानुषंबलंसराघवस्यास्यसुरेंद्रवर्चसः॥ २२॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० किष्किंधाकांडे द्वात्रिंशः सर्गः॥३२ ॥ अथप्रतिसमादिष्टोलक्ष्मणःपरवीरहा ॥ प्रविवेशगुहांरम्यांकिष्किंधांरामशासनात् ॥ १ ॥ द्वारस्थाहरयस्तत्रमहाकायामहाबलाः॥बभूवुर्लक्ष्मणंदृष्ट्वासर्वेप्रांजलयःस्थिताः ॥ २ ॥ निःश्वसंतंतुतदृष्ट्वाक्रुद्धंदशरथात्मजम् ॥ बभूवुर्हरयस्त्रस्तानचैनांपर्यवारयन् ॥३॥ सतांरत्नमयींदिव्यांश्रीमान्पुष्पितकाननाम् ॥ रम्यांरत्नसमाकीर्णांददर्शमहतीगुहाम् ॥४॥ हर्म्यप्रासादसंबाधांनानारत्नोपशोभिताम् ॥ सर्वकामफलैर्वृक्षैःपुष्पितैरुपशोभिताम्॥५ ॥देवगंधर्वपुत्रैश्चवानरैःकामरूपिभिः ॥ दिव्यमाल्यांबरधरैःशोभितांप्रियदर्शनैः ॥ ६ ॥ चंदनागुरुपद्मानांगंधैःसुरभिगंधिताम्॥मैरेयाणांमधूनांचससमोदितमहापथाम् ॥ ७॥विंध्यमेरुगिरिप्रख्यैःप्रासादैर्नैकभूमिभिः ॥ ददर्शगिरिनद्यश्चविमलास्तत्रराघवः ॥८॥

सके ॥ ३ ॥ श्रीमान् लक्ष्मणजीने वह दिव्य रत्नमयी दिव्यरत्नोंसे बनी, फूले हुए वनवाली रमणीय गुफा देखी ॥ ४ ॥ वह बडे २ धवरहरे और अटा अटारियोंसे अनेक विधिके रत्नोंसे और सर्वदा उत्पन्न होते हुए वृक्षोंके समूहसे परिशोभित होती थी ॥ ५ ॥ और इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले, वस्त्रा भूषण पहरे, माला व अम्बरधारी प्रियदर्शन देव और गंधर्वपुत्र वानरगणोंसे शोभायमान थी ॥ ६ ॥ चन्दन अगर और कमल आदि फूलोंकी सुगंधिसे सुगंधित, उसके मार्गोंमें मदिरा और मधु पीनेवाले लोग घूम रहे थे ॥ ७ ॥ लक्ष्मणजीने उस स्थानमें विन्ध्याचल और मेरुपर्वतके तुल्य बहुत सारे सप्तभूमिका धवरहरे और विमल जलवाली नदियोंके समूह देखे ॥ ८ ॥

आगे चले तो अंगदजीका रमणीक गृह देख और मैन्द, द्विविद, गवय, गवाक्ष, गज शरभ ॥ ९ ॥ बिन्दुमाली, सम्पाति, सूर्याक्ष, हनुमान्, वीरबाहु, सुबाहु, महात्मा नल ॥ १० ॥ कुमुद, सुषेण तार; जाम्बवान्, दधिवक्त्र, नील, सुपाटल, सुनेत्र ॥ ११ ॥ इन सब मुख्य २ वानरोंके अति विचित्र दृढ गृह महात्मा लक्ष्मणजीने राजमार्गपर चलते हुये देखे ॥ १२ ॥ यह सब गृह श्वेतवर्णके बादरके समान उजले सुगन्धित चन्दनादि वस्तु और हारोंसे युक्त अति धनधान्यसे भरेपुरे व स्त्रीरूपी रत्नोंसे शोभायमान थे ॥ १३ ॥ इन सब गृहोंके मध्यमें कुछेक अरुण व श्वेतरंगवाले पर्वतसे घिरे जानेके कारण मूढ व्यक्तिके प्रवेश करनेके अयोग्य इन्द्र भवनके सदृश सुग्रीवजीके गृहको लक्ष्मणजीने देखा ॥ १४ ॥ कैलास के शिखर के समान श्वेतवर्ण धवर

अंगदस्यगृहंरम्यंमैन्दस्यद्विविदस्यच ॥ गवयस्यगवाक्षस्यगजस्यशरभस्यच ॥ ९॥विद्युन्मालेश्चसंपातेःसूर्याक्षस्यहनूमतः ॥ वीरबाहोःसुबाहोश्चनलस्यचमहात्मनः॥ १०॥कुमुदस्यसुषेणस्यतारजांबवतोस्तथा ॥ दधिवक्रस्यनीलस्यसुपाटलसुनेत्रयोः ॥ ११ ॥एतेषांकपिमुख्यानांराजमार्गेमहात्मनाम् ॥ ददर्शगृहमुख्यानिमहासाराणिलक्ष्मणः॥१२॥ पांडुराभ्रप्रकाशानिगंधमाल्ययुतानिच ॥ प्रभूतधनधान्यानिस्त्रीरत्नैःशोभितानिच ॥१३॥ पांडुरेणतुशैलेनपरिक्षिप्तंदुरासदम् ॥ वानरेंद्रगृहंरम्यंमहेंद्रसदनोपमम् ॥ १४ ॥ शुक्लैःप्रासादशिखरैःकैलासशिखरोपमैः॥ सर्वकामफलैर्वृक्षैःपुष्पितैरुपशोभितम् ॥ १५ ॥ महेंद्रदत्तैःश्रीमद्भिर्नीलजीमूतसन्निभैः ॥ दिव्यपुष्पफलैर्वृक्षैःशीतच्छायैर्मनोरमैः ॥ १६ ॥ हरिभिःसंवृतद्वारंबलिभिःशस्त्रपाणिभिः ॥दिव्यमाल्यावृतंशुभ्रंतप्तकांचनतोरणम् ॥१७॥ सुग्रीवस्यगृहंरम्यंप्रविवेशमहाबलः ॥अवार्यमाणःसौमित्रिर्महाभ्रमिवभास्करः॥ १८ ॥ ससप्तकक्ष्याधर्मात्मायानासनसमावृताः ॥ प्रविश्यसुमहद्गुप्तंददर्शान्तःपुरंमहत् ॥ १९ ॥ हैमराजतपर्यंकैर्बहुभिश्चवरासनैः ॥ महार्हास्तरणोपेतैस्तत्रतत्रसमावृतम् ॥ २० ॥

हरे और सर्व कालमें फल उत्पन्न कारी पुष्पित वृक्षोंसे परिशोभित ॥१५॥ व इनके अतिरिक्त और भी इन्द्रके दिये धनादि और श्याम मेघ घटाके समान कल्पवृक्षादिसे शोभित था इस कारण कि, इन तरुवरोंकी छाया बडी शीतलकारिणी होती थी ॥ १६ ॥ उस घरके द्वार पर बलवान् हाथमें अस्त्र शस्त्र लिये हुये वानर गण खडे थे, उसका गुम्बज दिव्यमाला से ढका हुआ और तपाये हुये सुवर्णसे बना ॥ १७ ॥ जिस प्रकार सूर्य भगवान् महामेघमें प्रवेश करते हैं वैसेही महाबलवान् लक्ष्मणजी सुग्रीव के मनोहर गृहमें प्रवेश करते हुये और किसी वानरने उनको नहीं रोका ॥ १८ ॥ धर्मात्मा लक्ष्मणजी सुग्रीव की सवारियें व आसनसे युक्त सात फाटक नांघकर शयन गृहके अंतःपुरमें पहुँचे ॥ १९ ॥ उस अंतःपुरके अनेक स्थानोंमें महा मूल्यवान्

विस्तरोंसे विशिष्ट बहुत सारे उत्तम २ आसन और सुवर्ण चांदीसे बने हुये अनेक पर्यंकभी पडे थे ॥ २० ॥ उस अन्तःपुरमें प्रवेश करतेही लक्ष्मणजीने बराबर अक्षरवाला समताल सहित वीणा आदि बाजोंसे उत्पन्न हुआ मधुर स्वर श्रवण किया ॥ २१ ॥ महाबलवान् लक्ष्मणजी सुग्रीवके गृहमें रूप यौवन सम्पन्न होनेसे गर्वित अनेक आकारवाली बहुत स्त्री रत्नोंको देखते हुये ॥ २२ ॥ उनमें कोई २ उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई, उत्तम माला; व उत्तम भूषण वसन धारण किये हुई; माला गूँथनेमें लगरही थीं ॥ २३ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके छोटे भाई लक्ष्मणजीने सुग्रीवजी के सुख भोगमें परितृप्त, व्यग्रता रहित और अत्युत्तम भूषण धारी नौकर चाकरोंको देखा ॥ २४ ॥ फिर श्रीमान् सुमित्रा कुमार लक्ष्मणजी नूपुर व कौंधनीके घुँघरुओं की ध्वनि सुनकर व और भी गहने आदिकों के शब्द सुन परस्त्री दर्शनसे लज्जित हुये ॥ २५ ॥ वह गहनोंका शब्द श्रवण करके रोषके वेगसे अत्यन्त कुपित हुये और शब्दसे दशोंदिशा

प्रविशन्नेवसततंशुश्रावमधुरस्वनम् ॥ तंत्रीगीतसमाकीर्णंसमतालपदाक्षरम्॥२१॥ बह्वीश्चविविधाकारारूपयौवनगर्विताः ॥ स्त्रियः सुग्रीवभवनेददर्शसमहाबलः ॥ २२ ॥ दृष्ट्वाभिजनसंपन्नास्तत्रमाल्यकृतस्रजः ॥ वरमाल्यकृतव्यग्राभूषणोत्तमभूषिताः॥ २३॥ नातृप्तान्नातिचव्यग्रान्नानुदात्तपरिच्छदान्॥ सुग्रीवानुचरांश्चापिलक्षयामासलक्ष्मणः ॥२४॥ कूजितंनूपुराणांचकांचीनांनिःस्वनंतथा ॥ सनिशम्यततःश्रीमान्सौमित्रिर्लज्जितोऽभवत्॥ २५ ॥ रोषवेगप्रकुपितःश्रुत्वाचाभरणस्वनम्॥ चकारज्यास्वनंवीरोदिशःशब्देनपूरयन् ॥ २६ ॥ चारित्रेणमहाबाहुरपकृष्टःसलक्ष्मणः ॥ तस्थावेकांतमाश्रित्यरामकोपसमन्वितः॥ २७ ॥ तेनचापस्वनेनाथसुग्रीवःप्लवगाधिपः॥विज्ञायागमनंत्रस्तःसचचालवरासनात्॥ २८ ॥ अंगदेनयथामह्यंपुरस्तात्प्रतिवेदितम् ॥ सुव्यक्तमेषसंप्राप्तःसौमित्रिर्भ्रातृवत्सलः ॥ २९ ॥ अंगदेनसमाख्यातोज्यास्वनेनचवानरः ॥ बुबुधेलक्ष्मणंप्राप्तंमुखंचास्योपशुष्यत ॥ ३० ॥

पूरित करते हुये प्रत्यंचाकी टंकार करने लगे जिससे कि, स्त्रियोंके भूषणोंका शब्द बन्दहो ॥ २६ ॥ उस रनवासमें प्रवेश करने के हेतु आचारको आगे किये हुये लक्ष्मणजी, श्रीरामचन्द्रजीके कार्यमें सुग्रीवकी अप्रवृत्तिके हेतु कोपयुक्त होकर आगे रनवासमें न बढकर एकान्त स्थानमें खडे रहे ॥ २७॥ कपिराज सुग्रीवजी उस धनुषकी टंकारको श्रवण कर त्रासितहो लक्ष्मणजीका आगमन जान अपने श्रेष्ठ आसनसे उठ खडे हुये ॥ २८ ॥ उन्होंने विचारा कि, अंगदजीने जैसे पहले हमें इनके आगमनको बताया था सो इस समय भ्रातृवत्सल लक्ष्मणजी का आगमन हमने भली भांति जाना ॥ २९ ॥ अंगदजी करके कहे हुये सुग्रीवजी; धनुष की टंकारके शब्दसे लक्ष्मणजी का आगमन जान विवर्ण मुख होगये ॥ ३० ॥

फिर वानर श्रेष्ठ व्यग्रता रहित सुग्रीवजी त्रासके मारे चंचल चित्त हो प्रिय दर्शनवाली तारासे कहने लगे ॥ ३१ ॥ हे शुभे ! श्रीरामचन्द्रजी के छोटे भाई लक्ष्मणजी स्वभावसे मृदुलचित्त हैं सो इसका क्या कारण है कि, यह क्रोधित होकर यहां आये हैं सो तुम कहो ? ॥ ३२ ॥ हे अनिन्दिते ! कुमार के रोषका कौन कारण दृष्टि आता है ? क्योंकि नर श्रेष्ठ लक्ष्मणजी कभी अकारण क्रोध नहीं करते ॥३३॥ हमने यदि उन लोगों का कोई अपराध किया हो और यदि तुम समझती हो तो उसको शीघ्र बुद्धिसे विचार कर हमसे कहो ॥ ३४ ॥ अथवा हे भामिनि ! तुम स्वयंही उनके दर्शन कर और समझाने बुझानेका वचन कह उन्हें प्रसन्न करो ॥ ३५ ॥ विशुद्धात्मा लक्ष्मणजी तुमको देखतेही क्रोध छोडदेंगे, क्योंकि महात्मा लोग स्त्रियोंके निकट

ततस्तारांहरिश्रेष्ठः सुग्रीवःप्रियदर्शनाम्॥उवाचहितमव्यग्रस्त्रासससंभ्रांतमानसः ॥ ३१ ॥ किंनुरुट्कारणंसुभ्रुप्रकृत्यामृदुमानसः ॥ सरोषइवसंप्राप्तोयेनायंराघवानुजः ॥ ३२॥ किंपश्यसिकुमारस्यरोषस्थानमनिंदिते ॥ नखल्वकारणेकोपमाहरेन्नरपुङ्गवः ॥ ३३ ॥यद्यस्यकृतमस्माभिर्बुध्यसेकिंचिदप्रियम्॥ तद्बुद्ध्यासंप्राधार्याशुक्षिप्रमेवाभिधीयताम् ॥३४ ॥ अथवास्वयमेवैनंद्रष्टुमर्हसिभामिनि ॥ वचनैः सांत्वयुक्तैश्चप्रसादयितुमर्हसि ॥ ३५ ॥ त्वद्दर्शनेविशुद्धात्मानस्मकोपंकरिष्यति ॥ नहिस्त्रीषुमहात्मानःक्वचित्कुर्वंतिदारुणम् ॥ ३६॥ त्वयासांत्वैरुपक्रांतंप्रसन्नेंद्रियमानसम्॥ततःकमलपत्राक्षंद्रक्ष्याम्यहमरिंदमम् ॥ ३७ ॥ साप्रस्खलंतीमदविह्वलाक्षीप्रलंबकांचीगुणहेमसूत्रा ॥ सलक्षणालक्ष्मणसन्निधानंजगामतारानमितांगयष्टिः ॥ ३८ ॥सतांसमीक्ष्यैवहरीशपत्नींतस्थावुदासीनतयामहात्मा ॥ अवाङ्मुखोभून्मनुजेंद्रपुत्रःस्त्रीसन्निकर्षाद्विनिवृत्तकोपः ॥ ३९ ॥ सापानयोगाच्चनिवृत्तलज्जादृष्टिप्रसादाच्चनरेंद्रसूनोः ॥ उवाचताराप्रणयप्रगल्भंवाक्यंमहार्थंपरिसांत्वरूपम् ॥ ४० ॥

दारुण क्रोध नहीं करते हैं ॥ ३६ ॥ जब तुम समझा बुझाकर उनको प्रसन्न करलोगी उसके पीछे हम कमलदल समान नेत्रवाले शत्रुनाशी लक्ष्मणजीके दर्शन करेंगे ॥ ३७ ॥ तब महा मतवाली चाल चलती, मद पान करनेसे विह्वल नेत्र हुई, सूक्ष्म मध्यभागके कारण नमित देह होती और श्रेष्ठ लक्षणवाली तारा सुवर्णकी लम्बी क्षुद्रघंटिका पहरे लक्ष्मणजीके निकट गई ॥ ३८ ॥ मनुजराजकुमार महात्मा लक्ष्मणजी वानरराजकी स्त्री ताराको देखकर स्त्रीकी निकटताके हेतु क्रोध रहित हो नीचे मुखकर खडे होगये ॥ ३९ ॥ मदिरापान करनेके कारण मतवाली होरहीथी इस कारण लज्जाहीन होकर राजपुत्रको प्रसन्नताकी दृष्टिके हेतु महाअर्थ युक्त समझाने बुझाने के वचन प्रेम सहित ढिठाईसे कहनेलगी ॥ ४० ॥

हे राजकुमार ! आपके क्रोधका क्या कारण है ? कौन पुरुष आपकी आज्ञामें नहीं टिका हुआ है ? कौन जन सूखे वृक्षोंको जलानेवाली अग्निमें शंका रहित चित्त होकर गिरा है ॥ ४१ ॥ लक्ष्मणजी ताराके प्रेम सहित सान्त्वना वाक्य सुनकर प्रणयके दिखलानेवाले निःशंकभावसे बोले ॥ ४२ ॥ तुम्हारा पति धर्म और अर्थका लोप करके वेगही कामासक्त हो रहा है, सो तुम उसके हितकारी कार्यमें लगी रहकर क्या इस बातको नहीं जानती हो ॥ ४३ ॥ वह राज्यकी रक्षा करनेके लिये चिंता नहीं करता, और हम लोग जो शोकसे व्याकुल हो रहे हैं इसको भी नहीं विचारता उसने राज्यकी रक्षा करनेके लिये एक साधारण सभा बना रक्खी है और आप केवल भोगमेंही लगा रहता है ॥ ४४ ॥ कपीश्वरने हमारे कार्य करनेके लिये चारमासकी अवधि बांधकर प्रतिज्ञाकी; सो वह उस प्रतिज्ञाको तोड व इसी अवधि नांघकरभी कामके विहारमें ऐसा आसक्त हो रहा है, कि अपनी प्रतिज्ञा व हमारे

किंकोपमूलंमनुजेंद्रपुत्रकस्तेनसंतिष्ठतिवाङ्निदेशे ॥ कःशुष्कवृक्षंवनमापतंतंदवाग्निमासीदतिनिर्विशंकः ॥ ४१ ॥ सतस्यावचनंश्रुत्वासांत्व पूर्वमशंकितः ॥ भूयःप्रणयदृष्टार्थंलक्ष्मणोवाक्यमब्रवीत् ॥ ४२ ॥ किमयंकामवृत्तस्तेलुप्तधर्मार्थसंग्रहः ॥ भर्ताभर्तृहितेयुक्तेनचैवमवबुध्यसे ॥ ४३ ॥ नचिंतयतिराज्यार्थंसोस्माञ्छोकपरायणान् ॥ सामान्यपरिषत्तारेकाममेवोपसेवते ॥४४॥ समासांश्चतुरःकृत्वाप्रमाणंप्लवगेश्वरः ॥ व्यतीतांस्तान्मदोदग्रोविहरन्नाववुध्यते ॥४५॥ नहिधर्मार्थसिद्ध्यर्थंपानमेवप्रशस्यते ॥ पानादर्थश्चकामश्चधर्मश्चपरिहीयते ॥ ४६ ॥ धर्मलो पोमहांस्तावत्कृतेह्यप्रतिकुर्वतः ॥ अर्थलोपश्चमित्रस्यनाशेगुणवतोमहान् ॥ ४७॥ मित्रंह्यर्थगुणश्रेष्ठंसत्यधर्मपरायणम् ॥ तद्द्वयंतुपरित्यक्तंन तुधर्मेव्यवस्थितम् ॥ ४८ ॥ तदेवंप्रस्तुतेकार्येकार्यमस्माभिरुत्तरम् ॥ तत्कार्यंकार्यतत्त्वज्ञेत्वमुदाहर्तुमर्हसि ॥ ४९ ॥ सातस्यधर्मार्थसमाधि युक्तंनिशम्यवाक्यंमधुरस्वभावम् ॥ तारागतार्थेमनुजेंद्रकार्येविश्वासयुक्तंतमुवाचभूयः ॥५०॥

कार्यको कुछभी नहीं जानता ॥ ४५ ॥ धर्म और अर्थकी सिद्धिके लिये मधुमदादि पान करना ठीकनहीं है क्योंकि इसको पान करनेके हेतु धर्म और अर्थ दोनोंका नाश हो जाता है ॥ ४६ ॥ उपकार करनेवालेके साथ प्रत्युपकार न करनेसे धर्मका लोप हो जाता है और जब गुणवान् मित्रका कार्य नाशको प्राप्त हो जाता है तब कृतज्ञके अर्थकाभी लोप होजाता है ॥ ४७ ॥ मित्रका कार्य साधन करना और सत्य धर्म परायणता इन दोनोंको छोड देनेसे धर्मकी रक्षा नहीं होती ॥ ४८ ॥ हे तारे ! तुम कार्यके निश्चयको भलीभांतिसे जानती हो सो इस उपस्थित कार्यके लिये जो कुछ करना उचित हो, वही करना चाहिये, बस यही बात तुम सुग्रीवसे जाकर कहो ॥ ४९ ॥ तारा, लक्ष्मणजीके वह धर्मार्थ संबंधयुक्त मधुर वचन सुनकर

श्रीरामचन्द्रजीके कार्यके उल्लंघन होनेके हेतु विश्वासयुक्त वचन फिर उनसे बोली ॥ ५० ॥ हे राजेन्द्र कुमार ! मित्रके योग्य कार्य तो अभी नहीं बीता है, इस कारण आपको कोपका समय अभी नहीं आ पहुँचा है और अपने ऊपर आपको क्रोध करना कर्त्तव्यभी नहीं है । हे वीर! आपका प्रयोजन साधन करनेकी इच्छा किये अपने मित्रका कोई अपराधभी होजाय तो भी आप उसे सहलेनेके योग्य हैं ॥ ५१ ॥ हे कुमार ! आप गुणवान् हैं इसलिये हीन पुरुषके ऊपर आपका क्रोध करना अनुचित है आप सरीखे पुरुषगण सतोगुणसे क्रोधको वश किये हुये तपस्यापर आधार रखते हैं, इस लिये किस प्रकारसे आप क्रोधके वशमें हो सकते हो ॥ ५२ ॥ उस बानर बन्धुके ऊपर क्रोधका कारण हम जानती हैं, और हम यह भी जानचुकी हैं कि, सीताके ढूँढनेका समय आगया है और आपने हम लोगोंका जो कार्य किया है और आपके प्रति हम लोगोंका जो कर्त्तव्य है उसकोभी हम जानती हैं ॥ ५३ ॥ अब

नकोपकालः क्षितिपालपुत्रनचापिकोपः स्वजनेविधेयः ॥ त्वदर्थकामस्यजनस्यतस्यप्रमादमप्यर्हसिवीरसोढुम् ॥ ५१॥ कोपंकथंनामगुणप्रकृष्टः कुमारकुर्यादपकृष्टसत्त्वे ॥ कस्त्वद्विधः कोपवशंहिगच्छेत्सत्त्वावरुद्धस्तपसः प्रसूतिः ॥ ५२ ॥ जानामिकोपंहरिवीरबंधोर्जानामिकार्यस्यचकालसंगम् ॥ जानामिकार्यंत्वयियत्कृतंनस्तच्चापिजानामियदत्रकार्यम् ॥ ५३ ॥ तच्चापिजानामितथाविषह्यंबलंनरश्रेष्ठशरीरजस्य ॥ जानामियस्मिश्चजनेऽवबद्धंकामेनसुग्रीवमसक्तमद्य ॥ ५४ ॥ नकामतंत्रेतवबुद्धिरस्तित्वंवैयथामन्युवशंप्रपन्नः ॥ नदेशकालौहियथार्थधर्मावेक्षतेकामरतिर्मनुष्यः ॥ ५५ ॥ तंकामवृत्तंममसन्निकृष्टंकामाभियोगाच्चविमुक्तलज्जम् ॥ क्षमस्वतावत्परवीरहंतस्त्वद्भ्रातरंवानरवंशनाथम् ॥ ५६ ॥ महर्षयोधर्मतपोभिरामाः कामानुकामाः प्रतिबद्धमोहाः ॥ अयंप्रकृत्याचपलः कपिस्तुकथंनसज्जेतसुखेषुराजा ॥ ५७ ॥

तक आपके क्रोध करनेका कारण नहीं हुआ है यहभी जानती हैं हे नरश्रेष्ठ ! कामदेवका सहन करनेके अयोग्य जो बल है, उसको भी हम जानती हैं सुग्रीव जो स्त्रीजनोंके प्रति काममें लगे हुए व और कार्योंके करनेमें अनुरागी नहीं है यह भी ज्ञात है ॥ ५४ ॥ आपकी बुद्धि अबतक काम तंत्रके रसको नहीं जानती क्योंकि " दिनादशके अलबेले लला हो " इसी कारणसे आप क्रोधके वश हुये हैं काममें आसक्त हुये मनुष्यगण देशकाल और अर्थ किसीकी परवाह नहीं करते हैं ॥ ५५ ॥ सो हे परवीरनाशक ! आपके भ्राता हमारे निकट तुम्हारे डरसे छिपे हुए हैं इसलिये कामसे आसक्त और कामके वश होनेसे लज्जाहीन वानरवंशोंके नाथका अपराध क्षमा कर दें ॥ ५६ ॥ जिनका चित्त धर्म और तपस्या करनेमें ही केवल लगा रहता है ऐसे महर्षिगण भी मोहित होकर कामके वश हो जाते हैं । फिर सुग्रीव तो वानरजाति इसपर स्वभावसे ही चञ्चलचित्त और राजा इसलिये इसका

कामभोगमें आसक्त होना कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है ॥ ५७ ॥ मद भरनेके कारण आलस्य युक्त हुई आँखवाली वानरी तारा अतुल बुद्धिमान् लक्ष्मण जीसे ऐसा कहकर फिर खेदपूर्वक अपने पतिका हित करनेवाले यह वचन बोली ॥ ५८ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! यद्यपि सुग्रीव कामासक्त होरहा है तो भी उसने आपका कार्य साधन करनेके लिये पहलेहीसे आज्ञा देदी है ॥ ५९ ॥ विविध पर्वतवासी कामरूपी सहस्र २ करोड२ महावीर्यवान् वानरगण यहांपर आय चुके हैं ॥ ६० ॥ हे महाबाहो ! आपने अन्तःपुरमें प्रवेश न करकेसदाचारकी रक्षाकी है अब आप इस समय रनवासमें प्रवेश करिये क्योंकि छलरहित मित्रभावसेमित्रकी स्त्री देखनेमें कभी अधर्म नहीं होता ॥ ६१ ॥ शत्रुनाशक महाबाहु लक्ष्मणजी ताराकी अनु मति व शीघ्रता पाकर अन्तःपुरमें

इत्येवमुक्त्वावचनंमहार्थंसावानरीलक्ष्मणमप्रमेयम् ॥ पुनःसखेदंमदविह्वलाक्षीभर्तुर्हितंवाक्यमिदंबभाषे॥५८॥उद्योगस्तुचिराज्ञप्तःसुग्रीवेणनरोत्तम ॥ कामस्यापिविधेयेनतवार्थप्रतिसाधने ॥ ५९ ॥ आगताहिमहावीर्याहरयःकामरूपिणः ॥ कोटीःशतसहस्राणिनानानगनिवासिनः ॥ ॥ ६० ॥ तदागच्छमहाबाहोचारित्रंरक्षितंत्वया॥अच्छलंमित्रभावेनसतांदारावलोकनम् ॥ ६१ ॥ तारयाचाप्यनुज्ञातस्त्वरयावापिचोदितः ॥ प्रविवेशमहाबाहुरभ्यंतरमरिंदम ॥ ६२ ॥ ततःसुग्रीवमासीनंकांचनेपरमासने ॥ महार्हास्तरणोपेतेददर्शादित्यसन्निभम् ॥६३॥ दिव्याभरणचित्रांगंदिव्यरूपंयशस्विनम् ॥ दिव्यमाल्यांबरधरंमहेंद्रमिवदुर्जयम् ॥ ६४ ॥ दिव्याभरणमालाभिःप्रमदाभिःसमंततः ॥ संरब्धतररक्ताक्षोबभूवांतकसन्निभः ॥ ६५॥ रूमांतुवीरःपरिरभ्यगाढंवरासनस्थोवरहेमवर्णः॥ददर्शसौमित्रिमदीनसत्त्वंविशालनेत्रःसविशालनेत्रम् ॥६६॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च०सा० किष्किधाकांडे त्रयस्त्रिंशःसर्गः ॥ ३३ ॥

प्रवेश करते हुए ॥ ६२ ॥ लक्ष्मणजीने वहांप्रवेश करके महामूल्यका बिछौना बिछे हुए कांचनके बने आसनपर सुग्रीवको बैठे देखा ॥ ६३ ॥ दिव्य भूषण पहरे अतिदिव्य रूपवान् अतियशस्वी दिव्य माला और दिव्य वस्त्र धारण किये इन्द्रके समान दुर्जय ॥ ६४ ॥ दिव्यमाला व दिव्याभरण इत्यादि पहरे स्त्रियों करके चारोंओरसे सेवित, कपिराज सुग्रीवको लक्ष्मणजीने देखा तो उसके लाल नेत्र अन्तक कालके समान होगये ॥ ६५ ॥ श्रेष्ठ हेम वर्ण, विशाल नेत्र आसन पर बैठे वीरवर सुग्रीवने रुमाको चिपटाये महावीर्यवान् विशाल नेत्रवाले लक्ष्मणजीको देखा ॥ ६६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायां त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३३ ॥

उन अवारित क्रोध किये पुरुष श्रेष्ठ लक्ष्मणजीको अन्तःपुरमें आये हुए देख सुग्रीवजी अत्यन्त व्यथित हुये ॥ १ ॥तेजसे देदीप्यमान क्रोधान्वित अपने भाईकी दुःखानलसे सन्तापित दशरथकुमार लक्ष्मणजीको लम्बे २ श्वास लेते हुये देखकर ॥ २ ॥ कपिश्रेष्ठ सुग्रीवजी अपना स्वर्णासन त्यागकर इंद्रकी अलंकृत ध्वजाके समान उठ खडे हुये ॥ ३ ॥ सुग्रीवजीके उठनेपर रुमा इत्यादि सब स्त्रियें खडी हो गई; जिसप्रकार गगनमंडलमें चन्द्रमाको निकल आनेपर तारागण उसके चारोंओर शोभित होते हैं ॥ ४ ॥ श्रीमान् अरुणनेत्र सुग्रीवजी हाथ जोड महान् कल्पवृक्षके समान खडे रहगये ॥ ५ ॥ क्रोधित हुए लक्ष्मणजी नक्षत्रोंके बीचमें टिके हुए चन्द्रमाके समान रुमाके सहित नारियोंके बीचमें खडे हुए सुग्रीवसे बोले ॥ ६ ॥

तमप्रतिहतंक्रुद्धंप्रविष्टंपुरुषर्षभम् ॥ सुग्रीवोलक्ष्मणंदृष्ट्वाबभूवव्यथितेंद्रियः ॥ १ ॥ क्रुद्धंनिःश्वसमानंतंप्रदीप्तमिवतेजसा ॥ भ्रातुर्व्यसनसंतप्तंदृष्ट्वादशरथात्मजम् ॥ २ ॥ उत्पपातहरिश्रेष्ठोहित्वासौवर्णमासनम् ॥ महान्महेंद्रस्ययथास्वलंकृतइवध्वजः ॥ ३ ॥ उत्पतंतमनूत्पेतूरुमाप्रभृतयःस्त्रियः ॥ सुग्रीवंगगनेपूर्णचंद्रंतारागणाइव ॥ ४ ॥ संरक्तनयनःश्रीमान्संचचारकृतांजलिः ॥ बभूवावस्थितस्तत्रकल्पवृक्षोमहानिव ॥५॥ रुमाद्वितीयंसुग्रीवनारीमध्यगतंस्थितम्॥अब्रवील्लक्ष्मणःक्रुद्धःसतारंशशिनंयथा ॥६ ॥ सत्त्वाभिजनसंपन्नःसानुक्रोशोजितेंद्रियः॥कृतज्ञःसत्यवादीचराजालोकेमहीयते ॥ ७ ॥ यस्तुराजास्थितोऽधर्मेमित्राणामुपकारिणाम् ॥ मिथ्याप्रतिज्ञांकुरुतेकोनृशंसतरस्ततः ॥ ८ ॥ शतमश्वानृतेहंतिसहस्रंतुगवानृते ॥आत्मानंस्वजनंहंतिपुरुषःपुरुषानृते ॥९॥ पूर्वंकृतार्थोमित्राणांनतत्प्रतिकरोतियः॥कृतघ्नःसर्वभूतानांसवध्यःप्लवगेश्वर ॥ १० ॥ गीतोऽयंब्रह्मणाश्लोकःसर्वलोकनमस्कृतः ॥ दृष्ट्वाकृतघ्नंक्रुद्धेनतन्निबोधप्लवंगम ॥ ११ ॥

श्रेष्ठकुलमें उत्पन्न, अगाध बुद्धि सम्पन्न, जितेंद्रिय, दयावान कृतज्ञ और सत्यवादी, राजाही लोकमें पूजे जाते हैं ॥ ७ ॥ जो राजा अधर्ममें टिका हुआ उपकारी मित्रकी प्रतिज्ञा पूर्ण नहीं करता है उससे अधिक निष्ठुर पुरुष और कौन है ? ॥ ८ ॥ पुरुषगण एक अश्वकेलिये मिथ्या कहनेसे, सौ घोडोंके मारनेका दोष प्राप्त करते हैं; और एक गौके लिये मिथ्या कहनेसे सहस्र गोवधके दोषी और पुरुषके विषयमें मिथ्या कहनेसे अपने और स्वजनोंके विनाशका दोष प्राप्त करते हैं ॥९॥ हे वानरश्रेष्ठ ! प्रथम मित्रसे उपकार प्राप्त होकर जो पुरुष मित्रगणोंका प्रत्युपकार नहीं करते, वह पुरुष कृतघ्न और सर्वजीवोंसे मार डालनेके योग्य होते हैं ॥ १० ॥ हे वानर ! सर्वलोकनमस्कृत ब्रह्माजीने कृतघ्न पुरुषको देख क्रोधित होकर पहले यह श्लोक गाया था कि ॥ ११ ॥

गौके मारने वाले मदिरा पान करनेवाले, चोर; व्रतको तोडनेवाले इन सबका उद्धार सज्जनोंने कहा है, परन्तु कृतघ्नपुरुषका उद्धार किसी प्रकारसे नहीं होसकता ॥ १२ ॥ हे वानर! तुम अनार्य, कृतघ्न और मिथ्यावादी बने जाते हो क्यों कि तुमने पहले कृतार्थ होकर उसका प्रतिकार नहीं किया ॥ १३ ॥ हे वानर! जिससे कि रामद्वारा तुम्हारा कार्य सिद्ध होगया है इस कारणसे अब तुमको सीताजीके ढूँढनेमें यत्न करना आवश्यक है ॥ १४ ॥ तुम इस समय मिथ्या वादी होकर ग्रामीण भोगसुखमें आसक्त होरहे हो. महाराज श्रीरामचन्द्रजी दुष्टस्वभाववाले मेढककी बोली बोलते सर्पके समान तुमको नहीं जानते थे जैसे सर्पने मेढकको पीछेसे पकडा हो और वह बोले तो लोग उसको सर्प न जानकर मेडक समझते हैं ॥ १५ ॥ करुणामय महाभाग महात्मा रामचंद्रजीने

गोघ्नेचैवसुरापेचचौरेभग्नव्रतेतथा॥ निष्कृतिर्विहितासद्भिःकृतघ्नेनास्तिनिष्कृतिः॥१२॥ अनार्यस्त्वंकृतघ्नश्चमिथ्यावादीचवानर ॥ पूर्वंकृतार्थोरामस्यनतत्प्रतिकरोषियत् ॥१३॥ ननुनामकृतार्थेनत्वयारामस्यवानर ॥ सीतायामार्गणेयत्नःकर्तव्यःकृतमिच्छता ॥ १४ ॥ सत्वंग्राम्येषुभोगेषुसक्तोमिथ्याप्रतिश्रवः ॥ नत्वांरामोविजानीतेसर्पंमंडूकराविणम् ॥ १५ ॥ महाभागेनरामेणपापःकरुणवेदिना ॥ हरीणांप्रापितोराज्यंत्वंदुरात्मामहात्मना ॥ १६ ॥ कृतंचेन्नातिजानीषेराघवस्यमहात्मनः ॥ सद्यस्त्वंनिशितैर्बाणैर्हतोद्रक्ष्यसिवालिनम् ॥ १७ ॥ नससंकुचितःपंथायेनवालीहतोगतः ॥ समयेतिष्ठसुग्रीवमावालिपथमन्वगाः ॥ १८ ॥ ननूनमिक्ष्वाकुवरस्यकार्मुकाच्छारांश्चतान्पश्यसिवज्रसन्निभान् ॥ ततःसुखंनामनिषेवसेसुखीनरामकार्यंमनसाप्यवेक्षसे ॥ १९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० किष्किंधाकांडे चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३४ ॥ तथाब्रुवाणंसौमित्रिंप्रदीप्तमिवतेजसा ॥ अब्रवील्लक्ष्मणंताराताराधिपनिभानना ॥ १ ॥

वानरोंका नीच पाप करनेवाले तुमको वानरोंमें राज्य दिया है ॥ १६ ॥ यदि तुम महात्मा श्रीरामचन्द्रजीका किया हुआ उपकार न मानोगे तो शीघ्र ही उनके बाणसे मारे जाकर वालिको देखोगे ॥ १७ ॥ हे सुग्रीव ! जिस बाणसे वाली मारा गया है वही बाण अब श्रीरामचन्द्रजीके हाथमें है, इस लिये तुम प्रतिज्ञाका पालन करके वालिके मार्गका अनुसरण न करो ॥ १८ ॥ तुम श्रीरामचन्द्रजीके धनुषसे छूटे हुए वज्रतुल्य बाणोंका दर्शन न करनेसे सुखी होकर भोग सुख अनुभव कर सकोगे, इसलिये श्रीरामचन्द्रजीका कार्य तुम अनुग्रहण न करो ॥ १९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायां चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३४ ॥ अपने तेजसे देदीप्यमान लक्ष्मणजीने जब इस प्रकारसे कहा तब चन्द्रमुखी तारालक्ष्मणजीसे बोलीं ॥ १ ॥

हे लक्ष्मण ! इन सुग्रीवसे कर्कश वचन कहना आपको उचित नहीं है, यह कपीश्वर आपके मुखसे इस प्रकारसे वचन श्रवण करनेके योग्य नहीं हैं ॥ २ ॥ हे वीर ! यह सुग्रीव, अकृतज्ञशठ, दारुण मिथ्यावादी और छलकारी नहीं हैं ॥ ३ ॥ श्रीरामचन्द्रने रण स्थलमें जो उपकार किया है वह और से होनेको अयोग्य है सो यह वानर उसको भूले नहीं हैं ॥ ४ ॥ हे परवीरनाशी ! रामचन्द्रजीके प्रसादसे सुग्रीवजीने कीर्ति, स्थिर राज्य, रुमा और हमको प्राप्त किया है ॥ ५ ॥ बहुत दिन दुःख भोगनेके उपरान्त अति उत्तम सुख पाकर विश्वामित्रजीके समान इन्होंने आये हुए समयको न जाना ॥ ६ ॥ इन माननीय धर्मात्मा विश्वामित्रजीने घृताची अप्सरापर अनुरागी होकर दशवर्ष बीतते हुए नहीं जानेथे एकही दिन जाना

नैवलक्ष्मणवक्तव्योनायंपरुषमर्हति ॥ हरीणामीश्वरःश्रोतुंतववक्राद्विशेषतः ॥ २ ॥ नैवाकृतज्ञःसुग्रीवोनशठोनापिदारुणः ॥ नैवानृतकथोवीर नजिह्मश्चकपीश्वरः ॥ ३ ॥ उपकारंकृतंवीरोनाप्ययंविस्मृतःकपिः ॥ रामेणवीरसुग्रीवोयदन्यैर्दुष्करंरणे ॥ ४ ॥ रामप्रसादात्कीर्तिंचकपिरा ज्यंचशाश्वतम्॥प्राप्तवानिहसुग्रीवोरुमांमांचपरंतप ॥ ५ ॥ सुदुःखंशयितःपूर्वंप्राप्येदंसुखमुत्तमम् ॥ प्राप्तकालंनजानीतेविश्वामित्रोयथामुनिः ॥ ६ ॥घृताच्यांकिलसंसक्तोदशवर्षाणिलक्ष्मण ॥ अहोमन्यतधर्मात्माविश्वामित्रोमहामुनिः॥ ७ ॥ सहिप्राप्तंनजानीतेकालंकालविदांवरः ॥ विश्वामित्रोमहातेजाःकिंपुनर्यःपृथग्जनः ॥ ८ ॥ देहधर्मंगतस्यास्यपरिश्रांतस्यलक्ष्मण ॥ अवितृप्तस्यकामेषुरामःक्षंतुमिहार्हति ॥ ९ ॥ नचरोषवशंतातगंतुमर्हसिलक्ष्मण ॥ निश्चयार्थमविज्ञायसहसाप्राकृतोयथा ॥१०॥ सत्त्वयुक्ताहिपुरुषास्त्वद्विधाःपुरुषर्षभ ॥ अविमृश्यनरो षस्यसहसायांतिवश्यताम्॥११॥ प्रसादयेत्वांधर्मज्ञसुग्रीवार्थंसमाहिता ॥ महान्रोषसमुत्पन्नःसंरंभस्त्यज्यतामयम् ॥१२॥ रुमांमांचांगदंराज्य धनधान्यपशूनिच ॥ रामप्रियार्थंसुग्रीवस्त्यजेदितिमतिर्मम ॥ १३ ॥

॥ ७ ॥ जब कि, कालके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ महातेजस्वी धर्मात्मा विश्वामित्रजीने प्राप्त कालको नहीं जाना तब स्वभावसेही नीच जातिकी तो बातही क्या है ? ॥ ८ ॥ हे लक्ष्मणजी ! देहधर्ममें टिके हुए थके हुए कामभोगसे अतृप्तजनका अपराध आप श्रीरामचन्द्रजीसे क्षमा कराइये ॥ ९ ॥ हे लक्ष्मण ! आप साधारण पुरुषके समान विना निश्चित अर्थ जाने हुए सहसा क्रोधके वश होवें ॥१०॥ हे पुरुष श्रेष्ठ ! आपके समान सत्वगुणविशिष्ट पुरुष-विना विचारे सहसा क्रोधके वश नहीं हो जाते ॥ ११ ॥ हे धर्मके जाननेवाले ! हम नम्रतासहित सुग्रीवके लिये आपको प्रसन्न कराती हैं, सो आप इस उत्पन्न हुए महाक्रोधको छोड दीजिये ॥ १२ ॥ हमको जानपडता है कि, यह सुग्रीव श्रीरामचन्द्रजीके लिये रुमाको, हमको; अंगदको, राज्य, धन, धान्य और

पशु इत्यादि समस्तकोही परित्याग करदेंगे ॥ १३ ॥ सुग्रीव उस अधम राक्षसको मारकर रोहिणीके सहित चन्द्रमाके समान सीताजीसे श्रीरामचन्द्रजीको मिलादेवेंगे ॥ १४ ॥ लंकामें रावणके पास इस समय सौ हजार करोड छत्तीस अयुत और सौ हजार अर्थात् दस खरब चार लाख साठ हजार राक्षसोंकी सेना है ॥ १५ ॥ उन समस्त दुर्द्धर्ष कामरूपी सेनाको बिना मार डाले सीताके हरण करनेवाले रावणका बध न हो सकेगा ॥ १६ ॥ हे लक्ष्मणजी ! सुग्रीव विना सहायके प्राप्त हुए उस सेना और विशेष करके उस क्रूरकर्म करनेवाले रावणको मारनेमें समर्थ न होंगे ॥ १७ ॥ उस देशकालके जाननेवाले वालिने हमसे यह सब वार्ता कही थी, सो हमने जैसी उनसे सुनी तैसेही कहती हैं, और उसके बलको हम जानती नहीं हैं ॥ १८ ॥

शतकोटिसहस्राणिलंकायांकिलरक्षसाम् ॥ समानेष्यतिसुग्रीवःसीतयासहराघवम् ॥ शशांकमिवरोहिण्याहत्वातंराक्षसाधमम् ॥ १४ ॥ अयुतानिचषट्त्रिंशत्सहस्राणिशतानिच ॥ १५ ॥ अहत्वातांश्चदुर्धर्षान्राक्षसान्कामरूपिणः ॥ अशक्यंरावणंहंतुंयेनसामैथिलीहृता ॥ १६ ॥ तेनशक्यारणेहंतुमसहायेनलक्ष्मण ॥ रावणःक्रूरकर्माचसुग्रीवेणविशेषतः ॥ १७ ॥ एवमाख्यातवान्वालीसह्यभिज्ञोहरीश्वरः ॥ आगमस्तु नमेव्यक्तःश्रवात्तस्यब्रवीम्यहम् ॥ १८ ॥ त्वत्सहायनिमित्तंहिप्रेषिताहरिपुंगवाः ॥ आनेतुंवानरान्युद्धेसुबहून्हरिपुंगवान् ॥ १९ ॥ तांश्चप्र तीक्षमाणोऽयंविक्रांतान्सुमहाबलान् ॥ राघवस्यार्थसिद्ध्यर्थंननिर्यातिहरीश्वरः ॥ २० ॥ कृतासुसंस्थासौमित्रेसुग्रीवेणपुरायथा ॥ अद्यतैर्वा नरैःसर्वैरायंतव्यंमहाबलैः ॥२१॥ ऋक्षकोटिसहस्राणिगोलांगूलशतानिच ॥ अद्यत्वामुपयास्यंतिजहिकोपमरिंदम ॥ कोटयोनेकाकाकुत्स्थ कपीनांदीप्ततेजसाम् ॥ २२ ॥

आपका सहाय करनेके निमित्त सेना बुलानेके लिये प्रधान २ वानरगण भेजे गये हैं, वह लोग युद्धमें कुशल बहुतसे वीर्यवान् वानरगणोंको दिशा विदिशाओंसे ले आवेंगे ॥ १९ ॥ यह कपीश्वर उन सब महाबलवान् वानरगणोंकी राह देख रहे हैं, उन सबके विना आये श्रीरामचन्द्रजीकी कार्यसिद्धिके लिये यह नहीं निकलते ॥ २० ॥ सुग्रीवजीने पहले जिस प्रकारकी सुव्यवस्था की है "कि एक पक्षमें जो वानर न आया वह मार डाला जायगा" जो इससे अब समस्त महाबलवान् वानर सेना आयाही चाहती है ॥ २१ ॥ हे शत्रुनाशी ! आप क्रोध परित्याग करें, अति शीघ्र आजही हजार २ करोड २ ऋक्ष, सौ करोड गोपुच्छ और सैकड़ों करोड तेजस्वी वानरोंकी सेना आवेगी ॥ २२ ॥

हे लक्ष्मण ! आपका क्रोधसे दीप्तिमान् मुख और अरुणारे दोनों नेत्र देख कर वानरराजकी सब स्त्रियाँ शांतिको नहीं प्राप्त कर सकतीं और सब पहलेसेही शंकित होरही हैं ॥ २३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्वा० वा० आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायां पंचत्रिंशः सर्गः ॥ ३५ ॥ ॥ ॥ ॥

जब ताराने विनीत भावसे इस प्रकारके धर्मसंगत वचन कहे तब लक्ष्मणजी मृदुभावको धारणकर उसके वचन ग्रहण करते हुए ॥ १ ॥ जब लक्ष्मणजीने ताराके वचन मान क्रोध त्याग करदिया, तब सुग्रीवजीनेभी गीले वस्त्रके समान बडा भारी भय त्याग दिया जो कि उन्हें लक्ष्मणजीसे प्राप्त हुआ था ॥ २ ॥ फिर वानरराज सुग्रीवजीने कंठमें पडी मादक गुणवाली अपनी विचित्रमाला तोड डाली कि, जिसके तोडतेही मद रहित होगये ॥ ३ ॥ तदनन्तर वानरश्रेष्ठ

तवद्दिमुखमिदंनिरीक्ष्यकोपात्क्षतजसमेनयनेनिरीक्षमाणाः ॥ हरिवरवनितानयांतिशांतिंप्रथमभयस्यचशंकिताःस्मसर्वाः ॥ २३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आ० च० सा० किष्किंधाकांडे पंचत्रिंशः सर्गः ॥३५॥ इत्युक्तस्तारयावाक्यंप्रश्रितंधर्मसंहितम् ॥मृदुस्वभावःसौमित्रिः प्रतिजग्राहतद्वचः ॥१॥ तस्मिन्प्रतिगृहीतेतुवाक्येहरिगणेश्वरः ॥ लक्ष्मणात्सुमहत्त्रासंवस्त्रंक्लिन्नमिवात्यजत् ॥२॥ ततःकंठगतंमाल्यंचित्रंबहुगुणंमहत्॥चिच्छेदविमदश्चासीत्सुग्रीवोवानरेश्वरः ॥३॥ सलक्ष्मणंभीमबलंसर्ववानरसत्तमः॥अब्रवीत्प्रश्रितंवाक्यंसुग्रीवःसंप्रहर्षयन्॥ ४ ॥ प्रनष्टाश्रीश्चकीर्तिश्चकपिराज्यंचशाश्वतम्॥रामप्रसादात्सौमित्रेपुनश्चाप्तमिदंमया॥५॥ कःशक्तस्तस्यदेवस्यख्यातस्यस्वेनकर्मणा॥तादृशंप्रतिकुर्वीतअंशेनापिनृपात्मज ॥६॥सीतांप्राप्स्यतिधर्मात्मावधिष्यतिचरावणम् ॥ सहायमात्रेणमयाराघवःस्वेनतेजसा॥ ७॥सहायकृत्यंकिंतस्ययेनसप्तमहाद्रुमाः॥गिरिश्चवसुधाचैवबाणेनैकेनदारिताः॥८॥ धनुर्विस्फारयाणस्ययस्यशब्देनलक्ष्मण॥सशैलाकंपिताभूमिःसहायैःकिंनुतस्यवै ॥९॥

सुग्रीवजी महाबलवान् लक्ष्मणजीकोहर्षित कराते हुए विनीत वाणीसे कहने लगे ॥४॥ हे सुमित्रानंदन! हमने, श्री, कीर्ति, वानरोंका राज्य जो कि छुट गया था, श्रीरामचन्द्रजीके प्रसादसे इन सबको फिर प्राप्त किया ॥ ५ ॥ हे राजकुमार ! कौन पुरुष सुकर्मद्वारा विख्यात देवस्वरूप उन श्रीरामचन्द्रजीके उपकारके किसी अंशका भी बदला देनेमें समर्थ होगा ? ॥ ६ ॥ धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी हमारी सहायता केवल नाममात्रसे प्राप्तकर अपनेतेज सेही रावणको संहार सीताजीको प्राप्त होवेंगे ॥ ७ ॥ जिन्होंने केवल एक बाणसेही सात तालके वृक्ष व पर्वत और पृथ्वीको विदीर्ण करदिया, उनको किसीकी सहायताका क्या प्रयोजन है ? ॥८॥ हे लक्ष्मण ! जिसके धनुषकी टंकारके शब्दसे सशैल पृथ्वी कम्पित होजाती हैं, उनको किसीके सहायताका क्या प्रयोजन है ? ॥९॥

हे नरश्रेष्ठ ! नरवर रामचन्द्रजी जब अपने वैरी रावणका वध करनेके लिये गमन करेंगे तब हम भी उनके पीछे २ चले जायँगे ॥ १० ॥ हम उनके दास हैं; सो विश्वास और प्रेमके हेतु यदि कोई अपराध किया भी हो तब इस आज्ञामें रहनेवालेका अपराध क्षमा करना चाहिये क्योंकि जिस दाससे अपराध नहीं होता ऐसा दास तो कहीं मिलताही नहीं ॥ ११ ॥ महात्मा सुग्रीवजीने जब यह वचन कहे, तब उनको सुनकर लक्ष्मणजी प्रसन्न हुये और स्नेह सहित उनसे बोले ॥१२॥ हे वानरनाथ ! हमारे भ्राता तुमको विनीत और सहाय प्राप्त होकर सर्वथा सनाथ हुए हैं ॥१३॥ हे सुग्रीव! जिस प्रकारका तुम्हारा प्रभाव और सरल भाव है, इससे तुम कपिराज लक्ष्मीको भोगनेके लिये बहुतही योग्य हो इसमें कुछ संदेह नहीं ॥ १४ ॥ श्रीरामचन्द्रजी तुमको सहाय पाकर

अनुयात्रांनरेंद्रस्यकरिष्येऽहंनरर्षभ ॥ गच्छतोरावणंहंतुंवैरिणंसपुरःसरम् ॥१०॥ यदिकिंचिदतिक्रांतंविश्वासात्प्रणयेनवा ॥ प्रेष्यस्यक्षमितव्यं मेनकश्चिन्नापराध्यति ॥११॥ इतितस्यब्रुवाणस्यसुग्रीवस्यमहात्मनः ॥ अभवल्लक्ष्मणःप्रीतःप्रेम्णाचेदमुवाचह ॥१२॥सर्वथाहिममभ्रातास नाथोवानरेश्वर॥त्वयानाथेनसुग्रीवप्रश्रितेनविशेषतः॥१३॥ यास्तेप्रभावःसुग्रीवयच्चतेशौचमीदृशम् ॥ अर्हस्त्वंकपिराज्यस्यश्रियंभोक्तुमनुत्त माम् ॥ १४ ॥ सहायेनतुसुग्रीवत्वयारामःप्रतापवान् ॥ वधिष्यतिरणेशत्रूनचिरान्नात्रसंशयः॥१५॥धर्मज्ञस्यकृतज्ञस्यसंग्रामेष्वनिवर्तिनः ॥ उपपन्नंचयुक्तंचसुग्रीवतवभाषितम् ॥ १६ ॥ दोषज्ञःप्रतिसामर्थ्येकोऽन्योभाषितुमर्हति ॥वर्जयित्वाममज्येष्ठंत्वांचवानरसत्तम ॥१७॥ सदृश श्वासिरामेणविक्रमेणबलेनच॥ सहायोदैवतैर्दत्तश्चिरायहरिपुंगव ॥ १८ ॥ किंतुशीघ्रमितोवीरनिष्क्रमत्वंमयासह ॥ सांत्वयस्ववयस्यंचभार्या हरणदुःखितम् ॥१९॥ यच्चशोकाभिभूतस्यश्रुत्वारामस्यभाषितम्॥ मयात्वंपरुषाण्युक्तस्तत्क्षमस्वसखेमम ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आ० च० सा० कि० कां० षट्त्रिंशः सर्गः ॥ ३६ ॥

प्रतापवान् हुए हैं इससे वह निःसंदेह शीघ्रही शत्रुका नाश करनेमें समर्थ होंगे ॥१५॥ हे सुग्रीव ! तुम धर्मज्ञ, कृतज्ञ हो और संग्राममें विमुख होनेवाले नहीं हो सो इस प्रकारके तुम्हारे वचन ठीकही हैं ॥ १६ ॥ हमारे बडे भाई श्रीरामचन्द्रजीके और तुम्हारे सिवाय कौन विद्वान् पुरुष ऐसे वचन कहनेको समर्थ होसकता है ? ॥१७॥ हे कपिवर ? क्या विक्रममें, क्या बलमें, सब भांतिसे रामचन्द्रजीको समानही सहाय भाग्यसेही प्राप्त हुई है ॥१८॥ परन्तु हे वीर! तुम हमारे साथ शीघ्रही इस स्थानसे चलकर; स्त्री हरजानेके दुःखसे महाकातर श्रीरामचन्द्रजीको सन्तोष प्राप्तकराओ ॥१९॥ हे सखे ! शोकसे व्याकुल श्रीरामचन्द्रजीके वचन सुनकर; हमने जो कुछ कठोर वचन कहे हैं वह तुम क्षमा करो ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायां षट्त्रिंशः सर्गः ॥ ३६ ॥

सुग्रीव महात्मा लक्ष्मणजीसे इस प्रकार कहे जाकर एक ओर खडे हुये हनुमान्‌जीसे बोले ॥ १ ॥ महेन्द्राचल, हिमालय और कैलास पर्वतके शिखरपर और मन्दराचल पाण्डु शिखर व पंचशैलपर जो वानर रहते हों ॥ २ ॥ पश्चिमकी ओर तरुण सूर्य तुल्य वर्णवाले नित्यदीप्यमान समुद्रके अन्तवाले पर्वतों पर जो टिकरहे हों ॥ ३ ॥ सन्ध्याकालमें उदय हुए मेघके समान उदयाचल अस्ताचल और पद्माचल पर जो भयंकर आकारवाले वानरगण वास करते हैं ॥ ४ ॥ और अंजन पर्वतपरके रहनेवाले अंजन वर्णके मेघके तुल्य गजेन्द्र तुल्य बलशाली जो वानर रहते हैं ॥ ५ ॥ और महाशैलकी गुहामें रह नेवाले कनकसमान वर्णवाले वानरसमूह और मेरुपर्वतके पार्श्वमें रहनेवाले और धूम्रागिरिपर रहनेवाले कपिवृन्द ॥ ६ ॥ और महारुण पर्वतके रहनेवाले

एवमुक्तस्तुसुग्रीवोलक्ष्मणेनमहात्मना ॥ हनूमंतस्थितंपार्श्वेवचनंचेदमब्रवीत् ॥ १ ॥ महेंद्रहिमवद्विंध्यकैलासशिखरेषुच ॥ मंदरेपांडुशिखरे पंचशैलेषुयेस्थिताः ॥२॥ तरुणादित्यवर्णेषुभ्राजमानेषुनित्यशः ॥ पर्वतेषुसमुद्रांतेपश्चिमस्यांतुयेदिशि ॥३॥ आदित्यभवनेचैवगिरौसंध्या भ्रसन्निभे ॥ पद्माचलवनंभीमाःसंश्रिताहरिपुंगवाः ॥ ४ ॥ अंजनांबुदसंकाशाःकुंजरेंद्रमहौजसः ॥ अंजनेपर्वतेचैवयेवसंतिप्लवंगमाः ॥ ५ ॥ महाशैलगुहावासावानराःकनकप्रभाः ॥ मेरुपार्श्वगताश्चैवयेचधूम्रगिरिंश्रिताः॥६॥तरुणादित्यवर्णाश्चपर्वतेयेमहारुणे ॥ पिबंतोमधुमैरेयंभीमवे गाःप्लवंगमाः॥७॥वनेषुचसुरम्येषुगंधिःषुमहत्सुच ॥ तापसाश्रमरम्येषुवनांतेषुसमंततः॥ ८ ॥ तांस्तांस्त्वमानयक्षिप्रंपृथिव्यांसर्ववानरान् ॥ सामदानादिभिःकल्यैर्वानरैर्वेगवत्तरैः ॥ ९ ॥ प्रेषिताःप्रथमंयेचमयाज्ञातामहाजवाः ॥ त्वरणार्थंतुभूयस्त्वंसंप्रेषयहरीश्वरान् ॥ १० ॥ येप्रस क्ताश्चकामेषुदीर्घसूत्राश्चवानराः ॥ इहानयस्वतान्शीघ्रंसर्वानेवकपीश्वरान् ॥ ११ ॥

तरुण सूर्यके समान प्रभावाले मधुपानकारी भयंकर विक्रम करनेवाले वानर समूह ॥ ७ ॥ और सुगन्धियुक्त सुरम्य वनमें और तपस्वी गणोंके आश्रम वाले मनोहर बडे २ सब ओरके वनोंमें जो वानर वसतेहों ॥ ८ ॥ अधिक क्या कहें बरन् पृथ्वीपर जितने वानर वसतेहों तुम उन सबको शीघ्र चलनेवाले, सामदानादिकी विधि जाननेवाले, वानरोंके द्वारा शीघ्रही इस स्थानपर बुलालो ॥ ९ ॥ यद्यपि हम जानते हैं कि, प्रथम वानरोंको बुलानेके लिये महावेगवान् वानरगण भेजे गये हैं; तथापि उनको शीघ्रता करानेके लिये और २ मुख्य २ वानरोंको भेजो ॥ १० ॥ जो २ वानर

हमारी आज्ञासे जो वानरलोग दशदिनके बीचमें यहांपर
कामभोगमें आसक्त और बडे आलसी हैं उन सबको शीघ्रही यहांपर ले आओ ॥ ११ ॥ हमारी आज्ञासे जो वानरलोग दशदिनके बीचमें यहांपर नहीं आजाँयगे, हम उन राजाज्ञाके न माननेवाले दुरात्मा वानरोंको मार डालेंगे ॥ १२ ॥ जो कपिश्रेष्ठ हमारी आज्ञामें टिके हुये हैं वह सब सहस्र २ कोटि २ वानर हमारी आज्ञासे अभी चले जांय विलंब न करें ॥ १३ ॥ हमारी आज्ञाका प्रतिपालन करनेके हेतु घोररूप मेघ और पर्वतोंके समान वानर श्रेष्ठगण मानो आकाशमंडलको छायलेते हुये उन वानरोंको शीघ्रता करानेके लिये यहांसे जांय ॥ १४ ॥ हमारी आज्ञा प्रतिपालन करनेके लिये समस्त वानरगण शीघ्रतासे वेगभरी चाल चलकर समस्त वानरोंको ले आवें ॥ १५ ॥ पवनकुमार हनुमान्‌जीने सुग्रीवजीके यह वचन सुनकर सब दिशाओंमें विकराल वानर भेज दिये ॥ १६ ॥ कपिनाथके भेजे हुए वानरगण पक्षी और नक्षत्रोंके मार्गका अवलंबन करके आकाशस्थलमें उसी

अहोभिर्दशभिर्येचनागच्छंतिममाज्ञया॥हंतव्यास्तेदुरात्मानोराजशासनदूषकाः ॥१२॥ शतान्यथसहस्राणिकोटचाश्चममशासनात् ॥ प्रयांतु कपिसिंहानांनिदेशेममयेस्थिता ॥१३॥ मेघपर्वतसंकाशाश्छादयंतइवाम्बरम् ॥ घोररूपाःकपिश्रेष्ठायांतुमच्छासनादितः ॥१४॥ तेगतिज्ञाग तिंगत्वापृथिव्यांसर्ववानराः ॥ आनयंतुहरीन्सर्वांस्त्वरिताःशासनान्मम ॥१५॥ तस्यवानरराजस्यश्रुत्वावायुसुतोवचः ॥ दिक्षुसर्वासुविक्रांता न्प्रेषयामासवानरान् ॥१६॥ तेपदंविष्णुविक्रांतंपतत्रिज्योतिरध्वगाः ॥ प्रयाताःप्रहिताराज्ञाहरयस्तुक्षणेनवै ॥१७॥ तेसमुद्रेषुगिरिषुवनेषुचस रस्सुच ॥ वानरावानरान्सर्वान्रामहेतोरचोदयन् ॥१८॥ मृत्युकालोपमस्याज्ञांराजराजस्यवानराः ॥ सुग्रीवस्याययुःश्रुत्वासुग्रीवभयशंकिताः ॥१९॥ ततस्तेऽजनसंकाशागिरेस्तस्मान्महाबलाः ॥ तिस्रःकोटचःप्लवंगानांनिर्ययुर्यत्रराघवः ॥२०॥ अस्तंगच्छतियत्रार्कस्तस्मिन्गिरिवरे रताः ॥ संतप्तहेमवर्णाभास्तस्मात्कोटचोदशच्युता ॥२१॥ कैलासशिखरेभ्यश्चसिंहकेसरवर्चसाम् ॥ ततःकोटिसहस्राणिवानराणांसमागमन् ॥ २२॥ फलमूलेन जीवंतोहिमवंतमुपाश्रिताः ॥ तेषांकोटिसहस्राणांसहस्रंसमवर्तत ॥ २३ ॥

क्षण गमन करने लगे ॥ १७ ॥ बडे २ मुख्य वानरलोग समस्त वानरोंको श्रीरामचन्द्रजीका कार्य साधन करनेके हेतु समुद्र वन और सरोवरोंपर भेजने लगे ॥ १८ ॥ दंड आदि देनेमें मृत्युपतितुल्य वानरराज सुग्रीवकी आज्ञा श्रवण कर सब वानर शंकितहो प्रस्थान करते हुए ॥ १९ ॥ उसके पीछे उस अंजनगिरिसे तीन करोड महाबलवान् वानर आकर श्रीरामचन्द्रजीके निकट गये ॥ २० ॥ और जिस पर्वत पर सूर्यनारायण अस्त होजाते हैं, उस स्थानके रहनेवाले तपाये हुए सुवर्णके समान वर्णयुक्त दश करोड वानर आये ॥ २१ ॥ कैलास पर्वतके शिखरोंपरसे सिंहकेशरतुल्य वर्णवाले हजार करोड वानर आ पहुँचे ॥ २२ ॥ हिमालय पर्वत पर रहनेवाले फलमूल भक्षणकारी करोड हजार वानर किष्किन्धामें आये ॥ २३ ॥

अंगार तुल्य वर्णयुक्त विकटाकार भयंकर कर्मकारी कोटि सहस्र वानर विन्ध्याचल पर्वतसे शीघ्र २ आगमन करने लगे॥२४॥क्षीरसमुद्रकी बेलाभूमिमेंटिके तमाल वनवासी नारियल खानेवाले असंख्य वानरगण आने लगे ॥२५॥ वन गुफा, और नदियोंके समूहसे महा बलवान् वानरीसेना, मानों सूर्यनारायणको पानही करती हुईसी आने लगी ॥ २६ ॥ हनुमान्‌जीके भेजे हुए जो समस्त वानरगण कपिसेनाको शीघ्रता करानेके लिये गये थे, उन्होंने हिमालय पर्वतपर महेश्वर यज्ञवाट स्थित भगवद्धाम महावृक्षके दर्शन किये ॥ २७ ॥ पहले उस महा पर्वतपर समस्त देवताओंका मनसंतुष्ट करनेवाला महेश्वर दैवत मनोहर, अश्वमेध यज्ञ हुआ था ॥ २८ ॥ उस यज्ञमें बहुत सारे अन्नादिकके पडनेसे उत्पन्न हुए अमृततुल्य स्वादुयुक फल मूल वानरगणोंने उस स्थानपर देखे ॥ २९ ॥

अंगारकसमानानांभीमानांभीमकर्मणाम् ॥ विंध्याद्वानरकोटीनांसहस्राण्यपतन्द्रुतम् ॥२४॥ क्षीरोदवेलानिलयास्तमालवनवासिनः॥नारिकेलाशनाश्चैवतेषांसंख्यानविद्यते ॥२५॥ वनेभ्योगह्वरेभ्यश्वसरिद्भ्यश्चमहाबलाः ॥ आगच्छद्वानरीसेनापिबंतीवदिवाकरम् ॥ २६ ॥ येतुत्वरयितुंयातावानराःसर्ववानरान् ॥ तेवीराहिमवच्छैलेददृशुस्तंमहाद्रुमम् ॥२७॥ तस्मिन्गिरिवरेपुण्येयज्ञोमाहेश्वरःपुरा ॥ सर्वदेवमनस्तोषोबभूवसुमनोरमः ॥ २८ ॥ अन्ननिष्यंदयातानिमूलानिचफलानिच ॥ अमृतस्वादुकल्पानिददृशुस्तत्रवानराः ॥ २९॥ तदन्नसंभवंदिव्यंफलंमूलंमनोहरम् ॥ यःकश्चित्सकृदश्नातिमासंभवतितर्पितः ॥ ३० ॥ तानिमूलानिदिव्यानिफलानिचफलाशनाः ॥ औषधानिचदिव्यानिजगृहुर्हरिपुंगवाः ॥ ३१ ॥ तस्माच्चयज्ञायतनात्पुष्पाणिसुरभीणिच ॥ अनिन्युर्वानरागत्वासुग्रीवप्रियकारणात् ॥ ३२ ॥ तेतुसर्वेहरिवराःपृथिव्यांसर्ववानरान् ॥ संचोदयित्वात्वरितंयूथानांजग्मुरग्रतः ॥३३॥ तेतुतेनमुहूर्तेनकपयःशीघ्रचारिणः॥ किष्किंधांत्वरयाप्राप्तासुग्रीवोयत्रवानरः ॥ ३४ ॥ तेगृहीत्वौषधीःसर्वाःफलमूलंचवानराः ॥ तंप्रतिग्राहयामासुर्वचनंचेदमब्रुवन् ॥ ३५ ॥

जो पुरुष उस अन्नसे उत्पन्न हुए उन फल मूलोंको भक्षण करे तो वह एक मासतक आहार न करके भी तृप्तही रहता है ॥३०॥ फल मूल भक्षण करनेवाले उन प्रधान २ वानरोंने वह सब दिव्य फल मूललिये और अनेक प्रकारकी औषधियें भी जो वहांपर लगी हुई थी ग्रहण कीं ॥ ३१ ॥ कपिगण सुग्रीवको संतोषित करनेके लिये उस यज्ञस्थानसे सुगन्धिवान और मनोहर फूल भी लेते आये ॥ ३२ ॥ वह समस्त कपिश्रेष्ठ पृथ्वीके समस्त वानरोंको शीघ्रतासे लेकर सब यूथोंके आगे आने लगे ॥३३॥ वह शीघ्रगामी वानरोंके झुण्ड मुहूर्त मध्यमें किष्किन्धामें जहां सुग्रीवजी थे आय पहुँचे ॥ ३४ ॥ उन्होंने वह समस्त औषधियें और मूल फल जो कि यज्ञभूमिसे तोड लाये थे, सुग्रीवको देखकर कहा ॥ ३५ ॥

महाराज ! आपकी आज्ञा पालन करनेके हेतु पृथ्वीभरके समस्त वानरगण, पर्वत, वन और नदियोंको नाँघते हुए यहांपर चले आते हैं ॥ ३६ ॥ जब उन वानरोंने ऐसा कहा, तो वानरनाथ सुग्रीवजीने हर्षित और प्रसन्न होकर उनके दिये सब उपहारके पदार्थ ग्रहण किये ॥ ३७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायां सप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥ वानरनाथ सुग्रीवजीने उन सबके दिये समस्त उपहार ग्रहण करके, व प्रशंसा कर उन सबको बिदा किया ॥ १ ॥ उन हजार २ कार्य किये हुए वानरगणोंको बिदा देकर अपनेको और महाबलवान् श्रीरामचन्द्रजीको सुग्रीवजी कृतार्थ समझते हुए ॥ २ ॥ अनन्तर लक्ष्मणजी सुग्रीवको हर्षित करते हुए उन महाबलवान् वानरोंके पति सुग्रीवजीसे मधुर वचन बोले ॥ ३ ॥ हे

सर्वेपरिसृताःशैलाःसरितश्चवनानिच ॥ पृथिव्यांवानराःसर्वेशासनादुपयांतिते ॥ ३६ ॥ एवंश्रुत्वाततोहृष्टःसुग्रीवःप्लवगाधिपः ॥ प्रतिजग्राह चप्रीतस्तेषांसर्वमुपायनम् ॥३७॥ इत्यार्षे श्रीम० वा०आ०च० सा० कि० कां०सप्तत्रिंशः सर्गः ॥३७॥ प्रतिगृह्यचतत्सर्वमुपायनमुपाहृतम् ॥ वानरान्सांत्वयित्वाचसर्वानेवव्यसर्जयत् ॥१॥ विसर्जयित्वासहरीन्सहस्रान्कृतकर्मणः ॥ मेनेकृतार्थमात्मानंराघवंचमहाबलम् ॥२॥ सलक्ष्मणोभीमबलंसर्ववानरसत्तमम् ॥ अब्रवीत्प्रश्रितंवाक्यंसुग्रीवंसंप्रहर्षयन् ॥३॥ किष्किंधायाविनिष्क्रामयदितेसौम्यरोचते ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा लक्ष्मणस्यसुभाषितम् ॥४॥ सुग्रीवःपरमप्रीतोवाक्यमेतदुवाचह ॥ एवंभवतुगच्छामस्थेयंत्वच्छासनेमया ॥५॥ तमेवमुक्त्वासुग्रीवोलक्ष्मणं शुभलक्षणम् ॥ विसर्जयामासतदाताराद्याश्चैवयोषितः ॥ ६ ॥ एहीत्युच्चैर्हरिवरान्सुग्रीवःसमुदाहरन् ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाहरयःशीघ्रमाययुः ॥ ७ ॥ बद्धांजलिपुटाःसर्वेयेस्युःस्त्रीदर्शनक्षमाः ॥ तानुवाचततःप्राप्तान्राजार्कसदृशप्रभः ॥ ८ ॥

सौम्य ! यदि तुम्हारी इच्छा हो तो इस समय किष्किन्धासे चलो । लक्ष्मणजीके ऐसे सुन्दर वचन सुनकर ॥ ४ ॥ सुग्रीवजी परम प्रसन्न होकर उनसे बोले कि, आप चलिये हम सबही आपकी आज्ञाके अधीन हो चलते हैं ॥ ५ ॥ शुभलक्षण सम्पन्न लक्ष्मणजीसे ऐसा कह सुग्रीवजीने तारा आदि स्त्रियोंको गृहमें जानेके लिये विदा किया ॥ ६ ॥ जब सुग्रीवने ''यहां आओ २'' यह कहकर उँचे स्वरसे वानरोंको पुकारा, उनके वचन सुनकर वानरगण शीघ्र वहांपर आ पहुँचे ॥ ७ ॥ तारादि स्त्रियोंको देखनेके योग्य वे वानरगण हाथ जोड खडे होगये तब सूर्यसमान प्रभावाले सुग्रीवजीने उनसे कहा ॥ ८ ॥

तुम शीघ्रतासे हमारी परम मनोहर पालकी ले आओ। सुग्रीवजीके वचन सुन शीघ्र विक्रम करनेवाले वानर ॥ ९ ॥ उनकी परम मनोहर शिबिका ले आये; तब वानर नाथ सुग्रीवजीने शिबिकाको आया हुआ देख कर ॥१०॥ लक्ष्मणजीसे कहा कि, आप इस पर सवार होजाइये यह कहकर उस सूर्यके समान प्रभावाली सुवर्णकी शिबिकापर सुग्रीवजी ॥ ११ ॥ लक्ष्मणजीके सहित सवार हुये, बहुतसे वानर उस पालकीको उठाये हुए थे सुग्रीवजीके ऊपर श्वेतवर्णका छत्रलगाया गया ॥१२॥ और शुक्लवालोंका चमर भी चारों ओरसे होताथा. शंख भेरियोंके नादका शब्दहोताथा बंदीगण स्तुति करते थे ॥ १३ ॥ सुग्रीवजी अत्युत्तम राजलक्ष्मीको प्राप्त होकर शतशत महाबलवान् वानरगण कि, जिनके हाथमें बडे २ पैने शस्त्रथे ॥ १४ ॥ इस प्रकार घेरे जाकर

उपस्थापयतक्षिप्रंशिबिकांममवानराः श्रुत्वातुवचनंतस्यहरयःशीघ्रविक्रमाः ॥९॥ समुपस्थापयामासुःशिबिकांप्रियदर्शनाम् ॥ तामुपस्थापितांदृष्ट्वाशिबिकांवानराधिपः ॥१०॥ लक्ष्मणारुह्यतांशीघ्रमितिसौमित्रिमब्रवीत ॥ इत्युक्त्वाकांचनंयानंसुग्रीवःसूर्यसन्निभम् ॥११॥ बहुभिर्हरिभिर्युक्तमारुरोहसलक्ष्मणः ॥ पांडुरेणातपत्रेणध्रियमाणेनमूर्धनि ॥१२॥ शुक्लैश्चवालव्यजनैर्धूयमानैःसमंततः ॥ शंखभेरीनिनादैश्चवंदिभिश्चाभिनंदितः ॥ १३ ॥ निर्ययौप्राप्यसुग्रीवोराज्यश्रियमनुत्तमाम् ॥ सवानरशतैस्तीक्ष्णैर्बहुभिःशस्त्रपाणिभिः ॥१४॥ परिकीर्णोययौतत्रयत्ररामोव्यवस्थितः ॥ सतंदेशमनुप्राप्यश्रेष्ठंरामनिषेवितम् ॥१५॥ अवातरन्महातेजाःशिबिकायाःसलक्ष्मणः ॥ आसाद्यचततोरामंकृतांजलिपुटोऽभवत ॥ १६ ॥ कृतांजलौस्थितेतस्मिन्वानराश्चाभवंस्तथा ॥ तटाकमिवतंदृष्ट्वारामःकुड्मलपंकजम् ॥१७॥ वानराणांमहत्सैन्यंसुग्रीवेप्रीतिमानभूत ॥ पादयोःपतितंमूर्ध्नातमुत्थाप्यहरीश्वरम् ॥१८॥ प्रेम्णाचबहुमानाच्चराघवःपरिषस्वजे ॥ परिष्वज्यचधर्मात्मानिषीदेतिततोऽब्रवीत् ॥ १९॥ निषण्णंतंततोदृष्ट्वाक्षितौरामोऽब्रवीत्ततः ॥ धर्ममर्थंचकामंचकालेयस्तुनिषेवते ॥ २० ॥

श्रीरामचन्द्रजीके निकट गमन करने लगे। राम करके सेवित उत्तम स्थानमें गमन करके ॥ १५ ॥ महातेजस्वी सुग्रीवजी लक्ष्मणजीके सहित शिबिकापरसे उतर श्रीरामचन्द्रजीके निकट जाय हाथ जोड कर खडे होगये ॥ १६ ॥ सुग्रीवजीको हाथ जोडे हुये देखकर सब वानरगणभी श्रीरामचन्द्रजीको हाथ जोडकर खडे हुये. तब सब वानर और सुग्रीवजीको हाथ जोडे खडे हुये देख श्रीरामचन्द्रजी पंकज कलियोंसे युक्त तडागके समान ॥ १७ ॥ वानर राजकी बडी सेनाको देख सुग्रीवजीके प्रति प्रसन्न हुये। और चरणपर पडे हुये वानरनाथ सुग्रीवजीको श्रीरामचन्द्रजीने उठाया ॥ १८ ॥ और अति आदरमान करके प्रेमसहित उनसे मिले, धर्मात्मा रामचन्द्रजीने सुग्रीवजीसे भेंटकर बैठनेको कहा ॥ १९ ॥ और जब सुग्रीवजी बैठ गये तब श्रीरामचन्द्रजी

वही राजा कहाता है और जो
उनसे बोले कि धर्म, अर्थ और कामका जो समय २ पर सेवन ॥ २० ॥ विभागकरके किया करता है, हे वीर वानरश्रेष्ठ ! वही राजा कहाता है और जो धर्मको त्याग करके अर्थ और कामकी सेवा करता है ॥२१॥ वह इस तरहसे जागता है, कि जिस प्रकार वृक्षकी फुलंचीपर सोता हुआ जब गिरता है तभी जागता है अमित्रोंके वधमें युक्त, मित्रोंके संग्रह करनेमें रत ॥ २२ ॥ राजा त्रिवर्गकी अर्थात् धर्म अर्थ और कामकी सेवा करता है वही धर्मसे संयुक्त होता है । हे शत्रुदमनकारी! सीताके ढूँढनेके लिये उद्योग करनेका यह समय आगया है ॥ २३ ॥ सो तुम सब मंत्रीगणोंके सहित इस विषयमें सलाह करो सुग्रीव जी इस प्रकार कहे जाकर श्रीरामचन्द्रजीसे बोले ॥ २४ ॥ हे महाबाहो ! आपके प्रसादसे हमने नष्ट हुई राज्यलक्ष्मी, कीर्ति और कुलके क्रमसे चले आये हुये कपिराजकोभी प्राप्त किया है ॥ २५ ॥ हे देव ! जीतनेवालोंमें श्रेष्ठ ! तुम्हारे प्रसादसे प्रसन्न आपके लक्ष्मणजीके लिये उपकारका जो प्रत्युपकार

विभज्यसततंवीरसराजाहरिसत्तम ॥ हित्वाधर्मंतथार्थंचकामंयस्तुनिषेवते ॥२१॥ सवृक्षाग्रेयथासुप्तःपतितःप्रतिबुध्यते॥ अमित्राणांवधेयुक्तो मित्राणांसंग्रहेरतः ॥ २२ ॥ त्रिवर्गफलभोक्ताचराजाधर्मेणयुज्यते॥ उद्योगसमयस्त्वेषप्राप्तःशत्रुनिषूदन ॥ २३ ॥ संचिन्त्यतांहिपिंगेशहरिभिः सहमंत्रिभिः॥ एवमुक्तस्तुसुग्रीवोरामंवचनमब्रवीत् ॥ २४ ॥ प्रनष्टाश्रीश्चकीर्तिश्चकपिराज्यंचशाश्वतम्॥ त्वत्प्रसादान्महाबाहापुनःप्राप्तमिदं मया ॥२५॥ तवदेवप्रसादाच्चभ्रातुश्चजयतांवर ॥ कृतंनप्रतिकुर्याद्यःपुरुषाणांहिदूषकः ॥ २६ ॥ एतेवानरमुख्याश्चशतशःशत्रुसूदन ॥ प्राप्ता श्चादायबलिनःपृथिव्यांसर्ववानरान् ॥२७॥ ऋक्षाश्चवानराः शूरा गोलांगूलाश्चराघव ॥ कांतारवनदुर्गाणामभिज्ञाघोरदर्शनाः ॥२८॥ देवगं धर्वपुत्राश्चवानराःकामरूपिणः ॥ स्वैःस्वैःपरिवृताःसैन्यैर्वर्ततेपथिराघव ॥२९॥ शतैःशतसहस्रैश्चवर्ततेकोटिभिस्तथा ॥ अयुतैश्चावृतावीरशंकु भिश्चपरंतप ॥ ३० ॥ अर्बुदैरर्बुदशतैर्मध्यैश्चांत्यैश्चवानराः ॥ समुद्राश्चपरार्धाश्चहरयोहरियूथपाः ॥ ३१ ॥

न करे वह पुरुषोंके मध्यमें दूषित गिना जाता है ॥ २६ ॥ हे परवीरनाशी ! यह सैकडों हजारों बडे २ वानर पृथ्वीपर रहनेवाले समस्त महाबलवान् वानरोंको लेकर यहां उपस्थित हुये हैं ॥ २७ ॥ शूरश्रेष्ठ घोर दर्शन वानर ऋक्ष और गोपुच्छ सबही वन और पर्वतोंपरके दुर्गम मार्ग जाननेवाले हैं ॥२८॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! देव और गन्धर्वोंके पुत्र कामरूपी वानरगण अपनी अपनी सेनागणोंके साथ मार्गमें टिक रहे हैं ॥ २९ ॥ हे शत्रुविनाशन ! इन सेनापति वानरोंके साथ, शत २, सहस्र २, कोटि २ अयुत २ शंकु २ (सौ हजारका लाख, सौ लाखका करोड, दश हजारका अयुत, करोड लाखका शंकु होता है) ॥ ३० ॥ अर्बुद सौ अर्बुद मध्य मध्य और अन्त्य २ सामुद्र २ परार्द्ध २ संख्यावाले वानरगणोंसे परिवृत (हजार शंकुका एक अरब, दश

अरबका एक मध्य, दश मध्यका एक अन्त्य, बीस अन्त्यका एक समुद्र, तीस समुद्रका एक परार्द्ध होता है) ॥ ३१ ॥ वानरगण मेघ और पर्वतके समान मेरु और विन्ध्याचलके रहनेवाले इन्द्रके समान विक्रमकारी, यहां पर आवेंगे ॥ ३२ ॥ और सीताजीको खोजने जांयगे; व राक्षसोंके साथ युद्ध करके रावणको मार जानकीको आपके निकट ले आवेंगे ॥ ३३ ॥ तब राजपुत्र वीर्यवान् श्रीरामचन्द्रजी अपनी आज्ञामें टिके हुये कपिराजका भली भांति उद्योग देख हर्षके हेतु खिले हुये नीलकमलके समानप्रफुल्लित होगये ॥३४॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० किष्किन्धाकांडे भाषायामष्टात्रिंशः सर्गः॥३८॥

सुग्रीवजीने हाथ जोड़कर जब इस प्रकारसे कहा तब धार्मिक श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी, दोनों भुजा पसार उनसे मिलकर बोले ॥ १ ॥ कि, यदि देवराज इन्द्रजी जल वर्षाते हैं तो कुछ आश्चर्य नहीं, सहस्र किरणवाले सूर्य भगवान् जो अपनी किरणोंसे आकाशके अन्धकारको दूरकर उसे प्रकाशित

आगमिष्यंतितेराजन्महेंद्रसमविक्रमाः ॥ मेघपर्वतसंकाशामेरुविंध्यकृतालयाः ॥३२॥तेत्वामभिगमिष्यंतिराक्षसायोद्धुमाहवे ॥ निहत्यरावणं युद्धेह्यानयिष्यंतिमैथिलीम् ॥३३॥ ततःसमुद्योगमवेक्ष्यवीर्यवान्हरिप्रवीरस्यनिदेशवर्तिनः ॥ बभूवहर्षाद्वसुधाधिपात्मजःप्रबुद्धनीलोत्पलतुल्य दर्शनः ॥३४॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० च० सा० किष्किन्धाकांडे अष्टत्रिंशः सर्गः ॥३८॥ इतिब्रुवाणंसुग्रीवंरामोधर्मभृतांवरः ॥ बाहुभ्यां संपरिष्वज्यप्रत्युवाचकृतांजलिम् ॥ १ ॥ यदिंद्रोवर्षतेवर्षनतच्चित्रंभविष्यति ॥ आदित्योसौसहस्रांशुःकुर्याद्वितिमिरंनभः ॥२॥ चन्द्रमारजनींकुर्यात्प्रभयासौम्यनिर्मलाम् ॥ त्वद्विधोवापिमित्राणांप्रीतिंकुर्यात्परंतप ॥ ३ ॥ एवंत्वयिनतच्चित्रंभवेद्यत्सौम्यशोभनम् ॥ जानाम्यहंत्वांसुग्रीवसततंप्रियवादिनम् ॥ ४ ॥ त्वत्सनाथःसखेसंख्येजेतास्मिसकलानरीन् ॥ त्वमेवमेसुहृन्मित्रंसाहाय्यंकर्तुमर्हसि ॥५॥ जहारात्मविनाशायमैथिलीं राक्षसाधमः ॥ वंचयित्वातुपौलोमीमनुह्लादोयथाशचीम् ॥ ६ ॥

करते हैं, इसमें कुछ आश्चर्य नहीं ॥ २ ॥ और इसमेंभी कुछ आश्चर्य नहीं कि, चन्द्रमा जो अपनी विमल किरणोंसे आकाशको निर्मल करते हैं, ऐसेही तुम्हारी समान सात्विक पुरुष जो मित्रगणोंकी प्रीति साधन करेंगे इसमें विचित्रताही क्या है ? ॥ ३ ॥ हे सुग्रीव ! तुमसे जो शुभकारी कार्य होगा तो इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है । हे सुग्रीव ! हम जानते हैं कि, तुम सदाही प्रिय बोलनेवाले हो ॥ ४ ॥ हम तुम्हारे साथ मिलकर समरमें- समस्त शत्रु गणोंके जीतनेको समर्थ होंगे, तुम हमारे सुहृद् और मित्र हो इसलिये हमारी सहाय करना तुम्हारा सबसे बडा कर्त्तव्य है ॥ ५ ॥ इस राक्षसने अपना नाश करनेके लिये जानकीको हरण किया है अनुह्लाद पहले जिस प्रकार छलसे पौलोमी शचीको हरण करके नाशको प्राप्त हुआ था वैसेही निःसन्देह यह

राक्षस भी विनाशको प्राप्त होगा ॥ ६ ॥ शत्रुओंके मारनेवाले इन्द्रजीने जिस प्रकार शचीके हरनेवाले और दैत्यको देनेमें अनुमति करनेवाले बलसे दर्पित शचीके पिताको मारडाला था, हमभी वैसेही शीघ्र तीखे बाणोंसे उस राक्षस रावणका नाश करेंगे ॥ ७ ॥ श्रीरामचन्द्रजी ऐसा कहही रहे थे कि, इसी समयमें सूर्यकी किरणोंसे गरम हुई धूलराशि तीव्र प्रभाको ढककर आकाशमें उठी ॥ ८ ॥ उस अन्धकारसे दूषित होकर सर्व दिशायें छाय गईं और वन काननके सहित पृथ्वी कम्पायमान होने लगी ॥ ९ ॥ फिर तेजदांतोंवाले बलवान पर्वताकार असंख्य वानरोंसे समस्त पृथ्वी परिपूर्ण होगई ॥१०॥ फिर पलक मारतेही सैकडों करोड यूथनाथ वानरोंसे पृथ्वी परिपूर्ण होगई ॥११॥ नदियों परके रहनेवाले पर्वतोंके रहनेवाले समुद्रादिकोंके

नचिरात्तंवधिष्यामिरावणंनिशितैःशरः ॥ पौलोम्याःपितरंदृप्तंशतक्रतुरिवारिहा ॥ ७ ॥ एतस्मिन्नंतरेचैवरजःसमभिवर्तत ॥ उष्णतीव्रांसहस्रांशोश्छादयद्गगनेप्रभाम् ॥ ८ ॥ दिशःपर्याकुलाश्चासंस्तमसातेनदूषिताः ॥ चचालचमहीसर्वासशैलवनकानना ॥ ९ ॥ ततोनगेंद्रसंकाशैस्तीक्ष्णदंष्ट्रैर्महाबलैः ॥ कृत्स्नासंछादिताभूमिरसंख्येयैःप्लवंगमैः ॥ १० ॥ निमेषांतरमात्रेणततस्तैर्हरियूथपैः ॥ कोटीशतपरिवारैर्वानरैर्हरियूथपैः ॥ ११ ॥ नादेयैःपार्वतेयैश्चसामुद्रैश्चमहाबलैः ॥ हरिभिर्मेघनिर्ह्रादैरन्यैश्चवनवासिभिः ॥१२॥ तरुणादित्यवर्णैश्चशशिगौरैश्चवानरैः ॥ पद्मकेसरवर्णैश्चश्वेतैर्हैमकृतालयैः ॥१३॥ कोटीसहस्रैर्दशभिःश्रीमान्परिवृतस्तदा ॥ वीरःशतबलिर्नामवानरःप्रत्यदृश्यत ॥ १४ ॥ ततःकांचनशैलाभस्तारायावीर्यवान्पिता ॥ अनेकैर्बहुसाहस्रैःकोटिभिःप्रत्यदृश्यत ॥ १५ ॥ तथापरेणकोटीनांसहस्रेणसमन्वितः ॥ पितारुमायाःसंप्राप्तःसुग्रीवश्वशुरोविभुः ॥ १६ ॥ पद्मकेसरसंकाशस्तरुणार्कनिभाननः ॥ बुद्धिमान्वानरश्रेष्ठःसर्ववानरसत्तमः ॥ १७ ॥

रहनेवाले और वनोंके रहनेवाले माहाबलवान् मेघसमान गर्जनकारी वानर आये ॥ १२ ॥ दुपहरके सूर्यके समान वर्णवाले और शशितुल्य गौरवर्णवाले वानर बहुत कमलपरागके समान वर्णवाले, बहुत श्वेत और सुवर्णवर्णवाले थे ॥ १३ ॥ उनमें दश करोड हजार वानरोंको साथ लिये श्रीमान् शतबली नामक वानर दृष्टि आया ॥ १४ ॥ उसके पीछे कांचन पर्वतकी तुल्य वर्णवाला ताराका पिता सुषेण अनेक बहुत कोटि वानरोंकी सेनाके सहित आ पहुँचा ॥ १५ ॥ फिर सुग्रीवजीका श्वशुर रुमाका पिता तार नामक महाबली वानर यूथपति; हजार करोड वानरोंकी सेनाके सहित आया ॥ १६ ॥ फिर पद्मरागके समान वर्णवाला और घोर प्रभात कालीन सूर्यके रंगके समान मुखवाला महा बुद्धिमान् वानरश्रेष्ठ और सब वानरोंमें अति उत्तम ॥ १७ ॥

बहुत सहस्र वानरोंकी सेनाके सहित हनुमान्‌जीका पिता श्रीमान् केशरी नामक वानर आया ॥ १८ ॥ गोपुच्छ वानरोंका राजा भयंकर विक्रमकारी गवाक्ष, करोड सहस्र वानरोंको साथ लेकर आ पहुँचा ॥ १९ ॥ भयंकर वेगवान रीछोंका राजा शत्रुओंका मारनेवाला धूम्र नामक ऋक्ष दो सहस्र करोड ऋक्षोंकी सेना लिये हुये आया ॥ २० ॥ पनस नामक वीर्यवान् यूथपति वानर महाबलवान् घोररूप तीन करोड वानर संग लिये वहां आगमन करता हुआ ॥ २१ ॥ नील वर्णी अंजन पुंजके समान द्युतिमान् महाकाय नील नामक यूथपति दशकोटि वानरोंको संग लिये हुये आया ॥ २२ ॥ सुवर्ण पर्वतके तुल्य द्युतिवाले महावीर्यवान् गवय नामक यूथपति पांच करोड सेनाके संग उपस्थित हुआ ॥ २३ ॥ दरीमुख नामक बल-

अनेकैर्बहुसाहस्रैर्वानराणांसमन्वितः ॥ पिताहनुमतःश्रीमान्केसरीप्रत्यदृश्यत ॥१८॥ गोलांगूलमहाराजोगवाक्षोभीमविक्रमः ॥ वृतःकोटिसहस्रेणवानाराणामदृश्यत ॥१९॥ ऋक्षाणांभीमवेगानांधूम्रःशत्रुनिबर्हणः॥वृतःकोटिसहस्राभ्यांद्वाभ्यांसमभिवर्तत ॥२०॥ महाबलनिभैर्घोरैः पनसोनामयूथपः ॥ आजगाममहावीर्यस्तिसृभिःकोटिभिर्वृतः ॥ २१ ॥ नीलांजनचयाकारोनीलोनामैषयूथपः ॥ अदृश्यतमहाकायःकोटिभिर्दशभिर्वृतः ॥२२॥ ततःकांचनशैलाभोगवयोनामयूथपः॥आजगाममहावीर्यःकोटिभिः पंचभिर्वृतः ॥२३॥ दरीमुखश्चबलवान्यूथपोभ्यायौतदा ॥ वृतकोटिसहस्रेणसुग्रीवंसमवस्थितः ॥२४॥ मैन्दश्चद्विविदश्चोभावश्विपुत्रौमहाबलौकोटिकोटिसहस्रेणवानराणामदृश्यताम् ॥२५॥ गजश्चबलवान्वीरस्तिसृभिःकोटिभिर्वृतः ॥ ऋक्षराजोमहातेजाजाम्बवान्नामनामतः ॥ २६ ॥ कोटिभिर्दशभिर्व्याप्तःसुग्रीवस्यवशेस्थितः ॥ रुमणोनामतेजस्वीविक्रांतैर्वानरैर्वृतः ॥ २७ ॥ आगतोबलवांस्तूर्णंकोटीशतसमावृतः ॥ ततःकोटिसहस्राणांसहस्रेणशतेनच ॥२८॥ पृष्ठतोऽनुगतःप्राप्तोहरिभिर्गंधमादनः॥ ततःपद्मसहस्रेणवृतःशंखशतेनच ॥ २९ ॥

वान यूथपति हजार कोटि वानरोंकी सेनासंग लिये हुये सुग्रीवजीके निकट आय पहुँचा ॥ २४ ॥ मैन्द और द्विविद नामक महाबलवान् वानर अश्विनीके पुत्र दोनों कोटि २ सहस्र वानरोंकी सेना संग लिये हुए आये ॥२५॥ गज नामक बलवान् वीर तीन करोड वानरोंकी सेनाको ले आया और ऋक्षोंका राजा महातेजस्वी जाम्बवान् ॥ २६ ॥ दश कोटि ऋक्षोंकी सेनाले सुग्रीजीके वशमें आया रुमण नामक तेजस्वी पराक्रमी वानर पति बहुतसे वानरोंके साथ ॥ २७ ॥ और महाबलवान् सौ करोड वानर सेना संग लिये आया उसके पीछे लक्ष २ करोड २ वानर संग लिये॥ २८ ॥ महापराक्रम करनेवाला गन्धमादन नामक यूथपति आया उसके पीछे हजार पद्म और हजार शंख कपियोंकी सेनाको साथ लिये॥२९॥अपने पिता बालिके

तुल्य पराक्रम करनेवाले अति बुद्धिमान् वानर सेनापतियोंके शिरमौर युवराज अंगदजी आये, फिर तारागणोंके समान प्रकाशमान अतिभयंकर पराक्रम करनेवाले वानरोंको संग लिये तारनाम यूथनाथ आया ॥ ३० ॥ उस तारके साथ अति प्रचंड पांच कोटि वानर सेना थी, तदनन्तर इन्द्रजानुनामक महावीर यूथनाथ ॥ ३१ ॥ ग्यारह कोटि वानरोंको संगलिये हुए दिखाई दिया फिर प्रभातकालके बालसूर्यके वर्णके समान रंभ नामक वानर यूथपति ॥ ३२ ॥ दश हजार एकशत वानरोंकी सेनाको संग लिये हुए सुग्रीवजीके निकट उपस्ति हुआ, इसके पीछे महावीर यूथपति दुर्मुख नामक वानर ॥ ३३ ॥ महाबली दो करोड वानरोंकी सेनाको संग लिये हुए दिखाई दिया, फिर कैलाश पर्वतके शिखरकी तुल्य आकारवाले भयंकर पराक्रमकारी वानरोंकी ॥ ३४ ॥

युवराजोंऽगदःप्राप्तःपितुस्तुल्यपराक्रमः॥ ततस्ताराद्युतिस्तारोहरिभिर्भीमविक्रमैः ॥३०॥ पंचभिर्हरिकोटीभिर्दूरतापर्यदृश्यत॥ इंद्रजानुःकविर्वीरोयूथपःप्रत्यदृश्यत॥ ३१ ॥एकादशानांकोटीनामीश्वरस्तैश्चसंवृतः ॥ ततोरंभस्त्वनुप्राप्तस्तरुणादित्यसन्निभः ॥ ३२ ॥ अयुतेनवृतश्चैवसहस्रेणशतेनच ॥ ततोयूथपतिर्वीरोदुर्मुखोनामवानरः ॥ ३३ ॥प्रत्यदृश्यतकोटीभ्यांद्वाभ्यांपरिवृतोबली ॥ कैलासशिखराकारैर्वानरैर्भीमविक्रमैः ॥ ३४ ॥वृतःकोटिसहस्रेणहनुमान्प्रत्यदृश्यत ॥ नलश्चापिमहावीर्यःसंवृतोद्रुमवासिभिः ॥ ३५॥ कोटीशतेनसंप्राप्तःसहस्रेणशतेनच ॥ ततोदरीमुखःश्रीमान्कोटिभिर्दशभिर्वृतः ॥ ३६ ॥ संप्राप्तोभिनदन्तस्यसुग्रीवस्यमहात्मनः ॥ शरभःकुमुदोवह्निर्वानरोरंभवएवच ॥ ३७ ॥ एतेचान्येचबहवोवानराःकामरूपिणः ॥ आवृत्यपृथिवींसर्वांपर्वतांश्चवनानिच॥३८॥यूथपाःसमनुप्राप्तायेषांसंख्यानविद्यते ॥ आगताश्चनिविष्टाश्चपृथिव्यांसर्ववानराः ॥३९ ॥ आप्लवंतःप्लवंतश्चगर्जंतश्चप्लवंगमा ॥ अभ्यवर्ततसुग्रीवंसूर्यमभ्रगणाइव ॥ ४० ॥

हजार करोड सेना संग लिये आते हुए हनुमानूजी दिखाईदिये फिर महावीर्यवान् नल नामक यूथनाथ वृक्षोंपर रहनेवाले ॥ ३५ ॥ शत कोटि एक सहस्र एक वानरोंकी सेना संग लिये हुए आया । फिर श्रीमान् दरीमुख नामक वानरपति नदीप्रदेशसे दश कोटि वानरोंकी अनी संग लिये हुए॥ ३६ ॥ महात्मा सुग्रीवजीके निकट शब्द करता प्राप्त हुआ शरभ कुमुद वह्नि और रंभ ॥ ३७ ॥ व और भी बहुतसे इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले वानरोंके यूथप सब पृथ्वी वन और पर्वत आदिकोंको ढकते हुए आये ॥ ३८ ॥ व अनेक प्रकारके नामधारी यूथप आये किं, जिनकी संख्या नहीं है, इन सब वानर दलोंके मध्यमें कोईकोई दल आता जाता था और कोई आय २ करके बैठता जाता था॥ ३९॥ उन दलोंमेंके कोई २ वानर उन्हें घेरते छलांगमारते कोई २

गर्जते सुग्रीवजीके निकट पहुँचने लगे, जिस प्रकार मेघ सूर्यके निकट गमन करते हैं ॥ ४० ॥ और सबही वानर बहुत शब्द कर रहे थे वह सब महाबली सुग्रीवजीके निकट पहुँचकर, मस्तक झुकाय २ अपना २ आना निवेदन कर रहे थे ॥४१॥ और कोई २ सुग्रीवजीके निकट पहुँचकर, उनका यथोचित आदर सम्मान कर हाथ जोडकर खडे होने लगे ॥ ४२ ॥ उसके पीछे धर्मात्मा सुग्रीवजीने शीघ्रताके सहित श्रीरामचन्द्रजीके निकट जाय हाथ जोड उनसे समस्त वानर और वानरयूथपतियोंका आगमन निवेदन किया फिर वानर यूथपोंसे बोले ॥४३॥ हे समस्त वानरेन्द्रगण! पर्वत, झरने और वनके समूहोंमें उस सेनाको टिकाकर कि, जिसका बल अच्छी तरहसे तुम सब जानते हो। विधिपूर्वक इस बातका निर्णय करो कि कौन वानर आया और कौन नहीं आया ॥४४॥

कुर्वाणाबहुशब्दांश्चप्रकृष्टाबाहुशालिनः॥शिरोभिर्वानरेंद्रायसुग्रीवायन्यवेदयन् ॥४१॥ अपरेवानरश्रेष्ठाःसंगम्यचयथोचितम् ॥सुग्रीवेणसमागम्यस्थिताःप्रांजलयस्तदा ॥४२॥ सुग्रीवस्त्वरितोरामेसर्वांस्तांस्त्वरितांस्तदा ॥ निवेदयित्वाधर्मज्ञःस्थितःप्रांजलिरब्रवीत् ॥४३॥ यथासुखं पर्वतनिर्झरेषुवनेषुवर्षेषुचवानरेंद्राः ॥निवेशयित्वाविधिवद्बलानिबलंबलज्ञःप्रतिपत्तुमीष्टे ॥४४॥इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदिकाव्ये च० सा० किष्किंधाकांडेएकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥३९ ॥ अथराजासमृद्धार्थःसुग्रीवःप्लवगेश्वरः ॥ उवाचनरशार्दूलंरामंपरबलार्दनम् ॥१॥ आगताविनिविष्टाश्चबलिनःकामचारिणः ॥ वानरेंद्रामहेंद्राभायेमद्विषयवासिनः ॥२॥ तइमेबहुविक्रान्तैर्बलिभिर्भीमविक्रमैः ॥ आगतावानराघोरा दैत्यदानवसन्निभाः ॥ ३ ॥ ख्यातकर्मापदानाश्चबलवंतोजितक्लमाः ॥ पराक्रमेषुविख्याताव्यवसायेषुचोत्तमाः ॥४॥ पृथिव्यम्बुचरारामनानानगनिवासिनः॥ कोटयोघाश्चइमेप्राप्तावानरास्तवकिंकराः ॥५॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० किष्किंधाकांडे भाषायामेकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥३९॥ फिर कपिराज सुग्रीवजी, कार्यमें कुशल होकर नरश्रेष्ठ परबलविनाशी श्रीरामचन्द्रजीसे बोले ॥ १ ॥ कि, हमारे राज्यमें रहनेवाले इन्द्रके समान बलवान् कामचारी वानरयूथप लोग यहां पहुँचकर अपनी २ सेनाओंमें टिके हुए हैं ॥२॥ यह सब बहुत स्थानोंमें अपना पराक्रम प्रगट किये हैं, ऐसे भयंकर विक्रमकारी दैत्य दानवोंके तुल्य घोररूप बलवान् समस्त वानरोंकी सेना आय पहुँची है ॥ ३ ॥ यह सब कर्म करनेमें विख्यात अपने वीर्यमें विख्यात बडे बलवान् युद्धमें कभी थकते नहीं, पराक्रम करनेमें विख्यात अर्थका निश्चय करनेमें स्थिर प्रतिज्ञावान् ॥ ४ ॥ बडे श्रेष्ठ, समुद्रके तीरपर बसने वाले और अनेक पर्वतोंके वासी, आपके दास यह करोड २ वानरगण यहांपर आ गये हैं ॥ ५ ॥

हे शत्रुनाशी ! वह सब वानर देशोंके पालनेवाले स्वामीके हित कार्यमें रत आपकी इच्छानुसार कार्यको साधन करनेमें निःसंदेह समर्थ होंगे ॥ ६ ॥ वही यह हजार२कोटि२बहुत स्थानोंमें अपने पराक्रमको प्रकाश किये घोर रूपी; दैत्य दानवोंके समान वानरगण यहांपर आगये हैं ॥७॥ हे नर श्रेष्ठ! अब समय उपस्थित है, अब जैसा आपका विचार हो वह कहिये, यह सब आपकी सेना आपके वशमें है इस समय जो ठीक और उचित आज्ञाहो वह इनको दीजिये ॥ ८ ॥ हम इन लोगोंका ठीक बल जानते हैं और आपका कार्यभी तत्त्वसे जानते हैं तथापि आप इन सबको युक्तिसे युक्त हो वही आज्ञा दीजिये ॥ ९ ॥ जब सुग्रीवजीने इस प्रकार कहा तब दशरथ कुमार श्रीरामचन्द्रजी दोनों बाँहें पसार उनसे भेंटकर बोले ॥ १० ॥ हे सौम्य ! हे महापंडित !

निदेशवर्तिनःसर्वेसर्वेगुरुहितेस्थिताः ॥ अभिप्रेतमनुष्ठातुंतवशक्ष्यंत्यरिंदम ॥६॥ तइमेबहुसाहस्रैरनेकैर्बहुविक्रमैः॥ आगतावानराघोरादैत्यदानवसन्निभाः ॥७॥ यन्मन्यसेनरव्याघ्रप्राप्तकालंतदुच्यताम् ॥ त्वत्सैन्यंत्वद्वशेयुक्तमाज्ञापयितुमर्हसि ॥८॥ काममेव मिदंकार्यविदितंममतत्त्वतः ॥ तथापितुयथायुक्तमाज्ञापयितुमर्हसि ॥९॥ तथाब्रुवाणंसुग्रीवंरामोदशरथात्मजः ॥ बाहुभ्यांसंपरिष्वज्यइदंवचनमब्रवीत् ॥१०॥ ज्ञायतांसौम्यवैदेहीयदिजीवतिवानवा ॥ सचदेशोमहाप्राज्ञयस्मिन्वसतिरावणः ॥ ११ । अभिगम्यसुवैदेहींनिलयंरावणस्यच ॥ प्राप्तकालंविधास्यामितस्मिन्कालेसहत्वया ॥ १२॥ नाहमस्मिन्प्रभुःकार्येवानरेंद्रनलक्ष्मणः ॥ त्वमस्यहेतुःकार्यस्यप्रभुश्चप्लवगेश्वर ॥ १३ ॥ त्वमेवाज्ञापयविभोममकार्यविनिश्चयम्॥त्वंहिजानासिमेकार्यममवीरनसंशयः ॥१४॥ सुहृद्द्वितीयोविक्रांतःप्राज्ञःकालःविशेषवित् ॥ भवानस्मद्धितेयुक्तःसुहृदाप्तोऽर्थवित्तमः ॥ १५ ॥

जनककुमारी सीताजी जीवित हैं; अथवा नहीं; और रावण किस देशमें रहता है इस बातका पता लगाना उचित है ॥ ११ ॥ जब यह बात जान ली जायगी तब रावणके और वैदेहीजीके निकट पहुँचकर तुम्हारे साथ परामर्श करके समयानुसार उचित कार्यका विधान किया जायगा ॥ १२ ॥ हे वानरनाथ ! हम या लक्ष्मण इस कार्यके साधन करनेमें समर्थ नहीं हैं । तुमहीं इस कार्यके कारण हो और तुम्हीं इसके सिद्ध करनेमें समर्थ हो ॥ १३ ॥ हे वीर ! तुम निःसन्देह हमारे कार्यको जानतेहो इसलिये तुमहीं इस विषयमें निश्चित कार्यको सोच विचारकर आज्ञा देदो ॥ १४ ॥ तुम हमारे अनुपम सुहृद् बलवान् पंडित, समयको भली प्रकारसे जाननेवाले अर्थ विचारनेवालोंमें अग्रगण्य हो और हमारा हितकारी कार्य कारनेमें

लगे हुए हो ॥ १५ ॥ जब सुग्रीवजीसे श्रीरामचन्द्रजीने ऐसा कहा तब सुग्रीवजी बुद्धिमान् श्रीराम लक्ष्मणजीके आगेही वानरश्रेष्ठ ॥ १६ ॥ पर्वतसम आकारवाले मेघके समान शब्दकारी विनत नाम यूथपसे बोले कि; हे वानरोत्तम ! चन्द्रमा व सूर्यके समान वर्णवाले वानर संग ले ॥ १७ ॥ जो देश काल और नीतिशास्त्रके जाननेवाले हों उनको साथ ले, कार्यकरनेमें निश्चय किये औरभी सैकडों सहस्रों वानरोंको साथ लिये ॥ १८ ॥ पूर्वदिशाको चलेजाओ वहांपर पर्वत, वन इत्यादि स्थलोंमें जनक कुमारी सीताजी और रावणके बसनेके स्थानको ढूंढो (चारों दिशाओंमें रावणके रहनेके स्थान) ॥ १९ ॥ ढूंढनेके समय सब पर्वतोंकी कन्दराओंमें दुर्गम स्थानोंमें सब वनोंमें और नदियोंमें, रमणीय गंगा सरयू कौशिकी ॥ २० ॥ कालिन्दी मनोहर यमुना और यमुनाके समीपवाले सब पर्वतोंको और सरस्वती, सिन्धु, मणितुल्य स्वच्छ जलवाला शोणभद्र ॥ २१ ॥ मही और शैल कानन सहित

एवमुक्तस्तुसुग्रीवोविनतंनामयूथपम् ॥ अब्रवीद्रामसान्निध्येलक्ष्मणस्यचधीमतः ॥१६॥ शैलाभंमेघनिर्घोषमूर्जितंप्लवगेश्वरम् ॥ सोमसूर्यनिभैः सार्धवानरैर्वानरोत्तम ॥ १७ ॥ देशकालनयैर्युक्तोविज्ञःकार्यविनिश्चये ॥ वृतःशतसहस्रेणवानराणांतरस्विनाम् ॥ १८ ॥अधिगच्छदिशंपूर्वांसशैलवनकाननाम् ॥ तत्रसीताचवैदेहींनिलयंरावणस्यः ॥ १९ ॥ मार्गध्वंगिरिदुर्गेषुवनेषुचनदीषुच ॥ नदीभागीरथींरम्यांसरयूंकौशिकींतथा ॥२०॥ कालिंदींयमुनांरम्यांयामुनंचमहागिरिम् ॥ सरस्वतींचसिंधुंचशोणंमणिनिभोदकम् ॥ २१ ॥महींकालमहींचापिशैलकाननशोभिताम् ॥ब्रह्ममालान्विदेहांश्चमालवान्काशिकोसलान् ॥२२॥ मागधांश्चमहाग्रामान्पुंड्रान्वंगांस्तथैवच ॥ भूमिंचकोशकाराणांभूमिंचरजताकराम् ॥ २३ ॥ सर्वंचतद्विचेतव्यंमृगयद्भिस्ततस्ततः ॥ रामस्यदयितांभार्यांसीतांदशरथस्नुषाम् ॥ २४ ॥ समुद्रमवगाढांश्चपर्वतान्पत्तनानिच ॥ मंदरस्यचयेकोटिंसंश्रिताःकेचिदालयाः ॥२५॥ कर्णप्रावरणाश्चैवतथाचाप्योष्ठकर्णकाः ॥ घोरलोहमुखाश्चैवजवनाश्चैकपादकाः ॥२६॥

कालमही औरभी समस्त नदियोंमें और ब्रह्ममाल, विदेह, मालव, काशिराज और कौशलदेश ॥ २२ ॥ मागध; महाग्राम, पुण्ड्र, अंग समस्त देशोंमें कोषाकार रेशमके कीडे जहां होते हैं, व चांदीकी खानिवाली भूमिमें जहाँ खानोंसे चांदी निकलती है ॥ २३ ॥ उन सब स्थानोंमें तुम लोग सीताजी और रावणका स्थान खोजते हुये, जहां कहींभी श्री रामचन्द्रजीकी भार्या और दशरथजीकी पुत्रवधू जानकीजीको देखना ॥ २४ ॥ और जो जो पर्वत और नगर समुद्रके टापुओंमें हों, और मन्दराचल पर्वतके किनारोंपर जो देश बसते हों, उन सबमें तुम भली प्रकार ढूँढना भालना ॥ २५ ॥ जो कानोंतक वस्त्र लपेटेहो और जिनके कान अधरपर्यन्तहों और जिनका घोर लोहसम मुखहो, बडे वेगसे चलनेवाले व एक पादके लोग जो टापुओंमें हैं ॥२६॥

और अक्षसन्तान बलवान् राक्षस, किरात, तीक्ष्ण चूडावाले, बडे बालवाले सुवर्ण समान दीप्तिमान्, प्रिय दर्शन ॥ २७ ॥ और जिन किरात देशोंमें कच्ची मछलियें भक्षण कीजाती हैं ऐसे किरातगण, नीचेके भागमें मनुष्योंके समान आकार वाले और ऊपरके भागमें व्याघ्रके समान आकारवाले नरव्याघ्र लोग जो कि जलके मध्यमें रहते हैं ॥ २८ ॥ इन सब राक्षसोंके स्थानमें भली भांति देखना भालना, पर्वतोंको देखते भालते जिन देशोंमें अथवा द्वीपोंमें उछल कूदकर जाना हो सके, वहां उछल कूदकर, नौकासे जहां जानाहो वहां नौकाद्वारा जाना ऐसे सब देशोंमें ढूंढना तुम्हारा परम कर्त्तव्य है ॥ २९ ॥ और तुम बडे यत्नके साथ सप्त राज्य सुशोभित यवद्वीपमें जाना, और सुवर्णकारी पुष्पोंसे शोभित रूपक द्वीपमें ढूँढना यही तुम्हारा कर्त्तव्य है

अक्षयाबलवंतश्चतथैवपुरुषादकाः॥ किरातास्तीक्ष्णचूडाश्चहेमाभाःप्रियदर्शनाः ॥ २७॥आममीनाशनाश्चापिकिराताद्वीपवासिनः॥अंतर्जल चराघोरानरव्याघ्राइतिस्मृताः॥२८॥एतेषामाश्रयाःसर्वेविचेयाःकाननौकसः ॥ गिरिभिर्येचगम्यंतेप्लवनेनप्लवेनच॥२९॥यत्नवंतोयवद्वीपंसप्त राज्योपशोभितम्॥सुवर्णरूप्यकद्वीपंसुवर्णकरमंडितम्॥३०॥ यवद्वीपमतिक्रम्यशिशिरोनामपर्वतः॥ दिवंस्पृशतिशृंगेणदेवदानवसेवितः॥३१॥ एतेषांगिरिदुर्गेषुप्रपातेषुवनेषुच ॥ मार्गध्वंसहिताःसर्वेरामपत्नींयशस्विनीम् ॥ ३२ ॥ततोरक्तजलंप्राप्यशोणाख्यंशीघ्रवाहिनम् ॥गत्वापारं समुद्रस्यसिद्धचारणसेवितम् ॥ ३३ ॥ तस्यतीर्थेषुरम्येषुविचित्रेषुवनेषुच ॥ रावणःसहवैदेह्यामार्गितव्यस्ततस्ततः ॥३४॥ पर्वतप्रभवानद्यः सुभीमबहुनिष्कुटाः ॥ मार्गितव्यादरीमंतःपर्वताश्चवनानिच ॥३५॥ ततःसमुद्रद्वीपांश्चसुभीमान्द्रष्टुमर्हथ ॥ ऊर्मिमंतंमहारौद्रंक्रोशंतमनिलोद्ध तम् ॥ ३६ ॥तत्रासुरामहाकायाश्छायांगृह्णंतिनित्यशः ॥ ब्राह्मणासमनुज्ञातादीर्घकालंबुभुक्षिताः ॥ ३७ ॥

॥ ३० ॥ जब सुवर्णद्वीपको ढूंढकर आगे चलोगे, तब देव दानवगण करके सेवित शिशि नामक पर्वत मिलेगा, उसके कँगूरे आकाशको भेद करके मानो स्वर्गको छू रहे हैं ॥ ३१ ॥ इन सब द्वीपादिकोंके पर्वतोंके दुर्गोंमें वनोंमें और नदियोंके प्रगट होनेके स्थानोंमें, तुम यशस्विनी रामभार्या जानकीजीको ढूँढना ॥ ३२ ॥ फिर समुद्रके उस पार जाकर, सिद्ध चारण सेवित लाल जलवाला शोण नामक नद मिलेगा ॥ ३३ ॥ वहां उसके रमणीय तीर्थमें विचित्र वनोंमें और कन्दरायुक्त सब पर्वतोंमें और वनोंमें खोज करना ॥ ३४ ॥ भयंकर अनेक उपवनोंसे युक्त पर्वतोंसे निकली हुई समस्त नदियोंमें और कन्दरायुक्त सब पर्वतोंमें और वनोंमें खोज करना तुम्हारा अवश्य कर्त्तव्य है ॥३५॥ फिर भयंकर पवनके सन्नाटेसे भयंकर शब्द करता हुआ, अति उग्र तरंगयुक्त समुद्रके द्वीपको तुम लोग देखोगे ॥३६॥ इस इक्षु समुद्रमें ब्रह्माजीकी आज्ञा पायेहुये, भूंखसे सताये असुरगण नित्य २ परछांयी ग्रहण करके

प्राणियोंको भक्षण किया करते हैं सो यहांपर बडी सावधानीसे जाना ॥ ३७ ॥ इसलिये उस समयमें मेघोंके समान गर्जते और बडे २ सर्पोंसे सेवितहोनेके कारण पार जानेके अयोग्य उस समुद्रमें सुघाटपर उतरना ॥ ३८ ॥ जब इसके पार होजाओगे, तब लाल रंगके जलसे भरे भयंकर लोहित नामक सागरपरजाकर वहां एक बडा भारी शाल्मलीका वृक्ष देखोगे * ॥ ३९ ॥ वहांपर पक्षिनाथगरुडजीका, कैलास पर्वतके समान अनेक रत्नोंसे भूषित विश्वकर्माका बनाया हुआ गृह विराजमान है ॥ ४० ॥ वहांपर समुद्रके पर्वतोंको शृंगोंपर पर्वततुल्य भयंकर देहधारी, नानारूपी, भयावह मंदेह नामवाले राक्षसगण नीचे मुख किये. लटके रहते हैं ॥ ४१ ॥ यह राक्षस सूर्यके उदय होनेपर उनसे युद्ध करनेको आकर सूर्यकेतेजसे तीनों

तंकालमेघप्रतिमंमहोरगनिषेवितम् ॥ अभिगम्यमहानादंतीर्थेनैवमहोदधिम् ॥ ३८ ॥ ततोरक्तजलंभीमंलोहितंनामसागरम् ॥गत्वाप्रेक्ष्यथतांचै वबृहतींकूटशाल्मलीम् ॥ ३९ ॥ गृहंचवैनतेयस्यनानारत्नविभूषितम् ॥ तत्रकैलाससंकाशंविहितंविश्वकर्मणा ॥ ४० ॥ तत्रशैलनिभाभी मामंदेहानामराक्षसाः ॥ शैलशृंगेषुलम्बंतेनानारूपाभयावहाः ॥ ४१ ॥ तेपतंतिजलेनित्यंसूर्यस्योदयनंप्रति ॥ अभितप्ताःस्मसूर्येणलम्बंतेस्म पुनःपुनः॥ ४२ ॥निहताब्रह्मतेजोभिरहन्यहनिराक्षसाः ॥ततःपांडुरमेघाभंक्षीरोदंनामसागरम्॥४३॥गत्वाद्रक्ष्यथदुर्धर्षामुक्ताहारमिवोर्मिभिः॥ तस्यमध्येमहाञ्श्वेतऋषभोनामपर्वतः ॥ ४४ ॥ दिव्यगंधैः कुसुमितैराचितैश्चनगैर्वृतः ॥ सरश्चराजितैःपद्मैर्ज्वलितैर्हैमकेसरैः॥ ४५॥नाम्नासुद र्शननामराजहंसैःसमाकुलम् ॥ विबुधाश्चारणायक्षाःकिन्नराश्चाप्सरोगणाः ॥ ४६ ॥

वर्णोंके दियेहुये सन्ध्या ममयके जलसे घायल होकर समुद्रके जलमें गिर पडते हैं और फिर जीवित होकर इस पर्वतके कँगूरोंपर लटकने लगते हैं ॥ ४२ ॥ इन राक्षसोंको सन्ध्याके समय प्रतिदिन ब्राह्मणलोग मारते हैं, उनके मारनेसे सूर्यरूपी भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं, इससे आगे बढकर उजले बादरके समान क्षीरसागर देखोगे ॥ ४३ ॥ यह क्षीरसागर अपनी लहरोंसे ऐसा शोभायमान होरहा है, मानो मोतियोंका हार पहर रहा हो, उस क्षीरसागरके मध्यमें तुम अति श्वेत ऋषभ नामक पर्वत देखोगे ॥४४॥ इस पर्वतके ऊपर सुवासित पुष्पयुक्त अनेक प्रकारके वृक्ष लगे हैं और वहींपर एक तालाव भी बडा उत्तम है जिसमें अनेक भांतिके पुष्प खिल रहे हैं ॥४५॥ इसका नाम सुदर्शनसर है, यह राजहंसोंसे व्याप्त है और इसके किनारे २ देव, चारण, यक्ष, किन्नर,

* इससे शाल्मलि द्वीपका अनुमान होता है ।

अप्सरागण ॥४६॥ हर्षित हो विहार करनेके लिये उसीके तटमें घूमा करते हैं। क्षीरसागर उतरनेके पीछे वानरगरण ! ॥४७॥ जलोद सागरको शीघ्रही देखोगे, यह समुद्र सब प्राणियोंको भय उपजानेवाला है इस कारण कि वहांपर और्व्व ऋषिसे उत्पन्न तेजसे महाहयमुख तेज उत्पन्न हुआ है ॥ ४८ ॥ उस अद्भुत महावेग हयमुख तेजसे प्रलयकालमें सचराचर जगत अन्न स्वरूप कहाता है। उस स्थानमें असमर्थ विनाशकी शंकासे डरे हुये प्राणियोंका महा आर्त शब्द श्रवण आया करता है; यह प्राणी उस हयमुखके देखनेसे डरकर रोया करते हैं ॥४९॥ स्वादु समुद्रके उत्तरतीरमें तेरह योजन विस्तारवाला कनकतुल्य प्रभाशाली सुवर्णकी चट्टानोंसे युक्त एक महान् पर्वत है ॥ ५० ॥ वहांपर हे वानरो ! तुम चन्द्रमाके तुल्य श्वेत वर्णवाले कमलदलके समान विशाल नेत्रवाले

हृष्टाःसमधिगच्छंतिनलिनींतांरिरंसवः॥क्षीरोदंसमतिक्रम्यततोद्रक्ष्यथवानराः॥४७॥जलोदंसागरंशीघ्रंसर्वभूतभयापहम् ॥ तत्रतत्कोपजंतेजः कृतंहयमुखंमहत्॥४८॥अस्याद्भुतंमहावेगमोदनंसचराचरम्॥तत्रविक्रोशतांनादोभूतानांसागरौकसाम्॥ श्रूयतेचासमर्थानांदृष्ट्वाभूद्वडवामुखम् ॥ ४९ ॥ स्वादूदस्योत्तरेतीरेयोजनानित्रयोदश ॥ जातरूपशिलोनामसुमहान्कनकप्रभः ॥ ५० ॥ तत्रचंद्रप्रतीकाशंपन्नगंधरणीधरम् ॥ पद्मपत्रविशालाक्षंततोद्रक्ष्यथवानराः॥ ५१ ॥ आसीनंपर्वतस्याग्रेसर्वदेवनमस्कृतम् ॥ सहस्रशिरसंदेवमनंतंनीलवाससम्॥५२ ॥ त्रिशिराःकांचनःकेतुस्तालस्तस्यमहात्मनः ॥ स्थापितःपर्वतस्याग्रेविराजतिसवेदिकः ॥ ५३ ॥पूर्वस्यांदिशिनिर्माणंकृतंतत्त्रिदशेश्वरैः ॥ ततःपरंहेममयः श्रीमानुदयपर्वतः ॥ ५४ ॥ तस्यकोटिर्दिवंस्पृष्ट्वाशतयोजनमायता ॥ जातरूपमयीदिव्याविराजतिसवेदिका ॥ ५५ ॥

धरणीधर भुजंगको देखोगे ॥५१॥ वहीं सहस्र शिरवाले नीलाम्बर धारण किये सब देवताओंके नमस्कार करनेके योग्य अनन्तजी पर्वतके शिखरपर बैठे रहते हैं ॥ ५२ ॥ इसके शिरके निकट तीन स्कंधवाली सुवर्णकी केतुस्वरूप ताल वृक्षके आधारसे बनी हुई विराजित है उसपर अनन्तजी प्रतिष्ठित हैं ॥५३॥ इन्द्रजीसे उस तरुवरको पूर्ण दिशाके चिह्नस्वरूप सीमाके अन्तमें बिन्दुके समान निर्माण कर रक्खा है, उसके आगे परम हेममय देवताओंका होता श्रीमान् उदय पर्वत है ॥ ५४ ॥ इस पर्वतकी एक कोटि सौ योजन चौडाई है, और उसके कँगूरे ऐसे ऊँचे हैं कि, आकाशको स्पर्शही किये लेते हैं। वह सुवर्णकी बनी वेदी आधार पर्वतके सहित विराजमान है ॥ ५५ ॥

इस पर्वतपर फूले हुये सुवर्णमय सूर्यके समान ताल, तमाल और कर्णिकारके वृक्ष शोभायमान होरहे हैं ॥ ५६ ॥ वहांपर एक योजन विस्तारवाला और दशयोजन ऊंचा सुवर्णमय सौमनस शृंग हैं ॥ ५७ ॥ पूर्वकालमें पुरुषोत्तम विष्णुजीने राजा बलिको छलकर जब सब लोक नापे थे तब पहला चरण उन्होंने वहां रखकर दूसरा चरण मेरुके शिखरपर रक्खा था ॥ ५८ ॥ सूर्यनारायण उत्तर दिशामें घूम जम्बू द्वीपकी परिक्रमा करके फिर उसी ऊंचे शिखरवाले पहले कहे हुये सौमनस शिखरपर टिके हुये फिर जम्बूद्वीपमें रहनेवाले मनुष्योंको दृष्टि आते हैं ॥५९॥ और इसी शिखरपर, सूर्यसमान प्रकाशमान तपस्वी, दीप्ति प्रयुक्त वैखानस वालखिल्य महर्षिगण प्रकाशित होते हैं ॥ ६० ॥ जिसके समीप सुदर्शन द्वीप प्रकाशित होता है और जब इस सौमनस शिखरपर सूर्य उदय होते हैं' तभी सब प्राणियोंके नेत्रोंमें उजाला आता है, इसका प्रकाश सबको ज्ञात है ॥ ६१ ॥ उस पर्वतकी पीठ कन्दरा, और वनमें तुमलोग

सालैस्तालैस्तमालैश्चकर्णिकारैश्चपुष्पितैः॥जातरूपमयैर्दिव्यैःशोभतेसूर्यसन्निभैः॥५६॥तत्रयोजनविस्तारमुच्छ्रितंदशयोजनम् ॥ शृंगंसौमनसंनामजातरूपमयंध्रुवम् ॥५७॥ तत्रपूर्वपदंकृत्वापुराविष्णुस्त्रिविक्रमे ॥ द्वितीयंशिखरेमेरोश्चकारपुरुषोत्तमः॥ ५८ ॥उत्तरेणपरिक्रम्यजंबूद्वीपंदिवाकरः ॥ दृश्योभवतिभूयिष्ठंशिखरंतन्महोच्छ्रयम् ॥ ५९ ॥ तत्रवैखानसानामवालखिल्यामहर्षयः ॥ प्रकाशमानादृश्यंतेसूर्यवर्णास्तपस्विनः॥ ६० ॥ अयंसुदर्शनोद्वीपःपुरोयस्यप्रकाशते ॥ तस्मिंस्तेजश्चचक्षुश्चसर्वप्राणभृतामपि ॥ ६१ ॥ शैलस्यतस्यपृष्ठेषुकंदरेषुवनेषुच ॥ रावणःसहवैदेह्यामार्गितव्यस्ततस्ततः ॥ ६२ ॥ कांचनस्यचशैलस्यसूर्यस्यचमहात्मनः ॥ आविष्टातेजसासंध्यापूर्वरक्ताप्रकाशते ॥ ६३ ॥ पूर्वमेतत्कृतंद्वारंपृथिव्याभुवनस्यच ॥ सूर्यस्योदयनंचैवपूर्वाह्येषादिगुच्यते ॥ ६४ ॥तस्यशैलस्यपृष्ठेषुनिर्झरेषुगुहासुच ॥ रावणःसहवैदेह्यामार्गितव्यस्ततस्ततः ॥ ६५ ॥ ततःपरमगम्यास्याद्दिक्पूर्वात्रिदशावृता ॥ रहिताचंद्रसूर्याभ्यामदृश्यातमसावृता॥ ६६॥

रावणसहित जानकीजीका अनुसन्धान करना ॥६२॥ सुवर्ण शैलके और महात्मा सूर्यकेही तेजसे युक्त हो अरुण वर्णकी सन्ध्या प्रकाशित होती है ॥६३॥ जिससे कि, समस्त भुवनोंमें प्रकाश करनेके लिये सूर्यके उदयकी आवश्यकता देख प्रथमही ऊपरमें टिकेहुए सब जनोंका प्रवेशद्वारस्वरूप उदयगिरिको ब्रह्माजीने बनाया था इससेही इसको पूर्वदिशा कहते हैं ॥६४॥ उस पर्वतकी पीठपर झरनोंमें और गुफाओंमें, तुम लोग रावण और जानकीजीका खोज करना॥६५॥ उदयाचलके आगे इसे पूर्वदिशामें जिसके अधिष्ठाता इंद्रादि देवता हैं वहां सूर्य चन्द्रमाका प्रकाश नहीं है इस कारणसे अंधेरा ही अँधेरा है इसलिये यहांसे आगे कोई नहीं देख सकता है ॥ ६६ ॥

इन सब पर्वतमें, कन्दराओंमें, नदियोंमें जितने कि, समस्त स्थान हमने कहे इन सब स्थानोंमें तुम लोग जानकीजीका पता लगाना ॥ ६७ ॥ हे कपिश्रेष्ठगण ! बस यहींतक तुमलोग जानेको समर्थ हो, इसके आगे सूर्य भगवान् रहित और सीमा रहित जो स्थान है उन सबको हम नहीं जानते ॥६८॥ जहां जानकीजी हो, और रावणके स्थानमें उदयाचल पर्वततक जाकर एक मासके पूर्ण होते २ तुम लोग फिर आना ॥ ६९ ॥ एक मासके ऊपर वहांपर न रहना यदि कोई एक मासके ऊपर रहेगा तो उसको हम मार डालेंगे, जाओ जनककुमारी जानकीजीको ढूँढ भाल और उनका पता लगाकर आओ ॥ ७० ॥ इन्द्रकी स्त्री, वनादिकोंसे सुशोभित पूर्वदिशाको तुम चतुर वानर उत्तम रीतिसे खोज करके राघवप्रिया सीताजीको पायकर फिर सब जन सुखी होना ॥७१॥

शैलेषुतेषुसर्वेषुकंदरेषुनदीषुच ॥ येचनोक्तामयोद्देशाविचेयातेषुजानकी॥ ६७ ॥ एतावद्वानरैःशक्यंगंतुंवानरपुंगवाः ॥ अभास्करममर्यादंनजानीमस्ततःपरम् ॥ ६८ ॥ अभिगम्यतुवैदेहींनिलयंरावणस्यच ॥ मासेपूर्णेनिवर्तध्वमुदयंप्राप्यपर्वतम् ॥ ६९ ॥ ऊर्ध्वंमासान्न वस्तव्यंवसन्वध्योभवेन्मम ॥ सिद्धार्थाःसन्निवर्तध्वमधिगम्यचमैथिलीम् ॥ ७० ॥ महेंद्रकांतांवनषंडमंडितांदिशंचरित्वानिपुणेनवानराः ॥ अवाप्य सीतांरघुवंशजप्रियांततोनिवृत्ताःसुखिनोभविष्यथ ॥ ७१ ॥ इ० श्रीम०वा० आ० च० सा० किष्किं० चत्वारिंश सर्गः ॥ ४० ॥ ततः प्रस्थाप्यसुग्रीवस्तन्महद्वानरंबलम् ॥ दक्षिणांप्रेषयामासवानरानभिलक्षितान् ॥ १ ॥ नीलमग्निसुतंचैवहनूमंतंचवानरम् ॥ पितामहसुतंचैवजांबवंतमहौजसम्॥ २ ॥ सुहोत्रंचशरारिंचशररगुल्मंतथैवच ॥ गजंगवाक्षंगवयंसुषेणंवृषभंतथा ॥ ३॥मैंदंचद्विविदंचैवसुषेणंगंधमादनम् ॥ उल्कामुखमनंगंचहुताशनसुतावुभौ ॥ ४ ॥ अंगदप्रमुखान्वीरान्वीरःकपिगणेश्वरः ॥ वेगविक्रमसंपन्नान्संदिदेशविशेषवित् ॥ ५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा आदि० किष्कि० भाषायां चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥ वानरराज वीरवर सुग्रीवजीने उस वानरोंकी सेनाको पूर्वदिशाकी ओर भेज कर कार्यके साधनका निर्णय करनेमें चतुर वानरोंको दक्षिण दिशामें भेजा ॥ १ ॥ उनमें अग्निपुत्र नील महाबलवान् हनुमान्जी ब्रह्माका पुत्र महाबलवान् जाम्बवान् ॥ २ ॥ सुहोत्र, शरारि, शरगुल्म, गज, गवाक्ष, गवय सुषेण, पृषभ ॥३॥ मैन्द, द्विविद, गन्धमादन, ताराके पिता सुषेण, उल्कामुख, अनंग यह दोनों अग्निके पुत्र ॥ ४ ॥ व अंगद इत्यादि वेगसे चलनेवाले महापराक्रमी वानरोंको सब देशोंके जाननेवाले सुग्रीवजीने दक्षिण दिशामें पठाय ॥ ५ ॥

जितने वानर दक्षिण दिशाको भेजे गये उन समस्त वानरोंके मुखिया बडे बली अंगदजीको करके सुग्रीवजीने दक्षिण दिशाको भेजा ॥ ६ ॥ कपी श्वरसुग्रीवजी उस दिशामें जो जो देश दुर्गम थे, वह समस्तही उन वानर यूथपोंको बताने लगे ॥ ७ ॥ कि तुम लोग, सहस्र शिखरवाले विविध वृक्ष लताओंसे विराजमान विन्ध्याचल पर्वतको प्रथम देखोगे फिर महाभुजंगगण सेवित रमणीक नर्मदा नदी मिलेगी ॥ ८ ॥ फिर गोदावरी और रमणीक कृष्णा वेणी नदी मिलेगी, तदनन्तर मेकल, उत्कल, दशार्ण आदि देश मिलेंगे ॥ ९ ॥ फिर आब्रुवन्ती, अवन्ती पुरी दिखलाई देगी। पश्चात् विदर्भ, ऋष्टिक, मनो हर माहिषक ॥ १० ॥ इत्यादि सब देश दृष्टि आवेंगे, फिर मत्स्य, कुलिंग, कौशिकादि देशोंको भली भांति खोजना, और नदी गुफा सहित दंडकारण्यमें

तेषामग्रेसरंचैवबृहद्बलमथांगदम् ॥ विधायहरिवीराणामादिशद्दक्षिणांदिशम्॥६॥ येकेचनसमुद्देशास्तस्यांदिशिसुषदुर्गमाः॥सतेषांकपिमुख्या नांकपीशःसमुदाहरत् ॥ ७ ॥ सहस्रशिरसंविंध्यंनानाद्रुमलतायुतम् ॥ नर्मदांचनदींरम्यांमहोरगनिषेविताम् ॥ ८ ॥ ततोगोदावरींरम्यांकृ ष्णवेणींमहानदीम् ॥ मेखलानुत्कलांश्चैवदशार्णनगराण्यपि ॥ ९॥ अब्रुवंतीमवतींचसर्वमेवानुपश्यत॥ विदर्भानृष्टिकांश्चैवरम्यान्माहिषकानपि ॥ १० ॥ तथामत्स्यकलिंगांश्चकौशिकांश्चसमंततः ॥ अन्वीक्ष्यदंडकारण्यंसपर्वतनदीगुहम्॥ ११ ॥नदींगोदावरींचैवसर्वमेवानुपश्यत ॥ तथै वांध्रांश्चपुंड्रांश्चचोलान्पांडचांश्चकेरलान् ॥१२॥अयोमुखश्चगंतव्यःपर्वतोधातुमंडितः ॥ विचित्रशिखरःश्रीमांश्चित्रपुष्पितकाननः ॥१३॥ सुचंदनवनोद्देशोमार्गितव्योमहागिरिः ॥ ततस्तामापगांदिव्यांप्रसन्नसलिलामयाम्॥ १४ ॥तत्रद्रक्ष्यथकावेरींविहृतामप्सरोगणैः ॥ तस्यासी नंनगस्याग्रेमलयस्यमहौजसः ॥ १५ ॥ द्रक्ष्यथादित्यशंकाशमगस्त्यमृषिसत्तमम् ॥ ततस्तेनाभ्यनुज्ञाताःप्रसन्नेनमहात्मना॥१६॥ताम्रपर्णी ग्राहजुष्टांतरिष्यथमहानदीम् ॥ साचंदनवनैश्चित्रैःप्रच्छन्नद्वीपवारिणी ॥ १७ ॥

भी ढूंढना ॥ ११ ॥ उसके पीछे तुम सबोंको दूसरी गोदावरी नदी दिखाई देगी इसके आगे आन्ध्र, पुंड्र, चोल, पाण्डच, केरल ॥ १२ ॥ आदि देश और अयोमुख नामक अनेक धातुओंसे युक्त पर्वत जिस पर बड़े विचत्र शिखर हैं मिलेगा, इसका वन भी सदा फूलाही रहता है ॥ १३ ॥ चन्दनका वनभी इस पर लगा हुआ है, इस मलयाचलको भली भांति अनुसन्धान करना फिर स्वच्छ जलवालीदिव्य ॥१४॥ अप्सराओंके झुण्डोंसे सेवित कावेरी नदी देखोगे, उसके पीछे मलय पर्वतके अग्रभागमें बैठे हुए ॥ १५ ॥ महा तेजसम्पन्न आदित्यतुल्य ऋषिश्रेष्ठ अगस्त्यजीको देखोगे फिर प्रणामादि द्वारा उनको प्रसन्न करके उनकी आज्ञासे चल ॥ १६ ॥ विविधग्राहयुक्त महानदी ताम्रपर्णीके पार होगे। चन्दनके द्वारा विचित्र ढकी हुई दीपोंसे युक्त

स्वच्छजलवाली वह नदी ॥ १७ ॥ सर्व शृंगार किये स्त्रीके समान अपने पतिरूप समुद्रमें जा मिलती है फिर हेममय दिव्यमुक्तामणि विभूषित ॥ १८॥ कपाटयुक्त पाण्डच वंशियोंका फाटक देखोगे । हे वानरो ! फिर तुम निश्चय समुद्रके निकट पहुँचोगे; उस समुद्रपार होनेके विषयमें समर्थ और असमर्थ विचारकर उसके पार होना ॥ १९ ॥ उस समुद्रके पार होनेका उपाय कहते हैं सो तुम श्रवण करो कि इसका उपाय अगस्त्यजी तुमको बता वेंगे उनसे सब समाचार जान महेन्द्र पर्वतपर जाय चित्र विचित्र शृङ्गोंपर चढ ॥२०॥ समुद्रके पार हो जाना । यह पर्वत सुवर्णमय और समुद्रकेएक पार्श्वमें डूबा हुआ है और नाना प्रकारके फूले फले वृक्षोंसे शोभायमान है ॥ २१ ॥ यह पर्वत देव, यक्ष, अप्सरा, सिद्ध और चारण गणोंसे सेवित होनेके कारण

कांतेवयुवतीकांतंसमुद्रमवगाहते ॥ ततोहेममयंदिव्यंमुक्तामणिविभूषितम्॥१८॥युक्तंकवाटंपांडचानांगताद्रक्ष्यथवानराः॥ ततःसमुद्रमासाद्य संप्रधार्यार्थनिश्चयम्॥१९॥अगस्त्येनांतरेतत्रसागरेविनिवेशितः॥ चित्रसानुनगःश्रीमान्महेंद्रःपर्वतोत्तमः॥२०॥जातरूपमयःश्रीमानवगाढोम हार्णवम्॥नानाविधैर्नगैःफुलैर्लताभिश्चोपशोभितम्॥२१॥ देवर्षियक्षप्रवरैरप्सरोभिश्चशोभितम्॥सिद्धचारणसंघैश्चप्रकीर्णंसुमनोरमम्॥२२॥त मुपैतिसहस्राक्षःसदापर्वसुपर्वसु ॥ द्वीपस्तस्यापरेपारेशतयोजनविस्तृतः॥२३॥ अगम्योमानुषैर्दीप्तस्तंमार्गध्वंसमंततः॥तत्रसर्वात्मनासीतामार्गि तव्याविशेषतः॥२४॥सहिदेशस्तुवध्यस्यरावणस्यदुरात्मनः॥ राक्षसाधिपतेर्वासःसहस्राक्षसमद्युते ॥२५॥ दक्षिणस्यसमुद्रस्यमध्येतस्यतुराक्ष सी॥अंगारकेतिविख्याताछायामाक्षिप्यभोजनी॥२६ ॥एवंनिःसंशयान्कृत्वासंशयान्नष्टसंशयाः॥मृगयध्वंनरेंद्रस्यपत्नीममिततेजसः ॥ २७ ॥

परम मनोहर है ॥ २२ ॥ देवराज इन्द्रजी प्रत्येक अमावास्या और पौर्णमासीको इस पर्वतपर आगमन किया करते हैं । इसी समुद्रकी दूसरी पार सौ योजन विस्तारवाला एक द्वीप है ॥ २३ वहां पर कोई मनुष्य नहीं जासकता वहां पर चारोंओर विशेष करके द्वीपमें सीताजीको ढूंढना ॥ २४ ॥ हम जानते हैं कि वही स्थानमें इन्द्रतुल्य दीप्तिमान् राक्षसपति दुरात्मा और वध करने के योग्य रावणका वासस्थल है ॥२५॥ इस दक्षिण समुद्रके बीचमें अंगारिका नाम विख्यात परछाई पकडकर जीवोंको खैंचकर भक्षण करनेवाली राक्षसी वास किया करती है ॥२६॥ इसप्रकारके संशययुक्त देशोंमें विशेष ढूंढभाल संशय रहित होकरअमित तेजवान् नरेन्द्र श्रीरामचन्द्रजी की भार्याका पता लगाओ ॥ २७ ॥

उसलंकाद्वीपको लांघकर शतयोजनवाले समुद्रके बीचमें परमसुन्दर पुष्पितक नामक पर्वतसिद्ध चरणगणोंसे सेवित ॥२८॥ चन्द्र सूर्यकी किरणोंसे प्रभाशाली सागरके जलका आश्रय लेकर अपने विपुल कँगूरोंसे मानो स्वर्गको छूलेता टिका हुआ है॥२९॥उसके कांचनमय एक श्रृंगोंकी सेवा सूर्य भगवान् किया करते हैं कृतघ्न,नास्तिकऔर निर्लज्ज मनुष्य गण इनश्रृंगोंको नहीं देख सकते ॥३०॥ हे वानरगण ! तुम लोग इस पर्वत श्रेष्ठको प्रणाम करके सीताजीको खोजना उस दुर्द्धर्ष पर्वतको लांघकर आगे सूर्यवान् नाम पर्वतपर॥३१॥पहुँचोगे इसका विस्तार चौदहयोजन है और यह अतिदुर्गम है,फिर इसके आगे चलकर वैद्युत नाम पर्वत है॥३२॥ यहसब कालमेंही मनोहर है और सब कामनायुक्त फलोंके देनेवाले वृक्ष इसपर लगे हुये हैं। वहांपर उत्तम भोजन फल मूल खाय॥३३॥

तमतिक्रम्यलक्ष्मीवान्समुद्रेशतयोजने॥गिरिःपुष्पितकोनामसिद्धचारणसेवितः ॥ २८॥ चन्द्रसूर्यांशुसंकाशसागराम्बुसमाश्रयः ॥ भ्राजतेविपुलैःशृंगैरम्बरंविलिखन्निव ॥२९॥ तस्यैकंकांचनशृंगंसेवतेऽयंदिवाकरः ॥ नतंकृतघ्नाःपश्यंतिननृशंसाननास्तिकाः ॥ ३० ॥ प्रणम्यशिरसाशैलंतंविमार्गथवानराः ॥ तमतिक्रम्यदुर्धर्षसूर्यवान्नामपर्वतः ॥३१॥ अध्वनादुर्विगाहेनयोजनानिचतुर्दश ॥ ततस्तमप्यतिक्रम्यवैद्युतानामपर्वतः ॥ ३२ ॥ सर्वकामफलैर्वृक्षैःसर्वकालमनोहरैः ॥ तत्रभुक्त्वावरार्हाणिमूलानिचफलानिच ॥ ३३ ॥ मधूनिपीत्वाजुष्टानिपरंगच्छतवानराः॥ तत्रनेत्रमनःकांतःकुंजरोनामपर्वतः॥ ३४॥ अगस्त्यभवनंयत्रभोगनिर्मितंविश्वकर्मणा ॥ तत्रयोजनविस्तारमुच्छ्रितंदशयोनम् ॥३५॥ शरणंकांचनंदिव्यंनानारत्नविभूषितम् ॥ तत्रभोगवतीनामसर्पाणामालयःपुरी ॥३६॥विशालरथ्यादुर्धर्षासर्वतःपरिरक्षिता ॥ रक्षितापन्नगैर्घोरैस्तैतीक्ष्णदंष्ट्रैर्महाविषैः ॥३७ ॥ सर्पराजोमहाघोरोयस्यांवसतिवासुकिः ॥ निर्यायमार्गितव्याचसाचभोगवतीपुरी॥ ३८ ॥ तत्रचानंतरादेशायेकेचनसमावृताः ॥ तंचदेशमतिक्रम्यमहानृषभःसंस्थितिः ॥ ३९ ॥

और मधु पीकर तृप्तहो तुम सब लोग आगे बढना, तहाँ नेत्र और मनको आराम देनेवाले कुँजर नामक पर्वत है ॥ ३४ ॥ वहां पर पहले विश्वकर्माजीने अगस्त्यजीका भवन बनायाथा। यह भवन विस्तारमें एकयोजन और ऊँचाईमें दश योजन है ॥ ३५ ॥ इस सुवर्णमय गृहमें अनेक प्रकारके दिव्य रत्न भूषित होरहे हैं। इसी कुंजर पर्वतपर सर्पोंके रहनेका स्थान भोगवती नामक पुरी है ॥ ३६ ॥ यह पुरी बडे मार्गवाली, दुर्द्धर्ष है और सब ओरसे रक्षित है.और महाविषैले तेजदांतवाले घोर सर्पभी इसकी रक्षा करते हैं ॥ ३७ ॥ जहांपर महाघोरसर्पराज वासुकीजी बसते हैं, ऐसी भोगवती पुरीमें जाय सबलोग ॥ ३८ ॥ वहांपरकेढके ढकाये सब गुप्त देशोंको भली भांतिसे ढूँढना, उस देशको नांघ आगे बढकर बैलके आकारवाला बडाभारी ॥ ३९ ॥

सर्व रत्नमय परमसुन्दर ऋषभ नामक पर्वत मिलेगा । इसपर गौशीर्षक; पद्मक, हरिश्याम॥४०॥दिव्य विशेष २ चन्दन अग्निसम प्रभाशाली उत्पन्न होते हैं उन चन्दनोंको देख कर तुम कुछ बात नकरना और उनको छूनाभी मत॥४१॥कारण कि उस वनकी रक्षा रोहित नामक घोर गन्धर्व किया करते हैं वहां पर पांच गन्धर्वोंके पति सूर्यके समान प्रभावाले ॥ ४२ ॥ शैलूष, ग्रामणी; शिक्ष, शुक और बभ्रु रहते हैं उसपर सूर्य चन्द्र और अग्निके समानप्रकाशित देह पुण्यात्मालोगोंके रहनेके स्थान बने हैं ॥४३॥ ऐसे पृथ्वीके अन्तमेंदुर्द्धर्ष तथा स्वर्गके सुख जीतनेवाले लोग रहते हैंउसके आगे दारुण पितृलोक है; जहाँपर मनुष्य नहीं जा सकते ॥४४॥ यहां अन्धकारसे ढकी हुई यमराजकी राजधानी संयमिनी नाम पुरी है वहांपर तुम क्षणमात्रभी नहीं ठहर सकतेहो,हे वानरश्रेष्ठ गण ! तुमलोग यहींतक ढूंढनेको समर्थ हो इससे आगे और फिर मनुष्यादिक किसीकीभी गति नहीं है ॥४५॥ जो जो स्थान हमने बताये तुम सब इनमें

सर्वरत्नमयःश्रीमानृषभोनामपर्वतः॥गोशीर्षकंपद्मकंचहरिश्यामंचचंदनम् ॥४०॥ दिव्यमुत्पद्यतेयत्रतच्चैवाग्निसमप्रभम्॥नतुतच्चंदनंदृष्ट्वास्प्रष्टव्यंतुकदाचन॥४१॥रोहितानामगंधर्वाघोरंरक्षतितद्वनम् ॥ तत्रगंधर्वपतयःपंचसूर्यसमप्रभाः ॥४२॥ शैलूषोग्रामणीःशिक्षः शुकोबभ्रुस्तथैवच ॥ रविसोमाग्निवपुषांनिवासःपुण्यकर्मणाम् ॥४३ ॥ अतःपृथिव्यांदुर्धर्षास्ततःस्वर्गजितःस्थिताः ॥ ततःपरंनवःसेव्यःपितृलोकःसुदारुणः ॥४४॥ राजधानीयमस्यैषाकष्टेनतमसावृता ॥ एतावदेवयुष्माभिर्वीरावानरपुंगवाः ॥ शक्यंविचेतुंगंतुंवानातोगतिमतांगतिः ॥ ४५ ॥सर्वमेतत्समालोक्ययच्चान्यदपिदृश्यते ॥ गतिविदित्वावैदेह्याःसन्निवर्तितुमर्हथ ॥ ४६ ॥ यश्चमासान्निवृत्तोऽग्रेदृष्टासीतेतिवक्ष्यति ॥ मत्तुल्यविभवोभोगैःसुखंसविहरिष्यति ॥४७॥ ततःप्रियतरोनास्तिममप्राणाद्विशेषतः ॥ कृतापराधोबहुशोममबंधुर्भविष्यति॥४८॥अमितबलपराक्रमाभवंतोविपुलगुणेषुकुलेषुचप्रसूताः॥मनुजपतिसुतांयथालभध्वंतदधिगुणंपुरुषार्थमारभध्वम्॥४९॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० किष्किंधाकांडे एकचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥

व और स्थानभी जो कि, दिखाईदे इन सबको देखभाल सीताजीकी गति जान, कर फिर आओ॥४६॥ जो वानर एक मासके भीतर लौटकर "हमने सीताजीको देखा है" यह वचन कहेगा वह हमारे समान विभवशाली होकर सुखसे विहार करेगा ॥ ४७ ॥ उससे अधिक और कोईभी हमारा प्रिय न होगा, व अनेक बार अपराध करनेपरभी हमारा बन्धु रहेगा ॥ ४८ ॥ हे वानरगण ! तुम लोग अमित बल, विक्रमशाली और विपुल गुण सम्पन्न कुलमें उत्पन्न हुए हो, इस समय तुम सब कि,जिससे जनककुमारी सीताजी प्राप्त होजायं इस विषयमें अनुकूल पुरुषार्थ प्रकाशकर विशेष भांतिसे यत्न करते रहो ॥४९ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा ० आ० किष्किन्धाकांडे भाषायामेकचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥

अनन्तर सुग्रीवजी उन समस्तवानरवृन्दोंको दक्षिण दिशामें भेजकर मेघके समान सुषेण नाम वानरसे बोले ॥ १ ॥ यह सुषेण ताराके पिता, और वालि सुग्रीवके श्वशुर, भयंकर विक्रम करनेवाले थे, इससे उनको हाथ जोड प्रणाम कर सुग्रीवजी बोले ॥ २ ॥ और महर्षि मरीचके पुत्र अर्चिष्मान् नामक महावानरसे जोकि, अति शूरवीर कपिगणोंसे सेवित; महेन्द्राचल समआकारवाला और प्रकाशमानथा ॥३॥ और बुद्धिमें खगपति तुल्य द्युतिमान् और मरीचिके सुन्दर माला धारण किये मारीच नाम अतिगुणवान् और महाबलवान् ॥४॥ ऋषिपुत्र थे उन सबको पश्चिम दिशामें जानेके लिये सुग्रीवजीने आज्ञादी, इनके साथ दो लक्ष यूथपति व और वानरोंकीतो कुछ गिन्तीही नहीं ॥५॥ हे वानरो! सुषेण सहित तुमलोग वैदेहीजीको जायकर ढूंढो, प्रथम सौराष्ट्रदेश फिर बाह्लिक

अथप्रस्थाप्यसहरीन्सुग्रीवोदक्षिणांदिशम् ॥ अब्रवीमेघसंकाशंसुषेणंनामवानरम् ॥१॥ तारायाःपितरंराजाश्वशुरंभीमविक्रमम् ॥ अब्रवीत्प्रांजलिर्वाक्यमभिगम्यप्रणम्यच ॥२॥ महर्षिपुत्रंमारीचमर्चिष्मंतंमहाकपिम्॥ वृतंकपिवरैःशूरैर्महेन्द्रसदृशद्युतिम् ॥ ३ ॥ बुद्धिविक्रमसंपन्नंवैनतेयसमद्युतिम्॥मरीचिपुत्रान्मारीचानर्चिर्माल्यान्महाबलान् ॥४॥ ऋषिपुत्रांश्चतान्सर्वान्प्रतीचीमादिशद्दिशम्॥द्वाभ्यांशतसहस्राभ्यांकपीनांकपिसत्तमाः॥५॥सुषेणप्रमुखायूयंवैदेहींपरिमार्गथ॥ सौराष्ट्रान्सहबाह्लीकांश्चंद्रचित्रांस्तथैवच ॥ ६ ॥ स्फीताञ्जनपदान्रम्यान्विपुलानिपुराणिच ॥ पुन्नागगहनंकुक्षिबकुलोद्दालकाकुलम् ॥ ७ ॥ तथाकेतकखंडांश्चमार्गध्वंहरिपुंगप्रवाः ॥प्रत्यक्स्रोतोवहाश्चैवनद्यःशीतजलाःशिवाः॥ ८ ॥तापसानामरण्यानिकांतारगिरयश्चये ॥ तत्रस्थलीर्मरुप्रायाअत्युच्चशिशिराःशिलाः ॥ ९ ॥ गिरिजालावृतांदुर्गांमार्गित्वापश्चिमांदिशम् ॥ ततःपश्चिममागम्यसमुद्रंद्रष्टुमर्हथ॥ १० ॥ तिमिनक्राकुलजलंगत्वाद्रक्ष्यथवानराः ॥ ततःकेतकखंडेषुतमालगहनेषुच ॥ ११ ॥

उसके आगे चन्द्रचित्र ॥६॥ इत्यादि मनोहर विभवशाली जनपद और बहुतसे पुर और पुन्नाग, वन बकुल, उद्दालक ॥७॥ तथा केतक आदिके वृक्षोंसे व्याप्त कुक्षि देशको ढूंढना, हे वानरश्रेष्ठो ! पश्चिमकी ओरको बहनेवाली शीतलजलयुक्त पवित्र नदियें भी ढूँढना ॥८॥ तपस्वियोंका वन बडे दुर्गम पर्वत, अति ऊँची वनस्थलियें, जल रहित देश, शीतल शिलायें ॥ ९ ॥ और अनेक भांतिके पर्वत समूहसे युक्त पश्चिम दिशाको खोजना फिर पश्चिम दिशाको आकर पश्चिम समुद्र देखोगे ॥ १० ॥ इस समुद्रमें बडे २ नाके मगर आदि जलजीव भरे हैं इसके आगे केतक खंड और गहन तमाल वनके मध्य ॥ ११ ॥

और नारियलके काननमें वानरगण विहरते हैं, इन सब स्थानोंमें दुष्ट रावणके स्थानसहित सीताजीको ढूढँना ॥१२॥ और समुद्रके किनारेकी भूमिवाले सब पर्वत, वन और मुरची पत्तन और रमणीक जटापुर ॥ १३ ॥ अवंती और दो पुरी, अंगलेपा व आलक्षित नामक समस्त वन विशाल राज्य और विशाल वाणिज्यके स्थान देखना ॥ १४ ॥ वहांपर सिन्धुनद और सागर संगमके स्थलमें महा तरुसमूह समन्वित शत शिखरवाला सोमगिरी नामक एक महान् पर्वत है ॥ १५ ॥ उस पर्वतके रमणीक प्रस्थ देशमें सिंह नामक पक्षी वास करते हैं; वह तिमि; मत्स्य, और हाथियोंको पंजेसे पकडकर अपने घोंसलेमें लेजाय भक्षण कर लेते हैं ॥ १६ ॥ उन सिंह पक्षियोंमें गये और गिरिशृङ्गोंपर सन्तापित व उद्दीप्त हाथी मेघोंके गर्जनके समान शब्द किया करते

कपयोविहरिष्यंतिनारिकेलवनेषुच ॥ तत्रसीतांचमार्गध्वंनिलयंरावणस्यच ॥ १२॥ वेलातलनिविष्टेषुपर्वतेषुवनेषुच ॥ मुरचीपत्तनंचैवरम्यंचै वजटीपुरम्॥ १३ ॥ अवंतीमंगलेपांचतथाचालक्षितंवनम् ॥ राष्ट्राणिचविशालानिपत्तनानिततस्ततः॥१४॥सिंधुसागरयोश्चैवसंगमेतत्रपर्वतः॥ महान्सोमगिरिर्नामशतशृंगोमहाद्रुमः ॥ १५ ॥ तत्रप्रस्थेषुरम्येषुसिंहाःपक्षगमाः स्थिताः ॥ तिमिमत्स्यगजांश्चैवनीडान्यारोपयंतिते॥ १६ ॥ तानिनीडानिसिंहानांगिरिशृंगगताश्चये ॥ दृप्तास्तृप्ताश्चमातंगास्तोयदस्वननिःस्वनाः ॥ १७ ॥विचरंतिविशालेऽस्मिंस्तोयपूर्णेसमंततः॥ तस्य शृंगंदिवस्पर्शंकांचनंचित्रपादपम्॥ १८॥ सर्वमाशुविचेतव्यंकपिभिःकामरूपिभिः ॥ कोटिंतत्रसमुद्रस्यकांचनींशतयोजनाम् ॥ १९ ॥ दुर्दर्शां पारियात्रस्यगत्वाद्रक्ष्यथवानराः ॥कोट्यस्तत्रचतुर्विंशद्गंधर्वाणांतपस्विनाम्॥ २० ॥ वसंत्यग्निनिकाशानांघोराणांपापकर्मणाम् ॥ पावकार्चिः प्रतीकाशाःसमवेताःसमंततः ॥ २१ ॥ नात्यासादयितव्यास्तेवानरैर्भीमविक्रमैः ॥ नादेयंचफलंतस्माद्देशात्किंचित्प्लवंगमैः ॥ २२ ॥

हैं ॥१७॥ यह हाथियोंके झुण्ड उस पर्वतके किनारे जो समुद्र है उसपरभी विचरा करते हैं उस पर्वतका एक सुवर्णमय शृङ्ग इतना ऊँचा है मानो स्वर्गको चला गया है और उसपर भांति २ के चित्र विचित्र वृक्ष लगे हैं ॥१८॥ वहांपर तुमसब वानर लोग काम रूप धारण करके शीघ्रतासहित सब स्थानोंको ढूँढना । उसी समुद्रमें पारियात्र नाम पर्वतकी चोटी कोटि शत योजन विस्तारकी है ॥ १९ ॥ हे वानरगणो ! उस कोटिकादेखना दुर्गम होनेपर भी तुम लोग उसे देखोगे । जहांपर चौवीस कोटि २४०००००० गन्धर्व और तपस्वी गण मिलकर तपस्या करते हैं ॥ २० ॥ यहसब अग्निके तुल्य दीप्यमानघोर पापकारियोंके जलानेको पावककी शिखाके तुल्य प्रकाशित चारोंओर घूमा करते हैं ॥ २१ ॥ भयंकर कर्मकारी वानर गण ऐसे चलेजायँ

कि, मानों उनको देखाही नहीं और उनके साथ कोई छेडछाडभी न की जाय और वहांका कोई फल भी न तोडा जाय ॥ २२ ॥ क्योंकि वह धैर्य वीर्य शाली माहाबलवान् दुर्द्धर्ष वीरगण उन फलोंकी रक्षा किया करते हैं ॥ २३ ॥ वहांपर जानकीजीके ढूँढनेमें यत्न कर्त्तव्य है, यद्यपि उन गन्धर्वोंका प्रभाव बडा है तथापि कपिपनकी चेष्टा करते हुए तुम रहना क्योंकि विना अपराध किये उन लोगोंसे किसीको भयका कारण नहीं होता ॥ २४ ॥ वहींपर वैदूर्यमणिके रंगका और हीरेकी चमकके समान अनेक भांतिके वृक्षोंसे शोभित ॥ २५ ॥ शत योजनका चौडा और शोभायमान वज्रनाम महा-पर्वत है उस पर्वतकी समस्त बडी२कन्दरायें देखना ॥ २६ ॥ उसके आगे समुद्रके चतुर्थ भागमें टिका हुआ चक्रवान् नाम पर्वत है, वहींपर विश्वकर्माजीने

दुरासदाहितेवीराःसत्त्ववंतोमहाबलाः ॥ फलमूलानितेतत्ररक्षंतेभीमविक्रमाः ॥२३॥ तत्रयत्नश्चकर्तव्योमार्गितव्याचजानकी ॥ नहितेभ्योभ यंकिंचित्कपित्वमनुवर्तताम् ॥२४॥ तत्रवैदूर्यवर्णाभोवज्रसंस्थानसंस्थितः॥ नानाद्रुमलताकीर्णोवज्रोनाममहागिरिः ॥२५॥ श्रीमान्समुदित स्तत्रयोजनानांशतंसमम्॥गुहास्तत्रविचेतव्याःप्रयत्नेनप्लवंगमाः॥२६॥ चतुर्भागेसमुद्रस्यचक्रवान्नामपर्वतः ॥ तत्रचक्रंसहस्रारंनिर्मितंविश्वक र्मणा ॥२७॥ तत्रपंचजनंहत्वाहयग्रीवंचदानवम्॥ आजहारततश्चक्रंशंखंचपुरुषोत्तमः ॥ २८ ॥तत्रसानुषुरम्येषुविशालासुगुहासुच ॥ रावणः सहवैदेह्यामार्गितव्यस्ततस्ततः ॥ २९ ॥ योजनानिचतुःषष्टिर्वराहोनामपर्वतः ॥ सुवर्णशृंगःसुमहानगाधेवरुणालये ॥३०॥ तत्रप्राग्ज्योतिषं नामजातरूपमयंपुरम्॥तस्मिन्वसतिदुष्टात्मानरकोनामदानवः ॥ ३१ ॥ तत्रसानुषुरम्येषुविशालासुगुहासुच॥रावणःसहवैदेह्यामार्गितव्यस्तत स्ततः ॥ ३२ ॥ तमतिक्रम्यशैलेंद्रंकांचनांतरदर्शनम् ॥ पर्वतःसर्वसौवर्णोधाराप्रस्रवणायुतः ॥ ३३ ॥

सहस्र आरागजका चक्र बनाया था ॥ २७ ॥ वहींपर पुरुषोत्तम विष्णु भगवान्‌जीने पञ्चजन और हयग्रीव नामक दो दानवोंका संहार करके शंख और चक्र ग्रहण किया था ॥ २८ ॥ उस पर्वतके मनोहर शृंगोंपर और समस्त विशाल गुफाओंमें वैदेहीजी और रावणको ढूँढना तुम्हारा कर्तव्य है ॥२९॥ इसके आगे अगाध समुद्रमें चौंसठ योजनकी उँचाईवाला सुवर्ण शृंगयुक्त वराहनामक पर्वत है ॥ ३० ॥ उसपर्वतपर प्राग्ज्योतिष नामक सुवर्णमय पुर है उसमें नरक नामक दुष्टात्मा दानव वासकरता है ॥ ३१ ॥ उस पर्वतके रमणीक कँगूरों और गुफओंमें रावणके सहित जानकीजीको ढूंढना तुम्हारा कर्त्तव्य है ॥ ३२ ॥ उस कांचन गर्भ शैलराजको नांघकर धारा और झरनों करके सहित सर्व सौवर्ण नाम पर्वत दिखाई देगा ॥ ३३ ॥

उस पर्वतपर वराहसिंह व्याघ्रादि जन्तुगण सर्वदाही अपने शब्दकी प्रतिध्वनि श्रवण कर दर्पितहो शीघ्रतासेफिर गर्जना करने लगते हैं ॥३४॥ इसके आगे मेघ नामक पर्वत है इसपर्वतपर पाकशासन श्रीमान् इन्द्रजीका देवताओंने सुरराज्यपर अभिषेक किया था॥३५॥इस महेन्द्र परिपालित अचल राजकोनांघकर तुम सुवर्णके साठ हजार पर्वत देखोगे ॥ ३६ ॥ यह सब पर्वत प्रभातकालके सूर्यके समान प्रकाशित हैं और फूले फले हुये सुवर्णमय वृक्षोंके समूहसे शोभायमान ॥ ३७ ॥ उन साठ हजार पर्वतोंके मध्यमें एकअति उत्तम राजाके समान सुवर्णमय मेरुपर्वत है पहले सूर्यनारायणने प्रसन्न होकर इसको वरदान दिया था ॥ ३८ ॥ वह वरदान इस प्रकार दिया था कि. एक समय नारायणने उस अचलसे कहा कि,हमारे प्रासादसे तुम्हारे आश्रित समस्त पर्वत दिन रात्रिमें

तंगजाश्ववराहाश्चसिंहाव्याघ्राश्चसर्वतः॥अभिगर्जंतिसततंतेनशब्देनदर्पिताः ॥३४॥ यस्मिन्हरिहयःश्रीमान्महेन्द्रःपाकशासनः॥अभिषिक्तः सुरैराजामेघोनामसपर्वतः ॥ ३५ ॥ तमतिक्रम्यशैलेंद्रंमहेन्द्रपरिपालितम्॥ षष्टिंगिरिसहस्राणिकांचनानिगमिष्यथ ॥३६॥ वरुणादित्यवर्णा निभ्राजमानानिसर्वशः ॥ जातरूपमयैर्वृक्षैःशोभितानिसुपुष्पितैः॥ ३७ ॥तेषांमध्येस्थितोराजामेरुरुत्तमपर्वतः॥आदित्येनप्रसन्नेनशैलोदत्तवरः पुरा ॥३८॥ तेनैवमुक्तःशैलेंद्रःसर्वएवत्वदाश्रयाः ॥ मत्प्रसादाद्भविष्यंतिदिवारात्रौचकांचनाः ॥३९॥त्वयियेचापिवत्स्यंतिदेवगंधर्वदानवाः॥ तेभविष्यंतिभक्ताश्चप्रभयाकांचनप्रभाः॥ ४० ॥ विश्वेदेवाश्चवसवोमरुतश्चदिवौकसः ॥ आगत्यपश्चिमांसंध्यांमेरुमुत्तमपर्वतम् ॥४१॥ आदि त्यमुपतिष्ठंतितैश्चसूर्योऽभिपूजितः ॥ अदृश्यसर्वभूतानामस्तंगच्छतिपर्वतम्॥ ४२ ॥योजनानांसहस्राणिदशतानिदिवाकरः ॥ मुहूर्तार्धेनतंशी घ्रमभियातिशिलोच्चयम् ॥ ४३ ॥ शृंगेतस्यमहद्दिव्यंभवनंसूर्यसन्निभम् ॥ प्रसादगणसंबाधंविहितंविश्वकर्मणा ॥ ४४ ॥

सुवर्णमय होजायँगे ॥ ३९ ॥ और तुम्हारे ऊपर जो देव दानव और गन्धर्वगण वास करेंगे वह हमारे भक्तगण सुवर्णके समान प्रभावान् हो जायँगे ॥ ४० ॥ इस सावर्णि मेरु पर्वतपर विश्वदेव, गण, वसुगण मरुद्गण और सुर लोकके रहनेवाले देवता लोग आगमन करके पश्चिम सन्ध्यामें ॥ ४१ ॥ सूर्य देवकी उपासना करते हैं, सूर्यदेव उनसे पूजित और सर्व जीवोंकी दृष्टिसे अदृश्य हो अस्ताचलको प्राप्त होजाते हैं ॥ ४२ ॥ इसके आगे दशहजार योजनके विस्तारवाले अस्ताचल पर्वतपर सूर्यनारायण आधे मुहूर्तमें पर्वतसे पहुंचते हैं ॥ ४३ ॥ उसी पर्वतके शिखरपर बडे २

दिव्य, सूर्यके समान प्राभावाला बहुत धवरहरेवाला भवन विश्वकर्माका बनाया हुआ है ॥ ४४ ॥ वह अनेक प्रकारके पक्षीऔर वृक्ष समूहके चित्रित होनेसे शोभायमान है, यही पाश हस्त वरुणदेवजीका स्थानहै ॥ ४५ ॥ आगे मेरुकी चोटीमें दशशाखावाला सुवर्णमय परमसुन्दर एक ताल वृक्ष शोभायमान हो रहा है, उस पर्वतके मूलमें विचित्र वेदी बनी हैं ॥४६॥ उस पर्वतके समस्त दुर्गम स्थानोंमें सरोवरोंमें और नदियोंमें तुम सब जनोंको जानकीजी और रावणका ढूंढना उचित है ॥ ४७ ॥ इसी मेरु पर्वतपर ब्रह्माजीके तुल्य देदीप्यमान अपने तेजसे प्रकाशित धर्मात्मा मेरुसावर्णि नाम विख्यात तपस्वी वास करते हैं ॥ ४८ ॥ उन सूर्यके समान प्रकाशित महर्षि मेरुसावर्णिजीको शिर झुका प्रणाम करके जानकीजीका समाचार पूछना

शोभितंतरुभिश्चित्रैर्नानापक्षिसमाकुलैः ॥ निकेतंपाशहस्तस्यवरुणस्यमहात्मनः ॥ ४५ ॥ अंतरामेरुमस्तंचतालोदशशिरामहान् ॥जातरूप मयः श्रीमान्भ्राजतेचित्रवेदिकः॥४६॥तेषुसर्वेषुदुर्गेषुसरस्सुचसरित्सुच ॥रावणःसहवैदेह्यामार्गितव्यस्ततस्ततः ॥ ४७॥ यत्रतिष्ठतिधर्मज्ञस्त पसास्वेनभावितः ॥ मेरुसावर्णिरित्येषख्यातेवैब्रह्मणासमः ॥ ४८ ॥प्रष्टव्योमेरुसावर्णिर्महर्षिः सूर्यसन्निभः ॥ प्रणम्यशिरसाभूमौप्रवृत्तिंमैथि लींप्रति ॥ ४९ ॥ एतावज्जीवलोकस्यभास्करोरजनीक्षये ॥ कृत्वावितिमिरंसर्वमस्तंगच्छतिपर्वतम् ॥ ५० ॥ एतावद्वानरैः शक्यंगंतुंवानरपुं गवाः॥ अभास्करममर्यादंनजानीमस्ततःपरम् ॥ ५१ ॥ अवगम्यतुवैदेहींनिलयंरावणस्यच ॥अस्तंपर्वतमासाद्यपूर्णेमासेनिवर्तत॥५२॥ ऊर्ध्वं मासान्नवस्तव्यंवसन्वध्योभवेन्मम॥ सहैवशूरोयुष्माभिःश्वशुरोमेगमिष्यति॥५३॥श्रोतव्यंसर्वमेतस्यभवद्भिर्दिष्टकारिभिः ॥ गुरुरेषमहाबाहुः श्वशुरोमेमहाबलः ॥ ५४ ॥ भवंतश्चापिविक्रांताः प्रमाणंसर्वएवहि ॥ प्रमाणमेनंसंस्थाप्यपश्यध्वंपश्चिमांदिशम् ॥ ५५ ॥

॥ ४९ ॥ रात्रिके बीत जानेपर सूर्यनारायण उदयाचलपर्वतसे मेरुसावर्णितक प्रकाश करके अस्त होजाते हैं ॥ ५० ॥ हे कपिवरगण ! वानरगण यहीं तक जासकते हैं कि,जहातक सूर्यका प्रकाश औरमर्यादा है और उसके आगे हम कुछभी नहीं जानते हैं ॥ ५१ ॥ रावणका स्थान और जानकीजीके निकट गमन करनेके लिये अस्ताचल तक चले जाकर एक मासपूर्ण होते २ लौट आओ ॥५२॥ एक माससे ऊपर वहांपर मत लगानाऔर जो एक माससे पीछे आवेगा उसको हम मार डालेंगे, हमारे श्वशुर महावीर्य सुषेण तुम लोगोंके साथ जायँगे ॥ ५३ ॥ तुम सब उनकी आज्ञामें रहना; और जो कुछ यहकहे वह श्रवण करना क्योंकि यह हमारे श्वशुर बडे हाथवाले और महाबलशाली हैं इससे गुरु हैं॥५४॥और तुम सबही पराक्रमी और कर्त्तव्य कार्यका निश्चय कर

नेवाले हो, तथापि इनको नियम बतलानेवाला जानकर पश्चिम दिशाको खोजो ॥५५॥ जब उपकारका बदला प्रत्युपकार देदेंगे तब हम लोग कृतकार्य हो जायंगे; इसके सिवाय रावणका वध होनेतक जो समस्त प्रिय कार्य हैं उन सबको तुम लोग देशकाल और अनुसार विचार लेना ॥ ५६ ॥ तब सुषेणादि निपुणवानरगण सुग्रीवजीके विनीत वचन सुन उनसे विदाले प्रीति सहित पश्चिम दिशाको चले गये ॥ ५७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० किष्किन्धाकांडे भाषायां द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४२ ॥ वानरश्रेष्ठ सुग्रीवजी, अपने श्वशुरको पश्चिम दिशामें भेजते हुये और शतबल नामक वानरनाथसे वह ॥ १ ॥ बोले; सर्वज्ञ कपिराजने जो वचन कहे वह सबही अपने और श्रीरामचन्द्रजीके हितके लिये थे ॥ २ ॥ सुग्रीवजी

कृतकृत्याभविष्यामः कृतस्यप्रतिकर्मणा ॥ अतोऽन्यदपियत्कार्यंकार्यस्यास्यप्रियंभवेत् ॥ संप्रधार्यभवद्भिश्चदेशकालार्थसंहितम् ॥ ५६ ॥ ततः सुषेणप्रमुखाःप्लवंगमासुग्रीववाक्यंनिपुणंनिशम्य ॥ आमंत्र्यसर्वेप्लवगाधिपास्तेजग्मुर्दिशंतांवरुणाभिगुप्ताम् ॥ ५७ ॥ इतिश्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० किष्किंधाकांडे द्विचत्वारिंशः सर्गः॥ ४२॥ततः संदिश्यसुग्रीवःश्वशुरंपश्चिमांदिशम्॥वरंशतबलंनामवानरंवानरेश्वरः ॥ १ ॥ उवाचराजासर्वज्ञःसर्ववानरसत्तमः ॥ वाक्यमात्महितंचैवरामस्यचहितंतदा ॥२॥वृतःशतसहस्रेणत्वद्विधानांवनौकसाम्॥वैवस्वतसुतैः सार्धं प्रविष्टः सर्वमंत्रिभिः ॥ ३ ॥ दिशंह्युदीचींविक्रांतांहिमशैलावतंसिकाम् ॥सर्वतःपरिमार्गध्वंरामपत्नींयशस्विनीम् ॥ ॥४ ॥ अस्मिन्कार्येविनिर्वृत्तेकृतेदाशरथेःप्रिये ॥ ऋणान्मुक्ताभविष्यामः कृतार्थार्थविदांवर ॥ ५ ॥ कृतंहिप्रियमस्माकंराघवेणमहात्मना॥ तस्यचेत्प्रतिकारोऽस्तिसफलंजीवितंभवेत् ॥६॥ अर्थिनःकार्यनिर्वृत्तिमकर्तुरपियश्चरेत् ॥ तस्यस्यात्सफलंजन्मकिंपुनःपूर्वकारिणः ॥ ७ ॥

बोले कि, हे विक्रम शालिन् ! तुम अपने मेलके शतसहस्र वनवासी वानरोंके साथ समस्त यमसुत मंत्रिगणोंके सहित यात्रा करो ॥ ३ ॥ और हिमालय पर्वतको कर्णफूल बनाये उत्तर दिशामें जायकर यशस्विनी श्रीरामचन्द्रजीकी भार्याको ढूंढो ॥ ४ ॥ हे कृतार्थ अर्थ जानेवालोंमें श्रेष्ठ ! श्रीरामचन्द्रजीका यह प्रियकार्य पूरा हो जानेपर हम उनकेऋणसे छूट जायँगे ॥ ५ ॥ महात्मा श्रीरामचन्द्रजीने हमारा प्रियकार्य सिद्ध किया है सो यदि हम उनका कुछ भी प्रत्युपकार करसकें तो हमारा जीवन सफल होजाय ॥ ६ ॥ जिसने अपने साथमें कोई उपकार नहीं कियाहो, यदि उसके साथ भी कोई उपकार कर

दिया जाय तोभी जीवन सफल होजाता है फिर जो कि पहलेहीउपकार कर चुका हो उसका कार्य सिद्ध करनेमें और कहना ही क्या है ॥७॥ तुम लोग हमारे हितकी कामना करते हुए जिससे जानकीजी मिलजाँय या उनकापता लगजाय, इस प्रकारकी बुद्धि धारण करो,ऐसा करना सब भाँतिसे तुमको उचित है ॥८॥ शत्रुओंके पुर जीतनेवाले श्रीरामचन्द्रजी सर्व प्राणियोंके मान्यऔर प्रिय हैं सो यह हमारे ऊपर परमप्रसन्न होरहे हैं॥९॥तुम लोग अपनीबुद्धि और विक्रमसे जैसे होसके वैसे बहुतसे दुर्गम स्थान, नदी और पर्वत सबमें जानकीजीको ढूँढो ॥ १० ॥ उस उत्तर दिशाकी ओर जानेमें म्लेछ, पुलिन्द,शूरसेन, प्रस्थल, भरन, कुरु, मद्रक ॥ ११ ॥ कम्बोज, बरद, यवन औरशकोंके नगर देखकर हिमालय पर्वतको खोजना ॥१२॥ लोध्र और पद्मक वनमें और

एतांबुद्धिसमास्थायदृश्यते जानकी यथा ॥ तथा भवद्भिः कर्तव्यमस्मत्प्रियहितैषिभिः ॥८॥ अयं हि सर्वभूतानांमान्यस्तुनरसत्तमः॥अस्मासुचगतः प्रीतिं रामः परपुरंजयः ॥९॥ इमानिबहुदुर्गाणिनद्यःशैलांतराणणिच ॥ भवंतःपरिमार्गंतुबुद्धिविक्रमसंपदा ॥१०॥ तत्रम्लेच्छान्पुलिन्दांश्चशूरसेनांस्तथैवच॥प्रस्थलान्भारतांश्चैवकुरूंश्चसहमद्रकैः ॥११॥ काम्बोजयवनांश्चैवशकानांपत्तनानिच॥अन्वीक्ष्यवरदांश्चैवहिमवंतं विचिन्वथ ॥१२ ॥ लोध्रपद्मकखंडेषुदेवदारुवनेषुच ॥ रावणःसहवैदेह्यामार्गितव्यस्ततस्ततः॥ १३॥ततःसोमाश्रमंगत्वादेवगंधर्वसेवितम् ॥ कालंनाममहासानुंपर्वतंतंगमिष्यथ॥ १४॥ महत्सुतस्यशैलेषुपर्वतेषुगुहासुच॥ विचिन्वतमहाभागारामपत्नीमनिंदिताम् ॥१५॥ तमतिक्रम्य शैलेंद्रंहेमगर्भमहागिरिम् ॥ततःसुदर्शनंनामपर्वतंगंतुमर्हथ ॥१६॥ ततोदेवसखानामपर्वतःपतगालयः॥ नानापक्षिसमाकीर्णोविविधद्रुमभूषितः ॥१७॥ तस्यकांचनखंडेषुनिर्दरेषुगुहासुच ॥ रावणःसहवैदेह्यामार्गितव्यस्ततस्ततः ॥१८॥ तमतिक्रम्यचाकाशंसर्वतःशतयोजनम् ॥ अपर्वतनदीवृक्षंसर्वसत्त्वविवर्जितम् ॥१९॥

देवदारुके वनमें जानकीजीका और रावणका अनुसंधान करना तुम्हारा कर्त्तव्य है ॥ १३ ॥ फिर सोमाश्रमपर जाय देवता और गन्धर्वगणोंसे सेवित बडे २ कँगूरोंसे युक्त कालनामक पर्वतको तुम लोग देखोगे ॥ १४ ॥ उसपर्वतकी बडी कन्दराओंमें और सब दुर्गम स्थानोंमें उन निन्दारहित श्रीरामचन्द्रजी की भार्याको तुम लोग ढूँढना ॥ १५ ॥ उस काल पर्वतको नांघकर हेमगर्भ महापर्वत सुदर्शनपर तुम लोग जाओगे ॥ १६ ॥ फिर अनेक भांतिके पक्षियोंसे परि पूर्ण और विविध प्रकारके वृक्षोंसे शोभायमान पक्षिलोगोंका वासस्थान देवसखा नाम महापर्वत है ॥ १७ ॥ उसकी सुवर्णमय कन्दराओंमें, और समस्त निर्झरोंमें रावण और जानकीको तुम लोग ढूँढना ॥ १८ ॥ उस देवसखा पर्वतके आगे शत योजनका लम्बा चौडा एक मय

दान है, जिसमें पर्वत, नदी, वृक्ष और कोई जन्तु भी नहीं हैं ॥ १९ ॥ तुम सब इस रोमहर्षण मयदानको नांघकर श्वेत वर्ण वाले कैलासपर्वतको पाकर हर्षितचित्त होगे ॥ २० ॥ उस कैलास पर्वत पर श्वेतवर्ण मेघके समान सुवर्णसे सजाया हुआमनोहर कुबेरजीका भवन विश्वकर्माजीने बनाया है ॥ २१ ॥ उस भवनमें बहुत सारे कमल फूलोंके सहित हंस और कारंडवादि जल पक्षियोंसे परिपूर्ण अप्सरा झुण्डोंसेसेवित एक तलैया विद्यमान है ॥ २२ ॥ उस भवनमें धनद यक्षराज सर्व लोकोंके नमस्कार किये जानेके योग्य विश्रवाके पुत्र श्रीमान् कुबेरजी गुह्यक गणोंके साथ आनंद सहित वास किया करते हैं ॥ २३ ॥ कैलास पर्वतकी चन्द्र तुल्य प्रकाशित, पर्वत श्रेणीमें और गुफाओंमें जरा जरा करके रावण और जानकीजीको तुम लोग ढूँढना ॥ २४ ॥ वहांसे चलकर तुम

तच्चशीघ्रमतिक्रम्यकांताररोमहर्षणम् ॥ कैलासंपांडुरंप्राप्यहृष्टायूयंभविष्यथ ॥२०॥तत्रपांडुरमेघाभंजांबूनदपरिष्कृतम् ॥ कुबेरभवनंरम्यंनिर्मितंविश्वकर्मणा ॥ २१ ॥ विशालानलिनीयत्रप्रभूतकमलोत्पला ॥ हंसकारंडवाकीर्णाअप्सरोगणसेविता ॥ २२ ॥तत्रवैश्रवणोराजासर्वलोकनमस्कृतः ॥ धनदोरमतेश्रीमान्गुह्यकैःसहयक्षराट् ॥ २३ ॥ तस्यचंद्रनिकाशेषुपर्वतेषुगुहासुच ॥ रावणःसहवैदेह्यामार्गितव्यस्ततस्ततः ॥ २४ ॥ क्रौंचंतुगिरिमासाद्यबिलंतस्यसुदुर्गमम् ॥ अप्रमत्तैःप्रवेष्टव्यंदुष्प्रवेशंहितत्स्मृतम् ॥ २५ ॥ वसंतिहिमहात्मानस्तत्रसूर्यसमप्रभाः ॥ देवैरभ्यर्थिताःसम्यग्देवरूपामहर्षयः॥२६॥ क्रौंचस्यतुगुहाश्चान्याःसानूनिशिखराणिच ॥ दर्दराश्चनितंवाश्चविचेतव्यास्ततस्ततः ॥ २७ ॥ अवृक्षंकामशैलंचमानसंविहगालयम् ॥ नगतिस्तत्रभूतानांदेवानांनचरक्षसाम् ॥ २८ ॥ सचसर्वैर्विचेतव्यःससानुप्रस्थभूधरः ॥ क्रौंचंगिरिमतिक्रम्यमैनाकोनामपर्वतः ॥ २९ ॥ मयस्यभवनं तत्रदानवस्यस्वयंकृतम् ॥ मैनाकस्तुविचेतव्यःससानुप्रस्थकंदरः ॥ ३० ॥

लोग क्रौंचगिरि देखोगे, उस पर्वतके दुर्गम बिलोंमें बडी सावधानीसे प्रवेश करना, क्योंकि उसके ऊपर के बिल बड़ी कठिनाईसे प्रवेश करनेके योग्य हैं ॥ २५ ॥ और उस पर्वतपर सूर्यके समान प्रभावाले महात्मा देवरूप महर्षिगण देवता लोगोंसे प्रार्थना किये जानेपर वहां वास करते हैं ॥ २६ ॥ क्रौंच पर्वतकी और दूसरी गुफायें, और कँगूरे, दरें व नितम्बोंको भली प्रकार ढूँढना ॥ २७ ॥ इसी पर्वत का एक शिखर वृक्षोंसे रहित कामशैल और पक्षिगणोंका आश्रय स्थान मानससरोवर है, वहांपर देवता, राक्षस और मनुष्यादि जीवगणोंके पहुँचनेकी गति नहीं है ॥ २८ ॥ इस कारणसे युक्तिपूर्वक तुम सब उस पर्वतके छोटे और बडे शृंगोंको देखना, क्रौञ्च पर्वतसे आगे चलनेपर मैनाक नाम पर्वत दिखाई देगा ॥ २९ ॥ उस पर मयदानवने आपही अपने रहनेके स्थानको बनाया

है । उस मैनाकके शृंग, प्रस्थ, और कन्दराओं में सीताजीको ढूँढना ॥३०॥ यह मैनाक पर्वत अश्वमुखी (किन्नरी) स्त्रियोंका भवन है, इस देशको नांघकर सिद्ध सेवित आश्रमोंपर पहुँचोगे ॥ ३१ ॥ वहां पर सिद्ध, वैखानस, वालखिल्य आदि तपस्वी गण वास करते हैं वह पापरहित सिद्ध व तपस्वीगणोंके वन्दन करनेके योग्य हैं ॥ ३२ ॥ इस कारण विनय सहित उन सब लोगोंसे सीताजी का समाचार पूछना उचित है । वहां पर एक वैखानस नाम सरोवर है । जिसमें सुवर्णके कमल खिल रहे हैं ॥ ३३ ॥ उस सरोवर पर प्रभात कालके सूर्यके समान रंगवाले शुभ हंसगण भ्रमण किया करते हैं और कुबेरजीकी सवारीका सार्वभौम नामक ॥३४॥ गज अपनी हथनियोंके साथ वहां विचरा करता है इस सरोवर के नांघनेपर सूर्य चन्द्र विहीन और नक्षत्र व मेघोंसे रहित नित्य

स्त्रीणामश्वमुखीनांतुनिकेतस्तत्रतत्रतु ॥ तंदेशंसमतिक्रम्यआश्रमंसिद्धसेवितम् ॥३१॥ सिद्धावैखानसायत्रवालखिल्याश्चतापसाः ॥ वंदितव्यस्ततःसिद्धास्तपसावीतकल्मषाः ॥ ३२ ॥ प्रष्टव्याचापिसीतायाप्रवृत्तिर्विनयान्वितैः ॥ हिमपुष्करसंछन्नंतत्रवैखानसंसरः ॥ ३३ ॥ तरुणादित्यसंकाशैर्हंसैर्विचरितंशुभैः ॥औपवाह्यःकुबेरस्यसार्वभौमइतिस्मृतः॥ ३४ ॥गजःपर्येतितंदेशंसदासहकरेणुभिः ॥ तत्सरःसमतिक्रम्यनष्टचंद्रदिवाकरम् ॥ अनक्षत्रगणंव्योमनिष्पयोदमनादितम् ॥ ३५ ॥ गभस्तिभिरिवार्कस्यसतुदेशःप्रकाश्यते ॥ विश्राम्यद्भिस्तपःसिद्धैर्देवकल्पैःस्वयंप्रभैः॥ ३६ ॥ तंतुदेशमतिक्रम्यशैलोदानामनिम्नगा ॥ उभयोस्तीरयोस्तस्याःकीचकानामवेणवः ॥३७॥ तेनयंतिपरंतीरंसिद्धान्प्रत्यानयंतिच॥उत्तराःकुरवस्तत्रकृतपुण्यप्रतिश्रयाः॥३८॥ततःकांचनपद्माभिःपद्मिनीभिःकृतोदकाः ॥ ३९॥नीलवैदूर्यपत्राढ्यानद्यस्तत्रसहस्रशः॥ रक्तोत्पलवनैश्चात्रमंडिताश्चहिरण्मयः ॥ ४० ॥

आकाशस्थल है ॥ ३५ ॥ वहां पर तो केवल सूर्यनारायण की किरणोंसे प्रकाश होता रहता है वहां पर अपनेही प्रभासे दीप्तिमान् देवसमान सिद्ध लोग तप किया करते हैं ॥ ३६ ॥ उस देशके आगे शैलोदा नामक नदी बहती है, उसके दोनों किनारोंपर कीचक नामक बाँस उत्पन्न होते हैं ॥ ३७ ॥ वही बांस सिद्धलोगोंको शैलोदके पार लेजाते हैं और फिर वही इस पारको ले आते हैं । इसी नदीके दूसरे पार पुण्यात्मा जनोंके निवासका स्थान उत्तरकुरु देश है ॥ ३८ ॥ उस उत्तरकुरुके रहनेवाले जन सुवर्ण, पद्मसमन्वित पुष्करिणियोंके जलसे तर्पण किया करते हैं ॥३९॥ वहांपर नीलवर्ण के जिनमें वैदूर्य मणियोंके पत्ते लग रहे ऐसे सुवर्णमय लाल कमल फूलोंसे विभूषित सहस्र २ नदियाँ विराजमान हैं ॥ ४० ॥

प्रभात कालके सूर्य के समान प्रकाशित समस्त जलाशय, महामणि, महारत्न और विचित्र सुवर्णकी केशरवाले ॥ ४१ ॥ नीलवर्णके कमलफूलोंसे व वनोंके समूहसे बडे २ मोलके मुक्तामणियोंसे और धनसे यह देश पूर्ण है ॥४२॥ वहांपर सब नदियोंके सुवर्णमय किनारे हो रहे हैं, जिससे कि बडी शोभा होती है और उनके किनारोंपर रत्नोंके तरुवर लग रहे हैं॥ ४३ ॥ उन सब अग्निसमान प्रकाशित वृक्षोंमें सुवर्णके फूल लगे हैं, उन वृक्षोंमें नित्य फल फूल लगे रहते हैं और पक्षीगण मीठी बाणीसे बोला करते हैं ॥४४॥ किसी २ वृक्षमें दिव्य रसकी सुगन्धि और समस्त कमनीय पदार्थ उत्पन्न हुआ करते हैं और जितने उत्तम २ वृक्ष हैं वह अनेक प्रकार के वसन उत्पन्न किया करते हैं ॥ ४५ ॥ किसी२ श्रेष्ठवृक्षमें भी और पुरुषोंके पहरने योग्य उत्तम गहने उत्पन्न होते

तरुणादित्यसंकाशाभांतितत्रजलाशयाः॥महार्हमणिरत्नैश्चकांचनप्रभकेसरैः॥४१॥ नीलोत्पलवनैश्चित्रैःसदेशःसर्वतोवृतः॥ निस्तुलाभिश्चमुक्ताभिर्मणिभिश्चमहाधनैः॥ ४२ ॥ उद्धूतपुलिनास्तत्रजातरूपैश्चनिम्नगाः॥सर्वरत्नमयैश्चित्रैरवगाढानगोत्तमैः॥ ४३ ॥ जातरूपमयैश्चापिहुताशनसमप्रभैः॥ नित्यपुष्पफलास्तत्रनगाःपत्ररथाकुलाः॥४४॥ दिव्यगंधरसस्पर्शाःसर्वकामान्स्रवंतिच ॥ नानाकाराणिवासांसिफलंत्यन्येनगोत्तमाः॥४५॥मुक्तावैदूर्यचित्राणिभूषणानितथैवच॥ स्त्रीणांयान्यनुरूपाणिपुरुषाणांतथैवच ॥ ४६ ॥सर्वर्तुसुखसेव्यानिफलंत्यन्येनगोत्तमाः ॥ महार्हमणिचित्राणिफलंत्यन्येनगोत्तमाः ॥४७॥ शयनानिप्रसूयंतेचित्रास्तरणवंतिच॥मनःकांतानिमाल्यानिफलंत्यत्रापरेद्रुमाः॥४८॥पानानिचमहार्हाणिभक्ष्याणिविविधानिच॥स्त्रियश्चगुणसंपन्नारूपयौवनलक्षिताः ॥४९॥ गंधर्वाःकिन्नरासिद्धानागाविद्याधरास्तथा॥रमंतेसततंतत्रनारीभिर्भास्वरप्रभाः ॥ ५० ॥ सर्वेसुकृतकर्माणःसर्वेरतिपरायणाः ॥ सर्वेकामार्थसहितावसंतिसहयोषितः ॥ ५१ ॥

हैं जो मुक्ता और वैदूर्यमणियोंसे चित्रित होते हैं ॥ ४६ ॥ किन्हीं २ वृक्षोंमें सब ऋतुओंमें पहरनेके योग्य वस्त्रही फला करते हैं और तरुवरमें बडेमोलके खिलौने फला करतेहैं ॥ ४७ ॥ बहुतसे वृक्षोंमें चित्र विचित्र विस्तरे फलाकरते हैं किन्हीं २ वृक्षों में मनोहर हार ॥ ४८ ॥ और बहुतसे वृक्षोंमें बडे मोलकी सवारियां और खाने पीनेकी वस्तुयें उपन्न होती हैं, उस स्थानमें रूप यौवन सम्पन्न गुणयुक्त स्त्रियाँ ॥ ४९ ॥ दीप्यमान गन्धर्वगण, किन्नरगण, सिद्धगण, नागगण, विद्याधरगण, अपनी २ स्त्रियोके सहित वहां विहार करते हैं ॥ ५० ॥ वह सबही पुण्यवान् सबही रतिपरायण सबही कामभोगयुक्त होते और अपनी २ स्त्रियोंके सहित वास करते हैं ॥ ५१ ॥

वहांपर समस्त जीवगणोंके रमणीक हास्यके सहित गीत, और बाजोंकी ध्वनि सदाही सुनाई आया करती है ॥ ५२ ॥ वहांपर कोईभी असन्तुष्ट नहीं, किसीको किसी प्यारी वस्तुका वियोग नहीं । वहांपर दिन २ मनोहर गुणोंकी भरती हुआ करती है ॥ ५३ ॥ जब उस पर्वतसे तुम आगे चलोगे तो उत्तर समुद्र आवेगा वहांपर सुवर्णमय सोम नामक एक महा पर्वत विद्यमान है ॥ ५४ ॥ यद्यपि वहांपर सूर्यका प्रकाश नहीं है तथापि सोम पर्वतकी प्रभासे ही वहां ऐसा प्रकाश रहता है कि, जैसा सूर्ययुक्त देशमें रहता है ॥ ५५ ॥ वहांपर विश्वात्मा एकादश रुद्रात्मक महादेवजी और देवेश्वर ब्रह्माजी सब ब्रह्मर्षिगणोंके साथ वास करते हैं ॥ ५६ ॥ कुरुके उत्तर देशमें तुमलोग कदापि मत जाना, क्योंकि वहांपर और कोई जीवधारी

गीतवादित्रनिर्घोषःसोत्कृष्टहसितस्वरैः ॥ श्रूयतेसततंतत्रसर्वभूतमनोरमः ॥ ५२ ॥ तत्रनामुदितःकश्चिन्नात्रकश्चिदसत्प्रियः ॥ अहन्यहनि वर्धतेगुणास्तत्रमनोरमाः ॥ ५३ ॥ तमतिक्रम्यशैलेन्द्रमुत्तरःपयसांनिधिः ॥ तत्रसोमगिरिर्नाममध्येहेममयोमहान् ॥ ५४ ॥ सतुदेशोवि सूर्योऽपितस्यभासाप्रकाशते ॥ सूर्यलक्ष्याभिविज्ञेयस्तपतेवविवस्वता ॥ ५५ ॥ भगवांस्तत्रविश्वात्माशंभुरेकादशात्मकः ॥ ब्रह्मावस तिदेवेशोब्रह्मर्षिपरिवारितः ॥५६॥ नकथंचनगंतव्यंकुरूणामुत्तरेणवः ॥ अन्येषामपिभूतानांनानुक्रामतिवैगतिः ॥ ५७ ॥ सहिसोमगिरिर्नाम देवानामपिदुर्गमः ॥ तमालोक्यततःक्षिप्रमुपावर्तितुमर्हथ ॥ ५८ ॥ एतावद्वानरैःशक्यंगंतुंवानरपुंगवाः ॥ अभास्करममर्यादंनजानीमस्त तःपरम् ॥ ५९ ॥ सर्वमेतद्विचेतव्यंयन्मयापरिकीर्तितम् ॥ यदन्यदपिनोक्तंचतत्रापिक्रियतांमतिः ॥ ६० ॥ ततःकृतंदशरथेर्महत्प्रियंम हत्प्रियंचापिततोममप्रियम् ॥ कृतंभविष्यत्यनिलानलोपमाविदेहजादर्शनजेनकर्मणा ॥ ६१ ॥

नहीं जा सकता ॥ ५७ ॥ वह सोमगिरी नामक पर्वत देवतालोगोंकेभी जानेके योग्य नहीं हैं तुम लोग केवल उसका दर्शनही करके लौट आना ॥५८॥ हे वानरश्रेष्ठगण ! वानरलोग यहीं तक जा सकते हैं इसके आगे सीमा रहित और सूर्यरहित स्थानोंको हम नहीं जानते ॥ ५९ ॥ हमने जो स्थान बताये उन सबही स्थानोंको तुम लोग ढूंढना, और जो स्थान कि, हमारे बतलानेसे रह गये हों, उन सबको अपनी बुद्धिके अनुसार तुमलोग खोजना ॥ ६० ॥ ऐसा करनेसे श्रीरामचन्द्रजीका और हमारा अतिप्रियकार्य हो जायगा । हे अनिलतुल्य ! और अनल तुल्य वानरगण ! उन जनककुमारीका

पता लगानेसे हम तुम सबही निःसन्देह कृतकृत्य होजायँगे॥६१॥फिर कृतार्थ हो हमसे पूजित और शत्रुरहित होसब मनोहर गुणोंसे विभूषित और भूतगणोंसे आश्रय स्वरूप हो अपनी प्रियाके सहित सुख स्वच्छन्दतासे तुमलोग घूमना॥६२॥इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा०आदि०किष्किन्धाकांडे भाषायां त्रिचत्वारिंशः सर्गः॥४३॥ यद्यपि सब वानरोंको सुग्रीवजीने सब ओरको जानेके लिये आज्ञा दी तथापि सुग्रीवजीने निश्चय कियाथा कि, कार्यकी सिद्धि हनुमान्जीसेही होगी इस कारणकपिश्रेष्ठ हनुमानजीसे॥१॥वानरनाथ सुग्रीवजी परमप्रीतिसे बोले क्योंकि यह हनुमानजी पवनके पुत्र और बडे पराक्रमीथे॥२॥हे वानरश्रेष्ठ ! भूमिमें वा पक्षियोंके उडनेके स्थान अन्तरिक्षमें या मेघोंके चलनेके स्थान अम्बरमें; अथवा स्वर्गमें किंवा सलिलमें, कहींभी तुम्हारी गति नहीं रुक सकती ॥ ३ ॥

ततःकृतार्थाःसहिताःसबांधवामयार्चिताःसर्वगुणैर्मनोरमैः ॥ चरिष्यथोर्वींप्रतिशांतशात्रवाःसहप्रियाभूतधराःप्लवंगमाः ॥ ६२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० किष्किंधाकांडे त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४३ ॥ विशेषेणतुसुग्रीवोहनूमत्यर्थमुक्तवान् ॥ सहितस्मिन्हरिश्रेष्ठेनिश्चितार्थोऽर्थसाधने ॥ १ ॥ अब्रवीच्चहनूमंतंविक्रांतमनिलात्मजम् ॥ सुग्रीवःपरमप्रीतःप्रभुःसर्ववनौकसाम् ॥ २ ॥ नभूमौनांतरिक्षेवानाम्बरेनामरालये ॥ नाप्सुवागतिसंगंतेपश्यामिहरिपुंगव ॥ ३ ॥ सासुराःसहगंधर्वाःसनागनरदेवताः ॥ विदिताःसर्वलोकास्तेससागरधराधराः ॥ ४ ॥ गतिवेगश्चतेजश्चलाघवंचमहाकपे ॥ पितुस्तेसदृशंवीरमारुतस्यमहौजसः ॥ ५ ॥ तेजसावापितेभूतंनसमंभुविविद्यते ॥ तद्यथालभ्यतेसीतातत्त्वमेवानुचिंतय ॥ ६ ॥ त्वय्येवहनुमन्नास्तिबलंबुद्धिःपराक्रमः ॥ देशकालानुवृत्तिश्चनयश्चनयपंडित ॥ ७ ॥ ततःकार्यसमासंगमवगम्यहनूमति ॥ विदित्वाहनुमंतंचचिंतयामासराघवः ॥८॥

असुर गन्धर्व, नाग,नर और देवताओंके लोक समुद्र, पृथ्वी और पातालादि समस्त लोकोंको तुम जानते हो ॥ ४ ॥ हे महावीर ! क्या गतिमें, क्या तेजमें, क्या शीघ्रतामें; सबमें तुम अपनेपिता तेजस्वी पवनकेही समान हो ॥ ५ ॥ और तुम्हारे समान तेजशाली जीवतीनों लोकमें नहीं है इस कारण जिससे सीताजीका पता लगजाय ऐसा यत्न करनेमें तुमको विशेष यत्न करना उचित है ॥६॥ हे नीतिपंडित हनुमन् ! तुममेंही बल,बुद्धि पराक्रम देश और कालज्ञान और नीति यह समस्तही विद्यमान हैं ॥ ७ ॥ तब श्रीरामचन्द्रजी हनुमान्जीसेही कार्यकी सिद्धि विचार करके,और हनुमानजीके

बल विक्रमकी और सीताजीके उद्धार करनेकी गुरुताको मनही मनमें विचार करने लगे ॥ ८ ॥ श्रीरामचन्द्रजीने विचारा कि, कपिराज सुग्रीवजी यह समझे हुये हैं कि, हनुमानूजीसेही कार्यकी सिद्धि होगी और हमाराभी अधिकतर यही विचार है कि, इनसेही कार्यकी सिद्धि होगी ॥ ९ ॥ हनुमानूजी अपने कर्मोंसे प्रसिद्ध हुये हैं और राजाभी इनके ऊपर कृपा करता है, यदि वह वीरकेशरी सीताजीके ढूँढनेको जायँगे तो अवश्यही कार्यकी सिद्धि होगी ॥१०॥ महातेजस्वी रामचन्द्रजी हनुमानजीको कार्यका साधन करनेमें श्रेष्ठ विचार करके कृतार्थके समान सन्तुष्ट होगये, हर्षके कारण उनकी सब इन्द्रियां प्रफुल्लित होगई ॥ ११ ॥ उसके पीछे परवीरघाती श्रीरामचन्द्रजीने प्रसन्न होकर एक अँगूठी जिसपर उनका नाम खुदा हुआ था मीताजीको निशानी देनेके लिये हनुमानजीको अर्पण करदी ॥ १२ ॥ हे वानरश्रेष्ठ! इस निशानीसे जानकीजी तुमको निश्चित हमारे निकटसे आया हुआ झटपट जान जायँगी और विश्वाससे

सर्वथानिश्चितार्थोऽहंहनूमतिहरीश्वरः ॥ निश्चितार्थतरश्चापिहनूमान्कार्यसाधने ॥९॥ तदेवप्रस्थितस्यास्यपरिज्ञातस्यकर्मभिः ॥ भर्त्रापरिगृहीतस्यध्रुवःकार्यफलोदयः ॥१०॥ तंसमीक्ष्यमहातेजाव्यवसायोत्तरंहरिम् ॥ कृतार्थइवसंहृष्टःप्रहृष्टेंद्रियमानसः ॥११॥ ददौतस्यततःप्रीतःस्वनामांकोपशोभितम् ॥ अंगुलीयमभिज्ञानंराजपुत्र्याःपरंतप ॥ १२ ॥ अनेनत्वांहरिश्रेष्ठचिह्नेनजनकात्मजा ॥ मत्सकाशादनुप्राप्तमनुद्विग्नाऽनुपश्यति ॥ १३ ॥ व्यवसायश्चतेवीरसत्त्वयुक्तश्चविक्रमः ॥ सुग्रीवस्यचसंदेशःसिद्धिंकथयतीवमे ॥१४॥ सतद्गृह्यहरिश्रेष्ठःकृत्वामूर्ध्निकृतांजलिः ॥ वंदित्वाचरणौचैवप्रस्थितःप्लवगर्षभः ॥१५॥ सतत्प्रकर्षन्हरिणांमहद्बलंबभूववीरःपवनात्मजःकपिः ॥ गताम्बुदेव्योम्निविशुद्धमंडलःशशीवनक्षत्रगणोपशोभितः ॥१६॥ अतिबलबलमाश्रितस्तवाहंहरिवरविक्रमविक्रमैरनल्पैः ॥ पवनसुतयथाऽधिगम्यतेजसाजनकसुताहनुमंस्तथाकुरुष्व ॥ १७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आदिकाव्ये च० सा० किष्किंधाकांडे चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥

तुमको देखेंगी ॥ १३ ॥ हे वीरेन्द्र ! तुम्हारी दृढ चित्तता और अनुपम विक्रम और सुग्रीवजीका आदेश इन सबसेही हमको अपने कार्यकी सिद्ध जान पडती है ॥१४॥ यह कपिश्रेष्ठ हनुमानूजी उस अँगूठीको माथे चढा हाथ जोडकर श्रीरामचन्द्रजीके दोनों चरणोंकी वन्दना करके गमन करनेको तैयार हुये ॥ १५ ॥ पवनपुत्र कपिवीर,वह बडीभारी सेना संग लेकर मेघरहित विमल आकाशमें तारागणोंसे शोभित विशुद्ध मण्डल चन्द्रमाके समान शोभा पाने लगे ॥ १६ ॥ हे सिंहविक्रम ! अतिबलशालिन् पवनपुत्र ! हमने तुम्हारेही बलका आश्रय किया है, तुम इस समय विधान विपुल विक्रमसे करो, कि जिससे जानकीजी प्राप्त होजायँ ॥ १७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्किं० भाषायां चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥

अनन्तर कपिराज सुग्रीवजी सब वानरोंको पुकारकर उनसे श्रीरामचन्द्रजीके कार्यकी सिद्धि करनेके लिये कहने लगे ॥ १ ॥ हे वानरगण ! तुम सबही हमारी अति उग्र आज्ञाको जानकर रावण और जानकीजीको खोजो वानरश्रेष्ठ यह अपने स्वामीकी उग्र आज्ञा सुनकर ॥ २ ॥ टीडीके समान पृथ्वीको छायकर समस्त वानरगण गमनकरने लगे, श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीके सहित उस प्रस्रवणपर्वतपर बसे ॥ ३ ॥ सीताजीका समाचार जाननेमें एक महीनेकी अवधि निश्चय कर रामचन्द्रजी वहां बसे,फिर हिमाचलसे युक्त रमणीक उत्तर दिशाको ॥ ४ ॥ कपिश्रेष्ठ शतबलि अपनी सेनाको लेकर गया और विनत नामक यूथनाथ उत्तर दिशाको चला ॥ ५ ॥ और तार अंगदादि सहित पवनपुत्र हनुमानूजी अगस्त्यजीसे सेवित दक्षिण दिशाको गये

एवमेतद्विचेतव्यंभवद्भिर्वानरोत्तमैः ॥ तदुग्रशासनं भर्तुर्विज्ञायहरिपुंगवाः॥ २ ॥ शलभाइवसंछाद्यमेदिनींसंप्रतस्थिरे ॥ रामःप्रस्रवणेतस्मिन्न्यवसत्सहलक्ष्मणः ॥ ३ ॥ प्रतीक्षमाणस्तंमासंसी ताधिगमनेकृतः ॥ उत्तरांतुदिशंरम्यांगिरिराजसमावृताम् ॥ ४ ॥ प्रतस्थेसहसावीरोहरिःशतबलिस्तदा ॥ पूर्वांदिशंप्रतिययौविनतोह रियूथपः ॥ ५ ॥ तारांगदादिसहितःप्लवगःपवनात्मजः ॥ अगस्त्याचरितामाशांदक्षिणांहरियूथपः ॥ ६ ॥ पश्चिमांचदिशंघोरांसुषेणः प्लवगेश्वरः ॥ प्रतस्थेहरिशार्दूलोदिशंवरुणपालिताम् ॥ ७ ॥ ततःसर्वादिशोराजाचोदयित्वायथातथम् ॥ कपिसेनापतिर्वीरोमुमोदसु खितःसुखम् ॥ ८ ॥ एवंसचोदिताःसर्वेराज्ञावानरयूथपाः ॥ स्वांस्वांदिशमभिप्रेत्यत्वरिताःसंप्रतस्थिरे ॥ ९ ॥ नदंतश्चोन्नदंतश्चगर्जतश्च प्लवंगमाः ॥ क्ष्वेडंतोधावमानाश्चविनदंतोमहाबलाः ॥ १० ॥ एवंसंचोदिताःसर्वेराज्ञावानरयूथपाः ॥ आनयिष्यामहेसीतांहनिष्यामश्च रावणम् ॥ ११ ॥ अहमेकोवधिष्यामिप्राप्तरावणमाहवे ॥ ततश्चोन्मथ्यसहसाहरिष्येजनकात्मजाम् ॥ १२ ॥

॥ ६ ॥ और वानरशार्दूल सुषेण वरुणजीसे पाली जातीहुई और पश्चिम दिशाकी ओर सिधारा ॥ ७ ॥ तब सब ओरको यथानुरूप वानरोंकी सेनाको भेजकर कपिनाथ राजा सुग्रीवजी हर्षित चित्त हुये ॥ ८ ॥ इसप्रकार भेजे जाकर सकल वानरयूथप अपनी २ बताई हुई दिशाओंको शीघ्रतासे गमन करते हुये ॥ ९ ॥ महाबलवान् वानर दल नाद उच्चनाद, गर्जन और क्रोधपूर्वक अनेक प्रकारके शब्द करते हुये दौडे ॥ १० ॥ वानरराजसुग्रीवजी करके भेजेहुये सब वानर हाथ जोडकर " हम रावणको मार डालेंगे" हम जानकीजीको ले आवेंगे ॥ ११ ॥ कोई २ बोले कि हम इकलेही रणस्थलमें

रावणको पाय सहायसहित उसको मार जानकीजीको ले आवेंगे ॥ १२ ॥ कोई बोले कि, आप धीरज धरें यदि जानकीजी पातालमें भी हों तो भी श्रमसे कम्पायमान होती हुई कामिनीको "स्थिर होओ" इस प्रकारसे समझा दृढता सहित हम अकेलेही उनको वहांसे ले आवेंगे ॥ १३ ॥ हम वृक्षोंको उखाड डालेंगे; हमपर्वतोंको तोड फोड डालेंगे, हम पृथ्वीको विदीर्ण कर डालेंगे, हम समुद्रको खलबला डालेंगे ॥ १४ ॥ हम एक छलांगमें एक योजन, हम एक शतके भी अधिक योजन एक छलांगमें कूद जायँगे॥ १५ ॥ हमारी गति पृथ्वीमें, समुद्रमें, पर्वतोंमें वनोंमें पातालमें कहीं भी नहीं रुक सकती,हम सबही स्थानोंमें जा सकते हैं ॥ १६ ॥ इसप्रकार उन वानरराज सुग्रीवजीके निकट एक २ वानर अपने बलके दर्पसे ऐंठते अकडते ऐसा कहने लगे ॥१७॥

वेपमानांश्रमेणाद्यभवद्भिःस्थीयतामिति ॥एकएवाहरिष्यामिपातालादपिजानकीम् ॥ १३ ॥ विधमिष्याम्यहंवृक्षान्दारयिष्याम्यहंगिरीन्॥ धरणींदारयिष्यामिक्षोभयिष्यामिसागरान् ॥ १४ ॥ अहंयोजनसंख्यायाःप्लवेयंनात्रसंशयः ॥ शतयोजनसंख्यायाःशतंसमधिकंह्यहम् ॥ १५ ॥ भूतलेसागरेवापिशैलेषुचवनेषुच ॥ पातालस्यापिवामध्येनममाच्छिद्यतेगतिः ॥१६॥ इत्येकैकस्तदातत्रवानराबलदर्पिताः ॥ ऊचुश्ववचनंतस्यहरिराजस्यसन्निधौ ॥ १७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० किष्किंधाकांडे पंचचत्वारिंशः सर्गः॥४५॥ गतेषुवानरेंद्रेषुरामःसुग्रीवमब्रवीत् ॥ कथंभवान्विजानीतेसर्वंवैमंडलंभुवः ॥ १ ॥ सुग्रीवश्चततोराममुवाचप्रणतात्मवान् ॥ श्रूयतांसर्वमाख्यास्येविस्तरेणवचोमम ॥ २ ॥ यदातुदुंदुभिंनामदानवंमहिषाकृतिम् ॥ प्रतिकालयतेवालीमलयंप्रतिपर्वतम् ॥ ३ ॥ तदाविवेशमहिषोमलयस्यगुहांप्रति ॥ विवेशवालीतत्रापिमलयंतज्जिघांसया ॥ ४॥ ततोऽहंतत्रनिक्षिप्तोगुहाद्वारिविनीतवत् ॥ नचनिष्क्रामतेवालीतदासंवत्सरेगते ॥ ५ ॥ ततःक्षतजवेगेनआपुपूरेतदाबिलम् ॥ तदहंविस्मितोदृष्ट्वाभ्रातुःशोकविषार्दितः ॥ ६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा०आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायां पंचचत्वारिंशः सर्गः ॥४५॥ जब चारोंओरको सब वानरोंके झुण्ड चले गये तब श्रीरामचन्द्रजीने सुग्रीवसे कहा कि तुमने समस्त पृथ्वीमण्डलका समाचार किस प्रकारसे जाना ? ॥ १ ॥ जब श्रीरामचन्द्रजीने ऐसा कहा तो सुग्रीवजी शिर नवा श्रीरामचन्द्रजीसे बोले कि; आप श्रवणकरें हम सब विस्तारसहित कहते हैं ॥ २ ॥ जब भैंसेके समान आकारवाले दुन्दुभी नामक दानवके पीछे धावमान होकर वाली मलयाचलपर्यन्त चलागया ॥ ३ ॥ जब वह महिष मलयाचलकी गुफामें प्रवेश करगया तब वाली भी उसके वध करनेकी वासनासे उस पर्वतकी गुफामें पैठा ॥ ४ ॥ हम उस गुफाके द्वारपर विनीत हो टिकेरहे और एक संवत् बीतगया तोभी वाली नहीं लौटा ॥ ५ ॥ फिर रुधिरकी धारासे वह

बिल परिपूर्ण होगया उसको देख हम विस्मित और भाईके शोकसे जर्जरित होगये ॥ ६ ॥ फिर हमने बुद्धिरहित होकर स्थिर किया कि, बड़ा भाई वाली मारागया ऐसा समझकर पर्वतके समान एक खंड बिलके द्वारपर लगाय उसको बंद किया ॥७॥ हमने विचारा कि महिष इसमेंसे निकलनेका उद्योग करेगा तो आपहीइससे दबकर मर जायगा ऐसा विचार, और भ्राता वालीके जीवनसे निराश हो हम किष्किन्धाको चले आये ॥ ८ ॥ नगरमें आय तारा और रुमा व बडे राज्यको पाय बन्धु बान्धवोंके सहित हम सुखसे वास करने लगे ॥ ९ ॥ फिर वानरश्रेष्ठ वाली उस दानवको मारकर नगरमें आया तब हमने भयसे भीतहो और गौरवके हेतु फिर उसको राज्य देदिया ॥ १० ॥ दुष्टात्मा वाली व्यथित होहमारे मार डालनेकी इच्छा करता हुआ हमारे पीछे दौडा

अथाहंगतबुद्धिस्तुसुव्यक्तंनिहतोगुरुः॥शिलापर्वतसंकाशाबिलद्वारिमयाकृताम् ॥७॥ अशक्नुवन्निष्क्रमितुंमहिषोविनशिष्यति॥ ततोऽहमागां किष्किंधांनिराशस्तस्यजीविते ॥ ८ ॥ राज्यंचसुमहत्प्राप्यतारांचरुमयासह ॥ मित्रैश्चसहितस्तस्यवसामिविगतज्वरः ॥ ९ ॥ आजगामततोवालीहत्वातंवानरर्षभः ॥ ततोऽहमददांराज्यंगौरवाद्भययंत्रितः ॥ १० ॥ समांजिघांसुर्दुष्टात्मावालीप्रव्यथितेंद्रियः ॥ परिकालयतेवालीधावंतंसचिवैःसह ॥११॥ ततोऽहंवालिनातेनसोऽनुबद्धःप्रधावितः॥ नदीश्चविविधाःपश्यन्वनानिनगराणिच ॥१२॥ आदर्शतलसंकाशाततोवैपृथिवीमया ॥ अलातचक्रप्रतिमादृष्टागोष्पदवत्कृता ॥१३॥ पूर्वांदिशंततोगत्वापश्यामिविविधान्द्रुमान् ॥ पर्वतान्सदरीन्रम्यान्सरांसिविविधानिच ॥१४॥ उदयंतत्रपश्यामिपर्वतंधातुमंडितम् ॥ क्षीरोदंसागरंचैवनित्यमप्सरसालयम् ॥ १५ ॥ परिकाल्यमानस्तुतदावालिनाभिद्रुतोह्यहम् ॥ पुनरावृत्यसहसाप्रस्थितोऽहंतदाविभो ॥ १६ ॥ दिशस्तस्यास्ततोभूयःप्रस्थितोदक्षिणांदिशम् ॥ विंध्यपादपसंकीर्णांचंदनद्रुमशोभिताम् ॥ १७ ॥ द्रुमशैलांतरेपश्यभूयोदक्षिणतोपराम् ॥ अपरांचदिशंप्राप्तोवालिनसमभिद्रुतः ॥ १८ ॥

तब हम भी अपने मंत्रियोंके सहित भागने लगे॥११॥बरन् हमारे सबही साथी वालीके भयसे भागे हमने भागते२ मार्गमें अनेक भांतिकी नदियें वन नगर इत्यादि देखे ॥ १२ ॥ इसी प्रकारसे सब भूमि जिसका आकार अलातचक्रके समान है, हमने गोपदके गढेके समान अवलोकन करली ॥ १३ ॥ फिर पूर्व दिशामें जाकर विविध भांतिके वृक्ष गुफा सहित पर्वत औरअनेक प्रकारके रमणीक सरोवर देखे ॥ १४ ॥ वहांपर धातुमंडित पर्वत और नित्य अप्सराओंके रहनेका स्थान क्षीरसमुद्रभी देखा ॥१५॥ वहां भी हमारे पीछे२वाली आया तब वहांसे हम भागते २ फिर उदयाचलपर्वतपर आये ॥१६॥ पूर्व दिशासे हम विन्ध्याचल और विविध वृक्षोंसे युक्त चन्दन वृक्ष परिशोभित दक्षिण दिशाको भागे ॥ १७ ॥ वहांपरभी दूसरे पर्वतपर हमने अपने पीछे वालिको

भागते हुए देखातब हम वहांसेभी भागे और फिर पश्चिम दिशाको आये ॥ १८ ॥ पश्चिम दिशामें विविध देश, अनेक पर्वत और गिरिश्रेष्ठ अस्ताचलको देखा, वहांभी बालीके आनेका समाचार पाय फिर उत्तर दिशाको भागे ॥ १९ ॥ उत्तर दिशामें पहुँच हिमवान्, मेरु और उत्तर समुद्रतक हम चले गये परन्तु वालिके भयसे हमको कहीं शरण नहीं मिली ॥ २० ॥ तब बुद्धिमान् हनुमान्जीने हमसे कहाकि, हे राजन् ! इस समय हमको याद आया कि यह वानरराज वाली ॥ २१ ॥ मातंगमुनिके शापसे शापित जब उस आश्रम मंडलमें प्रवेश करेगा तब उसके मस्तकके शतखंड हो जायँगे ॥ २२ ॥ वहांपर वास करनेसे हम सब बेखटके सुखसे वास कर सकेंगे, हे राम! जबहनुमान्जीने ऐसा कहा तो हम ऋष्यमूक पर्वत पर आये ॥ २३ ॥ वहांपर वालि मतंग-

सपश्यन्विविधान्देशानस्तंचगिरिसत्तमम् ॥ प्राप्यचास्तगिरिश्रेष्ठमुत्तरंसंप्रधावितः ॥ १९ ॥ हिमवंतंचमेरुंचसमुद्रंचतथोत्तरम् ॥ यदानविंदे शरणंवालिनासमभिद्रुतः ॥ २० ॥ ततोमांबुद्धिसंपन्नोहनुमान्वाक्यमब्रवीत् ॥ इदानींमेस्मृतंराजन्यथवालीहरीश्वरः ॥२१॥ मतंगेनतदाश प्तोह्यस्मिन्नाश्रममंडले ॥ प्रविशेद्यदिवावालीमूर्धास्यशतधाभवेत् ॥२२॥ तत्रवासःसुखोऽस्माकंनिरुद्विग्नोभविष्यति ॥ तत्रपर्वतमासाद्यऋष्य मूकंनृपात्मज ॥ २३ ॥ नविवेशतदावालीमतंगस्यभयात्तदा ॥ एवंमयातदाराजन्प्रत्यक्षमुपलक्षितम् ॥ पृथिवीमंडलंसर्वंगुहामस्म्यागत स्ततः ॥ २४ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० च० सा० किष्किंधाकांडे षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥४६॥ दर्शनार्थंतुवैदेह्याःसर्वतःकपिकुंजराः ॥ व्यादिष्टाःकपिराजेनयथोक्तंजग्मुरंजसा ॥ १ ॥ तेसरांसिसरित्कक्षानाकाशंनगराणिच ॥ नदीदुर्गांस्तथादेशान्विचिन्वंतिसमंततः ॥ २ ॥ सुग्रीवेणसमाख्याताःसर्वेवानरयूथपाः ॥ तत्रदेशान्विचिन्वंतिसशैलवनकाननान् ॥ ३ ॥ विचित्यदिवसंसर्वेसीताधिगमनेधृताः ॥ समायां तिस्मिमेदिन्यांनिशाकालेषुवानराः ॥ ४ ॥ सर्वर्तुकांश्चदेशेषुवानराःसफलान्द्रुमान् ॥ आसाद्यरजनींशय्यांचक्रुःसर्वेष्वहस्सुते ॥ ५ ॥

जीके शापभयसे भीत हो नहीं आया । हे राजन्! इस प्रकारसे हम समस्त पृथ्वीमण्डलका दर्शन करके इस गुफामें आये थे ॥ २४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्वा० वा० आदि० किष्कि० भाषायां षट्चत्वारिंशःसर्गः ॥ ४६ ॥ जानकीजीके ढूंढनेके निमित्त आज्ञा पायकर सब कपिश्रेष्ठ शीघ्रतासे अपने लिये नियत की हुई दिशाको गये ॥ १ ॥ वह लोग सरोवर, नदीयें तृणस्थान (काछा) आकाश, नगर, सरित्, दुर्गम स्थान और सब देश खोजने लगे ॥ २ ॥ समस्त वानर गण सुग्रीवजीके बताये हुये पर्वत वन कानन सहित सब देशोंको ढूंढने लगे ॥ ३ ॥ वह दिनके समय सीताजीके ढूंढनेको आकाशमार्गमें रह कर रात्रिके समय पृथ्वीपरआजाते थे ॥ ४ ॥ वह सब वानर दिनके समय देशोंमें समस्त ऋतुओं फलपुष्पशाली वृक्षोंको प्राप्त होकर रात्रिमें फलादि खाते

और सोते थे ॥ ५ ॥ जिस दिवससे गमनकिया था उस दिवससे प्रथम लगाकर एक मास बीतने पर प्रथम दिनही निराशापूर्वक आय २ कर सुग्रीवजीके निकट एकत्र होने लगे ॥ ६ ॥ महावीर विनत अपनेमंत्रियोंके सहित पूर्वकी ओर सीताजीको ढूंढ उनको न देख पाकर लौट आया ॥ ७ ॥ महाकपि शतवालि समस्त उत्तर दिशाको छान बीनकर अपनी सब सेना सहित लौटआया ॥ ८ ॥ सुषेण एक मास बीत जाने पर अपने सब वानरोंके सहित सीताजीको ढूंढकर सुग्रीवजीके निकट उपस्थित हुआ ॥ ९ ॥ उस प्रस्रवण गिरिपर लक्ष्मण सहित रामचन्द्रको प्रणाम कर सुग्रीवजीसे बोला ॥ १०॥ हमने समस्त पर्वत गहन-वन, सागर; नदी, जनपद,ग्राम, पुरादि ढूंढे ॥११॥ आपके बताये हुए सब गुहादि स्थान ढूँढे और अनेक भांतिके कुंजरभी बार २ खोजे॥१२॥उनमें

तदहः प्रथमंकृत्वामासेप्रस्रवणंगताः॥कपिराजेनसंगम्यनिराशाः कपिकुंजराः ॥ ६ ॥ विजित्यतुदिशंपूर्वांयथोक्तांसचिवैःसह ॥ अदृष्ट्वाविनतः सीतामाजगाममहाबलः॥७॥ दिशमप्युत्तरांसर्वांविविच्यसमहाकपिः ॥ आगतः सहसैन्येनभीतःशतबलिस्तदा ॥८॥ सुषेणःपश्चिमामाशां विविच्यसहवानरैः ॥ समेत्यमासेपूर्णेतुसुग्रीवमुपचक्रमे ॥ ९ ॥ तंप्रस्रवणपृष्ठस्थंसमासाद्याभिवाद्यच ॥ आसीनंसहरामेणसुग्रीवमिदमब्रुवन् ॥१०॥ विचिताःपर्वताःसर्वेवनानिगहनानिच ॥ निम्नगाःसागरांताश्चसर्वेजनपदाश्चये ॥११॥ गुहाश्चविचिताःसर्वायाश्चतेपरिकीर्तिताः॥ विचिताश्चमहागुल्मालताविततसंतताः॥१२॥गहनेषुचदेशेषुदुर्गेषुविषमेषुच॥सत्त्वान्यतिप्रमाणानिविचितानिहतानिच॥येचैवगहनादेशावि चितास्तेपुनःपुनः॥१३॥ उदारसत्त्वाभिजनोहनूमान्समैथिलींज्ञास्यतिवानरेंद्र॥दिशंतुयामेवगतातुसीतातामास्थितोवायुसुतोहनूमान् ॥१४॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० किष्किंधाकांडेसप्तचत्वारिंशःसर्गः॥४७॥सहताराङ्गदाभ्यांतुसहसाहनुमान्कपिः॥ सुग्रीवेणयथोद्दिष्टंगंतुंदेशंप्रचक्रमे ॥ १ ॥ सतुदूरमुपागम्यसर्वैस्तैःकपिसत्तमैः ॥ ततोविचित्यविंध्यस्यगुहाश्चगहनानिच ॥ २ ॥

जो गहन देश थे उनको वारंवार ढूंढा जो दुर्गम गहन विषम स्थान थे बडे २ जीवोंके रहनेके स्थानोंमें ढूंढा और उन्हें मारा; जो रुरु देश हैं उन्हें बार २ देखा ॥ १३ ॥ हे वानरेन्द्र ! महावीर्यवान् और महाकुलमें उत्पन्न हुए हनुमानूजी सीताको अवश्यही जानसकेंगे, क्योंकि सीताजी जिस दिशाको गई हैं पवन कुमार हनुमानूजी उसी दक्षिण दिशामें गये हैं ॥ १४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्कि० भाषायां सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४७ ॥ इधर कपिवर हनुमानूजी तार और अंगदजीके सहित सुग्रीवजीकी बताई हुई दिशामें गमन करने लगे ॥ १ ॥ वह समस्त कपिगणोंके सहित दूरगमन

करके विन्ध्याचलकी सघन गुहादि खोजने लगे ॥२॥ पर्वत और उनके आगे बहती हुई नदी दुर्गमस्थान सरोवर अनेक तरुवर सघनवृक्षोंसे युक्त विविधपर्वत ॥ ३ ॥ भलीभांति सब वानरोंने दक्षिणदिशामें ढूँढा परन्तु कहीं जनककुमारी सीताजीको न पाया॥४॥वह वानर कंद मूल फलादि भक्षण करते जहां तहां उछल कर निर्जल, निर्जन शून्य गहन भयंकर दर्शन ॥ ५ ॥ गहन वन और भी वैसेही दूसरे अनेक स्थान ढूँढकर बहुत पीडित हुए क्यों कि, गुहा और सघन वह देश खोज करना अत्यन्त दुष्कर है ॥६॥ निडर वानरवीर यूथपोंने वह देश परित्याग पूर्वक और एक बडे देशमें प्रवेशकिया जहां कोई नही जासकता था वहां यह निडर ढूंढने लगे ॥७॥ उस स्थानकेवृक्षोंमें फल फूल या पत्ते कुछ भी नहीं थे नदियोंमें जल नहीं था, और कंदभी नहीं

पर्वताग्रनदीदुर्गान्सरांसिविपुलद्रुमान् ॥ वृक्षषंडांश्चविविधान्पर्वतान्वनपादपान् ॥ ३ ॥ अन्वेषमाणास्तेसर्वेवानराःसर्वतोदिशम् ॥ नसीतांद दृशुर्वीरामैथिलींजनकात्मजाम् ॥ ४ ॥ तेभक्षयंतोमूलानिफलानिविविधान्यपि ॥ निर्जलंनिर्जनंशून्यंगहनंघोरदर्शनम् ॥ ५ ॥ तादृशान्यप्य रण्यानिविचित्यभृशपीडिताः ॥ सदेशश्चदुरन्वेष्योगुहागहनवान्महान् ॥६॥ त्यक्त्वातुतंततोदेशंसर्वेवैहरियूथपाः ॥ देशमन्यंदुराधर्षंविविशु श्चाकुतोभयाः ॥ ७ ॥ यत्रवंध्यफलावृक्षाविपुष्पाःपर्णवर्जिताः ॥ निस्तोयाःसरितोयत्रमूलंयत्रसुदुर्लभम् ॥ ८ ॥ नसंतिमहिषायत्रनमृगान चहस्तिनः ॥ शार्दूलाःपक्षिणोवापियेचान्येवनगोचराः ॥ ९ ॥ नचात्रवृक्षानौषध्योनवल्ल्योनापिवीरुधः ॥ स्निग्धपत्राःस्थलेयत्रपद्मिन्यःफु ल्लपंकजाः ॥ १० ॥ प्रेक्षणीयाःसुगंधाश्चभ्रमरैश्चविवर्जिताः ॥ कंदुर्नाममहाभागःसत्यवादीतपोधनः ॥ ११ ॥ महर्षिः परमामर्षीनियमैर्दुष्प्र धर्षणः ॥ तस्यतस्मिन्वनेपुत्रोबालकोदशवार्षिकः ॥ १२ ॥ प्रनष्टोजीवितांतायक्रुद्धस्तेनमहामुनिः ॥ तेनधर्मात्मनाशप्तंकृत्स्नंतत्रमहद्वनम् ॥ १३ ॥ अशरण्यंदुराधर्षंमृगपक्षिविवर्जितम् ॥ तस्यतेकाननांस्तांस्तुगिरीणांकंदराणिच ॥ १४ ॥

पाया जाता ॥ ८ ॥ वहाँपर भैंस नहीं फिरतेथे, मृग नहीं चरतेथे, वरन् हाथी, सिंह, पक्षी इत्यादि औरभी कोई बनैले जीव नहींथे ॥ ९ ॥ वहांपर वृक्ष, औषधि बेलें, वीरुध वहांपर स्थलोंमें दर्शनीय स्निग्ध पत्रवाले खिले कमलफूल ॥ १० ॥ सुगन्धियुक्त भ्रमरगणोंसे शोभित तडागभी नहीं दिखलाई देते थे उस स्थानमें कन्दु नामक महाभाग सत्यवादी तपोधन॥ ११॥क्रोधको जीतेहुए, दुर्द्धर्ष नियमावलम्बी महर्षि रहतेथे । उनका इस वनमें एक दशवर्षका बालक पुत्र ॥ १२ ॥ मरणको प्राप्तहोगया, तब धर्मात्मा उन मुनिने क्रोधित होकर उस सब महावनको शाप दिया ॥ १३ ॥ कि, यह बडा वन कठिनसे प्रवेश करनेके योग्य मृग पक्षी इत्यादि और सब जीवोंको आश्रयदेनेके अयोग्य हो जायगा, उन सब वानरोंने उस वनके सब पर्वतोंकी कन्दरायें ॥१४॥

व नदियें आदि सबही खोजे पर उन महात्माओंनेवहांभी जनककुमारी सीताजीको न पाया॥ १५॥ अथवा सुग्रीवजीके प्रियकारी श्रीरामचन्द्रजीकी वनिता हरण करनेवाले रावणकोभी नहीं देखा वह सब वानर लता और झाडियोंसे ढके उस भयंकर ॥ १६ ॥ वनमें प्रवेश करके देवताओंमें निर्भय हुए भयंकर कर्म करनेवाले एक राक्षसको देखते हुए वानरोंने उस पर्वताकार घोरअसुरको देखकर ॥ १७ ॥ दृढरूपसे अपना तिरस्कार मानते हुए और जांघिया आदि वस्त्र पहरे वह बली राक्षसभी उन समस्त पर्वताकार वानरोंको देखकर उनसे बोला कि, देखो मैं अभी तुम सबको मारे डालताहूं ॥१८॥ यह कहकर घूसा तान क्रोधकर वह उन सब वानरोंपै धाया उसको इस भांतिसे आता हुआ देख कर सहसा वालिकुमार अंगदजीनें ॥१९॥ यही रावण है यह समझकर

प्रभवानिनदीनांचविचिन्वंतिसमाहिताः ॥ तत्रचापिमहात्मानोनापश्यञ्जनकात्मजाम् ॥१५॥ हर्तारंरावणंवापिसुग्रीवप्रियकारिणः ॥ तेप्रविश्यतुतंभीमंलतागुल्मसमावृतम् ॥१६॥ ददृशुर्भीमकर्माणमसुरंसुरनिर्भयम् ॥ तंदृष्ट्वावानराघोरंस्थितंशैलमिवासुरम् ॥१७॥ गाढंपरिहिताः सर्वेंदृष्ट्वातंपर्वतोपमम् ॥ सोऽपितान्वानरान्सर्वान्नष्टाःस्थेत्यब्रवीद्बली ॥१८॥ अभ्यधावतसंक्रुद्धोमुष्टिमुद्यम्यसंगतम् ॥ तमापतंतंसहसावालिपुत्रोंऽगदस्तदा ॥१९॥ रावणोऽयमितिज्ञात्वातलेनाभिजघानह ॥ सवालिपुत्राभिहतोवक्राच्छोणितमुद्वमन् ॥२०॥ असुरोन्यपतद्भूमौपर्यस्त इवपर्वतः ॥ तेतुतस्मिन्निरुच्छ्वासेवानराजितकाशिनः ॥ २१ ॥ विचिन्वन्प्रायशस्तत्रसर्वंतेगिरिगह्वरम् ॥ विचितंतुततः सर्वंसर्वेतेकाननौकसः ॥ २२ ॥ अन्यदेवापरंघोरंविविशुर्गिरिगह्वरम् ॥ तेविचित्यपुनः खिन्नाविनिष्पत्यसमागताः ॥ एकांतेवृक्षमूलेतुनिषेदुर्दीनमानसाः ॥ २३ ॥
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० किष्किंधाकांडे अष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥

उसके एक चपेट लगाई वह वालिपुत्र अंगदजीकी चपेटाघातसे व्याकुलहो मुखसे रुधिर वमन करता ॥२०॥ उखडे हुये पर्वतके समान वह राक्षस पृथ्वीपरगिरा उस असुरके मृतक होजानेसे वानरगण विजयलक्ष्मी पाय परमानन्दको प्राप्त हुए ॥ २१ ॥ फिर उन समस्तवानरोंने पर्वतकी समस्त कंदराओंको और वनको ढूँढा पर वहांभी सीताजीको न पायकर एक दूसरे वनमें प्रवेश करते हुए ॥२२ ॥ वहांपर उन्होंने बडी घोर भयानक कई एक पर्वतकी कन्दरायें भी देखीं उन सब वानरोंने वहांभी जरा २ करकेढूँढा और सीताजीको न देख वहांसे निकल श्रमसे कातरहो दीनभावसे एक वृक्षकी जडमें बैठ गये॥२३॥इत्यार्षे

श्रीवा० वा० आदि० किष्कि० भाषायामष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥ फिर महापंडित अंगदजी थककर समस्त वानरोंको क्रम २ से समझाकर कहने लगे ॥ १ ॥ वन, पर्वत, नदी, दुर्गमस्थान, गहन दरें, पर्वतोंकी गुफा; यह सब स्थान रत्ती २ करके ढूँढे गये ॥ २ ॥ परन्तु इन सब जगह श्रीजानकीजी या दुष्कर्मकरनेवाले जानकीजीके हरणकारी राक्षस रावणको न पाया॥३॥हम लोगोंको दिया हुआ एक मासका समयभी कबका बीतगया सुग्रीवजीकी आज्ञा बडी कडी है, इस कारण तुम लोग फिर खोजो ॥४॥ इसलिये सबकोही आलस्य, शोक, निद्रा, परित्याग करके इसप्रकार ढूँढना चाहिये जिससे जानकीजी मिलजाँय ॥ ५ ॥ खेदित नरहना; चतुरता और मनको जीतना यह सबही कार्य सिद्धिके कारण हैं, इसी कारणसे हम तुमसे ऐसा कहते हैं ॥ ६ ॥ हे वानरो !

अथांगदस्तदासर्वान्वानरानिदमब्रवीत् ॥ परिश्रांतोमहाप्राज्ञःसमाश्वास्यशनैर्वचः ॥ १ ॥ वनानिगिरयोनद्योदुर्गाणिगहनानिच ॥ दरीगिरि गुहाश्चैवविचिताःसर्वमंततः ॥ २ ॥ तत्रतत्रसहास्माभिर्जानकीनचदृश्यते ॥ तथारक्षोपहर्तांचसीतायाश्चैवदुष्कृती ॥ ३ ॥ कालश्चनोम हान्यातःसुग्रीवश्चोग्रशासनः ॥ तस्माद्भवंतःसहिताविचिन्वंतुसमंततः ॥ ४ ॥ विहायतन्द्रांशोकंचनिद्रांचैवसमुत्थिताम् ॥ विचिनुध्वंतथा सीतांपश्यामोजनकात्मजाम् ॥५॥ अनिर्वेदंचदाक्ष्यंचमनसश्चापराजयम्॥कार्यसिद्धिकराण्याहुस्तस्मादेतद्ब्रवीम्यहम् ॥६॥ अद्यापीदंवनंदुर्गं विचिन्वंतुवनौकसः॥ खेदंत्यक्त्वापुनःसर्वंवनमेवविचिन्वताम् ॥७॥अवश्यंकुर्वतांतस्यदृश्यतेकर्मणःफलम् ॥ परंनिर्वेदमागम्यनहिनोन्मील नंक्षमम् ॥ ८ ॥ सुग्रीवःक्रोधनोराजातीक्ष्णदंडश्चवानराः॥ भेतव्यंतस्यसततंरामस्यचमहात्मनः ॥ ९॥ हितार्थमेतदुक्तंवःक्रियतांयदिरोचते ॥ उच्यतांहिक्षमंयत्तत्सर्वेषामेववानराः ॥१०॥ अंगदस्यवचःश्रुत्वावचनंगंधमादनः ॥ उवाचव्यक्तयावाचापिपासाश्रमखिन्नया ॥ ११ ॥

इस कारण इस समय तुम सब आलस्यको छोडकर वन और जितने दुर्गम स्थान हैं सबको जरा २ करके खोजो ॥ ७ ॥ जो लोग कार्यको करते हैं उनको उस कार्यका फल अवश्यही मिलता है परन्तु एक बार खेदयुक्त होनेसे फिर उत्साह आना अत्यन्त कठिन हो जाता हैं ॥ ८ ॥ हे वानरगण ! सुग्रीवजी बडे क्रोधी राजा हैं, वह बडा कडा दंड दिया करते हैं; इसलिये उनसे और महात्मा श्रीरामचन्द्रजीसे भय करना उचित है ॥ ९ ॥ तुम्हारे सबके हित करनेहीके लिये हमने ऐसा कहा है; यदि रुचि हो तो इस कार्यको करो, जिससे जितना कार्य होसके उतनाही कार्य करे,और तुमने जो कुछ हितकारी बात विचारी हो वहभी कहो ॥ १० ॥ अंगदजीके वचन सुनकर गन्धमादन नामक वानर प्यासके मारे और परिश्रमसे व्याकुल हो कहने लगा ॥ ११ ॥

अंगदजीने जो कुछ कहा वह हितकारी अनुकूल है इसलिये इनके कहनेके अनुसार सब कोई कार्य करो ॥ १२ ॥ हम सब जन पर्वत कन्दरायें शिला, वन और पर्वतोंके शूने स्थान फिर ढूंढें ॥१३॥ फिर सुग्रीवजीने बताया है उसी प्रकारसे गिरि दुर्ग और पर्वतके झरने सब फिरकर ढूंढो ॥१४॥ यह सुनकर समस्तही बलवान वानरगण फिर उठे और बिन्ध्याचलकी काननपूर्ण दक्षिण दिशामें घूमने लगे ॥ १५ ॥ घूमते २ उन्होंने एक शरद्कालके मेघके तुल्य रंगवाला शिखर और गुफादि युक्त चांदीका एक पर्वत देखा उस पर चढ ॥ १६ ॥ और उसी गिरिपर सीताजीके देखनेकी इच्छा किये समस्त वानरोंने सातपत्तेवाले वृक्षोंका वन और लोध्रका रमणीक वन देखा, उस सबमेंभी उन्होंने जानकीजीको न देखा ॥ १७ ॥ विपुल

सदृशंखलुवोवाक्यमंगदोयदुवाचह ॥ हितंचैवानुकूलंचक्रियतामस्यभाषितम् ॥१२॥ पुनर्मार्गामहेशैलान्कंदरांश्चशिलास्तथा ॥ काननानिचशून्यानिगिरिप्रस्रवणानिच ॥ १३ ॥ यथोद्दिष्टानिसर्वाणिसुग्रीवेणमहात्मना ॥ विचिन्वंतुवनंसर्वेगिरिदुर्गाणिसंगताः ॥१४॥ ततःसमुत्थायपुनर्वानरास्तेमहाबलाः ॥ विंध्यकाननसंकीर्णांविचेरुर्दक्षिणांदिशम् ॥ १५ ॥ तेशारदाभ्रप्रतिमंश्रीमद्रजतपर्वतम् ॥ शृंगवंतंदरीवंतमधिरुह्यचवानराः ॥ १६ ॥ तत्रलोध्रवनंरम्यंसप्तपर्णवनानिच ॥ विचिन्वंतोहरिवराःसीतादर्शनकांक्षिणः ॥ १७ ॥ तस्याग्रमधिरूढास्तेश्रुताविपुलविक्रमाः ॥ नपश्यंतिस्मवैदेहींरामस्यमहिषींप्रियाम् ॥ १८ ॥ तेतुदृष्टिगतंदृष्ट्वातंशैलंबहुकंदरम् ॥ अध्यारोहंतहरयोवीक्षमाणाःसमंततः ॥ १९ ॥ अवरुह्यततोभूमिंश्रान्ताविगतचेतसः ॥ स्थितामुहूर्तंतत्राथवृक्षमूलमुपाश्रिताः ॥२०॥ तेमुहूर्तंसमाश्वस्ताःकिंचिद्भग्नपरिश्रमाः ॥ पुनरेवोद्यताःकृत्स्नांमार्गितुंदक्षिणांदिशम् ॥ २१ ॥ हनुमत्प्रमुखास्तावत्प्रस्थिताःप्लवगर्षभाः ॥ विंध्यमेवादित कृत्वाविचेरुश्चसमंततः ॥ २२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणेवाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० किष्किंधाकांडे एकोनपंचाशः सर्गः ॥ ४९ ॥

विक्रमकारी वानरलोग थककर उस पर्वतकी चोटीपर चढे, परन्तु वहांपरभी श्रीरामचन्द्रकी प्राणप्यारी जानकीजीको उन्होंने न देखा ॥ १८ ॥ वह वानरगण उस पर्वतकी बहुतसारी कन्दराओंको देखते भालते इधर उधर चढने लगे ॥ १९ ॥ जब बहुत देरतक परिश्रम करनेपर भी कुछ फल न पाया तब भूमिपर आय थककर व्याकुलचित्त हो एक वृक्षकी जडका आश्रयकर बैठे रहे ॥ २० ॥ जब उन लोगोंकी कुछ एछ थकावट दूर होगई और विश्रामभी मिलगया तब फिर उत्साहित हो दक्षिण दिशाको ढूंढने लगे ॥ २१ ॥ हनुमानादि कपिगण प्रथम भली प्रकारसे विन्ध्याचल ढूंढकर फिर सुग्रीवजीकी बताई हुई समस्त दक्षिण दिशा ढूंढनेलगे ॥ २२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्किं० भाषायामेकोनपंचाशः सर्गः ॥ ४९ ॥

कपिश्रेष्ठ हनुमान् तार और अंगदजीके सहित विन्ध्याचल पर्वतकी गुफा और समस्तसघन बन ढूँढने लगे ॥ १ ॥ वह वानर सिंह शार्दूल युक्त गुफा विषमस्थान और पर्वती बडे २ झरने जिनमें विमल जल बहता था ॥ २ ॥ और उस पर्वतके दक्षिण और पश्चिमवाले कोनोंपर खोज करने लगे, तबतक सुग्रीवजीने जो समय उनके लिये नियत कियाथा वह बीतगया ॥ ३ ॥ वह पर्वत बडी कठिनाईसे खोजनके योग्य था कारण कि अनेक प्रकार की गुफा व सघन विस्तारित वन विद्यमान थे, हनुमानजीने उन समस्त पर्वतोंको ढूँढा ॥४॥ परस्पर एक दूसरेके निकट रहकर एक एक करके गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, गन्धमादन ॥ ५ ॥ मैन्द, द्विविद, हनुमान्; जाम्बवान् युवराज अंगद, तार इन सबने वनमें फिरते हुये ॥ ६ ॥ पर्वतके समूहसे युक्त दक्षिण दिशाको

सहतारांगदाभ्यांतुसंगम्यहनुमान्कपिः ॥ विचिनोतिचविन्ध्यस्यगुहाश्चगहनानिच ॥ १ ॥ सिंहशार्दूलजुष्टाश्चगुहाश्चपरितस्तदा ॥ विषमेषुनगेंद्रस्यमहाप्रस्रवणेषुच ॥२॥ आसेधुस्तस्यशैलस्यकोटिंदक्षिणपश्चिमाम् ॥ तेषांतत्रैववसतांसकालोव्यत्यवर्तत ॥३॥ सहिदेशोदुरन्वेष्योगुहागहनवान्महान्॥तत्रवायुसुतःसर्वंविचिनोतिस्मपर्वतम् ॥४॥ परस्परेणरहितावन्योन्यस्याविदूरतः॥गजोगवाक्षोगवयःशरभोगंधमादनः ॥५॥ मैंदश्चद्विविदश्चैवहनूमाञ्जाम्बवानपि ॥ अंगदोयुवराजश्चतारश्चवनगोचरः ॥६॥ गिरिजालावृतान्देशान्मार्गित्वादक्षिणांदिशम् ॥ विचिन्वंतस्ततस्तत्रददृशुर्विवृतंबिलम् ॥७॥ दुर्गमृक्षबिलंनामदानवेनाभिरक्षितम् ॥ क्षुत्पिपासापरीतास्तुश्रांतास्तुसलिलार्थिनः ॥८॥ अवकीर्णलतावृक्षंददृशुस्तेमहाबिलम् ॥ तत्रक्रौंचाश्चहंसाश्चसारसाश्चापिनिष्क्रमन् ॥९॥ जलार्द्राश्चक्रवाकाश्चरक्तांगाःपद्मरेणुभिः ॥ ततस्तद्बिलमासाद्यसुगंधिदुरतिक्रमम् ॥१०॥विस्मयव्यग्रमनसोबभूवुर्वानरर्षभाः ॥ संजातपरिशंकास्तेतद्बिलंप्लवगोत्तमाः ॥११॥अभ्यपद्यंतसंहृष्टास्तेजोवंतोमहाबलाः॥ नानासत्त्वसमाकीर्णंदैत्येंद्रनिलयोपमम् ॥ १२ ॥ दुर्दर्शमिवघोरंचदुर्विगाह्यंचसर्वशः ॥ततःपर्वतकूटाभो हनूमान्मारुतात्मजः ॥ १३ ॥

ढूँढते भालते हुये एक अति ऐंडी गुफा देखी ॥ ७ ॥ उसका ऋक्षबिल नाम था, वह अतिदुर्गम और दानवोंसे रक्षित बेल पत्तोंसे ढक रही थी. क्षुधा और प्यास लगनेके कारण थक जलपान करनेकी इच्छा किये ॥ ८ ॥ लता पतादिकोंसे छाये उस महाबिलको देखते हुये; उसमेंसे क्रौञ्च, हंस, सारस आदि पक्षी निकल रहे थे ॥ ९ ॥ जलसे भीगे कमल परागसे रँगीले अरुण चकवा चकवीभी दृष्टि आये, उस सुगन्धिवान, बडे कठिनसे प्रवेश करने योग्य बिलको प्राप्त होकर ॥ १० ॥ सब वानरयूथोंका मन विस्मयसे व्याकुल होगया उन सब वानरश्रेष्ठोंको उस बिलके विषयमें बडी शंका उत्पन्न हुई ॥ ११ ॥ वह तेजस्वी महाबलवान् वानरगण अनेक प्रकारके जीवोंसे परिपूर्ण राजा बलिके स्थानके तुल्य उस बिलके द्वारपर आये ॥ १२ ॥ बिल बडे कष्टसे दर्शन

जो कि वन पर्वतोंका विषय भली भांति जानते थे ... हनुमानूजी ॥ १३ ॥ जो कि वन पर्वतोंका विषय भली भांति जानते थे
करनेके योग्य अतिघोर सब स्थानोंमें दुर्गम था, तब पर्वतके समान पवनकुमार हनुमानूजी ॥ १३ ॥ जो कि वन पर्वतोंका विषय भली भांति जानते थे घोर दर्शन वानरोंसे बोले कि, हम सबने दक्षिणदिशामें पर्वतोंसे घिरे हुये सब देश ढूँढ डाले ॥ १४ ॥ और हम अब बहुतही थक गये; परंतु जानकीजीको अबतक नहीं पाया; इस बिलसे हंस क्रौंच सारस ॥ १५ ॥ और जलसे भीगे चकवा चकवीभी इस स्थानसे निकल रहे हैं इससे निश्चय होता है, कि यहाँ कूपही हो;वा ह्रदही हो, परन्तु जल इसमें अवश्य है ॥१६॥ और देखो इस बिल के द्वारपर हरे और चिकने पौधे उत्पन्न हो रहे हैं इतना कहकर सबही उस महा अँधियारे बिलमें प्रवेश करते हुये ॥१७॥ वहां पर सूर्य चन्द्रमाका प्रकाश नहीं था इस कारण उस बिलमें पैठतेही वानरोंके रोम खडे होगये उन वानरोंको उनमें सिंह, व्याघ्र, मृग, पक्षी इत्यादि निकलते दिखाई पडे ॥१८॥ परन्तु वह सब वानर निडरहो उस अँधियारे बिलमें प्रवेश करते चलेही गये, परन्तु

वयंसर्वेपरिश्रांतानचपश्याममैथिलीम् ॥ १४ ॥ गिरिजालावृतान्देशान्मार्गित्वादक्षिणांदिशम् ॥ अब्रवीद्वानरान्घोरान्कान्तारवनकोविदः ॥ गिरिजालावृतान्देशान्मार्गित्वादक्षिणांदिशम् ॥ नूनंसलिलवानत्रकूपोवायदिवाह्रदः ॥ १६ ॥ अस्माच्चापिबिलाद्धंसाःक्रौंचाश्चसहसारसैः ॥ १५ ॥ जलार्द्राश्चक्रवाकाश्चनिष्पतंतिस्मसर्वशः ॥ नूनंसलिलवानत्रकूपोवायदिवाह्रदः ॥ १६ ॥ तथाचेमेबिलद्वारे स्निग्धास्तिष्ठंतिपादपाः ॥ इत्युक्तास्तद्बिलंसर्वेविविशुस्तिमिरावृतम् ॥१७॥ अचंद्रसूर्यंहरयोददृशूरोमहर्षणम् ॥ निशाम्यत स्मात्सिंहांश्चतांस्तांश्चमृगपक्षिणः ॥१८॥ प्रविष्टाहरिशार्दूलाबिलंतिमिरसंवृतम् ॥ नतेषांसज्जतेदृष्टिर्नतेजोनपराक्रमः ॥ १९ ॥ वायोरिवग तिस्तेषांदृष्टिस्तमसिवर्तते ॥ तेप्रविष्टास्तुवेगेनतद्बिलंकपिकुंजराः॥२०॥प्रकाशंचाभिरामंचददृशुर्देशमुत्तमम्॥ ततस्तस्मिन्बिलेभीमेनानापाद पसंकुले॥२१॥अन्योन्यंसंपरिष्वज्यजग्मुर्योजनमंतरम्॥ तेनष्टसंज्ञास्तृषितासंभ्रांताःसलिलार्थिनः ॥२२॥ परिपेतुर्बिलेतस्मिन्कंचित्कालमतं द्रिताः॥तेकृशादीनवचनाःपरिश्रांताप्लवंगमाः॥२३॥ आलोकंददृशुर्वीरानिराशाजीवितेयदा॥ ततस्तंदेशमागम्यसौम्यावितिमिरंवनम् ॥२४॥

वानर गण अपनी दृष्टि या पराक्रम वहां प्रगट नहीं करसके ॥ १९ ॥ उन वानरोंकी गति वायु की गतिके समान दृष्टि नहीं आतीथी, बरन् अन्धकारमें डूबी जातीथी वह कपि कुंजर वेगसे उस बिलमें प्रवेश करते हुये ॥ २० ॥ जब उस बिलके भीतर पहुँचे तो उन्होंने मनोहर प्रकाशित उजाले सहित स्थान देखा उस भयंकर अनेक प्रकारके वृक्ष लगे बिलमें ॥ २१ ॥ एक दूसरेको पकडे चार कोश तक चले आये उसके पीछे प्याससे आतुर जलके लिये वह भ्रान्तचित्त होगये ॥२२॥ और थकावटके मारे उस बिलमें गिर पडे मार्ग चलनेके कारण थकित हो कुछ समय तक वैसेही पडे रहे, क्योंकि वह बहुत दुर्बल हो रहे थे ॥ २३ ॥ उन वानरोंने इधर देखकर समझा कि बस अब यहीं पर हमारा मरण होगा फिर बडे कष्ट और यत्नसे चले तो आगे एक बहुत प्रका

शमय वनदृष्टि आया ॥ २४ ॥ उस वनके सुवर्णमय वृक्षोंकी प्रभा अग्निकी प्रभाके तुल्य थी.उन वृक्षोंमें ताल, तमाल, पुन्नाग, वंजुल, धव ॥ २५ ॥ चम्पक नाग कर्णिकार यहसब वृक्ष फूल रहे थे और विचित्र लाल वर्णके गुच्छे और कोंपल इन वृक्षोंमें लगेथे ॥ २६ ॥ उन वृक्षोंपर जो बेलें छाई हुई थीं वही उनके गहनेके समान शोभायमान हो रही थीं, उन सबके थांवले वैदूर्य्य मणिके बनाये गये थे ॥ २७ ॥ यह सब वृक्ष कांचनमय होनेसे प्रकाशमान थे औरसरोवरमें नील वैदूर्यमणिके सजीवसे पक्षी गुंजारकर रहे थे ॥ २८ ॥ बालसूर्यके समान रंगवाले बडे २ वृक्ष सुवर्णके ही लग रहे थे; और सरो वरोंमें मीनभी सुवर्णकेही थे; कमलभी सब हेममय थे ॥ २९ ॥ इस प्रकार की स्वच्छ जलवाली पुष्करिणियोंके देखनेके अतिरिक्त शत २ विमान वहांथे

दद्दशुःकांचनान्वृक्षान्दीप्तवैश्वानरप्रभान् ॥ सालांस्तलांस्तमालांश्चपुन्नागान्वंजुलान्धवान् ॥ २५ ॥ चंपकान्नागवृक्षांश्चकर्णिकारांश्चपुष्पितान् ॥ स्तबकैःकांचनैश्चित्रैरक्तैःकिसलयैस्तथा ॥२६॥ आपीडैश्चलताभिश्चहेमाभरणभूषितान् ॥ तरुणादित्यसंकाशान्वैदूर्यमयवेदिकान् ॥ ॥२७॥ विभ्राजमानान्वपुषापादपांश्चहिरण्मयान् ॥ नीलवैदूर्यवर्णाश्चपद्मिनीःपतगैर्वृताः ॥२८॥ महद्भिःकांचनैर्वृक्षैर्वृतंबालार्कसन्निभैः ॥ जातरूपमयैर्मत्स्यैर्महद्भिश्चाथपंकजैः ॥२९॥ नलिनीस्तत्रदद्दशुःप्रसन्नसलिलायुताः ॥ कांचनानिविमानानिराजतानितथैवच ॥३०॥ तपनीयगवाक्षाणिमुक्ताजालावृतानिच ॥ हैमराजतभौमानिवैदूर्यमणिमंतिच ॥३१॥ दद्दशुस्तत्रहरयोगृहमुख्यानिसर्वशः ॥ पुष्पितान्फलिनोवृक्षान्प्रवालमणिसन्निभान् ॥३२॥ कांचनभ्रमरांश्चैवमधूनिचसमंततः ॥ मणिकांचनचित्राणिशयनान्यासनानिच ॥ ३३ ॥ विविधानिविशालानि दद्दशुस्तेसमंततः ॥ हैमराजतकांस्यानांभाजनानांचराजयः ॥ ३४ ॥ अगुरूणांचदिव्यानांचंदनानांचसंचयान् ॥ शुचीन्यभ्यवहाराणि मूलानिचफलानिच ॥ ३५ ॥ महार्हाणिचयानानिमधूनिरसवंतिच ॥ दिव्यानामम्बराणांचमहार्हाणांचसंचयान् ॥ ३६ ॥

जिसमें अनेक चांदीके बने थे अनेक सोनेके थे ॥ ३० ॥ सब सुवर्णमय झरोखोंमें मोतियोंकी झालर लगी थीं, सुवर्ण व चांदीके बने वैदूर्यमणियुक्त ॥ ३१ ॥ वहां अनेक प्रकारके गृह वानरोंने देखे और फल पुष्पयुक्तमूँगे मणियोंके वृक्षभी देखते हुए॥ ३२ ॥ सुवर्ण सम भ्रमर और मधु और मणि कांचन सेवित सुवर्णके शयन करनेउठने बैठनेके आसन विराजमान थे ॥ ३३ ॥ अनेक भांतिकी और अतिविशालयह सब वस्तुयें वानरोंने देखीं और भोजन करनेके सोने चांदी व कांसीके बर्तनोंके ढेरके ढेर देखे ॥ ३४ ॥ अगर और दिव्य चन्दनोंकी बडी २ राशियें देखीं । और अति पवित्र भोजन करनेके लायकमूल और फल ॥ ३५ ॥ बडे २ मूल्यवान शिविकादि यान और रसवान बहुत सारा मधु देखा, बडे मोलके वस्त्र समूह भी इकट्ठेदेखे ॥३६॥

और विचित्र शाल दुशाल और मृगचर्मोंके पुंजके पुंज इधर उधर उस बिलमें पडे हुए उन महा कांतिवाले ॥ ३७ ॥ शूरवीर वानरोंने देखे, जब वह बहुत आगे बढे तब उन्होंने दूर से एक स्त्री देखी, उन वानरोंने उस स्त्रीको कृष्ण मृग चर्मके वस्त्र धारण किये देखा ॥३८॥ वह नियमित आहार करनेवाली तपस्विनी मानों अपने तेजसे प्रज्वलित हो रही है उसे देख सब वानर विस्मययुक्त हो उसको चारों ओरसे घेरकर खडे हो गये। तब हनुमानजीने पूँछा कि,तुम कौन हो ? और यह बिल किसका है ?॥३९॥वह पर्वत तुल्य देहधारी हनुमानजी हाथ जोडकर उसवृद्ध तपस्विनीसे बूझने लगे कि तुम कौन हो ? और बिल भवन व यह समस्तरत्न किसके हैं ? सो तुम बताओ॥४०॥इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा०आदि०किष्किन्धाकांडे भाषायां पंचाशः सर्गः ॥५०॥

कम्बलानांचचित्राणामजिनानांचसंचयान् ॥ तत्रतत्रविचिन्वंतोबिलेतत्रमहाप्रभाः ॥३७॥ ददृशुर्वानराःशूराःस्त्रियंकांचिददूरतः॥तांचतेददृशुस्तत्रचीरकृष्णाजिनाम्बराम् ॥३८॥ तापसींनियताहारांज्वलंतीमिवतेजसा॥ विस्मिताहरयस्तत्रव्यवतिष्ठतसर्वशः॥ पप्रच्छहनुमांस्तत्रकासित्वंकस्यवाबिलम् ॥ ३९ ॥ ततोहनूमान्गिरिसन्निकाशःकृताञ्जलिस्तामभिवाद्यवृद्धाम् ॥ पप्रच्छकात्वंभवनंबिलंचरत्नानिचेमानिवदस्वकस्य ॥४०॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० किष्किंधाकाण्डे पंचाशः सर्गः ॥ ५० ॥ इत्युक्त्वाहनुमांस्तत्रचीरकृष्णाजिनाम्बराम् ॥ अब्रवीत्तांमहाभागांतापसींधर्मचारिणीम् ॥ १ ॥ इदंप्रविष्टाःसहसाबिलंतिमिरसंवृतम् ॥ क्षुत्पिपासापरिश्रांताःपरिखिन्नाश्चसर्वशः ॥ २ ॥ महद्धरण्याविवरंप्रविष्टाःस्मपिपासिताः ॥ इमांस्त्वेवंविधान्भावान्विविधानद्भुतोपमान् ॥ ३ ॥ दृष्ट्वावयंप्रव्यथिताःसंभ्रांतानष्टचेतसः॥ कस्यैतेकांचनावृक्षास्तरुणादित्यसन्निभाः ॥ ४ ॥ शुचीन्यभ्यवहाराणिमूलानिचफलानिच ॥ कांचनानिविमानानिराजतानिगृहाणिच ॥ ५ ॥ तपनीयगवाक्षाणिमणिजालावृतानिच ॥ पुष्पिताःफलवंतश्चपुण्याःसुरभिगंधयः ॥ ६ ॥

हनुमानजी यह कहकर फिर उस चीर और मृगचर्म धारण करनेवाली धर्मचारिणी महाभागा तपस्विनीसे बोले ॥ १ ॥ हम लोग सब भांतिसे थकित प्यासे और खिन्न होकर सहसा इस अन्धकारसे ढके हुए बिलमें चले आये हैं ॥ २ ॥ हम लोग अधिक करके प्यासे होनेके कारणही इस बडे भारी बिलमेंप्रवेश कर आये हैं परन्तु यहांपर आय यह विविध भांतिके अद्भुत पदार्थ देखे ॥ ३ ॥ जिनके देखतेही हम सब व्यथित; सम्भ्रान्तचित्त और हतबुद्धि हो गये हैं; यह प्रभातकालीन सूर्यके समान प्रभावाले सुवर्णमय वृक्ष किसके हैं ? ॥ ४ ॥ यह पवित्र भोजन करनेके पदार्थ मूलादि किसके हैं ? सुवर्णमय विमान चांदीके बने गृह ॥ ५ ॥ सुवर्णमय मणियोंके जाल लगे यह झरोखे पुष्पित फलवान् पुण्यदायक सुगंधिसे महकते ॥ ६ ॥

जम्बूनदके सुवर्णमय वृक्ष किसके तेजसे उत्पन्न हुये हैं ? सुवर्णमय कमल फूलसे विमल जलमें कैसे बने ? ॥७॥ मछलियां और कछुये किसके तेजसे सुवर्णमय हुये हैं ? यह सब आपके प्रभावसे अथवा और किसी तपस्याके बलसे बने हैं ? ॥ ८ ॥ हम इस बातको कुछभी नहीं जानते, आप अनुग्रह करके यह सब वृत्तांत हमसे कह दीजिये । जब हनुमानजीने उस धर्मचारिणी तपस्विनीसे ऐसा कहा ॥ ९ ॥ तब सब प्राणियोंके ऊपर दया करनेवाली वह तपस्विनी हनुमानजीको उत्तर देतीहुई हे वानरश्रेष्ठ ! महातेजस्वी मय* नामक एक मायावी दानव था ॥ १० ॥ उसनेही यह सब सुवर्णमय वन मायासे बनाया पहले यह दानव मुख्य दानवोंका विश्वकर्मा अर्थात् शिल्पी था ॥ ११ ॥ यह काञ्चनमय दिव्य भवन उसकाही बनाया हुआ है उसने हजार वर्ष तपस्या

इमेजांबूनदमयाःपादपाःकस्यतेजसा ॥ कांचनानिचपद्मानिजातानिविमलेजले ॥ ७ ॥ कथंमत्स्याश्चसौवर्णादृश्यंतेसहकच्छपैः ॥ आत्मन स्त्वनुभावाद्वाकस्यवैतत्तपोबलम् ॥८॥ अजानतांनःसर्वेषांसर्वमाख्यातुमर्हसि ॥ एवमुक्ताहनुमतातापसीधर्मचारिणी ॥९॥ प्रत्युवाचहनूमंत सर्वभूतहितेरता ॥ मयोनाममहातेजामायावीवानरर्षभ ॥ १० ॥ तेनेदंनिर्मितंसर्वमाययाकांचनंवनम् ॥ पुरादानवमुख्यानांविश्वकर्माबभूवह ॥ ११ ॥ येनेदंकांचनंदिव्यंनिर्मितंभवनोत्तमम् ॥ सतुवर्षसहस्राणितपस्तप्त्वामहद्वने ॥ १२ ॥ पितामहाद्वरंलेभेसर्वमौशनसंधनम् ॥ विधा यसर्वंबलवान्सर्वकामेश्वरस्तदा ॥ १३ ॥ उवाससुखितःकालंकंचिदस्मिन्महावने ॥ तमप्सरसिहेमायां,सक्तंदानवपुंगवम् ॥१४॥ विक्रम्यैवा शनिंगृह्यजघानेशः पुरंदरः ॥ इदंचब्रह्मणादत्तंहेमायैवनमुत्तमम् ॥ १५ ॥ शाश्वतःकामभोगश्चगृहंचेदंहिरण्मयम् ॥ दुहिताकेमेरुसावर्णेरहंत स्याःस्वयंप्रभा ॥ १६ ॥ इदंरक्षामिभवनंहेमायावानरोत्तम ॥ ममप्रियसखीहेमानृत्तगीतविशारदा ॥ १७ ॥

करके इस बडे वनको ॥ १२ ॥ ब्रह्माजीसे वर पायकर बनायकर और शुक्राचार्यजीके शिल्पविद्यारूप धनको प्राप्त करता हुआ अर्थात् उसको सब प्रकारका काम बनाना आगया और यह समस्त वनाय समस्त भोग्य वस्तुओंका ईश्वर हो ॥ १३ ॥ कुछ कालतक सुखसे इस महावनमें वास किया था, उसके पीछे वह दानवश्रेष्ठ हेमानाम वाली अप्सरामें आसक्त हुआ ॥ १४ ॥ तब पुरन्दर इन्द्रजीने यह सब वृत्तान्त जानकर युद्ध कर उसको अपने वज्रसेनाश कर दिया फिर ब्रह्माजीने यह उत्तम वन हेमाको दे दिया ॥ १५ ॥ यथेच्छा भोग, और यह सुवर्णमय गृहभी हेमाको दे दिया । हम मेरुसावर्णिकी स्वयंप्रभा कन्या हैं॥१६॥हे वानर श्रेष्ठ ! इस हेमाके भवनकी रक्षा किया करती हैं । हमारी प्रियसखी हेमा नृत्य और गीतमें विशारद है॥१७॥

* दैत्योंमें जो कारीगर होता है उसे मयकी पदवी प्राप्त होती है ।

हम उसके दिये हुए वरसे इस बडे वनकी रक्षा करती हैं तुम्हारा क्या कार्य है और किस कारणसे तुम सब इस जंगलके मार्गमें आये हो ? ॥ १८ ॥
और किस प्रकारसे तुमनेयह दुर्गम वन देखा तुम सबही इस व्यवहारके द्रव्योंको भोगकर फल मूल जल आदि भोजनकर पानी पीकरके अपने आनेके समस्त
वृत्तान्त हमसे कहो ॥ १९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा॰ वा॰ आदि॰ किष्कि॰ भाषायामेकपंचाशः सर्गः ॥ ५१ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥
ऐसा श्रवण करके सब वानरोंने विश्रामकर भोजन पान किया तब वह धर्मचारिणी तपस्विनी एकाग्रचित हो उन वानरोंसे इस प्रकार बोली ॥ १ ॥
हे वानरो ! यदि फल खायकर तुम्हारी थकावट मिट गई हो, और यदि हमारे श्रवण करनेके अयोग्यन हो तो तुम्हारे आनेकी कथाके श्रवण करनेकी हम

तयादत्तवराचास्मिरक्षामिभवनंमहत् ॥ किंकार्यंकस्यवाहेतोःकांताराणिप्रपद्यथ ॥१८॥ कथंचेदंवनंदुर्गंयुष्माभिरुपलक्षितम् ॥शुचीन्यभ्यवहा
राणिमूलानिचफलानिच॥भुक्त्वापीत्वाचपानीयंसर्वंमेवक्तुमर्हसि॥१९॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणेवाल्मीकीये आदिकाव्ये च॰ सा॰किष्किंधाकांडे
एकपंचाशः सर्गः ॥५१॥ अथतानब्रवीत्तत्सर्वान्विश्रांतान्हरियूथपान् ॥ इदंवचनमेकाग्रातापसीधर्मचारिणी ॥१॥ वानरायदिवःखेदःप्रनष्टःफ
लभक्षणात् ॥ यदिचैतन्मयाश्राव्यंश्रोतुमिच्छामितांकथाम् ॥२॥ तस्यास्तद्वचनंश्रुत्वाहनूमान्मारुतात्मजः॥आर्जवेनयथातत्त्वमाख्यातुमु
पचक्रमे ॥३॥ राजासर्वस्यलोकस्यमहेंद्रवरुणोपमः ॥ रामोदाशरथिःश्रीमान्प्रविष्टोदंडकावनम् ॥४॥ लक्ष्मणेनसहभ्रात्रावैदेह्यासहभार्यया॥
तस्यभार्याजनस्थानाद्रावणेनहृताबलात् ॥५॥ वीरस्तस्यसखाराज्ञःसुग्रीवोनामवानरः ॥ राजावानरमुख्यानांयेनप्रस्थापितावयम् ॥ ६ ॥
अगस्त्यचरितामाशांदक्षिणांयमरक्षिताम् ॥ सहैभिर्वानरैर्मुख्यैरंगदप्रमुखैर्वयम् ॥७॥ रावणंसहिताःसर्वेराक्षसंकामरूपिणम् ॥ सीतयासहवैदे
ह्यामार्गध्वमितिचोदिताः ॥८॥ विचित्यतुवनंसर्वंसमुद्रंदक्षिणांदिशम् ॥ वयंबुभुक्षिताःसर्वेवृक्षमूलमुपाश्रिताः ॥ ९ ॥

वासना करती हैं ॥ २ ॥ पवन कुमार हनुमान्‌जीने उस तपस्विनीके यह वचन सुनकर सरल भावसे यथार्थ वृत्तान्त कहना आरम्भ किया ॥३॥ इन्द्र और
वरुण तुल्य सर्व लोकोंके राजा दशरथजीकेपुत्र श्रीरामचन्द्रजी दंडकवनमें आये ॥ ४ ॥ वह अपने भ्राता लक्ष्मण और अपनी भार्याके सहित वनमें
आये उनकी भार्याको जनस्थानसे बलात्कार रावण हरण करकेले गया ॥५॥ उनके सखा वीर सुग्रीवजी वानरोंके राजा हैं उन्होंनेही हमको यहांपर भेजा है
॥ ६ ॥ हम लोग अंगदादि प्रधान २ वानरोंके सहित अगस्त्यजीसे सेवित दक्षिण दिशामें आये हैं ॥ ७ ॥ उन सुग्रीवजीने आज्ञा दी है कि, तुम सब
वानर मिलकर सीता और कामरूपी राक्षस रावणको ढूँढो ॥ ८ ॥ उनकी आज्ञासे हम दक्षिण दिशाके समस्त वन और समुद्र खोज क्षुधित हो थककर

वृक्षोंके नीचे बैठ गये ॥ ९ ॥ हम सब वानर पीले वदन ध्यानपरायण हो, चिन्ताके महासागरमें डूब गये और किसी प्रकार उसके पार न जाय सके ॥ १० ॥ तब चारोंओर निहार २ कर देख रहे थे कि इतनेमें लता पत्रादिकोंसे ढका छाया यहा बडा बिल दृष्टि आया ॥ ११ ॥ इस समय उस बिलसे जलके भीगे जल और कमलकी रेणु जिनके पंखोंमें लगी, ऐसे हंस, कुरर और सारस पक्षी निकल रहे थे ॥ १२ ॥ उनको देखकर हमने सोचा कि हम इस बिलमें प्रवेश करेंगे और सब वानरगणभी अनुमान करके इस बिलमें प्रवेश करनेको सम्मत हुए ॥ १३ ॥ फिर कार्य करनेमें शीघ्रतायुक्तव वानरगण एक दूसरेका हाथ पकड बिलमें प्रवेश करने लगे ॥ १४ ॥ इस प्रकारसे हम इस अन्धकारसे ढके हुए बिलमें पैठे हैं हमारा यही कार्य है इसी कार्यके हेतु हम

विवर्णवदनाःसर्वेसर्वेध्यानपरायणाः ॥ नाधिगच्छामहेपारंमग्नाश्चितामहार्णवे ॥१०॥ चारयंतस्ततश्चक्षुर्दृष्टवंतोमहद्बिलम् ॥ लतापादपसंपन्नं तिमिरेणसमावृत्तम् ॥११॥ अस्माद्धंसाजलक्लिन्नाःपक्षैःसलिलरेणुभिः ॥ कुरराःसारसाश्चैवनिष्पतंतिपतत्त्रिणः ॥१२॥ साध्वत्रप्रविशामेति मयातूक्ताःप्लवंगमाः ॥ तेषामपिहिसर्वेषामनुमानमुपागतम् ॥ १३ ॥ अस्मिन्निपतिताःसर्वेऽप्यथकार्यत्वरान्विताः ॥ ततोगाढनिपतिता गृह्य हस्तैःपरस्परम् ॥ १४ ॥ इदंप्रविष्टाःसहसाबिलंतिमिरसंवृतम् ॥ एतन्नःकार्यमेतेनकृत्येनवयमागताः ॥ १५ ॥ त्वांचैवोपगताःसर्वेपरिघूनाबुभुक्षिताः ॥ आतिथ्यधर्मदत्तानिमूलानिचफलानिच ॥ १६ ॥ अस्माभिरुपभुक्तानिबुभुक्षापरिपीडितैः ॥ यत्त्वयारक्षिताः सर्वेम्रियमाणाबुभुक्षया ॥ १७ ॥ ब्रूहिप्रत्युपकारार्थंकिंकुर्वंतुवानराः ॥ एवमुक्तातुसर्वज्ञावानरैस्तैःस्वयंप्रभा ॥ १८ ॥ इत्युवाचततःसर्वानिदंवानरयूथपान् ॥ सर्वेषांपरितुष्टास्मिवानराणांतरस्विनाम् ॥ १९ ॥ चरंत्याममधर्मेणकार्यमिहकेनचित् ॥ एवमुक्तःशुभंवाक्यंतापस्याधर्मसंहितम् ॥ २० ॥ उवाचहनुमान्वाक्यंतामनिंदितलोचनाम् ॥ शरणंत्वांप्रपन्नाःस्मःसर्वेवैधर्मचारिणीम् ॥ २१ ॥

यहांआये हैं ॥ १५ ॥ हम सबही थकित और क्षुधित होकर आपके निकट आये और आपने अतिथि सत्कारके धर्मानुसार हमें फल मूल खानेको दिये ॥ १६ ॥ जिनको भक्षण करके हमने जीव धारण किया हम मरने पर हुए और आपने हम लोगोंको बचाया ॥ १७ ॥ इसकारणसे यह वानरगण आपका क्या उपकार करें सो आप बताइये, जब सब वानरोंने सर्वज्ञा स्वयंम्प्रभा तापसीसे ऐसा कहा तो ॥ १८ ॥ वह समस्त वानरयूथपोंसे बोली कि, हम समस्त कार्य करनेमें चतुर वानरोंके प्रति अत्यन्त सन्तुष्ट हुई ॥ १९ ॥ अपने धर्मानुसार चलती हुई हमारा किसी बातसे कुछ प्रयोजन नहीं इति सर्गः ॥ ५२ ॥ जब इसप्रकार उस तपस्विनीने धर्मसंगत शुभ वचन कही ॥ २० ॥ तब हनुमान्‌जी उस अनिन्दिता शुभनेत्रवाली तपस्विनीसे बोले

कि आप धर्मचारिणीहैं इस लिये हम सबनेही आपकी शरण ग्रहण की ॥ २१ ॥ जो महात्मा सुग्रीवजीने एक मासका समय हमें दिया था वह समय तो इस बिलमें रहते २ बीत गया ॥ २२ ॥ इस लिये आप शीघ्रतासहित हमको इस बिलसे बाहर निकालिये क्योंकि उन सुग्रीवका वचन उल्लंघन करनेसे हमको आयुहीन होना पडेगा ॥ २३ ॥ इस लिये आप सुग्रीवके भयसे हम लोगोंका उद्धार कीजिये, हे धर्मचारिणी ! हमको बडाभारी कार्य करना है ॥ २४ ॥ जो हम बिलमेंही बंद रहेंगे तो हमारा वह कार्य सिद्ध नहीं होगा, जब हनुमान्‌जीने यह कहा तो वह तपस्विनी बोली ॥ २५ ॥ कि, जो यहांपर प्रवेश करता है, वह फिर जीवितही यहांसे निकलनेको समर्थ नहीं होता परन्तु हम अपने नियमकी उपार्जन कीहुई तपस्याके प्रभावसे

यःकृतःसमयोऽस्मास्सुसुग्रीवेणमहात्मना ॥ सतुकालोव्यतिक्रांतोबिलेचपरिवर्तताम् ॥२२॥ सात्वमस्माद्बिलाद्धोरादुत्तारयितुमर्हसि ॥ तस्मात्सुग्रीववचनादतिक्रांतान्गतायुषः ॥ २३ ॥ त्रातुमर्हसिनःसर्वान्सुग्रीवभयशंकितान् ॥ महच्चकार्यमस्माभिःकर्तव्यंधर्मचारिणि ॥ २४ ॥ तच्चापिनकृतंकार्यमस्माभिरिहवासिभिः ॥ एवमुक्ताहनुमतातापसीवाक्यमब्रवीत् ॥ २५ ॥ जीवतादुष्करंमन्येप्रविष्टेननिवर्तितुम् ॥ तपसःसुप्रभावेणनियमोपार्जितेनच ॥ २६ ॥ सर्वानेवबिलादस्मात्तारयिष्यामिवानरान् ॥ निमीलयन्तुचक्षूंषिसर्वैवानरपुंगवाः ॥ २७ ॥ नहिनिष्क्रमितुंशक्यमनिमीलितलोचनैः ॥ ततोनिर्मीलिताःसर्वेसुकुमारांगुलैःकरैः ॥२८॥ सहसापिदधुर्दृष्टिंहृष्टागमनकांक्षया ॥ वानरास्तुमहात्मानोहस्तरुद्धमुखास्तदा ॥ २९ ॥ निमेषांतरमात्रेणबिलादुत्तारितास्तया ॥ उवाचसर्वांस्तांस्तत्रतापसीधर्मचारिणी ॥ ३० ॥ निसृतान्विषमात्तस्मात्समश्वस्येदमब्रवीत् ॥ एषविंध्योगिरिःश्रीमान्नानाद्रुमलतायुतः ॥ ३१ ॥

॥२६॥ समस्त वानरोंको इस बिलसे उद्धार करेंगी । हे वानरश्रेष्ठ ! तुम सब अपने २ नेत्र बंद करो ॥ २७ ॥ क्योंकि बिना नेत्र बंद किये इस स्थानसे निकलनेमें समर्थ नहीं हुआ जाता यह सुन सब वानरोंने अपने सुकुमार हाथोंकी अंगुलियोंसे ॥ २८ ॥ अपने नेत्र झटपट बंद किये क्योंकि उनको उस बिलसे निकलनेकी वासना थी, जब महात्मा वानरोंने अपने २ नेत्र अपने २ हाथोंसे बंद किये ॥ २९ ॥ तब उस तपस्विनीने एक पलमें उन सब वानरोंका बिलसे उद्धार किया, जब वह सब बाहर आगये तब वह धर्म चारिणी तपस्विनी उन सबसे बोली ॥ ३० ॥ वह उस विषमस्थानसे वानरोंको

निकाल उनको समझा बुझाकर कहनेलगी कि; अनेकप्रकारके वृक्षलता आदिसे पूर्ण श्रीमान् विन्ध्याचल यही है ॥३१॥ यह दूसरा प्रस्रवण पर्वत है यह महासागर दृष्टि आता है हे वानरगण ! तुम्हारा मंगल हो अब हम अपने स्थानको जायँगी यह कहकर स्वयम्प्रभा तपस्विनी उस परमसुन्दर बिलमें प्रवेश करगई ॥३२॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायां द्विपंचाशः सर्गः ॥५२॥ जब सब वानर बिलके बाहर आये तब उन्होंने अपार घोर भयंकर तरंग उठता हुआ, गर्जता वरुणालय सागर देखा ॥ १ ॥ भय करके मायासे बनाये हुए गिरिदुर्गको ढूँढते ढूँढतेही उन वानरोंका वह समय बीतगया जो सुग्रीवजीने नियम करदिया था ॥ २ ॥ तब महात्मा वानरवृंन्द विन्ध्याचलके पुष्पित तरुशोभित एक पर्वतपर बैठ चिंता करने लगे ॥ ३ ॥ फिर वह वानरगण फूलोंके

एषप्रस्रवणःशैलःसागरोऽयंमहोदधिः ॥ स्वस्तिवोऽस्तुगमिष्यामिभवनंवानरर्षभाः ॥ इत्युक्त्वातद्बिलंश्रीमत्प्रविवेशस्वयंप्रभा ॥३२॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० किष्किंधाकाडे द्विपंचाशः सर्गः ॥ ५२ ॥ ततस्तेददृशुर्घोरंसागरंवरुणालयम् ॥ अपारम भिगर्जंतंघोरैरूर्मिभिराकुलम् ॥ १ ॥ मयस्यमायाविहितंगिरिदुर्गंविचिन्वताम् ॥ तेषांमासोव्यतिक्रांतोयोराज्ञासमयःकृतः ॥२॥ विंध्यस्यतु गिरेःपादेसंप्रपुष्पितपादपे॥ उपविश्यमहात्मानश्चिंतामापेदिरेतदा ॥३॥ ततःपुष्पातिभाराग्राँल्लताशतसमावृतान् ॥ द्रुमान्वासंतिकान्दृष्ट्वाब भूवुर्भयशंकिताः ॥४॥ तेवसंतमनुप्राप्तंप्रतिवेद्यपरस्परम् ॥ नष्टसंदेशकालार्थानिपेतुर्धरणीतले ॥५॥ ततस्तान्कपिवृद्धांश्चशिष्टांश्चैववनौकसः ॥ वाचामधुरयाभाष्ययथावदनुमान्यच ॥ ६ ॥ सतुसिंहवृषस्कंधःपीनायतभुजःकपिः ॥ युवराजोमहाप्राज्ञ अंगदोवाक्यमब्रवीत् ॥७॥ शास नात्कपिराजस्यवयंसर्वेविनिर्गताः ॥ मासःपूर्णोबिलस्थानांहरयःकिंनबुध्यत॥८॥ वयमाश्वयुजेमासिकलसंख्याव्यवस्थिताः ॥ प्रस्थिताःसोऽ पिचानीतःकिमतःकार्यमुत्तरम् ॥ ९ ॥ भवंतःप्रत्ययंप्राप्तानीतिमार्गविशारदाः ॥ हितेष्वभिरताभर्तुर्निसृष्टाःसर्वकर्मसु ॥ १० ॥

बोझसे परिपूर्ण शत २ लतामंडित वसंतकालके वृक्षोंको देखकर बहुतही शंकित हुए ॥४॥ वह यह बिचारकर कि, सुग्रीवजीका नियत किया समय बीतगया और वसंतकाल आगया, पृथ्वीपर गिर पडे ॥ ५ ॥ तब उन अति श्रेष्ठ वृद्ध वानरोंका बडा आदर मान करते हुए यथावत् अनुमान करके अति मधुर वाणीसे ॥ ६ ॥ सिंह वृषभके कन्धेवाले मोटी और बडी भुजावाले महापंडित युवराज अंगदजी बोले ॥ ७ ॥ कि, हम कपिराज सुग्रीवजीकी आज्ञा पाय किष्किन्धासे निकले हैं सो तुमको यह नहीं जान पडता कि, बिलमेंही पडे २ एक महीना होगया ॥ ८ ॥ हमने क्वारमासके प्रारंभसे नियमित समयको निरूपण किया है, सो क्वारमास बीततेही वह समय बीतगया अब क्या किया जाय? ॥९॥ तुमसे इस कारणसे पूछते हैं कि; आप सब विनीत मार्गमें पंडित

अपने स्वामीके हितमें निरत और समस्त कार्योंके करनेमें निपुण ॥ १० ॥ कार्य साधन करनेमें अनुपम सर्व दिशा विदिशाओंमें अपने पौरुषसे प्रसिद्ध हुए इसी कारणसे राजाज्ञाको प्राप्त किये हमको आगे कर यहां आये हो ॥११॥ जिस कार्यके लिये हम भेजेगये अभीतक वह कुछभी सिद्ध नहीं हुआ इसलिये विना सशय सबका मरण हुआ, क्योंकि वानरराज सुग्रीवजीका कार्य नकिये कौन पुरुष सुखी होसकता है ॥ १२ ॥ सुग्रीवजीका नियत किया हुआ समय तो बीतही गया; इस समय हम सबको प्रायोपवेशन करके प्राण त्यागन करना सब भांतिसे ठीक है ॥१३॥ सुग्रीवजीका स्वभाव अति तीक्ष्ण है सिरपर वह इससमय सब वानरोंके राजा हैं, सो उनका अपराध होनेपर किसी भांति क्षमा न करेंगे ॥ १४ ॥ सीताजीका पता न लगनेसे वह अवश्यही हम सबको मार डालेंगे, सो उस मरनेसे इस समय कहीं पुण्यस्थानमें प्राण दे देना हमारे लिये भला है ॥ १५ ॥ जो हमलोग यहांसे किष्किन्धाको चले जायगें तो सुग्रीवजी

कर्मस्वप्रतिमाःसर्वेदिक्षुविश्रुतपौरुषाः ॥ मांपुरस्कृत्यनिर्यातापिंगाक्षप्रतिचोदिताः ॥११॥ इदानीमकृतार्थानांमर्तव्यंनात्रसंशयः ॥ हरिराजस्यसंदेशमकृत्वाकःसुखीभवेत् ॥ १२ ॥ अस्मिन्नतीतेकालेतुसुग्रीवेणकृतेस्वयम् ॥ प्रायोपवेशनंयुक्तंसर्वेषांचवनौकसाम् ॥ १३ ॥ तीक्ष्णःप्रकृत्यासुग्रीवःस्वामिभावेव्यवस्थितः ॥ नक्षमिष्यतिनःसर्वानपराधकृतोगतान् ॥१४॥ अप्रवृत्तौचसीतायाःपापमेवकरिष्यति ॥ तस्मात्क्षममिहाद्यैवगंतुंप्रायोपवेशनम् ॥१५॥ त्यक्त्वापुत्रांश्चदारांश्चधनानिचगृहाणिच ॥ ध्रुवंनोहिंसतेराजासर्वान्प्रतिगतानितः ॥१६॥ वधेनाप्रतिरूपेणश्रेयान्मृत्युरिहैवनः ॥ नचाहंयौवराज्येनसुग्रीवेणाभिषेचितः ॥ १७ ॥ नरेंद्रेणाभिषिक्तोऽस्मिरामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ सपूर्वंबद्धवैरोमांराजादृष्ट्वाव्यतिक्रमम् ॥ १८ ॥ घातयिष्यतिदंडेनतीक्ष्णेनकृतनिश्चयः ॥ किंमेसुहृद्भिर्व्यसनंपश्यद्भिर्जीवितांतरे ॥ इहैवप्रायमासिष्येपुण्येसागररोधसि ॥ १९ ॥ एतच्छ्रुत्वाकुमारेणयुवराजेनभाषितम् ॥ सर्वेतेवानरश्रेष्ठाःकरुणंवाक्यमब्रुवन् ॥ २० ॥

निश्चयही हम सबको मार डालेंगे इसकारण इस समय यहीं पुत्र, स्त्री, धन और गृहादि समस्तको छोड, प्राण त्यागकरना हमें बहुत अच्छा है, इसमें कोई संदेह नहीं ॥ १६ ॥ जो तुम कहो कि, सुग्रीवने तुमको युवराज किया है वह तुम्हे नहीं मारेंगे सो अबतक उन्होंने हमको युवराजपदवी नहीं दी है इसलिये उस नीचपनकी मृत्यु होनेसे इसी स्थानपर मृत्यु पाना हम अच्छा समझते हैं ॥ १७ ॥ सब कार्य करनेमें चतुर श्रीरामचन्द्रजीने हमको युवराजपदवीपर अभिषेक किया, सुग्रीव तो प्रथमहीसे हमसे वैराचरण करते हैं, फिर वह जिस समय जानेंगे कि, इन्होंने कार्य पूरा नहीं किया ॥१८॥ तो उसीसमय हमको वह तीक्ष्ण दंड देकर मार डालेंगे, अपने सुहृद्गणोंके निकट उस निन्दनीय मृत्युकी अपेक्षा, इस पवित्र समुद्रके तीरपर प्राणत्याग करना हमारे अर्थ बहुत श्रेष्ठ होगा इसमें संशयही क्या हैं ॥ १९ ॥ युवराजकुमार अंगदजीके यह वचन सुनकर प्रधान २ वानरगण करुणा सहित वचन कहने लगे ॥ २० ॥

कि, सुग्रीवजी तो तीखे स्वभाववाले, और रामचन्द्रजीका प्रियकार्य करनेमें अनुरक्त हैं वा रामचन्द्र जानकीमें अनुरक्त हैं यदि काम हो जाय और समयके बीत जानेपरभी ॥ २१ ॥ वह सुग्रीव नियत किये समयको बीता हुआ देख जानकीको देखने और विना देखनेपरभी रामचन्द्रजीका प्रिय करनेको निश्चयही हम सबको मार डालेगा इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ २२ ॥ अपराधी जन अपने स्वामीके समीप गमन करनेको समर्थ नहीं होते और तिसपै हम सुग्रीवजीके प्रधान पुरुष होकर आये हैं ॥ २३ ॥ हम विना सीताजीके देखे और उनका वृत्तान्त न पाय कदापि वीर सुग्रीवके निकट न जांयगे, चाहै यमपुरको चले जायँ ॥ २४ ॥ भयसे पीडित वानरगणोंके यह वचन श्रवण करके तार बोला कि, तुम लोग विषाद न करो यदि

तीक्ष्णःप्रकृत्यासुग्रीवःप्रियारक्तश्चराघवः ॥ समीक्ष्याकृतकार्यास्तुतस्मिंश्चसमयेगते ॥२१॥ अदृष्टायांचवैदेह्यांदृष्ट्वाचैवसमागतान् ॥ राघवप्रियकामायघातयिष्यत्यसंशयम् ॥२२॥ नक्षमंचापराद्धानांगमनंस्वामिपार्श्वतः ॥ प्रधानभूताश्चवयंसुग्रीवस्यसमागताः ॥ २३ ॥ इहैवसीतामन्वीक्ष्यप्रवृत्तिमुपलभ्यवा ॥ नोचेद्गच्छामतंवीरंगमिष्यामोयमक्षयम् ॥२४॥ प्लवंगमानांतुभयार्दितानांश्रुत्वावचस्तदारइदंबभाषे ॥ अलंविषादेनबिलंप्रविश्यवसामसर्वेंयदिरोचतेवः ॥२५॥ इदंहिमायाविहितंसुदुर्गमंप्रभूतपुष्पोदकभोज्यपेयम् ॥ इहास्तिनोनैवभयंपुरंदरान्नराघवाद्वानरराजतोऽपिवा ॥२६॥ श्रुत्वांगदस्यापिवचोऽनुकूलमूचुश्चसर्वेहरयःप्रतीताः ॥ यथानहन्येमतथाविधानमसक्तमद्यैवविधीयतांनः ॥२७॥ इत्यार्षे श्री० वा० आदि० च० सा० कि० त्रिपंचाशः सर्गः ॥ ५३ ॥ तथाब्रुवतितारेतुताराधिपतिवर्चसि ॥ अथमेनेहृतंराज्यंहनुमानंगदेनतत् ॥ १ ॥ बुद्ध्याह्यष्टांगयायुक्तंचतुर्बलसमन्वितम् ॥ चतुर्दशगुणंमेनेहनूमान्वालिनःसुतम् ॥ २ ॥

तुम्हारी इच्छा हो तो सबही इस बिलमें प्रवेश करेंगे और यहां रहेंगे ॥ २५ ॥ यह बिल मायासे बना हुआ होनेके कारण अत्यन्त दुर्गम है, इसमें बहुतेरे पुष्प भोजन करनेकी सामग्री, पीनेके पदार्थ जल इत्यादि हैं. यहांपर इन्द्रसे भी हम लोगोंको भय नहीं है फिर भला वानरराज और रामचन्द्रजीसे हम लोगोंको क्या भय हो सकता है ॥ २६ ॥ अंगदजीके अनुकूल वचन श्रवण कर सब वानर उन वचनोंकी प्रतीति करके बोले कि, युवराज जिसमें हमारे प्राण न जायँ आपको शीघ्रही उस कार्यका विधान करना चाहिये ॥ २७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्किं० भाषायां त्रिपंचाशः सर्गः ॥ ५३ ॥ चन्द्रमाके समान प्रभाशाली तारने जब इस प्रकारसे कहा तो हनुमानूजीने अनुमान किया कि, बस अब अंगद करके सुग्रीवका राज्य गया ॥१॥हनुमानूजीने

अंगदजीको शुश्रूषादि अष्टविध गुणबुद्धिचतुरंग सेना और देशकालज्ञतादि चौदहगुण निधान विचारा॥ २॥हनुमानूजीने विचारा कि, अंगद सदाहीं तेज बल और पराक्रमसे शुक्लपक्षकी आदिसे लेकर प्रभालक्ष्मीयुक्त चन्द्रमाकेसमान वर्त्तमान होरहाहै॥ ३॥यह युवराजबुद्धिमेंबृहस्पतिकेसमान औरविक्रममें अपने पिताके समान है तार वानरसे सेवितहै जैसेइन्द्रजीशुक्रकेवचनोंसेसेवित होते हैं॥४॥ऐसेअंगदजीको अपने स्वामीका प्रयोजन सिद्ध करनेमें थकित देख सर्वशास्त्रविशारदहनुमानूजी समाधान करते उनसे बोले ॥ ५ ॥ वह हनुमानूजी चार प्रकारोंके उपायोंमेंसे दूसरा उपाय भेद वर्णन करके सारयुक्त वचनोंसे उन समस्त वानरोंको भेद करते हुये ॥ ६ ॥ जब सब वानरोंमें भेद पडगया तब हनुमानूजीने दंड सहित भयंकर वचनोंसे अंगदको भय दिखाकर कहा ॥ ७ ॥ हे ताराकुमार ! तुम युद्ध

शुश्रूषमाणंता आपूर्यमाणंशश्वच्चतेजोबलपराक्रमैः ॥ शशिनंशुक्लपक्षादौवर्धमानमिवश्रिया ॥३॥ बृहस्पतिसमंबुद्ध्याविक्रमेसदृशंपितुः ॥ शुश्रूषमाणंता रस्यशुक्रस्येवपुरंदरम् ॥ ४ ॥ भर्तुरर्थेपरिश्रांतंसर्वशास्त्रविशारदः ॥ अभिसंधातुमारेभेहनूमानंगदंततः ॥५॥ सचतुर्णामुपायानांद्वितीयमुपव र्णयन् ॥ भेदयामासतान्सर्वान्वानरान्वाक्यसंपदा ॥६॥ तेषुसर्वेषुभिन्नेषुततोऽभीषयदंगदम्॥भीषणैर्विविधैर्वाक्यैःकोपोपायसमन्वितैः ॥७॥ त्वंसमर्थतरःपित्रायुद्धेतारेयवैध्रुवम् ॥ दृढंधारयितुंशक्तःकपिराज्यंयथापिता ॥८॥ नित्यमस्थिरचित्ताहिकपयोहरिपुंगव ॥ नाज्ञाप्यंविषहि ष्यंतिपुत्रदाराविनात्वया ॥ ९ ॥ त्वांनैतेह्यनुरंजेयुःप्रत्यक्षंप्रवदामिते ॥ यथायंजाम्बवान्नीलःसुहोत्रश्चमहाकपिः ॥ १० ॥ नह्यहंतइमेसर्वेसा मदानादिभिर्गुणैः ॥ दंडेननत्वयाशक्याःसुग्रीवादपकर्षितुम् ॥११॥ विगृह्यासनमप्याहुर्दुर्बलेनबलीयसा ॥ आत्मरक्षाकरस्तस्मान्नविगृह्णीतदु र्बलः ॥ १२ ॥ यांचेमांमन्यसेधात्रीमेतद्बलमितिश्रुतम् ॥ एतल्लक्ष्मणबाणानामीषत्कार्यंविदारणम् ॥ १३ ॥

करनेमें पिताकेतुल्य सामर्थ्य रखतेहो, यदि कपिगण तुमको राज्यमें अभिषेकित करें तो तुम पिताजीके ही समान दृढतासे राज्य धारण करनेमें समर्थ होगे ॥८॥ परंतु हे वानर श्रेष्ठ ! चंचलचित्त वानरलोग अपने स्त्री पुत्रोंको सुग्रीवके वशमें पडा देख तुम्हारी आज्ञाके विना पुत्र दाराके यहांपर बैठे हुए मान्य न करेंगे ॥ ९ ॥ हम तुमसे इन सबके सामनेही कहते हैं कि, यह लोग पुत्रस्त्रीको छोडकर तुम्हारेपर अनुराग न करेंगे यह जाम्बवान्; नील, महाकपि सुहोत्र ॥ १० ॥ और हम व समस्तही वानरगणको, साम, दान, भेद व दंड द्वारा सुग्रीवजीके निकटसे तुम नहीं खेंच सकते ॥ ११ ॥ बलवान् पुरुष दुर्बलको जीतकर आसन पाय सकता है, इसलिये दुर्बलको अपनी रक्षा करते हुए बलवान्से वैर न करना चाहिये ॥ १२ ॥ और जो तुम इस गुफाको

अपना रक्षण करनेवाला समझो सो यहभी वृथा है, क्योंकि इस बिलका विदारण करना लक्ष्मणजीके बाणोंका एकअति लघु काम है ॥ १३ ॥ जब इंद्रने मयपर क्रोध करके इसमें वज्र माराथा तो इसमें एक छोटासा छेदही होगया था परन्तु जब लक्ष्मणजी क्रोध करेंगेतो तीक्ष्ण बाणोंकी धारासे इसको पत्तोंके पुरटके समान छिन्न भिन्न कर डालेंगे इसमें कुछभीसंदेह नहीं है ॥ १४ ॥ कारण कि, लक्ष्मणके पास ऐसे पर्वतोंके तोडनेवाले वज्रतुल्यबाण बहुत सारे विद्यमान हैं ॥ १५ ॥ हे परवीरघाती ! जैसेही कि इस बिलमें तुम अपना वासस्थान बनाओगे तबही यह सब वानरगण कृतनिश्चय होकर निःसन्देहतुमको छोडकर चले जायँगे ॥ १६ ॥ यह सब वानर अपने २ स्त्री पुत्रोंको याद करके व्याकुल हो भूखों मरेंगे । इस प्रकार दुःखके पानेसे खेद युक्त हो तुमको

स्वल्पंहिकृतमिंद्रेणक्षिपताह्यशनिंपुरा ॥ लक्ष्मणोनिशितैर्बाणैर्भिद्यात्पत्रपुटंयथा ॥ १४ ॥ लक्ष्मणस्यचनाराचबहवःसंतितद्विधाः ॥ वज्राशनिसमस्पर्शागिरीणामपिदारकाः ॥ १५ ॥ अवस्थानंयदैवत्वमासिष्यसिपरंतप ॥ तदैवहरयःसर्वेत्यक्ष्यंतिकृतनिश्चयाः ॥ १६ ॥ स्मरंतःपुत्रदाराणांनित्योद्विग्नाबुभुक्षिताः ॥ खेदितादुःखशय्याभिस्त्वांकरिष्यंतिपृष्ठतः ॥ १७ ॥ सत्वंहीनःसुहृद्भिश्चहितकामश्चबन्धुभिः ॥ तृणादपिभृशोद्विग्नःस्पंदमानाद्भविष्यसि ॥ १८ ॥ अत्युग्रवेगानिशिताघोरालक्ष्मणसायकाः ॥ अपावृत्तंजिघांसंतोमहावेगादुरासदाः ॥ १९ ॥ अस्माभिस्तुगतंसार्धंविनीतवदुपस्थितम् ॥ आनुपूर्व्यात्तुसुग्रीवोराज्येत्वांस्थापयिष्यति ॥ २० ॥ धर्मराजःपितृव्यस्तेप्रीतिकामोदृढव्रतः ॥ शुचिःसत्यप्रतिज्ञश्चसत्वांजातुननाशयेत् ॥२१॥

पीछेछोड चले जांयगे ॥ १७ ॥ फिर तुम हित चाहनेवाले बन्धु और सुहृज्जनोंसे रहित सदा चञ्चलचित्त हो एक तिनकेसेभी घबडा जाया करोगे॥१८॥जो तुम विग्रह करोगे तो लक्ष्मणजीके महाभयंकर तेज उग्र वेगवान् दुर्द्धर्ष बाणोंका समूह तुमको संहार करेगा ❋ ॥ १९ ॥ तुम हमारे संग जो विनीतभावसे सुग्रीवजीके पास चलोगे, तो सुग्रीवजी आदिसे अन्ततक समस्त वृत्तांत श्रवण करके तुमको अवश्य राज्यमें अभिषेकित करेंगे ॥ २० ॥ तुम्हारे पितृव्य सुग्रीवजी, धर्मराज, प्रीतिमान्, दृढव्रत, पवित्र और सत्यप्रतिज्ञ हैं वह कदापि तुम्हारा विनाश नहीं करेंगे ॥ २१ ॥

❋ दोहा– तासों मनमें शांतिकर ढूंढौवन चितलाय । जनकसुता निज भाग्य वश, जो कदापि मिल जाय ।

वह सुग्रीवजी तुम्हारी माताका प्रियकार्य करनेवाले हैं, उसकेही निमित्त उनका जीवन है,और सुग्रीवके और कोई पुत्रभी नहीं है, कि वह उसे राज्य देदेंगे
इसलिये हे अंगद ! तुम अवश्य किष्किन्धाको चलो ॥ २२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्वा० वा० आदि० किष्किं० भाषायां चतुष्पंचाशः सर्गः ॥ ५४ ॥
हनुमानूजीके धर्मसंगत स्वामीका सत्कार करनेके योग्य विनयसमन्वित वचन सुनकर अंगदजी बोले ॥ १ ॥ हे हनुमन् ! स्थिरता, मनकी पवित्रता,
सलज्जता, सरलता, विक्रम और धीरता सुग्रीवजीमें यह कुछभी दृष्टि नहीं आता ॥ २ ॥ जो पुरुष माताकी तुल्य धर्ममें वर्तमान बडे भ्राताकी प्यारी
रानी स्त्रीको; उसके पुत्र हमारे जीवित रहते स्वीकार करले अर्थात् अपनी स्त्री बनाले; वह अत्यन्त घृणित है और धर्मके विषयको कुछ नहीं जानता

प्रियकामश्चतेमातुस्तदर्थंचास्यजीवितम् ॥ तस्यापत्यंचनास्त्यन्यत्तस्मादंगदगम्यताम् ॥ २२ ॥ इत्यार्षे० श्रीम० वा० आ० च० सा०
किष्किंधाकांडेचतुष्पंचाशः सर्गः ॥५४॥ श्रुत्वाहनुमतोवाक्यंप्रश्रितंधर्मसंहितम् ॥ स्वामिसत्कारसंयुक्तमंगदोवाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥ स्थैर्यं
मात्ममनःशौचमानृशंस्यमथार्जवम् ॥ विक्रमश्चैवधैर्यंचसुग्रीवेनोपपद्यते ॥ २ ॥ भ्रातुर्ज्येष्ठस्ययोभार्यांजीवतोमहिषींप्रियाम् ॥ धर्मेणमातरं
यस्तुस्वीकरोतिजुगुप्सितः ॥३॥ कथंसधर्मंजानीतेयेनभ्रात्रादुरात्मना ॥ युद्धायाभिनियुक्तेनबिलस्यपिहितंमुखम् ॥ ४ ॥ सत्यात्पाणिगृहीत
श्चकृतकर्मामहायशाः ॥ विस्मृतोराघवोयेनसकस्यसुकृतंस्मरेत् ॥५॥ लक्ष्मणस्यभयेनेहनाधर्मभयभीरुणा ॥ आदिष्टामार्गितुंसीतांधर्मस्तस्मि
न्कथंभवेत् ॥ ६ ॥ तस्मिन्पापेकृतघ्नेतुस्मृतिभिन्नेचलात्मनि ॥ आर्यःकोविश्वसेज्जातुतत्कुलीनोविशेषतः ॥७॥ राज्येपुत्रंप्रतिष्ठाप्यसगुणोवि
गुणोऽपिवा ॥ कथंशत्रुकुलीनंमांसुग्रीवोजीवयिष्यति ॥ ८ ॥

इसलिये वह अत्यन्त अधार्मिक है ॥ ३ ॥ जो दुरात्मा भ्राता युद्धमें लगेहुये अपने भ्राताके मार्गको बिलमें शिला लगायकर रोक दे, वह किस प्रकारसे
धर्मका जाननेवाला हो सकता है ? ॥ ४ ॥ महायशवान् कृतकार्य श्रीरामचन्द्रजीको जो सत्यसे ग्रहण करके भूलगया वह किसकी सुकृति व उपकार
स्मरण रख सकता है ॥५॥ जो अधर्मका भय नहीं करते जिसने केवल लक्ष्मणजीके भयसेही सीताजीके खोजनेकी आज्ञा दी है, उसको धर्मका भय किसप्रकारसे
संभव है ? ॥ ६ ॥ वह पापरूप, कृतघ्न, स्मृतिमार्गके कहे हुये धर्मसे भ्रष्टहुआ है, चञ्चलचित्त सुग्रीवके प्रति विशेषतः उसकेही कुलमें जन्म लेकर कौन उत्तम
पुरुष विश्वास कर सकता है ॥ ७ ॥ सुग्रीव गुणवान हो, अथवा गुणरहित हो, परन्तु वह शत्रुकुल पुत्र हमको राज्यमें प्रतिष्ठित करके किस प्रकारसे जीवित

रखसकेगा ॥ ८ ॥ हमारी बिलमें प्रवेश करनेकी मंत्रणा भेद हो गई है, इसलिये अपराधी,हीन, दुर्बल और अनाथके समान हम किष्किन्धामें गमन करके किस प्रकार जीवित रहसकेंगे ॥ ९ ॥ शठ, क्रूर, निष्ठुर,सुग्रीव राज्यके लिये यदि हमको प्राणोंसे न मारे तो भी हमें बन्धुआ तो अवश्यही करलेंगे॥१०॥ हे वानरगण ! बन्धन और अपवादसे किसी पुण्यस्थानमें जाकर मरना हमारे लिये अच्छा है, इसलिये हमें आज्ञा देकर आप सब जने अपने २ घरोंको चले जाइये ॥ ११ ॥ हम आप लोगोंसे प्रतिज्ञा करते हैं कि हम किष्किन्धामें न जायँगे इस स्थानमें हम मरणव्रत ग्रहण करेंगे क्योंकि हमारा मरणही श्रेष्ठ होगा ॥ १२ ॥ प्रथम हमारी ओरसे राजाजीको प्रणामकरके कुशल पूंछना और श्रीरामलक्ष्मणजीसेभी प्रणाम करके कुशल पूंछना ॥ १३ ॥ और

भिन्नमंत्रोपराद्धश्चभिन्नशक्तिःकथंह्यहम् ॥ किष्किंधांप्राप्यजीवेयमनाथइवदुर्बलः॥९॥उपांशुदंडेनहिमांबंधनेनोपपादयेत् ॥ शठःक्रूरोनृशंसश्च सुग्रीवोराज्यकारणात् ॥ १० ॥ बंधनाच्चावसादान्मेश्रेयःप्रायोपवेशनम् ॥ अनुजानंतुमांसर्वेगृहंगच्छंतुवानराः॥११॥ अहंवःप्रतिजानामि नगमिष्याम्यहंपुरीम् ॥ इहैवप्रायमासिष्येश्रेयोमरणमेवमे ॥१२॥ अभिवादनपूर्वंतुराजाकुशलमेवच ॥ अभिवादनपूर्वंतुराघवोबलशालिनौ ॥ १३ ॥ वाच्यस्तातोयवीयान्मेसुग्रीवोवानरेश्वरः ॥ आरोग्यपूर्वंकुशलंवाच्यामातारुमाचमे ॥१४॥ मातरंचैवमेताराभाश्वासयितुमर्हथ॥ प्रकृत्याप्रियपुत्रासासानुक्रोशातपस्विनी ॥१५॥विनष्टमिहमांश्रुत्वाव्यक्तंहास्यतिजीवितम् ॥ एतावदुक्त्वावचनंवृद्धांस्तानभिवाद्यच ॥१६॥ विवेशचांगदोभूमौरुदन्दर्भेषुदुर्मुखः ॥ तस्यसंविशतस्तत्ररुदंतोवानरर्षभाः ॥१७॥ नयनेभ्यःप्रमुमुचुरुष्णंवैवारिदुःखिताः॥सुग्रीवंचैवनिंदंतः प्रशंसंतश्चवालिनम् ॥१८॥ परिवार्यांगदंसर्वेव्यवसन्प्रायमासितुम्॥तद्वाक्यंवालिपुत्रस्यविज्ञायप्लवगर्षभाः ॥१९॥

उन राजा व छोटे हमारे तात सुग्रीवजीसे प्रणाम करके कुशल पूँछना और हमारी माता रुमासेभी आरोग्यपूर्वक कुशल पूँछना ॥ १४ ॥ और हमारी माता ताराको भी आप भलीभांति समझा देना; क्योंकि वह करुणावती तपस्विनी स्वभावसेही हमको बहुत प्यार करती हैं ॥ १५ ॥ क्योंकि वह वहांपर हमारा मरण सुनकर निश्चयही अपने प्राणोंकोपरित्याग करदेंगी, प्रणाम सहित यह सब वृद्धोंसे ॥ १६ ॥ कहकर अंगदजी रोदन करते हुये भूमिपर कुश बिछाय मरनेके लिये उदासीन हो बैठगये, उनको इस प्रकार मरनेपर उतारू देख सब वानरश्रेष्ठ रोने लगे ॥ १७ ॥ वह सबके सब रोदन कर नेत्रोंसे जलधारा गिराते और सुग्रीवकी निन्दा और वालिकी बड़ाई करने लगे ॥ १८ ॥ और अंगदजीके ऐसे वचन सुनकर

सब वानर मरनेके लिये निश्चय तैयार हो उनको घेरकर बैठगये ॥ १९ ॥ और सबही समुद्रके जलमें आचमन कर पूर्वमुख हो समुद्रके दक्षिण किनारेकी और कुशोंकी चोटी कर उनपर मरनेको बैठ गये ॥ २० ॥ मरनेकी इच्छा किये वानर अपने मरणको श्रेष्ठही मानते हुये श्रीरामचन्द्रजीका बनवास, राजा दशरथका मरण॥२१॥जनस्थानका विध्वंस,जटायुका मरण,जानकीका हरण,वालिका वध और श्रीरामचन्द्रजीका क्रोध कहते २ वानरगणोंको भय प्राप्त हुआ अर्थात् उनपर एक बडी विपत्ति आई ॥ २२ ॥ पर्वतकेसमान बहुत बलवाले वानरोंके प्रवेश करनेसे और उस पर्वतके शिखरपर कूदकर चढनेसे वह पर्वत झरने सहित शब्दायमान हुआ जैसे आकाशमें मेघ शब्द करते हों ॥२३॥ इत्यार्षे श्रीमद्वा०वा० आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायां पंचपंचाशः सर्गः ॥५५॥

उपस्पृश्योदकंसर्वेप्राङ्मुखाःसमुपाविशन्॥दक्षिणाग्रेषुदर्भेषुउदक्तीरंसमाश्रिताः ॥ २० ॥ मुमूर्षवोहरिश्रेष्ठाएतत्क्षममितिस्मह ॥ रामस्यव नवासंचक्षयंदशरथस्यच॥२१॥जनस्थानवधंचैववधंचैवजटायुषः ॥ हरणंचैववैदेह्यावालिनश्चवधंतथा ॥ रामकोपंचवदतांहरीणांभयमागतम् ॥२२॥ ससंविशद्भिर्बहुभिर्महीधरोमहाद्रिकूटप्रतिमैःप्लवंगमैः ॥ बभूवसन्नादितनिर्झरांतरोभृशंनदद्भिर्जलदैरिवाम्बरम् ॥२३॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा मायणेवाल्मीकीये आदिकाव्ये च०सा०किष्किंधाकांडे पंचपंचाशः सर्गः ॥५५॥ उपविष्टास्तुतेसर्वेयस्मिन्प्रायंगिरिस्थले ॥ हरयोगृध्रराजा श्चतंदेशमुपचक्रमे ॥ १ ॥ संपातिर्नामनाम्नातुचिरंजीवीविहंगमः ॥ भ्राताजटायुषःश्रीमान्विख्यातबलपौरुषः ॥ २ ॥ कंदरादभिनिष्क्र म्यसविंध्यस्यमहागिरेः॥ उपविष्टान्हरीन्दृष्ट्वाहृष्टात्मागिरमब्रवीत्॥३॥विधिःकिलनरंलोकेविधानेनानुवर्तते ॥ यथायंविहितोभक्ष्यश्चिरान्म ह्यमुपागतः॥ ४॥ परंपराणांभक्षिष्येवानराणांमृतंमृतम् ॥उवाचैतद्वचःपक्षीतान्निरीक्ष्यप्लवंगमान् ॥ ५ ॥

जिस पर्वतपर सब वानर लोग मरनेको बैठ गये थे, उस पर्वतपर एक गृध्रराज आकर उपस्थित हुआ, यही बडी भारी विपत्ति वानरोंके लिये आई ॥ १ ॥ उस संपाति नामक चिरंजीवी विहंगम श्रेष्ठका बल पौरुष विख्यात था और यह जटायुका बडा भाई था कि जिसने श्रीरामचन्द्रजीके कार्यमें अपने प्राण दे दियेथे ॥ २ ॥ वह उन वानरोंका बोल सुन विन्ध्याचल पर्वतकी कंदरामेंसे निकल सब वानरोंको वहां बैठे देख हर्षित होकर कहने लगा ॥ ३ ॥ कर्मके फलसे प्राणियोंके भाग्य अदलते बदलते रहते हैं उसके अनुसारही यह सब भोजनकी सामग्री बहुत दिनोंके पीछे आज मेरे सामने आई है ॥ ४ ॥ हम बराबर २ लंगारसे बैठे हुए इन वानरोंको क्रम २ से मारकर भोग लगाते जायँगे, वा इनके मरतेही क्रमसे मरते हुएको खाजांयगे, पक्षी

श्रेष्ठ सम्पातीने वानरोंकी देखकर जब इसप्रकार कहा ॥ ५ ॥ तब वानरोंको भक्षण करनेके लिये लोभी हुए उस पक्षीके ऐसे वचन सुनकर अंगदजी दुःखित होकर हनुमानजीसे बोले ॥ ६ ॥ देखो ! सीताजीके बहानेसे वानरलोगोंकी विपत्तिके लिये साक्षात् यमराजके समान यह पक्षी इस स्थानमें आया है ॥ ७ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके कार्यकी सिद्धि न हुई, न राजाहीकी आज्ञाके अनुसार कार्य हुआ। यह देखो ! इस समय वानरोंके लिये यह अज्ञात विपद आय पहुँची ॥ ८ ॥ देखो एक जटायु पक्षीने श्रीजानकीजीका हित करनेको जो कार्य किया था वह समस्त हमने श्रवण कर रक्खा है ॥ ९ ॥ इसप्रकार तिर्यक् योनिमें जन्म ग्रहण करके हम वानरोंके समान सबही प्राणी प्राण त्याग करकेभी श्रीरामचन्द्रजीके हित करनेका यत्न करते हैं ॥ १० ॥ वह

तस्यतद्वचनंश्रुत्वाभक्ष्यलुब्धस्यपक्षिणः ॥ अंगदःपरमायस्तोहनूमंतमथाब्रवीत् ॥ ६ ॥ पश्यसीतापदेशेनसाक्षाद्वैवस्वतोयमः ॥ इमंदेशमनुप्राप्तोवानराणांविपत्तये ॥ ७ ॥ रामस्यनकृतंकार्यंनकृतंराजशासनम् ॥ हरीणामियमज्ञाताविपत्तिःसहसागता ॥ ८ ॥ वैदेह्याःप्रियकामेनकृतंकर्मजटायुषा ॥ गृध्रराजेनयत्तत्रश्रुतंवस्तदशेषतः ॥ ९ ॥ तथासर्वाणिभूतानितिर्यग्योनिगतान्यपि ॥ प्रियंकुर्वंतिरामस्यत्यक्त्वाप्राणान्यथावयम् ॥ १० ॥ अन्योन्यमुपकुर्वंतिस्नेहकारुण्ययंत्रिताः ॥ ततस्तस्योपकारार्थंत्यजतात्मानमात्मना॥ ११॥प्रियंकृतंहिरामस्यधर्मज्ञेनजटायुषा ॥ राघवार्थेपरिश्रांतावयसंत्यक्तजीविताः ॥ १२॥ कांताराणिप्रपन्नाःस्मनचपश्याममैथिलीम् ॥ ससुखीगृध्रराजस्तुरावणेनहतोरणे ॥ मुक्तश्चसुग्रीवभयाद्गतश्चपरमांगतिम् ॥ १३ ॥ जटायुषोविनाशेनराज्ञोदशरथस्यच ॥हरणेनचवैदेह्याःसंशयंहरयोगताः ॥ १४ ॥ रामलक्ष्मणयोर्वासमरण्येसहसीतया ॥ राघवस्यचबाणेनवालिनश्चतथावधम् ॥ १५ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके प्रति स्नेह और करुणाके वशहो उनका उपकार करते हैं, इस लिये उनका उपकार करनेके लिये तुम लोगभी अपना जीव दे डालो ॥११॥ धर्मज्ञ जटायुने श्रीरामचन्द्रजीका कैसा कार्य किया था हम सब भी तो श्रीरामचन्द्रजीके कार्यके लिये थके थकाये जीव देनेको तैयार बैठे हैं ॥१२॥ और हम गिरि दुर्गतक चले आये ❀ परन्तु श्रीजानकीजीको कहीं न देख पाया। वह गृध्रराज जटायु रावणके हाथसे मरकर सुग्रीवके भयसे छूट परम गतिको प्राप्त हुआ ॥ १३ ॥ जटायुके और राजा दशरथजीके मरणसे फिर जानकीजीके हरणकी इन सब घटनाओंसे वानरगणोंको इस समय प्राण संशय आ पहुँचा है ॥ १४ ॥ श्रीराम लक्ष्मण जीका सीताजीके सहित वनमें वास, और श्रीरामचन्द्रजीके बाणसे वालिका वध ॥ १५ ॥

❀ सब पक्षी आदि जीवमात्रके सुग्रीव राजा थे सबको आज्ञा माननी पडती थी ॥

फिर श्रीरामचन्द्रजीके क्रोधसे राक्षसोंका वध, और अब हमारा मरण यह सब बातें एक कैकेयीके बरदान माँगनेहीके कारण हुई हैं ॥१६॥ गृध्रराज महामति सम्पाति उन वानरोंके कहे हुये अपने अनुजके विषयमें अकीर्तित कृपण असुखकर वचन सुनकर अत्यन्त चकित हो भूमिमें पडे हुए उन वानरोंको देखकर बोले ॥ १७ ॥ गंभीर स्वरवाले तीक्ष्ण चोंचधारी गृध्र अंगदजी मुखसे निकले हुये वह वचन सुनकर बोला ॥ १८ ॥ भाई ! कौन हमारे प्राणोंके समान प्यारे भ्राता जटायुके बधका समाचार प्रचार करता है ! कि, जिसको सुनकर हमारा मन कम्पायमान होता है ॥ १९ ॥ जनस्थानमें रावण और जटायुका युद्ध किस प्रकारसे हुआ ? बहुत दिनके पीछे हमने अपने प्यारे भ्राताका नाम सुना ॥ २० ॥ परन्तु हम इच्छानुसार इस पर्वतपरसे उतर नहीं सकते इस

रामकोपादशेषाणांरक्षसांचतथावधम् ॥ कैकेय्यावरदानेनइदंचविकृतंकृतम् ॥१६॥ तदसुखमनुकीर्तितंवचोभुविपतितांश्चनिरीक्ष्यवानरान् ॥ भृशचकितमतिर्महामतिःकृपणमुदाहृतवान्सगृध्रराजः॥१७॥तत्तुश्रुत्वातथावाक्यमंगदस्यमुखोद्गतम्॥ अब्रवीद्वचनंगृध्रस्तीक्ष्णतुंडोमहास्वनः ॥ १८ ॥ कोऽयंगिराघोषयतिप्राणैःप्रियतरस्यमे ॥ जटायुषोवधंभ्रातुःकंपयन्निवमेमनः ॥ १९ ॥ कथमासीज्जनस्थानेयुद्धंराक्षसगृध्रयोः ॥ नामधेयमिदंभ्रातुश्चिरस्याद्यमयाश्रुतम् ॥२०॥ इच्छेयंगिरिदुर्गाच्चभवद्भिरवतारितुम् ॥ यवीयसोगुणज्ञस्यश्लाघनीयस्यविक्रमैः॥२१॥अति दीर्घस्यकालस्यपरितुष्टोऽस्मिकीर्तनात् ॥ तदिच्छेयमहंश्रोतुंविनाशंवानरर्षभाः ॥२२॥भ्रातुर्जटायुषस्तस्यजनस्थाननिवासिनः॥तस्यैवचमम भ्रातुःसखादशरथःकथम् ॥२३॥ यस्यरामःप्रियःपुत्रोज्येष्ठोगुरुजनप्रियः ॥ सूर्यांशुदग्धपक्षत्वान्नशक्नोमिविसर्पितुम् ॥२४॥ इच्छेयंपर्वता दस्मादवतर्तुमरिंदमाः ॥ २५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आ०च० सा० किष्किंधाकांडे षट्पंचाशः सर्गः ॥ ५६ ॥

लिये यह इच्छा है कि, तुमलोग उतारलो, हम तुम सबपर गुणज्ञ, विक्रमोंसे प्रशंसनीय अपने लघु भ्राताके ॥२१॥ नामका कीर्तन बहुत दिनोंके पीछे श्रवण करनेके कारण अत्यन्त प्रसन्न हुये हे वानरश्रेष्ठो ! मैं उसका विनाश सुना चाहताहूँ ॥२२॥ कि, जनस्थानका हमारा भाई कैसे मारागया और वही हमारा भाई दशरथजीका सखा कैसे हुआ ॥ २३ ॥ कि; जिन दशरथजीके बडे प्यारे ज्येष्ठ पुत्र गुरुजनके प्रिय श्रीरामचन्द्रजी हैं सूर्यकी किरणोंसे अपनेपर जल जानेके कारण हम उड नहीं सकते ॥ २४ ॥ इसलिये हे शत्रुओंके मारनेवाले वानरो ! हम इस पर्वतसे उतरना चाहते हैं ॥ २५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० किष्किन्धाकांडे भाषायां षट्पंचाशः सर्गः ॥ ५६ ॥

वानरयूथपतियोंने शोकके हेतु उस गृध्रके टूटे फूटे वचन सुनकर भी उसका विश्वास न माना क्योंकि वह वानर उसके वधवचनरूप कर्मसे शंकित हो रहेथे ॥ १ ॥ उन मरनेके लिये व्रत धारण कियेहुये वानरोंने गृध्रको देखकर मनमें समझा कि, यह भयंकर पक्षी हम सबोंकोही भक्षण करेगा ॥२॥ हमतो प्राण त्याग करनेके लिये प्रायोपवेशन किये ही हैं;सो यदि यह गृध्र जो हमको भक्षण करले तो हमने जो मरण वासना की है वह सिद्ध हो जायगी और हम कृतार्थ हो जायँगे ॥ ३ ॥ समस्त कपियूथपोंने इस प्रकार बुद्धि करके संपातीको पर्वतसे नीचे उतारा तब फिर अंगदजी उससे बोले ॥ ४ ॥ हे पक्षिन् ! ऋक्षराज नामक पृथ्वीपति प्रतापवान् वानरोंके राजा हमारे पितामह थे उनके दो पुत्र अति धार्मिक हुये ॥ ५ ॥ वह सुग्रीव और वाली अतिविक्रमशाली हुये उनमें

शोकाद्भ्रष्टस्वरमपिश्रुत्वावानरयूथपाः ॥ श्रद्दधुर्नैवतद्वाक्यंकर्मणातस्यशंकिताः ॥१॥ तेप्रायमुपविष्टास्तुदृष्ट्वागृध्रंप्लवंगमाः॥चक्रुर्बुद्धिंतदारौद्रांसर्वान्नोभक्षयिष्यति॥२॥सर्वथाप्रायमासीनान्यदिनोभक्षयिष्यति ॥कृतकृत्याभविष्यामःक्षिप्रंसिद्धिमितोगताः॥३॥ एतांबुद्धिंततश्चक्रुःसर्वेतेहरियूथपाः॥ अवतार्यगिरेःशृंगाद्गृध्रमाहांगदस्तदा ॥ ४ ॥ बभूवर्क्षरजानामवानरेंद्रःप्रतापवान्॥ ममार्यःपार्थिवःपक्षिन्धार्मिकौतस्यचात्मजौ ॥५॥ सुग्रीवश्चैववालीचपुत्रौघनबलावुभौ ॥ लोकेविश्रुतकर्माभूद्राजावालीपितामम॥६॥राजाकृत्स्नस्यजगतइक्ष्वाकूणांमहारथः ॥ रामोदाशरथिःश्रीमान्प्रविष्टोदंडकावनम्॥७॥लक्ष्मणेनसहभ्रात्रावैदेह्यासहभार्यया ॥ पितुर्निदेशनिरतोधर्मंपंथानमाश्रितः ॥ ८ ॥ तस्यभार्याजनस्थानाद्रावणेनहृताबलात् ॥ रामस्यतुपितुर्मित्रंजटायुर्नामगृध्रराट् ॥९॥ददर्शसीतांवैदेहींह्रियमाणांविहायसा॥ रावणंविरथंकृत्वास्थापयित्वाचमैथिलीम् ॥ परिश्रांतश्चवृद्धश्चरावणेनहतोरणे॥१०॥

विख्यात कीर्ति हमारे पिता वाली वानरोंके राजा हुये ॥ ६ ॥ जब सब जगत्के राजा इक्ष्वाकुकुलमें उत्पन्न हुये दशरथजीके पुत्र रामचंद्रजी दंडक वनमें आये ॥ ७ ॥ वह श्रीरामचंद्रजी पिताकी आज्ञासे धर्ममार्गमें टिककर भ्राता लक्ष्मण और अपनी भर्या वैदेहीजीके सहित वनमें आये ॥ ८ ॥ जब कि रामचंद्रजी आश्रममें नहीं थे तब रावण बलसे उन रामचंद्रजीकी स्त्री सीताजीको हरण करके लेगया उनके पिता दशरथजीके मित्र जटायु नाम गृध्रराजने ॥ ९ ॥ देखा कि आकाशमार्गमेंहोकर रावण जानकीजीको हरणकिये लिये जाता है, तो उन्होंने रावणको विरथ करदिया और उससे सीताजीको छीन लिया परन्तु वृद्ध होनेके कारण जब वह लडते २ थक गये तब रावणने संग्राममें उनका संहार कर दिया ॥ १० ॥

जब इसप्रकार गृध्र जटायु बलवान् रावणके हाथसे मारागया तब श्रीरामचन्द्रजीने अपने हाथोंसे जटायुकी दाहक्रियाकर उसे उत्तम गतिको पहुँचाया ॥११॥ फिर श्रीरामचन्द्रजीने हमारे चचा सुग्रीवजीने मित्रता की जिससे उन्होंने हमारे पिता वालिको मारडाला ॥१२॥ हमारे पिताजीने सुग्रीवको उनके मंत्रियों सहित राज्यसे निकाल दियाथा जिससे वह ऋष्यमूकपर्वतपर रहते थे इसीलिये श्रीरामचन्द्रजीने हमारे पिताको मार सुग्रीवको राजा बनाया ॥१३॥ उन वानरनाथ सुग्रीवने अपने राज्यपर स्थापित होकर सब वानर यूथपोंको आज्ञा दी जिससे कि हम यहांपर आये हैं ॥१४॥ और रामचन्द्रजीके कहनेसे हमने इस कार्यमें लगे हुए अनेक स्थानोंमें जानकीजीको खोजा, परन्तु रात्रिकालमें सूर्यकी प्रभाके समान हमने उनको कहीं न पाया ॥१५॥ हम सब बडी सावधानीसे

एवंगृध्रोहतस्तेनरावणेनबलीयसा ॥ संस्कृतश्चापिरामेणजगामगतिमुत्तमाम् ॥११॥ ततोममपितृव्येणसुग्रीवेणमहात्मना ॥ चकारराघवःसख्यं सोऽवधीत्पितरंमम ॥ १२ ॥ ममपित्रानिरुद्धोहिसुग्रीवःसचिवैःसह ॥ निहत्यवालिनंरामस्ततस्तमभिषेचयत् ॥ १३ ॥ सराज्येस्थापित स्तेनसुग्रीवोवानरेश्वरः ॥ राजावानरमुख्यानांतेनप्रस्थापितावयम् ॥१४॥ एवंरामप्रयुक्तास्तुमार्गमाणास्ततस्ततः ॥ वैदेहींनाधिगच्छामोरात्रौसूर्यप्रभामिव ॥ १५ ॥ तेवयंदंडकारण्यंविचित्यसुसमाहिताः ॥ अज्ञानात्तुप्रविष्टाःस्मधरण्याविवृतंबिलम् ॥१६॥ मयस्यमायाविहितंतद्बिलंचविचिन्वताम् ॥ व्यतीतस्तत्रनोमासोयोराज्ञासमयःकृतः ॥१७॥ तेवयंकपिराजस्यसर्वेवचनकारिणः ॥ कृतांसंस्थामतिक्रांताभयात्प्रायमुपासिताः ॥१८॥ क्रुद्धेतस्मिंस्तुकाकुत्स्थेसुग्रीवेचसलक्ष्मणे ॥ गतानामपिसर्वेषांतत्रनोनास्तिजीवितम् ॥ १९ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आदिकाव्येच० सा० किष्किंधाकांडे सप्तपंचाशः सर्गः ॥ ५७ ॥

दंडकारण्यको ढूढँ रहे थे कि, अज्ञानके वश होकर एक बिलमें प्रवेश कर गये ॥१६॥ वह मयदानवका बनाया हुआ है, उस बिलको ही ढूँढते २ सुग्रीवजीका नियत किया हुआ एक मासका समय बीत गया ॥ १७ ॥ हम लोग वानरराज सुग्रीवजीकी आज्ञाके प्रतिपालन उनके नियत किये समयके बीत जानेसे भयके कारण मरनेके लिये प्रायोपवेश व्रत धारण किये हुए हैं ॥ १८ ॥ क्योंकि लक्ष्मण सुग्रीव और रामचन्द्रजीके क्रोध करनेसे हमें मरना पडेगा, इसलिये हम वहां न जाकर यहांही प्राण त्यागनेको तैयार हुए हैं ॥ १९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्कि० भाषायां सप्तपंचाशः सर्गः ॥ ५७ ॥

जब जीवनको त्याग करनेके लिये निश्चय किये वानरोंने इस प्रकार करुणाके भरे वचन कहे तब गृध्रराज सम्पाति नेत्रोंमें जल भरकर गँभीर स्वरसे उन वानरोंसे बोले ॥१॥ हे वानर यूथपो ! बलवान् रावणसे जिसको वध किया हुआ तुम कहते हो वही हमारा छोटा भाई जटायु था ॥ २ ॥ यह कठोर वार्त्ता हमने बुढापे और पँखोंके न रहनेसे सुनकर सहन करली क्योंकि, इस समय रावणसे अपने छोटे भाई का वैर लेनेके लिये हममें सामर्थ्य नहीं है ॥ ३ ॥ पूर्व कालमें वृत्रासुरके वधके समय जयके अभिलाषी होकर हम दोनों भ्राता, जलती हुई किरणोंवाले सूर्यनारायण के निकट पहुँच गये ॥४॥ जब हम आकाश मार्गमें अति वेगसे गमन कर रहे थे,तब सूर्यके मध्यस्थलमें पहुँचकर जटायु सूर्यकी किरणोंसे बहुत व्याकुल हुआ॥५॥हमने सूर्य की किरणोंसे भ्राताको दुःखित

इत्युक्तःकरुणंवाक्यंवानरैस्त्यक्तजीवितैः ॥ सबाष्पोवानरान्गृध्रःप्रत्युवाचमहास्वनः॥१॥यवीयान्सममभ्राताजटायुर्नामवानराः ॥ यमाख्याहतंयुद्धेरावणेनबलीयसा ॥२॥ वृद्धभावादपक्षत्वाच्छृण्वंस्तदपिमर्षये ॥ नहिमेशक्तिरस्त्यद्यभ्रातुर्वैरविमोक्षणे ॥३॥ पुरावृत्रवधेवृत्तेसचाहंचजयैषिणौ ॥ आदित्यमुपयातौस्वोज्वलंतंरश्मिमालिनम् ॥४॥ आवृत्त्याकाशमार्गेणजवेनस्वर्गतौभृशम् ॥ मध्यंप्राप्तेतुसूर्येतुजटायुरवसीदति ॥५॥ तमहंभ्रातरंदृष्ट्वासूर्यरश्मिभिरर्दितम् ॥ पक्षाभ्यांछादयामासस्नेहात्परमविह्वलम् ॥६॥ निर्दग्धपक्षःपतितोविंध्येऽहंवानरर्षभाः ॥ अहमस्मिन्वसन्भ्रातुः प्रवृत्तिं नोपलक्षये ॥ ७ ॥ जटायुषस्त्वेवमुक्तोभ्रात्रासंपातिनातदा ॥ युवराजोमहाप्राज्ञःप्रत्युवाचांगदस्तदा ॥ ८ ॥ जटायुषो यदिभ्राताश्रुतंतेगदितंमया ॥ आख्याहियदिजानासिनिलयंतस्यरक्षसः ॥ ९ ॥ अदीर्घदर्शिनंतंवैरावणंराक्षसाधमम् ॥ अंतिकेयदिवादूरेयदिजानासिशंसनः ॥ १० ॥ ततोऽब्रवीन्महातेजाभ्राताज्येष्ठोजटायुषः ॥ आत्मानुरूपंवचनंवानरान्संप्रहर्षयन् ॥ ११ ॥

देख स्नेहके मारे अतिशय कातर हो उस भ्राताको अपने दोनों पंखोंसे ढक लिया ॥ ६ ॥ हे वानर श्रेष्ठो ! तब सूर्यनारायणकी किरणोंसे पंख जल गये और हम इस बिन्ध्याचल पर्वत पर गिरे तबसे इस स्थानमें रहते हुए हमने भ्राता जटायु का कुछ समाचार नहीं जाना ॥७॥ जटायुके बडे भ्राता सम्पातीसे इस प्रकार कहे जाकर महा प्राज्ञ युवराज अंगदजी कहने लगे ॥ ८ ॥ जो आपही जटायुके भ्राता हैं तो हमारे वचन आपने सुनेही हैं इस समय यदि ज्ञात हो तो आप उस राक्षस रावण का स्थान बता दीजिये ॥९॥ यदि आप उस विचार रहित राक्षसोंमें नीच रावणको जानते हों ? तो दूर हो या निकट हो उसका स्थान हमें बता दीजिये ॥१०॥ जब अंगदजीने ऐसा कहा तब जटायुका भ्राता महातेजस्वी सम्पाति वानरोंको हर्षित कराता हुआ अपने अनुरूप

वचन बोला॥११॥हे वानरश्रेष्ठो ! हमारे पंख जल गये हैं,इस समय बलवीर्यकुछभी नहीं है तथापि हम केवल वचनकेही सहारे श्रीरामचन्द्रजीका उत्तम सहाय करेंगे ॥१२॥हम वरुणलोक और जहां तक लोक त्रिविक्रम वामनजीने नापे हैं,वह भूरादिलोक सबको जानते हैं औरदेवासुरोंका संग्राम और समुद्रसे अमृतका मथन इत्यादि सबकुछ हमने देखा है ॥ १३ ॥ जरा अवस्थाके आजानेसे हमारा तेज हत होगया, और प्राण शिथिल हो आये, नहीं तो श्रीरामचन्द्रजीका प्रथम कार्य हमकोही अवश्य करनाचाहिये था ॥ १४ ॥ सर्व गहनोंसे भूषित रूपयौवन सम्पन्न श्रीरामचन्द्रजी की भार्या सीताजीको रावण हरण किये लेजा रहाथा, तब हमने उसको देखा है॥१५॥ वह सीताजी, राम २ लक्ष्मण २ शब्द कह चिल्लाय २ अपने अंगोंके गहने निकाल २ पृथ्वीपर फेंकती थी ॥१६॥

निर्दग्धपक्षोगृध्रोऽहंगतवीर्यःप्लवंगमाः॥वाङ्मात्रेणापिरामस्यकरिष्येसाह्यमुत्तमम्॥१२॥जानामिवारुणाँल्लोकान्विष्णोस्त्रैविक्रमानपि॥देवासुरविमर्दांश्चह्यमृतस्यविमंथनम् ॥१३॥ रामस्ययदिदंकार्यंकर्तव्यंप्रथमंमया ॥ जरयाचहृतंतेजःप्राणाश्चशिथिलामम॥१४॥तरुणीरूपसंपन्नासर्वाभरणभूषिता ॥ ह्रियमाणामयादृष्टारावणेनदुरात्मना॥ १५॥ क्रोशंतीरामरामेतिलक्ष्मणेतिचभामिनी॥भूषणान्यपविध्यंतीगात्राणिचविधुन्वती ॥ १६ ॥ सूर्यप्रभेवशैलाग्रेतस्याःकौशेयमुत्तमम् ॥ असितेराक्षसेभातियथाविद्युदिवाम्बरे ॥१७॥ तांतुसीतामहंमन्येरामस्यपरिकीर्तनात् ॥ श्रूयतांमेकथयतोनिलयंतस्यरक्षसः ॥१८॥ पुत्रोविश्रवसःसाक्षाद्भ्रातावैश्रवणस्यच ॥ अध्यास्तेनगरींलंकांरावणोनामराक्षसः॥१९॥ इतोद्वीपेसमुद्रस्यसंपूर्णेशतयोजने ॥ तस्मिँल्लङ्कापुरीरम्यानिर्मिताविश्वकर्मणा ॥२०॥ जाम्बूनदमयैर्द्वारैश्चित्रैःकांचनवेदिकैः ॥ प्रासादैर्हेमवर्णैश्चमहद्भिःसुसमाकृता ॥ २१ ॥ प्राकारेणार्कवर्णेनमहताचसमन्विता ॥ तस्यांवसतिवैदेहीदीनाकौशेयवासिनी ॥२२॥

उनका उत्तम रेशमीन वस्त्र पर्वतके आगेमें सूर्यकी प्रभाके समान शोभा पारहा था; और वह भी स्वयं काले वर्णवाले राक्षसोंके निकट आकाशमें रहती हुई बिजलीके समान शोभा विस्तारकरती थीं॥१७॥उन्होंने जो राम राम अपने मुखसे कहा था सो अब हमनेजाना कि वह श्रीरामचंद्रजीकी भार्या सीताजी थीं अब उस राक्षसके रहनेका स्थान हम कहते हैं तुम श्रवण करो॥१८॥विश्रवाका पुत्र, और कुबेर का साक्षात् भ्राता रावण नामक वह राक्षस लंकानगरीमें वास करता है ॥१९॥ वह लंका यहांसे चारसौ कोशकी दूरीपर एकसमुद्रके द्वीपमें बसी है, उस मनोहर लंकापुरीको विश्वकर्माने बनाया है॥२०॥उस पुरीमें सब सुवर्णमयद्वार सुवर्णहीकी चित्र विचित्र वेदियाँ और बडे सुवर्णहीके राजमंदिर बने हैंऔर उस पुरीकी भूमि सब जगहही समान है॥२१॥उसकीचहारदिवारी

भी सुवर्णमय सूर्यकी प्रभाके समान झलकती है उस लंकानगरीमें अतिदीना जानकीरेशमीन वस्त्र पहरे हुए वसती है ❀ ॥ २२॥ वह रावणके अंतःपुरमें रोकी हुई राक्षसियोंसे रक्षा की जाती हैं, तुम उस नगरीमें जनककुमारी सीताजीको देखोगे॥ २३॥ महा दुर्गम और प्रचारादिसे रहित लंकापुरीके चारों ओर सागर है, उस शतयोजन समुद्रके पार होकर उस दक्षिण किनारे पर जाय फिर रावणको देखपाओगे; इससे हे वानर श्रेष्ठो! तुम शीघ्र वहां जाओ और अपना २ विक्रम दिखाओ हम अपने ज्ञानसे निश्चय देखते हैं, कि तुम लोग जानकीजी को देख कर लौट आओगे । कबूतर आदि धान्यजीवी पक्षी जो आकाश मार्गमें उडते हैं इसलिये प्रथम पंथ इनका॥ २४॥ दूसरा मार्ग जो इससे कुछ भी ऊँचा है वह फलादि खानेवालेकाकोंका है, और बटेर क्रौञ्च कुरर आदि इनसे भी कुछ ऊँचे तीसरे मार्गमें उडते

रावणांतःपुरेरुद्धाराक्षसीभिःसुरक्षिता ॥ जनकस्यात्मजांराज्ञस्तस्यांद्रक्ष्यथमैथिलीम् ॥२३॥ "लंकायामभिगुप्तायांसागरेणसमंततः ॥ संप्राप्यसागरस्यांतेसंपूर्णेशतयोजन॥ आसाद्यदक्षिणंकूलंततोद्रक्ष्यथरावणम्॥ तत्रैवत्वरिताःक्षिप्रंविक्रमध्वंप्लवंगमाः"॥ ज्ञानेनखलुपश्यामिदृष्ट्वाप्रत्यागमिष्यथ ॥ आद्यःपंथाःकुलिंगानांयेचान्येधान्यजीविनः ॥ २४ ॥ द्वितीयोबलिभोजानांयेचवृक्षफलाशनाः॥ भासास्तृतीयंगच्छंतिक्रौंचाश्चकुररैःसह॥ २५ ॥ श्येनाश्चतुर्थंगच्छंतिगृध्रागच्छंतिपंचमम् ॥ बलवीर्योपपन्नानांरूपयौवनशालिनाम् ॥ २६ ॥ षष्ठस्तुपंथाहंसानांवैनतेयगतिःपरा॥ वैनतेयाच्चनोजन्मसर्वेषांवानरर्षभाः॥२७॥ गर्हितंतुकृतंकर्मयेनस्मपिशिताशिनः ॥ प्रतिकार्यंचमेतस्यवैरंभ्रातृकृतंभवेत्॥२८॥ इहस्थोऽहंप्रपश्यामिरावणंजानकींतथा ॥ अस्माकमपिसौपर्णंदिव्यंचक्षुर्बलंतथा ॥२९॥ तस्मादाहारवीर्येणनिसर्गेणचवानराः ॥ आयोजनशतात्साग्राद्वयंपश्यामनित्यशः ॥ ३० ॥

हैं॥ २५॥ उनसे ऊँचे चतुर्थ मार्ग में बाज उडते हैं, इनसे ऊर्ध्व पांचवे मार्गमें गृध्र जाते हैं बलवीर्य युक्तरूप यौवन सम्पन्न॥ २६॥ हंसोंकाछठा मार्ग है जो गृध्रकेभी मार्गसे ऊँचा है और गरुडों की गति सबसेश्रेष्ठ है, उनके समान ऊपर आकाशमें और कोई भी जानेको समर्थ नहीं होता, हेकपिवरो! हम लोगोंकाजन्म वैनतेय अरुणसे हुआ है॥ २७॥ जिस राक्षसने स्त्रीको हरण करके दुष्कार्य किया और हमारे भ्राता जटायुको मार डाला है, सो उसका पता बतानेसेही मानो हमने उससे अपने भाईका वैर लेलिया॥ २८॥ हम यहां रहकरभी रावण और जानकीजीको देख रहे हैं क्योंकि हम लोगोंकी आंखोंका बल गरुडकी दिव्य आंखोंसे उत्पन्न है इसलिये यह दृष्टि बहुत दूरतक जाती है॥ २९॥ हे वानरो ! इस कारण और मांसादि भक्षण करनेके बलसे हम शतयोजनकी बरन् इससेभी कुछ

❀ तहां वसत सिय जनकदुलारी । रामचन्द्र बिन निकट दुखारी ।

अधिक दूरकी वस्तुदेख सकते हैं॥३०॥स्वभावसे ही हम गृध्रोंकी वृत्ति दूरकर स्थित भोजनादि देखनेकी बनी है और मुरगे आदिकी दृष्टि उस पेडकीजडहीतक पहुँचती है जिसपर वह रहा करते हैं॥३१॥तुमलोग क्षारसमुद्रको नांघनेकेलिये कोई उपाय खोज करो;इससे जानकीजीके निकट पहुँचकर कार्यसिद्धकर किष्कि न्धाको लौट आना॥३२॥तुम हमको समुद्रके किनारे पर लेचलो हम वहांपर उस स्वर्गको गये हुये अपने महात्मा छोटे भाईको जलांजली देंगे ॥३३॥ जब सम्पातिने ऐसा कहा तो महात्मा वानरवृन्द उस पंख जलेहुये सम्पातिको नदनदीपति समुद्रके तीरपर ले आये ॥ ३४ ॥ तब वानरगण उस पक्षिनाथको समुद्रके तीरपर ले गये और सीताजीकावृत्तांत प्राप्तकर आनंदित हुये ॥ ३५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्किं० भाषायामष्टपंचाशः सर्गः ॥ ५८ ॥

अस्माकंविहितावृत्तिर्निसर्गेणचदूरतः ॥ विहितावृक्षमूलेतुवृत्तिश्चरणयोधिनाम् ॥३१॥ उपायोदृश्यतांकश्चिल्लंघनेलवणाम्भसः ॥ अभिगम्य तुवैदेहींसमृद्धार्थागमिष्यथ ॥ ३२ ॥ समुद्रंनेतुमिच्छामिभवद्भिर्वरुणालयम् ॥ प्रदास्याम्युदकंभ्रातुःस्वर्गतस्यमहात्मनः ॥३३॥ ततोनीत्वातु तंदेशंतीरेनदनदीपतेः ॥ निर्दग्धपक्षंसंपातिंवानराःसुमहौजसः ॥३४॥ तंपुनःप्रापयित्वाचतंदेशंपतगेश्वरम् ॥ बभूवुर्वानराहृष्टाःप्रवृत्तिमुपल भ्यते ॥३५॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० किष्किंधाकांडे अष्टपंचाशः सर्गः ॥५८॥ ततस्तदमृतास्वादंगृध्रराजेनभाषितम् ॥ निशम्यवदतोहृष्टास्तेवचःप्लवगर्षभाः ॥१॥ जाम्बवान्वानरश्रेष्ठःसहसर्वैःप्लवंगमैः॥भूतलात्सहसोत्थायगृध्रराजानमब्रवीत् ॥ २ ॥ क्वसिताकेनवादृष्टाकोवाहरतिमैथिलीम् ॥ तदाख्यातुभवान्सर्वंगतिर्भववनौकसाम् ॥ ३ ॥ कोदाशरथिबाणानांवज्रवेगनिपातिनाम् ॥ स्वयंलक्ष्मणमुक्तानांनचिंतयतिविक्रमम् ॥ ४ ॥ सहरीन्प्रतिसंमुक्तान्सीता श्रुतिसमाहितान्॥पुनराश्वासयन्प्रीतइदंवचनमब्रवीत् ॥५॥ श्रूयतामिह वैदेह्यायथामेहरणंश्रुतम्॥येनचादिममाख्यातंयत्रचायतलोचना ॥ ६ ॥

फिर गृध्रराज सम्पातिके कहे हुये अमृतमय वचन सुनकर वानरगण अत्यन्त हर्षित होनेकी कथा बार २ कहने लगे॥१॥इसके पीछे वानरपति जाम्बवान्जी समस्त वानरगणोंके सहित भुमिशयनसे सहसा उठे और गृध्रराजसे कहनेलगे ॥ २ ॥ कि यद्यपि आप सब बताय चुके तथापि फिर एक बार सीताजी इस समय कहांहैं ? किस पुरुषने उनको देखा है ? और किसने उनको हरण किया है,यह सब कहकर वनवासी वानरोंका विशेष उपकार साधन कीजिये॥३॥वह कौन है कि जिस पुरुषने दशरथकुमार श्रीराम और लक्ष्मणजीके धनुषसे छूटे हुये बाणसमूहके विक्रमकी चिन्ता नहीं की ॥ ४ ॥ सम्पाति उन प्रायोपवेशन त्यागेहुए सीताजीका वृत्तान्तश्रवणकरनेकी इच्छाकिये वानरोंको समझाबुझाकर फिर प्रेमसे इस प्रकार वचन बोला ॥ ५ ॥ हे वानरो ! सीताजीके हरणका

वृत्तांत जैसे हमने सुना है और वह बडे २ नेत्रवाली इस समय कहांपर रहती हैं सो तुम श्रवण करो जिसने हमसे कहा वहभी सुनो॥६॥हम क्षीणप्राण क्षीण पराक्रम और वृद्ध अवस्थायुक्त इस पर्वतकी अनेक योजनकी चौडी गुफामें बहुत दिनोंसे गिरकर रहते हैं ॥ ७ ॥ हमारा पुत्रसुपार्श्वनामक पक्षिश्रेष्ठ हमारी इस अवस्थाको जानकर यथासमयमें आहार देकरहमारा प्रतिपालन करता है ॥८॥ गन्धर्वगणोंको काममें बडा अभिलाष, सर्पगणोंमें बडा क्रोध, मृगगणोंमें बडा भय, और हमारी क्षुधा अत्यन्त तीक्ष्ण जाननी ॥ ९ ॥ एक समयमें हमारा पुत्र सूर्योदयके समयसे गया. सन्ध्याको बिनाही आहारके हमारे पास आया उससमय हम भूँखके मारे व्याकुल हो आहारकी बाट देख रहे थे ॥१०॥ भोजन न पानेके कारण हमने अपने पुत्रको दुर्वचनोंसे परिपीडित किया

अहमस्मिन्गिरौदुर्गेबहुयोजनमायते ॥ चिरान्निपतितोवृद्धःक्षीणप्राणपराक्रमः ॥७॥ तंमामेवंगतंपुत्रःसुपार्श्वोनामनामतः॥आहारेणयथाकालंबिभर्तिपततांवरः ॥ ८ ॥ तीक्ष्णकामास्तुगंधर्वास्तीक्ष्णकोपाभुजंगमाः ॥ मृगाणांतुभयंतीक्ष्णंततस्तीक्ष्णक्षुधावयम्॥९॥सकदाचित्क्षुधार्तस्यममाहाराभिकांक्षिणः ॥ गतःसूर्येहनिप्राप्तोममपुत्रह्यनामिषः ॥१०॥ समयाहारसंरोधात्पीडितः प्रीतिवर्धनः ॥ अनुमान्ययथातत्त्वमिदंवचनमब्रवीत्॥११॥अहंतातयथाकालमामिषार्थीखमाप्लुतः॥ महेंद्रस्यगिरेर्द्वारमावृत्यसुसमाश्रितः॥१२॥तत्रसत्त्वसहस्राणांसागरांतरचारिणाम् ॥ पंथानमेकोऽध्यवसंसन्निरोद्धुमवाङ्मुखः ॥१३॥ तत्रकश्चिन्मयादृष्टःसूर्योदयसमप्रभाम् ॥ स्त्रियमादायगच्छन्वैभिन्नांजनचयोपमः ॥१४॥सोऽहमभ्यवहारार्थंतौदृष्ट्वाकृतनिश्चयः॥तेनसाम्नाविनीतेनपंथानमनुयाचितः ॥१५॥ नहिसामोपपन्नानांप्रहर्ताविद्यतेभुवि ॥ नीचेष्वपिजनः कश्चित्किमंगबतमद्विधः ॥ १६ ॥

तब प्रीतिका बढानेवाला पुत्र हमारा सन्मान करता हुआ हमसे बोला॥११॥हे तात ! हमयथा समय में मांसकी खोज करनेके लिये आकाशमेंउडकर महेन्द्र गिरिका द्वाररोककर खडे थे ॥१२॥ हम नीचेको मुख करके समुद्रके अंतर में चरनेवाले सहस्र जीवगणोंका मार्ग रोककर टिके रहे ॥१३॥ वहांपर देखा कि अंजनके समान काले वर्णवाला कोई जीव उदित सूर्य के समान प्रभायुक्त एक स्त्रीको संग लेकर जायरहा है ॥ १४ ॥ तब हमने उसको देखकर विचार किया कि यह स्त्री पुरुषही आजहमारे पिताके भोजन बनेंगे परन्तु उस जीवने बहुत गिडगिडाकर हमसे मार्ग मांगा॥१५॥नीच पुरुषोंके निकट शान्ति भाव

दिखानेसे वह भी विनाश नहीं कर सकते फिर हमारी समान जीव भला कैसे इस बात को न करें ॥ १६ ॥ जब हमने उस जीवको छोड दिया तब मानो वह आकाशमार्गको पीछे छोडता हुआही अतिवेगसे चला । तब समस्त आकाश चारियोंने हमारी पूजा व प्रशंसा की ॥ १७ ॥ तब महर्षियोंने हमसे कहा कि; भाग्यके वशसेही सीताजी जीवित रही हैं, यह पुरुष इस स्त्रीके सहित भाग्यसेही तुमसे छूटगया तुम्हारा मंगल हो ॥१८॥ जब परमशोभायमान महर्षियोंने यह कहा तब हमने जाना कि, यह पुरुष राक्षस पति रावण॥ १९ ॥ और यह स्त्री सीता रामचन्द्रजी की भार्या हैं, इस समय हमने देखा कि, मारे शोकके उनके सब आभरण गिरे पडते हैं और उनका रेशमी वस्त्रभी शिथिल हुआ जाता है ॥२०॥ उनके शिरके बाल छूटे हुयेथे राम लक्ष्मण

सयातस्तेजसाव्योमसंक्षिपन्निववेगितः ॥अथाहंखेचरैर्भूतैरभिगम्यसभाजितः ॥ १७ ॥ दिष्ट्याजीवतिसीतेतिअब्रुवन्मांमहर्षयः ॥ कथंचित्सकलत्रोऽसौगतस्तेस्वस्त्यसंशयम् ॥१८॥ एवमुक्तस्ततोऽहंतैसिद्धैःपरमशोभनैः ॥ सचमेरावणोराजारक्षसांप्रतिवेदितः ॥ १९ ॥ पश्यन्दाशरथेर्भार्यांरामस्यजनकात्मजाम् ॥ भ्रष्टाभरणकौशेयांशोकवेगपराजिताम् ॥२०॥ रामलक्ष्मणयोर्नामक्रोशंतींमुक्तमूर्धजाम् ॥ एषकालात्ययस्तातइतिवाक्यविदांवरः ॥ २१॥ एतदर्थंसमग्रंमेसुपार्श्वःप्रत्यवेदयत ॥ तच्छ्रुत्वापिहिमेबुद्धिर्नासीत्काचित्पराक्रमे ॥ २२ ॥ अपक्षोहिकथंपक्षीकर्मकिंचित्समारभेत्॥यत्तुशक्यंमयाकर्तुंवाग्बुद्धिगुणवर्तिना ॥२३॥ श्रूयतांतत्रवक्ष्यामिभवतांपौरुषाश्रयम् ॥ वाङ्मतिभ्याहिसर्वेषांकरिष्यामिप्रियंहिवः ॥२४॥ यद्धिदाशरथेःकार्यममतन्नात्रसंशयः ॥ तद्भवंतोमतिश्रेष्ठाबलवंतोमनस्विनः ॥२५॥ प्रहिताःकपिराजनदेवैरपिदुरासदाः ॥ रामलक्ष्मणबाणाश्च विहिताःकंकपत्रिणः ॥ २६ ॥

जीकानाम लेले रोती चली जाती थीं । हे तात ! इस लिये आज मुझको देर हुई ऐसा उस श्रेष्ठ वचन बोलनेवालेने कहा ॥ २१ ॥ जब सुपार्श्वने हमसे यह सब निवेदनकिया, तब उसको सुनकर हमारी बुद्धि कुछभी फिर पराक्रम करनेको न हुई * ॥ २२ ॥ हम पक्षी होकर भी पक्षहीन हैं, इस लिये किस प्रकारसे युद्धादिके लिये उद्योग करें ? परन्तु हां जो कुछ वचन बुद्धिके गुणानुसार हम सहाय कर सकते हैं ॥ २३ ॥ सो तुम सुनो; वह कार्य तुम लोगोंके बल वीर्यसे पूरा होगा वचन और बुद्धिसे हम तुम सबका प्रिय और हितका कार्य करेंगे ॥२४॥ इसमें कुछ सन्देह नहीं कि, जो श्रीरामचन्द्रजीका कार्य है वह हमाराही है तिसपर तुम भी तो बुद्धिमान्,बलवान्,मनस्वी ॥२५॥ देवतालोगोंको भी बडे कष्टसे प्राप्त होनेके योग्यहो; क्योंकि तुम्हें कपिराज

* दोहा–पंखहीन अवसर गये, सुत बलकीन्ह धिकार ॥ गहि मम निकट न लायऊ, हतीरामकीनार ॥

सुग्रीवजीने भेजा है कंकपत्र युक्त श्रीराम लक्ष्मणजीके बाण ॥ २६ ॥ तीन लोकोंका उद्धार और उनका नाश करनेमें समर्थ हैं दशानन रावण तेजयुक्त बलवान् होनेपर भी सर्वकार्योंको करनेकी सामर्थ्य रखने वाले तुमलोगोंको कुछ अजीत नहीं होगा ॥२७॥ अब कुछ भी विलम्ब लगानेका प्रयोजन नहीं है, इस समय बुद्धिका निश्चय करो, क्योंकि तुम्हारे समान बुद्धिमान् लोग कार्य सिद्ध करनेमें कुछभी आलस्य नहीं करते ॥ २८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदि० किष्किन्धाकांडे भाषायामेकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥ जब सम्पाति स्नान और अपने भाईकी जलक्रिया करके बैठ गया तब वानरलोगभी रमणीक पर्वतपर उसको चारों ओर घेरकर बैठ गये ॥ १ ॥ समस्त वानरोंके साथ अंगदजीके समीप बैठा हुआ सम्पाति पंखोंके उपजनेका

त्रयाणामपिलोकानांपर्याप्तास्त्राणनिग्रहे ॥ कामंखलुदशग्रीवस्तेजोबलसमन्वितः ॥ भवतांतुसमर्थानांनकिंचिदपिदुष्करम् ॥२७॥ तदलंकालसंगेनक्रियतांबुद्धिनिश्चयः ॥ नहिकर्मसुरज्जंतेबुद्धिमंतोभवद्विधाः ॥ २८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० किष्किंधाकांडे एकोनषष्टितमःसर्गः ॥५९॥ ततःकृतोदकंस्नानंतंगृध्रंहरियूथपाः ॥ उपविष्टागिरौरम्येपरिवार्यसमंततः ॥१॥ तमंगदमुपासीनंतैःसर्वैर्हरिभिर्वृतम्॥जनितप्रत्ययोहर्षात्संपातिःपुनरब्रवीत् ॥२॥ कृत्वानिःशब्दमेकाग्राःशृण्वंतुहरयोमम ॥ तथ्यंसंकीर्तयिष्यामियथाजानामिमैथिलीम्॥३॥ अस्यविंध्यस्यशिखरेपतितोऽस्मिपुरानघ ॥सूर्यतापपरीतांगोनिर्दग्धःसूर्यरस्मिभिः ॥ ४ ॥ लब्धसंज्ञस्तुषड्रात्राद्विवशोविह्वलन्निव ॥ वीक्षमाणोदिशःसर्वानाभिजानामिकिंचन ॥ ५ ॥ ततस्तुसागराञ्शैलान्नदीःसर्वाःसरांसिच ॥ वनानिचप्रदेशांश्चनिरीक्ष्यमतिरागता ॥६॥ हृष्टपक्षिगणाकीर्णःकंदरोदरकूटवान् ॥ दक्षिणस्योदधेस्तीरेविंध्योऽयमितिनिश्चितः ॥ ७ ॥

हेतु निशाकर मुनिजीकेवचनोंका विश्वास कर फिर हर्षित हो कहने लगा ॥ २ ॥ हे समस्त वानरो ! तुम लोग चुपचाप रहकर ध्यान देकर सुनो हमने उन जानकीजीको जिसप्रकारसे जाना है उसका सब वृत्तान्त ठीक २ कहते हैं ॥३॥ हे वानरो ! पहले जब सूर्य नारायणकी किरणोंसे हमारे पंख जल गये और जब हम अति तापित अंग होकर इस विन्ध्याचल पर्वतकी चोटीपर गिरे ॥ ४ ॥ छः रात्रितक विह्वल और अचेत पडे रहकर फिर कहीं हमें चेतना आई तब हम दशों दिशाओंकी ओरको देखने लगे, परन्तु कहीं भी कुछ दृष्टि न आया ॥ ५ ॥ फिर सागर, नदी, पर्वत, सरोवर और वनादिकोंको दर्शन करते२हमारे बुद्धि आई और स्थिर हुई ॥६॥ तब कहीं हमने जाना कि; शिखर युक्त और अनेक कन्दरावाले हृष्ट पुष्ट पक्षियोंसे परिपूर्ण विन्ध्याचल

पर्वतके दक्षिण समुद्रके किनारे हम पडे हैं॥७॥इस स्थानमें देवताओंसे पूजित एक आश्रम था इस आश्रममेंनिशाकर नामक उग्र तप करनेवाले एक ऋषिवास करतेथे॥८॥उनऋषिके साथ आठहजार वर्ष हमनेइस पर्वतपर वासकिया;फिर वहधर्मात्मा निशाकर मुनिजी स्वर्गको चलेगये॥९॥वह धर्मात्माऋषि जब इसस्थानपर रहतेथे तब विन्ध्याचलकेभयंकर अग्रभागसे अतिकष्टसहिततीक्ष्ण कुशवाली पृथ्वीपर आये॥१०॥उनऋषिकादर्शन करनेकी लालसासेजटायुके सहितपहलेभी हम बहुत वार उनसे मिलेथे,तब बडे कष्टसे उनके पास पहुँचे ॥११॥ उनके आश्रमके निकट सदा सुगन्धियुक्त पवन चलाकरता वहांपर फूलहीन या फलहीन कोई वृक्ष दृष्टि नहीं आता था ॥ १२ ॥ उस आश्रममें आयकर एक पेडकी जडमें बैठे भगवान् निशाकर मुनिके दर्शनका अभिलाष हम कर रहेथे॥ १३ ॥ उसके

अष्टौवर्षसहस्राणितेनास्मिन्नृषिणागिरौ ॥ वसतोमम आसीच्चात्राश्रमंपुण्यंसुरैरपिसुपूजितम् ॥ ऋषिर्निशाकरोनामयस्मिन्नुग्रतपाभवत् ॥८॥ तमृषिंद्रष्टुकामोऽस्मि धर्मज्ञेस्वर्गतेतुनिशाकरे॥ ९॥अवतीर्यचविंध्याग्रात्कृच्छ्रेणविषमाच्छनैः ॥तीक्ष्णदर्भांवसुमतींदुःखेनपुनरागतः ॥१०॥ वृक्षोनापुष्पितःकश्चिदफलो दुःखेनाभ्यागतोभृशम्॥जटायुषामयाचैवबहुशोऽधिगतोहिसः॥११॥ तस्याश्रमपदाभ्याशेववुर्वाताःसुगंधिनः ॥ अथपश्यमिदूरस्थमृषिंज्वलिततेज वान्नदृश्यते ॥१२॥ उपेत्यचाश्रमंपुण्यंवृक्षमूलमुपाश्रितः ॥ द्रष्टुकामःप्रतीक्षेचभगवंतंनिशाकरम् ॥ १३ ॥ परिवार्योपगच्छंतिदातारंप्राणिनोयथा ॥ सम् ॥ कृताभिषेकंदुर्धर्षमुपावृत्तमुदङ्मुखम् ॥१४॥ तमृक्षाःसृमराव्याघ्राःसिंहानानासरीसृपाः ॥ ऋषिस्तुदृष्ट्वामांतुष्टःप्रविष्टश्चाश्रमंपुनः ॥ ॥१५॥ ततःप्राप्तमृषिंज्ञात्वातानिसत्त्वानिवैययुः ॥ प्रविष्टेराजनियथासर्वंसामात्यकंबलम् ॥१६॥ अग्निदग्धाविमौपक्षौप्राणाश्चापिशरीरके ॥ १८ ॥ मुहूर्तमात्रान्निर्गम्यततःकार्यमपृच्छत ॥१७॥ सौम्यवैकल्यतांदृष्ट्वारोम्णांतेनावगम्यते ॥

देख प्रसन्न हो आश्रममें चले गये और एक महूर्त्त तक ठहरआश्रमसे फिर बाहर आय हमसे आनेका कार्य पूँछने लगे ॥ १७ ॥ कि, हे सौम्य ! तुम्हारे पंखोंका विकार देखकर हम तुमको पहचान नहीं सकते हैं; तुम्हारे यह पंख अग्निसे जलगये और शरीरव प्राणभी जलेहीके तुल्य होगये हैं ॥१८॥

पीछे अपने तेजसे दीप्तिमान् दुर्द्धर्ष,स्नान कर उत्तरको मुखकरमहर्षिजी आरहे हैं ऐसा हमने दूरसे देखा॥१४॥दरिद्र प्राणी जिस प्रकारदाताको घेरकर पीछे२ आते हैं वैसेही शूकर,रीछ, सिंह,व्याघ्र और अनेक प्रकारके सर्प उनको घेरे हुए चले आते हैं॥१५॥राजाको रनवासमें बैठा जानकरमन्त्री आदि जिस भांति अपने २ स्थानको चले जाते हैं वैसेही ऋषिश्रेष्ठको आश्रममें आया हुआ जानकर सब प्राणी अपने स्थानको चले गये ॥ १६ ॥ ऋषिजी हमको

हमने पहले पवनके समान वेगवाले गृध्रोंके राजा कामरूपी दो भ्राता गृध्रोंकोदेखा था ॥१९॥ हे सम्पाते ! उनमें तुम बडे और जटायु तुम्हारा छोटा भाई है, तुम लोगोंने प्रथम मनुष्य का शरीर धारण करके कई बार हमारे चरण पकड लिये थे यह हमें सबही ज्ञात है॥२०॥तुम्हें कौनसे रोगने आकर घेर लिया ? दोनों पंख कैसे गिर पडे ? अथवा किसने तुमको यह दंड दिया है, सोहम पूँछते हैं, सो यह सब वृत्तान्त ठीक २ हमको बतलाओ ॥२१॥ इत्या० श्रीमद्वा० वा० आदि० किष्किन्धा० भाषायां षष्टितमः सर्गः ॥ ६० ॥ मुनिजीके पूँछे जानेपर सम्पातिने जो सूर्यभगवान्के निकट पहुँचनेका दारुण कठिन कर्म किया, वह उस समस्त वृतान्तको कहने लगा ॥ १ ॥ हे भगवन् ! हमारे शरीरमें बडे २ घात हो जानेके कारण लज्जाके मारे व्याकुलेन्द्रिय और थकित

गृध्रौद्वौदृष्टपूर्वौमेमातरिश्वसमौजवे ॥ गृध्राणांचैवराजानौभ्रातरौकामरूपिणौ॥१९॥ ज्येष्ठोऽवितस्त्वं संपातेजटायुरनुजस्तव ॥ मानुषंरूपमास्थायगृह्णीतांचरणौमम॥२०॥किंतेव्याधिसमुत्थानंपक्षयोः पतनंकथम् ॥ दंडोवाऽयंधृतः केनसर्वमाख्याहिपृच्छतः ॥२१॥ इत्यार्षे श्रीम०वा० आ०च०सा०कि० षष्टितमः सर्गः ॥६०॥ ततस्तद्दारुणंकर्मदुष्करंसहसाकृतम् ॥ आचचक्षेमुनेः सर्वंसूर्यानुगमनंतथा ॥ १ ॥ भगवन्व्रणयुक्तत्वाल्लज्जयाचाकुलेंद्रियः॥परिश्रांतोनशक्नोमिवचनंपरिभाषितुम् ॥ २ ॥ अहंचैवजटायुश्चसंघर्षाद्दर्पमोहितौ॥आकाशंपतितौदूराज्जिज्ञासंतौपराक्रमम् ॥ ३ ॥ कैलासशिखरेबद्ध्वामुनीनामग्रतःपणम् ॥ रविःस्यादनुयातव्योयावदस्तंमहागिरिम् ॥ ४ ॥ अप्यावांयुगपत्प्राप्तावपश्यावमहीतले ॥ रथचक्रप्रमाणानिनगराणिपृथक्पृथक् ॥ ५ ॥ क्वचिद्वादित्रघोषश्चक्वचिद्भूषणनिःस्वनः॥ गायंतीःस्मांगनाबह्वीःपश्यावोरक्तवाससः॥६॥ तूर्णमुत्पत्यचाकाशमादित्यपदमास्थितौ ॥ आवामालोकयावस्तद्वनंशाद्वलसंस्थितम् ॥ ७॥

होनेसेबोलनेकी शक्ति हममें नहीं रही है ॥ २ ॥ हम और जटायु दोनों उडानके विषयमें गर्वकर और इन्द्रियोंके जय गर्वसे मोहित हो परस्पर पराक्रम दिखा जयकी कामनाकर आकाशमार्गमें उडे॥३॥कैलास पर्वतके शिखरपर मुनिजनोंके सामने हम यह दावँ लगाकर उडे कि, जबतक सूर्य अस्त नहो तबतक उनको छूकर फिर पृथ्वीमेंचले आना चाहिये ॥ ४ ॥ हम उस समय ऊपर उडकर पृथ्वीमें नगरोंको इस प्रकारसे देखने लगे, मानो अलग २ रथके पहिये हैं ॥ ५ ॥ कहीं बाजोंका शब्द कहींगहनोंकी झनकारकाशब्द सुनते हुए कहीं अनेक गानेवाली लाल वस्त्र धारण किये हुए स्त्रियोंको देखने लगे ॥६॥ आकाशमें उडकर शीघ्रतासे हम दोनोंभाई सूर्यभगवान्के निकटजानेको परिश्रम करते हुए और वहां पर हमने एक अतिविस्तारवाला दूबका वन देखा ॥ ७ ॥

पृथ्वीको देखा तो वह पर्वतोंसे घिरि हुई थी और नदीरूप डोरोंसेमानों गुंथ रही थी ॥ ८ ॥ हिमाचल विन्ध्याचल और सुमेरु पर्वत आकाशसे जल
आकारवाली पृथवीमें सरोवरोंमें गजके समान दृष्टि आते थे ॥ ९ ॥ तब ऐसा देख कर हम दोनोंकोही अति तीव्र स्वेद, खेद, भय, मोह और दारुण मूर्च्छा
आने लगी ॥१०॥ हम दोनों दक्षिण आग्नेय और पश्चिम दिशा कुछ भी नहीं समझसके केवल प्रलय कालमें जले हुए, पुरुषके समान बुद्धि रहित हो गये
॥११॥ हमारामन नेत्रोंके सहित सूर्याग्निसे भस्म होनेके तुल्य हो गया, फिर हमने अति कष्टसे मनके साथ नेत्रोंको मिलाय ॥१२॥ अनेक यत्न करके सूर्य
नारायणको देखा तो उस समय यह सूर्य पृथ्वीके तुल्य वा इससे अधिक प्रमाणवाले दिखाई दिये ॥ १३ ॥ जटायु तो हमसे बिना ही पूँछेपाछे पृथ्वीपरगिर

उपलैरवसंछन्नाद्दृश्यतेभूःशिलोच्चयैः ॥ आपगाभिश्चसंवीतासूत्रैरिववसुंधरा ॥ ८ ॥हिमवांश्चैवविंध्यश्चमेरुश्चसुमहागिरिः ॥ भूतलेसंप्रकाशं
तेनागाइवजलाशये॥९ ॥ तीव्रःस्वेदश्चखेदश्चभयंचासीत्तदावयोः ॥ समाविशतमोहश्चततोमूर्च्छाचदारुणा॥१०॥ नचदिग्ज्ञायतेयाम्यानचा
ग्नेयीनवारुणी॥युगांतेनियतोलोकोहतोदग्धइवाग्निना ॥ ११ ॥मनश्चमेहतंभूयश्चक्षुःप्राप्यतुसंश्रयम् ॥ यत्नेनमहताह्यस्मिन्मनःसंधायचक्षुषी
॥१२ ॥ यत्नेनमहताभूयोभास्करःप्रतिलोकितः ॥ तुल्यपृथ्वीप्रमाणेनभास्करःप्रतिभातिनौ ॥ १३॥जटायुर्मामनापृच्छ्यनिपपातमहींततः ॥
तंदृष्ट्वातूर्णमाकाशादात्मानंमुक्तवानहम् ॥ १४ ॥ पक्षाभ्यांचमयागुप्तोजटायुर्नप्रदह्यत ॥ प्रमादात्तत्रनिर्दग्धःपतन्वायुपथादहम्॥१५॥आशंके
तंनिपतितंजनस्थानेजटायुषम् ॥ अहंतुपतितोविंध्येदग्धपक्षोजडीकृतः ॥ १६ ॥ राज्याच्चहीनोभ्रात्राचपक्षाभ्यांविक्रमेणच ॥सर्वथामर्तुमेवेच्छ
न्पतिष्येशिखराद्गिरेः ॥ १७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० किष्किंधाकांडेएकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥
एवमुक्त्वामुनिश्रेष्ठमरुदंभृशदुःखितः ॥ अथध्यात्वामुहूर्तंचभगवानिदमब्रवीत् ॥ १ ॥

पडा, उसको गिरते देख हमने भी आकाशसे अपनेको छुडाया ॥१४॥ हमने अपने दोनों पंखोंसे जटायुको ढका इस लिये जटायुके पंख न जलकर हमारे पंख
प्रमादके मारे जल गये और हम वायुमार्गसे गिरनेलगे॥१५॥उस समय हमको ऐसा ज्ञान हुआ कि, मानों जटायु तो जनस्थानमें गिरा और हम दग्धपंख और
जड होकर इस विन्ध्याचल पर्वतपर गिरे ॥ १६ ॥ हम राज्यहीन,भ्राताहीन पंखहीन, और विक्रमहीन हो गये हैं, सो अब इस पर्वतके शिखरपरसे गिरकर
अपने प्राण त्याग करेंगे यह हमारी इच्छा है ॥ १७॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मी० आदि० कि० भाषायामेकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥
हम अत्यन्त दुःखितहो मुनिश्रेष्ठ निशाकरजीसे इस प्रकार कह रोने लगे तब महात्मा महर्षिजी एक मुहूर्त्ततक ध्यान धरकर बोले ॥ १ ॥

तुम्हारे दोनों पंख व दूसरे पंख दो चक्र फिर जम आवेंगे और प्राण, विक्रम, बल भी तुममें वैसा हो जायगा ॥ २ ॥ हमने पुराणोंमें सुना है और तपके बलसे जाना भी है कि; आगेको एक बडी भारी घटना होगी ॥ ३ ॥ इक्ष्वाकुकुलके बढानेवाले एक दशरथराजा और राम नामक उनके एक महातेजस्वी पुत्र होंगे ॥ ४ ॥ वह सत्यपराक्रम श्रीरामचन्द्रजीने अपने पिताकी आज्ञासे अपने छोटे भाई लक्ष्मण सहित वनको जायँगे ॥ ५ ॥ रावण नामक राक्षस उनकी भार्याको जनस्थानमें हरण करेगा, वह रावण समस्त देव और दानवोंसे अवध्य होगा ॥ ६ ॥ उन सीताजीको रावण अनेक प्रकारकी भोज्य, भक्ष्य और भोग वस्तुओंसे ललचावेगा परन्तु वह महाभागा दृढव्रत धारण करनेवाली दुःखसे ग्रसी हुई सीताजी किसीको ग्रहण या कार्यमें नहीं लावेंगी ॥ ७ ॥ देवराज इन्द्रजी यह वृत्तान्त जानकर

पक्षौचतेप्रपक्षौचपुनरन्यौभविष्यतः ॥ चक्षुषीचैवप्राणश्चविक्रमश्चबलंचते ॥ २ ॥ पुराणेसुमहत्कार्यंभविष्यंहिमयाश्रुतम् ॥ दृष्टंमेतपसाचैव श्रुत्वाचविदितंमम ॥ ३ ॥ राजादशरथोनामकश्चिदिक्ष्वाकुवर्धनः ॥ तस्यपुत्रोमहातेजारामोनामभविष्यति ॥ ४ ॥ अरण्यंचसहभ्रात्रालक्ष्मणेन गमिष्यति ॥ तस्मिन्नर्थेनियुक्तःसन्पित्रासत्यपराक्रमः ॥ ५ ॥ नैर्ऋतोरावणोनामतस्यभार्यांहरिष्यति ॥ राक्षसेंद्रोजनस्थाने अवध्यःसुरदानवैः ॥ ६ ॥ साचकामैः प्रलोभ्यंतीभक्ष्यैर्भोज्यैश्चमैथिली ॥ नभोक्ष्यतिमहाभागादुःखमग्नायशस्विनी ॥ ७ ॥ परमान्नंचवैदेह्याज्ञात्वादास्यतिवासवः ॥ यदन्नममृतप्रख्यंसुराणामपिदुर्लभम् ॥ ८ ॥ तदन्नंमैथिलीप्राप्यविज्ञायेंद्रादिदंत्विति ॥ अग्रमुद्धृत्यरामायभूतलेनिर्वपिष्यति ॥ ९ ॥ यदिजीवतिमे भर्तालक्ष्मणोवापिदेवरः ॥ देवत्वंगच्छतोर्वापितयोरन्नमिदंत्विति ॥ १० ॥ एष्यंतिप्रेषितास्तत्ररामदूताःप्लवंगमाः ॥ आख्येयाराममहिषीत्व यातेभ्योविहंगम ॥ ११ ॥ सर्वथातुनगंतव्यमीदृशःक्वगमिष्यसि ॥ देशकालौप्रतीक्षस्वपक्षौत्वंप्रतिपत्स्यसे ॥ १२ ॥ उत्सहेयमहंकर्तुमद्यैवत्वांस पक्षकम् ॥ इहस्थस्त्वंहिलोकानांहितंकार्यंकरिष्यसि ॥ १३ ॥

उनको अमृत तुल्य देवतालोगोंकोभी दुर्लभ परमान्न दे आवेंगे ॥ ८ ॥ सीताजी वह अन्न निश्चय इन्द्रजीका दिया हुआ जानकर उसका अग्रभाग उठाय मंत्र पाठकर पृथ्वीमें श्रीरामलक्ष्मणजीके लिये छोड देंगी ॥ ९ ॥ उस मंत्रका अर्थ यह था कि यदि हमारे स्वामी और देवर लक्ष्मण जीवित हों अथवा देवलोकको चलेगये हों, यह अन्न उनके निमित्त दिया गया ॥ १० ॥ हे विहंगम संपाते ! रामदूत वानरगण सीताजीके ढूँढनेको भेजे जाकर जब यहां आवेंगे, उस समय तुम उनमें सीताजीके समाचार बताओगे ॥ ११ ॥ तुम और कहीं न जाओ, ऐसी अवस्थामें कहां जाओगे; इस लिये यहीं देशकालकी बाट परख, तुम अपने दोनों पंख फिर प्राप्त करोगे ॥ १२ ॥ हम अभी तुमको पंख दे सकते हैं; परन्तु तुम इस अवस्थामें लोकोंका हित साधन करोगे,

इस कारण हमने तुमको पंख नहीं दिये ॥ १३ ॥ तुमदोनों रघुवीर श्रीरामलक्ष्मणका, ब्राह्मणोंका, गुरुजनोंका, मुनि समूहोंका और इन्द्रका कार्य कर सकोगे॥ १४॥श्रीराम, लक्ष्मण, दोनों भाइयोंका दर्शन करनेकी तो हमारीभी इच्छा थी परन्तु अब आगे हम इस शरीरके धारण करनेको समर्थ नहीं हैं इसलिये तनु त्याग करेंगे ! तत्त्वदर्शी मुनिजीने हमसे ऐसा कहा था ॥ १५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० किष्किन्धाकांडे भाषायां द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२ ॥ वाक्यविशारद मुनिवर उस प्रकार व और भी बहुत वचनोंसे हमारी प्रशंसाकर और हमको आज्ञा दे अपने आश्रममें चलेगये ॥ १ ॥ हम उस पर्वतकी कन्दरासे धीरे २ सरकर विन्ध्याचल पर्वतपर आयकर तुम्हारे आनेकी राह परख रहे थे ॥ २ ॥ जब उन मुनिजीने हमसे ऐसा कहा था तबसे लेकर समय

त्वयापिखलुतत्कार्यंतयोश्चनृपपुत्रयोः॥ब्राह्मणानांगुरूणांचमुनीनांवासवस्यच ॥ १४ ॥इच्छम्याहमपिद्रष्टुंभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ नेच्छेचिरंधारयितुंप्राणांस्त्यक्ष्येकलेवरम्॥महर्षिस्त्वब्रवीदेवंदृष्टतत्त्वार्थदर्शनः ॥ १५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आ० च० सा०किष्किंधाकांडे द्विषष्टितमः सर्गः॥६२॥एतैरन्यैश्चबहुभिर्वाक्यैर्वाक्यविशारदः॥मांप्रशस्याभ्यनुज्ञाप्यप्रविष्टः सस्वमालयम्॥१॥कंदरात्तुविसर्पित्वापर्वतस्य शनैः शनैः ॥ अहंविंध्यंसमारुह्यभवतःप्रतिपालये ॥ २ ॥ अद्यत्वेतस्यकालस्यवर्षसाग्रशतंगतम्॥ देशकालप्रतीक्षोऽस्मिहृदिकृत्वामुनेर्वचः ॥ ३ ॥ महाप्रस्थानमासाद्यस्वर्गतेतुनिशाकरे ॥ मांनिर्दहतिसंतापोवितर्कैर्बहुभिर्वृतम् ॥ ४ ॥ उदितांमरणेबुद्धिंमुनिवाक्यैर्निवर्तये ॥ बुद्धियोतेनमेदत्ताप्राणानांरक्षणेमम॥ ५ ॥ सामेऽपनयतेदुःखंदीप्तेवाग्निशिखातमः॥ बुध्यताचमयावीर्यंरावणस्यदुरात्मनः ॥६॥ पुत्रःसंतर्जितोवाग्भिर्नत्रातामैथिलीकथम् ॥ तस्याविलपितंश्रुत्वातौचसीतावियोजितौ ॥ ७ ॥

धरनेसे इस समय शत ❋ वर्षसेभी कुछ अधिक बीत गये हैं हम उन मुनिका वचन हृदयमें धारण कर देशकालको परख रहे हैं ॥ ३ ॥ महायात्राको प्राप्त कर महर्षि निशाकर जब स्वर्गको चलेगये तब हम बहुत तर्क करके अत्यन्त सन्तापित हुए ॥ ४ ॥ हमारी प्राणरक्षा करनेके लिये मुनिवरने जो बुद्धि हमको दी थी, उसके अनुसारमरण बुद्धि हमने छोडदी ॥ ५ ॥ जैसे अग्निकी शिखा अन्धकारका नाश कर देती है.ऐसेही उस बुद्धिने हमारे संतापका नाश करदिया, दुरात्मा रावणके बलको अपनेपुत्रके बलसे थोडा जान ॥ ६ ॥ हमने अपने पुत्रको फटकारा और कहा कि तैंनेसीताका विलाप सुन; और राम लक्ष्मणको सीतासे वियोगित सुन क्यों नहीं उनका उद्धार किया ? तब उसने कहा कि प्रथम हमने उनको जानाही नहीं, जब वह

❋ यह शतशब्द बहुवाची है प्राचीनोंने कहा है आठ हजारसे कुछ अधिक वर्ष वीतगये ।

चलीगई तब सिद्धलोगोंके मुखसे सुना कि यह सीताजी थीं ॥ ७ ॥ इसीलिये दशरथजीके पुत्रका प्रिय कार्य मुझसे नहीं होसका क्योंकि पुत्रने वह श्रम न किया; जब कि सम्पाति वानरोंके साथ इस प्रकार वार्ता कह रहा था ॥ ८ ॥ कि, वानरोंके सामनेही उसकेदोनों पंख जम आये वह अपनी देहमें अरुण वर्णके पंख उगेहुये देखकर ॥ ९ ॥ अतुलनीय हर्ष प्राप्त करके वानरोंसे बोला कि अमित तेजस्वी महर्षि निशाकरजीके प्रसादसे ॥ १० ॥ हमारे सूर्यकी किरणोंसे जले हुये दोनों पंख फिर जम आये, हम जिस समय युवा अवस्थाको प्राप्त थे उस समय जिस प्रकारका पराक्रम हम में था ॥११॥ इस समय भी वैसाही बल पौरुष हमनेप्राप्त किया, तुम सर्व प्रकारसे यत्न करो अवश्यही सीताजीको पाओगे ॥ १२ ॥ जब कि हमारे पंख जम आये, तब विश्वास

नमेदशरथस्नेहात्पुत्रेणोत्पादितंप्रियम्॥ तस्यत्वेवंब्रुवाणस्यसंहतैर्वानरैः सह ॥८॥ उत्पेततुस्तदापक्षौसमक्षंवनचारिणाम् ॥सदृष्ट्वास्वांतनुंपक्षै रुद्गतैररुणच्छदैः ॥९॥ प्रहर्षमतुलंलेभेवानरांश्चेदमब्रवीत् ॥ निशाकरस्यराजर्षेःप्रसादादमितौजसः ॥ १० ॥ आदित्यरश्मिनिर्दग्धौपक्षौ पुनरुपस्थितौ॥यौवनेवर्तमानस्यममासीद्यःपराक्रमः ॥११॥ तमेवाद्यावगच्छामिबलंपौरुषमेवच ॥ सर्वथाक्रियतांयत्नःसीतामधिगमिष्यथ ॥१२॥पक्षलाभोममायंवःसिद्धिप्रत्ययकारकः॥इत्युक्त्वातान्हरीन्सर्वान्सम्पातिःपतगोत्तमः॥१३॥ उत्पपातगिरेःशृंगाज्जिज्ञासुःखगमोगतिम् तस्यतद्वचनंश्रुत्वाप्रतिसंहृष्टमानसाः॥बभूवुर्हरिशार्दूलाविक्रमाभ्युदयोन्मुखाः॥१४॥अथपवनसमानविक्रमाःप्लवगवराःप्रतिलब्धपौरुषाः॥ अभिजिदमुखांदिशंययुर्जनकसुतापरिमार्गणोन्मुखाः ॥ १५ ॥ इत्यार्षेश्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० किष्किंधाकांडे त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥ आख्यातागृध्रराजेनसमुत्प्लुत्यप्लवंगमाः॥संगताःप्रीतिसंयुक्ताविनेदुःसिंहविक्रमाः ॥ १ ॥

होता है कि तुम्हारा कार्यभी अवश्य सिद्ध होगा, इस प्रकार पक्षिश्रेष्ठ सम्पाति उन समस्त वानरोंसे ऐसा कह ॥ १३ ॥ अपने जमेहुए पंखोंसे पहलेहीके समान पक्षियोंकी गति जाननेहीकी इच्छासे उस पर्वतके शिखरसे उडा, उसके यह वचन सुन अत्यन्त हर्षित मनसे वानरश्रेष्ठगण सीताजीके ढूँढनेमें अपना २ विक्रम दिखानेको तैयार हुए ॥ १४ ॥ फिर पर्वत तुल्यविक्रमवान अतिपौरुषी वानरगण जनककुमारी जानकीजीको खोजनेके लिये अभि जित् मुहूर्तमें दक्षिण दिशाको चले ॥ १५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० किष्किं० भाषायां त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥ ॥ ॥ ॥
गृध्रराजसे इस प्रकार कहे हुए सिंहतुल्य विक्रमवान वानरगण प्रीतिसे प्रफुल्लित चित्त हो इधर उधर कूद फांद परस्पर मिलकर हर्षध्वनि करने लगे ॥ १ ॥

भयंकर विक्रमकारी रावणके नाशकारी सम्पातिके वचन सुनकर हर्षयुक्त वानरगण सीताजीका दर्शन करनेके निमित्त समुद्रके तीरपर आये ॥ २ ॥ भयंकर विक्रमकारी महाबलवान् वानरलोग समुद्रके किनारे आये, वहां उन्होंने चन्द्र सूर्य समन्वित जिसमें सब लोकोंका प्रतिबिम्ब पडता था ऐसा समुद्र देखा ॥ ३ ॥ महाबलवान् वानरवीरोंने दक्षिण समुद्रके उत्तर किनारेपर प्राप्त होकर उस स्थानमेंही सेनाको टिकाया ॥ ४ ॥ यह समुद्र किसी स्थानमें निद्रितकी नाईं स्थित था, कहीं बालकोंके समान अपनी बडी तरंगोंसे खेल रहाथा, कहीं २ पर्वताकार जलराशिसे घिरा हुआ था ॥ ५ ॥ कपिवीरगण, पातालवासी दानवेन्द्रोंसे व्याप्त रोमहर्षणकारी समुद्रदेखकर बडे विषादकोप्राप्त हुए ॥ ६ ॥ वानरगण आकाशके समान पार जानेके अयोग्य समुद्रको देखकर 'किस प्रकार कार्यकी सिद्धि

संपातेर्वचनंश्रुत्वाहरयोरावणक्षयम् ॥ हृष्टाःसागरमाजग्मुःसीतादर्शनकांक्षिणः॥ २ ॥अभिगम्यतुतंदेशंददृशुर्भीमविक्रमाः॥ कृत्स्नंलोकस्य महतःप्रतिबिंबमवस्थितम् ॥३॥ दक्षिणस्यसमुद्रस्यसमासाद्योत्तरांदिशम् ॥ सन्निवेशंततश्चक्रुर्हरिवीरामहाबलाः॥ ४ ॥प्रसुप्तमिवचान्यत्रक्रीडंतमिवचान्यतः ॥ क्वचित्पर्वतमात्रैश्चजलराशिभिरावृतम् ॥ ५ ॥ संकुलंदानवेंद्रैश्चपातालतलवासिभिः ॥ रोमहर्षकरंदृष्ट्वाविषेदुःकपिकुंजराः॥६॥ आकाशमिवदुष्पारंसागरंप्रेक्ष्यवानराः ॥ विषेदुःसहिताःसर्वेकथंकार्यमितिब्रुवन् ॥ ७॥ विषण्णांवाहिनींदृष्ट्वासागरस्यनिरीक्षणात्॥ आश्वासयामासहरीन्भयार्तान्हरिसत्तमः ॥ ८॥ नविषादेमनःकार्यंविषादोदोषवत्तरः॥ विषादोहंतिपुरुषंबालंक्रुद्धइवोरगः॥ ९ ॥योविषादंप्रसहतेविक्रमेसमुपस्थिते॥तेजसातस्यहीनस्यपुरुषार्थोनसिध्यति ॥ १० ॥ तस्यांरात्र्यांव्यातीतायामंगदोवानरैःसह ॥ हरिवृद्धैःसमागम्यपुनर्मंत्रममंत्रयत ॥ ११ ॥ सावानराणांध्वजिनीपरिवार्यांगदंबभौ ॥ वासवंपरिवार्येवमरुतांबाहिनीस्थितम् ॥ १२ ॥ कोऽन्यस्तांवानरीसेनांशक्तःस्तंभयितुंभवेत् ॥ अन्यत्रवालितनयादन्यत्रचहनूमतः ॥ १३ ॥

होगी किस प्रकार इसके पार जांयगे' आपसमें यह कहकर बडे व्याकुलहुए ॥ ७ ॥ वानरश्रेष्ठ अंगदजी सब वानरोंको समुद्रके देखनेसे भयभीत समझ समझा बुझाकर कहने लगे ॥८॥ तुम लोग विषाद न करो. क्योंकि शोकमें मग्न होना अत्यन्त दोषका विषय है,क्रोधित विषैला सांप जिस प्रकार बालकोंको मार डालता है इसी प्रकार शोकभी पुरुषको संहार करता हैं ॥ ९ ॥ विक्रम प्रकट करनेका अवसर आनेपर जो पुरुष शोक किया करते हैं,वह तेजहीन होजाते हैं और उसका कार्य कभी सिद्ध नहीं होता ॥ १० ॥ इसप्रकार कहते २ रात्रि बीतगई, तब युवराज अंगदजी वृद्ध वानरोंके साथ मिलकर सलाह करनेलगे ॥ ११ ॥ देवताओंकी सेना जिस प्रकार इन्द्रजीके चारोंओर बैठती है वैसेही वानरोंकी सेना अंगदजीको घेरकर बैठी ॥१२॥ वालिकुमार अंगदजी और

हनुमान्‌जीके सिवाय और कोई उस वानरी सेनाके स्थिर करनेमें समर्थ नहीं होसकता था ॥ १३ ॥ फिर शत्रुओंका नाश करनेवाले श्रीमान् अंगदजी वृद्ध वानरोंका और सब सेनाका सन्मान करके सार वचन बोले ॥१४॥ कौन महातेजस्वी इससमय समुद्रको लांघेगा ? कौन वानर इससमय शत्रुओंके मारनेवाले सुग्रीवजीकी प्रतिज्ञाको सत्य करेगा ? ॥ १५ ॥ कौन वीर चार शत कोशका मार्ग एक छलांगमें पार करेगा ? कौन वानर इनसमस्त यूथप वानरोंको महा भयसे उद्धार करेगा ॥ १६ ॥ किसके प्रसादसे हम सब वानरगण कार्य सिद्धकर वहांसे घरको लौट अपने घर जायँ स्त्री पुत्र और गृहको देखकर सुखी होंगे ॥ १७ ॥ किसके प्रसादसे यह समस्त वनवासी वानरगण हर्षित होकर, राम लक्ष्मण और वनचरोंके राजा सुग्रीवजीके निकट जायँगे ॥ १८॥ यदि कोई

ततस्तान्हरिवृद्धांश्चतच्चसैन्यमरिंदमः ॥ अनुमान्यांगदः श्रीमान्वाक्यमर्थवदब्रवीत् ॥१४॥ यइदानींमहातेजालंघयिष्यतिसागरम् ॥ कःकरिष्यतिसुग्रीवंसत्यसंधमरिंदमम् ॥ १५ ॥ कोवीरोयोजनशतंलंघयेतप्लवंगमः ॥ इमांश्चयूथपान्सर्वान्मोचयेत्कोमहाभयात् ॥१६॥ कस्यप्रसादाद्दारांश्चपुत्रांश्चैवगृहाणिच ॥ इतोनिवृत्ताःपश्येमसिद्धार्थाःसुखिनोवयम् ॥१७॥ कस्यप्रसादाद्रामंचलक्ष्मणंचमहाबलम् ॥अ भगच्छेमसंहृष्टाः सुग्रीवंचवनौकसम् ॥१८॥ यदिकश्चित्समर्थोवःसागरप्लवनेहरिः ॥ सददात्विहनःशीघ्रंपुण्यामभयदक्षिणाम् ॥ १९ ॥अंगदस्यवचःश्रुत्वानकश्चित्किंचिदब्रवीत् ॥ स्तिमितेवाभवत्सर्वासातत्रहरिवाहिनी ॥२०॥ पुनरेवांगदःप्राहतान्हरीन्हरिसत्तमः ॥सर्वेबलवतांश्रेष्ठाभवंतोदृढविक्रमाः ॥ व्यपदेशकुलेजाताःपूजिताश्चाप्यभीक्ष्णशः ॥२१॥ नहिवोगमनेसंगःकदाचित्कस्यचिद्भवेत् ॥ब्रुवध्वंयस्ययाशक्तिःप्लवनेप्लवगर्षभाः ॥२२॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणेवाल्मीकीये आदिकाव्ये च०सा० किष्किंधाकांडे चतुःषष्टितमः सर्गः ॥६४॥ अथांगदवचःश्रुत्वातेसर्वेवानरर्षभाः॥ स्वंस्वंगतौसमुत्साहमूचुस्तत्रयथाक्रमम् ॥ १ ॥

वानरश्रेष्ठ इस सागरके लाँघनेको समर्थहो, वह शीघ्रही हमको पुण्यकारीअभय दक्षिणा देवे ॥ १९ ॥ अंगदजीके वचन सुनकर किसी वानरने कुछ भी उत्तर न दिया, समस्त वानरसेना मौनभावको धारणकर चुपचाप हो गई ॥ २० ॥ वानरश्रेष्ठ अङ्गदजी फिर उन सब वानरोंसे बोले, कि तुम सबही दृढ विक्रम करनेवाले हो, और तुम कलंकरहित कुलमें जन्म ग्रहण करके सदाही लोकोंमें पूजे जाते हो ॥ २१ ॥ यदि तुम लोगोंमें कदाचित् कोई शतयोजनका समुद्र न लांघ सकताहो, तब जो जितनी दूर जानेमें समर्थ है वह हमसे कहो ॥ २२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० किष्किं० भाषायां चतुःषष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥ तब मुखिया २ वानरगण अंगदजीके यह वचन सुनकर उत्साहके सहित गतिके विषयमें अपनी २ सामर्थ्य कहने लगे ॥ १ ॥

गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, गन्धमादन, मैन्द, द्विविद, अंगद और जाम्बवान् इनवानरोंने प्रथम कहना आरंभ किया॥२॥उनमेंसे प्रथम गजने कहा कि हम दशयोजन लांघ जानेमें समर्थ हैं, गवाक्षने कहा हमबीस योजनचलेजायँगे॥३॥तहां शरभ नाम वानर उन वानरोंसे बोलाकि, हमएक छलांगमें तीस योजन जासकतेहैं॥४॥ ऋषभवानरने वानरोंसे कहा कि, हम एक कुदक्केमें चालीस योजनतक चलेजांयगे इसमें कुछभी सन्देह नहीं है॥५॥उनमें महातेजस्वी गन्धमादनवानरने कहा कि हम कूदकर एक छलांगमें निःसंशय पचास योजनतक जायँगे ॥ ६ ॥ मैन्द नामक वानरने समस्त वानरोंसे कहा कि हम साठ योजन लांघनेको समर्थ हैं ॥ ७ ॥ तब महातेजस्वी द्विविदने कहा कि हम सत्तर योजन तक जा सकते हैं इसमें कुछभी संशय नहीं है ॥ ८ ॥ अतिधीरवीर बलवान् कपि

गजोगवाक्षोगवयःशरभोगंधमादनः॥मैंदश्चद्विविदश्चैवअंगदोजाम्बवांस्तथा॥२॥ आबभाषेगजस्तत्रप्लवेयंदशयोजनम् ॥ गवाक्षोयोजनान्याह गमिष्यामीतिविंशतिम् ॥ ३ ॥ शरभोवानरस्तत्रवानरांस्तानुवाचह ॥ त्रिंशतंतुगमिष्यामियोजनानांप्लवंगमाः ॥ ४ ॥ ऋषभोवानरस्तत्र वानरांस्तानुवाचह ॥ चत्वारिंशद्गमिष्यामियोजनानांनसंशयः ॥ ५ ॥ वानरांस्तुमहातेजाअब्रवीद्गंधमादनः ॥ योजनानांगमिष्यामिपंचाश त्तुनसंशयः ॥ ६ ॥ मैंदस्तुवानरस्तत्रवानरांस्तनुवाचह ॥ योजनानांपरंषष्टिमहंप्लवितुमुत्सहे ॥७॥ ततस्तत्रमहातेजाद्विविदःप्रत्यभाषत॥ गमिष्यामिनसंदेहःसप्ततियोजनान्यहम्॥ ८ ॥ सुषेणस्तुमहातेजाःसत्ववान्कपिसत्तमः ॥ अशीतिंप्रतिजानेऽहंयोजनानांपराक्रमे ॥९॥ तेषां कथयतांतत्रसर्वास्ताननुमान्यच॥ततोवृद्धतमस्तेषांजाम्बवान्प्रत्यभाषत ॥१०॥पूर्वमस्माकमप्यासीत्कश्चिद्गतिपराक्रमः ॥तेवयंवयसःपारमनु प्राप्ताःस्मसांप्रतम्॥११॥ किंतुनैवंगतेशक्यमिदंकार्यमुपेक्षितुम्॥ यदर्थंकपिराजश्चरामश्चकृतनिश्चयौ॥ १२॥ सांप्रतंकालमस्माकंयागतिस्तांनि बोधत॥नवतिंयोजनानांतुगमिष्यामिनसंशयः ॥१३॥ तांश्चसर्वान्हरिश्रेष्ठाञ्जांबवानिदमब्रवीत् ॥ नखल्वेतावदेवासीद्गमनेमेपराक्रमः॥१४॥

श्रेष्ठ सुषेणने कहा कि हम प्रतिज्ञा करके कह सकते हैं कि हम अस्सी योजनतक चले जायँगे ॥ ९ ॥ जब सब वानरोंने ऐसा कहा; तब उनका सन्मान कर वृद्धकपि जाम्बवान् उनसे कहनेलगे ॥ १० ॥ कि पूर्वकालमें हम अपनी गति के विषयमें विशेष पराक्रमीथे परन्तु इस समय हमारी आयु बहुत होगई है ॥ ११ ॥ इस समय जो कार्य आ पडा है उसको हम त्याग नहीं सकते कि जिस कार्यके लिये श्रीरामचन्द्रजी और कपिराज सुग्रीवजी कृतनिश्चय हुए हैं वह कार्य अवश्यही साधन करना पडेगा ॥ १२ ॥ इस समय जहां तक हमारे जानेकी गति है वह सुनो कि, इस समय एक छलांगमें हम नब्बे योजनतक जा सकते हैं इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ १३ ॥ जाम्बावानूने फिर उन वानर श्रेष्ठोंसे कहा

कि, पहले हमारा गमन करनेमें इतनाही पराक्रम नहीं था ॥ १४ ॥ बरन् उस समय ऐसा पराक्रम था कि, जब सनातन त्रिविक्रमवामनरूपी विष्णुजीने राजा बलिके यज्ञमें तीन पदसे तीनों लोक नाप लिये तब हमने उनकी प्रदक्षिणा की थी ॥ १५ ॥ पहले हम ऐसे पराक्रमी थे परन्तु अब वृद्ध होगये इस समय हम पहली सी छलांग नहींमार सकते युवावस्थाके समय हमारे समान किसीमें बल नहीं था ॥ १६ ॥ हम इस समय नब्बे योजन लाँघ सकते हैं अधिक नहीं, परन्तु इतनेमें इस कार्यकी सिद्धि नहीं होती ॥ १७ ॥ इसके पीछेमहाप्राज्ञ अंगदजी महाकपि जाम्बवान् का आदर करते हुए महाअर्थ युक्त वचन बोले ॥ १८ ॥ हम शतयोजन एक छलांगमें जासकते हैं, परन्तु इसमें संदेह है कि, लौट सकेंगे अथवा नहीं ॥ १९ ॥ वाक्य विशारद जाम्बवान्

मयावैरोचनेयज्ञेप्रभविष्णुःसनातनः॥ प्रदक्षिणीकृतः पूर्वं क्रममाणस्त्रिविक्रमः ॥१५॥सइदानीमहं वृद्धःप्लवनेमंदविक्रमः ॥ यौवने च तदासीन्मे बलमप्रतिमं परम् ॥१६॥ संप्रत्येतावदेवाद्यशक्यंमेगमनेस्वतः॥नैतावताचसंसिद्धिःकार्यस्यास्यभविष्यति ॥ १७ ॥ अथोत्तरमुदारार्थमब्रवीदंगदस्तदा ॥ अनुमान्यतदाप्राज्ञोजाम्बवंतमहाकपिः ॥ १८ ॥ अहमेतद्गमिष्यामियोजनानांशतंमहत् ॥ निवर्तनेतुमेशक्तिःस्यान्नवेतिननिश्चितम् ॥ १९ ॥ तमुवाचहरिश्रेष्ठंजांबवान्वाक्यकोविदः ॥ ज्ञायतेगमनेशक्तिस्तवहर्यृक्षसत्तम ॥ २० ॥ कामंशतंसहस्रंवानह्येषविधिरुच्यते ॥ योजनानांभवाञ्शक्तोगंतुंप्रतिनिवर्तितुम् ॥ २१ ॥ नहिप्रेषयितातातस्वामीप्रेष्यःकथंचन ॥ भवतायंजनःसर्वःप्रेष्यःप्लवगसत्तम ॥ २२ ॥ भवान्कलत्रमस्माकंस्वामिभावेव्यवस्थितः ॥ स्वामीकलत्रंसैन्यस्यगतिरेषापरंतप ॥२३॥ अपिवैतस्यकार्यस्यभवान्मूलमरिंदमः ॥ तस्मात्कलत्रवत्तातप्रतिपाल्यःसदाभवान् ॥ २४ ॥

उन कपि श्रेष्ठ अंगदजीसे बोले,–कपिवर ! तुम्हारी गतिकी शक्तिको हम जानते हैं कि, तुम जाभी सकते हो और लौट भी आ सकतेहो ॥२०॥ सो इतनेही दूर नहीं बरन् सैकडों हजारोंयोजन कूदकर तुम जा सकते और लौटकर आसकते हो ॥ २१ ॥ परन्तु हे तात ! स्वामी कभी भेजनेके योग्य नहीं हो सकता, क्योंकि वह सबको प्रिय होता है आपसबको भेज सकते हैं ॥२२॥ तुम हमारे स्वामी हो, इसलिये अपनी स्त्रीके समान प्रतिपालन करनेके योग्य हो, अर्थात् तुम्हारे प्राण और बलकी रक्षा करना हम लोगोंका अवश्य कर्त्तव्य है,तुमको स्वामीभावमें टिककर सेनाको आज्ञा देनी चाहिये यही लौकिक विधि है ॥ २३ ॥ हे शत्रुनाशी ! तुम इस कार्यके मूल हो इस लिये सबकोही अपनी स्त्रीके समान तुम्हारी रक्षा करनी उचित है ॥ २४ ॥

कार्यकेमूलकी रक्षा करनी चाहिये यही कार्यवेत्ता लोगोंकी नीति है;यदि प्रधानमूल बना रहेगा तो प्रधान फलोदयरूप गुणसिद्ध हो सकताहै॥२५॥हे शत्रुओंके तपानेवाले ! इस लिये सत्य विक्रम और बुद्धिसम्पन्न तुमही इस कार्यके साधन करनेमें हेतु हो इसमें कुछ भी संदेह नहीं है॥२६॥हे कपिश्रेष्ठ ! तुम हम लोगोंके गुरु पुत्र और गुरु हो तुमको आश्रय करके हम लोग कार्यके साधन करनेमें समर्थ हो सकते हैं ॥२७॥ महाप्राज्ञ जाम्बवान्ने जब इस प्रकारसे कहा तब महाकपि वालीके पुत्र अंगदजी जाम्बवान् को उत्तर देते हुए॥२८॥यदि हम भी न जांय व और भीकोई वानर न जाय तो फिर प्रायोपवेशन करके प्राणों का छोडना ही हमारे लिये अच्छा है ॥ २९ ॥ उन बुद्धिमान् कपिपति सुग्रीवजीकी आज्ञा का प्रतिपालन न करके यदि किष्किन्धाको चले जांय तो वहां

मूलमर्थस्यसंरक्ष्यमेषकार्यविदांनयः ॥ मूलेसतिहिसिध्यंतिगुणाःसर्वेफलोदयाः ॥ २५ ॥तद्भवानस्यकार्यस्यसाधनेसत्यविक्रम ॥ बुद्धिविक्रम संपन्नोहेतुरत्रपरंतप ॥ २६ ॥ गुरुश्चगुरुपुत्रश्चत्वंहिनःकपिसत्तम ॥ भवंतमाश्रित्यवयंसमर्थाह्यर्थसाधने ॥ २७ ॥ उक्तवाक्यंमहाप्राज्ञंजाम्बवं तंमहाकपिः ॥ प्रत्युवाचोत्तरंवाक्यंवालिसूनुरथांगदः ॥ २८ ॥यदिनाहंगमिष्यामिनान्योवानरपुंगवः ॥ पुनःखल्विदमस्माभिःकार्यंप्रायो पवेशनम्॥ २९॥नह्यकृत्वाहरिपतेःसंदेशंतस्यधीमतः॥ तत्रापिगत्वाप्राणानांनपश्येपरिरक्षणम् ॥३०॥ सहिप्रसादेचात्यर्थंकोपेचहरिरीश्वरः॥ अतीत्यतस्यसंदेशंविनाशोगमनेभवेत् ॥ ३१ ॥ तत्तथाह्यस्यकार्यस्यनभवत्यन्यथागतिः ॥ तद्भवानेवदृष्टार्थःसंचिंतयितुमर्हति ॥ ३२ ॥ सोंऽगदेनतदावीरःप्रत्युक्तःप्लवगर्षभः ॥ जाम्बवानुत्तमंवाक्यंप्रोवाचेदंततोंगदम् ॥ ३३ ॥ तस्यतेवीरकार्यस्यनकिंचित्परिहास्यते॥एषसंचो दयाम्येनंयःकार्यंसाधयिष्यति ॥ ३४ ॥

भी प्राणरक्षाकर कोई उपाय नहीं दृष्टि आता॥३०॥वह सुग्रीव निग्रह और अनुग्रहके ईश्वर हैं उनको आज्ञाका पालन बिना किये किष्किन्धामें चलेजानेसे निश्चयही प्राणका विनाश होगा इसमें कुछ भी संदेह नहीं है ॥३१॥ इसलिये आप तत्त्वदर्शी समस्त वानर लोग ऐसा कुछ विचार कीजिये कि, जिससे सुग्रीवजीका कहा जानकीजीका दर्शनरूप कार्य अवश्यही हो जाय ॥ ३२ ॥ तब कपिवीर जाम्बवान्जी अंगदजी करके इस प्रकार कहे जाकरउनको उत्तर देते हुए ॥ ३३ ॥ हे वीर ! उस कार्यके अनुष्ठानमें कुछ भी कसर नहीं होगी, जो कि, इस कार्यको पूरा करेगा, सो यह देखो हम भेजते हैं ॥ ३४ ॥

उसके पीछे कपिवर जाम्बवान् वानरगणोंमें श्रेष्ठ एकान्त स्थानमें चुपचाप सुखसे बैठे हुए हनुमान्जीसे बोले॥३५॥इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा०आ० किष्कि०भा०टी० पंचषष्टितमः सर्गः॥६५॥जाम्बवान्जी अनेक शतसहस्र वानर सेनाको शोकाकुल देखकर हनुमान्जीसे इस प्रकार कहने लगे॥१॥हे समस्त वानरकुलमेंश्रेष्ठ हनुमन्! हे सर्वशास्त्रविशारद ! तुम इकले और चुप क्यों बैठेहो ? इसलोकके कृत्यको देखकर तुम किस कारणसे कुछ भी नहीं कहते ॥ २ ॥ हे हनुमन् ! तुम तेज और बलमेंवानरराज सुग्रीव और श्रीरामलक्ष्मणजीकी तुल्य हो ॥ ३ ॥ भगवान् कश्यपजीके पुत्र महाबलवान् विनतानंदन गरुडजी सर्वपक्षियोंमें श्रेष्ठ और विख्यात हैं ॥ ४ ॥ हे महाबल ! हमने बहुतबार देखा है कि उस महाबलवान् महाबाहु पक्षीने सागरसे बडे २ सर्पोंको पकडा है ॥ ५ ॥ उन

ततःप्रतीतंप्लवतांवरिष्ठमेकांतमश्रित्यसुखोपविष्टम्॥ संचोदयामासहरिप्रवीरोहरिप्रवीरंहनुमंतमेव॥३५॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० किष्किंधाकांडे पंचषष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥ अनेकशतसाहस्रींविषण्णांहरिवाहिनीम् ॥ जाम्बवान्समुदीक्ष्यैवंहनुमंतमथाब्रवीत् ॥ १ ॥ वीरवानरलोकस्यसर्वशास्त्रविदांवर ॥ तूष्णीमेकांतमाश्रित्यहनूमन्किंनजल्पसि ॥२॥ हनूमन्हरिराजस्यसुग्रीवस्य समोह्यसि ॥ रामलक्ष्मणयोश्चापितेजसाचबलेनच ॥३॥ अरिष्टनेमिनःपुत्रोवैनतेयोमहाबलः ॥ गरुत्मानिवविख्यातउत्तमःसर्वपक्षिणाम्॥४॥ बहुशोहिमयादृष्टःसागरेसमहाबलः ॥ भुजंगानुद्धरन्पक्षीमहाबाहुर्महाबलः॥५॥ पक्षयोर्यद्बलंतस्यभुजवीर्यबलंतव ॥ विक्रमश्चापितेजश्चनतेते नापहीयते ॥६॥ बलंबुद्धिश्चतेजश्चसत्त्वंचहरिपुंगव ॥ विशिष्टंसर्वभूतेषुकिमात्मानंनसज्जसे ॥ ७ ॥अप्सराप्सरसांश्रेष्ठाविख्यातापुंजिकस्थला ॥ अंजनेतिपरिख्यातापत्नीकेसरिणोहरेः ॥ ८ ॥ विख्याताज्रिषुलोकेषुरूपेणप्रतिमाभुवि॥अभिशापादभूत्तातकपित्वेकामरूपिणी ॥ ९ ॥ दुहितावानरेंद्रस्यकुंजरस्यमहात्मनः ॥ मानुषंविग्रहंकृत्वारूपयौवनशालिनी ॥ १० ॥

गरुडजीके दोनों पंखोंमें जितना बल है; तुम्हारी दोनों बाँहोंमेंभी वैसाही बल है, तुम्हारा विक्रम और तेज किसी भाँति भी उनसे कम नहीं है॥६॥ तुम समस्त जीवोंके मध्यमेंएक विशेष पदार्थ हो, फिर तुम समुद्रको लाँघनेके लिये क्यों नहीं तैयार होते ? ॥७॥ अप्सरागणोंमें श्रेष्ठ पुञ्जिकस्थला नामक अप्सरा विशेष करके अंजनानामसे विख्यात, केशरनाथ वानरकी स्त्री हुई ॥ ८ ॥ उस स्त्रीकी तीनों लोकोंमें उपमा नहींथी. हे तात! उसने शापके हेतु कामरूप धारण करनेवाली वानरी हो जन्म लिया ॥ ९ ॥ वह अंजना, वानरश्रेष्ठ महात्मा कुञ्जरकी कन्या मनुष्यदेह धारण किये रूपयौवन सम्पन्न हुई ॥ १० ॥

पर्वतके शिखर पर विहार करती थी ॥ ११ ॥ पवन
रेशमी वस्त्र पहरे विचित्रमाला और गहने पहने हुये एक दिन वह कामिनी वर्षाकालके मेघके समान पर्वतके शिखर पर विहार करती थी ॥ ११ ॥ पवन देवताने उसकी सुगोल चढाव
देवताने उस पर्वतके अग्रभागमें बैठी हुई विशालाक्षीका अरुण अंचलका सूक्ष्म मनोहर वस्त्र उठालिया ॥ १२ ॥ फिर पवन देवताने उसकी सुगोल चढाव
उतारवाली दोनों ऊरु, ऊंचे २ दोनों पयोधर और सुशोभित मनोहर मुख देखा॥१३॥ उस वृत्तनितम्बिनी, पतली कमरवाली शुभ सर्वाङ्गी परमयशस्विनीको
देखतेही पवन देव कामसे मोहित हो गये ॥ १४ ॥ कामदेवसे सब अंग मथित होनेके कारण उस निन्दा रहित स्त्रीमें लीन हो पवन देवजीने उसको अपनी
लम्बी भुजाओंसे पकड भलीभाँतिसे भेंटा ॥ १५ ॥ तब उस साधु चरित्रवाली स्त्रीने सावधान होकर कहा कि, कौन हमारा पातिव्रत्य भंग करनेकी इच्छा

विचित्रमाल्याभरणाकदाचित्क्षौमधारिणी ॥ अचरत्पर्वतस्याग्रेप्रावृडंबुदसंनिभे॥ ११ ॥ तस्यावस्त्रंविशालाक्ष्याःपीतंरक्तदशंशुभम्॥स्थिता
याःपर्वतस्याग्रेमरुतोऽपहरच्छनैः ॥१२॥ सददर्शततस्तस्यावृत्तावूरूसुसंहतौ ॥ स्तनौचपीनौसहितौसुजातंचारुचाननम्॥ १३ ॥ तांबला
दायतश्रोणींतनुमध्यांयशस्विनीम् ॥ दृष्ट्वैवशुभसर्वांगींपवनःकाममोहितः ॥१४ ॥ सतांभुजाभ्यांदीर्घाभ्यांपर्यष्वजतमारुतः ॥मन्मथाविष्ट
सर्वांगोगतात्मातामनिंदिताम्॥ १५ ॥सातुतत्रैवसंभ्रांतासुव्रतावाक्यमब्रवीत्॥ एकपत्नीव्रतमिदंकोनाशयितुमिच्छति॥ १६ ॥अंजनायावचः
श्रुत्वामारुतःप्रत्यभाषत ॥ नत्वांहिंसामिसुश्रोणिमाभूत्तेमनसोभयम् ॥ १७ ॥ मनसाऽस्मिगतोयत्त्वांपरिष्वज्ययशस्विनि ॥वीर्यवान्बुद्धि
संपन्नस्तवपुत्रोभविष्यति ॥१८॥ महासत्त्वोमहातेजामहाबलपराक्रमः॥लंघनेप्लवनेचैवभविष्यतिमयासमः॥१९॥एवमुक्तातततस्तुष्टाजननीते
महाकपे॥गुहायांत्वांमहाबाहोप्रजज्ञेप्लवगर्षभ॥२०॥अभ्युत्थिततंततःसूर्यंबालोदृष्ट्वामहावने॥फलंचेतिजिघृक्षुस्त्वमुत्पत्याभ्युद्गतोदिवम्॥२१॥

करता है ॥ १६ ॥ तब अजनाके वचन सुनकर पवन देव बोले कि; हे श्रेष्ठनितम्बोंवाली ! हमने तुम्हारा व्रत भंग नहीं किया है; तुम कुछ भय न करो
॥१७॥ हे यशस्विनी! हम तुमको आलिंगन करके मनहीसे तुम्हारे ऊपर अनुरागी हुए हैं, इसलिये व्रत भंग न होकर तुम्हारे वीर्यवान्, बुद्धिसम्पन्न पुत्र उत्पन्न
होगा ॥१८॥ वह पुत्र महासत्त्व, महातेजवान्, महाबलवान् पराक्रमी होगा, और लाँघने कूदनेमें भी हमारेही समान होगा ॥ १९ ॥ हे कपीन्द्र ! पवनजीके यह
वचन सुनकर तुम्हारी माता सन्तुष्ट हुई; और उन्होंने गुहामें जायकर तुमको उत्पन्न किया ॥२०॥ तुम बालकपनसेही महावनमें रहते थे एक दिन प्रभातका
लके समय सूर्यभगवान्को उदय हुआ देख उनको फल विचार ग्रहण करनेकी इच्छा किये तुम छलांग मार आकाशको चले ॥ २१ ॥

तीन शत योजन चले जाने पर और सूर्यकी किरणोंके तेजसे संतापित होकर भी तुम विषादको नहीं प्राप्त हुए ॥२२॥ हे कपिवर ! तुमको आकाशमें जाता हुआ देख इन्द्रने क्रोधकर तुम्हारे ऊपर वज्र चलाया ॥२३॥ तब उस शिखरके अग्रभागपर तुम्हारी बाईं हनु टूट गई, इसी कारणसे तुम्हारा 'हनुमान्' नाम हुआ ॥२४॥ गन्धवह पवनजी तुमको वज्रसे घायल देखकर अत्यन्त कोपित हुए और उन्होंने तीनों लोकोंमें वहना बंद किया ॥२५॥ पवनको न पायकर त्रिलोकमंडल क्षुभित होगया, भुवनेश्वर देवतालोग त्रासित हो घबडायकर चंचलचित्तसे पवनदेवको प्रसन्न करने लगे ॥२६॥ हे तात ! जब पवनजी प्रसन्न हुए तब ब्रह्माजीने वर दिया कि, तुम्हारा यह सत्यविक्रम पुत्र किसी शस्त्रसे नहीं मरेगा ॥२७॥ और तुमको वज्राघातसे भी व्यथाहीन देखकर सहस्रनेत्र देवपति

शतानित्रीणिगत्वाथयोजनानांमहाकपे ॥ तेजसातस्यनिर्धूतोनविषादंगतस्ततः ॥२२॥ त्वामप्युपगतंतूर्णमंतरिक्षंमहाकपे ॥ क्षिप्तमिंद्रेणतेवज्रंकोपाविष्टेनतेजसा ॥२३॥ तदाशैलाग्रशिखरेवामोहनुरभज्यत ॥ ततोपिनामधेयंतेहनुमानितिकीर्तितम् ॥२४॥ततस्त्वांनिहतंदृष्ट्वावायुर्गंधवहःस्वयम् ॥ त्रैलोक्यंभृशसंक्रुद्धोनववौवैप्रभञ्जनः॥२५॥संभ्रांताश्चसुराःसर्वेत्रैलोक्येक्षुभितेसति॥प्रसादयंतिसंक्रुद्धंमारुतंभुवनेश्वराः॥२६॥ प्रसादितेचपवनेब्रह्मातुभ्यंवरंददौ॥ अशस्त्रवध्यतांतातसमरेसत्यविक्रम॥२७॥वज्रस्यचनिपातेनविरुजंत्वांसमीक्ष्यच ॥ सहस्रनेत्रःप्रीतात्मा ददौतेवरमुत्तमम् ॥२८॥ स्वच्छंदतश्चमरणंतवस्यादितिवैप्रभो ॥ सत्वंकेसरिणःपुत्रःक्षेत्रजोभीमविक्रमः ॥ २९ ॥ मारुतस्यौरसःपुत्रस्तेजसाचापितत्समः ॥ त्वंहिवायुसुतोवत्सप्लवनेचापितत्समः ॥ ३० ॥ वयमद्यगतप्राणाभवानस्मासुसांप्रतम् ॥ दाक्ष्यविक्रमसंपन्नःकपिराजइवापरः ॥३१॥ त्रिविक्रमेमयातातसशैलवनकानना ॥ त्रिःसप्तकृत्वःपृथिवीपरिक्रांताप्रदक्षिणम् ॥३२॥तदाचौषधयोऽस्माभिःसंचितादेवशासनात् ॥ निर्मथ्यममृतंयाभिस्तदानींनोमहद्बलम् ॥ ३३ ॥

इन्द्रजीने प्रसन्न होकर उत्तम वरदान दिया ॥ २८ ॥ कि, जब यह तुम्हारा पुत्र इच्छा करेगा तबही इसकी मृत्यु होगी; इस प्रकारसे तुम केशरी वानरके भयंकर विक्रमकारी क्षेत्रजपुत्र हुए हो ॥२९॥ तुम मारुतके औरस पुत्र हो तेजमेंभी उनके समान और कूदने फांदनेमेंभी उनकेही समान हो ॥३०॥ हम इस समय हीनबल और हीनवीर्य होगये हैं, सो इस समय चतुर और विक्रमयुक्त तुम हमारे निकट दूसरे कपिराज सुग्रीवजीके समान विद्यमान हो ॥ ३१ ॥ हे वत्स ! जब वामनजीने राजा बलिको छलकर तीन चरणसे तीनों लोक नाप लिये थे तो उस समय हमने शैल, वन, काननसहित इस पृथ्वीकी इक्कीसबार प्रदक्षिणा की थी ॥ ३२ ॥ जब देवताओंकी आज्ञासे हमने जिनको मथनेसे अमृत निकलता है; उन सब औषधियोंका संग्रह किया था उस समय हमारे

शरीरमें बडा बल था ॥ ३३ ॥ सो वही इस समय हम अतिशय वृद्ध हैं इस लिये अत्यन्त हीनबल और विक्रम रहित होगये हैं, इस समय तुमहीं हम सबके मध्यमें सर्व गुणवान् ॥ ३४ ॥ विक्रम करनेमें और उछलने कूदनेमें सर्वश्रेष्ठ हो, इस लिये तुम तैयार होवो, यह वानरोंकी सेना तुम्हारे बल वीर्य देखनेका अभिलाष करती है ॥ ३५ ॥ इस लिये हे वानरश्रेष्ठ ! उठकर महासमुद्रको नांघ जाओ, हनुमन् ! तुम्हारा लंकामें जाना सर्व जीवोंका भी हितकारी है इसमें कुछ सन्देह नहीं, तुम्हारी गति सब जीवोंसे अधिक है ॥ ३६ ॥ हे वानरश्रेष्ठ हनुमन् ! सब वानरगण शोकाकुल होगये हैं अब क्यों देर करते हो ? जैसे विष्णुजीने त्रिविक्रमरूप धरा था वैसेही तुमभी महावेगसे इस समय समुद्रको लांघ जाओ ॥ ३७ ॥ तब ऋक्षश्रेष्ठ

सइदानीमहंवृद्धःपरिहीनपराक्रमः॥सांप्रतंकालमस्माकंभवान्सर्वगुणान्वितः॥३४॥तद्विजृंभस्वविक्रांतप्लवतामुक्तमोह्यसि ॥ त्वद्वीर्यंद्रष्टुकामा हिसर्वावानरवाहिनी ॥ ३५ ॥ उत्तिष्ठहरिशार्दूललंघयस्वमहार्णवम्॥पराहिसर्वभूतानांहनुमन्यागतिस्तव ॥ ३६ ॥ विषण्णाहरयः सर्वेहनुम न्किमुपेक्षसे ॥ विक्रमस्वमहावेगविष्णुस्त्रीन्विक्रमानिव ॥३७॥ ततःकपीनामृषभेणचोदितःप्रतीतवेगःपवनात्मजःकपिः ॥ प्रहर्षयंस्तांहरिवी रवाहिनीचकाररूपंपवनात्मजस्तदा ॥ ३८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये च० सा० किष्किंधाकांडे षट्षष्टितमः सर्गः ॥६६॥ तंदृष्ट्वाजृंभमाणंतेक्रमितुंशतयोजनम् ॥ वेगेनापूर्यमाणंचसहसावानरोत्तमम् ॥ १ ॥ सहसाशोकमुत्सृज्यप्रहर्षेणसमन्विताः ॥ विनेदुस्तुष्टुवुश्चापिहनूमंतंमहाबलम् ॥ २ ॥ प्रहृष्टाविस्मिताश्चापितेवीक्षंतेसमंततः॥ त्रिविक्रमकृतोत्साहंनारायणमिवप्रजाः ॥ ३ ॥ संस्तू यमानोहनुमान्व्यवर्धतमहाबलः ॥ समाविद्ध्यचलांगूलंहर्षाद्बलमुपेयिवान् ॥ ४ ॥

जाम्बवान् करके प्रेरित होकर महावीर पवनपुत्र हनुमान्जी वानरसेनाको हर्षित करके उत्साहयुक्त हो समुद्रके लांघने योग्य देहको धारण करते हुये ॥३८॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० कि० भाषायां षट्षष्टितमः सर्गः॥ ६६ ॥ फिर शतयोजन समुद्रको लांघनेके लिये बढेहुये वानरोत्तम हनुमान्जीको सहसा वेगसे परिपूर्ण देख ॥ १ ॥ एकाएकी सब वानरगण शोकको छोड हर्षयुक्त हो शब्द करतेहुए महाबलवान् हनुमान्जीकी स्तुति करने लगे ॥ २ ॥ बलिको छलने और त्रिलोकीको नाँपनेके लिये नारायणजीको उत्साहित देखकर सब प्रजा जिसप्रकार हर्षित और उत्साहित हुई थी, सब वानरलोग भी हनुमान्जीको देखकर वैसेही हर्षित और विस्मयको प्राप्त हुये ॥ ३ ॥ जब वानरोंने स्तुति की तब महाबलवान् वानर हनुमान्जी

बढने लगे और पूँछको माकर हर्षके हेतु बलको प्राप्त होने लगे ॥ ४ ॥ जब वृद्ध वानरश्रेष्ठोंने इस प्रकारसे प्रशंसा की तब हनुमानूजी तेजसे परिपूर्ण और बडी अनुपम देहयुक्त होगये ॥ ५ ॥ जिसप्रकार महासिंह भारी पर्वतकी गुहामें जँभाई लेता है; वैसेही वायुके औरस पुत्र हनुमानूजी भी जँभाई लेने और बढने लगे ॥ ६ ॥ जब बुद्धिमान् हनुमानूजी बढे तो उनका मुख प्रदीप और टूटे हुये पात्रके समान होगया और वह धुँआरहित अग्निके समान शोभा पाने लगे ॥ ७ ॥ उनके रोम फूलगये तब हनुमानूजी वानरोंके बीचमेंसे उठे और वृद्ध कपियोंको प्रणाम करके कहने लगे ॥ ८ ॥ आकाशमें टिकेहुये बलवान् अनुपम अग्निके सखा पवनजी जैसे पर्वतोंके अग्रभागको तोड डालते हैं ॥९॥ हम उन्हीं महात्मा शीघ्रगामी पवनजीके औरस पुत्र हैं और कूदने फांदनेमें उनके ही समान हैं ॥ १० ॥ हम विस्तारित आकाशको छूनेवाले, मेरु पर्वतकी विना विश्राम किये हुये सहस्र परिक्रमा कर सकते हैं ॥ ११ ॥ और

तस्यसंस्तूयमानस्यवृद्धैर्वानरपुंगवैः ॥ तेजसापूर्यमाणस्यरूपमासीदनुत्तमम् ॥ ५ ॥ यथाविजृंभतेसिंहोविवृतेगिरिगह्वरे ॥ मारुतस्यौरसःपुत्र स्तथासंप्रतिजृंभते ॥ ६ ॥ अशोभतमुखंतस्यजृंभमाणस्यधीमतः ॥ अंबरीषोपमंदीप्तंविधूमइवपावकः ॥७॥ हरीणामुत्थितोमध्यात्संप्रहृष्ट तनूरुहः ॥ अभिवाद्यहरीन्वृद्धान्हनूमानिदमब्रवीत् ॥८॥ अरुजन्पर्वताग्राणिहुताशनसखोऽनिलः ॥ बलवानप्रमेयश्चवायुराकाशगोचरः ॥९॥ तस्याहंशीघ्रवेगस्यशीघ्रगस्यमहात्मनः ॥ मारुतस्यौरसःपुत्रःप्लवनेनास्मितत्समः ॥ १० ॥ उत्सहेयंहिविस्तीर्णमालिखंतमिवांबरम् ॥ मेरुं गिरिमसंगेनपरिगंतुंसहस्रशः ॥ ११ ॥ बाहुवेगप्रणुन्नेनसागरेणाहमुत्सहे ॥ समाप्लावयितुंलोकंसपर्वतनदीह्रदम् ॥१२॥ ममोरुजंघावेगेनभ विष्यतिसमुत्थितः ॥ समुत्थितमहाग्राहःसमुद्रोवरुणालयः ॥१३॥ पन्नगाशनमाकाशेपतन्तंपक्षिसेवितम् ॥ वैनतेयमहंशक्तःपरिगंतुंसहस्रशः ॥ १४ ॥ उदयात्प्रस्थितंवापिज्वलंतंरश्मिमालिनम् ॥ अनस्तमितमादित्यमहंगंतुंसमुत्सहे ॥ १५ ॥ ततोभूमिमसंस्पृष्ट्वापुनरागंतुमुत्सहे ॥ प्रवेगेनैवमहताभीमेनप्लवगर्षभाः ॥ १६ ॥

हम अपनी बाँहोंके वेगसे चलायमान किये हुये समुद्रके द्वारा, पर्वत कुण्ड और नदी सहित समस्त लोकोंके डुबानेको समर्थ हैं ॥ १२ ॥ हमारी ऊरु और जांघोंके वेगसे वरुणालय समुद्र उफन जायगा और उसमेंही टिके हुए ग्राहादि जन्तुगण ऊपर तैर आवेंगे ॥ १३ ॥ पक्षियोंके कुलसे सेवित सर्पोंको भोजन करनेवाले गरुडजी जिस समयमें जितनी दूर जाय सकते हैं हम उतनीही देरमें उनसे हजार गुण मार्ग चल सकते हैं ॥ १४ ॥ और उदयाचल पर्वतसे चले हुए प्रज्वलित किरणवाले सूर्यनारायणके निकट गमन करनेको हम समर्थ हैं और अस्त होनेसे प्रथम हम उनके आगे जा सकते हैं ॥ १५ ॥ फिर पृथ्वीतक आकर उसको विनाही छुए अति भीम वेगसे सूर्यके निकट जा सकते हैं फिर सौ योजनका जाना क्या बडी बात है ? ॥ १६ ॥

हम समस्त आकाशचारी ग्रह नक्षत्रादिकोंको लांघजांय, समुद्रको सोखलें और पृथ्वीको चीरफाड डालें ॥ १७॥ हे वानरगण ! छलांग मारकर पर्वतसमूहको चूर्ण कर सकते हैं, और अतिवेगसे समुद्रकोभी सुखाय सकते हैं ॥ १८ ॥ हम जब आकाशमें छलांग मारकर वेगसे गमन करेंगे, तब वेगके वशसे विविध लता और वृक्षोंके पुष्पसमूह हमारे पीछे २ उड कर चलेंगे ॥ १९ ॥ जब कि हम घोरतर आकाशमें उठकर गमन करेंगे, तब हमारा मार्ग उन पहले कहे पुष्पादिकोंसे बहुत सारे नक्षत्रोंसे शोभित छायापथके समान शोभा धारण करेगा ॥ २० ॥ हे वानरगण ! उस समयभी हमें सब प्राणी बराबर देखेंगे देखो ! इस समय हमने महामेरुके तुल्य देह धारण की है ॥२१॥ हम आकाश स्थलको ढकते हुए और अम्बरस्थलको ग्रास करतेही हुएसे गमन करेंगे, तुम लोग देखते रहो । हम गमन करनेके समय मेघसमूहको छिन्नभिन्न, पर्वतोंको कम्पायमान और समुद्रको शोषण करलेंगे तुम लोग देखते रहो ॥ २२ ॥ गरुडजीकी

उत्सहेयमतिक्रांतुंसर्वानाकाशगोचरान् ॥ सागरान्शोषयिष्यामिदारयिष्यामिमेदिनीम् ॥१७॥ पर्वतांश्चूर्णयिस्यामिप्लवमानःप्लवंगमाः॥ हरिष्याम्युरुवेगेनप्लवमानोमहार्णवम्॥१८॥लतानांविविधंपुष्पंपादपानांचसर्वशः ॥ अनुयास्यतिमामद्यप्लवमानंविहायसा॥१९॥भविष्यतिहिमेपंथाःस्वातेःपंथायुवांबरे ॥ चरंतंघोरमाकाशमुत्पतिष्यंतमेवच॥२०॥द्रक्ष्यंतिनिपतंतंचसर्वभूतानिवानराः ॥ महामेरुप्रतीकाशंमांद्रक्ष्यध्वंप्लवंगमाः ॥ २१ ॥ दिवमावृत्यगच्छंतंग्रसमानमिवांबरम् ॥ विधमिष्यामिजीमूतान्कंपयिष्यामिपर्वतान् ॥ सागरंशोषयिष्यामिप्लवमानःसमाहितः ॥२२॥ वैनतेयस्यवाशक्तिर्ममवामारुतस्यवा ॥ ऋतेसुपर्णराजानंमारुतंवामहाबलम्॥नतद्भूतंप्रपश्यामियन्मांप्लुतमनुव्रजेत् ॥ २३ ॥ निमेषांतरमात्रेणनिरालंबनमंबरम् ॥ सहसानिपतिष्यामिघनाद्विद्युदिवोत्थिता ॥२४॥ भविष्यतिहिमेरूपंप्लवमानस्यसागरम् ॥ विष्णोःप्रक्रममाणस्यतदात्रीन्विक्रमानिव ॥२५॥ बुद्ध्याचाहंप्रपश्यामिमनश्चेष्टाचमेतथा ॥ अहंद्रक्ष्यामिवैदेहींप्रमोदध्वंप्लवंगमाः ॥ २६ ॥ मारुतस्यसमोवेगेगरुडस्यसमोजवे ॥ अयुतंयोजनानांतुगमिष्यामीतिमेमतिः ॥ २७ ॥

हमारी और पवनजीकी शक्ति समस्त जीवगणोंसे बढकर है जब कि हम आकाशमें गमन करेंगे, तब सुपर्णराज गरुडजी और पवनजीके सिवाय हमारे साथ चलनेमें कोई प्राणी भी समर्थ नहीं होगा ॥ २३ ॥ हम बादलसे निकली हुई बिजलीके समान एक निमेषमें ही अवलम्ब रहित अम्बरस्थलमें एकाएकी प्राप्त हो जायँगे ॥२४॥ हम जब कि समुद्रको लांघेंगे तब वामनजीने तीन चरणकी गतिसे जिस प्रकार तीनों लोक नापे थे, हमारी गति और हमारा रूप वैसाही हो जायगा ॥ २५ ॥ हम अपनी बुद्धिसे देख रहे हैं कि, हमारे मनकी चेष्टाभी ऐसीही है कि हम जानकीजीको देखेंगे । इसलिये हे वानरगण! तुम लोग इस समय आनंद मचाओ ॥ २६ ॥ हमारे मनमें ऐसा विचार होता है कि, इस समय वेगमें पवन और गरुडजीके तुल्य होकर दशहजार योजन निराधार हम

सरलतासे कूद जांयगे ॥ २७ ॥ हम वज्रधारी इन्द्रजी, और स्वयंभू ब्रह्माजीके हाथसेभी एकाएकी विक्रमसहित छलांग मारकर अमृत लाय सकते हैं ॥२८॥ हम समझते हैं; यदि हम चाहें तो लंकापुरीको उखाड करभी यहां ले आसकते हैं, अमित प्रभाववाले वानरश्रेष्ठ हनुमानूजी ऐसा कहकर बहुत गर्जे ॥२९॥ तब सब वानरगण हर्षित और विस्मित हो उनको देखने लगे । जातिके शोकका नाश करनेवाले हनुमानूजीके ऐसे वचन सुनकर ॥३०॥ कपीश्वर जाम्बवान् वेगवान् उन पवनात्मज केशरीपुत्र वीर हनुमानूजीसे बोले ॥३१॥ हे तात ! तुमने अपनी जातिवालोंका विपुल शोक नाश कर दिया है, तुम्हारे कल्याणकी इच्छासे यह सब वानर यहां आयकर ॥ ३२ ॥ समस्त तुम्हारी यात्राके समय अर्थसिद्धि होनेके लिये मंगल कीर्तन करेंगे, अब तुम वृद्ध कपिगणोंके मतसे

वासवस्यसवज्रस्यब्रह्मणोवास्वयंभुवः ॥ विक्रम्यसहसाहस्तादमृतंतदिहानये ॥ २८ ॥ लंकांवापिसमुत्क्षिप्यगच्छेयमितिमेतिः ॥तमेवंवानर श्रेष्ठंगर्जंतममितप्रभम्॥२९॥प्रहृष्टाहरयस्तत्रसमुदैक्षंतविस्मिताः ॥ तच्चास्यवचनंश्रुत्वाज्ञातीनांशोकनाशनम्॥३०॥उवाचपरिसंहृष्टोजांबवा न्हरिसत्तमम् ॥ वीरकेसरिणःपुत्रवेगवन्मारुतात्मज॥३१॥ज्ञातीनांविपुलःशोकस्त्वयाताततप्रणाशितः ॥ तवकल्याणरुचयःकपिमुख्याःसमा गताः ॥ ३२ ॥ मंगलान्यर्थसिद्ध्यर्थंकरिष्यंतिसमाहिताः ॥ ऋषीणांचप्रसादेनकपिवृद्धमतेनच ॥ ३३ ॥ गुरूणांचप्रसादेनसंप्लवत्वंम हार्णवम् ॥ स्थास्यामश्चैकपादेनयावदागमनंतव ॥३४॥ त्वद्गतानिचसर्वेषांजीवनानिवनौकसाम्॥ततश्चहरिशार्दूलस्तानुवाचवनौकसः॥३५॥ कोपिलोकेनमेवेगंप्लवनेधारयिष्यति ॥ एतानीहनगस्यास्यशिलासंकटशालिनः ॥३६॥ शिखराणिमहेंद्रस्यस्थिराणिचमहांतिच॥ येषुवेगंग मिष्यामिमहेंद्रशिखरेष्वहम् ॥ ३७ ॥ नानाद्रुमविकीर्णेषुधातुनिष्पंदशोभिषु ॥ एतानिममवेगंहिशिखराणिमहांतिच ॥३८॥ प्लवतोधारयि ष्यन्तियोजनानामितःशतम् ॥ ततस्तुमारुतप्रख्यःसहरिर्मारुतात्मजः ॥ आरुरोहनगःश्रेष्ठंमहेंद्रमरिमर्दनः ॥ ३९ ॥

और ऋषियोंकी प्रसन्नतासे ॥ ३३ ॥ और गुरुगणोंके प्रसादसे महासमुद्रके पार जाओ । हम सब वानर तुम्हारे आनेके समयतक एक चरणसे खडे रहकर तपस्या करते रहेंगे ॥३४॥ हे हनुमन् ! समस्त वनवासियोंका जीवन इस समय तुम्हारे आनेहीपर है तब वानरोंमें श्रेष्ठ हनुमानूजी सब वानरोंसे बोले ॥ ३५॥ इस समुद्रको लांघनेके विषयमें इस कालमें कोई भी हमारा वेग धारण करनेको समर्थ नहीं है परन्तु इस शिलायुक्त बडे और स्थिर महेन्द्र पर्वतके शिखर दृढ होनेके कारण हमारे वेगको धारण करनेमें समर्थ हैं इनही परसे हम कूदेंगे ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ अनेक प्रकारके वृक्षोंसे व्याप्त और धातुओंसे परिशोभित यह बडे शिखर अवश्य हमारे गमनको धारण करलेंगे, ॥३८॥ यह बडे शिखर यहांसे शतयोजनके लांघनेका वेग धारण करलेंगे, यह कह शत्रुनाशी पवनतुल्य पवन

कुमार हनुमान्जी पर्वतोंमें श्रेष्ठ महेन्द्रपर्वतपर चढे ॥३९॥ इस पर्वतपर भाँति २ के पुष्प लगरहेथे; इस पर्वतके दूब संयुक्त श्यामवर्णके क्षेत्रोंमें मृगगण चर रहे थे; इस पर्वतपर सबही ऋतुओंमें पुष्पफल लगे रहते ओर अनेक प्रकारकी लतायें फूल रही थीं ॥४०॥ इसपर सिंह शार्दूल और मतवाले हाथी सुखसे विहार करके घूमरहे थे, यह पर्वत मतवाले पक्षियोंसे पूर्णथा और इसपर झरनेभी बहुत थे ॥ ४१ ॥ महाबलवान् महेन्द्रके तुल्य विक्रमकारी कपिश्रेष्ठ हनुमान्जी महेन्द्रपर्वतके एक २ ऊंचे शिखरपर घूमने लगे ॥ ४२ ॥ महात्मा हनुमान्जीने दोनों भुजाओंसे उसे पीडितकिया तब वह शैल अपने ऊपर चरनेवाले प्राणियोंके साथ सिंहसे डरते हुए हाथीके समान मानों चिल्लाने लगा ॥४३॥ जब हनुमान्जीने कूदनेके लिये उस पर्वतको अजमाया तब उस पर्वतकी शिलाओंके टूट २ कर गिरनेसे सब झरने नष्ट होने लगे । उस पर्वतके मृग और हाथी त्रासित होगये और बडे २ वृक्ष कांपने लगे ॥४४॥ मदिरा पीनेके संसर्गमें रतिमें

वृतंनानाविधैःपुष्पैर्मृगसेवितशाद्वलम् ॥ लताकुसुमसंबाधंनित्यपुष्पफलद्रुमम् ॥४०॥सिंहशार्दूलसहितंमत्तमातंगसेवितम् ॥मत्तद्विजगणोद्घुष्टंसलिलोत्पीडसंकुलम् ॥४१॥महद्भिरुच्छ्रितैःशृंगैर्महेंद्रस्यमहाबलः ॥ विचचारहरिश्रेष्ठोमहेंद्रसमविक्रमः ॥४२॥ बाहुभ्यांपीडितस्तेनमहाशैलोमहात्मना ॥ररासिंहाभिहतोमहान्मत्तइवद्विपः ॥४३॥मुमोचसलिलोत्पीडान्विप्रकीर्णशिलोच्चयः ॥वित्रस्तमृगमातंगःप्रकंपितमहाद्रुमः ॥४४॥ नानागंधर्वमिथुनैःपानसंसर्गकर्कशैः ॥उत्पतद्भिर्विहंगैश्चविद्याधरगणैरपि ॥४५॥त्यज्यमानमहासानुःसंनिलीनमहोरगः ॥शैलशृंगशिलोत्पातस्तदाभूत्समहागिरिः ॥४६॥निःश्वसद्भिस्तदातैस्तुभुजगैरर्धनिःसृतैः ॥सपताकइवाभातिसतदाधरणीधरः ॥४७॥ऋषिभिस्त्रासंभ्रांतैस्त्यज्यमानःशिलोच्चयः ॥सीदन्महतिकांतारेसार्थहीनइवाध्वगः ॥४८॥सवेगवान्वेगसमाहितात्माहरिप्रवीरःपरवीरहंता ॥मनःसमाधायमहानुभावोजगामलंकांमनसामनस्वी ॥४९॥इत्यार्षेश्रीम०वाल्मी०आ०काव्ये चतुर्विंशतिसाहस्र्यांसंहितायांकिष्किं०सप्तषष्टितमःसर्गः ॥६७॥इतिकिष्किंधाकांडंसमाप्तम् ४

अत्यन्त आसक्त बहुत सारे गन्धर्वोंके जोडे, और विद्याधर और उडनेवाले पक्षियोंने इस पर्वतके कँगूरोंका त्याग किया ॥ ४५ ॥ वहांके सर्प भी उस महागिरिको छोड २ कर भाग चले और उस महेन्द्र पर्वतके बहुत सारे शृङ्गभी गिर पडे ॥ ४६ ॥ उस समय सर्पगण आधे निकले हुए अपने फणोंसे बार २ फुफकार करने लगे, तब ऐसा ज्ञात हुआ मानो महेन्द्र महीधर पताकाओंसे शोभायमान होरहा है ॥४७॥ सब ऋषि लोग अपने झुण्डसे बिछुडे यात्रीके समान घबडाय और व्याकुलचित्त हो उस पर्वतकी बडी कन्दराओंको दुःखी हो त्याग करने लगे ॥ ४८ ॥ वह शत्रुसंहारकारी, वेगवान् मनस्वी, महानुभाव, महात्मा हनुमान्जी सागर कूदनेके लिये वेगयुक्त होनेके लिये सावधान चित्तहो मनहीमनमें लंकापुरीका स्मरण कर मनसेही वहां पहुँचे ॥ ४९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे पंडित ज्वालाप्रसादमिश्रकृत भाषायां सप्तषष्टितमः सर्गः ॥ ६७ ॥

अतःपरंसुंदरकांडंतस्यायमाद्यःश्लोकः ॥ ततोरावणनीतायाःसीतायाःशत्रुकर्षणः ॥ इयेषपदमन्वेष्टुंचारणाचरितेपथि ॥ १ ॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

इसके उपरान्त सुन्दर काण्ड है जिसके आदिमें यह श्लोक है, इसके उपरान्त शत्रुओंके मारनेवाले महावीरजी चारणोंके चलनेके मार्गमें रावणसे हरीहुई जानकीजीको ढूँढनेकी इच्छा करते हुये।

दोहा—श्रीरघुपतिके दास शुभ, जै श्रीमारुतवीर । कृपा अनुग्रह कर हरो, महा कठिन मम पीर ॥ १ ॥
जिमि सीता सुधि लेनको, छिनमें चले सुजान । तिमि ज्वालापरसादकी, पीर मिटाओ आन ॥ २ ॥
प्रभु तुम सब जानत सदा, नित प्रति अगम अगाध । कृपा अनुग्रह कीजिये, दूर करो अपराध ॥ ३ ॥
हौं सेवक तव चरणको, नित अनन्य हनुमान । क्यों नहिं टारत कष्ट अति, तुम्हैं रामकी आन ॥ ४ ॥
आवहु दुःख मिटायकर; सुखी करहु निज दास । तब गुण गावहुँ मैं सदा, कीजिय नित्य हुलास ॥ ५ ॥
महावीर संकट हरन, करन सकल आनंद । तुम्हैं रामकी आन मम, काटहु सब दुख फंद ॥ ६ ॥
दास जानकर कृपा कर, अपनी ओर निहार । प्रभु ज्वालापरसादके, दीजै संकट टार ॥ ७ ॥

इति श्रीवाल्मीकीयरामायणे किष्किंधाकाण्डं भाषाटीकासमेतंसमाप्तम्

खेमराज श्रीकृष्णदास

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई - ४.